हिन्दी
विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त-वारिधि, एम, आर, ए, एस,

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सम्पादित।

———*———

प्रथम भाग

[अ—अभिप्रश्निन्]

THE
ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. I.

EDITED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnava,

Siddhānta-vāridhi, M. R. A. S.,

Compiler of the Bengali Encyclopædia ; the late Editor of Bangiya Sâhitya Parishad and Kâyastha Patrikâ ; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism ; Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society ; Member of the Philological Committee, Asiatic Society of Bengal ; &c. &c. &c.

Printed by R. C. Mitra, at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu,
9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta
1915

सङ्केताक्षर की विवृति।

—*—

अं०—अंगरेजी भाषा
अ०—अरबी भाषा
अक०—अकर्मक
अथर्व—अथर्ववेदसंहिता
अदा०—अदादिगणीय
अप०—अपभ्रंश
अमर—अमरकोष
अर्द्धमा०—अर्द्ध-मागधी
अव्य०—अव्यय
अश्वचि०—अश्वचिकित्सा
आत्म०—आत्मनेपदी
इब०—इबरानी भाषा
ई०—ईस्वी
उ०—उत्तरस्थान
उण्—उणादिसूत्र
उप०—उपसर्ग
उभ०—उभयलिङ्ग
ऋक्—ऋग्वेदसंहिता
कर्मधा०—कर्मधारय समास
कात्या०—कात्यायन
कुमार—कुमारसम्भव
क्रि०—क्रिया
क्रि० वि०—क्रियाविशेषण
गुज०—गुजराती-भाषा
गौ० वृ०—गौतमीय वृत्ति
चुरा०—चुरादिगणीय
ज्यो०—ज्योतिष
डिं०—डिंगल भाषा
तत्—तत्पुरुष समास
तु०—तुरकी भाषा
त्रि०—त्रिलिङ्ग
दिवा०—दिवादिगणीय
देश०—देशज
नि०—निदानस्थान
प०—पर्व
पर०—परस्मैपदी
पर्या०—पर्याय
पा—पाणिनीय अष्टाध्यायी
पु—पुराण
पु०—पुंलिङ्ग
पु० हिं०—पुरानी हिन्दी
पू० हिं०—पूर्वी हिन्दी
प्रत्य०—प्रत्यय
प्रा०—प्रातिशाख्य
प्राति०—प्रातिशाख्य
फा०—फारसी भाषा
बहु०—बहुवचन
बहुव्री०—बहुव्रीहि समास
बुं०खं०—बुंदेलखण्डी बोली
ब्रह्मख०—ब्रह्मखण्ड
ब्रह्मवै०—ब्रह्मवैवर्तपुराण
भट्टोजि०—भट्टोजिदीक्षित
भ० म०—भरत-मल्लिक
भाव०—भाववाचक
भावप्र०—भावप्रकाश
भ्वादि०—भ्वादिगणीय
मनु०—मनुसंहिता
मला०—मलयालम भाषा
माघ—माघकृतशिशुपालवध
माधवनि०—माधवकरकानिदान
महीधर०—महीधरकृत वाजसनेय वा शुक्लयजुर्वेदसंहिताभाष्य
रति०—रतिमञ्जरी
राजत०—कल्हणकी राजतरङ्गिणी
राजनिघ०—राजनिघण्टु
रामा० कि०—रामायण किष्किन्धाकाण्ड
रुधा०—रुधादिगणीय
रघु०—कालिदास-कृत रघुवंश
ललितवि०—ललितविस्तर
लश०—लशकरी भाषा (हिन्दुस्थानी जहाजियों की बोली)।
लै०—लैटिन भाषा
वाज०सं०—वाजसनेय-संहिता
वि०—विशेषण
विश्व०—महेश्वर-रचित विश्वप्रकाश
व्या०—व्याकरण
शकु०—अभिज्ञान-शकुन्तल
स०—समास
सं०—संस्कृत
संगीतद०—संगीतदर्पण
संयो०—संयोजक अव्यय
सं०क्रि०—संयोजक क्रिया
सं० पु०, सं० पुं०—संस्कृत पुंलिङ्ग
सम्पा०—सम्पादक
सर्व०—सर्वनाम
साम०—सामवेदसंहिता
स०द०सं०—सर्वदर्शन-संग्रह
सायण—सायणाचार्य्य-कृत वेदभाष्य
सूर०—सूरदास
स्त्रि०—स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री०—स्त्रीलिङ्ग।
हिं०—हिन्दी भाषा
हिं०शब्दसा०—हिन्दी-शब्दसागर
हैम—हेमचन्द्र-कृत अभिधान चिन्तामणि

———

हिन्दी

विश्वकोष

अ

अ—स्वरवर्णका पहिला अक्षर। इसका उच्चारण कण्ठसे होता है; इसलिये यह कण्ठ्य वर्ण कहलाता है। संस्कृत व्याकरणके अनुसार उच्चारण-भेदसे अकार अठारह प्रकारका है। पहिले ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत। इसके बाद उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। फिर ह्रस्व उदात्त, ह्रस्व अनुदात्त और ह्रस्व स्वरित। दीर्घ उदात्त, दीर्घ अनुदात्त और दीर्घ स्वरित। प्लुत उदात्त, प्लुत अनुदात्त और प्लुत स्वरित। फिर इन नौप्रकारके उच्चारणोंका सानुनासिक और निरनुनासिक उच्चारण होता है। इस तरह अकारका उच्चारण सब मिलाकर अठारह प्रकारका होता है।

हिन्दी भाषामें केवल ह्रस्व और दीर्घ स्वर ही लिया गया है। अकारका दीर्घ आकार हो जाता है। जिस किसी अक्षरमें आकार लगा दिया जाता है उसका रूप 'ा' इस प्रकारका हो जाता है। अ, आ, ये दोनों ही कण्ठ्य वर्ण हैं। संस्कृत भाषामें तथा संस्कृतसे जिन भाषाओंकी उत्पत्ति हुई है, उन सबमें व्यञ्जन वर्णोंका उच्चारण इसकी सहायतासे होता है। जैसे,—क, ख, इत्यादिका उच्चारण करनेमें क्+अ, ख+अ, इत्यादि—इसी तरह सब व्यञ्जनोंके अन्तमें "अ" लगाकर उच्चारण करना पड़ता है। ।*। अकः सवर्णे दीर्घः। पा ६।१।१०१। अर्थात् समान स्वर मिलने पर दीर्घ हो जाते हैं। सन्धिके इसी सूत्रके अनुसार नव+अङ्कुर मिलकर "नवाङ्कुर" हो जाता है; क्योंकि यहाँ वकारके अन्तमें अकार और अङ्कुरके आदि में अकार है। इसलिये दोनों अकार मिलकर आकार हो गया। पञ्जाबके उत्तर टिकरी प्रदेशमें टिकरी भाषा प्रचलित है, यह भाषा संस्कृत की अपभ्रंश है; परन्तु उस भाषामें स्वरवर्ण व्यञ्जन-वर्णमें नहीं मिलाया जाता। जैसे, यदि "का" लिखना पड़ा तो "कआ" लिखा जाता है। इसी तरह "कि—कइ" इत्यादि। "ऽ" इस तरहका जो एक वर्ण है उसे लुप्त अकार कहते हैं। नवः अङ्कुरः=नवोऽङ्कुरः ऐसे स्थानमें वकारके बादका विसर्ग ओकार हो गया। ।*। अतो रोरप्लुतादप्लुते। पा ६।१।११३। अप्लुत अकार (ह्रस्व दीर्घ) परेमें रहने पर अप्लुत अकारके परस्थित रुके स्थानमें उकार हो जाता है।

वर्णोद्धारतन्त्रमें अकारका रूप इस तरहका कहा गया है कि एक रेखा दक्षिण ओरसे घूमकर कुछ सिकुड़ जायगी; इसके बाद बाँईं ओर से एक रेखा

आकार दाहिनी ओरसे होती हुई ऊपर मात्रासे मिल जायगी।

हिन्दू भक्त हैं, उन्हें सम्पूर्ण विश्वमें ईश्वरकी विभूतियाँ दिखाई पड़ती हैं। तन्त्रशास्त्रमें अकारसे भी ईश्वरत्व दिखाया गया है। इसमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्ति विराजते हैं। इसका पञ्चकोण निर्गुण और त्रिगुणात्मक है। वहां पञ्चदेवता और तीनों शक्तियाँ विराजती हैं।

अ (अव्य) अभाव, निषेध, अल्प। नञ् तत्पुरुष समासमें नकारका लोप होने पर अकार रह जाता है। *। नलोपो नञः। पा ६।३।७३। नञ् तत्पुरुष समासमें शब्द विशेषमें नञ्का इन छः प्रकारोंका अर्थ होता है—

तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिताः॥ (दुर्गादास)

१। उसके सादृश्यमें,—न ब्राह्मणः अब्राह्मणः, ब्राह्मणसदृशः। अर्थात् ब्राह्मणके समानकी कोई दूसरी जाति, क्षत्रिय, या वैश्य।

२। उसके अभावमें,—न पापम् अपापम्। पापका अभाव।

३। दूसरे पदार्थका बोध—न घटः अघटः। घटके अतिरिक्त कोई दूसरा पदार्थ, जैसे पीढ़ा आदि।

४। उसकी अल्पतामें,—अनुदरी अर्थात् अल्पोदरी। जिसका पेट छोटा हो।

५। अप्रशस्त्यभावमें,—न कालः अकालः। अर्थात् अप्रशस्त काल, थोड़ा समय आदि।

६। विरोध अर्थमें,—न सुरः असुरः। अर्थात् सुरविरोधी। इस तरहके नञ् समासमें बताये हुए छः अर्थोंमें से कोई न कोई अर्थ अवश्य ही लगता है। अधिक्षेपमें (तिरस्कार) क्रियापद परे रहने पर अर्थात् उपरान्तमें क्रिया आने पर नञ्के स्थानमें अ होता है। *। नञोनलोपस्तिङि क्षेपे। अ पचसि त्वं जाल्म। (काशिका)। सम्बोधनमें—अ! अनन्त आगच्छ भोः। अ अनन्त, यहाँ पहिले अकार और दूसरे पदके आदिमें अकार है; परन्तु एक स्वरके साथ सन्धि न हुई। *। निपात एकाजनाङ्। पा १।१।१४। आ को छोड़कर दूसरा जो निपात एकाच हो वह प्रगृह्य संज्ञक होगा। (इससे सन्धि न होगी)। प्रगृह्य शब्द देखो।

अ—(पु०) विष्णु (स्त्री०) ङीप् ई लक्ष्मी। कहीं कहीं अकारसे ब्रह्मका अर्थ समझा जाता है।

ओंकार देखो।

तन्त्रमें अकारके और भी कितने ही पर्य्याय शब्द दिखाई देते हैं। जैसे—सृष्टि, श्रीकण्ठ, मेघ, कीर्त्ति, निवृत्ति, ब्रह्मा, वामाद्यज, सारस्वत, अमृत, हर, नरकारि, ललाट, एकमात्रिक, कण्ठ, ब्राह्मण, वागीश, प्रणवाद्य।

अ-उ-म, इन तीन बीज वर्णोंसे प्रणवकी उत्पत्ति है। यहाँ योगसाधनका भी एक गूढ़ भेद छिपा है। योगियोंका कथन है कि मन एकाग्र करनेके लिये पहिली अवस्थामें कभी पूरे ओंकार का उच्चारण न करना चाहिये। पहिले ओंकारके आदि अक्षर अकारका जप करना चाहिये। उसका नियम यह है:—पद्मासन बाँधकर उन्नतभावसे सीधे बैठकर मस्तक ठीक सामने की ओर इतना नीचे झुकाना चाहिये कि ठोड़ी कलेजेमें जा लगे। फिर, कण्ठके नीचेसे प्लुत अनुदात्त स्वर अकारका उच्चारण करे। फिर धीरे धीरे सुरको ऊँचा उठावे और प्लुत उदात्त स्वरमें अकारका उच्चारण करे। इस प्रकारसे नीचे सुरके अकारसे धीरे धीरे सुरको ऊँचा उठाने पर उकार आपही उच्चारण होने लगता है। फिर, ऊपरसे सुर नीचे लानेके समय, स्वरपतन कालमें सानुनासिक अकार आपही उच्चारण में आजाता है। इसका संकेत इस प्रकार है:—

अ आ ⌒ ⌒ आ उ ऊ॥॥ ओम् — — ⌒

जिन्होंने योगियोंके मुँहसे प्रणवगान सुना है, वे ही इस सुरको समझ सकते हैं।

पहिले एकान्तस्थानमें ऊँचे स्वरमें इस वीज वर्णका उच्चारण करना पड़ता है। इसका अच्छी तरह अभ्यास हो जाने पर, फिर माथा उठाकर धीरे धीरे इस मन्त्रका इसतरह जप करना चाहिये कि जीभ और होठ तक न हिलें। इसप्रकार के

साधनका यह फल है कि साधकका चित्त एकाग्र होकर वह दीर्घायु होजाता है। उसके भीतरी वायु, पित्त, रक्त, तथा शुक्र स्वच्छ होकर शुद्ध होजाते हैं और समाधिकी पूर्वावस्थाकी भाँति साधक सो जाता है।

बहुत दिनोंकी पुरानी बातें लिखी जानेके कारण पाठक भलेही हँसें परन्तु अब हँसनेका समय नहीं है। पहिले हमलोगोंको देखकर जो हँसते थे, अब वे भी माथे पर हाथ रखकर सोचा करते हैं। संस्कृत-प्रिय मोक्षमूलर (Max Müller) साहबने लिखा है—ओंकार जप करके देखो। पहिले यह वृथा, सारहीन मालूम होगा। परन्तु बात वास्तवमें ऐसी नहीं है। बार बार प्रणवका उच्चारण करनेसे ओंकारका जप होता है। यह जप मनको एकाग्र कर ब्रह्मरूप महाकेन्द्रमें लगानेके लिये किया जाता है। हिन्दू जिसे मनकी एकाग्रताका साधन कहते हैं; सवलोग उसका मर्म्म नहीं जानते।

अउ—(हिं०) और, तथा, अपर। [इसकी योजना पद्यमें ही होती है]

अउठा—(हिं० पुं०) नापनेकी दो हाथकी एक लकड़ी जिसे जुलाहे लिये रहते हैं। इस लकड़ीसे जुलाहे अपना ताना बाना ठीक करते, कपड़ेको नापते और समय समय पर सूतको भी ठीक करते हैं।

अउर—(हिं०) और।

अऊत—(हिं० वि०) अपुत्र, बिना पुत्रका, निःसन्तान।

अऊलना—(हिं० क्रि०) जलना, गरमी पड़ना, चुभना, छिदना, छिलना।

अऋण—(वि०) ऋणमुक्त, जो कर्ज़दार न हो।

अऋणिन्—(सं० त्रि०) न ऋण-इन् अस्त्यर्थे। नञ्-तत्। किसी किसी पुस्तक में इस तरह रूप-सिद्धि ली गई है।

अऋणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते। (महाभारत वनपर्व्व)

नञ् तत्पुरुषसमासमें स्वरवर्ण पीछे रहनेसे अ की जगह अन् हो जाता है। *। तस्मान्नुड़चि। पा ६।३।७४। ऋकारका हलत्व ग्रहण करना ठीक नहीं है। ऋकार अर्द्धस्वरवर्ण है। अर्थात् इसके आदिमें आधा स्वर और अन्तमें आधा हल् (अ्+र्) मिला हुआ है। इसीसे "अनृणी" ऐसी रूप-सिद्धि हो जाती है। कालिदास ने इस शुद्धरूपको ग्रहण भी किया है। जैसे, तदहमेनाम् अनृणां करोमि। ऋणशून्य। जिसे क़र्ज़ न हो। अऋणी अऋणिनौ, अऋणिनः। (स्त्री०) अऋणिनी।

किसीसे उधार धन लेकर फिर चुका देनेसे ही मनुष्य अऋणी अर्थात् ऋणमुक्त हो जाता है; परन्तु इसके अतिरिक्त धर्म्मतः मनुष्यों पर और भी तीन प्रकारके ऋण रहते हैं।

ऋणं देवस्य योगेन ऋषीणां दानकर्म्मणा।
सन्तत्या पितृलोकानां शोधयित्वा परिव्रजेत्॥

होम यज्ञ आदि द्वारा देवऋण, दानद्वारा ऋषिऋण, और सन्तान उत्पन्न करके पितृ ऋणको परिशोधकर ब्राह्मणको मोक्षसाधनमें चित्त लगाना चाहिये।

अएरना—(हिं० क्रि०) अङ्गीकार करना। अँगेरना। स्वीकार करना। धारण करना।

अउघड़ (औघड़)—भारतवर्षका एक उपासक सम्प्रदाय। ब्रह्मगिरि नामक एक महन्त ने यह मत चलायाथा दशनामी संन्यासी योगी गुरु गोरखनाथ की कृपा से "अउघड़" नाम देकर उन्होंने यह मत चलाया। गुजरात में उनकी एक गद्दी है। इनमें शिष्य बनाने की रीति नहीं है। इस गद्दी के महन्त की मृत्युके बाद सम्प्रदायका कोई एक मनुष्य किसी एक प्रकरणसे गद्दी का अधिकारी बना दिया जाता है।

इस अउघड़ मतके चलाने वाले ब्रह्मगिरिके रुखड़ सुखड़ प्रभृति योगियों का मत बहुत कुछ मिलता है। इनके विषय में जनश्रुति फैली हुई है कि गोरखनाथ ने ब्रह्मगिरि को मन्त्र दान न देकर कई अपने चिन्ह दिये थे। ब्रह्मगिरि गुरुसे उन चिन्हों को लेकर रुखड़ सुखड़ प्रभृति को दे गये थे।

इनमें किसी संन्यासी की मृत्यु होने पर सुखड़, रुखड़, गुदड़ ये तीनों मतावलम्बी एकत्र होकर उसकी अन्त्येष्टिक्रियासम्बन्धी सब काम करते हैं। पहिले मृत संन्यासी को स्नान कराया जाता है; उसके बदन

में विभूति लगादी जाती है फिर वस्त्र पहिना कर उसे समाधि देदी जाती है। इसके बाद वेही तीनों दलके मनुष्य उसके पास जो कुछ रहता है ले लेते हैं। यह शिवके उपासक हैं। कनफट् योगियों की तरह शिव की उपासना यह भी किया करते हैं गले में तार और शैली सदा पहिने रहते हैं। दो तीन विलस्त लम्बा एक काला पदार्थ डोरी में बांध कर गले में मालाके समान पहिर लेते हैं; इसीको नाद कहते हैं और जिस सूत की माला में वह गुँथा जाता है उसको शैली कहते हैं। किसी संन्यासी के गलेमें नाद और शैली देखनेसे ही समझना चाहिये कि यह औघड़ सम्प्रदाय का मनुष्य है। यह संन्यासी शैवों की तरह गेरुआ वस्त्र पहिनते हैं, माथे पर जटा रखते हैं, समस्त शरीर में भस्म लेपन करते हैं और ललाट में विभूति लगा कर त्रिशूल का चिन्ह बनाते हैं। इस मत वालों में से कितने ही शिवमन्दिर में पूजन करते हैं, कितने एक स्थान में बैठ कर शिव का ध्यान करते, और कितने ही सदा तीर्थाटन किया करते हैं।

अउघड़ योगी गोरखनाथ को शिव का अवतार समझते हैं। गोरखनाथ हठयोगी थे अतएव इन्हें भी हठयोग के नियमानुसारही चलना पड़ता है। अतः इन्हें भी एक प्रकारके हठयोगी कह सकते हैं। हठप्रदीपिका प्रभृति ग्रन्थों में हठयोगका विषय बहुत कुछ लिखा है। इन उदासीन योगियों में कोई विवाह करके संसारी नहीं होता है। परन्तु विवाह न करने पर भी विषयवासना में बहुतेरे व्याप्त हो गये हैं। इन्हें कई गुरुओंसे शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। वे गुरु एक एक क्रिया करा देते हैं। कोई माथा मुड़ा देता है, कोई नाद या शैली पहना देता है। दशनामी संन्यासियोंमें जिसी तरह गिरी, पुरी, आदि उपाधियां रहती हैं; उसी तरह इन योगियों की उपाधि नाथ रहती है क्योंकि वहलोग अपने को बाबा गोरखनाथ के शिष्य समझते हैं और इसीलिये नाथ उपाधि द्वारा अपनी परिचय देते हैं। ये औघड़ योगी कनफट् योगियों के समान एक मत होने पर भी उनकी तरह दोनों कान छेदवा कर मुद्रा धारण नहीं करते परन्तु गले में नाद और शैली पहनते हैं। गोरखपुर इनका प्रधान स्थान है। दशनामी संन्यासियों की तरह इनके मतमें भी ज्योतिमार्ग में प्रवेश करके मद्य मांस खाने की प्रथा प्रचलित है।

अंक—(सं० अङ्क) अङ्क देखो।

अंकक—(सं० अङ्कक) अङ्कक देखो।

अंककार—(सं० अङ्ककार) अङ्ककार देखो।

अंकगणित—(सं० अङ्कगणित) अङ्कगणित देखो।

अँकटा—(हिं० पु०) कङ्कड़का छोटा टुकड़ा। अनाजमें मिला हुआ कङ्कड़का छोटा टुकड़ा जो उसमेंसे चुनकर निकाल दिया जाता है।

अँकटी—(हिं० स्त्री०) बहुतही छोटी कंकड़ी।

अँकड़ी—(हिं० स्त्री०) काँटो। हुक। तीरका मुड़ा हुआ फल। बेल। लता। लग्गी। फल तोड़नेका बाँसका डण्डा जिसके सिरे पर फँसानेके लिये एक छोटी लकड़ी बँधी रहती है।

अंकधारण—(सं० अङ्कधारण) अङ्कधारण देखो।

अंकधारिणी—(सं० अङ्कधारिणिन्) अङ्कधारिणी देखो।

अंकधारी—(सं० अङ्कधारिन्) अङ्कधारी देखो।

अंकन—(सं० अङ्कन) अङ्कन देखो।

अँकना—(क्रि०) आँकना।

अंकनीय—(सं० अङ्कनीय) अङ्कनीय देखो।

अंकपरिवर्त्तन—(सं० अङ्कपरिवर्त्तन) अङ्कपरिवर्त्तन देखो।

अंकपलई—(हिं० स्त्री०) [सं० अङ्कपल्लव] अङ्कपल्लव देखो।

अंकपालिका—(सं० अङ्कपालिका) अङ्कपाली देखो।

अंकमाल—(सं० अङ्कमाल) अङ्कमाल देखो।

अंकमालिका—(सं० अङ्कमालिका) अङ्कमालिका देखो।

अँकरा—(हिं० पु०) एक प्रकारका खर जो गेहूँके पौधोंके बीचमें उत्पन्न होता है। इसका साग बनता है और यह बैलोंके खिलानेके काममें आता है। इसका दाना या बीज काला, चिपटा, छोटी मूँगके बराबरका होता है, और प्रायः गेहूँके साथ मिल जाता है। इसे ग़रीब लोग खाते भी हैं।

अँकरी—(हिं० स्त्री०) अँकरा कल्पार्थक प्रयोग।

अँकरोरी, अँकरौरी—(हिं० स्त्री०) कंकड़ी। खपड़ेका बहुत छोटा टुकड़ा।

अँकवार—(हिं० स्त्री०) गोद। छाती। अङ्कपाली।

अंकविद्या—(सं० अङ्कविद्या) अङ्कगणित देखो।

अँकाई—(हि० स्त्री०) कूत। अटकल। अन्दाजा। फसलमेंसे जमींदार (भूमिहार) और काश्तकार (कृषिक) के हिस्सोंका ठहराव।

अँकाना—(हि० क्रि०) कुतवाना। मूल्य निर्धारित कराना। परीक्षा करना। जँचाना।

अँकाव—(हि० पु०) कूतने या आँकनेका काम। कुताई। अन्दाज।

अंकावतार—(सं० अङ्कावतार) नाटकके एक अंकके अन्तमें आगामी दूसरे अंकके अभिनयकी पात्रों द्वारा सूचना वा आभास। अङ्कावतार देखो।

अंकिका—(सं० अङ्किका) अङ्किका देखो।

अंकित—(सं० अङ्कित) अङ्कित देखो।

अंकिल—(सं० अङ्कित) अङ्कित देखो।

अँकुड़ा—(हि० पु०) लोहेका झुका हुआ टेढ़ा काटा। लोहेका झुका हुआ छड़। कुलाबा। गाय बैलके पेटका दर्द या मरोड़। टेढ़ी झुकी हुई कील जिसे तागेमें अटका कर पटवा काम करते हैं।

अँकुड़ी—(हि० स्त्री०) टेढ़ी काँटिया। हुक। हल की वह लकड़ी जिसमें फाल लगा रहता है। एक्केके पहियेके जोड़ों पर लगी हुई लोहेकी कील या जोंकी।

अँकुड़ीदार—(हि० वि०) जिसमें अँकुड़ी लगी हो। एक प्रकारका कसीदा जिसे "गड़ारी" भी कहते हैं।

अंकुर—(सं० अङ्कुर) अङ्कुर देखो।

अंकुरक—(सं० अङ्कुरक) अङ्कुरक देखो।

अँकुरना, अँकुराना—(हिं० क्रि०) अङ्कुर फोड़ना। उगना। जमना। उत्पन्न होना।

अंकुरित—(सं० अङ्कुरित) अङ्कुरित देखो।

अंकुरित-यौवना—(सं० अङ्कुरित-यौवना)

अँकुरी—(हि० स्त्री०) चनेकी भिंगोई हुई घुघनी।

अंकुश—(सं० अङ्कुश) अङ्कुश देखो।

अंकुशग्रह—(सं० अङ्कुशग्रह) अङ्कुशग्रह देखो।

अंकुशदंता—(सं० अङ्कुशदन्त) अङ्कुशदन्त देखो।

अंकुशदुर्धर—(सं० अङ्कुशदुर्धर) अङ्कुशदुर्धर देखो।

अंकुस—(हि० पु०) अङ्कुश देखो।

अँकुसा—(हि० पु०) अङ्कुश देखो।

अँकुसी—(हि० स्त्री०) झुकी हुई लोहेकी कील। यह अधिकतर किसी वस्तुको फँसाने अथवा लटकानेके लिये बनाई जाती है। अँकुसी कितनेही कामोंमें आती है। ठठेरे इसको पीतलकी बनाकर भट्टी से आग या राख निकालते हैं।

अंकोट—(सं० अङ्कोट) अङ्कोट देखो।

अंकोटक—(सं० अङ्कोटक) अङ्कोटक देखो।

अंकोड़ा—(हि० पु०) पालकी रस्सी खींचनेके लिये एक प्रकारका काटा बनाया जाता है। बड़ा कांटा। एक प्रकारका लङ्गड़।

अंकोर—(हि० पु०) गोद। छाती। भेंट। नजर। जलपान।

अँकोरी—(हि० स्त्री०) गोद। आलिङ्गन।

अंकोल—(सं० अङ्कोल) अङ्कोल देखो।

अंक्य—(सं० अङ्क्य) अङ्क्य देखो।

अंखड़ी—(हि० स्त्री०। आंख। चितवन।

अँखमीचनी—(हि० स्त्री०) आंखमिचौली देखो।

अँखाना—(हि० क्रि०) अनखाना देखो।

अंखिया—(हि० पु०) आंख, नक्काशी बनानेका लोहेका एक ठप्पा जिससे कसेरे हथौड़ीसे ठोंक ठोंक कर नक्काशी बनाते हैं।

अँखुआ—(हि० पु०) अङ्कुरा बीजसे कूटकर निकली हुई नोक फुनगी।

अंखुआना—(हि० क्रि०) अङ्कुर फोड़ना। जमना अङ्कुरित होना।

अंग—(सं० अङ्ग) अङ्ग देखो।

अंगकर्म—(सं० अङ्गकर्म्म) अङ्गकर्म्म देखो।

अंगग्रह—(सं० अङ्गग्रह) अङ्गग्रह देखो।

अंगचालन—(सं० अङ्गचालन) अङ्गचालन देखो।

अंगज—(सं० अङ्गज) अङ्गज देखो।

अंगजा—(सं० अङ्गजा) अङ्गजा देखो।

अंगजाई—(हि० स्त्री०) बेटी। लड़की। कन्या।

अंगजात—(सं० अङ्गजात) अङ्गजात देखो।

अंगजाता—(सं० अङ्गजाता) अङ्गजाता देखो।

अंगड़ खंगड़—(हि० वि०) टूटा फूटा। गिरा पड़ा बचा खुचा।

अँगड़ाई—(हि० स्त्री०) देह टूटना। आलस्यसे जम्हाई लेते हुए शरीरको ऊपरकी ओर खींचते हुए फैलाना सोकर उठने और ज्वर आनेके पहिले अंगराई आने लगती है।

अंगण—(सं० अङ्गण) अङ्गण देखो।

अंगति—(सं० अङ्गति) अङ्गति देखो।

अंगत्राण—(सं० अङ्गत्राण) अङ्गत्राण देखो।

अंगद—(सं० अङ्गद) अङ्गद देखो।

अंगदाना—(सं० अङ्गदान) अङ्गदान देखो।

अंगदीया—(सं० अङ्गदीया) अङ्गदीया देखो।

अंगद्वार—(सं० अङ्गद्वार) अङ्गद्वार देखो।

अंगधार—(सं० अङ्गधारी) अङ्गधारी देखो।

अंगन—(सं० अङ्गण) अङ्गन देखो।

अँगना—(हि० पु०) आंगन।

अंगना—(सं० अङ्गना) अङ्गना देखो।

अँगनाई—(हि०) आंगन देखो।

अंगनाप्रिय—(सं० अङ्गनाप्रिय) अङ्गनाप्रिय देखो।

अँगनैया—(हि० पु०) आंगन। चौक।

अंगन्यास—(सं० अङ्गन्यास) अङ्गन्यास देखो।

अंगपाली—(सं० अङ्गपाली) अङ्गपाली देखो।

अंगप्रोक्षण—(सं० अङ्गप्रोक्षण) अङ्गप्रोक्षण देखो।

अंगभंग—(सं० अङ्ग-भङ्ग) अङ्गभङ्ग देखो।

अंगभंगी—(सं० अङ्ग भङ्गी) अङ्गभङ्गी देखो।

अंगभाव—(सं० अङ्गभाव) अङ्गभाव देखो।

अंगभूत—(सं० अँगभूत) अङ्गभूत देखो।

अंगमर्द—(सं० अङ्गमर्द) अङ्गमर्द्दन देखो।

अंगमर्द्दन—(सं० अङ्गमर्द्दन) अङ्गमर्द्दन देखो।

अंगरक्षा—(सं० अङ्गरक्षा) अङ्गरक्षा देखो।

अँगरखा—(हि० पु०) अंग-शरीर, रखा- रक्षा करनेवाला अङ्गकी जो रक्षा करे उसे अँगरखा कहते हैं। तनीदार अङ्गा। चपकन। अँगरखा दोनों घुटनोंके नीचे तकका बनता है। इसमें बांधनेके लिये बँध टँके रहते हैं। अँगरखा छः कलिया और बालाबर—दो तरहका होता है। छः कलीवाले अँगरखेको छकलिया कहते हैं। इसमें छः कलियां रहती हैं और चार बँध रहते हैं। बगलके बन्द भीतरकी ओर बाँधे जाते हैं, यह दोनों बगलके बन्दों वाला पल्ला भीतरकी ओर चला जाता है। और ऊपर एक पल्ला रहता है जिसका बन्द सामनेकी ओर बाँधा जाता है। बालाबर अंगरखेमें चार कलियाँ रहती हैं और छः बन्द लगाये जाते हैं। इसमें भी बगलके बन्दका पल्ला नीचे चला जाता है और सामनेका पल्ला छातीपर से गोल होता हुआ बाँईं ओरके बगलमें ऊपरसे बन्द द्वारा बाँध दिया जाता है। इसमें एक बन्द पल्लेको खिसकनेसे रोकनेके लिये सामनेकी ओर भी बाँधा जाता है।

अंगरस—(सं० अङ्गरस) अङ्गरस देखो।

अँगरा—(सं० अङ्गार) अङ्गार देखो।

अंगरात—(सं० अङ्गराग) अङ्गराग देखो।

अंगराज—(सं० अङ्गराज) अङ्गराज देखो।

अँगरी—(हि० स्त्री०) कवच। बक्तर।

अँगरेज़—(फरासी Anglais) इंगलैण्ड देशका निवासी।

अँगरेज़ी—(हि०) अंगरेज़ोंकी। विलायती। इङ्गलैण्ड देशकी।

अंगरेज़ी—(हि० स्त्री०) अंगरेज़ी भाषा। जिस भाषामें अंगरेज़ बातें करते हैं। अंगरेज़ी भाषा कहनेसे केवल इंग्लैण्डके अधिवासी एङ्गलोंकी भाषा नहीं समझी जाती। लैटिन, ग्रीक, हिब्रू, केल्टिक, डेनिश, सैक्सन, फरासी, स्पेनीस, इतालीय, जर्म्मन, संस्कृत, हिन्दुस्थानी, चीनी आदि कितनी ही भाषायें मिलकर इस भाषाकी उत्पत्ति हुई है। इस भाषामें अभी तक नवीन शब्दोंकी सृष्टि हुआ करती है।

अंगरेज़ी भाषाका इतिहास चार अंशोंमें बांटा जा सकता है। पहिला भाग—ऐंग्लो सैक्सन समय (४४९ से १०६६ ईस्वीतक) दूसरा—अर्द्धसैक्सन समय (१०६६ से १२५० ईस्वीतक) तीसरा—प्राचीन अँगरेज़ी समय (१२५० ईस्वीसे १५५० तक) और चौथा अंगरेज़ी समय (१५५० से वर्त्तमान तक) इन चारों भागोंकी भाषापर ध्यान देनेसे मालूम होगा कि ज्यों ज्यों समय पलटा खाता गया है त्यों त्यों

अंगरेज़ी भाषामें भी परिवर्त्तन होता गया है। और भाषाके रूपमें भी बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है। अर्थात् पहिली अंगरेज़ी भाषा जिस शैलीसे लिखी अथवा बोली जाती थी, अब ठीक उसका विपरीत हो रहा है। अंगरेज़ी भाषामें केवल छब्बीस अक्षर हैं। इन छब्बीस अक्षरोंसे विदेशीय सब शब्दोंका उच्चारण नहीं होता, इसलिये नवीन नवीन अक्षर बनाये जाते हैं। इंगलैंड और लटिन देखो।

अंगरेज़ी साहित्य इस समय धुरन्धर और विद्वान् लेखकों द्वारा उन्नतिकी चरम सीमापर पहुँच रहा है।

अंगलेट—(हि॰ पु॰) शरीरका गठन। काठी। उठान।

अँगवना—(हि॰ क्रि॰) अङ्गीकार करना। स्वीकार करना। ओढ़ना। सरना। उठाना।

अंगवारा—(हि॰ पु॰) गांवके एक छोटे भागका मालिक। खेतकी जोताईमें एक दूसरेकी सहायता।

अंगविकृति (सं॰ अङ्गविकृति) अङ्गविकृति देखो।

अंगविक्षेप—(सं॰ अङ्गविक्षेप) अङ्गविक्षेप देखो।

अंगविद्या—(सं॰ अङ्गविद्या) अङ्गविद्या देखो।

अंगविभ्रम—(सं॰ अङ्गविभ्रम) अङ्गविभ्रम देखो।

अंगशैथिल्य—(सं॰ अङ्गशैथिल्य) अङ्गशैथिल्य देखो।

अंगशोष—(सं॰ अङ्गशोष) अङ्गशोष देखो।

अंगसंग—(सं॰ अङ्गसङ्ग) अङ्गसङ्ग देखो।

अंगसंपेख—(सं॰ अङ्गसम्प्रेक्ष) अङ्गसम्प्रेक्ष देखो।

अंगसंस्कार—(सं॰ अङ्गसंस्कार) अङ्गसंस्कार देखो।

अंगसंख्य—(सं॰ अङ्गसंख्य) अङ्गसंख्य देखो।

अंगसिहरी—(हि॰ स्त्री॰) कँपकँपी। जूड़ी।

अंगहार—(सं॰ अङ्गहार) अङ्गहार देखो।

अंगहीन—(सं॰ अङ्गहीन) अङ्गहीन देखो।

अंगांगीभाव—(सं॰ अङ्गाङ्गीभाव) अङ्गाङ्गीभाव देखो।

अंगा—(हि॰ पु॰) अँगरखा। चपकन। अंगरखा देखो।

अंगाकड़ी—(हि॰ स्त्री॰) अँगारोंपर सेंकी हुई रोटी। बाटी। लिट्टी।

अंगार—(हि॰ पु॰) दहकता हुआ कोयला। अङ्गारा।

अंगारक—(सं॰ अङ्गारक) दहकता हुआ कोयला। अङ्गार।

अंगारकमणि—(सं॰ अङ्गारकमणि) अङ्गारकमणि देखो।

अंगारधानिका—अङ्गारधानिका देखो।

अंगारपाचित—(सं॰ अङ्गारपाचित) अङ्गारपाचित देखो।

अंगारवल्ली—(सं॰ अङ्गारवल्ली) अङ्गारवल्ली देखो।

अंगारमणि—(सं॰ अङ्गारमणि) अङ्गारमणि देखो।

अंगारमती—(सं॰ अङ्गारमती) अङ्गारमती देखो।

अंगारा—(हि॰ पु॰) अङ्गारा। अङ्गार देखो।

अंगारिणी—(सं॰ अङ्गारिणी) अङ्गारिणी देखो।

अंगारी—(सं॰ अङ्गारी) अङ्गारी देखो।

अँगारी—(हि॰ स्त्री॰) ईखके ऊपरके पत्ते जो काटकाट गाय बैलोंको खिला दिये जाते हैं। गँडेरी।

अंगिका—(सं॰ अङ्गिका) अङ्गिका देखो।

अंगिया—(हि॰ स्त्री॰) स्त्रियोंका एक पहिनावा जिससे केवल स्तन ढँके रहते हैं। पीठका कुछ अंश और पेट खुला रहता है। इसमें चार बन्द होते हैं जो पीछेकी और बाँध दिये जाते हैं। इसमें उस स्थानपर जो स्तनोंके ऊपर पड़ता है जिसे कटोरी या मुलकुट कहते हैं। इसके गलेको अंगियाका पाट, दोनों कटोरियोंके बीचकी सींवनको अंगियाकी चिड़िया, कटोरियोंके नीचेके भागको अंगियाकी दीवार, और कटोरीकी कली जो जोड़ों पर गोखरू टांकनेसे बन जाती है, उसे अँगियाका बँगला कहते हैं।

अंगिरस—(सं॰ अङ्गिरस्) अङ्गिरा देखो।

अंगिरा—(सं॰ अङ्गिरस्) अङ्गिरा देखो।

अँगिराना—(हि॰ क्रि॰) अँगड़ाना। अँगड़ाई लेना।

अंगी—(सं॰ अङ्गी) अङ्गी देखो।

अंगीकार—(सं॰ अङ्गीकार) अङ्गीकार देखो।

अंगीकृत—(सं॰ अङ्गीकृत) अङ्गीकृत देखो।

अँगीठा—(हि॰ पु॰) बड़ी अँगीठी। बड़ी बोरसी।

अँगीठी—(हि॰ स्त्री॰) आग रखनेका छोटा बर्त्तन। आतिशदान।

अँगुठी—(हि॰ स्त्री॰) नीच जातिकी स्त्रियोंके पैरोंके अनवरके स्थानपर पहिरनेका एक कांसेका ढाला हुआ गहना।

अंगुर—(हि॰ पु॰) अङ्गुल और अंगूर देखो।

अँगुरिया बेल—(हि॰ पु॰) अँगूर की लता के समान बनाई हुई गलीचे या कालीन परकी नक्काशी।

अँगुरी—(हि० स्त्री०) उँगली।

अंगुल—(सं० अङ्गुल) अङ्गुल देखो।

अंगुलित्राण—(सं० अङ्गुलित्राण) अङ्गुलित्राण देखो।

अंगुलितोरण—(सं० अङ्गुलितोरण) अङ्गुलितोरण देखो।

अंगुलिपंचक—(सं० अङ्गुलिपञ्चक) अङ्गुलिपञ्चक देखो।

अंगुलिपर्व—(सं० अङ्गुलिपर्व) अङ्गुलिपर्व देखो।

अंगुलिमुद्रा—(सं० अङ्गुलिमुद्रा) अङ्गुलिमुद्रा देखो।

अंगुलिवेष्टन—(सं० अङ्गुलिवेष्टन) अङ्गुलिवेष्टन देखो।

अँगुली—(सं० अङ्गुलि) अङ्गुलि देखो।

अंगुल्यादेश—(सं० अङ्गुल्यादेश) अङ्गुल्यादेश देखो।

अंगुल्यानिर्देश—(सं० अङ्गुल्यानिर्देश) अङ्गुल्यानिर्देश देखो।

अंगुश्तनुमाई—(फा० स्त्री०) बदनामी। कलङ्क।

अंगुश्तरी—(फा० स्त्री०) अँगूठी। मुद्रिका।

अंगुश्ताना—(फा० पु०) उँगली पर पहिनने की पीतल की बनी हुई एक टोपी जिसमें बहुतसे गड़हे बने रहते हैं। दरज़ी इसको विशेष काम में लाते हैं। वे सीते समय इसे पहिन कर इसीसे सुईकी पिछली नोक को जिसमें डोरा पिरोया रहता है आगे बढ़ाने के लिये दबाते हैं। इससे सुई गड़ने का भय नहीं रहता। आरसी।

अंगुष्ठ—(सं० अङ्गुष्ठ) अङ्गुष्ठ देखो।

अँगुसा— (हि० पु०) अङ्कुर, अँखुआ।

अँगुसाना—(हि० क्रि०) जमना। अङ्कुरित होना।

अँगुसी—(हि० स्त्री०) सोनारों की वकनाल या टेढ़ी नली जिससे दिये के सामने फूंककर टांका जोड़ते हैं।

अँगूठा—(हि० पु०) अँगुष्ठ। मनुष्य के हाथ की सबसे छोटी और सबसे मोटी उँगली तर्जनी की बगल के छोर परकी उँगली जिसका जोड़ हथेली पर हो अर्थात् कलाईके नीचे की सबसे मोटी उँगली। किसी वस्तु के पकड़ने में इसकी सहायता प्रधान रहती है।

अँगूठा चूमना—खुशामद करना। अँगूठा दिखाना धोखा देना। अँगूठे पर मारना तुच्छ समझना।

अँगूठी—(हि० स्त्री०) मुँदरी। मुद्रिका।

अंगूर—(फा० पु०) दाख। द्राक्षा। एक प्रकार की लता और उसका फल। यह फ़ारसी भाषा का शब्द है। हिन्दीमें इसे दाख कहते हैं। दाख शब्द संस्कृत द्राक्षा शब्दका अपभ्रंश है। बंगला में रसभरे फलको आंगूर और सूखे फल को किशमिश या मुनक्का कहते हैं। अंगूर के संस्कृत पर्य्याय—द्राक्षा, मृद्वीका, गोस्तनी, स्वाद्वी, मधुरसा, चारुफला, कृष्णा, प्रियाला, तापस-प्रिया, गुच्छफला, रसाला, अमृतफला, रसा।

अंगूरकी लता भारतके उत्तरपश्चिमप्रदेश, पञ्जाब तथा काश्मीर आदि प्रदेशों में बहुत लगाया जाती है। हिमालयके उत्तरपश्चिम ओर यह लता आपसे आप उत्पन्न होती है। संयुक्तप्रान्तके कमाऊं, कनावर और देहरादून तथा मुम्बई प्रान्तके नासिक, अहमदनगर, औरंगाबाद, पूना आदि स्थानों में इसकी लता लगाने पर उपज होती है। बङ्गाल, और भारतवर्ष के दक्षिणप्रान्त तथा सिंहल में इसकी लता विशेष नहीं बढ़ती और न फलही अच्छे होते हैं। काबुल और पारस्य का अंगूर बहुतही अच्छा होता है।

अंगूरकी लता पृथ्वीपर नहीं फलती। उसके लिये बांसका एक मण्डप सा बनाते हैं। इस मण्डप को हिन्दी में मँड़वा या टट्टी कहते हैं। टट्टी शब्द ही विशेष प्रचलित है। इसकी पत्तियां सुन्दर परन्तु कुम्हड़े या तेतुएसे कुछ मिलती जुलती होती हैं। फल इसके छोटे, बड़े, गोल, लम्बे कितने ही आकार के होते हैं। ये फल लतामें गुच्छे गुच्छे होकर लगते हैं। इसके फल कच्ची अवस्था में हरे, देवदारुके फलके समान और पकने पर कुछ पीले हो जाते हैं। पके फलका स्वाद अम्लमधुर है। वैद्यक शास्त्रके मत से अंगूर बहुत ही मधुर, अम्ल, रुचिकर, स्निग्ध होता है। इसके सेवनसे शीत, पित्त, दाह, मूत्रदोष, तृष्णा, वायु घाव, क्षीणता आदि नष्ट होते हैं।

पहिले भारतवर्षमें इसकी खेती बहुत कम होती थी। ये, अफ़ग़ानिस्थान, क़ाबुल से यहां आते थे; परन्तु मुसलमानी बादशाहत के समय मुसलमान बादशाहों का इधर ध्यान गया और तबसे ही भारतके किसी किसी प्रान्तमें इसकी उपज होने लगी।

आजकल भारतवर्षके कश्मीरप्रान्तमें अंगूर अच्छा और अधिक उपजता है। यहां आश्विन-कार्तिकके महीने में ही अंगूर पकेगा। कश्मीरमें अंगूरको मदिरा (शराब) बनाते और सिरका डालते हैं। महाराष्ट्रदेशमें अंगूर कई तरह का होता है। जैसे—आबी, फ़कीरी, हबशी, गोलकली, साहबी इत्यादि। अफ़ग़ानस्थान, बलुचिस्थान और सिन्धुमें अंगूर को हेटा, किशमिशी, कलमक, हुसैनी इत्यादि नामसे पुकारेंगे। कन्धारके निवासी हेटा अंगूरको चूने एवं सज्जीखारके साथ गरम जलमें डाल "आबजोश" और किशमिशीको धूपमें सुखा "किशमिशी" तैयार करते हैं। किशमिशी अंगूरमें बीज रहेगा।

अंगूर सुखा कर मुनक़ा बनाया जाता है। मुनक़ा दस्तावर हो तथा ज्वरकी प्यासको मारेगा। द्राक्षारिष्ट आदि कई आयुर्वेदिक औषध इससे बनते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम विटिस विनिफेरा (Vitis vinifera) है। हकीमोंमें इसका विशेष व्यवहार रहेगा। द्राक्षा देखो।

एक तरहकी आतिशबाज़ीको भी अंगूर कहते, उसमें अंगूर जैसी चिनगारियां निकलती हैं। फोड़ा सूखते समय जो लाल मांस आये, उसे अंगूर भरना कहेंगे।

अंगूर शेफ़ा (फ़ा० पु०) एक प्रकार की जड़ी। यह हिमालय पर उत्पन्न होती है। इसे संग अंगूर, तथा गिरिबूटी भी कहेंगे। वैद्यकशास्त्रके मतानुसार इसका मूल और पत्र वायुको पीड़ा तथा श्वासको मिटाता है।

अंगूरी (फ़ा० वि०) १ अङ्गूरका, जो अंगूरसे तैयार हुआ हो। २ अंगूर जैसा, जिस पर अंगूरी रङ्ग चढ़ा रहे। (पु०) ३ हलका हरा रंग। यह नील तथा टेसूके फूलसे बनता और कपड़ा रंगनेके काम आता है।

अँगेजना (हिं० क्रि०) १ अपने ऊपर रख लेना। २ मानना।

अँगेठा (हिं० पु०) अंगीठी देखो।

अँगेठी, अंगीठी देखो।

अँगेरना, अंगेजना देखो।

अँगोछना (हिं० क्रि०) आर्द्र वस्त्रसे अङ्गप्रोच्छण करना, तर कपड़ेसें जिस्म पोंछना।

अँगोछा (हिं० पु०) अङ्गप्रोच्छणका वस्त्र, जिस्म पोंछनेका कपड़ा।

अँगोछी (हिं० स्त्री०) अंगीछा देखो।

अँगोजना, अंगेजना देखो।

अँगोटना, अगोटना देखो।

अँगोरा (हिं० पु०) मच्छर, भुनगा।

अँगोरी, अंगारी देखो।

अँगौगा (हिं० पु०) पदार्थका जो भाग व्यवहारमें लानेसे पहले ही देवताके लिये निकाल दिया जाये, अँगऊँ, पुजौरा।

अँगौरिया (हिं० पु०) १ जिस हलवाहेको मजदूरी न चुकाकर अपना हल-बैल खेत जोतने के लिये दें। २ मज़दूरीके बदले हल-बैलको मंगनी।

अंग्रेज़, अंगरेज़ देखो।

अँघड़ा (हिं० पु०) नीच जातिकी स्त्रीके पैरवाले अंगूठेमें पहिननेको कांसेका छल्ला।

अँघराई (हिं० स्त्री०) एक प्रकार का कर या महसूल। यह पहले पशुओं पर पड़ती थी।

अंघस (हिं० पु०) पाप, इज़ाब।

अँघिया (हिं० स्त्री०) बारीक कपड़ेसे मढ़ी हुयी आटा या मैदा चालने की चलनी, आखा, अंगिया।

अँचरा (हिं० पु०) अञ्चल, पल्ला।

अँचला (हिं० पु०) १ अञ्चल, पल्ला। २ कपड़ेका जो टुकड़ा साधु अपनी नाभिपर धोतीकी जगह लपेटते हों, तहमत।

अँचवन (हिं० पु०) अचवन या आचमन देखो।

अँचवना (हिं० क्रि०) अचवना देखो।

अँचवाना (हिं० क्रि०) अचवाना देखो।

अंछर (हिं० पु०) १ मुखरोग विशेष, मुंहकी एक बीमारी। इससे मुंहमें कांटे पड़ जाते हैं। २ अक्षर, हर्फ़। ३ मन्त्र, जादू।

अंछा (हिं० पु०) इच्छा, चाह, ख़ाहिश।

अंज (हिं० पु०) कमल, पद्म।

अंजनसार (हिं॰ वि॰) अञ्जन लगाया हुआ, जो आंजा गया हो।

अंजनहारी (हिं॰ स्त्री॰) १ बिलनी, गुहाई, जो फुन्सी आंखकी पलकके पास हो। २ कोई उड़नेवाला कीड़ा। इसे कुम्हारी या बिलनी भी कहते हैं। यह कीड़ा दीवारके कोनों पर गीली मट्टी से अपना घर उठाये और दूसरे कीड़े पकड़ अपने-जैसे बनायेगा।

अंजबार (फ़ा॰ पु॰) वृक्षविशेष, कोई पौधा। इसकी जड़को हकीमोंने सरदी और जुकामके लिये फायदेमन्द बताया है। आवश्यक होनेसे इसका काढ़ा और शर्बत पिलायेंगे।

अंजरपंजर (हिं॰ पु॰) शरीरकी सन्धि, ठठरी।

अंजल, अंजला (हिं॰ पु॰) अञ्जलि देखो।

अँजवाना (हिं॰ क्रि॰) आंखमें काजल या सुरमा लगवाना।

अंजहा (हिं॰ वि॰) अन्नमय, अनाजसे बना हुआ।

अंजही (हिं॰ स्त्री॰) १ अनाज बिकनेका बाज़ार, गल्ले का गोला। (वि॰) २ अन्नमय, अनाजी।

अँजाना, अंजवाना देखो।

अंजाम (फ़ा॰ पु॰) १ पूर्ति, समाप्ति, ख़ातिमा। २ परिणाम, हासिल।

अंजुमन (फ़ा॰-पु॰) सभा, समाज, मण्डली, महफ़िल।

अँजुरी, अँजुली (हिं॰) अञ्जलि देखो।

अँजोर (हिं॰ पु॰) उजेला, प्रकाश, रोशनी।

अँजोरना (हिं॰ पु॰) १ बटोरना, छीनना, समेट लेना। २ जलाना, रोशन करना।

अँजोरा (हिं॰ वि॰) उजला, प्रदीप्त।

अँजोरी (हिं॰ स्त्री॰) १ प्रकाश, रोशनी, चमक। २ चन्द्रिका, चांदनी। (वि॰) ३ प्रकाशित, रोशन।

अंझा (हिं॰ पु॰) नागा, तातील, अनध्याय, छुट्टीका दिन।

अँटकना, अटकना देखो।

अँटना (हिं॰ क्रि॰) समाना, भर जाना, पूरा होना।

अंटा (हिं॰ पु॰) १ बड़ी गोली। अंगरेज़ी बीलियर्डके खेलको भी हिन्दी में अंटा कहते हैं। २ ऊंची अटारी।

अंटागुड़गुड़ (हिं॰ वि॰) १ नशे में चूर, बेहोश, अचेत, जिसे ख़याल न रहे। (पु॰) २ द्यूत विशेष, कोई जुवा।

अंटाघर (हिं॰ पु॰) जिस घरमें गोलीका खेल ठहरे।

अंटाचित (हिं॰ वि॰) सीधा, पीठके बल, जो पट न हो।

अंटाबंध (हिं॰ पु॰) जुए में फेंकी जानेवाली कौड़ी। सब कुछ हार जानेसे जुआरी इसको दांव पर रखेगा।

अँटिया (हिं॰ स्त्री॰) पूला, गठिया।

अँटियाना (हिं॰ क्रि॰) १ गुम करना, उड़ा देना। २ हथेली में छिपा लेना, टेंटमें खोंसना। ३ घास, खर या पतली लकड़ी का मुट्ठा बनाना। ४ धागेकी लच्छी लेपटना।

अंटी (हिं॰ स्त्री॰) १ अङ्गुलिके मध्यका स्थान। २ गांठ। ३ लच्छा। ४ बिगाड़। ५ कान में पहनने की छोटी बाली।

अँटौतल (हिं॰ पु॰) जो ढक्कन कोल्हू में जोतते समय बैल की आंख पर बांध दिया जाता हो।

अँठई (हिं॰ स्त्री॰) किलनी, कोई छोटा कीड़ा। यह प्रायः कुत्तेके बदनमें चिपटी रहती है।

अंठी (हिं॰ स्त्री) १ चीयां, गुठली। २ गांठ, गिरह। ३ गिलटी। ४ नवीन स्तन।

अंठली (हिं॰ स्त्री॰) नवोढ़ाका निकलता हुआ स्तन।

अंडबंड (हिं॰ पु॰) १ असंबद्ध प्रलाप, बकझक। २ गाली।

अँडरना (हिं॰ क्रि॰) बाल फूटना, गरभाना।

अंडस (हिं॰ स्त्री॰) कठिनता, असुविधा, अड़चन।

अंडा (हिं॰) अण्ड देखो।

अँड़िया (हिं॰ स्त्री॰) १ बाजरेकी पकी हुई बाल। २ कते हुए सूतकी पिण्डी।

अंडी (हिं॰ स्त्री) १ रेंडी। २ कौषेय वस्त्रविशेष, रेशमी चादर।

अंड़ुआ (हिं॰ पु॰) बधिया न किया हुआ पशु, आँड़ू।

अँड़ुआना (हिं॰ क्रि॰) बधिया बनाना। जबतक अण्डकोश रहता, तबतक बैल, घोड़ा आदि चलनेमें बदमाशी करता है। उसकी नटखटी रोकने

को उसका अण्डकोश कुचल देंगे। इसीको बधिया करना कहते हैं।

अँड़ुआ-बैल (हिं० पु०) जो बैल बधिया न हो, सांड़। २ जिस मनुष्यका अण्डकोष बड़ा रहे।

अँड़ुवारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बहुत छोटी मछली।

अंडैल (हिं० वि०) अण्डेवाली, जिसके पेटमें अण्डा रहे।

अंतघाई (हिं० वि०) विश्वासघाती, धोकेबाज़।

अँतड़ी (हिं० स्त्री०) आँत, नली। अन्त्र देखो।

अंतरछाल (हिं० स्त्री०) छालके भीतरकी कोमल झिल्ली, जो मुलायम हिस्सा बकलेमें हो।

अंतरजाल (हिं० पु०) कसरत करनेकी एक प्रकारकी लकड़ी।

अँतरा (हिं०) अन्तर देखो।

अँतराना (हिं० क्रि०) १ अलग करना, पृथक् करना। २ भीतर रखना।

अंतरौटा (हिं० पु०) बारीक साड़ीके नीचे जो कपड़ा स्त्री पहनती हो। इससे साड़ी बारीक रहते भी शरीर नहीं दिखाई देता।

अंतावरी (हिं० स्त्री०) अँतड़ी, आँतका ढेर।

अंतिओक (Antioch) किसी प्राचीन यूनानी शहरका नाम। यूनानी-सम्राटों ने सोलह शहर इस नामपर बसाये और बारह शहरोंका नाम बदलकर अंतिओक रखा था। किन्तु ओरसटस् नदीके वाम तटका नगर सबसे अच्छा रहा। सन् ई०से ३०० वर्ष पहले यूनानी सम्राट् सलूकस् निकटरने इसे बसाया और सिरीया प्रान्तका प्रकृत केन्द्र बनाया था। कहते हैं, कि सम्राट् सिकन्दरने यहां डेरा डाला और जियस बोटियसकी वेदी उठवा दी। इस नगरकी प्रतिष्ठा अन्तिगोनस कर गये थे, सलूकस्ने उसे पूरे उतारा। यह नगर बनते अच्छे अच्छे ज्योतिषियोंसे मुहूर्त पूछा गया था। इसका नक़्शा अलक्ज़न्द्राके नमूनेपर खिंचा रहा। नगरसे ऊंचे सिल्पियस् पहाड़पर किला खड़ा किया गया था। उसके बाद १ले अन्तिओकस्ने कोई महल्ला बसाया। यह नगर कोई दो कोस पूर्व-पश्चिम लम्बा और उतना ही उत्तर-दक्षिण चौड़ा रहा। कहते हैं, कि सन् ई०के ४थे शताब्दमें इसकी जनसंख्या दो लाखसे अधिक थी। इस नगरसे दो कोस बाहर पश्चिममें डफनी नामक स्वर्गोद्यान रहा। उस बागमें नहर चारो ओर लहरें मारती और पेड़ झूमा करते, बीचमें पीथियन अपोलोका मन्दिर बना था। मन्दिरके बनवानेवाले १ले सलूकस रहे। देवताकी मूर्ति भली भांति सोनेपर खुदी थी। हैकेटका पुस्तागार डिवोल्कशियनने ज़मीनके नीचे खोदवाया रहा। डफनीकी सुन्दरता पाश्चात्य जगत्में प्रसिद्ध थी; उसके कारण अंतिओकका भी अच्छा नाम हुआ। इस नगरकी रम्यतापर कितने ही प्राचीन लेखकोंने बहुत कुछ लिखा है।

१ले अन्तिओकस्के समय यह नगर पाश्चात्य सलूकिद् साम्राज्यकी राजधानी बना था। सन् ई०से २४० वर्ष पहले अङ्गिरा-युद्धके कारण इसका प्राधान्य बढ़ा। सलूकिद्का प्रभाव एशिया-माइनरसे घटते ही परगामनका उपद्रव उठा था। उसके बाद सलूकस् इस नगरमें रहने लगे और इसे अपनी राजधानी बना लिया। यूनानियोंसे उस बातका कोई पता नहीं मिला, हालके रोमक लेखकोंने कुछ कुछ आभास दिया है। इसकी यूनानी इमारतोंमें सिर्फ़ किसी नाट्यशालाका ही वर्णन पायें, जिसका ध्वंसावशेष अब भी सिल्पियसकी बग़लमें देखेंगे। यहां अच्छे अच्छे लेखक और शिल्पकार हो गये हैं। फाटकपर बनी स्वर्णमूर्तिसे विदित होता, कि अंतिओक बहुत ही भव्य नगर रहा; किन्तु सीसनिक उपद्रवके कारण इसकी मरम्मत सदा आवश्यक होती थी। सन् ई०से १४८ वर्ष पहले यहां बड़े वेगसे भूकम्प हुआ और लोगोंको अमित क्षति उठाना पड़ी। सन् ई०से १४७ और सिकन्दर बलल्से १२४ वर्ष पहले देमेत्रियस्के विरुद्ध प्रजाने हथियार फटकारा था। सलूकिद्-वंशके अन्तिम विरोधमें अंतिओककी प्रजा अपने निर्बल शासकोंसे खूब बिगड़ी रही। सन् ई०से ८३ वर्ष पहले अरमेनियाके टिगरेनोंको उसने इस नगरपर अधिकार करनेको बुलाया, सन् ई०से ६५ वर्ष

पहले १३वें अन्तिओकस्को उखाड़ना चाहा और रोमकोंसे इसे न छोड़नेकी प्रार्थना की। सन् ई०से ६४ वर्ष पहले यह रोमक-प्रजातन्त्र बन गया था।

रोमक वर्णसंकर अंतिओकोंसे बड़ी घृणा करते, किन्तु उनके सम्राट् प्रथमसे ही इस नगरके पक्षमें रहे। कारण, यह नगर साम्राज्यके पूर्व-भागकी राजधानी बनानेको सबसे अच्छा था। सन् ई०से ४७ वर्ष पहले सीजर सम्राट्ने इसे देख भाल स्वतन्त्र किया। सिलपियस पर जूपिटर-केपिटोलीनका बड़ा मन्दिर बना था। रोमक चबूतरा देखने योग्य रहा। नाट्य-भवन, सरकस, बाड़े, हम्माम बहुत और उनमें पानी पहुंचानेको बम्बे लगे थे। सन् ३७ ई०में इस नगरको भूकम्पसे जो हानि हुयी, उसका हाल सम्राट् केलिगुलोने दो वृद्ध सदस्यसे सुन आंसू बहाये। किन्तु सन् ११५ ई०के भूकम्पने इसे बिलकुल विध्वंस किया था। सम्राट् और उनके उत्तराधिकारीने फिर नगर ठीक कराया। सन् ५२६ ई०के भूकम्पने गिरजामें गये हज़ारों ईसायियोंकी जान ली। सन् ५२८ ई०की २८वीं नवम्बर और सन् ५८८ ई०की ३१वीं अक्टोबरको भी बड़े ज़ोरसे भूकम्प होनेका समाचार मिलता है।

सन् २६६ ई०में ईरानियोंने एकाएक हमलाकर कितने ही लोगोंको नाट्यशालामें मार डाला था। सन् २८७ ई०में कोई नया कर लगने कारण बड़ा उपद्रव उठा, उससे यहां राजधानी न रही। सन् ५८६ ई०में भूकम्प आनेसे पहले जेनोने थिओपोलिस नाम रख इसके कितने ही भवन बनवा दिये थे, किन्तु बारह वर्ष बाद ईरानियोंने आकर फिर बरबादी फैला दी। जष्टिनियनने इसे चैतन्य करनेकी चेष्टा की थी, किन्तु इसका आदर-सम्मान अन्तमें जाते ही रहा।

आजकल इसे अण्टाकिया कहते हैं। इसमें धन और अन्नकी प्रतिपत्ति अच्छीतरह चारो ओर फैल रही है। तम्बाकू, मकई, रुई बहुत पैदा हो और रेशम बनानेको शहतूत खूब बोया जायेगा। सन् १८२२ और १८७२ ई०में यहां बड़े वेगसे भूकम्प आया था, हैजेने भी कई बार लोगोंके घाले। अन्तिओक देखो।

अंतिओप (Antiope) यूनानी पुराणानुसार—अम्फियन और जोथसकी माता। होमरने इन्हें बोयियन-नदी-देवता-ऐसोपसकी कन्या बताया है। पीछे जो काव्य बना, उसमें यह निकटिपस या ल्यूकरगसकी कन्या कही गयी हैं। इनके सौन्दर्यने ज़ियसको विमोहित किया था, वनदेवताका रूप बना वह बलपूर्वक इन्हें उठा ले गये। उसके बाद इयोपियसने इन्हें हरण किया था। वह इनको वापस देनेवाले न रहे, किन्तु इनके चाचा उन्हें बाध्यकर ले आये। राहमें इनके अम्फियन और जोथस दो पुत्र एक ही साथ उत्पन्न हुये थे। उनमें अम्फियन देवता और जोथस इयोपियसके अंशसे निकले रहे। दोनो ही गड़रियोंकी रक्षामें पड़े थे। उसी समय थेबसमें लिकसकी पत्नी डर्सीने अंतिओपपर अभियोग लगाया, किन्तु यह इल्यूथिराय भाग गईं और जहां इनके दोनो पुत्र गड़रियेकी भांति रहते, वहीं जाकर रहने लगीं। इनके छिपनेका समाचार डर्सीको मिला और उन्होंने दोनो लड़कोंसे इन्हें सांडके सींगमें बांध घसीटने कहा था। लड़के कहने मुताबिक् इन्हें सांडके सींगमें बांधनेवाले ही थे, किन्तु उनके प्रतिपालक गड़रियेने समग्र भेद खोला; लड़कोंने इनके बदले डर्सीको ही सांडके सींगमें बांध दिया। यह सुनते ही डर्सीके इष्टदेव दिओनिसस्ने अंतिओपको अभिशप्त किया था। उससे यह विकल हो समग्र यूनानमें घूमने लगीं। अन्तमें यह सुधरीं और परनेसस् पर्वतपर टिथोरियाके फोकससे व्याही गयी थीं। पति और पत्नी दोनो उसी पर्वतपर साथ-साथ कब्रमें गड़े हैं।

२ अरेसकी कन्या, हिप्पोलीटकी पत्नी एवं अमेज़नकी राणी। कहते हैं, जिस समय हेरेक्लिसके साथ अमेजनकी राजधानी थेमीसिरापर थीसियस्ने अधिकार जमाया, उसी समय यह उनकी कैदमें चली गयीं या प्रेमके कारण अपनेको उन्हें सौंप दिया था। दूसरी बात यह है, कि इनके रूपसे विमोहित हो थीसियस्ने अमेजनके राज्यपर आक्रमण किया और इन्हें बलपूर्वक छीन अपनी राह ली। उसके प्रत्युत्तरमें अमेजनने आट्टिकापर चढ़ाई की थी। कोई कहता,

कि चार मास युद्ध होनेपर अंतिओप थोसियस्के साथ खुशी-खुशी गयी थीं। दूसरे लोग कुछ और ही बताते हैं। फयेद्रासे विवाह करनेमें यह थोसियस्पर अप्रसन्न हुयीं और अमेजनके साथ उनसे लड़ने निकलीं। किन्तु इन्हें थोसियस्के प्रतिद्वन्द्वी मोलपेदिया नामक किसी दूसरे अमेजनने मार डाला था। थोसियस्के औरस और इनके गर्भसे हिप्पोलिटस नामक सुप्रसिद्ध पुत्रने जन्म लिया।

अंतिगोनी (Antigone)—१ यूनानी पुराणानुसार ओडियस और जोकस्ताकी कन्या। प्राचीनतर आख्यायिकाने इन्हें युरिगेनियासे उत्पन्न बताया है। कहते हैं,—जब इनके पिताको मालूम हुआ, कि वह स्वयं इनकी माता जोकस्ताके ही सन्तान रहे, तब उन्होंने अपनी आंखको फोड़ा और थेबसका सिंहासन छोड़ा था। यह उनके साथ वनवासको कोलनस गयीं। उनके मर जानेसे थेबस वापस आनेपर थेबस-नरेश क्रियनके पुत्र हेमन इनपर आसक्त हुये थे। जब इनके भाई इटोक्लिस और पोलिनीसस् एकमात्र युद्धसे आपसमें कट मरे, तब इन्होंने क्रियनके रोकते भी पोलिनीसस्को मट्टी दी। उस पर इन्हें जीते-जी तहखानेमें गाड़े जानेकी सज़ा मिली थी। वहां यह अपने फांसी लगा मर गयीं और हेमनने भी हताश हो आत्महत्या की। इनके आचरण और मृत्युपर यूनानी कविने खूब कविता बनायी है। सोफक्लिस कवि कहते,—यूरिपीडस्ने झूठ ही लिखा है, कि वह खोदकर गड़वा दी गयी थीं; दिओनीसस्ने बीचमें पड़ सारा झगड़ा मिटाया और अंतिगोनीने हेमनसे विवाह किया। होजनस कविका कहना है, जब क्रियनने अंतिगोनीको हेमनके हाथ मार डालने सौंपा, तब वह इन्हें चुपकेसे किसी गड़रियेके घर छुपा गये थे; वहां इनके मयिन नामक कोई पुत्र भी हुआ।

२ पिथिया-नरेश यूरिशनकी कन्या और पेलियसकी पत्नी। इनके स्वामीने केलिदोनियामें सूवरका शिकार करते यूरिशनको मार डाला और भाग खड़े हुये थे। अगाष्टस्ने उन्हें इस पापका प्रायश्चित्त कराया और उनकी स्त्रीने खर्च भी दिया। अपने प्रेमका प्रतिफल न पा अगाष्टसकी स्त्रीने पेलिअसपर व्यभिचारका कलङ्क लगाया था। अंतिगोनीके प्राण वह समाचार सुन छूट पड़े। अन्तिगोनास् देखो।

अंतेउर, अंतेवर (हिं॰ पु॰) अन्तःपुर, ज़नानखाना।

अंत्रो (हिं॰) अन्त देखो।

अंदर (फ़ा॰ क्रि॰-वि॰) भीतर, में।

अँदरसा (हिं॰ पु॰) पिसे हुए चावलकी मिठाई। इसके बनानेकी विधि यह है,—पहले पिसे हुए चावलके चौरेठेको चीनीके कच्चे शीरेमें डाल और थोड़ा घी देकर पकाते हैं। जब वह गाढ़ा हो जाये, तब उसे उतार कर खमीर उठानेके लिये दो-तीन दिनतक रख छोड़ेंगे। खमीर उठनेसे उसकी छोटी छोटी टिकिया बना और उसपर पोस्तेका दाना लपेट कर घीमें तलते हैं। यह खानेमें मधुर, कफकारक और कलेजेको ताकृत देनेवाला होता है।

अंदरी (फ़ा॰ वि॰) भीतरी, अन्दरूनी।

अंदरूनी (फ़ा॰-वि॰) भीतरी, आभ्यन्तरिक।

अंदाज़ (फ़ा॰ पु॰) १ अनुमान, अटकल, माप। २ मटक, भाव। ३ ढङ्ग।

अंदाज़न (फ़ा॰ क्रि॰-वि॰) १ अनुमानतः, अटकलसे। २ निकट, क़रीब।

अन्दाज़पट्टी (हिं॰ स्त्री॰) खेतमें खड़ी हुयी फ़सलके दाम का अंदाज़, कनकूत।

अंदाज़पीटी (हिं॰ स्त्री॰) रात दिन अपना शृङ्गार करनेवाली स्त्री, रूपगर्विता।

अंदाज़ा (फ़ा॰ पु॰) अनुमान, अटकल।

अँदाना (हिं॰ क्रि॰) बचाना, बरकाना।

अँदुआ (हिं॰ पु॰) हाथियोंके पिछले पैरमें डालनेका एक यन्त्र। यह यन्त्र धनुषके आकारकी लकड़ीका बनता और इसके मुंहपर काँटा गाड़ दिया जाता है। दोनो ओरसे दो धनुषाकार लकड़ियोंका छोर जहां मिलता, वहीं कील ठोंकते हैं। हाथीको बांधते समय इसे पैरमें पहना दूसरा छोर कस कर बांध देंगे। इस यन्त्रके कारण हाथी दुष्टता नहीं करता। ज्यों ही

वह पैर इधर-उधर चलाता, त्योंही कांटा चुभने लगता है।

अंदेशा (फ़ा॰ पु॰) १ चिन्ता, फ़िक्र। २ संशय, शक। ३ भय, खौफ़। ४ हानि, नुक़सान। ५ असुविधा। पशोपेश।

अंदोर (हिं॰ पु॰) कोलाहल, शोरग़ुल।

अंदोह (फ़ा॰ पु॰) १ शोक, रञ्ज। २ सन्देह, खटका।

अंद्रसस्त्र (हिं॰ पु॰) इन्द्रशस्त्र, वज्र।

अंधखोपड़ा (हिं॰ पु॰) मूर्ख, नादान, जिसे समझ न पड़े। (स्त्री॰) अंधखोपड़ी।

अंधड़ (हिं॰ पु॰) आंधी, तूफ़ान, जिस हवासे धूलि उड़े।

अंधधंध (हिं॰ पु॰) १ अन्धकार, तारीकी। २ अनरीति, ज़ुल्म।

अँधबाई (हिं॰ स्त्री॰) अंधड़ देखो।

अँधरा (हिं॰ वि॰) अन्ध, नेत्रहीन, चक्षुहीन, नाबीना।

अँधरी (हिं॰ स्त्री॰) १ अंधी, जिस औरतको देख न पड़े। २ पहियोंकी गोलाई पूरी करनेवाली धनुषाकार चूल। यह दूसरी पुट्ठीके भीतर ऐसी घुसी रहती है, कि दिखाई नहीं देती।

अंधा (हिं॰) अन्ध देखो।

अँधाधुंध (हिं॰ पु॰) १ घोर अन्धकार, गहरी तारीकी। २ अविचार, ख़्यालकी ख़राबी। (वि॰) ३ विश्रृङ्खल, बेठिकाना। (क्रि॰ वि॰) ४ निहायत, अतिशय।

अँधार (हिं॰ पु॰) १ अन्धकार, तारीकी। २ रस्सीके जिस जालमें घास वग़ैरह भरकर बैलपर लादें।

अँधारी (हिं॰ स्त्री॰) अंधड़ देखो।

अँधियार (हिं॰ पु॰) अन्धकार, तारीकी। (वि॰) २ तमसाच्छन्न, रोशनीसे ख़ाली।

अँधियारा, अंधियार देखो।

अँधियारी कोठरी (हिं॰ स्त्री॰) १ अँधेरा छोटा कमरा। २ उदर, पेट। ३ कहारोंकी कोई बोली। पालकीके आगेवाला कहार जब पानी या गड्ढा देखता, तब पीछेवाले कहारको "अँधियारी कोठरी" कह कर सावधान करता है।

अंधेर (हिं॰ पु॰) १ अन्याय, अविचार, अत्याचार। २ कुप्रबन्ध, बदइन्तिज़ारी।

अंधेरखाता (हिं॰ पु॰) १ व्यवहारका गड़बड़। २ कुप्रबन्ध।

अँधेरना (हिं॰ क्रि॰) अँधेर उठाना, गड़बड़ मचाना, अंधेरा करना।

अँधेरा (हिं॰ पु॰) अन्धकार, तारीकी।

अँधेरिया (हिं॰ स्त्री॰) १ अन्धकार। २ काली रात। ३ घोड़े या बैलकी आंख पर डालनेका पट्टा।

अँधेरी (हिं॰ स्त्री॰) अन्धकार, तारीकी।

अँधोटी (हिं॰ स्त्री॰) बैल या घोड़े की आंख पर बांधने की पट्टी।

अँध्यार (हिं॰) अन्धकार देखो।

अँध्यारी, अंधियारी देखो।

अंबरबारी (हिं॰ स्त्री॰) वृक्षविशेष, कोई झाड़ी। यह हिमालय और नीलगिरिपर उत्पन्न होती है। इसकी जड़से जो बढ़िया और पीला रङ्ग निकालें, उसे कभी-कभी चमड़ेपर भी चढ़ायेंगे। बीजका तेल खींचते हैं। इसकी लकड़ी दारुहलदी कहाती और औषधमें डाली जाती है। जड़ और लकड़ीके अर्कको रसौत कहेंगे।

अंबरबेल (हिं॰ स्त्री॰) अमरबेलि, इफ़्तीमून्, पबेर। यह धागे-जैसी पीली-पीली होती और पेड़से लपटी रहती है। इसमें जड़ या पत्ती किसीका नाम भी नहीं पाते। इसके फैलनेसे पेड़ सूख जायेगा। यह बाल बढ़ानेकी दवामें पड़ती है। हकीम इसे वायुरोगपर भी व्यवहार करेंगे।

अंबरसारी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका कर। यह पहले घर पर लगायी जाती थी।

अँबराई (हिं॰ स्त्री॰) जिस जगह आमके पेड़ बहुत हों, आमका बाग़, नौरंगा।

अँबराव (हिं॰ पु॰) आमका बाग़। आमराजी देखो।

अंबरीसक (हिं॰ पु॰) भाड़, भरसायँ।

अँबली (हिं॰ पु॰) गुजरातके ढोलेरा नामक स्थानमें उत्पन्न होनेवाला कपास।

अँबाड़ा, आमड़ा देखो।

अंबापोली (हिं॰ स्त्री॰) अमावट, अमरस।

अंबार (फ़ा॰ पु॰) ढेर, समूह, राशि।

अंबारी (फ़ा॰ पु॰) १ छज्जा, रविश। २ हाथीकी पीठ पर रखनेका हौदा। इसके ऊपर छज्जेदार मण्डप रहता है।

अंबिया (हिं॰ स्त्री॰) आमका जाली न पड़ा हुआ छोटा फल। इसकी चटनी और अचारी बहुत अच्छी बनती है। इसे टिकोरा भी कहेंगे।

अँबिरथा (हिं॰ वि॰) वृथा, फ़ज़ूल।

अंबोह (फ़ा॰ पु॰) भीड़भाड़, समाज।

अंश—अनुश अदन्त चुरा॰पर॰ विभाजने। अंशयति। अंशापयति। क्त अंशित।

अंश (सं॰ पु॰) अनुश-अच्। १ विभाग। २ भक्ति। ३ देहांश, अवयव। ४ स्कन्ध। ५ राशिचक्रके तीस भागमें एक भाग। ६ अर्द्धांशभाग। ७ भाज्य अङ्क। ८ कला, सोलहवां भाग। ९ वृत्तकी परिधिका ३६० वां भाग। इसे एकाई मानकर कोण वा चापका परिमाण बतलायेंगे। पृथ्वीकी विषुवत्‌रेखाको ३६० भागमें बाँटकर प्रत्येक विभाजक विन्दुसे उत्तर-दक्षिण एक लकीर खींचते हैं। फिर उत्तर-दक्षिणकी रेखाके ३६० भाग बना विभाजक विन्दुसे पूर्व-पश्चिम लकीर खींचें एवं उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम रेखाके परस्पर अन्तरको अंश कहेंगे। इसी रीतिसे राशिचक्र भी ३६० अंशमें बंटा है। राशि बारह हैं, इससे प्रत्येक राशि प्रायः ३० अंशकी होगी। अंशके ६०वें भागको कला और कलाके ६०वें भागको विकला कहते हैं। १० आदित्यभेद। (ऋक् २।१।४) महाभारतके मतमें ६ष्ठ, हरिवंशानुसार ९म और विष्णुपुराणके मतमें ५म आदित्य। ११ चन्द्रवंशीय राजभेद, राजा पुरुहोत्रके पुत्र। (विष्णुपुराण)

अंशक (सं॰ पु॰) अंश-कन्। १ अंशहारी, ज्ञाति, पुत्र। २ भाग। ३ हिस्सेदार, साझी। ४ पट्टीदार। ५ बांटनेवाला, विभाजक। अंशं हारी। पा ५।२।६९। अंशशब्दान्निदशादेव द्वितीयासमर्थाद्धारीत्येतस्मिन्नर्थे, कन् प्रत्ययो भवति। अंश-ण्वुल्। ६ राशिचक्रका ३०वाँ भाग। (क्ली॰) ७ दिन (स्त्री॰) अंशिका। राशिचक्र देखो।

अंशपत्र (सं॰ पु॰) जिस काग़ज़ में पट्टीदारका अंश वा हिस्सा लिखा रहे।

अंशभाज् (सं॰ त्रि॰) अंश-भज-ण्वि, उप॰स॰। अंशग्राही, अंशहारी। भजो ण्विः। पा ३।२।६२। उपसर्ग और उपपदके परे भज धातुके उत्तर ण्वि प्रत्यय होता है। अंशभाक्, अंशभाजी, अंशभाजः। (स्त्री॰) अंशभाजा।

अंशल (सं॰ त्रि॰) अंश-लच्। १ बलवान्। अंशं लाति गृह्णातीति अंश-ला-क। २ अंशग्राही।

अंशसवर्णन (सं॰ क्ली॰) अंशयोः अतुल्यच्छेदयोः राश्योः समच्छेदकरणम्। असमराशिका सम विभाग।

अंशसुता (सं॰ स्त्री॰) सूर्यकन्या, यमुना।

अंशहर (सं॰ पु॰) अंश-हृ-अच्। अंशग्राही। हरतेरनुद्यमनेऽच्। पा ३।२।९। अनुद्यमन अर्थमें कर्मके उपपद परे हृ धातुसे उत्तर अच् प्रत्यय होता है। अंशं हरति। उद्यमनके अर्थमें अण् होगा। जैसे भारहार।

अंशावतरण (सं॰ क्ली॰) देहांशसे आविर्भाव, जिसके हिस्सेसे नमूदारी। महाभारतके आदिपर्वका उनसठसे तिरेसठ अध्यायतक शौनक-उग्रस्रवा-संवाद अंशावतरण-पर्व कहाता है। इन पांच अध्यायमें महाभारतकी मूल कथा अति सङ्क्षेपसे लिखी है। साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्याससे शान्तनु-वंशकी रक्षाके लिये पाण्डु, धृतराष्ट्र और विदुरका जन्म हुआ था। पीछे पाण्डु एवं धृतराष्ट्रसे पाण्डव और कौरव निकले। इसीसे महाभारत बनानेवालेने पाण्डु, धृतराष्ट्र और इनके वंशधरको अंशावतार बताया है। इसतरह उन्होंका कथानुबन्ध रहनेसे उक्त पांच अध्याय अंशावतरण-पर्व नामसे निर्दिष्ट हुआ।

अंशावतार (सं॰ पु॰) जिस अवतारमें परमात्माकी शक्तिका कुछ भाग आये, जो पूर्णावतार न हो।

अंशिन् (सं॰ पु॰) अंश-णिन् वा अंश-इन्। १ हिस्सेदार। २ अंशधारी। ३ अवतारी। ४ अंशयोग्य। (स्त्री॰) अंशिनी।

अंशु (सं॰ पु॰) अनुश-उ। १ किरण। २ प्रभा। ३ धागेका छोर। ४ सूर्य। ५ वेश। ६ लेश। ७ वेग। ८ धागा। ९ अतिशय सूक्ष्म भाग। १० किसी ऋषिका नाम।

अंशुक (सं० पु०) अंशु-कन्। १ वस्त्र, कपड़ा। २ पतला कपड़ा। ३ उत्तरीय वस्त्र। ४ रेशमी कपड़ा। ५ उपरना। ६ दुपट्टा। ७ ओढ़नी। ८ तेजपात।

शिशुपालवध-टीकोद्धृत शब्दार्णव अभिधानमें लिखा है,—

"अंशुकं वस्त्रमात्रे स्यात् परिधानोत्तरीययोः।"

इसीतरह परिधेय एवं उत्तरीय वस्त्र अंशुक शब्दमें निर्दिष्ट होते भी मेदिनीकरने अंशुक शब्दसे सूक्ष्म वस्त्र मात्रका अर्थ निकाला है—

"अंशुकं सूक्ष्मवाससि।"

मस्लिन नामक सूक्ष्मवस्त्र पहले अंशुक ही नामसे परिचित रहा। इसी मस्लिन्के लिये प्राच्य भारतने प्रतीच्य सभ्य-जगत्में विशेष प्रतिष्ठा पायी थी। चाणक्यके अर्थशास्त्रमें मालूम पड़ता, कि बङ्गालमें सन् ई०से तीन-चार सौ वर्ष पहले अंशुक खूब उपजते रहा। अंशुकके बहुत अच्छे कपड़ेको 'पत्रोर्ण' अर्थात पत्तींका पश्म कहते थे। कोड़ा पत्ती खाकर जो पश्म निकाले, उसी पश्मका कपड़ा 'पत्रोर्ण'कहायेगा। पत्रोर्ण या रेशम मगध, पौण्ड्रदेश और सौवर्णकुड्य तीन स्थानमें होते रहा। नागवृक्ष (शहतूत), लिकुच, वकुल और वट वृक्षमें यह कोड़ा निकलता था। नागवृक्षके कोड़ेसे पीला, लिकुचके कोड़ेसे गेहूं-जैसा वकुलके कोड़ेसे सादा रेशम पैदा होते रहा। इनमें सौवर्णकुड्य अर्थात् वीरभूम और मुर्शिदाबादका मक्खन-जैसा रेशम सबसे अच्छा था। पीछे इस देशमें चीनांशुक आने लगा।

पहले बकलेसे धागा निकाल कपड़ा बनाते; शण, पाट—यहां तक, कि तिलके वृक्षसे भी धागा उतारा जाता था। पूर्व समय उससे अच्छा कपड़ा बनते रहा। बकलेसे बननेवाला कपड़ा 'क्षौम' और उत्कृष्ट क्षौम 'दुकूल' कहाता था। क्षौमको पवित्र बता लोग बड़े आदरसे पहनते रहे।

कौटिल्य अर्थशास्त्रके मतसे बङ्गालमें ही बकलेका कपड़ा बुना जाता था। बङ्गालका श्वेत और स्निग्ध दुकूल देखते ही आंख ठण्ढी पड़ जाती रही। पौण्ड्र देशमें जो दुकूल होता, वह श्यामवर्ण और मणि-जैसा उज्ज्वल रहता था। उसी अंशके शेषमें कौटिल्य कहते हैं,—इसीमें काशी और पौण्ड्रदेशके क्षौमकी भी बात कह दी गयी। इससे समझ पड़ता, कि बङ्गालमें ही बकलेका सबसे अच्छा कपड़ा होता और 'दुकूल' केवल बङ्गालमें ही बनता था। बङ्गालके दुकूल वा अंशुकका आदर सुदूर बबिलन और मिस्रमें भी बहुत होते रहा।

उस समय भारतीय वस्त्रका व्यवसाय जगद्विख्यात रहा। हमारे राजा-महाराज भी यथेष्ट उत्साह प्रदान करते और कपास, रेशम या पश्मसे सूत तैयार करनेको लोगोंके घरमें यथेष्ट व्यवस्था रखते थे। राजकीय नाना विभागमें सूत्रविभाग भी सम्मिलित रहा।

राजाकी ओरसे कोई सूत्राध्यक्ष नियुक्त किया जाता था। उसके तत्त्वावधानमें विभिन्न व्यक्ति सूत्र, वस्त्र, रज्जु प्रभृति बनाते रहे। ऊर्णा, वल्क, कार्पास, तूल, शन और क्षौम इत्यादि विभिन्न जातीय वस्त्रादिका सूत्र तैयार करनेका खासा प्रबन्ध होता था। विधवा अन्यङ्गा, कन्या, प्रव्रजिता, दण्डप्रतिकारिणी, रूपाजीवा, मातृका, वृद्धराजदासी और देवदासी प्रभृति स्त्री विभिन्न प्रकारसे सूत कातते रहीं। बारीक, मोटे और मंझोले सूतके मुवाफिक् तनखाह दी जाती थी। इसका भी परिमाण निर्दिष्ट रहा,—किस तिथिको कितना काम होना चाहिये। किन्तु सूत कम उतरनेसे तनखाह भी कम मिलती थी। जो लोग क्षौम, दुकूल और रूईका कपड़ा बुनते थे, उन्हें वस्त्र, आस्तरण और आवरण लेते सय गन्धमाल्यादि उपहार दे उनकी संवर्द्धना की जाती रही। (कौटिलीय अर्थशास्त्र)

अंशुधर (सं० पु०) अंशोः धरः; धृ-अच्, ६-तत्। २ वेगधर। (स्त्री०) अंशधरा। अंशुधर, गंगाधर, भूधर इत्यादि शब्द उपपदसे नहीं, किन्तु षष्ठी तत्पुरुष समाससे बने हैं। पाणिनिने लिखा है। कर्मण्यण्। ३।२।१। उपपदसमासमें कर्मपद परे धातुके उत्तर अण् प्रत्यय हो। इसका भट्टोजिदीक्षितने एक आपत्ति उठाकर समाधान किया है—'कथं तर्हि गङ्गाधरभूधरादयः? कर्मणः शेषत्वविवक्षायां भविष्यन्ति

अर्थात् उपपद समासमें धातुके उत्तर यदि अण् प्रत्यय हो ; तो गङ्गाधर, भूधर इत्यादि रूपसिद्धि (अण् प्रत्यय होनेसे गङ्गाधार, भूधार होता) किस प्रकारसे हुई ? उत्तर—ये शब्द कर्म्मवाचक हैं। सम्बन्ध-विवक्षाके कारण यहाँ षष्ठी-तत्पुरुष समास हुआ है। गङ्गायाः धरः।

अंशुनाभि (स्त्री०) वह विन्दु, जिसपर समानान्तर प्रकाशकी किरणें तिरछी और संकुचित होकर मिलें। सूर्य्यमुखी कांचको जब सूर्य्यके सामने करते हैं, तब उसकी दूसरी ओर इन्हीं किरणोंका समूह गोल वृत्त वा विन्दु बन जाता है, जिसमें पड़नेसे चीजें जलने लगती हैं। (हि०शब्दसा०)

अंशुपट्ट (सं० क्ली०) अंशुभिः सूक्ष्मसूत्रैः घटितं पट्टवस्त्रं। १ पतला पट्टवस्त्र। महीन रेशमका कपड़ा। यहाँ तीन प्रकारका रेशमी कपड़ा बनता है, गरद, तसर और मुटका। यह अन्तिम कपड़ा देखनेमें अच्छा न होने पर भी बहुत दिनों तक चलता है, रेशम और तसरसे ही एक प्रकारका मोटा रेशम तय्यार किया जाता है, उसीके बाना और रुईके सूतके तानेसे मुकटा तय्यार होता है, बङ्गालमें इसका बड़ा उपयोग होता है, देवताके पूजन और धर्म्मात्मा स्त्रियोंके दिन-रातके पहिरनेके काम आता है, एक जोड़ अच्छे मुकटेका दाम ११) १२) रु० होता है, तसरका कपड़ा तसरकी गोटसे तय्यार किया जाता है। [तसर देखो]। यह वस्त्र रेशमकी गाँठके सूतसे तय्यार किया जाता है। बननेवालेके सूत निकालनेके समय दो-तीन कोया एक-एक बार घुमाने और साथ ही साथ यत्नपूर्वक ताना-बाना फेंकनेसे अच्छा सूता तय्यार होता है। इसके अतिरिक्त कोया भी बढ़िया होना चाहिये। जिस समय रेशमकी गोटी बँधने लगती है, उस समय अथवा उससे पहिले बदली होने या पूरबी हवा चलनेसे ये रेशमकी गोटियाँ अच्छी नहीं होतीं, इन गोटियोंके काटनेपर निकृष्ट रेशम निकलता और उसका कपड़ा भी अच्छा नहीं होता है। अच्छे रेशमी वस्त्रके ताने और बाने (भरना) का सूत समान पतला होना चाहिये। परन्तु जुलाहे अधिक करके तानेका सूत महीन और बाने (भरना) का मोटा दे देते हैं, इसीसे कपड़ा अच्छा नहीं बनता। उत्तम वस्त्रमें २८०० साना रहता है। ३२०० साना देनेसे बहुत ही अच्छा कपड़ा बनता है। बाजारोंमें ऐसा कपड़ा जल्द दिखाई नहीं देता। १४००, १८००, २२०० या २४०० सानाका कपड़ा मिलता है। २२०० और २४०० का कपड़ा बहुत ही अच्छा कहलाकर बिकरी होता है ; परन्तु वास्तवमें वह कपड़ा उत्तम नहीं होता, रेशमके व्यवसायी वस्त्रमें इतना गड़बड़ करते हैं, कि वह सहजही पहिचाना नहीं जाता, सबसे खराब कपड़ा भी देखनेमें अच्छा मालूम होता है, इसीको 'आहार देना' कहते हैं, जुलाहे कपड़ा तय्यार होनेपर धोबीके यहाँ आहार देनेके लिये दे देते हैं, नये रेशमके धोनेको खड़ाई करना कहते हैं। [इसका पूरा हाल खड़ाई शब्दमें देखना चाहिये] एक-एक कपड़ेकी दोनो ओर बड़े-बड़े छिद्र रहते हैं, बाजारमें धुला हुआ रेशमी कपड़ा खरीदते समय ये छिद्र नहीं दिखाई देते, धोबी इन्हीं छिद्रोंमें खूंटा गाड़कर कपड़ेको इतना तानकर सुखाते हैं, कि उनमें जरा भी शिकन या सलवट नहीं रहती, इसके उपरान्त मयदेको जलमें घोलकर धोबी खूब गाढ़ा गाढ़ा उसपर लगा देते हैं, इसीका नाम आहार है, आहार लगानेके लिये ब्रुशके समान एक झाड़ु रहती है, कपड़ेपर आहार लगा देनेके बाद इसी मार्ज्जनी द्वारा उसको कुछ देरतक घिसते रहनेपर कपड़ा खूब स्वच्छ हो जाता है, और फिर धपमें सूख जानेके अनन्तर वह नकली लेपसा नहीं मालूम होता, बल्कि कपड़ा असली, गाढ़ा और उत्तम मालूम होता है।

अंशुपति (सं० पु०) अंशवः पतिः ६-तत्। सूर्य्य।

अंशुपर्णी (सं० स्त्री०) शालपर्णी। (शब्दार्णव)

अंशुमत् (सं० त्रि०) अंशु-मतुप्। किरणयुक्त। द्युतिमान्। (पु०) सूर्य्य।

अंशुमत्फला (सं० स्त्री०) अंशुमानिव रक्तवर्णं फलं यस्याः। बहुव्री। कदली, केलागाछ।

अंशुमती (सं० स्त्री०) शालपर्णीवृक्ष। (वि०) प्रभाविशिष्टा।

अंशुमन्त (सं० पु०) १ सूर्य्य। २ अंशुमान् राजा।

अंशुमर्द्दन (सं० पु०) ज्योतिषोक्त ग्रहयुद्धभेद, इस ग्रह-युद्धमें राजाओंसे युद्ध, रोग और दुर्भिक्षादि होते हैं। ग्रहयुद्ध देखो।

अंशुमान् (सं० पु०) १ सूर्य्य। २ सूर्य्यवंशीय एक राजा, सगरके नाती और असमञ्जसके पुत्र। सगर और गङ्गा देखो।

अंशुमाला (सं० स्त्री०) अंशोः माला ६-तत्। किरण-राजि।

अंशुमाली (सं० पु०) अंशु-माला-इन् अस्त्यर्थे। १ सूर्य्य। २ बारहकी संख्या।

अंशुल (सं० पु०) अंशु-ला-क। अंशुं लातीति। १ चाणक्य पण्डित। २ बुद्धिमान् मनुष्य। ३ मुनि।

अंशुहस्त (सं० पु०) अंशुर्हस्त इव यस्य। बहुव्री। सूर्य्य। किरणरूप हाथद्वारा रसको खींचते है, इसीके लिये सूर्य्यका नाम अंशुहस्त हुआ।

अंशादि—अंशु, जन, राजन्, उष्ट्र, रोटक, अजिर, आर्द्रा, श्रवणा, कृत्तिका, अर्द्ध, पुर, यही सब अंशादि हैं। *। प्रतेरंशादयस्तत्पुरुषे। पा ६।२।१९३। यह शब्द तत्-पुरुष समासमें अन्तोदात्त होता है।

अंस (अनुस्र अदन्त चु०प०)। कर्म्मणि यत् अंस्यः। अंसे स्कन्धे भवः यत् अंस्य। अंश देखो।

अंस (सं० पु०) अंसौ स्कन्धौ, तौ स्नायुमर्म्मणी अर्धाङ्गुलौ वैकल्यकरौ। तत्र वाहुस्तम्भः। स्कन्ध। कांधा। जिसमें चोट लगनेसे बाहुस्तम्भ हो जाता है।

अंसकूट (सं० पु०) अंसः कूट इव उन्नतः। सांड़के कंधोंके बीचका ऊपर उठा हुआ भाग। कूबड़। कुब। जिस तरह बकरेका आख्ता करनेसे, सींग नहीं बढ़ता और शरीरमें गन्ध नहीं आती,उसी तरह सांड़का कोष काट लेनेपर उसका भी कूबड़ नहीं बढ़ता।

अंसत्र (सं० क्ली०) अंस-त्रै-क। अंसं स्कन्धं त्रायते। स्कंध रक्षाका कवचविशेष। *। आदेच उपदेशेऽशिति। पा ६।१।४५। एजन्तो यो धातुरुपदेशे, तस्याकारादेशो भवति, शिति तु प्रत्यये न भवति। उपदेश अर्थमें जो धातु अजन्त हैं, उनके परे आकार-आदेश होता है। परन्तु यदि प्रत्ययका शकार इत् हो, तो नहीं होता। यहां त्रै धातुके ऐकार स्थानमें आकार होनेसे त्रा हुआ, इसके बाद। *। आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३। आतो लोपः। उपसर्गहीन कर्म्मके उपपदके बाद आकारान्त धातुके उत्तर क प्रत्यय होता और आकारका लोप हो जाता है।

अंसत्रकोश (सं० त्रि०) धनु और कवच कोशस्थानी रूप जहां हों। "अंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणं" (ऋक् १०।१०१।७) 'अंसत्रकोशं अंसत्राणि धनंषि कवचानि च कोशस्थानीयानि यस्मिन् तं' (सायण)

अंसफलक (सं० क्ली०) अंसयोः फलकं ६-तत्। स्कन्धास्थि. काँधेका हाड़। अंस-फलके पृष्ठोपरि पृष्ठवंशस्योभयतः स्कन्धसम्बन्धे। अस्थिमर्म्मणी अर्धाङ्गुले वैकल्यकरे, तत्र वाह्वोः शून्यता शोषश्च। पीठके ऊपर मेरुदण्डकी दोनो ओर कांधेके जोड़की जगह जो हड्डीवाला स्थान होता है, उसे अंसफलक कहते हैं। उसपर चोट लगनेसे वाहुस्तम्भ हो जाता है।

अंसभार (सं० पु०) अंसे धृतः भारः। शाक-तत्। अंसे भार अलुक् समास। कांधेका बोझ। *। शाक-पार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्। (कात्यायन) शाकपार्थिवादि समासमें उत्तरपदका लोप होता है। शाकप्रिय पार्थिव, यहां प्रिय शब्दका लोप करके शाकपार्थिव रूपसिद्धि हुई।

इस लिये पहिले जो बहुव्रीहि समास हुआ है, उसीका यह उत्तरपद मालूम होता है। *। अलुगुत्तर-पदे। पा ६।३।१। कभी-कभी समास होनेसे उत्तर-पदके परे विभक्तिका लोप नहीं होता।

अंसभारिक, अंसभारिक (सं० त्रि०) अंसभारेण हरति। अंसभार-ष्ठन्। *। भस्त्रादिभ्यः ष्ठन्। पा ४।४।१६। जो कांधेपर भार ले जाये। (स्त्री०) अंसभारिकी। *। षिद्‌गौरादिभ्यश्च। पाः ४।१।४१। षकार इत् होनेवाले प्रत्ययके निष्पन्न शब्दके स्त्री-लिङ्गमें और गौरादि शब्दके उत्तर ङीष् प्रत्यय होता है।

अंसल (सं० क्ली०) अंस-लच् अस्त्यर्थे। *। वत्सांसाभ्यां कामे। पा ५।२।९८। बलवान्

अँसुआ, अँसुवा (हि० पु०) आँसू।

अँसुवाना (हि० क्रि०) अश्रुपूर्ण होना। डबडबा आना। आँसूसे भर जाना।

अंस्य (सं० त्रि०) अंस-यत्. अंसे स्कन्धे भवः। स्कन्ध-भव। कर्म्मणि यत्। विभाज्य।

अंह [अहि] भ्वा० आ-गतौ। लट् अंहते। लिट् आनंहे। लुङ् आंहिष्ट।

आंहिषातां रघुव्याघ्री शरभङ्गाश्रमम् ततः। (भट्टि)

१ पाप। २ दुष्कर्म्म। ३ अपराध। ४ दुःख। ५ व्याकुलता। ६ विघ्न, बाधा।

अंहति, अंहती (सं० स्त्री०) अंह-अति। १ दान। २ त्याग। ३ रोग।

अंहस् (सं० क्ली०) अम-असुन्। *। अमहुँक्च। उण् ४।२१२। अमति गच्छति प्रायश्चित्तेन। पाप। अंहसी, अंहांसि।

अंहसस्पति (वै० पु०) अधिकमासाधिष्ठाता, मलमासका अधिपति। "अंहसस्पतये त्वा" (शुक्लयजुः ७।३०) 'अंहसस्पतये अधिकमासाधिष्ठात्रे अंहः पापं तस्य पतिः मलमासत्वा-दयं द्वादशस्वपि पतति यद्वा अंहते गतिकर्म्मणोऽसुन्-प्रत्ययान्तस्य रूपमंहं इति अंहसमंहो गतिः तस्य पतिः त्रयोदशो मासः आदित्यगतिवशेन जायते' (महीधरभाष्य)

अंहिति (सं० क्ली०) अहि-क्तिन्। दान। *। "कलिङ्गास्तु अंहतेः क्तिनि ग्रहादित्वादिटियंहितिशब्द-मिच्छन्ति।" (उण् ४।६२)

अंहु (सं० त्रि०) अहि-कु। पापी, पापकारी।

अंहुड़ी (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी लता, जिसमें छोटी-छोटी गोल पेटेकी फलियाँ लगती हैं। इन फलियों-की तरकारी बनती है, और इनके बीज दवाके काम में आते हैं। बाकला।

अंहुर (सं० त्रि०) अहि-उरच्। गति-युक्त।

अंहोमुच् (वै० पु०) वामदेव्यऋषिका गोत्रापत्य।

अंह्रि (सं० पु०) अहि-क्रिन्। १ पाद। २ वृक्षमूल। ३ चार संख्या।

अंह्रिप (सं० पु०) अंह्रि-पा-क। अंह्रिणा पादेन पिबति। उप-सं। वृक्ष, पादप। *। आतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३। उपसर्गशून्य उपपदके पर आकारान्त धातुके उत्तर क प्रत्यय हो और जिन धातुओंका सम्प्रसारण होता है, वहाँ ड प्रत्यय होता है।*। कविधौ सर्व्वत्र प्रसारणिभ्यो डः। (सि० कौ०)।*। इग्यणः सम्प्रसारणम्। पा १।१।४५। यन् प्रत्याहारके स्थानमें अर्थात् य, व, र, ल-के स्थानमें इक् अर्थात् क्रमसे इ, उ, ऋ, ऌ होता है, इसीको सम्प्रसारण कहते हैं। यथा, ध्या सम्प्रसारित होनेपर धी ऐसा रूप हो जाता है।

अंह्रि-स्कन्ध (सं० पु०) अंह्रेः स्कन्धः। ६-तत्। गुल्फ। पैरकी एड़ी।*। स्कन्देश्च स्वाङ्गे। उण् ४।२०६। धादेशः।

अक्। पाणिनिधृत चौदह वर्ण-प्रत्याहारके पहिले और दूसरे वर्ण। प्रत्याहारमें अ, इ, उ, ऋ, ऌ (अइउण। ऋऌक्) ये पाँच स्वरवर्ण लिये गये हैं।

अक—पाणिनि-गृहीत कृत्प्रत्ययके स्थानमें जात प्रत्ययविशेष। जिन प्रत्ययोंका वु इत् होता है, उनके स्थानमें अक आदेश हो जाता है।*। युवोरनाकौ। पा ७।१।१। प्रत्ययके यु स्थानमें अन और वु स्थानमें अक होता है। यथा ण्वुल्, ष्वुन्, क्वुन्, वुन् इत्यादि। इन सब प्रत्ययोंके स्थानमें अक होगा। जैसे ण्वुल्, कारकः।*। ण्वुल्तृचौ। पा ३।१।१३३। धातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमें ण्वुल् और तृच् प्रत्यय होता है। ष्वुन् नर्त्तकः।*। नृतिखनिरञ्जिभ्य एव। नृति खनि और रञ्जि धातुके उत्तर ष्वुन प्रत्यय होता है। क्वुन् रजकः नकारका लोप होता है।*। रञ्जेस्तु शिल्पसंज्ञयोरपि क्वुन्। पतञ्जलिके मतसे रञ्ज धातुके उत्तर क्वुन् प्रत्यय होगा। वुन् सरकः।*। प्रुसृल्वः समभिहारे वुन्। पा ३।१।१४९। पटुता अर्थमें प्रु सृ और लु धातुके उत्तर वुन् प्रत्यय होता है। कर्त्तृ अर्थमें अक प्रत्यय निष्पन्न शब्दके साथ षष्ठीतत्पुरुष समास नहीं होता।*। तृजकाभ्यां कर्त्तरि। पा २।२।१५। यथा अन्नस्य पाचकः। प्रजानां पालकः इत्यादि। इस स्थानमें अन्नपाचकः प्रजापालकः इस तरह समास न होगा। किन्तु क्रीड़ा और जीविकाके अर्थमें अक प्रत्ययान्त शब्दके साथ षष्ठीतत्पुरुष समास होता है।*। नित्यं क्रीड़ाजीविकयोः। पा २।२।१७। जैसे, क्रीड़ामें उद्दालक-पुष्पभञ्जिका, वारणपुष्पप्रचायिका। जीविकामें दन्तलेखकः, नखलेखकः। अक-प्रत्ययान्त याजकादि शब्दके साथ भी षष्ठी तत्पुरुष समास होता है।*।

याजकादिभिश्च। पा २।२।९। जैसे ब्राह्मणयाजकः, देवपूजकः। [याजकादि देखो] "उद्दालकपुष्पभञ्जिका" यह क्रीड़ा विशेषकी संज्ञा है। भञ्जनं भञ्जिका।

अक प्रत्ययान्त शब्दके स्त्री-लिङ्गमें आप् परे रहनेपर प्रत्ययस्थित ककारके पूर्ववर्त्ती वर्णके अकार स्थानमें ई विधान हो जाता है। परन्तु सुपके उपरान्त आप् विहित होनेपर नहीं होता।*। प्रत्ययस्थात् कात् पूर्व्वस्थात इदाप्यसुपः। पा ७।३।४४। यथा कारक शब्द अक प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हुआ है। यहाँ, कारक आ (आप्) इस स्त्री-प्रत्ययका प्रयोग करनेसे कारका हुआ। इसके अनन्तर, ककारके पूर्ववर्त्ती रकारका अकार इकार हुआ। अतएव, कारकके स्त्रीलिङ्गका स्वरूप कारिका हुआ। ऊपर अकारके स्थान में इ होगा, इस कथनका यह तात्पर्य्य है, कि अकारके आगे दूसरा शब्द रहनेसे न होगा। जैसे, नौक-के स्त्रीलिङ्गमें नौका हुआ; परन्तु ककारके पूर्वस्थित औकारके स्थानमें इकार न हुआ। फिर, सुपके पश्चात् आप् विहित होनेपर भी नहीं हो सकता। इस कथन का यह तात्पर्य्य है, कि बहुपरिव्राजिका नगरी। इस स्थानपर सबके पहिले समास करनेके समय सुपका लुक हो गया है उसके उपरान्त स्त्रीप्रत्यय। जैसे, बहवः परिव्राजकाः विद्यन्ते यस्यां नगर्य्यां सा बहुपरिव्राजकानगरी।*। न यासयोः। पा ७।३।४५। पाणिनिके इस सूत्रके ऊपर कात्यायनने कितनेही निषेध-विधिके वार्त्तिक किये हैं। जैसे—पाचकादीनांछन्दस्युपसंख्यानम्। वेद विषयमें पाचकादि शब्दके परे स्त्री-लिङ्ग आप् होनेपर उसका पूर्ववर्त्ती इकार नहीं होता। पाचका हिरण्यवर्ण शुचि। अन्यत्र पाचिका।*। आशिषि चोपसंख्यानम्। जीवतात् जीवक, जीवका, यहाँ आशीर्व्वादप्रयोग रहनेके कारण इकार न हुआ।*। उत्तरपदलोपे चोपसंख्यानम्। देवदत्तिका लोपे देवका।*। तारका ज्योतिष्युपसंख्यानम्। तारका शब्दमें दृष्टि और नक्षत्रके अर्थमें इकार नहीं होती। तारका। अन्यत्र तारिका दासी।*। वर्त्तका शकुनौ प्राच्यमुपसंख्यानम्। पक्षी अर्थमें प्राच्य पण्डितोंके मतके अनुसार वर्त्तका ही होगा। अन्यत्र वर्त्तिका।

अक, कुटिलगतिः। भ्वा॰ प॰। लट् अकति। लिट् आक। लुङ् आकीत्। यह धातु घटादिगणके अन्तर्गत है। घटादिगणका फल क्या और कौन-कौन धातु इस गणमें पढ़े जाते हैं, वह घट धातुमें देखो।

अक (सं॰ क्ली॰) न कं सुखमिति नञ्-तत्। दुःख। न कं सुखं यस्मात् बहुव्रीहि। पाप।

अकच (१त्रि॰) अक-चाय-ड। केशशून्य, खल्व-ट्, टाकपड़ा। २केतुग्रह। नास्ति कचो देहस्य ध्वजो यस्य राहोः शरीरांशहेतोः। केतुग्रह राहुका शरीर, इसके मस्तक नहीं रहता, इसलिये यह अकच कहलाता है।

अकच्छ (सं॰ वि॰) १ नग्न। २ नङ्गा। ३ व्यभिचारी।

अकड़ (हि॰ स्त्री॰) ऐंठ। तनाव। मरोड़। (पु॰) अकड़बाज़।

अकड़-तड़क (हि॰ पु॰) ऐंठन। तेज़ी। ताव। घमण्ड।

अकड़ना (हि॰ क्रि॰) सूखकर सिकुड़ना और कड़ा हो जाना। खरा होना। ऐंठना। ठिठरना। स्तब्ध होना। सुन्न हो जाना। तनना। शेखी करना। घमंड करना। ढिठाई करना। हठ करना। ज़िद करना। अड़ना। चिटकना। उलझ पड़ना।

अकड़वाई (स्त्री॰) ऐंठन। शरीरकी नसोंका पीड़ाके साथ एकाएक खिंचना।

अकड़बाज़—ऐंठदार। शेखीबाज़। अभिमानी। नोक झोंकवाला।

अकड़बाज़ी (स्त्री॰) ऐंठ। शेखी। अभिमान।

अकड़म—एक चक्र। पहिले अकडम रहनेके कारण इस चक्रका ऐसा नाम पड़ा है। दीक्षाके समय गुरु इसी चक्र द्वारा शिष्यकी सिद्धि, कार्यकी सफलता आदिकी गणना करते हैं। इसका पूरा-पूरा हाल रुद्रयामलमें लिखा हुआ है। इस चक्रमें यह मालूम हो जाता है, कि इष्ट-मन्त्र शिष्यको अच्छा फल देगा या नहीं। यद्यपि रुद्रयामलके मतमें यह गोपालमन्त्रमें है, परन्तु तन्त्रमें भी इसकी व्यवस्था पाई जाती है। गणना करनेका क्रम यों है:—मान लीजिये कि शिष्यका नाम अमरनाथ है और वीजमन्त्र क्लीं है। अब अमरनाथ नामके आदि अक्षर अकारके प्रकोष्ठसे बांई ओर होकर गिनना आरम्भ कीजिये। पहिला

प्रकोष्ठ सिद्ध, दूसरा—साध्य, तीसरा—सुसिद्ध, चौथा—अरि। जबतक वीजमन्त्रका घर न मिले, तबतक इसीतरह बराबर कहते हुए गिनना चाहिये। वीज-मन्त्रवाले कोठेमें सिद्ध साध्य अथवा सुसिद्ध होनेपर मन्त्रोद्धार होता है और गुरु वही मन्त्र शिष्यको दीक्षा-में देते हैं। हां, सुसिद्ध मन्त्रका फल बहुतही अधिक है। क्योंकि उसके द्वारा साधक अनायासही सिद्ध हो सकता है। सिद्ध आदिका फल उतना नहीं है।

इस तरह विचारमें वीजमन्त्रके कोठेमें यदि अरि पड़ा, तो कभी मन्त्रोद्धार न होगा। ऐसे स्थानमें गुरु, शिष्यका एक नया नाम रखकर मन्त्रोद्धार करते हैं। हिन्दू धर्मकी ओर जिनकी अचलभक्ति है, वे बालक-के नामकरणके समयही इस विषयमें सतर्क हो जाते हैं। ऐसा नाम कभी नहीं रखते, जिससे मन्त्रोद्धार न हो।

यदि शिष्यको सिद्धमन्त्रसे दीक्षा दी गई, तो शिष्य बहुत दिनोंमें अवश्य सिद्ध होता है। साध्यमन्त्रकी दीक्षा होनेपर शिष्य जप, होम, आदि द्वारा सिद्ध होता है और सुसिद्ध मन्त्र यदि कहीं मिल गया, तो मन्त्र लेतेही सिद्ध हो जाता है। परन्तु अरिमन्त्र साधकको नष्ट कर देता है।

अकड़म चक्र।
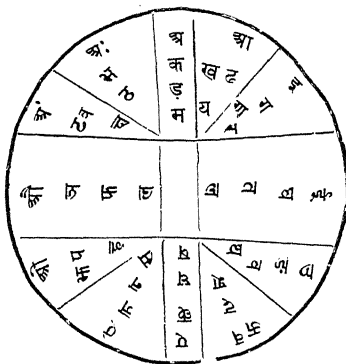
यदि भ्रमसे अथवा भूलसे गुरु किसीको अरि-मन्त्र दे दें और शिष्यको मालूम हो जाय कि, मुझे अरि-मन्त्र दिया है, तो वह उसे त्याग भी सकता है; और उसे त्याग करदेना आवश्यक भी है। मन्त्रत्यागके दो नियम अथवा प्रकरण हैं। तन्त्रकौमुदीके मतसे बड़के पत्तेपर अरि-मन्त्र लिखकर उसे नदीकी धारमें अथवा अन्य बहते हुए जलके सोतेमें बहा देनेसे मन्त्रका त्याग हो जाता है। तन्त्रराजके मतसे, एक दोना दूधमें एक सौ बार अरि-मन्त्रका जप करके उसका कुछ अंश पीकर शेष बहते हुए जलमें बहा देनेसे अरिमन्त्रका त्याग हो जाता है।

अकड़ाव (हि॰ पु॰) ऐंड़न। खिंचाव।

अकड़ैत—अकड़बाज़।

अकत (हि॰) सारा। आखा। समूचा। (क्रि॰ वि॰) बिलकुल। सरासर।

अकथ (हि॰) जो कहा न जा सके। कहनेकी सामर्थ्यके बाहर, अकथनीय। अनिर्वचनीय।

अकथनीय (सं॰ त्रि॰) न कहे जाने योग्य। अवर्णनीय।

अकथह—दीक्षाके समय शिष्यकी सिद्धि आदि जाननेका एक प्रकारका चक्र। अर्थात् इष्ट मन्त्र शिष्यके नामके साथ अच्छी तरह मिलता है या नहीं और वह इष्ट मन्त्र शिष्यको अच्छा फल देनेवाला होगा या नहीं, इस चक्रसे यह भली भांति मालूम हो जाता है। पहिले अकथह है, इस लिये इस चक्रका नाम भी अकथह पड़ा है। यह चौकाना क्षेत्र पहिले चार भागोंमें विभक्त किया जाता है। इससे चार खाने या कोठे बन जाते हैं।

अकथह-चक्र।

अ क थ ह	उ ङ प	आ ख द	ऊ च फ
ओ ड व	ऌ झ म	औ ढ श	ॡ ञ ष
ई घ न	ऋ ज भ	इ ग ध	ॠ छ ब
अः त स	ऐ ठ ल	अं ण य	ए ट र

इसके उपरान्त एक-एक खानेको फिर चार-चार भागोंमें विभक्त किया जाता है। इससे १६ खानोंका यह चक्र बन जाता है। इससे विचार करनेकी प्रणाली यह है—मान लीजिये, शिष्यका नाम आनन्दचन्द्र और वीजमन्त्र ह्रीं है। अब आनन्दचन्द्रके आदि अक्षर आ-से दाहिनी ओर ह्रीं मन्त्रके आदि अक्षर ह तक गिनना होगा। पहिले आकारवाले खानेमें—सिद्ध। दूसरेमें साध्य। तीसरेमें—सुसिद्ध और चौथेमें अरि। यही हकारके खानेमें अरि पड़ा, इससे मन्त्रोद्धार न हुआ।

यदि मन्त्रके खानेमें अरि न पड़े, तो फिर छोटे-छोटे खानोंको गिनना पड़ेगा; जैसे—अकारका छोटा खाना पहिला सिद्ध सिद्ध, दूसरा सिद्ध साध्य, तीसरा सिद्ध सुसिद्ध, चौथा सिद्ध अरि। इसके नम्बर नीचे बड़े कोठेके चारखानेमें भी इसी तरह गिनने होंगे। फिर और एक बड़े कोठेके खानोंको गिनकर क्रमसे हकार-वाले खानेतक गिनना पड़ेगा। इस चक्रका नियम तन्त्रराजमें लिखा है।

अकड़मचक्र और मन्त्र शब्द देखो।

अकथ्य (सं० वि०) न कहने योग्य। दुर्वाक्य। निष्फल।

अक़द (फा० पु०) इक़रार। प्रतिज्ञा। वायदा।

अक़दन (क्रि० वि०) क़दन देखो।

अक़दबन्दी (फा० स्त्री०) इक़रारनामा। प्रतिज्ञापत्र।

अकधक (पु०) आशङ्का। आगा-पीछा। सोच-विचार। भय। डर।

अकनना (हि० क्रि०) कान लगाकर सुनना। चुपचाप सुनना। आहट लेना। सुनना। कर्णगोचर करना।

अकबक (हि० पु०) निरर्थक वाक्य। अण्डबण्ड। अनाप-शनाप। असंबद्ध प्रलाप। घबड़ाहट। धड़क। चिन्ता। खटका। अक्की-बक्की, छक्का-पंजा। होश-हवास। चतुराई। सुध। (वि०) भौचक्का। निस्तब्ध। अवाक्। चकित्।

अकबकाना (हि० क्रि०) चकित होना। भौचक्का होना। घबड़ाना।

अकबर। (अबुल फतह जलाल्उद्दीन् मुहम्मद पादशाय-गाजी।) हम-लोग इन्हें सदासे अकबर बादशाहही कहते हैं। ये हुमायूँके लड़के थे। इनकी माताका नाम सुल्ताना हमीदा बानो बेगम था। सन् १५४२ ईस्वी-की १५वीं अक्टूबर (मुसलमानी रजब महीना ९४० फसली) रविवारको अकबरका जन्म हुआ था। १५५६ ईस्वीमें अकबरने १३ वर्ष ९ महीनेकी अवस्थामें दिल्लीके राज्यशासनकी बाग डोर अपने हाथमें ली और ५१ वर्ष राज्य करके १६०८ ईस्वीमें कमसे कम ६५ वर्षकी अवस्थामें इस लोकको त्याग दिया।

अकबरका नाम हिन्दू-मुसलमान किसीसे छिपा नहीं है। इस समय कितनेही गृहस्थोंके घरोंमें अकबरी मोहरें निकलेंगी। हिन्दू भी उस मोहरकी भक्ति करते हैं। आज चार युगोंसे यह बात देखी जाती है कि जब किसी महान् पुरुषका जन्म होनेवाला होता है, तो माता-पिताको कष्ट झेलना पड़ता है। इधर हमीदाके गर्भमें जिस समय अकबर आये, उसके कुछही दिन उपरान्त शेरखांने दिल्लीके सिंहासन-पर अधिकार कर लिया। जब बुरे दिन आते हैं, उस समय मनुष्यका कोई सहायक नहीं रहता। दरिद्रों-का तो कहनाही क्या है; जो राजाधिराज सम्राट् हैं, उनको भी सहायकका घाटा हो जाता है। हुमायं जब राज्यभ्रष्ट हो गया, तो उसके बन्धु-बान्धवोंने उसका साथ छोड़ दिया और प्रधान-प्रधान सर्दार विरोधी हो उठे। परन्तु सामान्य और अनधिकारी मनुष्योंने उनको न छोड़ा। हुमायुं अपने उन्हीं विश्वासी अनुचरोंको साथ ले सिन्धु नदी पारकर अमरकोटको भाग गया। राहमें हुमायुंको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा, चारो ओर मरुभूमि, कहीं जलका ठिकाना नहीं, किसी वृक्षका पता नहीं, पीछे शत्रुकी सेना, जल-आश्रयसे हीन होनेके कारण हुमायूंके साथियोंमेंसे कितनोंहीने उसी मरुभूमिमें अपने प्राण गँवाये और जो बचे, वह भी अमरकोट पहुंचते २ मृतवत् हो गये। हुमायुं देखो।

सुल्ताना हमीदाका गर्भ बड़ाही कठोर था। कितने-ही सिद्ध पुरुषोंने कहा था, कि इस गर्भमें एक अवतार उत्पन्न होगा। ख्वाजा मसूदने भी एक बार अबुल-फजलसे कहा था कि, अकबर ईश्वरके अवतार हैं, योगियोंने उनके पितासे यह बात कही है।

१५४२ ईस्वीकी, १५वीं अक्टबर रविवारको अक-

बरने शुभदिन और शुभसमयमें अमरकोटमें जन्म लिया। परन्तु पुत्र-मुख देखकर भी हुमायूं उस समय सुखी न हो सके ; क्योंकि शत्रु यहांभी आ पँहुचेथे। अब उनसे सबको बचानेका भी कोई उपाय न था, अतः सन्तानको वहीं छोड़ हुमायूं भाग चले। अकबर हुमायूंके भाई कामरानके हाथमें पड़े। विषयी पुरुषोंके लिये कोई सहोदर भी नहीं, और आत्मीय स्वजन भी नहीं; जगत् केवल शत्रुमय दिखाई देता है। कामरान भी कभी-कभी अकबरको मार डालनेका विचार करता था।

हुमायूँ भागे तो सही, पर अब जानेका स्थान कहां था। बहुत कुछ सोच विचारकर वह पारस्यकी ओर चले। पारस्यमें उस समय शीया धर्म्म का प्रादुर्भाव हुआ था। पारस्यके तमाहस्पने हुमायूंसे कहा कि, यदि तुम शीया धर्म्म ग्रहण करो, तो हम तुम्हारी बहुत कुछ सहायता करें और इतनी सेना दें कि, फिरसे अपना राज्य शत्रुओंके हाथसे उद्धार कर सको। मनुष्यके दिन सदा एकसे नहीं जाते। कभी वृक्षके नीचे, कभी वृहत् अट्टालिकामें मनुष्यका दिन कटता है—यह सब भाग्यचक्रका फेर है। हुमायूंके भाग्यचक्रने फिर पलटा खाया, सौभाग्य-लक्ष्मी फिर उनपर सदय हो उठी। उन्होंने शीया धर्म्म ग्रहण किया। पारस्यके राजाने उनको बहुतसी सेना दी। हुमायूँने उस सेनाकी सहायतासे काबुल, कन्दहार और गज़नीपर अपना अधिकार जमा लिया। जिस समय हुमायूँने काबुलपर चढ़ाई की, उस समय कामरानने हुमायूंको अकबरको दिखाकर कहा—"यदि तुम मुझसे लड़ोगे, तो तुम्हारे पुत्रको अग्निमें डाल दूंगा ; वह जलकर राख हो जायगा।" परन्तु हुमायूँ न डरे। उन्होंने बड़ी वीरतासे अपने पुत्रको कामरानके हाथसे छुड़ाया। जब मनुष्यका दिन अच्छा आनेवाला होता है, तो उसे सभी सामान अनुकूल मिलने लगते हैं। इस समय हुमायूंके पहिले अनुचरोंने दिल्लीसे लिख भेजा कि, आपके शत्रु अब जीवित नहीं हैं, थोड़ीसी सेना लेकर आइये, विजय-लक्ष्मी आपकी राह देख रही है।

यह समाचार सुन हुमायूँ भारतवर्षकी ओर बढ़े। उनके साथ उस समय कुल पन्द्रह हज़ार वीरोंकी सेना थी, जिसका सेनापति वीर बहरामखाँ था। उस समय अकबरकी अवस्था तेरह वर्षकी थी ; बालक होकरभी अकबर काबुलमें न छिपे रहे, वरं अपने पिताके साथ युद्धमें जानेको तय्यार हो गये। जिस समय रणभेरी बजी और घोड़ोंके टापोंकी धूलसे आकाश छा गया, उस समय अकबरका हृदय भी वीरमदसे प्रसन्न हो उठा। वे घोड़ेपर चढ़कर पिताके साथही साथ पैतृक सिंहासनका उद्धार करनेके लिये चले। कहावत प्रसिद्ध है:—

"होनहार बिरवानके, होत चीकने पात"।

पहिले लाहौरमें एक भयानक लड़ाई हुई। उस दिन महावीर बालक अकबरके पराक्रमसेही जय हुई। इसके उपरान्त हुमायूँको फिर कोई बाधा न पड़ी और उन्होंने अनायासही दिल्ली पहुँचकर राज्यसिंहासनका उद्धार किया। हुमायूँ इसके बाद कुछही दिन-तक जीवित रहे। एक दिन सन्ध्याके समय ईश्वराधना करते हुए वह पत्थरकी सीढ़ीपरसे फिसल पड़े, जिससे उनके माथेमें बड़ी चोट आई। अन्तमें कुछ दिन बाद उस चोटसे ही उनके प्राण गये।

१५५६ ईस्वीमें अकबर बादशाह हुए। उस समय अकबरकी अवस्था बहुत थोड़ी थी। अतः हुमायूँ-का प्रिय मन्त्री बहरामखाँ भी राज्यका सब कारबार देखता था। बहरामखांकी प्रकृति अच्छी न थी। वह निर्दयी था। इसी अवस्थामें अकबरने बहरामखांके हाथोंमें राज्यका भार रहने देना अच्छा न समझा, और एक साधारण विज्ञप्ति द्वारा राज्य अपने अधिकारमें कर लिया। बहराम चिढ़ गया, वह भी बागियोंमें जा मिला ; परन्तु अकबरने उसे हराकर क्षमा कर दिया। केवल क्षमाही न किया, बल्कि सेनामें अच्छा पद देने और मक्केमें जाकर निश्चिन्त हो रहनेका प्रबन्ध करनेका वचन दिया। बहरामखांने मक्का जानाही स्वीकार किया।

अकबरने ५१ वर्ष राज्य किया ; परन्तु इनके राज्य-का एक प्रकारसे सम्पूर्ण समय लड़ाई-झगड़ेमें ही

बीता और सर्दारोंके उपद्रवसे वह कभी निश्चिन्त न रह सके। इसी कारणसे इतने बड़े धार्म्मिक सम्राट्का जीवनभी युद्ध-विग्रहमें ही बीत गया। राज्याभिषेकके उपरान्त इन्होंने पठानराज सिकन्दरको पराजित किया। इसी समय बदख्शांके शासन-कर्त्ता सुलेमानने काबुलपर आक्रमण किया और हिमूने दिल्लीपर अधिकार जमा लिया। अन्तमें अकबरसे लड़ाई हुई। युद्धमें सुलेमान हारा और उसने अकबरकी अधीनता स्वीकार कर ली। हिमू भी पकड़ा जाकर मारा गया। सन् १५७४ ईस्वीमें बङ्गालका शासन-कर्त्ता दाऊद विद्रोही हो गया। इस समय मानसिंह सेनापति थे। उन्होंने पठानोंको हराकर उड़ीसापर अपना अधिकार जमाया। इसी तरह एक-एक युद्धमें अकबरके कितनेही प्रदेश हाथ लगते गये। कुछ दिन उपरान्तही बहुत दूरतक अकबरका साम्राज्य फैल गया। पूर्व्वमें बङ्गाल और आसाम, दक्षिणमें अहमदनगर, मध्यमें राजपूतानाके कितनेही स्थान, और पश्चिममें काबुल और कन्धार।

प्रसिद्ध आईन-इ-अकबरीमें अकबरके जीवनका पूरा-पूरा खाका खिंचा है। अबुलफज़लने यह पुस्तक लिखी थी। ऐसा कोईभी विषय नहीं है, जो इस पुस्तकमें दिखाई न देता हो। कूट राजनीतिसे लेकर ताश खेलने और चिड़िया पालनेतकका हाल लिखा हुआ है। अकबरकी प्रकृति कैसी थी; वे किस तरह राज्य करते थे, राज्यकार्य्यके समझनेमें उनकी कितनी गति थी, ५१ वर्षमें उन्होंने राज्यमें कितनी उन्नति की इसका पूरा हाल आईन-इ-अकबरीमें मिलता है।

दया, क्षमा और समदर्शिताके कारणही जन-समाजमें अकबरका इतना आदर है। उनकी दृष्टिमें हिन्दू-मुसलमान और क्रस्तान समान थे। वे ब्राह्मणोंसे वेद सुनते थे, क्रस्तानोंसे बाइबलका अर्थ समझते थे, और मुसलमानोंसे कुरान पढ़ते थे। परन्तु उनके मतसे इन तीनोंमें भेद न मानते थे। धर्म्ममात्रही उनका आदरका समान था। राजाओंमें ऐसे गुण बहुत कम पाये जाते हैं। उनकी इस दया और इतनी क्षमाको देखकरही प्रजा उनका बहुत आदर करती-थी। अकबरसे पहिलेके बादशाह कृषकोंसे नवछावर लेते थे। लड़ाई आरम्भ होनेपर मज़दूरोंको पकड़कर युद्धमें भेजते थे और व्यवसायके पदार्थोंसे भी कर वसूल करते थे; परन्तु अकबरने शासन-दण्ड अपने हाथमें लेतेही इन कुप्रथाओंको उठा दिया।

अकबरकी आठ बेगमें थीं। (१) सुल्ताना रजिया बेगम। ये पहिली बेगम और पटरानी थीं। ये मिर्ज़ा हिन्दालकी कन्या थीं। इनके कोई लड़का-बाला न हुआ; ये शाहजहाँका लालन-पालन बड़े प्यारसे करती थीं। (२) सुल्ताना सलीमा बेगम। पहिले यह बहरामखाँकी पत्नी थी। बहरामकी मृत्युके पश्चात् अकबरने इससे विवाह किया। इसमें कविता करनेकी अच्छी शक्ति थी। (३) राजा विहारीमलकी कन्या। इसके भाईका नाम राजा भगवान्दास था। (४) अब्दुलबासीकी स्त्री। (५) जोधाबाई। ये जोधपुरकी राजकुमारी थीं। जहांगीरने इनके गर्भसे ही जन्म लिया था। (६) बीबी दौलतशाह। (७) अब्दुल्लाखां मुग़लकी कन्या। (८) मीरान मुबारकशाहकी कन्या।

विवाहके सम्बधमें अकबरने एकबार कहा था,—"यदि इस समयके समानही मेरी चित्तवृत्ति पहिले भी होती, तो शायद मैं विवाह न करता। किससे विवाह करता? जो मुझसे अवस्थामें बड़ी हैं, उनको मैं माताकी दृष्टिसे देखता हूं। जिनकी अवस्था छोटी है, वे मेरी कन्याके समान हैं, और जो समान अवस्थाकी स्त्रियां हैं, उन्हें मैं अपनी बहिन जानता हूं। बहुविवाह क्या पदार्थ है? मनुष्यको बहुविवाह करना चाहिये या नहीं इस बातका विचार भी सदा हृदयमें उठा करता है। परन्तु मैं इसकी ठीक-ठीक मीमांसा नहीं कर सकता। हाँ, निकाहकी अपेक्षा विवाह अच्छा है।" अकबर बाल्य विवाहके विरोधी थे। छोटी अवस्थामें विवाह होनेसे छोटी अवस्थाको वर-वधूकी औरस-जात सन्तान दुर्ब्बल और सदा रोगी रहती है।

अकबरके पांच पुत्र और तीन कन्याओंका हाल मिलता है। हसन और हुसेन ये दोनो युवक पैदा हुए थे। ये दोनो एक महिनेतक ही जीवित रहकर

मर गये। सलीम अकबरके तीसरे लड़के थे। इनका ही नाम पीछे जहांगीर हुआ। चौथा सुल्तान मुराद और पांचवां दानियाल हुआ। कन्याओंमें सबसे बड़ी शाहजादी खानुम्, मँझली शुक्रुन्निसा बेगम और सबसे छोटी आरामबानू बेगम थी।

अकबरके समयमें हिन्दुओंको राजकार्य्यमें अच्छा अधिकार था। बिहारीमल, गोपालदास, मानसिंह वीरबल, टोडरमल, रायसिंह आदि कितनेही सुयोग्य हिन्दू उनके सभासद और प्रधान प्रधान सेनापति थे। अकबर इस विषयमें सदा सावधान रहते थे और उद्योग किया करते थे कि, हिन्दू-मुसलमानोंमें वैर न बढ़कर प्रेम हो जाय।

जीवहिंसा भी अकबरको प्रिय न थी। वे अधिकतर माँस न खाया करते थे और गो-माँसको छूते भी न थे। उनके मतसे गोमांस अखाद्य पदार्थ था। एक बार उन्होंने चित्तके आवेगमें कहा था, "क्या करूं, मेरा शरीर अधिक बड़ा नहीं है। यदि मेरा शरीर बड़ा होता, तो इस माँसपिण्ड-रूपी देहको त्याग देता, जिसमें जगत्के जीव सुखसे भोजन करते। प्राणी-हिंसा फिर देखनेमें न आती।"

जीवन अनित्य है, गया हुआ समय फिर नहीं मिलता। इसी कारणसे अकबर थोड़ा भी समय वृथा नष्ट नहीं करते थे। ईश्वरकी आराधना, सत्यका आदर और सदनुष्ठानमें उत्साह यही अकबरका नित्य और नैमित्तिक कार्य्य था। दूर-दूरके सभ्य और विद्वान् पुरुष बिना रोक-टोकके उनसे मिलते थे। सबसे बड़ी बात उनमें यह थी, कि इतना बड़ा राज्य मिलनेपरभी उनको कुछ अभिमान न था।

सम्राट् अकबरने अपनी विद्या-बुद्धि द्वारा जिस प्रकार शासन-विभागका सुधार किया था; उसी प्रकार शिक्षा-विभागका भी अच्छा सुधार किया था। उस समयके विद्यार्थियोंको पूरी शिक्षा नहीं मिलती थी, थोड़ी अरबी, थोड़ी, फारसी और थोड़ी हिन्दी यही उस समयकी साधारण पढ़ाई थी और इतना पढ़ लेनेपर विद्यार्थी शाही नौकरीके उपयुक्त समझे जाते थे। पण्डित और मौलवियोंकी पढ़ाई कुछ विशेष अवश्य होती थी; परन्तु उनकी संख्या बहुतही अल्प थी।

सम्राट्को पढ़ाईका यह ढङ्ग पसन्द न था; इसीलिये उन्होंने पढ़ाईका ढङ्ग बदल दिया और यह निश्चित कर दिया कि, विद्यार्थियोंको कौन-कौनसी विद्या पढ़नी होगी। आईन-इ-अकबरीमें अकबरके विद्या-विभागका वर्णन आईन-इ-आमोजिशके नामसे किया गया है।

उसमें लिखा है कि, सम्राट्ने विद्यार्थियोंकी पढ़ाईका एक नया ढङ्ग निकाला। पहिले तो अक्षरोंके जोड़ने और संयुक्त अक्षरोंके समझनेमें ही बहुत दिन लग जाते हैं; परन्तु इस तरकीबसे विद्यार्थी स्वरवर्ण और व्यञ्जनवर्ण समझ लेनेके बाद आपही अक्षर जोड़ते और आगे पढ़ते जाते थे। इस तरह वे बहुतही शीघ्र गद्य और पद्यकी पुस्तकें पढ़ने लगते थे। विद्यार्थियोंको आपही आप अक्षर जोड़कर पढ़नेकी शिक्षा दी जाती थी, पढ़ानेवाला बहुत थोड़ी सहायता देता था। पढ़ानेवालोंको नीचे लिखी पांच बातें नित्य जांचनी पड़ती थीं।

(१) अक्षर (२) शब्द (३) पद्यका उच्चारण। (४) पूरा छन्द (५) पिछला पढ़ा हुआ।

इस तरह विद्यार्थी बहुत शीघ्र पढ़ लेते थे। इतना ज्ञान हो जानेपर विद्यार्थियोंको धीरे धीरे इतनी विद्याएं और पढ़नी पड़ती थीं।

१. अखलाक (नीति)
२. हिसाब (लेखा)
३. सबाक (साहित्य)
४. फलाहत (खेतकी विद्या)
५. मसाहत (पैमायश)
६. हिन्दसा (गणित)
७. नजूम (ज्योतिष)
८. रमल (प्रश्न-विचार)
९. तदबीर मंजिल (गृहस्थ-व्यवहारकी विद्या)
१०. सयासत मदन (राज्य प्रबन्ध)
११. तिब्ब (वैद्यक)
१२. तबइ (पदार्थविद्या)

१३. रियाज़ी (खगोलविद्या)
१४. इलाही (ब्रह्म-विद्या)
१५. तवारीख़ (इतिहास)

यह ऊपर लिखी पढ़ाई अरबी-फ़ारसी पढ़ने वालोंकी थी। संस्कृत पढ़नेवालोंको निम्नलिखित विद्याएँ पढ़नी पड़ती थीं।

१. व्याकरण
२. न्याय
३. वेदान्त
४. पातञ्जल

अकबरको विद्यानुरागभी कम न था। अपने पुस्तकालयकी पुस्तकें भिन्न-भिन्न श्रेणीयोंमें भाग करके उन्होंने रखवाई थीं। गद्यकी और पद्यकी और अरबी, फ़ारसी, हिन्दी, ग्रीक, कश्मीरी आदि भाषाओंकी पुस्तकें छाँट-छाँट कर रखी गई थीं। जिस भाषाको जो जानता था, उसके मुँहसे ही उसी भाषाकी पुस्तक वह सुनते थे। जब ग्रन्थ समाप्त हो जाता और उसका विषय सम्राट् अकबरकी समझमें आ जाता, तो वह, पढ़ने-वालोंको अच्छा पारितोषिक भी देते थे। हिन्दुओंके लिखे हुए ग्रन्थोंको भी वह बड़ी चाहसे पढ़ते थे। कृष्ण ज्योतिष, गङ्गाधर, महेश महानन्द, महाभारत, रामायण आदि संस्कृत ग्रन्थोंका उन्होंने फ़ारसी भाषा-में अनुवाद कराया था।

अकबरके समयमें चित्र-विद्याकी भी बड़ी उन्नति हुई थी। सम्राट्को स्वयम् चित्र बनानेका शौक़ था; इसीसे वह चित्रकारोंको सदा उत्साह दिलाया करते थे। उन्होंने सप्ताहमें एक दिन तस्वीर दिखानेके लिये नियत कर दिया था। वे अच्छी तस्वीरोंको छांट उनके बनानेवालोंको उत्साह दिलाते थे। जो कोई उनके दरबारसे वेतन पाता था, उसका वेतन बढ़ानेकी आज्ञा देते थे। इसका फल यह हुआ कि, उनके राजमें ऐसे चित्रकार दिखाई देने लगे, जिनके आगे विलायती चित्रकार कोई पदार्थ नहीं हैं। अबुलफ़ज़लने लिखा है कि, इनमें हिन्दुस्थानी ही विशेष थे। हिन्दुओंकी चित्र-विद्यामें निपुणता उस समय बहुत ही बढ़ी-चढ़ी थी। केशी, लाल, मुकुन्द, क्षेमङ्कर, मधु, योगेन्द्र, महेश, राम, हरिवंश, तारा; हिन्दू-चित्रकारोंमें ये बहुतही विख्यात हैं। सम्राट्की आज्ञासे बहुतसी फ़ारसीकी किताबोंमें तस्वीरें लगाई गई थीं। इनके अलावा कालीयदमन, नलदमयन्ती और महाभारत तथा रामायणमें भी सुन्दर-सुन्दर तस्वीरें लगवाई गई थीं। वस्त्रोंपर काम, सोने-चांदीपर नक्क़ाशीका काम, ज़री-पर ज़र्दोज़ीका काम, पत्थर और काठपर खुदाईका काम इत्यादि शिल्प-सम्बन्धी कामोंपर भी अकबरकी विशेष दृष्टि थी और धन व्यय करके उन्होंने इन शिल्प-के कामोंको उत्साह दिया था।

सम्राट् अकबर सभी विषयोंमें एक अच्छे शिल्पी थे। उन्होंने एक गाड़ी बनवाई थी, जो एक विचित्र ही ढङ्गसे बनाई गई थी। उस गाड़ीमें एक जांता रखा गया था, गाड़ी चलाते ही जांता घूमने और आटा पिसने लगता था। अकबरने एक ऐन्द्रजालिक आईना बनवाया था। दूर अथवा पाससे भी उस आईनेको देखनेपर उसमें भांति-भांतिकी मूर्त्तियां दिखाई देती थीं। कुएँसे जल निकालनेकी एक कल अकबरने बनवाई थी। उस कलमें एक चक्का लगा हुआ था; उसको घुमाते ही दूरसे या गहरे कुएँमेंसे जल ऊपर आ जाता था। साथही उसमें एक कारीगरी यह की गई थी कि, इधर जल खींचनेवाला चक्का घूमता था और दूसरी ओर उसीके बलपर एक आटा पीसनेका जांता घूमता था; इससे आटा बहुत जल्द तय्यार होता था। बन्दूकें और तोपें साफ़ करनेके लिए भी एक कल अकबरने बनवाई थी; उससे एक साथही बारह बन्दूकें साफ़ होती थीं।

संगीत-शास्त्रकी ओर भी अकबरका पूरा ध्यान था। हिन्दू, ईरानी, मुसलमान, कश्मीरी आदि सब जा-तियोंके गानविद्या-विशारद स्त्री-पुरुष उनके साथ विद्यमान थे। तानसेनका नाम अभी जगत्में प्रख्यात हो रहा है। मालाबारके बाजबहादुर भी उस समय-के एक अच्छे गायक थे। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही गायक तथा गायिकायें अकबरकी सभाको गान-विद्यासे मोहित करती थीं। उस्ताद यूसुफ़, सुल-

तान हाशिम, उस्ताद महम्मद आमीन, और उस्ताद महम्मद हुसेन तानपूरा बजाते थे। ग्वालियरके वीरमण्डलखां खरमण्डल बजाते थे। शहाब खां और पुर्ब्बीन खां बीन, शेख दाबानी करनाई, उस्ताद दोस्त सहनाई, मीर सैयद अली और बहरामकुली घिचक, तास बेग कुज, कासिम रबाब और उस्ताद शाह महम्मद सुर्ना आदि भांति-भांतिके बाजे बजाते थे। अबुलफजलके भाई फैजी सम्राट् अकबरकी सभामें एक प्रधान कवि थे। फैजीने ब्राह्मण-वेशसे काशीमें संस्कृत पढ़ी थी और अच्छा पाण्डित्य लाभ किया था।

अकबरने साहित्यके प्रचारमें भी अच्छा उद्योग किया था। उन्होंने अपने राज्यभरमें पाठशालायें स्थापित करादी थीं। उनमें धार्मिक शिक्षाका कुछ विशेष प्रभाव नहीं था)

अकबर धार्मिक भी थे। जिस समय सूर्य्य मेष राशिमें आते, तो उन्नीस दिनोंतक सौराग्नि आहरण करते थे। उसकी प्रणाली यह है:—दोपहरके समय अकबरके नौकर धूपमें सूर्य्यकान्तमणि रखकर आग जला लेते थे। सालभरतक उस आगकी रक्षा करनेके लिये विश्वासी मनुष्य नियत किये गये थे। सम्राट्के लिये रसोई उसी अग्निपर होती थी। पौर्णमासीके दिन चन्द्रकान्तमणि द्वारा वे चन्द्रमासे अमृत हरण कराते थे। वह अमृतकणा साफ ओसके समान रहती थी।

रातके समय अकबरके घरमें ३६ दीपक जलते थे। उनमें १२ सफेद, बारह चांदीके शमादान और बारह सोनेके शमादान रहते थे। एक-एक शमादान वजनमें दस मनसे कम न था। उनमें छः २ बड़ी लम्बी मोम बत्ती लगाई जाती थीं। शुक्लपक्षकी प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीयातक एक, दूसरी पीतलसोजमें आठ बत्तियां जलती थीं, चतुर्थीको सात और पञ्चमीको छः बत्तियां रहती थीं। इसी तरह नित्य एक बत्ती कम करके दशमीको केवल एक बत्ती रह जाती थी। इसके बाद पूर्णिमातक एक बत्ती ही जला करती थी। फिर कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको एक, द्वितीयाको दो, तृतीयाको तीन, और चतुर्थीको चार और पञ्चमीको भी चार ही बत्तियां जलती थीं। षष्ठीको पांच, सप्तमीको छः; इसी तरह एक दिन नागा करके दो दिनोंतक संख्या बढ़ाई जाती थी। एक सेर रूईकी एक एक बत्ती बनती थी और एक बत्तीमें एक सेर तेल लगता था।

अकबरने अपने राज्यमें सब तरहका प्रबन्ध किया था। वे सती होनेकी प्रथाके विरोधी थे। वे स्वयम् बहुत थोड़ी शराब पीते थे और अपने सभासदोंको भी बहुत थोड़ी पीने देते थे।

अकबर बादशाह

अकबर रूपमें बहुत ही सुन्दर थे। छाछठ वर्षकी अवस्था हो जानेपर भी वे बूढ़ेसे नहीं मालूम होते थे। उनके पके केश मात्र उनकी वृद्धावस्थाके चिन्ह थे। गोएसे कई पादड़ी उनकी सभामें आये थे। पादरियोंकी इच्छा थी कि, सम्राट् क्रस्तान हो जायँ, पर उनकी इच्छा पूर्ण न हो सकी।

१६०६ ईस्वीमें सुलतान दानियालका विवाह बड़े समारोहसे हुआ; परन्तु कुछ दिन बाद ही दानियाल शराब पीनेके कारण मर गया। दानियालकी मृत्युसे अकबर बहुत ही शोकान्वित हुए। वे दिन-दिन क्षीण

होते-होते १६०७ ईस्वीमें परलोक सिधारे। सम्राट्को कब्र आगरेके पास फतहपुर सीकरीमें बनाई गई।

सम्राट् अकबरके विषयमें कितनी ही किम्बदन्तियां प्रचलित हैं। किसी-किसीका कहना है कि, पूर्व्व जन्ममें अकबर एक ब्रह्मचारी थे। उनका नाम मुकुन्दराम था। एक दिन मुकुन्दराम प्रयागमें गङ्गा भागीरथी और यमुनाके सङ्गम स्थानपर बैठकर तपस्या करते थे। एक दिन मुकुन्दरामके एक शिष्यने दूध पीनेके लिये लाकर दिया। ब्रह्मचारीने दूध पीनेके बाद देखा कि, उनके मुहमें गोका एक रोआं लगा हुआ है। गोका लोम, गोमांसके समान होता है, हिन्दुओंके लिये अखाद्य वस्तु है। उसी लोमको खाकर ब्रह्मचारी यवनत्वको प्राप्त हुए। मुकन्दरामको बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने विचारा कि अब यवन होकर जीवित रहना अच्छा नहीं। मुसलमान तो हो गये, परन्तु अब ऐसा उपाय करना चाहिये कि, अगले जन्ममें दिल्लीकी बादशाहत मिले। यह विचारकर मुकन्दरामने एक तांबेके टुकड़ेपर अपना सब वृत्तान्त लिख अलक्ष्य देवीके सामने मिट्टीमें गाड़ दिया। इसके बाद अपनी अभीष्ट-सिद्धिकी कामना करके प्रयागके कामकूपमें कूद पड़े। शिष्यने देखा कि, मेरे ही दोषसे गुरुने प्राण त्याग किये हैं; अतः वह भी पुनर्जन्ममें गुरुके साथ रहनेकी कामना करता हुआ, उसी कामकूपमें कूद पड़ा।

कामकूपमें जिस कामनासे जो प्राणत्याग करता, उसकी वही कामना पूरी होती है। मुकुन्दरामने दिल्लीके साम्राज्यकी इच्छासे प्राणत्याग किया था, अतः उनकी इच्छा भी पूर्ण हुई। वही सम्राट् अकबर हुए और उनका शिष्य अबुलफज़ल हुआ। ऐसीभी किम्बदन्ती है कि, अकबरने वह भूमि खुदवाकर वह ताम्रपत्र निकलवाया था। इसमें कोई न कोई सन्देह है; परन्तु इन बातोंको सुनकर एक प्रकारकी श्रद्धा होती है।

[अकबरकी जीवनीका पूरा हाल जाननेके लिये बहरामखाँ, टोडरमल, मानसिंह, अबुलफज़ल, फैज़ी, तानसेन, बीरबर, आदिकी जीवनियां देखनी चाहिये।]

अकबर (अरबी) श्रेष्ठ। बड़ा। महत्। जैसे अल्लः हो अकबर, परमेश्वर श्रेष्ठ—यही कहकर मुअज्जिन मस्जिदमें अज़ां देते . अर्थात् नमाज पढ़नेवालोंको निर्दिष्ट समयपर नमाज पढ़नेके लिये बुलाते हैं।

अकबर—लाहोर और मूलतानके बीचके एक गांवका नाम है। यहां एक प्राचीन नगरका भग्नावशेष ढेर होकर पड़ा है। उस नगरमें अब कुछभी नहीं है। केवल बड़े-बड़े ढेह और बड़े २ ईंटके ढेर दिखाई देते हैं। आजकल ११ इञ्चकी ईंटही बड़ी कहलाती है, परन्तु उस नगरकी एक ईंट २० इञ्च लम्बी, १० इञ्च चौड़ी और साढ़े ३ इञ्च मोटी है। उस नगरका क्या नाम है, वहां कौन राजा राज्य करते थे, उस पुरीको नष्ट हुए कितने दिन हो गये, ये बातें कोईभी बता न सका। १८२३ ईस्वीमें गुलाबसिंहने यह गांव बसायाथा। अकबरनगर—१७२२ ईस्वीमें मुर्शिदकुलीखाँने बङ्गालको तेरह भागोंमें विभक्त किया। उनमेंही एक भागका नाम अकबरनगर है। इन तेरह भागोंमें दो भाग उड़ीसामें चले गये। उनका नाम है—बन्दर बालेश्वर पश्चिममें हैं। इनके नाम सप्तग्राम, वर्द्धमान, मुर्शिदाबाद, यशोहर और भूषणा हैं। छः भाग पद्माके उत्तर-पूर्वमें हैं, जिनका नाम अकबरनगर, घोड़ाघट, कड़ाइबाड़ी, जहाँगीरनगर, श्रीहट्ट (सिलहट) और चट्टग्राम (चटगांव) है। ये तेरह भाग १६६० परगनोंमें बांटे गये हैं। इन परगनोंसे १, ४२, ८८, १६६ रुपये राजस्व अदा होता है। यह भाग अकबरनगर सुन्दरबनके पास है।

दीनाजपुर ज़िलेमें अकबरनगर एक छोटा सा गांव है। यह पिपली नदीके तटपर अवस्थित है। इस गांवकी दूसरी ओर धनखाइल नामक गांव है। वर्त्तमान राजमहलको ही पहिले अकबरनगर कहा जाता था।

अकबरनामा—सम्राट् अकबरके समयका इतिहास। इसे शेख अबुलफज़लने लिखा था। अकबरनामाके तीन भाग हैं। पहिलेमें तैमूरका वंश-विवरण, बाबरका राजत्व, सूरवंशके राजाओं तथा हुमायूंका वृत्तान्त लिखा गया है। दूसरे भागमें अकबरके राज्यके पहिले

४६ वर्षोंका हाल लिखा है। तीसरा खंड, आईन-इ अकबरी है। अकबरके शासनकालके जो कुछ ज्ञातव्य विषय हैं, वह सभी इस खण्डमें पाये जाते हैं।

अकबरपुर—२४ परगनेके अन्तर्गत एक परगनेका नाम। मालदहमें अकबरपुर नामका एक परगना है। उसका स्थूल क्षेत्रफल १४ वर्ग मील है। इस परगनेमें पच्चीस जमीन्दार हैं, दो नदियां बहती हैं; एक ओर गङ्गा और दूसरी ओर कालिन्दी; इनके अतिरिक्त कङ्कर, गोबरा, गौरैया, धर्म्मदौला, कोसिका और काप नामकी कालिन्दीकी कई शाखायें भी इस परगनेमें हैं। वर्षामें यह नदियां खूब भर जाती हैं। इसमें प्रधान नगर हतायपुर है। सुलतानगञ्ज, हरिश्चन्द्रपुर, भिंगाल, भलुकराई, केदारगञ्ज, देवीपुर और कमलपुर गावोंमें प्रति सप्ताह बाज़ार लगती है।

अकबर-बन्दर—रंगपुर जलेके अन्तर्गत एक स्थानका नाम है। यह तिष्टा नदीके तटपर बसा है। यहां तम्बाकू और पाटका अच्छा व्यवसाय होता है।

अकबरशाही—वीरभूमि ज़िलेके अन्तर्गत शन्सल या सुरुलका प्राचीन नाम। सुरुल देखो।

अकबराबाद—मालदहके अन्तर्गत एक परगनेका नाम है। इसका विस्तारकोहि १४ वर्ग मील है। इस परगनेमें तीन ज़मीन्दार हैं। इस परगनेकी भूमि खूब उपजाऊ है। खेती बहुत अच्छी होती है; जलवायु भी स्वास्थ्यके लिये अच्छा है।

वर्त्तमान आगरा शहरका नाम भी अकबराबाद है। यह शहर पहिले यमुनाके उस पार था, परन्तु सम्राट् अकबरने यमुनाके पश्चिम तटपर यह नवीन नगर बसाया। प्राचीन आगराका चिन्ह अभीतक वर्त्तमान है। आगरा देखो।

अकबरी (स्त्री०) एक प्रकारक फलहारी मिठाई। यह तीखुर और उबाली हुई अरुईको घीके साथ फेंटकर टिकियाके रूपमें बनाई जाती है और फिर घीमें तलकर चाशनीमें पागी जाती है। लकड़ीपरकी एक प्रकारकी नक्काशी, जिसका व्यवहार पञ्जाबमें विशेषकर होता है। सहारनपुरके कारखानोंमें भी इसका अच्छा चलन है।

अकबरी अशरफी। अकबरके समयका एक सोनेका सिक्का, जिसका मूल्य पहिले १६) था, पर अब २५) हो गया है।

अकबा (सं० त्रि०) न कव्यते वर्ण्यते (वैदिक शब्द) जो वर्णन न किया जा सके।

अकबाल (पु०) (इक़बाल शब्द देखो।

अकर (सं० वि०) दुष्कर। न करने योग्य। कठिन। विकट। बिना हाथका। बिना कर या महसूलका।

अकरकरा (हिं० पु०) यह पौधा अफ्रिकाके उत्तर अलजीरियामें बहुत होता है। इसकी जड़ कामोद्दीपक और पुष्टि करनेवाली होती है। इससे मुंहमें थूक आता और दांतका दर्द भी अच्छा हो जाता है।

अकरखना (हिं क्रि०) [सं०आकर्षण] खींचना। तानना। चढ़ाना।

अकरण (सं० पु०) कर्मका अभाव। न किये हुएके समान कर्मका फल होना। सांख्य शास्त्रके मतसे सम्यक ज्ञान प्राप्त हो जानेपर फिर कर्म्म अकरण अर्थात् बिना किये हुएके समान हो जाते हैं और उनका फल कुछ भी नहीं होता। इन्द्रियोंसे रहित ईश्वर।

कर कुठार मैं अकरन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही।
तुलसी।

न करने योग्य। कठिन या असम्भव कार्य्य।

रीती भरै, भरी ढरकावै अकरन करन करै। सूर।

अकरणीय (सं० वि०) न करने योग्य।

अक़रब (अ० पु०) जिस घोड़ेके मुंहपर सफेद रोएं हों और उनके बीच-बीचमें दूसरे रंगके रोएं भी हों, वही अक़रब कहलाता है। एसा घोड़ा ऐबी समझा जाता है।

अकरा (हिं० वि०) न मोल लेने योग्य। महँगा। क़ीमती। उत्तम। "नाम प्रताप महा महिमा अकरे किये खोटेउ छोटेउ बाढ़े।"
तुलसी।

अकराथ (हिं० वि०) व्यर्थ। निष्फल। बेफायदा। "आपा राखि प्रबोधिये, ज्ञान सुने अकराथ।" कबीर।

अकराल (सं० वि०) सौम्य। सुन्दर। अच्छा। जो भयावना न हो।

अकरास (हिं० पु०) अगड़ाना। देहका टूटना। आलस्य। सुस्ती।

अकरी (हि॰ स्त्री॰) हलमें बीज गिरानेके लिये जो पोला बांस रहता है, उसके ऊपरका लकड़ीका चोंगा, जिसमें बीज डालते जाते हैं। सिन्धु, पञ्जाब और अफगानस्थानमें उत्पन्न होनेवाला एक प्रकारका असगंधका वृक्ष।

अकरुण (सं॰ वि॰) करुणा-शून्य। निर्दय। कठोर।

अकर्त्तव्य (सं॰ वि॰) न करने योग्य। अकरणीय। (सं॰ पु॰) अनुचित काम।

अकर्त्ता (सं॰ वि॰) कर्म्म न करनेवाला। सांख्य शास्त्रके अनुसार अकर्त्ता उस पुरुषको कहते हैं, जो कर्म्मोंसे निर्लिप्त रहता है।

अकर्त्तृक (सं॰ पु॰) बिना कर्त्ताका। जिसका कोई कर्त्ता न हो।

अकर्त्तृभाव (सं॰ पु॰) कर्म्मसे पार्थक्य। कुछ न करनेका भाव।

अकर्म (सं॰ पु॰) न करने योग्य कार्य। दुष्कर्म्म। बुरा काम। कर्मका अभाव।

अकर्मक (सं॰ पु॰) व्याकरणके अनुसार क्रियाके दो भेदोंमेंसे एक भेद। अकर्मक क्रियामें कर्मको आवश्यकता नहीं पड़ती। इसका कार्य कर्त्तातक हो समाप्त हो जाता है। जैसे—राम नहाता है। यहां "नहाता है" अकर्मक क्रिया है।

अकर्मण्य (सं॰ त्रि॰) न कर्म्मन् यत्। न कर्म्मणा सम्पद्यते। अशरीर (इति काशिका)। * कर्म्मवेषाद्यत् पा ५।३।१००। तृतीया समर्थनमें सम्पादन विषयमें कर्म्म और वेष शब्दके उत्तर यत् प्रत्यय होता है। वेष, कृत्रिम आकार; वेष्य, नट। *। तत्र साधुः। पा ४।४।९८। न कर्म्मणि साधु। कार्य्याक्षम। कर्म्मके अयोग्य। (हि॰ वि॰) बेकाम। निकम्मा। आलसी।

अकर्मा (हि॰ वि॰) काम न करनेवाला। बेकाम।

अकर्मान्वित (सं॰ त्रि॰) अकर्म्म-अन्वित। दुष्कर्मशील। अयोग्य।

अकर्मिणी (हि॰ स्त्री॰) पाप करनेवाली। पापिन।

अकर्मी (हि॰ पु॰, सं॰ अकर्म्मिन्) बुरा काम करनेवाला। पापी। दुष्कर्मी। स्त्री॰ अकर्म्मिणी।

अकर्षण (हि॰ पु॰) आकर्षण देखो।

अकलङ्क (सं॰ त्रि॰) १ निष्कलङ्क। दोषरहित। (पु॰) २ एक प्रसिद्ध जैनाचार्य्य।

अकलङ्कता (सं॰ स्त्री॰) निर्दोषता। सफाई।

अकलङ्कित (सं॰ वि॰) निष्कलङ्क। निर्दोष।

अकल (सं॰ त्रि॰) नास्ति कला अस्य। अंशशून्य। निष्फल। (हि॰ वि॰) अवयव-रहित। अखण्ड। ईश्वरका एक नाम। "व्यापक अकल अनीह अज निर्गुण नाम न रूप।" तुलसी॰। निर्गुणी। विकल। बेचैन।

अकल्क, अकल्कन (सं॰ त्रि॰) नास्ति कल्कनम् दम्भो-यस्य बहुव्रीहि। शठता-शून्य। दम्भ-रहित। *। कृदाधारार्चिकलिभ्य कः। उण् ३।४० कल्कः पापाशये पापे दम्भे विट् किट्टयोरपि। कलि-क कल्क।

अकल्का (सं॰ स्त्री॰) नास्ति कल्को मानिन्यम् यस्याः। ज्योत्स्ना। मलशून्या नद्यादि।

अकलखुरा (हि॰ वि॰) अकेला खानेवाला। स्वार्थी, लालची। डाही।

अकलबर (हि॰ पु॰) अकलवीर देखो।

अकलवीर (हि॰ पु॰) भांगकी तरहका एक पौधा जो हिमालयपर कश्मीरसे नैपालतक उत्पन्न होता है। इसकी जड़ रेशमपर पीला रंग चढ़ानेके काम आती है।

अकल्पित (सं॰ त्रि॰) न कल्पितम्। जो काल्पनिक न हो। अकृत्रिम। अरचित। (स्त्री॰) अकल्पिता।

अकल्मष (सं॰ वि॰) पाप-रहित। निर्दोष। निर्विकार।

अकल्य (सं॰ त्रि॰) न कला-यत्। न कलासु आरोग्येषु साधुः। नञ्तत्। रोगी।

अकल्याण (सं॰ क्ली॰, हि॰ पु॰) अमङ्गल। अशुभ। अहित।

अकष्टवद्ध (सं॰ त्रि॰) नास्ति कष्टं कृच्छ्रमतिदुःसहं यस्मात् तेन वद्धं आक्रान्तं। अत्यन्त कष्टयुक्त।

अकस (अ॰ पु॰) १ वैर, शत्रुता। २ द्वेष। ३ विरोध। ४ अदावत। ५ लाग। ६ बुरी उत्तेजना।

अकसना (हि॰ क्रि॰) वैर करना, शत्रुता करना।

अकसर (अ॰ वि॰) १ अधिकतर। २ बहुधा। ३ विशेषकरके।
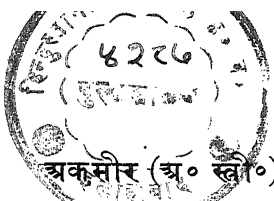
अक़सीर (अ० स्त्री०) १ रसायन, कीमिया। वह रस वा भस्म, जो धातुको सोना वा चाँदी बना दे। २ जो औषधि प्रत्येक रोगको नष्ट करे।

अकस्मात् (सं० क्रि० वि०) न कस्मात्, अलुक्। १ हठात्, अकारण। २ अचानक। ३ अनायास। ४ बैठे बिठाए। ५ औचक। ६ अतर्कित।

अकह (हि० वि०) १ अकथ, न कहने योग्य। २ बुरी, मुँहपर न लाने योग्य। ३ अनुचित।

अकहुवा (हि० वि०) जो कहा न जा सके, अकथ्य।

अका—आका देखो।

अकाखेल—अफरीदी देखो।

अकांड (सं० अकाण्ड) अकाण्ड देखो।

अकाउंट—(Account) हिसाब। हिसाब-किताब।

अकाउंटेंट—(Accountant) हिसाब लिखनेवाला।

अकाज (हि० पु०) १ बुरा काम, दुष्कर्म्म। २ कार्य्यकी हानि, नुक़सान। ३ हर्ज। ४ बिगाड़। ५ विघ्न।

अकाजना (हि० क्रि०) १ अकाज करना, हानि करना। २ हानि होना, खो जाना।

अकाजी (हि० वि०) अकाज करनेवाला। हर्ज करनेवाला। बाधक।

अकाटमूर्ख, ग्राम्य भाषामें, जिसकी बुद्धिमें काट अर्थात् धार या तीक्ष्णता नहीं रहती, उसको कहते हैं। निर्ब्बोध।

अकाट्य (हि० वि०) न काटने योग्य। जो न काटा जा सके। अकाट्य प्रमाण—अर्थात् जिस प्रमाणके विरुद्ध कोई तर्क न हो। जिस प्रमाणका काटना दुष्कर हो।

अकाण्ड (सं० त्रि०) न काण्ड अवयव नञ् तत्। अकाल। अनवसर। नास्ति काण्डः शरो यस्य। बहुव्री०। शर-शून्य। नास्ति काण्डः स्कन्धो यस्य। जिसके कांधा न हो, स्कन्ध-शून्य। बिना डाली वा शाखाका। (क्रि० वि०) २ अकस्मात्। ३ सहसा।

अकाण्डजात (सं० वि०) होतेही मर जानेवाला। जन्मते ही मर जानेवाला।

अकाण्डताण्डव (सं० पु०) व्यर्थकी उछल-कूद। व्यर्थका बकवाद।

अकाण्डपात (हि० वि०) होतेही मर जानेवाला।

अकाथ (हि० क्रि० वि०) अकारथ। व्यर्थ। वृथा।

अकादर (हि० वि०) जो कायर न हो शूर। साहसी।

अकापट्य (हि० पु०) निश्छलता, ईमानदारी।

अकापर्व्वत आकापर्व्वत देखो।

अकाम (सं० त्रि०, हि० वि०) न काम-णिङ्-अच्, न कामयते। इच्छाशून्य। कामनारहित। निस्पृह।

अकामतस् (अव्य) न काम-तसिल्। अनिच्छा-हेतु। पञ्चम्यास्तसिल्। पा ५।३।७ पञ्चमी समर्थनके अर्थमें शब्दके उत्तर तसिल् प्रत्यय होता है।

अकामनिर्जरा (सं० स्त्री०) जैन सिद्धान्तके अनुसार तपस्यासे जो निर्जरा अर्थात् कर्म्मका नाश होता है, उसके दो भेदोंमेंसे एक भेदका नाम। यह निर्जरा सब प्राणियोंको होती है, क्योंकि उन्हें बहुतसे क्लेशोंको विवश होकर सहना पड़ता है।

अकामा (सं० स्त्री०) जिसमें कामका प्रादुर्भाव न हुआ हो। यौवनावस्थासे पूर्व। कामचेष्टा-रहित स्त्री।

अकामी (सं० वि०) कामना-रहित। निस्पृह। जितेन्द्रिय।

अकाय (सं० पु०) नास्ति कायः शरीरम् यस्य। बहुव्री०। १ राहु। (त्रि०) २ देहशून्य। *। निवासचितिशरीरोपसमाधानेष्वादेश्च कः। पा ३।३।४१। निवास, चिति (अग्निका स्थान) शरीर एवं उपसमाधान (समूह) मालूम होनेपर चि धातुके उत्तर घञ् प्रत्यय और च-के स्थानमें ककारका आदेश होता है। *। काय, चिञ्-घञ्। चीयतेऽस्मिन्नस्थ्यादिकमिति। (सि० कौ०) राहुका द्विखण्डित शरीर। इन दोनों खण्डोंमें एक अंश जो मस्तक है, वही राहु है; इसलिये राहुके शरीर नहीं है। दूसरा खण्ड, कण्ठसे नीचेका सब अवयव केतु है; केतुके मस्तक नहीं है। इसीसे केतुका नाम अकच पड़ा है।

अकार (सं० पु०)।*। वर्णात् कारः (कात्यायन) एक-एक वर्णका उल्लेख करनेके लिये उसके उत्तर कार प्रत्ययका प्रयोग करना पड़ता है। जैसे; ककार, वकार इत्यादि। किन्तु र वर्णका उल्लेख करते समय (इफ्) प्रत्यय लगाना पड़ता है। *। रादिफः। यथा रेफ। नकारः (कृ-भावे घञ्) नास्ति क्रिया यस्य। बहुव्री०। कर्म्महीन।

अकारक-मिलाव (हिं० पु०) एक प्रकारकी रासायनिक मिलावट, जिसमें मिली हुई वस्तुओंके पृथक् गुण ठीक-ठीक बने रहते हैं और वे इच्छानुसार अलग-अलग भी की जा सकती हैं।

अकारज (हिं० पु०) कार्य्यकी हानि। हानि।

अकारण (सं० त्रि०) निष्प्रयोजन। नास्ति कारणम् हेतुरुद्देश्यम् वा यस्य। बहुव्री०। कारणशून्य।

अकारणगुणोत्पन्नगुण (सं० पु०) अकारणात् हेत्व-भावाद्गुणात् उत्पन्नो जातो गुणो धर्म्मः। न्यायमतसे, विभुनिष्ठ विशेष गुण-समूह। जैसे बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, धर्म्म, अधर्म्म, भावना, शब्द।

अकारथ (हिं० वि० सं० अकार्य्यार्थ, प्रा० अकारियत्थ) निष्प्रयोजन। वृथा। लाभरहित।

अकारन (हिं० वि०) अकारण देखो।

अकारिन् (सं० त्रि०) न-कृ-णिन्। कर्तृभिन्न। कार्य्य-हीन।

अकार्पण्य (सं० त्रि०) नास्ति कार्पण्यम् यस्य। बहुव्री०। कृपणता-शून्य।

अकार्य्य (सं० क्ली०) (हिं० पु०) न-कृ-ण्यत्। नञ् तत्। *। ऋहलोर्ण्यत्। पा ३।१।१२४ अकारान्त एवं हलन्त धातुके उत्तर ण्यत् प्रत्यय होता है। अप्रशस्त कार्य्य। दुष्कर्म्म। नास्ति कार्यम् यस्य बहुव्री०। कार्यहीन। (त्रि०) अकाज। हर्ज, बुरा काम।

अकाल (सं० पु०) (अ—नहीं वा बुरा, काल—समय) बुरा समय। अप्राप्तः कालः, शाकपार्थिवादि तत्। असमय। अनवसर। कुसमय। दुर्भिक्ष। मँहगी। ज्योतिषके मतसे उपनयन विवाहादि शुभकर्म्मके अयोग्य समय। अकाल बहुत तरहके हैं। उनका स्थूल विवरण यहां लिखा जाता है। वृहस्पति अस्त होनेसे पहले वृद्धत्वमें १५ दिन कालाशुद्धि और उसके बाद ३२ दिन। वृहस्पति उदय होनेके बाद बालत्वके १५ दिन। वृहस्पति और सूर्य्यके योगके १० दिन। सिंहराशिमें वृहस्पति रहनेपर पूरा एक वर्ष। इसमें एक विशेषत्व यह है कि, यदि माघ महीनेकी पूर्णिमाको मघा नक्षत्रका योग हो, तो इस प्रकारकी काल-अशुद्धि होगी, नहीं तो न होगी। यदि वृहस्पतिका एक राशिमें स्थिति-काल समाप्त न हुआ हो और वे पूर्व्व राशिमें गमन करें, तो इस वक्रातिचारके कारण २८ दिन अशुद्ध माने जायेंगे। वृहस्पति यदि पूर्व्व राशिमें एक वर्ष भोग न करके अन्य राशिमें चले जायँ और फिर पूर्व्व राशिमें न आवें, तो इस महातिचारको लुप्त-सम्वत्सर कहते हैं। लुप्त संवत्सरका एक वर्ष अशुद्ध रहता है। वृहस्पतिका एक राशिमें भोगकाल पूर्ण न होनेपर भी यदि वह एक राशिसे दूसरी राशिमें चले जायं और फिर उसी पूर्व्व राशिमें लौट आवें, तो इस अतिचारके कारण ४५ दिन अशुद्ध माने जायंगे। वृहस्पति यदि राहुग्रस्त हो जायँ, तो एक वर्ष अकाल माना जायगा।

शुक्रके महास्तके पूर्व्व वृद्धत्वके १५ दिन और महास्तके बादके ७२ दिन अकालके दिवस हैं। शुक्रके उदयमें १० दिन और अस्तमें १२ दिन अकालके माने गये हैं। भानुलङ्घित मासके, क्षय मासके और मलमासके पूरे ३० दिन और पूरा महीना ही अशुद्ध माना गया है। भूकम्प आदि अद्भुत घटनामें एक सप्ताह अशुद्ध है। पौषादि चतुर्मासके बीच जो एक दिन चरणाङ्कित वर्षणका है, वह दिन अशुद्ध है। दो दिनोंतक एक प्रकारसे ही वृष्टि होनेपर तीन दिन और तीन दिनोंतक एक तरहसे वृष्टि होनेपर अन्तिम दिवससे एक सप्ताहतकके दिवस अशुद्ध माने गये हैं। साथमें पहिलेके दो दिन भी जोड़ लिये जाते हैं। इस तरह ९ दिन अशुद्ध हुए। हरिशयनके चार महीने अशुद्ध होते हैं। चन्द्र-सूर्य्य-ग्रहणमें कर्म्म विशेषसे कहीं एक दिन, कहीं तीन दिन और स्थूल-भावसे एक सप्ताहके दिवस अशुद्ध माने गये हैं।

अकाल-कुसुम (सं० पु०) बिना समय अर्थात् बे-ऋतुका फूला हुआ फूल। ऐसा फूल दुर्भिक्ष अथवा अन्य किसी उपद्रवकी सूचना देनेवाला समझा जाता है।

अकालकुष्माण्ड (सं०पु०) गान्धारीने कोहड़ेके आकार-का एक मांसपिण्ड अकालमें प्रसव किया था। उसीसे दुर्योधन आदिका जन्म हुआ। उसीकी सन्तान कुरु-

कुलके नाशका कारण हुई। इसीसे आजकल समाज अथवा अपने परिवारको हानि पहुंचानेवालेको अकालकुष्माण्ड कहते हैं।

अकालकुसुम (सं० पु०) असमयका फूल।

अकालज (सं० त्रि०) अकाल-जन-ड। अकाले जायते। अकालजात। असमयोत्पन्न। अपूर्णकालोद्भव। जो असमयमें जन्म ले। *। सप्तम्यां जनेर्डः। पा ३।२।९७। सप्तम्यन्त उपपदके बाद जन धातुके उत्तर ड प्रत्यय होता है।

अकालजलदोदय (सं० पु०) अकाले जलदानां मेघानां उदयः, ६-तत्। कुहरा। बिना समयका मेघाडम्बर। बिना वर्षाके आकाशमें बादल दिखाई देना।

"बालातपमिवाब्जानामकालजलदोदयः।" (रघु० ४।६१।)

'प्रावृट्व्यतिरिक्तकाले जलदोदयः।' (मल्लिनाथ)

अकालभृत (सं० पु०) स्मृतिशास्त्रके अनुसार पन्द्रह प्रकारके नौकरोंमेंसे एक। वह मनुष्य जो दास बनानेके लिये दुर्भिक्षमें बचाया गया हो। अकालमें मिला हुआ दास।

अकालमूर्त्ति (सं० स्त्री०) नित्य वा अविनाशी पुरुष। जिसकी स्थापना काल या समयमें न हो सके।

अकालमृत्यु (सं० स्त्री०) बेसमयकी मृत्यु। असामयिक मृत्यु। अनायास मृत्यु। थोड़ी अवस्थामें मरना। पहाड़, मकान आदिसे गिरकर मरना। जलमें डूबकर मरना।

शास्त्रमें लिखा है—'शतायुर्वै पुरुषः' श्रुतिः। पुरुष सौ वर्ष जिया करता है, इसलिये मनुष्यका आयुष्काल सौ वर्ष बता शास्त्रकारोंने अवधारित किया है। इस सौ वर्षके परिमित समयमें जिसकी मृत्यु होती है, उसीकी मृत्यु स्वाभाविक मृत्यु है। इस समयसे पहले जो मृत्यु होती है, वह अकालमृत्यु कहाती है। प्रकृत प्रस्ताव देखनेसे इस युगमें सभीकी अकालमृत्यु हुआ करती है। कालमृत्यु या स्वाभाविक मृत्यु बहुत कम देखनेमें आती है।

वर्त्तमान समयमें पचास-साठ वर्षमें मृत्यु होनेसे अकालमृत्यु नहीं कही जाती, पचास वर्षसे पहले ही मृत्यु होनेसे अकालमृत्यु कहते हैं। धर्म्म और आयुर्वेद शास्त्रमें अकालमृत्युकी बात बहुत अच्छी तरह कही गई है,—

"एवं यथोक्तं विप्राणां स्वधर्म्ममनुतिष्ठताम्।
कथं मृत्युः प्रभवति वेदशास्त्रविदां प्रभो॥
स तानुवाच धर्म्मात्मा महर्षीन् मानवो भृगुः।
श्रूयतां येन दोषेण मृत्युर्विप्रान् जिघांसति॥
अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्ज्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्रान् जिघांसति॥" (मनु० ५।२-४)

महर्षियोंने मनुके पुत्र भृगुसे पूछा था, महात्मन्! स्वधर्म्मपरायण वेदज्ञ ब्राह्मणोंपर किस कारण मृत्यु अपना प्रभाव फैलाती है? वह किस कारण वेदविहित परमायु पानेसे पहले बिना समयके मृत्युके मुंहमें जा गिरते हैं? मनुपुत्र भृगुने इस प्रश्नके उत्तरमें महर्षियोंसे कहा, जिस दोषसे ब्राह्मणोंकी अकालमृत्यु हुआ करती है, वह मैं तुमसे कहता हूं। जो ब्राह्मण वेदाभ्यास नहीं करते, जो सदाचार परित्याग कर असदाचारी बन जाते, जो कर्त्तव्य कार्य्यमें आलस्यपरायण रहते और दूषित अन्न खाते हैं, उन्हींकी अकालमृत्यु होती है।

मनुके इस वचनमें ब्राह्मण उपलक्षण-मात्र हैं, इसमें ब्राह्मणादि सभीकी अकालमृत्युवाली बात कही गई है। ब्राह्मणादि कोई भी क्यों न हो, यदि वह अपना धर्म्म छोड़ता, शास्त्रोक्त सदाचार पालन न कर असदाचारी होता और दूषित अन्न खाता है, तो उसकी अकालमृत्यु हो जाती है। नीचे लिखे हुए वचनसे यह विषय और भी स्पष्ट हो गया है,—

"विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्।
अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति।" (स्मृति)

इस श्लोकमें अकालमृत्युके तीन कारण निर्द्दिष्ट हुए हैं। विहितका अननुष्ठान, निन्दितका सेवन, और इन्द्रियोंका अनिग्रह इन्हीं तीन कारणोंसे मनुष्य बिना-समय मृत्युका ग्रास बन जाता है। शास्त्रमें जो कर्म्म विहित बताया गया है, उसमें किसी प्रकारकी शङ्का न कर उसका अनुष्ठान करना चाहिये। शास्त्रमें दृष्टार्थक, अदृष्टार्थक और दृष्टादृष्टार्थक यह तीनों दोष निन्दित बता निषिद्ध किये गये हैं। जो विधि

आयुर्व्वेद शास्त्रमें निषिद्ध कही गई है यानी जिसका दोष केवलमात्र आयुर्व्वेदमें देख पड़ता है, उसे दृष्टार्थक, जो धर्म्मशास्त्रमें निषिद्ध हुई है और जिसका आयुर्व्वेदमें कोई उल्लेख नहीं, उसे अदृष्टार्थक, और धर्म्मशास्त्र और आयुर्व्वेद इन दोनों शास्त्रोंमें जो निषिद्ध मानी गई है, उसे दृष्टादृष्टार्थक कहते हैं। यह तीनो निषेध परिवर्ज्जन करना चाहिये। इसतरह आचरण रखना भला नहीं, कि यह काम हम करेंगे और यह न करेंगे। इन्द्रियके अनिग्रहके विषयमें यह बात है, कि शास्त्रमें जैसा इन्द्रिय सेवनका विधान है, वैसा इन्द्रियसेवी होने और आलस्य और दूसरे दोषके न रहनेसे मनुष्यकी अकालमृत्यु नहीं होती। जो लोग इन बातोंको न मान काम करते हैं, उन्हींकी अकालमृत्यु होती है। याज्ञवल्क्यजीने भी लिखा है,—

"वर्त्त्याधारस्नेहयोगात् यथा दीपस्य संस्थितिः।
विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंशयः॥
यथाशास्त्रञ्च निर्णीतो यथाविधि चिकित्सितः।
न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयो कर्म्मजो बुधैः॥"

कोई-कोई कहते हैं, कि आयु रहते मनुष्य कभी नहीं मरता; किन्तु यह बात नितान्त भ्रममूलक है। कारण प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, कि तेल, दीवट और बत्ती ठीक रहनेसे दीपक जलता है, एकाएक यदि ऐसे ही कालमें प्रबल वायु आ पहुंचे, तो तेल आदि रहते भी जैसे दीपक बुझ जाता है, वैसेही आयु रहते भी अशुभकर्म्मके कारण वह क्षय हो जाती और जीव अकालमें ही प्राण विसर्ज्जन करता है। मनुष्योंमें रोग होनेका कारण अशुभकर्म्म है। शास्त्रमें लिखा है, कि मनुष्य जिन पाप कर्म्मोंका अनुष्ठान करता है, वही पाप जीवके नरक भोग लेनेपर उसे व्याधि-रूपसे पीड़ा दिया करते हैं। पाप ही व्याधिका रूप धारणकर जीव-को कष्ट पहुंचाते और अन्तमें बिना समय उसे मृत्यु के मुंहमें झोंक देते हैं। रोग उत्पन्न होनेपर यथा विधान उसकी चिकित्सा करना पड़ती है। जो व्याधि यथा-विधान चिकित्सा करनेपर भी नहीं छूटती, उसे क-र्म्मज व्याधि कहते हैं। यह व्याधि बिना भोग किये पिण्ड नहीं छोड़ती। इसीसे शास्त्रने महापातकज, अतिपातकज प्रभृति व्याधियोंका नाम निर्द्देश कर कहा है, कि यह व्याधियां होनेसे ही यथाविधान पापक्षयके लिये प्रायश्चित्त करनेका अनुष्ठान करे। प्रायश्चित्त द्वारा पापक्षय होनेपर व्याधि भी आरोग्य हो सकती है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि मनुष्यकी आयु एक सौ एक वर्षकी होती है। इसके बीच सौ तरहकी अकाल-मृत्यु है। यह अकालमृत्यु, आगन्तु मृत्युके नामसे अभिहित है। इसे छोड़कर कालमृत्यु होती है। जीवके हाथमें इस कालमृत्युसे बचनेका कोई उपाय नहीं। मनुष्यकी कौन चलाये; यह काल-मृत्यु ब्रह्मादि देवताओंकी भी आयु पूरी होनेपर सं-हार किया करती है। इसलिये प्राणसंहारके वास्ते कालमृत्यु अवश्यम्भावी है।

अचानक कारणोंसे भी अकालमृत्यु हुआ करती है, जिनमें विषभक्षण, अजीर्ण रहते अत्यन्त भोजन, खराब जगहका जलपान, अतिशय बलवान् शत्रु, व्याघ्र, जंगली भैंसा, और मतवारे हाथी प्रभृतिसे युद्ध, सांपके साथ खेल, बहुत ऊंचे वृक्षका आरोहण, दोनो हाथोंसे महानदीका संतरण, अकेले रातको दुर्गम पथमें गमन आदि प्रधान हैं। आकस्मिक मृत्युसे जीव अकालमें ही कालके गालमें जाता है। जैसे, तेल-बत्ती रहते भी जलता दीपक प्रबल वायु-वेगसे बुझ जाता है, वैसे ही आकस्मिक कारणसे उत्-पन्न हुई मृत्यु दुर्निमित्त उपसर्गके प्राबल्यका हेतु परमायु रहते भी प्राणियोंके प्राण नष्ट करती है।

सुश्रुतमें लिखा है,—रसक्रिया-विशारद वैद्य और मन्त्रणा-विशारद पुरोहित यह दोनो यथोक्त रूपसे आगन्तु दोषका निराकरण कर अकालमृत्यु रोक सकते हैं। वैद्यशास्त्र-विशारद वैद्य दिनचर्य्या, रात्रि-चर्य्या और ऋतुचर्य्यादिमें जैसा आहार, विहारादिका नियम लिखा है, उसीके अनुसार वह वायु, पित्त और कफ, धातु और मलका समता-विधान कर जीवको शरीरकी रक्षा और दूसरे अनियमित आहार विहा-रादि द्वारा दुष्ट वायु, पित्त और कफसे उत्पन्न हुए

और मृत्युके हेतुभूत जो रोग उत्पन्न होते हैं, रसज्ञता-प्रयुक्त मृत्युञ्जय-रसादि द्वारा वह सब रोग विनष्ट करनेमें समर्थ हुआ करते हैं। मन्त्रणा-विशारद पुरोहित, सुमन्त्रणा प्रदानपूर्व्वक मृत्युके हेतुभूत विकारादि यानी बलवत् विग्रहादिसे निवृत्त कर अपने यजमानोंकी अकालमृत्यु निवारण किया करते हैं। इस बातसे यह बताया गया है, कि जीवकी आकस्मिक मृत्यु कालमृत्युकी तरह अवश्यम्भावी नहीं होती। चेष्टा करने पर अनायास ही अकालमृत्यु रोकी जा सकती है। पातञ्जलादि योगशास्त्रमें भी देखनेमें आता है, कि जो लोग जितेन्द्रिय हो योगसाधन करते, वह जितने दिन चाहते, उतने दिन जी सकते हैं। उनकी मृत्यु रोगसे नहीं होती। वह इच्छा करनेसे योग द्वारा ही शरीर छोड़ सकते हैं।

अकालमेघोदय (सं० पु०) अकाले असमये मेघानामुदयः प्रकाशः, ६-तत्। कुहरा। बिना समयके मेघोंका दिखाई देना।

अकालिक (सं० त्रि०) असामयिक, बिना समयका, बेअवसरका।

अकाली—पञ्जाबादि अञ्चलके महाबली सिखोंका सम्प्रदाय विशेष। यह लोग ईश्वराराधनके समय अकाल-पुरुषको पुकारते हैं, इसीसे सम्प्रदायका नाम भी अकाली पड़ गया है। गुरु नानकदेवने अपने जपजीमें लिखा है, 'अकालमूर्त्ति योनिसे भङ्ग'। यही मूल कारण है कि, सिख लोग अकाल-पुरुषका जप विशेष करते हैं। भूमण्डलमें इस प्रकारकी दुःसाहसी पराक्रमी जाति दूसरी बहुत कम होगी। गुरु तेगबहादुरके पुत्र और उत्तराधिकारी गुरु गोविन्द और महाराज रणजित्सिंहके समय इन्हीं अकालियोंके प्रतापसे पञ्चनद (पञ्जाब) प्रदेश कांप उठा था। इन लोगोंमें मृत्युका भय था ही नहीं, विपद्‌को यह लोग विपद् समझते ही न थे। क्योंकि गुरु नानकदेव सच्चे और पक्के वेदान्ती थे, उनका विश्वास था कि, आत्मा अमर है, मृत्यु मिथ्या और कल्पित शब्द है और सुख-दुःख केवलमात्र मनोकल्पित भावना हैं। इसी शिक्षाकी दृढ़ता देखकर गुरुगोविन्दने उनका आश्रय लिया। यद्यपि शिक्षाका मर्म्म अकालियोंमें प्रस्तुत था, परन्तु पूर्ण रूपसे इस सम्प्रदायको व्यक्त करनेवाले गुरु गोविन्द ही हुए। यह लोग नितान्त मूर्ख और धर्म्मान्ध थे, सदा लूट-मार करते फिरना इनका प्रधान काम था। अकाली शिरसे पैरतक हथियारोंसे सजे रहते थे। दो तोड़ादार बन्दूक कन्धोंमें और दो दुधारे खांड़े कमरमें लटकाते थे, सिरपर मोटी पगड़ी होती थी; पगड़ीके भीतर फांस (पाश) और लोहचक्र रहता था; छातीपर कवच, कमरमें पिस्तौल, किरिच, चक्र और फिंगिकल; कमरकी बाईं ओर बर्छा; पीठपर ढाल; पदतलसे घुटनों तलक लोहेके पांबठे धारण करते थे। कानोंमें कुण्डल, बाहोंमें लोहेके बाजूबन्द पहने सदाही चित्रविचित्र नील वस्त्रोंसे सुसज्जित रहते थे। इन लोगोंका प्रधान देवालय अमृतसरमें है। इसके अतिरिक्त विशेषतः पञ्जाब और साधारणतः समस्त भारतमें इनकी कितनी ही सङ्गतें (मन्दिर) हैं। इनके मन्दिरोंमें कोई प्रतिमूर्त्ति नहीं होती, केवल धर्म्म-ग्रन्थकी ही पूजा और पाठ इनकी प्रधान उपासना है। यह लोग पक्केकेश रखते और उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। सब समय शरीरपर लोहा होना धर्म्मानुसार बहुत आवश्यक है। हाथोंमें लोहेके कड़े और शिरपर चक्र रखना अनिवार्य्य है। संसारके सब पदार्थोंमें तमाखूसे इनको बड़ी घृणा है। तमाखू पीनेसे अकाली पतित हो जाता है, क्योंकि यही इनके धर्म्ममें अत्यन्त अपवित्र मानी गई है। मद्य और अफीमको यह लोग अपवित्र नहीं समझते और सुखसे सेवन किया करते हैं।

महाराज रणजित्सिंह भी अकालियोंसे डरकर चलते थे। दो-तीन बार उनको अकालियोंके हाथों विपद्‌ग्रस्त भी होना पड़ा था। किन्तु महाराज रणजित्सिंहका इतना पराक्रम केवल अकालियोंके ही बल था। इसी सम्प्रदायकी सहायतासे एकबार अंगरेजोंने भी काबुल-युद्धमें जय प्राप्त की थी। जब सिखोंके साथ अंगरेजोंका युद्ध हुआ, तब सोब्राओन, महाराजपुर, चिलियानवाला प्रभृति स्थानोंमें अकालियोंने असीम वीरता दिखलाई थी।

अकालीम (अर० पु०) इक़लीम शब्दका बहुवचन है। देशसमूह। मुसलमान भूगोलवेत्ताओंके मतसे पृथ्वीका केवल चतुर्थांश मनुष्यके वासोपयोगी है। इसी चतुर्थांशको 'रू-इ-मस्कन' कहते हैं। इसी चतुर्थांश भूमिको यह लोग 'हफ्त इक़लीम' अर्थात् सात देशों या राज्योंमें विभक्त करते हैं।

"दह दरवेश दर गलीमें बुखस्पन्द।
व दो बादशाह दर इक़लीमें न गुजन्द॥" (शादी)

अर्थात् दस साधु एक कमलीमें सो रहते हैं, किन्तु दो राजा एक राज्यमें नहीं समा सकते।

"हफ्त इक़लीम गर बेगीरद बादशाह।
हम चुमीं दर फ़िक्र इक़लीमे दीगर॥" (शादी)

अर्थात् जो राजा सातो बादशाही ले चुके, तो भी वह उसीतरह और बादशाही लेनेकी चिन्तामें लगा रहता है।

अकाव (हि० पु०) अर्क, आक, मदार।

अकास (सं० आकाश) आकाश देखो।

अकासक्कत (हि० पु०) आकाशकृत। बिजली।

अकासदिया (हि० पु०) आकाशदीपक, वह दीपक या लालटेन जो बांसके सहारे आकाशमें लटकाई जाती है।

अकासनीम (हि० स्त्री०) आकाशनिम्ब, एक पेड़ जिसकी पत्तियां बहुत सुन्दर होती हैं।

अकासबानी (हि० स्त्री०) आकाशवाणी।

अकासबेल (हि० स्त्री०) अमरबेल, अंबरबेलि आकास-बौर। जैसे, यह बेल माँढ़े न चढ़ेगी।

अकिञ्चन (सं० त्रि०) नास्ति किञ्चनं किञ्चिदपि यस्य। मयूरव्यंसकादि तत्पु। दरिद्र। निर्धन। जिसके कुछ भी न हो।*। मयूरव्यंसकादयश्च। पा०२।१।१२। मयूरव्यंसकादि कतिपय शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। यह सब तत्पुरुष समास हैं। व्यंसक शब्दका धूर्त्त अर्थ है। मोरकी भांति धूर्त्त, सो मयूरव्यंसक। अन्य शब्दोंके साथ इन सब शब्दोंका फिर समास नहीं होता। यथा,—परममयूरव्यंसक—इस प्रकार पुनर्व्वार समास करना निषेध है। (परममयूरव्यंसक इति समासान्तरं न भवतीति जयादित्यः।)

(पु०) संग्रहत्यागी, परिग्रहत्यागी, कर्म्मशून्य, जिसे भोगनेके लिये कुछ कर्म्म न रह गए हों। जैन-मतानुसार ममताकी निवृत्ति, दस प्रकारके साधु धर्म्मोंमें से एक।

अकिञ्चनता (सं० स्त्री०) अकिञ्चन-तल्। अकिञ्चनस्य भावः। दारिद्र्य। योगाभ्यासमें संयतयोगीकी अर्थ-स्पृहाशून्यता।

अकिञ्चित्‌ज्ञ (सं० त्रि०) न किञ्चित्-ज्ञा क। न किञ्चित् जानातीति। अज्ञ। ज्ञानशून्य।

अकिञ्चित्कर (सं० त्रि०) किञ्चित्-कृ अच्। निष्प्रयोजन। अकर्म्मण्य। अकिञ्चिनकर सामग्री—सामान्य द्रव्य।

अकिल (हि० स्त्री०) अरबी 'अक़्ल'का अपभ्रंश।

अकिलबहार (हि० पु०) अरबी "अक़ीक़ुल बहर" वैजयन्तीका पौधा या दाना।

अकिल्विष (सं० त्रि०) न किल्विष। किल्विषशून्य। पापशून्य।

अक़ीक़ (अ० पु०) एक प्रकारका चमकदार पत्थर। यह कई रङ्गका होता है। भारतमें कई प्रकारके पत्थर अक़ीक़ नामसे विख्यात हैं। इनके अङ्गरेजी नाम कारनेलियन (Carnelian), अगेट (Agate), ओनिक्स (Onyx) इत्यादि। पालिस करनेसे यह पत्थर देखनेमें बड़े सुन्दर हो जाते हैं। जलपूर्ण मेघके समान श्यामल पाण्डुर वर्ण; कुछ सफेदी लिये और इस सफेदीके सङ्ग थोड़ी-थोड़ी नीलरंगकी आभा मिली होती है। इन सब रङ्गोंके साथ कई प्रकारके बेल, बूटे, पत्ती, फूल, कढ़े होते हैं। इतनी बातोंके होते भी यह पत्थर बहुमूल्य नहीं होता। इसकी छोटी-छोटी कटोरियां, डब्बियां, बोताम, कागज काटनेकी छुरियां, छुरीके दस्ते प्रभृति अनेक चीजें बनती हैं। बङ्गाल प्रान्तके राजमहल, छोटानागपुर और अन्यान्य पहाड़ी स्थानोंमें यह पाया जाता है। पश्चिमोत्तर-प्रान्तके बांदा जिलेमें, मध्य-देशके जबलपुरमें, बम्बई प्रान्तके रेवाकान्त, रतनपुर, राजपीपला और खम्भातमें यह बहुत होता है। भारतवर्षके और भी दूसरे स्थानोंमें यथेष्टरूपसे मिलता है।

बहुत प्राचीन कालमें भारतवासी अक़ीक़ पत्थरकी नाना प्रकारकी चीजें बनाकर बाहर भेजा करते थे। उस समय यूनान और रोमवाले बम्बई आकर इसी

पत्थरकी बनी हुई अनेक चीज़ें क्रय करके ले जाते थे। हिन्दू लोग इस पत्थरकी ऐसी-ऐसी उत्कृष्ट चीजें बनाते थे, कि केवल उनके कौशलके कारण एक-एक चीज़ लाख-लाख रुपयेमें बिकती थी। रोमके प्रसिद्ध राजा नेरोने इसी पत्थरकी बनी हुई एक सामान्य कटोरी ६६१५००) रुपयेकी क्रय की थी। आजकल भी अकीककी बहुतसी चीजें प्रति वर्ष चीन, अरब, काबुल और युरोप, भेजी जाती हैं। एक दर्जन बोतामका मोल ६) रुपया, एक कागज़ काटनेकी छुरीका दाम १॥) रुपया होता है।

अकीर्त्ति (सं० स्त्री०) न-कॄ-क्तिन्। अयश, अपयश, बदनामी। कृत चुरादिगणीय, संशब्दने। इस धातुकी उपधामें दीर्घ ॠकार होगा, ह्रस्व नहीं। १७५० शकमें कलकत्ताकी एडुकेशन-कमिटी-कर्तृक जो भट्टिकाव्य छपा था, उसमें जयमङ्गल और भरत-मल्लिककी टीकामें भी ह्रस्वोपध कृत धातु देखी जाती है। जैसे—

अपप्रथद् गुणान् भ्रातुरचिकीर्त्तच्च विक्रमम्। (भट्टि १५।७२) कृत संशब्दे (इति भं सं और जं सं टीका)

किन्तु पाणिनि, भट्टोजिदीक्षित, वामनजयादित्य, क्रमदीश्वर, दुर्गसिंह और दुर्गादास प्रभृति सुधीगणने कॄत धातु दीर्घोपध ही ग्रहण की है। श्रीयुक्त राधा-नाथशीलके प्रकाशित मुग्धबोधमें दीर्घ ॠकार है। सि-द्धान्तकौमुदीमें पाणिनिका सूत्र उद्धृत करके इस प्रकार लिखा गया है—कॄत संशब्दने।*। उपधायाश्च। पा७।१। १०१। धातोरुपधाभूतस्य ॠत इत्स्यात्। रपरत्वम्। उपधायाञ्चेति दीर्घः। धातुका उपधाभूत दीर्घ ॠकार इत् होता है। उसका र् और उपधामें दीर्घ ईकार होता है। यथा—कॄत लट् कीर्त्तयति। लुङ् अची-कीर्त्तत्, अचीकॄतत्। किन्तु कोई प्रत्ययादि प्रयोग करनेसे दीर्घोपध धातु भी स्थानिवत् ह्रस्व हो सकती है। "तपरकरणं दीर्घे पिस्थानिनि ह्रस्व एव यथा स्यात्" इति काशिका। यथा, अचीकृतत्। अतएव प्रत्ययादिका प्रयोग न होनेसे उपदिष्टमूल धातु प्रकृतावस्थामें ग्रहण करना चाहिये।

अकीर्त्तिकर (सं० वि०) अयशस्कर। बदनाम करनेवाला।

अकीलिस (Achilles)—प्राचीन मिस्रके एक प्रसिद्ध योद्धा और महाकवि होमरके बनाये इलियद नामक महाकाव्यके अन्यतम प्रधान नायक।

कहते हैं, कि वह फ़थिया देशके राजा पेलेउसके पुत्र थे और उनकी माताका नाम थेटिस था। थेटिस एक जलदेवी थीं। यूनानकी कहानियोंमें यह कहा जाता है, कि अकीलिसके दादा इयेकस देवता जेउसके लड़के थे। अकीलिसके लड़कपनके सम्बन्धमें होमरने जो लिखा है, उसके साथ पीछेके जीवनी-लेखकोंका सामञ्जस्य नहीं देख पड़ता। होमरने लिखा है,—वह लड़कपनमें अपनी माताके पास फथिएमें रह पाले-पोषे गये थे। उस समय वह काइरनके पास युद्धविद्या, बोलचाल, गानाबजाना और दवा करना सीखे थे। ट्रयके विरुद्ध लड़ाईका डङ्का बजनेपर वह अपने नौकर-चाकरोंके साथ पचास जहाज ले युद्ध करनेको रवाना हुए।

अकीलिसके बाल्य-जीवन-सम्बन्धपर कितनीही अनोखी-अनोखी कहानियां कही जाती हैं। अकी-लिसकी माता अमर करनेके उद्देश्यसे शिशु अकीलिस-के सब अङ्गोंमें रोज अमृत लगा रातको उन्हें जलती आगके कुण्डमें डाल देती थीं। एक बार उनके पिताने यह लोमहर्षण घटना देख अग्निकुण्डसे शिशुको नि-काल लिया। इससे थेटिस बहुत नाराज हो समुद्रमें कूद पड़ीं। दूसरी कहानी इसतरह बताई जाती है, कि उनकी माता उन्हें ष्टीक्स् नदीके जलमें डुबाती थीं। ऐसा करनेसे अकीलिसका सर्व्वाङ्ग लोह जैसा कड़ा हो गया, किन्तु उनकी एड़ी जैसीकी तैसीही बनी रही। कारण, थेटिस उसीको पकड़ उन्हें डुबकी देती थीं।

इसके बाद बालक शिक्षा पानेके लिये काइरनको सौंपे गये; काइरन उन्हें बलवान् और क्षमताशाली बनानेके लिये सिंहकी आंत, भालूकी चर्बी, और जङ्गली सूअरका मांस खिलाते थे।

ट्रयकी युद्धयात्रा रोकनेके लिये थेटिसने अकी-लिसको बालिकाकी वेशभूषासे सजा राजा लाइको-मेरिसकी सभावाली कुमारियोंके बीच छिपा रखा था। ओडीसिअसने खोञ्चेवालेका रूप बना और इस राज-

सभामें पहुंच अपनी बेचनेकी चीज़ें दिखाईं। इन चीज़ोंमें एक बर्छी और एक ढाल भी थी। सभामें बैठी बालिकायें जिस समय चीज़ें आदि देखनेमें लगी थीं, उसी समय ओडोसिअसने एक भयानक शब्द उच्चारण किया। यह भयानक शब्द सुन बालिकायें डरसे भाग खड़ी हुईं, किन्तु अकीलिस निर्भय भावसे वहीं डटे रहे और दिखाये जानेवाला वह बर्छी और ढाल उठा ली। इसतरह ओडोसिअसके सामने आत्म-प्रकाश करनेसे अकीलिस अनुरुद्ध हो दूसरे यूनानी वीरोंके साथ युद्धयात्रा करनेपर वाध्य हुए थे।

इलियदमें ऐसा लिखा है, कि ट्रय-युद्धके पहले वर्षोंमें ट्रयके पासवाले कितने ही नगरोंको अकीलिसने उजाड़ डाला और बारह शहरोंपर अधिकार कर लिया था। दशवें वर्ष अगामेमननके साथ झगड़ा शुरू हुआ। अपोलोकी कोपदृष्टिसे सिपाहियोंमें महामारी फैली। अपोलोका कोप ठण्डा करनेके लिये अगामेमननने वन्दिनी क्राइसेइसको उसके पिता, अपोलोके पुरोहितको सौंप दिया। किन्तु अकीलिसकी अनुरक्त गुलाम ब्रीसेइसको उन्हें न सौंपा। इससे अकीलिस क्रुद्ध हो अपने डेरे वापस आये और भविष्यत्में फिर युद्धपर जाना अस्वीकृत कर गाने-बजानेमें मन लगा समय बिताने लगे। उनकी अनुपस्थितिके कारण यूनानी सिपाहियोंकी फौज मारी जाने लगी। यूनानियोंकी ऐसी दुरवस्था देख अकीलिस कुछ होशमें आये और अपना कवच और रथ देकर अपने बन्धु पेट्रोक्लसको लड़ाईपर भेजा। इसके बाद पेट्रोक्लसके ट्रोजन-वीर हेक्टर द्वारा मारे जानेपर अकीलिसका निरुत्साह भाव पूरे तौरपर मिट गया, वह उत्तेजित हुये और फिर नये उत्साहसे लड़ने चले। पीछे इस युद्धमें अकीलिसने हेक्टरका वध कर अपने प्यारे बन्धुके मारे जानेका बदला लिया था।

हेक्टरकी अन्त्येष्टिक्रिया वर्णनकर होमरने इलिअद काव्य समाप्त किया है। अकीलिसकी मृत्यु इलिअदमें नहीं लिखी। दूसरी पुस्तकोंमें ऐसा लिखा है, कि मेमनन और अमेजनकी हत्या करनेसे अकीलिस पेरिसके हाथ मारे गये। अपोलो द्वारा सुझाये गये और भेजे हुए पेरिसने अकीलिसके पैरकी एड़ीमें वाण मारा था, इसीसे उनकी मृत्यु हुई।

अकुण्ठ (सं० त्रि०) जो गुठला न हो, तेज़। कार्य्यदक्ष। प्रतिभायुक्त। प्रतिबन्धशून्य।

गयऊ गरुड़ जहं बसहि भसुण्डी।
मति अकुण्ठ हरि भगति अखण्डी॥ (तुलसी)

अकुण्ठित (सं० त्रि०) चोखा, तीव्र, खरा।

अकुटिल (सं० त्रि०) जो कुटिल न हो। सीधा। सरल। भोला। सीधा-सादा। निष्कपट।

अकुटिलता (सं० स्त्री०) सादापन। सीधापन। सिधाई।

अकुताना (हिं० क्रि०) उकताना देखो।

अकुतोभय (सं० त्रि०) न-किम्-तसिल्-भय। नास्ति कुतोपि भयं यस्य। मयू०तत्। निर्भय। जिसे किसीका भय न हो। अकिञ्चन देखो।

अकुप्य (सं० क्ली०) न कुप्य, नञ्-तत्। स्वर्ण। रूप्य। न-गुप-क्यप्। *। राजसूयसूर्य्यमृषोद्यरुच्यकुप्यकृष्टपच्याव्यथाः। पा ३।१।११४। एते सप्तक्यवन्ता निपात्यन्ते। गुपेरादेः कुत्वञ्च संज्ञायाम्। सुवर्णरजतभिन्नं धनं कुप्यम्, गोप्यमन्यत्। (भट्टोजिदीक्षित)

राजसूय-सूर्य्य-मृषोद्य-रुच्य कुप्य कृष्टपच्य-अव्यथ,यही सात क्यप् प्रत्ययान्त शब्द निपातनसे सिद्ध हुए हैं। गुप धातुका गकार ककार हो गया है। स्वर्ण और रजत भिन्न धन लेनेसे कुप्य होगा, नहीं तो गुप्य।

अकुमार (सं० त्रि०) न-कुमार। न कुत्सितः अल्पो मारो यस्य। जिसकी कुमारावस्था अतीत हो चुकी हो। युवा। बालिग। अकुमार अर्थात् नाबालिग नहीं।

अकुल (सं० त्रि०) न-कुलं नास्ति कुलं यस्य। नञ्-तत्। बहुव्री०। १ असद्वंश। २ जिसका कुल न हो। कुलरहित। ३ परिवारविहीन। (पु०) ४ शिव।

निर्गुण निलज कुवेश कपाली। अकुल अगेह दिगम्बर व्याली॥ (तुलसी)

तल् स्त्रियां टाप्—अकुलता, नीचवंशका भाव।

"कुलान्यकुलतां यान्ति।" (मनु ३।६३)

अकुलन (हिं० पु०) अनाटन, अभाव।

अकुलाना (हिं० क्रि०) घबड़ाना। शीघ्रता करना। ऊबना।

अतिशय देखि धर्म्मकी हानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥ (तुलसी)

इन दुखिया अँखियानको सुख सिर जोई नाहिं।

देखत बने न देखते बिन देखे अकुलाहिं॥ (बिहारी)

अकुलि (सं० पु०) असुरोंके एक पुरोहितका नाम। शतपथब्राह्मणमें अकुलि-सम्बन्धी एक गल्प है।—मनुका एक बैल था, जिसका गर्ज्जन सुनते ही असुर और राक्षस प्राण त्याग करते थे। दैत्यगुरु किलात एवम् अकुलिने देखा कि, अब और किसीतरह निस्तार नहीं है। इस बैलको शीघ्र ही वध करना चाहिये। यह बात निश्चय कर वह मनुसे बोले—आपकी पूजाके लिये हम कुछ बलि देना चाहते हैं। मनु सम्मत हो गये। असुरोंने उसी वृषभको लाकर बलि दिया। वृषभ तो मर गया; परन्तु असुरवंशके विनाशका कालगर्ज्जन न मिटा; वह मनुपत्नी मनायीकी देहमें प्रविष्ट हो गया। मनायीके बात करते ही असुर लोग मरने लगे। दूसरी बार किलात और अकुलिने मनायीको बलि देना चाहा। मनुने यह बात भी मान ली। किन्तु वह गर्जन गया नहीं, इस बार वह यज्ञ और यज्ञपात्रमें प्रवेश कर गया। (शतपथ-ब्राह्मण १।४।१४।)

अकुलिनी (हिं० वि०) (सं० अकुलीना) जो कुलवती न हो। कुलटा। व्यभिचारिणी।

अकुलीन (सं० त्रि०) नीच कुलका, कमीना, क्षुद्र। तुच्छ वंशमें उत्पन्न। बुरे कुलका। अभद्र।

अकुशल (सं० पु०) अमङ्गल। अशुभ। बुराई। अहित। (त्रि०) जो चतुर या दक्ष न हो। अनिपुण। अनाड़ी। अधकचड़।

अकुशलधर्म्म (सं० पु०) बौद्ध धर्म्मानुसार प्राणियोंका पाप करनेका स्वभाव। धर्म्म न जाननेवाला।

अकूत (हिं० वि०) जो कूता न जा सके। जिसकी गिनती तौल या नाप वा परिमाण न बतलाया जा सके। बेअन्दाज़। अपरिमित। अगणित।

औधपुर विलासी औ योगिन मन वासीके हेतु जिन कीन्ही परिचरिया अकूतकी। (कवीन्द्र)

अकूपार (सं० पु०) न-कूप-ऋ-अण्। न कूपं ऋच्छति। कच्छप, कछुआ। न कुत्सितः अल्पः पारः, न-कु-पृ-अण्। (कू दीर्घ) जिसका पार अल्प नहीं। महापारावार। समुद्र। पर्व्वत। सूर्य्य। पत्थर या चट्टान। *। वह कच्छप जिसके पीठपर शेष और शेषके फणपर पृथ्वी मानी जाती है। यथा—

नीचे बहे बार तापै बैठो बड़ अकूपार वाहिश्रीकी पीठपर सवार शेष कारा है।—(ग्वाल)

अकूर्च्च (सं० त्रि०) न-कुर-चट् निपातनात् दीर्घः। नास्तिः कूर्चः कैतवो यस्य। अकैतव। ऋजु। श्मश्रु-शून्य। मकना। जिसके मूंछें न हों। (पु०) बुद्ध।

अकूलपाथार (हिं० पुं०) पाथस् जल, महासागर। पारावार। समुद्र।

अकूहल (हिं० वि०) बहुत। अधिक। असंख्य। (केवल छन्दमें प्रयुक्त होता है)। यथा—

खेलत हँसत करैं कौतूहल। जुरे लोग जहँ तहँ अकूहल। (सूर)

अकृच्छ्र (सं० पु०) क्लेशका अभाव। आसानी। सुगमता। असङ्कोच। (त्रि०) क्लेशशून्य। जिसे किसी प्रकारका क्लेश, सङ्कोच या कष्ट न हो। दुष्करका उलटा। आसान। सुगम।

अकृत (सं० क्ली०) न-कृ-क्त-भावे। १ बिना किया हुआ। असम्पादित। २ अन्यथा किया हुआ। बिगाड़ा हुआ। अंड-बंड किया हुआ। ३ न प्रशस्तकाले यत् कृतं, अकार्य्य। ४ न कृत्, नं-तत्। असम्पन्न। अकृतापराध—जो अपराध न किया गया हो। ५ जो किसी का बनाया न हो। नित्य। स्वयंभू। प्राकृतिक। निकम्मा। बेकार। मन्द। स्वभाव। प्रकृति।

नाहीं मोरे और कोउ, बलि, चरनकमल बिनु ठाउं।

हौं असोच अकृत अपराधी, सन्मुख होत लजाउं॥ (सूर)

अकृतकाल (सं० त्रि०) जिसके लिये कोई काल नियत न हो। जिसके सम्बन्धमें कोई समय न निर्दिष्ट किया गया हो।

अकृतघ्न (सं० त्रि०) न-कृत-हन-क। कृतज्ञ। उपकार माननेवाला। (स्त्री०) अकृतघ्नता।

प्रलम्बघ्न, शत्रुघ्न, कृतघ्न इत्यादि शब्द क प्रत्यय द्वारा सिद्ध होते हैं। किन्तु जायाघ्न, पतिघ्नी, पित्तघ्न, वातघ्न इत्यादि शब्द क प्रत्यय द्वारा सिद्ध नहीं होते। यह

टक् प्रत्यय द्वारा सिद्ध हुए हैं।*। लक्षणेजायापत्योष्टक्। पा ३।२।५२। लक्षणद्योतकमें जाया और पति कर्म्मोपपदोंके बाद हन धातुके उत्तर टक् प्रत्यय होता है। पतिघ्नी, जायाघ्न। पुनश्च।*। अमनुष्यकर्तृके च। पा ३।२।५३। मनुष्यवाचि भिन्न कर्म्मोपपदके आगे (अर्थात् जिससे मनुष्यका बोध न हो) टक् प्रत्यय होता है। यथा—पित्तघ्न, वातघ्न। इस स्थानमें मनुष्यका बोध नहीं होता, किन्तु शत्रुघ्न, मित्रघ्न इत्यादि शब्दोंसे मनुष्यका बोध होता है, फिर यह शब्द किस प्रकारसे निष्पन्न हुए! भट्टोजिदीक्षित इस विषयमें शङ्का उठाकर उसका समाधान करते हैं,—कथं बलभद्रः प्रलम्बघ्न शत्रुघ्न, कृतघ्न इत्यादि? मूलविभुजादिवत् सिद्धम्। प्रलम्बघ्न, शत्रुघ्न, कृतघ्न इत्यादि शब्द कैसे सिद्ध हुए? मूलविभुजादि शब्दोंकी भांति सिद्ध हुए हैं। मूलविभुजादिका लक्षण यह है।*। क प्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् (वार्त्तिक)। मूलविभुज, नखमुच, काकगुह, कुमुद, महीध्र, कुध्र, गिल इनका आकृतिगण है।

अकृतज्ञ (सं० त्रि०) न-कृत-ज्ञा-क। कृतघ्न। किये उपकारको जो न माने या स्मरण न रखे। नाशुकरा। इहसानकुश।

अकृतज्ञता (सं० स्त्री०) उपकार न माननेका भाव। नाशुकरापन।

अकृतव्रण (सं०पु०) कश्यपवंशीय एक मुनि। यह परशुरामके अनुचर थे। जिस समय युधिष्ठिरने लोमश मुनिके साथ महेन्द्राचलके दर्शन किये, उस समय वहां अकृतव्रण उपस्थित थे। परशुरामने जिस कारण और जिस प्रकारसे युद्धमें क्षत्रियोंको परास्त किया था, वह कथा इन्होंने युधिष्ठिरके सामने वर्णन की। इनकी लिखी हुई एक संहिता थी।

अकृताभ्यागम (हिं० पु०) बिना किये हुए कर्मके फलकी प्राप्ति। न्याय या तर्कशास्त्रमें एक प्रकारका दोष।

अकृतार्थ (सं० त्रि०) जिसका अर्थ सिद्ध न हुआ हो।

अकृताश्व—(सं० पु०) सूर्य्यकुलोद्भव संहताश्वका पुत्र। अकृशाश्व।

अकृति, अकृती (सं० स्त्री०) न-कृ-क्तिन्।*। कृ[...] श च। चात् क्तिन्। नास्ति कृतिः सत्कार्य्यमस्[...] निकम्मा। काम न करने योग्य। निकम्मा मनुष्य जो किसी कामके योग्य न हो। जिसका काम स[...] या ठीक न हो। (त्रि०) न-कृति-इन। अयोग्य।

अकृतित्व (सं० क्ली०) न-कृ-क्तिन्-त्व। अयोग्यता अपटुता।

अकृत्य (सं० क्ली०) न-कृ-क्यप्।*। विभाष[ा] कृवृषोः। पा ३।१।१२०। कृ अथच वृष धातुके उत्त[र] विकल्पसे क्यप् प्रत्यय होता है। अकार्य्य। दुष्कर्म्म। अनुपयुक्त समयमें कार्य्यका विधान। जिस समय या स्थानमें जो काम करना चाहिये, उसे छोड़ दूस[रे] अयोग्य समय या स्थानमें उसी कामका करना। यथा—अष्टमीमें एकादशीका उपवास।

अकृत्रिम (सं० त्रि०) न-डुकृञ्-क्त्रि। कार्य्येण निर्वृत्तम् कृत्रिमम्। अजन्य। स्वाभाविक। काल्पनिक नहीं।*। ड्वितः क्त्रिः। पा ३।३।८८। त्रेर्मम् नित्यम्। पा ४।४।२०। गणपाठकालमें जो धातुएं डु संसृष्ट होती हैं, निष्पन्न समर्थमें उनके उत्तर क्त्रि प्रत्यय होता है। धातुके उत्तर त्रि होनेमें नित्य ही मकारका आगम होता है। यथा—डु पचष् पाकेण निर्वृत्तं पक्त्रिमम्। (बोना) उप्त्रिम। डुकृञ् कृत्रिम। बनावटी। प्राकृतिक। नैसर्गिक। सच्चा। वास्तविक। यथार्थ। हार्दिक। आन्तरिक। यथा

अकृत्रिम प्रेम रामने जाना। (ग्वालमा)

अकृप (सं० त्रि०) नास्ति कृपा यस्य। निर्दय।

अकृपण (सं० त्रि०) कृपणताशून्य। जिसमें कृपणता न हो।

अकृपा (सं० स्त्री०) कोप। क्रोध। अप्रसन्नता। नाराजी। नामिहरबानी।

अकृशाश्व—अकृताश्व देखो।

अकृष्टपच्य (सं० त्रि०) न-कृ-ष्ट पच-क्यप। नञ्-तत्। कृष्टे पच्यन्ते कृष्टपच्याः कर्म्मकर्त्तरि। शुद्धेतु कर्म्मणि। कृष्टपाक्याः। ततो नञ्तत्। स्वयमेव पच्यन्त इत्यर्थः। अकृष्य देखो। जो बिना जोते-बोये उत्पन्न होकर पके। जैसे—साठी। घासका धान्य। धुनिया।

अकृष्टपच्याः पश्यन्ती तती दाशरथी लताः। (भट्टि)

अक्लृष्टकर्म्मन् (सं० त्रि०) अक्लृष्टं निर्दोषं निर्म्मलं वा कर्म्म यस्य। १ निष्पाप। २ सदाचार। ३ निर्दोष। ४ सदाचारी।

अकेतन (सं० त्रि०) १ बेठिकाना। २ बिना घरवाला। ३ खानाबदोश। ४ जङ्गली मनुष्य।

अकेतु (सं० पु०) नास्ति केतुश्चिह्नं यस्य। अज्ञान। बेसमझ।

अकेल, अकेला (हिं० वि०) किसी-किसी जगह इकला इकली भी बोलते हैं। दुकेलेका उलटा। जिसका कोई साथी न हो। १ एकाकी।

रिपु तेजसी अकेल अपि लघुकर गनिय न ताहि। (तुलसी)

२ अनुपम, अद्वितीय। ३ निराला। ४ एकता। ५ लासानी।

तानसेन अपने फ़नमें अकेला हो गया है।

अकेले (हिं० क्रि० वि०) बिना साथी। अकेला ही। केवल।

अकेहरा (हि० वि०) एकहरा, दोहरा नहीं।

अकैतव (सं० त्रि०) न-कितव-अण्। कितव अर्थमें वञ्चक।

कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषण्डस्थांश्च मानवान्। (मनु ८।२२५।)

कितवान् द्यूतादिसेविनो (जुवाड़ी) नर्त्तकगायकान् (नचैया-गवैया)। कितव, कि-त्ता। कितेन वाति, कित-वा-क। धूर्ततासून्य। सरल। ऋजु। सदाचारी। कपटहीन। सीधासादा। निश्छल। (हि० पु०) भाववाचक, सिधाई।

अकैया (हि० पु०) १ खुरजी। गोन। कजावा। वस्तु लादनेका थैला या टोकरा। २ अँकैयाका रूपान्तर। दाम कूतनेवाला।

अकोट (सं० पु०) न-कोट। गुवाक। सुपारी (२) करोड़ों। असंख्य।

बाजि तवल अकोट जुझाऊ। चढ़ा कोप सब राजा राऊ। (जायसी)

अकोट—बरारके अन्तर्गत अकोला जिलेका एक तालुक है। इसका क्षेत्रफल कोई ५१८ वर्ग-मील है और इसमें २३० शहर और गांव बसे हैं। कपास और तरह-तरहका अन्न यहां बहुतायतसे उत्पन्न होता है। अरगांव, तिलवा और हीवरखेड़ यह तीन अकोटके बड़े-बड़े शहर हैं। अकोट अपने तालुकेका सदर शहर भी है। यह नगर अकोलेसे कोई पन्द्रह कोस उत्तर है। इस नगरके प्रत्येक भवनमें कुएं बने और चारो ओर फुलवारियां और आमके बाग लगे हैं। कितने ही पत्थरके सुन्दर-सुन्दर और मेहराबदार भवन दृश्यमान देखे जाते हैं। बरारमें यह शहर कपास और रूईके व्यवसायके कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया है। यहां रूई लेने-देने भारतीय और युरोपीय दोनो व्यवसाई एकत्र होते हैं और प्रति वर्ष कोई सत्तावन लाखका काम हो जाता है। यहांसे रूई शेगांव भेजी जाती है। बनवानेसे व्यवसायी कालीन भी अच्छे तय्यार करते हैं। सप्ताहमें दो बार बाज़ार लगता है; एक बुधवार और दूसरा शनिवारको।

अकोढ़ई (हि० स्त्री०) अक्रूर, सरल, नम्र, ऋजु। वह धरती जो सींचनेसे जल्द भर जाती है। निवान या निमान, जहां जल ठहरा रहता है।

अकोतरसौ (हि०वि०) एक सौ एक। एक ऊपर सौ।

खंडरा खांड़ जो खंडे खंडे। बरी अकोतरसौ कहं हण्डे ॥ जायसी०

अकोप (हि० पु०) १ राजा दशरथके आठ मन्त्रियोंमेंसे एकका नाम। २ कोपका न होना, जिसमें कोप न हो, प्रसन्नता। यह विशेषणमें भी आता है। यथा—वह बड़ा अकोपात्मा है अर्थात् शान्त या प्रसन्न-चित्त है, उसको क्रोध नहीं आता।

अकोर (हि० पु०) अंकोर देखो।

अकोरी (हि० पु०) अँकोलका पेड़ (सं० अङ्कोल)।

अकोला—बरार प्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। यह दक्षिण-हैदराबादके अङ्गरेजी रेज़ीडेण्ट द्वारा शासित होता है। इसके उत्तर सतपुरा पर्व्वत, दक्षिण सातमाला या अजण्टागिरि श्रेणी, पूर्व इलिचपुर और अमरावती और पश्चिम बुलडाना और खानदेश ज़िला अवस्थित है। मोरना नदीके किनारेका अकोला शहर इसका सदर और बरारके प्रधान दीवानी कर्म्मचारियोंकी अदालत उसी जगह बनी है। मालगुजारी देनेकी सुविधाके लिये यह ज़िला नीचे लिखे पांच भागोंमें बांटा गया है,—अकोला, अकोट, बालापुर, जलगांव और खामगांव।

इस ज़िलेमें सभी जगहको भूमि समतल है। पूर्णा नामकी एक छोटी नदी इसे दो भागोंमें विभक्त करती है। इस पूर्णा नदी और इसकी सात उपनदियोंसे इस ज़िलेका जल निकला करता है। इस ज़िलेमें दो पर्व्वत हैं एक बालापुर ताल्लुक़में और दूसरा अकोला ताल्लुक़में। इस ज़िलेको अधिकांश भूमि रेतसे उत्पन्न हुई है। इस ज़िलेमें कुछ पुराने मन्दिर और गृह आदि देख पड़ते हैं। पातुर नामक स्थानमें एक पत्थरके टुकड़ेपर नक्श की गई एक दीवार बनी है। इसके सिवा पिञ्जर और बारसी ताल्लुक़में भी कितने ही सुन्दर पत्थरके बने मन्दिर हैं। बालापुरमें अबतक एक काले पत्थरका बना छत्र विद्यमान है। कहते हैं, कि औरङ्गज़ेबके सेनापति राजा जयसिंहने इसे बनवाया था। बालापुरके पास शाहपुरमें सम्राट् अकबरके पुत्र युवराज मुरादशाहके प्रासादका ध्वंशावशेष वर्त्तमान है। युवराज मुराद यह प्रदेश शासन करते थे और सन् १५९९ ई०में इसी स्थानपर उन्होंने शरीर छोड़ा था।

इस ज़िलेके खारी कुएं विशेष उल्लेख योग्य हैं। पूर्णा नदीके दोनो किनारेके कोई पचास मील लम्बे और दश मील चौड़े भूखण्डको लोग ज़मीनसे घिरा हुआ झरना या जलाशय बता उल्लेख करते हैं। इस जलसे भरे झरनेमें जगह-जगह कुएं खोदनेपर भीतरसे जलधारा निकल पन्द्रह-बीस फुट ऊपर चढ़ जाती है। यह खारा पानी धूपमें रख नमक बनाया जाता है। पहले यहां कुएंके पानीसे बहुत नमक बनता था; किन्तु इस समय यह काम बन्द करा दिया गया है।

लोग ऐसा कहते हैं, कि पहले इलिचपुरके राजा स्वाधीन भावसे इसपर शासन करते थे और मुसलमानोंकी बादशाहीसे पहले यहां जैनियोंका राज्य था। इस समय जो प्रदेश अकोला ज़िला नामसे प्रसिद्ध है, वह दाक्षिणात्य विजयके समय सन् १२९४ ई०में अलाउद्दीनके हाथ चला गया था। अलाउद्दीनके मरनेपर हिन्दू फिर स्वाधीन हुये। किन्तु अन्तमें सन् १३१९ ई०के समय देवगढ़के राजा जब निर्दय भावसे मारे गये, तब हिन्दुओंका अधिकार सदाके लिए विलुप्त हुआ और उसी समयसे बरार मुसलमानोंके शासनाधीन हो गया। हैदराबादके निज़ामके साथ सन् १८५३ और १८६१ ई०में अंगरेज़ोंकी जो सन्धि हुई थी, उसके फलसे निज़ामने जो प्रदेश अंगरेज़ोंको सौंपे, उनमें यह अकोला ज़िला अन्यतम ज़िला समझा जाता है।

२ अकोला ज़िलेका एक ताल्लुक़। ३ अकोला प्रधान सदर शहर।

४ बंबई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदनगर ज़िलेका एक सब डिवीज़न (तहसील)। यह कोई छः सौ वर्गमील लंबा-चौड़ा और इसमें क़रीब डेढ़ सौ गांव बसते हैं।

अकोविद (सं० त्रि०) जो जानकार न हो। मूर्ख। अज्ञानी। अनाड़ी।

अन्ध अकोविद अज्ञ अभागी। काई विषय मुकर मन लागी। (तुलसी)

(पु०) ऊखके शिरपरको पत्तो। अगोला। गेंडा।

अकोसना (हि० क्रि०) कोसना। बुरा भला कहना। गाली देना। शाप देना।

अकौआ (हि० पु०) १ आक। मदार। २ कौआ। ललरी। घण्टी।

अकौटा (हि० पु०) डण्डा जिसपर पहिया फिरता है। धुरा।

अकौटिल्य (हि० पु०) कौटिल्यका उलटा। सिधाई। सरलता। निष्कपटता।

अकौशल (सं० क्ली०) न-कुशल-अण्। कौशलका अभाव। विरोध।

अक्का (सं० स्त्री०) अक्-क। माता। मा। विशेष सम्बोधनमें यह शब्द 'अक्क' होता है। २ कहीं-कहीं इक्का या यक्काके स्थानमें अक्का बोलते हैं।

अक्के-दुक्के (हि० क्रि० वि०) इक्के-दुक्के देखा।

अक्खड़ (हि० वि०) १ न मुड़नेवाला। अड़ा रहनेवाला। हठी। उग्र। उद्धत। उच्छृङ्खल। २ बिगड़ैल। लड़ाका। झगड़ालू। ३ निर्भय। निडर। बेडर। ४ असभ्य। अशिष्ट। ५ उजड्ड। जड़। मूर्ख, जिसे कुछ कहने या करनेमें सङ्कोच न हो। ६ खरा। स्पष्टवादी। यह शब्द अच्छे भावमें बहुत ही कम प्रयुक्त होता है।

अक्खड़पन (हि॰ पु॰) १ मूर्खता। २ स्पष्टवादिता। ३ जिद्द। ४ कठोरता।

अक्खर (हि॰ पु॰) अक्षर। हर्फ। वर्ण। इसीसे आखर बना है और अक्षरके ही अर्थमें आता है।

अक्खा (हि॰ पु॰) टाट या कम्बलका दोहरा थैला या गोन, जिसमें अन्न आदि भरकर पशुओंकी पीठपर लादते हैं। खुरजी। पाखरी।

अक्खोमक्खो (हि॰ पु॰) दीपककी लौसे हाथ गर्म करके बच्चेके मुखपर फेरना। यह एक प्रकारका टोटका है। स्त्रियां प्रायः दीपक जलाकर यह टोटका किया करती हैं। इसका मन्त्र यह है—

> अक्खो मक्खो दिया बरक्खो। जो कोई मेरे बच्चेको तक्के।
> उसकी फूट दोनो अक्खें॥ इत्यादि—

अक्टोबर (October) अङ्गरेज़ी वर्षका १०वां मास जो आश्विन मासमें पड़ता है। यह मूलमें रूमी महीना है और ३१ दिनका होता है।

अक्टर्लोनी, सर डेविड (Sir David Ochterlony) यह दिल्लीके रेज़िडेण्ट थे। सन् १८०४ ई॰ में हुल्करने जब दिल्लीपर आक्रमण किया, तब उनको इन्होंने परास्त किया था। सन् १८१४ ई॰ के नैपाल-युद्धमें अँगरेज़ोंकी ओरसे गुर्खा सेनापति श्रीअमर-सिंहजीके समक्ष इन्होंने बड़ी वीरता दिखलाई। कलकत्ताके मैदानमें इनका स्मारक चिन्ह मनुमेण्ट (monument) प्रतिष्ठित है।

अक्त (सं॰ त्रि॰) अञ्ज-क्त। (उण् ३।८८।) १ व्याप्त। युक्त। २ संयुक्त। लिप्त। ३ सफल। ४ भरा हुआ। ५ रँगा हुआ। *। यह प्रत्ययकी भांति अन्य शब्दोंके साथ जुड़कर हिन्दीमें काम आता है। यथा—तैलाक्त, विषाक्त, व्यक्त।

अक्ता (सं॰ स्त्री॰) रात्रि। वेदोंमें इसी शब्दका अधिक प्रयोग है।

अक्तूबर—अक्टोबर देखो।

अक्तु (सं॰ क्ली॰) वर्म्म।

अक्र (सं॰ त्रि॰) स्थिर।

अक्रतु (सं॰ त्रि॰) सङ्कल्परहित।

अक्रम (सं॰ त्रि॰) क्रमरहित। व्यतिक्रम। अंड-बंड, उलटा-सीधा। (पु॰) क्रमका अभाव। विपर्य्यय। बेतरतीबी।

अक्रमसंन्यास (सं॰ पु॰) वह सन्यास, जो पहले तीन आश्रमोंको यथावत् पालन किये बिनाही लिया गया हो। ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ आश्रमोंके अनन्तर संन्यासका लेना सक्रम-संन्यास कहाता है।

अक्रमातिशयोक्ति (सं॰ स्त्री॰) अतिशयोक्ति। अर्थालङ्कारका एक भेद, जिसमें कारणके साथ ही कार्य्य हुआ करता है। यथा—

> उठ्यो सङ्ग गज कर कमल, चक्र चक्रधर हाथ।
> करतें चक्र सुनक्र सिर, धरतें विलग्यो साथ॥

अक्रव्याद (सं॰ त्रि॰) कच्चा मांस। अनामिषाहारी। जो मांस न खाता हो।

अक्रान्ता (सं॰ स्त्री॰) एक पौधे विशेषका नाम। कटैया। ब्रहती वृक्ष। यह दो-तीन हाथ ही ऊंचा होता और इसके फूलमें रूखापन रहता है। इसका अङ्गरेज़ी वैज्ञानिक नाम सोलानम् इण्डिकम् (Solanum Indicum) है। यह पौधा देखनेमें बैंगनके पौधेकी भांति होता है, और इसकी डालियों और पत्तियोंमें कांटे रहते हैं। इसका छोटासा फल पकनेपर हलदीकी तरह पीला हो जाता, आकारमें बताऊर (वार्त्ताकुर)के फलकी तरह रहता; किन्तु देखनेमें उससे छोटा होता है। इसका गुण ज्वरघ्न, और पित्तनाशक है। पाचकयोगोंमें वैद्यलोग इसका व्यवहार करते हैं। हलके ज्वरमें; विशेषतः पेटमें बड़े-बड़े कीड़े हो जानेसे सूलीके पत्तोंका रस एक झिनुक, (अङ्गरेज़ी ३ ड्राम; हिन्दी, आध तोलेसे कुछ कम, अनुमान सात आनाभर) ब्रहतीके पत्तोंका रस आध झिनुक और विड़ङ्गका चूर्ण १० रत्ती एकमें मिलाकर सेवन करनेसे विलक्षण फल देखा जाता है। रक्त दूषित हो जानेपर बहुत लोग ब्रहती अर्थात् कटैयेका फल पकाकर भोजनके साथ खाते हैं; लेकिन ठीक-ठीक कोई उपकार होते नहीं देखा गया।

अक्रिय (सं॰ त्रि॰) क्रियारहित। निकम्मा। निठल्ला। जो कर्म्म न करे। निश्चेष्ट। जड़। स्तब्ध।

अक्रिया (सं॰ स्त्री॰) अप्रशस्त कर्म्म। अवैध क्रिया।

अक्रीड़ (सं० त्रि०) १ जो क्रीड़ाविहीन हो। (पु०) २ कुरुथामके पुत्रका नाम। अक्रीड़के चार पुत्र थे— पाण्ड्य, केरल, कोल और चोल। यह लोग दक्षिण-भारतमें पाण्ड्य, कोल और केरल प्रदेशके राजा हुए। (हरिवंश) चोल लोगोंका भी वहां बड़ा बल था, यह लोग पाण्ड्य लोगोंसे भी अधिक शक्तिशाली थे। इतिहासमें कोल और केरल इतने विख्यात नहीं हैं, जितने पाण्ड्य और चोल हैं।

अक्रूर (सं० त्रि०) जो क्रूर अर्थात् टेढ़ा या बुरा न हो। १ सरल। २ दयालु। ३ सुशील। ४ कोमल। ५ सीधा। (पुं०) ६ श्वफल्क और गान्दिनीके पुत्र एक यादव, जो श्रीकृष्णके काका लगते थे। इन्होंके साथ श्रीकृष्ण-बलदेव मथुरा गए। सत्राजित्को स्यमन्तक मणि लेकर यह काशी चले गए थे। पुराणोंसे ज्ञात होता है, कि श्वफल्क बड़े ही पुण्यवान् थे। जहां वह रहते, वहां आधिदैविक और आधिभौतिक ताप न प्रकटित होते थे। एकबार काशीराजकी भूमिमें सातिशय अनावृष्टि और दुर्भिक्ष फैला हुआ था। श्वफल्कके लाते ही सारा अमङ्गल दूर हो गया। काशीराजने अपनी कन्या गान्दिनी श्वफल्कके साथ व्याह दी। पीछे अक्रूरका जन्म हुआ। पहले अक्रूर कंसके यहां रहते थे और कंसके धनुर्यज्ञमें वृन्दावनसे श्रीकृष्ण-बलदेवजीको लाने भी गए थे। जब शतधन्वाके साथ श्रीकृष्णकी शत्रुता उत्पन्न हुई, तब उन्होंने स्यमन्तकमणि छिपाकर चुपचाप अक्रूरको सौंप दी। शतधन्वाके मरनेपर अक्रूर स्यमन्तकमणिको कपड़ेमें छिपाकर रखा करते थे। कहा गया है, कि इस मणिसे नित्य ढेरका ढेर सोना उत्पन्न होता और गान्दिनी-नन्दन इस धनसे नित्य याग-यज्ञका अनुष्ठान करते थे। पुराणोंमें ऐसा भी लिखा है, कि जिस जगह यह स्यमन्तकमणि रहती, उस जगह दुर्भिक्ष, अनावृष्टि, अकालमृत्यु, प्रभृति कोई भी दुर्घटना न होती थी। एकबार अक्रूरके भोज-वंशीय कितने ही लोगोंने सात्वतके प्रपौत्र (पड़पोता) शत्रुघ्नको मार डाला था, इसी डरसे अक्रूर द्वारका छोड़कर भाग गये। इधर द्वारकामें अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, अकालमृत्यु इत्यादि उपद्रव होने लगे। सबने निश्चय किया कि, जहां अक्रूरके पिता श्वफल्क रहते हैं, वहां यह सब दुर्घटनाएं नहीं होतीं। अक्रूर भी उन्हीं पुण्यात्माके सन्तान हैं। उनके द्वारका छोड़कर चले जानेसे ही यह सब दुर्घटनाएं आ उपस्थित हुई हैं। अतः सब लोग फिर अक्रूरको द्वारकामें लाये। किन्तु श्रीकृष्णको इस बातपर विश्वास न हुआ। उन्होंने यही समझा, कि अक्रूरके पास निःसन्देह स्यमन्तकमणि है। उसी मणिके प्रभाव से जहां अक्रूर रहते हैं, वहां अनावृष्टि आदि दुर्घटनाएं नहीं होतीं। इसी कारण श्रीकृष्णने एक दिन यादवोंके सामने अक्रूरसे कहा कि, शतधन्वा राजा तुम्हारे पास जो स्यमन्तकमणि रख गये थे, उसको एकबार हमें दिखलाओ। अक्रूर इनकार न कर सके, कपड़ेके भीतरसे मणिको निकालकर दे दिया। किन्तु श्रीकृष्णजीने मणि ली नहीं, अक्रूरको ही लौटा दी। इसके पीछे अक्रूरजी निःशङ्क होकर इस मणिको सदा धारण किये रहते थे।

अक्रूरेश्वर (सं० पु०) नर्मदा नदीके उत्तर तटका एक प्रदेश विशेष। इसका आधुनिक नाम अखलेश्वर है।

अक्रोध (सं० पु०) क्रोधराहित्य। क्रोधका अभाव। क्षमा। दया। सहिष्णुता। गार्हस्थ्य १० धर्मोंमेंसे एक।

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥ (मनुः)

अक्रोधन (सं० पुं०) कुरुवंशके अयुतायुम्का पुत्र।

अक्ल (अ० स्त्री०) बुद्धि। समझ। ज्ञान। बहुत लोग भूलसे अकल पढ़ते हैं, अकलका अर्थ अरबीमें 'छोटा' होता है।

अक्लम (सं० पु०) श्रमाभाव। (त्रि०) श्रमशून्य।

अक्लमन्द (फ़ा० पुं०) चतुर, बुद्धिमान। सयाना।

अक्लमन्दी (फ़ा० स्त्री०) चातुर्य। बुद्धिमानी। समझदारी। चतुराई। सयानापन। विज्ञता।

अक्लान्त (सं० त्रि०) क्लान्तिरहित। अनवसन्न। ग्लानिशून्य।

अक्लिका—(सं० स्त्री०) नीली नामक वृक्षविशेष।

अक्लिन्नवर्त्म (सं० पुं०) एक नेत्ररोग, जिसमें पलकें चिपकती हैं।

अक्लिष्ट (सं० त्रि०) १ बिना क्लेशका। कष्टरहित। २ सुगम। सरल। सहज। सीधा। कठिन या क्लिष्ट-का उलटा।

अक्लिष्टकर्म्मन् (सं० त्रि०) बिना क्लेश जो कर्म्म कर सके।

अक्लेश (सं० पु०) क्लेशाभाव। (त्रि०) क्लेशशून्य।

अक्ष—(अक्षु) (सं० पु०) (स्त्री० अक्षा) १ खेलनेका पासा। २ पासोंका खेल। चौसर या चौपड़। ३ छकड़ा या गाड़ी। ४ धुरी। किसी गोल वस्तुके बीचो-बीच पिरोया हुआ डण्डा जिसपर वह चारो ओर फिरे। ५ पहियेकी धुरी। ६ धरतीकी धुरी। ७ वह कल्पित स्थिर रेखा, जो पृथ्वीके भीतरी केन्द्रसे होती हुई उसके आर-पार दोनो ध्रुवोंपर निकली है; इसी-पर पृथ्वी घूमती हुई मानी गई है। ८ तराजू या तुलाकी डण्डी। ९ व्यवहार। मामला। मुक़द्दमा। १० इन्द्रिय। ११ तूतिया, लीला थोथा। तांबेका पूर्व्वाङ्ग। १२ सुहागा। १३ आंवला। १४ बहेड़ा। १५ रुद्राक्ष। १६ सर्प। १७ गरुड़। १८ आत्मा। १९ सोलह मासेकी तौल, जिसे कर्ष कहते हैं। २० जन्मान्ध। २१ रावणका एक पुत्र अक्षकुमार, जिसे हनू-मान्‌ने लङ्काका प्रमोदवन उजाड़ते समय मारा था। २२ व्याप्ति। २३ रसाञ्जन। २४ धूना। २५ काश्मीरके एक राजाका नाम। यह दूसरे नरराजके पुत्र थे। कलिके २५८१ वर्ष बीत जानेपर (शकाब्दसे ५९८ वर्ष पहले) राजा होकर इन्होंने ६० वर्ष राज्य किया। अक्षराजने अक्षवाल नामकी एक मनोहर देवपुरी निर्म्माण कराई थी। इनके पुत्रका नाम गोपादित्य था। (राजत) २६ क्रयविक्रयचिन्ता। २७ नये प्रकारके व्यापारके करनेका विचार या साहस (Enterprize)। २८ व्यवहारशास्त्र, विवादविज्ञाततत्त्व। २९ ग्रहोंके भ्रमण करनेका पथ, राशिचक्रके अवयव।

अक्षक (सं० त्रि०) १ पासा खेलनेवाला। २ व्यापक। (पु०) ३ तिनिश वृक्ष।

अक्षकुमार (सं० पुं०) रावणका बेटा। अक्ष देखो।

अक्षकूट, अक्षकूटक (सं० पु०) अक्षकूट-कन् स्वार्थे। आंखका तारा। आंखकी पुतली। चखपुतरी।

अक्षक्रीड़ा (सं० स्त्री०) चौसर। चौपड़। पासेका खेल। हमारे हिन्दूशास्त्रमें जुआ खेलनेका बहुत निषेध है। द्यूत अर्थात् जुआके सम्बन्धमें मनुसंहिताके ९वें अध्याय-में लिखा है, कि राजा अपने राज्यमें द्यूत या समाह्वाय न होने दे। यह दोनो काम राज्यनाशके कारण होते हैं। जुआ स्वयं एक प्रकारकी चोरी है और चोरीकी वृद्धि करनेका कारण भी होता है। घुड़दौड़, बटेर-बुलबुलकी लड़ाई आदिमें जो दांव बदा जाता है, उसीको समाह्वाय कहते हैं और का-ष्ठादि, हाड, हाथी-दांतके पासे और नाना प्रकारकी रीतियोंसे जो हार होती है, उसका नाम जुआ या द्यूत है। जो जुआ आप खेले या दूसरेको खेलाये, उसको प्राणदण्ड देनेका विधान है। (९।२२१-२८) 'पाशा कर्म्मनाशा'की पुरानी कहावत इसीवास्ते चली आती है, कि जुएमें निरत जन खान, पान, निद्रा, सन्ध्या, पूजा, आदि समस्त नित्य और नैमित्तिक कर्म्मोंको भूल जाता है और झूठ, छल और चोरीकी ओर उसकी प्रवृत्ति बढ़ती है।

> घैरी बंधुआ बानिया ज्वारी चोर लबार।
> बिभिचारी रोगी ऋणी नगरनारिको यार॥
> नगरनारिको यार भूल परतीत न कीजे।
> सौ सौगन्दैं खाय चित्तमें एक न दीजे॥
> कह गिरधर कविराय इन्हें आवै अनगैरी।
> हितकी कहें बनाय पेटके पूरे बैरी।—गिरिधर

अक्षक्षेत्र (सं० क्ली०) १ मल्लयुद्धका अखाड़ा। २ दङ्गल। ३ ज्योतिष-गणनाके आठ क्षेत्र।

अक्षज (सं० क्ली०) १ वज्र। २ अक्षजात। आंखोंसे या इन्द्रियसे उत्पन्न। ३ किसी विवाद या मामले-मुक़द्दमेसे उत्पन्न बात या तर्क।

अक्षण्वत् (सं० त्रि०) चक्षुयुक्त। आंखवाला।

अक्षणिक (सं० त्रि०) निश्चल। स्थिर। स्थिरदृष्टि।

अक्षत (सं० पुं०) १ बिना टूटा हुआ। समूचा। जिसमें क्षत, घाव या चोट न लगी हो। अखण्डित। २ गणितमें पूर्णाङ्क, जो भिन्नके साथ होते हैं; जैसे २$\frac{3}{5}$में २ अक्षत और $\frac{3}{5}$ भिन्न है। सही। ३ समूचे चावल, जो देवार्चामें काम आते हैं।

४ धानका लावा। ५ यव। ६ वह कुमारी जिसका पुरुषसे समागम न हुआ हो।

अक्षतयोनि (सं० स्त्री०) १ वह योनि जिसमें वीर्य्य-स्थापनकी चेष्टा न हुई हो। २ वह कन्या, जिसका पुरुषसे संसर्ग न हुआ हो।

अक्षतवीर्य्य (सं० त्रि०) अक्षतयोनिका उलटा, वह पुरुष जिसका ब्रह्मचर्य्य अखण्ड हो। जिसका वीर्य्यपात न हुआ हो। जिसने स्त्रीसंसर्ग न किया हो।

अक्षता (सं० स्त्री०) १ जिस स्त्रीका पुरुषसे संयोग न हुआ हो। पुरुषसंयोगरहिता स्त्री। २ धर्म्मशास्त्रानुसार वह पुनर्भू स्त्री, जिसने पुनर्विवाहपर्य्यन्त पुरुषका संयोग न किया हो। ३ अक्षतयोनि। ४ कर्कट-शृङ्गी। काकड़ासिङ्गी।

अक्षदर्शक (सं० त्रि०) १ जुआरी। २ व्यवहारमें निपुण। ३ धर्म्माध्यक्ष। ४ न्यायाधीश। न्यायकर्त्ता। मामले-मुकद्दमेमें चतुर। (स्त्री) अक्षदर्शिका।

अक्षदृश् (सं० पु०) १ न्यायाध्यक्ष, विचारपति। २ जुआ खेलनेवाला। (स्त्री) अक्षदृशा।

अक्षदेवी (सं०) अक्ष-देव-णिनि। जुआ खेलनेवाला। (स्त्री) अक्षदेविनी।

अक्षद्यूत (सं० पु०) १ पासा खेलनेमें निपुण। पासेके खेलका प्रेमी। (सं० क्ली०) २ पासोंका खेल। सुरही।

अक्षद्यूतादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त गणभेद। अक्षद्यूत, जानुप्रहृत, जङ्घाप्रहृत, पादस्वेदन, कण्टकमर्द्दन, गतागत, यातोपयात और अनुगत यह सब अक्ष-द्यूतादिगणमें पठित हैं।

अक्षधर (सं० पु०) १ साखोका पेड़। २ विष्णुका चक्र। ३ चाककी धुरी। (स्त्री०) अक्षधरा। (त्रि०) चक्र-धारक मात्र।

अक्षधूर् (सं० त्रि०) १ पहियेकी धुरी। २ पासेकी धुरी।

अक्षधूर्त्त (सं० त्रि०) १ जुआ या पासोंके खेलमें धूर्त्त। २ प्रतारक। ३ साखोका वृक्ष।

अक्षधूर्त्तिल (सं० पु०) वृष, बैल।

अक्षन् (सं० क्ली०) नेत्र, आँख।

अक्षपटल (सं० क्ली०) १ आँखकी पलक। २ स्वच्छ-दर्पण। ३ आंखोंका एक रोग विशेष। आंखकी पुतलीके ऊपर (Lenticular crystaline Lens) अथवा उसके आवरणके ऊपर (Capsular Capsule) या इन दोनोंके ऊपर (Capsule lenticular) एक प्रकारका जो आव-रण या परदा पड़ता है, उसीसे दृष्टिशक्ति ढक जाती है। यह आवरण सिरस (Serous) रसमें भरा रहता है।

फूले या जाले नाना प्रकारके होते हैं। इनमेंसे कठिन और कोमल दो प्रकारके फूले प्रायः संसारमें देखे जाते हैं। कठिनको अङ्गरेजोंमें Suffusio dura कहते हैं। यह कटावर्ण प्रायः बुड्ढोंको होता है। कोमल फूला (Suffusio mollis) कुछ-कुछ नीला और आकारमें भी अपेक्षाकृत बड़ा होता है। किसी-किसी बच्चेको आंखोंमें फूला गर्भसे ही पड़ा हुआ आता है। बहुतोंके माथे या आंखमें चोट लगनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। किसी-किसी बालककी आंख-में श्वेत दूधकी भांति फूला पड़ता है। यह फूला सोने और शिर घुमाने-फिरानेसे इधर-उधर फिरता है। जाला, मांड़ा, फूला, आंखके रोग हैं, इनमें बहुत ही थोड़ा अन्तर है। नेत्रके ऊपर एक प्रकारका परदा पड़ जानेके कारण इसका नाम 'अक्षपटल' हुआ है। बङ्गालमें इसे 'छानी' कहते हैं।

अक्षपटलका कारण एक नहीं है। देहकी दुर्ब-लता, पेशाबकी पीड़ा, आंख या मस्तकमें चोट लगने, बालकोंके दड़का नामक रोग होने और लौकिक देह-स्वभाव अर्थात् पिताके फूला रहनेसे प्रायः बच्चोंको यह रोग लग जाता है। दूसरे तीव्र प्रकाशके सामने आंख भरकर देखनेसे आखें तिलमिला जाती हैं और प्रायः यह रोग पैदा हो जाता है। अत्यन्त महीन कामको लगातार आंख फाड़-फाड़ कर देखने और करनेसे भी फूला उत्पन्न होता है। मेंड़कको कुछ दिन चीनी और नमक खिलाने और शराब पिलानेसे देखा गया है, कि उसकी दोनो आंखोंमें फूला पड़ जाता है।

एलोपेथी—फूला रोगकी प्रचलित चिकित्साएं नीचे दी जाती हैं—एलोपेथीके डाक्टर सबसे पहले सुपथ्यकी व्यवस्था करते हैं; जैसे दूध, अण्डा,

मांस, काडलिवर-आयल (एक प्रकारकी मछलीके कलेजेका तेल) और माल्ट इत्यादि। खानेकी औषध—सिरप आव फेरी आयोडिड १० विन्दु आधा छटांक पानीमें डालकर रोज दो बार पीना चाहिये। अथवा २ रत्ती आयोडिड आव पोटास, २ रत्ती ब्रोमाइड आव पोटास और आध छटांक कालंबोका फाण्ट एकमें मिलाकर रोज दो बार सेवन करे। आंखके भीतरी प्रयोगके लिए कोई ५ या १० बूंद टिङ्क्चर आयोडिन आध छटांक गुलाबजलमें मिलाकर नित्यप्रति १० बूंद पीड़ित आखोंमें डालनेकी राय देते हैं। कोई-कोई आध छटांक निर्मल जलमें आध रत्ती एट्रोपिया मिलाकर, दो बूंद प्रति दिन या ४-५ दिनके अन्तरसे आँखोंमें डालनेकी बात कहते हैं। इसके द्वारा आँखका तारा फैल जाता है; इससे फूला पड़ी आखोंसे दिखाई पड़ता है। एट्रोपिया विष वेलोडोनाके वीर्य्यसे प्रस्तुत होता है; इसलिये इसको सेवन न करना चाहिये।

जबतक दो आँखोंमेंसे एकमें भी ज्योति रहे, तबतक फूलेमें नश्तर न लगाना चाहिये। क्योंकि एक आँखका फूला निकालनेकी चेष्टा करनेसे दोनो आखें मारी जा सकती हैं। यह बात निश्चित नहीं, कि अस्त्रप्रयोगसे फूला दूर ही हो जाता है।

अस्त्रप्रयोगके दो भेद हैं। एक तो यह, कि फूलेके नीचेकी पतली झिल्लीमें छेद करके फूलेका रस भीतर ही डुबा देना और दूसरे अस्त्र द्वारा फूलेका परदा निकाल लेना। पहले उपायमें बड़ी विपद् है। फूलेका पानी या रस भीतर डुबा देनेसे असह्य जलन उत्पन्न हो सकती है। इसलिये आजकलके कोई विज्ञ चिकित्सक ऐसी चिकित्सा नहीं करते। हमारे देशके सठिये यही उपाय जानते हैं, वह फूलेका रस आंखके भीतर डुबा सकते हैं, ऊपर उठाकर ला नहीं सकते। फिर, सभी सठिये एक कृत्रिम परदा लाकर रोगीको बहला देते हैं, और नेत्रमें अस्त्रप्रयोग करनेके बाद उसे दिखाकर कहते हैं, कि फूलेको अच्छी तरह उठा लिया है; जब इसका रस पककर खड़ीको भांति हो जायगा, तब अस्त्र-प्रयोग करेंगे। एक बार नश्तर लगानेसे यदि लाभ न हुआ, तो जान लो, कि आरोग्य होनेकी आशा गई। किसी-किसीका फूला बिना दवाके ही आपसे आप कम हो जाता है, कुछ दिन पीछे फिर बढ़ने लगता है।

होमिओपेथी—जो आंख उठनेके बाद फूला पड़ा हो, तो १२ डाइलूशन वेलोडोना एक बूंदके हिसाबसे पानीके साथ दिनमें दो बार सेवन करे। ३० डा० सलफर, ३० डा० फसफोरस, १२ डा० कानाविस, १२ डा० कालकेरिया, १२ डा० केनायम, ६ डा० यूफ्रेसिया और १२ डा० सिलिसिया प्रभृति औषधोंके सेवनसे उपकार होता है। होमिओपेथीमें एक समय एक ही औषध सेवन करनेकी रीत है।

वैद्यक—आंखोंके भीतर लगानेके लिये चन्द्रोदय-वर्त्तिका बताई गई है। हरितकी (हरड़), बच, कुटकी, पीपल, काली मिर्च, बहेड़ेका गाभा (मज्जा), शङ्खनाभि, मैनफल—यह सब औषधियां बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बना ले और रोज पत्थरके ऊपर बकरीके दूधसे इस बत्तीको घिसकर आंखोंमें लगाये।

चन्द्रप्रभावर्त्ति, चन्दनाद्यावर्त्ति और नयनसखावर्त्तिसे भी कभी-कभी उपकार होता है।

अक्षपरि (सं० पु०) हारका पासा। जिस पासेके पड़नेसे हार हो, पासेकी वह स्थिति, जिससे हार सूचित होती हो। (अव्य०) जुआ खेलनेमें हार।

अक्षपाटक (सं० पु०) अर्थ या सम्पत्तिशास्त्रज्ञ। व्यवहार जाननेवाला।

अक्षपाद (सं० पु०) १ सोलह पदार्थवादी। न्यायशास्त्र-प्रवर्त्तक गौतम ऋषि। (बहुव्री) २ तार्किक। ३ नैयायिक। महर्षि वेदव्यासने गौतम-प्रणीत न्यायशास्त्रकी निन्दा की थी, इसलिये उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि वह व्यासका मुख न देखेंगे। पीछे जब वेदव्यासने उन्हें प्रसन्न किया, तब उन्होंने चरणमें नेत्र उत्पन्न करके उन्हें देखा अर्थात् नेत्रसे न देखनेकी अपनी प्रतिज्ञा अटल रखी। गौतम देखो।

अक्षपीड़ा (सं॰ स्त्री॰) नेत्रकी पीड़ा, आँखोंका कष्ट या रोग। २ यवतिक्ता लता।

अक्षबन्ध (सं॰ पु॰) नज़रबन्दी, वह विद्या जिससे पासके खड़े हुए लोग खेलोंका भेद न देख सकें।

अक्षफोर्ड,आक्सफोर्ड(Oxford)—यह शहर लन्दनसे कोई २८ कोस दूर है। इसके एक ओर चार्वेल और दूसरी ओर टेम्स नदी बहती है। इसी युक्त वेणीपर अक्षफोर्ड विराजता है। सरस्वती देवी कमलवन छोड़ इसी नगरमें रहती हैं। यहां बीस सुप्रसिद्ध विद्यालय हैं, जिनमें विश्वविद्यालय कालेज, बेलियाल कालेज तथा मार्टिन कालेज बहुत ही प्राचीन है। पहला सन् ८७२, दूसरा १२६३ और तीसरा १२६४ ई॰में स्थापित हुआ था। यहांके एक गिरजाघरमें वृहदाकार एक घण्टा है, जिसकी तौल दो सौ मनसे भी अधिक है। यहांका बडलियन पुस्तकालय विश्वविख्यात है। इस पुस्तकागारमें २५०००० मुद्रित ग्रन्थ और २५,००० पाण्डुलिपि हैं। 'सर टमास बिडली' इसके प्रतिष्ठाता थे। चार्वेल नदीपर जो सेतु बँधा है, वह देखनेमें बहुत सुन्दर है। विलायतके जो लोग नाना शास्त्रोंमें सुपण्डित होते हैं, उनमें कितने ही अक्षफोर्डके छात्र पाये जाते हैं। यहांके विद्यालयमें कई प्रकारकी भाषा पढ़ाई जाती है। मालूम होता है, कि जितना विद्यानुशीलन अक्षफोर्ड और केम्ब्रिजमें है, उतना और कहीं नहीं।

अक्षम (सं॰ त्रि॰) १ क्षमारहित। २ असहिष्णु। ३ असमर्थ, क्षमताशून्य। अशक्त। ४ अनुपचार। ५ लाचार। ६ बेबश। (स्त्री॰) अक्षमा।

अक्षमता (सं॰ स्त्री॰) १ क्षमताका अभाव। २ असहिष्णुता। ३ ईर्षा। ४ डाह। ५ असामर्थ्य।

अक्षमा (सं॰ स्त्री॰) १ ईर्षा। २ हसद। ३ डाह।

अक्षमाला (सं॰ स्त्री॰) १ रुद्राक्षकी माला। जपमाला। २ 'अ' से 'क्ष' पर्य्यन्त वर्णमाला। ३ वशिष्ठमुनिकी एक पत्नी। वशिष्ठकी पत्नी अक्षमाला शूद्रकी कन्या थीं। किन्तु महर्षिके संसर्गसे वह बड़ी गुणवती हो गईं। मनुसंहितामें एक उदाहरण लिखा है—

"यादृग् गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथाविधि।
तादृग् गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा॥
अक्षमाला वशिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा।
शारङ्गी मन्दपालेन जगामाभ्यर्हणीयताम्॥" (९।२२ २३।)

जैसे नदीका जल मीठा होते भी समुद्रमें गिर खारा हो जाता है, वैसे ही स्त्रियां भी जिसके साथ व्याही जाती हैं, वैसी हो बना करती हैं। अक्षमाला शूद्रकन्या थीं, किन्तु वशिष्ठके साथ विवाह होनेसे पूजनीया हो गईं, और शारङ्गी मन्दपालके साथ विवाह करके सम्मानित हुईं।

वशिष्ठके और भी कई स्त्रियां थीं। उनमें अरुन्धती और ऊर्ज्जा प्रधान हैं। ऊर्ज्जा सप्तऋषियोंकी जननी हैं। शक्ति प्रभृति अन्यान्य सन्तान दूसरी स्त्रियोंके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं। (भागवत ४।१।३२-३३। विष्णुपुराण १।१०।१३।)

४ एक प्रकारका नेत्ररोग।

अक्षय (सं॰ पु॰) जिसका क्षय न हो। अविनाशी। अक्षर। शाश्वत। सदा बना रहनेवाला। कभी न मिटने या चुकनेवाला। कल्पान्तस्थायी, कल्पान्ततक बना रहनेवाला।

अक्षयकुमार (सं॰ पु॰) रावणका एक बेटा। अक्षकुमार देखो।

अक्षयतृतीया (सं॰ स्त्री॰) अखयतितीया। वैशाखशुक्लतृतीया। आखातीज। इसी तिथिसे सत्युगका आरम्भ माना जाता है, अतः हिन्दू इस दिन स्नान, दान आदि करते और आनन्द मनाते हैं। यदि कृत्तिका या रोहिणी नक्षत्रका भी योग हो, तो यह तिथि बहुत ही उत्तम समझी जाती है।

अक्षयनवमी (सं॰ स्त्री॰) कार्त्तिकशुक्लनवमी। इस तिथिसे त्रेतायुगका आरम्भ माना, और स्नान-दान किया जाता है।

अक्षयवट (सं॰ पु॰) प्रयाग और गयावाला एक बरगदका पेड़। पौराणिक इन दोनो वटवृक्षोंका नाश प्रलयमें भी नहीं मानते, इसीसे इनका नाम अक्षयवट पड़ा है। कहते हैं, कि कोई वटवृक्ष नहीं मरता। कितनी ही वृष्टि होनेपर भी उसकी डालियां नहीं टूटतीं और न कड़ी धूपमें ही उसकी पत्तियां सूखती

हैं। भक्तिपूर्व्वक वटवृक्षमें जल चढ़ानेसे अक्षयफल मिलता है। प्रयागका अक्षयवट इस समय क़िलेके भीतर पड़ और बहुत छोटा हो गया है; सम्भवतः छायामें रहनेके कारण यह बढ़ता नहीं। जगन्नाथजीमें भी अक्षयवट रहनेकी कथा मिलती है।

प्रयागका अक्षयवट बहुत ही प्राचीन वृक्ष है। पहले यह खुली जगहमें था, धीरे-धीरे इसको चारो ओर मट्टीका भराव हो गया, सुतरां वृक्ष भी नीचे पड़ गया। प्रयागदुर्गके भीतर एलनबरा-बारिकके ठीक पूर्व्व एक पुराना मन्दिर है, जिसके पास यह अक्षयवट अवस्थित है। इस जगह इस वृक्षको न धूप लगती और न हवा मिलती है, इसीसे यह बढ़ता भी नहीं। चीनके यात्री (साधु) युअन्-चुअङ्ग इस प्राचीन मन्दिरका उल्लेख अपनी यात्राके प्रसङ्गमें कर गये हैं। इसकी दक्षिण ओर सम्राट् अशोक और समुद्रगुप्तका स्तम्भलेख हैं। पहले अक्षयवट वेणीघाटसे बहुत दूर था; धीरे-धीरे बाढ़ आनेसे गङ्गा-यमुना इसके पास पहुंच गई। अकबर बादशाहके समय हिन्दू लोग इसी वृक्षके मूलसे गङ्गामें कूदकर प्राणत्याग करते थे। आजकल फिर क़िलेके नीचे बहुत दूर तक रेत पड़ गई है। वेणीका घाट अब अक्षयवट-के निकट नहीं है। प्रयाग जा तीर्थयात्री अक्षयवटके दर्शन करते हैं, पहले दर्शन करनेमें उन्हें बड़ी असुविधा होती थी। इच्छा करनेसे कोई व्यक्ति क़िलेके भीतर न जा सकता था। पण्डा लोग यत्न करके यात्रियोंको ले जाते थे। अब लोग मजेमें जा सकते हैं। अक्षयवटकी चारो ओर पक्की चुनाई (गुंथाई) की छत है और गड्ढेके भीतर बड़ा ही अँधेरा रहता है, कोई चीज़ स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ती। सिड्ढीसे उतर नीचे दर्शन करने जाना होता है। पुराणोंमें लिखा है, कि इस वृक्षको पूजा करनेसे अक्षयफल मिलता है।

गयाक्षेत्रमें भी एक अक्षयवट है। पाण्डवोंने वनवासमें लोमश ऋषिके उपदेशानुसार इस वृक्षका दर्शन किया था। (महाभारत—वनपर्व।)

अक्षयवृक्ष (सं० पु०) अक्षयवट।

अक्षयललिता (सं० स्त्री०) भादों महीनेकी सातवीं तिथि। इस तिथिको स्त्रियां शिवदुर्गाकी पूजा करती हैं।

अक्षया (सं० स्त्री०) अक्षयतृतीया। सोमवारको अमावस्या, रविवारको सप्तमी, मङ्गलवारको चतुर्थी होनेसे अक्षया कहाती है।

अक्षयिणी (सं० स्त्री०) काश्मीरकी एक देवप्रतिमा, महाराज नरेन्द्रादित्यने भुवनेश्वर नामके एक देवता और अक्षयिणी नामकी एक देवीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित की थी।

अक्षय्य (सं० क्ली०) घृतमधुयुक्त जल, जो श्राद्धमें पिण्ड-दानके पीछे देते हैं।

अक्षय्योदक (सं० क्ली०) पिण्डदानके पीछे मधु-तिल मिला जल देकर श्राद्ध करना।

अक्षर (सं० पु०-क्ली०) न-क्षर-अच्। १ अच्युत। २ स्थिर। ३ अविनाशी, नाश न होनेवाला। ४ नित्य। ५ अकारादि वर्ण। हरफ़। मनुष्यके मुखसे निकली हुई सार्थक ध्वनिको सूचित करनेवाले सङ्केत।

तन्त्रमें पांच प्रकारके अक्षरोंका उल्लेख है—१ मुद्रालिपि, २ शिल्पलिपि, ३ लेखनीसम्भवा लिपि, ४ गुण्डिका और ५ घूणाक्षर। मुद्रालिपि अर्थात् अँगुलीके अँगूठे इत्यादिसे छापना; शिल्पलिपि अर्थात् चित्रकारी इत्यादि; लेखनीसम्भवा लिपि, लेखनीसे जो लिखी जाये; गुण्डिका, जो चावल आदिके चूर्ण (आटा)से या इसी प्रकारकी और चीज़ोंसे लिखी जाय अर्थात् अलिपना इत्यादि; घूणाक्षर, घुन कीड़ा लकड़ीमें तरह-तरहकी रेखायें बनाया करता है और कोई-कोई उसकी रेखा लेखनीसे लिखे अक्षरकी भांति भी देख पड़ती है। अङ्गरेज़ी शोर्टहाण्ड (Short hand) भी ऐसा ही होता है।

अक्षरलिपि देखो।

६ ब्रह्म। ७ गगन। ८ धर्म्म। ९ तपस्या। १० अपामार्ग वृक्ष, आपां चिचड़ा, आधाड़ा (Achyranthes aspera)। ११ मोक्ष। १२ जल।

अक्षरचण, अक्षरचुञ्चु (सं० पु०) लेखक, सुलेखक, पण्डित, उत्तम अक्षरोंका बनानेवाला। मुंशीये हर्फ़ क़लम। अक्षरचञ्चु।

अक्षरच्छन्द (सं० क्ली०) जो छन्द अक्षरोंकी गणनासे रचा जाय। वर्णवृत्त।

अक्षरजननी (सं० स्त्री०) १ लेखनी। २ क़लम।

अक्षरजीवक, अक्षरजीविक (सं० पु०) अक्षरेण जीवति। जो लेखनी द्वारा जीविका करे। मुनीम। गुमास्ता। राइटर। क्लार्क। लेखक।

अक्षरजीविन् (सं० त्रि०) अक्षरजीविक, लेखक।

अक्षरतूलिका (सं० स्त्री०) लेखनी। चित्रकारोंकी केश-लेखनी। बालका क़लम।

अक्षरन्यास (सं० पु०) लिखावट। लिखन। लिपि। तन्त्रशास्त्रकी एक क्रिया, जिसमें अं, हं, कं इत्यादि अक्षरोंकी एक-एक करके पढ़ते और अपने शरीरके एक-एक अङ्गको छूते हैं।

अक्षरपंक्ति (सं० स्त्री०) एक वैदिक छन्द। वृहती, पंक्ति इत्यादि छन्द वेदमें हैं। इनके चार पादोंके वर्णोंका योग २० होता है।

अक्षरमुख (सं०पु०) १ शिष्य। २ छात्र। ३ तालिब-इल्म।

अक्षरलिपि (सं० स्त्री०) अक्षरोंके लिखनेकी रीति।

सभ्य जातियां अपनी-अपनी भाषामें मनोभाव और स्वर प्रकाश करनेके लिये जो चिन्ह व्यवहार करती हैं, उन्हें ही हम साधारणत: वर्ण या अक्षर कहते हैं। जगत्में सभ्य जातियोंकी संख्या जितनी अधिक है, भाषाभेदसे उनके बीच अक्षरका प्रकार-भेद भी उतना ही अधिक है। सभ्यताकी पुष्टिके साथ वर्णमालाकी सृष्टि होती है।

पहले हम इसी बातकी आलोचना करना चाहते हैं, कि भाषाज्ञानके साथ अक्षर या वर्णमालाकी उत्पत्ति होते भी सबसे पहिले कहां और कैसे वर्ण-मालाकी उत्पत्ति हुई थी।

वर्त्तमान सभ्यताके इतिहासकी आलोचना कर सभी स्वीकार करते हैं, कि ऋग्वैदिक सभ्यता ही जगत्की सबसे पुरानी सभ्यता है। भारतीय आर्य्य उन्हीं वैदिक सभ्योंके वंशधर हैं। देखना चाहिये, कि वैदिक समयमें वर्णमालाकी उत्पत्ति हुई थी या नहीं, और भारतीय अक्षरलिपि किस समय उत्पन्न हुई थी।

पाश्चात्य-मत।

मोक्षमूलर-प्रमुख पाश्चात्य पण्डितोंका कहना यही है, कि सन् ई०से पहलेको ४थी शताब्दिसे पहले भारतमें लिखना कोई बिलकुल न जानता था; फिर इससे हजारो वर्ष पहले वेदके मन्त्र, ब्राह्मण और सूत्रभाग प्रचलित हुए थे। एकमात्र ऋग्वेदके दश ही मण्डलोंमें १०५८० ऋक् और प्राय: १५३८२६ शब्द मिलते हैं। जिस समय लिखना किसीको मालूम न था, उस समय इतने अधिक ऋक् विशुद्ध और सम्पूर्ण छन्दोबद्ध रूपमें कैसे बनाये गये, और इतने दीर्घकाल तक कैसे रक्षित रहे? वह केवल स्मृति द्वारा मुखसे मुखमें चले आये हैं। मोक्षमूलर कहते हैं, कि यह बात सुननेसे विस्मय उत्पन्न होता है; किन्तु विस्मयका कोई कारण नहीं देख पड़ता। भारतीय छात्रोंकी जैसी असाधारण स्मृति-शक्ति और पाठावस्थामें जिस तरहकी शिक्षापद्धति थी, उसकी आलोचना करनेसे फिर सन्देह बाकी न रहेगा। उन्होंने अपनी बातके समर्थनके लिये सन् ई०की ७वीं शताब्दिके अन्तमें लिखी गई और चीन-परिव्राजक इत्सिङ्गकी बताई शिष्यशिक्षाकी पद्धति उद्धृत की है। इत्सिङ्गने भारतीय बालकोंकी शिक्षाका इस प्रकार परिचय दिया है,—"पहले शिशु ४९ अक्षर सीखता, पीछे छठें वर्ष ६ महीनेके बीचमें १०००० युक्ताक्षर अभ्यास करता है। इसमें वह बत्तीस अक्षरात्मक तीन-सौ श्लोक सीख लेता है। पीछे आठवें वर्ष वह पाणिनि-व्याकरण पढ़ता, जिसमें एक हजार सूत्र हैं और जिसकी समाप्तिमें आठ महीने लगते हैं। इसके उपरान्त धातुपाठ और तीन खिलो पढ़ने लगता है। दश वर्षकी अवस्थासे आरम्भ हो तेरह वर्षकी अवस्थाके बीच खिलो पाठ समाप्त होता है; पन्द्रह वर्षकी अवस्था होनेपर पाणिनिका सूत्रभाष्य पढ़ते समय एक घड़ी भी आलस्य करनेसे काम नहीं चलता। उसे रात दिन रटना या पाठ मुखस्थ करना होता है। यह सूत्र-भाष्य सम्पूर्ण आयत्त न कर सकनेसे दूसरे शास्त्रमें अच्छा अधिकार नहीं उत्पन्न होता।" इसी प्रकार शिक्षारीतिका उल्लेखकर इत्सिङ्गने लिखा है, 'इस

भांति पढ़ा हुआ व्यक्ति केवल एकबार पाठ कर दो बड़े ग्रन्थ कण्ठस्थ कर सकता है। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणोंको लक्ष्य कर बताया है, कि वह अपने चारो वेदोंपर अतिशय भक्तिश्रद्धा रखते, जिन चारो वेदोंमें कोई एक लाख श्लोक हैं। चारो वेद काग़ज़ पर नहीं लिखना पड़ते, दूसरोंके मुखसे सुन कर ही मुखस्थ कर लिये जाते हैं। प्रत्येक ही वंशमें ऐसे कितने ही ब्राह्मण हैं, जो वह लाख वेदमन्त्र आवृत्ति कर सकते हैं। मैंने अपनी आंखों ऐसे लोग देखे हैं।' इत्सिङ्गका विवरणी प्रमाणकी भांति उद्धृत कर अध्यापक मोक्षमूलर कहना चाहते हैं, कि उस प्राचीन वैदिकयुगमें शिक्षा की रीति अति सुप्रणालीबद्ध होते भी पुस्तक, ग्रन्थ, चर्म्म, पत्र, क़लम, लिपि या स्याहीका कोई उल्लेख नहीं मिलता। भारतवासी इनका नामतक न जानते थे। उनका साहित्य विशाल था सही; किन्तु वह समुदाय बड़े यत्नसे मुख-मुख रक्षित होता चला आता था।*

फिर किस समय भारतमें अक्षरलिपिकी उत्पत्ति हुई? इसके उत्तरमें मोक्षमूलर बताते हैं, कि आजतक भारतमें जितनी लिपि आविष्कृत हुई हैं, उनमें अशोकलिपि सबसे पुरानी है। अशोकलिपि दो प्रकारकी पाई गई है—एक वह जो दाहनी ओरसे बाईं ओरको लिखी जाती और स्पष्टत: अरमीय (Aramæan) या सेमेटिक अक्षरलिपिसे उत्पन्न हुई है; दूसरी लिपि बांई ओरसे दाहनी ओरको चलती है। यह दूसरी लिपि भारतीय भाषाके प्रयोजनानुसार यथानियम सेमेटिक अक्षरलिपिसे ही परिपुष्ट हुई है। भारतके नाना प्रदेशोंके लोगों और बौद्धाचार्य्योंके हाथ भारतसे बाहर कितने ही दूर देशोंमें जो लिपि छूट पड़ी हैं, उनके समुदायका मूल पूर्वोक्त दूसरे प्रकारकी अक्षरलिपि ही है। सिवा इसके यह भी असम्भव नहीं है, कि अतिप्राचीन कालमें सेमेटिक लिपिसे साफ़ तौरपर तामिल अक्षरलिपि ली गई थी। इस तरह अध्यापक मोक्षमूलर जो युक्ति द्वारा और अक्षरविन्यास देख हमारी अक्षरलिपिको विदेशीय लिपिसे उत्पन्न हुई बताना चाहते, वह कोई नई बात नहीं है। उनसे बहुत पहले सन् १८०६ ई०में सर विलियम जोन्स भारतीय लिपिके सेमेटिक उद्भवका आभास दे गये हैं।

इसके बाद वप्, लेप्सिअस्, बेबेर, बेन्फी, ह्वीट्नी, पट, वेष्टरगार्ड, नर्स, लेनरमण्ट प्रभृति पाश्चात्य पण्डित भी अशोकलिपिके आकारपर निर्भर कर भारतीय लिपिका मूल सेमेटिक लिपि ही बता गये हैं। इन लोगोंके बीच अध्यापक बेबेर साहबके विशेष मतानुसार पुरानी फिनिक लिपि और डिकके मतानुसार पुरानी दक्षिण सेमेटिक और असीरीय लिपिसे भारतीय लिपि निकली है। टेलर प्रभृति कोई-कोई पाश्चात्य पण्डितोंके मतसे भारतीय लिपि दक्षिण-अरबकी किसी सेबीय (Sabian) लिपिसे उद्भूत हुई है; किन्तु आजतक इसके समान कोई पुरानी सेबीय लिपि आविष्कृत न होनेसे अन्तमें उन्होंने यह बात भी कही है, कि भारतीय लिपिका आदि निदर्शन ओमन्, हाड्राम, अरमा, नेवा या दूसरे किसी अज्ञात राज्यसे आविष्कृत हो सकता है। इधर अध्यापक डवसन, टमस, कनिंहम प्रभृति पुरातत्त्वविदोंके मतसे भारत अपनी वर्णमालाके लिये किसी देशका ऋणी नहीं है। डवसनने साफ़-साफ़ लिख दिया है—इसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं, कि भारतवासियोंने आप ही अक्षरोंका उद्भावन किया था। भाषातत्त्वके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयमें हिन्दू सभ्य-जगत्के सबसे बड़े पण्डित थे और वह शब्दशास्त्रका जो अपूर्व्व उत्कर्ष साधन कर गये और स्वर-तानका जो सूक्ष्म पार्थक्य समझ सके, उससे अक्षरोंका उद्भावन एकान्त आवश्यक हो गया था। इसे छोड़ उन्होंने अङ्कशास्त्रके चिह्नगठनमें जो असाधारण प्रतिभा दिखाई थी, वह भी साधारणत: लोगोंमें नहीं मिलती। प्रत्नतत्त्ववित् कनिंहमका कहना है, कि भारतवासियोंके अक्षर मिश्र-देशकी चित्रलिपिकी तरह एकही उपायसे स्वाधीन भावमें बनाये गये हैं। जैसे, खननयन्त्रसे अशोकलिपिका ख, यवसे अन्त:स्थ य, दांतसे द, पाणि-

* Max Müller's, 'India, what can it teach us', p. 207-216.

तलसे प, वीणासे व, लाङ्गल या लङ्गूरसे ल, हाथसे ह, और श्रवणेन्द्रियसे श बना है। इसी तरह दूसरे अक्षरोंकी बनावट भी समझना चाहिये।

इसके बाद केनेडी साहबने प्रकाश किया, कि सन् ई०से पहलेकी ७वींसे ३री शताब्दितक बाबिलनके साथ दक्षिण-भारतका बाणिज्य चला था। फिनिक जाति ही सबसे पहले भारतके साथ बाणिज्यके काममें लगी और उसी समय भारतीय लिपिकी उत्पत्ति हुई।

दोनो पक्षके मतकी आलोचना कर प्रसिद्ध संस्कृत-शास्त्र जाननेवाले डाक्टर बूहलरने सन् १८९८ ई०-में इस तरह प्रकाश किया, कि कनिंहमने भारतीय चित्रलिपिकी जो उत्पत्ति मानी है, वह समीचीन नहीं। दाक्षिणात्यमें भट्टिप्रोलूसे जो लिपि निकली है, उसका पर्य्यवेक्षण करनेसे कभी चित्रलिपिके साथ उसकी बराबरी नहीं की जा सकती। बूहलरने अपना मत समर्थन करनेके लिये लिखा है—

सन् ई० से ८९० वर्ष पहले खोदे गये मेसाके पहाड़में जो सबसे पुराने सेमेटिक अक्षरोंकी ध्वन्यात्मक (Phonetic) लिपि देखी गई, उसके साथ ब्राह्मी लिपिके बहुतसे अक्षरोंका कितना ही सामञ्जस्य रहा है, उनमें 'ह' और 'त' यह दो अक्षर दक्षिण मेसोपोटेमियाके सन् ई० से पहलेकी ८वीं शताब्दिके मध्यभागवाले 'हे' और 'तउ' इन दो फिनिक अक्षरोंसे निकले हैं। इसी तरह 'श' और 'ष' यह दो अक्षर भी सन् ई०-से पहलेकी ६ठीं शताब्दिके अरमीय अक्षरोंसे बने मालूम होते हैं। यह भी अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा, कि साहित्यिक और लिपि-शास्त्रीय प्रमाणसे सन् ई०से पहले पांच-छः सौ वर्षके बीच जो अरमीय लिपि आविष्कृत हुई है, उससे ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। कितने ही विद्वानोंने इस प्रकार मत प्रगट किया है सही, किन्तु यह बात अच्छी तरह समझ पड़ती है, कि भारतभूमिमें पुरानी अरमीय लिपिके अनुरूप आधुनिक स, ष, श, अक्षर बनाये गये हैं। सन् ई० से पहले ७५० और ८९० वर्षके बीच ही भारतमें सेमेटिक अक्षरलिपि प्रवेश लाभ कर सकी होगी। बौद्धोंका बाबेरुजातक पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि बाबिरुसे (Babylon) ही भारतमें बाणिज्य आरम्भ हुआ था। सन् ई०की पहली शताब्दितक पश्चिम-भारतमें भरुकच्छ (भड़ोच) और सूर्पारक (सूपारा) नामक स्थान समुद्र-बाणिज्यके केन्द्र रहे। बौधायन और गौतम धर्मसूत्रमें भी यात्रियोंसे शुल्क या कर लेनेकी व्यवस्था पाई जाती है। ऋग्वेदमें समुद्रयात्राकी बात लिखी है। सिरीय बणिक् बहुत पुराने समयसे ही ईरानकी खाड़ी द्वारा भारतमें बाणिज्य करते आते थे। इसी तरह ईसाके जन्मसे प्रायः ८०० वर्ष पहले यानी कोई २७०० वर्ष हुए आने जानेवाले फिनिकीय (Phœnician) बणिकोंके यत्नसे हो भारतमें सेमेटिक लिपि आई और धीरे-धीरे वहां मिले हुए स्वर-वर्णोंके साथ परिपुष्ट हो सन् ई०की ५वीं शताब्दिमें सर्व्वाङ्गसुन्दर भारतीय लिपि बन गई है।

डाक्टर बूहलरने जो मत प्रकाश किया है, उसे ही आजकल पाश्चात्य प्रत्नतत्वविद् और दूसरे ऐतिहासिक समीचीन बता ग्रहण करते हैं; किन्तु हमने जहांतक आलोचना की है, वहांतक जान पड़ा है, कि जिस प्रमाण और युक्तिबलसे जर्म्मनीके प्रसिद्ध पण्डितने फिनिक लिपिसे भारतीय अक्षरलिपिकी उत्पत्ति मानी है, वह समीचीन बता ग्रहण नहीं किया जा सकता। कारण, फिनिक अक्षरलिपि इतनी असम्पूर्ण और अल्पसंख्यक है, कि उसके द्वारा भारतीय शास्त्रोंकी उच्चारण-प्रक्रिया या लिखन-प्रणाली किसी तरह सिद्ध नहीं हो सकती। उन्होंने दूसरी लिपिके साथ ब्राह्मीलिपिकी जो बराबरी दिखाई है, वह भी हमारी विवेचनामें ठीक नहीं। दोनों लिपि पास-पास रखनेसे आकाश-पातालका भेद जान पड़ता है। विशेषतः भारतवर्षीय ४८ अक्षरोंके बीच दो-एकका सामञ्जस्य देख सब किसी तरह फिनिक अक्षरलिपिकी सन्तति नहीं माने जा सकते। इसके सम्बन्धमें हम अपने युक्ति-प्रमाण आगे लिखते हैं।

वैदिक-वर्णमालाका उत्पत्तिकाल।

बीता हुआ इतिहास घोषणा करता है, कि हजारों वर्ष; यहां तक, कि हिमप्रलयसे पहले ही

आर्य्यसभ्यताका सुबीज अङ्कुरित हुआ। जिस युगमें हिमालयने भूगर्भसे मस्तक ऊपर न उठाया था, जिस युगमें समुच्च आल्प-शैल बहुत ऊंचे पर्व्वतरूपसे न निकला था, और जिस युगमें वर्त्तमान एशिया और अफ्रीका महादेश छोटे-छोटे द्वीपोंके आधार थे, उसी दूर-अतीत युगमें, हमें भूतत्त्वविद्या बताती है, कि पश्चिममें उत्तर-स्कन्दनाभसे पूर्व्वमें उत्तर-अमेरिका-तक आर्य्य-जातिकी 'प्रत्नौकस्' या आदि जन्मभूमि फैल गई थी। आज जो स्थान चिरतुषारमय, सुखी मनुष्यको कष्ट देनेवाला, असह्य और उपादेय फलमूल वृक्षादि उत्पादनके सम्पूर्ण अनुपयुक्त समझा जाता है, वह उत्तर महादेश ही एक समय आर्य्यदेवोंका नन्दन-कानन गिना जाता था।

यह २१००० वर्षसे भी पहलेकी बात है, कि जबतक हिमप्रलय और बरफ़ गिरनेसे आर्य्यभूमि सुमेरुका (Arctic regions) प्राकृतिक विपर्य्यय न हुआ था, तब-तक उस अतीत युगमें एशिया और युरोपका उत्तर शीतल-ग्रीष्म और उष्ण-शीत ऋतुसे मण्डित रहा, यानी उस समय वहां सदा वसन्त बना रहता और मेरु सकल उपादेय फल-मूलका उद्यान जैसा देख पड़ता था। उसी समयसे वैदिक आर्य्योंमें सभ्यताका स्रोत बह रहा था, और उसी समयसे वह यागयज्ञ और ज्योतिषके तत्त्व जानते रहे थे।*

नाना सूत्रोंके सम्पादनकल्पसे ऋषियोंके हृदयमें ज्योतिषको कठिन समस्या उदित हुई थी। वेद देखो। बिना अङ्कविद्या जाने उस समस्याका पूरा होना सम्भवपर न था! विना अङ्कपात कठिन गणना कैसे की जाती? यदि किसी प्रकारका चिह्न या अक्षर-विन्यास न हो, तो अङ्कपात कैसे किया जाये? इसलिये यह बात मानना ही पड़ेगी, कि उस बहुत पुराने युग-से ही वर्ण या अक्षर विशेषकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु यह जाननेका कोई उपाय नहीं, कि कैसी लिपिके साहाय्यसे वह अक्षर या अङ्कपात बनाये गये थे। फिर भी, यह वैदिक मन्त्रोंकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि उस आदि वैदिक युगमें ही नाना वर्णमालाओं और अक्षरोंकी उत्पत्ति हुई थी। बिना नाना वर्ण या अक्षर-समाधान सब वैदिक शब्द समुच्चा-रित होनेकी सम्भावना नहीं।

हिमप्रलयसे पहले जब वैदिक सभ्यता सुप्रतिष्ठित हुई थी, तब यह बात भी साधारण रीतिसे स्वीकार की जाती है, कि वैदिक अक्षरमालाका भी विकाश हुआ था। प्रातिशाख्य या प्रतिशाखाकी वैदिक पठन-पाठन विधिके अनुसार प्रति मन्त्र ही 'स्वरतः' और 'वर्णतः' पाठ करनेका नियम है। इसलिये यह बात ठीक नहीं, कि आदि वैदिक मन्त्र केवल स्वरानुस्यूत ही थे; सब लोगोंको मालूम है, कि वह अक्षरविशिष्ट भी थे। कोई ऐसा प्रबल प्रमाण अवश्य नहीं है, जिस-पर हम ज़ोर देकर कह सकें, कि हिमप्रलयसे पहले सुमेरु-निवासी वैदिक देवर्षि जो मन्त्र पढ़ते थे, वह अवि-कृत आकारसे ही आर्य्यावर्त्त आ पहुंचे और इस समय जो वैदिक मन्त्र पाए जाते हैं, वह सभी हिम-प्रलयसे पहले विद्यमान थे। किन्तु यह तो असम्भव नहीं, कि हिमप्रलयके समय विषम तुषार-समुद्रके तर-ङ्गाघातसे जो आर्य्य बच गये थे, उन्हें श्रुतिविभ्रम न हुआ। उनके वंशधरोंने मेरु (Pamir) और समुच्च हिमालय प्रदेशमें रहते समय उनके मुंहसे ही जा आदिवैदिक मन्त्र सुने थे, वही श्रुति कहे जाकर गण्य हुए हैं। यह बात नहीं, कि देश, काल, पात्र और जलवायुका अवस्था-भेद बदलते समय उस श्रुतिके उच्चा-रणमें कुछ-कुछ अलगाव न हो गया था और स्थान-वि-शेषमें आर्य्यसन्तानोंने उन आदि मन्त्रोंको व्यवहारो-पयोगी न बना लिया था।

वेदके मन्त्रपरिचायक ब्राह्मणग्रन्थमें लिखा है—

"पथ्यास्वस्तिरुदीचीं दिशं प्राजानात्। वाग् वै पथ्या स्वस्तिः। तस्माद्-दीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुद्यते। उदञ्च उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुम्। यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषन्ते इति स्माह। एषा हि वाचो दिक् प्रज्ञाता।"

(शाङ्खायनब्राह्मण ७।६)

अर्थात् उत्तरदिक्को पथ्यास्वस्ति समझते हैं। पथ्यास्वस्ति ही वाक् है। उत्तरदिक्में ही वाक्य प्रज्ञात बताया जाकर कीर्त्तित हुआ करता है। लोग भी उत्तर-दिक्में ही भाषा सीखने जाते हैं। जो उस दिक्से

* B. G. Tilaka's Arctic home in the Vedas, p. 26.

आते, सब लोग उनकी वेदवाणी यह कह सुननेके इच्छुक होते, कि वह बोल रहे हैं। कारण, वह स्थान वाक्यका दिक् बताया जाता और इसके लिये प्रख्यात है।

वह उत्तरदिक् कहां है? वह स्थान काश्मीरसे उत्तर * मेरुके पास है, जहांसे सरस्वती-नदी निकल प्रवाहित हुई है।

ब्राह्मणग्रन्थोंकी तरह पारसीवालोंके आदिधर्म्म-ग्रन्थों अवस्तामें भी 'हरकुइति' या सरस्वती वागुत्पत्तिका स्थान निर्द्दिष्ट की गई है। किन्तु आवस्तिक मतावलम्बियोंने अपने सारस्वत प्रदेशको छोड़ और अनार्य्योंसे भरे सुदूर उत्तर-पश्चिममें फैल स्थानीय प्रभाव और पूर्व्वपुरुषोंके धर्म्मविप्लवहेतु आदि आवस्तिक, वैदिक वाक् या श्रुतिको कुछ-कुछ रूपान्तरित कर डाला है; इसीसे अवस्ता, वेदकी भाषा और उच्चारणमें इतना अलगाव हो गया है। किन्तु आर्य्यावर्त्तके रहनेवाले वैदिक सन्तान सारस्वत-संस्रव न छोड़ और उत्तरदिक्की वही प्राचीन वाक्धारा श्रुतिमें यत्नके साथ रक्षित रख पुराने भारतीय वेदोंको बनाये रखनेमें आज भी समर्थ हुए हैं। इसीसे हमारे वेद आज भी 'श्रुति'के नामसे पुकारे जाते हैं।

भारतीय अक्षरमाला और लिपिकी उत्पत्ति।

भारतीय ज्योतिःशास्त्रके इतिहास-लेखक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् शङ्कर बालकृष्ण दीक्षितने ज्योतिषिक प्रमाण उद्धृत कर दिखाया है, कि शुक्लयजुर्वेदके शतपथब्राह्मणमें आजसे कोई पांच हज़ार वर्ष पहलेका ज्योतिषिक विवरण रहा है, जिसका कितना ही अंश इस समय प्रकाशित हो गया। शतपथब्राह्मणसे भी बहुत पहले यजुःसंहिता और उससे बहुत पहले ऋक्समूह प्रकाशित हुआ था। महाराष्ट्र-पण्डित बालगङ्गाधर तिलकने तैत्तिरीयसंहिताकी आलोचना कर दिखाया है, कि वामन्त विषुवदिन मृगशिरा संक्रमित होने यानी सन् ई० से चार हज़ार वर्ष पहले भारतीय आर्य्यजाति ज्योतिषिक आलोचना करती थी, और ऋक्संहिताका प्राचीनतर ज्योतिषांश गणनाकर देखनेसे स्थिर होगा, कि सन् ई०से छः हज़ार वर्ष पहले हिन्दुओंने कितने ही ज्योतिषिक विषय लिपिबद्ध किये थे। यह बात केवल महामति तिलकने ही नहीं कही है। प्रसिद्ध जर्मन-ज्योतिषी और पुरातत्त्वविद् जकोबी (Jacobi)ने वेदके ज्योतिषांशकी आलोचना कर सिद्धान्त किया है, कि हिन्दुओंने सन् ई०से तीन हज़ार या इस समयसे कोई पांच हज़ार वर्ष पहले ध्रुव-नक्षत्र आविष्कार किया था। ज्योतिष देखो।

इस उद्धृत प्रमाणके बल कहा जा सकता है, कि वेदसंहिता और उसके अन्तर्गत ज्योतिष-सिद्धान्तका संरक्षण करनेके लिये कमसे कम पांच हज़ार वर्ष पहले वैदिक वर्णमाला और किसी प्रकारकी लिपि-पद्धति चल पड़ी थी। कोई-कोई लोग इस जगह यह आपत्ति कर सकते हैं, कि वेदका कोई अंश यदि लिखा हुआ होता, तो उसका नाम श्रुति कैसे रखा जाता, और वेदसंहिता या पुराने किसी वैदिक ग्रंथमें लिपि या [illegible] प्रकारके लिपिवाचक शब्दका प्रमाण क्यों न मिलता।

हम पहले ही कह चुके हैं, कि हिमप्रलय उपस्थित होनेपर आर्य्यसन्तानोंने आदि वास छोड़ और श्रुतिधारण किये हुए दक्षिणक और सरपस (पौराणिक विन्दुसर और वर्त्तमान सरीकुल) ह्रदके पास पहुंच उपनिवेश स्थापन किया था, जो पीछे वैदिक और आवस्तिक जातिके निकट "प्रत्नोकम्" या प्राचीन वासभूमि गिना गया। यह ऋक्संहिता हीसे जाना जाता है, कि वेदके कितने ही मन्त्र इस स्थानमें लिखे गये और इसी स्थानसे वैदिक आर्य्योंने सिन्धु, शतद्र, आपया, गङ्गा और सरस्वतीसे प्रवाहित पञ्चनद और सारस्वत भूभागमें पहुंच उपनिवेश स्थापन किये थे।

* शाङ्खायन-ब्राह्मणके भाष्यकार विनायक-भट्टने लिखा है,—'प्रज्ञाततरा वागुद्यते काश्मीरे सरस्वती कीर्त्त्यते।' इसी तरह उन्होंने काश्मीर ही सरस्वतीका स्थान बताया है। मत्स्यपुराणके मतसे सरस्वतीका उत्पत्ति-स्थान विन्दुसर (१२०।६४) है, जिसे आजकल सरीकुल ह्रद कहते हैं। एक समय इस सरीकुल ह्रदतक काश्मीरदेश फैला था। इसके आर्य्य-जातिकी वैदिकी भाषा या वाक्-शिक्षाका स्थान कहे जानेसे सरस्वतीका दूसरा नाम वाक् या भाषा पड़ा है।

आर्य्यसन्तान जो "श्रुति" धारण कर भारतमें घुसे थे, [आर्य्य शब्द देखो।] उसी ऋक्संहितामें (१०।७१।४) हमें ऐसे मन्त्र मिलते हैं,—

"उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः॥"

इस कहे हुए ऋक्का भावार्थ यह है—कोई-कोई लोग वाक्यको देखकर भी नहीं देखते हैं। फिर, दूसरे लोग वाक्य सुनकर भी कान नहीं देते। कुछ लोगोंके सुननेपर भी उनके सामने वाक्य बिना सुने जैसे रहते हैं, यानी सुनकर भी वह समझ नहीं सकते। कामयमाना रमणी शोभनवस्त्रादिसे विभूषित हो अपने पतिको जैसे देह समर्पण करती है, वाक्य भी वैसे ही (पूर्व्वोक्त) सिवा दो प्रकारवाले लोगोंके अन्य एक प्रकारके लोगोंको ही अपने अङ्ग समर्पण करता है।

उद्धृत प्रमाणमें मन्त्रके दर्शन, श्रवण और मूर्त्ति परिग्रहसे क्या हम नहीं समझ सकते, कि अज्ञ, विज्ञ और मन्त्रसिद्ध यही तीन प्रकारके पाठक थे, और इसीके साथ दर्शनकी विषयीभूत श्रुति और मन्त्रमूर्त्ति या मूर्त्तिविशिष्ट लिपि इन तीनोंका ही आभास पाया जाता है? कोई अक्षर या चिन्ह न होनेसे वाक्य कैसे देखा जा सकता है? संहिताका अर्थ ब्राह्मणमें कितना ही स्पष्ट कर दिया गया है। ऋग्वेदके ऐतरेयब्राह्मणमें (३।३।४) लिखा है:—

"ते वा इमे इतरे छन्दसी गायत्री मभ्यवदेतां वित्तं नवाक्षराण्यनु पर्यागुरिति नेत्यब्रवीद् गायत्री यथावित्त मेव न इति ते देवेषु प्रश्न मैतां ते देवा अब्रुवन् यथावित्त मेव व इति तस्माद्धाप्ये तर्हि वित्यां व्याहुर्यथावित्त मेव न इति ततो अष्टाक्षरा गायत्र्यभवत्र्यक्षरा त्रिष्टुबेकाक्षरा जगती साष्टाक्षरा गायत्री प्रातस्सवन सुदयच्छन्नाशक्नोत् त्रिष्टुप् त्र्यक्षरा सुयन्तुं तां गायत्र्य ब्रवीदायान्यपि येऽवास्त्विति सा तथेत्यब्रवीत् त्रिष्टुप् तां वै मैतैरष्टाभिरक्षरैरुपसन्धेहीति तथेति ता मुप समदधादेतद्वै तद्गायत्र्यै मध्यन्दिने यन्मरुत्वतीयस्योत्तरे प्रतिपदो यश्चानुचरः सैकादशाक्षरा भूत्वा माध्यन्दिनं सवन सुदयच्छन्" इत्यादि।

यानी उन्हीं दूसरे दो छन्दों (त्रिष्टुप् और जगती)-ने गायत्रीके पास पहुंच कहा,—नहीं, हममें जिसने जो पाया है, वही उसका रहे। इसके बाद उन्होंने देवताओंसे जाकर प्रश्न उपस्थित किया। वही बात देवताओंने भी कही—तुममें जिसने जो पाया है, वह उसीका रहे। उस समय गायत्रीके आठ अक्षर, त्रिष्टुभके तीन अक्षर और जगतीका एक अक्षर हुआ। वही अष्टाक्षरा गायत्री प्रातःसवनने निर्व्वाह की थी, किन्तु त्र्यक्षरा त्रिष्टुप् माध्यन्दिन-सवन निर्व्वाह न कर सके। गायत्रीने उनसे कहा,—मैं आती हूं, इस जगह मुझे भी स्थान मिले। त्रिष्टुप्ने कहा,—यही होगा; फिर भी, तुम मुझे उन्हीं आठ अक्षरोंमें मिला लो। गायत्रीने ऐसा ही हो कहकर उन्हें आठ अक्षरोंमें मिला लिया। इसके बाद माध्यन्दिन-सवनमें मरुत्वतीय शस्त्रके जो दो उत्तरवर्त्तीय प्रतिपत् और जो अनुचर हैं, वह गायत्रीको दिये गये। त्रिष्टुप्ने भी एकादशाक्षरा हो माध्यन्दिन-सवन निर्व्वाह किया। ऐतरेयब्राह्मणके दूसरे स्थलमें भी (१।१।५) देखा जाता है—

"अनुष्टुभौ स्वर्गकामः कुर्वीत द्वयोर्वा अनुष्टुभोश्चतुःषष्टिरक्षराणि।"

जो स्वर्ग जानेकी इच्छा रखता हो, उसे दो अनुष्टुभ् व्यवहार करना चाहिये। दो अनुष्टुभ्में ६४ अक्षर होते हैं,—

"द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप् चत्वारोऽष्टाक्षराः समाः।" (ऋक् प्रा० १६।२७)

अर्थात् प्रति पादमें आठ अक्षरके हिसाबसे चार पादमें बत्तीस अक्षर होनेपर अनुष्टुप् छन्द बनता है।

ऐतरेय-ब्राह्मणके दूसरे स्थानमें भी लिखा है—

"तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायन्त अकारः उकारः मकारः इति तानेकधा समभवत् तदेतत् ओमिति।"

यानी उसके भीतर तीन वर्ण उत्पन्न हुए—अकार, उकार और मकार; इन्हीं तीनोंके एकमें मिलनेसे ओम् बनता है।

इस प्रकारकी युक्तिसे अक्षर शब्दकी स्पष्ट ही वर्णवाचकता प्रतिपन्न होती है। सिवा इसके ऐतरेयब्राह्मणमें (१।४।४) और भी कहा गया है—

"द्यौरित्येतैरेवैनं तत् कामैः समर्द्धयतीति नु पूर्वं पटलं।"

ऋग्वेदके आश्वलायन-श्रौतसूत्रमें भी उद्धृत प्रमाण मिलता है। (आश्वलायनश्रौ० ४।६।३)

यहां 'पूर्व्व पटल' ग्रन्थांशवाची है; इसलिये मानना पड़ेगा, कि उस अतीव प्राचीनकालमें भी ग्रन्थ-विभाग था और वृक्षत्वक् या वृक्षके बकले प्रभृति किसी चीज़पर ग्रन्थ लिखे जाते थे।

ऋग्वेदमें ऐसा स्पष्ट प्रमाण होते भी, केवल पाश्चात्य

पण्डित ही नहीं; इस देशके भी अङ्गरेजी-पढ़े कितने ही अभिज्ञ पण्डितोंको विश्वास है, कि वेद मुख-मुख ही चला आया है, वैदिक युगमें लिखनेकी चाल न थी। इसी कारण वेदमें लेखके उपकरण या लिपिका कोई उल्लेख नहीं। यहांतक, कि वह कुछ भी कहने-सुननेसे वैदिक आर्य्योंका लिपि-व्यवहार स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं होते। इस प्रकारकी उक्ति क्या प्रलाप वाक्य नहीं, कि जिन्होंने कई हज़ार वर्ष पहले नाना विषयोंमें यथेष्ट उन्नति की और इसमें सन्देह होते, कि उस समय शिक्षा-दीक्षामें जिनका समकक्ष कोई था या नहीं, वह पढ़ना न जानते और न लिख ही सकते थे, वह निरक्षर (unlettered) थे और उन्हें लिखना *बिलकुल मालूम न था?

हमने पहले ही बता दिया है, कि ऋग्वेदके समय अक्षर थे, वर्ण थे और मन्त्रमूर्त्ति भी कितने ही लोगोंको जानी थी। शुक्लयजुर्व्वेद (१५।४)में लिखा है:—

"अक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दः विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः"।

इस जगह भाष्यकार महीधरने क्षुरोभ्रजश्छन्दका अर्थ यों किया है,—

'क्षुर विलेखन-खननयोः क्षुरति विलिखति व्याप्नोति सर्व्वमिति'।

यानी क्षुरका अर्थ विलेखन और खनन है। विलेखन और खनन द्वारा अक्षरबद्ध जो छन्द भ्राजमान या प्रकाशित होता है, उसे क्षुरभ्रजश्छन्द कहते हैं। इस क्षुरभ्रज शब्दको देख क्या मनमें नहीं आता, कि इस समय उड़ीसेमें खन्ती नामक जैसी क्षुरशलाका होती है, वैदिककालमें वैसी ही लिखनेकी कोई लेखनी थी और क़लमसे छन्द लिखे जाते और वैदिक आर्य्य किसी प्रकारकी अक्षरलिपिका व्यवहार जानते थे?

पाश्चात्य पण्डित वेदके निरुक्त और प्रातिशाख्यको बुद्धदेवका पूर्ववर्त्ती यानी सन् ई०से पहलेकी ६ठीं शताब्दिका ग्रन्थ मानते हैं। किन्तु निरुक्तसे पहले पाणिनि विद्यमान थे; कारण, निरुक्तकार यास्कने पाणिनिका मत उद्धृत किया है। पाणिनि देखो।

पाणिनिने लिपि, लिवि, लिपिकर, ग्रन्थ, वर्ण, अक्षर प्रभृति जो बहुतसे शब्द प्रयोग किये हैं, उनसे-यह निःसन्देह प्रमाणित हो गया है, कि उनके समयमें अक्षरलिपि विद्यमान थ। इतनी ही बात नहीं; पाणिनि यह भी उल्लेख कर गये हैं, कि उनके समयमें "शिशुक्रन्दीय" नामक एक बालबोधक पुस्तक प्रचलित थी।

वेदके प्रातिशाख्यकी रचना पाणिनिसे पहलेकी है। ऐसे स्थलमें अन्ततः सन् ई०से पहलेकी १०वीं शताब्दिसे भी पहले प्रातिशाख्यका समय मानना पड़ेगा। वेदकी विभिन्न शाखाओंके पठन-पाठनमें जो कुछ व्यतिक्रमकी सम्भावना होती थी, वही दोष दूर करनेके लिये प्रातिशाख्य बनाया गया। पाणिनिका सूत्र है—"अदर्शनं लोपः।" (पा १।१।६०)

यानी किसी अक्षरके अदर्शनको लोप कहते हैं। इसी लोपके सम्बन्धपर सुप्राचीन प्रातिशाख्यमें भी बहुतसे सूत्र मिलते हैं:—

"लोप उदःस्थास्तम्भोः सकारस्य।"

(अथर्व्वप्रातिशाख्य २।१।१। वाजसनेयप्रा० ४।९५, तैत्तिरीयप्रा० ५।१४)

"अन्तस्थोपाम लोपः।" (अथर्व्वप्रा० ३।२२, ऋक्प्राति० ४।५, वाजसनेयप्राति० ४।१, तैत्तिरीयप्राति० १३।२)

वेद केवल श्रोतव्य होनेसे लोपकी सार्थकता कभी नहीं होती। इसके बाद रेफका प्रयोग होता है। ऋक्, यजुः, अथर्व्व प्रभृति सभी प्रातिशाख्योंमें रेफका नियोग और रेफके पर व्यञ्जनका द्वित्वविधान बताया गया है। (ऋक्प्राति० १५, वाजसनेयप्रा० १।१०४, अथर्व्वप्रा० १।५८)

पुष्पऋषि-प्रणीत सामप्रातिशाख्यमें भी ऐसे ही लोप, रेफ और अवग्रहकी बात पाई जाती है।

वेद यदि केवल श्रुतिमें पर्य्यवसित रहता, तो ऐसा नियम विहित होनेका कोई कारण न था, कि वेदमें रेफ, अवग्रहका प्रयोग और लोप कहां होगा, और द्वित्व कहां किया जायगा।

तैत्तिरीयसंहितामें देखते हैं, कि उसी बहुत पुराने समयमें व्याकरण बनाया गया था, और इन्द्र ही सबसे पहले शाब्दिक थे। यथा—

"वाक् वै पराची अव्याकृता अवदत्। ते देवा अब्रुवन् इमां नो वाचं व्याकुरु। सोऽब्रवीत् वरं वृणै मह्यं चैव वायाव च सह गृह्यता इति। तस्मादैन्द्र-

* Isaac Taylor's Alphabet Vol. I. p. 2-3.

वायव: सहग्राह। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। तस्मादियं व्याकृता वागु-द्यते तदेतद्‌व्याकरणस्य व्याकरणत्वं॥" *

भावार्थ यों है—पुरातनी वाक् यानी वेदरूप वाक्य पहले मेघगर्ज्जनकी तरह अखण्डाकार आविर्भूत था। यह कोई समझता न था, कि उसमें कितना वाक् और कितना पद है। तब देवताओंने वाक्यप्रकाश करनेकी प्रार्थना की। इन्द्रने वेदरूप वाक्यको बीचसे तोड़कर वाक्य, पद और प्रत्येक पदकी प्रकृतिको स्पष्ट किया था। वाक्य, पद और पदके अन्तर्गत प्रकृति-प्रत्ययनिष्पन्न शब्दको विशेष रूपसे व्यक्त करना-ही व्याकरणका काम है। जिस समय व्याकरण था, उस समय वर्णलिपि होनेकी ही बात है। वेदसे और भी दो-एक प्रमाण उद्‌धृतकर दिखाये देते हैं—

"एका च दश च दश च शतञ्च शतञ्च सहस्रञ्च सहस्रं चायुतञ्च चायुतं च नियुतञ्च नियुतञ्च प्रयुतं चार्बुदञ्च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्च।" (वाजसनेय-संहिता १७।२)।

परार्द्ध संख्या समझानेमें केवल श्रुतिका साहाय्य लेनेसे काम न चलेगा, वरं अङ्कपात करके दिखाना होगा।

"यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुर:।
अत्रयस्तमन्वविन्दन् नह्यन्ये अशक्नुवन्॥" (ऋक्‌संहिता ५।४०।९)

मतलब यह है, कि असुर राहु अपनी छायासे सूर्य्यको जो विद्ध करता है, वह वेध अत्रियोंको ही मालूम था, दूसरे ऋषि उसे जान न सके।

पूर्वोक्त ऋक्‌से सहजमें ही समझ पड़ेगा, कि अत्रि ही ग्रहण-गणनाके आदि गुरु हैं। हमारी बुद्धि यहांतक नहीं पहुंच सकती, कि ग्रहवेध मुख-मुखसे हो सकता है।

ऊपर कहे हुए प्रमाणसे वैदिक युगमें यदि अक्षर-लिपिकी विद्यमानता स्वीकार की जाये, तो गुरुमुखसे सुनकर मुख-मुख वेदाभ्यास करनेका नियम क्यों रहा है? इस तरह, कि सन् ई०की ८वीं शताब्दिमें चीन-पण्डित इत्‌सिङ्गने भारत आ और अपनी आंखों देख-भालकर भी ऐसे वेदाध्ययनकी बात क्यों न लिखी?

नियम ऐसा ही था, कि धर्म्मशास्त्र गुरुमुखसे सुनकर शिष्य कण्ठस्थ करेगा। केवल वेद हीकी बात नहीं. इत्‌सिङ्गका विवरण पढ़नेसे हम जान सकते हैं, कि बौद्ध-समाजमें भी इसी तरह धर्म्मग्रन्थ गुरुमुख-से सुन कर कण्ठस्थ करनेकी रीति थी।*

पढ़ने और पढ़ानेकी चाल ऐसी रहते भी इसका प्रमाण मिलता है, कि वेद लिपिबद्ध होते या लिखे जाते थे। वेदके निरुक्तकार यास्कने लिखा है,—

"साक्षात्कृतधर्म्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उप-देशेन मन्त्रान् सम्प्रादुपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषु-र्वेदञ्च वेदाङ्गानि च॥" (निरुक्त १।६।५)

जिन्होंने धर्म्मका साक्षात्कार या दर्शनलाभ किया है, वही सब ऋषि हैं, जिन्होंने धर्म्मका साक्षात्कार लाभ न किया यानी श्रुतर्षिवालोंको उपदेश द्वारा मन्त्र प्रदान किये, वही श्रुतर्षि हैं। श्रुतर्षियोंने उपाध्याय-रूपसे उपदेश द्वारा 'ग्रन्थत:' और 'अर्थत:' मन्त्रोंकी शिक्षा प्रदान की थी। उन्होंने फिर, शिष्यको अर्थ-ग्रहणमें असमर्थ देख और इससे खिन्न हो समझानेके लिये यह 'ग्रन्थ' (निघण्टु), वेद और वेदाङ्ग सङ्कलन किया। किसके द्वारा वह वेद वेदाङ्ग सङ्कलित हुआ? इस विषयमें निरुक्तटीकाकार दुर्गाचार्य्यने लिखा है,—

"सुखग्रहणाय व्यासेन समाम्नातवन्त:। ते एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। एकशतधा आध्वर्य्यवम्, सहस्रधा सामवेदम्। नवधा आथर्वणम्। वेदाङ्गान्यपि। तद्‌यथा,—व्याकरणमष्टधा, निरुक्तं चतुर्द्दशधा इत्येवमादि। एवं समाम्ना-सिषुर्भेदेन ग्रहणार्थम्। कथं नाम? भिन्नान्येतानि शाखान्तराणि लघूनि सुखं गृह्णीयुरिति शक्तिहीना अल्पायुषो मनुष्या:,—इत्येवमर्थं समाम्नासिषुरिति"।

सहजबोध्य होनेके लिये व्याससे उन्होंने वेद सङ्कलन कराये। (उनमें) बहुऋक्‌युक्त ऋग्‌वेद २१शाखा, अध्वर्युके कार्य्यसे सम्बन्ध रखनेवाला यजु-र्व्वेद १०१ शाखा, सामवेद १००० शाखा और अथर्ववेद ९ शाखामें विभक्त हुआ। वेदाङ्ग भी इसी तरह बांटा गया था, जैसे-व्याकरण ८ भाग, निरुक्त १४ भाग। ऐसे सङ्कलनका क्या कारण है? इस

---

* 'अस्य पराची पुरातनी वाक् वेदरूपिणी अव्याकृता मेघस्तनितवद खण्डाकारा अविदितपदवाक्यप्रभेदेति यावत्। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य विच्छिन्न एतावदिदं वाक्यं वाक्ये चैतानि पदानि पदेषु चैता: प्रकृतय: एते च प्रत्यया इत्येवमवक्रमणं अखण्डया वाचो विभेदनं कृत्वेत्यादि '(सायणभाष्य)

* Max Müller's India, what can it teach us ? p. 311.

तरहकी अलग-अलग और छोटी छोटी-शाखा सहजमें ही शक्तिहीन और अल्पायु मनुष्य ग्रहण कर सकेगा।*

महाभारतके यह कई वचन पढ़कर फिर किसीको इस बातमें सन्देह न रहेगा, कि वेद ग्रन्थोंमें लिपिबद्ध होते थे—

"यदेतदुक्तं भवता वेदशास्त्रनिदर्शनं।
एवमेतद्यथा चैतन्निगृह्णाति तथा भवान्॥
धार्यते हि त्वया ग्रन्थ उभयोर्वेदशास्त्रयोः।
न च ग्रन्थस्य तत्त्वज्ञो यथा तत्त्वं नरेश्वर॥
यो हि वेदे च शास्त्रे च ग्रन्थधारणतत्परः।
भारं स वहते तस्य ग्रन्थस्यार्थं न वेत्ति यः॥
यस्तु ग्रन्थार्थतत्त्वज्ञो नास्य ग्रन्थागमो वृथा।"

(शान्तिपर्व्व ३००।११-१४)

(वशिष्ठ जनकको सम्बोधन कर कहते हैं) आपने वेद और धर्म्मशास्त्रका जो यह निदर्शन कहा, और मनही मन जो धारणा की, वह ऐसी ही है यानी ठीक नहीं। आपने वेद और धर्म्मशास्त्र दोनोंही ग्रन्थ पढ़े, किन्तु उनका यथावत् अर्थ न समझ सके। जो व्यक्ति वेद और धर्म्मशास्त्र ग्रन्थ पढ़नेमें अनुरक्त हो, उनका तत्त्व यथावत् समझ न सका, उसका ग्रन्थ अभ्यास किसी कामका नहीं। जो ग्रन्थका अर्थ भली-भांति ग्रहण न कर सका, उसके पक्षमें ग्रन्थका भार-वहन ही सार है। फिर, जो ग्रन्थका अर्थ यथारूपसे लगा सकता है, उसका अभ्यास विफल नहीं होता।

अब हम निःसन्देह देखते हैं, कि अति पूर्वकालसे ही श्रुति और धर्म्मशास्त्र लिपिबद्ध और 'ग्रन्थ' कहे जाकर परिचित होते चले आते हैं। इसीसे मनुसंहिता (७।४३)की टीकामें कुल्लूकभट्टने लिखा है—

"त्रिविद्याकपाविद्या। [illegible]"

रघुनन्दनने भी बृहस्पतिका प्राचीन वचन उद्धृत किया है,—

"षाण्मासिकेऽपि समये भ्रान्तिः संजायते नृणाः।
धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढान्यतः पुरा।" (बृहस्पति)

अर्थात् छः महीनेके बाद लोग भूल जाते हैं, इसीसे विधाताने पुराकालमें अक्षर बना पत्रनिबद्ध किया था।

इसका भी प्रमाण पाया गया है, कि बहुत पुराने समयसे ही भारतमें सम्भ्रान्त स्त्री-पुरुष दोनों ही अक्षर लिपिका अभ्यास करते रहे हैं। वाल्मीकि रामायण पढ़नेसे जाना जा सकता है, कि सर्वशास्त्रज्ञ महावीर हनूमान्ने अशोकवनमें पहुंच सीताको देखा और अपना और रामका परिचय देकर भी जब वह सीताका सन्देह दूर न कर सके, तब उन्होंने सीताको विश्वास दिलानेके लिये रामनामाङ्कित एक अँगूठी निकाल कर दिखाई थी।

"वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्।" (सुन्दरकाण्ड ३६।२)

उद्धृत श्लोक प्रक्षिप्त बताकर नहीं उड़ाया जा सकता ; कारण, सभी पुराने टीकाकारोंने इस श्लोकको प्रतिष्ठित किया है। रामनामाङ्कित अँगूठीपर ही सुन्दरकाण्डकी भित्ति स्थापित है। इसलिये मानना पड़ेगा, कि यह श्लोक खास वाल्मीकिका बनाया है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्यसूत्रमें पूर्वतन आचार्य्यरूपसे वाल्मीकिका नाम रखा गया है। इसे स्थलमें इसका स्पष्ट आभास मिलता है, कि वाल्मीकिके समय यानी वैदिक युगके अन्तिम भागमें कमसे कम सन् ई०से पहलेकी १०वीं शताब्दिसे पहले भारतकी शिक्षित स्त्रियोंको भी अक्षरलिपिका ज्ञान था। यह लिखना इस जगह आवश्यक नहीं, कि बहुत पुराने वैदिक युगसे ही भारतमें स्त्रीशिक्षा प्रचलित थी। इसलिये इस

---

* साक्षात्कृतो येर्धर्मः साक्षाद् दृष्टः प्रतिविशिष्टेन तपसा। त इमे साक्षात्कृतधर्माणः। किं पुनस्ते इति। उच्यते—ऋषयः, ऋषन्ति अमुष्मात् कर्मण एवमर्थवता मन्त्रेण संयुक्तादमुना प्रकारेणैवंलक्षणफलविपरिणामो भवतीत्यृषयः। ऋषिर्दर्शनादिति वक्ष्यति। तदेतत् कर्म्मणः फलविपरिणामदर्शनमौपचारिकां वृत्तीमाश्रित्योक्तं साक्षात्कृतधर्म्माण इति। न हि धर्म्मस्य दर्शनमस्ति; अव्यक्तापूर्वो हि धर्मः। आह—किं तेषामिति उच्यते—तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्म्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्तसम्प्रादुः। ते ये साक्षात्कृतधर्म्माणस्तेऽवरेभ्योऽवरकालीनेभ्यः शक्तिहीनेभ्यः श्रुतर्षिभ्यः। तेषां हि श्रुत्वा ततः पश्चाद्दषित्वमुपजायते न यथा पूर्वेषां साक्षात्कृतधर्मणां श्रवणमन्तरेणैव। आह—किं तेभ्य इति। तेऽवरेभ्य उपदेशेन शिष्योपाध्यायिकया वृत्त्या मन्त्रान् ग्रन्थतोऽर्थतश्च सम्प्रादुः सम्प्रदत्तवन्तः। तेऽपि चोपदेशेनैव जगृहुः। ...उपदेशाय उपदेशार्थं। कथं नाम उपदिश्यमानमेते शक्नुयुर्ग्रहीतुमित्येतमधिकृत्य ग्लायन्तः खिद्यमानास्त्वनुगृह्णन्ति तदनुकम्पया तेषामायुषः सङ्कोचमवेक्ष्य कालानुरूपाञ्च ग्रहणशक्तिम् विल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं गवादिदेवपत्न्यन्तं समाम्नातवन्तः। किमेतमेव नेत्युच्यते।"

युक्तिका समर्थन किसी तरह किया जा नहीं सकता, कि सन् ई०से पहलेकी ८वीं शताब्दिके बाद फिनिक (Phœnician) नामक वणिकोंसे भारतवासियोंने अक्षरज्ञान प्राप्त किया था।

सन् ई०से पहलेकी ६ठीं शताब्दिमें शाक्यबुद्धका अभ्युदय हुआ। उनके निर्वाण प्राप्त होनेसे कुछ ही पीछे उनके धर्म्मोपदेशोंकी रक्षा करनेके लिये उनके प्रधान-प्रधान शिष्योंने इकट्ठा हो पहला बौद्धसङ्घ आह्वान किया। फ्रान्सीसी पण्डित फूको (Foucaux) और राजा राजेन्द्रलाल मित्र महाशयने ललितविस्तर-की समालोचनाके समय लिखा था, कि ललित-विस्तरमें जो गाथा हैं, वह इसी समय (सन् ई०से पहिलेकी ६ठीं शताब्दिमें) बनाई और संग्रह की गई थीं।* उन गाथाओंमें इस तरह वर्णन किया गया है—

> "सा गाथलेखलिखिते गुणअर्थयुक्ता
> या कन्य ईदृश भवेन्मम तां वरेथा:।" (ललितविस्तर १२ अ०)

(शाक्यसिंहने कहा) जो कन्या गाथालेख लिखने और गाथाका अर्थ समझनेमें चतुर होगी, उससे मैं विवाह करूंगा।

कही हुई गाथासे क्या हम नहीं जान सकते, कि ढाई हज़ार वर्ष पहले इस देशमें लिपिज्ञानकुशला महिलाओंका भी अभाव न था। यह बात सहज ही अनुमेय है, कि ढाई हज़ार वर्ष पहले जहां कन्या लिखनेमें निपुण न होनेसे राजकुमारकी पत्नी बननेके योग्य न समझी जाती थी, उस देशके लिये अक्षर-लिपिकी चर्चा कितनी पुरानी है। ललितविस्तरकी गाथामें लिपिशाल † और लिपिशास्त्रका ‡ उल्लेख होनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि उस पुराने समयमें भी लिपि सिखानेको पाठशालाएं और नाना देशीय लिपिज्ञानके उपयुक्त लिपि-शास्त्र (Paleography and Epigraphy) प्रचलित था।

ब्राह्मी प्रभृति लिपियोंका उत्पत्ति-काल।

इस समय यह आलोच्य है, कि जिस प्राचीन कालकी बात चल रही है, उस समय भारतमें कैसे अक्षर प्रचलित थे।

पूर्व्वोक्त ललितविस्तरमें चौंसठ प्रकारकी लिपिका उल्लेख देख पड़ता है। यथा—

१ ब्राह्मी, २ खरोष्ठी, ३ पुष्करसारी, ४ अङ्ग, ५ वङ्ग, ६ मगध, ७ माङ्गल्य, ८ मनुष्य, ९ अङ्गुलीय, १० शकारि, ११ ब्रह्मवल्ली, १२ द्राविड़, १३ कनारी, १४ दक्षिण, १५ उग्र, १६ संख्या, १७ अनुलोम, १८ अर्द्धधनु, १९ दरद, २० खास्य, २१ चीन, २२ हूण, २३ मध्याक्षरविस्तर, २४ पुष्प, २५ देव, २६ नाग, २७ यक्ष, २८ गन्धर्व्व, २९ किन्नर, ३० महोरग, ३१ असुर, ३२ गरुड़, ३३ मृगचक्र, ३४ चक्र, ३५ वायुमरुत्, ३६ भौमदेव, ३७ अन्तरीक्षदेव, ३८ उत्तरकुरुद्वीप, ३९ अपरगौड़ादि, ४० पूर्वविदेह, ४१ उत्क्षेप, ४२ निक्षेप, ४३ विक्षेप, ४४ प्रक्षेप, ४५ सागर, ४६ वज्र, ४७ लेख-प्रतिलेख, ४८ अनुद्रुत, ४९ शास्त्रावर्त्त, ५० गणनावर्त्त, ५१ उत्क्षेपावर्त्त, ५२ विक्षेपावर्त्त, ५३ पादलिखित, ५४ द्विरुत्तरपदसन्धि, ५५ दशोत्तरपदसन्धि, ५६ अध्याहारिणी, ५७ सर्वभूतसंग्रहणी, ५८ विद्यानुलोम, ५९ विमिश्रित, ६० ऋषितपस्तप्ता, ६१ धरणीप्रेक्षण, ६२ सर्वौषधिनिष्यन्दा, ६३ सर्वसारसंग्रहणी और ६४ सर्वभूतरुतग्रहणी। (ललितविस्तर १० अ०)

जिस ललितविस्तरमें पूर्व्वोक्त लिपिमालाका नाम उद्धृत हुआ है, उसी ग्रंथका चू-फ-लन्‌ने सन् ६९ ई०के समय चीन-भाषामें अनुवाद किया था।* ऐसे स्थलमें मूल ग्रंथके सब जगह फैलने और इसके बाद चीनदेश पहुंचनेमें अल्प समय न लगा होगा। पाश्चात्य और इस देशके राजा राजेन्द्रलाल मित्र-प्रमुख

---

* Dr. Râjendralal Mitra's Lalita Vistara, Intro. p. 56.

† "शास्त्राणि यानि प्रचरन्ति च देवलोके
संख्या लिपिश्च गणनाऽपि च धातुतन्त्र:।
ये शिल्पयोगपृथु लौकिक अप्रमेया
तेष्वे षु शिक्षितु पुरा बहुकल्पकोट्य:।
किन्तु जनस्य अनुवर्त्त नतां करोति
लिपिशालमागतु सुशिक्षितशिक्षणार्य।" (ललितविस्तर १० अ०)

‡ "लोकोत्तरेषु चतु: सत्यपथे विधिज्ञो हेतु प्रतीत्यकुशलो यथ सम्भवति। यथ चानिरोधचयु संस्कृतुनीतिभावस्तस्मिन् विधिज्ञ: किमथो लिपिशास्त्रमात्रे॥" (ललितविस्तर १० अ०)

* Beal's Romantic Legend of Sâkya Buddha, Introduction.

पण्डितोंने ललितविस्तरको सन् ई०से पहलेकी दूसरी शताब्दिका ग्रन्थ माना है। किन्तु हम इससे भी पुराना समझते हैं। सम्राट् अशोकके यत्नसे जैसे बौद्ध-धर्म्म फैलानेके लिये पश्चिममें यूनान, उत्तरमें मङ्गोलिया, पूर्व्वमें कम्बोज और दक्षिणमें लङ्कातक धर्म्माचार्य्य भेजे गये, वैसे ही सभ्य जगत्के प्राय: सभी स्थानोंसे लोग आ अशोकके साम्राज्यमें नाना कार्य्योपलक्ष्यसे बसने लगे थे,—हम नहीं समझते, कि इस समय भारतमें नाना विदेशीय संस्रवोंसे जितने प्रकारकी लिपि या अक्षरमाला प्रचलित हुई थी, पहले और किसी समय उतने प्रकारकी लिपि या अक्षरमाला देखनेमें आई हो।* भारतीय बौद्धोंके इसी सुवर्णयुगमें यहां जितने प्रकारकी लिपि प्रचलित हुई थी, सम्भवत: ललितविस्तरके बनानेवालेने उतने प्रकारकी लिपिका उल्लेख किया है।

लङ्का, ब्रह्म और श्याम देशवाले बौद्ध ग्रन्थोंके मतसे सन् ई०से ५४३ वर्ष पहले बुद्धदेवका निर्वाण और निर्वाणसे २१८ वर्ष पीछे यानी सन् ई०से ३२५ वर्ष पहले अशोकका साम्राज्याभिषेक कार्य्य सम्पन्न हुआ था। [प्रियदर्शी शब्दमें विस्तृत विवरण देखना चाहिये।]

इसके बाद अशोककी राजधानीमें ६४ प्रकारकी लिपिका चलना कुछ विचित्र नहीं। इस समयके यूनानी नियर्खूस (Nearchus)की विवरणीमें लिखा है, कि भारतवासी रूईके वस्त्र या काग़ज़पर अक्षरयोजना करते थे। उनसे कुछ समय पीछे यूनान-दूत मेगेस्थिनिस् मगधराज्यकी वर्णनाके उपलक्ष्यमें लिख गये हैं, कि भारतवासी १० ष्टेडियाम् दूर शाखापथ और उसके अन्तर्वर्त्ती स्थानकी दूरी बतानेवाला कोसके अङ्कोंसे युक्त प्रस्तरफलक (mile-stone) रखते थे। पत्थरमें अक्षर-खोदनेकी प्रथा उस समय खूब प्रचलित थी। अशोकके अनुशासन और उससे भी बहुत पहले कपिलवास्तुके निकटवर्त्ती पिपरावा गांवसे आविष्कृत बुद्धदेवके देहावशेषकी रक्षा करनेवाले पत्थर पर खुदी हुई लिपि इस बातकी गवाही देती है। पिपरावा-लिपि देख इस समय दृढ़ विश्वास होता है, कि सन् ई०से पहलेकी ६ठीं शताब्दिसे भी पहले भारतवर्षमें पत्थरपर अक्षर खोदनेकी प्रथा प्रचलित थी। मगधपति जरासन्धकी राजधानी गिरिव्रजमें जरासन्धके कमरे और भीम-जरासन्धकी रण-रङ्गकी भूमिपर चित्रलिपि और कौल्लुआ शिल्पलिपिके बीचकी लिपि पर्वतगात्रमें उत्कीर्ण रही है। उसके ऊपर बहुत समयसे गौ और भैंस आदिके आने जानेकी राह होनेसे वह प्राचीनतर लिपि कितनी ही अस्पष्ट और अबोध्य हो गई है। हमें विश्वास होता है, कि आज तक भारतमें जितने प्रकारकी लिपि आविष्कृत हुई हैं, उनमें वह मगधलिपि सबसे पुरानी है। कौन कह सकता है, कि वह जरासन्धके समयकी लिपि नहीं है?

जो हो, हम समझते हैं, कि २२०० वर्ष पहले भारतवासी ६४ प्रकारकी लिपि जानते थे। इन ६४ लिपियोंमें कितनी ही सम्राट् अशोकसे भी बहुत पहले भारतमें प्रचलित थीं। जैनियोंके सुप्राचीन "समवायसूत्र" नामक ४थे अङ्गमें लिखा है—

"बम्भी एणं अठारसविहे लिखविहाणे। बम्भी जवणालिया दोस-उरिया* खरोट्ठिया पुक्खरसारिया† पहाराइया उच्चत्तरिया अक्खरपुट्ठिया भोगवइया‡ वेणइया निण्हइया॥ अंकलिवि गणियलिवि गन्धव्वलिवि आदसलिवि माहेसरलिवि दामिलिलिवि बोलिदिलिवि।"

ब्राह्मी प्रभृति १८ प्रकारकी लिखन-प्रक्रियाओंके नाम यह हैं—१ ब्राह्मी, २ यवनानी, ३ दशोत्तरिका, ४ खरोष्ट्रिका, ५ पुष्करसारिका, ६ पार्व्वतिका, ७ उत्तरकुरुका, ८ अक्षरपुस्तिका, ९ भोगवत्तिका, १० विच्छेपिका, ११ निर्च्छेपिका, १२ अङ्क, १३ गणित, १४ गन्धर्व, १५ आदर्शक, १६ माहेश्वर, १७ द्राविड़ी और १८ बोलिदी (?) लिपि।

* शकाधिप कनिष्कका अधिकार उत्तरमें खुतन, पश्चिममें ईरान और पूर्वमें पूर्ववङ्ग तक फैल गया या सही, किन्तु वहांसन् ई०की पहली शताब्दिमें विद्यमान अवश्य थे। यह बात सन् ई०से पहली शताब्दिके चीन-अनुवादसे प्रमाणित है, कि इससे पहले ललितविस्तर बनाया गया था।

* 'खरसारिया'—पाठान्तर।

† 'दोषउरिया'—पाठान्तर।

‡ 'भोगवयत्ता'—पाठान्तर।

†† 'वियनतिया निराहइया, वेगणिया, निहइया'—पाठान्तर।

जैनयोंके ४थे उपाङ्ग पन्नवना (प्रज्ञापना)-सूत्रमें पूर्वोक्त अट्ठारह लिपियोंका उल्लेख वर्त्तमान है। लिपिकरोंके दोषसे विभिन्न पुस्तकोमें कुछ पाठ भेद देख पड़ता है। प्रज्ञापनासूत्रके टीकाकार मलयगिरिने लिखा है—

"ब्राह्मी यवनानीत्यादयो लिपिभेदास्तु सम्प्रदायादवसेया:"

अर्थात् ब्राह्मी, यवनानी इत्यादि अट्ठारह प्रकारकी लिपि विभिन्न सम्प्रदायोंसे उद्भूत हुई है।

जैनशास्त्रके मतसे जैनाङ्गसमूह महावीर-स्वामीके समय पहले फैला और वीर-निर्व्वाणके १६४ वर्ष बाद (सन् ई०से ३६३ वर्ष पहले) पाटलिपुत्रके श्रीसङ्घमें संगृहीत हुआ। ऐसे स्थलमें कहा जा सकता है, कि सम्राट् अशोकसे पहले भारतमें ब्राह्मी प्रभृति १८ प्रकारकी लिपि चलती थी।

यवनानी।

यवनानी नाम देख कोई-कोई कहना चाहते हैं, कि मकदूनिया-वीर सिकन्दरके समय इस देशमें यूनानी यवनोंने जो लिपि चलाई वही यवनानी लिपि है। इस यूनानी शब्दका उल्लेख देखकर मोक्षमूलर प्रभृति कोई-कोई पाश्चात्य अध्यापक अष्टाध्यायीके सूत्रकार पाणिनिको भी इसी समयका व्यक्ति बताया चाहते हैं। किन्तु पाणिनिसूत्रके वार्त्तिककार और महाभाष्यकारके 'यवनानी' शब्दका लिपि * अर्थ करते भी पाणिनिने कहीं स्पष्टत: यह अर्थ नहीं प्रकाश किया। स्त्रीलिङ्गमें जिन शब्दोंके उत्तर 'आणुक्' होता है, उन्होंने दृष्टान्तकी तरह उन्हीं शब्दोंका उल्लेख किया है—

"इन्द्रवरुणभवशर्व्वरुद्रमृड़हिमारण्य यव-यवनमातुलमाचार्य्याणामाणुक्।"

(पा० ४।१।४९)

जो हो, यवनानी शब्दमें आधुनिक सन्देहके करनेका कोई कारण नहीं देखा जाता। यवनों (Ionian) का अभ्युदय बहुत पुराना है। हमने दूसरी जगह दिखाया है, कि सन ई०से पहलेकी १०वीं शताब्दिमें यवन या योन जातिका पराक्रम सब जगह विघोषित हुआ। इससे पहले यवन जातिका अभ्युदय हुआ था। रामायण, महाभारत प्रभृति पुराने संस्कृत ग्रन्थोंमें भी यवन जातिका विशेष उल्लेख वर्त्तमान है। यवनानी कहनेसे बहुत पुरानी कीलरूपा (Cuneiform) लिपि ही समझी जाती थी। यवन देखो।

पुष्करसारी।

समवायाङ्ग और ललितविस्तरमें जिस "पुष्करसारी" लिपिकी बात लिखी है, वह भी भारतकी एक बहुत पुरानी लिपि है। पाणिनिने पुष्करसारीका उल्लेख किया है।

उत्तरकुरुका और गन्धर्वलिपि प्रभृति।

ऐतरेय-ब्राह्मणमें उत्तरकुरु और उत्तरमद्रकी बात लिखी है। ऐतरेय-ब्राह्मणसे यह भी मालूम होता कि, वहां वैदिक यागयज्ञ प्रचलित था। याग-यज्ञको निर्द्धारण करनेके लिये जैसे ज्योतिषका प्रयोजन पड़ता, वैसे ही उसके लिये शुल्व-सूत्र भी जानना आवश्यक है। [शुल्वसूत्र देखो।] इसीलिये अङ्कलिपि और गणित-लिपि भी उसी प्राचीनकालमें चली थी। गन्धारमें प्रचलित लिपि ही सम्भवत: गन्धर्व्व लिपि है। कन्धारके साथ बहुत पुराने समयसे ही वैदिक आर्य्योंका संस्रव रहा है। वहांकी लिपि भी नितान्त आधुनिक नहीं है। खरोष्ठी-लिपिके प्रसङ्गमें यह बात पीछे बताई जायगी।

माहेश्वरलिपि।

पाणिनिसूत्रमें जो चौदह प्रत्याहार हैं, उन्हींको वररुचि, पतञ्जलि प्रभृति वैयाकरण शिवसूत्र कहकर मानते हैं। देशमें सर्वसाधारण वैयाकरणोंको विश्वास है, कि महेश्वरने ही सबसे पहले व्याकरण प्रकाशित किया था। वेदाङ्गके अन्तर्गत जो शिक्षा है, उसमें देखा जाता है, कि महेश्वरने ही चौसठ अक्षर प्रकाशित किये। जो हो, इसमें सन्देह नहीं, कि पाणिनिसे बहुत पहले शिवसूत्र उत्पन्न हुए थे। चीन-परिव्राजक इत्सिङ्गने सन् ई०की ७ वीं शताब्दिके अन्तिम भागमें भारत आ संस्कृत पढ़ी। उन्होंने लिखा है,—'सिद्धिरस्तुसे आरम्भकर अक्षरमाला-सम्बन्धीय जो महेश्वरके रचे 'सिद्धान्त' छ: वर्षके बालक पहले मुखस्थ

---

* 'यवनाल्लिप्याम् इति वक्तव्यम्'—वार्त्तिक। दीर्घो यवो यवानी। यवनाल्लिप्याम्। यवनानी लिपि:।—(महाभाष्य ४।१।४९ सूत्रमें)

करते, उनमें उञ्चास अक्षर हैं। उनके मिले हुए अक्षर अट्ठारह भागोंमें बंटे और इस तरह इस सिद्धान्तमें दश हजार शब्द और अनुष्टुप् छन्दके तीन-सौ श्लोक वर्त्तमान हैं।' अध्यापक मोक्षमूलरका विश्वास है, कि यही 'शिवसूत्र' हैं।* किन्तु इत्सिङ्गने पाणिनि-रचित एक हजार सूत्रोंको ही शिवके प्रत्यादिष्ट सूत्र मान अपनी सम्मति प्रकाशित की है।

यही शिवसूत्र जिस लिपिमें लिखे गये थे, सम्भवतः वही माहेश्वर लिपि होगी। अथवा पाणिनिने जिस माहेश्वर सम्प्रदायकी बात लिखी और वह जिस लिपिका व्यवहार करती थी, वही माहेश्वर-लिपि है।

आदर्शकलिपि।

पतञ्जलिने महाभाष्यमें आर्य्यावर्त्तवाले सीमा-निर्द्देशके समय लिखा है,—

"प्रागादर्शात् प्रत्यक्कालकवनाद्दक्षिणेन हिमवन्तमुत्तरेण परिपात्रम्॥"

आदर्शके पूर्व्व और कालकवनके पश्चिम, हिमालयके दक्षिण और परिपात्रके उत्तर आर्य्यावर्त्त प्रदेश अवस्थित है। यानी आर्य्यावर्त्तकी पश्चिम-सीमापर आदर्श है। मनुसंहितामें आर्य्यावर्त्तके पश्चिम समुद्र माना गया है।† ऐसे स्थलमें समुद्रके पूर्व्व-किनारेसे आर्य्यावर्त्तका अवस्थान स्थिर करना पड़ता है। विष्णुपुराणादिमें भी भारतकी पश्चिम-सीमा यवन (Ionia) बताई गई है। इससे मालूम होता है, कि सम्भवतः आदर्श पुराना मिस्र या रूम राज्य ही है और वहांकी सुप्राचीन लिपि ही आदर्शक-लिपि है। उसी लिपिका आदर्श ग्रहणकर पाश्चात्य सभ्य जातियोंकी लिपि उत्पन्न होनेसे उस सुप्राचीन चित्रलिपिका "आदर्शकलिपि" नाम होना कुछ विचित्र नहीं।

द्राविड़ी लिपि।

दाक्षिणात्यके लिपितत्त्वप्रणेता बूर्नेल साहबके मतसे द्राविड़ी लिपि अशोककी (ब्राह्मी) लिपिसे स्वतन्त्र होते भी उसी एक मूल लिपि या सेमेटिक लिपिसे निकली है। द्राविड़की बट्टेलेत्तू नामक पुरानी लिपिके 'इ' और 'उ' यह दोनो स्वर 'य' और 'व'से कुछ ही पृथक् हैं, और सेमेटिक लिपिमें सादृश्य रखते हैं। भारतके व्यवहारोपयोगी बना लिये जानेपर भी उनमें असम्पूर्णता रह गई है। डाक्टर बूह्लर कहते हैं, कि दाक्षिणात्यके भट्टिप्रोलूमें जो सुप्राचीन अशोकाक्षरोंकी लिपि निकली है, उत्तर-भारतीय अशोकलिपिसे उसका कुछ ही पार्थक्य लक्षित होता है। दक्षिण-भारतीय उक्त लिपिका 'आ' उत्तर भारतीय 'अ'कार जैसा है; उत्तर-भारतीय अशोक-लिपिके व्यञ्जनके साथ आकारका चिन्ह एक समानान्तर रेखा होती, किन्तु दक्षिण-भारतीय लिपिमें ऐसी समानान्तर रेखाके बदले व्यञ्जनके शिरपर (।) ऐसी एक ऊंची रेखा बनी है। इससे मालूम होता है, कि बहुत पहले समयसे ही इन दोनों लिपियोंमें कुछ कुछ अलगाव रहा है। पूर्वोक्त पाश्चात्य पण्डित कहते हैं, कि फिनिकीय वणिकोंके साथ दक्षिण भारतका साक्षात् सम्बन्ध हो गया था। बाइबिलके सलोमनका मोर 'तुकी' नामसे परिचित था; द्राविड़में आज भी मोरको 'तोकी' ही कहते हैं। इसलिये इस बातमें सन्देह नहीं, कि बाइबिलोक्त 'तुकी' दक्षिण-भारतमें हो गया था। इसी तरह दक्षिण-भारतमें वाणिज्य-कल्प और फिनिकोंके यत्नसे जो लिपि चली थी, वही उत्तर भारतमें धीरे-धीरे फैल गई।

सिवा अनुमानके इस बातका प्रकृष्ट प्रमाण नहीं मिलता कि, द्राविड़के साथ फिनिकोंका बहुत पहले समयसे संस्रव रहते भी फिनिक-लिपि द्राविड़ोंने ग्रहण की। रामायणके समयसे द्राविड़में वैदिक आर्य्य-सभ्यता फैल गई थी। वाल्मीकिकी रामायणमें दाक्षिणात्यवासी हनूमान् सर्वशास्त्रदर्शी और वेदज्ञ बताये जाकर परिकीर्त्तित हुए हैं, वह रामनामाङ्कित अँगूठी ले लङ्काको गये थे। ऐसे स्थलमें हम इसमें सन्देह करनेका कारण नहीं देखते, कि सलोमनसे बहुत पहले दक्षिणापथके कृतविद्य लोगोंमें अक्षरलिपि प्रचलित थी। यह बात सभी पुराविद् मानते हैं, कि द्राविड़ी सभ्यता अतीव पुरातन है। यह भी असम्भव नहीं है, कि द्राविड़ी सभ्यतासे फिनिक लोग आलो-

* Max Müller's India, what can it teach us, p. 343.

† "आसमुद्रात् तु वै पूर्वात् आसमुद्रात् तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः॥" (मनु २।२२)

कित हो गये हों। इसके सम्बन्धमें यहां दो-एक बातें कहना हम अप्रासङ्गिक नहीं समझते।

फिनिक (Phœnician) लोग पुराने यूनानियों और जर्म्मनोंके निकट फोनिक्स या फनिक नामसे परिचित थे। फनिक् जातिको आदि बणिक् जाति कहा जा सकता है। फणिक् और बणिक् शब्दमें उच्चारणका कुछ अधिक अलगाव नहीं। सेमेटिक फ् = प।

ऋग्वेदके बहुतसे स्थानोंमें 'पणि' शब्द लिखा है। ६ठें मण्डलवाले ३२ सूक्तके भाष्यमें सायणाचार्य्यने 'पणि' शब्दका 'बणिक्' अर्थ बताया है। इधर पाणिनि-के उणादि-सूत्रके अनुसार भी 'पण' धातुसे बणिक् शब्द निष्पन्न हुआ है; सुतरां पणिक् और बणिक् एक ही बात है। ऋग्वेदमें पणि लोग गोदुग्ध-व्यवसायी और समृद्धिशाली जातिरूपसे ही परिचित हैं। दूध, दही, और घी बनानेके लिये, उनके पास 'चतुःशृङ्ग' और 'दशयन्त्र उत्स' (ऋक् ६।४४।२४) नामक यन्त्र थे। अङ्गिरा प्रभृति वेदोक्त याज्ञिक उनके घोर शत्रु थे; सदा उनका गोधन छीन लेते थे। इसलिये दोनो दलोंमें घोरतर संग्राम होता रहता। पणि लोग 'अक्रतु' और 'अयज्ञ' बताये जाकर ऋषियोंके निकट हेय थे। ऋक्संहिता ध्यान देकर पढ़नेसे समझ पड़ेगा कि, वैदिक आर्य्योंने जब भारतमें प्रवेश किया, तब पणि लोग यहां रहते थे। ऋक्संहितासे यह भी मालूम होता है, कि उस समय यहांके लोग समुद्रयात्रा करते थे। पणि लोग व्यवसाय-बाणिज्यमें लगे रहते (१।३३।३)। कितनों हीके पास बहुत रुपया-पैसा था (४।२५।७)। वह रुपये उधार देते और बुद्धिमान् भी समझे जाते थे। सन् ई०से पहलेकी ५वीं शताब्दिमें हिरोदोतस्ने लिखा है,—'फिनिक ही आदि बणिक् बताये जाकर परिचित और वह ईरानकी खाड़ीके किनारे रहते थे।' किसी-किसीने ऐसा भी लिखा है, कि अफ़ग़ानिस्तान ही उनका आदिवास था।* फिनिक 'केदमस्' (Kedmus) या प्राच्य बताकर अपना परिचय देते थे। यूनानी ऐतिहासिकोंने पूर्व-भारत (मगध) को Prasii या प्राच्य बताकर निर्देश किया है। ऐसे स्थलमें समझ पड़ता है, कि पणि लोगोंका सर्वादिम वास कीकट या मगध था। ऋग्वेद-में भी कीकटका गो-प्राधान्य वर्णित हुआ है।† गो ही पणि लोगोंका सर्वस्वधन था। वैदिक याज्ञिकों-के उत्पीड़न और आक्रमणसे परास्त हो धीरे-धीरे उनमेंसे कोई दाक्षिणात्य, कोई पश्चिमसे होकर पहले अफ़ग़ानिस्तान, वहांसे ईरानकी खाड़ीके किनारे, ईरानकी खाड़ीके किनारेसे अरब और वहांसे अपने सौभाग्यकेन्द्र फिनिसियामें जाकर बसे थे। इसके बाद सभ्यताकी लीलास्थली मिस्र प्रान्त और भूमध्यसागर-पर उनका अधिकार हुआ।

अब बात उठती है कि, पणिक (फनिक) लोग जब भारतसे ही युरोप गये हैं, तब युरोपीय फनिकोंसे भार-तीय लिपिकी उत्पत्ति कैसे मानी जाय? हमें विश्वास है, कि सभ्यताकी लीलाभूमि भारतसे ही असम्पूर्ण फिनिक लिपिकी उत्पत्ति हुई होगी। पणिकोंमेंसे जो दाक्षिणात्यको गये, सम्भवतः वही द्राविड़ीय सभ्यताके मूल थे। वह यज्ञविद्वेषी थे और स्थानत्याग-के साथ उनका स्वभाव भी बदल गया था। सम्भवतः परवर्त्ती समयमें उन्हींकी कोई शाखा राक्षसरूपसे और उनकी ही कोई दूसरी शाखा जङ्गली फल-मूल द्वारा पेट भरनेवाली बताई जाकर "वानर" नामसे प्रसिद्ध होती रही होगी। अति पूर्व्वकालमें उनकी एक शाखाने मिस्रमें जा और वहांकी चित्रलिपि तोड़कर कोई पांच हजार वर्ष पहले सङ्केत-लिपि (Hieratic)-का सूत्रपात किया था। दक्षिण-भारतकी सुप्राचीन बट्टेलेत्तू लिपिके 'अ', 'इ' प्रभृति रूप उसी बहुत पुरानी सङ्केतलिपिके अनुरूप होनेसे कितना ही दाक्षिणात्यका संस्रव सूचित होता है।

बाणिज्यका काम चलानेके लिये अधिक लिखने-पढ़नेकी अवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिये पणिकोंको वैदिक और संस्कृत अक्षरमाला जैसी बहुसंख्यक अक्षरलिपिका प्रयोजन न हुआ। यही कारण है, कि फनिक अक्षरमालामें बहुत थोड़े अक्षर

* Pococke's India in Greece, p. 218.

† "किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावः।" (ऋक् ३।५३।१४)

हैं। खरोष्ठी लिपिमालाके उत्पत्ति-प्रसङ्गमें इस विषयकी आलोचना की जायगी। द्राविड़ीय सभ्यता समुद्रकी राह सुदूर पाश्चात्य और प्राच्य जनपदोंमें फैल कर भी भारतमें आर्य्यवैदिकोंके प्रभावसे ठहर न सकी। यहां अगस्त्यादि आर्य्य-ऋषियोंने द्राविड़ी समाजका संस्कार कर लोगोंको आर्य्यभावापन्न बना लिया था। इसीसे आज भी अगस्त्य ऋषि अक्षरमाला और व्याकरणके बनानेवाले बताये और गिने जाते हैं और द्राविड़ी लिपिमें ब्राह्मी लिपिके आदर्शसे अक्षरमालाकी संख्या भी बढ़ गई है।

ब्राह्मी लिपिकी उत्पत्ति।

अल् बेरुणी, भारतीय पण्डितोंके मुंहसे सुनकर लिख गये हैं, कि पराशरपुत्र वेदव्यास ही अक्षर-लिपिके उद्भावयिता थे। जैनियोंके मतसे ऋषभदेवने दाहने हाथसे अठारह प्रकारकी जो लिपि सिखाई थीं,* उनमेंसे आदि लिपिका नाम ब्राह्मी है। भागवतके मतसे ऋषभदेव भगवान्का आठवां अवतार हैं (१।३।१३)। वह लोक, वेद, ब्राह्मण और गो सबके परम गुरु थे और उन्होंने सकल धर्म्मके मूल गुह्य ब्राह्म-धर्म्म (वेदरहस्य)का ब्राह्मणदर्शित मार्गके अनुसार उपदेश दिया था (५।६।अः)। ब्रह्मावर्त्तमें ब्रह्मर्षियोंकी सभाके बीच उन्होंने ब्राह्मधर्म्मका प्रचार किया (५।४।१६-१८)। राजर्षि भरत उन्हीं ऋषभदेवके पुत्र थे। उन्हींके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष रखा गया है। वह ब्रह्माक्षरका जप करते थे (५।८।११)।

महाभारतमें लिखा है—

"इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती।
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः॥" (शान्तिपर्व्व १८८।१५)

चारो वर्ण ब्राह्मणसे ही वर्णान्तरको प्राप्त हुए हैं और पूर्वकालसे ही ब्रह्माने इन चारो वर्णोंकी ब्राह्मी भाषा निर्द्दिष्ट कर रखी है।

उद्धृत प्रमाणसे अच्छी तरह जान पड़ता है, कि ब्रह्म शब्दका अर्थ वेद और ब्राह्मीका अर्थ वैदिकी है। ऋषभदेवने ही सम्भवतः लिपिविद्याके लिये लिपि कौशलका उद्भावन किया था। इसलिये देखते हैं, कि ब्राह्मीलिपि कहनेसे पुराकालमें वैदिकी लिपि ही समझी जाती रही। यह पहले ही प्रमाणित हो चुका है, कि वेद अवश्य लिपिबद्ध होते थे। ऋषभदेवने ही सम्भवतः ब्रह्मविद्याशिक्षाकी उपयोगी ब्राह्मीलिपिका प्रचार किया; हो न हो, इसीलिये वह अष्टम अवतार बताये जाकर परिचित हुए। ब्राह्मीलिपि नामसे भी लोगोंका यह कहना सच मालूम पड़ता है, कि पहले यह लिपि ब्रह्मावर्त्तमें आविष्कृत हुई थी। वेदव्यास भी यह बात कहनेसे लिपि-प्रचारक गिने जा सकते हैं, कि उन्होंने वेद-सङ्कलनकालमें इस लिपिसे काम लिया। जो हो, ब्राह्मीलिपि ही भारतीय आर्य्योंकी आदि लिपि है, इस ब्राह्मी लिपिसे ही भारतकी सब लिपि निकली हैं।

डाक्टर बूह्लरने अशोकलिपिको ही ब्राह्मी कह कर गणना की है। निःसन्देह, हम यह स्वीकार नहीं कर सकते। अशोकके समय भारतमें चौसठ प्रकारकी लिपि चलती थीं, उस समय पाटलिपुत्र उनकी राजधानी थी। ऐसे स्थलमें उनके अनुशासनोंको मागध-ब्राह्मीलिपि कहकर ग्रहण कर सकते हैं; इसे छोड़ विभिन्न प्रदेशोंसे जो अशोकलिपि निकली हैं, उनके अक्षर और उनकी शब्दयोजना अविकल एक तरह नहीं। विहारके बरावरकी गिरिलिपिमें 'अनपितम्', दाक्षिणात्यकी स्तम्भलिपिमें 'आनपयिसति' और उत्तर-पश्चिम-प्रदेशकी स्तम्भलिपिमें 'आना पयति' पाठ देख पड़ता है। यह कैसा अक्षरविपर्य्यय है, कि दक्षिण-देशीय लिपिमें 'एतारिसम्' और 'अनथेसु' किन्तु उत्तर-देशीय लिपिमें 'एतादिसम्' और 'अणथेसु' लिखा मिलता है। इसे छोड़ दक्षिण-देशीय और उत्तर-देशीय लिपिके बीच भी व्यञ्जनसे मिले आकार और इकारका प्रभेद देख पड़ता है। इससे सहजमें ही समझा जायगा, कि देशभेदसे जैसे भाषामें कुछ अलगाव हो गया था, वैसे ही अक्षरलिपि भी सामान्य रूपसे बदल गई थी। मालूम होता है, कि अशोकसे पहले ऐसी कोई लिपि वर्त्तमान थी। अक्षरयोजनाके

* "अथ श्रीऋषभदेवेन ब्राह्मी दक्षिणहस्तेन अष्टादश लिपयो दर्शिताः।"
(लक्ष्मीवल्लभगणिरचितकल्पसूत्रकल्पद्रुमकलिका)

[illegible] ।

हम यह मान सकते हैं, कि अधिकांश भारतीय

तब यह बात सहज ही अनुमेय है, कि उनसे पहले-की लाखो कीर्त्ति विलुप्त हो गई। इसलिये पिप्रावे-की बौद्ध-लिपिसे पहलेकी कोई शिलालिपि आज तक न निकली बता हम यह न ख़याल करेंगे, कि उससे पहले किसी राजकीय लिपिका चलन न था।

से मानवधर्म्मसूत्र बिलकुल मिल जाता है। इसीलिये पाश्चात्य संस्कृतज्ञ पण्डित प्रचलित धर्म्म शास्त्रोंमें याज्ञवल्क्य-स्मृतिको बहुत पुरानी समझते हैं। मनुके नामसे जो श्लोक रामायण और महाभारतमें उद्धृत हुए हैं, उनकी कितने ही श्लोक हमने याज्ञवल्क्य-स्मृतिमें देखे हैं। ऐसे स्थलमें याज्ञवल्क्य-धर्म्मशास्त्रको बुद्धदेवसे बहुत पहलेका कहकर ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं होती।

पार्थक्य, प्रयोग और नियमको देखते एक ब्राह्मी लिपिसे ही सब देशीय लिपि उत्पन्न हुई हैं।

आज तक भारतमें जितनी लिपि आविष्कृत हुई हैं, उनमें कपिलवास्तु (वर्त्तमान पिप्रावा) गांवकी बौद्धलिपि ही सबसे पुरानी है। यह लिपि सन् ई०से कोई ४५० यानी २३६४ वर्ष पहलेकी है। इस लिपिके साथ आजकलकी अशोक-लिपिके अक्षरोंका अलगाव नहीं है। इसलिये यह स्वीकार करना पड़ेगा, कि ढाई हज़ार वर्ष पहले ब्राह्मी-लिपिका ही परिणाम होनेवाली मगधलिपि चल रही थी। पूर्वोक्त लिपिकी पूर्ववर्त्ती लिपि आज तक लोगोंमें प्रचारित न होनेसे प्रत्नतत्त्वविदोंको विश्वास है, कि अशोकने ही पहले अनुशासन-प्रचारका प्रबन्ध किया, उनसे पहले ऐसे अनुशासन-प्रचारकी व्यवस्था न हुई थी। किन्तु ऐसे विश्वासका कोई मूल नहीं। जितने दिन पिप्रावेकी बौद्ध-लिपि आविष्कृत न हुई थी, उतने दिन पुराविदोंका ऐसा विश्वास रहा सही, किन्तु इस समय उनका यह विश्वास दूर हो गया है। अशोकावदान प्रभृति बहुतसे पुराने बौद्ध-ग्रन्थोंसे जाना जाता है, कि अशोकने ८४००० धर्म्मराजिका प्रतिष्ठित की थीं; किन्तु अब उनमेंसे २५।२६ ही विद्यमान हैं। ऐसे स्थलमें विचार कीजिये, कि उनसे पूर्ववर्त्ती कीर्त्तिका क्या परिणाम है! काशीजीके पासवाले सारनाथकी दश हाथ मट्टीके नीचेसे भी बहुत सी पुरानी बौद्धकीर्त्ति, अशोक और कनिष्कलिपि निकली हैं। ऐसा अनुसन्धान होनेसे यह नहीं है, कि बहुत नीचे भूगर्भसे पुरानीसे भी पुरानी लिपि नहीं निकल सकतीं। सैकड़ों बार भूकम्पमें प्राकृतिक विपर्य्ययसे जो लाखों सुप्राचीन भारतीय कीर्त्ति भूगर्भशायी हुई हैं, उनका हिसाब कौन लगायेगा? जब ८४ हज़ार अशोककीर्त्तिमें केवल बीस-पचीस बाकी बची हैं, तब यह बात सहज ही अनुमेय है, कि उनसे पहलेकी लाखों कीर्त्ति विलुप्त हो गईं। इसलिये पिप्रावेकी बौद्ध-लिपिसे पहलेकी कोई शिलालिपि आज तक न निकली बता हम यह न ख़याल करेंगे, कि उससे पहले किसी राजकीय लिपिका चलन न था।

हम यह मान सकते हैं, कि अधिकांश भारतीय धर्म्मशास्त्र बौद्धयुगसे पहलेके बने हुए हैं। [स्मृति देखो। याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, व्यास, बृहस्पति, कात्यायन प्रभृति सभी धर्म्मशास्त्रकारोंने राजलेख्य और राजानुशासन-लिपिका उल्लेख किया है। महर्षि याज्ञवल्क्यने* निर्देश किया है—

"दत्त्वा भूमिं निबन्धं वा कृत्वा लेख्यं तु कारयेत्।
आगामिभद्रनृपतिपरिज्ञानाय पार्थिवः॥
पटे वा ताम्रपट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिह्नितम्।
अभिलेख्यात्मनो वंश्यानात्मनञ्च महीपतिः॥
प्रतिग्रहपरिमाणं दानच्छेदोपवर्णनम्।
स्वहस्तकालसम्पन्नं शासनं कारयेत् स्थिरम्॥" (१।३१७ ३१९)

राजा भूमिदान या कोई चिरस्थायी बन्दोबस्त करनेपर भावी भद्रनृपतियोंको समझानेके उपयोगी लेख लिखायें। राजा रूईके वस्त्र या ताम्रफलकपर अपना, वंशीय पितृपुरुषों और प्रतिग्रहीताका नाम, प्रतिग्रहका परिमाण, ग्राम क्षेत्रादि दी हुई भूमिकी चतुःसीमा और उसका परिमाण निर्देश करें। पूर्वोक्त पत्रमें राजा अपने निजके दस्तखत करें और सन्, तारीख़ और अपनी मुहरकी छाप लगवा दें।

यूनानी लेखक नियार्खुस्ने सन् ई०से पहलेकी ४थी शताब्दिमें जिन कार्पासादि लेखोंकी बात कही थी, उनको ही हम याज्ञवल्क्योक्त 'पट' कह और समझ सकते हैं।

अशोकलिपिसे पहलेकी पिप्रावावाली बौद्धलिपिके अक्षर पूर्णावयवसम्पन्न हैं। इस लिपिका पूर्णावयव बननेमें बहुतसी शताब्दि बीत गई थीं। जब ऐसी सुप्राचीन सभी भारतीय लिपिमें बांई ओरसे दाहनी ओरका मूल मिलता है, तब ब्राह्मीलिपिकी भी हम ऐसी ही लिपि या इसका प्राचीन रूप बता ग्रहण कर

* इस समय जो कई एक धर्म्मशास्त्र प्रचलित हैं, उनमें याज्ञवल्क्य-संहितासे मानवधर्म्मसूत्र बिलकुल मिल जाता है। इसीलिये पाश्चात्य संस्कृतज्ञ पण्डित प्रचलित धर्म्मशास्त्रोंमें याज्ञवल्क्य-स्मृतिको बहुत पुरानी समझते हैं। मनुके नामसे जो श्लोक रामायण और महाभारतमें उद्धृत हुए हैं, उनके कितने ही श्लोक हमने याज्ञवल्क्य-स्मृतिमें देखे हैं। ऐसे स्थलमें याज्ञवल्क्य-धर्म्मशास्त्रको बुद्धदेवसे बहुत पहलेका कहकर ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं होती।

सकते हैं। श्रुति, स्मृति और सुप्राचीन हिन्दू राजाओंके अनुशासन उसी ब्राह्मी लिपिमें ही लिखे जाते थे।

ऋग्वेदमें दर्शनयोग्य मन्त्रमूर्त्ति और अक्षरका उल्लेख है। मिस्र-देशमें जैसे एक ही समय चित्रलिपि (Hieroglyphics) और उसकी सङ्केतलिपि (Hieratic characters) प्रचलित थी, वैदिक आर्योंके बीच भी वैसे ही मन्त्रमूर्तिरूप चित्रलिपि और अक्षरलिपि प्रचलित हुई थी। पापिरस् (Papyrus) नामक पत्रपर जैसे मिस्रकी आदि सङ्केत-लिपि अङ्कित होती, वैदिककालमें भी वैसे ही भूर्ज्जपत्र, या क्षुरभ्र द्वारा किसी पटपर लिखनेकी प्रथा वर्त्तमान थी।

वेदाङ्गके दूसरे शिक्षाग्रन्थमें लिखा है,--"शम्भुके मतसे प्राकृत और संस्कृतमें यथाक्रम तिरसठ और चौसठ अक्षर प्रसिद्ध हैं। उनमें स्वराक्षर इक्कीस, स्पर्शाक्षर यानी 'क' से 'म' तक वर्गीय अक्षर पचीस, याद्यक्षर यानी य व र ल श ष स ह यह आठ और यम या युग्माक्षर (?) चार हैं। सिवा इनके अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, दुःस्पृष्ट, ऌकार और प्लुत; इन सबको मिला चौसठ अक्षर होते हैं।

'आत्मा बुद्धिसे मिलकर वचन-रचनाकी वासनामें मनको लगाता है; जब मन कायाग्निको आहत करता है। अग्नि वायुको प्रेरण करती है। वायु हृदय देशमें प्रवाहित हो धीरे-धीरे स्वर निकालता है। यह स्वर प्रातःस्नानके साहचर्य्यसे गायत्री छन्दमें, मध्याह्नके समय कण्ठोत्थित मध्यम त्रिष्टुभ्छन्दमें और सायाह्नको अत्युच्च शीर्षस्थ जगतीच्छन्दमें परिणत होता है। वायु क्रमसे उठकर शीर्ष-देशमें अभिहत होता, फिर वहांसे मुंहमें आ अक्षर-समष्टि प्रकाश करता है। यह अक्षरसमष्टि पांच भागोंमें विभक्त है। यथा,—स्वर, काल, स्थान, प्रयत्न और अनुप्रदान। अक्षराभिज्ञोंने उक्त पांच भागोंमें ही अक्षर-विभागको निर्देश किया है।

'स्वर, तीन तरहके हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। अच् या स्वर विषयमें उक्त तीन स्वर और ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत; यही कालतः नियत या नियमबद्ध हैं। उदात्त स्वरसे निषाद और गान्धार, अनुदात्तसे ऋषभ और धैवत, स्वरितसे षड्ज, मध्यम और पञ्चम स्वरका उद्भव हुआ है।

'अक्षर-समष्टि उच्चारण करनेके स्थान आठ हैं, यथा—हृदय, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्तसमूह, नासिका, ओष्ठ और तालु। उस अक्षरकी प्रसिद्ध आठ गति यह हैं—'ओ' भाव, विवृत्ति, श ष स, रेफ, जिह्वामूल और उपध्मा। 'ओ' भाव उकारान्तादि पदमें संहत मिलता है सही, किन्तु ऐसा पद स्वरान्त ही समझना पड़ेगा। सिवा इसके दूसरी जगह जिस किसी पदमें उष्माक्षरकी अभिव्यक्ति होती है, उस पदको भी वैसा ही स्वरान्त जानना चाहिये। हकार, पञ्चस्वर और अन्तस्थ अक्षरोंमें मिल जानेसे हृदयोत्पन्न और न मिलनेसे कण्ठोत्थित माना जायगा।'*

* "त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा॥
स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः॥
अनुस्वारो विसर्गश्च ≍क ≍पौ चापि पराश्रितौ।
दुःस्पृष्टश्चेति विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव च॥
आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥
मारुतस्तूरसि चरन्मन्द्रं जनयति स्वरम्।
प्रातःसवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम्॥
कण्ठे माध्यन्दिनयुगं मध्यमं त्रैष्टुभानुगम्।
तारं तार्तीयसवनं शीर्षण्यं जागतानुगम्॥
सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः।
वर्णान् जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः॥
स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत॥
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि॥
उदात्ते निषादगान्धारावनुदात्त ऋषभधैवतौ।
स्वरितप्रभवा ह्येते षड्जमध्यमपञ्चमाः॥
अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलञ्च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च॥
ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥
यद्योभावप्रसन्धानमुकारादिपरं पदम्।
स्वरान्तं तादृशं विद्याद्यदन्यद्व्यक्तमूष्मणः॥

पहले तो ६३ या ६४ अक्षर वेदाङ्गमें स्थिर होते, किन्तु वेदमें उनका प्रयोग रहते भी लौकिक भाषामें कितने ही अक्षर छूट जाते हैं। ललितविस्तरसे हम जान सकते हैं, कि बुद्धदेवने केवल ४५ अक्षरलिपिको ही अभ्यास किया था—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।
क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ।
ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न।
प फ ब भ म। य र व।
श ष स ह क्ष। (ललितविस्तर, १०अध्याय)

आश्चर्यका विषय है, कि उक्त अक्षरमालाके बीच उत्तर-भारतमें प्रचलित ऋ ॠ ऌ ॡ और दाक्षिणात्यमें प्रचलित ऌ ॡ और ळ, यह पांच वर्ण एकबारगी ही नहीं हैं। फिर भी, ललितविस्तरकी गाथाके बीच सिवा ॡके दूसरे चार अक्षर व्यवहृत हुए हैं।

ललितविस्तरमें अकारादि क्षकारान्त उक्त ४५ अक्षर-मातृका गृहीत हुई हैं। तन्त्रमें ५० मातृका और ४२ भूतलिपि निर्दिष्ट हैं। यथा—

"कुण्डली भूतसर्पाणामङ्गश्रियमुपेयुषी।
विधासजननी देवी शब्दब्रह्मस्वरूपिणी॥
गुणिता सर्वगात्रेण कुण्डली परदेवता।" (सारदातिलक)
'द्विचत्वारिंशदिति भूतलिपिमन्त्रमयी, पञ्चाशदिति मातृकालिपिः।' (तट्टीका)

जो हो, उत्तर-भारतके विभिन्न स्थानोंमें भिन्न-भिन्न शताब्दियोंके समय जिस प्रकारकी लिपि चलती थी, दूसरे पृष्ठमें उसकी तालिका दे दी गई है। मालूम होता है, कि अशोकलिपिसे ही क्रमशः भारतकी सब लिपियां परिपुष्ट हुई हैं।

प्रज्ञापनासूत्र नामक जैनियोंके उपाङ्गमें लिखा है—

"जेणं अद्धमगहाए भाषाए भासेन्ति जस्स य नं बम्भी विपवत्तइव।"

यानी जिससे अर्द्धमागधी भाषा प्रकाश की जाय, वही ब्राह्मीलिपि है।

पहले ही कह चुके हैं, कि अशोकसे पहले जब ब्राह्मी प्रभृति अठारह लिपि प्रचलित थीं, तब भी मगधलिपि, अङ्गलिपि प्रभृति नामकरण न हुआ था। उस समय जैन-धर्मशास्त्र भी सुप्राचीन ब्राह्मीलिपिमें ही लिखे जाते थे। मालूम होता है, कि इसीसे पाश्चात्य प्रत्नतत्त्वविदोंने मगधादि स्थानोंमें प्रचारित अशोक-लिपिको भी ब्राह्मीलिपि कहकर ही माना है।

सन् ई०की पञ्चम शताब्दिमें सङ्कलित जैन-धर्म-शास्त्र नन्दीसूत्रके बीच छत्तीस तरहकी लिपिका उल्लेख मिलता है। जैसे—१ हंस, २ भूत, ३ यक्ष, ४ राक्षस, ५ उड्डी, ६ यावनी, ७ तुरुष्की, ८ कीरी, ९ द्राविड़ी, १० सैन्धवी, ११ मालवी, १२ नड़ी, १३ नागरी, १४ पारसी, १५ लाटी १६ अनिमित्त, १७ चाणक्यी, और १८ मौलदेवी। नन्दीसूत्रके मतसे यह अठारह लिपि ऋषभदेवके दक्षिण हाथसे प्रकाशित हुई थीं; इन्हें छोड़ दूसरी अठारह प्रकारकी लिपिका भी उल्लेख देखा जाता है; जैसे—१९ लाटी, २० चौड़ी, २१ डाहली, २२ काणड़ी, २३ गुजरी, २४ सोरठी, २५ मर-हठी, २६ कोङ्कणी, २७ खुरासानी, २८ मागधी, २९ सैंहली, ३० हाड़ी, ३१ कीरी, ३२ हम्बीरी, ३३ परतीरी, ३४ मसी, ३५ मालवी और ३६ महायोधी। नन्दीसूत्रके रचना-कालमें यह छत्तीस प्रकारकी लिपि भारतके बीच प्रचलित थीं। नन्दीसूत्रके मतसे देश-विशेषके नामानुसार इन सब लिपियों और भाषाओंका नाम रखा गया है। सन् ई०की १२वीं शताब्दिमें शेषकृष्णने छः मूल प्राकृत और सत्ताईस अपभ्रंश भाषाओंकी बात लिखी थी। इन सब प्राकृत भाषाओंकी तरह उस समय विभिन्न लिपि भी प्रचलित थीं। शेषकृष्णकी प्राकृतचन्द्रिकामें ऐसे नाम पाये जाते हैं—१ महाराष्ट्री, २ अवन्ती, ३ सौरसेनी, ४ अर्द्धमागधी, ५ वाह्लीकी, ६ मागधी, ७ व्राचण्ड, ८ लाट, ९ वैदर्भी, १० उप-नागरी, ११ नागरी, १२ वार्व्वरी, १३ आवन्त्य, १४ पाञ्चाल, १५ टाक्क, १६ मालवी, १७ कैकय, १८ गौड़, १९ उड्र, २० दैव, २१ पाश्चात्य, २२ पाण्ड्य, २३ कौन्तल, २४ सैंहल, २५ कालिङ्ग्य, २६ प्राच्य, २७ कर्णाटी, २८ काञ्च्य, २९ द्राविड़, ३० गौर्ज्जर, ३१ आभीर, ३२ मध्यदेशीय और ३३ वैड़ाल। [देवनागर देखो।]

भारतवर्षमें इस तरहकी नाना लिपि चलते भी सब लिपियोंके ठीक रूपको निर्देश करना बहुत कठिन

हकारं पञ्चभिर्युक्तमन्तस्थाभिश्च संयुतं।
औरस्यं तं विजानीयात् कण्ठ्यमाहुरसम्भृतम्॥" (पाणिनीय-शिक्षा)

है। हम संक्षेपसे इसी बातका परिचय देते हैं, कि भारतके बीच विभिन्न राजवंशके राजत्वकालमें किस वंशकी व्यवहृत लिपि कितनी दूर तक प्रचलित थी।

मागध-ब्राह्मी या मौर्य्यलिपि।

मौर्य्य-सम्राट् अशोक जिस ब्राह्मी लिपिको व्यवहार करते थे, हिमालयकी तराईसे सिंहल तक उसी लिपिका निदर्शन निकला है। महावंशसे भी हम जान सकते हैं, कि अशोकका एक पुत्र और एक कन्या दोनो सिंहलमें बौद्धधर्म्म फैलाने गये थे। उनके साथ मगधको ब्राह्मीलिपि भी चली गई थी; उसीका निदर्शन सिंहलमें सन् ई०से पहलेकी प्रथम शताब्दिके बीच खोदी गई अभयगामिनकी शिलालिपिमें मिला। केवल सिंहल ही क्यों कहें, चीन-समुद्रके तीरवर्त्ती कम्बोज और अन्नम् राज्योंसे भी ब्राह्मीलिपिका विकाश दृष्ट होता है। पहले ही लिख दिया है, कि दाक्षिणात्यके कृष्णा जिलेमें भट्टिप्रोलूसे जो द्राविड़-ब्राह्मीलिपि आविष्कृत हुई है, उसके युक्त-स्वरोंका सामान्य प्रभेद छोड़ दूसरे अक्षरोंके साथ वैसा अलगाव नहीं देख पड़ता। स्थान-भेदके कारण लिपिकरके हाथसे धीरे-धीरे यह अलग हुई जाती थी।

पिप्रावेकी सन् ई०से पहलेवाली ६ठीं शताब्दि-की लिपि और उससे पीछे सन् ई०से पहलेकी दूसरी शताब्दिके बीचमें खोदी गई नानाघाटोंकी आंध्रलिपि, यानी उस समयवाली आर्य्यावर्त्तकी सब लिपियां प्राय एक ही तरहकी हैं;—इससे अच्छी तरह जाना जाता है, कि भारतवर्षमें कोई पांच सौ वर्ष तक एक ही लिपि समभावसे चलती रही थी; पिप्रावेकी पूर्णावयव-लिपि देख समझ पड़ेगा, कि उससे पहले भी अन्तत: पांच सौ, यानी वर्त्तमान समयसे कोई तीन हज़ार वर्ष पहले भारतमें उसी एक प्रकारकी ब्राह्मीलिपिका चलते रहना सम्भवपर है। जो हो, आविष्कृत शिला-लिपिकी आलोचना कर मनमें आता है, कि प्राचीन लिच्छविवंश, नन्दवंश, मौर्य्यवंश, चेतवंश और शुङ्गमित्रवंशके राजत्वकालमें प्राय: एक ही प्रकारकी ब्राह्मीलिपि चलती थी।

इससे पीछे भारतकी उत्तर-पश्चिम-सीमामें शकाधिपत्य फैलनेके साथ जिस ब्राह्मी लिपिका आकार कुछ-कुछ बदलते रहा; वही ब्राह्मीलिपि इतिहासमें शकलिपि नामसे गिनी जाना चाहिये। मथुरा, सुराष्ट्र प्रभृति स्थानोंसे शकलिपि आविष्कृत हुई है। इसी समय दाक्षिणात्यमें सातवाहन-राजवंशकी जो लिपि पाई गई, वह जान पड़ता है, कि मौर्य्यलिपिका ही संस्कार है। नासिकके कादम्ब, जुन्नर और जग्गय्यपेटमें अन्ध्रभृत्य और काञ्ची प्रभृति स्थानोंसे पल्लव-राजवंशका जो सब लिपि आविष्कृत हुई हैं, उन सब लिपियोंके अक्षर शकलिपिके अक्षरोंसे मिलते हैं। यह बात दूसरे पृष्ठमें भारतीय ब्राह्मी-लिपिकी तालिका देखनेसे ही मालूम होगी, कि इस शकब्राह्मी लिपिसे किस तरह वर्त्तमान उत्तर-भारतीय नागरी और गौड़लिपि उत्पन्न हुई।

दाक्षिणात्यलिपि।

विन्ध्याद्रिके दक्षिण गुजरात, काठियावाड़ तक जो लिपि प्रचलित है, उसको हमने दाक्षिणात्य-लिपि कह कर माना है। पहले जिस द्राविड़-ब्राह्मीलिपिकी बात लिखी गई, वह सब दाक्षिणात्य लिपियोंकी जननी है।

कृष्णा जिलेके भट्टिप्रोलूसे आविष्कृत द्राविड़-ब्राह्मीकी बात पहले हमने कह दी है। आर्य्यावर्त्तमें गुप्त और उनके अनुवर्त्ती विभिन्न वंशोंकी लिपिके समान दाक्षिणात्यमें भी उसी द्राविड़ी लिपिसे वहांके आंध्र, शक, गुप्त, वलभी, गुर्ज्जर, वाकाटक, कादम्ब, प्राच्य और प्रतीच्य चालुक्य, चेर, चोल, पल्लव, गङ्ग, राष्ट्रकूट, काकतीय, वाण, पाण्ड्य प्रभृति राजवंशोंकी विभिन्न समयमें व्यवहृत लिपियां क्रमश: परिपुष्ट हुई हैं।

जूनागढ़, गिरनार प्रभृति स्थानोंकी सन् ई०की १ली से ३ री शताब्दि तक वाली शकक्षत्रपलिपि, नासिक, कुड़, जुन्नर, कण्हेरी प्रभृति स्थानोंकी सन् ई०की १लीसे ३री शताब्दि तक वाला सातवाहन-लिपि, कृष्णा जिलेके जग्गय्यपेटसे सन् ई०की ३री शताब्दिमें उत्कीर्ण इक्ष्वाकुराज 'सिरिवीर पुरिसदत्त'की अलङ्कृत लिपि, काञ्चीपुरसे सन् ई०की ४थी शताब्दिमें खोदी गई पल्लवलिपि, साञ्ची और मन्दसोरसे सन्

२। विभिन्न सामयिक ताम्रलेखको अक्षर।

१।

२।

३।

४।

५।

६।

७।

८।

२। विभिन्न सामयिक ताम्रलेखको अक्षरको विवृति।

१।	मौर्य्यलिपि	का खि गु घो चू छो जू ञ्जा टो ठे ड़ु ढो णो नै थै
२।	शकलिपि	का खु गु घो चे छि जृ ञ्जे टे डा डि ट
३।	पल्लवलिपि	कु खा गो च्छो जो ञ्च टि ठि डो तू
४।	गुप्तलिपि	कू खा गू घि ङ्कै चि च्छ जा ज्झ ञ्ज टो डि णो ता ध
५।	राष्ट्रकूटलिपि	कू खि गो घा ङ्क चि च्छे जौ र्भं ञ्ज टा डी ण्ड तुः थि
६।	हिन्दुस्थान ८म शताब्द	ॐ को खा गू घू ङ्गा चा छि जैः ञ्ज टाः ठि ड़ो ढु णौ ते थेः
७।	,, १२श शताब्द	ॐ कु खि ग्र घा ङ्कि चं छे जि भा ञ्जा टाः ठा डा ढे णा तो थिं
८।	गौड़ीय सेनलिपि	के खि ग्ट घ ङ्क च च्छ ज भि ञ्च टि ठा ढ ण ति थु दो धां नौ पू

ई०के ५वें और ६ठें शताब्दमें चली गुप्तलिपि सुराष्ट्र और गुजरातसे सन् ई०के ६ठेंसे ८वें शताब्दके बीच उत्कीर्ण वाकाटक राजवंशकी लिपि, नासिक ज़िलेसे सन् ई०के ५वें शताब्दमें उत्कीर्ण कदम्ब-राजोंकी लिपि, कर्णाट और महाराष्ट्रसे निकली सन् ई०के ६ठें शताब्दसे ८वें शताब्द तक वाली प्रतीच्य चालुक्य राजवंशकीलिपि, गोदावरी और कृष्णा ज़िलेसे प्राप्त सन् ई०के ७वें शताब्दवाली प्राच्य-चालुक्य राजाओंकी लिपि, काञ्ची और उसके निकट-वर्त्ती स्थानोंसे आविष्कृत सन् ई०के ५वेंसे ७वें शताब्द तक वाली पल्लवराजाओंकी लिपि, महिसुरसे उत्कीर्ण सन् ई०के ७वें शताब्दवाले गङ्ग (दक्षिण-शाखा) और चेरराजोंकी लिपि, गुजरात और कर्णाट-से आविष्कृत राष्ट्रकूटलिपि और कलिङ्गसे सन् ई०के ८वेंसे १२वें शताब्दके बीच खोदी गई गङ्गराजोंकी लिपि उल्लेख योग्य है। इन सब विभिन्न लिपियोंकी आलोचना कर हम अच्छी तरह जान सकते हैं, कि कलिङ्गकी गङ्गलिपिसे आजकलकी उड़िया, चालुक्य लिपिसे वर्त्तमान तेलगु और कणाड़ी, और चेर और चोल लिपिसे वर्त्तमान तामिल बनी है।

दाक्षिणात्य-लिपितत्त्वप्रणेता डाक्टर बूर्नेल साहबने दाक्षिणात्यकी लिपिमालाको प्रधानत: चार भागोंमें विभक्त किया है—१ तेलगु, कणाड़ी, २ ग्रन्थतामिल, ३ बट्टेलेत्तू और ४ दक्षिणी नागरी। वेङ्गी, प्राच्य और प्रतीच्य चालुक्य और यादवलिपि तेलुगु कणाड़ीके अन्तर्गत हैं, इन्हीं सब लिपियोंसे प्राचीन और आधुनिक तेलगु और कणाड़ी लिपिकी पुष्टि हुई है। चेर और चोललिपि ग्रन्थतामिलके अन्तर्गत हैं, यानी इन्हीं दोनो पुरानी लिपियोंसे प्राचीन और आधुनिक तामिल-ग्रन्थ-लिपि और तुलुमलयाललिपि उत्पन्न हुई है।

पहले ही कह दिया है, कि पुरानी तामिल-लिपिसे पहले बट्टेलेत्तू नामक एक प्रकारकी खास द्राविड़-लिपि उत्पन्न हुई थी, जो थोड़े ही दिनमें अप्रचलित हो गई।

बट्टेलेत्तू।

बट्टेलेत्तू या वर्त्तुललिपिका यह नाम इसलिये रखा गया होगा, कि यह गोल होती है। यह निश्चय करना एक प्रकार असम्भव है, कि कितने दिन पहले इसकी उत्पत्ति हुई थी।

डाक्टर बूर्नेल साहबके मतसे यह लिपि अशोक-लिपिसे समुद्भूत नहीं। कारण, यह अशोकलिपिके साथ ध्वन्यात्मक सादृश्य नहीं रखती; संस्कृत वैया-करणोंके दाक्षिणात्यमें पहुंचनेसे पहले यही द्राविड़-लिपिरूपसे चलती थी। उनके मतमें, अशोकवाली मौर्य्यलिपिकी तरह यह प्राचीन लिपि भी सेमिटिक लिपिसे उद्भूत है। लेनरमण्टने बट्टेलेत्तू और सासनीय (पह्लवी) लिपि मिलाकर दोनोके अक्षरोंमें यथेष्ट सादृश्य निकाला है। किन्तु बहुत दिन ब्राह्मी, द्राविड़ीके प्रभावसे धीरे-धीरे अचल होते रहनेके कारण बट्टेलेत्तूका सबसे पुराना रूप प्रगट नहीं होता।

पहले ही कहा है, कि उत्तर-भारतसे पणिकोंकी एक शाखा दाक्षिणात्यमें जा पड़ी थी, आदिमें वही बट्टेलेत्तूलिपिको व्यवहार करते रही; उसने उस अतिप्राचीनकालमें किसीके पाससे लिपि ग्रहण न की थी। मिश्रमें बहुत पुरानी सङ्केत (Hieratic) लिपिके बीच अकार और इकार लिपिके उच्चारणका जो सङ्केत है, उसके साथ बट्टेलेत्तूका सौसादृश्य रहा है। ऐसे स्थलमें हम सोच सकते हैं, कि द्राविड़वासी पणिकोंकी बाणिज्य लिपिने सुदूर मिश्रमें प्रचारित हो सङ्केतलिपिका आकार धारण किया था। डाक्टर टेलरने दिखाया है, कि वही सङ्केतलिपि सिदोन, मोआब, अरमा, सेबीय, योक्तान प्रभृति स्थानीय फिनिक या सेमेटिक लिपियोंकी जननी है। सुतरां द्राविड़की आदिलिपिको भी हम सुप्राचीन बहुतसी पाश्चात्य-लिपियोंकी जड़ बता गण्य कर सकते हैं।

सन् ई०के ८वें शताब्दके प्रारम्भमें द्राविड़के हिन्दू राजाओंने सिरीयोंको जो शासन दिये थे, उनमें भी बट्टेलेत्तूके अक्षर पाये गये हैं, इसी समयसे अल्प-काल पीछे सन् ई०के ९वें शताब्दमें चोलराज मदुरा-पर अधिकार कर तामिल अक्षर चलाते रहे, इसी

समयसे वट्टेलेत्तूकी चाल घटी। अन्तमें सन् ई०के १५वें शताब्दके समय द्राविड़से यह लिपि एकबारगी ही उठ गई। केवल मलबार उपकूलमें सन् ई०के १७वें शताब्द तक हिन्दू इस लिपिको व्यवहार करते रहे। इसी समय वट्टेलेत्तू अक्षरोंने भी कुछ विकृत हो कोलेलेत्तू नाम धारण किया, जिन्हें हिन्दू राजा दान-पत्रोंमें अङ्कित कर गये थे। तेलिचेरी और निकटवर्त्ती द्वीपवासी माप्पिल्ला उस दिन तक वट्टेलेत्तू ही अक्षर लिखते-पढ़ते थे, आजकल धर्म्मकी हठसे वह इस लिपिको छोड़ अरबी अक्षर काममें लाते हैं।

नन्दी नागरी।

दाक्षिणात्यमें जो नागरी लिपि चली थी, वह नन्दीनागरी नामसे प्रसिद्ध हुई। सन् १०३१ ई०में अल्बीरुणीने जिस 'सिद्धमातृका' लिपिका उल्लेख किया है, उस समय वह लिपि वाराणसी, मध्यदेश और काश्मीरमें प्रचलित थी, पीछे वहा सन् ई०के ११वें शताब्दमें दाक्षिणात्य पहुंची। इसी-से हमें सन् ई०के ११वें शताब्दसे पहले दाक्षिणात्यमें सिद्धमातृकाका व्यवहार नहीं देख पड़ता, सब कुछ १०वें शताब्दका परवर्त्ती है। केवल महाबलिपुरके शालवन्कप्पम् नामक गांवके निकटवर्त्ती अतिरणचण्डेश्वरके मन्दिरमें दाक्षिणात्य लिपिके साथ नागरी लिपि देख पड़ती है। देखते ही बोध होता है, कि वह लिपि दाक्षिणात्यवासियोंके लिये नहीं, उत्तर-भारतीय तीर्थयात्रियोंके उद्देश्यसे खोदी गई थी। सन् १३११ ई०में दाक्षिणात्य-पर मुसलमानोंकी चढ़ाई होने और संस्कृतचर्चाकी लीलाभूमि विजयनगरको मुसलमानोंके कवलित करनेसे संस्कृत और देशीय साहित्यवाले अधःपतनके-साथ यहां नागरीका प्रचार भी विरल हो गया। इस समयसे पीछेकी दाक्षिणात्यमें जो नागरीलिपि (हाल-कन्नड़) पोथी और शासनादि मिलते हैं, उनमें लिपि-पद्धतिकी विकृति और अधोगति ही देख पड़ती है।

मराठोंने तञ्जोरको अधिकार कर यहां जो नागरी चलाई थी, वह साधारणतः 'बालबोध' नामसे परिचित है।

ग्रन्थलिपि।

दाक्षिणात्यमें किसी समय धर्म्मशास्त्र लिखनेमें जो लिपि व्यवहृत होती थी, उसीको लोग "ग्रन्थ" बोलते हैं। यह ग्रन्थलिपि दो तरहकी होती है। तञ्जोर प्रदेशके ब्राह्मण जिसको व्यवहार करते हैं, वह कितनी ही चतुरस्र, और अरुकदु और मन्द्राजके पासवाले जैन जिसको काममें लाते हैं, वह वर्त्तुलाकार है। दाक्षिणात्यमें ब्राह्मणोंके अधिकांश धर्म्मग्रन्थ उक्त ग्रन्थ-लिपिसे ही लिखे गये हैं। दाक्षिणात्यके पश्चिमांशमें तुलु-मलयालम् नामसे एक दूसरे प्रकारकी भी ग्रन्थ-लिपि बहुत दिनोंसे प्रचलित है; जो केवल संस्कृत लिखनेके समय ही व्यवहृत होते देखी जाती है।

फिर, ग्रन्थलिपिसे ग्रन्थतामिल भिन्न है। ग्रन्थ-तामिलका व्यवहार कृष्णा और गोदावरीके मुहाना अञ्चलमें ही अधिकांश प्रचलित है।

ब्राह्मीसे निकली भारतकी वर्त्तमान लिपियां।

आजकल भारतवर्षमें नीचे लिखी जो लिपियां प्रचलित हैं, उनका नाम वर्णानुक्रमसे लिखा गया है,—

अरोरा (सिन्धु प्रदेशमें), असमीया, उड़िया, ओझा (विहारके ब्राह्मणोंमें), कणाड़ी, कराढ़ी, कायथी, गुजराती, गुरुमुखी (पञ्जाबमें सिखोंके बीच), ग्रन्थम् (तामिल ब्राह्मणोंके मध्य), तामिल तुलू (मङ्गलूरमें), तेलगू, थल (पञ्जाबके डेराजातमें), दोगरी (काश्मीरमें), देवनागरी, निमारी (मध्यप्रदेशमें), नेपाली, पराची (भेरेमें), पहाड़ी (कुमाऊं और गढ़वालमें), बणिया (सिरसा और हिसारमें), बंगला, भावलपुरी, बिसाती, बड़िया, मणिपुरी, मलयालम्, मराठी, मारवाड़ी, मुलतानी, मैथिली, मोड़ी, रोरी (पञ्जाबमें), लामावासी, लुण्डी (स्यालकोटमें), शराकी या आवकी (पश्चिमके बनियोंमें), सारिका (पञ्जाबके डेराजातमें), सर्इसी (उत्तर-पश्चिमके भृत्योंमें), सिंहली, शिकारपुरी, और सिन्धी। इन्हें छोड़ भारतके अनुद्वीपोंमें बर्म्मी, श्याम, लेयस, काम्बोज, पेगुयान, और यवद्वीप और फिलि-पाइनमें भी नाना प्रकारकी लिपियां चलती हैं।

खरोष्ठीलिपि।

युरोपीय पण्डितोंने स्थिर किया है, कि खरोष्ठी-

लिपि फिनिक लिपिकी अरमीय शाखासे निकली है। पण्डितवर बूहलरने कहा है—

'सक्काराकी शिलालिपि मिलानेसे देख पड़ता है, कि अरमीय 'अलिफ़' और खरोष्ठीका 'अ' एक ही जैसा है। इसी तरह अरमीय पेपिरीका 'बेथ्' खरोष्ठी 'व'; मिस्रके शिलाफलकवाला 'गिमेल' 'ग'; मेसोपोटमियाकी शिलालिपि और अरमीय पेपिरीका 'दलेथ्' 'द'; तिमाकी अरमीय लिपिका गोलाकार 'है' ह; तिमाकी शिलालिपि और सिसिलीकी सत्रपमुद्राका 'वाव' 'व'; तिमालिपिका 'ज़ईन' 'ज'; सक्कारा और तिमालिपिका 'चेथ्' 'श'; 'योद', 'य'; बाबिलोनीय 'क़ाफ़' 'क'; 'लमेद' ल; सक्कारालिपि और बाबिलोनीय मुहरका 'मीम' 'म'; सक्कारा, तिमा, असुरीय और बाबिलोनीय शिलालिपिका 'नून्' 'न'; नवतीय अक्षरमालाका 'समेच' 'स'; सेमेटिक 'फे' 'फ'; सेमेटिक 'तसदे' 'च'; सेरापियामाकी अरमीय शिलालिपिका 'कोफ' 'ख'; सक्कारालिपिका 'रेष' 'र'; प्राचीन असुरीय लिपिका 'तो' 'ठ'; और सक्कारालिपिका 'तो' 'ट'के बराबर है। इसीतरह बूहलर साहबने यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है, कि खरोष्ठी-लिपिके बीस अक्षर फिनिक या सेमेटिक लिपिसे निकले हैं।

पूर्ववर्त्ती पाश्चात्य ऐतिहासिकोंमेंसे इस खरोष्ठी लिपिका किसीने बक्त्रो-पाली (Bactro-Pali) या इण्डो-पाली और किसीने गान्धारी नाम लिखा है। किन्तु समवायाङ्ग और ललितविस्तरमें गन्धर्व्व या गान्धारी लिपिका पृथक् उल्लेख रहते और पालीलिपिकी ब्राह्मीसे अलग होते भी खरोष्ठी एक स्वतन्त्र और प्राचीन लिपि ही समझ पड़ती है। उत्तर-पश्चिमान्तके शाहबाज़गढ़ी और मानसेरा प्रभृति स्थानोंसे सम्राट् अशोककी जो दक्षिणसे वाममुखी यानी विपर्य्यस्त लिपि निकली, वही खरोष्ठी कही जाती है। आश्चर्य्यका विषय है, कि हिन्दूकुशके उत्तर बलख (बक्त्रिया) तक भी इस लिपिका कोई सन्धान नहीं मिलता। प्राचीन गन्धार राज्यमें प्रचलित रहनेसे ही कनिंहमने 'गान्धार-लिपि' नाम रखा है। किन्तु बूहलर, राप्सोन प्रभृति आजकलके सभी पाश्चात्य पुराविदोंने इसे खरोष्ठी ही माना है। किन्तु हम कनिंहम्की भांति इसे "गान्धार" या ललितविस्तरोक्त गन्धर्व्वलिपि कहनेको प्रस्तुत हैं। आर्य्यावर्त्तमें ब्राह्मीलिपिसे जैसे मागधी, अङ्ग, वङ्ग प्रभृति भारतीय लिपिकी सृष्टि हुई, उसी तरह पुरानी खरोष्ठीसे गन्धर्व्व, किन्नर, दरद, शकारि, खास्य, हूण, यक्ष, असुर (Assyrian), अर्द्धधनु (Cuneiform); उत्तरकुरु और उत्तरमद्र (North Median) प्रभृति सुप्राचीन लिपियां परिपुष्ट हुई थीं। खरोष्ठीको इतनी प्राचीन बतानेका क्या कारण है?

प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहम्ने लिखा है—पारसिकोंके आदिधर्मग्रन्थ आवस्तावाले मन्त्र या उसकी गाथायें जरथुस्त्र (Zoroaster)ने सङ्कलित की थीं। दारअवुस विस्तास्प (Darius Hystaspes)के समय वही मन्त्र या गाथायें किसी प्रचलित लिपिमें लिखी गईं। इसी लिपिने जरथुस्त्रके नामानुसार 'खरोष्ठी' नाम पाया होगा। यह लिपि दक्षिणसे वामदिक्को यानी विपर्य्यस्त क्रमसे लिखी जाती है।

प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमके दारअवुसवाले समयमें खरोष्ठीकी सृष्टि लिखनेपर भी हम इस बातको ठीक नहीं बताते; कारण, लिपितत्त्वविद् बूहलरने जब आप ही मान लिया है, कि अरमीयलिपिसे भी खरोष्ठीके कोई-कोई अक्षर पुराने हैं, तब यह कैसे कहेंगे, कि पारस्यपति दारअवुसके समय और खृष्ट जन्मसे छः शताब्द पहले खरोष्ठी उत्पन्न हुई थी?

अरब देशके ऐतिहासिक मसूदीने सन् ई०के १० वें शताब्दमें लिखा है, कि जरतुस्त-प्रचारित जन्द अवस्ता १२००० गोचर्मपर उन्हींकी उद्भावित अक्षरलिपिसे लिखी गई थी।

भारतीय भविष्यपुराण (ब्राह्मपर्व) और पारसिक आदिधर्म पुस्तक अवस्ताको पढ़नेसे भी मालूम होता है, कि सौरोंके बीच अग्निपूजाप्रवर्त्तक जरशस्त्र या जरथुस्त्र 'मग' 'मगुस' या 'मबुस' नामसे प्रसिद्ध थे। सन् ई०से पहलेके ५वें शताब्दमें प्रसिद्ध यूनानी ऐतिहासिक हेरोदोतस्ने लिखा है, कि शाकद्वीपियोंके बीच आरिअस्प (Ariaspa) (आर्जश्व) शाखाने बहुत

पूर्वकालमें प्रबल हो असुरीय, मिदीय प्रभृति पुराने राज्य जीते। भविष्यपुराणके मतसे ऋजिश्वा नामके मिहिरगोत्रमें एक ऋषि हुए थे।* उन्हींकी कन्याके गर्भसे जरशस्त्र (जरथुस्त्रका) जन्म है। उनका जन्म ठीक वैधरूपसे न होनेके कारण वह और उनके वंशधर पुराणमतसे 'अग्निजात्य'† और उनका पितृकुल अज्ञात रहनेके कारण हेरोदोतस्ने उनके वंशधरोंको मातृकुलके अरिअस्प या आर्जश्व (अर्थात् ऋजिश्वाके गोत्रापत्य) बताकर ही प्रकाशित किया।

लिदियाके प्रसिद्ध यूनानी पण्डित जानथोस् सन् ई०से ४७० वर्ष पहले ही लिख गये हैं, कि जरथुस्त्र ट्रय-युद्धसे कोई ६०० वर्ष पहले आविर्भूत हुए थे। आरिष्टटल और इउडोक्सासके मतानुसार प्लेटोसे ६००० वर्ष पहले जरथुस्त्रका अभ्युदय हुआ था। फिर प्रसिद्ध ऐतिहासिक प्लिनिने ट्रय-युद्धसे ५००० हज़ार वर्ष पहले जरथुस्त्रका आविर्भाव माना। इधर बाबिलोनके ऐतिहासिक बेरोसस्ने लिखा है, कि जरथुस्त्र किसी समय बाबिलोनके अधीश्वर थे; उनके वंशधरोंने यहां सन् ई०के २२०० वर्ष पहलेसे २००० वर्ष पहले तक आधिपत्य किया था।‡ पूर्व्वोक्त नाना ऐतिहासिकोंकी प्रमाणावलीसे देखते हैं, कि पूर्वकालमें कई जरथुस्त्र हुए थे। जरथुस्त्रके वंशधर भी जरथुस्त्रके नामसे परिचय देते रहे। चार हज़ार वर्षसे भी बहुत पहले उनका अभ्युदय हुआ था। उन्हींके प्रभावसे शकोंके आदि मित्र-धर्मका अधःपतन हुआ, और अग्निपूजा ही सर्व्वत्र प्रचलित हुई। पहले ही इस बातका आभास दे दिया गया है, कि मग विपरीत भावसे पढ़ते थे। भविष्यपुराणमें लिखा है—

'विपरीत क्रमसे वेदाध्ययन करनेके कारण इनका नाम 'मग' पड़ा था। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद जैसे ब्राह्मणोंके चार वेद हैं, वैसेही मगोंके भी इनसे विपरीत चार वेद हैं, जो विद, विश्वरद (या विस्परद्), विदाद् और आङ्गिरस् नामसे पुकारे जाते हैं।' *

भविष्यपुराणकी इस युक्तिसे भलीभांति समझ पड़ता है, कि भारतके चार वेद जैसे वामसे दक्षिणको यानी ब्राह्मीलिपिसे लिखे जाते थे, वैसेही शाकद्वीपीय मग अपने आदिधर्मग्रन्थ ब्राह्मीलिपिके विपरीत भावसे यानी दाहनी ओरसे बाईं ओरको पढ़ते और लिखते थे। इसी पाठविपर्ययसे उनका नाम 'मग' पड़ा। यह 'मग' नाम अवस्ताके प्राचीनांश गाथामें भी मिला है। ऐसे स्थलमें इसमें सन्देह नहीं, कि ४।५ हज़ार वर्ष पहले विपर्य्यस्त-लिपि या खरोष्ठीकी उत्पत्ति हुई थी। प्राचीनतर ऐतिहासिक और इस देशके पौराणिक प्रायः सभी इस बातका आभास दे गये हैं, कि ४।५ हज़ार वर्ष पहले शाकद्वीपसे बाबिलोन, यहां

* "गोत्रं मिहिरमित्याहु व्रतं तु ब्राह्मसुत्तमम्।
ऋजिश्वा नाम धर्मात्मा ऋषिरासीत् पुरानघ॥"

† "वेदोक्तं विधिमुत्सृज्य यथोहं लङ्घितस्तया।
तस्मात् मगः समुत्पन्नस्तव पुत्रो भविष्यति॥
जरशस्त्र इति ख्यातो वंशकीर्त्तिविवर्द्धनः।
अग्निजात्या मगा प्रोक्ता सोमजात्या द्विजातयः॥"
(भविष्ये १३९।४३—४५)

‡ भविष्यपुराणसे भी मालूम होता है, कि शाकद्वीपमें मग आधिपत्य करते थे—
"एभिर्यजन्ति भूयिष्ठं तस्मिन् द्वीपे मगाधिपाः।
विद्यावन्तं कुले श्रेष्ठाः शौचाचारसमन्विताः॥" (१४० अ०)

* "विपर्य्यस्तेन वेदेन मगा गायन्तितो मगाः।
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्त्वथर्वणः॥
ब्राह्मणोक्तास्तथा वेदा मगानामपि सत्रत॥
तएव विपरीतास्तु तेषां वेदाः प्रकीर्त्तिताः।" (भविष्य० १४० अ०)

भविष्यपुराणका प्रमाण देख कोई उसे आधुनिक न समझें। बम्बईसे प्रकाशित भविष्यपुराणवाले 'ब्राह्मपर्व्व'के सिवा दूसरोंको आधुनिक समझनेके लिये यथेष्ट कारण रहते भी इसमें सन्देह नहीं, कि ब्राह्मपर्व बहुत पुराना है। यहां तक, कि आपस्तम्बधर्म्मसूत्र (२।२४।५६)में इस भविष्यत्पुराणका उल्लेख रहा है। यह धर्म्मसूत्र अध्यापक बूह्लरके मतानुसार अन्ततः सन् ई०से पहलेके ५वें शताब्दका है। इस ग्रन्थमें बुद्धप्रभावका निदर्शन न रहनेसे इसे हम सन् ई०से पहलेके ६ठें शताब्दका भी पूर्ववर्त्ती खयाल करते हैं। इससे भी पहले मूल भविष्यत् पुराण लिखा गया था।

† पूर्व्वतन यूनानी ऐतिहासिकोंकी वर्णनाके अनुसार वर्त्तमान युरोपीय पुराविदोंने स्थिर किया है, कि वर्त्तमान तातार, एशियास्थ रूस (साइबेरिया, मस्कोवी, क्रिमिया), पोलैण्ड, हङ्गेरियाका कितना ही अंश, लिथुयनिया, जर्म्मनीका उत्तरांश, स्वीडेन, नारवे प्रभृति स्थानों तक पुराना स्किदिया या शाकद्वीप विस्तृत था [वङ्गेर जातीय इतिहास, ब्राह्मणकाण्ड, ४र्थांश ६-९ पृष्ठ द्रष्टव्य हैं]।

तक कि, मिश्रके उपकूल पर्य्यन्त मगाधिपोंका आधिपत्य फैल गया था। इसमें सन्देह नहीं, कि उनका आधिपत्य फैलनेके साथ पुरानी खरोष्ठीलिपि भी सब जगह चल पड़ी थी। इसीसे असुरीय (Assyria), बाबिलोन प्रभृति स्थानोंकी लिपिके साथ खरोष्ठीलिपिका सादृश्य बना रहा है। [भोजक ब्राह्मण देखो।]

अब हम समझ सकते हैं, कि अरमीय श्रेणीकी फिनिकलिपिसे खरोष्ठीका उद्भव नहीं हुआ है। कितनी ही लिपियां जाननेवाले आइजाक् टेलरने अपनी "अक्षरमाला" पुस्तकमें लिखा है, कि नेबुकाद्नेजार और नेरिग्लिसारकी (सन् ई०से ५६० वर्ष पहले) ईंटोंपर ही अरमीय लिपिका स्पष्ट निदर्शन मिलता है।* किन्तु इससे भी पूर्व्वकार बाबिलोनीयलिपिसे खरोष्ठीका निदर्शन निकला है और यह बात हम पहले ही कह चुके हैं, कि इससे भी बहुत पहले यहां जरथुस्त्र-वंश आधिपत्य करता था। केवल बाबिलोनकी ही बात नहीं, दूसरे स्थानोंमें भी सन् ई०के ७वें शताब्दसे पहले अरमीयलिपिका पुष्टिसाधन न हुआ था।†

प्राय: सन् ई०से पहलेके ७वें शताब्दमें फिनिकोंकी राजशक्ति और उनके वाणिज्य-प्रभावका अवसान होनेसे फ़िनिसियाकी आदि अक्षरमालासे ही उत्तर-सीरियामें अरमीयलिपि बनाई गई थी। आदि फिनिक लिपि भी दो प्रकारकी देख पड़ती है। इन दोनोंमें जो सबसे पुरानी आविष्कृत हुई, वह सन् ई०से पहले १०वेंके अन्त या ११वें शताब्दके आदिमें खोदी गई थी।‡ प्राचीन निनिभ-नगरीमें कीलरूपा शिल्पलिपिके साथ प्राचीन फिनिकलिपि उत्कीर्ण देखी जाती है। जो हो, बेरोसासका मत मानते भी हम देखते हैं, कि खृष्ट-जन्मके दो हज़ार वर्षसे भी पहले जरथुस्त्रके वंशधर असुरीयामें राज्य करते थे। किन्तु उसी सुप्राचीनकालमें फिनिकलिपिका सन्धान तक नहीं मिलता। मिश्रपति आहमेशकी चित्रलिपिमें सन् ई०से कोई १४६२ वर्ष पहले हम "फेनेख" नामसे फिनिकोंका उल्लेख पाते हैं। इस बातमें हम विशेष सन्देह करनेका कोई कारण नहीं देखते, कि इस समयसे पहले ही यहां फिनिक संस्रव हो गया था। फिर भी विपर्य्यय या दक्षिणसे वाममुखीलिपिकी सृष्टि नहीं हुई। इस समयके पत्रपट (Papyrus)में अङ्कित सङ्केतलिपि (Hieratic)के जिन अक्षरोंका आभास मिलता है, उनका एक 'क' अक्षर, हम पहले ही लिख चुके हैं कि, दाक्षिणात्यके सुप्राचीन बट्टेलेत्तूके अक्षरोंमें पाया गया है। सलोमनके इतिहाससे इसका आभास मिला है, कि भारतीय पणिक् खृष्ट-जन्मके कई हज़ार वर्ष पहलेसे मिश्र प्रभृति स्थानोंमें वाणिज्य करते रहे थे। कोई-कोई पणिकोंने मिश्रमें पहुंच द्राविड़की सभ्यताका रेखापात किया और उन्हींके साथ दाक्षिणात्यकी अति प्राचीन बट्टेलेत्तूने सङ्केतलिपिके स्थानको अधिकार किया। इससे पहले मिश्रमें केवल चित्रलिपिका ही प्रचलन था। द्राविड़ीय पणिकोंके साथ सङ्केतलिपिके इजिप्तमें प्रवेश करनेपर उसमें ही पत्रपट (Papyrus) अङ्कित करनेकी प्रथा चली। जो लोग कहते हैं, कि पाश्चात्य देशसे फिनिकोंने जा द्राविड़में सेमेटिक सभ्यताका बीज बोया, उनसे हमारा मत नहीं मिलता है। ऐसा होते मिश्रमें जैसे चित्राक्षर प्रचलित हैं, दाक्षिणात्यमें भी वैसेही चित्राक्षरोंका कोई सन्धान हाथ आता। जब यह नहीं, फिर दाक्षिणात्यकी बट्टेलेत्तूके 'अ' 'इ' प्रभृति कोई-कोई अक्षरोंके साथ मिश्रकी सङ्केतलिपिका मेल देख पड़ता और उस समयमें चित्राक्षरोंका असद्भाव भी न था, तब इस विषयमें क्या आश्चर्य है, कि भारतवासियोंने नहीं; मिश्रवासियोंने ही उनसे सुविधा-जनक सङ्केतलिपि ग्रहण की होगी। इस सङ्केतलिपिका ही भिन्नरूप निदर्शन सुप्राचीन बाबिलोन और असुरीय कीललिपिमें वर्त्तमान रहा है। केवल मिश्रकी ही बात नहीं; वाणिज्य-व्यपदेशसे फिनिकोंने जरथुस्त्रोंके अधिकारभुक्त राज्यमें आ विपर्य्यस्तलिपिका व्यवहार लोगोंको सिखाया और फिर युरोपमें पहुंच इसका प्रचार किया होगा। इसी कारण,

* Taylor's Alphabets, Vol. I. p. 247.

† Taylor's Alphabets, Vol. I. p. 198.

‡ Taylor's Alphabets, Vol. I. p. 216.

उन सुप्राचीन यूनानी ऐतिहासिकोंके निकट फिनिक-ही लिपिमालाके प्रवर्त्तक माने गये हैं। वास्तवमें उनके अभ्युदयसे बहुत पहले विपर्यस्त या खरोष्ठीलिपि-की उत्पत्ति हुई थी। अब हम समझते हैं, कि ब्राह्मी-लिपि जैसे भारत, ब्रह्म, लङ्का, और भारत-महासागरीय द्वीपोंमें प्रचलित पुरानी लिपियोंकी जननी, खरोष्ठी भी वैसे ही सब विपर्य्यस्त लिपियोंकी माता है। कहते हैं, कि फिनिकों होने पहले यह लिपि ले जा युरोप-में चलाई थी और इसीसे वह यूनानियोंके निकट अक्षरलिपिके उद्भावयिता समझे गये। जैसे मोआब और सिदोनमें फिनिकोंको प्रचारित लिपिके परस्पर वाले रूपका कालवशसे पार्थक्य हो गया था, वैसे ही अशोककी व्यवहृत खरोष्ठीके साथ उक्त लिपियोंका भी पार्थक्य देखनेमें आया। जिस तरह स्थान और काल-वशसे सेवीय और बोख्तानकी सेमेटिकलिपि* मो-आब, सिदोन और अरमाकी लिपिसे बहुलांशमें पृथक् हो गई, उसी तरह अशोककी व्यवहृत खरोष्ठीके साथ दूसरे स्थानोंकी विपर्यस्त लिपियोंका भी पार्थक्य देखनेमें आता है। टेलर, बूह्लर प्रभृति लिपितत्त्वविद् एशियामाइनर या अरबकी प्राचीन लिपिके साथ अ-शोककी विपर्यस्तलिपिके सादृश्य-स्थापनमें जो अग्रसर हुए हैं, वह कितनी ही कष्टकल्पना मात्र है, उनका उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। †

दूसरी बात यह है—प्राचीन फिनिकलिपियोंमें बीससे अधिक अक्षर पानेका कोई उपाय नहीं, उन बीस अक्षरोंके नाम हैं—अलिफ, बेथ्, गिमेल, दलेथ्, हे, वाव, जईन्, चेथ्, योद्, काफ्, लमेद, मीम्, नून, समेख्, फे, छ्'दे, कोफ्, रेष, यिन्, और तो। इन बीस अक्षरोंका उच्चारण ले यथाक्रमसे अ, ब (वर्गीय), ग, द, ह, व (अन्तःस्थ), ज, च, य, क, ल, म, न, स प, छ, ख, र, ष, और त या ट यही अक्षर निकल सकते हैं। किन्तु भारतकी उत्तरपश्चिम सीमासे आविष्कृत और अशोक, यवन, शक और कुषण-राजोंके समयमें व्यवहृत खरोष्ठी लिपियोंको इकट्ठा करनेसे हमें ३८ अक्षर देख पड़ते हैं; जैसे—

अ इ उ ए ओ अं क ख ग घ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न

प फ ब भ म य र ल व श ष स ह

खरोष्ठी जिस भाषामें पहले व्यवहृत होती थी, उस अवस्ता वाली सुप्राचीन गाथाकी आलोचना करने-से आ, ई, ऊ, ऐ, औ यह पांच अक्षर अधिक पाये जाते हैं। सुतरां खरोष्ठीके ४३ अक्षरोंमें से फनिकों-ने अपने-अपने व्यवहारोपयोगी केवल बीस अक्षर ले लिये थे। संस्कृत-शास्त्रमें ५०से अधिक अक्षर रहते भी साहित्यिक हिसाबसे नहीं, बङ्गालियोंका उच्चारण लेनेसे जिस प्रकार इस देशमें ३०।३२ अक्षरोंसे अधिक आवश्यक नहीं माने जाते [बंगला भाषा देखो।] और जिस प्रकार वङ्गलिपि ब्राह्मीलिपि की ही सन्तति है, उसी प्रकार आवस्तिक धर्म्मशास्त्रमें ४४ अक्षरोंका व्यव-हार रहते भी फिनिकोंके व्यवहारमें बीससे अधिक न आये; किन्तु यह २३ अक्षर आदि खरोष्ठी लिपिकी ही सन्तति हैं।

अब युरोपीय जिस तरह अपनी-अपनी देश-प्रचलित लिपिकी उत्पत्ति मानते हैं, वही विषय आलोच्य है। युरोपीय लिपितत्वविदोंने अक्षरलिपिकी सृष्टिसे पहले इस तरह साङ्केतिकलिपिकी उत्पत्ति मानी है—

अक्षरलिपिके पूर्ववर्त्ती साङ्केतिक चिह्न।

प्राचीन युगवाली मनुष्यप्रकृतिके इतिवृत्तकी आ-लोचना करनेसे स्पष्ट ही हृदयङ्गम होता है, कि मानवजातिकी उन्नतिवाले क्रमविकाशके साथ ही साथ लिपि कार्यकी आवश्यकता अनुभूत हुई थी। वह एक 'क' चिह्नमात्र अभावमोचनके लिये लिखने लगी। वह विशेष-विशेष कार्य्यानुष्ठान और समय विशेष निर्द्धारण करने और अनुपस्थिति या जिनके साथ सहजमें साक्षात्कारकी सुविधा न थी, उन व्यक्तियोंके निकट भाव विशेष ज्ञापनके लिये साङ्केतिक चिह्नोंका प्रयोजन समझते रहे। उसी आदिम युगके अधिवासी अपने-अपने अस्त्र, शस्त्रादि, अपने-अपने पाले गवादि पशुओं-

* फिनिकराज समितिकास्से समितिक या सेमेटिक नामकी उत्पत्ति हुई है। इसलिये फिनिक और समितिक दोनो एक ही हैं।

† Taylor's Alphabets, Vol. I. और Indische Palæ-graphie, von G. Bühler नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।

को परस्परके स्वाधिकार और स्वातन्त्र्यमें निर्दिष्ट रखने या अपने हाथसे बनाये हुए मृत्पात्रादि या कोई दूसरे द्रव्य सर्वसाधारणसे अलग करनेके लिये विशेष-विशेष चिह्न व्यवहार करते थे। आज भी भूगर्भनिहत मृत्पात्रोंमें जो विभिन्न चिह्न विद्यमान देखे जाते हैं, उनकी आलोचना करनेसे अच्छी तरह समझ पड़ता है, कि खृष्ट-जन्मसे बहुत पहले विभिन्न व्यक्तियों द्वारा वह सब पात्रादि बनाये गये थे, आज भी भिन्न-भिन्न स्थानोंके मृत्पात्रोंमें उस समयकी भांति कुम्भकारके साङ्केतिक चिन्ह व्यवहार किये जाते हैं। प्राचीनकालमें जो व्यक्ति विशेषके पारस्परिक सम्पत्तिक स्वातन्त्र्यके चिह्न रूपसे गृहीत हुआ था, वर्त्तमान युगमें वही क्रमशः उन्नतिकी परिणतिको प्राप्त हो 'ट्रेडमार्क'में पर्यवसित हो गया।

सभी लोग जानते हैं, कि हमारे देशकी अज्ञ रमणियां परिधेय वस्त्र या रूमाल आदिमें चिह्नस्वरूप कोनेपर गांठ लगा धोबीको दिया करती हैं। सन्थाल, कोल प्रभृति वर्णज्ञान-वर्जित जातियोंके बीच आज भी ऋणग्रहणकार्य्यमें रुपयेकी संख्या निरूपण करनेके लिये सूत या रस्सीके टुकड़ेमें गांठ लगाई जाती है। पूर्व वङ्गके निरक्षर ग्वाले दूध लेने-देनेका हिसाब बांस-की चटाईमें निशान लगा करते हैं। यह भी कितनी-ही बार देखा गया है, कि यदि कभी हिसाबके रुपये लेने-देनेपर अदालतमें मुक़द्दमा चला, तो हाकिमने यह सब निशान देख मुक़द्दमेका सत्यासत्य स्थिर कर लिया। पाश्चात्य जगत्में भी इसी तरह किसी समय ऋणसंख्याके लिये ग्रन्थचिह्न व्यवहृत होते थे। हेरोदो-तासकी (IV-78) विवरणीसे मालूम होता है कि, शकाभियानके समय दरायूस्ने ईष्टर नदीको अतिक्रम करके सेतुरक्षक सेनादलके हाथमें बहुतसी गांठों-वाली एक लम्बी रस्सी रख दी और कहा—इसमें जितनी गांठें हैं, उतने दिन तुम इस सेतुकी रक्षा करना और रोज एक एक गांठ खोलते जाना; यदि अन्तिम गांठ खोलनेके दिन राजा वापस न आयें, तो यूनानी सेतु तोड़ चले जायेंगे।

इसीका उन्नत प्रकरण पेरू राज्यकी क़ुइपु रस्सीमें देख पड़ता है। वह पहले संख्यागणना कार्य्यमें व्यवहृत होती थी। पीछे कालवश क्रमशः उसकी उन्नति साधित हुई। बनानेवालेके कौशलसे उसमें ऐतिहासिक घटना, राजविधिप्रशस्ति प्रभृति सङ्केत ग्रथित होते रहे और उसके द्वारा देशसे देशान्तर और राज्यसे राज्यान्तरमें संवाद-प्रेरणकी व्यवस्था चलाई गई। उस समय प्रत्येक प्रधान-प्रधान नगरमें क़ुइपुकी व्याख्या करनेके लिये एक-एक कर्म्मचारी नियुक्त किया जाता था। वही क़ुइपु पढ़नेके बाद फिर क़ुइपुके साहाय्यसे उसमें उत्तर बांध देता था। दुःखका विषय है, कि क़ुइपुका अपूर्व्व व्याख्याकौशल लुप्त हो गया है। ऐसी ही साङ्केतिक प्रथा किसी दिन चीन, तिब्बत और प्राचीन भूखण्ड-वासी आदिम लोगोंके बीच फैली हुई थी।*

आष्ट्रेलियाके आदिम अधिवासियोंके बीच क़ुइपुकी भांति कार्य्यसाधनशील 'दौत्यदण्ड' विद्यमान है। वह एक वृक्षशाखा मात्र है। पत्रलेखक उसके गात्रपर घोंघे-से (आजकल छुरीके साहाय्यसे) पहले कितनी ही रेखायें बनाते हैं। वर्त्तमान "शार्टहैण्ड" लेखकी तरह वह रेखायें स्वतः व्याख्यात नहीं होतीं। वह व्यक्ति-विशेषके मनोभावको स्मृतिपथारूढ़ करनेकी निदर्शन मात्र हैं। लेखक जब वह रेखायें खींचता, तब पास एक दूत या पत्रवाहक खड़ा रहता था। जैसे ही एक रेखा वृक्षशाखापर बनाई जाती, वैसे ही लेखक पत्रवाहकको उस प्रकारके अङ्कनका अभिप्राय और अर्थ बता देता। इसीप्रकार इस दण्डको अङ्कन समाप्त होनेपर पत्र-वाहक हाथमें ले पत्रोद्दिष्ट व्यक्तिके निकट पहुंचता और आपही एक-एक रेखाको लक्ष्य कर एक-एक भाव-की बात समझाता। उपरोक्त द्वीपके विक्टोरिया विभागकी विम्मेरा नदी-तीरवासी वोट्जोबलूक जाति-में ऐसी ही प्रथासे पत्रोंका आदान-प्रदान हुआ करता है। वहां पत्रवाहक एक सरदारके निकटसे अङ्कित दौत्यदण्ड लेकर दूसरेके हाथमें देते और उसे जनान्तिकमें बुलाकर पत्रप्रेरकका नाम सुनाते और पत्रका मर्म्म बताते हैं। इस दौत्यदण्डकी अङ्कित रेखायें या लिपियां यदि दो व्यक्तियोंके बीच निरन्तर चलती रहें,

* Ethnologische Parallelen und Vergleiche, I. p. 184.

तो वह दोनो दोनोकी मनोभाववाली अङ्कित रेखायें समझ सकते हैं।

समयानुसार अनुपस्थित व्यक्तिके पत्र-मर्मज्ञानका अभाव अनुभूत हुआ। किसी स्वतन्त्र प्रथासे साधारणमें परस्परके अभिप्राय परस्परके स्मृतिपथ पर समारूढ़ करनेके लिये कितने ही सङ्केत (Mnemonics) अनुमोदित कर लिये गये। यही वास्तविक अक्षरलिपिकी प्राथमिक अवस्था है। इसीसे ही परवर्त्ती समय वाली लिपिकी आंशिक गठन संसाधित हुई थी।

स्मरणातीत कालकी मनुष्यप्रकृतिके प्रति दृष्टि डालनेसे पहले हम इस तरह उत्पन्न हुई अर्थव्यञ्जक और मनोभिप्रायज्ञापक दो प्रकारकी लिपिका निदर्शन देखते हैं। एक तो, कड़े पत्थर या हड्डीके टुकड़ेपर खोदा गया दृश्य वस्तुका चित्र और दूसरा अङ्कित रेखाका फलित चित्र मात्र है। उसी पौराणिक-युगके मनुष्यसमाजने गुहा आदि खोदकर उनके समतल गात्रमें हरिण, महिष और उस युगके पश्वादिकी जो प्रतिकृतियां उत्कीर्ण कर रखी हैं, वही प्रथमोक्त श्रेणीकी बताई जाकर गण्य होती और M. Ed. Piette द्वारा आविष्कृत एरिजन नदीकूलके सचित्र पत्थर (L'Anthropologie, Vol. VII. p. 344) द्वितीय श्रेणीके अन्तर्भुक्त हैं। यह चित्रित प्रस्तरफलक (Marked pebble) Reindeer-युगके अन्तिम और Neolithic युगके प्रथमस्तरवाले मध्यवर्त्ती कालमें अङ्कित हुए बताये जाकर गणना की जाती है।

यह युगीय पत्थर कोई दो फुट मोटे और लाल और कृष्णवर्ण हैं। इनके मध्यस्थित सच्छिद्र हरिणदन्त (मालाके लिये) हैं, विभिन्न जीवदेहास्थि प्रभृतिके बीचमें इधर-उधर विक्षिप्त जो चिह्नाङ्कित पत्थरके टुकड़े जड़े देख पड़ते हैं, उनकी अक्षरमाला प्रधानतः दो श्रेणीमें विभक्त है;—१ संख्याबोधक और श्रेणीबद्ध कितने ही चिह्न और २ सुचित्रित चिह्न (Graphic-symbols)। यह सहजमें ही स्वीकार किया जा सकता है, कि इन सब प्रस्तरलिपियोंका अर्थ कुछ ही क्यों न हो; किन्तु यह आकस्मिक सम्भूत नहीं हैं। विशेष परीक्षा करके देखनेसे इनमेंसे किसीमें बिच्छू, कनखजूरा या सांप; किसीमें वृक्ष, लता, गुल्म और नद्यादिके अस्पष्ट आभास और इसके सिवा अधिकांश पत्थरोंमें अक्षरमालाके चिह्न सदृश E, I, R, O, A, N, Ո प्रभृति अक्षर खोदे हुए दृष्टिगत होते हैं। महामति पिक्टीने उनके बीच नाना प्राच्य देशवासी, फिनिकीय साइप्रास देशवासियोंकी कई अक्षरमाला और शब्दांश (Syllabaries) और मासदे' आजिलकी प्राचीन अक्षरलिपिके नौ अक्षरोंका सादृश्य देखा है। अक्षरमालाकी ऐसी अवस्था देख उसे अक्षरमालाका आदि या उत्पत्ति निदर्शन बताकर कभी सिद्धान्त नहीं किया जाता; वरं वह प्राचीनकालके किसी भौतिक-चिह्न या जाति विशेषके निर्द्धारित साङ्केतिक विवरणका निदर्शन बताकर ही ग्रहण की जा सकती है। कारण आज भी आष्ट्रेलियाकी पर्व्वतगुहाओं और अमेरिकावासी इण्डियनोंके बीच जूए प्रभृति खेलोंके ऐसे ही साङ्केतिक चिन्ह प्रचलित हैं।

प्राचीन भूखण्डके विभिन्न स्थानोंकी अपेक्षा नवाविष्कृत अमेरिका भूखण्डमें सबसे पुरानी चित्रलिपि (Picture writing)का आदर्श विद्यमान है। उसने मिस्र और चीन देशकी चित्रलिपिसे अनेकांशमें उत्कर्षता पाई थी, किन्तु मिस्र और चीनकी तरह अमेरिकाकी चित्रलिपि, अक्षर या शब्दव्यञ्जक न निकली। चित्र केवल चित्रित वस्तुओंके ही उद्बोधक रहे।

चित्रलिपिको छोड़ अमेरिकावासी संख्यागणनार्थ एक प्रकारकी छड़ीसे काम लेते थे। उसके साङ्केतिक चिह्न गिनकर वह युद्धाभियानका व्याप्तिकाल, युद्धमें मारे गये शत्रुओंकी संख्या और इसी तरहके परिचयादि व्यक्त कर सकते थे। सिवा इसके उनके बीचमें 'वम्पुम्' नामक मालाका व्यवहार होता था। उसके सादे दाने सन्धि या शान्तिस्थापनके उद्बोधक, और रङ्गीन दाने युद्धघोषक समझे जाते रहे। सन् १६८२ ई०में लेनी लेनपमें सरदारोंने सन्धिस्थापनार्थ विलिअम पेन्को विभिन्न वर्णोंकी जो माला दी थी, उसके मध्यस्थलमें सन्धिकी उद्बोधक दो मनुष्यमूर्त्तियां परस्परमें एक दूसरेका हाथ पकड़े खड़ी थीं। इसी तरह मेक्सिको-वासियोंका फांस-चिह्न ध्येय्य या शान्तिज्ञापक

है और कालीफ़ोर्नियाके पार्व्वत्यचित्रमें अश्रुभाराक्रान्त प्रतिकृति शोकज्ञापनार्थ उत्कीर्ण हुई है।

अमेरिकावासी आदिम जातिके बीचमें इस चित्र-लिपिका प्राचीनतम आदर्श विद्यमान रहते भी वास्तविक पक्षसे वह क्रमशः उन्नत हो अक्षरमालामें परिणत न हो सका। प्राचीन भूखण्डके असुरीय, मिस्र और चीन राज्यमें सभ्यता फैलनेके साथ-साथ चित्र-लिपिकी यथेष्ट उन्नति साधित और वह कालमें शब्द या अक्षरमालाका प्रकृष्टरूप पाकर वहां वाले जनपद-वासियोंके मनोभाव और अर्थज्ञापनमें निर्द्धारित या अधिकारी हुई।

चीन देशमें ही सबसे पहले इस चिह्नलिपिसे अक्षर या शब्दलिपिकी क्रमोन्नति और विकाश साधित हुआ था। वहांकी वर्त्तमान लिपिका मौलिकावस्थाके साथ सामञ्जस्यनिर्णय करनेके लिये उस आदिम चित्रलिपिका निदर्शन दृष्टिगोचर न होते भी निःसन्देह कहा जा सकता है, कि चीन-देशी अक्षरलिपि आनुमानिक सन् ई०के ८००से १००० वर्ष पहलेकी प्रचलित है। चीन देशीय प्राचीन अभिधान-लिखित शाब्दलिपि और वर्त्तमान अक्षर या शब्दलिपिका वैषम्य देखनेसे स्पष्ट ही इसकी उन्नति और विकाश मालूम हो सकता है। जब वह पत्थर या वैसे ही कड़े पदार्थपर लौहशलाका-से चित्रलिपि बनाते, तब गोलपिण्डसे सूर्य्य और अर्द्धचन्द्राकारसे चन्द्रको दिखाते थे। पीछे जब काग़ज़, रेशम और वैसी ही किसी कोमल वस्तुपर अक्षरमाला-विन्यासका आवश्यक हुआ, तब वह लौहशलाकाके बदले कूंची जैसी केवल लेखनी या चित्रतूलिका व्यवहार करने लगे। उसी समयसे ही वास्तविक पक्षपर कूंचीकी खींच द्वारा वैपरीत्य साधित हो अक्षर वर्त्तमान आकारमें रूपान्तरित होते चले आये हैं।

चीन-शब्दलिपिसे जापलिपि ली जानेपर भी वह अनेकांशमें संस्कृत हो भिन्नाकृतिको प्राप्त हुई है।* इस जातीय लिपिवाले अक्षरोंके सिवा जापानमें संस्कृत अक्षरमालाकी वह लिपि भी विद्यमान है, जो सन् ई०के ५ वें शताब्दके समय भारतमें प्रचलित थी। वहांके बौद्धधर्म्म सम्बन्धीय कितने ही ग्रन्थ संस्कृत अक्षरोंमें लिखे हैं।

मिस्रकी अक्षरलिपि ही सम्भवतः पाश्चात्य जगत्में सबसे पुरानी समझी जाती है। वहां चित्रलिपि (Hieroglyphics) का ही एक समय विशेष प्रचलन था, जिसका सम्यक् विवरण वहांके उत्कीर्ण फलकादि देखनेसे समझ पड़ता है। चीनके लोग जब वस्तु-विशेषको चित्रलिपिके द्वारा बतानेके बदले शब्दलिपिके उद्भावनमें सचेष्ट हुए, तब उन्होंने शब्दानुसार द्रव्य-विशेषके कई चिह्न-सामञ्जस्य मान लिये थे; जिससे आदिम चित्रवाली लिपिके आंशिक चित्र मिटे और मूलतः वह विलुप्त हो गई।

भाषाविद् प्राचीन भूखण्डकी इन तीन विस्तृत चित्रलिपियोंके उत्पत्ति-निर्णयमें कहा करते हैं, कि किसी समय यह मध्य-एशियाखण्डवासी जातिके बीच फैली थीं। कोई-कोई कहते हैं, कि चीनवाले बाबिलोनसे क्रमशः पूर्वाभिमुख आकर वर्त्तमान चीन-साम्राज्यमें बस गये हैं। फिर, किसी-किसीकी धारणा है, कि इउफ्रेटिस-प्रवाहित उपत्यकाभूमिमें पहले मिस्रकी सभ्यता फैली थी यानी प्राचीन आर्य्यों (हिन्दुओं)की तरह इउफ्रेटिस तीरवासी जनस्रोतने सेमेटिक अभियानमें लिप्त हो राज्यसे राज्यान्तरमें सभ्यता फैलाते-फैलाते मिस्र राज्यमें आ अपना प्रभुत्व जमाया था। मिस्रके यह लोग पुरानी सोमाली जातिकी दूसरी एक शाखाके सिवा और कुछ भी नहीं हैं।

मिस्रके प्राचीन इतिवृत्तिकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि बहुत समय तक असुरीयोंके साथ मिस्रवालोंका राजनैतिक संघर्ष चला था; किन्तु उस युद्धमें लिप्त होकर ही वह क्रमशः पश्चिमाभिमुखमें उपनीत हुए और स्थान-स्थानमें अपनी जन्मभूमिकी प्रचलित चित्राक्षरमाला फैला दी। वास्तविक पक्षसे मिस्रकी यह साङ्केतिकलिपि प्रथा (Hieratic writing) नीलनदके उपत्यकादेशमें भली भांति पोढ़ी न हुई; अथवा जिस प्राचीन चित्रलिपि (Pictographic

* See Taylor's The Alphabet, I, p. 34.

System)से असुरीय और उसके समीपवर्त्ती स्थानोंकी कीललिपि क्रमशः पोढ़ी हुई, उससे मिस्रकी यह सङ्केतलिपि ऊंची या नीची धारामें अनुसृत हुई मानी जा नहीं सकती।

चीनवासियोंकी तरह मिस्रवासी भी उसी उद्देश्यसे स्वतःप्रवृत्त हो (चित्रलिपिसे) अक्षरमालाके निर्द्धारणमें आगे बढ़े। उन्होंने भी वस्तुविशेषकी आकृति और वस्तुगत भाव सादृश्यके ऊपर निर्भरकर और उन चित्रोंके आकार निकाल एक-एक वर्णशब्द-रूप अक्षरको निर्णय किया था; पीछे इसीसे एक प्रकार युरोपकी प्रचलित भाषायें जैसे आक्षरिक हैं, मिस्रकी भाषा वैसे कभी आक्षरिक न हुई। कारण, प्राचीन मिस्रवासी स्वभावसे ही आत्मगौरव-रक्षणशील और चित्रविद्याविशारद थे। वह स्वकीय इस शोभावर्द्धक और सौष्ठवशाली चित्रलिपिके ही पक्षपाती रह इसके बदले अक्षरमाला-चिह्न-व्यवहार-वासनाको विलक्षण क्षतिका विषय ही समझते रहे।

इसीकारणसे वह चीनवासियोंकी तरह अक्षरमालाके सम्बन्धमें विशेष कोई उन्नति कर न सके। वह परस्परके संयोगको लक्ष्यकर वही शब्द जिस वस्तु, पशु, पक्षी या मनुष्यके उद्योतक शब्दको बताता था, उस वस्तुके द्वारा ही भाषालिपि लिख जाते थे। जैसे जलका भाव प्रकट करनेमें ~~~ इस चिह्न द्वारा तरङ्गायित जलपृष्ठ बनाते और प्यासकी बात कहनेमें जलका चिह्न बनाकर उसकी ओर एक गोवत्स दौड़ानेसे काम चल जाता था। युद्धका हाल बतानेमें एक हाथमें ढाल और दूसरेमें बर्छा या तलवार लिये वीरमूर्त्ति बनाना पड़ती थी। इन सब चित्रलिपियोंके बीचमें परस्पर सम्बन्ध निर्देशार्थ उन्होंने कितने ही चिह्न व्यवहार किये। डाक्टर आइजाक टेलरका कहना है, कि सब अक्षरमूलक (Alphabetic symbol) चिह्नोंमें ही वर्त्तमान अङ्गरेज़ी अक्षरमालाका वीजकीट प्रसुप्त था, समय पाकर वही प्रबुद्ध और प्रकाशित हो गया है।

साधारण लोगोंकी अवगतिके लिये नीचे इस बातका एक दृष्टान्त दिया गया है, कि इस हायरोग्लिफ़िक चित्रलिपिसे किस तरह मिस्रराजमें हिराटिकलिपि चल पड़ी थी। अङ्गरेज़ी m अक्षरकी उत्पत्ति दिखाते पाश्चात्य-भाषाविद् कहते हैं, कि मिस्रकी प्राचीन भाषामें उल्लूका नाम मूलक है। पहली चित्रलिपिके अनुसार उल्लू पक्षी या उसी वस्तुकी धारणा (as a idiogram) दिखानेमें उल्लूकी ही तस्वीर बनाई गई थी। पीछे वह उल्लू शब्दार्थ (Phonograms)के बोधकरूपसे व्यवहृत हुई। शेषोक्त अर्थसे उसके शब्द-रूपकी परिणति संघटित होती और शब्दानुसार उसमें 'उ' मिलकर Mu पद बनता है। प्राचीन हायरोग्लिफ़िक्वाला उल्लूका चित्र प्रस्तराङ्कनके बदले जब पापिरास् (Papyrus) पत्रमें लिखा जाने लगा, तब द्रुतलिपि या घसीट लिखनेके लिये सुस्पष्ट उल्लूकी आकृति न बनाई जाकर स्थूलतः उसके चारो पार्श्वकी रेखा ही लिखी गई। पीछे लेखकके तारतम्यानुसार धीरे-धीरे आदि उल्लूका चित्र लुप्त हुआ और पद और पृष्ठ विहीन उल्लूकी रेखाकी तरह वह अङ्गरेज़ी हस्तलिखित ज़ेड् या संस्कृत "ट" वर्ण जैसी आकृतिमें लिखा गया। सेमेटिक लिपिमें भी वह क्रमशः विकृत होते आया। फिर, सेमेटिक अक्षरमालाके प्रति लक्ष्य करनेसे देखा जाता है, कि उक्त अक्षर मानो मिस्रकी सङ्केतलिपि (Hieratic) से लिये गये हैं। मोआबाइट् प्रस्तरफलकमें सेमेटिक अक्षरसे जो सुप्राचीन शिलाफलक उत्कीर्ण हैं, उनमें m अक्षरकी जगह wj अक्षर अङ्कित मिलता है। उसके साथ मिस्रवाली सङ्केतलिपिके m अक्षरका कितना ही सादृश्य विद्यमान है। इसलिये लोग कल्पना करते हैं, कि मोआबाइट् अक्षरसे प्राचीन यूनानका wj अक्षर उत्पन्न हुआ है। उसके परवर्त्ती समयमें परिवर्त्तन-नियम द्वारा यूनानी भाषाका M या M अक्षर निकला था। इसके बाद यूनानीलिपिने इटलीमें उपनिवेश स्थापित किया। उन्हीं यूनानियोंके संस्पर्शमें आकर रोमकोंने अक्षरमालाका Roman capital M ले लिया था। उसी रोमक अक्षरसे सुन्दर आकृतिके अङ्गरेज़ी m अक्षरकी उत्पत्ति हुई।

मिस्रकी सङ्केतलिपिमें व्यञ्जन और अर्द्धव्यञ्जन

अक्षरका प्राधान्य रहनेसे मिश्रकी धातुयें साधारणतः तीन अक्षरोंसे बनी हैं, जसके सम्बन्धमें चीनभाषाके साथ मिश्र भाषाका बहुत ही मिला-जुला लगाव है। टलेमी वंशके अधिकार तक सुप्राचीन मिश्रराज्यमें सङ्केतलिपिका ही प्रचलन रहा था। पीछे कुछ सुविधा-जनक और सहजलेख यूनानी-अक्षरमालाका प्रचलन होनेसे वह एकबारगी ही लुप्त हो गई।

सन् १८०२ ई०में आकेरब्लाद् नामक किसी सूइडने मिश्रवाली अक्षरमालाके उद्धारकी चेष्टा की, इसीसमय ग्रोटफेण्डने ईरान राज्यान्तर्गत कितने ही कीलफलकोंका पाठोद्धारकर अपना प्रथम उद्यम साधारण लोगोंके गोचरार्थ प्रकाशित किया था। इसके बाद कम्पोलियो और टमासइयां विशेष अध्यवसायके साथ मिश्र-भाषाकी आलोचना करते रहे। उन्होंने कितनी ही गवेषणाके पीछे, रोजेटेकी प्रस्तरलिपिके साहाय्यसे प्राचीन भाषाके उद्धारका पथ सुगम कर दिया और ग्रोटफेण्ड और सर हेनरी रलिन्सनने सन् ई०से ५१६ वर्ष पहले दरायूस-विस्तास्प द्वारा उत्कीर्ण कीलफलकका पाठोद्धारकर कीलफलक पाठकी यथेष्ट सुविधा की। कीललिपिके पाठोद्धारसे प्रकृत पक्षमें ईरानियोंके पवित्र धर्मग्रन्थ अवस्ताशास्त्रपाठकी भी विस्तर सुविधा हुई। कारण, कीललिपि और अवस्ता-की भाषाका परस्परमें विशेष नैकट्यसम्बन्ध है।

जब प्राचीन ईरान-लिपिका पाठोद्धार हो गया, तब सुसान और बाबिलोनिया-वाली समान्तराल स्तम्भश्रेणीकी गात्रोत्कीर्ण लिपिके पाठकी आशा बंधी। परवर्त्तिकालके बीच एशिया माइनरके नाना स्थानोंमें कीललिपि आविष्कृत होनेसे उक्त भाषालोचनाका पथ कितना ही सुगम हुआ और निनिभे और बाबिलोन-की ध्वस्त स्तूपराशिके अभ्यन्तर-निहित मृतफलकोंका पाठोद्धार होनेसे यूफ्रेटिस उपत्यकाका इतिवृत्त सजीव बन गया। आकेदियान भाषामें कानको "पी" कहते हैं। कीलाकारलिपिमें "पी" लिखते हुए जिस भावसे कीलक (≼।) विन्यस्त होते हैं, उसके साथ बँगला "प" हिब्रू "पी," अङ्गरेज़ी P. और संस्कृत 'प' का विशेष सादृश्य है।

असुरीय और बाबिलोनीयसे यह कीलाकारलिपि विभिन्न देशोंमें विस्तृत हुई। किन्तु उस समय अपरा-पर जातियोंमें दूसरी एक भाषा प्रचलित थी। वह, कीललिपिकी उत्पादक सुमारीय जाति या उसके विजेता सेमितिक बाबिलोनीयोंकी भाषासे सम्पूर्ण विभिन्न है। एशियाके विभिन्न स्थानों, विशेषतः ईजि-यन सागरस्थित द्वीपोंमें भी इस भाषाके कई सौ शिलाफलक विद्यमान हैं। इस भाषाका नाम है हिटा-इट् (Hittite)। इसका लिपिकौशल प्रथमावस्थाकी चित्रलिपिसे सम्भूत होते भी आक्षरिक परिणतिमें यह बाबिलोनीय लिपिसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र है। कितनी ही चेष्टाके पीछे, इस भाषाकी फलकलिपिका पाठोद्धार कार्य्य आरम्भ हुआ सही, किन्तु अभी उसकी प्रकृष्ट पन्था निर्द्धारित नहीं हुई है।

पुराने समय पिलोपेनिज्से एक यूनानियोंका उप-निवेश साइप्रास द्वीपमें जाकर बसा। वह जिस भाषामें बात करते थे, वह अधिकांशमें आर्केडिय भाषाके अनुरूप है। समग्र यूनानी जातिके बीच यह शाखा अक्षरमालामें लिखना न जानती थी; इसने एशिया-वासियोंके संस्रवमें पड़कर ध्वन्यात्मक अक्षरलिपिका भी अनुसरण किया था। विख्यात ईरानयुद्धके अवसानमें साइप्रास् द्वीप यूनान-राजके अधीन हुआ और यूनानी उपनिवेशिकोंने स्वजातीयोंका संस्रव पाया तो सही, किन्तु वह मूल यूनानियोंकी अभ्यस्त अक्षरलिपि ग्रहण न कर अपनी पूर्वतन शब्दलिपिको ही व्यवहार करते रहे।

अब ब्रिटिश अजाइब घरवाले अध्यक्षोंके यत्नसे साइप्रास द्वीपके ध्वस्त स्तूपोंका खननकार्य्य आरम्भ हुआ है। भूगर्भको ढूंढते-ढूंढते उसके बीचसे सन् ई०से पहलेके ४ थे शताब्दका उत्कीर्ण एक शिला-फलक निकला। इस फलकमें ड्रेयिट और पार्शि-फोनके उद्देश्यसे उत्सर्गीकृत व्यापारांश, यूनानी अक्षरमाला और उसके नीचेकी घटना शब्दलिपिमें उत्कीर्ण है। इसकी यूनानी अक्षरमाला वाली प्रणालीकी बाईं ओरसे आरम्भ कर क्रमशः दाहने आना होता है, किन्तु शब्दलिपिकी प्रथा इससे

सम्पूर्ण विपरीत यानी वर्त्तमान अरबी या फ़ारसीकी तरह दाहनेसे बायेंको है। इस शब्दलिपिमें पांच स्वराक्षरके चिह्न हैं, किन्तु ह्रस्व या दीर्घ स्वरके पार्थक्य निर्णयकी सुविधा और व्यञ्जन अक्षरोंमें जिह्वामूलीय, तालव्य या अनुनासिकादिओंके उच्चारण-निर्द्धारणका उपाय नहीं है।

पाश्चात्य अक्षरमालाकी उत्पत्ति।

गभीर गवेषणाके साथ साइप्रीय अक्षरमालाकी आलोचना करते-करते स्वतः मनमें अक्षरमालाका उत्पत्ति-प्रसङ्ग आकर समुदित होता है। पाश्चात्य पण्डितोंको विश्वास है, कि यह अक्षरमाला, फिनिसिया और यूनानसे पहले भूमध्यसागरोपकूलवर्त्ती देशों और पीछे वहांसे दूरवर्त्ती जनपद समूहोंमें परिव्याप्त हुई थी। सन् १८५८ ई०के समय इमानूएल डिरूजने Academie des Inscriptions सभामें लिपितत्त्वका जो अभिमत प्रकाशित किया, उसमें उन्होंने मिस्रवाली हायरोग्लिफिक या चित्रलिपिकी अभिशप्त या कुत्सित आकृतिसे ही फणिक् अक्षरमालाकी उत्पत्ति मानी है। वह इन दोनो अक्षरमालाओंके सामञ्जस्य-साधनकालमें उभय भाषागत कितने ही अक्षरोंका अपूर्व वैषम्य अवधारित कर गये हैं। सन् १८७७ ई०में अध्यापक डिके (Deecke)ने इमानूएल रूजका मत काटकर कहा था, कि अपेक्षाकृत परवर्त्ति-कालकी विकृत असुरीय कील-लिपिसे सेमेटिक अक्षरमालाकी उत्पत्ति है और फ़णिक् भाषा भी उसी असुरीय अक्षरमालाके निकट ऋणी है। किन्तु इस विषयमें प्रमाणका अभाव है। यदि प्रमाण मिले, तो अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा, कि फणिक् अक्षरमालाको वर्त्तमान निर्द्धारित युगकी अपेक्षा और भी सहस्राधिक वर्षकी प्राचीन बताकर ग्रहण करना और अक्षरमालाके इतिहासमें कोई युगान्तर साधित होगा।

फिर, मिस्रके ध्वस्तस्तूपोंको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते अध्यापक फ़िण्डार्स पिट्रीने सन् १९०० ई०में आबिडोस् नगर वाले राजसमाधिस्तम्भके बीच जो लिपि (Symbols like alphabetic characters) उत्कीर्ण देखी जाती, वह प्राचीन हायरोग्लिफिक् और चिह्नलिपिके संयोगसे उत्पन्न है। मिस्रराज्यवाले इतिहासोक्त प्रथम राजवंशके राजत्वकालसे भी पहले या सन् ई०के ६०००से १२०० वर्ष पहले तक यह चिह्नलिपि अबाध रूपसे मिस्रराज्यमें प्रचलित रहा। सन् ई०से पहलेके ८वें शताब्दसे पूर्व्वयुगके उत्कीर्ण क्रीट-द्वीप वाले शिलाफलकमें भी इस चित्रलिपिका निदर्शन विद्यमान है। इसके द्वारा भी परवर्त्ती मिस्रभाषाकी वर्णमालासे फिनिकों द्वारा वर्णलिपिकी परिपुष्टि-सम्बन्धीय पूर्व्वसिद्धान्तित मीमांसा ही अप्रतिपन्न होती है।

सन् १९०० ई०में क्रीट द्वीपवाले भूगर्भके भीतर मिष्टर इभान्सने जो सकल लिपिपूर्ण मृत्फलक पाये थे, उनकी लिपि मिस्रकी चित्रलिपिके अनुरूप ही है। उसके ८२ चित्रोंमें ६ मनुष्य या उनकी प्रतिकृति; १७ अस्त्राकृति, यन्त्र और बाजे, गृह, गृहांश या रन्धनके पात्रादि; ३ सामुद्रिक जीव-चित्र; १७ पशु और पक्षीमूर्त्ति; ८ वृक्ष और गुल्मादि, ६ ग्रह-नक्षत्रादि; एक भौगोलिक चित्र; ८ ज्यामितिमूलक चित्र और १२ दूसरे चिह्न थे। आज भी आविष्कृत नहीं हुआ, कि यह बारह कौन अक्षर थे। साधारण लोगोंकी धारणा है, कि नोसस (Knossos) वाले सुविख्यात प्रासादके ध्वस्तस्तूपमें जो फलक मिला, वह माइकिनि द्वीपके आदिम अधिवासियोंका खोदा है।

इभान्सको इस मृत्फलकके पढ़नेसे समझ पड़ा, कि यहांके अधिवासी माइकिनिवाले विजेतृदलके अधीन रहे थे। माइकिनीयोंके यहां नवागत होते भी, उनकी लिपि अपेक्षाकृत प्राचीन थी। क्योंकि आज भी आबिडास्से निकले फलकमें माइकिनीय लिपिकी जो प्रतिकृति विद्यमान है, वह, इसमें सन्देह नहीं कि, मिस्रवाले प्रथम राजवंशके पूर्व्ववर्त्ती समयकी मृत्पात्रस्थ चित्रलिपिसे पुरानी नहीं तो, उसकी समसामयिक है ही। यह अभी सुस्पष्ट रूपसे समझ नहीं पड़ा है, कि इस लिपि-प्रथाके वर्ण आक्षरिक या शाब्दिक हैं।

एक समय इस द्वीपसे सभ्यतास्रोत कारिया और

लाइसियाको प्रवाहित हुआ था। कारियावालोंके क्रीटसे एशियाके उपकूलमें पहुंच उपनिवेश स्थापित करते भी उनकी भाषा और लिपिके साथ कौनास (Caunus)-वासियोंकी लिपिका कितना हो सादृश्य देख पड़ता है। नोससके फलकपाठसे अनुमान होता है, कि कारीय और माइकिनीय लोग परस्परमें निकट सम्बन्धयुक्त और कारीय और लाइसीय लोग भी परस्परमें विशेष भाव-संश्लिष्ट हैं, किन्तु दुःखका विषय है, कि उनका भाषागत सादृश्य स्वतन्त्र है। वह आदिमें इन्दो-युरोपीय केन्द्रसम्भूत हो समझा नहीं जाता। पश्चान्तरसे फ्रिजीय भाषामें उत्कीर्ण फलकादिपर यूनानी लिपिका यथेष्ट सादृश्य देख पड़ता है। उपरोक्त तीनो भाषाके उत्कीर्ण शिलाफलकोंमें एक भी सन् ई०से पहलेके ६ठें शताब्दका परवर्त्ती नहीं। एशिया-माइनर (विशेषतः लाइसिया)-वासियोंकी कथित भाषाके साथ यूनानी-भाषाका कितना ही शब्द-वैषम्य लक्षित होता है। इसके द्वारा प्रतीयमान है, कि यूनानी अक्षरोंसे इस भाषाके वर्ण-चिह्न बहुत कुछ स्वतन्त्र हैं। कितने ही लोग ऐसा भी अनुमान करते हैं, कि रोडस् द्वीपको डोरिया लिपिके साथ यूनानी अक्षर मिल जानेसे इस अक्षरमालाकी उत्पत्ति हुई है।

ऊपर जिस मोआबाइट प्रस्तरफलकका विवरण दिया गया है, वह निःसन्देह खृष्टजन्मसे ८९५ वर्ष पूर्ववर्त्ती समयका उत्कीर्ण बताया जा सकता है। यह मोआब भाषा और इसके वर्णचिह्न, आक्षरिक परिपुष्टिके कीर्त्तिस्तम्भ माने जानेपर भी, समग्र-युरोपके अक्षरचिह्नकी विस्तारकर्त्ता फनिक-भाषासे पृथक् हैं। सन् १८७६ ई०में साइप्रास् द्वीपसे जो ब्रोञ्ज-धातुका बना पात्र पाया गया, वह सिदोनीयराज हिरमके भृत्य द्वारा बाल्लेबेनोनके उद्देश्यसे उत्सर्गीकृत हुआ था। उसमें जो लिपि खोदी हुई है, वह फनिकलिपिका प्राचीनतम निदर्शन है। कोई उसको मोआबाइट् फलकसे पूर्ववर्त्ती और कोई परवर्त्ती मानता है।

ऊपर अक्षरलिपिकी उत्पत्ति, परिणति या उसके विस्तार-प्रसङ्गमें जो कुछ लिखा गया है, उससे कोई पाश्चात्य पण्डित भी यह मीमांसा कर न सका, कि किस लिपिसे पाश्चात्य अक्षरलिपि ली गई थी। पाश्चात्य पण्डितोंकी धारणा है, कि फनिक अक्षरमाला ही युरोपीय समग्र अक्षरमालाका आदि है। अध्यापक पिटर गाइलने लिखा है,—

"Whenever the Symbols originated, it was to the Phœnicians that the Western world owed its Alphabets, as is clear (1) from the forms of the letter themselves ; (2) from the names which the Greeks gave to them ; (3) from the Greek traditon of their origin."

सन् १८८६ ई०में खेरा द्वीपसे कई प्राचीन शिलालिपि आविष्कृत हुई थीं। पण्डितवर Freiherr Hiller Von Gartringenने उनका पाठोद्धारकर दिखाया, कि प्राचीन यूनानी अक्षरमालाके साथ फनिक अक्षरमालाका यथेष्ट सादृश्य रहा था।

जो हो, इस फनिकजातीय वणिक्समिति द्वारा पश्चिम-युरोप खण्ड और भूमध्यसागरके तीरवर्त्ती प्रदेशमें अक्षरमालाके विस्तारकल्पसे मानवजातिकी विशेष उन्नति और ऐतिहासिक परिणति साधित हुई। अदम्य उत्साह और अध्यवसायसे इसो फनिक जातिने अति प्राचीनकालमें ही मिश्रराजवासियोंके साथ वाणिज्य-सम्बन्ध फैला दिया था। इसी समय इन्होंने बाणिज्यके प्रयोजनीयतानुसार मिश्रकी लिपिप्रथा कितने ही परिमाणसे बदल डाली। ऐसे स्थलमें यही स्वीकार किया जा सकता है, कि यह अपने देशमें ही रह जटिल चित्रलिपिका वर्ज्जन करना सीखे और इन्होंने अन्यान्य सङ्केत-चिह्न अपनी अक्षरमालामें सन्निविष्ट कर लिये थे। किन्तु वास्तविक पक्षसे यह ठीक निर्णीत करना दुःसाध्य है, कि फनिक् सम्प्रदायने मिश्रकी सङ्केतलिपि और उसके उच्चारित स्वरादि ग्रहण किये थे या नहीं, अथवा उसने मिश्रकी सङ्केतलिपि ग्रहणकर उसमें अपनी अक्षरसंयोजना की थी या नहीं। फिर भी, स्वीकार किये जानेपर केवल यही कहा जा सकता है, कि साङ्केतिक और उसके अनुरूप शब्द फनिकोंसे उद्भावित होना कुछ विचित्र नहीं। दूसरी यह बात भी ठीक है, कि फनिक अक्षरमालामें जो सब नाम

प्रदत्त और मिश्रकी सङ्केतलिपिमें जो सब मौलिक वस्तुओंके चित्र उद्घाटित हुए हैं, उन दोनोंके बीचमें कोई सम्बन्ध नहीं। हिब्रू "अलिफ़" जैसा फनिक अक्षरमालाका जो तुल्य आद्यक्षर है, उसके साथ वृष-मुखडका काल्पनिक सादृश्य है और द्वितीय हिब्रू अक्षर "बेथ्"के साथ भी एक चतुरस्र भवनका सौसा-दृश्य देख पड़ता है। किन्तु वस्तुत: वृषमुखाकृति, इस फनिक अक्षरके शीघ्र-शीघ्र लिखे जानेपर वृषमुखके बदले गृध्रपक्षीके गरदन जैसी होते आई और इसी तरह द्रुत प्रणालीसे 'बेथ्' अक्षर भी बगुलेकी तरह वक्रग्रीव हो गया। इससे पाश्चात्य पण्डित अनुमान करते हैं, कि फनिकोंने चिह्न और शब्द या स्वरमात्रको ग्रहण किया था, किन्तु उन्होंने अक्षरका नाम ग्रहण न किया।

यह, लिपिचित्र और फलकादिकी निरीक्षण करनेसे ही सुस्पष्ट प्रतिभात होगा, कि परवर्त्तिकालमें फनिकोंके द्वारा फनिक अक्षरमालाकी कहांतक पुष्टि साधित हुई। उत्तर-इजिप्टके आबुसिम्बेल नगरस्थ सुबृहत् प्रतिमूर्त्तिसमूहके पादमूलमें समेतिकासके वेतनभोगी यूनानी, कोरिया और फनिक सेनादलने अपनी-अपनी जातीय भाषामें अपना-अपना नाम अङ्कित कर दिया था। इसके बाद सन् ई०से पहले-वाले ३रे शताब्दके समय बाइब्लोसकी ष्टेली, एसमाज्झारके प्रस्तर निर्मित शवाधार, कार्थेजके ध्वस्तस्तूप और प्राचीन सिडोन् उपनिवेशमें जिन सब लिपियोंके जो सब फलक पाये गये, वाह्य आकृतिकमें वह प्राय: एक रूप हैं; और उनके सभी विषयोंमें अति सामान्य प्रभेद देख पड़ता है।

इन सकल शिला या मृत्फलकोंमें जो सकल अक्षर व्यवहृत हुए हैं, वह पूर्ववर्त्ती या आक्षरिक लिपिचिह्ना-पेक्षा ढालू और लम्बे हैं। इसलिये भली भांति समझ पड़ता है, कि यह लिपिप्रणाली उस समय शिलाफ-लकके बदले वाणिज्यकार्य्यके उपयोगी हो गई थी। कारण, वाणिज्यकी व्यस्ततासे लिखना कुछ द्रुत और ढालू हो ही जाता है। पत्थरपर खोदनेके लिये मोटे-मोटे अक्षर आवश्यक होते हैं।

जब फनिक अक्षरमाला पाश्चात्य भूखण्डके बीच अपनी अङ्गीकृत अक्षरलिपिकी परिपुष्टि और उसके उत्कर्ष साधनमें तत्पर थी, ठीक उसी ही समय प्राच्य जनपद-समूहमें समस्रोतमें अक्षरमाला और लिपिप्रचार कार्य्य चल रहा था। पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि पूर्व्वखण्डमें सेमेटिक जातिने ही सबसे पहले कई असमवर्गीय चिह्न ले भाषालिपिकी प्रतिष्ठा-की थी, जहांसे वह क्रमश: दूरदेशमें विस्तृत हुई। किन्तु पूर्वापर आलोचना करनेसे भली भांति समझ पड़ता है, कि यह बात कहां तक युक्तियुक्त है। ग्लेसारने जिन स्तम्भोंको अरब देशसे आविष्कार किया था, उनमेंसे किसी-किसीकी लिपि सन् ई०से पहलेके १५वें शताब्दसे भी पुरानी है। इसलिये यदि उससे अक्षरमालाकी उत्पत्ति और उसका प्रचार स्वीकार-कर लिया जाय, तो पूर्वमीमांसित लिपितत्त्वकी भित्ति और भी प्राचीन युगमें जाकर खड़ी हो जाती है। इसके बाद सन् ई०से पहलेके ७वें शताब्दवाले पुराने कई एक सेमेटिक लिपिके निदर्शन मिले। होजकीयके राजत्वकालमें मोआबाइट पत्थर और सिलोयमके तालाबकी सुरङ्गके बीच मिली हुई हिब्रू-लिपि और बललेबानोनकी पावस्थ-लिपिमें फनिक चिह्नके सेमेटिक अक्षरकी लिपि विद्यमान है। सिवा इसके लाफिस् और अन्यान्य नगरोंमें प्राप्त मृत्पात्रादि-में जो सब हिब्रू-अक्षर, चिह्न और हिब्रू-शिलालिपि मिली, वह भी वैसी ही प्राचीन मानी जाती है। फनि-कोंकी भांति यह हिब्रू-चिह्न भी विशेष वक्राकृति हैं।

यहूदी लोग निर्व्वासनके पीछे क्रम-क्रमसे अरमीय लिपिका अभ्यास करते रहे थे। उसीसे ही क्रमश: चतुष्कोण हिब्रूलिपि उत्पन्न हुई। एक मात्र सामा-रिटान् जातिने ही उस प्राचीन और वक्राकृति हिब्रू-लिपिका आश्रय लिया था; इसीसे उस जातिवाले अपनेको प्रकृत हिब्रू बता गौरव दिखाया करते हैं।

अरमीय लिपिका प्राचीनतम निदर्शन सिरिया राज्यके अन्तर्गत सिन्दजिल नगरमें मिला, जो फलकपर सन् ई०से कोई ७०० वर्ष पहले खोदी गई थी। इस अरमीय लिपिके साथ पूर्वोक्त मोआबाइट प्रस्तरलिपिका वैसा पार्थक्य विशेष नहीं है। अनु-

मानत: सन् ई०से पांच सौ वर्ष पहले पापिरास् पत्र-पटमें जैसी सब अरमीय लिपियां लिखी गई थीं, वैसी ही अक्षरमाला सन् ई०से २०० वर्ष पहले तक बनी रही। इसी समय मिश्रदेशमें पारस्यराजका प्रभाव अप्रतिहत था। ऐसी वक्राकृति या घसीट अरमीय-लिपिके साथ असुरीय कीलफलककी पार्श्वस्थ और चुम्बकांश लिखित लिपिका बहुत कुछ सौसादृश्य है। अरमीय लिपि जल्द-जल्द और घसीटकर लिखनेसे क्रमश: गोलभावको धारण करती है ; कारण फनिक-लिपिमें अक्षरोंको नोकें साधारणत: समान हैं। अपनी नोंकें गोल होनेसे अरमीय अक्षर, क्रमश: चतुष्क हिब्रू-अक्षरोंमें परिणत हुए और फिर धीरे-धीरे Palmyraको अलङ्कृत लिपि (Ornamental writing)का विकाश देखनेमें आया।

अरब जातिके नवतीयोंमें पहले यह अरमीय अक्षरलिपि प्रचलित थी। इसके अक्षरोंके अंश अल्प परिवर्त्तनसे ही वर्त्तमान अरबी अक्षरोंमें रूपान्तरित हो जाते हैं। उत्तर-पूर्व अरब-देशके तिमावाले मन्दिरस्तम्भमें इस श्रेणीकी लिपि विद्यमान है, जो सन् ई०से पहलेके ५वें शताब्दसे भी पहले खोदी गई थी। इस लिपिमें प्राचीन अरमीय लिपिके कितने ही अंश हैं। इससे परवर्त्ती समयकी कितनी ही नवतीय शिलालिपियां आविष्कृत हुई हैं। समयके तारतम्यानुसारसे इन फलकलिपियोंमें यथेष्ट परिवर्त्तन हो गया है। चार्लस डौटी, हुबार और इउटिङ्ग प्रभृति पण्डितोंने विशेष गवेषणाके साथ इन फलकोंका पाठो-द्धारकर उसी लिपिमालाके अक्षरोंका क्रमविकाश दिखानेको एक तालिका उद्धृत की है। यह शिला-फलक प्रधानत: सन् ई०से पहले ७५ और ८ वर्षके बीचमें खोदे गये थे। इसके लिपिपर्य्यायको अनुसरण करनेसे सहजमें ही वर्त्तमान अरबी लिपिका अक्षर-विन्यास अनुभूत किया जा सकता है।

अरब देशमें किउफिक और नषकी नामकी दो प्रकारवाली अक्षरमालाका व्यवहार था। शिलालिपि और मुद्रादिमें साधारणत: प्रथमोक्त लिपि ही व्यवहृत हुई थी, इसी कारण साधारण कार्य्यमें वह, असुविधा-जनक बोध होनेसे छोड़ी गई और साधारण लिपिमें अपेक्षाकृत घसीटके टुकड़ोंकी अक्षरमाला गृहीत हुई। यह शेषोक्त नषकी लिपि ही वर्त्तमान अरबीलिपिकी जननी है।

सीरियाके उत्तरवासी खृष्टानोंमें एष्ट्राङ्गालिया नाम-की दूसरी एक अरमीयलिपिका प्रचलन है। नेष्टोरीय मिशनरी दल इस लिपिको मध्य-एशियामें ले गया था, पीछे वह क्रमसे तुर्कस्थानसे मञ्चूरिया तक सुदीर्घ जन-पदवासियोंके लिपिरूपसे परिगणित हुई।

उपरोक्त लिपिको छोड़ अरब-देशके दक्षिणस्थित यमन प्रदेशमें और एक तरहकी लिपि प्रचलित थी। उसके अक्षर दक्षिण सेमेटिक या इथिओपिक नामसे परिचित हैं। व्याकरण और वाक्यविन्यासके क्रम-निर्णयसे इन सब दक्षिण सेमेटिक लिपियोंके भी सेबीय और माइनीय नामक दो विभाग बनाये गये हैं। अन्यान्य शिलालिपियोंकी भांति, यह सेबीय लिपि भी दक्षिणसे क्रमश: वाम ओरको बढ़कर लिखी जाती थी, किन्तु कितनी ही इथिओपिक फलक-लिपियोंमें वामसे चलकर दक्षिण ओरको लिखते-पढ़ते हैं। यह आज भी निर्णीत नहीं है,* कि किस समय दक्षिण अरब-में सेबीय और माइनीय लिपिका प्रादुर्भाव हुआ और किस समयमें चिरन्तन प्रसिद्ध दक्षिणसे वामको लिपि-अङ्कणरूप सेमेटिक प्रथा वर्जनकर उससे विपरीत यानी वामसे दक्षिणाभिमुखी इथिओपिक प्रथा प्रवर्त्तित हुई।

भारतीय खरोष्ठीलिपिकी तरह ईरानी, अरबी, सेमेटिक, साइप्रिय, लेटिन, फिनिक प्रभृति सभी पाश्चात्य भाषाओंकी ही लिपिप्रणाली दक्षिणसे वाममुखी थी। सन् ई०से पहलेके ८वें शताब्दमें उत्कीर्ण डिपिलन-की सुब्रहत् पात्रोपरिस्थ प्राचीन आर्टिकलिपि, किउ-रीयसे प्राप्त साइप्रीय फलकलिपि और उसके निम्नस्थ यूनानी समवर्ग और प्रिनेष्ठीवाले गोल्ड फाइविउलेके उपरस्थ प्राचीन लेटिनलिपि प्रभृति दक्षिणसे वाममुखी लिपिका निदर्शन हैं।

[संख्यालिपि, स्वर, देवनागरी प्रभृति शब्द देखो।]

* लिप्सिउसका कहना है, कि इस इथिओपिक अक्षरमालाका अधि-कांश प्राचीन भारतीय लिपिसे लिया गया है।

४००-५०० खृ: (१–४) ५००-५० खृ: (५–६) ८०० खृ: खृ: १२ शताब्दी ११९८ खृ:

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
१	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अं	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	
२	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	०	आ	
३	इ	इ	इ	इ	इ	इ	इ		इ	इ	इ	इ	इ		इ	इ	इ	इ	
४	ई				ई		ई		ई	ई	ई				ई			ई	
५	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ	उ			उ	उ	उ		उ	
६	ऊ	ऊ	ऊ		ऊ		ऊ		ऊ	ऊ	ऊ				ऊ	ऊं			
७	ऋ	ऋ			ऋ		ऋ		ऋ	ऋ	ऋ			ऋ	ऋ	ऋ	ऋ	ऋ	
८					ॠ		ॠ			ॠ					ॠ			ॠ	
९					ऌ		ऌ				ऌ				ऌ				
१०					ॡ		ॡ			ऌ	ॡ				ॡ				
११	ए	ए	ए	ए	ए		ए	ए	ए	ए	ए	ए	ए	ए	ए	ए	ए	ए	ए
१२	ऐ				ऐ		ऐ		ऐ	ऐ	ऐ				ऐ				
१३	ओ				ओ	ओम्	ओ		ओ	ओ	ओं				ओ	ओ			
१४	औ	औ			औ		औ		औ	औ	औ				औ	औं		औ	
१५	क	कु	कौ	कं	क	कि	क	के	क	कं	कु	कौ	का	क	क	कु	क्र	क	कृ
१६	ख	ख	खा	खं	ख		ख		ख	खा	खि	ख	ख	ख	ख	खुं		ख	ख्या
१७	ग	गा	गु	गो	ग		ग	गु	ग	गो	ग	ग्ट	ग	ग	ग	ग्ट	गो	ग	गृ
१८	घ	घ	घु	घृ	घ		घ		घ	घ				ङ्ग	घ	घ	घा	घ	
१९	ङ	ङ	ङ्ग	ङु	ङ		ङ		ङ			ङः	ङ	ङ	ङ	ङ्ग		ङ	ङ
२०	च	चू	चै	चौ	च		च	च	च	चि	च	च	चे	चौ	च	चि	चे	च	चै
२१	छ	छ	च्छ	च्छा	छ	च्छा	छ		छ	च्छि		छ्र		च्छा	छ			छ	छा
२२	ज	जु	जि	जां	ज		ज	जा	ज	जा	जे	जा	जि	जे	ज	ज	जा	ज	ज्ञ
२३	झ	ज्झ			झ		झ		झ						झ	ज्झ		झ	
२४	ञ	ञ	ञ	ञ:	ञ	ञ्ञ	ञ	ञा	ञ	ञा		ञ्च	ञा	ञा	ञ्च	ञा		ञ	ञ्ज
२५	ट	टा	टु	टी	टे	ठि	ट		टौ		ट	टि	ष्ट		ट			ट	।ट
२६	ठ	ठा	ठा	ठां	टं		ठ		ठ	ठ्ठा		ठ्ठा		ठ्ठा	ठि			ठ	
२७	ड	डा	डि	डं	ड		ड	ड	ड				ख्ड	ख्ड	ड	ड			
२८	ढ	ढ	ढ	ढ:	ढ		ढ		ढ			ढो						ढ	
२९	ण	णी	ण	णे	ण	णा	ण	णं	णे	ण	ण	ण	ण:	णु	ण	णं	णौ	ण	णो
३०	त	ति	ति	तु	त	तै	त	ति	ति	त	ते	ति	ति	ती:	त	ति	त	त	तृ
३१	थ	था	थि	थु	थ	था	थ		थो	था	थ	थु	था	थं	थ	था		थ:	
३२	द	दा	दो	दौ	द		द	दा	द	दि	दु	दौ	दौ	दौ	द	दु	दू	द	दै
३३	ध	धि	धु	धे	ध	धा	ध	धा	ध	धि	ध	ध	ध	धि	ध	धु	धो	ध	ध
३४	न	ना	नु	नै	न		न	ने	नृ	ना	न	नृ	नी	ने	न	नौ	नु	न	ने
३५	प	पा	पि	पु	प	पृ	प	पं	पु	पे	पू	प	पु	पृ	प	पू	प्र	प	पि
३६	फ	फ	फा	फो	फ		फ	फ	फ				फा		फ			फ	
३७	ब	ब	ब	बा	व	वो	व		ब	बी			बा	बो	बू	बो	ब	व	
३८	भ	भु	भ्र	भै	भ		भ	भ	भु	भा	भ	भू	भां	भू	भ	भा	भि	भ	भू
३९	म	मु	म्र	म्	म	मु	म	मा	म	म	मा	मा	म्र	मो	म	मु	मू	म	म्
४०	य	ये	ये	यो	य	या	य	य	य	या	यो	यु	ये	य	य	यु	यीं	य	यी
४१	र	रु	रू	रै:	र	रु	र	रिं	र	रा	र:	रु	रो	र	र	रु	रू	र	रू
४२	ल	ली	लु	लं	ल	लो	ल	लो	ल	ल	लं	लु	ला	लै	ल	मि	लां	ल	ली
४३	व	वा	ह्व	वे	व	वे	व	ह्व	व	वी	व	वि	व	वां	व	वी	वे	व	वै
४४	श	शि	शृं	शो	श	शू	श	श्रे	श्र	श्र	शि	शि	शो	शि	श	श्रे	शं	श	श्रे
४५	ष	षु	षे	षो	ष	षे	ष	ष	षु	ष	षि	षे:	षा	षी	ष:	षो	ष:	ष	ष्ट
४६	सु	सि	सू	सै	स	सु	स	सृ	स	स	स	स	सा	सा	स	सा	सं	स	सि
४७	ह	ह्री	ह्र	हे	ह		ह	ह	ह	ह्रा	ह्रा	ह	है	हा	ह	है	हं	ह	हु
४८					ॡं														
४९	वेत्	षक्	च:	ख्या	च्च	र्मा	म्	त्तं	च	र	न्व	क्त	तु	क्त	चि	ज्य	कि	कं	चा्र
५०	ग्री	ख्डु	स्त्री	र्षं	घ्ना	व्यं	ज	र्खं	ज्ञा	स्या	म्र	चा	ख्या	तृ	ब्रु	भुग्र	द्रं	ह्व	:
५१	ꣳ	ष्टं	स्या	ल्पुग्र	व	स्प	प्र	ट्	स्प	:	न्द:	ड़	या	हं	ष्टा	स्या	तृ	क्त	र्थ

३। सन् ई० के ५वें से १२वें शताब्द तक व्यवहृत उत्तर-भारतीय लिपिमाला।

४। सन् ई० के ५वें से १२वें शताब्द तक व्यवहृत अङ्कलिपि और गणितलिपि।

अङ्कलिपि

गणितलिपि

४थी तालिकाको विवृति

	अशोक-लिपि खृ: पू: ४र्थ शताब्दी		नानाघाट खृ: पू: २य शताब्दी	नासिक खृ: पू: १-२य शताब्दी	क्षत्रप खृ: २-३य शताब्दी	कुषन खृ: १-२य शताब्दी		पल्लव खृ: ३-४र्थ शताब्दी	गुप्त खृ: ४-६ष्ठ शताब्दी		वलभी खृ: ६-८म शताब्दी	राष्ट्रकूट खृ: ८म शताब्दी	नेपालको लिच्छवि खृ: ५-८म शताब्दी		कलिङ्ग खृ: ७-८म शताब्दी	वाकाटक खृ: ५-८म शताब्दी	उत्तर-भारत खृ: ८म शताब्दी	उत्कल खृ: ९म शताब्दी
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
१			१	१	१	१		१	१	१	१		१					
२			२	२	२	२	२	२	२	२	२		२		२			
३				३	३	३		३	३	३	३		३		३			
४	४			४	४	४		४	४	४								
५				४	४	४			४									
६				५	५		५	५	५	५	५							
७				५	५			५	५		५		५					
८	६	६		६	६	६	६	६	६		६		६	६	६			
९			७	७	७	७		७	७	७	७	७	७		७			
१०											७							
११				८	८	८	८	८	८	८	८				८	८	८	८
१२				८		८		८	८						८			
१३			९	९	९	९	९		९	९	९	९	९	९		९	९	
१४			१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०	१०		१०		१०	१०	१०	
१५				१०	१०	१०					१०		१०		१०	१०		
१६				२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०	२०		२०		२०	२०		
१७					३०	३०	३०		३०	३०	३०		३०	३०				
१८				४०	४०	४०	४०				४०		४०					
१९					४०						४०				४०			
२०	५०				५०	५०	५०				५०						५०	
२१	५०					५०					५०							
२२						६०	६०		६०	६०	६०							
२३				७०	७०	७०	७०		७०		७०	७०						
२४					७०						७०							
२५			८०		८०	८०	८०		८०		८०		८०		८०		८०	८०
२६					९०		९०		९०	९०	९०							
२७			१००	१००	१००				१००	१००			१००		१००		१००	
२८									१००				१००		१००		१००	
२९	२००	२००	२००	२००	२००				२००	२००	२००							२००
३०			३००								३००		३००	३००				
३१			४००							४००	४००		४००	४००	७०००			
३२				५००	१०००	२०००	३०००											
३३											६००							
३४			७००	१०००	४०००	४०००		६०००	८०००									

५वीं तालिकाकी विवृति

	मध्य-एशियाकी ८म शताब्दी	नेपालकी पोथी				जैन		नेपाल		
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
१	१	१	१		१	१	१	१		
२	२	२	२		२		२	२		
३	३	३	३		३		३	३		
४	४	४	४		४	४	४	४		
५	५		५		५	५	५	५		
६	६		६	६	६	७	६	६		
७	७	७	७		७	७	७	७		
८	८		८		८	८	८	८		
९	९		९		९	९	९	९		
१०	१०	१०	१०		१०	१०	१०	१०		
११	२०	२०	२०		२०	२०	२०	२०		
१२	३०	३०	३०		३०	३०	३०	३०		
१३		४०	४०		४०	४०	४०	४०		
१४	५०	५०	५०		५०	५०	५०	५०		
१५		६०	६०		६०	६०	६०	६०		
१६		७०	७०		७०	७०	७०	७०		
१७			८०		८०	८०		८०		
१८			९०		९०	९०	९०	९०		
१९		१००	१००		१००	१००	१००	१००		
२०		२००			२००	२००	२००	२००		
२१		३००				३००	३००			
२२							४००			
१			३	४		६				
२					५	६	७			
३							७		९	
४		२	३		५					
५			३	४	५	६	७	८	९	०
६				४				८	९	०
७	१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
८	१		३		५			८		
९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
१०	१	२	३							
११	१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
१२	१	२	३	४	५	६	७	८	९	०
१३	१	२	३	४	५	६	७	८	९	०

दाक्षिणात्य-प्राचीनलिपिकी विवृति

	[illegible]	यशोधर्म्मा ४७३खृ:		वलभी ५५९ ५६७ ५७१ ७७६				गुर्ज्जर ५१४ ७०६		वाकाटक		कादम्ब		प्रतीच्य चालुक्य			प्राच्य चालुक्य		६७५ गङ्ग	पल्लव ५म-६ष्ठ शताब्द			७म शताब्द	
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
१	अ	अ	अ		अ	अ				अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ		अ		अ	अ	अ
२					आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ	आ		आ		आ					आ
३	ई			इ		इ	इ	इ	इ	ई	इ	इ	इ		इई	इ	इ	इ					इ	इ
४	उ					उ	उ		उ	उ	उ	उ	उ	उ			उ	उ						उ
५																ऋ								
६	ए					ए	ऐ				ए	ए	ए		ए	ए		ए		ए			ए	ए
७										औ											औ			
८	कु	क्त	को	क्त	क्त	क्त	का	क्त	क	कौ	का	क्त	क	क	कु	क्त	क्त	क्त	को	क्त	कु	का	क्त	का
९		ख	खा	ख	खि	ख	ख	खि		खि	खे	खि	खि	ख		खे		खा	खं		खा		खे	खे
१०	गु	ग	गि	गै	गु	ग	गो	गा	गो	गो	गो	ग	ग	गो	गो	गो	गो	गो	गौ	गु	ग	गट	ग	ग
११	घ	ध	घ	घ	घा	घ	घ		घ	घ		घृ	घ			घ	घि	घा	घ		घ	ध	घ	घ
१२	ङ्ग	ङ्ग	ङ्ग	ङ्गि	ङ्ग	ङ्गं	ङ्गँ	ङ्शै	ङ्शु	ङ्गा	ङ्गा	ङ्ग	ङ्क	ङ्हा	ङ्के	ङ्क			ङ्के		ङ्ग		ङ्क	
१३	च	चा	चि	चू	चो	चा	च	चा	च	चि	च	चै	च	च	चि	चो	च	चे	च	च	चै		च	चो
१४	च्छि			च्छ	छे	च्छ	छ	च्छ	च्छे	च्छे	च्छि	च्छ	च्छा	च्छ		च्छा	च्छि		च्छ	च्छा	छ			
१५	जा	ज	जा	ज	जै	जै	ज	जा	जा	ज	जि	ज	ज	ज	ज	जा	जः	ज	जे	जा	जः	ज	ज	जि
१६	ञ्च	ञ्ज			ञ	ञ		ञ	ञ्ज		ञ्चा	ञ्च	ञ्च	ञ्जि	ञ्च	ञ्च	ञ्ञा	ञ्ञा	ञ्ञा	ञ्च	ञ्ज		ञ्ज	ञ्ज
१७	ट	ट		टा	टं	टा	टा	ट	टा	टे	ट	ट	ट	ट	टा	टि	ट	टि	टु	ट	टि		टा	टृ
१८								ठ							ण्ठ	ण्ठा			ष्ठ		ष्ठी			
१९		डि		ण्ड	ण्ड	डो	डा		डा	ण्ड	ड			डे	ड	ङ्ग		ण्ड	डा	ण्ड	ण्ड		डा	ङ्ग
२०		ढं					ढ						ढ			ढ								
२१	णां	ण	णी	ण	णि	णां	ण	णि	णि	णा	णी:	णे	णा	णि	ण	णां	णां	णा	णा	णा	णा	ण	णा	णः
२२	तु	त्	ती	ति	त	ता	ती	तं	ति:	त्ट	तु	त्ट	ता	ती	ता	तु	तु	त्ट	ते	ते	ता	ति	न्तु	ते
२३	था	थु	त्थ	था	था	था	थ	त्थँ	थो	थि	थ	थौ	थि	थ	थि	थि	थ	था	था	थ	था		थ	थि
२४	दो	दा	दो	दा	दा	दे	द	दो	दा	दे	दौ	द	दे	दा	दि	दै	द	द	दे	द	द	द	दू	दा
२५	धि	धि	धु		धौ	धि	धा	धे	धि	ध	धा	धा	ध	धा	धि	धा	धा	धा	धि	धो	धा	धि	ध	ध
२६	नु	नृ	नै	ना	ने	नु	न	न	नु	नं	ने:	न	न	नां	ना	नो	नु	नू	नो	नो	नो	नो	ने	नु
२७	पु	पा	पु	पा	पु	प	पु	पौ	पौ	पौ	पू	पौ	पू	पौ	पृ	पृ	पु	पौ	पू	पौ	पौ	प	प	पौ
२८		फु		फ		फ	फ	फ	फ		फा		फ	फ		फ	फ	फ	फ					फ
२९	बो	ब	बू	ब	बि	ब	ब	ब	ब	ब	ब्र	बा	बो	बु	बे	ब	ब	बो	ब	ब	ब		ब	बा
३०	भि	भ	भि:	भो	भू	भु	भृ	भू	भु	भ	भै	भू	भू	भा	भ	भु	भृ	भू	भा	भू	भू	भु	भि	भ्र
३१	म	म	मै	मे	मो	मो	मु	मा	मु	मा	मे	मा	म	मि	मु	मे	मा	मु	मू	मे	म	मे	मा	मू
३२	य	य	या	यो	यु	यू	य:	या	या	यां	ये	ये	या	यो	या	या	यो	य	यो	यु	यो	य	या	य
३३	रे	रु	रू	रु	रा	रू	रा	रा	रो	रो	रा	रा	रा	रे	रा	रु	रा	रै	रै	रै	र	रु	रो	रो
३४	ल	ल	लो	लो	लो	ल	ला	ल	ले	ल	ल	ले	लो	ला	ल	ल	लो	ल		ला	लै	ल	ल	ल
३५	व्र	व	वि	वि	वि	वो	वि	वि	वै	वा	वै	वे	वै	वि	वि	वि	वि	वो	वा	व्र	व्र	वि	वि	वो
३६	शो	शु	शो	शु	शू	श	शो	शो	शु	श	शि	शु	श	शे	श	शे	शे	शु	शा	शि	शु	शा	श	शू
३७	ष	ष	षु	ष	षि	ष	ष	ष	ष	षे	षो	षे	षि	षु	षि	षो	ष	षा:	षि	ष	ष		षि	षु
३८	स	स	सि	से	से	सो	स्ट	से	सा	सौ	सू	सो	सो	सं	सू	सि	से	सं	से	सिं	सु	स	सु	सिं
३९	हा	हा	ह्र	ह्र	हा	हा	हे	हु	हा	हा	हा	ह	हा	हु	हा	हो	हु	हा	हु	हा	हे	हा	ह	हो
४०														ल	ले	ल		ल				लि		ल
४१	ख्या	त्वा	ष्या	र्स	च्च	चो	च्च	च्व	च्व	क्लि	क्लि	च्च	च्व	क्त	ख्य	च्चो	क्र	म्	ञ्चा	ट्टि	तं	क्र	म्	क्त
४२	जू	त्रे	स्व	द्दा	न्त	ख्व	त्वा	व्रा	र्द्दा	त्ते	च्चि	वान्	ज्ये	क्लृ	श्रो	ण्ड्र	ञ्छ	ङ्ख	न्दो	नात्	द्र	द्र:	त्तु	न्यै
४३	ख्य	न्य	श्मे:	प्र	त्ता	व्रु	ण्ड	र्स	न्या	न्त	नां	र्थम्	णां	ङ्ग	ल्ट्ग	ष्ट	ट्क	श्या	म्र	व्वां	न्न	भ्रा	त्य	न्ना
४४	त्वा	ब्दे	स्त्र	ल्य	स्था	र्ष	प्र	ल्य	प्र	स्व	र्व्वं	र्च्चं	तृसा	णाम्	ल्ल	ष्ट्रा	त्य	स्रो	भ्यां	ष्णु	भ्रो	ला	गे र्गं	
४५	र्य्य	म्भ	:प	स्था	ऽकु	ष्ट	स्व	ल्य	स्व	ष्ठि	ल्गु	ह्न	प्र	या	रे	ऽप	द्रो	र	स्था	स्था	र्व्वं	स्रो	श्रै श्र	भ्र
४६	श्व	र्षे	:ख	:पा	:प	:प	ष्ट	ष्क	श्यां	ष्पृ	व्या	स्था	ऽक	ऽप	ल्टि	रु	ष्टि	ल्टू		ह्प	स्य	स्थि	स्त्रो	र्सं

दाक्षिणात्य-लिपि, सन् ई॰की ८वें से १५वें शताब्द तक ; ७वीं तालिकाकी विवृति

	गुर्जर खृ: ८१२	राष्ट्रकूट ८०४	८१३	प्रा: चालुक्य ८४३ खृ:	८४५ खृ:	१०२२	१०८५	प्रा:-चालुक्य काकतीय ११६२	ऋनेम १३१५		गङ्ग ७७५ खृ:	८२५ खृ:	पल्लव ७४०	नाच ११५०	पाण्ड्य ११५०	तामिल और बट्टेलित्त: पल्लव ६७०	राजेन्द्र चोल १०३०		वल्लक कामरु १४७८		भास्कर रविवर्म्मा	
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२
१	अ	अ	अ	अ	अ		अं	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ	अ		अ	अ	अ	अ
२	आ		आ		आ	आ	आ	आ	आ		आ		आ	आ	आ	आ	आ		आ		आ	आ
३	इ	इ	इ	इ	इ	इ		इ	इ		इ		इइ	इ	इ	इ	इ		इ		इ	इ
४	ई		ई		ई	ई		ई									ई				ई	ई
५	उ	उ	उ		उ	उ		उ		उ			उ	उ	उ	उ	उ		उ		उ	उ
६				ऊ			ऊ								ऊ							
७									ऋ													०
८	ए	ए	ए	ए	ए	ए		ए		ए			ए	ए		ए			ए		ए	ए
९															ओ	ओ	ओ		ओ			
१०								औ														
११	क्ष	का	क्ष	को	के	कौ	का	को	क्ष	क	को	क	को	कु	क्ष्	क	क	कि	क	का	क	का
१२	ख	ख	ख	खा	खा	खा		ख	खा	ख	ख	ख	ख	ख	खा	का		के	कि	कू		कि
१३	गट	गि	गो	ग	गु	गा	गे	ग	ग	गो	गु	गु	गु	गि	ग	कि		को	कै		कु	कू
१४	घे		घ	घ्र	घो	घ		घ	घ				घ	ग्घ	घो	कु			को		के	को
१५	ङ्क							ञ्त	ञ्त	ङ्क	ङ्क	ङ्क	ङ्ग		ङ्ग	ञ्	ञ		ञ		ञ	
१६	चि	श्व	चि	च	चो	च	चा	च	चं	च	चू	च	च	च	च	च	च	चा	च	चि	च	चा
१७	छ		छा	ञ्छ	च्छा	छ		छ	च्छा	छे	च्छ	छ	छ		च्छा	चा	चि	चे		चे	चि	
१८	ज्य	जा	जः	ज	जा	जी	ज	जृं	ज	ज	ज	ज	जा	ज	ज	च		चो			चु	
१९	ञ	ञ्च	ञ्च	ञ्चं	ञ्ज	ञ्ज			ञ्च	ञ्चा	ञ्चा	ञ्चि	ञ्च	ञ्चि	ञ्चि		ञ	ञ			ञ	ञ
२०	टै	टा	ट	ट	ट	ट	ष्टि	टो	टा	टु	टु	टु	टो	टि	ट	ट	ट	टा	ट		टा	
२१	ठ	ठा	ठा		ठ	ठ		ठ	ठ	ठा	ठि	ठा	रठ	ठ	ठ	टि	टि		टा		टि	टु
२२	डे	डि	डा	ड	डं	डा	डे	डि	डं	डी	डा	डा	डा	डा	ड	टु			टु		टै	
२३			ढां					ढ़												टै	टो	
२४	णी	णी	ण	ण	णि	णि	णि	णां	णि	ण	णै	णै	णा	णा	णे	ण	ण			णा	ण	णा
२५	तिः	ती	त	त	तौ	तो	त	ति	त	ता	तो	त	ति	ता	तां	त	त	ति	तः	ति	त	त
२६	था	थु	थु	थ	था	थः		थ	थ	थ्यं	था	थ्य	थ	थि	थी	ति	तु	तू	त्तु			ति
२७	दौ	दा	द्र	दि	दि	द्र	दि	दु	द	दि	द्य	दे	दि	दो	दै	तु	ते		ते			तै
२८	धा	धि	धा	धु	धे	धा	धा	धृ	धृ	धा	धा	धा	ध	धि	धि	ते	तो					तो
२९	नृ	नृ	न	ने	नृ	नु	ने	नः	नृ	नु	ने	नि	ने	नो	नी	नै	न	नि	ना	नि	न	न
३०	पि	प	पुं	पा	पो	प	पा	प	पु	प	पु	पा	पु	पा	पु	प	प	प		पा	प	पा
३१	फ		फे		फ	फ		स्फा	फा	फ	फा	फ	फ		फ	पा	पु	पु	पि		पि	
३२	ब	ब्र	ब	बि	बि	बु	ब	बिं	बः	ब	ब्ब	ब्ब	ब्र	ब्र	ब	पु	पे		पु	पु	पु	
३३	भू	भ	भू	भ्ट	भू	भो		भ	भा	भि	भ	भ	भ	भू	भा	पे			पो		पे	पो
३४	मु	मा	मौ	मु	मौ	मो	म	म	मो	मा	मि	मा	मू	मू	मू	मृ	म	मू	म	मू	म	मै
३५	यो	यि	यो	य	य	यु	य	य	या	य	य	यु	या	ये	यि	यि	य	यो	य	या	या	यि
३६	रा	रं	रा	रु	रु	रू	रुं	रं	रैः	रे		रो	रो	रै	रो	रु	रि	र	र	रु	रि	रु
३७	लु	लो	ला	लु	ल	लि		लो	ल	लि	ल	लि	लु	ले	ल	ले	ल	लि	ल	ले	ल	लि
३८	वो	वै	वि	वु	वि	वा	व	वा	वि	व	वा	वि	वै	वा	व्र	व	व	वा	व		व	वी
३९	शि	शि	शौ	शी	श	श	शे	श	शे	श	शा	श	शू	शो	शा	वि						
४०	षं	ष	षा	ष	ष	षो	षं	षा	षु	षा	ष	षा	षु	षे	ष	वु						
४१	से	सु	सू	स	सि	स	सु	सू	सौ	सू	सु	सि	सं	स	सौ							
४२	हं	हा	हि	ह	हा	हो	ह	हे	है	हो	हा	हे	ही	हि	ह							
४३		लै	लि	ल			लु	लि	ल				लि	लो	ल	ल	ला	लि	लि	लु	ला	लि
४४	त	त्ता	न्मु	क्ष	त	च	क्के	क	खै	अ	थ	क	कु	म्	च्याः	लु	ल	लि	ल	लु	लु	लु
४५	च्च	प्र	ब्ब	च	न	न्त	क्ष	चि	र्मं	क	ध	चो	क्य	चे	च्छ	लि	लु			रै	र	रा
४६	ता	ख	स्य	नु	म	व	चे	प्री	ल्ल	ज	रु		त	वा	लड्	लु	र	रि	र	रु	रि	
४७	ष्पं			ष्पु	ष्क	र्मे	ट्ट	न्नं	श्री	ज	चे	प्र	म्	ला	त्तं	र	रु	रो			र	रै
४८	श्रो	लो	लु	ब्ब	श्री	स्या	श्री	र्मे	स्य	ने	ख	न्नं	ई	न्द	श्री	रु	णा			ण	णु	णाणु
४९	स्थि	ल्ल	ला	ड्ड	रु	ह्ला	ऋट	स्फि	स्स	ह्म	प्र		ष	ष्ट	स्या	ण	णे		णा		णे	

अक्षरशः (सं० अव्य०) अक्षर-शस् वीप्सायां [पा ५।४।४३]। अक्षर-अक्षर। समस्त। निश्शेष। बिलकुल।

अक्षरशत्रु (सं० पु०) मूर्ख। निरक्षर। अनपढ़। नाखुँदा।

अक्षरसंस्थान (सं० क्ली०) ६-तत्। लिपि। लेख। लिखावट। इबारत।

अक्षरेखा (सं० स्त्री०) धुरीकी रेखा। वह रेखा जो किसी वर्त्तुल पदार्थके भीतर केन्द्रसे होती हुई दोनो पृष्ठोंपर लम्बवत् गिरे। निरक्षरेखाके उत्तर-दक्षिण समदूरवर्ती कितनी ही रेखायें, जो गोलेके पूर्व-पश्चिम मण्डलाकार चिवित होती हैं। (Lines of Latitude)

अक्षरौटी, अखरौटी (हिं० स्त्री०)। १ वर्णमाला। लेख। लिपिका ढङ्ग। २ अक्षरौटी। ३ सितारपर बोल बजाने या निकालनेकी क्रिया।

अक्षवत् (सं० त्रि०) अक्ष-मतुप्। पासोंका खेल।

अक्षवती (सं० स्त्री०) अक्ष-मतुप् मस्य वत्वम्। जुआ। द्यूतक्रीड़ा। चौसर।

अक्षवाट (सं० पु०) अक्षाणां वाटः वासस्थानम्। १ अड्डा। जुआघर। २ अखाड़ा। कुश्तीकी जगह। ३ पाली, जहां तीतर बटेर आदि लड़ते हैं। ४ बिसात।

अक्षविद् (सं० त्रि०) अक्ष-विद्-क्विप् अक्षं वेत्ति। १ जुआमें निपुण। २ अर्थशास्त्रज्ञ। ३ व्यवहार-विद्याका पण्डित।

अक्षविद्या (सं० स्त्री०) १ पासा खेलनेकी विद्या। २ व्यवहारशास्त्र।

अक्षवृत्त (सं० क्ली०) अक्षं राशिचक्ररूपं वृत्तम्। १ जुआड़खाना। २ राशिचक्रका गोलाकार क्षेत्र। (Parallels of Latitude) निरक्षरेखाके समान्तराल और निरक्षरेखासे क्रमशः दश-दश अंशके (Degree) अन्तरवाले वृत्त। ३ जुआड़ी।

अक्षशौण्ड (सं० पु०) अक्षेषु पाशकक्रीड़ायां शौण्डः कुशलः; ७-तत्। पासोंके खेलमें पण्डित।

अक्षस्, अक्षस्, आमू—तातार देशकी एक नदी। यह भारतवर्ष और ईरान देशके बीचमें स्थित बेलूर पहाड़से निकली और बुखारेके उत्तर-पश्चिम कोनेमें बहती हुई आराल ह्रदके दक्षिण भागसे जाकर मिली है। इसकी ६०० कोस लम्बाई है।

अक्षसूत्र (सं० क्ली०) अक्षस्य जपमालायाः सूत्रम्। ६-तत्। रुद्राक्षकी माला। जपमाला।

अक्षसेन—भारतवर्षका एक प्राचीन राजा, जिसका उल्लेख मैत्र्युपनिषद्में है।

अक्षहीन (सं० त्रि०) अन्धा। नेत्रहीन। नाबीना।

अक्षहृदय (सं० क्ली०) अक्षविद्यारहस्य। पासा खेलनेका कौशल। जुएकी चालाकी।

अक्षांश (सं० पु०) परस्पर स्थानोंकी दूरी और नगर, नदी, पहाड़ प्रभृतिका ठीक स्थान निर्दिष्ट करनेके लिये विषुवत्रेखासे उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम गोलकके ३६० भाग किये गये हैं। इन भागोंमें एक-एकका नाम अक्षांश है।

अक्षाग्रकीलक (सं० क्ली०) अक्षस्य चक्रस्य कीलकम्। ६-तत्। पहिया बंधा रखनेका कीला। धुरी।

अक्षानह (सं० क्ली०) अक्षे रथचक्रे आनह्यते बध्यते। आ-नह्-क्विप् [नहो धः। पा ८।२।३४]। पहिया बंधा रखनेका डण्डा।

अक्षान्ति (सं० त्रि०) न-क्षम-क्तिन्, नञ्-तत्। ईर्ष्या। जलन।

अक्षारलवण (सं० त्रि०) न-क्षारलवणं, नञ्-तत्। १ सैन्धव, सामुद्रिक लवण, जो खारा न हो। २ हविष्य द्रव्य, जैसे—दूध, घी, आतप तण्डुल इत्यादि।

अक्षावपन (सं० क्ली०) अक्ष-आ-वप्-ल्युट्। पासा फेंकनेका आधार, बुत।

अक्षावली (सं० स्त्री०) अक्षाणां रुद्राक्षाणां आवली श्रेणी, ६-तत्। जपमाला। रुद्राक्षकी माला।

अक्षावाप (सं० त्रि०) अक्ष-आ-वप् अण्। अक्षान् आवपति क्षिपतीति। उप-तत्। द्यूतकारक। पासा फेंकनेवाला, जुआड़ी।

अक्षि (सं० क्ली०) अश्-क्सि। आंख, नेत्र, चक्षुः, लोचन, दर्शनेन्द्रिय। समास करनेमें अक्षि शब्द अजन्त हो जाता है; जैसे—प्रत्यक्ष, समक्ष, परोक्ष।

अक्षि—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत कुलाबा ज़िलेको अलीबाग़ तहसीलका एक प्रसिद्ध ग्राम। इस स्थानके बाग़ या उद्यान चिरप्रसिद्ध हैं। यहां दो देव-

मन्दिर बने हैं—एक कालकाबोर्व देवीका और दूसरा सोमेश्वर महादेवका।

अक्षिक, अक्षीक (सं० पु०) अक्षाय चक्षाय हितम्, अक्ष-ठन्। रञ्जनवृक्ष। आलका पेड़। आलका जो रंग होता, वह इसी वृक्षकी लकड़ीसे निकलता और ऊदापन लिये रहता है।

अक्षिकूटक (सं० क्लो०) अक्षि-कूट-कन्। आंखका तारा, अक्षिगोलक।

अक्षिगत (सं० त्रि०) १ नयनगोचर। २ घृणास्पद। ३ शत्रु। ४ द्वेष्य। ५ शुकादिकी भांति जो आंखोंको घुमाये, सुग्गेकी तरह आंख बदलनेवाला।

अक्षिगोलक (सं० पु०) आंखका ढेढ़न। आंखकी कटोरी। आंखकी पुतलीवाला कोष।

अक्षिजेन, अक्षिजेन् (Oxygen) अम्लजान। वायुका एक भेद जिससे चीजें जलती हैं। साधारण वायुमें कई प्रकारकी पवन मिली होती है, यथा—अक्षिजेन्, नाइट्रोजेन्, हाइड्रोजेन् आदि। इसका साङ्केतिक चिह्न (Symbol)......अ(O)है। रूढ़सूक्ष्मांशका गुरुत्व (Atomic weight)...अ १५.६६, सूक्ष्मांशका गुरुत्व (Moleculer weight)...अ२ ३१.९२ और वायुके साथ तुलना करनेका आपेक्षिक गुरुत्व...१.१०५७ होता है। इस पवनमें रङ्ग कुछ नहीं अर्थात् अक्षिजेन् वर्णहीन पवन है। इसमें न कोई गन्ध होता है और न कोई स्वाद, और न इसे नेत्रोंसे देख ही सकते हैं। अक्षिजेन भरी बोतलमें जलती बत्ती डालनेसे भभक उठती है। एक टुकड़ा फसफरस इस बाष्पके भीतर डाल देनेसे उज्ज्वल प्रकाश होता है। इसमें ताड़ित-वेगको (बिजलीके वेग) प्रयोग करनेसे इसका गुरुत्व और तेज बढ़ जाता है।

अक्षिजेन प्राणिमात्रका जीवन स्वरूप है। प्राणी श्वास लेनेके साथ जो वायु ग्रहण करते हैं, यह अक्षिजेन उसका मूलाधान है। बिना अक्षिजेनकी सहायता अग्नि नहीं जलती, सुतरां जहां अक्षिजेन नहीं होता, वहां प्राण और प्रदीप दोनो ही बुझ जाते हैं। फिर, यदि केवल अक्षिजेनमें लकड़ी या बत्ती जलाई जाय, तो वह जल्द जलकर भस्म हो जायगी। इसी तरह केवल अक्षिजेन सेवन करनेसे देहकी गर्मी इतनी बढ़ जाती, कि शीघ्रही जीवका प्राणवायु जलकर भस्म होता है। इसलिये जो वायु हम श्वासके साथ खींचते हैं, वह विशुद्ध अक्षिजेन नहीं होता। उसमें यवक्षारजान (नाइट्रोजेन, Nitrogen) मिला रहता है। साधारणत: वायुमें सैकड़े पीछे २३ भाग अक्षिजेन और ७७ भाग नाइट्रोजेन बाष्प होता है। अक्षिजेन और हाइड्रोजेन मिलनेसे जल बनता है। नाइट्रोजेनका प्रधान काम अक्षिजेनकी दाहिका शक्ति मिटाना है। सभी जीव निश्वासके साथ अक्षिजेन ग्रहणकर प्रश्वासके साथ कार्बन (Carbon) बाष्प परित्याग करते हैं। वृक्षादि वही कार्बन ग्रहणकर अक्षिजेन छोड़ते हैं। इसीसे वाटिकाओंमें टहलना और घरोंमें अच्छे अच्छे पौधोंका लगाकर रखना लाभदायक है।

अक्षिजेन प्राणिशरीरका मार्ज्जनीस्वरूप है। जीवके शरीरमें नाना भांतिके दूषित पदार्थ एकत्र हुआ करते हैं। निश्वास द्वारा अक्षिजेन फेफड़ेके भीतर घुसता है, जिससे सब दोष दूर हो जाते हैं। किसी कारण वायुमें इस बाष्पका भाग कम पड़नेसे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। एक छोटे घरमें अधिक लोगोंके बैठे रहनेसे वहां अक्षिजेन कम पड़ जाता; इसलिये उन लोगोंमें बीमारी फैलती है। कोई बत्ती जलाकर ढांक देनेसे वहांका अक्षिजेन कम पड़ता, इसीसे बत्ती भी बुझ जाती है।

अक्षिजेन बहुत ही सहज रीतिसे प्रस्तुत किया जाता है। गिलासके जलमें नये पत्ते डाल उसे दूसरे जलपात्रमें उलटा करके रखो। पीछे धूपमें उसे रखनेसे अक्षिजेन निकलता है। अधिक अक्षिजेन निकालनेका उपाय यह है,—एक शीशीके भीतर थोड़ा डाइ-अक्साइड-अव-मङ्गेनिस् मिश्रित क्लोरेट अव पोटास रख शीशीका मुंह कागसे बन्द करना होता है। इस कागके बीचमें एक छेद रहता है। इस छेदमें शीशेका एक टेढ़ा नल लगाकर उसका दूसरा सिरा एक दूसरी शीशीके भीतर घुसाना पड़ता है। पिछली शीशीको न्यूमेटिक ट्रफसे भरे जलके भीतर (Pneu-

matic trough) डुबाकर रखना चाहिये। इसके बाद क्लोरेट-अव-पोटासकी शीशी गर्म करनेसे अक्सिजेन अलग हो न्यूमेटिक-ट्रफको शीशीमें आ गिरता है।

प्रायः समस्त अम्ल, चार और लवण द्रव्योंको गर्म करनेसे अक्षिजेन मिलता है। सबने देखा है, कि लोहेकी चीज़ कुछ दिन पड़ी रहनेसे ज़ङ्ग लग जाती है। इसका प्रकृत कारण यही है, कि वायुका अक्षिजेन सदा लोहेकी चीज़में लगनेसे वह जला करती और इसीसे शीघ्र नष्ट हो जाती है। इसी जीर्णावस्थाका नाम ज़ङ्ग या मोरचा लगना है।

सन् १७७४ ई०में डाक्टर प्रिष्टिलीने इस वाष्पको आविष्कार किया था। इसके बाद सन् १७७८ ई०में डाक्टर लेवोसियोने इसकी क्रिया-प्रणाली ठीक की।

आक्षिजेनका गुण उत्तेजक है। थोड़ासा ही सूंघनेसे नाड़ी पुष्ट और वेगवती हो जाती है। शरीरसे पसीना निकला करता और स्फूर्त्ति उत्पन्न होती है। किन्तु अधिक सूंघनेसे प्राणान्त हो जाता है। लाश चीरनेसे देख पड़ता, कि सब नसोंका उज्ज्वल-लाल वर्ण हो गया है।

नाना प्रकारके रोगोंमें यह द्रव्य काम आता है। यक्ष्मा, मधुमेह और कासश्वासमें इससे बड़ा उपकार होता है। कार्बोनिक-एसिड, ईथर, क्लोरोफ़र्म प्रभृति द्वारा विषाक्त हो जानेपर अक्षिजेन सूंघनेसे अनेक स्थलोंमें मुमूर्षु व्यक्तिके प्राण बच गये हैं।

अक्षितर (सं० क्ली०) अक्षि-तॄ-अच्। १ आंखके समान निर्म्मल। २ साफ़पानी, परिष्कार जल।

अक्षितारा (सं० स्त्री०) आंखकी पुतली।

अक्षिपटल (सं० पु०) आंखका परदा। आंखके कोएकी झिल्ली।

अक्षिभू (सं० स्त्री०) अक्ष्णः नेत्रस्य गतौ भूर्व्यापारः। प्रत्यक्ष ज्ञान। आंखों देखी बात।

अक्षिभेषज (सं० क्ली०) अक्ष्णः भेषजम् ६-तत्। १ चक्षु-रोगको दूर करनेवाला औषध। २ पठानी लोध या लोधका पेड़ (Symplocos crataegaites)। यह वृक्ष बहुत बड़ा नहीं होता। साधारणतः १२, १३ हाथ ऊंचा देखा जाता है। इसका फूल सफ़ेद रहता है। लोध देखो।

अक्षिभ्रुव (सं० क्ली०) अक्षि-भ्रू-अच्। भ्रुवौ च अक्षिणी च; राजदन्तादि। समा० द्व० [पा ५।४।७७]। अक्षि और भ्रू। आंख-भौं।

अक्षिव (सं० पु०) अक्षि-वा-क। १ समुद्रका निमक। २ सहिंजनका पेड़, शोभाञ्जनवृक्ष। [सहिंजन देखो।]

अक्षिविकूणित (सं० क्ली०) अक्ष्णः विकूणितं सङ्कोचो यत्र। कटाक्षपात, अपाङ्गदर्शन। नज़ारा।

अक्षीण (सं० त्रि०) न-क्षीण। जो न घटे। जो कम न हो। अविनाशी। नाशरहित।

अक्षीव (सं० क्ली०) न-क्षीव-क्त। [अनुपसर्गात् फुल्लक्षीव कृशोल्लाघाः। पा ८।२।५५]। इति निपातनात् सिद्धं। १ अनुन्मत्त, जो मतवाला न हो। २ शोभाञ्जन वृक्ष, सहिंजनका पेड़। ३ चैतन्य। ४ धीर। ५ शान्त। ६ समुद्रलवण, समुद्रका निमक।

अक्षु (सं० क्ली०) अक्ष-उ। शीघ्र।

अक्षुस (सं० त्रि०) १ अनाड़ी, बेसमझ। २ अभग्न, जो टूटा न हो। ३ समूचा, पूरा। ४ अच्छिन्न। ५ अकुशल। ६ मूर्ख।

अक्षुध्य (सं० त्रि०) न-क्षुध्-यत्। १ क्षुधाहारी, वह वस्तु जो भूख हर ले। क्षुधाहारी द्रव्य। अग्निमान्द्य-कर द्रव्य।

अक्षुवेध (सं० क्ली०) तीर या बर्छा मारनेका एक भेद।

अक्षेत्र (सं० क्ली०) अप्रशस्तं क्षेत्रम्, नञ्-तत्। १ अप्रशस्त या अनुर्वरा क्षेत्र। २ अयोग्य पात्र। ३ अमेधाः। ४ अयोग्य शिष्य। ५ वह भूमि या हृदय, जिसमें अच्छा फल उत्पन्न न हो सके।

अक्षेत्रविद् (सं० त्रि०) न क्षेत्र-विद्-क्विप्। तत्त्वज्ञान-शून्य। जो अवस्था या पात्र समझ न सके।

अक्षेत्रिन् (सं० पु०) न क्षेत्र-इन्, नञ्-तत्। अक्षेत्री। क्षेत्रहीन। वह पुरुष जिसके क्षेत्र न हो।

अक्षेम (सं० पु०) अमङ्गल। अशुभ। अकुशल। बुराई। खतरा।

अक्षोट, अक्षोटक (सं० पु०) अक्ष-ओट, कन् स्वार्थे।

अखरोट (फल)। पीलू वृक्ष। (Juglans regia, Walnut) कर्पराल। कन्दराल, अक्षोड़।

अक्षोड़ (सं० पु०) अक्षः विभीतक इव ओडति, अक्ष-ऊड-अच्। पार्वतीय पीलू वृक्ष, पहाड़ी अख़रोट।

अक्षोनि—(हिं० स्त्री) अक्षौहिणी।

अक्षोभ (सं० पु०) न-क्षुभ-घञ्, नञ्-तत्। १ क्षोभका अभाव। २ अनुद्वेग। ३ शान्ति। ४ दृढ़ता। ५ धीरता। ६ स्थिरता। ७ हाथी बांधनेका खूंटा। (त्रि०) १ क्षोभरहित। २ चाञ्चल्य या चञ्चलतारहित। ३ उद्वेगशून्य। ४ स्थिर, गम्भीर, शान्त।

अक्षोभ्य (सं० त्रि०) न क्षुभ-यत्। १ अचञ्चल, स्थिर। २ गम्भीर।

"महोदधिमिवाक्षोभ्यं महेन्द्रसदृशं पतिं" (रामायणम्)

अक्षोभ्यकवच (सं० क्ली०) कर्म-धा०। तन्त्रोक्तकवच-विशेष।

अक्षोभ्यतीर्थ—इनका दूसरा नाम गोविन्दशास्त्री था। सन् १२४८ ई०में माधवतीर्थकी मृत्यु होनेसे यह उनके उत्तराधिकारी हुए। यह आनन्दतीर्थके शिष्य और जयतीर्थके गुरु थे।

अक्षौहिणी, अक्षौहिनी (सं० स्त्री०) अक्ष-ऊहिणी। ऊह-इन् ऊहिणी [अक्षादूहिन्यां वृद्धिर्वक्तव्या; वार्त्तिक।]। पूरी चतुरङ्गिनी सेना। सेनाका एक परिमाण। सेनाकी एक नियत संख्या। इसमें १०९३५० पैदल, ६५६१० घोड़े, २१८७० रथ, और २१८७०, हाथी होते हैं, जिनकी सम्मिलित संख्या, २१८७०० है।

अक्ष्ण (सं० त्रि०) अश-क्स्न। काल। व्यापक। अखण्ड।

अक्स (अ० पु०) १ छाया, परछाईं, प्रतिविम्ब। २ चित्र, तस्वीर।

अक्सर, अकसर देखो।

अक्सी तस्वीर (फ़ा० स्त्री०) आलोकचित्र। फ़ोटो।

अख (हिं० पु०) वाटिका। बाग़।

अखगरिया (फ़ा० पु०) वह घोड़ा, जिसके अङ्गसे मलते समय अग्निकणा निकलें। ऐसा घोड़ा सालहोत्र-वालोंने दोषी ठहराया है।

अखगावन—विहारकी कण्डू जातिके अन्तर्भुक्त मगही लोगोंकी एक श्रेणी।

अखङ्ग (हिं० वि०) न खँगनेवाला। न चुकनेवाला। न घटनेवाला। अविनाशी।

अखट्ट (सं० पु०) न-खट्ट-अच्, नञ्-तत्। पियाल वृक्ष। चिरोञ्जी। पियासाल। (Buchanania latifolia)।

अखट्टी (सं० स्त्री०) न-खट्ट-असद् व्यवहारः। आखुटो। सदाचारिणी।

अखड़वार (हिं० पु०) कूर्मी जातिकी एक श्रेणी।

अखड़जात (अ० पु०) इख़राजातका अपभ्रंश। १ खर्च। २ ख़िराज, राजस्व, राजकर।

अखड़ा (हिं० पु०) तालाबके बीचका मछली पकड़ने-वाला गड्डा। चंदवा। मंझान।

अखड़ैत (हिं० पु०) अखाड़ेमें लड़नेवाला। पहलवान। मल्ल। बलवान्। लड़न्तिहा।

अखण्ड (सं० त्रि०) न खड़ि-घञ्। जो खण्डित न हो। पूरा। साङ्गोपाङ्ग। सम्पूर्ण। अटूट। जिसके टुकड़े न हों। अविच्छिन्न। समग्र। समूचा। २ लगातार। जो बीचमें न रुके। जिसका क्रम भ्रष्ट न हो या सिलसिला न टूटे। ३ बेरोक। निर्विघ्न।

अखण्डन (सं० पु०) न-खड़ि-ल्युट्। १ परमात्मा। २ काल। (त्रि०) पूर्ण। खण्डरहित।

अखण्डनीय (सं० त्रि०) १ जिसके टुकड़े या खण्ड न हो सकें, जो काटा न जा सके। अकाट्य। २ जिसका प्रतिवाद न हो सकता हो। पुष्ट, पक्का।

अखण्डल (हि० वि०) अखण्ड। पूरा। समूचा। सम्पूर्ण।

अखण्डानन्द—अद्वैतरत्नकोष, रत्नकोषकी टीका, मन्त्रो-द्धारप्रकरण, महाविष्णुपूजा-पद्धति और मुक्तिसोपान ग्रन्थके प्रणेता।

अखण्डानन्दमुनि—अखण्डानुभूतिके शिष्य। तर्कभाषा-प्रकाश-व्याख्या, तत्त्वदीपन-पञ्चपादिका-विवरण प्रभृति ग्रन्थोंके प्रणेता।

अखण्डित (सं० त्रि०) न-खड़ि-क्त। जिसके टुकड़े न हुए हों। अविच्छिन्न। विभागरहित। सम्पूर्ण। पूरा। समूचा। जिसमें कोई रुकावट न पड़े। निर्विघ्न। बाधारहित। लगातार। सिलसिलेवार।

अखण्डितर्त्तु (सं० पु०) अखण्डित-ऋतु। बहुव्री०। अखण्डितः निरवच्छिन्न-फलपुष्पादिप्रभव ऋतुः समयः

यत्र। जहां सदाके फल-फूल उत्पन्न हों। सफल वृक्षादि।

अख़्तियारपुर—दरभङ्गा ज़िलेके अन्तर्गत समस्तीपूर तहसीलका एक गांव। यहां नारायणी-पाठशाला नामकी एक संस्कृत चतुष्पाठी है। इसके प्रतिष्ठाता एक सन्यासी थे। वह भिक्षा द्वारा अर्थोपार्जन कर इसके यावतीय व्ययको निर्व्वाह करते रहे।

अखती (हि० स्त्री०) अक्षय-तृतीया।

अखतीज या अखतिज (हि० स्त्री०) वैशाख शुक्ल तृतीया। कृषक रबी बोनेके समय बनियोंसे जो ऋण लेते उसे इसी दिन चुकाते हैं। इसी शुभ दिन वह कृषि-कार्यके यन्त्रादि बनानेको देते, कुछ भूमि जोत रखते और ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं। इस दिन बीज बोना निषिद्ध है।

अखनवारी—विहारकी हलवाई जातिके तिनमुलिया-मधेसियों, छमुलिया-मधेसियों, और भोजपुरियोंकी एक श्रेणी।

अख़नी (हि० स्त्री०) मांसका रसा या झोल। शोरबा। प्राय: हड्डीको उबालकर जो रस निकालते हैं, उसीको अरबीमें यख़नी कहते हैं।

अख़बार (अ० पु०) ख़बरका बहुवचन। १ समाचारा-वली। समाचारपत्र। संवादपत्र। सामयिकपत्र। ख़बरका काग़ज़। २ मुसलमानोंके राजत्वकालमें भारतवर्षके राजा अपने राजकार्यका जो विवरण दूसरे राजाओंके पास लिख भेजते थे।

अख़बारनवीस (अ० पु०) समाचार-लिखनेवाला। पत्र-सम्पादक। संवाददाता। मुसलमानी राजाओंके समय संवाद लिखकर भेजनेवाले कर्म्मचारी थे। वह अपने अपने निर्दिष्ट स्थानोंके संवाद लिखकर बादशाहके पास भेज देते थे। बङ्गालवाले शोभासिंहके विद्रोही होने पर मुर्शिदाबादके नवाबने भयसे बादशाहको खबर न दी। किन्तु उस समयके अख़बारनवीसोंने चुप-चाप यह खबर दिल्ली भेजी थी।

अखमलोहान—ब्राह्मणाबादके शासनकर्त्ता। यह लाख, सम्मा और सोहत प्रदेशके अधिपति थे। सिन्धु देशके राजा चचके साथ इनका युद्ध हुआ था। चचनामा या तारीखे-सिन्ध नामक पुस्तकमें इस युद्धका विस्तृत विवरण मिलता है।

अखय (सं० अक्षय) अक्षय देखो।

अखर (सं० अक्षर) अक्षर देखो।

अखरना (हि० क्रि०) खलना। बुरा लगना। असह्य होना। बोझ जान पड़ना।

अखरा (हि० वि०) खोटा। जो खरा या सच्चा न हो। झूठा। बनावटी। कृत्रिम।

(पु०) १ अक्षर। हरफ़।

२ भूसी मिला यवका आटा, जो निर्धन लोग खाते और घोड़ोंको भी खिलाते हैं।

अख़रोट (हिं० पुं०) अक्षोट (*Juglans regia*)—एक बड़ा वृक्ष, जो काश्मीरसे शीतोष्ण हिमालय और पश्चिम तिब्बततक जङ्गलमें होता और बोया जाता है। यह मणिपुर और आवाकी पहाड़ियोंमें भी होता और उत्तर ईरान, ककेशस और अरमेनियाको भेजा जाता है। बहुत पुराने समयसे अख़रोटका व्यवहार और इसकी कृषि होते चली आई है। वास्तवमें इसकी कृषिका इतिहास इतना पुराना है, कि भारतमें इसकी प्रथम कृषि होनेका समय मालूम करना असम्भव हो गया है। कितने ही शताब्द हुए पहाड़ोंसे मैदानोंमें इसकी खूब रफ़तनी होते आई है। आईन-इ-अकबरीमें काश्मीरके अख़रोटों-का उल्लेख है, जो सन् ई०के १६ वें शताब्द तक सबसे अच्छे समझे जाते रहे, तातारके अख़रोट निम्नश्रेणीके होते हैं। इसे ऐसे जल-वायुकी आवश्यकता रहती है, जो न अधिक गर्म और न अधिक ठण्डा हो। उत्तम भूमिमें इसे लगाकर इसकी चारो ओर घास-पात खूब साफ़ कर डालना चाहिये। फलका बकला रंगनेके काम आता है। युरोपमें इससे खूब तेल निकाला जाता और फ्रान्समें जो तेल बनता, उसमें इसका एक तिहाई भाग रहता है। जबतक अखरोट बुने दो-तीन महीने बीत न जायें, तब तक इससे तेल न निकालना चाहिये। कारण, उस समय इससे अच्छा तेल नहीं निकलता। बादाम या मींगी बड़ी सावधानी-के साथ बकलेसे अलग की और कुचलकर लेई बनाई

जाती, जिसे थैलोंमें रखकर कोल्हू या कलमें डाल देते हैं। पहला तेल खानेके काम आता है। इसके बाद खली खौलते पानीमें डाली और फिर कोल्हूमें पेरी जाती है। इसका तेल लगानेके काममें आता है। पीछे जो खली रहती, वह पशुओंका अच्छा खाद्य होती है। इसका बकला दस्तावर होता और जुलाब लेनेमें उपयोग किया जाता है। पत्तियां बहुत हो पुष्ट होती और व्रतपर लगानेसे उसे चङ्गा कर देती हैं। लोगोंको विश्वास है, कि अखरोटका फल भी गठिया-बातपर अपना अच्छा प्रभाव डालता है। जुलाई और सेप्तम्बर मासमें फल पकता, जो कड़े बकलेके भीतर निकलता है। काश्मीर और उत्तर हिमालयमें अख-रोट लोगोंका प्रधान खाद्य है। पत्तियां और छोटी-छोटी डालियां पशुओंको काट-काट कर खिलाई जाती हैं। बकला मैदानोंको चालान होता, जिसे स्त्रियां अपने होंठ लाल करनेके लिये व्यवहार करती हैं। लोग कहते, कि अखरोटकी डाल कमरेमें रखनेसे मक्खियां भाग जाती हैं। अबुलफ़ज़लने लिखा है, कि उनके समयमें काश्मीरमें एक अनोखी चाल थी, जिसका वर्णन यों है,—

ज़िनबूल ग्राममें एक कुण्ड है, जिसमें लोग अख-रोट यह जाननेको फेंकते हैं, कि उनका काम सिद्ध होगा या नहीं। यदि अखरोट उतराता रहा, तो शुभशकुन समझा जाता है, किन्तु उसके डूब जानेसे अशकुन होता और लोगोंको अपनी कार्यसिद्धिकी आशा नहीं रहती।

अखरोट जङ्गली (हि० पु०) जायफल।

अखर्व (सं० त्रि०) बड़ा। लम्बा। भारी।

अखसत (सं० अक्षत) अक्षत देखो।

अखा (हि० स्त्री०) समुद्रकी खाड़ी। समुद्रके जलका वह भाग जो भूमिमें चला आया हो और जिसकी तीन ओर खुली भूमि और एक ओर जल रहे। अङ्गरेज़ीमें इसे गल्फ़ (Gulf) कहते हैं। (वि०) समूचा। अखण्ड।

अखाड़ा (हि० पु०) १ वह स्थान जो कुश्ती लड़नेके लिये बना हो और जहां थोड़े बहुत आदमी प्रायः इकट्ठे रहते हों। २ तमाशा करने या लकड़ी खेलनेवालोंका दङ्गल। ३ साधुओंकी सभा। ४ दरबार। ५ मजलिस। ६ रङ्गभूमि, रङ्गशाला। ७ नृत्यशाला। ८ झुरमुट। ९ आंगन। १० मैदान।

अखात (सं० पु०) न-खन्-क्त, नञ्-तत्। १ जो खोदा नहीं गया। स्वाभाविक जलाशय। २ झील। ३ खाड़ी। (सं० त्रि०) खातशून्य।

अखाद्य (सं० त्रि०) न-खाद-ण्यत्, नञ्-तत्। अभक्ष्य। खाने योग्य नहीं।

अखानी (हि० स्त्री०) अन्नके डण्ठल ठीक करनेकी एक कुरी।

अखार (हि० पु०) कुम्हारके चाकमें रखा जानेवाला मट्टीका लोंदा।

अखारा (हि० पु०) अखाड़ा। दङ्गल। कसरत करने और कुश्ती लड़नेकी जगह।

अखिद्र (सं० त्रि०) न-खिद्-रक्, नञ्-तत्। खेदशून्य। प्रसन्न।

अखिन्न (सं० त्रि०) न-खिद्-क्त भावे, नञ्-तत्। १ क्लेशशून्य। जो खिन्न न हो। २ जो क्लेश न माने। ३ सहनशील। ४ तितीक्षावाला।

अखिल (सं० त्रि०) न-खिल-क, नञ्-तत्। समस्त। समग्र। सम्पूर्ण। पूरा। सब। बिलकुल। सर्वाङ्ग।

अखीन (हि० वि०) १ न छीजनेवाला। चिरस्थायी। २ स्थिर। ३ नित्य। ४ अविनाशी। ५ एक रस रहनेवाला। कम न होनेवाला।

अखीर (अ० पु०) १ अन्त। छोर। २ समाप्ति। सम्पूर्णता।

अखुआपदा—उड़ीसाके बालेश्वर ज़िलेके अन्तर्गत भद-रख तहसीलका एक नगर या शहर, जो उड़ीसा-को ट्रङ्क-रोड पर अवस्थित है। उत्तर-भारतसे श्रीक्षेत्रमें आनेका पहले यह एक मात्र पथ था। इसलिये सन् १८२७ ई०में एक प्रसिद्ध बङ्गाली धनी द्वारा विपुल अर्थव्ययसे राजघाट, बालेश्वर, अखुआपदा प्रभृति स्थानोंमें सराय निर्मित हुई थी।

अखुट (हि० वि०) १ अखण्ड। जो न चुके या न घटे। २ अक्षय। ३ बहुत। अधिक। ४ न खुटनेवाली।

राधा रानीको रहत, हरिपर प्रेम अखूट।
बंसी मधुर बजायके, श्याम लियो व्रज लूट॥—सम्पा०

अखेट (सं० आखेट) आखेट देखो।

अखेटक (सं० आखेटक) आखेटक देखो।

अखेटिक (सं० पु०) न-खिट-षिकन्। वृक्षमात्र।

अखेद (सं० पु०) १ दुःख या खेदका अभाव। खुशी। प्रसन्नता। २ निर्द्वन्द्वता। (त्रि०) १ दुःखरहित। २ प्रसन्न। ३ हर्षित। खुश।

अखेलन (हिं० वि०) १ बिना खेलते। २ अचञ्चल। ३ अलोल। ४ भारी। ५ स्थिर। ६ आलस्यभरा। ७ उनींदा।

आलस भरी अखेलन अखियां बार बार जंमु हइए।
चलो सखी रामलला पौढ़इये! बघेलिनजी।

अखै (हिं० वि०) अक्षय। अविनाशी। अमर।

अखैनी (हिं० स्त्री०) अनाज सुखानेकी एक छोटी लग्गी। कभी कभी इस लग्गीके सिरे पर एक त्रिशूलके समान लकड़ीका बना हुआ टुकड़ा बांध देते हैं। इसमें तीन, चार या पांच दांत होते हैं। इसे भी अखैनी कहते हैं। राजपूतानेमें इसका नाम जई है।

अखैवर (सं० अक्षयवट) अक्षयवट देखो।

अखोर (हिं० वि०) १ अच्छा। २ भद्र। ३ सज्जन। ४ दोषरहित। ५ खूबसूरत। (पु०) १ कूड़ा-करकट। २ खराब घास। ३ चारा। ४ खर या बिचाली।

अखोला (हिं० पु०) अङ्कोल वृक्ष, एक प्रकारका पेड़।

अखोह (हिं० पु०) ऊंची-नीची भूमि। असम या विषम भूमि। चढ़ा-उतार जगह।

अखौट, अखौटा (हिं० पु०) १ पाट घूमनेकी चक्कीवाली खूंटी। २ गड़ारी फिरनेका कांटा।

अख़्ख़ाह (फा० अव्य०) अहह। उद्वेग या आश्चर्यसूचक ध्वनि। किसीसे सहसा मिलने, किसीको स्वभाव-विरुद्ध काम करते देखने अथवा ताने या प्रशंसाकी भांति कोई बात कहनेके साथ इसका प्रयोग होता है।

अख़ज़ (अ० पु०) ग्रहण। स्वीकृति। परिग्रह।

अख़्तावर (फा० पु०) वह घोड़ा जो जन्मसे अण्डकोश विहीन हो। सालहोत्री उसे दोषी मानते हैं।

अख़्तियार (हिं० पु०) इख़्तियार। अधिकार।

अख्यात (सं० त्रि०) न-ख्यात, नञ् तत्। न ध्याख्यापूर्च्छिमदाम्। पा० ८।२।५७। १ अप्रसिद्ध। जो ज्ञात या ख्यात न हो। २ अविदित। ३ निन्दित। ४ अख्यातिविशिष्ट। ५ अप्रतिष्ठित।

अख्यान (हिं० पु०) आख्यान। आख्यायिका। कथा। दास्तान।

अख्यायिका (हिं० स्त्री०) आख्यायिका। कहानी।

अख्याति (सं० स्त्री०) न-ख्या-क्तिन् १ अप्रसिद्धि। २ निन्दा। ३ अपयश।

अग (सं० त्रि०) न गच्छतीति न-गम-ड, नञ् तत्। नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्। पा० ६।३।७७। १ न चलनेवाला, स्थावर, अचर। २ टेढ़ा चलने वाला। ३ मूढ़। ४ अनजान। (पु०) १ वृक्ष। २ पहाड़। ३ सूर्य। ४ सांप। ५ अनाड़ी। ६ अङ्ग। ७ शरीर। ८ ऊखकी गांठ का ऊपरी भाग, अगौरा, अगोड़ी।

अगई (हिं० पु०) अवध, बङ्गाल, मध्यदेश और मन्द्राजमें उत्पन्न होनेवाला एक वृक्ष। इसका काष्ठ श्वेत-रक्त जैसा होता और घरों और जहाजोंमें लगता है। कोयला भी इसका उत्तम और पत्ते कोई दो फुट लम्बे होते, जिनकी पत्तलें बनाई जाती हैं। लोग इसकी कलियों और फलोंकी तरकारी बनाकर खाते हैं।

अगच्छ (सं० पु०) न-गम-श। वृक्ष।

अगज (सं० क्ली०) अग-जन-ड, पर्व्वतात् जायते। १ पार्व्वत्य वृक्ष। २ शिलाजतु। ३ सूर्य। ४ स्वर्ग। (त्रि०) जो पर्व्वतसे उत्पन्न हो।

अगट (हिं० पु०) मांस बिकनेका स्थान। चिकवाकी दुकान।

अगटना (हिं० क्रि०) इकट्ठा होना। जमा होना। समवेत होना। बटुरना।

अगड़ (हिं० पु०) अकड़। ऐंठ। दर्प। घमण्ड।

अगड़धत्ता (हिं० वि०) लम्बा-तड़ङ्गा। ऊंचा। बढ़ा-चढ़ा। बहुत बड़ा।

अगड़-बगड, अगड़म बगड़म (हिं० वि०) १ व्यर्थ। २ निष्फल। ३ अण्ड-बण्ड। ४ बिना मूड़-गोड़। ५ बेसिरपैरकी बात। ६ अखोर। ७ ऊटपटांग।

अगड़ा (हिं० पु०) १ झाड़ी हुई बाल। २ अखरा। खुखड़ी। ३ पिङ्गलके अनुसार अशुभ गण।

अगण्ड (सं० पु०) बिना-हाथ पैरका कबन्ध। वह धड़ जिसके हाथ-पैर कट गये हों।

अगणनीय (सं० त्रि०) १ न गिनने योग्य। २ सामान्य ३ अगणित। ४ असंख्य। ५ बहुत। ६ बेशुमार। ७ बेहिसाब। ८ अनेक। ९ साधारण।

अगणित (सं० त्रि०) अगणनीय। जो गिना न जा सके।

अगण्य (सं० त्रि०) न-गण-यत्। धनगणं लब्धा। पा० ८।४।८४। १ नगण्य। २ तुच्छ। ३ न गिनने योग्य। ४ सामान्य। ५ असंख्य। ६ अगणनीय। ७ अकिञ्चित्कर। ८ अयोग्य। ९ छोटा। १० थोड़ासा।

अगति (सं० स्त्री०) न-गम-क्तिन्। १ दुर्गति, बुरी गति, दुर्दशा। २ उपायाभाव, अनुपाय। ३ उपचारराहित्य। ४ वृक्ष। ५ पर्व्वत। ६ गतिहीन। ७ मृत्युके पश्चात् बुरी दशा, मोक्षकी अप्राप्ति। ८ बुरा फल। ९ बन्धन। १० नरक।

अगतिक (सं० त्रि०) जिसकी गति या पैठ न हो। जिसे कहीं ठौर-ठिकाना न लगे। अशरण। अनाथ। दीन।

अगती (हिं० वि०) १ जो मोक्ष (गति) का अधिकारी न हो। २ पापी। ३ कुकर्म्मी। ४ दुराचारी। ५ कुमार्गी।

(पु०) पापी-आदमी, कुमार्गि-मनुष्य।

(स्त्री०) १ चक्रमर्दक। २ दद्रुघ्न, चकौंड़, पमार, दादमर्दन। ३ दद्रुनाशक। (हिं० वि०) ४ आगेसे। पहिलेसे। अगत्तर (हिं० वि०) आनेवाला, भावी।

अगत्या (सं० अव्य०) १ आगेसे, पहिलेसे। २ भविष्यत्में, आगेको। ३ अन्तमें। ४ एकाएक, अकस्मात्।

अगद (सं० पु०) नास्ति गदः रोगः यस्मात्; ५-बहुव्रो०। १ औषधि, जिससे रोग मिट जाये। नास्ति गदः रोगः यस्य, बहुव्रो०। २ जिसके रोग न हो, सुस्थ, नीरोग, भला चङ्गा, तनदुरुस्त। न-गद व्यक्तायां वाचि अच् नञ्-तत्। (त्रि०) ३ अकथक, जो बात न करे, मुंह-चुप्पा। ४ दैवशक्तिसम्पन्न रत्न-विशेष। ५ नदी विशेष।

अगदङ्कार (सं० पु०) अगदं करोतीति कृ-अण् ममागमः। उप-स। वैद्य, हकीम, डाक्टर।

अगदतन्त्र (सं० पु०) विषैले कोड़ोंकी औषधियोंका आयुर्वेदिक प्रकरण।

अगन (हिं० स्त्री०) १ अग्नि, आग। (पु०) २ अशुभ।

अगनित (सं० अगणित) अगणित देखो।

अगनी (हिं० स्त्री०) १ अग्नि, आग। २ घोड़ेके माथेकी भौंरी।

अगनू, अगनेउ, अगनेत (हिं० पु०) अग्निकोण, दक्षिण और पूर्व्वके बीचकी दिशा।

अगम (सं० पु०) न गच्छति, गम-अच्, नञ्-तत्। १ वृक्ष, पेड़। २ पर्व्वत, पहाड़। ३ (वि०) न जानने योग्य। ४ न पहुंचने योग्य। ५ गहन, विकट। ६ कठिन। ७ दुर्लभ, जो मिल न सके। ८ अपार, जिसका कोई पार न मिले। ९ दुर्बोध, जो समझमें न आये। १० अथाह, जिसकी थाह न लगे।

अगमन (हिं० क्रि० वि०) आगे। पहिले। आदिमें। प्रथमतः।

अगमनीया (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसके साथ सम्भोग करना उचित नहीं।

अगमानी (हिं० पु०) आगे चलनेवाला, अगुआ।

अगमासी (हिं० स्त्री०) १ हलकी फालवाली लकड़ी। २ फ़सलके अन्नसे दी जानेवाली हलवाहेकी मजदूरी।

अगमूदैयन—दाक्षिणात्यकी एक जाति। इसके अधिकांश लोग कृषिजीवी हैं। चिङ्गलिपट, उत्तर-अर्काट, सलेम, त्रिचनापली प्रभृति स्थानोंमें यह जाति अधिक देखी जाती है। रीति-नीति और आचार-अनुष्ठानमें यह वेल्लालोंका अनुकरण किया करती है। ब्राह्मणोंके संस्रवमें आकर यह क्रमसे अधिकतर हिन्दू-भावापन्न हो रही है। वेल्लालोंकी तरह यह जन्म, विवाह और श्राद्धादि कार्य्योंमें ब्राह्मण पुरोहित नियुक्त करती है। इसके अधिकांश लोग शैव हैं। साधारणतः यह मृत देहको जला दिया करती; किन्तु मट्टी देनेकी भी प्रथा इसमें प्रचलित है।

अगम्य (सं० त्रि०) न-गम-यत् नञ्-तत्। १ अगन्तव्य, गमनके अयोग्य, जहां कोई जा न सके। २ विकट, कठिन। ३ अपार, बहुत। ४ बुद्धिके बाहर। ५ बहुत गहरा।

अगम्या (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसके साथ सम्भोग करना निषिद्ध है।

अगम्यागमन (सं० पु०) सम्भोग न करने योग्य स्त्री से सहवास।

अगर (हिं० पु०) वृक्षविशेष, एक पेड़। अगरु देखो। (फ़ा० अव्य०) यदि, जो।

अगर—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके रेवाकण्ठ ज़िलेके अन्तर्गत एक क्षुद्र राज्य। इसका विस्तार १७ वर्गमील है। अगरके राजा बड़ौदेके गायकवाड़को वार्षिक कर देते हैं। २ ग्वालियर राज्यका एक परगना। इसके प्रधान नगरका नाम भी अगर है। यह नगर एक हृदके ऊपर अवस्थित है। यहां एक प्रस्तरमय दुर्ग बना है। कहते हैं, कि इस नगरके नामसे ही अगरवाल नामकी उत्पत्ति है। अगरवाल देखो।

अगर-अतर—एक प्रकारका गन्धद्रव्य या इत्र। आसाम-सिलहटके अन्तर्गत पथरिया नामक स्थानके पहाड़ी लोग पिताकरा या अगर (Aquilaria agallocha) नामक वृक्षका निर्यास खींच यह इत्र बनाते हैं। अरब, तुर्कस्थान प्रभृति स्थानोंको यह भेजा जाता है।

अगरई (हिं० वि०) कालापन लिये हुए सुनहला-सन्दली।

अगरखेड़—विजयपुरके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह ग्राम भीमा नदीके तीरमें अवस्थित है। ग्रामकी दक्षिण ओर शङ्करलिङ्ग देवका एक प्राचीन मन्दिर विद्यमान है। सम्भवतः सन् १८०० ई०में यह श्वेत-मर्मरमय लिङ्गमूर्त्ति स्थापित हुई थी। किन्तुः मन्दिर सुप्राचीन है। पहिले इस देवालयमें जो विग्रह था, उसके स्थानान्तरित होनेसे लिङ्गमूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई। इसके सिवा इस ग्राममें हेमाड़पन्थियोंका भी एक मन्दिर है। सन् १२५० ई०का उत्कीर्ण एक शिलालेख इस मन्दिरके गात्रमें संलग्न है।

अगरचे (फ़ा० अव्य०) गोकि, यद्यपि।

अगरतला—पार्व्वत्य त्रिपुराकी राजधानी। कुमिल्लेसे ३८ मील उत्तर, अक्ष० २३° ५′ ३०″ उ० और द्रा० ९१° २३′ ५०″ पू०के बीचमें अवस्थित है। यहां राजप्रासाद, अस्पताल, जेल प्रभृति बने हैं। त्रिपुरा देखो।

अगरना (हि० क्रि०) १ आगे बढ़ना। २ भागना।

अगरपार (हिं० पु०) क्षत्रियोंका एक विभाग।

अगरबत्ती (हिं० स्त्री०) धूपकी बत्ती जिसमें अगर या अगरु तथा कुङ्कुम और सुगन्धि वस्तु दी जाती हैं।

अगरवानी—भागलपुर ज़िलेमें सुपौल तहसीलकी एक क्षुद्र जाति। इस जातिके लोग दूसरी जगह नहीं देखे जाते। वह कहते हैं, कि उनके पूर्वपुरुष नेपालसे वहां गये थे। वह लकड़ी चीर जीविकाकी उपार्जन करते और खैर वृक्षके निर्याससे कत्था बनाते हैं।

अगरवाल, अगरवाला—उत्तर-भारतके प्रसिद्ध धनी वणिक् (वैश्य) सम्प्रदायकी शाखा-विशेष। इस नामकरण-के उत्पत्ति-विषयमें विभिन्न मत प्रचलित हैं। कोई-कोई कहा करते, कि यह अगर या अगरुका व्यवसाय करनेवाले बताये जाकर अगरवाल नामसे अभिहित हुए हैं। फिर दूसरी यह बात प्रचलित है, कि पुराकालमें कश्मीरके बीच बहुतसे अग्निहोत्री ब्राह्मण वास करते, और एक श्रेणीके वैश्य उनके यज्ञार्थ अगर या अगरु काष्ठ ले जाते थे। महावीर सिकन्दरने भारतवर्षपर आक्रमण कर इन सब ब्राह्मण-अग्निहोत्रियोंके यज्ञकुण्ड ध्वंस किये, यागयज्ञ बन्द हो गया। इसीसे यज्ञके लिये काष्ठ संग्रह करनेवाले वैश्यों-को अन्य उपायसे जीविका निर्व्वाह करनेके लिये नाना स्थानोंमें जाना पड़ा। उनमें अधिकांश ही आगरे-के पास आ कर बसे थे। इसीसे यह भविष्यत्‌में अगर-वाल नामसे परिचित हुए। कितनों ही को ऐसा विश्वास है, कि पञ्जाब—हिसार ज़िलेके अन्तर्गत अगरोहा नामक प्राचीन नगरके नामसे अगरवाल नामकी उत्-पत्ति हुई है। इस अगरोहा नगरमें राजा अग्रसेन या अगर-सेन द्वारा लाखों वैश्य प्रतिष्ठित किये गये थे। यही पीछे अगरवाल नामसे प्रसिद्ध हुए। शहाबुद्दीन ग़ोरी-के सन् ११९५ ई०में अगरोहा नगर लूटनेपर अगरवाल हिन्दुस्थानके नाना स्थानोंमें भागकर जा पहुंचे। यही मत कितना ही समीचीन मालूम होता है। कारण, युक्तप्रदेशके सभी अगरवाल अगरोहेके सर्पराज गुग-पीरकी पूजा करते हैं। फिर ऐसा भी मत प्रच-लित है, कि उज्जैनसे कोई बीस कोस दूर अवस्थित ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत अगर-नगरके नामपर अगरवाल नाम रखा गया है।

अगरवालोंमें १७॥ गोत्र प्रचलित हैं। हमने जितने गोत्रोंकी तालिका देखी है, उनमें परस्पर नामोंका मेल नहीं। फिर भी, १७॥से अधिक गोत्र नहीं देख पड़ते। मि० शेरिङ्ग (Mr. Sherring), सर् रिज़्लो (Sir Risley) और क्रुक साहबने (Mr. Crooke) जो गोत्र-तालिका लिपिबद्ध को है, उसमें तो विशेष असामञ्जस्य वर्त्तमान है। सत्रह प्रधान और एक अप्रधान या अर्द्धगोत्र होनेवाले कारणके सम्बन्धमें यह बात कहते हैं, कि राजा अगरनाथने देवी लक्ष्मीके प्रीत्यर्थ अट्ठारह यज्ञ किये थे। देवी लक्ष्मीने प्रसन्न हो उन्हें वर दिया, कि उनकी महिषी नागराज कुमुद-कन्याकी सन्तान अगरवाल नामसे परिचित होती, और जब तक वह दिवालीका उत्सव अच्छी तरह मनाये जाते तब तक उन्हें कोई अर्थ कष्ट न होता और वह लक्ष्मीके वरपुत्र होकर चिरदिन सुख-स्वच्छन्दसे समय व्यतीत करते। सत्रह यज्ञ निर्विघ्न सुसम्पन्न हुए थे, किन्तु १८वां यज्ञ जब आधा समाप्त हुआ, तब यज्ञमें पशुवध-जनित विघ्न उपस्थित हो गया। राजाने दुःखितान्तःकरणसे यज्ञ बन्द कर दिया, और भविष्यत्में उनके वंशभरमें जिससे सदाके लिये पशुवध बन्द हो जाये, उसका आदेश लोगोंको प्रदान किया। यह आधा गोत्र उसी असम्पूर्ण यज्ञको सूचित करता है।

अगरवालोंको जन्मदात्री नागमहिषीकी स्मृतिका यह आज तक पवित्रज्ञान पोषण करते हैं। विहारके अगरवाल कहते हैं—'हमारी जातिका ननिहाल नागवंशीय है।' हिन्दू या जैन अगरवाल कभी सर्पवध नहीं करते। दिल्ली और कितनी ही दूसरी जगहोंमें अगरवाल बाहरके दरवाज़ेको दोनो ओर सर्पका चित्र अङ्कित करते, और फलफूलसे उसे पूजते हैं। किन्तु जैन-अगरवाल किसी प्रकार सर्पपूजा नहीं करते। हिन्दू अगरवालोंमें आस्तीक मुनिकी पूजा अधिक प्रचलित है, और वह नाग-उपासक बता अपना परिचय प्रदान करते हैं।

स्वगोत्र-विवाह अगरवालोंमें प्रचलित नहीं। इसके सिवा विवाहमें पात्र-पात्रीके निर्व्वाचन-सम्बन्धमें इन्हें और भी नानाविध विधियां प्रतिपालन करना पड़ती हैं। अब अगरवाल दो श्रेणियोंमें बंट गये हैं—पूर्वीय और पश्चिमीय। इनके परस्परमें आदान-प्रदान प्रचलित नहीं। फिर भी, यह एकत्र आहार-विहार कर सकते हैं। किन्तु क्रमसे यह दोनो श्रेणी आत्मीयताके सूत्रमें आबद्ध हो परस्पर मिल रही हैं और अचिरकालके बीच, यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि, इनमें फिर आदान-प्रदान प्रचलित हो जायगा। बहुविवाह इनके समाजमें निषिद्ध है। फिर भी, प्रथम पत्नी वन्ध्या होनेसे द्वितीय दारपरिग्रह करनेकी विधि रखी गई है। नतुवा अन्य किसी कारणसे द्वितीय दारपरिग्रह करने पर यह समाजच्युत हो जाते हैं।

अगरवालोंमें अधिकांश लोग वैष्णव हैं और जैन-दिगम्बर सम्प्रदाय-भुक्त व्यक्तियोंकी भी संख्या अधिक देख पड़ती है। शैव और शाक्त अगरवाल अल्प परिमाणमें मिलते हैं। किन्तु किसी धर्म्मके अवलम्बी यह क्यों न हों, इनमें आदान-प्रदान प्रचलित रहता है। विवाहकालमें हिन्दू शास्त्रानुमोदित आचार-व्यवहार और विधि-निषेध अनुष्ठित होता है। स्त्रीपुरुष विभिन्न धर्म्मावलम्बी होनेपर प्रथमतः कन्या पात्रके धर्म्मसे दीक्षित की जाती, और विवाहके बाद कन्याको पितृगृह जानेसे स्वपाक अन्न भोजन करना पड़ता है।

उत्तर भारतवाले साधारण निष्ठावान् हिन्दुओंके साथ इनके आचार-व्यवहारका विशेष कोई पार्थक्य परिलक्षित नहीं होता। लक्ष्मीदेवी इनकी प्रधान आराध्य देवता हैं। इनको यह दृढ़ विश्वास है, कि लक्ष्मीकी कृपासे यह धनी और सौभाग्यशाली होते आये हैं। गौड़-ब्राह्मण इनका पौरोहित्य करते हैं। यह कहते—हम आर्य्य वैश्योंके वंशधर हैं। वैश्यराज धनपाल इनके पूर्व्वपुरुष थे। कहते हैं, कि सम्राट् अकबरके मन्त्री मधुशाह जातिके अगरवाल रहे। अकबर बादशाहके समयवाले सिक्कोंमें आज भी इनका नाम अङ्कित मिलता है। अगरवालोंमें अधिकांश ही व्यवसाय-वाणिज्य प्रभृति कार्य्य द्वारा जीविकाको निर्व्वाह करते हैं। इनमें जो गरीब होते, वह

दलाली, मुनीबी, सुनारके व्यवसाय या कोई दूसरे भद्रोचित व्यवसायको अवलम्बन किया करते हैं। किन्तु कोई किसी क्रमसे कृषिकार्य्य नहीं करता। पश्चिमीय अगरवालोंमें सभी और पूर्व्वीय अगरवालोंमें अधिकांश यज्ञोपवीत धारण करते हैं। समाजमें ब्राह्मणों और कायस्थोंके पीछे ही इनका स्थान है। यह सभी निरामिष भोजी होते हैं। जैन अगरवाल इसीसे सन्ध्याके पहिले भोजन कर लेते हैं, जिसमें कोई क्षुद्र कीट-पतङ्ग खाद्यके साथ मुखमें चला न जाय, यह कभी रातको भोजन नहीं करते।

अगरसार (हिं० पु०) अगरका बुरादा या सत।

अगरी (सं० स्त्री०) न-गर-ङीष्। नास्ति गरः विषं यस्मात्। देवदारु वृक्ष। (त्रि०) मूषिक-विषहारी। चूहेका ज़हर उतारनेवाली।

अगरीया—ठगोंका एक वंश। यह दाक्षिणात्यसे निकाले जानेपर कुछ दिन आगरेके पास रहा था। बङ्गालमें सब लोग इसे 'हा-घरे' कहते हैं। इस जातिकी स्त्रियोंके गलेमें कांच या पोतकी माला पड़ी रहती है। हिन्दुस्थानियोंकी तरह यह लहँगा पहनतीं और सब जगह भीख मांगते घूमा करती हैं।

अगरु (सं० क्ली०) न-गॄ-उ, नञ्-तत्। (Aquilaria Agallocha, Aloe or Eagle-wood) अगरु चन्दन। यह देखनेमें तो काला, किन्तु पत्थरपर घिसनेसे सुन्दर पीतवर्ण हो जाता है। अगरु लकड़ी एक तरहकी नहीं होती। सिलहट, दाक्षिणात्य, आसाम प्रभृति कितने ही स्थानोंमें इसके कई तरहके वृक्ष हैं, इन सब वृक्षोंकी लकड़ी सुगन्धित और देखनेमें अगरु जैसी होती है। बाज़ारमें असली अगरु पहचानना कठिन है। इसका पेड़ वृहदाकार होता है। उत्कृष्ट अगरु सिलहटके पार्व्वत्य प्रदेशमें उपजता है। पुराने वृक्षसे गुग्गुल जैसा एक प्रकारका निर्यास निकलता है। चमकीले वृक्षमें वैसा निर्यास नहीं मिलता। गुग्गुल जलानेसे जैसा सुगन्ध फैलता, अगरुके निर्यासमें भी ठीक वैसाही सौरभ होता है। धूपदानमें इसे जलानेसे अन्तःकरण प्रफुल्ल हो जाता है। पूर्व्वकालमें अरब, ईरान और यूनान आदि देशोंके लोग भारतवर्षके अगरु और अगरु-निर्यासको बड़े आदरकी सामग्री समझते थे। भारतवर्षमें देवार्चनाके समय चन्दनके साथ अगरु काष्ठ और अगरु-रसको कितने ही लोग व्यवहार करते हैं। सिवा इसके, पूर्व्वकालके लोग इत्र, गुलाब, लेवेण्डर आदि न पहचानते थे। उस समय मातायें बालक-बालिकाओंको ललाटमें अगरुकी अलकावली लगाकर सजाती थीं। अभिसारिका कामिनियां भी अगरुसे वेशविन्यास करती थीं।

कोचीन देशमें अगरुके बकलेसे एक तरहका मोटा काग़ज़ तय्यार होता और लकड़ीसे चन्दनके तेल जैसा खुशबूदार तेल निकाला जाता है। मेहरोग और उदराध्मानमें यह तेल महोपकारी है। लकड़ीका काढ़ा ज्वर रोगमें प्रयोग करनेसे प्यास और हिचकी बन्द हो जाती है। शिरके घूमने और पक्षाघातकी पीड़ामें इस काढ़ेको सेवन करनेसे थोड़े परिणाममें उपकार दिखाई देता है। वैद्यक-ग्रन्थमें अगरुके कई एक गुण लिखे हैं—खानेमें तीता, गर्म और कड़ुआ, लगानेमें रूखा; और इसके द्वारा कफ, वायु, वान्ति, मुखरोग, व्रणरोग और कान और आंखकी पीड़ा मिट जाती है। अगरुके निर्यासका गुण लकड़ी ही जैसा है। इस निर्याससे एक तरहकी दवा बनती है। उसके द्वारा दुष्टव्रण, ग्रन्थि-वात, दुष्टरक्त प्रभृति रोग प्रशमित होते हैं। ब्रह्मचारी कहते हैं, कि सत्पथ्याशी होकर इस दवाको एक वर्ष सेवन करनेसे शरीरमें किसी प्रकारका क्षत उत्पन्न नहीं होता।

गुग्गुल शब्दमें इसका विवरण देखो।

अगरू—अगरु देखो।

अगरो (हिं० वि०) १ अगला, पहला। २ अच्छा, उत्तम, श्रेष्ठ, बढ़िया। ३ अधिक, ज़ियादा, बहुत।

अगर्व (सं० त्रि०) १ जिसे गर्व न हो, अभिमानरहित। २ सीधा, भोला-भाला।

अगर्हित (सं० त्रि०) न गर्हितः, गर्ह कुत्सायां-क्त गर्हितः नञ्-तत्। १ आनन्दित। २ प्रशंसित।

अगल-बगल (फ़ा० वि०) पास-पास। इधर-उधर। साथ-साथ। दोनो ओर। हिन्दुस्थानी बालक सन्ध्याको अपने एक खेलमें कहते हैं—

"अगल बगलमें पड़ी जंजीर। कोई ले तुक्कल कोई ले तीर।"

अगलहिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पक्षी।

अगला (हिं० वि०) १ आगेवाला। सिरेका। सम्मुखस्थ। २ पहलेका, प्रथम। पूर्ववर्त्ती। जो पहले हो गया हो। ३ पुराना, प्राचीन। बीते समयका। जीर्ण। ४ आगामी। भविष्य। जो आगे आयेगा। ५ दूसरा। किसीके पीछेका। (पु०) १ अगुआ। मुखिया। अग्रगण्य। प्रधान। अग्रसर। आगे चलनेवाला। नेता। २ चतुर मनुष्य। ३ धूर्त। ४ फुर्तीला आदमी। ५ पुरखा। पूर्व्वपुरुष। ६ स्त्रियोंके कहनेका पतिवाला नाम। ७ करनफूलके सामनेवाली ज़ञ्जीर। ८ मांझा, गांव और उसकी सीमाके बीचका स्थान।

अगवाई (हिं० स्त्री०) पेशवाई। अगवानी। स्वागतके लिये आगे चलकर जाना। अभ्यर्थना। (पु०) अग्रगामी। मुखिया। आगे जानेवाला। अगुआ। अग्रसर। नेता।

अगवाड़ा (हिं० पु०) घरके सामनेका स्थान। घरके आगेकी भूमि।

अगवान (हिं० पु०) १ पेशवाई करनेवाला। जो स्वागत करे। अभ्यर्थनाकारक। आगे चलकर जो अगवानी करे। २ विवाहमें जो लोग कन्याकी ओरसे बरात को आगे बढ़कर अगवानी करते हैं। ३ अभ्यर्थना। स्वागत। पेशवाई।

अगवानी (हिं० स्त्री०) १ पेशवाई। अभ्यर्थना। आगे बढ़कर स्वागत करना। २ विवाहमें कन्याकी ओरसे लोगोंका आगे बढ़कर वरपक्षवालोंकी अभ्यर्थना करना। (पु०) अगुआ। आगे जानेवाला। अग्रसर।

अगवार (हिं० पु०) १ हलवाहेको देनेके लिये अन्नके ढेरसे पहले निकाला गया अंश। २ वह अन्न जो भूसेके साथ उड़ जाता और जिसे गरीब लोग उठा लेते हैं। ३ घरके सामनेका स्थान। ४ गांवका चमार।

अगवासी (हिं० स्त्री०) १ फाल लगानेकी हलवाली लकड़ी। २ उत्पन्न हुए अन्नसे हलवाहेकी मजदूरीके लिये दिया जानेवाला अंश।

अगसारी (हिं० वि०) आगे। सामने।

अगस्त—(August) अङ्गरेजीका आठवां महीना।

अगस्ति (सं० पु०) अग-अस-ति। विन्ध्याख्यमगमस्यतीति। बाहुलकात् अस्तेस्ति। उण् ४।१७९। १ वकवृक्ष, मौलसिरी। २ अगस्त्यमुनि। ३ अगस्त्यके पुत्र। ४ दक्षिणदिक्। अगस्त्य देखो।

अगस्तिद्रु (सं० पु०) अगस्तिप्रियः द्रुः वृक्षः। शाक-तत्। वकवृक्ष, मौलसिरी।

अगस्त्य (सं० पु०) अग-स्त्यै-क। अगं विन्ध्याचलं स्त्यायति। १ अगस्त्य मुनि। २ वकवृक्ष।

संसारमें गुणका ही अधिक आदर होता है। लोग आगे वंशमर्य्यादाको देखते हैं, किन्तु इससे क्या होता है? केवल सत्कुलका तो उतना गौरव देख नहीं पड़ता। सद्गुणके ऊपर जो कुलमर्यादा निर्भर करे, तो अच्छा ही है; यदि न निर्भर करे, तो कोई क्षति नहीं। मोती सीप या गुञ्जामें उत्पन्न होता है। सीप या गुञ्जामें उत्पन्न होनेसे मोतीका कोई अनादर नहीं करता। मृणालकी पङ्कसे उत्पत्ति है, डांठीमें कांटे होते हैं; किन्तु कोई यह कह कर पद्मपुष्पमें अयत्न नहीं दिखाता। अगस्त्य महातेजा, महातपा थे—उनका जन्म कुम्भमें हुआ। ऋग्वेदमें लिखा है, कि यज्ञस्थलमें ऊर्व्वशीको देख मित्र और वरुणका रेतःस्खलन हुआ था। वही शुक्र यज्ञीय कुम्भमें जा पड़ा। उसीसे वशिष्ठ और अगस्त्यकी उत्पत्ति है—

"सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतुः समानं।
ततोह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वशिष्ठम्।" (ऋक् ७।३३।१३।)

इस स्थलमें अगस्त्यका नाम 'मान' लिखा गया है। सायणाचार्य्यने ऋग्वेदके उक्त मण्डल और सूक्त वाले ग्यारहवें ऋक्की व्याख्यामें बृहद्देवतासे कई एक श्लोक उद्धृत किये हैं। इसका कारण इन श्लोकोंमें निर्दिष्ट है, कि यह महर्षि किस कारणसे पहिले 'मान' नामसे प्रसिद्ध हुए थे—

"तयोरादित्ययोः सत्रे दृष्ट्वाप्सरसमूर्वशीं।
रेतश्चस्कन्द तत् कुम्भे न्यपतद्वासतीवरे।
तेनैव तु मुहूर्त्तेन वीर्य्यवन्तौ तपस्विनौ।
अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च तत्रर्षी संवभूवतुः।
बहुधा पतितं रेतं कलसे च जले स्थले।
स्थले वशिष्ठस्तु मुनिः संवभूवर्षिसत्तमः।
कुम्भे त्वगस्त्यः सम्भूतो जले मत्स्यो महाद्युतिः।
उदियाय ततोऽगस्त्यः शम्यामात्रो महातपाः।

मानेन सम्मितो यस्मात्तस्मान्मान्य इहोच्यते।
यद्वा कुम्भादृषिर्जातः कुम्भेनापि हि मीयते।
कुम्भ इत्यभिधानञ्च परिमाणस्य लक्ष्यते।"

अर्थात्—आदित्ययज्ञमें उर्वशीको देखनेसे वासतीवर नामक यज्ञीय कुम्भमें मित्र और वरुण देवताका रेतःस्खलन हो गया था। मुहूर्त्त भरमें उससे अगस्त्य और वशिष्ठ नामके दो वीर्य्यवन्त तपस्वी उत्पन्न हुए। वही रेतः कलसमें, जलमें और स्थलमें कई जगह गिर गया था। स्थलमें ऋषिसत्तम वशिष्ठने जन्म लिया, कुम्भमें अगस्त्य और जलमें द्युतिमान् मत्स्यने। महातपा अगस्त्यका आकार हलकी माची जैसा हो गया था। इस आकारकी परिमितिके कारण वह मान नामसे प्रसिद्ध हुए। अथवा कुम्भ एक परिमाण का नाम है। (द्रोणाभ्यं शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिशरावकः।) अगस्त्य कुम्भमें उत्पन्न हुए थे, इसीलिये कुम्भसे उनका परिमाण होता है, इसीसे वह मान नामसे प्रथित हैं।

विष्णुपुराण और भागवतमें मित्रावरुणसे वशिष्ठके पुनर्जन्मकी कथा उल्लिखित हुई है, किन्तु उस जगह अगस्त्यमुनिके जन्मग्रहणका नामप्रसङ्ग भी नहीं पाया जाता। इक्ष्वाकुतनय निमि सहस्रवर्षव्यापी एक यज्ञ करने लगे। उसी यज्ञमें होता होनेके लिये उन्होंने वशिष्ठको वरण किया। किन्तु वह निमिराजके यज्ञमें न जा सके, क्योंकि उन्हें इन्द्रने पहिले ही एक पञ्चशत-वर्षव्यापी यज्ञमें नियुक्त कर लिया था। सुतरां निमिने गौतमको ले जाकर यज्ञारम्भ किया। इन्द्रका यज्ञ सम्पन्न होनेसे, वशिष्ठने जाकर देखा, कि गौतम उनके शिष्यके यज्ञमें व्रती हुए थे। इस अपमानसे क्रुद्ध हो महर्षिने राजाको अभिसम्पात किया—'तुम देहहीन हो'। निमिने भी क्रुद्ध हो शाप दिया—'गुरुकी भी देहका पतन हो'। इसी शापके कारण वशिष्ठका तेज मित्रावरुणके तेजमें प्रविष्ट हुआ। इसके बाद उर्वशीदर्शन द्वारा मित्रावरुणका रेतःपात होनेसे वशिष्ठ दूसरी देहको प्राप्त हुए। (विष्णुपुराण ४।५)।

अगस्त्यमुनिका प्रथम नाम मान है; पीछे विन्ध्यगिरिके दर्पको चूर्णकर उन्होंने अगस्ति नाम पाया। अब मालूम होता है, कि ऊपरके प्रमाणानुसार यही महर्षि मित्रावरुणके पुत्र हैं। मित्र और वरुण देवता हैं। किन्तु आश्चर्य्यका यही विषय है, कि वंशरक्षा न होनेसे देवताओंको भी सद्गति नहीं मिलती। भगवान् अगस्त्यने ऐसी इच्छा की थी, कि वह दारपरिग्रह न करते। किन्तु उन्होंने देखा, कि एक गर्तके मध्यमें उनके पितृपुरुष अधोमुखसे लटक रहे थे। महर्षिने व्यस्त हो इसका कारण पूछा। उन्होंने कहा, 'वत्स! हम तुम्हारे पितृलोक हैं; तुम्हारे वंशरक्षा करनेसे हमारी सद्गति होगी। (महाभारत वन-प० ९६ अ०)।

तब तो विवाह करना आवश्यक हुआ। किन्तु विवाह करनेके लिये मनके अनुसार कन्यारत्न चाहिये। संसारमें सुन्दर अनेक सामग्री हैं, किन्तु उनमें दोष भी कितने ही पाये जाते हैं। इसी कारण महर्षि सुस्थिरचित्तसे चक्षु मूंदकर जगत्का सब सौन्दर्य्य परखने बैठे। मन ही मन उन्होंने विचारा, कि चम्पाको फूल तोड़ वह कन्याके शरीरका रङ्ग बनाते, जलका कमल उखाड़ मुखकी रचना करते और आकाशसे पूर्णिमाका चन्द्र लाकर हंसीके साथ मिला देते। परखते-परखते ऋषिके हृदयमें आपसे ही रूपसागर उमड पड़ा। उसी समय विदर्भराज पुत्रकामनासे तपस्या करते थे। स्त्रीरत्नकी निर्म्माण कर चुकनेपर, अगस्त्यने वही कन्या महाराजको अर्पण कर दी। यही महर्षिकी स्त्री, पीछे लोपामुद्रा नामसे प्रसिद्ध हुई। लोपामुद्राके गर्भसे दृढ़स्यु नामकी एक सन्तान उत्पन्न हुई थी। उन्हीं तेजस्वी पुत्रका बाल्यावस्थामें इन्धनकी आहरण करनेके कारण इध्मवाह नाम रखा गया।

"इध्मानां भारमाजह्रे इध्मवाहस्ततोऽभवत्।" महाभारतम् वन प० ९९ अ० २३—२७ श्लो०।

इस स्थानमें महागोल है। उसकी शैली करनेका कोई उपाय देख नहीं पड़ता। रामायणके अरण्यकाण्डमें सुतीक्ष्णमुनि रामचन्द्रको अगस्त्याश्रमका पथ दिखाते थे—

"दक्षिणेन महान् श्रीमानगस्त्यभ्रातुराश्रमः।" रामायणम् अरण्यकाण्ड ११।३७।

यानी तुम इस दिक्से जाना, ठीक इसी दिक्से। दक्षिण ओरको चार योजन और पथ है। चार योजन

पथ चलनेसे ही अगस्त्यभ्राताका महा श्रीमान् आश्रम देख पड़ेगा।

वाल्मीकिने यह न बताया, कि अगस्त्यके भाई कौन थे। किन्तु स्वामिकृत टीकामें लिखा गया है, कि उनका नाम इध्मवाह था। यथा—

"तत्रागस्त्यभ्रात्राश्रमे इध्मवाहेति अस्य नाम। अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रतायामस्यां दृढ़व्रतो जात इध्मवाहात्मजमुनिरिति भागवतं तु देवराच्च सुतोत्पत्तिरिति न्यायेनेत्ये के।"

अगस्त्यमुनिका आश्रम भी एक स्थानमें न था। सुतीक्ष्णमुनिने रामको जिस प्रकारसे पथ बताया, उसके अनुसारसे दण्डकारण्यमें उनका आश्रम होना चाहिये। दण्डकारण्य गोदावरीके उत्तर-कूलमें, आधुनिक बरारकी पूर्व-उत्तर-सीमा है। महाभारतके मतसे अगस्त्याश्रम गयाके निकटमें था। वन ९७-९९ अ० देखो।

इन मुनिका असाधारण तपोबल है। इन्होंने देवताओंके अनुरोधसे सागरको शोषण किया, इल्वल और वातापि असुरको नष्ट कर डाला। विन्ध्याचलने सूर्य्यपथको रोध करनेके लिये संकल्प किया था, इन्होंने उस पर्व्वतके दर्पको चूर्ण कर डाला। दण्डकारण्यवाले अपने आश्रममें पहुंचनेपर महर्षिने रामको वैष्णवधनु, ब्रह्मदत्त शर, अक्षय तूणीर और खड्ग दिया था। किन्तु इतना प्रताप होते भी अगस्त्यमुनि नहुषराजकी पालकी लिये-लिये घूमते थे। एक दिन महाराज शिविका पर बैठे जा रहे थे, हठात् उनका पैर महर्षिके शरीरसे छू गया। इसी अपराध पर अगस्त्यने नहुषराजको सर्प बना दिया।

महाभारत वनपर्व्व देखो।

विन्ध्यगिरिका दर्पहरण करनेके बाद अगस्त्यमुनिने दाक्षिणात्यमें जा अवस्थिति की थी। द्राविड़ादि अञ्चलोंके अधिवासियोंने उनसे नाना प्रकारका विद्याध्ययन किया। युरोपीय पण्डित अनुमान करते हैं, कि अगस्त्य तिब्बत देशके मनुष्य थे। यह महर्षि आजकल नक्षत्ररूपसे आकाशके दक्षिणदिक्में अवस्थिति करते हैं।

अगस्त्यने एकबार इन्द्रको निकाल मरुत्को ही हविः देनेका विचार किया था, जिससे इन्द्र बहुत असन्तुष्ट हुए। किन्तु अन्तमें बड़े यत्नसे इन्होंने इन्द्रको मना लिया। अथर्व्ववेदमें इनके गुण और तपकी बड़ी प्रशंसा लिखी है।

अगस्त्यकूट (सं० पु०) दक्षिणका वह पर्व्वत, जिससे ताम्रपर्णी नदी बही है।

अगस्त्यगीता (सं० स्त्री०) अगस्त्येन गीता विद्या। शान्तिपर्वमें लिखी अगस्त्योक्त विद्या।

अगस्त्यचार (सं० स्त्री०) अगस्त्यस्य चारः। १ अगस्त्य नक्षत्रकी शुभाशुभ फलसूचक दक्षिणदिक्की गति। २ अगस्त्यनक्षत्रका उदय।

अगस्त्यसंहिता (सं० स्त्री०) अगस्त्येन लिखिता संहिता। सम् सम्यक् हितं मङ्गलं प्रतिपाद्यं यस्याम्। सम्-धा-क्त। अगस्त्यमुनिका रचित शास्त्रविशेष।

अगस्त्यहर (हिं० स्त्री०) अगस्त्यहरीतकी। कास, श्वास, और अजीर्णकी एक औषधि।

अगस्त्योदय (सं० पु०) नक्षत्ररूपेण दक्षिणस्यां दिशि अगस्त्यस्य उदयः। दक्षिणदिक्में अगस्त्यनक्षत्रका (Canopus) उदय। सौर भाद्रमासके सत्रहवें दिवसमें अगस्त्यका उदय होता है। भाद्र मासके तीन दिन बाकी रहनेसे ब्राह्मण अगस्त्यनक्षत्र और उनकी पत्नी लोपामुद्राको अर्घ्य देते हैं। पहले शङ्खके भीतर जल, श्वेतपुष्प और आतप तण्डुल डाल और दक्षिणमुख बैठकर यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

"काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते॥"
आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु"॥

लोपामुद्राका अर्घ्यदानमन्त्र—

"लोपामुद्रे महाभागे राजपुत्रि पतिव्रते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मित्रावरुणिवल्लभे॥"

अगह (हिं० वि०) १ जो लिया न जा सके। २ चुलबुला। ३ वर्णनातीत। ४ कठिन।

अगहन (हिं० पु०) अग्रहायण। वेदकी पुरानी चालसे वर्षका पहिला, किन्तु आधुनिकसे नवां महीना। मार्गशीर्ष।

अगहनिया (हिं० वि०) अग्रहायणी। मार्गशीर्षमें उत्पन्न होनेवाला। अगहनका।

अगहनी (हि० वि०) अग्रहायणी। मार्गशीर्षमें उत्पन्न होनेवाली। अगहनकी।

अगहर (हि० वि०) १ आगे। २ पहिले। ३ सामने।

अगहाट (हि० पु०) सदासे अधिकारमें रहने और न छूटने वाली भूमि।

अगहुँड़ (हि० वि०) अगुआ, मुख्य। अग्रगामी।

अगाउनी (हि० वि०) १ आगे। २ सामने। ३ पहिले।

अगाऊ (हि० वि०) अग्रिम। पेशगी। जो धन किसी वस्तुकी मोल लेनेमें पहिले दिया जाये। (क्रि० वि०) प्रथमत:। पहिले।

अगाड़ (हि० पु०) १ धुआं खींचनेवाली हुक्केकी टोंटी। निगाली। २ ढेंकलीकी एक लकड़ी।

अगाड़ा (हिं० पु०) १ कछार। २ मुसाफिरके चलनेसे पहले अगले मुकामपर भेजा जानेवाला उसका सामान। पेशखीमा।

अगाड़ी, अगाड़ू (हिं० वि०) १ आगे। २ भविष्यत्‌में। ३ पहिले। ४ सामने। (पु०) १ चीज़का सिरा। २ कुरतेके सामनेका दामन। ३ घोड़ेकी गर्दनमें बांधी जानेवाली डोरी। ४ फ़ौजका प्रथम आक्रमण।

अगाध (सं० त्रि०) नास्ति गाधस्तलस्पर्शो यस्य। गाध प्रतिष्ठायां घञ्। १ अति गभीर। अतलस्पर्श। बहुत गहरा। अथाह। २ स्थलशून्य। ३ लोभशून्य। लिप्सा-शून्य। (क्ली०) छिद्र। छेद। अगाध जल—गभीर जल, ह्रद—अगाधं जलमस्मिन्। अगाधबुद्धि—गम्भीर बुद्धि।

"धर्म्मात्मानं विदुरमगाधबुद्धिम्
सुखासीनो वाक्यमुवाच राजा॥" (महाभारतम् ३।४।१)

अगामै (हिं० वि०) १ पहिले। २ आगे।

अगार (सं० क्ली०) अगम् न गच्छन्तमृच्छति प्राप्नोति अग-ऋ-अण् (वाचं)। गृह, घर, आगार।

अगारी, अगाड़ी देखो।

अगाव (हिं० पु०) गन्नेके ऊपरका अंश। अगौरा।

अगास (हि० पु०) १ दरवाजेका चबूतरा। २ आकाश।

अगासी (हिं० स्त्री०) १ पगड़ी। २ चीलकी बोली, जिसे रातके समय लोग अशुभ समझते हैं।

अगिआना (हिं० क्रि०) जलने लगना। गर्म हो जाना।

अगिन (हिं० स्त्री०) आग। अग्नि देखो।

अगिनबोट (हिं०पु०) जहाज। ष्टीमर। धुआंकश। पोत।

अगिनित (संस्कृत अगणित) अगणित देखो।

अगिया (हिं० स्त्री०) १ आग। २ कोदो और ज्वारको जला देने और पीले फूलोंवाली एक घास। ३ एक खुशबूदार दूसरी घास। ४ एक वृक्ष जिसका रेशा कांटे जैसा चुभता है। ५ पशुओंका रोग-विशेष। ६ पैरमें छाले डालनेवाला एक दूसरा रोग। ६ विक्रमादित्य राजाका एक वैताल।

अगिया-कोइलिया (हिं० पु०) विक्रमादित्य राजाके अगिया और कोइलिया नामक दो सिद्ध वैताल।

अगिया-वैताल (हिं० पु०) १ विक्रमादित्यका एक सिद्ध वैताल। २ मुंहसे आग निकालनेवाला भूत। ३ आगका प्रेत।

अगिर (सं० पु०) न-गॄ-क, नञ् तत्। इगुपधज्ञाप्रीकिर: क:। पा० ३।१।१३५ बाहुलकात् गीर्य्यते इति गिर:। १ स्वर्ग। २ अग्नि। ३ सूर्य्य। ४ राक्षस।

अगिरीं (हिं० स्त्री०) १ दरवाजेका सिहन। २ भवन-के सम्मुखका भाग।

अगिरौकस् (सं० पु०) अगिर: स्वर्ग: ओक: वासस्थानं यस्य। देवता। स्वर्गमें रहनेवाला।

अगिला (हिं० वि०) १ सामनेका। २ पहिला। ३ दूसरा। ४ अपरिचित।

अगिहाना (हिं० पु०) १ कोड़ा। आग रहनेकी जगह। २ भट्ठी। ३ चूल्हा। ४ भाड़।

अगीठा (हिं० पु०) १ सामनेकी जगह। २ आग जलानेका बड़ा पात्र।

अगीत-पछीत (हिं० क्रि० वि०) १ इधर-उधर। २ कुछ दिनमें। ३ आगे-पीछे। (पु०) सामने और पीछेका हिस्सा।

अगु (सं० पु०) नास्ति गौ: किरण: यस्य। १ राहुग्रह। २ किरणशून्य। गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य। पा० १।२।४८।

अगुआ (हिं० पु०) १ मुखिया। २ विवाह-कार्यमें प्रधान। ३ नेता। ४ सरदार।

अगुआई (हिं० स्त्री०) आगे रहनेकी बात। २ मुखिया-पन। ३ राह बतानेका काम।

अगुआना (हिं० क्रि०) १ आगे ले चलना। २ मुखिया बनाना। ३ नेता ठहराना।

अगुण (सं० पु०) गुणस्य विरोधी, नञ्-तत्। दोष। ऐब। बुराई। (त्रि०) नास्ति गुणः यस्य। गुणरहित। निर्गुण। नादान। नावाकिफ़।

अगुणज्ञ (सं० वि०) गुण न जाननेवाला। जिसे चीज़की परख न हो। जो क़दर करना न जानता हो।

अगुणी (हिं० वि०) गंवार। जिसमें कोई गुण न हो।

अगुन (सं० अगुण) अगुण देखो।

अगुरु (सं० क्ली०) नास्ति गुरुः प्रधानो यस्मात्, गन्धगौरवात्। गृणातीति गॄ-उ गुरुः। कृयोरुच। उण् १।२४। १ अगरुचन्दन। कालागुरु। २ शीशम। अगरु देखो। (त्रि०) गुरुशून्य। गौरवशून्य। गुरुवर्ण व्यतीत अन्य वर्ण, अर्थात् लघुवर्ण। जो वर्ण अनुस्वार, विसर्ग या दीर्घस्वरसे युक्त, अथवा संयुक्त वर्णसे पूर्व न हो—

"प्रथमगुरु षट्कं विद्यते यत्र कान्ते
तदनु च दशमञ्च दत्तरं द्वादशान्त्यं।
धरणिधरतुरङ्गैर्यत्र कान्ते विरामः
सुकविजनमनोज्ञा मालिनी सा प्रसिद्धा॥"

अगुरुकाष्ठके यह कई एक पर्याय हैं—१ वंशिक, २ राजार्ह, ३ लोह, ४ क्रमिज, ५ जोङ्गक, ६ शृङ्गज, ७ कृष्ण, ८ लोहाख्य, ९ लघु, १० पीतक, ११ वर्णप्रसादन, १२ अनार्य्यक, १३ असार, १४ क्रमिदग्ध, १५ काष्ठक।

अगुरुशिंशपा (सं० स्त्री०) शिंशपावृक्ष, शिशुवृक्ष, शीशम (Dalbergia Sisoo and Latifolia)। शीशम हिमालयकी उपत्यकामें आप ही आप उत्पन्न होता है। आजकल शीशमकी लकड़ीका आदर बढ़ा है: बङ्गाल, युक्तप्रदेश और पञ्जाबमें जगह-जगह प्रशस्त राजपथकी दोनो ओर शीशम खूब जमता चला जाता है। इसके वृक्ष बढ़नेपर कोई १२० हाथ ऊंचे चढ़ जाते हैं। राहकी दोनो ओर इन्हें लगा देनेसे ग्रीष्मकालमें पथिक रौद्रके तापसे कष्ट नहीं पाते। राजवर्त्ममें वृक्ष लगाना आज नई बात नहीं होती, मुसलमान-सम्राट् भी पथिक्‌वाले यातायातकी सुविधाके लिये पथकी दोनो ओर बड़े-बड़े वृक्ष लगा देते थे। अति प्राचीन कालमें भी यह प्रथा भारतवर्षके बीच प्रचलित थी। वृक्षप्रतिष्ठा इस देशके धर्म्म-कर्म्ममें गण्य है। दिलीप और सुदक्षिणा दोनो एक बार वशिष्ठाश्रमको जाते थे। चलते-चलते पथकी दोनो ओर जो वृक्ष देखते, उपस्थित प्रजासे उन सब वृक्षोंका नाम पूछ लेते थे—

"नामधेयानि पृच्छन्तौ वन्यानां मार्गशाखिनाम्।"—रघु०।

शीशम भूरे रङ्गका और दीर्घकालस्थायी होता है। नेपाली सालकी लकड़ी, इसमें सन्देह नहीं कि, इस देशकी सभी लकड़ीसे कठिन और स्थायी है। शीशम इतना कठिन और स्थायी नहीं, किन्तु अन्यान्य गुणोंमें सालकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसकी लकड़ीसे नाव, गाड़ी, खेतीके औज़ार, कुर्सी, टेबिल, अलमारी, चारपाई, सन्दूक़, बाक्स प्रभृति अनेक प्रकारके द्रव्य और गृहसज्जाका असबाब तय्यार होता है। काबुल-युद्धके समय वहां नाना प्रकार अच्छी-अच्छी देशी और विलायती लकड़ीकी गाड़ियां गई थीं। अफ़ग़ानस्तानकी चढ़ा-उतार ज़मीनमें सब प्रकारकी गाड़ियां चूर-चूर हुईं, किन्तु शीशमकी लकड़ीवाली गाड़ीका एक पहिया तक न टूटा। इसीसे दिन-दिन इस वृक्षका इतना आदर बढ़ रहा है। इस देशकी पतित भूमिमें शीशमको रोपण कर देनेसे भूस्वामी और प्रजाकी आयवृद्धि होना सम्भव है। यह सरस और नीरस उभयविध मृत्तिकामें समान तेज दिखाता है। अगुरुशिंशपा वृक्ष दो प्रकारका होता है। एक जातिका नाम शीशम (Dalbergia Sisoo) और दूसरी जातिका नाम सफ़ेद शीशम (Dalbergia Latifolia) है। पहिलीके पत्ते लम्बे और ढालू और दूसरीके कुछ गोल और छोटे होते हैं। इङ्गलेण्डमें शीशमकी लकड़ीका विलक्षण आदर है। दाक्षिणात्यका उत्कृष्ट शीशम वहां छः रुपये मनके हिसाबसे बिकता है।

अगुवा (हिं० पु०) नेता। मुखिया। आगे रहनेवाला।

अगूढ़ (सं० वि०) न-गूढ़ गुप्त, नञ्-तत्। १ अगुप्त। २ खुला। ३ साफ़। ४ प्रकट। ५ सरल, आसान।

अगूढ़गन्ध (सं० क्ली०) गुह-क्त गूढ़। न गूढ़ो गन्धो यस्य।

हिङ्गु, हींग। हिङ्गु देखो। (त्रि) अगुह्य सौरभ। जिसकी महक न छिपे।

अगूढ़गन्धा (हिं० स्त्री०) हींग।

अगृभीत (सं० त्रि०) न गृहीतं, छान्दसत्वात् हस्य भः। अगृहीत।

अगृह्या (सं० स्त्री०) न ग्रह-क्यप् कर्म्मणि। पदास्वैरिबाह्या-पक्ष्येषु च। पा० ३।१।११९। अस्वतन्त्रा। अस्वैरिणी।

अगेंथ (हिं० पु०) अरनी। गनियारी।

अगेला (हिं० पु०) १ हाथमें सबसे आगे पहननेका आभूषण। २ भूसेके साथ उड़ जानेवाला अन्न।

अगेह (सं० त्रि०) जिसके मकान न हो। लामकां। बिना भवनका।

अगैरा (हिं० पु०) फसलका पहला अन्न।

अगोई (हिं० वि०) ज़ाहिर। प्रकट। छिपी नहीं।

अगोचर (सं० त्रि०) न गावः इन्द्रियाणि चरन्ति अस्मिन्, गो-चर-घ। गोचरसंचरवहव्रजव्यजापणनिगमाश्च। पा० ३।३।११९। इन्द्रियसे अप्रत्यक्ष विषय, अज्ञात। जो इन्द्रियसे जाना न जा सके, नामालूम।

गोचर-शब्द जिस इन्द्रियके साथ प्रयुक्त होता, उससे उसी इन्द्रियका बोध्य समझ पड़ता है। जैसे दृष्टिगोचर, अर्थात् दर्शनेन्द्रियका बोध्य या आंखसे देखा। कर्ण-गोचर, अर्थात् श्रवणेन्द्रियका बोध्य या कानसे सुना, और ज्ञानगोचर, अर्थात् ज्ञानेन्द्रियका बोध्य या अक़्लसे समझा हुआ। अगोचर—अज्ञात।

अगोट (हिं० स्त्री०) १ रोक। २ शरण। ३ भित्ति। ४ नीव।

अगोटना (हिं० क्रि०) १ रोकना। २ अटकाना। ३ पकड़ लेना। ४ रख छोड़ना।

अगोता (हिं० क्रि० वि०) आगे, सम्मुख, सामने। (पु०) स्वागत।

अगोरदार (हिं० पु०) १ चौकीदार। २ पहरुआ। ३ रक्षक।

अगोरना (हिं० क्रि०) १ मार्ग देखना। २ किसीके वास्ते बैठे रहना। ३ रक्षा करना। ४ ख़बर लेना। ५ पहरा देना। ६ अटकाना।

अगोरिया (हिं० पु०) खेत रखानेवाला। रखवाला।

अगोही (हिं० पु०) जिस बैलके सींग आगेको निकले हों। नुकीले सींगवाला बैल।

अगौंड़ी (हिं० स्त्री०) गन्ने या ऊखके ऊपरका हिस्सा।

अगौकस् (सं० पु०) अगः पर्वतः ओकः स्थानं यस्य। १ शरभ। २ सिंह। ३ श्रेष्ठमृग। ४ पक्षी। (त्रि०) पर्व्वतवासी, पहाड़ी।

अगौढ़ (हिं० पु०) अग्रिम। पेशगी। अगाऊ। आगे दिया जानेवाला रुपया।

अगौनी (हिं० क्रि० वि०) आगे। पहिले। (स्त्री०) १ अभ्यर्थना। पेशवाई। २ विवाहमें बरातकी अगवानीके समय दरवाज़ेपर छूटनेवाली आतिशबाज़ी।

अगौरा (हिं० पु०) ऊख या गन्नेके ऊपरका भाग।

अगौली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी ऊख।

अगौहैं (हिं० क्रि० वि०) १ आगे। २ पहिले। ३ सामने।

अग्नामरुत् (सं० पु० वै०) अग्निश्च मरुच्च। मृ-उति मरुत्। मृग्रोरुति। उण् १।९४। द्विवचनान्त द्वन्द्व। अग्नि और मरुत् देवता, जो एक हविःको पान करते हैं।

अग्नाविष्णु (सं० पु०) द्विं द्वं आनङ् अग्निश्च विष्णुश्च। विषेः किच्च। उण् ३।३९। एक आहुतिभोक्ता देवद्वय; अग्नि और विष्णु।

अग्नायी (सं० स्त्री०) अग्नि-ऐङ्-ङीष्। अग्नि शब्द देखो। १ अग्निकी भार्या, स्वाहा। २ त्रेतायुग।

अग्नि (सं० पु०) अङ्ग-नि। अङ्गति ऊर्द्ध्वं गच्छतीति। अङ्गेर्नलोपश्च। उण् ४।५०। १ अनल, वह्नि, पावक, हुताशन, आग, आतिश। २ अग्निदेवता। परम पुरुषके मुखसे इनका जन्म हुआ है। (ऋक् १०।९०।१) मतान्तरसे धर्म्मके औरससे वसु-भार्याके गर्भमें अग्नि उत्पन्न हुए थे। किसी स्थलमें लिखा है, कि यह कश्यप और अदितिके पुत्र हैं। अग्नि स्थूलकाय, लम्बोदर और रक्त-वर्ण हैं। इनके केश, श्मश्रु, भ्रू और चक्षु पिङ्गलवर्ण हैं, और यह हाथमें शक्ति और अक्षसूत्र लिये बकरेपर सवार रहते हैं। पुराणमें इनकी और भी अन्यान्य प्रकार मूर्तियोंकी वर्णना लिखी है। कहींपर इनके तीन पैर, सात हाथ और दो मुंह बताये गये हैं, और इनका बालार्क जैसा रङ्ग निर्द्धारित हुआ है। यह दक्षिण-पूर्वकोणके अधिष्ठात्री देवता हैं। ऋग्वेदके एक-चतुर्थांशसे भी

अधिक स्थानमें केवल अग्निका स्तव किया गया है। प्राचीनकालमें पृथिवीके प्रायः सभी देशोंमें अग्निदेवकी पूजा होती थी। आजकल भारतवर्षके केवल हिन्दू और पारसी ही इनकी अर्चना करते हैं। ईरानमें अग्निपूजा प्राय उठ गई है। स्वाहा अग्निकी स्त्री हैं। पुराने रोमक इनको वेष्टा (Vesta) नामसे पूजा करते, किन्तु मन्दिरमें इनकी कोई प्रतिमूर्त्ति न रखते थे ; क्योंकि—

"No image Vesta's semblance can express,
Fire is too subtle to admit of dress." (Ovid)

यानी कोई भी प्रतिमूर्त्ति वेष्टाके रूपको प्रकाश नहीं कर सकती। अग्नि अति तेजःपुञ्ज हैं, इन्हें फिर कौन वेशभूषासे परिशोभित कर सकता है ?

पावक, पावमान और शुचि इनके पुत्र हैं। तैत्तिरीय संहितामें लिखा है, कि प्रजापतिने अग्निकी सृष्टि कर देवताओंको उन्हें दूतस्वरूप दे दिया।

यह कई एक अग्निके नामवाले पर्य्याय हैं—१ वैश्वानर, २ वह्नि, ३ वीतिहोत्र, ४ धनञ्जय, ५ कृपीटयोनि, ६ ज्वलन, ७ जातवेदस्, ८ तनूनपात्, ९ तनूनपा, १० वर्हिःशुष्मन्, ११ वर्हिस् १२ शुष्मन्, १३ कृष्णवर्त्मन्, १४ शोचिष्केश, १५ उषर्बुध, १६ आश्रयाश, १७ बृहद्भानु, १८ कृशानु, १९ पावक, २० अनल, २१ रोहिताश्व, २२ वायुसखा, २३ वायुसख, २४ शिखावत्, २५ शिखिन्, २६ आशुशुक्षणि, २७ हिरण्यरेतस्, २८ हुतभुक्, २९ हव्यभुक्, ३० दहन, ३१ हव्यवाहन, ३२ सप्तार्चिस्, ३३ दमुनस्, ३४ दमूनस्, ३५ शुक्र, ३६ चित्रभानु, ३७ विभावसु, ३८ शुचि, ३९ अप्पित्त, ४० वृषाकपि, ४१ जुहूवाल, ४२ मपिल, ४३ पिङ्गल, ४४ अरणि, ४५ अगिर, ४६ पाचन, ४७ विश्वप्सस्, ४८ छागवाहन, ४९ कृष्णार्चिस्, ५० जह्नवार, ५१ उदार्चिस्, ५२ भास्कर, ५३ वसु, ५४ शुष्म, ५५ हिमाराति, ५६ तमोनुत्, ५७ सुशिख, ५८ सप्तजिह्व ५९ अपपारिक, ६० सर्वदेवमुख, ६१ अग्नि।

कर्म्म-विशेषमें अग्निके पृथक्-पृथक् नाम निर्दिष्ट हैं—नवगृहके प्रवेशादि कर्म्ममें १ पावक, गर्भाधानमें २ मारुत, पुंसवनमें ३ चन्द्रमस्, शुङ्गाकर्म्ममें ४ शोभन, सीमन्तमें ५ मङ्गल, जातिकर्म्ममें ६ प्रगल्भ, नामकरणमें ७ पार्थिव, अन्नप्राशनमें ८ शुचि, चूड़ाकरणमें ९ सत्य, व्रतमें १० समुद्भव, गोदान-संस्कारमें ११ सूर्य, समावर्तनमें १२ अग्नि, साग्निकके वेदको समापन-क्रियामें १३ वैश्वानर, विवाहमें १४ योजक, विवाहसे पीछे चतुर्थी-होममें १५ शिखी, धृति होमादिमें १६ अग्नि, प्रायश्चित्तात्मक महाव्याहृति होममें १७ विधु, वृषोत्सर्ग-गृहप्रतिष्ठादि कर्म्ममें १८ साहस, लक्षहोममें १९ वह्नि, कोटिहोममें २० हुताशन, पूर्णाहुतिमें २१ मृड़, शान्तिकर्म्ममें २२ वरद, पौष्टिकमें २३ वलद, अभिचारमें २४ क्रोध, वशीकरणमें २५ शमन, वरदानमें २६ अतिदूषक, कोष्ठमें २७ जठर और अमृतभक्षणमें २८ क्रव्याद।

संस्कृत अग्नि और लेटिन इग्निस् (Ignis) इन उभय शब्दोंमें विलक्षण सादृश्य देख पड़ता है। यूनान देशमें प्राचीन कालकी एक कहानी है, कि प्रमिथियस् नामके कोई व्यक्ति विलक्षण ज्ञानी थे। पहिले वह मट्टीकी पुतलियां बना और पीछे स्वर्गसे अग्नि लाकर उसके द्वारा उन सबमें प्राणप्रतिष्ठा कर सकते थे। आर्य्य लोग अरणि मथकर अग्न्युत्पादन करते, इसीलिये संस्कृत प्रमन्थ शब्दके साथ यूनानी प्रमिथियस् शब्दका सम्पूर्ण सादृश्य है। मालूम होता है, कि प्राचीन यूनान और इटलीके लोगोंने आर्य्योंके निकट अग्न्युत्पादनका कौशल सीखा और उन्हींसे अग्निका नाम भी सुन पाया था।

आदिम अवस्थामें मनुष्य अग्न्युत्पादन करना जानता न था। प्रथम मनुष्यको विद्युत् और दावानल देख कर यह ज्ञान उत्पन्न हुआ, कि अग्नि क्या है। आल्वारो डी सावेडरा (Alvaro de Saavadara) नामक स्पेन-देशीय एक परिव्राजकने लिखा है, कि प्रशान्त-महासागरके मध्यस्थित लोस्जार्डिन् (Los Jardines) द्वीपके लोगोंने पहले कभी आग देखी न थी। समुद्रके कूलमें जहाज लगनेसे द्वीपवासियोंने आकर जहाजियोंके पास पहिले आग देखी। आंखके सामने यह भयङ्कर व्यापार देख सब अपने-

अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। विद्युत् और सूर्य्यकी तरह कौनसी तेजःपुञ्ज वस्तु चमचमाती और ऊपरसे धुआं उठ रहा था? एक बार किसीने उनके झोपड़ेमें आग लगा दी। झोपड़ा धायं धायं जलने लगा। द्वीपवासियोंने स्थिर किया, कि नये प्रकारका कोई भयङ्कर वन्य पशु जा उनके घर द्वार खाये डालता था।

मनुष्यकी जब आंखें न खुली थीं, ज्ञानका उन्मेष न हुआ था, तब चन्द्र, सूर्य्य, विद्युत् और अग्निको ईश्वर समझना ही उसके लिये सम्भव था। उस समय मनुष्यमें श्रद्धा न थी, भक्ति न थी; उसे केवल भय और क्षुधा ही मालूम होती थी। वनकी सन्याल, कोल प्रभृति असभ्य जातियां प्राणके भयसे भूत, बाघ और नद-नदीकी पूजा करती हैं। वह यह नहीं जानतीं, कि कि परकाल क्या है, और ईश्वरभक्ति किसे कहते हैं। ऋग्वेदमें पत्रके बाद पत्र उलट जाइये; मण्डलके बाद मण्डल, सूक्तके बाद सूक्त पढ़कर आप देखेंगे, कि ऋषि केवल शत्रुभय और अन्नाभावसे व्याकुल थे। वह केवल शत्रुके हाथसे परित्राण पाने और अन्नलाभके लिये इन्द्र, वरुण और अग्निकी पूजा करते थे। इसके बाद ईश्वर-बुद्धि आई, परकालके प्रति मनुष्यको भय उत्पन्न हुआ। अग्निसे अनेक उपकार होनेके कारण, सब लोग भक्तिपूर्व्वक उसकी पूजा करने लगे। हिन्दू, ईरानी, काल्डिय, मिस्री, यहूदी, यूनानी, रोमक, चीना प्रभृति सभी जातियोंके शास्त्रमें देखा जाता है, कि उनके देव-मन्दिरोंमें दिन-रात अग्नि प्रज्वलित रहती थी। देवालयोंमें अग्नि प्रज्वलित रखनेकी प्रथा बाइबिलमें भी देख पड़ती है। (Leviticus IV. 13)। आजकल भी कोई-कोई खृष्टान-सम्प्रदाय प्रकारान्तरसे अग्नि-पूजा करता है। किन्तु किसी भी जातिके बीचमें पहिले जैसी अग्निपूजाकी धूम नहीं। अग्निका रासायनिक तत्त्व और अग्न्युत्पादनकौशल—अग्निशिखा, अग्निमन्थ, अग्निस्तम्भ और ताप शब्दमें देखो।

शिशुमार नक्षत्रके पुच्छ नक्षत्रका नाम भी अग्नि है।

अग्निक (सं० पु०) अग्नि-कै-क। अग्निवत् कायति प्रकाशते। इन्द्रगोप नामका रक्तवर्ण कीट। बीरबहूटी।

अग्निकण (सं० पु०) अग्नेः कणः, ६-तत्। अग्निका स्फुलिङ्ग। आगकी चिनगारी।

अग्निकर्म, अग्निकर्मन् (सं० क्ली०) अग्नौ कर्म, ७-तत्। १ होम। २ चितामें आग लगानेका काम।

अग्निकला (सं० स्त्री०) अग्नेः कलाः। अग्निके दश प्रकार अवयव। यथा—

"धूम्रार्चिरूष्मा ज्वलिनी ज्वालिनी विस्फुलिङ्गिनी।
सुश्रीः सुरूपा कपिला हव्यकव्यवहेऽपि च।
यादीनां दशवर्णानां कलाधर्मप्रदा अमूः।"

अग्निकारिका (सं० स्त्री०) अग्निं करोति। अग्नि-कृ-ण्वुल् टाप्। १ अग्निचयनके लिये ऋक्। २ अग्निकार्य्य, होम और आधानादि। ३ क्षुधावृद्धिकर औषध, भूख बढ़ानेवाली दवा।

अग्निकार्य्य (सं० क्ली०) अग्नेरग्नौ वा कार्य्यम्। १ हविर्दान। २ अग्निज्वालन, आग जलाना।

अग्निकाष्ठ (सं० क्ली०) अग्नेः उद्दीपनं काष्ठम्। शाकंतत्। अगुरु काष्ठ, अगरकी लकड़ी।

अग्निकीट (सं० पु०) आगमें रहनेवाला कीड़ा।

अग्निकुक्कुट (सं० पु०) अग्नेः कुक्कुट इव, रक्तवर्णत्वात्। १ ज्वलत् तृणगुच्छ, लाल गुलदस्ता। २ लाल पक्षी, सुर्ख चिड़िया।

अग्निकुण्ड (सं० क्ली०) अग्नौ अग्नेर्वा होमार्थं कुण्डम्। अग्न्याधानका स्थान, होम करनेका कुण्ड। कुडि-ड कुण्डः। कादिभ्यः कित्। उण् १ ११२।

अग्निकुमार (सं० पु०) अग्नेः कुमारः, ६-तत्। कार्त्तिकेय। कमेः किदुच्चोपधायाः। उण् ३।१३८। कार्त्तिकेय देखो।

अग्निकुमाररस—ज्वर, ग्रहणी और अग्निमान्द्यका औषध। पारा, गन्धक, विष, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च्च, पीपल), सुहागेका लावा, लौहभस्म, अजवायन और अफीम तुल्यांशमें ले। समसमष्टिके समान जारित अभ्र फिर मिलाये। चित्रकके रसमें इन सब औषधियोंको एक पहर घोंटकर मिर्च जैसी गोली बना डाले। अनुपान अवस्था भेदसे कपूरका पानी, जीरा, जामुनके बकलेका रस या ठण्डा जल है।

अग्निकुल—राजवंश विशेष। राजपूतानेके आबू पहाड़-पर ऋषिमुनियोंका आश्रम था। कहते हैं, कि दैत्य उनके साथ उत्पात करते रहे। उनके अग्निकुण्डमें अस्थि, रक्त, मांस डाल देते, जिससे यज्ञमें बड़ा विघ्न पड़ता था। यह उपद्रव दूर करनेके लिये ऋषियों-ने अग्निकुण्ड जलाकर शिवकी आराधना की। सुतरां वैदिक कार्यकी रक्षा करनेके लिये यज्ञकुण्डसे क्रमा-न्वयमें परिहार, चुल्क, परमार और चाहमान इन चार महावीरोंने जन्म ले दैत्योंको विनष्ट किया।

परमार, परिहार प्रभृति देखो।

अग्निकेतु (सं० पु०) अग्नेः केतुरिव। चाय-तु केतुः चायः किः। उण् १।७३। १ ऊर्द्ध्वगामी अग्निकी शिखा, ऊपर जानेवाली आगकी लपट। २ ऊर्द्ध्वगामी धूम, ऊपर चढ़नेवाला धुआं।

अग्निकोण (सं० पु०) अग्नेः अग्निदेवाधिष्ठितः कोणः। पूर्व्व-दक्षिण कोण। इस कोणके दिक्पाल अग्नि हैं।

अग्निक्रिया (सं० स्त्री०) अग्नौ क्रिया क्ल-श। क्लञः श च। पा० ३।३।१००। अन्त्येष्टिक्रिया। विधिपूर्व्वक अग्निमें मृतदेह दग्ध करना। मुरदेका जलाना।

अग्निक्रीड़ा (सं० स्त्री०) आगका खेल। रङ्ग-रङ्गकी आग जलाना, आतिशबाज़ी।

आगका खेल—चैत्रमें एक मासके महाव्रतके समय संन्यासी अन्तिम दिन और रातको नाना स्थानों-से काठको आहरण कर प्रज्वलित करते हैं। पीछे ज्वलन्त अङ्गारोंपर चलते-फिरते और उन्हें चारो ओर फेंकते हैं। इस आगके खेलका नाम फूल-खेल है। एक मासके महाव्रतके समय बङ्गालमें प्रायः सभी जगह यह उत्सव होता है। किन्तु गवर्नमेण्ट द्वारा चड़क-पूजा बन्दकर दी जानेसे, कितने ही गांवोंमें अब फूल खेलकी धूमधाम नहीं देख पड़ती।

आतिशबाज़ी—अन्नप्राशन (पसनी), यज्ञोपवीत, विवाह, दोल, रासयात्रा प्रभृति उत्सवोंमें अनेक कालसे भारतके बीच आतिशबाज़ी छोड़नेकी प्रथा चली आती है। इनमेंसे विवाह, दोल और रासयात्रामें इसकी धूम कुछ खास तरहकी होती है। नीचे लिखी आतिशबाज़ियां अधिक प्रचलित हैं—

फुलझड़ी—गन्धक सौमें २२ भाग, शोरा ७०, हर-ताल ५॥, अरहरका कोयला २॥; यह कई चीजें पहिले अलग-अलग ले अच्छी तरह चूर करे, इसके बाद होशियारीसे एकमें मिला काग़ज़के लम्बे चोंगेमें भरे। रातको इसको एक ओर आग लगानेसे बढ़िया सफ़ेद रोशनी होती है।

अनार—शोरा सौमें ५४॥, गंधक ६॥, पारा ३, मुद्राशङ्ख १, हरताल १६, और कोयला ३ भाग ले; पहिले पारे और गन्धककी एक हीमें मिला दे। इसके बाद हरताल और मुद्राशङ्ख दोनो एकमें पीस ले; अन्तमें सब चीजें एक ही साथ पीसे। पिस जानेपर चूर्णमें १६ भाग लौहचूर्ण या लोहेका बुरादा डाल दे। मट्टीके अनारमें यह चूर्ण भर अँधेरी रातके समय आग लगानेसे अच्छे फूल छूटा करते हैं। अनारकी बारूद ज्यादा पीसना या उसके भीतर ज्यादा ठूंसना न चाहिये।

पीली रोशनी—शोरा सौमें २७, गन्धक २७, नमक १८ और बारूद २७ भाग एक साथ मिलाये। पीछे इस चूर्णमें आग लगानेसे बहुत अच्छी पीली रोशनी निकलती है।

नीली रोशनी—क्लोरेट् अव् पोटास् सौमें ७५, गन्धक ८, जाङ्गाल १७ भाग लेकर क्लोरेट अव् पोटास और गन्धक अलग पीसे, फिर सब चीज़ोंको एकमें मिला ले। मिलानेके बाद फिर पीसना न चाहिये। इस चूर्णमें रातको आग लगानेसे बहुत ही अच्छी नीली रोशनी होती है।

अग्निगड़ (हिं० पु०) चारो ओर आग जलाकर भूत-प्रेत झाड़ना।

अग्निगर्भ (सं० पु०) अग्निः इव जारकः गर्भः यस्य। १ अग्निजारक वृक्ष, वह पेड़ जिसका भीतरी भाग अग्नि जैसा लाल हो, अग्निगर्भ यस्य। २ सूर्यकान्त-मणि। ३ आतिशी शीशा। धूपमें आतिशी शीशा रखनेसे थोड़ी ही देरमें उसके नीचे रखी हुई कोई भी हलकी चीज जल उठती है। (स्त्री०) अग्निः गर्भे अस्याः। अग्निगर्भा, शमीलता। बबूलका पेड़।

शमीगर्भ और शमीलता देखो।

अग्निगर्भ-पर्वत (सं० पु०) ज्वालामुखी पहाड़, आग्नेयगिरि, आतिशफ़िशां।

अग्निगर्भा (सं० स्त्री०) १ महाज्योतिष्मती लता। २ शमीलता। ३ बहुत ही चमकदार बेल।

अग्निगृह (सं० क्ली०) अग्निकार्यार्थं गृहम्। शाकं-तत्। गृहेः कः। पा ३।१।१४४। गृह्णाति धान्यादिकमिति गृहम्। होमके लिये घर। वह घर जिसमें होम किया जाये।

अग्निग्रन्थ (सं० पु०) अग्निप्रतिपादकः ग्रन्थः। शाकं-तत्। अग्नि द्वारा होमादि क्रिया प्रतिपादक शास्त्र, वेद। वह शास्त्र जो अग्निसे होम करना अच्छा बताये।

अग्निघृत (सं० क्ली०) अग्न्युद्दीपनं घृतं। शाकं-तत्। घृ-क्त घृतं। अञ्चिघृसिभ्यः क्तः। उण् ३।८६। क्षुधावृद्धिकर घृत, भूख बढ़ानेवाला घी। पीपल, पिपरामूल, चीत, चई, गजपीपल, अजवायन, हींग, पांचो नमक, सज्जीखार, जवाखार, और हबूसा आठ-आठ तोले; दही, कांजी और शुक्त घी बराबर-बराबर और अदरकका रस और घी दो-दो सेर ले इन सब चीज़ोंको एक साथ पकाये। यह घी मन्दाग्नि रोगमें कुछ उपकार करता है।

अग्निचक्र (सं० पु०) शरीरके भीतरका वह चक्र जिसके कमलमें दो दल रहते और जिनके अक्षर 'ह' और 'क्ष' हैं। यह भौहोंके बीच बिजली जैसे रङ्गका माना गया है।

अग्निचयन (सं० पु०) अग्नि-चि ल्युट्-करणे। अग्निश्चीयते आधीयते अनेन, ६-तत्। १ अग्न्याधान-मन्त्र। २ अग्न्याधान।

अग्निचित् (सं० त्रि०) अग्नि-चि-क्विप् भूतार्थे। अग्नि चितवान्। अग्नौ चेः। पा ३।२।९१। अग्निहोत्री। जो मन्त्रपाठ पूर्वक वह्नि स्थापन करे। (क्ली०) अग्न्याधान।

अग्निचित्या (सं० स्त्री०) अग्नि-चि-क्यप्। चित्याग्निचित्ये च। पा ३।१।१३२। अग्निचयन। अग्न्याधान।

अग्निचित्वत् (सं० त्रि०) अग्निचित्-मतुप्, म स्थाने व। अग्निचयन-शील यज्ञ।

अग्निज (सं० पु०) अग्नये क्षुधोद्दीपनाय जायते। अग्नि-जन्-ड, ४-तत्। १ अग्निजार वृक्ष। अग्नेः अनलात् जायते, ५-तत्। २ कार्तिकेय। (क्ली०) स्वर्ण, सोना। कार्तिकेय देखो।

अग्निजन्मन् (सं० पु०) अग्नेरनलात् जन्म अस्य। बहुव्री। कार्तिकेय। (क्ली०) स्वर्ण, सोना।

अग्निजार (सं० पु०) अग्नि-जृ-णिच्-अक्, अग्निरिव भुक्तद्रव्यं जारयति। अग्निजार वृक्ष। यह द्रव्य औषधिमें पड़ता; इसका गुण कटु और उष्ण है; सेवन करनेसे कफ, वायु, उदरवेदना यानी पेटका दर्द और शीत या सर्दी नष्ट होती; किन्तु इससे पित्तवृद्धि हो जाती है।

अग्निजाल (सं० पु०) अग्निजार वृक्ष। अग्निजार देखो।

अग्निजिह्व (सं० त्रि०) अग्निः जिह्वा इव यस्य। १ अग्निमुख देवता। देवोद्देशसे अग्निमें घृतादि प्रक्षिप्त होते हैं। देवता अग्निरूप जिह्वा द्वारा उसी होमघृतको पान करते हैं। इसीलिये देवताको अग्निजिह्व कहते हैं। २ वराह-मूर्तिधारी विष्णु। (स्त्री०) अग्निजिह्वा।

अग्निजिह्वा (सं० स्त्री०) १ लाङ्गली वृक्ष, विषलाङ्गला। २ अग्निकी सप्त शिखा। जैसे—कराली, धूमिनी, श्वेता, लोहिता, नीललोहिता, सुवर्णा, पद्मरागा।

अग्निज्वाला (सं० स्त्री०) अग्नेः ज्वाला इव शिखा अस्याः। १ जलपिप्पली। २ अग्निशिखा।

अग्निझाल (हिं० स्त्री०) जलपिप्पली।

अग्नितप् (सं० त्रि०) अग्नि-तप-क्विप्, अग्निना तप्यते। अग्निहोत्री।

अग्नितपस् (सं० त्रि०) अग्नि-तप्-असुन्। अग्निपरिवेष्टनेन तप्यते। चारो ओर अग्नि प्रज्वलित कर और सूर्यकी ओर मुंह रख जो तपस्या करे।

अकितुण्डावटी (सं० स्त्री०) वह वटी या गोली जो अजीर्ण या बदहज़मीको मिटा दे।

अग्नितुण्डि (सं० स्त्री०) अग्निस्तुण्डो मुखे यस्याः। तुडि-इन्। सर्व्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७। अग्निमान्द्यरोगका औषध विशेष, भूख न लगनेकी खास दवा।

पारा, विष, गन्धक, अजवायन, सज्जीखार, शोरा, चितामूल, सैन्धवलवण, जीरा, सोंचर, विडङ्ग, करकच लवण और सुहागेकी फूली बराबर-बराबर और सबके बराबर विषमुष्टि ले। इन सब चीजोंको एकमें मिला नीबूके रसमें घोंटे, पीछे मिर्च बराबर गोली बनाये। जलके साथ यह एक गोली खानेसे

अग्निमान्द्य विनष्ट होता और भूख खूब लगती है।

अग्नितेजस् (सं० त्रि०) अग्नेस्तेज इव तेजो यस्य, बहुव्रो०। अग्नि-सदृश तेजस्वान्, अग्निकी तरह तेज-विशिष्ट। आग जैसा चमकीला। (क्लो०) अग्नेः तेजः, ६-तत्। आगकी चमक, अग्निका तेज।

अग्नित्रय (सं० क्लो०) अग्नस्त्रयवयवम्, त्रि-अयच्; ६-तत्। गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि। ऐसा कहते हैं, कि चन्द्रवंशीय पुरूरवा राजाने ऊर्वशीके साथ अविच्छिन्न प्रणय पानेके लिये अग्निको तीन भागकर यज्ञ किया था। उसी समयसे अग्नित्रयकी सृष्टि हुई।

अग्निद (सं० त्रि०) अग्नि-दा-क। अग्निं ददाति। गृह-दग्ध करनेके लिये जो आग लगाता है। शत्रु। आग लगानेवाला।

अग्निदग्ध (सं० त्रि०) अग्निना दग्धः, दह-क्त; ३-तत्। शास्त्रविधान द्वारा संस्कृत अग्निसे दग्ध। अग्नि द्वारा जलाई हुई वस्तु। आगसे जला। अग्निदग्धव्रण देखो।

अग्निदग्धव्रण—अग्निमें जलनेसे जो क्षत उत्पन्न हो। अग्नि, उत्तप्त जल, दुग्ध या अन्य तरल पदार्थसे देहका कोई स्थान जल जानेसे अधिकांश स्थलोंमें प्राणवियोग होता है। हस्तपदकी अपेक्षा देहका मध्यस्थल और मस्तक दग्ध होनेसे समधिक विपद् होती है। किसी स्थानमें जलनेसे पहले वहां फफोला पड़ता, अल्प सन्ताप लगनेसे केवल ऊपरका चर्म रक्तवर्ण हो जाता है। बहुत जल जानेसे फफोला तत्क्षणात् फूटता है। इसके बाद उत्कटस्थलमें दुर्बलता, आभ्यन्तरिक यन्त्रमें रक्ताधिक्य और प्रदाह होता है; मस्तिष्क, फेफड़ा और अन्त्र सब विकृत हो जाते हैं। इस अवस्था-में प्रायः प्रथम दिनसे पञ्चम दिवस पर्यन्त मृत्युकी आशङ्का रहती है। यदि इस अभिनव विकारावस्थामें मृत्यु न हुई, तो गलित क्षत होनेसे उत्तरकालमें दुर्ब-लताके कारण मृत्यु हो जानेकी सम्भावना है।

होमियोपेथी चिकित्सा।—ज्वालाको निवारण करनेके लिये दग्धस्थानमें कभी कांजी, शीतल जल, पूतिकाका रस इत्यादिका प्रयोग न करे। उससे और भी उत्कट उपसर्ग हो जाता है। दग्धस्थानको सर्वतोभावसे आवृत रखना ही जीवन रक्षाका प्रधान उपाय है। प्रथमतः दग्धस्थानके ऊपर एक लिण्ट, फलालेन या अन्य कोई कोमल वस्त्र लपेट दे। यह वस्त्र सात-आठ दिन एकादिक्रमसे उसी अवस्थामें रखे, एक बार भी खोले नहीं। वस्त्रके ऊपर मध्य-मध्य-में निम्न लिखित तेलका प्रयोग करे,—

आध छटांक कार्बलिक एसिड, डेढ़ पाव बादाम या नारियलका तेल एकमें मिश्रित कर ले। अथवा आध छटांक चूनेका परिष्कार जल, डेढ़ पाव बादाम या नारियलका तेल, एकमें मिला डाले। भीतरी वस्त्र इस तेलसे आर्द्र कर उसके ऊपर कोमल रूई लपेट दे। कोई-कोई आर्टिका इरेन्स, क्यान्थेराइडिस्, क्रियासोट्-को जलके साथ क्षतस्थानमें प्रयोग करते हैं। मोटी बात यही है, कि आगे ही ऐसे उपायको अवलम्बन करना पड़ेगा, जिससे क्षतस्थानमें वायु न लगे।

सेवन करनेके लिये ज्वर रहते और प्रदाहावस्थामें एकोनाइट् देना चाहिये। दग्धस्थानमें क्षतके पक जाने-पर आर्सेनिक् और कार्बोभेजिटेबलिस्के सेवनसे उप-कार होता है।

एलोपेथी—वाह्य प्रयोगके लिये ऊपर जो औषध लिखे गये हैं, उन्हींका प्रयोग करे। सेवनके लिये, नाड़ी क्षीण और अत्यन्त वेगवती होनेपर युवाव्यक्तिको आध ड्रामसे दो ड्राम तक बारण्डी जलके साथ देनेकी व्यवस्था करना चाहिये। निद्राभाव और अत्यन्त अस्थि-रता उपस्थित होने पर चौथाई ग्रेन मात्रामें मरफिया-की व्यवस्था करनेसे कितनी ही यन्त्रणा लाघव हो जाती है। किन्तु यह औषध अधिक मात्रामें खिलाना न चाहिये। क्षत पक जाने पर क्षतस्थानमें बोरासिक् मरहम, कार्बलिक आयल, थाइमल् इत्यादि लगाये। सेवनके लिये १ ग्रेन कुनेन, १० विन्दु डां० नाइट्रिक् एसिड्, १ औन्स सिम्कोनेका क्वाथ, एक होमें मिला कर एक मात्रा बनाये। औषधकी ऐसी ही तीन मात्रा प्रत्यह सेवन कराना चाहिये। मध्य-मध्यमें २ ड्रामसे ४ ड्राम तक पोर्ट जलके साथ मिला कर पिलाये। रोगीके बलकी रक्षा सर्वतोभावसे कर्तव्य है। ऐसी

दुर्घटना होने पर प्रथमसे ही उपयुक्त चिकित्सकसे चिकित्सा कराना चाहिये।

वैद्यक—दग्धस्थानमें मधु या शहद लगा, उसके ऊपरी भागमें यवका चूर्ण डालनेसे ज्वालाका निवारण हो जाता है। चार सेर जलमें एक पाव जीरा पका एक सेर जल बाकी रहनेसे उतारे। यही क्वाथ छानकर एक सेर घीके साथ पाक बनाये। पानी मर जाने पर दग्धस्थानमें इस घृतका प्रलेप देनेसे विलक्षण उपकार होता है। हकीम अण्डेकी सफेद लार जली हुई जगहमें लगानेको बताते हैं।

घरका काम करनेमें आठो पहर अग्निसे ही सम्बन्ध रहता है। पाकके लिये अग्नि, किसी द्रव्यको उष्ण करनेमें अग्नि, रातको आलोकके लिये अग्नि; जो तम्बाकू, चुरुटादि पीते हैं, वह तो दिन-रात मुखमें अग्नि लगाये ही रहते हैं। इसके सिवा दरिद्र लोगोंके गात्रवस्त्र नहीं। उनके लिये जानु, भानु और कृशानु-ही शीतका निवारण है, हिमके प्रकोपकी वृद्धि होते ही सब लोग आग जलाकर बैठ जाते हैं। आगसे आठो पहर जो इतना काम होता है, इसीसे मध्य-मध्य गृहस्थके घरमें अतिशय शोचनीय घटना हो जाया करती है। दुधमुंहे शिशुओंके वस्त्रमें आग लगनेसे उनका शरीर जल जाता है। ऐसी दुर्घटनाके समयमें विशेष सतर्कता और प्रत्युत्पन्नमतित्व रहना चाहिये। शिशुओंके कपड़ेमें आग लगनेसे कितने ही मा-बाप व्यस्त हो उसे खोलना चाहते, इसी बीच बच्चेका शरीर जल जाता है। विपद्कालमें उपस्थित-बुद्धि नितान्त आवश्यक है। कपड़ेमें आग लगनेसे क्षणकालके मध्यमें यह सोच लेना पड़ेगा, कि वस्त्र शीघ्र खुलेगा या नहीं। यदि समझ पड़े, कि खुलनेमें विलम्ब लगेगा, तो बालकका सर्वाङ्ग शतरञ्ज या किसी दूसरे मोटे कपड़ेसे लपेट डालना चाहिये। हवा बन्द होनेसे एक मुहूर्तमें अग्नि बुझ जायेगी। निकट मोटा कपड़ा न रहनेसे बालकको मट्टीके ऊपर उलटा-पुलटा देना चाहिये, इससे भी अग्नि शीघ्र निर्वाण हो जाती है।

घरमें आग लगनेसे यद्यपि धुआं बहुत होता है, तथापि उस समय धूमके मध्यमें ऊंचे चढ़ना उचित नहीं। मट्टीके ऊपर पैर रख उस स्थानसे बाहर निकल जाना अच्छा है।

अग्निदत्त (सं० पु०) एक राजाका नाम।

अग्निदमनी (सं० स्त्री०) अग्नि-दम-णिच्-ल्युट्, स्त्री-ङीप्। क्षुप-विशेष। मकोय। (Premna integrifolia) गनियारी। क्षुद्रकण्टारिका। गणियारी देखो। पर्याय—वह्नि-दमनी, बहुकण्टका, वह्निकण्टारिका, गुच्छफला, क्षुद्रफला, क्षुद्रदुःस्पर्शा, मर्त्येन्द्रमाता, दमनी। यह वृक्ष कटु, उष्ण और रूक्ष होता है। इसके सेवनसे वात, कफ, गुल्म और प्लीहा नष्ट हो जाता है। क्षुधावृद्धि और आहारमें रुचि होती है। छोटे-छोटे फलोंवाला कटीला पेड़।

अग्निदातृ (सं० त्रि०) अग्नि-दा-तृच्। अन्त्येष्टिके समय जो विधानानुसारसे मुखाग्नि देता है। पुत्र, ज्ञाति, आत्मीय स्वजन इत्यादि। शास्त्रानुसारसे जो प्रेतपिण्ड देनेके अधिकारी हैं, वही अग्निदाता कहाते हैं। उनके अभावमें आत्मीय स्वजन सभी अग्निको समर्पण कर सकते हैं। (स्त्री०) अग्निदात्री।

अग्निदाह (सं० पु०) १ आग जलाना। २ मुर्दा फूंकना। शवदाह।

अग्निदीपक (सं० त्रि०) १ आगको चितानेवाला। २ भूख बढ़ानेवाला।

अग्निदीपन (सं० त्रि०) अग्नि-दीप-णिच्-ल्युट्। अग्निं जठरानलं दीपयतीति। अग्निवर्द्धक। जिस औषधिसे क्षुधा बढ़े।

अग्निदीप्ता (सं० स्त्री०) अग्निर्जठरानलो दीप्तः सेवनेन यस्याः। १ ज्योतिष्मतीलता। २ अग्निर्दीप्ता यया। अग्न्यु-द्दीपक वस्तु।

अग्निदूत (सं० पु०) अग्निर्दूत इव यत्र। दू-तन् दूतः। दूतनिभ्यां दीर्घश्च। उण् ३।९०। अग्नि देवताओंके पास हविः ले जाते, इसीसे यह यज्ञके दूत होते हैं।

अग्निदेवता (सं० पु०) अग्नि जो देवता जैसे माने गये हैं।

अग्निदेवा (सं० स्त्री०) अग्निर्देवोऽस्याः। कृत्तिका नक्षत्र। कृत्तिका देखो।

अग्निध् (सं० पु०) अग्नि-धा-क्विप्। यथाविधानेन अग्निं दधाति। ६ तत्। अग्न्याधानकर्त्ता।

अग्निधान (सं० क्ली०) अग्नि-धा-ल्युट्, बहुव्री०। अग्निहोत्रगृह।

अग्निनक्षत्र (सं० क्ली०) अग्नेः नक्षत्रम्, ६-तत्। कृत्तिका नक्षत्र।

अग्निनयन (सं० पु०) अग्नि-नी-ल्युट् भावे, ६-तत्। १ अग्निसंस्कार। बहुव्री०। २ देवता। ३ रक्तनेत्र, लाल आंखें। (क्ली०) ६-तत्। अग्निके नेत्र, आगकी आंखें।

अग्निनिर्यास (सं० पु०) अग्नेर्दीपको निर्यासोऽस्य। निर्-यस्-घञ्, निर्यास। अग्निजार वृक्ष।

अग्निनिर्वापण (सं० क्ली०) अग्नि-निर्-वप्-णिच्-ल्युट्। आग बुझा देना। आगका लगना रोकना।

अग्निनेत्र (सं० पु०) अग्निर्नेत्रमाहुतहविः प्रापयिता यस्य, अच् समासे बहुव्री०। देवता। (क्ली०) अग्नेर्नयनम्, ६-तत्। अग्निके चक्षु।

अग्निपद (सं० क्ली०) अग्नेः पदं, ६-तत्। १ अग्न्याधानका स्थान। २ अग्निबोधक शब्द।

अग्निपरिक्रिया (सं० स्त्री०) अग्नि-परि-कृ-श भावे, कृञः श च। ६-तत्। अग्निपरिचर्या। होमादिक्रिया।

अग्निपर्वत (सं० पु०) अग्निसाधकः पर्वतः। भृमृदृशियजिपर्विपच्यमितमिनमिहर्यभ्योऽतच्। उण् ३।११०। पर्वि-अतच्—पर्वतः। आग्नेयगिरि।

अग्निपरीक्षा (सं० स्त्री०) अग्नौ परीक्षा, ७-तत्। १ अग्निमें स्त्रियोंके दोषादोषकी परीक्षा। २ अग्निमें स्वर्णादि धातुकी विशुद्धाविशुद्ध परीक्षा। खरा सोना भट्ठीकी आगमें रखनेसे विवर्ण नहीं होता। किन्तु मिलावटी सोनेका रङ्ग बदल जाता है। यही स्वर्ण, रौप्यादिकी अग्निमें परीक्षा है। पहिले यह परीक्षा भी अग्निमें होती थी, कि स्त्रियां सती हैं या व्यभिचारिणी, आज भी कोई-कोई इतर जातियोंमें यह प्रथा प्रचलित है। वेदिया और बाजीगर देखो। सीताने ज्वलन्त अग्निकुण्डके भीतर बैठ रामको अपनी पतिपरायणताकी परीक्षा दी थी। अब आगमें बैठ परीक्षा देनेका दिन नहीं रहा। आजकल केवल इतर जातियोंके बीच अग्निपरीक्षा रह गई है; किन्तु वह है दूसरी भांतिकी। स्त्रीके प्रति सन्देह होनेपर घरका मालिक हलके लोहेका फार आगमें खूब गर्मकर उसे जीभसे चाटनेको कहता है। साध्वी स्त्री होनेसे उसका मुंह नहीं जलता। किन्तु असती स्त्रीके चाटनेकी चेष्टा करते ही उसका मुंह जल जाता है। गृहस्वामी फिर उसे ग्रहण नहीं करता, सुतरां उस अभागिनी नारीको यावज्जीवन कलङ्कका टीका माथेमें लगा बिताना पड़ता है। पहले भारतवर्ष और युरोपमें भी तस्करोंका दोषादोष अग्नि द्वारा परीक्षित होता था। राजसभामें चोरके पकड़ आनेसे राजा इस बातकी परीक्षा अग्निमें लेते थे, कि वह यथार्थ अपराधी था या नहीं। अङ्गरेजोंके इस देशमें आनेसे पहिले हिन्दू-नृपति इस विचारके पक्षपाती थे। उसी समय तक यह रीति दाक्षिणात्यमें प्रचलित रही, अब रहित हो गई है।

अग्निपुच्छ (सं० पु०) अग्नेः अग्न्याधानस्थानस्य पुच्छः इव। ६-तत्। यज्ञस्थलमें आहिताग्निस्थानका पश्चाद्भाग।

अग्निपुराण (सं० क्ली०) अग्निना प्रोक्तं पुराणम्। अष्टादश पुराणोंके अन्तर्गत अष्टम पुराण। अग्निका कहा हुआ पुराण। अग्निने वशिष्ठके निकट ईशानकल्पके जिस वृत्तान्तको वर्णन किया था, उसीके विवरणपर अग्निपुराण बना। इसकी श्लोक-संख्या १०००० है। इसमें विष्णुका अवतार दिखाया गया है। जगत्सृष्टि, विष्णुपूजा, अग्निपूजा, मुद्रादिका विवरण, दीक्षा, अभिषेक, मण्डप-लक्षण, कुशमार्जन, पवित्रारोपण, देवालयप्रतिष्ठा, शालग्राम-पूजा, नाना प्रकारकी मूर्तिका लक्षण, विनायकपूजा, दीक्षाकी विधि, देवप्रतिष्ठा, ब्रह्माण्ड-निरूपण, गङ्गा प्रभृति तीर्थका वृत्तान्त, षट्कर्म, मन्त्र यन्त्र, और औषधिका विवरण, कुब्जिकाकी पूजा, षोढ़ान्यास, होम, मन्वन्तर, ब्रह्मचर्य्य, श्राद्ध, ग्रहयज्ञ, वैदिक और स्मार्तकर्म, प्रायश्चित्त, तिथिव्रत, वार, नक्षत्र और मासका व्रत, दीपदान, नवव्यूहार्चन, नरकका विवरण, दानधर्म, नाड़ीचक्र, सन्ध्यापद्धति, गायत्रीका अर्थ, लिङ्गस्तोत्र, राज्याभिषेकमन्त्र, राजधर्म, स्वप्न, शकुन, युद्धदीक्षा, नीतिशास्त्र, रत्ननिरूपण, धनुर्विद्या, व्यवहारविधि, देवासुरका युद्ध, आयुर्वेद,

हस्तिचिकित्सा और शान्ति, गोचिकित्सा, नानाविध पूजा और शान्ति, छन्द और साहित्य-विद्या, एकारणादि विचार, स्वर्गवर्ग, प्रलय, योगशास्त्र और ब्रह्मज्ञान प्रभृति नाना विषय इस पुराणमें ग्रथित हुए हैं।

अग्निपुराणकी श्लोकसंख्या गिननेमें दश हज़ारसे अधिक नहीं होती। किन्तु पुस्तक विशेषमें लिखा है, कि इसकी श्लोकसंख्या साढ़े चौदह हज़ार है।

पुराण देखो।

अग्निप्रणयन (सं॰ क्लो॰) अग्नि-प्र-नी-ल्युट् भावे, ६-तत्। यथाविधि मन्त्रपाठपूर्व्वक अग्निसंस्कार विशेष। विधिसे मन्त्र पढ़ अग्निका संस्कार-विशेष करना।

अग्निप्रतिष्ठा (सं॰ स्त्री॰) विवाहकी अग्निस्थापना।

अग्निप्रवेश (सं॰ पु॰) अग्निमें पड़ना। अनुमरण देखो।

अग्निप्रस्कन्दन (सं॰ क्लो॰) अग्नेः प्रस्कन्दनम्। ६-तत्। श्रौत और स्मार्त्त होम परित्याग। (महाभारत १।८४।२६ नीलकण्ठ।)

अग्निप्रस्तर (सं॰ पु॰) अग्नि-प्र-स्तृ-अच्, ६-तत्। अग्न्युत्पादक प्रस्तर, आग पैदा करने वाला पत्थर। चकमक, पथरी। पहले भारतमें चकमकका बहुत चलन था। उस समय विलायती दियासलाई बनानेपर भी कितने ही दिन इस देशमें न आई थी। आग जलानेको लोग चकमक रगड़ते थे। तोड़ेदार बन्दूकमें चकमक पत्थर लगाया जाता है। इस पत्थरसे बढ़िया शीशा और नक़ली हीरे आदि बनते हैं। होमियोपेथीके डाक्टर विशुद्ध चकमक पत्थरको (Silica, Flint) औषधार्थ प्रयोग करते हैं। पुरातन अस्थिरोग या हड्डीकी बीमारी (Rickets ; Caries and exfoliation of bone, Tabes Dorsalis), श्लैष्मिक ग्रन्थिकी पीड़ा, यक्ष्मा, स्फोटक और दूसरी पीबसे भरी बीमारियोंमें सड़े दांतके दर्द और टूटी हड्डीकी यह बहुत ज़ोरदार दवा है। होमियोपेथीके डाक्टर कहते हैं, कि टूटी हड्डीकी ऐसी चमत्कार औषधि दूसरी नहीं। एवं स्फोटकादि चकमकको सेवन करनेसे शीघ्र पक जाते और पीबका बढ़ना भी शीघ्र कम पड़ जाता है। सिवा इसके पीबसे पैदा हुए जीर्णज्वर, कर्णमूल फूलकर पीब पड़ने और गर्मी और गण्डमाला रोगमें यह पत्थर महौषधोंके बीच गिना गया है।

इस जातिवाला पत्थर अनेक प्रकारका होता है। प्रस्तर देखो। चकमकके कणामें कुछ अक्साइड् रहता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व २°६४२ है। यह पत्थर नाइट्रोजनके साथ कड़ा हो मट्टीसे कुछ नीचे ही रहता है। कांच शब्दमें चकमकका विस्तारित विवरण देखो।

अग्निबाहु (सं॰ पु॰) अग्निरिव तेजस्वन्तो बाहू यस्य, अथवा अग्निराग्नेयास्त्रं बाहौ हस्ते विद्यते यस्य। अर्जिदृशिकम्यमिपंशिवाधामजिपशि तुग्धुग् दीर्घहकाराश्च। उण् १।२७। १ जनैक राजपुत्र। काम्याके गर्भ और प्रियव्रतके औरससे इनका जन्म हुआ था। इन्होंने अपना विवाह न किया, जीवनावधि यह केवल तपस्या करते रहे। २ उत्कल देशमें एक दूसरे अग्निबाहुका नाम सुन पड़ता है। उन्होंने उत्कलवासियोंके साथ युद्ध कर जगन्नाथकी मूर्ति चुराई थी। अग्नेर्बाहुरिव। ६-तत्। ३ धूम, धुआं।

अग्निभ (सं॰ क्लो॰) अग्नि-भा-क, अग्निरिव भाति। १ स्वर्ण, सोना। २ अग्निवर्ण वस्तु, आग जैसी सुर्ख़ चीज़। भं नक्षत्रं अग्निभं, ६-तत्। ३ कृत्तिका नक्षत्र।

अग्निभू (सं॰ पु॰) अग्नि-भू-क्विप्, अग्नेरनलात् भवतीति। १ अग्निपुत्र, कार्तिकेय। २ जल। ३ स्वर्ण।

अग्निभूति (सं॰ पु॰) अग्नि-भू-क्तिन्, अग्नेरिव भूतिरैश्वर्यं यस्य। बौद्धविशेष। (स्त्री॰) अग्निकी भूति, अग्निवीर्य्य। (त्रि॰) बहुव्री। अग्निसम्भव वस्तु, आगसे पैदा हुई चीज़।

अग्निभ्राजस् (सं॰ त्रि॰) अग्नि-भ्राज-असुन्, अग्निरिव भ्राजते दीप्यते। अग्नितुल्य दीप्तियुक्त, आग जैसा चमकीला ; विद्युत्, बिजली।

अग्निमणि (सं॰ पु॰) अग्नेरुत्पादको मणिः प्रस्तरः, शाक-तत्। १ सूर्य्यकान्तमणि, आतशी शीशा। २ चकमक पत्थर।

अग्निमत् (सं॰ पु॰) अग्नि-मतुप्। साग्निक ब्राह्मण, आहिताग्निक।

अग्निमथ् (सं॰ पु॰) अग्नि-मन्थ-क्विप् न लोपः। अग्निं मथ्नाति। याज्ञिक, साग्निक ब्राह्मण। जो अरणिद्वयके

घर्षण द्वारा अग्न्युत्पादन करे, दो अरणियोंको घिसकर आग उत्पन्न करनेवाला।

पूर्वकालमें साग्निक ब्राह्मण कहीं भी जानेसे अपने साथ अरणि काष्ठ ले जाते थे। अरणिका प्रयोजन पड़नेसे वही दोनो लकड़ियां एकत्र बलपूर्व्वक घिसते, जिससे अग्नि उत्पन्न होती थी। वह बिना अरणिके कहीं भी जाते न थे। इससे स्पष्ट समझा जा सकता है, कि उस समयमें अग्न्युत्पादनके लिये कोई सहज उपाय न था। आज भी वनकी असभ्य जातियां काष्ठ-घर्षण द्वारा अग्न्युत्पादन करती हैं। पहले वह कड़ी लकड़ीके दो टुकड़े एकत्र घिसती हैं। उनमें गर्मी आ जानेसे उनके बीचमें एक छोटासा फटा कपड़ा रख फिर घिसने लगती हैं। थोड़ी ही देरमें वह फटा कपड़ा जल उठता है।

वत्सर-वत्सर जिस दावानलसे वन जलते, उसकी उत्पत्ति भी इसी तरहसे होती है। वृक्षकी शुष्क शाखा अन्य शाखाके ऊपर पड़ ग्रीष्मकालके प्रबल वायु-वेगसे रगड़ा करती है। उसी घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है। एक बार आग लगनेसे पहले वृक्षकी शाखा, इसके बाद वृक्ष और अन्तमें धीरे-धीरे समस्त वन धाँय-धाँय जला करता है। सुननेमें आता है कि, पर्व्वतके गनियारी प्रभृति कई वृक्षमें शीघ्र ही अग्निकी उत्पत्ति होती है। ऋषि शमिवृक्षके साथ जात-अश्वत्थ-काष्ठकी अरणि बनाते थे। मथानीसे हम जैसे दही मथते हैं, ऋषि वैसे ही अरणिमन्थन द्वारा अग्नि उत्पन्न करते थे।

पूर्वकालापेक्षा अब अग्निमन्थन अर्थात् अग्न्युत्पादन करनेके अनेक सहज उपाय आविष्कृत हुए हैं। चकमककी बात सभीको ज्ञात है। बेद रगड़कर भी सहजमें अग्नि बनाई जाती है। चीन और सिङ्गापुर अञ्चलका बेद (जिससे कुरसी और मोढ़े बनते हैं) दो भागमें चीरकर धूपमें उत्तम रीतिसे सुखाये। इसके बाद बेदके चीरे हुए छोर एकत्र रगड़नेसे शीघ्र अग्नि उत्पन्न होती है। विलायती दियासलाईके मुंहमें तो, घिसनेकी गर्मीसे आग निकलती है। इसके उपादान और बनानेकी प्रणाली दियासलाई शब्दमें देखो।

अग्निमन्थ (सं० पु०) अग्निमन्थ-करणे घञ्। १ गनियारी वृक्ष। गनियारीकी लकड़ी रगड़नेसे जल्द आग निकलती है। २ अग्निसाधन-मन्त्र।

अग्निमन्थन (सं०क्ली०) अरणिघर्षण द्वारा अग्न्युत्पादन।

अग्निमान्द्य (सं० क्ली०) ६-तत्। अजीर्ण रोग, क्षुधा-मान्द्य। परिपाक शक्तिका ह्रास। बदहज़मी। भूखकी कमी। (Dyspepsia)

अग्निमान्द्य रोग सहज नहीं, इससे अनेक प्रकारके उपसर्ग हो जाते हैं। पहले आहारमें अरुचि, कोष्ठबद्ध, कहीं पुनः-पुनः अल्प-अल्प मल निकलना, उदराध्मान, शरीर दुर्बल हो जाना, बीच-बीच उद्गारका उठना, जी मिचलाना, किसीको अम्ल और पित्तमिश्रित वमन होना, अन्तःकरणमें स्फूर्ति न रहना, चित्त मलिन और विरस होना, छाती जलना, आहारके बाद उदरमें भार मालूम पड़ना आदि लक्षण देख पड़ते हैं। इन सब लक्षणोंके बाद क्रमसे निद्राभाव, दुःस्वप्न, काल्पनिक दुश्चिन्ता, हृत्स्पन्द प्रभृति उपसर्ग आ धमकते हैं। इसी प्रकारसे शरीर क्लिष्ट और दुर्बल हो जानेपर जो यथार्थ उपसर्ग नहीं हुए, रोगी मन ही मन उन रोगोंको भी सृष्टि कर लेता है। दूसरे किसी व्यक्तिकी व्याधिका हाल सुननेसे, अजीर्णरोगी मन ही मन विश्वास करता, कि उसको भी वही व्याधि लग गई है।

कारणतत्त्व—प्रत्यह गुरुपाक द्रव्यका भोजन, शारीरिक परिश्रमका अभाव, अतिशय मानसिक चिन्ता, तम्बाकू, अफीम, गांजा, मद्य प्रभृति मादक द्रव्यका सेवन, दुश्चिन्ता और मनस्ताप आदि अग्निमान्द्य रोगके प्रधान कारण हैं। इन्हें छोड़ यकृत्रोग, ज्वर, हृद्रोग प्रभृति कोई दूसरी पीड़ा होते भी अजीर्ण रोग आ लगता है।

चिकित्सा—पहले पीड़ाका मूलकारण दूरीभूत करना आवश्यक है। जो सर्वदा एक ही स्थानमें निस्तब्ध बैठे रहते और कुछ भी दैहिक परिश्रम नहीं करते, उन्हें कुछ-कुछ व्यायाम करना उचित है। भले आदमियोंके पक्षमें प्रत्यह मुद्गर भांजना और सवेरे और सन्ध्याको निर्मल वायुमें भ्रमण इन दोनो नियमोंके

प्रति दृष्टि रखनेसे अन्य कोई औषध न चाहिये। जो अमितभोजी हैं, उन सकल व्यक्तियोंको आहारके प्रति दृष्टि रखना चाहिये। वह प्रति दिन यथाकालमें सत्-पथ्य खायें, क्षुधाबोध न होनेसे आहार न करें। और मनस्तापके लिये अग्निमान्द्य होनेसे चित्त प्रफुल्ल रखनेको यत्नवान् हों।

होमिओपैथी—उदरमें भार बोध और वेदना, उद्गार, छातीकी जलन, और उदराध्मान होनेसे नक्सभमिका प्रत्यह तीन बार सेवन करना चाहिये। अर्शरोग या बवासीरका कोई पूर्व लक्षण जान सकनेसे सवेरे नक्सभमिका और सन्ध्याको सल्फ़र सेवन करना कर्तव्य है। बार-बार विरेचन यानी कै या गुरुतर भोजनके बाद अजीर्ण होने पर पल्सेटिला खानेसे उपकार होता है। कोष्ठबद्ध, मस्तक वेदना आदिमें ब्राइओनिया महौषध है। आहारमें अरुचि होने और खाद्य द्रव्य मुखमें विस्वाद लगनेसे पुरातन अग्निमान्द्य रोगमें ऐण्टीमनियम् क्रूडम्, सलफ़र, हेपार, सल्फ़िउरिस्के देनेकी व्यवस्था करे। सिवा इसके शरीर दुर्वल होनेसे चायना, फ़स्फ़रिक एसिड्, फ़सफ़रस और फ़ेरमको सेवन करना उचित है। अजीर्णके कारण हिक्का यानी हिचकी आनेसे नक्सभमिका, जेल सिमिनम्, आर्सेनिक खिलाये।

एलोपैथी—अग्निमान्द्यरोगमें पेप्सिन महौषध है। भोजनसे पहले ही ३ रत्ती पेप्सिन पोर्सीइको ही सेवन करे। भोजनसे पीछे चौथाई ग्रेन इपिकाक चूर्ण, १ ग्रेन कुनैन और २ ग्रेन जेन्सियानका सार इकट्ठा गोली बनाकर खानेसे भी विशेष उपकार होता है। उदरामय या आँव रहनेसे ५ ग्रेन द्रिस्नाइट्रेट् अव विस्मथ्, २ ग्रेन सोंठका चूर्ण और २ ग्रेन पेप्सिन इकट्ठा मिला एक पुड़िया बांध ले। यह औषध प्रत्यह दो बार सेवन करनेसे उदरामयकी शान्ति हो सकती है।

वैद्यक—अग्निमुखचूर्ण, अग्निकुमाररस, अग्निमुखरस, अग्निमुखलवण, अग्निमुखलौह, अजीर्णबलकानल, शङ्खवटी प्रभृति औषध अग्निमान्द्य रोगमें प्रयोज्य हैं। इन सब औषधोंका उपकरण और इनके प्रस्तुत करनेकी प्रणाली तत्तत् शब्दमें देखो।

हकीमी—यूनानी मतसे जुयारिशे-सङ्गदान-ए- मुर्ग अग्निमान्द्य रोगका महौषध है। यह मुर्गीको पेप्सिन् यानी पाकस्थलीवाली श्लैष्मिक झिल्लीसे तय्यार होता है। यह औषध प्रतिदिन प्रात:कालमें एक तोला मात्राके हिसाबसे सेवन करना चाहिये। हकीम अग्निमान्द्यमें अर्क और सत भी देते हैं। सचराचर निम्न लिखित औषध भी व्यवहृत हुआ करते हैं—आध पाव सोंठ, ३ तोला कालीमिर्च, १ तोला पीपल, १ तोला छोटी इलायची, आध तोला नौसादर, आध तोला दूधसे सोधा गन्धक, आध पाव चार तरहका नमक, जैसे—सैन्धव, साँभर, काला नमक और सोंचर; यह सब द्रव्य एकमें पीस और नीबूके रसमें भिगो बड़ी-बड़ी गोली बना डाले और धूपमें उन्हें सुखा ले। पीछे एक-एक गोली मुंहमें रख उसका रस चूसा करे। यह गोलियां अपने अम्लास्वादके कारण अग्निमान्द्यवाले रोगीको बहुत रुचिकर होती हैं।

अग्निमान्द्यरोगीको सर्वथा यह कई नियम प्रतिपालन करना चाहिये—दिनको न सोना, आहारके बाद परिश्रम न करना, रातको न जागना, मादक द्रव्य या नशा न खाना और खराब चीज़का खाना एकबारगी ही छोड़ देना।

अग्निमारुति (सं० पु०) अग्निश्च मरुच तयोरपत्यं पुमान्। बाह्वादिभ्यश्च। पा ४।१।९६। अगस्त्यमुनि। अगस्त्यने अग्नीमारुतके औरससे यज्ञीय कुम्भमें जन्म ग्रहण किया था। अगस्त्य देखो।

अग्निमित्र (सं० पु०) शुङ्ग-वंशीय द्वितीय नृपति, शुङ्ग वंशके दूसरे राजा। यह मगधके अधीश्वर थे। मौर्यवंशीय अन्तिम राजा वृहद्रथके सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामीको नष्ट कर आप ही राजा बन बैठे। अग्निमित्र पुष्पमित्रको सन्तान थे। अग्निमित्रकी मृत्युके बाद उनके पुत्र सुज्येष्ठ मगधके राजा हुए।

भागवत १२।१ अ:। [शुङ्गवंश देखो।]

अग्निमुख (सं० पु०) अग्निर्मुखमिव यस्य। १ देवता। देवता अग्निरूप मुखसे हव्यको पान करते हैं। २ ब्राह्मण। ३ चिता, चीत। ४ भेला, भल्लातक। (क्ली०) ५ क्षुधा वृद्धिके लिये अग्निमुख औषध-विशेष।

१ भाग हींग, २ भाग वच, ३ भाग पीपल, ४ भाग सोंठ, ५ भाग अजवायन, ६ भाग हर, ७ भाग चीत और ८ भाग कुटकी; यह सब द्रव्य एकमें मिला दहीके साथ खानेसे अजीर्ण और वायुपित्त नष्ट होता है।

अग्निमुखचूर्ण (बृहत्) अजीर्ण रोगका औषध।

शोरा, सज्जीखार, चितामूल, पाठामूल, करञ्जमूल, पञ्चलवण, छोटी इलायची, तेजपत्र, बामनहाटी, विड़ङ्ग, हींग, कुटकी, शठी, दारुहलदी, तेवड़ी, मूता, वच, इन्द्रयव, आंवला, जीरा, मकोय, गजपीपल, काला जीरा, आमलवेत, इमली, अजवायन, देवदारु, हर, अतीस, अनन्तमूल, हबूषा, सोंदालके फलका गूदा, तिलनालका खार, पलाशक्षार, और गोमूत्रसिक्त मुण्डुरी—यह सब औषध समान भागमें ले चूर्ण करे। इसके बाद तीन दिन नीबूके रस, तीन दिन काँजी और तीन दिन अदरकके रसमें भावना दे सुखा ले। मात्रा दो तोलेकी होती है। इसे घी और अन्नके साथ मिश्रित कर खाना चाहिये। इससे भूख बढ़ती और अजीर्ण रोग मिटता है।

अग्निमुखमण्डूर—शोथ रोगका औषध। ८६ तोला शोधित मण्डूरको उससे अठगुने गोमूत्रके साथ पकाये। पीपल, पिपरामूल, चई, चितामूल, सोंठ, देवदारु, कुकुरमुत्ता, त्रिकटु, त्रिफला, विड़ङ्ग—यह सब औषध आठ-आठ तोले प्रक्षेप देकर एकमें मिला ले। इसकी मात्रा एक तोले होती है। घी और शहदमें सान मठेके साथ सेवन करे। यह शोथरोगका उत्कृष्ट औषध है।

अग्निमुखरस—अग्निमान्द्यरोगका महौषध। मिर्च, कुकुरमुत्ता, वच और कुटकी एक-एक तोला और एक तोला विष ले अदरकके रसमें सानकर मूंगके बराबर गोली बनाये। यह अजीर्ण और अग्निमान्द्य रोगमें सेव्य है।

अग्निमुखलवण (सं० क्ली०) अग्निमान्द्य रोगका औषध विशेष। चितामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, तेवड़ीमूल और कुटकी बराबर-बराबर और इन सबके समान सैन्धव लवण सहिँजनके चूर्णमें भावना देकर सहिँजनकी शाखामें भरे और उसके ऊपर मट्टीका हलका लेप चढ़ा आगमें जलाकर चूर्ण बनाये। चूर्णकी मात्रा ५ रत्ती है। इसके सेवनसे भूख बढ़ती और यकृत्, प्लीहा, गुल्म, अर्श, पार्श्वशूल प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।

अग्निमुखलौह—अर्श रोगका औषध। पहले १८२ तोला घी गर्म करे। पीछे सहिँजनमूलके रससे शोधित ८६ तोला लौहभस्म उसी घीमें डाले। इसके बाद अड़तालीस तोला तेवड़ी, चीत, निसन्दा, सहिँजन, मुण्डुरी, और पानिआंवला ६४ सेर जलमें डाल पकाये। जब १६ सेर जल बाकी रहे, तब औषध चूल्हे परसे नीचे उतार ले। यह काढ़ा और १८२ तोला चीनी ऊपर कहे हुए घीमें डाले। जब यह सब वस्तु गाढ़ी हो जाये, तब २४ तोला त्रिकटुका चूर्ण, ४० तोला त्रिफलाका चूर्ण और ८ तोला शिलाजीत इसमें मिला दे। ठण्ढा होनेसे १८२ तोला शहद भी डाले। इसकी मात्रा ४ माशे है। यह अग्निमान्द्य शोथ, प्लीहा और अर्शका उत्कट औषध है।

अग्निमुखी (सं० स्त्री०) अग्निरिव मुखमग्रं यस्याः। १ भल्लातक वृक्ष। भेलेका पेड़। भल्लातक देखो। २ लाङ्गलिका वृक्ष। अग्निरेव मुखं यस्याः। ३ गायत्री। ४ रन्धनशाला।

अग्नियुग (सं० पु०) ज्योतिष-सम्बन्धीय पांच वर्षका एक युग।

अग्निरक्षण (सं० क्ली०) अग्नि-रक्ष-ल्युट्। १ अग्निरक्षा करनेका मन्त्र। पूर्वकालमें राक्षस आकर ऋषियोंका अग्निकुण्ड बुझा देते थे। इसलिये उन्हें मन्त्रपाठपूर्वक यह अत्याचार रोकना पड़ता था। २ अग्निहोत्र। ३ अग्निहोत्रगृह। ४ अग्निधान।

अग्निरजस् (सं० पु०) अग्निरञ्ज्-असुन् न लोपः, अग्निरिव रज्यते दीप्यते। १ रक्तवर्ण इन्द्रगोप, बीरबहू। २ अग्निका तेजः। (क्ली०) ३ स्वर्ण, सोना।

अग्निरहस्य (सं० त्रि०) अग्नेरनलस्य रहस्यं तस्योपासनादिगूढ़तत्त्वं यत्र। बहुव्री। अग्निकी गूढ़ पूजापद्धति जिसमें निर्दिष्ट है।

अग्निरुहा (सं० स्त्री०) अग्नि-रुह-क। अग्निरिव

रोहति। मांसादनी वृक्ष, इस वृक्षका अग्निवर्णवत् नया अङ्कुर आग जैसा लाल होनेसे अग्निरुहा नाम पड़ा है।

अग्निरूप (सं० त्रि०) अग्नेरिव रूपं वर्णो यस्य। १ जिसका अग्नितुल्य वर्ण हो, जिसका रूप आग जैसा देखा जाये। २ अग्नि सदृश मान्य, आगकी तरह प्रतिष्ठा पानेवाला। अग्निरिव रूप्यते असौ, ६-तत्। (क्ली०) ३ अग्निका वर्ण या मूर्ति, आगका रङ्ग या आगकी शकल।

अग्निरेतस् (सं० क्ली०) अग्नेः रेतः, ६-तत्। अग्निका शुक्र यानी सुवर्ण। सोना आगका वीर्य्य है।

काञ्चन और कार्तिकेय शब्द देखो।

अग्निरोहिणी (सं० स्त्री०) एक रोग जो सन्धिस्थान-में फफोले डालता और जिसमें रोगीको दाह और ज्वर हो जाता है। यह रोग त्रिदोषज है।

"मर्ल्लैः पित्तोल्वणैः स्फोटा ज्वरिणी मांसदारणाः।
कक्षाभागेषु जायन्ते येऽग्न्याभाः साऽग्निरोहिणी॥
पञ्चाहात्सप्तरात्राद्वा पक्षाद्वा हन्ति जीवितम्।" (वाभट उ० ३२ अ०)

अग्निलिङ्ग (सं० पु०) वह विद्या, जिससे अग्निका आकार देख शुभाशुभ बताया जाता है।

अग्निलोक (सं० पु०) अग्नेः लोकः, ६-तत्। सुमेरु पर्वतके नीचेका जनपद-विशेष, वह एक खास जगह जो सुमेरु पर्व्वतके नीचे है। काशीखण्डमें लिखा है, कि इस अग्निलोकका स्थान अन्तरीक्षमें है। मालूम होता है, कि सुमेरु पर्वतके नीचे किसी उपत्यकामें पहले अग्निपूजकोंका कोई स्थान था, जिसे सब लोग अग्निलोक कहते रहे। चीन-परिव्राजक यूअन्-चुअं अ-कि-नि नाममें उल्लेख किया।

अग्निलोह (सं० पु०) अर्श या बवासीर रोग मिटाने-वाला एक रस। अग्निमुख देखो।

अग्निवक्त्र (सं० पु०) भल्लातक वृक्ष। चीत।

अग्निवत् (सं० त्रि०) अग्नि-मतुप्। १ साग्निक ब्राह्मण। २ अग्नितुल्य, आग जैसा।

अग्निवती (सं० स्त्री०) अगिया नामक महौषध।

अग्निवधू (सं० स्त्री०) अग्नेः वधू, ६-तत्। स्वाहा, दक्ष-कन्या। स्वाहा देखो।

अग्निवर्चस्—(सं० त्रि०) अग्नेर्वर्च इव वर्चो दीप्तिरस्य, बहुव्री०। अग्नितुल्य दीप्तिमान्, आग जैसा चमकीला। (क्ली०) अग्निका तेज।

अग्निवर्ण—(सं० त्रि०) अग्नेर्वर्ण इव वर्णो रूपं यस्य। अग्नितुल्य रक्तवर्ण, आगकी मानिन्द सुर्ख़। (पु०) सूर्य्यवंशके राजविशेष, जो सुदर्शनके पुत्र थे। वृद्ध नृपतिने सन्तानको राज्यभार दे नैमिषारण्यके प्रति-गमन किया। किन्तु अग्निवर्णने राज्यपर कोई ध्यान न दिया। वह रात-दिन अन्तःपुरमें ही पड़े रहते थे। प्रजा साक्षात् करनेको आ उनके दर्शन न पाती थी। इसी तरह नियत इन्द्रियपरवशताके कारण उन्होंने यक्ष्मरोगग्रस्त हो अकालमें प्राणत्याग किया।

रघुवंश १९ सर्ग।

अग्निवर्द्धक (सं० त्रि०) अग्नि-वृध-णिच्-ण्वुल्। अग्नेः वर्द्धकः। १ क्षुधावृद्धिकारक औषध, भूख बढ़ानेवाली दवा। २ पथ्य। ३ आहार।

अग्निवर्द्धन (सं० क्ली०) १ जठराग्निवृद्धिकर द्रव्य, हाज़मे-को बढ़ानेवाली चीज़। २ जीरक, जीरा।

अग्निवल्लभ (सं० पु०) ६-तत्। १ सालवृक्ष। २ राल। (त्रि०) अग्निप्रिय, आगका प्यारा।

अग्निवल्ली (सं० स्त्री०) लता-विशेष। एक प्रकारकी बेल जो आग जैसी लाल होती है।

अग्निवाण (बाण) (सं० पु०) एक इकार अस्त्र, जिसमें आगकी ज्वाला निकले।

अग्निवायू (सं० पु०) अग्निश्च वायुश्च। अग्नि और वायु देवता। २ चौपायों पशुका एक रोग। ३ दद्रु, ददरा।

अग्निवासस् (सं० क्ली०) अग्निरिव शुद्धं वासो वस्त्रम्। वस-असुन्—वासस्, वस्त्र। वसेर्णित्। उण् ४।२१७। अग्नि-तुल्य शुद्धवस्त्र, आग जैसा पाक कपड़ा। (त्रि०) अग्नितुल्य वस्त्रपरिधायी, आग जैसा पाक कपड़ा पहननेवाला।

अग्निवाह (सं० पु०) अग्नि-वह-णिच्-अण्, अग्निं वाहयति। १ छाग, बकरा। २ धूम, धुआं। (त्रि०) ३ अग्निवाहक द्रव्य, आगको ले जानेवाली चीज़।

अग्निवाहन (सं० क्ली०) ६-तत्। १ छाग, बकरा। २ अग्निका रथ। अग्निका रथ चार बकरे खींचते हैं।

अग्निविकार (सं० पु०) एक प्रकारका रोग, अग्नि-

मान्य। वह बीमारी जिसमें हाज़मा बिगड़ जाता है।

अग्निविद् (सं० पु०) अग्नि-विन्द वा विद्-क्विप्। १ साग्निक ब्राह्मण। २ अग्निरहस्यवेत्ता।

अग्निविद्या (सं० स्त्री०) अग्निहोत्र। अग्निकी उपासना।

अग्निविन्दु (सं० पु०) विदि-उ विन्दु, चात् विदि अवयवे। उण् १।१०। इति उ। ६-तत्। स्फुलिङ्ग। अग्निकणा। आगकी चिनगारी।

अग्निविवर्द्धन (सं० त्रि०) जठराग्निको बढ़ानेवाला, हाज़मेको तरक्की देनेवाला।

अग्निविश्वरूप (सं० पु०) केतुओंका एक भेद।

अग्निविसर्प, अग्निवीसर्प (सं० पु०) फोड़ेका दर्द। इस रोगके होनेसे सब शरीर अङ्गार जैसा गर्म हो और रक्त काला पड़ जाता है। रोगीके शरीरमें पीड़ा उत्पन्न होती, उसे मूर्च्छा आजाती और उसकी आंख नहीं लगती है।

अग्निवीज (सं० क्ली०) ६-तत्। स्वर्ण, सोना। अग्नि-शुक्रे जातत्वात्। अग्निके शुक्रसे उत्पन्न होनेपर सोने-का नाम अग्निवीज पड़ा है।

अग्निवीर्य्य (सं० क्ली०) ६-तत्। १ स्वर्ण, सोना। बहुव्री। २ अग्निका पराक्रम, आगकी ताक़त। (त्रि०) अग्नितुल्य बलशाली, आगकी बराबर ताक़तवर।

अग्निवृद्धि (सं० स्त्री०) क्षुधावृद्धि, भूख बढ़ना, हाज़मे-का तरक्की पाना।

अग्निवेश (सं० पु०) महर्षि आत्रेयके शिष्य। यह पञ्चाल राज्यमें रहते थे और इन्होंने आयुर्वेद बनाया था।

अग्निवेश्मन् (सं० पु०) अग्निः वेश्मनि गृहे यस्य। १ ज़नैक मुनि। इनके नामसे एक गोत्र प्रवर्तित हुआ है। २ बयालीस गोत्रोंके अन्तर्गत गोत्र-विशेष। गोत्र देखो।

अग्निवेश्य—धनुर्विद्याविशारद अग्निके पुत्र-विशेष। द्रोणाचार्य्यने इनके निकट धनुर्विद्या सीख अग्न्यस्त्र-को लाभ किया था। (महाभारत आदिपर्व्व।)

अग्निवेश्यायन (सं० पु०) अग्निवेश्यका गोत्रापत्य।

अग्निव्रत (सं० क्ली०) अग्निसंस्कार।

अग्निशरण (सं० क्ली०) ६-तत्। अग्न्याधानगृह। अग्निहोत्रगृह। "तथेत्युक्त्वाग्निशरणं प्रविवेश निवेदितुम्।"

रामायण, अरण्यकाण्ड, १२ अ०, ५ श्लोक।

अग्निशर्मन् (सं० त्रि०) अग्नि-शॄ-मनिन् अग्निरिव शृणाति पराभवति। सर्व्वधातुभ्यो मनिन्। उण् ४।१४४। इति मनिन्। अतिक्रोधी, निहायत गुस्सावर। (पु०) ऋषि विशेषका नाम। जब कोई अधिक कोपान्वित होता है, तो कहते हैं—"वह तो मानो अग्निशर्मा बन गये।"

अग्निशाल, अग्निशाला (सं० स्त्री०) अग्निनां शाला गृहम्। अग्न्याधानका स्थान।

अग्निशिख (सं० पु०-क्ली०) अग्नेरिव अग्निरिव वा शिखा यस्य। १ वाण। २ स्वर्ण, सोना। ३ कुसुमवृक्ष, कुङ्कुम। ४ विषलाङ्गली।

'अथाग्निशिखमुद्दिष्टं कुसुम्भे कुङ्कुमेऽपि च।
लाङ्गलिक्याख्यौषधौ च विशल्यायाञ्च योषिति।' (मेदिनी)

अग्निशिखा (सं० स्त्री०) अग्नेः शिखा। १ अग्निज्वाला, लपट। अग्नेः शिखेव शिखा यस्य। (पु०) लाङ्गली-वृक्ष। फलिनी, शक्रपुष्पी। अनन्ता। विशल्या देखो।

यह समझनेके लिये, कि अग्निशिखा क्या है, पहले काष्ठ प्रभृति दाह्य पदार्थोंके जलनेकी रीति जानना आवश्यक है। अक्सिजेन शब्दमें अम्लजानका वृत्तान्त लिख दिया गया है। हम निश्वासके साथ जो वायु खींचते हैं, उसके पांच भागमें एक भाग अक्सिजेन रहता है। जगत्की अनेक वस्तुओंके साथ अक्सिजेन मिल जाता है। इसीसे, अक्सिजेन और अन्यान्य पदार्थके संयोगसे सर्व्वदा ही नये नये पदार्थ उपजते हैं। अक्सिजेनके अन्य पदार्थके साथ मिलनेसे जो तापोत्पन्न होता है, उसीको हम दग्ध होना या जलना कहते हैं। पदार्थ-समुदय एक प्रकारसे नहीं जलता। कोई वस्तु सड़-सड़ और कोई वस्तु आग जैसी बन जला करती है। किसी-द्रव्यमें अल्प-अल्प अक्षिजेन घुसनेसे उसको सड़ना कहते हैं। काष्ठादिमें इसकी अपेक्षा और भी कुछ शीघ्र-शीघ्र अक्षिजेन पहुंचनेसे सचराचर हम लोग कहा करते हैं, कि लकड़ी धीरे-धीरे सुलग रही है। इससे अधिक अक्षिजेन जब लकड़ीमें घुसता है, तब वह लकड़ी धायँ-धायँ जलने लगती है। बारूदमें आग लगनेसे अक्षिजेन पहुंचते कुछ भी देर नहीं होती, इसीसे वह पलक मारते बातकी बातमें जल उठती है। अल्प

तापसे अनेक पदार्थके साथ अक्षिजेन सहजमें नहीं मिल सकता,—जैसे लोहा। लोहेमें मुरचा लगनेसे यह बात कही जा सकती है, कि वह सड़ता या गलता है। कारण, लोहेके साथ अक्सिजेन मिलनेसे "लौहजरा" (Oxide of Iron) निकलता है, जिसे हम मुरचा लगना कहते हैं।

जलती हुई आगकी भट्ठीमें एक लोहेका टुकड़ा डाल देनेसे वह गर्म और लाल हो और फिर बाहर निकालनेसे ठण्डा और काला पड़ जाता है, उसका वज़न नहीं घटता। ऐसे स्थलमें लोहा आग जैसा होता, किन्तु जल नहीं जाता। लोहेको लकड़ीकी तरह जलानेके लिये अधिक ताप आवश्यक है। कारण, लोहेके साथ अक्सिजेन सहजमें नहीं मिल सकता। किन्तु अनेक द्रव्योंके साथ अक्षिजेन सहजमें मिल जाता है। जैसे, कार्वन् और हाइड्रोजेन् (Carbon and Hydrogen)। लकड़ा, पत्थरके कोयले, तेल, चर्बी, घी प्रभृति द्रव्योंमें कार्वन् अथवा हाइड्रोजेन् अधिक रहता है। इसीसे आगका प्रयोजन पड़नेसे यह सकल द्रव्य हम अधिक बरतते हैं। कलकत्ता शहरमें जिस गेसकी रोशनी होती, वह पत्थरके कोयलेसे बनाई जाती है। कार्वन् और अक्सिजेनसे मिली वस्तुको ही हम गेस कहते हैं। इस गेसके बीच अलिफाएण्ट (Olefient gas) नामकी एक प्रकार बाष्प रहती, जिसकी रोशनी बहुत तेज़ होती है। हाइड्रोजेन्के जलते समय अग्निशिखाके ऊपर एक पात्र ढांक देनेसे उसमें पसीनेकी तरह बूंद-बूंद पानी इकट्ठा हो जाता है।

लकड़ी और पत्थरके कोयलेमें कार्वन्का भाग अधिक होता है—लकड़ीमें सैकड़े पीछे ४५से ५२ और पत्थरके कोयलेमें ७४से ६४ अंश। लकड़ीका जला कोयला और पत्थरका कोयला प्राय एक ही पदार्थ है। लकड़ीके कुछ जल जाने बाद उस पर मट्टी डाल देनेसे जिस तरह कोयला तय्यार होता, पत्थरके कोयलेकी भी उत्पत्ति प्राय उसी तरह है। कितने युग-युगान्तर हुए, कि बड़े बड़े जङ्गल मट्टीसे ढके पड़े हैं, जिससे वह अक्षिजेनके प्रभाव द्वारा धीरे-धीरे पत्थर जैसा कोयला बन गये हैं। पत्थरका कोयला देखो। लकड़ीका कोयला और पत्थरका कोयला विशुद्ध अङ्गार (Carbon) नहीं है। काष्ठादि जलनेसे जो राख निकलती, वह क्षार प्रभृति पार्थिव पदार्थ है। गर्मी पहुंचनेसे लकड़ीके विशुद्ध अङ्गारका भाग अक्सिजेन-संयोगसे अङ्गारक बाष्प (Carbon dioxide or Carbonic Acid gas) बन उड़ जाता है। अतएव देख पड़ता है, कि जल जलकर जलीय बाष्प (Steam) और अङ्गार जलकर अङ्गारक-बाष्पकी उत्पत्ति होती। जलीय बाष्प ठंढा होकर मेघ और जल बन जाती है। अङ्गारक बाष्पको वृक्षादि निश्वासके साथ खींचकर कार्वन् रख लेते और अक्सिजेन् छोड़ देते हैं। इसी अङ्गारसे वृक्षादि पुष्ट बने रहते हैं। पीछे अन्यान्य पदार्थके साथ मिल वह काष्ठ और पत्रमें परिणत होते हैं। फिर इस काष्ठ और पत्रके पुनर्वार सड़ने या जलनेसे वृक्षमें अङ्गारक-बाष्प उपजती है। उसी अङ्गारक-बाष्पसे पुनर्वार लकड़ी बनती है। जगत्का यह बड़ा ही आश्चर्य-कौशल है। सूर्यकी रोशनी पानेसे वृक्षादि वायुका अङ्गार निकालकर अक्सिजेन्का भाग छोड़ सकते हैं। अङ्गारक बाष्प लेते समय वृक्ष सूर्य-किरणके कियदंश उत्ताप और आलोकको सञ्चय कर रखते है। उनके शरीरमें यह परिपाक नहीं होता। काल पाकर जब फिर उसी लकड़ीमें अक्सिजेन्के मिलनेका अवसर आता, तब यह सूर्यकिरण कुछ बाहर निकाल देनी पड़ती है। इसी कारण आग जलानेसे गर्मी और रोशनी होती है। कितने ही युग-युगान्तरकी सूर्यकिरण राणीगञ्जकी मट्टीके नीचे दबी पड़ी है, जिसे आज हम बाहर निकाल अन्नादि रांधते हैं। अङ्गारादि जलते समय नई विमिश्र बाष्प निकल जब ऊपरको उठती, तभी इस उत्तापसे उत्तप्त हो बाष्प ज्योतिर्मय मूर्ति धारण करती है। यही अग्निशिखा है।

शिखाका भीतरी भाग अग्निमय नहीं होता। ऐसा होनेसे अधिक उत्ताप होता, किन्तु प्रचुर रोशनी न होती। हाइड्रोजेन् और अक्सिजेन् सम्मिलित जलनेसे जो शिखा (Oxyhydrogen flame) उठती, उसका ताप इतना उग्र होता, कि वह लकड़ीकी तरह लोहेको

भी जला सकती है। किन्तु उसमें रोशनी बहुत कम होती है, दिनके समय देख नहीं पड़ती। अग्निशिखाका रूप इस तरह है—१, अन्तर्देश। जिसके भीतर अङ्गार बाष्पादि दाह्य पदार्थ रहता, किन्तु प्रज्वलित भावसे नहीं। किसी शीशेके नलका एक छोर इसके भीतर डालनेसे दूसरे छोरसे भाफ निकला करती है। यह भाफ आग लगाते ही जल उठती, जिससे अच्छी तरह समझा जा सकता है, कि इस स्थानकी भाफ नहीं जलती। इसी अन्तर्देशमें अक्सिजेन् अच्छी तरह घुस नहीं सकती, इसीलिये इस स्थानमें अङ्गारकणा प्रभृति दाह्य पदार्थ अप्रज्वलित भावसे रहते हैं। (२) मध्यदेश। इस जगह वायुकी अक्सिजेन् अधिक परिमाणसे जा सकती, जिससे वह अङ्गारके साथ मिल जला करती है; किन्तु सम्पूर्ण भावसे नहीं। अनेक अङ्गारकणा कठिन अवस्थामें रह जाते, उत्तापमें वही शुभ्र उज्ज्वल रूप धारण कर रोशनी फैलाते हैं। शिखाका यही भाग ज्योतिर्मय है, दूसरे भागमें रोशनी नहीं होती। ३ बहिर्भाग। इस स्थानमें अम्लजान्का अभाव नहीं, इसीसे वह दाह्य बाष्पके साथ मिलकर उग्रतेजमें जल जाती है। अङ्गारकणा जैसे इस जगह आ पड़ते, वैसे ही जलकर भाफ भी बन जाते हैं। उन्हें ज्योतिर्मय होनेका अवकाश नहीं मिलता, इसी कारण शिखाके बहिर्भागसे रोशनी नहीं निकलती। अतएव यही प्रतिपन्न होता है, कि अग्निशिखाका समुदय अंश यदि एकही कालमें जला करे, तो रोशनी कभी न निकले।

आलोक शब्दमें अपरापर वृत्तान्त देखो।

यह दीपशिखाका एक चित्र है। इसका मध्यस्थल कृष्णवर्ण है, जहां भाफ आकर इकट्ठा होती है। इस भाफमें गर्मी नहीं और न यह जलती ही है। शीशेवाले नलके भीतर डाल कर कोई कागज़ दीपशिखाके ठीक मध्यस्थलमें पहुंचानेसे जलता नहीं। इस जगह इस काले रङ्गकी भाफके बीच टेढ़े शीशेके नलका एक मुंह डाला गया है, जिसके दूसरे मुंहसे अदग्ध बाष्प बाहर निकल रही है।
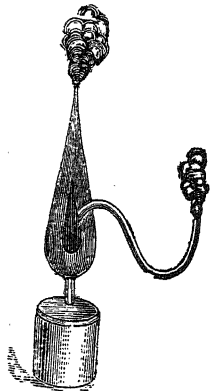
अग्निशुद्धि (सं० स्त्री०) १ अग्निसे शुद्ध करनेकी रीति। आगसे पाक करनेकी चाल। २ अग्निपरीक्षा, आगसे भले-बुरेकी पहचान।

अग्निशुश्रूषा (सं० स्त्री०) ६-तत्। श्रु-सन्-अ-शुश्रूषा। सन्यङोः। पा ६।१।९। यथाविधि होमकार्य।

अग्निशेखर (सं० पु०) अग्निरिव शेखरमग्रं यस्य। १ कुङ्कुमवृक्ष, कुसुमवृक्ष। केसर। २ जाङ्गली वृक्ष। (त्रि०) अग्नितुल्य अग्रविशिष्ट, जिसका अग्रभाग आग जैसा चमकीला हो।

अग्निशेष (सं० पु०) तैत्तिरीय-संहिताके अग्न्याध्यायका भाग।

अग्निश्री (सं० स्त्री०) १ अग्निका प्रतिभा, आगकी रोशनी। २ अग्निका अवलोकन।

अग्निष्टुत् (सं० पु०) अग्नि-स्तु-क्विप्। अग्निः स्तूयते यत्र। अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः। पा ८।३।८२। इति षत्वं। एकाहसाध्य यज्ञ-विशेष। वह यज्ञ जो एक ही दिनमें समाप्त हो जाये।

अग्निष्टुभ् (सं० पु०) अग्नि-स्तुभ-क्विप्। १ यज्ञ-विशेष, एक प्रकारका यज्ञ। २ नकुलाके गर्भसे उत्पन्न हुए प्रजापति वैराजके पुत्र।

अग्निष्टोम (सं० पु०) अग्नीनां स्तोमः। 'अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः' इति षत्वं। यज्ञ विशेष। "स्वर्गकामोयजेत्" श्रुतिः। स्वर्ग कामनाके लिये यज्ञ अनुष्ठित होता है। प्रथमतः यज्ञ दो भागमें विभक्त हैं—सोमयज्ञ और हविर्यज्ञ। जिस यज्ञमें दधि, दुग्ध, घृत और पुरोडाश प्रभृति पिष्टक आहुति देकर अनुष्ठान किया जाता, वह हविर्यज्ञ, एवं सोमरसकी आहुतिसे जो यज्ञ किया जाता उसका नाम सोमयज्ञ है। यह अग्निष्टोम सोमयागके अन्तर्भुक्त है। इस अग्निष्टोम यज्ञमें सोमरसकी आहुति देकर पीछे सोमरसको पान किया जाता है। यह यज्ञ वसन्तकालमें करना पड़ता है। कारण, वसन्तमें प्रचुर सोम मिलता है। 'वसन्ते अग्निष्टोमः' इति—कात्यायनः। इस यज्ञका प्रधान देवता अग्नि है। इस यज्ञमें अग्निका स्तव किये जानेके कारण इसका नाम अग्निष्टोम पड़ा है।

इस यज्ञमें अग्नि प्रधान देवता होते भी इन्द्र और वायु प्रभृति देवताओंके उद्देशसे भी स्तव किया जाता है। सोमयागके अन्तर्भुक्त अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य प्रभृति यज्ञ ब्राह्मणोंका ही कर्तव्य है। पूर्वकालमें जिन सकल ब्राह्मणोंके पिता, पितामह और प्रपितामह इन तीन पुरुषोंके मध्यमें कोई यदि अग्निष्टोम यज्ञका अनुष्ठान करता न रहा हो, तो वह दुर्ब्राह्मणोंमें परिगणित होता। ईस दोषको परिहार करनेके लिये आश्विन-पश्वनुष्ठान, और सोमपान न करनेके कारण ऐन्द्राग्न-पश्वनुष्ठान करना आवश्यक है। यह एकरूप प्रायश्चित्त है। तीन पुरुषोंके मध्यमें किसीके इसका अनुष्ठान करनेसे उक्त प्रकारका अनुष्ठान फिर करना न होगा।

ऐतरेय-ब्राह्मणभाष्यमें सायणाचार्य्यने लिखा है—'ज्योतिष्टोम यज्ञको सात संस्था हैं, उनमें अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोड़शी और अतिरात्र यह चार संस्था परस्पर वर्णित हुई हैं। इन चारके मध्यमें अग्निष्टोम प्रकृति है, यानी सकल अनुष्ठानीय अग्निष्टोममें उपदिष्ट हुए हैं। अग्निष्टोमके आरम्भमें प्रथम ऋत्विक्को वरण करना होता, पीछे इष्टिविधान किया जाता है।' ऐतरेय-ब्राह्मणमें लिखा है—'एकादश कपालमें संस्कृत और दीक्षणीय पुरोडाशको अग्नि और विष्णुके उद्देशसे निर्वपण करे। इसके द्वारा सकल देवताओंके उद्देशसे ही निरवशेषमें निर्वपण (पुरोडाश-प्रदान) करना होगा। दर्शपूर्णमास द्वारा दीक्षणीयेष्टि सम्पादन करे। इसके बाद सप्तदश सामिधेनी पढ़े। दीक्षणीयेष्टि और आनुसङ्गिक संस्कार विधानके बाद जिस यजमानने इससे पहिले सोमयाग नहीं किया, उसके लिये "त्वमग्ने सप्रथा असि" (ऋक् ५।१३।४) और 'सोम यास्ते मयोभुवः" (१।९१ ९) इत्यादि मन्त्र आज्यभागद्वयमें पुरोऽनुवाक्या रूपसे पाठ करना पड़ेगा। जिस यजमानने पहले याग किया है, उसके लिये "अग्निः प्रत्नेन मन्मना" (ऋक् ८।४४।१२) और "सोम गीर्भिष्ट्वा वयम्" (१।९१।११) इत्यादि दो मन्त्र पढ़े। आज्यभागके दानकर्माङ्गमें 'अग्निर्मुखं प्रथमं देवतानां' एवं 'अग्निश्च विष्णो तप उत्तमं महः' इत्यादि (आश्व०श्रौत०४।२) दो मन्त्र अग्नि और विष्णुके उद्देशसे हविर्प्रदानके लिये अनुवाक्या और याज्या रूपसे पढ़ना पड़ेगा। पीछे विविध काम्य और नित्य संयाज्या और सत्युक्तिको पाठ कर प्रायणीयेष्टि करनी होगी। इसके बाद प्रयाजाहुति, देवताप्रशंसा, प्रायणीयेष्टीका याज्यानुवाक्या और उसकी प्रशंसा, संजाज्याविधान, प्रयाज और अनुयाज विधानके बाद उदयनीय इष्टि समाप्तकर यथाक्रमसे सोमप्रवहन, अग्निमन्थन, आतिथ्येष्टि, प्रवर्गकर्म, उपसदिष्टि, सोमाप्यायन, निह्नव और व्रतोपायन यथामन्त्र सम्पन्न कर सोमक्रय, अग्निप्रणयन, हविर्धान प्रवर्तन, अग्नीषोमप्रणयन, यूपसंस्कार, अध्रिगुप्रैष, पुरोडाश और वपाहोम, पश्वाङ्गहोम, पशुयाग, वपास्तोकहोम, प्रातरनुवाक, अपोनप्त्रिय सूक्तपाठ, उपांशुग्रह और अन्तर्यामग्रह, वहिष्पवमान स्तोत्र, सवनकर्म, द्विदेवत्यग्रहहोम, ऋतुग्रहहोम तुष्णींशंस, आज्यशस्त्र, प्रउगशस्त्र, तदन्तर्गत वषट्कार, प्रैषकर्म, निवित्स्थापना, आहाव, प्रतिगर, मरुत्वतीय शस्त्र, निष्केवल्यशस्त्र, वैश्वदेवशस्त्र और अन्तमें आग्निमारुत शस्त्र करे। ऐतरेय-ब्राह्मणको प्रथम पञ्चिकासे तृतीय पञ्चिकाके चतुर्थ अध्याय पर्य्यन्त अग्निष्टोम यज्ञका विवरण विवृत हुआ है।

इसके सम्बन्धमें उपाख्यान है, कि अग्निष्टोम सकल सोमयज्ञोंकी प्रकृति हैं यथा—'पूराकालमें देवताओंने असुरादि सहित युद्धका उपक्रम किया था; किन्तु अग्निने उनके अनुगमनकी इच्छा न की। देवताओंने उनसे कहा, 'आप चलिये, आप भी हमारे मध्यमें ही एकजन हैं।' उन्होंने कहा, मेरा स्तव न करनेसे मैं आपका अनुगमन न करूंगा, शीघ्र ही मेरा स्तव कीजिये।' बहुत अच्छा कह, और उठकर उनके पास पहुंच देवताओंने उनका स्तव किया। अग्निने भी स्तवके बाद उनका अनुगमन किया। वह अग्नि-श्रेणित्रययुक्त और अनीकत्रययुक्त हो विजयके लिये असुरोंके निकट युद्धमें उपस्थित हुए। वह छन्दोगणको तीन श्रेणियोंमें परिणत-करनेके कारण श्रेणित्रययुक्त, और सवनसमूहको अनीकमें परिणत करनेके कारण अनीकत्रययुक्त हुए थे। उस समय उन्होंने असुरोंको सम्पूर्ण रूपसे पराभूत किया

था। उसी समयसे देवगण जयी और असुरगण पराभूत हुए। जो यह विषय जानता, वह जयी और उसका द्वेषकारी पापी शत्रु पराभूत होता है। यही यह अग्निष्टोम, यही वह गायत्री हैं। क्योंकि, गायत्रीके चौविस अक्षर और अग्निष्टोमके भी स्तोत्र और शस्त्र चौबोस ही हैं।'

'इस स्थलमें (ब्रह्मवादी) कहते हैं, कि अन्नमय अग्निष्टोम सुष्ठुरूपसे अनुष्ठित होने पर (यजमानको) सुधा यानी स्वर्गमें स्थापन करता है। इस वाक्यका लक्ष्य गायत्री है। क्योंकि, गायत्री क्षमा अर्थात् पृथिवीमें क्रीड़ा नहीं करतीं; वह ऊर्द्धगामिनी हो यजमानको लेकर स्वर्गमें चली जाती हैं। अग्निष्टोम भी इस वाक्यका लक्ष्य हैं, क्योंकि अग्निष्टोम भी पृथिवीमें क्रीड़ा नहीं करते, वह भी ऊर्द्धगामी हो यजमानको लेकर स्वर्गमें चले जाते हैं। यह जो अग्निष्टोम हैं, उन्हींको संवत्सर समझना चाहिये। क्योंकि संवत्सरके अर्द्धमास चौबीस, और अग्निष्टोमके भी स्तोत्र और शस्त्र चौबीस होते हैं। स्रोतस्वती सकल जैसे समुद्रमें प्रवेश करतीं, वैसे ही सकल यज्ञक्रतु भी अग्निष्टोममें प्रविष्ट होते हैं।'*

यह यज्ञ करनेसे प्रथम पुण्यलक्षणयुक्त भूमि अन्वेषण कर उसमें यज्ञवेदी करना आवश्यक है। किन्तु शतपथ-ब्राह्मणमें लिखा है, "तदुहोवाच याज्ञवल्क्यो वार्षाय देवयजनं जोषयितुं मैम तत् सात्ययज्ञोऽब्रवीत् सर्वा वा इयं पृथिवी देवयजनं यत्र वा अस्यै क्वच यजुषैव परिगृह्य याजयेति।"

याज्ञवल्क्यने कहा, कि वह एक समय यज्ञोपयुक्त स्थान अन्वेषण करते थे। पथिमध्यमें सात्ययज्ञसे मुलाकात होनेपर उन्होंने कहा था, कि सकल स्थानोंमें यज्ञ होती थी, वह जिस स्थानमें चाहते, यज्ञ करते। सुतरां शतपथ-ब्राह्मणके मतसे सभी जगह यज्ञ हो सकता है। यज्ञस्थानमें एक यज्ञवेदीको निर्माण करना आवश्यक है। यज्ञमण्डप चतुरस्र और चारो-दिक्‌में बारह अरत्नि-प्रमाण होगा। उसकी चारो ओर तृणाच्छादित करना आवश्यक है। इस यज्ञमें वेदवित् साग्निक ब्राह्मण ही अधिकारी हैं। इसमें सोलह ऋत्विकोंका प्रयोजन पड़ता है। यह सोलह जन फिर चार भागोंमें विभक्त होते हैं। यथा— होतृगण, ऋत्विक्‌गण, अध्वर्युगण और उद्गातृगण। आपस्तम्बके मतसे इसमें सदस्यका भी प्रयोजन है। इन सत्रह ऋत्विकोंमें होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा यही चार जन प्रधान हैं। और सकल इनके सहकारी हैं। सदस्य सकलके दोषगुणको परिदर्शन करता है। प्रशास्ता, अच्छावाक और ग्रावस्तोता यह तीन जन प्रधान होताको साहाय्य देंगे। इसी रूपसे प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता यह तीन जन अध्वर्युको, ब्राह्मणाच्छंसी, अग्नित्र और पोता यह तीन जन ब्रह्माको, और प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य यह तीन जन उद्गाताको साहाय्य देंगे।

अग्निमुखमें देवताका स्तव और आवाहन करना होता, देवताओंका सन्तोषजनक सामगान करना उद्गाता, और कर्म-विशेषमें अनुमति देना, सबके कार्यको पर्यवेक्षण करना और मन्त्र जपना ब्रह्माका कार्य है। साधारणतः यह यज्ञ पञ्चाहसाध्य होता है। इसके सिवा यह यज्ञ बहु दिनव्यापी भी हो सकता है। दोसे बारह दिन व्यापी यह यज्ञ होने पर उसे अहीन और पक्ष अथवा बहुकालव्यापी होने पर उसे सत्र कहते हैं। पांच दिनमें जिस स्थल पर यह यज्ञ समाप्त होता, उस स्थल पर प्रथम दिन यज्ञदीक्षा, और दीक्षणादि तदङ्गानुष्ठान सम्पूर्ण हुआ करता है। पहिले यजमान ऋत्विक्‌गणको वरण करे, तदनन्तर ऋत्विक् यजमानका हाथ पकड़ पूर्वोक्त यज्ञमण्डपमें

* "देवा वा असुरैर्युद्धमुप प्रायन् विजयाय तानग्निर्नान्वकामयतैतुं तं देवा अब्रुवन्नपि त्वमेह्यस्माकं वै त्वमेकोऽसीति स नास्तुतोऽन्वेष्यामीत्यब्रवीत्-स्तुत नु मेति तथेति तं ते समुत्क्रम्योपनिवृत्यास्तुवंस्तान् स्तुतोऽनु प्रैत्स त्रिश्रेणि-र्भूत्वा त्र्यनीको ऽसुरान् युद्ध मुप प्रायद्व विजयाय त्रिश्रेणिरिति च्छन्दांस्येव श्रेणीरकुरुत त्र्यनीक इति सवनान्येवानीकानि तानसम्भाव्यं पराभावयत् ततो वै देवा अभवन् परासुरा भवत्यात्मना पराऽस्य द्विषन् पाप्मा भ्रातृव्यो भवति य एवं वेद सा वा एषा गायत्र्येव यदग्निष्टोमश्चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री चतुर्विं-शतिरग्निष्टोमस्य स्तुतशस्त्राणि तद्वै यदिद माहुः सुधायां ह वै वाजी सुहितो दधातीति गायत्री वै तन्न ह वै गायत्री क्षमा रमत ऊर्द्ध्वा ह वा एषा यजमान मादाय स्वरेतीत्यग्निष्टोमो वै तन्न ह वा अग्निष्टोमः क्षमा रमत ऊर्द्ध्वो ह वा एष यजमानमादाय स्वरेति स वा एष संवत्सर एव यदग्निष्टोमश्चतुर्विंशत्यर्द्धमासो वै संवत्सरश्चतुर्विंशतिरग्निष्टोमस्य स्तुतशस्त्राणि तं यथा समुद्रं स्रोत्या एवं सर्वे यज्ञक्रतवो ऽपि यन्ति॥" (ऐत०ब्रा० ३।४।१)

ले जाकर दीक्षित करे। दीक्षाग्रहणकालमें यजमानके आगे चौरकार्य, स्नान, नववस्त्र-परिधान और माङ्गल्य द्रव्य धारण करने पर ऋत्विक् दर्भपिञ्जलो अर्थात् कुशगुच्छ लेकर यजमानके सर्वाङ्गको मार्जन करे। अनन्तर वेद-मन्त्र पढ़ते-पढ़ते यज्ञमण्डलके पूर्वद्वारसे यजमानको उसके बीच ले जाये। वहां पहुंचने पर उसे यज्ञदीक्षित करना पड़ता है। यह यज्ञदीक्षा एक क्षुद्र होममात्र है। इसका नाम दीक्षणीय इष्टि है। इस इष्टि-में एकादश पुरोडाश होम किया जाता है। इस तरह यजमानके यज्ञ-दीक्षित होनेसे प्रथम अध्वर्यु, देवता और मनुष्योंको आवाहन कर कहे,—"अदीक्षिष्टायं ब्राह्मणः" यह ब्राह्मण यज्ञ-दीक्षित हुआ है। अनन्तर दीक्षित यजमान निजमें प्राणेष्टि नामक एक क्षुद्र याग करे। इस यागमें चरुपाक कर उसके द्वारा अदिति, और घृत द्वारा अग्नि, सोम और सूर्यका होम करना पड़ता है। इस इष्टिके समाप्त होते ही प्रकृत प्रस्तावमें यज्ञका आरम्भ होता है। पीछे दूसरे दिन प्रापणीय याग और सोमलताको क्रय करना पड़ता है। यह सोमलताक्रय एक अपूर्व व्यापार है। प्रतिप्रस्थाता नामक ऋत्विक् उपरव-प्रदेशमें एक वृषचर्म बिछा उसके ऊपर कुश फैला दे। इसी स्थलमें सोमविक्रेता सोमभार स्थापित करेगा और सोमके अंशु सकल परीक्षा और परिष्कार करते रहेगा। पीछे यजमानसवह जन ऋत्विकोंके साथ आगमन कर उसे क्रय करेगा। यह सोम मूल्य दे कर क्रय करनेसे काम न चलेगा,—एक अरुणवर्ण-पिङ्गलचक्षु एक-वर्षकी गैया दे कर खरीदी जायेगी।

सोमक्रयके विस्तृत विवरणके लिये सोम शब्द देखो।

यजमान यथाविधानसे सोम क्रय कर यागगृहके पूर्वद्वारसे ले जाकर आहवनीय नामक अग्निकुण्डके दक्षिण दिकस्थ मृगचर्मावृत काष्ठ-पीठ पर रख दे। इस समय एक आतिथ्येष्टि नामक क्षुद्र यज्ञ करना पड़ता है। इस यज्ञका तात्पर्य्य यही है, कि राजा सोम मानो गृहमें अतिथि हुए हैं। सुतरां उनका यथोचित अतिथि-सत्कार करना उचित है। इसी भावसे इस इष्टिका सम्पन्न करना होता है।

पीछे होमके विघ्नकारी असुरोंकी पराभव-कामनासे उपसद नामक यज्ञ अनुष्ठित होता है। इसमें सवेरे और सन्ध्याको सोम और विष्णु देवताके उद्देशसे घृता-हुति द्वारा होम किया जाता है। इस उपसद नामक अङ्गकार्यमें दूसरी एक पृथक् वेदीको निर्माण करना आवश्यक है। इस वेदीका नाम सौमिक वेदी है। यह वेदी निर्मित होनेसे अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता हविर्धान दो शकट उत्कर गर्तमें धो कर पश्चिम द्वारसे महावेदीके निकट ले जाये। पीछे हविर्धान और सदोमण्डप नामक वेदियां भी निर्मित करना पड़ती हैं। यह मण्डप दश अरत्निप्रमाण, पूर्वायत, नौ अरत्नि दीर्घ, चतुरस्र, स्तम्भ-सुशोभित और विशेष परिष्कृत करना आवश्यक है।

उल्लिखित सदोमण्डप या अग्निशालामें जो वेदी निर्मित की जाती हैं, याज्ञिक उन सबका नाम धिष्ण्य निर्दिष्ट करते हैं। इनमें होताके लिये एक, मैत्रावरुणकी एक, प्रशास्ताकी एक, ब्राह्मणाच्छंशीकी एक, पोताकी एक, नेष्टाकी एक, अच्छावाककी एक,—यह सात धिष्ण्य सदोमण्डपके मध्य निर्मित होते हैं।

महावेदी निर्मित होने पर वैसर्जन नामक होम करना पड़ेगा। यह होम समाधा होनेसे अग्निष्टोम यज्ञका पशुयाग आरम्भ होता है। यह याग सोमयागका पूर्वाङ्ग है। इसी समय प्राक्वंशशालामें उत्तर वेदिस्थित सोमलता सकल आनीत हो हविर्धान मण्डपमें स्थापित की जाती हैं। पीछे अग्निष्टोमीय पशुको पवित्र जलसे स्नान, यूपके सम्मुखमें पश्चिमाभिमुखमे स्थापन, और कुशपिञ्जलीयुक्त प्लक्ष-शाखा द्वारा मन्त्रपूत किया जाता है। इस प्रकार मन्त्रपूत करनेको उपाकर्म कहते हैं। सुलक्षणाक्रान्त पशु ही यज्ञमें ग्रहणीय है, रुग्न, शिशु प्रभृति पशु यज्ञमें व्यवहृत न होगा।

उक्त पशु जब बद्धस्थानमें नीत होता, तब ऋत्विक् उच्च स्वरसे वेदमन्त्रको गान करते रहेंगे। संज्ञपन अर्थात् वधकार्य समाप्त होने पर पीछे पशुके निम्न-लिखित अंश सकलको कर्तन कर शामित्र नामक अग्नि-कुण्डमें उसे पाक कर वेदमन्त्र गाते-गाते हृदय, जिह्वा, वक्ष, यकृत्, वृक्कद्वय, वामहस्त, पार्श्वद्वय,

दक्षिण श्रोणी, पायुनाल और बसा प्रभृति द्वारा होम किया जाता है। इस तरह मन्त्र पाठ कर पशु द्वारा होम करनेका नाम अग्निष्टोमीय पशुयाग है। इस होमके बाद उपवसत नामक क्रियाको अनुष्ठान करना विधेय है।

इसके पर दिवसका नाम सुत्यादिवस है। इसी दिन अध्वर्यु प्रभृति कृतस्नान हो कर प्रथम हविर्धान शकटसे सोमको आहरण कर उपसव स्थानमें स्थापन और अध्वर्यु इस दिन अति प्रत्यूषमें उठ कर होताको प्रैष मन्त्रसे उद्बुद्ध करे। होता भी प्रातरनुवाकको पाठ कर अश्विनीकुमारका स्तव करता है। तब आग्निध्र, पुरोडाश प्रभृतिको प्रस्तुत करना आरम्भ करते हैं। उन्नेता सोमपात्र सकल सज्जित करता है।

अनन्तर हविर्धान शकटके अक्षप्रदेशमें दो जीर्ण-वस्त्र सोमरसको शोधनके लिये स्थापन करना पड़ता है। एक प्रादेश-प्रमाणका और दूसरा अरत्नि-प्रमाणका होता है।

पीछे हविर्धान शकटके नीचे मट्टीकी द्रोण-सकल-की स्थापना की जाती और उत्तर हविर्धान शकटके ऊपर अन्य दो बृहत् कलस रहते हैं। इनमें एकका नाम उपभृत और दूसरेका नाम आधवनीय है। फिर उत्तर शकटके नीचे दश काष्ठमय चमस और पांच मृन्मय घट स्थापित करना पड़ना है। यह सब कार्य उन्नेता करता है।

पीछे अध्वर्युके अनुज्ञाक्रमसे यजमान,तत्पत्नी और चमसाध्वर्यु घट द्वारा जलको आहरण करेंगे। पुरुष जिस जलको आनयन करते, उनका नाम एकधन, और स्त्रियोंका आहृत जल पान्नेजन नामसे अभिहित है। पीछे यजमान प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और अध्वर्यु यह कई जन ऋत्विक् सोमाभिषव फलकके निकट उपविष्ट हो और उपलखण्ड ग्रहण कर सोमको पेषण करेंगे। अध्वर्यु पांच मुष्टि सोमको प्रस्तरफलक पर रखेंगे। प्रतिप्रस्थाता छः सोमके अंशुको ग्रहण कर स्वीय अङ्गुलिसन्धिमें बांध लेंगे। पीछे सकल एकत्र हो उसे निष्कासन करेंगे। इस सोमरसके निष्कासनका नाम सोमाभिषव है।

सोमाभिषव समाप्त होने पर ऋत्विक्गण महाभिषव अर्थात् प्रचुर परिणामसे सोमपेषण आरम्भ करते हैं। यह सोम उत्तम रूपसे पिष्ट होने पर अध्वर्यु तब उसमें जलसेक करते हैं। इस सोमको तब आधवनीय कलस-में स्थापन कर आलोड़न करना आवश्यक है। पीछे वह वस्त्र द्वारा निष्पीड़न कर लिया जाता है। वही रस क्रमसे चमस और कलसमें पूर्ण किया जाता है। इसी समय नाना प्रकार वेदमन्त्र पढ़े जाते हैं। इसके बाद सोम द्वारा अग्निमें होम किया जाता है। अग्नि, सूर्य, इन्द्र, वायु, मित्र, वरुण, अश्विनीकुमार प्रभृति देवताओंके उद्देशसे होम होता है।

इस तरह सोम द्वारा आहुति समाप्त होने पर ऋत्विक्, यजमान प्रभृति यज्ञावशिष्ट सोमको पान कर कृतकृतार्थ होते हैं। ऋत्विक् और यजमानके सोम-पानका विधान एक रूप नहीं हैं।

उक्त रूपसे सोमपान समाप्त होने पर यह यज्ञ एक प्रकार पूरा हो जायेगा। तब यजमान पूर्वोल्लिखित सदोमण्डपमें जा कर ऋत्विकोंको दक्षिणा देंगे। इस अग्निष्टोम यज्ञकी दक्षिणा द्वादश शत गैया है। सिवा इसके सुवर्ण, वस्त्र, अश्व, अश्वतर, गर्दभ, मेष, छाग, अन्न, यव और माष प्रभृति देनेका भी विधान है। यज्ञमें प्रभूत दक्षिणा आवश्यक है।

इस तरह यज्ञ समाप्तिके बाद यजमानको अवभृत स्नान कराना पड़ता है। यह स्नान महासमारोहसे सम्पन्न होता है। ऋत्विक्, बन्धु, बान्धव और उनकी पत्नी सब समवेत होकर यजमानको स्नानार्थ किसी एक महानदी या उसके अभावमें किसी पूर्ण जलाशय पर ले जाते हैं। गमनकालमें प्रस्तोता नामक ऋत्विक् आगे-आगे सामगान करते जाता है, और यजमान प्रभृति पुरुष, तत्पत्नी प्रभृति स्त्रीगण निधनवाक्य गाती हैं। यह निधन एक प्रकारका सामगान है। जलसन्नि-धानमें सबके उपस्थित होने पर प्रथम एक होमका अनुष्ठान किया जाता है। इस होमके बाद मन्त्रपाठ पूर्वक उसे स्नान कराया जाता है। इस अवभृतस्नान के हो जानेसे ही यज्ञकी समाप्ति होती है।

२ अग्निष्टोममें गाये जानेवाले सामवेदके मन्त्र। ३ सप्तपञ्चदशरावका पहिला दिन। ४ सोमलता। ५ छठें मनुके पुत्रका नाम।

अग्निष्टोमयाजिन् (सं० पु०) वह पुरुष जिसने अग्निष्टोम कर लिया हो।

अग्निष्टोमसाम (सं० क्लो०) अग्निष्टोमयज्ञके शेषमें विहित सामगान-विशेष। सामवेदके वह मन्त्र जो अग्निष्टोम यज्ञके अन्तमें गाये जाते हैं।

अग्निष्ठ (सं० पु०) अग्नौ तिष्ठतीति, अग्नि-स्था-क। १ जो अग्निके ऊपर रहे, भर्जनपात्र। हण्डी, बटलोही, तवा, कड़ाही इत्यादि। २ अश्वमेधयज्ञके इक्कीस यूपमेंसे सबकी अपेक्षा अग्निके समीप रहनेवाला ग्यारहवां यूप।

अग्निष्वात्त, अग्निस्वात्त (सं० त्रि०) चिताकी अग्निसे परीक्षित। यज्ञ न करनेके कारण जिसकी परीक्षा चिताग्निसे की गई हो।

अग्निष्वात्ता (सं० पु०) १ पितृगणका भेद। २ पृथ्वीमें जिसने यज्ञाग्निकी अश्रद्धा की। ३ अग्निविद्याविद्।

अग्निसंस्कार (सं० पु०) ७-३-तत्। अग्नि-सं-कृ-घञ् भावे। भावे। पा ३।३।१८। १ विधिपूर्वक अग्निद्वारा संस्कार। २ शवदाह।

अग्निसंस्पर्शा (सं० स्त्री०) पर्पटी नामका सुगन्ध द्रव्य।

अग्निसङ्काश (सं० त्रि०) अग्नि-सं-काश-अच्। १ अग्नितुल्य तेजस्क, अग्नितुल्य दीप्तिमान्, आग जैसे रङ्गवाला, आगकी तरह चमकीला। २ अग्नितुल्य पराक्रमशाली, आगकी बराबर ताकत रखनेवाला।

अग्निसखा (सं० पु०) अग्निके मित्र, वायु, हवा।

अग्निसन्दीपन (सं० क्ली०) अग्नेः सन्दीपनं। जिस औषधके सेवनसे जठरानलकी वृद्धि हो, हाज़मेको बढ़ानेवाली दवा। क्षुधा-वृद्धिकर औषध, जिस दवाके खानेसे भूख लगे।

अग्निसन्दीपनरस—क्षुधामान्द्यरोगका औषध, भूख न लगनेकी दवा। पीपल, पिपरामूल, चई, चितामूल, सोंठ, मिर्च, पञ्चलवण, शोरा, सज्जीखार, सुहागा, जीरा, काला-जीरा, अजवायन, वच, मौरेठी, हींग, जायफल, जावित्री, गुर्चका बकला, तेजपत्र, इलायची, इमलीके बकलेकी भस्म, आपाङ्ग-भस्म, विष, पारद, गन्धक, लौह, अभरक, वङ्ग, लवङ्ग और हर एक-एक भाग, अम्लवेतस २ भाग और शङ्खभस्म ४ भाग एकमें मिला पञ्चकोल, चितामूल और आपाङ्गके काढ़े और अम्ललोनीके रसमें तीन बार और नीबूके रसमें इक्कीस बार भावना दे, फिर बेरके बराबर गोलियां बना ले। अनुपान अवस्थाभेदसे मौरेठीका अर्क, आमरूलका रस और कपूरका पानी है। इससे अजीर्ण और क्षुधामान्द्य रोग नष्ट हो जाता है।

अग्निसम्भव (सं० पु०) अग्नि-सम्-भू-अच्। १ अरण्य-कुसुम्भ, जङ्गली केसर। (क्ली) २ स्वर्ण, सोना, ज़र। (त्रि०) ३ अग्निसे उत्पन्न वस्तु, आगसे पैदा हुई चीज़।

अग्निसहाय (सं० पु०) अग्नि-सह-अय-अच्, अग्निना सह अयते, ३-तत्। १ वायु, हवा। २ धूम, धुआं, दूद। ३ वनकपोत, जङ्गली कबूतर।

अग्निसाक्षिक (सं० त्रि०) अग्निः साक्षी यत्र, साक्षिन्-कन्। अग्निको साक्षी बना सम्पन्न किया जानेवाला। आगको गवाही कर होनेवाला।

अग्निसाक्षिकमर्य्याद (सं० त्रि०) वह मनुष्य जो अग्निको साक्षिस्वरूप मानकर दाम्पत्य-धर्म अक्षुण्ण और अचल रखनेकी प्रतिज्ञा करे।

अग्निसात् (सं० त्रि०) विभाषा सातिकार्त्स्न्ये। पा ५।४।५२। इति विकल्पे साति। अग्नीभूत, आग हुआ। जो समस्त अग्नि हो गया और हुआ जाता हो, जो बिलकुल आग बन गया और बना जाता हो। जला-भुना। भस्म किया हुआ।

अग्निसाद (सं० पु०) मन्दाग्नि, भूख न लगना, हज़म न होना।

अग्निसाध्य (सं० त्रि०) जो अग्निमें जलाया जा सके, जिसे आग जला सके। अग्निदाहसाध्य।

अग्निसार (सं० क्ली०) अग्नौ सारो यस्य, बहुव्री०। १ रसाञ्जन, आंखमें लगानेकी एक दवा। सृ-घञ्, सारः, सृ स्थिरे। पा ३।३।१७। अग्नेः सारं ६-तत्। अग्निका सार, आगका निचोड़।

अग्निसारा (सं० स्त्री०) फलशून्य शाखा, बिना फलकी डाल। मञ्जरी।

अग्निसावर्णि (सं० पु०) एक पुराकालके मनु, पहिले समयके एक मनुका नाम। मनु देखो।

अग्निसिंह (सं० पु०) सातवें कृष्ण वासुदेवके पिताका नाम। (जैनशास्त्र)

अग्निसिंहनन्दन (सं० पु०) अग्निसिंहके लड़के।

अग्निसुन्दररस (सं० पु०) अजीर्णाधिकारका रस, वह रस जो अजीर्णपर प्रयोग किया जाये।

"टङ्कणं भागमेकञ्च मरिचञ्च द्विभागिकम्।
आर्द्रकस्य रसेनैव भावना चात्र दीयते॥" (प्रयोगामृत)

१ भाग सुहागा और २ भाग मिर्च अदरकके रसमें भावना देनेसे यह महौषध तय्यार होता है। इसके खानेसे अजीर्ण मिटता और भूख लगती है।

अग्निसूत्र (सं० पु०) १ अग्निका सूत्र, आगका धागा। २ पवित्र तृणका वह सूत्र जो युवा ब्राह्मणको यज्ञके समय अधिकार देनेके लिये पहनाया जाता है।

अग्निसेवन (सं० क्लो०) अग्निसेवा, तापना।

अग्निस्तम्भ (सं० पु०) ६-तत्। १ अग्निकी दाहिकाशक्तिनिवारक मन्त्रविशेष, वह मन्त्र जिसके पढ़नेसे आगकी जलानेवाली ताक़त रुक जाये। २ अग्निकी दाहिकाशक्तिनिवारक औषध विशेष। यथा—

बेलके चूर्ण और जोंकको एक साथ बांटकर लगा लेनेसे हाथ धीमी आगमें नहीं जलता। वच, मिर्च, कुटकी, मुण्डीर. और नागरमोथा चबा आग खानेसे मुंहमें भी आंच नहीं लगती। पहिले कपूर या अकरकरहा चबाकर मुंहमें रखे। इसके बाद हलकी लकड़ीकी आग मुंहमें डालनेसे जीभ और गलफरे नहीं जलते हैं।

आध छटांक पारा, पाव छटांक कपूर और एक छटांक आर्सेनिक बेलको एक होमें अच्छी तरह पीस डाले। पीछे इस द्रव्यको हाथमें मल गले हुए शीशेकी घरियामें डालनेसे उंगली नहीं जलती। एक सूत पहिले नमकसे अच्छी तरह साफ़ करना पड़ता है। इसके बाद सूतको सुखा ले। पीछे उसके एक छोरमें कोई हलकी चीज बांध आग लगानेसे सूत तो जल जाता, किन्तु उसकी भस्मके सहारे वह हलकी चीज़ लटका करती है।

कोई-कोई योगी हाथके ऊपर पीपरके पत्ते रख होम करते हैं। ज्वलन्त अङ्गार भक-भक जला करते हैं, घीकी आहुति देनेमें आग झपसे लपक उठती है, किन्तु हाथ पर आंच नहीं पहुंचती। यह ठीक-ठीक प्रकाशित नहीं, कि इस प्रक्रियाका गूढ़ कौशल क्या है। अग्निस्तम्भके जो कई एक कौशल प्रकाशित हैं, उनमें प्रखर अग्निकी आंच सह्य नहीं होती।

अफीम, फिटकरी, सांभर नमक, कतीरेका गोंद, मुर्गीके अण्डेका छिलका और पारा, सिर्केके साथ एकमें घोंट हाथ पर मले। फिर उस पर पीपरके पत्ते रख होम करनेसे हाथ नहीं जलता। कोई-कोई कहते हैं, कि बड़े मेंड़कका भेजा भी हाथ पर लगा होम करनेसे आगकी आंच नहीं लगती।

घरमें आग लगनेसे उसे बुझानेकी तीन प्रकारकी कलें प्रचलित हैं। १—वह दमकल जो हाथसे चलाई जाती है; २—बाष्पयन्त्र संयुक्त यानी अञ्जनदार दमकल; ३—रासायनिक यन्त्र। पहली और दूसरी कलका विवरण दमकल और बाष्पयन्त्रमें देखो। तीसरी कल सहज और सुलभ है। जिन बाज़ारोंमें सर्वदा आग लगती, वहां इस कलके रहनेसे बड़ा उपकार होता है। रासायनिक कल दो तरहकी होती है—छोटी और बड़ी। छोटी कल एक आदमी उठाकर ले जा सकता है; बड़ी कल गाड़ी पर रहती, जिसे घोड़ा, बैल या आदमी खींचा करते हैं। इसका कौशल भी वैसा ही है, जैसा सोडा-वाटर बनानेकी प्रणालीका। धातुके बने घड़े जैसे एक बरतनमें सोडा (Bicarbonate of Soda) मिला पानी और उसमें एक बोतल सल्फुरिक् एसिड (Sulphuric acid) रहता है। बोतलका मुंह अच्छी तरह बन्द कर देते हैं। आग बुझानेके समय बोतलका काग खोल देने पर सल्फुरिक एसिड और सोडेके संयोगसे कार्बनिक एसिड ग्यास निकलती, जिससे पानी उछल पड़ता है। उछला हुआ पानी, निकलनेकी दूसरी राह न पा घड़ेके

मुंहमें जो रबड़का नल लगाया जाता है, उसी राहसे कोई बीस हाथ ऊपर चढ़ ठीक फव्वारेकी तरह जोरमें बाहर जा गिरता है। इसके बाद जिस ओर नलका मुंह घुमाकर रखा जायेगा, उसी ओर जलस्रोत बहेगा। छोटी कलमें अधिक पानी नहीं समाता, इसलिये अधिक पानी आवश्यक होनेसे बड़ी कल रखना उचित है। बड़ी कलमें दो बड़े-बड़े मटके रहते हैं। एक मटकेका पानी न खर्च होते ही दूसरा पानी आदि डालकर ठीक किया जा सकता है।

अग्निस्तोक (सं० पु०) चिनगारी, अग्निकणा।

अग्निस्तोम—अग्निष्टोम देखो।

अग्निस्वात्त, अग्निष्वात्त (सं० पु०) अग्नितः आत्तं ग्रहणं येषां, अग्नि-आ-दा-क्त। बहुव्री०। १ मरीचिपुत्र, मरीचिके लड़के। २ पितृगणविशेष।

अग्निहानि (सं० पु०) अग्निमान्द्य, भूख न लगना।

अग्निहुत् (सं० पु०) अग्नि-हु-क्विप्, ६-तत्। अग्निहोत्री, अग्निमें आहुति देकर यज्ञ करनेवाला।

अग्निहोत्र (सं० क्ली०) अग्नि-हु-त्र, अग्नये हूयते अत्र, ४-तत्। यज्ञविशेष, एक प्रकारका यज्ञ।

एक मासमें इस यज्ञका उद्यापन किया जाता है, फिर, यावज्जीवन भी इसका अनुष्ठान हो सकता है। यावज्जीवन यह याग करनेसे प्रत्यह प्रातःकाल और सायंकालमें होम करना आवश्यक है। अग्निहोत्र यज्ञका स्थूल-स्थूल प्रकरण यों है,—मूक, अन्ध, वधिर और पङ्गुके पक्षमें यह याग निषिद्ध है। विवाहके बाद ब्राह्मण वसन्तकाल, क्षत्रिय ग्रीष्मकाल और वैश्य शरत्कालमें विहित मन्त्र द्वारा अग्निस्थापन करें, पीछे होम होना उचित है। होमका उपकरण—दुग्ध, दधि, यवागु, घृत, अन्न, तण्डुल, सोमरस, मांस, तैल और काला उड़द है। कलियुगमें सोमरस नहीं मिलता और न कोई यही जानता, कि सोमलता क्या वस्तु है। इसलिये सुलभ द्रव्य द्वारा ही यज्ञानुष्ठान हुआ करता है। प्रथम दिन जिस द्रव्यको ले यज्ञका संकल्प करने बैठे, जीवनावधि उसी द्रव्य द्वारा ही होम करना विहित है। अमावस्याकी रात्रिमें यजमान आप ही यवागुसे होम करे। दूसरे दिन इसमें प्रत्यवाय नहीं, कि ऋत्विक् स्वयं करे, किम्बा यजमान द्वारा करावे। इसी रूपसे शत होम समाप्त होनेसे प्रातःकाल सूर्य देवता और सन्ध्याकालमें अग्निदेवताका होम करे। अग्न्याधानके पीछे प्रथम पूर्णिमामें दर्शपौर्णमासयागको आरम्भ करना आवश्यक है। इसमें पौर्णमासीको तीन और अमावस्याको तीन, दर्शपौर्णमासके यही छः यज्ञ होते हैं। इनका भी अनुष्ठान यावज्जीवन करना पड़ता है।

तैत्तिरीय-ब्राह्मणमें लिखा है,—पूर्वकालमें किसी समय प्रजापतिके भयसे भीतिहीन अग्नि पलायन करनेसे विरत होने पर प्रजापतिने उसी अग्निमें स्वाहोच्चारणपूर्वक होम करना आरम्भ किया। प्रथम आहुतिसे पुरुष उत्पन्न हुआ। इसी तरह द्वितीयादि आहुतिसे अश्वादिने जन्म ग्रहण किया। अतएव पुनर्वार प्रजा उत्पन्न होनेसे ब्रह्माका प्रजापतित्व अव्याहत ही रहा। तब अग्निको यह भय हुआ, कि प्रजापति पुनः पुनः आहुति द्वारा उन्हें पायेंगे, और फिर उन्हें भाग न देंगे; तत्प्रदत्त आहुति देवता ग्रहण करेंगे। इस प्रकार चिन्ताकर, कि भागरहित हो वह सेवा कर न सकेंगे अग्निने पहलेकी तरह पलायन न किया और वह प्रजापतिके मध्यमें प्रविष्ट हुए। तब प्रजापति पुनः पुनः इस तरह कहने लगे, कि जन्म ग्रहण करो, जन्मग्रहण करो। अग्निने प्रजापतिके उदरसे कहा, कि वह भागरहित होनेके कारण क्षुधित थे, इसलिये सेवा न कर सकते थे। अग्निके इस वाक्यको श्रवणकर प्रजापतिने यह कह अग्निको भाग दिया, कि वह अग्निहोत्रगत हविः उनके ही लिये थी। अग्नि भी अग्निहोत्रगत हविःको स्वभागस्वरूप देख ब्रह्माके उदरसे फिर उत्पन्न हुए। *

---

* "सोऽग्निरबिभेत् आहुतिभिर्वै तमाप्नोतीति स प्रजापतिं पुनः प्राविशत्, तं प्रजापतिरब्रवीत् जायस्वे ति सोऽब्रवीत् किं भागधेयमभिजनिष्य इति तुभ्यमेवेदं हूयाता इत्यब्रवीत् स एतद्भागधेयमभ्यजायत। यदग्निहोत्रम्। तद्धूयमानमादित्योऽब्रवीत् मा हौषीः। उभयोर्वै नावेतदिति सोऽग्निरब्रवीत्। कथं नौ होष्यन्तीति। सायमेव तुभ्यं जुहवन् प्रातर्मह्यमित्यब्रवीत्। तस्मादग्नये

शतपथ-ब्राह्मणमें अग्निहोत्रादि यज्ञोंका इस रूपसे फल कहा गया है—लोकान्तरमें अग्निहोत्र याज्ञिक प्रत्यह सवेरे और सन्ध्याको, दर्शपूर्णमासयाजी पच्चान्त, चातुर्मास्ययाजी चार मासान्तर, पशुबन्धयाजी छः मासके अन्तर, सोमयाजी सम्वत्सर, और अग्निचित्वाले शतवर्षान्तर अपने इच्छामत भोजन करते हैं। यह सकल याज्ञिक एक प्रकार अमरत्वको प्राप्त होते हैं।

अग्निहोत्रहवनी (सं० स्त्री०) ६-तत्। अग्निहोत्रहविः ह्रयतेऽनया, करणे ल्युट्। अग्निहोत्रके हव्यग्रहणका ऋक्-मन्त्र विशेष।

अग्निहोत्रहुत् (सं० पु०) अग्निहोत्र-हु-क्विप् भूते। ६-तत्। कृताग्निहोत्र, अग्निहोत्र करनेवाला पुरुष।

अग्निहोत्राहुति (सं० स्त्री०) अग्निहोत्रमें दी जानेवाली आहुति।

अग्निहोत्रिन्, अग्निहोत्री (सं० पु०) अग्निहोत्र-इन्। साग्निक ब्राह्मण।

आजकल प्रकृत अग्निहोत्री कोई नहीं। उत्तर-पश्चिमाञ्चल, दाक्षिणात्य और मिथिलादि स्थानोंसे कोई-कोई ब्राह्मणके बीच किसी-किसी सम्प्रदायमें अग्निहोत्रका कुछ-कुछ आभास मिलता है। वह यज्ञाग्निकी रक्षा नहीं करते, किन्तु जिस अग्निसे मृतव्यक्तिकी अन्त्येष्टि सम्पन्न होती है, वह दस दिन तक वही चितानल रक्षित रखते हैं, दशम दिवस श्मसानमें जा और विधिपूर्वक चिता पर कुश और पिण्ड रखकर अग्नि शान्त कर देते हैं। बम्बईके पार्सी अग्निकी पूजा करते हैं। उनमें अनेकोंका यही विचार है, कि वह पुराने आर्य-वंशकी शाखा-प्रशाखा हैं।

पार्सी देखो।

अग्निहोत्रोच्छिष्ट (सं० क्ली०) वह पदार्थ जो अग्निहोत्रमें बच जाये।

अग्नीध् (सं० पु०) अग्नि-इन्ध-क्विप् भावे, ६-तत्। १ अग्निका उद्दीपन। २ अग्न्याधानकर्त्ता।

अग्नीध्र (सं० पु०) अग्नि-धृ-क, दीर्घः। अग्निं दधाति। १ ऋत्विक्-विशेष। यज्ञीय अग्निका रक्षा करनेवाला ब्राह्मण। २ प्रियव्रत राजाके पुत्र, जो अपने अंशमें जम्बूद्वीप पा कर वहांके राजा हुए थे। विष्णुपुराण २।१।१२। भागवतमें उनका नाम आग्नीध्र लिखा गया है।

अग्नीध्रा (सं० स्त्री०) अग्निकार्य। घृताहुतिके बाद अग्निज्वालन।

अग्नीध्री (सं० स्त्री०) सोमीय अग्निकी रक्षा।

अग्नीन्द्र (सं० पु०) अग्निश्च इन्द्रश्च द्वन्द्वः। अग्नि और इन्द्र नामके दो देवता, जो एक हविःको पान करते हैं।

अग्नीन्धन (सं० त्रि०) अग्नि-इन्ध-ल्युट्, अग्निः इध्यतेऽनेन। ६-तत्। १ मन्त्र-विशेष। (क्ली०) २ अग्निकार्य।

अग्नीपर्जन्य (सं० पु०) अग्नि और पर्जन्य या मेघ।

अग्नीय (सं० त्रि०) अग्नि-छ। अग्निके समीपका, आगके पासवाला (स्थान)।

अग्नीवरुण (सं० पु० द्वि०) अग्निश्च वरुणश्च, द्वन्द्वः ईदग्नेः सोमवरुणयोः। पा ६।३।२७। अग्नि और वरुण देवता, जो साथ-साथ एक हविः पान करते हैं।

अग्नीषोम (सं० पु०) अग्निश्च सोमश्च द्वन्द्वः। अग्नि और सोमदेवता, जो साथ-साथ हविः पान करते हैं।

सायं ह्रयते सूर्य्याय प्रातः” इति (तैत्तिरीयब्राह्मण) ‘पुरा प्रजापतेस्तापं दृष्ट्वा पलायनादुपरतोऽग्निः प्रजापतेरुपक्रम्यागत एव, ततः प्रजापतिस्तस्मिन्नग्नौ पूर्वोक्तं घृतं स्वाहाकारेण यामाहुतिं प्रथममजुहोत्। तदाहुतिसामर्थ्येन पुरुषमसृजत। तथा द्वितीयाद्याहुतिभिः अश्वादीनसृजत। ततः प्रजानां पुनरुत्पत्तेः स्वस्य प्रजापतित्वं सुस्थितम्। तदानीमग्निर्भीतोऽभूत्। यस्यायमभिप्रायः,—प्रजापतिः पुनः पुनराहुतिभिरेव मां प्राप्नोति न तु भागं प्रयच्छति। तास्त्वाहुतीर्देवा एव गृह्णन्ति। तस्माद्भागरहितः सेवितुं न शक्नोमीति विचार्य्य पूर्ववत् पलायनमकृत्वा तस्मिन् प्रजापतावेव प्रविष्टः। स च प्रजायस्वेति पुनः नरग्निमब्रवीत् सचाग्निस्तदुदर एव स्थित्वा भागरहितोऽहं क्षुधितः सेवितुं न शक्नोमि भागो मेऽपेक्षितः। किं भागमभिलक्ष्याह मुत्पत्स्य इत्युक्तम्। अग्निना उक्तः प्रजापतिरिदमग्निहोत्रगतं हविस्तुभ्यमेव ह्रयाता इति भागं दत्तवान्। ततोऽग्निहोत्रहविःस्वरूपं भागधेयमभिलक्ष्याग्निरुत्पन्नः। तस्मादग्नये होत्रं होमोऽस्मिन् कर्म्मणीति बहुव्रीहिव्युत्पत्त्या अग्निहोत्रमिति कर्म्मनाम। अग्नये होत्रमिति तत्पुरुषव्युत्पत्त्या हविर्नाम। * * * * तद्धविरग्न्यर्थं प्रजापतिना ह्रयमानं दृष्ट्वा मा हौषीरित्येवमादित्यो निवारयामास। हेतुञ्चैवमवोचत्। योऽयमग्निर्यश्चाहं तयोरुभयोरावयोरेतद्धविः, न त्वेकस्याग्नेः इति। तदानीमुभयोर्भागव्यवस्था जाता। अग्निना पृष्टा या कालभेदेन व्यवस्था तामुवाच। तस्मादग्नये सायं जुहुयात्, सूर्याय प्रातर्जुहुयात्’ इति तद्भाष्यम्।

अग्नीषोमप्रणयनी (सं० स्त्री०) ६-तत्। अग्नि और सोमके संस्कारका पात्र।

अग्नीषोमीय (सं० वि०) अग्नीषोम-छ। १ अग्नीषोम सम्बन्धीय। २ अग्नीषोमार्थ पश्वादिके कपालपात्रमें संस्कृत हविर्विशेष।

अग्नीषोमीय-निर्वाप (सं० पु०) दर्शपूर्णमास यज्ञका एक अनुष्ठान।

अग्नीषोमीय-पशु (सं० पु०) अग्नि और सोमदेवको बलि दिया जानेवाला पशु।

अग्नीषोमीय-पश्वनुष्ठान (सं० क्ली०) ज्योतिष्टोम यज्ञमें बलिका विधान।

अग्नीषोमीय-पुरोडाश (सं० पु०) अग्नि और सोम-देवका पवित्र पिष्टक, जिसे ग्यारह बरतनोंमें पकाना चाहिये।

अग्नीषोमीय याग (सं० पु०) पूर्णमासके तीन बलिप्र-दानोंमें एक।

अग्नीषोमीयैकादशकपाल (सं० पु०) अग्नि और सोम देवका पवित्र पिष्टक।

अग्नीष्टक (सं० क्ली०) अग्नि-इष्टक। (Fire-brick) एक प्रकार इष्टक, एक तरहकी ईंट।

कारखानेमें जिस जगह हमशा आग जलती, यह उसी जगहके लिये विशेष उपयोगी है। दूसरी ईंटों-की तरह यह दिन-रात आगमें जल नष्ट नहीं होती। इसीलिये इसका इतना आदर और मूल्य है। दूसरी ईंटोंकी भांति सब तरहकी मट्टीसे यह नहीं बनती। जिस मट्टीमें सैकड़े पीछे ४० भाग सिलिका (Silica), ३७ भाग अलूमिना (Alumina), २ भाग मेगनेशिया (Magnesia), ८ भाग पोटास (Potash) और १२ भाग जल रहता, उसीसे यह बनाई जाती है।

यह सब चीज़ें कोयलेकी खानिके पास ही मिलती हैं। कलकत्तेकी बर्न एण्ड कम्पनी रानीगञ्जके पास अपने कारखानेमें यह ईंटें तय्यार करती है। १०० ईंटोंका दाम दश रुपया है।

अग्न्यस्त्र (सं० क्ली०) अग्न्युत्पादकमस्त्रम्, शाक-तत्। आग्नेय अस्त्र। १ तोप। २ बन्दूक। ३ तपञ्चा। ४ पूर्वकालका अग्निवाण।

आजकल इस बातका कोई ठिकाना नहीं, कि अग्न्यस्त्र क्या है। वायु-अस्त्र, वरुणास्त्र, सर्पवाण और गरुड़वाण जैसे अनेक अस्त्रोंका वृत्तान्त महाभारत और रामायणमें लिखा है। कोई-कोई कहते हैं, कि यह सब मिथ्या है—इसमें कवियोंकी कल्पनाके सिवा और कुछ भी नहीं। ऐसा हो सकता है, किन्तु नीचे-से ऊपर तक सभी कल्पना नहीं है। उस कालमें आर्योंने विज्ञान शास्त्रके अनेक जटिल विषय समझ लिये थे। इसीसे मालूम होता है कि, आजकलके डिनेमाइटकी तरह कोई दाह्य पदार्थ लगा वह एक भयङ्कर अस्त्रको बनाते थे। इतिहासमें इसका प्रमाण मिलता है, कि उस दिन तक हिन्दू, यूनानी और मुसलमान युद्धक्षेत्रमें सर्प, वृश्चिक और अग्निको व्यव-हार करते रहे। 'किताब-ए-ज़ामिनी'में महम्मद सबु-क्तगीनका हाल इस तरह लिखा गया है, कि पूर्व-कालमें शत्रुओंके बीच सर्प और वृश्चिक फेंक युद्ध किया जाता था। कुरुक्षेत्रयुद्धके समय दुर्योधनने अपने पक्षके खीमेकी रक्षा करनेको सिपाहियोंके हाथमें बालू और तेल लगाकर सांप-बिच्छू पकड़ा दिये थे। 'तारीख़-ए-अलफ़ी' पुस्तकमें भी लिखा है, कि महम्मदकी मृत्युके सात वर्ष बाद, ऊमरके राजत्वकालमें नासिविन् नगर आक्रमण करते समय शत्रुओंके बीच काले-काले सांप फैला दिये गये थे। कोई तीस वर्ष हुए, पूर्व-वङ्गके डाकू यात्रियोंकी नावमें सांप और आग फेंक देते और यात्रियोंके शशव्यस्त होनेसे उनका सर्वस्व लूट लेते थे। इसीसे मालूम होता है, कि आर्य; सर्प, अग्नि प्रभृति भयानक द्रव्य दूरसे शत्रुओंके बीच फेंक-देनेका कोई न कोई कौशल जानते थे। कोई-कोई कहते हैं, कि अग्न्यस्त्र तोप या बन्दूक होगा। राजपू-तानेके लोग बन्दूकको ही अग्निवाण कहते हैं। इसका भी प्रमाण मिलता है, कि विलायतमें तपञ्चेकी सृष्टि होनेसे पहिले राजपूतानेके लोग तपञ्चा बनाना जानते थे। सन् १८८४ ई०के कलकत्तेवाले मेलेमें राजपूतानेसे एक चौनली बन्दूक आई। वह बन्दूक चार सौ वर्षसे भी अधिक पुरानी थी। इसीसे कोई-कोई लोगोंको विश्वास है, कि भारतवर्षमें तोप, बन्दूक और गोला-

गोली बहुत समयसे बनती चली आती है। नहीं जानते, कि यह अनुमान कहां तक सत्य है। किन्तु इसका प्रमाण अवश्य मिलता है, कि प्राचीन आर्य तीर-फलकमें अग्नि और आजकलके डिनामाइट जैसे किसी भयानक दाह्य पदार्थको व्यवहार करते थे।

"न कूटैरायुधैर्हन्यात् युध्यमानो रणे रिपून्।
न कर्णिभिर्नापि दिग्धै र्नाग्निज्वलिततेजनैः।" (मनुसंहिता ७।९०)

राजा कभी कूटास्त्र द्वारा युद्ध न करे, कर्णास्त्रको प्रहार कर भी युद्ध न करे, या जिस वाणका फला विषाक्त हो या जिसमें अग्नि प्रज्वलित रहे, उससे भी शत्रुको न मारे।

मनुके इस वचनसे स्पष्ट ही मालूम होता है, कि अग्न्यस्त्र केवल कवियोंकी कल्पना ही नहीं। कल्पना होनेसे मनु कभी उसके लिये कोई निषेध-विधि न बताते। अग्न्यस्त्र सबके ऊपर निक्षेप करनेको नहीं है। राक्षस प्रभृति प्रबल शत्रुओंको ही आर्य अग्निवाणसे मारते थे। फिर भी, महाभारत इसका प्रमाणस्थल है, कि बलवान् आर्य अपने क्रोधको संवरण कर न सकनेसे किसी-किसी वीर मनुष्य पर भी अग्निवाण छोड़ देते थे।

प्रथम-प्रथम मनुष्य अग्नि द्वारा अपनी रक्षा करते भी शत्रुके नष्ट करनेकी चेष्टामें लग जाता था। किसी ग्राम या दुर्ग पर आक्रमण करनेसे शत्रुओंके सिर पर पत्थर या आग फेंक दी जाती थी। सन् १३९८ ई०में तैमूरशाहने दिल्लीपर चढ़ाई की। उन्होंने भारतवर्षीय गजयूथको भय दिखानेके लिये ऊंटकी पीठ पर तृण-राशि जला उसे शत्रुओंकी ओर खदेर दिया। वही आग देख सब हाथी भाग खड़े हुए।

आर्य पहिलेसे तीरके फलामें राल, तेल, घी, पटुआ, रूई प्रभृति द्रव्य लगा रखते थे। शत्रुको वाण मारते समय उसे जलाकर निक्षेप करते। क्रम-क्रमसे बुद्धि और विज्ञानकी उन्नति होते रही, उन्होंने और भी उत्कट-उत्कट ब्रह्मास्त्रोंको आविष्कार किया। आराकान्, ब्रह्मदेश, चीन, सिन्धु नदके निकटवर्त्ती स्थान और ईरानमें मट्टीके भीतर नाना प्रकार दाह्य-पदार्थ (Naptha and other bitumenous substances) मिलते हैं। इन्हीं पदार्थोंसे आजकल केरोसीन तेल प्रस्तुत होता है। आर्य इन नेप्था प्रभृति द्रव्योंके साथ राल, गन्धक, शोरा और अन्यान्य दाह्य पदार्थ मिला किसी प्रकार अस्त्र बनाते रहे होंगे। यही अनुमान होता है, कि उनका तेज आजकलके डिनामाइटकी अपेक्षा किसी अंशमें न्यून नहीं। मूर्खके हाथमें पड़नेसे इस अस्त्र द्वारा एक ही दिनके बीच त्रिजगत् उलटाया जा सकता है, इसीसे विज्ञ लोग ऐसे-वैसे व्यक्तिको अग्न्यस्त्रका गूढ़ सन्धान बताते न थे। नितान्त ही प्रिय शिष्य होनेसे गुरु उसे दो-एक वाण देते थे। आर्योंके इतना सावधान रहते भी प्राचीन यूनानियोंने कैसे अग्न्यस्त्रका कौशल सीख लिया? यूनानमें ऐसा प्रवाद है, कि कालेनिकस् नामक जनैक व्यक्तिने इन अस्त्रोंको आविष्कार किया था। मालूम होता है, कि वह भारतवर्षके 'कल्याणाक्ष' नामक कोई ब्राह्मण होंगे। सन् ६७३ ई०में कुस्तुन्तुनिया (Constantinople) नगर अवरुद्ध होने पर नगर-वासियोंको केवल इसी अव्यर्थ अग्न्यस्त्रके प्रभावसे ही शत्रुओंके हाथ निस्तार मिला था। इतिवृत्त-लेखक गिबन साहबने इस महास्त्रको यूनानियोंको अग्नि बताया है। पहिले मुसलमान अग्न्यस्त्रका विषय जानते न थे; उन्होंने रूमियोंसे उसका निर्माण-कौशल सीख लिया। जेरूसलमके लिये ईसाइयों और मुसलमानोंमें जो तुमुल समर (Crusades) हुआ, उसमें अग्निवाणसे विस्तर लोग मारे गये थे। सर दे जैन्भिल (Sir de Joinville) नामक जनैक फ्रांसीसीने अपनी आंखों यह युद्ध देख अग्निवाणके सम्बन्धमें ऐसा लिखा है,—

"La manière du feu grégois estoit tele que il venoit bien devant aussi gros comme un tonnel de verjus, et la queue du feu qui partoit de li, estoit bien aussi grant comme un grant glaive. Il faisoit tele noise au venir, que il sembloit que ce feust la foudre du ciel; il sembloit un dragon qui volast par l'air. Tant getoit grant clarté que l'on véoit parmi l'ost comme se il feust jour, pour la

grant foison du feu qui getoit la grant clarté" सर वालटर स्काटने (Sir Walter Scott) अपनी उपन्यास-पुस्तकमें इसका इस तरह संक्षेपानुवाद किया है—'It came flying through the air, like a winged dragon, about the thickness of a hogshead, with the report of thunder and the speed of lightening, and the darkness of night was dispelled by this horrible illumination' अर्थात् वह अग्न्यस्त्र परदार अजगरकी तरह आकाशसे उडकर आ पहुंचा। वह शरावके मटके जैसा मोटा, बिजली जैसा ज़ोरदार और वज्र जैसा गरजता था। उस भयानक ज्योति:पुञ्ज अस्त्रसे रात्रिका अन्धकार मिट गया।

द्रोणाचार्यके मारे जानेपर अश्वत्थामाने नारायणास्त्रकी सृष्टि की थी, जिस दिव्य वाणका प्रभाव ठीक वैसा ही था, जैसा ऊपर लिखा गया है।

"प्रादुश्चक्रे ततो द्रौणिरस्त्रं नारायणं तदा।
अभिसन्धाय पाण्डूनां पाञ्चालानाञ्च वाहिनीम्॥ १५
प्रादुरासंस्ततो वाणा दीप्ताग्राः खे सहस्रशः।
पाण्डवान् चपयिष्यन्तो दीप्तास्याः पन्नगा इव॥" १६ (महाभा० सौ-प०)

उसके बाद द्रोणपुत्रने पाण्डवों और पाञ्चालोंकी सैन्यको लक्ष्य कर नारायणास्त्रकी सृष्टि की। उसी वाणने पाण्डवोंको चय करनेके लिये ज्वलन्तमुख बृहत् सर्पकी तरह आकाशमें सहस्र-सहस्र तेजःपुञ्ज वाण उत्पन्न कर दिये।

अश्वत्थामाके अग्न्यस्त्र और जैनविल-वर्णित यूनानियोंकी अग्निमें अनेक सादृश्य देख पड़ता है। इसीसे मालूम होता है, कि निःसन्देह उस कालमें किसी प्रकारका भयानक अग्निवाण प्रचलित था।

अग्निवाणके सम्बन्धमें अनुमान द्वारा जितना सिद्धान्त किया जा सकता है, वह पूरा हो गया; अब प्रमाणकी आवश्यकता है। संस्कृत शब्दोंमें श्लोक बनाकर कोई बात लिखनेसे यदि प्रामाणिक समझी जाये, तो आर्योंके हाथकी बनाई तोप-बन्दूकका बहुत अच्छा प्रमाण मिलता है। शुक्रनीति पढ़नेसे मालूम होता है—

"नालिकं द्विविधं ज्ञेयं बृहत् क्षुद्रविभेदतः।१९५
तिर्यगूर्ध्वच्छिद्रमूलं नालं पञ्चवितस्तिकम्।
मूलाग्रयोर्लक्ष्यभेदितिलविन्दुयुतं सदा॥ १९६
यन्त्राघाताग्निकृद् ग्रावचूर्णधृक्कर्णमूलकम्।

* * *

सुवर्चिलवणात् पञ्चपलानि गन्धकात् पलम्।
अन्तर्धूमविपक्वार्कस्नुह्याद्यङ्गारतः पलम्॥ २०१
शुद्धात् संग्राह्य संचूर्ण्य सम्मील्य प्रपुटेद्रसैः।
स्नुह्यर्काणां रसोनस्य शोषयेदातपेन च।
पिष्ट्वा शर्करवच्चैतदग्निचूर्णं भवेत् खलु॥" २०२।

छोटे और बड़े आकार भेदसे नालिक दो प्रकारका होता है। छोटे नालिकका छेद टेढ़ा, ऊपरकी ओरको और ढाई हाथ लम्बा रहता है। उसके आगे-पीछे निशाना लगानेकी छोटी मक्खी होती है। यन्त्रको आघात करनेसे आग निकलनेके कारण पत्थरका चूर्ण गिरानेके लिये रञ्जकका घर बना रहता है।

* * *

४० तोला शोरा, ८ तोला गन्धक, और धीरे-धीरे जले हुए आकन्दका ८ तोले खालिस कोयला लेकर सब चीज़ोंको अलग-अलग कूटे, फिर उन्हें एक होमें मिला डाले। पीछे आकन्दके आटे और रसूनके रससे भावना दे। अन्तको हलकी धूपमें सुखा सब चीनीकी तरह पीस डाले। यही अग्निचूर्ण है। शुक्रनीति पुस्तकके चतुर्थाध्यायवाले सप्तम प्रकरणमें और भी अन्यान्य विवरण देखो।

फिर, बन्दूक और बारूद निकली। किन्तु महाभारतका नालिकास्त्र, मालूम होता है, कि बन्दूक नहीं, वह नलीके भीतर डाल मारनेका तीर या बर्छे जैसा कोई दूसरा अस्त्र था—

"क्षुराः क्षुरप्रनालिकावत्सदन्तास्थिसन्धयः।" द्रोणप० ३०।१७।
'नालिका नलिकया चेप्याः।' (नीलकण्ठ)

क्षुर, क्षुरप्र, नालिक, वत्सदन्त, अस्थिसन्धि इत्यादि जो नलीसे छूटता, उसीको नालिक कहते हैं। अनुमान यही होता है, कि अन्यान्य फलकास्त्रका साहचर्य-हेतु नालिक भी एक फलकास्त्र है।

महाभारतवाले द्रोणपर्वके ३०वें अध्यायमें मूल और टीका देखो।

अग्न्या (सं० स्त्री०) मादा तीतर।

अग्न्यागार (सं० क्ली०) अग्नेर्निमित्तं आगारम्, ६-तत्। १ यज्ञीय अग्न्याधारकुण्ड। २ अग्निहोत्रका गृह।

अग्न्यात्मक (सं० त्रि०) अग्निके समान आत्मावाला। जिसका हृदय अग्निके बराबर गर्म हो। आग-बबूला।

अग्न्याधान (सं० क्ली०) अग्नि-डुधाञ्-ल्युट्, ६-तत्। १ वेदमन्त्र द्वारा अग्निसंस्थापन। बहुव्री०। २ अग्निहोत्र याग।

अग्न्याधेय (सं० पु०) अग्निः अधीयते येन, धा-यत् धेयः। बहुव्री०। साग्निक, अग्निहोत्री।

अग्न्यालय (सं० पु०) अग्नेरालयः, ६-तत्। १ यज्ञीय अग्न्याधार कुण्ड। २ अग्निहोत्रका गृह।

अग्न्याशय (सं० पु०) पक्वाशय, पाकाशय। वह स्थान जहां जठराग्नि रहता है।

अग्न्याहित (सं० पु०) अग्नि-आ-धा-क्त कर्मणि, वाहिताग्न्यादिषु। पा २।२।३७। आहितः स्थापितः अग्निः होमाग्निः येन। साग्निक द्विज।

अग्न्युत्पात (सं० पु०) अग्नि-उत्-पत-घञ्। अग्निना कृत उत्पातः। व्योम्नि अग्निविकारः। धूमकेतु, उल्कापातादि आकाशमें उपद्रव।

यह उत्पात पांच तरहके होते हैं। यथा—धिष्ण्य, उल्का, अशनि, विद्युत् और तारा। अग्न्युत्पात जगत्के अतिशय अमङ्गलका लक्षण गिना जाता है।

अग्न्युद्धार (सं० पु०) अरणिसंघर्षणेन अग्नेरुद्धारः उत्पादनम्। ६-तत्। अरणि मन्थन द्वारा अग्न्युत्थापन, अरणिको घिस कर आग बनाना।

अग्न्युपस्थान (सं० क्ली०) अग्नि-उप-स्था-णिच्-ल्युट्। ६-तत्। १ अग्निका उपासना-मन्त्र। अग्निरुपस्थीयते अनेन। भावे ल्युट् २ अग्निकी उपासना।

अग्न्येध (सं० पु०) अग्नि स्थापित करने वाला, आग रखने वाला।

अग्मन् (सं० क्ली०) युद्ध, लड़ाई, झगड़ा, जङ्ग।

अग्य (सं० अज्ञ) अज्ञ देखो।

अग्यारी (हिं० स्त्री०) १ धूप। २ धूप देनेका पात्र, धूपदान। ३ अग्निकुण्ड, वह कुण्ड जिसमें यज्ञको अग्नि जलती हो।

अग्र (सं० क्ली०) अङ्ग-रक् नलोपः। १ उपरिभाग, ऊपरका हिस्सा। २ शिखर, चोटी। ३ सिरा। ४ पुरोभाग, आगेका हिस्सा। ५ अवलम्बन। ६ समूह। ऋज्रेन्द्राग्रवज्रविप्रकुब्रचुब्रचुरखुरभद्रोग्रभेरभेलशुक्रशुक्लगौरवम्रेरामालाः। उण् २।२८। (त्रि०) ७ श्रेष्ठ, बड़ा। ८ उत्तम, अच्छा। ९ प्रधान, मुखिया। १० प्रथम, पहिला, औव्वल। ११ पलपरिमाण, थोड़ा।

'अग्रं पुरस्तादुपरि परिमाणे पलस्य च।
आलम्बने समूहे च प्रान्ते च स्यान्नपुंसकम्।
अधिके च प्रधाने च प्रथमे चाभिधेयवत्।' (मेदिनी)

अग्रकर (सं० पु०) १ दक्षिण हस्त, दाहना हाथ। २ आगे वाली किरण (Focal-point)।

अग्रकाण्ड (सं० पु०) काण्डका अग्रभाग।

अग्रकाय (सं० पु०) अग्रः कायः, कर्मधा०। शरीरका पुरोभाग, जिस्मका सामनेवाला हिस्सा।

अग्रग (सं० त्रि०) अग्र-गम-ड। अन्तात्यन्ताध्वपुरपारसर्वानन्तेषु डः। पा ३।२।४८। अग्रगामी, आगे जाने वाला।

अग्रगण्य (सं० त्रि०) अग्र-गण-यत्, ७-तत्। १ प्रथम गणनीय, पहले गिनने योग्य। २ श्रेष्ठ, बड़ा।

अग्रगामिन्, अग्रगामी (सं० त्रि०) अग्र-गम-णिनि, सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये। पा ३।२।७८। ७-तत्। पुरोगामी, आगे जाने वाला।

अग्रज (सं० पु०) अग्र-जन-ड। १ ज्येष्ठ भ्राता, बड़ा भाई। २ विष्णु। ३ ब्राह्मण।

किसी व्यक्तिके अधिक पत्नी रहनेसे यह बात नहीं है, कि जो सन्तान पहिली पत्नीसे उत्पन्न होगा, वही ज्येष्ठ समझा जायेगा। ज्येष्ठ वही है, जो आगे उत्पन्न हो।

"सदृशस्त्रीषु जातानां पुत्राणामविशेषतः।
न मातृतो ज्यैष्ठ्यमस्ति जन्मतो ज्यैष्ठ्यमुच्यते॥" (मनु० ९।१२५)

धृतराष्ट्र ज्येष्ठ और पाण्डु नृपति उनके अनुज थे। किन्तु इससे दुर्योधन ज्येष्ठ न हुए। पहिले उत्पन्न होनेके कारण युधिष्ठिर ज्येष्ठ और राज्यके अधिकारी समझे गये।

"जन्मतस्तु प्रमाणेन ज्येष्ठो राजा युधिष्ठिरः।" (आदिप० ११५।२५)

अग्रजङ्घा (सं० स्त्री०) अग्रा जङ्घा, कर्मधा०। जङ्घाका अग्रभाग, जांघका अगला हिस्सा।

अग्रजन्मन्, अग्रजन्मा (सं० पु०) अग्रे जन्म यस्य, बहुव्री०। १ ज्येष्ठभ्राता, बड़ा भाई। २ विप्र, ब्राह्मण। ३ ब्रह्मा।

'अग्रजन्मा द्विजे ज्येष्ठभ्रातरि ब्रह्मणि स्मृत:।' मेदिनी।

अग्रजात (सं० पु०) अग्रे-जन-क्त, ७-तत्। १ ज्येष्ठभ्राता, बड़ा भाई। २ ब्राह्मण।

अग्रजाति (सं० पु०) अग्र-जन-क्ति, कर्मधा०। प्रधान जाति, ब्राह्मण।

अग्रजिह्वा (सं० स्त्री०) अग्रा जिह्वा, कर्मधा०। जिह्वाका अग्रभाग, जीभका अगला हिस्सा।

अग्रणी (सं० स्त्री०) अग्र-नी-क्विप्, अग्रे नीयते। सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदछिदजिनीराजामुपसर्गेऽपि क्विप्। पा ३।२।६१। ७-तत्। १ अग्रिम, अगुआ। २ श्रेष्ठ, बड़ा। ३ प्रभु, मालिक।

अग्रत:, अग्रतस् (सं० अव्य०) अग्र-तस् पञ्चम्यर्थे। पहिले, आगे, पुरत:।

अग्रत:सर (सं० त्रि०) अग्रतस्-सृ-ट। पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः। पा ३।२।१८। इति ट। अग्रगामी, आगे जानेवाला।

अग्रदानिन्, अग्रदानी (सं० पु०) अग्रदान-इन्। १ दानमें पतित ब्राह्मण, ख़राब दान लेनेवाला ब्राह्मण। २ महाब्राह्मण या महापात्र, जो प्रेत-सम्प्रदानका षड़ङ्ग तिलादि दान ले।

भारतमें अग्रदानी ब्राह्मणको एक स्वतन्त्र श्रेणी है। इनकी संख्या बहुत ही थोड़ी होती है। सब ग्रामोंमें इस सम्प्रदायके ब्राह्मण नहीं मिलते। विशुद्ध सम्भ्रान्त ब्राह्मण इनके साथ आहार-व्यवहार, मेल-जोल कुछ भी नहीं करते हैं।

अग्रदानीय (सं० पु०) अग्र-दान-छ। अग्रदानी ब्राह्मण, वह ब्राह्मण जिसे प्रेत-कर्मका दान दिया जाय। महाब्राह्मण, महापात्र।

अग्रद्वीप (सं० क्लो०) अग्रे प्रथमे उत्पन्नं द्वीपम्। द्वयोर्गता आपो यस्मिन्निति द्वीपम्। द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्। पा ६।३।९७। सबसे पहिले उत्पन्न हुआ द्वीप या टापू।

गङ्गाके गर्भमें रेत पड़नेसे पहले जो द्वीप उत्पन्न हुआ, वही बङ्गालका अग्रद्वीप है। अग्रद्वीपसे प्राय: तीन कोस उत्तर-पश्चिमकोणमें जो दूसरा रेत पड़ा, वही रेत आजकल नवद्वीप नामसे प्रसिद्ध है। अग्रद्वीपमें गोपीनाथ ठाकुरके उत्सवोपलक्ष प्रति वत्सर वारुणीसे पहिले कृष्णा एकादशीको एक बड़ा मेला लगता, जो सात दिन रहता है। इसके उपलक्षमें कोई २५००० लोगोंका समागम होता है। यात्रियोंके बीच बाउल, दरवेश और अन्यान्य सम्प्रदायके वैष्णव ही अधिक देखे जाते हैं। इस मेलेमें प्रति वर्ष लाखों रुपयेका माल लिया-दिया जाता है। अग्रद्वीप नदीया ज़िलाके अन्तर्गत वर्तमान है।

गोपीनाथका इतिहास बहुत ही अद्भुत है। सत्यके साथ कुछ-कुछ अद्भुत घटना मिली न रहनेसे देवताके प्रति सामान्य लोगोंको भक्ति उत्पन्न नहीं होती। कहते हैं, कि अग्रद्वीपमें किसी घोषके सन्तान होती न थी। इसलिये वह नियत देवताके निकट पुत्रकामना किया करता। एक दिन वह पड़े सो रहा था। सोते-सोते उसने स्वप्न देखा, कि मानो उसके उसीसे बैठे कोई कहता था,—"कल तुम स्नान करने जाकर गङ्गाजलमें एक पत्थर देखोगे। उसमें यदि कृष्णमूर्तिको निर्माण कराकर तुम उसे स्थापन करो, तो मैं ही तुम्हारा पुत्र बन जाऊंगा।" ग्वालेकी नींद टूट गई। उसने उठके देखा, कि रात नहीं, सवेरा था। प्रभातका स्वप्न प्राय: मिथ्या नहीं होता। विशेषत:, गोपजातिके प्रति श्रीकृष्णकी उस दिन ही वह नई कृपा न थी। एक बार वह गोकुलमें नन्दघोषके पुत्र हुए, फिर यदि अग्रद्वीपके गोपको पिता कहनेकी उन्हें साध हुई होती, तब तो आशालतामें फूल खिले थे, हाथों-हाथ फल मिल ही जाता। यही विचार वह स्नानके घाटको रवाना हुआ। वहां जाकर देखा—गङ्गाजलमें एक पत्थर बहते चला आता है। पत्थर उज्ज्वल नीलवर्ण था और उसमें दलितअञ्जन जैसा लगा, जिसे देख खानिका नीलम भी लज्जित होता था। उसी इन्द्रनील मणिकी कृष्णमूर्ति बनवाई गई, जो आजकल गोपीनाथ कही जाती है। घोष महाशयने विग्रहमूर्ति प्रतिष्ठित कर लोकान्तरको गमन किया। उनकी मृत्युतिथि वारुणीसे पहिलेकी कृष्णा एकादशी है। मृत्युतिथिके दिन पूजक मट्टीपर कुश बिछाकर विग्रहके हाथमें पिण्ड पकड़ा देते हैं। द्वारको रुद्ध कर किञ्चित् काल पीछे खोलनेसे यह अनेकोंने देखा, कि वही पिण्ड कुश पर जाकर गिर पड़ता है।

प्रकृत बात यह है, कि घोष महाशय ग्वाले नहीं, जातिके उत्तराढ़ीय कायस्थ और चैतन्यके जनेक पार्षद थे। एक दिन आहारान्तमें चैतन्यने मुखशुद्धिको करना चाहा था। घोष महाशय भीख मांग एक हर्र ले आये। उन्होंने आधी तो प्रभुको उस दिन दी और बाकी आधी दूसरे दिनके लिये रख छोड़ी। चैतन्यने देखा, कि घोष महाशयकी उस समय तक स्पृहा गई न थी। इसलिये उन्होंने विरक्त हो उनसे घर वापस जानेको कहा। घोष महाशयने रोते-रोते कहा,—'मैं आपका पुत्रसे अधिक प्यारा था। घरमें आपको न देख मैं कैसे रह सकूंगा?' चैतन्यने कहा—'तुम कृष्णमूर्तिको स्थापन कर उसके प्रति वात्सल्यभाव दिखाना, इससे तुम्हारा मनस्ताप दूर हो जायेगा।' इसी उपदेशानुसारसे अग्रद्वीपमें यह गोपीनाथ प्रतिष्ठित हुए हैं। घोष महाशयका प्रकृत नाम वासुदेव और निवास अग्रद्वीप-के निकट कुलिया ग्राम था।

गोपीनाथको प्रतिमूर्ति कोई डेढ़ हाथ ऊंची होगी। इसकी बनावट बहुत ही अच्छी है। नवद्वीपके राजाओंने इस विग्रहकी सेवाके लिये विस्तर भूमिको दान किया है और दोलोपलक्षमें वह बड़ी धूमधाम करते हैं। कहते हैं, कि राजा नवकृष्ण गोपी-नाथको एक बार कलकत्ते ले आये थे, जहां उन्होंने गोपीनाथ ही जैसी एक दूसरी मूर्तिको निर्माण कराया। उधर कृष्णचन्द्र राजाने ठाकुरके शोकसे अत्यन्त कातर हो अन्नजलको बिलकुल त्याग किया। इसके बाद गोपीनाथने स्वप्नयोगसे यह प्रत्यादेश दिया, 'तुम कलकत्ते आओ, मैं राजा नवकृष्णके घरमें बैठा हूं।' कृष्णचन्द्र राजाने ठाकुर वापस देनेके लिये नव-कृष्ण बहादुरसे अनेक साध्यसाधना की। राजा नव-कृष्णने कहा,—'अच्छा, तो हमारे देवालयमें आप आइये और अपने गोपीनाथको पहचानके ले जाइये। इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है।' राजा कृष्णचन्द्रने देवालयमें जाकर देखा—गोपीनाथ तो हैं, किन्तु दो मूर्ति। दोनो मूर्ति एक ही जैसी थीं, वेशभूषा और आकार-प्रकारमें कोई भेद देख न पड़ता था। वह विषम समस्यामें पड़ गये। उन्होंने अनेक चेष्टायें कीं, किन्तु यह पहचान न सके, कि उनके गोपीनाथ कौन थे। दूसरी रातको गोपीनाथने उन्हें यह स्वप्न दिया,—'महाराज! तुम घबराना नहीं। जिस मूर्तिके माथे पर तुम पसीना देखना, उसीको अपना विग्रह सम-झना।' प्रातःकालमें कृष्णचन्द्र राजाने नवकृष्ण बहादुरसे कहा,—'चलिये, आज मैं अपने गोपी-नाथको पहचान लूंगा।' यह कह कृष्णचन्द्र राजाने देवालयमें जाकर देखा, कि एक प्रतिमाके कपालमें बूंद-बूंद पसीना मानो अलकावलीसे सजाकर रखा गया था। यह देख प्रेमभरके कारण कृष्णचन्द्रकी आँखोंसे आँसू फूट-फूट बहने लगे। उन्होंने यह कह जल्द-जल्द विग्रहको गोदमें उठा लिया, कि हां, वही उनके गोपीनाथ थे।

कोई-कोई कहते हैं, कि राजा कृष्णचन्द्रने गोपी-नाथके लिये गवरनर-जनरलके पास नालिश की थी। उन्होंने ठाकुर वापस देनेके लिये राजा नवकृष्ण बहादुर-से अनुरोध किया। पहले अग्रद्वीप पाटुलीके ज़मीन्दारों-की सम्पत्ति था। पीछेको एक बार पांच-छः यात्री वहांके मेलेमें मर गये। मुर्शिदाबादके नवाबने इससे क्रुद्ध हो वहांके ज़मीन्दारोंको शास्ति देनेका सङ्कल्प किया। इसी भयसे सब ज़मीन्दारोंके मुख़्तारोंने कहा, कि अग्रद्वीप उनके प्रभुका न था। कृष्णनगरके मुख़्तार सुयोग देख बोल उठे,—'धर्म्मावतार! यह सम्पत्ति हमारे प्रभुकी है। मेलेमें जैसा लोगोंका समागम होता, उससे और भी अनिष्ट होनेकी बात है। किन्तु हमारे प्रभुकी विशेष सतर्कतासे वैसा होने नहीं पाता।' नवाबने यह बात सुन दोषको क्षमा कर दिया और अग्रद्वीप अबाध-रूपसे कृष्णनगरकी सम्पत्ति हो गया।

अग्रधान्य (सं० क्ली०) १ धान्यविशेष, वह अन्न जो पहले उत्पन्न हो। २ बाजरा।

अग्रनख (सं० पु०) अग्रो नखः, कर्मधा०। नखाग्र, नाखूनका अगुआ।

अग्रनासिका (सं० स्त्री०) अग्रा नासिका, कर्मधा०। नासिकाका अग्रभाग, नाकका अगला हिस्सा।

अग्रनिरूपण (सं॰ क्लो॰) १ पहलेसे समझ लेना। २ भविष्यवाणी।

अग्रन्थिक (सं॰ पु॰) नास्ति ग्रन्थिर्यस्य, बहुव्री॰। १ कौपोनधारी जैन-सम्प्रदायविशेष। जैनियोंका वह प्रधान सम्प्रदाय जो कुपीन पहनता है। २ आत्म-तत्त्वज्ञ, आत्माका तत्त्व जानने वाला। ३ जो संसार-पाशसे मुक्त हो गया हो।

अग्रपर्णी (सं॰ स्त्री॰) अग्रे पर्णं यस्याः। धाप्ट्वस्यज्यतिभ्यो नः। उण् ३।६। शतावर, आलकुशी।

अग्रपाणि (सं॰ पु॰) १ हाथका अगला भाग। २ दाहना हाथ।

अग्रपुष्प (सं॰ पु॰) वेतस वृक्ष, वेतका पौधा।

अग्रपूजा (सं॰ स्त्री॰) कर्मधा॰। प्रथम पूजा, पहली पूजा।

अग्रपेय (सं॰ क्लो॰) जो सबसे पहले पिया जाये।

अग्रभाग (सं॰ पु॰) अग्र-भज-घञ्। १ श्राद्ध और पूजादिमें प्रथम देय भाग, वह भाग जो श्राद्ध या पूजादिमें सबसे पहले दिया जाये। २ शेष भाग, अन्तिम भाग; जैसे—शिखाग्र भाग, चोटीका सिरा।

अग्रभुक्, अग्रभुज (सं॰ पु॰) अग्र-भुज-क्विप्। १ देवता और पितृपुरुषादिको जो न दे पहले ही भोजन करे। २ औदरिक, पेटू।

अग्रभू (सं॰ पु॰) अग्र-भू-क्विप्, ७-तत्। १ ज्येष्ठ भ्राता, बड़ा भाई। २ ब्राह्मण।

अग्रभूमि (सं॰ स्त्री॰) १ आगेकी भूमि। २ पड़ाव। ३ प्रयोजन।

अग्रमहिषी (सं॰ स्त्री॰) कर्मधा॰। पट्टमहिषी, प्रधाना स्त्री।

अग्रमांस (सं॰ क्लो॰) कर्मधा॰। १ हृदयके मध्यस्थित पद्माकार मांस, वह मांस जो दिलके बीचमें कमलके फूल जैसा होता है। फेफड़ा। २ उदरके ऊर्द्ध्वभागस्थ मांसकी वृद्धि, पेटके ऊपरका मांस बढ़ जाना, एक तरहका छातीवाला रोग।

अग्रमुख (सं॰ क्लो॰) अग्रं मुखम्, कर्मधा॰। मुखाग्र, मुंहका अगला हिस्सा।

अग्रयण (सं॰ क्लो॰) अग्र-अयन। अग्रहायण मास, अगहन महीना। इस मासमें साग्निक ब्राह्मणोंको नवशस्य यज्ञ करना उचित है। वङ्गदेशमें निरग्नि ब्राह्मण नवान्न करते हैं।

अग्रयाण, अग्रायान (सं॰ क्लो॰) अग्र-या-ल्युट्, अग्रे यानं यस्य। १ पुरोगामी सैन्य, आगे जानेवाली फ़ौज। २ जनैक ऋषिका नाम, जिन्होंने यास्कसे पहले वेद-व्याख्या की थी।

अग्रयायिन्, अग्रयायी (सं॰ त्रि॰) अग्र-या-णिनि, ७-तत्। पुरोगामी, आगे जानेवाला।

अग्रयोधिन्, अग्रयोधी (सं॰ पु॰) अग्र-युध-णिनि, ७-तत्। जो सैन्यके सम्मुख रह युद्ध करे, फ़ौजके सामने लड़नेवाला वीर।

अग्रलोध्र (सं॰ पु॰) चिञ्चोड़मूल। इसका गुण गुरुपाक, शीतल और अजीर्णकर होता है।

अग्रलोहिता (सं॰ स्त्री॰) बहुव्री॰। १ जिसका ऊपरी भाग लोहित वर्ण हो। लाल सिरेवाली वनस्पति। २ चिल्लीशाक, चिलारी।

अग्रवक्त्र (सं॰ क्लो॰) एक तरहका नश्तर।

अग्रवण (सं॰ क्लो॰) वनस्य वृन्दावनस्याग्रम् इति। आगरेका पूर्वतन नाम। आगरा देखो।

अग्रवर्ती (सं॰ त्रि॰) आगे रहनेवाला, अगुआ, आगेका।

अग्रवाल, अगरवाल देखो।

अग्रवीज (सं॰ पु॰) अग्रं शाखाग्रं वीजरूपमुत्पादकं यस्य। जो वृक्ष कलम लगानेसे उत्पन्न हो, जिसकी डालसे पेड़ हो जाये। जैसे गुलाब, चमेली इत्यादि।

अग्रवीर (सं॰ पु॰) प्रधान योद्धा, आगे रह कर लड़ने-वाला सिपाही।

अग्रव्रीहि (सं॰ स्त्री॰) नवान्न, नई फ़सलका अनाज।

अग्रशोची (सं॰ पु॰) आगेसे सोचनेवाला। पहलेसे विचार कर लेनेवाला। दूरदर्शी, दूरन्देश।

अग्रसन्धानी (सं॰ स्त्री॰) अग्र-सम्-धा-ल्युट्, स्त्रियां ङीप्। यमपञ्जिका, यमराजकी बही। प्राणियोंके प्राक्तनका शुभाशुभ आगेसे लिखे रहनेके कारण यम-पञ्जिकाका नाम अग्रसन्धानी रखा गया है। (पुं॰) अग्रसन्धान-इन्। चित्रगुप्त।

अग्रसन्ध्या (सं० स्त्री०) सन्ध्याया: अग्रं अथवा अग्रा सन्ध्या। १ सन्ध्याका पूर्वकाल। २ प्रात:सन्ध्या, सवेरा, तड़का।

अग्रसर (सं० त्रि०) अग्र-सृ-ट, अग्रं अग्रेण अग्रे वा सरतीति। अग्रगामी, आगे चलने वाला। अग्रत:सर देखो।

अग्रसानु (सं० पु०) उभरी हुई भूमिका सम्मुखस्थ भाग।

अग्रसारा (सं० स्त्री०) अग्रं शीर्षभागमात्रं सारोऽस्या:। १ फलशून्य शिखा, बिना मेवेकी चोटी। २ मञ्जरी, बाल।

अग्रसेन (सं० पु०) जन्मेजयके एक पुत्र।

अग्रह (सं० पु०) न-ग्रह: दारपरिग्रह:, नञ्-तत्। १ जिसने विवाह न किया हो। २ सन्यासी। ३ वानप्रस्थ।

अग्रहर (सं० त्रि०) अग्र-हृ-अच्। अग्रदेय वस्तु, आगे दिये जाने क़ाबिल चीज़। अग्रभागहारी।

अग्रहस्त (सं० पु०) अग्रश्चासौ हस्तश्चेति, कर्मधा०। गुणगुणिनोरभेदात्। १ हस्तका अग्रभाग, हथका अगला हिस्सा। २ हाथीकी सूंड़वाली नोक।

अग्रहायण (सं० पु०) हायनस्य वत्सरस्य अग्रं प्रथम मास:, अग्र-हा-ल्युट् हायन। हायनोऽब्दव्रीहिकालयो:। पा ३।१।१४८। मार्गशीर्ष मास, मगसर, अगहन। पहले अग्रहायण माससे वत्सर आरम्भ और कार्तिक मासमें समाप्त होता था। इसीलिये मार्गशीर्ष मासका नाम अग्रहायण पड़ा, अमरादि प्राचीन कोषमें यह बात स्पष्ट रूपसे निर्दिष्ट है। इसका कारण वर्तमान है, कि पहिले अग्रहायण माससे क्यों वत्सर-गणना की जाती थी। मालूम होता है, कि वह कारण अमूलक नहीं। साधारण लोग चन्द्र, सूर्यकी गति देख वत्सर-गणना कर न सकते थे। चन्द्रसूर्यकी गति देख वत्सर-गणना करना एक कठिन कार्य है। इसलिये वह स्वभावका सामान्य लक्षण देख साधारण रीतिसे वत्सरको निर्णय करते रहे। 'अग्रहायण'—अर्थात् जिस समयमें श्रेष्ठ व्रीहि (अग्र: श्रेष्ठ: हायन: व्रीहि: अस्मिन् काले) हो। इससे स्पष्ट समझा जाता है, कि सामान्य लोग व्रीहिकी उत्पत्ति देख वत्सर गिनते थे। आजकलकी तरह उस समय भी लोग महाजनोंसे अन्न उधार लेकर खाते और पीछे अपने घरमें अन्न होनेसे उसे व्याजके साथ चुका देते रहे। महीना, सन् या तारीख़ बतानेसे अज्ञ लोग इसका कुछ भी मतलब समझ न सकते, कि किस समय महाजन ऋण देते थे और किस समय वह ऋण परिशोध करना होता था। इसलिये स्वभावका एक-एक लक्षण दिखा महाजन उन्हें सब बातें बता देते थे। पाणिनिके कई एक सूत्रोंमें इस बातका प्रमाण मिलता है। जसे—"देयमृणे" ४।३।४७। "कलाप्यश्वत्थयवबुसाद्वुन्।" ४।३।४८।

"ग्रीष्मावरसमाद्वुञ्।" ४।३।४९।

'यस्मिन् काले मयूरा: कलापिनो भवन्ति स उपचारात् कलापी, तत्र देयमृणं कलापकम्। यस्मिन्कालेऽश्वत्था: फलन्ति तत्र देयमृणमश्वत्थकम्। यस्मिन् यवबुससमुत्पद्यते तत्र देयं यवबुसकम्। ग्रीष्मे देयमृणं ग्रैष्मकम्।'

(भट्टोजि)

जिस समयमें मयूर पर फैलाकर नाचते हैं, उसी समय दिये जानेवाले ऋणका नाम कलापक है। अश्वत्थ वृक्ष फलनेके समय चुकाया जानेवाला ऋण अश्वत्थक होता है। जिस समय यवका शीष निकलता, उस समयके देय ऋणको यवबुसक कहते हैं। जो ऋण ग्रीष्मकालमें दिया जाता, वह ग्रैष्मक कहाता है। वर्षासे पहले दिया जानेवाला ऋण आवरसमक नामसे अभिहित है। स्वभाववाले एक-एक सहज लक्षणके साथ देय ऋणके इतने सम्पर्क रहनेका क्या प्रयोजन था? यदि उधार लेनेवालोंको महीने, सन् और तारीख़से उस समयके निश्चित करने की क्षमता होती, कि वह किस समय ऋण लेते और कितने दिन पीछे उस ऋणको परिशोध करना होता, तो इतना मोटा हिसाब कभी न चलता।

अग्रहायणेष्टि (सं० स्त्री०) अग्रहायणे विहिता इष्टि:। नवशस्यका यागविशेष, वह ख़ास यज्ञ जो नये अनाजसे किया जाता है।

अग्रहार (सं० पु०) अग्र-हृ-घञ् कर्मणि, अग्र-हृ-अण्। १ ब्राह्मणको देनेके लिये क्षेत्रोत्पन्न शस्यादिका अग्रभाग, खेतमें पैदा हुए अनाजका वह पहला हिस्सा, जो ब्राह्मणको देनेके लिये रखा जाये। स्नातकको देय

शस्यादि, जो अनाज वगैरह ब्राह्मणको दिया जाये। अग्रहारक। २ वह भूमि या जागीर, जो राजा ब्राह्मणको देता है। ब्राह्मणशासन।

अग्रांश (सं० पु०) अग्रभाग, आगेका हिस्सा।

अग्रांशु (सं० पु०) प्रकाशवाली किरणकी समाप्ति, रोशनीकी किरणका अख़ीर।

अग्राक्षि (सं० क्ली०) अग्रञ्च तदक्षि च, कर्म्मधा०। अपाङ्ग। चक्षुका अग्रभाग, आंखका अगला हिस्सा।

अग्राङ्गुलि (सं० पु०) अङ्गुलिका अग्रभाग, उंगलीका सिरा।

अग्राणीक (सं० क्ली०) अग्रञ्च तदनीकञ्च, कर्म्मधा०, निपातने णत्वम्। अग्रगामी सैन्य, आगे जानेवाली फ़ौज।

अग्रादन (सं० त्रि०) पहले भोजन करनेवाला, पेटू।

अग्राम्य (सं० त्रि०) १ शहरुआ। २ जङ्गली।

अग्रायणीय (सं० क्ली०) अग्रं श्रेष्ठम् अयनं ज्ञानं तत्र साधु च। बौद्धागमसिद्धे, प्रवादभेदे। जैनियोंकी चौदह पुरानी पुस्तकोंमें दूसरीकी उपाधि।

अग्रावलेहित (सं० क्ली०) अग्रं अवलेहितं यस्य। श्राद्ध या पूजाके अग्रभागको ग्रहण-पूर्वक उच्छिष्ट किया हुआ अन्नादि।

अग्राशन (सं० क्ली०) देवताके लिये भोजनसे पहले रखा जानेवाला सिद्धान्न।

अग्रासन (सं० क्ली०) अग्रं आसनम्। ब्राह्मणके उपवेशनार्थ प्रथम आसन, वह आसन जो पहले ब्राह्मणको बैठनेके लिये दिया जाये।

अग्राह्य (सं० त्रि०) न-ग्रह-ण्यत्, नञ्-तत्। ऋहलोर्ण्यत्। पा ३।१।१२४। अग्रहणीय, ग्रहणके अयोग्य। न लेनेके क़ाबिल।

अग्राह्यवीर्य (सं० त्रि०) अग्राह्यम् ईषद् ग्राह्यं वीर्यं यस्य। ईषद्ग्राह्य वीर्य, कमताक़त। (क्ली०) अल्पतेज, बेरौनक़। रामायणमें लिखा है,—

'अग्राह्यवीर्यः पूर्वाह्णे मध्याह्ने स्पर्शतः सुखः।" (३।२२।२०)

अग्रिम (सं० पु०) अग्र-डिमच्। अग्रे भवः। १ ज्येष्ठ भ्राता, बड़ा भाई। २ उत्तम, भलामानुष। ३ श्रेष्ठ, बड़ा आदमी। ४ प्रधान, मुखिया।

अग्रिमा (सं० स्त्री०) लवलीवृक्ष, लोणा, रामफल, शरीफ़ा।

अग्रिय (सं० पु०) अग्र-घ, अग्रे भवः। १ ज्येष्ठ भ्राता, बड़ा भाई। २ पहला फल। ३ उत्तम। ४ श्रेष्ठ। ५ अग्रज।

अग्रीय (सं० पु०) अग्र-छ, अग्रे भवः। १ ज्येष्ठ भ्राता, बड़ा भाई। (त्रि०) २ श्रेष्ठ, बड़ा।

अग्रु, अग्रू (सं० स्त्री०) अग्रि कु, नलोप उङ्। १ अङ्गुलि, उंगली। २ नदी, दरया।

अग्रे (सं० अव्य०) १ सामने। २ पहले। ३ उपस्थितिमें। ४ शीर्षपर, सिरेसे। ५ आदिमें, आगे।

अग्रेग (सं० त्रि०) अग्र-गम-ड, अलुक्-स०। अग्रगामी, आगे चलनेवाला। (पु०) नेता, राह बतानेवाला।

अग्रेगा (सं० त्रि०) अग्रे-गम-विट्, अलुक्-स०। जनसनखनक्रमगमो विट्। पा ३।२।६७। अग्रगामी, आगे जानेवाला। (पु०) नेता।

अग्रेगू (सं० त्रि०) अग्र-गम-क्वि-ऊङ्। गमः क्वौ। पा ६।४।४०। अग्रगामी। (पु०) नेता।

अग्रेत्वन् (सं० त्रि०) आगे जाता हुआ।

अग्रेदिधिषु, अग्रेदिधिषू (सं० पु०) दिधिं धैर्यं स्यति त्यजतीति। १ द्वितीयवार विवाहिता स्त्रीका पति, दूसरे बार व्याही गई स्त्रीका स्वामी। २ पुनर्भू। (स्त्री०) अविवाहिता ज्येष्ठा भगिनी रहते अग्रे विवाहिता कनिष्ठा भगिनी, विना व्याही बड़ी बहन रहते आगे व्याही गई छोटी बहन।

अग्रेदिधिषुपति (सं० पु०) द्वितीयवार विवाहिता स्त्रीका स्वामी, जो पुरुष विधवा स्त्रीसे विवाह करे।

हिन्दूशास्त्रमें दिधिषुपति अतिशय घृणाकी वस्तु है। वह दैवादि क्रियासे वर्जनीय बताया गया है। पाराशरका उपदेश है,—

"उपपतिः सुतो यस्य यश्चैव दिधिषूपतिः।
परपूर्वापतिर्जाताः वर्ज्याः सर्वे प्रयत्नतः॥"

अग्रेपा (सं० त्रि०) अग्रे पातीति, पा-क्विप्। १ अग्रपालक, पहले पालनेवाला। २ आगे पीनेवाला।

अग्रेपू (सं० त्रि०) अग्रे-पू-क्विप्। अग्रे पवित्रकारक, पहले पवित्र करनेवाला।

अग्रेभ्रू (सं० पु०) सामने घूमनेवाला।

अग्रेवण (सं० क्ली०) वनस्य अग्रं, राजदन्तादि अलुक्-स०। वनका अग्रभाग, जङ्गलका अगला हिस्सा।

अग्रेवध (सं० पु०) आगेवालोंका वध, आगे पड़नेवालोंकी हत्या।

अग्रेसर (सं० त्रि०) अग्रे-सृ-ट, अलुक्-स०। अग्रगामी, आगे जानेवाला।

अग्रेसरिक (सं० त्रि०) अग्रे-सर-ठन्। अग्रगामी। (पु०) नेता।

अग्रोपहरण (सं० क्ली०) पहली या खास भेजी हुई चीज़।

अग्रोपहरणीय (सं० त्रि०) अग्र-उप-हृ-अनीयर्। तव्यत्तव्यानीयरः। पा ३।१।९६। प्रथम दानीय वस्तु, पहले देनेके क़ाबिल चीज़।

अग्र्य (सं० त्रि०) अग्रे भवः अग्र-यत्। शाखादिभ्यो यत्। पा ५।३।१०३। १ श्रेष्ठ, बड़ा। २ उत्तम, अच्छा। (पु०) १ बड़ा भाई। २ नेता।

अग्र्या (सं० स्त्री०) त्रिफला। आँवला, हर्र और बहेर।

अघ (सं० क्ली०) अघ-अच्। १ पाप। २ दुःख। ३ व्यसन, आदत। ४ दुर्घटना, अनहोनी। ५ आक्षेप। ६ निन्दा। ७ कंसके सेनापति एक असुरका नाम। (स्त्री०) स्त्रियां टाप्। अघा। पापकी देवी।

'अघन्तु व्यसने प्रोक्तमघं पातकदुःखयोः।' विश्वप्रकाश।

अघकृत् (सं० त्रि०) अघ-कृ-क्विप्। पापाचारी, पाप करनेवाला।

अघघ्न (सं० त्रि०) पापको नाश करनेवाला।

अघट (हिं० वि०) १ अयोग्य। २ ग़ैरमुनासिब। ३ बेमेल। ४ बेअन्दाज़। ५ अनुपयुक्त।

अघटमान् (सं० त्रि०) असम्भव, न होनेवाला।

अघटित (हिं० वि०) १ न होनेवाला। २ अवश्यम्भावी।

अघद्विष्ट (सं० त्रि०) पापियों द्वारा घृणा किया जानेवाला, बुरे जिससे नफ़रत करें।

अघन (सं० त्रि०) नञ्-तत्। पतला, जो गाढ़ा न हो।

अघनाशन, अघनाशक (सं० त्रि०) अघ-नश-णिच्-ल्युट्। पापनाशक, इज़ाब छुड़ानेवाला।

अघनिष्कृत (सं० त्रि०) पापसे दूर। इज़ाबसे बाहर।

अघभोजिन् (सं० त्रि०) अघ-भुज-णिनि, ६-तत्। देव-ब्राह्मणादिके उद्देश भिन्न अपने लिये जो पाक करे। अनुचित भोजन करनेवाला।

अघमय (सं० त्रि०) पापी, पापमें लिप्त।

अघमर्षण (सं० क्ली०) अघ-मृष-ल्युट्, ६-तत्। १ पाप-नाशन। २ अश्वमेध यज्ञका अवभृथ स्नान-मन्त्र। ३ वैदिक सन्ध्यान्तर्गत जलप्रक्षेप-रूप पापनाशक क्रियाविशेष। (पु०) ४ तेरह कुशिकोंमें छठें ऋषि।

"विश्वामित्रश्च गाधेयो देवराजस्तथा बलः।
तथा विद्वान् मधुच्छन्दा ऋषयश्चाघमर्षणः॥" (हरिवंश)

अघमार (सं० त्रि०) अघ-मृ-णिच्-अण्, उप-तत्। १ पापनाशक। २ देवादि।

अघरुद् (सं० त्रि०) अघ-रुद-क्विप्। पापनाशन मन्त्र।

अघर्म (सं० पु०) नञ्-तत्। शीतकाल, जाड़ेका मौसम। सन्तापशून्यकाल, वह समय जिसमें गर्मी न लगे। (त्रि०) घर्महीन।

अघल (सं० त्रि०) अघ-ला-क, अघं पापं लातीति। पापनाशक, इज़ाब छुड़ानेवाला।

अघवत्, अघवान् (सं० त्रि०) अघ-मतुप्। पापी।

अघवाना (हिं० क्रि०) १ पेट भर खिलाना, आसूदा करना, भोजनसे तृप्त कर देना। २ चिकनी-चुपड़ी बातें करना, मन भरना।

अघविष (सं० पु०) विषं अघमेव यस्य। सर्प, सांप।

अघशंस (सं० पु०) १ अनिष्टकारी। २ पापकर्म्मा।

अघशंसहन (सं० पु०) जो पापीको मार डाले।

अघशंसिन् (सं० त्रि०) अघ-शंस-णिनि, ६-तत्। व्यसन-सूचक, आदत ज़ाहिर करनेवाला।

अघहरण (सं० क्ली०) पापकी निवृत्ति, इज़ाबसे छुटकारा।

अघहार (सं० पु०) १ जो पाप छुड़ा दे। २ पवित्र पुरुष। ३ मशहूर डाकू।

अघाट (हिं० पु०) १ जहां घाट न हो। २ वह क्षेत्र जिसे उसका स्वामी बेच न सके।

अघात (हिं॰ पु॰) चोट, आघात। (वि॰) भरपेट, अधिक।

अघातिन् (सं॰ त्रि॰) १ न मारने या चोट पहुंचाने वाला। २ सीधा।

अघाना (हिं॰ क्रि॰) १ छकना, ख़ूब डटकर खाना, भोजनसे तृप्त होना। २ मन भर जाना, इच्छा पूरी होना। ३ प्रसन्न होना, खुश हो जाना। ४ थकना, उकताना। ५ पूरा होना, कमाल हासिल करना।

अघायु (सं॰ त्रि॰) अघ-या-उ, अघ-क्यच्-उ। १ पापाचरणेच्छाशील, पाप करनेकी इच्छा रखनेवाला। २ पापकारी, पाप करनेवाला। ३ हिंसानिरत, हत्यारा।

अघायुस् (सं॰ त्रि॰) अघं पापाचरणं आयुर्यस्य। पापाचारी, पापमें समय बितानेवाला।

अघारि (सं॰ पु॰) १ पापका शत्रु। २ श्रीकृष्ण।

अघारिन् (सं॰ त्रि॰) अघ-ऋ-णिनि, अघमृच्छतीति। व्यसनशील, पापी। (स्त्री॰) अघारिणी।

अघाश्व (सं॰ पु॰) १ ख़राब घोड़ा। २ सांप।

अघासुर (सं॰ पु॰) कर्मधा॰। अघासुर नामक एक असुर। यह दानव पूतना और वकासुरका कनिष्ठ भ्राता था। कृष्णको वध करनेके लिये कंसने अघासुरको वृन्दावन भेजा। इसलिये भी अघासुरके मनमें सातिशय आक्रोश था, कि पूर्वमें कृष्णने पूतना और वकासुरको विनाश किया था। वृन्दावनके गोष्ठमें जहां गोपबालक गवादि पशु चरा रहे थे, अघासुर वहां पहुंच बड़े अजगरको तरह मुंह फैलाकर बैठ गया। कृष्णने निर्भयसे उसके मुंहमें प्रवेश किया और दानवका श्वासरोध होनेसे ब्रह्मतालु फट पड़ा। भागवत १०म। १२ अ॰।

अघाह (सं॰ पु॰) अघस्य आहः, अच्-स॰। अशौचदिन।

अघी (हिं॰ वि॰) पापी, कुकर्मी, कुमार्गी।

अघृण (सं॰ त्रि॰) दयारहित, बेरहम।

अघृणिन् (सं॰ त्रि॰) १ घृणा करनेके अयोग्य। २ अच्छा। ३ बढ़िया।

अघेरन (हिं॰ पु॰) यवका मोटा आटा।

अघोर (सं॰ पु॰) न-घोरः। १ जो भयानक न हो। २ महादेव। ३ एक सम्प्रदाय, जिसके लोग मलमूत्रसे भी घृणा नहीं करते। (वि॰) ४ सीधा, सौम्य।

अघोरनाथ (सं॰ पु॰) शङ्कर, शिव, महादेव।

अघोरनृसिंहरस (सं॰ पु॰) एक प्रकारका रस, जो सन्निपातपर प्रयोग किया जाता है।

अघोरपथिन् (सं॰ पु॰) शिवके अनुयायी।

अघोरपन्थ (हिं॰ पु॰) अघोरियोंका मत या सम्प्रदाय, औघड़ोंका मज़हब।

अघोरपन्थी (सं॰ पु॰) अघोर मतको माननेवाले लोग, अघोरी। अघोरी देखो।

अघोरप्रमाण (सं॰ क्ली॰) भयानक शपथ।

अघोरा (सं॰ स्त्री॰) भाद्रमासकी कृष्ण चतुर्दशी। शास्त्रमें लिखा है, कि इस चतुर्दशीको शिवकी आराधना करनेसे शिवलोक मिल जाता है—

"भाद्रमास्यसिते पक्षे अघोराख्या चतुर्दशी।
तस्यामाराधितः स्थाणुर्नयेच्छिवपुरं ध्रुवं॥" (भविष्यपु॰)

अघोरी, (अघोरपन्थी) शैव सम्प्रदाय विशेषका नाम। इसका आदिस्थान बड़ोदा अञ्चलमें था। इसके सिवा काठियावाड़, कराची और अन्यान्य स्थानोंमें भी विस्तर अघोरी रहते थे। आजकल राजपूतानेके अन्तर्गत आबू पहाड़ पर अघोरपन्थी शैव देख पड़ते हैं। यह नितान्त अपरिष्कार, निर्घृण और विकाररहित होते; और मद्य, मांस—यहां तक, कि अपना मल-मूत्र भी खाते हैं। क्या कच्चा क्या पक्का और क्या दुर्गन्ध अखाद्य—लोग जो कुछ देते, अघोरी अम्लान मुखसे उसीको भक्षण करते हैं। कारण, निर्विकार रहना इनका धर्मनीतिका प्रथम सूत्र है। कहीं भी शवदाह होनेसे अघोरपन्थी मद्यके साथ उसी मनुष्य मांसको उठा कर भोजन करते हैं। इनके शिर पर बड़े-बड़े बाल होते और कोई-कोई जटा भी रखाते हैं। केश रूक्ष और विशृङ्खल रहते हैं। मुंहमें दाढ़ी-मूंछ भरी होती है। यह कौपीन और वहिर्वास पहनते हैं। मुंह यह नहीं धोते। मद्यपान करनेको इनके साथ कपाल-पात्र यानी मनुष्यकी खोपड़ी रहती है। अन्यान्य धर्मसम्प्रदायके लोग

जिस तरह माला या अन्यान्य विशेष परिच्छद रखते हैं, अघोरियोंके पास उस तरह कुछ भी नहीं होता। धर्मकथा सुननेकी इच्छा करनेसे यह कुछ भी नहीं कहते। बड़ोदा राज्यमें अघोरेश्वर नामक इनका एक मठ था। अघोरस्वामी उसी स्थानमें वास करते थे। आजकल यह सम्प्रदाय क्रमशः निर्मूल होते चला जाता है। कहीं पर कभी-कभी अघोरपन्थी योगी इतस्ततः घूमते-घामते देख पड़ते हैं।

अघोरपन्थिकोंका मत नूतन नहीं। इसका प्रमाण भी मिलता है, कि अति प्राचीनकालमें यह सम्प्रदाय विद्यमान था। मार्कोपलो, प्लिनो, आरिष्टटल प्रभृति विदेशीय पण्डितोंने इसके विषयको कुछ-कुछ उल्लेख किया है। ईरान देशमें भी बहुत पुराने समय इसी प्रकार एक सम्प्रदायके साधक वास करते थे। इसलिये अनुमान होता है, कि अघोरी शैव देश-विदेशमें विस्तीर्ण हो गये थे। कभी-कभी हिन्दुस्थानमें स्थान-स्थान पर अघोरिनें दलबद्ध हो कर जाती हैं। इनके शिरपर जटा रहती, गलेमें नानाविध प्रस्तर और स्फटिककी माला झूमती, कमर पर घांघरा लटकता और किसीके हाथमें त्रिशूल दिखाई देता है। यह जनपदमें महा उपद्रव मचाती हैं।

अघोष (सं॰ पु॰) नास्ति घोषोऽत्र। वर्णोच्चारणार्थ प्रयत्न-विशेष। तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्। पा १।१।९। ताल्वादिके समान स्थान और समान आभ्यन्तर प्रयत्नसे जो सकल वर्ण उच्चारित होंगे, उनको सवर्ण संज्ञा दी जायेगी। इसके बाद (प्रयत्नो द्विधा:) प्रयत्न दो प्रकार है, आभ्यन्तर और वाह्य। फिर आभ्यन्तर प्रयत्न पांच प्रकारका है—१ स्पृष्ट, २ ईषत्स्पृष्ट, ३ ईषद्विवृत, ४ विवृत, और ५ संवृत। वाह्यप्रयत्न ग्यारह प्रकारका होता है: जैसे; १ विवार, २ संवार, ३ श्वास, ४ नाद, ५ घोष, ६ अघोष, ७ अल्पप्राण, ८ महाप्राण, ९ उदात्त, १० अनुदात्त और ११ स्वरित।

"खयां यमाः खयः+क ≍ पौ विसर्गः शर एव च।
एते श्वासानुप्रदाना अघोषाश्च विवृण्वते।
तत्र वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः खयस्तथा, तेषामेव यमाः जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ, विसर्गः शषसाश्चेत्येषां विवारश्वासोऽघोषश्च।"

वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ण खय् (कख, चछ, टठ, तथ, पफ) कहाते हैं। जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, विसर्ग और शषस, यह सब यम हैं। यही समस्त वर्ण विवार, श्वास और अघोष बोले जाते हैं। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय अर्द्ध विसर्ग हैं। यह सकल उच्चारण किसीके मुखसे न सुनने पर ठीक बोधगम्य नहीं हो सकता।

अघौघ (सं॰ पु॰) पापोंका ढेर, पापसमूह।

अघौघमर्षण (सं॰ त्रि॰) सम्पूर्ण पापनाशक, सब पाप दूर करनेवाला।

अघ्नत् (सं॰ त्रि॰) न मारनेवाला, चोट न पहुंचानेवाला।

अघ्न्य (सं॰ पु॰) हन्-यक्। अघ्न्यादयश्च। यगन्ता निपात्यन्ते। हन्तेर्यक् अडागमः उपधालोपश्च। उण् ४।१११। १ प्रजापति, ब्रह्मा। २ वृषभ, बैल। (स्त्री॰) ३ गो, गाय। ४ बादल, घटा। (त्रि॰) ५ वधके अयोग्य, न मारनेके काबिल।

अघ्रान (सं॰ आघ्राण) आघ्राण देखो।

अघ्रानना (हिं॰ क्रि॰) सूंघना, खुशबू लेना।

अघ्रेय (सं॰ त्रि॰) न घ्रातुं अर्हः। दुर्गन्धि द्रव्य। सूंघनेके अयोग्य, बदबूदार। (क्ली॰) मदिरा, शराब।

अङ्क (सं॰ पु॰) अङ्क-अच्। १ चिन्ह; जैसे—पदाङ्क। मृगाङ्क। २ नाटकका एक परिच्छेद जिसमें यवनिका गिरादी जाती है। ३ गोद। ४ समीप; जैसे—"अङ्कागत सत्ववृत्तिः। रघु २।३८। 'अङ्कः समीप उत्सङ्गे चिह्ने स्थानापराधयोः' इति केशवः। ५ स्थान। ६ अपराध। ७ पर्वत। ८ युद्धभूषण। ९ देह। १० एकसे नौ तक संख्या—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९। ११ पाप। १२ दुःख। १३ वार। अङ्क शब्दका ही अपभ्रंश आंक है।

यह आश्चर्यका विषय है, कि सभी सभ्य जातियोंने मूल रूढ़ संख्या एकसे नौ तक ली है। शून्य (०) एक अलग अङ्क है; वह कोई संख्या नहीं। एक-एक शून्यकी सहायतासे सभी एक, दो अङ्कोंकी दशगुण संख्या बढ़ाते हैं। इसका ठीक-ठीक कारण समझमें नहीं आता, कि यह प्रथा सब देशोंमें क्यों प्रचलित हुई। पाश्चात्य पण्डित अनुमान करते हैं, कि मनुष्य असभ्य

अवस्थामें गिनना नहीं जानता; इस लिये वह हाथकी उंगलियों पर द्रव्यादिकी संख्या निर्दिष्टकर रखता था। दोनो हाथमें दश उंगलियां हैं। एकसे गिनना आरम्भ करने पर बाकी नौ बचती हैं। यही नौ उंगलियां पूर्वकालवाले लोगोंके संख्या गिननेका उपाय थीं, जिससे रूढ़ अङ्कको संख्या केवल नौ रखी गई। पाश्चात्य लोग कहते हैं, कि इसी कारणसे नौ रूढ़ अङ्कका नाम "डिजिट" अर्थात् उंगली पड़ा है।

हाथकी उंगलियोंसे गिनने पर पैरकी उंगलियोंसे सहारा क्यों न लिया जाता था? यदि उंगलियां ही पूर्वकालवाले मनुष्योंके संख्यानिर्द्धारण करनेका प्रधान सहारा होतीं, तो वह अधिक संख्या ठीक करते समय पैरकी उंगलियोंसे अवश्य काम लेते। इस तरह अङ्कको संख्या भी नौसे कहीं अधिक हो जाती। इस लिये मालूम होता, कि रूढ़ अङ्क एकसे नौ तक होनेका कोई अन्य कारण है।

अमेरिकाकी असभ्य जाति पांचसे अधिक नहीं गिन सकती। अधिक संख्या यदि किसीको बताना पड़ती, तो वह वृक्षके पत्ते दिखा देता है। अशिक्षित हबशियोंकी भी यही दशा है। वह भी अधिक संख्या बतानेके लिये मरुभूमिकी एक मुट्ठी बालू उठा कर दिखा देते हैं। भारतवर्षके अज्ञ पुरुष डोरीमें गांठ दे, किवाड़ या खम्भेमें चूनेका टीका लगा और बांसके डण्डेमें निशान बना संख्या ठीक करते हैं। सन्थाल जिस समय दूध-घी बेचनेके लिये निकलते, उस समय थोड़ी रस्सी और एक चोंगा रखते और उस चोंगेसे घी नापते और रस्सीमें गांठ देते जाते हैं। यही रस्सी उनके हिसाबका खाता-पत्र है। इसके अतिरिक्त दूसरे लोग जो हिसाब करना नहीं जानते और गृहस्थोंके घरमें द्रव्य-सामग्री पहुँचाते, वह किवाड़ तथा खम्भे पर चूनेकी टीप लगा देते हैं। इसीसे उनका पूरा-पूरा हिसाब हो जाता है। वङ्गदेशके अशिक्षित पुरुष जब किसी दुकानदारसे कुछ उधार लेने जाते, तो बांसकी एक पतली शाखा ले लेते हैं। दुकानदार उन्हें उधार दे और उस बांसको दो भाग कर आधा अपने पास रखता और आधा खरीदारको दे देता, जिसपर उधारका हिसाब आंकसे लिख दिया जाता है। मालूम होता, कि इस तरह आंक अर्थात् चिह्न बनानेकी प्रथा बहुत कालसे भारतवर्षमें प्रचलित है।

अब ध्यान देनेकी बात है, कि पहले गणितशास्त्रकी उत्पत्ति किस देशमें हुई और रूढ़ अङ्कको संख्या नौ तक ही क्यों निर्द्धारित रही। "आबू जाफ़र महम्मद बेन् मूसा अल् खारिमि" नामक गणितकी पुस्तक भारतवर्षीय गणित शास्त्रका अनुवाद है। अरबनिवासी स्पष्ट ही स्वीकार करते हैं, कि इस मूल पुस्तकके लेखक ब्राह्मण थे। सन् ई०के ७वें शताब्दमें यह अनुवाद पहले बगदाद नगरमें प्रकाशित हुआ था। कुछ दिन बाद लैटिन भाषामें भी इसका अनुवाद किया गया। युइपिक्ने अनुमान किया है, कि दो प्रशस्त उपाय द्वारा गणित शास्त्र भारतवर्षसे अरब आदि देशमें पहुंचा होगा। सन ई०के ३रे शताब्दमें मिस्रदेशके बणिक् व्यापारकी सुविधाके लिये भारतवर्षसे अङ्कविद्या अलेक्ज़ेण्ड्रिया नगरीको ले गये थे। इसके अतिरिक्त प्लाटिनस्, इयूमारिनो आदि विद्वानोंने उज्जैनके व्यापारियोंसे अङ्कशास्त्र सीखा था। अन्तमें मिस्रवासियोंके पास यहूदियों और रोमके अधिवासियोंने गणित विद्या सीखी। इससे समझा जा सकता है, कि गणित शास्त्रकी सृष्टि पहले भारतवर्षमें ही हुई थी।

पूर्वकालके ब्राह्मण अङ्कविद्याके गुरु थे। अरबी, मिस्री, यहूदी और रूमी उन्हीं गुरुके शिष्य हैं। हमें विश्वास है, कि इस देशमें १, २, ३ इत्यादि साङ्केतिक चिह्न द्वारा अङ्कपात न किया जाता था। उस समय वर्णमालाके क, ख आदि किसी विशेष-विशेष वर्णसे संख्या लिखी जाती थी। यह निश्चित कर सकनेसे कि, यह अनुमान सत्य है या नहीं, यह भी निश्चित किया जा सकेगा, कि रूढ़ अङ्क नौ ही क्यों हुए।

यहूदी और रूमी, ब्राह्मणोंके शिष्य हैं। उन्होंने आर्य जातिसे गणित शास्त्र पढ़ा था। शिष्यका काम देख कर यह बात भी समझी जा सकती, कि गुरुने उन्हें

किस प्रकार पाठ पढ़ाया है। प्राचीन यहूदी-वर्णमाला-के पहले नौ अक्षर अर्थात् अलिफ़, बेत्, गिमिल्, दालेख्, हे, वाउ, जैन्, चेत् और टेत् द्वारा एकसे नौ संख्या तक लिखते थे। उनके परवर्ती दूसरे नौ वर्ण द्वारा दशसे नव्वे तक लिख लेते रहे। वर्णमालाके अन्तिम चार वर्णसे यथाक्रममें एक सौसे ले चार सौ तक लिखा जाता था। यूनानी भी यहूदियोंकी तरह अलिफ़, बे प्रभृति वर्णमालाके वर्ण द्वारा १, २ इत्यादि अङ्क लिखते थे। यूनानी भाषाका दश ▵ (D) अर्थात् डेका या दशके आद्यक्षरसे लिखा जाता था। रूमी एक लिखनेको एक खड़ी लकीर (I) और दो लिखनेको दो खड़ी लकीरें (II) इत्यादि बना देते थे। दश लिखनेके लिये (X) अंगरेजी एक्सके समान वह एक चिह्न बनाते थे। इसी तरह दो एक्ससे बीस और तीनसे तीस इत्यादि अङ्क लिखते थे। (C) चिह्नसे १०० लिखा जाता था। (M) चिह्न सहस्र संख्याका बोधक था।

ऊपर लिखे हुए प्रमाणसे समझा गया, कि प्राचीन यहूदी, यूनानी और रूमी १, २, ३, इत्यादि साङ्केतिक चिह्न द्वारा अङ्कपात न करते और संख्या लिखनेके अक्षर केवल नौ ही न थे। वह बड़ी-बड़ी राशि लिखनेके लिये वर्णमालाके कई वर्णका प्रयोग करते थे।

भारतवर्षके ब्राह्मण इन सब जातियोंको अङ्कविद्या-के गुरु हैं, फिर भी उस समयके ब्राह्मण क्या करते थे? इस देशमें अच्छा इतिहास नहीं, इसीसे कठिन विषयकी मीमांसा दुर्घट हो जाती है। किन्तु इस समय भी पुराना आचार-व्यवहार जो कुछ विद्यमान है—उसीसे हमारा यह उद्देश्य सिद्ध हो जायेगा। बोध होता है, कि पहले ब्राह्मण भी वर्णमालाके वर्णविशेषसे १, २ इत्यादि अङ्क लिखते थे। क्योंकि, पञ्जाबके उत्तर टाकरी भाषामें अब भी एक, दो तीन, इत्यादि संख्याबोधक शब्दके आद्यक्षर द्वारा (ए, द्वि, त्रि इत्यादि) १, २, ३, प्रभृति अङ्क लिखे जाते हैं। अनुमान यही है, कि वहांके रहनेवालोंने आज तक अपनी प्राचीन पद्धति नहीं छोड़ी। इस समय वह जिस प्रथासे अङ्क लिखते हैं, इसमें सन्देह नहीं, कि वह, आर्य जातिकी पुरानी प्रथा है।

संस्कृत भाषाकी संख्याकी विवेचना कर देखनेसे जाना जा सकता है, कि आर्योंके गणित-विद्या भली भांति सीख लेने पर दशमिक अङ्कपात-पद्धतिकी सृष्टि हुई थी। नौ तक रूढ़ संख्याको लेकर, पीछे केवल एक-एक शून्यके सहारे उत्तरोत्तर दशगुणके हिसाबसे संख्या बढ़ाना मूढ़ मनुष्योंकी बुद्धिमें नहीं आ सकता; क्योंकि, अङ्कपातमें सङ्कलन, व्यवकलन और गुणका नियम है। पञ्चदश कहनेसे दश और पांच (१०+५) समझा जाता है। इसलिये इसमें सङ्कलन द्वारा यह राशि लिखी गई। एकोनविंशति कहनेसे (२०−१) बीससे एक कम होता है। इसलिये इसमें व्यवकलन हुआ। त्रिंशत् कहनेसे (१०×३) तीन गुणित दश मानते हैं; अतः यहां गुणनका नियम काममें लाया गया। ऋग्वेद संसारके सभी ग्रन्थोंसे प्राचीन है। उसी ऋग्वेदमें लिखा है,—

> "त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशा बन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः।
> षष्टिं सहस्रा नवतिं नवश्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक्।"
>
> १।५३।९।

हे इन्द्र! आपने लोकविश्रुत, सहायरहित होकर राजा सुश्रवासे आक्रान्त बीस संख्यक (द्विर्दश) जन-पदके अधिपतियों और उनके साठ हज़ार निन्यानवे (६००००+९०+९) अनुचरोंको अपने शत्रुनाशक अस्त्र द्वारा विनष्ट किया था। यहां द्विर्दशमें (२×१०) गुणक्रिया और साठ हज़ार+नव्वे+नौ—इसमें सङ्क-लनका नियम चला। इसीसे यह मानना पड़ा, कि आर्य दशमिक पद्धतिकी सृष्टि करनेसे पहले जोड़, बाक़ी और पूरण करना जानते थे।

यह प्रतिपन्न कर दिया गया, कि यहूदी, रूमी, यूनानी तथा आर्य वर्णमालाके वर्ण द्वारा एक, दो, आदि अङ्क लिखते थे। किन्तु इस नियममें कितनी ही अड़चन है, किसी बड़ी संख्याको लिखनेके लिये एक साथ कितने ही वर्ण लिखना पड़ते हैं। मालूम होता है—इसीसे आर्योंने विचारा, कि जैसे वर्णकी

परस्पर योजना द्वारा सकल प्रकार शब्द लिखे जाते, वैसे ही सकल राशि लिखनेके लिये भी कोई उपाय उद्भावित करना आवश्यक था। यही सोच और अ, इ प्रभृति नौ ह्रस्वस्वर देख उन्होंने १, २ प्रभृति नौ रूढ़ अङ्ककी कल्पना की; और अनुस्वारको देख शून्य (०) बनाया। इसमें सन्देह नहीं, कि वर्तमान १, २ इत्यादि अङ्कके साङ्केतिक चिह्न अ, इ, प्रभृति स्वर या एक, दो इत्यादि शब्दवाले आद्यक्षरके अपभ्रंश हैं।

अङ्कक (सं० पु०) चिह्न लगानेवाला। गिनैया। हिसाबिया।

अङ्ककार (सं० पु०) १ जो लड़ाई या बाजीमें हार-जीतका निर्णय करे। २ परीक्षक। ३ न्यायकर्ता।

अङ्कगणित (सं० पु०) गिनतीका हिसाब। इल्मे हिन्दसा। अरिथमेटिक। गणित देखो।

अङ्कतन्त्र (सं० क्लो०) अङ्कप्रतिपादकम् तन्त्रम्, तन-ष्ट्रन् तन्त्रम्। अङ्कशास्त्र; पाटीगणितादि।

अङ्कति (सं० पु०) अञ्च-अति। अञ्चे: को वा। उण् ४।६१। १ ब्रह्मा। २ अग्नि। ३ वायु। ४ अग्निहोत्री। (त्रि) ५ चलिष्णु। (स्त्री०) अङ्कती।

अङ्कधारण (सं० क्लो०) अङ्क-धृ-णिच्-ल्युट् भावे। चिह्न-धारण करना, गोदाना।

अङ्कधारिणी (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो तन्त्रमुद्राके चिह्नको धारण करे। २ अपने शरीर पर गोदना गोदानेवाली।

अङ्कन (सं० क्लो०) अङ्क-ल्युट् भावे। १ चिह्नकरण, गोदना। करणे ल्युट्। २ जिससे चिह्न किया जाये। ३ गिनती। ४ लेख।

वैष्णव शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म आदि, और शैव त्रिशूल अथवा शिवलिङ्गका चिह्न अपने शरीर पर अङ्कित कराते हैं। रामानुज-सम्प्रदायमें यह रीति विशेष दिखाई देती है।

अङ्कनीय (सं० त्रि०) आंकने योग्य, छापने योग्य।

अङ्कपरिवर्तन (सं० क्लो०) करवट।

अङ्कपल्लव (सं० क्लो०) अक्षरके स्थानमें अङ्ककी योजना।

अङ्कपात (सं० पु०) अङ्क-पत-घञ्, ६-तत्। अङ्क लिखना। एकसे लेकर नौ तकके मूल अङ्क और शून्यकी सहायतासे गुण और योग देकर जो राशि लिखी जाती है, उसे अङ्कपात कहते हैं। अङ्कविन्यास, राशिलिखन।

अङ्कको दाहनी ओर जितने शून्य दिये जायंगे, मूल अङ्ककी उतनी ही दशगुण संख्या बढ़ेगी। जैसे, एक (१) अङ्ककी दाहनी ओर शून्य (०) रखनेसे १० हो जायेगा, अर्थात् एककी दसगुण संख्या बढ़ेगी। दोकी (२) दाहनी ओर (०) शून्य देनेसे उसको भी दशगुण संख्या होगी। इसी तरह ३० तीस, ४० चालीस, ५० पचास, ६० साठ, ७० सत्तर, ८० अस्सी, ९० नव्वे, १०० सौ इत्यादि समझना चाहिये। इस प्रकार लिखे गये अङ्कको राशि कहते हैं। यथा—

> "एकं दशं शतञ्चैव सहस्रमयुतन्तथा।
> लक्षञ्च नियुतञ्चैव कोटिरर्बुदमेव च॥
> वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शङ्खपद्मौ च सागरः।
> अन्त्यं मध्यं परार्द्धञ्च दशवृद्ध्या यथोत्तरम्॥"

एक राशिमें जितने अङ्क जोड़े जायंगे, पूर्व राशिके ऊपर उतनी ही संख्या बढ़ेगी। जैसे—१०+१=११। अतएव दश पर एक बढ़नेसे ग्यारह हुआ। इसी तरह १०+२=बारह। १०+९=उन्नीस। २०+२=बाईस। ३०+९=उन्तालीस।

एकसे एकक, इकाई; दोसे दश, दहाई; तीनसे शत, सैकड़ा; चारसे सहस्र, हज़ार; पांचसे अयुत, दश हज़ार; छःसे लक्ष, लाख; सातसे नियुत, दश लाख; आठसे कोटि, करोड़; नौसे अर्बुद, दश करोड़; दशसे वृन्द, अरब; ग्यारहसे खर्व, दश अरब; बारहसे निखर्व, खरब; तेरहसे शङ्ख, दश खरब; चौदहसे पद्म, नील; पन्द्रहसे जलधि, दश नील; सोलहसे अन्त्य, पद्म; सत्रहसे मध्य, दश पद्म; और अट्ठारह अङ्कसे परार्ध, शङ्ख होता है।

राशि बहुत बड़ी हो जाने पर पहले दाहनी ओरके तीन अङ्क छोड़ एक चिह्न दे पीछे दो-दो अङ्कके बाद एक-एक चिह्न लगानेसे, गिननेमें सुविधा होती है।

३,२७,५१,७२,८४,३७,८१,२४,७८०—इस समस्त राशिको बांई ओरसे गिनना होगा। जैसे—

तीन परार्द्ध, दो मध्य, सात अन्त्य, पांच जलधि, एक पद्म, सात शङ्क, दो निखर्व, नौ खर्व, चार वृन्द, तीन अर्बुद, सात कोटि, आठ नियुत, एक लक्ष, दो अयुत, चार सहस्र, सात सौ अस्सी।

राशिको संख्या नियत करते समय दाहनी ओरसे गिनना पड़ता है। दाहनी ओरका पहला अङ्क एकके स्थानमें, दूसरा अङ्क दशके स्थानमें, तीसरा सौके स्थानमें इत्यादि समझना चाहिये।

१, २, ३, आदिको पूर्ण अङ्क कहते हैं। भग्नाङ्क या भग्नांश लिखनेके दूसरे चिह्न हैं। ४ चार एक पूर्ण अङ्क है। चारको दो समान भागोंमें बांटनेसे एक-एक भागमें दो होता है। परन्तु १ एक अङ्क दो समान भागोंमें बांटा नहीं जा सकता। इसलिये इसका समान भाग दिखानेको चिह्न है। जैसे $\frac{१}{२}$ लिखनेसे, किसी एक समस्त पदार्थके दो भाग किये गये समझना होगा, और उन दो भागोंमेंसे एक भागका लिया जाना मानना पड़ेगा। इसी तरह $\frac{३}{४}$ लिखनेसे किसी समस्त पदार्थके चार समान भागोंसे तीन भाग लिये गये समझे जायेंगे। इस तरहके अङ्कपातको भग्नांश कहते हैं। भग्नांश देखो।

एक प्रकारका भग्न अङ्क और भी है, उसे दशमिक भग्नांश या दशमलव कहते हैं। पहले ही लिख दिया गया है, कि किसी अङ्कको दाहनी ओर एक-एक शून्य देनेसे प्रत्येक शून्यमें दशगुण संख्या बढ़ेगी। दशमिक भग्नांश ठीक इसके विपरीत हैं। किसी अङ्कको बांई ओर एक-एक शून्य देनेसे उस अङ्ककी दशगुण संख्या कम होते जाती है। जैसे—१, एक संख्या है। ०१, इससे एक संख्या का दशगुण कम समझ पड़ता है। ००१, इससे एक संख्याका शतगुण कम होता है। इस तरह घटनेका गूढ़ तात्पर्य यह है—

देखनेमें आता है—१ एक संख्याको एक स्थान बांई ओर हटानेसे १०, और दो स्थान बांई ओर हटानेसे १०० होता है। यहां प्रत्येक बार दशगुण संख्या बढ़ती है। फिर एक स्थान दाहनी ओर हटानेसे ०१० दश, और दो स्थान दाहनी ओर हटानेसे ००१ एक ही जाता है। अर्थात् प्रत्येक बार संख्या दशगुण कम होती है। अतएव इससे यही निश्चित हुआ, कि किसी अङ्कको जितना ही दाहने हटाया जायगा, उतना ही दशगुण संख्या कम होती जायेगी। अङ्कको बाईं ओर शून्य देनेसे उसको दाहनी ओर हटाना समझा जाता है। परन्तु अङ्कको बांई ओर शून्य-स्थानमें विन्दुका प्रयोग होता है। जैसे—°२। इस तरह लिखने पर यही समझा जायगा, कि दोके बाएं एक विन्दु है। अर्थात् २ अङ्कका दशगुण कम है। दशमीक और भग्नांश देखो।

इसी तरहके अङ्कपातको पाटीगणित, अङ्क या राशि कहते हैं। वीजगणितके अङ्क वर्णमालाके वर्णसे लिखे जाते हैं। इनको संख्या अनिर्दिष्ट है। जैसे—क, ख, ग इत्यादि वर्णको १, २ आदि अङ्कके तुल्य माना जाता है। क, ख वर्ण कोई बंधी संख्या नहीं। २क कहनेसे कके स्थानमें कोई भी संख्या रखी जा सकती है। सङ्कलन और व्यवकलन देखो।

अङ्कपादव्रत (सं० क्लो०) एक प्रकारका व्रत।

अङ्कपालि, अङ्कपाली (सं० स्त्री०) अङ्केन पालयतीति, अङ्क-पालि-इ। स्त्री-ङीप् वा अङ्कपाली। १ धात्री। धाय। २ कोटि। ३ एक प्रकारके गन्धद्रव्यका वैदिक नाम। ४ आलिङ्गन, लपट-झपट।

अङ्कपालिका (सं० स्त्री०) आलिङ्गन, हमागोशी।

अङ्कपाश (सं० पु०) अङ्कका संस्थापन-विशेष। अङ्क-बन्धन। आंक-बंधाई।

अङ्कपूरण (सं० क्लो०) अङ्कको गुण करना। अंगरेजीमें गुणनका चिह्न × ऐसा है। ४×३—इस तरह दो अङ्कके बीचमें चिह्न रहनेसे गुण करना समझा जायेगा। गुण देखो।

अङ्कबन्ध (सं० पु०) ६-तत्। क्रोड़-बन्ध।

अङ्कमाल (सं० पु०) आलिङ्गन। भेंट। गले लगाना। हमागोशी।

अङ्कमालिका (सं० स्त्री०) १ छोटी माला। हलका हार। २ आलिङ्गन। भेंट। मिलाप।

अङ्कलोद्य (सं॰ पु॰) अङ्क-लोड-ण्यत्। एक प्रकारका लता। चिञ्चोड़।

अङ्कलोप (सं॰ पु॰) अङ्कस्य लोपः ६-तत्। अङ्कका वियोग-साधन, बाकी निकालना, घटाना।

अङ्कस् (सं॰ क्ली॰) अञ्चि-असुन्। अञ्चाजियुजिभृजिभ्यः कुश्च। उण् ४।२१५। १ चिह्न, निशान। २ शरीर, जिस्म।

अङ्कस (सं॰ क्ली॰) अङ्कस्-अच् अस्त्यर्थे। चिह्नयुक्त, निशानवाला। वह प्रदार्थ जिसमें चिह्न लगा हो।

अङ्कविद्या (सं॰ स्त्री॰) अङ्कका हिसाब, इल्मे हिन्दसा।

अङ्काङ्क (सं॰ क्ली॰) 'अङ्के मध्ये अङ्काः शतपत्रादिचिह्नानि यस्य' 'आपो वै अङ्काङ्काः छन्दः।' (वाजसं महीधरः १५।५।) जल, पानी, आब।

अङ्कावतार (सं॰ पु॰) नाटकका कोई अङ्क शेष हो जाने पर आगामी अभिनयका पात्रों द्वारा आभास।

अङ्किका (सं॰ स्त्री॰) १ चिह्न लगानेवाली। २ हिसाब करनेवाली। ३ गिननेवाली।

अङ्कित (सं॰ त्रि॰) अङ्क-क्त। १ चिह्नित, निशान लगा। २ लिखित। ३ वर्णित।

अङ्किन् (सं॰ त्रि॰) अङ्क-इनि, अङ्के क्रोड़े विद्यते वाद्य-काले। मृदङ्ग आदि जिन बाजोंको गोदमें रखकर बजाना पड़ता है। गोदमें रखकर बजाये जानेवाले। (ऋक् ३।४५।४)

अङ्किनी (सं॰ स्त्री॰) अङ्क-इनि स्त्रियां ङीप्, अङ्कानां चिह्नानां समूहः। खलादिभ्यः इनिर्वक्तव्यः। कात्या॰ वा॰। १ अङ्कसमूह। अङ्क-इनि अस्त्यर्थे ङीप्। २ अङ्कविशिष्टा।

अङ्किल (हि॰ पु॰) वह बछड़ा जिसे वृषोत्सर्गमें दाग कर छोड़ देते हैं। दागा हुआ बछड़ा या साँड़।

अङ्कुर, अङ्कूर (सं॰ पु॰) अङ्क-उरच्। मन्दिवाशिमथिचतिचङ्क्यङ्किभ्य उरच्। उण् १।३८। १ वीजसे उत्पन्न नया पौधा, अंखुआ, कनखा। २ नोक। ३ रक्त, खून। ४ जल। ५ लोम, रूयां।

स्त्रियां जिस समय प्रथम गर्भवती होती हैं, उस समय गर्भके भीतर सन्तानकी कोई अवयव-आकृति नहीं रहती, केवल रक्त और शुक्र मिला हुआ कुछ लारसा पदार्थ गर्भ-स्थानमें एकत्र होता है। धीरे-धीरे परिपक्व होने पर उसी शोणित-शुक्रसे फिर हाथ, पैर, आंख, मुंह, नाक, कान सब उत्पन्न होते हैं। अङ्कुर भी ठीक ऐसा ही है। जब तक अङ्कुर वीजके भीतर रहता, तब तक उसमें वृक्षका कोई अवयव स्पष्ट दिखाई नहीं देता; तथापि जड़, तना, शाखा, पल्लव सब कुछ होता है। मट्टीमें वीज गाड़नेसे पौधा फूटता और पत्ते भरने पर धीरे-धीरे पेड़ बन जाता है। पक्षियोंके अण्डोंकी भी यही दशा है। अण्डेके भीतरका पीला पदार्थ ही बच्चा है। ताव देते-देते अण्डा पुष्ट हो जाने पर उसी पीले पदार्थसे बच्चा उत्पन्न होता है। परन्तु यदि पक्षीके अण्डा होते ही वह जल्द-जल्द तोड़ डाला जाये तो केवल लार जैसा पदार्थ निकल पड़ता है। उसमें बाजू, चोंच, पैर आदि पक्षी जैसा कुछ दिखाई नहीं देता। अतएव मनुष्यके गर्भका शोणित-शुक्रमय भ्रूण, अण्डेका पीला पदार्थ और वीजका अङ्कुर—यह तीनो एक ही प्रकारके पदार्थ हैं।

भीजे हुए चनेके ऊपरका छिलका निकाल डालनेसे दाल निकल पड़ती है। वह दाल एक नहीं होती, आधी-आधी दो टुकड़ोंमें एक साथ मिली रहती है। नख द्वारा सावधानसे चीरने पर एक ओरका जोड़ खुल जाता, परन्तु दूसरी ओर पतले सूतकी तरह एक डण्ठलमें दो दाल चिपकी रहती हैं, जो बिना खींचे नहीं छूटतीं। वृक्षादिका जीवन इसी डण्ठलमें होता है। उद्भिद् शास्त्रके पण्डित इसी पदार्थको अङ्कुर कहते हैं।

वीजके ऊपरी भागमें जो छिपाने वाली झिल्ली होती है, उसे छाल कहते हैं। अंगरेजीमें उसका नाम इण्टेगूमेण्ट (Integument) है।

अङ्कुरके दोनो भागोंको अंखुआ (Cotyledons) कहते हैं। मट्टी फोड़ कर पेड़ कुछ बड़ा होनेसे अंखुआ गिर पड़ता है। सब वृक्षोंके अंखुओंकी संख्या समान नहीं होती। किसी-किसी वृक्षके अङ्कुरमें एक ही पत्ता रहता है, जिसे एकपर्णिक (Monocotyledon) कहते हैं। जैसे, नारियल, ताल इत्यादि। कितने ही पौधोंके अङ्कुरमें दो पत्ते रहते, उन्हें द्विपर्णिक (Dicotyledon) कहते हैं। जैसे, कुम्हड़ा, कद्दू इत्यादि। फिर किसी-किसी पेड़के वीजमें चार-पांचसे

भी अधिक पत्ते रहते हैं। डण्ठलको पतली और जड़ लगती और मोटी और वृक्षका तना, लता और गुल्मादिका डण्ठल होता है; वीजसे अङ्कुर निकलनेको अङ्कुर फूटना, अंखुआ निकलना, अंखुआना आदि कहते हैं। वीजमें किस तरह अङ्कुर निकलता और पेड़ोंमें जीवन कहांसे आता है—इसका पूरा विवरण जीवगर्भाधान (Fertilization) शब्दमें देखो।

वृक्षोंका जीवन अङ्कुरमें ही रहता है। उपयुक्त स्थानमें प्रयोजनके अनुसार ताप और जल, वायु तथा धूप पहुंचनेसे ही अङ्कुर धीरे-धीरे बढ़ने लगता है। उसके बढ़ते ही छिलका फूटता है। अङ्कुर फूटनेके लिये ईश्वरने कैसे सामान कर रखे हैं! पहले मट्टीके रसमें भीजकर वीजका छिलका कोमल होता, इधर भीतरका सूतसा अंश भी कुछ फूल उठता; उस समय सहजमें ही झिल्ली फट जाती और अंखुआ निकल पड़ता है। पहले अङ्कुरसे जड़ निकलती और मट्टीको भेद नीचे जाती, इसके बाद डण्ठल और अंखुआ बाहर निकलता है। इसीको हम लोग अङ्कुरोत्पत्ति कहते हैं।

कृषकोंको यह सब बात समझ लेना चाहिये, कि वीजसे जब तक वृक्ष नहीं उत्पन्न होता, तब तक अङ्कुरके जीवनकी किस तरह रक्षा होती, कितने दिनमें वीज पुराना होकर नष्ट हो जाता और उससे फिर वृक्ष क्यों नहीं होता। अण्डेपर झिल्ली रहती है, इससे वह जल्द नष्ट नहीं होता। चीटी आदि कीड़े भी इच्छा करनेसे उसे खा नहीं सकते। वीजके ऊपर भी छिलका रहता है, इसीसे भीतरका पदार्थ सहसा नष्ट नहीं होता, उसे जल्द कीड़े भी काट नहीं सकते। किसी-किसी वीजमें छिलका नहीं रहता। उसकी रक्षाका विधाताने दूसरा ही उपाय कर दिया है। वीज देखो।

आ
अ अ
इ
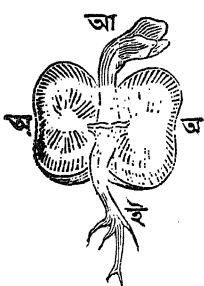
यहां नये अङ्कुरकी एक प्रतिमूर्ति दी गई है। (इ) जड़ मट्टीके भीतर चली गई है। (आ) डण्ठल और तना फैल उठा है। (अ-अ) दोनो पत्ते अङ्कुरमें लगे हैं।

वीज सुखा कर रखनेसे उसके भीतर अङ्कुर नहीं जमता। इस अवस्थामें वृक्षका जीवन ठीक जड़ पदार्थके समान (Dormant state) होता है। धान इत्यादि कितने ही शस्य एक वर्षमें ही पुराने हो जाते हैं, बोनेपर छिलका भली भांति नहीं फूटता। दो सौ वर्षका पुराना गेहूं खाया जा सकता है, परन्तु सात वर्षसे अधिक पुराना होने पर उस गेहूंसे वृक्ष नहीं लगता। इमली सेम, मटर प्रभृति जिन वृक्षोंमें फलियां लगती हैं (Leguminous plants), साठ वर्ष बाद बोनेपर भी उनके वीजसे अङ्कुर उत्पन्न होता है। राई एक सौ चालीस वर्ष तक रखनेसे भी नष्ट नहीं होती, खेतमें बोनेसे उसमें अच्छा अङ्कुर फूटता है। तीन सौ वर्षके पुरानी भुट्टेसे अङ्कुर निकल सकता है। खृष्ट जन्मके तीन सौ वर्ष बाद कुस्तुन्तुनियामें जो सब समाधि दिये गये थे, उनमें कितने ही प्रकारके वीज मिले। कितने ही युग बीत जाने पर भी वह वीज नष्ट न हुए, बोये जाने पर उनसे अङ्कुर फूटा। इन सब बातों पर ध्यान देनेसे यह निश्चित हुआ, कि उद्भिद्का वीज कितने दिनमें नष्ट हो जाता और फिर उससे वृक्ष नहीं होता। कितनों ही को विश्वास है, कि पुराने वीजके पेड़में पत्ते कम होते, परन्तु उनमें फल लगते हैं।

नये अङ्कुरके प्राणधारणका उपाय ठीक जन्तुओंके समान है। गर्भमें जिस समय सन्तान रहती है, उस समय वह जड़वत् मांसपिण्डके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। सिवा इसके गर्भमें दूधसे भरा स्तन नहीं, जिससे उदरपोषण हो सके। फिर उसे क्या खानेको मिलता है? सब जानते हैं, कि प्रसवके बाद फूल (Placenta) झरता है। इसके बाद लड़केका नारा चीरना पड़ता है। यह फूल और नारा ही लड़कोंकी जीवनरक्षाका प्रधान उपाय है। जिस तरह नाली बनाकर एक तालावका जल दूसरी जगह पहुंचाया जाता है, फूल और नारेका काम भी ठीक उसी प्रकारका है। प्रसूतिके शरीरका सत्त्व नाड़ी द्वारा सन्तानके शरीरमें आता है। उसीसे वह हृष्ट-पुष्ट होती है। इसीसे प्रसवके बाद शिशुका शरीर

विवर्ण और नीरक्त मालूम होने पर फूलके पाससे नारा टूह कर लड़केकी नाभीकी ओर खींच लानेसे वही नीरक्त शरीर फिर रक्तसे फूल जाता है। इसी उपायसे सूतिकागृहमें कितने ही अधमरे बच्चोंकी जान बच गई है।

भूमिष्ठ होनेके बाद जननी अपनी शिशु-सन्तानको बहुत दिन तक दूध पिलाकर प्रतिपालन करती है; परन्तु अङ्कुरकी मा कहां है, और क्या खाकर वीजके भीतर वह जीता और बढ़ता है? जिस वृक्षके वीजसे अङ्कुरकी उत्पत्ति होती, वही वृक्ष अङ्कुरकी मा है। जितने दिन तक सबल होकर मूल और पत्र द्वारा अङ्कुर अपना आहार नहीं जुटा सकता, उतने दिन वृक्ष उसके आहारका ठिकाना कर देता है। नवीन अङ्कुर जल्द बढ़ सकनेके लिये किसी-किसी वीजके नीचे अण्डेकी सफ़ेद लार जैसा पदार्थ (Endosperm) रहता है, फिर किसी बीजमें ऐसा नहीं भी होता। ऐसी अवस्थामें वीजपत्र ही अङ्कुरके आहारका प्रबन्ध करता है। जिस पदार्थको खींच कर अङ्कुर हृष्ट-पुष्ट होता, उसे श्वेतसार (Starch) कहते हैं। किन्तु श्वेतसार केवल जलके साथ गलकर द्रव नहीं होता। फिर बिना खूब पतला हुए भी वह अङ्कुरमें प्रवेश नहीं कर सकता। इसी लिये ईश्वरने उसे पतला करनेका उपाय भी कर दिया है। ताप पानेसे वायुका अक्सिजेन श्वेतसारके साथ मिल जाता है। मिलने पर अङ्गार १२ भाग और अक्सिजेन ३२ भाग (CO_2) निकल पड़ता है। इस अवस्थामें श्वेतसार चीनी (Sugar) और गोंद (Dextrine) बनकर जलके साथ खूब मिल जाता है। यही रस अङ्कुरमें प्रवेश करता, इसीसे वृक्ष बड़ा और सतेज होता है। जिस तरह हमारे पीनेके लिये बछड़ेको वञ्चित कर दूध गायके स्तनोंसे दूह लिया जाता, उसी तरह वृक्ष-शिशुकी भी मातृ-प्रदत्त खाद्य-सामग्रीको अपहरण कर लेता है। फिर भी, प्रभेद यही है, कि दूध पीनेके लिये केवल बछड़ेको वञ्चित करके उसका आहार ही हम छीन लेते हैं, परन्तु वीज खानेको केवल वृक्ष-शिशुके आहारको ही आहरण नहीं करता, वरं वीजमें स्थित पेड़का प्राण भी ले लेता है। चावल, गेहूं आदि शस्यका श्वेतसार ही हम लोगोंके जीवनको पोषण करता है।

विलायती विलो (Willow) प्रभृति पेड़का वीज दो-तीन घण्टेमें अङ्कुरित होता है। गुलाबका वीज अङ्कुरित होनेमें बहुत देर लगती है। इसमें सन्देह है, कि दो वर्षमें भी यह ठीक होता है या नहीं। किसी किसी वृक्षके वीजमें उसके नीचे गिरनेसे पहले ही अङ्कुर निकलता है। गेहूं आदि किसी-किसी शस्यके पकनेपर यदि कुछ दिन यथेष्ट धूप और पानी पहुंचे, तो वृक्षमें रहते ही वीजसे अङ्कुर फूट आता है। किसी-किसी स्थलमें कटहलका वीज भी वृक्ष पर ही अङ्कुरित होता और समुद्र किनारे भड़ नामक वृक्षका (Mangrove) घना जङ्गल लग जाता है। समुद्रके किनारे हमेशा जल उछल आता, तरङ्गके ऊपर तरङ्ग उठा करती है। वहां बहुतसे विघ्न रहते हैं। वृक्षसे पका वीज नीचे गिरकर जलमें डूब और बालू और मट्टीमें धंस सकता है। इसलिये ईश्वरने ऐसा नियम बनाया है, कि फल पक जाने पर भी पेड़से नहीं गिरता। वृक्षपर ही वीजसे अङ्कुर निकलता है। धीरे-धीरे वटवाली जटाकी तरह उसी अङ्कुरसे जड़ नीचे लटक मट्टीमें आ जमती है। उस समय वीजका डण्ठल फट जाता है। इससे ऐसे स्थलमें अन्यान्य जीवकी भांति वृक्ष अपने शिशु सन्तानको कुछ दिन तक गोदमें रखकर प्रतिपालन करता है। ईश्वरका ऐसा नियम न रहनेसे इतने दिनमें भड़ वृक्ष निर्मूल हो जाता।

पहले ही कहा गया है, कि अङ्कुर फूटनेके लिये तापकी आवश्यकता है। प्रयोजनके अनुसार जल, वायु और आलोक भी चाहिये। अब इन चारोंकी बात अलग-अलग लिखी जाती है।

बहुतसे पेड़ोंका वीज ७८ डिग्रीसे ९३ डिगरी

ताप

फ़ारेनहीट ताप लगनेसे अङ्कुरित होता है। इससे कम या अधिक ताप पाने पर कितने ही वृक्षका

अङ्कुर अच्छी तरह नहीं फूटता। इसीलिये अतिशय शीतप्रधान और अतिशय उष्णप्रधान देशोंमें वृक्षादि बहुत कम उत्पन्न होते ; जो वर्तमान हैं, उनमें अच्छे फलफूल नहीं दिखाई देते। जितनी (३२) डिग्री तापमें जल जमकर बरफ़ हो जाता है, उससे कम तापमें प्रायः कोई भी वीज अङ्कुरित नहीं होता। बड़े-बड़े वृक्षको भी शीतकालमें भरपूर आहार नहीं मिलता। जाड़ेके कारण वायुमें ताप नहीं रहता, इसीसे यथेष्ट पोषणाभावके कारण सब वृक्ष निस्तेज हो जाते हैं। पीछे वसन्तकालमें कुछ-कुछ गर्म और मीठी हवा चलने लगती है। तब वृक्ष उपवासके बाद मानो पथ्य खाने बैठते हैं। इसीसे किसीमें नया पत्ता, किसीमें नई कली, किसीमें नया फूल—सभी बात नई-नई दिखाई देने लगती है। उसी समय मालूम होता है, कि वृक्ष मानो मेंढक और सर्पादिकी तरह शीतकालमें खाते नहीं, सोया करते हैं। वसन्त ऋतु लगते ही उनकी नींद खुलती और फिर वह खाने लगते हैं। जिस देशमें आठ महीने जाड़ा पड़ता, वहां वृक्षादि आठ महीने उपवास करते हैं,—सम्पूर्ण न हो, कितना ही उपवास तो होता ही है। हिन्दुस्थानमें छः महीने जाड़ा पड़ता है। यहांके वृक्ष छः महीने अच्छी तरह खानेको नहीं पाते। इसीसे मालूम होता है, कि अङ्कुर फूटने और उद्भिद्की जीवनरक्षा करनेको ताप विशेष आवश्यक है। शीतप्रधान देशमें जो द्रव्य ग्रीष्म और वर्षामें उत्पन्न होता, इस देशमें जाड़ेके समय वह बोया ही जाता है। जैसे—आलू, मटर आदि। हिमालय प्रदेश पर आलू वर्षा ऋतुमें और इधर शीतकालमें होता है।

जलमें भीजनेसे वीजका छिलका कोमल होता, इसीसे उसे फाड़कर नया अङ्कुर निकल सकता है। कितने

जल

ही वीजका छिलका बहुत ही कड़ा होता है। अच्छी तरह भीजे बिना वह कोमल नहीं पड़ता, इसीसे अङ्कुरका मुख भी उसे फोड़ निकल नहीं सकता। उसे बहुत जलकी आवश्यकता रहती है। परन्तु यह नहीं कहा जाता, कि अङ्कुर निकलनेके लिये किस वीजको कितना जल चाहिये। किसी-किसी वृक्षका वीज अपने वज़नसे भी अधिक जल सोख लेता है। शैवाल, कमल, कुमुद, काई आदि कितनी ही लता जलमें उत्पन्न होती हैं। वीज बहुत दिन तक जलमें भीजनेसे सड़ जाता है, फिर उससे पेड़ नहीं होता। जिस तालावमें पङ्किल अर्थात् कीचड़ खूब रहता, उसमें कमलकी लता भी खूब बढ़ती है। वीज भड़कर गिरनेसे पानीमें सड़ जा सकता है। इसीसे खोलके भीतर रहते-रहते ही उसमें डण्ठल और पत्ते हो आते हैं। कोई वीज छूट पड़नेसे पत्तेके भीतर जाकर जड़ जमाता, कोई जलमें डूबकर अङ्कुर निकाल देता है। खोलके भीतर वीज रहते-रहते अङ्कुरित न होनेसे समस्त फल जलमें सड़ जाता।

पहले ही बता दिया है, कि वायुका अक्सिजेन

वायु

(Oxygen) श्वेतसारके साथ मिलनेसे शक्कर और गोंद उत्पन्न होता है। इसीसे नया अङ्कुर जल्द-जल्द बढ़ता और पुष्ट रहता है। सांस लेनेके समय अक्सिजेन न मिलनेसे जिस तरह जन्तु कभी जी नहीं सकता, उद्भिद्का भी हाल ठीक उसी तरह है। अक्सिजेन न मिलनेसे कोई वीज अङ्कुरित नहीं हो सकता। कोई-कोई वीज अपने वज़नके सौ भागोंसे एक भाग अक्सिजेन पाने पर अङ्कुरित होता है। गेहूं, राई आदि शस्यका दूसरा नियम है। इन्हें अपने वज़नके १० भागोंसे एक भाग अङ्कुरित होनेको अक्सिजेन चाहिये। जिन जललता और गुल्मादिका वीज जलमें ही भड़ कर गिर पड़ता, वह मछलीकी तरह जलके भीतर अपनी आवश्यकताके अनुसार अक्सिजेनको ग्रहण करते हैं।

इस बातको सब लोग नहीं मानते कि आलोक लगे

आलोक

बिना वीज अङ्कुरित नहीं होता। किसी-किसीका मत है, कि आलोक लगनेसे मट्टी, ताप और रसका कुछ तारतम्य होता, इसी कारण अंखुआ फूटनेके लिये आलोक आवश्यक बताया गया है। आलोक लगनेसे वीज जल्द अंखुआता है। परन्तु बहुतसे उद्भिदोंके वीज अन्धकार और प्रकाशमें समान

भावसे उगते हैं। किसी-किसी बीजमें आलोक लगनेसे अङ्कुर नहीं फूटता, इसीलिये उसको बोकर मट्टीसे ढांक देते हैं। किन्तु अँधेरेमें रखने पर उससे अङ्कुर निकलता है।

अङ्कुरक (सं० पु०) अङ्कु-घुरच्-क। पशुपक्षीका वासस्थान। १ घोंसला। खोंता। झोंझ। २ मांद, भाठी।

अङ्कुरित (सं० त्रि०) अङ्कुर-इतच्। तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्। पा ५।२।३६। अङ्कुरः संजातः अस्य। जाताङ्कुर। अंखुआया हुआ। जमा हुआ। निकला हुआ।

अङ्कुरित-यौवना (सं० स्त्री०) वह स्त्री जो यौवनावस्थाको प्राप्त हो रही हो। उभड़ती जवानीवाली स्त्री।

अङ्कुश (सं० पु०-क्ली०) अङ्क उशच्। सानसिवर्णसिपर्णसितण्डुलाङ्कुशचषालिल्वलपल्वलधिष्णाशल्याः। उण् ४।१०७। हाथी हांकनेका वक्राग्र लौहास्त्रविशेष। एक प्रकारका हथियार जिससे महावत हाथीको चलाता है। आँकुस। गजबाग। सृणि।

अङ्कुशग्रह (सं० पु०) अङ्कुश-ग्रह-अच्। शक्तिलाङ्गलाङ्कुशतोमरयष्टिघटघटीधनुष्षु ग्रहेरुपसंख्यानम्। कात्या० वार्तिक। निषादी। महावत। जो हाथीको आँकुससे हांके।

अङ्कुशहन्ता (हिं० पु०) एक प्रकारका बलवान् और दुष्ट हाथी जिसका एक दांत सीधा और दूसरा नीचेको झुका रहता है। गुण्डा।

अङ्कुशदुर्द्धर (सं० पु०) दुर-धृ-खल्। ईषद्दुःसुषुकृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्। पा ३।३।१२६। अङ्कुशेन दुःखेन ध्रियते। १ चिप्तहस्ती, मतवाला हाथी। २ दुर्दान्त हस्ती, बदमाश हाथी।

अङ्कुशधारिन् (सं० पु०) अङ्कुश-धारि-णिनि। अङ्कुशं धारयति। हस्तिपालक, महावत।

अङ्कुशमुद्रा (सं० स्त्री०) अङ्कुशाकार मुद्रा, वह मुद्रा जो आँकुस जैसी बनाई जाती है। मध्यमा अङ्गुलिको सरल कर और मध्यमा पर्वके मूलसे कुछ सिकोड़ जो मुद्रा बनती है, उसे अङ्कुशमुद्रा कहते हैं। यह मुद्रा पूजादिके समय तीर्थावाहन करनेको आवश्यक होती है। तीर्थावाहनका मन्त्र यह है—

"गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥"

अङ्कुशी (सं० स्त्री०) अङ्कुशोऽस्त्यास्याः अच्। गौरादि० ङीष्। १ चित्तगतिको दमन करनेका तत्त्वज्ञानरूप उपाय। २ जैनियोंकी एक देवी।

अङ्कूष—अङ्कुश देखो।

अङ्कोट, अङ्कोठ, अङ्कोल (सं० पु०) अङ्क-ओट, ओठ-ओल। पीतसार। सुगन्धिपुष्प। रक्तफल, Alangium decapitalum.

यह पौधा अधिक नहीं बढ़ता। यह हिमालय पर्वतके निकटवर्ती स्थान, गङ्गा किनारे, अयोध्या, वङ्गदेश और मध्य-भारतमें बहुत उत्पन्न होता है। इसके तनेका बकला क्रमिघ्न और विरेचक है। २५ रत्ती मात्रामें सेवन करानेसे वमन होता है। २-३ रत्ती मात्रामें सेवन करानेसे ही जी मिचलाने लगता; किन्तु इस तरह वमनोद्वेग होनेपर भी धातुस्थ पुरातन ज्वर छूट जाता है। चिकित्सकोंका कथन है, कि यह कुष्ठ रोगका सर्वोत्तम औषध है। डाक्टर मूदिन शरीफ़ने (Dr. Moodeen Shariff) भी यह बात मानी है। उनका बनाया हुआ Supplement to the Pharmacopœia Indica देखो। कितने ही संन्यासी भी चावलमुगरी आदि कई दवाओंके साथ अङ्कोलके मूलकी छाल देते हैं। रोगके आरम्भमें यह दवा सेवन करनेसे फिर घाव होनेका भय नहीं रहता। कुष्ठ देखो।

अङ्कोलसार (सं० पु०) ६-तत्। १ अङ्कोल वृक्षका सार। २ एक प्रकारका विष।

अङ्कोलिका (सं० स्त्री०) अङ्क-उल-क-आप्। आलिङ्गन, हमागोशी।

अङ्कोल्लिका (सं० स्त्री०) अङ्कोट वृक्ष। अङ्कोलका पेड़।

अङ्क्य (सं० पु०) अङ्क-यत्। तत्र साधुः। पा ४।४।९८। १ जो बाजा गोदमें रखकर बजाया जाता है। मृदङ्ग, बायाँ आदि। (त्रि०) चिह्न लगाने योग्य। निशान करने काबिल।

अङ्क्लेश्वर—बम्बई प्रान्तके भड़ौंच ज़िलेका दक्षिण ताल्लुक, जिसमें हांसोतका महकमा भी मिला है। इसका क्षेत्रफल २९४ वर्ग मील है। इसमें ९९ ग्राम

और नगर विद्यमान हैं। अङ्क्लेश्वर इसका प्रधान नगर है, जिसकी लोकसंख्या दश हजारसे अधिक होगी। वार्षिक आय कोई सवा पांच लाख रुपया है। पानी खूब मिलता है। पूर्वमें एक ऊंचा टीला है, जहांसे भूमि नर्मदाकी ओर ढालू होते चली गई है। वर्षा ऋतुमें कितने ही ग्राम पानीसे डूब जाते हैं। नर्मदाके उत्तर भूमि बहुत ही उपजाऊ है। कीम और नर्मदाके बीच केवल गेहूं और ज्वार उत्पन्न होती, जिसको गहरी वृष्टिकी आवश्यकता रहती है।

अङ्क्लेश्वर नगर—बम्बई प्रान्तके भड़ोंच जिलेका प्रधान नगर। यह भड़ोंच नगरसे साढ़े तीन और नर्मदाके वाम तटसे डेढ़ कोस दूर है। यहां रेल और सड़क दोनो बनी हैं। रुई ही प्रधान व्यवसाय है, जिसको साफ करनेके कुछ पुतलीघर भी हैं। राजपीपलेके जङ्गलका बांस भी खूब बिकता और साबुन और पत्थरकी चक्कियोंका खासा व्यवसाय होता है। नगरमें सब-जजकी अदालत, हस्पताल, पुस्तकालय, स्कूल आदि प्रतिष्ठित हैं। पहले यहां कागज़ भी बनता था, किन्तु अब यह काम बन्द हो गया।

अङ्ग—चिह्नयुक्त करणमें अदन्त चुरादि उभ-प० सकर्मक सेट् धातु। अङ्गयति, अङ्गयते। अङ्गापयति, अङ्गापयते।

अङ्ग (सं० क्ली०) अङ्ग-अच्। १ शरीर। २ मन। ३ अंश। ४ अवयव। ५ जन्मादिका लग्न। ६ अङ्गदेश। ७ अप्रधान। ८ उपाय।

सुश्रुत वैद्यकग्रन्थमें अङ्ग और उपाङ्गके विषय पर लिखा है—मस्तक प्रधान अङ्ग है। उसका उपाङ्ग कुन्तल है। उसके अन्तर्गत जटा, ललाट, भ्रूयुगल, नेत्रद्वय, आंखके दो तारा, कृष्णवर्ण अक्षिगोलक, दृष्टिद्वय, श्वेतभाग, वर्त्मद्वय, बिरनी, पलक, अपाङ्ग, शङ्खद्वय, कर्ण, कर्णकुहर, कानकी लौर, कपोल, नासिका, ओष्ठ, सृक्कण, मुख, तालु, हनु, दन्त, मसकुर (दन्तवेष्ट), जिह्वा, चिबुक, और गलदेश है। द्वितीय अङ्ग ग्रीवा और तृतीय बाहुयुगल है। बाहुका उपाङ्ग—बाहुके ऊपर स्कन्ध, नीचे प्रगण्ड, उसके नीचे कुहनी, कुहनीके नीचे प्रकोष्ठ मणिबन्ध, हस्ततल, हस्तद्वय, हाथकी दश अङ्गुलि और नख है। चतुर्थाङ्ग वक्षःस्थल है। वक्षका उपाङ्ग स्तनद्वय, जो स्त्री-पुरुष भेदसे विभिन्न है। हृदय कमलके फूलकी तरह अधोमुख रहता है। वह जाग्रत् अवस्थामें विकसित और निद्रितावस्थामें सङ्कुचित हो जाता है। कक्षद्वय कक्षका सन्धिद्वय और वङ्क्षणद्वय भी इसी चतुर्थाङ्गमें है। उदर पञ्चमाङ्ग है। षष्ठाङ्ग पार्श्वद्वय;—पृष्ठवंश और समस्तपृष्ठ सप्तमाङ्ग है। हृदयके नीचे वाम-भागमें फेफड़ा और दक्षिण-भागमें यकृत् रहता है। यकृत् ही पित्तका स्थान है, जो रक्तसे उत्पन्न होता है। हृदयके नीचे दक्षिण-भागमें क्लोम है। यही जलवाहिशिराका मूल और तृष्णानिवारक है। यह क्लोम तिलक, वात और रक्तसे उत्पन्न होता है। वायुयुक्त रक्तसे कालोयक निकलता है। मेद और शोणितके सारसे वृक्कयुगलकी उत्पत्ति है। कहते हैं, कि वृक्कयुगल जठरस्थ मेदको पुष्टिकर है। पुरुषका अन्त्र साढ़े तीन व्याम और स्त्रीका तीन व्याम रहता है। इसके बाद उण्डूक, कटि, त्रिक, वस्ति, और ऊरुयुगलका सन्धिद्वय है। इसके बाद कस्तुरादिका मूल है। यह शुक्र, मूत्र और स्त्रीके गर्भाधारका साधक है। इसके बाद शङ्खनाभिके आकारवाली स्त्रीकी योनि है। इसके तीन आवर्त हैं। गर्भशय्या तृतीयावर्तमें स्थित है। कफ, रक्त, मांस और मेदसे कोषद्वयकी उत्पत्ति है। यह पुरुषको वीर्यवाहिशिराका आधार है। गुह्यका परिमाण चार अङ्गुलि है। यह शङ्खावर्त तुल्य तीन बलिविशिष्ट है। पहले प्रवाहिनी नाड़ी है, इसका परिमाण डेढ़ अङ्गुलि है। इसके बाद उत्सर्ज्जनी है, इसका भी परिमाण डेढ़ ही अङ्गुलि है। इसके बाद सञ्चरणी है, इसका परिमाण केवल एक अङ्गुलि है। मल निकलनेके लिये इस पथकी सृष्टि हुई है। इसके बाद नितम्ब है। नितम्बके नीचे सक्थिनी अष्टमाङ्ग है। सक्थिनीका उपाङ्ग—जानु, पिण्डिका, जङ्घा, गुल्फ, पदद्वय, पदकी अङ्गुलि तथा नख है।

आजकल युरोपीय पण्डितोंने देहकी क्रियाके सम्बन्धमें जो निश्चित किया, उसके साथ तुलना

करनेसे ऋषियोंके शरीर-प्रकरणमें कितना हो भेद निकलता है। अङ्गोंका विशेष विवरण उनके नाममें देखो। इसके अतिरिक्त नोचे लिखे शब्दोंमें भी बहुत सी बातें मिलेंगी—

अस्थि, हड्डी (Bone); अलिजिह्वा (Uvula) जिह्वा, जीभ (Tongue); फुस्फुस्, फेफड़ा (Lungs); हृत्पिण्ड, दिल (Heart); मूत्राशय (Bladder); वृक्कक्, गुरदा (Kydneys), अन्त्र, आंत (Intestines); पाकाशय, मेदा (Stomach); श्वासनाली (Larynx and trachea); अन्ननाली (Œsophagus); गलग्रन्थि (Tonsils); मस्तिष्क, मगज़ (Brain); पेशी (Tendons); प्लीहा, पिलही (Spleen); यकृत्, कलेजा (Liver); रसप्रणाली (Thoracic duct); मूत्रप्रणाली (Urethra); कशेरुमज्जा (Spinal-marrow); और जननेन्द्रिय या जरायु।

(क्लो०) ९ ज्योतिषके मतसे—लग्न। १० काल-पुरुषको देहके द्वादश राशिरूप विभाग। यथा—१ मस्तक—मेष। २ मुख—वृष। ३ वक्षः—मिथुन। ४ हृदय—कर्कट। ५ उदर—सिंह। ६ कटि—कन्या। ७ वस्ति—तुला। ८ पुंस्त्व—वृश्चिक। ९ऊरु—धनुः। १० जानु—मकर। ११ जङ्घा—कुम्भ। १२ पादद्वय—मीन।

११ बलिराजके एक पुत्र। उन्होंने अपने हिस्सेमें अङ्ग पाया था। इसीसे उसका नाम अङ्ग पड़ा। (महाभारत)। १२ कुन्तीपुत्र कर्णका राज्य। अस्त्रपरीक्षाके समय अर्जुनने धनुर्विद्यामें बड़ी निपुणता दिखाई थी। इससे धृतराष्ट्र-पुत्रोंके चित्तमें बड़ी ईर्षा उत्पन्न हुई। पहले कर्णवीरको कोई अच्छी तरह पहचानता न था, जो रङ्गभूमिमें जा आस्फालन करने लगे। उनकी यही इच्छा थी, कि वह एकवार अर्जुनसे युद्ध करते। कर्णवीर राजा तो थे नहीं, अतः अर्जुन उनसे न लड़े। इसीसे दुर्योधनने प्रसन्न हो सूतपुत्र कर्णको अङ्गराज्य दे दिया। अङ्गदेश मगधके (विहार) पासका वैद्यनाथादि स्थान है। महाभारतके सभा पर्वमें लिखा है, कि पहले मगधमें गौतमका आश्रम था। अङ्ग वङ्गादिके राजा उनके आश्रम-में जाकर बहुत प्रसन्न होते थे। (२१ अध्याय।) फिर तीसवें अध्यायमें लिखा है, कि भीमसेनने जरासन्धके पुत्र सहदेवसे कर लेकर अङ्गदेशके अधिपति कर्णसे युद्ध किया था। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि अङ्ग-देश वर्तमान विहारके पास था। शक्ति-सङ्गम-तन्त्रमें कथित है,—

"वैद्यनाथं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे।
तावदङ्गाभिधो देशो यात्रायां न हि दुष्यति।"

वैद्यनाथसे लेकर वर्तमान पुरी ज़िलेके अन्तर्गत भुवनेश्वर पर्यन्त अङ्गदेश है। अङ्ग देशमें तीर्थयात्रा-को जानेसे कोई दोष नहीं।

स्मृतिमें लिखा गया है—

"अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गच्छन् पुनः संस्कारमर्हति॥" (मनु)

अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सौराष्ट्र और मगधमें तीर्थ-यात्राके उपलक्ष भिन्न जानेसे प्रायश्चित्त करना चाहिये। कात्यायनके एक वार्तिकवाले व्याख्यास्थलमें भट्टोजि-दीक्षितके उदाहरणसे भी यही भाव प्रकट होता है—"अत्यन्तापह्नवे लिड् वक्तव्यः।" अर्थात् व्यक्तिको अपलाप करनेसे लिट् हो। इस वार्तिकके उदाहरणमें भट्टोजिदीक्षितने लिखा है,—"कलिङ्गेष्ववात्सी? नाहं कलिङ्गान् जगाम।" 'आप क्या कुछ दिन कलिङ्ग देशमें रहे थे? मैं कलिङ्ग देश नहीं गया।' कमसे कम बारह सौ वर्ष पूर्व जयादित्य भी उक्त वार्तिकके उदाहरणस्थलमें ठीक इसी तरहका उदाहरण लिख गये हैं,—"कलिङ्गेषु स्थितोऽसि? नाहं कलिङ्गं जगाम।" इसका ठीक-ठीक कारण नहीं मिलता, कि तीर्थयात्राके अतिरिक्त कलिङ्गदेशमें जानेसे क्यों प्रायश्चित करना पड़ता था। किसी-किसीका अनुमान है, कि अङ्गदेशमें कृष्णसार और कुश आदि यज्ञ करनेको सामग्री नहीं मिलती, इसीलिये वह अपवित्र है। परन्तु यह अनुमान प्रामाणिक नहीं। क्योंकि रामायणमें लिखा है, कि दशरथ राजाके मित्र रोमपाद अङ्गदेशके राजा थे और उनके दामाद ऋष्यशृङ्गमुनि उन्हींके राजभवनमें रहते थे। यदि अङ्ग देश अपवित्र होता तो कभी ऋषि वहां जाकर न रहते। अङ्गदेशकी राजधानीका नाम चम्पा

था। प्राचीन चम्पा भागलपुर ही था। भागलपुर नगर के पास आजतक चम्पानगर नामक एक प्राचीन शहर है। चम्पा देखो।

१३ सूर्यवंशीय राजाके औरस और आग्नेयोके गर्भसे हुई अङ्ग नामकी एक सन्तान। अङ्गकी स्त्रीका नाम सुनीता और उनके पुत्रका नाम वेण था।

अङ्ग (क्ली०) १४ पाणिनिग्टहीत संज्ञा विशेष। यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम्। पा १।४।१३। यस्मात् प्रत्ययो विधीयते धातोर्वा प्रातिपदिकाद्वा तदादि शब्दरूपं प्रत्यये परतोऽङ्गसंज्ञं भवति। (वृत्ति) जिस धातु या प्रातिपदिकके उत्तर जिस प्रत्ययका विधान किया जाता और वही प्रत्यय जिसके बाद रहता है, उस प्रकृतिवाले समुदायको अङ्ग कहते हैं। जैसे, राम शब्द एक प्रकृति है। इसके बाद मानो सुप्रत्यय लगाया गया। यहां प्रत्यय परे रहनेसे व्यपदेशिके समान भावमें राम शब्दकी अङ्ग संज्ञा हुई। अङ्गसंज्ञा करनेका फल है,—एङ् ह्रस्वात् संबुद्धेः। पा ६।१।६९। एङन्त या ह्रस्वान्त अङ्गके परे सम्बोधनका जो हल् हो, उसका लोप हो जाये। राम एक ह्रस्वान्त शब्द है। इसके बाद सम्बुद्धिका हल् वर्ण सु रहनेसे सकारका लोप होगा। जैसे,—राम+सु, सम्बोधनमें,—हे राम।

अङ्गकर्म, अङ्गकर्म्मन् (सं० क्ली०) अङ्गस्य कर्म्म, ६-तत्। अङ्गसेवा। हाथ-पैरका मलना। शरीर दबाना। शरीरमें तेल आदि सुगन्धित पदार्थोंका लगाना।

अङ्गग्रह (सं० पु०) अङ्गस्य ग्रहः रोगहेतोर्वेदना, ६-तत्। १ शरीरका दर्द। देहका जकड़ना। २ वह रोग जिसमें जोड़-जोड़ दुखे।

अङ्ग-ग्रह कोई ख़ास रोग नहीं, यह दूसरे रोगोंका उपसर्ग मात्र है। कितने ही कारणसे अङ्गग्रह होता है। जवानीमें जिन्होंने बराबर कसरत की, प्रौढ़ावस्था आने पर उसके छोड़ देनेसे, उन्हें अङ्गग्रह हो जाता है। गठिया, कमरके दर्द, पुराने उपदंश आदि रोगोंमें बीच-बीच अङ्ग दुखने लगता है। रातके समयकी अथवा पूर्वी हवा लगनेसे गांठमें दर्द बढ़ जाता है। शरीर रोगी रहनेसे थोड़ा भी कुपथ्य हुआ, कि हाथ-पैरकी गांठमें दद होने लगा। मलेरिया ज्वरका तो अङ्गग्रह एक प्रधान लक्षण है। ज्वर आनेसे पहले समस्त शरीर कांपता और ठण्ढा पड़ जाता, उसी समय पैरकी गांठ और कमरमें दर्द होने लगता है। स्नायुशूल रोगमें (Neuralgia) कोई स्थान फूलता नहीं, परन्तु हाथ-पैरमें सुइयां जैसी चुभा करती हैं।

चिकित्सा—चालीस वर्षसे अधिक वयःक्रममें जो सञ्चित वात रोग और उसीके कारण बदनमें दर्द होता है, उसे धन्वन्तरि आकर भी नहीं हटा सकते। इस अवस्थामें थोड़ी अफ़ीमको सेवन करना चाहिये। इससे यद्यपि रोगका प्रतीकार नहीं होता, एक नया उपसर्ग लग जाता और सभी धीरे-धीरे अफ़ीमख़ोर हो जाते हैं, तथापि यह दोष होते भी, सञ्चित बात रोगमें अफ़ीम खानेसे शरीर कितना ही अच्छा रहता है। जो बहुत आलसी हैं, उन्हें सवेरे और सन्ध्याके समय मैदानमें हवा खाना और दिनमें सोना और दही और रात्रिमें अन्नको भोजन करना तो एकदम ही छोड़ देना चाहिये। हिन्दुओंमें एकादशीके दिवस उपवास करनेको प्रथा है। एकादशीके दिन उपवास करनेसे वात प्रभृति कई रोगमें बड़ा लाभ पहुंचता है।

होमिओपेथी—शरीरकी एक ओरके स्नायुमें बीच-बीच बहुत तेज़ दर्द होनेसे आर्सेनिक (Arsenic), कमज़ोर मनुष्यको स्नायुशूल होनेसे फसफोरस् (Phosphorus), रातके जागरण, ठंडी हवाके सेवन, दुश्चिन्ता आदिके कारण माथेमें दर्द होनेसे एकोनाइट् (Aconite) और मलेरियासे उत्पन्न हुए अङ्गग्रहमें चायना (China) देना चाहिये।

एलोपेथी—युवा और वृद्ध मनुष्योंकी कमर और हाथ-पैरके जोड़में दर्द होनेसे कैजूपुट तेल मलनेसे विशेष लाभ होता है। सेवन करनेके लिये दो बूंद एकोनाइट्का अरिष्ट जलके साथ नित्य दो बार देना चाहिये। ऊर्द्ध्वपातित गन्धक दूधके साथ खानेसे दर्द कितना ही कम हो जाता है। चमड़ेके भीतर मर्फियाकी पिचकारी मारनेसे भी लाभ होता है। यह चिकित्सा विज्ञ चिकित्सकसे कराना चाहिये।

वैद्यक—लगानेके लिये कुब्जप्रसारिणी-तैल कहा गया है। सेवनके लिये गूगल है। गुग्गुल देखो। शिरका दर्द, वात, उपदंश, स्नायुशूल, कमरका दर्द, गठिया प्रभृति शब्दोंमें अङ्गग्रहका पूरा-पूरा हाल देखना चाहिये।

अङ्गचालन (सं० क्लो०) हाथ-पैर चलाना। अज़ाकी हरकत।

अङ्गज (सं० पु०) अङ्गात् जायते, अङ्ग-जन-ड। पञ्चम्याम-जातौ। पा ३।२।९८। उप-सं। १ पुत्र, बेटा। २ रोग। ३ मद। ४ काम। (क्लो०) ५ लोम, रूयां। ६ शोणित, लहू। (त्रि०) ७ अङ्गसे उत्पन्न। अज़ासे पैदा।

अङ्गजा (सं० स्त्री०) पुत्री, बेटी, कन्या।

अङ्गजात—अङ्गज देखो।

अङ्गजाता—अङ्गजा देखो।

अङ्गज्वर (सं० पु०) अङ्गमधिकृत्य ज्वरः सुप्सुपेति समासः। यक्ष्मा, क्षयकास रोग।

अङ्गण, अङ्गन (सं० क्लो०) अगि-ल्युट्। इदितो नुम्। अङ्ग्यते गम्यते इति अङ्गनं। पृषोदरादित्वात् णत्वमपि। १ चौतरा। २ उठान। ३ आंगन, अँगना। अङ्ग-ल्युट् करणे। ४ जो वहन करे। यान, सवारी।

अङ्गति (सं० पु०) अगि-गतौ अङ्गतीति, कर्त्तरि अति। १ अग्निहोत्र। अङ्ग्यते गम्यते, कर्म्मणि अति। २ ब्रह्मा। ३ अग्नि। ४ विष्णु। अङ्गति याति अनेन करणे अति। ५ वाहन,यान। (स्त्री०) ङीप् अङ्गती या अङ्गति।

अङ्गत्राण (सं० क्लो०) शरीरको ढांकने वाला वस्त्र। १ अंगरखा। २ कुरता। ३ कवच।

अङ्गद (सं० क्लो०) अङ्ग-दैप् शोधने क। अङ्गं दायति शोधयति। १ केयूर। बाजूबन्द। 'अङ्गदः कपिभेदे ना केयूरे तु नपुंसकम्। अङ्गदा याम्यदिग्दन्तिहस्तिन्यामपि योषिति।' (मेदिनी) (पु०) २ कपिराज बालिके पुत्र। इनकी माताका नाम तारा था। रामचन्द्रने जब बालिको मार डाला, तब सुग्रीव किष्किन्धाके राजा और अङ्गद युवराज हुए। पीछे जब रामचन्द्र सीताका उद्धार करनेके लिये लङ्का गये; तब अङ्गद भी उनके साथ थे, और लङ्कामें रामरावण युद्धके समय उन्होंने बड़ी वीरता दिखाई थी। ३ लक्ष्मणके एक पुत्र। इनकी राजधानीका नाम अङ्गदीया था।

अङ्गद—४ एकजन कवि, जिन्होंने पद्यावली बनाई थी। ५ बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत रेवाकण्ठका एक क्षुद्र राज्य। अक्षा० २३° ५५′ ४०″ उः, द्राघि० ७२° १३′ ३०″ पू०। इसका आयतन साढ़े तीन मील है। इस राज्यमें छः जन अधिपति हैं, जो बड़ोदेके गायकवाड़को वार्षिक कर देते हैं।

अङ्गदनिर्यूह (सं० पु०)अङ्गदस्य केयूरस्य निर्यूहः शेखर इव। निर्-या-ड-वह-क निर्यूहः शेखरः। ६-तत्। बाजूबन्दका चूड़ा।

अङ्गदा (सं० स्त्री०) अङ्गद-आप्। दक्षिणदिग्-हस्तीकी स्त्री।

अङ्गदान (सं० पु०) १ पीठ दिखाना। युद्धसे भागना। लड़ाईसे हटना। २ अङ्गसमर्पण। रति।

अङ्गदीया (सं० स्त्री०) कारुपथ नामक देशकी एक नगरी, जो लक्ष्मणके पुत्र अङ्गदको मिली थी।

अङ्गद्वार (सं० क्लो०) शरीरके मुख, नासिका आदि दश छिद्र। जिस्मके मुंह, नाक वगैरह दश छेद।

अङ्गद्वीप (सं० पु०) ब्रह्माण्डपुराणोक्त अनुद्वीपभेद। इसका वर्त्तमान नाम 'अङ्गम्' या 'अन्नम्' है। काम्बोज देखो।

अङ्गधारी (सं० त्रि०) प्राणी। शरीर धारण करनेवाला।

अङ्गन (सं० क्लो०) अगि-ल्युट्। इदितो नुम्। १ चौतरा। २ अजिर। ३ गमन। ४ आंगन। ५ उठान। ६ यान, सवारी।

'अङ्गनं प्राङ्गणे यानेऽप्यङ्गना तु नितम्बिनी।' (हेमचन्द्र)

अङ्गना (सं० स्त्री०) कल्याणमङ्गमस्ति अस्याः। लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। पा ५।२।१००। अङ्गात् कल्याणे। (कात्या० वा०) १ सुन्दर अङ्गवाली स्त्री। सुश्री कामिनी। रूपवती बालिका। २ सार्वभौम नामक उत्तरदिग्-हाथीकी स्त्री। ३ वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन—यह छः राशि।

अङ्गनाप्रिय (सं० पु०) अङ्गनायाः प्रियः, ६-तत्। प्रीणातीति प्री-क प्रियः। १ अशोक वृक्ष। अशोक फूलके गुच्छेसे स्त्रियां अपने केशोंको सजाती थीं; इसीसे यह स्त्रियोंका प्रिय वृक्ष कहा गया है। अथवा शारीरिक

या मानसिक शोक न होनेकी कामनासे स्त्रियां अशोक-पुष्प द्वारा अशोकषष्ठीका व्रत करती हैं। इस कारणसे भी यह अङ्गनाओंका प्रिय वृक्ष हो सकता है। कहते हैं, कि स्त्रीके पैरसे ठोकर मारने पर अशोकवृक्ष फूल उठता है। "पादाघातादशोकं विकसति।" (साहित्यदर्पण) (त्रि०) २ स्त्रियोंका प्रिय।

अङ्गन्यास (सं० पु०) अङ्गेषु अङ्गशुद्धिहेतोरङ्गेषु हृदयादिषु मन्त्रविशेषस्य न्यासः। तन्त्रोक्त मन्त्रोच्चारणपूर्वक हाथसे हृदयादिको स्पर्श करना। तन्त्रशास्त्रके मन्त्र पढ़ते हुए एक-एक अङ्ग छूना। जैसे,—ओम् क्रां हृदयाय नमः। ओम् क्रीं शिरसे स्वाहा। ओम् क्रूं शिखायै वषट्। ओम् क्रैं कवचाय हुं। ओम् क्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। ओम् क्रः करतल-पृष्ठाभ्यां फट्।

अङ्गपाक (सं० क्ली०) १ अङ्गका फोड़ा, जिस्मका सड़ना। फोड़े-फुनसीका रोग।

अङ्गपालि (सं० पु०) अङ्गपाल-इ। अङ्गं पाल्यते संपूज्यते अनेन। आलिङ्गन, हमागोशी।

अङ्गपालिका (सं० स्त्री०) अङ्ग-पाल-ण्वुल्। अङ्गं पालयति या सा आप्, अङ्गपालिका। देहपालनकर्त्री, धाय, धात्री। (पु०) अङ्गपालक।

अङ्गप्रायश्चित्त (सं० क्ली०) ६-तत्। पञ्चशूनाके लिये पापक्षयकी क्रिया। एक प्रकारका दान।

अङ्गप्रोक्षण (सं० क्ली०) शरीर पोंछना, देह अंगोछना।

अङ्गभङ्ग (सं० क्ली०) १ अङ्ग टूटना या नष्ट होना। २ स्त्रीका कटाक्ष।

अङ्गभङ्गी (सं० क्ली०) १ हावभाव। २ स्त्रियोंकी मोहिनी क्रिया।

अङ्गभाव (सं०क्ली०) गानेमें अङ्ग मटका भावका बताना। अङ्गके सञ्चालनसे मनके भावको प्रकट करना।

अङ्गभू (सं० पु०) अङ्गाद् भवतीति, भू-क्विप्। १ पुत्र। २ काम। (त्रि०) ३ अङ्गजात। जिस्मसे पैदा।

अङ्गभूत (सं० त्रि०) १ अङ्गसे उत्पन्न। देहसे उपजात। २ अन्तर्गत। भीतरी। अन्दरूनी।

अङ्गमन्त्र (सं० पु०) हृदयादिषु षट्सु स्थानेषु न्यासस्य मन्त्रः। ७-तत्। अङ्गन्यासका तन्त्रोक्त मन्त्रविशेष। अङ्गन्यास देखो।

अङ्गमर्द (सं० पु०) अङ्ग-मृद-अच्। अङ्गं मृद्नातीति। १ शरीर मलनेवाला भृत्य, वह नौकर जो हाथ पैर दबाये। संवाहक। अङ्गमर्दक। अङ्गमर्दी। २ हड्डियोंका फूटना। हड्डियोंमें पीड़ा।

अङ्गमर्दक (सं० पु०) अङ्ग-मृद-ण्वुल्, अङ्गं मृद्नातीति। जो नौकर शरीर दबाये। (त्रि०) अङ्गमर्दनकारक, देह दाबनेवाला।

अङ्गमर्दन (सं० क्ली०) अङ्गोंका मर्दन, जिस्मकी मालिश। देह दबाना।

अङ्गमर्दिन् (सं० पु०) अङ्ग-मृद-णिनि। १ देह दाबनेवाला व्यक्ति। (त्रि०) २ शरीर मलनेवाला। (स्त्री) ङीप्, अङ्गमर्दिनी।

अङ्गयज्ञ (सं० पु०) कर्मधा०। यज-नङ् यज्ञः। यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्। पा ३।३।९०। अप्रधान यज्ञ, ग्रहयागादि।

अङ्गरक्त (सं० पु०) अङ्गन रक्तः, ३-तत्। इत्यम्भूतलक्षणे। पा २।३।२१। रञ्ज-क्त रक्त। १ वृक्षविशेष। २ काम्पिल्य देशमें उत्पन्न लाल रङ्गका एक चूर्ण। ३ गुरुडारोचनी। (त्रि०) ४ रक्ताक्त, लालोलाल।

अङ्गरक्षणी (सं० स्त्री०) अङ्ग-रक्ष-ल्युट् करणे। १ शरीरका रक्षण, जिस्मकी हिफ़ाज़त। स्त्रीत्वात् ङीप्। अङ्गं रक्षतेऽनया। २ अङ्गत्राण। शरीर रक्षाका कवच। ३ अंगरखा।

अङ्गरक्षा (सं० स्त्री०) अङ्गकी रक्षा, जिस्मकी हिफ़ाज़त।

अङ्गरबाड़ी, छोटेनागपुरके अन्तर्गत सिंहभूम ज़िलेवाले सरन्द पर्वतका एक शृङ्ग। यह सिंहभूम ज़िलेके सदर-शहर चाइबासेसे तीन कोस पश्चिममें अवस्थित है। यह २१३७ फुट ऊंचा है।

अङ्गरस (सं० पु०) पत्तेया छालको कुचल कर निकाला गया रस। जो अर्क पत्ते या छालको कुचलकर निकाला जाये।

अङ्गराग (सं० पु०) अङ्ग-रञ्ज-घञ् करणे। रज्यतेऽनेनेति। घञि च भावकरणयोः। पा ६।४।२७। गात्रमें लेपन करनेका चन्दन आदि सुगन्ध द्रव्य।

अङ्गराज् (सं० पु०) राज्-क्विन्। अङ्गदेशेषु राजते।

७-तत्। १ अङ्गदेशके राजा, कर्ण। २ राजा दशरथके मित्र लोमपाद। अङ्ग देखो।

अङ्गरुह (सं० क्ली०) अङ्गे रोहति रुह बीजजन्मनि क्विप्। लोम। रूआं।

अङ्गलेप (सं० पु०) ६-तत्। अङ्ग-लिप्-घञ् करणे। अङ्गराग द्रव्य। उबटन। बटना।

अङ्गलोद्य, अङ्गलोध्य (सं० पु०) अङ्ग-लुड्-ण्यत्। एक प्रकारका पौधा। चिचोड़।

अङ्गव (सं० क्ली०) अङ्ग-वा-क। अङ्गे स्वशरीरे वाति। सूखा फल। जो फल बहुत हो सूखकर सिकुड़ गया हो। जैसे, सूखा बिहीदाना।

अङ्गविकल (सं० त्रि०) अङ्गेन विकलः, ३-तत्। व्याकुलाङ्ग। विकृत शरीर। जिसके अज़ा दर्द करते हों।

अङ्गविकृति (सं० स्त्री०) अङ्गस्य विकृतिः, ६-तत्। वि-कृ-क्तिन्। १ अङ्गका विकार। जिस्मका ऐब। (पु०) २ अङ्गचालनादि, अज़ाको हरकत। अङ्गस्य विकृतिर्यस्मात्, बहुव्री०। ३ मृगी रोग। अपस्मार रोग। मिरगी। वह रोग जिससे शरीर बिगड़ जाये।

अङ्गविक्षेप (सं० पु०) अङ्गस्य विक्षेपः, ६-तत्। १ अङ्गहार, अजा फड़काना। अङ्गस्य विक्षेपश्चालनम् यस्मिन्, बहुव्री। २ अङ्ग चलाकर नाचना। चटक-मटकका नाच।

अङ्गविद्या (सं० स्त्री०) अङ्गमाश्रित्य विद्या, सुप्सुपेति समासः। अङ्गरूपा विद्या, कर्म्मधा०। विदन्त्यनया विद्या, विद्-क्यप्। संज्ञायां समज-निषद-निपत-मन-विद-षञ्-शीङ्-भृञिणः। पा ३।३।९९। अज़ाका इल्म।

अङ्गविद्या शब्दसे तीन प्रकारका अर्थ समझ पड़ता है। पहले, अङ्ग अर्थात् शरीरको आश्रय कर जो विद्या लिखी-पढ़ी जाये। शरीर-विज्ञान, देहतत्व। दूसरे, व्याकरणादि विद्या (अङ्ग देखो)। तीसरे, हाथ, पैर, मुंह आदि अङ्गकी भावभंगी देख कर जिस विद्या द्वारा शुभाशुभ निश्चित किया जाये।

सामुद्रिक और हनूमान्-चरित्र शब्दमें इसका विशेष विवरण देखो।

अङ्गविधि (सं० पु०) अङ्गस्य विधिः, ६-तत्। किसी अनुष्ठेय कार्यकी अङ्गीभूत अप्रधान विधि।

अङ्गविभ्रम (सं० पु०) अङ्गभ्रान्ति। वह रोग जिसमें रोगी अपने अङ्गको नहीं पहचानता।

अङ्गवैकृत (सं० क्ली०) अङ्गस्य वैकृतम्, ६-तत्। विकृतस्य भावः वैकृतम्। विकृत-अण्। १ शरीरका विकार। अङ्गचेष्टया वैकृतं मनसो विकृतभावो ज्ञायते यस्मिन् तत्, बहुव्री०। २ आकार, हृदयके भावको बतानेवाली मुखकी भावभङ्गी। इशारा।

अङ्गवैगुण्य (सं० क्ली०) अङ्गस्य वैगुण्यम्, ६-तत्। विगुणस्य भावो वैगुण्यम्। किसी कार्यकी अङ्गहीनता। किसी कार्यमें अन्यथाचरण। अङ्गहानि।

अङ्गशुद्धि (सं० स्त्री०) शुध्-क्तिन्, अङ्गस्य शुद्धिः, ६-तत्। मट्टी जल आदिसे अङ्गकी शुद्धि, शरीरशोधन। जिस्मकी सफ़ाई।

अङ्गशैथिल्य (सं० क्ली०) अङ्गस्य शैथिल्यम्, ६-तत्। बदनकी सुस्ती। थकावट। हाथ-पैरका ढीलापन।

अङ्गशोष (सं० पु०) एक प्रकारका रोग जिसमें शरीर सूखते जाता है। क्षयी रोग। सूखा।

अङ्गस् (सं० क्ली) अङ्ग-असुन्। अञ्चाञ्जियुजिभृजिभ्यः कुश्च। उण् ४।२१५। पक्षी। चिड़िया। मुर्ग़।

अङ्गसख्य (सं० क्ली०) प्रगाढ़ मैत्री, दिली दोस्ती।

अङ्गसङ्गम (सं० पु०) रतिसंयोग। मैथुन। हमबिस्तरी।

अङ्गसंस्कार (सं० पु०) अङ्गस्य संस्कारः। १ देहकी सजावट। सुगन्धि द्रव्यको शरीरमें लगाना। अङ्गका संवारना। अङ्गं संस्क्रियते अनेनेति, सम्-कृ-घञ् करणे। २ जिससे शरीरका संस्कार किया जाये। तैल, उबटन आदि। (त्रि) ३ देहसंस्कारक। (स्त्री) अङ्गसंस्कारिका।

अङ्गसंस्क्रिया (सं० स्त्री०) अङ्गस्य संस्क्रिया, ६-तत्। सम्-कृ-श। देहसंस्कार। जिस्मकी सजावट।

अङ्गसिहरी (हिं० स्त्री०) १ शरीरका कांपना, कंपकंपी। २ जूड़ी।

अङ्गस्पर्श (सं० पु०) अङ्गस्य स्पर्शः, ६-तत्। स्पृश-घञ्। पदरुजविशस्पृशो घञ्। पा ३।३।१६। स्पर्शः उपतापः। जन्म-मृत्युके बाद अशुचि शरीरको स्पर्श करना, पैदा होने या मरने पर नापाक जिस्म छूना।

"जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचेलन्तु विधीयते ।
माता शुद्ध्येद् दशाहेन स्नानात्तु स्पर्शनं पितुः ।" सम्वर्त्त ।

अन्त्येष्टि क्रियाके बाद चतुर्थ दिवस द्विजातिवाले मृतव्यक्तिकी अस्थि-सञ्चय करें; इसके बाद अशुचि मनुष्यका अङ्ग छूएं। जैसे—

"चतुर्थेऽहनि कर्तव्यमस्थिसञ्चयनं द्विजैः ।
ततः सञ्चयनादूर्द्ध्वं मङ्गस्पर्शो विधीयते ॥" वाचस्पति-धृत दक्षवचन ।

अङ्गहानि (सं॰ स्त्री॰) अङ्गस्य हानिः, ६-तत्। हा-क्तिन् हानि। ग्लाम्लाज्याहाभ्यो निः। (कात्या॰ वा॰) प्रधान कार्यकी अङ्गहीनता। कार्यकी त्रुटि। कामका बिगाड़।

अङ्गहार (सं॰ पु॰) अङ्ग-हृ-घञ् अधिकरणे, ६-तत्। १ नृत्य, नाच। अङ्ग-हृ भावे घञ्। २ उंगलियों तथा हाथ-पैरोंसे नाना प्रकारके भाव दिखाना। चमकना। मटकना।

अङ्गहारी (सं॰ पु॰) अङ्ग-हृ-णि। नाचघर। नृत्य करने योग्य रङ्गभूमि। नाचने क़ाबिल तमाशगाह।

अङ्गहीन (सं॰ त्रि॰) अङ्गेन हीनम्, ३-तत्। (ओ हाक्) हा-क्त हीनः। उद्दितश्च। पा ८।२।४५। १ विना अङ्गका, जिसके अज़ा न हों। २ टूटे अङ्गका, जिसका कोई अज़ो टूट या नाक़ाबिल हो गया हो। जैसे लूला, लगंड़ा इत्यादि।

अङ्गाङ्गिभाव (सं॰पु॰) अङ्गस्य अङ्गिनश्च भावः, ६-तत्। १ गौण और मुख्य भाव। मामूली और ग़ैरमामूली अदा। २ अलङ्कार विशेष।

अङ्गादिपुरम्—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके मलबार उपकूलका एक नगर। यह अक्षा॰ १०° ५८′ ५५″ उत्तर और द्राघि॰ ७६° १६′ ५१″ पूर्वके मध्यमें अवस्थित है। इस स्थान पर जो दुर्ग सन् ई॰ के १८वें शताब्द तक अभग्न अवस्थामें खड़ा था, अब वह ध्वंसमुखमें पतित हो गया। यह नगर मन्दिरके लिये प्रसिद्ध है, और सन् १८९५ ई॰ में मपिल्लाओंसे विशेष-भावमें आक्रान्त होनेके कारण इसने इतिहासमें भी प्रसिद्धिको लाभ किया है।

अङ्गाधिप (सं॰ पु॰) अङ्गस्य अङ्गदेशस्य अधिपः, अधिपतिः, ६-तत्। १ कर्ण। २ लग्नाधिप। यथा— मेष और वृश्चिकके मङ्गल, वृष और तुलाके शुक्र, मिथुन और कन्याके बुध, कर्कटके चन्द्रमा, धनु और मीनके बृहस्पति और मकर और कुम्भ लग्नके अधिप शनि हैं।

अङ्गाधीश (सं॰ पु॰) अङ्गस्य देशभेदस्य अधीशः, ६-तत्। अधिकः ईशः अधीशः। १ मगध निकटवर्त्ती अङ्गदेशके राजा, कुन्तीके पुत्र कर्ण। २ जन्मकालके ग्रहनक्षत्रादि संयुक्त लग्नाधिपति। अङ्गाधिप देखो।

अङ्गाधीश्वर (सं॰ पु॰) अङ्गस्य अङ्गदेशस्य अधीश्वरः, ६-तत्। अधिकः ईश्वरः अधीश्वरः। १ कर्ण। २ सन्तानके जन्मकालिक लग्नाधिपति।

अङ्गामी-नागा—आसामके दक्षिण नागा-पर्वतको असभ्य जातिका सम्प्रदाय-विशेष। नागा-पर्वतके पूर्वमें ऐरावत नदी, पश्चिममें ब्रह्मपुत्र, उत्तरमें लखीमपुर, शिवसागर और नौगांव, तथा दक्षिण-में मणिपुर है। अङ्गामीनागा शब्दका अर्थ क्या है? कोई-कोई कहते हैं, कि हिन्दुस्थानी "नङ्गा" शब्दसे नग्न नागा जातिका नामकरण हुआ है। किन्तु इसमें भूल है, यह अनुमान ठीक नहीं। अर्जुनने इसी देशमें नागकन्या उलूपीसे विवाह किया था। उसी समय अर्जुनने मणिपुरकी चित्राङ्गदाकाभी इसी देशमें पाणिग्रहण किया। महाभारतमें कहा हुआ नागवंश ही यहांकी नागा जाति है। अर्जुनने उलूपीसे पूछा था—"सुभगे! तुम कौन, किसकी कन्या और किस देशमें मुझे ले आई हो?" उलूपीने उत्तर दिया—

"ऐरावतकुले जातः कौरव्यो नाम पन्नगः ।
तस्यास्मि दुहिता राजन्नुलूपी नाम पन्नगी ॥"

महा॰ आदिपर्व २१४।१८

'मेरे पिताका नाम नागराज कौरव्य है। ऐरावत वंशमें उनका जन्म हुआ है। मैं उन्हीं नागराजकी कन्या हूँ, मेरा नाम उलूपी हैं।'

यहांके नागा ऐरावती नदीके निकटवर्त्ती पर्वतमें रहते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहले यही ऐरावतके वंशधर बता अपना परिचय दिया करते थे। परन्तु इस बातका मतलब हमारी समझमें नहीं आता, कि मनुष्य सर्पके नामसे क्यों पुकारा गया। अङ्गामी-

नागाओंका कथन है,—'पहले पृथ्वी बड़े ही सुखका स्थान थी। उस समय इतने मनुष्य न थे, परस्परमें इतना लड़ाई-झगड़ा भी न होता था। एक देवता, एक मनुष्य, उसकी स्त्री और एक बाघ यह चारो एकत्र वास करते थे। समय पाकर उसी दम्पतीको दो सन्तान हुई। उन दोनो भाइयोंमें भी बड़ा स्नेह रहा। मनुष्य चिरकाल जीते नहीं रहता; कुछ दिन बाद वह स्त्री मर गई। मृत देह देख बाघ अपनी रक्त-पिपासाको रोक न सका। वह उसके कलेजे पर चढ़कर मांस खाने लगा। पहले जगत्‌में हिंसा न थी, उसी दिनसे हिंसाका आरम्भ और सुखके संसारका लोप हुआ। फिर उन दोनो भाइयोंमें भी झगड़ा उठा। इससे एक चेमू वनकी ओर और दूसरा चह्नू वनकी ओर चला गया। उन बड़े भाईकी सन्तान अब भी गोरी है, परन्तु छोटेके लड़के काले पड़ गये हैं।' दूसरी भी एक कहानी है। बात बिना बनाये अच्छी नहीं लगती। इसीसे यह कहानी भी खूब रंग दी गई है। नागा कहते हैं,—'एकबार एक छोटी नाव बहते-बहते पर्वतके नीचे आकर लगी। उस नाव पर एक सफ़ेद कुत्ता और एक रूपवती बालिका थी; दूसरा कोई आरोही नहीं। यहांके गोरे नागा उनकी ही सन्तान-सन्तति हैं।' मोटी बात यह है, कि नागाओंका पूर्व इतिहास कुछ भी नहीं, इसीसे वह इस तरहकी कहानियां कहा करते हैं। नागा देखो।

बहुत दिनकी बात नहीं, लगभग तीन सौ वर्ष हुए, जयन्ती-पुर महाराजका सहोदर अपनी भतीजीको लेकर दीमापुर चला गया था। उस समय दीमापुर कछारकी राजधानी रहा। दीमा-पुरके राजाने उस दुष्टको अपने यहां आश्रय दिया। कष्टका एक-एक दिन वर्षकी बराबर बीतता है, पापीका चित्त ठिकाने नहीं रहता; कभी भय, कभी सन्देह और कभी सोच विचारमें वह डूब जाता है। दुष्टने मनमें जो शङ्का की थी, अन्तमें वही बात हुई—जयन्तीपुर-महाराजकी सेना उसे पकड़ने पहुं थी। इस लिये वह फिर अपनी भतीजीको लेकर पासके किसी पर्वतमें जा छिपा। कछारके लोग कहते हैं, कि अङ्गामी-नागा उन्हीं दानोकी सन्तान हैं।

नागा-पर्वत कोई बारह हज़ार फुट ऊंचा है। यहां न अधिक जाड़ा ही रहता है और न विशेष गर्मी ही। इस लिये यहांका जल-वायु बड़ा ही सुखकर है। यहां जल्द कोई रोग नहीं लगता, लोग आनन्दसे अपने दिन बिताते हैं। भूमि शस्यसे भरी है, मानो लक्ष्मीदेवी बारह महीने यहीं बैठे हंसा करती हैं। नाना प्रकारका धान, मटर, भुट्टा, गेहूं, मिर्च, आलू, लहसुन, प्याज, अदरक, कद्दू, कुम्हड़ा आदि द्रव्य यहांकी प्रधान फसल है।

नागा पहाड़के ऊंचे स्थानोंमें घर बनाकर रहते हैं। एक स्थानके लोग अधिक दूसरे स्थानके लोगोंके साथ सहसा मिलना नहीं चाहते, इसीसे इनके अनेक सम्प्रदाय हैं। इनमें बल, बुद्धि तथा सभ्यताको देखते अङ्गामी ही सबसे श्रेष्ठ हैं। इनमें भी फिर दो श्रेणी हैं—पश्चिम अङ्गामी और पूर्व अङ्गामी। पहाड़ी लोग प्रायः खर्व होते हैं, परन्तु अङ्गामियोंके शरीरकी गठन खूब परिमित है। बदनका रङ्ग यद्यपि गुलाबी नहीं होता, तथापि बुरा नहीं है। इनका रङ्ग गोरा होता और चेहरेपर श्री झलका करती है। स्त्रियां रूपवती हैं। मुंहपर सदा कुछ हंसी बनी रहती है; परन्तु यह जङ्गली स्त्रियां ही तो ठहरीं,—इनके पास अच्छे वसन-भूषण नहीं; देहका पारिपाट्य भी नहीं। सुश्री कहांतक होंगी! जो हो, यह सुन्दरी अवश्य हैं। विशेषतः स्त्रियोंका प्रधान सौन्दर्य जो पतिपरायणता है, अङ्गामी रमणियोंमें उसका गर्व सब जातियोंसे अधिक दिखाई देता है।

नागा जाति विलक्षण, साहसी, रणनिपुण, सच्चरित्र और सत्यवादी है। यदि इसमें दोष है, तो इतना ही, कि यह सदा आपसमें लड़ा-भिड़ा करती है। विवादके समय किसीको यह नहीं छोड़ती। शत्रु, बालक, वृद्ध और

स्त्रियोंको भी नष्ट कर डालते हैं। यदि किसीके साथ उनका मनोमालिन्य हो जाये, तो वह जन्मभर उसको नहीं भूलते। जिस समय अवसर मिलता, उसी समय वह बदला ले लेते हैं। नागाओंको विश्वास है, कि शत्रुको मार सकनेसे इस लोकमें सुख्याति और परलोकमें सद्गति मिलती है। इसीलिये बात-बातमें यह अस्त्र चला बैठते हैं। समस्त नागा जातिकी लोकसंख्या तीन लाखसे भी कुछ अधिक होगी। इसमें अङ्गामियोंकी संख्या तीस हज़ार है। इनके ४६ गाव हैं।

अङ्गामियोंके एक-एक गृहस्थका घर एक-एक क़िलेके समान होता है। जहांकी राह अप्रशस्त होती, दोनो ओर पहाड़ रहते और केवल एक मनुष्य बड़े कष्टसे जा सकता, इनका घर उसी दुर्गम गिरिसङ्कटमें बनता है। मनुष्यका जीवन कमलके पत्तेका जल है; परन्तु नागाओंका जीवन इससे भी अधिक क्षणभङ्गुर होता है। इनमें आठो पहर इतना विवाद रहता है, जिसका कोई ठिकाना नहीं। बात-बातमें झगड़ा उठता है, जो विना रक्त गिरे नहीं मिटता। यह बड़े ही ज़िद्दी होते हैं। इसीसे गृहस्थका घर दुर्गम स्थानमें क़िला-जैसा विना बनाये काम नहीं चलता। घर हिन्दुस्थानके दोचाले झोपड़े जैसा बांस और काठसे बनाया जाता है। इसकी दोनो ओर के छप्पर, और पीछे का हिस्सा ढालू रहता है। इनके छप्पर फूस और खरसे बनते जो, हवामें उड़नेके भयसे ऐसे ढालू होते, कि ज़मीनको छूते रहते हैं। सामनेका कमसे कम बीस और पीछेका छप्पर आठ-दश हाथ ऊंचा होता है। धनवान् अङ्गामीके ढालू छप्पर पर लकड़ीकी कई तरह नक़्क़ाशी होती है; दरिद्रोंके ऐसी कोई गृहसज्जा नहीं। एक-एक घरमें दो-तीन कोठरियां रहती हैं। सामने शस्यादि रखनेके लिये बांसकी बड़ी-बड़ी कोठियां बना दी जाती हैं। बीचकी कोठरीमें आग जलानेका कुण्ड होता है। कुण्डकी चारो ओर तख़्ते बिछा दिये जाते हैं। यही गृहस्थके बैठने और सोनेका स्थान है। पीछेकी कोठरीमें शराबका मटका रहता है। इसीमें यह चीज़ोंको सड़ा-सड़ाकर शराब बनाते हैं। इनके पास और कुछ हो या न हो, परन्तु घरके लिये शराबका समान ज़रूर चाहिये। नागाओंमें बहुत-से अफ़ीम और तम्बाकू खाते, परन्तु अङ्गामी केवल इस घरकी बनी शराब पर ही अधिक भक्ति रखते हैं। यह बांस या सींगकी बनी कटोरीमें घासके नलसे खींचकर शराब पीते हैं। कोई-कोई बांस या लकड़ीके चम्मचसे ही शराब पीना पसन्द करते हैं। क्या सवेरे क्या सन्ध्याको अङ्गामी सदा शराबके झोंकमें मस्त रहते हैं। मालूम होता है, कि इनमें इतना विवाद शराब पीनेसे ही बढ़ता है।

घरकी चारो ओर पत्थरकी ऊंची चहारदीवारी रहती है। कहीं-कहीं चहारदीवारी न बनाकर उसे बांसके बड़े-बड़े खम्भोंसे ही घेर देते हैं। चहारदीवारी तथा घरके किवाड़े वृक्षके तनेसे काटकर बनाये जाते हैं। किवाड़े, टट्टी तथा चहारदीवारीमें जगह-जगह छेद बने रहते हैं, शत्रुकी जिस समय चढ़ाई होती है, उस समय उन्हीं छेदोंसे लोग गोली मारते हैं। प्राचीरके बाहर दो-तीन हाथ गहरा गड्ढा होता है, जिसमें तख़्ते, बेंत या बांस डाल दिये जाते हैं। यह गड्ढा थोड़ी मट्टी या पत्तेसे छिपा दिया जाता है। एकाएक शत्रु आ जाने पर, वह इसमें गिर पड़ता है और पैरोंमें कांटे चुभ जाते हैं। प्राचीरके भीतर गाय, बैल, बकरी, सूअर, कुत्ता, मुर्गी आदि बहुतसे पालतू पशु-पक्षी रहते हैं। प्रत्येक ग्राममें अङ्गामियोंकी प्रायः सात-आठ प्रकारकी जाति होती है। कोई किसीसे मिलता नहीं। एक-एक जातिका एक-एक स्वतन्त्र महल्ला है। महल्लेकी चारो ओर ऊंची चहारदीवारी रहती है। कहीं-कहीं गहरी खाईके भीतरसे भी आना-जाना पड़ता है।

नागाओंमें कोई-कोई जाति तो, न किसी प्रकारके वस्त्र पहनती, और न किसी आभूषणको पहंचानती है। प्रकृतिके काम पर नागे हस्तक्षेप करना जानते ही नहीं। ईश्वरने इन्हें जैसा बनाया, इस समय

भी यह ठीक वैसे ही विवस्त्र हैं। परन्तु अङ्गामी कपड़े पहनते और स्वयं बुनते भी हैं। इनके प्रधान वस्त्रमें छेद बहुत रहते हैं। इसका पनहा एक हाथ और लम्बाई ढाई हाथ होती, तिल्ला आगेकी ओर झूला करता, जिसमें कौड़ी गुंथी रहती हैं। रूई अथवा पेड़की छालका एक दूसरा वस्त्र भी यह अपने शरीर पर चद्दरकी तरह डाले हैं। इनका यह ठाट घर-बाहर सभी जगहका है। नाचना-गाना अथवा लड़ाई-झगड़ा इस वेशमें नहीं होता। नृत्यगीत तथा युद्धका ठाट दूसरा ही है। गहरे नीले रङ्गकी चद्दरके दोनो अञ्चलोंमें झालरदार हाशिया लगता और दोनो किनारोंपर लाल और पीले रङ्गकी कोर रहती है। यही अङ्गामियोंके युद्ध और नाचका सामान है। इस चद्दरकी यह पीठके ऊपरसे पैर तक लपेट लेते हैं। स्त्रियोंके पास दो वस्त्र रहते हैं। शरीरपर एक छोटा कुरता कमर तक झूलता, इसके ऊपर एक चद्दर कन्धेसे कमर तक उलझी रहती है। जाड़ेके दिनमें इसपर एक और भी चद्दर स्त्रियां डाल लिया करती हैं।

सुसज्जित अङ्गामी-नागा

अङ्गामी पुरुषोंके शिरमें बड़े-बड़े केश होते, जो सामनेकी ओर कुछ छोटे और घूमे हुए रहते हैं। कितने ही भौंहों तक केश लटकाते हैं। पीछे बड़े केशोंका चूड़ा बंधता है। इसमें ऐंठ-ऐंठकर रूई लगा दी जाती है। कोई पर्व या त्यौहार आने पर यह इसे पक्षियोंके परसे साजते हैं। पूंछके सादे परपर काले रंगका दूसरा पर लगा दिया जाता है। यही साज अङ्गामियोंको बहुत प्रिय है। पसन्द आ जानेसे आठ आने देकर भी यह एक पर ख़रीद लेते हैं। किन्तु पोशाक पर सबकी समान रुचि नहीं होती। कोई-कोई तो केश काट कर निकाल डालते हैं और शिर पर कोई वेशभूषा नहीं रखते; कोई कोई भालूके रूएंकी माला बना कर पहन लेते हैं।

कानोंके भूषण भी बहुत तरहके होते हैं, जिनमें कर्णफूल ही सबको बहुत प्रिय है। इस फूलमें अच्छी कारीगरी होती है। पहले लाल पशमका फूल बनाया जाता, जिसकी चारो ओर बकरीके रूएंकी झालर चामरकी तरह लहराती है। बीचमें हरे तोतेका पर रहता है। परके किनारे-किनारे सफ़ेद बीज मोतीके समान सजाये जाते हैं। फूलकी बोंड़ी कन्धेके पीछे सूअरके दांतसे अटकाते हैं। दांतकी जड़में बहुत तरह बेंतके काम किये जाते हैं। कितने हा कांसेकी बाली, रूईका गुच्छा और पक्षियोंके पर भी कानमें पहनते हैं। गलेमें हड्डी, अकीक, कांच और शङ्ख तथा कौड़ीकी माला ही अधिक पड़ती है। बांहमें हाथी दांत या बेंतका बाजूबन्द और पैरमें बेंतका कड़ा रहता है।

अविवाहित बालिकायें बाल नहीं रखतीं, सब माथा मुड़ा डालती हैं। विवाहके बाद यह बाल रखतीं और बढ़ने पर चूड़ा बांधती हैं। स्त्रियोंके गलेका अलङ्कार प्रायः पुरुषोंके समान ही होता है। कुमारी कानमें लकड़ीके छल्ले डालती हैं। विवाहिता स्त्रियोंके कानों में बाली और बांहोंमें कांसेका ज़ेवर रहता है।

अङ्गामियोंका खास अस्त्र बर्छा और दांव है। अब इन्हें कितनी ही बन्दूकें भी मिल गई हैं। यदि यह किसीके हाथमें बन्दूक या तमञ्चा देख लेते, तो उसको पानेकी प्राणपणसे चेष्टा करते हैं। सहजमें न मिलनेसे चुरानेका उद्योग लगाते हैं। जिस समय यह लड़ाईमें जानेके लिये सज-सजा और दल बांधकर निकलते हैं, उस समयका दृश्य बड़ा ही भयङ्कर होता है। यह अपना सर्व्वाङ्ग अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित कर बादलकी तरह गरजते हैं। हाहाकारसे चारो दिक् कांप उठते, पर्वत डोलने लगते और वसुमती समझ सकती हैं, कि उनकी छाती पर कोई वीर पुरुष ललकार रहा है।

इनका बर्छा सामान्य नहीं होता। पाससे किसीको आघात करनेसे प्रायः निष्फल नहीं जाता। बर्छेका फल एक हाथसे डेढ़ हाथ तक लम्बा और

तीन-चार अङ्गुल चौड़ा होता है। यह फल तीन-चार हाथ लम्बे बेंटमें लगता ; जिसमें विचित्र रूआं सजाया जाता और जिसके दूसरे छोर पर लोहेका एक पतला दूसरा फल भी रहता है। नागी भूलकर भी टेढ़ा बर्छा नहीं जड़ाते। बर्छेका बेंट सदा सीधा ही रहना चाहिये। इनकी ढाल तख़ते तथा बांससे बनती, जिसपर हाथी या शेरका चमड़ा मढ़ा जाता है। ढालके ऊपरी दोनो कोनोंपर बेंतके सींग बने रहते, जिनका अग्रभाग बालके गुच्छेसे सजता है। ढालके नीचेका भाग पतला रहता, जिसके बीचमें सफ़ेद, काले, नीले और लाल रंग-बिरंगे रूएं तथा पर लगा दिये जाते हैं। नागाओंकी खेतीके अस्त्र दांव, कुदाल और कुठार हैं ; इन्हींसे यह सब काम चला सकते हैं। अङ्गामियोंको किसी द्रव्यसे वितृष्णा नहीं। जगत्में जो अखाद्य है, यह वही आनन्दसे खाते हैं। इनके लिये कुत्तेका मांस सुखाद्य और सत्पथ्य है ; पका और गलाकर खानेसे शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि नहीं रहती। परन्तु यह कह नहीं सकते, कि जो जाति ऐसी निर्विकार है, उसे दूध क्यों नहीं रुचता। दूधका कटोरा मुंहके पास ले जानेसे ही यह वमन कर देते हैं।

अङ्गामी एक स्त्रीके रहते दूसरीसे कभी विवाह नहीं कर सकते ; परन्तु स्त्री अपने इच्छानुसार पतिको छोड़ सकती, पति भी इच्छा करनेसे स्त्रीको त्याग देता है। फिर किसीको भी पुनर्विवाह करनेमें रुकावट नहीं होती। इनका विवाह वरकन्याके इच्छानुसार ही होता है। दोनोका मन मिल जानेसे घरका अभिभावक आपत्ति नहीं करता। हां, आवश्यकता पड़ने पर वह सत् परामर्श दे सकता है। विवाह तथा श्राद्ध आदिके अवसर पर पेट भर मद्य मांस खानेके सिवा और कुछ भी धूमधाम नहीं होती।

पिताकी मृत्युके बाद जो कुछ सम्पत्ति रहती है, सब लड़के मिल कर उसे बांट लेते हैं ; परन्तु मकान कनिष्ठ पुत्रकी ही सम्पत्ति समझा जाता है, उस पर दूसरे लड़कोंका कोई अधिकार नहीं। घरकी विधवा स्त्रियां जीवन पर्यन्त भोजन-वस्त्र पाती हैं, परन्तु अपने वस्त्रालङ्कारके सिवा इन्हें किसी दूसरी वस्तुका अंश नहीं मिलता। स्त्री और पुरुषमें विच्छेद होनेसे परित्यक्त स्त्री सारी सम्पत्तिका एक तिहाई अंश पाती है। यदि उस स्त्रीकी गोदमें कोई दुधमुंहा बच्चा हुआ, तो वह कुछ समयतक माके पास रहता, बड़ा होने पर अपने पिताके पास वापस जाता है।

गांवके पास ही अङ्गामियोंका कब्रस्थान रहता है। यह मृतदेहके साथ अस्त्र, वस्त्र, शराब, मुर्गी, और खाने-पीनेका सामान गाड़कर ऊपर समाधि बना देते हैं। समाधिको चारो ओर पत्थरसे घेर बीचमें एक पत्थरपर मृत व्यक्तिकी मूर्ति बना दी जाती है। शव गड़ जानेपर बहुतसे पत्ते रखकर शराब ढाल देते हैं। यद्यपि अङ्गामी मांस-पिशाच हैं, तथापि इनमें जो कुछ धर्मज्ञान है, उससे जीवहिंसा और अखाद्य भोजन को महा पाप समझते हैं। इनको विश्वास है, कि अच्छे पुरुष मरने बाद आकाशके नक्षत्र होते हैं ; परन्तु मांस खाने से सात बार प्रेतयोनि में जन्म लेकर फिर मधुमक्षिका होना पड़ता है। आका, सन्थाल आदि असभ्य जातियोंके समान पहाड़ोंमें इनके भी बहुतसे देवता हैं। नदी, जङ्गल, गिरिगुहा और पर्वतमें सदा एक न एक देवता विराजा करते हैं। नागी प्राणके भयसे इनको पूजते हैं, क्योंकि इनके हृदयमें वास्तविक भक्ति नहीं होती। जब कभी कोई नया काम यह करते, तब पहले उसका शुभाशुभ फल विचार लेते हैं। विना शकुनके कोई काम करनेसे इनको मूर्खता प्रकट होती है। यह हमारी तरह काग़ज़ और क़लमसे गणना नहीं करते ; फल-फूलके नाम द्वारा भी नहीं विचारते। जिस समय किसी कार्यका परिणाम जाननेकी इच्छा इनके चितमें उत्पन्न होती है, उस समय एक पतली लकड़ीको दांव से ज़रा-ज़रा काटते हैं। ऊपरका कटा मुँह यदि उलट पड़े, तो बड़ा कुलक्षण

मृत अङ्गामीकी मूर्त्ति।

तीन-चार अङ्गुल चौड़ा होता है। यह फल तीन-चार हाथ लम्बे बेंटमें लगता; जिसमें विचित्र रूआं सजाया जाता और जिसके दूसरे छोर पर लोहेका एक पतला दूसरा फल भी रहता है। नागे भूलकर भी टेढ़ा बर्छा नहीं जड़ाते। बर्छेका बेंट सदा सीधा ही रहना चाहिये। इनकी ढाल तख्ते तथा बांससे बनती, जिसपर हाथी या शेरका चमड़ा मढ़ा जाता है। ढालके ऊपरी दोनों कोनोंपर बेंतके सींग बने रहते, जिनका अग्रभाग बालके गुच्छेसे सजता है। ढालके नीचेका भाग पतला रहता, जिसके बीचमें सफेद, काले, नीले और लाल रंग-बिरंगे रूएं तथा पर लगा दिये जाते हैं। नागाओंकी खेतीके अस्त्र दांव, कुदाल और कुठार हैं; इन्हींसे यह सब काम चला सकते हैं। अङ्गामियोंको किसी द्रव्यसे वितृष्णा नहीं। जगत्‌में जो अखाद्य है, यह वही आनन्दसे खाते हैं। इनके लिये कुत्तेका मांस सुखाद्य और सत्पथ्य है; पका और गलाकर खानेसे शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि नहीं रहती। परन्तु यह कह नहीं सकते, कि जो जाति ऐसी निर्विकार है, उसे दूध क्यों नहीं रुचता। दूधका कटोरा मुंहके पास ले जानेसे ही यह वमन कर देते हैं।

अङ्गामी एक स्त्रीके रहते दूसरीसे कभी विवाह नहीं कर सकते; परन्तु स्त्री अपने इच्छानुसार पति-को छोड़ सकती, पति भी इच्छा करनेसे स्त्रीको त्याग देता है। फिर किसीको भी पुनर्विवाह करनेमें रुकावट नहीं होती। इनका विवाह वरकन्याके इच्छानुसार ही होता है। दोनोंका मन मिल जाने-से वरका अभिभावक आपत्ति नहीं करता। हां, आवश्यकता पड़ने पर वह सत् परामर्श दे सकता है। विवाह तथा श्राद्ध आदिके अवसर पर पेट भर मद्य मांस खानेके सिवा और कुछ भी धूमधाम नहीं होती।

पिताकी मृत्युके बाद जो कुछ सम्पत्ति रहती है, सब लड़के मिल कर उसे बांट लेते हैं; परन्तु मकान कनिष्ठ पुत्रकी ही सम्पत्ति समझा जाता है, उस पर दूसरे लड़कोंका कोई अधिकार नहीं। घरकी विधवा स्त्रियां जीवन पर्यन्त भोजन-वस्त्र पाती हैं, परन्तु अपने वस्त्रालङ्कारके सिवा इन्हें किसी दूसरी वस्तुका अंश नहीं मिलता। स्त्री और पुरुषमें विच्छेद होनेसे परित्यक्ता स्त्री सारी सम्पत्तिका एक तिहाई अंश पाती है। यदि उस स्त्रीकी गोदमें कोई दुधमुंहा बच्चा हुआ, तो वह कुछ समयतक माके पास रहता, बड़ा होने पर अपने पिताके पास वापस जाता है।

गांवके पास ही अङ्गामियोंका कब्रस्थान रहता है। यह मृतदेहके साथ अस्त्र, वस्त्र, शराब, मुर्गी, और खाने-पीनेका सामान गाड़कर ऊपर समाधि बना देते हैं। समाधिको चारों ओर पत्थरसे घेर बीचमें एक पत्थरपर मृत व्यक्तिका मूर्ति बना दी जाती है। शव गड़ जानेपर बहुतसे पत्ते रखकर शराब ढाल देते हैं। यद्यपि अङ्गामी मांस-पिशाच हैं, तथापि इनमें जो कुछ धर्मज्ञान है, उससे जीवहिंसा और अखाद्य भोजन को महा पाप समझते हैं। इनको विश्वास है, कि अच्छे पुरुष मरने बाद आकाशके नक्षत्र होते हैं; परन्तु मांस खाने से सात बार प्रेतयोनि में जन्म लेकर फिर मधुमक्षिका होना पड़ता है। आका, सन्थाल आदि असभ्य जातियोंके समान पहाड़ोंमें इनके भी बहुतसे देवता हैं। नदी, जङ्गल, गिरिगुहा और पर्वतमें सदा एक न एक देवता विराजा करते हैं। नागे प्राणके भयसे इनको पूजते हैं, क्योंकि इनके हृदयमें वास्तविक भक्ति नहीं होती। जब कभी कोई नया काम यह करते, तब पहले उसका शुभाशुभ फल विचार लेते हैं। विना शकुनके कोई काम करनेसे इनका मूर्खता प्रकट होती है। यह हमारी तरह कागज़ और कलमसे गणना नहीं करते; फल-फूलके नाम द्वारा भी नहीं विचारते। जिस समय किसी कार्यका परिणाम जान-नेकी इच्छा इनके चित्तमें उत्पन्न होती है, उस समय एक पतली लकड़ीको दांव से ज़रा-ज़रा काटते हैं। ऊपरका कटा मुंह यदि उलट पड़े, तो बड़ा कुलक्षण

मृत अङ्गामीकी मूर्ति।

समझा जाता है। भविष्यत् देखनेकी और भी अच्छी प्रक्रिया है। एक मुर्गीका गला पकड़कर दबानेसे यदि वह बायें पैर पर दाहना पैर रख कर मरे, तो अधिक सुलक्षण है। यदि युद्धमें जाते समय सामनेसे हरिण दौड़कर चला जाय, तो युद्धमें हारना होता है; परन्तु पीछेसे यदि बाघ निकले, तो देवताओंके अस्त्र उठानेसे भी युद्धमें पराजय नहीं होती। कितने ही वनके पक्षियोंकी बोलियां शुभ, और कितनों ही की अशुभ समझी जाती हैं। बाईं ओर उनका बोलना शकुन और दाहनी ओर बोलना अशकुन होता है।

अङ्गामियोंका कोई राजा नहीं। यह सब स्वतन्त्र रहते हैं। फिर भी इतना है, कि इनके दलका एक सरदार होता, जो "प्यूमा" कहलाता है। जो सद्वक्ता हो, युद्धमें दो-चार बार वीरता दिखा चुका हो तथा जिसके पास भूमि और गाय-बैल बहुतसे हों, वही पुरुष सरदार होने योग्य समझा जाता है। विरोध होने पर वही दोनो पक्षके मनुष्योंको समझा-बुझा कर निबटारा करता है। परन्तु निबटारेके समय सरदारको निरपेक्ष रहकर दोनो पक्षके मनुष्योंका चित्त समाधान करना पड़ता है; नहीं तो उसकी बात कोई भी नहीं मानता। ऐसा न होनेसे अर्थी और प्रत्यर्थी अपने बाहुबलसे झगड़ेका निबटारा कर लेते हैं। प्रसन्नताकी बात यह है, कि एक सम्प्रदायमें विवाद होते समय दूसरे दलके लोग किसीके भी पक्षको अवलम्बन नहीं करते। युद्धमें वह प्रायः निरपेक्ष रहते हैं। यदि यह गुण न होता, तो आज तक नागा जाति निर्मूल हो जाती।

नागाओंने अंगरेज़ोंसे कई बार युद्ध किया है। सन् १८३१ ई० में कप्तान जेङ्किन्स, पेम्बर्टन और गर्डन आसाम और मणिपुर नागाओंके साथ व्यवसाय खोलने गये थे। परन्तु अङ्गामी अपनी स्वाधीनता चले जानेके भयसे लड़ पड़े। कितने ही नागाओंने अंगरेज़ोंको पकड़कर मार डाला, कितने ही अंगरेज़ोंकी गोलियोंसे मारे गये। इसके बाद सन् १८५० ई० में इनपर फिर काल आया। समगुतिङ्ग-में अंगरेज़ोंका एक अड्डा था। नागे बार-बार वहां उत्पात मचाने लगे। अन्तमें इन्होंने वहांके जमादार भोगचाँदको मार डाला। इस अपराधका उचित दण्ड देनेके लिये अंगरेज़ोंने फिर चढ़ाई की, इस बार गहरी लड़ाई हुई। नागे पराजित होकर भाग खड़े हुए। अब अङ्गामियोंका दौरात्म्य बहुत कुछ कम हो गया है। नागा देखो।

चोमु नामक स्थानमें शेवंभङ्गम् एक बलिष्ठ मनुष्य थे। यह सदा रणवेशमें रहते थे। यह चित्र फेमीका है, जो शेवंभङ्गम्की स्त्री थीं।

यह वास्तवमें एक बड़ी ही सुन्दरी रहीं। फेमीकी कमरमें केवल एक झंगूलना पड़ा रहता था। शरीरमें और कहीं भी वस्त्र नहीं। झंगूलने पर साधारण कौड़ियोंका अलङ्कार और बेंतका कड़ा और बाजूबन्द, गलेमें पत्थरकी माला विराजती थी। नागाओंमें पुरुष ही अधिक गहने पहनते, स्त्रियां गहना उतना पसन्द नहीं करतीं।

अङ्गार (सं० पु०-क्ली०) अङ्ग-आरन्। अङ्गिमदिमन्दिभ्य आरन्। उण् ३।१३४। १ काष्ठादि किञ्चित् दग्ध होनेसे अग्निनिर्वाणके बाद जो कृष्णवर्ण पदार्थ अवशिष्ट रहता है, वह चीज़ जो लकड़ी वग़ैरह, कुछ-कुछ जल जानेसे आग बुझनेके बाद बाकी बचे। अँगार। २ कोयला। ३ मङ्गलग्रह। ४ रक्तवर्ण, लालरङ्ग। (त्रि०) ५ रक्तवर्णविशिष्ट, लाल, सुर्ख़। अग्यते चिह्नं क्रियते अनेन इति अङ्गारम्। जिससे चिह्न लगाया जाय, उसे अङ्गार कहते हैं। आज भी कितने ही लोग अङ्गारसे चिह्न लगाते हैं। पहले अङ्गार अधिक चिह्न करनेको व्यवहृत होता था। इसका प्रमाण कुमारसम्भवमें मिलता है—

"एषोऽपि विलिखन् भूमिं दण्डेनास्मितविग्रहा।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघेऽपि निर्वाणालातलाघवम्॥" कुमार २।२३।

अङ्गार वा कार्बोन् (Carbon)—साङ्केतिक चिह्न "का" (C); सांयोगिक गुरुत्व ११.९५। पृथिवीमें हम जितने

पदार्थ देखते. उनमें कितने हो यौगिक हैं। जो वस्तु स्वयं ही एक स्वतन्त्र पदार्थ है, दो-तीन पदार्थों के योगसे उत्पन्न नहीं हुई, वह रूढ़ पदार्थ समझी जाती है। जो वस्तु दो-तीन पदार्थोंके मेलसे उत्पन्न हुई, वह यौगिक पदार्थ है। सोना, चांदी, लोहा, गन्धक, अक्षिजेन, हाइड्रोजेन आदि द्रव्य रूढ़ पदार्थ हैं। जल यौगिक पदार्थ है, क्योंकि यह अक्षिजेन और हाइड्रोजेनके योगसे उत्पन्न होता है। इच्छा होनेसे हम इन दोनो पदार्थोंको अलग कर सकते, फिर यह दोनो पदार्थ मिलाकर जल भी उत्पन्न कर सकते हैं।

अङ्गार एक रूढ़ पदार्थ है। लकड़ी जला कर जो कोयला प्रस्तुत होता, साधारण भाषामें उसे ही अङ्गार, अँगार आदि कहते हैं; परन्तु रसायनविद्याके मतसे कोयला विशुद्ध अङ्गार (Carbon) नहीं। विशुद्ध अङ्गारका गुण यही है, कि ताप लगते ही वह अक्षिजेनके साथ मिल और भाफ़ बनकर उड़ जाये; बाकी कुछ भी न बचे। परन्तु कोयला जल जाने पर राख पड़ी रहती है। चूना, क्षार आदि पार्थिव पदार्थसे राख निकलती है। इस लिये कोयलेमें अङ्गारके अतिरिक्त दूसरा भी कोई पदार्थ मिला है। जलनेसे अङ्गार तो अक्षिजेनसे मिल और भाफ़ बनकर उड़ जाता, दूसरा पदार्थ राख होकर गिर पड़ता है। साधारण रीतिसे कोयेलेको (Charcoal) अङ्गार कह सकते हैं।

प्रदीपके ऊपर कोई चीज़ ढांक देनेसे जो काजल पड़ता, वह कोयलेकी अपेक्षा विशुद्ध अङ्गार है। स्वाभाविक अवस्थामें विशुद्ध अङ्गार दो प्रकारका होता है—हीरा और कृष्णसीस। अतएव अङ्गारका रूप एक प्रकारका नहीं। काजल बहुत ही कोमल पदार्थ है, किन्तु वह भी अङ्गार है; फिर वज्रतुल्य हीरा भी अङ्गार है। हीरा, कृष्णसीस और कोयलेका पूरा विवरण नीचे लिखा गया है।

हीरा (Diamond)—सन् १७५६ ई०में लेवोसिओने अक्षिजेनमें हीरा जलाकर देखा, कि वह विशुद्ध अङ्गारके सिवा और कुछ भी न था। हीरेका आपेक्षिक गुरुत्व ३३ से ३५ तक है। मट्टीके भीतर वेल पत्थरकी खानिमें यह उत्पन्न होता है। स्वाभाविक अवस्थामें इसकी चारो ओर बहुतसे कोने होते हैं, देखनेमें ठीक ज्यामितिके चित्र जैसा यह मालूम पड़ता है। इतना वज्रतुल्य कठिन पदार्थ संसारमें दूसरा कोई नहीं। खानिसे निकालने पर हीरा काटना पड़ता है। काटनेसे इसकी उज्ज्वल दीप्ति प्रकाशित हो जाती है। गोलकुण्डा, बोर्णियो, और ब्रेज़िल प्रदेशका हीरा ही प्रसिद्ध है। अफ्रीकाके केप प्रदेशमें भी कितना ही हीरा मिलता है। हीरा अमूल्य रत्न है; जो हीरा जलके समान साफ़ होता, उसीका अधिक आदर है। हीरेसे शीशा और पत्थर काटा जाता और वैद्य हीरेकी भस्मसे औषध प्रस्तुत करते हैं। अन्य कोई पदार्थ न मिलाकर यदि केवल हीरेमें प्रखर ताप दिया जाये, तो वह फूलकर ठीक कोयलेके समान हो जाता है। इसीसे लोगोंका अनुमान है, कि खनिज द्रव्यमें विशेष ताप लगनेसे हीरा नहीं उत्पन्न होता। हीरा देखो।

दूसरा अङ्गार—काला सीसा (Plumbago or Graphite) है। यह खनिज पदार्थ लङ्का, साइबेरिया और कम्बर्लैण्ड प्रदेशके वारोडेल् नामक स्थानमें बहुत मिलता है। यह देखनेमें सीसेके समान, परन्तु काला होता है। कागज़ पर इसे रगड़नेसे काला दाग़ पड़ जाता है। इसलिये इससे अच्छा पेन्सिल बनता है। लोहेके बने हथियार भी इससे मांजनेपर खूब साफ़ होते हैं। काला सीसा छकोनी सलाईके आकारमें खानिके भीतर रहता है। सीसा देखो। इसका आपेक्षिक गुरुत्व २·१५ से २·३५ तक है। गन्धक-द्रावक और क्लोरेट् अव पोटासके साथ आंच देने पर इसका मैल निकल जाता है। अधिक आंच देनेसे पात्रमें शुद्ध सीसा जम जायेगा। पीछे कसनेसे धातुके समान कड़ा हो जाता है।

तीसरा अङ्गार—औद्भिद और जान्तव हैं। लकड़ी और जन्तुकी हड्डी जलनेसे कोयला होता है। मट्टीके भीतर पत्थरका कोयला मिलता है। दीपपर कोई

चीज ढांकनेसे काजल पड़ता, जो सभी कार्बोन है। लकड़ीका कोयला जलमें डालनेसे तैरता है। यह देखनेसे सहसा मालूम होता, कि लकड़ीका कोयला जलसे हलका है; परन्तु वह वास्तविक हलका नहीं होता। कोयलेमें छोटे-छोटे छिद्र होते, जिनमें हवा पहुंचा करती है। जलसे हवा हलकी है। हलके पदार्थका स्वाभाविक गुण यही है, कि वह जलपर तैरा करता, और भारी पदार्थ उसमें डूब जाता है। पूरी सांस चढ़ाकर जलमें गोता मारनेसे शरीर जलके ऊपर उठकर तैरने लगता है। एक छोटा छिद्र रहनेसे सूई जलपर तैरती है। परन्तु यदि कोयलेको चूरकर जलमें डाल दिया जाये, तो सब छिद्र नष्ट हो जानेके कारण वह जलमें डूब जायेगा।

छोटे-छोटे छिद्र रहनेके कारण कोयला मनुष्यके बहुत काम आता है। भेंड़ और बैलकी हड्डीके कोयलेसे चीनी और नमक आदि कितनी ही चीजें साफ़ की जाती हैं। कोयलेका टुकड़ा जितना बड़ा होता, उसमें ठीक उससे ८० गुण आयतनका एमोनिया बाष्प और ८ गुण आयतनका अम्लजिन सोखता है; इसलिये रोगी मनुष्यके घर अथवा दुर्गन्ध स्थानमें रखनेसे वायुका दोष नष्ट हो जाता है।

लकड़ी जलानेसे पत्थरका कोयला नहीं बनता। इसकी उत्पत्ति अन्य प्रकार है। बड़े-बड़े जङ्गलोंपर मट्टी पड़े कितने ही युग बीत गये। धीरे-धीरे भीज, तापसे सिद्ध हो वही सब वृक्ष आज पत्थरका कोयला बन गये हैं।

कोयलेका गुण यही है, कि यथेष्ट अम्लजिन पानेसे जलनेके समय वह अपने आकारके ठीक दूने अम्लजिनमें मिल जाता है। अर्थात् अङ्गारका एक परमाणु अम्लजिनके दो परमाणुओंमें मिलता है। अधिक अम्लजिन पानेसे उसके साथ कभी नहीं मिलता। अङ्गार और अम्लजिनके एकत्र मिलनेसे दो प्रकारके यौगिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इनमें एकका नाम अङ्गारक बाष्प (Carbon monoxide or Carbonic oxide gas) और दूसरेका नाम अङ्गाराम्ल (Carbon dioxide or Carbonic acid) है। अङ्गार जलनेके समय अम्लजिनके न्यूनाधिक्यसे यही दोनो यौगिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। अङ्गारसे इसके ठीक परिमाणके अनुसार अम्लजिन मिलने पर अङ्गारक बाष्प निकलती है। फिर यदि ठीक इससे दूना अम्लजिन मिल गया, तो अङ्गाराम्ल उत्पन्न होता है। इस लिये अङ्गारक-बाष्पका साङ्केतिक चिह्न—१ समान कार्बोन + १ समान अम्लजिन या "काअ" (CO); एवं अङ्गाराम्लका साङ्केतिक चिह्न—१ एक भाग कार्बोन + २ दो भाग अम्लजिन या "काअ२" (CO_2) है।

लोहेके चूल्हेमें पत्थरका कोयला जलाने पर नीचेसे हवा प्रवेश करती है। हवामें प्रचुर अम्लजिन है; सुतरां अङ्गारके साथ यथेष्ट अम्लजिन मिल जाता है। इसीसे अङ्गाराम्ल-बाष्प उत्पन्न होती है। इसके बाद, यह भाफ़ आगके भीतरसे ऊपरको ओर उठती है। आगके भीतर हवा अच्छी तरह नहीं रह सकती, इसीसे वहां यथेष्ट-अम्लजिन भी नहीं होता है। नीचेकी अङ्गारक भाफ़ ऊपर उठनेसे आगके भीतरके अङ्गार उसी बाष्पका अल्प-अल्प अम्लजिन खींचा करते हैं। इसीसे अङ्गारक-बाष्प उत्पन्न होती है। आगके भीतर जो नीली शिखा देख पड़ती, वही अङ्गारक-बाष्पकी शिखा है। अन्तमें अङ्गारक-बाष्प आगके ऊपर आनेसे चारो ओर हवा लगती है; इसलिये फिर वहां अम्लजिनका अभाव नहीं रहता। वही अङ्गारक बाष्प फिर अङ्गाराम्ल होकर उड़ जाती है।

रासायनिक पण्डित किसी विषयकी परीक्षाके लिये अक्षालिक् अम्ल (Oxalic acid) और गन्धक-द्रावकसे अङ्गारक बाष्प तय्यार करते हैं। परन्तु जगत्में अङ्गाराम्ल बाष्पका अभाव नहीं। वायुके २५०० ढाई हजार भागका एक भाग अङ्गाराम्ल है। पण्डितोंने निश्चित किया है, कि पृथ्वीके समुदय वायुमें ८१,००,००,००,००,००,०० मन अङ्गाराम्ल है। केवल लकड़ीका कोयला आदि जलनेसे ही अङ्गाराम्ल नहीं उत्पन्न होता, सब जन्तुओंके

प्रश्वासके साथ और रोम-रोमके छिद्रसे आठो पहर यह बाहर निकला करता है। उद्भिद् इसीको श्वासके साथ खींचते, जो धीरे-धीरे काठ और कोयलेमें परिणत होता है। सब भाफोंसे अङ्गाराम्ल बाष्प ज्यादा वजनदार होती है। इसके भीतर आग नहीं जलती। अङ्गाराम्ल भाफसे भरी शीशीके भीतर जलता हुआ फलीता डालते ही बुझ जाता है। इसीसे कोयलेकी खानिमें आग लगने पर उसे बुझाने-का इससे सहज उपाय नहीं, कि खानिकी चारो ओर राह बन्द करके भीतर अङ्गाराम्ल पहुंचाये। इससे उसी समय आग बुझ जाती है। जहां आग नहीं जलती, वहां अग्निशिखा भी नहीं जल सकती। बहुत दिनके पुराने कुएंमें अङ्गाराम्ल उत्पन्न हो जाता है। इसीसे ऐसे कुएंमें मनुष्य उतरते ही मरता है। कभी-कभी ऐसी दुर्घटना सुननेमें आया करती है। पुराना कुआं उगारने अथवा उसमें गिरे हुए जलपात्रादि निकलवानेकेलिये एकाएक मनुष्यको नीचे न उतरने देना चाहिये। पहले लालटेनमें बत्ती जलाकर कुएंमें उतारे। जलके पास पहुँच जाने पर भी यदि बत्ती जलती रहे, तो किसी विपद्‌का भय नहीं। परन्तु यदि एकाएक बत्ती बुझ जाये, तो उस कुएंमें उतरनेसे मनुष्यको मृत्यु निश्चित है।

किसी छोटे कमरेमें अधिक मनुष्योंके एक साथ बैठने-पड़नेसे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। यहां तक, कि सहसा मृत्यु भी हो सकती है। कलकत्तेकी कालकोठरी या उसके अन्धकूपका समाचार अधिकांश मनुष्य जानते हैं। सन् १७५७ ई०-की २१वीं जूनवाली रात थी। मकान, मैदान, घाट-बाट सब निस्तब्ध थे। कहीं हवा नहीं, पत्तातक हिलता न था, और न मनुष्योंकी पदध्वनि ही सुन पड़ती थी। पाताल फटा जाता और मारे गर्मीके प्राण निकलता था। ऐसे ही समय नवाब सिराजुद्दौलाके कर्मचारियोंने १४६ मनुष्योंको पकड़ एक छोटी कालकोठरीमें कैद कर दिया। दूसरे दिन सवेरे उनमें केवल २३ मनुष्य जीवित बचे। उनमें भी कितनो होने पीछे ज्वर रोगसे अपने प्राण गँवाये। हमारे देशके मनुष्य आत्महत्या करनेको गलेमें फांसी लगाते, अफ़ीम खाते हैं। इससे कितना कष्ट मिलता है! पेरिसनगरके मनुष्य पण्डित हैं, इसी कारण हम लोगोंसे मरना भी अच्छा जानते हैं। आत्महत्या करनेकी इच्छा होनेसे वह बन्द कमरेमें खूब कोयला सुलगाकर सो जाते हैं। खिड़की, दरवाजा खुला न रहनेके कारण कमरेमें साफ़ हवा प्रवेश नहीं कर सकती, इसीसे अङ्गाराम्लके विष द्वारा शीघ्र मृत्यु हो जाती है। ऐसी मृत्युमें कुछ भी कष्ट नहीं होता।

कई वर्षकी बात है, कि बङ्गालके आमोदपुर नामक ष्टेशनका एक खलासी अपने स्त्री-पुत्रको लेकर एक छोटीसी कोठरीमें सो गया। जाड़ेकी रात होनेके कारण अंगोठीमें कोयला खूब सुलग रहा और दरवाजा बन्द था। कुछ देर बाद उसके एक आत्मीयने जाकर देखा, कि वह सब मर गये थे। सन् १८७२ ई० के समय शिमलेमें भी ठीक एक ऐसी ही दुर्घटना हुई। नेपियर साहब कई कुलियोंके साथ पर्वत पर घूमने गये। रातका समय और शीतका प्राबल्य था; लोगोंके दांत हिले जाते थे। कुलियोंने अपने डेरेके बीचमें गड्ढा खोद कर कोयला जलाया। गड्ढेकी चारो ओर पास ही पास सब लोग सो गये। रात्रिके समय बरफ़ पड़नेके कारण डेरेके सब दरवाजे बन्द हुए, हवा जानेकी जगह कहीं भी न रही। इसलिये जलते हुए कोयलेके अङ्गाराम्ल विषसे प्रायः सब कुली मर मिटे; केवल दरवाजेके पास सोये हुए दो कुली बड़े कष्टसे जीते बचे। विलायतमें अङ्गाराम्ल द्वारा ही आजकल कुत्ते मारे जाते हैं। मनुष्य दयाका सागर है। लाठीसे जीवहिंसा करने पर बड़ा कष्ट होता है। आवश्यकता पड़नेसे हिंसा करनेमें कोई क्षति नहीं, किन्तु उसमें मनुष्यत्वको प्रकाश करना एकान्त कर्तव्य है। अतएव कुत्तोंको मारनेके लिये अङ्गाराम्लसे भरे घरमें बन्द किया जाता है। कोठरीमें पहुंचते ही पहले कुत्ते सो और

कुछ क्षण बाद मर जाते हैं। इस देशमें जाड़ेके दिनों कितने ही कोठरीके भीतर आग सुलगाकर रखते हैं। सूतिकागृहमें भी अंगारे तथा लकड़ियां जलाई जाती हैं। परन्तु इससे पद-पदपर दुर्घटना होनेकी सम्भावना है। सोनेके कमरेमें नारङ्गी, आम आदि पके फल और न अधिक फूल ही रखना चाहिये। इन सब पदार्थोंसे अङ्गाराम्ल निकलता, इसलिये पीड़ा और हठात मृत्यु संघटित हो सकती है।

ज्वालामुखी पहाड़के पासकी भूमिसे अङ्गाराम्ल निकलता है। यवद्वीपमें उपास नामकी एक उपत्यका है। वहां दिनरात मट्टीके भीतरसे अङ्गाराम्ल निकला करता है। इसी तीक्ष्ण विषके प्रभावसे आस-पास घास भी नहीं जमती। उस भूमिसे बारह हाथ ऊपर उड़ता हुआ पक्षी गिरकर मर जाता है। बहुतसे मनुष्योंने इस स्थान पर कुत्ते फेंककर देखा है, कि वह १४ पलके भीतर ही मरते हैं।

अङ्गाराम्ल श्वासयन्त्रके लिये विषके समान; परन्तु जठराग्निके लिये अमृत जैसा है, इससे परिपाक-शक्ति बढ़ती है। इसीसे लोग सोडावाटर, लेमनेड आदि बाष्पजल पीते हैं। सोडावाटर देखो।

अङ्गार और हाइड्रोजेनके योगसे बहुतसे यौगिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं। इनमें जला-बाष्प (marsh-gas) प्रधान है। यह भाफ कोयलेकी खानियों और अन्यान्य स्थानोंमें उत्पन्न होती है। खानिके भीतर अन्धकार रहनेके कारण विना प्रकाश कुछ भी दिखाई नहीं देता; परन्तु जहां यह भाफ उत्पन्न होती, उस स्थानमें मशाल ले जानेके साथ ही आग लग जाती, जिससे कभी-कभी बड़ी मुश्किलमें पड़ना होता है। इसीसे डेभी साहबने एक प्रकारकी तारोंसे लपेटी लालटेन बनाई है, जिसमें कोई भय नहीं रहता। खाड़ी, गड्ढे, पुराने तालाब और दलदलमें यह बाष्प उत्पन्न होती है। भीतरसे जो भाफ फूटती, उसका चिह्न बुलबुला जलके ऊपर दिखाई देता है। पत्थरके कोयलेसे जो गैस तय्यार होती, वह भी अङ्गार और हाइड्रोजेनसे मिली रहती है। एक भाग अङ्गार और दो भाग हाइड्रोजेन मिलाकर जो गैस (olefiant gas) बनाई जाती, उसकी रोशनी दिन जैसी साफ होती है।

दवाओंमें भी अङ्गार काम आता है। लकड़ी अथवा भेंड़ या बैलकी हड्डी बन्द बरतनमें रखकर धीमी-धीमी आंच लगाये। कुछ देर बाद ही उससे कोयला तय्यार हो जाता है। इस कोयलेको जल मिले हुए लवण-द्रावकमें (diluted muriatic acid) भिजाकर रख छोड़ना चाहिये। इससे कोयलेका सब अपरिष्कृत द्रव्य निकल जाता है। इसके बाद परिस्रुत जलमें कोयला धोनेसे व्यवहार-योग्य बनता है। लकड़ीके अङ्गारसे हड्डीका अङ्गार अधिक उपयोगी है। ऐलोपैथीवाले डाक्टरोंके मतसे यह वायु और अम्लको नष्ट करता है। इसकी मात्रा १० रत्तीसे ३० रत्ती तक है। रक्तामाशय रोगमें आंत सड़कर दुर्गन्ध आने पर १॥ रत्ती मात्रामें दिनको तीन-चार बार यह कोयला खिलाने और मलद्वारमें इसकी पिचकारी लगानेसे बड़ा उपकार होता है। अजीर्ण रोग, उदराध्मान और भोजनके बाद अम्ल होनेसे, कितने ही चिकित्सक अङ्गार खिलाते हैं। फोड़ा सड़कर दुर्गन्ध आनेसे नीचे लिखा प्रलेप बहुत ही फलदायक है—लकड़ीका कोयला आध छटांक, पावरोटी दो छटांक, अलसीकी खरी डेढ़ छटांक और साफ गर्म जल ढाई पाव, यह सब द्रव्य अच्छी तरह मिलाकर फोड़ेपर चुपड़ना चाहिये।

काष्ठविष, अफीम, कुचला आदि खा लेनेपर अङ्गारके सेवनसे विष नष्ट हो जाता है। चिकित्सासे पहले यह जान लेना चाहिये, कि कितना विष पेटमें पहुंचा है। क्यों कि कितनी ही परीक्षासे मालूम हुआ, कि विषका दशगुण कोयला खानेसे उसकी तेजोहानि होती है। कोयला खाने बाद पेटभर गर्म जल पीना चाहिये। जिनके मुंहसे दुर्गन्ध निकलता हो, वह सरसोंवाले तेलके साथ सुपारीका कोयला मिलाकर नित्य दांत रगड़ा करें; थोड़े ही दिनमें इससे मुख परिष्कृत और पद्मगन्धयुक्त हो जायेगा।

होमिओपेथिक चिकित्सामें काष्ठाङ्गार अमृतके

समान है। पुराने अतीसार रोगमें मलसे सड़ी बदबू निकलने पर कोयला महौषध है। ज्वर तथा हैजेमें हाथ-पैर ठण्ढे और नाड़ी क्षीण होने-पर, अङ्गारके सेवनसे शरीर गर्म और नाड़ी सबल हो जाती है। पुराने कास रोगमें कफ न निकलने, कलेजेमें जलन होने और पेट फूल जानेपर अङ्गार या अङ्गारका अर्क देनेसे बहुत उपकार होता है। साङ्घ्या विष खाने पर प्राणसंशय होनेमें कई जगह अङ्गारके सेवनसे सुफल हुआ है।

अङ्गारक (सं०पु०) अङ्गार-कन् स्वार्थे। १ मङ्गलग्रह। (पु०-क्ली०) २ अङ्गार। (क्ली०) ३ एक प्रकारका तेल। ४ भृङ्गराज। ५ कुरण्टक, पियाबासा, कटसरैया।

मङ्गल देखो।

अङ्गारक-तैल—पुराने ज्वरमें यह तैल मलनेसे लाभ होता है। तिलका तैल ४ सेर, कांजी १६ सेर; कल्कद्रव्य, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वामूल, लाचा, मञ्जिष्ठा, इन्द्रवारुणीका मूल, वृहती, सेंधा नमक, कूड़, रास्ना, जटामांसी, शतमूली साढ़े छः-छः तोले लेना चाहिये। पहले तैलको मार ले। तैल मारनेकी प्रक्रिया मूर्च्छा शब्दमें देखो। इसके बाद यह तैल कांजीके साथ पकाये। अन्तमें कल्क द्रव्यसे सिद्धकर पीछे जब तैल तय्यार हो जाये, तब गन्धद्रव्य डाल छान ले।

गन्धद्रव्य और तैलपाक देखो।

अङ्गारकमणि (सं० पु०) अङ्गारकस्य प्रियः मणिः। शाक-तत्। प्रवाल, मूंगा। प्रवालका रंग लाल होता, इसलिये यह मङ्गलग्रहको प्रिय है। मङ्गलके प्रीति-साधनको प्रवाल उत्सर्ग करनेकी व्यवस्था है—

"माणिक्यं विगुणो सूर्ये वैदूर्य्यं शशलाञ्छने।
प्रवालं भूमिपुत्रे च पद्मरागं शशाङ्कजे॥"

अङ्गारकारिन् (सं० त्रि०) अङ्गारं करोति, कृ-णिनि। बेचनेके लिये लकड़ी जलाकर कोयला तय्यार करने-वाला। कोयला बेचनेवाला। (स्त्री०) अङ्गारकारिणी।

हिन्दुस्थानमें जङ्गली प्रान्तके लोग जङ्गलसे बड़े-बड़े वृक्ष काट जानेपर उनकी जड़ें खोदकर जला डालते हैं। पीछे कोयला बीस-पच्चीस कोस तक बेचनेको भेजते हैं। सुनार तथा लुहार अपनी भट्ठी सुलगानेके लिये यह कोयला खरीद लेते हैं। जहां लकड़ीका सुभीता नहीं लगता, वहां इतर मनुष्य बांस जलाकर कोयला बनाते हैं। टिकिया तथा गुलके लिये भी कोयला खूब बिकता है। शालपत्र, पलाशपत्र और सड़े हुए पत्तोंसे भी अच्छा टिकिया तय्यार होता है। इनके अभावमें लकड़ीके कोयलेसे टिकिया बनाई जाती है। अरहर, धुनची और बैंगनकी लकड़ीके कोयलेसे बारूद तय्यार होती है। तम्बाकू पीनेमें टिकिया अधिक काम आती हैं। धोबी कपड़ोंपर इस्त्री करनेके लिये गुलको व्यवहार करते हैं।

अङ्गारकुष्ठक (सं०पु०) अङ्गार-कुष्ठ-कन्। हितावली नामक एक प्रकारकी ओषधि।

अङ्गारधानिक (सं०पु०) अङ्गार-धा-ल्युट्-कन् स्वार्थे। अंगीठी, बोरसी, अङ्गार रखनेका आधार, आग जलानेका बरतन। (स्त्री०) अङ्गारधानिका।

अङ्गारधानी (सं०स्त्री०) अङ्गाराणि धीयन्ते अस्याम्। धा-ल्युट्, अधिकरणे; स्त्रीत्वात् ङीप्। बोरसी, अंगीठी।

अङ्गारपरिपाचित (सं० क्ली०) अङ्गार-परि-पच्-णिच्-क्त; ज्वलदङ्गारेण पाचितः। जलती हुई आगमें दग्ध किया हुआ मांस, कबाब।

अङ्गारपर्ण (सं० पु०) 'अङ्गारवद्भास्वरं दुःस्पर्शञ्च पर्णं वाहनं रथो यस्य सोऽङ्गारपर्णः।' (नीलकण्ठ) जलती हुई आगके समान दीप्तिमान् और दुःस्पर्श जिसका पर्ण अर्थात् वाहन हो। इनका अपर नाम चित्ररथ था। यह जिस वनमें वास करते, वह भी अङ्गारपर्ण कहाता था। यह वन गङ्गा नदीके कूलमें अवस्थित था। चित्ररथकी प्रधान महिषी कुम्भीनसी थीं। गन्धर्वराज सन्ध्याको रमणीगण साथ ले गङ्गा नदीमें जलक्रीड़ा करते। एक दिन सायंकाल-को पाण्डव कुन्तीके साथ उसी राहसे जा रहे थे, उनके दर्शनसे चित्ररथ क्रुद्ध हो उनको तिरस्कार करने लगे। अर्जुन यह भर्त्सना वाक्य सह न सके और उन्होंने आग्नेय अस्त्रको त्याग किया। किन्तु कुम्भीनसी पाण्डवोंके शरणापन्न हुईं, इसलिये अर्जुनने

गन्धर्वका प्राण बचा दिया। इसी दिनसे चित्ररथके साथ पाण्डवोंकी मित्रता हो गई। गन्धर्वराजने अर्जुनको दिव्य घोटक और चाक्षुसी विद्या प्रदान की। (महाभारत, आदिपर्व, १७० अध्याय।)

अङ्गारपाचित—अङ्गारपरिपाचित देखो।

अङ्गारपात्री (सं० स्त्री०) अङ्गारस्य पात्री, ६-तत्। अङ्गार रखनेका आधार। अंगीठी, बरोसी, आतिशदान।

अङ्गारपुष्प (सं० पु०) अङ्गारमिव रक्तवर्णं पुष्पं यस्य बहुव्री०। इङ्गदीवृक्ष, हिंगोटका पेड़। काल-दुपहरी।

अङ्गारमञ्जी (सं० स्त्री०) अङ्गारा रक्तवर्णा मञ्जी यस्याः, बहुव्री०। करोंदा।

अङ्गारमञ्जरी (सं० स्त्री०) अङ्गारा रक्तवर्णा मञ्जरी यस्याः, बहुव्री०। करोंदा।

अङ्गारमणि—अङ्गारकमणि देखो।

अङ्गारमती (सं० स्त्री०) राजा कर्णकी पत्नी।

अङ्गारवल्लरी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका करोंदा। गुञ्जा, घुंघची। चिरमटी।

अङ्गारवल्लिका (सं० स्त्री०) अङ्गारा रक्तवर्णा वल्ली, स्वार्थे कन्। कर्म्मधा०। १ गुञ्जलता, घुंघची। २ करोंदा।

अङ्गारवेणु (सं० पु०) अङ्गारवर्णः वेणुः। अनुशतिकादीनाञ्च। पा ७।३।२०। रक्तवर्ण बांस।

अङ्गारशकटी (सं० स्त्री०) शकटी अल्पार्थे ङीप्। १ शकटिका, छोटी गाड़ी। (पु०-क्ली०) अङ्गारस्य शकटो, ६-तत्। २ अङ्गारशकट, आगकी गाड़ी। ३ अङ्गार रखनेका क्षुद्र आधार, आग जलाने की छोटी अंगीठी।

अङ्गारावक्षेपण (सं० क्ली०) अङ्गार-अव-क्षिप-ल्युट् करणे। अङ्गारमवक्षिप्यते अनेनेति। १ यद्द्वारा अङ्गारको अवक्षेपण किया जाये, जिससे अंगार फेंका जाये। निक्षेप करनेका पात्र। अङ्गारस्य अवक्षेपणम्, ६-तत्; भावे ल्युट्। २ अङ्गारक्षेपण, अंगारका फेंकना।

अङ्गारि (सं० स्त्री०) अङ्गार-ठन् मत्वर्थे। पृषोदरादित्वात् कलोपः। अङ्गार रखनेका आधार, आग जलानेका बरतन। बरोसी, अंगीठी, आतिशदान।

अङ्गारिका (सं० स्त्री०) अङ्गार-ठन्, स्त्रीत्वात् टाप्। १ बरोसी। २ इक्षुकाण्ड।

अङ्गारिणी (सं० स्त्री०) अङ्गार-इन्, स्त्रीत्वात् ङीप्। आग रखनेकी बरोसी।

अङ्गारित (सं० क्ली०) अङ्गार-इतच्। तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्। पा ५।२।३६। अङ्गारमिव रक्तवर्णं सञ्जातमस्य। १ पलाशकलिका, टेसूकी कली। (त्रि०) २ दग्धप्राय काष्ठ, जली-भुनी लकड़ी।

अङ्गारिन्—अङ्गारि देखो।

अङ्गारीय (सं० त्रि०) अङ्गार प्रकृतिरूपार्थे छ। अङ्गारेभ्य एतानि। दग्ध काष्ठ, जली हुई लकड़ी।

अङ्गिका (सं० स्त्री०) अङ्ग-इन्-कन् स्वार्थे, स्त्रीत्वात् टाप्। अङ्गमावृणोति। १ कञ्चुक, चोली। २ अंगिया, कुरती।

अङ्गिन् (सं० त्रि०) अङ्ग-इन् अस्त्यर्थे। शरीरी, अङ्ग-विशिष्ट, अङ्गवाला, जिसके अङ्ग हों।

अङ्गिरस् (सं० पु०) अगि-गतौ अस्-इरुट्। अङ्गिराः। उण्। ४।२३५। ब्रह्माके द्वितीय पुत्र। ब्रह्माके दूसरे लड़के। इनकी भार्याका नाम शुभा था। बृहस्पति अङ्गिराके पुत्र थे। भानुमती प्रथम, राका द्वितीय, सिनिवाली तृतीय, अर्चिष्मती चतुर्थ, हविष्मती पञ्चम और पुण्य-जनिका इनकी षष्ठ कन्या थीं।

महाभारतमें लिखा है, कि महर्षि अङ्गिराने एकबार कठोर तपस्याको आरम्भ किया था। तपो-बलके कारण उनके शरीरकी प्रभासे जगत् ढंक गया। उसी समय अग्नि भी तपस्या करते थे। उन्होंने सोचा,—'तपस्यामें रहनेसे हमारा तेज नष्ट हो गया है। मालूम होता है, कि इसी कारण ब्रह्माने अन्य अग्निकी सृष्टि की होगी।' इसके बाद अग्निने देखा, कि अङ्गिरा हुताशन-सदृश बन जगत्को ताप दे रहे थे। तब अङ्गिराने अग्नि-को देखकर कहा,—'आप शीघ्र अग्नि बन अपने अधिकारको ग्रहण कीजिये। मैं आपका पुत्र हूंगा।' इसी प्रार्थनानुसार अग्निने अपना

अधिकार लिया और अङ्गिरा बृहस्पतिके नामसे अग्निके पुत्र हुए। (वनपर्व २१६, २१७, २१८ अध्याय।)

अथर्वन् और अथर्वाङ्गिरस शब्द देखो।

आङ्गिरस्वत् (सं० पु०) अङ्गिरस्-मतुप्। (वत्)। अङ्गिरा अग्निः सहायत्वेन विद्यते अस्य। वायु, हवा।

अङ्गी—अङ्गिन् देखो।

अङ्गीकार (सं० पु०) अङ्ग-च्वि-कृ-घञ्। कृभ्वस्ति योगे सम्पद्यकर्त्तरि च्विः। पा ५।४।५०। अभूततद्भाव इति वक्तव्यम्। (कात्या० वार्त्तिक)। १ स्वीकार। २ प्रतिज्ञा। ३ ग्रहण। मञ्जूर, कबूल।

अङ्गीकृत (सं० त्रि०) अङ्ग-कृ-क्त। स्वीकृत, मञ्जूर किया हुआ।

अङ्गीकृति (सं० स्त्री०) स्वीकृति, मञ्जूरी।

अङ्गु (सं० पु०) अगि-उन्। इदितो नुम्। हस्त, हाथ।

अङ्गुरि, अङ्गुरी (सं० स्त्री०) अङ्ग-उलि। बालमूललघ्वल मङ्गुलीनां वा लो रत्वमापद्यते। उण् १।२९। १ उंगली। २ अंगूठी, मुंदरी। सोने, चांदी, पीतल और कांसेसे अंगूठी निर्मित होती है। धनी लोग सोनेकी अंगूठीको हीरा प्रभृति बहुमूल्य रत्नसे जड़ा परिधान करते हैं। अनामिका अङ्गुलिमें सब लोग यह अलङ्कार पहनते हैं, किन्तु जिनका ऐश्वर्य अनेक होता, उन सब लोगोंके दोनो हाथोंकी कनिष्ठा और अनामिका अङ्गुलियोंमें दो-दो अंगूठी पड़ी रहती हैं। इतर लोग झूठे नगीनेसे जड़ी अंगूठी हाथ और पैरकी अङ्गुलिमें पहना करते हैं। वातशिराकी पीड़ा होनेसे बहुलोग अष्टधातुकी अंगूठीको धारण करते हैं। अनेकोंका विश्वास है, कि पैरके अंगूठेमें लोहे या अन्य किसी धातुकी अंगूठी पहननेसे जल-दोषकी पीड़ा नहीं लगती। पूर्वकालके ऋषिमुनि कुशकी अंगूठी पहनते थे। इसीसे अद्यावधि दैव-क्रियाके समय हाथमें कुशकी अंगूठी पहनना पड़ती है। विना पहने जल शुद्ध नहीं होता। बङ्गालके ब्राह्मण पण्डित अष्टधातुकी अंगूठी पहनते हैं। अंगूठी पहननेकी व्यवस्था यह है,—

"तर्जनी रौप्यसंयुक्ता हेमयुक्ता त्वनामिका।" (स्मृति)

तर्जनीमें चांदी और अनामिका अङ्गुलिमें सोनेकी अंगूठी पहनना चाहिये। विशुद्ध पारेकी अंगूठी भी कदाचित् रुग्न व्यक्तिकी विशेष उपकार करती है। इसको प्रस्तुत करनेका कौशल पारद शब्दमें देखो।

इस देशमें अनेक दिनोंसे अंगूठी पहनेकी प्रथा चली आती है। हस्तिनापुरमें द्रोणाचार्यने अपनी अंगूठी कूपके भीतर फेंक ईषिका द्वारा निकाली थी।

"वीटाञ्च मुद्रिकाञ्चैव ह्यहमेतदपि द्वयम्।" (महाभारत १।१३१।२४।)

वाल्मीकिके समयमें भी नामाङ्कित अंगूठी पहननेकी प्रथा प्रचलित थी। यथा,—

"वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्॥" (रामायण ५।३६।२।)

'महाभागे! मैं धीमान् रामका दूत हूं। उनकी नामाङ्कित यह अंगूठी देख लीजिये।' शकुन्तलामें भी सील अंगूठीका प्रमाण मिलता है—

"नाममुद्राक्षराण्यनुवाच्य परस्परमवलोकयतः।" 'अंगूठीमें राजाका नाम देख सखियां एक-दूसरेका मुंह ताकने लगीं।' विवाहके समय हम-लोगोंमें जैसे वरकन्याके माल्य-परिवर्त्तनकी प्रथा है, अंगरेज़ वैसे ही हाथकी अंगूठीका परिवर्तन करते हैं। उनके मतमें, अपने हाथकी अंगूठी निकाल स्त्रीके हाथमें पहनानेसे स्वामीको उसे प्राण समर्पण करना समझा जाता है। एक दूसरी भी बात है,—अनामिका अङ्गुलिसे हृदयका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। इसी कारण, अनामिका अङ्गुलिमें अंगूठी पहना देनेसे हृदयके साथ गाढ़ प्रेम हो जाता है। अंगरेजोंने यह शिक्षा यहूदियोंसे पाई है।

अङ्गुरीय (सं० क्ली०) अङ्गुरि-छ। जिह्वामूलाङ्गुलेश्छः। पा ४।३।६२। अङ्गुरौ भवम्। अंगूठी, अंगुश्तरी। अङ्गुलिका भूषण, उंगलीका गहना।

अङ्गुरीयक (सं० पु०-क्ली०) अङ्गुरीय-कन् स्वार्थे। अङ्गुलिका भूषण, अंगूठी।

अङ्गुल (सं० पु०) अङ्ग-उल। अङ्गति गच्छति ग्रहणाय इति। १ हस्तपदकी शाखा, आंगली। २ वात्स्यायन मुनि।

अङ्गुल—उड़ीसेका एक राज्य। पहले यह करद

राज्य था, अब वृटिश राज्यके शासनान्तर्भुक्त हो गया। यह अक्षा° २०° १३´ से २१° १०´ उ°, और द्राघि° ८३° ५०´ से ८५° ४३´ पू०के मध्यमें अवस्थित है। इसका आयतन ८८१ वर्ग मील है। जनसंख्या एक लाखसे अधिक होगी। इसके उत्तरमें मध्य-प्रदेशस्थ राइराखोल और बामड़ा राज्य, पूर्वमें तालचेर, ढेंकानल और हिंदोल राज्य, दक्षिणमें नरसिंहपुर, तथा दसपल्ला राज्य और महानदी, और पश्चिममें आठमल्लिक राज्य अवस्थित है। राज्यके दक्षिणांश भिन्न समस्त स्थान समतल है। केवल दक्षिणांश पार्वत्य देख पड़ता है। यह स्थान पहले कन्ध नामक असभ्य जातिके अधिकारमें था। अंगरेजोंने जैसे वाणिज्य करने आ भारतको अधिकार किया, किसी पुरी-यात्री राजपूतने वैसे ही कन्धराजसे यह राज्य ले लिया था। इस स्थानके भूतपूर्व राजा सन् १८४७ ई० में अंगरेज-राजके प्रति अवाध्यताको आचरण करने और गवर्नमेण्टके विरुद्ध विद्रोही होनेसे यह राज्य गवर्नमेण्टने अपना बनाया। राजाका परिवारवर्ग गवर्नमेण्टसे वृत्ति पाता है। राज्य की अवस्था क्रमसे उन्नत और लोकसंख्या वर्द्धित हो रही है। इस राज्यमें कोयले और लोहेकी खानि वर्त्तमान है। प्रसिद्ध तालचेर नामक कोयलेकी खानिका अनेकांश इसी राज्यके अन्तर्गत है। राज्यके प्रधान नगरका नाम भी अङ्गुल है। भूतपूर्व राजाका परिवारवर्ग इस नगरमें रहता है।

अङ्गुलि (सं० स्त्री०) अङ्ग-उलि। अङ्गेरुलि। उण् ४।२। १ अङ्गुष्ठ, उंगली। २ गजकर्णिका वृक्ष। ३ गज-शुण्डाग्र, हाथीकी सूंडवाली नोक।

एक अङ्गुलिका परिमाण ८ यव है। २४ अङ्गुलि-में हाथ होता है। जपादिकी संख्या गिननेके लिये वैदिक और तान्त्रिक मतसे भिन्न-भिन्न अङ्गुलिमें कर-विन्यास करनेकी व्यवस्था है। वैदिक मन्त्रको जप करते समय दक्षिण हस्तको अनामिकाके बीच पर्वमें पहले वृद्धाङ्गुष्ठ रख जपको आरम्भ करे। इसके बाद कनिष्ठाके मूलसे सकल अङ्गुलिके ऊपरी पर्व हो-कर तर्जनीके मूल पर्यन्त जप कर जाये। एत-द्वारा दश बार जप करना पड़ता है। सनत्कुमार-संहितामें इसका यह प्रमाण लिखा है,—

> "अनामामध्यमारभ्य कनिष्ठादित एव च।
> तर्जनीमूलपर्यन्तं दशपर्वसु संजपेत्॥"

एकशत आठबार जप करनेको पूर्वोक्त नियमानु-सार दश-दश पर्व द्वारा पहले एकशत जप समाप्त करे। इसके बाद अनामिकाके मूलसे सकल अङ्गुलिके अग्रभाग होकर तर्जनीके मध्यपर्व पर्यन्त आठ संख्या गिने। इससे एकशत आठ बार जप हो जाता है।

तान्त्रिक जपका नियम यह है, कि अनामिका-के मध्यपर्वसे संख्याको आरम्भ करे। पीछे इसके मूल, कनिष्ठाके मूलसे समस्त पर्व, अनामिकाके अग्रभाग और मध्यमाके ऊपरी पर्वसे नीचे उतर तर्जनीके मूलमें जप समाप्त कर दे। इससे दश बार जप करना पड़ता है। तर्जनीके अग्र और मध्यपर्वमें कभी संख्या न रखे। इससे पाप लग जाता है। जैसे,—

> "अनामिकाद्वयं पर्व कनिष्ठापि त्रिपर्विका।
> मध्यमायाश्च त्रितयं तर्जनीमूलपर्वणि॥
> तर्जन्यग्रे तथा मध्ये यो जपेत् स तु पापकृत्।"

एकशत आठ बार जप करनेको प्रथम पूर्वोक्त नियमानुसार एकशत बार जप समाप्त करे। इसके बाद अनामिकाके मूलसे कनिष्ठाके समस्त पर्व और अनामिका और मध्यमाके अग्रभागसे होकर मध्य-माके मूलमें संख्याको समाप्त कर दे। इससे आठ बार जप करना पड़ता है। प्रमाण देखिये—

> "अनामामूलमारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण च।
> मध्यमामूलपर्यन्तं जपेदष्टसु पर्वसु॥"

हमारे धर्म्मशास्त्रकी बात-बातमें सकल कार्यकी व्यवस्था वर्तमान है। शास्त्रकारोंने उपदेश दिया है—

> "इष्टकी लोष्ट्रपाषाणैरितराङ्गुलिभिस्तथा।
> त्यक्त्वा ह्यनामिकाङ्गुष्ठौ वर्जयेद्दन्तधावनम्॥"

ईंटकी सुर्खी, ढेले और पत्थर और अनामिका और अङ्गुष्ठ भिन्न अन्य अङ्गुलिसे दांत न रगड़े।

हमारे देशकी स्त्री लज्जाभरसे अधोमुखी होने-

पर प्रायः अङ्गुलिसे मट्टी खोदा करती हैं। हिन्दुस्थानी स्त्री-परिचयका यह एक प्रधान चिह्न बन गया है। वैद्य कहते हैं—रोगीके निकटसे दूत आ यद्यपि चिकित्सकके सम्मुख बात करते-करते अङ्गुलिसे मट्टी काटा करता, तथापि उस रोगीको पीड़ा प्रायः उत्कट हो जाती है।

अङ्गुल हस्तपदको शाखा और अग्रभाग है। मनुष्यके दोनो हाथमें पांच-पांचके हिसाबसे दश अङ्गुलि हैं, पैरमें भी इसीतरह दश अङ्गुलि होती हैं। हाथमें अङ्गुलि रहनेके कारण हम इच्छा करनेसे किसी द्रव्यको ग्रहण कर पेड़से एक-एक कर फूल तोड़; मट्टीसे चवन्नी, तिल, सरसों प्रभृति क्षुद्र-क्षुद्र द्रव्य चुन सकते हैं। अङ्गुलि न रहनेसे अनेक विषयमें हम अकर्मण्य हो जाते।

पैरको अङ्गुलिसे यह सब काम नहीं निकलते। अच्छी तरहसे खड़े होने और स्वच्छन्द घूमनेके लिये विधाताने हमारे पैरमें भी अङ्गुलि बनाई हैं। पैरमें अङ्गुलि न रहनेसे चलते समय हम लड़खड़ा जाते।
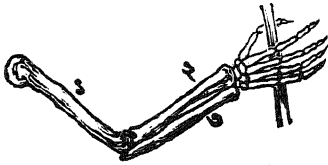
१, कन्धेसे कुहनीतक ऊपरी बाहुकी अस्थि (Humors)। २, कुहनीसे पहुंचेतक निम्न बाहुवाले बड़े अंगूठेके दिक्की हड्डी (Radius)। ३, जिस ओर बड़ी अङ्गुलिके दिक्की हड्डी (Ulna) है। इन दोनो अस्थिके अग्रभागमें ऊर्द्ध मणिबन्ध अर्थात् ऊपरी पहुंचेकी हड्डी (Carpal bone) है। इसके बाद निम्न मणिबन्ध अर्थात् नीचेके पहुंचेकी हड्डी (Meta-carpal bone) अस्थि है। इसके बाद अङ्गुलिके पर्वको अस्थि (Phalanx) है।

अस्थि, मांस, पेशी, स्नायु, शिरा और नाड़ीसे अङ्गुलि गठित है। प्रत्येक हाथ और पैरकी अङ्गुलिमें चौदह हड्डी होती हैं। जैसे—प्रत्येक कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा और तर्जनीमें तीन अस्थि वर्तमान हैं। अंगूठेमें दो ही पाई जाती हैं। अङ्गुलिकी प्रत्येक अस्थिको हम पर्व कहते हैं। अङ्गुलिकी अस्थि परस्पर पेशीसूत्रसे गुंथी हैं। अस्थिके जोड़में हवा घुसनेसे वहांकी अस्थि सड़ जाती है। पेशी ही शरीरका बल है, मांसपेशीसे हमारी अङ्गुलि और पहुंचा जुड़ा हुआ है, इसीसे हम हाथमें इतना बल देखते हैं। अङ्गुलिमें ऐसी कितनी ही मांसपेशी हैं, यद्द्वारा वह घुमाई-फिराई जा सकती हैं।

इसका विवरण हस्त शब्दमें देखो।
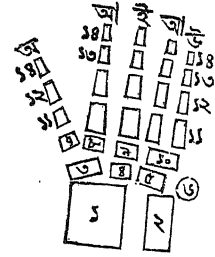
१, निम्न बाहुवाले अंगूठेके दिक्की अस्थिका शेषभाग। २, इस ओरमें अङ्गुलिके दिक्की अस्थिका शेषभाग। ३, अनुतरि अर्थात् नौका जैसी कुब्ज अस्थि (Scaphoid)। ४, अर्द्धचन्द्राकार अस्थि (Semi-lunar)। ५, फलकास्थि (Cuneiform) अर्थात् देखनेमें प्रायः तीरके फलक जैसी। ६, चणकास्थि (Pisiform) अर्थात् चने और मटर जैसी गोल और क्षुद्र। ७, विषम चतुर्भुजास्थि (Trapezium) अर्थात् इसके चारो पार्श्ववाले कोने समान्तराल नहीं होते। ८, अर्द्धसम चतुर्भुजास्थि। (Trapezoid)। ९, वृहदस्थि (Magnum)। १०, वक्रास्थि(Onciform) अर्थात् कटियेकी तरह टेढ़ी। ११, नीचेके पहुंचेकी अस्थिश्रेणी। १२, अङ्गुलिके पर्ववाली प्रथम श्रेणीकी अस्थि। १३ उपरोक्त द्वितीय श्रेणी। १४, उपरोक्त तृतीय श्रेणी। अ, वृद्धाङ्गुष्ठ। आ, तर्जनी। ई, मध्यमा। आ, अनामिका। ऊ, कनिष्ठा।
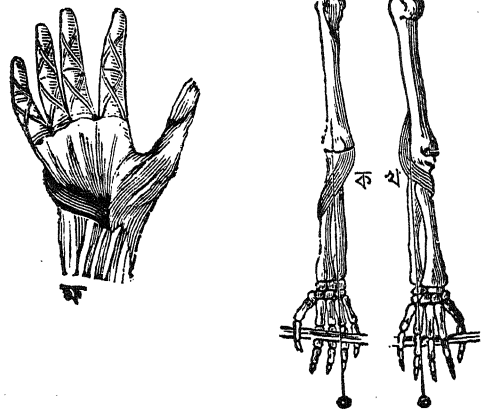
हम अंगूठेकी ओर हाथ घुमाकर अङ्गुलि प्रभृति ऊपर उठा और उंगुलियोंकी ओर हाथ घुमा अङ्गुलि प्रभृति चित कर सकते हैं। उंगलियोंकी ओर हाथ घुमाते समय अधिक ज़ोर देना पड़ता, इसी कारण हम बिना यथेष्ट बल लगाये कल नहीं चला सकते। अंगूठेकी

और हाथ घुमानेमें इतना ज़ोर नहीं लगता। कुहनीके पास स्थिति-स्थापक मांसपेशी रहती है। जैसे, क और ख है। इस पेशीके द्वारा हाथ चित और पट किया जाता है। मनुष्य भिन्न अन्य कोई जन्तु इसतरह हाथ उलट-पलट नहीं सकता। वानर कितना ही ऐसा कर सकते हैं, किन्तु मनुष्यकी भांति नहीं। गो, मेष प्रभृति अन्यान्य जन्तुके पैरवाले इसी स्थानकी बनावट ठीक मनुष्यकी कुहनी-जैसी होती है, किन्तु उनके पैर स्वभावतः पट बने रहते हैं, इच्छा होनेसे वह उन्हें चित नहीं कर सकते।

हम इच्छा करते ही अङ्गुलि अलग कर, एकमें मिला और मुट्ठी बांध सकते हैं। यह सब काम भी मांसपेशीके द्वारा साधित होते हैं। हाथके ऊपर तीन स्थिति-स्थापक मांसपेशी हैं। इनमें एक (Radial flexure) बाहुसे वृद्धाङ्गुष्ठकी ओर आई है। दूसरी (Ulnar flexure) कनिष्ठा अङ्गुलिकी ओर चली है। तीसरी हथेलीकी ओर दौड़ती है। इन सकल मांसपेशी द्वारा हम हाथकी कुहनी और पहुंचा फैला और सिकोड़ सकते हैं। ऊपरवाली बड़ी-बड़ी मांसपेशीकी शाखा और प्रशाखा अंगुलिमें आ मिली हैं, इनके द्वारा अङ्गुलि भी फैलाई और सिकोड़ी जा सकती है [अङ्गुलिकी पेशी, शिरा और नाड़ी प्रभृतिका चित्र हस्त शब्दमें देखो]। क-चिह्नित चित्रमें अङ्गुलिका पेशी-सूत्र आवरणसे ढंका है (Sheath of flexure tendons)।

अङ्गुलिमें कितनी ही नाड़ी हैं। हाथकी प्रधान रक्तवहा नाड़ी (Brachial) बाहुके मध्यस्थलसे आकर कुहनीके नीचे दो बड़ी-बड़ी शाखामें विभक्त हुई है। इसकी एक शाखा (Radial artery) हाथके ऊपर से वृद्धाङ्गुष्ठकी ओर चली गई है। पीड़ाके समय मणिबन्धमें इसी नाड़ीकी हम परीक्षा करते हैं। फिर एक शाखा (Ulnar artery) हाथके नीचेसे कनिष्ठा अङ्गुलिकी ओर आई है। वृद्धाङ्गुष्ठ और कनिष्ठा अङ्गुलिके पाससे यह दोनो धमनी अर्धचन्द्राकारमें (Palmar arch) गोल बन गई हैं। इनमें अंगूठेके दिक्की नाड़ी मांस भेदी है, हाथके तलमें पेशीसे कितना ही नीचे डूबी पड़ी है। उंगलियोंके दिक्की नाड़ी हाथके तलमें ऊपर-ऊपर आई है, मांसके अधिक भीतर नहीं धंसी। इन दोनो धमनीके गोल घेरेसे पतली-पतली शाखा नाड़ी निकल अङ्गुलिकी ओर चली आई हैं। हाथके ऊपरी पृष्ठसे भी इन दोनो बड़ी धमनीकी शाखा अङ्गुलिकी ओर गई हैं। प्रत्येक अङ्गुलिके दोनो पार्श्वमें नाड़ी है, इसीसे अस्त्र-प्रयोगके समय दोनो पार्श्व बचा स्फोटकादि चीरना पड़ते हैं।

अङ्गुलिकी शिरा (Veins) भी अनेक हैं। हाथकी दो प्रधान शिरा हैं। एक बाहुसे ऊपर चली आई है। फिर एक शिरा बाहुके नीचेसे गई, जो अत्यन्त गभीर है। इन दो प्रधान शिराकी शाखा-प्रशाखा अङ्गुलिमें जड़ गई हैं। स्नायु शब्दमें देखो, कि अङ्गुलि द्वारा किस प्रकार स्पर्शज्ञान उत्पन्न होता है।

अङ्गुलिके अग्रभागमें नख है। नख अस्थिसे नहीं निकलता, इसकी उत्पत्ति चर्मसे होती है। नखके मूलमें सच्छिद्र मोम-जैसा एक प्रकारका मांस होता, जिससे यह बढ़ा करता है। नख सींग-जैसा पदार्थ है, इसका प्रधान उपादान अङ्गार और गन्धक होता है।

अङ्गुलिरोग—अङ्गुलिकी पीड़ाके मध्यमें बिसहरी ही सचराचर हुआ करती है। अङ्गुलिका अग्रभाग सूज जाता, जो रह-रह तपका करता है। इस यन्त्रणासे रोगी तिलाई काल सुस्थिर नहीं रह सकता। रातको निद्रा नहीं आती। बिसहरी रोग नितान्त सहज नहीं। पहलेसे अच्छी तरह चिकित्सा न होनेपर भीतरकी अस्थि पर्यन्त गलकर निकल पड़ती और चिरकालको तरह अङ्गुलि छोटी और विकृत हो जाती है।

चिकित्सा—पीड़ाका थोड़ासा सूत्रपात देखकर कदाच कालक्षय न करना चाहिये। प्रथमावस्थासे ही भली भांति चिकित्सा करना कर्तव्य है। इस देशमें बिसहरीके अनेक प्रकार मुष्टियोग हैं। सेमरकी कच्ची डालवाली लकड़ी निकाल उसी गड्ढेमें अङ्गुलि बन्द करके रखनेसे उपकार होता है। सहिंजनका आटा, मोचरस प्रभृति अनेक प्रकार द्रव्यकी कितने ही व्यवस्था करते हैं। मोटी बात यह है, कि अतिरिक्त प्रदाह होनेसे इसमें अवश्य पीब उत्पन्न होती, किसी औषधसे वह निवारण की नहीं जाती। ऐसे समय अस्त्र-प्रयोग ही एकमात्र उपाय है।

होमिओपेथी—पीड़ाके प्रथम ही गर्म पानीसे नमक घोल उसमें पुनः-पुनः हाथ डुबाता रहे। सेवनके लिये चकमक पत्थरका अर्क (silicea) महौषध है। इसके १२ डाई०को तीन घण्टे अन्तरसे सेवन करे।

इससे उपकार न होनेपर वेदना स्थानमें पुनः-पुनः जल डाले और घी-मिला अलसीका पुलटिस बांधे। पूय सञ्चित न होनेसे भी अङ्गुलिका सिरा अधिक सूज जानेपर वेदना स्थलमें नश्तर लगाना कर्तव्य है। नश्तर लगाते समय विशेष सतर्क रहे। अङ्गुलिके दोनो पार्श्वमें नाड़ी हैं, अतएव यह सकल नाड़ी बचा पर्वके मध्यस्थलमें चीरे और कदाच पर्वके जोड़पर अस्त्राघात न करे। नश्तर लग जानेसे प्रत्यह दो-तीन बार अलसीका पुलटिस बांधे और सेवनके लिये सिलिकाको व्यवस्था चलाये।

एलोपेथी—अङ्गुलिमें प्रयोग करनेको ऊपर जिस प्रकार व्यवस्था लिखो गई, तदनुरूप कार्य करना चाहिये। अङ्गुलिमें सड़ा घाव हो जानेपर भीतरसे सड़ी हड्डी निकाल डाले। पीछे प्रतिदिन १ भाग कार्बोलिक एसिड और १६ भाग पानी एकत्र मिश्रित कर क्षतस्थान धोये और बोरासिक मरहम लगाये। लौह (५ विन्दु टिङ्कचर ष्टील, आध छटाक पानी), काडलिवर आयल, कुनैन, बार्क और एमोनिया—इन सकल द्रव्यको सेवन करना चाहिये।

सांसारिक कार्य करनेमें अङ्गुलि ही प्रधान इन्द्रिय है। इसीसे सचराचर अङ्गुलि कट जाती; चाकू, हंसिया, गडांस, कुल्हाड़ी और कलसे अङ्गुलिमें कई तरह चोट पहुंचती है। कटी अङ्गुलिसे अत्यन्त रक्त गिरनेपर तत्क्षणात् भीजा कपड़ा उसपर कसकर बांध दे और हाथ ऊपरको उठाये रहे। क्षतस्थानमें आप ही फाइब्रिन (fibrin) जमकर रक्त बन्द कर देता है। अतएव पहले कटे हुए स्थानमें पानी न डाले; पानी डालनेसे रक्त नहीं जमने पाता। पनियाले, और अकोड़ेका भी पत्ता रक्त बन्द करनेको उत्कृष्ट औषध है। कालकासुन्दे या पनियालेका पत्ता हुक्केके पानीमें बांटकर कटे हुए स्थानपर लगानेसे तत्क्षणात् रक्त बन्द हो जाता है। फिटकरी, लोहेका अर्क, बरफ प्रभृति द्रव्य कटे हुए स्थानमें लगा कसकर बांध देनेसे भी रक्त बन्द होता है। दूर्वा घासको प्रयोग करनेसे यही फल उत्पन्न हो सकता है। अङ्गुलिको मोटी नाड़ी कट जानेपर कभी-कभी इन सकल उपायोंसे रक्त बन्द नहीं हो सकता। ऐसे स्थलमें लोहेका कोई द्रव्य आगमें कुछ गर्म कर, कटे हुए स्थानको दाग देना चाहिये। इससे अविलम्ब ही रक्त बन्द हो जाता है।

किसी प्रकार अङ्गुलि कट जानेपर सुचिकित्सक द्वारा चिकित्सा कराना उचित है। कारण, भीतरी हड्डी चूर हो जानेसे अङ्गुलिका कियदंश काटकर फेंक देना पड़ता है। ऐसा न करनेसे क्रमशः वह स्थान सड़ा करता और अवशेषमें प्राण-संशय उत्पन्न हो जाता है।

अङ्गुलिका अग्रभाग स्नायु-मण्डलसे जड़ा, इसलिये आघात पहुंचनेसे कभी-कभी धनुष्टङ्कार रोग आ उपस्थित होता है। अङ्गुलिमें अधिक आघात न लगनेसे ऐसे भयका कोई विषय नहीं। शीतल जलमें कपड़ा भिजाकर अङ्गुलि बांध दे। नहीं तो, ३० रत्ती सीस् सर्करा (Plumbic acid), एक ड्राम अफीमका अरिष्ट और आधसेर शीतल जल एकत्र मिश्रित कर क्षतस्थानपर प्रयोग करे। गेंदा फूलकी पखुरीके रस किंवा होमिओपेथी मतके केलिण्डिउलाको जलके साथ आहत स्थानमें प्रयोग करनेसे कितना ही उपकार होता है।

अङ्गुलिग (सं० त्रि०) अङ्गुलिभिः गच्छतीति। अङ्गुलिपर भर देकर चलनेवाला, जो उंगलीपर बोझ डालकर चले।

अङ्गुलितोरण (सं० क्ली०) अङ्गुलेः तोरणमिव कृतम्। ललाटपर अर्द्धचन्द्राकृति चन्दनका तिलक। चन्दनकी खौर जो माथेपर अर्द्धचन्द्राकार लगाई जाती है।

अङ्गुलित्र (सं० क्ली०) अङ्गुलि-त्रै-क, ६-तत्। अङ्गुलिका आवरण, उंगलीकी हिफाज़त करनेवाली चीज़। १ लोहे या चमड़ेकी टोपी जिसे दरज़ी कपड़ा सींते समय पहनते हैं। दरज़ी लोहे या चमड़ेकी टोपी अनामिकाके ऊपर पहन वस्त्रादि सीते हैं। यह टोपी न रहनेपर बार-बार सूईसे अङ्गुलि छिद जाती है। २ दस्ताना।

अङ्गुलित्राण (सं० क्ली०) अङ्गुलि-त्रै-क्त। संयोगादेरातो धातोर्यखतः। पा ८।२।४३। उंगली बचानेकी टोपी, जिसे

दरज़ी कपड़ा सीते समय अनामिकामें इसलिये पहनते जिससे सूई उंगलियोंमें न चुभे। अङ्गुश्ताना।

अङ्गुलिपञ्चक (सं॰पु॰) हस्तको पञ्च अङ्गुलि, हाथकी पांचो उंगली।

अङ्गुलिपर्व (सं॰ पु॰) उंगलीका पोर या जोड़।

अङ्गुलिमुद्रा, अङ्गुलिमुद्रिका (सं॰ स्त्री॰) अङ्गुलि-मुद्-रा-क, ६-तत्। नामाङ्कित अङ्गुरीय, नाम खोदी हुई अंगूठी (Seal-ring)। २ अङ्कित भूषण। खोदा हुआ ज़ेवर।

अङ्गुलिमुख (सं॰ क्ली॰) उंगलीका अग्रभाग।

अङ्गुलिमोटन (सं॰ क्ली॰) अङ्गुल्याः मोटनं मर्दनं यत्र, बहुव्री॰। उंगलीका फोड़ना या चिटकाना।

अङ्गुलिवेष्टन (सं॰ क्ली॰) दस्ताना, उंगली लपेटनका वस्त्र।

अङ्गुलिषङ्ग (सं॰ पु॰) उंगलीका साथ।

अङ्गुलिषङ्गा (सं॰ स्त्री॰) अङ्गुली सङ्गः यस्याः, बहुव्री॰। समासेऽङ्गुलेः सङ्गः। पा ८।३।८०। अङ्गुलिमें लेपन करनेका यववाला मांड। उंगलीपर लेप किया जानेवाला यवका मांड।

अङ्गुलिसंज्ञा (सं॰ स्त्री॰) अङ्गुल्या संज्ञा सङ्केतज्ञापनम्। अङ्गुलिद्वारा इङ्गित, अङ्गुलिसङ्केत, उंगलीका इशारा।

अङ्गुलिसन्देश (सं॰ पु॰) अङ्गुलि-सम्-दिश्-घञ् भावे। अङ्गुलि ध्वनि द्वारा भाव-प्रकाश, उंगली की आवाज़से मतलबका इज़हार। २ अङ्गुलिके शब्दसे संज्ञादान, उंगलीकी आवाज़से बातचीत। ३ चुटकीसे संवाद-ज्ञापन, चुटकीसे खबर देना।

अङ्गुलिसम्भूत (सं॰ त्रि॰) अङ्गुलि-सम्-भू-क्त, ७-तत्। अङ्गुल्यां सम्भूतः। अङ्गुलिसे जात, उंगलीसे पैदा हुआ। नख, नाखून।

अङ्गुलिस्फोटन (सं॰ क्ली॰) अङ्गुल्योः स्फोटनं यत्र, बहुव्री॰। उंगलीका चिटकाना या फोड़ना। आवश्यक न होते भी हाथकी स्वस्तिके लिये अनेक उंगली चिटकाया करते हैं। हिन्दुस्थानमें स्त्रियां किसीको अभिसम्पात करते समय उंगली चिटकाकर गालियां देती हैं।

अङ्गुली (सं॰ स्त्री॰) अङ्गुलि-ङीप्। उंगली, अङ्गुश्त।

अङ्गुलीपञ्चक (सं॰ क्ली॰) अङ्गुलीनां पञ्चकं पञ्चसंख्या। संख्यायाः संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु। पा ५।१।५८। पांचो उंगली, जिन्हें अङ्गुष्ठ, तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा कहते हैं।

अङ्गुलीय (सं॰ क्ली॰) अङ्गुली-छ। अंगूठी, अङ्गुश्तरी। अङ्गुरीय देखो।

अङ्गुलीसम्भूत (सं॰ त्रि॰) अङ्गुलिजात, उंगलीसे पैदा; नख, नाखून।

अङ्गुल्यादि—अङ्गुलि प्रभृति कतिपय शब्द।

अङ्गुल्यादेश (सं॰ पु॰) १ उंगली द्वारा बातचीत। २ सङ्केत, इशारा।

अङ्गुल्यानिर्देश (सं॰ पु॰) १ उंगलियोंका उठना। २ कलङ्क, बदनामी।

अङ्गुष्ठ (सं॰ पु॰) अङ्गौ पाणौ तिष्ठतीति; अङ्गु-स्था-क, ६-तत् ७मी वा। अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः। पा ८।३।९७। १ वृद्धाङ्गुलि, अंगूठा। २ पैरका बुड्ढा अङ्गुल। ३ अङ्गुल परिमाण। (कठ उ॰ ४।१२)

अङ्गुष्ठमात्र (सं॰ त्रि॰) अङ्गुष्ठ-मात्रच् परिमाणार्थे। अङ्गुष्ठवाले वृहत् पर्वके परिमित, अंगूठेकी बड़ी गांठके बराबर। अङ्गुलपरिमाण। (श्वेत॰ उ॰ ३।१३)

अङ्गुष्ठ्य (सं॰ त्रि॰) अङ्गुष्ठ सम्पर्कीय। (कात्या॰ श्रौ॰ ७।२।८)

अङ्गूष (सं॰ पु॰) अगि गतौ—उषन्। १ नकुल, नेवला। २ वाण, तीर।

अङ्गेष्ठा (वै॰ स्त्री॰) अङ्गे स्थिता। (अथर्व॰ ६।११।१)

अङ्ग्य (वै॰ त्रि॰) अङ्गे भव। (ऋक् १।१९१।७)

अङ्ग्रीय, आङ्ग्रे—(कनोजी) सन् ई॰के १७वें शताब्दके जनैक महाबल पराक्रान्त समुद्रके डाकू। सन् १६९० से १८४० ई॰-तक आङ्ग्रे डाकुओंका पश्चिम समुद्रमें बड़ा उपद्रव रहा। सन् १६९८ ई॰में कनोजीने बम्बईके पास कुलाबेमें अपना अड्डा स्थापित किया और सन् १७१३ ई॰ में जयनगरपर अपनी विजय-वैजयन्ती फहराई सन् १७१७ ई॰ में इन्होंने अंगरेज़ोंके जहाज़ लूटे, जिसके बदले अंगरेज़ इनके विजयदुर्गपर टूट पड़े। किन्तु उन्हें हार मान पीछे लौटना हुआ। कोई दो बार इन्हें अंगरेजों और पोर्तगीज़ों की सम्मिलित सेनासे युद्ध करना पड़ा था।

इनकी मृत्यु सन् १७३१ ई० में हुई। आङ्ग्रेने कोई एक शताब्दतक मलाबरके समुद्रतटको लूटा-मारा और भीतरी शहरोंमें भी यह घुस जाते रहे। पीछे महाराष्ट्रदेशके सेना-नायक बन सुवर्णदुर्गके शासनकर्त्ता हुए। किन्तु अधिक दिन इन्हें दूसरेकी नौकरी न करना पड़ी। इन्होंने शीघ्र ही स्वाधीन हो महाराष्ट्रोंको समस्त रणतरीको अधिकार और दाक्षिणात्यमें अपने आधिपत्यको स्थापन किया। अंगरेज़, फ्रान्सीसी और डेनमार्कवाले इनके प्रतापसे शशव्यस्त हो गये थे। यह इन सकल विदेशियोंके जहाज़ लूट लेते रहे। इनके उत्तराधिकारीका नाम तुलजी आङ्ग्रे था। सन् १७५४ ई०में बम्बई-गवर्नमेण्ट इनसे भी परास्त हो गई थी। सन् १७५६ ई०में अंगरेजोंने इनका कोई पन्द्रह लाख रुपया लूटा। पीछे जेम्स साहबने सुवर्णदुर्गको अधिकार किया।

अङ्घ (वै० क्लो०) पाप। (वाज० स० ४।२७ महीधर)

अङ्घस् (सं० क्लो०) अघि गतौ असुन्। पाप, इज़ाब।

अङ्घारि (सं० पु०) अङ्घस्-ऋ-इन्। पृषोदरादित्वात् साधु, ६-तत्। १ दीप्ति, वह चीज़ जो खूब चमके। २ पापनाशक। ३ दिव्य सोमजल। (वाज० स० ४।१७)

अङ्घ्रि, अंह्रि (सं० पु०) अघि गतौ इन् करणे। वङ्क्यादयश्च। उण् ४।६६। २१ पाद, पैर। २ वृक्षमूल, दरख़्तकी जड़। ३ छन्दका चतुर्थ भाग, शेरका चौथा हिस्सा।

अङ्घ्रिप (सं० पु०) अङ्घ्रिना पिबतीति, अङ्घ्रि-पा-क। १ वृक्ष, दरख़्त। २ लता, बेल।

अङ्घ्रिपर्णी, अङ्घ्रिपर्णिका (सं० स्त्री०) चकोड़, चकोड़िया।

अङ्घ्रिवल्लिका, अङ्घ्रिवल्ली (सं० स्त्री०) चकोड़ वृक्ष, चकोड़िया।

अच्—अविस्पष्ट कथा, गति। भ्वा०-उ०, सेट्।

अच्—भ्वा०-प०, सक० सेट्।

अच्—१ समस्त स्वर-वर्णकी संज्ञा। २ पाणिनि गृहीत कृदन्त प्रभृतिकी अच् प्रत्यय।

अ, इ, उ, ऋ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ—यही कई एक वर्ण अच् हैं। बाकी क, ख प्रभृति समस्त वर्ण हल् कहाते हैं। संस्कृत भाषामें अच् वर्ण और हल् वर्ण पृथक्-पृथक् गृहीत हुए हैं। अन्य भाषामें ऐसा नहीं; सब वर्ण एक ही साथ लिखे हैं। अब सन्देह यही है, कि मनुष्यने पहले किस वर्णको सृष्टि की थी—अच् या हल् वर्ण की। पहले सुनते ही यह प्रश्न कुछ कठिन मालूम होता; किन्तु कुछ सोचने-विचारनेसे इस पुरातन बातका कितना ही मर्म समझा जा सकता है। प्रथम-प्रथम मनुष्य लिखना न जानता, बात कर सकता था; वह भी फिर दीर्घच्छन्दमें नहीं। दो वर्ण एक साथ मिला देना ही यथेष्ट होता था। दो अक्षरमें एक-एक बात कही जाती थी और उसका भी शेष वर्ण हलन्त रहता था। असभ्य आन्दामानवासी इस बातका प्रमाण हैं। वह किसी तरह कुछ-कुछ मनका भाव व्यक्त कर सकते हैं; किन्तु अधिक बोलनेकी उन्हें सामर्थ्य नहीं।

मनुष्यने पहले बात करना सीखा था। किन्तु दूरके लोगोंसे कथोपकथन नहीं चलता—पत्र लिखना पड़ता है। पत्र लिखनेको अक्षरादि आवश्यक हैं। जब अक्षरकी सृष्टि हुई न थी, तब लोग कैसे पत्र लिखते थे? फ़िनिशियाके लोग किसीको मनकी बात लिखकर भेजनेके लिये पेड़के पत्ते या बकलेपर कोई चित्र बना देते थे। गो बतानेको गोका चित्र बनाकर भेजा जाता, दर्शनशक्ति समझानेको चक्षु अङ्कित करते थे। प्राचीन फ़िनिशियावासियोंके पत्र लिखनेका ऐसा ही सङ्केत था। क्रमसे और भी संक्षेपमें पत्रलिखनेके लिये समस्त गो न अङ्कित कर केवल उसका शिर या शृङ्ग बना दिया जाता था। इसके बाद और भी सुविधा ढूंढते-ढूंढते अक्षरकी सृष्टि हुई। अनेक अनुमान करते हैं, कि वर्त्तमान एक-एक अक्षरका नाम एक-एक वस्तुके नामपर रखा गया है। हीब्रू भाषाके प्रथम अक्षरका नाम अलिफ़ है, जिससे सांड समझा जाता है। दूसरे एक अक्षर गिमिलका अर्थ ऊंट है। मीम्से जलका बोध होता है। फ़िनिशियावासी और यहूदी इस तरह ⁀⁀⁀ लहर-जैसा चिह्न बना जलको

बताते थे। यह सब बातें देख-सुन जो लोग अनुमान करते, कि एक-एक वस्तुके नामपर वर्णमालाके अक्षरका नाम रखा गया, मालूम होता है, कि उनकी बात मिथ्या नहीं।

रञ्जेस् और टेलर साहबका मत यह है, कि फ़िनिशियाके लोगोंने ही पहले लिखनेका कौशल निकाला था; उन्हे देखकर पीछे पृथिवीकी अन्यान्य जातियोंने लिखना सीखा। इसमें घोर भ्रम है। उस समय सकल ही प्राचीन जातियां भारतवर्षमें वाणिज्य करने आती थीं। अरब और मिस्रके रहनेवालोंने ब्राह्मणोंसे गणितशास्त्र सीखा और लिखनेका कौशल भी इसी हिन्दुओंके देशसे विदेशमें जा पहुंचा था। अरबके अधिवासी इस बातको स्वीकार करते हैं।

भारतवर्षमें प्रथम-प्रथम चित्र बना पत्र लिखनेकी प्रथा थी या नहीं? अवश्य ही थी। यदि न होती, तो फ़िनिशियावासी इस विद्याको कहांसे सीखते! अब दिन-दिन इस देशसे पुरानी प्रथाके प्रमाण उठते जाते हैं, इसीसे लोग ऐसी बात कहते, नतुवा पुरातन रीति अभी ढूंढनेसे अनेक प्रमाण मिल सकते हैं। वररुचिकी पत्रकौमुदीमें इस बातके अनेक नियम निर्दिष्ट किये गये हैं, कि पूर्वकालके लोग किस प्रणालीसे पत्र लिखते थे। 'पत्रके ऊपर अङ्कुश जैसी एक रेखा खींचे। अङ्कुशके भीतर विन्दु लगा दे। राजाको पत्र लिखनेमें पत्रके ऊर्ध्वमें कुङ्कुमसे एक चन्द्रमण्डल अङ्कित करे। पण्डित और गुरुजन प्रभृतिके पत्रमें चन्दनका चिह्न लगाना आवश्यक है। स्वामीके पत्रमें स्त्रीको सिन्दूरकी फुटकी डालना चाहिये। स्वामी स्त्रीको पत्र लिखनेपर महावरका रङ्ग जमाये। फिर शत्रुको रक्तका चिह्न लगा पत्र लिखना चाहिये।'

यह कुछ दिन पूर्वका संवाद है। जब वररुचि जीवित थे, उसके कुछ आगेसे यह सकल नियम चला आता था। किन्तु यह ठीक मालूम हो नहीं सकता, कि इससे भी पहले लोग कैसे लिखते थे। फिर भी, इन सकल चिह्नोंके बनानेकी प्रथा देख स्पष्ट अनुमान होता है, कि जिस समय हिन्दू लिखना न जानते, उस समय केवल चित्र अङ्कित कर दूरके लोगोंको मनकी बात लिख भेजते थे। हिन्दुओंको ऐसा ही अभ्यास भी है,—एक बार कोई रीति चलित होनेसे चिरकाल मानना पड़ती; न माननेसे प्रत्यवाय होता है। इसीसे अज्ञानतावशत: किसी कालमें लोग जो चित्र अङ्कित कर पत्र लिखते थे, उस दिन पर्यन्त हम उसी पुरातन नियमको मानते रहे—आज भी विवाहके पत्रमें, कुछ न हो तो सिन्दूरकी फुटकी लगा देना पड़ता है।

एक दूसरी बात भी है। नागा, सन्याल प्रभृति असभ्य जातियां लिखना नहीं जानतीं, पढ़ नहीं सकतीं। दूरके लोगोंको मनकी बात कह पहुंचानेके लिये उनका एक-एक सङ्केत निर्द्धारित है। सन्याल विपद्में पड़नेसे ग्राम-ग्राम संवाद देनेके निमित्त साल वृक्षकी एक डाल भेजते हैं। यह सङ्केत पाते ही सब लोग धनुर्वाण ले दौड़ पड़ते हैं। शत्रुओंको भय दिखानेके लिये नागे एक जली लकड़ी, मिर्च और अस्त्र पहुंचाते हैं। इसका तात्पर्य यह है, कि शत्रुओंका ग्राम जली लकड़ीकी तरह दग्ध किया जायेगा और वह अस्त्राघातसे लाल मिर्चकी तरह जलने लगेंगे। इसमें संदेह नहीं, कि आजकल जैसे भारतवर्षकी अज्ञ जातिके मध्यमें संवादादि भेजनेका एक-एक सङ्केत चलता है; आदिम अवस्थामें जब आर्य अज्ञ थे, तब उनके मध्यमें भी ऐसे ही संवाद भेजनेका किसी प्रकार सङ्केत था।

प्रथम-प्रथम अनेक देशोंके लोग पशुपालन करते थे। इसीसे बकरी, भेड़ और गो-वत्सादि चरानेके लिये दिवारात्र उन्हें मैदान, वन, नदीकूल और पर्वतपर घूमना पड़ता था। पर्वतके ऊपरसे उन्हें आकाशमें ग्रहनक्षत्रादिकी सकल गति-विधि खूब देखनेको मिलती थी, कि सन्ध्याको कौन तारा उदित होता, आधी-रातका कौन नक्षत्र था, सवेरा होनेसे कौन नक्षत्र कहांपर रहता था। इसीसे सकल ही देशोंमें ज्योतिषके मन्त्रगुरु

पशुके चरवाहे रहे। कालिडिया देशमें भी प्रथम गोपाल ही ज्योतिषका मर्म समझे थे। यदि ऐसा हुआ है, तो इस बातको भी स्वीकार करना पड़ेगा, कि राशि प्रभृतिका नाम उन्हीं सकल पशुपालकोंने रखा था। उस समय पशुरक्षक सामान्य लोग थे; राशि प्रभृतिका अच्छा नाम देख-भाल रख न सके। इसी लिये जो सकल द्रव्य वह अष्टप्रहर देखते, हाथमें लेकर घूमते और खाते थे, उन्हींके अनुसार उन्होंने राशि प्रभृतिका नाम रखा। बारह राशिके नाम उन्होंने यह रखे हैं,—मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन। वास्तवमें कोई राशि न तो भेड़ और न सांड़ है और न सिंहकी तरह केश ही फुलाये है। आकाशके स्थान-स्थानमें कितने ही तारा पास-पास मिल-जैसे गये हैं। कितनी ही देरतक देखनेसे वह एक वस्तुके रूपमें देख पड़ते हैं। कोई इसी सकल नक्षत्र-पुञ्जको भालूसे तुलना करते, जो जौन वस्तु अच्छी तरह पहचानते, वह उसीके साथ तुलना करते हैं। उस कालके रखवाले जिन सकल वस्तुओंको भली भांति पहचानते थे, उन्हींको देख उन्होंने राशियोंका नाम रखा। किन्तु ज्योतिषकी मेष प्रभृति राशिका ठीक चित्र अङ्कित नहीं। ठीक चित्र दिखानेके लिये यदि कोई राशियोंके नामानुसार अविकल छविको चित्रित कर दे, तो वह दूसरी बात है। किन्तु अविकल चित्र बनानेकी प्रथा ही नहीं। राशिकी आकृतिका एक-एक प्रकारसे सङ्केत है। राशि देखो। यहूदी जैसे जल बतानेको लहर चित्रित कर दिखाते—और ज्योतिषकी कुम्भराशिके स्थलमें भी लहर बना रखते थे, वैसे ही इस देशमें भी, राशिका सङ्केत सिवा मेषवृषादिवाले संक्षिप्त आकारके और कुछ भी नहीं। पहले उनके जो चित्र थे, अब उनमें अनेक परिवर्तन हो गये हैं, इसीसे हम उन्हें पहचान नहीं सकते। इन्हीं सकल विषयोंकी आलोचना करनेसे कितना ही विश्वास उत्पन्न होता है, कि लिखनेका कौशल आविष्कृत होनेसे पहले इस देशके लोग भी चित्र भेज दूरके लोगोंसे मनके भावको प्रकाश करते थे। पीछे सुविधाके निमित्त एक-एक वस्तुके आद्यक्षरसे वर्णमालाके वर्णकी सृष्टि हुई।

इसमें कोई आगा-पीछा नहीं, कि अच् वर्ण और हल् वर्णकी सृष्टि एककालमें ही हुई थी। किन्तु पहले इतने वर्ण न थे। मनुष्यके गलेका स्वर जितना ही परिष्कृत होने लगा, उतना ही विशुद्ध राग-रागिणीको तान, लय और स्वरसे सबने गान करना सीखा और नानावर्णोंकी सृष्टि होने लगी। अच्के मध्यमें पहले आकार मात्र था; क्योंकि इसका उच्चारण सहज और स्वाभाविक है। सम्पूर्ण रूपसे मुख खोल शब्द करनेसे ही आकार उच्चारित होता है। पीछे क्रमशः मुखके अवकाशको घटाते जानेसे अकार, इकार, उकार प्रभृति अन्य स्वरवर्ण निकलते हैं। फिर, मुखके किसी स्थानको स्पर्श करनेसे हल्वर्ण उच्चारित होते हैं। वर्णका उच्चारण-स्थान और प्रयत्न इसका प्रमाण है।

उच्चारण-स्थान—अ, आ, आ३, क, ख, ग, घ, ङ, ह, और विसर्गका उच्चारणस्थान कण्ठ है। (अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।) इ, ई, ई३, च, छ, ज, झ, ञ, और श तालुसे उच्चारित होते हैं। (इचुयशानां तालु।) ऋ, ॠ, ऋ३, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष मूर्द्धासे निकलते हैं। (ऋटुरषाणां मूर्द्धा।)। लृ, लृ३, त, थ, द, ध, न, ल और स दांतसे सम्बन्ध रखते हैं। (लृतुलसानां दन्ताः।) उ, ऊ, ऊ३, प, फ, ब, भ और उपध्मानीय अर्थात् ≍ प और ≍ फ ओष्ठके हैं। (उपूपध्मानीयानामोष्ठौ।) ङ, ञ, ण, न और म स्व-स्व वर्ग भिन्न नासिकासे भी उच्चारित हो जाते हैं। (ञमङणनानां नासिका च।) ए और ऐका उच्चारण कण्ठ और तालुसे होता है। (एदैतोः कण्ठतालु।) ओ और औ कण्ठोष्ठसे निकलते हैं। (ओदौतोः कण्ठौष्ठम्।) वकार दन्त और ओष्ठसे उच्चारित होता है। (वकारस्य दन्तौष्ठम्।) जिह्वामूलीय अर्थात् ≍ क और ≍ खका उच्चारणस्थान जिह्वामूल है। (जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।) अनुस्वार नासिकासे निकलता है। (नासिकाऽनुस्वारस्य।)

प्रयत्न—इसके बाद प्रयत्नादि नाना प्रकार स्वरका भी प्रमाण मिलता है। यथा,—प्रयत्न दो प्रकारका

है, आभ्यन्तर अर्थात् मुखका, और वाह्य अर्थात् मुखसे बाहर या कण्ठादिका। फिर आभ्यन्तर प्रयत्नके पांच भेद हैं। यथा,—स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, ईषद्विवृत, विवृत और संवृत। जो वर्ण उच्चारण करनेमें जिह्वाके स्थानको स्पर्श नहीं करता, उसे स्पृष्ट प्रयत्न कहते हैं। स्पर्श वर्णमें स्पृष्ट प्रयत्न होता है। अन्तस्थ वर्णका ईषत्स्पृष्ट अर्थात् किञ्चित् स्पृष्ट प्रयत्न है। उष्म वर्णका ईशद्विवृत प्रयत्न बताया गया है। अच् अर्थात् स्वरवर्णका विवृत प्रयत्न है; वर्ण उच्चारित होनेमें जिह्वाके स्थानको स्पर्श न करनेसे, विवृत प्रयत्न कहाता है। प्रयोग अर्थात् बोलने-चालनेमें ह्रस्व अकारका संवृत प्रयत्न माना गया है। किन्तु प्रक्रियाकी दशामें अर्थात् किसी विधि द्वारा जहां अकार किया जाता, वहां इसे विवृत प्रयत्न कहते हैं। ऐसा न करनेसे अकारकी सवर्ण संज्ञा फिर किसी प्रकार हो नहीं सकती। यह सकल भेद ले गणना करनेसे वाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकारका होता है। यथा—१ विवार, २ संवार, ३ श्वास, ४ नाद, ५ घोष, ६ अघोष, ७ अल्पप्राण, ८ महा-प्राण, ९ उदात्त, १० अनुदात्त, ११ स्वरित। खर प्रत्याहारके मध्यमें जितने वर्ण हैं (ख, फ, छ, ठ, थ, च, ट, त, क, प, श, ष, स,), उनका विराव, श्वास और अघोष प्रयत्न है। हश् प्रत्याहारके मध्यमें जितने वर्ण (ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द)। हैं, उनका संराव, नाद एवं घोष प्रयत्न है। वर्णमालामें प्रत्येक वर्गके प्रथम, तृतीय और पञ्चम वर्ण (क च ट त प, ग ज ड द ब, ङ ञ ण न म) और यण् प्रत्याहारके मध्यमें जितने वर्ण (य र ल व) हैं, उन सबका अल्पप्राण प्रयत्न कहलाता है। प्रत्येक वर्गका द्वितीय और चतुर्थ अक्षर महाप्राण प्रयत्न है। अल्पप्राण और महाप्राण प्रयत्नका फल, रस और अनुप्रास शब्दमें देखो। ककारसे मकार पर्यन्त यावतीय वर्णोंको स्पर्श वर्ण कहते हैं। यण् प्रत्या-हारके वर्ण अन्तस्थ होते हैं; क्यों कि वर्णमालाके स्पर्श और उष्मवर्णके मध्यमें उन्हें स्थान दिया गया है। शल् प्रत्याहारके भीतर जितने वर्ण (श ष स ह) हैं, उन्हें उष्मवर्ण कहा जाता है। अच् प्रत्याहारके वर्ण स्वर हैं। ≍ क और ≍ खकी तरह ककार और खकारके पूर्व अर्द्ध विसर्गका चिह्न जिह्वामूलीय है। ≍ प और ≍ फकी तरह पकार और फकारके पूर्व जो अर्द्ध विसर्गका चिह्न रहता, वह उपध्मानीय कहाता है।

विशुद्ध स्वरसे वेदको गान करनेके लिये यह सकल स्वरभेद बहुत ही आवश्यक है। इससे स्पष्ट जान पड़ता, कि सङ्गीतविद्याकी उन्नतिके साथ नाना प्रकार उच्चारणकी सृष्टि हुई है। यही भिन्न-भिन्न उच्चारण सहजमें समझा जा सकनेके लिये कहीं एक-एक अक्षर या शब्दके ऊपर एक-एक प्रकार चिह्न दिया गया और कहीं एक-एक वर्णको सृष्टि की गई है।

प्रथम-प्रथम अच्‌वर्णके मध्यमें एकमात्र आकार था, इसके बाद आकारसे अन्यान्य स्वरोंकी उत्पत्ति हुई। कार्यकारण भावको विचारकर देखनेसे यह बात समझमें आ सकती है। वृक्ष मट्टीसे उत्पन्न होनेके कारण लकड़ी सड़नेपर मट्टी हो जाती है। यदि वह मट्टीसे न उत्पन्न होते, तो लकड़ी भी सड़कर मट्टीमें न मिलती। वर्णमालाके वर्णोंका भी इसी प्रकार नियम देख पड़ता है। नकार और मकार इन दोनो वर्णोंके स्थानमें अनुस्वार और अनुस्वारके स्थानमें नकार और मकार दोनो ही होते हैं। इसीतरह रकार और सकारके स्थानमें विसर्ग और विसर्गके स्थानमें रकार और सकार होता है। इसलिये नकार और मकारके साथ अनुस्वार एवं रेफ और सकारके साथ विसर्गका घनिष्ठ सम्बन्ध मानना पड़ेगा। ऐसा ही आकारके साथ इकार और उकारका भी सम्बन्ध है। संस्कृत शब्दोंके अनेक अकारान्त वर्ण, हिन्दी और प्राकृत भाषामें आकारान्त, इकारान्त और उकारान्त हो जाते हैं। यथा,—अङ्क—आंकड़ा; चर्म—चमड़ा; गर्दभ—गधा। इसी तरह अनेक स्थलोंमें अकारके स्थानमें आकार होता है। जैसे,—सज्ञान—सयाना। शब्द शास्त्रकी आलोचना करनेसे स्पष्ट ज्ञान पड़ता है, कि केवल कण्ठके स्वरवैषम्य द्वारा आकारसे

इ, उ, ए, ऐ, ओ, औ प्रभृति स्वरवर्णोंकी उत्पत्ति हुई है। जैसे नाना प्रकारके राग बजानेको वाद्य-यन्त्रोंमें कितने ही रोदे और तार लगा उनके नाना स्थान विवेचनापूर्वक दबाने पड़ते, फिर नाना प्रकारके स्वर निकलते; वैसे ही स्वर और शब्दोंको उच्चारण करनेके लिये अनेक प्रकारके वर्ण आवश्यक होते हैं। इसी कारण सङ्गीतविद्या और भाषाकी उन्नतिके साथ नानाविध वर्णोंको उत्पत्ति हुई है। स्वरवर्णसे ही स्वर निकलता है, हल्वर्णमें कोई स्वर नहीं। संस्कृत और हिन्दीमें यद्यपि इतने अधिक स्वरवर्ण विद्यमान हैं, तथापि हम इस समय दो स्वरवर्णोंके अभावको अनुभव करते हैं। एक अकार, उकार और औकार और एक आकार और इकारका मध्यवर्ती है। जैसे,—भ'जाई और भ'या। इस जगह भजाई, भोजाई या भौजाई—कुछ भी लिखनेसे ठीक उच्चारण नहीं मिलता। किन्तु यह समझा जा सकता है, कि स्वरवर्णके अभावमें औका उच्चारण नहीं होता, वह अउ एवं औकारका मध्यवर्ती कोई नये उच्चारण-का स्वरवर्ण है। पुनश्च भ'या शब्द भिया, भैया इस प्रकारसे लिखनेपर ठीक उच्चारित नहीं होता; अथच समझा जा सकता है, कि आकार और इकार का मध्यवर्ती कोई नूतन स्वरवर्ण होना चाहिये; उसके होनेसे यह सकल शब्द ठीक लिखे जा सकते हैं। इसी तरह मुखका स्वरवैषम्य होनेसे एक-एक वर्णका अभाव समझा जा सकता है। अभाव मालूम कर सकनेसे ही उसे पूर्ण करनेके लिये नूतन वर्ण-की सृष्टि करनी पड़ती है। फिनिशिया भाषामें अलिफ़् तालुसे उच्चारित होता, जो हल् वर्ण जैसा है। किन्तु यूनानी भाषामें अलिफ़् विशुद्ध स्वरवर्ण है। स्वरवर्णोंमें प्रथमतः आकारकी सृष्टि ही सकल देशोंके बीच हुई थी। सम्पूर्ण रूपसे मुख खोलकर भीतरी तालुादि स्थानोंके स्पर्श भिन्न जो वर्ण उच्चारित होता, वही (आ) आकार है। जिह्वा अथवा ओष्ठ द्वारा वायुपथ जितना सङ्कुचित किया जायगा, उतने ही अन्यान्य स्वरवर्ण उच्चारित होंगे। ओकारका उच्चारण करते समय जिह्वाका निम्नस्थान उठा अलिजिह्वा और जिह्वाका मध्यवर्ती स्थान खाली कर देना पड़ता है। फिर इकारके उच्चारण करते समय जिह्वाका अग्रभाग उच्च कर जिह्वा और तालुका मध्यवर्ती स्थान खाली करना होता है। मोटो बात यह है, कि कण्ठसे ओष्ठ पर्यन्त समस्त वायुपथ उत्तम रूपमें खोल देनेपर आकार निकलता है। सुतरां स्पर्शादि प्रति-बन्ध भिन्न जिस वर्णका उच्चारण किया जाता, वही अच् या स्वरवर्ण है। कोई शब्देन्द्रिय इधर-उधर घुमाने-फिराने और मुखके भीतर अल्प या अधिक प्रतिबन्ध होनेसे हल् वर्ण उच्चारित होता है। इसी-से आकार जैसा विशुद्ध स्वर कोई भी नहीं। क्योंकि इकारका उच्चारण करते समय जिह्वा खड़ी हो प्रायः तालुको स्पर्श करती है। उकार निकाल-नेमें ओष्ठ कितना ही बन्द रखना चाहिये। इसलिये आकार ही आदिस्वर है। दूसरे अच् वर्ण आकारके रूपान्तर मात्र होते हैं। किसी विन्दुकी दोनो ओर रेखायें खींचनेसे आकारका रूपान्तर स्पष्ट समझा जा सकता है। यथा—
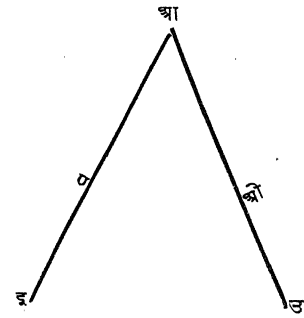
एक ओर आकारसे क्रमशः मुख सङ्कुचित करते जानेपर प्रथमतः एकार और इसके बाद इकार उच्चारित होता है। इकारके बाद बिना ताल्वादिको स्पर्श किये अन्य स्वरवर्ण फिर नहीं निकलता। दूसरी ओर प्रथमतः आकारके बाद ओकार और इसके बाद उकार उच्चारित होता है। उकारके बाद अन्य स्वरवर्ण फिर नहीं निकलता। तज्जन्य शब्दशास्त्रके प्राचीन इतिहासकी आलो-चना करनेसे स्पष्ट मालूम हो सकता है, कि पहले

आकार भिन्न अन्य स्वर न थे। आकारसे इकारादि दूसरे कई स्वरोंकी उत्पत्ति हुई है।

अरबी और फ़ार्सी भाषा इस बातका दूसरा स्थल है। आजतक इन दोनो प्राचीन भाषाओंमें ह्रस्व इकार और ह्रस्व उकार एकमात्र अलिफ़् द्वारा लिखा जाता है, इन दोनोंके लिये कोई विभिन्न स्वर नहीं। अलिफ़्में ज़ेर लगानेसे इकार और पेश लगानेसे उकार होता है। जे़र और पेश वह साङ्केतिक चिह्न हैं, जो अलिफ़्पर इकार और उकार लिखनेको लगाये जाते हैं। अतएव अब स्पष्ट ही समझा जा सकता है, कि सकल भाषाओंमें ही प्रथम अच् वर्ण आकार स्वभावसे ही गृहीत हुआ था, इसके बाद अन्यान्य स्वरोंकी उत्पत्ति हुई।

अचक (हिं० वि०) १ अधिक, ज्यादा। २ पूर्ण, पूरा। (पु०) ३ आश्चर्य, तअज्जुब।

अचकन (हिं० पु०) अँगरखा। चपकन।

अचकां (हिं० क्रि०-वि०) १ अकस्मात्, एकाएक। २ बिना जाने-बूझे, बेबताये।

अचकित (सं० त्रि०) १ चक्षुनिमेषशून्य, इधर-उधर न ताकनेवाला। २ स्थिर, ठहरा हुआ। ३ अभीत, न डरा हुआ। ४ अतृप्त, आसूदा नहीं।

अचक्का (हिं० पु०) १ अपरिचित व्यक्ति, अजनबी। २ बेसमझी, लाइल्मी।

अचक्षु—अचक्षुस् देखो।

अचक्षुदर्शन (सं० क्ली०) बिना आंखों देखा हुआ विषय। बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान।

अचक्षुदर्शनावरण (सं० क्ली०) अचक्षुदर्शनका आवरण, वह परदा जिससे बिना आंखों देखनेका ज्ञान जाता रहे। अचक्षुदर्शनको रोकनेवाला काम।

अचक्षुदर्शनावरणीय (सं० त्रि०) अचक्षुदर्शनको छिपानेवाला। दिव्यदृष्टिका विरोधी।

अचक्षुस् (सं० त्रि०) नास्ति चक्षुर्यस्य, बहुव्री०। १ नेत्रहीन, अन्धा। नञ्-तत्। २ चक्षु भिन्न कुछ दूसरा, आंख नहीं।

अचगरी (हिं० स्त्री०) उपद्रव, उत्पात। बदमाशी, छिछोरापन।

अचञ्चल (सं० त्रि०) १ चञ्चल नहीं, स्थिर। २ धैर्ययुक्त, ढाढसी।

अचञ्चलता (सं० स्त्री०) १ अचञ्चल होनेकी स्थिति, स्थिरता। २ धैर्य, सब्र।

अचण्ड (सं० त्रि०) १ सरल, सीधा। २ शान्त, मुसब्बिर। ३ सुशील, शाइस्ता।

अचण्डी (सं० स्त्री०) न चण्डी कोपना, नञ्-तत्। १ शान्त गौ, सीधी गाय। २ सूकरी, मादा सूअर। ३ सुशीला स्त्री, भली औरत।

अचतुर (सं० त्रि०) न सन्ति चत्वारि यस्य, बहुव्री०। जिसके चतुःसंख्या न हो, बिना चतुः-संख्यावाला। जिसके धर्म अर्थ काम मोक्ष,—यह चतुर्वर्ग न हो; धर्म, अर्थ, काम, और मोक्षको न रखनेवाला। २ अपटु, भोंदू।

अचम्पाचार्य—महिसूरके एक राजकवि। इन्होंने महिसूरपति कृष्णराजके उद्देशसे कृष्णराजसार्वभौम-त्रिशती और कृष्णराजाष्टोत्तरशती नामक क्षुद्र संस्कृत पद्यग्रन्थद्वयकी रचना की थी।

अचन—मन्द्राज-प्रान्तीय कोचिन राज्यके नय्यरोंकी उपाधिविशेष। पालघाटका राजवंश इस उपाधिसे विभूषित है। कालीकटके मङ्गतअचन, कोचिनके पालीयत-अचन और कालीकट द्वितीय राज्यके मन्त्री चेनलीअचन कहाते हैं।

अचना (हिं० क्रि०) १ आचमन करना। २ मुंह धोना। ३ पीना।

अचन्त—मन्द्राज-प्रान्तीय गोदावरी जिलेकी नरसापुर तहसीलका क़सबा। इसमें कोई छः-सात हज़ार मनुष्य निवास करते, जो प्रधानतः कृषक हैं। पहले यह नगर-पिठापुरम् राजत्वके अधीन था।

अचपल (सं० त्रि०) न चपलः, नञ्-तत्। १ स्थिर, ठहरा हुआ। नास्ति चपलो यस्मात्, बहुव्री०। अत्यन्त चञ्चल, निहायत चुलबुला।

अचपलता (सं० स्त्री०) १ स्थिरता, ठहराव। २ धैर्य, सब्र।

अचपली (हिं० स्त्री०) १ खेल-कूद, क्रीड़ा। २ चुलबुलापन।

अचमन (हिं० पु०) १ आचमन। २ मुंह धोना। ३ पीना।

अचमीन (हिं० पु०) आश्चर्य, तअज्जुब।

अचम्भव (हिं० पु०) आश्चर्य, तअज्जुब।

अचम्भा (हिं० पु०) आश्चर्य, हैरत।

अचम्भित (हिं० वि०) विस्मित, मुतअज्जिब, भौचक्का।

अचम्भो, अचम्भौ (हिं० पु०) आश्चर्य, विस्मय; तअज्जुब, हैरत।

अचर (सं० त्रि०) न चर-अच्, नञ्-तत्। स्थिर, ठहरा हुआ; चलनशून्य, बिना चालका। ज्योतिषके मतसे मेष, कर्कट, तुला और मकर—यह चर और वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ—यह अचर लग्न हैं। मिथुन, कन्या, धनुः और मीनको चराचर अर्थात् द्विस्वभाव लग्न कहते हैं।

अचरज (हिं० पु०) आश्चर्य, तअज्जुब।

अचरम (सं० त्रि०) न चरमः, नञ्-तत्। शेष नहीं, मध्य। अख़ीर नहीं, यानी दरमियान्।

अचरण्ड विलतान—मन्द्राज-प्रान्तीय तिनेवेल्ली ज़िलेकी श्रीविल्लीपुत्र तहसीलका क़सबा। इसमें कोई दो-तीन हज़ार मनुष्य रहते और पांच-छः सौके लगभग घर होंगे। काया-कूदी नदीके वाम तटपर यह अवस्थित है।

अचरित (सं० त्रि०) १ अप्रचलित। चालसे बाहर। २ न खाया गया। ३ जिसे किसीने स्पर्श न किया हो। नूतन, नवीन।

अचल (सं० पु०) न चलः, नञ्-तत्। १ पर्वत, पहाड़। २ वृक्ष, पेड़। ३ खूंटा-खूंटी। (त्रि०) ४ न चलनेवाला। ५ बना रहनेवाला।

अचला वसुधायां स्यादचलः शैलकीलयोः। (मेदिनी)

अचल—सूक्तिकर्णामृतमें लिखे गए एक प्राचीन कवि। २ आह्निकदीपक और निर्णयदीपक नामक स्मार्तग्रन्थ-रचयिता। ३ वत्सराजके पुत्र, जो शाङ्खायनाह्निकके रचयिता थे।

अचलउपाध्याय—वाक्यवाद नामक संस्कृत वैयाकरण ग्रन्थ-रचयिता।

अचलकन्या (सं० स्त्री०) अचलस्य हिमालयस्य कन्या, ६-तत्। पार्वती, दक्षयज्ञमें देहको त्याग कर इन्होंने मेनकाके गर्भ और हिमालयके औरससे जन्मग्रहण किया था।

अचलकीला (सं० स्त्री०) अचलाः कीला इव यस्याः। पृथिवी, ज़मीन।

अचलजा (सं० स्त्री०) अचल-जन-ड, ५-तत्। अचलात् जायते। १ पर्वतजाता, पार्वती। २ पर्वतजाता लतादि, पहाड़से पैदा बेलें वग़ैरह।

अचलत्विष् (सं० पु०) अचला स्थिरा त्विट् कान्तिर्यस्य, बहुव्री०। १ कोकिल, कोयल। २ स्थिर कान्तियुक्त पदार्थ, वह चीज़ जिसकी चमक टिकाऊ हो।

अचलदेव—महारुद्रपद्धति-रचयिता।

अचलद्विष् (सं० पु०) अचलेभ्यः पर्वतेभ्यः द्वेष्टि, अचल-द्विष्-क्विप्; ४-तत्। इन्द्र। इन्होंने पर्वतोंका पक्षच्छेदन किया था।

अचलधृति (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष। 'द्विगुणित-वसु-लघुभिरचलधृतिरिह।' अर्थात् यह छन्द सोलह वर्णसे ग्रथित होता है, जिसके सकल ही वर्ण लघु रहते हैं। यथा,—

भजहु सकल सियपति जु चहहु सुख।
अकथ कहहु जनि सुनर! विमल सुख॥ सम्पा०

अचलनारी (सं० स्त्री०) अचलस्य हिमाचलस्य नारी, ६-तत्। मेनका, हिमालयकी स्त्री।

अचलपति (सं० पु०) अचलानां पतिः, ६-तत्। पातेर्डति। उण् ४।५७। गिरिराज, हिमालय।

अचलभ्राता (सं० पु०) जैनियोंके एकादश गणाधिप। (हेम० ३२)

अचलमिश्र—सिद्धान्तसंग्रह नामक संस्कृत ज्योतिर्ग्रन्थ-रचयिता।

अचलराज (सं० पु०) अचलानां राजा, अच् समासे षष्ठी। राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१। हिमालय, जो सब पहाड़ोंका राजा है।

अचलवसन्त—उड़ीसा—कटकके अस्सिया पहाड़की चोटी। इसके नीचे माझीपुरका भग्नावशेष पड़ा है, जहां पुराकालके हिन्दू आधिपत्य करते थे। अब केवल स्वर्णद्वार, प्रस्तरप्राङ्गण और भङ्गभित्तिके ही चिह्न देख पड़ते हैं।

अचला (सं० स्त्री०) १ पृथिवी, ज़मीन। २ मेनका, हिमालयकी स्त्री। ३ स्थिरा, गतिशक्तिविहीना। ठहरी हुई, न हिलने-डुलनेवाली।

अचलाचार्य—ज्योतिर्विद्‌शृङ्गार नामक संस्कृत ज्योतिग्रन्थप्रणेता।

अचला सप्तमी (सं० स्त्री०) माघ सुदी सप्तमी। इस तिथिको दान-पुण्य करनेका विधान है।

अचवन (हिं० पु०) १ आचमन, पूजाके समय किञ्चित् जल मुखमें डाल शुद्धिको सम्पादन करना। २ भोजनके बाद हाथ-मुंह धोना और कुल्ला करना। ३ पीना।

अचवना (हिं० क्रि०) १ आचमन करना। २ कुल्ला करना।

अचवाई (हिं० वि०) आचमन कराई हुई, साफ़। धुली-धुलाई।

अचवाना (हिं० क्रि०) १ आचमन कराना। २ पिलाना। ३ भोजनके बाद कुल्ला कराना।

अचांचक (हिं० क्रि०-वि०) एकाएक, विना जाने।

अचाक, अचाका (हिं० क्रि० वि०) एकाएक, अकस्मात्।

अचान, अचानक (हिं० क्रि०-वि०) एकाएक, अकस्मात्।

अचापल (सं० क्लो०) न चापलः। १ स्थिर, चपलताशून्य पदार्थ। (त्रि०) नास्ति चापलं यस्य, बहुव्री०। २ ठहरा हुआ, स्थिर।

अचापल्य (सं० क्लो०) नञ्-तत्। १ स्थिरता, ठहराव। (त्रि०) नास्ति चापल्यं यस्य, बहुव्री०। २ चापल्यशून्य, चुलबुला नहीं।

अचार (फ़ा० पु०) १ खटाई, जो फल या तरकारीसे मसाला मिला सिर्केमें डाल खट्टी की जाती है। (हिं० पु०) २ आचार, चाल-चलन। ३ चिरौंजीका पेड़।

अचारज (हिं० पु०) आचार्य, सदा घरमें कर्मकाण्ड करानेवाले पण्डित।

अचारी (हिं० वि०) १ आचारी, आचार करनेवाला। २ रामानुज-सम्प्रदायके विशेष विधानोंको माननेवाला। (स्त्री०) ३ एक प्रकार आमकी खटाई।

अचालू (हिं० पु०) न चलने या कम चलनेवाला।

अचाह (हिं० स्त्री०) चाहकी अनुपस्थिति, प्रेमका अभाव। (वि०) जिसे किसी चीज़की चाह न हो। इच्छाशून्य।

अचाहा (हिं० वि०) जिसकी चाह न हो। अनिच्छित।

अचाही (हिं० वि०) किसी चीज़की चाह न करनेवाला। निष्काम, निरीह।

अचिक्कण (सं० त्रि०) न चिक्कणः। चितेः कणः कश्च। उण् ४।१७५। १ रूक्ष, रूखा। अपरिष्कार, मैला।

अचिकित्स्य (सं० त्रि०) जिसकी चिकित्सा हो न सके, असाध्य; दवा देनेके नाक़ाबिल, लादवा।

अचित् (सं० क्लो०) वह द्रव्य जो चेतन न हो। जड़ पदार्थ। बेजान चीज़।

अचित्त (सं० त्रि०) नास्ति चित्तं यस्य, बहुव्री०। चेतनाशून्य, बेहोश।

अचिन्त (हिं० वि०) जिसे कोई चिन्ता न हो, बेखटके।

अचिन्तनीय (सं० त्रि०) न-चिन्त-अनीयर् शक्यार्थे। चिन्तासे अगम्य, ख़याल करनेके नाक़ाबिल; जैसे, ब्रह्म।

अचिन्तित (सं० त्रि०) न चिन्तितः। अतर्कित, जिसकी चिन्ता की न गई हो; विना विचारा।

अचिन्त्य (सं० त्रि०) १ विचारसे बाहर, कल्पनातीत। (पु०) २ अलङ्कार-विशेष। इसमें अविलक्षण कारणसे विलक्षण कार्य और विलक्षण कारणसे अविलक्षण कार्यकी उत्पत्ति होती है। जैसे—

> वर्षा-ऋतु-आगमनसों नाचत चहुंदिशि मोर।
> परी विरहनी सेजपै करै करहती भोर॥ सम्पा०

यहां वर्षा-ऋतु-आगमनके अविलक्षण कारणसे विरहिनीको दुःख मिलनेका विलक्षण कार्य उत्पन्न हुआ है।

अचिन्त्यात्मा (सं० पु०) वह आत्मा जिसका ध्यान न हो सके। परमेश्वर।

अचिर (सं० त्रि०) न चिरम्। १ अल्पकालस्थायी, थोड़ी देर ठहरनेवाला (क्रि०-वि०) २ शीघ्र, जल्द।

अचिरत्विष् (सं० स्त्री०) अचिरा अल्पकालस्थायिनी त्विट् प्रभा यस्याः। क्षणप्रभा ; विद्युत्, बिजली।

अचिरद्युति (सं० त्रि०) अचिरा अल्पकालस्थायिनी द्युतिः प्रभा यस्याः। विद्युत्, बिजली।

अचिरप्रभा (सं० स्त्री०) अचिरा क्षणकालस्थायिनी प्रभा यस्याः, बहुव्री०। क्षणप्रभा ; विद्युत्, बिजली।

अचिरभास् (सं० स्त्री०) अचिरा अल्पकालस्थायिनी भाः प्रभा यस्याः। १ विद्युत्, बिजली। कर्मधा०। २ अल्पकालस्थायिनी प्रभा, थोड़ी देर ठहरनेवाली रोशनी।

अचिररोचिस् (सं० स्त्री०) अचिरं रोचिः दीप्तिर्यस्याः। १ विद्युत्, बिजली। कर्मधा०। २ अल्पकालस्थायिनी कान्ति, थोड़ी देर ठहरनेवाली चमक।

अचिरस्य (सं० अव्य०) अल्पकालमें, थोड़ी देरमें ; अचिरात्, फ़ौरन् ; शीघ्र, जल्द।

अचिरांशु (सं० स्त्री०) अचिराः क्षणस्थायिनः अंशवो यस्याः, बहुव्री०। १ विद्युत्, बिजली। कर्मधा०। २ क्षणस्थायी किरण, थोड़ी देर रहनेवाली चमक।

अचिरात् (सं० अव्य०) शीघ्र, जल्द ; विना विलम्ब, झट-पट।

अचिराभा (सं० स्त्री०) अचिरा आभा यस्याः। विद्युत्, बिजली।

अचिराय (सं० अव्य०) शीघ्र, जल्द।

अचिरेण (सं० अव्य०) शीघ्र, जल्द।

अचिवल—काश्मीरका एक बृहत् जलोत्स। यह अचगान गांवके अत्यन्त सन्निकट है। पहले यहां नर्तकी रहती थीं।

अचिष्णु (सं० त्रि०) अच्-गतौ-इष्णुच्। गमनशील, जानेवाला।

अचीता (हिं० वि०) १ विना सोचा-समझा। २ आकस्मिक। ३ बेअन्दाज़।

अचीन—सुमात्रा-द्वीपके उत्तर अंशका एक प्रतापशाली स्वाधीन राज्य। इस द्वीपके समस्त राजाओंने एक-एक कर हलाण्डवालोंकी अधीनताको स्वीकार किया है। अचीन राज्य अद्यापि स्वाधीन है। किन्तु इसके अधिक काल स्वाधीन बने रहनेकी सम्भावना अल्प ही है। हलाण्डवाले सम्प्रति इस राज्यको अधिकार करनेकी विशेष चेष्टा कर रहे हैं।

सुलतान सिकन्दर मुदाके राजत्वकालमें (सन् १६०७-१६३७ ई०) यह राज्य अतिशय प्रबल हो गया था। नयाद्वीप, मलयके अन्तर्गत जोहर, पहाङ्, केदा एवं पेराक राज्यने भी इसकी वश्यताको स्वीकार किया। यह राज्य आयतनमें कोई १६,४०० वर्ग मील है। लोकसंख्या कोई ३, २८,००० होगी। इस देशमें प्रचुर परिमाणसे चावल और मिर्च उत्पन्न होता है। पूर्वकालमें यहां रेशमका खूब काम होता था, किन्तु आजकल इस व्यवसायकी अवस्था नितान्त अवनत हो गई है।

अचीन वाणिज्यका एक सुविख्यात बन्दरगाह है। सन् १५९९ ई० में हलाण्डवाले पहले यहां वाणिज्यार्थ आये थे। अंगरेज़-वणिकोंने सन् १६०२ ई० में यहां पहले पदार्पण किया। फ़्रान्सीसियोंने भी यहां व्यवसाय फैलनेकी चेष्टा की थी ; किन्तु देशीय वणिक् बीच-बीच इस आशङ्कासे गड़बड़ मचा देते, कि पीछे स्वार्थकी क्षति न होती। इसलिये कोई भी जाति विशेष सुविधा पा न सकी। यहां प्रचुर परिमाणसे स्वर्ण उत्पन्न होता है। अचीनवासी मलयजातिकी अपेक्षा दीर्घ और सुश्री हैं।

अचीन नगर इस राज्यकी राजधानी है। यह एक क्षुद्र नदीपर समुद्रसे डेढ़ कोस दूर अवस्थित है। यामुरा नामक यहां एक आग्नेय-गिरि है। यह पर्वत कोई ६००० फूट् उच्च होगा।

सन् १७०० ई० में अचीनराज्यकी अपरिमित रूपसे श्रीवृद्धि हुई थी। कहते हैं, कि राजाके पास सर्वदा ही ९०० हाथी रहते थे। अब भी इस देशमें बहुतसे हाथी हैं ; किन्तु हाथी पालनेकी प्रथा प्रायः उठ गई है। अचीनवाले प्रथम स्वाधीन राजाके राजत्वकालकी अवधिमें ही हलाण्डवालोंके साथ यहांके अधिवासियोंका विवाद होने लगा और जबतक मलक्का द्वीपका पतन और हलाण्डवालोंके प्रतापका ह्रास न हुआ, तबतक यह विवाद न मिटा।

अचीनाधिपतिने मलका द्वीपको अधिकार करनेके लिये कमसे कम दश बार जङ्गी जहाजोंको प्रेरण किया था। सन् १६१५ ई० में तात्कालिक राजा सिकन्दर मुदाने ५०० जङ्गी जहाजों और ६०,००० सिपाहियोंको रवाना किया। उनमें १०० जहाज इतने बड़े थे, जितने बड़े जहाज उस समय किसी युरोपीय राजाके पास न रहे। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि अचीनाधिपति कैसे धनी और प्रतापशाली थे। सन् १६४१ ई०में सिकन्दर मुदाकी मृत्युके बाद क्रमान्वयसे तीन स्त्रियोंने राजशासन किया। सन् १६९८ ई० में अरबोंके एक दलने स्वजातिको राजा बनाया था। इसके बाद अचीनकी अवनति होने लगी। सन् १८१६ ई०में यवद्वीप हलाण्डको प्रत्यर्पण किया जानेसे इङ्गलण्डीय गवर्णमेण्टने अचीन पर अपने प्रभुत्वको अक्षय रखनेकी चेष्टा की। सन् १८१९ ई० की सन्धिमें यह नियम रखा गया—कोई जाति अचीनमें रहने न पायेगी। सन् १८२४ ई० में जब इङ्गलण्डीय गवर्णमेण्टने हलाण्डके साथ कितने ही अधिकारोंका विनिमय किया, तब सुमात्रामें इङ्गलण्डका जो सकल अधिकार था, वह हलाण्डको दिया गया। सन् १८७३ ई० में हलाण्डके सैन्यदलने अचीन नगरपर आक्रमण किया। इसमें हलाण्डवाले सम्पूर्ण पराभूत हुए और उन्हें विस्तर क्षतिको उठाना पड़ा। किन्तु हलाण्डवालोंने एकबारगी ही भग्नोत्साह न हो थोड़े दिनों बाद पुनर्वार युद्धको आरम्भ किया एवं सन् १८७४ ई०के जनवरी मासमें अचीन नगरको हाथमें ले लिया।

अचूक (हिं० वि०) १ न चूकनेवाला, निश्चित। (क्रि० वि०) २ विना चूके, बराबर।

अचेत (सं० त्रि०) १ चेतनाशून्य, बेहोश। २ बेअक्ल, निर्बुद्धि। ३ जड़, बेजान। (क्ली०) ४ बेजान चीज, जीवनशून्य पदार्थ।

अचेतन (सं० त्रि०) नास्ति चेतना यस्य। चेतनाशून्य, ज्ञानशून्य। बेजान, बेअक्ल। जो सकल पदार्थ इच्छानुसार कहीं नहीं जाते, देखते और सुनते नहीं और न सुख-दुखका अनुभव ही करते, उन्हें अचेतन कहते हैं। जैसे—वृक्ष, पर्वत इत्यादि। पीड़ादिवशतः ज्ञानशून्य हो जानेसे जब मनुष्य इच्छानुसार बात नहीं करता और पूछनेपर बातका उत्तर नहीं देता, तब उसे भी अचेतन कहा जाता है। मूर्च्छा, सन्न्यास, ज्वर, मस्तिष्क-प्रदाह, क्रमि प्रभृति शब्दोंमें इसका विशेष विवरण देखो।

अचेतस् (सं० त्रि०) न चित-असुन्। सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८। नञ्-तत्। चेतनाशून्य, बेहोश।

अचेतान (सं० त्रि०) न चित-शानच्, नञ्-तत्। चेतनाशून्य, बेहोश।

अचेलपरीसह (हिं० पु०) आगममें कथित वस्त्र पहनने और उनका दोष न देखनेका नियम।

अचेष्ट (सं० त्रि०) नास्ति चेष्टा यस्य, बहुव्री०। १ निश्चेष्ट, चेष्टारहित; विना कोशिश। २ ज्ञानशून्य, बेहोश।

अचेष्टता (सं० स्त्री०) अचेष्ट-तल्-टाप्। निश्चेष्टता, चेष्टाराहित्य।

अचैतन्य (सं० त्रि०) नास्ति चैतन्यं यस्य। ज्ञानशून्य, चेतनारहित। बेहोश।

अचैन (हिं० पु०) तकलीफ़, दुःख, बेचैनी।

अचैना (हिं० पु०) चारा काटनेका लकड़ीवाला कुन्दा। यह जमीनमें गड़ा रहता और इसपर रखकर गंडाससे चारा काटा जाता है। पहुंटा। २ लकड़ी काटने और छीलनेका ठीहा।

अचोट (हिं० वि०) जिसके चोट न लगी, सुरक्षित।

अचौना (हिं० पु०) १ आचमनी। २ पानी पीनेका पात्र, कटोरा।

अच्छ (सं० अव्य०) न छ्यति दृष्टिम्, छो-क। १ अभिमुखमें, सम्मुखमें। रूबरू, सामने। (त्रि०) न छ्यति, छो-क; २ स्वच्छ, निर्मल; साफ़, बेमैल। (पु०) ३ स्फटिक। ४ भालू। ५ अक्षि, आंख। ६ अक्षयकुमार। ७ रुद्राक्ष।

अच्छत—अक्षत देखो।

अच्छत्व (सं० त्रि०) छदि-रक् छत्व। नास्ति छत्वं राजशासनं यत्र। जिस स्थलमें राजच्छत्व न हो।

अराजक, बेहुकूमत; जहां किसी बादशाहका हुक्म न माना जाये।

अच्छन्दस् (सं० त्रि०) चदि-असुन् छन्दस्। चन्देरादेश्च छः। उण् ४।२१८। नास्ति छन्दः वेदो यस्य। १ अनुपनीत। २ वेदाध्ययनशून्य। ३ नास्ति छन्दः परिमितमात्राचरादिवाक्यानि यत्र। पद्य नहीं, गद्यका; नज़्म नहीं, नस्रका। ४ अभिप्रायशून्य, बेमतलब; ऊटपटांग।

अच्छभल्ल, अच्छोभल्ल (सं० पु०) अच्छं आभिमुख्येन भल्लति हन्ति। अच्छ-भल्ल-अच्। भल्लूक, भालू; रीछ।

अच्छर—अचर देखो।

अच्छरा (सं० अप्सरा) अप्सरा देखो।

अच्छा (सं० स्त्री०) अं विष्णुं छ्यति। छेच। पा ६।१।७३। विष्णुका आच्छादन निर्मला।

अच्छा (हिं० वि०) १ उत्तम, भला। २ बढ़िया, उम्दा। ३ रोगरहित, तनदुरुस्त; भला-चङ्गा। (पु०) ४ भला आदमी। ५ बड़ा बूढ़ा। (क्रि०-वि०) ६ भली भांति, ख़ूब।

अच्छाई (हिं० स्त्री०) भलाई, उत्तमता।

अच्छापन (हिं० पु०) भलाई, अच्छाई।

अच्छावाक (सं० पु०) अच्छ-वच-घञ्। अच्छं निर्मलं वक्तीति। सोमयागमें होताका सहकारी ऋत्विक्।

अच्छावाकसामन् (सं० क्ली०) अच्छावाकेन गेयं साम। सोमयागमें होताके सहकारी ऋत्विक् द्वारा गेय सामवेदके वह मन्त्र जो होताका सहकारी ऋत्विक् विधिपूर्वक गाता है। इसका दूसरा नाम उद्वंशीय है।

अच्छावाकीय (सं० क्ली०) अच्छावाकस्य ऋत्विग्-भेदस्य कर्म भावो वा। अच्छावाक नामक ऋत्विक्का कर्मादि।

अच्छा-वच्छा—अच्छा देखो।

अच्छिद्र (सं० त्रि०) छिद्-रक् छिद्रम्। स्फायि-तञ्चि-वञ्चि-शकि-चिपि-क्षुदि-सृपि-तृपि-दृपि-वन्द्युन्दि-श्विति-वृत्यजिनी-पदि-मदि-मुदि-खिदि-छिदि-भिदि-मन्दि-चन्दि-दहि-दसि-दम्भि-वसि-वाशि-शीङ्-हसि-सिधि-शुभिभ्यो रक्। उण् २।१३। नास्ति छिद्रम् स्खलनं अङ्गहीनता रन्ध्रं वा यत्र, बहुव्री०। १ रन्ध्रशून्य, विना छेदका। २ दोषशून्य, बेऐब। ३ अङ्गहीनता-रहित, जिसका कोई अज़ो बिगड़ा न हो। ४ भ्रान्ति-रहित, भूलसे बाहर। श्राद्धयागादिक्रियाके बाद इस तरह उच्चारण करना होता है—

'यच्छिद्रं पूजने मम तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु'।

अर्थात् पूजादि क्रियामें यदि कोई त्रुटि रह गई हो, तो उसका दोष दूर हो जाये।

अच्छिद्रावधारण (सं० क्ली०) अच्छिद्र-अव-धृ-णिच्-ल्युट्। यागादि क्रियासम्पन्नतया 'अच्छिद्रमस्तु' इत्यव-धारणवाक्यम्। १ यागादिका अच्छिद्रावधारण वाक्य। २ कार्यकी निष्पत्ति।

अच्छिन्न (सं० त्रि०) न-छिद्-क्त कर्मणि, नञ्-तत्। रदाभ्यान्निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः। पा ८।२।४२। १ छिन्न नहीं, छेदनभिन्न; न टूटा हुआ। २ समग्र, पूरा।

अच्छिन्नपत्र (सं० पु०) न छिन्नानि खण्डितानि पत्राणि यस्य, बहुव्री०। १ शाखोट वृक्ष, सिहोरा। (क्ली०) कर्मधा०। २ छिन्नपत्र नहीं, समूचे पत्तोंका पेड़।

अच्छुप्ता (हिं० स्त्री०) अच्युप्ता, जैन-सम्प्रदायकी देवीविशेष।

अच्छेद्य (सं० त्रि०) न छेत्तुमर्हति, छिद अर्हं अर्थे कर्मणि यत्। जो छेदन किया न जाये। जिसे छेद न सकें।

अच्छैदिक (सं० त्रि०) न-छेद-ठक्। छेदादिभ्यो नित्यम्। पा ५।१।६४। न छेदं नित्यमर्हति। छेदन करनेके योग्य नहीं। छेदनेके नाक़ाबिल।

अच्छोत (हिं० वि०) १ पूर्ण, पूरा। २ अधिक, ज़्यादा। ३ बहुल, बहुत।

अच्छोद (सं० क्ली०) अच्छं निर्मलं उदकं यस्य। उदकस्योदः संज्ञायाम्। पा ६।३।५७। संज्ञायामुत्तरपदस्य उदकशब्दस्य उदादेशो भवतीति वक्तव्यम्। (कात्यायन।) कैलास पर्वतका एक सरोवर। कादम्बरीमें इस सरोवरका विषय उल्लिखित है।

अच्छोदा (सं० स्त्री०) अच्छोदसरोवरसे निर्गता नदी-विशेषका नाम।

अच्छोद्य (सं० अव्य०) अच्छ-वद-क्यप्। अच्छ गत्यर्थ-वदेषु। पा १।४।६९। अच्छ वदतीति। सम्मुखमें कहकर, सामने बोलकर।

अच्छोहिनी—अचौहिणी देखो।

अच्युत (सं० पु०) न च्युतः न च्यवते न च्यविष्यते वा। न-च्यु-क्त कालसामान्ये। नञ्-तत्। १ जिसका न कभी चय हुआ, न होता और न होगा; सनातन ब्रह्म, ईश्वर। २ क्षष्ण। ३ विष्णु। ४ जैनियोंके देवताविशेष। ५ द्वादश सर्गयुक्त काव्यविशेष। ६ अद्वैत प्रभुके कनिष्ठतम सन्तान। (त्रि०) ७ स्थिर, ठहरा हुआ। ८ अभ्रष्ट, लगा हुआ। ९ चरणशून्य, लाजवाल; नाश न होनेवाला।

अच्युत—इस नामके अनेक संस्कृत-ग्रन्थकार हो गए हैं। निम्नलिखित संस्कृत-ग्रन्थ अच्युतनामधेय विभिन्न व्यक्तियोंके बनाए हैं,—१ क्षष्णशतक। २ गुरुवरप्रार्थना-पञ्चरत्नस्तोत्र। ३ भागीरथीचम्पू। ४ रत्नमाला-नामक ज्योतिर्ग्रन्थ। ५ दायभागटीका। ६ वेदान्तामृत-चिद्रत्नचषकटीका। ७ भास्वतीकरणटीका।

अच्युतकुल (सं० क्ली०) वैष्णवोंका कुल या गोत्र।

अच्युत क्षष्णानन्द—छान्दोग्योपनिषद्विवरण और एकादशीमाहात्म्यके रचयिता।

अच्युत क्षष्णानन्द-तीर्थ—स्वयंप्रकाशानन्दतीर्थ सरस्वतीके शिष्य। इन्होंने क्षष्णालङ्कार नामक शास्त्रसिद्धान्त-लेशसंग्रहकी टीका बनाई थी।

अच्युतगोत्र (सं० क्ली०) वैष्णवोंका गोत्र या कुल।

अच्युतचक्रवर्ती—हरिदास तर्काचार्यके पुत्र, हारलताके टीकाकार।

अच्युतपति—मधुसूदनाश्रमके शिष्य, जिन्होंने सीतारामाष्टकस्तोत्र बनाया था।

अच्युत-मध्यम (सं० पु०) विक्षतस्वर-विशेष।

अच्युत रघुनाथ भूपाल—रामायणसारसंग्रह-रचयिता।

अच्युत वैद्य—रससंग्रहसिद्धान्तनामक वैद्यक-ग्रन्थके रचयिता। इनके पिताका धरणीगोणिग और पितामहका नाम महादेव था।

अच्युत-षड्ज (सं० पु०) विक्षतस्वर-विशेष।

अच्युताग्रज (सं० पु०) अच्युतस्य क्षष्णस्य अग्रजः। ६-तत्। १ बलराम। वसुदेवके औरस और देवकीके गर्भसे श्रीक्षष्णके जन्म-कालमें बलदेव पहले प्रसूत हुए थे, इसीसे इनका नाम अच्युताग्रज पड़ा। २ इन्द्र। कश्यपके औरस और अदितिके गर्भसे आगे इन्द्रने जन्मग्रहण किया था, पीछे भगवान् प्रसूत हुए; इसीसे इन्द्रको अच्युताग्रज और भगवान्को उपेन्द्र कहते हैं।

अच्युताङ्गज (सं० पु०) अच्युतस्य अङ्गात् जायते, जन-ड। क्षष्णके पुत्र, कामदेव।

अच्युतात्मज (सं० पु०) अच्युतस्य आत्मनः जायते, जन-ड। क्षष्णके पुत्र, कामदेव। यह क्षष्णके औरस और रुक्मिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे।

अच्युतानन्द (सं० क्ली०) सनातन ब्रह्म। परमेश्वर।

अच्युतानुजा (सं० स्त्री०) अच्युतस्य श्रीक्षष्णस्य अनुजा। भगवती। श्रीक्षष्णके जन्म-दिन भगवतीने नन्दालयमें जन्म लिया था, इसलिये यह अच्युतानुजा कहलाती हैं।

अच्युतावास (सं० पु०) अच्युतेन उष्यते अत्र, आ-वस-घञ् अधिकरणे; बहुव्री०। अश्वत्थवृक्ष, पीपलका पेड़।

अच्युताश्रम—चिदानन्दाश्रम या परमानन्दाश्रमके शिष्य। इन्होंने रामनाममाहात्म्य, रामार्चनचन्द्रिका, विश्वेश्वरीपद्धति, संन्यासधर्मसंग्रह प्रभृति संस्कृत ग्रन्थ बनाये थे।

अच्युति (सं० स्त्री०) न-च्यु-क्तिन्, नञ्-तत्। १ चरणाभाव, क़ायममुक़ामी। (त्रि०) २ विच्युति-शून्य, लाजवाल।

अछक (हिं० वि०) न छका हुआ, बुभुक्षित।

अछकना (हिं० क्रि०) भूखे रहना, डटकर न खाना।

अछत (हिं० क्रि०-वि०) १ आगे, रूबरू। २ अलावा, सिवा; अतिरिक्त, भिन्न। ३ पीछे, बाद।

अछताना-पछताना (हिं० क्रि०) पश्चात्ताप करना, अफ़सोस करना।

अछन (हिं० पु०) १ अधिक समय, लम्बा वक़्त।

(क्रि० वि०) २ क्रमशः, अहिस्ता-अहिस्ता; शीघ्र नहीं, धीरे-धीरे।

अछना (हिं० क्रि०) होना, रहना।

अछनेरा—युक्तप्रदेशके आगरा जि़लेका एक क़सबा। यह रेलोंका जङ्क्शन-ष्टेशन है।

अछप (हिं० वि०) न छिपनेवाला, ज़ाहिर।

अछम्भो (हिं० पु०) आश्चर्य, तअज्जुब।

अछय—अक्षय देखो।

अछयकुमार—अक्षकुमार देखो।

अछरा, अछरी—अप्सरा देखो।

अछरौटी (हिं० स्त्री०) वर्णमाला, हुरूफ़े तहज्जी।

अछल (हिं० वि०) निश्छल, लाफ़रेब; जो कपटी न हो।

अछवाना (हिं० क्रि०) सजाना, बनाना।

अछवानी (सं० स्त्री०) प्रसूता स्त्रियोंको दिया जानेवाला पाकविशेष। यह घृतमें परिपक्व किया जाता और इसमें मेवा, अजवाइन, सोंठ आदि कई दवायें पड़ती हैं।

अछाम (हिं० वि०) १ स्थूल, मोटा। २ बलवान्, मज़बूत।

अछियार (हिं० पु०) सुर्ख़ गोटवाली गजीकी साड़ी।

अछी (हिं० स्त्री०) आलवृक्ष, आलका दरख़्त् या पेड़।

अछूत, अछूता (हिं० वि०) १ स्पर्श न किया हुआ, न छुआ गया। २ काममें न लाया गया, नवीन।

अछेद, अछेद्य—अच्छेद्य देखो।

अछेव—अच्छिद्र देखो।

अछेह—अच्छेद्य देखो।

अछोप (हिं० वि०) १ नग्न, नङ्गा। २ तुच्छ, छोटा।

अछोभ, अछोह, अछोही—अक्षोभ देखो।

अज्—क्षेपण, गति। भ्वा०-प०, सक० सेट्।

अज्—दीप्ति (अजि, इदित०) चु०-उ० अक० धातु सेट्।

अज (सं० पु०) न जायते, न-जन-ड, नञ्-तत्। अन्येष्वपि दृश्यते। पा ३।२।१०१। १ जिसका जन्म न हो, ईश्वर। २ जीव। ३ ब्रह्मा। ४ विष्णु। ५ शिव। ६ चन्द्र। ७ कामदेव। ८ अयोध्याके सूर्यवंशीय एक राजा जो रघुके पुत्र और रामचन्द्रके पितामह थे; इनकी स्त्रीका नाम इन्दुमती था, जिनके गर्भसे दशरथ उत्पन्न हुए थे। ९ ऋषिविशेष। १० बकरा। ११ मेंढ़ा। १२ सोनामाखी धातु। १३ अजन्मा। १४ नेता। (स्त्री०) अजा—१ सत्त्व-रजस्तमोगुणात्मिका प्रकृति। २ बकरी। ३ ओषधि-विशेष, काकड़ासींगी।

अज यानी बकरा चतुष्पद जन्तु है। इसका सर्वाङ्ग लोमसे आवृत है। किसी-किसी जातिवाले बकरेकी देहपर कोमल और रेशम जैसे चिक्कण और किसी-किसीके बाल जैसे मोटे लोम होते हैं। बकरेके दो शृङ्ग रहते, पूंछ छोटी होती; पागुर करते समय भुक्तद्रव्य जब मुखमें पेटसे निकलता, तब 'हड़ात्' करके सामान्य एक शब्द उठता है। बकरेके बत्तीस दांत होते हैं। इनमें बीस नीचे और बारह ऊपर रहते हैं। नीचेके बीस दांतोंमें दोनो जबड़ोंके बारह दांतोंसे खाद्यद्रव्यको बकरा चबाता और सामनेवाले आठ दांतोंसे तृणादि उखाड़ता है। ऊपरवाले दोनो जबड़ोंमें केवल खाद्यद्रव्यके चबानेके लिये बारह दांत लगे हैं। भूमिष्ठ होनेसे पीछे बकरेवाले शिशुके केवल छः जबड़ेके दांत रह जाते हैं। सामनेके दांत इक्कीस दिनमें निकल आते हैं। एक वर्ष या पन्द्रह महीने बाद सामनेके दो दांत टूट जाते; फिर नये दांत निकलते हैं। दो अथवा ढ़ाई वर्षके वयःक्रममें सामनेके और दो दांत गिर पड़ते, साढ़े तीन वर्षमें फिर दो दांत गिरते; बाक़ी दो साढ़े चार वर्षमें गिर जाते हैं। अतएव पांच वर्षतक दांत देखकर बकरेका वयःक्रम निश्चित किया जा सकता है। लोग कहते हैं, कि बकरा तेरह वर्ष जीता है।

बकरेका वयःक्रम सात मास होनेसे सन्तानोत्पादनकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है; बकरीका वयस एक वर्ष होनेसे गर्भधारणका काल उपस्थित होता है। किन्तु दोनोका वयःक्रम कुछ और परिपक्व होनेसे शावक खूब हृष्टपुष्ट और बलिष्ट हुआ करते हैं। छः महीने गर्भसे पीछे बकरीके सन्तान होती है और प्रायः दो, कहीं तीन-चार तक बच्चे हो जाते हैं। बकरीके दोसे अधिक सन्तान

होनेपर दुग्धाभावके कारण वह सबल नहीं होने पातीं। अधिक सन्तान होने पर कई जगह एकाध बच्चा मर जाता है। बकरीका दूध सहजमें परिपाक होता, जिसके कारण रुग्णव्यक्तिको बहुत ही सुपथ्य और लाभदायक है; विशेषतः कासरोगीके पक्षमें यह बहुत हितकर है। वैद्यक ग्रन्थोंके मतसे बकरीका दूध मधुर, शीतल और धारक होता है। इसे पीनेसे क्षुधाकी वृद्धि होती, रक्तपित्त और क्षयकास नष्ट हो जाता है। बकरी कटु और तिक्त द्रव्य खाती और सदा घूमती फिरती है। इस-लिये इसके दुग्ध-सेवनसे सकल दोष नष्ट होते हैं। प्रसवसे दश दिन पीछे बकरीका दूध पीनेकी व्यवस्था लिखी है—

"अजागावीमहिष्यश्च ब्राह्मणी च प्रसूतिका।
शुध्यन्ति दिवसैरेव दशभिर्नात्र संशयः॥ (स्मृति)

कितनी ही बकरियोंके गलमें स्तन जैसा मांस-पिण्ड निकल आता है। यह स्तन निरर्थक है, इसमें दूध नहीं होता। इसीसे नीतिशास्त्रकारोंने एक उपमा देकर निर्गुण पुरुषकी इस तरह निन्दा की है—

"धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥"

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इस चतुर्वर्गमें जिसके एक भी नहीं, उस व्यक्तिका जन्म बकरीके गलेवाले स्तनकी तरह निरर्थक है।

बकरीके खुरका अग्रभाग नुकीला और तीखा होता, इसलिये थोड़ीसी सुविधा पानेसे उच्च प्राचीर और दुर्गम पर्वतके ऊपर यह चढ़ सकती है। दैवात् कभी उच्च स्थानसे पैर फिसल पड़नेपर यह भूमिकी ओर मस्तक झुका देती है, इसीसे समस्त भार शृङ्गके ऊपर पड़ता और भूमिपर गिरनेसे इसके शरीरमें अधिक आघात नहीं लगता। कोई-कोई इतर जाति, लोगोंके दरवाजे बकरी और बन्दर नचाते घूमा करते हैं। बकरीके खुरका अग्रभाग नुकीला होनेसे यह उनके चारो पैर एक ही जगह जमा एक साधारण छड़ीके ऊपर इसे खड़ा कर सकते हैं। हिमालय प्रदेशके लोग तिब्बत देशके साथ वाणिज्य करते हैं। पथ दुर्गम है। पर्वतके ऊपर सङ्कीर्ण स्थान होकर कभी चढ़ना और कभी उतरना पड़ता है। उस जगह दूसरा कोई पशु यातायात कर नहीं सकता। इसीसे भूटानवासी बकरीकी पीठपर पण्यद्रव्य लादकर अनायास ही उस दुर्गमपथसे गमनागमन करते हैं।

बकरियां प्रायः सकल प्रकार उद्भिद् खाती हैं। इनका अखाद्य कुछ भी देख नहीं पड़ता। कँटीला पेड़ चबाते भी इन्हें कोई कष्ट नहीं। किन्तु नवीन मञ्जरी और नूतन तृणपर ही इनकी कुछ अधिक रुचि होती है। यह प्रायः जल नहीं पीतीं। शरीरमें जल लगनेसे भी इन्हें अतिशय कष्ट मालूम होता है, इसीसे यह वृष्टिके समय घरसे बाहर नहीं निकलतीं। शरीरमें अधिक जलस्पर्श होनेसे कभी-कभी इनके एक प्रकार रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोगसे सर्वाङ्गके लोम झड़ पड़ते हैं। गृहपालित बकरियां कितनी ही निरीह होती, किन्तु बड़े-बड़े मस्त बकरे बहुत उपद्रव करते हैं। स्त्रियों और बालक-बालिकाओंको इनकी ठोकर खा धराशायी होना पड़ता है। हाथमें खाद्य द्रव्य देखते ही यह छीनकर खा जाते हैं। मेंढ़ेके साथ लड़ाई होनेसे बकरा प्रायः जयी होता है। फिर भी, दोषकी बात यही है, कि ठोकर मारते समय मेंढ़ा शिर नीचेको झुका छूटा चला आता, किन्तु बकरा शिर उठा ठोकर मारता है। इसीसे सावधान न हो सकते मेंढ़ेकी ठोकर बकरेकी छाती या इसके पेटमें लगती है। बकरियां खेलते समय परस्पर मार-पीट मचाती हैं। सामनेके दोनो पैर उठा, गर्दन और शिर कुछ वक्र बना वह ऐसा भाव दिखाती हैं, मानो उसी ठोकरमें ब्रह्माण्ड फटकर दो टुकड़े हो जायेगा। किन्तु इनका आडम्बर मात्र सार है, आघात करते समय दोनो केवल शृङ्ग-शृङ्गपर हलकी ठोकर लगाती हैं। इसीसे उद्भट कवियोंने कहा है—

"अजायुद्धे ऋषिश्राद्धे प्रभाते मेघडम्बरे।
दम्पत्योः कलहे चैव बह्वारम्भे लघुक्रिया॥"

बड़े-बड़े बकरों और बकरियोंके सींगमें एक प्रकार कीट उत्पन्न होता है। बकरेके अन्त्र और पित्तकोषमें एक प्रकारकी शिला भी उत्पन्न होती है। यह शिला अत्यन्त विषघ्न है, इसीसे पूर्वकालके लोग इसे औषधार्थ नाना रोगोंमें व्यवहार करते थे। इस देशमें बकरेके चमड़ेसे ढोलक, तबला, बायां प्रभृति वाद्ययन्त्र मढ़े जाते हैं, इसके सिवा इससे कोई दूसरा बड़ा काम नहीं निकलता। इतर लोग जल्द उतारे गये बकरेके चमड़ेको जलाकर खा डालते हैं। साधारण बकरेके बालका चित्रकार कलम बनाते हैं। बकरे उच्चस्थानपर सोना पसन्द करते हैं। इसीसे वह प्राय: भग्न प्राचीरपर सोते हैं। कितने ही लोग इस बातको कुलक्षण समझते हैं। वह कहते हैं, कि बकरा किसीकी लक्ष्मीश्री देख नहीं सकता। इसकी यही प्रार्थना है, कि गृहस्थका घर टूट जाये और यह उसके ऊपर सुखसे सोये।

बकरेकी लेंडी सड़ाकर रखनेसे बाग और शस्य-क्षेत्रके लिये बढ़िया खाद होती है। यह गोबरकी बनिस्बत अनेकांशमें उत्कृष्ट है; किन्तु कृषकोंके मतसे भेंड़की लेंडोमें और भी अधिक तेज रहता है। वैद्य किसी-किसी रोगके मुष्टियोगमें बकरेकी लेंडी देते हैं। फोड़ा शीघ्र न पकनेसे बकरेकी लेंडी गर्म-कर वेदना-स्थलपर प्रलेप देना पड़ता है। पार्श्वशूल-में बकरेकी लेंडी, हींग, अदरक, आतप चावल और असगंधका बकला एकमें पीसकर गर्म करे। थोड़ा उबाल आ जानेसे यह औषध वेदना-स्थलपर लगाते ही पीड़ा घट जाती है। पक्षाघात रोगमें बकरेकी लेंडी पानीमें पकाकर इससे अवशाङ्ग मलनेपर थोड़ा उपकार होता है। कृत्रिम स्वर्ण प्रस्तुत करनेके लिये घोड़े और बकरेकी विष्ठासे पारा मारना पड़ता है। स्वर्ण देखो। धोबी या रजक बकरे और भेड़की लेंडीसे कपड़े धोते हैं। इससे कितना ही मैल छूट जाता है। एकांतरा या ऐकाहिक ज्वर आनेसे अज्ञ लोग शनिवार किंवा मङ्गलवारको शेष-रात्रिमें बकरेकी रस्सी चुरा तिराहेमें इसपर मूत्रत्याग करते हैं। किसीके मतसे, बकरेका खूंटा उखाड़ इसके गर्तमें मूत्रत्याग करनेसे भौतिक ज्वरका उप-शम हो जाता है।

यौवनकाल उपस्थित होनेपर बकरेके शरीरसे बड़े ज़ोरमें बदबू निकलने लगती है। कितनों हीका अनुमान है, कि बकरेका कोष ही इस बदबूका प्रधान स्थान है। वैद्योंके मतसे इस तरहके बदबूदार बकरेका सदा पास रखना कासरोगको शान्त करता है। खस्सी या बकरीके शरीरमें यह बदबू नहीं होती। अन्यान्य सकल प्राणियोंके मध्यमें बकरा ही अधिक नपुंसक होता है। इसका प्रधान कारण अयोग्य मिलन है। जहां यह दोष नहीं, वहां अधिक नपुंसक बकरे नहीं उत्पन्न होते। नपुंसक बकरेका मांस औषधमें काम आता है। हंसकी तरह बकरा भी सहजमें ही अज्ञान किया जाता है। पीठके बल लिटाकर हंसकी आंखके पास एक लकड़ी घुमानेसे सांस एकबारगी ही रुक जाती और वह मुग्ध हो जाता है, फिर उठकर नहीं भागता। एक करवट लिटा और आंखें बन्द कर देनेपर फिर बकरेसे भी उठा नहीं जाता।

पूर्वकालसे भारतवर्षमें सभी लोग विशेष आदर-पूर्वक अजमांसको भोजन करते आये हैं। पुरोहित-को अजपक्वौदन देनेसे यजमान स्वर्गलाभ करते हैं। आजकल जैसे गृहमें बन्धु-बान्धव आनेसे हम तरह तरहकी तरकारी मंगाते और पूरी-कचौड़ी बनवाते हैं, वैसे ही पूर्वकालके ऋषि-तपस्वी और ब्राह्मण किसीके घर पहुंचनेपर गृहस्थ तत्क्षणात् एक बकरा काट उन अभ्यागत व्यक्तियोंको भोजन कराते थे। उत्तर-चरितके चतुर्थाङ्कमें लिखा है—

"समांसं मधुपर्क इत्याम्नायं बहुमन्यमाना: श्रोत्रियायाभ्यागताय वत्सतरीं महोक्षं वा महाजं वा निर्वपन्ति गृहमेधिन इति हि धर्मसूत्रकारा: समामनन्ति।"

यह वेदविधि सम्मत है, कि स्नातकोंकी अभ्यर्थना-के लिये समांस मधुपर्क देना कर्तव्य है। गृहस्थ व्यक्ति बकरेको मारकर अभ्यागत ब्राह्मणोंको भोजन करायें। धर्मशास्त्रकार इस विधिका आदर करते हैं। मधुपर्क शब्दमें इसका विशेष विवरण देखो।

प्रायः हम अजमांस इन कई प्रकारोंसे रन्धन कर खाते हैं—१ साधारण शोरबा, २ कलिया, ३ कोरमा, ४ पोलाव, ५ कबाब, ६ भुना हुआ, ७ बड़ा या पेठा। बच्चे बकरेका मांस खानेमें सबसे अच्छा बताया गया है।

आजकल बकरा, मेंढा और भैंसा, यही तीन जन्तु देवताके निकट बलि दिये जाते हैं। दूसरे जन्तु अधिक बलि नहीं चढ़ाए जाते। फिर कभी किसी-किसी स्थानमें मुर्गी, कबूतर और शूकरको भी बलि दी जाती है। किन्तु बकरेकी बलि ही अधिक प्रचलित है। जिस बकरेके सींग निकल आए हों, जिसके शरीरमें कहीं चत न हो और पहले जिसे शृगालादि किसी पशुने काटा भी न हो, वही बकरा बलिके योग्य होता है। भविष्यपुराणमें लिखा है—

"अजानां महिषाणाञ्च मेषाणाञ्च तथाविधात्।
प्रीणयेत् विधिवद्दुर्गां मांसशोणिततर्पणैः॥
दुर्गाया दर्शनं पुण्यं दर्शनादभिवन्दनं।
वन्दनात् स्पर्शनं श्रेष्ठं स्पर्शनादभिपूजनं॥
पूजनात् स्नपनं श्रेष्ठं स्नपनात्तर्पणं स्मृतम्।
तर्पणान्मांसदानन्तु महिषाजनिपातनं॥"

बकरे, मेंढे और भैंसेके शोणितमांससे दुर्गाको विधिपूर्वक तुष्ट करे। दुर्गाके दर्शन करनेसे ही पुण्य होता है। किन्तु दर्शनकी अपेक्षा वन्दनादि द्वारा और भी अधिक पुण्य होता है। फिर, वन्दनादि-की अपेक्षा दुर्गाको स्पर्श करनेसे फल अधिक है। स्पर्शको देखते पूजामें अधिक पुण्य है। फिर पूजा-की अपेक्षा देवीको स्नान करानेसे और भी फल-लाभ होता है। स्नान करानेकी अपेक्षा तर्पण अधिक श्रेष्ठ है। फिर जिस पूजामें मांसदानके लिये भैंसे और बकरेकी बलि दी जाती है, उसका फल सबसे अधिक है।

किन्तु देवीको रुचि बकरेके मांसपर ही अधिक रहती है—

"अजस्य दशवर्षाणि रुधिरेण सुतर्पिता।"

बकरेके रक्तसे तर्पण करनेपर वह देवी दश-वत्सर प्रीत रहती है। इसी संस्कारके वशसे पुण्यलाभकी आशामें अनेक हिन्दू ताली बजाते और नाचते-नाचते जीवहिंसा करते हैं, जिसमें उन्हें कुछ भी मनःकष्ट नहीं होता। बकरा मारते समय यदि दो हाथ चलाने पड़ें या कटा हुआ मुण्ड दैवात् बोल उठे, तो समूहमें विपद् पड़नेकी सम्भावना हो जाती है।

दो हाथोंमें बकरा कटनेसे, 'उलटा हुआ' कहाता है। बकास यही विश्वास है, कि दो हाथोंमें बकरा कटनेसे पूजा अङ्गहीन हो जाती और इसलिये देवता बलिको ग्रहण नहीं करता। बकरेके उलटा होनेसे गृहस्थके घरमें कोई विघ्न पड़ता है, ईसलिये उस उलटे बकरेके मांससे होम करना होता है। होम करनेसे सकल दोषकी शान्ति हो जाती है। बलि देखो।

अज जाति साधारणतः नौ प्रकारकी होती है। जैसे—१ जङ्गली, २ सामान्य गृहपालित, ३ माल-टेकी, ४ सोरियाकी, ५ अङ्गोराकी, ६ काश्मीरी, ७ न्यूबियाकी, ८ नेपाली, और ९ गिनिदेशवाली।

वन्य बकरा—मध्य-एशियाके हिमालय और ककेसस् पर्वत प्रदेशमें वास करता है। इस जातीय बकरेको

गर्दन छोटी, सींग बड़े और पीठ टेढ़ी होती है। सर्वाङ्ग धूसरवर्ण लोमसे आवृत, समस्त पीठकी रीढ़पर एक काली रेखा, पूंछ छोटी और पेट दाढ़ी भूरी होती है।

सामान्य गृहपालित बकरा—हमारे देशमें दो प्रकारका देख पड़ता है। प्रथम,—नाना वर्णका खर्वाकार बकरा। द्वितीय,—राम बकरा। वङ्गदेशादिका खर्वाकार बकरा प्रायः काले, सादे और मटमैले रङ्गका होता है। प्रधानतः वह काले रङ्गका ही अधिक देखनेमें आता है। इनमें कोई बकरी

छोटो, शरीरपर क्षुद्र-क्षुद्र लोम, अधिक दूध न देनेवाली होती ; किन्तु उसका मांस कोमल और सुस्वादु रहता है। बङ्गालमें रामबकरा अधिक नहीं होता। युक्तप्रदेश, विशेषत: राजपूताने और बुंदेलखण्डकी गड़रिया जाति ही इन्हें अधिक पालती है। रामबकरा दीर्घाकार होता और उसके लम्बे कान गर्दनके पास लटका करते हैं। उनमें अधिकांश
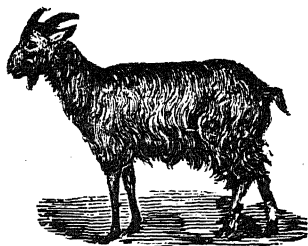
सादे ही होते ; फिर भी, भूरे और काले रङ्गके रामबकरे कहीं-कहीं देख पड़ते हैं। राम बकरियां सामान्य गोकी भांति दूध देती हैं। गड़रिये उसी दुग्धसे घृत प्रस्तुत करते हैं। पश्चिमकी कितनी ही मिठाइयां बकरीके घीसे तय्यार होती हैं। राम बकरेका मांस कठिन होता और खानेमें भी अच्छा नहीं लगता।

मालटावाले बकरेके—लम्बे कान उसको गर्दनके पास लटका करते हैं। इसके लोम श्वेतवर्ण होते और माथेमें सींग नहीं रहते।

सीरियाका बकरा—आजकल पृथिवीके अनेक स्थानोंमें देख पड़ता है। फिर भी, मिश्रदेश, भारत-समुद्रके उपकूल और मादागास्कर द्वीपमें ही वह अधिक मिलता है। उसके लोम और कान बहुत लम्बे होते हैं।

अङ्गोराका बकरा—अनेकोंको विश्वास है, कि अङ्गोरेके और काश्मीरके बकरेमें कोई प्रभेद नहीं। वह दोनो एक जातीय हैं, किन्तु वास्तविक रूपसे ऐसा नहीं है। अङ्गोरेके सींग गर्दनकी ओरको वक्र, मुंह भेड़कासा और शरीरमें बड़े-बड़े लोम होते हैं। ऊपरके लोम पातला, मुलायम और चिकने रहते, जिनसे पशम निकलता है। नीचेके लोम क्षुद्र और बाल जैसे कठिन होते हैं। वसन्त कालके आरम्भमें बकरेके शरीरसे लोम निकाल लेने पड़ते हैं। यथाकालमें उन्हें न निकालनेसे वह आप ही झर जाते हैं। खस्सीके लोम ही सर्वोत्कृष्ट होते, जिनके नीचे बकरीके लोमका नम्बर है। किन्तु पाठेके लोम खस्सीके लोम जैसे अच्छे नहीं होते। एक-एक बकरेके

शरीरमें प्राय: डेढ़ सेरतक पशम निकलता है। अङ्गोरासे प्रति वर्ष २५००० मन पशम आता, जिसका मूल्य न्यूनाधिक बीस लाख रुपये होता है। रूम-राजधानी कुस्तुनतुनियासे भी विस्तर बकरे प्रतिवत्सर केप्-कलोनीको प्रेरित किये जाते हैं। एक-एक अच्छे बकरेका मूल्य प्राय: ढाई हजार रुपयेतक लगता है। फिर भी, सामान्य भांतिका बकरा पांच-छ: सौ रुपयोंमें बिकता है।

काश्मीरके बकरोंमें—अधिकांश ही हिमालयके उत्तर दिक्वाले तिव्वत प्रभृति स्थानोंसे लाये गये हैं। काश्मीरी बकरेका मुंह छोटा और ढालू, कान बड़े और कम लटकनेवाले ; सींग लम्बे और सीधे होते—जो कुछ वक्र हो एक दूसरेपर जाकर गिरते हैं। सर्वाङ्ग बड़े-बड़े लोमसे आवृत रहता है। ऊपरका लोम वाल जैसा कठिन और निम्नका लोम कोमल और पशम जैसा चिकना रहता है। शरत्कालसे पशम जमने लगता ; वसन्तकालके आदितक भी अल्प-अल्प बढ़ा करता है। किन्तु इस समय पशम काट लेना आवश्यक है। उसे काट न लेनेसे वह आप ही झरा जाता है। काश्मीरवाले एक-एक बकरेके शरीरमें प्राय: आधसेर उत्कृष्ट पशम उत्पन्न

होता है। तिव्वत देशके बकरेका लोम सर्वोत्कृष्ट है। इसीसे काश्मीरके अच्छे-अच्छे दुशाले प्रस्तुत होते हैं। काश्मीरके महाराजने तिव्वतवाले बकरोंके पशमका ठेका ले लिया है, दूसरा कोई उसे खरीद नहीं सकता। तिव्वतके समस्त पार्वतीय अञ्चलवाले लोग बकरे पालते हैं। लाधक, पोधक, गरो प्रभृति स्थानोंमें विस्तर बकरे विद्यमान हैं। शाल और पशम देखो।

न्यविद्याका बकरा अफ्रीकाके न्यूविया, उत्तरमिस्र और अवसीनिया प्रदेशमें विस्तर रूपसे देख पड़ता है। इसके पैर लम्बे और शरीरके लोम क्षुद्र होते हैं।

नेपाली और गिनि देशका बकरा—अधिक प्रसिद्ध नहीं है।

अज (सं॰ पु॰) बुद्धिविशिष्ट शरीरस्थ जीव (जीवात्मा), जिस्ममें रहनेवाली अक्ल.मन्द रूह।

वेदान्तके मतसे बुद्धिविशिष्ट पुरुष ही जीव और स्त्री ही प्रकृति है। वेदान्तवादी कहते हैं, कि परब्रह्मसे जीव पृथक् नहीं है। जगत्में जीव एक; उसके बुद्धिरूप नाम भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु नामभेद रहते भी, वह पृथक् नहीं। जैसे आकाश एक है, फिर वही आकाश घट और पट दोनो स्थानोंमें रहनेके कारण अनेक नहीं कहा जाता। इस प्रकारका उपाधिभेद रहते भी समस्त जीव एक ब्रह्मके सिवा और कुछ भी नहीं हैं। वेदान्तिकोंका सिद्धान्त है—

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म।"

यह समस्त जगत् केवल ब्रह्ममय है। जगत्के समस्त प्राणी ब्रह्म हैं, जगत्में सिवा ब्रह्मके और कुछ भी नहीं है। इसीसे वेदान्तवादी मनुष्यको भी कहते हैं—

"तत्त्वमसि"

तुम्हीं वह ब्रह्म हो।

"निरीश्वराः सांख्याः।"

सांख्यवादी ईश्वर नहीं मानते, इसीसे उनकी आँखोंमें वेदान्तके मत भ्रान्त जंचते है। सांख्यमतावलम्बी कहते हैं—'जगत्में अनेक जीव विद्यमान हैं। किन्तु यदि यह स्वीकार किया जाये, कि जगत्में एक ही जीव है, तो एकके जन्म और मरण और सुख-दुःखसे दूसरेको जन्म-मरण और सुख-दुःख क्यों प्राप्त नहीं होता? इसलिये जीवका बहुत्व स्वीकार करना असङ्गत नहीं होता।'

नैयायिक कहते हैं, कि ज्ञानादि वृत्तियां जीवके धर्म हैं। जीव अनेक हैं, वे नित्य और व्यापक रहते हैं। कर्तृत्व और भोक्तृत्व जीवोंका ही धर्म है। जीव व्यापक होते भी (उनके अदृष्टलब्ध शरीरमें ?) संयोगविशेषको जन्म और वियोगविशेषको हम मृत्यु कहते हैं। नतुवा जीवका प्रकृत जन्म या उसकी प्रकृत मृत्यु नहीं है। ऐसी ही युक्ति द्वारा नैयायिक जीवात्माका अजत्व प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा करते हैं।

अजक (सं॰ पु॰) अज-के-क। पुरूरवा-वंशके सप्तम नृपति। विश्वामित्रने इसी वंशमें जन्मग्रहण किया था।

अजकर्ण, अजकर्णक (सं॰ पु॰) अजस्य कर्ण इव पर्णं यस्य। जिस वृक्षमें बकरेके कान जैसे पत्ते हों। १ सालवृक्ष। अजस्य कर्णः। ६-तत्। २ बकरेके कान। स्वार्थे कन्, अजकर्णक।

अजकव, अजकाव (सं॰ पु॰-क्ली॰) अजो विष्णुः को ब्रह्मा तौ वाति त्रिपुरासुरवधद्वारानेन वा-क करणे ६-तत् (वाचं)। १ शिवधनुः। त्रिपुरासुरको वधकर महादेवने इस धनुद्वारा ब्रह्मा और विष्णुको तुष्ट किया था, इसीसे इसका नाम अजकव रखा गया। अजकं वाति। २ बर्वरी वृक्ष। ३ जहरीला विच्छू। बबरी देखो।

अजका (सं॰ स्त्री॰) अजस्य विकारः अवयवः गलेस्तनः विकारार्थे कन्। १ छागगलस्थित स्तनाकार मांसपिण्ड, बकरेके गलेमें स्तन जैसा मांसका लोथड़। २ बकरेकी विष्ठा या उसकी लेंडी।

अजकाजात (सं॰ पु॰) अजकेव जातः, ५-तत्। रोगविशेष। रक्तवर्ण व्रण। आंखकी लाल फूली, नाखूना।

अजकाव (सं॰ पु॰-क्ली॰) १ यज्ञीय पात्र, यज्ञका बर्तन। २ रोगविशेष, एक किस्मकी बीमारी। अजकौ विष्णुब्रह्माणौ अवति अच्। ३ शिवधनुः, महादेवका धनुष।

अजकेशी (सं॰ स्त्री॰) नीलीवृक्ष।

अजक्षीर (सं० क्ली०) अजाया: क्षीरं, ६-तत्; पुंवद्-भाव:। ङ्यापो: संज्ञाछन्दसोर्बहुलम्। पा० ६।३।६३। बकरीका दूध।

अजग (सं० क्ली०) अजं विष्णुं गच्छति शरत्वेन (वाच०), अज-गम-ड। शिवधनु:, महादेवका धनुष। (पु०) अजेन ब्रह्मणा गीयते गम्यते वा कर्म्मणि गै-क, गम-ड वा। १ अग्नि। २ विष्णु।

अजगन्धा (सं० स्त्री०) अजस्य गन्ध इव गन्धोऽस्या:। जङ्गली अजवायन, अजमोदा।

अजगन्धिका (सं० स्त्री०) अजस्य गन्ध इव गन्धोऽस्या:। बकरे जैसी जिसकी बदबू हो, बर्बरी शाक, बबइ-तुलसी।

अजगन्धिनी (सं० स्त्री०) अज-गन्ध-इन् ङीप्। अजस्य मेषस्य गन्ध: सम्बद्ध: एकदेश:, अर्थात् शृङ्ग:, स फल-रूपेण अस्या अस्ति। अजशृङ्गी, जिङ्गन।

अजगर (सं० पु०) अज-गॄ-अच्, अजं छागं गिरति गिलति। जो बकरेको निगले। वृहत् सर्प, बड़ा सांप।

अजगर शब्दसे प्राय: हम वृहदाकार सर्पको समझते हैं। किन्तु वास्तविक ऐसा नहीं है। अजगर वृहदाकार पहाड़ी सांप (Python and Boa Constrictor) होता है। एशिया और अफ्रीकामें यह अजगर मिलता है, प्राणितत्त्ववित् पण्डित इसे पाइथन कहते हैं। भारतवर्षमें पाइथन रेटिक्यूलेटस् (Python reticulatus) जातीय अजगर ही सर्वापेक्षा वृहत् होते हैं। अमेरिकाके अजगरका नाम बोआ कन्सट्रिकर (Boa constrictor) है। यह बकरे, मेंढ़े, हरिण, महिष, चीते और हाथी तकको पकड़ खा डालता है। अज प्रभृति बड़े-बड़े जन्तु निगल जानेके कारण इस पहाड़ी जातिके बड़े सांपका नाम अजगर पड़ा है। गोखुरे कूटीये प्रभृति सांपों-को हम अजगर कह नहीं सकते। प्राय: पहाड़ी बड़ा सांप १०।१५ हाथ दीर्घ होता है; कितने ही लोगोंने अस्सी हाथ लम्बा अजगर भी देखा है। एकबार एक अजगर अफ्रीकामें कितने ही सिपाहियोंको निगल गया था। रोमकोंने उसी सांपको मार उसका चर्म रोमराज्यमें लाकर रखा। अबुल बैहकीने अपनी तारीखे-नसरी पुस्तकमें लिखा है, कि ग़ज़नीके सुलतान माह्मूदने सोमनाथको जय कर स्वदेश वापस जाते समय पथमें एक वृहदाकार

अजगरको वध किया था। उसी सांपका चमड़ा ग़ज़नी नगरमें सिंहद्वारपर लटका कर रक्खा गया था। चमड़ा ६० हाथ लम्बा और ४ हाथ चौड़ा था। बैहकीने लिखा है,—'इस बड़े सांपकी बातपर यदि किसीको विश्वास न हो, तो वह ग़ज़नी जाकर अपनी आँखों देख आये।' बैहकी माह्मूदके समकालिक मनुष्य थे।

पहाड़ी अजगर क्षुधार्त होनेसे ह्रद, नद और निर्झरके पास वृक्षमें अपनी पूंछ लपेट झूला करता है। इसके मलद्वारके समीप कंटिया जैसी एक हड्डी होती है, इसीसे वृक्षमें वह हड्डी लगा यह अनायाससे लटक सकता है। किसी जन्तुके जल पीनेको जानेसे उसी समय यह कूदकर उसपर जा गिरता है। एकबार पकड़ा जानेपर दुर्जय वनका हाथी भी पहाड़ी अजगरके मुंहसे छुटकर नहीं भाग सकता। भाग न सकनेका कारण यह है, कि इसके नीचे और ऊपरवाले दोनो दांत मुंहके भीतरकी ओरको घुमे हुए रहते हैं। इसीसे, निगलनेके समय पश्वादिका शरीर सहजमें उदरस्थ हो सकता है; किन्तु उसे बाहरकी ओर खींचनेपर दांत उसमें फंस जाते हैं। अनेकोंने देखा है, कि जन्तुको एकबार दबोचकर पकड़नेपर सांप अपनी इच्छासे भी उसे छोड़ नहीं सकता।

इसके मसकुरकी बनावट बहुत ही अनोखी है। अन्यान्य जन्तुका मसकुर जुड़ा हुआ रहता, इच्छा

करनेसे वह केवल दो गलफर चला अपना मुख विस्तीर्ण कर सकता है। पहाड़ी अजगरके मसकुरकी हड्डी जुड़ी हुई नहीं होती; एक-एक हड्डी पृथक्-पृथक् लगी रहती है। इसीसे यह अनायासमें सकल ओर खेलते फिरता है। यह इच्छा करनेसे समीपकी ओर भी अपना मुंह फैला सकता है और ऊपरकी ओर भी। फिर, इच्छा करनेसे एक ओरकी दाढ़ न चला अनायासमें दूसरी ओरकी दाढ़ खोल शिकारको निगल सकता है। इसके ऊपरवाले मसकुरमें दो श्रेणी और नीचेवालेमें केवल एक श्रेणी दांत होते हैं। यह शिकारके ऊपर झपट पलभरमें उसे पूंछसे जकड़ लेता और पीछे मुंहकी लारसे उसका सर्वाङ्ग भिगो देता है। इससे जन्तुका शरीर चिकना हो जाता है। सुतरां निगलनेमें बड़ी सुविधा होती है। कोई-कोई कहते हैं, कि शिकार उदरस्थ होनेपर यह अपने शरीरको उलट-सुलट ऐसा घुमाता है, कि बड़े-बड़े पशुओंकी हड्डियां भी चरमराकर टूट जाती हैं। कभी-कभी शिकार पकड़ते ही यह निमिषमध्यमें उसका सर्वाङ्ग जकड़ कर बांध लेता है। उसी समय सब हड्डियां चूर-चूर हो जाती हैं। इस कारणसे भी गो, महिषादि बड़े-बड़े पशु मुंहसे छूटकर भाग नहीं सकते। आहार कर चुकनेपर यह अनेक दिन पर्यन्त हिल-डुल नहीं सकता, निर्जीव जड़ पदार्थकी तरह एक जगह पड़े सोया करता है। ऐसी अवस्थापर इसे सहजमें ही मार सकते हैं।

बड़े-बड़े जन्तु निगलते समय छातीमें आहार अटक जानेसे पीछे श्वासरोध हो सकता, तज्जन्य विधाताने इसका श्वासयन्त्र आश्चर्यकौशलसे निर्माण किया है। इसके फेफड़ेमें दो कोष होते हैं—एक छोटा और एक बड़ा। बड़े कोषके प्रान्तभागमें वायु रहनेका एक स्थान बना है। बड़े-बड़े पश्वादि निगलते समय उसी आधारस्थित वायुसे रक्त परिष्कृत होता है। इसके चक्षु क्षुद्र होते हैं और सर्वाङ्ग कृष्ण और हरिद्रावर्णसे चित्रित रहता है। पहाड़ी अजगर और अन्यान्य सकल उरगोंका मलमूत्र एक ही पथसे निर्गत होता है। इसका विष्ठा ठीक चूने जैसा रहता है। पहाड़ी अजगरोंके पेटमें अत्यन्त क्रमि उत्पन्न होते, जिससे कितने ही सांप मर जाते हैं। हमारे देशके हिमालय पर्वत और दक्षिण-प्रान्तमें इस जातिके विस्तर अजगर विद्यमान हैं। कई वर्ष हुए, वीरभूम ज़िलेके अन्तर्गत गणुटीयाकी रेशमवाली कुटीके सम्मुख एक वृहदाकार पहाड़ी अजगर नदीके जलमें बह आया। चरवाहे उसी जगह गो-बकरे और भेड़-बकरे चराते थे। अजगरने झाड़ीसे बाहर निकल एक भेड़को निगल डाला। कुटीके अध्यक्ष राइट साहबने यह संवाद पाकर उसे गोलीसे जा वध किया। हिमालय पर्वतमें मयाल नामक एक प्रकारका अजगर होता है। यह सचराचर १०।१२ हाथ दीर्घ, किन्तु तालवृक्षकी अपेक्षा भी अधिक मोटा रहता है। पहाड़ी लोग इस सांपको पकड़ गृहस्थोंके घर-घर नचाते समय इसके मुखसे लाङ्गूल पर्यन्त एक-एक कर बेंतके मुंदरे डाल देते और मोटी छड़ीसे आघात करते जाते हैं। उस समय सर्प क्रोधसे फूल उठता है। चारो ओर चार संपेरे खड़े रहते हैं। उनके शिरपर काठकी टोपी और टोपीमें बड़े-बड़े लोहेके कांटे चुभे होते हैं। सांप क्रोधमें मनुष्यकी अपेक्षा भी अधिक उच्च हो और चारो ओर घूमफिरकर संपेरोंके शिरको दंशन करने दौड़ता है। इसीको मयाल सांपका नाच कहते हैं।

अजगरी (हिं० वि०) अजगरका, अजगरवाला, अजगर-सम्बन्धीय।

अजगल्लिका, अजगल्ली (सं० स्त्री०) १ बर्बरीवृक्ष, बबइतुलसी। २ क्षुद्ररोगान्तर्गत बाल्यरोग विशेष, एक प्रकारकी कफवातसे उत्पन्न होनेवाली फुन्सी। इस रोगका लक्षण यह है—

"स्निग्धाः सवर्णाः ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभाः।
पिटिकाः कफवाताभ्यां बालानामजगल्लिका॥" (वाभट उ० ३१अ०)

अजगव (सं० क्ली०-पु०) अजगं विष्णुं वाति, अजगवा-क। पिनाक, शिवधनुः, महादेवका धनुष।

अजमायु (सं० पु०) बकरेकीसी भिंभिंहाहट, बकरेका सा शब्द।

अजमार, अजमारक (सं० पु०) अज-मृ-णिच्-अण्, अजान् मारयति; उप-तत्। कुर्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१। कसाई, जो बकरेको मार उसका मांस बेचे; मांस-विक्रयी, गोश्त बेचनेवाला।

अजमीढ़ (सं० पु०) अजमीढ़ो यज्ञे सिक्तो यत्र। १ देशविशेष, अजमेर। २ राजा युधिष्ठिर। ३ सुहोत्र-के एक पुत्र। अजमेर देखो।

अजमुख (सं० पु०) अजस्य छागलस्य मुखमिव मुखं यस्य। दक्ष प्रजापति, सतीके पिता, शिवके श्वशुर।

दक्षने नारदकी बातमें पड़कर शिवको कन्यादान दिया था, किन्तु कुटुम्बिता भली भांति बराबरमें न हुई। दक्ष महाराज चक्रवर्ती थे; इनका कितना विभव और कितना सुखैश्वर्य रहा। किन्तु इनके दामाद श्मशान-वासी भक्कड़ भोलानाथ थे, जो शिरमें भस्म लगाते और भाँग खाते रहे। देवताओंकी सभा लगनेपर दामादकी ज्वालासे दक्षराजको अपने शिरपर हाथ रखकर बैठना पड़ता था। अन्तमें इन्होंने चिन्ताकर शिवका अपमान करनेके लिये एक यज्ञको आरम्भ किया। त्रिभुवनको निमन्त्रणका पत्र भेजा गया। केवल प्राणकी नन्दिनी सती बाकी रह गईं; फिर सतीके सम्पर्कसे जिनके साथमें सम्पर्क था, वह शिव भी निमन्त्रणका पत्र पानेसे छूट गये। किन्तु जब बापके घरमें धूमधाम होती, तब स्त्रीका मन निमन्त्रण न पानेपर भी चुलबुलाया करता है। सती विना आह्वान ही पित्रालयमें यज्ञ देखनेको जा पहुंचीं। दक्षने सतीको देख जो मनमें आया, वही कहकर सभाके मध्य शिवकी निन्दा की। शिव-प्रेमभिखारिणी सतीके हृदयमें वह कटुवाक्य वाण जैसे चुभ गये। उन्होंने यह कहकर प्राणत्याग किया,—"आप पिता हैं, मैं कन्या होकर अधिक क्या कहूंगी। किन्तु जिस मुखसे आपने शिवकी निन्दा की है, वह मुख आप देखेंगे, कि बकरेकासा हो जायेगा।" बोलते-बोलते सतीमें फिर सती न रहीं, उन्होंने सबके सम्मुख यज्ञस्थलमें प्राण छोड़ दिया।

यह संवाद कैलासमें पहुंचा। फिर क्या था, त्रिशूलीके कोपसे त्रैलोक्य कम्पित होने लगा। पातालमें नाग भयभीत हुए, शून्यमें यक्षरक्ष घबराये और सारा जगत् उथल-पथल हो गया। शिव विरूपाक्ष प्रभृति महावीरोंको लेकर दक्षालय गये; पागलने जिस पापमुखसे उनकी निन्दा की थी, उसको उन्होंने काटकर दूर फेंक दिया। अवशेषमें दक्षकी पत्नीने आकर दामादसे अनेक स्तवस्तुति की। इसीसे दक्षको पुनर्वार प्राण वापस मिला, किन्तु जन्मको तरह इन्हें छागलका मुण्ड पहनकर रहना पड़ा।

कितने ही लोग अनुमान करते हैं, कि हरि-द्वारके निकटमें कनखल और हरिकी-पैढ़ी इन्हीं सब स्थानोंको लेकर दक्षराजकी राजधानी सुशोभित थी।

अज़मूदा, आज़मूदा (फा० वि०) परीक्षित, जांचा हुआ।

अजमेर, अजमेरु—राजपूतानेके अन्तर्गत अजमेर-मेरवाड़का एक प्रधान नगर। कोई कोई कहते हैं, कि सूर्यवंशीय अजमीढ़ राजाने पहले इस नगरको निर्माण कराया था। किसीके मतसे महाभारतके वनपर्वमें उक्त विदुर राजाका यह राज्य है, कालक्रम-से ध्वंस हो गया है। पीछे चौहान राजाने इसे पुनर्वार निर्माण कराया।

अजमेर पहले चौहानवंशीय राजपूतोंके अधीन रहा। इस वंशके अजय राजाने पहले नाग-पर्वतमें एक दुर्गको निर्माण करानेके लिये चेष्टा की थी, किन्तु उनका यत्न निष्फल हो गया। इसके बाद उन्होंने तारागढ़ पहाड़में गढ़-बितली नामके एक दुर्गको निर्माण कराया। सन् ११०० ई०में इन्द्रकोट नामक उपत्यकापर अजमेर नगर स्थापित किया गया। गुजरातके सोमनाथवाले मन्दिरको लूटने जाते समय महमूद अजमेरके भीतरसे निकल गये थे। राहमें यहांके अनेक देवालय और देवमूर्तियां उन्होंने विनष्ट कर डालीं। अजयके पुत्रका नाम अना या अर्णोराज था, जिन्होंने अनासागर निर्माण कराया।

दान करनेसे उनमें फिर विच्छेद नहीं होता। (अथर्व ८।५।२७)।

अजपति (सं० पु०) अज-पा-डति, ६-तत्। १ छाग-श्रेष्ठ, बड़ा बकरा। २ मेषराशिका अधिपति, मङ्गलग्रह।

अजपथ (सं० पु०) अजस्य पन्थाः, ६-तत्; अजेन ब्रह्मणा निर्मितं पन्थाः, ३-तत्। १ छागके पद द्वारा जो पथ हो, जो राह बकरेके चलनेसे बन जाये। २ प्रजापतिने जो पथ सृष्ट किया हो, ईश्वरकी बनाई राह; छायापथ।

अजपथ्य (सं० त्रि०) अज-पथ, इवार्थे यत्; अजपथ इव। १ देवपथ जैसा। २ सङ्कोर्ण (पथ)। ३ गगन सेतुतुल्य, आकाशके मार्ग समान।

अजपद—अजपाद देखो।

अजपा (सं० स्त्री०) यत्नेन विना जप्या, न-जप-कर्मणि अच्। १ हंसमन्त्र। २ स्वाभाविक श्वास प्रश्वास। हम प्रत्यह जिस निश्वासको ग्रहण और जिस प्रश्वासको त्याग करते, उसका कियदंश देवता भोगते हैं। विश्वादर्शमें लिखा है—

"अयुते द्वे सहस्रेकं षट्शतानि दिवानिशोः।
भवन्ति हंसजप्यानि निश्वासोच्छ्वासनामतः॥
षट्शतानि गणेशस्य षट्सहस्रं प्रजापतेः।
गदापाणेः षट्सहस्रं षट्सहस्रं त्रिलोचने॥
सहस्रं स्यादात्मनस्तु सहस्रन्तु गुरुद्वये।
परमात्मनि सहस्रं स्यादिति संख्या निवेदयेत्॥"

रात्रि-दिनके मध्यमें मनुष्यके निश्वास-प्रश्वासकी संख्या २१६०० बार होती है। इसका नाम हंसमन्त्र है। इस जपके मध्यमें ६०० गणेश, ६००० प्रजापति, ६००० विष्णु, ६००० शिव, १००० गुरुद्वय और १००० परमात्माके कहे गये हैं।

हम नहीं समझ सकते, कि निश्वास-प्रश्वासमें एक-एक देवताके अधिकार होनेका क्या तात्पर्य है। ऊपर श्वास-प्रश्वासकी जो संख्या लिखी गई है, आधुनिक मतके साथ उसका विशेष अनैक्य नहीं। कोएटेनेटके मतसे शिशु भूमिष्ट होनेपर प्रति मिनटमें उसके श्वास-प्रश्वासकी संख्या ४४ और पांच वत्सर वयःक्रम-पर २६ होती है। इसीतरह वयःक्रम, शीतग्रीष्म और खाद्य सामग्रीके प्रभावसे श्वास-प्रश्वासकी संख्या घटते-बढ़ते रहती है। सुस्थ युवा व्यक्तिके श्वास-प्रश्वासकी संख्या औसतसे प्रति मिनटमें २० बार माननेपर समस्त दिवा-रात्रिमें २८८०० बार हो जाती है। हमारे शास्त्रकारोंने २१६०० बार संख्यागणना की है, अतएव इन उभयके मध्यमें अधिक प्रभेद नहीं।

हं अर्थात् निश्वास खींचनेमें अधिक समय नहीं लगता। स अर्थात् निश्वास छोड़नेमें अपेक्षाकृत अधिक समय बीत जाता है। पुरुषके पक्षमें इन दोनो क्रियाओंका अनुपात १०:१२ और शिशु एवं स्त्रीके पक्षमें १०:१४ है। प्राणायाम और निश्वास देखो।

अजपाद (सं० पु०) अजस्य पाद इव पादो यस्य, बहुव्री०। १ रुद्रविशेष, रुद्रदेवता। २ पूर्वभाद्र-पद नक्षत्र।

अजपार्श्व—श्वेतकर्णके पुत्र। (हरिवंश)

अजपाल (सं० त्रि०) अजान् छागान् पालयतीति, अज-पा-णिच्-अण्। जो बकरा-बकरी पाले, गड़रिया।

अजब (अ० वि०) अनोखा, अभूतपूर्व। कौतू-हलाकीर्ण। आश्चर्योत्पादक।

अजबन्धु (सं० पु०) अजः छागलः बुद्धिविषये बन्धुः सहचरः इव यस्य। जिसकी बुद्धि बकरेकी तरह स्थूल हो, मूर्ख; गधा, बेवकूफ।

अजबला (सं० स्त्री०) कालीतुलसी।

अजभक्ष (सं० पु०) अज-भक्ष-घञ् कर्मणि; अजैः भक्ष्यते असौ, ६-तत्। बबूल, बर्बरीवृक्ष। बकरियां बबूलकी पत्तियां बड़े प्रेमसे खाती हैं, इसीसे इसका नाम अजभक्ष पड़ा है।

अज़मत (अ० पु०) १ बड़ाई, शान-शौकत, प्रताप। २ करामात, चमत्कार, सिद्धि।

अजमल (सं० पु०) १ गोधूम, गेहूं। २ लेंडी, मिंगनी।

अज़माइश, आज़माइश (फ़ा० स्त्री०) परीक्षा, जांच।

अज़माना, आज़माना (हिं० क्रि०) परीक्षा लेना, जांचना।

इस शब्दके अजकव, अजकाव, अजीकव और अजगाव रूप भी होते हैं।

अजगाव (सं० पुं०-क्ली०) अजग-अव-अण्, अजगं विष्णुं अवति रक्षति। उपपद-स०। हरधनु, विष्णुकी रक्षा करनेवाला महादेवका धनुष।

अजगुत (हिं० पुं०) अनहोनी, अनोखी बात। आश्चर्यका विषय।

अज़ग़ैब (फ़ा० पु०) ग़ैबसे हुआ काम, अदृष्ट-सम्भूत विषय।

अज़ग़ैबी (हिं० वि०) ग़ैबसे हुआ। अनोखा, आश्चर्यका।

अजघन्य (सं० त्रि०) न जघन्यः, अधमः, नञ्-तत्। जघनमिव जघन्यः, जघन-यत्। अनधम, भला; श्रेष्ठ, बड़ा।

अजघोष (सं० पु०) एक प्रकारका सन्निपात ज्वर, जिसमें रोगीका बोल बन्द हो जाता है।

अजघ्निवस् (सं० त्रि०) न मारनेवाला।

अजजीव, अजजीविक (सं० त्रि०) अजश्छागः क्रय-विक्रयादिना जीविका जीवनोपायो यस्य, बहुव्री०। छाग मेषादिका व्यवसायी, भेड़-बकरीका सौदागर।

अजटा (सं० स्त्री०) नास्ति जटा जटाकारं मूलं यस्याः, बहुव्री०। पनियाला, एक प्रकारका वृक्ष।

अजड़ (सं० त्रि०) जड़ नहीं; चेतन, जानदार। (पुं०) वह वस्तु जो जड़ न हो; सजीव वस्तु, जानदार चीज़।

अजड़ा (सं० स्त्री०) अजड़-णिच्-अच्; अजड़यति स्पर्शमात्रेण अङ्गमर्दनार्थं सञ्चालयति, उपपद-स०। १ पनियाला, एक प्रकारका वृक्ष। (त्रि०) २ जड़भिन्न, चेतन।

अजड़ाफल (सं० क्ली०) पनियालेका फल।

अजण (हिं० पुं०) १ अर्जुन। २ सहस्रार्जुन।

अजण्टा—अजिण्ठा देखो।

अजत्व, अजात्व (सं० क्ली०) बकरा होनेका भाव, बकरापन।

अजथ्या (सं० स्त्री०) अज-थ्यन्। अजाविभ्यां थ्यन्। पा० ५।१।८। यूथि, स्वर्णयूथिका; वसन्ती जूही या चमेली।

अजदण्डी (सं० स्त्री०) अज-दण्ड, गौरादित्वात् ङीष्। अजस्य ब्राह्मणो दण्डोऽस्याः। ब्रह्मदण्डी वृक्ष, वह वृक्ष जिसका ब्राह्मण दण्ड बनाते थे।

अज़दहा (फ़ा० पुं०) अजगर, बड़े-बड़े पशुओंको लील जानेवाला सांप।

अजदेवता (सं० पुं०) मध्यपदलोपि कर्मधा०। अजाधिष्ठाता देवता, अग्नि। वह देवता, जो बकरीका अधिष्ठाता हो।

अजन (सं० त्रि०) १ उत्पत्तिशून्य, जिसका जन्म होता न हो। २ जहां कोई मनुष्य न हो, एकान्त।

अजननि (सं० स्त्री०) न-जन आक्रोशे अनि, नञ्-तत्। जन्माभाव, जन्मका न होना।

अजनबी (फ़ा० वि०) बेजान-पहचानका, विना जाना-बूझा; अपरिचित, नया।

अजनामक (सं० पु०) सोनामाखी धातु।

अजनि (सं० स्त्री०) वाह्लिका स्वर्गपन्था।

अजन्ता—अजिण्ठा देखो।

अजन्तुजग्ध (सं० त्रि०) जिसे कोड़ोंने न खाया हो, समूचा, पूरा।

अजन्म, अजन्मा, अजन्मन् (सं० पुं०) न-जन्-मनिन्। नास्ति जन्म यस्य यत्र वा, बहुव्री०। १ जन्मरहित, जिसका जन्म न हो। २ मोक्ष।

अजन्य (सं० त्रि०) जन्-णिच्-यत्। न जायते, नञ्-तत्। शुभाशुभसूचक भूकम्पादि उत्पात विशेष। अजननीय।

अजप (सं० पु०) न-जप-अच्; अस्पष्टं जपति, निन्दार्थे नञ्। १ कुपाठक, जो भली भांति पाठ कर न सके। अजं पाति; पा-क, ६-तत्। २ जो छागरक्षा करे, छागपालक; बकरी पालने-वाला मनुष्य।

अजपञ्चौदन (सं० पु०-क्लो०) पुरोहितको यजमान कर्तृक छागदान, बकरी-बकरेका दान। अथर्ववेदमें अजदानका इसतरह फल लिखा है—अजदान करनेसे यजमान तृतीय आकाशके तृतीय स्वर्गवाले तृतीय पृष्ठमें स्थान पाता है। (९।५।२३)। एक पतिके रहते स्त्री यदि अन्य पतिको ग्रहण करे, तो अजपञ्चौदन

इस दरगाहको पवित्र समझते हैं। शहाबुद्दीनके अजमेरको आक्रमण करने आनेसे पहले ख़्वाजा मुईनुद्दीन् चिश्ती नामके एक फ़कीर इस जगह आ पहुंचे थे। प्रायः वह ख़्वाजा नामसे प्रसिद्ध हैं। यह दरगाह उन्हींका क़बरस्थान है। प्रति वत्सर इसमें उर्स नामका एक मेला लगता है। वह छः दिन रहता और उसमें कोई २०,००० लोग समवेत होते हैं।

अजमेरमें एक दूसरी भी बड़ी मसजिद है, जो पहले जैनियोंका मन्दिर रही, पीछे मुसलमानोंने उसपर अपना अधिकार किया। अनासागर झदके ऊपर जहांगीरने सफेद पत्थरका महल बनवाया था। आजकल उसमें चीफ कमिश्नर वास करते हैं।

अजमेर-मेरवाड़ा—राजपूतानेका एक अंगरेजी प्रान्त। गवरनर-जनरलके राजपूतानेमें रहनेवाले एजण्ट इस प्रान्तका प्रबन्ध चीफ़ कमिश्नरकी भांति करते हैं। इस प्रान्तमें दो छोटे-छोटे ज़िले हैं—अजमेर और मेरवाड़ा। यहां पर्वत ख़ूब फैले हुए हैं। बहु-मूल्य अभरक और प्रधानतः तांबा और सीसा धातु जगह-जगह मिलती है। प्रधान फल अनार और अमरूद है। चीता और भेड़िया तो कम देख पड़ता; किन्तु बघेरा नागपर्वतसे टेवैरतक भरा है और जङ्गली सूअरोंकी भी देशी राज्योंमें कोई कमी नहीं, जिन्हें राजपूत बड़े शौक़से शिकार करते हैं। जलवायु अत्यन्त स्वास्थ्यकर है। ग्रीष्ममें गर्मी और शीतमें सर्दी रहती है। यहां पानी कम बरसता है। अजमेर शब्दमें इतिहास देखो।

अजमोद, अजमोदा (सं॰ स्त्री॰) अज-मोदि-अण्, अजान् मोदयतीति। अजवायन। इस शब्दके कई एक यह पर्य्याय हैं—खराह्वा, वस्तुमोदा, वर्कटी, मोदा, गन्धदला, हस्तिकारवी, गन्धपत्रिका, मायूरी, शिखिमोदा, मोदाख्या, वह्निदीपिका, ब्रह्मकोशी, विशाली, हयगन्धा, उग्रगन्धिका, मोदिनी, फलमुख्या और विशल्या। वैद्यशास्त्रके मतसे अजमोदा—कटु, उष्ण, रूक्ष और रुचिकर होती है। इससे कफ, वायु, शूल, आध्मान, अरुचि और क्षुधामान्द्य प्रभृति दोष नष्ट हो जाते हैं। युरोपीय चिकित्सकोंने परीक्षा द्वारा देखा है, कि अजमोदा हिक्का, वमन और मूत्राशय प्रभृतिकी वेदनामें विशेष उपकार करती है। वैद्यशास्त्रमें अजमोदा, अजवायन, जङ्गली अजवायन, ईरानी अजवायन और खुरासानी अज-वायनके विषयमें कुछ गड़बड़ जान पड़ती है। अनेक स्थलमें अजमोदाकी जगह अजवायन, जङ्गली अज-वायन प्रभृति सकल प्रकारकी अजवायनें समझी जाती हैं। किन्तु यह बात ठीक नहीं। अजमोदा, अजवायन और जङ्गली अजवायन,—यह तीनो एक ही श्रेणीके उद्भिद् (Umbelliferæ) हैं। इनके मध्यमें फिर अजमोदा और अजवायन एक जातीय (Carum), और जङ्गली अजवायन अन्य जातीय (Seseli) है। युरोपीय उद्भिद्शास्त्रमें अजमोदाका Carum Roxburghianum, Benth; अजवायन-का Carum copticum, Benth; इसी जातिका होनेके कारण जीरेका Carum Carui, Linn और जङ्गली अजवायनका नाम Seseli indicum है। ईरानी अजवायन कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं, ईरान देशसे इसकी आमदनी होनेके कारण ही इसे ईरानी अजवायन कहते हैं। किन्तु खुरासानी अजवायन एकबारगी ही स्वतन्त्र पदार्थ है। यह वार्ताकु, व्याकुड़, कण्टकारीके श्रेणीभुक्त वृक्षका बीज (Solanaceæ) है। उद्भिद्शास्त्रमें इसका नाम Hyoscyamus niger, Linn है। डाक्टरी पुस्तकमें इसके पत्तेको हाइयोसियामस कहते हैं।

अजमोदाख्या (सं॰ स्त्री॰) अजवायन।

अजमोदिका (सं॰ स्त्री॰) अजवायन।

अजमोदाद्यवटक (सं॰ पु॰) आमवातका एक औषध।

अजमांस (सं॰ क्ली॰) छागमांस, बकरेका गोश्त।

अजम्भ (सं॰ पु॰) न सन्ति जम्भा दन्ता अस्य, बहुव्री॰। १ भेक, मेंड़क। २ सूर्य, आफ़ताब। (त्रि॰) ३ दन्तशून्य, जिसके दांत न हों।

अजय (सं॰ पु॰) न जि-अच्, नञ्-तत्। १ जया-भाव, हार। अजेन छागलेन यातीति, या-क। २ अग्नि, आग। ३ छप्पय छन्दका एक भेद।

अजयगढ़—बुंदेलखण्डके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह कालञ्जर पर्वतसे आठ, बांदेसे साढ़े तेईस और प्रयागसे पैंसठ कोस दूर है। अजयगढ़ राज्यका विस्तार ४४७ वर्ग मील है; इसमें ६०८ ग्राम है; सर्वसमेत लोकसंख्या कोई एक लाख होगी। राज्यकी वात्सरिक आय दो लाख तीस हजार रुपया है। नये शहरमें अजयगढ़ राज्यकी राजधानी प्रतिष्ठित है। यहां मलेरिया ज्वरका अतिशय प्रादुर्भाव होता है।

इस गिरिदुर्गकी उपत्यकामें अनेक प्रकारकी प्रस्तर-मूर्तियां चारों ओर बिखरी पड़ी हैं। टूटे मन्दिर, बड़े-बड़े खम्भे और खम्भोंकी चित्रकारी और देवमूर्तियां देखनेसे बोध होता है, कि मानो किसी कालमें इस जगह जैन-देवालय रहा था। उपत्यकाके चढ़ावमें बड़े-बड़े दालान बने और उनमें ५।६ हाथ ऊंचे मोटे-मोटे खम्भे लगे हैं। खम्भोंमें विचित्र बेल-बूटे खोदे हुए हैं। कार्णिसके ऊपर स्त्रियोंकी मूर्तियां हैं, जिनकी बनावट बहुत ही अच्छी देख पड़ती है। अब इन सकल देवालयोंमें मनुष्य नहीं केवल वानर और बृहत्-बृहत् सर्प रहते हैं।

अजयगढ़ देखनेमें कितना ही कालञ्जर जैसा है। पहाड़पर चढ़नेके पथमें पहले सात द्वार थे। रामजे साहब जिस समय देखने गये, उस समय चार द्वार टूटे थे, तीनकी अवस्था कुछ कुछ अच्छी थी। द्वारोंके वाम पार्श्वमें दो कुण्ड हैं, जिनका नाम गङ्गा-यमुना पुकारा जाता है। पहले तीर्थयात्री इन कुण्डोंके जलसे स्नानदान करते थे। कालञ्जर पर्वतमें भी ठीक ऐसे ही कुण्ड विद्यमान हैं। कुण्डोंके ऊपर पहाड़में संस्कृत भाषासे कुछ शिलालेख था। उसका कितना ही अंश मिट गया है, कितना ही नहीं भी मिटा; किन्तु वह स्पष्ट पढ़ा नहीं जा सकता। पर्वतकी चढ़ाईमें कहीं गणेश, कहीं हनूमान् और कहीं नन्दीकी मूर्तियां प्रतिष्ठित हैं। प्रधान द्वारके कुछ भीतर बड़ा तालाब है। तालाब कुछ उपत्यका और कुछ पहाड़ खोदकर बनाया गया है। इस तालाबसे कुछ दूर एक पुरातन अट्टालिकाका भग्नावशेष देख पड़ता है। अट्टालिकाकी टूटी छतके पास पार्श्वनाथकी कई मूर्तियां बनी हैं। कोई मूर्ति बैठी और कोई खड़ी है। अट्टालिकाके भीतर नेमनाथकी तीन बड़ी-बड़ी मूर्तियां हैं। मूर्तियां विवस्त्र हैं, दोनो हाथोंमें पद्म विराज रहा है, छातीपर रत्नजटित आभूषण खचित है, शिरके बाल घूंघरवाले और छोटे-छोटे कड़े हैं। अट्टालिकासे कुछ दूर एक बृहत् पुष्करिणी है। पुष्करिणीके किनारे अनेक लिङ्ग और योनिमूर्ति हैं, जिनमें एक गणेश और एक पञ्चानन लिङ्ग भी देखा जाता है। पुष्करिणीसे दक्षिण पञ्चमूर्ति लिङ्ग है और महादेव, पार्वती और नन्दीकी मूर्तियां विराज रही हैं।

अजयगढ़ पहले अजयनगर नामसे प्रसिद्ध था। अजयनगरवाले राजा छत्रशालके अपने राज्यको विभाग करनेसे अजयगढ़ जगत्राजके अंशमें आया। सन् १८०३ ई० में पेशवाने ब्रटिश गवर्नमेण्टके हाथों बुंदेलखण्डके कियदंशको समर्पण किया। इसलिये कर्नल मेसेन्‌वाक्, ज़मान् खां और अण्डार्सन् अनेक सैन्य ले अजयगढ़को अधिकार करने गये। अंगरेज़ोंकी सैन्य देवग्राम पर्वतके नीचे पहुंचनेसे लक्ष्मणदांव नामक जनैक व्यक्तिने हठात् ससैन्य आकर आक्रमण किया। उन्होंने कितनी ही बन्दूकें छीन ली थीं। इस युद्धमें अंगरेज़ोंको विस्तर सैन्य हत और आहत हुई। महा-महा वीर भी शत्रुके सामने स्थिर न रह सकनेसे चारो ओर भाग खड़े हुए। शेषमें मेसेन्‌वाक्‌ने जाकर शत्रुओंसे पुनर्वार बन्दूकें छीन लीं एवं लक्ष्मणदांवने भी १८,००० रुपया देकर निष्कृति पाई। अब अजयगढ़के राजा अंगरेज़ोंको कर देते हैं।

अजयनद—वीरभूम ज़िलेमें अजय नामका एक बृहत् नद है। हज़ारीबाग़ ज़िलेमें यह उत्पन्न हुआ है। इसके बाद सन्थाल-परगनेसे कुछ दक्षिण, दक्षिण दिक्‌से कुछ पूर्वको बहते वीरभूम और वर्द्धमानके भीतरसे भेदियाग्राममें इसने प्रवेश किया है। अन्तमें भेदियासे पूर्वमुख आकर कंटोयाके निकट भागीरथीके साथ मिल गया है। इसी नदके उत्तर-कूलमें सुप्रसिद्ध

केन्दुबिल्वग्राम (केंदुली) है। इसी जगह जयदेवके कृष्णचन्द्र श्रीराधिकाके पैर पकड़े आंखोंसे आंसू बहाते जाते थे—

"प्रिये चारुशीले मुञ्च मयि मानमनिदानम्।"

ग्रीष्मकालमें अजयनदके बीच जल नहीं रहता। केवल बालू छायापथकी तरह चमका करती है। बालूके ऊपर जगह-जगह छोटे-छोटे झरने अपने मनोहर शब्दसे आकाशको मुखरित करते हैं। वर्षाकाल आनेसे दुकूल उमड़ पड़ते हैं, ग्राम भूमि समस्त डूब जाती है। इसीलिये स्थान-स्थानमें ऊंचे-ऊंचे बांध बंधवा दिये गये हैं।

अजयपाल (सं० पु०-क्ली०) १ रागविशेष। २ कनौजके एक नृपतिका नाम। ३ जमालगोटा।

अजया (सं० स्त्री०) नास्ति जयो मादकत्वेन अस्याः। १ विजया। भांग, बूटी। (हिं०) २ बकरी।

अजय्य (सं० त्रि०) न-जी-यत् शक्यार्थे, नञ्-तत्। दुर्जय, जीतनेके अयोग्य।

अजर (सं० त्रि०) नास्ति जराऽस्य। १ पीड़ाशून्य। २ वार्धक्यशून्य। ३ भारी, जो पचाया जा न सके।

अजरक (सं० क्ली०) अजीर्ण, बदहज़मी।

अजरन्ती (वै० स्त्री०) न जीर्यतीं जरारहितां। बुड्ढी न होनेवाली, सदा तरुण बनी रहनेवाली। (वाज० सं० २१।५)

अजरयु (वै० वि०) बुड्ढा या नष्ट न होनेवाला।

अजरस् (वै० वि०) १ पीड़ाशून्य। २ वार्द्धक्यशून्य। ३ गरिष्ट, मुक़व्वी।

अजरा (सं० स्त्री०) नास्ति जरा अस्याः। घृतकुमारी, घीकुआर। घृतकुमारी वृक्ष कभी सूखता नहीं, इसीलिये इसका नाम अजरा पड़ा है।

अजराज (सं० पु०) अजोंके राजा या बादशाह। ऋग्वेदके एक मन्त्रमें लिखा है, कि सुसादकी अध्यक्षतामें त्रत्सुसोंने अजोंको हराया था।

अजरायल (हिं० वि०) अजर, जो कभी पुराना न हो। सदावसन्ती। सदाबहार।

अजराल (हिं० वि०) जो बुड्ढा या पुराना न हो। शक्तिशाली। ताक़तवर।

अजर्य (सं० क्ली०) न-जृ-यत् सङ्गमने कर्तरि निपात्यते; न जीर्यतीत्यजर्यम्। अजर्यं सङ्गतम्। पा ३।१।१०५। सङ्गत, अनयाय। सुहबत, साथ।

अजर्षभ (वै० पु०) सबसे अच्छा बकरा।

अजलम्बन (सं० क्ली०) अजलम्ब-ल्युट्, अज इव लम्बते गृह्यते। स्रोतोञ्जन, रसाञ्जन, सुरमा।

अजलोमन्, अजलोमा (सं० पु०) अजस्य लोम इव लोम यस्य, बहुव्री०। १ केंवाच। २ जिसके शरीरमें बकरेके से बाल हों। इस शब्दके पर्याय यह हैं—गोशिष और शिखी, केशी, महाङ्गस्वा और अग्रपर्णी।

अजवल्ली (सं० स्त्री०) मेढ़ासींगी।

अजवस् (सं० पु०) न जवस्, जु-असुन्। वेगशून्य।

अजवस्ति (हिं० पु०) अजस्य वस्तिरिव वस्तिर्यस्य। ऋषिविशेष।

अजवाइन, अजवायन (हिं० स्त्री०) यवानिका, यवानी। एकप्रकारका औषध।

अजवाह (सं० पु०) अजं वाहयति यद्देशम्, अज-वह-घञ् अधिकरणे। देशविशेष।

अजवीथी (सं० स्त्री०) अजा अजाता नित्यकालव्यापिनी इति वा वीथि नक्षत्राणां श्रेणी, कर्मधा०। छायापथ, हाथीकी राह। आकाशके उत्तर-दक्षिणव्यापिनी नक्षत्रमाला।

अजशृङ्गिका, अजशृङ्गी (सं० स्त्री०) अजस्य मेषस्य शृङ्गमिव फलं यस्याः, बहुव्री०। मेढ़ासींगी। इसके पर्याय यह हैं—विषाणी, विषाणिका, चक्रश्रेणी, अजगन्धिनी, मौर्वी, नेत्रौषधि, आवर्तिनी, वर्तिका, सर्पदंष्ट्रिका, चक्षुष्या, तिक्तदुग्धा, पुत्रशृङ्गी और कर्णिका। यह गुणमें कटु और तिक्त होती है। इससे कफ, अर्श, शूल, शोथ, श्वास, हृद्रोग, विषरोग, कास, कुष्ठ, प्रभृति पीड़ायें नष्ट हो जाती हैं।

अजश्री (सं० स्त्री०) फिटकरी।

अजस (हिं० पु०) अजशः, अख्याति, बदनामी।

अजसी (हिं० वि०) अख्यात, बदनाम।

अजस्तुन्द (वै० क्ली०) नगरविशेष, वेदोक्त एक शहरका नाम।

अजस्र (सं० क्लो०) न जसु मोचणे—र, तच्छोल्यादौ कर्त्तरि। नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः। पा ३।२।१६७। सन्तत, चिरकालस्थायी, निरवच्छिन्न। (क्रि० वि०) सदा, हमेशा।

अजहत्स्वार्था (सं० स्त्री०) न-ओहाक् त्यागे-शतृ अजहत्। न जहाति स्वार्थों याम्। १ जिसको निजका अर्थ परित्याग न करे। २ अलङ्कारशास्त्रके लक्षणा नामक शब्दकी वृत्ति या शक्ति विशेष। इसका दूसरा नाम उपादानलक्षणा है। मम्मटभट्टने इसका यह लक्षण बताया है—

"स्वसिद्धये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम्।
उपादानं लक्षणञ्चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा॥"

अन्वयसिद्धिके लिये अन्यका आश्रय ले जो शब्द दूसरेके अर्थमें अपने अर्थको समर्थन करे, वही उपादानलक्षणा है। उपादानलक्षणा दो प्रकारको होती है—रूढ़िमूल और प्रयोजनमूल। जैसे—श्वेतो धावति। यानी श्वेतवर्ण दौड़ता है। श्वेतवर्ण कभी दौड़ नहीं सकता। सुतरां इस जगह श्वेतवर्णका प्रकृत अर्थ नहीं लगता, इसीसे क्रियाके साथ भी ठीक अन्वय नहीं होता। यहां श्वेतवर्णमें जो लक्षण है, उससे श्वेत पश्वादि समझना पड़ेगा (रूढ़िमूल)। 'कुन्ताः प्रविशन्ति' का अर्थ है, कि अस्त्र प्रवेश करते हैं। इस बातके कहनेका प्रयोजन यह है, कि अष्टाङ्ग अस्त्रशस्त्रभूषित पुरुष प्रवेश करते हैं (प्रयोजन-मूल)।

अज़हद (फा० वि०) अपरिमित रूपसे, अत्यन्त अधिक। बहुत ज्यादा।

अजहल्लिङ्ग (सं० पु०) हा-(ओहाक् त्यागे) शतृ, न जहत् लिङ्गं यम्; बहुव्री०। जो शब्द, भिन्न लिङ्ग विशेष्यके विशेषण रूपसे प्रयुक्त होते भी अपने लिङ्गको परित्याग न करे। यथा—वेदः श्रुतिर्वा प्रमाणम्—यानी वेद किंवा श्रुति ही प्रमाण है। इस जगह वेद पुंलिङ्ग, श्रुति स्त्रीलिङ्ग और प्रमाण क्लीव लिङ्ग शब्द है। किन्तु वेद और श्रुति शब्दके विशेषण रूपसे प्रयुक्त होते भी प्रमाण शब्द अपने क्लीव लिङ्गको परित्याग नहीं करता। अर्थात् वेद शब्दका विशेषण स्वरूप होनेसे यह पुंलिङ्ग और श्रुति शब्दका विशेषण होनेके कारण स्त्रीलिङ्ग नहीं होता।

अजहा (सं० स्त्री०) हा-क, न जहाति शूकान्, नञ्-तत्। कौंच, कौंचकी फली।

अजा (सं० स्त्री०) सांख्यमतसिद्ध प्रधान पर्यायस्थ समान अवस्था-विशिष्ट और सत्वरजस्तमोरूप गुणत्रय। "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णवर्णां बह्वीःप्रजाः सृजमानां सरूपाम्।" (श्वेताश्व० उ०)

अर्थात्—लोहित, शुक्ल और कृष्णवर्णवाली समान रूपकी बहुतसी प्रजा जिस प्रकृतिने उत्पन्न की, अन्य पुरुष अर्थात् जीव उसे परित्याग करता है। इसी प्रकृतिको सत्वादि गुणानुसारसे श्वेतादि रूपयुक्त बहु प्रजा उत्पन्न करनेके कारण सांख्यवादियोंने नाना वर्ण होनेका उल्लेख किया है।

अजाकृपणीय (वै० त्रि०) बकरी और कैंची जैसा।

अजाक्षीर (सं० क्लो०) बकरीका दूध।

अजागर (सं० पु०) जागृ-अच् इति जागरः; न जागरः यस्मात् बहुव्री०। १ भृङ्गराज, भीमराज, घमिरा। भृङ्गराजको सेवन करनेसे निद्रा नहीं आती। २ अजगर। (त्रि०) ३ न जागनेवाला।

अजागल (सं० पु०) १ बकरेकी गर्दन।

अजागलस्तन (सं० पु०) १ बकरेके गर्दनका नाकाम स्तन। २ किसी व्यर्थ वस्तुको उपमा।

अजाघ्रात (सं० क्लो०) अजेन छागेन आघ्रातम्, ३-तत्। बकरेसे शरीर सुंघाना, प्रायश्चित्तविशेष। काश्यपने व्यवस्था बताई है, कि यदि रजस्वला स्त्री चाण्डाल और श्वपाकको स्पर्श करे, तो ऋतुके तीन दिन बिता त्रिरात्र उपवासमें रहे और पञ्चगव्यसे शुद्ध हो, इसके बाद छागलसे अपना शरीर सुंघावे—

"चाण्डालेन श्वपाकेन संस्पृष्टा चेद्रजस्वला।
तान्यहानि व्यतिक्रम्य प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥
त्रिरात्रमुपवासःस्यात् पञ्चगव्येन शुध्यति।
तां निशान्तु व्यतिक्रम्य अजाघ्रातन्तु कारयेत्॥"

स्पर्श विषयमें बृहस्पतिने एक अतिरिक्त विधि लिखी है। यथा—

"तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे।
नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टि न दुष्यति॥"

तीर्थगमन, विवाहके समय, देवतादिकी पूजा-करने जाने, युद्धकाल, देशविप्लव होने या नगर ग्रामादिमें अग्नि लगनेपर अस्पृश्य व्यक्तिको स्पर्श करनेमें दोष नहीं लगता।

अजाघृत (सं० क्ली०) बकरीका घी।

अजाचक (हिं० पु०) १ अयाचक, वह व्यक्ति जो कुछ न मांगे। (वि०) २ न मांगनेवाला; सम्पन्न, खुश-खुर्रम।

अजाची ((हिं० पु०) वह व्यक्ति जो किसीसे याचना न करे, भाग्यवान् पुरुष। आसूदा शख्‌स।

अजाजि, अजाजी (सं० स्त्री०) अज् क्षेपणे-घञ् इति आजः, अजेन छागेन वीयते गन्धोत्कटत्वात् त्यज्यते; अज्-आज्--इन्, ६-तत्। १ जीरक, जीरा। २ काको-दुम्बरिका वृक्ष, गूलरका पेड़।

अजाजिक (सं० पु०) पीतजीरक, सफ़ेद जीरा।

अजाजीव (सं० पु०) अजस्य क्रयविक्रयादिना जीवति इति; अज-आ-जीव-अच्, ३-तत्। छाग-मेषादिका व्यवसायी, भेड़-बकरेका सौदागर।

अजात (सं० त्रि०) न उत्पन्न हुआ, जो पैदा न हुआ हो।

अजातककुद् (सं० पु०) न जातं ककुदम् अंस-कूटम् अस्य, बहुव्री०। ककुदस्यावस्थायां लोपः। पा ५।४।१४६। जिस वृषके कुब्भा न निकला हो। वत्स, अल्पवयस्क गवादिका वत्स; बछरा।

अजातक्र (सं० क्ली०) बकरीके दूधका मठा।

अजातदन्त (सं० त्रि०) न जातो दन्तो अस्य अत्र वा, बहुव्री०। जिस शिशुके दांत न निकले हों, विना दांतोंवाला, दुधमुंहा।

अजातपक्ष (सं० त्रि०) न जातौ पक्षौ अस्य। पक्षि-शावक; जिस पक्षीके बाजू न निकले हों, जो छोटा पक्षी उड़ न सके।

अजातव्यञ्जन (सं० वि०) विना दाढ़ी-मूछका।

अजात-व्यवहार (सं० पु०) १ नाबालिग, जिसकी अवस्था पन्द्रह वर्षसे कम हो।

अजातशत्रु (सं० पु०) न जातः शत्रुर्यस्य अथवा जातस्य जीवमात्रस्य न शत्रुः। १ काशीके राजा, जिन्हें लोग जनक कह सम्बोधन करते थे। वेदादि समस्त शास्त्रमें अजातशत्रुकी प्रगाढ़ व्युत्पत्ति थी। कौषितकी-ब्राह्मण उपनिषत् और शतपथब्राह्मणमें इनके धर्मज्ञानका विषय कहा गया है। महाराजकी वेदादिमें ऐसी व्युत्पत्ति हो गई थी, कि यह क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणोंको धर्मशास्त्रका उपदेश दे सकते थे। एकबार महर्षि गार्ग्य काशीमें जा उपस्थित हुए। वहां पहुंच उन्होंने महाराजसे कहा,—'मैं आपको ब्रह्म-ज्ञानके सम्बन्धमें उपदेश दूंगा।' राजाने कहा,—'अच्छा, आप मुझे उपदेश दीजिये; मैं भी आपको सहस्र धेनु पुरस्कार दूंगा।' किन्तु गार्ग्य राजाको अधिक उपदेश दे न सके। वरं उन्होंने निजमें ब्राह्मण होकर भी अजातशत्रुसे ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमें उपदेश पानेके लिये अभिलाषको प्रकाश किया।

२ राजा युधिष्ठिर। ३ मगधके जनैक राजाका नाम। इनके पिताका नाम श्रेणिक या विम्बिसार था। श्रेणिकने राजगृह नगरको स्थापन किया था। राजगृह देखो। अजातशत्रु बुद्धदेव शाक्यसिंहके समकालिक थे। बुद्धदेवको निर्वाणप्राप्तिके बाद उनके अस्थि और चिताभस्मादि इन्होंने राजगृहमें एक वृहत् स्तूपके अभ्यन्तर बीच रखे थे। बुद्ध देखो।

अजातानुसय (सं० त्रि०) बेपछतावा, न पछिताने-वाला।

अजातारि (सं० पु०) १ जिसका कोई शत्रु न हो, दुश्मन न रखनेवाला। २ युधिष्ठिर।

अजाति, अजाती (सं० स्त्री०) न-जन्-क्तिन्, नञ्-तत्। १ अनुत्पत्ति। २ जातिभिन्न कुछ और। (त्रि०) ३ जातिशून्य, बिना जातिका। ४ नित्य, मुदामी।

अजातौल्वलि (सं० पु०) तुल्वलस्य अपत्यं पुमान् इति तौल्वलिः, मध्यपदलोपि कर्मधा०। न तौल्वलिभ्यः। पा २।४।६१। छागमांसोपजीवी तुल्वल मुनिके सन्तान, बकरेका मांस बेचकर दिन काटनेवाले तुल्वल मुनिके लड़के।

अजात्व (सं० क्ली०) अज होनेकी स्थिति, बकरापन।

अजाद (सं० पु०) बकरेका मांस भक्षण करनेवाला,

जो बकरेका गोश्त खाये। २ एक प्राचीन युद्धप्रिय जातिके पूर्वपुरुष, एक पुरानो लड़ाकू कौमके बुज़ुर्ग।

अजादनी (सं० स्त्री०) अजैः छागैः अक्लेशेन अद्यते असौ; अज-अद्-ल्युट् कर्मणि, ६-तत्। दुरालभा, बेर; वह वृक्ष जिसे बकरे बड़े प्रेमसे खाते हैं।

अजादि (सं० पु०) अज इति शब्द आदौ येषां, बहुव्री०। अज प्रभृति, बकरे वग़ैरह।

अजादुग्ध (सं० क्ली०) बकरीका दूध।

अजान (हिं० वि०) १ बेसमझ, भोला-भाला, सीधा, न जाननेवाला। २ जो जाना हुआ न हो, बिना पहचानका। (पुं०) ३ ना-समझी, अज्ञान। ४ एक वृक्ष जिसके नीचे जानेसे लोग कहते हैं, कि मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।

अजानपन (हिं० पु०) ज्ञानका अभाव, मूर्खता, बेवक़ूफ़ी, नादानी, नासमझी।

अजानय (सं० पु०) उत्तमाश्व, बढ़िया घोड़ा।

अजानि (सं० पु०) नास्ति जाया यस्य, बहुव्री०। जायाया निङ्। पा ५।४।१३४। जायाशून्य, वह पुरुष जिसके स्त्री न हो।

अजानिक (सं० त्रि०) अज विक्रयादिना आनो जीवनं अस्ति अस्य, अजान-ठन्। छागव्यवसायी, बकरे बेचनेवाला।

अजानेय (सं० पु०) अजेऽपि विक्षेपेऽपि आनेयः प्रापणीयः येन; अज-आ-नी-यत् कर्मणि, ३-तत्। उत्तम अश्व, बढ़िया घोड़ा।

अजान्त्री (सं० स्त्री०) अजस्य अन्त्रमिव अन्त्रं अन्त्राकारवती कोठरमञ्जरी यस्याः। हिरनपट्टी, नीलबुह्ना, नीलपुष्पा, अतिलोमशा। यह ओषधि कटुरसा, कासघ्नी, वीर्य्यदा और गर्भजननी होती है।

अजापक (सं० क्ली०) पक्वघृतविशेष, ख़ूब तपाया हुआ घी।

अजापञ्चक (सं० क्ली०) यक्ष्मरोगका घृत, क्षयरोगमें दिया जानेवाला आयुर्वेदिक घी,—

बकरीका घी, बकरीकी लेंडीका रस, बकरीका दूध, बकरीका दही, बकरीका मूत्र दो सौ छप्पन तोले ले और इसमें ३२ तोले यवक्षार डालकर यथाविधि पकाये। यह घी यक्ष्मरोगको नाश करता है।

अजापय, अजापयस् (सं० क्ली०) छागदुग्ध, बकरीका दूध।

अजापालक (सं० त्रि०) १ बकरी पालनेवाला। २ बकरियोंका झुण्ड।

अजाप्रिया (सं० स्त्री०) बदरीवृक्ष, बेरका पेड़।

अज़ाब (अ० पु०) १ पाप, गुनाह। २ दण्ड, सज़ा। ३ पीड़ा, तकलीफ़। ४ प्रायश्चित्त।

अजामांस (सं० क्ली०) बकरीका मांस। यह लघु, स्निग्ध, किञ्चिच्छीत, रुचिप्रद, मधुर, पुष्टिकर, बल्य और वात-पित्तघ्न होता है।

अजामि (वै० त्रि०) १ असम्बन्धीय, बेमेल। २ असम्बद्ध, बेतरतीब।

अजामिता (वै० स्त्री०) १ सम्बन्धराहित्य, बेमेली। २ दुश्मनी, शत्रुता।

अजामिल—वह पापी ब्राह्मण जो अपने लड़के 'नारायण'का नाम लेनेसे मुक्त हुआ था। भागवतमें लिखा है,—अजामिल कान्यकुब्ज-देशीय एक ब्राह्मण थे। पहले यह शास्त्रविशारद और समस्त सद्गुण-सम्पन्न रहे। एक दिन यह पिताकी आज्ञासे वनको चले। वहां एक शूद्रा वेश्याको मधुपानसे मत्त हो किसी शूद्रके साथ क्रीड़ा करते देख यह उसके प्रति एकान्त अनुरक्त हो गये और उसे अपने घर ले आये। इन्होंने उसकी इच्छा पूरी करनेके लिये समस्त पितृसम्पत्तिको व्यय कर डाला। धीरे-धीरे चौर्यादि असत्वृत्तिको अवलम्बन कर यह उस वेश्याके साथ दिनपात करने लगे। अपनी परिणीता और सत्कुलजाता ब्राह्मणीको इन्होंने परित्याग किया। कालक्रममें उस वेश्याके गर्भसे इनके दश पुत्र उत्पन्न हुए; सबसे छोटेका नाम 'नारायण' था। अजामिल छोटे पुत्रका बड़ा प्यार करते, सर्वदा उसके लालन-पालनमें लगे रहते और किसी भी समय परलोकका विषय सोचते न थे। अट्ठासी वर्ष उस शूद्राके साथ बिताने बाद इनका आसन्नकाल आ

उपस्थित हुआ। उस समय यह नारायणका विषय सोचने लगे। इन्होंने देखा, कि तीन, पाशहस्त, वक्रमुख और भयानक यमदूत उन्हें लेने पहुंचे थे। उन्हें देख अजामिल अत्यन्त भीत हुए, उच्चैःस्वरसे बालक नारायणको बार-बार पुकारने लगे। भयाकुल अजामिलके मुखसे नारायणका नाम निकलनेपर विष्णुदूतोंने आकर यमदूतोंको निवारण और इनके निकट हरिगुणानुवादको कीर्तन किया। क्षणमात्र साधुसङ्गको लाभ कर अजामिलका निर्वेद आ उपस्थित हुआ। अपत्यस्नेहादि संसारबन्धनको छेदन कर इन्होंने गङ्गाद्वारको यात्रा की और वहां योगसाधनपूर्वक देहको त्याग कर वैकुण्ठधाम गये।

अजामूत्र (सं० क्ली०) बकरीका पेशाब। यह कटु, उष्ण, रूक्ष, नाड़ीविषघ्न; प्लीहोदर, कफ, श्वास, गुल्म एवं शोफहर और लघु है।

अजामेद (सं० क्ली०) छागवसा, बकरीकी चर्बी।

अजाय (हिं० वि०) अनुचित, ग़ैरवाजिब।

अजायब (अ० पु०) आश्चर्यजनक द्रव्य, अनोखी चीज़।

अजायबखाना (अ० पुं०) आश्चर्यजनक द्रव्योंका भवन, अनोखी-अनोखी चीजें रहनेका स्थान; Museum.

अजायबघर—Museum. अजायबखाना देखो।

अजार (हिं० पुं०) आज़ार, रोग, बीमारी।

अजारा (हिं० पु०) इजारा। अधिकार, इख़्तियार।

अजाविक (सं० क्ली०) १ भेड़-बकरा। २ छोटे पशु।

अजाविट् (सं० स्त्री०) छागविष्ठा, बकरीकी लेंडी।

अजाश्व (सं० क्ली०) १ घोड़ा-बकरा। २ सूर्य।

अजाह्वा (सं० स्त्री०) आत्मगुप्ता, कोंच।

अजि (सं० त्रि०) अज गती-क्षपणे च इन्। गतिशील, चलनेवाला।

अजिऔरा (हिं० पु०) आजी या दादीके बापका मकान।

अजिका (सं० स्त्री०) तरुण छाग, नौजवान् बकरी।

अजिण्ठा, (अजण्टा)—नर्मदा और ताप्ती नदीके निकटवर्ती खानदेशके इन्ध्याद्रिकी प्रसिद्ध गुहावली। इसका चलित नाम अजण्टा है, लोग अजन्ता भी भूलसे कहते हैं। इस गुफामें बौद्धोंका चैत्य और बौद्ध सन्यासियोंके कई विहार या मठ वर्तमान हैं। इसीलिये अजिण्ठा इतना प्रसिद्ध हो गया है। अक्षा° २०° ३२′ उ: और द्राघि° ७५°४६′ पू: यह अवस्थित है। यह गुफा अजिण्ठा ग्रामसे ४ मील पश्चिम और असाइ-रणस्थलके निकट है।

इसका अपर नाम इन्ध्याद्रि है। अजिण्ठेके बौद्ध-विहार और चैत्य जगद्विख्यात हैं। यह चैत्य निज़ाम राज्यके फर्दापुर नगरसे साढ़े तीन मील दक्षिण-पश्चिम और पचोरा रेलवे-ष्टेशनसे सत्रह कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। हिन्दू कारीगरोंके हाथका बहुकालवाला नक़्क़ाशीका काम और चित्रकौशल भारतवर्षके अनेक स्थानोंमें आज भी विद्यमान देखा जाता है। कटक, भुवनेश्वर, इलोरा और अजिण्ठाकी शोभा आज भी नूतन बनी, आज भी वह सौन्दर्य नष्ट हुआ नहीं है। छठें विहारमें बुद्धदेवकी एक मूर्ति बड़े ही परिश्रमसे निर्माण की गई, जो बोलना जैसा चाहती है। यहां जैसे चित्र इटली में भी कहीं देख नहीं पड़ते।

फर्दापुर होकर जानेमें अजिण्ठाके गिरि-चैत्यका पथ भागुर उपत्यकासे दक्षिण दिक्‌में आध कोस दूर जा निकलता है। इसके बाद दक्षिण-पश्चिम दिक्‌में दूसरी एक छोटी उपत्यका है। इस उपत्यकाके भीतरसे भागुर-नदके किनारे-किनारे जाना पड़ता है। कोई एक कोस पथके बाद भागुर नद एकबारगी ही ठीक पश्चिम दिक्‌को घूम गया है। इसी जगह खड़े होनेसे अजिण्ठाके गिरिचैत्य देख पड़ते हैं। पहाड़ छोटे-छोटे हैं, ढाई सौ फुटसे अधिक ऊंचे नहीं। इसका एक दिक् काटकर नानाप्रकारकी बनावटके खम्भे और तरह-तरहकी मिहराबें निकाली गई हैं। कुछ दूरसे यहांके मन्दिर और विहार देखनेसे फिर आंख फेरी जा नहीं सकती, इच्छा होती है, कि बराबर इन्हें देखते ही रहें।

अजिण्ठेमें सब मिलाकर उन्तीस अट्टालिकायें हैं। इनमें पांच चैत्य अर्थात् देवमन्दिर, और चौबीस

विहार या संन्यासियोंके मठ बने हैं। आजकल इन सबके ऊपर चढ़ा जा नहीं सकता। चार चैत्य और तेईस विहारोंपर चढ़नेमें क्लेश नहीं। बाकी दो स्थान अतिशय दुर्गम हैं। मन्दिर उंचाई और चौड़ाईमें समान और जितने चौड़े, उससे दूने लम्बे हैं। छत ऊंची और उसमें नक्काशी की हुई है। किसी-किसी छतमें लकड़ीके तख्ते पटे हुए हैं। जिन मकानोंमें तख्ते नहीं पटे, उनकी छतमें पत्थर ठीक तख्ते जैसे काट-काटकर लगाये गये हैं। पुराने मन्दिरोंके खम्भे अठपहलू हैं, उनके नीचे या ऊपर किसी तरहकी नक्काशी नहीं बनी है। किन्तु आधुनिक स्तम्भोंके नीचे वेदी है और उनके गात्र और कार्निसमें तरह-तरहके बेल-बूटे और चित्र सजाये गये हैं। मन्दिरके सम्मुखमें प्राचीर है। प्राचीरमें एक मन्दिरके पास चबूतरा और दूसरेके पास नाट्यशाला विद्यमान है।

यह ठीक नहीं कह सकते, कि अजिण्ठेके बौद्धाश्रमको बने कितने दिन हुए। पत्थरके ऊपर जो सकल वृत्तान्त खुदे थे, वह मिट गये हैं—अब सब पढ़े नहीं जा सकते। कोई-कोई विद्वान् अनुमान करते हैं, कि ईसा मसीहके जन्मसे २०० वर्ष पहले अन्ध्रराज वशिष्ठपुत्रने अजिण्ठेका देवालय जनैक गृहस्थको दान कर दिया था। कोई-कोई इसके निर्माणका समय सन् ५५० से ६४२ ई० तक बताते हैं। किन्तु इसपर रंगामिज़ी समय-समयसे होती रही, जो अधिक चालुक्य और अल्प बरारराज या वाकाटकके समय रची गई।

अजिण्ठेके चैत्योंवाले चित्र देखनेसे पूर्वकालकी वेशभूषा और उसके आचार-व्यवहारका अनेक परिचय मिलता है। चित्रोंमें अनेक ही देवमूर्तियां हैं। स्थान-स्थानमें राजसभा बनी है। सभाके मध्यस्थलमें नृपति और उनकी चारो ओर सभासद बैठे हैं। राजाकी मूर्ति परिष्कृत काञ्चनवर्ण है; चक्षु छोटे-छोटे, होंठ मोटे, कान बड़े, दाढ़ीका नाम नहीं, मुखमें केवल थोड़ी-थोड़ी मूंछ और शिरके बाल एकत्र ऐंठकर दक्षिण दिक्को चूड़ा बंधी है। अलङ्कारके मध्य गलेमें मोती या सोनेका पंचलरा हार, बांहपर बाज़ूबन्द और हाथमें कड़ा विद्यमान है; अङ्गपर पोशाक देख नहीं पड़ती। किसी स्थलमें वीरपुरुषोंके अङ्गपर पोशाक सजी हुई है। कोई हाथीपर बैठे और हाथमें धनुर्वाण और बरछा लिये सशस्त्र मृगया करने जाता, किसीने मृगयाके लिये जाकर वनके भीतर दुर्जय सिंहको मार डाला है। पुरातन चित्रोंमें वीरपुरुषोंके हाथ नाना प्रकार अस्त्र देख पड़ते हैं, किन्तु कहीं भी बन्दूक़ नहीं मिलती। उस कालका अग्न्यस्त्र बन्दूक़ होनेसे क्या हम उसे किसी वीरके हाथमें नहीं देखते? विहारमें ईरानके बादशाह द्वारा सन् ६२६ ई० में दक्षिणके अधिपति पुलकेशिके पास भेजे गये एक दूत और उसके आनेका अपूर्व चित्र उतारा गया है। दो बैलोंकी लड़ाई भी बड़ी ही ख़ूबसूरतीसे दिखाई गई है। एक राजाका जुलूसके साथ निकलना देख मन मुग्ध हो जाता है।

अजिण्ठेकी दूसरी ओर जाइये,—और भी अनेक चित्र देख पड़ते; चित्रोंके गात्रमें और भी अनेक इतिहास लिखे हैं। नृपति अन्तःपुरमें राजमहिषियोंके साथ बात करते; पास ही सहचरियां बैठी हैं। सहचरियां गौराङ्गिणी हैं,—बैठी हुई मानो अपने रूपकी गरिमा दिखा रही हैं। देखनेसे बोध होता है, मानो वह इस भारतकी नहीं—सकल ही यवन-कन्यायें हैं, ईरान या युरोपसे आ पहुंची हैं। एक बड़े चित्रमें विजयका लङ्कामें पहुंचना और सिंहासनारूढ़ होना और एक मन्दिरकी कारीगरी देख बौद्धोंके गुणकी प्रशंसा करनी पड़ती है। मिष्टर ग्रिफ़िथके मतसे युरोपमें इन चित्रोंकी कहीं भी समता नहीं मिलती। चीना साधुओंके भी चित्र बहुत ही अच्छे हैं। पूर्वकालसे ही इस देशके नृपति ईरान आदि देशोंकी सुश्री यवनकन्या लाकर अपनी सहचरी बना लेते थे। दुष्यन्त राजा अनुमालिनी नदीके कूलपर कण्व मुनिके आश्रममें मृगया करने गये थे; उनके साथ यवनकन्या भी थी। इसका उल्लेख शकुन्तला-नाटकमें मिलता है—

"एसो वाणासणहत्थाहिं जवणीहिं वणपुप्फमालाधारिणीहिं परिवुदो इदो एव्व आअच्छदि पिअवअस्सो।"

विदूषक कहता है—यह देखो! धनुर्हस्ता वनमालाधारिणी यवनकन्यासे परिवृत हो मेरे प्रिय वयस्य इसी ओरको आ रहे हैं।

चित्रके कोई नृपति और राजसभासद प्रजाका आवेदन सुनते, कोई वणिकोंके साथ बात करते हैं। किसी स्थलमें नौका और जहाज़ हैं। कोई नौकापर चढ़ते, कोई नौकापर बैठ घूमते हैं। हमें ऋग्वेदमें समुद्र-पोतकी बात देख पड़ती है, उससे कितने ही पीछे भी समुद्रपोत विद्यमान रहे हैं। इसका भी प्रमाण मिलता है, कि इस समयसे कोई दो सहस्र वर्ष पहले इस देशके वणिक् समुद्रपथ द्वारा देशदेशान्तरमें वाणिज्य करने जाते थे। चित्रोंको देख यह बात स्पष्ट मालूम होती है, कि दो सहस्र वत्सर पहले हिन्दुओंमें विदेशयात्रा निषिद्ध मानी न जाती थी।

डाक्टर बरगसने अजिण्ठेकी चित्रकारोके विषयमें निम्नलिखित मत प्रकट किया है,—

'चित्रकारीकी प्रशंसा लोग अधिक करते और कहते, कि जिस समय वह तय्यार हुई, उस समय युरोपमें वैसी कारीगरी न थी। मनुष्यकी आकृति प्रत्येक स्थितिमें दिखाई गई, जिससे अङ्गविद्याका विज्ञान प्रकट होता है। चित्रोंको विषम रूपसे बनानेमें चित्रकारोंने अनोखी सफलता प्राप्त की है। हाथ बहुत सुन्दर मालूम पड़ते हैं। बुद्धदेव, उनके शिष्यों और भक्तोंके सिवा सड़कों, जुलूसों, लड़ाइयों, और भवनवाले अन्तःपुरोंके चित्र अच्छे बनाये गये, जिनमें लोग अपने घराऊ काम करने लगे हैं। कहीं प्रेम, कहीं विवाह और कहीं मृत्युके समयका दृश्य चित्रित है। कहीं स्त्रियां तपस्या करती हैं। जङ्गली भैंसेका भालेसे शिकार करनेवाले सवारोंको देख चित्त प्रसन्न हो जाता है। हाथीसे ले बटेर तक—सब पशु-पक्षी बनाये गये हैं। सांप, मछली, जहाज़—किसी चीज़की कोई कमी नहीं। घराऊ बरतन देखते ही बनते हैं। मट्टीका घड़ा, लोटा, पानी पीनेका प्याला, कटोरी, थाल, सुन्दर सुराही और मसाला पीसनेका सिल और लोढ़ा बहुत ही अच्छा लगता है। लड़ाईके हथियार भी खूब ही हैं। सीधी-तिरछी और छोटी-मोटी तलवारें, तरह-तरहके भाले, गदा, धनुर्वाण, चक्र और विभिन्न प्रकारकी ढालें देखनेवालोंको वीररसमें डुबो देती हैं। यूनानी कलंगी जैसी भी एक चीज़ बनाई गई और एक ही रथमें तीन घोड़े जोत कर दिखाये गये हैं। चित्रकारी बहुत ही चमकीले रङ्गमें हुई है। प्रकाश और छाया ठीक परिमाणसे पड़ी, जिसे देख विदित होता, कि चित्र मर्मरवाले चूनेके मोटे तहपर उतारे गये हैं। कई जगह रङ्ग बहुत ही गहरा चढ़ा है।'

उपरोक्त नानाविध सुन्दर चित्रोंके सिवा अजिण्ठेके गुहामन्दिरमें बुद्धजीवन-सम्बन्धीय बहुतसे जातक दृश्य देख पड़ते हैं। इनमें शिशु बुद्धके निकट असितका आना, बुद्धदेवको योगभ्रष्ट करनेके लिये सदलबल कामदेवका प्रलोभन दिखाना, शिविजातक और नागजातक विशेष भावसे उल्लेख योग्य हैं। कहते हैं, कि मौर्य सम्राट् अशोकवाले राज्यावसानके कुछ पीछेसे भारतसे बौद्धप्रभाव विलोप होनेके कुछ पहले तक—प्रायः आठ सौ वर्षसे ऊपरवाला भारतीय बौद्धोंका अपूर्व निदर्शन आजकलके चैत्यों और गुहामन्दिरोंमें इस समय भी प्रतिफलित हो रहा है।

सन् १८०३-४ ई० में अंगरेजोंने झाड़-पोंछ इसे साफ़ कराया। सन् १८७९ ई० में डाक्टर बरगसने जिस रंगामेज़ीका वर्णन लिखा था, अब वह अधिकांश उड़ गई।

अजिण्ठा ग्राम—औरङ्गाबाद ज़िलेके भोकरदन ताल्लुक़का एक ग्राम। यह स्थान दक्षिण-हैदराबाद राज्यके अन्तर्गत सर सलारजङ्गके वंशकी जागीर है। इसमें कोई ढाई हज़ार आदमी रहते होंगे। सन् १७२७ ई० में निज़ामने यहां कुछ क़िले बनवाये थे।

अजिण्ठा पर्वत (इन्ध्याद्रि)—यह गिरिमाला नासिक-ज़िलेके भनवाड स्थानसे मनमाडतक कोई पचीस कोसके अन्तरमें ४००० फ़ूट ऊंची फैली है। मनमाड़के दक्षिण अङ्काईसे यह पूर्वकी ओर राजपुरकी ओर चली गई है। फिर कसारीसे इसकी दूसरी शाखाने निकल अजिण्ठेके समीप खान्देशकी औरङ्गा-

बादसे पृथक् किया है। पूर्वकी ओर बरारके बुलडाना, अकोला और येवतमाल और दक्षिणकी ओर हैदराबादके परभनी और निज़ामाबाद जिलोंमें भी इसका विस्तार देख पड़ता, जहां इसे सह्याद्रिपर्वत कहते हैं। सह्याद्रि पक्षत्तर और अजिण्ठा पर्वत पचास कोस लम्बा है। पुराने समयमें व्यवसायी और योद्धा अजिण्ठा पर्वतकी राह ही गुजरात और मालवेसे दक्षिण पहुंचते थे।

अजित (सं० त्रि०) न-जि-क्त, नञ्-तत्। १ पराजितभिन्न, न हारा हुआ। (पुं०) २ विष्णु। ३ शिव। ४ चतुर्दशमन्वन्तरका सप्तर्षिभेद। ५ द्वितीय तीर्थङ्कर। अजितनाथ देखो। ६ मैत्रेय बुद्ध। ७ तैलौषधभेद। ८ एक प्रकारका ज़हर-मोहरा। ९ एक प्रकारका ज़हरीला चूहा।

अजिततैल (सं० क्ली०) नेत्ररोगका तैलविशेष, आंखकी बीमारीका एक तेल। इसके बनानेकी यह विधि है,—तिलका तेल ३२ या ६४ तोले और आंवलेका रस और दूध दो सौ छप्पन-छप्पन तोले डालकर खूब पकाये। कल्कके लिये एक पल यष्टिमधु भी छोड़ देना चाहिये।

अजितनाथ—द्वितीय जैन तीर्थङ्कर, जैनियोंके दूसरे तीर्थङ्कर। इनके पिताका जितशत्रु और माताका नाम विजया था। चवणतिथि वैशाख-शुक्ला त्रयोदशी, विमाननाम विजय, तिथि माघशुक्ला अष्टमी और रोहिणी नक्षत्रमें इन्होंने जन्मग्रहण किया। यह विनीता नगरीमें रहते थे। इनकी जन्मराशि धनु, चिह्न वृषभ, शरीरमान ५०० धनु, आयुमान ८४ लक्ष पूर्व, कुल इक्ष्वाकु, गणधरसंख्या ८४, साधु ८४०००, साध्वी ३०००, चतुर्दश पूर्वी ४७५०, केवली २००००, श्रावक ३५००००, श्राविका ५५४०००, ज्ञानतिथि फाल्गुन कृष्णा एकादशी, दीक्षावृक्ष वटवृक्ष, मोक्षासन पद्मासन, मोक्षतिथि माघ कृष्णा त्रयोदशी, मोक्षस्थान अष्टपद, प्रथम गणधर पुण्डरीक और १ली आर्या ब्राह्मी है।

अजितपुर, अजयपुर—एक प्राचीन नगर, जिसका आधुनिक नाम बक्रूर है। यह फल्गू नदीके कूलमें अवस्थित है। इसकी उत्तर ओर एक पुरातन नगरका निदर्शन देख पड़ता है। प्रसिद्ध चीन परिव्राजक उयङ्ग-चुयाङ्ग इस स्थानकी एक अद्भुत कहानी इसतरह लिख गये हैं—'जनैक राजाने अजयपुरमें एक गन्धहस्ती पकड़ा था। बुद्धदेवने उसी हस्तीके औरससे जन्मग्रहण किया।' पहले अजयपुरमें मार्तण्डपुष्करिणी नामक एक सरोवर था। अनेकोंको विश्वास है, कि आजकल उसी पुष्करिणीको लोग बुद्धकुण्ड कहा करते हैं। प्रति वत्सर बुद्धकुण्डपर अनेक लोगोंका समारोह होता है। यात्री स्नानके बाद पास-पास बैठ गयाके निकटवर्ती समस्त तीर्थस्थानोंका नाम लेते हैं।

अजितबला (सं० स्त्री०) जैनियोंकी देवी विशेष, जो अर्हत अजितके आदेशानुसार कार्य करती हैं।

अजितविक्रम (सं० पु०) १ अपारशक्ति रखनेवाला। २ द्वितीय चन्द्रगुप्तकी उपाधि।

अजितसिंह—१ मारवाड़—जोधपुरके जनैक राठौर महाराज। इनका जन्म सन् १६८१ ई० और मृत्यु सन् १७२४ ई० में हुई। इन्होंने राजरूपाख्यात नामक एक पुस्तक लिखाई, जिसमें सन् ४६८ ई० से पीछेका इतिहास सन्निवेशित किया गया। यह पुस्तक तीन भागोंमें बंटी है। पहलेमें नयनपालका अजयपालको मार जयचन्द्रके समय तक कन्नौजमें शासन करना, दूसरेमें सन् १६८१ ई० के समय महाराज यशोवन्तसिंहका शरीर छोड़ना और तीसरेमें सूर्यवंशीय क्षत्रियोंका सन् १७३४ ई० तक इतिहास दिखाया गया है। इनके पुत्रका नाम महाराज अभयसिंह था, जो सन् १७२४ ई० में उत्पन्न और सन् १७५० ई० में स्वर्गवासी हुए थे। चूड़ामणि कविने भी अपनी पुस्तकोंमें महाराज अजितसिंहकी बड़ी प्रशंसा की है। २ युक्तप्रदेश—प्रतापगढ़के जनैक स्वर्गीय महाराज। मातादीन शुक्ल इनके दरबारमें जाते, जिन्होंने ज्ञान-दोहावली लिखी थी।

अजिता (सं० स्त्री०) भाद्रकृष्ण-एकादशी।

अजितात्मन् (सं० त्रि०) जिसने आत्माको न जीता, इन्द्रियोंके वशीभूत।

अजितापीड़ (सं० पु०) नास्ति पीड़ा जयादिषु बाधा यस्य स अपीड़ः; अजितश्चासौ अपीड़श्चेति, कर्मधा०। काश्मीरके जनैक राजा। इनके पिताका त्रिभुवनापीड़ और इनकी माताका नाम जयादेवी था। जयादेवी अक्षुर नगरके कल्यपालकी कन्या थीं। उनके तुल्य सुन्दरी रमणी उस समय कोई भी न रहीं। इसीसे ललितापीड़ उन्हें हरण कर ले गये थे। त्रिभुवनापीड़ फिर इन रूपवती कामिनीको निकाल लाये। ललितापीड़के औरस और जयादेवीके गर्भसे बृहस्पति नामक एक दूसरा पुत्र भी उत्पन्न हुआ था। बृहस्पति शैशवावस्थामें काश्मीरके राजा हुए, इसलिये पद्म, उत्पल, कल्याण, मर्म और धर्म नामक उनके पांच मातुल कर्तृत्व करने चल समस्त अर्थ आत्मसात् करने लगे। राजा क्रमसे बड़े हुए, चारो ओर उनके चक्षु पड़ने लगे; इसी कारणसे मातुलोंने देखा, कि तब लाभकी प्रत्याशा न थी। अन्तमें उन दुराचारियोंने मारणविद्या द्वारा भागिनेयके प्राण विनष्ट किये। इसके बाद दुर्मति सोचने लगे—अब कौन राजा होगा? पांच लोगोंके पांच मत थे। अन्तमें उत्पलने अजितापीड़को ही राजा बनाया। कुछ काल बाद उत्पलके साथ मर्मका घोर विरोध उपस्थित हुआ और युद्ध होनेपर वितस्ता नदी मृतदेहोंसे परिपूर्ण हो गई। अन्तमें यशोवर्मा नामक मर्मके पुत्रने अजितापीड़को राज्यच्युत किया।

अजितेन्द्रिय (सं० त्रि०) इन्द्रियोंके वशमें, विषयासक्त।

अजिन (सं० क्ली०) अज-इनच्। अजेरज च। उण् २।४८। वीयते क्षिप्यते रज आदि अनेन इति। १ चर्म, चमड़ा। २ मृगचर्म, मृगछाला। (त्रि०) ३ जिन भिन्न और कुछ, चमड़ेको छोड़ कोई दूसरा।

अजिनपत्रा, अजिनपत्रिका, अजिनपत्री (सं० स्त्री०) अजिनं चर्म तद्रूपे पत्रे पक्षौ यस्याः सा (इति अमरटीकायां महेश्वरः)। बहुव्री०। चिमगीदड़, खफ़ाश; जिसके पक्ष चर्मवत् हों, चमड़े-जैसे परोंवाली चिड़िया।

अजिनफला (सं० स्त्री०) अजिनमिव चर्मविकारत्वात् भस्त्रा इव फलं यस्याः। टिपारी, भस्त्राकार फल; वह पौधा जिसका फल मशक जैसा होता है।

अजिनयोनि (सं० पु०) मृग, हरिण; आहू।

अजिनवासिन् (सं० त्रि०) चमड़ेकी पोशाक पहने वाला।

अजिनसन्ध (सं० पु०) चमड़ेकी सज्जाब बेचनेवाला।

अजिर (सं० क्ली०) अज-किरच्। अजिरशिशिरशिथिल-स्थिरस्फिरस्थविरखदिराः। उण् १।५४। १ उठान, टोला। २ चत्वर, चौतरा। ३ प्राङ्गण, आंगन। ४ वात, हवा। ५ विषय, ऐशो इशरत। ६ दर्दुर, मेंढ़क। ७ तनु, जिस्म। (त्रि०) ८ शीघ्रगामी, जल्द चलनेवाला।

अजिरं प्राङ्गणे वाते विषये दर्दुरे तनौ। (मेदिनी)

अजिरवती (सं० स्त्री०) एक नदी जिसपर श्रावस्ति नगर अवस्थित था।

अजिरशोचिस् (वै० पु०) १ देदीप्यमान् वस्तु, चमकीली चीज़। २ अग्नीषोम।

अजिरादि—अजिर आदौ येषाम्। जिनके आदिमें अजिर हो, अजिर वग़ैरह। अजिरादि गणमें निम्नलिखित शब्द पठित हैं,—अजिर, खदिर, पुलिन, हंस, कारण्डव और चक्रवाक।

अजिराधिराज (वै० पु०) देवताओंका राजा, मृत्यु।

अजिरीय (सं० त्रि०) न्यायालय-सम्बन्धीय, अदालतके मुतअल्लिक़।

अजिह्म (सं० त्रि०) न जिह्मः कुटिलः, नञ्-नत्। जहातिः सन्वदालोपश्च। उण् १।१४०। ऋजु, सरल, अवक्र; सीधा, सादा, साधारण।

अजिह्मग (सं० पु०) अजिह्मं सरलं गच्छति, अजिह्म-गम्-ड। १ वाण, तीर। २ आशुग, जल्द चलनेवाला। ३ खग, चिड़िया। ४ सरलगामी, सीधे जानेवाला।

अजिह्माग्र (सं० त्रि०) सीधी नोकवाला।

अजिह्व (सं० पु०) नास्ति जिह्वा यस्य, बहुव्री०। शेवायह्वजिह्वाग्रीवाप्वामीवाः। उण् १।१५४। लिहन्ति अनया जिह्वा। दर्दुर, मेंढ़क।

अजी (हिं० अव्य०) जी, ओजी; अरे।

अजीकव (सं० पु०-क्ली०) अजी-क-वा-क। अज्या शरक्षेपणेन कं ब्रह्माणं वाति प्रीणाति (वाचं)। हरधनु, महादेवका धनुष।

अजीगर्त (सं० पु०) अज्यै गमनाय गर्तमस्य। १ सर्प, सांप। २ शुनःशेफके पिता। ऐतरेय-ब्राह्मणमें लिखा है—

हरिश्चन्द्र नामक अनेक व्यक्ति निःसन्तान थे। इसलिये उन्होंने वरुण देवसे इस वरकी प्रार्थना की, कि देवप्रसादसे यदि उनके सन्तान उत्पन्न होती, तो वह प्रथम पुत्र वरुणको वलि देते। हरिश्चन्द्रके सन्तान हुई, जिसका उन्होंने रोहित नाम रखा। पहले वलि देनेकी प्रतिज्ञा हो चुकी थी, इसीसे वरुणने सन्तानको उनसे मांगा। किन्तु हरिश्चन्द्र अपने पुत्रकी मायामें ऐसे फंसे थे, कि वह उसे वलि दे न सके। रोहितने बड़े होनेपर वनको गमन किया। परन्तु वरुणका राग शान्त न हुआ, उन्होंने हरिश्चन्द्रको जराजीर्ण कर डाला। रोहितने यह विचार, कि देवताका क्रुद्ध रहना अच्छा नहीं, एक शत धेनु दे अजीगर्त नामक किसी व्यक्तिसे उनके पुत्र शुनःशेफको क्रय कर लिया। शुनःशेफ यूपकाष्ठसे बांध दिये गये थे, केवल खड्गाघातका ही विलम्ब था। ऐसे ही समय विश्वामित्रके परामर्शसे उन्होंने वरुण देवका स्तवकर मुक्ति पाई।

अजीज़ (अ० वि०) १ प्रिय, प्यारा। (पु०) २ मित्र, दोस्त। ३ सम्बन्धी, रिश्तेदार।

अजीटन (अं० Adjutantका अपभ्रंश) सेनापतिका सहायक कर्मचारी, अफ़सर फ़ौजका मददगार मुलाज़िम। एडजूटेण्ट।

अजीत—ताज़ा, खिला हुआ। अजित देखो।

अजीति (वै० स्त्री०) चिरवैभव, सदाबहारी।

अजीब (अ० वि०) अद्भुत, अनोखा।

अजीरन—अजीर्ण देखो।

अजीर्ण (सं० क्ली०) न-जॄय्-क्त भावे। अपाक, वायुगण्ड, अन्तर्वमि, पलताश्रय; बदहज़मी। इस रोगका विवरण अग्निमान्द्य, उदरामय, अतिसार और आमाशय शब्दमें देखो।

अजीर्णकण्टकरस (सं० पु०) अजीर्णपर दिया जानेवाला एक औषध।

अजीर्णजरण (सं० पु०) कर्चूर, कचूर। यह चट्टग्राममें अधिक उत्पन्न होता, जहांसे बङ्गाल भेजा जाता है। भारतके कितने ही बागोंमें इसकी विस्तर कृषि होती है। इसके चूर्णसे भी अबीर बनता है। यह सुगन्धित, उत्तेजक और वातघ्न है। पाकस्थलीको पुष्ट करने और चोट या मोचपर भी इसका प्रयोग किया जाता है। लोग मुंहका स्वाद बनानेको इसे चबाते और प्रसवके बाद कमज़ोर हो जानेसे शक्तिसञ्चारके लिये स्त्रियोंको खिलाते हैं। इसकी जड़ पीली हलदी जैसी होती और खानेसे कड़ू लगती है। लोग इसका द्रव भी तैयार करते हैं।

अजीर्णि (सं० स्त्री०) अजीर्ण, बदहज़मी।

अजीर्णिन्, अजीर्णी (सं० त्रि०) जिसके अजीर्ण हो गया हो, बदहज़मीका बीमार।

अजीव (सं० त्रि०) नास्ति जीवो जीवनं यस्य। १ मृत, अवसन्न; मरा हुआ, ठण्डा। २ जीव अर्थात् प्राणी भिन्न अन्य वस्तु, जानदारके सिवा दूसरी चीज़।

अजीवत (सं० त्रि०) १ मुर्दा। २ बेकार।

अजीवन (सं० क्ली०) १ मौत। २ बेकारी।

अजीवनि (सं० स्त्री०) न-जीव-अनि। आक्रोशे नञ्यनिः। पा ३।३।११२। १ शाप, बद्दुआ। २ जीवनाभाव, मौत।

अजीवित (सं० क्ली०) १ अनस्तित्व, नाहस्ती। २ मृत्यु, मौत।

अजुगुत—अजगुत देखो।

अजुगुप्सित (सं० त्रि०) न गुप निन्दायाम्-सन्-क्त। अनिन्दित, जिसे कोई बुरा न कहे।

अजुर, अजुर्य (वै० त्रि०) अज-कुरच्। वेगशील, बलवान्; ज़ोरदार, ताक़तवर।

अजुष्ट (वै० त्रि०) १ अभोग्य, भोग न करने योग्य। २ असन्तोषप्रद, नागवार।

अजुष्टि (वै० स्त्री०) अप्रसन्नता; नाखुशी।

अजू—अजी देखो।

अजूजा (हिं० पु०) बिज्जू-जैसा मुर्दाखोर जानवर, वह पशु जो बिज्जू तुल्य होता और मृतशरीरको भोजन करता है।

अजूबा (अ० वि०) १ अनोखा, अद्भुत। (पु०) २ विचित्र वस्तु, निराली चीज़।

अजूरा (हिं० वि०) १ न इकट्ठा किया हुआ, असंगृहीत। २ न मिला हुआ, अप्राप्त। ३ ग़ैर-हाज़िर, अनुपस्थित। ४ अलग, पृथक्; जुदा, भिन्न।

अजूह (हिं० पु०) युद्ध, जङ्ग; लड़ाई-भिड़ाई।

अजे—अजय देखो।

अजेइ—अजेय देखो।

अजेतव्य (सं० त्रि०) जो जीता न जा सके, अजेय।

अजेय (सं० त्रि०) न-जि-यत्। अजेतव्य, जयके अयोग्य, जो जीता जा न सके; फ़तहके नाक़ाबिल।

अजै—अजय देखो।

अजैकपाद (सं० पु०) अजस्य छागस्य पाद इव एक-पादो यस्य। १ रुद्रविशेष। २ शम्भु। ३ वीरभद्र। ४ पूर्वभाद्रपद नक्षत्र।

अजैडक (सं० क्ली०) भेड़-बकरा।

अजोग—अयोग्य देखो।

अजोता (हिं० पु०) चैत्रकी पूर्णमासी, जिस दिन बैल नहीं जुतते।

अजोरना—अंजोरना देखो।

अजोष (वै० त्रि०) असन्तुष्ट, नाराज़।

अजोष्य (वै० त्रि०) सन्तुष्ट होनेके अयोग्य, आसूदा होनेके नाक़ाबिल।

अजौं (हिं० क्रि०-वि०) आज भी, अभीतक; अद्यापि, अद्यावधि।

अज्जुका (सं० स्त्री०) अर्जयति या सा। अर्जि-उक्, पृ० रकारस्य जत्वम्। नाट्योक्त वेश्या, नाटककी रण्डी। नाट्यादन्यत्र प्रयोगे नास्तीत्यर्थः (महेश्वरः)।

अज्झटा (सं० स्त्री०) अजति दोषं क्षिपति, अज-क्विप्; झटति संहन्यते, अज-झट-अच्। भूम्या-मलकी, पानी आंवला। यह आसाम, बङ्गाल, ब्रह्म, बम्बई और पश्चिम-घाटका एक छोटा वृक्ष है, जिसकी कृषि साधारणतः भारतमें की जाती है। इसके बीजसे तेल निकलता, किन्तु उसका प्रयोग अज्ञात है। इसकी पत्तो और नई डालको लोग गरिष्ठ और कसैली बताते और संग्रहणी, धातुक्षीणता और क्षयरोगमें खिलाते हैं। पित्त बिगड़नेसे इसका फल भी लाभदायक होता है। महिसूरमें इसकी पत्ती बिका करती है। इसका फल बैंजनी बेर जैसा होता और वर्षाऋतुके समय ढाकेके बाज़ारमें बिकने आता है। आसाममें भी लोग फलको खाद्य-स्वरूप व्यवहार करते हैं। इसकी लकड़ी भारी, भूरी, और कड़ी होती और अरन्दा फिरनेसे ख़ूब चमकने लगती है।

अज्झल (सं० क्ली०) अञ्चति, क्विप्-अक्; हलति विलिखति, हल-अच्; कर्मधा०। ढाल, फलक।

अज्ञ (सं० त्रि०) न जानाति, ज्ञा-क। स्यादज्ञो जड़-मूर्खयोः (मेदिनी)। मूर्ख, ज्ञानशून्य; बेवक़ूफ़, बेइल्म। सहज विषय भिन्न कठिन तत्त्वमें जिसका बोध प्रविष्ट नहीं होता, प्रायः जो लिखना-पढ़ना नहीं जानता, समाजके मध्यमें जो अच्छी तरह बातचीत नहीं कर सकता और जो किसी विषयका सिद्धान्त करनेमें अक्षम है, उसे ही हम अज्ञ कहते हैं।

अज्ञका, अज्ञिका (सं० स्त्री०) बेसमझ स्त्री, भोली-भाली औरत।

अज्ञता (सं० स्त्री०) मूर्खता, बेवक़ूफ़ी।

अज्ञत्व (सं० क्ली०) बेसमझी, नादानी।

अज्ञात (सं० त्रि०) न-ज्ञा-क्त। १ अपरिचित, जाना हुआ नहीं। २ ज्ञानका अविषयीभूत, अक़्लसे बईद।

अज्ञातक (सं० त्रि०) बेजाना, नावाक़िफ़।

अज्ञातकुलशील (सं० त्रि०) जिसका कुल मालूम न हो, बेजाने-बूझे ख़ान्दानका।

अज्ञातकेत (वै० त्रि०) गुप्तभेदी, पोशीदा राज़वाला।

अज्ञातनामा (सं० त्रि०) जिसका नाम ज्ञात न हो, नामालूम इस्मका।

अज्ञातभुक्त (सं० त्रि०) बेजानी चीज़ खानेवाला।

अज्ञातयक्ष्म (वै० पु०) रोगविशेष, राजयक्ष्मा।

अज्ञातयौवना (सं० स्त्री०) यौवनका ज्ञान न रखनेवाली मुग्धा, चढ़ती जवानीको न पहचाननेवाली नई औरत।

अज्ञातवास (सं० त्रि०) जिसके रहनेकी जगह जानी न हो।

अज्ञातशील (सं० त्रि०) जिसकी चाल मालूम न हो, बेजाने चालचलनवाला।

अज्ञाति (सं० पु०) असम्बन्धीय पुरुष, बेरिश्ता और नाता।

अज्ञान (सं० त्रि०) नास्ति ज्ञानं यस्य। १ विना ज्ञानका, बेवकूफ़। (क्ली०) न ज्ञानम्। २ ज्ञानाभाव, बेवकूफ़ी। ३ विरुद्ध ज्ञान, उलटी समझ। श्रीमद्भागवतके मतसे सृष्टिकालमें ब्रह्माने पांच प्रकारके अज्ञानोंकी कल्पना की थी। यथा—तमः, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र। वेदान्तमतसे सत् और असत् समझनेके लिये जो त्रिगुणात्मक भावरूप ज्ञान है, उसके विरोधीको अज्ञान कहते हैं।

अज्ञानकृत (सं० त्रि०) बेजाने किया गया।

अज्ञानतस्, अज्ञानात् (सं० अव्य०) बेजाने-समझे, विना विचारे।

अज्ञानता (सं० स्त्री०) बेवकूफ़ी, मूर्खता; लाइल्मी, हिमाक़त, बेसमझी।

अज्ञानपन (हिं० पु०) बेवकूफ़ी, मूर्खता।

अज्ञानबन्धन (सं० क्ली०) मूर्खताका बंधाव, हिमाक़तकी जकड़।

अज्ञानिन्, अज्ञानी (सं० त्रि०) मूर्ख, बेवकूफ़।

अज्ञास् (वै० पु०) असम्बन्धीय पुरुष, जो रिश्तेदार न हो।

अज्ञेय (सं० त्रि०) ज्ञानके अयोग्य, अक़्लसे बाहर।

अज्म (वै० पु०) जङ्ग, युद्ध।

अज्मन् (सं० स्त्री०) अजति गच्छति स्वर्गं दानेन अनया, अज्-मनिन् करणे। जिसे दानकर लोग स्वर्ग जाते हैं; गो, गाय।

अज्यानि (वै० स्त्री०) नष्ट न होनेवाली प्रकृति।

अज्येष्ठ (सं० त्रि०) बड़ा या बुज़ुर्ग नहीं।

अज्येष्ठवृत्ति (सं० त्रि०) जिसका स्वभाव बड़ोंकासा न हो।

अज्यों—अजों देखो।

अज्र (वै० पु०) १ खेत। २ मैदान। (त्रि०) ३ तेज, चालाक।

अज्र्य (वै० त्रि०) १ खेतका। २ मैदानवाला।

अज्विन् (सं० त्रि०) तेज़, चालाक।

अझर (हिं० वि०) न झरनेवाला, पतनशून्य, न बरसनेवाला।

अझोरी (हिं० स्त्री०) थैली, अधारी।

अञ्चक (सं० क्ली०) नेत्र, आंख।

अञ्चति (सं० पु०-क्ली०) अनच्-अति। अञ्चेः को वा। उण् ४।६१। १ वायु, हवा। (त्रि०) २ गतिशील, चलनेवाला।

अञ्चल (सं० पु०) अञ्च-अलच्। आंचल, प्रान्तभाग, दामन। कपड़ेको जिस ओर बेल-बूटे और किनारीका अधिक सौन्दर्य रहता, उसे आंचल या अंचला कहते हैं। इस देशकी स्त्रियोंके वस्त्रोंमें ही आंचल होता है। पुरुषोंके वस्त्रोंका भी प्रान्तभाग है, परन्तु उसे आंचल नहीं कहते। वृद्धा गृहिणी स्त्रियोंके आंचल लथेरते-लथेरते चलनेको बड़ा कुलक्षण समझती हैं। स्त्रियोंको ऐसा विश्वास है, कि भूतप्रेतादि कपड़ेका आंचल पकड़ शरीरमें प्रवेश करते हैं।

अञ्चलका अपभ्रंश आंचल या अंचला है। प्रतिमाको सज्जित करते समय जो डङ्कका गहना देवीको छातीपर लटका दिया जाता, उसे भी आंचल कहते हैं। नया कपड़ा जब कितनी ही उड़िया, बङ्गाली और बिहारी स्त्रियां पहनतीं, तब आंचलका एक कोना हलदीसे रंग लेतीं और आंचलका कुछ सूत खोल और टुकड़े-टुकड़े कर कांटे, खोंचे, चोर और अग्नि प्रभृतिको समर्पण करती हैं। इसका तात्पर्य यह है, कि कांटा प्रभृति समस्त शत्रुओंका अंश दिया गया, इसलिये आगे कोई अनिष्ट न करेगा। जब भाग दे दिया गया, तब कांटा उसे क्यों छेदेगा या अग्नि ही उसे क्यों जलायेगी? कोई बात मनमें बनाई रखनेके लिये स्त्रियां आंचलके एक कोनेमें गांठ लगा देती हैं। बालकोंके माथेमें कपड़ेका आंचल लगनेसे अकल्याण होता है। इसलिये हठात् किसी शिशुके माथेमें आंचल छू जानेसे एकबार उसे मट्टीमें लथेरना पड़ता, जिससे सब दोष दूर हो जाता है। विवाहमें कन्याका आंचल और वरका दुपट्टा गांठ देकर जोड़ दिया जाता है।

अञ्चित (सं० त्रि०) अन्च-क्त। अञ्चेः पूजायाम्। पा ७।२।५३। १ पूजित, पूजा गया। २ आकुञ्चित, सिकुड़ा हुआ।

अञ्चितभ्रू (सं० स्त्री०) अञ्चिते कुटिले भ्रुवौ यस्याः। सुन्दरभ्रूयुक्त नारी, टेढ़ी भौंहोंवाली स्त्री।

अञ्जक (सं० पु०) १ यदुके पुत्र। २ विप्रचित्तके पुत्र।

अञ्जन (सं० क्ली०) अज्यतेऽनेन, अन्ज्-ल्युट् करणे। १ काजल। २ सुरमा। अञ्जन सौवीर, जाम्बल, तुत्थ, मयूर, श्रीकर, दर्विका और मेघनील—छः तरहका होता है।

"सौवीरं जाम्बलं तुत्थं मयूरं श्रीकरं तथा।
दर्विका मेघनीलञ्च अञ्जनानि भवन्ति षट्॥
स्वच्छदन्तु सौवीरं जाम्बलं प्रस्तरं तथा।
मयूरं श्रीकरं रत्नं मेघनीलञ्च तैजसम्॥
घृततैलादियोगेन ताम्रादौ दीपवह्निना।
यदञ्जनं जायते तु दर्विका परिकीर्तिता॥"
(कालिका-पुराण।)

अञ्जनमें अनेक गुण होते और यह कितने ही रोगोंको दूर करता है। भावप्रकाशमें लिखा है,—

"अथाञ्जनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्राश्रये मले।
पक्वलिङ्गेऽल्प शोथार्ति कण्डूपैच्छिल्य लक्षिते॥
मन्दघर्षाश्रु रोगेऽक्षिण प्रयोज्यं घनदूषिके।
लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा॥
अञ्जनं लेखनं तत्र कषायाम्लकटूषणैः।
रोपणं तिक्तकैर्द्रव्यैः स्वादुशीतैः प्रसादनं॥
दशाङ्गुला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना।
प्रशस्ता लेखने ताम्री रोपणे काल लोहजा॥
अङ्गुलावसु वर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने।
पिण्डो रसक्रिया चूर्णं त्रिधैवाञ्जन कल्पना॥
गुरौ मध्ये लघौ दोषे तां क्रमेण प्रयोजयेत्।
अथानुन्मीलयन् दृष्टो अन्तःसञ्चारयेच्छनैः॥
अञ्जिते वर्त्मनी किञ्चित् चालयेच्चैवमञ्जनं।
अपेतौषध सम्बन्धं निर्वृतं नयनं यदा॥
व्याधि दोषन्तु योग्याभिरद्भिः प्रक्षालयेत्तदा।
दक्षिणाङ्गुष्ठकेनाक्षि ततोकासं सवाससा॥
ऊर्द्ध्वं वर्त्मानि संगृह्य शोध्यं वामे न चेतरत्।
निशि स्वप्ने न मध्याह्नपानान्नोष्णागतस्त्रिभिः॥
अक्षि रोगाय दोषाः स्युर्वर्द्धितोत्पीड़ित द्रुताः।
प्रातः सायञ्च तच्छान्तिरभ्रकेऽतोऽञ्जयेत् सदा॥
कण्डूजातेऽञ्जनं तीक्ष्णं धूमं वा योजयेत् पुनः।
तीक्ष्णाञ्जनाभितप्ते तु चूर्णं प्रत्यञ्जनं हितं॥
नाञ्जयेद्भीत वमित विरक्ताशित वेगिते।
क्रुद्ध ज्वरित भ्रान्ताक्षि शिरोरुक् शोकजागरे॥
अदृष्टेऽर्के शिरः स्नाते पीतयोर्धूम मद्ययोः।
अजीर्णेऽग्न्यर्कसन्तप्ते दिवास्वप्ने पिपासिते॥
निर्वाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूर्द्धकाययोः।
काले साधारणे प्रातः सायं वोत्तानशायिनः॥
यवमाषमयीं पालीं नेत्रकोशाद्बहिः समां।
द्व्यङ्गुलोच्चां दृढ़ां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत्॥"

इस देशमें अनेक प्रकारका अञ्जन प्रचलित है। प्रसूतिवाली स्त्रियां सचराचर शिशुकी आंखमें जो अञ्जन लगातीं, वह सामान्य प्रणालीसे प्रस्तुत होता है। कजरौटेको कुछ तेल लगा प्रदीपकी शिखापर रखनेसे काजल पड़ता है। वही काजल अङ्गुलीसे मिला लेनेपर अञ्जन बन जाता है। शिशुकी आंखसे जल गिरने या रातको आंख झोप जानेसे चार प्रकारका अञ्जन बनाया जाता है। मकड़ेके जालेका चन्द्र जलाकर कजरौटेमें उत्तम रूपसे चूर्ण कर ले। फिर उसे अल्प तैल डाल प्रदीपकी शिखापर रखे। कुछ पपरी पड़नेपर अङ्गुलि द्वारा उसे खूब मल डाले। इस तरह जो अञ्जन बनता, उसे शिशुकी आंखमें लगानेसे जल गिरना बन्द हो जाता है। लहसुनकी गांठ या तम्बाकूका पत्ता भी अल्प दग्ध कर इसी तरह अञ्जन बनता है। पांगरा (Erythrina indica) वृक्षका बकला अल्प तैल डाल प्रदीपकी शिखापर रखनेसे कुछ पपरी पड़ती है। उसी पपरीको अङ्गुलि द्वारा मर्दन कर लेनेसे उत्तम अञ्जन बन जाता है।

पञ्जाब और युक्तप्रदेशमें सुरमेको सब लोग व्यवहार करते हैं। बङ्गालमें प्रसूतिवाली स्त्रियां शिशुकी आंखमें अञ्जन लगा देती हैं; सिवा इसके और किसी इच्छासे वह काजल नहीं पारतीं। किन्तु हिन्दूस्थानमें प्रायः सभी सुरमेको धारण करते हैं। सुरमा लगानेके लिये दिल्ली, इलाहाबाद

प्रभृति बड़े-बड़े शहरोंमें पेशेकश लोग भी रहते हैं। नापितकी छुरहरी जैसी उनके निकट एक-एक झोली होती है। झोलीके भीतर सुरमेकी शीशी, सीसेकी दो ढालू सलाइयां, सीसेके दो मोटे पत्ते, थोड़ासा इत्र, एक चिमटी और एक दर्पण—यह सब चीजें रखी जाती हैं। प्रातःकाल होनेसे यह पेशेकश झोली उठा धनवान् लोगोंके घर सुरमा लगाने जाते हैं। पहले यह सीसेकी दोनो ढालू सलाइयां एक-एक बार आंखके भीतर फेर देते हैं। सीसा धातु सहज ही शीतल होती, इसीसे सावधान रहकर आंखमें फेरनेसे खूब स्वस्तिबोध होता है। इसके बाद चिमटीसे माथेके बाल नोचकर आंखोंमें सुरमा लगा देते हैं। अञ्जन लगाके दोनो मोटे पत्ते कुछ देरतक आंख पर रखे रहते हैं। अन्तमें इत्र लगाकर मुंह देखनेको दर्पण देते हैं। यह सब पेशेकश प्रत्येक व्यक्तिके निकटसे दो-एक पैसा पाते हैं। मालूम होता, कि मुसलमान-सम्राटोंके राजत्वकालसे यह काम निकला है।

वैद्यशास्त्रमें अञ्जनधारणका विशेष उपकार लिखा गया है—

"नेत्रमञ्जनसंयोगात् भवत्यमलतारकम्।
दृष्टिर्निराकुला भाति निर्मलश्चन्द्रमा यथा॥"

नेत्रमें अञ्जनको धारण करनेसे पुतली परिष्कृत और दृष्टि निर्मल चन्द्रकी तरह निराकुल हो जाती है।

ज्वररोगीके अज्ञान हो जानेसे वैद्य नेत्रमें अञ्जन लगानेकी व्यवस्था बताते हैं—

"शिरीषवीज-गोमूत्र-कृष्णमरिचसैन्धवैः।
अञ्जनं स्यात् प्रबोधाय सरसोन-शिलावचैः॥"

शिरोषवोज, गोमूत्र, पीपल, कालीमिर्च, सैन्धव-लवण, रसून यानी लहसुन, मनःशिला और वचको एकत्र पेषण कर नेत्रमें आंजनेसे रोगीको चैतन्य प्राप्त होता है। आंख आनेसे (Opthalmia) ताम्रपात्र-में घृत डाल और उसे जल ढालते-ढालते मर्दन करनेसे एक प्रकारका अञ्जन बनता है। यह अञ्जन नेत्रमें लगानेसे अल्प-अल्प ज्वाला बढ़ती, किन्तु पीड़ाका कितना ही उपशम हो जाता है।

३ मसी, स्याही। ४ सौवीर। ५ मिश्रीकरण, मिलावट। ६ लेपन। ७ मालिन्य, मैलापन। ८ म्रक्षण। ९ गमन। १० व्यक्तीकरण। (पु०) ११ पश्चिम दिग्हस्ती। १२ अर्जुनवृक्ष। १३ काव्या-लङ्कारविशेष।

अलङ्कारशास्त्रका अञ्जनावृत्ति शक्य और लक्ष्य भिन्न अर्थबोधक शब्दशक्ति विशेष है। काव्यप्रकाशमें अञ्जन या अञ्जनावृत्तिका इसतरह लक्षण लिखा गया है—

"अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद्व्यापृतिरञ्जनम्॥"

'श्लोकादिके मध्यमें अनेक अर्थोंके बोधक शब्द रहते हैं; संयोग-विप्रयोगादि द्वारा उनका वाचकार्थ निर्णीत होनेके बाद जिस व्यापार द्वारा अवाच्य अर्थका बोध होता है, उसे अञ्जन या अञ्जनावृत्ति कहते हैं।' यथा—

"भद्रात्मनोदुरधिरोहतनोर्विशाल-
वंशोन्नतेः कृतशिलीमुखसंग्रहस्य।
यस्यानुपप्लुतगतेः परवारणस्य
दानाम्बुसेकसुभगः सततं करोऽभूत्॥"

'उत्तमस्वभाव, रिपुदलसे अनिर्जित, महद्वंशोद्भव, वाणधारी, उपद्रवहीन और शत्रुनिवारक राजाका हस्त सर्वदा दानजलसेक द्वारा सुन्दर बना था।'

इस जगह राजाके प्रकरण हेतु पहले राज-रूपका अर्थ बोध हुआ। फिर इन सकल शब्दोंके शक्ति-सहकारसे हस्तिरूप अर्थ भी जाना गया।

'भद्राख्य-जातीय, बड़े बांसके पेड़ जैसा ऊंचा, जिसके कारण दुरारोह-पृष्ठ, भ्रमरदल-परिवेष्टित और गभीरगति हस्तिश्रेष्ठका शुण्ड सर्वदा मदजलसेक द्वारा शोभित हुआ है।'

यह अञ्जनावृत्ति काव्यको व्यङ्ग्यार्थबोधक शक्ति है। इस शक्ति द्वारा तात्पर्यार्थका बोध होता है। जिन सकल शब्दों द्वारा श्लोकादि रचित होते, पहले उनके अर्थ द्वारा एक प्रकारका भाव घटा, पीछे फिर यदि

भिन्न अर्थ द्वारा अन्य भाव घटाया जा सके, तो शब्दकी इस शक्तिको अञ्जनावृत्ति कहते हैं।

१४ शाक्यवंशीय राजविशेष। यह राजा देवदहके पुत्र और देवदह नगरमें उत्पन्न हुए थे। जयसेनकी कन्या यशोधराका इनके साथ विवाह हुआ। इनके दो कन्या, माया और प्रजापति, और दो पुत्र दण्डपाणि और सुप्रबुद्ध रहे। (महावंश २ परि०।)

अञ्जनराजका राजत्वकाल अनुमानत: सन् ई०से ७११ वर्ष पूर्व था। पहले इन्होंने अञ्जनाब्द चलाया था।

"बुद्धो नाम्नाञ्जनसुत: कीकटेषु भविष्यति।" (भागवत १।३।२४)

१५ अब्द विशेष। अञ्जन नामक देवदहके महाराजने यह अब्द पहले प्रचलित किया था। ब्रह्मदेशीय धर्मपुस्तकमें उनका नाम 'इट्‌जेन' लिखा है। इस अब्दके ६८वें वर्ष बुद्धदेवने जन्मग्रहण किया। ब्रह्मवासी अपने ताज़ू मासवाले शुक्लपक्षके प्रथम शनिवारसे इस अब्दका पहला दिन गिनते हैं। अजातशत्रुके राजत्वकालमें यह अब्द लोप हो गया था। १४८ अञ्जनाब्दमें बुद्धदेवके निर्वाण बाद इसी नामका एक नया अब्द प्रचलित हुआ। इस नये अञ्जनाब्दके तीसरे वर्ष अजातशत्रुने वैशाली पर आक्रमण किया।

अञ्जनक (वै० पु०) अञ्जन शब्दयुक्त वेदमन्त्रभेद।

अञ्जनकर्म (सं० क्ली०) नेत्रप्रसाधन, काजल।

अञ्जनकेश (सं०पु०) दीप, चिराग़, लम्प, दिया।

अञ्जनकेशिका, अञ्जनकेशी (सं० स्त्री०) अञ्जनमिव कृष्णवर्ण: केशो यस्या:, बहुव्री०। नखी नामक एक प्रकारका गन्धद्रव्य। इसे लगानेसे बाल अत्यन्त कृष्णवर्ण हो जाते हैं। अमरके टीकाकार महेश्वरका कहना है, कि यह द्रव्य देखनेमें बहेड़ेके पत्ते जैसा होता है। इसे हनु, हट्टविलासिनी, धमनी, नली, शुक्ति, शङ्ख और खुर भी कहते हैं।

अञ्जनगाँव—बरार प्रदेशवाले अमरावती जिलेके अन्तर्गत दरियापुर ताल्लुक़का एक नगर। अक्षां० २१° १०´ उ०, और द्राघि० ७७° २०´ पू० के मध्यमें यह अवस्थित है। इसकी लोकसंख्या कोई पौने नौ हज़ार होगी। यह नगर सान्हर नदीके तीर बसा है। पान, रूईका कपड़ा और बांसकी टोकरी प्रभृति द्रव्यादि यहां प्रचुर परिमाणसे बिकते हैं। स्थानीय व्यवसायका यह एक केन्द्रस्थल है। द्वितीय महाराष्ट्रयुद्धके अवसान पर सन् १८०३ ई० की ३०वीं दिसम्बरको इस नगरमें दौलतराव सेंधिया और अंगरेज़ोंकी जो सन्धि हुई, उसके पत्रमें उस समयवाले बड़े लाट मारक्विस वेलेसलीके अनुमत्यनुसार जेनरल अर्थर वेलेसलीने दस्तखत किये थे।

अञ्जनगाँव-बाड़ी—बरारके अन्तर्गत अमरावती ज़िलेका एक नगर या क़सबा। यह अमरावतीसे पांच कोस दूर है। इसमें कोई तीन हज़ार आदमी रहते होंगे।

अञ्जनगिरि (सं० पु०) सितोदा नदीका पूर्वतीरस्थ पर्वतभेद। (लिङ्गपु० ४९।५०)

अञ्जनगुड़िका (सं० स्त्री०) विशूचिकाका औषध।

अञ्जनचय (सं० क्ली०) कालाञ्जन, स्रोतोञ्जन और रसाञ्जन।

अञ्जननामिका (सं० स्त्री०) नेत्ररोगान्तर्गत वर्त्मज रोगविशेष।

"दाहतोदवती ताम्रा पिड़का वर्त्मसम्भवा।
मृद्वी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साञ्जननामिका॥" (भावप्र०)

अञ्जनपर्वत—पूर्णोद या कास्पिअनके (Caspian) पास एक पहाड़। इसका दूसरा नाम कृष्णपर्वत है। यहां अनेक बृहदाकार सर्प देख पड़ते हैं। (वायुपुराण)। ईरानी इसे आल्हेम कहते हैं।

अञ्जनपर्वा—महावीर घटोत्कचके एक पुत्र। कुरुक्षेत्रके युद्धकालमें इनके साहस और वीरत्वकी बड़ी प्रशंसा थी। उसी समय द्रोणाचार्यके हाथों यह मारे गये। (महाभारत, द्रोणपर्व १५ अ०)

अञ्जनपेड़—कोङ्कण प्रदेशका एक नगर और दुर्ग, यह समुद्रके किनारे अवस्थित और बम्बई नगरसे ५० कोस दूर है। सन १८१८ ई०में यह अंगरेज़ी फ़ौजके हाथ समर्पण किया गया था। २ अर्जुनवृक्ष।

अञ्जनभैरव (सं० पु०) सन्निपात ज्वरका एक रस, जो आंखमें लगाया जाता है।

अञ्जन महाराज—वाराणसी काशीके एक विख्यात

राजा। इनके पुत्रका नाम पुण्यवन्त था। बौद्धोंके अवदान ग्रन्थमें पुण्यवन्तके सम्बन्धपर कितनी ही कहानियां लिखी हैं (महावस्त्ववदान)।

अञ्जनयुग्म (सं० क्लो०) स्रोतोञ्जन और रसाञ्जन।

अञ्जनरस (सं० पु०) सन्निपातज्वरका नास।

अञ्जनविधि (सं० पु०) नेत्रप्रसाधन-क्रियाविशेष।

अञ्जनवेल—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत रत्नागिरि जिलेका एक बन्दर। अक्षां १७° ३३´ उ० और द्राघि० ७३° १३´ पू०के मध्यमें यह अवस्थित है। एक छोटी खाड़ीके पास अञ्जनवेल नामक नदी किनारे यह बसा है। इस बन्दरसे प्रति वत्सर प्रायः साठ लाख रुपयेके द्रव्यादि भेजे और प्रायः पैंतालीस लाख रुपयेके द्रव्यादि मंगाये जाते हैं।

अञ्जनशलाका (सं० स्त्री०) अञ्जनलेपनार्थं शलाका मध्यपदलोपि-कर्मधा०। चक्षुमें अञ्जन लगानेकी शलाका, आंखमें सुरमा डालनेकी सलाई। यह प्रायः सीसा धातुसे निर्मित और गुणसूची जैसी मोटी और बड़ी होती, किन्तु दोनो मुखों पर ढालू रहती है।

अञ्जना (सं० स्त्री०) अञ्जन-आप्। १ वानरी-विशेष, हनूमान्की माता।

यह सुमेरु पर्व्वतके निकटस्थ प्रदेशवाले अधिपति केशरी वानरकी पत्नी थीं। इनके गर्भ और पवनके औरससे हनूमान्का जन्म हुआ। अञ्जना बड़ी धीर वीर नारी थीं। कहते हैं, कि हनूमान् लङ्काविजय होनेके बाद जब फिर मातासे मिलने गये, तब अञ्जनाने उन्हें तिरस्कार कर कहा,—'हनू! तुझे धिक्कार है। तूने मेरा पुत्र होकर अतिसामान्य रावणके साथ युद्ध किया! दश नखसे रावणके दश मुण्ड नोच रामको उपहार ला न सका! सीताके साथ अशोकवनको उठा लानेमें असमर्थ हुआ! समुद्र क्यों बांधा गया? तेरे निज शरीर विस्तार कर सेतुस्वरूप बन जानेसे क्या काम न चलता? तुझे धिक्कार, तू मेरा कुपुत्र है।'

२ काश्मीरकी एक राणी, जो तोरमाणकी पत्नी और वज्रेन्द्रकी कन्या थीं। इनके पुत्रका नाम प्रवरसेन रहा। (राजतरङ्गिणी)

३ नदीविशेष। कृष्णनगर जिलेके अन्तर्गत बारुईहुदेसे दक्षिण और दोगाछिया और हंसखालीसे उत्तर यह नदी बही है। यात्रापुरके निकट अञ्जना नदी द्विधा बनी और आगे बढ़कर उभय धारा मामजोयानी ग्रामके निकटसे दक्षिण पहुंचीं और अन्तमें हरधामसे उत्तर होकर चाकदहके निकट गङ्गामें मिल गई हैं। राजा रुद्रके समय यह नदी बड़ी रहती थी।

४ दिग्हस्तिनी। ५ आंखकी फुन्सी। ६ दुरङ्गी छिपकली। ७ धान्य-विशेष।

अञ्जनागिरि (सं० पु०) अञ्जनवर्णो गिरिः पर्वतः। वनगिर्योः संज्ञायां कोटरकिंशुलकादीनाम्। पा ६।३।११७। नीलपर्वत।

अञ्जनादि (सं० पु०) द्रव्यसमूह। अञ्जन, रसाञ्जन, नागपुष्प, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, नलद, नलिन, केशर और मधूक। सुश्रुतके मतमें इस द्रव्यका गुण रक्तपित्त, विष और दाहनाशक है।

अञ्जनाद्रि (सं० पु०) अञ्जनमिव कृष्णवर्णः अद्रिः। नीलपर्वत।

अञ्जनाधिका, अञ्जनिका (सं० स्त्री०) अञ्जना-दधिका कृष्णवर्णत्वात् ५-तत्। १ अञ्जनिका, हलिनी, हलाहल। २ क्षुद्र मूषिका, छोटा चूहा।

अञ्जनानन्दन (सं० पु०) अञ्जनाके नन्दन, हनूमान्।

अञ्जनाम्भ (सं० क्लो०) अञ्जनका पानी।

अञ्जनावली (सं० स्त्री०) अञ्जन-मतुप्, मकारस्य वः। अञ्जनं विद्यते अस्याः अधिककृष्णवर्णत्वात्। १ ईशानकोणकी दिग्हस्तिनी, सुप्रतीक नामक हस्तिकी भार्या। कालाञ्जनी वृक्ष, कुटकी।

अञ्जनिक (सं० त्रि) १ अञ्जनसम्बन्धी। स्त्रियां टाप् अञ्जनिका। २ चूहा। ३ छिपकली।

अञ्जनी (सं० स्त्री०) अन्ज्-ल्युट् कर्मणि, ङीप्। अज्यन्ते चन्दनकुङ्कुमादिभिरसौ। १ कुङ्कुमादि अनु-लिप्त नारी। २ कालाञ्जनी वृक्ष, कुटकी। ३ वानरी-विशेष, हनूमान्की माता। ४ माया। ५ बिलनी, आंखकी फुन्सी।

अञ्जनेरी (अञ्जना-गिरि)—बम्बई प्रेसिडेन्सीका एक पर्वत। यह नासिकसे दक्षिण-पश्चिम साढ़े सात

कोसपर अवस्थित है। पर्वतके शिखरमें एक देवीमन्दिर है और इसमें कितने ही देवमन्दिरोंका भग्नावशेष देख पड़ता है। एक टूटे मन्दिरपर शक १०१६ में खोदी गई सेन्नचन्द्र नामक किसी यादवराजकी एक लिपि देख पड़ती है।

अञ्जर—कच्छ प्रदेशका एक छोटा ज़िला। सन् १८१६ ई०में कच्छराजने इसे ईष्ट इण्डिया-कम्पनीको दे दिया था। अब यह बम्बई-गवर्नमेण्टके तत्त्वावधानमें शासित होता है। यहां रत्नाल नामक एक ग्राम और रोहर नामक एक बन्दर है, किन्तु यह दोनो भूभाग जलशून्य हैं।

२ अञ्जर जिलेका प्रधान नगर। यह पर्वतके किनारे बना और कच्छोपसागरसे कोई पांच कोस दूर है।

अञ्जल—अञ्जलि देखो।

अञ्जलि (सं० पु०) अञ्ज-अलिच्। अञ्जे रलिच्। उण् ४।२। १ हस्तसम्पुट, अंजुरी। २ परिमाण विशेष, कुड़व।

अञ्जलिका (सं० स्त्री०) अञ्जलिरिव कायति प्रकाशते—कै-क-टाप्। १ बालमूषिका, मुसरिया। २ लज्जालु, लाजवन्ती। यह भारतके उष्णप्रधान देशोंमें अधिक उत्पन्न होती है। दाक्षिणात्यमें इसकी जड़ पेटके दर्दकी औषध समझी जाती है। कुरुमण्डलमें अर्श और भगन्दर होनेसे इसकी पत्तीका चूर्ण दूधके साथ सवेरे खिलाया जाता है। पञ्जाबमें भी लोग इस औषधको इसी प्रकार सेवन करते हैं। रक्तपित्त बिगड़नेपर मुसलमान हकीमोंने इसे पाचक, स्वास्थ्यवर्द्धक और लाभदायक बताया है। भगन्दरके क्षतोंपर इसका रस भी लगाया जाता है। लोग इसकी पत्ती टोने-टटकेसे तोड़ते हैं। पहले सप्ताह यह समस्त पित्तरोग और ज्वर, दूसरे सप्ताह अर्श, भगन्दर आदि और तीसरे सप्ताह कुष्ठादिको मिटा देती है। कोङ्कण प्रान्तमें वृषणवृद्धिपर इसकी पत्तीका पुलटिस बांधते और इसके रस और घोड़ेके पेशावसे अञ्जन बनाते, जो आंखें उठनेपर लगाया जाता है। बहुत खांसी आनेसे इसकी जड़ गलेमें यन्त्रकी भांति बांधते हैं। ३ जटामांसी।

अञ्जलिकारिका (सं० स्त्री०) द्वित्रिभ्यामञ्जलेः। पा ५।४।१०२। लज्जालु लता, लज्जावती लता, पुत्तलिका, लाजवन्ती। अञ्जलिका देखो। २ वराहक्रान्ता।

अञ्जलिगत (सं० त्रि०) अञ्जलिके भीतर, अञ्जलिमें रखा हुआ।

अञ्जलिनी (सं० स्त्री०) लज्जालुका, लाजवन्ती।

अञ्जलिपुट (सं० पु०) अञ्जलिका पुट या गड्डा।

अञ्जलिबद्ध (सं० त्रि०) अञ्जलि बांधे या हाथ जोड़े हुए, विनम्र।

अञ्जस् (सं० क्ली०) अन्जु गतौ मिश्रणे च—असुन्। ओजःसहोम्भस्तमसस्तृतीयायाः। पा ६।३।३।॥ अञ्जस उपसंख्यानम्। (कात्या० वार्त्तिक) १ वेग, बल; ज़ोर, ताक़त। २ औचित्य, मुनासिब बात।

अञ्जस (सं० त्रि०) अन्ज-असच्। सरल, ऋजु, अवक्र; सीधा, टेढ़ा नहीं। स्त्रियां ङीप्। स्वर्णदीभेद।

अञ्जसा (सं० अव्य०) १ द्रुत, शीघ्र; जल्द, फ़ौरन। २ यथार्थमें, प्रकृतसे। अञ्जसाशब्द आख्यातस्तत्त्वतूर्णार्थयोरपि। (मेदिनी)। नाञ्जसा निगदितुं विभक्तिभिः। माघ १४।२३। अथवा अञ्जसा इति तृतीयान्तप्रतिरूपकमव्ययं तत्त्वार्थे। (मल्लिनाथ)

अञ्जसायन (सं० त्रि०) सीधा जानेवाला।

अञ्जसीन (वै० त्रि०) सीधा जानेवाला।

अञ्जस्पा (वै० त्रि०) सोमरसको पीते हुए।

अञ्जःसव (सं० पु०) सोमका शीघ्र साधन, सोमरसकी जल्द तय्यारी।

अञ्जार—बम्बई प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत कच्छप्रदेशका एक नगर। अक्षा° २३° ६´ उ० और द्राघि० ७०° १०´ पू०के मध्यमें यह अवस्थित है। इसकी लोकसंख्या अठारह हज़ारसे कुछ ज़्यादा है। नगरके बाहर एक मन्दिर देख पड़ता है। अजमेरवाले चौहानराजके भ्राताकी अश्वारूढ़ मूर्ति इस मन्दिरमें विद्यमान है। सन् ई०वाले ८वें शताब्दके प्रारम्भमें अजयपाल, राज्यसे विताड़ित हो इस स्थानमें आ पहुंचे और सन्यासधर्म्म अवलम्बनपूर्वक रहे थे। उन्हींके नामसे अञ्जार नामकी उत्पत्ति है। इस मन्दिरके व्ययनिर्वाहार्थ कितनी ही देवोत्तर भूमि लगी है।

बहुतसे साधु-सन्त आजकल इस मन्दिरके सान्निध्यमें रहा करते हैं। इन सब साधु-सन्तोंमें जो प्रधान होते, उन्हें 'पीर' कहते हैं। सन् १८१६ ई० में कच्छ प्रदेशके रावने ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीको अञ्जार नगर और अञ्जार ज़िला सौंपा था। इसके बाद सन् १८२२ ई०में नई सन्धिके अनुसार कच्छके राव वात्सरिक अट्ठासी हज़ार रुपये कर देनेको राज़ी हुए और अञ्जार फिर उनको दे दिया गया।

अञ्जि (सं० पु०) अन्ज-इन् करणे, अज्यते अनेन। १ प्रेषणिक, प्रेरक। २ तिलक।

३ मध्यप्रदेशके अन्तर्गत वर्द्धा ज़िलेका एक नगर। यह धामा नदीके तीर वर्द्धा नगरसे साढ़े चार कोस उत्तर-पश्चिम अवस्थित है। महाराष्ट्रोंके अधीन यह एक प्रसिद्ध नगर था। मट्टीका जो क़िला अभी यहां वर्तमान है, उसे महाराष्ट्रोंने ही बनवाया था। इस नगरमें कोई ढाई हज़ार लोग रहते हैं। कुछ जुलाहोंके सिवा अधिकांश नगरवासी कृषि-जीवी हैं।

अञ्जिक, अञ्जक—१ यदुके एक पुत्र। (हरिवंश) २ विप्र-चित्तिके पुत्र। (विष्णुपु०)

अञ्जित (सं० त्रि०) अञ्जन लगा हुआ, अंजा।

अञ्जिद्वीप (अञ्जद्वीप)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके उत्तर-कनाडा ज़िलेका एक क्षुद्र द्वीप या छोटा टापू। इसका आयतन पाव वर्गकोस और यह उत्तर-कनाड़ेसे एक कोस दूर है। पहले यह पोर्तुगीजों-के अधिकारमें था। सन् १६६२ ई०में अंगरेज नौ-सेनापति अब्राहिम शिपमैनने बम्बई नगरका अधिकार न पा, पांच सौ लोगोंके साथ इसी स्थानमें आश्रय-ग्रहण किया। यहांका जलवायु अत्यन्त अस्वास्थ्यकर है। इसका वहिर्भाग अनुर्वर और प्रस्तरमय; किन्तु पार्श्वदिक् देखनेमें बहुत ही मनोहर है, जिस ओर सुदृढ़ प्राचीर और दुर्ग भी बने हैं। उत्तर-पश्चिममें हवाका प्रवाह होनेसे यहां जहाज़ निरापद रह सकते हैं। गोआ नगर यहांसे साढ़े पचीस कोस उत्तर-पूर्व है। यहां नारियल और दूसरे फलोंके उत्पन्न करनेवाले रहते हैं। सन् १९०१ ई० की मनुष्य गणनामें यहां केवल ४९ लोग थे।

अञ्जिव (वै० त्रि०) चिकना। (अथर्व० ८।६।१९)

अञ्जिमत् (वै० त्रि०) १ रंगीला। २ चमकीला। ३ संवारा। (ऋक्० ५।५७।५)

अञ्जिष्ठ (सं० पु०) अन्ज-इष्णुच्। ऋतन्यञ्जीति। उण् ४।२। सूर्य।

अञ्जिसक्थ (वै० त्रि०) पुण्ड्रोरुविशिष्ट। (वाजस० २४।४)

अञ्जिहिषा (सं० स्त्री०) गमनकी इच्छा, जानेकी मरज़ी।

अञ्जी (सं० स्त्री०) अञ्ज-ङीप् विकल्पे। १ पेषण-यन्त्र, चक्की। २ मङ्गल।

अञ्जीर (सं० पु०-क्ली०) अन्ज-ईरन्। काकोदुम्बरिका फल, गूलर जैसा एक फल। अंजीरको (Ficus carica) काबुल प्रभृति देशोंसे आमदनी होती है। पञ्जाब और युक्तप्रदेशमें भी अंजीर उत्पन्न होता है। यह शीतल और मृदुविरेचक है। स्वभावतः जिन्हें कोष्ठबद्ध होता, अंजीर उनके पक्षमें हितकर है। अंगरेज़ीमें इसे फिगस् (Figs) कहते हैं।

बङ्गाला—अञ्जीर। पारसी—आञ्जीर, आँजिर। तुरकी—आञ्जीर। आरवी—तीन्, एल-कैर्मस्। तामिल—सिमाइ-आट्टाइ। मलय—बुया आर। रूष—डइन्नु या जागडि। ओलन्दाज—भाइगेन। दिनेमार—फिगेन। सुइस—फिकन्। स्पेन—ह्विगंस्। पोल—फिकि। पोर्तु—फिगस्। अल्—फिइगेन्। इतालो—फिचि। लाटिन—फिकास् क्यारिका। फरासी—फिगुस् (Figues.) जर्म्मण—फिग् (Feige.)

युरोपके वाणिज्यक्षेत्रमें अञ्जीर एक प्रसिद्ध फल है। इसका वृक्ष रूम, सिसिली, गिनी, स्पेन, पोर्तूगाल, साइप्रस, माल्टा, ईरान प्रभृति स्थानोंमें उत्पन्न होता है।

अञ्जीरका पेड़ कोई ६।७ हात ऊंचा होता और इसके पत्ते असमान रहते, जो थोड़े ही आघातसे गिर जाते हैं। पुष्प प्रायः ही मुखको ओर रहते और अल्प परिमाणमें उत्पन्न होते हैं। पकनेके साथ-साथ पुष्पकोष बढ़ा करता और उसके साथ ही वीजपूर्ण कई वीजकोष निकल आवे हैं।

अञ्जीर दो-तीन तरहका देख पड़ता है। फ़ारोज-

पुरके उद्भिद्-उद्यानमें नीचे लिखा दो तरहका अञ्जीर विद्यमान है—

पहलेमें ईरानके छोटे अञ्जीर जैसा फल लगता है। यह खानेमें अत्यन्त सुस्वादु और मुखप्रिय है। वृक्ष बहुत सबलकाय और मोटा होता है। अन्य वृक्ष कानपुरका है। इसका फल अत्यन्त सुन्दर और आंवले-जैसा बड़ा होता है। पकनेसे यह गहरा बैंजनी बन जाता है।

शीतकाल आनेपर उपरोक्त दोनो प्रकारके वृक्षोंमें पत्ते नहीं रहते। फाल्गुन माससे कोंपल फूटने लगती, उसी समय कली भी निकलती है। ग्रीष्म-ऋतुके मध्यमें फल परिपक्व हो जाता है। इसी समय वृक्षमें नये फल आते, किन्तु वह फिर पकते नहीं। भारतवर्षके बीच पञ्जाब अञ्चलमें अञ्जीर अधिक होता, जो दूसरी श्रेणीके अञ्जीरसे अनेकांशमें श्रेष्ठ है। वहांका अञ्जीर दो तरहका - काला और सफ़ेद होता है। दाक्षिणात्यमें भी अञ्जीर उपजता है। वहांके बाजारोंमें ढेरका ढेर अञ्जीर बिका करता है।

जहां अञ्जीर उपजता है, वहां दूसरा वृक्ष अधिक नहीं लगता। एक-एक अञ्जीरफल वज़नमें कोई एक छटांक तक होता है। इस फलको बहुकालसे मनुष्य व्यवहार करते आये हैं। यहूदियोंकी प्रधान धर्मपुस्तकमें अञ्जीर शब्द वारंवार लिखा गया है। हिरोदोतासकी पुस्तक पढ़नेसे मालूम होता है, कि कायरुसके समय ईरान देशमें अञ्जीर प्रचलित न था। किन्तु ईजिया और लिवाण्टके निकटस्थ प्रदेशसमूहमें बहुकाल पूर्वसे इसका प्रचलन था। यूनानियोंको पहले केरियासे अञ्जीर मिला, इसीसे वह इसे 'केरिया' कहते हैं। प्रथमत: हेलेतिकोंने इसकी कृषि बढ़ाई थी। प्लिनीने नाना प्रकारके अञ्जीरका उल्लेख किया है। रोमके विलासी लोग इवुसासके अञ्जीरको अच्छा कहते थे। पहले इटली देशके क्रीतदास यानी गुलाम और किसान ही अधिक अञ्जीर खाते थे। रोमियोंके पुराण-ग्रन्थमें अञ्जीर बहुत शुद्ध और पवित्र फल बताया गया है। यह रोमके देवता वाक्काशको पूजामें चढ़ता था। प्राचीन कालसे अद्यावधि तुरुष्क अञ्जीरके लिये प्रसिद्ध होता आया है। तुरुष्ककी राजधानी स्मिरना नगरमें अञ्जीरकी बड़ी-बड़ी दुकानें मौजूद हैं। विदेशमें अञ्जीर भेजनेको स्मिरनाके लोग बड़ी मिहनत और ख़ूबसूरतीसे पेटियां बनाते हैं। उनके दूसरे कामको देखते इस काममें आडम्बर अधिक रहता है। रूमके धनी लोग भी बड़े-बड़े भोजोंमें अञ्जीरको व्यवहार करते हैं।

आजकल भूमध्यस्थ-सागरके उपकूलस्थ देशसमूहमें अञ्जीरकी खेती की जाती है। एशिआ-माइनर, स्पेन, पोर्तूगाल और दक्षिण फ्रान्ससे राशि-राशि अञ्जीर नाना देशोंको भेजे जाते है। इसमें तुरुष्कका अञ्जीर ही सबसे अच्छा है।

युरोपवाले सभी देशोंके लोग अञ्जीर खाते हैं। विलायतमें दरिद्र लोग अञ्जीरके साथ बादाम मिला एक प्रकारका पिष्टक बनाते हैं। यह पिष्टक विलायतमें राह-राह बिकते देख पड़ता है। पके अञ्जीरकी शराब भी बनाई जाती, जिसे प्राचीन रूमी साइसिटिस् (Sycites) नामसे व्यवहार करते थे। युरोपीय और तुरुस्कदेशीय चिकित्सकोंके मतसे अञ्जीरका गुण भेदक है; किन्तु कभी-कभी यह उदरव्यथा और रूक्षता उत्पादन करता है। इसके क्वाथका सारभाग शीतल और मृदु-विरेचक होता है। उपरोक्त चिकित्सक निम्नलिखित रोगोंमें अञ्जीरको प्रयोग करते हैं,—

१। स्वभावत: अलसक (constipation) यानी कब्ज़ होनेसे सूखा अञ्जीर बहुत उपकारी है।

२। स्फोटक यानी फोड़ा या व्रण होनेसे अञ्जीरको पका पुलटिस बांधा जाता है।

३। फेफड़े और मूत्राशयकी पीड़ामें अञ्जीरका क्वाथ अतिशय शीतल और विरेचक होता है।

अञ्जीर—एक नगर जो बलूचिस्थान—खिलातसे सोनमियानी जानेकी राहमें मूला नदीको एक पय:प्रणाली किनारे अवस्थित और खिलातसे ३० कोस दूर है। पहले यहां जीह्री जातिके बलूची रहते थे। सन १८३९ ई०के शेषभागमें अंगरेजोंके सेनापति विलशा-

यर, खि़लातके अवरोध बाद इस स्थानको अधिकृत कर गाण्डव नामक गिरिपथसे सिन्धुदेशको गये थे। यहां दो बड़ी राहें हैं—एक सोनमियानी और एक मूला नदीकी ओर चली गई है। अञ्जीरसे कुछ दूर दक्षिण एक बड़े क़िलेकी चहारदीवारीका टूटा-फूटा हिस्सा देख पड़ता है। यहां पौष और माघमें इतना शीत होता, कि बरतनमें रखा पानीतक जम जाता है।

अञ्जुनाल—दाक्षिणात्यके सलेम ज़िलेकी पल्लियोंमें मृत्युके पांचवें दिन श्राद्धादि क्रिया सम्पन्न करनेवाले लोग। इस शब्दका अर्थ पञ्चम दिन है।

अञ्जेङ्ग (अञ्जितेङ्ग)—तिरुवाङ्कोड़ राज्यका एक नगर। यह समुद्र किनारे बसा है। इसकी दोनो ओर गृह बिलकुल समान्तराल भावसे बनाये गये हैं। यहांके अधिवासी अधिकांश ईसाई हैं। नारियल वृक्ष खूब उत्पन्न होता है। गरीब आदमी नारियलकी गिरी बेच दिन काटते हैं। सन् १६८४ ई०में अञ्जितेङ्गकी राणीने ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीको अनुमति दी थी, कि वह यहां आबादी बढ़ाती और एक कोठी बनवाती; किन्तु सन् १८२३ ई० में अधिक हानि होनेसे सब काम बिगड़ गया। यह नगर मन्द्राजसे १६५ कोस दक्षिण-पश्चिम और कन्नूरसे १२० कोस दक्षिण-पूर्व है।

अट—गति, भ्वा०, पर०; सकं सेट्। गति अर्थकी एक धातु।

अट, (अटि)—इदित्। भ्वा०, आ०; सकं सेट्, भ्वादि गणकी एक धातु।

अटक, अटकन (हिं० स्त्री०) १ प्रतिबन्धक, रोक-टोक। २ ज़रूरत, आवश्यकता।

३ एक ज़िला। अटक ज़िला पञ्जाबके रावलपिण्डी डिविजनमें ४०२२ वर्ग मीलपर फैला है। इसकी पश्चिम और उत्तर-पश्चिम ओर सिन्धुनद बहता है। आकृतिमें यह विषम रूपसे अण्डाकार है, और इसके उत्तर समतल भूमि और दक्षिण कालाचित्ता पहाड़ वर्तमान है। इसका मध्यभाग समतल है, जिसके उत्तरकी भूमि पथरीली; किन्तु दक्षिणमें पूर्व और पश्चिमकी सील नदियां इसे हरा भरा बनाती हैं। ग्रीष्मऋतुमें ताप लोगोंको अधिक सताता, रेतीली भूमि धूप पड़नेसे भट्ठी जैसी जलने लगती है। ओहिन्दके पास महमूद गज़नवीने अनङ्गपालको रणमें विजय किया था। सन् १९०४ ई०में० यह ज़िला बना। इसकी आबादी कोई पौने पांच लाख होगी, जिसमें सैकड़े पीछे नव्वेसे ज्यादा मुसलमान हैं। यहां पञ्जाबी और पश्तो दो भाषा बोली जाती हैं। इस ज़िलेमें अधिकांश मनुष्य कृषिजीवी हैं। पशु अच्छे देख नहीं पड़ते। फतेहजङ्ग और पिण्डीघेब तहसीलमें घोड़े उत्पन्न करनेका खूब व्यवसाय चलता है। गरकावे नगरमें सङ्गेमरमरका काम अच्छा किया जाता है। खेरीमूरत पहाड़ियोंमें कच्चे पत्थरका कोयला प्रायः मिलता है। फतेहजङ्गके पास मट्टीका तेल भी निकलता है। सिन्धु, सोहन और दूसरे नदोंका रेत धोनेसे सोना हाथ लग जाता है। चूना और खड़ियामट्टी—दोनो वस्तु अधित्यकासे उत्पन्न होती हैं। व्यापारका चमत्कार विशेष नहीं। नर्थ-वेष्टर्न-रेलवेकी प्रधान लाइन इस ज़िलेमें चलती है। प्रधान सड़कें तीन ही हैं। सिन्धु-नदपर अटकका पुल बंधा है।

४ अटकज़िलेका एक तहसील—इसका क्षेत्रफल ६५१ वर्गमील है। इसमें हसन-अब्दाल नामक एक ऐतिहासिक स्थान है।

५ अटकनगर—यह नर्थ-वेष्टर्न रेलवे और ग्राण्ड-ट्रङ्करोडपर अवस्थित है। इसमें एक क़िला बना हुआ है, जहां तोपखाना और पैदल फ़ौज रहती है। अनुमानतः सिकन्दर बादशाहने अटकसे ऊपर आठ कोस ओहिन्दमें नावोंके पुलपर सिन्धु नदको पार किया था। सन् १५८१ ई०में अकबरने यह क़िला अपने साम्राज्यको काबुलके सिपहसालार हकीम मिरज़ाके आक्रमणोंसे रक्षित रखनेको बनवाया। सन् १८१२ ई० में रणजित् सिंहने इस क़िलेपर छापा मारा। पहले सिख-युद्धमें यह अंगरेजोंके हाथ आया, किन्तु दूसरेमें निकल गया। अंगरेजोंने

दूसरा-सिख-युद्ध समाप्त होनेपर इसका अधिकार पाया है।

अटकन-बटकन (हिं० पु०) एक प्रकारका खेल, क्रीड़ाविशेष। हिन्दुस्थानी लड़के इस खेलमें निम्नलिखित वाक्य कहते और एक-एक शब्दपर एक-एक लड़केकी ओर सङ्केत करते जाते हैं; जिस लड़केपर उचका शब्द जाकर पड़ता, वही चोर समझा जाता और उसीको दांव देना पता है,—

"अड्डङ्ग भड्डङ्ग जड़ी जवरङ्ग निहाल कोट धरे धर काना।
सिरकी चद्दर लिव सुरद्दर, पान फल चोर शाह उचका॥"

अटकना (हिं० क्रि०) १ चलते-चलते रुक जाना। २ ठहरना। ३ प्रीति लगाना, इश्क़ करना। ४ झगड़ा मचाना, विवाद बढ़ाना।

अटकर, अटकल (हिं० स्त्री०) अन्दाज़, अनुमान।

अटकलपच्चू (हिं० वि०) आनुमानिक, अन्दाज़ी। (पु०) २ अनुमान, अन्दाज़। (क्रि० वि०) ३ आनुमानिक रूपसे, अन्दाज़न।

अटका (हिं० पु०) १ वह भात जो जगन्नाथजीको समर्पण किया और सुखाकर दूसरे देशोंको प्रसाद स्वरूप पहुंचाया जाता है। (वि०) २ रुका, ठहरा।

अटकाना (हिं० क्रि०) १ गतिरोध करना, रोकना। २ संयुक्त करना, लगाना। ३ झमेलमें डालना, फांसना। ४ उठा रखना, मुलतवी करना।

अटकाव (हिं० पु०) ठहराव, प्रतिबन्ध।

अटखट (हिं० वि०) ख़राब, वाहियात; छिन्न-भिन्न, टूटा-फूटा।

अटखेली (हिं० स्त्री०) १ खेल-कूद, क्रीड़ा-कौतुक। २ मन्दगति, झूमती चाल।

अटन (सं० क्ली०) अट-ल्युट् भावे। १ गमन, रवानगी। २ भ्रमण, हवाख़ोरी।

अटना (हिं० क्रि०) १ भ्रमण करना, घूमना, राह चलना, यात्रापर जाना। २ पूर्ण होना, यथेष्ट निकलना। ३ रोकना, छिपाना।

अटनि, अटनी (सं० स्त्री०) अट-अनि, पक्षे ङीप्। धनुषका अग्रभाग, जहां गुण बंधता है, कमानका अगला हिस्सा, जहां रोदा चढ़ाया जाता है।

अटपट (हिं० वि०) १ वक्र, टेढ़ा। २ भयङ्कर, जिससे डर हो। ३ दुस्तर, मुश्किल। ४ गूढ़, छिपा। ५ गहन, गहरा। ६ अद्भुत, अनोखा।

अटपटाना (हिं० क्रि०) १ इधर-उधर होना, विपर्यय पड़ना। २ सकुचाना, निःसाहस रहना।

अटपटी (हिं० वि०) १ इधर-उधरकी, विपर्यस्त। २ सङ्कोच-भरी, सङ्कुचित।

अटपाडी—बम्बई प्रान्तके औंध राज्यका एक नगर। इसकी लोकसंख्या कोई साढ़े पांच हज़ार होगी। यह धांगड़ोंसे पाले, अपने खोलर देशवाले पशुओंके लिये प्रसिद्ध है। कराढ़-पण्ढरपुर और कराढ़-नगरकी राहमें अवस्थित होनेके कारण पण्ढरपुरके यात्री यहां अधिक आते हैं। इस स्थानसे कोई छः कोस दूर खरसुन्दीमें नाथका सुप्रसिद्ध मन्दिर है, जहां वर्षमें दो बार मवेशियोंका मेला लगता और प्रायः यात्री पहुंचा करते हैं। यहांसे देशी कम्बल और मोटा कपड़ा कोङ्कणमें भेजा जाता है। इसमें डाकघर, दवाख़ाना और अंगरेज़ीका छोटा स्कूल बना है।

अटब्बर (हिं० पु०) १ दिखाव, आडम्बर। २ अभिमान, घमण्ड। ३ वंश, घराना।

अटमाव (सं० त्रि०) इधर-उधर घूमनेवाला।

अटरनी (अं० Attorney.) मुख़्तार, मध्यस्थ, प्रतिनिधि।

अटरुष, अटरूष, अटरूषक (सं० पु०) अटे गमनकाले अरुषः सूर्य इव दृश्यते शुभ्रवर्णत्वात्। वासक वृक्ष, जगमोहन, अरूसा।

यह छोटी झाड़ी बङ्गाल और हिमालयकी तराईमें प्रायः उत्पन्न होती है। इसकी पत्तियां उबालकर लोग मोटे कपड़ेको पीला रंगते हैं। नीलके साथ इसे मिलानेसे हरा-बैंजनी रङ्ग बनता है। आसामके नागे इसे गांवोंके पास छायाके लिये लगाते हैं। इसकी जड़ और पत्ती अदरकके साथ खांसीमें दी जाती है। क्षयरोगका यह अनोखा महौषध है। इसका फूल और फल कड़ू और खुशबूदार होता है। आंखें उठनेसे इसके ताज़े फूल उनपर बांधे जाते हैं। पत्तों पशुको भी औषधस्वरूप

खिलाई जाती है। ताजी पत्ती सुखाकर तम्बाकूकी तरह पीनेसे दमाको बड़ा लाभ पहुंचता है। ज़ुकाम हो जानेपर इसकी ताज़ी पत्तीका काढ़ा पिलाया जाता है। यह दो तरहकी होती, एकमें लाल और दूसरीमें सफ़ेद फल लगते हैं। यह महिसुरमें भी प्रायः मिलती और मलेरिया-ज्वरकी अकसीर दवा समझी जाती है। ज्वरमें प्यास बढ़नेसे इसका काढ़ा पिलाते हैं। इसका रस अतीसार रोगको दूर करता है। इसे कोई पशु नहीं चरता; हां, कभी-कभी बकरा खा लिया करता है। काष्ठ श्वेत और मध्यम रूपसे कठिन होता है। बड़ी-बड़ी डालियां जलाकर बारूदका कोयला बनाते हैं। नागे इसकी डालियोंसे शकुन विचारते और भविष्यत् बताते हैं। इसकी पत्ती खेतमें खादकी भांति डाली जाती है। गुड़ बनाने और ईंट पकानेमें यह खूब जलाई जाती है।

अटल (हिं० वि०) १ न टलनेवाला, अवश्यम्भावी। २ स्थिर, ठहरा हुआ।

अटलस (अं० Atlas) मानचित्रसमूह, नक़शोंका ज़खीरा। इस पुस्तकमें देश-देशके नक़शे होते हैं।

अटवि, अटवी (सं० स्त्री०) अटन्ति व्रजन्ति वार्द्धके यत्र, अट-अवि-ङीप् पक्षे। वन, जङ्गल, बियाबां।

अटविक (सं० पु०) लकड़हारा।

अटविशिखर (सं० पु०) एक प्रदेश या उसके लोग। (विष्णुपु०)

अटवी—अटवि देखो।

अटवी—शङ्खद्वीपस्थ वनविशेष। इसके पार्श्वसे कालिनदी प्रवाहित हुई है। (ब्रह्माण्डपुराण।)

अटवीदेवी—भवानीका नामान्तर. पार्वतीका दूसरा नाम। कहते हैं, कि भवने मनुष्योंको ब्रह्मचर्य सिखाने के लिये अरण्यको एक वार गमन किया। भवानी उन्हें वनको जाते देख अरण्यदेवीका रूप धारण कर वृक्ष-वृक्षमें खेलती हुई, घूमने लगी। उनकी रूप-ज्योतिःसे एक सुन्दर देवताकी सृष्टि हुई। इसके बाद भवानी और सुन्दर देवता दोनो आकर अटवीवनमें खेलने लगे। इसी वनमें भवानी अटवीदेवीके नामसे अभिहित हुईं। यह वन पुराणमें भवाटवीके नामसे उल्लिखित हुआ है। यूनानी इन भवाटवीको बाटोई(Butoi) कहते हैं। विलफोड साहबने निश्चय किया है, कि यह अटवीवन अफ्रीकाके नीलनद किनारे अवस्थित था। इस जगह पहले यूनानियोंकी अरण्यदेवी डायनाका भी मन्दिर बना था।

अटवीलता (सं० स्त्री०) कुष्माटवृक्ष, कुम्हड़ेका पौधा।

अटहर (हिं० पु०) राशि, ढेर, ज़खीरा।

अटा (सं० स्त्री) अट-अङ्। भ्रमण, पर्यटन। घूम-फिर, टहल-पहल। २ अटारी, छत। ३ ढेर, राशि। (वि०) ४ लगा, चिपका।

अटाउ, अटाव (हिं० पु०) १ लगाव, आयोजन। २ विद्वेष, हसद।

अटाटुट, अटाटूट (हिं० वि०) १ न टूटनेवाला, अभङ्ग। २ पोढ़ा, मजबूत। ३ बृहत्, भारी।

अटाट्यमान (सं० त्रि०) बहुत घूमनेवाला।

अटाट्या, अटाटा (सं० स्त्री०) अट-यङ्-भावे अ, स्त्रीत्वात् टाप्। परिभ्रमण, पुनःपुनः भ्रमण, मिथ्या भ्रमण, अतिशय भ्रमण; मारे-मारे फिरना, गश्त लगाना, झूठ-मूठ घूमना, आवारागर्दी।

अटारी (हिं० स्त्री०) १ छत। २ छतके ऊपरका कोठा।

अटाल (हिं० पु०) धराहरा, बुर्ज; बहुत ऊंचा मकान जिसपर चढ़नेसे दूर-दूरकी चीजें देख पड़ती हैं।

अटाला (हिं० पु०) १ ज़खीरा, ढेर, राशि। २ कसाइयोंका वासस्थान।

अटि (सं० पु०) शरारिपक्षी, चाहा।

अटी (हिं० स्त्री०) जलके समीप रहनेवाला पक्षिविशेष, चाहा।

अटूट अटुट (हिं० वि०) १ न टूटनेवाला, जो टूट न सके; अखण्डनीय। २ अजेय, लाशिकस्त। ३ दृढ़, मजबूत। ४ बराबर, सिलसिलेवार। ५ अधिक, ज्यादा।

अटेरन (हिं॰ पु॰) १ यन्त्रविशेष, औयना। यह यन्त्र सूतकी आँटी तय्यार करनेको लकड़ीका बनाया जाता है। २ घोड़ा फेरनेका एक तरीक। ३ कुश्तीका एक दांव।

अटेरना (हिं॰ क्रि॰) १ सूतकी पोनी या आँटी तय्यार करना। २ नशेसे चकनाचूर होना।

अटोक (हिं॰ वि॰) निषेधरहित, जिसकी रोक-टोक न हो।

अटम्बर (हिं॰ पु॰) ढेर, राशि, ज़खीरा।

अट्ट—अतिक्रम, हिंसा। भ्वा॰, आ॰, सक॰ सेट्। २ अनादर। चु॰, पर॰ ; सक॰ सेट्।

अट्ट (सं॰ पु॰) अट्ट-घञ् आधारे; अट्टयति न आद्रियते अन्यत् यत्र। १ पट्टवस्त्र, चौम। २ प्रासाद, हर्म्य; महल। ३ प्रासादका उपरिस्थित गृह, महलके ऊपरका मकान। ४ प्राचीरका उपरिस्थित सैन्यगृह, चहारदीवारीके ऊपरका किला। ५ हाट, बाज़ार। ६ अन्न, अनाज। ७ भक्त, ईश्वरकी सेवा करनेवाला। (वि॰) ८ उच्च, ऊंचा। ९ अतिशय, बहुत ज्यादा। १० शुष्क, सूखा।

अट्ट भक्ते चतुष्के ना चौमेऽत्यर्थे गृहान्तरे। (मेदिनी)

अट्टक (सं॰ पु॰) छतका कमरा।

अट्टट (सं॰ अव्य॰) अट्ट अनादरे, अट्ट-अट्ट। प्रकारे गुण-वचनस्य। पा ८।१।१२। अत्युच्च होकर, निहायत बुलन्दीसे। बहुत ऊंचे स्वरमें।

अट्टट्टहास (सं॰ पु॰) अत्युच्च हास्य, बड़े जोरकी हंसी। कहकहा।

अट्टन (सं॰ क्ली॰) अट्ट-ल्युट् करणे, अट्यते अनाद्रियते रिपुरनेन। १ चक्रफलकास्त्र, पहिये जैसे फलक (पृष्ठ) वाला हथियार, ढाल। भावे ल्युट्। २ अनादर, बेइज़्ज़ती।

अट्टनगर—अयोध्या प्रदेशका एक शहर। यह लखनऊसे साढ़े बत्तीस कोस दक्षिणपूर्वमें एक नदी किनारे अवस्थित है। यहांके अधिवासी युद्धकुशल और परिश्रमी होते हैं।

अट्टपाडी—मन्द्राजके मलवर जिलेवाले वलवनाड ताल्लुककी एक उपत्यका। इसका विस्तार कोई सवा सौ वर्ग कोस है, और यह पश्चिमघाट पहाड़से पीछे पड़ी, और कुण्डेसे दक्षिण-पश्चिम पालघाटकी घाटीतक फैली है। इस उपत्यकामें भवानी नदीका स्रोत और चारो ओर घना जङ्गल है। सारे वर्ष यहां मलेरियाका प्रकोप बना रहता है।

अट्टस्थली (सं॰ स्त्री॰) अट्ट प्रधाना स्थली, शाकं-तत्। १ प्रासाद-विशेष, एक प्रकारका महल। २ देश-विशेष, एक मुल्क।

अट्टहसित (सं॰ क्ली॰) ऊंची हंसी।

अट्टहास (सं॰ पु॰) अट्ट-हस्-घञ्; अट्टेन अतिशयेन हासः, ३-तत्। उच्च हास, ऊंची हंसी; खिल-खिलाहट, कहकहा। २ बर्द्धमान ज़िलेके अन्तर्गत देवताका पीठस्थान-विशेष।

अट्टहासक (सं॰ पु॰) अट्टहास इव कः प्रकाशो दीप्तिर्यस्य। १ ज़ोरसे हंसनेवाला, कह-कहा लगानेवाला। २ कुन्द वृक्ष। ३ मोगरा।

यह झाड़ी बड़ी और पत्तीसे भरी होती है। ब्रह्म और चीनमें भी इसका विस्तार देख पड़ता है। प्रायः बागोंमें इसे बो देते हैं। इसकी सूखी पत्ती पानीमें भिगोते और उसका पुलटिस बनाकर नासूरपर बांधते हैं। इसकी जड़ सांपके काटनेका पक्का ज़हर-मोहरा है।

अट्टहासिन् (सं॰ पु॰) अट्टं उच्चैः हसति, हस्-णिनि। शिव।

अट्टहास्य (सं॰ क्ली॰) ऊंची हंसी।

अट्टा (हिं॰ पु॰) १ मञ्च, मचान। २ अटारी।

अट्टाट्ट (सं॰ पु॰) १ अत्युच्च, निहायत ऊंचापन। २ सर्वोत्कर्ष, सबसे बड़प्पन। ३ अनादराधिक्य, अधिक अनादर करना।

अट्टाट्टहास्य (सं॰ क्ली॰) ऊंची हंसी।

अट्टाल, अट्टालक (सं॰ पु॰) अट्ट इव प्रासाद इव अलति पर्याप्तो भवति, अल-अच्-कन् स्वार्थे। प्रासादो-परिस्थ गृह, महलके ऊपरका मकान।

अट्टालिका (सं॰ स्त्री॰) अट्टालिक-टाप्। १ प्रासाद, महल। २ राजगृह, शाही इमारत। ३ इष्टकादि निर्मित गृह, पक्का मकान।

अट्टालिकाकार (सं० पु०) अट्टालिकां करोति रचयति, कृ-अण; उप-स०। अट्टालिकादि निर्माणकारक, महल वगैरह बनानेवाला। राज। स्थपति। शूद्राके गर्भ और चित्रकारके औरससे इस जातिका जन्म है। ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें लिखा है, कि जारिणी किंवा शूद्राके गर्भ एवं चित्रकारके औरसमें अट्टालिकाकारोंकी उत्पत्ति हुई है, इसी जार दोषके कारण यह पतित होते हैं,—

"कुलटायाञ्च शूद्रायां चित्रकारस्य वीर्यतः।
बभूवाट्टालिकाकारः पतितो जारदोषतः॥" (ब्रह्मवै० ब्रह्मख०)

आजकल हिन्दुस्थानमें मुसलमान, खटिक, कोरी, चमार, काछी, लोध प्रभृति अनेक जातियोंके लोग अट्टालिकाको निर्माण करते हैं।

अट्टालिकाबन्ध (सं० पु०) आधारविशेष, एक तरहकी नीव, डाट।

अट्टिलिका (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम, एक शहरका इस्म। (राजत० ८।५८३)

अट्टी (हिं० स्त्री०) लच्छी, अटेरनमें लगा धागा।

अट्‌णार (सं० पु०) कोशलदेशके एक राजा।

अट्या (सं० स्त्री०) अट्ट-यत्-टाप्, स्त्रीत्वात्। परिभ्रमण, पर्यटन; घूमना-फिरना, टहल-पहल।

अट्ठा (हिं० पु०) ताशका आठवां पत्ता।

अट्ठाइस, अट्ठाईस (हिं० वि०) वह संख्या जो दो दहाई और आठ इकाई यानी बीस और आठ मिलकर बनती है, अष्टाविंशति। २८।

अट्ठाइसवां, अट्ठाईसवां (हिं० वि०) अट्ठाईस संख्यावाला।

अट्ठानवे (हिं० वि०) नौ दहाई और आठ इकाई यानी नव्वे और आठसे मिलकर बनी संख्या, अष्टानवति। ९८।

अट्ठानवेवां (हिं० वि०) अट्ठानवे संख्याका।

अट्ठावन (हिं० वि०) पचास और आठसे बनी हुई संख्या, अष्टपञ्चाशत्। ५८।

अट्ठावनवां (हिं० वि०) अट्ठावन संख्याका।

अट्ठासिवां (हिं० वि०) अट्ठासी संख्याका।

अट्ठासी (हिं० वि०) आठ दहाई और आठ इकाई यानी अस्सी और आठसे बनी संख्या। ८८।

अठ—गति। भ्वा०, पर०, सक० सेट्।

अठ (अठि)—गति। इदित्। भ्वा०, आ०, सक० सेट्।

अठ (हिं० वि०) आठ, अष्ट। ८।

अठइसी (हिं० स्त्री०) एक सौ चालीसकी संख्या, १४०। इसका व्यवहार फलोंके लेन-देनमें होता, यह सैकड़ेके समान समझी जाती है।

अठकौंसल (हिं० स्त्री०) १ सभा, पञ्चायत। २ मन्त्र-विरा, मन्त्रणा।

अठखेलपन (हिं० पु०) १ खेल-कूद, दौड़-धूप। २ नटखटी, शरारत।

अठखेली—अटखेली देखो।

अठत्तर (हिं० वि०) सात दहाई और आठ इकाई यानी सत्तर और आठ, अष्टसप्तति। ७८।

अठन्नी (हिं० स्त्री०) आठ आनेवाला चांदीका सिक्का। आधा रुपया।

अठपतिया (हिं० वि०) १ आठ पत्तोंकी, अष्टपत्रिका। (स्त्री०) २ एक प्रकारकी चित्रकारी; एक तरहकी नक्काशी, जिसमें आठ फूल काढ़े जाते हैं।

अठपहला, अठपहलू (हिं० वि०) आठ पहलूवाला, अष्टपटल; अष्टपार्श्वयुक्त, जिसमें आठ कोने हों।

अठपाव (हिं० पु०) गड़बड़, उपद्रव, हलचल।

अठबन्ना (हिं० पु०) तानेके सूतको लपेटनेका बांस।

अठमासा (हिं० वि०) १ अष्ट मासका, आठ महीनेवाला। (पु०) २ माघसे आषाढ़ तक जोता जानेवाला खेत, जिसमें ऊख लगाई जाये।

अठमासी (हिं० वि०) १ आठ मासेवाली, जिसका वज़न आठ मासे हो। (स्त्री०) २ मोहर, गिन्नी।

अठलाना (हिं० क्रि०) खेलना-कूदना, क्रीड़ा-कौतुक करना। २ अभिमानको प्रकाश करना, इतराना। ३ चोचले बघारना, नखरे दिखाना। मतवाले बनना, नशेमें चूर होना। ५ अनसुनी बरतना।

अठवना (हिं० क्रि०) १ इकट्ठा होना। २ ठनना।

अठवास (हिं० पु०) १ अष्टपार्श्व द्रव्य। २ अष्टकोण प्रस्तरखण्ड, अठकोने पत्थरका टुकड़ा। (वि०) ३ अष्टकोण, अठकोना।

अठवांसा (हिं० पु०) १ सीमन्त संस्कार। २ माघसे आषाढ़तक जोता जानेवाला खेत, जिसमें ऊख लगाई जाती है। (वि०) आठ मासमें जन्म लेनेवाला।

अठवारा (हिं० पु०) अष्टदिवसकाल, आठ दिनमें समाप्त होनेवाला समय।

अठवारी (हिं० स्त्री०) प्रत्येक आठवें दिन किसान द्वारा ज़मीन्दारको खेत जोतनेके लिये हल और बैल दिये जानेकी प्रथा या चाल।

अठवाली (हिं० स्त्री०) १ किसी भारी चीज़को उठानेके लिये उसमें बांधा जानेवाला लकड़ीका टुकड़ा। २ आठ कहारों द्वारा उठाई जानेवाली पालकी।

अठसिल्या (हिं० स्त्री०) तख़्त, सिंहासन, कुरसी, चौकी।

अठहत्तर—अठत्तर देखो।

अठहत्तरवां (हिं० वि०) अठत्तर संख्यावाला।

अठान (हिं० पु०) ठाननेके अयोग्य काम, अनुचित कर्म। २ वैमनस्य, विद्रोह, दुश्मनी, झगड़ा।

अठाना (हिं० क्रि०) १ ठानना, खड़ा करना। २ दुःख देना, दिक़ पहुंचाना।

अठारह, अट्ठारह (हिं० वि०) १ अष्टादश, दश और आठ, वह संख्या जो एक दहाई और आठ इकाईसे बनती है। १८।

अठारहवां, अट्ठारहवां (हिं० वि०) अट्ठारह संख्याका।

अठासिवां—अट्ठासिवां देखो।

अठासी—अट्ठासी देखो।

अठिलाना—अठलाना देखो।

अठिल्ला (सं० स्त्री०) एक प्राकृत काव्यका नाम।

अठे (हिं० क्रि०-वि०) यहां, इस जगह। अत्र, इस स्थलमें।

अठेल (हिं० वि०) ठेलनेके योग्य नहीं। बलवान्, सुदृढ़; ताक़तवर, ज़ोरदार।

अठोठ (हिं० पु०) ठाट-बाट, बनाव-चुनाव, दिखाव-पहनाव।

अठोतरसो (हिं० वि०) अष्टोत्तरशत, एक सौ आठ। १०८।

अठोतरी (हिं० वि०) १ एक सौ आठ की अष्टोत्तरी। (स्त्री०) २ एक सौ आठ ग्रन्थिकी जपमाला। ३ एक सौ आठ वर्षकी दशा।

अठौरा (हिं० वि०) १ आठका। (पु०) आठ पानोंका बना हुआ दोना।

अठङ्ग (हिं० पु०) अष्टाङ्ग-योग-साधक, पूरा योगी।

अड्—उद्यम। १ भ्वा०, पर०, सक० सेट्।
 २ व्याप्ति। स्वा०, पर०, अक० सेट्।

अड़ (हिं० स्त्री०) प्रतिज्ञा, हठ, टेक। ज़िद, तहक़ुक़।

अड़कवती—१ मेरुका एक विशाल प्रासाद। २ एक नगर। (ललितवि०) वर्त्तमान नाम लासा।

अड़काना (हिं० क्रि०) रोक रखना, जाने न देना।

अडग (हिं० वि०) १ जो न डिगे। लाहरकत, अचल। २ सुदृढ़, मज़बूत।

अडिगरध (हिं० वि०) ठहरा हुआ, अटल।

अड़गोड़ा (हिं० पु०) वह वस्तु जो चलते समय पदपर अड़े। जो पशु नटखटी करते, उनके गलेमें अड़गोड़ा इसलिये बांध दिया जाता है, जिसमें वह जल्द-जल्द दौड़ न सकें।

अडङ्ग (सं० पु०) गोधूम, गेहूं।

अडङ्गा (हिं० पु०) रोक, अवरोध।

अड़चन (हिं० स्त्री०) विघ्नबाधा, मुश्किल।

अड़डण्डा (हिं० पु०) आड़का सोंटा। इस डण्डे-की दोनो ओर लट्टू होते, जिनके सहारे मस्तूलपर पाल बांधा जाता है।

अड़ड़पोपो (हिं० पु०) १ सामुद्रिकवित्, हाथ देखकर शुभाशुभ कहनेवाला। २ छली, फ़रेबी। ३ बड़बड़िया, झूठ-सच कहनेवाला।

अडण्ड (हिं० वि०) १ अदण्ड, जिसे दण्ड दिया जा न सके। २ बेख़ौफ़, निर्भय।

अड़तल (हिं० स्त्री०) १ आड़, अवरोध। २ छाया, छांह। ३ शरण, पनाह। ४ बहाना, मुग़ालता।

अड़तालिस, अड़तालीस (हिं० वि०) अष्टचत्वारिंशत्, चालीस और आठ। वह संख्या, जो चार दहाई और आठ मिलनेसे बनती है। ४८।

अड़तालिसवां, अड़तालीसवां (हिं॰ वि॰) अड़तालीसवाला, अड़तालिसका।

अड़तालीस—अड़तालिस देखो।

अड़तिस, अड़तीस (हिं॰ वि॰) अष्टत्रिंशत्, तीस और आठ। वह संख्या जो तीन दहाई और आठसे बनती है। ३८। हिन्दुस्थानके ग्रामीण लोग अरतिस भी कहते हैं।

अड़तिसवां, अड़तीसवां (हिं॰ वि॰) अड़तीसवाला, अड़तिसका।

अड़दार (हिं॰ वि॰) १ अड़नेवाला, अड़ियल। जो चलनेमें रुके। २ मस्त, झूमता हुआ।

अड़ना (हिं॰ क्रि॰) १ चलते-चलते रुक जाना, आगे न बढ़ना। २ ज़िद करना, टेक ठानना।

अड़पापल (हिं॰ वि॰) ताक़तवर, शक्तिशाली।

अड़बङ्ग (हिं॰ वि॰) १ वक्र, टेढ़ा। २ निम्नोच्च, ऊंचा-नीचा। ३ दुर्धर्ष, मुश्किल। ४ निराला, अपूर्व। ५ बेडौल, बेढब।

अडबोल—आपस्तम्ब-सामान्यसूत्रवृत्तिरचयिता।

अडम्बर—आडम्बर देखो।

अडर (हिं॰ वि॰) भयरहित, बेख़ौफ़।

अड़व (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका राग। इसमें षड्ज, गान्धार, मध्यम, धैवत और निषाद यही पांच स्वर लगते हैं।

अडवोकेट (अं॰ Advocate) वकालतनामेकी ज़रूरत न रखनेवाला वकील या कौन्सिल।

अड़सठ, अरसठ (हिं॰ वि॰) अष्टषष्टि, साठ और आठ। वह संख्या जो छः दहाई और आठ मिलनेसे बनती है। ६८।

अड़सठवां, अरसठवां (हिं॰ वि॰) अड़सठ संख्यावाला, अरसठका।

अड़ड्ड (सं॰ पु॰) वकुलवृक्ष, मौलसिरी।

अड़हुल (हिं॰ पु॰) जपा या जवापुष्प, देवीफूल। यह दो-सवा दो गज़ ऊंचा उगता और इसकी पत्ती हारसिंगारकी पत्ती जैसी होती है। यद्यपि इसका पुष्प बड़ा और गहरे लाल रङ्गका रहता, परन्तु इसमें सौरभका कहीं नाम नहीं।

अड़ाड़ (हिं॰ पु॰) १ पशुओंके रखनेका वह घेरा, जो ग्राम या नगरके बाहर बनाया जाता है। २ राशि, ज़ख़ीरा।

अड़ान (हिं॰ स्त्री॰) विश्रामस्थान, ठहरनेकी जगह।

अड़ाना (हिं॰ क्रि॰) १ रोक रखना, ठहरा लेना। २ टेक लगाना, आड़ देना। (पु॰) ३ ठहराव, रोक। ४ टेक, डाट। ५ रागभेद।

"अड़ानी गुण्डक्री गौण्ड़ा लीलरङ्गी सुधावती।
पञ्चैताः सुरुनयना अड़ाना वल्लभा इमाः॥" (संगीतद॰)

अड़ानी (हिं॰ स्त्री॰) १ बड़ी पङ्खी। २ लड़न्तका एक दांव, जो टांगमें टांग अड़ाकर किया जाता है। ३ अड़ानारागकी स्त्री।

अड़ायनी (हिं॰ वि॰) आड़ करनेवाला, जो ओटमें छिपे।

अड़ार (हिं॰ पु॰) १ ज़ख़ीरा, ढेर। २ लकड़ीकी राशि। ३ लकड़ीकी दुकान।

अड़ाल (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका नृत्य, एक तरहका नाच। वह नाच जो मोरकी तरह अड़-अड़ कर नाचा जाये।

अडिग—अडग देखो।

अड़ियल (हिं॰ वि॰) १ अड़ जानेवाला, जो जाते-जाते रुके। २ सुस्त, काहिल। जो कार्य शीघ्र न करे। ३ हठ करनेवाला, जो ज़िद चलाये।

अड़िया (हिं॰ पु॰) वह लकड़ी, जिसके सहारे साधु उपवेशन करते हैं, साधुओंकी टेककर बैठनेवाली कुबड़ी।

अड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ ठहराव, रोक। २ हठ, ज़िद। ३ आवश्यक समय, ज़रूरी वक़्त। ४ अवसर, मौक़ा। ५ (वि॰) रुकी हुई, ठहरी।

अड़ीखम्भ (हिं॰ वि॰) बलवान्, ज़ोरावर।

अडीठ (हिं॰ वि॰) १ अदृष्ट, नज़रसे बाहर। २ गुप्त, पोशीदा। ३ पृष्ठभागमें उत्पन्न फोड़ा।

अड़ूलना (हिं॰ क्रि॰) डालना, उड़ेलना, नाना।

अड़ूसा (हिं॰ पु॰) अटरूष, ओषधि-विशेष। इसका पौधा गज़-सवा गज़का और पत्ता हरा और

आमके पत्ते जैसा होता है। दो पत्ते एक होमें जुड़े और श्वेत पुष्प जटासे गुंथे रहते हैं। पुष्पोंका मकरन्द खांसी, दमे आदि रोगोंमें सेवन करनेसे बड़ा उपकार होता है।

अडोर (हिं॰ पु॰) घनघोर शब्द, बुलन्द आवाज़।

अडोल (हिं॰ वि॰) न डोलनेवाला, स्थिर।

अड़ोस-पड़ोस (हिं॰ पु॰) इधर-उधर, आस-पास।

अड़ोसी-पड़ोसी (हिं॰ पु॰) समीपका अधिवासी, क़रीबका बाशिन्दा।

अड्ड—अभियोग और निर्वाह। भा॰, पर॰, सक॰ सेट्।

अड्डन (सं॰ क्ली॰) ढाल।

अड्डा (हिं॰ पु॰) १ निवासस्थान, रहनेकी जगह। २ इकट्ठा होनेका मुक़ाम। ३ दुष्टोंके उपवेशनका स्थान, बदमाशोंके इकट्ठा होनेकी जगह। ४ मज़दूरोंके बैठनेकी जगह। ५ वेश्याओंके एकत्र होनेका स्थान। ६ मुख्य भूमि, ख़ास जगह। ७ पक्षियोंके उपवेशनका स्थान, जो पिंजड़ेमें लोहेका बनाकर लगाया जाता है। ८ बुलबुल आदि पक्षियोंके बैठनेवाला अड्डा। ९ कपड़ेका मोटा गद्दा। १० वस्त्र काढ़नेका ढांचा या चौकठा। ११ कबूतरोंके बैठनेका ठाट या छतरी। १२ दो बांसोंके सिरोंपर बंधा हुआ एक आड़ा बांस। १३ खरादनेकी लकड़ी। १४ खंडसालकी टट्टी। १५ रहंटकी एक लकड़ी। १६ सूत बुननेका करघा। १७ नेवार बुननेकी लकड़ी।

अड्डी (हिं॰ स्त्री॰) १ काष्ठादि वस्तुओंके छेदनेका बरमा। २ जूतेकी दीवार।

अड्रेस (अं॰ Address) १ अभिनन्दनपत्र, वह सम्मानसूचक पत्र जो किसी बड़े आदमीको उसके कहीं पहुंचनेपर सुनाया और दिया जाये। २ पता।

अढ़तिया (हिं॰ पु॰) १ आढ़त या कमीशनपर माल मंगाने और बेचनेवाला दुकानदार, कमीशन-एजण्ट। २ दलाल।

अढ़न (हिं॰ स्त्री॰) शिक्षा, बात, कही।

अढ़वना (हिं॰ क्रि॰) १ हुकम देना, आज्ञा करना। २ कार्यमें लगाना, काम बता देना।

अढारटङ्की (हिं॰ स्त्री॰) कमान, धनु।

अढ़िया (हिं॰ पु॰) १ काष्ठ या प्रस्तर निर्मित लघु पात्र, लकड़ी या पत्थरका छोटा बरतन। २ गारा ढोनेका छोटा कूंड़ा।

अढ़ुक (हिं॰ पु॰) आघात, चोट।

अढ़ुकना (हिं॰ क्रि॰) १ चोट खाना, ठोकर लगना, आघात बैठना। २ आधार ग्रहण करना, टेका लेना, सहारा ढूंढना।

अढ़ैया (हिं॰ पु॰) १ ढाई सेरकी तौल, पंसेरीका अर्द्धांश। २ ढाई गुणका पहाड़ा। (वि॰) ३ काम बता देनेवाला।

अण्—१ पाणिनिगृहीत प्रत्यय-विशेष। पाणिनिकी ग्रहण की हुई एक ख़ास प्रत्यय। अण्का ण् इत् जाता, अ रहता है। २ पाणिनिगृहीत चतुर्दश वर्णप्रत्याहारोंके एक प्रत्याहारकी संज्ञा, पाणिनि द्वारा ग्रहण किये गये चौदह वर्ण प्रत्याहारोंके एक प्रत्याहारका नाम। यथा,—इति माहेश्वराणि सूत्राणि अणादि संज्ञार्थानि। कहते हैं, कि पाणिनि मुनि अतिशय स्थूलबुद्धि थे। उपवर्षसे विद्या पढ़ते समय वह शास्त्रार्थ भली भांति समझ न सकते थे। इसीसे मनमें खेदकर वह महादेवकी आराधना करने लगे। महादेवने पाणिनिके प्रति तुष्ट हो ताण्डवको आरम्भ किया। नृत्यके बाद उन्होंने चौदह बार डमरु बजा चौदह सूत्रोंका उपदेश दिया,—

> "नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारान्।
> उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्॥"

अणादि सूत्रसे इकतालीस संज्ञायें पाणिनिकी अष्टाध्यायीमें प्रयुक्त हुई हैं,—

> "एकस्मान् ङञणवटा द्वाभ्यां षस्त्रिभ्य एव कणमाः स्युः।
> ज्ञेयौ चयौ चतुर्भ्यो रः पञ्चभ्यः शलौ षड्भ्यः॥" (काशिका)

यथा,—अण्, एञ्, षञ्, छव्, अट्। ५। झष्, भष्। २। अक्, इक्, उक्। ३। अण्, इण्, यण्। ३। अम्, यम्, ङम्। ३। अच्, इच्, एच्, ऐच्। ४। यय्, मय्, झय्, खय्। ४। यर्, झर्, खर्, चर्, शर्। ५। अश्, हश्, बश्, झश्, जश्, वश्। ६। अल्, हल्, वल्, रल्, झल्, शल्। ६।

३ शब्द। भ्वा॰, पर॰, अक॰ सेट्। ४ जीवन। दिव्य॰, अक॰ सेट्।

अण, अणक (सं० त्रि०) अण-अच्, अणति यथेच्छं नदति। पापाणके कुत्सितैः। पा २।१।५४। १ अधम, कुत्सित; ज़लील, मकरूह। २ बक्की, बड़-बड़िया।

अणकीय (सं० त्रि०) छोटेसे सम्बन्ध रखनेवाला।

अणद (हिं० पु०) आनन्द, खु़शी।

अणव्य (सं० क्ली०) अणु-यत्, अणोः सूक्ष्मशस्योत्पादकं क्षेत्रम्। अणुधान्योत्पादक क्षेत्र, वह खेत जिसमें छोटी-छोटी चीज़ें पैदा हों।

अणसङ्क (हिं० वि०) निःशङ्क, बेख़ौफ़।

अणादीक्षित—चातुर्मास्यप्रयोग, हौत्रप्रयोग प्रभृति ग्रन्थप्रणेता।

अणाय्याचार्य—रामानुजविजय नामक ग्रन्थरचयिता। इनका दूसरा नाम सत्यधर्मतीर्थ था। सन् १८३१ ई० में इनकी मृत्यु हुई।

अणास (हिं० स्त्री०) अण्डस, मुश्किल।

अणि (सं० पु०-स्त्री०) अण्-इन्, अणति नदति। १ रथचक्राग्रस्थित कीलक, रथवाले पहियेके आगेकी कील। २ अस्त्रि, आरा। ३ सूच्यादिका अग्रभाग, सूई वग़ैरहकी नोक। ४ सीमा, सरहद।

"अणिराणिवदच्चाग्रकीलास्त्रि सीमसु द्वयोः॥" (मेदिनी)

अणिमन्, अणिमा (सं० पु०) अणोर्भावः, अणु-इमनिच्। १ अणुत्व, सूक्ष्म परिमाण, सूक्ष्मता। बारीकी, ज़र्रा होनेकी स्थिति। २ अष्ट प्रकार ऐश्वर्यों-के मध्य ऐश्वर्य-विशेष, आठ तरहकी सिद्धियोंमें वह सिद्धि, जिसके प्रभावसे छोटेसे भी छोटा रूप रखा जा सकता है। अष्टविध ऐश्वर्योंके यह नाम हैं,—

"अणिमा लघिमा प्राप्तिः प्राकाम्यं महिमा तथा।
ईशित्वञ्च वशित्वञ्च तथा कामावसायिता॥"

अर्थात् १ अणिमा, २ लघिमा, ३ प्राप्ति, ४ प्राकाम्य, ५ महिमा, ६ ईशित्व, ७ वशित्व, ८ कामवसायिता—यही अष्ट सिद्धि कहलाती हैं।

अणिमादिक (सं० पु०) अणिमा प्रभृति, अणिमा वग़ैरह आठ सिद्धियां।

अणियाली (हिं० स्त्री०) १ कटारी। २ बर्छी।

अणिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन, अणु-इष्ठन्। अतिशय सूक्ष्म, निहायत बारीक।

अणी (हिं० अव्य०) ओजी, एजी, ऐजी; अरी, ओरी, एरी। अणि देखो।

अणीमाण्डव्य (सं० पु०) 'अणी शूलाग्रं तद्युक्तो माण्डव्यः' (इति महाभारतटीकायां नीलकण्ठः) एक मुनि।

विदुरके जन्मवृत्तान्तमें लिखा है, कि माण्डव्य नामके जनैक मुनि किसी वृक्षतलमें तपस्या करते थे। एक दिन कई-एक चोर अपहृत द्रव्य ले इनके आश्रमके भीतर आ छिपे। नगरके रक्षकोंने सन्धान लगाते-लगाते उसी स्थानमें पहुंचकर देखा, कि चोर कुटीमें छिपे थे। रक्षकगण अपहृत धन, चोरों और मुनिको भी तस्कर समझ राजसभामें ले गये। उस समय न्यायपरायणता और धर्मभय अधिक था, चोर कहनेसे ही मनुष्य चोर समझा जाता था,—विचार करनेका कोई झगड़ा-झञ्झट न था, चोरको पहुंचते ही शूली चढ़ानेकी आज्ञा दी जाती थी। राजाके सद्विचारसे माण्डव्य चोरोंके साथ चोर बन शूली चढ़े। चोर तो मरे, किन्तु माण्डव्यका कठिन प्राण न निकला। अन्तमें राजा अनेक अनुनय-विनय द्वारा मुनिको तुष्टकर शूली छुड़ाने पहुंचे। किन्तु शूली न छूटी, मुनिके शरीरमें विद्ध हो गई थी। इसीसे इसके सिवा कोई दूसरा उपाय न था, कि शरीरके भीतर जो शूलीका अंश प्रविष्ट हुआ था, वह जहांका तहां रहता और बाहरका अंश काट डाला जाता। ऐसा ही किया भी गया। किन्तु मुनि तो तपस्याके सिवा और कुछ जानते न थे, इनपर ऐसी विपद क्यों पड़ी! उपरोक्त विषय जाननेके लिये माण्डव्य मुनिने धर्मराजसे सब बातें जाकर पूछीं। धर्मराजने कहा,—"आप जब लड़के थे, तब आपने पतङ्गके शरीरमें तिनका घुसेड़ दिया था; इसीसे आपकी इसतरह शास्ति की गई है।" माण्डव्यने क्रुद्ध होकर कहा,—"उस समय मैं अज्ञान शिशु था। आपने अल्प अपराध पर मुझे गुरुदण्ड दिया है; इसलिये आप शूद्रयोनिमें जाकर जन्मको ग्रहण कीजिये। आजसे मैं यह नियम बनाता हूं, कि चतुर्दश वत्सर वयःक्रम न होनेसे बालकोंको कोई पाप न लगेगा।"

इसी शापसे धर्मराजने विदूर-रूपमें शूद्रयोनिसे जन्मग्रहण किया था।

अणीय—अणीयस् देखो।

अणीयस् (सं॰ त्रि॰) अणु-इयसुन्। अणीयस्क अतिसूक्ष्म, अणुतर। निहायत बारीक, बहुत झीना।

अणु (सं॰ त्रि॰) अण्-उण्। अणश्च। उण् १।८। 'लवलेश-कणाणवः'—इति उज्ज्वलदत्तः। १ सूक्ष्म, बारीक। २ क्षुद्र, छोटा। ३ लेश, थोड़ा। ४ अदृश्य। (पु॰) ५ धान्य, धान। ६ कण, ज़र्रा। ७ सङ्गीतशास्त्रकी मात्रा-विशेष, अणुमात्रा।

सकल वस्तुओंको ही सूक्ष्म-सूक्ष्म अंशोंमें विभाग किया जाता है। इन्हीं सूक्ष्म अंशोंको अणु कहते हैं। जिस सूक्ष्म अंशका किसी प्रकार फिर विभाग नहीं होता, उसका नाम परमाणु है। हमारे देशके नैयायिक कहते हैं, कि परमाणु नित्य है, उसे ईश्वरने नहीं बनाया। कुम्भकार जैसे मृत्तिकासे घटको निर्माण करता, ईश्वरने वैसे ही परमाणुसे जगत्के अद्भुत व्यापारकी सृष्टि की है। यह मत वेदान्तके विरुद्ध है। उपनिषत्में लिखा है,—

"इदम् वा अग्रे नैव किञ्चिदासीत्। आसीदेकमेवाद्वितीयम्।"

'इस जगत्की सृष्टिसे पहले एकमात्र अद्वितीय परब्रह्मके भिन्न और कुछ भी न था।'

अतएव जो ईश्वरको सर्वस्रष्टा और सर्वनियन्ता बताना चाहते, उनके मतसे परमाणु नित्य हो नहीं सकता। चार्वाक और बौद्धमतावलम्बी भी पर-माणुके अस्तित्वको स्वीकार करते हैं। किन्तु वैदान्तिक परमाणुको नित्य नहीं समझते। उन्हें यही विश्वास है, कि कोई ज्ञानरूप पदार्थ विद्यमान है। पाशुपत-दर्शन-शास्त्रवेत्ता भी कहते हैं, कि परमाणु नित्य नहीं। समस्त सृष्टि महेश्वरकी रची है। परमाणुको नित्य और अजन्य माननेसे ईश्वरके कर्तृत्वमें दोष लगता है।

अब बात यह है, कि क्या सचमुच परमाणु विद्य-मान है। बहुकालसे इस विषयका कितना ही विचार हो रहा है, किन्तु सन्देह नहीं मिटता। समस्त ही वस्तु विभक्त की जा सकती हैं। विभाग करते-करते जब एक-एक अंश इतना सूक्ष्म हो जाता, कि किसी फिर तरह उसका विभाग नहीं होता, तब उस सूक्ष्म अंशको परमाणु कहा करते हैं। परमाणुतत्त्ववादी स्वीकार करते हैं,—सकल वस्तुओंके ही ऐसे सूक्ष्म कण विद्यमान हैं, कि फिर किसी क्रमसे उनका विभाग नहीं होता। किन्तु यह मत अन्य सम्प्रदायसे विपरीत है। उन लोगोंका कहना है, कि देखनेके लिये उपयुक्त यन्त्र रहने और काटने या विभाग करनेके लिये सुतीक्ष्ण यन्त्र होनेसे जगत्में ऐसी सूक्ष्म कोई वस्तु नहीं, जो देखी या विभक्त की जा न सके। अतिसूक्ष्म परमाणुको भी चिरकाल तक असंख्य भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। सुतरां परमाणु कोई नित्य वस्तु नहीं। एक लोटेमें थोड़ी सी शक्कर डाल दो, समस्त जल मीठा हो जायेगा। इस स्थलमें शक्कर अत्यन्त सूक्ष्म-सूक्ष्म अंशोंमें विभक्त हुआ करती है। फिर उसी लोटेके जलको बड़े घड़ेके जलमें मिलानेसे समस्त जलमें शक्कर घुल जाती है। इसके बाद समुद्र-प्रमाण जलमें वह घड़े-भर जल डाल देनेसे अनुमान द्वारा यही सिद्ध होता, कि समस्त समुद्रके जलमें शक्करकी मिठास मिश्रित हो सकती है। इसीसे कोई-कोई पण्डित कहते हैं,—सकल द्रव्य ही इच्छानुसार सूक्ष्म-सूक्ष्म अंशोंमें विभक्त किये जा सकते हैं, इस विभागका कोई अन्त नहीं। इसलिये पदार्थके किसी अंशको परमाणु बताना विवेचनासङ्गत नहीं।

किन्तु परमाणुवादी इस बातको स्वीकार नहीं करते। वह कहते हैं—किसी वस्तुको क्षुद्र अंशोंमें विभाग करनेसे अन्तमें ऐसा सूक्ष्मांश आ जाता, कि फिर उसका विभाग नहीं होता। आजकलके वैज्ञानिक पण्डितोंमें भी अनेकोंका यही मत है। नाना भांतिकी वैज्ञानिक और रासायनिक परीक्षाओं द्वारा इसके सम्बन्धमें उन्होंने अनेक प्रमाणोंको संग्रह किया है। इन समस्त प्रमाणोंसे जो सकल वैज्ञानिक सूत्र आविष्कृत हुए, उन्हें परमाणुतत्त्व (Atomic theory) कहते हैं। किन्तु इस नूतन शास्त्रका मूल परमाणु नहीं; अणु (molecule) ही इसका

प्रधान साधन है। अणु और परमाणुमें प्रभेद इतना ही है, कि अणुका सूक्ष्म-सूक्ष्म अंशोंमें विभाग किया जाता, परमाणुका विभाग नहीं होता। किसी वस्तुको अतिशय क्षुद्र-क्षुद्र अंशोंमें विभाग करनेसे अणु निकलता, किन्तु परमाणु नहीं बनता। वायुका प्रत्येक कण अणु है, परमाणु नहीं। जब दो वस्तुओं-के संयोगसे एक यौगिक वस्तु उत्पन्न होती, तब एक वस्तुका अणु दूसरी वस्तुके अणुसे मिलता; किन्तु एक परमाणुसे दूसरे परमाणुका संयोग नहीं गंठता। किसी-किसी वस्तुका अणु ही परमाणु है। फिर किसी-किसी वस्तुका अणु दो अथवा अधिक संख्यक परमाणुओंकी समष्टि है। पारा, जस्ता प्रभृति कई पदार्थोंको विभाग करनेसे उनका सूक्ष्मतम अणु एक-एक परमाणु होता है। हाइड्रोजन, अक्षि-जन, गन्धक प्रभृतिका अणु दो परमाणुओंकी समष्टि है। सङ्खिया विषके एक-एक अणुमें चार परमाणु होते हैं। जैसे गुलदस्ता कितने ही फूलोंकी समष्टि है, वैसे ही जगत्के समुदय पदार्थ कितने ही अणु-ओंकी समष्टि हैं। जैसे एक-एक फूलमें एक किंवा अधिक पखुरी रह सकती हैं, वैसे ही प्रत्येक अणुमें एक या अधिक परमाणु होते हैं। कितने ही फूल एकमें मिलानेसे गुलदस्ता बनता है। फिर गुल-दस्तेके फूल निकाल डालनेसे प्रत्येक फूल अलग हो जाता है; किन्तु पखुरियां अलग नहीं होतीं। इसीतरह रूढ़ किंवा यौगिक पदार्थका वियोग करनेसे उसके सूक्ष्मतर अंश एक-एक अणुमें विभक्त हो जायेंगे, किन्तु परमाणु बन न सकेंगे। अणु और परमाणुमें यही भेद है।

वैज्ञानिक पण्डितोंने रासायनिक योगायोगसे यह स्थिर किया है, कि अनेक स्थलोंमें अणु दो-तीन परमाणुओंकी समष्टि होता है। अक्षिजनके प्रत्येक अणुमें दो परमाणु रहते हैं। अणु देख नहीं पड़ता; किन्तु रासायनिकोंने ताड़ितयन्त्र द्वारा जलको वियोग करके देखा है, कि जल रूढ़ पदार्थ नहीं। अक्षि-जनका एक अणु हाइड्रोजनके दो अणुओंसे मिलनेपर जल बन जाता है। जलके एक-एक अणुमें अक्षि-जनका आधा और हाइड्रोजनका एक अणु रहता है। मान लो कि दो पात्र ऐसे हैं, जिनमें एक दूसरेसे दूना, और बड़ा हाइड्रोजन और छोटा अक्षिजनके अणुओंसे भर दिया गया है, और बड़ेमें हाइड्रोजनके सौ और छोटेमें अक्षिजनके पचास अणु हैं। ऐसी अवस्थामें हाइड्रोजन और अक्षिजनको एकत्र मिला ताड़ितवेग पहुंचानेसे बन्दूककीसी आवाज़ निकल पड़ती है। यदि पात्र सुदृढ़ हुआ, तब तो न टूटेगा; ऐसा न होनेसे चूरचूर हो जायेगा। इस तरहकी आवाज़ होने और दो प्रकारके अणु मिलनेसे सौ जलकणाकी उत्पत्ति होती है। परमाणुका भाग किया जा नहीं सकता। अतएव अणुके परमाणु होनेपर पचास अक्षिजन और सौ हाइड्रोजनके अणु मिलनेसे सौ जलकणाकी उत्पत्ति किसीतरह सम्भव न थी। इसीसे यह सप्रमाण है, कि अक्षिजनके एक अणुमें दो परमाणु रहते हैं, जिसका एक-एक परमाणु एक-एक हाइड्रोजनके अणुसे मिल जाता है। इस जगह उदाहरण-स्वरूप केवल डेढ़ सौ अणुओंकी बात लिखी गई है। वास्तवमें अणु इतने सूक्ष्म होते हैं, कि कोटि-कोटि एकत्र मिलने पर भी खाली आंखोंसे देख नहीं पड़ते। पण्डितोंने अनुमान किया है, कि ६००,०००,०००,०००,०००,०००,०००,००० हाइड्रोजनके अणु वज़नमें सिर्फ़ एक रत्ती रहते हैं। आजकलके अति उत्कृष्ट अणुवीक्षण (खुर्दबीन) से देखनेपर कोई वस्तु अपने सहज आकारसे आठ हज़ार गुण बड़ी मालूम पड़ती है। यदि कोई ऐसे यन्त्रको आविष्कार कर सके, जिसे आंखमें लगानेसे कोई वस्तु अपने सहज आकारसे ६४००० चौंसठ हज़ार गुण बड़ी दिखाई दे, तो जलका एक-एक अणु देखे जानेकी सम्भावना की जा सकती है।

अणु इतना सूक्ष्म है सही, किन्तु ठीक लोहे-जैसा कड़ा होता है। एक शीशी आधी जलसे भर और खाली आधीसे वायुको चुम्बन कर काग लगा देनेसे शीशीके भीतर जलको छोड़ दूसरी कोई चीज़ रहने नहीं पाती। इसके बाद बलपूर्वक शीशी

झुकानेसे झम-झम शब्द निकलता है। वायु रहनेसे ऐसा शब्द नहीं होता।

बाष्प, तरल द्रव्य किंवा कठिन पदार्थके अणु एकत्र मिले नहीं रहते। वह परस्पर पृथक् हो जाते हैं। फिर भी, कठिन पदार्थके अणु बहुत कुछ पास-पास रहते हैं। किन्तु एक-एक अणुका मध्यवर्ती स्थान खाली होता, वहां आकाश-भिन्न और कुछ भी नहीं। बाष्प और तरल पदार्थके अणु सर्वदा ही चला करते हैं। इसीसे घरमें कोई गन्ध द्रव्य ले जानेसे चारो ओर आमोदित हो जाती हैं। एक घड़े पानीमें थोड़ा कपूर डाल देनेसे सभी पानी सुवासित होता है। बाष्पके अणु पतले हैं, परस्परमें अधिक ठेल-ठाल नहीं चलती; इसीसे यह सीधे राहपर जा सकते हैं। किन्तु, जब एक अणु दूसरे अणुको ठेलता, तब यह तत्त्क्षणात् अलग-अलग हो जाते हैं। पृथक् होनेपर यह फिर सीधे अपनी राहपर चला करते हैं। तरल पदार्थके अणु घन होते, सर्वदा ही टक्कर मारते रहते; जिसके लगनेसे पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। इसीतरह सर्वदा ठेल-ठालसे पृथक् हो जानेके कारण इनकी गति वक्र हो जाती है। कठिन पदार्थके अणु एक प्रकार स्थिर होते हैं। यह परस्पर इतने पास-पास रहते, कि इन्हें चलने-फिरनेका स्थान नहीं मिलता।

इस बातका खासा प्रमाण विद्यमान है, कि बाष्पीय अणु परस्पर टकरानेसे एकत्र नहीं जुड़ते, संघर्ष होनेके बाद फिर अपने-अपने पथमें चलने लगते हैं। कार्बोनिक एसिड गेस भरी बोतलकी ढट्ठी खोल देनेसे बाष्प बाहर निकल सारे घरमें व्याप्त हो जाती है। फिर बोतलके मुंहपर कृष्णसीसका पत्र ढका रहनेसे, जिसतरह कपड़ेके छेदसे जल निर्गत होता, उसी तरह कृष्णसीसके पत्रसे बाष्प निकलती है। बोतलमें केवल कार्बोनिक एसिड न रख हाइड्रोजन और अक्सिजन यह दोनो प्रकारकी बाष्पें भी रखी जाती हैं, किन्तु ऐसी अवस्थामें जो बाष्प अधिक लघु होती, वही पहले बाहर निकल पड़ती है। हाइड्रोजन कार्बोनिक एसिड गेसकी अपेक्षा लघु है, सुतरां हाइड्रोजन पहले निकलता, जिसके पीछे कार्बोनिक एसिड निर्गत होता है। कृष्णसीसके पत्रसे एक आधारको दो भागोंमें विभक्त कर उसके निम्नभागमें केवल विशुद्ध हाइड्रोजन रखनेपर यह बाष्प कृष्णसीसके भीतरसे शीघ्र हो ऊपर आ पहुंचती है। हाइड्रोजनका कोई-कोई अणु परस्पर संघर्ष द्वारा संयुक्त हो जानेसे अवश्य हो असंयुक्त अणुसे भारी होता, जिसके कारण संयुक्त अणु कभी बोतलके ऊपर पहले आ न सकता। फिर बोतलवाले दोनो अंशोंके अणुओंको यद्यपि कृष्णसीसके पत्रसे छान लिया जाये, तथापि ऊपरका अणु लघु होनेके कारण पहले बाहर निकलेगा। किन्तु कार्यतः ऐसा नहीं होता। विशेष परीक्षा द्वारा यह सप्रमाण हुआ है, कि ऊपरके अणु निकलनेमें जितना समय लगता है, नीचेके अणु भी ठीक उतने ही समयमें बाहर हो जाते हैं। इसीसे यह निश्चित हुआ, कि अणु परस्परमें संयुक्त नहीं,—पृथक्-पृथक् ही रहते हैं। एक-एक द्रव्यके प्रत्येक अणुका आकार, अवयव और भाव ठीक एक ही प्रकारका है। किन्तु एक प्रकारके पदार्थका अणु अन्य किसी प्रकारके पदार्थवाले अणु-जैसा नहीं। इसका तात्पर्य यह है,—जल एक पदार्थ है। निर्मल होनेसे, किसी प्रकारका भी जल क्यों न हो, सबका अणु एक ही जैसा होगा। तालाबका जल हो, या समुद्रका जल हो, जन्तुके रक्तका जलभाग किंवा पेड़के रसका जलीयांश ही हो, परिष्कार करनेसे सकल जलके अणु समान होते हैं। किन्तु जलके अणु लवणवाले अणुके तुल्य नहीं। भिन्न-भिन्न वस्तुके अणु विभिन्न प्रकार होते भी, इनके आकारमें कोई विशेष प्रभेद नहीं रहता। कारण, किसी आधारमें जितने हाइड्रोजनके अणु समाते, उसी आधारमें ठीक उतने ही अक्सिजनके अणु भी समा सकते हैं। ऐसे स्थलमें अणुओंके भारका तारतम्य हो सकता है, किन्तु संख्यामें न्यूनाधिक्य नहीं पड़ता। इसका प्रमाण यही है,—किसी आधारमें बाष्प रखनेसे, अणुकी स्वाभाविक गति द्वारा उस आधारपर सर्वदा ही आघात

लगा करता है। आधारसे अणुके टकरानेपर वह संघर्ष द्वारा वापस जाता है। इसतरहके आघातको दबाव (pressure) कहते हैं। एक सेर बाष्प-पूर्ण आधारमें यदि फिर एक सेर अपर किसी बाष्पको भर दिया जाये, तो अणुओंका दबाव द्विगुण हो जाता है। अर्थात् स्वभावत: जितना स्थान बाष्पसे व्याप्त होता, उसकी अपेक्षा स्थान घटा देनेसे अणुओंकी गति बढ़ती है। इसलिये आधारमें धड़-धड़ आघात लगता है। किसी आधारमें भिन्न-भिन्न प्रकारके अणु भी ठसाठस भर देनेसे आघात और प्रतिघातका वेग बढ़ता है। आघात और प्रतिघातका वेग देख यह निश्चित किया, जाता, कि किस आधारमें कितने अणु विद्यमान हैं।

उत्तापके न्यूनाधिक्यसे अणुओंकी गतिका तारतम्य बंधता है। उत्ताप कम लगनेसे अणुओंकी गति घटती है। उत्ताप अधिक लगनेसे अणुओंका वेग बढ़ता है। वैज्ञानिकोंने परीक्षा कर देखा है, कि शीतकालके वायुमें जो ताप (६० डिगरी फारिन-हीट) रहता, उससे वायुके अणु एक मिनटमें दश कोस घूमते हैं। अर्थात् सचराचर रेलगाड़ी जिस वेगसे दौड़ती, अणुओंका वेग उसकी अपेक्षा साठ गुण अधिक होता है।

एक-एक अणु अपने गुरुत्वानुसार अन्य अणुके साथ मिलता है। कहीं भी इस नियममें व्यतिक्रम नहीं पड़ता। आठ भाग अक्सिजन और एक भाग हाइड्रो-जन मिलनेसे जल बनता है। भागका हिसाब वज़नसे लगाना पड़ता है, किसी पात्रको मापसे ठीक नहीं होता। आठ बोतल अक्सिजन और एक बोतल हाइड्रोजन मिलानेसे जल नहीं बनेगा। कारण, यहां मापका हिसाब लगाया गया है। तथा आठ सेर अक्सिजन और एक सेर हाइड्रोजन मिलानेसे जल तय्यार हो जायेगा। कारण, इस जगह वज़नसे हिसाब किया गया है। ऐसा होनेका तात्पर्य यह है,—पहले ही कह चुके हैं, कि किसी पात्रसे बाष्पादि नापनेपर उसके अणुओंकी संख्या न्यूनाधिक नहीं पड़ती। किसी बोतलमें यदि दो-सौ अम्लजानके अणु आ जायें, तो उसी बोतलमें दो-सौ हाइड्रोजनके अणु भी समा जायेंगे, फिर यह भी पहले बता दिया गया है, कि गणनाका हिसाब लगानेसे दो हाइड्रोजनके अणु एक अक्सिजनके अणुसे मिलनेपर जल बनता है। किन्तु परमाणुतत्त्वमें यौगिक पदार्थके अणुका योगायोग भारके हिसाबसे भी लगाया जाता है। यह सकल वृत्तान्त रसायन-विद्याके अन्तर्गत हैं। अतएव रसायन और परमाणु शब्दमें अणुके अन्यान्य विवरण देखो।

२ सङ्गीतशास्त्रको एक मात्रा। अणुमात्रा (x) इस तरहके डमरु चिह्न द्वारा निर्दिष्ट होतो है। वैयाकरण अकारादि एक-एक लघुवर्णवाले उच्चारणके कालको एकमात्र काल कहते हैं। यथा,—

"एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनञ्चार्द्धमात्रकम्॥"

एकमात्र ह्रस्व, द्विमात्र दीर्घ, त्रिमात्र प्लुत और अर्द्धमात्रक वर्ण व्यञ्जन होता है। वैद्योंने अन्य प्रकारसे मात्रा निर्दिष्ट की है। उनके मतसे, चक्षु-का स्वाभाविक निमिष ही मात्रा निश्चित करनेका सहज उपाय है। "तत्र ह्रस्वाक्षरोच्चारणमात्रोऽक्षिनिमिषः।" (सुश्रुत) ह्रस्व वर्णको उच्चारण करनेमें जो समय लगता, वही चक्षुका एक निमिष है। एक-एक निमिष एकमात्र काल होता है। सङ्गीत-शास्त्रकारोंके मतसे पांच लघु वर्णोंको उच्चारण करनेमें जो समय लगता, वही एकमात्र काल है। "पञ्चलघ्वक्षरोच्चारणकालो मात्रा समीरिता।" मात्राके सम्बन्धमें भी इसीतरहके अनेक मतभेद देखे जाते हैं। जो हो, गायक और वाद्यकर अपने इच्छानुसार मात्राके कालको घटा-बढ़ा सकते हैं। कहनेका मतलब यही है, कि गीतादिके समय सर्वत्र कालका समान व्यवधान होनेसे कोई दोष नहीं लगता। सङ्गीत-शास्त्रमें अर्द्ध, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत एवं अणु—इन्हीं पांच प्रकारकी मात्राओंका व्यवहार होता है। एकमात्र कालसे द्विगुणको द्विमात्र या दीर्घमात्र, त्रिगुण या तदतिरिक्तको त्रिमात्र, अर्द्धको अर्द्धमात्र, और चतुर्थांशको अणुमात्र काल कहते हैं। यह पांच प्रकारके काल बतानेके लिये पांच प्रकारके साङ्केतिक चिह्न वर्तमान हैं। यथा,—(।) एक या

ह्रस्व, (॥) दो या दीर्घ, (|||) प्लुत, (˘) अर्द्ध और (+) अणु मात्राका चिह्न है। गानेका स्वर लिखकर बतानेके लिये, यह चिह्न स्वरके ऊपर रखना पड़ते हैं।

अणुक (सं० त्रि०) अणु-कन्। १ चतुर, निपुण। चालाक, होशियार। २ अल्प, थोड़ा।

अणुकौ निपुणाल्पयोः। (मेदिनी)

अणुज्योतिः (सं० स्त्री) सूक्ष्मदृष्टि, जो बारीकीसे देखे।

अणुतर (सं० त्रि०) बहुत उम्दा, बारीक।

अणुता (सं० स्त्री०) बारीकी, उम्दगी।

अणुतैल (सं० क्ली०) केशरोगका तैलविशेष।

अणुत्व (सं० क्ली०) अणोर्भावः। सूक्ष्मत्व, बारीकी; अणुपरिमाण।

अणुधर्म (सं० पु०) अणुः सूक्ष्मो दुर्ज्ञेयो धर्मः। दुर्बोध धर्म, बारीक मज़हब। वह धर्म जिसका उद्देश्य सूक्ष्म हो।

अणुभा (सं० स्त्री०) अणवी सूक्ष्म भा दीप्तिर्यस्याः, बहुव्री०। विद्युत्, बिजली।

अणुमध्यवीज (सं० क्ली०) एक भजनका नाम।

अणुमात्र (सं० त्रि०) अणु-मात्रच्, अणुः परिमाणमस्य। अणुमात्रिक, अल्पपरिमाण, थोड़ासा।

अणुमुष्टि (सं० पु०) विषमुष्टि, महानिम्ब।

अणुरेणु (सं० पु०-स्त्री०) बारीक, धूलिका कणा।

अणुरेणुजाल (सं० क्ली०) बारीक धूलिके कणोंका समूह।

अणुरेवती (सं० स्त्री०) अणुः सूक्ष्मा रेवती तारा इव। दन्तिवृक्ष, जमालगोटा।

अणुवाद (सं० क्ली०) १ अणु माननेवाला दर्शन, वह शास्त्र जो परमाणुको नित्य माने। वैशेषिक-दर्शन, न्यायशास्त्र। २ वल्लभाचार्यका मत, जिसमें ईश्वर और जीवको अणु माना है।

अणुवादी (सं० पु०) १ न्यायशास्त्रमाननेवाला, नैयायिक, वैशेषिक। २ वल्लभाचार्य-सम्प्रदायको स्वीकार करनेवाला वैष्णव।

अणुवीक्षण (सं० क्ली०) अणु-वि-ईक्ष-ल्युट् करणे। अणुः सूक्ष्मो वीक्ष्यते दृश्यते अनेन। १ शीशेका बना एक यन्त्र, खुर्दबीन। इसके द्वारा देखनेसे निकटकी क्षुद्र वस्तु बड़ी जान पड़ती हैं। २ अल्पदर्शन, कोताबीनी। ३ सूक्ष्मदर्शन, नुकताचीनी।

जगत्में बहुत अति सूक्ष्म-सूक्ष्म वस्तु विद्यमान हैं। चक्षुमें कोई यन्त्र न लगानेसे वह सकल क्षुद्र वस्तु कुछ भी देख नहीं पड़तीं। जिस यन्त्रसे निकटकी अत्यन्त छोटी-छोटी वस्तु बड़ी देख पड़ें, उसे अणुवीक्षण या खुर्दबीन कहते हैं। दो कटोरे मुख-मुखसे एकत्र मिलानेपर जैसा बादामी आकार बनता, अणुवीक्षणका शीशा भी देखनेमें ठीक वैसा ही होता है। यही शीशा अणुवीक्षण कलका प्रधान यन्त्र है। अंगरेजीमें इस प्रकारके आकारवाले शीशेको डबल्-कन्वेक्स लेन्स (double convex lens) कहते हैं। ऐसा ही एक शीशा सूर्यकी ओर ठीक सीधा रखनेसे उसके भीतरसे सूर्यकिरण वक्रभावमें बाहर निकलती, जहां फिर एकत्र मिल रहती है। शीशेसे कुछ दूर एक कागज़ रखनेपर उसमें अतिशय उज्ज्वल एक विन्दु पड़ता है। इस विन्दुको शीशेका प्रधान अक्षप्रदेश (principal focus) कहते हैं। एक ओर यह विन्दु, दूसरी ओर बादामी शीशा और इनके मध्यस्थलमें कोई छोटा द्रव्य रखकर शीशेके भीतरसे देखनेपर वह बहुत बड़ा देख पड़ता है।
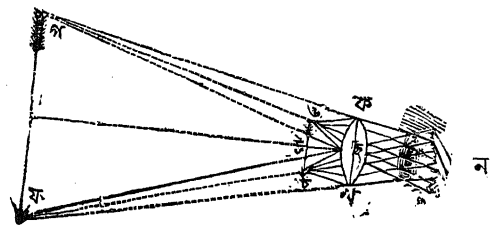
मान लो, कि छ-ढ एक द्रव्य, क-ख बादामी शीशा और ट-विन्दु प्रधान अक्षप्रदेश (principal focus) है। छ-ज द्रव्यको ट विन्दु और क-ख शीशेके बीच किसी स्थानमें रखना चाहिये। ऐसा होनेपर छ और ढसे आलोकरश्मि शीशेके भीतर वक्रभावमें प्रवेश करेगी। प्रवेश कर फिर न-की ओरसे बाहर निकल

जायेगी। आलोकरश्मिके वक्र होनेका कारण आलोक शब्दमें देखो।

अब न-से च-ङको ओर देखनेपर शीशेके जिन स्थानोंसे आलोकने प्रवेश किया है, ठीक वही-वही स्थान देख पड़ेंगे। क्योंकि किसी वस्तुसे आलोक-रश्मि निकलकर चक्षुमें लगनेसे पहले, कितनी ही टेढ़ी होकर क्यों न आये, किन्तु आलोक जिस ओरसे आकर चक्षुमें लगता, ठीक उसी ओरसे सब वस्तु देखी जाती हैं। इसका वृत्तान्त आलोक शब्दमें देखो। छ यदि शीशेका मध्यविन्दु (optical centre) हो, तो छ, ङ और छ, च मिलाकर बढ़ा, एवं न, क और न, ख रेखा भी बढ़ा देनेसे जहां समस्त रेखायें परस्पर मिलेंगी, वहीं च-ङ द्रव्य देख पड़ेगा। फिर च-ङ द्रव्य ग-घ जैसा बड़ा भी मालूम पड़ेगा। शीशेकी गठन और उसके गुणानुसार आलोकरश्मि अधिक या कम वक्र पड़ती है। वह जितना ही अधिक वक्र होगी, न कोण उतना ही बढ़ता चला जायेगा और वस्तु भी उसी परिमाणसे उतनी ही बड़ी देख पड़ेगी। च-ङ, ट बिन्दुसे जितना ही निकट रहेंगे, ग, घ उतना ही बढ़ जायेंगे। किन्तु इससे वस्तु दूरपर दिखलाई देगी। अधिक दूर रहनेसे कोई वस्तु अच्छी तरह देख नहीं पड़ती। जिस आश्चर्य यन्त्र द्वारा निर्मल जल एवं वायुके मध्य कोटि-कोटि सूक्ष्म प्राणी दिखाई देते, और जिसको सृष्टिके अनेक अद्भुत विषय आविष्कृत होते हैं, वह सिवा एक शीशेवाले टुकड़ेके और कुछ भी नहीं।
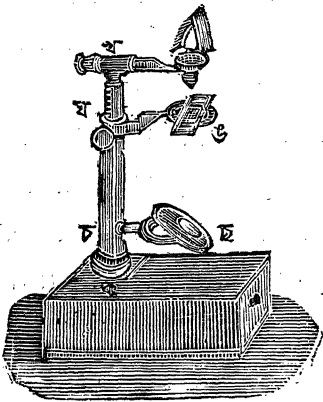
सामान्य अणुवीक्षण।

दो प्रकारके अणुवीक्षण निर्मित हुए हैं। इनमें एकका आकार और निर्माणकौशल अतिशय सहज है। इसीसे इसको सामान्य अणुवीक्षण (simple microscope) कहते हैं। इस चित्रमें क-ख एक लौह या काष्ठ-दण्ड सीधा खड़ा किया गया है। ख-ग बाहु इच्छाक्रमसे उठाया और झुकाया जाता है। ग-प्रान्तमें पूर्वकथितानुसार एक बादामजैसा शीशा लगा हुआ है। इसके भीतरसे हम देख सकते और इसे अक्षिदर्पण (eye-piece) कहते हैं। घ-ङ दूसरा बाहु है। इसके ङ-प्रान्तमें दराज़ बनी है, जिसमें दो शीशे जड़े जा सकते हैं। जिस वस्तुको देखना होता, वह इन दोनो शीशोंके बीच रखना पड़ती है। ख, ग-को आवश्यक अनुसार ऊंचा-नीचा कर अक्षिदर्पण द्वारा देखनेसे वस्तु कितनी ही बड़ी और सूक्ष्म देखी जाती है। देखनेकी वस्तु यथेष्ट आलोक न पानेसे अच्छीतरह नहीं देख पड़ती। इसलिये वस्तुपर यथेष्ट आलोक डालनेकी व्यवस्था कर दी गई है। च-छ बाहुके छ-प्रान्तमें एक कोरदार शीशा (concave mirror) जड़ा रहता है। यह शीशा इसतरह जड़ा गया, कि इच्छामत घुमाया जाता है। जिस भावमें रखनेसे परीक्षा करनेकी वस्तुपर यथेष्ट आलोक जाकर पड़ सके, शीशेको पहले उसी रूपसे रख ले। ऐसा करनेसे आलोक प्रतिफलित हो, परीक्षाके द्रव्यपर जा कर गिरेगा। दर्पण देखो। उस समय आलोकमें वस्तु खूब ही स्पष्ट देख पड़ेगी। यह बात सभी लोग जानते हैं, कि कोई वस्तु चक्षुसे अत्यन्त निकट किंवा दूर रखनेपर भली भांति देख नहीं पड़ती। चक्षुसे १०।१२ इञ्च दूर कोई वस्तु रखनेपर खूब देख पड़ती है। किन्तु सबकी दृष्टिशक्ति समान नहीं, इसलिये चक्षुकी अवस्था विचारकर यह दूरी घटा-बढ़ा ली जाती है। अर्थात् क, ग-को सरका कर कहीं ङ-की ओर लाना, कहीं ऊपरकी ओर उठाना चाहिये। साधारणतः ग और ङ-को इतनी दूर रहना आवश्यक है, जिसमें वस्तुका वर्द्धित प्रतिविम्ब चक्षुसे १०।१२ इञ्च दूर जाकर गिरे।

सामान्य अणुवीक्षणसे देखनेपर कोई वस्तु जितनी बड़ी और जैसी स्पष्ट देख पड़ती, उसकी अपेक्षा उसे और भी स्पष्ट और बड़ी दिखानेके लिये वृहदणुवीक्षणको (compound microscope) सृष्टि की गई है। यह समझ लेनेपर, कि सामान्य अणुवीक्षणसे क्यों वस्तु बड़ी दिखाती है, वृहदणुवीक्षणका कौशल अनायास समझमें आ सकेगा। सामान्य अणुवीक्षणमें केवल एक, किन्तु वृहदणुवीक्षणमें दो शीशे लगते हैं। जो शीशा चक्षुके निकट रहता, और जिसके ऊपर चक्षु जमाकर देखना पड़ता, वह अक्षिदर्पण (eye-piece) कहलाता है। अक्षिदर्पण एवं जो वस्तु देखी जाती—इन दोनोंके बीच एक दूसरा शीशा भी रहता है। इसका नाम "आधार-मुकुर" (object-glass) है। आधार-मुकुर और प्रधान अक्षप्रदेशके (principal focus) मध्यमें देखनेकी वस्तु रखी जाती है। इसतरह रखनेसे वस्तुकी एक बड़ी और उलटी छाया शीशेकी दूसरी ओर जा पड़ती है। पीछे दूसरे शीशेसे देखनेपर प्रतिकृति बड़ी और चक्षुके निकट दिखाई देती है। शेषोक्त प्रक्रिया ठीक सामान्य अणुवीक्षण-जैसी है। प्रभेद इतना ही है, कि सामान्य अणुवीक्षण द्वारा एकबारगी ही परीक्षा करनेकी वस्तु देखी जाती; किन्तु वृहदणुवीक्षणसे वस्तुकी वर्द्धित आकृति दृष्ट होती है। इसलिये सामान्य अणुवीक्षणकी अपेक्षा वृहदणुवीक्षणसे सकल वस्तु बहुत बड़ी और चक्षुके निकट देख पड़ती है। किन्तु अन्य व्यवस्था न रखनेसे आकृति उलटी देखी जाती है, इसीसे अणुवीक्षणवाले नलके भीतर कितने ही छोटे-छोटे शीशे लगे रहते हैं। उलटा प्रतिविम्ब इन सब शीशोंके भीतरसे आनेपर फिर उलट जाता, इसीसे अवशेषमें सीधा दिखाई देता है।

सामान्य अणुवीक्षणकी बनावट बहुत सीधी होती है। किन्तु वृहदणुवीक्षणके भीतर कितनी ही कारीगरी और कितना ही काम रहता है।

वृहदणुवीक्षणका चित्र हमारी इस बातका प्रमाण है। छ नल पीतलके तीन नलोंसे बनाया गया है। इसके ऊपरी दो नल इच्छानुसार सरकाकर नीचे प्रवेश करा दिये जाते हैं। नीचेका नल इसके पश्चाद्भागमें एक लौहदण्डसे सटा है। इस लौहदण्डके भीतर एक दूसरा लौहदण्ड है, जो एक पेंचसे इच्छानुसार चढ़ाया और उतारा जा सकता है। इस लौहदण्डको चढ़ाने और उतारनेसे समस्त यन्त्र चढ़ा और उतरा करता है। लौहदण्ड जिस स्थानमें लगा है, ठीक उसी
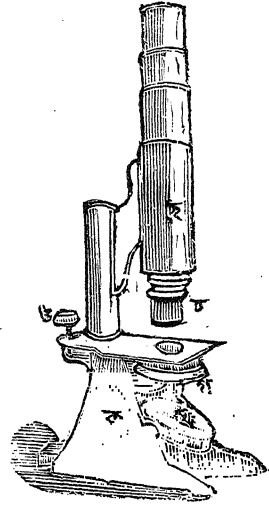
वृहदणुवीक्षण।

स्थानसे एक प्रशस्त बाहु ७-के नीचे होकर घ-की ओर चली गई है। जो वस्तु देखी जाती, वह इस बाहुपर दोनो शीशोंके बीच रखना पड़ती है, अर्थात् पीतलवाले नलके ट-चिह्नित मुखसे नीचे और बाहुके घ-चिह्नित प्रान्तमें। इस बाहुके घ-चिह्नित प्रान्तमें एक शीशा जड़ा, जो आधार-मुकुर (object-glass) कहलाता है। पीतलवाले नलके उपरिभागमें जो शीशा होता, उसका नाम अक्षिदर्पण (eye-glass) है। घ-चिह्नित स्थानमें दोनो शीशोंके बीच परीक्षाकी वस्तु रखकर आधार-मुकुरके (object-glass) ठीक नीचे लाना पड़ती है। ऐसा करनेसे वस्तुको बड़ी प्रतिकृति नलके भीतर जा पड़ती है। इसके बाद नलके ऊपरसे देखनेपर यह प्रतिकृति बहुत ही बड़ी मालूम होती है। द्रव्यपर आवश्यकतानुसार आलोक पहुंचानेके लिये उपयुक्त व्यवस्था की गई है। बाहुके जिस स्थानमें परीक्षाको वस्तु रखी जाती, उसके नीचे एक छिद्र रहता है।

ग-चिह्नित दर्पणसे इस छिद्रमें होकर आलोक आ जाता है। दर्पण, यन्त्रमें इसतरह लगाया गया है, कि प्रयोजनानुसार वह चारो ओरको हटाया जा सके। सिवा इसके आवश्यकतानुसार आलोक भी घटाया-बढ़ाया जा सकता है। बाहुवाले घ-चिह्नित प्रान्तके नीचे ग-चिह्नित एक गोलाकार धातुखण्ड विद्यमान है। इसमें छोटे-बड़े चार छिद्र बने हैं। दर्पणका आलोक इन छिद्रोंसे परीक्षाकी वस्तुपर जा पड़ता है। अधिक आवश्यक होनेपर बड़ छिद्र और अल्प आवश्यक होनेपर छोटे छिद्रसे आलोक डाला जाता है।

अणुवीक्षण ठीक हो जानेसे भी वस्तुको देखना कुछ कठिन है। यन्त्रको इसतरह रखना, और आधार-मुकुर (object-glass) परीक्षाकी वस्तुसे इतनी दूर रहना चाहिये, जिसमें आधार-मुकुरके भीतरसे वस्तुका जो प्रतिविम्ब निकले, वह पीतल-वाले नलके भीतर ही रहे। सिवा इसके दूसरी भी एक बात है। वस्तुका प्रतिविम्ब अक्षिदर्पण (eye-piece) और प्रधान अक्षप्रदेशके (principal focus) मध्यमें और अक्षप्रदेशसे जितनी दूर रहनेपर खूब स्पष्ट और बड़ा देख पड़े, उसकी भी उपयुक्त व्यवस्था होना चाहिये। साधारणतः, प्रतिकृति अक्षिदर्पणमें १०।१२ इञ्च दूर रहनेसे यह उद्देश्य सिद्ध होता है। फिर भी, सबके चक्षुका तेज समान नहीं, इसीसे यह दूरी घट-बढ़ भी जाती है। यह सब ठीक-ठाक करनेके लिये पहले ऊपरवाले दोनो पीतलके नल नीचेवाले नलके बीचसे चढ़ा किंवा उतार, आधार-मुकुरको वस्तुसे इतनी दूर रखना पड़ेगा, जिसमें उसकी प्रतिकृति कितने ही परिमाणसे स्पष्ट दिखाई दे। इसके बाद पश्चाद्भागवाले लौहनल द्वारा समस्त यन्त्र इधर-उधर घुमाने-फिरानेसे जब वस्तु खूब स्पष्ट और बड़ी देख पड़े, तब समझ लेना चाहिये, कि अणुवीक्षण ठीक तौरसे रखा गया है। फिर, ग-चिह्नित दर्पण ठीक करके रखना चाहिये, जिसमें ठीक-ठीक आलोक पहुंच सके। सूर्यका प्रचुर आलोक न रहनेसे प्रदीप जला ले। यह अच्छी तरह देख लेना चाहिये, कि प्रदीप किस स्थानमें रखनेसे दर्पण पर उसका प्रतिविम्ब पड़ परीक्षाकी वस्तुपर भी पहुंच सकता है। यह समस्त भली भांति करनेके लिये विशेष कोई नियम नहीं। एकबार अणुवीक्षणकी परीक्षा देखनेसे सभी लोग अनायास यन्त्रको ठीक कर सकते हैं।

एक-एक अणुवीक्षणमें अनेक अक्षिदर्पण (eye-piece) एवं आधार-मुकुर (object-glass) रहते हैं। इन सब शीशोंके गुणसे वस्तु बहुत या कुछ बड़ी देख पड़ती है। इसीसे प्रयोजनानुसार जिस तरह अक्षिदर्पण और आधार-मुकुर लगाये जायेंगे, वस्तु भी उसीतरह बड़ी किंवा छोटी दिखाई देगी। अणुवीक्षण अनेक प्रकारके होते हैं, किन्तु बनावट सबकी एक ही जैसी है।

द्विनालिक (binocular microscope) नामक एक दूसरी तरहका अणुवीक्षण होता है। अभी जिस अणुवीक्षणकी बात कही गई है, उसमें पीतलके तीन नल ऊपर-ऊपर लगे रहते हैं। द्विनालिक अणुवीक्षणमें ऐसे ही और तीन नल होते हैं। इसके अक्षिदर्पण भिन्न-भिन्न हैं, इसीसे दो शीशे लगाकर दोनो आंखोंसे देखा जाता है। फिर आधार-मुकुर एक ही रहता है। अक्षिदर्पण द्वारा दो प्रतिकृति पड़ती हैं। किन्तु ठीक एककाल और एकभावसे देखा जानेके कारण दो प्रतिकृति नहीं मालूम देतीं। इस यन्त्र द्वारा वस्तुका सकल दिक् खूब अच्छी तरह देखनेमें आता है।

अणुव्रत (सं० पु०) जैनियोंके गृहस्थ-धर्मका एक अङ्ग, जिसमें प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तदान, मैथुन और परिग्रह यह पांच विरमण या यम होते हैं।

अणुव्रीहि (सं० पु०) अणुः सूक्ष्मो व्रीहिः धान्यं कर्मधा०। सूक्ष्म धान्य। धान्य, जिसका अन्न बहुत छोटा और बढ़िया होता है। मोतीचूर।

अणुश्रोत्र (सं० क्ली०) अणुः सूक्ष्मशब्दः श्रूयते अनेनेति। माइक्रोफोन (Microphone) नामक एक यन्त्र, जिसके द्वारा बहुत ही सूक्ष्म शब्द सहजमें सुन पड़ता है। सन् १८७८ ई० में अध्यापक ह्यियुजने

इस यन्त्रको आविष्कार किया था। इस यन्त्रका ऐसा चमत्कार है, कि एक छोटी मक्खीके चलकर घूमने पर दो-तीन कोस दूरसे उसके पैर चलानेका शब्द अनायास साफ़-साफ़ सुननेमें आता है। विलायती विलो नामक वृक्षका कोयला ही इस यन्त्रका प्रधान उपादान है।

अणुशस् (सं० अव्य०) टुकड़े-टुकड़े।

अणुह (सं० पु०) भीमराजके एक पुत्र।

अणुभाव (सं० पु०) अणुत्व, ज़र्रा होनेकी हालत।

अण्ड (सं० क्लो०) अम-गत्यादिषु-ड। अमन्ति सम्प्रयोगं यान्ति अनेन। अमन्नाड्डः। उण् १।११११। १ अण्डा। २ कोष। ३ मुष्क। ४ वीर्य। ५ मृगनाभि। अण्डं खगादिकोषे स्यान्मुष्के वीर्य्येऽपि च क्वचित्। (विश्वप्रकाश) अण्ड शब्दका ही अपभ्रंश अण्डा है। जीव उत्पन्न होनेकी पहली अवस्थामें मनुष्यों, गायों, पशु-पक्षियों, मछलियों, कीड़े-मकोड़ों प्रभृति सभी प्राणियोंकी स्त्री-जातिके गर्भमें अण्डे होते हैं। इनमें मनुष्य, पशु प्रभृति कोई कोई जन्तुओंके गर्भसे ही अण्डा पक जाया करता; पीछे जरायुसे सन्तान उत्पन्न होती है। किसी-किसी जन्तुके गर्भमें सन्तान उत्पन्न नहीं होती। पक्षी, मछली प्रभृति कितने ही जन्तु अण्डे देते हैं। अन्तमें भूमिष्ठ होने, और अण्डा पकनेके बाद बच्चा बाहर निकलता है। प्राणितत्त्वज्ञोंने देखा है, कि जगत्में मनुष्यसे लेकर कीड़े-मकोड़ेतक जितने प्रकारके जीव हैं, उन सबकी उत्पत्तिका नियम बराबर नहीं होता। हमारे शास्त्रकारोंने चार प्रकारकी उत्पत्ति बताई है। जैसे,—१ जरायुज—यानी मनुष्य, गो, महिष प्रभृति। २ अण्डज—जैसे पक्षी, मछली इत्यादि। ३ स्वेदज—जैसे कीड़े, खटमल आदि। ४ उद्भिद्—यानी वृक्ष, लता प्रभृति। उन्होंने सब जीवोंको चौरासी लाख श्रेणियोंमें बांटा है। इन चौरासी लाख श्रेणियोंमें चार लाख मनुष्य, तेईस लाख चौपाये, दश लाख पक्षी, ग्यारह लाख कीड़े, सत्ताईस लाख स्थलचर और नौ लाख जलचर हैं। शास्त्रकारोंकी लिखी चार श्रेणियोंमें एक श्रेणी तो उद्भिद्की हुई, बाकी तीन श्रेणी जन्तुओंकी हैं। युरोपके भी प्राणितत्त्ववित् पण्डितोंने जन्तुओंकी उत्पत्तिका तीन प्रकार नियम निश्चित किया है। किन्तु उनकी व्यवस्था दूसरी तरहकी है। बहुत दिन पता लगानेके बाद उन्होंने ऐसा निश्चय किया, कि किसी-किसी जीवका शरीर काट दो टुकड़े कर डालनेसे उसके एक-एक टुकड़ेसे पहलेकी भांति एक-एक जन्तु उत्पन्न होता है। उसी एक जन्तुके

व्यवच्छेद द्वारा जीवोत्पत्ति।

दो टुकड़े करनेपर फिर एक-एक टुकड़ेसे ठीक वैसे ही जन्तु उद्भूत हुआ करते हैं। इसीतरह एक जन्तु जितने बार दो टुकड़े किया जायेगा, उतने ही बार उसके हरेक टुकड़ेसे एक-एक प्राणी निकलेगा। इस प्रक्रियाको व्यवच्छेद (fission) द्वारा जीव उत्पन्न करना कहते हैं। जलमें जो कितने ही प्रकारके कीड़े रहते हैं, उनकी उत्पत्ति इसीतरह होती है। सड़ा हुआ मछली-मांस खानेसे पेटमें फ़ीते जैसा एक प्रकारका कीड़ा उत्पन्न होता है। पहले उसके शरीरमें जगह-जगह गांठ पड़ जाती, धीरे-धीरे गांठके मिट जाने-पर उससे एक-एक स्वतन्त्र कीड़ा निकलता है। वर्षा ऋतु आनेपर गांवोंके सड़े तालाबोंमें जोंक जैसा एक प्रकारका कीड़ा उत्पन्न होता है। कुछ दिन बाद उसकी पूंछकी ओर दूसरा एक कीड़ा उत्पन्न हो जाता है। दे कोआत्रेफगे (De quatrefages) नामक किसी प्राणितत्त्ववित् पण्डितने सिलिस (Syllis) नामक एक प्रकार कीड़ेके शरीरकी परीक्षाकर देखा है, कि उसकी देह टूटनेसे और भी नये-नये कीड़े उत्पन्न होनेके समय पूंछकी ओर अंगूठी जैसी कितनी ही गांठें देख पड़ती हैं, और पहली ही गांठके ऊपर एक दाग बन जाता है। थोड़े ही दिनमें इस गांठके ऊपर शिर और आंखें निकल आती

हैं। ऐसा होनेसे भली भांति देखा जा सकता, कि पूंछकी ओर, दूसरा एक नया कीड़ा उत्पन्न हो गया है। पुराना कीड़ा अपने मनसे एक ओर चला जाता है। नया कीड़ा उस ओर नहीं जाना चाहता, वह दूसरी ओर घूम फिरता है। किन्तु इस अवस्थामें भी दो कीड़ोंके दो विभिन्न
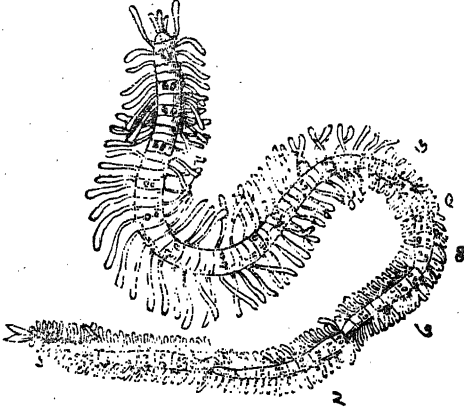
इस जगह १, २, ३, ४, ५, ६—यह छः दाग पड़नेसे छः नये कीड़े उत्पन्न होते हैं।

पाकयन्त्र नहीं देख पड़ते। पुराना कीड़ा जो भोजन करता, उसीसे नये कीड़ेका शरीर पलता है। इसी समय किसी-किसी स्थलमें नये कीड़ेके गर्भसे अण्डा और कहीं शुक्रकोष उत्पन्न हुआ करता हैं। इसके बाद दोनो कीड़े अलग हो जाते हैं, धीरे-धीरे अण्डा और शुक्रकोष बड़ा होनेपर बच्चोंका गर्भ फटता है। ऐसा होनेसे जलके ऊपर बहते-बहते यह अण्डा और शुक्रकोष एकमें मिल जाता और उससे फिर नया कीड़ा उत्पन्न होता है।

बन्नेट साहबने एक कीड़ेके दो टुकड़ेकर देखा है, कि उसके मस्तकवाले अर्द्धांशके कटे हुए मुंहसे शीघ्र ही पूंछ निकली और पूंछकी ओरके अर्द्धांशके कटे हुए मुंहसे माथा बाहर हुआ। इसीतरह उन्होंने एक कीड़ेको काट छब्बीस टुकड़े किये थे; उसके हरेक टुकड़ेमें एक-एक नया कीड़ा उत्पन्न हुआ था।

जीवोत्पत्तिका दूसरा नियम पराङ्गोद्भेद (gemmation) है। नदी और समुद्रके जलमें कितने ही प्रकारके कीड़े होते हैं, बच्चा उत्पन्न होनेके समय उनके शरीरके किसी स्थानमें फोड़ा-जैसा कुछ फूल आता है। धीरे-धीरे वह फोड़ा बढ़ा करता और रोज़-रोज़ उसका आकार-अवयव ठीक पुराने कीड़े-जैसा होते चला जाता, अन्तमें उसके शरीरसे निकल पड़ता है। इसीको पराङ्गोद्भेद (gemmation) द्वारा जीवोत्पत्ति कहते हैं। पुरुभुज नामक एक प्रकारका कीड़ा पानीमें रहता, जो इसीतरह उत्पन्न हुआ करता है। यह कीड़ा जलके किनारे, लकड़ी और पत्थरसे चिपका रहता है। किसी छोटे कीड़े, मकोड़ेके पास आनेसे यह उसे पकड़कर खा डालता है। सन्तान उत्पन्न करनेसे पहले इसके शरीरके किसी स्थानमें व्रण-जैसा फूल आता है, धीरे-धीरे उसी व्रणसे दूसरा एक पुरुभुज निकल पड़ता है। अवशेषमें पुरातन पुरुभुज शरीरसे दूर होता; किन्तु अनेक स्थलोंमें बच्चा न गिरनेसे भी उसके शरीरपर दूसरा बच्चा पैदा हो जाता है। इसीतरह पुरुभुज एक ही साथ चार-पांच पुरुषतक रह सकते हैं। इस जगह एक पुरुभुजका चित्र दिया गया है। इसके शरीरमें क और ख—यह दो पुरुभुज उत्पन्न हो रहे हैं।
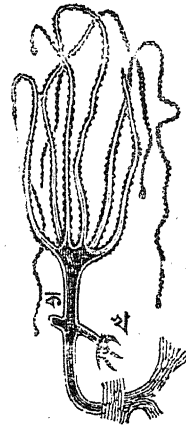
एक पुरुभुजके शरीरसे दो नये पुरुभुजोंकी उत्पत्ति।

सिवा इन दो श्रेणियोंके बाकी दूसरे जन्तुयोंके जीवनका सूत्रपात अण्डेके भीतर होता है। जो जीव अण्डे देते और अण्डे फूटनेपर जिनका जन्म होता है, उन्हींको हम अण्डज कहते हैं। किन्तु समझकर देखनेसे यह सिद्धान्त बहुत ठीक नहीं। मनुष्य, गो, मेष प्रभृतिको भी अण्डेसे उत्पन्न होनेके कारण अण्डज कहना असङ्गत नहीं है। बिना स्त्री और पुरुषकी जननेन्द्रियका संयोग हुए इस श्रेणीके जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती। इनमें किसी जातिवाले जन्तुके स्त्री-पुरुष अलग नहीं;

विधाताने इनके एक ही शरीरमें यह दोनो प्रकारकी इन्द्रियां बना दी हैं। इसके विरुद्ध किसी-किसी जातिके स्त्री-पुरुष विधाताने अलग-अलग सांचेमें ढाले हैं।

विना पुरुष-संसर्ग कितने ही प्राणियोंके सन्तान उत्पन्न नहीं होती। किन्तु अण्डेकी उत्पत्ति ऐसी नहीं। बिना पुरुषके संसर्ग ही अण्डा उत्पन्न हुआ करता है। क्या मनुष्य, गो, बकरा, भैंस प्रभृति बड़े-बड़े जीव, क्या पक्षी और मछली—सभी प्राणियोंके लिये यही नियम है। सन्तानोत्पत्तिके लिये स्त्रीजातिके शरीरमें चार प्रधान स्थान होते हैं,—१ अण्डाधार (ovaries), २ अण्डप्रणाली (Fallopian tubes or oviducts), ३ जरायु (uterus), ४ योनि (vagina)। मनुष्य और हाथी, गो, भैंस प्रभृति बड़े-बड़े जन्तुओंकी स्त्रीजातिके दो अण्डाधार होते हैं। पक्षिजातिके पेड़ूवाले वाम भागमें केवल एक ही अण्डाधार रहता है। अण्डाधार, पेड़ूकी दोनो ओर कोखके ऊपर होता है। इसकी बनावट कमलकी कली-जैसी बीचमें मोटी और दोनो ओर नोकदार रहती है। दोनो ओर दो अण्डाधार और बीचमें जरायु होती है। अण्डाधारसे जरायु तक जो नली है, उसे अण्डप्रणाली कहते हैं। जरायुके नीचे योनिमार्ग है।
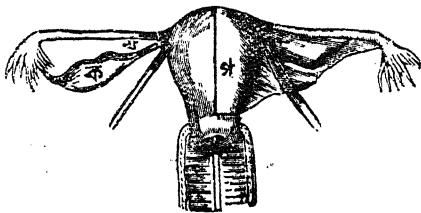
क—अण्डाधार। ख—अण्डप्रणाली। ग—जरायु।

अण्डप्रणाली कोई चार इञ्च लम्बी होती है। जिनके सन्तान नहीं होती, उन स्त्रियोंकी जरायु तीन इञ्च लम्बी, ऊपरकी ओर दो इञ्च चौड़ी और मुंहानेके पास सिर्फ आध ही इञ्च खुली रहती है। छोटे-छोटे कोष विन्दु-विन्दु सदृश निकल सभी उमरमें अण्डाधारके भीतर संलग्न रहते हैं। शैशवसे प्रौढ़ावस्था तक सभी अवस्थाओंमें कोष विद्यमान रहते देखे जाते हैं। धीरे-धीरे बढ़ने और पकनेपर यह कोष अण्डाधारके ऊपर उठते हैं। इन कोषोंके बीचमें लार-जैसा पदार्थ रहता है। मनुष्यका अण्ड भी बहुत ही छोटा होता है। अण्ड धीरे-धीरे बड़ा हो आनेपर भीतरके कुसुमादि बढ़ते रहते और ऊपरका आवरण-चर्म पतला होता चला जाता, इसीसे अन्तमें वह फट पड़ता है। फट जानेपर यह कुसुमादि अण्डाधारके ऊपरसे अण्ड-प्रणालीमें आ पहुंचते हैं। अण्डाधारसे अण्डके अलग हो अण्डप्रणालीमें आनेसे स्त्रियोंका ऋतुकाल होता है। उसी समय पशु-पक्षी शरीरमें सन्ताप होनेसे घूमने और बोलने लगते हैं। इसी अवस्थामें पुरुषका संसर्ग होनेसे अण्डके भीतर जीवका सञ्चार होता है। पुरुषका संसर्ग न होनेसे अण्डा सूख जाता है। कितनों ही ने देखा है, कि पालू हंसों और कबूतरोंके खाकी अण्डा होता है; किन्तु उस अण्डेसे बच्चा नहीं निकलता। खाकी अण्डा और कुछ भी नहीं,—बिना पक्षीके संसर्ग पक्षिणी जो अण्डा देती है, उसीको खाकी अण्डा कहते हैं।

मछलीके गर्भमें अण्डेसे जीवका सञ्चार नहीं होता। मछलीके अण्डा देनेपर मत्स्य उसी जगह जा शुक्रत्याग किया करता है। उसी शुक्र यानी वीर्यके अण्डेमें लगनेसे बच्चा उत्पन्न होता है। सिर्फ तीमी और कोई-कोई हङ्गरीके गर्भमें अण्डेसे बच्चा निकलता है, जो दूसरी मछलियोंकी तरह अण्डे नहीं देतीं।

सब प्रकारके अण्डज जन्तुओंके अण्डोंकी संख्या बराबर नहीं। घोंघा एक ही बार न्यूनाधिक पचास अण्डे देता है। दीमक प्रतिदिन अस्सी हजारसे कम अण्डे नहीं देती। यह एकादिक्रमसे दो वर्षतक अण्डे देती हैं; इसीसे एक-एक दीमकके कोई पांच करोड़तक सन्तान होती है। एक-एक कछुएके एक बारमें कमसे कम पचाससे डेढ़ सौ तक अण्डे होते हैं। सचराचर पक्षिजातिके एकबारमें दोसे चारतक अण्डे उत्पन्न होते देखे जाते हैं।

हंस अण्डा देना आरम्भ करनेपर एकादिक्रमसे कोई पन्द्रह-सोलह दिन अण्डे देते हैं। छोटी जातिवाले कितने ही पक्षियोंके एकबारमें अट्ठारह अण्डे होते हैं। शुतुरमुर्गका (Ostrich) अण्डा सबसे बड़ा—सचराचर कोई एक फुट लम्बा हुआ करता है। इसका ढक्कन बहुत ही कड़ा रहता है। अफ्रीकाके असभ्य लोग इसका जलपात्र बना पानी पीते हैं। साधारणतः पक्षी वसन्त और ग्रीष्म ऋतुके बीच दो बार अण्डे देते हैं। सिर्फ, कबूतर, राजहंस, गरगवा प्रभृति कोई-कोई पक्षी इस नियमसे बाहर हैं।

पक्षीके अण्डेमें चार चीजें होती हैं। यानी,—१ ढक्कन, २ झिल्ली-जैसा चमड़ा, ३ सफेद लार, ४ कुसुम।

ऊपरके ढक्कनका रासायनिक उपादान सैकड़े पीछे इस हिसाबसे रहता है—

कार्बनेट अव लाइम	...	...	८६.६
फस्फेट अव लाइम और मिग्नेशिया	...		५.७
गन्धक और जान्तव पदार्थ	...	...	४.७

ढक्कनके भीतर लिपटे हुए झिल्ली-जैसे चमड़ेका रासायनिक उपादान सैकड़े पीछे यह है,—

कारबन	...	...	...	...	५.६
नाइट्रोजेन	...	...	...	...	१६.८
हाइड्रोजेन	...	...	...	...	६.६
गन्धक और अक्सिजेन			...	...	२६.०

हंसके एक-एक अण्डेका वजन कोई पांच सौ रत्ती होता है। इसमें ढक्कन पचास रत्ती, सफेद लार तीन सौ पांच रत्ती और कुसुम यानी फूल एक सौ पैंतालीस रत्ती रहता है। सचराचर कच्चा अण्डा वजनमें कोई एक छटांक होता; पकानेसे उसका कितना ही भार कम पड़ जाता है। अण्डेका फूल सफेद लारके साथ दो रस्सी-जैसे पदार्थोंसे बंधा रहता है। सफेद लारमें सैकड़े पीछे यह कई पदार्थ होते हैं—

जल	...	...	...	८४.८
अलबूमेन	...	...	...	१२.०
मेद, शक्कर इत्यादि		...	...	२.०
पार्थिव द्रव्य	...	...	...	१.२

पार्थिव द्रव्यमें यह कई पदार्थ मिले हैं,—फस्फेट, चूना, पोटाश, मिग्नेशिया और लोहा।

अण्डेका फूल और भी अधिक बलकारक द्रव्योंसे बना है। इसमें यह कई चीजें होती हैं,—

जल	...	...	...	५१.५
केजिन् और अलबूमेन		...	...	१५.०
तेल और मेद	...	...	...	३०.०
पिग्मेण्ट इत्यादि		...	...	२.१
पार्थिव पदार्थ	...	...	...	१.४

अण्डेके भीतरका पीला फूल ही बच्चा है, जो सफेद लार खाकर जीता और हृष्ट-पुष्ट भी होता है। गर्भके भीतर मनुष्य और गो, बकरे, शृगाल, कुत्ते प्रभृतिकी सन्तान और पक्षीके अण्डेका बच्चा जब बढ़ा करता है, तब उसकी आकृति देख यह सहजमें पहचाना नहीं जा सकता, कि कौन मनुष्यकी सन्तान और कौन पशु और पक्षीका बच्चा है। नीचे तीन चित्र दिये गये हैं। इनमें एक मनुष्य, एक कुत्ते और एक पक्षीके भ्रूणका चित्र है। तीनो आकृतियोंमें परस्पर इतना सादृश्य वर्त्तमान है, कि इनका प्रभेद समझ लेना कठिन जान पड़ता है। वैज्ञानिक डार्विन साहबने ऐसे कितने ही प्रत्यक्ष कारण दिखा स्थिर किया था, कि क्रमोन्नति द्वारा छोटे जीवसे बड़ा जीव उत्पन्न होता और बन्दरसे मनुष्य बनता है।
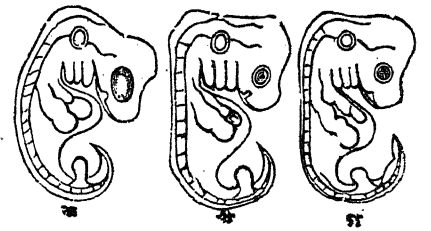
अण्डमें बीज।

क—पक्षी। ख—कुत्ता। ग—मनुष्य।

प्राणी और उद्भिद्की तरह अण्डा भी निश्वास-प्रश्वास लेता है। निश्वासके साथ वह अक्सिजेन् खींचता और प्रश्वासके साथ हाइड्रोजेन और कारबन छोड़ता है। अण्डेके ढक्कनमें छोटे-छोटे छेद होते हैं, उन्हीं छिद्रों द्वारा श्वास-प्रश्वास-क्रिया की

जाता है। अण्डेको यदि अधिक दिन रखना हो, तो इसकी श्वासक्रिया बन्द कर देना आवश्यक है। अण्डेका सांस लेना बन्द कर देनेसे वह सड़ता-गलता नहीं। ढक्कनके छेद बन्द कर देनेसे फिर सांस नहीं आती-जाती। गली हुई पानी-जैसी चर्बी या मोमके भीतर अण्डा डुबा देनेसे छेद बन्द हो जाते हैं। इसीसे अण्डे सुरक्षित रखनेका उपाय बहुत ही सीधा है। ढक्कनके ऊपर कलई या चूना डाल देनेसे भी यह उद्देश्य सिद्ध होता है। प्रति वर्ष कोई दो करोड़ रुपयेके अण्डे विलायत जाते हैं। सिवा भोजनके वहां यह कितने ही प्रकारके शिल्पकार्योंमें भी लगते हैं। हमारे देशमें अण्डा शिल्पके किसी बड़े काम अधिक नहीं आता, केवल इससे कोई-कोई रङ्ग चमकाया जाता और कलईका काम निकलता है।

अण्डा सेनेका यन्त्र।

पक्षियोंके अण्डा न सेनेपर भी वैज्ञानिक प्रक्रियासे गर्मी पहुंचाके अण्डा उत्पन्न कर लिया जाता है। अण्डा सेनेका यन्त्र बहुत सीधा है। क बाष्पाधार है। अंगरेज़ीमें इसे बायलर (boiler) कहते हैं। हण्डीपर ढक्कन रख नीचे आग जलानेसे उसके भीतर धुआं उत्पन्न होता है। यह बाष्पाधार भी ठीक उसी तरहका है। पहले जलमें आगकी गर्मी पहुंचाना पड़ती है। गर्मी पानेसे जल भाफ बन जाता है। इसके बाद वही भाफ ख-नलसे ऊपर चढ़ती है। ख-नल चारो ओर घूमके पीछे ग, ङ-वाले एक स्वतन्त्र घरसे फिर बाष्पाधारके साथ मिल गया है। ख-नलके भीतर भाफ जा अण्डे सेनेका आधार गर्म कर देती है। च-नलसे बाष्पाधारमें जल डाल देना पड़ता है। छ-नल द्वारा वायु निकल जाता है। वायु निकाल देनेका तात्पर्य यह है, कि नलमें वायु रहनेसे प्रयोजनानुरूप भाफ आ जा नहीं सकती। ज ज ज छोटे-छोटे पात्र हैं। इन सबमें जल रहता है। इस जलसे अण्डेकी आधारवाली हवाको जितना आवश्यक होता है, उतना आर्द्र और स्निग्ध कर देते हैं। झ झ पात्रोंमें अण्डे ख-नलके नीचे कतारमें सजाना पड़ते हैं। पक्षीके पेड़ूसे अण्डेमें जो गर्मी पहुंचती, उसका परिमाण एक सौ डिग्री फारेनहीट है। ख-नलसे भी ऐसी ही गर्मी पहुंचनेपर अण्डा निकलता और उसका भी परिणाम एक सौ डिग्री होता है। इसी तरह गर्मी पहुंचानेसे हंस और मुर्गी प्रभृतिका अण्डा बीस दिनमें फूट निकलता है। इसलिये रोज़ सवेरे एक सौ अण्डे निकालनेकी आवश्यकता होनेपर पहले दिन एक सौ अण्डे कतारमें सजा दे। आधारके भीतर जो छोटे-छोटे विन्दु (०००००) देख पड़ते, वह सब अण्डोंके चित्र हैं। दूसरे दिन पहले दिनके अण्डे नीचेके ढेरमें खिसकाके ऊपर और एक सौ अण्डे सजाये। इसीतरह प्रति दिन पहलेके अण्डे क्रमान्वयसे नीचेके ढेरमें खिसका लाये और ऊपर नये अण्डे रख दे। इसीतरह रोज़ सवेरे एक सौ अण्डे रखे जानेपर इक्कीसवें दिनसे अण्डे फूटना आरम्भ होता और रोज़ एक सौ बच्चे उत्पन्न होने लगते हैं। अण्डे फूटनेपर तीन-चार दिन बच्चोंको ग घ ङ घरमें रखना आवश्यक है। इस घरमें छोटे-छोटे दाने डालनेसे बच्चे उन्हें स्वयं चुग लेते हैं। तीन-चार दिन बाद बच्चोंको बाहर निकाल मुर्गीके पास छोड़ दे। अन्य सन्तानकी रक्षा और उसका लालन पालन करनेवाली मुर्गी और तीतरी जैसी उत्तम धात्री और दूसरी देख नहीं पड़ती।

पक्षीका अण्डा सुस्वादु और पुष्टिकर होता है। अधिक परिश्रम, मानसिक चिन्ता, शिरका घूमना प्रभृति स्थलोंमें अण्डा खानेसे अनोखा फल देख पड़ता है। हमारे देशमें हिन्दू हंस और कछुएका अण्डा खाते हैं। मुसलमान मुर्गीका अण्डा खाया करते हैं

और इतर जातिवाले लोग अन्यान्य पक्षियोंका भी अण्डा खाते हैं। अण्डेको पकाकर, भूनकर या उसको कलिया बनाकर सब लोग खाया करते हैं। किन्तु शरीरके अधिक दुर्बल होनेसे कच्चा अण्डा खाना चाहिये। पावभर ख़ालिस दूध, एक नये अण्डेका फूल और कुछ चीनी या शक्कर एकमें मिला रोज़ सवेरे खाये। जिन्हें कच्चेका नाम सुननेसे घृणा आये, वह इसका अपने सामने तय्यार किया जाना न देखें। भूना हुआ अण्डा खानेकी इच्छा होनेपर कभी उसे खरा न करे; कारण, ऐसा करनेसे उसमें बदबू आने लगती और वह खानेमें फीका मालूम होता है। एक मट्टीके बरतनमें थोड़ा घी डालके उसे हलकी आंचपर चढ़ा दे। घी खूब गर्म हो जानेपर उसमें एक अण्डा तोड़ सब फूल और रस सावधानीसे डाले। कुछ गर्म होनेपर उसमें कालीमिर्चका चूर्ण और थोड़ासा नमक डाल उतार ले। यह देखनेमें ठीक मालपुआ-जैसा हो जाता है। युरोपीय जो अण्डा तोड़कर खाते हैं, वह इसीतरह तय्यार होता है। अण्डा तोड़ और उसका सफ़ेद और पीला भाग अलगकर कांटेसे मथना पड़ता है। इसके बाद दोनो भागोंको इकट्ठाकर और प्याज, लालमिर्च और नमक डालके गर्म घीपर छोड़ देनेसे वह फूल आता है। एक ओर भली भांति भुन जानेसे उलटाकर नीचे उतार ले। इसतरह जो अण्डा तला जाता है, उसे ओमलेट (omellete) कहते हैं।

कितनी ही प्रकारकी पीड़ाओंमें अण्डा काम आया करता है। ज्वरविकारमें पेशाब बन्द हो जानेसे हमारे कविराज या वैद्य काली मुर्गीका अण्डा सिन्दूरके साथ मिला नाभिके ऊपर लेप कराते हैं। किसी स्थानके जल जानेपर शीघ्र-शीघ्र उसमें अण्डेका फूल चुपड़ देनेसे फ़ायदा होता है। क्षार द्रव्य अधिक खानेसे पेटके भीतर विषक्रिया उत्पन्न हो जाती है। पहले वमन कराके पीछे रोगीको अण्डेका रस दूधके साथ खानेको दे। सुसमयमें यह उपाय कर सकनेसे पाकस्थलीकी श्लैष्मिक पतली खालमें फिर जलन नहीं उठती। द्वन्द्वज ज्वरविकारके रोगकी अवसन्न अवस्थामें नाड़ी क्षीण और क्षण-क्षणमें विलुप्त तथा बन्द हो जानेपर शराबके साथ मिलाकर अण्डा खिलानेसे रोगी सबल हो जाता और नाड़ी सुस्थिर और बलवती बनती है। डाक्टर व्यानारने अण्डा मिलानेकी इसतरह व्यवस्था बताई है,—तीन नये अण्डोंका फूल और लार आधपाव साफ़ पानीमें मिलाये। इसके बाद उसमें आधपाव अच्छी ब्राण्डी, (शराब) थोड़ीसी चीनी और जायफलचूर्ण डाल दे। यह औषधि सवा तोले मात्रामें चार-चार घण्टे बाद रोगीको सेवन कराये।

अण्डा बहुत ही पुष्टिकर खाद्य है। खाकर इसे पचा सकनेसे शरीरमें असुरकासा बल हो जाता है। इसके समस्त सारपदार्थ देहके विधानोपादानमें परिणत हो जानेसे इतना बल बढ़ता है, कि आध-सेर पके अण्डेसे सोलह हज़ार चार सौ मन बोझ एक हाथ ऊंचा उठा लेनेका पराक्रम आ जाता है। किन्तु हम जो चीज़ें खाते हैं, उनकी सब शक्तियां काम नहीं आतीं। वह कुछ पकतीं और कुछ नहीं पकती हैं। फिर जो पकती हैं, उनका भी अधिकांश दैहिक विधानोपादानकी क्षति पूरी करनेमें खर्च हो जाता है।

समझकर देखनेसे अण्डा ही प्रायः सब जीवित पदार्थोंके उत्पन्न होनेकी पहली अवस्था है। वृक्षका बीज भी सिवा एक प्रकार अण्डके और कुछ भी नहीं। अण्डेका फूल ही जीव है, बीजका अङ्कुर भी इसीतरह उद्भिद्का जीवन है। अण्डेका फूल सफ़ेद रस खाके जीता और बढ़ता है। इसलिये अण्डे और बीजमें अधिक कोई प्रभेद नहीं। अङ्कुर देखो। शास्त्रकारोंने इस ब्रह्माण्डसृष्टिकी पहली अवस्थामें भी एक अण्डोत्पत्तिकी कल्पना की थी। मनुसंहितामें लिखा है,—

"सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥ १।८।
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभं।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥" १।९।

सृष्टिके उत्पन्न करनेकी इच्छासे परमात्माने अपने शरीरमें विविध प्रजा उत्पन्न करनेके विचारपर पहले जलकी सृष्टि की और उसी जलमें शक्तिरूप वीज डाल दिया। यह वीज सोने-जैसा विशुद्ध और सहस्रांशु सूर्य-जैसा चमकीला एक अण्डा बन गया। इससे सब लोगोंके पितामह स्वयं ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

सन्तालोंका कहना है, कि पहले यह जगत् जल-राशिमें डूबा था। उसी समय एक हंस और हंसिनी दोनो जलके ऊपर पद्मदलमें वास करते थे। हंसिनीके गर्भवती होनेपर सन्तालोंके देवता मारंबूरो उन पक्षियोंको जङ्गलमें ले गये। हंसिनीने वहां अण्डा दिया। उसी अण्डेसे दो मनुष्योंकी उत्पत्ति हुई। उनमें एक पुरुष और एक स्त्री थी। सन्ताल देखो।

बाजीगर अण्डेसे कितने ही प्रकारके तमाशे दिखाया करते हैं। इस जगह इसके सम्बन्धमें कई बातें लिखी जाती हैं,—

१ अण्डा घुमाना।—एक भाग लवणाम्ल (Muriatic acid) और छः भाग जलसे एक शीशेके बरतनके तीन अंश भर दे। इसके बाद उसमें हंसका एक अण्डा डाले। पहले अण्डेसे भाफ बाहर निकल जाती, पीछे अण्डा घूमा करता है। अण्डेके भीतर झिल्ली-जैसा एक पतला चमड़ा होता, एसिडके तेजसे जो छूट जाता है। उस समय सफ़ेद लार या रस और फूल दोनो कुछ-कुछ पकते, इसीसे अण्डेके नीचे छोटे-छोटे बुल-बुले उत्पन्न हो जाते हैं। उन्हीं बुलबुलोंके कारण अण्डा नीचेसे हलका पड़ जाता और इसीसे ऊपर तैरते और घूमते रहता है।

२ बच्चेके शरीरमें चित्र बनाना।—नौसादर, भिलावें और सिर्केको बराबर-बराबर लेके खरलमें अच्छी तरह घोटनेसे एक प्रकारकी रोशनाई बन जाती है। इस रोशनाईसे सफ़ेद कबूतरके अण्डेके ऊपर चित्र बना रखे। समयपर अण्डा फूटनेसे ठीक जैसा चित्र पहले अण्डेके ऊपर बनाया जायेगा, वैसा ही चित्र बच्चेके शरीरमें भी बना निकलेगा।

३ शीशेके ऊपर अण्डा रखना।—बराबर ज़मीनमें एक शीशेका टुकड़ा खूब जमाकर रखे, जिससे वह किसी ओर ऊंचा-नीचा न रहे। इसके बाद एक सद्यःप्रसूत अण्डा कितनी ही देरतक हाथमें ले ज़ोरसे हिलाते रहे। हिलाते-हिलाते भीतरका फूल और भीतरकी सफ़ेद लार दोनो चीजें एकमें मिल जायेंगी। इसके बाद अण्डेकी मोटी ओर ऊपर करके उसका नुकीला मुंह शीशेके ऊपर रखनेसे अण्डा सीधा हो जाया करता है। सिवा इसके बोतलमें समूचा अण्डा डालना प्रभृति कई तरहके दूसरे तमाशे भी होते हैं।

अण्डक (सं॰ पु॰) अण्ड कन् स्वार्थे। अण्डकोष।

अण्डकटाह (सं॰ क्ली॰) अण्डं ब्रह्माण्डं कटाहमिव। ब्रह्माण्ड, कर्मभूमि-जगत्।

अण्डकोटरपुष्पी, अण्डकोठरपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) अण्ड-मिव कोठरे पुष्पं यस्याः। जिसमें अण्डजैसा फूल हो, अजान्त्रीवृत्त, नीलराम्ना, नीलवुह्ना।

अण्डकोश, अण्डकोष, अण्डकोषक (सं॰ पु॰) अण्डस्य मुष्कस्य कोष इव। १ मुष्क, वृषण, वीजपेशिका, फ़ोता। २ सीमा। ३ फल।

अण्डग (सं॰ पु॰) गोधूम, गेहूं।

अण्डज (सं॰ पु॰) अण्डात् जायते, अण्ड-जन्-ड। अण्डसे उत्पन्न होनेवाला (Oviparous)। १ ब्रह्मा। २ पक्षी। ३ सर्प। ४ मछली इत्यादि।

अण्डस्कन्द (सं॰ पु॰) घोड़ेके फ़ोतोंका एक रोग।

अण्डहस्ती (सं॰ पु॰) चक्रमर्दक्षुप।

अण्डजा (सं॰ स्त्री॰) मृगनाभि, कस्तूरी, मुश्क।

अण्डजेश्वर (सं॰ पु॰) पक्षिराज गरुड़।

अण्डधर (सं॰ पु॰) शङ्कर, शिव।

अण्डपेशी (सं॰ स्त्री॰) १ कोष। २ मुष्क।

अण्डभू, अण्डसू (सं॰ स्त्री॰) अण्ड-भू-क्विप्, अण्ड-सू-क्विप्, अण्डात् भवतीति, अण्डात् सूयते। १ ब्रह्मा। २ पक्षी। ३ सर्प। ४ मछली आदि; जो अण्डसे उत्पन्न हो।

अण्डवर्द्धन (सं॰ क्ली॰) फ़ोतेका बढ़ना।

अण्डवृद्धि (सं॰ स्त्री॰) फ़ोतेका बढ़ना।

अण्डसू (सं॰ त्रि॰) अण्डा देनेवाला।

अण्डाकर्षण (सं० क्ली०) आखता बनानेका काम; बधिया करना।

अण्डाकार, अण्डाकृति (सं० त्रि०) अण्ड-जैसा, बैजावी।

अण्डाधार (सं० पु०) अण्डानि धियन्ते अस्मिन्, अण्ड-धृ-घञ्। स्त्रियोंके गर्भकी दोनो ओर छोटे-छोटे अण्ड रहनेका आधार (Ovaries)। इसका विवरण अण्ड शब्दमें देखो।

अण्डाधारमें अर्बुद यानी आबला हुआ करता है। यह आबला उपस्थित होनेसे धीरे-धीरे पेट बढ़ता है; पेट और छातीमें नसें उभर आती हैं; दोनो स्तन भारी, काले और दुग्धपूर्ण हो जाते हैं,—फलतः गर्भके जितने लक्षण हैं, वह एक-एककर सब दिखाई दिया करते हैं। कितने ही स्थलोंमें प्रवीण चिकित्सक भी रोगिणीको देख कुछ स्थिर नहीं कर सकते। कहीं तो अर्बुद-रोगको गर्भावस्था समझ लोग भूल जाते, किसी स्थलमें गर्भावस्थाको अर्बुद-रोग जानके भ्रम उत्पन्न हो जाता है।

अण्डाधारका अर्बुद या आबला तीन प्रकारका होता है—१ मांसार्बुद, २ कर्कटार्बुद और ३ कोषार्बुद। अधिकांश स्त्रियोंको कोषार्बुद ही हुआ करता है। इस पीड़ाकी पहली अवस्थामें रोगिणीको कोई कष्ट नहीं मिलता। धीरे-धीरे मलद्वार और मूत्राशय भारी मालूम होने लगता; कभी-कभी जांघमें पीड़ा होती, पीठमें कांटे-जैसा चुभा करता; किसी स्थलमें मासिक रजः बन्द हो जाता है। किसी-किसी स्थलमें अनियमित समयसे रजः प्रकाशित हुआ करता है। यदि पीड़ा बहुत बढ़ गई, तो कोष्ठबद्ध, अजीर्णता और साधारण दौर्बल्यके लक्षण देख पड़ते हैं।

औषध सेवन करनेसे इस पीड़ामें प्रायः कोई उपकार नहीं होता। कितने ही चिकित्सक आओडाइड-अव-पोटाश और विरेचक औषध सेवन कराया करते, किन्तु यह सब प्रक्रिया प्रायः निष्फल जाती हैं। आरोग्यका एकमात्र उपाय यही है, कि आबलेको काटके बाहर निकाल ले। किन्तु मांसार्बुद और कर्कटार्बुदमें नश्तर लगाना ठीक नहीं। विज्ञ चिकित्सकके हाथ चिकित्साका भार अर्पण करना चाहिये। नश्तर लगानेसे सभी स्त्रियां आरोग्य लाभ करती, किन्तु जो दुर्बल होती, वह प्रायः नश्तर लगानेसे मर ही जाती हैं।

अण्डालु (सं० पु०) अण्डमस्ति अस्य अण्ड-आलुच्। अण्डादार मछली।

अण्डिका (सं० स्त्री०) चार यवके बराबर माप।

अण्डिनी (सं० स्त्री०) सान्निपातिक योनिव्याधि-विशेष।

अण्डीर (सं० पु०) अण्ड-ईरन्, अण्डं पुमवयवः अस्यास्तीति। समर्थ, बलवान् व्यक्ति।

अणव (वै० क्ली०) सोमरस छाननेको साफ़ीका बारीक छेद।

अणवस्थि (सं० क्ली०) बारीक हड्डी।

अणवी (वै० स्त्री०) उंगली।

अत् (सं० अव्य०) अत्-क्विप्। आश्चर्यसे। शीघ्रतासे।

अकारके आगे त रहनेसे अकार समझा जायेगा। इसीतरह जिस स्वरवर्णके आगे तकार रहेगा, उससे उसका पूर्ववर्ती स्वर समझा जायेगा। ह्रस्व स्वरके आगे तकार रहनेसे ह्रस्व स्वर और दीर्घ स्वरके आगे तकार रहनेसे दीर्घ स्वर समझा जायेगा। जैसे—अत्-अकार, आत्-आकार; इत्-इकार, ईत्-ईकार इत्यादि। तपरस्तत्कालस्य। पा १।१।७०। त जिसके आगे रहेगा, उसमें तत्कालकी ही संज्ञा होगी यानी तकारके अव्यवहित पूर्वमें ह्रस्वस्वर होनेसे ह्रस्वस्वर और दीर्घस्वर होनेसे दीर्घस्वर समझा जायेगा।

अत—बन्धन। इदित्, भ्वा०, पर०, सक० सेट्। वेदमें जगह-जगह इसका प्रयोग देख पड़ता है।

अत—भ्रमण और प्रापण। भ्वा०, पर०, सक० सेट।

अतंक (सं० आतङ्क) आतङ्क देखो।

अतंत (सं० अत्यन्त) अत्यन्त देखो।

अतंद्रिक (सं० अतन्द्रिक) अतन्द्रिक देखो।

अतंद्रित (सं० अतन्द्रित) अतन्द्रित देखो

अतः (सं० अव्य०) इस कारणसे, इसलिये, इसवास्ते, इससे।

अतएव (सं० अव्य०) इदम्-तसिल् एव। इसी कारणसे इसीलिये, इसीसे, इसी वजह।

अतक़ खां शमशुद्दीन् मुहम्मद—अकबर बादशाहके पालकपिता। यह ग़ज़नी-निवासी मीर यार-मुहम्मद नामक एक किसानके लड़के थे। कहते हैं, कि जिस समय शमशुद्दीन् बीस वर्षके थे, उसी समय एक दिन इन्होंने स्वप्न देखा, मानो यह अपने हाथसे ज्योतिष्मान् चन्द्रको पकड़े थे। यही सुस्वप्न इनकी भविष्यत् उन्नतिके लिये पथस्वरूप बन गया। पहले यह राजकुमार कमरानके अधीन नियुक्त हुए थे; पीछे क़न्नौजके भीषण युद्धमें सन् ९४७ हिजरीकी १२ वीं० मुहरमको जा पहुंचे। जब हुमायूं युद्धमें पराजित हो और हाथीपर चढ़ नदीके दूसरे पार जा उतरे, तब जो फ़ौज ले और उनके साहाय्यके लिये नदीका प्रबल स्रोत रोधकर संतरण द्वारा उनके पास उपस्थित हुए, वही यह शमशुद्दीन थे। इसके बाद हुमायूंने इन्हें अपने काममें नियुक्त किया। मालदेवके पास जोधपुर भी हुमायूंने इन्हें भेजा था। इन्होंने पञ्जाब जाके खानखानेको सम्राट्की आज्ञासे परास्त किया। अमरकोटमें अकबरके उत्पन्न होनेसे इनकी पत्नी अकबरकी धात्री-विशेष बनाई गई थीं। उस समय इनकी पत्नीको हुमायूंने 'जीजी अनगह'की उपाधिसे विभूषित किया। हुमायूं जब थे, तब यह हमेशा अकबरके समीप रहते थे। इसीसे अकबरने सम्राट् होनेपर इन्हें अत्क़ (पालकपिता) खांकी उपाधि दी। पीछे साम्राज्ञी और दूसरी बेगमों-को भारतवर्ष लानेके लिये अतक़ खां काबुल भेजे गये, जिन्हें इन्होंने सकुशल सम्राट्के पास पहुंचा दिया। कितने ही वेरेके बाद सिकन्दर अफ़ग़ानने हुमायूंके पास संदेसा भेजा, कि कोई विश्वासपात्र व्यक्ति वहां जाके सन्धिकी बात करता। इस कामको अतक़ खांने ही जा सम्पन्न किया था।

अतक़ खांने पञ्जाबके खुसाब नामक स्थानमें जागीर पाई और बहराम खांके मरनेपर उनका पद इन्हें प्राप्त हुआ तथा इनको पञ्जाबके शासनकर्ताका भी पद मिला था। जालन्धरमें बहराम खांको परास्त करनेसे अकबरने इन्हें 'आज़म खां'की उपाधि प्रदान की। अकबरके छठें वर्षवाले राजत्वकालमें अतक़ खां लाहोरसे दिल्ली गये और मुनीम खां और अकबरके बीच जो झगड़ा चलता था, उसमें यह स्थिर करनेके लिये वकील बने, कि दोष किसका था। मुनीम खां और सहाब खाने इससे डरकर अतक़ खांको मारनेके लिये आदम नामक एक व्यक्तिको उत्तेजित किया। -(आईनइ अकबरी)

बदावनीने लिखा है,—"उन्होंने अतक़को मार डालनेका भय दिखाया और उजबेक-जातीय क़ासिम बेग नामक एक व्यक्तिको इनकी हत्या करनेके लये अनुमति दी। दूसरे इतिहासके मतसे आदमके हाथ ही अतक़ खां दरबारमें बैठे मारे गये।

अतकोट—बम्बई प्रान्तके काठियावाड़ प्रदेशका एक शहर। यह भादर नदीके पश्चिम किनारे राजकोटसे कोई पन्द्रह कोस दक्षिण-पूर्वको ओर अवस्थित है। इसमें कोई दो हज़ारसे ऊपर आदमी रहते हैं। जसदानके काठी वंशसे जाम साहबने इसे प्राप्त किया था। इसके पास राजकोटसे गोघा और भावनगर जानेवाली सड़क निकल गई है। यहां लाखो फुलानीका स्मारक स्तम्भ बना है, जिन्होंने इस शहर-की नीव डाली और जो अनहिलवाड़ पाटनके मूल-राज सोलङ्की द्वारा मारे गये थे। लाखोने ही पूर्व प्रान्तसे बाजरा ले जाकर काठियावाड़में पहले-पहल बोया था। लाखोके मारे जानेसे अतकोट निर्जन हुआ, जिसे अहीरोंने फिर आबाद किया। इसके बाद इसपर खेरदीके खुमानोंका अधिकार हुआ, पीछे यह सोरायके मुसलमान-राज्यका प्रधान ग्राम बना। जब मुसलमानोंका प्रभाव मिटा, तब लखानों खाचरों-ने इसे अपना शासनभुक्त बनाया, जिसे सन् ई० वाले १८ वें शताब्दके अन्तमें नवानगरके जामने जीत लिया। यहां एक हस्पताल और देशी भाषाका स्कूल बना है।

अतट (सं० पु०) नास्ति तटं यस्य, तत्पते तरङ्गेण

आहन्यते यत् इति तटम्। १ टीला, वह स्थान जहां तट या किनारा न हो। २ पर्वतका उच्चस्थान, चोटी, शिखर। ३ भूमिका अधोभाग।

अतत्त्वविद् (सं० पु०) ब्रह्म और जीवकी एकता न समझनेवाला पुरुष।

अतथा (वै० पु०) वैसा नहीं, उससे विभिन्न।

अतथोचित (सं० त्रि०) न तथारूपमुचितम्। अन्याय्य, अनुचित।

अतथ्य (सं० त्रि०) १ झूठ, असत्य, जो सच न हो, अन्यथा। २ असमान, ऊंचा-नीचा।

अतदर्ह (सं० त्रि०) १ किसी वस्तुके अयोग्य। (अव्य०) २ अयोग्यतासे।

अतद्गुण (सं० पु०) अर्थालङ्कार-विशेष। काव्य-प्रकाशमें इसका इसतरह लक्षण लिखा है,—"तद्रूपाननुहारश्चेदस्य तत् स्यादतद्गुणः।" सदृश वर्ण या गुण होनेका कारण विद्यमान रहते भी जहां संघटित न हो, उसीको अतद्गुण कहते हैं। यथा,—

"गाङ्गमम्बु सितमम्बु यामुनं
कज्जलाभमुभयत्र मज्जतः।
राजहंस! तव सैव शुभ्रता
चीयते न च न चापचीयते।"

गङ्गाका जल सफेद और यमुनाका जल काला है। हे राजहंस! तुम इन दोनो जलोंमें नहाते हो, किन्तु इससे न तो तुम्हारा रङ्ग गोरा और न काला होता है।

यहां हंसका स्वाभाविक वर्ण ही वर्तमान रहा, किन्तु वर्णान्तर उत्पन्न नहीं हुआ; इसीसे विषमालङ्कारसे इसमें प्रभेद देखा गया। ऐसा न होनेसे विषमालङ्कार हो जाता।

अतद्गुणसंविज्ञान (सं० पु०) न तस्य गुणीभूतस्य सम्यक् ज्ञानं यत्र, बहुव्री०। समासविशेष। मुग्धबोधकी टीकामें दुर्गादासने लिखा है,—"तद्गुणसंविज्ञानोऽतद्गुणसंविज्ञानश्च। यत्र समस्यमानपदार्थः समासवाच्ये वर्त्तते स तद्गुणसंविज्ञानः। यथा त्रिलोचनः शिवः। तदन्योऽतद्गुणसंविज्ञानः। यथा हतकंसः कृष्ण इति।" प्रयोजन यह है, कि बहुव्रीहि समास करनेसे समस्यमान पदार्थ जहां समासवाच्यमें रहता, वहां तद्गुणसंविज्ञान होता है। जैसे,—त्रीणि लोचनानि यस्य स त्रिलोचनः शिवः। इस जगह समासवाच्यमें तीन लोचन रहनेसे इसका नाम तद्गुणसंविज्ञान हुआ। फिर, हतः कंसः येन हतकंसः कृष्णः। इस जगह समस्यमान पदार्थ हत और कंस समासवाच्य कृष्णमें नहीं, इसलिये इसका नाम अतद्गुणसंविज्ञान हुआ।

अतद्वान् (सं० त्रि०) असदृश, असमान, जो किसीके बराबर न हो।

अतनु (सं० पु०) १ कामदेव। (त्रि०) २ मोटा। ३ विना शरीर।

अतन्त्र (सं० त्रि०) न तन्त्रं कारणं तदधीना विवक्षा वा यस्य, बहुव्री०। १ कारणशून्य। विवक्षारहित। तस्यादित उदात्तमर्द्धह्रस्वम्। पा १।२।३२। इस सूत्रकी वृत्तिमें भट्टोजि-दीक्षितने लिखा है,—ह्रस्वग्रहणमतन्त्रम्। २ अविवक्षित, ग्रन्थकारके कहनेकी इच्छाका अविषयीभूत।

अतन्द्र (सं० त्रि०) नास्ति तन्द्रा निद्रा आलस्यं वा यस्य। १ निद्रारहित, निरालस्य, फुरतीला। २ सावधान, सचेत।

अतन्द्रा (सं० स्त्री०) १ काफी, क़हवा। २ चाय।

अतन्द्रिक (सं० त्रि०) १ अनलस, चुस्त। २ व्याकुल, बेचैन।

अतन्द्रित, अतन्द्रिन् (सं० त्रि०) न तन्द्रा जाता यस्य, तारकादित्वात् इतच्। अनलस, अजातनिद्र। (स्त्री) अतन्द्रिता। "अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान् घटस्तनप्रस्रवणैर्व्यवर्द्धयत्। कुमार० ५।१४।" उन्हीं देवीने आलस्यशून्य हो और घटरूप स्तनों द्वारा जलधारा बरसा उन छोटे-छोटे वृक्षोंको परिवर्द्धित किया था।

अतप (सं० त्रि०) १ ठंढा। २ शान्त। ३ अनियुक्त। (पु०) ४ बौद्धोंके देवताओंकी एक श्रेणी।

अतप्त (सं० त्रि०) १ जो तपाया न गया हो, ठण्ढा। २ कच्चा।

अतप्ततनु, अतप्ततनु (सं० त्रि०) न तप्ता व्रतादिना तनुरस्य। तप-क्त-तप्तः। तन्-तन्यते कर्मपाशोऽनया तनुः शरीरम्। १ जिसका शरीर व्रतादि द्वारा तपाया

न जाये। २ जो तपी हुई मुद्रासे चिह्नित न किया जाये। ३ जिसके रामानुज सम्प्रदायको चार छापें न लगाई गई हों। ४ बिना छापका।

अतप्ततपस् (सं० त्रि०) जिसने तपस्या पूरी न की हो।

अतप्यमान (सं० त्रि०) अक्लेशित, जो दुःख न उठाता हो।

अतबान (हिं० वि०) बहुत, ज्यादा, अधिक, अत्यन्त।

अतबा-पिपरिया—अयोध्याके अन्तर्गत खेरी जिलेका एक परगना। यह मुहम्मदी तहसीलका अन्तर्वर्ती और कठना और गोमती नदीके बीच अवस्थित है। यह २७ वर्ग कोस लम्बा-चौड़ा है, जिसमें साढ़े ग्यारह वर्ग कोसपर खेती की जाती है। इस परगनेमें जगह-जगह जङ्गल मौजूद है।

सन् ११९० ई०में मुहम्मदीके राजाको मुसलमानोंने कैद किया था। उसी समय उनका राज्य ध्वंस हुआ और ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके हाथसे राज्यके रक्षणादिका भार ले लिया गया। क्षत्रियोंने गोमती नदीके किनारे २८२ गांव पाये थे। उन्हींके वंशमें भगवन्त सिंहको अतबा-पिपरिया और मुग्धपुरका अधिकार मिला; किन्तु सन् १७३६ ई०में कर्मचारियोंके साथ विवाद होनेसे उन्होंने अपना राज्य खो दिया और वह वनमें जाकर रहने लगे। उस समय वह निकटस्थ ग्रामसे बलपूर्वक पश्वादि लाकर अपना काम चलाते थे। स्लिमेन साहबने उन्हें एक प्रसिद्ध डाकू बताया है।

पञ्चमसिंहके भगवन्तसिंहको मार डालनेसे अतबा-पिपरिया खेतीके लिये किसानोंको सौंपा गया।

सन् १८५८-५९ ई०में अंगरेज-सरकारने अयोध्या राज्यके अधीनस्थ फिदाहुसैन खां नामक एक व्यक्तिको अतबा ताल्लुककी सनद प्रदान की थी। सनदमें लिखा गया, कि फिदाहुसैन खां पुरुषानुक्रममें इस परगनेको चिरस्थायी रूपसे भोग कर सकेंगे। किन्तु इस समय अतबेमें फिदाहुसैनका कोई अधिकार नहीं। इसमें तीस मौजे लगते हैं।

अतमित्र (सं० त्रि०) उजला, साफ।

अतमेरु (वै० त्रि०) सबल, ताकतवर।

अतर (हिं० पु०) निर्यास, पुष्पसार, इत्र, फूलोंको खुशबूका जो निचोड़ भभकेसे निकाला जाता है।

अतर बनानेकी विधि यह है, कि टटके फूल एक बन्द बरतनमें भर जलती हुई आगपर चढ़ा देते हैं। इस बरतनमें एक नल लगा रहता, जो चन्दनके तेलसे भरे भभकेमें जा पहुंचता है। फूलोंसे जो सुगन्धित भाफ उठती, वह पूर्वोक्त नल द्वारा चन्दनके तेलपर टपक-टपक इकट्ठा होती है। इसके बाद तेल ऊपर उठ आता और वह सुगन्धित भाफ नीचे बैठ जाती है। यही तेल जब काढ़कर रख लिया जाता, तब अतर या इत्र कहलाता है। जिस फूलकी भाफ खींची जाती, उसी फूलके नामपर अतरका भी नामकरण होता है। जैसे,—गुलाबका अतर, केवड़ेका अतर, मोतियेका अतर इत्यादि।

अतरंग (हिं० पु०) वह प्रक्रिया, जिसमें लङ्गर ज़मीनसे उखड़ा रहता है।

अतरदान (हिं० पु०) इत्रदान, अतर रखनेका डब्बा; वह पात्र, जिसमें अतरका फाहा रख सभामें सबका सत्कार किया जाता है।

अतरल (सं० वि०) गाढ़ा, जो पतला न हो।

अतरवन (हिं० पु०) १ घोड़वेके ऊपर रख छज्जा पाटनेकी पत्थरवाली पटिया। २ एक प्रकारकी घास।

अतरशुम्बा—बम्बई प्रान्तके बड़ोदा राज्यका एक महकमा। इस महकमेके कितने ही गांव अंगरेज़ी राज्यमें अवस्थित हैं। इसमें कितने ही पहाड़ हैं और वृक्ष भी चारो ओर खूब देख पड़ते हैं। यह स्थान बहुत ही विचित्र बना है। किन्तु यहां जङ्गल या तालाब कहीं भी नहीं। वृष्टि कोई २५।२६ इञ्चके हिसाबसे होती है। वातरक, मागम, धम्मी, वाराणसी और मोहर नदी इस महकमेमें बहती है। भूमि प्रायः रेतेली है, किन्तु कहीं-कहीं काली मट्टी भी मिलती है।

अतरसो (हिं० क्रि०-वि०) १ परसोंके आगेका

दिन। वर्त्तमान दिनके आगेका तीसरा दिन। २ वर्त्तमान दिनसे बीता हुआ तीसरा दिन।

अतरिख (सं० अन्तरिक्ष) अन्तरिक्ष देखो।

अतरुणदारु, अतरुणदार (सं० पु०) वृद्धदारक वृक्ष, विधारा।

अतर्क (सं० पु०-त्रि०) तर्क्यतेऽनेन तर्कः हेतुः, अध्याहारश्च स नास्ति यस्य, बहुव्री०। अध्याहारस्तर्क ऊह इत्यमरः। अहेतुक, शुष्कतर्कपर, तर्कशून्य।

अतर्कित (सं० त्रि०) न-तर्क-क्त। हेतुव्यापार-रहित, हठात् अविवेचित, अनान्दोलित, अननुमित, बिना विचारका, आकस्मिक, बेसोचा-समझा, जिसकी विवेचना पहलेसे न की गई हो।

अतर्क्य (सं० त्रि०) जिसमें किसी तरहका कारण दिखाया न जा सके, अनिर्वचनीय, तर्कवितर्क-रहित।

अतर्पस्, अतर्पिस् (सं० त्रि०) अधर्मी, तपस्या न करनेवाला।

अतल (सं० क्ली०) अस्य भूखण्डस्य तलम्, पृषोदरादित्वात् इदमोऽत्वम्। १ सात पातालोंमें इस पृथिवीके नीचेका पहला पातालखण्ड। सात पातालोंके नाम यह हैं,—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, और पाताल। यह सात पाताल क्रमान्वयसे एकके नीचे दूसरा और दूसरेके नीचे तीसरा, इसीतरह अवस्थिति करते हैं। मेदिनी प्रभृति अभिधानोंमें नागलोक ही पाताल बताया गया है,—"पातालं नागलोके स्याद् विवरे वड़वानले।" आजकल कितने ही लोग अनुमान करते हैं, कि अमेरिका देशको हमारे शास्त्रकारोंने पाताल बता उल्लेख किया है। अमरकोषके मतसे नागलोक ही रसातल है। (त्रि०) नास्ति तलं यस्य। २ जिसका तल न हो, अत्यन्त गभीर। नास्ति तलं प्रतिष्ठा यस्य। ३ अप्रतिष्ठ, अख्यात।

अतलस (अ० स्त्री०) एक निहायत नर्म रेशमी वस्त्र।

अतलस्पर्श (सं० त्रि०) न तलस्य अधोभागस्य स्पर्शो यत्र, बहुव्री०। अगाध, अतिगभीर।

अतलस्पर्शी (सं० त्रि०) जो अतलको छूए, बहुत गहरा, अथाह।

अतलस्पृक् (सं० क्ली०) जल, पानी।

अतलस्पृश् (सं० त्रि०) न तले स्पृश्यते, स्पृश-क्विन्-कर्म्मणि। स्पृशोऽनुदके क्विन्। पा० ३।२।५८। क्विन् प्रत्ययस्य कुः पा० ८।२।७२। अतलस्पर्श, अगाध।

अतव्यस् (वै० त्रि०) निर्बल, कमज़ोर।

अतस् (सं० अव्यय) इदम्-तसिल्। इसलिये, इस कारण। अतो भवेत् कारणाय देश निर्देशयोरपि, पञ्चम्यर्थे (विश्वप्रकाशः)।

अतस (सं० पु०) अत गतौ असच्, अतति गच्छति। अत्यविचमितमिनमिरभिलभिनभितपिपतिपनिपणिमहिभ्योऽसच्। उण् ३ ११७। अततीत्यतसः वायुरात्मा च। (इति उज्ज्वलदत्तः) १ वायु। २ आत्मा। ३ वल्कलनिर्म्मित वस्त्र। ४ अस्त्र। अतसः क्षौमं प्रहरणं वायुश्चेति धातुवृत्तौ। (माधवः)

अतसाय्य (वै० त्रि०) भिक्षा मांगनेसे जो मिले।

अतसि (वै० पु०) घूमनेवाला साधु, आवारा फ़क़ीर।

अतसी (सं० स्त्री०) अतस्-ङीष्। तीसी, अलसी। चणका, उमा क्षौमी, रुद्रपत्नी, सुवर्चला, पिच्छला, देवी, मदगन्धा, मदोत्कटा, क्षुमा, हैमवती, सुनीला, नीलपुष्पिका यह पर्याय हैं। दूसरी भाषाओंके विभिन्न नाम नीचे देखिये,—

गुजराती—अलसी, काश्मीरी—अलीस, उड़िया—पेसु, तामिल—अलसि-विराइ; अलि-वेराइ; तैलङ्गी—उल्लु सुल, अतसी; कनाड़ी—अलसी; तुर्की—जिघीर, पारसी—जघोर, अरबी—बाजरुत्, कत्तान, फरासी—लिन् (Lin), अंगरेजी—लिनसिड (Linseed,) लाटिन—लाइनाम् उसितासिसिमाम् (Linum usitatissimnm); ओलन्दाज—लिनजेयाद (Lynzaad), दिनेमार—हिरफ्रि (Haerrfrae), सुइस लिनफ्रि (Linfrae) इटाली—लिनसिम् (Linseme), स्पेन—लिनाजा (Linaza), पुर्त्तगाल—लिन्हो (Linho), रूस—सेम्जा लेन्जानि, पोलण्ड—सियेमि इनिओन् (Siemie inione) एस्लीस्याक्—लिनसिड (Llnseed), निम्न जर्म्मन-लिनसेट (Linsaat), उच्च जर्म्मन—लेइनसेमेन (Leinsemen)।

वैद्यक ग्रन्थोंमें इसके ऐसे गुण लिखे गये हैं,—यह गर्म, तीती, वातघ्न और श्लेष्मा और पित्तको बढ़ानेवाली है। इसका तेल मधुर, पिच्छल, सद्गन्ध और कषैला होता है। इससे ऊभ और खांसी नष्ट हो जाती है। यह स्वादु, गर्म और कुछ खट्टी रहती और पकनेसे कड़ू पड़ती है। तीसी शब्द अतसी शब्दका अपभ्रंश है।

अतसी शब्दसे सनका वृक्ष भी समझा जाता है। जो वस्त्र सन और तीसीके सूतसे बनता है, उसे चौम कहते हैं। माघमें लिखा है,—तस्यातसीसूनसमानभासः। ३।१७। मल्लिनाथने इसकी यों टीका की है,—अतसी-सूनेन क्षुमा-कुसुमेन समानभासः तुल्यकान्तिः स्निग्धश्यामस्य इत्यर्थः। श्रीकृष्णका रूप वर्णन करते समय कवियोंने अतसीके फूल-जैसे स्निग्ध श्यामवर्णका उल्लेख किया है। दुर्गाके ध्यानमें भी कहा गया है,—अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनां। बङ्गालके जहानाबाद प्रभृति स्थान-विशेषोंमें ऐसी रीति है, कि जब सोलह वर्षकी अवस्थामें किसी बालिकाके गर्भ रह जाता है, तब लोग षोड़सी नीलदुर्गाकी पूजा करते हैं। इस नीलदुर्गाके ध्यानमें 'अतसीपुष्पसङ्काशाम्' या 'अतसीपुष्पवर्णाभाम्' ऐसे शब्द रहते हैं।

इस विषयमें भी कितना ही झगड़ा है, कि अतसी शब्दसे सन समझा जाता है या नहीं। इस विरोधका सूत्रपात अमरकोषके टीकाकारोंने किया है। अमरकोषमें लिखा है—अतसी स्यादुमा क्षुमा। इस जगह कोई-कोई टीकाकार केवल अलसी बताते, कोई-कोई अलसी और सन दोनो शब्द कहा करते हैं।

अतसी शब्दसे बङ्गालमें आतुसी नामक एक पीला फूल समझा जाता है। वह देखनेमें ठीक सनके फूलजैसा होता है। संस्कृतके अभिधानकारोंने इस शब्दसे यह फूल नहीं ग्रहण किया है। उद्भिद्-शास्त्रवेत्ता अतसीको क्रोटलेरिया सेरिसिया (Crotalaria sericea) कहते हैं।

जङ्गली अतसी क्रोटलेरिया रेटुसा (Crotalaria retusa) कहलाती है। कितना ही ढूंढनेपर भी अतसीके फूलका संस्कृत नाम न मिला। इसीसे अनुमान होता है, कि यह हमारे देशका वृक्ष नहीं। सन जिस जातिका उद्भिद् है, दोनो प्रकारकी अतसी भी उसी जातिकी है। सनका नाम क्रोटलेरिया जनसिया (Crotalaria juncea) है।

इसका दूसरा विवरण अलसी और तीसी शब्दमें देखो।

अतसीतैल (सं० क्लो०) तीसी या अलसीका तेल।

अता (अ० पु०) कृपा, दान, अनुग्रह।

अताई (अ० वि०) १ होशियार, दक्ष, प्रवीण, निपुण, कुशल। २ धूर्त। धोकेबाज, चालाक, छली। ३ अधपढ़ा, अर्द्धशिक्षित, अशिक्षित, मूर्ख, जो बिना सीखे कोई काम करे, पण्डितम्मन्य। (पु०) ४ वह गवैया जो बिना किसीसे सीखे इधर-उधरसे तानें सुनकर गाने-बजाने लगे।

अतापी (सं० स्त्री०) शान्त, सुखी, ठण्ढा, दुःखरहित।

अताबक, अबूबकर—भारतके एक मुसलमान बादशाह। इन्होंने सन् ११५४ से ११८८ ई० तक शासन किया। इनके राजत्वकालमें १०००० घोड़े ईरानसे कोई एक करोड़ दश लाख रुपयेमें खम्भात आये थे।

अतारी—पञ्जाबके एक पुराने शहरका नाम। सिकन्दर बादशाहने (Alexander) दिग्विजय करने आ भारतमें पहले इसी नगरपर आक्रमण किया था। इस समय इस नगरका कोई चिह्न नहीं देख पड़ता, स्थान-स्थानमें केवल बड़ी-बड़ी ईंटें पड़ी हैं, जिनकी बनावट आजकलकी ईंटों-जैसी नहीं। कोई एक हज़ार वर्षसे किसीने ऐसी ईंटोंका घर नहीं बनाया। इसीसे मालूम होता, कि अतारी बहुत दिनोंका शहर है। नगरकी चारो ओर खाई कटे हुए क़िलेके भीतर बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें थीं, किन्तु वह सब गिर पड़ी हैं। अतारी-के क़िलेका इस समय भी जो भग्नावशेष है, वह १२०० हाथ लम्बा, ८०० हाथ चौड़ा और १२ हाथ ऊंचा है। क़िलेके बीचमें ३२ हाथ ऊंचा एक मन्दिर है। सिकन्दरके समय यह नगर मल्लिराजों-के अधिकारमें था। यह बात कोई नहीं कह सकता, कि मल्लिराज कौन थे और उन्होंने कितने दिन यहां राजत्व किया था। यूनानके इतिहास-लेखक कहते हैं, कि सिकन्दरके इस स्थानपर आक्रमण करते समय उनकी फ़ौज उन महावीरकी अस्त्रवृष्टिके सामने ज़रा देर भी न ठहर सकी थी। इसके बाद सिकन्दरके सिपाहियोंने किसी तरह क़िलेमें घुस सब घरोंपर आग लगा दी। इससे यह हुआ, कि बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें धायं-धायं जलने

लगीं और नगरवासियोंने उसीमें अपने प्राण त्याग किये। अतारी मुलतानके पास तुलुम्बसे दश कोस दक्षिण-पश्चिमकी ओर अवस्थित है। कोई यह कह नहीं सकता, कि सिकन्दरने जिस नगरपर आक्रमण किया, उसका क्या नाम था। पूर्वोक्त टूटे कि़लेके पास अतारी नामक एक गांव है। यह गांव अतारीवाले सिखोंका बसाया है। इसीके नामपर टूटे हुए कि़लेको लोग अतारी नामसे पुकारते हैं।

अताल-मसजिद—युक्तप्रदेश-जौनपुरकी एक बड़ी मसजिद। इसकी बग़लमें ही प्रसिद्ध अतालदेवीका मन्दिर था, जिसे तुड़वाके इब्राहीम शाहने यह मसजिद बनवाई। अतालदेवीका मन्दिर विख्यात राठोरराज जयचन्द्र द्वारा स्थापित कराया गया। कहते हैं, कि मन्दिर विक्रमीय १४१६ संवत्में प्रस्तुत हुआ था। किन्तु यह बात मानी नहीं जा सकती, क्योंकि जयचन्द्रका राजत्वकाल विक्रमीय १२३२ संवत् निर्द्धारित हुआ है। इसलिये इसमें कोई सन्देह नहीं, कि अतालदेवीका मन्दिर प्रायः उसी समय बनाया गया था। मुसलमान-इतिहासवेत्ता खैरुद्दीन 'अताल-मसजिद' और अतालमन्दिरके सम्बन्धमें जो लिख गये हैं, वह संक्षेपसे नीचे अनुवाद किया जाता है,—

एक दिन फ़ीरोज़ शाहने पहाड़की चोटी पर चढ़ पास ही अतालदेवीका मन्दिर देखा। इससे पहले उन्होंने 'करार-वीर' नामक देवमन्दिर तोड़ा था, अब मुसलमान धर्मकी दुहाई फेर अतालदेवीका मन्दिर तोड़नेकी अनुमति दी। उनके आदमी कुदाल, बेलचे आदि ले मन्दिर तोड़नेको रवाना हुए। किन्तु उस समय भी हिन्दू अधिक हीनबल हुए न थे। पासके स्थानोंसे हिन्दुओंने आकर फ़ीरोज़के आदमियोंको भगा दिया। फ़ीरोज़ने इससे बहुत रागान्वित हो हिन्दुओंके विनाश करनेका हुक्म सुनाया। दोनो दलोंमें भयानक युद्ध हुआ। घायलोंके खूनसे गोमती नदी लाल पड़ गई। मुसलमान उस युद्धमें पराजित हुए। इसके बाद बादशाहने हिन्दुओंका क्रोध शान्त करनेके लिये हिन्दू सरदारोंको निमन्त्रण देकर बुलाया और उनसे सन्धि कर ली। बादशाहने यह भी अङ्गीकार किया, कि भविष्यत्में मन्दिरके ऊपर कोई अत्याचार किया न जायेगा। इसीतरह कई वर्ष बीत गये। फिर हिन्दुओंके बलवीर्य सकल लोप होनेका उपक्रम बंधा। इब्राहीम खां सुलतान हुए थे। उन्होंने सुलतान बनते ही हिन्दुओंकी देवपूजा और उनका शवदाह निवारण करनेके लिये आदेश दिया और सन् १४०० ई० में हिन्दुओंपर कर लगाया। निःसहाय हिन्दू क्रमसे जौनपुर छोड़ने लगे। इसके बाद सुलतानने अताल, विजयमन्दल और चचकपुरके देवमन्दिर तोड़ उनके स्थानमें मसजिद बनानेका आदेश दिया।

अतालीक़ (अ० पु०) १ शिक्षक, अध्यापक, गुरु, उस्ताद, माष्टर। २ ईरानका राजवंश-विशेष। इस वंशके राजाओंने सन् ११४८ ई०से सन् १२६४ ई० तक राजत्व किया। शेख़ शादीने इसी वंशके किसी राजाके नामपर अपनी जगद्विख्यात पुस्तक गुलिस्तां उत्सर्ग की थी।

अति (सं० अ०) अत-इ। प्रशंसा, आधिक्य, प्रकर्ष, लङ्घन, अतिशय, क्रान्त, पूजन, असम्भावना, असम्पृति। 'अतिशब्दः प्रशंसायां प्रकर्षे लङ्घनेऽपि च। नितान्तासम्भृतिक्षेपवाचकोऽप्ययं दर्शितः।' (मेदिनी) दुर्गादासने मुग्धबोधकी टीकामें अति शब्दका इसतरह अर्थ किया है,—अतिशय क्रान्तिपूजनासम्भावनेषु। अति शब्द बाईस प्रादि उपसर्गोंके अन्तर्गत एक उपसर्ग है; किन्तु अतिक्रम अर्थ बतानेसे अति शब्दकी उपसर्ग संज्ञा नहीं होती।

अतिउक्ति (सं०-अत्युक्ति) अत्युक्ति देखो।

अतिकटु (सं० त्रि०) निहायत कड़ू।

अतिकठोर (सं० त्रि०) बहुत कड़ा।

अतिकण्ट, अतिकण्टक (सं० पु०) लघुगोक्षुर, छोटीगोखुरू।

अतिकथ (सं० त्रि०) अतिक्रान्तः कथाम्। १ कहनेके अयोग्य। २ अश्रद्धेय। ३ नष्ट। ४ नष्टधर्म।

अतिकथा (सं० स्त्री०) अत्युत्कटा कथा, व्यर्थवाक्य, अत्युत्कटवर्णन, डींग।

अतिकन्दक (सं० पु०) अतिरिक्तः कन्दो यस्य। हस्तिकन्द वृक्ष।

अतिकर्षण (सं० त्रि०) अत्यन्तं कर्षति, कृष-ल्युट्। १ अत्यन्ततापदायक। २ अत्यन्त आकर्षक, खूब खींचनेवाला।

अतिकल्यम् (सं० अव्य०) बहुत जल्द, बड़े तड़के।

अतिकश (सं० त्रि०) अतिक्रान्तः कशम्, कशाघात-मुल्लङ्घ्य स्वेच्छानुसारेण प्रवृत्तत्वात्। दुष्ट, जो घोड़ा चाबुक मारनेसे भी दमन न किया जाय, ऐबी, बदज़ात, बदमाश, सरकश, सीनेज़ोर, पाजी, उद्दण्ड।

अतिकान्त (सं० त्रि०) निहायत प्यारा।

अतिकाय (सं० त्रि०) अत्युत्कटः कायो यस्य। १ विकटाकार देह, जिसका शरीर प्रकाण्ड हो, दीर्घ-काय, मोटा, स्थूल, लम्बा-चौड़ा, भयानक। (पु०) २ लङ्काधिप रावणका एक पुत्र, जो धन्यमालिनी निशाचरीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। यह बलवीर्यमें रावणसदृश, वृद्धसेवी, श्रुतिधर एवं पारदर्शी, याना-रोहणमें विशेष पटु, धनुष-कर्षणमें अद्वितीय, खड्ग-प्रयोगमें विलक्षण रूपसे निपुण और सामदानदण्डभेद-विषय, नीतिशास्त्र, मन्त्रकार्य आदिमें बहुत चतुर था। अतिकायने तपस्या द्वारा ब्रह्माको सन्तुष्टकर, बहुत दिव्यास्त्र पाये। ब्रह्माने वर दिया था, कि इसे देव और असुर मार न सकेंगे। इस महावीरने बाणवर्षण द्वारा इन्द्रका वज्रास्त्र और वरुणका पाश प्रतिहत कर दिया था। यह दशाननके आदेशसे रामके साथ युद्ध करने पहुंचा। इसका प्रकाण्ड शरीर देख वानर डरसे चारो ओर भागनेपर बाध्य हुए। रामचन्द्रने भी रथपर बैठे अतिकायको देख, विभीषणसे आश्चर्यके साथ इसका परिचय पूछा। इसने लक्ष्मणके साथ युद्धमें विलक्षण रणनैपुण्य दिखाया था। लक्ष्मणने पवनदेवके वाक्यसे ब्रह्मास्त्र द्वारा इसको वध किया। (रामायण युद्धकाण्ड ५१ सर्ग) कितने ही लोग कहते हैं, कि अतिकाय राक्षसरूपी एक वैष्णव था। रामको इष्ट-देवता समझ उनसे लड़नेके लिये असम्मत हुआ और रावणको सीताके वापस दे देनेका उपदेश दिया; रावणके क्रुद्ध हो, ताड़ना करनेसे यह लड़ने गया था। पीछे लक्ष्मणने अर्द्धचन्द्र बाणसे इसका मस्तक काट डाला। इसके कटे मुण्डने भूमिपर गिर रामनामको उच्चारण किया था।

अतिकारक (सं० त्रि०) अति करनेवाला, ज़ालिम।

अतिकाल (सं० पु०) देर, विलम्ब, असमय।

अतिकुत्सित (सं० त्रि०) अतिनिन्दित, निहायत खराब।

अतिकुल्व (सं० त्रि०) अतिकुल राशिकरणे व कित्। अतिशय लोमयुक्त, बालदार, जिसके बहुत बाल हों।

अतिकृच्छ्र (सं० पु०) अतिक्रान्तं कृच्छ्रं प्राजापत्यं, तदधिककष्टसाध्यत्वात्; अत्यादि-तत्पुरुष। १ द्वादश रात्रसाध्य कठिन प्रायश्चित्त विशेष। वह व्रत, जिसमें पहले दिन सवेरे, दूसरे दिन सन्ध्याको, और तीसरे दिन बिना मांगे मिला हुआ, किसी समय एक ग्रास खाकर लोग रहते, और इसके बाद फिर तीन दिन कुछ नहीं खाते हैं। २ बड़ा कष्ट, महासङ्कट।

अतिकृत (सं० त्रि०) मर्य्यादातिक्रमेण कृतम्, अत्या०—तत्। मर्य्यादातिक्रम द्वारा किया हुआ, जो काम मर्य्यादासे बाहर किया गया हो।

अतिकृति (सं० स्त्री०) मर्य्यादातिक्रमेण कृतिः, अति-कृ-क्तिन्; अत्या०—तत्। १ मर्य्यादातिक्रम द्वारा करण। २ पचीस अक्षरोंका एक छन्दोविशेष। २५ अतिकृती। ३३५५४४३२। क्रौञ्चपदा—भ्मौ स्भौ ननना नगाविषु-शरवसुमुनि-विरतिरिह भवेत्। (वृत्तरत्नाकर) सुन्दरी, सवैया और क्रौञ्च छन्द अतिकृति हीमें गिने जाते हैं।

अतिकृष (सं० त्रि०) बहुत दुर्बल।

अतिकृष्ण (सं० त्रि०) निहायत काला।

अतिकेशर (सं० पु०) अतिरिक्तानि केशानि यस्य, बहुव्रीο। कुब्जवृक्ष, टेढ़ा पेड़।

अतिक्रम (सं० पु०) अति-क्रम-घञ्। नोदात्तोप-देशस्येति, न वृद्धिः, अत्या०—तत्। १ उपात्यय, पर्य्यय, अपराध, उलटा व्यवहार, नियमका उल्लङ्घन। पर्य्ययोऽतिक्रमस्तस्मिन्नतिपात उपात्ययः (इत्यमरः)। अति-क्रमु पादविक्षेपे ल्युट् भावे। (क्ली०) २ अतिक्रमण। (त्रि०)अति-क्रम्-क्त। ३ अतिक्रान्त,। (स्त्री०) अति-

क्रम्-क्तिन्, ४ अतिक्रान्तिः। अति-क्रम-खुल्, ५ अति-क्रामक, अतिक्रमकर्त्ता।

अतिक्रमण (सं॰ क्लो॰) किसी निर्द्धारित सीमाका उल्लङ्घन, बढ़ाव।

अतिक्रमणीय (सं॰ त्रि॰) जो पार किया जा सके।

अतिक्रम्य (सं॰ अव्य॰) लांघ कर।

अतिक्रान्त (सं॰ त्रि॰) १ सीमा लांघा हुआ, बढ़ा हुआ, पार पहुंचा हुआ। २ व्यतीत, गुज़रा।

अतिक्रान्त-भावनीय (सं॰ पु॰) १ योगशास्त्रके चार प्रकारवाले योगियोंमेंसे एक योगी। २ योगी, साधु, वैरागी।

अतिक्रान्तावेक्षण (सं॰ क्लो॰) अतिदूरस्थ पदार्थका देखना पहलेका अभिहित पदार्थ।

अतिक्रामक (सं॰ त्रि॰) अधिक, बहुत ज्यादा।

अतिक्रुद्ध (सं॰ पु॰) अति-क्रुद्ध-क्त, प्रादि समासः। कुगतिप्रादयः। पा॰ २।२।१६। १ तन्त्रोक्त मन्त्र-विशेष। यह मन्त्र अट्ठाईस या इकतीस अक्षरोंसे गूंथा जाता है। (त्रि॰) २ अतिशय कोपान्वित।

अतिक्रूर (सं॰ पु॰) अतिशयेन क्रूरो वक्रः, प्रादि-स॰। १ टेढ़ी चालवाले मङ्गल और शनिग्रह। २ तन्त्रोक्त तीस या तेंतीस अक्षरोंसे सङ्कलित मन्त्र। (त्रि) ३ अत्यन्त कुटिल। ४ अत्यन्त कठिन। ५ बड़ा बदमाश।

अतिखर (सं॰ पु॰) निहायत तेज़।

अतिखट्व (सं॰ त्रि॰) १ चारपाईकी ओरका। २ विना चारपाई काम चलानेवाला।

अतिगण्ड (सं॰ पु॰) अतिरिक्तः गण्डः, अत्यादि-स॰। १ सत्ताईस योगोंमेंसे छठां योग। अतिगण्ड योगमें जो मनुष्य जन्म लेता, वह वेदनिन्दक, धूर्त, कृतघ्न, गलरोगयुक्त, लोमवन्त और दीर्घकाय होता है। २ बड़ी गर्दन। (त्रि॰) अतिरिक्तो गण्डो यस्य, बहुव्री॰। ३ गलगण्ड-रोगयुक्त।

अतिगत (सं॰ त्रि॰) १ अधिक चला हुआ। २ अत्यन्त, ज्यादा।

अतिगति (सं॰ स्त्री॰) बड़ी गति, मोक्ष, मुक्ति, उत्तम गति।

अतिगन्ध, अतिगन्धक (सं॰ पु॰) अतिशयितो गन्धो यस्य, प्रादि बहुव्री॰। १ चम्पकवृक्ष, चम्पेका पेड़, चम्पा। २ भूतृण, गन्धक। (त्रि॰) ३ अतिशय गन्धयुक्त, निहायत खुशबूदार।

अतिगन्धालु, अतिगन्धिका (सं॰ पु॰) अतिगन्ध-आलुच् मत्वर्थे। पुत्रदात्रलता, पुत्रदेनेवाली बेल।

अतिगर्वित (सं॰ त्रि॰) जिसके बहुत गर्व हो।

अतिगव (सं॰ पु॰) अतिक्रान्तः गां बुद्ध्या, अति-गो-टच्। गोरतद्धित-लुकि। पा ५।४।९२। १ अत्यन्त मूर्ख, बिलकुल बेवकूफ़। अतिक्रान्तो गां वाचं इन्द्रियं वा। २ व्याख्यातीत, इन्द्रियसे अगोचर, जिसकी प्रशंसा न की जा सके।

अतिगहन (सं॰ त्रि॰) बहुत गूढ़, बहुत गहरा।

अतिगह्वर (सं॰ त्रि॰) अतिक्रान्तो गह्वरं दुर्बोधत्वेन प्रवेशायोग्यत्वात्। १ दुर्बोध, अतिगहन, जिसके भीतर सहजमें घुसा न जा सके। २ हदसे ज्यादा घना।

अतिगुण (सं॰ पु॰) अतिशयितो गुणः। १ अतिशय विनयादि गुण। (त्रि॰) अतिक्रान्तो गुणं। २ गुणहीन। अतिशयितो गुणो यस्य, प्रादि बहुव्री॰। ३ उत्तमगुणयुक्त, सद्गुणान्वित, गुणी, चतुर।

अतिगुप्त (सं॰ त्रि॰) बहुत छिपा, निहायत पोशीदा।

अतिगुरु (सं॰ पु॰) अतिशयितो गुरुः। १ अत्यन्त पूजनीय व्यक्ति। २ पिता, माता और आचार्य। (त्रि॰) ३ बहुत वज़नी। स्त्री-ङीप् वा, अतिगुर्वी।

अतिगुहा (सं॰ स्त्री॰) अतिक्रान्तो गुहां पत्रस्य मध्ये व्यवच्छेदत्वात्। पृश्निपर्णीविशेष, एक प्रकारकी छोटी झाड़ी।

अतिगो (सं॰ क्लो॰) उत्तम गो, बढ़िया गाय।

अतिग्रह (सं॰ त्रि॰) अतिक्रान्तो ग्रहम् ज्ञानम्, अति-ग्रह-अप्। ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८। १ अतिशय दुर्बोध। अतिशयितो ग्रहो स्व स्व विषयस्य ज्ञानं येषां। २ विषयग्राहक। (पु॰) अतिशयितो ग्रहो ज्ञानं। ३ सम्यक् ज्ञान, भली समझ, विशुद्ध विचार।

अतिग्राह (सं॰ पु॰) अतिशयितो ग्राहः, अति-ग्रह-घञ् करणे। १ पानपात्र, पीनेका बरतन, ज्योति-

होमयागमें तीन प्रतिग्राह पात्रोंमें अग्नि, रुद्र और सूर्य्यको पूजा दी जाती है। "तद् यद् एनान् अत्यगृह्णत् तमादतिग्राह्या नाम।" (शतपथब्राह्मण) अतिशयितो ग्राहः, अति ग्रह कर्तरि-ण। विभाषा ग्रहः। पा ३।१।१४३। २ जलजन्तु, मगर, घड़ियाल। ग्रह-अच्। ३ ज्योतिषके रवि प्रभृति नवग्रह।

अतिग्राह्य (सं० त्रि०) अधिक ग्रहण-योग्य, निहायत मक़बूल।

अतिघ (सं० पु०) १ हथियार। २ कोप, गुस्सा।

अतिघूर्णता (सं० स्त्री०) १ गाढ़ी नींद। २ सुखकी अवस्था-विशेष, चैनचान।

अतिघ्न (वै० त्रि०) अतिशयेन हन्ति दुःखम्, हन-ढक्। बहुत नाश करनेवाला।

अतिघ्न्य (वै० त्रि०) अधिक, ज्य़ादा।

अतिचण्ड (सं० त्रि०) बहुत भयानक, निहायत खूंख़्वार।

अतिचमू (सं० त्रि०) फौजको जीतनेवाला।

अतिचर (सं० पु०) १ पक्षीविशेष। २ एक ओषधि। (त्रि०) ३ परिवर्त्तनशील।

अतिचरणा (सं० स्त्री०) १ स्त्रियोंका वह रोग, जिसमें कई बार सम्भोग करनेसे भी उन्हें सन्तोष नहीं होता। २ अत्यन्त मैथुनसे भी सन्तुष्ट न होनेवाली योनि।

अतिचरा (सं० स्त्री०) अतिक्रम्य स्वस्थानं जलाशयं चरति, अति-चर-अच्। अव्यर्थाऽतिचरा पद्मा चारटी पद्मचारिणी। (इत्यमरः) १ पद्मचारिणी वृक्ष, स्थलपद्मिनी, चमेली। २ (त्रि०) अतिक्रमकारी।

अतिचापल्य (सं० क्ली०) अधिक चपलपन।

अतिचार (सं० पु०) स्वभोगकालमतिक्रम्य उल्लङ्घ्य चारः राश्यन्तरगमनम्। १ मङ्गल प्रभृति पांच ग्रहोंका अपना-अपना भोगकाल समाप्त न होने पर भी पर राशिमें जाना। यदि उक्त ग्रह अपनी भोग्य राशिका भोगकाल पूर्ण न होनेपर ही पूर्व राशिमें गमन करें, तो इसे वक्रातिचार कहते हैं। अतिचार या वक्रातिचारके बाद वृहस्पतिके फिर पूर्वराशिमें वापस न आनेसे महातिचार कहाता है। अकाल देखो। २ लांघकर जाना, व्यतिक्रम, विघात।

अतिचारिन् (सं० त्रि०) अतिचर-घिनुण्। सम्पृचादिभ्यो घिनुण् स्यात् ताच्छील्यादिषु। पा ३।२।१४२। १ जो ग्रह विना भोगकाल समाप्त हुए दूसरी राशिमें जाय। २ जो लांघकर चले या अतिशय गमन करे।

अतिच्छत्र (सं० पु०) अतिक्रान्तश्छत्रं तत्सादृश्येन। छत्रातिच्छत्रपलघ्नौ मालातृणकभूस्तृणे। (इत्यमरः) १ भूतृण। २ जलतृण विशेष, एक प्रकारकी पानीकी घास, तालमखाना (Hygrophila spinosa)।

३ (Mushroom) मेंड़कका छाता या कुकुरमुत्ता। साधारण लोग इसे छाता कहते हैं। यह एक उद्भिद् विशेष है, जो पृथिवीके नाना स्थानोंमें उत्पन्न होता है। युरोप और अमेरिकामें इसका विशेष आदर है। भारतवर्षमें सचराचर बारह तरहका अतिच्छत्र देख पड़ता है। इसमें तीन तरह का छाता विषाक्त है।

बङ्गालके बांकुड़ा और वीरभूमवाले शालवनमें यह यथेष्ट रूपसे उत्पन्न होता है।

मनु प्रभृति शास्त्रकारोंके मतसे यह अखाद्य है। किन्तु भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे यह खानेके काम आता रहा है। बांकुड़े और वीरभूममें क्या हिन्दू क्या मुसलमान सभी इसे खाया करते हैं।

हमारे देशमें यह आप ही आप उत्पन्न होता है। युरोप और अमेरिकामें यह बात नहीं; वहां आलू और परवरकी तरह इसकी खेती की जाती है और इसे सब लोग यत्नके साथ खाते हैं। फ्रान्स देशमें ट्राफ़ल नामक एक प्रकारका छाता मट्टीके भीतर उत्पन्न होता है। इस जातिके सब छातोंका आकार एक-जैसा नहीं रहता। कोई गोल और कोई चौकोना होता और कोई एक ओरको अधिक बढ़ जाता है। ट्राफ़लका दाम छातेसे ज्य़ादा है। आध सेर छाता खरीदनेमें कोई दो रुपये लगते हैं, किन्तु इतना ही ट्राफ़ल आठ रुपयेसे कम नहीं आता। मनुष्य यह अच्छी तरह नहीं समझ सकता, कि ट्राफ़ल मट्टीके भीतर किस जगह उत्पन्न होता है। एक प्रकारका सूअर ही इसे जान सकता है। इसीसे चेत्रस्वामी सूअर ले खेतमें

जाता है। सूअर घ्राणेन्द्रिय द्वारा इसे मालूम करते ही मट्टी खोदने लगते हैं। ट्राफ़ल निकलते ही, चेत्रस्वामी सूअरको दूरकर उसे टोकरीमें उठा लेते हैं। छाता और ट्राफ़ल दोनो एक-जातीय हैं; फिर भी, छाता ट्राफ़लसे कुछ ऊंचा होता है।

छातेका गुण—सुमिष्ट और पुष्टिकर है। यह पुलाव बनाकर खानेमें मछली-मांससे खराब नहीं। जो मछलीमांस न खा और उद्भिद्भोजी रहके जीवनको धारण करते, वह पुलाव खानेकी इच्छा होनेसे इसे व्यवहार कर सकते हैं।

जो छाता काला या नीला हो, उसे अवश्य विषाक्त समझना चाहिये। छातेका एक अंश टूटनेसे यदि पीला रङ्ग निकले, तो भी उसे विषमय समझना उचित है। छाता मुंहमें डालनेसे यदि न किन-किनाये, तो विषाक्त नहीं होता। बनाते समय छातेको पानीसे धो साफ़ कर डालना चाहिये। ऐसा करनेसे विषका कोई भय नहीं रहता।

विषाक्त छाता खानेसे वमि, शिरमें चक्कर, यहां-तक, कि मृत्यु भी हो सकती है।

अतिच्छत्रक (सं° पु°) अतिच्छत्र-स्वार्थे कन्। १ छत्रवृक्ष, छाता। इसकी जड़ और पत्तीमें वचकी तरह कड़ुआ रस होता है। २ मतान्तरसे सुलफ़ेका पेड़।

अतिच्छत्रा, अतिच्छत्रिका (सं° स्त्री°) अतिच्छत्र-टाप्। मौरी, सौंफ। शतपुष्पा सितच्छत्रातिच्छत्रा मधुरा मिसिः। अवाकपुष्पी कारवी (इत्यमरः)।

अतिच्छन्दस् (सं° पु°) अतिक्रान्तश्छन्दः, छन्दो वेदोऽभिप्रायश्च तमतिक्रान्तः। १ वेदोक्त कर्महीन, वेदके बताये काम न करनेवाला, अतिक्रान्त अभिप्राय पुरुष, प्रयोजन को न समझनेवाला आदमी। २ वृत्तानुसारी वर्णविन्यासविशेष।

अतिजगती (सं° स्त्री°) अतिक्रान्ता जगतीम्। १ छन्दोविशेष, तेरह अक्षरके छन्दविशेषका नाम।१३। यथातिजगत्याम् (८।१९२ पिङ्गल)। तुरगरसयतिनौततौगः क्षमा १, म्नाञ्जौगस्त्रिदशयतिः प्रहर्षणीयं २ इत्यादि। (वृत्तरत्नाकरः) (त्रि°) २ जो जगत् या संसारको लांघे। (पु°-क्ली°) गम-क्विप् गच्छतीति। द्युतिगमिजुहोतीनां द्वे च। (कात्यायन) ३ जगत्। स्त्री-ङीप्-जगती।

अतिजन (सं° त्रि°) जहां मनुष्य न हों, वीरान।

अतिजर, अतिजरस् (सं° त्रि°) बहुत बुड्ढा।

अतिजल (सं° त्रि°) खूब सींचा हुआ, पानी-पानी।

अतिजव (सं° त्रि°) अतिशयितो जवो वेगो यस्य, बहुव्री°। १ अत्यन्त वेगवान्, अतिशय द्रुतगामी, बहुत जल्द चलनेवाला। (क्ली°) अतिशयितो जवः, प्रादि-तत्। २ अतिवेग, बड़े ज़ोरकी चाल।

अतिजागर (सं° पु°) अतिशयितो जागरो निद्रा-राहित्यं यस्य, बहुव्री°। १ नीलवर्ण वक पक्षी, काला बगला।

नीलवक प्रायः काला बगला कहा जाता है। यह बहुत छोटा होता है। पर बिलकुल काले नहीं होते, उनमें कुछ-कुछ नीलापन रहता है। यह रातको बोलते-बोलते उड़ा करता, इसीसे इसका नाम—अतिजागर पड़ा है। रातको कुछ जाड़ा लगनेके बाद थोड़ा-थोड़ा ज्वर आनेसे कोई-कोई लोग इस बगलेके नख गलेमें बांधनेको बताया करते हैं। (त्रि°) २ जो बहुत जागता रहे। (अव्य°) जागरा सम्प्रति न युज्यते अतिजागरम्। जागर्त्तेरकारो वा। (कात्यायन) पक्षे शः। ३ जागनेके अयोग्य समय।

अतिजान (सं° त्रि°) अपने कुलसे ऊंचा।

अतिजीर्ण (सं° त्रि°) बहुत पुराना।

अतिजीर्णता (सं° स्त्री°) बड़ा बुढ़ापा।

अतिजृम्भ (सं° पु°) वातरोग विशेष, बहुत सी उवासियोंका आना।

अतिडीन (सं° पु°) अतिक्रान्तं डीनं प्रचण्डगमनं, डीङ्-क्त डीनम्। उदितश्च। पा ८।२।४५। उदित्वाद्धे डीङः पाठसामर्थ्यान्नेट्। (भट्टोजि) श्री डीङ् नभो-गतौ इति काव्यकामधेनुः। पक्षियोंका प्रचण्ड, गमन पक्षियोंकी बहुत लम्बी चाल।

अतितत (सं° त्रि°) अतिशयेन तत विस्तृतम्। बहुत फैला हुआ।

अतितपस्विनी (सं० स्त्री०) गोरखमुराडी।

अतितपस्वी (सं० त्रि०) बड़ी तपस्या करनेवाला।

अतितमाम्, अतितराम् (सं० अव्य०) अत्यन्त, ज्यादा, बहुत अधिक।

अतितार (सं० पु०) अतिशयितस्तारः। १ मोती आदिकी अतिशय शुद्धि। २ अतिशय उच्चस्वर। (त्रि०) ३ उच्चस्वरयुक्त, बड़ी आवाज़का। ४ बहुत अच्छे मोतियोंका।

अतितार्य (सं० त्रि०) पार करने योग्य।

अतितीक्ष्ण (सं० त्रि०) अतिशयेन तीक्ष्णस्तीव्ररसो यस्य। १ सिर्का, मिर्च आदि। (त्रि०) २ अतिशय तीव्र, बहुत तीता या कड़ुआ।

अतितीव्र (सं० पु०) तीव्रसे भी अधिकतर, बहुत तेज़।

अतितीव्रा (सं० स्त्री०) अतिशयेन तीव्रा तीक्ष्णा। गन्धदूर्वा, अतिलुण।

अतितृप्ति (सं० स्त्री०) अधिक तृप्त होना, बहुत अघाना।

अतितृष्णा (सं० स्त्री०) बड़ी प्यास।

अतितेजिनी (सं० स्त्री०) त्रिपर्णी, तेजबला।

अतित्यद् (सं० त्रि०) उससे बढ़कर, उससे श्रेष्ठ।

अतित्रस्नु (सं त्रि०) निहायत डरपोक।

अतिथि (सं० पु०) अतति गच्छति न तिष्ठति, अत-इथिन्। अतेरिथिन्। उण् ४।२। १ आगन्तुक, आवेशिक, गृहागत, अभ्यागत, मिहमान, पाहुना, भिक्षा मांगने या भोजनादिके लिये विना बुलाये जो गृहस्थके घरपर उपस्थित हो। शास्त्रकारोंने अतिथिका यह लक्षण लिखा है,—

"यस्य न ज्ञायते नाम न च गोत्रं न च स्थितिः।
अकस्मात् गृहमायाति सोऽतिथिः प्रोच्यते बुधैः॥"

जिसका नाम, गोत्र या वासस्थान न जाना जाये तथा जो अचानक ही घरमें आ पहुंचे, पण्डित उसीको अतिथि कहते हैं। हिन्दुओंके मतसे अतिथि-सेवाका बड़ा फल है। मूर्ख हो चाहे शत्रु, घरमें अतिथिके आनेपर यत्नसे उसकी सेवा-शुश्रूषा करे। घरमें अतिथिके आनेपर किसी भी कारणसे उसे वञ्चित न करे। शास्त्रकार कहते हैं,—

"अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रति निवर्त्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्वा पुण्यमादाय गच्छति॥"

अतिथि निराश हो यदि किसीके भी घरसे लौटता, तो वह अपना पाप दे गृहस्थका पुण्य लेते जाता है। २ किसी जगह एक रातसे अधिक न रहनेवाला संन्यासी। ३ यज्ञमें जो सोमलता लाये। ४ सूर्यवंशीय एक राजपुत्र। यह श्रीरामचन्द्रजीके पौत्र और कुशके पुत्र थे। (रामायण) कुशने कुमुद नामक नागराज की कन्या कुमुद्वतीसे विवाह किया था, जिसके गर्भसे अतिथिका जन्म हुआ। सुतरां नागवंशके दौहित्र होनेसे इनकी बड़ी कुलमर्यादा रही। यह पुत्रकी तरह प्रजाको पालते थे। रघुवंशमें इनके राज्यशासनकी सुप्रणालीका वर्णन किया गया है। (रघुवंश १७ सर्ग) इनके पुत्रका नाम निषध था।

अतिथिक्रिया (सं० स्त्री०) अतिथि-सत्कार, घरपर आये हुएका सत्कार करना।

अतिथित्व (सं० क्ली०) अतिथिकी स्थिति, मिहमानदारी।

अतिथिदेव (सं० त्रि०) देवरूप अतिथि।

अतिथिद्वेष (सं० पु०) नामिहमानदारी, अतिथिसे लड़ाई-झगड़ा।

अतिथिन् (वै० त्रि०) १ भ्रमनेवाला। (पु०) २ एक राजाका नाम।

अतिथिपति (सं० त्रि०) अतिथि-सत्कार करनेवाला।

अतिथिपरिचर्या (सं० स्त्री०) अतिथिसेवा, अतिथिसत्कार।

अतिथिपूजन, अतिथिपूजा (सं० स्त्री०) मिहमानदारी, अतिथिका आदर-सत्कार। शास्त्रकारोंने गृहस्थोंके लिये जो पञ्चमहायज्ञ बताये हैं, उनमें अतिथिपूजा रोज़का कर्त्तव्य कर्म है।

अतिथिम्ब (सं० पु०) देवदासकी उपमा।

अतिथियज्ञ (सं० पु०) पांच महायज्ञोंमें पांचवां यज्ञ, अतिथिपरिचर्या, मिहमानदारी।

अतिथिसंविभाग (सं० पु०) जैन शास्त्रकी वह शिक्षा, जिसमें बिना अतिथिको दिये भोजन करना

मना है। इसके निम्नलिखित पांच अतिचार हैं,—१ सचित्तनिक्षेप, २ सचित्तपीहण, ३ कालातिचार, ४ परव्यपदेश, मत्सर, ५ अन्योपदेश।

अतिथिसत्कार (सं० पु०) अतिथिका आदर।

अतिथिसेवा (सं० स्त्री०) मिहमानदारी।

अतिदग्ध (सं० त्रि०) १ बहुत जला हुआ। (क्ली०) २ अग्निदग्ध रोग।

अतिदत्त (सं० पु०) दत्तके भाई और राजाधिदेवके लड़के।

अतिदर्शिन् (सं० त्रि०) बहुत देखनेवाला, दूरन्देश।

अतिदाढ़ (सं० पु०) बहुत ही उदार मनुष्य।

अतिदान (सं० पु०) अतिशयितं दानं। अपरिमित दान।

अतिदारुण (सं० त्रि०) बहुत भयानक।

अतिदाह (सं० पु०) बड़ी जलन।

अतिदिष्ट (सं० त्रि०) अतिदेशविशिष्ट, जहां दूसरे धर्मका आरोप किया गया हो। यथा,—'अमायां पितृभ्यो दद्यात्।' अमावस्याको पितरोंका श्राद्ध करे। इस जगह अमावस्यासे भिन्न दूसरे श्राद्ध अतिदिष्ट हुए।

अतिदीप्ति (सं० स्त्री०) १ अधिक प्रकाश। २ सफ़ेद तुलसी।

अतिदीप्य (सं० पु०) अतिशयेन दीप्यते। रक्तचित्रक, लाल चिता, भभकती हुई चिता। चिता देखो।

अतिदीर्घ (सं० त्रि०) बहुत लम्बा।

अतिदुःखित (सं० त्रि०) बहुत दुःखी।

अतिदुर्गत (सं० त्रि०) बड़ी बुरी दशामें।

अतिदुर्धर्ष (सं० त्रि०) १ बड़ी कठिनतासे प्राप्त। २ बहुत बदमिजाज, तीव्रस्वभाव।

अतिदुर्लभ (सं० त्रि०) कठिनतासे प्राप्तव्य।

अतिदुष्कर (सं० त्रि०) बहुत कठिन।

अतिदुष्ट (सं० पु०) बहुत बुरा-गोखुरू।

अतिदुःसह (सं० त्रि०) बहुत कष्टसे सहा जानेवाला।

अतिदूर (सं० त्रि०) बहुत दूर।

अतिदेव (सं० पु०) अतिक्रान्तो देवान्। सब देवतासोंसे श्रेष्ठ,—१ रुद्र, शिव, महादेव; २ विष्णु, नारायण।

अतिदेश (सं० पु०) अतिदिश्यते असौ अनेन वा, स्वविषयमतिक्रम्य उल्लङ्घ्य अन्यत्र देशः उपदेशः। दूसरे धर्मका दूसरी जगह आरोप,—

"अन्यत्रैव प्रणीतायाः कृत्स्नाया धर्मसंहतेः।
अन्यत्र कार्यतः प्राप्तिरतिदेशः स उच्यते॥"

एक जगहके प्रणीत धर्मको कार्य्य द्वारा जिसमें दूसरी जगह प्राप्ति होती, वह अतिदेश कहाता है। जैसे,—'अक्षय्योदकदानन्तु अर्घ्यदानवदिष्यते।' श्राद्धमें पिण्डदानके बाद घी, शहद और तिलसे मिला हुआ जो जल देना पड़ता, उसका नाम अक्षय्योदक दान है। जितरह अर्घ्यदान किया जाता है, उसी तरह अक्षय्योदक दान भी करना चाहिये। अर्थात् पार्व्वण-श्राद्धमें पितादि छः पुरुषोंको जैसे छः अर्घ्य अलग-अलग दिये जाते हैं, अक्षय्योदक भी वैसे ही अलग-अलग देना चाहिये। पार्व्वण-श्राद्धमें अन्नदान प्रभृति कई कार्य्य अलग-अलग न कर एकपात्र और एकवाक्य द्वारा ही उत्सर्ग करनेको विधि है, इसीसे अर्घ्यदानकी तरह अक्षय्योदकदानके पृथक् दान-रूप धर्मका अतिदेश होता है। सिवा इसके, 'मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः॥" विचक्षण व्यक्ति मातामहादियोंका श्राद्ध भी पितादि श्राद्धके सदृश करे। इस जगह मातामहादियोंका श्राद्ध पितादि-श्राद्धके सदृश बताये जानेसे अतिदेशिक कार्य्य हो गया। तन्त्ररत्नाकरकर्त्ता लिखते हैं,—जिस शास्त्र द्वारा पूर्वोक्त रूपसे धर्मका अतिदेश बताया जाये, उसे भी अतिदेश कहते हैं। यथा—"प्रकृतात् मर्म्मणो यस्मात्तत् समानेषु कर्म्मसु। धर्म्मोऽतिदिश्यते येन सोऽतिदेश इति स्मृतिः।" 'प्रकृतिवद्विकृतिः कर्तव्या।' विकृतिकार्य्य प्रकृतिकी तरह करना पड़ता है। अमावस्याका श्राद्ध प्रकृत है, सिवा इसके दूसरे सभी श्राद्ध विकृत हैं। इस जगह प्रकृतिवत् इस शास्त्र द्वारा दूसरी जगह इसका धर्म अतिदिष्ट होनेसे यह शास्त्र भी अतिदेश हुआ। अतिदेश पांच तरहका

होता है—१ शास्त्रातिदेश, २ कार्यातिदेश, ३ निमित्तातिदेश, ४ संज्ञातिदेश, ५ रूपातिदेश।

अतिदोष (सं० पु०) बड़ा भारी दोष, अधिक अपराध।

अतिधन्वन् (सं० पु०) अत्युत्कृष्टं धनुर्यस्य। १ उत्तम धनुर्द्धर योद्धा। अतिक्रान्तं धन्वानं तन्नाम मरुं। (त्रि०) २ मरुस्थल अतिक्रमकारी।

३ सौनक-गुरु, जिनका वर्णन छान्दोग्य उपनिषत् और वंशब्राह्मणमें मिलता है।

अतिधवल (सं० त्रि०) बहुत सफ़ेद।

अतिधृति (सं० स्त्री०) अतिक्रान्ता धृतिम्। १ उन्नीस अक्षरका छन्दोविशेष; जैसे, शार्दूल विक्रीड़ित। धृति छन्दमें अट्ठारह अक्षर होते हैं; अतिधृति छन्दमें उससे एक अक्षर अधिक रहता है। (त्रि०) २ धैर्य अतिक्रमकारी, अधैर्य, असन्तुष्ट, भड़भड़िया।

अतिधेनु (सं० त्रि०) अपनी गौके लिये प्रसिद्ध।

अतिनाट (सं० पु०) उस मिले हुए रागकी एक शाखा, जिसे सङ्कीर्ण कहते हैं।

अतिनाभ (सं० पु०) हिरण्याक्ष राक्षसके जो नौ लड़के थे, उनमेंसे एक।

अतिनामन् (सं० पु०) छठें मन्वन्तरके सप्तर्षि।

अतिनाष्ट्र (सं० त्रि०) भयसे बाहर, खतरेसे अलग।

अतिनिद्र (सं० अव्य०) निद्राके समयसे बाहर।

अतिनिद्रता (सं० स्त्री०) नींदकी बीमारी, नींदका बहुता आना।

अतिनिद्रम् (सं० अव्य०) निद्रा सम्प्रति न युज्यते। १ निद्राके अयोग्य समय। (त्रि०) अतिक्रान्त निद्राम्। २ निद्रातिक्रमकारी, निद्रारहित, जो सोता न हो, जिसे नींद न आती हो। ३ दीर्घनिद्रायुक्त, बहुत देरतक सोनेवाला, लम्बी नींद लेनेवाला। (स्त्री०) अतिशयिता निद्रा। ४ दीर्घनिद्रा, लम्बी नींद।

अतिनिपुण (सं० त्रि०) अति चतुर।

अतिनिर्हारिन् (सं० त्रि०) अतिशयेन निर्हरति समाकर्षति अवश्यं मनः। अतिनिर्हारी अत्यन्तसमाकर्षी। (इति महेश्वरः।) अत्यन्त सुगन्ध, मनोहर गन्ध, आमोद, समाकर्षी, मनको खींचनेवाला, निहायत खुशबूदार, बहुत ही सुगन्धित।

अतिनृत्तित् (वै० स्त्री०) एक वैदिक कविता, जिसमें तीन पद होते और प्रत्येक पदमें क्रमशः सात, छः और सात खण्ड रहते हैं।

अतिनीच (सं० त्रि०) अधमसे अधम, बहुत छोटा, निहायत रज़ील।

अतिनौ (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं नावम्। १ अतीतनौक, नौकासे भी अधिक तैरनेवाला। २ नावसे या नाव छोड़ बजरे या पैरनेसे पार हुआ।

अतिपन्थ (सं० पु०) सुपन्थ, अच्छी राह, सन्मार्ग।

अतिपक्वक्षीर (सं० क्ली०) खूब औटा हुआ दूध।

अतिपक्वमांस (सं० क्ली०) खूब पकाया हुआ गोश्त।

अतिपटाक्षेप (सं० पु०) नाटकका परदा उठानेकी भूल।

अतिपतन (सं० पु०) अतिक्रम्य पतनम्। अत्यय, अतिक्रमण।

अतिपत्ति (सं० स्त्री०) अतिक्रम्य पत्तिं पतनम्। अतिक्रम, अतिपतन।

अतिपत्र, अतिपत्रक (सं० पु०) अतिशयितं बृहत् पत्रमस्य। हस्तिकन्दवृक्ष, शाकवृक्ष।

अतिपत्रा (सं० स्त्री०) बला, खरेटी।

अतिपथ (सं० पु०) पन्थानमतिक्रान्तः। अतीतपथ।

अतिपथिन् (सं० पु०) अतिशयितः शोभनः पन्थाः। सत्पथ, सुन्दर पथ, अच्छी राह, सुपन्थ।

अतिपन्थाः सुपन्थाश्च सत्पथश्चार्चितेऽध्वनि। (इत्यमरः)।

अतिपद (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं पदं चरणम्। वर्णवृत्तानुसारी छन्दके चरण, अतिक्रान्त।

अतिपन्न (सं० त्रि०) अतिक्रान्त।

अतिपर (सं० पु०) १ प्रबल शत्रु। २ शत्रुजित्, शत्रुओंको जीतनेवाला।

अतिपरोक्ष (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं परोक्षम्। प्रत्यक्ष, आंखों देखी बात, चाक्षुष विषय।

अतिपरोक्षवृत्ति (सं० त्रि०) चालसे बाहर, उठा हुआ।

अतिपाण्डुकम्बला (सं० स्त्री०) जैनियोंकी सिद्ध-

शिलाके दक्षिणका सिंहासन। इस सिंहासनपर तीर्थङ्कर बैठा करते हैं।

अतिपात (सं० त्रि०) अति-पत-घञ्। अतिक्रम, उपात्यय, पर्य्यय, गड़बड़, उथल-पुथल, अकर्त्तव्यमें आस्था, कर्त्तव्यमें अनास्था, क्षति, हानि, वाधा, विघ्न।

अतिपातक (सं० पु०) अतिक्रान्तमतिविगर्हितत्वात् अन्यत् पातकम्। नौ तरहके पापोंमेंसे तीन बड़े पाप। जैसे पुरुषके पक्षमें,—मातृगमन, कन्यागमन और पुत्रवधूगमन और स्त्रियोंके पक्षमें—पुत्रगमन, पितृगमन और श्वशुरगमन है। शूलपाणिने अपने बनाये प्रायश्चित्तविवेकमें लिखा है, कि अतिपातक महापातककी अपेक्षा भी गुरुतर पाप है। इसका कारण यह है, कि यह सब गुरुतर पाप करके जो प्रायश्चित्त नहीं करते, वह अतिपातकके पर्यायक्रमसे एक कल्प नरक भोगते हैं। महापातकी और अणुपातकी एक मन्वन्तर और उपपातकी चारयुग नरकमें रहते हैं। इन कई पापोंमें अतिपातककी बात पहले कही गई, इसका फल भी बहुत दिन भोगना पड़ता है, इसी कारण यह सब पापोंसे बड़ा है। विष्णु कहते हैं, कि चाहे जानकर किया गया हो, या बेजाने, एकबार किया गया हो या कई बार; इस पापके करनेका, सिवा उसी समय अग्निमें प्रवेशकर मर जानेके, दूसरा कोई प्रायश्चित्त नहीं है। प्रायश्चित्तविवेकके टीकाकार गोविन्दानन्दने लिखा है,—"न ह्यन्या निष्कृतिरेषां।" सिवा मरनेके ऐसे पापियोंकी दूसरी कोई निष्कृति नहीं है। इससे यही प्रतिपन्न होता है, कि सिवा मरनेके दूसरी विधि, जैसे मरणवैकल्पिक चौबीस वर्षके व्रताचरणसे भी यह पाप नहीं छूटता। पूर्वजन्ममें किये हुए अतिपातकके लिये इस जन्ममें गलत्कुष्ठ रोग होता है। इसके प्रायश्चित्तमें दो पराकव्रत करना चाहिये। इसमें असमर्थ होनेसे ३८४०० कौड़ी या इतने ही मूल्यका सोना या चांदी उत्सर्ग करे। इसके द्वारा अतिपापसे छुटकारा मिलता है।

अतिपातित (सं० क्ली०) हड्डियोंका टूटना।

अतिपातिन् (सं० त्रि०) ठीक ऊपर पड़नेवाला।

अतिपाल्य (सं० त्रि०) ध्यान न देने योग्य।

अतिपिच्छ (सं० पु०) सफ़ेद रतालू।

अतिपिच्छला (सं० स्त्री०) घृतकुमारी, घीकुआर।

अतिपिञ्जर (सं० पु०) अतिपीड़क दुष्टव्रण, बुरा घाव।

अतिपितामह (सं० पु०) दादासे बढ़कर व्यक्ति।

अतिपितृ (सं० पु०) पितासे बढ़कर व्यक्ति।

अतिपुरुष, अतिपूरुष (सं० पु०) प्रथमश्रेणीका मनुष्य या वीर।

अतिपूत (सं० त्रि०) बहुत पवित्र, निहायत पाकसाफ़।

अतिपेशल (सं० त्रि०) बहुत होशियार।

अतिप्रकाश (वै० त्रि०) १ बहुत प्रसिद्ध। २ कलङ्कित, बदनाम।

अतिप्रगे (सं० अव्य०) बहुत सवेरे, सूर्योदयके समय। "नातिप्रगे नातिसायं न सायं प्रातराशत:।" मनु० ४। ६०। अतिशयेन प्रगीयते वेदोऽस्मिन् काले। जिस समय वेद खूब पढ़ा जाये। पूर्वकालमें सभी ब्राह्मण बड़े सवेरे वेद पढ़ते थे। जैसे मनुने लिखा है,—

"नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ।
न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुन: स्वपेत्॥" (४।९९)

अस्पष्ट रूपसे और शूद्रके समीप वेद न पढ़े, बड़े सवेरे वेद पढ़के श्रान्त होनेपर फिर नींद न ले।

अतिप्रणय (सं० पु०) बड़ी कृपा, अज़हद मिहरबानी।

अतिप्रबन्ध (सं० पु०) पूरा बन्दोबस्त।

अतिप्रवृद्ध (सं० त्रि०) अतिशयेन प्रवृद्धम्। १ अत्यन्त वृद्धियुक्त, बहुत बढ़ा हुआ। २ अत्यन्त वृद्ध, बहुत बुड्ढा। (पु०) ३ प्रमाणातिरिक्त वृद्ध, प्रमाणसे बाहर बुड्ढा।

अतिप्रभञ्जनवात (सं० पु०) बड़े ज़ोरसे चलनेवाली हवा, घण्टेमें ४० या ५० कोस जानेवाला वायु।

अतिप्रमाण (सं० त्रि०) अतिशयितं प्रमाणं यस्य। १ अत्यन्तप्रमाण, अधिक प्रमाणयुक्त, अच्छीतरह साबित। (पु०) अतिक्रान्त: प्रमाणम्। २ प्रमाणभ्रंश,

प्रमाणातिक्रान्त, सुबूतसे खाली, जिसका कोई सुबूत न हो।

अतिप्रवरण (सं० क्ली०) अनोखा चुनाव।

अतिप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) किसी कार्य्यमें अधिक प्रवृत्त होना, अज़हद रग़बत, बड़ा झुकाव।

अतिप्रश्न (सं० पु०) अतिक्रम्य मर्य्यादां प्रश्नः। मर्य्यादा अतिक्रमकरनेवाला प्रश्न, समझके बाहर सवाल। (त्रि०) २ पूछने योग्य।

अतिप्रसक्ति (सं० स्त्री०) अत्यन्त आसक्ति, बड़ी चाह।

अतिप्रसङ्ग (सं०पु०) १ जिस पदार्थमें अति प्रसक्ति उत्पन्न हो। २ अत्यन्त प्रसक्ति। (त्रि०) ३ प्रसङ्गके अतिक्रमसे विशिष्ट, प्रसङ्गान्तरका कहना, बार-बारकी उक्ति।

अतिप्रसिद्ध (सं० त्रि०) १ अत्यन्त विख्यात, बहुत मशहूर। २ सुभूषित, खूब सजा हुआ। (पु०) ३ प्रकाश, आतप, रोशनी, धूप।

अतिप्राण (सं० पु०) स्वर्गीय जीवन।

अतिप्राणप्रिय (सं० त्रि०) बहुत प्रिय, प्राणोंसे भी प्यारा।

अतिप्रेषित (सं० क्ली०) प्रेष मन्त्र पढ़नेका समय, जो यज्ञके अन्तमें आता है।

अतिप्रौढ़ (सं० त्रि०) भरा-पूरा।

अतिप्रौढ़यौवन (सं० त्रि०) पूरी जवानीमें।

अतिप्रौढ़ा (सं० स्त्री०) अतिशयिता प्रौढ़ा। अत्यन्त वृद्धियुक्ता, खूब बढ़ी हुई, जिस बालिकाके विवाहका समय आ गया हो, जिस बालिकाकी अवस्था दश वर्षसे अधिक हो गई हो।

अतिबरवै (हिं० पु०) पहले और तीसरे चरणमें बारह तथा दूसरे और चौथे चरणमें नौ मात्रायें रखनेवाला छन्द। इस छन्दके विषम पदोंके आदिमें जगण आना दूषित और इसके सम पदोंका अन्त्य वर्ण लघु रहना उचित है।

अतिबरसण (हिं० पु०) १ अतिवर्षण। २ मेघमाला, घटा।

अतिबल (सं० वि०) अतिशयितं बलमस्य। १ अतिशय बलवान्, बहुत बली, प्रबल। (पु०) २ महाभारतीय राजभेद। (शान्तिप०)

अतिबला (सं० स्त्री०) अतिशयितं बलं यस्याः। पीतवर्ण लताविशेष,—१ एक पीली लता। बलिका, बला, वाट्यपुष्पिका, घण्टा, शीता, शीतपुष्पा, भूरिचला, वृष्यगन्धिका यह पर्याय हैं। २ ककही या ककई नामकी एक ओषधि, जिसका पौधा छोटासा होता है। ३ बरियारी।

४ अतिबला—एक विद्याविशेष है। विश्वामित्रने रामचन्द्रको यही मन्त्रविद्या पढ़ाई थी। रामायणके आदिकाण्डमें लिखा है, कि विश्वामित्र राम-लक्ष्मणको अपने आश्रममें लिये जाते थे। चलते-चलते सरयूकूलमें जा पहुंचे। उसी जगह उन्होंने रामचन्द्रसे कहा, 'वत्स! मैं तुम्हें बला और अति-बला नाम्नी दो विद्यायें पढ़ाऊंगा, तुम आचमन कर आओ। बला और अतिबला विद्यामें असाधारण गुण वर्त्तमान हैं। इन्हें ग्रहण करनेसे तुम किसी काममें न थकोगे, भूख-प्यास न लगेगी और धूपकी गर्मीसे भी तुम न कुम्हिलाओगे। इसके बाद तुम प्रमत्त अथवा निद्रित अवस्थामें भी चाहे क्यों न रहो, परन्तु राक्षस तुम्हारा कुछ अनिष्ट न कर सकेंगे। पृथिवीपर बलवीर्य्यमें कोई तुम्हारी बराबर न रहेगा। इस त्रैलोक्यके बीच सौभाग्यमें, दाक्षिण्यमें, और ज्ञान तथा प्रत्युत्तर देनेमें तुम अद्वितीय हो जाओगे। यह दोनो विद्यायें सब ज्ञानोंकी माता जैसी हैं। राहमें इनके पढ़नेसे किसी विपद्‌का भय नहीं रहता। ये दोनो तेजस्विनी विद्यायें पितामह ब्रह्माकी कन्या हैं।" रामचन्द्रने, विश्वामित्रके मुंहसे बला और अतिबला विद्याका ऐसा गुण सुनके उन्हें ग्रहण किया।

५ दक्षकी एक कन्या और कश्यपकी एक पत्नी। (रामा० कि० २०। १२)

अतिबलिका, अतिबली (सं० स्त्री०) वाट्यालका, बरियारी।

अतिबालक (सं० पु०) १ बहुत ही छोटा बच्चा। (त्रि०) २ लड़कों-जैसा।

अतिबाला (सं० स्त्री०) अतिक्रान्तो बालां बाला-

वस्थाम्। १ दो वर्षकी अवस्थावाला बच्चा। (त्रि०) २ अत्यन्तबाल्यावस्थाका, बहुत कमसिन।

अतिबाहु (सं० पु०) १ अनोखी बाहुवाला मनुष्य। २ चौदहवें मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ऋषि। (हरिवंश)

अतिबृहत्फल (सं० पु०) पनस वृक्ष, कटहलका पेड़।

अतिब्रह्मचर्य्य (सं० पु०) अतिक्रान्तो ब्रह्मचर्य्यम्। ब्रह्मचर्य्यत्यागी; जिसने दारपरिग्रह अर्थात् विवाह कर लिया हो, गृहस्थ।

अतिभार (सं० पु०) अत्यन्तो भारः। १ अतिशय भार, अत्यन्त गौरव, अत्यन्त वेग। २ अतिशय। ३ वज्र। ४ पहाड़।

अतिभारग (सं० पु०) अतिभारेण वेगेन अतिभार-वहनेनापि वा गच्छति। खच्चर, अश्वतर।

अतिभारारोपण (सं० पु०) बहुत बोझ लादके पशु सताना।

अतिभाव (सं० पु०) अधिकता, सबकृत।

अतिभी (सं० स्त्री०) अतिशयेन विभेति यस्याः दर्शनात्। वज्राग्नि, बिजली, जिसे देख लोग बहुत डरते हैं।

अतिभीषण (सं० त्रि०) बहुत भयानक, निहायत खौफ़नाक।

अतिभूमि (सं० स्त्री०) अतिशयिता भूमिः। १ आधिक्य, अत्यन्त मर्य्यादा, ज़ियादती। (अव्य०) अति-क्रम्य भूमिम्। २ मर्य्यादातिक्रमसे। (त्रि०) ३ मर्य्या-दातिक्रान्त।

अतिभृत (वै० त्रि०) खूब भरा हुआ।

अतिभोजन (सं० क्ली०) अति-भुज-ल्युट् भावे। अत्यन्त भोजन, हदसे ज़्यादा खाना। आहारके समय आधा पेट खानेकी चीज़ोंसे और चौथाई जलसे भरे, बाकी एक अंश वायु आने-जानेके लिये खाली रखे। इससे अतिरिक्त जो भोजन किया जाता, वही अतिभोजन कहाता है। वैद्यशास्त्रके मतसे अतिभोजन सब रोगोंका कारण है।

अतिभ्रू (सं० त्रि०) बहुत बड़ी भौंहोंवाला।

अतिमङ्गल्य (सं० पु०) १ विल्ववृक्ष, बेलका पेड़। (त्रि०) २ अतिशय मङ्गलजनक।

अतिमञ्जुला (सं० स्त्री०) सेवतीका पौधा, अति-मनोहरा।

अतिमण्डल (सं० पु०) भूधामन वृक्ष।

अतिमति (सं० स्त्री०) हठ, ज़िद।

अतिमध्यंदिन (सं० क्ली०) दो पहरका समय।

अतिमन्थ, अतिमन्थक (सं० पु०) अग्निमन्थ क्षुप।

अतिमर्य्याद (सं० अव्य०) १ मर्य्यादातिक्रमसे। अव्ययी-भाव समासकी अव्यय संज्ञा हुआ करती है। (त्रि०) अतिक्रान्तं मर्य्यादाम्। २ मर्य्यादातिक्रमकारी, हदसे बाहर जानेवाला, निर्मर्य्याद, विना मर्य्यादाका। (पु०) ३ अतिशय।

अतिमर्श (सं० पु०) निकटस्थ सम्बन्ध, नज़दीकी नाता।

अतिमात्र (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं मात्रां स्वल्प-परिमाणम्। १ अतिशय, बहुत ज्यादा, बृहत्प्रमाण, बड़ा भारी। अतिशयिता मात्रा-प्रमाणमस्य। २ हदसे ज्यादा।

अतिमात्रशः (सं० अव्य०) अतिप्रमाणकारक होकर।

अतिमान (सं० पु०) अतिशयितो मानः। १ अत्यन्त मान, अनुचित अभिमान, बेजा घमण्ड। (त्रि०) अति-क्रान्तं मानं प्रमाणम्। २ प्रमाणाधिक, ज़रूरतसे ज़्यादा।

अतिमानिता (सं० स्त्री०) कठोर हठ, भारी ज़िद।

अतिमानिन् (सं० त्रि०) बड़ा हठी, निहायत ज़िद्दी।

अतिमानुष (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं मनुष्यधर्म्मम्। मनुष्यके अयोग्य, यानी दिव्य कर्म्म, गुण, क्षमता, रूपादिका; आदमीकी पहुंचके बाहर, दैवी।

अतिमार (सं० पु०) एक राजाका नाम। (भागवत)

अतिमारुत (सं० त्रि०) १ निहायत हवादार। (पु०) २ आंधी, तूफ़ान।

अतिमित (सं० त्रि०) बहुत ज़्यादा, बेहद, प्रमाणसे अधिक।

अतिमित्र (सं० पु०) अत्यन्तं परमं मित्रम्। अत्यन्त सुहृद्, बड़ा दोस्त, परम मित्र।

अतिमुक्त (सं० त्रि०) अतिशयेन मुक्तः निर्वाणं प्राप्तः। १ प्राप्तनिर्व्वाण, निष्फल, निःसङ्ग, मुक्तिपाया

हुआ। २ बेफ़ायदा, ऊट-पटांग। (पु०) ३ तिनसुनेका पेड़। अतिक्रान्तं मुक्तां शुभ्रवर्णत्वात्। ४ माधवीलता, मोगरा।

अतिमुक्तकमाला (सं० स्त्री०) अतिमुक्तक फूलका हार।

अतिमुक्तक, (सं० पु०)
अतिमुक्तका (सं० स्त्री०) } तिनसुनेका वृक्ष, तिन्दुक वृक्ष, पुष्पवृक्षविशेष, तालका पेड़।

अतिमुक्ततैल (सं० क्ली०) अतिमुक्तके बीजका तेल।

अतिमुक्ता (सं० स्त्री०) अतिमुक्त काया, पुण्य-शरीर।

अतिमुक्ति (सं० स्त्री०) अत्यन्ता मुक्तिः। कैवल्य, संसारके बन्धनसे निष्कृति।

अतिमुशल (सं० पु०) ज्योतिषका वह वक्र योग, जिसमें मङ्गल एक नक्षत्रमें अस्त और उससे सत्रहवें या अट्ठारहवें नक्षत्रपर अनुवक्र होता है। इस योगमें चोरी और मारकाट होती और पानी नहीं बरसता है।

अतिमूत्र (सं० पु०) वह रोग जिसमें पेशाब हदसे ज्य़ादा उतरता है, एक प्रकारका प्रमेह। यह रोग बहुत बुरा है और रोगीको कमज़ोर बनाते जाता है।

अतिमूर्ति (सं० स्त्री०) १ उच्च स्वरूप, बढ़िया शक्ल। २ एक प्रथा।

अतिमृत्यु (सं० पु०) अतिक्रान्तो मृत्युम्। १ मोक्ष। २ अधिक मृत्यु, महामारी।

अतिमैथुन (सं० पु०) अत्यन्तं मैथुनम्। अत्यन्त स्त्रीसंसर्ग। यह आयुक्षयका प्रधान कारण है और इसीके दोषसे प्रायः सब जगह यक्ष्मारोग हो जाता है।

अतिमोक्ष (सं० पु०) मृत्युसे अन्तिम छुटकारा।

अतिमोदनी, अतिमोदिनी, अतिमोदा देखो।

अतिमोदा (सं० स्त्री०) अतिशयितो मोदः गन्धः यस्याः। १ नवमल्लिका, निवारका वृक्ष या पुष्प। (त्रि०) २ अत्यन्त गन्धयुक्त, निहायत खुशबूदार।

अतियव (सं० पु०) एक प्रकारका यव।

अतियश, अतियशस् (सं० त्रि०) अत्यन्त प्रसिद्ध, निहायत मशहूर।

अतियाज (सं० त्रि०) एक ऋषिका नाम।

अतियुक्त (सं० त्रि०) बार-बार कहा गया।

अतियुवन् (सं० त्रि०) बहुत तरुण, निहायत नौजवां।

अतियोग (सं० पु०) अधिक सम्बन्ध, ज्य़ादा मिलाव, मात्रासे अधिक औषधका योग।

अतिरंहस् (सं० त्रि०) १ बहुत तेज़, निहायत चालाक। २ जिसका वेग अधिक हो।

अतिरक्त (सं० त्रि०) अत्यन्तः रक्तः रक्तवर्णः अनुरक्तो वा। १ अति लोहितवर्ण, बहुत ज्य़ादा लाल। २ अधिक अनुरक्त, किसी वस्तुमें अधिक प्रेम करनेवाला।

अतिरक्ता (सं० स्त्री०) जवापुष्प वृक्ष, लालदुपहरी।

अतिरजा—रैवतमन्वन्तरके देवताओंका नाम। (मत्स्य-पु० १२ अ०)

अतिरञ्जना (सं० स्त्री०) अधिक बनावट, बड़ी चिकनी-चुपड़ी।

अतिरणचण्डपल्लव—सन् ई० के ५ वें शताब्दवाले पल्लव-वंशके एक राजा, जिनका राज्य मन्द्राज-प्रान्तमें विस्तृत था।

अतिरथ (सं० पु०) अतिक्रान्तो रथं रथिनम्। महा योद्धा, असंख्य शत्रुओंके साथ लड़नेमें समर्थ। (स्त्री०) अतिरथी।

अतिरभस (सं० पु०) अत्यन्त वेग, निहायत तेज़ चाल।

अतिरस (सं० पु०) पौण्ड्रक, पौंडा, स्थूल इक्षुदण्ड।

अतिरसा (सं० स्त्री०) अतिशयितो रसो यस्याः। रास्ना, मूर्व्वालता। रास्ना आम आदि वृक्षोंमें उत्पन्न होती और निकालकर रखनेसे बहुत दिन हरी-भरी बनी रहती है।

अतिराज, अतिराजन् (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं राजानम्। अतिक्रान्त नृपति, शहनशाह। (स्त्री०) अतिराजी, मलका मुअज्ज़मा।

अतिराजकुमारी (सं० स्त्री०) सबसे श्रेष्ठ राजकुमारी, निहायत आला शाहज़ादी।

अतिरात्र (सं० पु०) अतिक्रान्तो रात्रिम्। एकरात्र

साध्य याग-विशेष; वह यज्ञ, जो एक ही रात्रिमें किया जाये।

आश्वलायन-श्रौत-सूत्रमें लिखा है :—

"अग्निष्टोमोऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः षोड़शी वाजपेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्याम इति संस्थाः।" (६।११।१)

अर्थात् अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र और अप्तोर्याम यह सात संस्था होती हैं। उक्त श्रौतसूत्रवाले भाष्यकारके मतसे—"सर्वे सोमयागाः संख्यया सप्तविधा एवेत्यर्थः।" अर्थात् सकल सोमयाग उपरि उक्त सात संस्थामें ही विभक्त हैं। फलतः 'अतिरात्र' सोमयागकी ही एक संस्था है।

तैत्तिरीय-संहितामें लिखा है :—

"एतद्वा अग्निष्टोमं प्रथममयन्त्यथोक्थ्यमथ षोड़शि-नमथातिरात्रमनुपूर्वम्।" (७।४।१०।६

ऐतरेय-ब्राह्मणमें लिखा है :—

'एक समय देवताओंने दिवस (दिन) और असुरोंने रात्रिका आश्रय किया था। वे दोनों समान शक्ति रखते थे, इस लिये कोई किसीको पराभूत न कर सकता था।'

'इन्द्रने देवताओंसे कहा, कि कौन हमारे साथ मिलकर इन असुरोंको रात्रिसे दूर भगानेमें सहायता करेगा। किन्तु इन्द्रने देवताओंमें से किसीको ऐसा न पाया, जो उनकी सहायता करता, क्योंकि वह लोग रात्रिके अन्धकारसे मृत्युके समान डरते थे। इसीलिये आजकल भी लोग रातको घरसे बाहर निकलते डरते हैं, रात्रिका अन्धकार उन्हें मृत्युके समान ही भयानक मालूम होता है।'

'केवल छन्दोंनें ही इन्द्रका साथ दिया। इसीलिये अतिरात्र यज्ञमें रात्रि कर्मका निर्वाह इन्द्र और छन्दोंसे ही चलता है, अन्य 'निवित्' वा 'पुरोरुक' आदि देवताओंके उद्देश्यसे शास्त्र पठित नहीं होता। केवल इन्द्र ही छन्दोगणके साथ रात्रिकर्मका निर्वाह करते हैं।'

'अतिरात्र यज्ञमें विहित सकल पर्याय (परिक्रमण) द्वारा ही इन्द्र और छन्दोगणने असुरोंका निराकरण किया था। प्रथम पर्याय द्वारा पूर्वरात्रिसे, मध्यमपर्य्याय द्वारा मध्यरात्रिसे, एवं शेष पर्याय द्वारा शेष रात्रिसे असुरोंका निराकरण हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण ४र्थ पञ्चिकान्तर्गत १६वें और १७वें अध्यायमें अतिरात्रका विस्तृत विवरण द्रष्टव्य है।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि अतिरात्र याग ब्रह्माके मुखसे उत्पन्न हुआ था। यथा—

"सामानि जगतीच्छन्दः स्तोमं सप्तदशं तथा।
वैरूपमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन् मुखात्॥" (१।५।५४।)

सामवेद, जगतीच्छन्द, सप्तदशस्तोम नामक सामगान, वैरूप नामक सामगान और अतिरात्र याग ब्रह्माके पश्चिम मुखसे उत्पन्न हुए थे।

२ चाक्षुस मनुका एक पुत्र।

अतिरि (सं० क्ली०) अतिक्रान्तं रायम्। धनातिक्रान्त कुलादि, वह कुल या वंश, जिसके पास बेशुमार रुपया-पैसा भरा हो।

अतिरिक्त (सं० त्रि०) १ अधिक, अतिशयित। २ श्रेष्ठ। ३ शून्य। ४ भिन्न, सिवा। (क्ली०) ५ आधिक्य, अतिशय, ज़ियादती।

अतिरिक्तकम्बला (सं० स्त्री०) जैनियोंकी सिद्ध-शिलाके उत्तर तीर्थङ्करके बैठनेका सिंहासन।

अतिरीयस् (सं० क्ली०) उच्च मूल्य, ऊंचा दाम।

अतिरुच् (सं० पु०) १ स्त्रीका उरुदेश। २ जानुदेश। (त्रि०) ३ अतिशय कान्तियुक्त, बहुत चमकीला।

अतिरुचिर (सं० त्रि०) बहुत सुन्दर, निहायत उम्दा।

अतिरुष् (सं० त्रि०) बहुत क्रुद्ध, निहायत गुस्सावर।

अतिरुहा (सं० स्त्री०) मांसरोहिणी, सुगन्ध द्रव्य-विशेष।

अतिरूक्ष (सं० त्रि०) अतिशयितः रूक्षः। १ अत्यन्त रूक्ष, बहुत रूखा। स्नेहशून्य, निर्मोही।

अतिरूप (सं० पु०) अतिक्रान्तो रूपम्। १ रूपहीन, ईश्वर, जिसका कोई रूप नहीं। २ सुन्दररूप, अच्छी सूरत। (त्रि०) ३ शुक्लादि गुणहीन; जैसे वायु प्रभृति, विना रूप-रङ्गका।

अतिरेक (सं० पु०) अतिशय, भेद, प्राधान्य, आधिक्य, कसरत।

अतिरोग (सं० पु०) १ क्षयरोग, सूखा, छई। (त्रि०) २ अत्यन्त रोगयुक्त, बहुत बीमार।

अतिरोधान (सं० पु०) १ तिरोधानका अभाव, प्रकाश, व्यवधानाभाव, बेपर्दगी। (त्रि०) २ अतिरोहित, प्रकाशित, रोशन, ज़ाहिर, खुला।

अतिरोमश, अतिलोमश (सं० पु०) १ वन्य या जङ्गली बकरा। २ बड़ा बन्दर। (त्रि०) ३ अत्यन्त रोमयुक्त, निहायत बालदार। (स्त्री०) अतिलोमशा।

अतिरोहण (सं० पु०) १ जीवन, जिन्दगी। २ अवस्था, उमर। ३ बहुत चढ़ना।

अतिलक्ष्मी (सं० स्त्री०) बहुत धन, अज़हद दौलत। (त्रि०) २ बहुत धनी, निहायत दौलतमन्द।

अतिलङ्घित, अतिलङ्घन (सं० क्ली०) बड़ा उपवास, अज़हद फाका।

अतिलम्ब (सं० त्रि०) बहुत लम्बा।

अतिलम्बी (सं० स्त्री०) शताह्वा, शतावर।

अतिलिहा (सं० त्रि०) एक प्राकृत छन्द, जिसमें चार पद होते और जिसके प्रत्येक पदमें सोलह मात्रायें रहती हैं।

अतिलुब्ध, अतिलोभ (सं० त्रि०) बहुत लोभी, निहायत लालच करनेवाला।

अतिलुलित (सं० त्रि०) अतिलुण्ठित, निकटस्थ, सम्बन्धवाला।

अतिलोभता (सं० स्त्री०) बड़ा लोभ, अज़हद, लालच।

अतिलोम, अतिलोमश् (सं० त्रि०) निहायत बालदार।

अतिलोमशा (सं० स्त्री०) नीलबुह्ना।

अतिलोहित (सं० त्रि०) बहुत लाल, निहायत सुर्ख़।

अतिलोहितगन्ध (सं० पु०) १ दमनक वृक्ष, दोना। २ मरुवा।

अतिलौल्य (सं० क्ली०) बहुत चञ्चलता।

अतिवक्तृ (सं० त्रि०) बहुत बोलनेवाला, बड़बड़िया; फज़ूलगो।

अतिवक्र (सं० पु०) अतिशयितो वक्रः। १ सूर्य्यके सातवें और आठवें घरमें रहनेसे पहली चालसे हटके पीछे जानेवाले मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि यह पांच ग्रह। (त्रि०) २ अत्यन्त कुटिल, निहायत टेढ़ा। (स्त्री०) अतिवक्रा, बुधकी चार गतियोंमें वह गति, जो एक राशिपर चौबीस घण्टे रहती और जिसका फल धननाश करना बताया जाता है।

अतिवयस् (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं वयः अवस्थां पक्षिणं वा। १ वृद्ध, बुड्ढा। २ पक्षियोंको अतिक्रम करनेवाला।

अतिवर्णाश्रमिन् (सं० पु०) अतिक्रान्तो वर्णाश्रमिणम्। ब्राह्मणादि वर्ण भिन्न, ब्रह्मचर्यादि आश्रम भिन्न अन्याश्रमी, परमात्मज्ञानी, ब्राह्मण आदि वर्णोंसे अलग, दूसरे आश्रमवाला, जो ब्रह्मचर्यादि आश्रमसे अलग हो।

अतिवर्तन (सं० पु०) १ अतिरेक, कसरत। (त्रि०) २ अतीतजीवनोपाय। ३ जो सवारी डण्डेपर चले। बहंगी आदि।

अतिवर्तिन् (सं० त्रि०) अतीत्य वर्त्तते। १ अग्रगामी, आगे जानेवाला। २ अतिशय, कसीर।

अतिवर्तुल (सं० पु०) अतिशयितो वर्तुलः। १ हदसे ज्यादा गोल चीज़। (त्रि०) २ अतिशय वर्त्तुल, निहायत गोल।

अतिवात (सं० पु०) आंधी, तूफ़ान।

अतिवाद (सं० पु०) १ परुषवाक्य, निष्ठुर वाक्य। २ अत्युक्ति, डींग। ३ अप्रिय वाक्य, कड़ी बात, लगनी बात। ४ बक-बक।

अतिवादिन् (सं० त्रि०) सर्व्वानतिक्रम्य वदतीति। १ जो सबके ऊपर बोले और सबकी बात काटके अपना पक्ष समर्थन करे। २ सच बोलनेवाला, खरी कहैया। ३ बढ़कर बात करनेवाला, शेख़ीबाज़, डींगिया, बक्की।

अतिवास (सं० पु०) श्राद्धकरनेसे पहले दैनिक उपवास।

अतिवाह (सं० पु०) अतीत्य देहं देहान्तरे वाहं गमनम्। अतियापन, सूक्ष्म शरीरविशिष्ट जीवात्माकी देहान्तरप्राप्ति, सूक्ष्म शरीरवाले जीवात्माका दूसरे शरीरमें प्रवेश।

अतिवाहक (सं० पु०) अतीत्यैनं देहं वाहयति

देहान्तरं प्रापयति। ईश्वरनियोजित अर्चि आदि अभिमानी देव-विशेष। ईश्वरके नियुक्त किये हुए अर्चि आदि देवता।

अतिवाहन (सं॰ त्रि॰) वह बोझा-जो वाहन (सवारी) आदिसे न लेजाया जा सके, बहुत भारी, निहायत तकलीफ़देह।

अतिवाहिक (सं॰ पु॰) १ अतिवाहके योग्य, सूक्ष्म शरीर, लिङ्गशरीर। २ पातालका रहनेवाला।

अतिवाहित (सं॰ त्रि॰) यापित, अतिक्रमित, पहुंचा हुआ, लांघा हुआ।

अतिवाह्य (सं॰ त्रि॰) अतिवाहके योग्य।

अतिविकट (सं॰ पु॰) अतिशयेन विकटः। १ दुष्ट हस्ती, बदमाश हाथी। (त्रि॰) २ अतिभयङ्कर, निहायत खौफ़नाक।

अतिविदाही (सं॰ स्त्री॰) राजसर्षप। बहुत जलन पैदा करनेवाली।

अतिविद्ध (सं॰ त्रि॰) बहुत घायल, निहायत ज़ख़्मी।

अतिविपिन (सं॰ त्रि॰) कितने ही जङ्गलोंवाला, बहुत जङ्गली।

अतिविलम्बिन् (सं॰ त्रि॰) बड़ी देर लगानेवाला, निहायत सुस्त।

अतिविश्रब्ध-नवोढ़ा (सं॰ स्त्री॰) अतिशयेन विश्रब्धा नायकस्य प्रश्रयप्राप्ता नवोढ़ा नायिका। स्वीयान्तर्गत मध्य नायिकाविशेष। अपने पतिपर अत्यन्त प्रीति रखनेवाली मध्या नायिका। सामान्यतः नवोढ़ा चार तरहकी होती हैं,—स्वकीया नवोढ़ा, परकीया नवोढ़ा, सामान्य नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा। जो नायिका नायकके अतिशय प्रश्रयसे युक्त होती है, उसे विश्रब्ध-नवोढ़ा कहते हैं। रसमञ्जरीमें इसका लक्षण यह बताया है, कि यह धैर्य्य रखनेवाले अपराधी नायक पर ताने मारती और जो अपराधी नायक अधीर होता, उसे खरी-खरी सुनाती है।

अतिविश्व (सं॰ पु॰) १ संसार भरसे श्रेष्ठ। २ एक मुनिका नाम।

अतिविष (सं॰ अतिविषा) अतिविषा देखो।

अतिविषा (सं॰ स्त्री॰) उद्भिद्विशेष। इस ग्रन्थसे दो प्रकारका उद्भिद् समझा जाता है,—१ वत्सनाभ और २ अतीस।

१ वत्सनाभ (Aconitum ferrox)—इसका पेड़ कोई २।३ फुट तक ऊंचा होता है। हिमालयके उच्च प्रदेश, नेपाल और गढ़वालसे सिकिम तक यह वृक्ष खूब देख पड़ता है। इसकी सूखी जड़ भारतवर्षके उत्तर प्रदेशस्थ बाज़ारोंमें विषके नामसे बिका करती, जो एकोनाइट (Aconite) कहाती है। यह सद्गन्धहीन है, मुंहमें पहले डालते ही कटु मालूम पड़ती और जीभ और तालुको एकबारगी ही सुन्न कर देती है।

एकोनिटम् नपेलास् (Aconitum Napellus) नामक युरोपीय उद्भिद्की तरह यह भी नानाप्रकारके औषधों और रोगोंमें काम आते रहती है। इससे टिञ्चर अव एकोनाइट बनता है। कोई आध सेर जड़में ५०से ८० ग्रेनतक एकोनाइट रहता है। इसके एक ग्रेनका दशमांश मनुष्यके लिये संशयकर है। उत्तराञ्चलमें ज्वर, विशूचिका और वातरोगपर यह दी जाती है।

इस जातिके Aconitum Luridum, A. Paniculatum प्रभृति दूसरे उद्भिदोंका गुण भी अतिविषाके गुण-जैसा ही होता है।

२ अतीस (Aconitum Heterophyllum)—यह वृक्ष हिमालयके पश्चिम प्रदेश और सिन्धुनदसे कुमायूँतकके जनपदसमूहमें उत्पन्न होता और कोई २।३ फुट ऊंचा बढ़ता है। इसकी सूखी जड़ बड़े कामकी है। यह गन्धहीन, कटु और तीव्रतारहित होता है। जड़में कोई विषाक्त गुण नहीं। बाज़ारमें तरह-तरहकी जड़ें अतीसके नामसे बिकती हैं, किन्तु जो स्वभावतः कटु हो, उसीको अतीस समझना चाहिये।

अतीस दो तरहका होता है—एक काला और एक सफ़ेद। वैद्यशास्त्रमें तीन तरहके अतीसकी बात लिखी है—१ सफ़ेद, २ काला, ३ लाल। वैद्यक मतसे यह पाचक, कटु, उष्ण और कफ, पित्त,

ज्वर, आमातिसार, काश, विषदोष और छर्दिको नाश करनेवाला है। आजकलके चिकित्सक इसे पुष्टिकर और ज्वरनाशक बताते हैं। वत्सनाभ या विषाक्त द्रव्यके अभावमें इसे अनायास प्रयोग कर सकते हैं। दुर्बलकारी रोगादिकी उपशमावस्था, बारी-बारी आनेवाले और विरामशील ज्वरको आक्रमणावस्थामें अतीसकी जड़ एक अमोघ औषध है।

डाक्टर हेमिङ्गने ४०० रोगियोंपर प्रयोगकर प्रमाणित किया है, कि अतीस वास्तवमें बारी-बारी आनेवाले ज्वरके लिये विशेष उपकारी है। फ़र्वेश-बाटसनका कहना है, कि भारतवर्षीयोंको बारो-बारी आनेवाले ज्वरमें यह जैसा लाभ पहुंचाता है, वैसा और किसी भी जातिको नहीं। वालफ़ोर साहब दो वर्षसे इसे हमेशा व्यवहार करते रहे। अतीसको प्रयोग करके उन्होंने लिखा है,—

"When I mention that for the first three months (from December 1st, 1857) I have not expended one grain of Quinine as a febrifuge, and that my cases have been treated chiefly with Narcotine and Atis, it will, I trust, be allowed that there are valuable remedies; but they require fair play, and judicious use and combination." (Indian Annals of Medical Science, 1858, vol. v p. 548.)

मूर साहबने लिखा है, कि यह मलेरिया ज्वरके औषधकी तरह भी बाज़ारमें बिकता है। डाक्टर उदयचाँद दत्तके मतसे यह सिनकोने-जैसा उपकारी और प्रबल है। डा: भोलानाथ वसु इसे बारी-बारी आनेवाले सब तरहके ज्वरमें प्रयोग करनेके लिये बताते थे।

मात्रा—टानिक या पुष्टिकर औषधकी भांति इसे रोज़ तीन बार ५ से १० ग्रेन तक खाना चाहिये। बारी-बारी आनेवाले बुखारमें जड़का चूर्ण तीन-चार घण्टे पीछे २० से ३० ग्रेनतक देनेकी व्यवस्था है।

अतिवृंहित (सं० त्रि०) दृढ़, मजबूत, पुष्ट, पोढ़ा, बली, टिकाऊ।

अतिवृत्त (सं० त्रि०) अतिक्रम्य वर्तते। १ अतिक्रान्त, अतिशयित। २ उद्वृत्त, बहुत गोल।

अतिवृत्ति (सं० स्त्री०) १ आगे निकल जाना, सबक़त। २ बढ़ाया हुआ अर्थ या मानी।

अतिवृद्धि (सं० स्त्री०) अधिक बढ़ती, हैरतअङ्गेज़ तरक़्क़ी।

अतिवृष्टि (सं० स्त्री०) अत्यन्त वर्षण, अतिशय वृष्टि। शस्यको हानिकरनेवाली छः ईतियों यानी उत्पातोंमें अतिवृष्टि भी एक ईति गिनी जाती है। छः ईतियां यह हैं,—

"अतिवृष्टिरनावृष्टि: शलभा: मूषिका: खगा:।
प्रत्यासन्नाश्च राजान: षडेते ईतय: स्मृता:॥"

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभा यानी टीड़ी-दल, चूहा, पक्षी और फ़ौजके साथ राजाका आगमन यह छः ईतियां कृषिकार्य्यके व्याघातकी होते हैं।

बहुत पुराने समयसे आजतक जो इतिहास पाया जाता है, उसे देखनेसे मालूम होता है, कि हमारे देशमें अतिवृष्टिकी अपेक्षा अनावृष्टि ही कृषिको अधिक रोकती है। लगातार दो वर्ष भी सुवर्षा होते नहीं देख पड़ती। ऋग्वेदके कितने ही मन्त्रोंमें ऋषियोंने जल बरसानेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना की है। मार्कण्डेय पुराणके अन्तर्गत जो देवीमाहात्म्य है, उसमें भयङ्कर अनावृष्टिकी बात लिखी है,—

"भूयश्च शतवार्षिक्या मनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभि: संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा॥"

'फिर शतवर्षव्यापिनी अनावृष्टिके कारण पृथिवी जलशून्य होनेपर मुनियोंके तपसे मैं अयोनिसम्भवा हो, प्रादुर्भूत हुंगी।'

अतिवृष्टि होनेपर बङ्गाली वर्षण दूर करनेके लिये नाना प्रकारके उपाय किया करते थे। आजकल अंगरेज़ी पढ़नेसे लोगोंका मत और विश्वास बदल गया है। इसी कारण पहलेका आचार-व्यवहार भी कितना ही उठते जाता है। अतिवृष्टि होनेसे उस समयके बङ्गाली गांवके महादेवको स्नान न कराते, प्रतिदिन केवल फूल और बिल्वपत्रसे पूजा कर आते थे। जिस गांवके नामसे पीछे पुर रहता था, (जैसे काशीपुर), ऐसे एक सौ आठ गांवोंके नाम महावरसे तालपत्र या भोजपत्रपर लिखे जाते थे।

इसके बाद जो व्यक्ति अपनी माताका इकलौता बेटा होता, वह पीतलकी कटोरीके भीतर वही नाम और एक जवाका फूल रख, एक ही गोतेमें उसे तालाबके पानीके भीतर गाड़ आता था। अब लोगोंको विश्वास था, कि यह प्रक्रिया करनेसे तीन दिनमें अवश्य वृष्टि बन्द हो जाती है। अनावृष्टि देखो।

अतिवृष्टिहत (सं० त्रि०) मूषलधार वृष्टिसे मारा गया, गहरी बारिशसे चोट खाया हुआ।

अतिवेगित (सं० त्रि०) अतिवेगः जातोऽस्य। जातातिवेग, बड़े वेगका।

अतिवेध (सं० पु०) अत्यन्तो वेधः सम्पर्कः। एकादशीके साथ दशमीका सम्पर्क-विशेष।

अतिवेपथु (सं० त्रि०) १ बहुत कांपता हुआ। (स्त्री०) २ बड़ी कँपकपी, अज़हद लरज़िश।

अतिवेल (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं वेलां मर्यादां कुलं वा। १ अधिक, असीम, मर्यादातिक्रान्त। (अव्ययी०) २ वेलातिक्रम।

अतिवेला (सं० स्त्री०) देर, विलम्ब, कुसमय।

अतिवैचक्षण्य (सं० क्ली०) अधिक बुद्धिमत्ता, बड़ी होशियारी, अज़हद कमाल।

अतिवैसस् (सं० त्रि०) अत्यन्त प्रतिकूल, निहायत बरखिलाफ़।

अतिवोढ़ृ (सं० त्रि०) अति वहनकर्त्ता, प्रापक।

अतिव्यथन (सं० क्ली०) अत्यन्तपीड़न, बड़ी भारी व्यथा।

अतिव्यथा (सं० स्त्री०) अत्यन्त पीड़ा, अज़हद दर्द।

अतिव्यय (सं० त्रि०) अतिशयितो व्ययः। अपरिमित व्यय, फ़िज़ूल-खर्च। शास्त्रकार कहते हैं कि उपार्जित धनका आधा भाग खाने-पीने और नित्य-नैमित्तिक कामोंमें खर्च और चौथाईसे पुण्य सञ्चय करे। बाकी चौथाईसे मूलधन या पूंजी बढ़ाये। इस नियमसे अधिक जो व्यय किया जाता है, उसीको अतिव्यय कहते हैं।

अतिव्याधिन् (सं० त्रि०) तीखा, चुभनेवाला।

अतिव्याप्त (सं० त्रि०) सर्वत्र वर्त्तमान, अपरिमित रूपसे संलग्न, निहायत आलूदा।

अतिव्याप्ति (सं० स्त्री०) अतिशयेन लक्ष्यमलक्ष्यञ्चाविशिष्य व्याप्तिः। अतिशय व्यापन, अधिक व्याप्ति, लक्ष्य तथा अलक्ष्यमें लक्षणका गमन।

'अलक्ष्ये लक्षणगमनमतिव्याप्तिः।' लक्ष्य पदार्थमें पहुंचके अलक्ष्य पदार्थमें भी लक्षणके चले जानेको अतिव्याप्ति कहते हैं। इसका मतलब यह है—किसी एक वस्तुको लक्ष्यकर यदि उसके लक्षणादि निर्देश किये जायें, फिर वही लक्षण यदि उस वस्तुमें मिलें, जिसको पहले लक्ष्यकर वह लक्षण निर्दिष्ट नहीं हुए, तो ऐसी अवस्थामें अतिव्याप्ति कही जा सकती है। जैसे—'शाखापल्लववत् वृक्षम्'। जिसमें डालियां और पत्तियां होती हैं, वही वृक्ष है। इस स्थानमें वृक्षको ही लक्ष्यकर यह लक्षण बताया गया, कि डालियों और पत्तियोंके होनेसे ही वृक्ष कहाता; किन्तु यह लक्षण लताके प्रति भी पाया जाता है, जिसको पहले लक्ष्यकर लक्षण नहीं कहा गया था। इसलिये यह लक्षणकी अतिव्याप्ति कही जाती है।

अतिव्यायाम (सं० पु०) अपरिमित परिश्रम, अज़हद कसरत। अतिव्यायाम यानी हदसे ज्यादा कसरत पथ्य नहीं। इससे कास, ज्वर, छर्दि, श्रम, क्लम, तृष्णा, क्षय, प्रतमक, रक्तपित्त प्रभृति रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

अतिशक्करी (सं० स्त्री०) अतिक्रान्ता शक्करीं तन्नामक वृत्तम्। पन्द्रह अक्षरका छन्दोविशेष।

अतिशक्त (सं० त्रि०) अत्यन्तशक्तिशाली, निहायत क़वी।

अतिशक्ति (सं० स्त्री०) अतिशयितो शक्तिः, प्रादि-स०। १ अत्यन्त सामर्थ्य, हदसे ज़्यादा ताक़त। (त्रि०) अतिशयिता शक्तिर्बलं यस्य, बहुव्री०। अत्यन्त बलवान्। निहायत ताक़तवर। अतिक्रान्तः शक्तिम् अतिक्रा०-तत्। सामर्थ्यका अतिक्रमकरनेवाला। सामर्थ्यातिक्रम (अव्ययी०)।

अतिशक्तिता (सं० स्त्री०) अतिशक्ति-तल्-टाप्। विक्रमशीलका धर्म्म, महाबलत्व, ज़ोरावरी।

अतिशक्तिभाज् (सं० पु०) अतिशक्ति-भज्-ण्वि। अतिशय शक्तिविशिष्ट, क्षमतावान्। (अंशभाज् देखो।)

अतिशक्र (सं॰ त्रि॰) इन्द्रसे बड़ा।

अतिशङ्का (सं॰ स्त्री॰) अत्यन्त भय, अजहद, खौफ़।

अतिशय (सं॰ पु॰) अति-शीङ्-अच्। १ आधिक्य, अतिरेक, बहुतायत, जियादती। वेगातिशय जैसे रूपोंमें अतिशय शब्द विशेष्य और अतिशयसाधु जैसे स्थलोंमें विशेषण होता है। २ काव्यालङ्कार-विशेष, जिसमें किसी वस्तुका होना या न होना लगातार दिखाया जाता है। (त्रि॰) ३ बहुत ज्यादा, अधिकसे अधिक। अतिक्रान्तः शयं हस्तम्। ४ हस्तातिक्रमकारक। अतिक्रम्य शक्तिं (अव्य॰)। ५ शक्त्यतिक्रम। भर, अतिवेल, भृश, अत्यर्थ, अतिमात्र, उद्गाढ़, निर्भर, तीव्र, एकान्त, नितान्त, गाढ़, बाढ़, दृढ़, अतिमर्याद, उत्कर्ष, बलवत्, सुष्ठु, किमुत, सु, अतीव, अति, द्वार, व्यापार, समधिक, अतिरिक्त—यह पर्याय हैं।

अतिशयन (सं॰ क्ली॰) अति शीङ्-भावे ल्युट्। १ बहुत सोना। २ अतिरेक, अतिशय, कसरत। (त्रि॰) ३ अतिशययुक्त, ज़ियादतीका।

अतिशयोक्ति (सं॰ स्त्री॰) अतिशयेन उक्तिः निर्द्देशोऽस्मिन् वर्णने। १ जो बात बहुत बढ़ाकर कही जाय। २ काव्यालङ्कार-विशेष, एक प्रकारका अलङ्कार।

साहित्य-दर्पण-प्रणेताने अतिशयोक्ति अलङ्कारका इसतरह लक्षण बताया है—

"सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।" प्रकृत विषयका अप्राधान्य दिखाके उसके उद्देश्यमें अप्रकृत विषयको निश्चल भावसे स्थापन करनेपर अतिशयोक्ति होती है। यथा, मुखं द्वितीयश्चन्द्रः। मुख तो दूसरा चन्द्र है। इस स्थानमें प्रकृत विषय मुख है, किन्तु मुखको चन्द्र बताके उल्लेख किया गया है। इसीसे ऐसे स्थलमें एकका प्राधान्य और दूसरेका अप्राधान्य प्रतिपन्न होता है।

अधःकरण यानी अप्राधान्य और निगरणके सम्बन्धमें अलङ्कारिकोंने एक कारिका लिखी है। यथा—

> "विषयस्यानुपादानेऽप्युपादानेऽपि सूरयः।
> अधःकरणमात्रेण निगीर्णत्वं प्रचक्षते॥"

प्रकृत विषय निर्द्देश किया या न किया जाय, अधःकरण अर्थात् अप्राधान्य समझ पड़नेसे ही उस विषयका निगरण करना होता है।

अतिशयोक्ति अलङ्कार पांच प्रकारका है—१ दो विषयोंमें भेद रहते भी अभेदकल्पना। २ अभेदविषयोंमें भेदकल्पना। ३ सम्बन्ध होते भी असम्बन्ध कल्पना। ४ असम्बन्धमें सम्बन्धकल्पना। ५ कार्य और हेतुके पौर्व्वापर्यका अभाव अर्थात् विपर्यय।

> "भेदेऽप्यभेदः सम्बन्धेऽसम्बन्धस्तद्विपर्ययौ।
> पौर्व्वापर्यात्ययः कार्यहेत्वोः सा पञ्चधा ततः॥" (साहित्यद॰)

१। भेदमें अभेद—

> "कथमुपरि कलापिनः कलापो विलसति तस्य तलेऽष्टमीन्दुखण्डम्।
> कुवलययुगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात्॥"
> मोर पूंछ ऊपर लसत नीचे आठैं चन्द।
> तापर चञ्चल युग कमल फूले आनंद कन्द॥

क्या ही आश्चर्य है! ऊपर मोरकी पूंछ (केश) शोभा पा रही है; उसके नीचे अष्टमीका चन्द्र (ललाट) उदय हुआ है; उसके बाद दो चञ्चल कमल (चक्षु) फूले हैं; उनके नीचे तिलकी कली (नासिका) खिली हुई है; उसके नीचे प्रवाल (ओष्ठ) मनको हरे लेते हैं।

इस जगह केशादिके साथ मोरकी पूंछ प्रभृतिका पूरा भेद रहते भी अभेद रूपसे वर्णना की गई है।

२। अभेदमें भेद—

> "अन्यदेवाङ्गलावण्यमन्याः सौरभसम्पदः।
> तस्याः पद्मपलाशाक्ष्याः सरसत्वमलौकिकम्॥"

उस पद्मपलाशाक्षी कामिनीकी देहमें जैसा लावण्य है, वैसा और कहीं नहीं, वह सौन्दर्य और माधुर्य सभी अलौकिक है।

जगत्में जो रूपलावण्यादि देखा जाता, इस जगह उससे कोई विभिन्नता न रहते भी भिन्न रूपसे कल्पना की गई है।

> राधामें जो रूप है, वैसो कहुं न दिखात।
> सकल सराहत रात-दिन, धन्य अलौकिक मात॥

३। सम्बन्धमें असम्बन्ध—

"अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः ?
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः ?
वेदाभ्यासजड़ः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः ?"

सौन्दर्यदाता चन्द्र क्या इस स्त्रीरत्नके सृष्टिकर्त्ता हैं, अथवा शृङ्गाररसके एकमात्र आधार स्वयं कन्दर्पने क्या इसे निर्म्माण किया है ? या पुष्पके आकर चैत्रमासने अपने हाथसे संवारा है ? कारण सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा बहुत वेदाभ्याससे इतने जड़-बुद्धि और विषयसे निवृत्त हो गये हैं, कि उनका फिर विषय-व्यापारसे कौतूहलाक्रान्त हो, ऐसा मनोहर रूप बना सकना सम्भव नहीं।

इस जगह प्रजापति ब्रह्माके प्रकृत निर्म्माणकर्त्ता होते भी दूसरेके निर्म्माणकर्त्तृत्वकी कल्पना की गई है।

रचो अवसि कन्दर्पने, नव राधाको रूप।
विधिना बूढ़े ह्वै परे, ज्ञानकाण्डके कूप॥

४। असम्बन्धमें सम्बन्ध—

"यदि स्यान्मण्डले सक्तमिन्दोरिन्दीवरद्वयम्।
तदोपमीयते तस्या वदनं चारुलोचनं॥"

यदि चन्द्रमण्डलमें दो नीलपद्म लगा दिये जायं, तो उस कामिनीके मनोहर नेत्र-द्वय-शोभित मुखसे उसकी तुलना की जा सकती है।

होत निशाकरमें कहूं, जो युग नील-सरोज।
नयन सुशोभित वदनकी, भाषत उपमा खोज॥

५। कार्य और कारणके पौर्वापर्यका अभाव। स्वाभाविक नियम यही है, कि आगे कारण विद्यमान रहता, पीछे कार्यकी उत्पत्ति होती है। किन्तु इसका विपर्यय होनेसे अर्थात् जिस जगह आगे कार्य निर्द्दिष्ट होता और पीछे उसका कारण उल्लिखित हुआ करता, उसी जगह कार्य और कारणका अन्यथा करना होता है। इसे छोड़ इस प्रकारसे कहनेपर भी, कभी-कभी अतिशयोक्ति हो जाती है, कि कार्य और कारण दोनो एक ही साथ उत्पन्न हुए हैं।

(१) "प्रागेव हरिणाक्षीणां चित्तमुत्कलिकाकुलं।
पश्चादुद्भिन्नवकुलरसालमुकुलश्रियः॥"

पहले ही मृगनयना रमणियोंका चित्त आकुल हो उठा, पीछे वकुल और आम्रके मुकुल प्रकाशित हो शोभा पाने लगे।

वकुलादिका पुष्पसौन्दर्य देखनेसे ही कामिनीयोंका मन चञ्चल होनेकी सम्भावना है। किन्तु इस जगह पहले उनके मनकी व्याकुलतावाली बात कह, पीछे पुष्पसौन्दर्यका विषय उल्लिखित किया गया है। इसलिये इसके द्वारा कार्य और कारणका विपरीत भाव सङ्घटित हुआ है।

(२) "सममेव समाक्रान्तं द्वयं द्विरदगामिना।
तेन सिंहासनं पित्र्यं मण्डलञ्च महीक्षिताम्॥"

हस्तीके तुल्य मन्दगामी उन रघुने पैतृक सिंहासन और विपक्ष राजमण्डलपर एक ही कालमें आक्रमण किया था।

पहले सिंहासनपर अधिरूढ़ होकर पीछे शत्रुओंका जय करना सम्भव है; किन्तु इस जगह दोनो कार्य एक ही समयमें उल्लिखित हुए हैं। इसलिये यहां भी कार्य-कारणका विपरीत भाव हुआ।

अतिशयोक्तिकी जगह इव-जैसे, आदि शब्द रहनेसे उत्प्रेक्षालङ्कार होता है।

अतिशयोपमा (सं० स्त्री०) वह उपमा, जिसमें किसी वस्तुकी उपमा दूसरी वस्तुके साथ न दी जा सके।

"सब उपमा कवि रहे जुठारी।
केहि पटतरिय विदेह कुमारी॥" तुलसी०

अतिशर्वर (वै० क्ली०) आधीरात, मध्यनिशा।

अतिशष्कुली (सं० स्त्री०) तिलकी रोटी।

अतिशस्त (सं० त्रि०) बहुत बढ़िया, निहायत उम्दा।

अतिशस्त्र (सं० त्रि०) हथियारोंसे बढ़िया।

अतिशाक्कर (सं० त्रि०) अतिशक्कर छन्दमें लिखा गया या उसके सम्बन्धका।

अतिशायन (सं० पु०) अति-शीङ्-भावे ल्युट्, निपातनाद्दीर्घः। आधिक्य, प्रकर्ष, कसरत।

अतिशायिन् (सं० त्रि०) अति-शी-णिनि। अधिक, ज्यादा।

अतिशारिवा (सं० स्त्री०) अनन्ता, अनन्तमूल।

अतिशीत (सं० अव्य०) १ जाड़ेसे बाहर, जाड़ेके बाद। (पु०) २ अधिक जाड़ा।

अतिशीलन (सं० पु०) अभ्यास, मुहावरा, मश्क़, किसी कामका बार-बार विचार।

अतिशुक्र, अतिशुक्ल (सं० त्रि०) बहुत उज्ज्वल, निहायत सफ़ेद।

अतिशूक (सं० पु०) यव, बेझरा।

अतिशूकज (सं० पु०) गोधूम, गेहूं।

अतिशूद्र (सं० पु०) जिस शूद्रके हाथका पानी ब्राह्मण आदि न पीयें, अन्त्यज—कोरी, चमार, धोबी, मेहतर आदि।

अतिशृतक्षीर (सं० क्ली०) मावा, खोया।

अतिशेष (सं० पु०) अति-शिष-कर्म्मणि घञ्, अतिशिष्यते। स्वल्पावशिष्ट, जो बहुत थोड़ा बचा हो।

अतिशोभन (सं० त्रि०) अति-शुभ-ल्युट्। अत्यन्त शोभायुक्त, श्रेष्ठ, निहायत खूबसूरत।

अतिशोष (सं० पु०) क्षयरोग।

अतिश्री (सं० त्रि०) बहुत सम्पन्न, निहायत आसूदा।

अतिश्रेयसी (सं० स्त्री०) उत्तम स्त्रीयोंसे भी उत्तम कल्याण करनेवाली।

अतिश्रेष्ठ (सं० त्रि०) सबसे बड़ा, निहायत अफ़ज़ल।

अतिश्रेष्ठत्व (सं० क्ली०) बड़ी बड़ाई, अज़हद सबक़त।

अतिश्व (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं श्वानं टच्। अती शुनः। पा ५।४।९६। कुत्तेको हरा देनेवाला; जैसे सूअर, भेड़िया आदि, वेगवान्, कुत्तेसे तेज, दौड़नेवाला।

अतिश्वन् (सं० पु०) अतिशयितः सुन्दरः श्वा। उत्तम कुत्ता।

अतिष्कद्वरी (सं० स्त्री०) लुची स्त्री, आवारा औरत।

अतिष्ठत् (सं० त्रि०) न टिकनेवाला, नापायदार।

अतिष्ठा (सं० स्त्री०) अति-स्था-क्विप्, सर्व्वानतीत्य तिष्ठतीति। सबसे अतीत, वह स्त्री जो सबसे बढ़ी चढ़ी हो।

अतिष्ठावत्, अतिष्ठावन् (सं० त्रि०) टिकाऊ, पायदार।

अतिसंस्कृत (सं० त्रि०) बहुत संस्कार किया गया, निहायत दुरुस्त किया हुआ।

अतिसक्ति (सं० त्रि०) बड़ा प्रेम, अज़हद मुहब्बत।

अतिसक्तिमत् (सं० त्रि०) बहुत लगा हुआ, निहायत मुश्ताक़।

अतिसङ्घ (सं० पु०) बड़ा ढेर, भारी ज़खीरा।

अतिसन्तप्त (सं० त्रि०) बहुत दुःखी, निहायत अफ़सुर्दा।

अतिसन्ध (सं० पु०) वचन या आदेशका अमान्य, शास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन।

अतिसन्धान (सं० पु०) अतिक्रान्तं सन्धानम्। सन्धान-वर्जित, वञ्चना, धोखा, फ़रेब, जाल।

अतिसन्धित (सं० त्रि०) १ जिसका खूब फ़ैसला हो गया हो। २ ठगा गया।

अतिसन्धेय (सं० त्रि०) प्रसन्न करने योग्य, फ़ैसला होने क़ाबिल।

अतिसन्ध्या (सं० स्त्री०) अतिशयेन सन्ध्या, प्रादि-स०। अतिशय सन्ध्याकाल, ठीक सन्ध्याका समय।

अतिसमर्थ (सं० त्रि०) बहुत समर्थ, निहायत कामिल।

अतिसमीप (सं० त्रि०) बहुत निकट, निहायत नज़दीक।

अतिसम्पर्क (सं० पु०) बड़ा सहवास।

अतिसर (सं० त्रि०) अति-सृ-अच्। स्वस्य गतिमतीत्य सरति गच्छति। अतिचारी, अग्रसर, अपनी चालसे बाहर चलनेवाला।

अतिसर्ग (सं० पु०) अति-सृज-घञ्। १ दान, उत्सर्ग। (त्रि०) २ सृष्टि-अतिक्रमकारी।

अतिसर्ज्जन (सं० पु०) अति-सृ-ल्युट्। १ विसर्ज्जन। २ दान। ३ त्याग। ४ नियोग, वध। ५ विप्रलम्भ। ६ अतिशय दान।

अतिसर्व्व (सं० त्रि०) अतिक्रान्तः सर्व्वान्। सबसे अतीत, सबसे आगे निकला हुआ।

अतिसाध्वस (सं० क्ली०) बड़ा डर, भारी खौफ़।

अतिसान्तपन (सं० क्ली०) १ अतिक्रान्तः सान्तपनम्। अधिकदिनसाध्यत्वात्, अत्यादि-तत्। २ एक व्रत।

मनुसंहितामें लिखा है, कि जान-बूझकर जातिभ्रंशकर पाप करनेपर सान्तपन व्रत करे, किन्तु यदि यह पाप बिना जाने हो जाय, तो प्राजापत्य व्रत करना चाहिये। यथा—

"जातिभ्रंशकरं कर्म्म कृत्वान्यतममिच्छया।
चरेत् सान्तपनं कृच्छ्रं प्राजापत्यमनिच्छया॥" ११।१२५।

विष्णुसंहिताके मतसे, पहले दिन गोमूत्र, गोमय यानी गोबर, दूध, दही, घी और कुशोदक सेवन करे; दूसरे दिन उपवास करे। इसीको सान्तपन कहते हैं। यह व्रत तीन बार अभ्यस्त होनेसे ही अतिसान्तपन कहाता है।

अतिसान्द्र (सं पु०) राजमाष, लोबिया, चौंला।

अतिसांवत्सर (सं० त्रि०) एक वर्षके ऊपर, संवत्सरसे अधिक।

अतिसामान्य (सं० पु०) १ वह उक्ति जो कहनेवालेके मतलबसे बाहर निकल जाती है। (त्रि०) २ निहायत मामूली, बहुत सीधा।

अतिसाम्या (सं० स्त्री०) अत्यन्तं साम्यं अधुना अस्याः बहुव्री०। १ मधुयष्टिलता, मौरेठीकी बेल। (क्ली०) प्रादि-स०। २ अत्यन्त सादृश्य।

अतिसायं (सं० अव्य०) अतिशयितं सायं। अत्यन्त सायंकाल।

अतिसार, अतीसार (सं० पु०) रुधिरादिकं अतिशयेन सारयतीति, अति-सृ-घञ्। सरति अतीव इत्यतिसारः। जो रुधिर आदिको बहुत गिराये, रोग-विशेष, उदरामय रोग, वह बीमारी, जिसमें आँव और खून गिरता है। अतिसार रोग साधारणतः दो प्रकारका होता है। श्लेष्मातिसार (diarrhœa) और दूसरा रक्तातिसार (dysentery)। इसके भिन्न-भिन्न कारण, लक्षण और चिकित्सादि इस तरह हैं,—

कुपथ्य या गुरुपाक द्रव्य अधिक खाकर, कितने ही लोग पचा नहीं सकते। विशेषतः जिन्हें शारीरिक परिश्रम नहीं करना पड़ता, आठों पहर केवल एक ही स्थानमें बैठके लिखने-पढ़नेकी चर्चा करनी होती है, या जो स्वभावसे ही आलसी हैं, थोड़ी दूर चलनेमें जिन्हें कष्ट होता, उनके लिये भारी चीज खाना मना है।

इस बातका ठीक-ठीक कोई उत्तर नहीं, कि कुपथ्य और गुरुपाक द्रव्य अर्थात् भारी चीजें, कौन-कौन हैं। क्यों कि, एक मनुष्यके लिये जो वस्तु कुपथ्य और गुरुपाक है तथा जिसे थोड़ीसी ही खानेपर उसके पीड़ा उत्पन्न हो जाती है, दूसरा वही वस्तु दशगुण खाके अच्छीतरह पचा जाता है। फिर जाड़ेमें जो चीज अनायास ही जीर्ण (हजम) होती, गर्मी और बरसातमें उसके खानेसे पीड़ा होने लगती है। इसीसे तो, दैहिक स्वभाव, अभ्यास और जाड़े-गर्मीकी कमी-वेशी देख सुपथ्य और कुपथ्य विचारना पड़ता है। प्रायः लड्डू, पूड़ी, जलेबी प्रभृति मिठाइयों और पुलाव प्रभृति जिन चीजोंमें घी और मसाला ज्यादा रहता है, उन्हें गुरुपाक कहते हैं। सिवा इसके, जिन चीजोंमें बकला, रेशा और बीज अधिक रहता है, वही कुपथ्य होती हैं। प्याज और लहसुन भी सुपथ्य नहीं। किन्तु युरोपीय पण्डित इन दोनो चीजोंको आग्नेय समझते हैं। भारतवर्षमें गर्मी बहुत पड़ती है, यहां प्याज और लहसुन सुपथ्य नहीं हो सकता। मनुसंहितामें लिखा है,—ऋषियोंने मनुके सन्तान भृगुसे पूछा, कि सत्ययुगमें जब मनुष्यकी आयु चार सौ वर्षकी लिखी है तब वेदपारग ब्राह्मणोंकी अकाल-मृत्यु क्यों होती है। भृगुने इसके उत्तरमें खाद्यदोष ही मृत्युका प्रधान कारण बताया। अभक्ष्य देखो। और प्याज तथा लहसुनको दूषित कहा। ऊपर लिखे हुए कुपथ्यके सिवा और भी अनेक अनिष्टकर द्रव्य प्रायः सकल ही खाया करते हैं। इसमें बाजारकी मिठाई प्रधान है। प्रायः हलवाईकी दुकानमें जो खानेकी चीजें मिलती हैं, वह विषके बराबर हैं। हलवाई सस्ते घीको क्रय करते हैं, जो कभी स्वास्थ्यके लिये लाभदायक नहीं होता। नारियलका तेल, बकरे और बैलकी चर्बी और अण्डीका तेल इस घीमें अधिक परिमाणसे मिला रहता; अधिक क्या बताया जाये, घीमें जो चीज खानेकी नहीं, वही पड़ती है। ऐसे ही घीमें मिठाई तय्यार की जाती है। इसके बाद

न बिकनेसे हलवाई बासी चीज़ नई चीज़में मिला देते हैं। इसीसे हलवाईवाली दुकानकी मिठाई विषके लड्डू सिवा और कुछ भी नहीं। इन सकल द्रव्योंको भोजन करनेसे उदरामय प्रभृति नाना प्रकारके रोग आ उपस्थित होते हैं। सड़ा मत्स्य-मांस अत्यन्त कुपथ्य होता, कभी-कभी मत्स्यके भीतर एक प्रकारका क्षुद्र कीड़ा भी निकल पड़ता है। ऐसा रुग्ण मत्स्य खानेसे लोगोंको उत्कट पीड़ा उत्पन्न हो जाती है।

क्या सुस्थ और क्या पीड़ितावस्था, दोनों ही में कभी अधिक भोजन न करे और भोजनके बाद अधिकक्षण न जागे। आहारान्तमें विश्राम लेना कर्त्तव्य है। विश्राम न लेनेसे प्रायः क्षुधामान्द्य और अजीर्णरोग आ उपस्थित होता है। आंतमें छोटा किंवा बड़ा कीड़ा रहनेसे भी अतिसार हो सकता है।

इसके सिवा दूसरी भी कई एक बातें अतिसार-की कारण गिनी जा सकती हैं। गन्दा पानी पीनेसे उदरामय रोग उत्पन्न होता है। वर्षाकालमें गांवों-के तालाब पानीसे भर जाते हैं। मुंहानेसे पानी पहुंचते समय, मल-मूत्र और अन्यान्य नाना प्रकारके द्रव्य तालाबमें दाखिल होते और पासके तृणादि भी डूबते हैं। पीछे यह सकल द्रव्य सड़ा करते; इसीसे वर्षाकालका जल अपरिष्कृतावस्थामें पीनेसे ज्वर, उदरामय प्रभृति नाना प्रकारकी पीड़ायें उत्पन्न होती हैं। जल देखो।

शीत ग्रीष्मादिके समय असावधान रहनेसे उदरामय हो जाता है। ग्रीष्म और शरत्कालमें दिनको रौद्र—धूप लगने और रातको ठण्डी हवामें सोनेसे भी उदरामय उत्पन्न हो सकता है। हठात् घर्म्म—पसीना रोकनेसे अतिसार उत्पन्न होता है। दांत निकलते समय शिशुओंको उदरामय रोग बहुत सताता है। इसका विवरण दन्तोद्गम शब्दमें देखो।

आहारके दोषसे उदरामय निकलनेपर प्रायः रात्रिकालमें ही पीड़ा उपस्थित हुआ करती है। पहले निद्रा नहीं आती, किंवा आनेसे भी शीघ्र टूट जाती है। इसके बाद सारा पेट कड़ा हो कुछ-कुछ फूलता है। पेड़ूमें मरोर उठती और ऊपरी पेट भारी मालूम पड़ता है। ऐसी अवस्थामें कुछ क्षण रह रोगी वमन करनेका आरम्भ करता है। वमनके साथ भुक्त-द्रव्य, लार, पित्त और अम्लजल निकल पड़ता है। फिर पुनःपुनः मलत्याग करनेकी इच्छा चलती है। अवशेषमें श्लेष्मायुक्त मल निर्गत होता है। रुग्ण शरीर या दुर्बल व्यक्ति होनेसे इस सामान्य उपसर्गसे ही कठिन अतिसार रोग उत्पन्न हो सकता है। साथ ही हैज़ेका प्रादुर्भाव होनेसे इस अवस्थामें कितनों ही को उसके पञ्जेमें पड़ जाना पड़ता है।

पित्तातिसार (Bilious diarrhoea)—यह अतिसार उष्ण-प्रधान देशमें अलस व्यक्तिको ही अधिक लगता है। जो अतिरिक्त मद्यपान करते, किंवा अधिक मांस खाते हैं, हमारे देशमें उन सब लोगोंके इस प्रकारके उदरामय हो जानेकी अधिक सम्भावना है। इसका कारण यही है, कि मांस खानेसे रक्तमें अधिक हाइ-ड्रोजेन और अङ्गार उत्पन्न होता है। शीतप्रधान देशमें फेफड़ेसे यह सकल बाष्प निकल जाते हैं। किन्तु उष्णप्रधान स्थानमें अलस व्यक्तियोंके फेफड़ेका काम कितना ही कम रहता है, इसीसे हाइड्रोजेन और अङ्गार प्रश्वासके साथ यथेष्ट परिमाणमें निकल नहीं सकते। सुतरां इन दोनो बाष्पों द्वारा पित्तवृद्धि होती है। पित्त बढ़ते ही यकृत्में पैत्तिक रक्ताधिक्य उत्पन्न होता और अन्त्रमें भी अधिक परिमाणसे पित्त आ पहुंचता है। इस अवस्थामें कभी-कभी यकृत्के मध्यमें फोड़ा हो जाता है। अतएव सामान्य उदरामय होनेसे भी कभी निश्चिन्त न बैठे।

पित्तातिसारमें पुनः पुनः अल्प-अल्प पतला हरिद्रा-वर्ण मल निर्गत होता, पेट शूलकी तरह वेदना किया करता है। मल निर्गत होनेसे पहले पेटमें मरोर आती है। मलेरिया-प्रधान देशमें ऐसे उदरामयके साथ उत्कट स्वल्पविराम ज्वर (Remittent fever) रोगीको धर दबाता है। इस अवस्थामें यह जानने-के लिये विज्ञ चिकित्सकोंका भी शिर चकरा जाता

कि पीड़ा उदरामय, किंवा ज्वर है। ख्यातनामा डाक्टर गुडिव इस बातको अपने मुंहसे स्वीकार करते हैं, कि ज्वरसंयुक्त रक्तातिसार और उदरामय रोगकी ठीक प्रकृति समझनेमें वह कईबार हार बैठे थे।

प्रदाहजनित अतिसार—दो प्रकारका है,—तरुण और पुरातन। तरुण प्रदाहजनित अतिसार (Acute inflamatory diarrhœa) अतिशय उत्कट पीड़ा है। अन्त्रकी श्लैष्मिक झिल्लीमें प्रदाह होनेके कारण यह पीड़ा उत्पन्न होती है। प्रथम सञ्चित मल निर्गत हो जाता, इसके बाद कभी चर्बी-जैसा श्लेष्मा एवं गलित मांस-जैसा पदार्थ निकलता है। कभी हरे रंग और कभी कुछ-कुछ लाल खूनकी छींटें उसमें मिश्रित रहती हैं। पेटकी वेदना दुःसह हो जाती; बोध होता, मानो कोई छुरीसे आंत फाड़ता है। रोगी उदरमें हाथ लगाने नहीं देता, वह पैर गोदकी ओर ला पेटकी पेशी बचा लेता है। इसके साथ ज्वर, आहारसे अनिच्छा, जिह्वामें मलिनभाव, पिपासा प्रभृति नाना प्रकारके उपसर्ग उत्पन्न हो जाते हैं। असाध्यस्थलमें क्रमशः मलसे बहुत ही सड़ी बदबू निकलती, मलद्वार फैल जाता, किसीके मुखमें क्षत भी होता, इसके बाद नितान्त दुर्बल हो रोगी प्राणत्याग करता है।

पुरातन प्रदाहजनित अतिसार रोगमें रोगी कभी-कभी अल्प परिमाणसे पुनः-पुनः मलत्याग किया करता है। फिर कभी-कभी अधिक परिमाणसे बड़ी देरमें मल निकलता। पहले मल पित्त-मिश्रित रहता, क्रमसे श्वेतवर्ण और जलवत् हो जाता है। कभी-कभी फेनदार और कभी-कभी मल कृष्णवर्ण देख पड़ता है। कोई द्रव्य उदरस्थ होनेसे उसी समय मलत्यागका वेग बढ़ जाता है। परिशेष-में तीसरे पहर अल्प-अल्प ज्वर चढ़ता; शरीर रूक्ष पड़ जाता, उदरमें वेदना उठती, पेशाब स्वल्प उतरता, नाड़ी क्षीण और वेगवती चलती, अरुचिका प्रादुर्भाव होता और हस्तपदका अन्तभाग शीतल मालूम होने लगता है। परिणाममें शोथ आ उपस्थित होता है। यह सकल कठिन लक्षण देख पड़नेसे प्रायः सभी रोगी प्राण छोड़ देते हैं।

मेदातिसार (Fatty diarrhoea)—ऐसे उदरामय रोगके लक्षण प्रायः तरुण प्रदाहजनित उदरामयके ही जैसे होते हैं। प्रथम उदरमें वेदना उठती, इसके बाद सञ्चित मल निर्गत हो जाता है। फिर चर्बी और तैल-जैसा पदार्थ निर्गत हुआ करता है। रोगीको एकबारगी ही तैलाक्त द्रव्य न खिलानेसे भी मलकी अवस्था परिवर्त्तित नहीं होती। अनेकोंको ऐसा विश्वास है, कि क्लोम और पेङ्क्रियास (Pencreas) की विकृतिके कारण यह सकल लक्षण उपस्थित हो जाते हैं।

दूसरा भी एक प्रकारका अतिसार है, जिसे प्रायः हम सञ्चितग्रहणी कहते हैं। सञ्चितग्रहणी होनेसे अनेक लोग स्वभावसे ही दुर्बल और उद्यमहीन हो जाते हैं। जिस काममें अधिक परिश्रम और अध्यवसाय आवश्यक है, उस कामको वह कर नहीं सकते। अनेकोंको अल्प ही कारणसे भय और मनःकष्ट उपस्थित होता, और स्वभाव चिड़चिड़ा पड़ जाता है। इस प्रकार लक्षणादि रहते भी वह विषयकर्मका निर्वाह करते हैं। सञ्चितग्रहणी रोगमें सकल समय उदरामय नहीं होता। रोगी विशेष विवेचना-पूर्वक आहारादि करते हैं, मध्य-मध्यमें उदरामय आ धमकता है। इसके बाद कोई-कोई रोगी १०। १५ दिन और कोई-कोई दो-तीन मास कष्ट उठाके पुनर्वार आरोग्यको लाभ करते हैं। सञ्चितग्रहणीका लक्षण सर्वत्र समान नहीं। पीड़ाके समय कोई-कोई व्यक्ति कुछ न खानेसे अच्छे रहते, किन्तु सामान्य खाद्य द्रव्य उदरस्थ होते ही पेट दुखता और मलत्यागका वेग बढ़ता है। फिर किसी-किसी रोगीका लक्षण इससे बिलकुल विपरीत होता है। पेट खाली रहनेसे पुनः-पुनः अल्प-अल्प मल निर्गत हुआ करता, जो किञ्चित आहार लेते ही रुक जाता है। इस रोगमें मलकी अवस्था भी सकल समय एक रूपसे नहीं रहती। कभी आम-मिश्रित, कभी

अल्प रक्त-मिश्रित और कभी पित्त-संयुक्त जल-जैसा पतला मल निकलता है।

वैद्यक ग्रन्थोंके मतसे अतिसार छः प्रकारका होता है। इन छः श्रेणियोंके मध्यमें भी फिर प्रकार-भेद विद्यमान है। प्रधानतः आमातिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, श्लेष्मातिसार, वातातिसार और प्रवाहिका—यह छः प्रबल गिने गये हैं। इनके सिवा क्रमि और शोकादि द्वारा आगन्तुक अतिसार भी उत्पन्न हो जाता है। हमारे वैद्यकशास्त्रमें अतिसार रोगका जो लक्षण, निदान, उत्पत्ति-कारण, भाविफल और औषधादि सम्बन्धीय विषय लिखा गया, वह सकल प्रकारकी चिकित्सासे श्रेष्ठ है।

अतिसार रोगके यह असाध्य लक्षण हैं,—शरीरका वर्ण सीसक-धातु जैसा काला पड़ जाना ; मलका वर्ण कभी पक्के जामुनके रस-जैसा, कभी रक्त और आम-संयुक्त, कभी हरा और कभी घी, तेल और चर्बी-जैसा रहना ; तृष्णा, दाह, अरुचि, पार्श्वशूल, मलद्वारमें क्षत, मूर्च्छा, प्रलाप, अज्ञानावस्थामें मलत्याग, क्षीण और द्रुत नाड़ी, शीतल हस्तपद, शोथ, अग्निमान्द्य और मांसहीनता। अग्निमान्द्य और देहकी मांसहीनता इतने दुरूह लक्षण हैं, कि अन्यान्य उपसर्ग न होते भी यह दोनो सङ्केत मिलते हो, रोगका ठीक फलाफल मालूम किया जा सकता है। इस बातको वैद्य, डाक्टर, हकीम सभी स्पष्ट स्वीकार करते हैं। हमारे चिकित्सा-शास्त्रमें लिखा है,—

"अतिसारी राजरोगी ग्रहणीरोगवानपि ।
मांसाग्निबलहीनो यो दुर्लभं तस्य जीवनम् ॥"

होमिओपेथी—कुपथ्यको भोजन करनेके कारण उदरामय होनेसे पलसेटिला, एण्टिमनी क्रुड, इपिकाक और कुचलेका अर्क उत्तम औषध है। अपरिष्कृत जल पीने किंवा अस्वास्थ्यकर स्थानमें रहनेसे जो उदरामय होता, उसपर आर्सेनिकको प्रयोग करना चाहिये। ग्रीष्मकालवाले रौद्रके कारणसे अतिसार होनेपर कर्पूर, एकोनाइट, डलकामारा, चायना, फसफोरिक एसिड प्रभृति औषधोंसे उपकार होता है। वृद्धवयसके उदरामयमें फसफोरिक एसिड, एण्टिमनी क्रुड एवं नाइट्रिक एसिड विशेष उपयोगी हैं। सञ्चित उदरामयके लिये आर्सेनिक, सलफर, चायना, फसफोरस, फेरम प्रभृति औषधोंकी व्यवस्था करे।

वैद्यक—अतिसार रोगमें होमिओपेथी और वैद्यककी चिकित्सा ही अधिक प्रशस्त है। एलोपेथीकी चिकित्सा उतनी अच्छी नहीं। फिर होमिओपेथी और वैद्यककी चिकित्साका फलाफल विवेचना-पूर्वक देखनेसे वैद्यक चिकित्साको अपेक्षाकृत श्रेष्ठ कहना पड़ता है। किन्तु चिकित्साके लिये सद्वैद्य और प्रकृत औषध होना चाहिये। कठिन अतिसारकी चिकित्सा-करनेके लिये प्रथम आम और पक्वका लक्षण स्थिर करना आवश्यक है। आम और पक्वका लक्षण निश्चित न कर औषध देनेसे अनिष्ट हो सकता है। क्योंकि आमातिसारमें लङ्घन कराना एवं पक्वातिसारमें धारक औषध देना उचित है। इसलिये आमातिसारमें धारक औषध देने और पक्वातिसारमें लङ्घन करानेसे पीड़ा बढ़ सकती है।

इन दोनो प्रकारके अतिसारोंका लक्षण स्थिर करना नितान्त सहज है। वैद्यलोग कहते हैं,—आमातिसारकी विष्ठा जलमें डालनेसे डूब जाती ; फिर पक्वातिसारका पुरीष जलपर तैरज रहता है। किन्तु यह नियम सकल स्थानमें काम नहीं आता। पक्वातिसारका पुरीष भी अधिक तरल, अत्यन्त संघात एवं शीतल और कफदूषित होनेसे जलमें डूब सकता है। कफातिसारमें श्लेष्माके गुरुत्वसे विष्ठा डूबती है। आमातिसारमें पेटके भीतर गड़-गड़ शब्द होता, एक-एक बार अल्प-अल्प मल निकलता और विष्ठासे अत्यन्त दुर्गन्ध आने लगता है।

आमातिसारमें प्रथम धारक औषध न दे। रोगी सबल और उदर मलसे परिपूर्ण होनेपर लङ्घन कराये और आध तोला हरीतकी—हरड़ तथा पाव तोला छोटी पीपल, दोनोंको पीसके गर्म जलके साथ पिलाये। एतद्वारा बद्ध मल और आम मल निकल जाता है। इसके बाद धान्यपञ्चक अथवा धान्य-चतुष्ककी व्यवस्था करे।

धनिया, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, सुखाये हुए बेलकी गिरी—यह समस्त मिलित औषध दो तोले आधसेर जलमें पकाये और आधपाव रह जानेपर उतार ले। पीछे तीन मासे शहद डालकर इस काढ़ेको सेवन करे। इसका नाम धान्यपञ्चक है। पैत्तिकातिसारमें सोंठको छोड़ बाकी चार ही चीज़ोंसे काढ़ा तय्यार करे। इसका नाम धान्यचतुष्क है। यह काढ़े पेटकी मरोड़ और बद्ध आमको नष्ट करते हैं।

अजवायन, लवङ्ग, नागरमोथा और पित्तपापड़ा एक-एक तोले ले आध सेर पानीमें अल्प सिद्ध करे। इस औषधका जल बीच-बीचमें पिलानेसे उदरकी वेदना और आम नष्ट होता है।

चिकित्साकी प्रथमावस्थामें ही यह निश्चित करना कर्त्तव्य है, कि पेटमें क्रमि हैं या नहीं। क्योंकि क्रमि रहनेसे, पहले उनका प्रतीकार होना चाहिये। क्रमि निर्गत न होनेपर अमृत भक्षणसे भी आरोग्य प्राप्त करनेकी सम्भावना नहीं। सर्व्वत्र क्रमिके लक्षण स्पष्ट रूपसे प्रकाशित नहीं होते। किन्तु अनेक स्थलोंमें ही यह कई एक उपसर्ग प्रायः विद्यमान रहते हैं,—मलद्वारका सुरसुराना, मुखसे खारा पानी निकलना और दुर्गन्ध आना, नाक बहना, रातको सुनिद्रा न पड़ना, और सो जानेसे दांत पीसना। यह सकल लक्षण वर्त्तमान होनेसे अन्त्रमें क्रमि रहनेकी सम्भावना है। विड़ङ्ग, पलाश-पापड़ा, अनरसके पत्तेका रस और इन्द्रयव क्रमियोंके उत्कृष्ट औषध हैं। इनमें कोई भी एक औषध सेवन करानेसे पेटके क्रमि निर्गत हो सकते हैं।

रोगीके उदरका बद्धमल और दुष्टरस निर्गत होने तथा शरीर शुष्क और दुर्बल हो जानेसे अल्प-अल्प लघुपथ्य और धारक औषधकी व्यवस्था करे। ऐसी अवस्थामें नीचे लिखे चूर्णोंसे कोई एक चूर्ण खिलाया जा सकता है,—

नागरादिचूर्ण—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धायफल, इन्द्रयवका बकला, इन्द्रयव, पाठा, बेलगिरी, कुटकी—यह समस्त द्रव्य बराबर-बराबर ले अच्छी तरह पीस डाले। इस चूर्णका अनुपान चावल-धुला जल और मधु है। इससे ग्रहणी, मलमें रक्तके विन्दु निकलना और पित्तदोष प्रभृति रोग नष्ट होते हैं।

बृहद्गङ्गाधरचूर्ण—बेलसोंठ, सिंघाड़े और अनारके पत्ते, अतीस, नागरमोथा, शालवृक्षका सफेद बुरादा, धायके फूल, कालीमिर्च, पीपल, सोंठ, दारुहलदी, चिरायता, नीम, जामनका बकला, रसाञ्जन, इन्द्रयव, आकनादि, वराक्रान्ता, बाला, मोचरस, सिद्धिपत्र, भृङ्गराज—यह सब चीजें बराबर-बराबर और सबके बराबर इन्द्रयवके मूलका बकला अच्छी तरह पीस कर चूर्ण बनाये। इसकी मात्रा एक माशे है। इसे बकरीके दूध, शहद या चावलवाले मांडके साथ खाना चाहिये। ग्रहणीके साथ ज्वर, मलका नाना प्रकार वर्ण, पाण्डुरोग प्रभृति होनेसे यह औषध बड़ा उपकार करता है।

जीरकादिचूर्ण—जीरा, फुलाया हुआ सुहागा, नागरमोथा, आकनादि, बेलसोंठ, धनिया, बाला, पित्तपापड़ा, अनारके फलका और इन्द्रयवके मूलका बकला, वराक्रान्ता, धायके फूल, त्रिकटु—सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, मोचरस, इन्द्रयव, अभ्र, गन्धक, पारद,—इन सब चीजोंका चूर्ण बराबर-बराबर और सबके बराबर जायफल ले अच्छी तरह पीस डाले। इस चूर्णका अनुपान मधु है। इसे सेवन करनेसे उत्कट ग्रहणी रोग छूट जाता है।

नीचे इस रोगके दूसरे औषध भी लिखे जाते हैं—

ग्रहणी-मिहिर-तैल—चार सेर तिलके तेलको पहले विधिपूर्वक मूर्च्छित कर ले। तैल मूर्च्छित करनेकी प्रक्रिया मूर्च्छा शब्दमें देखो। फिर कल्कद्रव्य—धनिया, धायके फूल, लोधकाष्ठ, वराक्रान्ता, अतीस, हर, खसकी जड़, नागरमोथा, नेत्रवाला, मोचरस, रसोत (दारुहलदीका सत), बेलगिरी, नीलोत्पल, तेजपात, नागेश्वर, पद्मकेशर, गुर्च, इन्द्रयव, श्यामालता, पद्मकाष्ठ, कुटकी, तगरपादुका, जटामांसी, दालचीनी, कसेरू, पुनर्नवा तथा आम, जामुन, कदम्ब और इन्द्रयवका बकला, अजवायन,

और जीरा, प्रत्येक दो-दो तोले ले। काढ़ेके लिये १२ सेर इन्द्रयवका बकला ६४ सेर पानीमें उबाले और १६ सेर पानी बाकी रहनेसे नीचे उतार ले। पहले मूर्च्छित तैलमें इन्द्रयवका क्वाथ डाल दे। सात दिन बाद फिर उसमें दहीका मठा छोड़े। एक सप्ताह बाद आठ सेर पानीके साथ उपरि उक्त कल्कद्रव्य सिद्ध करे; निर्जल हो जानेसे नीचे उतार ले। यह सिद्ध किया हुआ तैल आठ दिन तक कल्क समेत किसी पात्रमें धरा रहने दे पीछे इसे कपड़ेसे छानके बोतलमें भर रखे। यह तैल अनेक प्रकारसे प्रस्तुत करते हैं। इसे सर्व्वाङ्गमें मर्दन करनेसे कठिन ग्रहणीमें भी विलक्षण उपकार हो जाता है।

प्राणेश्वररस—गन्धक, अभ्र, और पारद प्रत्येक चार-चार माशे ले। सज्जीखार, फुलाया हुआ सुहागा, शोरा, पञ्चलवण, त्रिफला, त्रिकट, इन्द्रयव, जीरा, स्याहजीरा, चितामूल, यमानी, हींग, वायविड़ङ्ग और पित्तपापड़ा प्रत्येक एक-एक माशे डाले। फिर इन सब चीज़ोंको एकमें पीस माशे-माशेकी वटी बनाये। इस रसका अनुपान मधु और पानका रस है। औषध सेवनके पीछे उष्ण जलको पान करे। अत्यन्त कठिन ज्वरातिसार, त्रिदोषज ग्रहणी प्रभृति उपसर्गोंमें यह विलक्षण फलप्रद होता है।

कामेश्वरमोदक—अभ्र, कायफल, कूट, असगंध, गुर्च, मेथी, मोचरस, भूमिकुष्माण्ड, कालीमुसली, गोखरू, कुलखाड़ेके वीज, केलेकी जड़, शतावर, यमानी, उड़द, तिल, धनिया, कचूर, गन्धमात्रा, मैनफल, जायफल, सैन्धव, ब्राह्मणयष्टिका, काकड़ासींगी, त्रिकटु, जीरा, स्याहजीरा, चीतामूल, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागेश्वर, पुनर्नवा, गजपीपल, दाख, सेमरका मुसला, नेत्रबाला, कोंचके वीज—यह सब द्रव्य प्रत्येक एक-एक तोले संग्रह करे और सूक्ष्म पीस तथा छानके रख ले। पीछे उक्त सब औषध-द्रव्योंसे द्विगुण चीनीकी चाशनी बनाये। जब लड्डू बनाने योग्य दो-तीन तारकी चाशनी बन जाये, तब पिसे हुए सब औषधोंका चूर्ण डालके मिला दे और चूल्हेसे नीचे उतार ले। चाशनी अतीव शीतल होनेसे घी तथा शहद भी मिलाये और लड्डू बांधे। यह मोदक ग्रहणी रोगमें बड़ा उपकार करता है।

जीरकादि-मोदक, मेथीमोदक, अग्निकुमार-मोदक, अग्निकुमाररस, ग्रहणीकपाटरस, ग्रहणी-गजेन्द्रवटिका, वैद्यनाथवटिका, कनकप्रभावटी प्रभृति औषध अतिसारादि रोगोंमें विलक्षण फल दिखाते हैं।

एलोपेथी-चिकित्सा—गुरुतर आहारके बाद उदरामय उपस्थित होनेसे १५ किंवा २० ग्रेन इपिकाक चूर्ण ईषत् उष्ण जलके साथ सेवन करानेसे ही पीड़ा शान्त हो सकती है। किन्तु दुर्बल व्यक्तिको वमन कराना उचित नहीं। वमनके बाद पेटमें सञ्चित-मल रहनेपर मृदु-विरेचक औषधका प्रयोग करनेसे अच्छा फल होता है। अण्डीका तेल सवा तोले और अफीमका अरिष्ट सात बूंद थोड़ेसे अदरकके रसमें अच्छी तरह मिलाकर सेवन करानेसे उदरवेदना, आंतका भारीपन प्रभृति कष्ट दूर हो जाते हैं। किन्तु निकटमें हैज़ा फूटने किंवा रोगी दुर्बल होनेसे विरेचक औषधकी व्यवस्था करना ठीक नहीं।

अन्त्र-परिष्कार होनेसे निम्नलिखित औषधकी व्यवस्था करे—रेवाचीनीका अर्क १० बूंद, सोडा बाईकार्ब २० ग्रेन और पीपरमिण्टका जल आध छटांक एकमें मिला ३।४ घण्टेके अनन्तर सेवन करे। उदरमें अत्यन्त वेदना होनेसे उक्त औषधकी प्रत्येक मात्राके साथ ४ बूंद अफीमका अरिष्ट मिला दे। शिशुओंके पक्षमें अफीम निषिद्ध है। पेटके अधिक दुखनेपर तारपीन-तेलके साथ गर्म पानीसे सेंके। पुनः-पुनः जलवत् अधिक मल निर्गत होनेसे धारक औषध देना योग्य है।

खदिरका अरिष्ट २०बूंद, काईनोका अरिष्ट ३० बूंद, सुगन्ध खड़ियेका चूर्ण १० रत्ती, गंदेका मांड़ सवा तोले और पीपरमिण्टका जल सवा तोले—इन सब द्रव्योंको एकत्र मिश्रितकर इसी तरह एक-एक मात्रा औषध ६ घण्टेके अनन्तर सेवन करे। सन्ध्याके बाद ७ बूंद अफीमका अरिष्ट खानेसे धारक होता और सुनिद्रा भी आ सकती है। रोगी दुर्बल होनेसे अल्प मात्रामें

पुरातन पोर्टको प्रत्यह तीन-चार बार पान करे। सिवा इसके मांसका शोरवा, एक भाग चूनेवाले जलके साथ नौ भाग बकरीका दूध मिलाकर ले। पहलेसे पेटमें दुःसह वेदना एवं मट्ठी-जैसा मल निर्गत होनेपर पारदका व्यवहार करना उचित है।

हाइडार्ज कम क्रिटा १, विसमथ ३, इपिकाक १ और सुगन्ध खड़िया १० रत्ती—इन सब चीजोंको एकमें मिलाके एक पुड़िया बनाये। रातको ऐसी ही दो पुड़ियोंको सेवन करना चाहिये। पीड़ा पुरातनावस्थामें पहुंचनेसे अल्प-अल्प अनुत्तेजक एवं लौहघटित औषध देना आवश्यक है।

अफीमका अरिष्ट ७ बूंद, फेरम टारट्रेटम ३ ग्रेन और दालचीनीका जल आध छटांक—यह सब द्रव्य एकत्र मिश्रित कर ऐसी ही एक-एक मात्रा औषध प्रत्यह तीन बार सेवन करे। जीर्ण उदरामय रोगमें हमारे देशका बेल एक महौषध समझा जाता है। भीतर प्रचुर गूदा उत्पन्न हो जानेसे, बेलको बीज सहित गोल-गोल टुकड़े कर छायामें सुखाये। ८ भाग बेल और १ भाग सांठ एकत्र जलमें सिद्ध कर (उबाल) उत्तम रूपसे घोंट डाले। फिर इसी मांड़को कपड़ेसे छान थोड़ेसे खजूरवाले गुड़के साथ रोगीको खिलाये। सिवा इसके ताज़ा बेल भूनकर खजूर-गुड़के साथ खानेसे भी उपकार होता है।

रक्तातिसार या रक्तामाशय—पूर्वकालमें यह पीड़ा पृथिवीपर सर्वत्र ही अधिक विद्यमान थी। इस समय भी वनवासी एवं असभ्य लोग इस व्याधिसे अत्यन्त कष्ट पाते हैं। वह ज्वर या अन्य किसी रोगसे अधिक नहीं डरते ; किन्तु रक्तामाशयमे सभी भयभीत हो जाते हैं। स्थूल रीतिमें हिसाब लगानेपर, सैकड़े पीछे अस्सी असभ्य लोग रक्तामाशयसे प्राणत्याग करते हैं। इसीसे स्पष्ट समझ पड़ता, कि गलित और शुष्क मत्स्य-मांसका भोजन और अपरिमित सुरापान इस रोगका प्रधान कारण है। एक जातीय ऐसे पर्वतवासी लोग हैं, जो शीतकालमें वानर, हरिण प्रभृति वन्य पशुओंको मार उनका मांस सुखाकर रख छोड़ते हैं। वृष्टिके समय शिकार मारना कष्टकर है, इसीसे अत्यन्त वर्षा होनेपर वह कुटीरमें बैठ और उसी शुष्क मांसको दग्धकर सड़ी हुई शराबके साथ खाते हैं। फिर किसी-किसी वनमें वर्षाके समय चारो दिक् पानीमें डूब जाते और हरिण तथा शशक उच्च भूमिपर जाकर आश्रय लेते हैं। असभ्य लोग उस समय उन्हें अनायास वध करते हैं। वर्षाकालमें आकाश प्रायः मेघोंसे आच्छन्न रहता है, इसी कारणसे मांस सुखानेकी सुविधा नहीं होती। सुतरां, कितने ही वनवासी अधिक शिकार मारनेसे मांसमें हलदी और नमक लगा और अल्प दग्धकर रख लेते हैं। इसतरह कुखाद्य भोजनके कारणसे ही उनका रक्तामाशय रोग इतना प्रबल देख पड़ता है। युरोपके लोग भारतवर्षमें आके पहले यहांके जलवायुपर विशेष दृष्टि नहीं डालते। वह विलायतमें जिस परिमाणसे मांसादि भोजन करते, यहां भी उसी परिमाणसे अपर्याप्त आहार करते रहते ; इसी कारणसे अन्तमें उत्कट आमाशय प्रभृति रोग उत्पन्न हो जाते हैं। Madras Hygiene देखो।

रक्तातिसारके अन्यान्य कितने ही कारण श्लेष्मातिसार जैसे हैं। युरोपीय चिकित्सक ऐसा अनुमान करते हैं, कि दुर्गन्ध स्थान किंवा अन्य किसी कारणसे एक प्रकारका विष उत्पन्न होता है। वही विष मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। पीछे वही विष वृहत् अन्त्रवाली श्लैष्मिक झिल्लीको ग्रन्थिसे शरीरके बाहर निकलता, जिससे रक्तामाशय रोग उत्पन्न होता है।

हिन्दुस्थानमें जहां मलेरिया ज्वरका अत्यन्त प्रादुर्भाव देख पड़ता, रक्तामाशय रोग वहीं अधिक हुआ करता है। पहले अल्प-अल्प शीतका बोध होता, कहीं-कहीं प्रबल कम्प भी देख पड़ता है। आहारके बाद पीड़ाका सूत्रपात होनेसे अनेक स्थलोंमें रोगी वमन कर डालता है। इस अवस्थामें जिह्वा शुष्क, मध्यस्थल श्वेतवर्ण लेपयुक्त और चारों किनारे रक्तवर्ण हो जाते हैं। किसी-किसी स्थलमें रोगीको कम्प या ज्वरका बोध नहीं होता। किन्तु

पुरातन पोर्टको प्रत्यह तीन-चार बार पान करे। सिवा इसके मांसका शोरबा, एक भाग चूनेवाले जलके साथ नौ भाग बकरीका दूध मिलाकर ले। पहलेसे पेटमें दुःसह वेदना एवं मट्ठी-जैसा मल निर्गत होनेपर पारदका व्यवहार करना उचित है।

हाइड्राज कम क्रिटा १, विसमथ ३, इपिकाक १ और सुगन्ध खड़िया १० रत्ती—इन सब चीज़ोंको एकमें मिलाके एक पुड़िया बनाये। रातको ऐसी ही दो पुड़ियोंको सेवन करना चाहिये। पीड़ा पुरातनावस्थामें पहुंचनेसे अल्प-अल्प अनुत्तेजक एवं लौहघटित औषध देना आवश्यक है।

अफीमका अरिष्ट ७ बूंद, फ़ेरम टारट्रेटम ३ ग्रेन और दालचीनीका जल आध छटांक—यह सब द्रव्य एकत्र मिश्रित कर ऐसी ही एक-एक मात्रा औषध प्रत्यह तीन बार सेवन करे। जीर्ण उदरामय रोगमें हमारे देशका बेल एक महौषध समझा जाता है। भीतर प्रचुर गूदा उत्पन्न हो जानेसे, बेलको बीज सहित गोल-गोल टुकड़े कर छायामें सुखाये। ८ भाग बेल और १ भाग सोंठ एकत्र जलमें सिद्ध कर (उबाल) उत्तम रूपसे घोंट डाले। फिर इसी मांड़को कपड़ेसे छान थोड़ेसे खजूरवाले गुड़के साथ रोगीको खिलाये। सिवा इसके ताज़ा बेल भूनकर खजूर-गुड़के साथ खानेसे भी उपकार होता है।

रक्तातिसार या रक्तामाशय—पूर्वकालमें यह पीड़ा पृथिवीपर सर्वत्र ही अधिक विद्यमान थी। इस समय भी वनवासी एवं असभ्य लोग इस व्याधिसे अत्यन्त कष्ट पाते हैं। वह ज्वर या अन्य किसी रोगसे अधिक नहीं डरते; किन्तु रक्तामाशयसे सभी भयभीत हो जाते हैं। स्थूल रीतिमें हिसाब लगानेपर, सैकड़े पीछे अस्सी असभ्य लोग रक्तामाशयसे प्राणत्याग करते हैं। इसीसे स्पष्ट समझ पड़ता, कि गलित और शुष्क मत्स्य-मांसका भोजन और अपरिमित सुरापान इस रोगका प्रधान कारण है। एक जातीय ऐसे पर्वतवासी लोग हैं, जो शीतकालमें वानर, हरिण प्रभृति वन्य पशुओंको मार उनका मांस सुखाकर रख छोड़ते हैं। वृष्टिके समय शिकार मारना कष्टकर है, इसीसे अत्यन्त वर्षा होनेपर वह कुटीरमें बैठ और उसी शुष्क मांसको दग्धकर सड़ी हुई शराबके साथ खाते हैं। फिर किसी-किसी वनमें वर्षाके समय चारो दिक् पानीमें डूब जाते और हरिण तथा शशक उच्च भूमिपर जाकर आश्रय लेते हैं। असभ्य लोग उस समय उन्हें अनायास वध करते हैं। वर्षाकालमें आकाश प्रायः मेघोंसे आच्छन्न रहता है, इसी कारणसे मांस सुखानेकी सुविधा नहीं होती। सुतरां, कितने ही वनवासी अधिक शिकार मारनेसे मांसमें हलदी और नमक लगा और अल्प दग्धकर रख लेते हैं। इसतरह कुखाद्य भोजनके कारणसे ही उनका रक्तामाशय रोग इतना प्रबल देख पड़ता है। युरोपके लोग भारतवर्षमें आके पहले यहांके जलवायुपर विशेष दृष्टि नहीं डालते। वह विलायतमें जिस परिमाणसे मांसादि भोजन करते, यहां भी उसी परिमाणसे अपर्याप्त आहार करते रहते; इसी कारणसे अन्तमें उत्कट आमाशय प्रभृति रोग उत्पन्न हो जाते हैं। Madras Hygiene देखो।

रक्तातिसारके अन्यान्य कितने ही कारण श्लेष्मातिसार जैसे हैं। युरोपीय चिकित्सक ऐसा अनुमान करते हैं, कि दुर्गन्ध स्थान किंवा अन्य किसी कारणसे एक प्रकारका विष उत्पन्न होता है। वही विष मनुष्यके शरीरमें प्रविष्ट हो जाता है। पीछे वही विष बृहत् अन्त्रवाली श्लैष्मिक झिल्लीको ग्रन्थिसे शरीरके बाहर निकलता, जिससे रक्तामाशय रोग उत्पन्न होता है।

हिन्दुस्थानमें जहां मलेरिया ज्वरका अत्यन्त प्रादुर्भाव देख पड़ता, रक्तामाशय रोग वहीं अधिक हुआ करता है। पहले अल्प-अल्प शीतका बोध होता, कहीं-कहीं प्रबल कम्प भी देख पड़ता है। आहारके बाद पीड़ाका सूत्रपात होनेसे अनेक स्थलोंमें रोगी वमन कर डालता है। इस अवस्थामें जिह्वा शुष्क, मध्यस्थल श्वेतवर्ण लेपयुक्त और चारों किनारे रक्तवर्ण हो जाते हैं। किसी-किसी स्थलमें रोगीको कम्प या ज्वरका बोध नहीं होता। किन्तु

उदरके भीतर मरोड़ उठा करती और मध्य-मध्यमें सारा पेट दुखने लगता है। मलद्वारमें अल्प ज्वाला और वेग मालूम पड़ता है। रोगी मलत्याग करने दौड़ता, किन्तु अधिक मल नहीं निकलता। पेटकी वेदना और उसका वेग विचारकर देखनेसे जाना जाता है, कि बहुत मल निकलेगा। किन्तु वास्तविक अनेकस्थलमें कुछ भी मल निःसरण नहीं होता। अनेकक्षण वेगके बाद किञ्चित आम और रक्त निकल आता है। उस समय रोगी अपनेको कुछ सुस्थ समझता है। किन्तु क्षणकालके मध्यमें ही फिर वेग बढ़ता और पेटमें वेदना होने लगती है। कहीं तो, विरेचनके साथ प्रथम-प्रथम मल मिश्रित रहता है। इसके बाद कभी अल्प मल निकलता; कभी मलका सम्पर्कमात्र भी नहीं रहता; केवल श्लेष्मा और रक्त निर्गत होता है। कहीं-कहीं मारी गई बकरीकासा ताज़ा खून निकल पड़ता है। प्रबल पीड़ामें सर्व्वाङ्ग उष्ण, नाड़ी वेगवती, मुखमण्डल मलिन और अत्यन्त ग्लानियुक्त हो जाता है। सरलान्त्रमें अत्यन्त प्रदाह होनेसे रोगी पेशाब नहीं कर सकता, कितने ही कष्टसे केवल दो-एक विन्दु मूत्र उतरता है। इस अवस्थामें रोग शान्त न होनेसे क्रमशः दिवारात्रिके मध्यमें ५० । ६० बार मल निर्गत हो जाता है। रोगी एकबार मलत्याग करनेको बैठनेसे फिर उठना नहीं चाहता। वह उदरकी वेदना और अतिशय वेगके कारणसे सर्वदा ही व्याकुल रहता है। पीछे उदर अल्प या अधिक स्फीत होनेसे सरलान्त्रमें क्षत उत्पन्न होता; इसलिये उदरसे गलित पदार्थ भी बाहर निकल आता है। धीरे-धीरे नाड़ी क्षीण, मुखमें क्षत, हस्तपदादि शीतल, सर्व्वाङ्गमें सड़ा दुर्गन्ध, प्रलाप प्रभृति उपसर्गोंके बाद रोगीकी मृत्यु होती है। किसी-किसी स्थलमें अन्तकाल पर्यन्त ज्ञानका कुछ भी वैलक्षण्य देख नहीं पड़ता। ऐसा भी देखा गया है, कि समस्त इन्द्रियोंके अवश होने और शरीरमें केवल जीवात्माके रह जानेपर भी रोगी ज्ञानसे बात करता रहता, वाक्यमें कुछ भी जड़ता नहीं आती। इसीसे प्रवाद है, कि इष्टदेवताका नाम लेते-लेते सज्ञानमें मृत्यु होनेके लिये पूर्व्वकालके ऋषियोंने अतिसार रोगको ईश्वरसे कामना कर लिया था।

इस समय एक विशेष सतर्कता आवश्यक है। रक्तामाशयको सामान्य व्याधि बता हमारे देशके कितने ही लोग पहले निश्चिन्त रहते हैं। पीड़ा उत्कट न हो जानेसे झाड़-फूंकपर ही प्रायः अनेक लोग भरोसा रखते हैं। कितनों हीको विश्वास है, कि हिन्दुस्थानमें अनेक प्रकार अवधूत मतके टोटके तथा झाड़-फूंकवाले औषधोंसे नाना प्रकार कठिन रोगोंका निवारण होता है। किन्तु इसपर भी, अज्ञ लोगोंके हाथमें प्राणसमर्पण करना कर्त्तव्य नहीं। विशेषतः रक्तामाशय उपस्थित होनेसे यकृत्‌की कोई न कोई पीड़ा उठ खड़े होनेकी सम्भावना रहती है। इसलिये पहलेसे ही सुचिकित्सकके हाथमें चिकित्साका भार अर्पण करना चाहिये।

अवधूत और जड़ी-बूटीकी चिकित्सा—सामान्य प्रकारका रक्तातिसार कितने ही सहज उपायोंसे निवारण होता है। सूरतके पत्ते थूकके साथ दोनो हाथोंके नीचे मर्दन करनेसे तीन घण्टेमें सामान्य रक्तामाशयका वेग और रक्त रुक जाता है। आयापानवाले पत्तेके रसको सेवन करनेसे सहज आमाशयका निवारण होता है। सोंठ, अजवायन, जीरा, जायफल, कनगुरकी जड़ और इन्द्रयवके बकलेका क्वाथ ही रक्तातिसारका प्रधान औषध है। इसमें इन्द्रयववाले बकलेके क्वाथको छोड़ दूसरी चीज़ें किसी कामकी नहीं। फिर भी, इन्द्रयवका बकला कषाय और कटु होता, किसी आग्नेय द्रव्यके साथ सेवन न करनेसे वह पेटको चपेटकर पकड़ सकता है; इसीसे सोंठ प्रभृति द्रव्य उसमें मिलाना आवश्यक है। अजवायन १३॥, जीरा ६॥, सोंठ ३।, जायफल १॥ और कनगुरकी जड़ २॥ रत्ती कूट-पीसके एक पुड़िया बनाये। इसके बाद डेढ़ सेर इन्द्रयवका बकला एक सेर जलमें उबाले, जब आध सेर जल रह जाये, तब उसे नीचे उतार ले। प्रत्यह सवेरे आध पाव इस क्वाथमें एक पुड़िया बांटके डाले और कुछ

गर्म कर पी जाये। इसीतरह चार दिन चार पुड़िया सेवन करना पड़ती हैं।

होमिओपेथी—प्रथमावस्थापर ज्वर होनेसे एकोनाइट १२ डाइल्यूशन एक विन्दु मात्रामें आध छटांक जलके साथ एक घण्टेके अनन्तर सेवन करे। अनेकस्थलमें इस ही औषधसे पीड़ा एकबारगी ही निवारण हो सकती है। रक्तमिश्रित आम किंवा केवल रक्त निर्गत और अत्यन्त वेग एवं मूत्रकृच्छ्र प्रभृति उपद्रव विद्यमान होनेसे, करोसिभ-पारद ३ डाइल्यूशन एक विन्दु मात्रामें २।३ घण्टेके अन्तर खाये। इससे शीघ्र ही पीड़ाका निवारण होता है। पेटका निम्नभाग स्फीत और दबानेसे उदरमें अत्यन्त कष्ट मालूम होनेपर मुसव्वरका अर्क प्रयोग करना आवश्यक है। वमन किंवा वमनोद्वेग होनेसे इपिकाककी व्यवस्था करे। शरीर दुर्बल, हस्तपद शीतल और अत्यन्त अस्थिरता विद्यमान रहने पर आर्सेनिक खानेसे विशेष फल होता है। जहां मलेरियाका प्रभाव अतिशय प्रबल हो, वहां रोगीको बीच-बीचमें चायना खाना चाहिये।

एलोपेथी—रोगी सबल होने और उदरमें सञ्चित मल रहनेसे, पहले एरण्ड-तैल ४।६ ड्राम, अफीमका अरिष्ट ७ बूंद, पीपरमिण्टका जल ४ ड्राम और अदरकका रस सवा तोले एकमें मिश्रितकर सेवन कराये। कोष्ठ-परिष्कार होनेसे ३० बूंद क्लोरोडाइनकी व्यवस्था करे। फिर, १५ मिनिट बाद एककालमें २०।२५ ग्रेन इपिकाक खिलाये। इपिकाक सेवनके बाद अन्ततः तीन घण्टेतक रोगीको कुछ भी न खिलाये, सुस्थिर भावसे उसे नींद लेने दे। इसतरह सावधान रहनेसे प्रायः वमन नहीं होता। एक मात्रा उदरमें रहनेसे ६ घण्टे बाद फिर १०।१५ ग्रेन मात्रामें एकबार औषधको प्रदान करे। इस महौषधके सेवनसे एक दिनमें ही उत्कट रक्तामाशय रोगकी शान्ति हो सकती है। इपिकाकके सेवनसे अत्यन्त वमन होता, इसलिये विशेष सावधानता आवश्यक है।

पेटकी वेदनाको निवारण करनेके लिये तारपीन तैलके साथ उष्ण जलका स्वेद लगाना उचित है। तृष्णा-निवारणके लिये बरफके टुकड़े रोगीके मुखमें डालते रहे। पथ्यके मध्यमें मांसका शोरबा, चूनेवाले जलके साथ बकरीका दूध, अन्नका मांड़, चावलकी लाईका मांड़ प्रभृति लघु द्रव्योंकी व्यवस्था हो सकती है। रोगीको उत्तम रूपमें सुस्थ न होनेतक कोई कठिन द्रव्य न खिलाये। तरुण रक्तातिसार रोगमें वैद्यकमतकी चिकित्सासे होमिओपेथी और एलोपेथीकी चिकित्सामें अधिक प्रभाव विद्यमान है। किन्तु पुरातन रक्तातिसार रोगमें वैद्यकी चिकित्सा ही श्रेष्ठ होती है।

प्रायश्चित्त—शातातपीय कर्म्मविपाकमें अतिसारका प्रायश्चित्त यों लिखा गया है,—

"महापातकजं चिह्नं सप्तजन्मसु जायते।
उपपापोद्भवं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम्॥"

* * * * *

"कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा।
मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतिसारभगन्दरौ॥
दुष्टव्रणं गण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम्।
इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः॥"

* * * * *

"महापापे भवेत् सर्वं तदर्द्धन्तूपपातके।
दद्यात् पापेषु षष्ठांशं ज्ञात्वा व्याधिबलाबलम्॥ सर्वं पराकरूपं।"

महापातक-जनित चिह्न—स्वल्प कुष्ठादि रोग मनुष्यको सात जन्म पर्यन्त सताया करते हैं। उपपातकके चिह्न—जलोदरादि पञ्च जन्म, एवं सामान्य पापजनित चिह्न—दण्डापतानकादि तीन जन्मतक रहते हैं।

* * * * *

कुष्ठ, राजयक्ष्मा, प्रमेह, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, ज्वरयुक्त कास, अतिसार, भगन्दर, दुष्टव्रण, गण्डमाला, पक्षाघात, चक्षुका नाश इत्यादि रोग महापापोद्भव हैं।

* * * * *

महापापमें सकल अर्थात् पराकव्रतके प्रायश्चित्तकी व्यवस्था करे। पराकव्रत करनेमें असमर्थ होनेसे पराकके अनुकल्पपर पांच धेनुओंको उत्सर्ग करना कहा

गया है,—"पराके पञ्च धेनवः"। अथवा पांच धेनुओंका मूल्य १८२०० कौड़ी या इसी मूल्यमें जो सोना-चांदी मिले, उसे उत्सर्ग कर दे। पराक शब्दमें पराकव्रत और धेनु शब्दमें धेनुका मूल्य देखो।

पश्चात् इसतरह प्रायश्चित्तको पत्रिका लिखना चाहिये,—

अतिसाररोगसंसूचितपापक्षयाय व्रतायशक्तौ ब्राह्मणेन क्षत्रियादिना वा यत्किञ्चित् दक्षिणाकपञ्चदशकार्षापणो दानरूपं प्रायश्चित्तं करणीयमिति विदुषाम्परामर्शः।

प्रायश्चित्तका नियम—प्रायश्चित्त करनेका नियम यों है,—अष्टमी और चतुर्दशी तिथिको प्रायश्चित्त करना न चाहिये। इसके सिवा जिस तिथिको प्रायश्चित्त करे, उसके पहले दिन रोगी मस्तकादि मुण्डन करा सायंकालको केवल किञ्चित् घृत खाकर रह जाये। सवेरा होनेसे यथानियम नित्यक्रियादि सम्पन्न करे। इसके बाद ऊपर जो पत्रिका लिखी गई है, उसे तालपत्रादिमें अङ्कितकर कौड़ी किंवा सोना, जो उत्सर्ग करना हो, उसके ऊपर रख दे। इसतरह आयोजन होनेके बाद उत्सर्गके निम्नलिखित मन्त्रको पाठ करना होता है,—

अद्य अमुक मासि अमुक पक्षे अमुक तिथि अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेव शर्म्मा अतिसाररोगसंसूचित पापक्षयकामोऽर्च्चितां इमां पञ्चदशकार्षापणीं तन्मूल्यलब्धमिदं सुवर्णं रौप्यं वा विष्णुदैवतं यथासम्भव गोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाहं ददे।

अवशेषमें दक्षिणादिके बाद पार्वण-श्राद्ध करे। इसमें असमर्थ होनेसे एक भोज्य-भोजन पर्याप्त पदार्थका उत्सर्ग करना आवश्यक है। यह प्रायश्चित्त-विधि सञ्चित ग्रहणी या अतिसारके पक्षमें नियत है; अल्पकालस्थायी हैजे किंवा सामान्य उदरामयके लिये नहीं।

अतिसारकिन्, अतीसारकिन् (सं० त्रि०) अतिसारोऽस्यास्ति। अतिसार-इनि-कुक् च। वातातीसाराभ्यां कुक् च। पा ५।२।१२९। अतिसाररोगग्रस्त, पेचिशकी बीमारीसे जकड़ा; उदरामयरोगी, पेचिशका बीमार।

अतिसारकी (सं० त्रि०) अतिसाररोगी, पेचिशका बीमार।

अतिसारभेषज (सं० क्ली०) लोध्र, लोध।

अतिसारवारणरस (सं० पु०) अतिसारमें दिया जानेवाला एक रस, पेचिशकी एक खास दवा।

अतिसारस्वा (सं० स्त्री०) रास्ना, गुर्च।

अतिसारिन्, अतीसारिन् (सं० पु०) अति-सृ-णिनि; अतिशयेन सारयति रक्तादिकम्। अतिसाररोग, उदरामय; पेचिशकी बीमारी।

अतिसिद्धि (सं० स्त्री०) अणिमादि अष्टसिद्धियोंसे भी अधिक योग्यताकी पूर्ण प्राप्ति, कसबेकमाल।

अतिसुजन (सं० त्रि०) १ बहुत उत्तम, निहायत मुबारिक। २ बहुत मैत्रीभाव-सम्पन्न, निहायत दोस्ताना। ३ बहुत माननीय, निहायत इज्जतदार।

अतिसुन्दर (सं० त्रि०) १ बहुत सुन्दर, निहायत खूबसूरत। (पु०-स्त्री०) २ अष्टि, चित्र या कङ्गला छन्दका एक पद्य, एक प्रकारकी बहर।

अतिसुलभ (सं० त्रि०) सरलतासे प्राप्त होनेवाला, जो आसानीसे मिल जाये।

अतिसुहित (सं० त्रि०) अत्यन्त कृपालु, निहायत मेहरबान।

अतिसूक्ष्म (सं० त्रि०) अतिशय सूक्ष्म, निहायत बारीक।

अतिसृज्य (सं० त्रि०) अति-सृज-क्यप्। १ सर्जनीय, उत्पन्नकरनेके योग्य। २ त्यज्य—त्याग करने योग्य।

अतिसृष्ट (सं० त्रि०) अति-सृज्-क्त। १ दत्त, दिया हुआ। २ प्रेरित, भेजा गया।

अतिसृष्टि (सं० त्रि०) अपूर्व्व जगत्, अनोखी दुनिया।

अतिसेन—एक राजाका नाम, सम्बरके एक पुत्र।

अतिसेवन (सं० क्ली०) किसी वस्तुका अधिक सेवन-करना, अधिक मात्रासे औषधका व्यवहार, मिकदारसे ज्यादा दवाका इस्तेमाल।

अतिसेवा (सं० स्त्री०) अधिक सुश्रूषा, अधिक व्यवहार, अज़हद इस्तेमाल।

अतिसौपर्ण (सं० त्रि०) सुपर्ण—गरुड़से भी बड़ा।

अतिसौम्या (सं० स्त्री०) १ अधिक शीतल-स्वभावकी स्त्री। २ यष्टिमधुका, मौरेठी।

अतिसौरभ (सं० पु०) अतिशयितं सौरभमस्य, प्रादि-

बहुव्री०। १ सुगन्धि आम्र, आमका पेड़। (क्ली०) २ अत्यन्त सुवास, अज़हद खुशबू। ३ (त्रि०) अतिशय सुगन्धित, निहायत खुशबूदार।

अतिसौहित्य (सं० क्ली०) अतिशयितं सौहित्यम्। १ अत्यन्त मित्रभाव। २ अत्यन्त तृप्ति, अज़हद आसूदगी।

अतिस्कन्धा (सं० त्रि०) रक्तकुलत्थका, लालकुलथी।

अतिस्तुति (सं० स्त्री०) अति-स्तु-क्तिन्। कर्म्मप्रवचनीयानाम्प्रतिषेधः (कात्यायन)। अविद्यमान गुणका कीर्त्तन, अज़हद तारीफ़।

अतिस्त्रि (सं० पु) स्त्रियमतिक्रान्तः, अत्या० तत्। अपनी स्त्रीको अतिक्रम करनेवाला व्यक्ति, स्त्रीत्यागी; परस्त्रीमें आसक्त। अपनी औरतको छोड़ देनेवाला मर्द।

"गुण नाभावीत्वनुड्भिः परत्वात् पुंसि वाध्यते।
क्लीवे नुमा च स्त्रीशब्दस्येयङिव्यवधार्यताम्॥
औस्त्रीकारे च नित्यं स्यादम्शसोस्तु विभाषया।
इयादेशोऽपि नाऽन्यत स्त्रियाः पुंस्युपसर्जने॥"

अतिस्त्री (सं० स्त्री०) अतिशयिता सुन्दरी स्त्री, प्रादि-स०। अतिशय सुन्दरी स्त्री, निहायत खूबसूरत औरत।

अतिस्त्रीक (सं० पु०) अतिशयिता सुन्दरी स्त्री यस्य, प्रादि-बहुव्री०। नद्यृतश्च। पा।५।४।१५३। अतिशय सुन्दरी स्त्री रखनेवाला पुरुष, जिस मर्दके निहायत खूबसूरत औरत हो।

अतिस्थिर (सं० त्रि०) अत्यन्त अचल, निहायत पायदार।

अतिस्थूल (सं० त्रि०) १ अत्यन्त मांसल, निहायत मोटा। २ अतिशय बलवान्, निहायत ताक़तवर। ३ बहुत बड़ा, निहायत आला। ४ अत्यन्त कुरूप, निहायत बदसूरत। ५ अत्यन्त मूर्ख, निहायत बेवकूफ़। (पु०) ६ एक प्रकारका मेदरोग, जिससे देह बहुत मोटा पड़ जाता है।

अतिस्थूलवर्त्मा (सं० पु०) दुष्टव्रण-विशेष, एक तरहका खराब फोड़ा।

अतिस्निग्ध (सं० त्रि०) १ अत्यन्त स्निग्ध, निहायत चिकना। २ अतिशय उत्तम, निहायत नफ़ीस। ३ अत्यन्त प्रिय, निहायत मुअज्जिज़। ४ जिसने अधिक स्नेह पान किया हो।

"कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः।
लक्षणं तदतिस्निग्धे रूक्षं तत्र प्रदापयेत्॥" (वै० निघ०)

अतिस्पर्श (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं स्पर्शं वर्णोच्चारणप्रयत्नभेदं दानं वा। १ दानहीन, कृपण, कुछ न देनेवाला, बखील। २ अधम, नीच। (पु०) अतिशयितः स्पर्शः, प्रादि-स०। ३ अत्यन्त स्पर्श, बहुत छूना, अज़हद कुआव।

'क'से 'म' पर्यन्त पचीस वर्णोंको स्पर्श वर्ण कहते हैं, कादयो मावसानाः। इन वर्णोंसे अतिक्रान्त वर्ण य व र ल और स्वरवर्ण हैं। इनमें य व र ल ईषत् स्पृष्ट और स्वर अस्पृष्ट वर्ण हैं। पूर्वोक्त अन्तस्थ वर्णोंका नाम जिह्वाके साथ अल्प स्पर्श होनेके कारण ईषत् स्पृष्ट है। परोक्त स्वर जिह्वाके साथ स्पर्श न होनेसे अस्पृष्ट कहलाते हैं। इन उभय विध वर्णोंका नाम जिह्वाके साथ सम्पूर्ण स्पर्श न होनेके कारण अतिस्पर्श रखा गया है। अच् देखो।

अतिस्फिर (सं० त्रि०) अतिशयितं स्फिरम्, प्रादि-स०। अति-स्फाय-किरच्; स्फास्फायोष्टिलोपः। उण् १।५३। १ अतिस्फूर्त्तिशाली, निहायत फुरतीला, चालाक। २ अतिवेग, तीजवान्।

अतिस्रवा (सं० स्त्री०) मयूरवल्ली, महुआ।

अतिस्वप्न (सं० पु०) १ अतिशय निद्रा, अधिक नींद या सोना। (क्ली०) २ स्वप्न देखनेकी अतिशय प्रवृत्ति, ख़ाब आनेकी अज़हद रग़बत।

अतिस्वस्थ (सं० त्रि०) अत्यन्त नीरोग, तिहायत तनदुरुस्त।

अतिहसित (सं० क्ली०) अति-हस-क्त; अतिशयितं हसितम्, प्रादि-स०। १ अतिशय हास्य, उच्च हास्य; अज़हद हंसी। (पु०) २ सशब्दहास, आवाज़ मिली हंसी।

अतिहास (सं० पु०) अत्यन्त हंसी, अज़हद हंसना।

अतिह्रस्व (सं० त्रि०) अत्यन्त छोटा, निहायत नाचीज़।

अतीक्ष्ण (सं० त्रि०) तीखा नहीं, कुन्द; तेज़ नहीं।

अतीचार—अतिचार देखो।

अतीत (सं० त्रि०) अति-इन्-क्त। १ गत, गुज़रा, बीता। २ भूत, हुआ। ३ अतिक्रान्त, अधिक, ज्य़ादा। ४ मृत, मुर्दा।

"लङ्लुङोरतीतत्वम्। लिट्क्वसोर्वंतु: परोक्षत्वं अतीतत्वञ्च। लुङोऽतीतत्वं क्रियातिक्रमस्य। कुतश्चिद् गुणात् क्रियानिष्पत्तिः क्रियातिक्रमः। क्तक्तवत्वोरतीतत्वम्।" (सारमञ्जरी)

अतीत (सं० पु०) सन्यासी अर्थात् जिसने सांसारिक विषय-वासनाओंसे अपना सम्बन्ध परित्याग कर दिया है। अतीत शैव और वैष्णव दोनों हो सकते हैं। भारतवर्षमें आजकलके अतीत अर्थात् सन्यासियोंके प्रायः चार सम्प्रदाय देखे जाते हैं। यथा—१ भारती, २ गिरि, ३ पुरी और ४ अरुण। यह गेरुए वस्त्र पहनते और गलेमें रुद्राक्षकी माला डाले रहते हैं, जो कण्ठी कहलाती है। यह मांस और मदिराको व्यवहार नहीं करते और चेलोंको मन्त्र देते घूमा करते हैं। अन्तमें मरते समय अपनी सम्पत्ति चेलोंको सौंप देते हैं। इसके सिवाय गृहस्थ-अतीत अपने दलमें किसी बाहरी आदमीको नहीं मिलाते और हिन्दू धर्मके अनुसार श्राद्ध आदि कर्म्म करते हैं। कहीं-कहीं यह कृषकका भी काम अपनी भूमिमें करते हैं, इन्होंने जागीरकी तरह ज़मीन्दारोंसे भूमि पाई है। इनके पुरोहित ब्राह्मण हैं। युक्तप्रदेश—मिरजापुरमें यह शवदेहको मुखमें अग्नि डालके गङ्गामें बहा देते हैं। मृत्युका सूतक दश दिनतक रहता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इनके हाथकी कच्ची-पक्की रसोई नहीं खाते; हां, शूद्र खा लेते हैं। दूसरे और यह लोग भी आपसमें 'नमो नारायण' कहकर अभिवादन करते हैं।

अतीतकाल (सं० पु०) विगत समय; गुज़रा हुआ ज़माना।

अतीतना (हिं० क्रि०) १ जाना, होना, बीतना। २ गुज़ारना, निकालना। ३ परित्याग करना, छोड़ देना।

अतीथ—अतिथि देखो।

अतीतनौका (सं० स्त्री०) नावसे उतरा, किनारे लगा।

अतीत्वरी (वै० स्त्री०) दुष्टा स्त्री, बदमाश औरत।

अतीन्द्र (सं० पु०) अतिक्रान्तं इन्द्रं शक्त्या, अतिक्रा०-तत्। १ विष्णु। (त्रि०) २ इन्द्रका अतिक्रमकारी, इन्द्रको उल्लङ्घन करनेवाला।

अतीन्द्रिय (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं इन्द्रियं तद्विषय-बहिर्भूतत्वात्, अतिक्रा० तत्। अप्रत्यक्ष, नज़रसे बाहर; इन्द्रियोंसे अग्राह्य,—जो मन, चक्षु, कर्ण और हस्त आदिसे अग्राह्य हो; परब्रह्म। परब्रह्मको मनन नहीं कर सकते, वह ज्ञानसे अगोचर है। उसे चक्षुसे भी देख नहीं सकते, वह सकल इन्द्रियोंसे अतीत है।

अतीव (सं० अव्य०) प्रादि-स०। अतिशय, बहुत, ज्य़ादा; अतिशय अवधारित।

अतीव्र (सं० त्रि०) तीव्र नहीं; कुन्द, जो तेज़ न हो।

अतीष (सं० पु०) अति-ईष-क, अतिशयेन ईष्यते इति। एकजन बङ्गाली परिव्राजक। यह तन्त्रशास्त्रमें विलक्षण रूपसे दक्ष थे, और चिरकाल तक देशदेशान्तरमें धर्म्म प्रचार करते फिरे थे। सन् १०४२ ई० में यह तिब्बत देशमें पहुंच तान्त्रिक मतका प्रचार करने लगे। तिब्बतवासी बहुकालसे बौद्धधर्म्मावलम्बी हैं, किन्तु उनमें कोई अतीषके विरोधी न बने; वरं बुस्तन प्रभृति अनेक सुपण्डित व्यक्ति इनके शिष्य हो गये। अतीषने तिब्बतमें विस्तर पुस्तकें लिखीं और तिब्बत-भाषामें अनेक पुस्तकोंका अनुवाद भी किया था।

अतीस (हिं० पु०) शिशुभैषज्य। यह ओषधि हिमालयके समीप सिन्धु नदसे कुमायूंतक मिलती है। इसका मूल कटु और तिक्त है। इसके सेवनसे कफ और पित्त सम्बन्धी पीड़ा, आम, अतिसार, कास, ज्वर, यकृत् और क्रिमिसम्बन्धीय पीड़ा प्रभृति रोग छूट जाते हैं। यह पाचक, अग्निसंदीपन और विषघ्न होती है। बालकोंकी बीमारीमें यह बहुत काम आती है। इसका रंग काला, सफ़ेद और लाल—

तीन तरहका होता है। सफ़ेद अतीस अधिक लाभदायक है।

अतीसार—अतिसार देखो।

अतीसारकिन्—अतिसारकिन् देखो।

अतुङ्ग (सं॰ त्रि॰) ऊंचा नहीं, छोटा, बौने-जैसा।

अतुन्द (सं॰ त्रि॰) बलिष्ठ नहीं, दुबला-पतला, कमज़ोर।

अतुर (वै॰ त्रि॰) १ अनुदार, बख़ील। २ दरिद्र, ग़रीब।

अतुराई (हिं॰ स्त्री॰) १ आतुरता, जल्दबाज़ी। २ चञ्चलता, चुलबुलाहट।

अतुराना (हिं॰ क्रि॰) आतुर बनना, जल्दबाज़ी करना, हड़बड़ाना, शीघ्रता दिखाना।

अतुल (सं॰ पु॰) १ कफ। २ तिलवृक्ष। (त्रि॰) ३ तुलना-रहित, जिसके बराबर कोई न हो।

अतुलनीय (सं॰ त्रि॰) तुलनारहित, बेजोड़।

अतुलित (सं॰ त्रि॰) तुलना-रहित, जिसके बराबर कोई न हो, न तुला हुआ।

अतुल्य (सं॰ त्रि॰) न तुल्यम्। नौ-वयो-धर्म-विष-मूल-मूल-सीता तुलाभ्य-स्तार्य-तुल्य-प्राप्य-बध्या-नाम्य-सम-समित-संमितेषु। पा ४।४।९१। असदृश, असमान, अनुपम, बेजोड़, बेअन्दाज़, बेहिसाब।

अतुल्ययोगिता (सं॰ स्त्री॰) अलङ्कार-विशेष। यदि कई पदार्थोंका समान धर्म्म होनेपर भी किसी पदार्थका विरुद्ध आचरण प्रदर्शित किया जाये, तो अतुल्ययोगिता अलङ्कार होता है।

अतुष (सं॰ त्रि॰) नास्ति तुषोऽस्मिन्। बिना छिलकेका, विना भूसीका।

अतुषारकर (सं॰ पु॰) सूर्य, आफ़ताब; जिसकी किरणें ठण्डी न हों।

अतुष्टि (सं॰ स्त्री॰) असन्तोष, लालच।

अतुष्टिकर (सं॰ त्रि॰) न तुष्टिम् करोतीति, न-तुष्टि-कृ-ट आनुकूल्यार्थे। कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु। पा ३।२।२०। असन्तोषकर, अप्रीतिकर, अरुचिकर, नाराज़ी पैदा करनेवाला, मुहब्बत मिटानेवाला, बेलुत्फ़ी फैलानेवाला। जैसे,—

"मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितानाञ्च सर्वशः।
अनिर्दशञ्च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव च॥" मनु॰ ४।२१७।

स्त्रीका उपपति करना जो सह्य कर लेता, और जो व्यक्ति स्त्रीकी बुद्धिसे सब काम किया करता है; उसका अन्न, तथा दश दिन गत न होनेसे अशौचका और अच्छा न लगनेवाला अन्न कभी भोजन न करे।

अतुहिन (वै॰ त्रि॰) ठण्डा नहीं, गर्म।

अतुहिनरश्मि (सं॰ पु॰) न तुहिनो न शीतल उष्णो रश्मिः किरणोऽस्य। १ सूर्य, आफ़ताब। जिसकी किरण शीतल न हों, गर्म शुआएं। अतुहिनः न तुहिनो न शीतल उष्णो रश्मिः किरणः, कर्मधा॰। उष्ण किरण। वेपितुह्योर्ह्रस्वश्च। उण् २।५२।

अतूतुजि (सं॰ पु॰) न तुज-कि द्वित्वदीर्घे। कृपण, कञ्जूस।

अतूथ (हिं॰ वि॰) बहुत ऊंचा, निहायत बुलन्द।

अतूर्त (वै॰ त्रि॰) १ अहिंसित, बेचोट। २ खुला। ३ सुस्थिर। (क्ली॰) ४ परिमित स्थान, महदूद जगह।

अतूर्तदक्ष (वै॰ त्रि॰) उन प्रयत्नोंको धारण करनेवाला जो रुक नहीं सकते।

अतूर्तपथिन् (वै॰ त्रि॰) वह मार्ग अवलम्बन करनेवाला जो रुक न सके।

अतूल—अतुल देखो

अतृणाद (सं॰ त्रि॰) न तृणं शष्पादिकमत्तीति, तृण-अद-अण्, नञ्-उपपद। १ तृण न खानेवाला, जो घास न चरे। (पु॰) २ नया उत्पन्न हुआ बछड़ा।

अतृण्या (सं॰ स्त्री॰) तृणका लघु परिमाण, थोड़ी घास।

अतृदिल (वै॰ पु॰) तृद्-किलच्, न तृद्यते बध्यते; नञ्-तत्। पर्वत, पहाड़। (त्रि॰) २ बधके अयोग्य, मारनेके नाक़ाबिल।

अतृप (वै॰ त्रि॰) असन्तुष्ट, आसूदा नहीं।

अतृप्त (सं॰ त्रि॰) असन्तुष्ट, सेर नहीं।

अतृप्ति (सं॰ स्त्री॰) न तृप्तिः सन्तोषः, अभावार्थे नञ्-तत्। असन्तोष, आसूदा न होनेकी हालत।

अतृषित (वै॰ त्रि॰) प्यासा नहीं, लालची नहीं; जिसे प्यास या लालच न हो।

अतृष्णा (सं॰ त्रि॰) तृष्णाका अभाव, लालसाका न होना।

अतृष्ण (सं॰ त्रि॰) जिसे तृष्णा अर्थात् लालच न हो।

अतृष्णज (वै॰ त्रि॰) जो तृष्णा अर्थात् लालचसे उत्पन्न न हुआ हो।

अतृष्णुवत् (वै॰ त्रि॰) सन्तुष्ठ न होनेवाला, जो भोजनसे न छके।

अतृष्यत् (वै॰ त्रि॰) जिसे प्यास न हो।

अतेज (सं॰ त्रि॰) १ जिसमें तेज न हो, धुंधला। २ विना प्रताप, बेरौनक़।

अतेजस् (सं॰ क्ली॰) न तेजः, विरोधार्थे नञ्-तत्। तेजका विरोधी अर्थात् उससे विपरीत कोई द्रव्य। जैसे—छाया, हिम, अन्धकार इत्यादि।

अतेजस्क, अतेजस्विन् (सं॰ त्रि॰) १ चमकीला नहीं, धुंधला। २ सबल नहीं, निर्बल।

अतेजा (सं॰ स्त्री॰) छाया, परछांई।

अतेश-केद, अतिशि-क़ैद—ईरानी कवियोंकी जीवनी। इसपहानवासी हाजी लतीफ़ अली बेगने यह पुस्तक लिखी, जो सन् १७६५ ई॰ में सङ्कलित की गई थी। अतिशि-क़ैदका प्रक्कत अर्थ अग्निमन्दिर है।

अतोनिमित्तम् (सं॰ अव्य॰) इसलिये, इस कारणसे।

अतोर (हिं॰ वि॰) न टूटनेवाला, सुदृढ़।

अतोऽर्थम् (सं॰ अव्य॰) इसलिये, इस प्रयोजनसे।

अतोल (हिं॰ वि॰) १ बेतौल। २ बेअन्दाज़। ३ अनोखा।

अतोषणीय (सं॰ त्रि॰) न सन्तुष्ट या तृप्त होने योग्य, जिसका आसूदा या खुश होना नामुमकिन हो।

अतौल—अतोल देखो।

अत्क (सं॰ त्रि॰) १ यात्रा या सफ़र करता हुआ। (पु॰) २ यात्री, मुसाफिर। ३ अङ्ग, अजो। (वै॰ पु॰) ४ जल, पानी। ५ तरल पदार्थ, पतली चीज़। ६ विद्युत्, बिजली। ७ कवच, बखतर। ८ पुरुष, नर। ९ वस्त्र, पोशाक। १० एक असुरका नाम।

अत्कील (सं॰ पु॰) वैदिक ऋङ्मन्त्रद्रष्टा एक ऋषिका नाम, जो विश्वामित्रके वंशमें उत्पन्न हुए थे।

अत्त—अति देखो।

अत्तवे (सं॰ अव्य॰) अद-तवेङ् तुमर्थे। खानेके लिये।

अत्तव्य (सं॰ त्रि॰) भोजन करने योग्य, खाने क़ाबिल।

अत्ता (सं॰ स्त्री॰) अतति सततं संवध्नाति, अत-तक्। १ माता, मादर। २ सास, पत्नीकी माता।

अत्तार (अ॰ पु॰) गन्धी, इत्रफ़रोश। २ यूनानी दवाफ़रोश।

अत्ति (सं॰ स्त्री॰) अत्यते संवध्यते, अत-क्तिन्। १ माता, मादर। २ नाट्योक्त ज्येष्ठा भगिनी, तमाशेकी बड़ी बहन।

अत्तिकङ्कण—दाक्षिणात्यवाले कुरुओंकी एक प्रशाखा, जो विवाहके समय कलाईमें एक रुईका धागा लपेट लेते हैं।

अत्तिका (सं॰ स्त्री॰) बड़ी बहन या हमशीरा।

अत्तृ (सं॰ पु) अद-तृच्। अत्ता चराचरग्रहणादिति। १ परमेश्वर। (त्रि॰) २ भक्षक, खाजानेवाला। (स्त्री॰) अत्त्री।

अत्ते बक्काल या कुनबी—बम्बई प्रान्तके कणाड़ा प्रदेशकी एक जाति। इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। यह अङ्कोले और येल्लापुरके जङ्गलोंकी घाटियोंमें पाये जाते हैं। अत्ते शब्दका अर्थ बेतका बना एक टोकरा है, जो बोझ ढोनेके काम आता और इसीके अनुसार इनका यह नाम पड़ा है। इनकी भाषा कणाड़ी और कोङ्कणी भाषाके मेलसे बनी है, जिसे कोई भली भांति नहीं समझ सकता। इनके कुलदेवता वेङ्कटरमण हैं, जिनका मन्दिर उत्तर-अरकाटके तिरुपती स्थानमें खड़ा है। जिन लोगोंके कुलदेवता एक हैं, वह एक ही वंशके समझे जाते हैं और उनमें आदान-प्रदान नहीं होता। यह पास-पास बने हुए झोपड़ोंमें रहते हैं, जो डालियों और पत्तियोंसे बनाये जाते हैं। किसी-किसी घरमें बरोठा रहता और सामने एक वृक्ष लगा दिया जाता है, जिससे मालूम होता है, कि गृहस्वामी अपनी जातिका मुखिया है। इनके झोपड़े इतने पास-पास रहते है, कि एकमें आग लगनेसे दूसरेका बचना असम्भव हो जाता है।

यदि कोई एक झोंपड़ा जल गया, तो ये दूसरेके बचानेको इसलिये चेष्टा नहीं करते, कि जब एक जला, तब दूसरा क्यों बाकी बचे तथा एक आदमी सुख और दूसरा दुःख क्यों उठाये। आग बुझ जानेसे सब लोग मिलकर जले हुए झोंपड़े बनानेमें लग जाते हैं। झोंपड़ेमें प्रायः यह सामान रहता है—चटाई, मट्टीके बरतन, बांसकी टोकरी, लकड़ीका मोढ़ा, सूप, खूंटी और चावल कूटनेका मूसल। यह पालेहुए पशुओंका मांस नहीं खाते और शराब पीना या दूसरे नशेके पदार्थोंका खाना बहुत बुरा समझते हैं। ये नम्र और परिश्रमी होते हैं। ये पहले बेंतका काम कर अपनी जीविकाको निर्वाह करते आये हैं; अब पान और इलायचीके खेतोंमें मज़दूरी करते और दोनों समय भोजन और दो आने रोज़ पाते हैं। युवा बालक हबीग ब्राह्मणोंके पशु चराते हैं, जिन्हें प्रति मास एक-दो रुपये और भोजन दिया जाता है। ये अपने लिये खेत नहीं जोतते। ये प्रायः हबीग ब्राह्मणोंसे ऊंचे व्याजपर विवाहका खर्च चलानेके लिये बत्तीससे चौंसठ रुपयेतक ऋण लेते हैं, और जबतक रुपये अदा नहीं होते तबतक अपने महाजनके घरमें केवल भोजनपर काम किया करते हैं। पुरुष, स्त्री और बालक सबेरे सातसे बारह और तीसरे प्रहर दोसे छः बजेतक मज़दूरीमें लगे रहते हैं। पांच आदमी मिलकर पांच रुपयेमें महीने भर अपना निर्वाह करते हैं। इनके मकानमें दश और असबाबमें पांच रुपये खर्च होते हैं। यह अपने कुलदेवता वेङ्कट-रमणको कालीतुलसीके वृक्षके नीचे रखते और तिरुपती तीर्थयात्रा करने जाते हैं। तीर्थयात्री 'दास' कहलाते और उनका बड़ा आदर होता है। बड़ोंके घरमें प्रति वर्ष एक बार वेङ्कटरमणके पूजार्थ 'हरिदिन' अर्थात् विष्णुका एक महोत्सव सम्पन्न किया जाता है। इसके दूसरे देवता मल्लिकार्जुनका मन्दिर गोआमें कोङ्कणपर बना है। नवम्बरमें जब वहां मेला लगता है, तब इनके प्रत्येक भवनसे एक-एक मनुष्य दर्शन करने जाता है। यह अपने पूर्व्वजोंकी भी पूजा करते हैं, जो रसोईके चूल्हेके पास वेदीके उपर एक नारियलमें रहनेको बताये जाते हैं। जून मासमें ये अपने पूर्व्वजोंके सम्मानार्थ भोज देते हैं, जब प्रत्येक वंशका एक-एक व्यक्ति आध सेर चावल, एक नारियल और दो-चार आने पैसे इस कामके लिये ले जाता है। इन्हें भूत-प्रेतोंपर सुदृढ़ विश्वास है। विवाहका समय निर्द्धारित करनेके भिन्न इन्हें दूसरे किसी काममें ब्राह्मण पुरोहितकी आवश्यकता नहीं पड़ती। ये देवलिय यानी अपने मन्त्रशास्त्रियोंसे रोग होनेपर मत लेते, जो इन्हें बताते, कि किस भूतने रोग उपजाया और जो इन्हें रोगशान्ति तथा प्रेत-प्रीतिके लिये बकरे या मुर्गेको बलि चढ़ानेको अनु-मति प्रदान करते हैं। मासमें चार दिन स्त्रियां अशुद्ध समझी जाती हैं और जन्म या मृत्यु होनेसे घरके सब लोग एक दिन अशुद्ध रहते हैं। धोबी इन्हें शुद्ध करते हैं। यह जन्मके चौदहवें दिन बालकका नाम रखते और बड़े लड़केका ही मुण्डन कराते हैं।

इनमें बाल्य-विवाह प्रचलित है। जब कोई अपने लड़केका विवाह करना चाहता है, तब वह अपने सम्बन्धियोंके साथ फूल लेकर किसी चुनी हुई लड़कीके बापसे जाकर मिलता है। इसके बाद वह लड़कीका मूल्य निर्द्धारित कर उसे दो पान और एक सुपारी देता है। इसके बाद लड़केके लोगोंका निमन्त्रण किया जाता है। जब लड़कीकी सगाई हो जाती, तब लड़केका बाप पुरोहितके पास पहुंच चार आने पैसे, एक नारियल और एक सेर चावल देता है और विवाहका शुभमुहूर्त्त पूछता है। इसके बाद मंडप बनता और विवाहसे दो दिन पहले जातिके लोग बुलाये जाते हैं। विवाहके दिन सबेरे मंडपमें तीन दिनका भोजन रखा जाता, जिसका अष्टमांश वेङ्कटरमण देवके लिये केलेके पत्तेपर अलग रहता है। फिर वरपक्षके दो-तीन आदमी कन्याके घर पान-सुपारी लेकर पहुंचते और उसके माता-पितासे कहते हैं, कि वरकी बरात तय्यार है। दूसरे दिन सन्ध्याको भोजनके बाद वरपक्षके दो आदमी कन्याके घर दो पैसे और पान-सुपारीसे भरे दो थाल लेकर जाते और कन्याके पिताको देवताको भेंटके लिये दे

देते हैं। इन थालोंमें आठ-आठ पैसे भी रखे जाते हैं। जब यह सामान वेङ्कटरमणके सम्मुख रख दिया जाता, तब वे आदमी लौट जाते हैं। इसके बाद फिर दो आदमी कन्याके माता-पिताको अङ्गा और चादर देने जाते हैं। पीछे वर और कन्या हलदीके उबटनसे शीतल जलमें स्नान करते और कनारीके गीत गाये जाते हैं। जब स्नान हो जाता है, तब वर-पक्षके लोग वरको छोड़ कन्याके घर कनारी गीत गाते-गाते पहुंचते हैं। कन्याके घर पहुंच वरका बाप बारहसे पचीस रुपयेतक देता है। इसके बाद कन्याका पिता वर-कन्याकी गांठ जोड़ देता है और वरका बाप अपने आदमियों, तथा कन्या और उसके लोगोंके साथ लौट आता है। वरके घर पहुंचनेपर वर और कन्या दोनों एक परदेकी आड़में खड़े किये जाते हैं। इसके बाद परदा हटाया जाता और कन्याका भाई वर और कन्याका दाहना हाथ मिला देता और उनके ऊपर पानी छोड़ता है; मामा वर-कन्याकी गांठ जोड़ता है और मिहमानोंको भोजन कराया जाता है। वर-कन्या भी दिन भर भूखे रह इसी समय भोजन करते हैं। भोजनके बाद कन्या-पक्षके लोग अपने घर वापस जाते हैं, तथा कुछ लोग वरके घर रहते हैं। दूसरे दिन यह रहे हुए लोग वर-कन्याको ले कन्याके घर लौटते और भोजनादिसे सन्तुष्ट हो तीसरे दिन लौटते हैं। जब वर कन्याके घर जाता, तब वह फतुही, अङ्गा, दुपट्टा, रुमाल और खड़ाऊ पहनता है। एक हाथमें वह रङ्गीन रुमाल और नारियल लिये रखता और दूसरेमें एक कटार, दो पान और एक सुपारी रखता है। इसके बाद वेङ्कटरमणका अलग रखा हुआ नारियल तोड़ा और बाकी खाया जाता है। जब कन्या अपनी अवस्थापर आती, तो वह एक महीने और चार दिन अलग रहती है। इसके बाद उसके कुलकी स्त्रियां उसके सम्बन्धी या वरकी दी हुई पोशाक उसे पह-नातीं हैं, उसकी गोद चावल और पान-सुपारीसे भरी जाती और सम्बन्धियोंको भोजन मिलता है। पहले स्त्रीके गर्भवती होनेसे उसके मायके और सासुरेके लोग उसे फूलोंसे सजाते हैं, वह नई पोशाक पहनती और सम्बन्धियों और मिहमानों द्वारा गोदमें डाली हुई मिठाई खाती है।

जब कोई मर जाता, तो सब अत्ते-बक्काल मिल-कर रोने लगते हैं। किसीकी अकालमृत्यु होनेसे ये दूसरे गांवके रक्षककी एक मुर्गी बलि देते हैं, जिससे भूत-प्रेत पास न आयें। इन्हें विश्वास है, कि भूत-प्रेत ही लोगोंको युद्ध, सर्पदंश और जलमें डुबनेसे मार डालते हैं। मृतोंके सम्मानार्थ ये अपनी जातिके लोगोंको भोज देते हैं और जबतक पुत्र या दूसरे सम्बन्धी जीते रहते हैं, तबतक प्रतिवर्ष मृत्युके दशवें और तेरहवें दिन बराबर लोगोंको खिलाते रहते हैं। गांवका मुखिया सामाजिक सिद्धान्त सिखानेके लिये सभा करता और जो नियम-विरुद्ध चलता उसे आर्थिक दण्ड दिया जाता है। मुखियेको अधिकार है, कि वह किसीको भी जातिसे बाहर कर दे। ये अपने लड़के स्कुलमें पढ़नेके लिये नहीं भेजते।

अत्न, अत्नु (सं० पु०) अतति सततमाकाशे भ्रमति, अत-न। १ आदित्य, आफ़ताब। धापृवस्यज्यतिभ्यो नः। उण् ३।६। अतति सततं गच्छति, अत-नु पक्षे नू वा। २ वायु, हवा। (क्लो०) अतति जयपराजयौ अत्र। ३ युद्ध, जङ्ग। (त्रि०) ४ गमनशील, जानेवाला; पथिक, मुसाफ़िर।

अत्य (वै० पु०) अतति शीघ्रं गच्छति, अत-यत् कर्त्तरि। द्रुतगामी अश्व, जल्द जानेवाला घोड़ा।

अत्यंहस् (वै० त्रि०) पापकी पहुंचसे बाहर, जिसमें पाप लग न सके।

अत्यंहस् आरुणि—एक वैदिक शिक्षक। तैत्तिरीय उपनिषत्में लिखा है, कि इन्होंने अपने एक शिष्यको प्लक्ष दय्याम्पतिके पास अग्निवाले सावित्रके विषयमें प्रश्न करने भेजा था। इस धृष्टताके कारण इनके शिष्य बहुत फटकारे गये।

अत्यग्नि (सं० पु०) १ क्षुधाधिक्य, भूखका बढ़ना। २ अग्निमान्द्य, भूखका न लगना। ३ अग्निसे बढ़कर पदार्थ, आगीसे अच्छी चीज़।

अत्यग्निष्टोम (सं० पु०) अतिक्रान्तोऽग्निष्टोमम्,

अतिक्रा०-तत्। यज्ञविशेष, एक प्रकारका यज्ञ। अग्निष्टोमसे अत्यग्निष्टोम यागका फल अधिक है।

अग्निष्टोम देखो।

अत्यग्निसोमार्क (सं० त्रि०) अग्नि, चन्द्र तथा सूर्यसे अधिक देदीप्यमान्; आग, चांद, और सूरजसे ज्यादा चमकीला।

अत्यङ्कुश (सं० पु०) अतिक्रान्तोऽङ्कुशं अङ्कुशा घातम्। जो हाथी अङ्कुशाघातको अग्राह्य कर अपने इच्छानुसार भागता फिरे, दुर्दान्त हस्ती, बदमाश हाथी।

अत्यङ्गुल (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं अङ्गुलिं तत्परिमाणम्। अङ्गुलिपरिमाणसे अधिक, अंगुल भरसे ज्यादा।

अत्यद्भुत (सं० त्रि०) अत्यन्त आश्चर्यजनक, निहायत तअज्जुबअङ्गेज़, बहुत ही अनोखा।

अत्यध्व (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं अध्वानम्, क्रान्तादि अच् स०। उपसर्गादध्वनः। पा ५।४।८५। १ अतिक्रान्त पथ, राह लांघे हुए। २ पथ अतिक्रमकारी, राह लांघनेवाला, राहपर न चलनेवाला।

अत्यध्वन् (सं० पु०) सुपथन्, सुन्दर पथ; भली राह, अच्छी सड़क।

अत्यनिल (सं० पु०) वायुसे बढ़कर द्रव्य, हवासे सबकत ले जानेवाली चीज़।

अत्यन्त (सं० क्ली०) अतिक्रान्तं अन्तं सीमानम्, अतिक्रा०-तत्। १ अतिशय, ज़ियादती, बहुतायत। (त्रि०) २ अतिरिक्त, अधिक; बहुत ज्यादा।

अत्यन्तकोपन (सं० त्रि०) अत्यन्तं भृशं कुप्यति, अति-कुप्-ल्युट्। अतिक्रोधी, अत्यन्तकोपान्वित, प्रचण्ड, निहायत गुस्सावर।

अत्यन्तग (सं० त्रि०) बहुत चलने या जल्द जानेवाला।

अत्यन्तगत (सं० त्रि०) अत्यन्त योग्य, निहायत माकूल, बहुत ही फबता हुआ, बहुत गठा हुआ।

अत्यन्तगति (सं० स्त्री०) अतिशय पूर्णत्व, पूरा कमाल, तीव्र गमन।

अत्यन्तगामिन् (सं० त्रि०) अत्यन्तं अतिशयं गच्छति, गम-णिनि कर्त्तरि। अतिशय गमनशील, बड़ा चलनेवाला।

अत्यन्तगुणिन् (सं० त्रि०) अतिशय गुणी, अनोखी सिफत रखनेवाला।

अत्यन्ततिक (सं० त्रि०) अत्यन्तं तकति गच्छति, अत्यन्त-तिक-क। अतिशयगामी, बड़ा ही चलनेवाला।

अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि (सं० स्त्री०) भाषाकी नीच बतानेवाली उपमासम्बन्धीय नियुक्ति।

अत्यन्तनिवृत्ति (सं० स्त्री०) अतिक्रान्ता अन्तं नाशं अत्यन्ता, सा चासौ निवृत्तिश्चेति; अतिक्रा०-तत्, गर्भ कर्मधा०। स्त्रियाः पुंवदित्यादि। पा ६।३।३४। मोक्षावस्था, जिस अवस्थामें दुःखका बोध न रहे।

"यस्याभावः स एव प्रतियोगी।"

जिस वस्तुका अभाव होता, वह वस्तु उसी अपने अभावकी प्रतियोगी रहती है। जैसे—'घटका अभाव' कहनेसे घट ही उस अभावका प्रतियोगी बन जाता है। प्रकृत स्थलमें जिस निवृत्तिके रहनेसे स्वप्रतियोगिजातीय अन्य किसी वस्तुकी पुनर्वार उत्पत्ति नहीं होती, उसीको अत्यन्तनिवृत्ति कहते हैं—

"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।" (सांख्यसूत्रम्)

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीन प्रकारके दुःखोंकी निवृत्ति ही पुरुषका अत्यन्त प्रयोजन है। फिर, इन्हीं दुःखोंकी निवृत्ति मोक्षावस्थामें हुआ करती है। क्योंकि, मोक्षावस्थामें विवेक द्वारा मायाकी निवृत्ति होनेसे उसके कार्य दुःखादिका समूलोच्छेद हो जाता है। इसलिये ऐसी अवस्थामें पुनर्वार दुःखोत्पत्ति न होनेसे दुःखकी अत्यन्त-निवृत्ति होती है।

अत्यन्तपद्मा (सं० स्त्री०) १ कमलिनी। २ कमलसे अच्छा फूल।

अत्यन्तपीड़न (सं० क्ली०) अतिशय क्लेश पहुंचानेका कार्य, निहायत तकलीफ देनेका काम।

अत्यन्तभाव (सं० पु०) चिरकाल बना रहनेवाला भाव, वह भाव जो कभी न मिटे।

अत्यन्तवासिन् (सं० पु०) सदा गुरुके समीप निवास करनेवाला ब्राह्मण-छात्र, वह ब्राह्मण जो हमेशा उस्तादके पास शागिर्दकी तरह बना रहे।

अत्यन्तशोणित (सं० त्रि०) १ अतिशयरक्त, बहुत

लाल। (क्ली०) २ अधिक रुधिर, ज्यादा खून। ३ सुवर्णगैरिका।

अत्यन्तसंयोग (सं० पु०) अत्यन्तेन साकल्येन संयोग: सम्बन्ध:। अन्तमवसानमतिक्रान्त: संयोगो वा (वाचम्)। कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे। पा २।३।५। १ निरवच्छिन्न सम्बन्ध। २ व्याप्ति; मौजूदगी।

अत्यन्तसम्पर्क (सं० पु०) अतिशय सहवास, ज्यादा एकसाथका रहना।

अत्यन्तसुकुमार (सं० पु०) १ वृक्षविशेष, अकरा। (त्रि०) २ अतिशय कोमल, निहायत नाज़ुक।

अत्यन्ताभाव (सं० पु०) अतिक्रान्त: अन्तं नाशं सीमानं वा अत्यन्त:, स चासौ अभावश्चेति; अतिक्रा०-तत्, गर्भ-कर्मधा०। पूर्ण नास्तित्व, बिलकुल नामौजूदगी। "नित्यत्वे सति तादात्म्यसम्बन्धानवच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभावत्वं अत्यन्ताभवत्वम्"।

(१) उत्तरकालानवस्थायिनि प्रागभावे पूर्वकालानवस्थायिनि ध्वंसे च अतिव्याप्तिवारणाय 'नित्यत्वे सति' इति। नित्यत्वञ्चात्र सर्वकालस्थायित्वम्।

(२) अन्योन्याभावे अतिव्याप्तिवारणाय तादात्म्यसम्बन्धानवच्छिन्नप्रति-योगिताकत्वमिति विशेषणम्।

(३) घटादिरूपप्रतियोगिसत्त्वकाले तदनधिकरणदेशे च 'अत्र घटो नास्ति' इत्यादि व्यवहारोपपत्तये अत्यन्ताभाव आवश्यक:।

(४) तस्य ध्वंसप्रागभावौ तु प्रतियोगिसत्त्वकाले प्रतियोग्यनधिकरणदेशे च न वर्त्तेते। किन्तु प्रतियोगिन: पूर्वकाले प्रागभाव: उत्तरकाले तु ध्वंसस्तिष्ठति।

(५) अन्योन्याभावेन तु तादृशव्यवहार उपपादयितुं न शक्यते। यस्मात् घटसत्त्वकाले घटादिभेदवति घटाद्यधिकरणे अत्र घटो नास्तीति व्यवहार आपद्येत। अन्योन्याभावस्तु घटाद्यधिकरणदेशे वर्त्तते।

अत्यन्ताभाव उस अभावको कहते हैं, जिसमें नित्यकालस्थायी और तादात्म्य-सम्बन्धावच्छिन्न प्रति-योगिता न हो, किन्तु अन्यसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगिता विद्यमान रहे। यह बात आगे लिखी जाती है, कि प्रतियोगिता और अवच्छिन्नत्व किसको कहते हैं,—

नैयायिकोंके मतमें कितने ही अभाव होते हैं। उन्होंने पहले संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव—यह दो प्रकारके भेद दिखाके, पीछे संसर्गाभावको तीन रूपमें विभक्त किया है। यथा,—१ प्रागभाव, २ ध्वंसाभाव, ३ अत्यन्ताभाव। किसी वस्तुके उत्पन्न होनेसे पूर्व जो अभाव रहता है, उसे प्रागभाव कहते हैं। वस्तुका नाश होनेसे जो अभाव उत्पन्न हो, वह ध्वंसाभाव कहाता है। किसी वस्तुमें उसी वस्तुका जो अपना सम्बन्ध है, वही तादात्म्यसम्बन्ध समझना चाहिये; जैसे पशुमें पशु और मनुष्यमें मनुष्य तादात्म्य-सम्बन्धसे रहता है। जिस वस्तुका अभाव होता है, उसी वस्तुको प्रतियोगी कहते हैं। जैसे, जिस स्थलमें घटका अभाव रहता, उस स्थलमें घट ही उस अभावका प्रतियोगी है। प्रतियोगी होनेका धर्म प्रतियोगिता है। वस्तु न रखनेवाले सम्बन्धके साथ प्रतियोगितारूप जो धर्म होता, वह अवच्छिन्नत्वरूप सम्बन्ध माना जाता है। अभावमें प्रतियोगिता निरूपकत्व सम्बन्धसे रहती है।

नैयायिक 'अत्यन्त-अभाव' शब्दका प्रकृत तात्पर्य अबाध रूपसे समझानेके लिये इसमें 'नित्य,' 'तादात्म्य-सम्बन्धरहित' और 'प्रतियोगी'—यह कई एक विशेषण लगाया करते हैं। अर्थात् जो अत्यन्त अभाव कहाता, वह कैसा है?—वह अभाव नित्य है। फिर वह कैसा है?—उस अभावमें तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न कोई प्रतियोगिता नहीं। यह कई एक विशेषण न रहनेसे कितना ही गड़बड़ पड़ जाता है। जैसे, अत्यन्त अभावको नित्य न कहनेसे इसके लक्षणमें प्रागभाव और ध्वंसाभाववाले लक्षणके साथ गड़बड़ पड़ता है। तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न प्रतियोगितारूपसम्बन्ध-रहित न कहनेसे अन्योन्याभावके साथ विरोध होता है।

इस समय यह आपत्ति दिखाई जा सकती कि अत्यन्ताभाव न माननेसे क्या क्षति है? नैयायिक कहते हैं,—इस स्थानमें घट नहीं—इसप्रकार वाक्य स्थिर रखनेके लिये अत्यन्ताभाव आवश्यक है। एक स्थानमें एक घट रहनेसे जिस स्थानमें वह नहीं होता, वहां उसी घटका प्रागभाव किंवा ध्वंस भी नहीं। इसीसे वहां अत्यन्ताभावको स्वीकार करना पड़ता है।

अत्यन्तिक (सं० त्रि०) अत्यन्तं अतिशयं गच्छतीति, अत्यन्त-ठन्। १ अतिशयभ्रमणकारी, बहुत घूमनेवाला। २ निकटस्थ, पासका। अतिक्रान्त-

मन्तिकं येन, बहुव्री०। ३ दूरवर्त्ती, दूर। (क्ली०) अतिशयितं अन्तिकं निकटं, प्रादि-स०। ४ अत्यन्त निकट, बहुत कमदूरी। अतिक्रान्तं अन्तिकं निकटं। ५ अतिक्रान्त सामीप्य, दूर।

अत्यन्तीन (सं० त्रि०) अत्यन्तस्यात्ययः अत्यन्तं अत्यये अत्ययो०। अवारपारात्यन्तानुकामं गामी। पा ५।२।११। अत्यन्तगामी, अज़हद चलनेवाला।

अत्यमर्षिन् (सं० त्रि०) अत्यन्त क्रुद्ध, निहायत गुस्सावर।

अत्यम्बुपान (सं० क्ली०) मात्रातिरिक्त जल पान, अज़हद आबनोशी, अपरिमित रूपसे पानीका पीना। जलपानके विषयमें लिखा है,—

"अत्यम्बुपानान्न विपच्यतेऽन्नं अनम्बुपानाच्च स एव दोषः।
तस्मान्नरो वह्निविवर्द्धनार्थं मुहुर्मुहुर्वारि पिबेदभूरि॥" राजनिघ०।

बहुत पानी पीनेसे भोजन नहीं पचता और यही पानी न पीनेसे भी होता है। इसलिये मनुष्यको भूख बढ़ानेके लिये थोड़ा-थोड़ा पानी बार-बार पीना चाहिये अर्थात् एकबारगी अधिक जल न पीये।

अत्यम्ल (सं० पु०-क्ली०) अत्यन्तमतिशयितोऽम्लरसो यस्य फलादौ, बहुव्री०। १ इमलीका वृक्ष। (त्रि०) २ अत्यन्त अम्लरसविशिष्ट, निहायत खट्टा।

अत्यम्लपर्णी (सं० स्त्री०) अत्यम्लानि पर्णानि पत्राणि यस्याः, बहुव्री०। १ वल्लिशूरण लताविशेष। २ अम्ललोनी, खट्टी चौपतिया। इस बेलमें गोल-गोल खट्टेरसके चार चार पत्ते एक-एक जगहमें लगे रहते हैं। इसके गुण यह हैं,—

"अत्यम्लपर्णी तीक्ष्णाम्ला प्लीहशूलविनाशिनी।
वातश्लेष्मापनी रुच्या गुल्मश्चामयापहा॥" राजनिघ०।

अत्यम्ला (सं० स्त्री०) बिजौरा नीबू।

अत्यय (सं० पु०) अति-इण्-अच्। एरच्। पा ३।३।५६। १ अतिक्रम, ज़ियादती। २ अभाव, नामौजूदगी। ३ विनाश, मटियामेट। ४ दोष, ऐब। ५ कृच्छ्र, दुःख; तकलीफ़, मुसीबत। ६ दण्ड, सज़ा। ७ अतिक्रमकारी गमन, लांघनेवाली चाल। ८ कार्यका अवश्य भावाभाव, कामकी ज़रूरी मौजूदगी या नामौजूदगी।

अत्ययिक, आत्ययिक (सं० त्रि०) क्षणकालस्थायी, अवसरसम्बन्धीय; गैरमुदामी, मौक़ेका।

अत्ययिन् (सं० त्रि०) १ गमन करते हुए, जाते हुए। २ सबक़त ले जानेवाला, जो आगे निकल जाये।

अत्यराति (सं० पु०) जनन्तपके एक पुत्रका नाम। ऐतरेय ब्राह्मणके २३ वें अध्यायमें लिखा है, कि यद्यपि अत्यराति राजा न थे, तथापि वाशिष्ठ सत्यहव्यने इन्हें राजसूयकी शिक्षा दी थी, जिससे इन्होंने पृथिवीको विजय किया। किन्तु जब वाशिष्ठने इन्हें कृतज्ञताका स्मरण दिलाया और एक बृहत् पुरस्कार मांगा, तब इन्होंने कहा, कि इनका विचार उत्तर कुरु जीतनेका था, जिसके बाद वाशिष्ठ राजा और यह उनके सेनापति बनते। वाशिष्ठने उत्तर दिया, कि किसी मर्त्यके उत्तरकुरुको न जीत सकनेसे उन्हें उनके पुरस्कार-सम्बन्धमें धोका दिया गया था। इसलिये उन्होंने अमित्रतपन सुसमिण सैव्यके हाथों इन्हें हरा, मरवा डाला।

अत्यर्क (सं० पु०) शुक्लार्क वृक्ष, सफ़ेद आक या अकौड़ा।

अत्यर्थ (सं० क्ली०) अतिक्रान्तमर्थं अनुरूपस्वरूपम्, अतिक्रा०-तत्। १ अतिशय, ज़ियादती, बहुतायत। (त्रि०) २ सातिशय, बहुत ज़्यादा। (अव्य०) ३ बहुतायतसे।

अत्यल्प (सं० त्रि०) अतिशयितमल्पम्, प्रादि-तत्०। १ यत्किञ्चित्, अतिसूक्ष्म, नितान्त अल्प; बहुत थोड़ा, निहायत कम।

अत्यशन (सं० क्ली०) अतिशयितमशनं भोजनम्, प्रादि-तत्०। अधिक भोजन, अतिभोजन, ज़्यादा गिज़ा।

अत्यवि (वै० पु०) १ साफ़ी या छन्नेके भीतरसे निकास। २ सोमरस।

अत्यष्टि (सं० स्त्री०) अतिक्रान्ता अष्टिं षोडशाक्षरपादिकां वृत्तिम्, अतिक्रा०-तत्। सत्रह अक्षरविशिष्ट छन्दोविशेष, सत्रह हर्फ़का छन्द। अष्टिवृत्तिमें सोलह अक्षर होते हैं, अत्यष्टिवृत्तिमें उसकी अपेक्षा एक अक्षर अधिक रहता है। निम्नलिखित कई एक छन्द इसीके अन्तर्गत हैं,—मन्दाक्रान्ता, भाराक्रान्ता,

मालाधर, पृथिवी, शिखरिणी और हरिणी इत्यादि।

अत्यसम (सं० त्रि०) बहुत ऊंचा-नीचा, निहायत नाहमवार।

अत्यहम् (सं० त्रि०) मुझसे बढ़कर, मुझसे अफ़ज़ल।

अत्यह्न (सं० त्रि०) १ एकदिनसे समयमें अधिक, एक रोज़से वक़्तमें ज़्यादा। २ दिनसे भी बढ़कर।

अत्याकार (सं० पु०) अतिशयेन आकारः, अति-आ-क्ल-घञ्। १ तिरस्कार, बेइज़्ज़ती। २ अपयश, बदनामी। अतिशयित आकारः शरीरम्, प्रादि-तत्। ३ प्रकाण्ड शरीर, लम्बा-चौड़ा जिस्म। (त्रि०) अतिशयित आकारः शरीरं यस्य, बहुव्री०। ५ दीर्घाकार, वृहत्कलेवरविशिष्ट; कद्दावर।

अत्याग (सं० पु०) न त्याग, त्यज-घञ्; अभावार्थे नञ्-तत्। त्यागाभाव, ग्रहण, न छोड़ना।

अत्यागिन्, अत्यागी (सं० त्रि०) न-त्यज-घिनुन्। जो कर्मकी फलाकाङ्क्षा रखके कर्मानुष्ठान करे, त्यागिभिन्न; फ़ायदा उठानेकी तबीयतसे काम करनेवाला, त्याग न करनेवाला, न छोड़नेवाला।

अत्याचार (सं० पु०) नियमातिक्रान्त आचारः, प्रादि-स०। १ आचार—सदाचारका उल्लङ्घन, अन्याय; ज़्यादती, ज़ुल्म। २ असङ्गत आचरण, बुरा चलन। ३ यथेच्छाचरण, पाखण्ड।

अत्याचारी (सं० त्रि०) १ अत्याचार करनेवाला, ज़ालिम। २ ढोंगी, पाखण्डी।

अत्याज्य (सं० त्रि०) न-त्यज अर्हे ण्यत्, न कुत्वम्। त्यजिपूज्योश्च। (काशिका०) त्यजेरुपसंख्यानम्। (पतञ्जलिः) अत्यजनीय, त्यागकरनेके अयोग्य, जो छोड़ा न जा सके।

अत्यादर (सं० पु०) अतिशय मान, ज़्यादा इज़्ज़त।

अत्यादान (सं० त्रि०) अतिक्रान्तं आदानम्, अतिक्रा० तत्। १ आदान-अतिक्रान्त, बहुत ज़्यादा लेनेवाला। (क्ली०) अतिशयितमादानम्, प्रादि-स०। २ अत्यन्त आदान, बहुत ज़्यादा ले लेनेकी हालत।

अत्यादित्य (सं० त्रि०) १ सूर्यसे बढ़कर, आफ़ताबसे अफ़ज़ल। २ सूर्यमन्डलको भी उल्लङ्घन करके जानेवाला योगीश्वर।

अत्याधान (सं० अव्य०) १ अग्न्याधानके अतिक्रमसे। अति-आ-धा-ल्युट्, अतिशयितमाधानम्। (क्ली०) २ ऊपर स्थापन, ऊपरका रखना। ३ अतिक्रमण, लांघ जाना। ४ सम्बन्धमात्र। ज्येष्ठमतिक्रम्य आधानम्, अतिक्रा०-तत्। ५ ज्येष्ठको अतिक्रम कर अग्न्याधान, ज्येष्ठका अग्न्याधान न होते कनिष्ठका अग्न्याधान। यह व्यवहार अत्यन्त शास्त्र-गर्हित है,—

"अग्रजोऽस्य यदानग्निरधिकार्योऽनुजः कथम्।
अग्रजानुमतः कुर्यादग्निहोत्रं यथाविधि॥"

अत्यानन्दा (सं० स्त्री०) कफजन्य-योनिरोग-विशेष। इस रोगके होनेसे स्त्री ग्राम्यधर्मसे सन्तोष नहीं पाती, यानी कितने ही सहवाससे भी वह सन्तुष्ट नहीं होती। अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण विन्दति। (भावप्र०)

अत्याप्ति (सं० स्त्री०) पूर्ण विज्ञप्ति, पूरी पहुंच।

अत्याय (सं० पु०) अति-इण्-ण्। १ अतिक्रम, कसरत। २ अत्यन्तलाभ, अज़हद फ़ायदा। (त्रि०) अतिक्रान्त आयम्, अतिक्रा०-तत्। श्याद्व्यधास्रुसंस्रुतीण्वसावहृलिहश्लिषश्वसश्च। पा ३।१।१४१। ३ बड़े लाभका, निहायत फ़ायदेमन्द।

अत्यायु (सं० क्ली०) अति-आ-या-कु। १ यज्ञीय पात्र-विशेष, एक खास बरतन जो यज्ञमें काम आता है। २ अधिक आयुका पुरुष, वृद्ध।

अत्यारक्ता (सं० स्त्री०) जवापुष्पवृक्ष, चमेली।

अत्यारूढ़ि (सं० स्त्री०) अति-आ रुह-क्तिन्। १ अतिशय आरोहण, अज़हद चढ़ाव। २ अतिशय विख्याति, अज़हद नामवरी,—

"अत्यारूढ़िर्भवति महतामप्यपभ्रंशहेतुः।" (शकु०)

अत्याल (सं० पु०) अति-आ-अल् अच्, अतिशयेन अलति अचिरेण समन्तात् पर्याप्नोति। रक्तचित्रक, लालचित्रक। यह सदावसन्ती भाड़ी शिकम और खसियाकी उपत्यकाओंमें स्वतन्त्रभावसे उत्पन्न होती है। इसकी जड़ पीस कर लगानेसे शरीरपर फफोले

पड़ जाते हैं। दक्षिणमें लोग कहते हैं, कि यह कुष्ठका भी अपूर्व महौषध है।

अत्याशा (सं० स्त्री०) अतिशयिता आशा, प्रादि-स०। १ अतिशय आशा, अत्यन्तस्पृहा, धनादिकी जो लिप्सा पूरी न की जाये; अज़हद उम्मीद, निहायत ज़्यादा तमन्ना। (त्रि०) २ आशा अतिक्रान्त, उम्मीदसे ज़्यादा।

अत्याश्रम (सं० त्रि०) अतिक्रान्तः सर्वाश्रमान्, अतिक्रा०-तत्। १ सकल आश्रमत्यागी, सन्यासी; सब आश्रमोंको छोड़ देनेवाला। (पु०) अतिशयितः श्रेष्ठ आश्रमः प्रादि-स०। २ उत्कृष्ट आश्रम, सन्यास।

अत्याहार (सं० पु०) अतिभोजन, बहुत खाना।

अत्याहारिन् (सं० त्रि०) अति-आ-हृ-णिनि कर्त्तरि। अतिभोजी, बहुत खानेवाला।

अत्याहित (सं० क्ली०) अति-आ-धा-क्त आधारे, अतिशयेन आधीयते तन्निवारणार्थं मनः प्रयुज्यतेऽस्मिन्निति। १ अतिशय भय, महाभीति; बहुत डर, अज़हद खौफ़। २ जीवनापेक्षी कर्म, जीवनाशारहित साहसिक कर्म्म, जांबाज़ी।

अत्युक्त (सं० त्रि०) अतिशय वर्णित, बहुत कहा गया।

अत्युक्ता (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष, चार पद और प्रत्येक पदमें दो वाक्यखण्ड रखनेवाला छन्द; वह बहर जिसमें चार शेर और हरेक शेरके दो टुकड़े होते हैं।

अत्युक्ति (सं० स्त्री०) अति-वच्-ब्रू वा क्तिन्, अतिशयेन उक्तिः। १ असम्भव उक्ति, गैरमुमकिन सखुन। २ अन्याय कथा, बेजा बात। ३ अतिशय उक्ति, बहुत बढ़ी हुई बात। ४ आरोपित कथन, ऊटपटांग बोली। ५ अलङ्कार-विशेष, जिसमें किसी वस्तुका वर्णन अनोखी रीतिसे करते हैं।

अत्युकथा, अत्युक्ता (सं० स्त्री०) अतिक्रान्ता उक्तां एकाक्षरपादिकां वृत्तिम्, अतिक्रा०-तत्। दो अक्षर ग्रथित छन्दोविशेष, दो हर्फ़ोंवाली खास बहर।

अत्युग्र (सं० त्रि०) १ अत्यन्त भयानक, निहायत खौफ़नाक। २ अतिशय तिक्त, निहायत कड़ुवा। (क्ली०) ३ हींग।

अत्युग्रगन्धा (सं० स्त्री०) कृष्णगोकर्णी, कृष्णापराजिता, अजमोदा।

अत्युच्चैः (सं० अव्य०) अत्यन्त उच्चस्वरसे, निहायत बुलन्द आवाज़में, बहुत ज़ोरसे चिल्लाकर।

अत्युच्चैर्ध्वनि (सं० पु०) अत्यन्त उच्च स्वर, निहायत बुलन्द आवाज़।

अत्युच्छ्रित (सं० त्रि०) अतिशयितमूच्छ्रितम् उन्नतम्। अत्यन्त उन्नत, बहुत ऊंचा।

अत्युत्कट (सं० त्रि०) अतिशयेन उत्कटम्। अतिशय उग्र, निहायत खौफ़नाक।

अत्युत्साह (सं० पु०) अत्यन्त पराक्रम या कर्त्तृत्व, अज़हद कारगुज़ारी, बड़ी हिम्मत।

अत्युदार (सं० त्रि०) अत्यन्त मुक्तहस्त, सखी, बहुत ज़्यादा खर्चीला, दाता।

अत्युदीर्ण (सं० स्त्री०) १ दुष्टव्यधन-विशेष, वह घाव या ज़ख्म जो हथियार मारनेसे होता है। २ बहुत बढ़ा हुआ।

अत्युपध (सं० त्रि०) १ परीक्षित, आज़माया। २ विश्वास-योग्य, एतबारके क़ाबिल।

अत्युमशा, अत्यूमसा (सं० अव्य०) हिंसाद्योतक अव्ययविशेष।

अत्युल्वण (सं० त्रि०) १ अत्यन्त प्रकट, निहायत ज़ाहिर। २ अधिक, कसीर, ज़्यादा, बड़ा, भारी।

अत्युष्ण (सं० त्रि०) अत्यन्त उत्तप्त, बहुत गर्म।

अत्यूर्मि (वै० त्रि०) उमड़ता हुआ, जिसमें बड़ी भारी ऊर्मि—लहरें उठती हों।

अत्यूह (सं० पु०) अति-ऊह-अच्-वितर्कें, अतिशयेन ऊहते शब्दायते। १ जो बड़े ज़ोरसे चिल्लाये; मयूर, मोर। प्रादि-स०। २ अतिशय वितर्क, अज़हद खयाल। ३ हरसिंगार। ४ सेवती।

अत्यूहा (सं० स्त्री०) अति-ऊह-अच्-टाप्-स्त्रीत्वात्। नील शेफालिका, नीले रंगका संभालू।

अत्र (सं० अव्य०) अस्मिन् एतस्मिन् वा इदं एतद् वा। सप्तम्यास्त्रल्। पा ५। ३। १०। १ इस विषयमें, इस मामलेके मुतअल्लिक़। २ इस स्थानमें, इस जगह, यहां। ३ इस समय, इस वक़्तपर। (वै० पु०) ४ राक्षस,

आदमखोर। ५ भोजन, खुराक। (त्रि०) ६ अरक्षित, वेपनाह। (हिं० पु०) ७ अस्त्र, हथियार।

अत्रक (सं० त्रि०) १ इस स्थानका, यहांवाला। २ सांसारिक, दुनियावी।

अत्रत्य (सं० त्रि०) इस स्थानका, इस जगह रहनेवाला।

अत्रदघ्न (सं० त्रि०) १ इतने ऊपर पहुंचनेवाल। २ ऐसे या वैसे कदका।

अत्रप (सं० त्रि०) न-त्रपूष-अङ्, नास्ति त्रपा लज्जा यस्य। षिद्भिदादिभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४। निर्लज्ज, लज्जारहित, जिसके लज्जा न हो; बेशर्म, बेलिहाज, जिसको कोई शर्म नहीं।

अत्रभवत् (सं० त्रि०) अयमित्यर्थे, अत्र प्रथमार्थे त्रल्। कर्म्मधा०। इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते। पा ५।३।१४। पूज्य, श्लाघ्य, मान्य; इज्जतदार, तौकीरपिजीर।

अत्रयस् (सं० पु०) अत्रिके वंशज, अत्रिकी औलाद।

अत्रवस् (वै० पु०) विगत वर्ष, बीताहुआ वर्ष, परका साल।

अत्रस्त (सं० त्रि०) न त्रस्तम्, त्रस्-क्त। १ भयरहित, बेखौफ। २ व्यस्तताविहीन, न डरा हुआ।

अत्रस्थ (सं० त्रि०) इस स्थानमें ठहरनेवाला, इस जगहका।

अत्रास (सं० पु०) न त्रासः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ भयका अभाव, निडरपन, बेखौफी। (त्रि०) नास्ति त्रासोयस्य, नञर्थे बहुव्री०। २ निर्भय, बेखौफ, जिसे कोई डर नहीं।

अत्रि (सं० पु०) अद्-त्रिप्, अत्ति अग्नेः सहायतया शत्रून् भक्षयति। अदेस्त्रिन्। उण् ४।६८। १ अग्निकी सहायतासे शत्रुओंको भक्षणकरनेवाला, भक्षक। २ कितने ही वैदिक मन्त्र बनानेवाले एक बड़े ऋषि।

अत्रि सप्तर्षियोंके मध्य एक ऋषि थे। सातो ऋषियोंके नाम यह हैं,—१ मरीचि, २ अत्रि, ३ अङ्गिरा, ४ पुलस्त्य, ५ पुलह, ६ क्रतु, ७ वशिष्ठ।

"मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा वशिष्ठश्चे ति सप्त ते॥"

कहते हैं, कि अत्रि ब्रह्माके चक्षुसे उत्पन्न हुए थे। इनकी भार्या कर्दम मुनिकी कन्या अनुसूया थीं। इनके पुत्रोंका नाम दत्त, दुर्वासा और चन्द्र था। इन्होंने कितने ही वेद-मन्त्रोंकी रचना की थी।

मनुसंहिताके प्रथम अध्यायमें लिखा है, कि सृष्टिकर्त्ताने अपनी देहके दो खण्ड कर एक अंशसे एक पुरुष और एकसे एक नारी बनाई थी। उसी विराट् पुरुषने बहुकाल तपस्याकर मनुको उत्पन्न किया। इसके बाद मनुसे दश प्रजापति हुए। अत्रि इन्हींमें एक प्रजापति थे,—

"मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वशिष्ठञ्च भृगुं नारदमेव च॥" (मनु १।३५।)

किन्तु महाभारतके शान्तिपर्व्व और अन्यान्य स्थलमें लिखा है, कि ब्रह्माने पहले सप्तर्षियोंको उत्पन्न किया था। अत्रि उन्हींमें एक ऋषि थे।

अत्रिने ऋग्वेदके कितने ही मन्त्रोंकी रचना की थी। (ऋग्वेद ३ अष्टक—५७से ११४ सूक्त।) ऋग्वेदके किसी-किसी स्थानमें यह अग्नि, इन्द्र, अश्विनीकुमारद्वय और विश्वदेवगणके नामान्तररूपसे बताये गये हैं। ऋग्वेदके किसी-किसी वर्णनमें ऐसा भी देख पड़ता, कि इनको ऋषि या अग्नि समझना कठिन है। यथा,—

"याभिः शुचंतिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावंतमत्रये।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतं॥"
ऋग्वेद १।११२।७।

जिस साहाय्य द्वारा आपने शुचन्तिको धनवान् बनाया और सुन्दर वासस्थान दिया तथा सूर्यकिरणसन्तप्त घर्म भी अत्रिके लिये सुखप्रद कर दिया, जिसके द्वारा पृश्निगु और पुरुकुत्सको उनके साथ अवस्थिति करनेके लिये रखा, हे अश्विनीयुगल! आप इच्छापूर्वक उसी साहाय्यसे आगमन कीजिये।

इस जगह सायणाचार्यने अत्रिको एक स्वतन्त्र ही व्यक्ति माना है। किन्तु यास्कके मतसे यहां अत्रिका अर्थ हविर्भुक् अग्नि है। यथा,—

"अत्रये हविषामत्रेऽग्नये हविरुत्पच्यर्यं सूर्यकिरणसन्तप्तं धर्म्मं नैदाघ-महरोम्यावन्तं तृप्तिहेतुवृष्ट्युदकोपेतं क्वतान्ताविति योज्यं।"

ऋग्वेदके स्थान-स्थानमें अत्रि स्वतन्त्र ऋषि भी बताये गये हैं,—

"दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अंगिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः।" ऋग्वेद १।१३९।९।

दध्यङ्, प्राचीन अङ्गिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि और मनुने हमारा पुरुच्छेप जन्म समझ लिया था।

वेदके किसी-किसी स्थानमें अत्रि 'ऋषिपाञ्चजन्यम्' के भी नामसे पुकारे गये हैं,—

"ऋषिं नरावंहसः पांचजन्यमृबीसादत्रिं मुंचथो गणेन।
मिनंता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयंता॥"

ऋग्वेद १।११७।३।

हे (यज्ञ) नेतृद्वय! (अश्विनीकुमारयुगल!) आपने पञ्चजातिवाले लोगोंके पूजनीय अत्रि ऋषिको उनके सन्तानगण सहित—शत्रु हनन और दुर्वृत्त दस्युओंकी माया भेद कर छुड़ा दिया था।

अब देखना चाहिये, कि 'पाञ्चजन्य' कौन थे। यास्कने लिखा है,—"कोई-कोई कहते हैं, कि 'पाञ्चजन्य' शब्दका अर्थ (पञ्चश्रेणीके जीव) गन्धर्वगण, पितृगण, देवगण, असुरगण और राक्षसगण है। औपमन्यव बताते हैं, कि चार जाति और निषाद-को पञ्चमजाति मान 'पाञ्चजन्य' गिने गये हैं।" किन्तु ऋग्वेदके कितने ही स्थलोंमें अणु, द्रुह्यु, पुरु, तुर्वश और यदु—इन्हीं पांच लोगोंके नाम मिलते है,—

"यदिंद्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद्द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य॥"

१।१०८।८।

यदि, हे इन्द्र और अग्नि! आप यदुगण, तुर्वश-गण, द्रुह्युगण, अनुगण और पुरुगणके मध्य हों, तो सर्वस्थानसे यहां आइये और उथलित सोमरसको पान कीजिये।

इस जगह अनु, द्रुह्यु प्रभृति पांच व्यक्तियोंके वंश-धरगण मालूम पड़ते हैं। इस तर्कसे यही विदित होता है, कि एक वंशोद्भव होनेपर भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके वंशधरगण नाना शाखाओंमें बंटनेसे धीरे-धीरे भिन्न-भिन्न जातिरूपमें गिने जाते थे। इसलिये पञ्चजातिके लोगों द्वारा पूजित होनेसे यही समझ पड़ता है, कि अत्रि अनु, पुरु प्रभृति वंशधरगणके निकट अतिशय सम्भ्रमास्पद थे। यह तो पीछे खुलेगा, कि अत्रि चन्द्रवंशके आदिपुरुष थे; इसलिये असम्भव नहीं, कि अनुगण और द्रुह्युगण इनके वंशधर होके इन्हें पूजेंगे।

पौराणिक मतमें—विष्णुकी नाभिसे ब्रह्मा और ब्रह्मासे अत्रि उत्पन्न हुए थे। अग्निपुराण २७३।१। अत्रि ब्रह्माके मानस पुत्र और ब्रह्माके सदृश थे। विष्णु १।७।५; मत्स्य ३।६। ; हरिवंश २५ अ०। भागवतके मतसे अत्रि ब्रह्माके नेत्रसम्भूत और एकजन प्रजापति थे। श्रीभागवत ३।१२।२२। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अत्रि सप्तर्षियोंमें एक ऋषि थे। हरिवंश ७ अ०। विष्णुपुराणके मतसे वैवस्वत मन्वन्तरके समय यह सप्तर्षिओंमें एक ऋषि थे। विष्णु ३।१।३३।

इनकी पत्नी अनुसूयाके गर्भसे इनके तीन पुत्र उत्पन्न हुए—सोम, दुर्वासा और योगी दत्तात्रेय। विष्णु १।१०।८-९। भागवतमें लिखा है, कि यह तीनो पुत्र ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन भगवान्त्रयके अंशजात थे। इसका विवरण नीचे लिखा जाता है,—

"ब्रह्माके पुत्र अत्रि महातेजा ब्रह्मर्षि थे। वह विधातासे सृष्टिकार्यका आदेश पाकर पत्नीके साथ ऋक्षनामक कुलाचलमें इस साधनाके लिये तपस्या करने गये, कि किसतरह सृष्टि रची जाती।

इस मनोहर पर्वत पर अत्रिदेवने शतवर्ष पर्यन्त तपस्यामें निमग्न रह, प्राणायाम द्वारा मनःसंयोम किया था; पीछे रागादिसे रहित हो, अनिल-भोजन करते हुए एक पदपर खड़े रहे।

वह इसतरह कठोर तपस्या कर, सोचते थे,—हे जगदीश्वर! मैंने काय-मनसे आपका शरण लिया है, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो अपने-जैसे सर्वगुणवान् पुत्रको प्रदान कीजिये।

भगवान् अत्रिदेवने तपोबलसे उद्भासित हो एक पदपर खड़े-खड़े देखा, कि आकाशमार्गमें ब्रह्मा,

विष्णु, महेश्वरादि देवता उन्हें देखने पहुंचे थे। भगवान् अत्रि उनका स्तव करने लगे।

अत्रिकी आराधनासे संतुष्ट हो, भगवान्त्रय मधुर-वाक्यमें उनसे बोले,—हे ब्राह्मण! यद्यपि तुमने एक-मात्र परमेश्वरको ही भावना की थी, किन्तु हम तीनो जन एक ही ईश्वर हैं, इसीलिये तुम्हारा साधु सङ्कल्प पूर्ण करनेको आ पहुंचे हैं।

हे साधु! हम तीनोंके अंशसे तुम्हारे पुत्रत्रय उत्पन्न होंगे; उन्हीं तीनो पुत्रों द्वारा तुम्हारी कीर्ति त्रिभुवनमें विख्यात होगी।

उन भगवानोंके वर द्वारा ब्रह्माके अंशसे चन्द्र, विष्णुके अंशसे दत्तात्रेय और महादेवके अंशसे दुर्वासा मुनि उत्पन्न हुए।" भागवत ४ स्क०, ७ अ०।

हरिवंशमें सोमदेवकी उत्पत्ति इसतरह बताई गई है,—

"महर्षि अत्रिने घोरतर तपस्याको आरम्भ किया। ऊर्द्ध्वरेता और निमिषशून्य हो अवस्थान करनेके कारण उनके शरीरसे तेज विनिर्गत हुआ। यह तेज उनके सर्व शरीरको रञ्जित कर ऊपर चढ़ गया। उनके नेत्रसे जो वारिधारा निर्गत हुई थी, उससे दशों दिशाएं उद्भासित होने लगीं। उस समय दशों दिशाओंकी अधिष्ठात्री देवियोंने समवेत हो उस तेजको गर्भमें धारण कर लिया। किन्तु कोई उसको सह न सकी। इसके बाद वही तेजोमय और सर्वलोक-प्रीतिकर शीतांशु, सहसा दश दिग्देवियोंके साथ धरातलमें निपतित हुए। पतनकालमें जगत् आलोकमय हो गया था। फिर लोकपितामह ब्रह्माने चन्द्रको भूतलमें देख जगत्की मङ्गलकामनासे रथके ऊपर आरोपित किया।" इसीतरह अत्रिसे चन्द्र उत्पन्न हुए थे। चन्द्रने राजसूय यज्ञ किया, जिसमें अत्रि होता बनाये गये।" हरिवंश २५ अ०; मत्स्य २३ अ०।

हरिवंशमें नीचे-लिखे दूसरे भी अत्रि-पुत्रोंके नाम मिलते हैं,—सत्यनेत्र, दीप्तिमान्, आपोमूर्ति, तरुण, निष्प्रकम्प, युक्त प्रभृति।

ब्रह्माण्डपुराणमें इनके अत्रि नाम होनेका कारण यों लिखा गया है,—

"अहं तृतीय इत्यर्थस्तस्मादत्रिः स कीर्त्यते।" ब्रह्माण्ड उ: ४।४५।

ब्रह्मासे जो कई प्रजापति उत्पन्न हुए, उनमें अत्रि तीसरे थे। इसी तृतीयार्थसे इनका नाम अत्रि पड़ा।

ब्रह्माण्डपुराणके मतसे अत्रिको यह दश पत्नियां थीं;—१ भद्रा, २ शूद्रा, ३ मद्रा, ४ शलदा, ५ मलदा, ६ वेला, ७ खला, ८ गोचपला, ९ मानरसा और १० रत्नकूटा। भद्रासे सोमका जन्म हुआ था। इस पुराणमें दत्तात्रेय और दुर्वासाको छोड़कर अकल्मष नामक एक दूसरे पुत्रका भी नाम मिलता है। अत्रिकी कन्याका नाम अबला था।

अत्रिकी कन्याका नाम ऋग्वेदके अनेक स्थलोंमें देख पड़ता है। ऋग्वेदकी जितनी ऋचाएं नारी या तापसी-हस्तप्रसूत हैं, उनमें अत्रिकन्याकी रचित ऋचाएं ही सर्वोत्कृष्ट मालूम होती हैं।

पुराणान्तरमें अत्रिके सम्बन्धका ऐसा विवरण पाया जाता है,—

"अपनेसे उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्माने इन्हें प्रजासृष्टि और पहले-पहल वेदके रक्षणका भार सौंपा था। पहले इन्होंने पश्चिमप्रदेशकी यात्रा की। वहां इनके तुहिनरश्मि नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। इसके बाद महर्षि शङ्खनागानदीके उपकूलस्थ देशसे शङ्खपर्वतपर जा पहुंचे और श्वेतगिरिपर ब्रह्मतपमें निमग्न हुए। वहांके लोग अत्रिके आगमनकी वार्त्ता सुन स्त्री-पुत्र-कन्या साथ ले इनकी पूजा करने आये।

अत्रिके प्रथम पुत्र शाङ्खायन देखनेमें अति सुन्दर और बलिष्ठ, किन्तु अतिशय अधार्मिक और उग्रस्वभाव थे। वह अभक्ष्य मांस खाते और गिरिगुहामें रहते थे। उनके दूसरे भ्राता भी उनकी ही तरह असभ्य बन गये। उस समय महर्षि अत्रि पुत्रोंके आचरण पर अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्हें कितनी ही भर्त्सना की। किन्तु उससे कोई फल होते न देख अत्रि आप ही आप शान्त हो गये और यह बात उन्हें अच्छीतरह समझा दी, कि वह पर्वतमें कैसे रहते, अपने लिये कैसा गांव बसाते और गवादिके लिये कैसा स्थान निर्दिष्ट करते। अन्तमें इन्होंने

कहा,—तुम्हारे वासके लिये जो सकल स्थान निर्द्धारित हुए हैं, वह सब जन्मभूमिके प्रति यत्न रखकर 'अत्रि' नामसे पुकारे जायें। पीछे उन्हें छोड़ महर्षि सिन्धुदेशमें जा पहुंचे। देवनिका-पर्वतमें कुछ समय रहकर धर्मज्ञानसम्पन्न और पवित्रचेता सकल प्रजाको सृष्टि करने लगे। उनके वासके लिये उन्होंने देवनगरको स्थापन किया।"

किसी-किसी पुराणके मतसे अत्रि मानवसमाजमें वेदप्रचार करनेके लिये इच्छुक हुए थे, जिससे उनके सन्तानरूपमें त्रिमूर्तिका आविर्भाव हुआ। ज्येष्ठका नाम सोम अर्थात् मानवदेहधारी चन्द्र था। मार्कण्डेयपुराणके मतसे जब अत्रिने अनसूयाके प्रति कटाक्ष किया, तब सोमका जन्म हुआ।

रामचन्द्र वनवासकालमें महर्षि अत्रिके आश्रममें गये थे। वहां अत्रिपत्नी अनसूयाने सीताको अङ्ग-रचना कर दी थी। रामायण—अरण्य० २स० ; रघु १२।२७। रामचन्द्र अत्रि प्रभृति ऋषियोंसे मिलकर गोदावरी तटपर गये। अग्निपुराण ७२। महाभारतमें लिखा है, कि महर्षि अत्रिने वेणनन्दन पृथुराजके अश्वमेध यज्ञमें पहले अर्थप्रार्थनाके लिये जाना चाहा था, किन्तु इसतरह अर्थप्रार्थना करनी युक्तिसङ्गत न समझ यह स्त्रीपुत्रके साथ वनमें तपस्या करनेके लिये जानेको उद्यत हुए। पीछे अनसूयाके अनुरोधसे पृथुराजके यज्ञमें यह गये और अर्थप्रार्थना करते हुए राजा पृथुकी ऐसे वाक्योंसे प्रशंसा की, कि वह धन्य और ईश्वर थे। इससे गौतम मुनिने क्रुद्ध होकर कहा, कि मनुष्यको ईश्वर बता प्रशंसा करना अत्यन्त अनुचित था। अवशेषमें सनत्कुमारने इस विवादको यह कहकर मिटा दिया, कि राजाका इसतरह स्तव करना अन्याय नहीं। इससे सन्तुष्ट हो राजा वैण्यने अत्रिको अलङ्कारभूषित सहस्र दासियां, दश भार स्वर्ण और दश करोड़ सुवर्णमुद्रा प्रदान कीं। अत्रि वह सब पुत्रादिको दे स्वयं तपस्या करने वनको चले गये। ऋग्वेदके अनेक स्थलोंमें कहा गया है, कि अत्रि देवने इन्द्रकी आराधना की थी। किन्तु भागवतमें लिखा है, कि महर्षिने पृथुराजके यज्ञमें इन्द्रको देवाधम और यज्ञविघ्नकारी बताके गाली और उनके वध करनेकी आज्ञा दी थी। भागवत ४।१९।१५।

भारतवर्षवाले पश्चिम-पार्श्वस्थ देशसमूहके लोग अत्रिऋषिको 'अद्रिस्' या 'इद्रिस्' नामसे पुकारते थे।

अत्रि चन्द्रवंशके आदिपुरुष हैं। चन्द्रवंशोद्भव देवनहुष राजा एकबार मेरुपर्वतके निम्न स्थानमें अत्रिके साथ साक्षात् करने गये थे। किन्तु वहां किसीको रहते न देख इन्होंने विश्वकर्माको एक नगर बनानेको आज्ञा दी। पीछे उस नगरका नाम देवनहुषनगरी रखा गया। लोगोंने ऐसी विवेचना की है, कि देवनहुष और देवनहुषनगरी यह दोनो शब्द यूनानी दिओन्यसिउष (Dionysius) और दिओन्यसिवोपोलिससे (Dionysiopolis) परस्पर सम्बन्ध रखते हैं। इससे अत्रिदेव जैसे भारतवर्ष और उसके निकटस्थ देश-समूहवाले सम्प्रदाय-विशेषके आदिपुरुष होते, वैसे ही यूनानी राजा और पूजनीय व्यक्तियोंके भी हैं।

अत्रिगोत्र आज भी हिन्दू समाजमें प्रचलित है। बस्ती प्रदेशको सबरिया जातिमें और वङ्गदेशके कायस्थ-समाजमें कितने ही अत्रिगोत्रावलम्बी व्यक्ति देख पड़ते हैं।

यूरोपीय पण्डित यह भी स्वीकार करते हैं, कि अत्रिऋषिके साथ प्राचीन युरोपका अति निकट सम्बन्ध था, विलफोर्ड साहेबने लिखा है,—

"The most celebrated amongst these *Parnasas* was that of the famous Atri, whose history is closely connected with that of the British islands and this western regions." (Asiatic Researches, Vol. VI. p. 469.)

भलसुङ्गके (Volsung) गल्पमें 'अत्लि' और निबेलुङ्गवाले (Nibelung) गानपर 'एत्जेल' नामक जिस देवताका नाम मिलता, उससे अत्रिका अनेक सादृश्य लक्षित होता है। (Cox's Myth. of the Aryan Nations, Vol. 1. p. 342.)

याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि अत्रि एकजन धर्मशास्त्रकर्त्ता थे। अत्रिसंहिताके नामका एक धर्मशास्त्र भी प्रचलित है। अत्रिसंहिता शब्द देखो।

वृहत्संहिताकी टीकामें भट्टोत्पलने लिखा है, कि

सप्तर्षि मघानक्षत्रमें चार वत्सर अवस्थान करते हैं। ऐसा होनेसे सप्तर्षियोंका अवस्थान-काल कोई ५००० वत्सर पूर्व होता है। इसलिये उसी समयमें अत्रि-ऋषिका आविर्भाव-काल सम्भव जान पड़ता है। सप्तर्षि देखो।

अत्रिगुण (सं॰ त्रि॰) १ जो त्रिगुणसे सम्बन्ध न रखे; सत्त्व, रजः और तमः—इन तीनो गुणोंसे अलग। (क्ली॰) २ त्रिगुण-भिन्न अन्य वस्तु, तीन गुणोंको छोड़ कोई दूसरी चीज़।

अत्रिचतुरह (सं॰ पु॰) यज्ञविशेष, एक प्रकारका याग।

अत्रिज (सं॰ पु॰) अत्रिसे उत्पन्न, अत्रिके लड़के चन्द्र, दत्तात्रेय और दुर्वासा।

अत्रिजात (सं॰ पु॰) अत्रेर्नेत्रात् जातः, जन-क्त, ५ तत्। चन्द्र, चांद। चन्द्र महर्षि अत्रिके चक्षुसे उत्पन्न हुए थे।

अत्रिदृग्ज (सं॰ पु॰) अत्रेर्दृशो नेत्रात् जायते, जन-ड। चन्द्र, चांद।

अत्रिन् (सं॰ पु॰) १ भक्षक, खानेवाला। २ भूत, साया। ३ राक्षस, आदमखोर।

अत्रिनेत्रज, अत्रिनेत्रप्रभव, अत्रिनेत्रप्रसूत, अत्रिनेत्रभू —अत्रिदृग्ज देखो।

अत्रिप्रिया (सं॰ स्त्री॰) अत्रिकी स्त्री और कर्दम मुनिकी कन्या अनुसूया।

अत्रिभारद्वाजिका (सं॰ स्त्री॰) अत्रिभारद्वाज-वुन्; अत्रिभारद्वाजवंशयोः मैथुनम्। इन्द्वाद्वुन् वैरमैथुनिकयो। पा ४।३।१२५। अत्रि और भरद्वाज वंशजात स्त्रीपुरुषोंका मिलन, अत्रिभारद्वाजी विवाह; अत्रि और भारद्वाज खान्दानकी शादी।

अत्रिसंहिता (सं॰ स्त्री॰) अत्रिणा प्रणीता संहिता स्मृतिः। अत्रि ऋषि-प्रणीत संहिताविशेष, अत्रि ऋषिकी बनाई संहिता। इसमें प्रधान ज्ञातव्य विषय यह बताये गये हैं,—चार वर्णोंकी कर्मवृत्ति, राजधर्म, शोधन और स्नानविधि, शौचादि लक्षण, इष्टापूर्त्तवर्णन, यमनियमादि, प्रायश्चित्तविधि, अशौचनिर्णय, चान्द्रायणादि विधि, वज्रव्रतविधि, षड्भिक्षुकनिर्णय, महापातकादिनिरूपण, नारीशुद्धि, आकरशुद्धि, प्राणायाम-लक्षण, दानविधि, श्राद्धीयब्राह्मण-निरूपण, श्राद्धफल इत्यादि।

इस संहितामें शङ्ख, आपस्तम्ब, शातातप, यम और मनुसंहिताका उल्लेख पाया जाता है। क्या यह समस्त धर्मशास्त्र रचित होनेके बाद अत्रिसंहिता बनी थी? इसको हम ठीक तौरसे कह नहीं सकते। कारण, मन्वादिकी अपेक्षा प्राचीन ग्रन्थ गृह्यसूत्रमें भी आत्रेय संहिताका नाम विद्यमान है। मनुने भी एक जगह कहा है,—'अत्रि और उतथ्यपुत्रके मतसे जो व्यक्ति शूद्रासे विवाह करता, वह अपने इस कार्य द्वारा पतित हो जाता है।' मनु ३।१६।

याज्ञवल्क्यसंहिता और अग्निपुराणमें भी अत्रि धर्मशास्त्रकर्ता बताये गये हैं,—

"मनुर्विष्णुर्याज्ञवल्क्यो हारीतोऽत्रिर्यमोऽङ्गिराः।" अग्निपु॰ १६२।१।

फिर आजकल जो अत्रिसंहिता मिलती, वह क्या उक्त मन्वादिकी अपेक्षा प्राचीन है? कभी नहीं। इसका कोई-कोई अंश उनकी अपेक्षा प्राचीन हो सकता है।

प्रथमतः मनुके वचनसे अत्रिका जो मत मिलता, वह उसमें प्रकाशित नहीं, जिसे हम अत्रिसंहिता कहते हैं।

द्वितीयतः इस अत्रिसंहितामें मन्वादिका मत उद्धृत हुआ है और कितनी ही अप्राचीन कथायें भी देख पड़ती हैं,—

"वेदैर्विहीनाश्च पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः।
पुराणहीनाः कृषिणोभवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति॥"

इस श्लोकमें पुराणोंके नाम रहनेसे यही प्रमाणित होता, कि अत्रिसंहिता पुराणोंके बाद बनी थी। सिवा इसके इस संहितामें 'म्लेच्छोंके' नाम भी खूब लिखे हैं।

इस संहिताके कितने ही स्थलोंमें आया है,—'भगवानत्रिरब्रवीत्' अर्थात् भगवान् अत्रिने कहा था। यदि महर्षि अत्रि इसके प्रणेता होते, तो कभी ऐसा न

लिखते। अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं, कि आजकलकी अत्रिसंहिता किसी दूसरे व्यक्तिकी बनाई है। इसमें अत्रिका मत अधिक परिमाणसे सन्निवेशित है। स्मृति देखो।

अत्रिस्थान—श्वेतगिरिस्थ जनपद-विशेष। यहांके लोग अत्रिदेवकी पूजा करते थे।

अत्रिस्मृति—अत्रिसंहिता देखो।

अत्रेय—आत्रेय देखो।

अत्रैगुण्य (सं० क्लो०) सत्त्व, रजः और तमः—इन तीनो गुणोंका विनाश। सांख्यवादी इस स्थितिको मोक्ष कहते हैं।

अत्रैव (सं० अव्य०) इसी स्थानमें, इसी जगह।

अत्वच् (सं० त्रि०) चर्मरहित, जिसमें चमड़ा न हो।

अत्वरा (सं० स्त्री०) शीघ्रताकी अनुपस्थिति, धैर्य; इस्तक़लाल।

अत्सरुक (सं० पु०) नास्ति त्सरुरिव मुष्टिवन्धनस्थानं यस्य। खड्ग जैसा, जिसमें मुठिया न हो यज्ञीय पात्रविशेष,—चम्मच, हाथा आदि।

अथ, अथो (सं० अव्य०) अर्थ चु० अदन्त-ड पृषोदरादित्वात् रलोपः। १ इस समय, अब, उस समय। २ सिवा, अलावा; अतिरिक्त, भिन्न। ४ किञ्चित्-किञ्चित्, कुछ-कुछ। ५ निःसन्देह, बेशक। ६ किन्तु, परन्तु; लेकिन, मगर। ७ वरं, वरना; नहीं तो। ८ क्या। ९ किसतरह। १० या। ११ पूरे तौरसे। १२ फिर। इस शब्दसे अनन्तर, आरम्भ, प्रश्न, कार्त्स्न्य, अधिकार, संशय, पक्षान्तर, विकल्प, समुच्चय और मङ्गलादि अर्थ निकलते हैं।

"मङ्गलानन्तरारम्भप्रश्न कार्त्स्न्येष्वथो अथ।" (अमर)

अनन्तर—यियक्षुमाणेनाहूतः पार्थेनाथ द्विषम्मुरम्। अर्थात् इसके बाद (इन्द्रका संवाद सुनकर) यज्ञाभिलाषी युधिष्ठिर कर्त्तृक निमन्त्रित मुरारि इत्यादि। स्नानं कृत्वाऽथ भुञ्जीत। अर्थात् स्नान करनेके अनन्तर भोजन करे।

आरम्भ—अथ लिङ्गानुशासनं लिख्यते। अर्थात् लिङ्गानुशासन लिखना अब आरम्भ किया जाता है।

प्रश्न—अथ किमिदं तावत्—यह सब फिर क्या है? अथ वक्तुं समर्थोऽसि? क्या तुम बोल सकते हो?

कार्त्स्न्य—अथ धातून् ब्रूमः? अर्थात् समस्त धातुओंका विषय कहते हैं?

अधिकार—किसी विषयके पहले अथ सन्धिः, अथ समासः इत्यादि लिखा रहनेसे उसका अधिकार अर्थात् उत्तरोत्तर सम्बन्ध समझा जायेगा। जैसे—अथ सन्धिः अर्थात् सन्धिका अधिकार करके यह प्रबन्ध लिखा जाता है।

संशय—शब्दो नित्यः अथानित्यः? अर्थात् शब्द नित्य है या अनित्य?

पक्षान्तर—अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि। फिर यदि तुम यह धर्मयुद्ध न करोगे।

समुच्चय—भीमोऽथार्जुनः। भीम और अर्जुन।

मङ्गल—अथातो ब्रह्मजिज्ञासा। अर्थात् मङ्गलाचरणपूर्वक ब्रह्मके जाननेकी इच्छा।

अथऊ (हिं० पु०) सन्ध्यासे पहले होनेवाला भोजन, जो खाना शाम होनेसे पहले खाया जाये।

अथक (हिं० वि०) न थकनेवाला, परिश्रमी।

अथकिं (सं० अव्य०) १ हां, यही तो, ठीक है, खूब समझे। २ फिर कैसे। ३ और क्या।

अथकिमु (सं० अव्य०) १ कितनी अधिकतासे २ इतने परिमाणसे।

अथच (सं० अव्य०) और भी, फिर, इसतरह।

अथतु (सं० अव्य०) किन्तु, मगर; विपक्षमें।

अथमना (हिं० क्रि०) न थमना, न ठहरना। अस्तमन देखो।

अथरा (हिं० पु०) रंगरेज़ोंके कपड़ा रंगने, सुनारोंके मानिक रेतने, जुलाहोंके सूत भिगोने और तानेमें लेई लगानेका बरतन।

अथरि, अथरी (वै० स्त्री०) १ नोकदार अङ्गार या अग्निशिखा। २ भालेकी नोक। ३ अङ्गुलि, उंगली। ४ हस्ती, हाथी। इस शब्दका प्रयोग केवल ऋग्वेदमें देख पड़ता और इसका अर्थ सन्दिग्ध है। (हिं० स्त्री०) ५ हलका अथरा। ६ हांडी या घड़ा थापीसे पीटनेको कुंभारका बरतन। ७ दही जमानेका कूंडा।

अथर्य (वै० पु०) १ लगातार चला जानेवाला

पथिक, मुसाफ़िर जो बराबर चलता रहे। २ भाले जैसी नोकीली वस्तु। ३ वह पदार्थ जिससे भालेकी नोक जैसे अङ्कुर फूटें।

अथर्व (सं० पु०) ब्रह्माके ज्येष्ठपुत्र, जिनको उन्होंने ब्रह्मविद्या बताई थी।

अथर्वण (सं० पु०) अथर्वन्-अच्, पृषोदरादित्वात् न टेर्लोपः। शिव, जिन्हें अथर्वमुनि-प्रोक्त विद्या ज्ञात है।

अथर्वणि (सं० पु०) अथर्वा तदुक्तशास्त्रादौ कुशलः, अथर्वन्-इस्। १ अथर्ववेदज्ञ ब्राह्मण, अथर्ववेदको जाननेवाला ब्राह्मण। २ पुरोहित।

अथर्वन् (सं० पु०) अथ-ऋ-वनिप्, शक०। अथर्वा नामक ऋषि। मुण्डक उपनिषद्के आरम्भमें लिखा है, कि अथर्वा ब्रह्माके ज्येष्ठपुत्र थे,—

"ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥ १
अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्।
स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम्॥" २

देवताओंके मध्यमें पहले ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे। वह इस विश्वके कर्ता और रक्षक रहे। उन्होंने अपने ज्येष्ठपुत्र अथर्वाको सकल विद्याओंकी मूल ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया। ब्रह्माने अथर्वाको जो सिखाया था, अथर्वाने उसे अङ्गिराके निकट प्रकाश कर दिया। फिर अङ्गिराने भरद्वाज-वंशोद्भव सत्यवाहको वही विद्या बताई। वही श्रेष्ठ विद्या सत्यवाहने अङ्गिरसको पढ़ाई थी।

ऋग्वेद प्रभृति प्राचीन पुस्तकें देखनेसे ऐसी प्रतीति होती है, कि अथर्वाने पहले अग्निकी सृष्टि और आर्योंमें सबसे आगे यज्ञादि क्रिया प्रवर्त्तित की थी।

"अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या। भुवद्दूतो विवस्वतो।"
ऋग्वेद १०।२१।५।

अथर्वाने अग्निको उत्पन्न किया था, जो सब विद्या जानते रहे। वह विवस्वतके दूत बने थे।

"अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।" (वाजसनेय संहिता)

हे अग्नि! अथर्वाने आपको पहले उत्पन्न किया था।

शतपथ-ब्राह्मणमें लिखा है, कि दध्यञ्च नामक एक ऋषि अथर्वाके पुत्र थे,—

"तमुत्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र इधे अथर्वणः।"

अथर्वाके पुत्र दध्यञ्च ऋषिने आपको (अग्निको) प्रज्वलित किया था।

अथर्ववेदमें अथर्वा और वरुणके सम्बन्धपर एक उपाख्यान लिखा है। वरुणने अथर्वाको एक विचित्र नित्यवत्सा धेनु दी थी। पृश्निं धेनुं वरुणेन दत्तामथर्वणे सुदुघां नित्यवत्साम्। कुछ दिन बाद वरुणने वही धेनु वापस लेनेका यत्न किया। अथर्ववेद—७।१०४ देखो। अन्तमें अथर्वाने वरुणदेवसे कहा,—'हम परस्पर बन्धु और एक ही वंशमें उत्पन्न हुए हैं।' इसी उपाख्यानको देख कोई-कोई अनुमान करते हैं, कि वशिष्ठ और अथर्वा ऋषि एक ही व्यक्ति थे, एवं वरुण और विश्वामित्र ये दोनो भी कोई पृथक् व्यक्ति नहीं थे। ऐसा अनुमान करनेका कारण यह है, कि महाभारत और रामायणको एक कथामें लिखा है—विश्वामित्र वशिष्ठकी धेनु बलपूर्व्वक लेने आये थे। इसके लिये महाविरोध उपस्थित हुआ। इसके सिवा कुलविवरण देखनेसे भी दोनो एक ही वंशसे उत्पन्न प्रमाणित होते हैं। जो हो, दोनो उपाख्यानोंमें सादृश्य रहनेसे अथर्वा और वशिष्ठ एक व्यक्ति नहीं हो सकते। इस बातका कोई विशेष प्रमाण भी नहीं मिलता है।

यह शब्द एकवचनमें वैदिक पुरोहितोंके प्रधान, और बहुवचनमें अथर्वन्के वंशका बोधक है। अथर्वन्के वंशज अश्वत्थोंकी दानस्तुतिमें वर्णित हैं और समय-विशेषपर दूधमें मधु डालके इनके पीनेकी बात भी वेदमें लिखी है। तैत्तिरीय ब्राह्मणके अनुसार जो गौ असमयमें गर्भपात करे, वह अथर्वनोंको ही दी जाना चाहिये। इनके अग्नि, दध्यञ्च, भिषज्, बृहद्दिव और कवन्ध—यह कई एक पुत्र थे।

अथर्वनी (हिं० पु०) अथर्वन्‌वाला आचार्य जो कर्मकाण्ड या यज्ञ कराये, पुरोहित।

अथर्वभूत (सं० पु०) बारह महर्षियोंकी उपाधि।

अथर्ववत् (सं० अव्य०) अथर्वन् या उनके वंशजोंकी भांति।

अथर्वविद् (सं० पु०) अथर्ववेदको जाननेवाला ब्राह्मण।

अथर्ववेद (सं० पु०) कर्मधा०। चतुर्थ वेद। मार्कण्डेय-पुराणमें लिखा है, कि अथर्ववेद ब्रह्माके उत्तर-मुखसे उत्पन्न हुआ था। यह वेद भ्रमर और अञ्जन जैसा कृष्णवर्ण है, तथा घोराघोर-स्वरूप और शान्ति एवं अभिचारिकादि प्रक्रियाओंसे परिपूर्ण है।

कहते हैं, कि ऋक्, यजुः और साम—इन तीन वेदोंका कोई-कोई अंश ले तथा कितने ही नये विषय संलग्न कर अथर्वा ऋषिने इस वेदका प्रचार किया। भागवतके मतानुसार ब्रह्माके दक्षिण और विष्णु-पुराणके मतानुसार ब्रह्माके उत्तर मुखसे अथर्ववेद निकला है। (भागवत ३।१२।३७, विष्णुपुराण १।५।५५।)

विष्णुपुराणमें एक जगह लिखा है,—

"एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा व्यकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूद्यस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥ ११
आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथा मुनिः।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः॥ १२
ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् मुनिः।
यजूंषि च यजुर्वेदं सामवेदञ्च सामभिः॥ १३
राजन्त्वथर्ववेदेन सर्व्वकर्म्माणि स प्रभुः।
कारयामास मैत्रेय ब्रह्मत्वञ्च यथास्थिति॥" १४ (३ अंश,४ अध्याय।)

'पहले यजुर्वेद अर्थात् आध्वर्यव-क्रियाप्रधान वेद एक प्रकारका था। वेदव्यासने इस यजुःप्रधान वेदके चार भाग बनाये, जिससे चातुर्होत्र स्थापित हुआ। उन्होंने उसके द्वारा यज्ञानुष्ठानकी विधि निर्द्धारित की। इस चातुर्होत्रमें उन्होंने यजुर्वेद द्वारा आध्वर्यव, ऋग्वेद द्वारा होत्र, सामवेद द्वारा औद्गात्र और अथर्ववेद द्वारा यथाविधान ब्रह्मत्व स्थापन किया, और क्षत्रियोंके शान्तिपुष्टि प्रभृति समुदाय दैवकर्म इस अथर्ववेद द्वारा ही कराये।'

यह बड़े ही आक्षेपका विषय है, कि जिस वेदको विष्णुपुराण इतना माननीय समझता और जिस वेदमें ब्रह्मत्व प्रतिपादित हुआ है, उसी अथर्ववेदको इस देशके वेदज्ञानविहीन पण्डित कुरानका अंशमात्र मानते हैं। वह इस वेदको जितना आधुनिक समझते, वास्तविक यह उतना आधुनिक नहीं। यह सत्य है, कि किसी-किसी पुराण और अमरकोष-जैसे ग्रन्थमें भी तीन वेदोंके सिवा चौथेका उल्लेख नहीं पाया जाता। (अमरकोष—१।१।४।४ देखो।) किन्तु प्राचीन उपनिषत्, स्मृति, रामायण, महाभारत और कितने ही पुराणोंमें भी अथर्वाङ्गिरस या अथर्ववेद उल्लिखित हुआ है। *

"श्रुतीरथर्वाङ्गिरसी कुर्यादित्यविचारयन्।
वाक्शस्त्रं वै ब्राह्मणस्य तेन हन्यादरीन् द्विजः॥" मनु ११।३३।

"अथर्ववेदमन्त्रैश्च देवेन्द्रं समपूजयेत् (अङ्गिराः)॥
ततस्तु भगवानिन्द्रः प्रहृष्टः समपद्यत।
वरञ्च प्रददौ तस्मै अथर्वाङ्गिरसे तदा॥
अथर्वाङ्गिरसोनामवेदेऽस्मिन् वै भविष्यति।
उदाहरणमेतद्धि यज्ञभागञ्च लप्स्यसे॥"
महाभारत उद्योगपर्व—१७ अ०।

(अङ्गिरा ऋषिने) अथर्ववेदोक्त मन्त्रपाठपूर्वक देवेन्द्रकी पूजा की। उस दर्शनसे भगवान् इन्द्रने सन्तुष्ट और हृष्ट हो वर दिया कि उनका अथर्वाङ्गिरस नाम वेदमें प्रसिद्ध और उन्हें सर्वत्र यज्ञभाग प्राप्त होगा।

"मेदसा तर्पयेद्देवानथर्वाङ्गिरसः पठन्।
पितॄंश्च मधुसर्पिर्भ्यामन्वहं शक्तितो द्विजः॥" याज्ञवल्क्य १।४४।

"दैवबलप्रवृत्ता ये देवद्रोहादभिशस्तका अथर्वकृता उपसर्गकृताश्च (व्याधयः)।" सुश्रुत—सूत्र।

इसके सिवा—'आथर्वणिकस्येकलोपश्च' ४।३।१३३, 'कपि-बोधादाङ्गिरसे' ४।१।१०७, 'दाक्षिनायनहास्तिनायनाथर्वणिक०' ६।४।१७४ इत्यादि पाणिनिसूत्रों द्वारा क्या बोधनहीं हो सकता कि पाणिनिसे भी पहले अथर्ववेद विद्यमान था? इन्हीं सकल प्रमाणों द्वारा हम स्वीकार करते हैं, कि अथर्ववेद अति प्राचीन है।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—

"अथर्वाणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददद् द्विजाः।
कबन्धाय पुनः कृत्स्नं स च विद्याद्यथाक्रमम्॥ ५१

---

* छान्दोग्योपनिषत् ३।४।१-२, तैत्तिरीयोपनिषत् २।३, बृहदारण्यक २।४।१०, २।४।१२, शतपथब्राह्मण ११।५।३।७, १४।६।१०।६ प्रभृति।

कवन्धस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यायैकं पुनर्ददौ ।
द्वितीयं वेदस्पर्शाय स चतुर्द्धाकरोत् पुनः ॥ ५२
मोदो ब्रह्मवलश्चैव पिप्पलादस्तथैव च ।
शौक्कायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपनः स्मृतः ।
वेदस्पर्शस्य चत्वारः शिष्यास्ते तु दृढव्रताः ॥ ५३
पुनश्च त्रिविधं विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम् ।
जाजलिः कुमुदादिश्च तृतीयः शौनकः स्मृतः ॥ ५४
शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकन्तु बभ्रवे ।
द्वितीयां संहितां धीमान् सैन्धवायनसंज्ञिते ॥ ५५
सैन्धवो मुञ्जकेशाय भिन्ना सा च द्विधा पुनः ।
नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः ॥ ५६
चतुर्थोऽङ्गिरसः कल्पो शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ।
श्रेष्ठस्त्वथर्वणोह्येते संहितानां विकल्पनाः ॥ ५७
षट्शः कृत्वा मयाप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः ।

* * *

ऋचामथर्वणां पञ्चसहस्राणि विनिश्चयः ।
सहस्रमन्यद्विज्ञेयमृषिभिर्विंशतिं विना ॥ ७५
एतदङ्गिरसा प्रोक्तं तेषामारण्यकं पुनः ।
इति संख्या प्रसंख्याता शाखाभेदास्तथैव च ॥" ७३ (६५ अ०)

अग्निपुराणमें इसतरह लिखा गया है,—

"सुमन्तुर्जाजलिश्चैव श्लोकायनिरथर्वके ॥ ८
शौनकः पिप्पलादश्च मुञ्जकेशादयोऽपरे ।
मन्त्राणामयुतं षष्टिशतञ्चोपनिषच्छतम् ॥" ९ (२७१ अ०)

उक्त पुराणसकलका भावार्थ यह है,—महर्षि सुमन्तुने अथर्ववेद दो भागोंमें विभक्तकर कवन्ध नामक शिष्यको पढ़ाया। कवन्धने अथर्ववेद दो भागोंमें बांटके पथ्य और वेदस्पर्श या देवदर्श नामक दो शिष्योंको दिया। वेदस्पर्शने फिर चार भाग बना मोद, ब्रह्मबल या ब्रह्मबलि, पिप्पलाद और शौक्कायणि या शौक्कायणि या श्लोकायनिको यह दान किया। पथ्यने फिर तीन भाग कर जाजलि, कुमुदादि और शौनकको संहिता दे दी। शौनकने अधीत संहिता दो भागोंमें बांटी और उनमें एक शाखा वभ्रुको और एक शाखा सैन्धवायनको पढ़ायी। सैन्धव अर्थात् सैन्धवायनशिष्य और मुञ्जकेश अर्थात् वभ्रुके शिष्यने अपनी-अपनी संहिता दो-दो शाखाओंमें विभक्त की नक्षत्रकल्प, वैतान या वेदकल्प, संहिताकल्प, आङ्गिरः या आङ्गिरसकल्प और शान्तिकल्प—यह पांच अंश संहितासमुदायमें विकल्पक और अथर्ववेदमें श्रेष्ठ हैं। ब्रह्माण्डपुराणके मतसे अथर्ववेदमें ५००० ऋक् और २० ऋषि हैं, जिन्हें अङ्गिरसने बनाया है। अग्निपुराणके मतसे इसके षष्टि-सहस्राधिक अयुत मन्त्र और एकशत उपनिषत् हैं।

अथर्ववेदका प्रकृत नाम 'अथर्वाङ्गिरस' है। इस अथर्वाङ्गिरस शब्दके संक्षेपमें उल्लेख करनेको लोग 'अथर्ववेद' कहते हैं। इस समय यही विवेचना करके देखना आवश्यक है, कि अथर्व शब्दका क्या अर्थ है? ऋग्वेदमें अथर्व शब्दके अनेक प्रयोग देख पड़ते हैं। इन सब स्थलोंके भाष्यमें सायणाचार्यने अथर्व शब्दका अर्थ प्रायः ऋषि लिखा है। ह्वीग् साहब कहते हैं, कि अथर्व शब्दका अर्थ ज़िन्द आविस्ताके अनुसार—'अग्नि-पुरोहित' होता है। अथर्ववेदमें भी अनेक स्थलोंपर अथर्व शब्दका उल्लेख मिलता है—

"अजीजनो हि वरुण स्वधावन् अथर्वाणं पितरं देवबन्धुं।"

'हे स्वधावन् वरुण! देवबन्धु पिता अथर्वाको, आपने उत्पन्न किया है।' इसके द्वारा स्पष्ट ही समझ पड़ता, कि अथर्वा किसी ऋषि विशेषका नाम है। अथर्वन् शब्दमें भी प्रमाण दे दिया गया है, कि अथर्वा नामक ऋषि आदिपुरुष ब्रह्माके ज्येष्ठपुत्र थे। अङ्गिरा भी एक प्रधान ऋषि रहे। ऋगादि सकल ही वेदोंमें अङ्गिरस् नामका उल्लेख विद्यमान है। जान पड़ता है, कि अथर्वा और अङ्गिरा ऋषिके वंशधरोंने ही अथर्वाङ्गिरस संहिता अर्थात् अथर्ववेदका सङ्कलन किया था। किसी-किसी विद्वान्के मतसे भृगुवंशीयोंने इस वेदके अनेक मन्त्रोंकी रचना की है।

नीचे अथर्ववेदके १९ वें काण्डसे २३ वां और २४ वां सूक्त उद्धृत किया गया है। उसको पढ़नेसे मालूम हो सकता है, कि पहले अथर्वा और अङ्गिरा वंशीयोंके अनेक मन्त्र थे, जिन सम्पूर्ण मन्त्रोंके एकत्र सङ्कलनसे अथर्ववेदकी उत्पत्ति हुई। अथर्ववंशीयगण जिस प्रणालीसे मन्त्र रखते, वेदमें वही प्रणाली पाई जाती है। केवल अङ्गिरसोंके मन्त्र मिला देनेकी स्थान-स्थानमें अन्य प्रणालीका अवलम्बन किया गया है।

अथर्वणानां चतुर्ऋचेभ्यः स्वाहा । १ । पञ्चर्चेभ्यः स्वाहा । २ । षड्ऋचेभ्यः स्वाहा । ३ । सप्तर्चेभ्यः स्वाहा । ४ । अष्टर्चेभ्यः स्वाहा । ५ । नवर्चेभ्यः स्वाहा । ६ । दशर्चेभ्यः स्वाहा । ७ । एकादशर्चेभ्यः स्वाहा । ८ । द्वादशर्चेभ्यः स्वाहा । ९ । त्रयोदशर्चेभ्यः स्वाहा । १० । चतुर्दशर्चेभ्यः स्वाहा । ११ । पञ्चदशर्चेभ्यः स्वाहा । १२ । षोडशर्चेभ्यः स्वाहा । १३ । सप्तदशर्चेभ्यः स्वाहा । १४ । अष्टादशर्चेभ्यः स्वाहा । १५ । एकोनविंशतिः स्वाहा । १६ । विंशतिः स्वाहा । १७ । महत्काण्डाय स्वाहा । १८ । तृचेभ्यः स्वाहा । १९ । एकर्चेभ्यः स्वाहा । २० । क्षुद्रेभ्यः स्वाहा । २१ । एकानृचेभ्यः स्वाहा । २२ । रोहितेभ्यः स्वाहा । २३ । सूर्याभ्यां स्वाहा । २४ । व्रात्याभ्यां स्वाहा । २५ । प्राजापत्याभ्यां स्वाहा । २६ । विषासह्यै स्वाहा । २७ । मङ्गलिकेभ्यः स्वाहा । २८ । ब्रह्मणे स्वाहा । २९ ।

अथर्ववेदमें भी देखा जाता है, कि प्रथम काण्डके प्रायः सकल सूक्त चार ऋक्‌से, और द्वितीय काण्डके भी प्रायः सकल सूक्त पांच ऋक्‌से ग्रथित हैं। इसलिये अथर्ववंशीयोंके मन्त्र लेकर ही अथर्ववेद बना है। (२२ सूक्त)

आङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा । १ । षष्ठाय स्वाहा । २ । सप्तमाष्टमाभ्यां स्वाहा । ३ । नीलनखेभ्यः स्वाहा । ४ । हरितेभ्यः स्वाहा ।५। क्षुद्रेभ्यः स्वाहा ।६। पर्यायिकेभ्यः स्वाहा ।७। प्रथमेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा । ८ । द्वितीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा । ९ । तृतीयेभ्यः शङ्खेभ्यः स्वाहा । १० । उपोत्तमेभ्यः स्वाहा । ११ । उत्तमेभ्यः स्वाहा । १२ । उत्तरेभ्यः स्वाहा । १३ । ऋषिभ्यः स्वाहा । १४ । शिखिभ्यः स्वाहा । १५ । गणेभ्यः स्वाहा । १६ । महागणेभ्यः स्वाहा । १७ । सर्वेभ्यः अङ्गिरोभ्यो विदगणेभ्यः स्वाहा । १८ । पृथक्सहस्राभ्यां स्वाहा । १९ । ब्रह्मणे स्वाहा । २० ।

पूर्वकालसे ब्राह्मण ऋक्, यजुः और साम वेद ही भक्तिपूर्वक पढ़ते रहे और वेद तीन ही प्रसिद्ध थे। इसीसे वदका दूसरा नाम त्रयी पड़ा है। मनु प्रभृति प्राचीन ग्रन्थोंको अनुसन्धान कर देखनेसे ऋगादि तीन वेदोंका ही आदर अधिक जान पड़ता है,—

"अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनं।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥" मनु १।२३।

'यागादिकी सिद्धिके लिये उन्होंने अग्निसे ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद और सूर्यसे सामवेद उद्धृत किया।'

"त्रयी वै विद्या ऋचो यजूंषि सामानि।" (शतपथ-ब्राह्मण ४।६।७।१)

'ऋक्, यजुः और साम—येही तीन विद्यायें हैं।'

"प्रजापतिर्लोकानभ्यतपत् तेषां तप्यमानानां रसान् प्राबृहदग्निं पृथिव्या वायुमन्तरीक्षादादित्यं दिवः। १। स एतास्तिस्रो देवता अभ्यतपत् तासां तप्यमानानां रसान् प्राबृहदग्नेर्ऋचो वायोर्यजूंषि सामान्यादित्यात्। २। स एतां त्रयीं विद्यामभ्यतपत् तस्यास्तप्यमानाया रसान् प्राबृहद् भूरिति ऋग्भ्यो भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति सामभ्यः।"३। (छान्दोग्योपनिषत् ४।१७)

'प्रजापतिने तीनो लोक उत्तप्त किये थे। उन्हीं तप्यमान तीनो लोकोंसे उन्होंने तीन सार भाग बाहर निकाले। पृथिवीसे अग्नि, अन्तरीक्षसे वायु और द्युलोकसे आदित्य उद्धृत किये गये। इसके बाद उन्होंने इन तीन देवताओंमें फिर ताप पहुंचाया। इन तीनो देवताओंके उत्तप्त होनेसे इनका सारांश उद्धृत किया गया। अग्निसे ऋग्वेद, वायुसे यजुर्वेद और आदित्यसे सामवेद उपलब्ध हुआ। प्रजापतिने इन तीन विद्याओंमें फिर ताप छोड़ा। इस वेदत्रयके उत्तप्त होनेपर ऋक्‌से भूर्, यजुसे भुवः और सामवेदसे स्वर् उत्पन्न हुआ।'

इस प्रकार अनुसन्धान करनेसे स्पष्ट जान पड़ता है, कि पहले ब्राह्मण ऋक्, यजुः और साम वेदको ही अध्ययन करते थे।

प्रस्थानभेद-प्रणेता मधुसूदन सरस्वतीने लिखा है,—

"स च प्रयोगत्रयेण यज्ञनिर्वाहार्थम् ऋग्यजुःसामवेदेन भिन्नः। * * * अथर्ववेदस्तु यज्ञानुपयुक्तः शान्तिपौष्टिकाभिचारादि-कर्मप्रतिपादकत्वेन अत्यन्तविलक्षण एव।"

'यज्ञादि सम्पन्न करनेके लिये वेदके, ऋक्, यजुः और साम—यह तीन प्रकारके विभाग किये गये हैं। * * * अथर्ववेद यागादिकोंमें तो अनुपयुक्त है, परन्तु शान्ति, पौष्टिक और अभिचार आदिका इसमें अच्छा वर्णन किया गया है। इसलिये यह बड़ा ही अद्भुत है।'

अनेक लोग अनुमान करते हैं, कि अथर्ववेद तो म्लेच्छोंका वेद है; ब्राह्मण कभी इस वेदका आदर न करते थे। किन्तु यह भ्रान्त सिद्धान्त है। वास्तविक रूपसे यह म्लेच्छोंका वेद नहीं,—यह व्रात्यवेद है। अब विचारना चाहिये, कि व्रात्य कहनेसे क्या समझा जाता है। मनुने व्रात्यके सम्बन्धमें इस प्रकार अपने मतको प्रकाश किया है,—

"आषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥
अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥" मनु २।३८-३९।

'गर्भसे सोलह वर्ष वयःक्रम पर्यन्त ब्राह्मणोंके यज्ञोपवीतका काल नहीं बीतता; क्षत्रियों और वैश्योंके यज्ञोपवीतका समय यथाक्रम बाईस और चौबीस वर्ष तक रहता है। यह समय अतीत होनेसे वह सावित्रीपतित और असंस्कृत ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य व्रात्य कहाते, जो आर्योंके निकट निन्दनीय हैं।'

सम्भवतः व्रात्य,—व्रात (अर्थात् समूह या सामान्य लोक) शब्दसे निकला है। भगवान् मनु गायत्रीहीन ब्राह्मणको व्रात्य बता गये हैं। किन्तु अथर्ववेदमें व्रात्यकी बड़ी ही प्रशंसा की गई है। समस्त १५ वां काण्ड व्रात्यकी प्रशंसासे परिपूर्ण है। इस काण्डमें लिखा गया है,—

"तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्य एकां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति।
ये पृथिव्यां पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्धे। १
तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो द्वितीयां रात्रिमतिथिर्गृहे वसति।
ये अन्तरीक्षे पुण्या लोकास्तानेव तेनावरुन्धे।" २ इत्यादि। (१५।१३।१-५)

'जो पृथिवीके सकल पुण्यलोकोंको प्राप्त होता, उसके घर व्रात्य अतिथि बन एक रात्रि वास करता। जो अन्तरीक्षके सकल पुण्यलोकोंको जाता है, उसके घर व्रात्य अतिथि बन दो रात्रि रहता है। जो द्युलोकके सकल पुण्यलोकोंको पहुंचता है, उसके घर व्रात्य अतिथि बन तीन रात्रि ठहरता है। जो पुण्यसे पुण्य (सर्वापेक्षा पुण्य) लोक पाता, उसके घर व्रात्यअतिथि बन चार रात्रि वसता है। जो अपरिमित सकल पुण्यलोक लाभ करता, उसके घर व्रात्य अतिथि बन अपरिमित रात्रिसे रहता है।'

अग्नि, आदित्य, पवमान, अप, पशु और प्रजा व्रात्यके यहां सप्तप्राण हैं,—

"तस्य व्रात्यस्य॥ १॥ सप्तप्राणाः सप्तापानाः सप्तव्यानाः॥ २॥ योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्द्ध्वो नामायं सो अग्निः॥ ३॥ योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः॥ ४॥ योऽस्य तृतीयः प्राणो भ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः॥ ५॥ योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभुर्नामायं स पवमानः॥ ६॥ योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः॥ ७॥ योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः॥ ८॥ योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः॥" ९॥ १५।१५।

यह तो व्रात्यका परिचय हुआ। इसके बाद एक दूसरी भी बात है। यह निश्चय करना कठिन है, कि अथर्ववेदके मन्त्र कभी किसी यज्ञमें काम आते थे या नहीं? किन्तु इसका प्रमाण मिलता है, कि अथर्ववेदकी शाखा-प्रशाखाओंके विधानानुसार यागादि कर्म किये जाते थे। रामायणमें यह कथा लिखी है, कि दशरथका पुत्रेष्टि याग अथर्ववेदके शीर्षक विधानानुसार अनुष्ठित हुआ था। अथर्ववेदी कहते हैं, कि यह ब्रह्मवेद है। यज्ञ करनेके लिये चार ऋत्विक् और बारह सहकारी आवश्यक होते हैं। प्रधान ऋत्विकोंमें जो सामवेदको उच्चारण करते, वह उद्गाता कहाते हैं। यजुर्वेद पढ़नेवालोंका नाम होता है। ऋङ्मन्त्रको पढ़नेवाले अध्वर्यु है। और सबके ऊपर जो कर्तृत्व चलाते, वह ब्रह्मा बोले जाते हैं। ब्रह्माका कोई स्वतन्त्र वेद नहीं, किन्तु उन्हें सकल वेदका ज्ञान होना चाहिये। अथर्ववेदी कहते हैं, कि यज्ञस्थलमें ब्रह्मनामक ऋत्विक्के वेदका नाम अथर्ववेद है।

पहले अथर्ववेदकी बहुसंख्यक शाखायें थीं। अब उनमें केवल शौनक शाखा विद्यमान है। यह वेद नौ भागोंमें बिभक्त है। यथा—पैप्पलाद, शौनकीय, दामोद, तोत्तायन, जायल, ब्रह्मपालाश, कुनखा, देवदर्शी और चारणविद्या। चरणव्यूहमें लिखा है,—

"द्वादशानां सहस्राणि मन्त्राणां त्रिशतानि च।
गोपथं ब्राह्मणं वेदेऽथर्वणे शतपाठकं॥"

'अथर्ववेदमें बारह हज़ार तीन सौ मन्त्र, गोपथ ब्राह्मण और शत प्रपाठक विद्यमान हैं।'

हम समस्त वेदके मन्त्रादि सावधानतासे गिन, नीचे उनकी तालिका देते हैं,—

काण्ड	सूक्त	अनुवाक	प्रपाठ	ऋक्
१ काण्डमें	३५ सूक्त	६ अनुवाक	२ प्रपाठ	१५३ ऋक्
२ ,,	३६ ,,	६ ,,	४ ,,	२०७ ,,
३ ,,	३२ ,,	६ ,,	६ ,,	२३१ ,,
४ ,,	४० ,,	८ ,,	९ ,,	३२४ ,,
५ ,,	३० ,,	६ ,,	१२ ,,	३७६ ,,
६ ,,	१४२ ,,	१० ,,	१५ ,,	४५४ ,,
७ ,,	११८ ,,	१० ,,	१७ ,,	२८६ ,,
८ ,,	१० ,,	५ ,,	२१ ,,	२५९ ,,
९ ,,	१० ,,	५ ,,	२१ ,,	३०२ ,,

१०म काण्डमें	१० सूक्त	५ अनुवाक	२३ प्रपाठक	३५० ऋक्
११ ,,	१० ,,	५ ,,	२५ ,,	३१३ ,,
१२ ,,	५ ,,	५ ,,	२७ ,,	३०४ ,,
१३ ,,	४ ,,	४ ,,	२८ ,,	१८८ ,,
१४ ,,	२ ,,	२ ,,	२१ ,,	१३९ ,,
१५ ,,	१८ ,,	२ ,,	३० ,,	१४१ ,,
१६ ,,	९ ,,	२ ,,	३१ ,,	९३ ,,
१७ ,,	१ ,,	१ ,,	३२ ,,	३० ,,
१८ ,,	४ ,,	४ ,,	३४ ,,	२८३ ,,
१९ ,,	७२ ,,	७ ,,	,, ,,	४५६ ,,
२० ,,	१४३ ,,	९ ,,	,, ,,	९४१ ,,

इसलिये मालूम होता है, कि इस प्रकार समस्त अथर्ववेदके मन्त्र ५८३० से अधिक नहीं। ये समस्त मन्त्र गद्य-पद्यमें रचित हैं, जिनमें पद्यका ही भाग अधिक है।

विष्णुपुराणमें अथर्ववेदका यह विवरण मिलता है,—

"अथर्वाणामथो वर्चा संहितानां समुच्चयम्।
अथर्ववेदं स मुनिः सुमन्तुरमितद्युतिः॥
शिष्यमध्यापयामास कवन्धं सोऽपि तत्‌द्विधा।
कृत्वा तु देवदर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान्॥ १०
देवदर्शस्य शिष्यस्तु मौञ्जी ब्रह्मबलिस्तथा।
शौल्कायनिः पिप्पलादस्तथान्यो मुनिसत्तम॥ ११
पथ्यस्यापि त्रयः शिष्याः कृता यैर्द्विज संहिताः।
जाजलिः कुमुदादिश्च तृतीयः शौनको द्विजः॥" १२ (३ अंश ६ अ:)

'इसके पश्चात् अथर्ववेदका समस्त विवरण कहते हैं। अपरिमित-दीप्तिमान् सुमन्तु-मुनिने अपने शिष्य कवन्धको अथर्ववेद पढ़ाया था। कवन्धने फिर यह वेद दो भाग कर देवदर्श और पथ्य नामक दो व्यक्तियोंको सिखाया। मौञ्ज, ब्रह्मवलि, शौल्कायनि और पिप्पलाद—यह चार व्यक्ति देवदर्शके शिष्य बने। पथ्यके तीन शिष्य थे—जाजलि, कुमुद और शौनक।'

अथर्ववेदमें बावनसे कम उपनिषत् नहीं देख पड़ते, जिनके नाम ये हैं,—मुण्डक, प्रश्न, ब्रह्मविद्या, क्षुरिका, चूलिका, दो अथर्वशिरस्, गर्भ, महा, ब्रह्म, प्राणाग्निहोत्र, चार माण्डुक्य, नीलरुद्र, नादविन्दु, ब्रह्मविन्दु, अमृतविन्दु, ध्यानविन्दु, तेजोविन्दु, योगशिक्षा, योगतत्त्व, सन्यास, आरुणीय, कठश्रुति, पिण्ड, आत्मा, पांच नृसिंहतापनीय, उत्तरतापनीय, दो कठवल्ली, केनेषित, नारायण, दो बृहन्नारायण, सर्वोपनिषत्सार, हंस, परमहंस, आनन्दवल्ली, भृगुवल्ली, गरुड़, कालाग्निरुद्र, दो रामतापनीय, कैवल्य, जावाल और आश्रम।

अब इस विषयकी आलोचना करनेकी आवश्यकता है, कि अथर्ववेदको बने कितने दिन हुए। रामायणमें लिखा है,—

"इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥" बालकाण्ड १५।२।

'मैं आपको पुत्रोत्पत्तिके लिये अथर्ववेदके मन्त्रों द्वारा एवं उसके विधानानुसार यज्ञ करूंगा।'

यह श्लोक देखनेसे स्पष्ट ज्ञान होता है, कि रामायणसे पहले अथर्ववेद सङ्कलित हुआ था। इस वेदके उन्नीसवें काण्डवाले सप्तम सूक्तमें कहा गया है, कि इसके सङ्कलनकालमें कृत्तिका नक्षत्र राशिचक्रसे प्रथम था और अश्लेषाके शेष किंवा मघानक्षत्रके प्रथमांशमें क्रान्ति पहुंची थी। इस निर्देश द्वारा अथर्ववेदका सङ्कलनकाल उत्तम रूपसे निश्चित होता है।

"चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि।
अष्टाविंशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम्॥ १
सुहवं मे कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरःशमार्द्रा।
पुनर्व्वसु सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे॥ २
पुण्यं पूर्वफल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवास्वातिः सुखो मे अस्तु।
राधो विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टं मूलम्॥ ३
अन्नं पूर्वारासन्तां मे आषाढ़ा ऊर्जं देव्युत्तर आवहन्तु।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्॥४
आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु॥" ५
अथर्व्ववेद १९ काण्ड, ७ सूक्त।

श्रीयुक्त कृष्णशास्त्रीने ज्योतिषशास्त्रको सहायतासे इस प्रकार गणना की है,—

अयन-गति विषुवरेखासे प्रति वत्सर ५० विकला-करके आगे बढ़ा करती है। मघाके मध्यस्थित एक बड़े नक्षत्रके आरम्भ-स्थानसे राशिचक्रके प्रथमांश पर्यन्त ९ अंश होते हैं। कृत्तिकाके आरम्भ-स्थानसे

मघापर्यन्त सात नक्षत्र हैं। प्रत्येक नक्षत्रका स्थान-परिमाण १३ अंश २० कला रहता है। इसीसे कृत्तिका नक्षत्र जिस समय राशिचक्रके प्रथममें था, उस समय मघाके मध्यस्थित नक्षत्रकी द्राघिमा ७×१३ अंश २० कला +८ अंश=१०२ अंश २० कला थी।

सन १८७८ ई०की नटिकाल पञ्जिकामें (Nautical Almanac) मघाके मध्यस्थित नक्षत्रकी स्थिति इस प्रकार निर्दिष्ट हुई थी,—

दक्षिणमें उदय १०° १′ ५२.४″ (काल); उत्तरमें अस्त १२° ३३′ ४६″।

अब द्राघिमा स्थिर करनेके लिये राशिचक्रके व्यासकी वक्रता स्थिर करना आवश्यक है। १८७८ ई० १ली जनवरीको वह २३° २७′ १८.५०″ निर्द्धारित हुई थी।
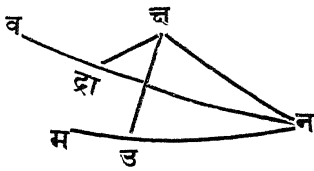
ऊपरके चित्रमें (न म) नाड़ीमण्डल, (न व) राशिचक्रका व्यास, (च) एक नक्षत्र, (न उ) दक्षिण उदय—'उ'के समान, (च उ) अस्त—'अ'के समान, (न द्रा) द्राघिमा—'द्रा'के समान, (द्रा न उ) कोण—'क्र'-तुल्य वक्रताके समान और (च न उ) कोण 'क'के समान है। ऐसा होनेसे यहां वह उपलब्धि होती है, कि वृत्तांशके समकोण दो हैं—(च न उ) और (च न द्रा), जैसे, कट् क=सिन् उ, कट् अ.........(१)। कस् क=टान् उ, कट् (न च)...(२)। एवं टान् द्रा=कस. (न च द्रा), टान् (न च)=कस. (क-क्र) टान् उ सेक् क...(३)।

ऊपरके दक्षिण-उदय-कालकी (१०° १′ ५२.४″) पन्द्रहसे गुण करनेपर १५०° २८′ वृत्तांश आता है।

लग. सिन् १५०° २८′=९.६९२७८५

„ कट. १२° ३३′ ८″=१०.६५२०५०

„ कट. २४° १९′=१०.३४४८३५

„ टान् १५०° २८′=९.७५३२३१

„ सेक् २४° १९′ ४६″=१०.०४०३७६

„ कस. ०° ५२′ १६″=९.९९९९५०

„ टान् १४८° ८′=९.७९३५५७

इसलिये क=२४° १९′ ४६″

क्र=२३° २७′ ३″

क—क्र=०° ५२′ १६″

एवं द्रा=१४८° ८′

इसी कारण सन १८७८ ई०को १ली जनवरीको मघाके मध्यस्थित ताराकी द्राघिमा १४८° ८′ निश्चित हुई और जिस समय राशिचक्रके प्रथममें कृत्तिका नक्षत्र था, उस समय उसका परिमाण १०२° २०′ रहा। ऐसा होनेपर उस समयसे सन १८७६ ई० तक अयनगति ४५° ४८′ आगे बढ़ी है। विषुव-रेखासे अयनगति सम्मुखके दिक्को प्रतिवत्सर ५०′ मिनिट चलती है अर्थात् ७२ वर्षमें एक अंश मात्र भोगती है। इसलिये पीछेकी ओर इसकी गति स्थिर करनेसे ७२×४५.८=३२९७.६ वर्ष निकलते हैं। अतएव यह संकलनकाल ३२९८—१८७७=१४२१ वर्ष सन् ई०से पहले जा पहुंचता है। किन्तु सामनेकी चाल प्रतिवत्सर ०.०००२″ के हिसाबसे बढ़ती है। सन १८८० ई०में वह ५०° २५९२″ बढ़ी थी। किन्तु हिन्दू ज्योतिर्वेत्ता अन्यून ४८° ६′—यह परिमाण मानते हैं। इस हिसाबसे यह संकलनकाल ३३९३—१८७७=१५१६ सन ई०से पहले हो जाता है। अर्थात् आजसे गिननेपर कोई ३४०० वर्ष पहले अथर्ववेद सङ्कलित हुआ था।*

यह गणना सहज प्रणालीसे दिखानेका एक उपाय है, किन्तु उससे हिसाब उतना सूक्ष्म नहीं बनता। पृथिवीको मध्यरेखा और भूचक्रकी मध्य-रेखा मिली हैजहां, उसी स्थानको क्रान्तिपात कहते हैं। इस क्रान्तिपातके उत्तर-दक्षिण लम्बस्वरूप जिस रेखाकी कल्पना की जाती है, उसका नाम विषुव-रेखा पड़ा है। सूर्य जिस गति द्वारा विषुवरेखासे दक्षिण और उत्तर जाते हैं, वह अयनगति है। ७२ वर्षमें एक अंश अयनगति चलती है। अयनांश शून्य होनेसे दिन और रात—दोनों समान रहते हैं और क्रान्तिपात होता है। पहले चैत्र कृष्ण अमावस्याको क्रान्तिपात हुआ करता था। अथर्व-वेदके संकलनकालमें संक्रान्तिके समय राशिचक्रके प्रथममें कृत्तिका नक्षत्र रहा। अब चैत्र शुक्ला दशमीको दिन और रात दोनों बराबर होते हैं, और राशिचक्रके प्रथममें अश्विनी रहती है।

* Theosophist, September, 1881, Vol. II. No. 12.

दो पूर्ण नक्षत्र और एक तीसरे नक्षत्रका एक पाद मिलानेसे एक राशि बनती है। अर्थात् प्रत्येक नक्षत्रका परिमाण १३ अंश, २० कला है। अब ऊपरके हिसाबमें सन्देह उठता है, कि जो कृत्तिकाके पहलेसे गणनाको आरम्भ किया जाता है, तो साढ़े तीन नक्षत्र निकलते हैं। प्रत्येक नक्षत्रका परिमाण १३ अंश २० कला रहनेसे पूरण द्वारा साढ़े तीन नक्षत्रोंमें ४३ अंश ४० कला होती हैं। इसके बाद त्रैराशिक द्वारा गणना करनेसे मालूम होगा, कि ७२ वर्षमें यदि अयनगति एक अंश सरकती, तो ४३ अंश और ४० कला जानेसे कितने वर्ष हुए होंगे ? इस प्रश्नके उत्तरमें ३३६० वर्ष आते हैं।

दूसरी बात यह है, कि जो कृत्तिका नक्षत्रके अन्तसे हिसाब लगाया जाये, तो अयनांश साढ़े चार नक्षत्र बढ़ता है। साढ़े चार नक्षत्रका परिमाण ६० अंश है। इसलिये ऊपरकी तरह त्रैराशिक लगानेसे ४३२० वर्ष निकलते हैं। अतएव अथर्ववेद संकलित हुए, कोई पांच हजार वर्ष बीते होंगे। ऊपरके ज्योतिष और त्रिकोणमितिकी गणनासे ३३८३ वर्ष हुए हैं। इस स्थलमें सहज उपायकी गणनासे ३३६० वर्ष निकलते हैं। इसलिये ३३ वर्षका प्रभेद पड़ जाता है। फिर, कृत्तिकाके अन्तपर सहज उपाय द्वारा गिननेसे ४३२० वर्ष आये हैं। प्रथम उपाय द्वारा इसे भी गिननेसे कोई ४३५५ वर्ष निकलेंगे।

इसका विशेष प्रमाण मिलता है, कि अथर्ववेद ऋक्, यजुः और सामवेदसे पीछे संकलित हुआ था। ऋग्वेदमें अगस्त्य ऋषिवाला कृमि झाड़नेका मन्त्र विद्यमान है। अथर्ववेदमें भी एक वैसा ही मन्त्र लिखा है,—

"अगस्त्यस्य ब्रह्मणा संपिनष्म्यहं कृमिम्।" (अथर्ववेद २ काण्ड, ६ अनुवाक, ३२सूक्त, ३ ऋक्।)

'मैं अगस्त्य ऋषिके मन्त्र द्वारा सकल कृमि सम्पिष्ट करता हूं।' इसमें सन्देह नहीं, यह मन्त्र ऋग्वेदसे लिया गया है। इसके सिवा अथर्ववेदमें ऋक्, यजुः और सामवेदका नाम मिलता है। किन्तु इन तीनों वेदोंमें कहीं भी अथर्ववेदकी बात नहीं उठी है—

"ऋचं साम यजामहे याभ्यां कर्म्माणि कुर्व्वते।
एते सदसि राजतो यज्ञं देवेषु यच्छतः॥ १
ऋचं साम यदप्राक्षं हविरोजो यजुर्बलं।
एष मा तस्मान्मा हिंसीत् वेदः पृष्टः शचीपते॥" २

अथर्ववेद ७ काण्ड ५४ सूक्त।

'हम ऋक् और सामवेदको पूजते, जिनके द्वारा लोग यज्ञकर्म्म सम्पन्न करते हैं। जो देवगणके निमित्त यज्ञ करते, उनकी सभामें वह शोभा पाते हैं। जिन ऋक् और सामकी बात पूछी गई, वह हवि और ओज एवं यजुः बल है। अतएव हे यज्ञपति ! इन वेदोंसे पृष्ट होकर मेरी हिंसा न कर डालना।'

इस स्थलमें ऋक्, यजुः और साम शब्दका वेदके नामसे उल्लेख होनेके कारण स्पष्ट ही बोध होता है, कि इन तीनों वेदोंके संकलनके पश्चात् अथर्ववेद संकलित हुआ था।

रोथ् और ह्विट्ने साहबको मुद्रित पुस्तकमें अथर्ववेदका पहला मन्त्र यह ही है,—

"ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥" १

किन्तु ब्राह्मणसर्वस्व-प्रणेता हलायुधने अपने ग्रन्थमें लिखा है,—

"अथर्ववेदादिमन्त्रस्य दध्यङ्गथर्वण ऋषिरापोदेवता गायत्रीच्छन्दः शान्तिकरणे विनियोगः। मन्त्रो यथा—शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः॥"

अर्थात् उनके मतानुसार इसी स्थानसे अथर्ववेदका आरम्भ हुआ और यही उसका प्रथम मन्त्र है। रोथ् साहबकी मुद्रित पुस्तकमें वह षष्ट सूक्तका प्रथम मन्त्र है। तात्पर्य यह है, कि किसी-किसी प्राचीन पुस्तकमें 'ये त्रिषप्ता' और किसी-किसीमें 'शन्नो देवीरभीष्टये' इस मन्त्रसे अथर्ववेदका आरम्भ हुआ है। सायणाचार्यने अथर्ववेदका भाष्य किया था, किन्तु इस समय वह देखनेमें नहीं आता। अथर्ववेद पहलेसे सातवें काण्डतक सूक्तको ऋक्-संख्याके अनुसार रखा गया है; अर्थात् प्रथम काण्डके चार, द्वितीय काण्डके प्रति सूक्तमें पांच-पांच, तृतीय काण्डके प्रति सूक्तमें

छः-छः, चतुर्थ काण्डके प्रति सूक्तमें सात-सात और पञ्चम काण्डके प्रति सूक्तमें आठसे लेकर अट्ठारह-तक ऋक् वर्त्तमान हैं। छठें काण्डके प्रति सूक्तमें तीन-तीन ऋक् हैं और सप्तम काण्डके प्रति सूक्तमें एक ही एक ऋक् मिलती है। अष्टम काण्डसे अष्टादश काण्ड पर्यन्त अनेक बड़-बड़े सूक्त हैं। त्रयोदश काण्डमें रोहित नामक देवताका विवरण दिया गया है। कदाचित् वही सबके सृष्टिकर्त्ता होंगे। उनकी पत्नीका नाम रोहिणी था। चतुर्दश काण्डमें विवाहकी कथा है। पञ्चदश काण्डमें व्रात्यका वृत्तान्त कहा गया है। षोड़श और सप्तदश काण्डमें विविध विषय संकलित हुआ है। विंश काण्डके अधिकांश स्थलमें इन्द्रदेवकी स्तुति देख पड़ती है। यह स्तुति प्राय: समस्त ऋग्वेदके प्रथम मण्डलसे उद्धृत की गई है। अथर्ववेदका कमसेकम छठवां भाग ऋग्-वेदके मन्त्रोंसे बनाया गया है, जो प्रथम और दशम मण्डलके ही अधिक हैं। अथर्ववेदमें भी पुरुषसूक्त है, किन्तु ऋग्वेदके पुरुषसूक्तसे इसमें पाठका अनेक प्रभेद देख पड़ता है।

युरोपीय पण्डितोंका मत,—कोलब्रुक साहब कहते हैं, कि अथर्ववेद-संहितामें २० काण्ड विद्यमान हैं। यह काण्ड अनुवाक्, सूक्त और ऋक्—इन तीन भागोंमें विभक्त हैं। अनुवाक्की एक शतसे और सूक्तकी संख्या साढ़े सात शतसे अधिक है, मन्त्र केवल ६०१५ मिलते हैं। इसमें प्राय ४० प्रपाठक पाये जाते हैं।*

शास्त्रदर्शी विलसनके मतसे 'अथर्व' वेदमें गण्य नहीं, वरं यह वेदका क्रोड़पत्रस्वरूप है।† किन्तु उपनिषदोंको छोड़ अथर्ववेदमें ही लिखा हैं, कि यह चतुर्थ वेद है,—

"यस्मादृचो अपातक्षन्यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥" अथर्व १०।७।२०।

'जिससे लोगोंने ऋक् मन्त्र पृथक् कर लिये हैं, तथा यजुः खींचा है, साम जिसका लोम और अथर्वाङ्गिरस जिसका मुख है वह स्कम्भ कौन है? यह बात आप हमसे कहिये।'

युरोपीय पण्डितोंके मतसे अथर्ववेदका कोई-कोई अंश अतिप्राचीन और कोई-कोई अंश आधुनिक है, जो ऋग्वेदके दशम मण्डल बननेके बाद रचा गया था।‡

अथर्ववेदका कोई-कोई अंश प्राचीन ऋग्वेदसे मिलता है सही, किन्तु दोनोंका प्राकृतिक भाव विचारकर देखनेसे सम्पूर्ण विभिन्न मालूम देता है। ऋग्वेदके ऋषि प्रकृतिके सौन्दर्यसे विमोहित हैं, किन्तु अथर्ववेदके ऋषि उपदेवोंके भय और उनके भौतिक प्रतापसे अतिशय चिन्तान्वित हैं। उक्त वैलक्षण्य रहते भी यह प्रमाणित हुआ, कि अथर्व-वेदका कोई-कोई अंश अतिप्राचीन है।§

सुप्रसिद्ध ह्विटने साहबका कहना है,—'अथर्ववेद ऋग्वेदकी तरह ऐतिहासिक है, किन्तु याज्ञ नहीं। पहले यह वेद अष्टादश काण्डोंमें विभक्त था। इसका षष्ठांश भी छन्दमें न लिखा गया था। अवशिष्ट छन्द अर्थात् एकषष्ठांश ऋक्सूक्त, विशेषतः ऋग्वेदके दशम मण्डलमें देखा जाता है। बाकी सभी अथर्ववेदका अपना अंश है।' ह्विटने साहबने ऐसे ही प्रमाणित किया है, कि ऋक्संग्रहकालमें अथर्ववेदका अपना अंश विद्यमान न था।

अध्यापक केरण (Kern) साहबने अपने भारतवर्षीय श्रेणीविभागप्रणाली नामक ग्रन्थमें लिखा है,—अथर्ववेदका प्राय: अर्द्धांश ऋग्वेदसे मिलता है, इसलिये अथर्ववेद भी ऋग्वेदकी तरह प्राचीन हो सकता है। केवल अथर्ववेदका अवशिष्ट अंश भाषा, मन्त्र और वर्णनापद्धतिके अनुसार ऋग्वेदकी अपेक्षा अप्राचीन भी माना जा सकता है। ऋग्वदमें वह्लिक शब्दका कोई उल्लेख नहीं, किन्तु इस वेदके स्थान-स्थानमें यह शब्द उल्लिखित हुआ है। अथर्ववेद ५।२२। ५, ७. ९, देखो।

* Asiatic Researches, Vol. VIII.

† Wilson's Rigveda, Introduction, p. viii.

‡ Mr. Whitney's Papers on the Journal of the American Oriental Society, Vol. iii. p. 305ff; iv, p. 155ff; Max Müller's Anc. Sans. Lit. p. 38, 446ff.

§ Indische Studien, p. 295: Zwei Vedische Texte über Omina und Portenta, p. 345—348.

बल्ख आर्यजातिके प्राणियोंका वासस्थान था, सुतरां यह असम्भव नहीं, कि वह्लिकोंके साथ प्राचीन भारतवासियोंका परिचय रहा हो। *

अध्यापक रोथ् अपनी अथर्ववेदीय-आलोचना नामक पुस्तकमें कहा है,—'इसका कितना ही प्रमाण मिलता, कि यह वेद अन्य सकल वेदोंके अन्तमें प्रकाशित हुआ है। ऋग्वेदमें इन्द्र, अश्विनीकुमारद्वय और अन्यान्य देवता जिस-जिस स्थलपर पितृगणको मुक्तिके लिये विशेष रूपसे आराधित हुए, अथर्ववेदके चतुर्थ काण्डमें मित्रावरुण उसी-उसी स्थलपर विशिष्ट रूपसे पूजित हैं। जमदग्नि, वशिष्ठ, मेधातिथि, पुरुमीढ़ प्रभृति ऋग्वेदके ऋषि इस वेदमें आराध्य हुए हैं। इसतरह स्वीकार किया जा सकता, कि यह ऋग्वेदके कितने ही समय बाद और आधुनिक कालमें प्रकाशित हुआ है। जो हो, लोग यह मानते, कि अथर्ववेद संस्कृत भाषाका अतिप्राचीन ग्रन्थ है।' †

किन्तु पण्डितवर रोथ् जो यह बात कहके इस वेदका अप्राचीनत्व प्रमाणित करते, कि ऋग्वेदके ऋषि अथर्ववेदमें पूजित हुए हैं, उसे हम यथार्थ बताके स्वीकार नहीं कर सकते। इस विषयमें कितना ही सन्देह है, कि ऋग्वेदके ऋषियोंने ही ऋग्वेद प्रकाशित किया है। (ऐतरेय आरण्यक—१ आ २ अ० देखो।) फिर भी उन्होंने अथर्ववेदकी परीक्षाकर जो उसका ऋग्वेदके पीछे प्रकाशित होना माना, वह स्वीकार्य है।

महात्मा हौग इस वेदको कोई २००० वर्षका पुराना मानते हैं। किन्तु हम इसे इससे भी प्राचीन समझते हैं, क्योंकि पाणिनि मुनि और निरुक्तकार प्राचीन यास्क मुनिने (निरुक्त नैघण्टुक काण्ड ५।५) भी सङ्केतसे इस वेदका उल्लेख किया है। हौग साहब इस वेदके साथ अविस्ता-शास्त्रका सादृश्य दिखा गये हैं। अथर्ववेदकी तरह अविस्ता-शास्त्रमें भी मारण, उच्चाटन, स्तम्भन और भैषज्यादि लिखित हैं। (अविस्ता—होम यष्त् ८।१-३२ देखो।) होम-यष्त्में (८।२४) 'अपां ऐविष्टिष' अर्थात् जलका आगमन उल्लिखित है। हौगका कहना है, कि यह कई एक साङ्केतिक शब्द अथर्ववेदसे उद्धृत किये गये, जो अथर्ववेदके प्रथम ही भिन्नाकारसे लिखे हैं। * सिवा इसके अविस्ताके कितने ही विषय अथर्ववेदसे मिलते हैं। (अविस्ता शब्दमें समस्त विवरण देखो।) अविस्ता प्राचीन पारसियोंका धर्मशास्त्र है। मालूम होता है, कि अविस्ताके साथ अथर्ववेदका ऐक्य रहनेसे कितने ही लोग इसे वेद नहीं मानते। किन्तु इसका कोई प्रकृत कारण नहीं।

अथर्ववेदका दूसरा नाम अथर्वाङ्गिरस वेद है, स्थान-स्थानमें केवल आङ्गिरस वेद अर्थात् अङ्गिरा और अङ्गिरा-वंशीय ऋषियोंका वेद बताकर यह लिखा गया है। जो अग्नियाजक अङ्गिरा और आङ्गिरस ऋषि हिन्दू और पारसीक दोनों जातियोंके परम श्रद्धेय और भक्तिभाजन बताये गये हैं, इस आङ्गिरस आख्या द्वारा यह वेद उन्हींसे प्रकाशित हुआ मालूम पड़ता है। पुराणमें इस वेदको अङ्गिराका अपत्य कहा गया है। (भागवत ६।६।१६ देखो।) इस वेदका फिर दूसरा नाम आथर्वणवेद अर्थात् अथर्वामतानुयायियोंका वेद है। आविस्तिक आथ्रवन् और वैदिक आथर्वन् शब्द यथाक्रम याजक और वैदिक अग्नियाजकके प्रतिपादक हैं। यह समस्त पर्यालोचना करके देखनेसे प्रकरण विशेषमें आविस्तिक धर्मशास्त्रके साथ आथर्वन् धर्मका कुछ विशेष सम्बन्ध अवश्य ही लक्षित या सम्भावित हुआ करता है।

अथर्ववेदमें सब मिलाके तेंतीस देवता हैं। (अथर्वसंहिता १०।७।१३,१०।७।२३,१०।७।२७।) अविस्तामें भी तेंतीस रतु अर्थात् अध्यक्ष अहुरमज़्द-स्थापित और जरथुस्त्र-प्रचारित सर्वोत्कृष्ट तत्त्वसमुदाय प्रचलित रखनेके लिये नियोजित हैं। (यश्न १।१०।)

'वैदिक-गवेषणा' नामक पुस्तकमें पण्डित सत्यव्रतसामाश्रमिने लिखा है,—'अथर्ववेदको कुरानके अंश बतानेका कारण भी मौजूद है। अथर्ववेदके जिस-जिस अंशमें चिकित्सासम्बन्धीय

* Indische Theorieën over ed Standenverdeeling, p. 13.
† Abhandlung über den Atharwaveda, p. 12, 22.

* अथर्ववेद १।६।१, और Haug's Essays on the Parsis, 3rd ed. p. 182.

प्रस्ताव लिखा है, उसे सिन्धुनद और कास्पियसागर पारवासी यावनिक जातिने सीखा था। सागर पारस्थित अनेक उद्भिद् और फलफूलोंकी बात अथर्ववेदमें मिलनेसे इसे लोग यावनिक बता अश्रद्धेय समझते हैं। किन्तु वास्तविक अथर्ववेद कुरानका अंश नहीं। जब कुरान बना भी न था, जब मुहम्मदका नाम तक सुना न गया था, तभी अथर्ववेदकी सृष्टि हो गई थी।' मालूम पड़ता है, कि अथर्ववेदको कुरानके अंश कहनेका दूसरा कोई कारण हो सकता है; क्योंकि बदावनी नामक एक मुसलमान इतिहासलेखकने अपने 'मुन्तखब' नामक ग्रन्थमें लिखा है,—'इस वत्सर (सन् ९८३ हिजरी या १५७५ ई०) दक्षिण देशसे शेख भावन नामक एक शिक्षित ब्राह्मण आये और मुसलमान धर्मसे दीक्षित हुए। उसी समय सम्राट् अकबरने हमें 'अथर्वन्' अनुवाद करनेका आदेश दिया। इस ग्रन्थके कितने ही धर्मोपदेश इस्लामके धर्मशास्त्रसे मिलते हैं। अनुवादके समय ऐसे कितने ही कठिन अंश देख पड़े, जिनका शेख-भावन-जैसे पण्डित भी भावप्रकाश कर न सके। हमने यह बात सम्राट्से कही, उन्होंने शेख् फ़ैज़ी और हाजी इब्राहीमको अनुवाद करनेकी अनुमति दी। हाजी इब्राहीमने इच्छा रहनेपर भी कुछ न लिखा। अथर्वन्के उपदेशोंमें एक जगह लिखा है, कि इस पुस्तकका कोई न कोई अंश न पढ़नेसे कोई भी रक्षा न पायेगा। इस अंशमें पुनः-पुनः 'ला' लिखा गया है, जो हमारे कुरानमें कहे 'अल्लह, इल्लह' इत्यादि-जैसा है। शेख्ने इन अंशोंके आधारपर ब्राह्मणोंको परास्त किया था और वह इस्लाम धर्मग्रहण करनेपर वाध्य हुए थे।' (मुन्तखबुल तवारीख, २ ख०, २१२ पृ०। अब मालूम होता है, कि अकबर बादशाहके समय अथर्ववेद-कल्पित 'अल्लह, इल्लह' इत्यादि नाम सुनकर अनेक हिन्दू इसे कुरानका अंश समझते थे। फिर इन नामोंसे कितने ही मुग्ध होकर कुरानको श्रेष्ठ मानते, इस्लाम धर्मसे दीक्षित होते थे। इसीलिये उस समयसे अथर्ववेद हिन्दुओंकी अश्रद्धाका पात्र बन गया। किन्तु सम्भवतः कितनों हीने विवेचना करके नहीं देखा है, कि यह शब्द अथर्ववेदमें हैं या नहीं। हमने आजकलके रोथ् और ह्विट्ने द्वारा प्रकाशित समस्त अथर्ववेद पढ़के देखा, किन्तु कहीं यह सकल शब्द देख न पड़े। (फिर भी चाहे किसी दूसरी शाखामें हों?) केवल दो मन्त्रोंमें इनका आभासमात्र देख पड़ता है, किन्तु अर्थ अन्यप्रकार है,—

"आदलाबुकमेककम्। १
अलाबुकं निखातकम्।" २ (अथर्ववेद २०।१३२ सू०।)

आजकल 'अल्ल' नामक एक उपनिषत् प्रचलित है, जिसे कोई-कोई आथर्वण-सूक्त कहा करते हैं। (प्रवकमनन्दिनी ५म भाग १म संख्या, और शब्दकल्पद्रुममें 'अल्ल' शब्द देखो।) इस क्षुद्र ग्रन्थमें 'अल्ला इल्ले' प्रभृति शब्द आये हैं। फिर भी यदि यह उसी समयके अथर्ववेदका अंश हो, तो उस समयके हिन्दूओंका भ्रम कहना पड़ेगा। क्योंकि इस ग्रन्थमें कुरानकी जो बातें मिलती हैं, वह वेद, निरुक्त, पाणिनि प्रभृति किसी प्राचीन ग्रन्थ, यहांतक, कि अथर्वप्रातिशाख्यमें भी नहीं देख पड़तीं। विशेषतः इस ग्रन्थके बीच सङ्केतसे अकबर बादशाहका नामतक मिलता है। (चाहे इस शब्दका अर्थ दूसरे ही प्रकार हो।) इन सकल प्रमाणों द्वारा यही स्वीकार किया जाता है, कि यह अकबर बादशाहके किसी सभापण्डितका बनाया और अथर्ववेदमें प्रक्षिप्त हो आथर्वण-सूक्त अथवा अल्लोपनिषत् नामको प्राप्त हुआ है। इसका प्रमाण अनावश्यक है, कि मुसलमान धर्ममें दीक्षित करनेके लिये समय-समयपर सकल ही मुसलमान बादशाह इसी प्रकार नाना उपायोंको अवलम्बन करते थे। इस प्रकारके कार्य द्वारा ही क्या अकबर हिन्दुओंके प्रियपात्र बन गये थे? मालूम होता है, कि वह अपनी सुविधाके लिये ही संस्कृतका साहित्य-भाण्डार मातृभाषामें गच्छित रखनेके लिये यत्नवान् हुए थे। इसमें सरहिन्द-निवासी हाजी इब्राहीमका अनुवाद किया हुआ ब्रह्मवेद अथर्व पारस्य-भाषामें गृहीत किया गया था।* बोध होता है, कि

* Blochmann's Ain-i-Akbari, p. 105.

अकबर बादशाहसे पहले अथर्ववेदको कुरानका अंश बता कोई अश्रद्धा करता न था। यदि अथर्ववेदका कोई-कोई अंश किसी पाश्चात्य धर्मशास्त्रसे मिलता हुआ माना जाये, तो वह सिवा पारसियोंवाले धर्म-शास्त्र अविस्ताके दूसरा कोई भी ग्रन्थ नहीं।

अथर्ववेदका एक प्रातिशाख्य मुद्रित हुआ है। इसमें अन्यान्य काण्डोंके अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं, किन्तु आश्चर्यका विषय यह है, कि उन्नीसवें काण्डका एक ही उदाहरण दिया गया है, बीसवें काण्डका कोई उदाहरण नहीं। इसीसे कोई-कोई अनुमान करते हैं, कि यह प्रातिशाख्य लिखे जानेके पश्चात् आधुनिक उन्नीसवां और बीसवां काण्ड अथर्ववेदमें मिला दिया गया है। ऋग्वेदके प्राय: समस्त छन्द अथर्ववेदमें देख पड़ते हैं। इसके चौथे काण्डवाले इक्कीसवें सूक्तमें अङ्गिरा, अगस्ति, जमदग्नि, अत्रि, कश्यप, वशिष्ठ, श्यावास्य, वध्र्यश्व, पुरुमीढ़, विमद, सप्तवध्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, विश्वामित्र, कुत्स, कक्षिवान्, कण्व, त्रिशोक, काव्य, उशना, गौतम और मुद्ग—इन सकल ऋषियोंके नाम वर्तमान हैं। इनमें से अनेक ऋग्वेदके ऋषि हैं। अथर्ववेदसे भिन्न जो कितने ही मन्त्र हैं, उन्हें आथर्वण कहते हैं; किन्तु यह ठीक नहीं कह सकते, कि वह आथर्वण अथर्ववेदसे विभिन्न हैं या नहीं। पहले बताया जा चुका है, कि सम्प्रति अथर्ववेदकी केवल शौनक शाखा मिलती है। किन्तु कोई-कोई कहते हैं, कि पैप्पलाद शाखा भी नष्ट नहीं हुई। अथर्ववेदके सङ्कलनकालमें ब्राह्मणोंकी अतिशय प्रति-पत्ति थी। निम्नलिखित मन्त्र इस विषयके विशिष्ट प्रमाण हैं,—

"उत यत् पतयो दश स्त्रिया: पूर्वे अब्राह्मणा: ।
ब्रह्मा चेद्धस्तमग्रहीत् स एव पतिरेकधा ॥ ८
ब्राह्मण एव पतिर्न राजन्यो३ न वैश्य: ।
तत् सूर्य: प्रब्रुवन्नेति पञ्चभ्यो मानवेभ्य: ॥" ९

अथर्ववेद, ५ काण्ड १७ सूक्त।

फिर दूसरी जगह देखनेमें आता है,—

"न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्नि: प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपा: ॥ ६

* * *

ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्या: पराभवन् ॥ १०
गौरिव तान् हन्यमाना वैतहव्या अवातिरत् ।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥" ११

अथर्ववेद ५म काण्ड १ सूक्त।

ऋग्वेदमें इन्द्र, सूर्य, अग्नि, अश्विनीकुमार प्रभृति देवताओंकी स्तुति और अर्चना की गई है। किन्तु अथर्ववेदमें काल, काम, यम, मृत्यु, देव, दानव प्रभृति सबका ही स्तव देख पड़ता है। जगत्में जो है, उसका स्तव किया गया और जो मनसे नया बनाना पड़ता, उसका भी स्तव इसमें वर्त्तमान है,—

"नमो देववधेभ्यो नमो राजवधेभ्य: ।
अथो ये विश्यानां वधास्तेभ्यो मृत्यो नमोस्तु ते ॥ १
नमस्ते अधिवाकाय परावाकाय ते नम: ।
सुमत्यै मृत्यो ते नमो दुर्मत्यै त इदं नम: ॥ २
नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्य: ।
नमस्ते मृत्यो मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इदं नम: ॥" ३

अथर्ववेद ६ष्ठ काण्ड १३ सूक्त।

ऋग्वेदके ऋषियोंने कहीं भी यातुधान, दुर्मति प्रभृतिको नमस्कार नहीं किया। अथर्ववेदमें रोगादि झाड़नेके मन्त्र अधिक देख पड़ते हैं, दूसरे वेदोंमें इतने नहीं। स्वामीको वशीभूत करने, विष झाड़ने, शत्रुको मारने और वन्ध्यानारीको सन्तानोत्पत्तिके मन्त्र अथर्ववेदमें विद्यमान हैं। उस समयके जो सकल ब्राह्मण क्षत्रियोंका पौरोहित्य करते, उन्हें अथर्ववेद अच्छीतरह पढ़ना पड़ता था। रघुवंशमें कालिदासने 'अथर्वनिधि' विशेषण लगा वशिष्ठकी गौरववृद्धि की है,—

"अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुर: पुर: ।"

कालिदासने यह भी भली भांति प्रकाश कर दिया है, कि वशिष्ठ ऋषिका मन्त्रबल कैसा था,—

"तव मन्त्रकृतो मन्त्रै: दूरात् प्रशमितारिभि: ।"

कोई व्यक्ति मृतकल्प होनेसे वह मन्त्र पढ़, उसे झाड़ते थे। उदाहरणार्थ यहां एक मन्त्र लिखा जाता है। किसीको कठिन रोग लगनेसे ऋषि यह पढ़कर झाड़ते-फूंकते थे,—

"आवतस्त आवत: परावतस्त आवत: ।
इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गा: पितॄनसुं बध्नामि ते दृढम् ॥१
यत् त्वाभिचेरु: पुरुष: स्वो यदरणो जन: ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥२
यद् दुद्रोहिथ शेपिषे स्त्रियै: पुंसे अचित्त्या । उन्मो० ॥३
यदेनसो मातृकृताच्छेषे पितृकृताच्च यत् ।
उन्मोचनप्रमोचने उभे वाचा वदामि ते ॥ ४
यत् ते माता यत् ते पिता जामिर्भ्राता च सर्जत: ।
प्रत्यक् सेवस्व भेषजं जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥ ५
इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।
दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥ ६
अनुहूत: पुनरेहि विद्वानुदयनं पथ: ।
आरोहणमाक्रमणं जीवतोजीवतोयनम् ॥ ७
मा बिभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।
निरवोचमहं यक्ष्ममङ्गेभ्यो अङ्गज्वरं तव ॥" ८ इत्यादि

५म काण्ड ३० सूक्त ।

'तुम्हारे निकटसे, तुम्हारे निकटसे, तुम्हारे दूरसे (मैं तुमको बुलाता हूं)। इसी जगह रहो। जाओ नहीं, अपने पूर्वपितृपुरुषोंके समीप मत जाओ। मैं तुमको दृढ़ रूपसे पकड़कर रखता हूं। तुम्हारा आत्मीय व्यक्ति किंवा अन्य यदि कोई अभिचार करता रहा हो, तो मैं मन्त्र पढ़कर उसे दूर किये देता हूं। यदि तुमने बेसमझे किसी स्त्री किंवा पुरुषको कष्ट अथवा शाप दिया हो, तो मैं उसे छुड़ा देता हूं। यदि तुमको पिता या माताके पापसे यह पीड़ा होती हो, तो मैं मन्त्र पढ़कर उसे झाड़े डालता हूं। तुम्हारे पिता, माता, भ्राता, भगिनी आदि जो औषध देते हैं, उसे सेवन करो। मैं तुमको दीर्घजीवी बनाता हूं। हे पुरुष! अपने समस्त मनके साथ इस जगह रहो। दो यमदूतोंके साथ मत जाओ। इस, जीवित मनुष्योंकी पुरीमें रहो। जीवितोंके पथवाले उदयन, आरोहण, अवतरण प्रभृति मनमें विचार, तुमको बुलाने पर लौट आना। कोई डर नहीं, तुम मरोगे नहीं; मैं तुमको दीर्घजीवी कर देता हूं। यक्ष्मारोगसे तुम्हारा शरीर क्षय होता था, उसे मैं झाड़ रहा हूं।'

अविस्ताके किसी-किसी भागमें ऐसे ही मन्त्र सन्निवेशित हैं। यहांतक, कि इस वेदके साथ अविस्ताके अन्तर्गत यष्त् और वेन्दीदाद विभागका ऐक्यकर देखनेसे कितनी ही बातोंका सादृश्य देखा जा सकता है।

अथर्ववेदके ८वें काण्डवाले १ले सूक्तमें मृत्युके प्रति लिखा है,—

"अन्तकाय मृत्यवे नम: प्राणा अपाना इह ते रमन्ताम् ।
इहायमस्तु पुरुष: सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके ॥"

'अन्तक मृत्युको नमस्कार है। तुम्हारा प्राण और अपान वायु इसी जगह रहे। इसी सूर्यपुर और अमृतलोकमें आत्माके साथ यही पुरुष विद्यमान रहे।'

अथर्ववेदके ७वें काण्डके १३वें सूक्तमें सभा-समितिके विषयपर लिखा है,—

"सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने ।
येना संगच्छा उप मा स शिक्षाच्चारु वदानि पितर: संगतेषु ॥ १
विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ।
ये ते के च सभासदस्ते मे सन्तु सवाचस: ॥ २
एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे ।
अस्या: सर्वस्या: संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु ॥ ३
यद् वो मन: परागतं यद् बद्धमिह वेह वा ।
तद् आ वर्तयामसि मयि वो रमतां मन: ॥" ४

'सभा और समिति दोनों प्रजापतिकी कन्या हैं। वह हमारी रक्षा करें। जिनके साथ हमारा मिलन होता है, वह हमारे पास आयें। हे पितृगण! उसी लोकसमागमके मध्यमें मैं सत्कथा कहूं। हे सभे! हम तुम्हारा नाम जानते हैं। तुमको सदालाप कहते हैं। सभासद् हमारे साथ बात किया करें। यहां जो बैठे हैं, उनका तेज और ज्ञान हम लेते हैं। हे इन्द्र! इस सभामें सबकी अपेक्षा हमें प्रसिद्ध करो। यदि आपका मन किसी दूसरी जगह जाकर अटक गया हो, किंवा इसी जगह रुक या अन्यत्र रह जाये, तो वह वापस आये और हममें रमण किया करे।'

अथर्ववेदके १९वें काण्डवाले ६ठें पुरुषसूक्तमें कहा गया है;—

"सहस्रबाहु: पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १

त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद्विष्वङ्ङशनानशने अनु ॥ २
तावन्तो अस्य महिमानस्ततो ज्यायांश्च पुरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ॥ ४
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य किं बाहू किमूरूपादा उच्येते ॥ ५
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ६
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ ७
नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ॥ ८
विराडग्रे समभवद्विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ९
यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १०
तं यज्ञं प्रावृषा प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रशः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या वसवश्च ये ॥ ११
तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ १२
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ १३
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ १४
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५
मूर्ध्नो देवस्य बृहतो अंशवः सप्त सप्ततीः ।
राज्ञः सोमस्याजायन्त जातस्य पुरुषादधि ॥" १६

उपरि-उक्त सूक्त ऋग्वेदसे उद्धृत किया गया है। ऋग्वेदके पाठसे मिलानेपर यह बात स्पष्ट समझ पड़ेगी। तथापि कोई सन्देह नहीं, कि पाठमें कितना ही प्रभेद वर्त्तमान है। ऋग्वेदके १०वें मण्डलवाले ९० सूक्तमें यही सूक्त इस प्रकार लिखा हुआ है,—

"सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलं ॥ १
पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३
त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥ ४
तस्माद्विराड़जायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५
यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसंतो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धवः ॥ ६
तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजंत साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यं ।
पशून्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥ ८
तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि यज्ञिरे ।
छंदांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९
तस्मादश्वा अजायंत ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ १०
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥ ११
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १२
चंद्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिंद्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ १३
नाभ्या आसीदंतरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ॥ १४
सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुं ॥ १५
यज्ञेन यज्ञमयजंत देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचंत यत्र पूर्वे साध्याः संति देवाः ॥" १६

'पुरुषके सहस्र मस्तक, सहस्र चक्षु और सहस्र पद हैं। वह सकल दिक्से इस भूमिको व्याप्तकर दशाङ्गुल स्थानमें रहते हैं। १। जो कुछ उत्पन्न हुआ और जो होगा—पुरुष ही वह समस्त है। वह अमृतत्वके ईश्वर हैं, अन्नसे परिपुष्ट होते हैं। २। उनकी इतनी महिमा है! अतः पुरुषश्रेष्ठ हैं। जगत्के यावत् प्राणी उनका एकपादांश (चौथाई हिस्सा) हैं, और द्युलोकका अमृत उनका त्रिपादांश (पौन हिस्सा) है। ३। त्रिपाद उठाकर पुरुष ऊर्द्ध्वमें चढ़ा करते हैं। पुनः उनका एकपाद मर्त्यमें (यहां) रहता है। ऐसा होनेसे वह, क्या

सजीव और क्या निर्जीव—सकल वस्तुओंमें ही व्याप्त हो रहे हैं। ४। उनसे विराट्ने जन्म लिया और विराट्से पुरुष उत्पन्न हुए। वह जन्म लेकर पश्चात् और अग्रवर्त्ती भूमिमें व्याप्त हो गये। ५। देवताओंने जब पुरुषके द्वारा यज्ञ किया, तब वसन्त घृत, ग्रीष्म यज्ञकाष्ठ और शरत् हवि: बना था। ६। उसी यज्ञमें अग्रजातने पुरुषको कुशके ऊपर बलि चढ़ाया। उनके साथ देवताओंने साध्यों और ऋषियोंको भी बलि दिया था। ७। उसी सर्वजन-अधिष्ठित यज्ञमें सदधि घृत और घृत उत्पन्न हुआ। उन्होंने शून्यके जन्तुओं एवं वन्य और ग्राम्य पशुओंकी सृष्टि की। ८। उसी सर्वजन-अनुष्ठित यज्ञसे ऋक्, साम, छन्द: उत्पन्न हुए। फिर, उनसे यजु:ने भी जन्मग्रहण किया। (यहां ऋक्, साम, यजु: तीनो वेदोंका नाम नहीं।) ९। उससे अश्व और दो पंक्तिवाले दांतोंके पशु उत्पन्न हुए। उससे गायबैल और गायबैलोंसे भेड़-बकरे पैदा हुए। १०। जब उन्होंने उस पुरुषका विभाग किया, तब कितने भागोंमें बांटा था? उनका मुख क्या है? बाहुयुगल क्या है? ऊरुद्वय और पद किसे-किसे कहेंगे? ११। ब्राह्मण उनके मुख थे, राजन्य उनके बाहु बने, वैश्य उनके ऊरु और शूद्र उनके पदसे उत्पन्न हुए। १२। उनके मनसे चन्द्र उत्पन्न हुआ, चक्षुसे सूर्यने जन्मग्रहण किया, मुखसे इन्द्र और अग्नि, प्राणसे (प्राणवायु) वायु उत्पन्न हुए। १३। नाभिसे अन्तरीक्ष, मस्तकसे द्युलोक उत्पन्न हुआ। पादद्वयसे भूमि, कर्णसे दिशा निकली। इसीतरह उन्होंने जगत्की सृष्टि की। १४। देवताओंने जब बलि देनेके लिये पुरुषको पशुस्वरूप बनाकर बांधा था, तब उनके लिये अग्निको वेष्टन कर सात समिधा रखी गई थीं और इक्कीस समिधासे यज्ञ किया गया था। १५। देवताओंने यज्ञ द्वारा उनका याजन किया। पहले वही सकल धर्म थे। महिमान्वितोंने स्वर्गको गमन किया, जहां पूर्वतन साध्य और देवता विद्यमान हैं। १६।'

ऊपर ऋग्वेदके सूक्तका अविकल अनुवाद कर दिया गया है। (पुरुष और विपाद शब्दका विवरण तत्तत् शब्दमें देखो।)

वेदके सङ्कलन-कालमें लाङ्गलादि अर्थात् हल-आदिकी पूजा की जाती थी,—

"सीते वन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव।
यथा न: सुमना असो यथा न: सुफला भुव:।" अथर्ववेद ३।१७।८

'हे सुभगे हलकी रेखा! आप अधिष्ठान कीजिये। हम आपकी इसलिये वन्दना करते हैं, कि आप प्रसन्न हों और वसुमतीको सुफला बनायें।'

अन्यत्र,—

"इन्द्र: सीतां निगृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु।
सा न: पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्॥" अथर्ववेद ३।१७।४।

'इन्द्र हलकी रेखाको ग्रहण करें, पूषा उसकी रक्षा करें; वह पयस्विनी हो प्रतिवर्ष हमें शस्य दिये जायें।'

ब्रह्माण्डपुराणमें अथर्ववेदका प्राधान्य प्रतिपादित हुआ है,—

"बह्वृची हन्ति वै राष्ट्रमध्वर्युर्नाशयेत् सुतम्।
छन्दोगी धनं नाशयेत् तस्मादाथर्वणी गुरु:॥"

'बह्वृच (ऋग्वेदके पुरोहित) राज्य नष्ट करते, अध्वर्यु (यजुर्वेदके पुरोहित) सन्तान नष्ट करते; छन्दोग (सामवेदके पुरोहित) धन नष्ट करते; इसलिये आथर्वण ही सब वेदोंसे श्रेष्ठ है।'

"अथर्वा सृजते घोरमद्भुतं शमयेत् तथा।
अथर्वा रक्षते यज्ञं यज्ञस्य पतिरङ्गिरा:॥
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानामनेकधा।
शमयिता ब्रह्मवेदज्ञस्तस्माद्दक्षिणतो भृगु:॥
ब्रह्मा शमयेन्नाध्वर्युर्न छन्दोगी न बह्वृच:।
रक्षांसि रक्षति ब्रह्मा ब्रह्मा तस्मादथर्ववित्॥" (ब्रह्माण्डपु०)

'अथर्ववेदी पुरोहित उत्पातकी सृष्टि करते और उपद्रवकी शान्ति भी करते हैं। अथर्ववेदी पुरोहित यज्ञ रक्षा करते एवं अङ्गिरा यज्ञके पति हैं। ब्रह्मवेदज्ञ (अथर्ववेदज्ञ) व्यक्ति द्युलोक, अन्तरीक्ष और पृथिवीके नाना प्रकारके उत्पातोंकी शान्ति करते हैं। अत: भृगुको दक्षिणदिशामें रखना आवश्यक है। ब्रह्मा ही (अथर्ववेदी) अनिष्टकी शान्ति कर सकते

हैं, अध्वर्यु, छन्दोग किंवा बह्वृच नहीं कर सकते। ब्रह्मा राक्षसोंसे रक्षा कर सकते हैं, अतः अथर्ववेदज्ञ व्यक्ति ही ब्रह्मा हैं।'

अथर्ववेदमें केवल शूद्र और आर्य—इन्हीं दो श्रेणियोंके लोगोंका विषय निर्दिष्ट हुआ है। (अथर्वसंहिता ४।२०।४,१९।६२।१।)

अथर्ववेदके समय ऋषि हिमालय-पर्वतके निकट रहते थे। (अथर्ववेद:१२।१।११, ५।४।८।) इस वेदमें विधवा-विवाह और एक पति रहते अन्य पतिग्रहणका उल्लेख विद्यमान है। (९।५।२७-२८।)

अथर्ववेदमें हिन्दूओंके जिस समयकी कथा लिखी, उससे बोध होता है, कि वह इन्द्रियसुखके स्वाद-ग्रहणमें ही अधिकतर समर्थ थे। इसीके अनुसार मरणोत्तरका निवास स्वर्गधाम इन्द्रियसुखका आस्पद बताया गया है। (अथर्ववेद ४।३४।२-४।) इसीसे बार-बार ऋषियोंने कहा है,—

"स्वर्गं लोकमभि नो नयासि सं जायया सह पुत्रैः स्याम।"

अथर्ववेद १२।३।१७।

'हमें स्वर्गलोक ले चलो, जिसमें हम स्त्रीपुत्रके साथ एकत्र वास कर सकें।'—एक ओर जैसे स्वर्गलाभके सभी अभिलाषी हैं, वैसे ही दूसरी ओर इस वेदके ऋषि मृत्युभयसे सशङ्कित देख पड़ते हैं। इसीसे इस वेदमें काल ही सबसे ऊपर बताया गया है,—

"कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा॥ १
कालोभूमिमसृजत काले तपति सूर्यः।
काले ह विश्वा भूतानि काले चक्षुर्वि पश्यति॥ ६
काले मनः काले प्राणः काले नाम समाहितम्।
कालेन सर्वा नन्दन्त्यागतेन प्रजा इमाः॥" ७

१९ काण्ड, ६३ सूक्त।

"काले यज्ञं समैरयन्देवेभ्योभागमक्षितम्।
काले गन्धर्वाप्सरसः काले लोकाः प्रतिष्ठिताः॥ ४
काले यमङ्गिरा दिवोऽथर्वा चाधितिष्ठतः।
इमं च लोकं परमं च लोकं पुण्यांश्च लोकान्विधृतीश्च पुण्याः॥ ५
सर्वाँल्लोकानभिजित्य ब्रह्मणा कालः स ईयते परमो नु देवः॥" ६

१९ काण्ड, ५४ सूक्त।

ऋग्वेदमें नरक शब्दका उल्लेख नहीं। किन्तु इस वेदमें वह नारक लोकके नामसे उल्लिखित हुआ है। (अथर्व १२।४।३९।) इस वेदमें गोवध निषिद्ध बताया गया है। (५।१८।३।)

अथर्ववेदियोंने ऋक्, साम, यजुः—इस वेदत्रयीके भिन्न-भिन्न ऋत्विकोंकी असीम निन्दाकर स्वसम्प्रदायियोंकी ही अद्वितीय और उपयुक्त ऋत्विक् बता प्रशंसा की है। (अथर्व-परिशिष्ट ११२ अध्याय।) *

अथर्वशिखा (सं० स्त्री०) अथर्वणः अथर्ववेदस्य शिखा शिर इव, ६-तत्। अथर्वशिखा नामक अथर्ववेदके अन्तर्गत उपनिषद्-विशेष। यह उपनिषत् ब्रह्मतत्त्व प्रतिपादन करनेके कारण अथर्ववेदका शिखास्वरूप बताया गया है।

अथर्वशिर (सं० पु०) यज्ञवाली वेदी बनानेकी ईंट।

अथर्वशिरस् (सं० क्ली०) अथर्वणः शिरो मस्तकमिव। अथर्ववेदके अन्तर्गत अथर्वशिरः या अथर्वशिरस् नामक और ब्रह्मविद्याप्रतिपादक उपनिषद्-विशेष।

अथर्वशिरा (सं० स्त्री०) अथर्ववेदकी ऋचा-विशेष।

अथर्वहृदय (सं० क्ली०) परिशिष्टकी एक उपाधि।

अथर्वाङ्गिरस् (सं० पु०) अथर्वाङ्गिरस-वंशका व्यक्ति।

अथर्वाङ्गिरस (सं० पु०) अथर्वा चाङ्गिराश्च,—अच् निपातनात् साधुः। १ अथर्वा और अङ्गिरा ऋषि। २ अथर्ववेद। अथर्ववेदका यह नाम स्वयं अथर्ववेदमें ही देख पड़ता है। कहते, कि इस नामसे अथर्ववेदके वह प्रधान विषय जान पड़ते, जिनसे औषध और मन्त्र प्रकाशित हुए हैं।

अथर्वाण (सं० क्ली०) अथर्ववेदकी विधि-विशेष।

---

* इन सब विषयोंका यावत् विवरण वेद शब्दमें विस्तृत रूपसे लिखा जायेगा,—वैदिक समयमें हिन्दूओंका कैसा समाज-बन्धन, धर्मनीति, परलोकमें विश्वास, आचार-व्यवहार, मेलमिलाप, परिधेय वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र, कृषिकर्म, आमोद-प्रमोद, गृहपालित पशु, वाणिज्य और नौका द्वारा विदेशगमन-प्रथा था। इसके इलावा ऋक्, यजुः और साम शब्दमें भी इन बातोंका कितना ही परिचय मिलेगा। ब्लूमफिल्ड साहबका अथर्ववेद सम्बन्धीय पुस्तकमें (Dr. Bloomfield's Atharvaveda) और तन्त्रशब्दमें भी अथर्ववेदका अन्यान्य विवरण देखो।

अथर्वाणवित् (सं० पु०) अथर्ववेदकी विधिका ज्ञाता।

अथर्वाधिप (सं० पु०) अथर्वण: वेदस्याधिप: ६-तत्। अथर्ववेदके अधिपति, बुध। मङ्गल सामवेदके और चन्द्रके पुत्र बुध अथर्ववेदके अधिपति हैं।

अथर्वी (वि० स्त्री०) न-थर्व-अच्, पृषोदरादित्वात् उलोप: ; गौरादित्वात् ङीष्। १ न चलनेवाली। २ भालेमें छिदी हुई। ३ अग्निसे परिवेष्टित, आगसे घिरी। ४ हिंसा न करनेवाली।

अथल (हिं० पु०) लगानपर खेती करनेको दी जानेवाली भूमि या ज़मीन।

अथवना (हिं० क्रि०) १ अस्त होना, डूब जाना, बैठना। २ छिपना, मिटना।

अथवा (सं० अव्य०) १ पक्षान्तरसे, या, किंवा।

अथाई (हिं० स्त्री०) १ चौपार, चौतरा, बैठक, कमरा ; घरसे बाहर मित्रोंसे मिलने-जुलनेका स्थान। २ गांववाले लोगोंके एकत्र बैठ बातचीत और पञ्चायत करनेकी जगह। ३ घरके सामने उठने-बैठनेका चबूतरा।

अथात: (सं० अव्य०) अब, इस समय।

अथान, अथाना (हिं० पु०) अचार।

अथाना (हिं० क्रि०) १ अस्तहोना, डूबना। २ थाह पाना, गहराई नापना।

अथानन्तरम् (सं० अव्य०) इसके बाद ; अब, इस समयमें।

अथापि (सं० अव्य०) इसपर भी, और तो, इसलिये, इसतरह।

अथावत् (हिं० वि०) अस्त, डूबा या बैठा।

अथाह (हिं० वि०) १ बेथाह, अगाध। २ अपार, अनन्त, असीम गूढ़, समझमें न आने योग्य।

अथिर (हिं० वि०) १ अस्थिर, चलता हुआ। २ क्षणभङ्गुर, स्थिर न रहनेवाला।

अथो, अथ देख।

अथोर (हिं० वि०) थोड़ा नहीं, ज्यादा, अधिक।

अथोवा—अथवा देखो।

अथ्र् खां—एक कवि, शायर। इनके पिताका नाम 'अमीर निज़ामुद्दीन रजवी' था। यह बुखारेके रहने वाले थे। आलमगीर बादशाहके समयमें यह भारतवर्ष आए थे।

अद्—अदा०, पर०, सक० अनिट्। १ भक्षण। भ्वा०, पर०, सक० सेट् इदित्। २ बन्धन।

अदंक (हिं० पु०) आतङ्क, भय ; डर, खौफ़।

अदंड, अदण्ड देखो।

अदंडनीय, अदण्डनीय देखो।

अदंडमान, अदण्डमान देखो।

अदंड्य, अदण्ड्य देखो।

अदंत, अदन्त देखो।

अदंभ, अदम्भ देखो।

अदंभित्व, अदम्भित्व देखो।

अदंष्ट्र (सं० पु०) न सन्ति दंष्ट्रा दन्ता यस्य, दंश-ष्ट्रन् दंष्ट्रा। तितुत्रतथसिसुसरकसेषु च। पा ७।२।९। १ विषहीन सर्प, वह सांप जिसके ज़हरीले दांत न हों। २ (त्रि०) दन्तहीन।

अदक्ष (सं० त्रि०) दक्ष नहीं, अचतुर ; नाक़ाबिल।

अदक्षिण (सं० त्रि०) दक्षिणोऽनुकूल: कुशलश्च ; न दक्षिणं, विरोधार्थे नञ् तत्। १ जो अनुकूल न हो, प्रतिकूल, विरुद्ध, खिलाफ़। २ दाहना नहीं, बायां। 'नास्ति दक्षिणा क्रियासमाप्तौ यत्र'। ३ दक्षिणाविहीन, जिस यज्ञमें दक्षिणा न दी जाये। ४ अकुशल, गंवार।

अदक्षिणत्व (सं० क्ली०) १ अनाड़ीपन। २ दक्षिणा न देनेकी स्थिति।

अदक्षिणीय, अदक्षिण्य (सं० त्रि०) दक्षिणाके अयोग्य, जिसे दक्षिणा दी न जा सके।

अदग (हिं० वि०) १ बेदाग़। २ अयपशविहीन। ३ निरपराध, बेगुनाह। ४ स्वच्छ, साफ़।

अदग्ध (सं० त्रि०) न-दह-क्त, विधिपूर्वकमग्निना न दग्धं संस्कृतम्। १ शास्त्रविधानानुसार जिसका अग्निसंस्कार न किया गया हो। २ दग्ध नहीं, विना जला हुआ।

अदण्ड (सं० त्रि०) १ दण्डके अयोग्य, सज़ाके नाक़ाबिल; जिसे दण्ड देनेकी व्यवस्था न हो। २ कररहित, बेमहसूल। ३ द्वन्द्वरहित, मनमौजी। (क्ली०) ४ दण्डका अभाव, सज़ाकी मुआफ़ी। ५ विना लगानकी ज़मीन, मुआफ़ी।

अदण्डनीय (सं० त्रि०) अदण्ड्य, जो दण्ड देनेके योग्य न हो, जिसे सज़ा देनेका क़ायदा नहीं।

अदण्डमान (सं० त्रि०) दण्डके अयोग्य, सज़ाके नाक़ाबिल।

अदण्ड्य (सं० त्रि०) न-दण्ड-यत्, दण्डं शास्तिं नार्हति। दण्डके अयोग्य, जिसे सज़ा दी न जा सके।

अदत् (सं० त्रि०) दन्तरहित, बेदांत।

अदत्त (सं० पु०) न-दा-क्त; नञ्-तत्। यत्पुनरन्यायेन दत्तं तददत्तम्। १ अन्यायसे दिया गया, जो न्यायसे दिया न गया हो। २ न दिया हुआ। ३ विवाहमें न दिया गया। शास्त्रकारोंने सोलह प्रकारके दानको अदत्त बतलाया है। यथा,—१—भयप्रयुक्त दान, जो दान डरसे दिया जाय। २—क्रोधवशतः दान, क्रोधमें आकर दिया गया दान। ३—शोकके समयका दान, जो दान दुःखमें किया गया हो। ४—उत्कोच, रिशवत। ५—परिहासका दान; जो दान हंसी करके दिया जाय। ६—व्यत्यास दान, दूसरेसे पाये हुए दानका दान। ७—छलपूर्वक दान, धोखेका दान। ८—बालक कर्तृक दान, जो दान लड़का किसीको दे। सोलह वर्षकी अवस्था न होनेसे किसीको भी पैतृक सम्पत्तिका अधिकार नहीं। इसलिये सोलह वर्षसे जिसकी अवस्था कम हो, उसका दान सिद्ध नहीं होता। ९—मूढ़ व्यक्ति कर्तृक दान; बेवक़ूफ़का दिया हुआ दान। १०—अस्वाधीन व्यक्तिका दान, जो दान स्वाधीन व्यक्ति न दे। ११—पीड़ित व्यक्तिका दान, बीमारका दान। १२—मादक द्रव्यके सेवनसे मत्त हुए व्यक्तिका दान, जो दान मतवाला करे। १३—वातिकादि रोगसे उन्मत्त व्यक्तिका दान, जो दान पागल करे। १४—प्रतिशोध पानेकी इच्छासे किया हुआ दान, जो दान बदला पानेकी इच्छासे दिया जाय। १५—छलीको दिया हुआ दान। जो व्यक्ति वेद नहीं पाढ़ा, किन्तु अपनेको यदि वेदज्ञ बताकर दान ले, तो ऐसा दान असिद्ध होता है। १६—यागादिके लिये पाई वस्तुका द्यूतादि कुकर्मोंमें दान। जो व्यक्ति इस प्रकार अवैध दान करता या लेता, शास्त्रकारोंने उसके दण्डविधानकी अनुमति दी है,—

"गृह्णात्यदत्तं यो लोभात् यश्चादेयं प्रयच्छति।
अदेय दायको दण्ड्यस्तथा दत्तप्रतीच्छुकः॥" (मिताक्षरा)

'जो अन्याय दान करता और लोभपरतन्त्र होकर जो वह अन्याय दान लेता है, वह अदेयदानकर्ता और उस दानका ग्रहणेच्छु व्यक्ति दोनो दण्डनीय होते हैं।'

अदत्तदान (सं० क्ली०) न दिया हुआ दान, ज़बरदस्ती या चोरीसे पाई हुई चीज़। जैनशास्त्राचार्योंमें कोई इसके तीन और कोई चार भेद बताते हैं। जैसे,—१ द्रव्यादत्त, २ भावादत्त और ३ द्रव्यभावादत्त, एवं १ स्वामी अदत्त, २ जीव अदत्त, ३ तीर्थङ्कर अदत्त और ४ गुरु अदत्त दान।

अदत्ता (सं० स्त्री०) १ अविवाहिता, जिस लड़कीका विवाह न हुआ हो। (वि०) २ जो न दी गई हो।

अदत्तादायिन् (सं० त्रि०) अदत्त-आ-दा-णिनि; अदत्तमादत्ते, ६-तत्। अदत्त सम्पत्तिका ग्राहक, चोर।

अदत्र (सं० त्रि०) अद-अत्रन् वाहुल०। अदनीय, खाद्य, खानेके योग्य।

अदत्रा (वै० अव्य०) भेंटकी भांति नहीं।

अदत्वा (सं० अव्य०) न देकर, विना दिये हुए।

अदद (अ० पु०) १ संख्या, शुमार। २ अङ्क, संख्या लिखनेका चिह्न।

अदद्र्यञ्च् (वै० त्रि०) अमुमञ्चतीति (भट्टोजि), अदस्-अञ्च्-क्विप्=अदस्-अच्। विश्वग्देवयोश्च टेरद्र्यञ्चतौ वप्रत्यये। पा ६।३।९२, अदसोऽसेर्दादु दो मः। पा ८।२।८०, स्थानेऽन्तरतमः। पा १।१।५०, अलोऽन्त्यस्य। पा १।१।५२। उसकी ओर जाता या झुकता हुआ।

अदन (सं० क्ली०) अद्-ल्युट् भावे। १ भक्षण, भोजन, खाना। कर्मणि ल्युट्। २ भक्षणीय द्रव्य,

खानेके लायक चीज़। ३ स्वर्गीय वनविशेष। इस वनमें यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमानोंके मतसे परमेश्वरने आदमको बनाया था। सम्भवतः यही अरबका अदन (Aden) स्थान होगा।

अदना (अ० वि०) १ छोटा, क्षुद्र। २ तुच्छ, नाचीज़। ३ नीच, कमीना। ४ साधारण, मामूली।

अदनीय (सं० त्रि०) भक्षणयोग्य, खाने लायक।

अदन्त, अदन्तक (सं० पु०) न सन्ति दन्ता अस्य। १ पूषारूप आदित्यविशेष। पूषाका अदन्तक नाम इसलिये पड़ा, कि जब दक्षराजने सतीके सामने महादेवकी निन्दा की थी, तब यह दांत निकाल मनके आह्लादसे हंसते थे। यज्ञनाशके समय शिव-दूत 'वीरभद्र'ने इनके दांत तोड़ डाले। भागवतमें लिखा है,—

"पूष्णोह्यपातयद्दन्तान् कलिङ्गस्य यथा बलः।
शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः॥" ४।५।१९।

'अनिरुद्धके विवाहकालमें बलरामने जैसे कलिङ्ग-राज दन्तवक्रके दांत तोड़े थे, वैसे ही शिवनिन्दा सुननेसे दांत निकाल हंसनेके कारण शिवदूतने पूषाके भी दांत तोड़ डाले।'

श्रीधरस्वामीने पूषा शब्दकी इसतरह टीका की है,—

'तथाहि पूषा पिष्टभागोऽदन्तको हि तं देवा अस्तुवन्निति विहितस्य पेषणस्य छिदैवत्याभावात् तत्र तस्य दन्ताः सन्तीति वक्तव्यं स्यात्।'

२ जोंक। (त्रि०) ३ दन्तहीन, बेदांत। ४ अजात-दन्त, जिसके दांत न निकले हों। ५ अत् अन्ते यस्य; अकारान्त, जिसके अन्तमें अकार हो।

अदन्त्य (सं० त्रि०) १ दांतके अयोग्य। २ दांत-का नहीं। ३ दांतको हानिकारक। (क्ली०) ४ दांतका अभाव।

अदब (अ० पु०) मान-सम्भ्रम, शिष्टाचार; कायदा-करीना।

अदबदकर, अदबदाकर (हिं० क्रि०-वि०) १ जान-बूझकर, ज्ञानवशतः। २ हठवशतः, ज़िदसे। ३ अवश्य, ज़रूर।

अदब्ध (वै० त्रि०) न-दन्भ-क्त। १ अहिंसित, जो मायामें न फंसे। २ पवित्र, पाक। ३ निर्दोष, बेऐब।

अदब्धधीति (वै० त्रि०) जिसके ग्रन्थ निर्दोष हों, अच्छी किताबें बनानेवाला।

अदब्धव्रत (वै० पु०) जिसका व्रत या पूजापाठ अभङ्ग हो; धर्मके कार्य लगातार करनेवाला व्यक्ति।

अदब्धव्रतप्रमति (वै० पु०) अभङ्ग व्रत और उच्च विचारका मनुष्य, जो आदमी ऊंचे मस्तिष्कका हो और अपना धर्मकर्म कभी न छोड़े।

अदब्धायु (वै० पु०) अदब्धेन अहिंसनेन आयाति; आ-या-कु, ३-तत्। अहिंसायुक्त पुरुष, जो आदमी किसीको जानसे न मारे।

अदब्धासु (वै० त्रि०) पवित्र जीवनवाला, जिसका जीवन पवित्र हो।

अदभ (वै० त्रि०) न दभ्यते, दभ्भ-अच्, बाहुलकात् क वाच्य०। १ हिंसाके अयोग्य, जो जानसे मारनेके लायक न हो। २ निश्छल, लाफ़रेब। ३ पवित्र, पाक।

अदभ्र (सं० त्रि०) न-दन्भ-रक्। प्रचुर, बहु; ज्यादा, बहुत।

अदम-पैरवी (अ० स्त्री०) मुक़द्दमेकी कारवाईका न होना, अभियोगके प्रतिपादनका अभाव।

अदमसबूत (अ० पु०) मुक़द्दमेके सुबूतका न गुज़-रना, अभियोगके प्रमाणका अभाव।

अदमहाज़िरी (अ० स्त्री०) मुक़द्दमा पेश होनेके वक्त ग़ैरहाज़िरी, अभियोग चलते समय न्यायालयसे अनुपस्थिति।

अदमुद्र्यञ्च् (वै० त्रि०) उसकी ओर जाने या झुकनेवाला।

अदमुयञ्च् (वै० त्रि०) पहलेका, जो पूर्वमें रहे।

अदम्भ (सं० पु०) न दम्भः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ दम्भका अभाव, सीधापन। २ शिवकी एक उपाधि। (त्रि०) नास्ति दम्भो यस्य, बहुव्री०। ३ दम्भरहित, सीधा-सादा।

अदम्य (सं० त्रि०) न दम्यतेऽसौ। १ जो दमन न किया जा सके, दबानेके नाक़ाबिल। २ प्रचण्ड, ज़ालिम। ३ प्रबल, ज़ोरावर। ४ अजेय, जो न

जीता जा सके। (पु०) ५ तीन वर्षसे कम अवस्थाका बछड़ा। अपालन निमित्त अदम्य बछड़ेके नष्ट होनेसे उसका स्वामी प्राजापत्यका पाद प्रायश्चित्त करे। इस स्थलमें कोई-कोई ऋषि स्वामीको गोवधका पाद प्रायश्चित्त करना बताते हैं,—

"पादश्चाप्राप्तके देयो वत्से स्वामिन्यरचिते।" (प्रायश्चित्त वि०)

"अप्राप्तके अप्राप्तदम्यावस्थे विहायणपर्यन्तमिति यावत्।" (टीका)

कहते हैं, कि उक्त वचनमें वत्स शब्द रहनेके कारण दो वर्ष पर्यन्त अदम्य अवस्था मानना पड़ेगी और इन्हीं दोनो वर्षोंके मध्यमें प्राजापत्यका पाद प्रायश्चित्त कर्तव्य है। इसके सम्बन्धमें लोग यह वचन सुनाया करते हैं,—

"वर्षमावात्तु बाला स्यादतिबाला द्विवार्षिकी।
अतःपरन्तु सा गौः स्यात्तरुणी दन्तजन्मनि॥"

'[illegible]र्षकी बाला, दो वर्षकी अतिबाला, तत्पश्चात् तरुण अवस्थामें दांत निकल आनेपर बछिया गो कहलाती है।'

अदय (सं० त्रि०) दयारहित, बेरहम।

अदयालु (सं० त्रि०) करुणाशून्य, नामिहरबान।

अदर (सं० त्रि०) १ अधिक, ज्यादा; कम नहीं। २ पेगू देशके सत्रहवें राजा।

अदरक (फा० पु०) आर्द्रक, आदा, अदरख। इसका वृक्ष एक गज ऊंचा होता है, और इसमें लम्बी-लम्बी पत्तियां लगती हैं। वास्तवमें इस वृक्षका उत्पत्तिस्थान क्रान्तिसीमावाला एशियाखण्ड है, जहां इसकी खेती बहुत पुराने समयसे होती आई है। एशियासे लोग इसे पश्चिम-इण्डीज़में ले गये, जहां अब यह अधिकतासे पाया जाता है। पूर्व और पश्चिम इण्डीज़से यह पुरानी और नई दुनियाके उष्ण प्रदेशोंमें फैल गया, अफ्रीकासे कुछ अदरक व्यवसायके लिये बाहर भेजा जाता है।

संस्कृतमें शृङ्गवेर और अरबीमें इसे जञ्जबील कहते हैं। यूनानी और रूमी इसे पहले मसाला ही समझते थे, जिन्हें सम्भवतः यह रक्तसागरकी राहसे प्राप्त होता था। उनका खयाल था, कि यह दक्षिण अरबमें पैदा होता था। कहते हैं, कि सन् ई० के दूसरे शताब्दमें मिस्रके प्रधान नगरसे इस मसालेपर रूमियोंने सरकारी खज़ानेकी चुङ्गी लगाई थी। मध्यके समय यह प्रायः ऐसी ही तालिकाओंमें उल्लिखित हुआ और पूर्वसे युरोपके व्यवसायमें इसकी गणना प्रधान रही। इसकी खेती भारतवर्षके प्रत्येक उष्ण और सजल भाग तथा ४००० से ५००० हज़ार फ़ीट ऊंचे हिमालयमें की जाती है। इसके बोने और तय्यार करनेमें बड़ा परिश्रम करना और ध्यान देना होता है। भूमि अवश्य उपजाऊ चाहिये, किन्तु न तो अधिक भारी और न अधिक हलकी और मोटी ही हो। इसके सींचनेमें अधिक सावधान रहनेकी आवश्यकता है। इसमें खाद खूब पड़ती, और यह बड़ी सावधानतासे निराई जाती है।

कोई तीन शताब्द हुए मालावरवाले जिस अदरककी बड़ी प्रशंसा की गई थी, अब कहते हैं, कि वह कालीकटसे दक्षिणमें अवस्थित चेरनाद ज़िलेकी पैदावार है। इस ज़िलेकी भूमि खूब लाल और उपजाऊ होनेसे अदरक बोनेके लिये विशेष उपयोगी है। साधारणतः यहां इसकी खेती वैशाख मासके मध्यमें प्रारम्भ होती, जब भूमि भली-भांति जोत-जातकर ठीक कर दी जाती है। वृष्टि आरम्भ होनेके समय १०-१२ फ़ीट लम्बी और ३-४ फ़ीट चौड़ी क्यारियां बनाई जाती और उनमें कोई एक फ़ूटके अन्तरसे छोटे-छोटे गड्ढे खोदकर खाद भर देते हैं। इसके पश्चात् इसकी जड़वाली जो राशि होशियारीसे भूमिमें बोनेके लिये गाड़ी जाती है, उसे खोदते और उसका अच्छा-अच्छा अंश काट, डेढ़से दो इञ्चतकके टुकड़े बनाते हैं, जिससे वह लगाने योग्य हो जाती है। फिर उन टुकड़ोंको गड्ढोंमें गाड़ और क्यारियोंपर हरी पत्तीकी गहरी तह चढ़ा देते हैं। यह तह खादका काम देती और क्यारियोंकी नमीसे भी बचाती, जो वृष्टिके अमोघ जलसे होती है। बाढ़से फ़सल बिलकुल बिगड़ जाती, किन्तु उत्तम रूपसे जल आवश्यक होनेके कारण सिंचाई पर अधिक ध्यान देना होता

है। क्यारियां ढांकनेके लिये पत्ती बड़ी होशियारीसे इकट्ठा करना चाहिये ; क्योंकि कुछ पत्ती ऐसी हैं, जिन्हें डालनेसे कीड़े-मकोड़े पैदा हो जाते, जो फ़सलको भविष्यत्में हानि पहुंचाते हैं। यह बात भले प्रकार नहीं बताई जा सकती, कि कितने खेत-फलमें कितना अदरक निकलता और उससे क्या लाभ होता है।

बम्बई-प्रान्तमें इसकी खेती ख़ूब की जाती है। बीजका अदरक फाल्गुन और चैत्र मासमें खुदता है। जब पौधा मुरझा जाता है, तब सबसे अच्छी जड़ धोकर छायामें सुखा लेते, और सूखे गन्ने तथा अदरककी पत्तीपर उसका ढेर लगा देते हैं। जड़पर भी कितनी ही पत्ती डालकर फिर सबको चिकनी मट्टीसे छोप देते हैं, जिससे हवा भीतर न पहुंच सके। इस प्रकार जड़को बोनेके समयतक सुरक्षित रखते हैं, यथा समय जिसमें अङ्कुर फूट पड़ता है। जैसी भूमि गन्नेको चाहिये, वैसी ही इसे भी आवश्यक होती है, अर्थात् ढीली, हलकी और विना पत्थरकी भूमि, जिसमें कमसे कम चौथाई भाग रेतका रहे। चैत्रसे आषाढ़ तक अदरक लगाते हैं। चैत्रमें जो अदरक लगाया जाता, उसे पांच-पांच दिनपर सींचना पड़ता है। भूमिको ठण्डा और सजल रखनेके लिये इसके साथ पटुआ बो तथा नये पौधोंको घास और केलेकी पत्तीसे ढांक देते हैं। इसके विरुद्ध यदि यह वृष्टि आरम्भ होनेके बाद लगाया गया हो, तो पटुआ बोने या पौधोंको घाससे ढांकनेकी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। अदरकका खेत क्यारियोंमें बंटता और प्रत्येकके बीचमें पानीकी एक नाली बना दी जाती, जिसमें लालमिर्च और हलदी उपजती है। जब अदरकका नया पौधा एक फ़ूट ऊंचे चढ़ता है, तब प्रत्येक क्यारीमें कोई ढाई सेर खल डालते हैं। यही काम श्रावण और भाद्र मासमें फिर दुहराया जाता है। पहली और दूसरीको छोड़कर, खादकी तीसरी तह मट्टीसे ढांक देते हैं। प्रायः महीनेमें जड़ खोदनेको तय्यार होती है। जड़ खोदने, बकला खपरैसे रगड़ने और जड़ धूपमें सुखा लेनेके पश्चात् अदरक व्यवहारोपयोगी बनता है। खानदेशमें घोड़ेकी लीद, गोबर और भेड़की लेंडी समान भाग मिलाकर खादका काम लेते हैं। साफ़ करनेके लिये पहले जड़को चौड़े मुंहके बरतन-में कुछ-कुछ उबालते और फिर कुछ दिन छायामें सुखा, चूनेके हलके पानीमें डुबाते हैं। पश्चात् इसे धूपमें सुखाते, गहरे चूनेके पानीमें डुबाते और जोश देनेके लिये भूमिमें गाड़ देते हैं। जोश देनेका काम पूरा होनेके पश्चात् अदरक सोंठ बन और बाज़ारमें बिकनेके लिये भेज दिया जाता है। कहते हैं, कि अदरक एक बीघेमें पचाससे डेढ़ सौ मन तक पैदा होता है। अदरक पौन मनसे सवा मन और सोंठ पांच सेरसे दश सेर तक रुपयेमें बिकता है।

बङ्गालमें कई जगह अदरककी खेती होती है। तिरहुत और सारनके लोग नैपाली अदरकके स्वादकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। आलू और घुइयां होनेके पश्चात् बङ्गालमें अदरक लगानेसे सुभीता होता है। जब-जब पानी बरसे, तब-तब इसका खेत फाल्गुनके अन्त, चैत्रके आदिसे जोत डालना चाहिये ; वैशाखका दूसरा या तीसरा सप्ताह इसके लगानेका समय है। अङ्कुर दश-पन्द्रह दिनमें ही फूट सकता है, किन्तु कभी-कभी दो महीने लग जाते हैं। खेत सूखा होनेसे कार्तिक और अग्रहायणके आदिमें भी सींचनेकी आवश्यकता पड़ती है। शीतकालमें वृष्टि न होनेसे माघके अन्त या फाल्गुनके आदि तक, महीनेमें दो बार खेत सींचना होता है। एक बीघेमें चार मन अदरक डाला जाता, तथा चालीससे साठ मन तक प्रायः उपजता है। आश्विन और कार्तिकमें किसान होशियारीसे कुछ बोया हुआ अदरक निकालकर ऊंचे दामपर बेच लेते हैं। एक बीघेकी खेतीमें लगभग छियालीस रुपये खर्च होते हैं, जिनमें सोलह रुपया अदरकके बीजका दाम पड़ता है। फिर सात रुपयेको खाद आती, और बाकी रुपया दूसरे कामोंमें लग जाता है। चालीससे साठ मनकी उपजका दाम अस्सीसे

एक सौ बीस रुपये तक होता, जिसमें बीघे पीछे बत्तीससे चौहत्तर रुपये तक लाभ मिलता है।

संयुक्तप्रान्तके कुमायूंकी उपत्यकाओंमें अदरक खूब लगाया जाता है। यहां भी खेती वैसे ही की जाती, जैसे मन्द्राज और बम्बईके सम्बन्धमें कहा गया है। कुमायूंके अदरकको अधिक प्रशंसा है और इसकी उत्तमतापर पहाड़ियोंको बड़ा विश्वास जम गया है। संयुक्त-प्रान्तकी तरह पञ्जाबमें भी हिमालयको निम्न और उच्च उपत्यकाओंपर अदरककी खेती होती है। फ़सलको भाद्र, आश्विन और कार्तिक—वर्षमें तीन बार निराते हैं। एक बीघेमें आठ मन अदरक पड़ता, अच्छी फ़सल होनेसे बत्तीस मन निकलता है। शिमलेके पास सबाथू ज़िलेमें सबसे अच्छा अदरक पैदा होता है। यहां अदरक एक टोकरेमें रख, और रस्सीसे ऊंचा बांध, तीन दिन तक रोज़ दो घण्टे हिला-हिलाकर सुखाया और फिर आठ दिनतक धूपमें डाला जाता है। इसके बाद फिर टोकरेमें रख, इसे हिलाते, और दो दिन बाद सोंठ बना लेते हैं। सोंठ अदरकसे मंहगी बिकती, तथा उसमें लोगोंका परिश्रम सफल होता है।

वैद्य और हकीम अदरकको बहुत पुराने समयसे औषधमें व्यवहार करते आये हैं। वैद्योंने इसे चरपरा, गर्म, वातनाशक और लगानेसे चमड़ेको लाल करनेवाला बताया है। उनके मतसे यह अजीर्ण, कण्ठरोग, शिरःपीड़ा वक्षवेदना, गठिया, सूजन, जलोदर, और अन्य अनेक रोगोंमें लाभदायक है। पुराने वैद्य प्रायः वातरोगके निवारणार्थ त्रिकटु ही बताते हैं, जिसमें सोंठ, मिर्च और पीपल पड़ती है। वैद्योंको विश्वास है, कि सोंठमें अदरकके सब गुण रहते हैं और सिवा इसके यह रेचक भी होता है। भोजनसे पहले नमकके साथ अदरक खानेसे वातरोग दूर हो जाता है। साधारणतः यह गले और जीभको साफ़ करता, भूक बढ़ाता एवं चित्त प्रसन्न रखता है। शिरकी पीड़ा या दूसरी वेदनामें अदरकका रस दूधमें मिलाकर सूंघते हैं। ताज़े रसको दूधके साथ पीनेसे ज़ुकाम, खांसी और क्षुधानिवृत्ति दूर हो जाती है। मुसलमान-हकीमोंने भी इसका ऐसा ही गुण बताया है। ताज़ा अदरक घराऊ दवाओंमें अधिक पड़ता है। रसको चीनी या मधुके साथ ज़ुकाम और खांसीपर देते, और नीबूके अर्क़में मिला उससे पित्तजनित अजीर्णको रोकते हैं। बम्बईमें विसूचिका (हैज़ा) या वमन रोग होनेसे अदरकका रस समान भाग तुलसीके रससे मिला, तथा उसमें थोड़ासा मधु और मोरपङ्खका भस्म डालकर प्रायः सेवन कराया जाता है।

अदरक भारतके सभी बाज़ारोंमें बिकता और अधिकांश मसालेकी तरह काममें आता, जिससे प्रधानतः तरकारी बघारी जाती है। इससे चटनी और मुरब्बा भी बनता है। विभिन्न स्थानोंके अदरकमें विभिन्न गुण विद्यमान हैं। बम्बईमें तीन प्रकार की सोंठ बिकती है—अहमदाबादी, कलकतिया और मालाबरी या कोचिनी। इनमें मालाबरकी सोंठ प्रायः दूने दामपर बिकती है। युक्तप्रान्तमें कुमायूं, पञ्जाबमें सबाथू और बङ्गालमें नेपालका अदरक सबसे अच्छा समझा जाता है। भारतसे प्रति वर्ष कितना ही अदरक जहाजों द्वारा विलायत भेजते हैं।

अदरकी (हिं० स्त्री०) टिकिया—जो सोंठ और गुड़ मिलाकर तय्यार होती है, सोंठौरा।

अदरा—आर्द्रा देखो।

अदराना (हिं० क्रि०) १ आदर पानेका इच्छुक होना, मान चाहना, इज्ज़त पानेकी ख़्वाहिश करना, इतराना, नख़रे दिखाना। २ मान बढ़ाकर शेख़ीपर चढ़ाना, अभिमानी बनाना, फुलाना।

अदर्श (सं० पु०) १ जो न दिखाई दे। २ अमावस्या। (हिं०) ३ दर्पण, आईना।

अदर्शन (सं० क्लो०) न दर्शनम्; दृश्-ल्युट्, नञ्-तत्। अदर्शनं लोपः। पा १।१।६०। १ दर्शनाभाव, लोप। २ असावधानता, गफ़लत। (त्रि०) नास्ति दर्शनं यस्य, बहुव्री०। ३ दृष्टिशून्य, दर्शनका अविषयीभूत, अगोचर, जो देख न पड़े।

अदर्शनपथ (सं० क्लो०) मार्ग जो दृष्टिकी पहुंचसे बाहर हो, न देखी जानेवाली राह।

अदर्शनीय (सं० त्रि०) १ अगोचर, अदृश्य, आंखसे न देखा जानेवाला। (क्लो०) २ अदृश्य स्थिति, न देखी जानेवाली हालत।

अदल (सं० पु०) न दलः। १ समुद्र-फल। यह पौधा मंझोले कदका होता और सदा हरा-भरा बना रहता है। इसे हिमालयके नीचे यमुना नदीसे पूर्वकी ओर अवध, बङ्गाल, मध्य-भारत, दाक्षिणात्य और ब्रह्ममें पाते हैं। यह सिंहल और सिङ्गापुरसे मलय और उत्तर-पश्चिम अष्ट्रेलिया तक फैल गया है। बङ्गालमें इसकी उत्पत्ति अधिक है। ब्रह्म—पेगू और टेनासेरिमके दलदलवाले जङ्गलोंमें यह साधारणतः मिलता, बम्बई और कनाड़ाके नदीतटों तथा आर्द्र स्थानोंमें भी देख पड़ता है।

ब्रह्मदेशमें इसके बकलेसे चमड़ा रंगा जाता है। इसका पत्ता और फल देशी औषधोंमें डालते हैं। इसकी जड़ कटु होती और सिनकोने-जैसा गुण रखती है। इसे शीतल और रेचक भी बताते हैं। वीज उष्ण और शुष्क होता, पेटकी पीड़ामें सूंघनेके काम आता और आंखें आनेसे भी सुंघाया जाता है। समुद्र-फल कुछ-कुछ सुगन्धित, अत्यन्त कटु, उष्ण, उत्तेजक और वमनोत्पादक है। वमन करानेको समुद्र-फल जलमें रगड़कर पिलाते हैं। इसके गूदेका चूर्ण, सागूदाना और घीके साथ पकाकर अतिसारमें खिलाया जाता है। शिरःपीड़ा मिटानेको भी समुद्र-फलका चूर्ण सूंघते हैं।

इसकी लकड़ी सफ़ेद चमकीली, कड़ी-मुलायम और टिकाऊ होती है। फिर भी, साधारणतः यह किसी काम नहीं आती। मट्टीमें गाड़ देनेसे लकड़ी काली पड़ जाती है। इसे लोग नाव, गाड़ी और अलमारी बनानेमें व्यवहार करते हैं।

२ घृत, घी। (अ० पु०) ३ न्याय, इनसाफ़; फ़ैसला, विचार। (त्रि०) ४ पत्रशून्य, विना पत्तेका ५ विना सैन्य, जिसके पास फ़ौज न हो।

अदल-बदल (हिं० पु०) परिवर्त्तन, तबदीली; हेर-फेर, उलट-पलट।

अदलसिंह—पुरनियाके एक सहकारी शासनकर्त्ता। जिस समय मीर ज़ाफ़र बङ्गालके नवाब बन समुदय हिन्दूकर्मचारियोंका धनापहरण और अपनी क्रूर प्रवृत्ति चरितार्थ करते, उस समय यह पुरनियेके सहकारी शासनकर्त्ता थे। मीर ज़ाफ़रके मेदिनीपुर-वाले शासनकर्त्ता राजा रामसिंहके भाई कैद होनेपर इन्होंने मन्त्रियोंके परामर्शानुसार नवाबके विपक्षमें अस्त्रधारण किया था, किन्तु क्लाइवकी चेष्टासे नवाब और अदलसिंह दोनो शान्त हो गये।

अदला (सं० स्त्री०) घृतकुमारी, घीकुवार। यह पौधा कई प्रकारका होता है। समग्र भारतमें इसकी कृषि की जाती है। यह उत्तर-अफ्रिकाका अधिवासी है। बहुत समयसे पश्चिम-भारतीय-द्वीप जेमैका, अण्टीगुआ और बरबैडोज़में इसकी खेती होती आई है। सम्भवतः इन स्थानोंमें यह कनेरी द्वीपोंसे पहुंचाया गया है।

इसकी शाखा छोटी और पतली होती है। घनी पत्तियां तलवार-जैसी देख पड़ती, जो डेढ़से दो फ़ोट-तक मध्यमें चौड़ी और सिरेपर कुन्द-पतली होती हैं।

इस पौधेकी खेती आसानीसे होती तथा यह निहायत सूखी ज़मीनमें उग आता है। इसका कडुआ रस ठीक झिल्लीके नीचे रखे बरतनोंमें भर जाता है। जब पत्ती जड़के समीप काटी जाती है, तब रस हाथ नहीं लगता। पहले रसमें कोई रङ्ग नहीं रहता, किन्तु हवा पाते ही वह भूरा दिखाई देता है। सालकी फ़सल और जिन पत्तियोंसे रस खिंचता, उनकी अवस्थाके अनुसार उसका कार्य बदल जाता है। बारबैडोज़में फाल्गुन और चैत्रके दिनों प्रति वर्ष इसकी पत्ती कटती, जहां इसकी खेती नियमानुसार होती है। सबसे अच्छी घृतकुमारी वह है, जिसकी पत्तीसे स्वभावतः रस निकल आये। क्योंकि पत्तीपर ऊपरी दबाव पड़नेसे रसमें खराब पानी मिलकर प्रधान द्रव्यका गुण न्यून कर देता है। माढ़ा रस सुखानेको सूर्यकी रश्मि सबसे अच्छा उपाय है; दूसरी गर्मी पहुंचानेसे द्रव्य बिगड़ जाता है।

इसका रङ्ग एकसा नहीं होता, गहरी सुर्खी लिये भूरे या काकरेजीसे बिलकुल काला पड़ जाता है। साधारणतः इसकी दर्ज़ भद्दी और मोमदार होती और किनारोंपर भी प्रायः पूर्ण रूपसे मैली रहती है। जब इसमें चिकनी और चमकदार दर्ज़ दिखलाई देती है, तब इसे बहुत अच्छा समझते हैं। इसका सुगन्ध अग्राह्य और घृणोत्पादक है।

रासायनिक प्रक्रिया द्वारा इसका रङ्ग बना, रेशमको बैंजनी, ऊनको काला और नैनूंको गुलाबी रंगते हैं। इसका जो भूरा रङ्ग गन्धकके तेज़ाबसे तय्यार होता, वह चमकीला और पक्का रहता, तथा दूसरे रङ्गको अपेक्षा उसमें खर्च भी कम लगता है।

पत्तीमें खूब रेशा होता है। उसे निकाल लेनेके पश्चात् पत्ती फेंक दी जाती है। यदि रेशा भी किसी काममें लाया जाये, तो बहुत लाभ हो सकता है।

इसका गाढ़ा रस रेचक है और मिरगीके रोगियों-को बड़ा लाभ पहुंचाता है। पत्तीका ताज़ा रस दस्तावर, ठण्डा और ज्वर, यकृत्, हृद्रोग तथा पच्छेदार गांठमें लाभदायक है, एवं कुछ आंखकी बीमारियोंमें उपरसे भी लगाया जाता है। पत्तीका गोंद लोग फोड़ेपर व्यवहार करते और योनिके लिये प्रभावोत्-पादक तथा मासिक धर्मके लिये भी लाभदायक बताते हैं। पशुओंके औषधमें भी यह बहुत काम आता है। इसकी जड़ पेटके दर्दकी अकसीर दवा है। (त्रि०) २ खण्डभिन्न, जो टुकड़े-टुकड़े न हो।

अदला-बदली (हिं० स्त्री०) लेन-देन, ओतप्रोत।

अदली (हिं० वि०) १ इनसाफ़ी, न्यायी, सुविचार करनेवाला। २ पत्रविहीन, जिसमें पत्ती न हो।

अदवाइन, अदवान (हिं० स्त्री०) ओनचन, रस्सी जो खाटकी करधनीके पैताने, छेदोंमें डाल, पाटीपर खींचकर बुनावट कड़ी रखनेके लिये बांधते हैं।

अदशन् (सं० त्रि०) दश नहीं।

अदशमास्य (सं० त्रि०) दश मासका पुराना नहीं, जो दश महीनेका न हो।

अदंश (सं० पु०) महामूलक, बड़मूला।

अदःकृत्य (सं० अव्य०) उसे करके।

अदस् (त्रि०-सर्व०) न-दस्-क्विप्, न दस्यते निर्देशाय उत्क्षिप्यतेऽङ्गुलिर्यत्र, अपुरोवर्तित्वात्। (वाच०) १ वह। कोई वस्तु जो सम्मुख न हो, उसे बतानेके लिये यह सर्वनाम प्रयुक्त होता है। जिस स्थलमें वस्तु वक्ताके सामने नहीं रहती अर्थात् जब वह उसे अङ्गुलि द्वारा निर्देशकर बता नहीं सकता, उस स्थलमें यह सर्वनाम लगाया जाता है,—

"इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपवर्ति चैतदोरूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्॥"

'निकटकी वस्तु बतानेको 'एतद्' सर्वनामकी तरह 'इदम्' सर्वनामका प्रयोग होता है। फिर दर्शनातीत वस्तु बतानेको 'तद्' सर्वनामकी तरह अदस् शब्द लगता है।'

'यह (अयं) वृक्ष है' कहनेसे समझा जायेगा, कि वृक्ष वक्ताके पास ही है, और वह उसे अङ्गुलि द्वारा दिखा सकता है। फिर 'वह (असौ) वृक्ष है' कहनेसे समझ पड़ेगा, कि वृक्ष वक्ताके सामने नहीं।

(अव्य०) २ इस प्रकार, ऐसे, यों। ३ सदा, हमेशा।

अदहन (हिं० पु०) पानी जो बरतनमें भरकर आग पर दाल या चावल उबालनेको चढ़ाते हैं।

अदा (अ० स्त्री०) १ हावभाव, नखरा। २ प्रकार, ढङ्ग। (त्रि०) ३ समर्पित, दिया हुआ।

अदांत (हिं० वि०) दन्तविहीन, बेदांत।

अदाई (हिं० वि०) १ भावगर्भ, चालबाज़। २ चतुर, होशियार। ३ ढङ्गी, प्रकारान्वित।

अदा करना (हिं० क्रि०) देना, चुकाना, बेबाक करना।

अदाक्षिण्य (सं० क्ली०) १ अकृपा, नामिहरबानी। २ बर्बरता, सख्ती।

अदाग, अदागी (हिं० वि०) १ चिह्नरहित, बेदाग। २ निर्मल, साफ़। ३ निष्कलङ्क, खुशनाम। ४ निर्दोष, बेऐब। ५ पवित्र, पाक।

अदाता (सं० पु०) १ न देनेवाला पुरुष, आदमी

जो न दे। २ कृपण, बखील। (त्रि०) ३ बद्धमुष्टि, कञ्जूस।

अदातृ (सं० त्रि०) न-दा-तृच्, नञ्-तत्। कृपण, न देनेवाला। (स्त्री०) ङीप्—अदात्री।

अदादि (सं० त्रि०) वह धातु जिनके आदिमें अद् हो। धातु पाठके दश गणोंमें यह एक गण है। इस गणकी धातुओंमें 'शप्' प्रत्ययका लोप हो जाता है।

अदान (सं० क्ली०) न दानम्, अभावार्थे नञ्-तत्। दानाभाव, कञ्जूसी। (पु०) २ मदजलशून्य हस्ती, हाथी जिसके मद न भरता हो। (त्रि०) नास्ति दानं त्यागो मदजलं वा यस्य। ३ दानशून्य, कञ्जूस। ४ निर्बुद्धि, बेसमझ।

अदानी (हिं० वि०) कृपण, कञ्जूस, न देनेवाला।

अदान्त (सं० त्रि०) न दान्तम्, दम्-णिच्-क्त कर्मणि। वा दान्तशान्तपूर्णदस्तस्पष्टच्छन्नज्ञप्ताः। पा ७।२।२७। अविनीत, जिसको इन्द्रियां वशमें न हों, विषयासक्त, अजितेन्द्रिय, ऐयाश, लम्पट।

अदान्य (सं० त्रि०) न देनेवाला, कञ्जूस।

अदाभ्य (वै० त्रि०) न-दम्भ-ण्यत्, नञ्-तत्। १ अहिंस्य, निश्छल। २ दम्भरहित, सीधा-सादा। (पु०) ३ ज्योतिष्टोम यज्ञमें सोमरस समर्पण करनेकी एक प्रक्रिया।

अदामन् (वै० त्रि०) कृपण, कञ्जूस।

अदाय (सं० त्रि०) नास्ति दायो यस्य। पैतृक सम्पत्तिका अंश पानेके अयोग्य, पतित ज्ञाति।

अदायां (हिं० वि०) १ अदक्षिण, वाम, प्रतिकूल, खिलाफ़। २ अनुत्तम, बुरा।

अदायाद (सं० त्रि०) न दायादः। दायं विभजनीय-धनमादत्त इति, दाय-आ-दा-क; अथवा दायमत्तीति, दाय अद्-अण, उप-स०। १ असपिण्ड, पतित ज्ञाति, जो पित्रादि धनका अधिकारी न हो। मानव धर्मशास्त्रमें लिखा है,—

> "पुत्रान् द्वादश यानाह नृणां स्वायम्भुवो मनुः।
> तेषां षट् बन्धुदायादाः षडदायादबान्धवाः॥ ९। १५८
> औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च।
> गूढोत्पन्नोऽपविद्धश्च दायादा बान्धवाश्च षट्॥ ९। १५९
> कानीनश्च सहोढश्च क्रीतः पौनर्भवस्तथा।
> स्वयन्दत्तश्च शौद्रश्च षडदायादबान्धवाः॥" ९।१६०

'स्वायम्भुव मनुने जिन बारह प्रकारके पुत्रोंकी बात कही है, उनमें छः प्रकारके पुत्र पित्रादि धनके अधिकारी होते, तथा पिता की तरह सपिण्ड-समानोदकका पिण्डदान और तर्पणादि कर सकते हैं। औरस, क्षेत्रज, दत्तक, कृत्रिम, गूढोत्पन्न और अपविद्ध—यही छः प्रकारके पुत्र पैतृक धन और पिण्डदानके अधिकारी हैं। कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयन्दत्त और शौद्र—यह छः प्रकारके पुत्र पितृधनके अधिकारी नहीं, किन्तु बान्धव होते अर्थात् पिण्डादि दे सकते हैं।' (पुत्र शब्दमें गूढोत्पन्न प्रभृतिका विवरण देखो।)

२ उत्तराधिकारीरहित, लावारिस।

अदायिक (सं० त्रि०) न दायमर्हति, दाय-ठक्; नञ्-तत्। १ दायादशून्य, जिसका कोई दावेदार न हो। २ दायादसे सम्बन्ध न रखनेवाला, जो विरासतसे ताल्लुक़ न रखे।

अदार (सं० पु०) १ जायारहित पुरुष, बेजोड़का मर्द। २ अहिंस्य व्यक्ति, नुकसान न करनेवाला आदमी।

अदारश्रित (वै० त्रि०) अछूता भाग जानेवाला, जो बेचोट खाये भाग जाये।

अदारिका (सं० स्त्री०) वृक्षकमल, वृक्षोत्पल।

अदालत (अ० स्त्री०) न्यायालय, कचहरी, विचार होनेका स्थान। अदालतमें हाकिम मुक़द्दमें फ़ैसल करते हैं। इसमें दो विभाग रहते हैं—फ़ौजदारी और दीवानी।

अदालती (अ० वि०) १ न्यायालय-विषयक, अदालतका। २ अदालत करने या मुक़द्दमा लड़नेवाला।

अदावँ (हिं० पु०) १ काठिन्य, मुश्किल। २ पेंच, मार। ३ छल, धोखा।

अदावत (अ० स्त्री०) शत्रुता, वैर, विरोध, विद्वेष, दुश्मनी, आंट, लाग।

अदावती (अ० वि०) दुश्मनी रखनेवाला, जो लाग-डांट माने। २ शत्रुता उत्पन्न करनेवाला, जिससे दुश्मनी बढ़े।

अदास (सं० पुं०) स्वतन्त्र पुरुष, जो आदमी गुलाम न हो।

अदाह (हिं० स्त्री) अदा, हावभाव।

अदाहक (सं० त्रि०) जो न जलाये, जिसमें जलानेकी शक्ति न हो।

अदाह्य (सं० त्रि०) न दग्धुमर्हम्, दह ण्यत् अर्हे; नञ्-तत्। जो मृत व्यक्ति अन्त्येष्टिक्रियाके अयोग्य हो, जिसे कोई न जलाये, न फूंका जानेवाला। शास्त्रकारोंने नीचे लिखे कई एक व्यक्तियोंकी मृत देहको दाह करनेसे निषेध किया है,—

सींग, दांत या नखवाले पशु द्वारा यदि कोई मारा (जैसे गेंडा, सिंह, व्याघ्र और भल्लूक) और सर्पविष, अग्नि, स्त्रीलोक और जल—इनके साथ क्रीड़ा करते हुए किसी की मृत्यु हो जाये, तो उसके मृत देहको दाह न करना चाहिये। यदि कोई मारनेके लिये सर्पको खिझाने, या बिजली गिरनेसे मरे, तो शास्त्रानुसार उसकी अन्त्येष्टिक्रिया करना मना है। चोरी और व्यभिचार करनेके कारण जिसकी मृत्यु हुई हो, उसकी भी अन्त्येष्टिक्रिया नहीं हो सकती। चण्डालादिके साथ कलहकर मरनेसे उत्कृष्ट वर्णवाले किसी व्यक्तिको जलाना शास्त्रसम्मत नहीं। विषयुक्त औषध खिलाने, आग लगाने और विष देकर मार डालनेवाले पाखण्डी व्यक्तिका मृतदेह अदाह्य है। जो नराधम क्रोधवश विष खाये, आगमें जले, अस्त्राघात लगाये, फांसी चढ़े, निर्झर, पर्वत या वृक्षसे गिरे, उसकी अन्त्येष्टिक्रिया नहीं होती। जूता बनाने आदि कुशिल्प द्वारा जो जीविका चलाये, जो वध्यभूमिका अधिकारी हो (जैसे जल्लाद प्रभृति), जिसके मुखमें भगाङ्ग-जैसा चिह्न रहे, जो नपुंसक किंवा क्लीवप्राय हो, जो ब्राह्मणको दण्ड देनेके लिये राजा द्वारा नियुक्त किया जाये और जो महापातकी और पतित हो, उसके मरनेसे शास्त्र अन्त्येष्टिक्रियाकी व्यवस्था नहीं देता; ऐसे व्यक्तिका आत्मीयस्वजन आंखसे आंसू भी न गिराये। यदि कोई भूलसे ऐसे व्यक्तिकी अन्त्येष्टिक्रिया किंवा श्राद्धादि करे, तो उसे दो तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना चाहिये।

अदित—आदित्य देखो।

अदिति (सं० स्त्री०) दो अवखण्डने-क्तिच्, न दीयते खण्ड्यते बृहत्त्वात्; विरोधार्थे नञ्-तत्। १ दिति दैत्योंकी माता, अदिति,—जो दैत्योंकी माता नहीं। रामायण, महाभारत और पुराणादिमें लिखा है, कि अदिति दक्षकी कन्या थीं; महर्षि कश्यपके साथ इनका विवाह हुआ। निरुक्तमें अदितिको देवमाता और स्त्रियोंमें "प्रथमागामिनी" बताया है। निरुक्त ४।२२ और ११।२२ देखो। ऋग्वेदमें देवताओंके जन्म-विवरणपर अदितिके विषयका इस प्रकार वर्णन किया गया है,—

"देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे॥ १
ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत्।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत॥ २
देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत।
तदाशा अन्वजायंत तदुत्तानपदस्परि॥ ३
भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदिति परि॥ ४
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायंत भद्रा अमृतबन्धवः॥ ५
यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत॥ ६
यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत।
अत्रा समुद्र आ गूह्लमा सूर्यमजभर्तन॥ ७
अष्टौ पुत्रासो अदितेय जातास्तन्वस्परि।
देवां उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत्॥ ८
सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप पैत्पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्तांडमाभरत्॥" ९ (ऋग्वेद १०।७२।१-९।)

'हम संकीर्त्तनकर देवताओंका जन्म-वृत्तान्त कहते हैं। हमारे इन उक्थगायकोंमें कोई भी क्यों न हो, उत्तर युगमें उन्हें देख सकेगा। ब्रह्मणस्पतिने कर्मकारके सदृश इस समस्त जगत्को फूंककर निर्माण किया। देवताओंके पूर्व युगमें असत्से (जो न था।) सत् (जिसका अस्तित्व है) उत्पन्न हुआ था। तत्पश्चात् उत्तानपदसे समस्त दिशाओंने

जन्मग्रहण किया। उत्तानपदसे पृथिवी और पृथिवीसे आशा अर्थात् दिक् उत्पन्न हुई। अदितिसे दक्ष और दक्षसे अदिति उत्पन्न हुई। इसलिये हे दक्ष! जन्मग्रहण करनेवाली अदिति आपकी कन्या हैं। उनसे भद्र और अमृत-बन्धु देवता उत्पन्न हुए। जब इस सम्पूर्ण जलके ऊपर आपने देवताओंको आन्दोलित किया था, तब नर्तकियोंकी तरह आपके निकटसे तीव्र धूलि उड़ी और जब देवता यतिओंकी तरह भुवन परिपूर्ण कर रहे थे, तब आपने समुद्रके भीतरसे गुप्त सूर्यको निकाला। अदितिके जो आठ सन्तान उत्पन्न हुए थे, उनमें वह सात पुत्र लेकर देवताओंके समीप गईं, किन्तु मार्तण्डको समुद्रमें डाल दिया। पूर्व युगमें अदिति सात ही पुत्र लेकर गई थीं, प्रजाकी सृष्टि और मृत्युके लिये उन्होंने फिर मार्त्तण्डको प्रसव किया।

ऋग्वेदके अनेक स्थलोंमें लिखा है, कि अदिति पापनिवारिणी रूपसे पूजी जाती थीं। (ऋक्संहिता १।१६२।२२, २।२७।१४, ४।१२।४, ५।८२।६, ७।८७।७, ७।९३।७, १०।१२।८।) यह पुत्रकन्या और गवादिकी हितकारिणी हैं। (ऋक् १।४३।२) अनेक स्थलोंमें देवोके नामसे सम्बोधित हुई हैं। (ऋक् ४।५५।३७, ५।५१।११, ६।५०।१, ७।३८।४, ७।४०।२, ८।२५।१०, ८।२७।५, ८।५६।१०।) यह कहीं अनर्वा अर्थात् अप्रतिकूला देवी (२।४०।६, ७।४०।४, १०।९२।१४), कहीं क्षितिधारिणी-ज्योतिष्मती (१।१३६।३), कहीं राजपुत्रा (२।२७।७), कहीं सुपुत्रा (३।४।११), कहीं उग्रपुत्रा (८।५६।११), कहीं शूरपुत्रा अर्थात् वीरोंकी माता (अथर्वसंहिता ३।८।२, ११।१।१२); कहीं पञ्चजना-विश्वजन्या (ऋक् ७।१०।४); कहीं उरुव्यचाः अर्थात् बहुविस्तीर्णा (५।४६।६), और कहीं पस्त्या अर्थात् सर्वगन्तव्या (४।५५।३) बताई गई हैं।

अनेकस्थलोंमें इन्हें पृथिवी—अखण्डनीया भूमि अर्थसे लिखा गया है। (ऋक् १।२४।१, १।४३।२. १०।६५।१, १०।१३२।६; अथर्व १३।१।३८।) ऋग्वेदके अनेक मन्त्र पढ़नेसे यह भी विदित होता है, कि अदिति पृथिवीसे भिन्न थीं,—

"द्यौष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वियंत॥" (६।५१।५)

'हे द्युलोकपितः! हे उपकारिणी पृथिवी! हे अग्नि और वसुगण! हमारे प्रति कृपा कीजिये। हे आदित्यगण! हे अदिति! एकत्र होकर हमें बहुल आश्रय दीजिये। इसके सिवा ३।५४।१९-२०, ५।४६।३, ६।७५।८, १०।३६।२—३, १०।६३।१०, १०।९२।११ देखो। यजुर्वेद और अथर्ववेदके भी स्थान-स्थानमें अदिति पृथिवीसे भिन्न बताई गई हैं,—

"पृथिवी च मेऽदितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मे * * यज्ञेन कल्पन्ताम्।"
(वाजसनेयसंहिता १८।२२।)

"भूमिर्माता अदितिर्नो जनित्रं भ्रातान्तरिक्षमभिशस्त्या नः।"
(अथर्व ६।१२०।२)

चतुर्थ ऋक्में लिखा है,—"अदितिसे दक्ष और दक्षसे अदितिने जन्मग्रहण किया।" यह घटना सर्वथा असम्भव जान पड़ती है। अतएव यास्कने निरुक्तमें लिखा है,—

"आदित्यो दक्ष इत्याहुरादित्यमध्ये च स्तुतः। अदितिर्दाक्षायणी अदितेर्दक्षोऽजायत दक्षाददितिः परि इति च तत् कथमुपपद्येत। समानजन्मानौ स्यातामिति। अपि वा देवधर्मेण इतरेतरजन्मानौ स्यातामितरेतरप्रकृती।"
(११।२३।)

'दक्ष आदित्य अर्थात् अदितिके पुत्र बताये गये हैं, आदित्योंके मध्यमें उनकी स्तुति भी की जाती है। फिर इस ऋक्के अनुसार, कि 'अदितिसे दक्ष उत्पन्न हुए और दक्षसे अदितिने जन्मग्रहण किया', अदिति दाक्षायणी अर्थात् दक्षकी कन्या हैं। यह कैसे सम्भव हो सकता है, कि उनका समान जन्म हो। किंवा देवधर्मानुसार वह दोनो परस्पर उत्पन्न हुए होंगे और परस्परकी प्रकृति प्राप्त की होगी।

ऋग्वेदमें अदिति और दिति शब्दका एक ही जगह प्रयोग देखा जाता है—

"हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्यस्य।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च॥" (५।६२।८।)

सायणाचार्यने इसकी व्याख्यामें लिखा है,—अदितिका अर्थ, अखण्डनीय रूप समस्त भूमि और दितिका खण्डरूप प्रजादि है। 'अदितिमखण्डनीयां भूमिम्। दितिं खण्डितां प्रजादिकाम्।' १।८९।१०। ऋक्के भाष्यमें उन्होंने

और भी लिखा है,—अदिति अखण्डनीया पृथिवी किंवा देवमाताको कहते हैं। 'अदितिरदीना अखण्डनीया वा पृथिवी देवमाता वा।' यास्कने लिखा, कि अदिति शब्दसे अदीना देवमाताका बोध होता है। 'अदितिरदीना देवमाता।' (निरुक्त ४।२२।)

किन्तु उक्त मन्त्र वाजसनेय-संहितामें भी उल्लिखित हुआ है। (१०।२६।) इसकी टीकामें महीधरने दूसरा ही अर्थ लगाया है :—

'अदितिमदीनं विहितानुष्ठातारं दितिं दीनं नास्तिकवृत्त' च पश्यतं अयं पापी अयं पुण्यवानिति।'

पुराणमें अदिति सुरगणकी और दिति असुरगणकी जो माता बताई गई हैं, महीधरके मतानुसार उक्त मन्त्रसे ही उसका सूत्रपात है। क्योंकि पुराणमें सुरगण यज्ञानुष्ठाता और धार्मिक तथा असुरगण यज्ञविघ्नकारी और नास्तिक कहे गए हैं।

सुर, असुर और दिति देखो।

वाजसनेयसंहिता और अथर्वसंहितामें दिति और अदितिको एकत्र देवता बताकर भी वर्णन किया गया है। (वाजसनेय १८।२२ ; अथर्व १५।६।७, १५।१८।४।)

ऋग्वेदके अनेक स्थलोंमें अदितिको आदित्यगणकी माता कहा है। (८।२५।३, ८।४७।९, १०।३६।३, १०।१३२।६ ; अथर्व ५।१।९।) किन्तु किसी स्थानमें यह द्वादशादित्यकी माता नहीं लिखीं। अथर्वसंहिताके एक स्थलमें केवल अष्टयोनि और अष्टपुत्रा नामसे उल्लिखित हैं। (अथर्व ८।९।२१।) अष्टपुत्र देखो।

फिर ऋग्वेदके किसी-किसी स्थलमें यह वसुकी दुहिता आदित्यगणकी भगिनी और रुद्रगणकी माताके नामके अभिहित हैं,—

"माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसाऽदित्यानां अमृतस्य नाभि।
प्रनु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट॥"

ऋक् ८।९०।१५।

मुइर् साहबने लिखा, कि सामवेद और अथर्ववेदमें अदितिके भ्राता और पुत्र दोनोका प्रस्ताव लिखा है :—

"त्वष्टो नो दैव्यं वचः पर्जन्यो ब्रह्मणस्पतिः।
पुत्रैर्भ्रातृभिरदितिर्नु पातु नो दुष्टरंत्रामणं वचः॥"

साम १।२९९=अथर्व ६।४।१।

'May Tvastri, Parjanya and Brahmanaspati (preserve) our divine utterance. May Aditi with (her) sons and brothers preserve our invincible and protecting utterance.'

[Muir, O. S. Texts, Vol. V. p 38]

किन्तु उपरोक्त मन्त्रमें जो पुत्र और भ्राता शब्द लिखे गये हैं, उनका अदितिके पुत्र और भ्राता न होकर उक्त मन्त्रस्तवकारीकेही पुत्र और भ्राता होना अर्थसंगत है। इस सन्देहको निराकरण करनेके लिये हम एक दूसरे युरोपीय विद्वान्का अनुवाद नीचे उद्धृत करते हैं,—

'Let the Divine Artist preserve to us the divine gift of speech, and Brahmanaspati give us rain and Aditi save us, and our sons and grandsons, from the malicious violence and reproach of our enemies'

Stevenson's Translation of Sāma-veda, p. 56.

ऋग्वेदके प्रथमांशमें अदिति देवगणकी जन्मभूमि लिखी गई हैं। (ऋक् १।२४।१।) ऋग्वेद अदितिको निम्नलिखित कई आदित्योंकी माता बताता है,—मित्र, वरुण, अर्यमा, भग, दक्ष, सविता, इन्द्र इत्यादि।

पुराणमतसे अदिति दक्षकी कन्या (महाभारत १।६६अ०, हरिवंश ३ अ०, विष्णुपु० १।१५।१३०) और कश्यपकी पत्नी थीं। इनके यह कई एक पुत्र रहे,—विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, शुक्र, अंश और उपक्रम। (श्रीभागवत ६।६।२६, हरिव० ३ अ०, विष्णुपु० १।१५।१३१-२)। समुद्रमन्थनसे कर्णाभरणके उत्पन्न होनेपर इन्द्रने उन्हें अदितिको प्रदान किया था। (मत्स्यपु०, हरिव० १६०अ०)। वामनावतारमें स्वयं विष्णु इनके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। (श्रीभागवत, विष्णुपु०, वामनपु० ४६ अ०)।

हरिवंशमें लिखा है,—कश्यपने वरुणकी कामधेनुको अपहरण किया था ; इसीसे ब्रह्माने कश्यपको अभिशाप दिया, कि उन्होंने जिस अंशसे गोधनको अपहरण किया था, उसी अंशसे वह पृथिवीपर जन्मग्रहण कर गोपत्वको लाभ करते, और उनको दोनो भार्या अदिति और सुरभि उनकी अनुगामिनी होतीं। इसीसे अदितिने ब्रह्माके शापवश पृथिवीपर वसुदेवपत्नी देवकीके रूपमें जन्मग्रहण किया और उनके गर्भसे कृष्णका जन्म हुआ। (हरिवंश ५५ अ०।)

तैत्तिरीय और वाजसनेयसंहितामें (यजुर्वेदमें) अदिति विष्णुकी पत्नी बताई गई हैं :—

"प्राजापत्यश्चरुरदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय" (वाजसनेय २९।६०, तैत्तिरीयसं० ७।५।१४।)

अध्यापक विलसनके मतसे अदितिका दक्षकन्या उल्लिखित होना ज्योतिषिक काण्डका रूपकप्रमाणमात्र है।

ज्योतिषग्रन्थमें अदिति नक्षत्राधिपति पुनर्वसुका नामान्तर है,—"दहनकमलजशशियूलभृत् अदितिजीव।"ज्योतिषसार।

अध्यापक रोथका कहना है, कि अदिति असीम और अनन्त हैं। मोक्षमूलरका मत भी प्राय: इसी प्रकार है। उनके कथनानुसार अदितिका अर्थ अनन्त, अक्षय, अमर, असीम और दितिका अर्थ ससीम है।*

रेगनियर साहब कहते हैं,—

Aditi is the name of a divinity, a personification of the All, the mother of the Gods." (E'tude sur l'idiome des Vedas, p. 28.)

वस्तुत: अदितिका इतिहास आद्योपान्त पढ़नेसे यह लिखना असम्भव हो जाता है, कि यह क्या और कौन थीं। कितनों हीको विश्वास है, कि वैदिक ऋषिगणने असीम-अनन्तमयी प्रकृति बतानेके लिये ही अदिति शब्दको व्यवहार किया था। इसीसे वेदमें माता, पिता, पुत्र, कन्या प्रभृति सब नामोंसे अदितिका स्तव मिलता है,—

"अदितिर्द्यौरदितिरन्तरीक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्र:। विश्वेदेवा अदिति: पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥" (ऋक् १।८९।१०, वाजसनेय २५।२३; निरुक्त ४।४।२, ऐतरेय-ब्राह्मण ३।३।७।)

देवराजने निरुक्तटीकामें इसका यह अर्थ किया है,—

'अदिति' एव देवमाता 'द्यौ:', 'अदिति' अदितिरेव च 'अन्तरिक्षम्' अदिति एव 'माता' सर्वभूतनिर्मात्री, 'स' एव पिता पालक:, 'स' एवहि 'पुत्र:', सैव हि परितुष्टा सती स्तोतार पुरुषो बहुन: पापात् त्रायते; अथवा सैव निष्पाति, सर्वभूतानां यन्निर्वर्तव्यं दातव्यमित्यर्थ:। येऽपि चैते 'विश्वेदेवा:' सर्वे देवा:, एतेऽपि 'अदिति' एव। 'पञ्चजना:' 'अदिति:' एव। सर्वथापि किं बहुना, यावदेतत् किञ्चित् 'जातं' च 'जनित्वं' च 'जनिष्यमाणं' च सर्वमप्येतद् 'अदिति:' एव। एवमनेन मन्त्रेण मन्त्रदृक् "अदितेर्वि-भूतिमाचष्टे" देवमातुस्तत् सर्वमप्युपपद्यत एव; माहाभाग्याद्देवताया:। तदुक्तरव (दैवतकाण्ड ७।१।४) वचनाम:। एवमैतिहासिकपक्षेण; नैरुक्त-पक्षेण पुन: 'एतानि' द्युलोकादीनि सर्वाणि 'अदीनानि' अनुपक्षीणानि इति योज्यम्; न ह्येषां क्षयोऽस्तीति।'

उक्त मन्त्र द्वारा स्पष्ट ही जान पड़ता है, कि अदिति सामान्य नहीं; सर्वभूताधिष्ठात्री, मूल-प्रकृति, देवमाता अर्थात् द्योतनात्मक शक्ति और मध्यस्थान-देवता अर्थात् माध्याकर्षणवृत्तिरूपा हैं। फिर भी इस जगह कितने ही पूछ सकते हैं, कि अदिति दक्षकन्या क्यों कही गईं, दक्ष कौन थे। सायणने ऋग्वेदके भाष्यमें इसका भी आभास दिया है,—

'अदितिमखण्डनीयामदीनां वा देवमातरम्। दक्षं सर्वस्य जगतो निर्माणे समर्थं प्रजापतिम्। यद्वा प्राणरूपेण सर्वेषु प्राणिषु व्याप्य वर्तमानं हिरण्य गर्भम्। प्राणो वै दक्ष इति श्रुते:।' (ऋग्वेद १।८९।३। सायण) [दक्ष देखो।]

अब ज्ञात हुआ, कि दक्ष स्वयं हिरण्यगर्भ प्राण हैं। अतएव द्योतनात्मक शक्ति—मूलप्रकृति अदिति प्राणकी दुहिता हैं; फिर प्राण प्रकृतिके पुत्रस्वरूप हैं।

ऐसा होनेसे अदिति कश्यपपत्नी क्यों कही गईं? कश्यप स्वयं पुरुष हैं, इसीसे मूलप्रकृति अदिति उनके पत्नीरूपसे अभिहित हुई हैं।

स्वयं भगवान् वामन जो अदितिके पुत्ररूपसे अभिहित हुए हैं, वह भी पौराणिक रूपकमात्र है। वामनपुराणमें स्वयं भगवान् कह रहे हैं,—

"अहं त्वाच रहिष्यामि आत्मानञ्चैव नन्दिनि।
न च पीड़ां करिष्यामि स्वस्तितेस्तु व्रजाम्यहम्॥" (वामनपुराण २८।१३।)

वामन आत्मा हुए। सुतरां वामनरूपी आत्माने अदितिका आश्रय लिया। यही कथन बहुत कुछ वामनावतारका रूपक प्रमाणित हो सकता है। वामन देखो।

कितनो हीको विश्वास है, कि अदिति शब्द केवल रूपकप्रयोगमात्र है, यह किसी व्यक्ति-विशेषका नाम नहीं। पहले ऋषि इसे आकाश और अन्तरीक्षके स्थानमें प्रयोग करते थे, इसके पश्चात् क्रमसे अदिति

* Muir's O. S. Texts, Vol. V. p. 37: Max Müller's Origin and Growth of Religion, p. 227-232; Hillebrand's Uber die Gottin Aditi, 1876.

शब्द देवो और ऋषिपत्नीके अर्थमें आने लगा। ऋग्वेदमें हम देखते हैं,—

"विश्वा हि वो नमस्यानि वंद्यानामानि देवा उत यज्ञियानि वः। ये स्थ जाता अदिते रद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवं" १०।६३।२।

हे देवगण! मैं आपके नामको नमस्कार, वन्दना और पूजा करता हूं। आप अदिति, अप् और पृथिवीसे उत्पन्न हुए हैं, मेरे आवाहनको श्रवण कीजिये।

कितनो ही जगह देवताओंको दिव्य, पार्थिव और अप्य कहा गया है। शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्याः। (ऋक् ७।३५।११।) यहां दिव्य, पार्थिव और अप्य शब्दसे यही जान पड़ता है, कि उन्होंने द्युलोक, पृथिवी और अप् अर्थात् अन्तरीक्षसे जन्मग्रहण किया था। अप् शब्दसे जलका बोध होता है, किन्तु सायणाचार्यने अप् शब्दके व्याख्या-स्थलमें अन्तरीक्ष अर्थ बताया है। अप्सु अन्तरीक्षे भवाः। इसीतरह कितने ही ऋङ्मन्त्रों और अथर्ववेदके स्थानोंमें लिखा है, कि देवता द्युलोक, अन्तरीक्ष और पृथिवीसे उत्पन्न हुए हैं। अब विदित होता है,—यह कहनेसे, कि "आपने अदिति, अप् और पृथिवीसे जन्मग्रहण किया है" देवताओंके तीन ही जन्मस्थानोंकी बात लिखी गई। इसलिये जिस अदिति शब्दपर सन्देह किया जाता है, उसका अर्थ सिवा आकाशके और कुछ भी नहीं हो सकता।

एक और ऋङ्मन्त्रमें इसका स्पष्ट प्रमाण विद्यमान है, कि ऋषि पहले अदिति शब्दको द्युलोकके स्थानमें प्रयोग करते थे,—

"येभ्यो माता मधुमत् पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये।" १०।६३।३।

जिन आदित्योंकी माता 'द्यौः अदितिः' हैं, वह ऊंचे आकाशमें बैठ, मधुर पीयूष ढाला करते हैं। वही सकल आदित्य हमारे संकीर्तनसे उत्साहान्वित हुए हैं। वह बलदायक और उग्र हैं, हमारा सुख बढ़ानेके लिये आनन्दित हो गये हैं।

यहां 'द्यौः अदितिः' कहनेसे स्पष्ट ही समझ पड़ा, कि पहले अदिति शब्दका अर्थ अन्तरीक्ष होता था। कालक्रमसे इसका रूपक अर्थ जब सबने छोड़ दिया, तब अदिति शब्द देवता या ऋषिपत्नीके अर्थमें प्रयुक्त हुआ। उपनिषत्में अदिति शब्दकी इस प्रकार व्याख्या की गई है,—

"यद्यदेवासृजत तत्तदत्तुमध्रियत सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वं सर्वस्यैतस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवमेतददितेरदितित्वं वेद" (बृहदारण्यक १।२।५।)

अदितिने जिस समस्त ऋक्, यजुः, छन्दः, यज्ञ, प्रजा, पशु आदिको सृष्टि की थी, उस सभीको खा डालना चाहा। क्योंकि वह सर्वभुक् हैं, जिससे लोग उन्हें अदिति कहते हैं। वह भक्षक हैं, यह समस्त जगत् उनका आहार है। जो उनकी यह अदिति-प्रकृति पहचानते, वही इस वेद-ज्ञानको लाभ करते हैं। यहां ज्ञात होता है, कि अदिति ही मृत्यु-काल-आत्मा हैं।

अद्-इतिच्, अत्ति प्राणिजातम्। २ मृत्यु, मौत। ३ पुनर्वसुनक्षत्र। कारण, दिति शब्दका अर्थ खण्ड है, इसलिये अदितिसे अखण्डका बोध हुआ। ४ पृथिवी, ज़मीन। ५ वाक्, वाणी। ६ गो, गाय। ७ द्यावापृथिवी, आसमान और ज़मीन। ८ प्रकृति, क़ुदरत। ९ द्युलोक, फ़लक। १० अन्तरीक्ष, आसमान। ११ माता, मा। १२ पिता, बाप। १३ पुत्र, बेटा। १४ प्रजापति। १५ विश्वेदेवा। १६ पञ्चजन। १७ स्वतन्त्रता, आज़ादी। १८ रक्षा, हिफ़ाज़त। १९ असीमत्व, बहुतायत। २० पूर्णत्व, कमाल। २१ पत्नी, जोड़ू। २२ दुग्ध, दूध। (त्रि०) २३ स्वतन्त्र, आज़ाद। २४ असीम, बेहद। २५ अभङ्ग, समूचा। २६ प्रसन्न, खुश। २७ पवित्र, पाक।

अदितिज (सं० पु०) अदितेर्जायते, जन्-ड; ५-तत्। देवगण, अदितिके पुत्र।

अदितिनन्दन (सं० पु०) अदितेर्नन्दनः, नन्द-ल्यु; ६-तत्। देवगण, अदितिके पुत्र।

अदितिसुत (सं० पु०) देवगण, अदितिके पुत्र।

अदिन (हिं० पु०) खोटा दिन; दुःसमय, बुरा वक्त।

अदिमग (आदि मग? अद्रिमग?)—तुङ्गथा, चटगांव पहाड़के जङ्गली लोग। चट्टग्रामके पर्वतमें अनेक प्रकारके लोग रहते हैं। इतिहास न मिलनेसे यह

ठीक नहीं बताया जा सकता, कि यह सब आदमी किस देशसे आये और कितने दिनसे इन पहाड़ोंमें घर बनाकर बसे हैं। थियङ्गथा एक जातिका नाम है। आजकलके चाकमा इसी जातिके अन्तर्गत हैं। कोई-कोई अनुमान करते हैं, कि थियङ्गथाओं और चाकमाओंका आदिवास आराकानमें था। थियङ्गथामें थियङ्—शब्दका अर्थ नदी है, थ या था अथवा चा शब्दसे पुत्रका बोध होता है। इसीसे जो नदीके किनारे घर बनाकर रहे, वही नदीपुत्र आजकलको थियङ्गथा जाति हैं। इनकी बोली पुरानी-आराकानी और आचार-व्यवहार प्रायः बौद्धोंकासा है। थियङ्गथा देखो। किन्तु अद्रिमग या तुङ्गथा कौन हैं? तुङ्ग या तुङ् शब्दका अर्थ पर्वत है। इसीसे अनुमान होता है, कि पहले जो जाति केवल पर्वतमें रहते रही, उसे अब लोग तुङ्गथा कहते हैं। किन्तु अद्रि शब्दका अर्थ क्या है? विशेष अनुसन्धान करने-पर भी इस बातका कुछ ठीक-ठाक न लगा। कर्नल डाल्टन साहबकी पुस्तकमें भी इस नामका कहीं पता नहीं चलता। कप्तान 'लिश्रन' साहबने तुङ्गथा नामका उल्लेख किया है, किन्तु अद्रिमगका नाम नहीं लिया। इसीसे मालूम पड़ता, कि यह नाम क्रमसे अप्रचलित होते जाता है। पहाड़ी स्वयं अपनी बात कुछ भी नहीं जानते। वह यह सब पेंचकी बातें नहीं समझते, कि कौन किस जाति और किस सम्प्रदायका आदमी है। परिचयके लिये वह अपने वासस्थानका नाम बता सकते हैं। इससे स्पष्ट ही मालूम पड़ता है, कि थियङ्गथा, चाकमा, तुङ्गथा, लुशाई, कुकी प्रभृति नाम उनके रखे हुए नहीं। बङ्गाली, ब्रह्मदेशवासी, चीना प्रभृति लोगोंने ही असभ्य पहाड़ियोंके यह नाम रखे होंगे। इसमें सन्देह नहीं, कि 'अदिमग' शब्द आदि-मग किंवा अद्रिमग शब्दका अपभ्रंश है। किन्तु तुङ्गथा (अर्थात् पर्वतपुत्र) शब्दकी अपेक्षा वास्तवमें अद्रिमग शुद्ध मालूम होता है।

तुङ्गथाओंका पूर्व इतिहास कुछ ठीक नहीं जान पड़ता। किसीके मतसे इनके पूर्वपुरुष ब्रह्मदेशके आदमी थे। वह वहां चोरी और लूट-मारकर अपना काम चलाते थे, अन्तको राजाके भयसे भारतवर्षमें आकर उन्होंने आश्रय लिया। कोई-कोई कहते हैं,—यह भारतवर्षके आदिम निवासी हैं, दूसरे देशसे यहां नहीं आये। किन्तु इस बातके दो-एक आधुनिक प्रमाण मिलते हैं, कि दस्यु ब्रह्मदेशसे आकर भारत-वर्षमें आश्रय लेते थे। कर्णवालिसके समय ब्रह्म-राजने चट्टग्रामवाले सरदारके पास एक पत्र भेजा, जिसमें चोरोंकी बात लिखी थी। सन् १७८७ ई० में आराकानके राजाने चट्टग्रामके सरदारको जो पत्र लिखा, उसमें भी चोरोंकी बात थी। इन दोनो पत्रोंके पढ़नेसे उस समयकी कितनी ही बातें समझ पड़ती हैं, इसीसे यहां उनका मर्म लिख दिया गया है। ब्रह्मराज-तुर्बुमाकी आज्ञासे आराकानके कर्म-चारीने यह पत्र चट्टग्राम भेजा था,—

'हम चक्रवर्ती महाराज हैं। हमारे शासनमें सौ (१००) ग्राम विद्यमान हैं। लोग हमें राजच्छत्र-धारी कहते हैं। हम सूर्यकुलोद्भव हैं, सोनेका चन्द्रातप सर्वदा हमारे शिरपर शोभा देता है। असंख्य-असंख्य राजा हमारी पूजा किया करते हैं। हमारे राज्यमें सोना, चांदी और कई सौ रत्न उत्पन्न होते हैं। हमारे पास वज्र-जैसे अस्त्र-शस्त्र विद्य-मान हैं, जिन्हें देखते ही शत्रु शरण लेते हैं। हमारे पास जो समस्त सैन्य-सामन्त हैं, उनसे कोई भी बात कहना नहीं पड़ती। इस राजसंसारमें हाथी-घोड़ोंकी कोई संख्या नहीं। हमारी सभामें दश शास्त्रज्ञ पण्डित और एक-सौ-चार पुरोहित विद्यमान हैं, जिनके परामर्शसे हम राज्यशासन करते हैं। विद्युत्का वेग चाहे टल जाये, किन्तु हमारी आज्ञा नहीं टलती। हमारी प्रजा धार्मिक और न्यायपरायण है। वह नहीं जानती, कि दुष्कर्म किसे कहते हैं। हम सूर्यके समान हैं, अन्धकारमें भी हमारे ज्ञानका आलोक पहुंचा करता है। लोगोंकी दुरभिसन्धि हम सहजमें ही समझ सकते हैं।

'दया और न्यायपरायणता ही राजाका धर्म है। इस राज्यमें चोर एवं असत् व्यक्तियोंको उचित शास्ति

दी जाती है। इस समय हमारा नाम लेनेसे दुष्ट लोगोंका प्राण घबड़ाने लगता है।

'हम दो हज़ार नदी और असंख्य नालोंके मध्यमें सागरके सदृश विराजमान हैं। चालीस पर्वतोंके मध्यमें हम सुमेरुके समान शोभा पाते हैं। इनके जैसे एक-सौ-एक राजाओंपर हमारा आधिपत्य विस्तृत होते चला जाता है। इसके सिवा प्रत्यह हज़ार राजा हमारी सभामें यातायात किया करते हैं। इस राज्यकी बात क्या कहेंगे? जगत्में ऐसी जगह कहीं भी मिलनेकी नहीं। अमरावती जैसी हमारी राजसभा है; अमूल्य मणि-माणिक्य-विभूषित हो रहे हैं,—तीनो लोकमें ऐसा आदर किसीका नहीं। देवताओंकी तरह हमारे सब कार्य पवित्र हैं। आराकानके गांव-गांव, नगर-नगर हमने ढिंढोरा पिटवा दिया है, जिससे यह चिट्ठी चट्टग्राम निर्विघ्न पहुंच जाये। यह देश पहले मङ्गल राजाके अधिकारमें था। उन्हीं राजाने चट्टग्राममें प्रजापत्तनसे आबादी कराई थी। वहां मङ्गलराज और अमरपुरके राजा तुमा द्वारा प्रतिष्ठित २४०० देवालय और २४ सरोवर विद्यमान हैं। मङ्गलोंके आनेसे पहले चट्टग्राम दूसरे राजाके अधिकारमें था। लोग उन्हें छत्रधर कहते थे। उन्होंने देवालय प्रतिष्ठित और अनेक पुरोहित नियुक्त किये थे। प्रजामें जिसका जैसा धर्म था, पुरोहित उससे उसीके अनुरूप याजनादि क्रिया कराते थे। किन्तु तुमा चाकमाके राजा होनेसे पहले रत्नपुर, दुर्गावती, आराकान, दुर्गापति, रामपति, चयदोण, महादाइन, मङ्गल प्रभृति स्थानोंमें कोई सुश्रृङ्खला न थी। श्रीतुमाके राजा होने पश्चात् उनके शासनगुणसे प्रजा सुखी हो गई। उस समयके धार्मिक लोग उनपर बड़ा अनुग्रह रखते, विशेषत: बुद्धने उनकी सभामें अवस्थान किया था। राजाने धर्मोपदेश सुननेके लिये उनसे एक सद्गुरु मांगा था, इसीसे तन्धारि राजाके धर्मोपदेष्टा बने। उस समय आकाशसे सोना, चांदी और रत्न बरसने लगा। राजाने उन सब अमूल्य रत्नोंको मट्टीमें गाड़कर तन्धारिको उनका अध्यक्ष बना दिया। प्रजा प्रतिदिन वहां जाकर देवार्चना कर आती थी। देवालयमें रात्रि-दिन असंख्य दास-दासी रहतीं, इसीसे अतिथि आनेपर उनकी परिचर्यामें कोई त्रुटि न पड़ती थी। नृपति सर्वदा ही पांच धर्मग्रन्थ पढ़ते थे। शास्त्रसे जो काम करना निषिद्ध है, नृपति कभी उस काममें हाथ न डालते थे। हंस, सूअर, कबूतर, बकरे और मुर्गेका मांस अभक्ष्य था। पुरोहित उसे स्पर्श भी न करते थे। दुःशीलता, चौर्य, परदार-ग्रहण और प्रवञ्चना राज्यसे एकबारगी ही उठ गई थी।

'हमारा चरित्र और हमारी धर्मनीति ठीक उन्हीं राजाकीसी है। किन्तु आराकान राज्य जब हमारे हाथमें पड़ा न था, तब वहांके लोग सांप-जैसे रहे,—सर्वदा ही केवल विवाद-विसंवाद करते थे। मगध, मैनवङ्ग, द्वारावती प्रभृति देशोंके लोग मनुष्य खाते, और सभी अतिशय दुष्ट-निष्ठुर थे, कोई किसीका विश्वास न रखता था। उस समय बुद्धदत्त या श्रीवत् ठाकुर आराकान पहुंचे। क्या मनुष्य और क्या वनके पशु—सबको उन्होंने धर्मज्ञान सिखाया था, इसीसे पांच हज़ार वर्ष राज्यमें कोई विशृङ्खला न देख पड़ी।

'हमारी शासननीति ठीक वैसी ही है। फिर यहां किसी स्थानकी मट्टीसे एक तरहका अच्छा-खुशबूदार तेल निकलता है। हमारी क्षमता भी उसीतरह दूसरे राजाओंसे श्रेष्ठ है। जामुफबू नामक हमारे पुरोहितने दूसरे धर्मयाजकोंसे परामर्श-कर, ११४८ संवत्के पौष मासमें हमसे पूछा,—आप क्या श्रीवत् ठाकुरकी तरह व्यवहार करते हैं? वास्तवमें हम श्रीवत् ठाकुरके अनुसार ही कार्य करते आ रहे हैं। विशेषत: हमने राज्यमें अनेक देवालयोंको निर्माण कराया है, हम श्रीतुमा चाकमेकी नीतिपर दृष्टि रख दया-दाक्षिण्यके साथ प्रजापालन करते हैं।

'आराकान-राज्य चट्टग्रामके पास है। वाणिज्यके निमित्त अंगरेज हमारे साथ यदि सन्धि करना चाहें, तो सकल विषयोंमें ही एकता और हृद्यता रखना आवश्यक है। इसीसे हम आपको बताते, कि चट्टग्रामके वणिक् यहां आकर मोती, हाथी-दांत और मोम खरीद और यहांके लोग भी चट्टग्राम चीज़ें

खरीदने जा सकते हैं। किन्तु चट्टग्रामके मगोंने धर्मभय और धर्मज्ञान—सबको परित्याग कर दिया है। इसलिये उनके चरित्रको संशोधन करना आवश्यक है। हम तीस आदमियोंके हाथ चार हाथी-दांत भेजते हैं। यह सब लोग इस चिट्ठीका जवाब लेते आयेंगे।'

सन् १७८७ ई० की २४ वीं जूनको आराकानके राजाने चट्टग्रामके सरदारको एक चिट्ठी लिखी। क्योंकि, फिउती नामक किसी चोरने आराकानसे भाग, चट्टग्राममें आकर आश्रय लिया था। राजाने उसी चोरको पकड़नेके लिये प्रार्थना की थी।

ऊपरकी चिट्ठीमें जो कितनी ही बातें लिखी हैं, उनसे उस समयका कुछ इतिहास मिला और कुछ आचार-व्यवहार समझ पड़ा। राजाने अपने मुंह जो आत्मगौरव सुनाया है, उस बातको छोड़ देते हैं। किन्तु छत्र-छत्रमें उन्होंने राजाओंका जो गुण गाया है, उसे अवश्य स्वीकार करेंगे, वैसी बात असभ्य या अशिक्षित व्यक्तिके मुंहसे नहीं निकलती। राजा स्वयं बौद्ध थे; फिर भी, उन्हें दूसरे धर्मपर अनास्था न रही। पहले मग मनुष्यको खाते थे। फिर, यही मट्टीका तेल उस समय भी रहा। इसके बाद मालूम होता है, कि चट्टग्रामकी पहाड़ी तुङ्गथा जातिके लोग आराकानवाले ही असभ्य मनुष्य हैं। यह लुशाई, कुकी प्रभृति जातियोंके साथ मिल गये हैं, इसीसे आजकल इनका आदि मालूम नहीं हो सकता।

त्रिपुराकी सुरुङ्ग, कुमीया, किउमी, सुरुष, थेइङ्ग, बुङ्गी, पाङ्गस, लुशाई या कुकी, सिन्ध् या लख प्रभृति जातिओंके साथ तुङ्गथाओंका कितना ही सादृश्य विद्यमान है। कोई-कोई ऐसा भी अनुमान करते हैं, कि कितने ही पहाड़ी पहले आदिबुद्धके सेवक होनेसे आदि-मग कहलाते थे। अब क्रमसे यह दूसरी जातिमें मिलते जा रहे हैं।

तुङ्गथा सुश्री नहीं होते। शरीरका रङ्ग मटमैला रहता, जिसमें कुछ ताम्रवर्णकी प्रभा चमका करती है। शरीरका ढांचा भी अच्छा नहीं। नाक चपटी होती, जिसके विषयमें यही कहना पड़ता है, कि बीचमें हड्डी नहीं रहती। अङ्गमें जब रूपका नाम नहीं, तब फिर इनकी ही श्लाघा कितनी हो सकती है? स्त्रियां रात-दिन केवल अपने रूपकी गरिमामें चूर रहती हैं। पर्वतके उच्च और दुरारोह स्थानमें इनका घर होता है। पहाड़पर चढ़नेका विशेष अभ्यास न रहनेसे ऐसे स्थानपर कोई सहजमें पहुंच नहीं सकता। पुरुष प्रायः नङ्गे रहते हैं। कपड़े पहनना केवल इच्छाकी बात है। कभी मन चाहा, तो एक कोपीन लगा लिया; इच्छा न होनेसे यह नग्नावस्थामें ही प्रसन्न रहते हैं। इन्होंने अपना जैसा स्वभाव बना लिया, वैसे ही इन्हें नङ्गे रहना पड़ता है। किन्तु स्त्रियोंके शरीरपर एक वस्त्र अवश्य रहता है। वस्त्र इतना छोटा होता है, कि उससे गांठतक नहीं ढंकती। सन्तान उत्पन्न हो जानेसे यह वक्षःस्थल खोल स्तनोंको निकाले रहती हैं। यह अधिक अलङ्कारप्रिय नहीं होतीं, फिर भी छोटी-छोटी कौड़ी, पत्थर प्रभृति अयत्नसुलभ भूषणोंसे अपना अङ्ग सजाती हैं। तुङ्गथाओंके यावतीय गृहकर्मका भाग स्त्रियोंके ही हाथमें रहता है। तुङ्गथा एकसे अधिक विवाह नहीं करते। यह बात नहीं कहते, कि यह असभ्य हैं, और पहाड़में नङ्गे रहते हैं; किन्तु इस सुखका दाम्पत्यभाव अच्छी तरह समझते हैं, कि प्रीति हृदयकी कोई साधारण सामग्री नहीं, वह मन ही मन गाढ़ रूपसे प्राणोंमें फंसी होती है। यह खूब पहचानते हैं, कि पति पत्नीका और पत्नी पतिकी है; एकके जीनेसे दोनो जीते और एकके मरनेसे दोनो मर जाते हैं। ऐसे पशुओंके हृदयमें ऐसा स्वर्गीय सुख कहांसे आता है? आनेकी बहुतसी बातें हैं। इनका प्रेम सामान्य गांठसे ही नहीं बंधता। तुङ्गथा-कन्याओंका गर्भाष्टममें विवाह नहीं करते, इन्हें कितने ही दिन क्वारी रहना पड़ता है। पन्द्रह-सोलह वर्षका वयःक्रम होनेसे अङ्गमें कुछ यौवनोचित लावण्य-प्रभा झलक आती है। इसी वयसमें हमारे समाजकी अभागिनी बालिकायें दैवात् जो कर्मकर कुलमें कलङ्क लगातीं, दुष्कर्म हो या सुकर्म—तुङ्गथाओंके उत्तरकालवाले ऐसे दाम्पत्यसुखका वही कारण

बनता है। यौवन झलकते ही इनकी बालिकायें युवापुरुषोंके साथ रहतीं; जङ्गल-जङ्गल घूमा करती हैं। वह फूल तोड़तीं, माला पिरोतीं; आप पह नतीं, अपने साथवाले बन्धुके गलेमें भी पहना देती हैं। जो बात ऊपर कह चुके हैं, उसके सुखका प्रेम-सञ्चार इसी जगह होता है। एकबार देखते, दो बार देखते, आंखफाड़-फाड़ सारा दिन देखते; फिर जो अच्छा लगता, उसे भीतर-बाहर सोते-जागते सब जगह देखा करते हैं। सदा जो साथ रहता है, हम उसे जानते हैं, कि वह कैसा है और वह हमें जानता है, कि हम कैसे हैं; हम उसे प्यार करते और वह हमें प्यार करता है। इसीतरह मनसे मन मिलानेकी इच्छा दोनोंको रहती है। पिता-माताके हाथसे हाथ मिला देनेपर मन बिलकुल नहीं मिलता।

तुङ्गथा वनवासी ही क्यों न हों, किन्तु इस बातका मतलब नहीं समझ पड़ता, कि हमारे समाजमें जो प्रथा नहीं, उसकी निन्दा करना ही पड़ेगी। भ्रूण-हत्या और यथार्थ व्यभिचार वनवासियोंके घरमें नहीं देख पड़ता। प्रणय और जीविकाके लिये पुरुषका साक्षात्—इन दोनो बातोंका भेद इन्होंने खूब समझ रखा है। यह बात सुन इनका शरीर रोमाञ्चित होता और अन्तरात्मा कांप उठता है, कि हमारे सभ्यदेशमें जीविका पानेके लिये दुश्चरित्रा बालिकायें रहनेकी जगह पा जाती हैं।

तुङ्गथाओंके विवाहमें धर्मानुष्ठानके साथ कोई बन्धन नहीं पड़ता। पात्र और कन्याकी इच्छा होनेसे ही विवाह किया जाता है। विवाह हो जानेसे स्त्रियां जगत्‌में सिवा पतिके और किसीसे सम्बन्ध नहीं रखतीं। इसके बाद सती-सावित्रीको भी एक बार आके देखना पड़ता, कि पातिव्रत्य कैसा होता और भला घर क्या है। विवाहिता बालियें परपुरुषके साथ नहीं रहतीं; उपपति और उपपत्नी—इन सब बातोंपर उन्हें नरकसे भी अधिक घृणा होती है। दैवात् यदि कोई परस्त्रीपर आक्रमण करता, तो उसे फांसी दी जाती है। इस जातिमें ऐसे सुखका दाम्पत्यभाव रहते भी स्त्रियां दासीकी तरह स्वामीके पास सदा नहीं उपस्थित रहतीं। वह स्वामीसे दुःख पानेपर उसे छोड़ सकती हैं। किन्तु पतिके पत्नी या पत्नीके पतिको छोड़नेसे इन्हें अपने-अपने समाजके प्रधान व्यक्तिको अर्थदण्ड देना पड़ता है। अर्थदण्ड न देनेसे दम्पतीमें छांड़ा-छांड़ी नहीं होती।

चट्टग्रामके कितने ही असभ्य पहाड़ियोंमें दासत्व-की प्रथा प्रचलित है। किसीको ऋण लेना आवश्यक होनेसे वह अपने एक सन्तान या परिवारके किसी व्यक्तिको महाजनके पास रहन रख देता है। रहन रखनेवालेको व्याज नहीं देना पड़ता, उस रहन रखे गये मनुष्यका कायिक परिश्रम ही व्याज-के बराबर समझा जाता है। ऋण चुक जानेसे रहन रखा गया मनुष्य अपने घर वापस आता है। किसी व्यक्तिका कोई आत्मीय-स्वजन न होते भी वह अपनेको आप रहन रख सकता है। महाजन इन सकल दास-दासियोंके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। अपने पुत्र, कन्या और परिवार-का जैसे लालन-पालन करना पड़ता, वह रहन रखे हुए दास-दासियोंसे भी ठीक वैसे ही स्नेह-ममता दिखाते हैं। हम उन्हें क्रीतदास या गुलाम कहते, जो अपनेको महाजनके घर रहन रखते हैं। किन्तु यह हमारी समझकी भूल है। दासत्वदशाका ऐसा सुख देखके सभी जन्म-जन्म दास होनेकी इच्छा करते हैं। प्रभु दास और दासीको पुत्र और कन्या मानते, दास-दासी भी प्रभुको पिता-जैसा पूजनीय समझती हैं। इसीतरह एक-एक गृहस्थके घरमें पुरुषानु-क्रमसे कितनी ही दास-दासी रहती हैं। दासके औरस और दासीके गर्भसे पुत्रकन्या उत्पन्न होती हैं। गृहस्थके घरमें किसी दासकी कन्याका विवाहकाल उपस्थित होनेसे, प्रभु आप ही यत्न लगा विवाह करवा देते हैं। विवाहका समस्त व्यय प्रभु आप ही उठाते हैं। घरमें अविवाहिता दासी रहनेसे पहाड़ियोंमें ऐसा कोई कुलाङ्गार नहीं, जो उसका सतीत्व नष्ट करे। किन्तु प्रभुकी स्त्री मर जानेसे यदि दोनोंका मन मिल जाये, तो वह

दासीसे विवाह कर सकते हैं। इसके बाद कल जो दासी थी, वह आज गृहलक्ष्मी—प्रभुकी अर्द्धाङ्गिनी बन सुखसे संसारधर्मका निर्वाह करती है। कोई महाजन निर्धन हो जानेसे अपनी दासदासीको दूसरे व्यक्तिके हाथ बेच सकता है। मनुष्यको रहन रखनेकी चाल थियङ्गथा जातिमें ही अधिक है। थियङ्गथा देखो। तुङ्गथाओंमें इसतरह मनुष्यको रहन रखनेकी चाल कदाचित् सुन पड़ती है। कितने ही यह बात भी कहते, कि युद्धके बाद पराजित जातिके जो स्त्री-पुरुष यह पकड़ लाते, उन्हींको घरका दास-दासी बनाते हैं, किन्तु ऋणके लिये मनुष्यको रहन नहीं रखते। लिलइन साहबने भी अपनी पुस्तकमें इसी मतको समर्थन किया है। किन्तु और भी एक बात है, जिसके झूठ या सच होनेका कोई ठिकाना नहीं। पहले असभ्य पहाड़ी कदाचित् गांवमें जाकर लड़के चुरा लाते थे। लड़कोंका मांस हलवानसे भी मुलायम होता है। जो उसे खाते हैं, उन सकल नर-पिशाच-राक्षसोंके मुखमें उसका स्वाद भी आ सकता है। पहाड़ी कदाचित् लड़के चुरा उनमें किसीका मांस खाते और किसीको दास भी बना लेते थे। ब्रह्म-देशके राजाने जो पत्र लिखा, उसमें इस बातका कितना ही आभास मिला है, कि पहले आराकान प्रभृति स्थानोंके असभ्य लोग मनुष्य खाते थे। दूसरा भी एक प्रमाण है। आराकान प्रभृतिके पहाड़ी लोग स्नान करते समय शिर नहीं भिगोते। शिर भिगोनेसे निविड़ लम्बे-लम्बे बाल सुखानेमें बड़ा ही कष्ट मिलता है, इसीसे केवल शरीर डुबो जलसे बाहर निकल आते हैं। दूसरा भी एक भय है,—कदाचित् भिगोये हुए शिरमें जूएं बहुत पड़ जाते हैं। एक कहानी है, कि पहले थियङ्गथा, तुङ्गथा प्रभृति पहाड़ियोंके शिरमें जूएं न थे। इसके बाद हठात् एक दिन आराकानके राजाका शिर खूब खुजलाने लगा। रानीने बालोंको उठा और ढूंढ-ढूंढ देखा, कि शिरमें एक प्रकारके काले-काले कीड़े पड़ गये थे। आंखसे क्या देखना था? उन कीड़ोंका नाम भी तो किसीने कभी नहीं सुना। कीड़े निकालकर सोनेके पिंजड़ेमें रखे गये; पिंजड़ा राजप्रासादके दरवाज़ेपर लटकने लगा। कितने ही लोग देख-सुनके चले जाते थे। सवेरेसे सन्ध्यातक लोगोंकी भीड़ कम न होती थी। जो आता, वही शिरपर हाथ रखके सोचने लगता,—ब्रह्माकी सृष्टिमें यह कौन पदार्थ है! राजाने नगर-नगरमें घोषणा करा दी। घोषणामें कहा गया था,—जो इस कीड़ेका नाम और इसकी उत्पत्ति ठीक-ठीक बता सकेगा, उसे अधिक और क्या—राजकन्या विवाहमें प्रदान की जायेगी। दैवज्ञ और पुरोहित पोथी-पत्रा खोलके बैठे; कितनी ही गणना लगाई, अङ्कपात किया, किन्तु कीड़ेका नाम ठीक न निकला। देश-देशान्तरसे भी कितने ही लोग आये, किन्तु कीड़ेका नाम बता न सके। अन्तको एक राक्षस मनुष्यका रूप बना सभामें जा पहुंचा। उसने गणनाकर कहा, कि उस कीड़ेका नाम जूआं था, जो अब्दुल खां नामक एक बङ्गाली सौदागरके बालोंसे राजाके शिरमें चढ़ गया। फिर वह सौदागर पकड़ बुलाया गया। नौकरोंने उसके बाल खोलकर देखे; सब बात सत्य थी, कुछ भी उसमें झूठ नहीं,—अब्दुल खांके शिरमें जूएं भरे थे। अपराध प्रमाणित हो गया और उसे उचित शास्ति देनेकी व्यवस्था हुई। इसीलिये उस समय गड्ढेमें बड़े-बड़े ज़हरीले सांप-बिच्छू छोड़े गये और उसमें अब्दुल खांको डालके प्राणवध किया गया।

राजाको मालूम न था, कि उनकी सभामें राक्षस आया, उन्होंने आदरकर उसे कन्याको प्रदान किया। राक्षसने देखा,—'अष्टप्रहर मनुष्यके समीप रहना पड़ता; जिस ओर बैठो, जिस ओर खड़े हो, उसी ओर मनुष्यका गन्ध लहराता है। लोभ कितने दिन संवरण किया जायेगा? न जाने किस दिन किसे खा जाऊं, इसलिये ऐसे स्थानसे चल देना ही अच्छा है।' यही विचार उसने श्वसुरसे बिदा मांगी। राजाने अनेक दासदासी दे कन्या और दामादको बिदा किया। राहमें जाकर मनुष्यमांस खानेको राक्षस बहुत व्याकुल हुआ। साथमें राजकन्या रही,

जो कुछ जानती न थी। राक्षसने विचारा, कि मनुष्य-मांस खाते देख वह कहीं डर न जाती; इसीसे एक जगह छावनी डाल स्त्रीसे कहा,—'तुम इस डेरेमें रहो, मैं दो-एक अनुचर साथ ले शिकार करके वापस आता हूं।' राक्षस इसीतरह प्रत्यह शिकार करने जा वनमें अनुचरोंको मार खाता था। राज-कन्याके कोई बात पूछनेसे वह कहता,—'वन्य पशु-ओंने उन्हें मार डाला है।' राक्षसने दो-एक करके सबको खा डाला था; अन्तमें एक भृत्य बाकी बचा। वह उसे भी साथ ले शिकार करने रवाना हुआ। राजकन्या चुपके साथ-साथ जा सब काम अपनी आंखों देख आई। किन्तु ईश्वरकी कृपासे उसके प्राण बच गये।*

इस कहानीसे भी अच्छी तरह समझ पड़ता है, कि पहले आराकान प्रभृति स्थानोंके असभ्य लोग मनुष्य खाते थे।

तुङ्‌थाओंके प्रत्येक ग्राममें एक सरदार रहता है। राजाका मान-सम्भ्रम अधिक कुछ भी नहीं; प्रजा उन्हें केवल एक गांठ शस्य और एक घड़ा सड़ी शराब देती,—यही उनका राजस्व है। मानका दूसरा भी एक काम है। युद्ध होनेसे सरदारको लूटका अधिक अंश देना पड़ता है। प्रजाकी इच्छा होनेसे वह एक गांवसे दूसरे गांवमें जाकर रह सकते हैं। इसीसे सरदार लोगोंमें आदर पानेके लिये सबसे अच्छा व्यवहार और सबको सुखमें रखनेकी चेष्टा करते हैं। जो महावीर एवं असमसाहसी हैं, शत्रु आनेसे युद्धमें पीठ नहीं दिखाते और विवाद मिटाते समय पक्षपात नहीं करते, वही सरदार बननेके पात्र हैं। तुङ्‌था उन्हींको प्रधान समझते हैं।

तुङ्‌थाओंके पहाड़में अधिक पीडादि नहीं; यहां प्राय: अस्सी-नव्वे वर्षके बुड्ढे लोग देख पड़ते हैं। कदाचित् संक्रामक विशूचिका और वसन्त रोग उप-स्थित हो जाते हैं, किन्तु नीचेवाले बङ्गलियोंके ही दोषसे। बङ्गालियोंमें संक्रामक रोग होते भी पहाड़ी उनके पास द्रव्यसामग्री लेने आते, इसीसे पहाड़पर भी अन्तमें विशूचिका और वसन्त रोग फैल पड़ते हैं। पहाड़ी आरबाकी माला गलेमें पहनते हैं। इन्हें विश्वास है, कि यह माला गलेमें पहननेसे शरीर नीरोग रहता है। दैवात् पीड़ा होनेसे इनका दूसरा कोई औषध नहीं; किसी भी रोग-शोकमें पहाड़ी सांपका पित्त और विष्ठा खाते हैं। किन्तु ठीक बात विचारनेसे रोग-शोक केवल वनदेवताके कोपपर ही संघटित होते हैं। उन्हें कुछ संतुष्ट रख सकनेसे अमङ्गलका भय नहीं रहता। इसीसे परि-वारमें किसीको पीड़ा होनेपर पहाड़ी पहले वन-देवताकी पूजा करते हैं। किन्तु महामारी दूर करनेकी रीति निराली है। यह—स्त्री, पुरुष, बालक, बालिका—सब मिलकर नाचते-गाते हैं। ताज़ी-ताजी रूईका धागा तोड़ उसमें गांवका फेरा लगा गांठ देते हैं। पल्लीवासी देवताके सामने मुर्गी-सूअरको बलि चढ़ा रक्त उसी धागेमें लगाते हैं। गृहिणी घर-बाहर झाड़-पोंछ और लीप-पोत द्वार-द्वारमें नवीन पल्लव-पत्रके वन्दनवार बांध देती हैं। ऐसे समय एक गांवसे दूसरे गांव कोई जाने नहीं पाता। दैवात् बलपूर्वक किसीके ग्राममें प्रवेश करनेको आनेपर तुमुल युद्ध उपस्थित होता है। तुङ्‌था इस नियमको खाङ्ग कहते हैं। तीन दिनके बाद खाङ्ग टूट जाता है।

यह बात हम मानते, कि तुङ्‌था असभ्य हैं। किन्तु प्रतिज्ञाको पालन करनेमें ऐसी कोई भी दूसरी जाति नहीं। एकबार मुंहसे जो निकलेगा, ब्रह्माण्ड रसातलमें जानेपर भी वह अन्यथा न जायेगा। शपथ उठाते समय यह शस्य, कार्पास, जल प्रभृति द्रव्य छूके प्रतिज्ञा करते हैं,—गङ्गाजल, तुलसीपत्र कुछ नहीं समझते। नित्य जो आवश्यक पड़ते और जिनके न होनेसे प्राण नहीं बचता, उन्हीं सकल द्रव्योंको स्पर्शकर यह शपथ उठाते हैं।

तुङ्‌था अफीम, चांडू, गांजा, भांग कुछ नहीं खाते। नशेमें इन्हें शराब अच्छी लगती है। मद्यपान इनके नित्य अभ्यासमें आ गया है। एक

* Captain P. H. Lewin's Wild Races of S. E. India.

प्याला शराब इनके पेटमें न पड़नेसे इन्हें अन्न-जल नहीं रुचता। सिवा इसके पूजापार्वण, विवाह प्रभृति जितने प्रकारके काम-काज हैं, उन सबमें केवल शराबकी ही धूम-धाम होती है। यह तीन तरहकी शराब पीते हैं। एक तरहकी शराब थुङ् कहलाती जो चावल सड़ाकर बनाई जाती, किन्तु पीनेमें सम्भवत: बहुत मीठी होती है। 'सीपा' दूसरी तरहकी सड़ी शराब है, जो बिहीदानेसे बनती है। तीसरी शराब 'अर्क' है, यह चावलसे टपकाई जाती है।

अदिव्य (सं० त्रि०) १ दिव्य या चमत्कृत नहीं, सामान्य। २ इन्द्रियों द्वारा ज्ञातव्य, लौकिक; दुनयावी।

अदिष्ट, अदृष्ट देखो।

अदिष्टी (हिं० वि०) १ अदूरदर्शी, कोताबीन। २ मूर्ख, बेवकूफ। ३ दुष्ट, बदमाश। ४ हतभाग्य, बदक़िस्मत।

अदीक्षित (सं० त्रि०) १ सोमयज्ञकी जिसे दीक्षा न मिली हो। २ जिसे सोमयज्ञमें स्थान न प्राप्त हुआ हो। ३ जिसे गुरुमन्त्र न दिया गया हो। ४ जिसका यज्ञोपवीत न हुआ हो।

अदीठ (हिं० वि०) अदृष्ट, गुप्त, जो देखा न गया हो, पोशीदा।

अदीन (सं० त्रि०) न दीनम्, दी-क्त; नञ्-तत्। १ अकातर, निडर। २ अदु:खित, खुश। ३ अनम्र, न झुकनेवाला। ४ उदार, सखी। ५ धनी, अमीर। (पु०) ६ पुरुरवाके वंशोद्भव एक राजा। यह सह-देवके पुत्र थे। अदीनकी सन्तानका नाम जयसेन था। विष्णुपुराणके नवें अध्यायवाले चौथे अंशमें लिखा है,—

"हर्षवर्द्धनसुत: सहदेव:, तस्माददीन:, तस्य जयसेन:।"

अदीननगर—नगरविशेष, एक शहर। पञ्जाबमें अदीननगर नामक एक मनोहर पुरी थी। ग्रीष्मकाल आनेसे महाराज रणजित् सिंह इस नगरमें आकर रहते थे। उस समय यहांके उद्यानकी ऐसी शोभा थी, कि इन्द्रदेव उसे देख नन्दनकाननका सुख भूल जाते थे। बागके बीचसे नहर निकल गई थी। किनारे-किनारे क्यारी कटा हुआ हरा-भरा फूलोंका जङ्गल खड़ा था। दोपहरको जलमें उसकी छाया पड़नेसे शोभापर शोभाका विस्तार देख पड़ता था। उद्यानके स्थान-स्थानमें अपूर्व अट्टालिका बनी थीं। बागकी बग़लमें सिपाहियोंके क़वाइद करनेका मैदान था। उसी बाग़वाले फाटकके बीचमें शालका तम्बू खड़ा करते थे। रातको महाराज उसी तम्बूमें लेटकर नींद लेते थे।

सन् १८३८ ई० में लार्ड आकलेण्डने मेकनेटन, असबरन प्रभृति कितने ही सम्भ्रान्त अंगरेजोंको महाराज रणजित् सिंहके पास भेजा। शाह शुजाको काबुलके सिंहासनपर बैठानेके लिये ही वह पञ्जाबके अधिपतिसे एक दृढ़ सन्धि करने आये थे। उन सब अंगरेज-दूतोंने इसी अदीननगरमें आकर महाराजसे मुलाक़ात की। उसी समय यहां एक दूसरी प्रसिद्ध घटना उपस्थित हो गई। हरिदास साधु नामक जनैक समाधिस्थ योगीको पहले रणजित् सिंहने मट्टीमें गड़वाकर योगबलकी परीक्षा ली थी। उस समय डाक्टर मेकग्रेगर प्रभृति अनेक अंगरेज़ वहां उपस्थित थे। रणजित् सिंहने उन योगीको आदर करके लाहोरमें टिकाया था।

अनेक दिन हुए, मेकनेटन साहबने भी पुष्करमें एकबार हरिदासके योगबलकी परीक्षा ली थी। लोग कहते फिरते, कि सन्यासी श्वास बन्द करके मट्टीके भीतर रह सकते थे। अपनी आंखोंसे न देखने पर नहीं कहा जा सकता, कि बात कैसी है। यही सोचकर उन्होंने योगीको एक सन्दूकके भीतर बन्द किया और अपने घरके खूंटेपर तेरह दिनतक लटका रखा। तेरह दिन बाद उन्होंने सन्दूक खोलकर देखा,—सन्यासीके निश्वास नहीं, हृत्स्पन्दन नहीं; वह जड़वत् और मृतदेह-जैसे पड़े हैं। कुछ देर बाद उसी शरीरमें जीवनसञ्चार हो आया। अंगरेजीमें लिखा गया है,—

"But another officer (Mcnaughten......Assistant to the Agent to the Governor General in Rajputana) put his abstenence to the test at Pushkar by suspending him for thirteen days, shut up in a wooden chaste." (See Lieutenant Baileau's Tour to Rajwar)

अन्यान्य साहबोंने भी पहलेसे हरिदासकी कितनी ही बात सुन रखी थी। किन्तु काम असम्भव होनेके कारण उन्हें विश्वास न हुआ। जब वह सब पञ्जाबमें आये, तब इससे बढ़कर आनन्दकी दूसरी क्या बात हो सकती थी, कि एक राहसे दो काम निकल जाते। यही सोचके सन्यासी को बुलानेके लिये उन्होंने महाराजसे अनुरोध किया। उस समय हरिदास अमृतसरमें थे। महाराजका संवाद पाकर उन्होंने उसी समय अदीननगरको यात्रा
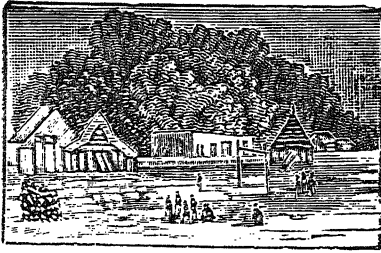
अदीननगर।

की। ६ठीं जूनको सन्यासी आये, साहबोंका आह्लाद उमड पड़ा। उन्होंने योगीके पास पहुंचके देखा, कि वह एक प्रस्तर-निर्मित अट्टालिकामें पलंगके ऊपर बैठे, कमरेमें इधर-उधर गलीचे बिछे और मखमलके मोढ़े पड़े थे। पलंगपर रेशमकी शय्या लगी थी। हरिदासके सामने दो प्याले और एक ग्रन्थ रखा था। वाम भागमें एक आबखोरा, दो झोली और एक गेरुआ वस्त्र पड़ा था। मेज़पर एक दूसरी पुस्तक और रणजित् सिंहकी दी हुई कश्मीरी शाल थी। पलंगकी एक ओर और योगीके पीछे खड़े हो अनेक शिष्य तालवृन्त द्वारा धीरे-धीरे हवा कर रहा था। पहले समाधिकी अवस्थासे निकलनेपर महाराजने सन्यासीको जो अलङ्कार देकर विभूषित किया था, उस दिन वह वही कनकहार और रत्न-कुण्डल पहनके जा पहुंचे। साहबोंने उनके पास जाकर कितनी ही बातचीत की और उनके योगबलकी परीक्षा लेना चाही। किन्तु सन्यासी इस बार चातुरी कर गये, उन्होंने साहबोंको अपना योगबल न दिखाया। हरिदास साधु देखो।

अदीनबेग खान्—(किसी-किसीके मतसे इनका नाम दीनबेग खान् था।) आराइन जातीय चन्नू नामक सरकपुरनिवासी एक व्यक्तिके पुत्र। यह मुगल वंशमें वर्द्धित हुए थे। पहले सैनिक श्रेणी और पीछे राजस्व-संग्रह करनेमें इन्होंने काम किया, धीरे-धीरे यह लुधियानेके निकटस्थ कनक नामक गांवके माल-गुज़ार और सुलतानपुरके हाकिम बन बैठे। यह अपुत्रक थे। होशियारपुरके निकटस्थ खान्पुरमें इनकी मृत्यु हुई थी, जहां इनकी समाधिके ऊपर एक सुन्दर समाधिमन्दिर बनाया गया।

तारीखे-इब्राहीम-खान् नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि सन् ११७२ हिजरीमें (सन् १७५७-८ ई०) अदीन-बेगने मानवलीलाको सम्बरण किया। (फरहतुं नाज़री)

अदीन-मसजिद,—बङ्गदेशान्तर्गत मालदह ज़िलेके पाण्डुया नगरस्थ एक मसजिदका ध्वंशावशेष। यह पठानोंके कारुकर्मका एक चमत्कार दृश्य है।

अदीनसत्व (सं० त्रि०) अकातर औदार्य-युक्त, खुली सखावतवाला।

अदीनात्मा (सं० त्रि०) उच्चाशय, आलीदमाग, बढ़े हुए दिलका।

अदीपित (सं० त्रि०) न जलाया गया, जिसमें रोशनी न की गई हो।

अदीब—'अबू हसन आली बिन-नस्र'का नामान्तर। यह मिस्र देशके एक विख्यात दार्शनिक रहे, एक खिलाफ़तके हाकिम भी थे।

अदीयमान (सं० त्रि०) दिया न गया, जिसे दे न सकें।

अदीर्घ (सं० त्रि०) लम्बा नहीं, छोटा।

अदीर्घसूत्र (सं० त्रि०) देर न करनेवाला, चुस्त।

अदीह (हिं०)—अदीर्घ देखो।

अदुंद (हिं० वि०) १ अद्वन्द्व, जिसमें कोई झगड़ा-झञ्झट न हो। २ शान्त, ठण्डा। ३ अद्वितीय, लासानी, बेजोड़।

अदुःख (सं० त्रि०) दुःख या बाधासे रहित, प्रसन्न, खुश।

अदुःखनवमी (सं० स्त्री०) भाद्र-कृष्णा-नवमी। यह तिथि अत्यन्त शुभ समझी जाती और इसी तिथि-

को स्त्रियां वर्त्तमान वर्षका अमङ्गल दूर करनेके लिये देवीको पूजा करती हैं।

अदुग्ध (सं० त्रि०) जो दूही न गई हो, जिसे किसीने पिया न हो।

अदुच्छुन (वै० त्रि०) बाधारहित, भला, अच्छा।

अदुर्ग (सं० त्रि०) १ गमनसाध्य, जहां पहुंचना मुश्किल न हो। २ दुर्गरहित, जहां किलेबन्दी न हो।

अदुर्गविषय (सं० पु०) दुर्गरहित देश, वह मुल्क जहां किला न हो।

अदुर्मख (वै० त्रि०) प्रसन्न, खुश।

अदुर्मङ्गल (वै० त्रि०) शुभ, कल्याणकारक, मुबारक।

अदुर्वृत्त (सं० त्रि०) १ सच्चरित्र, जिसका चाल-चलन अच्छा हो। २ प्रसन्नहृदय, खुशमिज़ाज, अच्छे स्वभाववाला।

अदुष्ट (सं० त्रि०) न दुष्टम्, नञ्-तत्। १ दुरदृष्ट साधनतारूप दोषरहित, दुष्ट नहीं, भला। २ निर्दोष, बेगुनाह।

अदू (वै० त्रि०) १ शिथिल, सुस्त। २ हृदयशून्य, बेहिम्मयत। ३ पूजा न करनेवाला।

अदून (सं० त्रि०) १ आघातशून्य,बेज़खम, बेचोट। २ अकातर, निडर।

अदूर (सं० क्ली०) न दूरम्, नञ्-तत्। १ दूर नहीं, सामीप्य। (त्रि०) २ अदूरवर्त्ती, निकट, समीप, पास।

अदूरतस्, अदूरात्, अदूरे (सं० अव्य०) १ दूरसे नहीं, पाससे। २ शीघ्रतासे, जल्द-जल्द।

अदूरदर्शी (सं० त्रि०) दूरतक न विचारनेवाला, विचाररहित, अनग्रशोची, कोताबीन, नासमझ, जो किसी बातका अन्त न देखे।

अदूरभव (सं० त्रि०) जो बहुत दूर अवस्थित न हो, पासका रहनेवाला।

अदूषण (सं० त्रि०) जिसमें दूषण न हो, निर्दोष, शुद्ध, स्वच्छ, भला, अच्छा, बेऐब।

अदूषित (सं० त्रि०) न दूषितम्, नञ्-तत्। दोषोणौ। पा ६।४।८०। जो दूषित रहीं, दोषरहित, निर्दोष, बेऐब।

अदूषितधी (सं० पु०) विशुद्धहृदयका पुरुष, वह आदमी जिसकी अक्ल बिगड़ी न हो।

अदृढ़ (सं० त्रि०) १ दृढ़ नहीं, ढीला, कमज़ोर। २ विचाररहित, अस्थिर, डावांडोल। (क्ली०) ३ तृण-विशेष, एक तरहकी घास।

अदृपित (वै० त्रि०) १ जिसके साथ कठोर व्यवहार न किया जाये। २ विचारवान्, समझदार।

अदृप्त (वै० त्रि०) अभिमानरहित, निरभिमान, जिसे घमण्ड न हो।

अदृप्तक्रतु (सं० त्रि०) १ अभिमानका विचार न रखनेवाला। २ गम्भीर, सञ्जीदा।

अदृप्यत् (वै० त्रि०) अभिमानशून्य, जिसे किसी बातका घमण्ड न हो।

अदृश् (सं० त्रि०) नास्ति दृक् दृष्टिर्यस्य, दृश-क्विप्। १ अन्ध, नाबीना, जिसे देख न पड़े। न पश्यतीति, दृश-क्विप् कर्तरि; नञ्-तत्। २ अदर्शक, न देखने-वाला।

अदृश्य (सं० त्रि०) न दृश्यम्, नञ्-तत्। दृश्यभिन्न, दृष्टिशक्तिके अगोचर, जो आंखों देखा न जाये।

अदृश्यकरण (सं० क्ली०) २ अदृश्य बनानेकी क्रिया, ग़ायब करनेका काम। २ जादूका खेल।

अदृश्यत् (सं० त्रि०) १ अगोचर, अदेख, जो दिखाई न दे। (स्त्री०) २ वशिष्ठ मुनिकी एक बहू।

अदृष्ट (सं० क्ली०) न-दृष्टम्, दृश-क्त; नञ्-तत्। पुण्या-पुण्यरूप भाग्य, जन्मान्तरीय संस्कार, क़िस्मत। कोई यह कह नहीं सकता, कि कपालमें क्या लिखा है; इसी कारण भाग्यको अदृष्ट मानते हैं। ऋग्वेद और अथर्ववेदमें यह शब्द उन कीटोंके लिये भी व्यवहृत हुआ है, जो देख नहीं पड़ते। संसारमें हम जो सुख-दुःख भोग करते, उसे लोग पूर्वजन्मार्जित पापपुण्यका फलाफल बताते हैं। जिसका सुकृतिबल होता, वह सुखमें रहता; जिसने दुष्कर्म्म किया, उसे इस संसारमें कष्ट उठना पड़ता है। अदृष्ट माननेसे कितना ही विरोध संघटित होता है। न माननेसे अनेक विषयोंकी अभिसन्धि समझमें नहीं आती। इसीसे कोई-कोई अदृष्ट मानते, कोई-कोई अदृष्ट नहीं

भी मानते हैं। अदृष्ट माननेमें यही दोष है, कि यदि कपालमें जो लिखा है, वही होगा, तो हम निष्कर्मा क्यों न बन जायें। सांसारिक काम करनेमें क्या फल है? फिर इस बातका कोई जवाब नहीं, कि जब पहले सृष्टि हुई थी, तब पूर्वजन्मार्जित कर्मफल किसका था और ऐसी अवस्थामें लोग सुख-दुःखके भागी कैसे बने। फिर यदि अदृष्ट न मानें, तो इसका क्या कारण होगा, कि संसारमें कोई सुख और कोई दुःख भोगता है। इस समस्याकी व्याख्या करना कठिन है। इसीसे लोग कर्मवादी बन जाते हैं। ईश्वर ही जाने, कि असलमें बात क्या है; हम इसका उत्तर दे नहीं सकते। फिर हम देखते, कि अतिप्राचीन कालसे सकल देशोंके लोग अदृष्ट मानते चले आये हैं। क्या संस्कृत और क्या अरबी-फ़ारसीकी पुस्तकें— अदृष्टकी बात सभी जगह देख पड़ती है। हमारे सुश्रुत नियति न मानते थे। उनका यहांतक विश्वास था, कि जो लोग नियति मानते, वह सब बुद्धिमान् नहीं। क्योंकि, ऐसा विश्वास रख कोई भी सांपके मुंहमें नहीं घुसता, कि कपालमें जो लिखा है, वह अवश्य होगा। वलि, मन्त्र और यागयज्ञका विधान भी सब लोग करते हैं। यदि अदृष्टका लिखा न मिटे, तो इन सब कामोंका क्या फल हो सकता है!

२ भावी विपत्ति, नागहानी आफ़त। ३ बुद्धि या परीक्षासे बाहर विषय, वह काम जिसमें अक़्ल या आज़मायश न चले। (पु०) ४ अदृश्य कृमि; कीड़े जो देख न पड़ें। (त्रि०) न दृष्टम्। ५ अकृतदर्शन, अवीक्षित, न देखा हुआ।

अदृष्टकर्मन् (सं० त्रि०) जिसने काम-काज देखा नहीं, अनुभवरहित।

अदृष्टकाम (सं० पु०) कभी न देखी गई वस्तुका प्रेम, अनदेखी चीज़का लालच।

अदृष्टनर, अदृष्टपुरुष (सं० पु०) न्याय जो वादी और प्रतिवादी आप ही कर लेते हैं।

अदृष्टपरसामर्थ्य (सं० पु०) वह पुरुष जिसने शत्रुकी शक्तिका अनुभव प्राप्त न किया हो।

अदृष्टपूर्व (सं० त्रि०) न पूर्वं दृष्टम्, सुप्सुपेति समासात् परनिपातः। सह सुपा। पा २।१।४। १ पहले जो देखनेमें नहीं आया। २ अनोखा, निराला।

अदृष्टफल (सं० त्रि०) १ उन फलोंवाला जो देखे न गये हों। (क्ली०) २ फल जो देख न पड़े, पोशीदा नतीजा।

अदृष्टरूप (सं० त्रि०) अनदेखे रूपवाला, ऐसी शक्लका, जो देखी न जाये।

अदृष्टवत् (सं० त्रि०) १ भाग्य-सम्बन्धीय, क़िस्मतसे हुआ। २ भाग्यवान्, खुशक़िस्मत। ३ अभागा, बदबख़्त।

अदृष्टवाद (सं० पु०) भाग्यपर विश्वास, विना विचारे शास्त्रानुसार प्रारब्धका स्वीकार।

अदृष्टहन् (वै० पु०) विषमय कृमिको नाश करनेवाला सूर्य।

अदृष्टाक्षर (सं० पु०) अक्षर जो देख न पड़े, न दिखाई देनेवाले हर्फ़। यह अक्षर बहुधा प्याज और नीबू जैसी चीज़ोंके रससे बनते और अग्निपर तपानेसे देख पड़ते हैं।

अदृष्टार्थ (सं० त्रि०) इन्द्रियसे अज्ञात विषयपर विश्वास रखनेवाला।

अदृष्टाश्रतपूर्वत्व (सं० क्ली०) वह गुण, जिसका कभी प्रत्यक्ष हुआ न हो।

अदृष्टि, अदृष्टिका (सं० स्त्री०) न दृष्टिः, नञ्-तत् विरोधार्थे। १ दर्शनाभाव। २ क्रूरदृष्टि, कोपदृष्टि, गुस्सेकी नज़र। (त्रि०) ३ दृष्टिशून्य, अन्धा।

अदेख (हिं० वि०) अदृश्य, अदृष्ट, गुप्त, पोशीदा, छिपा, जो देख न पड़े।

अदेखी (हिं० वि०) देख न सकनेवाला, हसदी, जिसे किसीका वैभव देखनेसे डाह लगे।

अदेय (सं० त्रि०) न देयम्, दा-यत्; नञ्-तत्। १ दानके अयोग्य, न देने काबिल। (क्ली०) २ न्यायानुसार न देने या न समर्पण करने योग्य द्रव्य।

अदेयदान (सं० क्ली०) अन्याय दान, बेजा बख़्शिश।

अदेव (सं० त्रि०) १ जो देव-सम्बन्धीय न हो, देवतासे सम्बन्ध न रखनेवाला। (पु०) २ वह जो देवता नहीं। ३ राक्षस, निशाचर।

अदेवक (सं॰ त्रि॰) देवतासे सम्बन्ध न रखने वाला, जो देवताके लिये न रखा गया हो।

अदेवता (सं॰ स्त्री॰) जो देवी न हो, निशाचरी।

अदेवत्र (सं॰ त्रि॰) न देवान् त्रायते प्रीणाति अनेन, त्रै-क करणे। देवताओंको असन्तुष्ट करनेवाला, जिससे फ़रिश्ते नाराज़ हो जायें।

अदेवमातृक (सं॰ पु॰) न देवमातृकः, नञ्-तत्। देवमातृक-भिन्न देश, नदीमातृक देश, वह मुल्क जिसमें खेती दरयाके पानीसे सींची जाये।

अदेवयत् (वै॰ त्रि॰) देवताओंसे अश्रद्धा रखने-वाला, धर्महीन।

अदेवयु (वै॰ त्रि॰) न देवं याति आप्नोति, देव-या-कु। देवयुर्धार्मिकः, इति उज्ज्वलदत्तः। अधार्मिक, देवता-को न पानेवाला।

अदेवराजा—तुलुव, अन्ध्र या तैलिङ्गका राजगण। इन राजाओंमें प्रतापरुद्रका राजकाल सन् ११६२ ई॰ था। इनसे पहले उन्नीस अदेव राजाने तीन सौ साठ (३६०) वत्सर (२११?) राजत्व किया, अट्ठारह जन अन्ध्रवंशोद्भव होनेसे अनुमित हुए थे। इनमें ओरङ्गने सन् ८०० ई॰के समय सिंहासनकी शोभा बढ़ाई। Prinsep's Indian Antiquities, p. 278.

अदेवृघ्नी (वै॰ स्त्री॰) अपने देवर या ननदोईको नष्ट न करनेवाली स्त्री।

अदेश (सं॰ पु॰) न देशः, नञ्-तत्। मन्ददेश, अयोग्य स्थान, म्लेच्छदेश, बुरा मुल्क। अदेशमें श्राद्ध तर्पणादि दैवक्रिया न करना चाहिये। स्मृतिमें लिखा है,—"नादेशे तर्पणं कुर्यात् न सन्ध्यां नापि पूजनम्।"

अदेशकाल (सं॰ क्ली॰) अयोग्य देश और समय, बुरा मुल्क और ज़माना।

अदेशज (सं॰ त्रि॰) कुत्सित देशमें उत्पन्न हुआ, जो बुरे मुल्कमें पैदा हो।

अदेशस्थ (सं॰ त्रि॰) १ बुरे देशमें रहनेवाला। २ अपने देशसे अनुपस्थित।

अदेश्य (सं॰ त्रि॰) आज्ञा देने, मन्त्रणा सुनाने या कुछ समझानेके अयोग्य। २ अनुपस्थित, मौक़ेसे ग़ैरहाज़िर।

अदेस (हिं॰) आदेश देखो।

अदेह (सं॰ त्रि॰) १ शरीररहित, बेजिस्म। (पु॰) २ कामदेव, पञ्चबाण।

अदैव (सं॰ क्ली॰) न दैवं वैश्वदेविक श्राद्धम्, नञ्-तत् अभावार्थे। वैश्वदेविक श्राद्धभिन्न अन्य श्राद्ध, नित्यश्राद्ध। (त्रि॰) नास्ति दैवं वैश्वदेविक श्राद्धमत्र, बहुव्री॰। २ वैश्वदेविक श्राद्धशून्य। ३ दुर्भाग्ययुक्त।

अदोख (हिं॰) अदोष देखो।

अदोखिल (हिं॰ वि॰) १ दोषरहित, बेऐब। २ निष्कलङ्क, जो बदनाम न हो।

अदोग्धृ (सं॰ त्रि॰) दूध न देनेवाली।

अदोमद (वै॰ त्रि॰) क्लेश न देनेवाला, जो तक-लीफ़ न पहुंचाये।

अदोष (सं॰ पु॰) न दोषः, नञ्-तत् अभावार्थे। १ दुरदृष्ट साधनका अभाव, ऐबका न होना। (त्रि॰) नास्ति दोषो यस्य यत्र वा। २ दोषशून्य, बेऐब। ३ निरपराध, बेगुनाह। ४ पापरहित, इज़ाबसे बाहर।

अदोस (हिं॰) अदोष देखो।

अदोह (सं॰ पु॰) दूध न निकलनेका समय, वह वक़्त जिसमें दूध दूहा न जाये।

अदौरी (हिं॰ स्त्री॰) उड़दकी सूखी हुई बरी, मिथौरी।

अद्गग (सं॰ पु॰) अद्यते देवैः, अद-गन् कर्मणि। गन् गम्यद्योः। उण् १।१२०। पुरोडाश, होमके उपयुक्त कठिन वस्तु चरु आदि।

"होमें यत् कठिनं द्रव्यं पुरोडाशः स उच्यते।" (उज्ज्वलदत्त)

अद्ध—अर्द्ध देखो।

अद्धरज, अध्वर्यु देखो।

अद्धा (वै॰ अव्य॰) अत्-धा-क्विप्, अत्यते अत् तं सन्ततं गमनं ज्ञानं वा दधाति। (वाच॰) १ इस मार्गसे, इसतरह। २ स्पष्ट रूपसे, साफ़-साफ़। ३ निःसन्देह, बेशक। ४ अनुमानतः, अन्दाज़न। ५ सम्मुखमें, रूबरू। ६ अत्यन्त रूपसे, ज़्यादा-ज़्यादा। (हिं॰ पु॰) ७ अर्द्धखण्ड, आधा टुकड़ा। ८ पूरी

बोतलका अर्द्धांश। ९ घण्टा, जो प्रत्येक घण्टेके बीचमें बजाया जाये। १० ताल विशेष। यह क़व्वालीसे आधी होती और चार मात्रा रखती है। ११ नौका विशेष, एक तरहकी छोटी नाव।

अद्धातमाम् (वै० अव्य०) अवश्यमेव, बिलाशक।

अद्धाति (वै० पु०) ज्ञिमान् पुरुष।

अद्धापुरुष (वै० पु०) सच्चा मनुष्य, रास्त शख़्श।

अद्धाबोधेय (वै० पु०) शुक्ल-यजुर्वेदकी शाखा विशेषके अनुयायी। वह लोग, जो शुक्ल यजुर्वेदक एक शाखाको मानते हैं।

अद्धामिश्रितवचन (सं० पु०) जैनियोंके विश्वासानुसार समयके सम्बन्धमें असत्य कथन, समय बतानेमें झूठका बोलना।

अद्धी (हिं० स्त्री०) १ दमड़ीका अर्द्धांश, जो कौड़ियोंसे गिना जाता है। २ निहायत उम्दा तनज़ेब, जिसका थान साधारण तनज़ेबके थानसे आधा होता है।

अद्ध्यालोहकर्ण (वै० त्रि०) लाल कानोंवाला, जिसके गोश सुर्ख़ हों।

अद्भुत (सं० क्ली०) अद्-भू-डुतच्, डित्वात् टिलोपः। अदिभुवो डुतच्। उण् ५।१। १ आश्चर्य, आकस्मिक। २ आलङ्कारिकोंका सम्मत नव-रसोंके अन्तर्गत एक रस। यह रसात्मक कविता पढ़नेसे पाठक विस्मयमें पड़ जाते हैं। आलङ्कारिक कहते हैं, कि इस रसका स्थायिभाव विस्मय, देवता, गन्धर्व, पीतवर्ण, आलम्बन लोकातीत वस्तु, उद्दीपन गुणकी महिमा है। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, गद्गदस्वर, विभ्रम, नेत्रविकाश प्रभृति इसके अनुभाव हैं। वितर्क, आवेग, सम्भ्रान्ति इसके व्यभिचारिभाव हैं। किसी नायकके सुरङ्ग द्वारा नायिकाके प्रासादमें एकाएक प्रवेश करनेपर सखियां विस्मयपूर्वक एक-दूसरेसे पूछती हैं,—

> आकर पहुंचा कौन है, किसे देखती वीर।
> देव असुर या नाग नर कहो समुझि धरि धीर॥

शास्त्रकारोंके मतसे संसारमें शुभाशुभ होनेसे पहले अनेक निमित्त आ उपस्थित होते, जिनमें कितने ही सुलक्षण और कितने ही कुलक्षण रहते हैं। ऋषि इन निमित्तोंको भी अद्भुत ही बताते हैं। पूर्वकालसे यह सकल लक्षण दुर्निमित्त कहलाते चले आये हैं। सूर्यमण्डलमें कलङ्कका चिह्न वर्तमान है। आजकलके युरोपीय पण्डित भी उसे कुलक्षण कहते हैं। उनके मतसे सूर्यमें कलङ्की स्याही पड़नेपर अनावृष्टि और दुर्भिक्ष होता है। दक्षिण-दिक्में धूमकेतुके उदय, वक्र मङ्गलग्रहमें कृत्तिका-नक्षत्रके घोर दर्शन, उल्कापात, शीतग्रीष्मादिके विपरीत भाव अर्थात् शीतकालमें ग्रीष्मबोध और ग्रीष्मकालमें शीतबोध, भूमिष्ठ होनेवाली सन्तानके हीनाङ्ग किंवा विकृताङ्ग अथवा अधिकाङ्ग, हेमन्त-कालमें कोकिलके कूकने, सन्ध्याकालमें कुक्कुटके बोल उठने, सूर्य निकलनेपर शृगालोंके हू-हू करने, कौवे चील प्रभृति पक्षियोंके उड़कर घरपर बैठने, गृध्र, काक, शृगाल प्रभृति जन्तुओंके श्मशानसे हड्डी और मांस लाकर गांवके भीतर डालने और ज्येष्ठी, छिपकली प्रभृति जन्तुओंके अङ्गवाले स्थान-विशेषमें आ गिरनेसे शुभाशुभ संघटित होता है।

(पु०) ३ नवम मन्वन्तरके इन्द्रका नाम। (त्रि०) ४ अलौकिक, अनूठा, अजीब।

अद्भुतकर्मन् (सं० त्रि०) १ आश्चर्यजनक कर्म करनेवाला, जो अनोखे काम करे। २ विलक्षण कला-कौशल दिखानेवाला, जो निराली कारीगरी निकाले।

अद्भुतक्रतु (वै० त्रि०) अपूर्व बुद्धि रखनेवाला, जिसकी अक़्ल निराली रहे।

अद्भुतगन्ध (सं० त्रि०) अलौकिक गन्धका, जिसमें अजीब ख़ुशबू हो।

अद्भुततम (सं० क्ली०) असाधारण आश्चर्य, ग़ैर-मामूली तअज्जुब।

अद्भुतता (सं० स्त्री०) निरालापन, विचित्रता।

अद्भुतत्व (सं० क्ली०) विलक्षणता, निरालापन।

अद्भुतदर्शन (सं० त्रि०) अनोखे रूपवाला, जो अजीब देखा जाये।

अद्भुतधर्म (सं० पु०) आश्चर्य कर्मका नियम, अजीब कामोंकी तरीक़।

अद्भुतब्राह्मण (सं० पु०) छन्दोग-ब्राह्मणोंका एक विभाग। इस संकलनकी प्रौढ़ब्राह्मण या पञ्चविंश-

ब्राह्मण भी कहते हैं। कोई-कोई लोग अनुमान करते, कि षड्विंश-ब्राह्मण और अद्भुतब्राह्मण परवर्त्ती ब्राह्मण हैं।

अद्भुतभीमकर्मन् (सं० त्रि०) अपूर्व और भयानक कर्म करनेवाला, जो अजीब और खौफ़नाक काम करे।

अद्भुतरस (सं० पु०) आश्चर्यजनक कविताप्रणाली, शायरी लिखनेका अजीब ढङ्ग।

अद्भुत-रामायण—काव्यविशेष। इसे लोग वाल्मीकिका बनाया बताते हैं। इसका दूसरा नाम अद्भुत उत्तर-काण्ड है। सब मिलाके इसमें २७ सर्ग विद्यमान हैं। सहस्रस्कन्ध रावण-वध इसका प्रधान वर्णनीय विषय है। दशस्कन्ध वधके बाद रामचन्द्रने अयोध्यामें सिंहासनको ग्रहण किया। एक दिन वह राजासनपर आसीन थे, वाममें सीता बैठी थीं। ऐसे ही समय सभास्थ मुनि लङ्काविजयको उपलक्षकर श्रीरामके बलवीर्यकी यथेष्ट प्रशंसा करने लगे। सुनते-सुनते जानकी कुछ-कुछ मुसकुरा उठीं। इससे वक्ता मुनि और रामचन्द्र विशेष क्षुब्ध और ईषत् क्रुद्ध हुए। पीछे हास्यका कारण पूछनेपर सीताने नम्र भावसे उत्तर दिया,—'बालिकावयसमें जब मैं पितृ-गृहपर थी, तब पिताने मुझे ब्राह्मणसेवामें लगाया था। किसी दिन एक ब्राह्मणने कुछ रोज़के लिये पिताके गृहमें आतिथ्य स्वीकार किया। मैं विशेष सावधान हो उनकी सेवा-शुश्रूषामें लगी रहती थी, जिससे तुष्ट हो उन्होंने गल्पस्थलमें मुझसे सहस्रस्कन्ध रावणका वृत्तान्त बताया। यह रावण दशाननका भाई है, जिसकी बराबर वीर त्रिभुवनमें दूसरा कोई भी नहीं। यह कथा सुन मैं दशस्कन्ध रावणको वीर नहीं समझती और इसे विना वध किये मुझे आर्यपुत्रकी कोई प्रशंसा नहीं देख पड़ती। इसीसे मैं मुसकुराई हूं।'

सीताकी बात सुन रामचन्द्रने अपने भ्राता, विभीषणादि राक्षस, हनूमान् प्रभृति वानर और चतुरङ्ग सेना ले सहस्रस्कन्ध रावणको पराजय करनेके लिये समुद्रपारमें यात्रा की। सीता भी साथमें गईं। पहले सैन्यसे युद्ध हुआ, पीछे सहस्रस्कन्ध स्वयं युद्धस्थलमें पहुंचा और प्रतिद्वन्द्वियोंकी अवज्ञाकर एक वाणसे हस्त्यश्वरथादिके साथ सबको अयोध्यामें फेंक दिया। केवल राम और सीता—यही दोनों रणमें रह गये। रामचन्द्र अज्ञानावस्थामें रथपर पड़े थे। उस समय सीताने असिता अर्थात् कालीमूर्ति रख सहस्रस्कन्धको वध किया। अद्भुत-रामायणमें अद्भुत प्रकारसे रामसीताका जन्म और अन्यान्य विविध अद्भुत विषय वर्णित हैं। यद्यपि लोग इसे वाल्मीकिका बनाया बताते हैं, तथापि इसकी रचना और भाषा देख यह आदिकवि वाल्मीकिका बनाया नहीं माना जा सकता। किसी आधुनिक कविने इसे बनाया है।

अद्भुतमीढुष—ऐक्ष्वाकीके गर्भसे उत्पन्न हुए शूरका नामान्तर। मत्स्यपुराण ४६।१।

अद्भुतरूप (सं० त्रि०) अपूर्व रूपवाला, जिसकी शक्ल अजीब हो।

अद्भुतशान्ति—अथर्ववेदका सड़सठवां परिशिष्ट।

अद्भुतसंकाश (सं० त्रि०) आश्चर्यवत्, अचम्भे-जैसा, तअज्जुबके बराबर।

अद्भुतसार (सं० पु०) १ खदिरसार, एक अनोखी धूप। २ एक पुस्तक जिसमें आश्चर्यके तत्त्वका वर्णन किया गया है।

अद्भुतस्वन (सं० पु०) अद्भुतः स्वनः शब्दोऽस्य, बहुव्री०। १ महादेव, जो अनोखा शब्द करते हैं। कर्मधा०। २ आश्चर्यशब्द, अजीब आवाज़। (त्रि०) अद्भुतः स्वनो नादो यस्य। ३ आश्चर्यशब्दवान्, जिसकी आवाज़ अनोखी हो।

अद्भुतालय (सं० पु०) अद्भुत पदार्थोंका स्थान, वह जगह जहां अनोखी चीज़ें रखी जायें, अजायबख़ाना।

अद्भुतैनस् (वे० त्रि०) निर्दोष, जिसमें कोई दूषण देख न पड़े, बेऐब।

अद्भुतोत्तरकाण्ड (सं० क्ली०) पुस्तक विशेष।
अद्भुतरामायण देखो।

अद्भुतोपम (सं० त्रि०) आश्चर्यवत्, अचम्भे-जैसा, तअज्जुबके मानिन्द।

अद्भुतोपमा (सं० पु०) अलङ्कार-विशेष, जिसमें उपमेयके अनोखे गुण उपमानमें कभी न मिलें। जैसे,—

चन्द्र बीच जो नयनयुग होते चपल नवीन।
उपमा तो तुव वदनकी देते रसिक प्रवीन॥

अद्मन् (वै० क्ली०) १ भोजन, खुराक। २ गृह, मकान, घर।

अद्मान (सं पु०) सर्वान् अत्तोति, अद्-नि-सुट्च्। अदे सुट् च। उण् २।१०४। अग्नि, आतिश, आग।

अद्मर (सं० त्रि०) अद्-क्मरच्। भक्षणशील, भक्षक; खाऊ, पेटू।

अद्मसद् (सं० पु०) १ निमन्त्रणमें उपस्थित व्यक्ति। २ मक्षिका-विशेष, जो भोजन पर बैठा करती है॥ ३ भोजन बनानेमें लगा हुआ व्यक्ति, रसोइया, बबर्ची। ४ माता।

अद्मसद्य (वै० क्ली०) अद्मसदको स्थिति, निमन्त्रणमें उपस्थित अतिथिको दशा।

अद्मसदन् (वै० त्रि०) भोजनमें साथ बैठने योग्य, जो खानेमें शरोक होनेके क़ाबिल हो।

अद्य (सं० अव्य०) इदमोऽश् भावोद्यश्च प्रत्ययोऽह्नि। (इति वामन:) "सद्यःपरुत्परार्यैषमः परेद्यव्यद्यपूर्वेद्युरन्येद्युरन्यतरेद्युरितरेद्युरपरेद्युर धरेद्युरुभयेद्युरुत्तरेद्युः"। पा ५।३।२२। १ आजके दिन। २ अब। ३ अभी। (त्रि०) ४ भोजनयोग्य, खाने क़ाबिल। (क्ली०) ५ भोजन, खुराक। ६ धान्य विशेष।

अद्यतन (सं० त्रि०) अद्य भवः। अद्य ट्यु-तुडागमश्च। सायं चिरं प्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्यु ट्युलौतुट् च। पा ४।३।२३। १ अद्य-भव, अभी हुआ। २ आजके दिनका। ३ नवीन, नया। (पु०) अद्यभावोऽद्यतनः। 'आन्याय्यादुत्थानादान्याय्याच्च संवेशना-दहः। उभयतोऽर्द्धरात्रं वा लोकतः सिद्धम्।' (दुर्गसिंह) ४ काल-विशेष, एक समय, ज़माना। महाभाष्य और कातन्त्रके मतमें, पूर्वरात्रिको पिछली चार घड़ोसे पररात्रिके डेढ़ प्रहरतक, किंवा पूर्वरात्रिके पिछले अर्द्धभागसे पररात्रिके प्रथमार्द्ध पर्यन्त अद्यतन होता है। भर्तृ-हरि और क्रमदोश्वरके मतमें, पूर्वरात्रिके पिछले प्रहरसे पररात्रिके प्रथम प्रहर पर्यन्त अद्यतन काल है। (स्त्री०) अद्यतना।

अद्यतनभूत (सं० पु०) भूतकाल विशेष, वर्तमान दिनमें बीता हुआ काल।

अद्यतनोय (सं० त्रि०) १ आजका। २ जो आजकल जारो हो।

अद्यत्व (सं० क्ली०) अद्य-त्व, अद्य-तद्वृत्तेर्भावः। वर्तमानत्व, मौजूदगी।

अद्यदिन, अद्यदिवस (सं० पु-क्ली०) आजका दिन।

अद्यपूर्वम् (सं० अव्य०) अबसे पहले।

अद्यप्रभृति (सं० अव्य०) १ आजके दिनसे। २ इस समयसे।

अद्यश्वीन (सं० क्ली०) अद्य-श्वस्-ख टिलोपः, अद्य श्वो भवतीति। मरण, मौत।

अद्यश्वीना, अद्यश्विना (सं० स्त्री०) अद्य-श्वस्-ख टिलोपः, अद्य श्वो वा सूते प्रसविष्यते वा। कठोरगर्भा, आसन्नप्रसवा, आजकलमें बच्चा देनेवाली।

अद्यसुत्या (वै० स्त्री०) उसी दिन सोमकी तय्यारी और प्रतिष्ठा।

अद्यापि (सं० अव्य०) १ अब भी, अभीतक। २ आजतक। ३ वर्तमान समयतक। ४ आगे।

अद्यावधि (सं० क्ली०) अद्य अवधिः सीमा यस्य, बहुव्री०। १ आजतकका समय। २ आजसे प्रारम्भ होनेवाला काल।

अद्यु (वै० त्रि०) कुन्द, जो तेज़ न हो।

अद्युत् (वै० त्रि०) चमत्काररहित, जिसमें कोई चमक नहीं।

अद्यूत्य (वै० क्ली०) १ हतभाग्य द्यूत, कमबख़्त जुआ। २ तड़केसे पहलेकी निगहबानी। ३ जुएसे जीतकर न पाई हुई वस्तु, वह चीज़ जो ईमान्दारोसे मिले।

अद्यैव (सं० अव्य०) १ आजहीके दिन, आज ही। २ अभी, इसी समय।

अद्रक (सं० पु०) महानिम्ब वृक्ष।

अद्रव (सं० पु०) न द्रवः, नञ्-तत् अभावार्थे। १ द्रवका अभाव। (त्रि०) नास्ति द्रवो यत्र यस्य वा। २ द्रवशून्य, गाढ़ा, घना।

अद्रव्य (सं० क्ली०) न द्रव्यम्, अप्राशस्त्ये नञ्-तत्। द्रोश्च। पा ४।३।१६१। अप्रशस्त द्रव्य, अयोग्य पात्र।

अद्रा, आर्द्रा देखो।

अद्रि (सं० पु०) अद्-क्रिन्। अदिशदिभूशुभिभ्यः क्रिन्। उण् ४।६५। १ पर्वत, पहाड़। २ प्रस्तर, पत्थर। ३ वृक्ष, दरख़्त। ४ सूर्य, आफ़ताब। ५ मेघ, बादल। ६ परिमाणविशेष। ७ सोम पीसनेका लोढ़ा। ८ वज्र। ९ सातका अङ्क। १० पृथुके एक पौत्र या नाती। इसका सविशेष वृत्तान्त पर्वत शब्दमें देखो।

अद्रिकर्णी (सं० स्त्री०) अद्रिः अद्रिनामिका गिरिवाल-मूषिका तस्याः कर्णः कर्णतुल्यं पुष्पान्तःस्थं पत्रं यस्याः (वाच०), गौरादित्वात् ङीष्। अपराजिता, श्वेता-पराजिता, शोभाञ्जन, विष्णुकर्णी, मूसाकर्णी; वह लता जिसके फूलकी भीतरी पत्ती बालमूषिकाके कान-जैसी देख पड़ती है।

यह बागका मामूली फूल है और समग्र भारतकी झाड़ियोंमें भी पाया जाता है। लोग इसका बीज भारतसे इङ्गलण्ड ले गये थे। यह फूल दुर्गा देवीके पूजनमें प्रधान समझा जाता है। इसकी जड़ गुले-अब्बासकी जड़-जैसी सख़्त दस्तावर होती और पेटकी आंत बढ़ जाने तथा जलोदर होनेसे दूसरी पेशाबावर और दस्तावर चीज़ोंके साथ सेवन करनेको बताई जाता है। जब बच्चोंको बड़े ज़ोरसे खांसी आती, तब इसे वमन करानेको व्यवहार करते हैं। इसकी शराबका भस्म पांचसे दश ग्रेनतक खिलाने पर खासा जुलाब हो जाता है। किन्तु इससे पेटमें ऐंठन बढ़ती और रोगीको कुछ ज्वर चढ़ता और बेचैनी मालूम होती है। पित्तप्रकोपमें यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है। इससे पेशाब और दस्त दोनों खुलके उतरने लगते हैं। इसका बीज अधिकतर उपयोगी प्रमाणित हुआ, और युरोपमें बच्चोंके लिये किसी प्रकारकी हानि न करनेवाला औषध समझा जाता है। बीजका चूर्ण रेचक होता है। पोटाश और अदरकके नमकमें इसे मिला जुलाब लानेको सेवन कराते हैं। पत्तियोंका रस फोड़े-फुन्सीपर लगाया जाता है। बीज शीतल होता और ज़हरको मारता है। जड़ वमन कराने और गठिया दबानेमें काम आती है। बीज अधिक मात्रामें सेवन करानेसे कृमिको नाश करता और साफ़ दस्त लाता है। यह दृष्टिकी निर्बलता, गलेके ज़ख़्म, दस्तकी बीमारी, गिलटी, चमड़ेके रोग और जलोदरमें भी काम आता है। पत्तीका रस हरे अदरकके रसमें मिला अधिक पसीना निकलने और क्षयका ज्वर आनेसे खिलाया जाता है।

अपने फूलोंवाले रङ्गके कारण अपराजिता दो तरहकी होती है—नीले फूलोंवाली और सफ़ेद फूलोंवाली। फिर नीली अपराजिताके फूल कई तरहके देख पड़ते हैं। इन नाना प्रकारकी अप-राजिताओंके बीजमें कोई प्रभेद नहीं। यदि है, तो यह, कि सफ़ेद अपराजिताका बीज अधिक लाभ-दायक होता है। वृक्ष सदा फूला करते हैं। बीज प्रायः बाज़ारमें नहीं बिकता और बिकता भी, तो अपरिपक्क अवस्थामें संग्रह किये जानेके कारण उसमें गुणका अभाव पाया जाता है। जबतक बीज वृक्षमें भली भांति न पक जाये, तबतक उसे कदापि न तोड़ना चाहिये। जिस बीजको ऐसी सावधानतासे संग्रह करते हैं, वह प्रायः गोल या किनारोंपर कुछ दबा रहता, उसका रङ्ग हलका हरा, या भूरा होता, और छोटा-छोटा धब्बा पड़ जाते है। कुछ बीज़ोंके सिरे गोल और कुछके चपटे होते हैं; मानो, किसीने-उनके सिरे चाकूसे उतार दिये हों। खानेसे बीज कटु मालूम पड़ता, अच्छा नहीं लगता, तथा न उसमें किसी प्रकारका गन्ध ही रहता है। जितना ही बीज मोटा और गोल होता, उतना ही अधिक काम करता है। कच्चा बीज चपटा और धुंधले-भूरे रङ्गका होता है। पक्का बीज जुलाब लेनेमें अच्छा गुण दिखाता है। अपराजिताकी ताज़ी जड़ या छाल भारतमें घराऊ औषध है। वृद्धा स्त्रियां बालकोंको पुट्ठे या फेफड़ेकी बीमारी हो जानेसे उसे खिलाती हैं। उसके सेवनसे बालक वमन करते, उनका जी मिचलाता, उनके गले या फेफड़ेसे बलग़म निकलता, उन्हें दस्त आता और उनका रोग कितने ही अंशमें घट जाता है। पुरुष जब उसे पूर्ण मात्रामें खाते, तब उनका पेट मुलायम पड़ जाता और चिनग, थोड़ा पेशाब

उतरना और पेशाबके गर्म रहने-जैसे प्रमेह और पित्तरोगके लक्षणोंको भी वह मिटा देता है। कभी-कभी उससे सोज़ाक बिलकुल अच्छा हो जाता है। दो वर्षके बालकको एक ही छोटी जड़ यथेष्ट होती है, तीन वर्षसे छः वर्षतकके बालकको एक बड़ी जड़ या दो छोटी-छोटी जड़ें देते हैं। पुरुषोंको चारसे छः तक छोटी-छोटी या तीनसे पांच तक मोटी-मोटी जड़ें खिलाना चाहिये। कानमें दर्द और सूजन होनेसे इसकी पत्तीके गर्म अर्कमें नमक डालके कानकी चारो ओर लगाते हैं। नीली अपराजिताकी जड़ सांप काटनेसे ज़हरमोहरेका काम देती है।

अद्रिका (सं० स्त्री०) १ धान्यक, धनिया। २ महानिम्ब।

अद्रिकीला (सं० स्त्री०) अद्रयः कुलाचलाः कीलाः शङ्कव इव यस्याः, बहुव्री०। १ भूमि, पृथिवी, ज़मीन। (पु०) अद्रेः सुमेरोः कील इव वा। २ विकुम्भ पर्वत।

अद्रिकृतस्थली (सं० स्त्री०) अप्सरा विशेष, एक परीका नाम।

अद्रिच्छिद् (सं० पु०) वज्र, जो पर्वतको छेद डाले।

अद्रिज (सं० क्ली०) अद्रौ पव जायते, जन-ड। १ शिलाजतु। २ तुम्बुरु वृक्ष। ३ गेरू। (त्रि०) ४ पर्वतसे उत्पन्न, पहाड़से पैदा।

अद्रिजतु (सं० क्ली०) शिलाजतु।

अद्रिजा (सं० स्त्री०) १ गिरिराजकन्या, पार्वती। २ गङ्गा। ३ सैंहली वृक्ष। (पु०) ४ पर्वतजात दावानल, पहाड़से पैदा हुई आग। ५ सूर्यजात हंस। ६ रूप, शक्ल। ७ आत्मा, रूह।

अद्रिजूत (वै० त्रि०) पत्थरकी रगड़से पैदा हुआ।

अद्रितनया (सं० स्त्री०) अद्रेस्तनया, ६-तत्। १ पार्वती। २ भागीरथी, गङ्गा। ३ तेईस वर्णका छन्द।

अद्रिदुग्ध (वै० पु०) अद्रिभिर्ग्रावभिर्दुग्धः अभिषुतः, ३-तत्। सोम।

अद्रिद्रोणि (सं० त्रि०) अद्रेर्द्रोणिरिव। पर्वत-सम्भव नदी, पहाड़से निकला दरया।

अद्रिद्विष् (सं० पु०) अद्रिभ्यः द्वेष्टि, द्विष-क्विप्। सत्सूद्विष् इत्यादि। पा ३।२।६१। इन्द्र, पर्वतके शत्रु।

अद्रिनन्दिनी (सं० स्त्री०) पर्वतकी कन्या, पार्वती।

अद्रिपति (सं० पु०) अद्रीणां पतिः, ६-तत्। पर्वतोंका पति, हिमालय।

अद्रिबर्हस् (वै० त्रि०) अद्रेर्बर्ह इव बर्होऽस्य। १ पर्वत-जैसा उच्च, पहाड़की बराबर ऊंचा। २ अतिकठिन, निहायत सख्त।

अद्रिबुध्न (वै० त्रि०) अद्रेर्बुध्न इव बुध्नोऽस्य। १ अतिकठिन, निहायत सख्त। २ पर्वतसे उत्पन्न, जो पहाड़में पैदा हुआ हो।

अद्रिभिद् (वै० पु०) अद्रिं भिनत्ति, भिद्-क्विप्। १ इन्द्र, जो पर्वतोंको अपने वज्रसे छेद डालते हैं। (त्रि०) २ पर्वतोंको छेदनेवाला।

अद्रिभू (सं० स्त्री०) अद्रौ भवतीति, भू-क्विप्; ७-तत्। अपराजितालता। अद्रिकर्णी देखो। २ पार्वती। (त्रि०) ३ पहाड़ी, जो पर्वतपर उत्पन्न हुआ हो।

अद्रिमातृ (सं० पु०) अद्रिर्मेघस्तज्जलं मिमीते, मा-तृच्। १ मेघजल-निर्माता, बादलमें पानी पैदा करनेवाला। (त्रि०) २ जिसकी माता पर्वत हो।

अद्रिमाष (सं० पु०) पहाड़ी उड़द।

अद्रिमूर्द्धन् (सं० पु०) पर्वतशिखर, पहाड़की चोटी।

अद्रिराज (सं० पु०) अद्रीणां राजा, टच् स०। हिमालय, जो सब पर्वतोंका राजा है।

अद्रिवत् (वै० पु०) पर्वत या वज्र-जैसा सुसज्जित योद्धा।

अद्रिवह्नि (सं० पु०) पहाड़ी आग।

अद्रिशय्य (सं० पु०) महादेव, जो पर्वतपर शयन करते हैं।

अद्रिशृङ्ग (सं० क्ली०) पर्वतशिखर, पहाड़की चोटी।

अद्रिषुत (वै० पु०) अद्रिभिः ग्रावभिः सुतः अभिषुतः षत्वम्, ३-तत्। सोम।

अद्रिसंहत (सं० पु०) अद्रिभिः ग्रावभिः संहतः अभिषुतः, ३-तत्। १ सोम। (त्रि०) अद्रिरिव संहतं कठिनम्। २ अतिकठिन, निहायत कड़ा, पत्थर-जैसा।

अद्रिसानु (वै० त्रि०) पर्वतपर लड़खड़ानेवाला, जो पहाड़पर घिसलता रहे।

अद्रिसानुजा (सं० स्त्री०) त्रायमाणा, एक प्रकारका अङ्गूर।

अद्रिसार (सं० पु०) अद्रेः सार इव। १ लौह, लोहा। २ शिलाजतु, शिलाजीत। (त्रि०) अद्रेरिव सारोऽस्य, बहुव्री०। ३ अतिकठिन, निहायत सख़्त।

अद्रिसारमय (सं० त्रि०) १ अद्रिसारात्मक, लोहेका। २ अत्यन्तकठिन, निहायत सख़्त।

अद्रीन्द्र, अद्रीश (सं० पु०) अद्रीणां इन्द्रः वा ईशः प्रधानः, ६-तत्। १ हिमालय। २ शिव।

अद्रुह् (वै० त्रि०) १ ईर्षा या छलसे रहित, जो हसद या बुग़ज़से बरी हो। २ सच्चा।

अद्रुह्वन् (सं० त्रि०) न-द्रुह्-क्वनिप्, नञ्-तत्। अद्रोहकारक, जो द्रोह न करे।

अद्रेष्क (सं० त्रि०) निम्बविशेष, एक प्रकारकी नीम, जिसे बकाइन कहते हैं। (स्त्री०) अद्रेष्का।

इस वृक्षका वैज्ञानिक नाम Mealia Azedarach है। यह कोई ४० फुट ऊंचा होता और इसका तना छोटा और शिखर चौड़ा रहता है। भारतमें प्रायः इसकी खेती होती, किन्तु निम्न हिमालय-प्रदेशमें यह जङ्गली तौरपर भी पाया जाता है। सम्भवतः मुसलमानोंने इसे विदेशसे लाकर पहले दाक्षिणात्यमें लगाया था।

इस वृक्षसे गोंद भी निकलता है, किन्तु किसी काम नहीं आता। इसकी पत्ती चमकीला-हरा रङ्ग चढ़ानेको अच्छी है, जिसे लोग भारतमें व्यवहार नहीं करते। इसके बीजका तेल नीमके तेल-जैसा निकलता, किन्तु न तो उसे कोई जानता और न उससे कोई काम ही लेता है।

आयुर्वेदमें नीमके आगे बकाइनको बात कोई नहीं पूछता। किन्तु अरब और ईरानके अधिवासी इसे बहुत दिनसे औषधरूपमें व्यवहार कर रहे थे, जिसका गुण उन्होंने आकर भारतवासियोंको बताया। इसके मूलकी त्वक्, फल, फूल और पत्ता सूखा और गर्म होता और पाचनशक्ति रखता है। फूल और पत्तेका पुलटिस बांधनेसे शिरःपीड़ा छूट जाती है। इसके पत्तेका रस निकालकर पीनेसे पेटके कीड़े मर जाते, पेशाब खुलकर उतरता, दस्त साफ़ आता और बादीकी सूजन मिटती है। अमेरिकामें इसके पत्तेका काढ़ा वायुगोलेपर दिया और पुष्टिकर समझा जाता है। कुष्ठ और गण्डमालामें इसका पत्ता और बकला खाते और लगाते भी हैं, फूलोंका पुलटिस चर्मरोगपर बहुत लाभदायक होता है। फलमें विष रहता है; किन्तु लोग उसे कुष्ठ और गण्डमालापर व्यवहार करते और छुआ-छूत दूर रखनेको उसका हार गलेमें पहनते हैं। पञ्जाबमें बीज गठियेपर दिया जाता है, कांगड़ेमें ख़ूबानीके साथ उसे कूट इसी रोगपर ऊपरसे लगाते हैं। बम्बईमें महामारी बढ़ते समय बकाइनका बीज डोरेमें पिरोकर दरवाज़ोंपर बीमारी दूर रखनेको लोग लटका देते हैं। इस वृक्षमें ताड़ी भी होती है। तिल्ली बढ जानेपर इसका गोंद औषधरूपसे काम आता है। अमेरिकामें चुन्ने पड़ जानेसे शराबमें भिगोया हुआ इसका फल खिलाया जाता और शिरका गञ्जापन दूर करनेको गोंद व्यवहृत होता है। किन्तु इसमें विष होनेके कारण इसे अधिक मात्रामें न खाये, ऐसा करनेसे कई लोग मर गये हैं। इसका फल भेड़-बकरे ख़ूब खाते हैं।

इसकी ऊपरी लकड़ी पीली-सफ़ेद और भीतरी नर्म-लाल होती है, तख़्ते बड़ी ही सुविधासे चीर लिये जाते हैं। बङ्गालमें नीमकी तरह इसे प्रतिमा बनानेमें व्यवहार करते और दूसरा सामान भी इससे बनाते हैं। इसकी गुठलीसे भारतमें लोग माला पिरोते हैं। भारतकी तरह अमेरिकामें भी इसका पत्र और फल कीड़ोंका आक्रमण रोकनेके काम आता है।

अद्रोघ (वै० त्रि०) द्रुह्-घञ्-घत्वम्, नास्ति द्रोघो यस्य। १ द्रोहरहित, जिसे डाह न हो। (पु०) न द्रोघः, अभावार्थे नञ्-तत्। २ द्रोहका अभाव, डाहका न होना।

अद्रोघवाक् (वै० त्रि०) ईर्षारहित बात कहनेवाला, जिसकी बातमें डाह न हो।

अद्रोघावित (वै० त्रि०) अद्रोघः अवितो रक्षित येन। अद्रोहरक्षक, हसद या डाहसे दूर रहनेवाला।

अद्रोह (सं० पु०) न द्रोहः, अभावार्थे नञ्-तत्। द्रोहका अभाव, डाहका न होना।

अद्रोहवृत्ति (सं० स्त्री०) वह वृत्ति या स्वभाव, जिसमें द्रोह न रहे: तबीअत जो हसदसे बरी हो।

अद्रोहिन् (सं० त्रि०) द्रोहसे दूर, जो हसद न करे।

अद्वय (सं० क्ली०) न द्वयम्। द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा। पा ५।२।४३। १ दोका अभाव, एकताई। २ ब्रह्मका एकाकी भाव। ३ अन्तिम सत्य। (पु०) ४ बुद्धका एक नाम। (त्रि०) ५ दो नहीं, एक, अकेला, तनहा।

अद्वयवादिन्, अद्वैतवादिन् (सं० पु०) अद्वय-वद्-णिनि; सर्वं खल्विदं ब्रह्म इति वदति। १ वैदान्तिक, अद्वैतवादी। २ बुद्ध।

अद्वयत्, अद्वयस् (वै० त्रि०) न-द्वि असिच्. नास्ति द्वयं यस्य। नित्यमसिच् प्रजामेधयोः। पा ५।४।१२२। नित्यग्रहणादन्यत्रापि भवतीति सूच्यते। (इति वामनः) द्वयरहित, जिसमें दो न हों।

अद्वयानन्द (सं० पु०) अद्वयात् लब्धः आनन्दः। ब्रह्मानन्द, ब्रह्मज्ञानोदित आनन्द, वह आराम जो परमेश्वरको पहंचाननेसे मिलता है। २ आत्मबोध-टीकाकार। (त्रि०) ३ ब्रह्मानन्दविशिष्ट, जिसे परमेश्वरका आनन्द मिला हो।

अद्वयानन्दनाथ—कृष्णके पुत्र, कालरात्र-पद्धति-रचयिता।

अद्वयारण्य—एक वेदान्तिक, योगवाशिष्ठरामायणटोका और प्रमाणमञ्जरीव्याख्या-रचयिता।

अद्वयाविन् (वै० त्रि०) देवपितृयानरूप मार्गद्वयसे रहित।

अद्वयु (वै० त्रि०) न द्वयं द्विप्रकारो ऽस्त्यस्य बाहुलकात् उ, बहुव्री०। द्विप्रकार कपटता-शून्य, भीतर और बाहर एकभावयुक्त।

अद्वार (सं० क्ली०) न द्वारम्, निन्दार्थे नञ्-तत्। १ गुप्तद्वार, प्रवेशके अयोग्य द्वार। २ वह स्थान जहां द्वार न हो, बेदरवाज़ेकी जगह। (त्रि०) नास्ति द्वारं यस्य, बहुव्री०। ३ द्वारशून्य, बेदरवाज़ा। ४ दुष्प्रवेश, घुसनेके नाक़ाबिल। ५ अनुपाय, जिसे किसी तरहकी न सूझे। मनुसंहितामें लिखा है,—

"अद्वारेण च नातीयाद् ग्रामं वा वेश्म वावृतम्।
रात्रौ च वृक्षमूलानि दूरतः परिवर्जयेत्॥" ४।७३।

'प्राचीरादिवेष्टित ग्राम किंवा गृहमें प्राचीरको उल्लङ्घनकर प्रवेश करना न चाहिये। रातके समय वृक्षके मूलकी वासको दूरसे हो परित्याग करे।' कुल्लूकभट्टने इसकी यों टीका की है,—

'प्राचीराद्यावृतं ग्रामं गृहञ्च द्वारव्यतिरिक्तप्रदेशेन प्राकारादि लङ्घनं कृत्वा न विशेत्।'

अद्विज (सं० त्रि०) ब्राह्मण नहीं, जो ब्राह्मण न हो।

अद्वितीय (सं० त्रि०) द्विधा इतं भेदं गतं द्वीतं तस्य भावः द्वैतं तन्नास्ति यस्य, बहुव्री०। द्वेस्तीयः पा ५।२।५४। १ स्वजातिके द्वितीयसे रहित. अपनी जातिमें बेजोड़। २ केवल, ख़ास। ३ अतुल्य, लासानी।

अद्विषेण्य (वै० त्रि०) न द्वेष्टुं शीलमस्य, द्विष-एण्यन् किच्च; नञ्-तत्। प्रियरूप, प्रियरस, अद्वेष्य-रस; जो घृणा करने योग्य न हो, जिससे वैर रखना उचित नहीं।

अद्वेष (सं० पु०) न द्वेषः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ द्वेषाभाव, हसदका न रहना। (त्रि०) नास्ति द्वेषोऽस्य, बहुव्री०। २ द्वेषशून्य, द्वेषरहित; हसद न रखनेवाला, दिलका सच्चा।

अद्वेषरागिन् (सं० त्रि०) द्वेषसे दूर रहनेवाला, जो हसद न रखे।

अद्वेषस् (वै० त्रि०) न-द्विष-असुन्, नञ्-तत्। अद्वेष, द्वेषहीन, जिसे डाह न रहे।

अद्वेषिन् (सं० त्रि०) द्वेषरहित, हसदसे ख़ाली।

अद्वेष्टृ (सं० पु०) जो शत्रु न हो, मित्र; दोस्त।

अद्वैत (सं० क्ली०) द्विधा इतं द्वीतं तस्य भावः द्वैतं भेदः; न द्वैतम्, अभावार्थे नञ्-तत्। १ अभेद, एकताई। २ ब्रह्म और जीवको अभिन्नता। ३ अन्तिम सत्य, आख़िरी सचाई। ४ एक उपनिषत्का नाम। (त्रि०) नास्ति द्वैतं भेदो यत्र, बहुव्री०। ५ भेदरहित, द्वितीयरहित, एक, ब्रह्म; दोसे ख़ाली, जिसका कोई जोड़ न हो।

(पु०) ६ अद्वैतप्रभु नामक एक गौराङ्गभक्त आचार्य।

यह शान्तिपुरमें रहते थे। इनका जन्म वारेन्द्रब्राह्मण कुलमें हुआ था। अद्वैत प्रभुने दारपरिग्रह किया था, इनके औरससे आठ सन्तान हुए। यह पहलेसे ही विलक्षण कृष्णभक्त थे, भागवतादि पुस्तक पढ़नेमें इनका मन खूब लगता था। गौराङ्गके जन्म होनेसे पहले यह सर्वदा ही कहा करते थे,—नवद्वीपमें जो (अर्थात् गौराङ्ग) जन्मग्रहण करेंगे, मैं उनका अनुचर बनूंगा। पीछे गौराङ्गने जब सन्न्यासाश्रमको अवलम्बन किया, तब अद्वैत प्रभु भी संसारको परित्यागकर उनके अनुचर बन गये।

वैष्णवोंके मतसे तीन प्रभु होते हैं,—१ श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु, २ श्रीश्री अद्वैत प्रभु और ३ श्रीश्री चैतन्य महाप्रभु। गौराङ्ग और अद्वैत एकप्राण और एक आत्मा थे। संसाराश्रमको त्याग करनेपर श्रीचैतन्य सर्वदा ही अद्वैत-प्रभुको साधुचूड़ामणि कहकर आदर किया करते थे।

गौराङ्गका जन्म १७०७ शकमें हुआ था। अद्वैत प्रभु उनकी अपेक्षा वयोज्येष्ठ थे। इसलिये यदि इन्हें ३० वर्ष बड़ा कहें, तो यह मानना पड़ेगा, कि इनका जन्म १३७७ शकमें हुआ था। वैष्णवोंका पर्वदिन देख निश्चित होता है, कि यह माघ मासकी शुक्ला सप्तमीको आविर्भूत हुए थे। उस समय मुसलमान राजाओंका अत्यन्त प्रादुर्भाव था, हिन्दुओंका आचार-व्यवहार भी इसलाम-जैसा हो गया था। अद्वैत प्रभुके आठ सन्तानमें सात जन यथेच्छाचारी थे; केवल अच्युत परम वैष्णव रहे, वह सिवा विष्णु-भक्तिके और कुछ जानते न थे। यही कारण है, कि अद्वैतप्रभु उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

अद्वैत, गौराङ्ग प्रभृति वैष्णव जब कृष्णप्रेमसुधा चारो ओर बरसाते घूमते थे, तब खड़दहके नित्यानन्द प्रभु भी जाकर इनके दलमें मिल गये।

तीनो प्रभुके अप्रकट होने बाद नवद्वीपके वैष्णवोंने इन तीनो जनोंकी दारुमय तीन मूर्तियां स्थापन कीं। आज भी बारी-बारी उन सकल मूर्तियोंकी सेवा हुआ करती है। शान्तिपुरवाले उड़िगोस्वामीके सिवा दूसरे प्रायः सभी गोस्वामी अद्वैत प्रभुके सन्तान हैं। इस वंशमें अनेक सुपण्डित व्यक्तियोंने जन्मग्रहण किया है। शान्तिपुरमें अद्वैतकी प्रतिष्ठित की हुई एक कृष्णमूर्ति वर्तमान है, जिसे मदनगोपाल कहते हैं। आज भी मदनगोपालके रासमें विलक्षण आनन्द हुआ करता है।

अद्वैतवाद (सं० पु०) ब्रह्मसे सकल जगत्के उत्पन्न होनेका मत, जिसमें संसार असार माना गया है।

अद्वैतवादिन् (सं० त्रि०) अद्वैतं अभेदं वदतीति, वद्-णिनि। ब्रह्मवादी, एकात्मवादी।

अद्वैतसिद्धि (सं० पु०) अद्वैतस्य विश्वस्य ब्रह्माभेदस्य सिद्धिर्यत्र। १ अद्वैतसिद्धि नामक वेदान्त प्रकरण विशेष। (स्त्री०) २ अद्वैत विषयकी सिद्धि।

अद्वैतानन्द—भूमानन्द सरस्वतीके शिष्य। यह शङ्कराचार्य-विरचित ब्रह्मविद्याभरण नामक ग्रन्थके टीकाकार थे।

अद्वैतोपनिषत्—आत्मतत्त्व-विषयक एक उपनिषत्। इसमें जीवात्मा और परमात्माका अभेद विषय लिखित है।

अध (वै० अव्य०) १ अब, सम्प्रति। २ सुतरां, अतएव, इसलिये। ३ अलावा, सिवा। ४ कुछ-कुछ। ५ और। ६ अनन्तर, पीछे। ७ आगे, पहले।

अधअध (सं० अव्य०) १ और। २ कुछ-कुछ।

अधंतरी (हिं० स्त्री०) एकतरहकी कसरत, जो मालखम्भपर की जाती है।

अधः, अधस् देखो।

अधःकर (सं० पु०) हाथके नीचेका भाग।

अधःकरण (सं० क्लो०) अप्राधान्य बनानेका काम, न्यूनकरण।

अधःकाय (सं० पु०) अधः अधरं कायस्य, एकदेशिसमासः। नाभिका अधःप्रदेश, कमरसे नीचेका शरीर।

अधःकार (सं० पु०) न्यून करनेका काम, तिरस्कार, अधरीकरण।

अधःकुन्तल (सं० पु०) नीचेके बाल।

अधःकृत (सं० त्रि०) नीचे रखा गया, डाला गया।

अधःकृष्णाजिनम् (सं० अव्य०) काले चमड़ेके नीचे।

अधःक्षिप्त (सं० त्रि०) अधोमुखेन क्षिप्तम्, क्षिप-क्त; शाक०-तत्। नीचे लटका हुआ, नीचे पड़ा हुआ।

अधःखनन (सं० क्लो०) सुरङ्ग, नीचेका खोदना।

अधःपतन (सं० क्लो०) १ अधोगति, नीचेका गिरना। २ अवनति, तनज्जुली। ३ दुर्दशा, परेशानी।

अधःपद्म (सं० क्लो०) गुम्बदका कमल-जैसा हिस्सा। (वास्तुशास्त्र)

अधःपात (सं० क्लो०) अधोगति, दुर्दशा; तनज्जुली, ज़वाल।

अधःपातन (सं० क्लो०) पारेको यन्त्रमार्गसे नीचेका गिराना। यथा,—

"नवनीताह्वयगन्धकं सूतञ्च समभागं गृहीत्वा जम्बीररसेन मर्दयित्वा, शुकशिम्बीमूलं शिग्रुमूलापामार्गश्वेतसर्षपसैन्धवकल्केन समभागेन संमिश्र यन्त्रस्योर्ध्वभाण्डाभ्यन्तरतले कल्कमिश्रितं तं सूतं लेपयेत्। अथ जलयुक्तमधोभाण्डं भुवि पूरयित्वा तस्य मुखे रसयुक्तं भाण्डमधोमुखं संस्थाप्य च द्वयोः सन्धिमुखं लेपयेत्। अथ उपदिष्टात् पुटे दत्ते पारदो जले पतति। इत्यधःपातनम्।" (र० सा० सं०)

अधःपुट (सं० पु०) चारोली वृक्ष।

अधःपुष्पी (सं० स्त्री०) अधोमुखं पुष्पं यस्याः, बहुव्री०। १ गोजिह्वा, गोभी। २ अमरपुष्पिका, सौंफ।

अधःप्रवाह (सं० पु०) नीचेकी ओर बहनेवाली धारा।

अधःप्रस्तर (सं० पु०) तृण-निर्मित आसन, जिसपर अशौचवाले बैठते हैं, तृणासन।

अधःप्राणशायिन् (सं० त्रि०) पूर्वकी ओर भूमिपर सोनेवाला।

अधःशय (सं० त्रि०) ज़मीनपर सोनेवाला।

अधःशयन (सं० क्लो०) भूमिपर शयन, ज़मीनका सोना।

अधःशय्या (सं० स्त्री०) अधोवर्त्तिनी भूमौ निहिता शय्या। खट्वादि-वर्जित शय्या, भूमिशय्या।

अधःशल्य (सं० पु०) अपामार्गक्षुप, लटजीरा, Achyranthes aspera. यह झाड़ी तीन-चार फ़ुट ऊंची होती और भारतमें तीन हज़ार फ़ुट ऊंचेपर सब जगह मिलती है। बाग़में इससे बड़ी अड़चन पड़ जाती है। इसकी शाखा सीधी रहती है, जिसमें धागे-जैसी धारियां होती हैं। पत्ती अण्डे-जैसी चपटी और नोकदार, आधारमें त्रिकोणाकार, छोटे डण्ठलवाली और बालदार रहती है। वृक्षका भस्म रंगनेके काम आता है। यह सम्पूर्ण वृक्ष पेशाबावर और बलवर्द्धक है। बल बढ़ानेके विषयमें तो कुछ निश्चय नहीं, किन्तु पेशाबमें खून गिरने और संग्रहणीपर भारतीय वैद्य इसे सफलतापूर्वक व्यवहार करते हैं। इस वृक्षका काढ़ा रेचक होता और रक्तस्रावको लाभ पहुंचाता है: इसे दूसरे औषधोंके साथ मिला जलोदर और शोथपर भी प्रयोग करते हैं। यह रेचक और कटु है और जलोदर, बवासीर, फोड़े और चर्मशोथके रोगीको लाभ पहुंचाता है। इसके बीज और पत्र वमनोत्पादक होते और कोई ज़हरीली चीज़ खा जाने और सांप काटनेपर उपकार दिखाते हैं। पेटमें दर्द होनेसे बच्चोंको इस वृक्षका भस्म दिया जाता और सोज़ाकमें बलवृद्धिके काम आता है। इसकी फूली हुई डाल घरमें रखनेसे बिच्छू भागते हैं। किसी ज़हरीले कीड़ेके काटनेपर इसका लेप भी चढ़ता है। इसके भस्मसे पोटाश—एक प्रकारका क्षार खूब निकलता, जिससे यह रङ्ग और दवा दोनोमें लग सकता है। हड़तालके साथ मिलाकर इसे नासूर और फोड़ेपर लगाते हैं। तिलके तेलमें इसका भस्म डालकर कर्णवेदना होनेपर कानमें छोड़ा जाता है। पश्चिम-भारतमें इसका रस दांतमें दर्द होनेसे डालते और कासश्वासमें इसकी सूखी पत्ती चिलमपर रखकर पीते हैं। कहते हैं, कि इसके बीजकी खीर खानेसे भूख मर जाती है।

अधःशाख (सं० पु०) संसाराश्वत्थवृक्ष।

अधःशिरस् (सं० त्रि०) १ नीचेको शिर झुकाये हुए। २ नरक-विशेष, एक नरकका नाम।

अधःशेखर (सं० पु०) श्वेत अपामार्ग, सफ़ेद लटजीरा।

अधःस्थ (सं० त्रि०) नीचे रखा हुआ, छोटा, हकीर।

अधःस्थित (सं० त्रि०) नीचे खड़ा हुआ, नीचे जमा हुआ।

अधःस्वस्तिक (सं० क्ली०) नीचेका स्वस्तिक।

अधकचरा (हिं० वि०) १ अपूर्ण, अधूरा। २ अपटु, जो किसी काममें कुशल या दक्ष न हो। ३ जो पूर्ण रीतिसे कूटा या पीसा न गया हो, दरदरा।

अधकच्छा (हिं० पु०) अर्द्धकच्छ, नदीके तटका स्थान, जो ढालू होकर नदीतलसे मिल जाये।

अधकछार (हिं० पु०) अर्द्धकच्छ, पर्वताञ्चलकी उर्वरा भूमि, पहाड़की ढालू और ज़रखेज़ ज़मीन।

अधकपारी (हिं० स्त्री०) अर्द्धशिरकी वह वेदना जो सूर्योदयसे मध्याह्नतक घटती और सन्ध्याको शान्त हो जाती है। इसे आधाशीसी और सूर्यावर्त भी कहते हैं।

अधकरी (हिं० स्त्री०) अर्द्धकर, आधी किस्त, आधा महसूल। यह नियत समयपर दे-दी जाती है।

अधखिला (हिं० वि०) अर्द्धमुकुलित, नीम-शिगुफ़्ता। जो फूल पूरी तौरसे नहीं खिलता, किन्तु उसकी कुछ पखड़ियां छिटक पड़तीं, उसे अधखिला कहते हैं। (स्त्री०) अधखिली।

अधखुला (हिं० वि०) आधा बन्द और आधा खुला, जो पूरे तौरसे खुला न हो। (स्त्री०) अधखुली।

अधगति, (हिं०) अधोगति देखो।

अधगो (सं० पु०) निम्नेन्द्रिय, नीचेकी इन्द्रिय।

अधगोरा (हिं० पु०) युरेशिअन, जो विशुद्ध युरोपीय न हो, वह युरोपीय जिसकी माता एशिआई और पिता युरोपीय, या माता युरोपीय और पिता एशिआई हो।

अधगोहुआं, अधगेहुआं (हिं० पु०) वह गेहूं जिसमें आधा यव मिला हो, गोजई।

अधघट (हिं० वि०) अर्द्ध-घटित, आधा घटने और आधा न घटनेवाला, नीममानी, जिसका अर्थ पूर्ण रीतिसे प्रकट न हो।

अधघर (हिं० पु०) आधा घर, अर्द्धभवन, नीम मकान। हिन्दीमें कहावत है,—

आधेमें अधघर साझेमें सबघर।

अधचरा (हिं० वि०) आधा चरा हुआ, जिसे आधा पशु खा गये हों।

अधजर (हिं० वि०) आधा जला हुआ, पूर्ण रीतिसे दग्ध नहीं।

अधड़ी (हिं० स्त्री०) १ आधारविहीन, निराधार, बेबुनिआद, जिसकी कोई जड़ न हो। २ आदि-अन्त-रहित, जिसका कोई शिर-पैर न हो।

अधन (सं० त्रि०) नास्ति धनं यस्य, बहुव्रो०। धनहीन, दरिद्र, ग़रीब।

अधन्ना (हिं० पु०) दो पैसेवाला पैसा, जो आध आनेके बराबर होता है, डबल पैसा।

अधन्य (सं० वि०) १ जिसके पास धान्य विशेष रूपसे प्रस्तुत न हो, अनाजसे ख़ाली। २ समृद्धिहीन, जो खुश-खुरम न हो। ३ हतभाग्य, कमबख़्त।

अधप (सं० पु०) अर्द्धतृप्त सिंह, नीम-आसूदा शेर, सिंह जो भूखा हो।

अधपई (हिं० स्त्री०) तौलनेका एक बांट, जो दो छटांक होता है।

अधप्रिय, अधप्री (वै० त्रि०) उस समय प्रसन्न, तब खुश।

अधकर (हिं० पु०) अन्तरिक्ष, पृथ्वी और आकाशके बीचका स्थान।

अधबर (हिं० पु०) १ अर्द्धपथ, नीम रास्ता, आधी राह। २ मध्यभाग, बीच।

अधबांच (हिं० पु०) चमारोंको चमड़ेका मोट बनानेके लिये फ़सलपर दी जानेवाली मजदूरी।

अधबुध (हिं० पु०) अर्द्ध-विद्वान्, नीमआलिम, पूरा ज्ञान न रखनेवाला व्यक्ति।

अधबैस् (हिं० वि०) मध्यमावस्थासम्पन्न, नीम-जवान्, आधी उम्रवाली, जिसकी जवानी ढल गई हो, अधेड़। (पु०) अधबैसा।

अधम (सं० त्रि०) अव-अम, वस्य धः। अवद्यावमाधमावरेफाः कुत्सिते। उण् ५।५४। १ कुत्सित, खोटा। २ पापी, अपकृष्ट। ३ हीन, न्यून; बुरा खराब। (पु०) ४ उपपति विशेष। इसका लक्षण रसमञ्जरी-में यों लिखा गया है,—जो पति भय, दया और लज्जासे शून्य हो कामक्रीड़ाके सम्बन्धमें कर्तव्या-कर्तव्य विवेकको न समझे, उसे अधम नायक कहते

हैं। ५ अम्लवेतस्, तुर्शह, चूक। यह वृक्ष छःसे बारह इञ्चतक ऊंचा होता और साल भरमें एक बार फूलता है, जिसकी डालियोंमें विभिन्न रङ्गके फूल लगते हैं। इसके उत्पन्न होनेका स्थान पश्चिम-पञ्जाब, लवणपर्वत और सिन्धु नदके पारवाली पहाड़ियां हैं। भारतके दूसरे स्थानोंमें या तो इसकी खेती की जाती या यह बागोंमें बचावकी भांति लगाया जाता है। भारतीय वैद्य इसके रसको शीतल, रेचक और कुछ-कुछ पेशाब लानेवाला समझते हैं। यह दांतका दर्द दूर करनेके काम आता और तिक्त होनेके कारण वमनको रोकनेवाला खयाल किया जाता है। पाकस्थलीकी ज्वाला मिटाने और क्षुधा बढ़ानेपर इसका सर्वाङ्ग खिलाया करते हैं। किसी ज़हरीले कीड़ेके काटनेपर वेदना दूर करनेको इसकी पत्तीका पुलटिस बहुत लाभदायक है। बीजमें भी उपरोक्त सब गुण होते हैं, जो संग्रहणीपर भूनकर प्रयोग किया जाता है। तरकारीके लिये भारतमें प्रायः सब जगह इसकी खेती होती है और लोग इसे कच्चा-पक्का खाते रहते हैं। यह कूपोंके समीप क्यारिओंमें लगाया जाता और साल भर बराबर मिल सकता है।

अधमई (हिं० स्त्री०) अपकृष्टता, न्यूनता; बुराई, खोटाई।

अधमता (सं० स्त्री०) अधमई देखो।

अधमभृत, अधमभृतक (सं० पु०) नीचदास, अधमभृत्य; कमीना नौकर, दरबान।

अधमरति (सं० स्त्री०) प्रयोजनकी प्रीति, मतलबकी दोस्ती; वह रति जो कार्यवश की जाये, जैसे—वेश्या धनके कारण प्रेम दिखाया करती है।

अधमरा (हिं० वि०) १ अर्धमृत, नीम मुर्दा। २ मृतप्राय, मरा जैसा।

अधमर्ण (सं० त्रि०) अधम-ऋणम्; ऋणमवश्यं देयं तत् अधमं शोध्यं यस्य, बहुव्री०। ऋणशोधक, ऋणी, कर्ज़दार।

अधमर्णिक, अधमर्ण देखो। (स्त्री०) ङीप्—अधमर्णिकी।

अधमशाख (सं० पु०) प्रदेश विशेष, एक मुल्कका नाम।

अधमा (सं० स्त्री०) स्त्रियादिके अन्तर्गत नायिकाविशेष। अधमा नायिका अकारण पतिपर कोप करती, इसीसे इसका दूसरा नाम चण्डी पड़ा है। यह हितकर प्रियतमके प्रति अहित किया करती है। इसके समस्त कार्य अपकृष्ट होते हैं। (रसमञ्जरी)

अधमाई (हिं०) अधमई देखो।

अधमाङ्ग (सं० क्ली०) अधमं निकृष्टं अङ्गम्, कर्मधा०। सबसे नीचा अङ्ग; चरण, पैर।

अधमाचार (सं० त्रि०) कुत्सित आचरणवाला, बदचलन; जिसका चालचलन खराब हो।

अधमा-दूती (सं० स्त्री०) नीच दूती, वह कुटनी जो भली भांति अपने कर्तव्यको पालन न कर नायकनायिकाको बुरे तौरसे संदेशा देती है।

अधमाधम (सं० त्रि०) अपकृष्टसे अपकृष्ट, बुरेसे बुरा।

अधमा-नायिका (सं० स्त्री०) अधमा देखो।

अधमार्द्ध (सं० क्ली०) अधमं अर्द्धम्, कर्मधा०। नायिकाका अधोभाग।

अधमार्द्ध्य (सं० त्रि०) शरीरके अधोभागसे सम्बन्ध रखनेवाला।

अधमुआ, अधमरा देखो।

अधमुख (हिं० वि०) अधोमुख, शिर नीचेको झुकाये हुए, औंधा, मुंहभरा।

अधर (सं० पु०) न ध्रियते, धृङ्-अप् धारणे; नञ्-तत्। ऋदोरप्। पा ३।३।५७। १ ओष्ठ, होंठ। २ नीचेका ओष्ठ या होंठ। कवि प्रबाल और बिम्बके साथ अधरकी उपमा देते हैं। किसीके मतमें अधरसे ऊपरका होंठ समझा जाता और कोई इसे नीचेके होंठका द्योतक बताता है। वस्तुतः अधर कहनेसे नीचे-ऊपर दोनो स्थानका होंठ विदित होता है। अमरकी टीकामें महेश्वरने भी लिखा है, कि जो अधर शब्दको निम्न ओष्ठका ही बोधक समझते हैं, उनकी बात युक्तिसङ्गत नहीं,—

केचिदुपरिवर्त्योष्ठः अधोवर्त्यधर इति मन्यते तदयुक्तम्।

किन्तु कामशास्त्रमें अन्यरूप प्रयोग देख पड़ता है,—

"स्तनयोर्गण्डयोश्चैव ओष्ठे चैव तथाधरे।
दन्ताघात: प्रकर्त्तव्य: कामिनीनां सुखावह:॥" (रति०)

पुरुषका रक्तवर्ण अधर सुलक्षण है। इसीतरह स्त्रियोंका पाटलवर्ण, पतला और मध्यरेखा-युक्त अधर अच्छा होता है। स्थूल और कृष्णवर्ण ओष्ठ अशुभ है;—

"पाणिपादतलौ रक्तौ नेत्रान्तरनखानि च।
तालुकोऽधर जिह्वा च सुरक्तं प्रशस्यते॥
पाटलाववर्तुल: स्निग्धरेखाभूषितमध्यभू:।
सीमन्तिनीनामधरो राज्ञां चैव स्त्रियो भवेत्॥
श्याम: स्थूलोऽधरोष्ठ: स्यात् वैधव्यकलहप्रद:।" (सामुद्रिक)

(क्लो०) ३ मदनगृह, मदनालय, योनि। (त्रि०) ४ नीच, कमीना। ५ नीचेको झुका हुआ। ६ कुत्सित, हकीर। ७ विजित, शान्त। ८ पहला, पूर्वका।

अधरकण्टक (सं० पु०) दुरालभा।

अधरकण्टिका (सं० स्त्री०) क्षुद्र शतावरी, छोटी शतावर।

अधरकण्ठ (सं० पु०-क्ली०) निम्नकण्ठ, नीचेकी गर्दन।

अधरकाय (सं० पु०) शरीरका निम्नभाग, जिस्मका नीचेवाला हिस्सा।

अधरज (हिं० स्त्री०) १ ओष्ठकी रक्ताभा, होंठोंकी सुर्खी। २ मिस्सीकी धड़ी या पानकी लाली, जो होंठोंपर जम जाती है।

अधरतस्, अधरत्तात्, अधरस्तात्, अधरस्मात्, अधरात्, अधरेण (सं० अव्य) नीचे, निम्नप्रदेशमें।

अधरपान (सं० क्लो०) ओष्ठका चूसना, ओष्ठचुम्बन; होंठका बोसा।

अधरम (हिं०) अधर्म देखो।

अधरमकाय, अधर्मास्तिकाय देखो।

अधरमधु (सं० क्लो०) अधरस्य मधु इव आस्वादातिशयात्। अधररस, अधरामृत, वक्त्रासव, लबकी शीरीनी।

अधरस्तात्, अधरतस् देखो।

अधरस्मात् अधरतस् देखो।

अधरस्वस्तिक (सं० क्लो०) अध:स्वस्तिक देखो।

अधरा (सं० स्त्री०) दक्षिणदिक्, अधोदिक्, खोटी ओर।

अधराक् (सं० अव्य०) नीचे, निम्नप्रदेशमें।

अधराच् (सं० त्रि०) अधरां दक्षिणां दिशमञ्चतीति, अञ्चु-क्विप्। दक्षिणदिग्गामी, जनूबकी जानिब जानेवाला।

अधराचीन (वै० त्रि०) अधराचि भव:, अधराच्-ख। १ अध:प्रदेशमें उत्पन्न होनेवाला, जो नीचेके मुल्कमें पैदा हो। २ नीचेकी ओर झुकता हुआ। ३ दक्षिणाभिमुख, जनूबकी तर्फ जो रागिब हो।

अधराच्य (वै० त्रि०) अधरच्यां भव: यत्। जो अधोदिक्में उत्पन्न हो, नीचेकी तर्फ पैदा होनेवाला।

अधरात् (सं० अव्य०) अधर:-अस्त्यर्थे आति। उत्तराधरदक्षिणादाति:। ५।३।३४। अधरत:, अधरेण, अधस्तात्; नीचेसे, निम्नभागसे।

अधरात्तात् (वै० अव्य०) नीचे, निम्नभागमें।

अधराधर (सं० पु०) निम्न ओष्ठ, नीचेका होंठ; लब।

अधरामृत (सं० क्लो०) अधरस्य अमृतमिव। अधरसुधा, होंठका अमृत, शीरीनी-ए-लब। भागवतमें लिखा है,—

"सिञ्चाङ्गनस्त्वदधरामृतपूरकेण
हासावलोककलगीतज हृच्छयाग्निम्।" १०।२९।३२।

'हे कृष्ण! आपकी सहास्यदृष्टि और आपके मधुर सङ्गीतसे हमारी जो मन्मथाग्नि जल उठी है, उसे आप अधरामृत पिला निर्वाण कीजिये।'

अधरारणि (वै० स्त्री०) यज्ञ करनेको अग्नि उत्पन्न करनेके लिये जो दो लकड़ियां घिसी जाती हैं, उनमें छोटी लकड़ी।

अधरावलोप (सं० पु०) अधरखण्डन, होंठका काटना।

अधरीकृत (सं० त्रि०) १ विजित, हारा हुआ। २ अकर्मण्य बनाया या नाकाम किया गया।

अधरीण (सं० त्रि०) अधरे भव:, अधर-ख।

धिक्कृत, दुतकारा हुआ। २ अधरमें उत्पन्न, नीचे पैदा हुआ।

अधरीभूत (सं० त्रि०) १ विजित, शिकस्त। २ अकर्मण्य-कृत, नाकाम बनाया गया।

अधरेण (सं० अव्य०) अधरस्मिन् देशे दिशि वा, अधर-एनप्। एनबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्याः। पा ५।३।३५। १ निकटके निम्न देशादिसे, पासवाले नीचेके मुल्कोंसे। २ सन्निकृष्ट दक्षिणदिक्से।

अधरेद्युः, अधरेद्युस् (सं० अव्य०) अधरस्मिन्नहनि। १ अधर दिवस, परदिन; परसों, कलसे पहलेके दिन। २ उस दिन, गये दिन।

अधरेय (सं० त्रि०) १ गुणविहीन, जिसमें कोई सिफ़त न हो। २ मूल्यमें न्यून, कमक़ीमत।

अधरोत्तर (सं० क्ली०) अधरश्च उत्तरश्च, समा० द्वन्द्व। न्यूनाधिक्य-युक्त पदार्थ, कमोबेश चीज़। २ निम्नोन्नत स्थान, ऊंची-नीची जगह। (त्रि०) ३ ऊंचा नीचा, निम्नोच्च। ४ भला-बुरा। ५ जैसेको तैसा, सवालका जवाब। ६ नज़दीक-दूर। ७ अबेर-सबेर। ८ ऊपर-नीचे।

अधरोंथा (हिं० वि०) आधा खाया, चबाया, कुचला या पागुर किया हुआ।

अधरोष्ठ (सं० पु०) १ नीचेका होंठ, लब। (क्ली०) ओष्ठ, होंठ।

अधर्म (सं० पु०) ध्रियतेऽनेन, धृङ्-मनिन्; विरोधार्थे नञ्-तत्। १ श्रुतिस्मृति-विरुद्ध आचार, शास्त्रके प्रतिकूल व्यवहार, काम जो वेदके खिलाफ़ हो; पाप, इज़ाब; पातक, गुनाह; असद्व्यवहार, बुरा बरताव; अकर्तव्य कर्म, न करने क़ाबिल काम; अन्याय, जुल्म; धर्म-विरुद्ध कार्य, मज़हबके खिलाफ़ काम; कुकर्म, बुरा काम; दुराचार, बुरा चालचलन।

भागवतमें कहागया है, कि अधर्म परब्रह्मके पृष्ठ-देशसे उत्पन्न हुए थे। आदिपुराणमें अधर्मके उत्पन्न होनेकी बात इसतरह लिखी है,—

"प्रजानामन्नकामानां अन्योन्य-परिभक्षणात्।
अधर्मस्तत्र सञ्जातः सर्वभूतविनाशकः॥
तस्यापि निर्ऋतिर्भार्या नैर्ऋता येन राक्षसाः।
घोरास्तस्यास्त्रयः पुत्राः पापकर्मरताः सदा॥
भयो महाभयश्चैव मृत्युर्भूतान्तकस्तथा।
न तस्य भार्या पुत्रो वा कश्चिदस्त्यन्तको हि सः।" २६१७ श्लोक।

लोग जब अन्नकामनापर एक-दूसरेको भक्षण करने लगे, तब उससे सर्वभूत-विनाशक अधर्मकी उत्पत्ति हुई। इनकी भार्याका नाम निर्ऋति था। निर्ऋतिके पुत्र होनेसे ही राक्षस नैर्ऋत कहाते हैं। इनके तीन पुत्र अतिशय भयङ्कर हैं, जो सर्वदा ही पापकर्ममें रत रहते हैं। उनका नाम भय, महाभय और प्राणिगण-विनाशकारी मृत्यु है। मृत्युके भार्या किंवा पुत्र कोई भी नहीं, जिसके कारण वह सर्वान्तकारी होता है।

हमारे शास्त्रकार पुनर्जन्म मानते थे। अब कोई पुनर्जन्म मानता और कोई नहीं भी मानता है। मनु प्रभृति ऋषियोंका मत यही है, कि शास्त्रमें जैसा लिखा, उसके अनुरूप आचरण न करने अर्थात् अधर्माचरण करनेसे मनुष्य जन्मजन्मान्तर अधमयोनि पाता है। शास्त्रमें यह निर्दिष्ट है, कि कौन-कौन अधर्म करनेसे किस-किस योनिमें जन्म होता है,—

"श्वसूकरखरोष्ट्राणां गोऽजाविमृगपक्षिणाम्।
चण्डालपुक्कशानाञ्च ब्रह्महा योनिमृच्छति॥ ५५
कृमिकीटपतङ्गानां विड्भुजाञ्चैव पक्षिणाम्।
हिंस्राणाञ्चैव सत्त्वानां सुरापो ब्राह्मणो व्रजेत्॥ ५६
लूताहिशरटानाञ्च तिरश्चांचाम्बुचारिणाम्।
हिंस्राणाञ्च पिशाचानां स्तेनो विप्रः सहस्रशः॥ ५७
तृणगुल्मलतानाञ्च क्रव्यादां दंष्ट्रिणामपि।
क्रूरकर्मकृताञ्चैव शतशो गुरुतल्पगः॥ ५८
हिंस्रा भवन्ति क्रव्यादाः कृमयोऽभक्ष्यभक्षिणः।
परस्परादिनस्तेनाः प्रेतान्त्यस्त्रीनिषेविणः॥ ५९
संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम्।
अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः॥ ६०
मणिमुक्ताप्रवालानि हृत्वा लोभेन मानवः।
विविधानि च रत्नानि जायते हेमकर्तृषु॥ ६१
धान्यं हृत्वा भवत्याखुः कांस्यं हंसो जलं प्लवः।
मधु दंशः पयः काको रसं श्वा नकुलो घृतम्॥ ६२
मांसं गृध्रो वपां मद्गुस्तैलं तैलपकः खगः।
चीरीवाकस्तु लवणं बलाका शकुनिर्दधि॥ ६३
कौशेयं तित्तिरिर्हृत्वा क्षौमं हृत्वा तु दर्दुरः।
कार्पासतान्तवं क्रौञ्चो गोधा गां वाग्गुदो गुड़म्॥ ६४

कुच्छुन्दरिः शुभान् गन्धान् पत्रशाकन्तु बर्हिणः ।
श्वावित् कृतान्नं विविधमकृतान्नन्तु शल्यकः ॥६५
बको भवति हृत्वाग्निं गृहकारी ह्युपस्करम् ।
रक्तानि हृत्वा वासांसि जायते जीवजीवकः ॥ ६६
वृको मृगेभं व्याघ्रोऽश्वं फलमूलन्तु मर्कटः ।
स्त्रीमृक्षस्तोकको वारि यानान्युष्ट्रः पशूनजः ॥" ६७

मनुसंहिता ११ अध्याय ।

ब्रह्महत्याके लिये महापातकी पहले शत-शत वत्सर नरकभोग करते हैं। नरक भोगके बाद जन्म-की बात इसतरह लिखी गई है,—

'ब्रह्महत्याकारी कुत्ते, सूअर, गधे, ऊंट, भैंस, बकरे, भेड़े, मृग, पक्षी, चण्डाल और निषादसे ले शूद्राजात पुक्कश तककी योनिमें जन्मग्रहण करते हैं। (पापकी मात्राके अनुसार क्रमसे सभी योनियोंमें जन्म हो सकता है।)। ब्राह्मण सुरापान करनेसे कृमि, कीट, पतङ्ग, विष्ठाभक्षक पक्षी और (व्याघ्रादि) हिंसक प्राणीकी योनिमें उत्पन्न होता है। ब्राह्मण यदि चोर हुआ, (कुल्लूकभट्टके मतसे सोना चुराया) तो मकड़े, सांप, कुकलास, जलचर पक्षी, कुम्भीरादि और पिशाचादिकी योनिमें जन्म लेता है। गुरुपत्नीसे गमन-करनेपर तृण, गुल्म, लता, कच्चा मांसखा-नेवाले पशुपक्षी, दन्तशाली सिंहादि और क्रूरकर्मशील व्याघ्रादिकी योनिमें शतबार जन्म लेना पड़ता है। जो जीवहिंसा करता, वह कच्चामांस खानेवाला जन्तु होता है। अभक्ष्य द्रव्यको भोजन करनेवाला कृमि योनिमें उत्पन्न होता है। चोर (कुल्लूकभट्टके मतसे चोर जो महापातकी नहीं) परस्परके मांसभक्षक बन जन्मते हैं। चण्डालादि अन्त्यज जातिकी स्त्रीसे गमन करनेपर प्रेतयोनि प्राप्त होती है। (प्रेताख्य प्राणिविशेष, कुल्लूकभट्ट)। पतित व्यक्तिका संसर्ग रहने, परस्त्रीगमन करने और ब्राह्मणका धन (सुवर्ण भिन्न) चुरानेसे ब्रह्मराक्षस बनना पड़ता है। जो मनुष्य लोभवशतः मणि, मुक्ता, प्रवाल और रत्नको अपहरण करता, वह सुवर्णकार होता है (कोई-कोई कहते हैं, कि वह हेमकार पक्षियोनिमें जन्मग्रहण करता है)। धान चुरानेसे मनुष्य इन्दुर हो जाता है। जो कांसे-की चोरी करता, उसे हंस बनना पड़ता है। जलका चोर प्लव नामक पक्षीकी योनिमें जन्म लेता है। मधु चुरानेवाला डांस होगा। दूधके तस्करको काककी योनिमें जन्म दिया जाता है। तैलादि रसको अपहरण करनेसे कुत्ता बनना पड़ता है। घृतका चोर नेवला होगा। मांस चुरानेवाला गृध्रकी योनिमें जन्म लेगा। जो चर्बीकी चोरी करता, उसे मछलीकी योनिमें उत्पन्न होना पड़ता है। तैल चुरानेवाला पतङ्ग बनेगा। लवणको अपहरण करनेसे चीरीवाक कीट बनना पड़ता है। दधि चुरानेवाला क्षुद्र बक पक्षी होता है। कौषेय वस्त्र चुरानेसे तितली होना पड़ेगा। क्षौमवस्त्रका तस्कर भेक बनेगा। कार्पास वस्त्रकी चोरी करनेसे मनुष्य क्रौञ्च पक्षी होता है। मवेशी चुरानेवाला गोधेकी योनिमें जन्म लेता है। गुड़ चुरानेसे चिमगा-दड़ होना होगा। सुगन्धि द्रव्य चुरानेवाला छछूं-दरका जन्म धारण करता है। पत्रशाकादि चुरानेसे मयूर होगा। सिद्धान्नको हरण करनेवाला श्वावित् और अपक्वान्नको हरण करनेवाला शल्यक बनता है। आग चुरानेसे मनुष्य बकको योनिमें जन्म लेगा। गृहका उपकरण द्रव्य चुरानेवाला मृत्तिकादि द्वारा गृहनिर्माणकारी पक्षवान् कीट बनता है। जो रक्तवस्त्र चुराता, वह चकोर पक्षी होता है। मृग-हस्ती चुरानेसे लकड़बग्घेको योनिमें जन्म मिलता है। घोड़ा चुरानेवाला व्याघ्र होगा। फलमूलका चोर मर्कटका जन्म पाता है। स्त्रीको चोरी करनेसे भालूकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। जलका चोर चातक पक्षी होगा। यानको हरण करनेवाला ऊंट बनता है। अन्यान्य पशु चुरानेसे अजकी योनिमें जन्म मिलता है।

जान पड़ता है, कि जो जन्तु जो-जो द्रव्य खाकर प्राणधारण करता, अनेकस्थलमें तद्रूप द्रव्यको हरण करनेसे मनुष्य उसी प्रकारके किसी जन्तुकी योनिमें उत्पन्न होता है। ऋषियोंने पापवाले फलभोगके लिये इसी नियमसे व्यवस्था की है। अनेकस्थलमें फिर यह नियम नहीं भी है। शरीरके कर्ण, वास-

स्थान, स्वभाव, गन्ध प्रभृतिके प्रति भी दृष्टि रखकर शान्तिकी व्यवस्था की गई; जैसे,—धान्य चुरानेवाला चूहा होता है। यहां प्रयोजन यह है, कि चूहा धान्य खाकर प्राणधारण करता है। मांस चुरानेसे गृध्र होता, तैल चुरानेसे पतङ्ग बनता और अभक्ष्यको भक्षण करनेसे क्रमियोनिमें मनुष्य जन्म लेता है—इत्यादि स्थलमें खाद्यद्रव्यके प्रति दृष्टि रखकर शान्तिकी व्यवस्था बताई गई है। मालूम होता है, कि सिद्धान्न चुरानेसे श्वावित्, कांसेको हरण करनेसे हंस और कार्पासवस्त्र चुरा लेनेसे बक बनता है—इन सकल स्थलोंमें चोरी गई हुई चीज़के रङ्गसे जन्तुकी देहके वर्णका रङ्ग मिलाकर शान्तिकी व्यवस्था लिखी गई है। यान चुरानेसे ऊंट होता अर्थात् गाड़ी चुरानेके कारण मनुष्यको जन्मान्तरमें बोझ ढोना पड़ेगा; इसीसे उसके पक्षमें उष्ट्र-जन्म विहित हुआ है। फिर किसी-किसी स्थलमें कुछ भी मर्म समझ नहीं पड़ता; जैसे,—चर्बी चुरानेसे मछली बनना पड़ता है। पूर्वकालमें आग और पानी मनुष्यकी दुर्लभ सामग्री थी। कारण, कितने ही कष्टसे अरणि घिसने पर आग निकलती थी; इसीसे आग सुलभ द्रव्य न था। मालूम होता है, कि उस समय इतना जलाशय नहीं रहा। इसीसे जल भी अति दुर्लभ समझा जाता था। यही कारण है, कि आग-पानी लेनेसे लोग चोर कहाते थे। चोरी करनेसे ही पाप होता है। किन्तु आजकल आग-पानी लेना चोरी करनेमें दाखिल नहीं।

आजकल समग्र सभ्यदेशमें प्रधान रूपसे नीतिशास्त्रका अनुशीलन किया जाता है। यह बात किसीसे समझाकर नहीं बताना पड़ती, कि किसे धर्म और किसे अधर्म कहते हैं। कूट तर्क छोड़ देनेसे सभी लोग अपने मनमें धर्माधर्मको विचार सकते हैं। ज्ञानवान् व्यक्तिका मन ही सद्गुरु है, जिसे वेद, बाइबिल और कुरान सब कुछ बताते हैं। किन्तु कूट तर्क चलानेसे बड़े गड़बड़में पड़ना होता है। ऐसे समय धर्माधर्मका सूक्ष्म ज्ञान लेना कठिन हो जाता है। रूसके निरस्तिवादी (Nihilists) कहते हैं, कि हिताहित-ज्ञान, धर्माधर्म, भला-बुरा सभी शिक्षाका फल है। वास्तविक कुछ ज्ञान नहीं पड़ता। बालककालसे जिसे जैसे सिखाओ और पढ़ाओगे, वह वैसे ही सीखे और समझेगा; उसके हृदयमें वैसे ही एक दृढ़ संस्कार होते रहेगा। ऐसा संस्कार एक देशके लोगोंकी दृष्टिमें तो अच्छा जंचेगा; किन्तु सम्भवतः अन्य देशके लोग उसे देख कांप जायेंगे। इसीसे यह ठीक नहीं, कि क्या भला और क्या बुरा है,—

"Conscience is a mere matter of education. A Christian living in Europe, who has murdered any body with cunning and premeditation, usually experiences a certain kind of remorse. But a Red Indian, who is every bit as much a man of flesh and blood, rejoices when he is able to surprise and slay a defenceless enemy. His conscience in no wise suffers from the act, for he has been taught from earliest youth that the more scalps he possesses, the better he will be received in the happy hunting grounds of the great Manitou'.

(See Nineteenth Century, No. 35. January 1880.)

'हिताहित-ज्ञान, सिवा शिक्षावाले फलके और कुछ भी नहीं। किसी युरोपीय खृष्ट-धर्मावलम्बीके सोच-विचारकर किसीको मार डालनेपर, अनुतापसे उसका हृदय जला करता है। किन्तु अमेरिकाके गौरवर्ण इण्डियनोंका भी तो शरीर इसी रक्तमांससे बना है, तथापि निराश्रय शत्रुको मार सकनेसे उनके आह्लादका ठिकाना नहीं रहता। ऐसे निष्ठुर कार्यमें उन्हें कुछ भी परिताप नहीं होता। परिताप न होनेका कारण यही है, कि शैशवावस्थासे वह ऐसी ही शिक्षा पाते रहे हैं,—जो व्यक्ति मनुष्य मार अधिक मुण्ड इकट्ठे कर सकता, वही मणितो उपदेवताके मृगया क्षेत्रमें अधिक आदर पाता है।'

रूसके निरस्तिवादी यह बात इस तात्पर्यसे कहते हैं, कि मनुष्य चिरकालसे जैसी शिक्षा पाता, हृदयमें वैसी ही एक धारणा जम जाती है। इस पृथिवीपर प्रबल व्यक्ति केवल अन्याय और अत्याचार करते हैं, इसीसे लोगोंको दुःखके सिवा कहीं भी सुख नहीं देख पड़ता। दुःख पड़नेपर प्रबल लोगोंकी ज्वालासे उसका प्रतीकार नहीं देखाता। इसीसे मनुष्य धर्मा-

धर्मकर एक काल्पनिक उपाय द्वारा मनको समझा लेता है। ऐसे ही कूट तर्क खड़ेकर निरस्तिवादी धर्माधर्मको नहीं मानते।

२ ब्रह्माके एक पुत्र। (वायु और ब्रह्माण्डपुराण १०।१।) अधर्मकी भार्याका नाम मिथ्या था, जिसने माया नामकी कन्या और दम्भ नामके पुत्रको उत्पन्न किया। निर्ऋतिने अपुत्रा होनेके कारण माया और दम्भ दोनोको ले लिया था। (श्रीभागवत ४।८।२।) श्रीमद्भागवत और विष्णुपुराणमें इसका उल्लेख नहीं, कि अधर्म किसके पुत्र थे। टीकाकार श्रीधरस्वामीने निम्न-लिखित शुकोक्त वचन अवलम्बनकर अधर्मको ब्रह्माका ही पुत्र बताया है,—

"धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयं।
अधर्मः पृष्ठतो यस्य मृत्युर्लोकभयङ्करः॥"

(विष्णुपुराणकी टीका १।७।२९।)

अधर्म शब्द पुराणादिमें रूपक भावसे व्यवहृत है। फलतः यह एक मनोवृत्ति है जो अनिष्ट कार्योत्पादक होनेसे मृत्यु, पातक प्रभृति नामों पर प्रयोग की गई है। ३ सूर्यके एक सहचरका नाम।

अधर्मचारिन् (वै० त्रि०) धर्मं चरति अनुतिष्ठति, चर-णिनि; न धर्मचारी, ६-तत्। पापाचारी, धर्मका अनुष्ठान न करनेवाला, जो मज़हबके खिलाफ़ काम करे।

अधर्मतस्, अधर्मतः (सं० अव्य०) अधर्मसे, झूठ-मूठ, बेइन्साफ़ीसे।

अधर्मदण्डन (सं० क्ली०) अधर्मका दण्ड, बेइन्साफ़ी-की सज़ा।

अधर्ममय (सं० त्रि०) अधर्मः प्रकृतः, प्राचुर्यार्थे मयट्। तत्प्रकृतवचने मयट्। पा ५।४।२१। पापमय, प्रचुर पापयुक्त, पापपूर्ण; लामज़हब, जो बहुत बुरा काम करे। (स्त्री०) अधर्ममयी।

अधर्मात्मन् (सं० त्रि०) अधर्मः प्रधानः आत्मा यस्य। अत्यन्त अधर्माचारी, महा पापिष्ठ, दुराचारी, कुमार्गी, जिसके हृदयमें पाप भरा हो; इज़ाबसे भरपूर।

अधर्मास्तिकाय (सं० पु०) अधर्मका विभाग, ईज़ाब-की मद। जैनशास्त्रमें जो छः द्रव्य माने गये हैं, उनमें एक अधर्मास्तिकाय भी है। इसमें नित्यता और रूप नहीं और यह जीव और पुद्गलको स्थितिको साहाय्य देता है। इसमें स्कन्ध, देश और प्रदेश नामक तीन भेद रहते हैं।

अधर्मिन् (सं० त्रि०) अधर्म-इनि अस्त्यर्थे। अधार्मिक, अधर्मात्मा, पापाचारी; गुनहगार इज़ाब करनेवाला।

अधर्मिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशायने अधर्म-इष्ठन् मत्वाद् टिलोपः। अतिशायने तमबिष्ठनौ। पा ५।३।५५। अतिशय पापयुक्त, अतिशय अधर्मशील, महापापी।

अधर्मी (हिं० पु०) पाप करनेवाला व्यक्ति, पापी मनुष्य।

अधर्म्य (सं० त्रि०) न धर्माय हितं यत्। पापोत्-पादक, अन्याय-सम्वलित, नियम या धर्म विरुद्ध, पापमय; इज़ाबसे भरा, लामज़हब, गुनहगार।

अधर्षणी (सं० त्रि०) प्रचण्ड, पुरज़ोर; प्रबल, ताक़तवर; निर्भय, बेख़ौफ़; जो दबाया या डराया न जा सके, जिसपर कोई प्रभाव डाल न सके, जीतने-के अयोग्य।

अधवा (सं० स्त्री०) न विद्यमानो धवः पतिर्यस्याः, बहुव्री०। विधवा स्त्री, मृतभर्तृका, रांड, जिसका पति विद्यमान न हो, बेशौहरकी औरत।

अधवारी (हिं० स्त्री०) वृक्षविशेष, एक पेड़ या दरख़्त। इसका काष्ठ भवन और साजसज्जाके निर्माणमें लगता है।

अधश्चर (सं० पु०) अधः अधोभागे खनित्वा चरति गृहं प्रविशति, चर्-अच्। सेंध लगानेवाला चोर।

अधश्चौर (सं० पु०) अधः अधोभागे खनित्वा चोरयति चोर एव स्वार्थे अण्। सेंध मारनेवाला चोर, जो मकानकी दीवार काटकर चोरी करे।

पहले भारतवर्षमें सभी विद्याओंकी विशेष रूपसे उन्नति हुई थी। लोग कहा करते हैं,—'यदि मार न पड़ती, तो चोरी जैसा कोई रोजगार न था।' उस समय इस देशमें चोरविद्याकी भी विशेष उन्नति देख पड़ती थी। चोर कितना ही हिसाब-किताब बना वैज्ञानिक उपाय द्वारा गृहस्थके घरमें सेंध लगाते

थे। मृच्छकटिक एक अति प्राचीन नाटक है। इसमें सेंध करनेका आश्चर्यमय कौशल लिखा गया है। बात यह है, कि शर्विलक एक विशुद्ध ब्राह्मण-सन्तान थे; किन्तु मदनिका नामकी वेश्याके प्रति उनका मन लग जानेसे उन्हें धनकी आवश्यकता पड़ गई। इसी कारण वह दरिद्र चारुदत्तके घर सेंध लगाने पहुंचे। उन्होंने पहले सेंध मार वृक्षवाटिकामें प्रवेश किया और फिर सोचने लगे,—

''वृक्षवाटिका-परिसरे सन्धिं कृत्वा प्रविष्टोऽस्मि मध्यमकं तावत् इदानीं चतुःशालकमपि दूषयामि। तत् कस्मिन् देशे सन्धिमुत्पादयामि।

देशः कोनु जलावसेकशिथिलो यस्मिन्न शब्दोभवे-
द्भित्तीनाञ्च न दर्शनान्तरगतः सन्धिःकरालो भवेत्।
क्षारक्षीणतया च लोष्टककृशं जीर्णं क्व हर्म्यं भवेत्,
कस्मिन् स्त्रीजनदर्शनञ्च न भवेत् स्यादर्थसिद्धिश्च मे॥

भित्तिं परामृश्य नित्यादित्यदर्शनोदकसेचनेन दूषितेयं भूमिः, क्षारक्षीणा मूषिकोत्करश्चेह। हन्त! सिद्धोऽयमर्थः। प्रथममेतत् स्कन्दपुत्राणां सिद्धि-लक्षणम्। अत्र कर्मप्रारम्भे कीदृशमिदानीं सन्धिमुत्पादयामि। इह खलु भगवता कनकशक्तिना चतुर्विधः सन्ध्युपायो दर्शितः। तद्यथा,—पक्वेष्ट-कानामाकर्षणम्, आमेष्टकानाञ्छेदनं, पिण्डमयानां सेचनं, काष्ठमयानां पाटनमिति। तदत्र पक्वेष्टके इष्टिकाकर्षणम् तत्र,—

पद्मव्याकोशं, भास्करं, बालचन्द्रं
वापीविस्तीर्णं, स्वस्तिकं, पूर्णकुम्भं,
तत्कस्मिन् देशे दर्शयाम्यात्मशिल्पं,
दृष्ट्वा श्वोयं यद्विस्मयं यान्ति पौराः॥

तदत्र पक्वेष्टके पूर्णकुम्भ एव शोभते। तमुत्पादयामि। नमो वरदाय कुमारकार्तिकेयाय, नमः कनकशक्तये ब्रह्मण्याय देवाय देवव्रताय, नमो भास्करनन्दिने, नमो योगाचार्याय, यस्याहं प्रथमः शिष्यः। तेन च गोरीचना मे दत्ता,—

अनयाहि समालब्धं न मां द्रक्ष्यन्ति रक्षिणः।
शस्त्रञ्च पतितं गात्रे रुजं नोत्पादयिष्यति।

तथा करोति। धिक् कष्टम्? प्रमाणसूत्रम् मे विस्मृतम्? आं, इदं यज्ञोपवीतं हि नाम ब्राह्मणस्य महदुपकरणद्रव्यम्। विशेषतोऽस्मद्विधस्य, कुतः।—

एतेन मापयति भित्तिषु कर्ममार्ग-
मेतेन मोचयति भूषणसम्प्रयोगान्।
उद्घाटको भवति यन्त्रदृढकपाटे,
दष्टस्य कीटभुजगैः परिवेष्टनञ्च॥

मापयित्वा कर्म समारभे। तथा कृत्वावलोक्य च। एक लोष्टाव-शेषोऽयं सन्धिः। धिक् कष्टम्। अहिना दष्टोऽस्मि। (यज्ञोपवीतेनाङ्गुलिं बद्ध्वा विषवेगं नाटयति।) चिकित्सां कृत्वा स्वस्थोऽस्मि। पुनः कर्म कृत्वा दृष्ट्वा च। अये ज्वलति प्रदीपः। पुनः कर्म कृत्वा—समाप्तोऽयं सन्धिः। भवतु, प्रविशामि। अथवा न तावत् प्रविशामि, प्रतिपुरुषं प्रवेशयामि। तथा कृत्वा,—अये न कश्चित्। नमः कार्तिकेयाय। प्रविश्य दृष्ट्वा च। अये पुरुषद्वयं सुप्तम्। भवतु, आत्मरक्षार्थं द्वारमुद्घाटयामि। कथं खलु। सलिलं गृहीत्वा क्षिपन् सशङ्कम्। मा तावत् भूमौ पतत् शब्दमुत्पादयेत्। भवतु एवं तावत्। इदानीं परीक्षे किं लक्ष्यसुप्तमुत परमार्थसुप्तमिदं द्वयम्। त्रासयित्वा परीक्ष्य च। अये परमार्थसुप्तेनानेन भवितव्यं। तथाहि,—

विश्वासोऽस्य न शङ्कितः, सुविशदः स्वल्पान्तरं वर्तते
दृष्टिर्गाढ़-निमीलिता, न विकला नाभ्यन्तरं चञ्चला।
गात्रं स्रस्तशरीरसन्धिशिथिलं शय्याप्रमाणाधिकं,
दीपञ्चापि न मर्षयेदभिमुखं स्याल्लक्ष्यसुप्तं यदि॥"

'मैं बाग़में सेंध लगा बीचके महलमें घुसा हूं। अब मकानमें सेंध लगाना पड़ेगी। किन्तु मकानमें किस जगह सेंध लगाई जाती है? दीवारमें जहां हमेशा पानीकी चपेट पड़नेसे मट्टी गीली हो गई है, वहां सेंध मारनेसे शब्द न निकलेगा। फिर दूसरी दीवारके बीचमें न अड़नेसे गड्ढा भी बहुत बड़ा बन जायेगा। दीवार कहां नोना लगनेसे पुरानी और बेकाम पड़ गई है? किस जगह सेंध लगानेसे स्त्रियोंसे भेंट न होगी और मेरा काम भी बन जायेगा?

'इसके बाद दीवारपर हाथ रखकर वह बोला,—इसी जगह तो रोज़ गहरा पानी पड़ता, जिससे यह जगह नष्ट हो गई; यही जगह नोना लगनेसे धसकी है। इस जगह चूहेने गड्ढा भी बनाया है। जो हो, इसमें सन्देह नहीं, कि काम ख़ूब बना है। चोरोंके काम निकलनेका यही पहला लक्षण है। अब काम शुरू किये देता हूं, किन्तु गड्ढा कैसे खोदा जाता है? भगवान् कनकशक्तिने चार तरहसे सेंध काटनेका उपाय बताया है। पक्की ईंटका मकान होनेसे ईंट उखाड़ कर बाहर निकालना होता; कच्ची ईंटके मकानकी ईंट काटकर दूर फेंक दी जाती; चिकनी मट्टीके मकानपर पानी डालना पड़ता; लकड़ीका मकान चीरा जाता है। यह पक्की ईंटका मकान है, इसलिये ईंट उखाड़कर निकाल डालना चाहिये।'

'किन्तु सेंधका गड्ढा भी तो कई तरहका होता है,—कमलके फूल-जैसा, सूर्य-जैसा, अर्द्धचन्द्राकार, दीर्घाकार, स्वस्तिक-जैसा और पूर्णकुम्भ-जैसा। अब मैं किस जगह अपना हुनर दिखाऊं, जिसे कल शहरके लोग देखकर अचम्भेमें पड़ जायें। इस ईंटके पक्के मकानमें पूर्ण कुम्भाकार—पानी भरे घड़े-जैसा गड्ढा ही अच्छा लगेगा। इसलिये मुझे वैसा ही गड्ढा बनाना चाहिये।

'वरदाता कुमार कार्तिकेयको नमस्कार है। कनकशक्तिको नमस्कार है। ब्रह्मण्यदेव देवव्रत, भास्करनन्दी और योगाचार्यको नमस्कार है। मैं उनका पहला शिष्य हूं। उन्होंने तुष्ट होकर मुझे गोरोचना दी है। इसे शरीरमें लगानेसे नगररक्षक मुझे देख न सकेगा और शरीरपर हथियार चलनेसे चोट न लगेगी। यह बात कहकर शर्विलकने शरीरमें गोरोचना लगा ली। इसके बाद उसने कहा,—अरे! सेंध नापनेका गज़ तो मैं भूल आया। फिर कुछ सोच-समझकर वह बोल उठा,—गज़ न सही, अपने इस जनेऊसे नाप लेनेपर ही काम चल जायेगा। ब्राह्मणका जनेऊ बड़े ही कामकी चीज़ है। विशेषत: मेरे-जैसे ब्राह्मणको इससे कितना ही काम पड़ जाता है। इससे सेंधका गड्ढा नपता; गहना उतरता, दरवाज़ा मज़बूतीसे बन्द रहनेपर किवाड़ा खुल जाता और सांप या बिच्छूके डङ्क मारनेपर गांठ बंधती है।

'इसके बाद उसने सेंधकी जगह नाप काम शुरू कर दिया। गड्ढेको गहराकर वह बोला,—'एक ईंट और बाकी है, जिसके निकलते ही सेंध फूट जायेगी। अरे यह क्या! क्या सांपने काट खाया?' तब उसने जनेऊसे उंगली बांधी, किन्तु विषसे शरीर भभक उठा। इसके बाद चिकित्सासे चङ्गा होकर उसने सेंध फोड़ी। भीतर जाकर देखा, कि दिया जलता था। अन्तमें गड्ढेको चौड़ाकर सोचने लगा,—'अब तो भीतर घुस जाऊं। नहीं, एकबारगी ही घुस जाना अच्छा नहीं, पहले एक पुतलेको घुसेड़कर देखूं। कोई तो नहीं। कार्तिकेयको नमस्कार करता हूं। घरमें दो आदमी सोरहे हैं। आदमियोंको सोने दो, पहले अपने बचावके लिये दरवाज़ा खोल लूं। दरवाज़ा पुराना हो गया, किवाड़से आवाज़ आती है! कहीं से थोड़ासा पानी ढूंढ लाऊं! पानीसे सावधान होकर किवाड़ आर्द्र करूं। पीछे मट्टी गिरनेसे आवाज़ आती है, पीठके सहारे कीवाड़ खोल लूं। जो हो, अब देखना चाहिये, कि ये दोनो असलमें सोते हैं या नहीं; भय दिखानेसे मालूम हुआ, कि असलमें सो रहे हैं। इनको हलकी सांससे नहीं जान पड़ता कि इन्हें भय लगा है। क्योंकि खूब साफ़ और रह-रहके सांस चलती है, आंखें अच्छी तरह मुंद गई हैं और पुतलियां भी घूमते नहीं देख पड़तीं; शरीरके जोड़ ढीले पड़े और हाथ-पैर बिस्तरसे बाहर लटके हैं। असलमें न सोनेसे आंखपर कभी दियेकी रोशनी नहीं सही जाती।'

मृच्छकटिक अति प्राचीन पुस्तक है। शर्विलककी कथा सुननेसे जान पड़ता है, कि पूर्वकालमें इस देशके चोर अपना व्यवसाय बहुत अच्छी तरह समझते-बूझते थे। एक ग्राम्य गल्प प्रचलित है, कि आकाशसे जो वज्र गिरता, वह केले या सार नामक वृक्षमें लगनेसे फिर निकल नहीं सकता, फंस जाता है। सेंध मारनेवाले चोर उसी वज्रके लोहेसे अपना खन्ता बनवाते हैं। यह ठीक नहीं कहा जा सकता, कि इस गल्पकी उत्पत्ति कैसे हुई है। लोहारकी दुकानके पास एक जंगला रहता है। कहते हैं, कि शायद सेंध लगानेवाले चोर उसी जंगलेमें रातको लोहा और मज़दूरीका दाम फेंक जाते हैं। लोहार इशारेसे समझ सकता, कि किस चोरको खन्तेकी ज़रूरत पड़ी है। वह चुपके से एक खन्ता बना उसी जंगलेमें रख देता है। सेंध फोड़नेवाले चोर रातको आ अपना हथियार ले जाते हैं।

अधश्शिरस् (सं० क्लो०) अध: अधोवर्ति शिर: मस्तकं यस्य। अवाङ्मस्तक, मुंह लटकाये हुए आदमी।

अधस् (सं० अव्य०) अधर-असि। पूर्वाधरावराणामसि-

पुरधवश्चैषाम्। पा ५।३।३९। १ नीचे, तले। २ पातालमें, अधोभागमें।

अधसेरा, असेरा (हिं० पु०) आध सेरका बांट, जो लोहेका होता है।

अधस्तन (सं० त्रि०) अधोभवः, अधस्-ट्यु, तुट् च। अधोभव, निम्नगत; नीचेका।

अधस्तमाम्, अधस्तराम् (सं० अव्य०) अतिशयेन अधः, तमप् तरप् आमु। किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे। पा ५।४।११। अत्यन्त अधोभागमें, बहुत नीचे।

अधस्तल (सं० क्ली०) १ किसी वस्तुके नीचेका स्थान, किसी चीज़के नीचेकी जगह। २ नीचेका कमरा। ३ तहखाना।

अधस्तात् (सं० अव्य०) अधर-अस्ताति, अध् आदेशः। १ अधोभागमें, नीचे। २ रतिगृहमें, ऐशके कमरेमें।

अधस्ताद्दिश् (सं० स्त्री०) निम्नप्रदेश, नीचेकी दुनया।

अधस्पद (सं० क्ली०) अधोवृत्ति पदम्। निम्नपद, पैरके नीचेकी जगह।

अधस्पदम् (सं० अव्य०) पदके अधोभागमें, पैरके नीचे।

अधा (वै० अव्य०) अध देखो।

अधांगा (हिं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़िया। इसके सारे शरीरका रङ्ग ख़ाकी होता, किन्तु गरदनके ऊपरका सम्पूर्ण अंश लाल और बाज़ू तथा पर सुनहला रहता है।

अधाधुन्ध (हिं० क्रि०-वि०) भीषण रूपसे, ज़ोर-शोरसे।

अधाना (हिं० पु०) अस्थायीविशेष, एक तरहका ख़याल। इसे तिलवाड़ा तालपर बजाते हैं।

अधामार्ग, अधामार्गव (सं० पु०) न धीयते अधाः तादृशं मार्गं वातीति, वा-क।धामार्गव वृक्ष, अपामार्ग, लटजीरा। (Achyranthes Aspera)

अधारणक (सं० त्रि०) साहाय्य करनेके अयोग्य, जो सहारा न दे सके।

अधारिया (हिं० पु०) गाड़ीवानके बैठनेकी जगह जो बैलगाड़ीपर रहती है, मोढ़ा।

अधारी (हिं० स्त्री०) १ सहारेकी चीज़। २ साधुओंके टेकेका पीढ़ा जो काठके डण्डेमें लगा रहता है। ३ सफ़रके सामान डालनेकी झोली। (पु०) ४ नया बैल, जो फेरा न गया हो। (वि०) ५ प्यारी, सहारा देनेवाली।

अधार्मिक (सं० त्रि०) धर्मं चरति आसेवते, धर्मं चरति। पा ४।४।४१। इति ठक् धार्मिकस्ततो विरोधार्थे नञ्-तत्। पापी, बेईमान।

अधार्य (सं० त्रि०) धारण करनेके अयोग्य, जिसे थाम, ले जा या रख न सकें।

अधावट, अधौटा (हिं० वि०) आधा औटा, औटते-औटते जो आधा गाढ़ा हो जाये। यह विशेषण प्रायः दूधके साथ व्यवहार किया जाता है।

अधि (सं० पु०) १ आधीयते दुःखमनेन। आधि, मनःपीड़ा, दिलकी जलन। संस्कृतमें यह शब्द उपसर्गकी भांति भी ऊपर और उस ओरका अर्थ बताने को क्रिया और संज्ञाके साथ लगता है।

अधिक (सं० त्रि०) अध्यारूढ़ एव, स्वार्थे कन् उत्तरपदलोपश्च। १ अतिरिक्त, फ़ालतू। २ प्रधान, ख़ास। ३ असाधारण, ग़ैरमामूली। ४ अनेक, कितना ही। (पु०) ५ काव्यशास्त्रोक्त अलङ्कार-विशेष,—

"महतोर्यन्महीयांसावाश्रिताश्रययोः क्रमात्।
आश्रयाश्रयिणौ स्यातां तनुत्वेऽप्यधिकन्तु तत्॥

आश्रितमाधेयम्- आश्रयस्तदाधारः, तयोर्महतोरपि विषये तदपेक्षया तनू अप्याश्रयाश्रयिणौ प्रस्तुतवस्तुप्रकर्षविवक्षया यथाक्रमः यत् अधिकतरतां व्रजतः।"

आधार और आधेयको पहले बड़ा बता, फिर छोटे आधार या आधेयको उससे महत्तर बतानेपर अधिक अलङ्कार होता है,—

"युगान्तकाले प्रतिसंहृतात्मनो जगन्ति यस्यां सविकाशमासत।
तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विषस्तपोधनाभ्यागमसम्भवा मुदः॥" (माघ १।२३।)

'प्रलयकालमें जिन्होंने अपनेमें जीव-सकलको संहृत कर लिया था, उन्हीं कैटभारि श्रीकृष्णके जिस शरीरमें समस्त जगत् विलीन होनेपर भी स्थान रहा; तपोधन नारदके आगमनसे उत्पन्न आनन्द उसी शरीरमें फिर न समा सका।'

इस स्थानमें श्रीकृष्णका शरीर आधार है। पहले वही आधार इतना बढ़कर बताया, कि उसमें समस्त जगत् लीन हो गया था। पीछे नारदके आगमनसे उत्पन्न आनन्द उसी आधारका दूसरा आधेय बना। इस आधेयकी इतनी प्रशंसा हुई, कि जिस शरीरमें सम्पूर्ण जगत् समा गया था, उसमें भी इसे स्थान न मिला, यह एकबारगी ही उमड पड़ा।

युगान्त इत्यादि माघका श्लोक काव्यप्रकाशवाले अधिक अलङ्कारकी भांति उद्धृत किया गया है। किन्तु माघकी टीकामें मल्लिनाथने उसे अतिशयोक्ति अलङ्कार बताकर निर्द्देश किया है,—

"कविप्रौढ़ोक्तिसिद्धातिशयेन स्वत:सिद्धस्यभेदेनाध्यवसितातिशयोक्ति: स च सुदामन्त: सम्बन्धोक्त्या सम्बन्धरूप।'

यह श्लोक दोनो अलङ्कारमें अच्छी तरह लग जाता है,—

"अहो विशालं भूपाल भुवनत्रितयोदरम्।
माति मातुमशक्योऽपि यशोराशिर्यदत्र ते॥"

अर्थात्,—

अमित राशि यशकी यदपि तदपि जगत्-उर बीच।
पैठि जात नृप देखिये कत हं ऊंच न नीच॥

यहां यशोराशि आधेय है। पहले यह इतनी बड़ी बताई गई, कि इसका परिमाण न किया जा सका। फिर त्रिभुवनको आधार मान इतना बड़ा बताया, कि वह इसे धारण कर सका था।

६ न्यायमतसे—हेतु—उदाहरण अधिक, अधिक हेतु आदिकथन, संबब और मिसालका ज्यादा देना। (क्लो०) ७ आधिक्य, बहुतायत। (अव्य०) ८ अधिक मात्रामें, बहुत ज्यादा।

अधिकक्षयकारिन् (सं० त्रि०) अत्यन्त विनाशक, बहुत बरबादी करनेवाला।

अधिकण्टक (सं० पु०) यासक्षुप, दुरालभाविशेष।

अधिकतम (सं० त्रि०) अधिक-तमप्। अनेकके मध्य अधिक, अत्यन्त उत्कृष्ट; सबसे ज्यादा, निहायत उम्दा।

अधिकतर (सं० त्रि०) अधिक-तरप्। दोके मध्य एकसे अधिक, दोमें एकसे ज्यादा।

अधिकता (सं० स्त्री०) ज्यादती, बहुतायत।

अधिकतिथि (सं० स्त्री०) अतिरिक्त तिथि, जो सौर वर्ष पूरा करनेको जोड़ी जाती है।

अधिकदन्त, अधिदन्त (सं० पु०) फ़ालतू दांत जो दूसरेपर जम आता है।

अधिक-दिन, अधिदिन (सं० क्लो०) फ़ालतू दिन, जो सौर वर्ष पूरा करनेमें जुड़ता है।

अधिकन्तु (सं० अव्य०) अधिकं-तु। और भी, इससे भी ज्यादा।

अधिकप्रिय (सं० क्लो०) त्वक्, दालचीनी।

अधिकमांसार्मन् (सं० क्लो०) आंखका उभरा हुआ मांस।

अधिकमास (सं० पु०) कर्मधा०। अधिक मास जो सौर वर्ष पूरा करनेको जोड़ा जाता है, मलमास, लौंदका महीना। मलमास देखो।

अधिकरण (सं० क्लो०) अधि-कृ-ल्युट्। आधारोऽधिकरणम्। पा १।४।४५। आधार, सहारा।

व्याकरणमें कर्ता और कर्मकी क्रियाका जो आधार होता है, उसे अधिकरण-कारक कहते हैं। जैसे—कटे आस्ते अर्थात् वह चटाईपर बैठा है। यहां 'वह' कर्ता है। इस कर्ताकी वास-रूप क्रियाका आधार 'कट' है। इसलिये कट अधिकरण कारकमें प्रयुक्त हुआ है। पुनश्च—,—स्थाल्यां पचति अर्थात् बरतनमें वह भोजन बनाता है। यहां अन्नादि पाक-क्रियाका आधार स्थाली है। इसलिये स्थाली अधिकरण कारक बन गई है।

"औपश्लेषिको वैषयिको ऽभिव्यापकश्चेत्याधारस्त्रिधा।" (भट्टोजिदीक्षित)

आधार तीन प्रकारका है,—१ औपश्लेषिक, २ वैषयिक और ३ अभिव्यापक। किसी अवयवसे जो संयोग रहता है, उसे औपश्लेषिक आधार कहते हैं। यथा, 'कटे आस्ते' अर्थात् वह चटाईपर बैठा है। किसी विषयको बोध करानेवाला आधार वैषयिक है। यथा, 'मोक्षे इच्छास्ति' अर्थात् मोक्षपानेकी उसकी इच्छा है। तात्पर्य यह, कि मोक्ष उसकी इच्छाका विषय है। जहां आधारमें आधेय वस्तु सम्पूर्ण रूपसे व्याप्त रहती, वहीं अभिव्यापक होता है। यथा, 'दुग्धे-

माधुर्यमस्ति' अर्थात् दूधमें माधुर्य विद्यमान है। यहां माधुर्य गुण समस्त ही दुग्धमें व्याप्त हो रहा है। वोपदेवके मतसे आधार चतुर्विध है—सामीप्याश्लेषविषयैर्व्याप्त्याधारश्चतुर्विधः। सामीप्य, आश्लेष, विषय और व्याप्ति। सामीप्यका अर्थ समीपका भाव है; यथा, 'गङ्गायां घोषः' अर्थात् गङ्गाके समीप या लक्षणद्वारा किनारेपर घोष रहता है। आश्लेष एकदेशसम्बन्धको कहते हैं; यथा, 'कानने वसति' अर्थात् वनके एकदेशमें रहता है। किसी वस्तुकी आसक्ति विषय होती है; यथा, 'धने स्पृहा' अर्थात् उसे धन पानेकी बड़ी लालसा है। जब एक पदार्थ दूसरेमें रहता, तब व्याप्ति समझी जाती है; यथा, 'सकले स्थितः' अर्थात् वह सकल जगत्में व्याप रहा है। अधिकरण-कारकमें सप्तमी-विभक्ति होती है। सप्तम्यधिकरणे च। पा २।३।३६। न्यायमतमें यह विषयादि पञ्चाङ्गका विवेचनात्मक शास्त्र है,—

"विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्।
निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्॥"

विषय, विशय, पूर्वपक्ष, उत्तर और निर्णय—इसी पञ्चाङ्गको अधिकरण कहते हैं। पञ्चाङ्गका विस्तृत विवरण इसतरह है,—१ विषय—अर्थात् विचारके योग्य वाक्य, २ विशय—किसीके अर्थ निश्चय न होनेका संशय, ३ पूर्वपक्ष—प्रकृत अर्थका विरोधी तर्क, ४ उत्तर—किसी विषयका सिद्धान्त करनेपर उसके अनुकूल तर्क और ५ निर्णय—महावाक्यके तात्पर्यका निश्चय। "एवं क्रमेण विवेचनमत्राधिक्रियते इत्यधिकरणम्।"(तिथ्यादितत्त्व) उक्त पञ्चाङ्गके विचारसे इस विषयादि-विवेचन-शास्त्रका नाम अधिकरण पड़ा है।

अधिक्रियतेऽर्थाद्विचारोऽस्मिन्ननेनेति वा अधिकरणम्। वेदविचारात्मक ग्रन्थमीमांसा विशेष भी अधिकरण है। यह दो प्रकारका होता है,—कर्ममीमांसा और ब्रह्ममीमांसा। जैमिनि-प्रणीत कर्ममीमांसा ही कर्मकाण्डके ब्रह्मविचारका ग्रन्थ है। इसे पूर्वमीमांसा भी कहते हैं। फिर, वेदव्यास-प्रणीत ब्रह्ममीमांसा ब्रह्मकाण्ड-वेदविचार-ग्रन्थ है। यह उत्तर मीमांसा कहलाता है।

अधिकरणता (सं० स्त्री०) अधिकरण-तल्। अधिकरणमिति प्रतीतिसाक्षिको धर्मविशेषः। (मीमांसा) न्याय-मतसे—प्रतीतिसाक्षिक धर्मविशेष। 'घटवत् भूतले' इत्यादिसे भूतलमें घटकी अधिकरणता समझ पड़ती है।

अधिकरणभोजक (सं० पु०) न्यायाधीश, हाकिम, जज।

अधिकरणमण्डप (सं० क्ली०) न्यायालय, अदालत, कचहरी।

अधिकरणविचाल (सं० पु०) अधिकरणस्य विचालः अन्यथाकरणम्, वि-चल-घञ्; ६-तत्। अधिकरणविचाले च। पा ५।३।४३। १ द्रव्यको अवस्थान्तर देना, चीज़को हालतका बदलना। २ संख्यान्तरका करना, अददका घटाना-बढ़ाना। यह एक राशिको भाग करना किंवा अनेक राशिको एक भाग बनाना है। जैसे यदि एक राशिके पांच भागका एक भाग बना, तो अधिकरणका संख्याविचाल हुआ। यथा काशिका,—

"अधिकरणं द्रव्यं, तस्य विचालः संख्यान्तरापादनम्। एकं राशिं पञ्चधा कुरु, अष्टधा कुरु; अनेकमेकधा कुरु।"

अधिकरणसिद्धान्त (सं० पु०) यस्यार्थस्य सिद्धौ जायमानायामेवान्यस्य प्रकरणस्य प्रस्तुतस्य सिद्धिर्भवति सः। गौ० सू० १।१।३०। न्यायमतसे—अन्य प्रकरणको सिद्ध करनेवाली सिद्धि, जिस सिद्धिसे दूसरी सिद्धियां भी मिल जायें।

अधिकरणिक (सं० पु०) अधिकरण-ठन्, अधिकरणं धर्माधिकरणं आश्रयतया अस्ति अस्य। विचार करनेके निमित्त धर्माधिकरण मण्डपमें नियुक्त प्राड्विवाक, विचारपति, मुनसिफ़, सदरआला, जज।

अधिकरणैतावत्व (सं० क्ली०) नीचेके आधारका नियत परिमाण, नीचेकी तहकी बंधी हुई मिक़दार।

अधिकरण्य (सं० क्ली०) अधिकार, बल; इख़्तियार, ज़ोर।

अधिकर्म, अधिकर्मन् (सं० अव्य०) कर्मणि विभक्त्यर्थे अव्ययी० वा अच् समासान्त। १ कर्माधिकृत, सच्चे कामसे। (क्ली०) अधिकं कर्म प्रादि-स०। २ अधिक कर्म, बड़ा काम। ३ पर्य्यवेक्षण, देख-भाल। (त्रि०) बहुव्री०। ४ अधिक कर्मयुक्त, बड़े काममें फंसा हुआ।

अधिकर्मकर (सं० पु०) अधिकं कर्म तत् करोतीति, कृ-आलोम्यादौ ट। दासविशेष, सेवकविशेष, शुश्रूषकविशेष; मज़दूरोंका जमादार।

अधिकर्मकृत (सं० पु०) अधिकं कर्म-अधिकर्म, तत् कृतं येन। दासविशेष, शुश्रूकविशेष, नौकरोंका चौधरी।

अधिकर्मिक (सं० पु०) अधिकृत्य हट्टं कर्मण्यलम्, अधिकर्म-ठन्। अषडक्षाशित'ग्वल'कर्माल'पुरुषाध्युत्तरपदात् खः। पा ५।४।७। हाटका अध्यक्ष, बाज़ारका दारोगा।

अधिकल्पिन् (वै० पु०) होशियार जुआरी, चालाक किमारबाज़।

अधिकवाक्योक्ति (सं० स्त्री०) अत्यन्त सम्भाषण, बढ़ावा, अधिक प्रशंसा, हदसे ज़्यादा तारीफ़।

अधिकषष्टिक (सं० त्रि०) परिमाण या मूल्यमें साठसे अधिक या ज़्यादा।

अधिकसंवत्सर (सं० पु०) सौर वर्ष पूर्ण करनेको जोड़ा जानेवाला अतिरिक्त मास, महीना जो शम्सी साल पूरा करनेको ऊपरसे जोड़ लिया जाये।

अधिकसाप्ततिक (सं० त्रि०) परिमाण या मूल्यमें सत्तरसे अधिक या ज़्यादा।

अधिकांग, अधिकाङ्ग देखो।

अधिकांश (सं० पु०) १ अतिरिक्त भाग, ज़्यादा हिस्सा। (हिं० क्रि०-वि०) २ विशेषतः, ज़्यादातर। ३ प्रायः, अकसर।

अधिकाई (हिं० स्त्री०) १ आधिक्य, बढ़ती; बड़ाई, महिमा।

अधिकाङ्ग (सं० क्ली०) अधिकोऽङ्गात्। १ योद्धाओंके हृदयपर दृढ़ रूपसे कवच बांधनेके लिये पट्टिकादि, कमरबन्द। (त्रि०) अधिकमङ्गं यस्य, बहुव्री०। २ अधिक अङ्गयुक्त, बोससे अतिरिक्त अङ्गुल्यादि अङ्गयुक्त; ज़्यादा अज़ावाला, जिसके मामूलीसे ज़्यादा आज़ा हों।

अधिकाधिक (सं० त्रि०) एक दूसरेसे बढ़कर, ज़्यादासे ज़्यादा।

अधिकानन—दक्षिण-देशीय कवि अय्यरके भ्राता। पहले यह राजकर्तृक प्रतिपालित होते थे, पीछे राजवंश-सम्भूत बताये गये। इन्होंने नानाविषयिणी कविता बनाई थी।

अधिकाना (हिं० क्रि०) १ अधिक हो जाना, ज़्यादा देखाई पड़ना। २ बढ़ना, ऊपर चढ़ना।

अधिकाभेदरूपक (सं० पु०) अलङ्कार विशेष। चन्द्रालोकमें लिखा है, कि रूपक-अलङ्कारके तीन भेद होते हैं। इनमें अधिकाभेदरूपक वह है, जो उपमान और उपमेयका कई प्रकार अभेद बता फिर उपमेयमें कुछ विशेषता दिखाता है,—

शुभग, सुशीतल, भावनो सुन्दर आनन्दकन्द।
रैन-दिवस नित रहत है शोभित आनन-चन्द॥

यहां चन्द्र उपमान और मुख उपमेय है। पहले तो शुभगता, शीतलता, सुन्दरता आदि गुण दोनोमें समान बताये थे, किन्तु पोछे मुखको दिन-रात शोभित रहनेवाला कह उसका गुण चन्द्रसे बढ़ा दिया गया।

अधिकाम (सं० पु०) १ अधिक काम, अत्यन्त अभिलाष, ज़्यादा ख़्वाहिश। (त्रि०) अधिकः कामो यस्य, बहुव्री। २ अत्यन्त कामयुक्त, निहायत ख़्वाहिशमन्द।

अधिकार, अधीकार (सं० पु०) अधि-कृ-घञ्। १स्वामित्व, आधिपत्य। २ नियोग अर्थात् कर्तव्य कर्म, कार्यभार। ३ आरम्भ, अनुष्ठान; शुरू, आग़ाज़। ४ स्वीकार, मञ्जूर। ५ स्वत्व, हक़। ६ प्रकरण, सिलसिला। ७ पद, दरजा। ८ गवर्नमेण्ट, सरकार,। ९ जायदाद, सम्पत्ति। १० सम्बन्ध, रिश्ता। ११ प्रमाण, हवाला। १२ चेष्टा, कोशिश। १३ विषय, मज़मून। १४ वाक्य, फ़िक़रा। १५ राजाका छत्रादि धारण। १६ व्याकरणप्रसिद्ध अनुवृत्तिका सम्बन्ध। १७ न्यायमतसे—प्रवर्तमान पुरुषनिष्ठताको जायमान सत्प्रकृतिका हेतु, धर्मविशिष्ट द्वारा कृतकर्मका फलजनकत्व। १८ काव्यज्ञोंके मतसे—व्यवस्थापन। मेघदूतमें लिखा है,—"कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः।"

अर्थात् अपने नियोगसे प्रमत्त होकर इत्यादि। यहां अधिकार-शब्द नियोग-अर्थमें आया है।

'स्वाधिकारात् स्वनियोगात्' इति मल्लिनाथः।

अधिकारविधि (सं० पु०) अधिकारे फलस्वाम्ये विधिर्विधानम्। (वाच०) मीमांसोक्त विधिविशेष, यह बतानेका कायदा, कि मनुष्य जो कर्म करता, उससे कैसा फल निकलता है। मीमांसा-शास्त्रके अनुसार जो जैसा फल चाहे, वह वैसा ही यज्ञकर पा सकता है। स्वर्गकामनावालेको अग्निहोत्र और राजाको राजसूय यज्ञ करना चाहिये।

अधिकारस्थ (सं० त्रि०) न्यायालयमें प्रतिष्ठित, दफ़तरमें मुक़र्रर।

अधिकाराढ्य (सं० त्रि०) क्षमता सम्पन्न, इख़्तियारवाला।

अधिकारिता (सं० स्त्री०) अधिकारिणः भावः, तल्। तस्य भावस्त्वतलौ। पा ५।१।११९। अधिकारित्व, स्वामित्व।

अधिकारित्व (सं० क्ली०) स्वामित्व, इजारा।

अधिकारिन् (सं० त्रि०) अधि-कृ-णिनि। १ स्वामी, स्वत्ववान्, जिसे अधिकार प्राप्त हो; मिलक्रियतवाला। (पु०) २ अध्यक्ष, हाकिम। ३ प्रभु, मालिक। ४ वेदान्तशास्त्रवेत्ता, वेदान्तमें पारङ्गत पुरुष। ५ मूर्त्यादिका वेशकर्ता, तस्वीरें बनानेवाला कारीगर।

बङ्गालमें 'अधिकारी' उपाधिधारी ब्राह्मणों और वैष्णवोंकी एक श्रेणी है। अधिकारी ब्राह्मण सकल ही विष्णुमन्त्रसे दीक्षित होते हैं। यह कितने ही नवशाख और नीच जातिके गुरु हैं। इनके शिरपर बड़ी बड़ी शिखाका गुच्छा रहता और सर्वाङ्गमें गोपीमृत्तिकाका लाल तिलक और राधाकृष्णनामकी छाप होती है। कण्ठमें मोटी-मोटी तुलसीकी माला लटकती है। नीच जातिके गुरु होनेसे इनके घरमें सद्ब्राह्मण भोजनादि नहीं करते। फिर भी, यह नियम बङ्गालमें सर्वत्र प्रचलित नहीं। किसी किसी स्थानमें विशुद्ध राढ़ीय ब्राह्मण इनके घर विवाहादि भी कर लेते हैं।

अधिकारी (सं० पु०) १ पुरुष, मर्द। २ प्रभु, मालिक। ३ स्वत्ववान्, हक़दार। ४ क्षमताशील पुरुष, इख़्तियारवाला आदमी। (स्त्री०) अधिकारिणी।

अधिकार्थ (सं० त्रि०) एकसे अधिक अर्थ रखनेवाला, जिसमें एकसे ज़्यादा माने निकलें, बढ़ाकर बताया गया, मुबालग़ा दिया हुआ।

अधिकार्थवचन (सं० क्ली०) स्तुति-निन्दाप्रयुक्तं अध्यारोपितार्थवचनं अधिकार्थवचनम्। स्तुति किंवा निन्दा द्वारा आरोपित वस्तुके धर्मसे भी अतिरिक्त गुणवचन, तौक़ीर या हिक़ारतसे किसी चीज़की इतनी तारीफ़, जितनी क़ाबिलियत उसमें न हो; अतिरिक्त स्तुति या निन्दा द्योतक वाक्य, ज़्यादा तौक़ीर या हिक़ारत ज़ाहिर करनेवाला फ़िक़रा। जैसे—तृण वातच्छेद्य है; यहां, दुर्बलता-प्रयुक्त निन्दा देख पड़ती है। फिर नदीको काकपेया बतानेसे उसके जलपूर्ण होनेके गुणकी प्रशंसा है।

अधिकृच्छ्र (सं० पु०) अधिकं कृच्छ्रं कष्टं साधनतयाऽस्त्यस्य। १ एक मास-साध्य अधिकृच्छ्र नामक व्रत विशेष। (क्ली०) प्रादि-स०। २ अधिक कष्ट, ज़्यादा तकलीफ़। (त्रि०) ३ अधिककष्टयुक्त, बड़ी मुश्किलमें पड़ा हुआ।

अधिकृत (सं० पु०) अधि-कृ-क्त। १ अध्यक्ष, हाकिम। २ अधिकारी, हक़दार। ३ आयव्ययादिका अवक्षेपक, आमदनी ख़र्च वग़ैरह जांचनेवाला। (त्रि०) ४ नियुक्त, मुक़र्रर किया गया। ५ अधिकार किया हुआ, जिसपर क़ब्ज़ा हो गया हो।

अधिकृति (सं० स्त्री०) अधि-कृ-क्तिन्। १ अधिकार, क़ब्ज़ा। २ स्वत्व, हक़, दावा।

अधिकृत्य (सं० अव्य०) १ शीर्षपर स्थान देकर, प्रधान विषय बनाकर। २ विषयमें, बाबत। ३ प्रमाणसे, हवालेपर।

अधिक्रम (सं० पु०) अधि-क्रम-घञ् भावे, मान्तात् न वृद्धिः। नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः। पा ७।३।३४। १ आक्रमण, हमला। २ आरोहण, चढ़ाई।

अधिक्रमण (सं० क्ली०) आक्रमण, मारनेका कार्य, हमला करनेका काम।

अधिक्षित् (सं० त्रि०) अधि-क्षि-क्विप् कर्तरि। १ क्षयकारी, नाशकरनेवाला। (क्ली०) भावे क्विप्। २ क्षय, नाश। (वै० पु०) ३ राजा, बादशाह।

अधिक्षिपदब्जनेत्र (सं० त्रि०) ऐसे नेत्रोंवाला, जो कमलकी आभाको मार दें, जिसकी आंखें ऐसी हों, कि उनसे नरगिस झेंप जाये।

अधिक्षिप्त (सं० त्रि०) अधि-क्षिप-क्त। १ तिरस्कृत, निन्दित; हकीर, जिसे लोग बुरा समझें। २ प्रेरित, कृताधिक्षेप; जो फेंका गया हो, डाला जानेवाला।

अधिक्षेप (सं० पु०) अधि-क्षिप-घञ् भावे। १ तिरस्कार, निन्दा; हिक़ारत, मलामत। २ स्थापन, प्रेरण; चालान, रवानगी।

अधिगणन (सं० क्ली०) १ अतिरिक्त गणन, ज़्यादा शुमार। २ अधिक मूल्यका लगाना, ज़्यादा दामका जोड़ना।

अधिगत (सं० त्रि०) अधि-गम-क्त कर्मणि। १ स्वीकृत, प्राप्त; दस्तयाब। २ विदित, जाना-माना।

अधिगन्तव्य (सं० त्रि०) १ गमन करने योग्य, जाने क़ाबिल। २ प्राप्तव्य, जो मिल सके।

अधिगन्तृ (सं० पु०) १ अग्रसर होनेवाला पुरुष, आदमी जो आगे बढ़े। २ प्राप्त करनेवाला व्यक्ति।

अधिगम (सं० पु०) अधि-गम-घञ्, न दीर्घः। "व्याख्यानादिरूपोपदेशजनितं ज्ञानम्।" (सर्व० दं० सं०) १ ज्ञान, समझ। २ प्राप्ति, पहुंच। ३ स्वीकार, मञ्जूरी। ४ लाभ, फ़ायदा। ५ उपार्जन, कमाई। ६ व्याख्यानादिरूप उपदेशसे उत्पन्न हुआ ज्ञान, जो समझ लेक्चर सुननेसे आये।

अधिगमन (सं० क्ली०) १ आविष्कार, ईजाद। २ प्राप्ति, पहुंच। ३ अध्ययन, मुतालह। ४ सहवास; शादी, हमबिस्तरी।

अधिगर्त्य (वै० अव्य०) सारथीके स्थानपर प्राप्त होकर, गाड़ीवानकी जगह पर पहुंचकर।

अधिगव (वै० अव्य०) गवि-विभक्त्यर्थे अव्य०, वेदे अच्। (वाच०) गौसे प्राप्तकर, गायसे पाकर।

अधिगुण (सं० पु०) अधिकः गुणः, प्रादि-स०। १ अतिशयित विनयादि गुण, हदसे ज़्यादा आजिज़ी वग़ैरह सिफ़त। (त्रि०) अधिको गुणो यस्य, बहुव्री०। २ अधिक गुणयुक्त, ज़्यादा सिफ़तवाला। (अव्य०) अधिरूढ़ो गुणो यत्र। ३ ज्याधिरूढ़ धनुषसे, रोदा चढ़ी हुई कमानपर।

अधिगुप्त (सं० त्रि०) अधिक रूपसे गुप्त, सुरक्षित; खूब छिपा हुआ, महफ़ूज़।

अधिचङ्क्रम (वै० त्रि०) किसी वस्तुपर चलता या रेंगता हुआ।

अधिचरण (सं० क्ली०) किसी वस्तुपरका चलना, हिलना-डोलना या ठहरना।

अधिज (सं० त्रि०) उच्चकुलसम्भूत, ऊंचे खान्दानमें पैदा हुआ, जो अपने वंशके कारण उच्च हो, खान्दानमें सबसे बड़ा।

अधिजनन (सं० क्ली०) उत्पत्ति, पैदायश।

अधिजानु (सं० अव्य०) जानु या घुटनोंपर।

अधिजिह्व (सं० पु०) अधिका जिह्वा यस्य। १ द्विजिह्व सर्प, दो ज़बानका सांप। सांपकी जीभ फटी रहती है, इसीसे इसे द्विजिह्व या अधिजिह्व कहते हैं। सर्पके द्विजिह्व होनेका वृत्तान्त महाभारतमें इसतरह लिखा है,—

सागर मन्थन हो गया था। सागरसे उच्चैःश्रवा, ऐरावत, सोम, अमृत प्रभृति कितनी ही सामग्री निकल आई। एक दिन कद्रु और विनता—दोनो सपत्नी-भगिनी बैठ कहानी कह रही थीं। पारिजातकी कहानी, माणिककी कहानी, बात-बातमें उच्चैःश्रवाकी कहानी छिड़ गई। विनताने कहा,—"मुझे समझ पड़ता, कि घोड़ेकी पूंछ सफ़ेद है।" कद्रु भी बोल उठी,—"नहीं, बहन! मेरी समझमें घोड़ेका अयाल काला है। अच्छा, तो आओ; इस विषयमें हम पण करें, जो हरेगा, उसीको जन्मकी भांति, दासी बनकर रहना होगा।" उच्चैःश्रवा वास्तविक श्वेतवर्ण अश्व है। कद्रुने देखा, कि हार जानेसे सपत्नीके पास दासी बनकर रहना होगा; उससे एक छल करना उन्हें उचित समझ पड़ा। यही स्थिर कर उन्होंने अपने सन्तान—सर्पोंसे बुलाकर कहा,—"वत्स! कल तुम उच्चैःश्रवा घोड़ेकी पूंछमें लिपट काले रूएं जैसे दिखाई देना। ऐसा न करनेसे मैं सपत्नीके सामने हार जाऊंगी, मुझे जन्मकी भांति

दासी बनकर रहना होगा।" सर्पोंने वही किया। उसीसे विनता हारीं, कद्रूको जीत हुई थी। एक दिन विनताके पुत्र गरुड़ने सर्पोंसे पूछा, कि किसतरह तुम हमारी जननीको दासीत्वसे मुक्त कर सकते हो। सर्प बोले,—"आप अमृत ला दीजिये। अमृत मिलनेसे ही हम तुष्ट होंगे और आपकी जननी दासीत्वसे मुक्त हो जायेंगी।" गरुड़ने यह बात सुन महाकष्टसे अमृतकुम्भ लाकर कुशके ऊपर रख दिया। उन्होंने अमृत रखकर सर्पोंसे कहा,—"अब तो, मेरी जननी दासीत्वसे मुक्त हुई। यह अमृत रखा है, आप स्नानाह्निक कर इसे पीजिये।" सर्प स्नान करने चले गये, देवराज इन्द्रने वह सुयोग देख चुपके-चुपके उस अमृतभाण्डको चुरा लिया। सर्पोंने जाकर देखा,—अमृत नहीं पाया, किसीने चुरा लिया था। उसीसे वे मनमें दुःखित हो कुश चाटने लगे। कुशकी तीक्ष्ण धारसे सर्पोंकी जिह्वा फट जानेके कारण, उनका नाम 'द्विजिह्व' पड़ा था।

२ कण्ठगत मुखरोगविशेष, जीभकी सूजन।

अधिजिह्वक (सं० पु०) जिह्वागत रोगविशेष, जीभकी एक बीमारी। यह रोग कफ-शोणितसे उत्पन्न होता, जिसमें जिह्वापर जिह्वाग्रवत् शोथ रहता है। पक जानेसे यह असाध्य है। इसमें और उपजिह्वामें यही भेद है, कि यह जीभके ऊपर और वह जीभके नीचे होती है। आयुर्वेदमें इस रोगका लक्षण यह लिखा है,—

"जिह्वाग्ररूप: श्वयथु: कफात्तु जिह्वाप्रबन्धी परिरक्तमिश्र:।"
(सुश्रुत० नि० १६ अ०)

अधिजिह्वा, अधिजिह्विका (सं० स्त्री०) जिह्वारोग विशेष, जीभकी एक बीमारी। अधिजिह्वक देखो।

अधिज्य (सं० क्ली०) ज्या गुणमधिकृतं अध्यारूढ़ा ज्या यत्र वा। 'मौर्वी ज्या शिञ्जिनी गुण'-इत्यमर:। आरोपित गुणक धनु:, धनुष, जिसका गुण चढ़ा हो; खिंचे हुए रोदेकी कमान। शकुन्तलामें लिखा है,—

"कृष्णसारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके।
मृगानुसारिणं साक्षात् पश्यामीव पिनाकिनम्॥"

कृष्णसार मृग और ज्या-युक्त-धनुर्धारी आपके प्रति दृष्टिपात करनेसे ठीक मृगानुसारी पिनाकी-जैसा देख पड़ता है।' (त्रि०) २ प्रत्यञ्चा चढ़ा या रोदा खिंचा हुआ।

अधिज्योतिषम् (सं० अव्य०) सूर्यतारकादिज्योतिषके अधिकारसे, रोशनी या दुनियावी सितारों और सैयारोंकी बाबत।

अधित्य (सं० अव्य०) ऊपर होकर, ऊंचे चढ़कर।

अधित्यका (सं० स्त्री०) अधि-त्यकन्। उपाधिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढ़यो:। पा ५।२।३४। पर्वतके ऊपरकी भूमि, पहाड़के ऊपरकी ज़मीन, उच्च और प्रस्तरमय पृथिवी। (Table land) इसके विरुद्ध पर्वतकी निकटवर्ती भूमि उपत्यका कहलाती है। कालिदासका वचन है,—

"अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमत: प्रफुल्लम्॥" (रघु० २।२९।)

'पर्वतकी धातुमयी अधित्यका प्रफुल्ल लोध्रद्रुम-जैसी देख पड़ी।'

अधिदण्डनेतृ (सं० पु०) १ दण्ड देनेके लिये नियुक्त किया गया कर्मचारी, हाकिम जो सज़ा देनेके लिये मुक़र्रर हो। २ यम।

अधिदन्त, अधिदन्तक (सं० पु०) अध्यारूढ़ो दन्तम्, अत्या-तत्। दन्तमूलगत रोगविशेष, गजदन्त, दांतके ऊपरका दांत। घोड़ेके दांतपर कभी छःसे भी ज़्यादा दांत निकल आते हैं, जिससे घास खानेपर उसका मन भाग जाता है। सात या आठ दांत जिस घोड़ेके दांतपर जम उठते, उसे अधिदन्त कहते हैं,—

"सप्तभिश्चाष्टभिर्दन्तै: स्यातश्चाधिकदन्तक:।" (जयदत्त अश्वचि० ३अ०)

अधिदार्व (सं० त्रि०) काष्ठमय, लकड़ीका।

अधिदिन (सं० क्ली०) अतिरिक्त दिन जो सौरमास पूरा करनेको जोड़ा जाये।

अधिदेव (सं० पु०) अधिकृतो देवो येन, प्रादि बहुव्री०। परमेश्वर सकल देवताओंका अधिप।

अधिदेवता (सं० स्त्री०) अधिष्ठात्री देवता, शाक० तत्। देवात्तल्। पा ५।४।२७। अधिष्ठात्री देवता, कुलदेवी। हमारे हिन्दू शास्त्रानुसार एक-एक स्थान किंवा वस्तुमें एक-एक देवता अधिष्ठित हैं। यह उस-उस स्थान किंवा वस्तुकी अधिष्ठात्री देवता हैं। जैसे, 'जलदेवता' कहनेसे जलकी अधिष्ठात्री देवता समझी जाती हैं,

'वनदेवता' कहनेसे वनाधिष्ठात्री देवताका बोध होता है। अन्तर्यामी अमृतस्वरूप परब्रह्म हैं। वह सर्वत्र अधिष्ठित हैं; फिर भी सकल वस्तुसे पृथक् उन्हें कोई नहीं समझता। हमारी एक-एक इन्द्रियकी एक-एक अधिष्ठात्री देवता कल्पित हुई हैं। जैसे,—कर्णकी दिक्, त्वक्के वायु, चक्षुके सूर्य, जिह्वाके वरुण, नासिकाके अश्विनीकुमार, वागिन्द्रियके अग्नि, हस्तके इन्द्र, पैरके उपेन्द्र, पित्तके मित्र, उपस्थके प्रजापति, मनके चन्द्र।

अधिदेवन (वै॰ त्रि॰) १ भवनका वह भाग जिसमें द्यूत होता हो, जुआ खेलनेका कमरा।

अधिदैव (सं॰ क्ली॰) १ परमेश्वर। २ इष्टदेव। २ अधिष्ठाता देव।

अधिदैवत (सं॰ क्ली॰) अधिष्ठातृ दैवतम्, प्रादि-स॰। १ अधिष्ठात्री देवता। २ अन्तर्यामी पुरुष, परमेश्वर। ३ आधिदैविक रोग। (अव्य॰) ४ देवताके अधिकारसे।

अधिदैविक (सं॰ त्रि॰) अधिदेव-सम्बन्धीय, रूहानी।

अधिनाथ (सं॰ पु॰) अधिकः नाथः, प्रादि-स॰। १ अधीश्वर, बड़ा मालिक। २ नायक, सरदार, अफ़सर। ३ काल-योग-शास्त्रके रचयिता।

अधिनाय (सं॰ पु॰) अधि-नी-घञ्, अधिनीयते वायुनासौ इति। गन्ध, सौरभ; खुशबू।

अधिनायक (सं॰ पु॰) १ सरदार, अफ़सर। २ प्रभु, मालिक।

अधिनिर्णिज् (वै॰ त्रि॰) जिसपर घूंघट पड़ा हो, नकाबसे छिपा।

अधिप (सं॰ पु॰) अधि-पा-क, अधिपातीति। आतश्चोपसर्गे कः। पा ३।२।३। १ राजा, बादशाह। २ ईश्वर। ३ प्रभु, मालिक। ४ अधिकारी, सरदार, अफ़सर।

अधिपति (सं॰ पु॰) अधिकः पतिः, प्रादि-स॰। १ ईश्वर। २ शिरका वह भाग विशेष जहां मारका आघात विशेष रूपसे होता है। "तत्र रोमावर्तस्थानं मस्तकाभ्यन्तरे सर्वशिरासम्मिलनस्थानञ्च।" (सुश्रुत॰ शा॰ ६ अ॰।) ३ स्वामी, शौहर। ४ प्रभु, मालिक। बौद्धमतमें चार अधिपति माने गये हैं,—१ यज्ञाधिपति, २ वित्ताधिपति, ३ वीर्याधिपति और ४ व्ययाधिपति।

अधिपतिप्रत्यय (सं॰ पु॰) विषयको ग्रहण करनेका संयम। यह नियम बौद्ध-दर्शनके अन्तर्गत है।

अधिपतिवती (सं॰ स्त्री॰) देवीविशेष।

अधिपत्नी (सं॰ स्त्री॰) महारानी, मलका।

अधिपथम् (सं॰ अव्य॰) राह पर, सड़कपर।

अधिपा (सं॰ त्रि॰) अधिपातीति, अधि-पा-क्विप्। १ अधीश्वर, राजा। २ अधिपति, सरदार। ३ अधिपालक, परवरिशकुनिन्दा।

अधिपांशुल, अधिपांसुल (सं॰ त्रि॰) मलिन, मैला, गर्दखोर, धूलिसे धूसरित।

अधिपुरुष, अधिपूरुष (सं॰ पु॰) अधिकः उत्तमः पुरुषः, प्रादि स॰। १ परमेश्वर। २ श्रेष्ठ पुरुष। विश्वात्माके औरस और शतरूपाके गर्भसे स्वायम्भुव मनुका जन्म हुआ था। इन्हें ही पुराणकार अधिपुरुष कहते रहे,—

> "ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन् मनुः। ४४
> स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम्।
> तद्रूपगुणसामान्यादधिपुरुष उच्यते।" ४५
>
> (मत्स्यपुराण चतुर्थ अध्याय।)

'इसके बाद बहुत दिनमें मनु नामक उनके एक पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनका नाम स्वायम्भुव रखा गया। हमने सुना है, कि वही विराट् कहलाते हैं। रूपगुणका सादृश्य रहनेसे उनका नाम अधिपुरुष पड़ा है।'

ऋग्वेद और अथर्ववेदके पुरुष-सूक्तमें अधिपुरुष शब्दका उल्लेख वर्त्तमान है। किन्तु उसमें एक प्रभेद है। इन दोनो ही स्थलोंमें अधि अव्ययके साथ पुरुष शब्दका समास नहीं किया गया,—

"तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।" (ऋग्वेद १०।९०।५।)

'उनसे विराट् और विराटसे पुरुष उत्पन्न हुए थे।'

फिर देखिये,—"विराडग्रे समभवद्विराजो अधि पूरुषः।" (अथर्व॰ १९।३।९।)

'प्रथम विराट् उत्पन्न हुए थे, विराट्से पुरुषने जन्म लिया।'

हम चाहे वैदिक अथवा पौराणिक ही मतको ग्रहण करें, इसी पुरुषसे समस्त सृष्टि हुई है।

अधिपूतभृतम् (वै० अव्य०) विशुद्ध सोमरससे भरे पात्रपर।

अधिपेषण (सं० त्रि०) कूटने या पीसनेपर नियुक्त, जो कुटाई या पिसाईका काम करे।

अधिप्रज (सं० त्रि०) अधिका प्रजा यस्य यस्मिन् वा, बहुव्री०। २ अधिक प्रजायुक्त, ज़्यादा रैयतवाला। (स्त्री०) अधिका प्रजा, प्रादि-स०। अनेक प्रजा, कितनी ही रैयत।

अधिप्रजम् (सं अव्य०) संसाररक्षाके उपायकी भांति जन्म विषयपर।

अधिप्रष्टियुग (सं० क्ली०) १ प्रष्टि या तीन घोड़ेसे आगेवाले पर रखा गया जुआ। किसी-किसी बलिदानके समय जुएमें तीन घोड़े जुतते, जिसमें चौथा भी जोता जा सकता है। 'वाहनत्रयमध्यवर्त्ति युगविशेषः।' (सायण०) (पु०) २ चौथा घोड़ा, जो किसी-किसी बलिदानके समय जुएवाले तीन घोड़ोंके साथ जोत दिया जाता है।

अधिभू (सं० पु०) अधि-भू-क्विप्, अधिभवतीति। स्वाम्यर्थेऽत्राधि। १ राजा, बादशाह। २ स्वामी, पति। ३ प्रभु, मालिक।

अधिभूत (सं० क्ली०) १ जड़ पदार्थका आत्मा, बेजान चीज़की रूह। "यमधिकृत्य यो वर्तते स एव तस्याधिभूतो नाम। यथा यस्य नामेन्द्रियस्य यत् कार्य्यभूतं तदेव कार्यं तस्येन्द्रियस्याधिभूतविषयः।" (सुश्रुत० शा० १ अ०) २ ईश्वरकी सत्ता। ३ परमेश्वर। ४ प्रकृति, कुदरत।

अधिभूतम् (सं० अव्य०) जड़ पदार्थके विषयमें, बेजान चीज़की बाबत।

अधिभोजन (सं० क्ली०) अधिकं अतिरिक्तं भोजनम्, प्रादि-स०। १ अत्यन्त भोजन, ज्यादा गिज़ा। (त्रि०) अधिकं भोजनं धनं मूल्यं वा यस्य, बहुव्री०। २ अधिकमूल्य-लभ्य, बेशक़ीमत। वेदमें भोजन शब्द धनके अर्थसे प्रयोग किया गया है,—

"दशाश्वान् दश कोशान् दश वस्त्राधिभोजना।
दशो हिरण्यपिण्डान् दिवोदासादसानिषम्॥" (ऋग्वेद ६।४७।२३।)

अधिभौतिक, आधिभौतिक (सं० त्रि०) प्राकृतिक, कुदरती।

अधिमंथ (हिं०) अधिमन्थ देखो।

अधिमन्थ (सं० पु०) अधिकं मथ्यतेऽनेन, अधि-मन्थ-घञ् करणे। १ अरणि काष्ठका मन्थनावयवविशेष। २ अभिष्यन्दोत्थ नेत्ररोग विशेष। आंखकी सख्त सूजन। यह रोग चार तरहका होता है,—१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज और ४ रक्तज। अभिष्यन्द या नेत्रशूल उपेक्षित होनेपर अधिमन्थ रोग लग जाता है। इसका लक्षण नीचे देखिये,—

"वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम्।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः॥
उत्पाट्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा।
शिरसोऽर्धञ्च तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः॥
हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्रादधिमन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात्।
षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यात् मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव॥
अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम्।
अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत्॥" (सुश्रुत० उ० ६ अ०)

अधिमन्थन (वै० क्ली०) १ अग्नि उत्पन्न करनेका मन्थन, आग पैदा करनेकी रगड़। (त्रि०) २ अग्नि उत्पन्न करनेके मन्थन योग्य, आग पैदा करनेकी रगड़के क़ाबिल।

अधिमन्थित (सं० त्रि०) नेत्रशूलसे व्यथित, आशोबे-चश्मका बीमार।

अधिमांस (सं० क्ली०) अधिकं मांसमत्र। रोग-विशेष, जिसमें नेत्र या मसूड़ोंका पश्चाद्भाग सूज जाता है, आंखों या मसूड़ोंकी सूजन। दन्त देखो।

अधिमांसक (सं० पु०) अधिकं मांसमत्र कप्, बहुव्री०। दन्तरोगविशेष, दांतकी एक बीमारी। इसका लक्षण यह है,—

"हनुभवान्त्यादन्ते अतिवेदनमहाशोथो लालास्रावश्च भवति। (भावप्र०)
हानव्ये पश्चिमे दन्ते महाशोथो महारुजः।
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः।"
(सुश्रुत० नि० १६ अ०)

अधिमांसार्म (सं० क्ली०-पु०) दृष्टिशुक्लगत रोग-विशेष, आंखकी बीमारी जो नासूरसे होती है। इसका लक्षण नीचे लिखा जाता है,—

"पद्माभं मृदु रक्तार्म यन्मांसं चीयते सितं।
पृथुमृद्वधिमांसार्म बहुलञ्च यकृन्निभम्॥" (माधव० नि०)

अधिमात्र (सं० त्रि०) अधिका मात्रा यस्य। १ अधिक प्रमाण, मौताजसे ज्यादा। (अव्य०) २ कविता-विषयपर, शायरीके मज़मूनसे।

अधिमात्रकारुणिक (सं० त्रि०) १ अधिक रूपसे दयालु, निहायत मेहरबान। (पु०) २ बौद्धोंके एक महाब्राह्मणका नाम।

अधिमास (सं० पु०) अधिको रविसंक्रान्तिद्वयमध्यवर्त्तिचन्द्रमासः, रविसंक्रान्तिशून्यशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त श्चन्द्रमासः, प्रादि-स०। असंक्रान्त मास, अधिकमास; मलमास, लौंदका महीना। मलमास देखो।

अधिमित्र (सं० क्ली०) अधिकं मित्रम्, प्रादि स०। ग्रहगणका परस्पर मिलनविशेष, ग्रहोंका आपसमें मिलान। ज्योतिषके मतसे चन्द्र, मङ्गल और बृहस्पति सूर्यके, सूर्य और बुध चन्द्रके, सूर्य, चन्द्र और बृहस्पति मङ्गलके, सूर्य और शुक्र बुधके, सूर्य, चन्द्र और मङ्गल बृहस्पतिके, बुध और शनि शुक्रके, और बुध और शुक्र शनिके मित्र हैं।

फिर शुक्र और शनि सूर्यके, बुध मङ्गलके, चन्द्र बुधके, बुध और शुक्र बृहस्पतिके, रवि और चन्द्र शुक्रके और रवि, चन्द्र और मङ्गल शनिके शत्रु होते हैं। चन्द्रका कोई शत्रु नहीं। सिवा मित्र और शत्रुके अवशिष्ट ग्रह सम समझे जाते हैं। जैसे,—रविके चन्द्र, मङ्गल और बृहस्पति मित्र, किन्तु शुक्र और शनि शत्रु होते हैं; इसीसे बुध रविके सम हैं।

ग्रहोंके तात्कालिक मित्र-निरूपण करनेका नियम यह है,—जिन ग्रहोंसे चतुर्थ, दशम, द्वितीय, तृतीय और एकादश—इन सकल स्थानोंमें जो सकल ग्रह रहेंगे, वह उन्हीं-उन्हीं ग्रहोंके तात्कालिक मित्र समझे जायेंगे। इन सकल स्थानसे भिन्न दूसरे स्थानमें रहनेसे ग्रह तात्कालिक होते हैं। जो ग्रह जिस ग्रहका स्वाभाविक मित्र, सम और शत्रु हुआ करता, वह तात्कालिक अधिमित्र, मित्र और सम बन जाता है।

अधिमुक्तक (सं० पु०) माधवीलता, चमेली।

अधिमुक्ति (सं० स्त्री०) १ अनुभव, तजरबा। २ दृढ़ विश्वास, पुख्ता एतक़ाद। इस शब्दका व्यवहार बौद्ध अधिक करते हैं।

अधिमुक्तिक (सं० पु०) बौद्ध धर्मानुसार—महाकाल, सबको नाश करनेवाला परमेश्वर।

अधिमुक्तिका (सं० स्त्री०) मुक्तागृहा, शुक्ती, सीप।

अधिमुह्य (सं० पु०) शाक्यमुनि। चौंतीसवें पूर्वजन्ममें शाक्य-मुनिको अतिमुह्य कहते थे।

अधियज्ञ (सं० पु०) अधिकृतो यज्ञो यस्मात्, प्रादि-बहुव्रो०। १ परमेश्वर, यज्ञको अधिकृत करनेवाला पुरुष। अधिकः अधिकाङ्गयागः, प्रादि स०। २ अधिकाङ्ग याग, वह यज्ञ जिसमें अनेक अङ्ग रहते हैं। ३ प्रधान यज्ञ। (त्रि०) ४ यज्ञ-सम्बन्धीय, यज्ञका। ५ यज्ञके विषयमें, यज्ञको अधिकार कर, यज्ञकी बातपर।

अधिया (हिं० पु०) १ अर्धांश, आधा टुकड़ा। २ मौज़ेमें निस्फ़ पट्टीकी शिरकत, 'आधी पट्टीकी हिस्सेदारी।' ३ उत्पन्न हुए शस्यका अर्धांश प्रभु और अर्धांश कार्य करनेवालोंको प्रदान करनेका नियम, उपजका आधा हिस्सा मालिक और आधा मजदूरोंको देनेका क़ायदा। ४ गांवकी आधी पट्टीका ज़मीन्दार, अधियार।

अधियाङ्ग (सं० क्ली०) अधिक अङ्ग, फ़ज़ूल अज़ो।

अधियान (हिं० पु०) गोमुखी, जप करनेकी थैली। यह थैली प्रायः ऊनकी बनती और गोमुख-जैसी होती है। इसके ऊपर कारीगर रङ्गीन रेशम या ऊनसे गो, राम, कृष्ण आदि देवतोंके चित्र भी बेलबूटोंमें निकाल देते हैं। भक्त इसके भीतर रुद्राक्षकी माला डाल अपने इष्टदेवका मन्त्र जपा करते हैं। कहते हैं, कि विना गोमुखी खोलकर माला फेरनेसे सिद्धि प्राप्त नहीं होती।

अधियाना (हिं० क्रि०) अर्धांशमें विभाजित करना, आधा-आधा हिस्सा लगाना, दो समान भागोंमें बांटना बराबर-बराबरके दो टुकड़े उतारना।

अधियार (हिं० पु०) १ सम्पत्तिका अर्धांश, मिलकियतका निस्फ़ हिस्सा, जायदादका आधा साझा। २ अर्धांशका प्रभु, निस्फ़का क़ाबिज़। ३ गांवके आधे जोतका असामी। ५ दो गांवोंमें बराबर हिस्सा रखनेवाला जमीन्दार या आसामी।

अधियारी (हिं० स्त्री०) १ सम्पत्तिके अर्धांशका अधिकार, मिलकियतका निस्फ़ हिस्सा, जायदादका आधा इख़तिआर। २ दो गांवोंकी बराबर हिस्सेदारी।

अधियोग (सं० पु०) अधिको योगः, प्रादि-स०। ज्योतिषके मतसे यात्रिक शुभ योग। इस योगमें यात्रा करनेसे मङ्गल होता है और कोई विघ्न नहीं पड़ता।

अधियोध (सं० पु०) अधि-युध्-घञ्, आधिक्येन युध्यति। १ महायोद्धा, बड़ा वीर, अज़ीम शुजा। (अव्य०) २ महायोद्धाके विषयमें, बड़े वीरको लेकर, अज़ीम शुजाकी बाबत।

अधिरज्जु (वै० त्रि०) १ रज्जुधारण किये हुए, रस्सी लिये हुए। २ बांधते हुए, लपेटते हुए। ३ हथकड़ी-बेड़ी डालते या पहनाते हुए।

अधिरथ (सं० पु०) अध्यारूढ़ः रथम्, अत्या० स०। महारथ, रथपर विराजमान वीर, योद्धा जो रथपर चढ़ा हो। २ सारथी, रथ चलानेवाला, गाड़ीवान। ३ विशाल रथ, बढ़िया गाड़ी।

४ अङ्गवंशोद्भव सत्यकर्माके पुत्र। इनकी स्त्रीका नाम राधा था। अधिरथ धृतराष्ट्रके सखा और कर्णके पालक-पिता रहे। किसी समय यह अपनी पत्नी राधाको साथ लेकर भागीरथी तीर जा उपस्थित हुए थे। राधाने गङ्गाजलमें एक बहती हुई मञ्जूषाको (सन्दूक़) आते देख स्वामीके निकट लानेकी प्रार्थना की। जलसे जैसे ही मञ्जूषा निकाल अधिरथने खोली, वैसे ही उसमें एक सद्यप्रसूत सुत देख पड़ा, जिसे उठा भार्याको दे दिया। उस समय राधाके पुत्रादि न हुए थे। बालक पाकर वह महानन्दसे घर गई और यथाविधि उसका भरण-पोषण करने लगीं। वही बालक पृथा द्वारा परित्यक्त कर्ण निकला। (महाभारत, विष्णुपुराण ४।१६ अ०)। अधिरथ सूतका कार्य करते थे और कर्णको पुत्रत्वमें प्रतिग्रह कर लिया; कर्णके सूतपुत्र कहलानेका यही प्रधान कारण था।

(क्ली०) ५ गाड़ीका असबाब या बोझ।

अधिरथी (सं० पु०) १ सूर्य, आफ़ताब। २ समुद्र, बहर।

अधिरथ्यम् (सं० अव्य०) प्रधान मार्गपर, बड़ी राहमें।

अधिराज् (सं० पु०) अधिराजत इति, अधि-राज क्विप्। १ सम्राट्, नृप, बादशाह। (त्रि०) २ अधिक शोभान्वित, ज़ियादा रौनक़दार।

अधिराज (सं० पु०) अधिको राजा, टच् स०। अधीश्वर, सम्राट्, बादशाह।

अधिराज्य (सं० क्ली०) अधिकं राज्यम्, प्रादि-स०। साम्राज्य, शाही।

अधिराज्यभाक् (सं० पु०) अधिराट्, साम्राज्यके वैभवका अधिकारी; शाहीका मालिक,—

"अत्यन्यान् पृथिवीपालान् पृथिव्यामधिराज्यभाक्।" (महाभारत)

अधिराष्ट्र (सं० क्ली०) अधिकृतं राष्ट्रमत्र, प्रादि-बहुव्री०। १ राज्य, बादशाही। (अव्य०) २ राज्यको अधिकार कर, राज्यके विषयमें।

अधिरुक्म (सं० त्रि०) अधिगतं रुक्मं आभरणं येन, प्रादि-बहुव्री०। १ आभरण-प्राप्त, जिसे जे़वर या गहना मिला हो। (पु०) अधिकं रुक्मं सुवर्णाभरणम्, प्रादि-स०। २ अधिक सुवर्णाभरण, ज्यादा सोनेका ज़ेवर या गहना।—

"अध स्या योषणा मही प्रतीचि वशमश्व्यं।
अधिरुक्मा विनीयते।" (ऋक् ८।४६।३३।)

अधिरूढ़ (सं० त्रि०) अधि-रुह-क्त कर्तरि। १ चढ़ा या ऊपर पहुंचा हुआ। २ अत्यन्त वृद्धियुक्त, निहायत चढ़ा-बढ़ा।

अधिरूढ़समाधियोग (सं० त्रि०) समाधिके योगमें अधिरूढ़, गहरे ध्यानमें लगा।

अधिरोपण (सं० क्ली०) ऊपरका चढ़ाना या उठाना।

अधिरोपित (सं० त्रि०) अधि-रुह-णिच्-क्त पुक् कर्मणि। रुहः पोऽन्यतरस्याम्। पा ७।३।४३। अतिशय आरोपित हुआ, ऊपर रखा गया।

अधिरोह (सं० पु०) अधि-रुह-घञ्। ऊपरका आरोहण, चढ़ाव।

अधिरोहण (सं० क्ली०) अधि-रुह-ल्युट् भावे। १ ऊपरका आरोहण, ऊंचेका चढ़ाव। २ सोपान, सिड्ढी। 'आरोहणं स्यात् सोपानं।' (अमर)

अधिरोहणी (सं० स्त्री०) आरुह्यते अनया, अधि-रुह-ल्युट् करणे। निश्रेणि, नसैनी, सिढ़ी, ज़ीना; वह वस्तु जिसके द्वारा ऊपर चढ़ें। अमरकोषके पाठमें अधिरोहिणी लिखा गया है,—"निश्रेणिस्त्वधिरोहिणी।"

अधिलोक (सं० पु०) १ जगत्, विश्व, दुनिया,। (त्रि०) २ सांसारिक, दुनियावी।

अधिलोकम् (सं० अव्य०) जगत्के विषयपर, दुनियाकी बाबत।

अधिलोकनाथ (सं० पु०) जगत्के प्रभु, दुनियाके मालिक।

अधिवक्तृ (सं० त्रि०) अधि-वच्-तृच्। पक्षपातसे बात करनेवाला, जो एक ओर ढलकर बोले। (वै० पु०) २ पृष्ठपोषक, वकील। ३ सन्तुष्ट करनेवाला पुरुष, वह आदमी जो तसकीन दिलाये। ४ व्याख्यानदाता, ख़ूब बोलनेवाला आदमी। (स्त्री०) अधिवक्त्री।

अधिवचन (सं० क्ली०) अधि-वच्-ल्युट्। १ पक्षपातयुक्त कथा, तरफ़दारीकी बात। २ वकालत, बहस वितर्क। ३ नाम, संज्ञा; इस्म, लक़ब।

अधिवस्त्र (सं० त्रि०) अध्यावृतं वस्त्रं येन, प्रादि-बहुव्री०। जिसकी देहपर वस्त्र निहित हो, पोशाक पहने हुए।

अधिवाक (सं० पु०) अधि-वच्-घञ्। पक्षपात-युक्त वाक्य, तरफ़दारी-आमेज़ सखुन, एक-तरफ़ी बात।

अधिवाचन (सं० पु०) चुनाव, कई लोगोंमें एककी निर्वाचन करनेकी सम्मति, नामज़दगी।

अधिवास (सं० पु०) अधि-वस निवासे घञ्। १ निवास, बसनेका स्थान, ठहरनेकी जगह। २ सह-वासी, पड़ोसी, हमसाया। अधि-वस सुरभीकरणे घञ् भावे। ३ सौरभ, खुशबू। अधिवासयति देवता अनेन इति, अधि-वस-णिच् करणे। ४ गन्धमाल्यादि द्वारा संस्कार। "देवताओंकी पूजाके पहले दिन या किसी यज्ञादि क्रियामें अधिवास नामक एक संस्कार किया जाता है। इस देशमें एक ताम्रपात्र, कठौते या अन्य किसी आधारमें मृत्तिका, गन्ध (अतर), शिला, धान्य, दूर्वा, पुष्प, फल, दधि, घृत, स्वस्तिक,—आग, सिन्दूर, शङ्ख, कज्जल, रोचना, श्वेतसर्षप, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, चामर, दर्पण, दीप और प्रशस्तपात्र—इन बाईस द्रव्योंको एकत्र संग्रह करना पड़ता है। प्रशस्तपात्रपर अन्यान्य द्रव्य रखे जाते हैं। दुर्गोत्सवादि कोई-कोई क्रियाओंमें अधिवास संस्कार पूजाके पूर्वदिन होता है। अन्नप्राशन, यज्ञोपवीत, विवाह प्रभृति क्रियाओंमें इन सकल संस्कारके दिनोंमें ही अधिवास करते हैं। साम-वेदीय अधिवासके द्रव्य बाईस हैं, यजुर्वेदके अधिवास-में इक्कीस ही लगते हैं। पूजाके उपलक्षमें अधिवास करनेपर मन्त्रपाठपूर्वक एक-एक द्रव्यको उठा देवताके कपालसे स्पर्श कराना पड़ता है। फिर मृत्तिकाको स्पर्श कर पुनर्वार द्रव्य प्रशस्त पात्रमें रखे जाते हैं। इसीतरह एक-एक करके समस्त द्रव्य एक बार देवताके कपाल और फिर मृत्तिकासे स्पर्श कराते हैं। अन्नप्राशनादिके लिये कोई शुभकर्म होनेपर जिसका संस्कार होगा, उसीके कपालसे अधिवासका द्रव्य स्पर्श करना पड़ेगा। स्थल विशेष और कुलपरम्पराकी प्रथा विशेषसे अन्नप्राशनादि शुभकर्मके पूर्वदिन अधि-वास होता है। अन्नप्राशन और दुर्गोत्सव देखो।

५ विवाहके पूर्व तैल और हरिद्रा चढ़ानेकी चाल। ६ उबटन, देहपर तेल-मिले आटेकी मालिश। ७ अधिक संस्थान, ज़्यादा देरका क़याम। ८ अन्यके भवनका निवास, दूसरेके मकानका रहना। मनुने इसे स्त्रियोंके छः दोषोंमें लिखा है।

अधिवासन (सं० क्ली०) अधिवासयति स्थापयति देवता अनेन, अधि-वस-णिच्-ल्युट्। १ अधिवास, गन्ध-माल्यादि द्वारा संस्करण। २ मूर्तिमें देवप्रतिष्ठा। ३ धरनेका बैठना। ४ देवपूजाके पूर्वदिनका अनुष्ठान-विशेष।

अधिवासित (सं० त्रि०) सुगन्धित, खुशबूदार।

अधिवासिता (सं० स्त्री०) निश्चित निवास, मुक़र्रर ठहराव।

अधिवासिन् (सं० त्रि०) निवास करनेवाला, रहने-वाला, जा टिक जाये।

अधिवासी, अधिवासिन् देखो।

अधिवाहन (सं० पु०) किसी मनुष्यका नाम। लोग इन्हें अङ्गका पुत्र बताते हैं।

अधिविकर्तन (सं० क्ली०) टुकड़े उड़ानेका काम, काट डालनेका कार्य।

अधिविद्यम् (सं० अव्य०) विज्ञानके विषयमें, इल्मके लिये।

अधिविन्ना (सं० स्त्री०) १ स्त्री जिसके पतिने फिर विवाह कर लिया हो, जोरू जिसके शौहरने उसके जीते दूसरी शादी कर ली हो। २ स्त्री जिसके पतिको उसकी कोई परवा नहीं।

अधिवेत्तव्या, अधिवेदनीया, अधिवेद्या (सं० स्त्री०) स्त्री जिसके रहते दूसरा विवाह करना उचित हो, जोरू जिसके जीते जी दूसरी शादी करना मुनासिब समझा जाये।

अधिवेत्तृ, अधिवेत्ता (सं० त्रि०) पति जो एक स्त्री रहते दूसरीसे विवाह करे, एक जोरू होते दूसरी औरतसे शादी करनेवाला शौहर।

अधिवेदन (सं० क्ली०) एक स्त्रीकी उपस्थितिमें दूसरीसे विवाह, एक जोरू रहते दूसरीकी शादी।

अधिवेदनीय (सं० त्रि०) अधि-विद्-अनीयर्। एकबार विवाह करनेपर फिर विवाह करने योग्य, जो एकबार शादी कर फिर शादी करने काबिल हो।

अधिवेद्य (सं० त्रि०) अधि-विद्-यत् कर्मणि। एकबार विवाह करनेपर पुनर्वार विवाह करने योग्य, जो एकबार शादीकर फिर शादी करने काबिल हो!

अधिवेद्यम् (सं० अव्य०) वेदके विषयमें, वेदकी बाबत।

अधिवेशन (सं० क्ली०) १ सङ्ग, बैठक, जमाव। २ उत्सव, जलसा।

अधिशयन (सं० क्ली०) १ लेटना। २ सोना।

अधिशायित (सं० त्रि०) १ लेटा हुआ, जो आराम करनेका आदी हो।

अधिश्रपण (सं० क्ली) अधि-श्रा पाके णिच्-ल्युट्। पाचन, हाज़मा।

अधिश्रय (सं० पु०) अधि-श्रीञ्-पाके अच्। १ पात्र, बरतन. जिसमें कोई चीज़ रखी जाये। २ पाक, चाशनी, जलाव।

अधिश्रयण (सं० क्ली०) अधि-श्रीञ् पाके ल्युट्। चूल्हे परका धरना, भट्ठीपरका चढ़ाना, किसी चीज़को आगपर रखनेका काम।

अधिश्रयणी (सं० स्त्री०) अधिश्रीयते पच्यतेऽत्र, अधि-श्रीञ् अधिकरणे ल्युट् ततो ङीप्। १ चूल्हा, तन्दूर। २ सिड्ढी, ज़ीना।

अधिश्रयणीय (सं० त्रि०) अधिश्रयणाय पाकाय हितं-छ। १ पाक-सम्बन्धीय, चाशनीका। अधि-श्रीञ् पाक-कर्मणि अनीयर्। २ पाक बनाने योग्य,

अधिश्रयितवै (सं० अव्य०) अधि-श्रीञ्-कृत्यार्थे तवै। कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः। पा ३।४।१४। पाचनसे, हाज़मेके ज़रिये।

अधिश्रित (सं० त्रि०) अधि-श्रि-क्त। १ आश्रित, प्राप्त। २ आगपर रखा हुआ, चूल्हेपर चढ़ाया गया।

अधिश्री (सं० त्रि०) अधिका श्रीर्यस्य, बहुव्री०। १ अतिशय शोभान्वित, निहायत रौनक़दार। २ अधिक सम्पत्तिशाली, निहायत ज़रदार। (स्त्री०) अधिका श्री, प्रादि-स०। ३ अत्यन्त श्री, हद्दसे ज्यादा रौनक़।

अधिषवण (वै० क्ली०) अधिषूयते सोमोऽत्र, अधि-षु-ल्युट् आधारे। १ सोमाभिषवका चर्ममय पात्र, सोमरस निकालनेकी चमड़ेका बरतन। २ सोमरसादि पानका पात्र, सोमरस आदि पीनेका बरतन। "अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवीत्यधिषवणचर्मणः।" निरुक्त १।२।१। भावे ल्युट्। ३ अभिषव, निचोड़। (त्रि०) ४ सोमरस निकालने और छाननेके काम आनेवाला।

अधिषवण्य (वै० त्रि०) षुञ्-अभिषवे-ल्युट् इति अधिषवणं ततो यत्। भवे छन्दसि। पा ४।४।११०। १ सोमाभिषवका, सोमरस निकालने और छाननेवाला। २ अधिषवणफलक।

"यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता।
उलूखलसुतानामवेदिन्द्र जल्गुलः॥" (ऋक् १।२८।२)
'अधिषवण्या उभे अधिषवणफलके।' (सायण)

अधिष्ठातृ, अधिष्ठाता (सं० त्रि०) अधि-स्था-तृच्-षत्वम्। १ अध्यक्ष, नियन्ता, मुखिया, सरदार; यह देखनेवाला, कि नियमित रूपसे कार्य होता है या

नहीं। (पु०) २ अधिदेवता, प्रधान देव। ३ परमेश्वर। ४ राजा, बादशाह। ५ रक्षक, परवरिशकुनिन्दा। (स्त्री०) अधिष्ठात्री।

अधिष्ठान (सं० क्ली०) अधि-स्था-ल्युट् षत्वम्। १ स्थिति, अवस्थान; मुकाम, पड़ाव। २ वासस्थान, रहनेकी जगह। ३ नगर, शहर। ४ आश्रय, सहारा। ५ भ्रमका आरोप करनेवाली वस्तु, वह चीज़ जिसमें दूसरी चीज़ भूलसे देखी जाये; जैसे मरीचिकामें जल, रस्सीमें सांप और सांपमें चांदी। ६ सांख्यमतसे—भोक्ता और भोग्यका संयोग; जैसे—आत्मा, शरीर और इन्द्रियां विषयसे संलग्न हैं। ७ नियन्तृत्व, अधिकार, सरदारी। ८ चक्र, पहिया। ९ प्रभाव। १० पहुंच, पासका खड़ा होना। ११ आशीर्वाद, दुआ।

अधिष्ठान-शरीर (सं० पु०) वह सूक्ष्म देह जिसमें मृत्युके पीछे आत्मा पितृलोकमें रहता है, मृत्युके बाद पितृलोकपर रहनेको आत्माका सूक्ष्म शरीर।

अधिष्ठापक (सं० त्रि०) शासन, पर्यवेक्षण या रक्षण करनेवाला, जो हुकूमत, निगहबानी या हिफ़ाजत रखे।

अधिष्ठित (सं० त्रि०) अधि-स्था-क्त कर्मणि। १ अध्युषित, बसा हुआ। २ निर्वाचित, चुना गया। ३ नियुक्त, मुक़र्रर। ३ पर्यवेक्षित, देखा-भाला। ४ नियमपूर्वक सञ्चालित, क़ायदेसे चलाया गया। ५ पर्यवेक्षक, देखभाल रखनेवाला।

अधिस्त्रि (सं० अव्य०) स्त्री या पत्नीके विषयमें, औरत या जोड़ूकी बाबत।

अधिस्त्री (सं० स्त्री०) श्रेष्ठ या सुप्रसिद्ध स्त्री, ऊंचे दरजेकी या मशहूर औरत।

अधिहरि (सं० अव्य०) अव्ययी०। हरिको अधिकार कर, भगवान्के विषयमें।

अधीकार, अधिकार देखो।

अधीत (सं० क्ली०) अधि-इङ्-क्त भावे। १ अध्ययन, मुतालह। कर्मणि क्त। २ कृताध्ययन, पठित, पढ़ा या मश्क किया हुआ पाठ। (त्रि०) २ जिसे अध्ययन कर चुके हों, मुतालह किया हुआ।

अधीति (सं० स्त्री०) अधि इङ्-क्तिन्। १ अध्ययन, मुतालह, पढ़ाई। (वै०) २ इच्छा, ख़ाहिश। ३ स्मृति, याददाश्त।

अधीतिन् (सं० त्रि०) अधीतमनेन, अधीत-इनि। इष्टादिभ्यश्च। पा ५।२।८८। अध्ययनविशिष्ट, कृताध्ययन; खूब पढ़ा हुआ, जिसका पढ़ना पूरा हो चुका हो।

अधीत्य (सं० अव्य०) अध्ययन करके, पढ़के।

अधीन (सं० त्रि०) अधिगतमिनं प्रभुम्, अत्या० स०। तदधीनवचने। पा ५।४।५४। १ आयत्त, दबैल। २ वशतापन्न, मातहत। ३ वाध्य, लाचार। यह शब्द प्रायः समासके अन्तमें रहता है।

अधीनता (सं० स्त्री०) वाध्यता, मातहती।

अधीनत्व (सं० क्ली०) अधीनता देखो।

अधीमन्य, अधिमन्थ देखो।

अधीयत् (सं० त्रि०) १ पढ़ता हुआ। २ स्मरण करता हुआ।

अधीयान (सं० पु०) १ विद्यार्थी, तालिबेइल्म। २ वेद पढ़ने या पढ़ानेवाला।

अधीर (सं० त्रि०) न धीरं धैर्यान्वितम्, नञ्-तत्। १ अस्थिर, चञ्चल; चुलबुला, बेसब्र। २ कातर, व्याकुल, परेशान्, घबड़ाया हुआ। ३ असन्तुष्ट, जो आसूदा न हो। ४ मूर्ख, बेवकूफ़। (पु०) ५ अयोग्य वैद्य, नालायक़ हकीम।

अधीरता (सं० स्त्री०) धैर्यका अभाव, बेसब्री।

अधीरा (सं० स्त्री०) १ विद्युत्, बिजली, जो ठहरती नहीं। २ मानकी अवस्थामें मध्या और प्रगल्भा नायिका विशेष। अधीरा नायिका ज्येष्ठा और कनिष्ठाके भेदसे दो प्रकारकी होती है। यह मानके समय नायकके प्रति अव्यङ्ग्य कोप दिखाती और परुषवाक्यप्रयोग, तर्जन-गर्जन और ताड़ना किया करती है,—

रमि आये कहु वामसों अवशि आज घन श्याम।
धिक् धिक् निलज नदान बनि करो नीचके काम॥

अधीवास (वै० पु०) अधि-वस-घञ् आच्छादने। "उपरि सर्वतः सञ्छाद्यतेऽनेनेत्यधीवासो महाकञ्चुकः।" (कात्या०) महाकञ्चुक, अबरक़।

अधीवासस् (सं० अव्य०) वस्त्रपर, पोशाकके ऊपर।

अधीश (सं० पु०) अधिक ईशः, प्रादि-स०। अधिपति, सार्वभौम, प्रभु, महाराज चक्रवर्त्ती; मालिक, सबपर राज्य करनेवाला।

अधीश्वर (सं० पु०) अधिकः ईश्वरः, प्रादि-स०। राजा, प्रभु, अधिपति, सार्वभौम; बादशाह, मालिक।

अधीष्ट (सं० क्ली०) अधि-इष-क्त भावे। विधिनिमन्त्रणा-मन्त्रणाधीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्। पा ३।३।१६१। १ सत्कारपूर्वक नियोग या व्यापार, इज्ज़तका काम जो वेतनख़्वाह सौंपा जाये। (त्रि०) कर्मणि क्त। २ सत्कार-पूर्वक नियोजित, इज्ज़तसे काममें लगाया गया।

अधुत, अधूत (सं० त्रि०) धुञ् कम्पने कर्मणि क्त; न धूतम्, नञ्-तत्। अकम्पित, जो हिला-डुला न हो।

अधुना (सं० अव्य०) इदम्-धुना, इदमोऽश्भावो धुना च प्रत्ययः। १ इदानीं, अब, इस समय। २ आज-कल, इन दिनों।

अधुनातन (सं० त्रि०) अधुना ल्युट्-तुट् च। इस समयका, इदानीं भव, इदानीन्तन, एतत्कालीन, हालका, आजकलवाला।

अधुर (सं० त्रि०) नास्ति धुः भारो यस्य, अच् बहुव्री०। भारशून्य, बोझसे खाली।

अधूत, अधुत देखो।

अधूमक (सं० त्रि०) नास्ति धूमो यत्र कप्, बहुव्री०। धूमशून्य, जहां धुआं न हो।

अधूरा (हिं० वि०) अपूर्ण, नाकामिल। २ अर्ध, निस्फ़, आधा। ३ खण्डित, टूटा हुआ। ४ असमाप्त, जो खत्म न हुआ हो। ५ अधकचरा, अर्धशिक्षित।

अधृत (सं० पु०) १ भगवान् जो सबको धारण करते हैं, किन्तु उन्हें कोई धारण नहीं करता। (विष्णुसह०) (त्रि०) २ न धारण किया गया, जिसे कोई रोक न सके।

अधृति (सं० स्त्री०) न धृङ्-क्तिन्, अभावार्थे नञ्-तत्। १ धैर्याभाव, बेसब्री, घबड़ाहट। २ धारणा-भाव, याददाश्तका न रहना। ३ दोषाभाव, बेऐबी। ४ आतुरता, जल्दी।

अधृष्ट (सं० त्रि०) ञि धृषा प्रागल्भ्ये क्त। धृषिशसी वैयात्ये। पा ७।२।१९। १ लज्जाशील, शर्मीला। २ अनभि-भूत, नागालिब, जो दबाया न गया हो। ३ अहिं-सित, नामजरूह, जो घायल नहीं हुआ।

अधृष्य (सं० त्रि०) न धृष्यम्, नञ्-तत्। १ अनभि-भवनीय, अधर्षणीय; जिसपर हमला न किया या जो जीता न जा सके। २ अप्राप्तव्य, बेपहुंच। ३ अभिमानी, घमण्डी। ४ अप्रगल्भ, लज्जाशील; शर्मदार।

अधेंगा (हिं० पु०) पक्षिविशेष जिसका रङ्ग मटमैला, चेहरा लाल और पर सुनहला रहता है; अधांगा।

अधेड़ (हिं० वि०) अर्धवयसप्राप्त, अधवैसा, निस्फ़ उम्रवाला; अधोगत-अवस्थासम्पन्न, उतरती जवानी वाला; जिसकी उम्र ढल रही हो।

अधेनु (वै० स्त्री०) न धेनुः, नञ्-तत्। धेट् इच। उण् ३।३४। दोहनशून्य गौ, दूध न देनेवाली गाय।

अधेला (हिं० पु०) आधे पैसेका सिक्का, जो तांबेसे बनता है।

अधेलिका (हिं० स्त्री०) अन्धकारिता, धुंधलाहट।

अधैर्य (सं० त्रि०) नास्ति धैर्यं यस्य, बहुव्री०। १ धैर्यशून्य, बेसब्र। २ चञ्चल, उतावला, जल्दबाज़। (क्ली०) न धैर्यम्, अभावार्थे नञ्-तत्। ३ धैर्यका अभाव, बेसब्री, घबड़ाहट।

अधैर्यवान् (हिं० त्रि०) अधैर्य देखो।

अधो, अधस् देखो।

अधोअक्ष (वै० त्रि०) अक्षस्य अधस्तात्। अनुदात्ते च कुधपरे। पा ६।१।१२०। १ निम्नमें व्यापक, जो धुरी या गाड़ीके नीचे लगा हो। (अव्य०) २ धुरीके नीचे।

अधोऽक्ष (सं० क्ली०) अधस् अक्षं यत्र, अस्ति बहुव्री०। हविर्धान-अक्षका अधोमार्ग, उस गाड़ीके नीचेकी राह जिसमें होमका घी रहता था।

अधोक्षज (सं० पु०) अक्षात् इन्द्रियात् जायते, जन-ड; ५-तत्। १ विष्णु जो इन्द्रियज्ञानके अयोग्य हैं। २ श्रवण नक्षत्र। (त्रि०) अधः कृतं तिरस्कृतं इन्द्रियज्ञानं येन, बहुव्री०। ३ जितेन्द्रिय, जिसने इन्द्रियज्ञानको तिरस्कृत कर दिया हो,—

"तेनायजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम्।
उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम्॥" (भागवत ६।१४।३६।)

अधोगत (सं० त्रि०) १ नीचे पहुंचा हुआ। (पु०) २ अस्थिभङ्गरोग, हड्डी टूटनेकी बीमारी।

अधोगति (सं० स्त्री०) अधरस्मिन् नरकादौ गतिः। १ निम्नगति, नीचेका जाना। २ नरक गमन, दोज़ख़का दाख़िला। (त्रि०) अधोऽधस्तात् गतिर्यस्य। ३ अधोदिग्गामी, नीचेकी ओर जानेवाला।

अधोगमन (सं० क्लो०) १ उतार, नीचेका जाना। २ अवनति, तनज्जुली। ३ पतन, गिराव। ४ दुर्दशा, बुरी हालत।

अधोगामिन् (सं० त्रि०) अधरस्मिन् गच्छतीति, गम-णिनि। १ नरकगामी, दोज़ख़ जानेवाला। २ अधोदिग्गामी, जो नीचेकी ओर चले।

अधोघण्टा (सं० स्त्री०) अधस्तात् आरभ्य घण्टेव। अपामार्ग, लटजीरा। यह वृक्ष शीर्षके नीचेसे घण्टे-जैसा फल उत्पन्न करनेके कारण अधोघण्टा कहाता है।

अधोऽङ्ग, अधोचर्म (सं० क्लो०) मलद्वार, गुदा, गांड, मिक़द।

अधोजानु (सं० क्लो०) जानुनोऽधस्तात्। १ जानुका निम्नभाग, घुटनेके नीचेका हिस्सा। (अव्य०) २ जानु या घुटनेसे नीचे।

अधोजिह्विका (सं० स्त्री०) अधस्-जिह्वा-कन् अल्पार्थे, कर्मधा०। १ तालमूलकी क्षुद्र जिह्वा, दरख़्तकी जड़वाली छोटी जीभ (uvula)। २ जिह्वाके निम्नभागका शोथरोग, जीभके नीचेकी सूजनवाली बीमारी।

अधोतर (हिं पु०) वस्त्रविशेष, एक कपड़ा। यह बहुत मोटा बुना जाता है।

अधोदारु (सं० क्लो०) अधरं दारु, अधर-परमार्थ-असि, अधादेशः, कर्मधा०। चौखटके नीचेका तख़्ता।

अधोदिश् (सं० स्त्री०) अधरा दिश्। १ दक्षिण दिक्। २ निम्नप्रदेश, नीचेका मुल्क।

अधोदृष्टि (सं० त्रि०) अधरस्मिन् दृष्टिर्यस्य। १ योगाभ्यास करते समय केवल नासिकाके अग्रभाग पर दृष्टि संयोजित करनेवाला। योग देखो। २ निम्न-दृष्टियुक्त, नीची नज़रवाला। (स्त्री०) ३ निम्नदृष्टि, नीची नज़र।

अधोदेश (सं० पु०) शरीरके नीचेका भाग, जिस्मके नीचेका हिस्सा। २ निम्नांश, नीचेवाला हिस्सा।

अधोद्वार (सं० क्लो०) १ गुदा, गांड। २ योनि, चूत।

अधोऽधस् (सं० अव्य०) अधस् अधस्तात्. सामीप्ये द्वित्वम्। १ नीचे-नीचे। २ निम्नप्रदेशमें, नीचे स्थानमें।

अधोनाभम् (सं० अव्य०) नाभीसे नीचे, तोंदीके तले।

अधोपहास (वै० पु०) अधोभागस्य मदनालयस्य उपहासः। स्त्रियोंके अधोभाग-योनिका उपहास, माशूक़ाना दिल्लगी। वैदिक होनेके कारण इस शब्दमें सन्धि हुई है; साधारण रीतिसे विसर्गका लोप होने-पर 'अधउपहास' लिखा जायेगा।

अधोपात (सं० पु०) अधस्-पत-घञ्। अधोगति, ख़राब हालत। प्रचलित होनेसे यहां विसर्गका ओकार बनाया गया है, वस्तुतः 'अधःपात' होना चाहिए।

अधोबन्धन (सं० क्लो०) १ नीचेकी पट्टी। २ अन्दरका तङ्ग। ३ नाड़ा। ४ इजारबन्द।

अधोभक्त (सं० क्लो०) अधरं भक्तं यस्मात्, अधरं पक्कं भक्तमन्नं येन वा, ५-३ बहुव्री०। १ अन्नभोजन-पर पिया जानेवाला जल, पानी जो खाना खाने बाद पीते हैं। २ भोजनोपरान्त सेवन किया जानेवाला औषध, दवा जो ग़िज़ापर खाई जाये।

अधोभव (सं० त्रि०) निम्न, नीचा।

अधोभाग (सं० पु०) अधरो भागः, कर्मधा०। १ निम्नभाग, नीचा हिस्सा। २ स्त्रियोंका मदनालय, योनि।

अधोभागहर (सं० त्रि०) विरेचनके कामका, जुलाब लानेवाला।

अधोभागदोषहर (सं० त्रि०) शरीरके निम्नभागका रोग दूर करनेवाला, जिससे जिस्मके नीचे हिस्सेकी बीमारी छूट जाये।

अधोभुवन (सं० क्लो०) अधरं भुवनं लोकः, कर्मधा०। पाताल, इस पृथिवीके नीचेका लोक।

अधोभूमि (सं० स्त्री०) १ निम्न भूमि, नीची

ज़मीन। २ पर्वतके नीचेकी भूमि, पहाड़के नीचेकी ज़मीन।

अधोमर्म (सं० क्ली०) अधरं मर्म, कर्मधा०। गुह्यद्वार, मिक़द।

अधोमार्ग (सं० पु०) १ निम्न पथ, नीची राह। २ गुह्यद्वार, मिक़द।

अधोमुख (सं० त्रि०) अधोऽवनतं मुखं यस्य, बहुव्री०। १ अधोवदन, जिसका मुंह लटका हो। (पु०) २ विष्णु। ३ अनन्तमूल। ज्योतिषमें मूला, अश्लेषा, कृत्तिका, विशाखा, भरणी और मघा—ये नक्षत्र अधोमुख कहाते, जो भूमिखनन और विद्यारम्भके विषयमें प्रशस्त हैं। ४ नरका एक भाग, दोज़ख़का एक हिस्सा।

अधोमुखा, अधोमुखी (सं० स्त्री०) गोजिह्वा, अनन्तमूल।

अधोयन्त्र (सं० क्ली०) वकयन्त्र, आलेका नीचा हिस्सा। २ भभका।

अधोरक्तपित्त (सं० क्ली०) मलमूत्रद्वारसे रक्तप्रवाह, दस्त और पेशाबकी जगहसे ख़ूनका गिरना।

अधोरध (हिं० क्रि०-वि०) ऊपरनीचे, अधोर्ध्व।

अधोराम (वै० पु०) अधोभागे रम्यते येन स रामः शुक्लः। अज जिसके शरीरवाले निम्नभागमें अनुपम रूपसे कृष्ण या श्वेत चिह्न वर्तमान हों, अपने जिस्मके नीचे हिस्सेमें निराले तौरपर काले या सफ़ेद धब्बे रखनेवाला बकरा।

अधोर्ध्व (सं० अव्य०) नीचे-ऊपर।

अधोलम्ब (सं० पु०) १ लम्ब, वह सरल रेखा जो दूसरी सरल रेखापर पड़कर पार्श्वके दोनो कोण सम बनाती है (perpendiculer)। २ पाताल, नीचेका मुल्क। ३ साहुल। यह एक लोहेका गोला होता और धागेसे बंधा रहता है। मीमार इसे परदेकी सिधाई जाननेके लिये दीवारके ऊपरसे नीचे लटकाते और नाप-जोख करते हैं। ४ पन्साल, पानीकी गाहराई नापनेका यन्त्र या आला।

अधोलोक (सं० पु०) कर्मधा०। पाताल, अधोभुवन, नीचेकी दुनिया।

अधोवदन, अधोमुख देखो।

अधोवदना (सं० स्त्री०) मुद्राविशेष।

अधोवर्चस् (सं० त्रि०) अधोगामि वर्चः ज्योतिर्यस्य, बहुव्री०। निम्नदेशगामी ज्योतिवाला, जिसकी चमक नीचे जाये।

अधोवश (सं० पु०) १ पेंदा, तलहटी। २ लिङ्ग, अज़ोतनासुल। ३ योनि, फ़लान।

अधोवातावरोधोदावर्त्त (सं० पु०) रोगविशेष, एक बीमारी। यह एक प्रकारका उदावर्त है, जो वायुवेगके अवरोधसे उत्पन्न होता है।

अधोवायु (सं० पु०) अधोगामी वायुः। अपानवायु, वातकर्म; पाद, गोज़; हवा जो जिस्मके नीचे हिस्सेसे निकलती है। मन्त्रशास्त्री कहते हैं, कि जप करते समय छींकने, पादने और जंभानेसे आचमन कर लेना चाहिये।

अधोविनी—ब्राह्मी, जलनीम (Herpestis Monneiria)। नदी, नाले और तालाबके किनारे गीली मट्टीमें यह उत्पन्न होती है। इसका पत्ता छोटा-छोटा, वृक्षका अवयव बड़ी गुनी-जैसा और रस तिक्त होता है। कासरोग (खांसी) और स्वरभङ्गमें (गला बैठने) इस देशके वैद्य इस बूटीका विशेष उपयोग करते हैं। एनमिलीका कहना है, कि कोष्ठबद्ध होनेमें पेशाब बन्द पड़नेपर ब्राह्मीका रस देनेसे विलक्षण उपकार होता है। रक्सबर्गने बताया, कि पेट्रोलिअमके साथ ब्राह्मीका रस मिला ग्रन्थिवातके (गठिया) ऊपर मलनेसे सूजन और तकलीफ़ मिट जाती है। किन्तु फर्माकोपियाका ऐसा मत नहीं। अन्यान्य डाकरोंका यही विश्वास है, कि वातरोगमें वेदनास्थलपर उपरोक्त औषध मलनेसे जो कुछ उपकार होता, वह केवल पेट्रोलियमके गुणसे, ब्राह्मीके रससे कुछ भी नहीं। ब्राह्मी देखो।

अधोविन्दु—गगनमण्डलका वह स्थान जो हमारे पैरके ठीक नीचे अवस्थित है, हमारे ठीक पैरके नीचे रहनेवाली आसमानकी जगह। (Nadir)

अधोऽवेक्ष्य (सं० अव्य०) निम्नमें दृष्टिपात करते हुए, नीचे नज़र डालते हुए।

अधोऽग्रपित्त, अधोरक्तपित्त देखो।

अधोऽश्वम् (सं० अव्य०) अश्वके निम्नमें, घोड़ेसे नीचे।

अधौड़ी (हिं० स्त्री०) १ चरसेकी आधी पट्टी, पूरे चमड़ेका आधा हिस्सा। २ स्थूल त्वक्, मोटी खाल। 'नरी' अधौड़ीसे पतली रहती है।

अध्मान (सं० पु०) रोगविशेष, पेटकी एक बीमारी। यह पेटको फुलाता, उसमें दर्द पैदा करता और अधो-वायुको (पाद) रोकता है।

अध्यंस (सं० त्रि०) स्कन्धोपरि अवस्थित, कन्धेपर रखा हुआ।

अध्यक्त (सं० त्रि०) सुसज्जित, तय्यार।

अध्यक्ष (सं० त्रि०) अधिगतोऽक्षम्, अत्या० तत्। अधिगतं सर्वविषये दत्तमक्षि येन, अत्या-बहुव्री०। १ प्रधान कर्मकर्त्ता, कर्मके प्रधान सम्पादक; अफ़सर, नायक, मुखिया। (पु०) अधिगतं अक्षं इन्द्रियम्, अत्या०-तत्। २ प्रत्यक्ष ज्ञान, आंखों देखी बात। ३ प्रत्यक्षसाक्षी, चश्मदीद गवाह। ४ इन्सपेक्टर, सुपरिण्टेण्डेण्ट, जो कामकी देखभाल रखे। ५ शरीर-का वृक्ष, खिरनी।

अध्यक्षर (सं० अव्य०) अक्षरको अधिकार कर, हर्फ़ बहर्फ़। २ सब अक्षरोंपर।

अध्यग्नि (सं० अव्य०) १ अग्निके समीप, आगके पास। (क्लो०) २ विवाहकालमें अग्निके समीप स्त्रीको दान किया जानेवाला धन, स्त्रीधन; माल जो शादीके वक्त, आगके पास औरतको दिया जाता है।

अध्यग्निकृत, अध्यग्निउपागत (सं० क्लो०) विवाह-में स्त्रीको दिया जानेवाला धन, शादीमें जो दौलत औरतको दी जाती है।

अध्यच्छ, अध्यक्ष देखो।

अध्यञ्च् (सं० त्रि०) अधि-अञ्चु गतौ क्विप्। अधि-गामी, अधिगत; आला, मुम्ताज़; बड़ा, पहुंचा हुआ।

अध्यण्डा (सं० स्त्री०) अधिकं अण्डमिव फलं यस्याः, बहुव्री०। १ कपिकच्छू, कौंच। २ तलिश, पनि-आमलक। ३ कोकिलाक्ष, तालमखाना।

अध्यधिक्षेप (सं० पु०) अधिकोऽधिक्षेपः, प्रादि-स०। अतिशय तिरस्कार, अत्यन्त निन्दा; हदसे ज्य़ादा तानाज़नी या हिक़ारत।

अध्यधीन (सं० त्रि०) १ अत्यन्त पराधीन, हदसे ज्य़ादा मातहत। २ दासके गर्भसे उत्पन्न, गुलामके नुत्फ़ेसे पैदा हुआ।

अध्यय (सं० पु०) अधि-इङ्-अच् भावे। १ अध्य-यन, मुतालह, लिखा-पढ़ी। अधि-इक्-अच्। २ स्मरण, याद। ३ पाठ, सबक़। ४ भाग, मुक़ालह। ५ व्याख्यान, वाज़, लेक्चर।

अध्ययन (सं० क्लो०) अधि-इङ्-ल्युट्। पठन, मुतालह। यह शब्द प्रधानतः वेद पढ़नेके अर्थमें आता, जो ब्राह्मणोंके छः कर्मोंमें एक मुख्य कर्म है। २ गुरुके उपदेशानुसार उच्चारण, जो तलफ़्फ़ुज़, उस्तादके बताने मुताबिक़ किया जाये।

अध्ययनतपसी (सं० क्लो०) अध्ययन और तप, मुतालह और नफ़संकुशी, पढ़ाई और मनकी मराई।

अध्ययनपुण्य (सं० क्लो०) अध्ययनसे प्राप्त धार्मिक गुण, जो मज़हबी लियाक़त पढ़नेसे आये।

अध्ययनीय (सं० त्रि०) अध्ययनयोग्य, पढ़ने क़ाबिल।

अध्यर्ध (सं० त्रि०) अध्यारूढं अर्धं यस्मिन्। अध्यर्धपूर्वद्विगोर्लुग संज्ञायाम्। पा ५।१।२८; विभाषाकार्षापणसहस्रा-भ्याम्। पा ५।१।२९। १ सार्ध, अर्धविशिष्ट; डेढ़। २ जगत्को रखने और बढ़ानेवाला वायु जो सर्वत्र व्यापक है।

अध्यर्धक (सं० त्रि०) १ सार्द्ध-परिमित, डेढ़के तख़मीनेका। २ अर्धविशिष्ट मूल्यका, जिसका दाम डेढ़ हो।

अध्यर्धकंस (सं० क्लो०) १ सार्धकंस, डेढ़ प्याला। (त्रि०) २ सार्ध कंसपरिमित, डेढ़ प्यालेको नापका। ३ अर्धविशिष्ट कंसके मूल्यका, जिसका दाम डेढ़ प्यालेके बराबर हो।

अध्यर्धकाकिणीक (सं० त्रि०) सार्ध-काकिणी-परिमित, तौलमें डेढ़ काकिणीके बराबर। अर्ध-विशिष्ट काकिणीके मूल्यवाला, जिसका दाम डेढ़

काकिणी हो। काकिणी बीस कौड़ीके सिक्के और एक हाथकी नापको कहते हैं।

अध्यर्धकार्षापण, अध्यर्धकार्षापणिक (सं० त्रि०) १ सार्ध कार्षापण-परिमित, डेढ़ कार्षापणके वज़नका। २ अर्धविशिष्ट कार्षापणके मूल्यवाला, जिसका दाम डेढ़ कार्षापण हो। एक कार्षापण परिमाण और मूल्यमें अस्सी कौड़ियोंका होता है।

अध्यर्धखारीक (सं० त्रि०) सार्ध खारीपरिमित, डेढ़ खारीकी तौलका। २ अर्धविशिष्ट खारीके मूल्यवाला, जिसका दाम डेढ़ खारी हो। एक खारी दो मन सोलह सेरकी होती है।

अध्यर्धपण्य (सं० त्रि०) १ सार्ध पणपरिमित, डेढ़ पणके वज़नका। २ अर्धविशिष्ट पणके मूल्यवाला, जिसका दाम डेढ़ पण हो। पण एक तोले और आठ माशेका होता है।

अध्यर्धपाद्य (सं० त्रि०) सार्ध पादपरिमित, डेढ़ क़दमका।

अध्यर्धप्रतीक (सं० त्रि०) सार्धकार्षापण-परिमित, डेढ़ कार्षापण या १२० कौड़ियोंकी तौलका।

अध्यर्धमाष्य (सं० त्रि०) सार्धमाष-परिमित, डेढ़ माशेका।

अध्यर्धविंशतिकीन (सं० त्रि०) परिमाण या मूल्यमें सार्ध विंशतिका, जो वज़न या क़ीमतमें डेढ़ कोड़ी या तीसके बराबर हो।

अध्यर्धशत, अध्यर्धशत्य (सं० त्रि०) सार्ध शत परिमित अथवा अर्धविशिष्ट शतसे क्रीत, डेढ़ सौकी संख्याका या डेढ़ सौसे खरीदा गया।

अध्यर्धशतमान (सं० त्रि०) परिमाण अथवा मूल्यमें सार्ध शतमानके तुल्य, जो वज़न या क़ीमतमें ढेढ़ सैकड़ेके बराबर हो।

अध्यर्धशाण, अध्यर्धशाण्य (सं० त्रि०) परिमाण अथवा मूल्यमें सार्ध शाणके तुल्य, जो वज़न या क़ीमतमें छः माशे या आधे तोलेके बराबर हो। शाण चार माशेका होता है।

अध्यर्धशूर्प (सं० त्रि०) परिमाण अथवा मूल्यमें सार्ध शूर्पके सदृश, जो वज़न या क़ीमतमें तीन माशेके बराबर हो। शूर्प दो माशेका होता है।

अध्यर्धसहस्र, अध्यर्धसाहस्र (सं० त्रि०) परिमाण अथवा मूल्यमें सार्ध सहस्रके समान, जो वज़न या क़ीमतमें डेढ़ हज़ारके बराबर हो।

अध्यर्धसुवर्ण, अध्यर्धसुवर्णिक (सं० त्रि०) परिमाण अथवा मूल्यमें सार्ध सुवर्णके समान, जो वज़न या क़ीमतमें दो तोलेके बराबर हो। सुवर्ण सोलह माशेका होता है।

अध्यर्बुद (सं० पु०) अर्बुदोपरि जातार्बुदरोग, फोड़ेपर फोड़ा या आबलेपर आबला पड़नेकी बीमारी।

"यज्जायतेऽन्यत् खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः।"

(सुश्रुत० नि० ११ अ०)

'जो फोड़ा पहले हुए फोड़ेपर पड़े, उसे अध्यर्बुद रोग समझना चाहिये।'

अध्यवसान (सं० क्ली०) १ अभिप्राय, इरादा। २ चेष्टा, कोशिश। ३ उत्साह, हौसला। ४ वाक्यरचनाका संक्षिप्त और शक्तिशाली वचन; सनअतेकलाम, जो बात मुख़्तसर और ज़ोरदार तौरपर कही जाये।

अध्यवसाय (सं० पु०) अधि-अव-सो-घञ्। १ उत्साह, हौसला। २ अविश्रान्त उद्योग, जो काम बराबर जारी रहे। ३ निश्चय, यक़ीन। जो किसीको कोई काम करनेसे किसी तरहके फलका निश्चय हो जाये, तो उस निश्चयको अध्यवसाय कहते हैं। नैयायिक इसे आत्मधर्म बताते हैं; किन्तु सांख्यवादियोंके मतसे यह बुद्धिका धर्म है।

अध्यवसायित (सं० त्रि०) अध्यवसायो जातोऽस्य, तारकादित्वात् इतच्। जाताध्यवसाय, चेष्टित; क़स्द किये हुए, जिसने पूरा इरादा बांध लिया हो।

अध्यवसायिन् (सं० त्रि०) अधि-अव-सो-णिनि। १ उत्साहान्वित, हौसलेमन्द। २ उद्यमशील, रोज़गारी। ३ निश्चयकारी, जिसे यक़ीन आ गया हो।

अध्यवसायी, अध्यवसायिन् देखो।

अध्यवसित (सं० त्रि०) हृदयसे ज्ञात, निश्चित, अनुमोदित; दिलसे समझा-बूझा, यक़ीन किया हुआ, इरादा बांधा गया।

अध्यवहनन (वै० क्ली०) अधि उपरि अवहननम्।

धानकी कुटाई, जो एकबार चावलकी भूसी निकल जानेपर फिर की जाती है।

अध्यशन (सं० क्ली०) अधिकं अशनम्। अतिभोजन; हदसे ज्यादा गिज़ा, जो अजीर्ण या बदहज़मी रहते भी खाया जाये। इसका लक्षण यों कहा गया है,—

"अजीर्णे भुज्यते यत्तु तदध्यशनमुच्यते।
प्रागभुक्ते त्वनले मन्दे विरक्तौ न समाहरेत्॥
प्रातराशे त्वजीर्णे तु सायमाशो न दुष्यति।
पूर्वभुक्ते विदग्धेऽन्ने भुञ्जानो हन्ति पावकम्॥
सायमाशे त्वजीर्णे तु प्रातर्भुक्तं विषोपमम्।"
(वैद्यकनिघण्ट दिनचर्या)

अध्यस्त (सं० त्रि०) अधि-अस्-क्त कर्मणि। १ कृताध्यास, ऊपर रखा गया। २ आरोपित, खयाली। ३ छिपा हुआ, पोशीदा।

अध्यस्थि (सं० क्ली०) अस्थिके ऊपरकी अस्थि, जो हड्डी हड्डीपर जमती है।

अध्याण्डा, अध्यण्डा देखो।

अध्यात्म (सं अव्य०) आत्मानं देहमिन्द्रियादिकं क्षेत्रज्ञं ब्रह्म वा अधिकृत्य। अनय। पा ५।४।१०८। आत्मा अथवा ब्रह्मको अधिकार कर, रूह या परमेश्वरकी बाबत। (क्ली०) २ परब्रह्म, परमेश्वर। (त्रि०) ३ आत्मविषयक, रूहानी।

अध्यात्मकवायु (सं० पु०) न्यायमतसे प्राणाख्य वायु, हवा जिसे प्राणाख्य कहते हैं।

अध्यात्मचेतस् (सं० पु०) ईश्वरका ध्यान करनेवाला व्यक्ति, जो शख्स परमेश्वरका चिन्तन करे।

अध्यात्मज्ञान (सं० क्ली०) ईश्वर अथवा आत्माका ज्ञान, परमेश्वर या रूहका इल्म।

अध्यात्मदृश् (सं० त्रि०) अध्यात्मं पश्यतीति, दृशक्विन्। आत्मज्ञ, विषयादि व्यापार-शून्य होकर जो केवल आत्माको देखे; रूहका राज़ समझनेवाला, जो सब दुनियाके सब काम छोड़ सिर्फ रूहपर निगाह डाले।

अध्यात्मयोग (सं० पु०) आत्मानमधिकृत्य योगः। विषयव्यापारसे हटा केवल आत्मतत्त्वमें मनोनिवेश, दुनियाकी बातोंसे खींच रूहमें इन्सानके दिलका लगाव।

अध्यात्मरति (सं० पु०) ईश्वर या आत्माके विचारमें आनन्द लेनेवाला व्यक्ति, जो शख्स परमेश्वर या रूहके खयालमें मस्त रहे।

अध्यात्मरामायण (सं० क्ली०) आत्मानमधिकृत्य कृतं रामस्य अयनं शास्त्रम्। ब्रह्माण्डपुराणान्तर्गत सप्तकाण्डात्मक ग्रन्थविशेष। प्राचीन पुराणोंकी उपक्रमणिकामें बात कहनेकी यह प्रथा रही, कि कलिकालमें जब पृथिवी पापभारसे भारी पड़ती, तब जीवके परित्राणका क्या उपाय होता था। अध्यात्मरामायणके आदिमें भी लेखकने यही प्रथा पकड़ गल्पको आरम्भ किया है। नारदने ब्रह्माके पास पहुंच पूछा, कि कलिकालमें लोग नाना प्रकारके पापकर्म करेंगे; उससे उनके निस्तारका क्या उपाय है? कमलयोनि ब्रह्माने कहा, कि एक समय महादेवने पार्वतीको अध्यात्मरामायण सुनाया था; कलिके लोग वह उपाख्यान सुननेसे ही मुक्त होंगे। लेखकने यह भूमिका बना वाल्मीकिरामायणको संक्षेपसे दूसरी कथामें नकल उतारी है। यह नहीं कहा जा सकता, कि अध्यात्मरामायणका प्रकृत लेखक कौन था। जो हो, पुस्तक अधिक पुरातन नहीं। आदिकाण्डमें लिखा है,—

"बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः।
श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासागमशतानि च।
अर्हन्ति नाल्पामध्यात्मरामायणकलामपि।"

'हे नारद! इस विषयमें अधिक कहनेसे क्या फल है? मैं मुख्य बात कहता हूं, सुनिये। शत-शत श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, आगम प्रभृति अध्यात्मरामायणकी एक अल्प कलाके बराबर भी नहीं हो सकते।'

अध्यात्मविद्, अध्यात्मदृश् देखो।

अध्यात्मविद्या (सं० स्त्री०) अध्यात्मज्ञान देखो।

अध्यात्मशास्त्र (सं० क्ली०) अध्यात्मप्रतिपादकं शास्त्रम्। शास्त्रग्रन्थ जिसमें अध्यात्मयोगादिका विषय लिखा हो।

अध्यात्मा (सं० क्ली०) परमेश्वर, भगवान्।

अध्यात्मिक, आध्यात्मिक (सं० त्रि०) परमात्मा अथवा जीवात्मा-सम्बन्धीय, जिसका लगाव ईश्वर या रूहसे हो।

अध्यापक (सं० पु०) अधि-इङ्-णिच्-ण्वुल्, अध्यापयतीति। आचार्य, उपाध्याय, शिक्षक, उस्ताद, मुअल्लिम; जो किसीको पढ़ाये। विष्णुका वचन है, कि जो वेदादि अध्ययन कराते, वह आचार्य और जो वेतनादि ले शिक्षा देते, वह उपाध्याय कहाते हैं। (स्त्री) अध्यापिका।

अध्यापकी (हिं० स्त्री०) आचार्यता, उपाध्यायी, उस्तादी, मुअल्लमी।

अध्यापन (सं० क्लौ०) अधि-इङ्-णिच्-ल्युट् भावे। पाठन, शिक्षादान; अध्ययनका कराना, किताबका पढ़ाना। अध्यापन तीन प्रकारसे होता है,—१ धर्मके कारण, २ अर्थके कारण और ३ शुश्रषाके कारण। (स्त्री०) अध्यापना।

अध्यापयितृ (सं० पु०) शिक्षक, उस्ताद, पढ़ानेवाला।

अध्यापित (सं० त्रि०) लिखा या पढ़ाया, तालीम दिया हुआ।

अध्याप्य (सं० त्रि०) अधि-इङ्-णिच्-यत् कर्मणि। पाठनीय, अध्यापनयोग्य; पढ़ाने या तालीम देने क़ाबिल।

अध्याय (सं० पु०) अधि-इङ्-घञ्। अध्यायन्यायो-द्यावसंहाराश्च। पा ३।३।१२२। १ अध्ययन, तालीम। २ ग्रन्थ-विभाग, मुक़ालह। ३ पाठ लेने योग्य समय, तालीम पाने क़ाबिल वक्त। इस शब्दके यह पर्याय हैं,—सर्ग, वर्ग, परिच्छेद, उद्घात, अङ्क, संग्रह, उच्छ्वास, परिवर्त, पटल, काण्ड, स्थान, प्रकरण, पर्व, आह्निक, स्कन्द, स्तवक, उल्लास, पाद, उद्योत् और विरचन।

अध्यायशतपाठ (सं० पु०) १ शत अध्यायका सूचीपत्र, सौ मुक़ालहकी फ़ेहरिस्त। २ ग्रन्थविशेष।

अध्यायिन् (सं० त्रि०) पठनशील, पढ़ता हुआ, जो तालीममें लगा हो।

अध्यारूढ़ (सं० त्रि०) अधि-आ-रुह-क्त कर्मणि कर्तरि वा। १ समारूढ़, चढ़ा हुआ। २ आक्रान्त, ऊंचा, बड़ा। ३ तुच्छ, हक़ीर। ४ अधिक, अतिशय; हदसे ज्य़ादा।

अध्यारोप (सं० पु०) अधि-आ-रुह-णिच् पादेशः घञ्। रुहः पोऽन्यतरस्याम्। पा ७।३।४३। १ चढ़ना, ऊपरको पहुंचना। २ आरोप, लगाव। ३ मिथ्याज्ञान, झूठी समझ। रज्जुमें सर्पको भ्रमसे देखना और सच्चिदानन्द परमेश्वरमें जड़धर्म लगाना आदि विषय अध्यारोपके हैं।

अध्यारोपण (सं० क्लौ०) अधि-आ-रुह-णिच् पादेशः ल्युट्। १ धान्यादिका वपन, अनाज वगैरहकी बोआई। २ अतिशय आरोपण, हदसे ज्य़ादा लगाव।

अध्यारोपित (सं० त्रि०) १ मिथ्याकल्पित, ग़लत समझा हुआ। २ धोखे या मुग़ालतेका।

अध्यावाप (सं० पु०) अधि-आ-वप-घञ्। १ बौनी, शस्य या अनाजका बोना। २ शस्य बोनेका क्षेत्र, बीज डालनेका खेत।

अध्यावाहनिक (सं० क्लौ०) अधि-आ-वह-णिच्-ल्युट्; अध्यावाहनं पितृगृहात् भर्तृगृहागमनं तत्काले लब्धं अस्मात्, लब्धार्थे ठन्। स्त्रीधनविशेष।

"यत् पुनर्लभते नारी नीयमाना हि पैतृकात्।
अध्यावाहनिकं नाम तत् स्त्रीधनमुदाहृतम्॥" (दायभाग)

'पिताके घरसे चलते समय स्त्रियां पुनर्वार जो धन पातीं, वही अध्यावाहनिक कहाता है।'

अध्यास (सं० पु०) अधि-अस क्षेपे-घञ्। १ आरोप, लगाव। २ मिथ्याज्ञान, झूठा इल्म। शङ्कराचार्यका वचन है, कि पहले कोई वस्तु देखनेसे हृदयमें उसके रूपादिका एक संस्कार जम जाता है; पीछे वैसी ही कोई दूसरी वस्तु देखनेसे रूपादि विषयमें किञ्चित् सादृश्यके कारण वह पहली ही वस्तु-जैसी समझ पड़ती है। जैसे,—कोई व्यक्ति यदि पहले सर्प देखता, तो सर्पके अवयव-सम्बन्धपर उसके हृदयमें एक धारणा जम जाती है; पीछे हठात् रज्जु देखनेसे उसी सर्पका आकार उसके हृदयमें दौड़ पड़ता है। उस समय रज्जु सर्प दिखाई देती और उसी मिथ्याज्ञानको अध्यास कहते हैं।

अध्यासन (सं० क्लौ०) अधि-आस वासे उपवेशने वा-ल्युट्। १ निवास, रहन। २ अधिष्ठान, बैठक। ३ अधिरोहण, चढ़ाव।

अध्यासनयोग (सं० पु०) बौद्धमतसे—एक प्रकार-का ध्यान, एक तरहका खयाल।

अध्यासित (सं० त्रि०) अधि-आस-क्त भावे। नपुंसके भावे क्तः। पा ३।३।११४। १ अधिष्ठित, बैठा हुआ। २ सभापतिके आसनपर आसीन, प्रेसिडेण्टकी कुरसी पर बैठा हुआ। ३ बसा हुआ, आबाद।

"भित्वा तदध्यासितकातराच्या निरीच्यमाणः सुतरां दयालुः।"
(रघु २।५२।)

अध्यासीन (सं० त्रि०) अधि-आस-शानच्। ईदासः। पा ७।२।८३। उपविष्ट, बैठा हुआ। (स्त्री०) अध्यासीना।

अध्याहरण (सं० क्ली०) अधि-आ-हृ-ल्युट्। १ अध्याहार, बहस। २ उपस्थित करनेका कार्य, पहुंचानेका काम। ३ प्रमाण देनेका कार्य, सुबूत पहुंचानेकी बात।

अध्याहरणीय (सं० त्रि०) १ उपस्थित करने योग्य, पहुंचाने काबिल। २ तर्क्य, जो बहस करनेके काबिल हो।

अध्याहार (सं० पु०) अध्याह्रियते, अधि-आ-हृ-घञ् भावे। १ ऊहाका करना, तर्क; बहस। "अश्रुतपदानामनुसन्धानम्।"(दि० ४) २ असम्पूर्ण वाक्यके पूर्णार्थ पदान्तकी योजना, अधूरे जुमलेको पूरा करनेके लिये फ़िकरेके आखीरका जोड़। ३ अन्य शब्द द्वारा अस्पष्ट विषयका स्पष्ट करना, दूसरे लफ़्ज़से जो बात साफ़ न हो, उसका खोलना। ४ किसी विषयकी आकाङ्क्षाके पूरणार्थ अनुसन्धान, जिस बातको दिल चाहे उसके पूरा करनेकी तलाश। अध्याहार दो प्रकारका होता है,—१ शब्दाध्याहार, २ अर्थाध्याहार। शब्दाध्याहारमें शब्द और अर्थाध्याहारमें अर्थ ऊपरसे जोड़ा जाता है।

अध्याहार्य (सं० त्रि०) अधि-आ-हृ-ण्यत्। १ ऊह्य, बहस करने काबिल। २ अनुसन्धेय, तलाशके काबिल।

अध्याहृत (सं० त्रि०) १ उपस्थित किया या पहुंचाया गया। २ वितर्कित, जिसपर बहस की गई हो।

अध्युषित (सं० त्रि०) अधि-वस-आधारस्य कर्म-संज्ञायां कर्मणि क्त, वकारस्य सम्प्रसारणम्। वसति चुधोरिट्। पा ७।१।५२; शासिवसिघसीनां च। पा ८।३।६०। उपान्वध्याङ्वसः। पा १।४।४८। १ अधिष्ठित, उपविष्ट; बैठा हुआ। २ प्राप्त, मिला हुआ। (पु०) ३ सर्वाचि-रोग, सारी आंखकी बीमारी।

अध्युषिताश्व, अध्यूषिताश्व (सं० पु०) दशरथके वंशज एक राजकुमार, दशरथके खान्दानमें पैदा हुए एक राजा।

अध्युष्ट (सं० त्रि०) १ साढ़े तीन बार लपेटा गया, जिसमें साढ़े तीन बल लगे हों। २ बसा हुआ, आबाद।

अध्युष्टवलय (सं० पु०) सांप, जिसने साढ़े तीन बल खाये हों।

अध्युष्ट्र (सं० त्रि०) अध्यारूढ़ उष्ट्रम्, अत्या० तत्। १ उष्ट्रयुक्त, जिसमें ऊंट जुते हों। (पु०) २ ऊंट-गाड़ी, वह रथ जिसमें ऊंट जोते जाते हैं।

अध्यूढ़ (सं० त्रि०) अधि-(उपरि)-वह-क्त। १ अधिक, वृद्धियुक्त, खूब बढ़ा-चढ़ा। २ समृद्ध, भरापूरा। ३ अतिशय, कसीर। (पु०) ४ शिव, महादेव।

अध्यूढा (सं० स्त्री०) अधिविन्ना, वह स्त्री जिसके रहते पतिने दूसरा विवाह कर लिया हो।

अध्यूध्नी (सं० स्त्री०) अधिकं ऊधः स्तनो यस्याः, अधि-ऊधस् अनङ्। ऊधसोऽनङ्। पा ५।४।१३१। संख्या-व्ययादेर्ङीप्। पा ४।१।२६। १ दुग्धवती गौ, दूध देनेवाली गाय। २ वह गौ जिसके स्तन बड़े-बड़े हों। ३ नली-जैसी नस जो स्तनपर उभर आती है।

अध्यूष्वस् (सं० त्रि०) अधि-वस् क्वसु। भाषायां सदवस-श्रुवः। पा ३।२।१०८। अधिष्ठित, जिसने अधिवास किया हो; ठहरा हुआ।

अध्यूहन (सं० क्ली०) भस्म या अङ्गारके पुटपर स्थापन, खाक या अंगारकी तहपर जमाव।

अध्येतव्य (सं० त्रि०) अधि-इङ्-तव्य कर्मणि। पाठ्य, पढ़ने काबिल।

अध्येतृ (सं० पु०) विद्यार्थी, पाठक, अध्ययनकर्ता; तालिब इल्म, जो पढ़े-लिखे।

अध्येय (सं० त्रि०) पाठ्य, पढ़ने काबिल।

अध्येष्यमाण (सं० त्रि०) अध्ययन करनेका इच्छुक, जो पढ़ना चाहता हो।

अध्येषण (सं० क्ली०) अधि-इष प्रेषणे णिच् ल्युट्। १ विनयपूर्वक जिज्ञासा, आजिज़ीका सवाल। २ प्रार्थना, आरज़ू। ३ सत्कारपूर्वक प्रेरण, इज़्ज़तकी विदाई। (स्त्री०) अध्येषणा।

अध्रि (वै० त्रि०) अधृत, न पकड़ाहुआ, हाथसे बाहर।

अध्रिगु (वै० त्रि०) अधिक्रतो गौर्यस्मिन् मन्त्रे, बहुव्री०। 'अधिक्रतशब्दस्य अध्रिभावः, गोशब्दश्चात्र पशुमात्रोपलक्षकः।' इति निरुक्तम्। १ अधृतगमन, अप्रतिहतगति; चलता हुआ, जल्दबाज़। (पु०) २ अधिक्रत पशुविशिष्ट मन्त्र। ३ अग्नि। ४ इन्द्र।

अध्रिज (वै० त्रि०) अधृतं जनयति, जन-ड अन्तर्भूतण्यर्थे। १ अधृतजनक, अधृष्यजनक, जो रुके नहीं।

अध्रिपुष्पिका (वै० स्त्री०) ताम्बूल, नागवल्ली, नागरबेल, पान। (Piper betel)

अध्रियमाण (सं० त्रि०) १ न पकड़ा हुआ, बेहाथ। २ जो पकड़ा न जाये, बेपहुंच। ३ मृत, मरा हुआ।

अध्रियामणी (हिं० स्त्री०) कटारी, छुरी।

अध्रुव (सं० त्रि०) न ध्रुवम्, नञ्-तत्। १ अनिश्चित। ठीक नहीं। २ चञ्चल, चुलबुला। ३ पृथक् करने योग्य, जो अलग किया जा सके।

अध्रुष (सं० पु०) विक्रतरक्तजनित और ज्वरभुक्त शोथरोग विशेष; खुनक। यह एक तरहकी सूजन है, जो मुखमें तालुपर उभर आती है। इसका रङ्ग लाल और इसकी पीड़ासे ज्वर आ जाता है।

"शोथस्तब्धो लोहितस्तालुदेशे रक्ताज्ज्ञेयः सोऽध्रुषो रुग्ज्वराढ्यः।"
(सुश्रुत नि० १६ अ०)

अध्वग (सं० पु०) अध्वानं गच्छतीति, गम-ड। अन्तात्यन्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु डः। पा ३।२।४८। १ पथिक, मुसाफ़िर। २ उष्ट्र; शुतर, ऊंट। ३ सूर्य, आफ़ताब। ४ अश्वतर, खच्चर। (त्रि०) ५ राह चलनेवाला।

अध्वगच्चमी (सं० पु०) पच्ची, परिन्द।

अध्वगत् (सं० पु०) अध्वानं गच्छति, गम-क्विप्। पथिक; मुसाफ़िर, बटोही।

अध्वगभोग्य, अध्वगभोज्य (सं० पु०) अध्वगैन अतिसौलभ्यात् भोग्यः, ३-तत्। आम्रातक वृक्ष, अमरा। (Spondias mangifera) अमरा अतिसुलभ वृक्ष है, राहके लोगोंके तोड़कर खानेपर भी कोई कुछ नहीं बोलता।

अध्वगमन (सं० क्ली०) मार्गका जाना, राहका चलना।

अध्वगवृक्ष (सं० पु०) आम्रातक, अमरा।

अध्वगामिन् (सं० त्रि०) मार्गमें यात्रा करने या राह चलनेवाला।

अध्वजा (सं० स्त्री०) अध्वनि जायते, जन्-ड ७-तत्। स्वर्णपुष्पी, स्वर्णुली; एक लता जो राहमें जमती है और जिसमें सुनहले फूल लगते हैं।

अध्वन् (सं० पु०) अद-क्वनिप्, दकारस्य धकारः। अदेर्ध च। उण् ४।११५। 'अदनं खलिगच्छतां पचप्रादीनां विषमस्थानाभावात्। यद्वा,—अधिगत्यर्थः कश्चिद्धातुः, बाहुलकात् पूर्वेण वनिप्। गच्छन्त्यस्मिन् देवतादय इत्यध्वा।' (देवराजः) १ पथ, राह। २ अन्तरिक्ष, ज़मीन और आसमानके बीचकी ख़ाली जगह। ३ आकाश, आसमान। ४ यात्रा, सफ़र। ५ दूरी, फ़ासिला। ६ काल, समय। ७ द्वार, ज़रिया। ८ वायु, हवा। ९ स्थान, जगह। १० वेदमत। ११ आक्रमण, हमला। २२ स्कन्द, मुक़ाम। १३ अवयव, अजो।

अध्वनिषेवण (सं० क्ली०) अध्वचलन, चङ्क्रमण; हवाख़ोरी, टहलपहल।

अध्वनीन (सं० त्रि०) अध्वानं अलं गामी, अध्वन्-ख। अध्वनो यत्खौ। पा ५।२।१६। खूब होशियारीसे राह चलनेवाला।

अध्वन्य (सं० त्रि०) अध्वानं अलंगामी, अध्वन्-यत्। खूब होशियारीसे पथ चलनेवाला।

अध्वपति (सं० त्रि०) ७ वा ६ तत्। १ मार्गपालक, राहका रखवाला। (पु०) २ सूर्य, जो राशिचक्रके राजा हैं।

अध्वयत् (वै० त्रि०) १ दौड़ता हुआ। २ शीघ्रगामी, जल्द चलनेवाला।

अध्वर (वै० पु०) ध्वृ हिंसाकर्मे घ, ध्वरति ध्वरः; न विद्यते ध्वरो हिंसा यस्मिन्, नञ्-बहुव्री०। पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण। पा ३।३।११८। १ यज्ञ। २ हिंसारहित यज्ञ अर्थात् जिस यज्ञमें कोई विघ्न न हो। निरुक्तमें अध्वर शब्दकी अनेक प्रकारसे व्युत्पत्ति की

गई है। ऋग्वेदकी व्याख्यामें सायणाचार्यने अध्वर शब्दका विघ्नरहित यज्ञ ही अर्थ किया है,—

"अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद्देवेषु गच्छति।"

(ऋक् १।१।४)।

'कीदृशं यज्ञं? अध्वरं हिंसारहितम्। नहि अग्निना सर्वतः पालितं यज्ञं राक्षसादयो हिंसितुं प्रभवन्ति। + + न विद्यतेऽध्वरोऽस्येति बहुव्रीहौ इत्यादि।"

'किस प्रकारका यज्ञ?—अध्वर अर्थात् हिंसा-रहित यज्ञ। सब ओर अग्नि द्वारा पालित यज्ञको नष्ट करनेके लिये राक्षस समर्थ न होते थे।' फिर देखिये,—

"राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविं। वर्धमानं स्वे दमे।"

(ऋक् १।१।८।)

'अध्वराणां राक्षसकृतहिंसारहितानां यज्ञानां।' (सायण)

३ आठ वसुओंमें एक वसुका नाम। ४ वंशका प्रधान, ख़ान्दानका सरदार (क्ली०) ५ अन्तरिक्ष, आसमान। ६ वायु, हवा। (त्रि०) ७ कुटिलता-शून्य; सीधा, जो टेढ़ा नहीं। ८ अखण्ड, न टूटा हुआ। ९ बाधारहित, जिसे किसीने काटा न हो। १० टिकाऊ, बहुत दिन चलनेवाला। ११ सुस्थ, तनदुरुस्त। १२ व्यस्त, मशग़ूल, लगा हुआ।

अध्वरकर्मन् (सं० क्ली०) अध्वर एव कर्म। यज्ञरूप कर्म, यज्ञका काम।

अध्वरकल्पा (सं० स्त्री०) एक इच्छानुरूप यज्ञका नाम, जिसे काम्येष्टि भी कहते हैं।

अध्वरकाण्ड (सं० क्ली०) शतपथब्राह्मणके उस अंशका नाम जिसमें अध्वर-यज्ञकी बात लिखी है।

अध्वरकृत् (सं० पु०) अध्वरयज्ञ करनेवाला पुरुष।

अध्वरग (सं० त्रि०) अध्वरके लिये ईप्सित, जो अध्वरके लिये विचारा जाये।

अध्वरगु, अध्वर देखो।

अध्वरदीक्षणीया (सं० स्त्री०) अध्वरसम्बन्धीय दीक्षा, यज्ञकी शुभक्रियाविशेष।

अध्वरप्रायश्चित्ति (वै० स्त्री०) अध्वरके प्रायश्चित्तकी रीति।

अध्वरमीमांसा (सं० स्त्री०) अध्वरस्य यज्ञस्य कर्तव्यताज्ञानाय मीमांसा विचारः। जैमिनिप्रोक्त धर्म-मीमांसाख्य शास्त्र विशेष, जैमिनीका बनाया धर्म-मीमांसा नामक एक ग्रन्थ।

अध्वरथ (सं० पु०) अध्वैव रथो यस्य, बहुव्री०। १ पथके विषयमें अभिज्ञ दूत, वह एलची जो समझता-बूझता और राहका हाल जानता हो। २ मार्गमें गमनोपयुक्त रथ, जो गाड़ी राहमें चलने क़ाबिल हो। 'पथगमनोपयुक्त रथ' कहनेका मतलब यह है, कि रथ कई प्रकारका होता है; जैसे, १ लड़कोंके खेलनेका रथ, २ देवताओंको ऊपर बैठा खींचा जानेवाला रथ, ३ समान लादनेका रथ। ४ राहमें चलने क़ाबिल रथ और ५ गन्धोरथ। यहां 'अध्वरथ' शब्दसे मार्गगमनोपयुक्त रथका ही ग्रहण है।

अध्वरवत् (वै० त्रि०) अध्वरशब्दवाला, जिसमें अध्वर लफ़्ज़ शामिल हो।

अध्वरश्री (वै० पु०) अध्वरकी महिमा यानी अध्वरका सहायक।

अध्वरसमिष्टयजुस् (वै० क्ली०) यज्ञसे सम्बन्ध रखनेवाले नौ पवित्र जलोंका समूह, नौ तरहके पानीका ढेर जो धार बांधकर यज्ञमें देवतापर चढ़ाया जाता है।

अध्वरस्थ (वै० त्रि०) यज्ञमें खड़ा या काम करता हुआ।

अध्वरा (सं० स्त्री०) मेदा, अदरक-जैसी एक जड़।

अध्वरेष्ठ (सं० त्रि०) यज्ञमें अधिष्ठित या खड़ा हुआ।

अध्वर्यु, अध्वरयु (सं० पु०) अध्वरं युनक्तीति, अध्वर-युज्-डु। कव्यध्वरपृतनस्यर्चि लोपः। पा ७।४।३९। १ यजुर्वेद पढ़नेवाला ब्राह्मण। २ याजक, यज्ञ करानेवाला प्रधान पुरोहित। ३ होता, उद्गाता और ब्रह्मासे भिन्न पुरोहित विशेष। इनका काम भूमि नापना, वेदी बनाना, यज्ञपात्र प्रस्तुत करना, काष्ठ और जल लाना, आग जलाना और पशुको वलिदान देना था। इस काममें लगे हुए इन्हें बिना भूल-चूक यजुर्वेदके मन्त्र पढ़ना पड़ते थे; इसीसे यजुर्वेद अध्वर्यु या आध्वर्यवके भी नामसे पुकारा गया। हरिवंशमें लिखा है,—

"ब्राह्मणं परमं वक्त्रादुद्गातारञ्च सामगम्।
होतारमथ चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः॥"

'प्रभुने अपने मुखसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको उत्पन्न किया

था। वह उद्‌गाता रहे, उच्चैःस्वरसे सामगान करते थे। अपने वाहुसे फिर उन्होंने होता और अध्वर्यु निकाले।'

यह बड़े ही पेचकी बात है। प्रभुने जिन ब्रह्माको मुखसे उत्पन्न किया था, वही सामवेदके गायक हुए। फिर जो अध्वर्यु अर्थात् यजुर्वेदके पुरोहित रहे, प्रभुने उन्हें अपने बाहुसे बनाया था। यह बात कहनेसे ब्रह्मा और यजुर्वेदके पुरोहित दोनो पृथक् श्रेणीके हो जाते हैं। जो ब्रह्मा हैं, वह अध्वर्यु या यजुर्वेदके पुरोहित नहीं। ऋग्वेद और अथर्ववेदके पुरुषसूक्तमें लिखा है, कि पुरुषके बाहुसे राजन्यको उत्पत्ति हुई थी। फिर यहां लिखते, कि प्रभुने अपने बाहुसे अध्वर्यु उत्पन्न किये हैं। इससे यही सन्देह होता है, कि राजन्य और अध्वर्यु एक ही श्रेणीके लोग हैं। निरुक्तमें देखिये,—

"तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानो, वायुर्वा इन्द्रो वाऽन्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः। तासां महाभाग्यात् एकैकाना मपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। अपि वा कर्मपृथक्त्वात् यथा,—होताध्वर्यु ब्रह्म उद्‌गाता इत्यपि एकस्य सतः। अपि वा पृथगेव स्युः। पृथग् हि स्तुत्यो भवन्ति तथाऽभिधानानि"। (७।५)

'नैरुक्तोंके मतसे देवता तीन हैं। पृथिवीमें अग्नि, अन्तरीक्षमें वायु या इन्द्र और द्युलोकमें सूर्य रहते हैं। उनके माहात्म्यानुसार एक-एक देवताके अनेक नाम हुआ करते हैं। अथवा जैसे पृथक् कर्मसे होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्‌गाता प्रभृति अनेक नाम पड़ते, वैसे ही देवताओंके भी अनेक नाम निकलते हैं। यदि ऐसा नहीं, तो सभी पृथक् मानना पड़ेंगे; क्योंकि उन सबके स्वतन्त्र नाम रहे और सब पृथक् स्तवनीय हुए हैं।'

निरुक्तका यह वाक्य देखनेसे बोध होता है, कि ब्रह्मा, अध्वर्यु प्रभृति भिन्न-भिन्न नाम केवल कार्यभेदसे रखे गये हैं। ऋषि जो सकल वेदमन्त्र बनाते उनका अलग्-अलग् नाम पड़ता था। जैसे,—ऋच्, उक्थ, स्तोम, अर्क, वाच्, वाचस्, ब्रह्म, गीर्, मन्त्र, सूक्त, धी, मति, नीथ, निविद् इत्यादि। इसीसे ज्ञात होता है, कि जो ब्रह्म अर्थात् वेदका गानविशेष रचते या उसके स्तोत्रको गाते, वह ब्रह्मा कहाते थे। सायणके वेदभाष्यमें इसका कितना ही आभास मिलता है। उन्होंने 'अब्राह्मण' शब्दकी व्याख्यामें इसका अर्थ 'स्तोत्रहीन' लगाया है। यह भी देखा जाता है, कि ऋङ्मन्त्रोंमें अनृच् और अब्राह्मण दोनो शब्द एक ही प्रकारके अर्थमें प्रयुक्त हुए हैं।

अध्वर्युक्रतु (सं० पु०) अध्वर्युवेदे यस्य क्रतोर्विधानं सोऽध्वर्युक्रतुः। अध्वर्युक्रतुरनपुंसकम्। पा २।४।४। यजुर्वेद-विहित यज्ञ, जिसे अध्वर्यु कराते हैं।

अध्वर्युवेद (सं० पु०) यजुर्वेद, जिसे अध्वर्यु पढ़ते हैं।

अध्वशल्य (सं० पु०) अध्वनि पथि शल्यमिव आचरतीति, ततोऽच्। अपामार्ग, लटजीरा, चिचड़ा।

अध्वशोष (सं० पु०) मार्गश्रमजन्य शोषरोग, राहको थकावटसे पैदा हुई सूखेकी बीमारी।

"अध्वप्रशोषो स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः।
प्रसुप्तगात्रा वयवः शुष्कक्लमगलानलः॥" (निदान)

'जिसे राह चलनेकी थकावटसे सूखेकी बीमारी लगती, उसका अङ्ग ढीला पड़ और चेहरेका रङ्ग उड़ जाता है। वह अपने हाथ-पैर नहीं उठा सकता और उसका गला और मुंह सूखता है।'

अध्वसिङ्गक (सं० पु०) सिन्धुवार वृक्ष, सम्हालू।

अध्वस्मन् (सं० वि०) ध्वन्स-मनिन्-किच, ततो नञ्-बहुव्री०। १ ध्वंसरहित, लाज़वाल; जिसका कभी नाश न हो। २ न गिरानेवाला। ३ प्रशस्त, खुला।

अध्वाण्डशात्रव, अध्वान्तशात्रव (सं० पु०) श्योनाक-वृक्ष, श्योना; अरलू। यह वृक्ष अन्धकारमें फूलता है।

अध्वाति (वै० पु०) अध्वानमतति, अत-इ; ६-तत्। पथिक, मुसाफ़िर बटोही।

अध्वान्त (वै० क्ली) १ सन्ध्या, गोधूलि। २ अन्ध-कार, तारीकी।

अध्वायन (सं० क्ली०) अध्वनि अयनं गतिः। यात्रा, सफ़र, राहका चलना।

अन् (सं० अव्य०) १ नहीं, न। संस्कृतमें यह स्वरसे आरम्भ होनेवाले शब्दोंके आदिमें आता और इन्कारका मतलब रखता है। हिन्दीमें इसके अन्तका नकार सस्वर हो जाता है। (सं० क्रि०) २ सांस लेना, हांफना, सरकना, जाना या जीना।

अन (सं० क्रि०) अदा० प०, अक० सेट्। वा दि० आ०, अक० सेट्। १ जीना, ज़िन्दा रहना। रुदादिभ्यः सार्वधातुके। पा ७।२।७६। (पु०) अन्-अच् बाहु०। २ प्राण। प्राणोऽपानोव्यान उदानः समानोऽन इत्येतत् सर्वं प्राण इति। ३ प्राणन, नफ़्स; सांस।

अनंश (सं० त्रि०) नास्ति अंशो दायग्रहणाधिकारोऽस्य। १ विभागरहित, जिसमें टुकड़े नहीं। २ पैतृक विषयका अंश न पा सकनेवाला, जिसे अपने बाप दादेकी जायदादका हिस्सा न मिल सके। क्लीव, पतित, जन्मान्ध और कुष्ठादिरूप अचिकित्स्य रोगाक्रान्त पैतृक धनके अधिकारी नहीं होते। मनुने अनंशका यह नियम रखा है,—

"अनंशौ क्लीवपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा।
उन्मत्त जड़मूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः॥" मनु ९।२०१।

'क्लीव, पतित, जन्मान्ध, जन्मबधिर, उन्मत्त, जड़, मूक, विकलेन्द्रिय तथा हीनेन्द्रिय व्यक्ति पैतृक धनके अधिकारी नहीं होते।

नास्ति अंशोऽवयवो यस्य। ३ निराकार, जिसकी कोई सूरत नहीं।

अनंशुमत्फला (सं० स्त्री०) न अंशुमत्फलं यस्याः। कदली, केला।

अनहिवात (हिं० पु०) वैधव्य, रंडापा, अहिवातका अभाव।

अनइस (हिं०) अनैस देखो।

अनइसी, अनैसा देखो।

अनऋतु (हिं० स्त्री०) १ दुष्ट ऋतु, बुरा मौसम। २ अकाल, ख़राब वक़्त। ३ ऋतुविपर्यय, मौसमका उलट-फेर।

अनक (सं० त्रि०) अधम, कमीना। २ कुत्सित, ख़राब। ३ असुख, परेशान। (हिं० पु०) ४ आनक देखो।

अनकदुन्दुभ (सं० पु०) श्रीकृष्णके पितामह या दादेका नाम।

अनकदुन्दुभि, आनकदुन्दुभि (सं० पु०) श्रीकृष्णके पिता वसुदेवका नाम, जो उनके जन्म-समय ढोल बजनेसे रखा गया था।

अनकन (हिं० क्रि०) १ सुनना, कान देना। २ मौनभावसे श्रवण करना, चुपकेसे कान लगाना। ३ गुप्त भावसे सुन लेना, छिपकर कान देना।

अनक़रीब (अ० क्रि०-वि०) १ क़रीब-क़रीब, पास-पास। २ लगभग, कोई। ३ प्रायः, अकसर।

अनकस्मात् (सं० अव्य०) १ विना कारण या प्रयोजनके नहीं, बेसबब या बेमतलब नहीं। २ अकस्मात् नहीं, एकाएक नहीं।

अनकहा (हिं० वि०) अनुक्त, जो कहा नहीं गया। (स्त्री०) अनकही।

अनक्ष (वै० त्रि०) न अश्नाति व्याप्नोति विषयं इन्द्रियेण; अक्ष-क्विप्, नञ्-तत्। १ अन्ध, नाबीना, जिसके आंख नहीं। नास्ति अक्षं इन्द्रियं चक्रं वा यस्य, बहुव्री०। २ चक्षु प्रभृति इन्द्रियशून्य, जिसके आंख वग़ैरह इन्द्रियां न हों। ३ चक्रशून्य, जो चक्रसे ख़ाली रहे।

अनक्षर (सं० क्लो०) अप्रशस्तानि अक्षराणि अत्र, बहुव्री०। १ कुत्सित वाक्य, निन्दा; गाली, हिक़ारत। (त्रि०) नास्ति अक्षरं वर्णज्ञानं यस्य। २ वर्णज्ञानहीन, मूर्ख; नाख़ुांदा, बेवक़ूफ़। ३ उच्चारणके अयोग्य, जो तलफ़्फ़ुज़ करनेके क़ाबिल नहीं।

अनक्षस्तम्भम् (सं० अव्य०) जिसमें धुरीपर आपत्ति न आये, ताकि धुरीमें दख़ल न पहुंचे।

अनक्षि (सं० क्लो०) अप्रशस्तं अक्षि, नञ्-तत्। मन्द चक्षु, बुरी आंख। (त्रि०) अप्रशस्तं कुत्सितं अक्षि यस्य, अच्-स०। अनक्ष, बुरी आंखवाला।

अनख (हिं० पु०) १ क्रोध, गुस्सा। २ दुःख, तकलीफ़। ३ ईर्ष्या, हसद। ४ अन्याय, ज़ुल्म। ५ डिठोना, काजलकी बिन्दी। यह लड़कोंके माथेपर नज़र न पड़नेको लगा देते हैं।

अनखना, अनखाना (हिं० क्रि०) क्रोध करना, गुस्सा दिखाना।

अनखी (हिं० वि०) क्रोधी, कोपान्वित; गुस्सावर, जल्द नाराज़ होनेवाला।

अनखौहा (हिं० वि०) १ क्रुद्ध, नाराज़। २ चिड़चिड़ा, जो ज़रासी बातपर बिगड़ खड़ा हो। ३ क्रोधजनक, जिससे गुस्सा पैदा हो जाये। ४ अनुचित, ग़ैरवाजिब।

अनगढ़ (हिं॰ वि॰) १ न गढ़ा गया। २ किसीका बनाया नहीं, स्वयम्भू। ३ भद्दा, बेडौल। ४ असंस्कृत, अनाड़ी। ५ आदि-अन्त-रहित, जिसका ओर-छोर न हो।

अनगन (हिं॰ वि॰) अगणित, बेशुमार।

अनगना (हिं॰ वि॰) १ खपरै सुधारना, छप्परके ऊपर उलट-फेर दुरुस्त करना, टपकनेवाले खपरोंको मरम्मत बनाना। (वि॰) २ अगणित, बेशुमार।

अनगार (सं॰ त्रि॰) नास्ति आगारं यस्य, बहुव्री॰। १ भवनरहित, बेघर। (पु॰) परिव्राजक, जो घरमें न रहकर घूमता फिरे।

अनगारिका (सं॰ स्त्री॰) परिव्राजिका।

अनगिन, अनगिनत (हिं॰ वि॰) अगणित, बेशुमार।

अनगिना (हिं॰ वि॰) जो गिना न गया हो; अगणित, असंख्य; बेशुमार, बेहिसाब। (स्त्री॰) अनगिनी।

अनगेरी (हिं॰ वि॰) १ अन्य, दूसरा। २ अपरिचित, जिससे जान-पहचान नहीं।

अनग्न (सं॰ त्रि॰) न नग्नम्। विवस्त्र नहीं, वस्त्र-परिहित; जो नङ्गा नहीं, कपड़े पहने हुए।

अनग्नता (सं॰ स्त्री॰) नग्न न रहनेकी स्थिति, नङ्गा न होनेकी हालत।

अनग्ना (सं॰ स्त्री॰) कार्पास, कपास। अपनी बोंड़ी ढंकी रहनेसे कपास अनग्ना कहाती है।

अनग्नि (सं॰ पु॰) नास्ति अग्निः श्रौतः स्मार्तो वाऽस्य। १ श्रौत-स्मार्त-कर्म-हीन, अग्निशून्य, प्रव्रजित; अग्निकी प्रतिष्ठा न करनेवाला व्यक्ति। नञ्-तत्। २ अग्नि-भिन्न, आगको छोड़ दूसरी चीज़। ३ अग्निका अभाव, आतिशकी नामौजूदगी। ४ अग्नि या चूल्हेकी आवश्यकता न रखनेवाला पुरुष, जिस आदमीको आगकी ज़रूरत न पड़े। ५ अधर्मी, बेईमान शख्स ६ क्वांरा, बेब्याहा आदमी। ७ अग्निमान्द्यका रोगी, बदहज़मीका बीमार।

अनग्नित्रा (सं॰ क्ली॰) न अग्निं त्रायते रक्षति। अग्निकी रक्षा न करनेवाला व्यक्ति, पापी; जो आदमी आतिशकी हिफ़ाज़त न करे, गुनहगार।

अनग्निदग्ध (सं॰ त्रि॰) न अग्निना दग्धम्। १ श्मशानके अग्निसंस्कारसे शून्य, जो चितापर न जलाया गया हो। २ अग्निसे दग्ध नहीं, आगसे न जला हुआ। (पु॰) ३ ब्राह्मणोंके पितृविशेष।

अनघ (सं॰ त्रि॰) नास्ति अघं यस्य। १ दुःखहीन, बेतकलीफ़। २ पापशून्य, बेगुनाह। ३ निर्मल, साफ़। ४ पवित्र, पाक। ५ मनोज्ञ, दिलकी बात जाननेवाला। ६ सुन्दर, खूबसूरत। (पु॰) ७ गौर-सर्षप, सफ़ेद सरसों। ८ शिवकी उपाधि विशेष। ९ पापका अभाव, गुनाहका न होना।

अनघरी (हिं॰ स्त्री॰) कुसमय, बुरा वक्त।

अनघेरी (हिं॰ वि॰) १ जिसे न्यौता न दिया गया हो, बेबुलाया।

अनघोर (हिं॰ वि॰) अत्याचार, ज़ुल्म, अन्धेर।

अनघ्र (सं॰ पु॰) गौरसर्षप, सफ़ेद सरसों।

अनङ्कुश (सं॰ त्रि॰) १ अङ्कुशशून्य, बेलगाम। २ उद्दण्ड, बेरोक।

अनङ्ग (सं॰ क्ली॰) नास्ति अङ्गं आकारः अस्य। १ आकाश, आसमान। २ मन, तबीयत। ३ अङ्ग भिन्न उपकरण, अज़ोको छोड़ दूसरी चीज़। (पु॰) ४ कन्दर्प, कामदेव, मदन। मदनके अङ्गहीन होनेका कारण इसतरह लिखा गया है,—कभी तारकासुरके भयसे स्वर्ग मर्त्य कांप उठा था। वज्रपाणि इन्द्र भी उसके सामने जा न सके। उस समय ब्रह्मादि देवगणने परामर्शकर देखा, 'महादेवके औरससे देवसेनानी कार्तिकेय ही जन्म लेकर तारकासुरको शास्ति दे सकेंगे।' किन्तु उस समय महादेव हिमा-लयमें सतीको खो हिमालयपर कठोर तपस्यासे लग गये थे। उनका योग विना टूटे कार्तिकेयका जन्म कैसे होता! इसलिये इन्द्रने कन्दर्पको बुला महा-देवका योग तोड़नेको भेज दिया। मदनने हिमालय-पर पहुंचकर देखा, कि त्रिलोचन महादेवने देवदारु-वनमें व्याघ्रचर्म बिछा निविड़ तपस्या आरम्भ की थी। कन्दर्पने ज़मीनपर एक घुटना झुका और फूलका धनुष कानतक चढ़ा एक वाण छोड़ दिया। उस पुष्पवाणके आघातसे शिवजीने घबराकर क्रोधसे आंख खोलीं दी। कन्दर्प उसीसे भस्म हो गये। इसीसे

मदनके नाम—अनङ्ग, अतनु, अदेह, अशरीर इत्यादि पड़ गये हैं।

काम प्राणियोंके मनकी एक वृत्ति है। यह किसीको देख नहीं पड़ती; फिर भी इसका फल सभी पाते हैं; इसलिये पहले कन्दर्पका नाम अनङ्ग रखा गया था। इसके बाद महादेवके कोपानलसे भस्म होनेपर मदनका नाम अनङ्ग पड़ा। इस घटनामें कवियोंका दूसरा भी चमत्कार कौशल विद्यमान है। पार्वतीसे शङ्कर मिलेंगे किन्तु वह मिलन दोनोके गाढ़ अनुरागसे पवित्र होगा शिवकी शक्ति पार्वती और पार्वतीकी परमगति शिव हैं,—दोनो दोनोका अर्धाङ्ग बने हैं। उस मिलनमें कन्दर्पका कोई प्रभाव नहीं, मदनकी पीड़ासे वह परस्पर अनुरागी नहीं हुए थे; इसीसे कविने कौशल दिखा पहले ही मदनको जला डाला। जब दोनोके मनसे कन्दर्पका भाव निकल गया, तब पवित्र प्रेमभरसे दोनो एक दूसरेपर रीझ गये। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ५ अङ्गशून्य, अज़ोसे ख़ाली।

अनङ्गक (सं० क्ली०) मस्तिष्क, दिमाग़; मन, दिल।

अनङ्गक्रीड़ा (सं० स्त्री०) अनङ्गेन क्रीड़ा। १ काम-हेतुक क्रीड़ा, ऐशो-अशरतका खेल। २ सोलह अक्षर-का छन्दोविशेष। "अष्टावर्द्धे गा द्वाभ्यस्ता यस्याः सानङ्गक्रीड़ोक्ता।" (वृत्तरत्नाकर) जिस छन्दके अर्द्धमें द्विगुणित आठ यानी सोलह गुरु अक्षर रहते, उसे अनङ्गक्रीड़ा वृत्त कहते हैं। छन्दोमञ्जरी प्रभृति छन्दोग्रन्थमें इसका नाम विद्युन्माला लिखा है। विद्युन्माला देखो।

अनङ्गना (हिं० क्रि०) देहका ध्यान भुला देना, बदनकी फ़िक्र न रखना, प्रेममें मतवाला बन जाना।

अनङ्गभीम (सं० पु०) १ उड़ीसाके एक राजा। सन ११९२ ई० में इन्होंने राज्य लाभ किया था।

इनका दूसरा नाम 'अनियङ्कभीमदेव' रहा। यह उत्कल देशको जीतनेवाले गङ्गेश्वर चोड़गङ्गके कनिष्ठ पुत्र थे; इनकी माताका नाम चन्द्रलेखा था।

इतिहासमें इनका परिचय 'प्रथम अनङ्गभीम' नामसे दिया गया है।

पुरीके पण्डों और मादलापञ्जियोंके मतसे इन्होंने ही जगन्नाथजीका मन्दिर बनवाया था। किन्तु यथार्थमें यह बात नहीं; क्योंकि 'केन्दु-पटना' से निकले हुए, अनङ्गभीमके वंशधर दूसरे नरसिंहदेवके ताम्र-शासनमें लिखा है,—

"निर्म्मथ्योत्कलराजसिन्धुमपरं गङ्गेश्वरः प्राप्तवा
नेकः कीर्त्तिसुधाकरं पृथुतमं लक्ष्मीं धरण्या समा-
माद्यद्दन्तिसहस्रमश्वनियुतं रत्नान्यसंख्यानि वा
तत्सिन्धोः किमियं प्रकर्षमथवा ब्रूमस्तदुन्माथिनः।
पादौ यस्य धरान्तरीक्षमखिलं नाभिश्च सर्व्वा दिशः
श्रोत्रे नेत्रयुगं रवीन्दुयुगलं मूर्द्धापि च द्यौरसौ॥
प्रासादं पुरुषोत्तमस्य नृपतिः को नाम कर्त्तुं क्षम-
स्तस्येत्याद्यनृपैरुपेक्षितमयं चक्रेथ गङ्गेश्वरः॥"

(२य नृसिंहदेवका ताम्रशासन २६-२७ श्लोक।)

उपरोक्त श्लोक देखनेसे जाना जाता है, कि 'चोड़-गङ्ग'ने उत्कलदेशको जीतकर अपनी कीर्तिका स्तम्भ-रूप जगन्नाथजीवाला मूल-मन्दिर बनवाया था।

नाना स्थानकी शिलालिपि और ताम्रशासनसे पता लगता है, कि भुवनेश्वरका वर्तमान अपूर्व मन्दिर और जगन्नाथजीका सुन्दर 'नाटमन्दिर' दोनो अनङ्ग-भीमदेवकी कीर्ति हैं। दूसरे नृसिंहदेवके ताम्र-शासनके अनुसार 'अनङ्गभीम'ने केवल दश वर्ष राज्य किया था।

२ उक्त अनङ्गभीम राजाके पौत्र और दूसरे राज-राजाके पुत्र। यह भी एक महावीर दिग्विजयी राजा थे। इन्होंके आदेशानुसार इनके मन्त्री विष्णु-सान्ना तथा प्रियपुत्र नरसिंहने तुग़रल तुग़ानखांको जीतनेके लिए राढ़ और वरेन्द्र पर्यन्त सेनाको भेजा था। उक्त विवरण दूसरे अनङ्गभीमकी चाटे-श्वरशिलालिपिमें और केन्दु-पटनाके ताम्रशासनमें लिखा है,—

"विन्ध्याद्रेरधिसीमभीमतटिनीकुञ्जे तटऽम्भोनिधे-
र्विष्णुर्विष्णुरसावसाविति भयाच्चैतन्दिशः पश्यतः।
साम्राज्यं सपरिश्रमेण न तथा वैखानसानामिदं
विश्वं विष्णुमयं यथा परिणतं तुङ्गाण-पृथ्वीपतेः॥
कण्ठोत्तंसितसायकस्य सुभटानेकाकिनो निघ्नतः
किं ब्रूमो यवनावनीन्दुसमरे तत्तस्य वीरव्रतम्॥"

(२य अनङ्गभीमकी चाटेश्वर-लिपि १३—१४ श्लोक।)

"राढावरेन्द्रयवनीनयनाञ्जनाम्बुपूरेण दूरविनिवेशितकालिमश्री।
तद्विप्रलम्भकरणाङ्गतनिस्तरङ्गा गङ्गापि नूनमसुना यमुनाधुनाभूत्॥"
(२य नृसिंहदेवकी ताम्रपट्टलिपि ८४ श्लोक।)

(मादला-पञ्जीके मतसे) मन्त्री और पुत्रके बाहुवलसे इनका अधिकार बहुत दूरतक फैल पड़ा। उत्तरमें भागीरथीकूल, दक्षिणमें गोदावरी, पश्चिममें सोनपुरके जङ्गल और पूर्वमें समुद्र-तट—इस बहु विस्तीर्ण राज्यमें यह स्वच्छन्द अकेले आधिपत्य करते थे। राज्यसे जो आय आती, उसका तृतीयांश यह अपने व्ययके लिये रखते और बचे हुए राजस्वसे पुरोहितों और सैनिकोंका व्यय निकालते थे। कहते हैं, कि राज्यकी उन्नतिके लिये अनङ्गभीमने कितने ही सत्-कार्य किये थे। इन्होंने साठ देवमन्दिर और दश बड़ी नदियोंपर सेतु निर्माण कराये, चालीस कूप खुदाये, नदी-किनारे एकसौबावन घाट बंधाये, साढ़े चार-सौ ग्राम बसा और उनमें ब्राह्मणोत्तर-भूमि प्रदानकर कितने ही ब्राह्मणोंको बसाया और कृषिमें जल देनेकी सुविधाके लिये दश लाख पुष्करिणी खुदवाई थीं। प्रवाद है—अनङ्गभीमने, ऐसे धार्मिक नृपति होते भी एक ब्राह्मणको मरवा डाला था। इस महापातकवाले प्रायश्चित्तके लिये यह कठोर तपस्या करने लगे। अन्तमें पुरी पहुंच इन्होंने जगन्नाथ-देवका नाटमन्दिर बनानेकी आज्ञा दी। इन्होंने चौंतीस वर्ष राजत्व रखा था।

अनङ्गमेजय (सं० त्रि०) शरीर न कंपाता हुआ, जो जिस्म न हिला रहा हो।

अनङ्गलेख (सं० पु०) लिख्यते यस्मिन् स लेखः पत्रिका। कामव्यञ्जकपत्र, चिट्ठी जिससे प्यारकी बातें ज़ाहिर हों। (स्त्री०) अनङ्गलेखा।

अनङ्गवती (सं० स्त्री०) कामिनी, सुन्दरी स्त्री।

अनङ्गशेखर (सं० पु०) अनङ्गे कामविषये शेखरः शिरोमाल्यमिव तदर्द्धकत्वात्। छन्दोविशेष, एक तरहकी बहर। छन्दोमञ्जरीमें इसका लक्षण यों लिखा है,—"लघुगुरुनिजेच्छया यदा निवेश्यते तदैषदण्डकोभवत्यनङ्गशेखरः।"

'अपनी इच्छासे क्रमपूर्वक लघु और गुरु वर्ण अर्थात् पहले एक लघु और उसके बाद एक गुरु वर्ण लगानेसे दण्डकका अनङ्गशेखर बनता है।' इसके प्रति चरणमें अट्ठाईस अक्षर होते हैं।

अनङ्गसुन्दररस (सं० पु०) वाजीकरणके अधिकारका रस, जो रस वृद्धको तरुण बनानेके लिये खिलाया जाये।

"सूतस्य पलं गन्धकस्य च पलं रक्तकुसुदरसैः दिनत्रयं भावयेत् ततो बालुकायन्त्रे प्रहरमात्रं पचेत्। अवतार्य रक्तावकपुष्पश्वेतपद्मरसेन दिनैकं भावयेत्।" (रसेन्द्रसारसं०)

एक पल पारे और एक पल गन्धकको लाल बघोलेके रसमें तीन दिन घोंटे। इसके बाद बालुका यन्त्रमें इसे डाल तीन घण्टे तक पकाना चाहिये। उतारकर फिर तीन दिन लाल बघोले और सफ़ेद कमलके रसमें घोंटनेसे अनङ्गसुन्दर-रस तैयार होता है।

अनङ्गापीड़ (सं० पु०) कश्मीरके एक राजाका नाम। कश्मीर देखो।

अनङ्गारि (सं० पु०) कामदेवके शत्रु, महादेव।

अनङ्गा-समङ्गा (सं० स्त्री०) नदीविशेष। (महाभा० भीष्मप०)

अनङ्गासुहृत् (सं० पु०) अनङ्गस्य असुहृत्, ६-तत्। महादेव, मदनके दुश्मन।

अनङ्गुरि (सं० त्रि०) अङ्गुरिरहित, जिसके उंगलियां न हों।

अनचहा (हिं० वि०) अनिच्छित, जिसकी चाह न हुई हो।

अनचाहत (हिं० वि०) प्रेम न करनेवाला, जिसे चाह न हो।

अनचीन्हा (हिं० वि०) अपरिचित, अजनवी; जिससे जान-पहचान न हो।

अनचैन (हिं० स्त्री०) असुख, घबराहट; चैन न मिलनेकी हालत।

अनच्छ (सं० त्रि०) न अच्छं निर्मलम्, ६-तत्। कलुष, अनिर्मल; गन्दा, मैला; जो साफ़ न हो।

अनजान (हिं० वि०) १ अनभिज्ञ, नादान। २ अपरिचित, अजनवी। (पु०) ३ एक तरहकी घास जिसे प्रायः भैंसें खातीं और जिसे चरनेसे उनके दूधमें

नशा समा जाता है। ४ वृक्षविशेष, एक पेड़ जिसे 'अनजान' कहते हैं।

अनजोखा (हिं॰ वि॰) परिमाणरहित, बेवज़न, बेतौल; जो जोखा या तौला न गया हो।

अनञ्जन (सं॰ क्ली॰) न अज्यते लिप्यते; अञ्ज-ल्युट् कर्मणि, नञ्-तत्। १ आकाश, आसमान। २ वायुमण्डल, हवाका कुरह। ३ विष्णु। (त्रि॰) नञ्-बहुव्री॰। ४ कज्जलशून्य, सुरमेसे खाली। ५ दोषरहित, बेऐब।

अनट (हिं॰ पु॰) अत्याचार, उपद्रव; जुल्म, बलवा।

अनडीठ (हिं॰ वि॰) अदृष्ट, न देखा हुआ।

अनडुजिह्वा (सं॰ स्त्री॰) अनडुहो-जिह्वेव। गोजिह्वा, अनन्तमूल। इसकी पत्ती मवेशियोंकी जीभ-जैसी होती है। (Elephantopus Scaber)

अनडुत्क (सं॰ त्रि॰) बैल रखनेवाला, जो बैल रखे।

अनडुद् (सं॰ पु॰) वृषभदाता, बैलको दान करनेवाला आदमी।

अनडुह् (सं॰ पु॰) अनः शकटं वहतीति निपातनात्। चतुरनडुहोरामुदात्तः। पा ७।१।९८ अनड्वान्। १ वृष, बैल जो गाड़ी खींचता है। २ वृषराशि।

अनडुह (सं॰ पु॰) गोत्रविशेषके प्रधानका नाम।

अनडुही, अनड्वाही (सं॰ स्त्री॰) गौ, गाय।

अनणु (सं॰ पु॰) न अणुः। १ स्थूल धान्य, मोटा अनाज। (त्रि॰) २ स्थूल, अणुभिन्न; मोटा।

अनत (सं॰ त्रि॰) झुका हुआ नहीं, जो नीचा न हुआ हो। २ सीधा, खड़ा। ३ कठिन, चिमड़ा। ४ अभिमानी, शोख़। (हिं॰ क्रि॰-वि॰) ५ यहां नहीं, किसी दूसरे स्थानमें, दूसरी जगहपर।

अनति (सं॰ त्रि॰) अधिक नहीं, न्यून; ज्यादा नहीं, कम। (स्त्री॰) २ सुशीलताका अभाव, शायस्तगीकी नामौजूदगी। ३ अहङ्कार, फ़ख़्र।

अनतिक्रम (सं॰ पु॰) न अतिक्रमः, नञ्-तत्। अतिक्रमका न उठाना, हदसे बाहर न जाना।

अनतिक्रमणीय (सं॰ त्रि॰) नञ्-तत्। अतिक्रमके अयोग्य, लांघनेके नाक़ाबिल।

अनतिदृश्य (वै॰ त्रि॰) १ अनुज्ज्वल, मलिन; जो शफ़्फ़ाफ़ नहीं। २ अतिशय प्रकट, निहायत नमूदार।

अनतिभूत (सं॰ त्रि॰) सर्वानतिक्रम्य न भवति, अति-भू-डुतच्। यथार्थभूत, सच्चे तौरसे हुआ। (पु॰) २ वह मनुष्य जिसे किसीने लांघा न हो, ला-सबक़त।

अनतिप्रश्न्य (सं॰ त्रि॰) न अतिप्रश्नमर्हति यत्। अतिप्रश्नके अयोग्य, ज्यादा सवाल करनेके नाक़ाबिल।

अनतिरिक्त (सं॰ त्रि॰) न अतिरिक्तम्, नञ्-तत्। अनधिक, थोड़ा। न्यायमतसे अपनी अन्यूनवृत्ति या प्रमेय अनतिरिक्त है।

अनतिविलम्बित (सं॰ स्त्री॰) अभावार्थे नञ्-तत्। १ अतिविलम्बाभाव, ज्यादा वक़्फ़ेकी नामौजूदगी। २ वाग्गुणविशेष, ज़बानकी एक सिफ़त। हेमचन्द्रके अभिधान-चिन्तामणिमें कई एक वाग्गुण लिखे हैं—

"संस्कारवत्वमौदार्यमुपचारपरीतता।
मेघनिर्घोषगाम्भीर्यं प्रतिनादविधायिता॥
दक्षिणत्वमुपनीतरागत्वञ्च महार्थता।
अव्याहतत्वं शिष्टत्वं संशयानामसम्भवः।
निराकृतान्योत्तरत्वं हृदयङ्गमितापि च।
मिथः साकाङ्क्षता प्रस्तावौचित्यं तत्त्वनिष्ठता॥
अप्रकीर्णं प्रसृतत्वमसंश्लाघ्यानिन्दितता।
आभिजात्यमतिस्निग्धमधुरत्वं प्रशस्यता॥
अमर्मवेधितौदार्यं धर्मार्थप्रतिबद्धता।
कारकाद्यविपर्यासो विभ्रमादिवियुक्तता॥
चित्रकृत्वमद्भुतत्वं तथानतिविलम्बिता।
अनेकजातिवैचित्र्यमारोपितविशेषता॥
सत्वप्रधानता वर्णपदवाक्यविविक्तता।
अव्युच्छित्तिरखेदित्वं पञ्चत्रिंशच्च वाग्गुणाः॥"

'सब मिलाके पैंतीस वाग्गुण होते हैं,—१ संस्कारवत्व—वाक्यके व्याकरणसिद्ध कृत्तद्धित समासादिका संस्कारगुण अर्थात् व्याकरणशुद्धि; २ औदार्य—वाक्यकी उदारता, महत्व या उत्कर्ष-गुण; ३ उपचारपरीतता—यथायोग्य शब्द या अर्थका समावेश-गुण या लाक्षणिक अर्थकी शून्यता; ४ मेघ-निर्घोष-गाम्भीर्य—मेघनादकी तरह शब्दका गाम्भीर्य-गुण यानी शब्दका गाढ़ प्रयोग; ५ प्रतिनाद-विधायिता—उच्चारणकालमें शब्दका प्रतिध्वनि-जनक-गुण; ६ दक्षिणत्व—सरलता या प्रसाद-गुण; ७ उप-नीतरागत्व—ऐसा गुण जिसे सुनने या कहनेसे अनु-

राग उत्पन्न हो; ८ महार्थता—अर्थके गौरवका गुण; ९ अव्याहतत्व—ऐसा गुण जो खण्डन न किया जाये; १० श्लिष्टत्व—शिष्टप्रयोगका गुण अर्थात् ग्राम्यादि दोषको परिशून्यता; ११ संशयासम्भव—ऐसा गुण जिसमें संशय उत्पन्न न हो सके; १२ निराकृतान्योत्तरत्व—ऐसा गुण जिससे दूसरेका प्रतिकूल उत्तर खण्डित हो सके; १३ हृदयङ्गमिता—ऐसा गुण जिससे भाव सहजमें हृदयगत हो जाये; १४ मिथःसाकाङ्क्षता—वह गुण जिसमें वाक्यकी परस्पर आकाङ्क्षा या सम्बन्ध रहे; १५ प्रस्तावौचित्य—प्रस्तावानुरूप वाक्य प्रयुक्त करनेवाला गुण; १६ तत्त्वनिष्ठता—वाक्यकी सारगर्भता या उसके गूढ़ार्थका गुण; १७ अप्रकीर्णप्रसृतत्व—सुशृङ्खल अर्थात् अमिश्रित रूपकी विस्तृति या फैलाव; १८ असंश्लाघ्य—श्लाघ्य-शून्यता; १९ अनिन्दितता—निन्दा-शून्यता; २० आभिजात्य—पाण्डित्य-गुणकी प्रकाशकता; २१ अतिस्निग्ध-मधुरत्व—अतिशय कोमलत्व और माधुर्यका गुण; २२ प्रशस्यता—प्रशस्त शब्द और उत्कृष्ट भावादिके प्रयोगका गुण; २३ अमर्मवेधितौदार्य—अर्थका ईषत् प्रच्छन्नभाव और उसकी सरलताका गुण; २४ धर्मार्थप्रतिविद्धता—धर्मार्थयुक्त गुण; २५ कारकाद्यविपर्यास—ऐसा गुण जिसमें कारकादिका परस्पर सच्चा अन्वय लगे; २६ विभ्रमादिवियुक्तता—भ्रमशून्यता; २७ चित्रकृत्त्व—पद्मादिके चित्रकी रचनासे मिला गुण या चमत्कारकारित्व; १८ अद्भुतत्व—कौतुकोत्पादक गुण; २९ अनतिविलम्बिता—अधिक विलम्बसे अर्थके बोध न होनेका गुण; ३० अनेकजातिवैचित्र्य—नानाप्रकारसे अर्थ अलङ्कार या छन्दकी विचित्रता; ३१ आरोपितविशेषता—एक वस्तुमें दूसरी वस्तुवाले धर्मके आरोपका गुण; ३२ सत्त्वप्रधानता—सत्त्वगुणके प्राधान्यकी प्रकाशिता; ३३ वर्णपदवाक्यविविक्तता—वर्ण, पद और वाक्यमें परस्पर भेदके लिये विच्छेदकी रक्षा; ३४ अव्युच्छिति—विरोधका राहित्य और ३५ अखेदित्व—खेदकी शून्यता।

पुस्तकविशेषमें वाग्गुणके कई पाठान्तर विद्यमान हैं। कहीं-कहीं शिष्टत्वकी जगह श्लिष्टत्व और अमर्मवेधितौदार्यकी जगह अमर्मवेधितौदार्य लिखा है।

अनत्यन्तगति (सं० स्त्री०) १ सामान्य शब्दोंका अर्थ, आम लफ़्ज़ोंके माने। २ गति जो अधिक न हो, जो चाल ज्यादा ज़ोरकी नहीं।

अनत्यय (सं० त्रि०) विनाशशून्य, खण्डरहित; लाज़वाल, समूचा; जो मिट न सके, टूटा हुआ नहीं।

अनत्युद्य (वै० त्रि०) वर्णन करनेको पूर्ण रूपसे अयोग्य, ज़िक्र करनेके लिये बिलकुल नाक़ाबिल।

अनदत् (सं० त्रि०) भोजन न करता हुआ, जो खाता हुआ नहीं।

अनदेखा (हिं० वि०) न देखा हुआ, जो देखा न गया हो।

अनद्धा, अनद्धो (वै० अव्य०) न अद्धा। १ अनिश्चित रूपसे, अयथार्थ रूपसे; सच्चे तौरपर नहीं, दरअसल नहीं। २ अप्रकाश्यरूपसे, साफ़-साफ़ नहीं। 'तत्त्वेत्वद्धाञ्जसाद्वयम्।' (इत्यमरः) (त्रि०) नह-क्त, नञ्-तत्। ३ अपरिबद्ध; न बंधा हुआ, खुला।

अनद्धापुरुष (वै० पु०) न अद्धा स्वकार्ये निश्चयो यस्य तादृशः पुरुषः। देव-पितृ-कार्यसे विमुख व्यक्ति, जो आदमी पूजा-पाठ और श्राद्ध-तर्पण न करे।

अनद्धा-मिश्रित-वचन (सं० क्ली०) जैन-मतसे—समयके विषयमें असत्य-कथन, वक्त बतानेकी झूटी बात।

अनद्य (सं० पु०) न अद्यः भक्ष्यः, अप्राशस्त्ये नञ्-तत्। १ गौर-सर्षप, सफ़ेद सरसों। (त्रि०) २ अभक्ष्य, खानेके नाक़ाबिल।

अनद्यतन (सं० पु०) नञ्-तत्। अद्यतन भिन्न भूत भविष्यत् काल, ज़माना जो मौजूद रोज़में काम न आये। अद्यतन देखो। गत रात्रिके अन्तिम दो प्रहर और आगामी रात्रिके प्रथम दो प्रहर, इन दोनोंके मध्यका समस्त दिवस परित्यागकर अवशिष्ट विगत या भविष्यत् समय अनद्यतन कहलाता है। गत अर्धरात्रके प्रथम समयका भूत-अनद्यतन और आगामी अर्धरात्रके पिछले समयका नाम भविष्यत् अनद्यतन है।

अनद्यतन-भविष्य (सं० पु०) १ आगामी अर्धरात्रके पीछेका काल, आयन्दा आधी रातके बादका ज़माना। २ भविष्यत् काल-विशेष, एक तरहका आयन्दा ज़माना। अब इसका चलन उठ गया है।

अनद्यतनभूत (सं० पु०) १ गत अर्धरात्रके प्रथमका काल; गुज़री हुई आधीरातके पहलेका ज़माना। २ भूतकाल-विशेष, एक गुज़रा ज़माना। अब इस कालका प्रयोग उठ गया है।

अनधिक (सं० त्रि०) १ प्रशस्त या विजित किये जानेके अयोग्य, जो फैलाया या जीता न जा सके। २ असीम, बेहद। ३ पूर्ण, पूरा।

अनधिकार (सं० पु०) नञ्-तत्। १ अधिकारका अभाव, इख्तियारका न होना। २ बाध्यता, मजबूरी। ३ क्षमताभाव, क़ाबिलियतका न रहना। (त्रि०) बहुव्री०। ४ अधिकारशून्य, जिसे कोई इख्तियार नहीं। ५ अयोग्य, नाक़ाबिल।

अनधिकारचर्चा (सं० स्त्री०) ६-तत्। अधिकार-रहित विषयमें हस्तक्षेप, बेइख्तियारकी बातमें मदाख़लत।

अनधिकारप्रवेश (Criminal trespass) सन् १८६० के आइनका (जिसे पेनलकोड कहते हैं) ४४१ वां क़ानून। किसी व्यक्तिके अपराध उठानेकी इच्छासे लोगोंके घर या दूसरी किसी जगह पहुंचनेपर अनधिकारप्रवेश होता है। किन्तु कोई अनिष्ट करनेके अभिप्रायसे न घुसनेपर यह अपराध नहीं लगता। इसीसे इस क़ानूनका नाम 'अपराधभावका अनधिकारप्रवेश' रखा गया है। 'अपराधभाव' शब्द इस क़ानूनमें रहते भी उसका कोई अर्थ नहीं निकलता। किन्तु अंगरेजी 'क्रिमिनल' शब्द देख उसका ठीक तात्पर्य समझ पड़ता है।

किसी सम्पत्तिके मध्य कोई विशेष नियम प्रचलित रहनेसे कोई व्यक्ति यदि उसे लांघ उस सम्पत्तिके भीतर प्रवेश करे, तो ऐसे स्थलमें दुरभिसन्धि न रहते भी अनधिकारप्रवेशका अपराध लगेगा। रेलकी राह तारसे घेर देते हैं। प्रयोजन यही है, कि कोई ईंट, पत्थर, लोहा या लकड़ी न चुराये और गाड़ी छूटते समय जल्द-जल्द आने-जानेमें कोई कुचल न मरे। घेरेको लांघकर आने-जानेके लिये रेल-कम्पनीने निषेधकी विधि बना रखी है। यही कारण है, कि किसी व्यक्तिके इस नियमको उल्लङ्घनकर राह चलनेपर अनधिकारप्रवेशका अपराध होता है।

मनुष्यके घर, डेरे या जहाज़में यानी मनुष्यके रहनेकी किसी जगह और जहां मनुष्यकी कोई सम्पत्ति हो, वहां दुरभिसन्धि करनेके लिये घुसनेपर अनधिकार-प्रवेशका दोष मढ़ा जाता है। अनधिकारप्रवेशका अपराध देख-भाल तीन महीने तक क़ैद या पांच सौ रुपये तक जुर्माना या दोनो दण्ड दिये जा सकते हैं।

अनधिकारिता (सं० स्त्री०) १ अधिकारराहित्य, इख्तियारका न रखना। २ क्षमताभाव, क़ाबिलियतका न होना।

अनधिकारिन् (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ अधिकारी-भिन्न, बेइख्तियार। २ उत्तराधिकार देनेके अयोग्य, जो हक़ पानेके क़ाबिल न हो। ३ अयोग्य, कुपात्र; नालायक़।

अनधिकारी, अनधिकारिन् देखो।

अनधिकृत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। अधिकार न दिया हुआ, अनियुक्त; जिसे इख्तियार न मिला हो, जो मुक़र्रर न किया गया हो।

अनधिगत (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ अज्ञात, समझा-बूझा नहीं। २ अप्राप्त, लाहासिल; जो न मिला हो।

अनधिगतमनोरथ (सं० त्रि०) हताश, नाउम्मेद; जिसका मतलब न निकला हो।

अनधिगतशास्त्र (सं० त्रि०) जिसे शास्त्र अज्ञात हो, शास्त्र न पढ़ा हुआ।

अनधिगम्य (सं० त्रि०) प्राप्त होनेके अयोग्य, पानेके नाक़ाबिल।

अनधिष्ठान (सं० क्ली०) पर्यावेक्षणका अभाव, देख-भालका न होना।

अनधिष्ठित (सं० त्रि०) १ अनवस्थित, ग़ैरहाज़िर। २ अनाविर्भूत, जो मुक़र्रर न हुआ हो।

अनधीन (सं० त्रि०) १ स्वाधीन, आज़ाद; किसीके

वश या मातहत नहीं। (पु०) २ अपने लिये काम करनेवाला बढ़ई या सुनार।

अनध्यक्ष (सं० त्रि०) १ अप्रत्यक्ष, आंखसे छिपा। २ अध्यक्षशून्य, बे निगहबान।

अनध्ययन (सं० क्ली०) अध्ययनराहित्य, तालीमकी बन्दी। २ पाठका अनध्याय, सबककी छुट्टी।

अनध्यवसाय (सं० पु०) अध्यवसायशून्यता, लाइस्तक़लाली; ढीलापन। २ काव्यालङ्कारविशेष। यह कई सदृश गुणवाले पदार्थोंमें एकके सम्बन्धपर अनिश्चय दिखाता है। इसे सन्देहके अन्तर्गत ही समझना चाहिये; क्योंकि इसमें अलङ्कारकी कोई नई बात नहीं देख पड़ती।

अनध्याय (सं० पु०) न योग्योऽध्ययनं अभावार्थे नञ्-तत्। १ अध्ययनाभाव, तालीमकी बन्दी। न अधीयतेऽस्मिन् काले, अधिकरणे घञ्। अध्ययनका निषिद्ध काल, जिस वक्त पढ़ना-लिखना मना हो। मनुसंहितामें अनध्यायके कई कारण लिखे हैं,—

"कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवा पांशुसमूहने।
एतौ वर्षास्वनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते॥ १०२।
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानाञ्च संप्लवे।
आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत्॥ १०३
एतां स्त्वभ्युदितान् विद्यात् यदा प्रादुष्कृताग्निषु।
तदा विद्यादनध्यायमनृतौ चाभ्रदर्शने॥ १०४
निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्जने।
एतानाकालिकान् विद्यादनध्यायानृतावपि॥ १०५
प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने।
सज्योतिः स्यादनध्यायः शेषे रात्रौ यथा दिवा॥ १०६
नित्या नध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च।
धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा॥ १०७
अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ।
अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च॥ १०८
उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य विसर्जने।
उच्छिष्टः श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥ १०९
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनं।
त्र्यहं न कीर्त्तयेत् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके॥ ११०
यावदेकानुदिष्टस्य गन्धो लेपश्च तिष्ठति।
विप्रस्य विदुषो देहे तावद् ब्रह्म न कीर्तयेत्॥ १११
शयानः प्रौढ़पादश्च कृत्वा चैवावसक्थिकाम्।
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च॥ ११२
नीहारे वाणशब्दे च सन्ध्ययोरेव चोभयोः।
अमावस्या चतुर्दश्योः पौर्णमास्यष्टकासु च॥ ११३
अमावस्या गुरुं हन्ति शिष्यं हन्ति चतुर्दशी।
ब्रह्माष्टका पौर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयेत्॥ ११४
पांशुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा।
श्वखरोष्ट्रे च रुवति पंक्तौ च न पठेद्द्विजः॥ ११५
नाधीयीत श्मशानान्ते ग्रामान्ते गोव्रजेऽपि वा।
वमित्वा मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च॥ ११६
प्राणी वा यदि वा प्राणी यत्किञ्चिच्छ्राद्धिकं भवेत्।
तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजः स्मृतः॥ ११७
चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चाग्निकारिते।
आकालिकमनध्यायं विद्यात् सर्वाद्भुतेषु च॥ ११८
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षेपणं स्मृतम्
अष्टकासुत्वहोराचमृत्वन्तासु च रात्रिषु॥ ११९
नाधीयीताश्वमारूढ़ो न वृक्षं न च हस्तिनम्।
न नावं न खरं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः॥ १२०
न विवादे न कलहे न सेनायां न सङ्गरे।
न भुक्तमात्रे नाजीर्णे न वमित्वा न सूतके॥" १२१ (मनु ४अ०)

वर्षाकालमें रात्रिको प्रबल वायुके चलने और दिनको धूलि उड़नेपर अनध्याय होता है। मनुने कहा है, कि विद्युत् और मेघगर्जनके साथ वर्षा या उल्कापात होनेसे, जिस समय यह सब उत्पात आरम्भ हो, दूसरे दिन उसी समय तक, पढ़ना न चाहिये। होमकी अग्नि जलाते समय (सवेरे और सन्ध्याको) बिजली चमकने और बादल गरजनेसे अनध्याय रहता है। अन्तरिक्षमें उत्पातध्वनि उठने, भूमिके कांपने और चन्द्रसूर्यादिके उपसर्गमें आकालिक-अनध्याय होता है। होमाग्नि जलाने पीछे विद्युत् और मेघगर्जन होनेपर सज्योति अनध्याय होता है, अर्थात् दिनको होनेसे दिनको और रातको पढ़ने की छुट्टी रहती है। जो अतिशय धर्मके प्रार्थी हैं, उन्हें ग्राम, नगर और पूतिगन्धके स्थानमें नित्य अनध्याय समझना चाहिये। मृत देह न निकाले गये ग्राम और अधार्मिकके सन्निधानमें और रोदन-ध्वनि सुन पड़ने और बहुत लोगोंकी जनता जमनेसे अनध्याय माना जाता है। जलके मध्य, मध्यरात्रि, मलमूत्र त्यागते समय, उच्छिष्ट मुख और श्राद्धका भोजन पाने पीछे, अहोरात्रि मनमें भी वेद न विचारे।

विद्वान् ब्राह्मणके एकोद्दिष्टश्राद्धका निमन्त्रण लेने, राजाके सन्तान जन्मने या चन्द्रसूर्यग्रहण पड़नेपर तीन दिन अनध्याय होता है। एकोद्दिष्टश्राद्धके भोजन पीछे जबतक विद्वान् ब्राह्मणके मस्तकपर कुङ्कुमादिका गन्ध या प्रलेप रहेगा, तबतक विद्याध्ययन न होगा। सो, आसनपर पैर रख, टांगपर टांग चढ़ा, आमिष खा और जन्ममरणाशौचका अन्न भोजनकर वेद न पढ़े। प्रातःसन्ध्या या सायंसन्ध्याके समय कुज्झटिका या मेघगर्जन होनेसे और अमावस्या, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अष्टमी तिथिको वेदाध्ययन निषिद्ध है। अमावस्या गुरु और चतुर्दशी शिष्यको नष्ट करती और अष्टमी और पूर्णिमा वेदको भुला देती है, इसलिये इन सकल तिथियोंमें अध्ययन और अध्यापना छोड़ दे। धूलि बरसने, दिग्दाह होने, शृगाल कुक्कुर, गर्दभ और उष्ट्र बोलने या उनके दल बांधनेसे द्विजाति वेद न पढ़े। श्मशान, ग्रामान्त और गोष्ठमें और स्त्रीसंसर्गवाले समयके वस्त्रपहन और श्राद्धका द्रव्य ले (श्राद्धका पक्वान्न खाकर) वेद पढ़ना मना है। श्राद्धका द्रव्य किसी प्राणी या अप्राणीके हाथसे लेनेपर अनध्याय हो जाता है; क्योंकि हस्त ही ब्राह्मणका मुखस्वरूप है। ग्राममें चोरोंका उत्पात मचने, गृहदाहादिसे डराने और कोई भी अद्भुत बात देखनेसे आकालिक अनध्याय मानते हैं। उपाकर्म और उत्सर्ग-कर्ममें त्रिरात्र और अष्टका (कृष्णाष्टमी) और ऋतुके अन्त-दिन अहोरात्र अनध्याय रहता है। घोड़े, वृक्ष, हाथी, नाव, गधे, ऊंट, गाड़ी प्रभृतिपर चढ़ और ऊषर देशमें रह कर वेद न पढ़े। कहा-सुनी या मारपीट होनेसे सैन्यके पास, युद्धक्षेत्रमें, भोजनसे पीछे ही, अजीर्णमें या वमन करनेपर वेदाध्ययन निषिद्ध है।

अनध्यायदिवस (सं० पु०) पढ़नेकी छुट्टीका दिन।

अनन (सं० क्लो०) अन-ल्युट् भावे। १ जीवन, ज़िन्दगी। २ गति, रविश, चाल। ३ श्वास, सांस।

अनन्तमेजय (सं० त्रि०) शरीरको विना कंपाये न छोड़नेवाला, जो जिस्मको हिला डाले।

अननुगत (सं० त्रि०) न अनुगतम्, नञ्-तत्। स्वतन्त्र, आज़ाद, अनुगत-भिन्न, मातहतीसे अलग। तुल्याकार की प्रतीतिका योजक-धर्म अनुगत होता है।

अननुगम (सं० पु०) न अनुगमः, अभावार्थे नञ्-तत्। अनुगमका अभाव, पीछेका छोड़ना। न्यायके मतसे तुल्याकारकी प्रतीतिके योजक-धर्मका समालोचन अनुगम कहाता है।

अननुज्ञात (सं० त्रि०) असम्मत, आज्ञाविहीन, निषिद्ध; नामञ्जूर, बेहुक्म, मना।

अननुभावक (सं० त्रि०) मूर्ख, नादान; जो बात समझ न सके।

अननुभावकता (सं० स्त्री०) मूर्खता; नादानी; बेसमझी।

अननुभाषण (सं० क्लो०) १ किसी साध्यकी पुनरावृत्तिका न होना, किसी शब्दका न दुहराना। न्यायमें इसे निग्रहका स्थान मानते हैं। वादीके कोई विषय तीन बार प्रमाणित करनेसे प्रतिवादीके उसका उत्तर न देने पर अननुभाषण समझा जाता है। ऐसे स्थलमें वादी जीतता और प्रतिवादी हारता है। २ मौन स्वीकृति, चुपकेसे मञ्जूरी।

अननुभूत (सं० त्रि०) अनुभवरहित, नामालूम; अज्ञात, जो समझा-बूझा नहीं।

अननुमत (सं० त्रि०) मानविहीन, बेइज्ज़त; अप्रिय, नापसन्द; असह्य, नागवार; अयोग्य, नाक़ाबिल।

अननुषङ्गिन् (सं० त्रि०) पृथक्, अलग; बेपरवा।

अननुष्ठान (सं० क्लो०) १ अनरीति, बेरस्मी; अनुष्ठानका न उठाना। २ विस्मरण, भूलचूक। ३ असभ्यता, नाशायस्तगी।

अननुक्त (सं० त्रि०) १ अपठित, न पढ़ा हुआ। २ गानरहित, न गाया गया। अप्रदत्त-प्रत्युत्तर, जिसका जवाब न दिया जाये।

अनन्त (०सं० पु०) नास्ति अन्तो गुणानां यस्य। १ विष्णु, नारायण। २ शेषनाग। ३ मेघ, बादल। ४ बलराम, कृष्णके बड़े भाई। ५ बहुविस्तारयुक्त सिन्धुवार वृक्ष, खूब फैला हुआ पानीका संभालु। ६ जिनविशेष। ७ दुरालभा, लटजीरा। ८ अनन्त नामक चूर्ण, जो सर्वज्वर पर चलता है। ९ अभ्रक, अबरक।

१० वासुकी, शेषनागके बड़े भाई। ११ कृष्ण। १२ शिव। १३ रुद्र। १४ विश्वेदेवा। १५ बांहपर रेशम या सूतका अनन्त-चतुर्दशीको बंधनेवाला गुंथा हुआ डोरा। १६ आकार अक्षर। १७ गणितविशेष, एक तरहका हिसाब। यह दशम लवसे मिला भिन्न है, जिसे बराबर चलाते जाते हैं। (क्लो०) नास्ति अन्तः परिच्छेदो यस्य। १८ परब्रह्म, जो सबसे बड़ा है। १९ आकाश, आसमान। (त्रि०) २० अवधिशून्य, बेठिकाना; असीम, बेहद।

अनन्त—इस नामके बहुत संस्कृत ग्रन्थकार उत्पन्न हुए थे। इनमें यह कई एक प्रसिद्ध हैं,—

१ उदयभानुकाव्य-रचयिता। २ कारकचक्रप्रणेता। ३ चिदम्बराष्टक-कार। ४ योगामृतार्थ-चन्द्रिका नामसे पातञ्जलयोग-सूत्रके भाष्यकार। ५ वाक्यमञ्जरी-रचयिता। ६ विध्यपराधप्रायश्चित्त-प्रयोगकार। ७ वाजसनेय-संहिताके 'शुक्लदशभाष्य'कार। ८ साहित्य-कल्प-वल्लि-नाम्नो अलङ्कार-ग्रन्थ-रचयिता। ९ चिन्तामणिके पुत्र, विख्यात ज्योतिर्विद्,—जनिपद्धति, सुधारस और कामधेनु नामसे गणिताध्याय-टीकाकार। १० भीमके पुत्र—नैगेयार्चिकानुक्रमकार। ११ मल्लिमण्डलके पुत्र—इन्होंने सन् १४५८ ई०में 'कामसमूह-महाप्रबन्ध' नामक कामशास्त्रीय ग्रन्थ रचा था।

अनन्त आचार्य—१ प्रसिद्ध वेदभाष्यकार, लक्ष्मीधरके पुत्र—इन्होंने वेदार्थ-दीपिका नामसे यजुर्वेदका भाष्य और वेदार्थचन्द्र नामसे मीमांसा-ग्रन्थ गढ़ा था। २ एक प्रसिद्ध हिन्दू दार्शनिक। संस्कृत भाषामें इनके रचित—अभिन्न-निमित्त-वाद, आकाशाधिकरण-वाद, ओङ्कारवाद, ज्ञानार्थ-वाद, शरीरवाद, शास्त्रीय-मत-समर्थन, समासवाद प्रभृति छोटे-छोटे पुस्तक और न्याय-भास्कर, विधि-सुधाकर तथा सिद्धान्त-सिद्धाञ्जन नामक वेदान्तिक ग्रन्थ मिले हैं। ३ वैदिक निघण्टुकी टीका, जटापटल, शतकोटिखण्डन और स्वरूप-सम्बन्धरूप नामक न्याय-ग्रन्थकार।

अनन्तक (सं० पु०) १ मूलक, मूली। २ नलतृण, नरकट।

अनन्तकर (सं० त्रि०) असीम करता, बेहद पहुंचाता या बेहद बढ़ाता हुआ।

अनन्तकवि—१ मुद्राराक्षस-पूर्व-पीठिका-रचयिता। २ भारत-चम्पू-काव्य-रचयिता, जो अनन्तभट्टकवि नामसे भी परिचित हैं। ३ बालमनोरमा नामपर संस्कृत-व्याकरणकार।

अनन्तकवि—एक हिन्दी कवि। इनका जन्म सन् १६३५ ई०में हुवा और इन्होंने प्रेमियोंके विषय-पर हिन्दीभाषामें 'अनन्तानन्द' नामक कविताको बनाया था।

अनन्तकिनी—बम्बई उत्तर-कनाड़े मुजगदीवाले बाल-किनीके पुत्र। कोई १५१२ शक और विरोधी संवत्-सरमें इन्होंने रघुनाथ-देवस्थान बनवाया था। अग्रशाला और मन्दिरके बीच सम्ध्यामण्डप खड़ा है। विमान स्वरूप चक्र-कुक्ष रथ या गाड़ी-जैसा देख पड़ता और उसपर नक्काशी खिंची हुई है। मन्दिरका व्यय साधारण दान और सरकारी उत्सर्गसे सधता है।

अनन्तग (सं० त्रि०) असीम रूपसे गमन-करनेवाला, जो बेहद चलता जाये।

अनन्तगुण (सं० त्रि०) असीम गुण रखनेवाला, जिसको सिफतका कोई ठिकाना न हो।

अनन्तगूर्जर—भुवनकोष नामसे संस्कृत ज्योतिर्ग्रन्थ-रचयिता।

अनन्तचतुर्दशी (सं० स्त्री०) अनन्तस्य विष्णोराराधनार्थं चतुर्दशी। भाद्रमासकी शुक्लचतुर्दशी, भादों महीनेकी सुदीवाली चौदस, जिस दिन विष्णु भगवान्‌को पूजते और बांह पर अनन्त बांधते हैं।

अनन्तजित् (सं० पु०) अनन्तानि भूतानि जितवान्, जि-क्विप्, ह्रस्वस्य प्रतिकृति तुक् इति तुक्। १ सर्वभूतके जय-कारी वासुदेव, सब लोगोंके जीतनेवाले श्रीकृष्ण। अनन्तान् चित्तदोषान् जयति। २ चौबीस जिनान्तर्गत चौदहवें जिन। यह वर्तमान अवसर्पिणीसे आविर्भूत हुए थे।

इनके पिताका सिंहसेन और माताका नाम सुयशा रहा। इनकी च्यवनतिथि श्रावण-कृष्ण-सप्तमी और जन्म-तिथि वैशाखकृष्णा-त्रयोदशी थी। यह प्राणतदेव विमानपर बैठे और अयोध्या नगरीमें

उत्पन्न हुए, जिस समय कृत्तिका नक्षत्रसे मीनराशि निकल पड़ी थी। इनका चिह्न सीचाणा, शरीर-मान पचास धनु, और आयुमान तीस लाख वर्ष रहा। रङ्ग सुवर्ण-जैसा चमकता था। इन्हें राजाकी उपाधि दी गई, और इनका विवाह हो गया था। इनके साथ एक हज़ार साधुओंको काम्पिल्य नगरीमें दीक्षा मिली। यह दीक्षातपके दो उपवास उठाते और प्रथम पारण दुग्धसे साधते थे। इनका पारण-स्थान जयराजगृह रहा, एक वर्षमें दो दिन ही पारण-काल पड़ता था। माघ-शुक्ल-चतुर्थीको इन्हें दीक्षा दी गई थी। इनके छद्मस्थ दो मास थे, और ज्ञाननगरी काम्पिल्य रही। यह आठ मास और इक्कीस दिन गर्भमें रहे थे। इनका कुल इक्ष्वाकु, गणधर संख्या पचास, साधु छांछठ हज़ार, केवली पांच हज़ार, श्रावक दो लाख और छः हज़ार, श्राविका चार लाख और तेरह हज़ार थीं। वैशाख कृष्णा-चतुर्दशी इनकी ज्ञानतिथि रही, और दीक्षावृक्ष अशोक था। यह कायोत्सर्ग मोक्षासनपर बैठे और चैत्र शुक्ल-पञ्चमीको मुक्त हुए थे। इनका मोक्षस्थान—समेतशिखर, प्रथम गणधर—यश, और प्रथम भार्या—पद्मा थी।

अनन्तता (सं० स्त्री०) असीमता; बक़ा, हमेशगी।

अनन्ततान (सं० त्रि०) प्रशस्त, लम्बा-चौड़ा।

अनन्ततीर्थकृत् (सं० पु०) अनन्तानि अनेकानि तीर्थानि शास्त्राणि करोतीति, कृ-क्विप। १ जिनविशेष। अनन्तजित् देखो। २ अनन्तजित् नामक एक लेखक जिन्होंने अनेक शास्त्र बनाये थे। (त्रि०) ३ अनेकतीर्थ-गमनकारी, कितने ही तीर्थ घूमनेवाला।

अनन्ततृतीया (सं० स्त्री०) अनन्ता तृतीया। भाद्र, अग्रहायण और वैशाख मासकी शुक्लतृतीया, भादों अगहन और वैशाख महीनेकी सुदीवाली तीज। यह दिन विष्णु भगवानके पूजनको शुभ समझा जाता है।

अनन्ततृतीयाव्रत (सं० पु०) वैशाख शुक्लतृतीयाका अनुष्ठेय व्रतभेद। भविष्योत्तर-पुराणके चौबीसवें अध्यायमें इस व्रतकी कथा लिखी है।

अनन्तत्व (सं० क्ली०) अनन्तता देखो।

अनन्तदीक्षित—एक विख्यात वैदिक पण्डित, विश्वनाथ दीक्षितके पुत्र। इन्होंने आश्वलायनके मतानुसार संस्कृत भाषामें प्रयोगरत्न या स्मार्तानुष्ठानपद्धति और महारुद्रप्रयोगपद्धति रचा था।

अनन्तदृष्टि (सं० पु०) अनन्ता अनेका दृष्टयो नेत्राणि यस्य। १ इन्द्र, जिनके हज़ारों नेत्र हैं। २ परमेश्वर, भगवान्। ३ शिव।

अनन्तदेव (सं० पु०) अनन्तो देव इव। १ शेषनाग। अनन्ते शेषनागे दीव्यति, दिव-अच्। २ शेष-सर्पशायी नारायण, शेषनागपर सोनेवाले भगवान्। ३ कश्मीर-के एक राजा। इन्होंने पैंतीस वत्सर राजत्व चलाया; इनके पिताका नाम संग्रामराज या क्षमापति और माताका नाम श्रीलेखा था। सूर्यमतीके साथ इनका विवाह हुआ था। कश्मीर देखो।

अनन्तदेव—१ एक बहुशास्त्रविद् पण्डित और कवि। यह बाज़बहादुर-चन्द्रके आश्रित रहे। इन्होंने संस्कृत भाषामें कृष्णभक्तिचन्द्रिका नामसे नाटक, भगवद्भक्ति-निर्णय नामसे भक्तिग्रन्थ, चातुर्मास्यप्रयोग, नक्षत्रसत्र-प्रयोग और देवतास्वरूपविचार नामक मीमांसा-ग्रन्थ, प्रायश्चित्त-प्रदीपिका और स्मृतिकौस्तुभ नामसे धर्म-ग्रन्थ और वाक्यभेद नामसे न्यायग्रन्थ बनाये थे। इन्हें छोड़ मीमांसा-न्यायप्रकाशटीका, सम्प्रदायनिरूपण तत्त्वप्रक्रियाटीका (वेदान्तानुसारी), और लक्ष्मी-धर-रचित भगवन्नामकौमुदी ग्रन्थको 'प्रकाशाख्य' टीका भी लिखी थी। २ यजुर्वेदीय काण्वसंहिताके भाष्य-कार; यह वैदिकप्रयोग और पद्धतिके कितने ही छोटे-छोटे वैदिक ग्रन्थ संस्कृतमें लिख गये हैं। ३ गोत्रप्रवरनिर्णय-रचयिता। ४ दत्तकपुत्रविधानकार। ५ निर्णयबिन्दुप्रणेता। ६ कुण्डोद्योत-दर्शनकार। ७ बालसाङ्ख्यखण्डन और बलाबलाक्षेपपरिहार नामसे मीमांसा-ग्रन्थकार। ८ एक प्रसिद्ध श्रौत पण्डित। इनके रचित श्रौतसूत्रीय भोजनसूत्र, यजुःसन्ध्या, रुद्रकल्पद्रुम और सर्वव्रतोद्यापन प्रभृति संस्कृत ग्रन्थ मिलते हैं। ९ मथुरामाहात्म्य-विषयक 'मथुरासेतु'-रचयिता। १० विष्णुयागकार। ११ वृद्धिश्राद्धदीपिका-

कार। १२ वेदान्तसारपद्यमालाकार। १३ सिद्धान्ततत्त्व नामसे वैदान्तिक ग्रन्थकार। १४ कारिका नामसे धर्मग्रन्थकार।

अनन्तदेव याज्ञिक—व्यवहार-दर्पण और शुद्धिदर्पणके रचयिता।

अनन्तदेवायनि—शिशुपाल-वध-टीकाकार।

अनन्तदेवज्ञ—नन्दिग्रामवासी केशव देवज्ञके पुत्र, कालनिर्णयावरोध-रचयिता।

अनन्तनारायण—१ दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध कवि। इन्होंने संस्कृत भाषामें आनन्द-वल्ली स्तोत्र और शरभोजिचरित्र रचा था। २ प्रसिद्ध नैयायिक, कारिकावल्ली और तर्कसंग्रहके टीकाकार।

अनन्तनारायण दीक्षित—गीताशङ्कर नामसे संस्कृत ग्रन्थकार, इनके पिताका मृत्युञ्जय और पितामहका नाम कृष्णदीक्षित था।

अनन्तनेमि (सं॰ पु॰) मालवेके एक राजा, जो शाक्यमुनिके सहयोगी थे।

अनन्तपण्डित—गोदावरीतीरस्थ पुण्यस्तम्भवाले अधिवासी त्र्यम्बक पण्डितके पुत्र, इन्होंने व्यङ्गार्थ-कौमुदी नाम्नी काव्य, गोवर्द्धनसप्तशतीटीका और रसमञ्जरीटीका रची थी।

अनन्तपन्थी—युक्तप्रदेश रायबरेली और सीतापुर जिलेका फिरसे सुधरा वैष्णव सम्प्रदाय। इनकी संख्या बहुत कम है। यह अकेले परमेश्वरको मानते, जिन्हें अनन्तदेव कहकर पूजते हैं। मुंडवेमें रहनेवाले साधु मुन्नादास सोनारका चलाया यह वैष्णव-सम्प्रदाय विशेष है। कहते हैं, कि जब दुर्भिक्ष बड़े ज़ोरपर था, तब मुन्नादासने लोगोंको सूखेसे बचाया और खेरी, सीतापुर और बहरायच ज़िलेमें कितने ही उनके चेले बन गये थे। नहीं देखते, कि मुन्नादासने जो उपदेश दिया, उसमें और साधारण वैष्णवोंकी बातमें कोई भेद हो।

अनन्तपार (सं॰ वि॰) असीम विस्तृतिसम्पन्न, बेहद लम्बा-चौड़ा।

अनन्तपाल (सं॰ पु॰) कश्मीरके एक वीर राजाका नाम। कश्मीर देखो।

अनन्तपालय्य—षष्ठ विक्रमादित्यके महाप्रधान मन्त्री, जो साढ़े सात लाख पन्नाय करका इन्तज़ाम पश्चिम-बम्बईमें करते थे। बेलगांवसे सन् ११०३ ई॰ की तारीखका जो ताम्रफलक निकला, उसमें इनकी बात लिखी है।

अनन्तपुर—उड़ीसा बालेश्वर ज़िलेका एक गांव। यहांसे सोरोको एक पक्की सड़क निकली और एक छोटा-मोटा पुलिसका थाना भी बना है।

अनन्तपुर—मन्द्राज प्रान्तका एक ज़िला। यह सन् १८८२ ई॰ की ५वीं जनवरीको गूटी, ताडपत्री, अनन्तर, धर्मावरम्, पिनुकोण्डा, मरकसीर और हिन्दूपुर इन सात ताल्लुकको मिलाकर बनाया गया, जो पहले बेलारी ज़िलेमें लगते थे। यह १३°४१′ और १५°१४′ अक्षांश, तथा ७६°४९′ और ७८°९′ द्राघिमांशके बीच अवस्थित है। इसका क्षेत्रफल ५५५७ वर्गमील और जननिवास कोई छः लाखके लगभग है। मन्द्राज प्रान्तके ज़िलोंमें विस्तारको देखते पन्द्रहवां और मनुष्य-गणना देखते बीसवां दरजा इसने पाया है। इसके कोई एक हज़ार आबाद गांवमें दश शहर भी शामिल हैं। इसके उत्तर बेलारी और दक्षिण महिसूर राज्य और करनूल ज़िला, पश्चिम महिसूरका राज्य और बेलारी ज़िला, और पूर्व कड़ापा ज़िला सीमाको बांधे है।

अपने उत्तरीय और केन्द्रीय विभागमें यह ज़िला ऊंचा मैदान है, जिसके ऊपर जहां-तहां बड़ी-बड़ी भुरभुरे पत्थरकी चटान और नीची पहाड़ी उठी है। सिवा गांवके दूसरी जगह वृक्ष बहुत कम देख-पड़ते हैं। उत्तरमें काली रूई पैदा करने वाली मट्टी भरी है, किन्तु दक्षिणको आगे बढ़नेसे लाल पड़ जाती है। दक्षिण ताल्लुकमें धरातल अधिक पथरीला है, जहां मैदान समुद्रतलसे २२०० फ़ीट ऊंचा है। उत्तर ताल्लुकमें पानीकी कमी है, किन्तु दक्षिणमें वह भरा पड़ा है। इस ज़िलेमें बहनेवाली पवित्र पेन्नार नदी वर्षमें बहुत दिनतक सूखी पड़ी रहती है। इसके वामतटपर हिन्दूपुर शहर है, जहां हिन्दुओंका एक अति पवित्र मन्दिर बना, और यात्री दर्शन

करने जाते हैं। अपने रङ्गीन वस्त्रके लिये प्रसिद्ध पामिदी और ताड़पत्री भी इधर ही बसे, जिनके मन्दिर देखने प्रति वर्ष कोई बीस हज़ार आदमी पहुंचते हैं। ज़िलेके दक्षिणसे चित्रावती नदी निकलती और धर्मावरम् और बुक्कापतनम्के बड़े तालाब भर देती है। मुचूकोटेकी नीची और पमादुरतीके पासवाली पहाड़ियोंमें कीमती लकड़ी पैदा होती है। गूटीमें समुद्रतलसे २१७१ फ़ीट ऊंची बहुत ही अच्छी किलेकी चटान है और पेनूकोण्डेमें भी ३१०० फ़ीट ऊंची दूसरी चटान खड़ी है। भुरभुरे पत्थरकी चटानका कोई ठिकाना नहीं। तांबा, रांगा, सुरमा और फिटकरी सब कुछ पहाड़ियोंमें मिलता है। नमक और शोरा मट्टीसे निकालते हैं। सन् १८१३ ई०से ताड़पत्री और गूटीवाली हीरेकी खानियोंमें कोई लाभ नहीं हुआ, किन्तु अब फिर लोगोंका ध्यान उनपर दौड़ने लगा है। शेर (बहुतकम), चीता, लकड़ बग्घा, भेड़िया, काला रीछ, जङ्गली सूअर, बारहसिंहा और हिरण अधिक है। कितनी ही तरहकी शिकारी चिड़ियां मामूली तौरसे मिलती हैं। तुकदर, मुरग़ी, तीतर, घुग्घू, हंस, तोते और अनेक छोटे पक्षियोंकी कोई कमी नहीं। ज़हरीले सांप अकसर देखनेमें आते हैं। बबूल, बेर और जङ्गली खजूर असली वृक्ष हैं। आम, नारियल, इमली, केले और कितने ही दूसरे वृक्षोंको भी लोगोंने यहां पहुंचाया है।

इतिहास—यह ज़िला सन् ई०के १४वें शताब्दके बीच विजयनगरके राज्यका एक भाग रहा। सन् १५६५ ई०में तालिकोटके युद्धपर विजापुर, गोलकुण्ड, दौलताबाद और बराड़के सुलतानोंकी मिली हुई फ़ौजने विजयनगरके महाराज रामराजको हराया और फिर उनकी राजधानी लूट-मारकर तोड़ डाली। रामराजके भाई तीरूमल पेनूकोण्डेको भागे, जहां पहले एक सुविशाल और जनसम्पन्न नगर रहनेके लक्षण देख पड़ते हैं। विजयनगर-राजके दीवान चिकपा उदय्यरने अनन्तपुरको सन् १३६४ ई०में प्रतिष्ठित किया था। यह महाराष्ट्रोंके बल और वीरत्वका एक स्मारक-जैसा रहा। सन् १६८० ई०में महाराज शिवाजीके निर्वाण बाद उनको साहाय्य देनेके कारण औरङ्गज़ेबने कुचल डाला, किन्तु उनका प्रभाव भी अन्तमें प्रतिष्ठित हो न सका और न कभी ठीक तौरसे आमदनी ही शाही खज़ानेमें भेजी गई। औरङ्गज़ेबके मरने और निज़ामके ऊंचे उठने बाद सब और प्रधानतः गूटीके पलिगार स्वतन्त्र बन बैठे। इसी बीच महिसूर राज्य हड़पनेवाले हैदर अलीको अपना प्रभाव पासके देशपर फैलानेकी उत्कण्ठा उठी। कोदीकोण्डा, जदकसीरा और हिन्दूपुर तो उन्होंने ले लिया, किन्तु गूटी बराबर लड़ता रहा और एक पैसा भी उन्हें न दिया। अन्तमें हैदर अलीने गूटीको जीतकर अपना अड्डा बनाया और वह महाराष्ट्र और निज़ामसे लड़ते रहे। इधर-उधरके पलायम महिसूरके करद राज्य हो गये हैदर अलीके मरनेपर वह सब स्वतन्त्र बने। हैदर अलीके लड़के टीपूने गद्दीपर बैठ सब बलवाइयोंके धर दबाया था। किन्तु टीपूको शीघ्र ही अंगरेजोंसे लड़ना पड़ा। सन् १७८९ ई०में निज़ामने अनन्तपुर अंगरेज़-सरकारको अपनी ओर की सरकारी फ़ौजके खर्चमें दे डाला। जब आमदनी वसूल करनेकी ठहरी, तब पलिगारोंने बलवा मचाया था, जिसे जनरल कम्बलने भली भांति दबा दिया। बदमाश अपनी रियासतसे निकाले गये और बाकी लोग डरकर चुपके हुए; लोगोंके हाथमें प्रबन्धका भार न रहा और उन्हें फ़ौज न रखनेका आदेश दिया गया।

इस ज़िलेमें कितनी ही ऊजड़ ज़मीन है। बाकी कोई एक तिहाईपर खेती होती और सैकड़े पीछे सोलह एकर भूमि इनाममें लगी है। कितने ही एकर भूमि चरागाह और जङ्गलके लिये भी रखी गई है। खेती तीन भागमें बंटी है,—सींची, सूखी और बाग़की ज़मीन। सूखी ज़मीनपर बिना पानी दिये खेती होती है। खास फ़सल कम्बू, चोलम्, रगी और कोरेकी है, जिसे खाकर अधिकांश लोग जीते-जागते हैं। सींचकी ज़मीनमें चावल और गन्ना बोते हैं। बाग़की

ज़मीन नारियल, पान, केला, गेहूं, तम्बाकू, मिर्च, हलदी, सबज़ी और मेवा पैदा करती है। खाद भी उसमें देते हैं। बैलकी जोड़ी पचहत्तरसे सौ रुपये तक आती है। भैंसे सस्ते होते भी हलमें नहीं जोते जाते। खेतीके औज़ार बहुत ही पुराने हैं। फिर भी हालमें कितनी ही चीज़ोंकी उन्नति की गई है। पुरानी गाड़ियोंकी जगह नयी गाड़ियां चलने लगी हैं। लोग अंगरेज़ी रीतिपर खेती करनेके उत्सुक हैं, पशुओंके रोगी होनेपर लोग उन्हें अलग रखना चाहते हैं। भाव बढ़ता आया है। सन् १८५० ई० से पहले मज़दूर और कारीगर जो पाते थे, उससे अब उज़रत दूनी चढ़ गई है। फिर भी मज़दूरोंकी उज़रतमें अनाज दिया जाता, जिससे भावका बढ़ना उन्हें नहीं अखरता। दूसरी स्थितिमें किसानको लाभ है।

सन् १७०२-३ ई० में यहां बड़े ज़ोरका दुर्भिक्ष था। उस समय चावल रुपयेमें कोई ढाई सेर और चना कोई सात सेर बिका। सन् १८०३ ई० में अन्नका भाव तिगुना बढ़ गया था, जिससे अधिकांश लोग यहांसे भाग खड़े हुए। सन् १८३३ ई० में गूटीके हज़ारो आदमी हैज़ेसे मरे। अन्न न मिलनेसे भी कितने ही लोग चल बसे थे। सन् १८५१ ई० में यहां इतने ज़ोरसे तूफ़ान आया था, कि तालाबों और सींचके कारखानोंका बड़ा नुकसान् हुवा, और सन् १८५३ ई० में सिर्फ़ छ: इञ्च पानी बरसनेसे सूखा छा गया। कितने ही पशु इसके कारण मरे, किन्तु शीघ्र ही अकाल-मोचनका काम खुल जानेसे लोगोंके प्राण बच गये। सन् १८६६ ई० में फिर दुर्भिक्ष पड़ा। अकाल-मोचनके कामने लोगोंका कष्ट बहुत रोका। हैज़ा इतने ज़ोरसे फूटा, कि बहुतसे आदमी अपने मुरदे न देखने लगे। सन् १८७६-७८ में अनन्तपुरपर बड़े ज़ोरसे दुर्भिक्ष दौड़ा था। किन्तु अकाल-मोचनके काम और ख़ैरातसे कितना ही दुःख दूर हुआ।

खेतकी उपजके लिये दक्षिण भागमें चावल और उत्तर भागमें रूई सबसे बड़ी फ़सल है। यहांसे चावल ढेरका ढेर कड़ापा, करनूल, बेलारी और महिसूर राज्यको भेजा जाता है। रूईकी चीज़ोंमें कपड़ा, रस्सी और फ़ीता खूब बनता है। धर्मवरम्के ताल्लुक़में काग़ज़ भी तय्यार होता है। तेलहन, गन्ने, पटसन और नीलका खूब काम-काज चलता है। नारियलकी मोटी चीनी दूसरी जगह को रवाना की जाती है। गूटी ताल्लुक़में आज भी छींटकी छाप जारी है। कितनी ही जगह कांचकी चूड़ी बनायी जाती है। नमक निकालनेका निषेध है। इस ज़िलेके बिलकुल उत्तर मन्द्राज-रेलवेकी उत्तर-पश्चिम-लाइन लगी, और ताड़पत्री, रयालचेरुवू, गूटी और गण्टाकुलमें ष्टेशन बनी है। फिर भी सड़क और रेल बढ़ानेकी ज़रूरत है। बङ्गलूरसे सिकन्दराबादको जो बड़ी सड़क गई, वह कोटीकोण्डेके पास इस ज़िलेसे मिलती और अनन्तपुर शहर पहुंचनेके बाद गूटीके पास अलग हो जाती है। सड़कें बनानेके लिये ज़मीनकी मालगुज़ारीपर सवा छ: रुपये सैकड़े महसूल लगाया गया है। इस महसूलका एक तिहाई हिस्सा दूसरी मददके साथ ज़िलेमें पढ़ाई, टीका और स्वास्थ्यके ख़र्च खपता है। अनन्तपुरमें छापेख़ाने और अख़बारकी कोई बात नहीं देख पड़ती।

प्रबन्ध—इन्तज़ाम करनेके लिये यह ज़िला सात ताल्लुक़ोंमें बंटा है,—अनन्तपुर, धर्मवरम्, गूटी, हिन्दूपुर, मदकसीरा, पेनूकोण्डा और ताड़पत्री। दीवानी कारवाईकी चार अदालतें हैं,—गांवके मुनसिफ़, ज़िलेके मुनसिफ़, और छोटे सिविल जजकी। सबसे पीछे कही हुई अदालतमें दौरेके मुक़द्दमे भी पेश होते हैं। बेलारीके जज भी सिविल और दौरेका काम चलाते हैं। हरेक ताल्लुक़में एक एक क़ैदख़ाना बना है। ज़िलेका जेल बेलारीमें है। सिर्फ़ अनन्तपुर शहरमें ही मूनिसिपलिटी प्रतिष्ठित है, जहां स्थानीय संस्कारके लिये कई हज़ार रुपये प्रति वर्ष ख़र्च होता है। इस ज़िलेमें पढ़ाईका काम ढीला है, किन्तु उसे बढ़ानेके लिये यत्न हो रहा है।

जल-वायु—प्रधानतः आर्द्र नहीं। वर्षमें साधारणतः सत्रह इञ्च वृष्टि पड़ती है। नवम्बर और दिसम्बरके दिनों पारा ६७° से ८३° तक चढ़ता, और मईमें कभी-कभी आधीरातको १००° पर भी पहुंच जाता है। सन् १८२० ई०से अट्ठारह वर्ष तक हैजेको बीमारी बड़े ज़ोरसे रही थी। बुखार ग़ज़बका चढ़ता है। चेचक बहुत ही मामूली बीमारी है। पशु-रोगने कितने ही बार हलचल डाली थी; किन्तु सन् १८४०, १८५०, १८५७ और १८६८ ई०के बीच जो उपद्रव मचा, उसकी बात कही जा नहीं सकती। गूटी, ताड़पत्री, कल्याणदुर्ग, पेनूकोण्डे और अनन्तपुरमें स्थानीय और मूनिसिपल फण्डसे ग़रीबोंको बेदाम दवा देनेका प्रबन्ध बंधा है। ऐसे दवाखानोंकी गिनती बढ़ते जाती है।

२ उक्त ज़िलेका एक ताल्लुक़। इसका क्षेत्रफल ८८८ वर्गमील है, जिसमें कोई सवा सौ गांव और कई हज़ार घर आबाद हैं। जन-संख्या कोई एक लाख देखते हैं। सारे क्षेत्रफलमें सैकड़े पोछे सत्तर बीघे खेती होती, और तर ज़मीन आधीसे ज़्यादा आमदनी अदा करती है। मामूली तौरपर ताल्लुक़ हमवार मैदान है, उत्तर और उत्तर-पूर्व पहाड़ी सीमाको बांधे है। यहांसे अनन्तपुर, बुक्कराय-समुद्रम्, ताड़मारी और सिंहानमलयको सड़क गई है। अनन्तपुर और सिंहानमलयके ही तालाब सबसे बड़े हैं, जिनसे बीस-बीस हज़ार एकड़ भूमि सींची जाती है। चियेड्दुर्ग सबसे बड़ा पहाड़ है, जो मैदानपर कोई १२०० फ़ीट ऊंचे उठा है। यह ताल्लुक़ गूटीकी मुनसिफ़ीमें लगता है।

३ उक्त ज़िलेका एक बड़ा शहर। यह गूटीसे दक्षिण सोलह और बेलारीसे दक्षिण-पूर्व इकतीस कोस दूर बसा है। यहां कोई बारह हज़ार लोग रहते। ज़िलेका हेडक्वार्टर, खास पुलिस और मजिष्ट्रेटकी कचहरी, छोटा जेल, दवाखाना, स्कूल, डाकघर, और मुसाफ़िरका बंगला बना है। कहते, कि सन् ई० के १४ वें शताब्दमें विजयनगर-राजके दीवानने यह शहर बसाया; सन् १७७५ ई० में जबतक हैदर अलीने न हड़पा, तबतक यह दीवान बहादुरके ही अधीन रहा था,।

४ मन्द्राज—कड़ापा ज़िलेके रायकोट ताल्लुकका एक मन्दिर। यहां गङ्गायात्राका महोत्सव होता और उस समय इधर-उधरके सारे शूद्र इकट्ठा रहते हैं। कुछ वर्षसे यह जलसा फीका पड़ गया है।

अनन्तपुरी—एक सुप्रसिद्ध वेदान्तिक और कृष्णचैतन्यके पूर्वपुरुष।

अनन्तभट्ट—१ आपदेवके पुत्र। अनन्तदेव देखो। २ यदुभट्टके पुत्र, इन्होंने राजा अनूपसिंहके आदेशसे संस्कृत-भाषामें तीर्थरत्नाकर लिखा था। ३ सिद्धेश्वरभट्टके पुत्र—इन्होंने सन् १६९३ ई० में गोविन्द-कृष्ण-रचित कुण्डमार्तण्डकी टीका बनायी थी। ४ अद्वैत-चन्द्रिका और सिद्धान्तचन्द्रिका नामसे नैयायिक ग्रन्थरचयिता। ५ तिथ्यादिनिर्णय-रचयिता। ६ नक्षत्रेष्टिनिरूपण नामक श्रौतग्रन्थकार। ७ नृसिंह-सर्वस्वके अन्यतम लेखक। ८ पदमञ्जरी नामक न्याय-ग्रन्थ-रचयिता। ९ प्रतिष्ठा-पद्धतिकार। १० प्रातिशाख्य-भाष्यकार। ११ भारत-चम्पू-काव्य-रचयिता। १२ महाभाष्यप्रदीप-विवरण-प्रणेता। १३ कमलाकरभट्टके पुत्र, इन्होंने संस्कृत भाषामें रामकल्पद्रुम, तत्पितृरचित जैमिनि-सूत्रभाष्यकी टीका और विंशच्छ्लोकी व्याख्या-सुबोधिनी रची थी।

अनन्तमति (सं० पु०) किसी बोधिसत्वका नाम।

अनन्तमायिन् (सं० त्रि०) असीम रूपसे छली, जो बेहद धोखा दे।

अनन्तमिश्र—न्यायप्रदीप-रचयिता।

अनन्तमूल (सं० पु०) अनन्तं सुदीर्घं मूलमस्य। लताविशेष जिसे शारिवा भी कहते हैं, जङ्गली चमेली। (Hemidesmus indicus) अनन्तमूलके पर्याय यह हैं,—हिन्दी—मगरबू, जङ्गलीचमेली, हिन्दी-सालसा; बंगला—अनन्तमूल, अनन्तोमूल; विहारी—अनुन्तमूल; दक्षिणी—सुगण्डीपाला, नन्नारी, नाटका औशबह; बम्बैया—उपरमार; मारवाड़ी—अनन्तमूल, उपलसरी; तामिल—नन्नारि; तेलगू—गदिसुगन्धि, पालचुक्कनिदेस, सुगन्धिपाल,

तेल्लसुगन्धिपाल, पलसुगन्धि, युक्तपुलगम ; कनाड़ी—सोगदहेरु, सुगन्धपालदगिदा ; मलय—नन्नारीकिज़्हन्न, नरूनीण्ति ; सिंहली—इरिमुसु ; संस्कृत—अनन्ता, सुगन्धि, गोपिमूल, सारिवा ; अरबी—ज़ैयान्, औशवतुन्नार ; फ़ारसी—औशबहेहिन्दी ; यासमीनेबरी। यह आसक्लेपियाडिसी जातिकी हेमिडिस्मस् इण्डिकस् नामक एक लता है। इसके पत्ते सीधे रहते और उनके बीचमें कोरी रेखायें होती हैं। श्यामालताके साथ अनन्तमूलका पूरा धोखा हो सकता है। व्यवसायी प्राय: श्यामालताको अनन्तमूल बताकर बेचा करते हैं। अनन्तमूलकी जड़ कुछ कृष्णवर्ण होती ; किन्तु ऊपरका पतला बकला निकाल डालनेसे पीली देख पड़ती है। उसे तोड़नेसे दूध-जैसा सफ़ेद आटा निकल पड़ता है। इसका गन्ध ठीक कुकरमुत्ते-जैसा होता, किन्तु कुछ तिक्त रहता है। औषधके निमित्त इसका मूल ही काम आता है। बङ्गालकी सरस मृत्तिका और गड्ढेमें यह लता प्रचुर रूपसे उपजती है।

अनन्तमूल धातुपरिवर्धक है। इसको खानेसे बल, क्षुधा, घर्म और मूत्र बढ़ता है। वैद्य महामेदके बदले अनन्तमूलसे काम चलाते हैं। विलायती सालसेकी जगह भी अनेक चिकित्सक अनन्तमूलको ही काममें लाया करते हैं। डाक्टर औसानसीका कहना है, कि इसका गुण सालससे कितना ही उत्कृष्ट होता है। पुरातन कुष्ठ, प्रदर और सारे ही रक्तविकारमें अनन्तमूल महोपकारी है। जो बहु कालसे पुरातन उपदंश रोगमें (गर्मी) कष्ट पाता, उसके लिये अनन्तमूलका पाचन विशेष हितकर है। उक्त महौषध इसतरह प्रस्तुत किया जाता है,—अनन्तमूल दो आने, चोपचीनी छ: आने, बड़ी हरीतकी चार आने, ज्येष्ठमधु या मुलेठी दो आने, सेसेफ्रास् दो आने, मिजारियेन दो आने, कबाबचीनी दो रत्ती, कालपिन फूल दो रत्ती, इसबगोल तीन रत्ती, तकमारी दो रत्ती, तुकमलङ्गा दो रत्ती, असगन्ध दो रत्ती, बिहीदाना तीन रत्ती, रेवाचीनी एक आने, गोयाकम् एक आने, सालममिसरी तीन रत्ती, अजवायन तीन रत्ती, सौंफ तीन रत्ती, केशर एक रत्ती, वंशलोचन दो रत्ती, पद्मकाष्ठ तीन रत्ती, श्वेतचन्दन तीन रत्ती, लवङ्ग एक आने, छोटी इलायची दो रत्ती, दालचीनी तीन रत्ती, तेजपत्र तीन रत्ती, सफ़ेद मूसर तीन रत्ती, जेउफा दो रत्ती, गुलाबके फूल एक आने, जावित्री तीन रत्ती, बड़ी इलायची एक आने, धनिया एक आने, तेजबल एक आने, हरीतकी एक आने, गोक्षुरबीज एक आने और त्यौखर दो आने—इन समस्त द्रव्योंको पहले उत्तम रूपसे कूट डाले, पीछे आध सेर जलसे भरे मट्टीके पात्रमें मृदु सन्तापसे पका और आध पाव बाकी रहनेपर नीचे उतार आधा सवेरे और आधा सन्ध्याको खाये। शिशुकी मात्रा एक परीके बराबर होती है। यदि इस औषधको एकबारगी ही अधिक दिनके लिये बनाना हो, तो सब चीजें ऊपर कही हुई मात्रामें तौला पहले क्वाथ प्रस्तुत करे। पीछे एक पाव क्वाथमें आध छटांकके हिसाबसे सोरा और आध छटांकके हिसाबसे ही स्पिरिट मिला उसे रख छोड़े। इस औषधको खाते समय रोगी तीन-चार दिन अत्यन्त उष्ण जलसे नहाये। मांस, पूड़ी, रोटी, घृतपक्व द्रव्य, चने और मूंगकी दाल प्रभृति सुपथ्य खाना चाहिये। अम्ल निषिद्ध है, किन्तु आम्र खानेमें कोई वाधा नहीं लगती। रौद्र, रात्रिजागरण और स्त्री-संसर्ग अतिशय निषिद्ध है। इससे रक्त भली भांति परिष्कृत होता और कन्दर्प-जैसा रूप बन जाता है। जिन्होंने व्यर्थ विलायती सालसा खा राशि-राशि अर्थ बिगाड़ा है, वह इसे व्यवहार कर विशेष फल पायेंगे। अनेक दु:साध्य रोगियोंपर इस औषधकी परीक्षा हो चुकी है। किन्तु जो यथोचित नियम न रखेगा, उसकी बात स्वतन्त्र है।

अनन्तमूली (सं० स्त्री०) १ दुरालभा, लटजीरा। २ रक्तदुरालभा, लाल लटजीरा।

अनन्त-यज्वा कवीयसाता भट्ट—कृष्णभट्टाचार्यके पुत्र, गौतमीय पितृमेधसूत्रके टीकाकार।

अनन्तयाज्ञिक—प्रतिज्ञासूत्र भाष्य नामसे कात्यायन-श्रौतसूत्रके भाष्यकार।

अनन्तर (सं० त्रि०) नास्ति अन्तरं व्यवधानं यत्र, नञ्-तत्। १ व्यवधान-रहित, जिसके बीचमें कोई रोक न हो। २ अनवकाश, जिसे समय न मिले। ३ पश्चात्, पिछला। ४ अविलम्ब, जल्द। ५ व्यवधान-भिन्न, रोकसे खाली। अव्यवधान दो तरहका होता है—देशमें और कालमें। देशके अव्यवधानका उदाहरण लीजिये—

"कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः।
एष ब्रह्मर्षि देशो वै ब्रह्मावर्त्तादनन्तरः॥" (मनु २।१९)

'ब्रह्मावर्तके बाद कुरुक्षेत्र, मत्स्य, पञ्चाल और शूरसेनक—यह सब ब्रह्मर्षिदेश हैं।' फिर देखिये,—

"अयन्त्वनन्तरस्तस्मादपि राजा भविष्यति।" (महाभारत १।११५।३१।)

'यह उसके बाद राजा होगा।' कालका व्यवधान यह है,—

"सर्गशेषप्रणयनाद्विश्वयोनेरनन्तरम्।
पुरातना: पुराविद्भिर्धातार इति कीर्तिता:॥" (कुमार० ६।९।)

'ब्रह्माको, बाकी सृष्टि पीछे रचनेसे पुराविद् व्यासादि पुरातन धाता कहते हैं।'

"अथातो धर्मजिज्ञासा वेदाध्यायादनन्तरम्।" (स्मृति)

वेदाध्ययनके अनन्तर धर्मजिज्ञासा अच्छी है। इन सकल स्थानोंमें उत्तर-कालपर व्यवधान देख पड़ता है। कहीं-कहीं पूर्वकालमें भी अव्यवधान रहाता है,—

"अनन्तरोदीरित लक्ष्मभाजौ पादौ यदीया वुपजातयस्ता:।"

छन्दोमञ्जरीमें प्रथम इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्राका लक्षण बता कविने फिर लिखा है, कि जिसका पाद-द्वय पूर्वोक्त लक्षणद्वयके लक्षणसे आक्रान्त हो, उसे उपजाति वृत्त कहते हैं। इस बातसे स्पष्ट ही पूर्व-कालमें अव्यवधान देख पड़ता है। अनन्तर शब्दको कोई-कोई क्लीवलिङ्ग बताता है; किन्तु यह भूल है, ठीक नहीं।

अनन्तरज (सं० त्रि०) अनन्तरं जायते, जन-ड; उप० स०। १ अनन्तरजात, पश्चात्जात; पीछे पैदा हुआ। (सं० पु०) अनन्तरस्या अनन्तरवर्णाया: स्त्रिया: जायते, जन-ड; ५-तत्। 'सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भाव:' इति भाष्यम्। २ पुत्र, जिसकी माता क्षत्रिय या वैश्य हो, और जिसका पिता उसकी मातासे एक वर्ण ऊंचा रहे, क्रमोढ़ा स्त्रीजात पुत्र।

"सजातिजानन्तरजा: षट्सुता: द्विजधर्मिण:।" (मनु)

पूर्वकालमें चारो वर्णकी कन्यासे विवाह कर लेनेकी चाल थी। ब्राह्मण यदि पहले ब्राह्मण-कन्या, फिर क्षत्रिय-कन्या, फिर वैश्य-कन्या और फिर शूद्र कन्यासे विवाह करता अर्थात् वर्णानुक्रमसे अन्यथा न जाता, तो वह सब क्रमोढ़ा कहाती थीं। क्षत्रियादि भी इसीतरह क्रमान्वयमें अपने-अपनेसे नीचे वर्णकी कन्याके साथ विवाह कर सकते थे। अर्थात् ब्राह्मणके औरस और विवाहित-क्षत्रियकन्याके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता, वह अनन्तरज है। इसीतरह क्षत्रिय और वैश्यकन्या, तथा वैश्य और शूद्रकन्याजात पुत्र भी अनन्तरज होता है। ३ बड़ा या छोटा भाई।

अनन्तरजात, अनन्तरज देखो।

अनन्तरभ्रूका (सं० स्त्री०) खर्पर-पोलिका।

अनन्तराम—१ वैष्णवधर्म-मीमांसाकार। २ विवाद-चन्द्रिका और खलरहस्य नामसे ग्रन्थकार। ३ स्वानु-भूति नामसे संस्कृत नाटक-रचयिता। ४ कर्पूरस्तव-टीकाकार। ५ दत्तकदीधिति नामक धर्मग्रन्थकार।

अनन्तराम-विद्यावागीश—रामचरण न्यायालङ्कारके पुत्र, सहानुमरणविवेक-रचयिता।

अनन्तराय (सं० त्रि०) नास्ति अन्तराय: प्रतिबन्धको यस्य, बहुव्री०। १ निष्प्रतिबन्धक, निर्विघ्न; बेखटके। (अव्य०) २ निर्विघ्न रूपसे, बेखटके।

अनन्तराशि (सं० पु०) अनन्तस्य आकाशरूपशून्यस्य राशि:, ६-तत्। १ वीजगणितवाले शून्य भागहरणादि-के लिये एक कल्पित राशि, वह मानी हुई जिन्स जिससे वीजगणितका खाली तक़सीम किया जाता है। अनन्तो राशि:, कर्मधा०। २ वह राशि जिसका कोई अन्त नहीं, पूरी न होनेवाली जिन्स। ३ अनिर्दिष्ट राशि, अनिश्चित राशि, जिन्स जिसका कोई ठिकाना नहीं। (indeterminate quantity) उदाहरण उठाइये,—

```
६ ) ०१० ( ०१६
    ६
   ४०
   ३६
    ४
```

यहां भागके फलमें ६ अनन्तराशि है, जो किसीतरह पूरी नहीं होती,—

$$\text{ख}+१\ )\ \frac{\text{क}}{\text{क}}+\frac{\text{क}}{\text{ख}}$$

$$\frac{\text{क}}{\text{ख}}$$

$$\frac{\text{क}}{\text{ख}}\quad\frac{\text{क}}{\text{ख}२}$$

$$+\frac{\text{क}}{\text{ख}२}$$

$$+\frac{\text{क}}{\text{ख}२}+\frac{\text{क}}{\text{ख}३}$$

$$-\frac{\text{क}}{\text{ख}२}$$ इत्यादि।

यहां भागफल अनन्तराशि है।

अनन्तरित (सं॰ त्रि॰) किसी व्यवधानसे पृथक् न किया गया, अभङ्ग; जो किसी रोकसे अलग न किया गया हो, समूचा।

अनन्तरीय (सं॰ त्रि॰) निकटस्थ आत्मीयसे सम्बन्ध रखनेवाला, नज़दीकी रिश्तेदारसे जो ताल्लुक़ रखे।

अनन्तरूप (सं॰ पु॰) अनन्तानि असंख्यानि रूपाणि यस्य, बहुव्री॰। १ परमेश्वर, विष्णु। (त्रि॰) २ असंख्य रूप रखनेवाला, जिसकी शकलोंका कोई शुमार न हो।

अनन्तर्गर्भिन् (सं॰ पु॰) अनन्तर्गर्भो अस्त्यस्य, अस्त्यर्थे इनि; नञ्-तत्। अन्तर्गर्भरहित, पवित्रीका कुश। जिस कुशकी नोक तोड़ दी जाती और जो पवित्र करनेके काम आता, उसे अनन्तर्गर्भिन् कहते हैं,—

"अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।" (छन्दोगपरिशिष्ट)

अनन्तर्हित (सं॰ त्रि॰) १ गुप्त नहीं, प्रकट; न छिपा हुआ, ज़ाहिर। २ व्यवधानसे अभिन्न, जिसमें कोई रोक नहीं।

अनन्तवत् (सं॰ त्रि॰) १ सदाका, हमेशावाला। २ अन्तशून्यसदृश। (पु॰) ३ ब्रह्माके पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग और समुद्र—इन चार चरणोंमें एक चरण।

अनन्तवर्मन् महाराज—१ मन्द्राज-गञ्जाम-कलिङ्गपटम्के एक नृपतिका नाम। २ उत्कलाधिप चोड़गङ्गका मूल नाम। चोड़गङ्ग और गङ्गवंश देखो।

अनन्तवात (सं॰ पु॰) शिरोरोग-विशेष, एक सरकी बीमारी। इसका लक्षण यह है,—

"दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्यघाटासु रुजां सुतीव्रां।
कुर्वन्ति योऽक्षिभ्रु वि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु॥
गण्डस्य पार्श्वे तु करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान्।
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम्॥" (माधव नि॰)

'सन्निपातके दोषसे शिरमें जो भयानक वेदना उत्पन्न होती, जिससे नेत्र, भ्रूयुगल जला करता और गण्ड कंपने लगता है, उसे अनन्तवात कहते हैं।'

अनन्तविक्रमिन् (सं॰ पु॰) किसी बोधिसत्त्वका नाम।

अनन्तविजय (सं॰ पु॰) अनन्तान् अशेषजनान् विजयते अनन्तानां विजयो वा, उप-स॰। युधिष्ठिरका शङ्ख। युद्धके समय इस शङ्खको बजानेसे प्रतिपक्षीय योद्धा हार जाते थे।

अनन्तवीर्य (सं॰ पु॰) अनन्तं असीमं वीर्यं यस्य, बहुव्री॰। १ जिन-विशेष, जो आगे आनेवाले तेईसवें अर्हत् होंगे। २ विष्णु। (त्रि॰) ३ असीमशक्तिशाली, बेहद ताक़त रखनेवाला।

अनन्तव्रत (सं॰ क्लो॰) अनन्तस्य विष्णोर्व्रतं उपासनार्थं नियमः। भाद्रमासकी शुक्लचतुर्दशीको किया जानेवाला इसी नामका व्रत-विशेष। भविष्यपुराणमें लिखा है,—

"अनन्तव्रतमेतद्धि सर्वपापहरं शुभम्।
सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणाञ्चैव युधिष्ठिर॥
तथा शुक्लचतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे तथा।
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वं पापं प्रणश्यति॥
कृत्वा दर्भमयानन्तं वारिधान्यं निवेश्य च।
पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यै र्नैवेद्यैर्विविधैरपि॥
चतुर्दशफलैर्मूलैर्जलजै रपि भक्तितः।
यवगोधूमशालीनां चूर्णैनैकतमस्य च॥
कृत्वापूपद्वयं तस्मै दद्यादेकं घृतान्वितम्।
स्वयमेकन्तु भुञ्जीत करे बध्वा सुडोरकम्॥
चतुर्दशग्रन्थियुक्तं कुङ्कुमेन विलेपयेत्।
सुविन्यस्तं विष्णुनाम प्रतिग्रन्थि समन्वितम्।
चतुर्दश ग्रन्थिमयं सूत्रं कार्पासमेव च॥"

"सकल पापका हरणकारी यह शुभ अनन्त-व्रत

पुरुष और स्त्री दोनोका अभिलाष पूरा किया करता है। इससे मालूम होता है, कि पुरुष और स्त्री दोनो ही इस व्रतको रख सकते हैं। भाद्रमासकी शुक्ल-चतुर्दशीको इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे सब पाप छूट जाते हैं। कुशका अनन्त बना घटके ऊपर रखना चाहिये। फिर, भक्तिभावके साथ गन्ध, पुष्पादि, नाना-विध नैवेद्य, चतुर्दश फल और जलजात केशुरादिके मूल द्वारा उसी अनन्तकी पूजा करे। पीछे यव, गेहूं या चावलके आटेसे घीमें दो पुये पकाये, जिनमें एक अनन्तदेवपर चढ़ाये और दूसरा आप खा जाये। पुआ खानेसे पहले कर्पासके सूतका एक डोरा कुङ्कुम या हरिद्रासे रंगे और विष्णुके नामसे चौदह गांठ लगाकर पुरुष दक्षिण और स्त्री वाम बाहु पर ले।'

विष्णुके पूजने और अनन्त बांधनेका मन्त्र रत्ना-करमें यों लिखा गया है,—

"अनन्तसंसार-महासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव।
अनन्तरूपे विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमो नमस्ते ॥"

'हे वासुदेव! अकूल संसाररूप महासमुद्रमें हम मग्न हो गये हैं, हमें उद्धार कीजिये और अपने अनन्तरूपमें मिला लीजिये अर्थात् मुक्ति दीजिये। हे अनन्तरूप! हम आपको नमस्कार कर रहे हैं।' और देखिये,—

"पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो भव ॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम्।
यत्तवाङ्घ्रियगाब्जाये मन्मूर्धा भ्रमरायते ॥"

'हे पुण्डरीकाक्ष! हम सदा पापकर्म किया करते और पापबुद्धि हैं, हमारा जन्म केवल पापके निमित्त हुआ है। इसीसे हम नितान्त पापी बने हैं। हमारी आप रक्षा करें और हमारे सकल पाप हरें। आज हमारा जन्म सफल है, जीवन भी धन्य हुआ है। इसीसे आपके पादपद्मके पास हमारा मस्तक भ्रमरकी भांति घूमते फिरता है।' यही दोनो मन्त्र पढ़ अनन्तको नमस्कार कर पीछे अनन्तव्रतकी कथा सुनना चाहिये।

लोग कहते हैं, कि अनन्तव्रतके डोरेको पकड़ शीत नीचे उतरता, अर्थात् इसी दिनसे शीत पड़ने लगता है।

अनन्तशक्ति (सं० पु०) अनन्ता अपरिच्छिन्ना शक्ति-र्यस्य, बहुव्री०। १ विष्णु। २ किसी राजाका नाम। (स्त्री०) कर्मधा०। ३ अपरिमित बल, बेहद ताक़त।

अनन्तशयन—मन्द्राज—कृष्णा जिलेके उण्डवल्ली स्थानका प्राचीन विष्णुमन्दिर और तीर्थ। यह मन्दिर चार खण्डका चटान काटकर बनाया गया है। इससे हिन्दुओंकी सन् ई०के ७ वें या ८ वें शताब्दवाली कारीगरीका पता लगता है। कहते हैं, कि इसे चालुक्योंने कल्याणोंसे खुदवाकर बनवाया था। तीसरे खण्डमें विष्णु भगवान्‌की बहुत बड़ी और लेटी हुई मूर्ति पत्थरपर खुदी है। मन्दिरमें तीन जगह शिला-लेख मिलता है। दोमें तो कोई तारीख़ नहीं; जो लोगोंने उत्सर्ग किया, उसकी बात लिखी है। तीसरेमें तारीख़ मौजूद है, किन्तु पढ़ी नहीं जाती। उसमें रुद्दीके उत्सर्गका हाल मिलता है।

अनन्तशीर्षा (सं० स्त्री०) १ अनन्तानि बहूनि शीर्षाणि यस्याः, बहुव्री०। वासुकिकी पत्नी, जिनके असंख्य फण हैं। (पु०) २ वासुकि, सर्पोंके राजा। ३ ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेदके बताये हुए पुरुष।

अनन्तशुष्म (वै० त्रि०) १ अनन्तशक्तिशाली, बेहद ताक़त रखनेवाला। २ असीम रूपसे बहता हुआ, जो बेहद बहते चला जाये। (स्त्री०) अनन्तशुष्मा।

अनन्तश्री (सं० पु०) अनन्ता अपरिमिता श्रीः पराशक्तिरस्य, बहुव्री०। १ परमेश्वर। अनन्ता श्रीः शोभा त्रिवर्गसम्पत् वेशरचना वा यस्य। २ विष्णु।

"लक्ष्मी सरस्वती धात्री त्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु।
उपकरणवेशरचनाविधासु श्रीरिति प्रथिता ॥" (इति व्याडि)

'श्रीशब्दसे लक्ष्मी, सरस्वती, धात्री, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) सम्पत् (धन), विभूति, शोभा उपकरण और वेशरचनाविधानका मतलब निकलता है।'

(स्त्री०) कर्मधा०। ३ अपरिमित शोभा, बेहद रौनक़। ४ असीम सम्पत्ति, बेहद दौलत।

अनन्ता (सं० स्त्री०) नास्ति अन्तः सीमा यस्याः, बहुव्री०। १ विशल्या ओषधि। २ अनन्तमूल। ३ दुरालभा, लटजीरा। ४ दूर्वा, दूब। ५ हरीतकी, हर। ६ आमलकी, आंवला। ७ गुडूची, गुर्च। ८ अग्निमन्थ वृक्ष। ९ अग्निशिखा वृक्ष। १० श्यामा-लता। ११ पिप्पल, पीपर। १२ यवास, जवासा। १३ पार्वती। १४ पृथिवी।

अनन्तात्मन् (सं० पु०) परमेश्वर जिसका कोई अन्त नहीं।

अनन्तानन्द (सं० पु०) अनन्ते विष्णौ आनन्दो यस्य। रामानन्दके बारह शिष्योंमें एक शिष्य। भक्तमालामें इन बारह शिष्योंके नाम लिखे हैं,—१ रघुनाथ, २ अनन्तानन्द, ३ कुबेर, ४ सुखासुर, ५ जीव, ६ पद्मा-वत्, ७ पीपा, ८ भवानन्द, ९ रुद्रदास, १० धन्य, ११ सेन और १२ सुरसुर।

अनन्त्य (सं० क्ली०) अनन्तस्येदं यत्। १ हिरण्य-गर्भ पद, ब्रह्मपद। (त्रि०) २ असीम, बेहद। ३ सदाका, हमेशावाला।

अनन्द (सं० त्रि०) न नन्दयति, नन्द-णिच्-अच्; नञ्-तत्। १ आनन्दजनक नहीं, जो खुश न करे। (वै० पु०) २ किसी नरकका नाम।

अनन्न (वै० क्ली०) न अन्नम्, नञ्-तत्। १ अभोज-नीय, जो चीज़ खाई न जाये। (त्रि०) नास्ति अन्नं यस्य, बहुव्री०। २ निरन्न, अन्नहीन; जिसके पास खानेको अनाज न हो।

अनन्नास (हिं० पु०) आनानास, एक तरहका फल। यह वृक्ष देखनेमें रामबांस-जैसा और प्रायः दो फ़ीट तक ऊंचा होता है। मूलसे लगभग दो-तीन अङ्गुल ऊपर डण्ठलके पास अङ्कुरोंकी ग्रन्थि पड़ती, जो धीरे-धीरे स्थूल और दीर्घ होते जाती है। इस ग्रन्थिमें रस भरा रहता है। खाते समय लोग पहले इसका बकला छील और आंख निकाल डालते हैं। स्वादमें यह खटमिट्ठा होता और भुक्त अन्नको पचा-कर हृदय शीतल करता है।

अनन्य (सं० त्रि०) न अन्यः, नञ्-तत्। १ अन्य-भिन्न, दूसरेसे अलग। कुमारसम्भवमें लिखा है,—'अनन्यनारी कमनीयमङ्कम्।' मतलब यह, कि जिस क्रोड़को कामना भी अन्य नारी नहीं कर सकती। नास्ति अन्यो यस्य। २ जिसके दूसरा कोई नहीं, सबसे अलग। ३ उदासीन, नाखुश। ४ अनधीन, आज़ाद। ५ अपना। ६ एकसे अधिक नहीं। ७ समग्र, समूचा। ८ दूसरा प्रयोजन न रखनेवाला।

अनन्य—युक्तप्रदेशके एक कविका नाम। इनका जन्म सन् १७३३ ई० में हुआ था। इनके बनाये कितने ही वेदान्त और नीतिके पद लोगोंमें फैल गये हैं। इन्होंने चेतावनी भी लिखी थी। सम्भवतः यह वही कवि थे, जिन्हें शिवसिंहने अज्ञात समयका बताया था और जिन्होंने दुर्गाकी स्तुति बनाई थी।

अनन्यगति (सं० स्त्री०) १ पूर्ण स्रोत, पूरा ज़रिया। (त्रि०) २ केवल एक स्रोत रखनेवाला, जिसके कोई दूसरा ज़रिया न हो।

अनन्यगतिक (सं० त्रि०) नास्ति अन्या गतिर्यस्य, कप्। अन्य उपाय-रहित, दूसरा ज़रिया न रखनेवाला।

अनन्यगामिन् (सं० त्रि०) दूसरेकी ओर न जाने-वाला, जो ग़ैरकी तर्फ़ न झुके।

अनन्यगिरि—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजगापटम् ज़िलेका एक गांव। यह समुद्र-तलसे कोई ३१११ फ़ीट ऊंचे गलीकोण्डाकी पहाड़ीपर बसा; जो विजयनगर और पच्चीपेंता राज्यकी सीमा बनाती है। इस गांवमें कोई ढ़ाई हज़ार आदमी बसते और क़हवेके बड़े-बड़े बाग़ लगे हैं।

अनन्यचिन्त, अनन्यचेतस् (सं० त्रि०) अपना सम्पूर्ण ध्यान एक ही ओर लगा देनेवाला, जो अपना ख़याल एक ही बातपर जमा दे।

अनन्यचोदित (सं० त्रि०) आप ही आप झुका, जो अपने मनसे किसी काममें लग जाये।

अनन्यज (सं० पु०) नास्ति अन्यदुयस्मात् सर्ववस्तूनां तदात्मकत्वात् अनन्यो विष्णुः तस्मात् जायते, जन-ड; ५-तत्—अथवा न अन्यस्मात् स्वयमेव वयोधर्मेण मनसि जायते। कामदेव, जो विष्णुके पुत्र हैं या आप ही आप मनमें उत्पन्न हो जाते हैं। अमरकोषमें लिखा है,—'कुसुमेषुरनन्यजः।'

अनन्यता (सं० स्त्री०) अन्य होनेका अभाव, दूसरा न रहनेकी हालत; निरालापन, अनोखापन; एकनिष्ठा, एकाश्रयता।

अनन्यत्व (सं० क्ली०) अनन्यता देखो।

अनन्यदास—युक्तप्रदेश गोंडा ज़िलेके चकदवेवाले एक कविका नाम। शिवसिंह-सरोज नामक पुस्तकमें लिखा है, कि इन्होंने अनन्ययोग नामक एक ग्रन्थ बनाया था।

अनन्यदृष्टि (सं० त्रि०) अन्य दृष्टिसे न देखनेवाला, जो बराबर टकटकी बांधकर देखे।

अनन्यदेव (सं० पु०) नास्ति अन्यद् यस्मात् सर्ववस्तूनां तदात्मकत्वात् तादृशो देवः। १ परमेश्वर जिनकी बराबर दूसरा कोई देवता नहीं। २ विष्णु।

अनन्यनिष्पाद्य (सं० त्रि०) अन्य द्वारा पूरण किये जानेकी आवश्यकता न रखनेवाला, जो आप ही पूरा पड़ जाये।

अनन्यपूर्वा, अनन्यपूर्विका (सं० स्त्री०) न अन्यः पूर्वो यस्याः, बहुव्री०। १ अन्यसे अभुक्त स्त्री, जिस स्त्रीके साथ पहले किसीने भोग नहीं किया। २ अविवाहिता बालिका, बिन व्याही लड़की। याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है,—

"अविप्लुतब्रह्मचर्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्।
अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम्।" (१।५२)

'ब्रह्मचर्यके बाद सुलक्षणा, अविवाहिता, मनोज्ञा, असपिण्डा और वयःकनिष्ठासे स्त्रीसे विवाह करना चाहिये।'

अनन्यप्रतीक्रिय (सं० त्रि०) प्रतीकारका अन्य उपाय न रखनेवाला, जिसे रोककी दूसरी तदबीर न सूझे।

अनन्यभव (सं० त्रि०) अन्यसे उत्पन्न न होनेवाला, जो आप ही आप पैदा हो।

अनन्यभाज (सं० त्रि०) न अन्यं अन्यां वा भजते, भज-ण्वि; उप० स०। भजोण्विः। पा ३।२।६२। अन्य पुरुष या अन्य स्त्रीको सेवा न करनेवाला, जो दूसरे मर्द या दूसरी औरतकी खिदमत न करे,—

"अनन्यभाजं पतिमाप्नुहीति सातथ्यमेवाभिहिता भवेन।
नहीश्वरव्याहृतयः कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमर्थम्॥"
(कुमारसम्भव, ३।६३)

शिवका यह वर यथार्थ ही निकला—'ऐसे पतिको प्राप्त करो, जो किसी दूसरी स्त्रीको न भजे।' क्योंकि ईश्वरकी उक्ति कभी विपरीत अर्थ नहीं देती अर्थात् ईश्वरका वाक्य कभी निष्फल नहीं जाता।

अनन्यभाव (सं० त्रि०) अन्य भाव न रखने अर्थात् केवल ईश्वरसे ध्यान लगानेवाला, जो दूसरा मतलब न रखे, परमेश्वरमें ही ध्यान लगाये रहे।

अनन्यमनस्, अनन्यमनस्क, अनन्यमानस (सं० त्रि०) सम्पूर्ण ध्यानको कार्यमें नियुक्त करनेवाला, जो अपना पूरा खयाल किसी बातपर जमा दे।

अनन्ययोग्य (सं० त्रि०) अन्यके उपयुक्त नहीं, जो दूसरेके क़ाबिल न हो।

अनन्यविषय (सं० त्रि०) अन्य विषयका नहीं, पूर्ण नियुक्तिके योग्य; जो पूरे तौरसे काममें लाया जा सके।

अनन्यविषयात्मन् (सं० त्रि०) अन्य विषयके आत्माका नहीं, एक ही विषयपर आत्माको लगानेवाला; जो रूहको पूरे तौरपर किसी बातमें मशग़ूल करे।

अनन्यवृत्ति (सं० त्रि०) न अन्या विभिन्ना वृत्तिः मनोवृत्तिर्यस्य, बहुव्री०। १ एक ही रूपसे मनोयुक्त, जिसका दिल दूसरी ओर न चले। नास्ति अन्या वृत्तिः जीवनोपायो यस्य। २ एकमात्र जीवनोपायविशिष्ट, जिसके गुज़रकी दूसरी तदबीर न लगे।

अनन्यसाधारण (सं० त्रि०) न अन्यस्य अन्यधर्मस्य साधारणः सदृशः। अपना-जैसा दूसरा न रखनेवाला, सबसे निराला।

अनन्यहृत, (सं० त्रि०) अन्यसे हृत नहीं, जिसे दूसरा न उठा ले जाये; सुरक्षित, महफ़ूज़।

अनन्यादृश (सं० त्रि०) अन्यके समान नहीं, एकाकी, जो दूसरे जैसा न देख पड़े, एकता।

अनन्यार्थ (सं० त्रि०) अन्य अर्थ न रखनेवाला, प्रधान; जो दूसरी चीज़से ताल्लुक़ न रखे, खास।

अनन्याश्रित (सं० त्रि०) अन्यका आश्रित नहीं, स्वाधीन; जो दूसरेका सहारा न लेता हो, आज़ाद। अदालतमें अनन्याश्रित वह सम्पत्ति कहाती है, जिसमें कोई झगड़ा-झञ्झट नहीं रहता।

अनन्वय (सं० त्रि०) नास्ति अन्वयः परस्पर सम्बन्धो यत्र, बहुव्री०। अन्वयशून्य, जिसमें पदोंके परस्पर अर्थ समझानेका लगाव न रहे। (पु०) २ अर्थालङ्कार विशेष। साहित्य-दर्पणमें इसका लक्षण इसतरह लिखा गया है,—

'उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वयः।'

'जहां एक ही वस्तु एक वाक्यसे उपमान और उपमेयके रूपमें दिखाई जाती, वहां अनन्वय अलङ्कार होता है। उदाहरण,—

"राजीवमिव राजीवं जलं जलमिवाजनि।
चन्द्रश्चन्द्रइवातन्द्रः शरत्समुदयोद्यमे॥"
शरत् आगमनके प्रथम कमल कमलसो फूल।
जल जलसो शोभा लही, चन्द्र चन्द्रसो भूल॥

'शरत् ऋतु आनेसे पहले कमल कमलकी तरह, जल जलकी तरह और चन्द्र चन्द्रकी तरह खिल गया था।'

इस जगह कमल, जल और चन्द्र क्रमसे अपने-अपने-जैसे कहे गये हैं, इसीसे यह अनन्वय अलङ्कार हुआ। अनन्वयमें एक अर्थके विभिन्न शब्द रहनेसे अलङ्कारकी कोई क्षति नहीं होती। हम पद्मको कमल-जैसा और चन्द्रको सुधांशु-जैसा बता सकते हैं। किन्तु एक प्रकारके शब्द आनेसे लाटानुप्रास बनता, जो सुननेमें अधिक मिष्ट लगता है,—

"अनन्वये च शब्दैक्यमौचित्यादानुषङ्गिकम्।
अस्मिंस्तु लाटानुप्रासे साक्षादेव प्रयोजकः॥"

उचित समझ अनन्वय अलङ्कारमें भी एक शब्दका प्रयोग करनेसे अच्छा रहता, फलतः वह आनुषङ्गिक या अप्रधान है। किन्तु इस लाटानुप्रासमें एक शब्द साक्षात् प्रयोजक है अर्थात् एक ही शब्द न रहनेसे लाटानुप्रास बिगड़ जाता है।

अनन्वित (सं० त्रि०) अन्वय-रहित, असम्बद्ध; बेरिश्ता, बेक़ायदा। २ शून्य, खाली।

अनप (सं० त्रि०) न सन्ति आधिक्येन आपो यत्र, अजन्त बहुव्री०। जल-शून्य, आबसे खाली; पानी न रखनेवाला।

अनपकरण (सं० क्ली०) १ हानि या चोटका न पहुंचाना। २ रुपयेका अदा न करना। न्यायालय इस शब्दको इसी दूसरे अर्थमें लगाता है।

अनपकर्मन् (सं० क्ली०) न अपकर्म अपाकरणं (निराकरणं), अभावार्थे नञ्-तत्। १ अपात्रको सत्पात्र बुद्धिसे द्रव्य, या क्रोधादि द्वारा अपनी वस्तु देकर फिर उसीका ग्रहण। २ ऋणका अपकर्म, क़र्ज़का अदा न होना। ३ अनिन्दित कर्म, तारीफ़का काम।

अनपकर्ष (सं० पु०) उच्चता, श्रेष्ठता; ऊंचापन, बड़प्पन।

अनपकार (सं० पु०) अपकार न करनेका भाव; बेगुनाही, सादापन, भोलापन।

अनपकारिन् (सं० त्रि०) अपकार न करनेवाला, जो कुछ न बिगाड़े।

अनपक्रिया (सं० स्त्री०) अनपकर्म देखो।

अनपकृत (सं० त्रि०) अपकाररहित, कुछ न बिगाड़नेवाला।

अनपच (हिं० पु०) अजीर्ण, बदहज़मी, खाई हुई चीज़का पेटमें न पचना।

अनपच्युत (सं० त्रि०) न-अप-च्यु-भावे क्त; नास्ति अपच्युतं विनाशो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ विनाशरहित, न मिटनेवाला। २ अयोग्य स्थानमें अतिष्ठित, बेठिकाने न पहुंचा हुवा।

अनपजय्य (सं० त्रि०) जिसका विजयी व्यवहार उलटना असम्भव हो, जिसकी फ़तेहमन्द चाल बदलना मुमकिन नहीं।

अनपढ़ (हिं० वि०) अध्ययनरहित, निरक्षर, मूर्ख; नातालीम-याफ़्ता, बेपढ़ा, अहमक़।

अनपत्य (सं० त्रि०) नास्ति अपत्यं सन्तानं यस्य, बहुव्री०। १ अपत्यरहित, सन्तानविहीन; बेऔलाद, जिसके कोई बाल-बच्चा न हो। (वै०) २ निःसन्तान बनानेवाला, जो औलादको रोके। (क्ली०) २ अपत्य-राहित्य, बेऔलादी, निपूतापन।

अनपत्यक (सं० त्रि०) अपत्यरहित, लावल्द, निपूता।

अनपत्यता (सं० स्त्री०) अपत्यराहित्य, लावल्दी, निपूतापन।

अनपत्यवत् (वै० त्रि०) अनपत्यक देखो।

अनपत्रप (सं० त्रि०) नास्ति अपत्रपा अन्यहेतुका लज्जा यस्य, बहुव्री०। अन्य हेतुक लज्जाहीन, दूसरेकी शर्म न रखनेवाला; निर्लज्ज, बेशर्म।

अनपनिहित (सं० त्रि०) न घटाया या कम किया गया, जिसका काट-कूट न हुआ हो।

अनपभ्रंश (सं० पु०) न अपभ्रंशः, नञ्-तत्। अपभ्रंश-भिन्न शब्द, बिगाड़से अलग लफ़्ज़; चरण-रहित, जो न मिटे; व्याकरण-निष्पाद्य साधु-शब्द, जो लफ़्ज़ नहवके क़ायदेसे क़ायम किया गया हो।

अनपयति (वै० अव्य०) सूर्योदयसे पहले, जब पौ न फटे; बहुत सवेरे या तड़के।

अनपर (सं० त्रि०) द्वितीयरहित, जिसके कोई दूसरा न हो। २ शिष्यविहीन, जिसका कोई चेला नहीं। ३ पूरण, समूचा। इस अर्थमें यह शब्द, ब्रह्मका द्योतक है।

अनपराद्ध (सं० त्रि०) १ अनाहत, जिसके चोट न लगी हो। (अव्य०) २ विना आघात, चोट न लगनेसे।

अनपराध (सं० त्रि०) अपराधविहीन, बेक़ुसूर। २ निर्दोष, बेऐब।

अनपराधत्व (सं० क्ली०) अपराधसे अलगाव, क़ुसूर-से छुटकारा।

अनपराधिन् (सं० त्रि०) निरपराध, बेक़ुसूर।

अनपलाषुक (सं० त्रि०) अतृषित, जो प्यासा न हो।

अनपवाचन (वै० त्रि०) १ जिसका वार्तालापमें निकल जाना सम्भव न हो, बातोंमें उड़ाया जानेको नामुमकिन। २ अभिलाषसे बहिष्कृत होनेके अयोग्य, जो ख़्वाहिशके बाहर न निकल सके।

अनपवृज्य (वै० त्रि०) घृणायोग्य अशुद्ध पदार्थोंसे अलग, जिसमें परहेज़ कीजाने क़ाबिल नापाक चीज़ें न छू गई हों।

अनपव्ययत् (वै० त्रि०) १ सदा उपस्थित रहनेवाला, मुदामी।

अनपसर (सं० त्रि०) १ अनुपयुक्त, ग़ैरवाजिब। २ अप्रचलित।

अनपसरण (सं० क्ली०) १ बहिःद्वारका अभाव, निकासकी नामौजूदगी। (पु०) २ बलात्कारसे दूसरेकी कोई वस्तु अपहरण करनेवाला व्यक्ति, जो शख़्स जबरन किसीकी चीज़ दबा बैठे।

अनपस्पृश् (वै० त्रि०) अस्वीकार न करनेवाला, जो इनकार न करे; हठी नहीं, जो ज़िद्दी न हो।

अनपस्फुर्, अनपस्फुर (वै० त्रि०) न उटकती हुई, जो दूध देनेमें लात न फटकारे। यह विशेषण गौके साथ व्यवहार किया जाता है।

अनपहतपाप्मन् (सं० त्रि०) पापसे अपृथक्, जो गुनाहसे अलग न रहे।

अनपहृत (सं० त्रि०) अपहरण न किया हुआ, जो चुराया न गया हो।

अनपाकरण, अनपाकर्मन् (सं० क्ली०) न अपाकर्म अपाकरणं (निराकरणं), नञ्-तत्। अनिराकरण, ऋणादिके परिशोधका न होना; नाअदायी, क़र्ज़का चुकाया न जाना।

अनपाय (सं० त्रि०) १ हानि न उठाये हुए, जो कम न पड़ा हो। २ अविनाशी, लाज़वाल। (पु०) ३ हानि या रोने-धोनेसे पृथक्त्व, नुक़सान या हाय-हायसे छुटकारा। ४ अविनाशिता, हमेशगी। ५ शिवका एक नाम।

अनपायिन् (सं० त्रि०) न अपैति अपगच्छति; अप-इण-णिनि, नञ्-तत्। १ निश्चल, स्थिर; ठहरा हुआ, न डिगनेवाला। २ अविनाशी, कभी न मिटनेवाला।

अनपायिपद (सं० पु०) निश्चल पद, जो जगह डिगे नहीं; परमपद, मोक्ष; दुनियासे छूट परमेश्वर-का मेल।

अनपायी, अनपायिन् देखो।

अनपावृत् (सं० त्रि०) अपावर्तनं अपावृत्, अप-आ-वृत्-भावे क्विप्; नास्ति अपावृत् पुनरावृत्तिर्यस्य, नञ्-बहुव्री०। पुनरावृत्तिशून्य, न दोहराया गया।

अनपाश्रय (सं० त्रि०) किसीके वशका नहीं, स्वाधीन; किसीका मातहत न रहनेवाला, आज़ाद।

अनपिहित (सं० त्रि०) न अपिहितं आवरणं, अपि-धा-भावे क्त; तन्नास्ति यस्य। आवरणशून्य, बेपरदा।

अनपुंसक (सं० क्लो०) वह शब्द जो नपुंसक लिङ्गका न हो। यह शब्द व्याकरणमें व्यवहृत होता है।

अनपूपीय, अनपूप्य (सं० त्रि०) अपूपके अयोग्य, जो रोटी या पूरीके क़ाबिल न हो।

अनपेक्ष (सं० त्रि०) न अपेक्षते—अनुरुणद्धि-अच्; नञ्-तत्। १ अपेक्षाशून्य, बेपरवा। २ अनुरोधरहित, बेलिहाज़। ३ पक्षपातशून्य, नातरफ़दार। ४ अवसर-रहित, बेमौक़ा।

अनपेक्षत्व (सं० क्लो०) १ अपेक्षाशून्यता, बेपरवायी। २ अनुरोधराहित्य, बेलिहाज़ी। ३ पक्षपातशून्यता, तर्फ़दारीका न होना। ४ अवसरका अभाव, मौक़ेकी नामौजूदगी।

अनपेक्षा (सं० स्त्री०) अपेक्षाका अभाव; बेलिहाज़ी, बेपरवायी।

अनपेक्षित (सं० त्रि०) १ अपेक्षा न किया हुआ, बेलिहाज़। २ ध्यान न दिया हुवा, बेग़ौर। ३ आशा न किया गया, नागहां।

अनपेक्षिन् (सं० त्रि०) १ अपेक्षाशून्य, बेपरवा। २ अनुरोधरहित, बेलिहाज़।

अनपेक्ष्य (सं० त्रि०) अपेक्षा न रखता हुआ, परवा न करनेवाला।

अनपेत (सं० त्रि०) न अपेतं बहिर्गतं अपगतं वा, नञ्-तत्। १ अबहिर्गत, न गुज़रा या गया हुआ। २ अपेत-भिन्न, अनुपेत; अलग न किया गया, लगा हुआ।

अनप्त (वै० त्रि०) न आप्तम्, पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः। १ अप्राप्त, न मिला हुवा। २ निर्जल, जो पानीदार न हो।

अनप्नस् (वै० त्रि०) नास्ति अपनस् रूपं यस्य, नञ्-बहुव्री०। आपः कर्माख्यायाम्। उण् ४।२०७। १ रूपरहित, बेशक्ल। २ कर्महीन, बेकार। ३ अयोग्य, नालायक़।

"जम्भया ता अनप्नसः।" (ऋग्वेद)

अनप्सरस् (सं० स्त्री०) स्त्री जो अप्सरा-जैसी न हो, औरत जो परी-जैसी नहीं।

अनफा (सं० स्त्री०) ग्रहोंका योगविशेष, सितारोंके आपसमें मिलनेका एक ख़ास मौक़ा।

अनबन (हिं० स्त्री०) द्रोह, विरोध; झगड़ा, झञ्झट, खटपट, बिगाड़, फूट, खैंचतान।

अनबिधा, अनबेधा (हिं० वि०) अविद्ध, न बेधा या छेदा गया। यह विशेषण मोतीके साथ लगाया जाता है।

अनबोल (हिं० वि०) १ न बोलनेवाला, अनबोला। २ मुंहचुप्पा, मौन। ३ गूंगा, बेजीभ। ४ अपना सुख-दुःख न बतानेवाला, जो अपनी तकलीफ़ या आरामका हाल किसीसे न कहे।

अनबोलता, अनबोल देखो। (स्त्री०) अनबोलती।

अनबोला, अनबोल देखो।

अनब्याहा (हिं० वि०) अविवाहित; क्वांरा, जिसकी शादी न हुई हो।

अनभल (हिं० पु०) अहित, हानि; बुराई, नुक़सान।

अनभला (हिं० वि०) अनुत्तम, हेय; बुरा, ख़राब। (स्त्री०) अनभली।

अनभाया, अनभावता (हिं० वि०) अच्छा न लगा हुआ: अप्रिय, अरुचिकर; जो भला न मालूम हो, नापसन्द।

अनभिग्रह (सं० त्रि०) १ भेदरहित, बेफ़र्क़। (पु०) २ भेदराहित्य, बेफ़र्क़ी। ३ जैनमत विशेष, जो सब मत अच्छे समझता और सबमें मोक्षकी राह देखता है।

अनभिज्ञ (सं० त्रि०) न अभिजानाति, अभि-ज्ञा-क। अज्ञ, ज्ञानशून्य, मूर्ख; नादान, बेअक़्ल, बेवक़ूफ़।

अनभिज्ञता (सं० स्त्री०) अज्ञता, ज्ञानराहित्य, मूर्खता; नादानी, बेवक़ूफ़ी अनाड़ीपन।

अनभिद्रुह् (सं० त्रि०) द्रोहशून्य, हसदसे ख़ाली; किसीका बुरा न चेतनेवाला।

अनभिधेय (सं० त्रि०) न अभिधेयम्। अवाच्य, जो कहा न जा सके।

अनभिप्रेत (सं० क्लो०) अभिप्रायसे विरुद्ध कार्य, इरादेके ख़िलाफ़ काम।

अनभिभव (सं० पु०) न अभिभवः, अभावार्थे नञ्-तत्। अभिभवका अभाव, पराजयका राहित्य; फ़तेहका न पाना, जीतका न होना।

अनभिभवनीय (सं० त्रि०) न अभिभवनीयम्, नञ्-तत्। अपराजय, फ़तेहके नाक़ाबिल; जीता न जा सकनेवाला।

अनभिभूत (सं० त्रि०) न अभिभूतम्, नञ्-तत्। १ अपराभूत, लाग़िकस्त; हराया गया। २ अप्रतिहत, बेरोक।

अनभिमत (सं० त्रि०) न अभिमतम्। १ असम्मत, रायसे अलग। २ विरत, बुरा। ३ अनीप्सित, नापसन्द।

अनभिम्लात (सं० त्रि०) न-अभि-म्लै-तन्। दीप्यमान, प्रकाशमान; फूला, खिला; मुरझाया नहीं।

अनभिम्लातवर्ण (सं० त्रि०) अनभिम्लात देखो।

अनभिम्लान (सं० त्रि०) अनुत्कण्ठित, बेख़्वाहिश।

अनभिरूप (सं० त्रि०) कुरूप, बदसूरत; जिसका चेहरा-मुहरा और डील-डौल ख़ूबसूरत न हो।

अनभिलक्षित (सं० त्रि०) १ चिह्नविहीन, बेनिशान; जिसपर कोई चिह्न या सङ्केत न हो। २ धूर्त, दगाबाज़; जिसका लक्षण जाना न जाये।

अनभिलाष (सं० पु०) न अभिलाषः, अभावे नञ्-तत्। १ अभिलाष या वाञ्छाका अभाव, बेख़्वाहिशी; चाहका न रहना। २ निरानन्द, बेलुत्फ़ी; मज़ेका न आना। ३ अन्नविद्वेष, ग़िज़ासे नफ़रत। ४ अरुचि, भूखका न लगना।

अनभिलाषिन् (सं० त्रि०) वाञ्छारहित, बेख़्वाहिश; चाह न रखनेवाला।

अनभिव्यक्त (सं० त्रि०) न अभिव्यक्तं प्रकाशितम्, नञ्-तत्। अपरिस्फुट, अव्यक्त; पोशीदा, छिपा हुआ, ज़ाहिर नहीं।

अनभिशस्त (वै० त्रि०) न-अभि-शन्स-क्त, नञ्-तत्। अनिन्दित, अपरिवादग्रस्त, प्रशस्य; बेऐब, जिसकी कोई बुराई न बताये। निरुक्तमें इस शब्दके दश पर्याय लिखे हैं,—१ अस्रेमा, २ अनेमा, ३ अनेद्य, ४ अनवद्य, ५ अनभिशस्ता, ६ उक्थ्य, ७ सुनीथ, ८ पाक, ९ वास, १० वयुन।

अनभिशस्त्य (वै० त्रि०) न अभिशस्तिं निन्दामर्हति अनभिशस्त्यः, नञ्-तत्। अनभिशस्त देखो।

अनभिषङ्ग (सं० पु०) सम्बन्ध या प्रेमका अभाव, रिश्ते या मुहब्बतकी नामौजूदगी; अलगाव, साथका न रहना।

अनभिसंहित (सं० त्रि०) न अभिसंहितम्, नञ्-तत्। किसी फलके उद्देशसे अभिसन्धि साधकर जो न किया जाये, कोई नतीजा निकालनेके लिये धोकेसे न किया जानेवाला।—

"पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्ताः
स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ।
प्रदानसक्ताः सकलेप्सितानां
विमुक्तिदायेऽनभिसंहितेषु॥" (रुचि)

अनभिसन्धान (सं० क्ली०) १ अभिसन्धानका अभाव, बेनक्शी; जिसकी कोई नाप-जोख न हो। २ प्रयोजनाभाव, बेग़रज़ी।

अनभिसन्धि (सं० पु०) अनभिसन्धान देखो।

अनभिसम्बन्ध (सं० त्रि०) सम्बन्धरहित, बेरिश्ता; जिसका कोई लगाव न रहे।

अनभिस्नेह (सं० त्रि०) १ अभिस्नेहशून्य, मुहब्बतसे ख़ाली; प्यार न करनेवाला। २ क्लेशरहित, तकलीफ़से आज़ाद।

अनभिहित (सं० त्रि०) अभि-धा-क्त, न अभिहितम्; नञ्-तत्। अनभिहिते। पा २।३।१। १ अनुक्त, अकथित, प्रत्ययादि द्वारा उक्तार्थभिन्न; न कहा हुआ, प्रत्यय वग़ैरहसे ज़ाहिर न किया गया। (वै०) २ बन्धनशून्य, बंधा नहीं। (पु०) ३ गोत्रविशेष।

अनभीषु (वै० त्रि०) १ निरङ्कुश, बेलगाम। (पु०) २ सूर्यकी उपाधि-विशेष, आफ़ताबका एक नाम।

अनभीष्ट (सं० त्रि०) अभि-इष-क्त, न अभीष्टम्; नञ्-तत्। १ अभीष्ट-भिन्न, अवाञ्छित; ख़्वाहिशसे अलग, नापसन्द, जो चाहा न जाये। २ अनिष्टकर, बुराई करनेवाला।

अनभो (हिं० पु०) १ आश्चर्य, तअज्जुब, अचम्भा; अनहोनी। २ अनुभव, तजरबा।

अनभोगा (हिं० वि०) जिसका भोग न किया गया हो। (स्त्री०) अनभोगी।

अनभोरी (हिं० स्त्री०) छल, कपट; मक्र, फ़रेब; धोखा, भुलावा।

अनभ्यनुज्ञा (सं० स्त्री) न-अभि-अनुज्ञा। आज्ञाका अभाव, हुक्मकी नामौजूदगी, मनायी।

अनभ्यसित, अनभ्यस्त (सं० त्रि०) १ अभ्यास न किया हुआ, बिला-मश्क़, जिसकी हथौटी नहीं पड़ी। २ अभ्यास न करनेवाला, जो मश्क़ न बढ़ाये।

अनभ्यावृत्ति (सं० स्त्री०) न अभ्यावृत्तिः अभ्यासः, अभावार्थे नञ् तत्। अभ्यासकी नामौजूदगी; हथौटी का न पड़ना। (त्रि०) नास्ति अभ्यावृत्तिः पुनरागमनं यस्य। २ पुनरागमनरहित, फिर न लोटनेवाला।

अनभ्याश, अनभ्यास (सं० त्रि०) दूरवर्ती, नज़दीक नहीं।

अनभ्यास (सं० पु०) १ अभ्यासका अभाव, मश्क़का न मंजना; हथौटी न पड़नेकी हालत। (त्रि०) ३ दूरवर्ती, दूर-दराज़।

अनभ्यासमित्य (सं० त्रि०) न अभ्यासे निकटे इत्यं गम्यम्, इण-कर्मणि क्यप्। एतिस्तु-शास्वृदृजुषः क्यप्। पा ३।१।१०९। निकटमें उपस्थित होनेके अयोग्य, पास जानेके क़ाबिल नहीं।

अनभ्यासी (हिं० वि०) अभ्यासशून्य, मश्क़से ख़ाली, जिसकी हथौटी न बंधी हो।

अनभ्रक (सं० पु०) १ बौद्धोंके देवविशेष। (त्रि०) २ मेघरहित, बेबादल।

अनम (सं० पु०) १ वह व्यक्ति जो अन्यको प्रणाम करनेकी ज़रूरत न रखे। २ ब्राह्मण।

अनमद (हिं० वि०) मदरहित, बेगुरूर; जिसे किसी बातका घमण्ड न घेरे।

अनमन, अनमना (हिं० वि०) अन्यमनस्क, खिन्न; बेदिल, बेख़ाहिश; मन को दूसरी ओर लगाये हुवा। २ रोगी, बीमार।

अनमनापन (हिं० पु०) १ अन्यमनस्कत्व, बेदिली। २ रोग, बीमारी।

अनमलय—मन्द्राज प्रान्तके कोयमबातूर ज़िलेका एक शहर। यह पालघाटसे दक्षिण-पूर्व साढ़े ग्यारह और अपने ही नामकी पहाड़ीके ढालू कोनेसे पांच कोस दूर अलियार नदीपर बसा है। आबादी कोई छः हज़ार होगी। यहां चावल ख़ूब बोया जाता, किन्तु ख़ास फ़सल चनेकी ही होती है। दक्षिणकी ओर कितना ही जङ्गल खेतोंके लिये साफ़ किया गया है। कितने ही दिनसे सरकारने यहां जङ्गली महकमा लकड़ी इकट्ठा करनेके लिये स्थापित किया और पोल्लाचीको गाड़ीकी सड़क भी निकाली है। प्रति सप्ताह लकड़ीका बाज़ार लगता है। वार्ड और कोनोरने लिखा है, कि सन् ई०के १८वें शताब्दमें यह बहुत बड़ा शहर था, जिसके सब मन्दिर टीपू सुलतानने तोड़-फोड़ डाले।

अनमसमुद्रम्पेट—मन्द्राज प्रान्तके नेल्लूर ज़िलेका एक गांव। यहां एक निहायत पुरानी और बढ़िया मसजिद खड़ी और जुलाईमें नौ दिन ख़ाजा रहमतुल्लाके नामपर उरूसका मेला लगता है। मसजिदमें नौ गांव खैरात लगे और उसके सञ्चालक पीरज़ादे कहलाते हैं।

अनमारग (हिं० पु०) कुमार्ग, जो राह राह न हो। २ दुराचार, बुरा काम।

अनमिख, (हिं०) अनिमिष देखो।

अनमितम्पच (सं० त्रि०) १ पहलेसे परिमाण न बांधी गई वस्तुको सिद्ध न करता हुआ, जो पहलेसे बेतौली चीज़ न पकाता हो। २ कञ्जूस, कृपण।

अनमित्र (सं० त्रि०) नास्ति अमित्रं शत्रुर्यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ शत्रुशून्य, बेदुश्मन; जो किसीसे वैर न रखता हो। (क्ली०) २ शत्रुशून्यता, बेदुश्मनी। (पु०) ३ युधिष्ठिर। ४ नृपति विशेष, एक ख़ास राजा। यह वृष्णिके पौत्र थे। विष्णुपुराणमें इन्हें सुमित्राका पुत्र लिखा है। भागवतके मतसे यह युधाजितियके पुत्र रहे।

अनमिल, अनमिलत (हिं० वि०) १ सम्बन्धरहित, बेरिश्ता; मेल न लगानेवाला। २ पृथक्, अलग।

अनमिलता (हिं० वि०) न मिलनेवाला, दस्तयाब नहीं।

अनमीलना (हिं० क्रि०) उन्मीलन उठाना, चश्म खोलना, आंख उघारना।

अनमीव (वै० त्रि०) न विद्यते अमीवो रोगो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ रोगहीन, जिसे कोई बीमारी न लगी हो। २ निर्दोष, बेगुनाह। (क्ली०) ३ स्वास्थ्य, तन्दुरुस्ती, किसी बीमारीका न लगना।

अनमेल (हिं० वि०) १ सम्बन्धरहित, बेरिश्ता; जो मेल न रखे। २ विशुद्ध, खालिस; बेमिलावट।

अनमोल (हिं० वि०) १ अमूल्य, लाकीमत; जिसका दाम कोई न दे सके। २ बहुमूल्य; बेबहा, बेशकीमत; जिसका दाम बहुत ज्यादा हो। ३ सुन्दर, खूबसूरत।

अनम्बर (सं० पु०) नास्ति अम्बरं कच्छ-सहितं वस्त्रं यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ जैन विशेष, दिगम्बर (त्रि०) वस्त्रशून्य, बेपोशाक; कपड़े न पहने हुवा; बिरहना, नङ्गा।

अनम्र (सं० त्रि०) नम्रताशून्य, उद्दण्ड; नर्मीसे दूर, ज़ोरावर; जो झुकता न हो।

अनय (सं० पु०) नयति चालयति व्यसनं दैवलौकिक-विषयान् वा, नी-अच् नयः; न नयः, विरोधार्थे नञ्-तत्०। १ नियमसे उलटा विषय; अन्याय, अनीति; कुदरतके खिलाफ़ काम; जुल्म, दबदबा। २ अशुभ दैव घटना, परमेश्वरका गज़ब। ३ व्यसन, द्यूतादि क्रीड़ा; बुरी आदत, जुवा वग़ैरहका खेल।

अनयन (सं० त्रि०) चक्षुरहित, नाबीना, अन्धा; जिसे आंख न हो।

अनयस (हिं० वि०) अनुत्तम, ख़राब, बुरा; अच्छा नहीं।

अनयास अनायास देखो।

अनरण्य (सं० पु०) अनं जीवनपर्यन्तं रणे साधुः। सूर्यवंशके किसी राजाका नाम। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि यह सम्भूतके पुत्र रहे। रावण दिग्विजय पानेको निकल अयोध्यामें जा घुसा था। उस समय अनरण्य वहांके राजा थे। रावण गर्वसे ललकारने लगा,—'राजन्! या तो आप मेरे शरणागत पहुंचिये अथवा आइये, मैं आपसे युद्ध ठानूं।' अनरण्यने रावणके साथ मल्ल-युद्ध आरम्भ किया था; किन्तु अन्तमें उन्होंने अभिभूत होकर कहा,—'हम प्राणपणमें आपसे लड़ते, लेकिन हमारा मन टूट गया है। हम आपको यही अभिसम्पात पहुंचाते हैं, कि हमारे वंशमें राम नामसे महाबल-पराक्रान्त जो राम राजा उत्पन्न होंगे, उन्हींके हाथसे आपके प्राण जायेंगे। (रामायण उत्तरकाण्ड १९ अ०)

अनरथ, अनर्थ देखो।

अनरना (हिं० क्रि०) अनादर दिखाना, ख़ातिर न करना।

अनरस (हिं० पु०) १ वैरस्य, बेलुत्फ़ी, फीकापन। २ वैरभाव, बिगाड़। ३ दुःख, तकलीफ़। ४ काव्य-विशेष, जिसमें रस न रहे। हिन्दीके सम्भ्रान्त कवि केशवदासने इस काव्यके पांच भेद बताये हैं,—१ पत्य-नीक रस, २ नीरस, ३ विरस, ४ दुःसन्धान और ५ पात्रदुष्ट।

अनरसा (हिं० वि०) १ असुख, बेचैन, बीमार। (पु०) २ एक तरहकी मिठाई। अंदरसा देखो।

अनराज—बम्बई, गुजरातके शाकम्भरी या सांभर राज्यके एक नृपतिका नाम। इनका विवाह त्रिभुवन-पालकी कन्या देवलदेवीसे हुआ था। हम्मीरमहा-काव्यमें इन्होंका नाम अनलदेव लिखा है।

अनराता (हिं० वि०) अरक्त, बेरङ्ग; जिसपर कोई रङ्ग न चढ़ा हो।

अनरीति (हिं० स्त्री०) १ रीतिका अभाव, बेरस्मी। २ कुरीति, बुरी चाल। ३ विपरीत व्यवहार, उलटा बरताव।

अनरुचि (हिं० स्त्री०) १ अरुचि, नापसन्दगी। २ अग्निमान्द्य, खाना खुशगवार न मालूम होनेकी बीमारी।

अनरुस् (वै० त्रि०) अनाहत, बेज़ख्म; जिसके चोट न आयी हो।

अनरूप (हिं० वि०) १ रूपरहित, बेशक्ल। २ अस-दृश, नाहमवार; बराबर न रहनेवाला।

अनर्कचतुर्दशी (सं० स्त्री०) कार्तिक मासकी शुक्ल-चतुर्दशी, इसी दिन हनूमान्का जन्म हुआ होगा।

कितने ही रामभक्त इस अवसरपर धूम-धाम करते हैं, और काशीमें भी मेला लगता है।

अनर्काभ्युदित (सं० पु०) न अर्कः सूर्यः अभ्युदितो यस्मिन् काले नञ्-बहुव्री०। सूर्योदयसे पूर्वकाल, अरुणोदय; सवेरा, तड़का।

"अनर्काभ्युदिते काले माघे कृष्णचतुर्दशी।
सतारव्योमकाले तु तस्यां स्नानं महाफलम्॥" (तिथ्यादितत्त्व)

माघ-मासकी कृष्णा-चतुर्दशीको सूर्योदय होनेसे पहले और आकाशमें नक्षत्र रहते-रहते स्नान कर लेनेसे महाफल मिलता है।

अनर्गल (सं० त्रि०) नास्ति अर्गलं प्रतिबन्धकं यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ अप्रतिबन्धक, बेरोकटोक। २ अविरत, लगातार। ३ व्यर्थ, फ़ज़ूल।

अनर्घ (सं० त्रि०) नास्ति अर्घो मूल्यं यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ अमूल्य, बेबहा; बेदामका। (पु०) २ असत्य मूल्य, झूठा दाम।

अनर्घशील (सं० त्रि०) अनर्घं अमूल्यं शीलं स्वभावो यस्य, बहुव्री०। अमूल्य-स्वभाव-शाली, बेदामके मिज़ाजवाला; जिसके मिज़ाजकी क़ीमत न हो।

"स मन्मये वीतहिरण्मयत्वात् पात्रे निधायार्घ्यमनर्घशीलः।
श्रुतप्रकाशं यशसा प्रकाशः प्रत्युज्जगामातिथिमातिथेयः॥" (रघु०-५।२)

अनर्घ्य (सं० त्रि०) न अर्घ्यः पूज्यो यस्य यस्माद्वा, नञ्-बहुव्री०। पादार्घाभ्याञ्च। पा ५।४।२५। १ अन्य-पूजाशून्य, जिसकी दूसरी कोई परस्तिश नहीं; अपूज्य, परस्तिशके नाक़ाबिल, जिसकी पूजा करना शक्तिके बाहर हो। २ अमूल्य, बेबहा; जिसका दाम लग न सके।

अनर्घ्यत्व (सं० क्ली०) अमूल्यता, बेबहापन; दाम न लग सकनेकी हालत।

अनर्थ (सं० पु०) न अर्थः प्रयोजनम्, विरोधार्थे नञ्-तत्। १ अनिष्ट, आफ़त। २ मूल्याभाव, बेबहापन। ३ अनुपयुक्त अथवा विनामूल्यकी वस्तु, बेदाम या बेकाम चीज़। ४ प्रतिकूलता, बरख़िलाफ़ी। ५ उलट-फेर। ६ अप्रयोजनीयता, बेमतलबी। ७ विष्णु जो किसीसे कोई अर्थ नहीं रखते। (त्रि०) न अर्थः अभिधेयः प्रयोजनं वा यस्य। ८ वाच्यशून्य, बेमानी। ९ प्रयोजन-रहित, बेमतलब।

अनर्थक (सं० क्ली०) नास्ति अर्थः अभिधेयो, अप्राशस्त्ये कप्-नञ्-बहुव्री०। १ अर्थशून्य समुदाय, प्रलाप-असम्बन्ध वाक्य; बेमानी फ़िक़रा, मतलब न रखनेवाली बात। (त्रि०) नास्ति अर्थः प्रयोजनं यस्य। २ व्यर्थ, बेमानी। ३ निष्प्रयोजन, बेमतलब।

अनर्थकर (सं० त्रि०) १ निष्प्रयोजन या निरर्थक कार्य करता हुआ, बेमानी या बेमतलब काम करनेवाला। २ हानिकारक, नुक़सानदेह; फ़ायदा न पहुंचानेवाला। ३ अनिष्ट उत्पन्न करता हुआ, बुराई बोनेवाला।

अनर्थकारी, अनर्थकर देखो।

अनर्थत्व (सं० क्ली०) अप्रयोजनीयता, बेमतलबी।

अनर्थदर्शिन् (सं० त्रि०) निरर्थक विषयपर विचार करता हुआ, बेमतलब बात देखनेवाला।

अनर्थदर्शी, अनर्थदर्शिन् देखो।

अनर्थनाशिन्, अनर्थनाशी (सं० पु०) अनर्थ मिटानेवाले शिव।

अनर्थबुद्धि (सं० त्रि०) निरर्थक बुद्धि रखनेवाला, बेहूदा समझका।

अनर्थभाव (सं० त्रि०) कलुषित इच्छासे युक्त; हसदी, डाह करनेवाला।

अनर्थलुप्त (सं० त्रि०) अनर्थेन लुप्तम्, नञ्-तत्। निष्प्रयोजन कार्यसे स्वतन्त्र, बेमतलब कामसे आज़ाद; अपना मतलब न छोड़नेवाला।

अनर्थसंशय (सं० पु०) धनके भयका राहित्य, दौलतके ख़ौफ़का छुटकारा।

अनर्थान्तर (सं० क्ली०) अन्यो अर्थः अर्थान्तरम्; न अर्थान्तरम्, नञ्-तत्। वही अर्थ, एक ही मानी।

अनर्थ्य (सं० त्रि०) निष्प्रयोजन, बेमतलब; जिसका कोई मानी न निकल सके।

अनर्पण (वै० क्ली०) अपनेको किसीके हाथमें न सौंपना, किसीके वशका न होना।

अनर्व (वै० त्रि०) अव-अच, अर्वः गतिः शैथिल्यं स नास्ति यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ अशिथिल, जारी। २ रोका या घेरा न जानेवाला। ३ बेरोक, अटकाया न गया। ४ चिड़चिड़ा।

अनर्वन् (सं० त्रि०) अर्द-हिंसायां क्वनिप्; न अर्वा, नञ्-तत्। शत्रुभिन्न, दुश्मन नहीं; जो वैरी न हो।

अनर्विश् (वै० त्रि०) अनसा शकटेन विशति प्राप्नोति; विश-क्विप्, ३-तत्। सोऽसुपि। पा ८।२।६९। १ शकट द्वारा काष्ठ लानेको वनमें फिरनेवाला, जो गाड़ी ले जङ्गलकी लकड़ी बटोरने जाये। २ गन्तव्य स्थलमें गमन करनेको असमर्थ, मनज़िले मक़सूदपर न पहुंच सकनेवाला। (पु०) २ सारथी, गाड़ीवान।

अनर्शनि (वै० पु०) दैत्यविशेष, एक राक्षसका नाम। इन्द्रदेवने इसे मार डाला था।

अनर्शराति (सं० त्रि०) अर्शशब्दोऽश्लीलवाची। रातिः क्तिन् इति रातिर्दानम्। अश्लीलविषया रातिर्दानं यस्य सोऽर्शरातिः पापकदानस्तद्विपरीतोऽनर्शरातिः। (इति निरुक्तटीकायां देवराजः) १ अपापक दान देनेवाला, जिसकी दी हुई चीज़ तकलीफ़ न पहुंचाये। २ पापिष्ठ-भिन्न अन्य व्यक्तिको जो दान दे, सत्पात्रको देनेवाला; गुनहगार छोड़ दूसरे शख्सको बख़्शनेवाला, जो भले आदमीको बख़्शे।

अनर्ह (सं० त्रि०) न अर्हः योग्यः, नञ्-तत्। १ दण्ड या पुरस्कारके अयोग्य, जो सज़ा या जज़ाके क़ाबिल न हो। २ अपर्याप्त, अनुपयुक्त; कसीर, नाक़ाबिल; कम, भद्दा।

अनर्हता (सं० स्त्री०) १ विशुद्ध रीतिसे परिमाण न बांधे जानेकी स्थिति, हालत जिसमें ठीक तौरसे अन्दाज़ न लगे। २ अपर्याप्तता, अनुपयुक्तता; कसर, नाक़ाबिलियत; कमी, भद्दापन।

अनल (सं० पु०) नास्ति अलं पर्याप्तिः परिच्छेदो यस्य तृप्तेरभावात् नञ्-बहुव्री०। १ अग्नि, वह्नि; आतिश, आग। २ शरीरका पित्तधातु, जिस्ममें रहनेवाला सफ़रा। ३ आठ वसुवोंमें पांचवें वसु। ४ कृत्तिका नक्षत्र। ५ वायु, हवा। ६ वासुदेव। ८ मुनिविशेष। ८ चित्रक, चीत। ९ भल्लातक, भिलावां। १० देवधान्य। ११ रकार अक्षर। १२ तीनकी गिनती। १३ बार्हस्पत्य षष्टिसंवत्सरका पन्द्रहवां वर्ष। १४ पितृदेवविशेष। १५ विष्णु। (क्ली०) १६ नलका अभाव, नलराजाकी नामौजूदगी। (त्रि०) १७ गन्धशून्य, बेख़ुशबू। १८ अपर्याप्त, जो चुक गया हो।

अनलङ्करिष्णु (सं० त्रि०) १ अलङ्कार पहननेका अभ्यास न रखनेवाला, जिसे ज़ेवर पहननेकी आदत न हो। २ अलङ्कार-रहित, बेगहना।

अनलचूर्ण (सं० पु०) बारूद, आगका मसाला।

अनलदीपन (सं० क्ली०) अनलं जठरानलं पित्तधातुवर्धनेन दीपयति वर्धयति; दीप-णिच्-ल्युट्। जठरानलदीपक द्रव्य, अग्निवृद्धिकर; मुक़व्वी मेदा, पेटको ताक़त देनेवाली चीज़।

अनलनामा (सं० पु०) चित्रक वृक्ष, चीत।

अनलपक्ष (सं० पु०) पक्षिविशेष, एक तरहकी चिड़िया। लोग कहते हैं, कि यह सदैव आकाशमें उड़ते रहती और वहीं अण्डे भी देती; जो भूमिपर गिरनेसे पहले फूटता और बच्चा फड़फड़ाकर अपने पिता-माताकी छातीसे जा चिपटता है।

अनलपङ्ख (हिं०) अनलपक्ष देखो।

अनलपङ्खचार (हिं० पु०) हस्ती, हाथी।

अनलप्रभा (सं० स्त्री०) अनलस्य प्रभा इव प्रभा यस्य, बहुव्री०। ज्योतिष्मती लता, रत्नज्योति, रतनजोति।

अनलप्रिया (सं० स्त्री०) अनलस्य प्रिया, ६-तत्। स्वाहानामक दक्षकन्या, अग्निकी पत्नी, विसर्ग। वर्णाभिधानमें कहा है,—"द्विठः स्वाहानलप्रिया।" सिवा इसके राघवभट्टने भी लिखा है,—"द्विठः स्वाहा ठकारेण लिपिमास्वाहिन्दुरुच्यते। तस्य द्वित्वं तेन विसर्गः सच शक्तिरूपः तेन द्विठ-शब्दे नाग्निशक्तिः स्वाहा।" मतलब यह, कि द्विठ और स्वाहा पर्याय शब्द हैं। ठकार देखनेमें विन्दु-जैसी होती है। उसे द्वित्व करने अर्थात् दो विन्दु लगानेसे ही विसर्ग बनता है। वह विसर्ग शक्तिका रूप है। इसलिये द्विठ शब्द अग्निशक्ति स्वाहाको सुझाता है।

अनलवत्—बम्बई प्रान्तके सूरत ज़िलेके शुक्लेश्वरका मन्दिर। यह सङ्गमूसासे बना है।

अनलवात (सं० पु०) प्राचीन पटनेका नाम।

अनलवार (अनहलवाड़)—गुजरातके एक प्राचीन नगरका नाम। आजकल यह वीरवल-पत्तनके नामसे प्रसिद्ध है। मुसलमानोंने इसका नहरवाल नाम लिखा है। सन्

७४९ ई०में वंशराजने इस नगरको संस्थापन किया था। वंशराजके पिताका नाम यशोराज था; यह सौराष्ट्रके राजा रहे। इनको माता सुन्दररूपा कहाती थीं। कहते हैं, कि सौराष्ट्र नृपति अतिशय दुर्वृत्त रहे। समुद्रमें वाणिज्य-पोतोंको यातायात मचाते देख वह सब नौका लूट लेते थे। इसी कारण समुद्र उछलकर देववन्दर नामक उनकी राजधानी खा गया। उसी जलप्लावनमें नगरके सब लोगोंने अपने-अपने प्राण त्याग किये। उस समय यशोराजकी पत्नी सुन्दररूपा पूर्णगर्भा थीं। उन्होंने अति कष्टसे निकटवर्ती किसी अरण्यके मध्यमें पलायन किया। उसी जगह वंशराजका जन्म हुवा था। शैलग सुराचार्य नामक किसी जैनने शैशवावस्थामें उनकी रक्षा की थी, इसीलिये उन्होंने जैनधर्मको अवलम्बन कर लिया था। उसके पीछे कुछ वयस्प्राप्त हो वंशराजने अनल-बाड़ नगरको स्थापन किया। जान पड़ता है, कि कुमारपालचरितमें इसी नगरका नाम उल्लिखित है। १०६४ शकाब्दमें महमूदने वल्लभसेनको यहांका राजा बनाया था। पाटन देखो।

अनलविवर्धनी (सं० स्त्री०) कर्कटिका, ककड़ी।

अनलशिला (सं० स्त्री०) अग्निप्रस्तर, आगका पत्थर। (Aerolites, Fireballs, Shooting stars) आकाशसे कभी-कभी जो अग्निमय प्रस्तर खण्ड गिरता, उसीको अनलशिला कहते हैं। यह अग्निवृष्टि उल्कापातसे विभिन्न है। दिनको ऐसी अग्निवृष्टि पड़नेसे पहले आकाशका एकस्थान निविड़ काले मेघसे आच्छन्न हो जाता है। उसके पीछे भयङ्कर वज्रपात-जैसा शब्द फूट पड़ता है। रातको इसी प्रकार उत्पात उठनेसे स्पष्ट प्रकाश देखनेमें आता है। शून्यमें प्रज्वलित गोले-जैसे पत्थर पड़ा करते हैं। पीछे वही पत्थर फटते हैं, जिनसे भयङ्कर शब्द निकलता है। दिनके समय अनलशिला बरसनेसे पहले आकाशमें जो काला मेघ आता है, वास्तविक रूपसे वह मेघ नहीं होता। अग्निशिलासे जो धुवां निकला करता, वही मेघ-जैसा देख पड़ता है। रात्रिकाल हो जानेसे इस आगको रोशनी भभकने लगती है। थोड़ी रहनेपर सूर्यके किरणमें आग प्रकाशित नहीं पड़ती। किन्तु जब अधिक अग्निवृष्टि होती, तब नभोमण्डल इतना चमक उठता है, कि प्रखर सूर्यकिरणोंसे उसका तेज मारा नहीं जा सकता।

प्राचीन संस्कृत पुस्तकोंमें अग्निवृष्टिका उल्लेख मिलता है। यह अतिशय अमङ्गलका लक्षण है। पूर्वकालमें अन्यान्य देशोंके लोग भी अग्निवृष्टिको सही समझते थे। किन्तु यह अद्भुत काण्ड सर्वत्र नहीं घटता, और न सब समय ही दृष्टिगत होता है। इसीलिए कितने ही दिनों लोग इसपर अविश्वास करते रहे। किन्तु अब कितनों होके चाक्षुष प्रमाणसे निश्चित हो गया, कि वास्तविक ही आकाशसे अग्नि-शिला बरसा करती है। लिवोका कहना है, कि सन् ६५४ ई०से पहले रोमनगरके निकटवर्ती अल-बन पर्वतमें अनलशिला गिरी थी। फिर सन् ४६७ ई०से भी पहले इगस्पोटेमीमें एक वृहदाकार प्रस्तर आकाशसे पड़ा था। प्लूटार्क और प्लिनी इसके विषयमें लिख गये हैं। पारियान-क्रानिकलमें भी इस प्रस्तरकी बात उल्लिखित है। सन् १४९२ ई०में आल्सेसके अन्तर्गत एन्सिस्हेम ग्रामपर एक वृहत् प्रस्तर आकाशसे पड़ा था, जो वज़नमें कोई तीन मन और दश सेर निकला। सन १८०३ ई०को २६ वीं अप्रेल-को मर्मन्दीके अन्तर्गत ला-आग्नोमें जो भयङ्कर अग्नि-मय शिलावृष्टि हुई, उसे कितनों होने देख पाया था। फ्रान्सीसी गवर्नमेण्टने विख्यात तत्त्ववित्पण्डित मोसिवो विवोस्को (M. Biot) इस विषयका तथ्य जांचनेके निमित्त रवाना किया। उन्होंने ला-अग्नोमें पहुंचकर पुङ्खानुपुङ्ख रूपसे सकल विषयका अनुसन्धान किया। पीछे उनका मत प्रकाशित हुआ, फिर आगसे भरे पत्थरको वृष्टिपर किसीको कोई सन्देह न रहा। लग-भग साढ़े तीन कोसके स्थानमें दो हज़ारसे न्यून पत्थर न पड़े थे। उनमें बड़े-बड़े पत्थरोंका वज़न साढ़े तीन सेरसे कम न रहा।

नक्षत्रपातको तरह आकाशसे दूसरी भी एक अग्निवृष्टि होती है। इसकी समस्त अग्निशिला प्राय: अत्यन्त क्षुद्र रहती हैं। हम्बोल्टने लिखा, कि

इनका वज़न पन्द्रह रत्तीसे साढ़े तीन सेर तक निकलता है। सन् १८३३ ई०में उत्तर-अमेरिकापर नौ घण्टेके बीचमें न्यूनाधिक दो लाख अस्सी हज़ार अग्निमय क्षुद्र पत्थर बरसे थे। नव हावेनके अध्यापक अम्सतेद इस विषयका वर्णन कर गये हैं, कि इस प्रकार नक्षत्रपात अनेक स्थलमें सामयिक घटना-जैसा देख पड़ता है। किसी-किसी वत्सरके एक-एक निर्दिष्ट दिनमें प्रायः यह उत्पात उठा करता है। हम्बोल्टने स्थिर किया, कि ऐसा उपद्रव उठनेकी सम्भावना निम्न-लिखित समयमें हो सकती है,—२२ वींसे २५ वीं अप्रेल, १७ वीं जुलाई; १० वीं अगस्त; १२ वींसे १४ वीं नवम्बर; २७ वींसे २९ वीं नवम्बर और ६ ठींसे १२ वीं दिसम्बर।

इस विषयमें अब कोई सन्देह नहीं, कि आकाशसे यथार्थ ही अग्निशिलाकी वृष्टि होती है। किन्तु यह अग्निशिला क्या है? कोई-कोई अनुमान करते कि यहांके आग्नेयपर्वतसे प्रस्तरखण्ड ऊपरकी ओर उड़ जाते हैं; उड़-उड़ाकर कुछ काल पृथिवीके साथ वह घूमते रहते हैं। उसके पीछे वह फिर इसी पृथिवीपर आ गिरते हैं। अन्य पक्षका मत दूसरी तरह है। उसके अनुसार जिस सकल उपादानसे अग्निशिला उठती, वह सकल उपादान आकाशमें वाष्परूपसे अवस्थित रहता है। पीछे किसी कारणवशतः वह जमकर नीचे गिर पड़ता है। आजकल इन दो मतोंमें एकका भी आदर नहीं अड़ता। फिर एक पक्षके लोग यह सिद्धान्त साधते, कि चन्द्रके आग्नेय-गिरिसे पत्थर उड़कर पृथिवीपर आ पड़ते हैं। किन्तु अब उत्कृष्ट दूरवीक्षणकी सृष्टि हो गई है। उसके द्वारा चन्द्रलोक खूब स्पष्ट दिखाई देता है। चन्द्रमें जो आग्नेयगिरि हैं, आजकल उन सबका निर्वाण हो गया है, किसीसे भी कोई अग्न्युत्पात नहीं उठता। आजकल अनेकोंने यह सिद्धान्त किया है, कि ग्रह-नक्षत्रके मध्य असंख्य पदार्थ पृथक्-पृथक् पड़े हैं। उनके मध्य निरेट और वाष्पवत् पदार्थ भी पाये जा सकते हैं। यह सकल द्रव्य क्रमागत घूम-फिरकर चक्कर लगाया करते हैं। पीछे किसी कारणवशतः यह प्रज्वलित हो पृथिवीपर गिर पड़ते हैं।

सन् १८८५ ई० की २७ वीं० नवम्बरको कलकत्तेमें और शहरकी चारो ओर असंख्य नक्षत्रपात पड़ा था। तिथि कृष्णपक्षकी षष्ठी थी, चारो ओर अन्धकार आच्छन्न हो गया था। वैसे ही समय आकाशमें तोप-जैसी गड़गड़ाहट घहराने लगी। उसके बाद झड़-झड़ उल्काका पड़ना आरम्भ हुआ। हज़ारोंपर हज़ार, एक-एक बारमें ही लाखोंपर लाख,—किसको देखते, किसकी ओर ताकते; अनन्त आकाशमें असंख्य-असंख्य नक्षत्र निकल रहे थे। इस नक्षत्रपातको देख टिण्डल साहबने लिखा है, कि आकाशमें अनेक छोटे-छोटे ग्रह रहते हैं। वह पृथिवीकी तरह सूर्यकी चारो ओर घूमते-फिरते हैं। यही कारण है, कि सूर्यका आकर्षण भी उन्हें ज़ोरसे खींचता है। इसलिये घूमते-घूमते अन्तमें वह सूर्यमण्डलमें जा पहुंचते हैं। सूर्य आप ही तेजःपुञ्ज-धूमराशि है। इस सकल ग्रहादिके संघर्षसे उसका प्रकाश और सन्ताप उत्तम तौरपर रक्षित रहता है। किन्तु वह पृथिवीके किनारे पहुंच वाष्पके संघर्षसे जल जाते हैं। इसीको हमलोग नक्षत्रपात कहते हैं।

अनलस (सं० त्रि०) आलस्यरहित; फुरतीला, जो सुस्ती न करे।

अनला (सं० स्त्री०) १ दक्षप्रजापतिकी एक कन्या, जो कश्यप ऋषिकी पत्नी रहीं। लोग इन्हें सकल वृक्षोंकी माता बताते हैं। २ माल्यवान् राक्षसकी एक बेटी।

अनलायक, (हिं० वि०) अयोग्य; बुरा, जो लियाक़त न रखे।

अनलि (सं० पु०) अनिति-अन्-अच्; अनः अलिः भ्रमरो यत्र, शाक० बहुव्री०। वकपुष्प-वृक्ष; अगस्त, (Sesbana grandiflora)। इस फलमें मधु अधिक होता है। भ्रमरोंके उसे पीकर प्राण पालनेसे इसका नाम अनलि पड़ा है।

अनलेख (हिं० वि०) १ जो देख न पड़े। २ जिसका वर्णन लिखा न जा सके।

अनल्प (सं० त्रि०) न अल्पम्, नञ्-तत्। प्रचुर, अधिक ; ज्य़ादा, बहुत ; जो कम न हो।

अनल्पघोष (सं० त्रि०) अधिक घोषविशिष्ट, अत्यन्त शब्दायमान ; निहायत पुरशोर, बड़ी आवाज़का ; जो आवाज़से बहुत भरा हो।

अनल्पमन्यु (सं० त्रि०) अतिशय क्रुद्ध, निहायत गुस्सावर ; जो बहुत नाराज़ हुआ हो।

अनवकाङ्क्षा (सं० स्त्री०) अभिलाष-राहित्य, उत्कण्ठा-शून्यता ; नामर्ज़ी, बेचाही ; इच्छा का न रहना। जैनसाधु जब मरनेके लिये न कुछ खाते-पीते और न घबराते, तब उनमें अनवकाङ्क्षा विद्यमान रहती और उन्हें अनवकाङ्क्ष्यमाण कहते हैं।

अनवकाश (सं० पु०) अभावार्थे नञ्-तत्। १ अवकाशका अभाव, फ़ुरसतका न मिलना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ अवकाशशून्य, बेफ़ुरसत। ३ जो नियोगके योग्य न हो, नाकाम।

अनवकाशिक (सं० पु०) साधु, जो एक पादसे दण्डायमान हो तपस्या करे।

अनवगाह (सं० त्रि०) अवगाहरहित, अपार ; अथाह, ख़ूब गहरा ; जिसे कोई तैर या पार न कर सके।

अनवगाहिता (सं० स्त्री०) अवगाह-राहित्य, गहराई ; पार न पाने या तैर न सकनेकी हालत।

अनवगाहिन् (सं० त्रि०) १ पार न जाता हुआ, न तैरता हुआ। २ जो पढ़ता न हो।

अनवगाह्य (सं० त्रि०) अवगाहके अयोग्य, तैरनेके नाक़ाबिल ; अथाह।

अनवगीत (सं० त्रि०) न अव-गै कर्मणि क्त। अनिन्दित, खुशनाम ; जिसकी बुराई ख़राब गीतोंमें न गायी गयी हो।

अनवग्रह (सं० त्रि०) नास्ति अवग्रहः प्रतिबन्धो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ प्रतिबन्धशून्य, बेज़ब्त ; जिसे कोई रोक न लगे। (पु०) नञ्-तत्। २ वृष्टिप्रतिबन्धाभाव, बारिशकी रोकका न रहना।

अनवग्लापत् (वै० त्रि०) आलस्यरहित होता हुआ, जो सुस्ती न कर रहा हो।

अनवच्छिन्न (सं० त्रि०) १ अवच्छिन्नतारहित, जो जुदा न हो। २ चिह्नशून्य, सीमाविहीन, अनियमित ; बेनिशान, हद न बांधा गया, बेमौताज। ३ व्याख्यारहित, बेबयान।

अनवच्छिन्नसंख्या (सं० स्त्री०) अखण्ड राशि, कामिल अदद ; जो गिनती कटी-फटी न हो।

अनवच्छिन्नहास (सं० पु०) निरत अथवा अयोग्य हास, लगातार या बेहद्दा हंसी।

अनवट, अनोटा (हिं० पु०) १ पादके अङ्गुष्ठमें धारण की जानेवाली मुद्रिका, छल्ला जो औरतें पैरके अंगूठेमें पहनती हैं। २ ढोका, ढक्कन जो कोल्हूके बैलकी आंखपर बांधते हैं।

अनवत् (सं० त्रि०) श्वास अथवा जीवन सम्पन्न, जिसकी सांस चलती या जो जीता हो।

अनवत्त्व (सं० क्ली०) जीवनसम्पन्न होनेकी स्थिति, ज़िन्दगी क़ायम रहनेकी हालत।

अनवतप्त (सं० पु०) १ जैन मतानुसार एक सर्पराजका नाम। २ एक ह्रदका नाम, रावणह्रद।

अनवती—बम्बई—उत्तर कनाड़ाके एक स्थानका नाम। यहां कैटभेश्वरका एक सुन्दर मन्दिर बना, जिसके प्रधान मण्डपमें सोलह और आड़की दीवारपर बाईस स्तम्भ खड़े हैं। इस मन्दिरमें कितनी ही बातें इधर-उधर लिखी मिलती हैं,—१ कैटभेश्वरके मन्दिरमें देवमूर्तिसे दाहने शक ११५२ (बी) ; २ मन्दिरके मध्यरङ्गमें एक स्तम्भपर शक ११६३ (बी) ; ३ दूसरे स्तम्भपर शक ११६३ (बी) ; ४ फिर दूसरे स्तम्भपर शक ११७१ (बी) ; ५-६ मध्यरङ्गके किनारे दो शक, जिनमें एक शक ८९२ है ; ७ सामनेकी ओर एक और दूसरा ; ८ सामनेवाले पार्वती-मन्दिरके बड़े लट्ठेपर दूसरा शक खुदा है।

अनवद्य (सं० त्रि०) न अवद्यं निन्द्यम्, नञ्-तत्। अवद्यपण्यवर्यागर्ह्य पणितव्यानिरोधेषु। पा ३।१।१०१। १ निन्दाभिन्न, दोषशून्य ; खुशनाम, बेऐब ; जिसको कोई बुराई न करे। २ प्रशस्य, इष्ट ; बेउज्र, जिसमें कोई बखेड़ा न हो।

अनवद्यता (सं० स्त्री०) दोषराहित्य, बेऐबी।

अनवद्यत्व (सं० क्ली०) अनवद्यता देखो।

अनवद्यरूप (सं० त्रि०) अनिन्द्यरूप-सम्पन्न, बेऐबकी सूरत शक्लका।

अनवद्या (सं० स्त्री) किसी अप्सराका नाम।

अनवद्याङ्ग (सं० त्रि०) अनिन्द्य-अङ्गवाला, जिसके अज़ामें कोई ऐब न हो।

अनवद्राण (वै० त्रि०) शयन संभालने न जाता हुआ, जो सोने न जा रहा हो; निद्रारहित, बेनींद।

अनवधर्ष्य (सं० त्रि०) धमकानेके अयोग्य, जिसे धमकी न दी जा सके।

अनवधान (सं० क्ली०) न अवधीयते मनः संयुज्यते कर्तव्यकर्मणि अनेन; अव-धा-करणे ल्युट्, अभावार्थे नञ्-तत्। १ अवधान या मनः संयोगविशेषका अभाव, ख़याल या ग़ौरकी नामौजूदगी; वह हालत जिसमें किसीका ध्यान न बंधे,—प्रमाद पागलपन; असावधानी, गफ़लत; अमनोयोग, दिलका उखाड़; चित्तविक्षेप, बावलापन। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ प्रमादविशिष्ट, पागल, जिसे किसी बातका ख़्याल न रहे।

अनवधानता (सं० स्त्री०) नास्ति अवधानं यस्य तस्य भावः। १ प्रमाद, पागलपन। २ अज्ञानता, बेवक़ूफ़ी।

अनवधि (सं० त्रि०) १ असीम, बेहद; जिसकी कोई मुद्दत न मालूम पड़े।

अनवधृष्य (सं० त्रि०) दबाने या क्षति पहुंचानेके अयोग्य, जो दबाया या मारा न जा सके।

अनवन (सं० त्रि०) रक्षा या शरण न देता हुआ, जो हिफ़ाजत न करता या पनाह न पहुंचाता हो।

अनवनामितवैजयन्त (सं० पु०) १ जैनमतानुसार—भविष्य संसार, आयन्देकी दुनिया। २ जिसने जीतका झण्डा न झुकाया हो, जो बराबर बढ़ता जाये।

अनवपृग्ण (वै० त्रि०) न अव-पृच् सम्पर्के क्त; छान्दसत्वात् इडाद्यभावः, नञ्-तत्। असंपृक्त, अयुक्त, असंलग्न; जुदा, मुख़तलिफ़, अलग, बेजोड़; जो किसीसे छू न गया हो।

अनवबध्यमान (सं० त्रि०) क्रमशून्य, बेतरतीब; जो उलट-पुलट गया हो।

अनवब्रव (वै० त्रि०) ब्रूञ्-अण्, नञ्-तत्। ऋदोरप्। पा ३।३।५७। १ प्रभावशून्य वाद न बढ़ाता हुआ, जो बेअसर बात न बनाता हो। २ प्रमाणसे बोलता हुआ, जो सुबूतके साथ कुछ कह रहा हो।

अनवभ्र (वै० त्रि०) न अवभ्रंशते। १ जिसे कोई ले न गया हो, रखा हुआ। २ अवभ्रंशशून्य; कम न पड़ा, जैसेका तैसा रहा। ३ सहता हुआ, जो बरदाश्त कर रहा हो।

अनवभ्रराधस् (वै० त्रि०) १ अक्षय धन रखता हुआ, जिसके पास लाज़वाल दौलत भरी हो। २ स्थायी पुरष्कार पहुंचाने योग्य, जो टिकाऊ इनाम दे सके।

अनवम (सं० त्रि०) न अवमः। न्यूनताहीन, जो कम न हो; श्रेष्ठ, बड़ा; अनन्तिक, आला। अवमका अन्तिक और अनवम शब्दका अर्थ अनन्तिक है। यास्कने अनवम शब्दके ग्यारह पर्याय लिखे हैं,—१ तड़ित्, २ आसात्, ३ अम्बरम्, ४ तुर्वश, ५ अस्तमीक, ६ आके, ७ उपाके, ८ अर्वाके, ९ अन्तमानाम्, १० अवमे, ११ उपमे।

अनवमर्शम् (सं० अव्य०) बिला छुये, बे हाथ लगाये।

अनवय (हिं०) अन्वय देखो।

अनवर (सं० त्रि०) न अवरम्, नञ्-तत्। अवरभिन्न, श्रेष्ठ, अजघन्य, असभ्य नहीं; जो नीचे दरजेका न हो, बड़ा, शायस्ता।

अनवर खां—युक्तप्रदेशके एक कविका नाम। यह सन् १७२३ ई० में पैदा हुए और इन्होंने विहारीलालकी सतसईकी एक टीका बनाई थी। अनवर-चन्द्रिका नामक जो पुस्तक इन्होंने लिखा, वह शायद सतसईकी टीकाका ही नाम है।

अनवरत (सं० त्रि०) अवरम-भावे क्त, अवरतं विरामः तन्नास्ति यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ निरन्तर, विश्रामशून्य; बराबर, लगातार, जो ठहरता न हो। (अव्य०) २ सदा, हमेशा।

अनवरथ (सं० पु०) कुरुवत्सके पिता और मधुके पुत्रका नाम।

अनवराध्य (सं० त्रि०) अवरस्मिन् अर्धे भवं, नञ्-तत्। उत्कृष्ट, श्रेष्ठ; ऊंचा, बड़ा। इस शब्दके

पर्याय यह हैं,—प्रधान, प्रमुख, प्रवेक, अनुत्तम, उत्तम, मुख्य, वर्य और वरेण्य।

अनवरउद्दीन् ख़ान्—कर्णाटकके एक नवाबका नाम। यह बड़े ही भाग्यशाली सिपाही थे। निज़ामुलमुल्कने इन्हें जिस नाबालिग वारिसका रक्षक नियुक्त किया था, उसे इन्होंने चुपके-चुपके मरवा डाला। पहले यह दिल्लीके किसी बादशाहके नीचे काम करते और युक्तप्रदेश—फतेहपुर-कोड़ा-जहानाबादके प्रधान प्रबन्धकर्ता बने थे। अपने कुप्रबन्ध या कुत्सिताचरणके कारण यह सरकारी मालगुज़ारी दिल्ली न भेज सके और चुपकेसे अपनी जगह छोड़ अहमदाबाद चले गये, जहां निज़ामुलमुल्कके पिता ग़ाज़ी-उद्दीन्ने सूरतमें बड़े ही विश्वास और लाभका काम इन्हें सौंपा। ग़ाज़ी उद्दीन्के मरने बाद उनके लड़केने इन्हें वेल्लूर और राजमहेन्द्रम्का नवाब बनाया; जहां यह सन् १७२५ से १७४१ ई० तक आधिपत्य करते रहे। फिर सन् १७४४ ई० में यह कर्णाटकके प्रधान प्रबन्धकर्ता नियुक्त हुए। निज़ामुलमुल्कके नाती ज़फ़रजङ्गसे जो लड़ाई हुई थी, उसमें यह मारे गये और कर्णाटकपर ज़फ़रजङ्गने अपना राजत्व जमाया। अनवरुद्दीन् उस समय १०७ वर्षके बुड्ढे रहे। इनके बड़े लड़के क़ैद किये और दूसरे मुहम्मद अली त्रिचनापली भाग गये थे। इनकी प्रशंसामें अबदीने 'अनवर-नामा' लिखा, जिसमें भारतके बीच अंगरेज़ों और फ्रान्सीसियोंमें जो झगड़ा उठा था, उसका ठीक ठीक हाल मिलता है। सन् १७५० ई० में नवाब नसीरजङ्गने इनके लड़के मुहम्मद अलीको पूरे तौरपर कर्णाटकका नवाब बनाया।

अनवलम्ब (सं० त्रि०) नास्ति अवलम्बो यत्र वा यस्य, नञ्-बहुव्री०। अवलम्बहीन, निराश्रय; बिलारोज़ी, बेसहारा; जिसे कोई टेक न मिले।

अनवलम्बन (सं० क्ली०) अवलम्बहीनता, सहारेका न रहना; स्वतन्त्रता; आज़ादी।

अनवलम्बित (सं० त्रि०) अवलम्ब न रखता हुआ, जो सहारा न पकड़े हो; स्वतन्त्र, आज़ाद; जो किसीका मातहत न रहे।

अनवलेप (सं० त्रि०) १ अवलेपरहित, जिसपर बनावटका रङ्ग न चढ़ा हो। २ साधारण, सादा। ३ अभिमानरहित, बेतकल्लुफ़।

अनवलोभन (सं० क्ली०) न अवलुप्यते येन, अव-लुप-ल्युट् पृषोदरादित्वात् पस्य भः। गर्भसंस्कार विशेष, जो गर्भवती स्त्रियोंको सम्पन्न करना पड़ता है।

"उपनिषदि गर्भलम्भनं पुंसवनमनवलोभनं च।" (आश्व० गृह्य० १।१३)

अनवस् (सं० क्ली०) न अवस्, अभावार्थे नञ्-तत्। १ अन्नका अभाव, अनाजका न मिलना। (त्रि०) नास्ति अवः अन्नं यस्य, बहुव्री०। अन्नहीन, अनाजसे खाली; पथ्याशनरहित, खानेको न पानेवाला।

अनवस (सं० त्रि०) नास्ति अवसो यत्र। १ अराजक बलवायी; जो राजाके ख़िलाफ़ हो। २ सूर्यशून्य, बेआफ़ताब, धूप न पानेवाला। ३ पथ्याशनरहित, जिसे खानेको न मिले।

"अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन्।"

(ऋक् ६।६६।७)

अनवसर (सं० त्रि०) नास्ति अवसरो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ अवकाशशून्य, जिसे फ़ुरसत न रहे। (पु०) नञ्-तत्। २ अवकाशका अभाव, फ़ुरसतका न पाना।

अनवसाद्य (सं० अव्य०) बेछेड़-छाड़ किये, सीधे तौरपर।

अनवसान (सं० त्रि०) १ अस्त न होता हुआ, जो गुरूब न हो रहा हो। २ अक्षय, लाज़वाल। ३ अनन्त, बेहद।

अनवसित (सं० त्रि०) न अवसितं समाप्तं निश्चितं वा, नञ्-तत्। असमाप्त, अनिश्चित; अधूरा, बेठिकाना; जो पूरा न पड़ा हो।

अनवसिता (सं० स्त्री०) त्रिष्टुभ् छन्दोविशेष। इसमें चार पाद रहते और प्रत्येक पादमें ग्यारह-ग्यारह अक्षर होते हैं।

अनवस्कर (सं० त्रि०) अवकीर्यते इति; अव-कॄ-अप्, अवस्करः अन्नमलम्। वर्चस्कोऽवस्करः। पा ६।१।१४८। न अवस्करः। मलशून्य, मलहीन; बेमैल, साफ़।

अनवस्थ (सं० त्रि०) नास्ति अवस्था यस्य। अवस्थिति-शून्य, चञ्चल।

"अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितम्।" (कठोप० २।२२)

अनवस्था (सं० स्त्री०) न अव-स्था-अङ्, अवस्थितिः, नञ्-तत्। आतश्चोपसर्गे। पा ३।३।१६। १ अवस्थितिका अभाव, हस्तीकी नामौजूदगी। २ तर्कका विशेष दोष, बहसका खास ऐब; स्थिर किये जानेवाले विषयमें कल्पित विषय डाल तर्कका करना, साबित की जानेवाली बातमें अन्दाज़ी बात मिलाकर बहस बढ़ाना। "प्रामाणिकी अनवस्था न दोषायेति" (जागदीशी) तर्क देखो। ३ चञ्चलता, चुलबुलापन। ४ व्याख्याका अनन्त विकाश, बयानकी बेहद रवानगी।

अनवस्थान (सं० क्लो०) न अव-स्था-ल्युट्, नञ्-तत्। १ अवस्थितिका अभाव, ठहरावका न टिकना। (त्रि०) नास्ति अवस्थानं यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ चञ्चल, अस्थिर; चुलबुला, न ठहरता हुआ।

अनवस्थायिन् (सं० त्रि०) चञ्चल, जल्द गुज़र जानेवाला; जो ठहरता न हो।

अनवस्थित (सं० त्रि०) न अवस्थितम्, नञ्-तत्। १ चञ्चल, चुल-बुला। २ अस्थिर, नापायदार। ३ व्यभिचार-दोष-युक्त, बुरे चालचलनवाला। ४ आधार-रहित, बेचारा।

अनवस्थितचित्त (सं० त्रि०) चञ्चलहृदय, चुलबुले मिज़ाजका; जिसका दिल डावांडोल रहे।

अनवस्थितचित्तत्व (सं० क्लो०) १ मनका चाञ्चल्य, दिलका चुलबुलापन। २ वायुरोग, हवाकी बीमारी।

अनवस्थितत्व (सं० क्लो०) चाञ्चल्य, चुलबुलापन; न ठहरनेकी हालत।

अनवस्थिता (सं० स्त्री०) व्यभिचारिणी, बुराकाम करनेवाली औरत।

अनवस्थिति (सं० स्त्री०) न अवस्थिति; नञ्-तत्। १ अवस्थितिका अभाव, ठहरावका न रहना; अधैर्य, चाञ्चल्य; बेसब्री, चुलबुलापन। २ आचरणकी ढिलाई, चालचलनका ढीलापन।

अनवहित (सं० त्रि०) ध्यानरहित, बेख़याल; जो दिल न लगाता हो।

अनवह्वर (सं० त्रि०) न अव-ह्वृ-कौटिल्ये-अप्; नञ्-तत्। अकुटिल, सरल; सीधा, जो टेढ़ा न हो।

अनवाँसना (हिं० क्रि०) नूतन पात्रको प्रथमतः कार्यमें लगाना, नये बरतनसे काम शुरू करना।

अनवाँसा (हिं० पु०) १ कटे हुए खेतका पूला। २ अनवांसी ज़मीनमें पैदा हुआ अनाज। (वि०) ३ काममें लाया गया।

अनवाँसी (हिं० स्त्री०) १ बिस्वांसीका बीसवां भाग। एक बिस्वेमें चार-सौ अनवाँसी होती हैं। (वि०) ३ काममें लायी गयी, बरती हुई।

अनवाच् (सं० त्रि०) मौनशून्य, ख़ामोशीसे ख़ाली; जो चुपके न रहे।

अनवाञ्च् (सं० त्रि०) निम्नभागको न झुकते हुआ, जो नीचेकी ओर नज़र न डाल रहा हो; सीधे ताकनेवाला।

अनवानता (सं० स्त्री०) प्रचलित रहनेकी दशा; सिलसिलाबन्दी।

अनवानम् (सं० अव्य०) १ विना प्रश्वास, बेसांस साधे; एक श्वासमें, सांस लेकर; विना विक्षेप, दख़ल न देते हुए।

अनवाद (हिं० पु०) कठोर कथन, बुरी बात।

अनवाप्त (सं० त्रि०) न अवाप्तम्, नञ्-तत्। अप्राप्त, लाहासिल; जो हाथ न आया हो।

अनवाप्ति (सं० स्त्री०) अप्राप्ति, हासिल न होनेकी हालत।

अनवाय, अनवय (सं० त्रि०) नञ्-बहुव्री०। 'अनवय-शब्दस्य अनवायभावः।' (देवराज) १ निरवयव, निराकार; बेअज़ा, बेशक्ल; जिसके हाथ-पैर या रङ्ग-रूप न हो। (वै० अव्य०) २ विना विक्षेप, बेठहरे हुए।

अनवेक्ष (सं० त्रि०) १ ध्यानविहीन, बेदिल। (अव्य०) २ विना ध्यान; बेदिलीसे।

अनवेक्षक (सं० त्रि०) न अवेक्षकम्, नञ्-तत्। १ पर्यालोचनाहीन, ग़ौर न करनेवाला। २ सत् और असत्की विवेचनासे शून्य, भले-बुरेकी पहचान न रखनेवाला।

अनवेक्षण (सं० क्लो०) अनवेक्षा देखो।

अनवेक्षा (सं० स्त्री०) न अवेक्षा अपेक्षा, नञ्-तत्। अपेक्षाभाव, बेगौरी; ध्यान लगानेकी हालत।

अनव्रत (सं० त्रि०) १ साधुकर्मसम्पन्न, जो फ़क़ीरी लटकेसे खाली न हो। (पु०) कर्मरत जैन साधु, जो जैनी फ़क़ीर अपना काम करता रहे।

अनशन (सं० क्ली०) न-अश-ल्युट्, नञ्-तत्। १ भोजनका अभाव, गिज़ाका न मिलना। २ उपवास। ३ लङ्घन, फ़ाक़ा। ४ भोजन-निवृत्ति-रूप व्रत विशेष, खास व्रत जिसमें खाना नहीं खाते। इस व्रतमें रात दिन कुछ खाया नहीं जाता। अनशनव्रत एक दिन, दो दिन, तीन दिन, सात दिन, नौ दिन या एक मासतक चलता है। दूसरे प्राणपरित्यागकी इच्छासे जबतक प्राण न निकले, तबतक अनशन व्रत रहता है,—

"अनशनं मासमेकन्तु महापातकनाशनम्।
नेहनामुष्मिकं पापं व्रतेनानेन तिष्ठति॥" (जाबाल)

'एक मास अनशनव्रत करनेसे महापातक नष्ट होता है। इसलिये यह व्रत रखनेसे इहकाल और परकालका पाप छूट जाता है।' "प्रायश्चानशने मृत्यौ" इति विश्वः। प्रायस् शब्दसे अनाहारमें प्राणत्यागका अर्थ निकलता है,—

"समासक्तो भवेद्यस्तु पातकैर्महदादिभिः।
दुश्चिकित्स्यैर्महारोगैः पीड़ितो वा भवेत्तु यः॥
स्वयं देहविनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः।
अब्राह्मणं वा स्वर्गादि महाफलजिगीषया॥
प्रविशेज्ज्वलनं दीप्तं कुर्यादनशनं तथा।
एतेषामधिकारोऽस्ति नान्येषां सर्वजन्तुषु॥
नराणामथ नारीणां सर्ववर्णेषु सर्वदा॥" (पुराणवचनम्)

'जो महापातकग्रस्त या असाध्य रोगसे पीड़ित हो, वह महामति व्यक्ति अपने विनाशका काल प्राप्त होनेपर ब्रह्मलोक या स्वर्गादि महाफलकी कामना कर प्रज्वलित अग्निमें बैठे या अनशनव्रतको अवलम्बन करे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र— इन्हीं चार वर्णके पुरुष और स्त्रीको इसमें अधिकार है। अन्य प्राणीको इसे करनेका निषेध देते हैं।'

(त्रि०) नास्ति अशनं यस्य, नञ्-बहुव्री०। ५ भोजनशून्य, गिज़ासे खाली; जिसने खाना छोड़ दिया हो। यह भली भांति स्थिर नहीं हुआ, कि एकबारगी ही निर्जल उपवास करनेसे कितने दिनमें मृत्यु होती है। सालिखेके श्यामाचरण बाबूने काशीमें पहुंच अनशनव्रत किया था। अठारह दिन पीछे उनकी मृत्यु हो गयी। किन्तु सुस्थ शरीरसे उपवास करनेपर बारह दिनसे एक मासतक मनुष्य जी सकता है। किन्तु जो स्वभावतः अधिक भोजन, अधिक कायिक परिश्रम करता और नित्य मद्य-मांस खाता है, उसके पक्षमें यह नियम नहीं लगता। वह क्षुधाको नहीं सह सकता, अल्प उपवास करते ही अवसन्न हो जाता है। चित्तोड़का दुर्ग जीतते समय विलायती गोरे और हमारे देशके सिपाही दोनो लड़ रहे थे। एकाएक खाद्य द्रव्यका अतिशय अभाव होजानेपर, क्षुधासे जठराग्नि धांय-धांय जलने और गोरोंको जगत् अन्धकारमय दिखाई देने लगा। किन्तु हमारे देशके सिपाही उतने कातर न हुए। जो सामान्य चावल रहा, उसे पका सिपाही आप तो मांड खाते और सब भात गोरोंको दे देते थे। उसपर भी गोरे भूखसे कोई काम न कर सके। किन्तु सिपाहियोंने केवल मांडके सहारे तुमुल संग्राम संभाला था।

जो निरामिषभोजी, एकाहारी और प्रतिदिन यथानियम प्राणायाम करता है, उसकी मृत्यु अनशनसे शीघ्र नहीं होती। ऐसे-ऐसे अनेक योगी सन्यासी हैं, जो दिनान्तमें केवल आध सेर दुग्ध पीते हैं। बांकीपुरमें एक योगी रहे, जिनका पथ्य दूर्वाद्रण होता था। वह नवीन दूर्वा पीस और खाकर प्राण पालते थे। मतलब यह, कि प्राणायामसे योगनिद्राका आविर्भाव होता है। उस क्षण कच्छप और सर्पादिवाली शीत-निद्राकी तरह योगमें रहकर सो सकनेसे क्षुधाका उद्रेक नहीं उठता। साधु हरिदास श्वास और आहार रोक दश मास मट्टीमें गड़े रहे थे। उसे देख डाक्टर मेकग्रेगरने कहा,—"इस देशके लोग सहजमें उपवास और प्राणायाम पालनेसे ऐसे अद्भुत कार्य कर सकते हैं।" जो हो; यह बात ठीक नहीं बता

सकते, कि सिद्ध पुरुष कितने दिन अनाहार रहनेसे मरता है।

स्वास्थ्यको रक्षा रखनेके लिये मासमें दो-एक दिन अनशन रहना नितान्त आवश्यक है। इससे उदरका समस्त अजीर्ण द्रव्य और सञ्चित दुष्ट रस पकता और शरीर शुष्क, लघु और प्रसन्न रहता है। शरीरके समस्त इन्द्रियको अधिक या अल्प कालके लिये, विश्राम मिलता है। रात्रिको सोते समय हस्त पद सुस्थिर रहते हैं। श्वास-प्रश्वास भी ठहर जाता है। क्षणकाल हृदयका स्पन्दन रुक जानेसे हम मर सकते हैं। किन्तु उसका भी कुछ-कुछ विश्राम होता है। यह सकल विषय विवेचना कर देखनेसे पाक-यन्त्रको कुछ-कुछ विश्राम देना आवश्यक है। इसीलिये हमारे देशमें एकादशीको उपवास करना प्रचलित है। हम देखते हैं, कि स्त्री विधवा होनेसे एकादशीका उपवास करती और एकाहार चलाती है। उस समय उसका शरीर पूर्वापेक्षा अधिक हृष्टपुष्ट और कान्तियुक्त हो जाता है।

दुर्भिक्ष या आहाराभावसे अनशनमें किसीके अवसन्न हो जानेपर, उसे उष्ण घरमें मुलायम बिछौनेपर लिटाये। दीर्घकाल अनशन रहनेपर रक्तसञ्चालन-बन्ध और श्वासरोधसे लोग मर जाते हैं। अतएव प्रथम शीतल द्रव्य कभी न खिलाये। इसीतरह शरीरमें शीतल वात भी न लगने पाये। उसके एकबारगी ही आक्षेप द्वारा हठात् मृत्यु हो सकती है। प्रथम जलके साथ अल्प-अल्प ब्राण्डी, मांसका शोरबा और दुग्ध पिलाना चाहिये। अत्यन्त उत्कट स्थलमें काल्पनिक श्वास-प्रश्वास चलाये और वक्षःस्थलमें ताड़ित वेग पहुंचाये। हमारे हिन्दुओंके घरमें वृद्धा स्त्रियां एकादशी प्रभृतिको अनशन रह पारणके दिन प्रथम शर्बत वगैरह शीतल द्रव्यका व्यवहार करती हैं। किन्तु वह नितान्त अनिष्टकर है। उपवासके बाद प्रथम शीतल द्रव्य खानेसे हठात् मृत्यु हो सकती है।

ज्वर प्रभृति तरुण रोगोंमें हमारे देशके वैद्य रोगीको अनशन रखते हैं। जर्मनीके डाक्टर भी रोग रहते अधिक पथ्यको व्यवस्था नहीं करते। हम इस प्रथामें कोई दोष नहीं पाते। देखिये,—कुक्कुरादि सकल नीच जन्तु कुछ शारीरिक असुख होनेपर चुपकेसे एक जगह सो जाते हैं, कुछ खाते-पीते नहीं। पीड़ाकी अवस्थामें जिह्वा मलिन, मुख विरस, शुष्क और क्षुधा-मान्द्य हो जाता है। यह सकल बाहरका लक्षण देख समझ पड़ता, कि भीतरी पाकयन्त्रका कार्य भी खूब नहीं चलता। सुतरां पीड़ितावस्थामें अधिक पथ्य की व्यवस्था करना युक्तिसङ्गत नहीं बताते। किन्तु डाक्टर ग्रेवस इस मतके विरोधी रहे। यह सर्वदा देख पड़ता है, कि इस देशमें तरुण ज्वरपर रोगी केवल सिद्ध जल और बताशा खाकर चालीस दिन उपवास कर जाते हैं।

अनशनता (सं० स्त्री०) उपवास, फाका; न खानेकी हालत।

अनशनाय (वै० त्रि०) क्षुधारहित, आसूदा; जो भूखा न हो।

अनशित (सं० क्ली०) अनशनता देखो।

अनश्नत् (सं० त्रि०) १ न खाता हुआ। २ सुख न भोगता हुआ, जो आराम न पा रहा हो।

अनश्नत्सङ्गमन (वै० पु०) सभावाले यज्ञका अग्नि, जिसके पास उपवास तोड़नेसे पहले पहुंचते हैं।

अनश्नान (सं० त्रि०) अनश्नत् देखो।

अनश्रु (सं० त्रि०) अश्रुशून्य, बिला-अश्क; जिसके आंसू न आते हों।

अनश्व (सं० त्रि०) १ अश्वविहीन, बिला-अस्प; घोड़ा न रखनेवाला। (पु०) २ अश्वभिन्न अन्य वस्तु, घोड़ेको छोड़ दूसरी चीज़; जो कुछ घोड़ा न हो।

अनश्वर (सं० त्रि०) न नश्वरम्, नञ्-तत्। नश्वर भिन्न, स्थायी; लाज़वाल, मुकद्दम; अमिट, बना रहनेवाला; जिसका कभी नाश न हो।

अनष्ट (सं० त्रि०) अखण्डित, अभङ्ग; बेटुकड़ा, न टूटा हुआ; जो बरबाद न किया गया हो।

अनष्टपशु (वै० त्रि०) अखण्डित पशु रखता हुआ, जिसके जानवर बिगड़े-बिगड़ाये न हों।

अनष्टवेदस् (वै० त्रि०) अभङ्ग सम्पत्तिसे सम्पन्न, जिसकी जायदाद बिगड़ी न हो।

अनस् (सं० क्ली०) अनिति गच्छति, अन्-असुन्। अनोश्मायस् सरसां जातिसंज्ञयो:। पा ५।४।९४। १ शकट, गाड़ी। २ माता, मा। ३ उत्पत्ति, पैदायश। ४ सन्तान, औलाद; जो जीव जीता-जागता हो। ५ भात, उबाला हुवा चावल। ६ जल, आब। ७ शोक, अफ़सोस।

अनसखरी (हिं० वि०) पवित्र, पाक; जो जूंठी न हो। जिस रसोईमें जलका संयोग नहीं रहता और जो केवल दूध और घीसे बनती, उसे अनसखरी कहते हैं। (पु०) अनसखरा।

अनसठ (हिं० वि०) कुत्सित, अधम, ख़राब, बुरा, छिछोरापन दिखानेवाला।

अनसत्त (हिं० वि०) सत्यरहित, अनृत; झूठा, सच्चा नहीं; जिसमें सचाई न हो।

अनसन (हिं०) अनशन देखो।

अनसमझा (हिं० वि०) १ न समझा हुवा, जो समझमें न आया हो। २ न समझनेवाला, जिसे समझ न पड़े।

अनसहत (हिं० वि०) न सहा जाता हुआ, जो बरदाश्त न होता हो।

अनसाना (हिं० क्रि०) बुरा मानना, चिढ़ना, नाराज़ होना।

अनसुनी (हिं० वि०) न सुनी हुई, जो सुन न पड़ी हो। (पु०) अनसुना।

अनसूय (सं० त्रि०) नास्ति असूया परगुणे दोषारोपो यस्य, बहुव्री०। परके गुणमें दोषारोपशून्य, दूसरेके हुनरमें ऐब न लगानेवाला।

अनसूयक (सं० त्रि०) न असूयकम्, नञ्-तत्। असूयाशून्य, जिसे किसीके हुनरपर हसद न रहे।

अनसूया (सं० स्त्री०) न असूया, अभावार्थे नञ्-तत्। कण्वादिभ्यो यक्। पा ३।१।२७। १ असूयाशून्यता, हसदका न होना। स्मृतिमें लिखा है,—

"न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति मन्दगुणानपि।
न हसेच्चान्यदोषांश्च सानुसूया प्रकीर्तिता॥"

'गुणी व्यक्तिका गुण नष्ट न करना, मन्द गुणीकी भी प्रशंसा करना और दूसरेके दोषपर उपहास न करना यह सभी बात अनसूया कहाती है।'

दूसरी बात यह है,—

"एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥" (मनु १।९१)

'ब्रह्माने यह आदेश दिया है, कि अनसूया न कर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीनो वर्णको सेवा करना शूद्रका एकमात्र कर्म है।'

२ शकुन्तलाकी सहचरी और अत्रि मुनिकी पत्नीका नाम।

अनसूयु (सं० त्रि०) न-असु उपतापे कण्ड्वादि० यक्-उ, नञ्-तत्। असूयाशून्य, बिला हसद; जिसे डाह न लगे।

अनसूरि (वै० त्रि०) बुद्धिमान्, मूर्खतारहित; अक्लमन्द, बेवक़ूफ़ नहीं; जो बेसमझ न हो।

अनस्तमित (सं० त्रि०) न अस्तम् इतं गतं, अलुक् स०। १ अधोभागमें न पहुंचा हुआ, जो नीचे न चला गया हो। २ अस्त-रहित, अधोगतिविहीन; लागुरूब, लाज़वाल; जो डूब या ख़राब न हो जाये।

अनस्तित्व (सं० क्ली०) अस्तित्वका अभाव, हस्तीकी नामौजूदगी; न होने या रहनेकी हालत।

अनस्थ (सं० पु०) अनेन जीवनोचितचैतन्यमात्रेण तिष्ठति नतु शरीरावयवेन इति, अन-स्था-क। १ विना शरीर अस्तित्वमात्र रखनेवाला पुरुष, जिस शख़्सके जिस्म न हो, लेकिन सिर्फ़ रूहके सहारे वह अपनी हस्ती क़ायम रखे; बेशरीर रहनेवाली चीज़। २ निरवयव, सांख्य प्रसिद्ध प्रधान, ईश्वरमाया, परमेश्वरकी क़ुदरत जो अज़ा नहीं रखती।

अनस्वत् (वै० त्रि०) अनः शकटमस्त्यस्य-मतुप् मस्य वः सान्तत्वान्न पदत्वम्। शकटयुक्त, गाड़ीमें जुता हुवा।

अनहक (हिं० क्रि०-वि०) नाहक, बेफ़ायदा, बेजा तौरपर, अनधिकार।

अनहङ्कार (सं० पु०) न अहङ्कारः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ अहङ्कारका अभाव, फ़ख़रका न पैदा होना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। अहङ्कारशून्य, फ़ख़रसे ख़ाली; जिसे घमण्ड न घेरे।

अनहङ्कारिन् (सं० त्रि०) अहमिति गर्वं करोति, अहं-कृ-णिनि; न अहङ्कारी, नञ्-तत्। गर्वशून्य, बेफ़ख़र; जो घमण्ड न करे।

अनहङ्कृत (सं० त्रि०) अहमिति कृतम् अहङ्कारः, भावे क्त; नास्ति अहं कृतं अहंकारो यस्य। अहङ्कार-शून्य, बेफ़ख़ूर, जिसे घमण्ड न हो।

अनहङ्कृति (सं० स्त्री०) अहमिति गर्वं क्रियते, भावे क्तिन् अहङ्कृतिः; न अहङ्कृतिः, नञ्-तत्। १ अहङ्कार-का अभाव, फ़ख़ूरका न होना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ अहङ्कारशून्य, बेघमण्ड।

अनहंवादिन् (सं० त्रि०) अहमिति गर्वेण वदति वद-णिनि। न अहंवादी, गर्वशून्य; मैं मैं न मचाने-वाला, बेगुरूर।

अनहदनाद (हिं० पु०) अनाहत नाद, हस्तके दोनो अङ्गुष्ठसे कर्णविवरको अवरोध कर ध्यानपर आने-वाला शब्द। यह शब्द सिवा योगसाधनके नहीं सुन पड़ता। योगीके ही कानमें इसकी ध्वनि गूंजती है।

अनहन् (सं० क्ली०) अदिन, कुदिन, दुर्दिन; बुरा रोज़, ख़राब वक्त।

अनहित (हिं० पु०) अहित, बिगाड़, बुराई।
"हित अनहित पशु-पक्षिहु जाना।" (तुलसीदास)

अनहितू (हिं० वि०) हितरहित, भलाईसे ख़ाली; मङ्गल न मनानेवाला।

अनहिलवाड़, अनलवाड़ देखो।

अनहोता (हिं० वि०) १ रहित, ख़ाली; न रखने-वाला। २ अभूतपूर्व, नायाब; न होनेवाला। (स्त्री०) अनहोती।

अनहोनी (हिं० स्त्री०) न होनेवाली बात, जो चीज़ न गुज़रे। "एक अनहोनी यह कैसे के सकेलिबो।" (ठाकुर)

अना (वै० अव्य०) इससे, इसतरह, असलमें।

अनाई-पठाई (हिं० स्त्री०) लाना पहुंचाना, ले आना-भेज जाना। यह शब्द विशेषतः दूल्हनके अपने घरसे ससुराल और ससुरालसे घर जाने आनेका मतलब रखता है।

अनाकनो, अनाकानी (हिं० स्त्री०) खींच, हटाव; बेख़्याली।

अनाकार (सं० त्रि०) नास्ति आकारो यस्य, नञ्-बहुव्री०। अवयवहीन, निराकार; बेशक्ल, बेसूरत; रङ्ग-रूप न रखनेवाला।

अनाकारित (सं० त्रि०) न मांगा हुआ, न तलब किया गया; जिसपर दावा न दबाया गया हो।

अनाकाल (सं० पु०) आ सम्यक् शस्यादि-सम्पन्नः कालः आकालः; न आकालः, नञ्-तत्। शस्यादि सम्पन्न भिन्न काल, शस्यहीन काल, दुर्भिक्ष काल; क़हत, सूखा; फ़सल न फलनेका मौसम।

अनाकालभृत, अन्नाकालभृत (सं० पु०) दुर्भिक्षके समय पेट पालनेको अपनी इच्छासे बननेवाला भृत्य, गुलाम जो अपने दिलसे खानेके लिये क़हतसालीमें हुआ हो।

अनाकाश (सं० पु०-क्ली०) १ आकाश जो अपने नामके अनुसार न हो, जो आसमान आसमान न हो। (त्रि०) २ निर्मल आकाशशून्य, साफ़ आसमानसे ख़ाली। ३ तिमिराच्छन्न, धुंधला, अंधेरा; साफ़ नज़र न आनेवाला।

अनाकुल (सं० त्रि०) न आकुलम्, नञ्-तत्। असन्तापित, तङ्ग न किया गया। २ अव्यग्र, न घबड़ाया हुवा। ३ स्थिर, ख़ामोश। ४ असङ्कीर्ण-वाक्य, साफ़-गो। ५ साकाङ्क्षवाक्य, मतलबसे बोलनेवाला। ६ एकाग्र, एक ओरको झुका हुआ।

अनाकृत (वै० त्रि०) ना इत्यनेन कृतं नाकृतं निरा-कृतम्; न नाकृतम्, नञ्-तत्। १ अनिवारित, फिरसे न मांगा गया। २ अनिवार्य, फिरसे मांगनेके नाक़ाबिल।

अनाक्रान्त (सं० त्रि०) १ झपटा न गया, बेहमला। २ आक्रमणके अयोग्य, जो हमला करनेके क़ाबिल न हो।

अनाक्रान्तता (सं० स्त्री०) आक्रान्त न होनेकी दशा, हमला न पड़नेकी हालत; रक्षा, रखवाली।

अनाक्रान्ता (सं० स्त्री०) न आ-क्रम-क्त, अनाक्रान्ता आक्रमितुमयोग्या सर्वतः कण्टकावृतत्वात्। १ कण्ट-कारी वृक्ष, कटैया, कांटेदार मकोय। (त्रि०) २ आक्रान्तभिन्न, हमला खानेवालेसे अलग।

अनाचारित (सं० क्ली०) न आचारितं अपकृतम्, नञ्-तत्। १ अनपकृत, भलाई, बुराई न बोनेवाला काम। (त्रि०) २ अनिन्द्य, भला; बुराई न करनेवाला।

अनाच्छित (वै० त्रि०) न रहते या न ठहरते हुआ, जो न रहता या न ठहरता हो।

अनाखर (हिं० वि०) १ अनक्षर, हर्फ न पहिचाननेवाला। २ मूर्ख, बेवकूफ। ३ असभ्य, नाशायस्ता।

अनाग (वै० त्रि०) न आसम्यग् गच्छति स्वर्गमनेन नागं अधर्मम्; न नागम्, नञ्-तत्। पापरहित, इज़ाबसे अलग; पाप न करनेवाला।

अनागत (सं० त्रि०) न आगतम्, नञ्-तत्। १ आगत-भिन्न, जो आया न हो। २ भावी, होनेवाला। ३ अप्राप्त, न पाया गया। ४ अविदित, न समझा-बूझा। ५ अनादि, लाआग़ाज़। (क्लो०) ६ भविष्यत्-कालकी वृत्ति, आयन्दे जमानेका हाल। (हिं० क्रि०-वि०) ७ एकाएक, धोकेसे।

अनागतवत् (सं० त्रि०) भविष्य-जैसा, आयन्दे के मानिन्द; भविष्यसे सम्बन्ध रखनेवाला।

अनागतविधाता, अनागतविधातृ देखो।

अनागतविधातृ (सं० पु०) न आगतस्य भविष्यतः अनिष्टस्य विधाता, नञ्-तत्। १ भविष्यत् प्रतिविधान-कर्ता, होनेवाले कामको फ़िक्र रखनेवाला। २ किसी मछलीका नाम।

अनागताबाध (सं० पु०) न आगतः आबाधः पीड़ा दुःखं वा, नञ्-तत्। देहका भविष्यत् दुःख, जिस्मकी आयन्दा तकलीफ़।

अनागताबाधा (सं० स्त्री०) न आगता उपस्थिता बाधा पीड़ा। १ अनुपस्थित पीड़ा, नामौजूद तक-लीफ़। २ भविष्यत् दुःख, आनेवाली आफ़त। (त्रि०) न आगता बाधा यस्य, नञ्-बहुव्री०। ३ उपस्थित पीड़ाशून्य, मौजूदा तकलीफ़, न उठानेवाला।

अनागतार्तवा (सं० स्त्री०) ऋतौ भवं अण् आर्तवं स्त्रीपुष्पविकाशनम्; अनागतमप्राप्तमार्तवं रजो यस्याः। १ अजातरजस्का; जिस स्त्रीको स्त्रीधर्म नहीं हुवा, रजः-प्रकाश न पानेवाली स्त्री। २ कन्या, लड़की। "गौरी तु नग्निकाऽनागतार्तवा।" इत्यमरः।

अनागतावेक्षण (सं० क्ली०) भविष्यत्की ओर दृष्टि-पात, आयन्देकी तर्फ़का देखना।

अनागति (सं० स्त्री०) १ नापहुंच, नारसायी। २ अप्राप्ति, नादस्तयाबी।

अनागन्धित (सं० त्रि०) न आगन्धितं आघ्रातम्। अनाघ्रात, बेसूंघा; आघ्राण या खुशबू न लिया गया।

अनागम (सं० पु०) नास्ति आगमः स्वत्वहेतुः क्रयादि-र्यत्र। १ स्वत्व हेतु क्रयादि शून्य, क्रयपत्ररहित; क़बीला न रखनेवाली चीज़। २ आगमका अभाव, नापहुंच।

"सम्भोगो दृश्यते यत्र न दृश्येतागमः क्वचित्।
आगमः कारणं तत्र न सम्भोग इति स्थितिः॥" (मनु ८।२००)

अनागमिष्यत् (सं० त्रि०) न आने या पहुंचनेवाला, जो आये या पहुंचे नहीं।

अनागमोपभोग (सं० पु०) क्रयादिरहित सम्पत्तिका भोग, बेक़बीलेकी जायदादके मज़ेका उड़ाना।

अनागम्य (सं० त्रि०) न पहुंचने क़ाबिल, मिलनके अयोग्य; हाथ न आनेवाला।

अनागस् (सं० त्रि०) नास्ति आगोऽपराधः पापं वा यस्य। १ अकृतापराध, निरपराध, पापशून्य; बेगुनाह, बेइज़ाब। २ निरपराधता देनेवाला, जो मुबारक बनाये।

"आर्तत्राणाय वः शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।" (शकु०)

अनागा (वै० क्रि०) १ अपापहेतु। (ऋक् १०।१६५।२) (स्त्री) २ नदीभेद। (पुराण)

अनागामिन् (सं० त्रि०) १ न आता या पहुंचता हुवा। २ भविष्यत् नहीं, न लौटनेवाला। (पु०) ३ एक प्रकारका बौद्ध सन्यासी; बौद्धशास्त्रानुसार चालीस-हज़ार कल्पके साधनपर जिसकी मुक्ति होगी।

अनागोहत्या (सं० स्त्री०) निरपराध व्यक्तिकी हत्या, बेगुनाह शख़्सका क़त्ल।

अनाचरण (सं० क्ली०) अनाचार देखो।

अनाचार (सं० पु०) अप्राशस्त्येऽभावे वा नञ्-तत्। १ कदाचार, अशुद्धाचार; बुरा चालचलन। २ आचार-का अभाव, चालचलनका बिगाड़। अनाचार दो प्रकारका होता है,—१ धर्मशास्त्रके बताये सकल

कर्मका न करना, २ धर्मशास्त्रके बताये कर्मसे विरुद्ध चलना।

अनाचारिन् (सं० त्रि०) १ कदाचार, बदचलन, ख़राब चालचलनवाला। २ रीति, नीति या व्यवहार-पर ध्यान न देनेवाला। ३ दुष्ट, बदज़ात।

अनाचारी, अनाचारिन् देखो।

अनाज (हिं० पु०) अन्न, धान्य; गल्ला।

अनाजी (हिं० वि०) अनाजका, गल्लेवाला।

अनाज्ञा (सं० त्रि०) आज्ञा न पाया हुआ, जिसे हुक्म न मिला हो।

अनाज्ञाकारिता (सं० स्त्री०) आज्ञारहित कर्मका कार्य, बेहुक्म कारवाई।

अनाज्ञाकारी (सं० पु०) आज्ञाके अनुसार कार्य न करनेवाला, जो हुक्मके मुताबिक़ काम न करे। (स्त्री०) अनाज्ञाकारिणी।

अनाज्ञात (सं० त्रि०) न आज्ञातम्। ज्ञानका अविषयीभूत, नजाना हुवा।

अनाड़ी (हिं० वि०) अज्ञानी, नासमझ।

अनाढ्य (सं० त्रि०) निर्धन, बेदौलत; दरिद्र, ग़रीब।

अनाढ्यम्भविष्णु (सं० त्रि०) धनिक न बनता हुवा, दौलतमन्द न होनेवाला; जो ग़रीब होते जा रहा हो।

अनातङ्क (सं० त्रि०) अरोगी, नाबीमार।

अनातत (सं० त्रि०) धनुषाकार न फैला या फंसा हुवा, जो कमानकी तरह फैला या फंसा न हो।

अनातप (सं० पु०) अभावार्थे नञ्-तत्। १ आतप-का अभाव, गर्मीका न रहना। २ छाया, साया। ३ शीतलता, ठण्ढापन। (त्रि०) बहुव्री०। १ आतप-शून्य, तपिशसे ख़ाली।

अनातुर (सं० त्रि०) न आतुरम्, नञ्-तत्। नीरोग, आतुरभिन्न, सुस्थ; नाबीमार, लाचारीसे अलग, तन्दुरुस्त।

अनात्म (सं० त्रि०) १ आत्मशून्य, बेरूह। (क्ली०) २ आत्मासे विरुद्ध वस्तु, जो चीज़ रूह न हो।

अनात्मक (सं० त्रि०) नास्ति आत्मा स्थिरो यत्र, कप्। १ आत्मविहीन, बेरूह। २ जैन मतानुसार असत्, सच्चा नहीं।

अनात्मक-दुःख (सं० क्ली०) आत्मासे सम्बन्ध न रखने-वाला दुःख, जिस तकलीफ़का रूहसे कोई सरोकार न रहे। जैन शास्त्रकार इहलोक और परलोक दोनोंके दुःख अनात्मक मानते हैं।

अनात्मज्ञ (सं० त्रि०) आत्मानं यथास्वरूपं न जानाति, ज्ञा-क। आत्माको न जाननेवाला, रूहकी पहचानसे ख़ाली; जो असली समझ न रखता हो।

अनात्मधर्म (सं० क्ली०) आत्माका धर्म नहीं, जो चाल रूहकी न हो।

अनात्मन् (सं० पु०) न आत्मा, अप्राशस्त्ये भेदार्थे च नञ्-तत्। १ आत्म-भिन्न, रूह नहीं; जो चीज़ चेतन न हो। (त्रि०) २ आत्मारहित, बेरूह; शारीरिक, जिस्मानी।

अनात्मनीन (सं० त्रि०) आत्मन्-ख; आत्मने हित-मात्मनीनम्, न आत्मनीनम्, नञ्-तत्। आत्मन् विश्वजन-भोगोत्तरपदात् खः। पा ५।१।९। निजको अहित, अपने लिये बुरा; जो आत्माको भला न लगे।

अनात्मप्रत्यवेक्षा (सं० स्त्री०) जैन मतानुसार—आत्माकी अनुपस्थितिका विचार, रूहके न रहनेका ख़याल।

अनात्मवत् (सं० त्रि०) न आत्मा अन्तःकरणं वश्य-त्वेन अस्ति अस्य: मतुप्—मस्य वः, नञ्-तत्। १ अजितेन्द्रिय, अपने क़ाबूका नहीं। (अव्य०) २ अपने विरुद्ध, रूहके ख़िलाफ़।

अनात्मीय (सं० क्ली०) आत्मन इदम् आत्मन् यत् आत्मीयं शरीरम्; न आत्मीयम्, नञ्-तत्। तस्येदम्। पा ४।३।१२०। १ अपने निज परिवारके लिये प्रेमका अभाव, अपने ख़ास ख़ानदानपर मुहब्बतका न होना। (त्रि०) २ अपना नहीं, अपनेसे ताल्लुक़ न रखनेवाला।

अनाथ (सं० त्रि०) नास्ति नाथः प्रभुरस्य। १ प्रभु-हीन, बेमालिक; जिसका कोई रखवारा न रहे। २ रहित, महरूम। ३ लावल्द, बेबाप। ४ ग़रीब, बेचारा। ५ यतीम, लावारिस। (वै० क्ली०) १ रक्षाका अभाव, हिफ़ाज़तका न होना।

अनाथपिण्डद—शाक्य बुद्धके समसामयिक श्रावस्ती-वासी एक महाधनी और धार्मिक वणिक्। इनका असली नाम सुदत्त रहा। अनाथ-दीन-दुःखीके प्रति असीम दानशीलताके कारण यह 'अनाथपिण्डद' नामसे प्रथित हुये थे। भगवान् बुद्धके राजगृहमें अवस्थान लेते समय अनाथपिण्डद उनसे मिले और भगवान् बुद्धको श्रावस्ती पहुंचानेके लिये अनुरोध उठाया। उस समय श्रावस्ती नगरमें भिक्षुके ठहरनेका उपयोगी कोई आराम या उद्यान न रहा। बुद्धके उपदेशसे अनाथपिण्डदने श्रावस्ती-नगरमें एक उद्यानके स्थापनका आयोजन लगाया। उस समय प्रसेनजित् श्रावस्तीके राजा रहे। उन्होंने हठ बांधी, कि जितनी ज़मीन सोनेसे मढ़ दी जाती, उतनी ही ज़मीन वह उद्यानके लिये लगाते। अनाथ-पिण्डदने वही किया। राजा प्रसेनजित्ने सोचा, कि बुद्धके लिये वणिक् सुदत्त इतना सुवर्ण फेंक रहे थे; उन भगवान्के लिये उन्हें (राजाको) भी कुछ करना आवश्यक था। इसलिये राजाने अनाथपिण्डदकी प्रार्थनाके अनुसार जो ज़मीन ख़ाली पड़ी थी, उसे अलग रख छोड़ा; थोड़ीसी उद्यानके लिये प्रदान की। बुद्धदेवके परामर्शसे सारीपुत्रको बुला अनाथ-पिण्डदने उद्यान खड़ा कर दिया। वह उद्यान अनाथ-पिण्डदके नामसे ही प्रसिद्ध हुवा। सारीपुत्रके नालन्दे-में देह छोड़नेपर भिक्षु उनकी देहका सत्कार साध उनका भस्मावशेष ले राजगृहमें बुद्धदेवके पास जा पहुंचे। अनाथपिण्डदने वही भस्म अनाथपिण्ड-दाराममें बृहत् चैत्य बनवा उसके बीचमें रख दी।

अनाथानुसारी (सं॰ पु॰-त्रि॰) अनाथके पीछे चलने-वाला, जो यतीमके पीछे रहे।

अनाथालय, अनाथाश्रम (सं॰ पु॰) अनाथ व्यक्तियोंके रखनेका स्थान, यतीमोंके रहनेकी जगह; यतीमख़ाना।

अनाद (सं॰ पु॰) नाद या शब्दका अभाव, आवाज़-का न आना।

अनाददान (सं॰ त्रि॰) न सकारते हुवा, जो मञ्ज़ूर न करता हो।

अनादर (सं॰ पु॰) विरोधे अभावार्थे वा नञ्-तत्। १ अवज्ञा, बेतकल्लुफ़ी। २ तिरस्कार, बेइज़्ज़ती। ३ काव्यालङ्कारविशेष। इसमें मिली हुई वस्तुका अनादर उसी-जैसी वस्तुसे किया जाता है,—

> राधाको मुखचन्द्र लखि भूलै फिरत चकोर।
> रैन-दिवसको ज्ञान नहिं कहा सांझ कह भोर॥

अनादरण (सं॰ क्ली॰) अपमानसूचक व्यवहार, बेअदब बरताव; अनादर, हिक़ारत।

अनादरणीय (सं॰ त्रि॰) १ अनादरके योग्य, हिक़ारत-के क़ाबिल। २ निन्द्य, हक़ीर।

अनादरित (सं॰ त्रि॰) अनादर किया हुवा, हक़ीर समझा गया।

अनादि (सं॰ पु॰) आदिः कारणं पूर्वकालो वा स नास्ति अस्य। १ ब्रह्म, परमेश्वर, आदिरहित, उत्पत्ति-शून्य। २ नास्ति आदिः प्राथमिको यस्मात्। हिरण्य-गर्भ ब्रह्मा, जिनसे पहले दूसरा कोई न था। (त्रि॰) ३ आदिशून्य, बिला आग़ाज़।

अनादिक (सं॰ क्ली॰) अनादिशब्दात् स्वार्थे कन्। आदिरहित पुरुष, आग़ाज़ न रखनेवाला।

अनादित्व (सं॰ क्ली॰) अनादि होनेकी स्थिति, आग़ाज़ न रखनेकी हालत; नित्यता, हमेशगी।

अनादिन् (सं॰ त्रि॰) शब्द न करता हुवा, जो आवाज़ न निकाल रहा हो।

अनादिनिधन (सं॰ त्रि॰) आदि-अन्त-रहित, आग़ाज़ औ अञ्जाम न रखनेवाला; जिसका शुरू या अख़ीर न हो।

अनादिमत् (सं॰ त्रि॰) आदिमत् कार्यं तद्भिन्नम्। कार्यभिन्न, शुरू न होनेवाला।

अनादिमध्यान्त (सं॰ त्रि॰) आदि, मध्य और अन्तसे शून्य; शुरू, बीच और अख़ीरसे ख़ाली।

अनादिष्ट (सं॰ त्रि॰) न आदिष्टं सविशेषमुपदिष्टम्। १ विशेष रूपसे अकथित, ज़्यादातर न बताया गया। २ शिक्षा न पाये हुवा, जिसे तालीम न दी गई हो। ३ आदेशरहित, हुक्मसे ख़ाली।

अनादीनव (सं॰ त्रि॰) निर्दोष, बेऐब; जिसमें कोई बुराई न रहे।

अनादृत (सं० क्ली०) आदृतम् आदरः, नपुंसके भावे क्त, इति क्त प्रत्ययः; ततोऽभावार्थे नञ्-तत्। १ अनादर, अवज्ञा; बेइज़्ज़ती, बेअदबी। (त्रि०) कर्मणि क्त। २ अवज्ञात, तिरस्कृत; इज़्ज़त न किया गया।

अनादृत्य (सं० अव्य०) आदर न देकर, बेलिहाज़ीसे।

अनादेय (सं० क्ली०) १ वस्तु जिसके लेनेका धर्मशास्त्रमें निषेध है, अप्रतिग्राह्य द्रव्य; न ली जानेवाली चीज़। (त्रि०) २ ग्रहणके अयोग्य, लेनेके नाक़ाबिल।

अनादेश (सं० पु०) न आदेशः, अभावे नञ्-तत्। उपदेशका अभाव, तालीमका न मिलना।

अनादेशकर (सं० त्रि०) आज्ञारहित कार्य करनेवाला, जो बेहुक्म काम करे।

अनाद्य (सं० त्रि०) न अद्यं भक्ष्यम्। १ अभक्ष्य, खानेके नाक़ाबिल; शास्त्र जिसे खानेकी आज्ञा नहीं देता। न आद्यं। २ आद्यशून्य, अनादि; बिला आगाज़।

अनाद्यनन्त (सं० त्रि०) आदि-अन्त विहीन, आग़ाज़ो अञ्जाम न रखनेवाला।

अनाद्यन्त (सं० त्रि०) १ आदि-अन्त-शून्य; बेआग़ाज़ो अञ्जाम। (पु०) २ शिवका एक नाम।

अनाधार (सं० त्रि०) नास्ति आधारो यस्य। आधारशून्य, बेबुनियाद; जिसका कोई सहारा न रहे। २ न्यायमतसे—नित्यद्रव्य।

अनाधृष् (सं० त्रि०) आ-धृष-क्विप्, नञ्-तत्। अनभिभूत, न रुकते हुवा।

अनाधृष्ट (सं० त्रि०) न आधृष्टम्। अपरिभूत, नाग़ालिब; रोका न गया।

अनाधृष्टि—१ शूरके किसी पुत्रका नाम। २ उग्रसेनके एक पुत्र और यादवोंके सेनापति।

अनाधृष्य (सं० त्रि०) आ-धृष्-कर्मणि क्यप्; न आधृष्यम्, नञ्-तत्। अनभिभवनीय, दबानेके नाक़ाबिल; जो जीता न जा सके।

अनानत (वै० त्रि०) १ अनवनत, झुका नहीं; अधीन न हुवा, जो क़ाबूमें न आया हो। (पु०) २ ऋषि-विशेष, किसी ऋषिका नाम।

अनाना (हिं० क्रि०) मंगाना, तलब लगाना।

अनानुकृत्य (सं० त्रि०) अनुपम, लासानी, बेजोड़; जिसकी होड़ न हो सके।

अनानुद (सं० त्रि०) अनुददातीति, अनु-दा-क; अनुदस्ततो नञ्-तत्—पृषोदरादित्वात् दीर्घः। १ अतुल्यदानशील, बख़्शिशमें लासानी, देनेमें बराबरी न रखनेवाला। २ अधीन न बनते हुवा, मातहत न होनेवाला। ३ आक्रमण न पहुंचाया गया, जिसपर हमला न हुवा हो।

अनानुपूर्व्य (सं० क्ली०) दूसरोंके बीचमें पड़नेसे मिश्रित शब्दवाले विभिन्न अवयवोंका पृथक करण, मिले हुए लफ़्ज़के मुख़्तलिफ़ हिस्सोंका दूसरेके दख़्लसे अलग किया जाना। २ संयत नियममें न रहना, बंधे क़ायदेसे निकल भागना।

अनानुपूर्व्यसंहिता (सं० स्त्री०) मिश्रित शब्दके विभिन्न अवयव पृथक्कर वाक्यका बनाना, मिले हुए लफ़्ज़को तोड़-फोड़ जुमलेका जमाना।

अनानुभूति (सं० स्त्री०) ध्यानका न लगना, बेख़याली; त्रुटि, ग़फ़लत।

अनापद् (सं० स्त्री०) अभाग्य अथवा बाधाका अभाव, बदक़िस्मती या आफ़तका न रहना।

अनापन्न (सं० त्रि०) अप्राप्त, लाहासिल; न पाया हुवा।

अनाप-शनाप (हिं० वि०) बेनाप-जोख, इधर-उधरका, गड़बड़-सड़बड़। (पु०) २ बक-झक।

अनापा (हिं० वि०) १ नापा या तौला न गया। २ असीम, बेहद; अतुल, जिसका वज़न न हो सके।

अनापान—नृपतिविशेष। यह अङ्गके पुत्र रहे।

अनापि (सं० त्रि०) आप्यते आप्-कर्मणि इण् आपिः आप्तः बन्धुश्च; नास्ति आपिः यस्य, नञ्-बहुव्री०। आप्तशून्य, अबन्धु; बेअज़ीज़, बिलाबिरादर; जिसके घरवाले या दोस्त न हों।

अनापूयित (वै० त्रि०) दुर्गन्ध न देता हुवा, जिससे बदबू न निकलती हो।

अनाप्त (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ अप्राप्त, न मिला हुवा। २ अकृतकार्य, नाकामयाब। ३ अयोग्य, नालायक़। ४ यथार्थ निश्चयभिन्न, बेठौर-ठिकाना।

५ बन्धुभिन्न, बेरिश्ता। (पु०) ६ अपरिचित व्यक्ति, अजनबी।

अनाप्ति (सं० स्त्री०) प्राप्तिका अभाव, लाहासिली; किसी चीज़का हाथ न आना।

अनाप्य (सं० त्रि०) प्राप्तिके अयोग्य, हासिल करनेके नाक़ाबिल; जो हाथ न आये।

अनाप्लुत (सं० त्रि०) स्नान न किये हुवा, बेनहाया; धोया न गया।

अनाप्लुताङ्ग (सं० त्रि०) बेधोये शरीरवाला, जिसका जिस्म धुला न हो।

अनाबाध (सं० त्रि०) विघ्न अथवा दुःखसे रहित, खटका या तकलीफ़ न रखनेवाला।

अनाभयिन् (सं० त्रि०) आबिभेति, आ-भी-इनि ततो नञ्-तत्। भय भिन्न, बेख़ौफ़; जिसे किसीका डर न हो।

अनाभू (सं० त्रि०) आभिमुख्येन भवतीति आभूः स्तोता; नञ्-तत्। अभिमुखमें अप्राप्त, स्तोताभिन्न; ग़ाफ़िल, एहसानफ़रामोश, बेईमान।

अनाभ्युदयिक (सं० त्रि०) अशुभ, नामुबारक; बुरा, खराब।

अनाम, अनामन् देखो।

अनामक (सं० त्रि०) १ नामविहीन, अप्रसिद्ध; वेनाम, नामशहूर। (पु०) २ मलमास, लौंदका महीना। (क्ली०) ३ अर्शरोग, बवासीरकी बीमारी।

अनामत्व (सं० क्ली०) नामशून्यता, अप्रसिद्धि; नामका न रहना, नामशहूरी।

अनामन् (सं० क्ली०) अनं जीवनं अमयति रुजति, अम-णिच्-कनिन्। १ अर्शरोग, बवासीरकी बीमारी। (त्रि०) नास्ति नाम यस्य। २ बेनाम, जिसका नाम न हो। (पु०) ३ मलमास, लौंदका महीना। ४ अनामिका अङ्गुलि।

अनामय (सं० क्ली०) अम-घञ् आमं तापं याति अनेन, या-क; आमयो रोगः, अभावे नञ्-तत्। १ आरोग्य, नीरोगावस्था; तन्दुरुस्ती, चङ्गापन। (पु०) २ शिव। (त्रि०) ३ रोगशून्य, बीमारीसे बचा।

अनामयत् (सं० त्रि०) १ दुःख न देते हुवा, जो तकलीफ़ न पहुंचाता हो। (क्ली०) २ स्वास्थ्य, तन्दुरुस्ती।

अनामा, अनामिका (सं० स्त्री०) नास्ति अङ्गुष्ठ-तर्जन्यादिवत् विशेषनाम यस्याः, मनन्तात् डाप्—अनामा स्वार्थे कन्—अनामिका स्त्रीत्वात्। मध्यमा और कनिष्ठाके मध्यकी अङ्गुलि। शिवने कदाचित् इसी अङ्गुलिसे ब्रह्माका मस्तक काटा था; इसीसे अनामिका अङ्गुलि अपवित्र हो गयी। सुतरां यज्ञादि कार्यके समय कुशकी पवित्री पहन यह अङ्गुलि शुद्ध कर ली जाती है। महेश्वरने अमरकोषकी टीकामें लिखा है,—"न नाम ग्रहणं योग्यं यस्याः, ब्रह्मणोऽनया शिरश्छेदनात् अतएवास्यां पवित्री क्रियते।" इस अङ्गुलिका नाम लेना योग्य नहीं होता। क्योंकि इससे ब्रह्माका मस्तक काटा गया था। इसीसे इसे पवित्र कर लेना पड़ता है।

अनामिन् (वै० त्रि०) न झुकते हुवा, जो झुक न रहा हो।

अनामिष (सं० त्रि०) १ मांसविहीन, वेगोश्त। २ निरर्थक, बेफ़ायदा।

अनामृण (सं० त्रि०) न आमृणाति हिनस्ति, आ-मृण-क; नञ्-तत्। हिंसक-रहित, बेदुश्मन; जिसे मारनेवाला कोई दुश्मन न हो।

अनामृत (सं० त्रि०) अमर, न मरनेवाला।

अनायक (सं० त्रि०) नायक-विहीन, बेसरदार; जिसे कोई राह दिखानेवाला न मिले।

अनायत (सं० त्रि०) १ अवरोधरहित, न रोका गया। २ साहाय्यशून्य, सहारा न पहुंचाया गया। ३ अदूर, नज़दीक। ४ प्रचलित, जारी। ५ अभिन्न, अलग न किया गया। ६ अविस्तृत, न फैला हुवा।

अनायतन (सं० क्ली०) १ वह स्थान जहां वास्तविक विश्रामकी जगह या वेदी नहीं होती। (त्रि०) २ विश्रामस्थान या वेदी न रखता हुवा, जहां ठहरने या होम करनेकी जगह न मिले।

अनायतनवत् (सं० त्रि०) अन्तिम, आख़िरी।

अनायत्त (सं० त्रि०) न आयत्तम्। अनधीन, अवश; बेक़ैद, बेइहतियाज; जो किसीके वशमें न हो।

अनायत्तवृत्ति (सं० त्रि०) स्वतन्त्र जीविका रखते हुवा, जिसका रोज़गार आज़ाद रहे।

अनायत्तवृत्तिता (सं० स्त्री०) स्वतन्त्रता, आज़ादी; मातहत न रहनेकी हालत।

अनायन (सं० क्ली०) न आयनं चालनमत्र। एकान्त, निराली जगह।

अनायसाग्र (सं० त्रि०) लोहेकी नोक न रखते हुवा, जिसमें लोहेकी नोक न हो।

अनायास (सं० पु०) आ-यस्-घञ्—आयासः; न आयासः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ अक्लेश, कष्ट या प्रयत्नका अभाव; आराम, तकलीफ़का न पहुंचना। (त्रि०) नास्ति आयासः प्रयत्नं यत्र। २ क्लेशशून्य, बेतकलीफ़। (अव्य०) ३ सरलतापूर्वक, आसानीसे।

अनायासकृत (सं० क्ली०) अनायासेन क्लेशं विनैव कृतम्, नञ्-तत्। १ कषायविशेष, जोशान्दा। (त्रि०) २ सरलतापूर्वक किया गया, जिसके करनेमें मुश्किल न पड़ी हो।

अनायुध (सं० त्रि०) आयुधरहित, बेहथियार; जो हथियार न रखता हो।

अनायुषा (सं० स्त्री०) बल और वृत्रासुरकी माताका नाम।

अनायुष्य (सं० क्ली०) आयुषे हितं आयुष-यत्; न आयुष्यम्, नञ्-तत्। आयुष्यके पक्षमें अहितकर वस्तु, अकालमृत्यु लानेवाला द्रव्य; जो चीज़ उम्रको नुक़सान पहुंचाये या बेवक्त मौतको लाये।

अतिभोजन, अतिमैथुन प्रभृति अनायुष्य होते हैं, क्योंकि इनसे स्वास्थ्य बिगड़ता और आयु कम पड़ती है। भगवान् आत्रेयने आयुःक्षय और अकालमृत्युके सम्बन्धमें कहा है,—

"श्रूयतामग्निवेश! यथा यानसमायुक्तोऽक्षः प्रकृत्यैवाक्षगुणैः समेतः स्यात्। स च सर्वगुणोपपन्नो वाह्यमानो यथाकालं, स्वप्रमाण-क्षयादेव अवसानं गच्छेत्। तथायुःशरीरापगतं बलवतः प्रकृत्या यथावदुपचीयमानं स्वप्रमाणक्षयादेव अवसानं गच्छतीति, स मृत्युः काले। तथा च स एवाक्षोऽतिभाराधिष्ठितत्वात् विषमपथादपथाच्च, अक्षचक्रभङ्गात्, वाह्य-वाहकदोषात्, आणिमोक्षात्, अनुपाङ्गात्, पर्यासनाच्च अन्तराव्यसनमापद्यते। तथायुः अयथाबलमारम्भात्, अयथाग्न्यवहारात्, विषमाभ्यवहारात्, अति-मैथुनात्, उदीर्णवेगविधारणात्, विषमशरीरन्यासात् अभिघातात्, असत्-संश्रयात्, भूतविष-वाय्वग्न्युपघातात्, आहारप्रतीकारवर्जनात् अन्तरा व्यापद्यते। स मृत्युरकाले।" (चरकसंहिता)

'अग्निवेश! सुनिये। जैसे गाड़ी स्वभावतः अच्छी होने और नियमित रूपसे चलनेपर अल्प-अल्प बिगड़कर क्रमसे अनेक दिन बाद टूटती, परमायुका भी ठीक वैसा ही हाल है। सुस्थ और बलवान् व्यक्तिके शरीरको यथानियम चलानेसे क्रम-क्रम उसके क्षयमें कितने ही दिन लग जाते हैं। यही कालमृत्यु कहलाती है। दूसरे गाड़ी अधिक बोझ भरने, ऊंचे-नीचे पथमें चलाने, पहिया टूटने, वाह्यवाहकका दोष होने, पहियेका कीला उखड़ने, धुरीमें तेल न देने या अधिक पथ चलनेपर नियमित कालसे पहले ही जैसे बिगड़ जाती, परमायुकी भी वैसी ही बात है। बलके अतिरिक्त काम करने, अयथा आग तापने, अति भोजन पाने, अधिक मैथुन मचाने, मलमूत्रादिका वेग रोकने, कष्टसाध्य व्यायामादि बढ़ाने, शरीरमें आघात लगने, असत् संश्रय साधने, भूत और विषम वायु एवं अग्निका उपघात उठने और आहारका प्रतीकार पठानेपर नियमित कालसे पहले ही मृत्यु आ जाती है। इसे अकाल मृत्यु कहते हैं।'

अनार (फ़ा० पु०) दाड़िम। (Punica granatum) इसके संस्कृतमें निम्नलिखित पर्याय हैं,—करकः, पिण्डपुष्प, दाडिम्ब, पर्वरुट्, स्वाद्वम्ल, पिण्डीर, शूक-वल्लभ इत्यादि। इसको बंगलामें—डालिम्, मराठीमें—दाड़िम, कनाडीमें—दाड़िम्ब, तेलंगीमें—डानिम्मचेट्टु, उत्कलमें—दालिम्ब, तामिलमें—मादल इचेहेड्डि और गुजराती भाषामें डालम कहते हैं। यह एक छोटा वृक्ष है, जो ईरान, कुर्दस्तान, अफ़गानिस्तान और बलूचिस्तानकी पथरीली ज़मीनमें जङ्गली तौरसे पैदा होता और भारतवर्षमें सब जगह लगाया जाता है। इसकी उंचाई कोई पांच छः गज़ रहती और टहनीमें बारीक कांटा होता है। पुष्प रक्त लगता और फलके ऊपर कड़ा बकला रहता है। फलसे रसीले लाल या सफ़ेद दाने निकलते, जो खानेमें मीठे या खटमिट्ठे मालूम पड़ते हैं। ग्रीष्म-ऋतुमें लोग अनारका शर्बत बनाते, जो पीनेमें अत्यन्त

मधुर लगता और हृदयको शीतल कर बल बढ़ाता है।

अनारके ३ भेद होते हैं :—(१) स्वादु, (२) स्वादु एवं अम्ल, और (३) केवल अम्ल। इन तीनोंके गुण भावप्रकाशमें इस प्रकार बतलाए गए हैं :—

१—स्वादु (मीठा) :—तीनो दोष हरता, तृष्णा, दाह, ज्वरको दूर करता, हृदय, कण्ठ और मुखकी दुर्गन्धको निकालता; फिर वीर्यवर्धक, लघु, किञ्चित्कषाय रसयुक्त, ग्राही, स्निग्ध, मेधा तथा बलको बढ़ानेवाला है।

२—स्वादु एवं अम्ल अर्थात् खटमिट्ठा :—जठराग्नि को दीप्त करनेवाला होता है।

३—अम्ल (खट्टा) :—पित्तको पैदा, वात और कफको दूर करनेवाला है। इसकी जड़ क्रमियोंको नष्ट करती है।

अनारका फूल भारतवर्षके विभिन्न स्थानोंमें कपड़े-पर लाल रङ्ग चढ़ानेके काम आता है। किन्तु रङ्ग टिकता नहीं, कच्चा होनेसे जल्द उड़ जाता है। इसका कसैला बकला रङ्ग चढ़ानेको क़ीमती सामान है, जो हलदी या नीलके रङ्गमें भी पड़ता है। अकेला बकला कपड़ेपर हरा-जैसा रङ्ग लाता, जिसे लोग युक्तप्रदेशमें काकरेज़ी कहते हैं। जब बकला रङ्ग चढ़ानेके काम आता, तब उसे पानीमें डाल खूब उबालते और चौथाई पानी बच जानेपर भट्टीसे उतारते हैं। इसके बाद कपड़ेको उस खिंचे हुये काढ़ेमें डुबा देते हैं। यद्यपि बकला कपड़ा रंगनेके काम आता, तथापि चमड़ेपर उसका रङ्ग बहुत अच्छा चढ़ता है। टञ्जीयरका मोरोक्को नामक चमड़ा इससे अधिक सिझाया जाता है। युक्तप्रदेशके जङ्गलसे अनारका कितना ही बकला विलायत भेजते हैं।

अनार बहुत पुराने समयसे अपने स्वाद और गुणके लिये प्रसिद्ध है। इसका ताज़ा रस ठण्डाईका असली मसाला है और अजीर्णके औषधमें भी डाला जाता है, इसकी जड़को केंचुयेकी अक्सीर दवा समझते थे। इसका रस बलवर्धक, गोंद सुपुष्ट, कली-फूल खून रोकने और ज़ख़्म भरनेवाला होता है।

अनारका क़लम भी लगाते हैं। साल-साल खाद डालनेसे फल अच्छा निकलता है।

२ आतिशबाज़ी। अनार-जैसे मट्टीके एक गोलेमें लोहेका बुरादा और बारूद भर ऊपर काग़ज़से मुंह बन्द कर देते हैं। जैसे ही मुंहपर आग लगाते, वैसे ही चिनगारियां पेड़की शक्लमें फूट पड़ती और चारो ओर फूल-जैसे झड़ने लगते हैं।

अनारत (सं० क्ली०) आ-रम्-क्त-आरतं विरतिः, अत्यन्ताभावे नञ्-तत्। १ सतत, अविरत, अनवरत। (त्रि०) बहुव्री०। २ अनवरतयुक्त, मुदामी; जो सदा बना रहे। (अव्य०) ३ सदा, हमेशा।

अनारदाना (फ़ा० पु०) अम्ल दाड़िमका बीज, खट्टे अनारका दाना। इसे लोग सुखाकर अपने पास रखते हैं।

अनारभ्य (सं० अव्य०) आ-रभ्-ल्यप्, आरभ्य। १ विना आरम्भ, शुरू न करके। (त्रि०) नञ्-तत्। २ आरम्भ होनेके अयोग्य, शुरू करनेके नाक़ाबिल।

अनारभ्यत्व (सं० क्ली०) आरम्भ होनेकी असम्भवता, शुरू करनेका महाल; हालत जिसमें कोई काम शुरू करना मुमकिन न हो।

अनारभ्याधीत (सं० त्रि०) न आरभ्य किञ्चिद् अधीतम्। पृथक् विषयकी भांति पढ़ा गया, जो अलग करके पढ़ा हुवा हो। इसका उल्लेख वर्तमान है, कि वैदिक कार्यमें वेदके कोई-कोई मन्त्र किसी कर्ममें विनियोग पाते हैं। किन्तु अनेक स्थलमें फिर विनियोगको कोई बात नहीं लिखी। उस स्थलमें मन्त्रका अनारभ्य अर्थात् किञ्चित् अनधिकृत्य अधीत कहाता है।

अनारम्भ (सं० पु०) न आरम्भः, अभावार्थे नञ्-तत्। आरम्भका अभाव, अनुष्ठानका न ठनना; आग़ाज़की नामौजूदगी, शुरूका न होना। (त्रि०) २ आरम्भ-रहित, बेआग़ाज़, जिसका शुरू न रहे।

अनारम्भण (वै० त्रि०) १ असहाय, बेसहारा। २ अस्पृश्य, ग़ैर-महसूस; छूने या टटोलनेसे मालूम न होनेवाला।

अनारी (हिं० वि०) १ अनारका, अनार-जैसे रङ्गवाला। २ मूर्ख, बेवक़ूफ़। (पु०) ३ क़पोत

विशेष, लाल आंखका कबूतर। ४ मिष्टान्न विशेष, एक पकवान। यह एक तरहका तिकोना है, जिसमें मीठी या नमकीन चीजें भरते हैं।

अनारुह्य (सं० अव्य०) आरोहण न करके, विना चढ़े।

अनारोग्य (सं० क्लो०) न आरोग्यम्, नञ्-तत्। १ आरोग्यका अभाव, तन्दुरुस्तीका न रहना। (त्रि०) नास्ति आरोग्यं यस्मात्, ५-बहुव्री०। २ आरोगग्र न रखनेवाला, पीड़ादायक; जो तन्दुरुस्तीमें खलल डाले।

अनार्जव (सं० पु०) ऋजोर्भावः आर्जवं सरलता स्वाच्छन्द्यं वा; न आर्जवम्, अभावार्थे नञ्-तत्। १ आर्जव, सरलता या स्वाच्छन्द्यका अभाव; सिधाई-का न होना। २ रोग, आज़ार। (त्रि०) नास्ति आर्जवं यस्य, अभावार्थे अव्ययी०। ३ कुटिल, टेढ़ा। ४ नीरोग, बीमारीसे बयीद।

अनार्तव (सं० त्रि०) ऋतुः स्त्री-कुसुमं तस्य भावः, ऋतु-अण्; नञ्-तत्। ऋतोरण्। पा ५।१।१०५। १ अनुत्पन्न रजः, रजोबद्ध; जिस स्त्रीको महीना न होता हो। २ बेफ़स्ल, ऋतुरहित; जो मौसमके मुवाफ़िक़ न हो।

अनार्तव (Amenorrhœa) पीड़ा तीन प्रकारकी होती है। प्रथम—एककालसे ऋतुका अभाव, द्वितीय—भीतर निःसृत होते भी बाहर रजःका प्रकाश न पाना, और तृतीय—ऋतु निकल पीछे बन्द हो जाना। स्त्रीका यौवन-काल आनेपर जरायुसे रजोनिःसरण होने लगता है। इसे ही हम ऋतु कहते हैं। यह ऋतु प्रत्येक चन्द्रमासमें अर्थात् २८-२९ दिन बाद प्रकाश पाता है। हमारे इस उष्णप्रधान देशमें तेरह वर्षके वयःक्रमसे सोलह वर्षके वयस पर्यन्त स्वाभाविक ऋतुका काल रहता है। किन्तु सचराचर कोई चौदह-पन्द्रह वर्षके वयसमें ही ऋतु आने लगता है। दूसरे किसी-किसीका रजः नौ-दश वर्षमें ही प्रकाश पाते देखते हैं। शीतप्रधान देशमें कुछ विलम्बसे ऋतु जारी होता है। किन्तु फिर भी चौदह और सोलह वर्षके भीतर ही अनेकका रजः निकलने लगता है। इस देशमें बालिकाका दश-बारह वर्षपर रजः निकलता है। कभी-कभी किसीका बीस-बाईस वर्षमें भी ऋतु लगता है। किन्तु अनेकको जन्मावच्छिन्न ऋतु नहीं होता। ऐसी अवस्थामें जन्मावधि जननेन्द्रियमें कोई न कोई दोष रह सकता है। सम्भव है, कि अण्डाधार एकबारगी ही गुम हो गया हो। किसीका तो नितान्त क्षुद्र अण्डाधार होता है और ग्राफियान भेसिकिलका (graafian vesicles) चिह्नमात्र भी नहीं रहता। दूसरे, अनेक स्त्रियोंके अण्डाधार और ग्राफ़ियान भेसिकिल दोनो होते हैं, किन्तु जरायु नितान्त क्षुद्र या बिलकुल नहीं भी रहता।

द्वितीय प्रकारके अनार्तव रोगमें रजः भीतर निकलता है, किन्तु जरायुका मुख बन्द रहनेसे बाहर नहीं जा सकता। ऐसी अवस्थामें ठीक अन्तःसत्त्वाकी तरह जरायु बढ़ा करता है। उस समय यह मीमांसा करना कठिन है, कि यथार्थ गर्भावस्था या पीड़ाके कारण उदर बढ़ रहा है। क्योंकि क्षत रहनेसे गर्भावस्थामें भी जरायुका मुंह जुड़ कर बन्द हो सकता है। यदि यथार्थ ही भीतर रक्त निकला करता, तो उसे बाहर लाना आवश्यक है। जरायुका मुख सामान्य पतले चर्मसे बन्द हो जानेपर बिष्टोरी किंवा साउण्ड शलाका द्वारा छेदकर सहजमें रक्त बाहर निकाल सकते हैं। किन्तु जरायुका मुख कठिन चर्मसे बन्द होनेपर ट्रोकार द्वारा छेदकर रक्त निकाल डालना चाहिये। उसके बाद बूजी या स्पञ्जटेण्टका व्यवहार बढ़ानेसे फिर जरायुका मुख बन्द न होगा।

तृतीय प्रकारका अनावर्त रोग ही अधिक देख पड़ता; यौवनकाल झलकनेसे पहले एकबार ऋतु लगता है, उसके बाद फिर रजः देखनेमें नहीं आता। किसी-किसीको दो-तीन मास किंवा यथा-नियम दो-तीन वर्ष पर्यन्त ठीक मास मास ऋतु होता, पीछे हठात् रजः बन्द हो जाता है। अत्यन्त मनस्ताप, स्नायुके आघात, कासरोग, दुर्बलता, अतिशय शीतल द्रव्य-व्यवहार प्रभृति अनेक प्रकारके कारणोंसे यह उपसर्ग उठता है। वृक्क (kidney) या गुर्देकी पीड़ासे भी रजोरोध हो सकता है।

अनार्तव रोगकी चिकित्सा करनेके लिये पहिले उसका सच्चा कारण जानना आवश्यक है। कारणको हटा न सकनेसे पीड़ा शान्त होनेकी आशा कहां रखी है! यद्यपि जन्मावधि जननेन्द्रियमें कोई न कोई दोष रहता है, फिर भी एकबारगी ही रोगकी शान्ति करना मनुष्यका काम नहीं होता। किन्तु इस प्रकारकी अवस्थामें स्त्रीको जो सकल यन्त्रणा उठाना पड़ती, उसका निवारण निकाल सकते हैं। डाक्टर टेनरने एक स्त्रीका विषय लिखा है। उसे तीस वर्ष वयःक्रम पर्यन्त एकबार भी ऋतु न लगा, मध्य-मध्यमें रजोनिःसरणका उद्वेग उठा, किन्तु रक्त बाहर न निकला था। उस उद्वेगके समय पेड़ूमें अत्यन्त भार पड़ता और असह्य यन्त्रणा उठ खड़ी होती है। निद्राकर औषध खिलानेसे वेदनाका उपशम नहीं उठता और न रात्रिके मध्यमें एक बार भी काकनिद्रा लगती। अनार्तवमें इस प्रकारकी यन्त्रणा उठनेपर वस्तिदेशको दोनो ओर गर्म जलका सेक दिलाये और अण्डाधारपर जोंक चिपकाये। गर्म जलसे हौज भर रोगिणीको मध्य-मध्य उसमें बैठने कहे। खानेकी औषधमें अफीम या मरफिया ही सबसे श्रेष्ठ है। कपूरके साथ चौथायी ग्रेनकी मात्रामें परिष्कृत अफीमका सार सोते समय खिलाना चाहिये।

जननेन्द्रियकी बनावटका दोष न दौड़नेसे रोगका प्रतीकार पड़ सकता है। रोगिणीको सबल रहनेसे मध्य-मध्य गर्म जलमें बैठाये। उसके सिवा पित्त-निःसारक और विरेचक औषध ही श्रेष्ठ है। सोनामाखी, गाम्बोज, पडोफिलिन् टाराचेकम्, मुसब्बर प्रभृति औषधका सेवन साधनेसे विशेष फल देख पड़ता है। हीराकश एक रत्ती और मिल्-एलोपेट मार डेढ़ रत्ती एकत्र मिला एक गोली बांधे। यह गोली प्रत्यह तीन बार खिलाये। फेरि रिडिक्-टायी पन्द्रह रत्ती, पिल एलोपेट मार सोलह रत्ती और कुचलेका सार दो रत्ती एकत्र मिलाकर बारह गोली बनाये। ऐसी ही तीन गोली प्रत्यह खिलाना चाहिये। चिकित्साके समय रोगिणी जिससे सबल रहे, वैसा ही पुष्टिकर और बलाधान द्रव्य खिलाया करते हैं। अनार्तव रोगके साथ क्षय, कास प्रभृति अन्य कोई पीड़ा वर्तमान रहनेसे उसका प्रतीकार पहुंचानेकी चेष्टा चलाना चाहिये।

अनार्तवजल (सं० क्ली०) पौषादिमासचतुष्टयमें पड़ा वृष्टिका जल, पूस वगैरह चार महीनेमें हुवा बारिश-का पानी। यह वातादि दोषको जगा देता है,—

"अनार्तवं प्रमुञ्चन्ति वारि वारिधरास्तु यत्।
तत्त्रिदोषाय सर्वेषां देहिनां परिकीर्तितम्॥"
(भावप्रकाश पू० वारिव०)

'बादलसे जो माहुट होती, वह सब लोगोंमें त्रि-दोष उत्पन्न कर देती है।'

अनार्तवा (सं० स्त्री०) १ रजःशून्या, जिस औरतको महीना न होता हो। २ योनिपीड़ाविशेष, योनिकी एक बीमारी। अनार्तव देखो।

अनार्त्विजीन (सं० त्रि०) पुरोहित होनेके अयोग्य, काज़ी बननेके नाक़ाबिल।

अनार्य (सं० त्रि०) न आर्यः, नञ्-तत्। आर्य नहीं, असत्कुल-जात, अप्रधान, असाधु, अभद्र, असच्चरित्र; बड़ा नहीं, कमीना, हकीर, बदमाश, नङ्गा, बिगड़ैल। प्राकृत-भाषामें अनार्यकी जगह "अणज्ज" लिखते हैं,—

"तहवि तेन रराणा सउन्दलाए अणज्जं आचरिदं।" (शकुन्तला)
तथापि तेन राज्ञा शकुन्तलायां अनार्यं आचरितम्॥

नास्ति आर्यो यत्र, ७-बहुव्री०। २ आर्यवास-विहीन देश, जहां आर्य न रहते हों।

युरोपीय पण्डितने भाषातत्त्वका अनुशीलन अड़ा स्थिर किया है, पहले आर्यका वासस्थान भारतवर्षमें नहीं रहा। यह बलूचिस्तानके निकटवर्ती आइदिया प्रभृति अञ्चलमें रहते थे। सिवा इसी आर्यावर्तके अन्य स्थानको अनार्य देश कहते हैं। इसीतरह आर्य-जातिको छोड़, शबर, पुलिन्द प्रभृति समस्त नीच जातिका नाम अनार्य रखा गया है। मनुसंहितामें लिखते हैं,—

"आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः॥"

'पूर्वमें पूर्वसमुद्र, पश्चिममें पश्चिमसमुद्र, दक्षिणमें

विन्ध्यगिरि और उत्तरमें हिमालय—इसके मध्यवर्ती स्थानको पण्डित आर्यावर्त कहते हैं।'

कुल्लूकभट्टने आर्यावर्तकी इसतरह व्युत्पत्ति बतायी है,—'आर्य अत्रावर्तन्ते पुनःपुनरुद्भवन्तीत्यार्यावर्तः।' आर्य इस स्थानमें पुनःपुनः उत्पन्न होते, जिससे यहांका नाम आर्यावर्त पड़ा है। अमरसिंहने यों लिखा है,—"आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः।" निरुक्तके भी एक स्थानमें आर्यजनपदका विषय बताया गया है।

यह नहीं कह सकते, कि यास्कने इस आर्य शब्दसे आर्यावर्तका निर्देश निकाला था या नहीं। जो हो, पहले आर्य जहां बसते, उसे छोड़ दूसरा स्थान अनार्य देश कहाता था। इसका विस्तारित विवरण आर्य शब्दमें देखो। वर्तमान भारतवासी कोल, साँओताल प्रभृति वन्य जातियोंको अनार्य बताते हैं।

अनार्यक (सं० क्ली०) अनार्य-कन्, आर्यो न वसति यत्र तत्रार्यवर्जिते देशान्तरे भवः। अगुरु काष्ठ, मुसब्बर, जद। अगुरु वृक्ष सिलहट और अराकान प्रभृति अञ्चलमें जन्मता है। मनुसंहितामें जो सीमा सजायी गयी, उसे देखकर विचारनेसे श्रीहट्ट आर्यावर्तके भीतर जा पड़ता है। अतएव इसके द्वारा अराकान प्रभृति देश समझे जाते और वहां जो अगुरु लकड़ी होती, उसीको अनार्यक कहते हैं।

अनार्यकर्मिन् (सं० पु०) अनार्यका कर्म करनेवाला व्यक्ति, जो शख्स कमीनेका काम करे।

अनार्यज (सं० क्ली०) अनार्यदेशे जायते, जन-ड। १ अनार्यदेशजात अगुरु काष्ठ, कमीने मुल्कमें पैदा हुई मुसब्बरकी लकड़ी, जद। (त्रि०) २ अनार्य-देश जात, कमीने मुल्कमें पैदा हुवा।

अनार्यजुष्ट (सं० त्रि०) अनार्य द्वारा अध्युषित, साधित अथवा अधिकृत, कमीनेसे मिलाया, साधा या लिया गया।

अनार्यता (सं० स्त्री०) अनार्य होनेका भाव, कमीनापन।

अनार्यतिक्त, अनार्यतिक्तक (सं० पु०) अनार्यदेशे जातस्तिक्तः। भूनिम्ब, चिरायता। (Gentiana cherayta, Rox.) दार्जिलिङ्ग प्रभृति हिमालयके नाना स्थानमें चिरायतेका पेड़ जङ्गली तौरपर पैदा होता है। लेप्‌चा प्रभृति पार्वतीय जाति अनार्य कहाती थी, इसी कारण उसके देशका नाम अनार्यदेश रखा गया। उसी अनार्यदेशका तिक्त वृक्ष चिरायता है। चिरायतेका दूसरा नाम 'किरात-तिक्त' भी होता, जिसका मतलब पर्वतको अनार्य किरात जातिके देशमें पैदा होनेवाला तिक्त वृक्ष है। चिरायता देखो।

अनार्यत्व (सं० क्ली०) अनार्यता देखो।

अनार्ष, अनार्षेय (सं० त्रि०) ऋषिसेवितत्वात् ऋषिः वेदः तदोक्त आर्षस्तद्भिन्नं। अवैदिक, वेदका अव्यवहृत; वेद या ऋषिसे सम्बन्ध न रखनेवाला।

अनालम्ब (सं० त्रि०) निराश्रित, बेसहारा; जिसे कोई टेक न मिले। (पु०) २ निराश्रयता, सहारेका न सधना।

अनालम्बन (सं० त्रि०) आश्रयशून्य, बेसहारा।

अनालम्बी (सं० स्त्री०) शिवकी वीणा, महादेवका तम्बूर।

अनालम्बुका, अनालम्भुका (सं० स्त्री०) मासिक धर्मसे सम्पन्न स्त्री, जो स्त्री कपड़ोंसे हो।

अनालाप (सं० त्रि०) १ मौनावलम्बी; मुंहचुप्पा; ज्यादा बात न करनेवाला। (पु०) २ मौनावलम्बन; कमगोयी; कम बोलनेकी हालत।

अनालोचित (सं० त्रि०) न आलोचितम्। १ अविवेचित, बेसमझा। २ अदृष्ट, बेदेखा।

अनालोच्य (सं०अव्य०) अविवेचनासे; बेसमझे, बेदेखेभाले।

अनालोडित (सं० त्रि०)) न आलोड़ितम्। अनान्दोलित, अविवेचित; न समझा गया, जिसकी देख-भाल न चली हो।

अनावया (वै० त्रि०) कठोर; सख्‌त; न देनेवाला, हाथ न उठाते हुवा।

अनावर्ति (सं० स्त्री०) पुनरागमनविहीनता; ग़ैर-वापसी; पीछेका न लौटना। इस शब्दका तात्पर्य इहलोकसे जाकर फिर न फिरना अर्थात् मुक्ति पाना है।

अनावर्षण (सं० क्ली०) वृष्टिका अभाव, पानीका न बरसना; दुर्भिक्ष, कहत।

अनावश्यक (सं० त्रि०) आवश्यकतारहित, जिसकी कोई ज़रूरत न रहे।

अनावश्यकता (सं० स्त्री०) आवश्यकताराहित्य, ज़रूरतका न पड़ना।

अनाविद्ध (सं० त्रि०) अनाहत; बेज़ख़्म; चोट न खाये हुवा।

अनाविल (सं० त्रि०) न आविलम्। १ परिष्कार, स्वच्छ, मलिनताशून्य, कलुषतारहित; साफ़, सुथरा।

अनाविष्ट (सं० त्रि०) न आविष्टम्। अमनोयोगी; दिल न लगानेवाला।

अनावृत् (वै० त्रि०) पुनरागमनरहित, वापस न आनेवाला।

अनावृत (सं० त्रि०) न ढंका हुवा, खुला।

अनावृत्त (सं० त्रि०) न आवृत्तं अभ्यस्तम्। १ घूमकर फिर न आनेवाला, जो जाकर वापस न हो। २ पीछे न हटते हुवा। ३ यातायात न करनेवाला, जो आमदरफ्त न रखे। ४ पसन्द न किया गया।

अनावृत्ति (सं० स्त्री०) न आवृत्तिः पुनरागमनम्। १ पुनर्वार के आगमनकी शून्यता, गैरवापसी। २ मुक्ति, निर्वाण। ३ अभ्यासका अभाव, महावरेका न मंजना।

अनावृष्टि (सं० स्त्री०) न आवृष्टिः सम्यग्वृष्टिः। वृष्टिका अभाव, पानीका न पड़ना; सूखा। यह शस्यहानिका प्रधान कारण है। छः ईतियोंमें अनावृष्टि भी शामिल है। अतिवृष्टि देखो।

पहले हिन्दू अनावृष्टिके समय भोजपत्रपर रक्तचन्दनसे ऐसे एक सौ आठ स्थानके नाम लिखते, जिसका आद्यक्षर 'क' रहता था—जैसे काशी, काञ्ची, कलकत्ता, कनौज इत्यादि। किन्तु जिस स्थानके अन्तमें 'पुर' या ग्राम शब्द होता, (जैसे कल्याणपुर, कुलग्राम इत्यादि) उसका नाम छोड़ देते थे। पीछे उसी भोजपत्रको कटोरीमें डाल जलमें डुबाकर रखनेसे उन्हें वृष्टिहोनेका निश्चय हो जाता था। सिवा इसके अनावृष्टिको निवारण करनेके लिये दैवक्रिया भी अनेक थीं। ब्राह्मण ग्रामके शिवको जलमें डुबा देते, होम और याग भी किया करते थे। आदिशूरने जो कई बार यज्ञानुष्ठान किया, उसमें कदाचित् अनावृष्टिके निवारणार्थ भी एक यज्ञ रचा गया था। कितने ही वर्ष हुए, जब पञ्जाबमें अतिशय अनावृष्टि रही, तब पञ्जाबके ब्राह्मणोंने यह श्लोक पताका पर लिख झण्डा उड़ाया था,—

"भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविष्याम्ययोनिजा॥" (चण्डी)

पूर्वापेक्षा अब भारतवर्षमें वर्षा बहुत कम होती है। युरोपीय बताते हैं, कि क्रमसे इस देशका जङ्गल परिष्कार हो रहा, जो अनावृष्टिका प्रधान कारण है; बड़े-बड़े पेड़ न रहनेपर अच्छीतरह पानी नहीं पड़ता।

अनावेदित (सं० त्रि०) आवेदनविहीन; गैरमुश्तहिर, ज़ाहिर न किया गया।

अनाव्याध (वै० त्रि०) जिसका टूटना या खुल जाना असम्भव हो, किसीतरह न टूटने या न खुलनेवाला।

अनाव्रस्क (सं० पु०) १ अनाहत दशा, नुकसान न पहुंचनेकी हालत। (त्रि०) २ हानि न पहुंचानेवाला, जो नुकसान न करे।

अनाश (सं० त्रि०) १ आशाशून्य; नाउम्मेद। भरोसा न रखनेवाला। २ नाशशून्य; लाज़वाल; न मिटनेवाला, जीता-जागता।

अनाशक (सं० पु०) नश-ण्वुल्—नाशकः, न नाशकः, नञ्-तत्। अथवा न आ सम्यक् अश-घञ्-आशः; अशनं कप्, नञ्-बहुव्री०। १ अनश्वर, फलकामनाशून्य; उम्मीदसे खाली बात। २ उपवास।

अनाशकनिवृत्त (सं० पु०) उपवासका अभ्यास छोड़नेवाला व्यक्ति, जो शख़्श फ़ाक़ाकशीकी आदत छोड़ दे।

अनाशकायन (सं० क्ली०) न नश्यति अनाशक आत्मा तस्यायनं प्राप्त्युपायः। आत्मज्ञान-साधन ब्रह्मचर्य-विशेष, जो उपवास करनेसे बनता है।

अनाशस्त (सं० त्रि०) न आशस्तम्। १ अस्तुत,

तारीफ़ न किया गया। २ वश्यताविहीन, क़ाबूमें न आनेवाला। ३ अनाशान्वित, नाउम्मीद।

अनाशिन् (सं० त्रि०) न नश्यति, णश-णिनि; कर्मफलमश्नुते अश-णिनि इति वा। १ अविनश्वर, लाज़वाल, न मिटनेवाला। २ कर्मफल भोगसे रहित, जो किए हुए कर्मका फल भोग न करे।

अनाशीर्दा (सं० पु०) १ आशीर्वाद न देनेवाला, जो दूसरेको मुबारकबाद न दे। २ अकृतज्ञ व्यक्ति; एहसानफ़रामोश शख्स।

अनाशु (सं० त्रि०) णश-उण्, अश व्याप्तौ-उण् वा; नञ्-तत्। १ विनाशशून्य; लाज़वाल; मिटाया न जा सकनेवाला। २ अव्याप्त, न समाया हुवा।

"धन्वच्चिये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः।" (ऋक् १।१३५।९)

न आशुः शीघ्रः। ३ विलम्ब, चिप्रभिन्न, तेज नहीं, सुस्त।

अनाश्रमवास (सं० पु०) १ आश्रमसे सम्बन्ध न रखनेवाला व्यक्ति, जो शख्स आश्रममें न बसता हो। २ आश्रममें न रहना, आश्रमके रहनेको छोड़ देना।

अनाश्रमिन् (सं० त्रि०) न आश्रमी, नञ्-तत्। गृहाश्रमशून्य, चार आश्रममें किसीसे सम्बन्ध न रखनेवाला।

अनाश्रमी, अनाश्रमिन् देखो।

अनाश्रमेवास, अनाश्रमवास देखो।

अनाश्रय (सं० त्रि०) नास्ति आश्रयो यस्य। १ आश्रयशून्य, अशरण; बेचारा, बेपनाह; सहारा न रखनेवाला। (पु०) २ आश्रयराहित्य, बेपनाही, सहारेका न रहना।

अनाश्रित (सं० त्रि०) १ सम्बन्धविहीन, बिलाताल्लुक, बेमेल। २ आश्रयसे पृथक् किया गया, पनाहसे छूटा हुवा, जिसे सहारा न रहा हो। ३ स्वतन्त्र, आज़ाद, जो किसीके अधिकारमें रहता न हो।

अनाश्वस् (सं० त्रि०) नञ् पूर्वात् अश्नातेः क्कसुरिडभावश्च निपात्यते। भोगशून्य, न खाये हुवा, उपवास या फ़ाक़ा करनेवाला।

अनाश्वास (सं० पु०) अभावार्थे नञ्-तत्। विश्वास अथवा आस्थाका अभाव, ऐतबार या तस्कीनकी नामौजूदगी, भरोसेका न रहना।

अनाष्ट्र (सं० त्रि०) भय अथवा भयावह शत्रुसे रहित, ख़ौफ़ या ख़ौफ़नाक दुश्मनसे आज़ाद।

अनास् (सं० त्रि०) अस्यते निरास्यते ष्ठीवनमनेन आ-अस क्षेपे-क्विप्; आः मुखं नास्ति तत् साधनत्वेनास्य। आस्यरहित, विना मुख; लक्षण द्वारा बात न कर सकनेवाला, जो वक्तके मुताबिक़ न बोल सके।

"अनासीदस्यूंरमृणः।" (ऋक् ५।२९।१०)

कोई-कोई लोग अनुमान करते हैं, कि इस अनास् शब्दसे अनार्यजातिका मतलब निकलता है। आर्य अनार्यजातिकी बात न समझ सकते, इसीसे उन्हें अनास् कहते थे। चीन और प्राच्य-भारतवासी मंगोलिया जातिकी नाक बहुत चपटी होने और वैदिक आर्य लोगोंके साथ उसके दस्युता करनेसे ही वेदमें वह चपटी-नाकवाली अनास् शब्दसे कही गयी है। यहांकी अनार्य जाति साधारणतः नकटी होती थी। इसीसे अनेक अनुमान करते हैं, कि वेदमें अनास् शब्दका अर्थ नकटा रखा गया है।

अनास (वै० त्रि०) नासाशून्य; नकटा, नाक न रखनेवाला। यह शब्द दस्यु और राक्षसके लिये व्यवहृत होता था।

अनासती (हिं० स्त्री०) अशुभ घटिका, बुरी घड़ी।

अनासन्न (सं० त्रि०) न आसन्नम्। असन्निहित, दूरस्थ; नज़दीक नहीं, दूर दराज़; जो पास न हो।

अनासादित (सं० त्रि०) १ न मिला हुवा, न पाया गया, जिसपर आक्रमण न पड़ा हो। २ न हुवा, न गुज़रा, न रहनेवाला।

अनासादितविग्रह (सं० त्रि०) युद्धमें अनभ्यस्त; जङ्गका महावरा न रखनेवाला, जिसे लड़ाई करनेकी आदत न हो।

अनासिक (सं० त्रि०) नास्ति नासिका यस्य। १ नक्कू, विकृत नाकवाला। २ नासिकाशून्य, नकटा, जिसकी नाक कट गयी हो।

अनास्था (सं० त्रि०) नास्ति आस्था यस्य। १ आदररहित, बेइज़्ज़त, जिसका कोई सम्मान न

करे। (स्त्री०) अभावार्थे नञ्-तत्। २ अनादर, अपमान, बेइज़्ज़ती, सम्मानका न मिलना। ३ आस्थाका अभाव, तस्कीनका न रहना। ४ विचारका अभाव, बेख़याली, ध्यानका न जमना। ५ भक्तिविहीनता, नावफ़ादारी। ६ निश्चेष्टता, बेफ़िक्री।

अनास्थान (सं० त्रि०) आस्थीयते ऽस्मिन् आ-स्था-आधारे ल्युट्, आस्थानो भूप्रदेशः, न आस्थानः, नञ्-तत्। १ भूप्रदेशभिन्न, बेजगह, बेठिकाना, जहां कोई बंधी बैठक न हो। २ आधार न बनानेवाला, जो बुनियाद न बांधे।

अनास्राव (सं० त्रि०) आ-स्रु-ण आस्रावः, नास्ति आस्रावः क्लेशो यस्य यत्र वा। क्लेशरहित, तकलीफ़से बरी, दुःख न उठानेवाला।

अनास्वाद (सं० पु०) १ स्वादका अभाव, ज़ायकेका न जमना, फीकापन। (त्रि०) २ स्वादशून्य, बेज़ायका, जिसके खानेमें मज़ा न मिले।

अनास्वादित (सं० त्रि०) स्वाद न लिया गया; जिसका ज़ायका किसीने न चखा हो।

अनाह, आनाह (सं० पु०) नह-घञ्, नञ्-तत्। विण्मूत्ररोधक व्याधिविशेष; पाख़ाना-पेशाब रोकनेवाला ख़ास आज़ार; अफ़रा।

> "आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विबद्धं विगुणानिलेन।
> प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति॥" (माधव निदान)

आंव या पाख़ानेके क्रमसे इकट्ठा हो, कुपित वायुसे बंध जाने पर पेट फूलनेको आनाह कहते हैं।

अनाहक, अनहक (हिं०-क्रि० वि०) १ अधर्मपर, बेईमानीमें। २ विना लाभ, बेफ़ायदे। ३ भ्रमसे, झूठ-मूठ।

अनाहत (सं० क्ली०) आ-हन-भावे क्त, आहतं छेदो भोगो वा; नास्ति आहतं यत्र, नञ्-बहुव्री०। १ नूतन वस्त्र, नया कपड़ा। कभी न पहने या धोये गये कोरे कपड़ेको अनाहत कहते हैं। अमरकोषमें लिखा है,—"अनाहतं निष्प्रवाणि तन्त्रकञ्च नवाम्बरम्।" कात्यायनका मत यह था,—

> "ईषद्धौतं नवं शुक्लं सदशं यन्नधारितम्।
> आहतं तद्विजानीयाद्दैवे पैत्रे च कर्मणि॥"

'सूक्ष्म, चिक्कण, धौत, नूतन, कोरे और कभी न पहने गये कपड़ेको आहत वस्त्र कहते हैं। वह दैव और पितृकर्ममें प्रशस्त होता है।'

२ तन्त्रसारोक्त सुषुम्ना-नाड़ीमध्यस्थित हृदयका पद्म या चक्र। इस पद्ममें बारह दल होते हैं। षट्-चक्रनिरूपणमें लिखा है,—

> "तस्योर्द्ध्वे हृदि पङ्कजं सुललितं बन्धूककान्त्युज्ज्वलं
> कादि द्वादशवर्णकैरुपहितं सिन्दूररागाञ्चितैः।
> नाम्नानाहतसंज्ञकं सुरतरुं वाञ्छातिरिक्तप्रदं
> वायोर्मण्डलमत्र धूमसदृशं षट्कोणशोभान्वितम्॥"

'उसके ऊर्ध्वभागमें (नाभिके ऊपर) हृदयके मध्य बन्धूकपुष्पवत् उज्ज्वलकान्तियुक्त, ककारादिसे ठकार पर्यन्त बारह वर्णमें शोभित, सिन्दूर-जैसा रक्तवर्ण और सुललित पद्म विद्यमान है। उसका नाम है—अनाहत। वह कल्पतरुकी तरह वाञ्छातिरिक्त फल देता है। उसका वायुमण्डल धूम्रवर्ण और षट्कोणविशिष्ट है।'—

> "तन्मध्ये पवनाक्षरञ्च मधुरं धूमावलीधूसरं
> ध्यायेत् पाणिचतुष्टयेन लसितं कृष्णाधिरूढं परम्।
> तन्मध्ये करुणानिधानममलं हंसाभमीशाभिधं
> पाणिभ्यामभयं वरञ्च विदधल्लोकत्रयाणामपि॥" (षट्चक्रनिरूपण)

'उसके मध्य यं बीजस्वरूप, माधुर्यविशिष्ट, धूमसमूह जैसे धूसरवर्ण, निर्मल हंसकी तरह शुक्लवर्ण जो ईश नामक महादेव हैं और जो हस्तद्वारा त्रिलोकको अभय और वर दे रहे हैं, उनका मैं ध्यान धरता हूं।'

३ पुनर्वारको उपनिधि, दोबारेकी धरोहर। (त्रि०) ४ अगुणित, बेज़र्ब। ५ अनाघात, बेचोट। ६ नूतन, नया। ७ आघातसे प्रस्तुत न किया गया, जो कुट कर न तैयार हुवा हो।

अनाहतनाद (सं० त्रि०) १ आघातसे न उत्पन्न हुवा शब्द, धक्का लगनेसे न निकली हुई आवाज़। योगी इस नादको दोनो हाथके अंगूठेसे दोनो कानके छेद बन्द कर सुना करते हैं। २ ओँ शब्द।

अनाहदगढ़—पञ्जाबके अन्तर्गत पटियाला राज्यके अपने नामवाली तहसीलका प्रधान नगर।

अनाहदवाणी (हिं० स्त्री०) अनाहत वचन, आपसे

निकली बात। २ आकाशवाणी, आस्मानसे आनेवाली आवाज़।

अनाहार (सं० पु०) न आहारः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ भोजनाभाव, अनशन, उपवास, फ़ाक़ाकशी, खानेका न मिलना। (त्रि०) २ भोजन न पाये हुवा, जिसने खाना न खाया हो।

अनाहारमार्गणा (सं० स्त्री०) जैनियोंका व्रतविशेष।

अनाहारिन् (सं० त्रि०) आहार या भोजन न लेनेवाला, जो खाना न खाये।

अनाहार्य (सं० त्रि०) आहार्यं कृत्रिमं आहरणीयञ्च, नञ्-तत्। १ स्वाभाविक, अकृत्रिम, तबयी, ग़ैर-मसनूबी, असली। २ आहरणीय नहीं, खानेके नाक़ाबिल; जिसे खाना वाजिब न हो।

अनाहिताग्नि (सं० पु०) न आहितः अग्निर्येन। विधिपूर्वक अग्न्याधान न करनेवाला व्यक्ति, निरग्नि ब्राह्मण।

अनाहुति (सं० स्त्री०) १ आहुतिका अभाव, यज्ञका न होना। २ अयोग्य आहुति, खराब यज्ञ।

अनाहूत (सं० त्रि०) न आहूतः। अनिमन्त्रित, अकृताह्वान, न्योता न दिया गया, बेबुलाया।

अनाहूतोपजल्पिन् (सं० पु०) निष्प्रयोजन अभिमान अड़ानेवाला व्यक्ति, जो शख्स बेमतलब फ़ख्र फैलाये, जिस बातको लोग सुनना नहीं चाहते, उसी बातपर बहस बढ़ानेवाला।

अनाहूतोपविष्ट (सं० त्रि०) अनिमन्त्रित व्यक्तिकी तरह उपवेशन किये हुवा, जो बेन्योते आदमीकी तरह बैठा हो।

अनाह्लाद (सं० पु०) १ आह्लादका अभाव, निरानन्द, खुशीका न खुलना, बेचैनी। (त्रि०) २ आह्लादरहित, नाखुश, उदास।

अनाह्लादित (सं० त्रि०) आह्लाद न उठाये हुवा, जो खुश न रहा हो।

अनिःशस्त (सं० त्रि०) अप्रशंसित, निन्द्य; जिसकी तारीफ़ न हुई हो।

अनिकामतस् (सं० अव्य०) विना अभिलाष, क़स्द न करके, स्वयं, खुद-ब-खुद, आप ही आप।

अनिकेत (सं० पु०) नास्ति निकेतो निर्दिष्टवासस्थानं यस्य। १ परिव्राजक, सन्न्यासी, जो फ़क़ीर कहीं घर बनाकर न ठहरे। (त्रि०) २ गृहविहीन, लामकां, बेघर, जिसके घर-द्वार न हो।

अनिच्छिप्तधूर (सं० पु०) बोधिसत्वभेद।

अनिच्छु (सं० क्ली०) कुश, कास। (Saccharum Spontaneum) इक्षु जातीय होते भी ठीक ऊख-जैसा न रहनेसे इसका नाम अनिच्छु पड़ा है।

अनिगीर्ण (सं० त्रि०) न निगीर्णम्। १ अपलाप न लगाया गया, जो छिपाकर न रखा गया हो। २ अनधःकृत, न निगला हुवा।

अनिग्रह (सं० त्रि०) १ निग्रहरहित, अबाध, बेरोक। (पु०) २ निग्रहका अभाव, रोकका न रहना। ३ खण्डनका अभाव, काट-कूटका न होना।

अनिग्रहस्थान (सं० क्ली०) अनिग्रहका स्थान, काट-छांट न फटकारनेकी जगह। यह शब्द वैज्ञानिक और तथ्य विषयका द्योतक है।

अनिङ्ग्य (सं० त्रि०) विभाग न बांटने योग्य, तक़सीम देनेके नाक़ाबिल।

अनिच्छ (सं० त्रि०) १ इच्छारहित, बेख्वाहिश। २ तृप्त, आसूदा।

अनिच्छा (सं० स्त्री०) अभावार्थे नञ्-तत्। इच्छा। पा ३।३।१०१। इच्छाका अभाव, ख्वाहिशका न होना, अनभिलाष, बेपरवाई।

अनिच्छित (सं० त्रि०) इच्छामें न आया हुवा, जिसकी ख्वाहिश न लगी हो।

अनिच्छु (सं० त्रि०) इच्छतीति, इष-उ, निपातनात् षस्य छः। विन्दुरिच्छुः। पा ३।२।१६९। अनिच्छाविशिष्ट, अनाकाङ्क्षी, ख्वाहिश न रखनेवाला, जिसे चाह न हो।

अनिच्छुक, अनिच्छु देखो।

अनिजक (सं० त्रि०) निजका नहीं, जो खास अपना न हो, अन्यका, ग़ैरवाला; पराया।

अनित (हिं० त्रि०) रहित, शून्य, खाली। अनित्य देखो।

अनितभा (वै० स्त्री०) ऋग्वेदोक्त एक नदी। मालूम होता, कि यह पञ्जाबकी कोई नदी है। किन्तु इसका वर्तमान नाम नहीं बता सकते।

"मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत्।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः॥"
(ऋग्वेद ५।५३।९)

अनित्य (सं० त्रि०) नियतं ध्रुवं नित्यं; न नित्यम्, नञ्-तत्। १ अस्थायी, सदा न रहनेवाला; नापायदार, जो हमेशा न रहे। २ अवसरका, मौकेवाला। ३ अनियमित, बेक़ायदा। ४ अदृढ़, ग़ैरमज़बूत। ५ अनिश्चित, बेठिकाना। ६ नश्वर, मिटजानेवाला। ७ विकल्प। (अव्य०) ८ अवसरपर, मौके बमौके; कभी-कभी।

अनित्यकर्मन् (सं० क्ली०) समय विशेषका पूजन, मुख्य प्रयोजनका याग।

अनित्यक्रिया (सं० स्त्री०) अनित्यकर्मन् देखो।

अनित्यता (सं० स्त्री०) चञ्चल अथवा सीमाबद्ध जीवन; नापायदार या महदूद हस्ती।

अनित्यत्व (सं० क्ली०) अनित्यता देखो।

अनित्यदत्त (सं० पु०) अपने माता-पिता द्वारा अन्यको गोदमें लिये जानेके लिये थोड़े-दिन दिया गया पुत्र।

अनित्यदत्तक, अनित्यदत्रिम, अनित्यदत्त देखो

अनित्यप्रत्यवेक्षा (सं० स्त्री०) जैन मतानुसार— यह विवेक, कि सब बीतते जा रहा है; जैनियोंकी सब गुज़रते चले जानेकी समझ।

अनित्यभाव (सं० पु०) अस्थिरता, नापायदारी, न ठहरनेकी हालत।

अनित्यसम (सं० पु०) मिथ्या हेतु, झुठा सबब, धोका-धड़ी, चालबाज़ी।

अनित्यसमा (सं० स्त्री०) अनित्यसम देखो।

अनित्यसमप्रकरण (सं० क्ली०) न्यायका भागविशेष, जिसमें मिथ्या हेतुपर वितर्क बंधा है।

अनित्यसमास (सं० पु०) वह समास या शब्द-योग जिसका अर्थ शब्द पृथक् कर भी समभावसे लगा सकते हैं।

अनिदान (सं० त्रि०) निदान-विहीन, कारणरहित, बेसबब, बिलावायस, जिसका कोई सबब न सूझे।

अनिद्र (सं० त्रि०) निद्रारहित, बेनींद, जिसे नींद न लगती हो।

अनिद्रा (सं० स्त्री०) अभावार्थें नञ्-तत्। निन्दे नं लोपश्च। उण् २।१७। १ निद्राभाव, नींदका न पड़ना। २ जागरण, जगाई। (त्रि०) ३ निद्रारहित, बेनींद, जिसे नींद न आती हो।

अनिद्रा (Insomnia) नाना प्रकारके रोगका पूर्व लक्षण है। उन्मादरोग उठनेसे पहले खुद रोगी या उसका आत्मीयस्वजन कुछ भी समझ नहीं सकता। किन्तु वास्तविक मनुष्य हठात् पागल नहीं पड़ता। पागल होनेके तीन-चार मास पहलेसे रोगी रात्रिकालमें जागा करता है। नींद लेनेसे वह स्वप्न देखता, उसी समय दिलमें बरबराने लगता है। इसी कष्टके कारण नींद लगते भी रोगी इच्छासे सोना नहीं चाहता। उसके कुछ दिन बाद उन्मादरोग उभरता है।

हृत्पिण्डकी पीड़ा, अजीर्णरोग, यकृत्की विकृति-से उत्पन्न पाण्डुरोग, अतिशय मानसिक चिन्ता, मन-स्ताप, शारीरिक श्रमाभाव प्रभृति अनेक कारणसे निद्राभाव निकलता है। यह निश्चित करना कठिन है, कि मनुष्य नींद न लेकर कितने दिन बच सकता है। इतिहासके मध्य केवल एक घटना देख पड़ती है। सन् १८५८ में चीन देशके किसी व्यक्तिने अपनी स्त्रीका प्राण ले डाला था। विचारसे अपराधीको प्राणबधकी आज्ञा मिली। बोध बंधता, कि मुजरिमके निष्ठुर भावसे अपनी स्त्रीका ख़ून बहानेपर विचार-पतिने कुछ नूतन तर्ज़से उसे मारनेकी अनुमति दी थी। तीन चौकीदार नियुक्त किये गये। हुक्म हुवा, कि मुजरिम एकबारगी ही सोने न पाता; जितने दिन उसका प्राण न छूटता, उतने दिन वह क्रमागत जगाया जाता। हाकिमने कहा था,—"देशमें सब कोई सोये, नींद ले; केवल बारी-बारी एक चौकीदार जागे, दूसरे हतभाग्य अपराधी खुद न सोने पाये।" हाय-हाय मचाते, लोटते-पोटते, मट्टीमें घिसलते सात-आठ दिन निकल चले। मनुष्यका प्राण बहुत कठिन है, कण्ठके पास पहुंचकर भी बाहर नहीं जाता; अन्तमें अट्ठारहवां दिन देख पड़ा। अपराधी रोते-रोते

चौकीदारके पैरपर गिर पड़ा और हाथ जोड़कर बोला,—आप मेरा गला काट डालिये, गोली मारिये, जलमें डुबा दीजिये, नाक और मुंह दबाकर अन्त कीजिये; दूसरे जिस शास्तिमें खासी यन्त्रणा देख पड़े, उसे ही चलाइये; लेकिन इस क्लेशसे मुझे बचा लीजिये। दूसरे दिन मुजरिम मर गया। शायद सुना है, कि चीना सचराचर अपराधीको ऐसा ही दण्ड दिया करते हैं।

अनिद्राका प्रतीकार पहुंचानेसे पहले रोगका कारण काट डालना चाहिये। जो स्वभावत: अलस हैं, कुछ भी परिश्रम नहीं पकड़ते, उन सकल लोगोंको कायिक परिश्रम उठाना आवश्यक है। सन्ध्या और सवेरे निर्मल वायुमें घूमने-फिरनेसे भले आदमियोंका शरीर खूब स्वस्थ रहता है। इससे क्षुधा बढ़ती और रात्रिको सुनिद्रा लगती है। यकृत् और हृत्पिण्डमें पीड़ा उठनेसे उपयुक्त औषध द्वारा उसकी शान्ति निकाले। यकृत् और हृत्पिण्ड देखो। कौलिक उन्मादरोगका लक्षण देख या उन्मादरोगका कोई पूर्व लक्षण समझ पड़नेसे रोगीके प्रति विशेष यत्न रखना आवश्यक है। उन्माद देखो।

इस स्थानमें अनिद्रा निवारणके कई एक साधारण उपाय लिखे जाते हैं। निद्रा न आनेसे अनेक अफीम मर्फिया, कोरल प्रभृति औषध की व्यवस्था बांधते हैं। किन्तु उस प्रकारकी चिकित्सा भली नहीं होती। विशेष उत्कट अवस्था न होनेसे औषधका प्रयोग मना है। प्रथम केवल सुनियमसे पीड़ाका उपशम करनेकी चेष्टा चलाये। प्रत्यूषमें किञ्चित् व्यायामके बाद दुग्ध और कच्चा अण्डा सुपथ्य होता है। इससे शरीर स्निग्ध पड़ता और स्नायुमें बल बढ़ता है। ऐसा द्रव्य कभी न खाये, जिससे क्षुधा-मान्द्य या अजीर्ण बढ़े, नहीं तो पेट फूल जाये गा। उदराध्मान या अजीर्ण रहनेसे निद्रा लगना कठिन है। रात्रिको अल्प आहार ले, किन्तु अधिक रात्रि बीतनेपर भोजन न करे। सोनेसे पहले कियत्काल गर्म जलमें पैर डुबाये रहे, गर्म जलसे अंगोछा तर कर सर्वाङ्ग पोंछ डाले। फिर दक्षिण पार्श्वसे इसतरह लेटे, जिसमें जिह्वा और ओष्ठ न झुके। इसीतरह स्थिरभावमें एक मनसे यानी दिल लगाकर ओँ जपे किंवा एक, दो इत्यादि गिना करे। साढ़े चार सौ बार जपने या गिननेके बाद प्राय: गाढ़ निद्राकर्षण पड़ता है।

काश्मीरदेशमें शिशुके सुलानेका एक बहुत सहज उपाय होता है। रात्रिकालमें लड़केको नींद न आनेसे जननी उसके मत्थेपर जलकी धारा छोड़ती है। कोई दो घण्टे जल छोड़नेसे लड़का चुपके सो जाता है।

डाक्टर ब्रेडने आदमीके सुलानेका एक सहज उपाय बता दिया है। रात्रिको अच्छी नींद न आने किंवा एकबारगी ही अनिद्रा रहनेसे रोगीको निस्तब्ध घरमें परिष्कार विस्तरपर लिटाये। फिर उसके भ्रूवाले मध्यस्थलमें दश-बारह इञ्च दूर कोई उज्ज्वल द्रव्य रख दे। इस चमकते हुए द्रव्यकी ओर देखते-देखते क्रमसे शरीर मानो अवश होता और खुदबखुद आंख मुंद जाती है। किन्तु इस प्रकार प्रक्रिया अधिक क्षण चलानेपर विपद् बढ़नेकी सम्भावना है, इसलिये विज्ञ चिकित्सक भिन्न किसी दूसरेको इसमें हस्तक्षेप करने देना उचित नहीं समझते। डाक्टर ब्रेड एतद्भिन्न दूसरे भी अनेक उपाय करते थे। किन्तु लोगोंने देखा, कि उन्मादरोग या शारीरिक विशेष यन्त्रणा न रहते इस सामान्य उपायसे ही सुनिद्रा आ जाती है।

अनिद्रित (सं० त्रि०) न निद्रितम्। निद्रित नहीं, जागरित, न सोते हुवा, जो जाग रहा हो।

अनाधृष्ट (सं० त्रि०) अबाध, अनधीन, रोका न गया, जो मातहत न बना हो।

अनिध्म (सं० त्रि०) काष्ठकी आवश्यकता न रखते हुवा, जिसे लकड़ी या ईंधनकी ज़रूरत न पड़े।

अनिन (सं० त्रि०) प्रभुविहीन, बेमालिक, जिसका कोई रक्षक न रहे।

अनिन्दनीय, अनिन्द्य देखो।

अनिन्दित (सं० त्रि०) न निन्दितम्। १ अगर्हित, निन्दित नहीं, बुरा बताये जानेके नाक़ाबिल।

२ घृणित नहीं, जिसे नफ़रत न दिखाई गयी हो। ३ पवित्र, पाक। ४ धार्मिक, ईमानदार। ५ नेक, भला। ६ स्वतन्त्र, आज़ाद।

अनिन्द्य (सं० त्रि०) निन्दाके अयोग्य, हिक़ारतके नाक़ाबिल, निर्दोष, बेऐब।

अनिन्द्र (सं० त्रि०) नास्ति इन्द्र याज्यो यस्य। १ इन्द्रको न जाननेवाला, जो इन्द्रका यज्ञ न करे। २ इन्द्रसे पृथक्, जो इन्द्रसे अलग हो गया हो।

ऋग्वेदके छः ऋक्‌में अनिन्द्र शब्दको देखते हैं। यह बात निश्चित करनेमें अनेक सन्देह उठता है, कि अनिन्द्र कौन था। उस कालके राक्षस, असुर या दस्यु आर्योंका यज्ञादि न मानते, सर्वदा ही उनके प्रति उत्पात उठाया करते थे। इसीलिये वह अनिन्द्र कहाते रहे। किन्तु इस विषयपर भी सन्देह है, कि आर्योंके मध्यमें भी सकल इन्द्रको मानते थे या नहीं,—

"अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाड़भी द्वा किमु त्रयः करन्ति।
खले न पर्षान् प्रतिहन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः॥"
(ऋक् १०।४८।७।)

सायणाचार्यने 'अनिन्द्राः'का अर्थ 'इन्द्रमयजन्तः' अर्थात् इन्द्रका यज्ञ न करनेवाले लिखा है। निरुक्तमें यास्कने कहा है,—"य इन्द्रं न विदुरिन्द्रो ह्यमस्मानिन्द्री इतर इति वा।"

अनिन्द्रिय (सं० क्ली०) इन्द्रियसे पृथक् द्रव्य, जो चीज़ इन्द्रिय नहीं होती।

अनिप (हिं० पु०) सेनापति, अफ़सरेफ़ौज।

अनिपद्यमान (सं० त्रि०) नीचे न गिरते हुवा, बेथका-मांदा, जो सोनेके लिये न झुकता हो।

अनिपात (सं० पु०) जीवनका स्थायिभाव, ज़िन्दगीकी सदामत, जीते जीका न छूटना।

अनिपुण (सं० त्रि०) न निपुणम्। अपटु, अविज्ञ, नाहोशियार, बेवक़ूफ़, होशियारी न रखनेवाला।

अनिबद्ध (सं० त्रि०) न निबद्धम्। बद्ध नहीं, ग्रथित नहीं, अनायत, न बांधा गया, ताल्लुक़ न रखनेवाला।

अनिबद्धप्रलापिन् (सं० त्रि०) असम्बद्ध भाषण करते हुवा, जो उखड़ी-उखड़ी बात बना रहा हो।

अनिबाध (सं० त्रि०) नास्ति निबाधो यस्य। असम्बाध, न रोका गया, जिसकी हद न बंधी हो। (पु०) २ निबाधका अभाव, रोकका न रहना, स्वतन्त्रता, आज़ादी।

अनिभृत (सं० त्रि०) न निभृतम्। चञ्चल, चुलबुला, घरका नहीं, जो घराऊ न रहे, पृथक् न रखा गया, जो अलग न किया गया हो, निर्लज्ज, बेशर्म, वीर, बहादुर, संसार-सम्बन्धीय, दुनियासे ताल्लुक़ रखनेवाला।

अनिभृष्ट (सं० त्रि०) निभृश-क्त, निभृष्टम्। अबाधित, तकलीफ़ न पहुंचाया गया, अजित, ग़ैरमग़लूब, अन्यूनकृत, घटाया न गया।

अनिभृष्टत्विषि (वै० पु०) अन्यून शक्तिशाली द्रव्य, जिस चीज़की ताक़त कम न पड़ी हो।

अनिभ्य (सं० त्रि०) धनविहीन, जो दौलतमन्द न हो।

अनिमक (सं० पु०) अन जीवने शब्दे च, बाहुलकात् इमन्; अनिमः जीवनं तेन कायति प्रकाशते शब्दायते वा, कै-क। १ भेक, मेंडक। शीतकालमें भेक मृतवत् रह पुनर्वार जी उठता, इसीसे इसका नाम अनिमक पड़ा है। २ कोकिल, कोयल। ३ भ्रमर, भौंरा। इनके मधुर शब्दसे म्रियमाण मनमें आस्वादका सञ्चार होता है। अनिमाय जीवनाय कं जलं यस्य। ४ पद्मकेशर। अनिमाय कं सुखं यस्मात्। ५ मधुकवृक्ष, महुवा।

अनिमन् (सं० पु०) १ कण, ज़रा। २ चिह्न, दाग़।

अनिमन्त्रित (सं० त्रि०) निमन्त्रण न पहुंचाया गया, जिसे न्योता न मिला हो।

अनिमन्त्रितभोजिन् (सं० त्रि०) विना निमन्त्रण पाये भोजन करते हुवा, जो बेन्योते ही खाना खा रहा हो।

अनिमा (हिं०) अणिमा देखो।

अनिमान (सं० त्रि०) नि-मा-भावे ल्युट्, नास्ति निमानं यस्य। अपरिच्छिन्न, परिच्छेदशून्य, बेहद, बहुत ज्यादा, जिसका कोई हिसाब न हो।

अनिमिख (हिं० वि०) चक्षुस्पन्दनशून्य, जिसकी पलक न पड़े। ऋग्वेदमें मूर्धन्य षकारका उच्चारण खकार-जैसा निकालते हैं। इसीसे हिन्दी प्रभृति भाषामें अपभ्रंशसे मूर्धन्य षकारके स्थानमें 'ख' और

'ख'के स्थानमें भी मूर्धन्य षकार लिखा जाता है; जैसे—वर्खा (वर्षा) और भाखा (भाषा) इत्यादि।

अनिमित्त (सं० त्रि०) नास्ति निमित्तं कारणं यस्य यत्र वा। १ अकारण, निमित्तशून्य, बेसबब, मतलब न रखनेवाला। (क्ली०) अभावार्थे नञ्-तत्। २ कारणाभाव, बेसबबी; कारण या सबबका न रहना। (हिं० क्रि० वि०) ३ विना कारण, बेसबब, झूठ-मूठ।

अनिमित्तक (सं० त्रि०) कारणरहित, निमित्तशून्य, बेसबब, कोई ग़रज़ न रखनेवाला।

अनिमित्ततस् (सं० अव्य०) अकारण, बेसबब, झूठ-मूठ।

अनिमित्तनिराकृत (सं० त्रि०) अकारण दूर किया गया, जो बेसबब नामञ्जूर हुवा हो।

अनिमित्तलिङ्गनाश (सं० पु०) अक्षिरोग-विशेष, जिससे पीड़ा होनेपर अन्धूतक हो जाते हैं, तीमार, तिरमिरा।

अनिमिष् (सं० स्त्री०) निमिष्-क्विप्, स नास्ति यत्र। १ स्पन्दनशून्य दृष्टि, न झपकनेवाली नज़र। २ देवता। ३ मत्स्य, मछली।

अनिमिष (सं० पु०) न-मिष-क निमिषः; नास्ति निमिषो यस्य, बहुव्री०। १ मत्स्य, मछली। २ देवता, फ़रिश्ता। ३ महाकाल। ४ विष्णु। देवतावोंकी आंख कभी नहीं झपकती, जिसका वर्णन नैषधमें दमयन्ती-के स्वयम्बर-स्थलपर कविने लिखा है। ५ सूक्ष्मकाल-परिमाण, थोड़ी देरका समय। (त्रि०) ६ चक्षुस्पन्दन-शून्य, आंख न झपकानेवाला। ७ चक्षु या पुष्पकी भांति विकसित, आंख या फूल-जैसा लिखा हुवा।

अनिमिषम् (सं० अव्य०) बेपलक मारे, आंख न झपका कर, लगातार, बराबर।

अनिमिषा, अनिमिषम् देखो।

अनिमिषाक्ष (सं० पु०) टक-टकी बांधे हुये व्यक्ति, न झपकनेवाली आंखका शख्स।

अनिमिषाक्षी (सं० स्त्री०) अनिमिषाक्ष देखो।

अनिमिषाचार्य, अनिमेषाचार्य देखो।

अनिमिषीय (सं० त्रि०) आंख न झपकानेवालेका सम्बन्धी, टकटकी बांधनेवालेसे तालुक़ रखनेवाला। यह शब्द प्रधानतः देवताका विशेषण है; क्योंकि उनकी आंख कभी नहीं झपकती।

अनिमेष (सं० पु०) नि-मिष-घञ् निमेषः, नास्ति निमेषश्चक्षुः स्पन्दनं यस्य। १ मत्स्य, मछली। २ देवता, फ़रिश्ता। (त्रि०) ३ चक्षुके निमेषसे शून्य, जिसकी आंख न झपके।

अनिमेषम्, अनिमिषम् देखो।

अनिमेषाचार्य (सं० पु०) अनिमेषाणां सुराणां आचार्यः गुरुः, ६-तत्। वृहस्पति, देवतावोंके आचार्य।

अनियत (सं० त्रि०) न नियतम्। अनित्य, ग़ैरमुदामी, अस्थायी, नापायदार; रूप, क्रम या नियम न रखनेवाला, जो बेशक्ल, बेसिलसिले या बेक़ायदे हो।

अनियतपुंस्का (सं० स्त्री०) दुर्वृत्त स्त्री, बुरे चाल-चलनकी औरत।

अनियतवृत्ति (सं० त्रि०) नियमित नियुक्ति अथवा आय न रखते हुवा, जिसकी नौकरी या आमदनी बंधी न हो।

अनियताङ्क (सं० पु०) गणितमें—समाप्त न होने-वाली संख्या, जो हिसाबकी अदद पूरी न पड़े।

अनियतात्मन् (सं० त्रि०) अपने आत्माको नियम अथवा वशमें न रखनेवाला, जिसकी रूह क़ायदे या ताबेमें न रहे।

अनियन्त्रित (सं० त्रि०) न नियन्त्रितम्। १ अपरि-चालित, न चलाया गया। २ उच्छृङ्खल, मन-माना। ३ अनियत, लामुक़र्रर। ४ अनिवारित, बेरोक-टोक।

अनियमक (सं० पु०) न नियमः, अभावार्थे नञ्-तत्। नियमका अभाव, विशृङ्खलता, क़ायदेका न रहना। २ दुराचार, बदचलनी। ३ अनिश्चय, शङ्का, शकोशुबह। (त्रि०) ४ नियमशून्य, बेक़ायदा।

अनियमित (सं० त्रि०) नियम या नीति न रखते हुवा, जो क़ायदे या क़ानूनसे न चलता हो, बेक़ायदा, नियमविहीन।

अनियारा (हिं० वि०) अनीदार, शानदार, नोकीला, पैना, तीखी धारवाला। (स्त्री०) अनियारी।

अनियुक्त (सं० त्रि०) न लगाया गया, अनधिकार, बेवोहदा, जो काममें न पड़ा हो।

अनियोगिन् (सं० त्रि०) सम्बन्ध न रखते हुवा, जो ताल्लुक़ न लगाये।

अनिर (वै० त्रि०) भोजन, बल अथवा यज्ञीय दानसे रहित, जिसके पास खानेको न रहे, जो ताक़त न रखे या जो यज्ञमें बलिदान न दे।

अनिरवा (हिं० पु०) घूमते रहनेवाला पशु, जो जानवर आवारा घूमे।

अनिरा (सं० स्त्री०) इण-रन् गुणाभावे निपात्यते नास्ति इरा अन्नं यस्याः। १ अनावृष्टि प्रभृति शस्यको विघ्नकर इति, सूखा वग़ैरह अनाज बिगाड़नेवाला क़हर। (त्रि०) नास्ति इरा अन्नं अस्य अस्मिन् क। २ दारिद्र्य, अन्नरहित, बेदौलत, जिसके पास अन्न न हो। न ईरयितुं शक्यते, ईर-क पृषोदरादित्वात् ह्रस्वः; नञ्-तत्। ३ पहुंचानेके अयोग्य, जो भेजनेके क़ाबिल न हो।

अनिराकरण (सं० क्लो०) अभावार्थे नञ्-तत्। निराकरणका अभाव, दूरीकरणका न दौड़ना; नामञ्जूरीका न होना।

अनिराकरिष्णु (सं० त्रि०) १ अप्रतिबन्धक, न रोकनेवाला। २ दोष न देखनेवाला, जो ऐबजोई न ऐंठे।

अनिराकृत (सं० त्रि०) न निराकृतम्। अनिवारित, अदूरीभूत, रोका न गया, जो नज़दीक खड़ा हो।

अनिरुक्त (सं० त्रि०) अर्थावरोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तं निर्वचनम्, न निरुक्तम्, नञ्-तत्। विशेषरूप निर्वचनशून्य, ज़्यादातर न बताया गया, अनिर्दिष्ट, साफ़ तौरसे न समझा हुवा।

अनिरुक्तगान (सं० क्लो०) १ अस्पष्ट संगीत, जो तान साफ़ न टूटे। २ भजनकी भनभनाहट, मज़हबी गानेकी गूं-गां; सामवेद सुनानेका नियम विशेष, सामवेद गानेका एक ख़ास तरीक़।

अनिरुद्ध (सं० पु०) न केनापि युद्धे निरुद्धः, नि-रुध्-क्त; नञ्-तत्। १ श्रीकृष्णके पौत्र। प्रद्युम्नके औरस और रुक्मितनयाके गर्भसे इनका जन्म जगा था। यह महाबल पराक्रान्त योद्धा रहे। संग्राममें कोई भी इनके सामने खड़ा न होता था। श्रीकृष्णने भोजकटके राजा रुक्मीकी पौत्रीसे इनका विवाह बनाया। इनके पुत्रका नाम वज्र था।

वाणराजके उषा नामकी एक रूपवती कन्या रही। अनिरुद्धने उससे भी छिपकर विवाह बनाया। इस विवाहकी घटना अति अद्भुत है। किसी दिन कैलास शिखरपर शिवके साथ पार्वती क्रीड़ा कर रही थीं। उषा उसको देख स्वामिसहवासके निमित्त व्याकुला बनीं। पार्वतीने उनके मनका भाव समझ सकनेपर कहा,—'बेटी! दुःखित न होना, तुम भी शीघ्र ही यह सुख पावोगी। वैशाखमासकी शुक्लाद्वादशीको तुम जिसे स्वप्नमें देखोगी, वही तुम्हारा पति होगा।'

वैशाखमास है, शुक्लपक्षने अपनी शोभासे पृथिवीको चमका दिया है। द्वादशीको ज्योत्स्नासे भरे जगत्में चांदनी चटकी पड़ती है। ऐसे ही समय उषा सोते-सोते स्वप्न देख उठती और कहती हैं,—'नाथ! आपने क्या किया? मुझे छोड़ कहां चल दिये?' पास ही चित्रलेखा सखी सोती है। राजकन्याका प्रलापवाक्य सुन वह पूछने लगती है,—'प्रिय सखि! आप किससे बात बनाती हैं? क्या स्वप्न तो नहीं देखा?' उषा अधोमुखी होती हैं, लज्जासे कुछ बोल नहीं सकतीं। किन्तु स्त्रीसे दो बात मनकी कहनेपर उसका भेद खुल जाता है। चित्रलेखा कौशल काढ़ सारी बात समझ लेती है। उसके बाद वह उषासे कहती है,—'प्रिय सखि! चिन्ता किस बातकी है? पार्वतीने जो कहा है, कभी उससे अन्यथा न होगा। मैं चित्रपटपर देवता, गन्धर्व, दैत्य, मनुष्य प्रभृतिकी प्रतिमूर्ति खींचकर देखाती हूं। आप अपने पतिको बता दीजिये, मैं उसे उड़ाकर ले आऊंगी।' यह कह चित्र खींचकर चित्रलेखा राजकन्याके सामने रखती है। वह पहले अङ्गुलि रख देवता दिखाती है,—'देखो! इनके बीचमें क्या आपके प्राणनाथ प्रतिष्ठित हैं?' उषा शिर लटकाकर कहती हैं,—'नहीं, जिन्होंने मन चोराया, वह देवताके बीच नहीं रहते।' इसपर चित्रलेखा पूछती है,—'दैत्यमें क्या वह

मिलेंगी ?' उषा लज्जिता हो फिर शिर लटका कर बोलती हैं,—'नहीं, वहां भी वह नहीं मिलनेवाले हैं ! गन्धर्वमें भी उनका पता नहीं पाया जाता।' इसपर चित्रलेखा एक-एक कर राजावोंकी देखाने लगती है। यदुकुलके प्रति दृष्टि पड़ते हो उषा मानो सङ्कुचित हो जाती हैं। वह देखते रहती हैं, राम, कृष्ण और प्रद्युम्नपर दृष्टि डाल उस ओर मुख घुमा नहीं सकतीं। चित्रलेखा समझ सकनेसे अनिरुद्ध पर अङ्गुलि रख बोलती है,—'देखिये, देखिये। यही हैं !! इस मुखको क्या आप पहचानती हैं ?' उषा वैसे हो मनके आवेगमें लज्जा छोड़ कह उठती हैं,—'यही मेरे प्यारे हैं, इन्हीं सखाने स्वप्नमें मेरा मन चोरा लिया है।' इसके बाद चित्रलेखा छिपकर अन्तःपुरमें अनिरुद्धको लाती है।

यह संवाद वाणराजके कानमें पहुंचता, कि अनिरुद्ध उषाके साथ अन्तःपुरमें रहते हैं। वह महा क्रुद्ध हो कृष्णपौत्रको नागपाशसे बांधते हैं। उधर द्वारकामें अनिरुद्धको न पा यादव अतिशय व्याकुल हो रहे हैं। पोछे महर्षि नारद जाकर सकल विपद्की बात सुनाते हैं। इससे कृष्ण, बलराम और प्रद्युम्न वाण-पुरी जा पहुंचते हैं। वाणराजके सहस्र बाहु हैं, दूसरे वह मृत्युञ्जयके वरपुत्र भी बने हैं। कृष्ण, बलराम प्रभृतिके वाण-पुरी पहुंचनेपर महादेव, कार्तिकेय और प्रमथगणको साथ ले युद्ध मचाने आते हैं। इसी समय कृष्णके साथ शिवका घोरतर संग्राम चलता और महादेव यादवगणको अभिभूत बनानेके निमित्त शिवज्वरकी सृष्टि सजाते हैं। अन्तमें कृष्ण वाणराजके समस्त बाहु चक्रसे काटते हैं, किन्तु शिवके अनुरोधसे उनके प्राण नह निकालते। इसके बाद युद्धमें जय पा यादव, अनिरुद्ध और नववधू उषाको साथ ले द्वारका वापस जाते हैं।

(विष्णुपुराण ५।३२, ब्रह्मपुराण २०४-२०६ अ०)

२ वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूह परमेश्वरका अनिरुद्ध नामक अंश। यही आदिव्यूह है। महाभारतके मोक्षधर्मपर्वाध्यायमें लिखा है, कि इसी आदिव्यूहसे जगत्की सृष्टि सजी है,—

"तमसो ब्रह्मसम्भूत तमोमूला ऋतात्मकम्।"
"सोऽनिरुद्ध इति प्रोक्तस्तत्प्रधानं प्रचक्षते।"

३ दूत, चर, एलची, भेदिया। ४ शिव। ५ शाक्यमुनिके सहयोगी किसी अर्हत्का नाम। (क्लो०) ६ पशु बांधनेका रज्जु, जानवर जकड़नेको रस्सी। (त्रि०) ७ अबद्ध, न बंधा हुवा। ८ अनिवारित, रोका न जानेवाला।

अनिरुद्ध—इस नामसे कई संस्कृत ग्रन्थकार परिचित हैं,—१ भावदासके पुत्र और हीराके पिता। इन्होंने सन् १४९६ ई० में शिशुबोधिनी भास्वतीकरणटीका नामक ग्रन्थ रचा था। २ सांख्यप्रवेशनवृत्तिप्रणेता। ३ अनिरुद्ध भट्ट—इन्होंने चातुर्मास्यपद्धति, भगवत्तत्त्वमञ्जरी और हारलता ग्रन्थ रचे थे। किसी-किसीको विश्वास है, कि यह गौड़ेश्वर बल्लालसेनके गुरु रहे; इन्हींके साहाय्यसे बल्लालसेनने 'दानसागर'का सङ्कलन लगाया था।

अनिरुद्धपथ (सं० क्लो०) न निरुद्धा पन्था यत्र, नञ्-बहुव्री०। १ अबाध मार्ग, खुली राह। २ वायुमण्डल, हवाका कुरा। (त्रि०) ३ न रुकी हुई, खुली, साफ़।

अनिरुद्धभाविनी (सं० स्त्री०) अनिरुद्धस्य भाविनी पत्नी, ६-तत्। अनिरुद्धकी स्त्री। यह वाणराजकी कन्या रहीं, उषा नामसे पुकारी जाती थीं।

उषाहरणका विवरण अनिरुद्ध शब्दमें देखो।

अनिरूपित (सं० त्रि०) निरूपण न निकाला गया, अवर्णित, जिसका बयान न बंधा हो।

अनिर्जात (सं० त्रि०) न निर्जातं निश्चितं प्राप्तं वा। १ अप्राप्त, नादस्तयाब, जो न मिला हो। २ अनिश्चित, लायक़ोन, जिसका कोई ठौर-ठीक न गंठा हो।

अनिर्जित (सं० त्रि०) जीता न गया, जो फ़तेह न हुवा हो।

अनिर्णय (सं० पु०) निर्-नी-अच्; न निर्णयः, अभावार्थे नञ्-तत्। अनिश्चय, अवधारणका अभाव, फ़ैसलेका न फैलना, बेएतबारी।

अनिर्णीत (सं० त्रि०) अनिश्चित, अविचारित, यक़ीन न किया गया, खयाल न जमाया हुवा।

अनिर्णय (सं० त्रि०) निर्णयके अयोग्य, फ़ैसल होनेके नाक़ाबिल।

अनिर्दश (सं० त्रि०) न निर्गतानि दशदिनानि यस्य, डच् अन्त बहुव्री०। बहुव्रीहौ संख्येये डजबहुगणात्। पा ५।४।७३। १ दश दिन न बिताये हुवा, जिसके दश रोज़ न गुज़रे हों। यह शब्द जन्म-मृत्युके दश दिन अशौचका द्योतक है।

अनिर्दशा (सं० स्त्री०) व्याकर दश दिन न व्यतीत किये हुई गो, जिस गायको बच्चा जने दश रोज़ न गुज़रे हों।

अनिर्दिश्य, अनिर्देश्य देखो।

अनिर्दिष्ट (सं० त्रि०) अवर्णित, अनिर्धारित, बयान न किया गया, जिसकी सिफ़त न बताई गयी हो।

अनिर्देश (सं० पु०) नियम अथवा दिक् का अभाव, क़ायदे या शिस्तका न रहना।

अनिर्देश्य (सं० त्रि०) न निर्देशम्, इदं तदिति निर्देष्टुं यत्न शक्यते परस्मै स्वयं वेद्यत्वात्; निर्-दिश्-ण्यत्। १ निर्विशेष, जिसका विषय न बन सके, लामज़मून्। २ निर्गुण, लासिफ़त।

अनिर्धारित (सं० त्रि०) न निर्धारितम्। अनिश्चित, यक़ीन न किया गया, जो अवधारित या फ़ैसल न हुवा हो।

अनिर्धार्य (सं० त्रि०) निश्चित निकलनेके अयोग्य, फ़ैसल होनेके नाक़ाबिल, जिसका कोई ठौर-ठिकाना न ठहर सके।

अनिर्बन्ध (सं० त्रि०) १ बन्धनरहित, बेफांस। २ स्वतन्त्र, आज़ाद।

अनिर्भर (सं० त्रि०) १ क्षुद्र, छोटा। २ किञ्चित्, थोड़ा। ३ लघु, हलका।

अनिर्भेद (सं० पु०) भेदभावका अभाव, राज़का न रहना।

अनिर्मल (सं० त्रि०) न निर्मलम्। मलिन, मैला, अपरिष्कृत, गन्दा।

अनिर्माल्या (सं० त्रि०) निर्-मल-ण्यत् स्त्रीत्वात् निर्माल्या, न निर्माल्या, नञ्-तत्। पृक्का नामक ओषधि विशेष, एक जड़ी-बूटी जिसे पृक्का कहते हैं।

अनिर्लोचित (सं० त्रि०) १ ध्यानसे न देखा गया, जिसे गौरसे न देखा हो। २ अविचारित, खयाल में न खोला हुवा।

अनिर्लोड़ित (सं० त्रि०) न निर्लोड़ितं आलोचितम्। अनालोचित, न बताया गया, जिसका बयान न हुवा हो।

"अनिर्लोड़ितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा।" (माघ, २।२७)

अनिर्वचनीय (सं० पु०) निर्वक्तुं अयोग्यः। १ परमात्मा, ब्रह्म। (क्ली०) २ अज्ञान, नादानी। ३ जगत्, दुनिया। (त्रि०) ४ कहा न जा सकनेवाला, जिसकी बात बतायी न जा सके। ५ अगम्य, जिसकी बात न मिले।

अनिर्वर्त्यमान (सं० त्रि०) समाप्त या पूर्ण न किया गया, जो खत्म या पूरे न पड़ा हो।

अनिर्वाच्य (सं० त्रि०) निर्वाचनके अयोग्य, चुननेके नाक़ाबिल। २ बताया न जा सकनेवाला, जिसका बयान् न हो सके।

अनिर्वाण (सं० पु०) १ कफ़, बलग़म। (त्रि०) २ न बुझा हुवा, जो जल रहा हो।

अनिर्वाह (सं० पु०) १ निर्वाहका अभाव, गुज़रका न होना। २ फलराहित्य, नतीजेका न निकलना। ३ आयकी न्यूनता, आमदनीकी कमी।

अनिर्वाह्य (सं० त्रि०) निर्वाह निकलनेके अयोग्य, गुज़र होनेके नाक़ाबिल, जिसका प्रबन्ध बंध न सके।

अनिर्विण्ण (सं० त्रि०) अवनतभिन्न, जो दिलगीर न हो, प्रसन्न, खुश।

अनिर्विद्ध (सं० त्रि०) अधोगतिके कारणसे रहित, जिसमें तनज़्ज़ुलीका सबब न लगा हो।

अनिर्वृत, अनिर्वृत्त (सं० त्रि०) १ पूरा न पड़ा हुवा, कच्चा निकल जानेवाला। २ असन्तुष्ट, नाराज़। ३ हतभाग्य, कमबख्त।

अनिर्वृति, अनिर्वृत्ति (सं० स्त्री०) न निर्वृत्तिः स्वच्छन्दता, अभावार्थे नञ्-तत्। १ स्वच्छन्दताका अभाव, आज़ादीका न आना। २ दरिद्रता, ग़रीबी। ३ अपूर्णता, नाकमाल। ४ असन्तोष, नाराज़ी। ५ अधम स्थिति, बद हालत। ६ दुःख, तकलीफ़।

अनिर्वेद (सं॰ पु॰) न निर्वेदः, नञ्-तत्। १ असन्तोष, नाराज़ी। २ वैराग्यका न बढ़ना। ३ मोहका न मढ़ना, मुहब्बतका न मचलना।

अनिर्वेश (सं॰ त्रि॰) नियुक्तिविहीन, बेकार, दुर्दशा-ग्रस्त, कमबख़्त।

अनिल (सं॰ पु॰) अन-इलच्। १ वायु, हवा। इसका विस्तारित विवरण वायु शब्दमें देखो। २ वसुविशेष। 'अनिलो वसुवातयोः'। (मेदिनी) ३ चन्द्रवंशके नृपतिविशेष। यह तंसुके पुत्र रहे। दुष्मन्तादि इनके चार सन्तान हुए थे। यही दुष्मन्त भरतके पिता शकुन्तलानाटक-के नायक हैं। (विष्णुपुराण ४।१८।२)

३ वातरोग, गठिया, लकवा वगैरह वायुकी बीमारी। ४ शाकतरु, साखूका दरख़्त। (Capparis Trigoliata)

अनिलकपित्थक (सं॰ पु॰) स्थूलाम्रातक, बड़ा अमरा।

अनिलकारक (सं॰ पु॰) काञ्जिक विशेष, खौलते चावलका मांड।

अनिलकुमार (सं॰ पु॰) १ पवनतनय, हनूमान्। २ जैन देवविशेष, जैनियोंके खास देवता।

अनिलघ्न, अनिलघ्नक (सं॰ पु॰) अनिलं वातरोगं हन्ति, हन-टक्। संज्ञायां कन्। पा ४।३।१४७। १ विभीतक-वृक्ष, बहेरेका पेड़। (Terminalia Belerica) (त्रि॰) २ वातरोगनाशन, वायुकी बीमारी मिटानेवाला।

अनिलज्वर (सं॰ पु॰) वातिकज्वर, वायुका बुख़ार। यह साम और निराम भेदसे दो तरहका होता है।

अनिलनिर्यास (सं॰ पु॰) प्रियालवृक्ष, पीतसालक; एक तरहका दरख़्त।

अनिलपर्यय, अनिलपर्याय (सं॰ पु॰) वायुरोगविशेष, जिसमें पलकपर आंखका बाहरी भाग सूजता और दुखता है।

अनिलप्रकृति (सं॰ त्रि॰) वायुकी प्रकृति रखनेवाला।

अनिलभुक् (सं॰ पु॰) सर्प, सांप। सांप हवाको खाकर जीता-जागता, इसीसे अनिलभुक् कहाता है।

अनिलभ्रसमाधि (सं॰ पु॰) जैनशास्त्रोक्त समाधिविशेष, जैनियोंके ध्यान लगानेका ख़ास तरीक़।

अनिलयन (सं॰ त्रि॰) गृहरहित, लामकां, जो कोई बंधा घर न रखता हो।

अनिलरस (सं॰ पु॰) रसविशेष जो पाण्डुरोगपर चलता है।

अनिलरिपु (सं॰ पु॰) एरण्ड वृक्ष, अरण्डेका दरख़्त।

अनिलव्याधि (सं॰ पु॰) आन्तर वायुका विपर्यय, भीतरी वायुका बिगड़ जाना, वातरोगविशेष, वायुकी ख़ास बीमारी।

अनिलसख (सं॰ पु॰) अनिलस्य वायोः सखा, टजन्त ६-तत्। अग्नि, आग। हवा लगनेसे आग ख़ूब धधकती, इसीसे अनिलसख या हवाका दोस्त कहलाती है।

अनिलहर (सं॰ क्ली॰) कृष्ण अगुरु, काला देवदारु।

अनिला (सं॰ स्त्री॰) १ नदी, दरया। २ खटिका, खड़िया मट्टी।

अनिलाजीर्ण (सं॰ क्ली॰) वाताजीर्ण, वायु बिगड़नेसे पैदा हुई बदहज़मी।

अनिलाटिका (सं॰ स्त्री॰) रक्तपुनर्नवा।

अनिलात्मज (सं॰ पु॰) वायुपुत्र। हनूमान् और भीमसेन दोनो ही पवनके पुत्र रहे।

अनिलान्तक (सं॰ पु॰) अन्तं करोतीति; अन्त-णिच्-ण्वुल्—अन्तकः, अनिलस्य वायुरोगस्य अन्तको नाशकः। इङ्गुदीवृक्ष, अङ्गारपुष्प, अङ्कोट।

अनिलापहा (सं॰ पु॰) रक्तकुलत्थक, लाल कुरथी।

अनिलामय (सं॰ पु॰) अनिलेन दुष्टवायुना उद्भावित आमयः पीड़ा, शाक॰ तत्। वायुरोग, वातव्याधि, वायुकी बीमारी।

अनिलायन (सं॰ क्ली॰) वायुपथ, हवाकी राह, जिस डगरसे हवा निकले।

अनिलारिरस (सं॰ पु॰) वातव्याधिके अधिकारका रस, जो खाकर वायुकी बीमारीपर चले,—

"रसेन गन्धं द्विगुणं विमर्द्य वातारिनिर्गुण्डिरसैर्दिनैकं।
निवेशयेत्ताममये पुटे तत्सर्वं मृदावेष्ट्य च वालुकाख्ये॥
यन्त्रे पुटे गोमय पूर्णवह्नौ स्वभावशीते तु समुद्धरेत्तत्।
निर्गुण्डिकावातहराग्नितोयैः संचूर्ण्य यत्नेन विभावयेत्तत्॥"

(रसेन्द्रसारसंग्रह)

अनिलाशिन् (सं॰ त्रि॰) वायुका भक्षण भोगते हुवा, हवाको खाकर जीनेवाला, भोजन न पाते हुवा, जो खानेको न चख रहा हो।

अनिलाशी, अनिलाशिन् देखो।

अनिलोचित (सं॰ पु॰) नीलमाषक, काला उड़द।

अनिलोडित (सं॰ त्रि॰) अनुभवविहीन, नातजरबे-कार, जिसे किसी बातका अच्छीतरह हाल मालूम न हो।

अनिवर्तन (सं॰ त्रि॰) १ निवर्तनरहित, न लौटते हुवा। २ स्थायी, स्थिर, जमा हुवा, पायदार। ३ अत्याज्य, छोड़ा न जानेवाला, उपयुक्त, ठीक।

अनिवर्त्तित्व (सं॰ क्ली॰) पश्चाद्‌पद न पड़नेका भाव, वापस न आनेकी हालत, वीरत्व, बहादुरी।

अनिवर्त्तिन् (सं॰ त्रि॰) न निवर्तते, नि-वृत-णिनि नञ्-तत्। १ कार्य अपूर्ण रहते शान्त न होनेवाला, अधूरा काम होते जो ठण्ढा न पड़े। २ वीर, बहादुर, दुश्मनके सामनेसे न हटनेवाला। ३ लगा हुवा, जो कामसे मुंह न फेरे। (पु॰) ४ परमेश्वर। ५ विष्णु।

अनिवर्ती, अनिवर्तिन् देखो।

अनिवारित (सं॰ त्रि॰) निवारणशून्य, अबाध, न रोका गया, जिसे किसीने हटका न हो।

अनिवार्य (सं॰ त्रि॰) निवारणके अयोग्य, रोकनेके नाक़ाबिल, जिसे हटक न सकें।

अनिविशमान (सं॰ त्रि॰) न निविशमानम्, नि-विश्-शानच्। १ निवेशरूप स्थितिशून्य, बैठा न रहनेवाला। २ सर्वदा गमनकारी, हमेशा चलने-वाला। ३ एक स्थानमें अस्थित, एक जगह न ठह-रनेवाला। ४ परिव्राजक। ५ अवकाशशून्य, आराम न उड़ानेवाला।

अनिवृत, अनिवृत्त (सं॰ त्रि॰) अबाध, रोका न गया।

अनिवृत्ति-वादर (सं॰ पु॰) परिणामको त्याग वासना बसानेवाला कर्म, जिस कामका नतीजा तो मिट जाये, लेकिन बू बनी हो रहे। यह कर्मवाद जैन-शास्त्रमें कहा गया है।

अनिवेदित (सं॰ त्रि॰) अकथित, अनुक्त, न कहा गया, जिसका ज़िक्र न जमा हो।

अनिवेदितविज्ञात (सं॰ त्रि॰) विना कथन अनुभूत, बेकहे समझा गया।

अनिवेद्य (सं॰ अव्य॰) विना निवेदन सुनाये, बे-इत्तिला दिये।

अनिवेशन (सं॰ त्रि॰) उपवेशनस्थानशून्य, बैठने-को जगह न रखनेवाला।

अनिश (सं॰ त्रि॰) निशायाः जनानां चेष्टाविनाश-हेतुतया लक्षणया निशा चेष्टाविनाशः सा नास्ति यस्य यस्मिन् वा, नञ्-बहुव्री॰। १ अविरत, निरन्तर, बराबर, लगातार। २ रात्रिवर्जित, शबसे ख़ाली। ३ सर्वदा भयजनक, हमेशा ख़ौफ़ पैदा करनेवाला।

अनिशम् (सं॰ अव्य॰) नित्य, नित्यदा, सदा, अजस्र, सन्तत, रोज़, दिन-ब-दिन, हमेशा, आठपहर, बेरुके हुए।

अनिशित (सं॰ त्रि॰) अविरत, निरन्तर, बराबर, लगातार।

अनिशितसर्ग (सं॰ त्रि॰) अविरत प्रवाहशाली, लगातार बहनेवाला, जिसकी धारा कभी न रुके।

अनिश्चित (सं॰ त्रि॰) अनवधारित, अविवेचित, यक़ीन न किया गया, जो पक्का न पड़ा हो।

अनिश्चित्य (सं॰ अव्य॰) अविवेचितासे, विना निश्चय निकाले, यक़ीन न करके, उटक्करपच्चू।

अनिश्चिन्त्य (सं॰ त्रि॰) विचारसे बुद्धिमें न बैठने-वाला, जो ख़यालसे समझमें न चढ़े, निश्चय निकालनेके अयोग्य, यक़ीन करनेके नाक़ाबिल, जो समझमें न समा सके।

अनिशशस्त (सं॰ त्रि॰) निर्-शन्स-क्त, निशशस्तं अप्रशस्तम्, नि-निश्-शस्तम्, नञ्-तत्। १ प्रशस्त, अनिन्दित। २ सुखी, खुश, खुला। ३ जिसकी बुराई न सुन पड़े।

अनिषङ्ग (सं॰ त्रि॰) निषङ्गशून्य, तूणविहीन, बेतरकस, जो हथियार न हिलाये हो।

अनिषव्य (वै॰ त्रि॰) बधके अयोग्य, क़त्‌लके नाक़ाबिल; जिसे मार डालना ठीक न हो।

अनिषिद्ध (सं॰ त्रि॰) निषेधरहित, अनाज्ञाविहीन,

मना न किया गया, जिसको कोई रोक-टोक न रहे।

अनिषु (सं० त्रि०) वाणविहीन, तीर न रखनेवाला।

अनिष्कृत (सं० त्रि०) १ पूर्ण न किया गया, पूरा न पड़ा। २ अविवेचित, फ़ैसल न हुवा।

अनिष्कृतैनस् (सं० त्रि०) अविवेचित-अपराध, जिसके जुर्मका ठौर-ठीक न ठना हो; अपने अपराधके निमित्त प्रायश्चित्त न पहुंचानेवाला, जो अपने जुर्मपर तोबा न तौले।

अनिष्ट (सं० क्लो०) इष-क्त, न इष्टम्, विरोधे नञ्-तत्। १ अपकार, बदकारी। २ दुःख, तकलीफ़। ३ विषाद, अफ़सोस। ४ पाप, इज़ाब। ५ अमङ्गल, बुराई। ६ हानि, नुकसान। ७ विपद्, आफ़त।

"अनिष्टादिष्टलाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा।
यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे॥" (हितोपदेश)

अनिष्टकर वस्तुके साथ इष्टकर वस्तु मिलते भी कोई भलाई नहीं निकलती। क्योंकि अमृतमें ज़रा सा विष रहनेसे मृत्यु आ धमकती है।

(त्रि०) ८ अनिच्छित, अनभिलषित, ख़्वाहिश न किया गया, चाहके नाक़ाबिल। ९ अधम, ख़राब। १० अशुद्ध, गलत। ११ कुत्सित, बद। १२ हतभाग्य, कमबख़्त। १३ अशुभ, बदशिगून्। १४ वलि न चढ़ाया गया।

अनिष्टकर (सं० त्रि०) अपकारकारक, बुराई बघारनेवाला।

अनिष्टकर्मन् (हालेय)—दाक्षिणात्यके नृपति-विशेष। भागवतमें इनका नाम लिखा गया है।

अनिष्टग्रह (सं० पु०) अशुभग्रह, बुरा सितारा।

अनिष्टदुष्टधी (सं० त्रि०) अधम एवं अशुभ बुद्धि-सम्पन्न, बुरे और बिगड़े दमागवाला।

अनिष्टप्रसङ्ग (सं० पु०) अधम पदार्थ, तर्क अथवा नियमका सम्बन्ध, जो ताल्लुक़ ख़राब शै, बहस या कायदेसे पड़े।

अनिष्टफल (सं० क्लो०) अशुभ फल, ख़राब नतीजा।

अनिष्टशङ्का (सं० स्त्री०) पाप या अभाग्यका सन्देह, इज़ाब या बदक़िस्मतीका शक।

अनिष्टसूचक (सं० त्रि०) अपकारकी सूचना देनेवाला, अशुभ, जो बुराईकी इत्तिला लाये, बदशिगून्। (स्त्री०) अनिष्टसूचिका।

अनिष्टहेतु (सं० पु०) अशुभ लक्षण, बद आसार।

अनिष्टा (सं० स्त्री०) नागबला, बरियारी, खरेटी।

अनिष्टापादन (सं० क्लो०) १ अभिलषित पदार्थकी अप्राप्ति, ख़्वाहिश की हुयी चीज़की नादस्तयाबी। २ अनभिलषित पदार्थकी प्राप्ति, बेचाही चीज़की दस्तयाबी।

अनिष्टाप्ति (सं० स्त्री०) अनिष्टापादन देखो।

अनिष्टाशंसिन्, अनिष्टसूचक देखो।

अनिष्टिन् (सं० त्रि०) इष्टं अनेन यज-भावे क्त, ततोऽस्त्यर्थे इनि; न इष्टी, नञ्-तत्। यागयज्ञ-रहित, यज्ञ न करनेवाला।

अनिष्टृत (वै० त्रि०) अबाध, निराघात, ग़ैरमग़लब, बेज़ख़्म, जिसके चोट न लगी हो या जो रोका न गया हो।

अनिष्ठा (सं० स्त्री०) १ अनस्थिरता, चञ्चलता, नापायदारी, बेसबाती, टिके न रहनेकी हालत। २ अविश्वास, नायेतबारी। ३ नागबला, बरियारी।

अनिष्ठुर (सं० त्रि०) निष्ठुरतारहित, बदमिज़ाज नहीं, जो कड़े दिलका न हो।

अनिष्णात (सं० त्रि०) इष्टं अनेन; यज-भावे क्त, ततो नञ्-तत्। निनदीभ्यां स्नातेः कौशले। पा ८।३।८९। अकुशल, अनभिज्ञ, अकृती, बेहुनर, बेवकूफ़, नारसीदा, जिसने कभी कुछ देखा-सुना न हो।

अनिष्पत्ति (सं० स्त्री०) अप्राप्ति, अपूर्णता, नाकामालियत, नाकामयाबी, पहुंच न सकनेकी हालत।

अनिष्पन्न (सं० त्रि०) १ अपूर्ण, खाली। २ जो पहुंचा न हो।

अनिष्पत्र (सं० त्रि०) न निःसृतं पत्रं पक्षोऽत्र, नञ्-बहुव्री०। अखण्ड, समूचा, जो टूटा न हो। यह वाण शब्दका विशेषण है।

अनिष्पत्रम् (सं० अव्य०) विना अधिक वेगके, जिसमें वाण फोड़कर बाहर न निकले।

अनिसर्ग (वै० त्रि०) अप्राकृत, अप्राकृत रूपसे साधित,

क़ुदरतके खिलाफ़, मसनूयी तौरसे असर डाला गया, जो असली न हो।

अनि:सारा (सं० स्त्री०) कदली, केला।

अनिस्तब्ध (सं० त्रि०) १ सञ्चालनशून्य अथवा कठोर न बनाया गया, जो बेहरकत या सख़्त न बना हो। २ बन्धनशून्य, न जकड़ा हुवा। ३ अस्थिर, बेमुक़र्रर, जो बंधा न हो।

अनिस्तीर्ण (सं० त्रि०) १ पार न किया गया। २ अलग न रखा हुवा। ३ रुका। ४ उत्तर या जवाब न पाया।

अनिस्तीर्णाभियोग (सं० पु०) अभियोगमें काट-कूटसे छुटकारा न पाये हुवा प्रतिवादी, जिस मुद्दा-लहको तरदीदसे जुर्ममें रिहायी न मिली हो।

अनी (हिं० स्त्री०) १ नोक धार, हथियारका सिरा। २ नौकाका अग्रभाग, नावकी नोक, गल-ही। ३ जूतेका माथा। ४ जलके मध्य प्रसारित भूमिका अग्रभाग, पानीमें घुसी ज़मीनकी नोक। ५ सेना, फ़ौज। "रणके अन्त फिरी दोउ अनी।" (तुलसीदास) ६ ग्लानि, ग़म, खेद, खराश, लाग। (सम्बो०) १ अरी, ओरी।

अनीक (सं० पु०) अनिति आभिमुख्यं गच्छतीति, अन-ईकन्-किच्च। अनिहृषिभ्यां किच्च। उण् ४।१७। १ सेना, कटक, दल, फ़ौज। "ध्वजिनी वाहिनी सेना पृतनाऽनीकिनी चमूः। वरूथिनी बलं सैन्यं चक्रं चानीकमस्त्रियाम्॥" (अमर) अन्यते आभिमुख्यमभ्यागम्यते यत्र। २ युद्ध, कलह, जङ्ग, लड़ाई। "रथराजिपत्तिकरिणीसमाकुलं तदनीकयोः समगत-द्वयमिथः।" (माघ१३।१७) ३ मुख, मुंहाना। ४ चेष्टा, सूरत। ५ ज्योतिः, चमक। ६ अग्रभाग, नोक। ७ तट, किनारा। ८ क्षेत्र, मैदान। ९ श्रेणी, क़तार। १० गमन, कूच। (हिं० वि०) ११ अनुत्तम, खराब।

अनीकवत् (वै० पु०) अग्नि जो सर्वाग्रमें प्रतिष्ठित हैं।

अनीकविदारण (सं० पु०) सैन्यको विचूर्ण बनाने-वाला व्यक्ति, जो शख़्स फ़ौजको फार डाले।

अनीकशस् (सं० अव्य) सैन्यके शासनसे, फ़ौजके क़ायदेपर; गमनशील दलमें, कूच करते हुये ज़खीरे-में, रेखा-रेखा, क़तार-क़तार।

अनीकस्थ (सं० पु०) अनीके युद्धे तिष्ठति, स्था-क। १ युद्ध-गत सैन्य, जङ्गमें पहुंची हुयी फ़ौज। २ योद्धा, सिपाही। ३ राजरक्षिवर्ग, बादशाहकी हिफ़ाज़त रखनेवाली फ़ौज। ४ हस्तिशिक्षा-विचक्षण, हाथी सिखानेका उस्ताद, महावत। ५ चिह्न, सङ्केत, निशान, इशारा। ६ योद्धाका मर्दलक, सिपाहीवाला ढोल, जुझावू डङ्का।

'अनीकस्थो रणगते हस्तिशिक्षाविचक्षणे।
राजरक्षिणि चिह्ने च वीरमर्दलकेऽपि च॥' (मेदिनी)

अनीकिनी (सं० स्त्री०) अनीकानां सेनानां समूहः, अनीक-इनि। १ सैन्य, फ़ौज। २ हस्ती-प्रभृति-संख्या-विशेष-युक्त सेना, निराली टोली। ३ दो हज़ार एक सौ सड़सठ हस्ती, दो हज़ार एक सौ सड़सठ रथ, छः हज़ार पांच सौ एकसठ घोड़े और दश हज़ार नौ सौ पैंतीस सिपाहीकी फ़ौज। अमरकोषमें सेनाकी संख्या इसतरह लिखी गई है,—

"एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्तिः पञ्चपदातिका।
पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम्।
अनीकिनी दशानीकिन्यक्षौहिण्यथ सम्पदि।"

एक हाथी होनेसे फ़ौजको एकेभा कहते हैं। एक रथसे एकरथा कहलाती है। तीन घोड़ेसे,—त्र्यश्वा होती है। पांच सिपाही पञ्चपदातिका बनाते हैं। इन सबको मिलाकर पत्ति पाते हैं। दूसरे,—"एकरथो गजश्चैको नराः पञ्चपदातयः। त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते॥" एक रथ, एक हाथी, पांच पैदल सिपाही और तीन घोड़े रहनेसे फ़ौजको पत्ति कहते हैं। ऊपर पत्तिकी जो गिनती लिखी, उसे बार-बार तीनसे गुणित करनेपर क्रममें सेनामुख, गुल्म, गण, वाहिनी, पृतना, चमू, अनीकिनी, दशानीकिनी, और अक्षौहिणी बनती है। ४ कमलिनी, छोटा कमल।

अनीक्षण (सं० क्ली०) अवलोकनका अभाव, किसी चीज़का न देखना।

अनीच (सं० त्रि०) उच्च, ऊंचा, इज़्ज़तदार, माननीय, जो नीच या कमीना न हो। २ अनुदात्त स्वरसे न बोला जानेवाला, जिसका तलफ़्फ़ुज़ हलका आवाज़से न निकले।

अनीचानुवर्तिन् (सं० त्रि०) १ नीच प्रसङ्ग न रखते हुवा, जो कमीनेकी सोहबत इख़्तियार न करता हो। (पु०) २ कृतज्ञतापूर्ण प्रेमी या स्वामी, वफ़ादार आशक या ख़ुदाविन्द।

अनीचैस् (सं० त्रि०) अनुदात्त स्वरसे नहीं, बुलन्द-आवाज़में, चिल्लाकर, गला फाड़-फाड़।

अनीठ (हिं० वि०) १ अनिष्ट, अनीप्सित, बेचाहा, ख़्वाहिश न किया गया। २ अधम, ख़राब।

अनीड (सं० त्रि०) १ वासस्थानविहीन, घोंसला या घर न रखनेवाला। २ निरवयव, वग़ैरजिस्म, जिस के शरीर या जिस्म न रहे। (पु०) ३ अग्नि, आग।

अनीत (हिं०) अनीति देखो।

अनीति (सं० स्त्री०) विरोधार्थे नञ्-तत्। १ दुर्नीति, अन्याय, बेइन्साफ़ी, ज़ुल्म। २ असभ्यता, नाशायस्तगी। ३ अत्याचार, ज़बरदस्ती। ४ विपज्जनक ऋतुसे मुक्ति, ग़ज़बनाक मौसमसे छुटकारा।

अनीतिज्ञ (सं० त्रि०) १ नीतिकुशल, क़ानून क़ायदेसे वाक़िफ़। २ असभ्य, नाशायस्ता, जो क़ायदा-क़ानून से वाक़िफ़ न हो।

अनीतिमान् (सं० त्रि०) अनीति अड़ानेवाला, जो ज़ुल्म जमाये। (स्त्री०) अनीतिमती।

अनीतिविद्, अनीतिज्ञ देखो।

अनीदृश (सं० त्रि०) असदृश, अतुल्य, असमान, नाहमवार, एक-जैसा नहीं, मुतफ़रिक़।

अनीप्सित (सं० त्रि०) अनिच्छित, ख़्वाहिश न किया गया।

अनीरसन (सं० त्रि०) मेखला युक्त, जो कमरबन्दसे ख़ाली न रहे।

अनीलवाजी (सं० पु०) अर्जुन, जो सफ़ेद घोड़ा रखते हैं।

अनीली (सं० स्त्री०) काशतृण, काश नामकी घास।

अनीश (सं० पु०) नास्ति ईशः प्रभुः, अधिकारी वा यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ विष्णु। विष्णुके अनीश कहानेका कारण यही है, कि उनका कोई नियन्ता नहीं होता, वही सब आज्ञा चलाते हैं। (त्रि०) २ प्रभुशून्य, बेमालिक, जिसका कोई रखवारा न रहे। ३ शक्तिशून्य, बिला-ताक़त। ४ अस्वतन्त्र, मातहत। ५ अधिकाररहित, बेमजाज। ६ ईश्वरसे भिन्न, जो परमेश्वर न हो।

"ऊर्ध्वं पितुश्च मातुश्च समेत्य भ्रातरः समम्।
भजेरन् पैतृकं रिक्थमनीशास्ते हि जीवतः॥" (मनु ९।१०४)

अनीशत्व (सं० क्ली०) शक्तिशून्यता, नाताक़ती, बेबसी।

अनीशा (सं० स्त्री०) १ दीनता, बेबसी। २ साहाय्य-राहित्य, बेमददी।

अनीश्वर (सं० क्ली०) नास्ति ईश्वरस्य कर्तृत्वं यत्र। १ जगत्, जहान्। अनेकको विश्वास है, कि इस जगत्की सृष्टि सजानेमें ईश्वरका कुछ भी कर्तृत्व नहीं, यह आप ही आप बन गया है। नास्ति ईश्वरबुद्धिर्यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ नास्तिक, परमेश्वर को न माननेवाला व्यक्ति। (त्रि०) ३ प्रभुविहीन, बेमालिक। ४ अबाध, जो रोका न रुके। ५ शक्ति-शून्य, नाताक़त। ६ ईश्वर-भिन्न, परमेश्वरसे सम्बन्ध न रखनेवाला।

अनीश्वरता (सं० स्त्री०) परमेश्वरकी अनुपस्थिति, ईश्वरका न रहना, ईश्वराभाव।

अनीश्वरत्व (सं० क्ली०) अनीश्वरता देखो।

अनीश्वरवाद (सं० पु०) १ ईश्वररहित वितर्क, बहस जिसमें ईश्वरका रहना न माना जाये। २ नास्तिकता, ईश्वरका न मानना। ३ मीमांसा, जिसमें कर्म ही प्रधान रखा गया है।

अनीश्वरवादिन् (सं० पु०) नास्तिक, ईश्वरको न माननेवाला।

अनीश्वरवादी, अनीश्वरवादिन् देखो।

अनीसून (हिं० पु०) सौंफ जो भारतके उत्तरमें ख़ूब उपजती है।

अनीह (सं० त्रि०) नास्ति ईहा चेष्टा यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ चेष्टाशून्य, बेपरवा। २ स्पृहारहित, बेख़्वाहिश। (पु०) ३ अयोध्याके नृपति-विशेष।

अनीहा (सं० स्त्री०) चेष्टाशून्यता, स्पृहाराहित्य; बेपरवायी, बेख़्वाहिशी, किसी बातके न चाहनेकी हालत।

अनीहित (सं० त्रि०) १ अहित, नागवार, असन्तोषप्रद, नाखुश बनानेवाला, अनिच्छित, ख्वाहिश न किया गया।

अनु (सं० अव्य०) अनितीति, अन-उ बाहुलकात्। अनुर्लक्षणे। पा १।४।८४। प्रादि उपसर्गके अन्तर्गत एक उपसर्ग। यह किसी शब्द या धातुके पहले लगनेसे भिन्नार्थ निकालता है और नहीं भी निकालता। सचराचर अनु शब्दके यह कई एक अर्थ आते हैं,—लक्षण, इत्थम्भूताख्यान (इसतरहका जात धर्म), भाग (अंश), वीप्सा, सन्निधि (सामीप्य), सादृश्य अथवा योग्यता, आयाम (व्याप्ति, दैर्घ्य), हीन, पश्चात्, सह।—

"अनु लक्षणवीप्सेत्थम्भूत भागेषु सन्निधौ।
सादृश्यायामहीनेषु पश्चादर्थसहार्थयोः॥" (हैम)

क्रिया और संज्ञासे पहले लगनेपर यह पीछे, साथ-साथ, बगल-बगल, इधर-उधर, पास-पास, और नीचेके अर्थमें आता है। संज्ञाके साथ प्रधानतः क्रिया-विशेषणवाले समासमें इसका अर्थ बार-बार, बसबब, कई-कई, एक-एक, क़ायदे और क़रीनेसे रहता है। कर्मकारकके साथ पृथक् उपसर्गकी भांति योग पानेपर यह पीछे, साथ-साथ, ऊपर, पास-पास, से, को, तर्फ़, पर, बसबब, क़ायदेमें और मुवाफ़िक़का मतलब रखता है। पृथक् क्रिया-विशेषणकी भांति इसका माने पीछे, पीछेसे, उसपर, फिर, आगे, तब और दूसरे निकलता है।

लक्षण—शाकल्यस्य संहितामनुप्रावर्षम्। अनुर्लक्षणे। पा १।४।८४। शाकल्यमुनिके संहिता पाठसे पानी बरसा। इस जगह संहितापाठका हेतु वर्षण उपलक्षित है।

इत्थम्भूताख्यान—साधुर्देवदत्तो मातरमनु। देवदत्त माताके तयीं साधु है। मतलब यह, कि देवदत्त माताके तयीं साधुत्वरूप धर्मविशिष्ट रहता, जिससे इत्थम्भूताख्यान देखाता है।

भाग—यदत्र मामनु स्यात्। लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः। पा १।४।९०। मेरे लिये ऐसा रहे। यहां अनु भागके भावसे भरा है।

सन्निधि, समीप—अनुमालिनीतीरम्। मालिनी नदीतटके पास। इस अवसरमें अनु सन्निधिको संभालता है।

सदृश योग्य—अनु रूपम्। रूपके योग्य या सदृश। ऐसे वाक्यमें अनु सदृशका अर्थ देता है।

आयाम—अनुयमुनं मथुरा। यस्य चायामः। पा २।१।१६। यमुनाके साथ-साथ मथुरा चली है। इस स्थलमें यमुनाके आयामसे मथुराका आयाम समझ पड़ता है।

हीन—अन्वर्जुनं योद्धारः। हीने। पा १।४।८५। यह सारे योद्धा अर्जुनसे नीचे हैं यहां अनुका हीन अर्थ होता है।

पश्चात्—अनुपद। पैरके पीछे-पीछे। "पतिरन्वगच्छत्।" (रघु) राजा छायाकी तरह उसके पीछे-पीछे चले। इस उदाहरणमें अनु पीछेके मतलबसे लगा है।

सह—पर्वतमन्ववसिता सेना। तृतीयार्थे। पा १।४।८५। पहाड़के साथ सारी फ़ौज मिल गयी। ऐसे स्थानमें अनु सहका अर्थ देता है।

(पु०) २ ययातिके एक पुत्र जिनका नाम अनु रहा। इन्हीं अनुसे म्लेच्छ जाति उत्पन्न हुयी थी। ऋग्वेदमें अनु वंशका उल्लेख उठा है,— "यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद्द्रुह्युष्वनुषु पुरुषु स्थः।" (१।१०८।८)

३ मनुष्य, आदमी। ४ म्लेच्छ।

अनुक (सं० त्रि०) अनुकामयते, अनु-कन्। अनुकाभिकाभीकः कमिता। पा ५।२।७४। कामुक, कमिता, कामी, नफ़सपरस्त, पुरशहवत, मस्त।—

'कामुके कमिताऽनुकः।' (अमर)

अनुकथन (सं० क्ली०) संयत वचन, क़ायदेकी गुफ़्तगू, वर्णन, बयान, वार्ता, बातचीत, खासी कहावत।

अनुकथित (सं० त्रि०) नियमित रूपसे वर्णित, क़ायदेसे बताया गया।

अनुकदली (सं० स्त्री०) काशतृण, कांसकी घास।

अनुकनखलम् (सं० अव्य०) कनखलस्य अद्रेः समीपे। अनुर्यत् समया। पा २।१।१५। कनखल पहाड़के पास। यह

पर्वत हरिद्वारके निकट आज भी वर्तमान है, लोग कहते कि कनखल और हरिकी-पैड़ी—इन सकल स्थानोंमें दक्षराजकी राजधानी रही थी। देखते हैं,—

"तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णाम्।
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपंक्तिम्॥" (मेघदूत, पूर्वमेघ ५१)

हरिवंशमें भी इस कनखलका नामोल्लेख निकलता है,—"गङ्गाद्वारं कनखलं सोमो वै यत्र संस्थितः।"

अनुकनीयस (सं० त्रि०) छोटेसे छोटा, लड़केसे भी लड़का।

अनुकम् (सं० अव्य०) अनुकामयते, अनु-कम-क्विप्। १ पीछे। २ उसपर। ३ फिर। ४ आगे। ५ तब। ६ दूसरे। ७ पर। ८ को। ९ से। १० पास। ११ तर्फ़। १२ नियम या क़ायदेसे। १३ साथ। १४ बग़लमें। १५ इधर-उधर। १६ नीचे।

अनुकम्पक (सं० त्रि०) अनुकम्पते दयते, अनु-कम्प-ण्वुल्। १ दयालु, रहीम। (पु०) २ नृपतिविशेष, किसी राजाका नाम।

अनुकम्पन (सं० त्रि०) अनु कम्प-युच्। चलनशब्दार्थादकर्मकात् युच्। पा ३।२।१४८। १ दयाशील, मेहरबान्। (क्लो०) भावे ल्युट्। २ दया, कृपा, रहम, मेहरबानी।

अनुकम्पा (सं० स्त्री०) अनु-कम्प-अ। १ दया, कृपा, रहम, मेहरबानी। दुःखसे अन्यको कांपते देख दयावान् व्यक्ति दयासे निजमें कांपने लगता है। इसीसे दयाका नाम अनुकम्पा पड़ा है। २ सहानुभूति, तरस। ३ किञ्चित् चलन, हलकी हरकत। ४ अल्प कम्पन, थोड़ी कंपकंपी।

अनुकम्पायिन् (सं० त्रि०) दया दिखाते हुवा, कृपा करते गया, सहानुभूति सकारनेवाला, हमदर्द, जो तरस खा रहा हो।

अनुकम्पितात्मन् (सं० त्रि०) दयाशील हृदयवाला, जिसका दिल हमदर्दीसे भर जाये।

अनुकम्पनीय, अनुकम्प देखो।

अनुकम्प्य (सं० त्रि०) अनुकम्पमर्हति, अनु-कम्प-यत्। १ त्वरायुक्त, वेगवान्, जल्दबाज़, दौड़नेवाला। २ दयाके योग्य, रहम खाने क़ाबिल। (पु०) ३ साधु, फ़क़ीर। ४ दूत, संवादवाहक, क़ासिद, हरकारा।

अनुकरण (सं० क्लो०) अनु साट्टश्ये कृ-ल्युट्। अव्यक्तानुकरणस्यात् इतौ। पा ६।१।९८। १ सदृशीकरण, बराबरका बनाना, नक़ल। २ अनुकरण निकालनेका द्रव्य, जिस चीज़से नक़ल बनायी जाये।

व्याकरणके मतमें अनुकरण दो प्रकार देखते हैं,—शब्दानुकरण और अर्थानुकरण। जहां अर्थरहित किसी शब्दका अनुकरण करते, वहां शब्दानुकरण निकलता है। फिर, अर्थविशिष्ट अनुकरण अर्थानुकरण कहलाता है।

अनुकरणीय (सं० त्रि०) अनुकरण निकालने योग्य, नक़ल उतारने क़ाबिल।

अनुकर्ता (सं० पु०) १ अनुकरण करनेवाला, नक़्क़ाल। २ आदेशानुयायी, हुक्म माननेवाला।

अनुकर्ण (सं० क्लो०) कर्णके निकटका स्थान, कानके पासकी जगह।

अनुकर्ष (सं० पु०) अनुकृष्यते रथतलेन सम्बध्यते, अनु-कृष-घ। १ रथका तल, गाड़ीका पेंदा। २ रथचक्रके नीचे बंधा रहनेवाला काष्ठ, जो लकड़ी गाड़ीके पहियेमें नीचे लगी रहती है। अनु-कृष-घञ्। ३ आकर्षण, कशिश, खींच। ४ विलम्बका कार्यसम्पादन, देरसे फ़र्ज़का अदा होना। ५ आवाहन, पुकार, मन्त्रसे बुलाया जाना। ६ व्याकरणका आकर्षण, नहवकी कशिश। ७ पूर्व सूत्रमें परका संमिलन, पहले क़ायदेमें पीछेका शामिल रहना। ८ उत्सवके पश्चात्का घसिटना, जलसेके पीछेका रह जाना।

अनुकर्षण (सं० क्लो०) अनु-कृष-भावे ल्युट्। १ आकर्षण, कशिश, खैंचतान। २ पूर्व वाक्यमें कुछ उक्त रहते स्पष्ट अन्वयके निमित्त पर वाक्यमें किसी पदादिका आयोजन, पहले जुमलेमें कुछ कहा हुवा रहते साफ़ बयान्के लिये दूसरे जुमलेमें किसी फ़िक़रे वग़ैरहका जोड़। ३ रथका तल, गाड़ीवाला पेंदा।

अनुकल्प (सं० पु०) कल्पते विधीयते, कल्पो विधिः।

यः प्रथमः कल्पः स मुख्यं स्यात्। ततो मुख्यादधमो गौणः अनुकल्पः स्यात्, प्रादि-स०। कृपो रोलः। पा ८।२।१८। अप्रधान विधि, प्रधान विधि देखते अधम विधि, मामूली तरीक़, खास तरीक़की बनिस्बत ख़राब चाल। अनुगतं कल्पं वेदाङ्ग विशेषम्। २ कल्प-शास्त्र-प्रतिपादक ग्रन्थ। द्रव्यके अभावमें तद्गुणद्रव्यान्तर ग्रहण, किसी चीज़के न रहते उसी सिफ़तकी दूसरीका लेना।

अनुकल्पित (सं० त्रि०) पीछा किया या ध्यान दिया गया, जिसके पीछे पड़ गये या जिसपर ख़याल लड़ाये हों।

अनुकाङ्क्षा (सं० स्त्री०) अभिलाष, इच्छा, ख़ाहिश, मर्ज़ी।

अनुकाङ्क्षित (सं० त्रि०) ईप्सित, अभिलषित, चाहा या ख़ाहिश किया गया।

अनुकाङ्क्षिन् (सं० त्रि०) इच्छुक, अभिलाष रखने-वाला, जो ख़ाहिश दिखाये।

अनुकाम (सं० पु०) अनु योग्यः सदृशो वा कामः, प्रादि स०। योग्य अभिलाष, मक़बूल ख़्वाहिश, जो ख़ाहिश पूरी हो सके। (त्रि०) कामस्य सदृशं योग्यं वा अनुकामम्। कामनाके सदृश अथवा योग्य, ख़ाहिशके बराबर या क़ाबिल। ३ अतिकामुक, ख़ाहिशमन्द, चाहनेवाला।

अनुकामीन (सं० त्रि०) अनुकामं यथेच्छं गच्छतीति तच्छीलः ख। १ यथेष्ट गमनशील, ख़ूब रवां, ठीक-ठीक जानेवाला। २ यथेच्छाचारी, ख़ुदरव, मनमानी मचानेवाला।—'कामङ्गाम्यनुकामिनः।' (अमर)

अनुकार (सं० पु०) अनु-कृ-घञ्। अनुकरण, सदृशीकरण, नक़ल।—'अनुहारोऽनुकारः स्यात्।' (अमर)

अनुकारिन् (सं० त्रि०) अनुकरोति, अनु-कृ-णिनि। १ अनुकरणशील, नक़्क़ाल, नक़ल निकालनेवाला। २ सदृश, बराबर।—

"अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।" (शाकुन्तल)

अनुकारी, अनुकारिन् देखो।

अनुकाल (सं० अव्य०) कालस्य योग्यम्, यथार्थं अव्ययी०। १ कालसे, समयपर, वक़्त-ब-वक़्त, मौक़ेमें। २ चिरकाल, सदा, हरवक़्त, हमेशा। (त्रि०) ३ सामयिक, कालिक, वक़्तका, मौक़ेवाला।

अनुकीर्ण (सं० त्रि०) भरा हुवा, भीड़-भड़क्केका।

अनुकीर्तन (सं० क्ली०) अनु-कृत्-णिच्-ल्युट्। गुण-गान, सुयशवर्णन, तारीफ़का बयान, भलाईका कहना।

अनुकुञ्चित (सं० त्रि०) झुका-झुकाया, टेढ़ा, पेचदार, बल खाये हुवा, ख़मदार।

अनुकूल (सं० त्रि०) मज्जमानस्य कूलमिव अनुगतः सहायतया समीपागतः, अतिक्रा०-तत्। १ मज्जमानके समीप कूलकी भांति साहाय्यको पहुंचनेवाला, जो डूबेकी मददको किनारेकी तरह पास जाये, सहाय, दक्षिण, मददगार, दाहना। २ दयालु, रहीम। ३ पक्षपाती, तर्फ़दार। ४ आश्रयदाता, पनाहपिज़ीर, सहारा देनेवाला। (पु०) ५ अलङ्कार-शास्त्रके अनु-सार नायक-विशेष, एक स्त्रीपर अनुरक्त रहनेवाला पति, जो ख़ाविन्द एक ही औरतको प्यार करे।

"अनुकूल एकनिरतः।" (साहित्य-दर्पण ३।७३)

६ अलङ्कारविशेष।

"अनुकूलं प्रातिकूल्यमनुकूलानुबन्धिचेत्॥" (साहित्यदर्पण १०।७१३)

अर्थात् जहां अनिष्टाचरणसे लाभ निकलता, वहां अनुकूल अलङ्कार आता है।

"हौं अपराधी राधिके मारिय नयनन बान।
कत बैठी हो कोपसौं ताने भौंह कमान॥"

७ सबका आत्मा परमेश्वर।

अनुकूलका (सं० स्त्री०) लघुदन्ती, छोटी दन्ती।

अनुकूलता (सं० स्त्री०) १ अनुकूल-तल्। सहायता, मदद। २ वैभव, होती।

अनुकूलनायक (सं० पु०) कृपालु स्वामी या प्रेमी, जो ख़ाविन्द या आशक़ मेहरबान् रहे।

अनुकूलवायु (सं० पु०) मुवाफ़िक़ हवा।

अनुकूला (सं० स्त्री०) १ ह्रस्वदन्ती वृक्ष, छोटी दन्तीका दरख़्त। दन्ती देखो। २ छन्दोविशेष, बहर-ख़ास। इसके पद-पदमें भगण, नगण और दो गुरु रहते हैं। ३ मौक्तिक माला, मोतीका हार।

अनुकूलिनी, अनुकूलका देखो।

अनुक्कत (सं० त्रि०) अनुकार किया हुवा, नकल उतारा गया।

अनुक्कति (सं० स्त्री०) अनु-कृ-क्तिन्। अनुकरण, सदृशीकरण, नकल, कापी।

अनुक्कत्य (सं० त्रि०) अनुकरण करने योग्य, नकल उतारने काबिल।

अनुक्कष्ट (सं० त्रि०) अनु-कृष-क्त। १ आकृष्ट, खिंचा हुवा। २ अनुवृत्त, पूर्व नियममें सम्मिलित या संसाधित, जो पिछले कायदेमें मशमूल हो।

अनुक्त (सं० त्रि०) न उक्तम्। अनभिहित, अकथित, बयान् न दिया गया, बेकहा। व्याकरणके मतमें सब बात तिङ्, कृत्, तद्धित और समाससे कही जाती है।

अनुक्ति (सं० स्त्री०) अनुक्त वचन, बेकही बात, अनसुनी।

अनुक्थ (वै० त्रि०) नास्ति उकथं स्तोत्रं यस्य, नञ्-बहुव्री०। पातृतुदिवचिरिचिसिचिभ्यस्थक्। उण् २।७। १ भजनहीन, बेगीत, जिसका गुण न गाया जाये। २ भजन न गानेवाला, जो गीत न गाये।

अनुक्थ्य (वै० त्रि०) उकथ-यत्, न उक्तमर्हति, नञ्-तत्। छन्दांसि च। स्तुतिके अयोग्य, अप्रशस्य, तारीफ़के नाकाबिल, जिसकी प्रशंसा पड़ न सके।

अनुक्रकच (सं० त्रि०) दन्तविशिष्ट, दन्दांदार, दंतीला, आरे-जैसे दांतवाला।

अनुक्रम (सं० पु०) अनुगतं क्रमम्, अतिक्रा०-तत्। १ अनुगत क्रम, पिछला सिलसिला, पीछेकी तरतीब। २ संयत सूची, सिलसिलेवार फ़िहरिस्त। (अव्य०) क्रमपर, नियममें, आदेशसे, सिलसिलेवार, बकायदे, तरतीबको देखकर।

अनुक्रमण (सं० क्ली०) नियमित प्रवाह, कायदेकी रविश, जो चाल ठीक निकले। २ पीछेका चलना।

अनुक्रमणिका, अनुक्रमणी (सं० स्त्री०) अनुक्रम्यते यथोत्तरं परिपाट्या आरभ्यतेऽनया, अनु-क्रम-करणे ल्युट्। स्त्रीत्वात् ङीप् स्वार्थे कन् ह्रस्वः। १ ग्रन्थ-विशेषका आनुपूर्व पाठादि ज्ञापक परिच्छेद अथवा प्रातिशाख्य, सूचीपत्र, फ़िहरिस्त। २ भूमिका, उपक्रमणिका, दीबाचा। अनुक्रमणिका एक तरहका सूचीपत्र है। इसमें प्रत्येक सामका प्रथम शब्द, सामकी संख्या, ऋषि, देवता और छन्दका नाम उल्लिखित है। सामवेदकी अनुक्रमणीको 'सर्वानुक्रमणी' कहते हैं।

ऋग्वेदकी अनुक्रमणी कात्यायनने बनायी थी। इसके टीकाकार षड्गुरुशिष्यने वेदार्थदीपिकामें लिखा है, कि कात्यायनसे भी पहले एक अनुक्रमणी रही। उसमें वेदमन्त्रवाले ऋषियोंके नाम, छन्द, देवतावोंके नाम, अनुवाक, ऋग्वेदके प्राचीन सूक्त और सामका विवरण मिलता था। षड्गुरुशिष्यका कहना है, कि आर्षानुक्रमणी, छान्दसी, दैवती, अनुवाकानुक्रमणी और सूक्तानुक्रमणीको शौनकने बनाया है। किन्तु अब शौनककी बनायी केवल अनुवाकानुक्रमणी ही मिलती है। यह पद्यका ग्रन्थ है। कात्यायनकी अनुक्रमणी सूत्रकी तरह संक्षेपसे गद्यमें लिखी गयी है। किन्तु षड्गुरुशिष्य और सायणाचार्यके समय अर्थात् सात आठ शत वत्सर पूर्व लगभग सकल अनुक्रमणी विद्यमान थीं। कारण, देखनेमें आता कि, षड्गुरुशिष्य शौनकरचित देवानुक्रमणीसे प्रमाणादि दे गये हैं। सायणाचार्यने भी अपने वेदभाष्यके मध्य शौनककी आर्षानुक्रमणी और बृहद्देवतानुक्रमणीसे अनेक स्थान उद्धृत किया है।

ऋग्वेदकी सर्वसमेत सात अनुक्रमणीका नामोल्लेख मिलता है। इनमें पांच शौनक, एक कात्यायन और एक निश्चित नहीं, किसकी बनायी है। अनुक्रमणी यद्यपि यथार्थ ही शौनककी बनायी और इस ग्रन्थके परवर्ती लोगोंने चाहे नूतन विषय न भी मिलाया हो, तथापि प्रमाण पाते हैं, कि शौनकने यास्कके बाद जन्म लिया था। कारण, बृहद्देवतामें आश्वलायन, ऐतरेयक, कौषीतकी, भाल्लवि ब्राह्मण, निदानग्रन्थ, शाकल, वास्कल, मयूक, श्वेतकेतु, गालव, गार्ग्य रथीतर, राथन्तरी, शाकटायन, शाण्डिल्य, रोमकायन, स्थावीर, शाकपूनि, और्णभाव, यास्क प्रभृति अनेक नाम मिलते हैं। इसीसे बोध होता, कि बृहद्देवता यास्कसे पीछे लिखी गयी है।

यजुर्वेदकी तीन अनुक्रमणी हैं,—एक आत्रेयी, एक चारायणीय और एक माध्यन्दिन शाखाकी। आत्रेयी अनुक्रमणीमें लिखा, कि वैशम्पायनने वह अनुक्रमणी यास्कको दी थी। यास्कके हाथसे यह तित्तिरिको मिली। इसी तरह तित्तिरिसे उच्च और उच्चसे आत्रेयने इसे पाकर पद-रचना फैलायी है।

सामवेदकी अनुक्रमणी दो प्रकारकी है। इसमें एकका 'नैगेयानामृच्चार्षम्' और दूसरीका 'नैगेयानामृचुदैवतम्' नाम है। कोई-कोई अनुमान अड़ाते हैं, कि शेषोक्त अनुक्रमणी अधिक दिनकी नहीं बनी।

अथर्ववेदकी केवल एक अनुक्रमणी मिलती, जिसे बृहत्सर्वानुक्रमणी कहते हैं। यह झगड़ेकी बात है, कि सिवा उसके उस समय अथर्ववेदकी दूसरी अनुक्रमणी थी या नहीं। बृहत्सर्वानुक्रमणी दश-पटलमें समाप्त पड़ी है। अथर्ववेद-संहिताके यावतीय विषयकी तालिका इसमें अतिस्पष्टरूपसे दी गई है।

अनुक्रान्त (सं० त्रि०) संसाधित, पठित अथवा नियमितरूपसे कृत, पहुंचा, पढ़ा या क़ायदेसे अञ्जाम दिया हुवा।

अनुक्रिया (सं० स्त्री०) १ अनुकरण, नक़ल। २ पिछली रस्म।

अनुक्री (सं० पु०) अनुक्रियते, अनु-कृ-ई-क्विच्। १ सद्यस्क्र नामक यज्ञ। २ पिछली रस्म या चाल।

अनुक्रोश (सं० पु०) अनुक्रोशति अनेन, अनुक्रुश-आह्वाने रोदने च घञ्। १ करुणा, कृपा, रहम, तरस।—'कृपादयानुकम्पास्यादनुक्रोशः' (अमर) (त्रि०) अनुगतं क्रोशम्, गति-स०। २ एक कोस चला हुवा, जो दो मील राह निकल गया हो।

अनुक्षण (सं० अव्य०) वीप्सायां अव्ययी०। १ प्रतिक्षण, हरवक्त, पल-पल। २ अनवरत, लगातार। (त्रि०) अनुगतं क्षणम्, गति-स०। चिरकाल रहनेवाला, जो हमेशा बना रहे।

अनुक्षत्तृ (सं० पु०) द्वारपालक या सारथीका सहायक, दरबान या गड़ीवानका हाज़िरबाश।

अनुक्षप (सं० अव्य०) रात-रात, कई रातों।

अनुक्षेत्र (सं० क्ली०) उड़ीसेमें मन्दिरके भृत्यको दिया जानेवाला पारिश्रमिक, जो उजरत उड़ीसेमें मन्दिरके नौकरको मिलती है।

अनुखञ्ज (सं० पु०) प्रदेशविशेष, किसी मुल्कका नाम।

अनुख्याति (सं० स्त्री०) आविष्कार करने अथवा संवाद देनेका कार्य, ईजाद निकालने या खबर लगानेकी बात।

अनुख्यातृ (सं० पु०) आविष्कार करने अथवा समाचार सुनानेवाला व्यक्ति, जो शख्स ईजाद निकाले या खबर लाये।

अनुग (सं० त्रि०) अनु पश्चाद् गच्छति, अनु-गम-ड। १ पश्चाद्गामी, पीछे-पीछे चलनेवाला। २ सहचर, सेवक, साथ रहने या खिदमत उठानेवाला।

अनुगङ्ग (सं० अव्य०) गङ्गायाम् विभक्त्यर्थेऽव्ययी०। गङ्गामें, गङ्गाके पास।

अनुगणित (सं० त्रि०) गिना हुवा, जिसका शुमार लग गया हो।

अनुगणितिन् (सं० त्रि०) गिने हुवा, जिसने शुमार बांध लिया हो।

अनुगत (सं० त्रि०) अनु-गम-क्त। १ पश्चाद्गत, पीछे पहुंचा हुवा। २ आश्रित, मातहत। ३ यथाक्रम-गत, सिलसिलेसे चला। ४ संगृहीत, पकड़ा गया। ५ अखिल, समूचा। ६ विशेष, खास। ७ अधीन, ताबेदार। (क्ली०) ८ संगीतका समान समय, जो वक्त गानेमें कम-ज्यादा न मालूम हो।

अनुगतार्थ (सं० त्रि०) आ गये हुये अर्थका, जिसका मानी मिलता हो।

अनुगति (सं० स्त्री०) अनु-गम-क्तिन्। १ अनुगमन, पश्चाद्गमन, पीछे रहनेकी चाल। २ अनुकार, नकल। ३ मृत्यु, मौत।

अनुगतिक (सं० पु०) १ पश्चाद्गामी व्यक्ति, पीछे पड़नेवाला शख्स। २ अनुकरण निकालनेवाला, नक़्क़ाल।

अनुगन्तव्य (सं० त्रि०) पश्चाद्गमन लगाने योग्य, पीछे-पीछे जाने क़ाबिल। २ अनुकरण करने योग्य, जो नक़ल उतारने लायक़ हो।

अनुगम (सं० पु०) अनु-गम-अप्। १ पश्चाद्गमन, जीवन या मरणका सङ्ग, पीछेका जाना, जीने या मरनेका साथ। २ विधवाका सती होना, बेवा औरतका अपने मरे खाविन्दके साथ जल जाना। ३ अनुकरण, आप्ति, नक़ल, पहुंच। न्यायमें सामान्य धर्म द्वारा विशेषरूप सकलका संग्रह अनुगम कहाता है। जैसे—"सर्वेषां घटानामनुगमो घटत्वम्।" अर्थात् सामान्य 'घटत्व' धर्म कहनेसे नील, पीत प्रभृति सकल घट समझे जाते हैं। इसीतरह नरत्वरूप धर्मको निर्दिष्ट बनानेपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यवन प्रभृति सकल जातिके मनुष्यका मतलब निकलता है।

अनुगमन (सं० क्लो०) अनु-गम-भावे ल्युट्। अनुगम देखो।

अनुगम्य, अनुगन्तव्य देखो।

अनुगर्जित (सं० क्लो०) गर्जती गूंज, गड़गड़ाती हुयी बाज़गश्त।

अनुगव (सं० क्लो०) गोः सदृश आयामः। अनुगु, ततो निपातने अच्। अनुगवमायामे। पा ५।४।८३। १ गोपरिमित शकट, गायके बराबर गाड़ी। (अव्य०) २ गोके अनुकूल होनेपर, गायके मुवाफ़िक़ रहनेसे।

अनुगवीन (सं० त्रि०) गोः पश्चाद् अनुगु पर्याप्तं गच्छति-ख। अनुग्वलं गामीति। पा: ५।२।१५। १ गोका पश्चाद्गामी, गायके पीछे जानेवाला। (पु०) २ गोसमूह, गाय-बैलका झुण्ड।

अनुगा (सं० स्त्री०) एक अप्सरसका नाम, किसी परीका इस्म।

अनुगाङ्ग (सं० पु०) गङ्गातीरका प्रदेश, जो मुल्क गङ्गाके किनारे बसा हो।

अनुगाढ (सं० त्रि०) मग्न, ग़र्क़, डूबा हुवा, जो डुबकी लगाये हो।

अनुगादिन् (सं० त्रि०) अनुगदति, अनु-गद णिनि। अनुगादिनष्ठक् च। पा ५।४।१३। अनुवादक, तरजुमा बनानेवाला, वचनमें पश्चाद्गमनशील, जो पीछे-पीछे बात बताये।

अनुगामिन् (सं० त्रि०) अनुगच्छति, अनु-गम-णिनि। १ पश्चाद्गामी, पीछे चलनेवाला। २ सहचर, जो साथ रहे। ३ सहवास या सम्भोग सांटनेवाला, जो ग्रहवत लगाये। (स्त्री०) अनुगामिनी।

अनुगामी, अनुगामिन् देखो।

अनुगामुक (सं० त्रि०) स्वभावतः अथवा अनवरत पश्चाद् गमन लगाने या सङ्गमें रहनेवाला, जो आदतन या हमेशा पीछे चले या साथ रहे।

अनुगिरम् (सं० अव्य०) पर्वतपर, पहाड़के ऊपर।

अनुगीत (सं० पु०) छन्दोविशेष, एक क़िस्मका बहर।

अनुगीता (सं० स्त्री०) महाभारतका भाग विशेष। अश्वमेधपर्वके १६वें से ९२ वें अध्यायतक अनुगीता गयी है।

अनुगीति (सं० स्त्री०) छन्दोविशेष, एक तरहकी बहर। इसमें दो पद रहते, प्रत्येक पदमें सत्ताईस और बत्तीसके क्रमसे मात्रा मिलाते हैं।

अनुगु (सं० अव्य०) गोके पश्चात्, गायबैलके पीछे।

अनुगुण (सं० त्रि०) अनुकूलो गुणो यस्य। १ समगुणविशिष्ट, हमसिफ़त, हमवस्फ़, जिसका गुण बराबर रहे। २ सुयोग्य, क़ाबिल। (अव्य०) ३ स्वभावतः, प्रकृत रूपसे, क़ुदरतन्, अपने गुणके अनुसार। (पु०) ४ स्वाभाविक गुण, क़ुदरती सिफ़त, जो गुण आप ही आप आया हो। ५ काव्यालङ्कार विशेष। इसमें किसी द्रव्यका पहला गुण अपने जैसे दूसरेके मिलनेसे निखरता है,—

> "नयन तिरीछे ह्वै चले कुटिल अलकके सङ्ग।
> अधरन छवि अवलोकिके वदन अरुण लहि रङ्ग॥"

अनुगुप्त (सं० त्रि०) अनु-गुप रक्षणे क्त। १ आच्छादित, ढंका हुवा। २ आवरणयुक्त, जिसपर परदा पड़ा हो। ३ अप्रकट, पोशीदा, छिपा हुवा। ४ रक्षित, महफ़ूज़।

अनुगृहीत (सं० त्रि०) अनु-ग्रह-क्त। ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभ्रज्जतीनां ङिति च। पा ६।१।१६। १ अनुग्रहयुक्त, एहसानमन्द। २ अनुग्रहपात्र, उपकृत, जिसपर मेहरबानी दिखायी गयी हो। ३ पश्चाद् रक्षित, पीछे हिफ़ाज़त किया गया

अनुग्र (सं० त्रि०) न उग्रम्। अनुद्धत, अनुद्गूर्ण,

असमर्थ, शान्तस्वभाव, जो तबीयतका टेढ़ा न हो, सीधा-सादा, भोला-भाला।

अनुग्रह (सं० पु०) अनु-ग्रह-अप्। ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८। दुःखके दूर करनेकी इच्छा, तकलीफ़ मिटानेकी ख़्वाहिश, प्रसन्नता, आनुकूल्य, मेहरबानी, नेवाज़िश। २ अनिष्टका निवारण निकाल इष्टका साधन, तकलीफ़को मिटा ख़्वाहिशका पूरा करना, प्रसाद। ३ पश्चाद्रक्षा, पीछेकी हिफ़ाजत। ४ दरिद्रादिका प्रतिपालन, ग़रीब वग़ैरहकी परवरिश। रामतर्कवागीशने अनुग्रहका यह उदाहरण दिया है, "विरूपोन्मत्तनिःस्वानामकुत्सापूर्वकं हि यत्। पूरणं दानमानाभ्यामनुग्रह उदाहृतः॥"

अर्थात् कुरूप, उन्मत्त और निर्धन व्यक्तिकी निन्दा न निकाल जो प्रतिपालन पहुंचाना होता, वही अनुग्रह कहाता है। ५ पुराणानुसार—पञ्चम अथवा अष्टम कल्प, दुनियाका पांचवें या आठवें मरतबा फिर पैदा होना। (त्रि०) ६ चन्द्र और सूर्य ग्रहणके अनुगत, जो चन्द्र और सूर्यके ग्रहणमें शामिल हो। ७ सूर्यादि नवग्रहके अनुगत, सूर्य वग़ैरह नौ ग्रहमें शामिल रहनेवाला।

अनुग्रहकातर (सं० त्रि०) प्रसन्न बनानेका इच्छुक, खुश करनेका ख़्वाहिशमन्द।

अनुग्रहण (सं० क्ली०) अनुग्रह देखो।

अनुग्रहसर्ग (सं० पु०) सांख्यमतसे—भावकी उत्पत्ति, तबीयतका पैदा होना।

अनुग्रहित अनुग्राहित देखो।

अनुग्रहिन् (वै० पु०) इन्द्रजालमें निपुण व्यक्ति, ओझा, जादूगर, माहिर, जो शख़्स जादू जगानेमें ज़ाहिर हो।

अनुग्राम (सं० अव्य०) ग्राम-ग्राम, एक गांवसे दूसरे गांवतक।

अनुग्रासक (सं० पु०) ग्रासके तुल्य वस्तु, मुंहभर चीज़।

अनुग्राहक (सं० त्रि०) १ सरल बनानेवाला, जो किसी कामको सीधी राहपर लगा दे। २ कृपालु, दयालु, मेहरबान।

अनुग्राहित (सं० त्रि०) उपकृत, जिसपर नेवाज़िश दिखायी गयी हो।

अनुग्राहिन् (सं० त्रि०) अनुकम्पा पहुंचानेवाला, जो नेवाज़िश रखे।

अनुग्राही, अनुग्राहिन् देखो।

अनुग्राह्य (सं० त्रि०) अनु-ग्रह-ण्यत्। अनुग्रहके योग्य, नेवाज़िशके क़ाबिल।

अनुघात (सं० पु०) विनाश, मारण, संहार, मार, चोट।

अनुचर (सं० त्रि०) अनुचरतीति, अनु-चरट्-अच्। चरेष्टः। पा ३।२।१६। १ सहचर, साथ चलनेवाला। २ पश्चाद्गामी, जो पीछे रहे। (पु०) ४ साथी, हमसोहबत। (स्त्री०) अनुचरा।

अनुचारक (सं० पु०) अनु-चरति, अनु-चर-ण्वुल्। १ अनुगामी, पश्चाद्गामी, पीछे चलनेवाला शख़्स। २ सेवक, ख़िदमतगार। (क्ली०) ३ आनुचारिका, सेवकका धर्म, सेवकका कार्य, ख़िदमतगारी, नौकरी। (स्त्री०) अनुचारका।

अनुचारिन् (सं० त्रि०) पश्चाद् गमनशील, पीछे पड़ा हुवा, जो ख़िदमतमें हाज़िर रहे।

अनुचित (सं० त्रि०) न उचितम्, नञ्-तत्। रुचिवचिकुचिकुटिभ्यः किच्च। उण् ४।१८५। अपरिचित, अयुक्त, अकर्तव्य, ग़ैरवाजिब, ग़लत, ग़ैरमामूली, अजनबी। २ समीप, दैर्घ्य अथवा श्रेणीमें स्थापित, जो इधर-उधर, लम्बानमें या क़तारसे रखा गया हो।

अनुचिन्तन (सं० क्ली०) अनु-चिन्ति-ल्युट्। अनुस्मरण, पश्चात् स्मरण, फ़िक्रमन्दी। २ सर्वदा चिन्ता, फ़िक्रका लगा रहना।

अनुचिन्ता (सं० स्त्री०) अनु-चिन्ति-ल्युट्। चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्च्चश्च। पा ३।३।१०५। सतत चिन्ता, सर्वदा चिन्ता, फ़िक्र, ग़ौर।

अनुचिन्तित (सं० त्रि०) स्मरण सटाया हुवा, जिसकी याद लगी हो।

अनुच (सं० त्रि०) न उच्चम् नञ्-तत्। निम्न, नीच, नीचा, निचला, ज़ेर।

अनुच्चार (सं० पु०) उच्चारणका अभाव, तलफ़्फ़ुज़का न तड़कना।

अनुच्चैस् (सं० अव्य०) उच्चस्वरमें नहीं, धीरेसे, बे बुलन्द आवज़, न चिल्लाकर, धीमी बोलीमें।

अनुच्छाद (सं० पु०) १ लटकनेवाला वस्त्र, जो पोशाक लटकती रहे। २ कटिसे चरण पर्यन्त सम्मुख लटकनेवाले वस्त्रका भाग विशेष, दामन।

अनुच्छित्ति (सं० स्त्री०) अविनाश, भङ्गका न भोगना, नाबिखरनी, बेग़ारती, टुकड़ेका न तड़कना।

अनुच्छित्तिधर्मन् (सं० त्रि०) विनाशविहीन गुण-विशिष्ट, ग़ारत न जानेकी सिफ़त रखनेवाला।

अनुच्छिन्दत् (सं० त्रि०) विनाश न बनाते हुवा, जो ग़ारत न कर रहा हो।

अनुच्छिन्न (सं० त्रि०) विनाशरहित, न कटा हुवा, जो ग़ारत न गया हो।

अनुच्छिष्ट (सं० त्रि०) उद्-शिष-क्त, नञ्-तत्। उच्छिष्ट नहीं, अनूठा, जो जूठा न हो। भोजनके बाद जो अवशिष्ट रहता, वह उच्छिष्ट या जूठा कहाता है।

अनुच्छेद्य (सं० त्रि०) उच्छेद या विनाशके अयोग्य, जो उखाड़ा या तोड़ा न जा सके, ग़ारत न किया जा सकनेवाला।

अनुज (सं० त्रि०) अनु पश्चात् जायते, जन-ड। १ पश्चात् जात, पीछे पैदा हुवा। २ लघु, छोटा। (पु०) ३ कनिष्ठ भ्राता, छोटा भाई। (क्ली०) ४ प्रपौण्डरीकनाम गन्धद्रव्य, पांडरी नामका एक खुशबूदार मशाला।

अनुजन (सं० अव्य०) जनके अनुसार, लोगोंके मुवाफ़िक़, मेलसे, सबका सम्मत ग्रहणकर, जिसमें किसीको बुरा न लगे।

अनुजन्मन् (सं० पु०) अनु पश्चात् जन्म यस्य, बहुव्री०। कनिष्ठ सहोदर, छोटा भाई।

अनुजन्मा (सं० स्त्री०) १ कनिष्ठा भगिनी, छोटी बहन। (क्ली०) २ पीछे पैदा हुवा।

अनुजा (सं० स्त्री०) १ कनिष्ठा भगिनी, छोटी बहन। २ त्रायमाणा लता, पांडरी।

अनुजात (सं० त्रि०) अनु-जन-क्त। १ पश्चात् जात, पीछे निकला। २ फिर उत्पन्न हुवा, यज्ञोपवीत दिया गया, जिसका जनेऊ हुवा हो। (पु०) ३ कनिष्ठ भ्राता, छोटा भाई। ४ पुत्र, बेटा। "असौ कुमारस्तमजोऽनुजातस्त्रिविष्टपस्येव पतिं जयन्तः।" (रघु ६।७८)

(क्ली०) ५ प्रपौण्डरीक, पांडरी।

अनुजाता (सं० स्त्री०) त्रायमाणा लता, पांडरी। २ कनिष्ठा भगिनी, छोटी बहन। भ्रातृद्वितीयाके दिवस कनिष्ठा भगिनी यह मन्त्र पढ़ ज्येष्ठभ्राताको अन्न देती है,—

> "भ्रातस्तवानुजाताऽहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम्।
> प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः॥"

अनुजावर (सं० त्रि०) अनुजात् अपि अवरः अश्रेष्ठः, ५-तत्। १ अत्यन्त निकृष्ट, निहायत नाकाम। २ अनुजकनिष्ठ, छोटे भाईसे भी कम। ३ अधमतर, बहुत ख़राब। (पु०) अनुजाया वरः ओढ़ा, ६ तत्। कनिष्ठा भगिनीका वर, छोटे बहनका खाविन्द, बहनोई।

अनुजिघृक्षा (सं० स्त्री०) कृपा करनेकी इच्छा, मेहरबानी देखानेकी ख्वाहिश, जो तबीयत रहम रखती हो।

अनुजीर्ण (सं० त्रि०) बूढ़ा-बाढ़ा, गया, गुज़रा, बीता-बिताया, किसी कारणवश जो बुड्ढा पड़ या सड़ गल गया हो।

अनुजीविन् (सं० त्रि०) अनु-जीवितमाश्रयतुं शीलं यस्य, अनु-जीव-णिनि। १ आश्रित, सहारा साधे हुवा। (पु०) २ सेवक, खिदमतगार।

अनुजीविसात्कृत (सं० त्रि०) अतिशय आश्रित बनाया हुवा, जो ज्यादातर सहारेपर डाला गया हो।

अनुजीव्य (सं० त्रि०) अनुजीव्यते, अनु-जीव-ण्यत्। १ सेव्य, आश्रयणीय, खिदमत-क़ाबिल, सहारा लेने लायक़, जिसके शरणापन्न बन सकें।

अनुज्झत् (सं० त्रि०) त्याग न तड़काते हुवा, जो छोड़ न रहा हो।

अनुज्झित (सं० त्रि०) अनभिभूत, अबाधित, अत्यक्त, निर्गत, घटाया न गया, जो रुका न हो, छूटा न हुवा।

अनुज्ञा (सं० स्त्री०) अनु-ज्ञा-अङ्। १ अनुमति, मर्ज़ी, सम्मति। २ गमनकी आज्ञा, जानेका हुक्म। ३ अपराधकी चमा, क़ुसूरकी मुवाफ़ी। ४ आदेश, फ़रमान।

अनुज्ञात (सं० त्रि०) अनु-ज्ञा-क्त। १ कृतानुज्ञ, मर्ज़ी पाये हुवा, जिसे अनुमति दे दी गयी हो। २ स्वीकृत, मञ्ज़ूर, फ़रमाया गया। ३ प्रतिष्ठित, अधिष्ठित, सम्मानित, इख्तियारयाफ़्ता, इज़्ज़त पाये हुवा, जिसे बड़ाई मिल चुकी हो। ४ गमनार्थ आज्ञा-प्राप्त, जिसे छोड़नेको हुक्म मिला हो, ख़ारिज किया गया, निकाला हुवा।—

"ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत्।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्खस्य वचनं यथा॥" (उशना)

अनुज्ञापक (सं० पु०) आदेश अथवा अनुमति देनेवाला व्यक्ति, जो शख़्स हुक्म चलाये या ताकीद लगाये।

अनुज्ञापन (सं० क्लो०) आदेश, आज्ञा, हुक्म, इख़्तियारदिही।

अनुज्ञाप्ति (सं० स्त्री०) अनुज्ञापन देखो।

अनुज्ञा-प्रार्थना (सं० स्त्री०) आदेश प्राप्त करनेका विनय, हुक्म पानेकी अर्ज़।

अनुज्ञैषणा (सं० स्त्री०) अनुज्ञा-प्रार्थना देखो।

अनुज्येष्ठ (सं० त्रि०) अनुगतं ज्येष्ठम्, प्रादि-स०। १ ज्येष्ठके अनुगत, जो बड़ेके ही पीछेका हो। (अव्ययी०) २ ज्येष्ठको उल्लङ्घनकर, बुजर्गोंसे आगे बढ़कर।

अनुतक्र (सं० क्लो०) तक्रानुपान, जो मठा दवाके साथ दिया जाये।

अनुतप्त (सं० त्रि०) १ तपा हुवा, तपाया गया। २ दुःखसे भरा, अफ़सुर्दा, ग़मज़दा।

अनुतर (सं० क्लो०) अनुतीर्यते अनेन, अनु-तॄ-करणे अप्। नदीपारके निमित्त दातव्य शुल्क, दरया पार करनेको दी जानेवाली उतराई, किराया, महसूल।

अनुतर्ष (सं० क्लो०) अनुतृष्यति अनेन इदं वा करणे कर्मणि वा घञ्। १ मद्यपानका पात्र, शराब पीनेका प्याला। २ मद्य, शराब। ३ मद्यपानका अभिलाष, शराब पीनेका शौक़। ४ पानेच्छा, तृष्णा, पीनेकी ख़ाहिश, प्यास।

अनुतर्षण (सं० क्लो०) १ मद्यपानपात्र, शराब पीनेका प्याला। २ मद्यवितरण, शराबका दौर।

अनुताप (सं० पु०) अनु-तप घञ्। १ पश्चात्ताप, अफ़सोस, पछतावा। २ उष्णता, गर्मी, तपिश।

अनुतापन (सं० त्रि०) पश्चात्ताप पहुंचानेवाला, जो दुःख दे, पुरअफ़सोस, जिसे देखके पछतावा पड़े।

अनुतापिन् (सं० त्रि०) पश्चात्ताप पालते हुवा, पछतावेमें जो पड़ा हो।

अनुतिल (सं० त्रि०) अनुगतं तिलम्, गति-स०। १ तिलानुगत, तिलका, तिलसे भरा हुवा। २ तिलसे उत्पन्न, जो तिलसे पैदा हुवा हो। (अव्य०) ३ तिल-तिल, यव-यव, बाल-बाल, रत्ती-रत्ती, ख़ूब होशियारीसे, बड़ी बारीकीपर।

अनुतिष्ठमान (सं० त्रि०) पीछा करते हुवा, जो पीछे पड़ा हो, अञ्जाम देनेवाला, जो पूरा उतारे, हाज़िरबाश, उपस्थित।

अनुतुन्न (वै० त्रि०) दबा हुवा या दबाया गया, जिसकी आवाज़ बन्द कर दी गयी हो।

अनुतूलन (सं० क्लो०) तूलेनानुकुष्णाति। तृणाद्यग्रं तूलेनानु-घट्टयति। (वाच०) अनु-तूल-अनुकोषणे-णिच्-भावे ल्युट्। तूल द्वारा तृणादिके अग्रभागका निकालकर देखा जाना, बज़रिये पैमाने घास वग़ैरह-के अगले हिस्सेकी आज़मायश।

अनुत्क (सं० त्रि०) न उत्कम्, नञ्-तत्। उत्क उन्मनाः। पा ५।२।८०। अनुत्कण्ठित, स्वस्थ, अनुत्सुक, अनुन्मना, नाख़ाहिशमन्द, आरामसे बैठा हुवा, जो शौक़ न रखे, बेदिल।

अनुत्कर्ष (सं० पु०) न उत्कर्षः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ उत्कर्षाभाव, श्रेष्ठताभाव, खुर्दी, पस्ती, छोटाई।

अनुत्क्लेश (सं० पु०) उत्क्लेशाभाव, बीमारीका न पड़ना।

अनुत्त (सं० त्रि०) न-उन्दी-क्त। नुदविदोन्दत्राघ्राह्रीभ्योऽन्यतरस्याम्। पा ८।२।५६। १ अक्लिन्न, क्लेदरहित, जो गिरा न हो, न जोतने क़ाबिल। नुद-क्त, नञ्-तत्। २ अनुन्न, अप्रेरित, न भेजा हुवा, जो पहुंचाया न गया हो।

अनुत्तम (सं० त्रि०) नास्ति उत्तमं यस्मात्, ५-बहुव्री०। १ अति उत्कृष्ट, निहायत उम्दा, जिससे

बढ़िया कुछ न मिले। २ सर्वोत्तम नहीं, जो सबसे अच्छा न हो। ३ व्याकरणमें उत्तमपुरुषपर अव्यवहृत, जो उत्तम पुरुषमें न लगे।

"सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
आहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा॥" (हितोपदेश)

अनुत्तमाम्भस् (सं॰ क्ली॰) सांख्य मतसे—इन्द्रिय-सुखके प्रति विरक्ति और विद्वेष, दुनीयावी आरामसे बेपरवायी दिखाना और परहेज़ रखना।

अनुत्तमाम्भसिक, अनुत्तमाम्भस् देखो।

अनुत्तर (सं॰ त्रि॰) नास्ति उत्तरः परतरो यस्मात्, नञ्-५-बहुव्री॰। १ अत्यन्त श्रेष्ठ, निहायत उम्दा। ६-बहुव्री॰। २ उत्तररहित, लाजवाब। ३ अपकृष्ट, नकारा। न उत्तरति चलति, उद्-तॄ-अच्, नञ्-तत्। ४ स्थिर, ठहरा हुवा। ५ प्रधान, ख़ास। ६ मौन, खमोश, चुपका। ७ दक्षिणका, दाक्षिणात्य-सम्बन्धीय। (क्ली॰) ८ अयोग्य उत्तर, नाक़ाबिल जवाब, जो जवाब धोकेसे दिये जानेपर जवाब न समझा जाये। (पु॰) ९ जैन-देवविशेष, जैनियोंके एक ख़ास देवता। (स्त्री॰) १० उत्तर-विरुद्ध दिक्, जो दिशा उत्तर न हो, दक्षिण, जनब।

अनुत्तरयोगतन्त्र (सं॰ क्ली॰) बौद्धतन्त्रके अन्तिम चार तन्त्रको उपाधि का नाम।

अनुत्तरङ्ग (सं॰ त्रि॰) उद्गतस्तरङ्गो वीचिश्चाञ्चल्यं वा यस्मात्, प्रादि-बहुव्री॰; ततः नञ्-तत्। अनुद्गत तरङ्ग, ऊपर न उठी हुयी लहरवाला, अचञ्चल, जो न चले।

अनुत्तरोपपातिकदशा (सं॰ स्त्री॰) जैनशास्त्र-विशेषका नाम।

अनुत्तान (सं॰ त्रि॰) न उत्तानम्, विरोधे नञ्-तत्। उत्तान नहो, अवनत, अवतान, अवाङ्मुख, अधोमुख, मुंहभर, सरके बल।

अनुत्थान (सं॰ क्ली॰) उत्थानका अभाव, न उठना, बैठे रहना, निश्चेष्टता, काहिली।

अनुत्थित (सं॰ त्रि॰) न उठा हुवा, जो निकला न हो।

अनुत्थितविद्धा, अनुत्थितशिरा (सं॰ स्त्री॰) उभरी और बिद्ध शिरा, जो शिरा उठी न हो, ख़राब जगहकी बन्दिशसे कांपने और ख़ूनका फ़ितूर उठानेवाली नाड़ी, दुःस्थानके बन्धनसे कांपती हुई शिरा जो शोणित-सम्मोह लगाती है।

अनुत्पत्ति (सं॰ स्त्री॰) न उत्पत्तिः अभावार्थे नञ्-तत्। उत्पत्तिका अभाव, पैदाका न होना।

अनुत्पत्तिक (सं॰ त्रि॰) नास्ति उत्पत्तिः यस्य, नञ्-बहुव्री॰। उत्पत्तिशून्य, जन्मरहित, लापैद, जो पैदा न हो।

अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्ति (सं॰ स्त्री॰) बौद्धमतानुसार, भावी अवस्थाकी तुष्टि, आयन्दा हालतके लिये क़नात।

अनुत्पत्तिसम (सं॰ पु॰) न्यायमतसे—किसी विषय-पर यह दिखानेकी चेष्टा चलाते हुये वितर्क बढ़ाना, कि वैसी कोई चीज़ नहीं मिलती, जिससे वह निकल सके।

अनुत्पन्न (सं॰ त्रि॰) न उत्पन्नम्, नञ्-तत्। १ उत्पन्न नहीं, अजन्मा, उत्पन्न न होनेवाला, लापैद, जो पैदा न हो। २ अप्रतिहत, असमाप्त, असर न पड़ा हुवा, पूरा न किया गया।

अनुत्पाद (सं॰ पु॰) न उत्पादः उत्पत्तिः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ उत्पत्तिका अभाव, पैदा न होना। २ प्रभावका न पड़ना, असरका न आना। (त्रि॰) ३ उत्पत्तिशून्य, बेपैद।

अनुत्पादक्षान्ति (सं॰ स्त्री॰) पुनर्जन्म न पानेकी तुष्टि, दुबारा पैदा न होनेकी ख़ुशी।

अनुत्पादन (सं॰ क्ली॰) उत्पत्तिका अभाव, पैदाका न पड़ना।

अनुत्पाद्य (सं॰ पु॰) उत्पादनके अयोग्य, जो पैदा होने क़ाबिल न रहे, नित्य, मुदामी।

अनुत्साद (सं॰ पु॰) न उत्सादः अवसादनम्, अभावार्थे नञ्-तत्। १ अवसादाभाव, उच्छेदाभाव, अख़ीरका न आना, टुट-फूटका न पड़ना। (त्रि॰) २ उच्छेदशून्य, अटूट, जो उखड़-पखड़ न पड़े।

अनुत्साह (सं॰ पु॰) न उत्साहः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ उत्साहका अभाव, हौसलेका न होना।

(त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ उत्साहशून्य, बेहौसला, जिसका दिल किसी बातपर बढ़ता न हो।

अनुत्साहता (सं० स्त्री०) अनुत्साहकी स्थिति, हौसला न होनेकी हालत।

अनुत्सिक्त (सं० त्रि०) न उत्सिक्तं गर्वितम्। अगर्वित, बेफ़ख़्र, घमण्ड न घसीटनेवाला, सीधा-सादा।

अनुत्सुक (सं० त्रि०) न उत्सुकम्, नञ्-तत्। उत्सुकभिन्न, उत्कण्ठाशून्य, बेहौसला, बेख़्वाहिश, जिसे लगी न हो। २ अननुरक्त, अव्यग्र, मातदिल।

अनुत्सुकता (सं० स्त्री०) उत्सुक रहनेका अभाव, बेहौसलेमन्दी, बेदिली।

अनुत्सूत्र (सं० त्रि०) उत्क्रान्तं सूत्रम्, अतिक्रा०-तत्; ततः नञ्-तत्। सूत्रके अनुरूप, रीतिके अनुसार, सूत्रयुक्त, बाक़ायदा, बारस्म, बंधा हुवा।

अनुत्सेक (सं० पु०) उत्सेकका अभाव, धृष्टताका न धमकना, गुस्ताख़ीका न गुज़रना।

अनुत्सेकिन् (सं० त्रि०) उत्सेकशून्य, धृष्टतारहित, जो गुस्ताख़ न हो, घमण्ड न घसीटनेवाला।

अनुद (सं० त्रि०) न नुदति; नुद-क, नञ्-तत्। १ अप्रेरक, न भेजनेवाला, जो किसीको न पहुंचाये। अनु तुल्यं ददाति, अनु-दा-क। २ तुल्यरूप दाता, बराबर सूरत बख़्शनेवाला।

अनुदक (सं० त्रि०) नास्ति उदकं जलं यत्र, नञ्-बहुव्री०। १ जलशून्य, बेपानी, जहां पानी न पायें। अल्पार्थे नञ्-तत्। २ अल्पजलस्थायी, थोड़े पानीमें ठहरनेवाला। ३ उदकदान-विशेष रहित, जिसमें ज़्यादातर पानीका काम न पड़े।

अनुदग्र (सं० त्रि०) न उद्गतं गर्वेण ऊर्ध्वं घूर्णितं अग्रं मस्तकं यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ ऊंचा नहीं, नीचा, अनुच्च, पस्त। २ न उभरा हुवा, जो ऊपर न उठा हो। ३ मृदु, अतीक्ष्ण, मुलायम। नास्ति उदग्रो यस्मात्। ४ अत्युन्नत, निहायत सरफ़राज़। ५ अति उत्कट, बहुत बेढब। ६ अति उद्धत, हदसे ज़्यादा मग़रूर।—
"उदग्रदशनांशुभिः।" (माघ० २।२१।)

अनुदत्त (सं० त्रि०) दिया हुवा, जमा किया गया, जो वापस पहुंचा हो।

अनुदय (सं० पु०) उदयका अभाव, न निकलना, दिखायी न देना।

अनुदर (सं० त्रि०) न अल्पं उदरं यस्य, अल्पार्थे नञ्-बहुव्री०। (स्त्री०) १ अल्पोदरशाली, कृशोदर, जिसका पेट बड़ा न हो। २ कृश, दुबला-पतला। (स्त्री०) अनुदरा।

अनुदर्शन (सं० क्ली०) अनु दृश-ल्युट्। अनुचिन्तन, अनुस्मरण, याददाश्त, फ़िक्रमन्दी, पश्चात् अथवा सर्वदा चिन्ताका चढ़ाना, पीछे या हमेशा फ़िक्रका फैलना।

अनुदर्शिन् (सं० त्रि०) विचार बांधते हुवा, ख़याल लड़ानेवाला, जो आगेकी बात सोच रहा हो।

अनुदात्त (सं० पु०) उद् ऊर्ध्वं आत्तः उच्चार्यत्वेन गृहीतः अच् उदात्तः, न उदात्तः, विरोधे नञ्-तत्। उच्चैरुदात्तः। पा १।२।२९। १ उदात्त नहीं, जो ऊंचा न हो, उठाया न गया, बुलन्द न रहनेवाला। स्वर तीन प्रकार सुनते हैं,—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। मुखके भीतर तालु प्रभृति स्थानके ऊर्ध्व भागसे जिन सकल स्वरका उच्चारण उठता, वह उदात्त कहलाते हैं। मुखमें तालु प्रभृति स्थानके निम्नभागसे निकलनेवाले सकल स्वर अनुदात्त समझे जाते हैं। जिस शब्दके उच्चारणमें उदात्त और अनुदात्त यह दोनो धर्म मिलें, उसका नाम स्वरित रखा गया है। मतलब यह, कि जिससे पहले अर्धमात्रा उदात्त और पीछे अर्धमात्रा अनुदात्त रहती, उसे स्वरित समझते हैं। उदात्तादि संज्ञा स्वरवर्णकी हो पड़ती है,—

"उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।
दीर्घोह्रस्वः प्लुतश्चे ति कालतो नियमस्त्वचि।" (शिक्षाशास्त्र)

अर्थात् उदात्त, अनुदात्त और स्वरित—यही तीन प्रकारके स्वर सुनते हैं। कालवशतः अच् वर्णके ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत—यह तीन नाम रखे जाते हैं।

अनुदात्ततर (सं० पु०) अनुदात्तसे अधिक, अनुदात्तसे जो शब्द बोलनेमें हलका रहे।

अनुदात्तादि (सं० क्ली०) नाममात्रका आधार जिसका प्रथम शब्दखण्ड अनुदात्त रहता है।

अनुदात्तेत् (सं० पु०) क्रिया-सम्बन्धीय मूल,

जिसके अनुबन्धमें अनुदात्त उच्चारण यह बतानेको रहता, कि वह केवल आत्मनेपदमें आता है।

अनुदात्तोदय (सं० क्ली०) वह शब्दखण्ड जिसमें बोलते हो अनुदात्त स्वर लगता है।

अनुदात्तोपदेश, अनुदात्तेय देखो।

अनुदार (सं० त्रि०) न उद्-आ-रा-क। १ अदाता, दाता नहीं, न देनेवाला, जो फ़ैयाज़ न हो। २ अमहत्, जो बड़ा न रहे। ३ असरल, टेढ़ा। ४ अदक्षिण, खिलाफ़, उलटा। (पु०) नास्ति उदारो यस्मात्, नञ् ५-बहुव्री०। ५ अतिदाता, निहायत फ़ैयाज़। ६ अतिमहत्, निहायत आला। ७ अति-सरल, बहुत सीधा। ८ अतिशय वाञ्छापूरक, ख़ाहिशको खूब पूरा करनेवाला। अनुगतो दारान्, अतिक्रा०-स०। स्त्रीके अनुगत, औरतका ताबेदार।

अनुदित (सं० त्रि०) उद्-इण-क्त, न ईषत् उदितः (सूर्यः) यस्मिन् काले, ईषदर्थे नञ्-बहुव्री०। १ अरुणोदयकाल, पौ फटनेका वक्त, जिस समय पूर्वदिक्में ईषत् सूर्यकिरण चमकता और दो-एक नक्षत्र भी देख पड़ता है।—'उदिते जुहोति अनुदिते जुहोति' (श्रुति) (त्रि०) नञ्-तत्। २ उदित नहीं, न निकला हुवा, जो देख न पड़ा हो। वद-क्त, नञ्-तत्। ३ अकथित, न कहा गया।

अनुदिन (सं० अव्य०) वीप्सार्थे अव्ययी०। प्रति दिन, प्रत्यह, रोज़-ब-रोज़, दिन-दिन।

अनुदिवस, अनुदिन देखो।

अनुदिशम् (सं० अव्य०) प्रत्येक प्रान्तमें, हर ओर, चारो तर्फ़।

अनुदृष्टि (सं० स्त्री०) अनुगता दृष्टि अनुकूला वा दृष्टिः, अतिक्रा०-तत्। १ अनुगत दृष्टि, अनुकूल दृष्टि, नेक नज़र, मेहरबानीकी निगाह। २ अनुदृष्टिनेय, पुरखन। (त्रि०) ६-बहुव्री०। ३ अनुगत अथवा अनुकूल दृष्टि विशिष्ट, नेक नज़र रखनेवाला, जो मेहरबानीकी निगाह रखे।

अनुदेय (सं० त्रि०) वापस या पीछा दिया जाने-वाला, जो वापस या पीछा पहुंचाया जाये।

अनुदेयी (सं० स्त्री०) १ परिवर्तन, पलटा, एवज़, जो चीज़ किसी दूसरी चीज़के लिये देना पड़े।

अनुदेश (सं० पु०) अनु पश्चात् अनुदिश्यते, अनु-दिश्-घञ्। यथासंख्यमनुदेशः समानाम्। पा १।३।१०। १ पश्चाद् उच्चारण, पिछला तलफ़्फ़ुज़। २ उपदेश, तालीम। ३ किसी पहली चीज़का हवाला। अनुदिश्यते, कर्मणि घञ्। ४ उपदेश्य, सिखाया जानेवाला।

अनुदेशिन् (सं० त्रि०) १ पश्चाद् सङ्केत करते हुवा, जो पीछेका हवाला दे रहा हो। २ अनुदेशका विषय बनते हुवा, पिछले क़ायदेपर क़ायम होनेवाला।

अनुदेह (सं० अव्य०) देहसे पश्चात्, जिस्मके पीछे।

अनुदैर्घ्य (सं० त्रि०) प्रशस्त, लम्बाचौड़ा, तूलानी, जो ख़ूब बढ़ा या फैला हुवा हो।

अनुद्गीर्ण (सं० त्रि०) १ वमन न किया गया, जो कै न हुवा हो। २ घृणा न किया हुवा, जिससे नफ़रत न दिखायी गयी हो। ३ ठोकर न लगाया गया, जिसपर लात न पड़ी हो।

अनुद्देश (सं० पु०) न उद्देशः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ उद्देशका अभाव, मतलबका न रहना। २ जिसका कोई अनुसन्धान न निकले, खोजसे ख़ाली।

अनुद्धत (सं० त्रि०) न उद्धतम्, विरोधार्थे नञ्-तत्। विनययुक्त, जो उद्धत न हो, अनुग्र, शान्त, सौम्य, ऊंचा न उठा हुवा, हलीम।

अनुद्धरण (सं० क्ली०) न उद्धरणम्, अभावार्थे नञ्-तत्। १ उद्धारका अभाव, छुटकारेका न मिलना। २ दान, प्रतिष्ठा अथवा प्रमाणका न होना, बख़्शिश, बन्दिश या सुबूतका न रहना।

अनुद्धर्ष (सं० पु०) उद्धर्षका अभाव, उद्वेगका न उठना, घबराहटका पैदा न होना, शान्ति, अमन-चैन।

अनुद्धार (सं० पु०) उद्-धृ-घञ्; न-उद्धारः नञ्-तत्। १ उद्धारका अभाव, छुटकारेका न पाना। (त्रि०) नास्ति उद्धारः ज्येष्ठादि लभ्यांशो यत्र, नञ्-बहुव्री०। २ विंशोद्धारादि रहित, बीस छुटकारेसे ख़ाली।

अनुद्धृत (सं० त्रि०) न उद्धृतम्, नञ्-तत्। १ उद्धार

न किया गया, जिसे छुटकारा न मिला हो। न आलोड़नादिना केनापि प्रकारेण सारांशोत्थापितं यस्मात्, नञ्-बहुव्री०। २ मन्थनादिद्वारा सारांश न निकाला गया।—'पयोऽनुद्धृतसारञ्च हविष्यान्नं प्रचक्षते।' (स्मृति) ३ अनाहत, ज़ख़्म न खाये हुवा, जिसके चोट न लगी हो। ४ अप्रदत्त, न दिया गया। ५ अविभाजित, न बंटा हुवा। ६ अप्रमाणित, जिसका सुबत न मिला हो।

अनुद्धृताभ्यस्तमय (सं० पु०) सूर्यास्त होनेपर गार्हपत्यमें जो आहवनीय अग्नि रहे।

अनुद्भट (सं० त्रि०) सौम्य, शान्त, अनुग्र, जो उद्भट न हो, सादा, हलीम, बेज़ोम।

अनुद्य (सं० त्रि०) उच्चारणके अयोग्य, तलफ़फ़ुज़के नाक़ाबिल, जो बोला न जा सके।

अनुद्यत (सं० त्रि०) उद्यमविहीन, नाकाम, अलस, सुस्त, धैर्यरहित, बेसब्र, जो अपने कामपर खड़ा न हो

अनुद्यमी, अनुद्यत देखो।

अनुद्यूत (सं० क्ली०) अनु-दिव्-क्त। १ पुनर्वार पाशक्रीड़ा, एक बार जुवा खेल फिर जुवा खेलना। २ महाभारतवाले सभापर्वके अन्तर्गत पर्वविशेषका नाम।

अनुद्योग (सं० पु०) न उद्-युज्-भावे घञ्, अभावे नञ्-तत्। उद्योगका अभाव, कोशिशका न होना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ उद्योगरहित, कोशिश न करनेवाला।

अनुद्योगिन् (सं० त्रि०) उद्योगशून्य, कोशिश न करनेवाला, सुस्त, नाकाम।

अनुद्र (सं० त्रि०) अनुदक, बे-पानी, आबसे खाली, जहां या जिसमें पानी न पाया जाये।

अनुद्रष्टव्य (सं० त्रि०) १ देखे जाने योग्य, जो नज़र आने क़ाबिल हो।

अनुद्रुत (सं० त्रि०) अनु-द्रु-क्त। १ अनुगत, आगे आया। २ पश्चाद्गत, पीछे पहुंचा। यथा,—

"अनुद्रुतः संयति येन केवलम्
बलस्य शत्रुः प्रशशंस शीघ्रताम्।" (माघ १।५२)

(क्ली०) ३ मात्राका चतुर्थ कालविशिष्ट तालविशेष, गानेका एक पैमाना जो आधे द्रुत या चौथाई मात्राका होता है। ४ घसीट, जल्द-जल्दका लिखना। ललितविस्तरके दशवें अध्यायमें लिखा है,—

'बोधिसत्व कुछ बड़े होनेसे पाठशालामें लिखना सीखने भेजे गये थे। कपिलवस्तुमें विश्वामित्र नामक कोई गुरुमहाशय (दारकाचार्य) रहे। बुद्ध उन्हींकी पाठशालामें पहुंच चन्दनकी पट्टीपर लिखने लगे। उसके बाद उन्होंने गुरुमहाशयसे पूछा—आप मुझसे क्या लिखायेंगे—अङ्गदेशके अक्षर, या वङ्गदेशके, या मगधके, या अनुद्रुत?' (इसीतरह चौसठ प्रकारके अक्षरका विषय लिखा है।) मालूम होता, कि अनुद्रुत शब्दसे घसीटका ही मतलब निकलता है।

अनुद्वाह (सं० पु०) न-उद्-वह-भावे घञ्; नञ्-तत्। विवाहका अभाव, शादीका न सजना। (त्रि०) २ विवाहशून्य, बेशादी, जिसकी भांवर न भरी हो।

अनुद्विग्न (सं० त्रि०) न उद्-विज्-क्त, विरोधे नञ्-तत्। उद्विग्नभिन्न, अव्याकुल, जो चिन्तित या उद्वेगयुक्त न हो, न घबराया हुवा, जो फ़िक्रमें न पड़ा हो, खुशदिल।

अनुद्वेग (सं० पु०) उद्-विज्-घञ्, न उद्वेगः, अभावार्थे नञ्-तत्। १ उद्वेगका अभाव, घबराहटका न घरघराना। (त्रि०) २ उद्वेगशून्य, बेफ़िक्र, जिसे खटका न लगा हो।

अनुद्वेगकर (सं० त्रि०) उद्वेग न उत्पन्न करनेवाला, जो घबरावट न पैदा करे।

अनुधावत् (सं० त्रि०) पश्चाद्गमन लगाते हुवा, जो पीछे-पीछे दौड़ रहा हो।

अनुधावन (सं० क्ली०) अनु पश्चात् धाव-ल्युट्। १ पश्चाद्गमन, पीछेका चलना। २ तत्त्वनिश्चयकी चेष्टा। ३ अनुसन्धान, खोज, ढूंढ-ढपक। ४ शुद्धि, सफ़ाई, मैलका छुड़ाना।

अनुधावित (सं० त्रि०) पीछा किया गया, जिसके पीछे कोई पड़ा हो।

अनुध्या (सं० स्त्री०) अनु-ध्यै-अङ्। १ शुभानुचिन्तन, मङ्गलचिन्ताका चढ़ना, भलाईका खयाल,

अच्छी फ़िक्रका लगना। २ अनुग्रह, मिहरबानी। ३ आसक्ति, लालच, फंसाव।

अनुध्यान (सं० क्ली०) अनु-ध्यै-ल्युट्। १ सर्वदा चिन्ता, मुदामी फ़िक्र। २ पश्चात् चिन्ता, पिछली फ़िक्र।

अनुध्यायिन् (सं० त्रि०) ध्यान धरते हुवा, विचार बांधनेवाला, ख़्याल लड़ाते हुवा, जो ग़ौर लगा रहा हो।

अनुध्येय (सं० त्रि०) अनु-ध्यै-कर्मणि-यत्। पश्चात् चिन्त्य, पीछे ख़्याल लड़ाने क़ाबिल।

अनुनय (सं० पु०) अनु-नी-अच्। १ विनय, प्रणिपात, प्रार्थना, सान्त्वना, अर्ज़, मिहमानदारी। (त्रि०) २ विनीत, सन्तुष्ट। (अव्य०) ३ विनीत भावसे, झुककर, क़ायदेमें।

अनुनयप्रतिघप्रहाण (सं० क्ली०) बौद्ध मतसे—विनीत आचरणके विरोधका त्याग, अच्छे चालचलनकी बुराियोंका छोड़ना।

अनुनयमान (सं० त्रि०) प्रसन्न करते हुवा, जो खुश कर रहा हो, सम्मान देनेवाला, जो इज्ज़त बढ़ाये।

अनुनयामन्त्रण (सं० क्ली०) सन्तोषजनक सम्भाषण, खुश करनेवाली बात।

अनुनयिन् (सं० त्रि०) नम्र, सभ्य, शान्त, शायस्ता, हलीम, नेक।

अनुनाद (सं० पु०) अनु-नद-घञ्; अनुरूपो नादः, प्रादि-स०। प्रतिध्वनि, प्रतिशब्द, अनुरूप शब्द, पश्चात् शब्द, गूंज, बाज़गश्त, जैसीकी तैसी आवाज़।

अनुनादित (सं० त्रि०) प्रतिध्वनित, प्रतिशब्दायमान, गूंजते हुवा, बाज़गश्त लगाया गया।

अनुनादिन् (सं० त्रि०) अनु सदृशं नदति शब्दायते, अनु-नद-णिनि। प्रतिरूप शब्दकारक, जो अनुरूप शब्द निकाले, गुंजाते हुवा, जो बाज़गश्त निकाल रहा हो।

अनुनायिका (सं० स्त्री०) नायिकां अनुगता, अनु-पश्चात् नयति वा। दासी, टहलुयी, खिदमतगारा, जो स्त्री किसी नायिकाके अधीन हो अथवा पीछे-पीछे चले।

अनुनाश (सं० पु०) अनु-नश-घञ्। १ पश्चात् मरण, पीछेका मरना। (त्रि०) अनु पश्चात् न आशा आकाङ्क्षा यस्मात् यस्य वा, नञ्-बहुव्री०। २ पश्चात् आशा-आकाङ्क्षा न रखनेवाला, जो पीछे उम्मीद न बांधे। ३ पश्चात् आशा-आकाङ्क्षा न दिलानेवाला, जो पीछे उम्मीद न दे।

अनुनासिक (सं० त्रि०) नासिकां अनुगतत्वेन उच्चारितम्, अतिक्रा०-तत्। मुखनासिकावचनोऽनुनासिकम्। पा १।१।८ मुखके साथ नासिकासे उच्चार्यमाण, जो मुंहके सहारे नाकसे बोला जाये। यह शब्द, वर्ण अथवा अक्षरका विशेषण है। ञ, ण, न, ङ और म अनुनासिक वर्ण होते हैं।

अनुनासिकत्व (सं० क्ली०) अनुनासिक होनेका भाव, जिस हालतमें हर्फ़ मुंहके सहारे नाकसे बोला जाये।

अनुनासिकलोप (सं० पु०) अनुनासिक ध्वनि अथवा अक्षरका निकाल डालना, नाकसे निकलनेवाले शोर या हर्फ़को उड़ा देना।

अनुनासिकात्व (सं० क्ली०) आकारका अनुनासिक उच्चारण, 'आ'का नाकसे बोला जाना।

अनुनासिकादि (सं० पु०) अनुनासिक उच्चारणसे प्रारम्भ होनेवाला युक्ताक्षर, यो मिला हुवा हर्फ़ आवाज़-गुन्नासे शुरू हो।

अनुनासिकान्त (सं० पु०) अनुनासिक वर्णमें समाप्त होनेवाला धातु, जो हर्फ़ असली आवाज़ गुन्नामें ख़त्म हो।

अनुनासिकोपध (सं० त्रि०) अन्तिम वर्णसे प्रथम अनुनासिक अक्षर रखनेवाला, जिसके मा-क़ब्ल-अख़ीर हर्फ़ गुन्ना लगा हो।

अनुनिनीषु (सं० स्त्री०) शान्त हो जानेका इच्छुक जो ठण्डा पड़ और राज़ी हो जाना चाहता हो।

अनुनिर्जिहान (सं० त्रि०) बाहर जाते हुवा, जो कहींसे दूर जा रहा हो।

अनुनिर्देश (सं० पु०) पूर्व आदर्शानुयायी वर्णन अथवा सम्बन्ध, पहली मिसालसे मिलते हुवा बयान या रिश्ता।

अनुनिर्वाप (सं० पु०) देवताके अर्थ ढाली जानेवाली

घृतकी अन्तिम धार, जो घीकी धार अखीरमें देवताके लिये छोड़ी जाये।

अनुनिर्वाप्या (सं० स्त्री०) देवताके अर्थ घृतकी अन्तिम धार ढालनेकी विधि, जो रस्म अखीरको देवताके लिये घीकी धार छोड़नेमें अदा की जाती है।

अनुनीत (सं० त्रि०) अनु-नी-क्त। १ विनयप्राप्त, अर्ज़ किया गया, जिससे हाथ जोड़कर कहा हो। २ पश्चात् गृहीत, पीछे लिया गया।

अनुनीति (सं० स्त्री०) नम्रता, झुकाव, सभ्यता, शायस्तगी, रज़ा, प्रसन्नता।

अनुनेय (सं० त्रि०) अनु-नी-कर्मणि अर्हार्थे वा यत्। अनुनयके योग्य, नेवाजिशके काबिल, जो सहजमें राज़ी हो जाये।

अनुन्नत (सं० त्रि०) उन्नत नहीं, नीच, जो ऊंचा न हो, निचला।

अनुन्नतगात्र (सं० त्रि०) बौद्ध मतसे—पुष्ट, प्रधान अथवा प्रबल अङ्गविहीन, जिसके अज़ा मज़बूत, आलीशान या ताकतवर न हों।

अनुन्नतानत (सं० त्रि०) उच्चनिम्न-भिन्न, जो न ऊंचे उठाया न नीचे गिराया गया हो, बराबर, हमवार।

अनुन्मत्त (सं० त्रि०) समझदार, होश न खोनेवाला, गभीर, सञ्जीदा, नशा न पीनेवाला, परहेज़गार, जो जङ्गली या पागल न हो।

अनुप (सं० त्रि०) जलीय, पानीदार, दलदली, कीचड़से भरा हुवा।

अनुपकार (सं० पु०) न-उप-कृ-घञ् उपकारः, अभावार्थे नञ्-तत्। उपकारका अभाव, भलाईका न रहना।

अनुपकारिन् (सं० त्रि०) न उपकारी, विरोधार्थे नञ्-तत्। १ अपकारी, उपकार न करनेवाला, जो भलाई न करे। २ व्यर्थ, नाकाम, जिसमें कोई फ़ायदा न हो। (स्त्री०) अनुपकारिणी।

अनुपकारी, अनुपकारिन् देखो।

अनुपकृत (सं० त्रि०) उपकार न किया गया, जिसपर कोई एहसान न रखा हो, अप्राप्त-साहाय्य, जिसे मदद न मिली हो।

अनुपचित (सं० पु०) उप-चि-कर्मणि क्त; न उपचीयते कामः, नञ्-तत्। १ क्षीण न होनेवाली वाञ्छा अथवा वस्तु-विशेष, जो ख़ाहिश या कोई चीज़ न घटे। (त्रि०) २ अप्रतिहत, अनाहत, चोट न खाये हुवा, जिसके ज़ख्म न आया हो।

अनुपक्षीण (सं० त्रि०) उप-क्षि-कर्तरि क्त; न उपक्षीणम्, नञ्-तत्। क्षीण न होनेवाला, जो घटता न हो।

अनुपगत (सं० त्रि०) पास न पहुंचा हुवा, जो दूर पड़ा हो।

अनुपगीत (सं० त्रि०) १ अप्रशंसित, तारीफ़ न किया गया। २ संगीतमें छूटा हुवा, जो गानेके साथ रह गया हो। (अव्य०) ३ संगीतमें जिससे दूसरा व्यक्ति साथ न दे, ताकि गानेमें दूसरा शख़्स मेल न मिलाये।

अनुपघातार्जित (सं० त्रि०) विना हानि प्राप्त, जो बेनुकसान हाथ लगे।

अनुपघ्नत् (सं० त्रि०) हानि न पहुंचाते हुवा, जो नुकसान न दे रहा हो।

अनुपज (सं० त्रि०) अनुपदेशजात, जो अनुप मुल्कमें पैदा हुवा हो।

अनुपजीवनीय (सं० त्रि०) जीविका न देते हुवा, जो रोज़ी न बताता हो। २ जीविका न जमाते हुवा, जिसके कोई रोज़ी-रोज़गार न रहे।

अनुपठित (सं० क्ली०) अनु-पठ-भावे क्त। १ गुरुके बताये-जैसे पाठका पढ़ना, शिक्षकके उपदेशानुसार पढ़ाई, उस्तादने जैसा सबक़ दिया हो, उसीके मुवाफ़िक़ उसका मुताला। (त्रि०) २ खूब पढ़ा गया, जिसका बख़ूबी मुताला हो चुका हो।

अनुपठितिन् (सं० त्रि०) अनुपठितमनेन, इष्टादित्वात् इनि। पाठ पढ़ लेनेवाला, जिसने सबक़ हासिल कर लिया हो।

अनुपतन (सं० त्रि०) अनु-पत-युच्। जुचंक्रम्यदन्द्रम्यसृगृधज्वलशुचलषपतपदः। पा ३।२।१५०। अनुकूल पतन, अनु-

रूप पतन, अच्छासा गिरना, गहरा गिराव। २ गणितमें—राशि, भाग, जिन्स, टुकड़ा।

अनुपति (सं० अव्य०) पत्युः सामीप्यम्, अव्ययी०। पतिके समीप, स्वामीके निकट, खाविन्दके पास, शौहरके नज़दीक, दूलहकी बग़लमें।

अनुपतित (सं० त्रि०) १ निपतित, स्रवित, उन्नत, गिरा-पड़ा, टपका, उतरा। २ पीछा किया गया, लगा हुवा।

अनुपथ (सं० पु०) अनुकूलः पन्थाः। १ अनुकूल पथ, शुभ मार्ग, भली राह, मौकेकी गली, सीधी सड़क। (त्रि०) २ सड़कके पीछे पड़ते हुवा, जो राह-राह जा रहा हो। ३ भली राह चलनेवाला, जो सीधी सड़क पकड़े। (अव्य०) राह-राह, सड़कसे, गलीकी बग़लमें।

अनुपद् (सं० क्ली०) अनुपद्यते प्रतिदिनं लभ्यते, अनु-पद-क्विप्। प्रतिदिनलभ्य, जो प्रत्यह प्राप्त हो, रोज़ मिलनेवाला।

अनुपद (सं० क्ली०) अनुरूपं योग्यं पदम्, प्रा० स०। अव्ययीभावश्च। पा १।१।४१। १ अस्थायी, मुखताल, मुखड़ा, गीतका वह हिस्सा जो कड़ीके बाद बार-बार गया जाता और गीतके आगे रहता है। २ अनुकूल-पद, योग्यस्थान, अच्छा वोहदा, क़ाबिल जगह। (अव्य०) ३ पद-पद, क़दम-ब-क़दम, प्रतिपदमें, डग-डग, पैर-पैर। पदस्य पश्चात्, (अव्ययी०)। ४ पीछे पीछे। पदमनतिक्रम्य, अव्ययी०। ५ पद अतिक्राम न करके, बे-क़दम-उखाड़े, ठीक पैरपर पैर रखकर।—

"पदं शब्दे च वाक्ये च व्यवसायापदेशयोः।
पादतच्चिह्नयोः स्थानत्राणयोरङ्कवस्तुनेः॥" (विश्व)

अनुपदवी (सं० स्त्री०) पथ, मार्ग, राह, सड़क, गली, कूचा, डगर, बाट।

अनुपदसूत्र (सं० क्ली०) ब्राह्मण-विशेषका भाष्य, जिसमें मूलका अर्थ शब्द-शब्द वर्णित है।

अनुपदस्वत् (वै० त्रि०) सूखते न हुवा, जो मुरझा न रहा हो।

अनुपदिक (सं० त्रि०) अनुपदं अस्ति अस्य, ठन्। पश्चाद्गत, पीछे रहा, जो पीछे छूट गया हो।

अनुपदिन् (सं० त्रि०) पदस्य पश्चादनुपदं तयन्वेष्टा-इनि। अनुपद्यन्वेष्टा। पा ५।२।९०। अन्वेष्टा, जो अन्वेषण निकाले, ढूंढ़नेवाला, जिसे किसीकी तलाश लगे।

अनुपदिष्ट (सं० त्रि०) न उपदिष्टम्, नञ्-तत्। उपदेश न दिया गया, जिसे तालीम न मिली हो, अशिक्षित, तालीम न पाये हुवा।

अनुपदीना (सं० स्त्री०) अनु आयामे सादृश्ये वा अनुपदं बध्वा-ख। अनुपदसर्वान्नायानयं बद्धाभक्षयतिनेयेषु। पा ५।२।९। ठीक पैरके प्रमाणानुरूप पादुका, जो जूता पैर के बराबर हो।

अनुपदेष्टृ (सं० पु०) उपदेश न देनेवाला व्यक्ति, जो शख़्स तालीम न बख़्शे।

अनुपध (सं० पु०) अक्षर अथवा शब्दांश जिसके पूर्व दूसरा प्रतिष्ठित न हो, अपने पहले दूसरा न रखनेवाला हर्फ़ या लफ़्ज़का टुकड़ा।

अनुपधा (सं० स्त्री०) धूर्तता, धोकेबाज़ी, वञ्चकता, हीलासाज़ी।

अनुपधि (सं० त्रि०) नास्ति उपधिश्छलं यत्र। १ निश्छल, कपटताशून्य, धोका न देनेवाला। (स्त्री०) नञ्-तत्। २ सरलभाव, सीधापन, सिधाई।

"कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे।" (अमर)

अनुपधिशेष (सं० पु०) वह व्यक्ति जिसमें मनुष्यत्व न विद्यमान हो, जो शख़्स इन्सानियतसे ख़ाली रहे।

अनुपनाह (सं० पु०) बौद्ध मतसे—प्रगाढ़ प्रेम अथवा भक्तिका अभाव, गहरी मुहब्बत या मुरव्वतका न मिलना।

अनुपनीत (सं० पु०) न उपनीतः, नञ्-तत्। १ उपनयनविहीन, जिसका उपनयन या यज्ञोपवीत न हुवा हो। (त्रि०) २ जो ज्ञानका विषयीभूत न हो, समझमें न आनेवाला। ३ लाया न गया, जिसे लाये न हों।

अनुपन्यस्त (सं० त्रि०) विशदरूपसे अनिर्मित, अप्रतिष्ठित, साफ़ तौरपर न बनाया गया, जिसकी नींव ठीक-ठीक न पड़ी हो।

अनुपन्यास (सं० पु०) न उपन्यासः, नञ्-तत्।

१ कथनाभाव, जो बात उपन्यास अथवा गल्प न ठहरे। २ प्रमाण अथवा प्रयोजनका पतन, सुबूत या इरादेका ज़वाल, जिस बातका कोई ठौर-ठीक न हो या जिसका मतलब न निकले। ३ अनस्थिरता, बेसबाती, ठीक-ठाक न गंठनेकी हालत। ४ सन्देह, शक।

अनुपपत्ति (सं० स्त्री०) उप-पद-क्तिन्; न उपपत्तिः, नञ्-तत्। १ असङ्गति, अनुत्पत्ति, असिद्धि, नाकमालियत, नाकामयाबी। २ अयुक्ति, असाम्यता, नामुताबिक़त, नामुवाफ़िक़त।

अनुपपन्न (सं० त्रि०) न उपपन्नम्। १ असिद्ध, पूरे न पड़ा, जो हासिल न हुवा हो। २ अप्रमाणित, ग़ैर-साबित, जिसका सुबूत न सुना हो। ३ असम्भव, नामुमकिन, जो लगा न हो।

अनुपपादक (सं० पु०) बौद्ध मूर्ति-विशेष, जिसे 'ध्यानीबुद्ध' कहते हैं।

अनुपप्लव (सं० त्रि०) अनभिभवनीय, बाधारहित, गहरी आफ़तसे आज़ाद, जिसे खराबसे भी खराब होनेका डर न लगे।

अनुपप्लुत (सं० त्रि०) अप्रतिहत, अबाधित, दबाया न गया, जो डूबा न हो।

अनुपबाध (सं० त्रि०) नास्ति उपबाधा प्रतिबन्धो यत्र। बाधाशून्य, प्रतिबन्धविहीन, बेरोक।

अनुपभुक्त (सं० त्रि०) अविलसित, मज़ा न मरा गया, जिसका ज़ायक़ा न मिला हो।

अनुपभुज्यमान (सं० त्रि०) विलसा न जाते हुवा, जिसका लुफ़्त उठाया न जा रहा हो।

अनुपम (सं० त्रि०) नास्ति उपमा यत्र। उपमाविहीन, जिसकी उपमा न उठे, बेमिसाल, लासानी, जिसका मुक़ाबिल न निकले। २ अत्युत्कृष्ट, निहायत उमदा, सबसे अच्छा।

अनुपममति (सं० पु०) शाक्यमुनिके सहयोगिविशेष, शाक्यमुनिके किसी साथीका नाम।

अनुपमर्दन (सं० क्ली०) अभियोगकी निष्पत्ति, मुक़द्दमेकी तरदीद।

अनुपमा (सं० स्त्री०) १ उपमाविहीनता, जोड़की जुदायी, अनोखापन। २ दक्षिण-पूर्व अथवा उत्तर-पूर्वकी हथिनी।

अनुपमित (सं० त्रि०) उपमा न दिया गया, मिसाल न मिलाया हुवा, अद्वितीय, बेनज़ीर, लासानी, अनोखा, बेजोड़।

अनुपमेय (सं० त्रि०) केनापि न उपमीयतेऽसौ, उप-मा-कर्मणि यत्; नञ्-तत्। उपमा देनेके अयोग्य, जिसकी मिसाल न मिले।

अनुपयुक्त (सं० त्रि०) न उपयुक्तं उचितं भुक्तं वा। १ अयोग्य, अनुचित, नाक़ाबिल, ग़ैरवाजिब, जो ठीक न पड़े। २ अकाम, बेकार, सेवा साधनेके अयोग्य, जो ख़िदमत गुज़ारने क़ाबिल न हो। ३ अभुक्त, खाया न गया।

अनुपयुक्तता (सं० स्त्री०) अनुपयोग देखो।

अनुपयोग (सं० पु०) न उपयोगः आनुकूल्यं भोजनं वा। १ आनुकूल्यका अभाव, बेकारी, सेवा न साधनेकी स्थिति, जिस हालमें ख़िदमत न बजा सकें। २ भोजनका अभाव, खानेका न मिलना। (त्रि०) नास्ति उपयोगो यस्य। ३ भोजनशून्य, खानेसे ख़ाली। ४ आनुकूल्यशून्य, बेमुरव्वत, जो किसी कामका न निकले।

अनुपयोगिता (सं० स्त्री०) अनुपयुक्तता, अयोग्यता, अर्थराहित्य, बेकारी, फ़ज़ूली, नाक़ाबिलियत, नालायक़ी, बेमुरव्वती।

अनुपयोगिन् (सं० त्रि०) उपयोगशून्य, औचित्यरहित, बेकार, नाकाम, नालायक़, नाक़ाबिल, बेमसरफ़, फ़ज़ूल, बेफ़ायदा, जिससे कोई मतलब न निकले।

अनुपयोगी, अनुपयोगिन् देखो।

अनुपरत (सं० त्रि०) उप-रम्-क्त; न उपरत निवृत्तः, नञ्-तत्। अनिवृत्त, लगा हुवा, मशग़ूल, जो रोका या ठहराया न गया हो।

अनुपरति (सं० स्त्री०) उप-रम-क्तिन्; न उपरतिः विषयरागः, अभावार्थे नञ्-तत्। विषयरागका अभाव, दुनियादारीका न दौड़ना।

अनुपरिधि (सं० अव्य०) यज्ञीय अग्निके तीन परिधिपर।

अनुपरिश्रित् (सं० अव्य०) वृत्ताकार परिधिपर, जहां चारो ओर घेरा बना हो।

अनुपलक्षित (सं० त्रि०) न उपलक्षितं सविशेष-मवगतम्। विशेषरूपसे अविदित, अविवेचित, जिसका पता न लगा हो, नामालूम, बेनिशान्, बेपहुंच।

अनुपलक्ष्य (सं० त्रि०) विवेचनाके अयोग्य, समझनेके नाकाबिल, जिसका पता न लगे, जिसे ढूंढ न सकें।

अनुपलक्ष्यवर्त्मन् (सं० त्रि०) अनुसन्धानशून्य मार्ग-विशिष्ट, पता न लगने काबिल राह रखनेवाला, जिस-की राह ढूंढे न मिले।

अनुपलब्ध (सं० त्रि०) अप्राप्त, अविदित, अनिश्चित, नायाब, नामालूम, बेठौर-ठीक।

अनुपलब्धि (सं० स्त्री०) न उपलब्धिः, अभावे नञ्-तत्। लाभका अभाव, प्रत्यक्षका न पाना, अप्राप्ति, लाइल्मी, बेसमझी।

अनुपलब्धिसम (सं० पु०) मिथ्याहेतु, दलीले-बातिल, किसी झूठी बातको समझ-बूझकर साबित करनेकी कोशिश। (स्त्री०) अनुपलब्धिसमा।

अनुपलभ्यमान (सं० त्रि०) विदित न होता हुवा, जो मालूम न पड़ता हो।

अनुपलम्भ (सं० पु०) अनुपलब्ध देखो।

अनुपलम्भन (सं० क्ली०) अनुपलब्ध देखो।

अनुपवीत (सं० पु०) न उपवीतः। उपनयन-संस्कारसे रहित द्विज, जिस द्विजका यज्ञोपवीत न हुवा हो, जिस ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्यको जनेऊ न दिया रहे।

अनुपवीतिन्, अनुपवीत देखो।

अनुपशम (सं० पु०) न उपशमः शान्तिः, अभावार्थे नञ्-तत्। शान्तिका अभाव, अमनका न मिलना, चैनका न चेहकना, बेचैनी, घबराहट।

अनुपशय (सं० पु०) रोगवर्धक द्रव्य-विशेष, जिस चीज़से बीमारी बढ़ जाये।—

"हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम्।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम्॥
विद्यादुपशयं व्याधेः सहि सात्म्यमिति स्मृतः।
विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्याभिसंज्ञितः॥" (माधव निदान)

अनुपशान्त (सं० त्रि०) अशान्त, अस्थिर, जो ठण्डा न हो, भड़क उठनेवाला।

अनुपश्य (सं० त्रि०) अपनी आकृतिका अनुयायी, जो अपनी शक्लके मुवाफ़िक रहे, दृष्टि अथवा हृदयमें रखनेवाला, जो किसी बातको नज़र या खयालमें चढ़ाये रखे।

अनुपसंहारिन् (सं० त्रि०) १ जो उपसंहारकर्ता न हो, मार न डालनेवाला। २ न्यायमतसे—दुष्ट हेतु-विशेष-विशिष्ट, जिसमें कोई बुरा सबब लगा हो।

अनुपसर्ग (सं० पु०) १ उपसर्गभिन्न शब्द, जो लफ्ज़ ज़र्फ़ न हो। २ संयोजनाकी आवश्यकता न रखनेवाला द्रव्य, जिस चीज़में जोड़ने मिलानेकी ज़रूरत न पड़े।

अनुपसेचन (सं० त्रि०) नास्ति उपसेचनं व्यञ्जनं यत्र। दध्यादि व्यञ्जन-शून्य, जिसमें दही वगैरह ज़ायकेकी चीज़ न पड़ी हो। यह शब्द भोजनका विशेषण ठहरता है।

अनुपस्कृत (सं० त्रि०) उप-कृ-प्रतियत्नाद्यर्थेषु क्त-सुट्—उपस्कृतम्; न उपस्कृतम्, नञ्-तत्। उपात् प्रतियत्नवैकृत-वाक्याध्याहारेषु। पा ६।१।१३९। १ असमाप्त, अरञ्जित, खतम न हुवा, नातराश, जो पूरा न पड़ा या जिसपर सैकल न लगा हो। २ विकारशून्य, न बिगड़ा हुवा, जो विकृत न हो। ३ अनावश्यक, जिसकी ज़रूरत न पड़ी हो।

अनुपस्थान (सं० क्ली०) न उपस्थानम्, अभावार्थ नञ्-तत्। उपस्थानका अभाव, पास न रहनेकी स्थिति, ग़ैरहाजिरी, जिस हालतमें नज़दीक न रहें। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ उपस्थानशून्य, उपासना-रहित, उपस्थितिविहीन, ग़ैरहाज़िर, पास मौजूद न रहनेवाला, जो आस-पास देख न पड़े।

अनुपस्थापन (सं० क्ली०) १ अनुपपत्ति, अनुपस्थिति, दानका अभाव, पैदाका न होना, किसी चीज़का न रखना, न देनेकी बात। २ ग़ैरहाज़िरी या नातय्यारी।

अनुपस्थापयत् (सं० त्रि०) उपस्थित न रहते हुवा, जो हाज़िर न रहे।

अनुपस्थापित (सं० त्रि०) अनुपस्थित, नातय्यार,

दूरगत, जो नज़दीक न हो, अप्रदत्त अथवा अनत्पन्न, न दिया या न पैदा किया गया।

अनुपस्थाप्य (सं० त्रि०) उप-स्था-णिच्-यत्, न उपस्थाप्यम्। १ अस्मरणीय, न क़ाबिल याद। २ जो रखने क़ाबिल न रहे।

अनुपस्थापिन् (सं० त्रि०) अनुपस्थित, गैरहाज़िर, दूरस्थित, दूर-दराज़।

अनुपस्थित (सं० त्रि०) १ समीपमें अनागत, पास न पहुंचा हुवा, उपस्थित नहीं, गैरहाज़िर, दूरस्थ, जो नज़दीक न हो, अप्रवाहित, रुका हुवा। (क्लो०) २ व्याकरणमें उपस्थित-भिन्न शब्द, जो लफ़्ज़ 'उपस्थित' न कहलाये।

अनुपस्थिति (सं० स्त्री०) उप-स्था-क्तिन्, न उपस्थितिः, नञ्-तत्। १ उपस्थितिका अभाव, न रहना, गैरहाज़िरी, मौजूद न होनेकी हालत। २ स्मृतिका अभाव, याददाश्तका न रहना, किसी बातकी भूल।

अनुपहत (सं० त्रि०) न उपहतम्। १ आघातशून्य, बे-ज़ख़्म, चोट न खाये हुवा, जो मारा न गया हो। २ अशुद्ध न किया हुवा, जो नापाक न बनाया गया हो। (क्लो०) ३ नूतन वस्त्र, जो कपड़ा नया और कभी पहननेमें न आया हो।

अनुपहतक्रुष्ट (सं० त्रि०) बौद्ध मतसे—हानि अथवा क्रोधसे अप्रतिहत, जिसपर नुक़सान या गुस्सेका असर न पड़ा हो।

अनुपाकृत (सं० त्रि०) उप-आ-कृ-क्त, न उपाकृतम्। १ संस्कारपूर्वक वेदग्रहणरहित, जिसे संस्कारके साथ वेद न दिया गया हो। २ संस्कारपूर्वक पशुहननरहित, जिसने क़ायदेसे यज्ञके अर्थ पशुवध न किया हो। ३ यज्ञीय कर्मके अर्चना योग्य न बनाया गया, जो यज्ञके काम क़ाबिल न हुवा हो।

अनुपाख्य (सं० त्रि०) स्पष्टरूपसे विवेचनाके अयोग्य, जो साफ़-साफ़ समझ न पड़े।

अनुपात (सं० पु०) राशिद्वयमध्ये अवयवसम्बन्धानुगतः पातः। पाटीगणित और बीजगणितोक्त अङ्क-विशेष, हिसाबकी ख़ास जिन्स। (Ratio) किसी राशिके साथ दूसरे किसी राशिका गुणनीय अवयवके विषयमें जो सम्बन्ध बंधता, उसे अनुपात कहते हैं। अनुपातसे मालूम पड़ता,—प्रथम राशि दूसरे राशिके कितने गुण या कितने भागका कितना अंश है।

जैसे १२ राशिको ३ अङ्कके साथ मिलानेमें देखते, कि १२ राशिके भीतर चौगुना ३ विद्यमान है। इसीसे १२ और ३ इन दो अङ्कका अनुपात समझनेके लिये १२को ३से भाग लगाना पड़ता है, $१२ \div ३ = ४$।

अनुपातका साङ्केतिक चिह्न विसर्ग-जैसा विन्दुद्वय (:) होता है। वही दोनो विन्दु राशिके मध्य लगाना पड़ते हैं। जैसे, १२ : ४ है। ऐसे स्थानमें प्रथम राशिको आदिम राशि (Antecedent) और द्वितीय राशिको अन्तिम राशि (Consequent) कहते हैं। क्योंकि $३ : ५ = ३ \div ५$, जिससे $३ : ५ = \frac{३}{५}$। अथात् किसी अनुपातको सामान्य भग्नांशके आकारमें ला सकते हैं। इसीसे किसी अनुपातके उभय राशिका विशेष अङ्कसे गुण या भाग लगानेपर पूर्व अनुपातमें कुछ नहीं घटता-बढ़ता।

$क : ख = \frac{क}{ख} = \frac{क \times ल}{ख \times ल}$। भग्नांश देखो। अतएव $क : ख = क.ल : ख.ल$।

अनुपातको उभय राशि समान रहनेसे साम्यानुपात (Ratio of equality) कहते हैं। साम्यानुपातमें उभय राशिका मान १ पड़ता है। उभय राशि असमान होनेपर वैषम्यानुपात (Ratio of inequality) कहाता है। ऐसे स्थलका मान १ की अपेक्षा न्यून अथवा अधिक भी हो सकता है। प्रथम राशि परके राशिसे गुरु होनेपर गुरुवैषम्यानुपात (Ratio of greater inequality) ठहरता है। ऐसे स्थलका मान १से अधिक रहा करता है। जैसे, $५ : ३ = \frac{५}{३} = १\frac{२}{३}$। प्रथम राशि परके राशिसे कम होनेपर लघुवैषम्यानुपात पाते हैं। इसका मान १से अल्प पड़ता है। जैसे, $३ : ५ = \frac{३}{५}$।

दो अनुपातके मध्य गुरु और लघु निकालनेको उन्हें सामान्य भग्नांश बना डाले। ५ : ६ और ७ : ८ इनके मध्य कौनसा गुरु है?

$\frac{५}{६}$ $\frac{७}{८}$; $\frac{३०}{३६}$ $\frac{२८}{३६}$; अतएव ५ : ६ यह अनुपात ७ : ८ अनुपातसे गुरु है।

साम्यानुपातके उभय राशिमें कोई अङ्क मिलाने किंवा उभय राशिसे कोई अङ्क निकालनेपर अनुपातके मानका कोई परिवर्तन नहीं पड़ता। जैसे, ५ : ५ =८ : ८ ; ५+२ : ५+२=८+२ : ८+२।

वैषम्यानुपातके उभय राशिमें कोई राशि जोड़नेसे गुरु-वैषम्यानुपातका मान घटता और लघु-वैषम्यानुपातका मान बढ़ जाता है। जैसे, ७ : ४ वैषम्यानुपात है ; यहां उभय राशिमें १ जोड़नेसे ८ : ५ बनता है। अतः पूर्व अनुपातके साथ इसे मिलाये,— $\frac{७}{४}$ $\frac{८}{५}$; $\frac{३५}{२०}$ $\frac{३२}{२०}$; इस स्थानमें मान घट गया है। फिर उभय राशिसे १ घटाये। १ घटानेसे, ६ : ३ बचता है। दुबारा फिर मिलाकर देखे। $\frac{७}{४}$ $\frac{६}{३}$ होता ; अर्थात् मान बढ़ जाता है।

दो अनुपात समान अटनेसे समानानुपात (Proportion) कहाता है। जैसे-यदि $\frac{क}{ख}=\frac{ग}{घ}$ रहे, तो क : ख : : ग : घ हो जाता ; समानुपातके मध्य चार विन्दु लगा साम्य बनाते हैं। इसतरह चार राशिमें समानुपात पड़नेपर दोनो ओरके दो राशिका गुणफल मध्यस्थलवाले दो राशिके गुणफलसे बराबर निकलता है। क : ख : : ग : घ रहनेसे $\frac{क}{ख}=\frac{ग}{घ}$ होता ; इसलिये उभय राशिको ख, घ से गुण देनेपर क. घ=ग. ख निकलता है।

यदि दो राशिका गुणफल फिर दो राशिके गुणफलसे बराबर पड़े, तो दिये हुये चार राशिके मध्य समानुपात रहेगा। उसमें एक गुणफलके गुणनीय और गुणक समानुपातकी दोनो ओरके दो राशि रहें एवं दूसरे गुणफलवाले गुणनीय और गुणक मध्यस्थलके दो राशि बनेंगे। जैसे, क. घ=ख. ग होता, तब ख घ द्वारा उभय राशिको बांटनेपर, $\frac{क}{ख}=\frac{ग}{घ}$ पड़ता, अर्थात् क : ख :: ग : घ समझा जाता है।

यदि क : ख :: ग : घ और ग : घ :: च : छ निकले, तो क : ख :: च : छ पड़ेगा। क्योंकि, $\frac{क}{ख}=\frac{ग}{घ}$ और $\frac{ग}{घ}=\frac{च}{छ}$ रहता ; इसलिये $\frac{क}{ख}=\frac{च}{छ}$ अथवा क : ख :: च : छ हो जाता है।

समानुपातके चारो राशि उलट देनेसे भी समानुपात रहता है।

यदि क : ख :: ग : घ रहे, तो ख : क :: घ : ग हो जायेगा। कारण, $\frac{क}{ख}=\frac{ग}{घ}$ पड़ता ; जिससे १ ÷ $\frac{क}{ख}$=१ ÷ $\frac{ग}{घ}$ यानी $\frac{ख}{क}=\frac{घ}{ग}$ निकलता ; तभी तो ख : क :: घ : ग बनता है।

समानुपातके चारो राशि यथाक्रम बदल डालनेसे भी समानुपात नहीं बिगड़ता।

यदि क : ख :: ग : घ पड़े, तो क : ग :: ख : घ हो जाता, जिससे क : ग :: ख : घ बनता है। कारण, $\frac{क}{ख}=\frac{ग}{घ}$। ऐसे समय उभय राशिका $\frac{ख}{ग}$ द्वारा गुण लगानेपर, $\frac{क}{ग}=\frac{ख}{घ}$ निकलता है। इसलिये क : ग :: ख : घ हुवा है।

समानुपातवाले चारो राशिके मध्य प्रथम और द्वितीय राशि जोड़नेसे समष्टिका मानसम्बन्ध द्वितीय राशिके साथ बिलकुल वैसा ही रहता, जैसा तृतीय और चतुर्थ राशिके समष्टिका मानसम्बन्ध चतुर्थ राशिके साथ बंधता है।

यदि क : ख : : ग : घ रहे, तो क+ख : ख : : ग+घ : घ पड़ेगा। कारण, $\frac{क}{ख}=\frac{ग}{घ}$ होता ; इसलिये $\frac{क}{ख}+१=\frac{ग}{घ}+१$ निकलता ; अथवा, $\frac{क+ख}{ख}=\frac{ग+घ}{घ}$ बनता ; अर्थात् क+ख : ख : ग+घ : घ ठहरता है।

इसतरह वियोगमें भी उभय राशिका समानुपात लगता है।

समानुपातवाले चारो राशिके मध्य, प्रथम और द्वितीय राशिके समष्टिका सम्बन्ध, प्रथम और द्वितीय राशिके वियोग-फलके साथ बिलकुल वैसा ही बंधता, जैसा तृतीय और चतुर्थ राशिके समष्टिका सम्बन्ध उनके वियोग-फलसे लगता है।

यदि, क : ख :: ग : घ आये, तो क+ख : क—ख :: ग+घ : ग—घ निकलेगा। कारण, पहले बता चुके हैं, कि $\frac{क+ख}{ख}=\frac{क+घ}{घ}$ होता; और $\frac{क—ख}{ख}=\frac{ग—घ}{घ}$ पड़ता; इसलिये $\frac{क+ख}{ख}\div\frac{क—ख}{ख}=\frac{ग—घ}{घ}\div\frac{ग+घ}{घ}$ लगता; अर्थात् $\frac{क+ख}{क—ख}=\frac{ग+घ}{ग—घ}$ रहता; जिससे, क+ख : क—ख :: ग+घ : ग—घ बनता है।

इस सूत्रके अनुसार अनेक जटिल और दीर्घ समीकरणका अङ्क सरल और लघु उतरता है। यथा—

$\frac{ङ+क+(२ ङ.क+क^२)^{\frac{१}{२}}}{ङ+क-(२ ङ.क+क^२)^{\frac{१}{२}}}$ = ख² होता है; 'क' को निकाल डालिये।

ऊपर लिखे सूत्रके अनुसार,

$\frac{ङ+क}{(२ ङ.क+क^२)^{\frac{१}{२}}}=\frac{ख^२+१}{ख^२-१}$ बना, समीकरण एकबारगी ही इतना लघु पड़ गया।

समानुपात द्वारा त्रैराशिक और बहुराशिक अङ्क निकाला जा सकता है।

यदि प्रत्यह ६ घण्टे काम कर ८ आदमी १० दिनमें ३० बीघे ज़मीन जोत सकते, तो ४० बीघे ज़मीन जोतनेमें कितने आदमी लगेंगे?

इस स्थानमें उभय पक्षपर ही समयका तारतम्य नहीं मिलता, इसलिये समय छोड़ देनेसे ऐसा अनुपात आता है,—

३० बीघा : ४० बीघा : : ८ : $\frac{४०\times८}{३०}$; १२ आदमी।

दश तोप, पांच मिनटमें पर्यायक्रमसे ३ दफ़े गोला दाग़ यदि २७० सिपाही डेढ़ घण्टेपर मार डालती, तो ६ मिनट पर्यायक्रमसे ५ दफ़े गोला दाग़ सकने पर कितनी तोपसे एक घण्टेमें ५०० सिपाही खेत रहेंगे?

मान लो, अ= तोपकी संख्या है; इस जगह राशि इस क्रमसे बदलती है,—

वध्य सैन्य अधिक रहनेसे तोप भी अधिक होना चाहिये—(बाकी न बदलेगा) अल्प समयके मध्य मारनेकी तोप अधिक दरकार है—(बाकी न बदलेगा), एक मिनटमें गोला दाग़ना वारमें कम पड़नेसे तोप अधिक चाहिये—(बाकी न बदलेगा); अब समस्त राशि बदल जानेसे,

तोपकी संख्या × सैन्यसंख्या × $\frac{१}{समय}$ × $\frac{१}{१ \text{ मिनटमें दाग़नेकी संख्या}}$; इसलिये, २७० × $\frac{१}{१\frac{१}{२}}$ × $\frac{१}{\frac{३}{५}}$: ५०० × $\frac{१}{१}$ × $\frac{१}{\frac{५}{६}}$ :: १० : अ। ∴ अ=२०।

स्थानविशेषसम्बन्धे सदृशः पातः पतनम्। २ नाड़ीमण्डल अथवा विषुवरेखासे (Equator) पृथिवीके किसी स्थान-विशेषका दूरत्व, जो दूरी ज़मीनकी किसी जगह खते इस्तवेसे वाक़ा हो। स्थान-विशेष निरक्षरेखासे उत्तर पड़नेपर उत्तर-निरक्षान्तर और दक्षिण रहनेसे दक्षिण-निरक्षान्तर कहाता है।

३ पश्चात्पतन, पीछेका गिराव। अनुगतः पातम्। ४ राहुरूपग्रहविशेष, जो खास तारा राहु-जैसा रहता है। (अव्य०) अनु-पत्-णिच्-णमुल्। ५ पश्चात् पात करके, पीछे गिरकर।

"लतानुपातं कुसुमान्यगृह्णात्।" (भट्टि २।११)

अनुपातक (सं० क्ली०) पातयति नरकं प्रेरयति, पत्-णिच्-ण्वुल् पातकं; अनु ब्रह्महत्यादि महापातकसदृशं पातकम्, प्रादि-स०। महापातक सदृश पापविशेष, जो पाप बहुत बड़े पापकी बराबर हो। अनुपातक कई प्रकारसे पड़ता है,—

१, नीचजाति होकर अपनेको उच्चजाति बताना। २, राजासे वह दोष जाके कहना, जिसे खोलनेसे प्राणदण्ड तक मिल सके। ३, गुरु लोगोंका मिथ्यादोष रटते रहना। यह तीनो ब्रह्महत्याके बरावर पातक होते हैं।

१, वेदत्याग किंवा वेद पढ़के भूल जाना। २, वेदकी निन्दा निकालना। ३, उलटी बात बता इधर-उधर साक्षी देना; यह दो प्रकारका होता है,—पहले किसी विषयको समझकर छिपाना, दूसरा सत्यको दबा मिथ्या बोलना। ४, बन्धुका प्राण ले लेना। ५, विष्ठादिजात द्रव्य खाना। ६, अखाद्य पेटमें डालना। यह छः पातक सुरापानके समान है।

१, अमानतमें ख़यानत अर्थात् किसीका रखा हुवा धन धोकेसे हड़प जाना। २, मनुष्य चुराना। ३, घोड़ा चुराना। ४, चांदीकी चोरी करना। ५, भूमिको चुरा लेना। ६, हीरा चुराना। ७, मणि मार रखना। यह सात पातक सोना चुरानेके समान होते हैं।

१, सहोदरा भगिनीगमन। २, कुमारी-गमन। ३, नीचजातिकी स्त्रीका गमन। ४, बन्धुकी स्त्रीका गमन। ५ औरसजात पुत्र-भिन्न अन्य पुत्रकी स्त्रीका गमन। ६, पुत्रकी असवर्णा स्त्रीका गमन। ७, मौसीके साथ रति रखना। ८, फूफूके साथ सहवास। ९, साससे प्रसङ्ग लगाना। १०, मामीको रखना। ११, पुरोहितकी स्त्रीका गमन। १२, भगिनी गमन। १३, आचार्यकी स्त्रीका गमन। १४, शरणागता स्त्रीका गमन। १५, राणीगमन। १६, गृहाश्रम छोडी हुयी स्त्रीका गमन। १७, श्रोत्रियस्त्रीगमन। १८, साध्वीस्त्रीगमन। १९, उच्चवर्णकी स्त्रीके साथ नीच वर्णके पुरुषका सहवास। यह उन्नीस अनुपातक गुरुपत्नीके हरण तुल्य रहते हैं। अनुपातकका विवरण मनुसंहिताके ११वें अध्यायमें ५६ श्लोकादिपर और अनुपातकका प्रायश्चित्त महापातक शब्दमें देखो।

अनुपातकिन् (सं० त्रि०) अनुपातकमस्ति यस्य, इनि। अनुपातकग्रस्त, अनुपातक उठानेवाला।

अनुपातम् (सं० अव्य०) क्रमशः, सिलसिलेवार, लगातार।

अनुपातिन् (सं० त्रि०) अनुपतति अनुगच्छति, अनु-पत्-णिनि। १ अनुगामी, पश्चाद्गामी, पीछे पड़नेवाला, जो फल या नतीजेकी तरह पीछे आ रहा हो। अनुपातयति वृक्षात् फलादिकम्। अनु-पत्-णिच्-णिनि। २ टपकानेवाला, जो वृक्षादिसे फल गिराये।

अनुपादक (सं० पु०) तत्त्वविशेष, जिसे तान्त्रिक आकाशसे भी सूक्ष्म समझते हैं।

अनुपान (सं० क्ली०) अनु भेषजेन सह पश्चाद्वा पीयते, पा कर्मणि ल्युट्। १ औषधके साथ मिलाकर पिया जानेवाला द्रव्य, जो चीज़ दवाके साथ या पीछे पी जाये। वैद्य का औषध खानेसे अनुपानके प्रति विशेष दृष्टि दौड़ाना आवश्यक है। अनुपानभेदसे एक-एक औषधके नाना प्रकार गुण खिलते हैं।

"अनुपानविशेषेण करोति विविधान् गुणान्।" (वैद्यक)

२ निकटस्थित पानीय पदार्थ, पास रखी हुयी पीनेकी चीज़। पानस्य जलस्य समीपे, अव्ययी०। ३ जलके निकट, पानीके पास।

"चूर्णावलेहगुटिका कल्कानामनुपानकम्।
वातपित्तकफोद्रेके त्रिद्वेकपलमाहरेत्॥" (शार्ङ्गधर मध्यख० ६अ०)

अनुपानत्क (सं० त्रि०) बेजूता, जो जूता न पहने हो, नङ्गेपैर।

अनुपायिन् (सं० त्रि०) उपायको काममें न लानेवाला, जो वसीलेको काममें न लाता हो।

अनुपार्श्व (सं० त्रि०) १ पार्श्वसम्बन्धीय, बगली, पहलूवाला। (अव्य०) २ पार्श्वमें, बगलसे, पहलूपर।

अनुपालु (सं० पु०) पानीयालुक, जङ्गली आलू।

अनुपावृत्त (सं० त्रि०) न उपावृत्तम्। १ अपरावृत्त, वापस न आनेवाला। २ नैष्ठिक ब्रह्मचारी।

अनुपासन (सं० क्ली०) उपासनाका अभाव, ध्यानका न लगाया जाना, बेख़याली।

अनुपासित (सं० त्रि०) उपासना न पहुंचाया गया, जिसका ध्यान न लगा हो।

अनुपुरुष (सं० पु०) १ पूर्वोक्त पुरुष, पहले बताया हुवा मर्द। २ शिष्य, चेला, जो शख़्स पीछे रहे।

अनुपुष्प (सं० पु०) अनुगतं पुष्पं तद्विकाशम्, अति०-तत्। शरवृक्ष, सरपत, खङ्गलण, वेतस्, रमसर, मूंज। (Saccharum sara)

अनुपूर्व (सं० त्रि०) अनुगतं पूर्वं परिपाटीम्, अति०-स०। बिलकुल क्रमानुसार, ठीक क्रमानुयायी, सिलसिलेवार, तरतीबवाला, जो ठीक क़ायदेके मुताबिक़ लगा हो। (स्त्री०) अनुपूर्वी।

अनुपूर्वकेश (सं० पु०) नियमित केशविशिष्ट व्यक्ति, जिस शख़्सके बाल क़ायदेसे बने हों।

अनुपूर्वगात्र (सं० पु०) नियमित अङ्गविशिष्ट व्यक्ति, जिस शख़्सके अज़ा क़ायदेसे गंठे हों।

अनुपूर्वज (सं० त्रि०) नियमितरूपसे उत्पन्न, जो बाक़ायदा पैदा हुवा हो।

अनुपूर्वदंष्ट्र (सं० त्रि०) नियमित दन्तविशिष्ट, क़ायदेके दांत रखनेवाला, जिसके दांत ठीक-ठीक बने हों।

अनुपूर्वनाभि (सं० पु०) नियमिताकार नाभिविशिष्ट-व्यक्ति, जिस शख़्सको तोंदी बाक़ायदा बनी हो।

अनुपूर्वपाणिलेख (सं० त्रि०) नियमित हस्तरेखा-विशिष्ट, जिसके हाथकी लकीर बाक़ायदा पड़ी हो।

अनुपूर्ववत्सा (सं० स्त्री०) नियमित रूपसे वत्स-उत्पन्न करनेवाली गो, जो गाय क़ायदेसे बच्चा जने।

अनुपूर्वशस् (सं० अव्य०) १ नियमित क्रमसे, बंधे सिलसिलेपर। २ प्रथमतः, पहलेसे, आरम्भमें, शुरूपर।

अनुपूर्वेण, अनुपूर्वशस् देखो।

अनुपूर्व (सं० त्रि०) नियमित, क्रमबद्ध, बाक़ायदा, सिलसिलेवार।

अनुपृक्त (सं० त्रि०) सम्मिलित, मिला हुवा।

अनुपृष्ठ्य (सं० त्रि०) १ पीठपर बंधा हुवा, जो पुश्तपर लगा हो। २ विशेष दीर्घ, ख़ूब लम्बा।

अनुपेत (सं० त्रि०) न उपेतम्। उपनयनके निमित्त गुरुके निकट अनुपस्थित, जो जनेऊके लिये गुरुके पास न पहुंचा हो, यज्ञोपवीतरहित, जनेऊ न किया गया।

अनुपोषण (सं० क्ली०) खाना-पीना, उपवासका न उठाना, फ़ाक़ेका न फैलाना, खाते-पीते रहनेकी हालत।

अनुप्त (सं० त्रि०) न उप्तम्, वप-क्त। बोया न गया, बे-बोया हुवा, जिसका वीज न पड़ा हो।

अनुप्तशस्य (सं० त्रि०) जोता न जानेवाला, ग़ैर-मज़रूवा, परती, ऊसर।

अनुप्त्रिम (सं० त्रि०) बे-बोये उत्पन्न, जो विना जोते-बोये आप ही पैदा हुवा हो।

अनुप्पन—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीकी कनाड़ी जातिके कृषक। प्रधानतासे मदुरा, तिन्नेवेली और कोयम्बातुर जिलेमें इनका वासस्थान है। सम्भवतः इनका आदि वासस्थान महिसूरमें था। बिगडी हुई कनाड़ी भाषामें यह लोग वार्तालाप करते हैं। यह लोग हिन्दू जातीय शैव और वैष्णव दो संप्रदायमें विभक्त हैं। ब्राह्मण वैष्णवोंका पौरोहित्य चलाते हैं। किन्तु शैव संप्रदायके लोग क्रिया-कर्ममें ब्राह्मण पुरोहितको नहीं लगाते। इन लोगोंमें विधवा विवाह प्रचलित है। किन्तु व्यभिचारिणी स्त्री पतिके छोड़ देनेपर भी उसके जीते-जी पुनर्विवाह नहीं कर सकती। अन्यजातीय पुरुषके साथ किसी स्त्रीका व्यभिचार लगनेपर उसको जातिच्युत कर देते और उसे मरी समझ अनेक प्रकारका क्रियानुष्ठान उठाते हैं। इस उपलक्ष्यमें एक जीवित बकरा पृथ्वीमें गाड़ दिया जाता है।

अनुप्रदान (सं० क्ली०) अनुप्रदीयते अनु-प्र-दा-करणे ल्युट्। १ वर्णोत्पादनके निमित्त वाह्यप्रयत्नविशेष, हर्फ़ निकालनेके लिये बाहरी खास तरकीब।

"एते श्वासानुप्रदाना अघोषाश्च विवृखते॥" (भट्टोजि)

२ दान, बख़्शिश।

अनुप्रधावित (सं० त्रि०) पीछे दौड़ते हुवा, उत्कण्ठित, जो जल्द जा रहा हो, ख़्वाहिशमन्द।

अनुप्रपन्न (सं० त्रि०) पश्चाद्गत, पीछे पड़ा हुवा, पिछलगा।

अनुप्रपातम् (सं० अव्य०) क्रमानुसार जाते हुये, जिसमें सिलसिलेसे चल रहे हों।

अनुप्रपादम्, अनुप्रपातम् देखो।

अनुप्रमाण (सं० त्रि०) अनुयायी प्रमाण अथवा दैर्घ्य विशिष्ट, मक़बूल मिक़दार या लम्बान रखने-वाला, जो ठीक तौरसे भरापूरा या लम्बा हो।

अनुप्रयुज्यमान (सं० त्रि०) योगमें लगाया गया, जोड़में जमा हुवा।

अनुप्रयोक्तव्य (सं० त्रि०) योगमें लगाने योग्य, जमामें जोड़नेके क़ाबिल, जो जोड़में मिलाया जा सके।

अनुप्रयोग (सं० पु०) अतिरिक्त संस्थापन, ऊपरी लगाव।

अनुप्ररोह (सं० त्रि०) क्रमानुसार बढ़ते हुवा, जो सिलसिलेवार निकल रहा हो।

अनुप्रवचन (सं० क्ली०) अनुरूपं प्रवचनं उच्चारणम्। अनुप्रवचनादिभ्यश्च। पा ५।१।१११। गुरुके कथनानुसार उच्चारण, उस्तादका बताया-जैसा तलफ़्फ़ुज़। अनुप्रवचनादिमें निम्नलिखित शब्द रहते हैं,—अनुप्रवचन, उत्थापन, प्रवेशन, अनुप्रवेशन, उपस्थापन, संवेशन, अनुवेशन, अनुवचन, अनुवादन, अनुवासन, आरम्भण, प्ररोहण, अन्वारोहण।

अनुप्रविश्य (सं० अव्य०) प्रवेश पाकर, दाखिल होके, पहुंचनेपर, घुसनेमें।

अनुप्रवेश (सं० पु०) अनुरूपः प्रवेशः। १ सूर्यके यथानुरूप किरणका चन्द्रमण्डलमें प्रवेश, आफ़ताबवाली जैसी-की तैसी शुवाका चांदके घेरेमें घुसना। २ अनुरूप प्रवेश, वापसी। ३ घरके भीतर जानेकी राह। ४ प्रतिविम्बपतन, अक्सका पड़ना। (Reflection) ५ प्रतिलक्षित होना, झलकका आना। ६ सदृशीकरण, नक़ल।

"अनुप्रवेशादिव बालचन्द्रमाः।" (रघु ३।२२)

अनुप्रवेशन (सं० क्ली०) अनुप्रवेश देखो।

अनुप्रवेशनीय (सं० त्रि०) प्रत्यावर्तन अथवा प्रत्यागमन सम्बन्धीय, लौटने या दाखिल होनेवाला।

अनुप्रश्न (सं० पु०) गुरु द्वारा पूर्वकथित विषयका प्रमाण देते हुवा अनुयायी प्रश्न, जो पिछला सवाल, उस्तादकी पहले बतायी बातका हवाला रखे।

अनुप्रसक्त (सं० त्रि०) अतिशय संलग्न, खूब सटा हुवा, जो पूरे तौरसे फंसा हो।

अनुप्रसक्ति (सं० स्त्री०) घनिष्ठ सम्बन्ध, गहरा लगाव।

अनुप्रस्थ (सं० त्रि०) प्रशस्त, चौड़ा, जो चौड़ाईके मुवाफ़िक़ रहे।

अनुप्रहरण (सं० क्ली०) धक्का, झोंक, गिराना, डालना।

अनुप्राप्त (सं० त्रि०) १ आगत, पहुंचा, प्रत्यावर्तित, लौटा। २ प्राप्त, मिला।

अनुप्राशन (सं० क्ली०) अनुरूप भक्षण, खा लेना, खवायी।

अनुप्रास (सं० पु०) प्राश्यते प्रकृष्टमाक्षिप्यते प्रासः; अनुसदृशः प्रासः वर्णविन्यासः, प्रादि-स०। सदृश वर्ण, अंश और शब्दकी पुनरावृत्ति, एक-जैसे हर्फ़, टुकड़े और लफ़्ज़का दुहराया जाना। किसी वाक्यमें पास ही पास समान वर्णका विन्यास बंधनेसे अनुप्रासालङ्कार बनता है। (Alliteration) मम्मटभट्टने अनुप्रासका यह लक्षण लगाया है,—

"वर्णसाम्यमनुप्रासः।
स्वरवैसादृश्ये ऽपि व्यञ्जनसदृशत्वं वर्णसाम्यम्।
रसाद्यनुगतः प्रकृष्टो न्यासोऽनुप्रासः॥" (काव्यप्रकाश)

वर्णकी समता अनुप्रास कहाती है। स्वरकी समता न मिलते यदि केवल व्यञ्जनवर्णकी ही समता सजे, तो भी समान वर्ण बन जाता है। वाक्यके रसादिजनक वर्णविन्यासका अनुप्रास नाम पड़ा है।

अनुप्रास काव्यका अलङ्कार है। यह अलङ्कार भावसे नहीं, वर्ण और शब्दसे सजता है। इसीसे अनुप्रास, रचनाके ऊपरकी शोभा है, इस अनुप्रास भीतरी अधिक गुण नहीं रहता। जिस समय कविकी सहृदयता अक्षुण्ण रहती, तब वह अनुप्रास ढूंढते नहीं फिरता, अनुप्रास उसे अच्छा भी नहीं लगता। वह हृदयका चित्र खींच लोगोंको प्रसन्नता पहुंचाता है। इसीसे हिन्दुस्थानके प्रधान कवि तुलसीदास, सूरदास और केशवकी कवितामें अनुप्रासकी मिठास नहीं पाते। कालिदासकी शकुन्तला सीधी बातोंमें बनी है। शकुन्तला तपस्विकन्या रहीं, वनके भीतर बसती थीं। उन्होंने पट्टवस्त्रपर मणि-मुक्ता लगा झलाझलीमें दुष्यन्तसे मुलाक़ात न की थी।

समाज निस्तेज जानेसे जब मनुष्यकी सहृदयता घटने लगती, तब कविकी दृष्टि शब्दकी ओर ही झुकती है। हरिश्चन्द्र गद्य लिखने बैठ भी एक छत्रमें विस्तर अनुप्रास सटाते थे। वाणभट्टके समय लोगोंमें अधिक सहृदयता नहीं रही; इसीसे उन्होंने कादम्बरीमें छोरसे ओरतक केवल अनुप्रास अड़ा दिया, जो कादम्बरी पढ़नेपर अतिशय विरक्ति निकालता है। चतुष्पाठीके अध्यापकको भी अनुप्रास अथवा यमक बहुत अच्छा लगता, इसीसे वह दो एक चोतुका सुनते ही आंखसे आंसू टपका देता है।

सभी काममें बढ़ाबढ़ी दोष मानी गयी है। परिमित काम करनेसे गुण निकलता है। अब यही देखना चाहिये, अनुप्रास क्या है और उससे रचना कितनी मिष्ट पड़ती है ?

"ततोऽरुणपरिस्पन्दमन्दीकृतवपुः शशी।
दध्रे कामपरिक्षामकामिनीगण्डपाण्डुताम्॥"

ऊपरके श्लोकमें 'स्पन्द,' 'मन्द', 'काम' 'क्षाम', 'गण्ड', 'पाण्डु',—यह तीन अनुप्रास आये हैं।

होलीमें रोली लिये बोली तिय मुसकाय।
वेगि कान्ह इत आइये माखन देहुँ खवाय॥

यहां होली, रोली और बोली शब्द अनुप्रासके हैं। इसीतरह दो-तीन वर्ण एक प्रकार पास-पास पड़नेसे अनुप्रास गंठता है।

व्यञ्जनवर्णका ही अनुप्रास मिष्ट लगता है, स्वर-वर्णका अनुप्रास उतना मीठा नहीं उठता।

नाचो गावो रंग करो खेलो आज गुलाल।
होलीको मौको भलो चलो मनावो लाल॥

यहां ओकार वर्णका अनुप्रास पड़ा है। ओकार स्वरवर्ण है, इसीसे व्यञ्जन-अनुप्रासकी तरह सुननेमें मीठा नहीं लगाता।

किसी प्रकारके व्यञ्जनवर्णमें यदि अ, इ, उ प्रभृति नानारूप स्वरवर्ण युक्त हों, तो अनुप्रासकी कोई क्षति नहीं निकलती।

"अयमेति मन्दं मन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः।"

यहां वेरी और वारि इन दो शब्दमें भिन्न-भिन्न स्वरवर्ण लगे हैं। अर्थात् वेरीका व एकार-संयुक्त और वारिका व आकार-संयुक्त है। इसतरह विभिन्न स्वर सटनेसे अनुप्रासकी क्षति नहीं होती। दूसरे, पावन और पवन इन दो शब्दमें भी एक प वर्णपर आकार है, दूसरेपर नहीं पाते। तथापि अनुप्रास अधिक सुश्राव्य बना है।

इसीतरह कविताके स्थान-स्थानमें सम्भवमत दो-एक अनुप्रास पड़नेसे पद्य सुननेपर मिष्ट मालूम होता है। किन्तु अधिक अनुप्रासका आडम्बर बांधनेसे पदलालित्य लापते हो जाता; वरन् वैसी रचना पढ़नेमें कटु लगती है।

अनुप्रासमें कविता लगाते समय काव्यका रस देख अल्पप्राण और दीर्घप्राण वर्णसे कविता बनाना चाहिये। आदि, करुण और शान्तिरस अल्पप्राण एवं वीभत्स, हास्य, रौद्र, वीर, भय और अद्भुतरस दीर्घप्राण वर्णसे रचे। वर्गके प्रथम, तृतीय, पञ्चम वर्ण और य र ल व को अल्पप्राण, और वर्गके द्वितीय, चतुर्थ वर्ण, एवं श ष स ह को महाप्राण कहते हैं। आदि प्रभृति रसमें न और म संयुक्त वर्ण प्रशस्त है, किन्तु टवर्गका संयुक्त वर्ण ठीक नहीं पड़ता। वीभत्स प्रभृति रसमें अनुनासिक-भिन्न अन्य संयुक्त वर्ण और टवर्गका ही संयुक्त वर्ण प्रशस्त रहता है। किन्तु रचनाके समय चुन-चुन केवल अल्पप्राण और दीर्घप्राण वर्णका प्रयोग प्रायः नहीं पहुंचता। सर्वत्र ही दोनो प्रकारका वर्ण मिल जाता है। फिर भी आदि, करुण और शान्ति-रसमें अल्पप्राण वर्णकी संख्या अधिक सजती और वीर प्रभृति रसमें दीर्घप्राण बहुल परिमाणसे पड़ता है।

कङ्कण करन कल किङ्किणी कलित कटि
कञ्चन कंगूरा कुच कारी केश यामिनी।
कानन करनफूल कोमल कपोत कण्ठ
कम्बुक कपोत कीर कोकिल कलामिनी॥
केशर कुसुम कलधौतकी काकून कान्ति
कोविद प्रवीण वेणी करिवरगामिनी।
कोक कारिकासी किन्नरीक कन्यकासी किल
कामकी कलासी कमलासी खासी कामिनी॥

इस कवितामें अल्पप्राण वर्ण ही अधिक पाये जाते हैं, इसलिये कामिनीके लावण्यभावका जो आदि रस रहा, वह खूब टपक पड़ा है।

"धों धों धों धों नगारा गड़ गड़ गड् गड् चौघड़ी घोरघर्षैः
भों भों भीरङ्ग शब्दैर्घन घन घन बाजे च मन्दीरनादैः।
भेरी तूरी दमामा दगड़दड़मसाशब्दनिस्सब्दैर्वै-
र्दैत्योऽसौ घोरदैत्यैः प्रविशति महिषः सार्वभौमो बभूव॥"

इस कविताके भीतर दीर्घप्राण वर्णकी ही संख्या अधिक है। इसमें अल्पप्राणवर्ण उतने नहीं पड़े, इसीसे वीररस खूब स्पष्टरूपसे झलका है।

अलङ्कारिकोंने अनुप्रासको अनेक श्रेणीमें बांटा है। नीचे स्पष्ट तालिकामें देखाते हैं,—कौन श्रेणीका अनुप्रास किस अनुप्रासके अनुगत है।
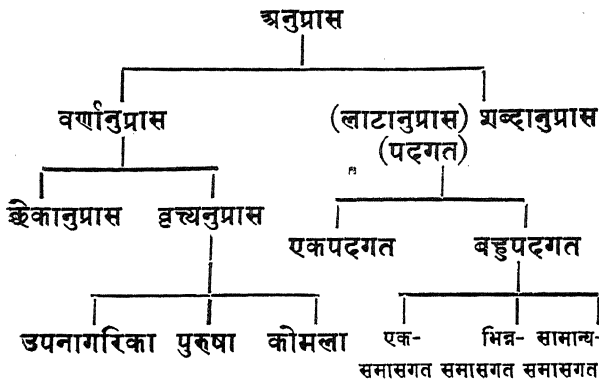
अनुप्रास प्रथमतः दो भागमें बंटा है। यथा,—वर्णानुप्रास और शब्दानुप्रास। वाक्यके भीतर पास-पास एक प्रकारके वर्ण बैठनेसे वर्णानुप्रास कहाता और एक प्रकारके शब्द सङ्ग-सङ्ग सजनेसे शब्दानुप्रास या लाटानुप्रास निकलता है।

कान कुंवर कह कहत ही कामिनिसे अठिलाय।
कान करत नहिं काहुकी कारे कुटिल स्वभाय॥

यह वर्णानुप्रासका उदाहरण है। इस दोहेमें क-वर्णका अनुप्रास अड़ा-पड़ा है।

शब्दानुप्रासका उदाहरण यह है,—

होली विच होली सखी पूरी मनकी आस।
लगी कानके कानसों करत सौतको हास॥

यहां भिन्नार्थ बोधक होली, होली और कान, कान शब्दसे अनुप्रास बना है।

वर्णानुप्रास फिर प्रधानतः दो भागमें विभक्त है। यथा,—छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास।—

"छेकवृत्तिगतो द्विधा।" (काव्यप्रकाश)

वाक्यके भीतर व्यञ्जनवर्णका एक बार सादृश्य दौड़नेसे छेकानुप्रास गंठता है।—

"अनेकस्य व्यञ्जनस्य सकृदेकवारं सादृश्यं छेकानुप्रासः।" (काव्यप्रकाश)

देखिये,—

चञ्चल खञ्जनसे नयन रञ्जन उर घनश्याम।
अलक पलक नहिं लगन दे, बनी अनोखी वाम॥

यहां खञ्जन, रञ्जन और अलक, पलकका जोड़ मिलनेसे छेकानुप्रास होता है।

"एकस्याप्यसकृत् परः।" (काव्यप्रकाश)

एक अथवा अनेक व्यञ्जनवर्णका दो या दोसे अधिक बार सादृश्य दौड़नेपर वृत्त्यनुप्रास बंधता है। वृत्त्यनुप्रास तीन प्रकारका है,—उपनागरिका, परुषा और कोमला।

"माधुर्य्यव्यञ्जकै र्वर्णै रुपनागरिकोच्यते।
ओजः प्रकाशकैस्तैस्तु परुषा कोमला परैः॥" (काव्यप्रकाश)

अनुप्रासके वर्णमें माधुर्यगुण मिलनेसे उपनागरिका उठता है। ओजोगुणप्रकाशक वर्ण द्वारा कविता बनानेसे परुषा पड़ती और दूसरा अनुप्रास कोमला कहाता है।

अल्पप्राण वर्णसे रचित पद कोमल और माधुर्य-गुणविशिष्ट निकलता है। उसमें यह वर्ण कुछ अलग-अलग आनेसे उपनागरिका और पास-पास पड़नेसे कोमला हो जाती है। परुषा दीर्घप्राण वर्णसे बनती है।

वामनादिके मतमें इन तीनो अनुप्रासका नाम वैदर्भी, गौडी और पाञ्चाली रखना चाहिये।

"शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः।" (काव्यप्रकाश)

शब्दगत अनुप्रासको लाटानुप्रास कहते हैं। शब्द और अर्थका अभेद रहते भी केवल तात्पर्यभेदसे ही यह अनुप्रास निकल पड़ता है। कोई-कोई इसका नाम पदानुप्रास बताते हैं।

पदगत अनुप्रास दो भागमें विभक्त है,—एकपद-गत और बहुपदगत।—

"पदानां सः।—पदस्यापि।" (काव्यप्रकाश)

पदगत लाटानुप्रास एकपद और बहुपद दोनोके साम्यमें पड़ता है।

एकपदगतका उदाहरण यह है,—

"वदनं वरवर्णिन्यास्तस्याः सत्यं सुधाकरः।
सुधाकरः क्व नु पुनः कलङ्कविकलो भवेत्॥"

अर्थात् उस सुन्दरीका मुख सुधाकर ही है। फिर वह भी कैसे? कलङ्कसे जो सुधाकर कुत्सित हुवा, वह बात मुखमें कहां देख पड़ती है?

यहां दोनोमें सुधाकर शब्दका साम्य विद्यमान है। उनके अर्थमें कोई प्रभेद नहीं पड़ा, केवल तात्पर्य-मात्रभेदसे लाटानुप्रास निकला है। बहुपदगतका उदाहरण नीचे देखिये,—

"यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य।
यस्य च सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य॥"

मतलब यह, कि जिसके पास दयिता (स्त्री) नहीं दिखाती, उसके लिये चन्द्र भी अग्नि-जैसा चमकता है। फिर जिसके पास दयिता रहती, उसके पक्षमें अग्नि भी चन्द्र-जैसा झलकता है। इस स्थानमें श्लोकके उभय अर्धपर 'दवदहन,' शब्दसे अग्नि एवं 'तुहिनदीधिति' शब्दसे चन्द्र समझ पड़ता है, अर्थमें कोई भी भेद नहीं। केवल पूर्वार्धके तुहिनदीधिति शब्दमें दवदहनका एवं परार्धमें दवदहन शब्दसे तुहिनदीधितिका विधान बंधा, इसीसे यह तात्पर्यमात्रभेदसे लाटानुप्रास बना है।

पदगत अनुप्रास समासमें भी पड़ा करता है। वहां फिर एक समास, भिन्न समास, समास या असमासमें प्रातिपदिकका साम्य रहनेसे सजता है।

"सितकरकररुचिरविभा विभाकराकारधरणिधरकीर्त्तिः।
पौरुषकमला कमला सापि तथैवास्ति नान्यस्य॥"

हे विभाकराकार! (सूर्यतुल्य) हे धरणिधर! (पृथिवीपालक) आप ही की कीर्त्ति चन्द्रकिरण-जैसी निर्मल है, अन्यकी नजर नहीं आती एवं उन प्रसिद्ध कमलाने (लक्ष्मी) भी आपके पौरुषरूप कमलमें (पद्म) अधिष्ठान लिया है, दूसरेके नहीं।

पदानुप्रास पांच प्रकारसे पड़ता है। "तदेव पञ्चधा मतः।" (काव्यप्रकाश) असमासमें एक-एक पद और अनेक पदका साम्य दो एवं समासमें तीन—इसतरह पांच प्रकार निकलता है।

अनुप्रेक्षा (सं० स्त्री०) १ अनुरक्त दृष्टिका देखना। २ शास्त्रार्थसाधन, किसी किताबी बातका ग़ौर।

अनुप्लव (सं० पु०) अनु-प्लु-अप्, अनु पश्चात् प्लवते आज्ञापालनपरतया सख्यतया वा शीघ्रं गच्छति। अनुचर, दास, सहाय, नौकर, चाकर, ख़िदमतगार, हाज़िरबाश।

अनुबन्ध (सं० पु०) अनुबध्यते अनेन, अनु-बन्ध-घञ्। १ बालक, बच्चा। २ शिष्य, शागिर्द। ३ व्याकरणवाले किसी उद्देश्यकी सिद्धिके निमित्त कल्पित वर्ण, जो हर्फ़ नहवका कोई मतलब निकालनेको मान लिया जाये। यह वर्ण कार्यकालमें 'इत्' रहता है। कोई विशेष सङ्केत समझानेको ऐसा अनुबन्ध अवश्य आयेगा। इससे गुण-वृद्धिका काम निकलता और प्रत्ययमें इसका लोप भी लगता है।

अनु-बन्ध-भावे घञ्। ४ बन्धन, सम्बन्ध, रिश्ता, जकड़। ५ अनुवृत्ति, सीधा उतार। ६ आरम्भ, आगाज़। ७ उपक्रम, सिलसिला। ८ पूर्वलक्षण, पहले आसार। ९ अविच्छेद, लगाव। १० भेद, फ़र्क़। ११ अनुरोध, इरादा। १२ आरोप, अन्दाज़। अनुबध्यते कर्मणि घञ्। १३ जन्य, पैदा होनेवाली-चीज़। १४ अनित्य, जो शै मुदामी न हो। १५ पश्चाद्भावी शुभाशुभ, आगे आनेवाला भला-बुरा। १६ लेश, छोटा हिस्सा।

अनुबध्नाति, कर्तरि अच्। १७ जनक, पैदाकरनेवाला शख़्स। १८ प्रकृति, कुदरत। १९ वैद्यमतसे वातादि दोषका अप्राधान्य। २० गणितमें भग्नांशका संयोग, कसरका जोड़। वेदान्त-मतमें—अधिकारि-विषयके सम्बन्धका प्रयोजन, जो वैदान्तिक तत्व अनुक्त रहे।

'दोषोत्पादेऽनुबन्धः स्यात् प्रकृतादिविनश्वरे।
मुख्यानुयायिनि शिशौ प्रकृतस्यानुवर्तने॥' (अमर)

अनुबन्धक (सं० त्रि०) सम्मिलित, गठित, सम्बन्ध-विशिष्ट, मिला, लगा, सटा, गंठा।

अनुबन्धन (सं० क्ली०) सम्बन्ध, श्रेणी, सिलसिला, रिश्ता, लगाव, जकड़।

अनुबन्धा (सं० स्त्री०) अनुबध्यतेऽतिश्वासेन व्याप्रियतेऽनया, अनु-बन्ध-घञ्, गौरादित्वात् ङीष्। १ हिक्का-रोग, हिचकी। २ तृष्णा, प्यास।

अनुबन्धित्व (सं० क्ली०) संसर्ग साधित होनेकी स्थिति, साथ रहनेकी हालत, सहचारिता, मातहती।

अनुबन्धिन् (सं० त्रि०) अनुबध्नाति, अनुबन्ध-णिनि। १ अनुगत, मातहत। २ सहचर, साथ रहनेवाला। ३ अनुबन्धविशिष्ट, नतीजेका। ४ अविच्छिन्न, लगा-हुवा। ५ अनुरोधी। ६ व्यापक, समाया। ७ अनु-वर्ती, अगला या पिछला।

अनुबन्धी (सं० पु०-त्रि०) १—अनुबन्धिन् देखो। (स्त्री०) २—अनुबन्धा देखो।

अनुबन्ध्य (सं० त्रि०) अनु पश्चात् वधार्थं बध्यते रुध्यते यत्, अनुबन्ध कर्मणि ण्यत्। १ मारा जानेवाला, जो ज़बहके लिये बांधा गया हो। २ प्रधान, प्रथम, तत्त्वजैसा; बड़ा, पहला। इस अर्थमें यह विशेषण ज्योतिष्टोम यज्ञके तीन प्रधान पशुका द्योतक है।

अनुबल (सं० क्लो०) पश्चाद्गामी रक्षक सैन्य, जो फ़ौज हिफ़ाज़तके लिये पीछे रहती है।

अनुबोध (सं० पु०) अनु-बुध-णिच्-घञ्। १ पूर्व-संलग्न चन्दनादिके गन्धोद्दीपनको पुनर्वार मर्दन, पहली खुशबू निखारनेका दुबारा मालिश। २ अनु-यायी ज्ञान, पिछली समझ।

अनुबोधन (सं० क्लो०) स्मरण, स्मृति, याददाश्त, खयाल।

अनुबोधित (सं० त्रि०) स्मरण द्वारा सूचित अथवा विश्वसित, याददाश्तसे जो मालूम हुवा या जिसपर एतबार आया हो।

अनुब्राह्मण (सं० क्लो०) ब्राह्मणं वेदस्य मन्त्रेतर-भागविशेषः; ब्राह्मणसदृशोऽयं ग्रन्थोऽनुब्राह्मणम्। अनुब्राह्मणादिनिः। पा ४।२।६२। ब्राह्मण-सदृश ग्रन्थ। (स्त्री०) अनुब्राह्मणिनी।

वेदके ब्राह्मणपरिशिष्टपर कोई गड़बड़ नहीं पड़ता। किन्तु अनुब्राह्मण किसे कहते हैं? जान पड़ता है, कि सामवेदका परिशिष्ट और याज्ञवल्क्य प्रभृतिका रचित ग्रन्थ अनुब्राह्मण कहाता है। सामवेदके निदानसूत्रमें 'अनुब्राह्मणिनः' शब्दका उल्लेख निकलता है। फिर पाणिनिका यह सूत्र सुन याज्ञवल्क्य प्रभृति आधुनिक मुनिरचित पुस्तकको अनुब्राह्मण बताना असङ्गत नहीं लगता,—पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मणकल्पेषु। पा ४।३।१०५। याज्ञवल्क्य अधिक दिनके प्राचीन नहीं, क्योंकि वह पाणिनिके समय प्रादुर्भूत हुये थे। इसलिये उन्हें पुरातन मुनि कैसे मान सकते हैं? इन बातोंसे अनुमान आता, कि याज्ञवल्क्यादि आधुनिक मुनिके रचित ब्राह्मणसदृश ग्रन्थका ही नाम अनुब्राह्मण होगा।

अनुब्राह्मणिक (सं० पु०) अनुब्राह्मणवेत्ता, जो मख़सूस अनुब्राह्मण पढ़ा हो।

अनुब्राह्मणिन्, अनुब्राह्मणिक देखो।

अनुब्राह्मणिनी (सं० स्त्री०) अनुब्राह्मण देखो।

अनुभर्त्त (वै० त्रि०) अनुरूप प्रशंसा पहुंचाते हुवा, जो मुवाफ़िक़ तारीफ़ सुनाता हो, नकल निकालनेवाला।

अनुभव (सं० पु०) अनु-भू-अप्। १ ज्ञान, अक्ल। २ उपलब्धि, समझ। ३ स्मृति-भिन्न ज्ञान, जो अक्ल याददाश्तसे ताल्लुक़ न रखे। ४ बोध, जो समझ अपने तजरबेसे आती है। ५ फल, नतीजा।

अनुभवना (हिं० क्रि०) अनुभव लाना, बोध बांधना, ज्ञान निकालना, समझ संभालना।

अनुभवसिद्ध (सं० त्रि०) परीक्षा अथवा प्रतिपत्तिसे प्रतिष्ठित, जो तजरबे या कमालसे क़ायम किया गया हो।

अनुभवानन्द—कृष्णानन्दके शिष्य और कोषरत्नप्रकाश नामक वेदान्त-ग्रन्थके रचयिता।

अनुभवारूढ़ (सं० त्रि०) परीक्षामें पड़ा, तजरबेपर लगा, जो जांच कर रहा हो।

अनुभवी (सं० पु०-त्रि०) अनुभवप्राप्त, तजरबेकार, जिसने कोई बात जांच ली हो।

अनुभाव (सं० पु०) अनुभावयति अनेन, अनु-भू-णिच्-घञ्। १ सङ्केत, इशारा। २ प्रभाव, सामर्थ्य, महिमा, रुवाब, शान-शौकत, नामवरी। ३ निश्चय, विश्वास, सम्मति, यक़ीन, एतबार, सलाह। कर्तरि अच्।४ अलङ्कारशास्त्रोक्त स्थायिरसविशेषका प्रकाशक, रत्यादिजनक कटाक्ष भ्रूभङ्गि प्रभृति। सात्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य भेदसे अनुभाव चार तरहका होता, जिसमें हाव भी मिला रहता है।

"विभावा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥" (काव्यप्रकाश)

अनुभावक (सं० त्रि०) अनुभावयति बोधयति, अनु-भू-णिच्-ण्वुल्। अनुबोधक, बता देनेवाला, जिसके ज़रिये जान जायें।

अनुभावन (सं० क्लो०) सङ्केत अथवा अनुमानसे विषयका प्रकाशन, इशारे या अन्दाज़से बातका बताना।

अनुभाविन् (सं० त्रि०) अनु-भू-णिनि। १ साक्षात् रखनेवाला, समझते हुवा, जिसे किसी बातका तजरबा हासिल हो रहा हो। २ अनुभवके सङ्केत देखाते हुवा, जो तजरबेके इशारे मारता हो। ३ पश्चात् जन्म लेनेवाला, जो पीछे पैदा हुवा हो। ४ कनिष्ठ, छोटा, जिसकी उम्र कम रहे।

अनुभावी, अनुभाविन् देखो।

अनुभाषण (सं० क्ली०) १ अनुकूल वचन, मीठी बात। २ साथ-साथका बताना, जो गुफ्तगू किसीके सखुनपर लगायी जाये।

अनुभास (सं० पु०) काक-विशेष, किसी किस्मका कौवा।

अनुभू (सं० त्रि०) अनुभवरूप ज्ञानविशिष्ट, समझता बूझता, जिसकी समझमें कोई बात चढ़ रही हो।

अनुभूत (सं० त्रि०) अनु-भू-कर्मणि क्त। १ अनुभव द्वारा ज्ञात, तजरबेसे समझा गया। २ उपलब्ध, मालूम, जाना माना। ३ फलस्वरूप, जो नतीजेकी तरह निकला हो। ४ अवगत, तजरबेकार, जिसने लज्जत पा ली हो, या जिसे स्वाद आ चुका हो।

अनुभूताद्यविस्मृति (सं० स्त्री०) अनुभूतादीनां स्मृतादीनां अविस्मृति यस्मात्। भावनाख्य संस्कार, जिस संस्कारका नाम भावना रखा गया है।

अनुभूति (सं० स्त्री०) अनु-भू-क्तिन्। १ अनुभव, तजरबा। २ स्मृति-भिन्न ज्ञान, जो इल्म याददाश्तसे ताल्लुक न रखे। ३ उपलब्धि, नतीजा। ४ विद्वता, नोसादर। न्यायमतसे—अनुभूति चार प्रकारकी होती है,—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्दबोध।

अनुभूतिस्वरूप—सरस्वती-प्रक्रिया, आख्यातप्रक्रिया और धातुपाठ नामक ग्रन्थके प्रणेता।

अनुभूतिस्वरूप यति—न्यायदीपावली नामक वेदान्तग्रन्थ और आनन्दबोध प्रणीत प्रमाणरत्नमाला निबन्धकी टीका बनानेवाले।

अनुभूय (सं० अव्य०) अनुभव पाकर, परीक्षा लेके, तजरबेसे, समझ-बूझ।

अनुभूयमान (सं० त्रि०) अनुभवके अधीन, जिसका तजरबा लिया जाता हो।

अनुभोग (सं० पु०) कार्यविशेषके परिवर्तनमें कर-रहित भूमिदान, जो जमीन किसी खिदमतके एवज़ बेलगान मिलती है।

अनुभ्रातृ (सं० पु०) कनिष्ठ भ्राता, छोटा भाई।

अनुमत (सं० त्रि०) अनु-मन्-क्त। १ प्रशंसित, पसन्द आया हुवा, अनुमोदित, मञ्जूर फरमाया गया, आदेशप्राप्त, जिसे हुक्म मिल चुका हो। २ सम्मत, राजी। ३ सुस्वादु, खुशगवार। ४ प्रिय, प्यारा। (क्ली) ५ स्वीकार, रज़ा, आज्ञा, इजाज़त, प्रसन्नता, पसन्दगी। ६ वैद्यमतसे—परमतमप्रतिसिद्ध, जिसे समरसा भी कहते हैं।

अनुमतकर्मकारिन् (सं० त्रि०) आदेशानुसार कार्य करनेवाला, जो हुक्मके मुताबिक काम करे।

अनुमति (सं० स्त्री०) अनु-मन्-क्तिन्। १ सम्मति, सलाह। २ अनुज्ञा, इजाज़त। ३ चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमा, जब एक कलाहीन चन्द्र निकलता है।

'अथानुमतिरूपेन्दुपूर्णिमानुज्ञयोरपि।' (मेदिनी)

अनुमतिपत्र (सं० क्ली) इकरारनामा, राजीनामा, जिस दस्तावेज़से किसीकी रज़ामन्दी ज़ाहिर हो।

अनुमत्त (सं० त्रि०) मतवाला, पगला, जो खुशी वगैरहसे अपनेको भूल जाये। २ जिसका नशा उतर गया हो।

अनुमध्यम (सं० अव्य०) मंझलेके पास, बीचवाले-से नज़दीक।

अनुमनन (सं० क्ली०) १ स्वीकार, रज़ा। २ स्वतन्त्रता, आज़ादी।

अनुमन्तृ (सं० त्रि०) अनु-मन्-तृच्। आज्ञा लगाते हुवा, जो इजाज़त दे रहा हो, मान लेनेवाला, जो रज़ामन्दी ज़ाहिर करे।

अनुमन्त्रण (सं० क्ली०) अनुमन्त्रणं मन्त्रपाठः। मन्त्रोच्चारणपूर्वक संस्कार विशेष।

अनुमन्त्रणमन्त्र (सं० पु०) संस्कार विशेषका मन्त्र।

अनुमन्त्रित (सं० त्रि०) संस्कारसहित, जिसका संस्कार किया गया हो।

अनुमन्यमान (सं० त्रि०) ध्यान देते हुवा, जो दिमाग लड़ा रहा हो; स्वीकृत, रज़ामन्द।

अनुमरण (सं० क्लो०) अनु सह पश्चाद्वा मरणम्, मृ-ल्युट्। १ पीछेकी मृत्यु, जो मौत किसीके मरने बाद हो। २ पतिकी मृतदेहके सङ्ग किंवा पतिकी मृत्यु बाद उसका पादुकादि उठा ज्वलन्त चितामें स्त्रीका शरीर विसर्जन, खाविन्दके मरने बाद उसकी औरतका उसीके साथ जल मरना। पतिकी मृत-देहके साथ एक ही चितापर स्त्रीका जल मरना सचराचर सहगमन या सहमरण कहाता है। पतिके विदेशमें मरने किंवा उसकी मृतदेह न मिलनेसे उसके पादुकादि उठा स्त्रीका आप जल मरना अनुगमन या अनुमरण नामसे पुकारा जाता है। किन्तु अनेक स्थलमें फिर अनुमरण और सहमरण शब्दमें प्रभेद नहीं पड़ता। अनुमरण कहनेसे भी पतिकी देहके साथ जलकर मरना समझा जाता है। किन्तु सह-मरण शब्दसे पश्चात् मरणका मतलब कभी नहीं निकलता।

"तृतीयेऽह्नि उदक्याया मृते भर्तरि वै द्विजाः।
तस्यानुगमनार्थाय स्थापयेदेकरात्रकम्॥"

स्त्रीकी रजस्वलाके तृतीय दिवस उसके स्वामीकी मृत्यु पड़नेसे उस स्त्रीको अपने पतिके साथ अनुगमन लगा सकनेके लिए एकरात्र मृतदेह रख छोड़ना चाहिये।

"देशान्तरमृते पत्यौ साध्वी तत् पादुकाद्वयम्।
निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेत् जातवेदसम्॥" (ब्रह्मपुराण)

देशान्तरमें पतिकी मृत्यु होनेसे साध्वी स्त्री उसका पादुकाद्वय गोदमें उठा, शुचि साध अग्निमें प्रवेश पहुंचाये।

किन्तु ब्राह्मणके पक्षमें यह विधि निषिद्ध है। यथा स्मृति—"पृथक् चितिं समारुह्य न विप्रा गन्तुमर्हति।"

महाभारतमें बताया है,—

"भर्त्रानुमरणं काले याः कुर्वन्ति तथा विधाः।
कामात् क्रोधाद्भयान्मोहात् सर्वाः पूता भवन्ति ताः॥"

स्वामीके सहमरणकालमें काम, क्रोध, भय, किंवा मोहसे जो स्त्री पतिके साथ मरेगी, उसके सकल ही पवित्र पड़ जायेंगे।

अति प्राचीन कालमें पृथिवीके प्रायः सकल स्थानमें अनुमरणकी प्रथा प्रचलित रही। स्वामीकी मृत्यु होनेसे उसकी स्त्री किसी न किसी प्रकार पतिके साथ प्राण छोड़ती थी। प्राचीन यूनानी और शकजातिके मध्य यह प्रथा चलती थी, दिओदोरस्के पुस्तकमें जिसका प्रमाण मिला। प्रपार्सियास्ने लिखा, कि उस कालके रोमक पतिकी मृत्यु बाद उसकी स्त्रीको जला डालते थे। पहले उत्तर-युरोपमें भी सहमरणका प्रचलन रहा। कहानीमें सुनते हैं, कि वहांके लोग उस समय वोदिन देवताको पूजते थे। किसी दिन वोदिनके पुत्र बालदारके शिरमें हठात् पेड़की कोई छोटी शाखा लग गयी। विधाताका कैसा निर्बन्ध है! उस क्षुद्र शाखाके आघातसे ही उनकी मृत्यु हुयी। वोदिनने स्वर्गमें उतर यमदूतसे पुत्र वापस देनेका अनुरोध लगाया। यमदूतने कहा,—'बालदारके लिये यदि समस्त जीव जन्तु रोयें, तो वह प्राण पा जायंगे।' इसीसे उनके शोकमें सकल ही रोये, पशु-पक्षी भी हाय-हाय मचाने लगे। किन्तु लोकी नामक किसी वृद्धा स्त्रीके चक्षुसे एक बूंद भी पानी न पड़ा था। सुतरां बालदार फिर जी न सके। वोदिन-की पुत्रवधू मृत पतिके साथ जल मरी।

शकजातिके मध्यमें भी यह प्रथा रही। राजाके मरनेसे उनकी पटराणी, मद्यवाहिनी, पाचिका, साईस, नौकर और घोड़ा काटकर मृतदेहके साथ क़ब्रमें गाड़ दिया जाता था। इसका तात्पर्य यही है—राजा संसार छोड़ जब चल बसे, तब इस भव-समुद्रके पार उन्हें न जाने कितनी दूर जाना पड़े,—कहांतक पहुंचने बाद लोकान्तर मिले; इसलिये साथमें साथी जरूर चाहिये। यही कारण है, कि राजा अपनी प्रियतमा राणी और दासदासी साथ ले जाते थे। यह निष्ठुर प्रथा आज तक हबशी लोगोंमें चली आ रही है। यूनान देशके हेरोदोतस्ने लिखा है, कि थ्रेस प्रान्तमें किसी पुरुषकी मृत्यु होनेसे उसके बन्धु-बान्धव पहले उसे मिट्टी देते, पीछे उसकी जो ज्यादा प्यारी स्त्री होती, उसे उसी क़ब्रपर काट डालते थे। गेटी और ओसेनियाके लोग भी विधवा स्त्रियोंको इसीतरह मृतपतिके पास बलि चढ़ाते रहे।

पहले चीन-देशमें अनुमरणका चलन कुछ अधिक था। सम्राट्की मृत्यु बाद, दास-दासी और दो-चार साथी-सङ्गी भी उनके साथ मर जाते, न मरनेपर लोकगञ्जनासे कान फूटने लगते थे। चीनदेशके इतिहासमें लिखा है, कि सन् १६६२ ई० में सम्राट् चुच्च मरे थे। रात्रिकाल रहा, इसीसे उस दिन दास-दासी कुछ न बोले। प्रभात हुवा। चीनकी फिर किस और देखना था?—चारो ओर मृत्यु ही मृत्यु रही, मानो एकमरणसे जगत् मर गया; सम्राट्का जो प्यारा था, वही आत्महत्या लगा रहा था। चीनवासियोंकी विश्वास है, कि प्रभुके सङ्ग मर जानेसे जन्मान्तरमें फिर वही प्रभु मिल जाता है।

चीनदेशकी स्त्रियां पतिका अनुगमन करनेको गलेमें फांसी बांध मरती थीं। मरनेसे पहले जो धूमधाम मचती, वह विवाहसे भी अधिक पड़ती थी। स्त्री मन-माना वसन भूषण पहन पालकीपर जा चढ़ती, अनुचर वही पालकी कन्धेपर रख नगरका फेरा फिराते रहे। जीवनकी माया भूल, जन्मके लिये संसारका सुख छोड़ जो पतिके निमित्त मरने जाती, वह छिपकर क्यों मरेगी? यत्नसे जिसे हृदयमें रखते, हृदयमें रख परस्पर प्यार करते, उसके मरनेसे मरना ही पड़ता है। अबला नारीचरित्रका यह वीरत्व पुरुषमें पाना कठिन है। कुलबालिकाओं-को सती साध्वी स्त्रीके पास पहुंच पतिपरायणता सीखना चाहिये।

अनुमरणके दिन श्मशान लोगोंकी भीड़का ठिकाना न रहता, आशीर्वादके दो-एक चावल और एक टुकड़ा रस्सी पानेके लिये आदमीपर आदमी टटता था। अनुमरणका आयोजन अधिक न लगता रहा। प्रशस्त स्थानमें ऊंचा मचान बंधता, उसपर काला शामि-याना तनता था। मचानकी दोनो ओर ऊपर दो खूंटे गाड़े जाते जिनमें बांसका लम्बा डण्डा रखते थे। उसी डण्डेमें रेशमकी रस्सी गला फांसनेको लटकते रहती। स्त्री पालकीपर बैठ मचानके पास पहुंचती, वहां नाना सुखाद्य इधर-उधर रखा रहता था। स्त्री उसे खाकर मचानके ऊपरसे आशीर्वादवाले चावल चारो ओर फेंक देती। चावल लूटनेके लिये इकट्ठी हुयी भीड़में महा कोला-हल मच जाता था। यह सब बातें पूर्वानुष्ठानकी हुयीं। इसके बाद पतिव्रता स्त्री अपने हाथसे गलेमें फांसी लगा प्राण छोड़ती थी। जब स्त्रीकी मृत्यु हो जाती, तब वही फांसीकी रस्सी टुकड़े-टुकड़े कर उपस्थित लोगोंमें बंटती थी। इस विषयके लेखक अनेक सम्भ्रान्त युरोपीय रहे। उन्होंने ऐसी घटना अपनी आंखों देखी थी।

यवद्वीपके निकट बलि और लम्बक द्वीपमें आज भी हिन्दू धर्मका कुछ-कुछ आभास नज़र आता है। हिन्दू धर्मके प्रधान-प्रधान अस्थिपञ्जरमें सहमरणका बड़ा अङ्ग है। बलि और लम्बक द्वीपमें आजतक यह प्रथा ठण्डी नहीं पड़ी। वहांके वर्धिष्णु लोगोंके मरने-पर विधवा स्त्री पतिकी ज्वलन्त चितामें जल जाती है। किन्तु साधारण लोगोंके अनुमरणकी व्यवस्था दूसरी तरहकी है। सामान्य घरकी स्त्रीके विधवा होनेपर पहले उसे छुरी घुसेड़ मारना पड़ता, पीछे उसकी मृतदेहका सत्कार साधते हैं। ऐसे ही सहमरणके समय एक बार कोई युरोपीय वहां उपस्थित रहे, उन्होंने खड़े हो आदिसे अन्ततक सब व्यापार अपनी आंखों देखा था। घटनाका हाल यह है—

अम्पनम नगरमें कोई दरिद्र व्यक्ति मर गया था। उसके तीन स्त्री रहीं। उनमें सर्वकनिष्ठा अनुमरणके निमित्त प्रस्तुत हुयी। उसके पिता, माता, श्वशुर, सास सबने कितना ही समझाया, कितना ही निषेध किया; किन्तु उसने किसीकी बात न सुनी। चिरकाल मनकी आगसे क्रमशः जलते रहनेकी बनिस्बत, एकबारगी ही प्राण छोड़ देना अच्छा होता है। सतीने अनुमरणका आयोजन लगाया। स्वामिवियोगके दूसरे दिन उसने स्नानादि संभाल उत्तम वस्त्रालङ्कार पहना और आत्मीय स्वजनके मुलाकात करने आनेपर वह सबसे मिली-जुली। अन्तको पूर्वाह्न देवार्चनामें बीता, अपराह्न चार बजे उसके स्वामीकी मृतदेह बाहर निकली। पुरोहित

मन्त्र पढ़ने लगे। अपरापर लोगोंने मृतदेहको स्नान दे उसपर फूल बरसाये। इसके बाद पुरवासी सतीको बाहर लाये। उस समय वह साज न रहा, वह वसनभूषण न जाने कहां चला गया। उसके अङ्गमें केवल एक सादी धोती रही, बालमें फूलका गुच्छा बंधा था। सतीने स्वामीके सम्मुख दक्षिण हस्त उठा स्थिरगम्भीर चित्तसे इष्टदेवताका नाम लिया, पुरकामिनीने अग्रसर आ उसके हाथमें एक एक फूलका गुलदस्ता पकड़ाया; सतीने अभिवादन दे वही गुलदस्ता फिर सबको वापस दिया। उसके बाद स्त्रीने दुबारा इष्टदेवताका नाम निकाल स्वामीका मस्तक, वक्षःस्थल, नाभि, जानु और पदतल जा सूंघा। बस, पूर्वानुष्ठान पूरे पड़ा। शेषमें सतीके भाईने उसके निकट पहुंच पूछा,—'भगिनि! तो क्या सत्य ही आप अनुमरण लगायेंगी?' स्त्रीने कहा,—'हां।' उसके बाद भ्राता छुरी निकाल बोल उठा,—'देखो, मैं तब आपको मारता हूं, इसमें मेरा कोई दोष नहीं।" यही कहकर अपनी भगिनीके वक्षःस्थलमें अल्प अस्त्राघात लगा वह लम्बे पड़ा। शेषमें फिर किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिने जा स्त्रीको जानसे मार डाला। पीछे दम्पतीकी अन्त्येष्टिक्रिया सम्पन्न की गयी।

किन्तु भारतवर्षमें स्त्रीहत्या करनेकी प्रणाली दूसरी तरह रही। छोटी हो या बड़ी, इस देशके लोग सतीको पतिके चितानलमें जीते जी पतङ्गकी तरह जला डालते थे। कह नहीं सकते,—यह दारुण निष्ठुर आचार कितने दिनसे चला आता रहा। किन्तु इसका जीवन्त प्रमाण वेद ही है, कि वेदके समय सहमरण होता न था। लार्ड वेण्टिङ्क और राममोहन रायने जब सहमरणप्रथा उठा देनेका यत्न निकाला, तब इस देशके धर्मव्यवसायियोंने अनेक आपत्ति उठायी; सहमरणके अनुकूल स्मृति और पुराणादिका प्रमाण बढ़ा, वेदसे भी प्रमाण पहुंचाया। किन्तु वह मिथ्या था। वेदमें सहमरणका प्रमाण नहीं मिलता, मनुने भी अनुमरणकी व्यवस्था बतायी नहीं। इमा नारीः इत्यादि ऋक्‌मन्त्रका अर्थ अनुमृता शब्दमें देखो।

किन्तु महाभारतके समय सहमरण चल पड़ा था। पाण्डुकी मृत्यु बाद माद्रीने उनका अनुगमन लगाया। राजतरङ्गिणीके मतसे ६५३ वत्सर कलियुग बीतनेपर कुरुपाण्डव भूतलमें प्रादुर्भूत हुये थे,—

"शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः॥"

आजकल कोई ५०१५ वर्ष कलियुग बीता; अतएव प्रायः ४३६२ वर्ष हुये, पाण्डव जीवित रहे। उनके कोई सात सौ वर्ष पहले यदि सहमरण हो, तो कोई पांच हजार वर्ष हमारे देशमें इस प्रथाको चले निकलते हैं। किन्तु पुराणादिमें पाते हैं, कि उस समय सकल विधवा स्त्री पतिके साथ जलकर न मरती थीं—कोई ब्रह्मचारिणी बनती, कोई घरमें रहती, कोई पुनर्वार विवाह भी कर लेती। पाण्डुकी मृत्यु बाद कुन्तीने पतिका अनुगमन न लगाया था। द्रोणाचार्यकी मृत्यु होनेसे कृपीने भी पतिका अनुगमन नहीं किया। भागवतमें लिखा है—अश्वत्थामा नामक वीरपुत्र उत्पन्न होनेके कारण कृपीको पतिका अनुगमग करना न पड़ा था,—

'तस्यात्मनोऽर्द्धं पत्न्यास्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी।' (१।७।४३)

बङ्गालमें इस नियमका चलन न रहा। वहां पुत्रवती भी मृतपतिके साथ जल मरती थी। किन्तु पञ्जाबमें पुत्रवतीके पक्षमें सहमरण निषिद्ध रहता था।

"It is a characteristic trait that, only those women devote themselves to that dismal ceremony whose at° had decreed them not to be mothers."

(Honigberger)

पूर्वकालकी बनिस्बत इन दिनों सहमरण कुछ अधिक प्रचलित हुवा। स्त्रीकी इच्छा न रहते भी ज्ञातिबन्धु आत्मीयस्वजन उसे जबरन जला डालते थे। अकबरके सेनापति जयमल्ल सिंहकी मृत्यु बाद उनकी स्त्री पतिके सङ्ग जल मरनेको असम्मत हुयी। जयमल्लके पुत्र उदयसिंहने जबरन जननीको जलानेकी चेष्टा चलायी। बादशाहने यह संवाद पा उदयसिंहको कैद किया। बादशाहने ऐसा कड़ा कानून भी बनाया, कि कोई स्त्री अपनी इच्छा अनुमृता न बननेसे, कोई उसपर जोर न डाल

सकेगा। आईन-अकबरी देखो। किन्तु हिन्दू सर्वत्र इस क़ानूनको मान काम न करते रहे। उलानिवासी मुक्ताराम नामक व्यक्तिकी मृत्यु होनेसे उसकी तेरह स्त्री जल मरी थीं। चिताकी अग्नि धक-धक जलती थी, जब दो स्त्री फिर जा उपस्थित हुयीं। उनमें एक चिताकी अग्निमें कूदनेके विचारसे सूर्य प्रभृति देवताको अर्घ्य देनेका मन्त्र पढ़ने लगी; उसी बीच हठात् उसके प्राणमें न जाने कैसा भय भर गया। इसी कारण वह श्मशानसे भागनेकी चेष्टा लगाने लगी। मुक्तारामके पुत्रने विमाताको पकड़ आगमें डाल दिया। अपर स्त्री सतनीको पकड़ने चली, मुक्तारामके पुत्रने उसे भी आगमें ढकेल मारा। उस समय फ़ोर्ट-विलियम कालेजके पण्डित रमानाथने यह निष्ठुर व्यवहार अपनी आंखों देखा था। सन् १८२८ ई० को ६ वीं मार्चको जेमस् पेगस् नामक अंगरेज़ने एक पुस्तक निकाला। उसका नाम रहा,—ब्रटिश जातिके निकट सतीका क्रन्दन। (The Sati's cry to Britain.) फेनी पार्कस नाम्नी युरोपीय महिलाका भी एक पुस्तक वर्तमान है। पूर्वदेशमें चौबीस वर्षके भ्रमण बाद यह पुस्तक लिखा गया था। इसका नाम है,—"Wanderings of a Pilgrim in search of the Picturesque, during four and twenty years in the East with Revelation of life in Zanana." इन दोनो पुस्तकमें सहमरणकी कहानी लिखी, उसे पढ़ कर शरीर कांप उठता है। इन्हीं दोनो पुस्तकको देखनेसे मालूम हुवा, हिन्दू सहमरणके निमित्त स्त्रीपर कहांतक अत्याचार मचाते थे।

उस समय मनुष्यका मन और विश्वास एवं समाजकी अवस्था इस प्रकार नहीं रही। पतिवियोग के बाद किसीकी स्त्री सहमृता न होनेपर कलङ्क से देश भर जाता था। पांच आदमी इकट्ठे होनेसे ही नाना प्रकारके दुर्नाम निकालते थे। इसी कारण चिरकाल कलङ्कका टोकरा शिर पर रखे घूमनेकी बनिस्बत स्त्रीहत्या अच्छी रही। लोकगञ्जनाके भयसे हिन्दू कितनी ही स्त्री जबरन जला देते थे। उसके ऊपर विषयका लोभ लगा रहा; कहीं कोई स्त्री ज्ञातिशत्रु न बन जाती और सम्पत्तिका एक अंश छातीपर रख चार युगतक बैठे मौज मारती! विधवाका प्राण बहुत कठिन होता है। एक सन्ध्या निरामिष भोजन मिलता और मासके मध्य दो-तीन दिन निर्जल उपवास पड़ता, किन्तु उससे भी शरीर नहीं सूखता, सहजमें मृत्यु नहीं आती। अतएव यही सोच अनेक ज्ञाति, अपनी चाची आदिको जबरन जला देते थे, कि उतनी ज्वालायन्त्रणाकी बनिस्बत विष-वृक्षका मूल पूर्वाह्णमें ही उखाड़ डालना अच्छा रहा। किन्तु यह सब काम छिपा न था। लोगोंके मुंहसे गवर्णमेण्ट-को सब बात सुननेमें आ जाती थी। इसी कारण, सन् १८०५ ई०से पुलिस कुछ सख़्त पड़ी। विधवाके इच्छापूर्वक सम्मत न ठहरनेपर कर्तृपक्ष सहमरणकी अनुमति देनेसे दूर रहता था। हिन्दूवोंने भी सोच-समझ एक उपाय ढूंढ निकाला। ऐसा जान सकनेसे, कि सहमरणको जाते समय कोई स्त्री इतस्ततः करेगी, उसके आत्मीय स्वजन छिपकर उसे थोड़ी भांग खिलाते थे। कुछ देर बाद भांगसे मन बौरानेपर लोग उससे अनुमति मांगते, स्त्री भी नशेकी झोंकमें कुछ न कुछ बता देती।

इसका कोई ठिकाना नहीं, कि पहले कितनी हिन्दू महिला पतिकी चितापर जल मरी हैं। जहांगीरके समय जयपुर-महाराज मानसिंहकी डेढ़ हज़ार स्त्रीमें साठ सहमृता हुयीं, मारवाड़वाले राजा अजित्सिंहके मरने बाद चौहान-राणी, देवड़ा-राणी, तुवर-राणी, चावड़ा-राणी, शेखावती-राणी और अट्ठावन दासी जल मरी थीं। दाक्षिणात्य और महाराष्ट्र देशमें भी सहमरणकी विलक्षण धूम रही। कहते हैं कि, रामेश्वरके निकट मदुराके नायककी मृत्यु होनेसे उनके साथ ग्यारह हज़ार स्त्री एक ही चितापर जली थीं। सन् १८४० ई०में महाराज रणजित् सिंह मरे, उनके साथ संसारचंदकी कन्या कुन्दन, नूरपुरवाले पद्मसिंहकी कन्या हिन्दरी, एवं जयसिंहकी कन्या राजकुंवर वसन्तअली यह चार राणी और सात दासीने प्राण छोड़े थे। कर्नल हेनरी

ष्टेइनवाच (Col. Henry Steinbach) और डाक्टर हनिगबर्जर (John Martin Honigberger) इस सहमरणके समय श्मशानमें उपस्थित रहे। लाहोरके हज़ारीबाग़में महाराजको अन्त्येष्टिक्रिया सम्पन्न हुयी थी। मृत्युके दूसरे दिन प्रधान-प्रधान सरदार और अनुचरने अगुरु और चन्दन काष्ठसे चिताको रचा और उसके ऊपर धूप, गुग्गुल, घृत और बिनोला डाल दिया। उधर क़िलेमें महाराजकी मृतदेह नौका-जैसे किसी झूलनेपर ढंकी हुयी रखी, जिसकी चारो ओर सुनहली कमख़ाब और कश्मीरी शालकी पताका फहरा रही थी। अन्त्येष्टिक्रियाका सकल आयोजन लगाया गया। संसारचंदकी कन्या महाराजकी प्रियमहिषी रहीं। वह घूंघट उघाड़कर दीनवेशमें अपने महलसे निकल धीरे-धीरे मृतपतिकी ओर आगे बढ़ीं। दोनो ओर, सामने और पीछे कोई सौ आदमी उन्हें घेरे थे। एक ओर एक व्यक्ति सन्दूक हाथमें लिये जाता, राणी उससे मूंठ-मूंठ भर मणिमुक्ता निकाल दरिद्रको दे देतीं। सामने दूसरा आदमी हाथमें दर्पण पकड़े पीछे पैरों हटते चला जाता था, राणी अग्रसर होतीं और एक बार उसी दर्पणमें अपना मुख देख लेतीं। दर्पणमें मुख देखनेका यह कारण रहा,—निकटमें भीषण मृत्यु थी, अतुल ऐश्वर्येश्वरी हो वह खुशी-खुशी आगमें कूदने जाती थीं; उससे मुखचन्द्रपर कहीं कालिमा न दौड़ती, भयसे मूर्तिका वैलक्षण्य न बनता।

मरालमन्थरगमनसे टहलते-टहलते मृत राजाके पास वह जा पहुंचीं। वाहक फिर शवको कन्धेपर रख रवाना हुये, राणीकी पालकी पीछे-पीछे चली। सात दासी पैदल धीरे-धीरे गमन करती थीं। चिताके पास पहुंच विधिपूर्वक प्रेतपिण्डादि देने बाद सरदारने चितापर शवको लेटा दिया। राणी चितापर चढ़ राजाके मस्तक और दासी पैरोंके पास पड़ रहीं। शेषमें सकलको शरमुञ्जमय चटाईसे ढांक ठीक चिताके चारो कोणपर आग लगायी गयी। यह चिता क्रमसे दो दिन जलते रही थी।

पुलिसकी पुरानी रिपोर्ट देखनेसे मालूम पड़ता, कि सन् १८१७ ई०में अकेले बङ्गाल-विभागके मध्य ७०६ स्त्री अनुमृता हुयी थीं। सन् १८१८ ई०में ८०८ और १८२३में ५७५ स्त्री पतिके साथ जल मरीं, जिनमें २३४ ब्राह्मण जाति, ३५ क्षत्रिय जाति, १४ वैश्य जाति और २८२ शूद्रजाति थीं। इन ५७५ स्त्रीमें १०८ वृद्धा रहीं, उनका वयस साठ वत्सरसे अधिक हो गया था। २२६ स्त्रीका वयस साठ वत्सरसे कम और चालीससे ज़्यादा रहा, २०८ का वयस बीस वत्सरसे चलीस पर्यन्त पहुंचा होगा। बाक़ी ३२ स्त्री बिलकुल बालिका थीं।

भारतवर्षमें चारो ओर उस समय सहमरणकी धूम पड़ गयी; हतभाग्य हिन्दूमहिलावोंके आंसू पोंछनेवाला कोई न था। सतीदाह अंगरेज़ नहीं मानते। किन्तु न मानते भी गवर्नमेण्ट हिन्दू धर्मपर बात इसलिये न लड़ा सकती, कि पीछे सन्धिके भङ्ग होनेका डर रहा। जोन्स साहबने एक बार सहमरणके विरुद्ध न जाने क्या दो-एक बात कही थी, उसी अपराधपर वह भारतवर्षसे निकाल बाहर किये गये। सन् १८०५ ई०में सतीदाह रोकनेके लिये एक बार चेष्टा चली थी। किन्तु हिन्दू अपने धर्म जानेका शोर मचा बिलकुल उससे सम्मत न हुये, इसीसे उस बार सब काम बिगड़ गया।

उसी समय राजा राममोहन रायने बङ्गाल देशमें बड़ी हलचल डाल दी थी। लोगोंका कुसंस्कार छुड़ाना ही उस नीतिवीरके जीवनका व्रत रहा। सन् १८१७ और १८१८ ई०में उन्होंने सहमरणके विरुद्ध दो पुस्तक निकाले थे। सन् १८२७ ई०में उन्होंने फिर दूसरा पुस्तक लिखा। उस समय लार्ड विलियम वेण्टिङ्क भारतवर्षके बड़े लाट रहे। वह निहायत सदाशय और लोकहितैषी व्यक्ति थे। उनका यह प्रधान सङ्कल्प बना,—किसी न किसी तरह सतीदाह ज़रूर बन्द करेंगे। इधर महात्मा द्वारकानाथठाकुर, राजा राममोहन राय और तेलिनीपाड़ा-निवासी अन्नदाप्रसाद वन्द्योपाध्याय उनके पृष्ठपोषक बने। कालरात्रि बीत गयी, भारतकी सौभाग्यलक्ष्मीने विधवाकी ओर घूमना चाहा,—सन् १८२९ ई० की

६ ठीं दिसम्बरको सहमरण-प्रथा बन्द हुयी। यह संवाद सुन कलकत्तेकी धर्मसभाके शिर वज्र टूट पड़ा था। सभ्योंने विलायतमें अपील लगायी, किन्तु उससे कोई फल न निकला। अनुमरणादिके मन्त्र और प्रकरण प्रभृतिका विवरण अनुमृता शब्दमें देखो।

अनुमरु (सं० पु०) मरुदेशकी द्वितीय श्रेणीका प्रदेश, जो मुल्क रेगस्तानसे दूसरे दरजेका रहे।

अनुमा (सं० स्त्री०) अनु-मा-अङ्। व्याप्य हेतु द्वारा व्यापक वस्तुका ज्ञान-निश्चय, युक्ति, अनुमिति, अनुमान, हवाला, अन्दाज़, चाल।

अनुमातृ (सं० त्रि०) अनुमाति वा अनुमिमीते वा अनुमायते, अनु-मा-तृच्। अनुमान करनेवाला, जो अन्दाज़ लड़ाये।

अनुमाद्य (सं० स्त्री०) क्रमशः प्रशंसा पानेवाला, जिसकी तारीफ़ सिलसिलेवार हो, जो नामके साथ बख़्शा जाये।

अनुमान (सं० क्ली०) अनु-मा-भावे ल्युट्। १ व्याप्य ज्ञान द्वारा व्यापक वस्तुका निश्चय, दिये हुये उनवान्से नतीजेका निकालना। जैसे, धूमको देख अग्नि रहनेका निश्चय पड़ता है। इस स्थलमें धूम हमारा व्याप्य ज्ञान है; क्योंकि सर्वत्र देखाई देता, कि जहां आग जलती, वहां धुवां भी उठता है। इसी पूर्वसंस्कारके स्मरणसे आग नज़र न आते भी यदि केवल धुवां देख पड़े, तो हम आगका रहना निश्चित कर लेते हैं।

सत्य और मिथ्या विचार बांधनेका उपाय दो प्रकार होता है,—एक प्रत्यक्ष ज्ञान और द्वितीय अनुमान। अनुमानबलसे दो काम निकलते हैं। प्रथम—कोई विषय निजमें समझ सकते; द्वितीय—कोई विषय दूसरेको समझा सकते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान निःसन्देह अनुमानकी बनिस्बत श्रेष्ठ है; किन्तु जिसे हम ज्ञान समझते हैं, वह सर्वत्र ठीक नहीं उतरता। कारण हमें सकल वस्तु भली भांति देखनेको नहीं मिलती। हम जो देखते, वह केवल कितने ही विशेष गुणका समष्टिमात्र रहता है। जैसे, किसी वस्तुका दैर्घ्य, प्रस्थ, गाढ़त्व, दृढ़ता, वर्ण इत्यादि कुछ भी सही तौरसे हमारे देखनेमें नहीं आता।

कई गुणका समष्टि देख हमने एक-एक वस्तुका विशेष-विशेष नाम रखा है। जैसे, जल रखनेको मिट्टीके बरतनने 'घट' नाम पाया है। पहले जिसने एक बार घट देखा, पीछे वैसा ही गुणविशिष्ट वस्तु देखनेपर उसे घटको याद आ जाती है। ऐसे स्थलमें प्रत्यक्ष ज्ञानके भीतर भी अनुमान आ पहुंचता है।

प्रत्यक्ष ज्ञानका सही अर्थ पूर्वज्ञान या अभिज्ञतासे उत्पन्न हुवा ज्ञान है। इसी कारण नैयायिक प्रत्यक्ष ज्ञानकी व्याख्या इसतरह करते हैं,—जो स्वतःसिद्ध होता और जिसके अस्तित्व विषयमें फिर प्रमाणकी आवश्यकता नहीं पड़ती, उसीको प्रत्यक्ष ज्ञान समझना चाहिये। स्वतःसिद्ध ज्ञानपर बलसंयोगसे दूसरा जो नूतन ज्ञान निकलता, वही अनुमान होता है। जैसे—जहां धूम उठता, वहीं अग्नि जलती है।

न्यायशास्त्रमें अनुमान-प्रमाणके तीन भेद माने गये हैं,—पूर्ववत् या केवलान्वयी, शेषवत् या व्यतिरेकी और सामान्यतोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी। केवलान्वयी कारणसे कार्यका निश्चय करता; जैसे, धुयेंको देख आग जलनेकी बात मनमें आती है। व्यतिरेकीका काम कार्य देख कारणको समझना होता; जैसे घटसे मिट्टीका ख़याल बंधता है। सामान्यतोदृष्ट सामान्य व्यापारसे विशेष व्यापारका अनुसन्धान लगाता; जैसे, कोई द्रव्य किसी स्थानसे हट दूसरे स्थानमें जानेपर उसके वहां पहुंचनेका विचार उठता है। वैदान्तिक अनुमान-प्रमाणको नहीं मानते।

२ प्रमाण, हवाला, विचार, ख़याल, समझ। ३ अन्दाज़, अटकल।

अनुमानना (हिं० क्रि०) अनुमान बांधना, ख़याल लड़ाना, अन्दाज़ लगाना, अटकल निकालना।

अनुमानोक्ति (सं० स्त्री०) तर्क, ऊह, बहस, मन्तिक़।

अनुमापक (सं० त्रि०) प्रमाण पहुंचानेवाला, फलस्वरूप, जो साबित करे, नतीजे-जैसा।

अनुमार्ग (सं० अव्य०) मार्गमनतिक्रम्य, अव्ययी०। १ मार्गको अतिक्रम न कर, मार्गानुरूप, राहको न लांघ, राह-राह। २ पथसे पश्चात्, राहसे पीछे।

अनुमाष (सं० अव्य०) अव्ययी०। माषानुरूप, उड़दके बराबर।

अनुमास (सं० अव्य०) मासि मासि, वीप्सार्थे अव्ययी०। प्रति मासमें, हरेक महीनेपर, मास-मास, महीने-महीने।

अनुमित (सं० त्रि०) अनु-मा-क्त। हेतु द्वारा निश्चित, जिसका अनुमान लगाया गया हो, हवाला दिया हुवा, अन्दाज़का, जो अटकलमें चढ़ा हो।

अनुमिति (सं० स्त्री०) अनु मा-क्तिन्। व्याप्य हेतु द्वारा व्यापक वस्तुका निश्चय, अन्दाज़, क़यास, अटकल। अनुमान देखो।

अनुमित्सा (सं० स्त्री०) अनु-मा वा मि वा मी-सन्-भावे अ। १ अनुमान लगानेकी इच्छा, क़यास करनेको तबीयत। २ क्षेपणकी इच्छा, फेंकनेकी मर्ज़ी। ३ धनकी इच्छा, दौलतकी चाह।

अनुमिमान (सं० त्रि०) पूर्ण करते हुवा, नतीजा निकालनेवाला।

अनुमीयमान (सं० त्रि०) अनुमान लगाया जाता हुवा, जिसका क़यास बंध रहा हो।

अनुमृत (सं० त्रि०) अनु-मृ-कर्तरि क्त, अनु पश्चात् मृतम्। पुत्रादि शोकसे पश्चात् मृत, लड़के वग़ैरहके रञ्जसे पीछे मरा हुवा, जो कोई दुःख पड़नेसे पीछे मर गया हो।

अनुमृता (सं० स्त्री०) अनु पश्चात् मृता। स्वामीकी मृत्यु बाद उनके पादुकादि उठा ज्वलन्त चितामें जल मरनेवाली स्त्री, जो औरत अपने खाविन्दके मरनेसे उसकी खड़ाऊ वग़ैरह ले चितामें जल जाती है।

वेदके समय अनुमरण या सहमरणकी प्रथा प्रचलित न थी। किसीकी मृत्यु होनेसे आर्य हंसते, और सकल मिलजुल कर कितना ही नृत्य गीत करते घूमते रहते थे। "प्रांचो अगाम नृतये हसाय।" (ऋक् १०।१८।३) उन्हें इसके द्वारा परमायु बढ़नेका विश्वास था। अन्त्येष्टिक्रियाके समय श्मशानमें चिता सजाकर उस-पर शव रख दिया जाता, मृत व्यक्तिकी विधवा पत्नी उसके पास चितापर सोती; चिताकी चारो ओर पुत्रवती सधवा स्त्रियां आंखोमें घृत लगा वस्त्राभूषण पहन कर खड़ी रहती थीं। उनकी आंखोंसे एक भी विन्दु आंसू न आता, एक बार भी कोई स्त्री भूलकर शोक न करती। कुछ देरके पीछे सधवा रमणियोंको घर भेज दिया जाता था। एक दिन ऋत्विक्ने विधवा स्त्रीको चितासे उठने कहा, और उसके उठनेपर पुनर्वार विवाह करने का आदेश दिया। उस समय देवर या मृतव्यक्तिका शिष्य अथवा घरका कोई पुराना नौकर आके हाथ पकड़ स्त्रीको चितासे उठा लेता था। उसके पीछे शवकी दाह क्रिया होती।

पहले हिन्दुस्थानमें वेदप्रचार अधिक न था, लोग वेदका मर्म न जानते थे। इसलिए समय समय पर उन्हें बड़ा भ्रम पड़ा। रघुनन्दन भट्टाचार्यने सहमरणके मन्त्रोंसे दो एक ऋक् मन्त्र उठाये हैं; एक मन्त्रके शेषमें 'योनिमग्रे' पाठ है। यही प्रकृत पाठ है। हस्तलिखित और मुद्रित पुस्तकोंमें भी यही पाठ लिया गया है। सायणाचार्यने "योनिमग्रे" इसी पाठको रखकर व्याख्या की है। किन्तु रघुनन्दन भट्टाचार्य, 'योनिमग्ने' भूल का पाठ रख गहरे गड्ढेमें गिरे हैं। जो कुछ हो, "योनिमग्ने" भूलका पाठ स्वीकार करनेसे भी सहमरणकी बात प्रमाणित नहीं कर सकते और पूर्वमन्त्रका पर मन्त्रके साथ कोई सम्बन्ध नहीं मिलता। सिवाय इसके "योनिमग्रे" इस मन्त्रमें बड़ा गड़बड़ पड़ जाता है। सायण भाष्यके साथ नीचे ऋचा उद्धृत की और उसकी स्फुट व्याख्या लिखी जाती है।

"इमा नारीरविधवाः सुपत्नी रांजनेन सर्पिषा सं विशंतु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहंतु जनयो योनिमग्रे॥

ऋक्संहिता १०।१८।७।

(इमाः, नारीः, अविधवाः, सुपत्नीः, अञ्जनेन, सर्पिषा, सम्, विशन्तु, अनश्रवः, अनमीवाः, सुरत्नाः, आ रोहन्तु। जनयः योनिम्, अग्रे।)

'अविधवाः—धवः पतिः। अविगतपतिकाः, जीवद्भर्तृका इत्यर्थः। सुपत्नीः—शोभनपतिकाः। इमा नारी नार्य आञ्जनेन सर्वतोञ्जनसाधनेन सर्पिषा घृतेनाक्तनेत्राः सत्यः विशन्तु। तत्रानश्रवोऽश्रवर्ज्जिता

अरुदत्योऽनमीवा:। अमीवा रोग:। तद्वर्ज्जिता:, मानस दु:खवर्ज्जिता इत्यर्थ:। सुरत्ना: शोभनधनसहिता:। जनय: जनयन्त्यपत्यमिति जनयो भार्या:। ता अग्रे सर्वेषां प्रथमत: एव योनिं गृहमारोहन्तु। आगच्छन्तु। "देवरादिक: प्रेतपत्नीमुनीर्ष्व नारीत्यनया भर्तृसकाद्दत्थापयेत्।" सूत्रितञ्च।

इस जगह आश्वलायनका सूत्र उद्धृत किया गया, आगे वह लिखा जाता है।

इमा:—यह सब, नारी:—स्त्री। अविधवा:—सधवा हैं। सुपत्नी:—उत्तम पतियुक्ता। अञ्जनेन—जिससे अञ्जन तय्यार हो, उसके साथ। सर्पिषा—घृतके साथ। संविशन्तु—प्रवेश करें। अनश्रव:—अश्रुरहित। अनमीवा—दु:खशून्य, सुरत्ना:—उत्तम-रत्नयुक्ता। आ—आ। रोहन्तु—आगमन करो। जनय:—भार्या। योनिम्—गृहे। अग्रे—प्रथम।

सब सधवा स्त्री जिनके उत्तम पति है, अञ्जन-घृत आंखोंमें लगा (अथवा घृत आदि लेकर) प्रवेश करें। जिनके आंखोंमें आंसूका जल नहीं, मनमें दु:ख नहीं, वह सकल रत्नभूषण भूषिता जायासमूह पहले घरमें आये।

सायणाचार्य 'अग्रे' ऐसा पाठ रखकर सर्वेषां प्रथमत एव; सबके पहिले—ऐसा अर्थ किया है, इस जगह अग्निपाठ ग्रहण करनेसे ठीक अर्थ नहीं होता। सधवा स्त्री क्यों अग्निमें प्रवेश करेगी?

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषो स्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि संबभूथ॥"

(ऋक् १०।१८।८)

'उदीर्ष्व', नारि अभि, जीवलोकम्, गतासुम्, एतम्, उप, शेषे, एहि, हस्तग्राभस्य, दिधिषो:, तव, इदं, पत्यु:, जनित्वं अभि, सम्, बभूथ। हे नारि मृतस्य पत्नि! जीवलोकं जीवानां पुत्रपौत्रादीनां लोकं स्थानं गृहमभिलक्ष्योदीर्ष्व अस्मात् स्थानादुत्तिष्ठ। ईर मतौ आदादिक:। गतासुमपक्रान्तप्राणमेतं पतिमुपशेषे। तस्य समीपे स्वपिषि। तस्मात् त्वमेहि—आगच्छ। यस्मात् त्वं हस्तग्राभस्य पाणिग्राहं कुर्वती दिधिषोर्गर्भस्य निधातुस्तवास्य पत्यु: सम्बन्धादागतमिदं जनित्वं जायात्वमभिलक्ष्य संबभूथ सम्भृतास्य सुसरणानिश्चयमकार्षीस्तस्मादागच्छ।' (सायण)

हे नारि! उठो, तुम जीवित मनुष्यके पास आओ। तुम अपने मृत पतिके पास सोयी हो। तुमने अपने पतिके द्वारा सन्तान उत्पन्न किया है। अतएव तुम्हारा कर्तव्य कर्म हो गया, तुम उठ खड़ी हो। इसी ऋक्‌के द्वितीय चरणका एक और भी अर्थ होता है। जैसे—हस्तग्राभस्य—पाणिग्रहणकारी को। दिधिषो:—पुनर्वार विवाह करनेका इच्छुक। पत्यु:—पतिका। इदम्—यही। जनित्वं—जायात्वम्। तव—तुम्हारा। अभिसंबभूथ—ठीक प्रकारसे योग्य हुआ है। अर्थात् पुनर्वार जो तुम्हारा पाणिग्रहण करनेकी इच्छा करता है, उसकी भार्या होनेको तुम योग्य हुयी हो।

कृष्ण-यजुर्वेदके अन्तर्गत तैत्तिरीय-आरण्यकमें ठीक ऐसा ही एक मन्त्र है। इस मन्त्रके शेषार्धमें कुछ भेद दिखाई देता है, किन्तु उससे कोई हानि नहीं होती। यथा—

"इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
विश्वं पुराणमनु पालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणञ्चेह धेहि॥ १३॥
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकमितासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्त्वमेतत् पत्युर्जनित्व मभिसंबभूव॥ १४॥"

(तैत्तिरीय आरण्यक ६।१।३)

सायणाचार्यका भाष्य—'अथास्य भार्यामुपसंवेशयति। हे 'मर्त्य'—मनुष्य या 'नारी' मृतस्य तव भार्या, सा 'पतिलोकं' 'वृणाना' कामयमाना; 'प्रेतं' त्वां, 'उपनिपद्यते'—समीपे नितरां प्राप्नोति। कीदृशी?—'पुराणं विश्वं' अनादिकालप्रवृत्तं कृत्स्नं स्त्रीधर्मं, 'अनुक्रमेण पालयन्ती',—पतिव्रतानां स्त्रीणां पत्या सहैव वास: परमो धर्म:। 'तस्यै' धर्मपत्न्यै, त्वं 'इह' लोके, निवासार्थमनुज्ञां दत्वा, प्रजां पूर्वविद्यमानां पुत्रादिकां, द्रविणं धनं 'च' 'धेहि' सम्पादय अनुजानीहीत्यर्थ:। १३।

त्वां प्रति गत: सव्ये पाणावभिपद्येत्यापयति। हे नारि त्वं 'इतासु'—गतप्राणं, 'एतं'—पतिं, 'उपशेषे'—उपेत्य शयनं करोषि, 'उदीर्ष्व'—अस्मात् पतिसमीपात् उत्तिष्ठ, 'जीवलोकमभि'—जीवन्त', प्राणसमूहमभिलक्ष्य, 'एहि' आगच्छ। 'त्वं' 'हस्तग्राभस्य'—पाणिग्राहस्य: 'दिधिषो:'—पुनर्विवाहेच्छो: पत्यु:, एतत् 'जनित्व'—जायात्वं, 'अभिसम्बभूव'—आभिमुख्येन सम्यक् प्राप्न हि। १४।'

हे मनुष्य! इस नारीने पतिलोककी कामना लगा निकट आगमनपूर्वक मरे हुये तुमको सम्यक् रूपसे पाया, चिरकाल स्त्रीधर्म पाला है। इसे इहलोकमें ठहरनेके लिये अनुमति निकाल प्रजा और धन दे दो। १३।

हे नारि! तुम मृतपतिके पास पड़ी हो; यहांसे मात्रोत्थान करो। जीवित प्राणीके निकट तुम्हें

पहुंचना चाहिये। तुम्हारा पाणिग्रहण जो करे, उसी पुनर्बार विवाहेच्छु पतिकी सम्यक् रूपसे जाया बनो। १४।

ऋग्वेद और तैत्तिरीय-आरण्यकवाले दोनो मन्त्रके प्रत्येक शब्दका अर्थ मिलानेसे एक ही भाव निकलता, किन्तु दोनो ही मन्त्रमें कालके सम्बन्धपर गड़बड़ पड़ जाता है।

"तामुत्थापयेद्देवरः पतिस्थानीयोऽन्तेवासी।
जरद्दासो वोदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकमिति।"
(आश्वलायन-गृह्यसूत्र ४।२।१८)

यह सकल प्रमाण देख स्पष्ट ही समझ पड़ा, कि वैदिक समयमें स्वामीकी मृत्यु बाद विधवा फिर घर वापस जाती, मृतपतिके साथ जलती न थी। किन्तु एक बड़ा सन्देह उठ खड़ा होता है। असली वस्तु न रहनेपर उससे नक़ली वस्तु कैसे बनेगी? असली मोती देखकर ही झूठे मोती तय्यार होते हैं। पहले यज्ञोपवीत होनेसे ब्रह्मचारी गुरुके आश्रम पहुंचता, जाकर वेद पढ़ता था। अब वह चाल उठ गयी; यज्ञोपवीत होनेसे कोई गुरुके घर वेद पढ़ने नहीं जाता। किन्तु पहलेके उस असली नियमकी कुछ नक़ल आज भी देख पड़ती; यज्ञोपवीत होनेपर ब्रह्मचारी घरसे निकल जानेके लिये कई क़दम आगे बढ़ता, पीछे जननी समझा-बुझा उसे वापस लाती है। यह केवल पुरातन नियमकी रक्षामात्र है, वस्तुतः दूसरी कोई भी बात नहीं दिखाई देती।

वैदिक समयके सहमरणपर भी सन्देह है—स्वामीकी मृत्यु बाद विधवा नारी मृतपतिकी चितामें क्यों जाकर लेटती थी। मालूम होता है, कि वैदिक कालसे पूर्व आर्य-जातिके मध्य सहमरण चलित रहा। उत्साहपूर्वक भगिनी-हत्या, वा मातृ-हत्या करना धार्मिक लोगोंकी बुद्धिमें नहीं बैठता। वेदके समय आर्य सुशिक्षित और सभ्य बने, धर्मके निर्मल ज्योतिःने उनके मनको आलोकित किया था। वैसी अवस्थापर मिथ्या आशामें आ वह कभी स्त्रीहत्या कर न सके होंगे। किन्तु कोई प्रथा देशमें अधिक दिन चलती रहनेसे उसे बिलकुल बन्द कर देना भी कठिन काम है। वैदिक समयसे पूर्व सहमरण चलित रहा, इसी कारण वैदिक समयमें ऋषि यह प्रथा बिलकुल बन्द कर न सके। इसलिये स्वामीकी मृत्यु बाद पुरातन नियमकी रक्षा रखनेके निमित्त विधवा नारी मृत पतिकी चिता-शय्यापर एक बार जा लेटती, अन्तमें लोग उसे उठा लाते थे। अनुमानसे इस समय इतना ही कहा जा सकता है, कि वह सिवा असली नियमकी नक़लके दूसरा कुछ भी न था।

यही सहमरणका पूर्व इतिहास हुवा। फिर भी, मुसलमानी ज़मानेमें सहमरण-प्रथाके विशेष भावसे प्रचलित होनेका कारण हिन्दूनारीकी कुलधर्मरक्षा रही। मुसलमानोंमें बहु विवाह विशेष भावसे प्रचलित है। मुसलमानोंके आधिपत्य-कालमें किसी-किसी मुसलमान-राजपुरुषकी हिन्दू महिलापर तीव्र और लोलुप दृष्टि पड़ती थी। इस आशङ्कासे सकल ही पतिहीना नारीके सहमरणको अच्छा समझते, कि पीछे उनकी पतिहीना विधवापर किसी प्रकार अत्याचार न मचने लगता। इसीसे अंगरेज़ी अधिकारके प्रारम्भ पर्यन्त भारतमें सर्वत्र ही सहमरणके बाहुल्यका सन्धान लगा है। इसतरह बहुकाल भारतमें सहमरण प्रथा प्रचलित रहनेसे देशीय राज्यके मध्य भी यह प्रथा कुलगौरवजनक होनेके कारण सर्वत्र आद्रित हुयी थी। बस, जो नारी सहमरणमें आत्मोत्सर्ग रखती, वह दाक्षायणी सती-जैसी भारतमें सर्वत्र पूजी जाती रही। अनुमृता नारीकी स्मृतिरक्षाके लिये भारतके नानास्थानमें बहु सतीस्तम्भ बने हैं। सती देखो।

अब बताते हैं, पचास वत्सर पहले हिन्दुस्थानकी स्त्री कैसे जल जाती थी। ऋतुमती, गर्भवती रहने और गोदमें छोटा बच्चा होनेसे स्त्री पतिके साथ कभी जलने न पाती रही। फिर भी, ऋतुके तृतीय दिवस स्वामीकी मृत्यु पड़नेसे एक दिन शव रखनेकी व्यवस्था विद्यमान है। किन्तु सन् १८२२।२३ ई०में गवर्नमेण्ट चारो ओर तीव्र दृष्टि डालने लगी; पुलिसकी विशेष अनुमति न मिलनेसे कोई सतीदाह कर न सकता, इसलिये उस समय तीनचार दिनतक

लाश पड़े सड़ते रहती थी। जितने दिन लाश पड़े सड़ती, उतने दिन पर्यन्त हतभाग्य विधवा नारी कुछ भी न खाते रही।

अन्त्येष्टिक्रियाका आयोजन जुटा मृतदेहको चितापर रखते थे। प्रेत-पिण्डादि दिये जाने बाद नापित सतीका नख काटता, पीछे वह अलङ्कार निकाल, हाथकी चूड़ी फोड़ नहाती-धोती; स्नान हो जानेसे आत्मीय स्वजन उसे कफ़न पहनाते, रंगे डोरेसे हाथमें महावर बांधते, बालोंमें कङ्घी लगाते और कपालपर सिन्दूर चढ़ा देते। ऐसी वेशभूषा बननेपर सती, आचमनकर तिल, जल और कुश हाथमें ले पूर्वमुख यों सङ्कल्प लगाते रही,—

"अद्यामुके मासि अमुके पक्षे अमुके तिथौ अमुक गोत्रा श्रीमती अमुकी देवी अरुन्धतीसमाचारत्वपूर्वक स्वर्गलोकमहीयमानत्व मानवाधिकरणक लोमसंख्याब्दावच्छिन्न स्वर्गवास भर्तृसहित मोदमानत्व मातृपितृश्वशुरकुलत्रय-पूतत्व चतुर्दशेन्द्रावच्छिन्न-कालाधिकरणकाप्सरोगणस्तूयमानत्व पतिसहित क्रीड़मानत्व ब्रह्मघ्नकृतघ्नपतिपूतत्वकामा भर्तृज्वलच्चितारोहणमहं करिष्ये।"

इसतरह सङ्कल्प पढ़ लेनेसे, सती सूर्यार्घ्य देकर दिक्पालको साक्षी बनाती थी,—

"अष्टौ लोकपाला आदित्यचन्द्रानिलाग्न्याकाशभूमिजलहृदयावस्थितान्त-र्यामिपुरुषयमदिनरात्रि-सन्ध्या-धर्मा यूयं साक्षिणो भवत जलच्चितारोहणेन भर्तृशरीरानुगमनमहं करोमि।"

इसी प्रकार लोकपालको साक्षी बना सती अञ्चलमें लावा, नारियल और बताशे भर सात बार (व्यवस्थामें तीन ही बार लिखा है) चिताका प्रदक्षिण फिरती, प्रदक्षिण फिरने बाद, 'इमा नारीः' इत्यादि ऋङ्-मन्त्रका पाठ पढ़ा जाता। शेषमें वह चितापर चढ़ स्वामीके पास सो जाती थी। आत्मीय स्वजन बान और दरख़्तके कच्चे बकलेमें उसे और मृतदेह बड़े-बड़े लकड़ीके टुकडोंसे मज़बूत तौरपर बांध देते; फिर अग्निसमर्पण ठहरता, चारो ओरसे लोग झाड़-झड़ घास-फूस और रमशरका गट्ठा चितापर चलाने लगते। कोई-कोई चितापर बड़े-बड़े बांस रख दबाये रखता था। दूसरी ओर पांच सात ढोल बजते, कीर्तनीय झांझ-मंजीरे झनकार आकाश-पाताल एक कर डालते। चिताके भीतर घोर नाद निकलनेपर भी उसके सुननेका उपाय नहीं था। क्वचित् आगकी ज्वालासे छटपटा कोई-कोई सती चितासे नीचे गिर जाती थी। चिताभ्रष्ट सतीको प्राजापत्य प्रायश्चित्त उठाना पड़ता है। प्रायश्चित्तके बाद गृहस्थ उसे फिर घरमें घुसने न देते। इसीसे मुर्देफ़रोश उसे ले जाते रहे। इस कारण कदाचित् चितासे किसी स्त्रीके नीचे गिर पड़नेपर आत्मीय स्वजन उसके शिरमें लठ फटकार उसका प्राण निकाल डालते थे। चिताका प्रदक्षिण लगाते समय अनेकके शरीरसे घर्मधारा बह चलती और अल्पक्षण बाद ही वह मूर्छा खा गिरती। कोई-कोई ऐसे समय मर भी गयी है। जिन्होंने यह सकल घटना प्रत्यक्ष देखी, अद्यावधि वह वृद्ध लोग जीवित हैं।

उस कालमें सहमरण देखनेके निमित्त बालक, बालिका एवं अनेक सधवा स्त्री श्मशान पहुंचतीं और सतीके हाथकी फूटी चूड़ी, कपालका सिन्दूर और बिखरा हुवा लावा बटोर लाती थीं। कोई बालवधू पतिपरायणा न रहनेपर उसके कपालमें वही सिन्दूर चढ़ाया जाता रहा। उस लावेको विस्तर पर रखनेसे खटमल भग जाते थे। किसीको पेतिनीमें पानेपर वही फूटी चूड़ी गलेमें बंधते रही।

अनुमरणादिका ऐतिहासिक विवरण अनुमरण, सती और अशौचा-दिका हाल सहमरण शब्दमें देखो।

अनुमृग्यदाशु (सं० पु०) मनोकामना पूर्ण करनेवाला व्यक्ति, जो शख़्स मुंह-मांगी चीज़ बख़्शे।

अनुमार्शम् (सं० अव्य०) पुनः-पुनः विचार बांध, बार-बार ख़याल लड़ा, सोच-सोच, समझ-समझ।

अनुमेय (सं० त्रि०) अनुमीयते, अनु-मा कर्मणि यत्। १ अनुमान निकालने योग्य, अन्दाज़ लगाने क़ाबिल। अनु-मि-कर्मणि यत्। २ पश्चात् क्षेपके योग्य, पीछे डालने लायक। अनु-मी कर्मणि यत्। ३ पश्चात् वध्य, जो पीछे क़त्लके क़ाबिल हो।

अनुमोद (सं० पु०) अनु-मुद-णिच्-घञ्। सम्मतिजनक व्यापार, सम्मतिप्रकाश, आह्लादप्रकाश, पीछेकी ख़ुशी।

अनुमोदक (सं० त्रि०) स्वीकार करते हुवा, मानता, हामी भरनेवाला, मञ्ज़ूर फ़रमाता, जो रहमको ख़ुशी ज़ाहिर कर रहा हो।

अनुमोदन (सं॰ क्ली॰) अनु-मुद-ल्युट्। १ सम्मति-दान, तायीद, किसी बातकी हामींका भरना। २ प्रसन्नताप्रकाश, आह्लादोत्पादन, खुश करना। ३ करुणामय, आह्लाद, रहमसे भरी खुशी।

अनुमोदित (सं॰ त्रि॰) अनु-मुद्-भावे आदिकर्मणि च क्त। १ प्रीत, प्रसन्न, खुश, रज़ामन्द। २ ग्राह्य, स्वीकार करने योग्य, खुशगवार, मञ्ज़ूर फ़रमाने क़ाबिल। ३ सम्मति दिया गया, जिसपर आह्लाद लगा हो, मञ्ज़ूर।

अनुम्लोचा (सं॰ स्त्री॰) अप्सरा-विशेष, किसी परीका नाम।

अनुयव (सं॰ अव्य॰) अव्ययी॰। यव सदृश, यव-जैसा, यवके बराबर। (पु॰) २ निःशुकयव, छोटा यव।

अनुया (सं॰ त्रि॰) १ पश्चाद्गामी, पीछे पड़नेवाला, जो पीछा पकड़ रहा हो। (वै॰ स्त्री॰) २ भोजन, खुराक।

अनुयाग (सं॰ पु॰) पूर्व अथवा पश्चात् यज्ञ, जो यज्ञ पहले या पीछे लगाया जाये।

अनुयाज (सं॰ पु॰) अनु प्रधानात् पश्चाद् इज्यते; अनु-यज-घञ्, निपातनात् न कुत्वम्। प्रयाजानुयाजौ यज्ञाङ्गे। पा ७।३।६२। १ दर्शपौर्णमास यागवाले प्रधान अङ्गके पीछेका अङ्ग, यागका शेष अङ्ग। २ देवता-विशेष, देवीद्वार प्रभृति एकादश देवता।

आजकल यह समझनेमें कितना ही कष्ट पड़ता—अनुयाज, प्रयाज और उपयाज शब्द क्या हैं। बहुकाल पूर्व यास्कने भी इन सकल शब्दपर बड़ा गड़बड़ लगाया था। उनके मतमें अनुयाज, प्रयाज शब्द अग्निदेवताका मतलब रखते हैं। यथा—

"अथ किम्। देवताः प्रयाजानुयाजाः। आग्नेया इत्येके। आग्नेया वै प्रयाजा आग्नेया अनुयाजा इति च ब्राह्मणम्। छन्दोदेवता इत्यपरम्। छन्दांसि वै प्रयाजाश्छन्दांस्यनुयाजा इति च ब्राह्मणम्। ऋतुदेवता इत्यपरम्। ऋतवो वै प्रयाजा ऋतवोऽनुयाजा इति च ब्राह्मणम्। पशुदेवता इत्यपरम्। पशवो वै प्रयाजाः पशवोऽनुयाजा इति च ब्राह्मणम्। प्राणदेवता इत्यपरम्। प्राणा वै प्रयाजाः प्राणा वै अनुयाजा इति च ब्राह्मणम्। आत्मदेवता इत्यपरम्। आत्मा वै प्रयाजा आत्मा वै अनुयाजा इति च ब्राह्मणम्। आग्नेया इति तु स्थितिः। भक्तिमात्रमितरत्। किमर्थं पुनरिति? उच्यते यस्यै देवतायै हविर्गृहीतं स्यात् तं मनसा ध्यायेद् वषट् करिष्यन्निति ह विज्ञायते।"

(निरुक्त ८।२१)

ऐतरेय-ब्राह्मणमें स्पष्ट ही लिखा, कि अनुयाज शब्दका अर्थ देवताविशेष होता, जिनकी संख्या ग्यारह रहती है। यथा—

"त्रयस्त्रिंशद्वै देवाः सोमपास्त्रयस्त्रिंशदसोमपाः। अष्टौ वसव एकादश रुद्राः द्वादशादित्याः प्रजापतिश्च वषट्कारश्चैते देवाः सोमपाः। एकादश प्रयाजा एकादशानुयाजा एकादशोपयाजा एते असोमपाः पशुभाजनाः। सोमेन सोमपान् प्रीणाति पशुना। असोमपान्।"

(ऐतरेय-ब्राह्मण २।१८)

ग्यारह प्रयाज देवता यह हैं,—१ देवीद्वार, २ उषा नक्ता, ३ देवीज्योष्ट्रि, ४ उर्ज और आहुति, ५ देवहोता, ६ तिस्रदेवीः (तीन देवी—इला, सरस्वती और भारती), ७ वर्हिस्, ८ नराशंस, ९ वनस्पति, १० वर्हिर्वादितीनाम् (जलपूर्ण कुम्भमें निक्षिप्त कुश) और ११ अग्निस्विष्टकृत्।

यज्ञ लगानेसे पहले ऋत्विक् होम किया करता, यज्ञके शेषभागमें अनुयाज मन्त्र पढ़ना पड़ता था। प्रथम मन्त्र वर्हिर्देवताके उद्देश्यसे (यज्ञीय वेदी और कुशासन) पढ़ते रहे। यथा—'देवं वर्हिर्वसुवने वसुधेयस्य वेतु।' इसीतरह एक-एक मन्त्र पढ़ एकादश अनुयाजके नामसे होम करनेकी विधि बंधी है।

अवशेषमें उपयाज अङ्ग होता है। होता वलि-स्थानका काष्ठ उठा किसी धिष्ण्यमें रख, उसके पीछे बैठ जाते रहा। धिष्ण्यकी एक ओर अग्निध्र, दूसरी ओर मार्जालि अग्नि जलता था। उसके बाद ऋत्विक् वलि चढ़नेवाले पशुकी पूंछ पकड़ धिष्ण्यके अग्निमें होम देते। एकादश अनुयाजकी पत्नी पूंछके होमसे अतिशय सन्तुष्ट होते रहीं। अनुयाजादि यज्ञका विस्तारित विवरण हिरण्यकेशिश्रौतसूत्र, ४।१६।१७ आश्वलायन श्रौतसूत्र और तैत्तिरीय ब्राह्मणमें देखो।

प्रयाज शब्दसे यज्ञके प्रथम अङ्गका अर्थ निकलता, अनुयाज शब्द शेष अङ्ग और उपयाज परिशिष्ट अङ्गका बोधक है। इनके तेंतीस देवताके नाम प्रायः एक ही प्रकार रहते हैं।

"प्रयाजान्मे अनुयाजांश्च केवलानुर्जस्वन्तं हविषो दत्तभागम्।"

(ऋक् १०।५१।८)

अनुयाजप्रसव (सं॰ पु॰) अनुयाज यज्ञ करनेकी आज्ञा।

अनुयाजप्रैष (सं० पु०) अनुयाज यज्ञके नियम।

अनुयाजवत् (सं० त्रि०) निम्न श्रेणीके यज्ञवाला।

अनुयाजानुमन्त्रण (सं० क्ली०) अनुयाजके मन्त्रका पाठ।

अनुयाजार्थ (सं० त्रि०) अनुयाजसे सम्बन्ध रखनेवाला या जो अनुयाजमें काम आये।

अनुयात (सं० त्रि०) अनु पश्चात् सह वा या-क्त। १ पश्चाद्‌गामी, पीछे-पीछे चलनेवाला। कर्मणि क्त। २ अग्रगामी, आगे जानेवाला। ३ सहगामी, जो साथ जाये।

अनुयातव्य (सं० त्रि०) पश्चाद्‌गमन लगाने योग्य, जिसके पीछे जा सकें।

अनुयातृ (सं० पु०) पश्चाद्‌गामी व्यक्ति, पीछे पड़नेवाला शख़्स।

अनुयात्र (सं० अव्य०) यात्राया: पश्चात्, अव्ययी०। १ यात्राके पश्चात्, सफ़रसे पीछे। यात्रायां, अव्ययी०। २ यात्रामें, सफ़रपर। अनुगता यात्रा, प्रा० स०। ३ यात्राके अनुगत, सफ़रके मुवाफ़िक़। (पु०) अनुरूपो कृता यात्रा येन प्रादि०-बहुव्री०। ४ अनुयायिवर्ग, साथ जानेवाले लोग।

अनुयात्रिक (सं० त्रि०) अनु पश्चाद् यात्रा अस्त्यस्य, ठन्। अनुचर, पश्चाद्‌गामी, हाज़िरबाश, नौकरकी तरह पीछे चलनेवाला।

अनुयान (सं० क्ली०) पश्चाद्‌गमन, पीछेका चलना।

अनुयायिता (सं० स्त्री०) पश्चाद्‌गमनकी स्थिति, पीछे पड़नेकी हालत, पंक्ति, क़तार।

अनुयायित्व (सं० क्ली०) अनुयायिता देखो।

अनुयायिन् (सं० त्रि०) अनु पश्चात् याति गच्छतीति, अनु-या-णिनि। १ अनुचर, पश्चाद्‌गामी, पीछे-पीछे चलनेवाला। २ सेवक, नौकर। ३ सदृश, समान, बराबर, अनुकरण करनेवाला, जो नक़ल उतारे।

अनुयायी, अनुयायिन् देखो।

अनुयुक्त (सं० त्रि०) अनुयुज्यते, अनु-युज्-कर्मणि क्त। १ जिज्ञासित, पूछा गया। २ तिरस्कृत, बेइज़्ज़त, जिसकी तारीफ़ न रहे। ३ आदेशप्राप्त, हुक्म पाये हुवा।

अनुयुक्तिन् (सं० पु०) अनुज्ञा देनेवाला, जिसने हुक्म लगा दिया हो।

अनुयुग (सं० अव्य०) युगके अनुरूप, युगको देखते हुये, ज़मानेके मुवाफ़िक़।

अनुयूप (सं० अव्य०) यूपके अनुरूप, यूपकी तरह, यज्ञके स्थानानुसार।

अनुयोक्तृ (सं० त्रि०) अनु-युज-तृच्। अनुयोगकारी, प्रश्नकारक, वेतनग्राही अध्यापक, इम्तहान लेनेवाला, जो सवाल पूछे, उस्ताद।

अनुयोग (सं० पु०) अनु-युज-घञ्। १ जिज्ञासा, प्रश्न, सवाल, पूछताछ। २ आक्षेप, तानाज़नी। ३ तिरस्कार, हिक़ारत। ४ साधन, धर्मचिन्ता, मज़हबी तसव्वर, रूहानी ख़याल।

अनुयोगकृत् (सं० पु०) अनुयोगं प्रश्नविषयसंशयं कृन्तति छिनत्ति, अनुयोग-कृत् छेदने क्विप्। १ आचार्य, जिज्ञास्य विषयका सन्देह दूर करनेवाला व्यक्ति, जो शख़्स पूछी जानेवाली बातका शक रफ़ा कर दे। (त्रि०) अनुयोग-कृ-क्विप्। २ जिज्ञासा करनेवाला, जो सवाल पूछे।

अनुयोगिन् (सं० त्रि०) अनु-युज-घिणुन् तच्छीलादिषु। १ मिलानेवाला, जो जोड़ लगा दे। २ संयुक्त, मिला हुवा, नीचे या ऊपर प्रतिष्ठित, जो नीचे या ऊपर जमा हो। ३ प्रश्न पूछते हुवा, जो परीक्षा ले रहा हो, सवाल करनेवाला, मुम्तहिन।

अनुयोजन (सं० क्ली०) प्रश्न, सवाल, पूछताछ, परीक्षा, इम्तहान।

अनुयोजित (सं० त्रि०) पूछा गया, सवाल लगाया हुवा, जिसके बारेमें पूछताछ हुयी हो।

अनुयोज्य (सं० त्रि०) अनुयोक्तुं शक्यः, अनु-युज-ण्यत्। १ मन्द, निन्दाह, ख़राब, जो ताने मारने क़ाबिल रहे। २ आज्ञाकारक, दास, नौकर, हुक्म माननेवाला। ३ परीक्षा लिये जाने योग्य, जो इम्तहान देने या सवाल बताने क़ाबिल हो।

अनुरक्त (सं० त्रि०) अनु-रञ्ज-क्त। १ अनुरागविशिष्ट, आसक्त, अनुगत, मुश्ताक़, फंसा हुवा। अनुगतं रक्तं रागम्, अत्या०-तत्। २ रक्तवर्णप्राप्त, रञ्जित, रंगा हुवा, जिसपर रंगामेज़ी लगायी गयी हो। ३ प्रिय, प्यारा।

अनुरक्तप्रज (सं० त्रि०) प्रजाका प्रिय, रैयतका प्यारा, जिसे लोग चाहते हों।

अनुरक्तलोक (सं० पु०) सबका प्रिय व्यक्ति, हरदिल अज़ीज़ शख़्स, जिस आदमीसे सब कोई लगाव रखे।

अनुरक्ति (सं० स्त्री०) अनु-रन्ज-क्तिन्। आसक्ति, अनुराग, मुहब्बत, प्यार, लगाव।

अनुरञ्जक (सं० त्रि०) अनु-रन्ज-णिच्-ण्वुल्। १ अनुरागयुक्त बनानेवाला, जिसे देखकर प्यार आ जाये। २ रङ्ग चढ़ानेवाला, जो रंगामेज़ी लगाये।

अनुरञ्जन (सं० क्ली०) अनु-रन्ज-णिच्-भावे ल्युट्। १ आसक्तकरण, लगाव, दिलबहलाव, प्यार, मुहब्बत पैदा करनेका काम। (त्रि०) कर्तरि नन्दादित्वात् ल्यु। २ अनुरञ्जक, खुश करनेवाला, जो तबीयतपर रङ्ग चढ़ा दे।

अनुरञ्जित (सं० त्रि०) अनु-रञ्ज-णिच् कर्मणि क्त। १ प्रीतिसम्पादित, जिसे अनुराग लगा हो, मुहब्बतसे जोशमें आया हुवा, खुश। २ रङ्ग चढ़ाया गया, जिसपर रङ्ग फिरा हो।

अनुरणन (सं० क्ली०) अनु-रण-भावे ल्युट्। शब्दके पीछेका शब्द, आवाज़के पीछेकी आवाज, प्रतिध्वनि, बाज़गश्त, अनुगत स्वर, पीछे निकला बोल।

अनुरत (सं० त्रि०) अनु-रम्-कर्तरि क्त। अनुरक्त, आसक्त, मुश्ताक, फंसा हुवा, जो किसीको दिलसे चाहे।

अनुरति (सं० स्त्री०) अनु-रम-क्तिन्। १ आसक्ति, अनुराग, मुहब्बत, प्यार। २ प्रेम, इश्क, नेक ख्वाहिश, भली चाह।

अनुरथ (सं० पु०) कुरुवत्सके पुत्र और पुरुहोत्रके पिता।

अनुरथ्या (सं० स्त्री०) १ पथके पार्श्वका मार्ग, राहके किनारेकी गली, फुट-पाथ। २ पार्श्वका मार्ग, बग़लकी राह, पथका पार्श्व, राहका किनारा।

अनुरस (सं० त्रि०) अनुगतं रसम्, अत्या०-तत्। १ माधुर्यादि रसके अनुगत, जिसमें मीठा वग़ैरह मज़ा मिले। (पु०) २ काव्यमें—द्वितीय श्रेणीका भाव अथवा उत्साह, दूसरे दरजेका मतलब या जोश। ३ वैद्यकमें—अनुगत स्वाद, भीतरी ज़ायका।

अनुरहस (सं० त्रि०) अनुगतं रहः निर्जन-स्थानं रतं वा, अत्या०-अच्-स०। १ निर्जन देशके अनुगत, सुनसान, निराला, जहां कोई न रहे। २ सुरतप्राप्त। ३ तत्त्वप्राप्त। (अव्य०) ४ एकान्तमें, पृथक् रूपसे, अलग, पोशीदगीपर। "इच्छानुरहसं पतिम्।" (भट्टि ४।२४)

अनुराग (सं० पु०) अनु-रन्ज-घञ्। १ आसक्ति, स्नेह, प्रीति, मुहब्बत, प्यार, जोश, नेकख्वाहिश। (त्रि०) अनुगतः रागं रक्त-वर्णम्, अत्या० तत्। २ रक्तवर्णप्राप्त, जो सुर्ख पड़ा हो।

अनुरागवत् (सं० त्रि०) प्रिय, प्यारा, आसक्त, मुश्ताक, फंसा हुवा, जो किसीसे प्रीतिका लगाव रखे।

अनुरागिणी (सं० स्त्री०) गीत-विशेष, किसी किस्मकी तान।

अनुरागिता (सं० स्त्री०) प्रेम रखनेकी स्थिति, मुश्ताक होनेवाली हालत।

अनुरागिन् (सं० त्रि०) अनु-रन्ज-घिणुन्। अनुराग-युक्त, मुहब्बतसे मामूर, जो प्यार पैदा करे।

अनुरागी, अनुरागिन् देखो।

अनुरागेङ्गित (सं० क्ली०) प्रेम दिखानेवाला भाव अथवा सङ्केत, जो बात अदा या मुहब्बत ज़ाहिर करे।

अनुराजी, अनुजारी—लेबानन प्रदेशकी असभ्य जाति-विशेष। इन लोगोंकी संख्या कोई २०००० होगी। अनुराजियोंका एक सम्प्रदाय शम्सी कहलाता है। यह शम्स यानी सूर्यदेवकी पूजा करते हैं। उसीसे बोध बंधता, कि इन्होंने ईरानके शिया धर्मसे सूर्यकी उपासना सीखी है। अनुजारीका वासस्थान बिलकुल समुद्रकूलमें है, जो उत्तरमें तरतोयातक फैल रहा; इससे पूर्व ओर अनुजारी गिरि खड़ा है। इसमें सन्देह नहीं हो सकता, कि अनुजारी पर्वतसे ही अनुजारी जातिका नामकरण निकला; 'अनुराजी' शब्द, मालूम पड़ता, अनुजारीका अपभ्रंश है। हमारे देशमें जैसे बताशेको बशाता बोलते, उसीतरह वर्ण उलट जानेसे अनुराजी शब्द बना होगा। अनेक इन लोगोंको खेलवायी, शम्सायी और मेखलाजायी भी कहते हैं।

अनुराजोंका राजा नहीं रहता, आजतक यह किसीके वशीभूत भी नहीं बने। इनमें कोई विरोध बढ़नेसे यह आप ही उसका निबटारा लगा लेते हैं।

अनुरात्र (सं० त्रि०) अनुगतं रात्रिम्, अत्या० तत् अच्-स०। १ रात्रिके अनुगत, जो शबमें दाखिल हो। (अव्य०) २ प्रतिरात्रि, हरेक शब, रात-रात।

अनुराद्ध (सं० त्रि०) फलित, पूर्ण, प्राप्त, हासिल किया हुवा।

अनुराध (सं० त्रि०) १ मङ्गलजनक, शुभ, मुबारक, अच्छा, भलाई करनेवाला। २ अनुराधा नक्षत्रमें उत्पन्न हुवा। (हिं० स्त्री०) ३ प्रार्थना, अर्ज़, विनय, आरज़ू।

अनुराधग्राम (सं० पु०) अनुराधपुर देखो।

अनुराधना (हिं० क्रि०) प्रार्थना करना, विनय सुनाना, विनती लगाना, अर्ज़ गुज़ारना, मिन्नत दिखाना, भक्ति से ध्यान धरना।

अनुराधपुर (सं० क्ली०) सिंहल द्वीपमें बौद्धोंका तीर्थ-स्थान-विशेष। पहले लोग इसे अनुराध नामसे पुकारते रहे, उसके बाद इस स्थानका नाम अनुराधपुर पड़ा। सिंहलके प्रथम बङ्गाली राजा विजयसिंहके मित्र अनुराधके नामपर 'अनुराधपुर' नाम रखा गया है। (महावंश, १०म परि०) इस शहरका पूर्वगौरव और पूर्वसौन्दर्य अब कुछ नहीं देख पड़ता। उस समयके नरेशों साथ वह सकल सुखके दिन चले गये। आजकल इसी पुरातन नगरकी टूटी अट्टालिका निविड़ जङ्गलमें ढेर हुयी पड़ी है। क्या रात्रि और क्या दिन! केवल वनके पशु इसकी चारो ओर कूदते फिरा करते, पास ही बड़े-बड़े पहाड़ खड़े, जिनपर देवालय दिखायी देते हैं। दूरसे उनकी ओर दृष्टि दौड़ानेपर पूर्वका दिन याद आता और प्राणमें कैसा अनोखा भाव समाता है।

प्राचीन अनुराधपुर सुबृहत् नगर था। इसका व्यास अनुमान चार कोस रहा होगा। यह नगर सुरम्य सुबृहत् अट्टालिकासे परिपूर्ण रहा। यहांसे राजधानी स्थानान्तरित होनेपर इसका ध्वंस आरब्ध हुवा। किन्तु सिंहलराज पराक्रम-बाहुके (सन् ११५३-११८८ ई०) यत्न और चेष्टासे बहुतर अट्टालिका-का संस्कार सधा, उनकी मृत्यु बाद यह प्राचीन राजधानी फिर जनशून्य बन जङ्गलसे भर गयी। गत पचास वत्सरसे अनुराधपुरके ध्वंसावशेष-समूहका उद्धार कर सुरक्षा रखनेकी व्यवस्था बंधी है।

अनुराधपुरका महाविहार।

अनुराधपुर दो दिनका शहर नहीं होता। भूगोल-वेत्ता तलेमो भी इस स्थानको पहचानते थे। विदेशीय लोगोंके मुंहसे इस देशकी बात नहीं निकलती, इसीसे वह अनुराधपुरका 'अनुग्रामम्' नाम लिख गये हैं। सिंहलके महावंश नामक इतिहासमें

वहांका अनेक वृत्तान्त मिलता है। जिस वत्सर बुद्धदेवको मृत्यु हुयी, उसी वर्ष विजय नामक जनैक व्यक्तिने पूर्वभारतके राढ़देशसे जा सिंहलको जीता था। वही बुद्ध चतुर्थ गौतम रहे। युरोपीयोंके हिसाबमें सन् ई०से ५४३ वत्सर पूर्व उनका मृत्यु हुयी थी। इस हिसाबमें यदि कोई भूल न निकले, तो सहज ही निश्चय कर सकते, अनुराधपुर कितने दिनका शहर है।

विजय सिंहलके राजा बने थे। एक ओर राजा दूसरी ओर प्रजाके धर्मगुरु—सिंहलमें प्रथम बौद्ध-धर्मका प्रचार उन्हींसे पहुंचा। किन्तु कोई-कोई कहता, कि देवप्रियतिष्यने सिंहलवासीको बौद्ध-धर्मकी दीक्षा दी थी। विजयके जनैक बन्धुका नाम अनुराध रहा। यह नगर उन्हींका बसाया हुवा था। प्रथम यहां सिवा साधारण गांवके दूसरा कुछ भी न रहा। सन् ई०से ४३७ वत्सर पूर्व पाण्डुकाभय सिंहलके नरेश हुये थे। उन्होंने अनुराधपुरको सुरम्य अट्टालिकासे सजा अपनी राजधानी बनाया। अतएव इस नगरको बने कोई २३०० वत्सर वीते होंगे। पहले इस नगरको चारो ओरके प्राचीरका घेरा बत्तीस कोस रहा। अब वह प्राचीर टूट गया, स्थान स्थानमें उसका चिह्नमात्र देख पड़ता है।

गौतम किसी बोधिद्रुमके नीचे बैठ कठोर तपस्या करते-करते सिद्ध बन गये थे। कहते हैं, कि सिंहलमें शायद देववाणी हुयी, उसी वृक्षकी कोई शाखा वहां पहुंचकर गिर पड़ेगी। देववाणी मिथ्या जानेको नहीं निकलती। सन् ई०से ३०७ वत्सर पूर्व सत्य ही सत्य एक शाखा जा पड़ी, उस समय सिंहलेतिष्य सिंहलके नरेश रहे; शाखा देख उनकी भक्तिका स्रोत उमड उठा। वह प्रजाको बौद्ध धर्म सिखाने लगे, क्रमसे अनुराधपुर बौद्धोंका तीर्थस्थान बन गया। वह बोधितरु आजतक नहीं सूखा। देवका कैसा माहात्म्य है!—दो हजार वत्सर बीते, फिर भी जैसा वृक्ष रहा, वैसा ही बना है। उसका ह्रास या वृद्धि कुछ भी नहीं होता। सन् ९८६ ई०में अनुराधसे राजधानी उठी थी। किन्तु इसका तीर्थ-माहात्म्य अभी नष्ट नहीं हुवा।

बोधितरुके पीठस्थानको महाविहार कहते, इस पीठमें दो महल बने हैं। प्रथम महल चतुष्कोण प्राचीरसे घिरा, प्राचीर २१० हाथ लम्बा, १६० हाथ चौड़ा और ६ हाथ ऊंचा खड़ा; उत्तर-दिक्‌के मध्यस्थलसे एक चबूतरा बाहर निकल पड़ा है। इसका परिसर कोई ४० हाथ होगा। इस चबूतरेकी दोनो ओर छोटे-छोटे मकान बने, उनके भीतरसे पाठस्थानमें प्रवेश पहुंचाते हैं। इन मकानके सम्मुख पत्थरको खुदी हुयी प्रतिमूर्ति पायी जाती है।

उससे आगे बोधिवृक्षका प्राचीर पड़ता है। वहां चढ़ा-उतार सिढ़ी बनी है, उसी सिढ़ीसे वृक्षके पास पहुंचते; सिंहलके बौद्ध इस पेड़पर बड़ी भक्ति रखते हैं। सन् ३९८ ई०में फाहिएन् नामक जनैक चीन-परिव्राजक सिंहलमें तीर्थयात्राके लिये पहुंच यह वटवृक्ष देख गये। उनके भ्रमण-वृत्तान्तमें लिखा है, कि उस समय इस वृक्षकी शाखासे चारो ओर बौ लटक रही थी। सन् १८२९ ई०में चापमैन साहबने यह पेड़ देखा। उनका कहना है, कि उस समय इसमें पांच बड़ी-बड़ी शाखा रहीं और तनेके निम्नभागसे चार-पांच छोटे-छोटे पौधे जम उठे थे। वह छोटे छोटे पौधे शायद एक-जैसे नहीं रहते। सिंहलके बौद्ध बताते, कि पांच जन बुद्ध ही पृथक् पृथक् वृक्षमूलमें बैठ सिद्ध बने; इसीसे यह पांच वृक्ष एक-जैसे नहीं देखायी देते।

महाविहारकी उस ओर पाव कोस दूर पुरातन शैल चैत्य स्तूपाकार पड़ा है। इस स्थानमें बुद्धदेवके जबड़ेका अस्थि समाहित रहा और तृतीय बुद्ध यहीं तीर्थपर्यटन लगाने पहुंचे थे; उसीसे यहांका इतना माहात्म्य बढ़ गया। सन् ३०७ ई०से पहले देवप्रिय तिष्यराजने यह चैत्य बनवाया था। कहते हैं, कि तिष्यके राजा होनेसे बुद्धदेवने बड़ी कृपा देखायी, उनके दक्षिण जबड़ेका अस्थि जाकर राज-मुकुटपर पड़ा। नृपतिने भक्तिपूर्वक वह अस्थि उठा समाहित किया था। इस समाधिमन्दिरकी बनावट बिलकुल घण्टे-जैसी रही। पूर्वमें इस चैत्यकी चारो ओर १६८ खम्भे थे। अब प्रायः सकल ही टूट

पड़ा ; कहीं-कहीं किसी जगह छोटा छज्जा बना, जिसको ढालू और अजण्टे-जैसा मनुष्यका चित्र खिंचा है।

महाविहारको पश्चिम ओर मरीचवती विद्यमान है। सन् ई०से १६१ वर्ष पहले दुट्ठगामनि राजाने इसे बनवाया था। महाविहारके ठीक उत्तर रावण-वल्ली है। इस पीठस्थानको दुट्ठगामनि राजाने आरब्ध किया था, पीछे उनके भाई मध्यतिष्यने पूरे उतारा। जलविम्बको देख कर यह विहार बना था महावंशमें इसके सम्बन्धपर अनेक अलौकिक घटना वर्णित है। महावंश १७ से ३३ अध्यायतक देखो।

अभयगिरि महाविहारके ईशान-कोणमें अवस्थित है। सन् ई०से १०४ वर्ष पूर्व राजा पराक्रमवाहुने इसे बनवाया था। इन राजाका दूसरा नाम वट्टगामनि अभय रहा। पहले इसी जगह एक देवमन्दिर था ; गिरि नामक जनैक व्यक्ति उन्हीं देवताकी सेवा साधते थे। गिरि सेवकवाले देवमन्दिरके स्थानमें अभय राजाके यह विहार बनवानेसे इसका नाम अभयगिरि रखा गया। इस विहारके गुम्बदका व्यासार्ध १८०, परिधि ११०० और उंचाई कोई २४४ फीट पड़ेगी। किन्तु महावंशमें लिखा है, कि यह १२० हाथ ऊंचा रहा। महाविहारके वायुकोणमें लङ्कारामविहार बना है। सन् २३१ ई०में अभयतिष्य राजाने इस विहारको बनवाया था। महाविहारसे उत्तर जेतवनाराम खड़ा, यह २५१ फीट ऊंचा और पचीस बीघे ज़मीनपर अवस्थित हो रहा है। इस स्तूपकी चारो ओर प्राचीर-वेष्टित जो भूखण्ड लगा, उसका आयतन ४३ बीघे देखते हैं। महासेन राजाने सन् २७६ ई०में इस विहारका सूत्रपात लगाया था, पीछे सन् ३३० ई०में उनके भाईने उसे पूरे उतारा।

इल्लल नामक जनैक मालवने सिंहलमें पहुंच दुट्ठगामनिको राज्यच्युत बनाया था। कुछ काल बाद दुट्ठगामनिने उसे युद्धमें परास्त और निहत किया। इस युद्ध-जयका चिह्नस्वरूप एक समाधिमन्दिर बना, अद्यापि उसका भग्नावशेष पड़ा है।

महायान बौद्धगणने सन् ई०के ८वें शताब्दपर अनुराधपुरमें विजयाराम नामक जो बृहत् विहार बनवाया, वह आज भी भग्नावस्थामें विद्यमान है। प्रत्नतत्त्ववित् बेल साहब (Mr. Bell) इस विहारका विस्तृत विवरण लिख गये हैं। विजयारामका कारुकार्य एवं चित्रादि देख विमोहित बनना पड़ता है। इसको देखनेसे आभास आता, बौद्ध वहां कैसे अपना जीवन बिताते थे। बहुतर बौद्ध देव-देवीकी मूर्ति, सभागृह, शयनागार, स्नानागार, भाण्डारगृह, पुष्करिणी प्रभृति इस विहारके मध्य विद्यमान है।

अनुराधपुरसे आविष्कृत एक ध्यानी-बौद्ध-मूर्ति कोलम्बोके अजायबघरमें रखी, यह मूर्ति ५ फीट ८ इञ्च ऊंची है। पहले ही कह चुके, कि विभिन्न विहारके प्राचीर-गात्रमें जो सकल नाना वर्णके चित्र अङ्कित हैं, वह अतिशय नयनाभिराम दख पड़ते ; रूपनवेलिवाले विहारके चित्र सर्वापेक्षा मनोरम हैं। यह सकल चित्र खींचनेमें श्वेत, हरिद्रा, लाल, नील, और हरित रङ्ग लगा था। यह रङ्गीन चित्र अजण्टेकी तरह नज़र आते हैं। पद्मोपरि किन्नर और वामनका चित्र विशेष उल्लेख-योग्य है।

अनुराधा (सं० स्त्री०) अनुगता राधां विशाखाम्, अत्या०-तत्। राशिचक्रके सत्ताईस नक्षत्रमें सप्तदश नक्षत्र। इसके देवता मित्र हैं। यह रूपमें सप्ततारामय सर्पकी आकृति रखता है। अनुराधा, ज्येष्ठा, मृगशिरा, हस्ता, अश्विनी, चित्रा, स्वाती, रेवती एवं पुनर्वसु—यह नक्षत्र पार्श्वमुखगण कहाते हैं। इन सकल नक्षत्रमें यन्त्र, रथादिनिर्माण, नौका-गठन, गृहप्रवेश और हस्ती, अश्व, गर्दभ, गो—इन्हें प्रथम दमन देना किंवा गाड़ीमें जोतना शुभ होता है। अनुराधा नक्षत्र मृदुगणमें लिया गया है। मृदुगण नक्षत्रमें मित्र, अर्थ, सुरतविधि, वस्त्र, भूषण, मङ्गलगीत प्रभृति कार्य हितकर रहते हैं। अनुराधा नक्षत्रमें जन्म लेनेसे लोग कलाढ्य एवं कीर्ति, कान्ति-युक्त निकलते, सर्वदा उत्सवमें रत रहते और रिपुको जीतते हैं। यह नक्षत्र यात्रामें भी अच्छा ठहरता है। मसल मशहूर है,—'अनुराधा क्यों न साधा ?'

अनुरु (सं० त्रि०) लघु, अप्रशस्त, छोटा, जो बड़ा न हो।

अनुरुद्ध (सं० त्रि०) अनु-रुध्-क्त। १ अपेक्षित, अनुरोध लगाया गया, उपरुद्ध, अनुसृत, रुका हुवा, मुक़ाबिला किया गया। २ प्रसन्न किया गया, राज़ी रखा हुवा। (पु०) ३ शाक्य मुनिके किसी भतीजेका नाम।

अनुरुध (सं० त्रि०) अनु-रुध्-क्विप्। १ अनुरोध लगानेवाला, जो अपेक्षा पहुंचाये। कर्मणि क्विप्, वैदिके दीर्घः। २ अनुरोध किया गया, जिसपर अनुरोध पड़ा हो।

अनुरुहा (सं० स्त्री०) नागरमुस्ता, नागरमोथा। (Cyperus Pertenius)

अनुरूप (सं० अव्य०) रूपस्य योग्यं सदृशं वा, अव्ययी०। १ रूपके योग्य, रूपके सदृश, आराममें, खुशीसे, मर्ज़ीके मुवाफ़िक़। (त्रि०) अनुगतं रूपम्, अत्या०-तत्। २ रूपानुगत, सदृश, शक्ल-जैसा, मिलता-जुलता, मानिन्द, मुशाबिह। ३ योग्य, क़ाबिल, चस्पां। (पु०) ४ स्तोत्रिय छन्दके परिमाणका पद, जिसे अनिस्तोकी कहते हैं। ५ एक साथ तीन गाये जानेवाले पदोंमें दूसरा। (क्ली०) ६ सादृश्य, मुवाफ़िक़त। ७ योग्यता, क़ाबिलियत।

अनुरूपक (सं० पु०) प्रतिमा, प्रतिमूर्ति, तस्वीर।

अनुरूपचेष्ट (सं० त्रि०) उचित रूपसे कार्य करनेकी चेष्टा लगाते हुवा, जो मुवाफ़िक़ तौरपर काम चलानेकी कोशिश कर रहा हो।

अनुरूपतस् (सं० अव्य०) रूपके अनुसार, शक्लके मुवाफ़िक़, प्रसन्नतामें, खुशीसे।

अनुरूपता (सं० त्रि०) १ सादृश्य, बराबरी। २ योग्यता, क़ाबिलियत।

अनुरूपेण, अनुरूपतस् देखो।

अनुरेवती (सं० स्त्री०) क्षुद्रदन्ती, एक प्रकारका पौधा।

अनुरोध (सं० पु०) अनु-रुध्-घञ्। १ उपरोध, रुकावट। २ अनुवर्तन, प्रेरणा, तरग़ीब। ४ अभीष्ट-साधनेच्छा, मतलब बर लानेकी ख़ाहिश।

अनुरोधक अनुरोधिन् देखो।

अनुरोधन (सं० क्ली०) अनुरोध देखो।

अनुरोधिता (सं० स्त्री०) अनुरोध लगानेकी स्थिति, रुकावट डालनेकी हालत।

अनुरोधिन् (सं० त्रि०) अनु-रुध्-णिनि। अनुरोध लगानेवाला, जो अपेक्षा अड़ाये, रोकनेवाला, जो तरग़ीब दिलाये या दबाव डाले।

अनुलग्न (सं० त्रि०) १ संयुक्त, लगा हुवा। २ अनु-वृत्त, पीछे पड़ा। ३ प्रवृत्त, मशग़ूल।

अनुला (सं० स्त्री०) १ बौद्ध अर्हत्-विशेष, किसी बौद्ध साध्वीका नाम। २ लङ्काकी कोई राणी, सिंहलकी किसी बेगमका इस्म।

अनुलाप (सं० पु०) अनु वीप्सायां पुनः पुनः लप्यते कथ्यते, लप् भावे घञ्। पुनः पुनः कथन, पुनरुक्ति, मुहुर्भाष, कहे हुयेका दुहराव, तकरार-अलफ़ाज़।

अनुलास (सं० पु०) मयूर, मोर।

अनुलास्य, अनुलास देखो।

अनुलिप्त (सं० त्रि०) अनु-लिप्-क्त। अनुरञ्जित, अङ्गमें गन्धादि लेपनयुक्त, दला-मला, जो तेल या द्रव लगाये हो।

अनुलिप्ताङ्ग (सं० त्रि०) अङ्गमें सुगन्धादि लिप्त, जिस्ममें तेल-फुलेल लगाये हुवा।

अनुलेप (सं० पु०) अनु-लिप्-भावे घञ्। १ सुगन्धादि मर्दन, तेल-फुलेलकी मालिश। अनुलिप्यते अनेन इति, करणे घञ्। २ चन्दनादि गन्धद्रव्य, तेल-फुलेल वग़ैरह खुशबूकी चीज़।

अनुलेपक (सं० त्रि०) अनु-लिप्-ण्वुल्। सुगन्धादि लगानेवाला, जो तेल-फुलेल मले।

अनुलेपन (सं० क्ली०) अनु-लिप्-भावे ल्युट्। १ सुगन्धादि मर्दन, तेल-फुलेल वग़ैरहकी मालिश, उबटन। इसका गुण यों गिनाया है,—

"अनुलेपस्तृषामूर्च्छादौर्गन्ध्यश्रमवातजित्।
सौभाग्यतेजस्त्वग्वर्णप्रीत्योजो बलबर्धनः॥" (मदन ब० १३)

फिर देखिये,—

"अनुलेपनकं बल्यं तेजः सौभाग्यदायकम्।
त्वचं प्रीतिप्रदं प्रोक्तं तृषमूर्च्छाश्रमनाशनम्
दौर्गन्ध्यवातहं प्रोक्तं पूर्वाचार्यैरिदं स्मृतम्॥" (वैद्यक निघ०)

अर्थात् अनुलेपनसे तृषा, मूर्च्छा, दौर्गन्ध्य, श्रम, वात मिटता और सौभाग्य, तेज, बल बढता है।

२ लेपनसाधन चन्दनादि, मलनेका तेल-फुलेल। ३ लेप, मरहम।

अनुलेपित (सं० त्रि०) अनु-लिप्-णिच् कर्मणि क्त। अनुलिप्तीकृत, मला हुवा, लगाया गया।

अनुलेपिन् (सं० त्रि०) अनुलेपक, मलनेवाला, जो तेल वगैरह मालिश करे।

अनुलोम (सं० अव्य०) यथाक्रमे अव्ययी०-अच्-स०। अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः। पा ५।४।७५। १ अनुक्रम, क्रमानुसार, सिलसिलेमें, तरतीबसे। (त्रि०) अनुगतं लोम आनुरूप्यम्। २ आनुरूप्यप्राप्त, लोमानुगत, कुदरती हिदायतका, बाकायदा, सिलसिलेवार। श्रेष्ठवर्णवाले पुरुषके तदपेक्षा अधम वर्णकी कन्यासे पाणिग्रहण करनेको अनुलोम विवाह कहते हैं। जैसे ब्राह्मण यदि क्षत्रिय कन्याको व्याहे, तो वह अनुलोम विवाह कहलायेगा। अनुलोम शब्दका विरोधी शब्द प्रतिलोम है। नीच वर्णवाले पुरुषके श्रेष्ठ वर्णकी कन्यासे विवाह करनेपर प्रतिलोम विवाह होता है। यह विवाह अत्यन्त गर्हित है।

अनुलोमकल्प (सं० पु०) अथर्ववेदको चौंतीसवीं प्रतिष्ठा।

अनुलोमकृष्ट (सं० त्रि०) नियमित और जोता गया, जो कायदेकी तर्फ़ जुता हो।

अनुलोमज (सं० त्रि०) अनुलोम-सम्बन्धात् जातः, जन-ड। उत्कृष्ट वर्णके औरस एवं निकृष्ट वर्णके गर्भसे जात, जो ऊंची जातिके बाप और नीची जातिकी मासे पैदा हुवा हो, अम्बष्ठ, अप्रतिलोमज।

अनलोमजन्म (सं० त्रि०) अनुलोमं श्रेष्ठवर्णमनुक्रम्य जन्म यस्य। अनलोमजात, जो अनुलोमसे पैदा हुवा हो।

अनुलोमन (सं० क्ली०) १ सम्बद्ध नियम, विशुद्ध दिक्‌में प्रस्थान। २ मलादि धातुका यथामार्ग गमनोपाय, पाखाने, पेशाब वगैरहके राहसे निकालनेकी तरकीब। ३ अपक्व वात, पित्त और श्लेष्मा पचाकर बद्धवायुको भेद मल निकालनेवाला औषध, जो दवा कच्चे धातुको हज़म कर रुके हुये गुदाज़को काट पाखाना-पेशाब साफ़ लाये। यथा—

"कृत्वा पाकं मलानाञ्च भित्त्वाबन्धमधो नयेत्।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी॥" (भावप्रकाश)

अनुलोमपरिणिता (सं० स्त्री) नियमित श्रेणीमें विवाहिता स्त्री, जिस औरतकी शादी कायदेके दरजेसे हुयी हो।

अनुलोमाय (सं० त्रि०) सौभाग्यशाली, खुशकिस्मत।

अनुल्की (सं० स्त्री०) १ हिक्का, हिचकी। २ तृष्णा, प्यास।

अनुल्वण (सं० त्रि०) अतिशय-भिन्न, जो ज्यादा न रहे, अप्रधान, छोटा, चिक्कण, चिकना, जिसपर हिदायतका असर न पड़े, असम्बद्ध स्थितिसे स्वतन्त्र, जो परेशानीसे आज़ाद रहे।

अनुवंश (सं० अव्य०) १ वंशसे, खान्दानके मुवाफ़िक़। (पु०) २ वंशावली, नस्बनामा।

अनुवंश्य (सं० त्रि०) वंशावली-सम्बन्धीय, नस्बनामेवाला।

अनुवक्तृ (सं० त्रि०) अनु सदृशं गुरुमुखोच्चारितानुरूपं वदतीति, अनु-वच्-तृच्। गुरूपदेशानुरूप पाठारम्भकारी, जो उस्तादके बताये तौरपर मुतालह लगाये, पीछे बोलते हुवा, दुहरानेवाला, जो जवाब देता हो।

अनुवक्तव्य (सं० त्रि०) पाठ किया जानेवाला, जो दुहराया जाये, जिसका मुतालह लगायें।

अनुवक्र (सं० त्रि०) अनुक्रमेण वक्रम्। १ किञ्चित् वक्र, कुछ-कुछ टेढ़ा। २ अत्यन्तवक्र, निहायत खमदार।

अनुवक्रग (सं० त्रि०) वक्रगतिविशिष्ट, टेढ़ी राह चलनेवाला, जो तिरछा-तिरछा जाये।

अनुवचन (सं० क्ली०) अनुरूपं वचनं, प्रा० स०। १ अनुरूप कथन, जैसेका तैसा मुतालह, पीछेकी बात, दुहराव, पढ़ाई। २ व्याख्या, वाज़। ३ अध्याय, बाब। ४ यज्ञका मन्त्रादिविशेष।

"जातुकर्ण्यं समलीकयु पुनः पप्रच्छ शस्त्रं वानुवचनं वा निगदं वा याज्यां वा यद्वान्यत् सर्वं तत् पुनर्ब्रूयादिति।" (कौषीतकि-ब्राह्मण २६।५)

अनुवचनीय (सं० त्रि०) अनुवचनसम्बन्धीय, मुता-

लहका हवाला रखनेवाला, जो दुहराये जानेसे ताल्लुक रखे।

अनुवत्सर (सं० पु०) अनुकूलो वत्सरो दानादिविशेषाय। १ वर्ष, साल। २ ज्योतिषमें—पांच वत्सरके युगका चतुर्थ वर्ष। विष्णुपुराणमें लिखा है,—सावन, सौर, चान्द्र और नक्षत्र—इन्हीं चार प्रकारके माससे वत्सर-गणना गंठती; इन्हीं चार प्रकार मासके समन्वयसे पांच वत्सरका युग बंधता है। इस युगके प्रथम वत्सरको संवत्सर, द्वितीयको परिवत्सर, तृतीयको इद्वत्सर, चतुर्थको अनुवत्सर और पञ्चमको युगवत्सर कहते हैं। (२।६६-६७) अनुवत्सरमें धान्य देनेसे महाफल मिलता है।

अनुवन (सं० अव्य०) वनके मध्य, जङ्गलकी जगहमें, बीहड़के इधर-उधर।

अनुवर्तन (सं० क्ली०) अनु-वृत् ल्युट्। १ अनुसरण, अनुगमन, आसपासका फेरा। २ व्याकरणमें—अन्वय निमित्त पूर्वसूत्रके किसी विषयका परसूत्रमें आकर्षण, फ़िक़रेमें मानी लगानेके लिये पहले कही हुयी बातका मिला लिया जाना। ३ अनुबन्ध, तफ़सील-जेल। ४ समादर, फ़रमांबरदारी। ५ फल, नतीजा। ६ सम्बन्ध, सिलसिला।

अनुवर्तनीय (सं० त्रि०) अनुवर्तन लगाने योग्य, जो पीछेसे मिलाने क़ाबिल हो, फेरा जानेवाला।

अनुवर्तित्व (सं० क्ली०) अनुवर्तन बैठानेकी स्थिति, पीछे फिरनेवाली हालत।

अनुवर्तिन् (सं० त्रि०) अनु-वृत्-णिनि। पश्चाद्गामी, पीछे चलनेवाला, पिछलगा।

अनुवर्ती, अनुवर्तिन् देखो।

अनुवर्त्मन् (सं० त्रि०) पश्चाद्गामी, पीछे फिरनेवाला।

अनुवश (सं० पु०) १ अपरेच्छासत्कार, दूसरेके दिलकी फ़रमांबरदारी। (त्रि०) २ अपरेच्छासम्पादक, दूसरेकी मर्ज़ीका फ़रमांबरदार।

अनुवषट्कार (सं० पु०) बलिप्रदानान्तर वषट्का लघु निनाद, बलिप्रदानके बाद जो वषट् धीरेसे बोलते हैं।

अनुवसित (सं० त्रि०) १ वस्त्राच्छन्न, पोशाक पहने हुवा, लपेटा हुवा। २ संलग्न, लगा हुवा, जो फंसा हो।

अनुवह (सं० पु०) अग्निकी सात जिह्वामें एक।

अनुवा (हिं० पु०) १ पैंठी, जिस जगह खड़े हो कुयें से जल निकालते हैं। २ चौंडा, जो गड्ढा पानी पीनेको खोदा जाता है। ३ चौना, जिस जगह तालाबसे बेंड़ीमें पानी भर खेत सींचते हैं।

अनुवाक (सं० पु०) अनूच्यते, अनु-वच्-घञ्। १ वेदका अंशविशेष, ऋग्विशेष। २ पश्चाद्वचन, पीछेका बोल, रट, दुहराव, पढ़ाई। ३ ऋग्वेद अथवा यजुर्वेदका संग्रह।

अनुवाकसंख्या (सं० स्त्री०) यजुर्वेदके अट्ठारह परिशिष्टका चौथा परिशिष्ट। चरणव्यूहमें अट्ठारहो परिशिष्टके यह नाम लिखे हैं,—१ यूपलक्षण—व्यासदेवके मतसे यह उपज्योतिष चरणव्यूह ठहरता है, २ छागललक्षण—व्यास इसे माङ्गललक्षण बताते थे, ३ प्रतिज्ञा—जिसे व्यास प्रतिज्ञानुवाक्य कहते रहे, ४ अनुवाकसंख्या—जो व्यासकी बातसे परिसंख्या होती है, ५ चरणव्यूह, ६ श्राद्धकल्प, ७ शुल्भिकानि, ८ पार्षद, ९ ऋग्यजुःप्रभृति, १० इष्टकापूरण, ११ प्रवराध्याय, १२ उक्थशास्त्र, १३ क्रतुसंख्या, १४ निगम—व्यासके मतसे जो आगम है, १५ यज्ञपार्श्व, १६ हौत्रक, १७ प्रसवोत्थान, १८ कूर्मलक्षण।

अनुवाक्यवत्, अनुवाक्यावत् देखो।

अनुवाक्या (सं० स्त्री०) अनु-वच्-ण्यत्। ऋत्विग्विशेष, देवताह्वानी ऋक्, जो ऋक् होता देवताके बलिप्रदान लेनेको पढ़ता है।

अनुवाक्यावत् (सं० त्रि०) अनुवाक्या-विशिष्ट, जिसमें अनुवाक्या लगी हो।

अनुवाच (सं० पु०) अनु-वच्-णिच्-क्विप्। अध्यापक, अनुवाचक, मुअल्लिम, पढ़ानेवाला।

अनुवाचन (सं० क्ली०) अनु-वच्-ल्युट्। १ अध्यापन, पढ़ाना। २ अध्वर्युके प्रेषार्थ होता द्वारा ऋग्वेदका मन्त्रोच्चार।

अनुवाचनप्रैष (सं० पु०) अनुवाचनादेश, दुहरानेका हुक्म।

अनुवाचनीय (सं॰ त्रि॰) अनुवाचनं प्रयोजनमस्य; अनुप्रवचनादित्वात् छ। अध्यापक, पढ़ानेवाला।

अनुवाचित (सं॰ त्रि॰) पूर्वोक्त, पूर्वकथित, पहले कहा हुवा, जिसे पेश्तर बता चुके हों।

अनुवात (सं॰ पु॰) अनुकूलो वातः। गमनकारीकी ओर को चलनेवाला वायु, जो हवा जानेवालेकी तर्फ़ चले। २ शिष्यकी ओरसे गुरुके तयीं बहनेवाला वायु, जो हवा शागिर्दकी तर्फ़से उस्तादके पास पहुंचे।

अनुवाते (सं॰ अव्य॰) वायुकी ओर, हवाकी तर्फ़, जिस ओरको हवा चले।

अनुवाद (सं॰ पु॰) १ कुत्सितार्थवाक्य, निन्दा, बदगोई। २ अनुकरण, नक़ल। ३ भाषान्तरकरण, तरजुमा, उल्था। ४ पश्चात् कथन, पुनः कथन, दोहराव। ५ पूर्वविधि द्वारा निर्दिष्ट विषयका कार्यविशेषके निमित्त पुनरुल्लेख, आदमीसे बन सकनेवाले जिस कामकी बात शास्त्रमें लिखी हो। जैसे—आकाशमें फूल नहीं खिलता—आगसे हिम हटता है। ऐसे स्थलमें सकल समझते, कि आकाशमें फूल नहीं खिलता—आगसे हिम हटा करता है। अतएव इन सकल स्वतःसिद्ध विषयका उल्लेख उठनेसे इसे अनुवाद कहेंगे। ७ अर्थानुवाद। यह तीन तरहका होता है। जैसे—

"विरोधी गुणवादः स्यादनुवादोऽवधारिते।
भूतार्थवादस्तद्धानावर्थवादस्त्रिधा मतः॥"

विरोधमें अर्थात् जहां विशेष्य विशेषणके अन्वयका विरोध बंधता, वहां गुणवाद रहता है। जैसे, 'यजमानः प्रस्तरः।' यहां प्रस्तर शब्दसे कुशमुष्टिका अर्थ आता है। जो यजमान वही प्रस्तर भी होगा। इस प्रकार अभेदरूप अन्वयका विरोध पड़नेसे यजमानका कुशमुष्टि धारणरूप अङ्ग बताया गया है। इसीसे यह गुणवाद कहाया।

निश्चित विषयका पुनर्वार कथन अवधारित होता है। जैसे—प्रातःकाल सूर्य निकलता है। यहां सवेरे सूर्यका निकलना समझा रहनेसे, उसका फिर कहा जाना अवधारित होगा।

गुणवाद और अवधारितके बाधस्थलमें भूतार्थवाद (सिद्धार्थवाद) पड़ता है। यथा—'इन्द्रो वृत्रहा।' वृत्रासुरको इन्द्रने मारा है।

भूतार्थवाद दो प्रकारका रहता है—स्तुत्यर्थवाद और निन्दार्थवाद। जैसे—

"सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥"

अर्थात् यो सम्यक् नियमानुसार तीन बार सन्ध्या-उपासना करता, वह व्यक्ति निष्पाप बन अक्षय ब्रह्मलोकको जाता है। इस जगह सन्ध्या-उपासनाकी प्रशंसा पड़नेसे स्तुत्यर्थवाद निकालते हैं।

"स्त्रीतैलमांससम्भोगी पर्वस्वेतेषु वै पुमान्।
विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं मृतः॥"

जो पुरुष इन समस्त पर्वमें स्त्री, तैल और मांसको बरतता, वह मलमूत्रभोजन नामक नरकमें गिरता है। यहां विशेष पर्व दिनमें स्त्री, तैल और मांसके सम्भोगकी निन्दा निकलनेसे निन्दार्थवाद लगेगा।

"विध्यर्थवादार्थवादवचनविनियोगात्।" (गौतमसूत्र ६१)

ब्राह्मणवाक्य तीन रूपसे विनियुक्त होता है। यथा—विधिवाक्य, अर्थवादवाक्य और अनुवादवाक्य।

"विधिर्विधायकः।" (गौतमसूत्र ६२)

जो वाक्य कार्यका विधायक हो, वह विधिवाक्य कहायेगा।

"स्तुतिर्निन्दापरकृतिः पुराकल्प इत्यर्थवादः।" (गौतमसूत्र ६३)

स्तुति, निन्दा, परकृति और पुराकल्प—यही चार प्रकार अर्थवाद आता है।

"विधिविहितस्यानुवचनमनुवादः।" (गौतमसूत्र ६४)

विधिद्वारा विहित विषयके पश्चात् कथनका नाम ही अनुवाद है।

अनुक्षण कथन या प्रमाणान्तरसे अवगत अर्थका शब्दद्वारा संकीर्तन भी अनुवाद कहलाता है। यथा—अनुवादे चरणानाम्। पा २।४।३। पाणिनिके इस सूत्रमें काशिकाकारने अनुवाद शब्दका अर्थ यों लगाया है,

"प्रमाणान्तरावगतस्यार्थस्य शब्देन संकीर्तनमात्रमनुवादः।"

यानी प्रमाणके अनन्तर जो अर्थ अवगत होता, उसका शब्दसे संकीर्तनमात्र अनुवाद कहाता है।

भट्टोजिदीक्षितने इस सूत्रके अनुवाद शब्दका अर्थ 'सिद्धस्योपन्यास' लिखा है।

अनुवादक (सं० त्रि०) अनुवदते, अनु-वद्-ण्वुल्। १ अनुवाद करनेवाला, जो तरजुमा बनाये। २ अनुवाद करानेवाला, जो तरजुमा उतराये।

अनुवादित (सं० त्रि०) अनुवाद बनाया गया, जिसका तरजुमा उतरा हो।

अनुवादिन् (सं० त्रि०) अनुवदते, अनु-वद्-णिनि। १ अनुवादकारक, तरजुमा करनेवाला। अनु-वद्-णिच्-णिनि। २ अनुवाद करानेवाला, जो तरजुमा उतराये।

अनुवादी (सं० पु०) स-र-ग-मके तीन स्वरमें एक स्वर।

अनुवाद्य (सं० त्रि०) अनु-उद्यते अनु-वद्-ण्यत्। १ अनुकथनीय, अनुकरणीय, तरजुमा किया जानेवाला, जिसकी नक़ल उतारी जाये। (क्ली०) २ उद्देश्य, इरादा। अलङ्कारिकके मतसे प्रथम अनुवाद्य (उद्देश्य) बता, पीछे विधेय बोलानेसे 'विधेयविमर्षदोष' आता है। यथा—

"अनुवाद्यमनुक्त्वै व न विधेयमुदीरयेत्।"

अर्थात् अनुवाद्य (उद्देश्य) विना लगाये विधेय न लाना चाहिये।

अनुवाद्यत्व (सं० क्ली०) अनुवाद द्वारा वर्णन किये जानेकी स्थिति, वह हालत जिसमें तरजुमेके ज़रिये बयान करनेकी ज़रूरत पड़े।

अनुवास (सं० पु०) अनुवासन देखो।

अनुवासन (सं० क्ली०) अनु-वस-चुरादि णिच्-ल्युट्। १ धूपादि द्वारा सुगन्धीकरण, लोबान वग़ैरहसे खुशबूका फैलाना। २ वस्त्रसुगन्धीकरण, पोशाकमें इत्रका इस्तैमाल। ३ वैद्यशास्त्रोक्त स्नेहादि द्वारा वस्तिकर्म, पिचकारीसे पतली दवाका लगाना। यह चिकित्सा वैद्यकी वस्तिक्रियाके मध्य गण्य है। कषाय द्रव्यसे लगायी जानेवाली पिचकारी निरूह और स्नेहद्रव्यवाली अनुवासन कहलाती है। प्राचीन समयके वैद्य चमड़े या मोटे कपड़ेसे पिचकारी तय्यार करते रहे। उसके ही द्वारा मलद्वार, योनिमार्ग आदिमें औषध पहुंचाया जाता था।

अनुवासनक, अनुवासन देखो।

अनुवासनवस्ति (सं० पु०) स्नेहवस्ति, मात्रावस्ति, पिचकारी, नल।

अनुवासनोपगवर्ग (सं० पु०) षड्विंशदशकनाम कषायवर्ग, एक प्रकारका काढ़ा। यथा—

"रास्नासुरदारुबिल्वमदनशतपुष्पावृश्चीरपुनर्नवाश्वदंष्ट्राग्निमन्थश्योणाका इति दशेमानि।" (चरक सूत्रस्थान ४ अ०)

अनुवासाख्य (सं० पु०) अनुवासन देखो।

अनुवासित (सं० त्रि०) अनु-चु० वस-णिच्-क्त। १ सुगन्धीकृत, बसाया हुवा, जिसमें खुशबू दी गयी हो। २ वस्तिकर्मद्वारा चिकित्सित, पिचकारी लगाया गया, जिसकी दवा पिचकारीके ज़रिये हुयी हो।

अनुवास्य (सं० त्रि०) अनु-चु० वस-णिच्-कर्मणि ण्यत्। १ सुगन्धि करने योग्य, खुशबू देने क़ाबिल। २ वस्तिकर्म द्वारा चिकित्साके योग्य, जो पिचकारी लगाने क़ाबिल हो।

अनुवित्त (सं० त्रि०) प्राप्त, हस्तगत, मिला हुवा, दस्तयाब।

अनुवित्ति (सं० स्त्री०) प्राप्ति, आविष्कार, याफ़्त, किसी चीज़का पाना।

अनुविद्ध (सं० त्रि०) अनु-विध्यते अनु-व्यध दि० कर्मणि क्त। १ संसृष्ट, संलग्न, लगा हुवा, जो चुभ गया हो। २ पश्चाद् वेधित, पीछेसे मारा गया। ३ पश्चात् क्षिप्त, पीछे फेंका हुवा। ४ खचित, जड़ा गया।

"सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यम्।" (शकुन्तला)

अनुविधातव्य (सं० त्रि०) आज्ञानुसार करणीय, हुक्मके मुताबिक़ तामील किया जानेवाला।

अनुविधान (सं० क्ली०) सम्यग्रूप आज्ञाकारिता, फ़रमांबरदारी, कहनेके मुताबिक़ कामका अञ्जाम देना।

अनुविधायिन् (सं० त्रि०) अनु पश्चात् विदधाति जनयति, अनु-वि-धा-णिनि युगागमः। १ अनुविधानकर्ता, फ़रमांबरदार। २ पश्चाद्जनक, पीछे पैदा करनेवाला। ३ अनुगत, पिछ-लगा। (पु०) ४ ब्रह्माकी सृष्टिके अवशिष्ट सृष्टि-कर्ता अर्थात् मरीचि, अत्रि,

अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ—यह सप्तऋषि। ५ विश्वामित्र। कहते हैं, कि विश्वामित्रने भी ब्रह्माकी सृष्टिके बाद कितनी ही वस्तुकी सृष्टि सजायी थी। ब्रह्माने जो मूंग बनायी, उसके परिवर्तमें विश्वामित्रका बनाया उड़द मौजूद है। इसी तरह गायके बदले भैंस और घोड़ेकी जगह खच्चर विश्वामित्रने बनाया था।

अनुविनाश (सं० पु०) पश्चात् नाश, पीछेका मटियामेट।

अनुविन्द (सं० पु०) अनु पश्चात् विन्दतीति, विद श संज्ञायाम्। गवादिषु विन्देः संज्ञायाम्। (पा ३।१।१३८ सूत्र वार्त्तिक।) राजविशेष, उज्जैनके कोई राजा। इन्होंने कुरुक्षेत्र पहुंच भीष्मके पीछे-पीछे पाण्डवसे युद्ध ठाना था।

"शकुनिः सौवलं शल्य आवन्त्योथ जयद्रथः।
विन्दानुविन्दौ कैकेयाः काम्बोजाश्च सुदक्षिणः॥" (भीष्मपर्व १६।१५)

अनुविन्ध्य (सं० अव्य०) विन्ध्यं पर्वतं अतिक्रम्य, अव्ययी०। १ विन्ध्यपर्वतको अतिक्रम या उल्लङ्घनकर, विन्ध्याचल पहाड़को लांघकर। (पु०) २ अवन्तिदेशके एक राजा।

अनुविष्टम्भ (सं० पु०) कारणवश प्रतिबन्धक, जो रोकटोक किसी सबबसे लगायी जाये।

अनुविष्णु (सं० अव्य०) विष्णुसे पीछे, विष्णुके बाद।

अनुवृत (सं० त्रि०) अनु पश्चात् वर्तते, अनु-वृत्-क्विप्। १ पश्चाद्वर्ती, पश्चाद्भावी, अनुगत, जो पश्चाद्भागमें खड़ा रहे, पीछे फिरनेवाला, बादको पैदा हुवा, लगा, सटा। अनु पश्चाद् वृणोति, वृणुते स्वा०, वृणाति वृणीते क्रा०, वरति-ते भा० वा क्विप्-तुक्। २ पश्चाद्वरणकारी, पश्चात् प्रार्थनाकारी, पीछे वरण देनेवाला, जो पीछे अर्ज़ गुज़ारे।

अनुवृत्त (सं० त्रि०) अनु-वृत-क्त। १ अनुगत, पश्चाद्गत, पीछे पड़ा, तफ़सील-जेल, फ़रमांबरदार। २ व्याकरणके अनुसार—पूर्वसूत्रसे परसूत्रमें आकाङ्क्षा-पूरणके निमित्त अन्वित पद, जो फ़िक़रा नहवमें पहले कायदेसे मतलब निकालनेके लिये पिछले कायदेपर लगाया जाये। ३ क्रमशः गोल हुवा, जो धीरे-धीरे गोल पड़ गया हो। अनुगतं वृत्तं शीलम्, अतिक्रा०-तत्। ४ शीलानुगत, सुशील, सच्चरित्र, लायक़, तहज़ीबयाफ़्ता, नर्मदिल। ५ पद्य श्लोक प्राप्त, जो शायरीमें चढ़ गया हो। ६ दृढ़ताप्राप्त, मज़बूत पड़ा हुवा। ७ अतीत, गया-गुज़रा। ८ पश्चात् ख्यात, पीछे मशहूर हुवा। ९ पश्चात् मृत, जो पीछे मरा हो। १० पश्चात् वृत, पीछे वरण किया हुवा।

अनुवृत्ति (सं० स्त्री०) अनु-वृत-क्तिन्। १ पश्चात् गमन, पीछेकी चाल, किसीकी मर्ज़ीके मुवाफ़िक़ कामका करना। २ पूर्वसूत्रके पदादिका परसूत्रमें आकाङ्क्षापूरणके निमित्त आकर्षण। ३ अधिकार, सूत्रके छः प्रकार लक्षण मध्य एक लक्षण। यथा—

"संज्ञा च परिभाषा च विधिर्नियम एव च।
अतिदेशोऽधिकारश्च षड्विधं सूत्रलक्षणम्॥"

अर्थात् संज्ञा, परिभाषा, विधि, नियम, अतिदेश और अधिकार—यह छः प्रकार सूत्रका लक्षण होता है। पूर्वसूत्रके स्थित पदकी परसूत्रमें उपस्थिति अधिकार कहाती है। यथा—

"सिंहावलोकिताख्यश्च मण्डूकप्लुतिरेव च।
गङ्गास्रोत इति ख्यातः अधिकारास्त्रयी मताः।
आकाङ्क्षायान्तु सर्वेषामनुवृत्तिपरे भवेत्।"

अधिकार या अनुवृत्ति त्रिविध रहती है। १ सिंहावलोकित। सिंह जैसे थोड़ी दूरतक लक्ष्य लगाता, अनुवृत्तिका काम भी वैसे ही थोड़ी दूरतक रहता है। २ मण्डूकप्लुति—मण्डूक (मेंड़क) जैसे थोड़ी दूर कूद जाता, वैसे ही दो-चार सूत्र छोड़ अन्य सूत्रमें अधिकार भी जा पहुंचता है। ३ गङ्गा-स्रोत—गङ्गास्रोत जैसे हिमालय पर्वतसे फूट बहु दूर देशमें फैल बहता, वैसे ही अतिशय दूर पर्यन्त अनुवृत्ति चली जाती है। समन्वय और सेवाको भी अनुवृत्ति कहते हैं। देखो,—

"ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः।
अनुवृत्तिं ध्रुवन्तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्॥" (मार्कण्डेय चण्डी)

अनुवृद्धि (सं० त्रि०) समान अनुपातमें वर्धमान, बराबर मिक़दारसे बढ़ते हुवा।

अनुवेद्यन्त (सं० अव्य०) यज्ञस्थलके किनारे, होम होनेकी जगहके आगे।

अनुवेध (सं० पु०) १ छेदाई, छेद डालनेका काम। २ प्रतिबन्धक, रोक। ३ झुकाव, झुक पड़नेकी बात।

अनुवेल (सं० अव्य०) वेलां वेलां अनु इति वीप्सार्थे अव्ययी०। १ प्रतिक्षण, सर्वदा, हरघड़ी, हमेशा। वेला समुद्रतीरं तदनुसमीपे सामीप्यार्थे वीप्सार्थे वा अव्ययी०। २ समुद्रतीरके निकट, जहां समुद्रका किनारा पास हो, समुद्रके तीर तीर, बहरके किनारे-किनारे, उपकूलको बग़ल।

अनुवेल्लित (सं० क्ली०) अनु-वेल्ल-क्त; वेल्लितं वक्रं गोलाकारः इति यावत् तदनुगतम्, अतिक्रा०-तत्। १ वैद्यसम्मत व्रणका लेपन-विशेष, फोड़ेका मरहम। २ व्रणबन्धनभेद, मरहमपट्टी। (अव्य०) वेल्लितं कुटिलं तदनु समीपे, सामीप्यार्थे अव्ययी०। २ कुटिलके निकट, टेढ़ेके पास। (त्रि०) ३ झुकते हुवा, जो झुक पड़ा हो।

अनुवेश (सं० पु०) अनुविश्यते प्रविश्यते, अनु-विश्-भावे घञ्। १ ज्येष्ठके अतिक्रमपर कनिष्ठका विवाह, जो शादी बड़ेके बैठे रहते छोटे की हो। २ पश्चात् प्रवेश, पीछेका दाखिला।

अनुवेश्य (सं० त्रि०) अनुक्रमेण पौर्वापर्यरूपेण विशति प्रविश्यते यत्, अनु-विश्-कर्मणि ण्यत्। प्रतिवासीसे एक गृहके अन्तरपर बसनेवाला, जो पड़ोसीसे एक मकान्‌के फ़ासिलेपर रहे। अनुक्रमेण वेशं प्रवेशं अर्हति, अनु-विश् अर्हार्थे ण्यत्। प्रतिवेशीके अर्थ गृहवासी, पड़ोसीके लिये मकान्‌में रहनेवाला। यजमानसे एक घर छोड़ रहनेवाला ब्राह्मण भी अनुवेश्य कहाता है।

अनुवैणेय—अयोध्याका एक पुरातन प्रदेश। इसके अन्तर्गत मनेय नामक कोई नगर रहा। ललितविस्तरके मतसे उसी जगह बुद्धदेवने अनोमा नदी पार उतर मत्था मुंडवा डाला, अनुचर उसी जगह सिद्धार्थसे रुख़सत मांग कपिलनगर वापस गये थे।

जो स्थान वैणेय नदके साथ विस्तीर्ण पड़ा हुवा, किंवा वैणेय नदके समीप अथवा निम्न अवस्थित हो, वह अनुवैणेय कहा सकता है। अथवा पूर्वमें जो स्थान वेणु अर्थात् बांससे वेष्टित रहा, उसे लोग अनुवैणेय कहते थे। हमारी समझमें बांसबरेलीको लोग अनुवैणेय नामसे पुकारते रहे।

अनुवैणेयके समीपवाले दूसरे कुछ स्थान पहचान सकनेसे यह प्रदेश भी सहजमें मालूम पड़ जायेगा। अनोमा नदी पार उतर सिद्धार्थने छन्दक नामक अपने अनुचरसे कपिलनगर वापस जानेको कहा था। इसी कारण, वहां 'छन्दक-निवर्तन' नामक स्तूप खड़ा हुवा। मालूम पड़ता, कि अनोमा नदीके पूर्वपार, गोरखपुरसे पांच कोस दक्षिण 'छन्दकनिवर्तन' स्थान रहा था, वही आजकल 'चन्दवली' ग्राम बन गया।

सिद्धार्थने छन्दकको रुख़सत दे हाथकी तलवारसे चूड़ा काट डाला था। चूड़ेको काट वह बाल ऊपरको ओर फेंकने लगे। देवताने चूड़ाके वही बाल संग्रह कर कोई पीठ बनवाया, जिसका नाम पड़ा 'चूड़ापति-ग्रह'। आजकल चूड़ापति-ग्रहको लोग 'चूड़ेय' कहते हैं। यह चन्दवलीसे डेढ़ कोस उत्तर बसा है।

चूड़ा काटने बाद सिद्धार्थने अपने वस्त्र उतार गेरुये वस्त्र पहने थे। लोगोंने उन्हीं काषाय वस्त्रको संग्रह कर कोई पीठ बनवाया, जिसका नाम 'काषायग्रहण' रखा गया। चन्दवलीसे डेढ़ कोस दूर 'काषियर' नामक कोई ग्राम है। बोध बंधता, कि वही उस कालका 'काषाय-ग्रहण' होगा। चीन-परिव्राजक यूअं-चूअन् इन सकल तीर्थस्थानका जो निरूपण निकाल गये, उसके साथ तुलना लगानेसे कुछ प्रभेद पड़ता है।

अनुव्य (सं० त्रि०) अनु-व्ययति-ते अनुगच्छति, अनु-व्ये संवृतौ क। १ अनुगत, पश्चाद्गामी, मातहत, पीछे रहनेवाला। अनुव्ययति-ते आच्छादयति। २ आच्छादनकारी, ढांकनेवाला। (अव्य०) ३ पश्चात्, पीछे।

अनुव्यञ्जन (सं० क्ली०) द्वितीय श्रेणीका चिह्न अथवा सङ्केत, जो निशान् या इशारा दूसरे दरजेका हो।

अनुव्याख्यान (सं० क्ली०) अनुरूपं सदृशं व्याख्यानम्,

अनु-वि-आ-ख्या-भावे ल्युट्, प्रादि० स०। १ मन्त्रादिका अविकल अर्थप्रकाश, मन्त्र वगैरहके ठीक मानेका इज़हार। २ पश्चाद्व्याख्या, ब्राह्मणका वह भाग जो कठिन सूत्र, भाष्य अथवा गुह्यरहस्यकी व्याख्या बांधता है।

अनुव्याहरण (सं० क्ली०) अनुव्याहार देखो।

अनुव्याहार (सं० पु०) अनु-वि-आ-हृ भावे घञ्; अनु पश्चाद् व्याहारः उक्तिः, कर्मधा०। अनुरूपो व्याहारः, प्रादि० स० वा। १ अनुवाद, पश्चात् कथन, अनुरूप कथन, तरजुमा, पीछेका बोलना, नक़ल। २ शाप, कोसना, धिक्कार, बददुवा, लानत।

अनुव्याहारिन् (सं० त्रि०) शाप देनेवाला, जो बददुवा लगाये, धिक्कार देते हुवा, जो लानत भेज रहा हो।

अनुव्रजन (सं० क्ली०) अनु-व्रज-भावे ल्युट्। १ पश्चाद्-गमन, पीछेकी चाल। अनु-व्रज-युच् चलनार्थत्वात्। २ पथिक, राहगीर।

अनुव्रज्या (सं० स्त्री०) अनु पश्चाद्व्रजनं, अनु-व्रज-भावे क्यप्। व्रजयजोभावे क्यप्। पा ३।३।९८। १ पश्चाद्गमन, पश्चाद्गमनरूप सेवा, पीछेकी दौड़, पीछे रहने-जैसी खिदमत। २ गोवधप्रायश्चित्तकी क्रियाविशेष। साक्षाद्-गोवधके लिये कहा गया है,—

"तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्।"

गायके खड़े होनेसे खड़ा रहे और चलनेसे उसके पीछे हो ले। अपालन-गोवधका प्रायश्चित्त यह है,—

"आर्द्रमेव हि तच्चर्म परिधाय स गां व्रजेत्।"

गोहत्याकारी गायका रक्तशुद्ध चर्म पहन पीछे-पीछे घूमा करे।

स्त्रीके गोवधादि पाप करनेसे गोका अनुगमन प्रभृति कितना हो कार्य निषिद्ध है।

"वपनं नैव नारीणां नानुव्रज्या जपादिकम्।" (भट्ट भवदेवधृतवचन)

अर्थात् स्त्रीके गोवधपाप करनेसे मुण्डन, गोका पश्चाद्गमन और गोमती-मन्त्रका जप मना है।

अनुव्रत (सं० त्रि०) अनु अनुकूलं सदृशं वा व्रतं नियमः कर्म वा यस्य। १ अनुकूल नियमयुक्त, उत्तम-कर्मशाली, समान नियमकारी, मसरूफ़, आदी, मह्व, मफ़तून, लगा हुवा। कर्मधा०। २ पश्चाद्व्रत, पीछे पड़ा हुवा। (पु०) जैन-साधुविशेष, ख़ास क़िस्मका जैनी फ़क़ीर।

अनुव्राज्य (सं० त्रि०) पश्चाद्गमन-योग्य, पीछे जाने क़ाबिल, जिसके पीछे पहुंचना मुनासिब रहे।

अनुशतिक (सं० त्रि०) सौके साथ लगा या सौसे ख़रीदा गया।

अनुशतिकादि (सं० क्ली०) अनुशतिकं आदि यस्य, ६-बहुव्री०। अनुशतिकादीनाञ्च। पा ७।३।२०। तद्धितके ञ इत्, ण इत् और क इत् प्रत्यय बाद दो पदके आदि अच्की वृद्धिका गुण। आकृतिगणमें निम्नलिखित शब्द रहते हैं,—अनुशतिक, अनुहोड़, अनुसंवरण, अनुसंवत्सर, अङ्गाररेणु, असिहत्य, अस्यहत्य, अस्यहेति, वध्योग, पुष्करसद्, अनुहरत्, कुरुकत, कुरुपञ्चाल, उदकशुद्ध, इहलोक, परलोक, सर्वलोक, सर्वपुरुष, सर्वभूमि, प्रयोग, परस्त्री, राजपुरुष, सूत्रनड़, अभिगम, अधिभूत, अधिदेव, अध्यात्मन्, चतुर्विद्या, शतकुम्भ और परदार।

अनुशय (सं० पु०) अनु-शीङ्-अच्; अनु पश्चात् शयः शयनं येन, ३-बहुव्री०। १ अतिशयद्वेष, हद दरजेकी दुश्मनी। २ अनुताप, पश्चात् सन्ताप, पछतावा।

"क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चिद्यस्येहानुशयी भवेत्।
सोऽन्तर्दशाहात्तद्द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत वा॥" (मनु ८।२२२)

३ पूर्वविरोध, पहलेका झगड़ा, पुरानी अदावत। अनुगतं शयं हस्तम्। ४ हस्तप्राप्त वस्तु, जो वस्तु हस्तगत हो गयी हो, दस्तयाब शै, जो चीज़ हाथ लगी हो। ५ फलका निकटस्थ सम्बन्ध, नतीजे-का लगा हुवा रिश्ता। वैज्ञानिक कर्मके कुत्सित फलको अनुशय समझता, जो कर्मसे लगा रहता और आत्माको अन्य शरीरमें जन्म दिलाता; वह अपने शुभ कर्मके फलस्वरूप पुनर्जन्म न पानेकी स्वतन्त्रता थोड़े ही कालके लिये भोगता है।

अनुशयवत् (सं० त्रि०) पश्चात्तापयुक्त, पछतावेमें पड़ा हुवा।

अनुशयान (सं० त्रि०) पश्चात्ताप करते हुवा, जो पछतावेमें पड़ा हो।

अनुशयाना (सं० स्त्री०) अनुशेते परनायकवाक्येन क्रुध्यति, अनु-शीङ्-शानच्। परकीयनायिकाविशेष, जो नायिका इष्टहानिके निमित्त अनुताप उठाये। अनुशयाना नायिका तीन तरहकी होती है—१-सङ्केत-विघट्टना, यह वर्तमान सङ्केत-स्थानमें विघटन पड़नेसे अनुताप झेलती है। २-भाविसङ्केत-विघट्टना, इसे भाविसङ्केत स्थानके अभावकी आशङ्कासे अनुताप पड़ जाता है। ३ सङ्केतगमनविघट्टना, यह पतिके सङ्केत स्थानमें पहुंचनेपर अपने वहां न जा सकनेसे अनुतापमें चूर रहती है।

अनुशयितव्य (सं० त्रि०) पश्चात्ताप पहुंचाने योग्य, पछताने क़ाबिल, जिसके लिये पछतायें।

अनुशयिन् (सं० पु०) अनुशेते अनुतप्यते, अनु-शीङ-इनि। १ निज पुण्यके अनुसार चन्द्रलोकमें ठहर पुण्य पूरा पड़नेसे अनुतापयुक्त बन भूलोकको आगमनेच्छु व्यक्ति, जो शख़्स अपने सवाबके मुवाफ़िक़ चन्द्रलोकमें रह पुण्य खतम होनेसे पछतावेके साथ इस दुनियाको आनेकी ख़्वाहिश रखे। (त्रि०) अनुशयोऽस्यास्ति इनि। २ पश्चात्तापयुक्त, जो पछतावेमें पड़ा हो।

अनुशयी (सं० स्त्री०) अनु-शीङ् भावे अच्; अनु पश्चात् शयस्तापो यया, बहुव्री०। गौरादित्वात् ङीष्। क्षुद्ररोगान्तर्गत पादरोगविशेष, पैरकी मामूली बीमारी।

> "गम्भीरामल्पशोथाञ्च सवर्णामुपरिस्थिताम्।
> पादस्यानुशयीं तान्तु विद्यादन्तः प्रपाकिनीम्॥"
> "हरेदनुशयीं वैद्यः क्रियया श्लेष्मविद्रधेः।" (भावप्रकाश पादरोगचि०)

(त्रि०) अनुशयिन् देखो।

अनुशर (सं० पु०) अनु प्रतिक्षणं शृणाति हिनस्ति प्राणिनः, कर्तरि अच् अप् वा। राक्षस, आदमखोर।

अनुशस्त्र (सं० क्ली०) १ चीरफाड़के काम आनेवाले शस्त्रके स्थानमें कोई दूसरा छोटा शस्त्र, जो छोटा औज़ार जराहोंके औज़ारकी जगह इस्तैमाल किया जाये, जैसे—नख, बांस आदि। २ कोई दूसरा छोटा औज़ार।

अनुशायिन् (सं० त्रि०) चिपटा हुवा, जो पड़ा हो।

अनुशार (सं० पु०) अनु-शृ करणे घञ्; शारं वायुं वर्णं आवर्णं वा अनुगतः, अतिक्रा०-तत्। वायुके अन्तर्गत वस्तु, जो चीज़ हवाके भीतर रहे, वायुप्राप्त, जिसे हवा लग रही हो।

अनुशासक (सं० त्रि०) प्रबन्ध बांधने या शिक्षा और दण्ड देनेवाला, जो इन्तज़ाम, तालीम या सज़ा करे।

अनुशासत् (सं० त्रि०) शिक्षा देते या प्रबन्ध बांधते हुवा, जो तालीम देता या इन्तज़ाम लगाता हो।

अनुशासन (सं० क्ली०) अनुशासनं याथार्थ्येन निरूपणम्, अनु-शास-भावे ल्युट्। १ यथार्थ ज्ञापन, आदेश, निरूपण, कर्तव्यका विधान, तालीम, हिदायत, हुक्म, मस्ल। २ महाभारतका पर्वविशेष।

अनुशासनीय (सं० त्रि०) उपदेश देने योग्य, हिदायत लगाने क़ाबिल, जो सिखाया-पढ़ाया जाये।

अनुशासित (सं० त्रि०) उपदेश दिया हुवा, प्रबन्ध बांधा हुवा, नियमसे निरूपित, जिसे हिदायत दी गयी हो, जिसका इन्तज़ाम लगा हो, जो क़ायदेसे बतलाया गया हो।

अनुशासितृ (सं० त्रि०) अनु-शास्ति याथार्थ्येन कार्यमादिशति, अनु-शास्-तृच्। कर्तव्योपदेशकर्ता, फ़र्ज़को बतानेवाला। (स्त्री०) अनुशासित्री।

अनुशासिन् (सं० त्रि०) अनु-शास्ति कार्यमुपदिशति अनु-शास्-णिनि। १ कर्तव्यका उपदेशकर्ता, कर्तव्यका उपदेश देनेवाला। २ दण्डविधाता, जो सज़ा दे।

अनुशिक्षिन् (सं० त्रि०) निजमें शिक्षा पानेवाला, जो खुद महारत डाले।

अनुशिख (सं० पु०) सर्पविशेष, जिसने किसी यज्ञमें होताका काम किया था।

अनुशिव (सं० अव्य०) शिवके साथ, पार्वतीपतिके पीछे।

अनुशिशु (सं० त्रि०) शिशुसे पीछा की गयी, जिसके पीछे बच्चा पड़ा हो।

अनुशिष्ट (सं० त्रि०) अन्वशासि अनुशास कर्मणि क्त। १ शासित, हुक्म चलाया हुवा। २ हितोपदेश-

प्राप्त, जिसे भलाईकी बात बतायी गयी हो। २ दखि़ल, सज़ायाफ़्ता।

अनुशिष्टि (सं० स्त्री०) अनु-शास्-क्तिन्। अनुशासन, पश्चात् शासन, उपदेश, हिदायत, तालीम, इरशाद।

अनुशीत (सं० अव्य०) शीते विभक्त्यर्थे अव्ययी०। शीतमें, मौसम-सर्मापर, जाड़ेसे।

अनुशीलन (सं० क्ली०) अनु-शील भावे ल्युट्; अनुक्षणं शीलनं आन्दोलनम्, प्रादि-स०। सतत अभ्यास, सर्वदा आन्दोलन, प्रतिक्षण आचरण, मुदामी मुतालह, जो खि़दमत बार-बार और दिलसे की जाये।

अनुशीलनीय (सं० त्रि०) सतत चिन्तनीय, पुनः पुनः आलोचनीय, जिसका बराबर अभ्यास रखा जाये, लगातार मुतालहके क़ाबिल, जिसकी महारत हमेशा रहना ज़रूरी पड़े।

अनुशीलित (सं० त्रि०) सतत चिन्तित, पुनः पुनः आलोचित।

अनुशुचित (सं० क्ली०) अनु-शुच्-भावे क्त, अनु-शोचितुमारब्ध इति आरम्भार्थे क्त विकल्पे किदिति वा गुणः। १ पश्चात् शोक, पछतावा। (त्रि०) २ कृतानु-शोचनारम्भ, पछताते हुवा।

अनुशोक (सं० पु०) अनु पश्चाच्छोकः, अनु-शुच-भावे घञ्। पश्चात् शोक, पछतावा।

अनुशोचक (सं० त्रि०) पश्चात्तापयुक्त, पछतावेमें पड़ा हुवा।

अनुशोचन (सं० क्ली०) अनुशुच्यते, अनु-शुच-भावे ल्युट्। पश्चात् शोक, पछतावा। (स्त्री०) अनुशोचना।

अनुशोचनीय (सं० त्रि०) अनुशुच्यते यत् अनु शुच-कर्मणि अनीयर्। अनुशोकार्ह, पछतावे क़ाबिल, जिसे याद करनेसे पछतावेमें पड़ना हो।

अनुशोचित (सं० क्ली०) अनु-शुच् भावे क्त, शोचितु-मारब्ध इति आरम्भार्थे वा क्त। १ पश्चात् शोक, पछतावा। (त्रि०) २ जिसे सोच पछतावेमें पड़े।

अनुशोचिन् (सं० त्रि०) पश्चात् ताप उठाते हुवा, जो पछतावेमें पड़ा हो।

अनुशोभिन् (सं० त्रि०) उज्ज्वल, प्रकाशमान, ख़ूबसूरत, चमकते हुवा।

अनुश्राव (वै० पु०) वैदिक कथा-वार्ता, जो बार-बार सुननेसे प्राप्त हो।

अनुश्राविक (वै० त्रि०) वैदिक वार्ता-सम्बन्धीय, जो लगातार वेद सुननेसे दिलपर जमा हो।

अनुश्रुत (सं० त्रि०) वैदिक वार्तासे प्राप्त, जो लगातार वेदकी बात सुननेसे मालूम हो गया हो।

अनुश्लोक (सं० पु०) महाव्रतमें गानेका सामविशेष, वेदका गान भेद। 'अनश्रूयते इति अनुश्लोकः।' (निरुक्त)

अनुषक्, अनुषट् (सं० अव्य०) १ क्रमशः, बद्धनियमा-नुसार, लगातार, सिलसिलेसे। २ एकपर एक, एकके बाद दूसरा।

अनुषक्त (सं० त्रि०) अनु षज्यते स्म, अनु-सज्ज कर्मणि क्त। संलग्न, अनुवृत्त, पूर्व सूत्रका कार्यविशिष्ट, ख़ूब सटा हुवा, पहलेकी चीज़से जो मिला हो।

अनुषङ्ग (सं० पु०) अनुषञ्जनं, अनु-सञ्ज भावे घञ्। १ दया, मेहरबानी। २ सम्बन्ध, रिश्ता, लगाव। ३ अनुवृत्ति, पहले वाक्यसे दूसरे वाक्यमें कुछ शब्दका खींचा जाना। ४ प्रधान कार्यके अधिक उद्देश्य बीच किसी सामान्य कार्यका उद्देश्य। जैसे—भिक्षा मांगने जावो, यदि देख पड़े, तो गायको भी लेते आना। यहां भिक्षा मांगने जाना ही प्रधान उद्देश्य है। इसमें गायको लाना सामान्य उद्देश्य मिला, जिससे गायको लाना अनुषङ्ग कहयेगा।

"तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेन स्नानं तीर्थे समाचरेत्।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राफलं न तु॥" (शङ्ख)

प्रधान उद्देश्यके अन्तर्गत सामान्य उद्देश्यसे तीर्थ पहुंच जो स्नान करता, उसे उसी स्नानका फल मिलता, तीर्थयात्राका नहीं। कारण, यथानियम वह तीर्थयात्रा नहीं निभाता। वाचस्पत्य और शब्दकल्पद्रुममें प्रसङ्ग और अनुषङ्ग दोनो एकार्थक शब्द समझे गये हैं। किन्तु उससे प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखित स्मार्तका एक पाठ सङ्गत नहीं ठहरता,—

"अतएव प्रासङ्गिकानुषङ्गिकफलसिद्धिरप्युपपन्ना।"

'अतएव प्रासङ्गिक और आनुषङ्गिक फलसिद्धि भी सङ्गत समझ पड़ी।' प्रासङ्गिक शब्दसे एकजैसा अर्थ निकलनेपर यहां एक ही शब्द बोलनेसे काम चलता,

इसतरह दोनोका उल्लेख न उठाना पड़ता। फलतः कोई उद्देश्यसे किसी काममें लगनेपर, जो उद्देश्य न था, वह भी यदि पूर्ण निकले, तो प्रसङ्ग शब्द व्यवहारमें आता है। प्रसङ्ग देखो।

अनुषङ्गिक (सं० त्रि०) १ फलस्वरूप, आवश्यक फलकी भांति पीछे पड़ते हुवा, नतीजे-जैसा, जो ज़रूरी नतीजेकी तरह पीछे लगता हो। २ संलग्न, संयुक्त, संबद्ध, लगा हुवा, चिपका पड़ा, मिला-जुला।

अनुषङ्गिन् (सं० त्रि०) अनुषज्यते प्रतिक्षणमवतिष्ठते, अनु-सञ्ज-घिनुण्। १ सर्वदा प्रसक्त, हमेशा मिला हुवा। २ नियत अवस्थित, मुदामी तौरपर मौजूद। ३ व्यापक, साधारण, मामूली, हावी।

अनुषङ्गी—अनुषङ्गिन् देखो।

अनुषज् (सं० अव्य०) अनु-सञ्ज-क्विप्। आनुपूर्व, पूर्व अवधि, पहलेतक।

अनुषञ्जन (सं० क्ली०) १ फलका सम्बन्ध, नतीजेका लगाव, मेल-मिलाप। २ व्याकरणका सम्बन्ध, नहवका लगाव।

अनुसञ्जनीय (सं० त्रि०) संयोजनीय, जो मिलाया जाये, जोड़नेके काबिल।

अनुषण्ड (सं० अव्य०) षण्डः पद्मसमूहस्तस्मिन् विभक्त्यर्थे अव्ययी०। १ पद्मसमूहमें, कमलदलपर। (पु०) २ किसी स्थान अथवा देशका नाम।

अनुषिक्त (सं० त्रि०) अनुषिच्यते स्म, अनु-सिच् कर्मणि क्त। १ सर्वदा सिक्त, हमेशा सिंचा हुवा। २ पश्चात् सिक्त, जो पीछे सींचा गया हो।

अनुषेक (सं० पु०) अनुषेचन देखो।

अनुषेचन (सं० क्ली०) अनु-सिच्-भावे ल्युट्। १ प्रतिक्षण सेचन, मुदामी सींच। २ पश्चात् सेचन, पीछे पानीका दिया जाना।

अनुष्टुति (सं० स्त्री०) अनु-स्तु-भावे क्तिन्। अनुक्रमका स्तव, अनुरूप प्रशंसा, सिलसिलेवार तारीफ़, जैसेकी तैसी सिफ़त।

अनुष्टुब्गर्भा (सं० स्त्री०) उष्णिह श्रेणीभुक्त वैदिक छन्दोविशेष।

अनुष्टुभ् (सं० स्त्री०) अनुपूर्वेण क्रमेण पूर्वमक्षरात्मना ततः स्वर्गादिर्व्यज्यमाना स्तोभते वर्धते, अनु-स्तुभ् हृद्यर्थे क्विप्, अथवा पूर्वं पश्चाच्छब्दाक्षरात्मना ततो गद्यपद्यादिरूपेण वर्धते, अथवा स्तोभतिरर्चति कर्मा। आनुपूर्व्येण स्तौति देवता। १ वाक्, ज़बान। २ सरस्वती, वाणी। ३ अष्टाक्षरपाद छन्दोविशेष, आठ-आठ अक्षरके चार पादका छन्द। अनुष्टुप् छन्दके पुरातन विवरणकी आलोचना निकाल देखनेसे कितना ही ऐतिहासिक रहस्य खुल जाता है। वैदिक समयके गद्यपद्यकी धारा कैसे अद्भुत प्रकारकी रही! वह सहजमें पढ़ जानेपर सुननेमें वैसी अच्छी नहीं लगती। किन्तु स्वरसे पढ़नेपर मिष्ट मालूम होती है। वैदिक समयमें अनुष्टुप् छन्दका नाम मिलता है।

"अनुष्टुभा सोम उक्थैः।" (ऋक् १०।१३०।४)

सकल भाषामें ही छन्द देख भाषाका कुछ-कुछ काल बताया जाता है। तुलसीदास और सूरदासका पयार और त्रिपदी वर्तमान है, किन्तु उसमें अच्छी शृङ्खला नहीं समझ पड़ती। उसके बाद पद्माकरके पुस्तकमें कितनी ही पद्यरचनाकी शृङ्खला आ गयी है। शेषमें, हरिश्चन्द्रने निर्दिष्ट नियमसे छन्द बनाया। किन्तु इन सकल कविके पुस्तकमें अमित्राक्षर छन्द नहीं मिलता। अतएव अमित्राक्षर छन्द पढ़नेसे मालूम पड़ता, हम तुलसीदासके समयसे अनेक दूर आ पहुंचे हैं। संस्कृत भाषाके पक्षमें अनुष्टुप् छन्द भी बिलकुल वैसा ही है। ऋषिने जब प्रथम मन्त्र बनाया, तब अनुष्टुप् छन्द न था। उसके बाद अनुष्टुप् छन्दका जितना ही अधिक चलन पाते, उतना ही समझ सकते—हम वैदिक कालसे कितनी दूर आ पहुंचे हैं। वेदके समय यह छन्द अल्प-अल्प चला था। पीछे पौराणिक समयमें सभी इसको आदर देते रहे। अब यह सर्वत्र ही विशेष प्रचलित है। अनुष्टुप् छन्द सरल और मिष्ट होता और श्लोक-रचनामें सहज पड़ता है।

पहले हिन्दुस्थानमें अमित्राक्षर छन्द न रहा। पद्यके अन्तकी तुक न मिलनेसे, हिन्दुस्थानमें कोई कविताको आदर न देता था। किन्तु अब कितने

हो आधुनिक विद्वानोंने अमित्राक्षरछन्दमें काव्यादि लिखा है। किन्तु इस अमित्राक्षरके चलनसे पाठक दो श्रेणीमें बंट गये। जो अंगरेज़ी समझते और अंगरेज़ी भाषाके मिल्टन प्रभृति महाकविका अमित्राक्षर-रचित अपूर्व काव्य पढ़ते, वह अमित्राक्षर काव्यकी विशेष प्रशंसा करते हैं। अमित्राक्षर छन्द उन्हें मिष्ट भी मालूम होने लगा है। किन्तु अंगरेज़ीसे अनभिज्ञ व्यक्तिको इसका रस नहीं मिला, वह अमित्राक्षरछन्दकी निन्दा सुनाने लगा। अनुष्टुप् छन्दके भाग्यमें भी वही पड़ा था। इसके प्रथम चलनेसे कोई-कोई पक्षपाती बने और कोई-कोई प्रकारान्तरसे इसकी निन्दा निकालने लगे।

ऐतरेय-आरण्यकमें लिखा, कि अनुष्टुप् छन्दसे स्वर्गकामना पूर्ण पड़ती है। 'अनुष्टुभो स्वर्गकामः कुर्वीत।' दो अनुष्टुप्में चौंसठ अक्षर रहते, उसके तीन अक्षरमें यह तीनो लोक बसते हैं। उससे फिर एकुश लोक निकलता है। प्रत्येक एकुश लोक द्वारा यह उन्हीं सकल लोक पर चढ़ते और चतुःषष्ठितम द्वारा स्वर्गलोकमें जा पहुंचते हैं।

"द्वयोर्वा अनुष्टुभोश्चतुःषष्टीरक्षराणि। त्रय इम ऊर्ध्वा एकविंशा लोका एकविंशत्यै कविंशत्यै वमांल्लोकान् रोहति एव ल स्वर्गेके चतुःषष्टितमेन प्रतितिष्ठति।" (ऐतरेय आरण्यक)

विष्णुपुराणमें बताते, कि एकविंशस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम नामक याग, अनुष्टुप् छन्द और वैराजसाम ब्रह्माके उत्तर मुखसे उत्पन्न पड़ा था।

"एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च।
अनुष्टुभं स वैराजम् उत्तरादसृजन् मुखात्॥" १।५।४५।

उधर भागवतपुराणके मतमें,—प्रजापतिके मांससे त्रिष्टुप्, स्नायुसे अनुष्टुप् और अस्थिसे जगती नामक छन्द निकला है।

"त्रिष्टुब्मांसात् स्न तोऽनुष्टुब् जगत्यस्थः प्रजापतेः।" (३।१२।२८)

निरुक्तमें लिखते हैं, कि शरत्, अनुष्टुप्, एकविंश-स्तोम और वैराजसाम—यह पृथिव्यात्मक होते हैं।

"शरदनुष्टुबेकविंशस्तोमो वैराजं साम इति पृथिव्यात्मनि।" (७।११)

वाल्मीकि किंवा तत्परवर्ती कविके समीप अनुष्टुप् विलक्षण आदरका छन्द बन गया था। इसीसे वाल्मीकिको इस छन्दका जन्मदाता बतानेके लिये कोई-कोई 'मा निषाद' इत्यादि कहानी सुना गये हैं। वाल्मीकि आदिकविके नामसे प्रसिद्ध हैं, अतएव अनुष्टुप् छन्दके निकालनेका यशः उन्हींको शोभा देता है। किन्तु वास्तविक वाल्मीकिसे अनेक पूर्व अनुष्टुप् छन्द चल पड़ा था। फिर भी, छन्द अच्छा होनेसे प्रत्येक कवि उसके निकालनेका यशः लेना चाहता होगा। अनुष्टुप् छन्दके मनोनीत होनेका मत तो बता चुके; किन्तु किसी-किसीने प्रकारान्तरसे इसकी निन्दा भी सुनायी है। तैत्तिरीय-संहितामें लिखा है,—प्रजापतिने अपने पैरसे एकविंश स्तोमकी सृष्टि सजायी थी। उसके बाद छन्दमें अनुष्टुप्, वैराजसाम, मनुष्यमें शूद्र और पशुमें उन्होंने घोड़ा बनाया। इसीसे घोड़ा और शूद्र अन्य जन्तुका बोझ ढोता है। शूद्र यज्ञ करने नहीं पाता; कारण, उसके बाद फिर देवता-की सृष्टि कब बनी थी! इसलिये वह पैरसे जीविका चलाता, पैरसे ही पैदा हुवा है।

"पत्त एकविंशं निमिमीत। तमनुष्टुभ्छन्दोऽन्वसृज्यन्त। वैराजं साम शूद्रो मनुष्याणामश्वः पशूनाम्। तस्मात्तौ भूतसंक्रामिणावश्वश्च शूद्रश्च। तस्मात् शूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तो न हि देवता अन्वसृज्यन्त। तस्मात् पादावुपजीवतः। पत्तो ह्यसृज्येताम्।" (७।१।१।)

अनुष्टुप् छन्द, शूद्र, घोड़ा प्रभृति प्रजापतिके पैरसे उत्पन्न हुवा था। पैर, शरीरका निकृष्ट स्थान होता; इसीसे शूद्र और अश्वकी दुर्गतिवाली बात बतायी गयी। किन्तु अनुष्टुप् छन्दका हाल न खुला। कहना पड़ेगा, कि संहिताकारने इस जगह एक प्रकार चातुरी चलायी है। निःसन्देह, नाम और साहचर्य हेतुमें एककी निन्दा उठानेसे सकलकी ही निन्दा निकलेगी।

अतएव अनुष्टुप् छन्दकी निन्दा भी होती है और प्रशंसा भी। इस प्रकार भिन्न मत पड़नेका कारण यह है,—सकल देशमें ही जो चिरकालसे चलते आती, अनेक ही उस पुरातन प्रथाके पक्षपाती बन बैठते हैं। कोई नूतन प्रथा अच्छा होते भी सब लोग उससे खुश नहीं रहते। इसीसे जो वेदकी प्रथम अवस्थाके गद्यपद्य पढ़ते, उन सब लोगोंको वही अच्छा

लगता था। अन्तका अनुष्टुप् छन्द निकलनेपर कवि जब इस नूतन छन्दमें मन्त्र लिखने लगे, तब उस समयके लोग अत्यन्त विरक्त बन गये। उसके बाद पौराणिक समयसे इसका आदर बढ़ा, उस समय कोई भी फिर अनुष्टुप् छन्दकी निन्दा न निकालते रहा।

अब अनुष्टुप् छन्दकी निन्दा नहीं सुनते, सभी इसमें कविता बनाया करते हैं। अनुष्टुप्का लक्षण यह है,—

"पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयोः।
षष्ठं गुरु विजानीयादित्यनुष्टुभ लक्षणम्॥" (श्रुतबोध)

सकल पादका ही पञ्चमवर्ण एवं द्वितीय, चतुर्थ पादका सप्तमवर्ण लघु और सकल ही पादका षष्ट अक्षर गुरु रहनेसे अनुष्टुप् छन्द कहाता है।

किन्तु किसी-किसी स्थलमें पञ्चम वर्ण भी गुरु रहता है। यथा,—"तिथ्यादितत्त्वं तत्प्रीत्यै।" (स्मार्त्त) वृत्त-रत्नाकरमें प्रथम अनुष्टुप् छन्द उठा उसके मध्य चित्र-पदा, मानवक, विद्युन्माला, समानिका, प्रमाणिका और जगती—यह छः प्रकारके छन्दका लक्षण लगा; फिर छन्दोमञ्जरीमें इसके भीतर वक्त्र और पथ्यावक्त्रका भी नाम पड़ा है। इनका लक्षण अपने-अपने शब्दमें देखो।

अनेक पण्डित, श्लोक या छन्दः—शास्त्रमें वक्त्रका लक्षण नाना प्रकार लगाया करते हैं। किन्तु साधारण लोगोंके समीप वह अनुष्टुप् नामसे ही प्रसिद्ध है। अनुष्टुप् छन्दमें आठ अक्षर आते हैं। उसमें न्यूनाधिक पड़नेसे विषमाक्षर बनता है। लोग उसे 'गाथा' कहते हैं। विषमाक्षर पाद अर्थात् गाथा यों रहती है,—'मधुकैटभौ दुरात्मनौ।' इसमें नौ अक्षर वर्तमान हैं, अर्थात् अनुष्टुप् छन्दसे एक अक्षर बढ़ गया है।

अनुष्टोभन (सं० क्लो०) अनुप्रशंसा, पीछेकी तारीफ़।

अनुष्ट्र (सं० पु०) अयोग्य उष्ट्र, खराब ऊंट।

अनुष्ठ (सं० त्रि०) यथाक्रमेण तिष्ठति, अनु-स्था-क यत्वम्। यथाक्रम स्थितिशील, क़ायदेसे खड़ा हुवा।

अनुष्ठमान (सं० त्रि०) पश्चाद्गामी, पीछे पड़ते हुवा, पूर्ण करनेवाला, जो कामको अञ्जाम दे, समीप उपस्थित, हाज़िरबाश।

अनुष्ठातव्य (सं० त्रि०) कर्तव्य, करने क़ाबिल, जो किया जानेको हो।

अनुष्ठातृ (सं० त्रि०) अनुतिष्ठति कार्यानाचरति, अनु-स्था-तृच्। कार्यका अनुष्ठान उठानेवाला, विधान-कर्ता, अनुक्रमसे कार्य-स्थिति-सम्पादक, सिलसिलेवार काम करनेवाला, जो किसी कामको अञ्जाम दे। (स्त्री०) अनुष्ठात्री।

अनुष्ठान (सं० क्लो०) अनु-स्था भावे ल्युट् यत्वम्। १ कर्मारम्भ, कामका आग़ाज़। २ विहित कर्मका आचरण, धार्मिकप्रवृत्ति, भले कामका करना, मज़-हबी कामका उठाना।

"तदनुष्ठानमात्रेण स्वर्गलोके महीयते।" (स्मृति)

अनुष्ठानक्रम (सं० पु०) धार्मिक कार्य करनेका नियम, जिस क़ायदेसे मज़हबी काम चले।

अनुष्ठानशरीर (सं० क्लो०) सांख्यमतसे—लिङ्ग अथवा सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीरके मध्यका शरीर, जो शरीर सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर दोनोंके बीच रहे।

अनुष्ठानस्मारक (सं० त्रि०) धार्मिक कार्यका स्मरण दिलाते हुवा, जिसे देख मज़हबी फ़र्ज़ याद आ जाये।

अनुष्ठापक (सं० त्रि०) अनुष्ठान करनेवाला, जो कामका अञ्जाम लगाये।

अनुष्ठापन (सं० क्लो०) कार्यको पूरा कराना, कामको अञ्जाम दिलाना।

अनुष्ठायिन् (सं० त्रि०) करते हुवा, जो कामको अञ्जाम दे रहा हो।

अनुष्ठि (वै० स्त्री०) उचित नियम, मुनासिब क़ायदा।

अनुष्ठित (सं० त्रि०) अनु-स्था-कर्मणि क्त। १ कृत, अभ्यसित, किया हुवा, जिसका महावरा पड़ गया हो। २ पूरे पहुंचाया हुवा, जो अञ्जाम दिया गया हो। ३ पश्चाद्गत, पीछा किया हुवा। ४ प्रमाणित किया जानेवाला, जिसका सुबूत देना हो। (क्लो०) भावे क्त। ५ अनुष्ठान, धर्मकार्य, मज़हबी काम।

अनुष्ठु (सं० अव्य०) अनु-स्था-बाहुलकात् कु औणादिकः। १ सम्यक्, सुन्दर, खूब, अच्छीतरह। (वै० क्लो०) २ नियमित विधान, क़ायदेको तरतीब।

अनुष्ठूत (सं० त्रि०) अनु-ष्ठिव-क्त। अविच्छिन्न, परस्पर सम्बद्ध, जो अलग न हो, साथ लगा हुवा।

अनुष्ठेय (सं० त्रि०) अनुष्ठीयते अनु-स्था-कर्मणि यत्। १ विधेय, करने काबिल। २ ध्यान दिया जानेवाला, जिसपर गौर रखते हैं। ३ प्रमाण पहुंचाने योग्य, जिसका सुबूत देना दरकार हो।

अनुष्ण (सं० त्रि०) न उष्णम्, नञ्-तत्। १ जो गर्म न रहे, ठण्डा, शीतल। २ अलस, सुस्त, काहिल। (क्ली) ३ उत्पल, नील कमल।

अनुष्णक—अनुष्ण देखो।

अनुष्णगु (सं० पु०) न उष्णाः शीतलाः गावः किरणा अस्य, नञ्-बहुव्री०। चन्द्र, चांद।

अनुष्णकिरण (सं० पु०) न उष्णाः शीतलाः किरणा रश्मयो यस्य, नञ्-बहुव्री०। चन्द्र, चांद।

अनुष्णवल्लिका (सं० स्त्री०) अनुष्णा शीतला वल्ली लतेव, इवार्थे कनि टाप्। नीलदूर्वा, काली दूब।

अनुष्णावल्ली—अनुष्णवल्लिका देखो।

अनुष्णाशीत (सं० त्रि०) गर्म न ठण्डा, जो गर्म या ठण्डा न रहे।

अनुष्पन्द (सं० पु०) पिछला पहिया, जो पहिया पीछे लगता है।

अनुष्वध (सं० त्रि०) १ जिसके साथ भोजन लगा रहे। (अव्य०) २ भोजनानुसार, भोजन द्वारा, खानेके मुवाफ़िक़, जिसमें खानेका ज़रिया रहे। ३ भोजनोपरान्त, खाने बाद। ४ प्रत्येक वलिप्रदानान्तर, हरेक वलिदानके बाद। ५ अपनी मर्जीके मुताबिक़, इच्छामत।

अनुसंरक्त (सं० त्रि०) संलग्न, संश्लिष्ट, लगा हुवा, जो किसीपर फ़िदा हो रहा हो।

अनुसंवत्सर (सं० अव्य०) विभक्त्यर्थे वीप्सायां वा अव्ययी०। वत्सरसे, प्रतिवर्ष, साल-ब-साल।

अनुसंवरण (सं० क्ली०) अनु-सं-वृ-ल्युट्। अनुक्रमसे गोपन, सिलसिलेवार पोशीदगी।

अनुसंसर्प (सं० अव्य०) उपस्थित होनेके प्रत्येक अवसरपर, पहुंचनेके हरेक मौक़ेसे।

अनुसंहित (सं० त्रि०) अनु-सम्-धा-कर्मणि क्त। अनुसन्धानकृत, खोजा हुवा, जिसकी तलाश लगी हो। (अव्य०) संहितायामिति विभक्त्यर्थे अव्ययी०। २ संहिताके अनुसार, संहितामें लिखेके मुवाफ़िक़।

अनुसञ्चारण (सं० अव्य०) आगमनके प्रत्येक अवसरपर, आमदके हरेक मौक़ेमें।

अनुसन्तति (सं० स्त्री०) अनुक्रमेण सन्ततिः। अविच्छेद धारा, न रुकनेवाली चाल।

अनुसन्धातव्य (सं० त्रि०) सन्धान साधने योग्य, तलाश क़ाबिल, जिसकी ढूंढ-खोज लगायी जाये।

अनुसन्धान (सं० क्ली०) अनु-सं-धाञ्-ल्युट्। १ अन्वेषण, तलाश, ढूंढ-खोज। २ पश्चाद्गमन, पीछे-पीछेका जाना। ३ चिन्ता, फ़िक्र। ४ वैशेषिक मतसे—तर्ककी चतुर्थ श्रेणी अर्थात् उपयोग, मन्तिक़के क़ज़ियेकी चौथी सिड्ढी यानी इस्तैमाल।

अनुसन्धानना (हिं० क्रि०) १ अनुसन्धान लगाना, तलाश करना, ढूंढना, खोजना। २ विचार बांधना, ख़याल लड़ाना, सोचना, समझना।

अनुसन्धानिन् (सं० त्रि०) अनुसन्धान लगाते हुवा, तलाश करनेवाला, जो ढूंढ-खोज निकाला करे।

अनुसन्धि (सं० स्त्री०) गुप्त मन्त्रणा, छिपी हुयी बातचीत, अप्रकट परामर्श, जो राय ज़ाहिर न हो।

अनुसन्धित्सा (सं० स्त्री०) अनु-सम्-धा-सन्-अ। अन्वेषण निकालनेकी इच्छा, खोजनेकी ख़ाहिश।

अनुसन्धेय (सं० त्रि०) अनुसन्धान लगाने योग्य, जो तलाश करने क़ाबिल हो।

अनुसन्ध्य (सं० अव्य०) सन्ध्या-सन्ध्या, शाम-ब-शाम, प्रत्येक सन्ध्या समय, हरेक शामको।

अनुसमय (सं० पु०) नियमित सम्बन्ध, क़ायदेका ताल्लुक़।

अनुसमापन (सं० क्ली०) नियमित समाप्ति, क़ायदेका ख़ातिमा।

अनुसमुद्र (सं० अव्य०) समुद्रके साथ-साथ, बहरके किनारे-किनारे।

अनुसम्प्राप्त (सं० त्रि०) आगत, पहुंचा हुवा।

अनुसम्बद्ध (सं० त्रि०) संलग्न, साथ किया गया, मिला-जुला।

अनुसर (सं० पु०) अनु-सृ-घ अधिकरणे। १ अभिसर, पश्चाद्गमन, हाज़िरबाशी, अरदली। २ सहगमनकारी, साथी। (त्रि०) ३ पश्चाद्गामी, पिछलगा।

अनुसरण (सं० क्ली०) अनु-सृ-ल्युट्। १ पश्चाद्गमन, पीछे-पीछेका जाना। २ सदृशीकरण, नक़ल। ३ फल, नतीजा। ४ रीति, रस्म, चाल, स्वभाव, आदत।

अनुसरना (हिं० क्रि०) १ पश्चाद्गमन लगाना, पीछे चलना,। २ अनुकरण निकालना, नक़ल उतारना।

अनुसवन (सं० अव्य०) सवनस्य पश्चात्, अव्ययी०। १ स्नानके पश्चात्, यज्ञके स्नान बाद, जब यज्ञस्नान हो चुका हो। २ सोमके पश्चात्।

अनुसात (सं० अव्य०) प्रसन्नतानुसार, खुशीके मुवाफ़िक़।

अनुसाम (सं० त्रि०) प्रसन्न, सन्तुष्ट, मित्र-जैसा, खुश, राज़ी, दोस्ताना।

अनुसाय (सं० अव्य०) अव्ययी०। सायाह्नमें, प्रति सन्ध्याको, शाम-ब-शाम।

अनुसार (सं० पु०) अनुस्रियते, अनु सृ गतौ-भावे घञ्। १ अनुसरण, पश्चाद्गमन, पीछेका जाना, हाज़िरबाशी। २ रीति, रस्म, चाल। ३ प्रकृति, कुदरत, किसी वस्तुकी प्रकृत अवस्था, जिस असली हालतकी कोई चीज़ हो। ४ प्रभाव, प्रचलन, रुआब, रवानगी। ५ प्रतिष्ठित अधिकार, क़ायमकी हुयी हुकूमत। ६ फल, नतीजा। (हिं० क्रि०-वि०) ७ मुवाफ़िक़।

अनुसारक (सं० त्रि०) १ पश्चाद्गामी, हाज़िरबाश, अनुगत, मिला-जुला। २ अनुसन्धानकर्ता, ढूंढनेवाला।

अनुसारणा (सं० स्त्री०) अनु-सृ-णिच्-युच्। १ अनुचालना, पश्चात् चालना, अनुधावन, पीछेकी चाल, वापसी। २ विवेचना, देखभाल। ३ अपसारण, निकास।

अनुसारतस् (सं० अव्य०) मुवाफ़िक़, मुताबिक़, बमूजिब, देखकर।

अनुसारना (हिं० क्रि०) सदृश कार्य करना, समान आचरण रखना, किसी-जैसी चाल चलना।

अनुसारिन् (सं० त्रि०) अनु पश्चात् सरति गच्छति, अनु-सृ-णिनि। अनुगन्ता, पश्चाद्गामी, पीछे चलनेवाला। "मृगानुसारिणम्।" (शकुन्तला)

अनुसारी—अनुसारिन् देखो।

अनुसार्यक (सं० क्ली०) सुगन्धद्रव्यविशेष, किसी किस्मकी खुशबूदार चीज़, छरीला।

अनुसाल (हिं० पु०) वेदना, दर्द, पीड़ा, तकलीफ़।

अनुसूया—शकुन्तलाकी किसी सहचरीका नाम, शकुन्तलाकी कोई खिदमतगारा।

अनुसृत (सं० त्रि०) अनुगत, पश्चाद्गत, पीछे पड़ा, मिला-जुला।

अनुसृति (सं० स्त्री०) अनु-सृ-भावे क्तिन्। १ अनुगमन, पीछेका चलना, मुवाफ़िक़ हरकत। २ किसी औरतका नाम।

अनुसृष्ट (सं० त्रि०) क्रमानुसार उत्पन्न, जो सिलसिलेवार पैदा किया गया हो।

अनुसेविन् (सं० त्रि०) अभ्यास रखनेवाला, जो ध्यान दे रहा हो, स्वभावसे सेवा साधते हुवा, महावरा डालनेवाला, जो ग़ौर रखे, तबीयतसे खिदमत गुज़ारनेवाला।

अनुसैन्य (सं० क्ली०) सैन्यका पश्चाद्भाग, फ़ौजकी पिछाड़ी।

अनुसोम (सं० अव्य०) सोमके समीप, सोमके पास, सोमके साथ।

अनुस्कन्द (सं० अव्य०) श्रेणीबद्ध होकर, तरतीबमें पड़के।

अनुस्तरण (सं० त्रि०) १ चारो ओर फैलाते हुवा, जो सब तर्फ़ बिखेर रहा हो। (स्त्री०) २ अन्त्येष्टिक्रियाके समय बलि चढ़ायी जानेवाली गाय।

अनुस्तोत्र (सं० क्ली०) १ पश्चात् प्रशंसा, पीछेकी तारीफ़। २ सामवेदका पुस्तक-विशेष।

अनुस्नान (सं० क्ली०) १ पश्चात् स्नान, पीछेका गुसल। २ शिवनिर्माल्यका शिरपर चढ़ाना।

अनुस्नेह (सं० अव्य०) तेलके पश्चात्, तेल मलकर।

अनुस्पष्ट (सं० त्रि०) स्पष्ट, साफ़, प्रकट, ज़ाहिर।

अनुस्फुट (सं० त्रि०) वाणकी भांति भनभनाते हुवा, जिससे ज़न्नाटेकी आवाज़ आ रही हो।

अनुस्मरण (सं० क्ली) स्मृति, पुनः पुनः स्मरण, याददाश्त, बार-बार यादका आना।

अनुस्मृत (सं० त्रि०) स्मरणविशिष्ट, जो याद रहा हो।

अनुस्मृति (सं० स्त्री०) संलग्न स्मरण, लगी हुयी याद, सबको छोड़ किसीकी यादका आना।

अनुस्यत (सं० त्रि०) क्रमानुगत स्यूत, सिलसिलेवार सिला हुवा, जो एक साथ गूंथा, पिरोया या बांधा गया हो।

अनुस्रयामन् (सं० त्रि०) बैलसे खींची जानेवाली गाड़ीपर न जाते हुवा, जो बैलगाड़ीपर न चले।

अनुस्वर,—अनुस्वार देखो।

अनुस्वान (सं० पु०) अनुगत शब्द, मुवाफ़िक़ आवाज़।

अनुस्वार (सं० पु०) अनुस्वर्यते संलीनं शब्द्यते, अनु-स्वृ कर्मणि घञ्; अथवा—स्वर्यते शब्द्यते स्वृ-अप् स्वरः शब्दः। स्वर एव स्वार्थे अण् स्वारः। अनु-सह-स्वारः शब्दः उच्चारणमिति यावत् यस्य, बहुव्री०। यद्वा स्वर्यन्ते परानपेक्ष्य स्वयं शब्द्यन्ते उच्चार्यन्ते इति यावत् स्वराः अचः, स्वर एव स्वारः अण्। अनु णत्वादि कार्ये सदृशः स्वारेण अचा, प्रादि० स०। अथवा स्वारं स्वरं अनुगतः पश्चाद्गतः, अतिक्रा०-तत्। अथवा अनुगतत्वेन सु सुष्ठु आरः प्राप्तिर्यस्य, बहुव्री०। अनु-सु-ऋ-भावे घञ्। पश्चात् शब्द, पीछेकी आवाज, सानुनासिक अक्षर, हरूफ़-गुन्ना।

अर्थात् जो वर्ण अन्यके सङ्ग मिलित हो निकलता, सिवा अन्य वर्णके आश्रय बोला नहीं जा सकता; अथवा जिस वर्णका णत्वादि कार्यमें स्वर-जैसा व्यवहार बंधता और जो शून्य या विन्दू-जैसा (ं) अनुनासिक वर्ण होता है।

"अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।" (सिद्धान्तकौमुदी)

अं अः—ऐसे ही अच्के पर विन्दुका नाम अनुस्वार है; दो विन्दुको विसर्ग कहते हैं।

"खाकाशशून्यदहना खलु साधकार्णाः।" (ऋष्यिधनिघण्ट)

ख—आकाश और शून्य यह सकल ही अनुस्वारके पर्याय हैं। 'ठकारो लिपिसाम्याद्विन्दुरुच्यते।' (राघवभट्ट) ठ वर्ण लिखनेमें विन्दु अर्थात् अनुस्वार-जैसा उठता है।

स्वरवर्णके सङ्ग अनुस्वार पढ़ा जाता है; किन्तु वस्तुतः स्वरवर्ण नहीं ठहरता। स्वरके आश्रय भिन्न केवल अनुस्वारका उच्चारण कैसे निकलेगा! अतएव हलन्त वर्णके साथ अनुस्वारका प्रयोग असम्भव है। क्+अ=क, न्+अ=न; इसीतरह अजन्त वर्णके साथ अनुस्वार लगता है। किन्तु कं नं, इसतरह हलन्तवर्णके साथ अनुस्वार नहीं आता। सुतरां अनुस्वार स्वरवर्ण कैसे होगा! सिवा अनुस्वारके कार्य-कारण-भावको देखकर भी यह व्यञ्जन वर्ण ही समझ पड़ता है। न और म—इन दो व्यञ्जन वर्णके स्थानमें अनुस्वार आये और ङ ञ ण न म य व ल यह सकल व्यञ्जन वर्ण बनेगा। यही कारण है, कि अनुस्वार, सिवा व्यञ्जनके किसीतरह स्वरवर्ण नहीं हो सकता।

अनुस्वारवत् (सं० त्रि०) अनुस्वारविशिष्ट, नून्-गुन्नेवाला, जिसमें अनुस्वार लगा हो।

अनुस्वारव्यवाय (सं० पु०) दो शब्दके बीच अनुस्वार द्वारा डाला हुवा व्यवधान, जो मुफ़ारक़त नून्-गुन्ना दो आवाज़के बीच लगाये।

अनुस्वारागम (सं० पु०) अनुस्वारके संयोगकी वृद्धि, जो मुस्तज़ादी नून्-गुन्ना मिलानेसे निकले।

अनुह—विभ्राजके पुत्र और ब्रह्मदत्तके पिताका नाम।

अनुहरण (सं० क्ली०) अनु-हृ-भावे ल्युट्। १ देश-भाषा अथवा चेष्टादि द्वारा सदृशीकरण, जो मुशाबिहत मुल्की ज़बान या इशारे वग़ैरहसे मिलायी जाये। २ सादृश्य धर्मका प्रकाश, नक़ल।

अनुहरत् (सं० त्रि०) १ सदृशीकरण निकालते हुवा, जो नक़ल उतार रहा हो। २ अनुरूप, मुशाबिह। ३ योग्य, क़ाबिल।

अनुहरना (हिं० क्रि०) अनुकरण निकालना, नक़ल उतारना, बराबरी मिलाना।

अनुहरमाण, अनुहरत् देखो।

अनुहरिया (हिं० त्रि०) सदृश, मुशाबिह, तुल्य, बराबर।

अनुह्व (वै० पु०) निमन्त्रण, उद्बोधन, न्यौता, पुकार।

अनुहार (सं० पु०) अनु-हृ-भावे घञ्। १ अनुकरण, सदृशीकरण, नकल। २ पश्चात् हरण, पीछेकी चोरी। 'अनुहारोऽनुकारः स्यात्।' (अमर) (त्रि०) ३ सदृश, मुशाबिह, तुल्य, बराबर, समान, एक-जैसा।

अनुहारक (सं० त्रि०) सदृशीकरणविधायक, नकल उतारनेवाला।

अनुहारना (हिं० क्रि०) तुल्य बनाना, बराबर रखना, सदृश सजाना, नकल निकालना, समान लगाना।

अनुहारि (हिं० वि०) १ समान, मुशाबिह, तुल्य, बराबर, सदृश, एक-जैसा। २ योग्य, लायक, उपयुक्त, काबिल। ३ अनुकूल, मिला-जुला।

अनुहारी (सं० त्रि०) अनुकरण लगानेवाला, जो नकल उतारे।

अनुहार्य (सं० त्रि०) १ अनुकरण निकालने योग्य, नकल उतारने लायक।

अनुहृत (सं० त्रि०) अनुक्रियतेस्म, अनु-हृ कर्मणि क्त। अनुकृत, सदृशीकृत, मुशाबिह बनाया गया, जिसकी नकल उतरी हो।

अनुहोड़ (सं० पु०) होड्यते गम्यते ऽनेनेति; होड़ करणे घञ्। १ होड़ नौकाविशेष, किसी किस्मकी किश्ती। (अव्ययी०) २ होड़ नामक नौकाविशेषमें।

अनुह्राद—हिरण्यकशिपुके किसी पुत्रका नाम।

अनुह्लाद—अनुह्राद देखो।

अनूक (सं० पु०) अनु-उच्-समवायि-क पृषो० कुलम्। १ गतजन्म, जो जन्म पहले बीत चुका हो। २ मेरुदण्ड, रीढ़। ३ वेदीका पश्चाद्भाग। (क्ली०) ४ शील, मुरव्वत। ५ वंश, खान्दान। ६ पुरुषका लक्षणविशेष, मर्दका खास निशान।

अनूका (सं० स्त्री०) अप्सरस्विशेष।

अनूकाश (सं० पु०) अनोः हीनस्य काशः प्रकाशः; अनु-काश-घञ्, ६-तत्। १ अधो अङ्गका प्रकाश, नीचे अङ्गोंकी चमक। २ प्रतिबिम्ब, अक्स। ३ स्वच्छता, सफाई। अनके गत जन्मादौ आशा यस्य, बहुव्री०। ४ गतजन्म आशाविशिष्ट व्यक्ति, जिस शख्सको गुज़री जिन्दगीकी उम्मेद लगी हो। ५ शीलताकाङ्क्षी व्यक्ति, मुरव्वततलब शख्स। ६ वंशप्रत्याशी, खान्दानकी बढ़ती मनानेवाला। ७ ध्यान, प्रमाण, ख़याल, हवाला।

अनूक्त (सं० त्रि०) १ पश्चात् कथित, पीछे कहा गया। २ धर्मशास्त्रके अन्तर्गत, जो धर्मशास्त्रमें पाया जाये। ३ पठित, पढ़ा हुवा। ४ अधिक समीपवाला, जो निहायत नज़दीक हो।

अनूक्ति (सं० स्त्री०) १ पश्चाद्वार्ता, पीछेकी बात, पुनः पुनः कथन, बार-बारका बोलना। २ वेदाध्ययन, वेदकी पढ़ाई।

अनूक्तित्व (सं० क्ली०) वर्णनके पुनः पुनः कथनकी आवश्यकता, बार-बार बयान दिये जानेकी ज़रूरत।

अनूक्य (सं० क्ली०) १ मेरुदण्ड, रीढ़। २ शिरका मांस, खोपड़ेवाला गोश्त।

अनूचान (सं० पु०) अनु-वच्-कानच् निपातनात्। १ अध्ययनशील, पढ़नेवाला। २ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः, ज्योतिष—इन छः अङ्गके साथ वेदका अध्ययनकर्ता, जो वेदको ऐसी विधिसे पढ़े, कि उद्धरणी करनेके योग्य बन जाये। ३ अपने गुरुके पीछे पाठकी उद्धरणी करनेवाला, जो अपने उस्तादके बाद अपने सबका मुतालह लगाये। ४ विनयान्वित, शायस्ता। 'अनूचानः साङ्गवेदकोविदे विनयान्विते।' (हेम) ५ उत्तम वैद्य।

अनूचीन (सं० त्रि०) १ पश्चाद्गामी, क्रमविशिष्ट, पीछे पड़नेवाला, सिलसिलेवार।

अनूचीनगर्भ (सं० त्रि०) क्रमविशिष्ट नियमसे उत्पन्न, जो सिलसिलेवार कायदेसे पैदा हुवा हो।

अनूच्य (सं० त्रि०) अनु पश्चाद् उच्यते कथ्यते, अनु-वच् कर्मणि क्यप्। १ अनुवाच्य, पश्चाद् कथनीय, पाठ्य, पीछे बोलने काबिल, जो सीखा जाये। (अव्य०) अनु पश्चादुक्त्वा अनु-ब्रू वा वच्-ल्यप्। २ पश्चात् बताकर, पीछे कहके। (क्ली०) ३ पर्यङ्कके पार्श्वका काष्ठखण्ड, पलंगकी बगलका तख़ता।

अनूजरा (हिं० वि०) असित, सफ़ेद नहीं, जो साफ़-सुथरा न हो।

अनूठा (हिं॰ वि॰) १ अभूतपूर्व, निराला, नादिर। २ अच्छा, उमदा। (स्त्री॰) अनूठी।

अनूठापन (हिं॰ पु॰) १ अपूर्वता, निरालापन। २ अच्छाई, उमदगी।

अनठी—अनूठा देखो।

अनूढ़ (सं॰ त्रि॰) न उह्यतेस्म, अनु-वह कर्मणि क्त। अविवाहित, क्वारा, जिसकी शादी न हुयी हो। २ अनुत्पन्न, पैदा न होनेवाला।

अनूढ़मान (सं॰ त्रि॰) लज्जाविशिष्ट, शर्मसार, जिसे शर्म लगे।

अनूढ़ा (सं॰ स्त्री॰) अविवाहिता स्त्री, जिस औरत-की शादी न हुयी हो।

अनूढ़ागमन (सं॰ क्ली॰) व्यभिचार, छिनाला, अनव्याही स्त्रीके साथ सहवास, शादी न हुयी औरतसे ज़िनाकारी।

अनूढ़ाभ्राता (सं॰ पु॰) १ अविवाहिता स्त्रीका भ्राता, शादी न हुयी औरतका भाई। २ राजाकी वेश्याका भ्राता, बादशाहकी रण्डीका भाई।

अनूतर (हिं॰ वि॰) अनुत्तर, लाजवाब।

अनूति (सं॰ स्त्री॰) अनु-वे-क्तिन्, अभावे नञ्-तत्। १ गमनका अभाव, चालका न पड़ना। २ साहाय्य-राहित्य, मददका न मिलना।

अनूत्त (सं॰ त्रि॰) पश्चात् प्रदत्त, वापस दिया गया।

अनूदक (सं॰ क्ली॰) जलका अभाव, पानीका न पाया जाना।

अनूदित (सं॰ त्रि॰) अनु पश्चात् उदितम् उक्तम्, अनु-वद कर्मणि क्त। १ अन्य भाषामें अनुवादित, जिसका तरजुमा दूसरी ज़बानमें हो चुका हो। (क्ली॰) भावे क्त। २ पश्चात् कथन, बातचीत।

अनूद्य (सं॰ त्रि॰) अनु पश्चात् उद्यते कथ्यते क्यप्। १ अनुवादसम्बन्धीय, तरजुमेके मुताल्लिक, पीछे या किसीके जवाबमें कहा जानेवाला। (अव्य॰) अनु-वद-ल्यप्। २ अनुवाद उतारकर, तरजुमा देखाके। अनुवाद देखो।

अनूद्यमान (सं॰ त्रि॰) उत्तरमें उच्चारित, जवाबमें कहा हुवा, मुवाफ़िक़, अनुकूल।

अनूद्देश (सं॰ पु॰) वर्णन, बयान, जो बात खोल-कर बतायी जाये।

अनूधस् (वै॰ स्त्री॰) पेंदेसे खाली, जिसमें पेंदा न चढ़ा हो।

अनून (सं॰ त्रि॰) न ऊनं हीनम्, नञ्-तत्। १ परिपूर्ण, समग्र, अहीन, भरापूरा, समूचा, जो हलका न हो। न नूनं निश्चितम्, नञ्-तत्। २ अनिश्चित, जिसका कोई ठौर-ठीक न ठहरे।

अनूनक (सं॰ त्रि॰) न ऊनं हीनम्, नञ्-तत्। ततोऽनूनमनेन स्वार्थे कन्। १ सकल, सब। २ अशेष, लाइन्तिहा, जिसका पार न परे। ३ कृत्स्न, निखिल, अखिल, निःशेष, पूरा, समूचा, सारा।

अनूनगुरु (सं॰ त्रि॰) अन्यून भार सम्बन्धीय, ज्यादा वज़नवाला, जो तौलमें बहुत वज़नी निकले।

अनूनवर्चस् (सं॰ त्रि॰) पूर्णप्रभान्वित, पूरी चमक-दमकवाला, जो खूब चमके।

अनूप (सं॰ त्रि॰) अनुगताः प्राप्ता आपो जलानि यत्र, ७-बहुव्री॰। जलप्राय, पानीसे भरा हुवा, जहां पानी मिले। 'जलप्रायमनूपं स्यात्।' (अमर)

(पु॰) २ जलप्राय स्थानमें सर्वदा वासकारी महिष, जो भैंस हमेशा पानीदार जगह रहे। ३ देश-विशेष, कोई मुल्क। "अनूपराजस्य गुणैरनूनाम्।" (रघु ६।३७) ४ नदी, दरया। ५ समुद्र, बहर। ६ पुष्करिणी, तालाब। ७ नदीतट, दरयाका किनारा। ८ नृपति-विशेष, किसी राजाका नाम। (हिं॰ वि॰) ९ अनुपम, लासानी, जिसका जोड़ न जमे। १० सुन्दर, खूबसूरत। ११ उत्तम, अच्छा।

अनूप देशका लक्षण यह है,—

"बह्वम्बुर्व हुवृक्षश्च वातश्लेष्मामयान्वितः।
देशोऽनूप इति ख्यातः॥ तथा ······
नदीपल्वलशैलाढ्यफुल्लोत्पलकुलैर्युतः।
हंससारसकारण्डचक्रवाकादिसेवितः॥
शशवराहमहिषरुरुरोहिकुलाकुलः।
प्रभूतद्रुमसुख्याढ्यो नानाशस्यफलान्वितः।
अनेकशालिकेदारकदलीक्षुविभूषितः।
अनूपदेशो ज्ञातव्यो वातश्लेष्मामयार्तिमान्॥" (भावप्रकाश)

अनूप—गुजरातका स्थानविशेष, काठियावाड़। गिर्णारमें जो ताम्रफलक मिला उसपर लिखा है, कि किसी समय चत्रप-वंशके रुद्रदामन् नामक नृपति अनूप अञ्चलके राजा रहे थे।

अनूपगढ़—राजपूतानाके बीकानेर राज्यकी सूरतगढ़ निज़ामतका एक नगर। यह अपने नामकी तहसीलका शासनकेन्द्र है, बीकानेर शहरसे घाघरा नदीके सूखे रेतसे कुछ दक्षिण बसा है। अपने क़िलेके कारण इसकी प्रसिद्धि पाते हैं, जिसे कोई सन् १६७८ ई०के समय बीकानेरके स्वर्गीय अनूपसिंह महाराजने बनवाया था। इस तहसीलमें खेती कम देख पड़ती, पानीका पता नहीं लगता; लेकिन चराई अच्छी है, सज्जी और लानाका पौधा खूब उपजता, जिससे सोडा बनकर बाहर जाता है।

अनूपगिरि—बुंदेलखण्डके एक राजा। सन् ई०वाले १७वें शताब्दके अन्त समय वाजस कविने इनकी महिमाका वर्णन छन्दोबद्ध बनाया था।

अनूपज (सं० क्ली०) अनूपे जलबहुले देशे जायते; जन-ड, ७-तत्। १ आर्द्रक, अदरक। (पु०) २ वृक्ष-विशेष, अनानाशका पेड़। (त्रि०) ३ जला भूमिमें उत्पन्न, जो पानीदार मुल्कमें पैदा हुवा हो।

अनूपदास—युक्तप्रदेशके एक कवि। इनका जन्म सन् १७४४ ई०में हुवा था। इनके बनाये कितने ही कबित्त, दोहे और शान्तिरसके गीत प्रसिद्ध हैं।

अनूपदेश (सं० पु०) अनूपलक्षणयुक्तप्रदेश, जिस मुल्कमें अनूपके आसार नमूदार हों।

अनूपनारायण तर्कशिरोमणि—इन्होंने 'भागवत-पुराणसूचिका' और ब्रह्मसूत्रपर 'सामञ्जसा-वृत्ति' बनायी थी।

अनूपबाई—दिल्लीके बादशाह जहांदार शाहकी पत्नी और बादशाह दूसरे-आलमगीरकी माता।

अनूपमांस (सं० क्ली०) अनूपदेशस्थ जन्तुमांस, अनूप मुल्कमें रहनेवाले जानवरका गोश्त।

अनूपशहर—१ युक्तप्रदेशके बुलन्दशहर ज़िलेकी मझरकी तहसील। यह गङ्गा किनारे दो सौ बाईस वर्ग कोसमें फैली है। चोयिया नदी इसे उत्तर-दक्षिण दो भागमें बांटती है। नदीके पूर्व किनारेकी भूमि पश्चिम किनारेसे प्राकृतिक रीतिमें अच्छी है, लेकिन नहरकी सींचसे अब उसकी भी दशा सुधर गई; कुयेंसे सींची जाती है।

२ इसी नाम, इसी तहसीलका प्रधान शहर और शासनकेन्द्र। जहांगीरके राजत्वकालमें बड़गूजर राजा अनूपरायने यह शहर बसाया था, उन्होंके नामपर इसका नाम पड़ा। सन् ई०के १८वें शताब्दमें अनूप-शहर बड़े महत्त्वका स्थान रहा, क्योंकि दिल्लीसे रोहेलखण्ड आने-जानेकी गङ्गाका पुल यहीं बना था। सन् १७५७ ई०में अहमदशाह दुरानीने यहां छावनी डाली, जिसे सन् १७५७ ई०में वापस आकर देखा-भाला। सन् १७६१ ई०में यही वह सङ्गठन लगा था, जिससे पानीपतमें महाराष्ट्रोंके पैर उखर पड़े। सन् १७७२ ई०में अवधके नवाब और अंगरेज बहादुरकी मिली हुयी फ़ौजने रोहेलखण्डपर महाराष्ट्रोंका आक्रमण रोकनेको इसे अपना अड्डा बनाया, जहां उस समयसे सन् १८०६ ई० तक अंगरेज़ी फ़ौज क़िलेमें रही थी; पीछे मेरठ भेजी गयी। बलवेके समय जाटोंने पुलकी खासी रक्षा रखी, जिसे रोहेल-खण्डकी ओरसे बलवायी पार करना चाहते थे। यहां लकड़ी और बांसका बहुत बड़ा कारखाना खड़ा है।

अनूपसदम् (सं० अव्य०) प्रत्येक उपसदपर, हरेक उपसदके बाद।

अनूपसिंहदेव—कर्णसिंह राठोरके पुत्र। इन्होंने पण्डित अनन्त भट्टसे 'तीर्थरत्नाकर,' भद्ररायसे 'अयुत-लक्षकोटिहोमप्रयोग,' भवभट्टरायसे 'अनूपसंगीत-विलास', मतिरामसे 'अनूपविलास' और वैद्यनाथसे 'ज्योत्पत्तिसार' नामक ग्रन्थ लिखाया था। सिवा इसके 'अनूपविवेक', 'कामप्रबोध' और 'श्राद्धप्रयोग-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ इनके बनाये बताये जाते हैं।

अनूप्य (सं० त्रि०) अनूपे जलबहुलदेशे भवः। जलाभूमिमें जात, जलप्रायदेशसे उद्भूत, पानीदार ज़मीनमें पैदा होनेवाला, जो दल-दलकी जगहसे निकले।

अनूबन्ध्य (सं० त्रि०) अनुयागं लक्षीकृत्य बध्यते यत्, उपसर्गस्य दीर्घत्वम्। बांधने योग्य, जो बांधा जाने क़ाबिल रहे। यह शब्द बहुधा यज्ञीय पशुका विशेषण बनता है।

अनूमाकोण्ड—दाक्षिणात्यके वरङ्गल राज्यकी प्राचीन राजधानी। हस्तिनापुरवाले क्षत्रियवंशके सन्तान होनेका दावा दिखानेवाले काकतीयों या गणपतियोंने इसे गोदावरी नदीके दक्षिण हैदराबादसे उत्तर-पूर्व चवालीस कोस दूर बसाया था। पहले यहां किसी चरवाहे सरदारने लट-मार आधिपत्य जमाया और धीरे-धीरे अपना प्रभाव बढ़ाया। उनसे सचहवीं पुश्तमें काकतीय प्रलय राजा बने, जिनसे वरङ्गल वंश चल पड़ा। सन् १३१३ ई०में कई शताब्द राज्य रखने बाद गणपतिवंशको मुसलमान आक्रमणकारियोंने मार भगाया। यहां प्रतापरुद्र नामक दो बड़े राजा हो गये, जिन्होंने कितनी ही लड़ाइयां जीतीं। द्वितीय प्रतापरुद्रकी माता महाराणी सद्रम्मा भी बहुत प्रसिद्ध थीं।

अनूयाज (सं० पु०) अनु पश्चादिज्यते असौ; अनु-यज-घञ्, उपसर्गस्य वा दीर्घत्वम्। अनुयाज देखो।

अनूराध (सं० त्रि०) अनुराध्यते; अनु-राध-कर्मणि घञ्, उपसर्गस्य दीर्घत्वम्। १ अनुराधनीय, आराधनीय, आराधनाके योग्य, उपास्य, तसव्वरमें लाने क़ाबिल, जो परस्तिशके लायक़ रहे। २ शुभकारक खुशी खिलानेवाला। (क्ली०) भावे घञ्। ३ आराधना, उपासना, परस्तिश।

अनूरु (सं० त्रि०) नास्ति ऊरू यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ ऊरुशून्य, बेरान, जिसके रान न रहे। (पु०) २ सूर्यका सारथि, अरुण। ३ विनताका ज्येष्ठ पुत्र। ४ गरुड़का ज्येष्ठभ्राता। ५ कश्यपका पुत्र।

'सूरसूतोऽरुणोऽनूरुकाश्यपिर्गरुड़ायजः।' (अमर)

इनके ऊरु न रहनेका कारण अनूरुसारथि शब्दमें देखो।

अनूरुसारथि (सं० पु०) अनूरुः अरुणः सारथिः रथचालको यस्य, बहुव्री०। सूर्य जिनके अनूरु अर्थात् अरुण सारथि हैं। महाभारतमें यह वृत्तान्त बताया है, अरुण किस कारणसे सूर्यके सारथि बने थे। कश्यपको कद्रु और विनता नामवाली दो पत्नी रहीं। पतिभक्ति और पतिसेवामें वह कोई त्रुटि न डालती थीं, उसीसे कश्यपने दोनोको दो वर देना चाहा। कद्रुने स्वामीसे यह वर मांग लिया,—'हमारे गर्भसे सहस्र तेजस्वी सर्प उत्पन्न हों।' विनता बोलीं,—'मुझे दो पुत्र चाहिये; किन्तु वह कद्रुकी सन्तानसे अधिक बलवान् रहें।' महर्षिका वाक्य निष्फल जा नहीं सकता, कद्रु और विनता दोनो ही गर्भवती बनीं। कुछ काल पीछे कद्रुने पांच सहस्र अण्डे दिये, दूसरे विनताके गर्भसे दो अण्डे ज़मीनपर गिरे। दास-दासीने उन अण्डोंको बरतनके भीतर रख छोड़ा। पांच सौ दिन, पांच सौ मास, गिनते-गिनते पांच सौ वत्सर बीत गये; उसके बाद कद्रुके अण्डे फूटे, उनसे एक सहस्र तेजस्वी सर्प निकल पड़े। विनताके दोनो अण्डे न चटके थे। सरला रमणी-जातिका प्राण सब सहता, किन्तु सपत्नीका सम्पद् नहीं सहा जाता,—हृदयपर कठिन वज्रकी तरह जा धमकता है। विनताने मनके क्षोभसे अपना एक अण्डा तोड़ डाला। सन्तान तो निकला, किन्तु उसका शरीर उस समयतक परिपक्व न पड़ा; केवल मस्तक, हस्त, वक्षःस्थल रहा,—पैर न आया था। इसीसे अरुणको लोग अनूरु कहते हैं। वह जड़ीभूत हो सूर्यके सारथि बन गये। गरुड़ देखो।

अनूर्जित (सं० त्रि०) १ निर्बल, कमज़ोर। २ गर्वशून्य, बेफ़ख़्र, जिसे घमण्ड न रहे।

अनूर्ध्व (सं० त्रि०) अनुच्च, नीचा, जो ऊंचा न हो।

अनूर्ध्वभास् (वै० त्रि०) जिसकी दीप्ति ऊपर न उठे, चमक न निकालनेवाला, जो पवित्र अग्नि न जलाये।

अनूर्मि (सं० त्रि०) न ऊर्मिः, ऊर्मि हिंसाकर्मा। १ अहिंस्य, शत्रुके अगन्तव्य, मारा न जानेवाला, जिसपर दुश्मन पहुंच न सके। २ न टकरानेवाला, जिसमें लहर न उठती हो। "संहीन्द्र व्यश्नवदनूर्मि।" (ऋक् ८।१४।२२।)

अनूला (सं० स्त्री०) काश्मीरकी नदीविशेष।

अनूव्रज् (वै० पु०) पसलीके पासका भाग जिस्मका जो हिस्सा पसलीके पास रहता है।

अनूषर (सं० त्रि०) १ लवणविशिष्ट, नमकीन। २ लवणरहित, जो नमकीन न हो।

अनूषित (सं० त्रि०) अन्यके निकट वर्तमान, दूसरेके पास रहनेवाला।

अनूष्ण (सं० क्ली०) उत्पल, ओला, पत्थर।

अनूष्मपर (सं० त्रि०) सिसकारीवालेसे पश्चादागत, जो सिसकारी भरनेवालेसे पीछे लगा हो।

अनूह (सं० त्रि०) विचारविहीन, चिन्तारहित, बेख़याल, बेफ़िक्र।

अनृक्क (वै० त्रि०) ऋक्‌रहित, जिसमें ऋक् न रहे।

अनृच्क, अनृक्क देखो।

अनृक्षर (वै० त्रि०) न सन्ति ऋक्षराः कण्टका यत्र, बहुव्री०। कण्टकशून्य, जो कांटेदार न हो।

"अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थाः।" (ऋक् १०।८५।२३।)

अनृच (सं० पु०) नास्ति ऋक् यस्य, नञ्-बहुव्री०। अनभ्यस्त ऋक्‌मन्त्र अथवा अनुपनीत बालक, जिस लड़केका जनेऊ न हुवा हो। त्रि०) २ स्तुतिरहित।

"अव नो वृजिना शिशीह्यृचा वनेमानृचः।" (ऋक् १०।१०५।८।)

अनृजु (सं० त्रि०) नञ्-तत्। १ शठ, वक्र, कुटिल, टेढ़ा, जो सीधा न हो, बदमिज़ाज, बदजात। (पु०) २ तगरपुष्पवृक्ष।

अनृण (सं० त्रि०) नास्ति ऋणं उद्धारो यस्य, नञ्-बहुव्री०। ऋणशून्य, बेक़र्ज़, जिसे कुछ देना न रहे। ऋण न चुकनेसे पाप पड़ता है। जैसे उत्तमर्णके निकट धनादि उधार लेनेसे ऋण होता, वैसे ही दूसरा भी मनुष्यका तीन प्रकार ऋण रहता है। यथा,—

"यजमानो वै पुरुषस्त्रिभि ऋणै ऋणी भवति।
स्वाध्यायेन ऋषिभ्यः यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः॥"

यजमान—ऋषि, देवता और पितृलोकके निकट स्वाध्याय, यज्ञ और पुत्रोत्पादन—इन तीन ऋणसे बंधा पड़ा है। स्वाध्याय अर्थात् वेदाध्ययन द्वारा ऋषि-ऋण, यज्ञ द्वारा देवऋण और पुत्रोत्पादन द्वारा पितृऋण चुकाते हैं।

अनृणता (सं० स्त्री०) ऋणविहीनता, नाक़र्ज़दारी, क़र्ज़का न होना।

अनृणिन् (सं० त्रि०) न ऋणी, नञ्-तत्। ऋण-शून्य, बेक़र्ज़, जिसे देना न रहे।

"पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते॥"

(महाभारत ३।३१२।११०)

अर्थात् हे वारिचर हंस! दिनके पांचवें या छठें भागमें जो अपने घर शाकपत्र उबाल कर खाता और अऋणी, अप्रवासी रहता, वही सुखी कहलाता है।

अनृत (सं० क्ली०) न ऋतं सत्यम्, नञ्-तत्। १ असत्य, मिथ्या, नारास्ती झूठापन। २ मिथ्यावाक्य, झूठा कलाम, जो बात सच न हो। ३ कृषि, ज़रायत, खेतीबारी। 'वितथस्त्वनृतं वचः।' (अमर) (त्रि०) ४ असत्य, मिथ्या, झूठ।

अनृतक (सं० त्रि०) अनृते मिथ्यावाक्ये प्रवृत्तम्, कन्। मिथ्यावाक्य बोलनेमें रत, जिसे झूठ कहना अच्छा लगे।

अनृतदेव (सं० त्रि०) अनृता असत्यभूता देवा यस्य। जिसका देवता मिथ्या ठहरे, झूठे देवतावाला। 'यदि वाहमनृतदेव।' (ऋक् ७।१०४।१४।)

अनृतद्विष् (सं० त्रि०) अनृतसे द्वेष रखनेवाला, जो झूठसे बिगड़ा रहे।

अनृतभाषण (सं० क्ली०) असत्य कथन, झूठका बोलना।

अनृतवदन, अनृतभाषण देखो।

अनृतवाक्, अनृतवादिन् देखो।

अनृतवादिन् (सं० त्रि०) अनृतं मिथ्यावाक्यं वदति, वद-णिनि। मिथ्यावादी, जो मिथ्या कथा कहे, नारास्तगो, झूठ बोलनेवाला।

अनृतव्रत (सं० त्रि०) व्रतको न पालनेवाला, जो कामको निभा न सके।

अनृताख्यान, अनृतभाषण देखो।

अनृतिन् (सं० त्रि०) असत्यभाषी, झूठ बोलनेवाला, झूठा, जो सच न बोले।

अनृतु (सं० पु०) न ऋतुर्वर्षादिकालः, नञ्-तत्। १ वर्षादि-भिन्न काल, बरसात वगैरहसे अलग वक़्त,

अयोग्य ऋतु, नाकाबिल मौसम। नास्ति ऋतुः स्त्रीपुष्पविकाशो यस्मिन् काले। २ स्त्रीपुष्प विकाशसे भिन्न काल, जिस वक्त औरत महीनेसे न रहे, नग्निकावस्था, जिस हालतमें स्त्रीको ऋतु न लगे।

अनृतुकन्या (सं० स्त्री०) ऋतुधर्म होनेसे प्रथमावस्थाको बालिका, जिस लड़कीको हैज़ न होता हो।

अनृशंस (सं० त्रि०) न नृशंसम्, विरोधे नञ्-तत्। अहिंस्र, रहीम, जो ज़ालिम न हो।

अनृशंसता (सं० स्त्री०) कोमलता, नर्मी, कृपालुता, रहमत।

अनेक (सं० त्रि०) न एकम्, नञ्-तत्। १ जो एक न हो, दो, तीन इत्यादि एकसे अधिक, बहुसंख्यक बेशुमार। किन्तु अनेक शब्द एकवचनमें भी आता है। यथा—'अविरहितमनेकेनाङ्कभाजा फलेन।' (भारवि ५।५२) २ पृथक्कृत, अलग किया हुवा।

अनेककाल (सं० अव्य०) सुदीर्घ समयके निमित्त, लम्बे वक्तके लिये।

अनेककालावधि (सं० अव्य०) सुदीर्घ समयसे, लम्बे वक्त तक।

अनेककृत (सं० पु०) १ अधिककर्म, ज्यादा काम। २ शिवका नाम।

अनेकगोत्र (सं० पु०) एकसे अधिक वंशविशिष्ट, जिस शख्सके कई खान्दान रहें।

अनेकचार (सं० त्रि०) अनेकमें वर्तमान, जो गोलमें रहे, झुण्डके साथ चरनेवाला।

अनेकचित्तमन्त्र (सं० पु०) विभिन्न प्रकारके विचार रखनेवाला, जिसकी मसलहत कई तरहकी रहे।

अनेकज (सं० त्रि०) अनेकवारं अनेकेभ्यो वा जायते; जन-ड उपस० ५-तत् वा। १ बहुजात, जो कई मरतबा पैदा हुवा हो। (पु०) २ पक्षी, चिड़िया।

अनेकता (सं० स्त्री०) अधिकता, ज्यादती, बहुतायत।

अनेकत्र (सं० अव्य०) बहुसंख्यक स्थानमें, कई जगहपर।

अनेकत्व (सं० क्ली०) अनेकता देखो।

अनेकदिग्वायु (सं० पु०) बहुसंख्यक ओरको बहनेवाला वायु, जो हवा कई तर्फ झुके।

अनेकधर्मकथा (सं० स्त्री०) विभिन्न धर्मकी व्याख्या, मुख्तलिफ़ मज़हबका शरह, जो बात कई धर्मपर कही जाये।

अनेकधा (सं० अव्य०) न एकधा, नञ्-तत्। संख्यायां विधार्थे धा। पा ३।५।४२। विभिन्न मार्गसे, मुख्तलिफ़ चालमें, प्रायः, अकसर।

अनेकधाप्रयोग (सं० पु०) बहुसंख्यक बारका व्यवहार, कई मरतबेका इस्तैमाल।

अनेकप (सं० पु०) अनेकाभ्यां हाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिवति, पा-क। हस्ती, हाथी जो सूंड और मुंह दोनोंसे पीता है। (त्रि०) २ एकसे अधिक बार पीनेवाला, जो कई मरतबा पीये।

अनेकपा (सं० स्त्री०) हस्तिनी, हथनी।

अनेकभार्य (सं० त्रि०) एकसे अधिक पत्नी रखनेवाला, जिसके एकसे ज्यादा बीबी रहें।

अनेकमुख (सं० त्रि०) विभिन्न रूपविशिष्ट, भिन्न-भिन्न मार्गवाला, जिसके मुख्तलिफ चेहरे रहें, जो अलग-अलग राह रखे।

अनेकमूर्ति (सं० पु०) न एका अवतारभेदेषु बहुः मूर्तयो यस्य। परमेश्वर, जिसकी अवतार भेदके कारण एक मूर्ति नहीं रहती।

अनेकयुद्धविजयिन् (सं० पु०) बहुसंख्यक संग्राममें विजय पानेवाला वीर, जो सिपाही कई जङ्गमें जीता हो।

अनेकरन्ध्र (सं० त्रि०) बहुसंख्यक छिद्र, निर्बलता अथवा दुःखविशिष्ट, जिसमें कितने ही छेद हों या जिसे कितनी ही कमज़ोरी या तकलीफ़ आ घेरे।

अनेकरूप (सं० पु०) अनेकानि रूपाणि यस्य। १ बहुरूप परमेश्वर। (त्रि०) २ अनेकरूपयुक्त, मुख्तलिफ किस्मका। ३ एकरूप भिन्न, परिवर्तनशील चित्तविशिष्ट, एकतरहसे अलग, बदलते दमाग़वाला।

अनेकलोचन (सं० पु०) अनेकानि लोचनानि यस्य, बहुव्री०। १ सहस्रलोचन इन्द्र। २ परमेश्वर। ३ शिव।

अनेकवचन (सं० क्ली०) बहुवचन, जमा।

अनेकवर्णसमीकरण—जिस समीकरणमें एकसे अधिक

अज्ञात राशि रहता, वह 'अनेकवर्णसमीकरण' (Simultaneous Equation) कहाता है।

क+२=७; यहां क कोई अज्ञातराशि है; दूसरे, ४क+३ख=३१।

३क+२ख=२२; यहां क और ख यह दोनो अज्ञात-राशि हैं। यह निकालनेको, कि दोनो राशि कितनी संख्यामें समान रहते, प्रथम समीकरणको तीन और द्वितीय समीकरणको चारसे गुण लगायिये, वैसा होनेपर—

१२क+९ख=९३,

१२क+८ख=८८ हो जायेगा।

घटाकर देखिये, ख=५; इस बार प्रथम समीकरणमें 'ख'के स्थानमें ५ रखिये, उससे—

४क+१५=३१, ४क+३१—१५,

४क=१६, क=४।

मोटी बात यह है, कि एकसे अधिक अज्ञात-राशि रहनेपर समीकरणके राशिको इसतरह अन्य राशिसे गुण या भाग लगायि, जिसमें योग अथवा वियोग द्वारा कोई अज्ञात-राशि देख न पड़े।

शक+सख=न

जक—टख=म; क एवं ख राशि कहीं निकाल रखिये और प्रथम राशिको ज, द्वितीय राशिको शसे गुण लगायिये—ज श क+ज स ख=जन

ज श क—ट श ख=मट; वियोग दीजिये, ज स ख+ट श ख=जन—मट; अर्थात्,

(ज स+ट श) ख=ज न—मट, इसलिये,

$ख=\frac{जन—मट}{जस+टश}$;

पुनर्वार प्रथम राशिको ट एवं द्वितीयराशिको ससे गुण दीजिये;

ट श क+ट स ख=टन,

ज स क—ट स ख=सम; योग लागायिये,

ट श क+ज स क=टन+सम; अर्थात्,

(ट श+ज स) क=ट न+स म,

इसलिये $क=\frac{ट न+स म}{टश+ज स}$

किसी राशिमें दो अङ्क हैं। उन दोनो अङ्कको जोड़नेसे पांच होता, फिर समस्त राशिमें ९ मिलानेसे राशिका अङ्क उलट पड़ता है। उसी राशिको किसीतरह स्थिर कीजिये।

मान लो, कि क वामभाग और ख दक्षिण दिक्का अङ्क है। इसीसे प्रस्तावानुसार,

क+ख=५,

एवं, १० क+ख+९=१० ख+क, अङ्क उलट पड़ा; अतएव ९क—९ख=—९, अथवा क—ख=—१ ऊपरके समीकरणमें मिलायिये,

२ क=४, क=२; ख=३;

इसीसे अज्ञातराशि २३ है।

अनेकवार (सं० अव्य०) बहु समय, कई मरतबा, पुनःपुनः, दुहरा-दुहराकर।

अनेकविध (सं० त्रि०) अनेका विधा प्रकारो यस्य यत्र वा, बहुव्री०। बहुप्रकार, कई किस्मका, बहुत तरहवाला, विभिन्न, मुख्तलिफ्।

अनेकशफ (सं० त्रि०) फटे हुये खुरवाला, जिसके सुम चिरे रहें।

अनेकशब्द (सं० त्रि०) बहुसंख्यक शब्दसे प्रकाशित, जो कई तरह की आवाज़से ज़ाहिर हो, पर्यायवाचक, हममानी।

अनेकशस् (सं० अव्य०) अनेकान् ददाति, अनेकवीप्सार्थे कारके शस्। अनेकवार, कई मरतबा, बहुत दफ़ा।

अनेकाकार (सं० त्रि०) चित्र-विचित्र, रङ्ग-ब-रङ्ग, नानावर्ण, गूंनगूं, विभिन्न, मुख्तलिफ़, भांति-भांतिका, कई तरहवाला।

अनेकाक्षर (सं० त्रि०) बहुसंख्यक वर्णविशिष्ट, जिसमें कितने ही हर्फ़ मिले हों।

अनेकाग्र (सं० त्रि०) न एकाग्रं एक निरतं अनाकुलं वा, नञ्-तत्। अनासक्त, जो आशक न हो, अनेकचित्त, जिसका दिल कई बातमें फंसा हो।

अनेकाच् (सं० त्रि०) बहुसंख्यक स्वरसंयुक्त, जिसमें कई स्वर लगे हों।

अनेकान्त (सं० त्रि०) न एके मुख्येऽन्तो निश्चयो येन यत्र वा, नञ्-बहुव्री०। १ असङ्गत, अन्यथायुक्त,

व्यभिचारविशिष्ट, दुष्टहेतु, नामाकूल, झूठा, बदचलन, बदमाश। न एकान्तं नितान्तं अतिमात्रमिति यावत्, नञ्-तत्। २ अतिशयशून्य, जो नितान्त न हो, खफ़ीफ़, थोड़ा, कम।

अनेकान्तवादिन् (सं० पु०) एकान्तं एकनिश्चयं ईश्वरास्तित्वं न वदति, अनेकान्त-वद-णिनि। बौद्ध विशेष। यह ईश्वरका अस्तित्व अथवा अनस्तित्व कुछ भी निश्चय न बताते, इसीलिये लोग इन्हें उक्त नामसे पुकारते रहे।

अनेकार्थ (सं० त्रि०) अनेके बहवोऽर्थो अभिधेया यस्य, बहुव्री०। नानार्थबोधक, ज़ूमानी, जिसके कई माने लग सकें। जैसे, हरि होता है। हरि शब्दसे—विष्णु, सिंह, भेक, सर्प प्रभृति अनेक अर्थ निकलते हैं।

नानार्थबोधक धातुको भी अनेकार्थ कहते हैं। एक-एक धातुका अनेक अर्थ आता, किन्तु जो अर्थ अधिक प्रसिद्ध होता, वही सचराचर लिखा जाता है। अन्य अर्थको प्रयोग देखकर समझते हैं। सिवा इसके, उपसर्ग द्वारा भी धातुका अनेक प्रकार अर्थ झुका करता है। 'उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।' जैसे; प्र-हृ प्रकार, आ-हृ आकार, उप-हृ उपहार और सं-हृ संहार बनाते हैं। यहां उपसर्गके कारण हृ धातुके कितने अर्थ निकल पड़े।

किसी शब्दके अधिक अर्थ रहनेसे यह समझनेके कई उपाय विद्यमान हैं, कहां कौन अर्थ सङ्गत पड़ेगा। इन कई उपायके नाम हैं—संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, अर्थ, प्रकरण, लिङ्ग, अन्य शब्दका सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, व्यक्ति, स्वर इत्यादि।

"संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिस्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेष स्मृतिहेतवः॥" (भर्तृहरि)

एक वस्तुके अन्यवस्तुसे मिलनेपर संयोग गंठता है। जैसे, 'सचक्रो हरिः' अर्थात् हरि सुदर्शन चक्र लिये हैं। यहां 'सचक्र' अथवा 'चक्र लिये' शब्द विशेषण है। यह विशेषण हरिके साथ लगा है। यद्यपि हरि शब्दसे विष्णु, सिंह प्रभृति अनेक अर्थ निकलते, किन्तु इस जगह 'सचक्र' अथवा चक्र लिये—इस शब्दसे हरि शब्दके मिलनेपर अर्थका कोई गड़बड़ नहीं पड़ता। हम सहजमें ही समझ सकते, कि इस स्थलपर हरि शब्द विष्णुका अर्थ देता है। कारण, सिवा विष्णुके सिंह प्रभृति चक्र नहीं चलाते। फिर यदि कहा जाये,—'उन्नतकेशराग्रो हरिः' यानी हरि बढ़े हुये अयालका है, तो सिंहका ही अर्थ निकलेगा। कारण, सिंह-भिन्न विष्णु किंवा सर्पादिके केशराग्र या अयाल नहीं होता। मोटी बात है, कि किसी शब्दका अनेक अर्थ होनेसे विशेषण देख समझ सकते,—कहां कौन अर्थ लगेगा।

एक वस्तुसे अन्य वस्तुके संयोगका अभाव देखानेपर विप्रयोग पड़ता है। जैसे—'अचक्रो हरिः' यानी हरिके पास चक्र नहीं देख पाते। इसका अर्थ यह है,—विष्णुके हाथमें चक्र रहता, किन्तु इस अवस्था या इस मूर्तिपर वह चक्र नहीं लिये हैं। सिंह प्रभृतिके हाथ चक्र कब चढ़ता है! अतएव 'अचक्र' या 'चक्र नहीं' ऐसा अभावबोधक विशेषण लगनेसे हरि शब्द इस जगह सिंहका अर्थ नहीं दे सकता। कारण, सिंह किसी समय चक्र नहीं उठाता, इसीसे उसे चक्रहीन कहना असङ्गत ठहरता है।

परस्परकी सहायतासे साहचर्य होता है। जैसे, 'रामलक्ष्मण'। दशरथ राजाके पुत्रका नाम रामलक्ष्मण रहा। अन्यान्य लोगोंका भी राम और लक्ष्मण नाम विद्यमान है। किन्तु यह चिरप्रसिद्ध है, कि दशरथके रामलक्ष्मण दोनो पुत्र एक साथ रहते, वन-वन घूमते और परस्पर सहायता पहुंचाते थे। इसीसे 'रामलक्ष्मण' कहनेपर दशरथके पुत्र ही समझ पड़ते हैं।

परस्परका शत्रुभाव विरोधिता कहलाता है। जैसे, 'रामार्जुन'। 'राम' कहनेसे दशरथके पुत्र अथवा बलराम समझ पड़ते हैं। पाण्डुके पुत्रका नाम अर्जुन रहा। किन्तु रामार्जुन शब्दसे इनमें किसीका बोध न होगा, इसके द्वारा परशुराम और कार्तवीर्यका अर्थ लगाना पड़ेगा। कारण,

परशुराम और कार्तवीर्यार्जुनका विरोध चिर-प्रसिद्ध है।

अर्थशब्दसे प्रयोजनको समझते हैं। प्रयोजनको पाकर अनेक स्थलमें शब्दका अर्थ निश्चित किया जाता है। जैसे, सुवास शब्दसे उत्तम वस्त्र और सुगन्धि द्रव्य दोनोका अर्थ निकलता है। स्नान करके यदि कोई सुवास लानेको कहे, तो उसका अर्थ वस्त्र ही निकलेगा। फिर कोई यदि पूजा करने बैठ बोले, 'सुवास ले आयिये',—तो सुगन्धादि ही समझ पड़ता है।

प्रस्तावका नाम प्रकरण है। प्रस्तावके भावको देख शब्दका सङ्गत अर्थ समझते हैं। जैसे, राजाके समीप विचार होते समय वादी किंवा प्रतिवादीके मध्य यदि कोई बोल उठे, 'सर्वं जानाति देवः' यानीदेव सब समझते हैं,—तो प्रस्तावका भाव देख देवशब्दका अर्थ कोई देवता नहीं,—राजा ही लगाना पड़ेगा।

लिङ्ग शब्दसे चिह्न और लक्षणका अर्थ निकलता है। जैसे, 'कुपितो मकरध्वजः'—यानी मकरध्वज कुपित हैं। सचेतन पदार्थ ही कुपित हो सकता है। अतएव कोपका लक्षण लगा मकरध्वज शब्दसे मदनका ही अर्थ निकलना पड़ेगा। मकरध्वज औषध किंवा अन्य कोई अर्थ नहीं आता।

अन्य शब्दकी सन्निधि परस्परका निकटस्थ सम्बन्ध है। जैसे, 'आचमनी, घण्टी, सम्पुटी।' इस जगह आचमनी और सम्पुटीके समीप घण्टी शब्दका प्रयोग पड़नेसे, इसके द्वारा पूजाके जलका लघु पात्र समझ पड़ेगा। फिर 'घण्टी, झण्डी, सीटी' इसतरह बोलनेपर घण्टीसे सचेत होनेको आवाज़ समझ पड़ती है।

नियत शब्दकी शक्तिको सामर्थ्य कहते हैं। जैसे, 'मधुना मत्तः कोकिलः' यानी कोकिल मधुसे मत्त हो गया है। वसन्तकालमें ही कोकिल मत्त पड़ेगा। इसीसे यहां मधु शब्द वसन्तकालका द्योतक है, इसे मद्य किंवा फूलका मधु नहीं समझ सकते।

औचिती अर्थात् औचित्य इसतरह आता है,—'यातु ते दयितामुखम्' यानी आपकी प्रियाके मुखमें जाये। किन्तु 'आपकी प्रियाके मुखमें जाये' ऐसी बात कभी उचित नहीं हो सकती, इसलिये यहां 'मुख' शब्दसे सम्मुखका अर्थ निकलेगा।

देश अर्थात् स्थानको देख निश्चित कर सकते हैं, कहां कैसा अर्थ सङ्गत पड़ेगा। जैसे, 'इस राज्यमें, परमेश्वर विराजते हैं।' किन्तु यह कभी सङ्गत न होगा, कि राज्यके भीतर सर्वनियन्ता परमेश्वर विराजते हैं। इसीसे यहां परमेश्वर शब्दसे राजाका अर्थ आता है। फिर 'सर्वत्र परमेश्वर विराजते हैं', कहनेसे सर्वमय ईश्वर समझ पड़ेगा।

काल अर्थात् विशेष समयसे भी समझ सकते हैं, कहां कैसा अर्थ सङ्गत रहेगा। जैसे, 'चित्रभानु-र्विभाति दिने' अर्थात् दिनमें चित्रभानु चमकते हैं। चित्रभानु शब्दसे सूर्य और अग्नि दोनो समझ पड़ते हैं। किन्तु यहां 'दिन' इस शब्दका उल्लेख आनेपर 'चित्रभानु' शब्दसे सूर्यका अर्थ ही सङ्गत लगता है। फिर यदि कहें,—'चित्रभानु रातको चमकते हैं,' तो अग्निका ही अर्थ सङ्गत होगा।

व्यक्ति शब्दसे पुंलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग प्रभृति समझते हैं। शब्दका लिङ्ग देख निश्चित होता है, कहां कौन अर्थ सङ्गत रहेगा। जैसे, 'मित्रभाति' अर्थात् मित्र डटे हैं। यहां मित्र शब्द क्लीवलिङ्ग है, इसलिये सुहृत्का मतलब निकलेगा। दूसरे, 'मित्रो भाति'—यहां मित्र शब्द पुंलिङ्ग है, सुतरां इसके द्वारा सूर्य समझते हैं।

उदात्त, अनुदात्त और स्वरितका नाम स्वर है। मोटी बात यह है, कि शब्दविशेष पर ज़ोर देकर मन्त्रादि पढ़नेसे भिन्न-भिन्न अर्थ आयेगा। इस विषय-की एक कहानी सुनाते, कि उदात्त, अनुदात्त, स्वरित प्रभृति स्वरभेदसे विभिन्न अर्थ निकल सकता है।

पूर्वकालमें वृत्रासुरने इन्द्रके वधको यज्ञ आरम्भ किया था। ऋत्विग्गण वृत्रकी श्रीवृद्धिके लिये,—'इन्द्रशत्रुर्वर्द्धस्व'—यह मन्त्र बोलने लगे। मन्त्रको सुन वृत्रने सोचा, यज्ञ द्वारा उसीका मङ्गल बनेगा। किन्तु वस्तुतः वैसा न हुवा। कारण, ऋत्विग्गण यदि 'इन्द्रशत्रुः' यह बोलते समय शत्रु शब्दपर ज़ोर डालते, तो 'इन्द्रका शत्रु' ऐसा तत्पुरुष समास लग वृत्रका

मङ्गल गंठता। किन्तु ऋत्विगोंने वैसा न कर इन्द्र शब्दपर ज़ोर डाला था। इसलिये बहुव्रीहि समास होनेपर यह अर्थ निकला, कि इन्द्र जिसके शत्रु अर्थात् घातक हैं, उन्हीं इन्द्रकी श्रीवृद्धि हो।

"मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥"

मतलब यह, कि मन्त्रका स्वर किंवा वर्ण हीन हो जाने अथवा मिथ्याप्रयोग पड़नेसे, वह वाक्यरूप वज्र यजमानको नष्ट करता है। जैसे, स्वरप्रयोग विषयमें अपराध आते भी 'इन्द्रशत्रु' इस शब्दने यजमानको नष्ट किया था।

अनेकाल (सं॰ त्रि॰) व्याकरणमें—एक अक्षरसे अधिकका, जिसमें एकसे अधिक अक्षर रहे।

अनेकान्तवाद (सं॰ पु॰) भ्रमवाद, अधर्मचर्चा, कलाम-कुफ़्र।

अनेकान्तत्व (सं॰ क्ली॰) अस्थिरता, चाञ्चल्य, नापायदारी।

अनेकाश्रय—अनेकाश्रित देखो।

अनेकाश्रित (सं॰ पु॰) अनेकेषु आश्रितः युक्तः, ७-तत्। १ संयोगादि, सामान। (त्रि॰) २ अनेकके शरणापन्न, कितनोंहीकी पनाहमें पड़ा हुवा। ३ अनेकके गृहागत, कितनोंहीके घर गया हुवा।

अनेकीकरण (सं॰ क्ली॰) कितनी ही तरहका चढ़ाव।

अनेकीभवत् (सं॰ त्रि॰) दोमें विभक्त, दोमें बंटा हुवा।

अनेकीय (सं॰ त्रि॰) कितनो होका, जिसके पास कई रहें।

अनेग (हिं॰) अनेक देखो।

अनेगदेव—बम्बई प्रान्तवाले देवगिरि राज्यके नृपति-विशेष। इनके पुत्रका नाम महामण्डलेश्वर वीर विज्जरस रहा, जो माहिषतीनगरीके एकमात्र अधिपति कहाते थे। इनके विषयके जो दो ताम्रफलक मिले, उनमें सन् १२१० ई॰की तारीख पड़ी है।

अनेगुण्डी—धारवाड़के विजयनगरका दूसरा नाम, अंगरेज़ी अधिकारके आरम्भमें यह राज्य बड़ी उन्नतिपर रहा। यहांके राजाने सन् १३३३से १५७२ ई॰ तक धारवाड़के दक्षिण और पूर्व कृष्णातक राज्य किया था।

अनेजत् (सं॰ क्ली॰) एज कम्पे शतृ न एजत्, नञ्-तत्; एजनं कम्पनं स्वभावात् चरणं तत् वर्जितं सर्वदा एकरूपत्वात्। सर्वदा एकरूप परब्रह्म। (त्रि॰) २ कम्पन-रहित, कंपकंपीसे अलग, जो हिलता-डुल्ता नहीं।

अनेड़ (सं॰ त्रि॰) मूर्ख, निर्बुद्धि, नादान, नावाक़िफ़।

अनेड़मूक (सं॰ त्रि॰) एडो बधिरः मूको वाक्-शक्तिशून्यश्च नास्ति यस्मात्। १ अतिशय बधिर, निहायत बहरा। २ अन्ध, नाबीना। ३ कुत्सित, बद, बुरा, ख़राब।

अनेद्य (सं॰ त्रि॰) णिदि कुत्सायां नेद्यते, निद-ण्यत् न नेद्यम्; नञ्-तत्। अनिन्दनीय, अप्रशस्त, प्रधान, मशहूर, मौरूफ़, ख़ास।

"माध्यन्दिनस्य सवलस्य वृत्रहन्ननेद्य।" (ऋक्)

अनेन (सं॰ त्रि॰) १ पापरहित, निरपराध, बेगुनाह, बेकुसूर। २ विचित्र अश्वदलविहीन, जिसके पास गूनगूं घोड़ेकी जोड़ी न रहे। (पु॰) ३ प्रभु, मालिक। ४ राजा, बादशाह।

अनेनस् (सं॰ त्रि॰) नास्ति एनः व्यसनं पापं वा यस्य, नञ्-बहुव्री॰। व्यसनशून्य, पापशून्य, खुशनाम, बेगुनाह।

"राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥" (मनु ८।१९)

अनेनस्य (सं॰ क्ली॰) पाप अथवा अपराधको स्वतन्त्रता, गुनाह या कुसूरसे आज़ादी।

अनेमन् (सं॰ त्रि॰) नी मनिन् नेमन् न नेमा, नञ्-तत्। प्रशस्य, तारीफ़के क़ाबिल।

अनेरा (हिं॰ वि॰) १ असत्य, झूठ। २ व्यर्थ, बेफ़ायदा। ३ निष्प्रयोजन, बेमतलब। ४ दुष्ट, बदमाश, अन्यायी, ज़ालिम।

अनेव (सं॰ अव्य॰) १ दूसरी तरह। २ अथवा, या। ३ नहीं तो।

अनेह (हिं॰ पु॰) स्नेहका अभाव, प्रेमका अनस्तित्व, मुहब्बतका न होना।

अनेहस् (सं० पु०) केनापि न हन्यते असौ, हन उण् अस् इन एहादेशः। १ काल, समय, वक्त। 'कालोदिष्टोप्यनेहापि समयोऽपि।' (अमर) (त्रि०) २ अहिंसनीय, न मारने काबिल।

अनेहा (सं० पु०) काल, समय, वक्त, ज़माना।

अनै (हिं०) अनय देखो।

अनैकाग्र्य (सं० क्ली०) एकाग्रस्य एकचित्तस्य भावः, ष्यञ् न एकाग्रं, अभावे नञ्-तत्। १ एकचित्तताका अभाव, दिलके एकतर्फ़ का न रहना। (त्रि०) २ एकचित्ततासून्य, जिसका दिल एकतर्फ़ न रहे, डावांडोल।

अनैकान्त (सं० पु०) एकान्त एव स्वार्थे अण् ऐकान्तः; न ऐकान्तः, नञ्-तत्। १ एकान्तशून्य, जो निराला न हो। २ अनतिशय, थोड़ा। ३ अस्थिर, परिवर्तनशील, नापायदार, बदल जानेवाला। ४ न्यायमतसे—सामयिक, मौक़ेवाला।

अनैकान्तिक (सं० त्रि०) एकान्तं अतिमात्रं व्याप्नोति, एकान्त-ठक्। १ एकान्त, अतिशय, नितान्त, अतिमात्र, बहुत ज़्यादा। २ परिवर्तनशील, बदल जानेवाला। ३ अनेक प्रयोजनविशिष्ट, जिसके कितने ही मतलब रहें।

अनैकान्तिकत्व (सं० क्ली०) अस्थिरता, निश्चयका अभाव, नापायदारी, यक़ीनका न जमना।

अनैकान्तिकहेतु (सं० पु०) न्यायमतसे—वह हेतु या कारण जो स्थिर या निश्चयात्मक नहीं ठहरता, कल्पित कारण, फ़र्ज़ किया हुवा सबब।

अनैक्य (सं० क्ली०) एकस्य भाव ऐक्यम्, अभावार्थे नञ्-तत्। १ ऐक्यका अभाव, एकताका न रहना, बहुलता, अनेकका अस्तित्व, एकतायीका न होना। २ स्नेहाभाव, अराजकता, मेलका न मिलना, फूट।

अनैठ (हिं० पु०) हाट बन्द रहनेका दिवस, जिस दिन बाज़ार न खुले।

अनैतिह्य (सं० त्रि०) न ऐतिह्यम्, नञ्-तत्। परम्पराश्रुत प्रमाणशून्य, जिसका सुबूत किसीको ज़बानसे न सुन पड़ा हो।

अनैपुण (सं० क्ली०) अनिपुणस्य भाव अण्। निपुणताका अभाव, होशियारीका न होना।

अनैक्ट त, अनर्त, आनर्त—भारतवर्षका खण्डविशेष, हिन्दुस्थानका एक टुकड़ा। वराहमिहिरने भारतवर्षको नव खण्डमें बांटा था। उनमें एक खण्ड अनैक्ट त अथवा अनर्त कहलाता है। नव खण्डके नाम यह हैं,—१ पाञ्चाल खण्ड—इसमें मध्यभारत मिला है, २ पूर्व दिक्का मगध, ३ दक्षिण-पूर्व दिक्का कलिङ्ग, ४ दक्षिणका अवन्ति, ५ दक्षिण-पश्चिमवाला आनर्त, ६ पश्चिम दिक्का सिन्धुसौवीर, ७ उत्तर-पश्चिम दिक्का हारहौर, ८ उत्तरका मद्र, ९ उत्तर-पूर्व दिक्का कौनिन्द। (बृहत्संहिता १४।२२—३३) यह नव नाम रख इनके विशेष वर्णनास्थलमें वराहमिहिर कुछ गड़बड़ डाल गये हैं। उन्होंने आनर्त और सिन्धुसौवीर इन्हीं दोनोको दक्षिणपश्चिम बताया है। किन्तु इसमें कोई भूल नहीं देख पड़ती, वरं बिलकुल पश्चिम दिक् सिन्धुसौवीर कहनेसे भूल होती है। बृहत्संहिता एवं मार्कण्डेय-पुराणके मतसे आनर्त और सिन्धुसौवीर भारतवर्षसे दक्षिण-पश्चिम दिक् अवस्थित हैं।
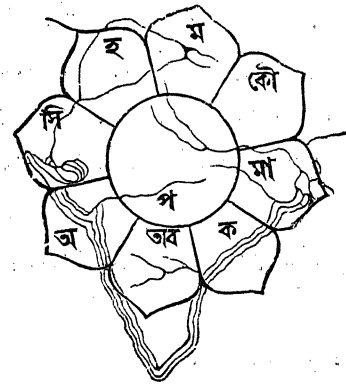
भारतवर्षके नव खण्ड।

प—पाञ्चाल। म—मद्र। क—कलिङ्ग। अव—अवन्ति। अ—आनर्त। सि—सिन्धुसौवीर। ह—हारहौर। मा—मागध। कौ—कौनिन्द।

किन्तु महाभारतमें भारतवर्षके जो विभाग लिखे, वह दूसरे ही प्रकारके हैं। भास्कराचार्यके साथ भी वराहमिहिरके मतका ऐक्य नहीं आता। इन्द्र, कशेरुमत्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमत्, कुमारिका, नाग,

सौम्य, वारुण, गान्धर्व प्रभृति अन्य प्रकारके नाम मिलते हैं।

अनैश्वर्य (सं० क्ली०) अनीश्वरस्य भावः, आद्याचोः वा वृद्धि। १ अनीश्वरत्व, अधीनत्व, कमजोरी, मातहती। (त्रि०) नास्ति ऐश्वर्यं यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ ऐश्वर्यशून्य, कमजोर।

अनैस (हिं० वि०) नष्ट, खराब, बुरा।

अनैसना (हिं० क्रि०) खराब समझना, बुरा देखना, गुमान गांठना, रूठ रहना।

अनैसा—अनैस देखो।

अनैसे (हिं० क्रि०-वि०) नष्ट रीतिसे, बुरे तौरपर।

अनैहा (हिं० पु०) उत्पात, धूम, बखेड़ा, उपद्रव, नटखटी, झगड़ा-झञ्झट।

अनो (सं० अव्य०) नहीं, मत। नहि, अनो और न यह तीन अभावार्थक अव्यय होते हैं। कोई-कोई नहि, अ, नो और न यह चार अभावार्थक अव्यय बताता है।

अनोकशायिन् (सं० पु०) गृहमें भिक्षुककी भांति न सोनेवाला व्यक्ति, जो शख्‌स घरमें फ़कीरकी तरह न सोता हो।

अनोकह (सं० पु०) अनसः शकटस्य अकं गतिं हन्ति पुरोवर्तनात् निवारयति, अनस्-अक-हन्-ड। वृक्ष, पेड़, दरख्‌त। 'वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः अनोकहः।' (अमर)

अनोखा (हिं० वि०) १ अपूर्व, अनुपम, निराला, नायाब। २ नूतन, ताज़ा। ३ रूपवान्, ख़ूबसूरत। ४ सुयोग्य क़ाबिल। (स्त्री०) अनोखी।

अनोखापन (हिं० पु०) १ अपूर्वता, निरालापन, जोड़ न मिलनेकी हालत। १ नवीनता, ताज़गी। ३ सौन्दर्य, ख़ूबसूरती। ४ योग्यता, लियाक़त।

अनोङ्कृत (सं० त्रि०) न ओङ्कारोच्चारणपूर्वं कृतम्; ओं-कृ-क्त, नञ्-तत्। १ ओङ्कारोच्चारणपूर्वक न किया गया, जिसके करनेसे पहले ओङ्कार न निकला हो। २ अस्वीकृत, नामञ्ज़ूर।

अनोदन (सं० त्रि०) नास्ति ओदनः अन्नं यत्र, नञ्-बहुव्री०। १ अन्नविहीन, जिसमें अनाज न रहे। नास्ति ओदनोऽन्नं यस्य। २ निरन्न, जिसे अन्न न मिले, अनाजसे मुहताज, जिसे दाना मयस्सर न आये।

अनोदयनाम (सं० क्ली०) जैन मतानुसार—कुकर्म-विशेष। इसके झलकनेसे मनुष्यका कथन कोई नहीं सुनता, वह इज़ाब जो आदमीको हक़ीर बनाये।

अनोदित (सं० त्रि०) आह्वान न लगाया गया, जिसकी पुकार न पड़ी हो।

अनोमा (सं० स्त्री०) क्षुद्र नदीविशेष, किसी छोटे दरयाका नाम। यह कपिलवास्तुनगरकी पूर्व ओरसे निकल गोरखपुरके निकट राप्ती नदीमें मिल गयी है। इस नदीका अधिकांश आजकल सूखा पड़ा है। यह यों प्रसिद्ध हुयी, कि इसके किनारे बोधिसत्त्वने सन्न्यासाश्रम लिया था। इसे ओमी या अवमी भी कहते हैं। सिद्धार्थ कपिलवास्तुसे घोड़ेपर चढ़कर निकले थे। उनके साथ चन्दक प्रभृति कई अनुचर आने जानेको तय्यार हुये। वह पहले कपिलनगरसे वैशालीमें पहुंचे। पीछे वैशालीनगरसे रवाना हो देवकाली गये। उससे आगे ही संग्रामपुरके पास अनोमा नदीकी जगह 'अमीपर' नामक एक झद भी मौजूद है। बकानन इस झदको 'नवर' कहते थे। किन्तु राजकीय मानचित्र या सरकारी नक़शेमें इसका नाम 'अमीयर ताल' लिखा है। अनेक अनुमान लगाते, सिद्धार्थने ठीक इसी झदके ऊपर नदीको पार किया था। ललितविस्तरमें लिखा है, कि अनुवैणेय प्रदेशवाले मनेय ग्रामके पास बुद्धदेव नदी पार हुये थे, पार होकर चन्दक प्रभृति अनुचरको उन्होंने विदा किया। अनुवैणेय देखो।

अनोवाह्य (सं० त्रि०) शकटपर जानेवाला, जिसे गाड़ीपर रख ले जायें।

अनौचित्य (सं० क्ली०) उचित न होनेका भाव, अनुपयुक्तता, नामुनासिबत।

अनौजस्य (सं० क्ली०) बलका अभाव, ताक़तका न रहना।

अनौट—अनवट देखो।

अनौद्धत्य (सं० क्ली०) अभिमानका अभाव, गुरूरका न रहना।

अनौपम्य (सं॰ त्रि॰) अनुपम, उपमाविहीन, लासानी, जिसका जोड़ न मिले।

अनौरस (सं॰ पु॰) गोद लिया हुवा लड़का, जो लड़का गोद लेकर बेटा बनाया जाये।

अन्त (सं॰ पु॰-क्ली॰) अन्तति जीवनादीनां सीमानं बध्नाति, अन्त पचादि॰ अच्; अथवा अलति गच्छति न तिष्ठति, अम गतौ उण्-तन्। १ जघन्य, चरम, अन्त्य, पाश्चात्य, पश्चिम, अखीर सिरा, हद, शर्त।

'अन्तोजघन्यं चरममन्त्यं पाश्चात्य पश्चिमाः।' (अमर)

२ नाश, मृत्यु, निधन, ज़िन्दगीकी बरबादी, मौत, ज़वाल। ३ अवसान, समाप्तिरम्य, खातिमा, पूरेका पड़ना। 'मृतावविसिते रम्ये समाप्तावन्त इष्यते।' (शब्दार्णव)

४ स्वरूप, सूरत, शक्ल। ५ निकट, नज़दीक। ६ प्रान्त, सूबा। ७ निश्चय, यक़ीन। ८ अवयव, अज़ा।

'अन्तः स्वरूपे निकटे प्रान्ते निश्चयनाशयो अवयवेऽपि।' (हेम)

९ अति मनोहर, निहायत दिलफ़रेब।

'अन्तःप्रान्तेऽन्तिके नाशे स्वरूपेऽति मनोहरे।' (विश्व)

अन्तःकण्ठशल्यावलोकिनी (सं॰ स्त्री॰) नाड़ीयन्त्र-विशेष, दश अङ्गुलकी खास नाड़ी।

अन्तःकरण (सं॰ क्ली॰) क्रियन्ते कर्माण्यनेन करणं करणे ल्युट्। करणाधिकरणयोश्च। पा ३।३।११७ अन्तः शरीर-मध्यस्थमदृश्यमिति यावत् करणमिन्द्रियम्, कर्मधा॰; शरीरस्थ-पदार्थानां सुखादीनां करणं ज्ञानसाधकतमम् ६-तत्। 'करणं साधकतमं चैव गात्रेन्द्रियेष्वपि।' (अमर) मन, तबीयत, मस्तिष्क, दमाग़, विचारबुद्धि, ख़याल करनेकी कुवत, हृदय, गुर्दा, विवेक, समझ, आत्मा, रूह, अन्तरिन्द्रिय, शरीरके मध्यमें स्थित और ज्ञान एवं सुखादि जनक मन-बुद्धि-चित्तादि नामक इन्द्रिय। वेदान्तके मतसे अन्तःकरण चार प्रकारका होता है,—

"मनोबुद्धिरहङ्कारश्चित्तं करणमन्तरम्।
संशयो निश्चयो गर्वः स्मरणं विषया इमे॥"

मनके द्वारा संशय लगता, बुद्धि द्वारा निश्चय आता—पृथिवीमें अकेले हमीं धनवान् हैं,—इत्यादि मनुष्य-वृत्ति द्वारा गर्व बढ़ता और चित्त द्वारा स्मरण पड़ता है। अतएव संशयादि—इस चार कार्यभेदसे मन आदि शरीरके अभ्यन्तरस्थ इन्द्रिय भी चार ही होते हैं।

शान्त, घोर एवं मूढ़ नामक अन्तःकरणकी तीन वृत्ति हैं। वैराग्य, क्षान्ति, औदार्य—यह तीन शान्त वृत्ति कहलाते हैं। तृष्णा, स्नेह, अनुराग, लोभ प्रभृतिका नाम घोर वृत्ति है। मोह, भय प्रभृतिको मूढ़ वृत्ति कहते हैं।

सांख्यवादी बताता, कि शान्त प्रभृति वृत्ति एक-कालसे ही मनमें पहुंच सकती हैं। किन्तु नैयायिक ऐसा विश्वास नहीं रखता। वह कहता, कि अन्तः-करण अति क्षुद्र पदार्थ है। "अन्तःकरणमणुपरिमाणम्।" इस-लिये उसमें एककालसे इतने ज्ञान जम नहीं सकते। शान्त प्रभृति वृत्ति एक-एक कर उठती है। 'अयौगपद्याज-ज्ञानानाम्।' सकल ज्ञान एककालमें नहीं आ सकते। मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त—यह चार चन्द्र, ब्रह्मा, शिव और विष्णु स्वरूप अन्तःकरणके अधिष्ठात्री देवता हैं।

अन्तःकल्प (सं॰ पु॰) बौद्धमतानुसार—वत्सरकी संख्याविशेष, युग, सालका खास ज़खीरा।

अन्तःकुटिल (सं॰ पु॰) अन्तर्मध्ये कुटिलं वक्रम्, ७-तत्। १ शङ्ख। (त्रि॰) २ कुटिलान्तःकरण, जो अतिकुटिल हो, वक्रमन, टेढ़े दिलवाला, निहायत कज-अदा।

अन्तःक्रिमि (सं॰ पु॰) अन्तर्मध्ये क्रिमिः कीटविशेषो यस्य। १ क्रिमिकोष, कीड़ेका कोय। (त्रि॰) २ मध्यमें क्रिमियुक्त, जिसके भीतर कीड़े पड़े हों।

अन्तःकोटरपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) अन्तःकोटरे पत्र-मध्ये पुष्पं यस्याः, बहुव्री॰। नीलबुह्मा, एक पेड़ जिसके पत्तेमें फूल खिलता है।

अन्तःकोण (सं॰ पु॰) भीतरी कोना।

अन्तःकोप (सं॰ त्रि॰) मानसिक क्रोध, अन्दरूनी गुस्सा।

अन्तःकोष (सं॰ क्ली॰) भाण्डारगृहका भीतरी स्थान, जो कमरा तोशेखानेके भीतर बना हो।

अन्तःपञ्चमकारयजन (सं॰ क्ली॰) अन्तर्मनसा पञ्च-मकाराणां यजनं यज्ञ-तत् गर्भ ३-तत्। मन ही मन तन्त्रोक्त मद्यादि पञ्चमकारका चिन्तारूप यज्ञ। कुलार्णवतन्त्रके अन्तर्यजन बीच लिखा, कि सुरा शक्तिरूप और मांस शिवरूप होता है, भैरव इन

दोनोंके भोक्ता हैं। उसी मद्य और मांसके एकमें मिलनेसे जो आनन्द आता, वही मोक्ष है। मोक्षके कारण ही देहमें आनन्दरूप परमात्माका उदय होता है। परब्रह्मके उद्भावक होते वही मद्य और मांस योगियोंका भक्ष्य बना है।

पुं स्त्री क्लीव इस त्रिलिङ्गको विषयरूपसे समझे और षट्चक्रका दरवाज़ा तोड़ना सीखे। पीछे पीठ स्थानमें पहुंच महापद्म वन जाना पड़ता है। मूलाधारपर ब्रह्मरन्ध्र पर्यन्त बारम्बार चल-फिर महोदय व्यक्तिको ज्ञानरूप चन्द्र, कुण्डलिनी शक्ति और समता गुणपर रम्य बनकर आकाशपथसे (ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्रदलपद्म) क्षरित सुधा पीनेमें लग जाना चाहिये। उसी सुधापानको मधुपान कहते, सिवा उसके दूसरा सुरादि पान मद्यपान कहाता है।

ज्ञानरूप खड्गसे पुण्य और पापरूप पशुको मार योगी परमेश्वरमें चित्तको लय करे। वैसा करनेसे ही वह मांसाशी कहाता है। कहनेका मतलब यह, कि अन्तर्यजनमें इसीका नाम मांसभक्षण रखते हैं। मनसे इन्द्रियगणको संयतकर आत्मा लगानेसे योगी मत्स्याशी बनता है। इस यन्त्रमें इसीतरह विस्तर प्रकरण लिखा गया है।

अन्त:पट (सं॰ पु॰) वस्त्रविशेष, जो मिलाये जानेवाले व्यक्तिके बीच संयोगके समयतक रखा जाये; जैसे, वरवधू और गुरुशिष्यके बीच होता है।

अन्त:पद (सं॰ अव्य॰) साधे हुए पदके मध्य, गरदानी गयी लफ्ज़के बीच।

अन्त:पदवी (सं॰ स्त्री॰) अन्तर्मध्ये मध्यस्य वा पदवी पन्थाः, ७-वा ६-तत्; मध्यस्था वा पदवी, मध्यपदलोपी कर्मधा॰। सुषुम्ना नाड़ीके मध्यका पथ, जो राह सुषुम्ना नाड़ीके बीचसे गयी है।

अन्त:परिधान (सं॰ क्ली॰) भीतरका वस्त्र, जो कपड़ा सबसे नीचे पहनते हैं।

अन्त:परिधि (सं॰ अव्य॰) मण्डलके मध्य, घेरेके बीच।

अन्त:पर्शव्य, (सं॰ त्रि॰) पसलीके बीचवाला, जो पसलियोंके बीचमें हो।

अन्त:पवित्र (सं॰ पु॰) छना और घड़ेमें भरा हुवा सोम।

अन्त:पशु (सं॰ पु॰) अन्तर्ग्राममध्ये तिष्ठन्ति पशवो यस्मिन् काले, बहुव्री॰। १ ग्रामके मध्य पशु रहनेका समय, जिस वक्त गांवमें जानवर रहें, प्रातःकाल, सवेरा, तड़का। २ सायाह्न, सायंकाल, शाम। (त्रि॰) ४ पशुवाला, जहां जानवर रहें। (अव्य॰) ५ सन्ध्यासे प्रातःकालतक, जबतक शामसे सवेरा न हो।

अन्त:पात (सं॰ पु॰) अन्तः सीमाद्वयोर्मध्ये पतति तिष्ठति। १ सन्धिस्थान, मिलनेकी जगह। २ मध्यका पतन, बीचका गिराव। ३ व्याकरणमें—अक्षरका आगम, हर्फ़का जोड़। ४ यज्ञस्थलके मध्यका स्थानविशेष, जो खास जगह यज्ञके बीचमें रहती है।

अन्त:पातित—अन्त:पातिन् देखो।

अन्त:पातिन् (सं॰ त्रि॰) अन्तर्मध्ये पतति प्रविशति, ७-तत्। मध्यमें प्रविष्ट, अन्तर्गत, डाला गया, घुसा हुवा, जो शामिल हो। (स्त्री॰) अन्त:पातिनी।

अन्त:पात्य (सं॰ पु॰) अन्तर्मध्ये पत्यते यस्मिन् देशे, पत-णिच्-आधारे यत्। १ फेंका जानेवाला देश, जिस देशमें कोई चीज़ फेंक दी जाये। (अव्य॰) २ मध्यमें फेंकके, बीचमें डालकर।

अन्त:पात्र (सं॰ क्ली॰) पात्रका भीतरी भाग, बरतनका अन्दरूनी हिस्सा।

अन्त:पाद (सं॰ अव्य॰) छन्दके पादमें, ग़ज़लकी कड़ीपर।

अन्त:पाल (सं॰ पु॰) प्रासादके भीतरी स्थानोंका रक्षक, जो चौकीदार महलके अन्दरूनी कमरोंकी देख-भाल रखे।

अन्त:पुर (सं॰ क्ली॰) अन्तर्मध्यस्थं पुरम्, कर्मधा॰। १ राजकीय प्रासादका भीतरी भाग, सरकारी महलका अन्दरूनी हिस्सा, ज़नानखाना। २ प्रासादके भीतरी भागमें रहनेवाला व्यक्ति, जो शख़्स महलके ज़नानखानेमें रहे। (स्त्री॰) अन्त:पुरी।

अन्त:पुरचर (सं॰ पु॰) अन्त:पुरे चरति राजाज्ञया गच्छति; चरट्-अच्, ७-तत्। राजाका अन्त:पुर-

चारी कञ्चुकी प्रभृति, ज़नानखानेका मुहाफिज़। अन्तःपुरचरका लक्षण यह लिखा है,—

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वित:
सर्वकार्यार्थ कुशल: कञ्चुकीत्यभिधीयते।
जरावैक्लव्ययुक्तेन विशेद्‌गात्रेण कञ्चुकी।" (बृहत्परा०)

अर्थात् अनेकगुणयुक्त, सर्वकार्यकुशल और अन्तःपुरचारी ब्राह्मणको कञ्चुकी कहते हैं। जरा एवं गलित मांस होनेसे वह अन्तःपुरमें घुस सकता है।

अन्तःपुरके निमित्त विशेष चर रखनेकी प्रथा अति प्राचीन कालपर सकल सभ्यदेशमें प्रचलित रही। रूम, यूनान, मिस्र प्रभृति सकल स्थानके धनाढ्य लोग अन्तःपुरके लिये खोजे रखते; किन्तु भारतवर्षके हिन्दुवोंवाले घर सच्चरित्र वृद्ध ब्राह्मण रहते थे। अनेक अनुमान बांधते, कि खोजा रखनेकी प्रथा प्रथम अफ्रीकामें पड़ी थी। पीछे रूम, यूनान और एशिया प्रभृतिके लोगोंने इस चालको पकड़ा। उस समय सकल ही देशके धनाढ्य बहुविवाह करते रहे। बहु विवाह ही इस प्रथाका मूल कारण देख पड़ता है। सर्वत्र मुसलमान बादशाह बहुतसे खोजे रखते थे। उन्हें देख अन्तको हिन्दू राजावोंमें भी इसका चलन हुवा। आजकल अनेक अफ्रीकासे खोजे खरीद लाते हैं।

अन्तःपुरजन (सं० पु०) प्रासादकी स्त्री, जो औरत शाही महलमें रहें।

अन्तःपुरप्रचार (सं० पु०) स्त्रीके गृहकी किंवदन्ती, ज़नानखानेकी अफ़वाह।

अन्तःपुररक्षक—अन्तःपुराध्यक्ष देखो।

अन्तःपुरवर्तिन्—अन्तःपुराध्यक्ष देखो।

अन्तःपुरसहाय (सं० पु०) अन्तःपुरे सहायः, ७-तत्। राजाके अन्तःपुरका सहचर, विदूषक, कञ्चुकी प्रभृति, ज़नानखानेमें साथ घूमनेवाला, मसखरा, खोजा वगैरह।

अन्तःपुराध्यक्ष (सं० पु०) अन्तःपुरस्य अध्यक्षः, ६-तत्। अन्तःपुरका तत्त्वावधायक, ज़नानखानेका दारोगा, जो कर्मकारी वृद्ध, सत्कुलोद्भव, समर्थ रहे और पितृ-पितामहके क्रमसे काम करते आया हो। शुद्धान्तःकरण एवं सुशिक्षित व्यक्ति ही राजाके अन्तःपुरका अध्यक्ष हो सकता है।

अन्तःपुरि (सं० त्रि०) पृ-इ-पूरि; अन्तर्मध्या पूरिः, कर्मधा०। १ मध्यनगर, बीचका शहर। २ मध्यराजा, दरमियानी बादशाह। ३ मध्यनदी, बीचवाला दरया।

अन्तःपुरिक (सं० पु०) अन्तःपुरे नियुक्तम्, ठक् न वृद्धिः। अन्तःपुरका अध्यक्ष, कञ्चुकी प्रभृति, ज़नानखानेका मुहाफिज़, खोजा वगैरह। (स्त्री०) अन्तःपुरिका।

अन्तःपुष्प (सं० क्ली०) अन्तर्गतं पुष्पं स्त्रीरजः। द्वादशवर्षवयस्का स्त्रीका अप्रकाशित रजः, जो रक्त बारह वत्सरमें भी न निकले, बारह बरसकी औरतका बंधा हुवा हैज़।

अन्तःपूज (सं० त्रि०) नासूरदार, नासूरी।

अन्तःपूजा (सं० स्त्री०) आन्तरिकी पूजा, तन्त्रोक्त मनःकल्पित वस्तुभिः बलिदान होमादिरूपा देवार्चना; कर्मधा०। तन्त्रोक्त मनःकल्पित वस्तु द्वारा देवताकी अर्चना, जो पूजा तन्त्रमें कही और मनमें मानी हुयी चीज़से देवताकी हो।

अन्तःपूजाके समय कुण्डलिनी शक्तिको मुलाधार पद्मसे हृदयरूप सूर्यमण्डलमें ला कर्णिका अन्तर्गत चन्द्रवाले सुधासे मूलमन्त्र सींचे। पीछे विषयरूप पुष्पसे पूजा की जाती है। अमाया, अनहङ्कार, अराग (अनुरागका अभाव), अमद (मत्तताका अभाव), अमोह, अदम्भ, अद्वेष, अक्षोभ, अमात्सर्य और अलोभ—यह दश प्रकारके विषय-पुष्प अन्तःपूजामें विहित हैं। सिवा इसके अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, दया, क्षमा एवं ज्ञान—इन दूसरे पांच पुष्पोंकी बात भी लिखी है। इसमें परमात्माका एकत्व चिन्तारूप ही न्यास निकालेंगे। ऐसा सोचना चाहिये, कि 'सोहं'—इस मन्त्रके अक्षर कुण्डलिनीमें पिरोये हैं। ऐसे ही परम अमृतपूर्ण ब्रह्मरन्ध्रस्थ सहस्रदल पद्ममें, सिवा पूजा और होमके, उन्हीं पिरोये हुये अक्षरोंको आत्मीय रूपसे देखाना होगा।

मानसिक होम इसतरह होता है,—आत्माको अपरिमित समझ आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और

ज्ञानात्मा स्वरूप चार कोण—आनन्दमेखलायुक्त योनि-भूषित चैतन्यकुण्ड नाभिमें देख उसके बीचवाली ज्ञानाग्निमें होम लगाये। पहले मूलमन्त्र 'ओं चैतन्यरूपाग्नौ विषयहविषा मनसास्रुवा ज्ञानप्रदीपिते नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहं स्वाहा'—पढ़ आहुति देना चाहिये।

अन्तःपेय (सं० क्ली०) चुसकी, घूंट।

अन्तःप्रकृति (सं० स्त्री०) राज्यान्तर्वर्तिनी प्रकृतिः राज्याङ्गम्। १ राजाकी प्रकृति, बादशाहकी कुदरत। अमात्य, सुहृत्, कोश (धनागार), राष्ट्र (राज्य), दुर्ग (किला), बल (फौज),—यह छः राजाकी प्रकृति हैं।

अन्तः सर्वभूतान्तर्व्यापिनी प्रकृति स्वभावः परमात्मा वा। अन्तर्जगन्मध्यस्था प्रकृतिः पञ्चभूतानि प्रधानं मूलकारणं वा। २ क्षिति, अप्, तेजः, मरुत् और व्योम—यह पञ्चभूत। ३ प्रधान, बड़ा। ४ मूलकारण, असली सबब।

अन्तःप्रज्ञ (सं० त्रि०) भीतरी विद्वान्, अपना ज्ञान रखनेवाला, अन्दरूनी फ़हीम, जो अपने आपको पहुंचानता हो।

अन्तःप्रतिष्ठान (सं० क्ली०) भीतरका अवस्थान, अन्दरूनी रहायिश।

अन्तःप्रतिष्ठित (सं० त्रि०) भीतर अवस्थित, अन्दर रहनेवाला।

अन्तःप्रविष्ट (सं० त्रि०) अन्तः मध्ये प्रविष्टम्। अन्तः-करणके मध्य प्रविष्ट, हृदयगत, अभ्यन्तर्गत, कलेजेके अन्दर घुसा हुवा, जो दिलमें दाखिल हो गया हो।

अन्तःशर (सं० पु०) भीतरी वाण या रोग, अन्दरूनी तीर या आज़ार।

अन्तःशरीर (सं० क्ली०) अन्तः स्थूलदेहमध्यस्थं शरीरम्, कर्मधा०। स्थूल शरीरका मध्यवर्ती वेदान्त-प्रसिद्ध सूक्ष्म शरीर।

अन्तःशल्य (सं० क्ली०) अन्तःकरणस्य शल्यमिव। अन्तःकरणके पक्षमें शल्य अर्थात् शेलकी तरह कष्ट-दायक, जो चीज़ दिलपर सांग-जैसी जाकर चुभे।

अन्तःश्लिष, अन्तःश्लिषण (वै० त्रि०) आन्तरिक साहाय्य, अन्दरूनी मदद।

अन्तःसंज्ञ (सं० त्रि०) अन्तःमध्यवर्तिनी अप्रकाश्या इति यावत् संज्ञा चैतन्यं यस्य बहुव्री०। वृक्ष, लता, तृण, गुल्मादि, दरख़्त, बेल, घास, झाड़ी वग़ैरह। हमारे ऋषि-मुनिके मतसे, वृक्षादि पूर्वजन्मके पापसे जड़ित पड़ गये; किन्तु भीतर सुख-दुःख अनुभव कर सकते हैं। मनुसंहिता १ अध्याय ४६-४९ श्लोक देखो।

अन्तःसत्त्वा (सं० स्त्री०) अन्तरभ्यन्तरे गर्भे इति यावत् सत्त्वं प्राणी यस्याः, ६-बहुव्री०। १ अपने गर्भमें प्राणी अर्थात् सन्तान रखनेवाली स्त्री, गर्भवती, हामिला औरत, जिस औरतके पेटमें सन्तान हो। (त्रि०) अन्तः शरीरमध्ये सत्त्वं गुणः पिशाचादि बलं आत्मा व्यवसायः अस्त्रं धनं प्राणा वा यस्य, बहुव्री०। २ द्रव्यवान्, जिसमें कोई चीज़ रहे। ३ धैर्यगाम्भीर्यादि गुणयुक्त, जिसमें सब्र और सञ्जीदगी मौजूद हो। ४ श्वेतकृष्णवर्णविशिष्ट, सफ़ेद काले रङ्गवाला। ५ पिशाचादियुक्त, भूतोंसे भरा हुवा। ६ वाणिज्ययुक्त, रोज़गारी। ७ निश्चित, यक़ीनवाला। ८ अस्त्रयुक्त, हथियारबन्द। ९ धनशाली, अमीर। १० प्राणयुक्त, जीता-जागता।

।*। सन्तान उत्पन्न होनेके लिये गर्भमें तीन प्रधान स्थान रहते हैं। यथा, जरायु (uterus), अण्ड-प्रणाली (fallopian tubes) और अण्डाधार (ovaries)। सिवा इसके योनि भी जननेन्द्रियके मध्य गिनी जाती है।

जरायु, पेड़ूमें वस्तिगह्वरके भीतर होता है। इसका आकार ज्यादातर अमरूद-जैसा देखते; अग्रभागसे क्रमशः पश्चाद् दिक्‌को कुछ चपटा पाते हैं। गर्भ-सञ्चार होनेसे इस जरायुमें ही सन्तान हृष्टपुष्ट और परिपक्व पड़ता है। इसी कारण इसे गर्भाशय भी कहते हैं। इसका दूसरा नाम कलल है। अण्ड देखो।

मनुष्यकी अण्डप्रणाली दो होतीं, जरायुसे पेड़ूके दोनो पार्श्व गालीकी ओर चली आयीं; इन अण्डप्रणालीसे अनेक क्षुद्र-क्षुद्र शाखा फूटीं, जरायुके पास यह परदेकी तरह खालसे ढंकी हैं। अण्ड-प्रणालीसे दो काम निकलेंगे; एक,—अण्डप्रणालीमें अण्ड पक जानेपर इसी राह जरायुके मध्य आ

पहुंचते। द्वितीय,—पुरुषसंसर्ग लगनेपर शुक्रके साथ जो क्षुद्र-क्षुद्र कीटाणु रहते, वह इसी अण्ड-प्रणालीसे अण्डाधारके भीतर घुसते हैं।

मनुष्यके भी दो अण्डाधार पेड़ूमें गालीके पास होते हैं। अण्डप्रणाली जरायुसे निकल इन्हीं अण्डाधारके साथ मिल गयी है। अण्डाधारपर प्रायः बीस छोटे-छोटे कोष रहते; अंगरेजीमें उन्हें ग्राफियान् भेसि-कल् (grafian vesicles) कहते हैं। यह सकल कोष लार-जैसे तरल पदार्थसे परिपूर्ण होंगे। उसके मध्य क्षुद्र-क्षुद्र व्रण-जैसे बहुतसे छोटे-छोटे दाने और दो-एक अण्डे चमका करते हैं। पकनेसे ग्राफियान् भेसिकल् अण्डाधारपर फूट पड़ते, तब उनके भीतरसे अण्ड निकलता है। अण्डके यह कोष स्त्रीकी ऋतुके बाद ही सचराचर फूटते, फूटनेसे यह अण्डप्रणालीके परदेमें जा पहुंचते हैं। हमारा कोई-कोई अन्त्र और पेशी क्रिमिकी तरह गति रखता है। अण्डप्रणालीके पेशी सूत्रकी क्रिमि-जैसी आकुञ्चन क्रियाके (peristaltic action) दबावसे अण्ड जरायुकी ओर चला करते हैं।

स्त्रीको ऋतु पड़नेसे पुरुषसंसर्ग आवश्यक है। पुरुषसंसर्ग भिन्न गर्भसञ्चार नहीं होता। कारण, शुक्र ही प्राणीकी उत्पत्तिका प्रधान उपाय है। शुक्र पुरुषके अण्डकोषमें रहता है। इसमें एक प्रकारका कीटाणु पाते हैं।
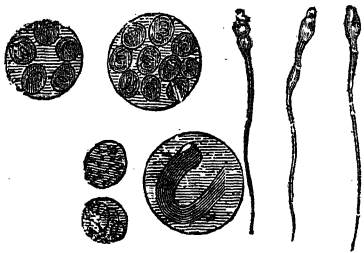
शुक्रका कीटाणु।

यह कीटाणु अत्यन्त क्षुद्र है, अणुवीक्षण न लगाने-पर खाली आंखसे इसे नहीं देख सकते। अणुवीक्षणसे (खुर्दबीन) देखनेपर स्पष्ट मालूम हो सकता, कीटाणु छोटे सांप-जैसा होता,—शिर मोटा रहता, पूंछकी ओर क्रमसे अत्यन्त पतला पड़ते जाता है। यह तिलार्धकाल भी सुस्थिर न पड़ेगा, केवल इधर-उधर चल-फिर लगायेगा। मनुष्यके शरीरका जैसा स्वाभाविक ताप (९८ डिग्री) है, वैसे ही तापमें शुक्र रखनेसे यह कीटाणु प्रायः तीन दिन पर्यन्त जीते रहता है। मनुष्यके मर जाते भी शुक्र-कीट शीघ्र नहीं मरता। चौबीस घण्टेका पड़ा मुर्दा चीरनेसे भी शुक्रकीट जीवित निकलेगा। किन्तु प्रदर रोग किंवा दुष्ट शोणितके साथ रहनेसे यह शीघ्र ही मर जाता है, इसलिये योनिरोग रहते स्त्रीके प्रायः सन्तान नहीं होता।

ऋतुके बाद पुरुषसंसर्ग लगनेपर शुक्रकीट योनिसे जरायुमें जा पहुंचता है। अन्तको जरायुसे अण्डप्रणालीकी ओर बढ़ेगा। साथमें अल्प-अल्प शुक्र भी क्रमशः भीतर घुसता है। शुक्र भीतर पहुंचनेसे शुक्रकीट परिपक्व अण्डके (ovum) मध्य जायेगा। अण्डके भीतर अधिक कीटाणु जानेसे गर्भसञ्चारकी सम्भावना निश्चित समझना चाहिये।

इसी तरह अण्ड और शुक्र एकत्र मिलनेपर दश-बारह दिन बाद जरायुके मध्य अण्ड जा गिरता है। यदि गर्भसञ्चार पड़ा, तो इस अवस्थामें सन्तानका कोई अवयव नहीं देखते। अण्डके भीतर केवल एक सामान्य भ्रूण (embryo) लार-जैसे तरल रसमें (liquor amnii) गोता लगाते घूमता; कोई पतली खाल इस भ्रूण और रसको घेर रखती है। उसे ही हम चलती बोलीमें आंवर कहते हैं। उत्तर कालमें जिससे फूल निकलता, इस अवस्थामें वही कुसुम-जैसी देख पड़ती है। इसी कुसुमके रससे भ्रूण बढ़ेगा।

भावप्रकाशमें लिखते हैं,—

"गर्भाशये निपतितं यादृक् शुक्र अथार्त्तवम्।
तादृगेव द्रवीभूतं प्रथमे मासि तिष्ठति॥"

अर्थात् जैसो तरल अवस्थामें शुक्र और शोणित गिरता, प्रथम मास वह बिलकुल वैसी ही अवस्थामें रहता है।

युरोपीय पण्डितोंने अनेक परीक्षा द्वारा ठहराया है, कि प्रथम मास भ्रूणके कोई अङ्गप्रत्यङ्ग नहीं निकलता। इस समय केवल आटे-जैसा ईषत् स्वच्छ

सामान्य कोई पदार्थ देख पड़ता है। वह भी नितान्त क्षुद्र—धागेसे ज्यादा लम्बा न रहेगा।
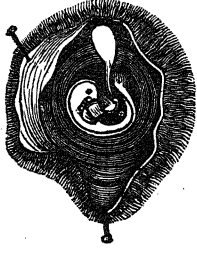
कोई पचीस दिनका भ्रूण।

दूसरे मास भ्रूणका आकार कितना ही स्पष्ट पड़ जाता है। समस्त शरीर सात-आठ धागे लम्बा, तौलनेसे न्यूनाधिक ३२ रत्ती निकलेगा। शिर पतला और हाथ-पैर छातीको ओर झुका रहता है। चक्षु नहीं होता, केवल मुखकी दोनो ओर अति सूक्ष्म दो काले दाग देख पड़ते हैं। मनुष्य प्रभृति बड़े-बड़े जन्तुके हृत्पिण्डमें चार प्रकोष्ठ देखोगे। उनके मध्य दोको हृत्कोष (ventricle) और दोको हृदुदर (auricle) कहते हैं। दो मासवाले सन्तानके हृत्पिण्ड निकलता, किन्तु पहले उसमें यह चार प्रकोष्ठ नहीं पड़ते। इस अवस्थामें केवल एक हृत्कोष और एक हृदुदर दिखाई देता है। मेरुदण्डकी अस्थि कितना ही पृथक्-पृथक् हो जाती हैं। सिवा इसके फेफड़े, प्लीहा और नाभिसे नाड़ीरज्जु अल्प-अल्प निकलने लगता है।

भावप्रकाशमें लिखा है,—

"मरुत्पित्तकफैस्तप्तैः पच्यमानो द्वितीयके।
कललस्य महाभूतसमुदायो घनो भवेत्॥"

अर्थात् द्वितीयमास जरायुमें महाभूत, वायु-पित्त-कफ द्वारा पच्यमान पड़ गाढ़ा बनता है।

सुश्रुतका भी मत यही है,—

"द्वितीये शीतोष्णानिलैरभिप्रपच्यमानां महाभूतानां संघातो घनः संजायते। यदि पिण्डः पुमान्, स्त्रीचेत् पेशी, नपुंसकश्चेदर्बुदमिति।"

अर्थात् द्वितीय मासमें पच्यमान महाभूत सकल शीत, उष्ण और वायु द्वारा घन पड़ता है। उसी घनीभूत पदार्थके पिण्डाकार बननेसे पुत्र, पेशीका आकार आनेसे कन्या और अर्बुद-जैसा उठनेसे नपुंसक उत्पन्न होगा।

तीसरे महीनेमें पड़नेसे लड़केका वज़न कोई ३५ रत्तीसे १५० रत्तीतक पहुंचता और दैर्घ्य भी कोई साढ़े तीन इञ्चतक जाता है। हाथका अग्रभाग अधिक स्पष्ट पड़े और उसमें कुछ-कुछ अङ्गुलका चिह्न भी दिखाई देगा। समस्त शरीरके साथ तुलना लगानेसे शिर और चक्षुको बहुत बड़ा पाते हैं। इस अवस्थापर मनुष्यवाले सन्तानके पास कुत्ते और चिड़ियेका बच्चे रखनेसे यह पहचानना कठिन पड़ जाता, कौन मनुष्य और कौन कुत्ते या चिड़ियेका बच्चा है।

भावप्रकाशमें लिखा है,—

"तृतीये मासि शिरसोः हस्तयोः पादयोस्तथा।
पिण्डिकाः पञ्च सिद्ध्यन्ति सूक्ष्मा अवयवास्ततोः॥"

तीसरे महीने दो हाथ, दो पैर और शिर—इन पांच अवयवके स्थानमें पांच मांसपिण्ड पड़ते एवं शरीरके अङ्गप्रत्यङ्ग सकल निकल आते हैं।

चौथा महीना आनेपर लड़केका वज़न कोई आध-पावसे तीन छटांक तक पहुंचता और दैर्घ्य भी अन्यून ६ इञ्चतक हो जाता है। इस समय मस्तिष्कका घेरा भी कुछ-कुछ स्पष्ट पड़े एवं निश्चित रूपसे पहचाना जा सकेगा, कि बच्चा पुत्र है या कन्या।

सुश्रुत, भावप्रकाश प्रभृति वैद्यक पुस्तकमें लिखा है, कि चतुर्थ मासमें सन्तानका अङ्गप्रत्यङ्ग सकल निकले और हृदय भी उत्पन्न होगा। हृदय प्राणीका चैतन्यस्थान है। इसीसे हृदय होनेपर सन्तानका चैतन्य चमकेगा। गर्भिणी अपना हृदय रखती एवं चतुर्थ मास गर्भमें सन्तानके भी हृदय आता, इसलिये उस समय स्त्रीको दौहृदिनी कहते हैं। दौहृदिनी स्त्री जो जो चीज़ खाने चाहता, उसे पूरण न करनेसे सन्तान काना, कुबड़ा पड़ जाता है।

पांच मासके बच्चेका वज़न कोई ५ छटांक होता और शरीर भी कमोवेश ८।१० इञ्च लम्बा पड़ जाता है। इस अवस्थामें समस्त मस्तक बालसे भर जायेगा; इधर हाथ-पैरमें कुछ-कुछ नख भी निकलेगा।

छः मासके बच्चेका वज़न सचराचर कोई आध सेरसे कम नहीं पड़ता। शरीर नापनेसे १०।१२ इञ्च निकलेगा। बाल काले पड़ते, चक्षु बंद रहते, उनमें कुछ-कुछ पक्ष्म भी जमने लगते हैं। इस अवस्थामें पुत्र-सन्तानकी अण्डवीचि पेड़ूमें रहती है।

सप्तम मासमें बच्चेका वज़न डेढ़ सेरसे दो सेरतक और दैर्घ्य न्यूनाधिक १४।१५ इञ्च पड़ेगा। इसी अवस्थामें चक्षु आता और अण्डवीचि पेड़ूसे कोषके भीतर उतर जाती है।

सुश्रुतमें लिखा, कि पञ्चम मासपर सन्तानका मनः बनता, षष्ठ मासमें बुद्धि आती है। सात मासके बच्चेका समस्त अङ्गप्रत्यङ्ग खूब सफ़ाईसे निकलेगा। अष्टम मासमें गर्भका सन्तान अस्थिर पड़ता और उसके शरीरमें ओजः धातु दौड़ता है। ओजः धातु उत्पन्न न होनेसे निरोज और नैर्ऋत-भावसे प्रयुक्त अष्टम मासमें भूमिष्ठ हो सन्तान जी नहीं सकता।

आठ मासके बच्चेका वज़न दो सेरसे ढाई सेरतक और दैर्घ्य १७।१८ इञ्च होता है। इस अवस्थामें प्रायः कोई अङ्ग निकलनेको बाकी नहीं रहता। शरीर भी खूब हृष्टपुष्ट और परिपक्व पड़ जायेगा। इसीसे सातवें-आठवें महीने भूमिष्ठ हो अनेक सन्तान जीते रहते हैं।
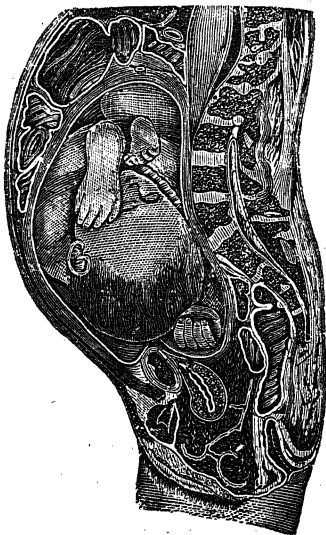
पूर्णगर्भावस्था।

९।१० मासमें पूर्णगर्भावस्था पहुंचती है। पूर्ण-गर्भावस्थामें सन्तानका वज़न कोई ३ सेर निकले और दैर्घ्य न्यूनाधिक २० इञ्च पर्यन्त पड़ेगा। किन्तु जनक-जननी दीर्घाकार होनेसे अनेकस्थलमें गर्भका सन्तान भी दीर्घाकार निकलता है। नभास्कोशियमें कोई स्त्री ७ फीट ८ इञ्च लम्बी रही, उसका स्वामी भी ७ फीट ८ इञ्च लम्बा था। इस स्त्रीके एक सन्तान उत्पन्न हुवा और भूमिष्ट होते ही मर गया। उसका वज़न कोई १२ सेर निकला और दैर्घ्य ३० इञ्च पड़ा था। किन्तु ऐसी घटना अति विरल है। फिर भी, ११।१२ मासमें सन्तान भूमिष्ठ होनेसे अपेक्षाकृत उसके कुछ ज़्यादा वज़नी और बड़े निकलनेकी सम्भावना रहती है।

जरायुमें बच्चेका मत्था नीचेको झुक जायेगा। चिबुक कण्ठके नीचे वक्षस्थलमें दबा रहता है। दोनो हाथ परस्पर बाहुके ऊपरसे छातीमें लगे होते; पैर ऊरुके नीचे पेटपर खिंच जाते हैं। नाभिरज्जु ऊरु और बाहुके मध्यस्थलमें लगती, इसीसे इसमें दबाव नहीं पहुंच सकता। बच्चेके इससे अन्यथा सन्तान निकलनेपर प्रसवके मध्य विघ्न लग सकता है। किन्तु संस्थानका सामान्य रूप व्यतिक्रम पड़नेसे कुछ भी अनिष्ट नहीं निकलता।

गर्भमें सन्तान मुखसे नहीं खाता; किन्तु फिर भी जीते रहता, दिन-दिन हृष्ट पुष्ट पड़ता है। उसका कारण, भोजनके फलका अन्यप्रकारसे सिद्ध होना है। इस विषयमें अनेक मतभेद है, गर्भसञ्चारकी प्रथमावस्थामें अण्ड कैसे परिपोषण पायेगा। कोई-कोई अनुमान लगाते, कि अण्डप्रणालीके भीतरसे किसी प्रकारका रस निकलता है। जरायुकी ओर अण्ड आते समय यह रस उसके आवरणमें मिल जायेगा। प्रथम प्रथम उसमें भ्रूणका पोषण होता है। गर्भाशयमें अण्ड जा पड़नेसे नाभिपदार्थमें पोषण पायेगा। उसके बाद पुष्प और नाभिसे नाड़ीरज्जु निकलता, पीछे जननीवाले शरीरके रससे सन्तान दिन-दिन बढ़ता है।

हम नाक और मुंहसे निश्वास लेते, निश्वासके वायुमें नाइट्रोजेन पाते हैं। उसी नाइट्रोजेनसे शरीरका

रक्त परिष्कार होता है। फिर प्रश्वास डालनेसे उसके साथ शरीरका दुष्ट पदार्थ निकल पड़ेगा। गर्भमें सन्तानका इस प्रकार निश्वास-प्रश्वास नहीं चलता। पुष्पसे गर्भिणीके शरीरका परिष्कार रक्त सन्तानकी देहमें पहुंचता और पुष्पसे ही सन्तानके शरीरका अपरिष्कार पदार्थ निकल जाता है। इसीसे श्वास प्रश्वासका फल मिलेगा। गर्भमें सन्तानका फेफड़ा या कलेजा यकृत्-जैसा कड़ा रहता है। सन्तान भूमिष्ठ होनेपर जब रो दे, तब फेफड़ेमें छिद्र हो जायेगा। अतएव बच्चेकी नाभिके साथ जननीके गर्भमें जो नाड़ी और फूल लगा करता, वही सन्तानके जीवनकी रक्षाका एकमात्र उपाय है। रक्तसञ्चालन, श्वास-प्रश्वास, परिपोषण एवं स्वाभाविक समुत्सर्ग सभी काम इसी फूलसे हुवा करता है।

इस बातका असली जवाब देना बहुत मुश्किल है, यमज सन्तान कैसे होता है। हमारे शास्त्रमें स्त्री, पुरुष और नपुंसक उत्पन्न होनेका कारण इसतरह निर्दिष्ट करते हैं,—

"युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।"

ऋतुकी युग्मरात्रिमें पुरुष-संसर्ग लगनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रिमें उससे कन्या उत्पन्न होती है। फिर भी इस बातपर कितने ही लोग विश्वास रखते, कि एक आंवरमें दो सन्तान रहनेसे एक पुत्र और एक कन्या निकलेगी। ऐसी अवस्थामें फूल भी एक ही होता है। पहलेसे अण्डमें दो अङ्कुर फूटनेपर ऐसी यमज सन्तान उपजेगी। फिर दो आंवरमें दो सन्तान रहनेसे फूल भी अलग-अलग लगता है। किन्तु इसका कोई ठिकाना नहीं पड़ता, किस कारण पुत्र और किस कारण कन्या होगी।

कभी-कभी गर्भसे हस्तपदहीन सन्तान निकलता है। आंवरमें लार-जैसा रस अल्प परिमाण रहनेपर क्षुद्र भ्रूण अवस्थामें सन्तानके हस्तपद प्रभृति जिस अङ्ग पर अधिक दबाव पड़ता, वही अङ्ग बढ़ने नहीं पाता। उसी कारण अनेकके हस्त पद अदृश्य हो जाते हैं। किसीके कन्धे पास केवल दो-एक अङ्गुलि निकलतीं, दबावके सबब समस्त हाथ जम नहीं सकता। दूसरा भी एक प्रकारका आश्चर्य व्यापार देख पड़ता है। अङ्गहीन सन्तानका भूमिष्ठ होनेसे पीछे छिन्न हस्तपद पृथक् निकलेगा। इससे स्पष्ट समझते हैं, किसी किसी स्थलमें गर्भके भीतर सन्तानका हस्तपद निकलता, अङ्गपर कोई व्याघात पड़नेसे दब जाता है। इस विषयमें सकल चिकित्सकका मत समान नहीं लगता, किस तरह वह दब जायेगा। कोई-कोई अनुमान लगाता, कि नाभिरज्जु हस्तपदमें लपट जाता, जिससे यह सकल अङ्ग गल कर शेषपर छूट पड़ता है। किन्तु डाक्टर प्लेफेयार यह आपत्ति डालते, किसी अङ्गमें नाभिरज्जु दृढ़ रूपसे बंधनेपर उसके भीतर रसकी गतिविधि रुकनेकी सम्भावना रहती, इसीसे वैसे स्थलमें सन्तान जीते रह नहीं सकता।

१ मास—प्रथम मासमें यह ठहराना अतिशय कठिन है, कि यथार्थ गर्भसञ्चार हुवा है या नहीं। किन्तु गर्भ रहनेसे अनेक ही स्थलमें ऋतु रुक जाती, जी मिचलाता और सर्वदा मुखसे पानी टपकता है। कोई द्रव्य खानेकी इच्छा नहीं चलती। जरायुका अधोभाग (cervix) और मुख (os) कोमल होता, उसका छिद्र लम्बा नहीं पड़ता, किञ्चित् गोल बन जाता है। इधर योनिकी उष्णता और रस-नि:सरण बढ़ेगा।

२ मास—दूसरे मासमें ऊपरी लक्षण अधिकतर स्पष्ट हो जाते हैं। चार सप्ताह बीतते ही स्तन कुछ कड़ा, स्थूल एवं गुटिकायुक्त होगा। स्तनका अग्रभाग कृष्णवर्ण बनता और भीतर दुग्ध भरता है। इस समय जरायुका मुख सम्पूर्ण गोलाकार बनेगा।

३ मास—तृतीय मासमें अन्त्रके निजस्थानसे खिसकने कारण उदर खूब बड़ा देख पड़ता है। स्तनका मुख और भी अधिक कृष्णवर्ण हो और नीलवर्ण शिरा ऊंचे उठेगा। स्तन दबानेसे अल्प-अल्प घन दुग्ध निकलता है। इस अवस्थामें गर्भके भीतरी फूलसे एक प्रकारका मृदु-मृदु शब्द उठता, जरायुके ऊपर कान लगानेसे सुना जा सकेगा।

४ मास—चतुर्थमासमें उदर स्पष्टरूपसे बड़ा देखाई देता है। इस अवस्थामें पेड़ दबाकर देखनेसे पिण्ड-जैसा कोई पदार्थ हाथ आयेगा। जरायुपर कान रखनेसे गर्भस्थ सन्तानका हृत्स्पन्दन सुन पड़ता है।

५ मास—पांचवें मास योनिके भीतर सन्तान अङ्गुलिसे ठेलनेमें फिर अङ्गुलिपर आ गिरेगा। गर्भमें सन्तान झुका करता, गर्भिणी उसे खूब समझ सकती है। इस समयसे गर्भके सम्बन्धपर प्रायः कोई दूसरा सन्देह नहीं उठता।

कभी-कभी स्त्रियोंके मिथ्या गर्भ रहेगा। मिथ्या गर्भ रहनेसे पेट बढ़ता, अरुचि उत्पन्न होती और प्रसव वेदनातक सताती है। वायुरोगग्रस्त (Hysterical) स्त्रियोंके ही ऐसा गर्भ गंठेगा। किन्तु ऐसे स्थलमें स्त्रियोंको क्लोरोफ़रम औषधके आघ्राणसे अज्ञान बनानेपर उदरका पिण्ड घट जाता है। रोगिणीके सज्ञान होनेपर फिर पेट फूल जायेगा। मिथ्या गर्भ पहंचाननेका प्रशस्त उपाय यही है।

गर्भवती स्त्रीको बड़े यत्नसे रखना चाहिये। ऐसा कोई भी काम न करे, जिससे शोक, दुःख प्रभृतिके मन उद्वेग उठ खड़े हों। उच्च-नीच स्थानमें गमनागमन, यानारोहण, व्यायाम, अतिरिक्त परिश्रम, मैथुन, रात्रिजागरण, रक्तमोक्षण, अतिविरेचक औषधका सेवन प्रभृति निषिद्ध है।

गर्भावस्थामें अनेक प्रकारकी पीड़ा पहुंचती है। उसमें अरुचि और वमन तो प्रायः सकल स्त्रियोंको ही धर दबायेगा। अल्प अरुचि किंवा सामान्य वमन भयका कारण नहीं होता। किन्तु कभी किसीको अतिशय अरुचि और वमन भी लगा करता है। कोई द्रव्य खानेको इच्छा नहीं चलती, भोजन लेनेसे भी कुछ उदरमें सह्य नहीं पड़ता। रोगिणी दिन-दिन दुर्बल हो शेषको प्राण छोड़ती है। किन्तु ऐसी घटना अति विरल होगी।

गर्भसञ्चार लगनेसे क्रममें जरायु बढ़ता, उससे उसके स्नायुमण्डलमें उत्तेजना उठती; इसीसे गर्भवती स्त्रियोंको वमन या वमनोद्वेग सताने लगता है। सचराचर सहज अवस्थामें, ५ ग्रेन सोडा बाईकाब, किंवा बिस्मथ् ५ ग्रेन, सोंठका चूर्ण २ ग्रेन और बाईकार्ब ३ ग्रेन एकत्र मिला भोजनसे अव्यवहित पूर्व या पर खाना चाहिये। अथवा ५ ग्रेन पेप्सिन् भोजनके बाद खाता रहे। किंवा जलमिश्रित हाइड्रोसायेनिक एसिड ३ विन्दु या कुचिलेका अरिष्ट ३ विन्दु सेवनीय है। क्रियोजोट् २ विन्दु और घुला हुवा गोंद आध छटांक मिला डालनेसे एक मात्रा बनती है। किंवा अफीमका अरिष्ट ७ विन्दु अल्प जलके साथ खायेंगे। इन सकलके मध्य किसी-किसी औषधसे कुछ उपकार पहुंच सकता है।

कोई-कोई गर्भवती स्त्री प्रातःकाल शय्या छोड़ते ही वमन करने लगती है। वैसे स्थलमें रोगिणीको पहले कुछ खिलाये। भोजनके बाद शय्या छोड़नेसे प्रायः वमनोद्वेग नहीं लगता। वमन अनिवार्य हो जानेसे लघु पथ्यकी व्यवस्था बांधना उचित है। एकबारगी हो कोई द्रव्य अधिक खानेको न दे।

अनेक स्थलमें चमड़ेकी थैली, बरफ़से भर गर्भिणीके मेरुदण्ड, कोटिदेश एवं पाकस्थलीपर रखनेसे वमन रुक जाता है। ६० विन्दु अफीमके अरिष्ट और आधसेर शीतल जलको एकमें मिला, उससे कोई छोटासा बारीक कपड़ा भिजाये। पीछे उसी वस्त्रको पाकस्थलीपर रखनेसे वमनोद्रेक घट सकता है। किन्तु पीड़ा कठिन पड़नेपर इस सकल प्रक्रियासे कोई फल नहीं निकलता। उस समय गर्भको न गिरा देनेसे रोगिणी मर जाती है। विज्ञ चिकित्सक भिन्न इस कठिन काममें किसीको हाथ न डालना चाहिये।

गर्भावस्थामें अनेक स्त्री पत्ती, सोंधी मट्टी, खड़िया, मुलायम कङ्कड़, नाना प्रकारके कुखाद्य खाया करती हैं। इसीसे समय-समयपर पाण्डुरोग एवं उदरामय दौड़ पड़ता है। उदरामय उठनेसे असमयमें प्रसववेदना एवं गर्भस्राव भी हो सकेगा। अतएव अजीर्णका लक्षण पाते ही पहले गर्भवती नारीके सुपथ्यकी व्यवस्था बांध दे। पत्ती, मट्टी प्रभृति अखाद्य

कभी खिलाना न चाहिये। कोई-कोई कहता, कि गर्भावस्थामें सहज ही उदरके मध्य अम्ल जम जाता है। खड़िया, सोंधी मट्टी प्रभृति खानेसे वही अम्ल नष्ट हो सकेगा। किन्तु यह बात युक्तिसङ्गत नहीं सुनते। उदरामयकी चिकित्सा, अग्निमान्द्य और अतिसार शब्दमें देखो।

किसी-किसी स्थलमें गर्भिणीके रक्तका लालकण अतिशय घट जाता और रक्तमें जलाधिक्य देख पड़ता है। इसीसे देह दुर्बल, सर्वाङ्ग नीरक्त और विवर्ण पड़े और क्रमसे हस्तपद, मुख सूजेगा। अनेक स्थलमें प्रसवके बाद यह शोथ कम हुवा करता है। किन्तु स्नायुमण्डल और फेफड़ा बिगड़नेसे निश्चित मृत्यु मिलती है। फ़ास्फ़रस् लोह और मूत्रकर द्रव्य ही ऐसी अवस्थाके उत्कृष्ट औषध हैं। किन्तु गर्भावस्थामें अनेक लोहघटित औषध खिलाते डर जायेंगे। उनका मत है, कि लोहघटित औषध खिलानेसे गर्भ गिरता है। यह बात बेसरपैर नहीं समझते; फिर भी रोगिणी नितान्त दुर्बल बननेपर लोह भिन्न रोग-निवारणका प्रशस्त उपाय दूसरा कहां मिलेगा? गर्भवतीके इस प्रकार कठिन उपसर्ग उठनेसे विज्ञ चिकित्सकका परामर्श ले लेना चाहिये।

अनेक स्त्रीका सन्तान असमयमें गर्भस्रावसे नष्ट हो जाता है। क्या शीतप्रधान देश और क्या उष्ण-प्रधान स्थान सर्वत्र ही यह विघ्न अतिशय प्रबल रहेगा। जिन सकल जातिका विवाह पूर्ण यौवना-वस्थामें होता, उनके मध्य भी विस्तर गर्भस्राव पड़ता है। दूसरे, हमारे हिन्दूवोंके मध्य बाल्यविवाह प्रथा प्रचलित है; अनेक बालिका प्रायः १३।१४ वत्सरके वयःक्रममें ही गर्भवती होतीं, उनके मध्य भी गर्भ-स्राव कम नहीं पाते। सचराचर देखेंगे, कि अनेक-का ही प्रथम गर्भ चलना प्रायः मुश्किल पड़ जाता है। इधर प्रौढ़ काल पहुंचनेपर ऋतु बन्द होनेका समय लगेगा, तब भी अकालमें विस्तर स्त्रियोंका गर्भ नष्ट होगा। एक बार गर्भपात पड़नेसे इस विघ्नके पुनःपुनः होनेकी सम्भावना रहती है। डाक्टर हेगरने ठहराया, कि प्रायः आठ-दशमें एक गर्भस्राव होगा। डाक्टर ह्वाइट-हेडके मतसे, सौमें नव्वेका गर्भ गिर जाता है। उपदंश, नाना प्रकार योनिरोग, गर्भावस्थासे मर्मान्तिक शोक, प्रबल ज्वर, वमन, उदरामय, स्थानिक आघात प्रभृति गर्भस्रावका प्रधान कारण होगा।

गर्भस्राव होनेके पहले अल्प-अल्प रक्तस्राव लगता, किञ्चित् शोणित निकल बन्द हो जाता है। दो-तीन दिन बाद फिर रजः देख पड़ेगा। इसके साथ उदर और जङ्घामें वेदना दौड़नेसे किसी तरह गर्भ नहीं बचता। किन्तु केवल सामान्य वेदना किंवा सामान्य रक्तस्राव लगनेसे गर्भ बच सकता है। कोई-कोई चिकित्सक कहता, कि गर्भपातसे पहले अल्प ज्वर और शीत मालूम पड़ेगा, उसके बाद शोणित निकलेगा। इस सकल उपसर्गके साथ मूर्च्छा आनेसे गर्भिणीका प्राण बचाना भी दुष्कर देखाता है।

रक्तस्राव लगनेसे योनिके भीतर अङ्गुलि घुसेड़ दे। यदि जरायुका मुख फैल जाये, तो गर्भ बच नहीं सकता। ऐसी अवस्थामें शीघ्र-शीघ्र भ्रूण निकल जानेसे ही मङ्गल है। किन्तु यत्सामान्य रक्तस्रावके बाद जरायुका मुख सिकुड़ जानेसे विघ्न पड़नेकी उतनी आशङ्का नहीं रहती। गर्भिणीको यत्नपूर्वक शीतल गृहमें लेटा दे; मलमूत्रके त्याग करनेके लिये भी उठना-बैठना मना है। औषधके मध्य अफीमका अरिष्ट अमृततुल्य होता, दुर्बल स्त्रीको ३।४ घण्टे बाद १०।१५ विन्दु अरिष्ट अल्प शीतल जलके साथ खिलाना चाहिये। गर्भिणी सबल रहनेसे एक-एक मात्रामें २०।३० विन्दु अरिष्ट दिया जा सकता है। कोई-कोई विज्ञ चिकित्सक क्लारोडाइनको अधिक प्रशंसा करेगा। इसे १० विन्दु मात्रामें अल्प जलके साथ ३।४ घण्टे बाद खिलानेसे रक्तस्राव रुक सकता है। स्त्रीका धातु अफीमको अच्छीतरह बरदाश्त न करेगा। अतएव यह सकल औषध खाते समय देखना चाहिये, कि मादकता पहुंचती है या नहीं। चक्षु चढ़ने और मुख सूखनेसे और भी अल्प मात्रामें अधिक विलम्बपर अफीम देना चाहिये। अफीमसे दूसरा उपसर्ग उठनेकी आशङ्का है। इससे अतिशय

कोष्ठबद्ध होगा। कोष्ठबद्ध होनेमें मलकी उत्तेजनासे रक्तस्राव लग सकता है, इसलिये अल्प मात्रामें एरण्डतैल खिला अन्त्रको परिष्कार रखे। शीतल जलमें भिजा वस्त्रको पेड़पर बांध देनेसे अनेक स्थलमें उपकार पहुंचता है। इस सकल प्रक्रियाके साथ रोगिणीको केवल अल्प-अल्प लघु पथ्य खिलाना चाहिये।

जिस स्थलमें स्त्रीका पुन: पुन: गर्भ नष्ट हो जाये, उस स्थलमें विशेष विचक्षणताकी आवश्यकता आती है। उपदंश रोगका सन्देह होनेसे २ ग्रेन आयोडाइड अव पोटाश एवं २० विन्दु काडलिवर अइल एकमें मिला भोजनके बाद दुग्धके साथ खिलाना चाहिये। इसमें सारिवादि-कषाय भी उत्कृष्ट औषध है। अनन्तमूल देखो। किन्तु इस औषधके साथ कुङ्कुम, गोयाकम् और हरीतकी देना मना है। कृश स्त्रीके पक्षमें प्यारिशेज़ केमिकल फुड महोपकारी होगा, आहारान्तमें अल्प जलके साथ २०।२५ विन्दु खिलाना चाहिये। सिवा इसके ऐसे सत्पथ्यकी भी व्यवस्था बांधे, जिससे शरीर सबल पड़ जाये।

अन्त:सत्त्वा स्त्री कदाच स्वामिसहवास न करेगी। उसे पृथक् गृह और पृथक् शय्यामें सोना चाहिये। किन्तु इसके कारण उसे एकाकिनी रखना ठीक नहीं पड़ता। उससे नाना प्रकार उद्वेग और दुर्भावना उठ सकती है। जिस स्त्रीका पुन: पुन: गर्भस्राव लगे, गर्भावस्थामें उसे सर्वदा प्रसन्न रखे। नाना प्रकार आमोद-आह्लादमें मन बहला सकनेसे अनेक स्थलमें गर्भ नहीं गिरता। हमारे देशकी मृतवत्सा स्त्री देवताका कवच पहनती है। इसमें चाहे भ्रम हो, किन्तु दृढ़ विश्वासके कारण अनेक स्त्री गर्भावस्थामें निश्चिन्त रहतीं, इसीसे दो-एक सन्तान बच जाते हैं। मृतवत्सा देखो।

अतिरिक्त रक्तस्रावके बाद जरायुका मुख फैलनेसे, भ्रूण योनिके पास खिसक जाता है। उस समय उसे अनायास अङ्गुलिसे निकाल सकते हैं। किन्तु यह सकल उपसर्ग उठनेसे शीघ्र ही विज्ञ चिकित्सकका परामर्श लेना चाहिये। प्रसव देखो।

अन्त:सदस (सं० अव्य०) सभाके मध्य, महफ़िलके दरमियान, लोगोंके बीच।

अन्त:सलिलवाहिनी (सं० स्त्री०) अन्तर्मध्ये सलिलेन जलेन वहति सागरं प्राप्नोति, अन्त:सलिल-वह-णिनि-ङीप्, ३-तत्। भीतर-भीतर बहनेवाली नदी। गङ्गाके मध्य अनेक स्थलमें रेत पड़ गया है; इसलिये मानना होगा, कि गङ्गाके भीतर जल बह रहा है। स्मार्तने लिखा है,—

> "प्रवाहमध्ये विच्छेदे तु अन्त:सलिलवाहिनीत्वान्न दोष:।
> अन्यथा इदानीं गङ्गायां सागरगामिनीत्वानुपपात्त:॥"

अन्त:सलिला (सं० स्त्री०) अन्तर्गतं सलिलं जलं यस्या:, बहुव्री०। १ बालूके मध्य जल रखनेवाली नदी, जिस नदीकी बालूमें जल भरा रहे। सरस्वती, ताप्ती, निर्विन्ध्या, वेत्रवा, वैतरणी, कुमुद्वती, नीपा, महागौरी प्रभृति अनेक नदी अन्त:सलिला हैं। (त्रि०) २ अपने मध्यमें जल रखनेवाला। जैसे, नारियल, तरबूज़ प्रभृति होते हैं।

अन्त:सार (सं० त्रि०) अन्तर्देहमध्ये गृहमध्ये वा सारो बलं स्थिरांशो यस्य, बहुव्री०। बलवान्, ताक़तवर। २ धनवान्, दौलतमन्द। ३ सारगर्भित, जिसमें भीतरी निचोड़ भरा रहे। (पु०) ४ भीतरी कोष, आन्दरूनी खज़ाना।

अन्त:सुख (सं० त्रि०) अन्तरात्मानं सुखयति, अन्तर् सुख-अदन्तचु० पचादि० अच्। १ भीतरसे प्रसन्न, जिसे अन्दरूनी खुशी हासिल रहे, आत्माको सुखी रखनेवाला, जो रूहको खुश रखे। अन्तरात्मनि तदनुसन्धाने सुखं यस्य, बहुव्री०। २ आत्माके अनुसन्धानमें प्रसन्न रहनेवाला, जो रूहकी तलाशमें खुश रहता हो।

अन्त:सेन (सं० अव्य०) सेनाके मध्य, फौजके दरमियान।

अन्त:स्थ (सं० त्रि०) अन्तर्मध्ये तिष्ठति, स्था-क। १ मध्यस्थित, बीचवाला। (पु०) २ य र ल व—यह चार वर्ण स्पर्श एवं उष्मवर्णके मध्य रहनेसे अन्त:स्थ कहाता हैं।

अन्त:स्थमुद्गर (सं० पु०) अङ्गविद्यामें—कर्णकी बाहरी अस्थि, जो हड्डी कानमें सबसे बाहर पड़े।

अन्तःस्था (सं० स्त्री०) १ बलवान् अङ्गकी देवी। २ ऋग्वेदके मन्त्रकी उपमा-विशेष।

अन्तःस्वेद (सं० त्रि०) अन्तर्मध्ये स्वेदो घर्मस्तापो वा यस्य, ६-बहुव्री०। १ शरीरमध्य घर्मविशिष्ट, जिसके जिस्ममें पसीना भरा हो। २ जिसके शरीरमें ताप पहुंचा या पहुंचाया गया हो, जिस्मके अन्दर हरारत रखनेवाला। (पु०) २ हस्ती, हाथी।

अन्तक (हिं० पु०) अन्तयति समस्तं बन्धयति, अतिबन्धने णिच्-ण्वुल्। यद्वा अन्तं करोति, अन्त-णिच्-ण्वुल्। १ मृत्यु, मौत। २ यम, मौतका फ़रिश्ता। ३ रक्तकाञ्चन, कचनारका वृक्ष। ४ सन्निपात-ज्वरविशेष। इसका लक्षण यों है,—

"दाहं करोति परितापनमातनोति मोहं ददाति विदधाति शिरःप्रकम्पम्।
हिक्कां करोति कसनञ्च समाजुहोति जानीहि तं विबुधवर्जित-
मन्तकाख्यम्॥" (म० १ भ०)

अर्थात् जो शरीर जलाये और गर्माये, शिर कंपाये, हिचकी और खांसी पैदा करे, उसे अन्तक ज्वर कहते हैं।

अन्तकद्रुह् (सं० त्रि०) नाश करनेवाले प्रेत, मृत्यु अथवा यमको चिढ़ानेवाला।

अन्तकर (सं० त्रि०) अन्तं नाशं करोति, अन्त-कृ-ट उप-स०। नाशकारी, मृत्युविधायक, मार डालने वाला, जो बरबाद कर देता हो। (स्त्री०) अन्तकरी।

अन्तकरण (सं० क्ली०) अन्तं नाशं करोति, कर्तरि ल्यु; अथवा अन्त-कृ-कर्तरि ल्युट्। नाशकारी, नेस्तनाबूद कर डालनेवाला।

अन्तकर्मन् (सं० क्ली०) अन्तस्य नाशस्य परिच्छेदस्य वा कर्म क्रिया। १ नाशका करना, बरबादीका करना। कर्मधा०। २ शेषकर्म, अन्त्येष्टिक्रिया। अन्त्येष्टि देखो।

अन्तकारक (सं० त्रि०) अन्तं करोति, अन्त-कृ-ण्वुल्। १ नाशकारी, नेस्तनाबूद करनेवाला। अन्तं कारयति, अन्त-कृ-णिच्-ण्वुल्। २ नाश करानेवाला, जो नेस्तनाबूद करवा डाले।

अन्तकारिन् (सं० त्रि०) अन्तं करोति, अन्त-कृ-णिनि, ५-तत्। १ अन्तकारक, विनाशकारक, जो नेस्तनाबूद कर डाले। २ नाश करानेवाला, जो नेस्तनाबूद कराये।

अन्तकाल (सं० पु०) अन्तस्य नाशस्य कालः समयः, ६-तत्। मृत्युकाल, विनाश, मरनेका वक्त, मौत।

अन्तकृत् (सं० त्रि०) अन्तं नाशं करोति, अन्त-कृ-क्विप्, ६-तत्। १ विनाशक, नाश करनेवाला, जो नेस्तनाबूद कर डालता हो। (पु०) २ मृत्यु, मौत।

अन्तकृद्दशा (सं० स्त्री०) जैन धर्मपुस्तक-विशेष, जैनी मज़हबकी एक खास किताब। इसमें तीर्थङ्करका कर्तव्य कर्म दश अध्यायपर लिखा गया है। श्वेताम्बर जैनयोंके ग्यारह धर्मपुस्तक और एक परिशिष्ट पाते हैं। १—आचाराङ्ग, इस पुस्तकमें निष्ठाचार और वशिष्ठ प्रभृति साधकका अनुष्ठित कर्म कहा है। २—सूत्रकृदङ्ग, यह उपदेशमालासे पूर्ण है। ३—स्थानाङ्ग, शुद्धाचार एवं देहसे जिस जिस दश इन्द्रियपर जीवात्मा अधिष्ठित रहता, उसका वृत्तान्त इस पुस्तकमें बताया है। ४—समवायाङ्ग, इसमें एकशत पदार्थका विवरण है। ५—भगवत्यङ्ग, इसमें पूजा-पद्धतिका नियम है। ६—ज्ञातधर्मकथा, इस पुस्तकमें लिखा है, पुण्यात्मा कैसे ज्ञान पाते हैं। ७—उपासकदशा, इस ग्रन्थमें श्रावक जैनियोंके आचारकी बात दश अध्यायपर लिखी है। ८—अन्तकृद्दशा, इसमें तीर्थङ्करका कर्तव्य कर्म दश अध्यायपर कहा है। ९—अनुत्तरोपपातिकदशा, इसमें तीर्थङ्करका जन्मविवरण दश अध्यायपर वर्णित है। १०—प्रश्नव्याकरण, यह जैनधर्म प्रश्नके व्याकरणका पुस्तक है। ११—विपाकसूत्र, इसमें कर्मफलकी कथा निबद्ध है।

अन्तग (सं० त्रि०) अन्तं शेषसीमानं गच्छति, अन्त-गम-ड, उपस०। १ अन्तगामी, पारगामी, शेषदर्शी, अखीरतक पहुंचनेवाला, जो पार कर जाये, जिसे सिरा देख पड़े। "अपि वेदान्तगो द्विज।" (स्मृति) २ सर्ववेदान्तदर्शी, पूरा वेदान्त जाननेवाला। अन्ते गायति। ३ शेष गायक, सबसे पीछे गानेवाला, जो अखीरमें तान छेड़े।

अन्तगति (सं० त्रि०) अन्तको जाता हुवा, जो मर रहा हो।

अन्तगमन (सं० क्लो०) १ किसी पदार्थके शेषका जाना, समाप्ति। २ शेषके प्रति प्रस्थान, मृत्यु, मौत।

अन्तगामिन्—अन्तगति देखो।

अन्तचर (सं० त्रि०) अन्ते शेषे चरति, अन्त-चर-ट अधिकरणे। शेषगामी, अखीरतक पहुंचनेवाला, जो हद्दतक जाये।

अन्तज (सं० त्रि०) अन्तमें उत्पन्न, जो अखीरमें पैदा हुवा हो।

अन्तजाति—अन्त्यजाति देखो।

अन्ततस् (सं० अव्य०) अन्त-तसिल्। १ अन्तसे, अखीरसे, बातपर। २ अन्तमें, अखीरको, सबसे पीछे। ३ निम्न पथमें, सबसे नीचो राहपर। ४ भागमें, हिस्सेसे। ५ अन्दर, भीतर। स्थलविशेषमें यह शब्द अपेक्षा, सम्भावना, अवयव, शासन, उत्प्रेक्षा यह सकल अर्थ बताता है।

अन्तदीपक (सं० क्लो०) वाक्पटुताका अङ्गविशेष, सनअत कलामका कोई नक्श।

अन्तपाल (सं० पु०) अन्तं द्वाररूपसीमानं पालयति पालति वा, अन्त-पाल-णिच् पचादि० अच्। द्वारपाल, द्वाररक्षक, दरबान्।

अन्तभव (सं० त्रि०) अन्तमें उपस्थित, अन्तिम, अखीरमें रहनेवाला, आखिरी।

अन्तभाज् (सं० त्रि०) किसी शब्दके अन्तमें उपस्थित, जो लफ़्ज़के अखीरमें खड़ा रहे।

अन्तम (सं० त्रि०) अन्तिक-तमप्। अत्यन्त निकटस्थ, सबसे पासवाला, जो निहायत नज़दीक हो।

अन्तर् (सं० अव्य) अम-अरन् तुडागमश्च। १ मध्य, बीचमें। २ प्रान्तमें, भीतर। ३ हां।

"अन्तर्मध्ये तथा प्रान्ते स्वीकारार्थेऽपि दृश्यते।" (विश्व)

अन्तर (सं० क्लो०) अन्तं कार्यशेषं सीमानं वा राति ददाति, अन्त-रा-क। १ अवकाश, फुरसत। २ अवधि, मुद्दत। ३ परिधान वस्त्र, पहननेका कपड़ा। ४ अन्तर्द्धान, छिपाव। ५ भेद, फर्क। ६ परमात्मा। ७ परस्पर वैलक्षण्य रूप। ८ विशेष, खास। ९ तादर्थ्य, निमित्तार्थ, मतलबकी बात। १० छिद्र, छेद। ११ आत्मीय, अपना आदमी। १२ वहिस्, बाहर। १३ व्यवधान, रोक। १४ मध्य, बीच। १५ विरल, अनोखा। १६ सदृश, बराबर। (त्रि०) १७ आसन्न, निकटस्थ, नज़दीक। १८ अन्तर्गत, शामिल। १९ अपसारित, निकाला हुवा।

'अन्तरमवकाशावधि परिधानान्तर्द्धि भेदतादर्थ्ये।
छिद्रात्मीय विनावहिरवसर मध्ये ऽन्तरात्मनि।' (अमर)

अवकाशे यथा—"भअवदि वसुन्धरे देहि मे अन्तरम्।" (शकुन्तला) हे पृथिवी हमें अवकाश दीजिये। मध्ये यथा—"तदन्तरे सा विरराज धेनुः।" (रघु० २।२०) उनके मध्य वह गाय शोभ रही थी। विशेषे यथा—"क्रियान्तरमन्तराय-मन्तरेण।" (मुद्राराक्षस) विघ्नकर कार्य-विशेष न होनेसे। विरले यथा—"ततान्तरं सान्तरवारिशीकरैः।" (भारवि ४।२०) विरल जलकण द्वारा व्याप्त मध्यभाग। छिद्रे यथा—

"आलोलपादपलतान्तरनिर्गतानाम्।" (भारवि ५।३१)

चञ्चल तरुशाखाके रन्ध्र मध्य निर्गतोंका। व्यवधाने यथा,—"अनोकहान्तरे।" (भारवि १४।७०) वृक्षकी आड़में। भेदे यथा—"शरीरस्यगुणानाञ्च दूरमत्यन्तमन्तरम्।" (हितोप०) शरीर और गुणोंका भेद बहुत बड़ा है। अन्तर शब्दका कहीं अन्य अर्थ भी आता है। यथा—"अन्यो राजा राजान्तरम्।" (सिद्धान्तकौ०) अन्य राजा। फिर "वनान्तरादुपावृत्ते।" (रघु १।४९) अन्य वनसे आगत। वहिरर्थे यथा—'अन्तरे अन्तरा गृहाः वाह्य इत्यर्थः।' (सिद्धान्तकौ०) बाहरका घर। परिधानवस्त्र अर्थे यथा—"अन्तरे अन्तरा वा शाटकाः परिधानीया इत्यर्थ।" (सिद्धान्तकौ०) पहननेकी धोती या साड़ी। सदृशे यथा—"स्थानेऽन्तरतमः।" पा १।१।५०। आदेशकी प्राप्ति होनेसे किसी वर्णादिके स्थानमें उसके सदृश वर्णका ही आदेश आता है। गणितशास्त्रमें—व्यवकलित अङ्क या बाकीको अन्तर कहते हैं।

अन्तरंश, अन्तरांश (सं० पु०) वक्षःस्थल, सीना, छाती।

अन्तरग्नि (सं० पु०) अन्तरुदरमध्यस्थितोऽग्निः, कर्मधा०। जठरानल, जो आग पेटमें खाना हज़म करती है। (अव्य०) अग्नेरन्तर्मध्ये, अव्ययी०। अग्निके मध्य, आतिशके दरमियान, आगके बीच।

अन्तरङ्ग (सं० त्रि०) अन्तरं हृद्गतं गच्छति

अववुद्यते, अन्तर-गम-खच् डित्वात् मकार लोपः। १ आत्मीय, अपना, भीतरी, अन्दरूनी हाल जाननेवाला। अथवा अन्तरे निकटे अङ्गं शरीरं यस्य; पृषो० अकारलोपः, बहुव्री०। २ आत्मीय व्यक्ति, घरका आदमी। अथवा अन्तरं भिन्नं अङ्गं शरीरमात्रं यस्य। ३ अङ्ग भिन्न, जिसका जिस्म ही सिर्फ अलग रहे, दूसरी बातें सब एक हों। (अव्य०) अङ्गदेशस्य अन्तर्मध्ये, अव्ययी०। ४ अङ्गदेशके मध्य, अङ्ग मुल्कके दरमियान। (क्ली०) अन्तर्निकटस्थं अङ्गं गुणः, कर्मधा०। ५ व्याकरण शास्त्रको प्रकृतिका कार्य। अन्तर्भूतं अङ्गं निमित्तं यस्य यत्र वा, बहुव्री०। प्रकृतिके कार्यका विधि, प्रकृति-कार्यविधायक शास्त्र, बहिरङ्ग प्रत्ययका कार्य। बहिरङ्ग कार्यसे अन्तरङ्ग कार्य बलवान् होता है। यथा,—

"बहिरङ्गविधिभ्यः स्यादन्तरङ्गविधिर्बली।
प्रत्ययाश्रितकार्यन्तु बहिरङ्गमुदाहृतम्।
प्रकृत्याश्रितकार्यं स्यादन्तरङ्गमिति ध्रुवम्।"

बहिरङ्गके विधिसे अन्तरङ्गका विधि ही बलवान् है। प्रत्ययका कार्य बहिरङ्ग और प्रकृतिका कार्य अन्तरङ्ग कहायेगा।

अन्तरङ्गतर (सं० त्रि०) अतिशयेन अन्तरङ्गम्, अन्तरङ्ग-तरप्। १ अतिशय आत्मीय, निहायत नजदीकी। (क्ली०) २ प्रकृतिका प्रथम कार्य।

"प्रकृतेः पूर्वपूर्वं स्यादन्तरङ्गतरन्तथा।"

अन्तरङ्गता (सं० स्त्री०) आत्मीयता, स्वसम्पर्कीय भाव, अपनपो, अपना होनेकी हालत।

अन्तरङ्गत्व (सं० क्ली०) अन्तरङ्गता देखो।

अन्तरचक्र (सं० क्ली०) अन्तरं मध्यवर्ती चक्रम्, कर्मधा०। तन्त्रोक्त देह मध्यस्थ पद्माकार छः चक्र। उनके नाम यह हैं,—१ मूलाधार, २ स्वाधिष्ठान, ३ मणिपूरक, ४ अनाहत, ५ विशुद्ध और ६ आज्ञाचक्र। इसका विशेष विवरण षट्चक्र शब्दमें देखो।

अन्तरज्ञ (सं० त्रि०) अन्तरं अन्तर्भूतविषयं विशेषं वा जानाति, अन्तर-ज्ञा-क, ६-तत्। मर्मज्ञ, विशेषज्ञ, भीतरी हाल जाननेवाला, जो दिलकी बात जान जाये।

अन्तरण (सं० क्ली०) अन्तरं व्यवधानं करोति, अन्तर-णिच् भावे ल्युट्। व्यवधानका डालना, अन्तरित करना, आड़ पहुंचाना।

अन्तरतत् (सं० त्रि०) मृत्यु या विनाश फैलाता हुवा, जो मौत और ज़वाल लाता हो।

अन्तरतम (सं० त्रि०) अतिशयेन अन्तरं सदृशं, अन्तर-तमप्। १ अतिशय सदृश, अतिशय आत्मीय, निहायत नज़दीकी। २ हार्दिक, दिली।

अन्तरतस् (सं० अव्य०) सप्तम्यर्थे तसिल्। मध्यमें, दरमियान्, बीचों बीच।

अन्तरतर (सं० त्रि०) अधिक आत्मीय, ज्यादातर नजदीक।

अन्तरद (सं० त्रि०) हृदयविदारक, दिल तोड़नेवाला।

अन्तरदिशा (सं० स्त्री०) अन्तरदेश देखो।

अन्तरदृश् (सं० पु०) अन्तरे दृगवधानं यस्य, दृश-क्विप, बहुव्री०। १ मर्मज्ञ, सूक्ष्मदर्शी, मतलब समझनेवाला, बारीकबीन्।

अन्तरदेश (सं० पु०) कर्मधा०। मध्यदेश, दरमियानी मुल्क। इसका विवरण मध्यदेश शब्दमें देखो।

अन्तरधुरा—युक्तप्रदेशके अल्मोड़ा ज़िलेकी एक घाटी। यह तिब्बतकी सीमापर ३०° २५´ उ० अक्षांश, और ८०° ११´ पू० द्राघिमांशमें अवस्थित है। तनकपुरसे ज्ञानिमा और गरटोककी बाज़ारको जो राह निकली है, उसमें पड़नेके कारण इस घाटीका बड़प्पन अधिक है। किन्तु यात्रियोंके लिये यह दुर्गम है। वर्षमें ग्यारह महीने यह बरफ़से ढकी रहती है।

अन्तरपुरुष, अन्तरपूरुष (सं० पु०) कर्मधा०। देहके मध्यस्थित पुरुष, परमेश्वर, अन्तर्यामी।

अन्तरपूजा (सं० स्त्री०) अन्तरे मनोमध्ये पूजा मनःकल्पित वस्तुना अर्चना। तन्त्रोक्त मनःकल्पित द्रव्य द्वारा पूजा। अन्तःपूजा शब्द देखो।

अन्तरप्रभव (सं० पु०) अन्तरेभ्यो भिन्नवर्णमातापितृभ्यः प्रभवति; प्र-भू-अच्, ५-तत्। सङ्कीर्ण वर्ण, मूर्धाभिषिक्त, मिली हुयी जातिका। अन्तरप्रभव दो प्रकारका होता है। उसमें उत्तमवर्ण पुरुष और उसकी अपेक्षा हीनवर्ण स्त्रीके मिलनसे जो सन्तान जन्म ले, वह

अनुलोमज कहायेगा। जैसे, क्षत्रियाके गर्भसे ब्राह्मणका औरसजात पुत्र है। हीनवर्ण पुरुष और उत्कृष्ट वर्णकी स्त्रीके समागमसे जो पुत्र पैदा हो, वह प्रतिलोमज कहाता है। जैसे, ब्राह्मणीके गर्भसे क्षत्रियादिका उत्पादित पुत्र है।

"भगवन् सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः।
अन्तरप्रभवानाञ्च धर्मान्नो वक्तुमर्हसि॥" (मनु १।२)

अन्तरप्रश्न (सं० पु०) १ भीतरी प्रश्न, अन्दरूनी सवाल। २ पहले कही हुयी बातसे निकलनेवाला प्रश्न, जो सवाल पहले कहे हुये सखुनसे पैदा हो।

अन्तरय (सं० पु०) इण् अच् अयः; अन्तर्मध्ये अयः गमनम्, ७-तत्। १ मध्यगमन, व्यवधान, दरमियानी दाख़िला, रोक। (त्रि०) अन्तरं याति या-क। २ देहमध्यस्थित, चित्तगत, जिस्मके बीच ठहरा हुवा, जो दिलमें समा गया हो।

अन्तरयण (सं० क्ली०) अन्तर्मध्ये अयनं गमनम्; इण्-ल्युट् भावे ७-तत्। मध्यमें गमन, बीचका दाख़िला। (त्रि०) अन्तर्मध्ये अयनं गमनं यस्य। २ मध्यगत, बीचमें पहुंचा हुवा। 'अन्तरयण' शब्द जब देशका अर्थ दे, तब णकारके स्थानमें नकार होता है।

अन्तरवयव (सं० पु०) भीतरी अङ्ग अथवा भाग, अन्दरूनी अज़ो या हिस्सा।

अन्तरशायिन् (सं० पु०) अन्तरे देहमध्ये शेते तिष्ठति; शी-णिनि। चित्तस्थ, जीव, दिलमें रखनेवाला रूह।

अन्तरस्थ (सं० पु०) अन्तरे देहमध्ये तिष्ठति; अन्तर-स्था-क, ७-तत्। १ देहमध्यस्थ जीव, जिस्ममें रहनेवाला रूह। (त्रि०) २ मध्यस्थित, बीचमें रहनेवाला। ३ पृथक्, निराला।

अन्तरस्थायिन्—अन्तरस्थ देखो।

अन्तरस्थित—अन्तरस्थ देखो।

अन्तरा (सं० अव्य०) अन्तरेति, इण्-डा। अन्तरान्तरेण युक्ते। पा २।३।४। १ निकट, नज़दीक, पास। २ मध्यमें, बीचो बीच। ३ विना, बग़ैर।

'अन्तरापि विनार्थे स्यान्मध्यार्थे निकटार्थयोः।' (विश्व)

मध्ये यथा—

"अन्तरा गमनेनैव विद्यां नैव पठेन्नरः।" (स्मृति)

गुरु और शिष्यके मध्यसे किसीके निकल जानेपर उस दिन फिर पढ़ना न चाहिये। ४ पथपर, राहसे। ५ उस-बीच। ६ जब-तब। किञ्चित् कालके लिये, थोड़ी देरके वास्ते। ७ गीतके दूसरे पदको भी अन्तरा कहते हैं।

अन्तरांश—अन्तरंश देखो।

अन्तराकाश (सं० पु०) विशुद्ध व्योम, पाक आसमान् या निर्गुण ब्रह्म, जो मनुष्यके आत्मा या इन्सानी रूहमें रहता है।

अन्तराकूट (सं० क्ली०) गुप्त विचार, पोशीदा इरादा।

अन्तरागम (सं० पु०) व्याकरणमें—दो अक्षरके मध्य अतिरिक्त वृद्धि।

अन्तरागार (सं० पु०) भवनका भीतरी भाग, मकानका अन्दरूनी हिस्सा।

अन्तरात्मन् (सं० पु०) अन्तर्हृदयमध्यवर्ती आत्मा, कर्मधा०। १ जीवात्मा। २ भीतरी समझ, अन्दरूनी ख़याल, हृदय, दिल, मस्तिष्क, दमाग़।

अन्तरामिष्टक (सं० अव्य०) अपने और यज्ञीय ईंटके बीच।

अन्तरापण (सं० पु०) भीतरी हाट, अन्दरूनी बाज़ार, जो हाट शहरके भीतर लगे।

अन्तरापत्या (सं० स्त्री०) अन्तर्गर्भमध्ये अपत्यं सन्ततिः यस्याः, बहुव्री०। गर्भवती, हामिला औरत, जिस स्त्रीके पेटमें बच्चा मौजूद रहे।

अन्तराभर (वै० पु०) १ समय संहार, वक्तकी बरबादी। २ मध्य अथवा निकटका लाना, बीच या नज़दीकका ले जाना। ३ प्राप्ति, हासिल।

अन्तराभवदेह (सं० क्ली०) अन्तरा मरणजन्मनोरन्तराले भवो देहो यस्य, बहुव्री। गन्धर्व, आत्माकी जो स्थिति मृत्यु और पुनर्जन्मके बीच हो।

अन्तराभवसत्व (सं० क्ली०) अन्तरा मरणजन्मनोऽन्तराले भवं स्थितं प्राणी। गन्धर्व।

अन्तराय (सं० पु०) अन्तरं कार्यस्थान्तर्द्धानं बाधमिति यावत् अयते आप्नोति, अन्तर कर्तरि अच्;

अन्तरस्य आयः प्राप्तिर्येन, आय इति इन् भावे घञ्। विघ्न, प्रत्यूह, प्रतिबन्ध, वाधा, खतरा, खटका, रोक, जिसके द्वारा कार्यमें वाधा पड़े, जो चीज़ काममें खलल डाले।

अन्तरायाम (सं० पु०) आक्षेपक भेद, ऐंठन, मरोड़, जकड़। इसका लक्षण यों लिखते हैं,—

"अङ्गुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः।
स्नायुप्रतानमनिलस्तम्यः क्षिपति वेगवान्॥
विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वः कफं वमन्।
अभ्यन्तरे धनुरिव यदा नमति मानवः।
तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली॥" (भावप्रकाश)

अन्तराराम (सं० पु०) आरम्यते, आराम-भावे घञ्—अन्तरात्मनि आराम आनुरक्तिर्यस्य, बहुव्री०। आत्मानुरत, आत्मविषयमें अभिरत, दिल ही दिलमें खुश रहनेवाला शख्स।

अन्तराल (सं० क्ली०) अन्तरं व्यवधानं आ सम्यक् रूपेण लाति गृह्णाति, अन्तर-आ-ला-क। मध्यभाग, अभ्यन्तर, अवकाश, व्यवधान, दरमियानी हिस्सा, दराज, खाली जगह, फर्क।

'अभ्यन्तरन्त्वन्तरालम्।' (अमर)

अन्तरालदिक् (सं० स्त्री०) अन्तराला दिक्, कर्मधा०। दो दिक्के मध्यस्थित कोण, जो कोना दो तर्फके दरमियान हो। जैसे अग्निकोण, ईशानकोण इत्यादि रहता है।

अन्तरावेदिन् (सं० त्रि०) अन्तरा मध्यं वेत्ति, विद्-णिनि। १ मर्मज्ञ, मतलब समझने वाला, जो भीतरी हाल जानता हो। अन्तरां भिन्नवर्णां स्त्रियं विन्दति विवाहरूपेण लभते, अन्तरा आ-विद्-तुदा० णिनि। २ अपनी अपेक्षा हीनवर्णा स्त्रीसे विवाह करनेवाला व्यक्ति, जो शख्स अपने खान्दानसे हकीर औरतके साथ शादी करे।

अन्तरावेदि (सं० स्त्री०) अन्तरा मध्यस्था वेदिः, उण् इन्। १ परिष्कृता भूमि, साफ की हुयी ज़मीन। २ युध्यमान दो गजके मध्यस्थित मृत्तिकाकी वेदि, जो चबूतरा दो लड़नेवाले हाथियोंके बीच बने।

अन्तरावेदी (सं० स्त्री०) अन्तरा मध्यस्थ वेदी वा ङीप। १ मृन्मय-परिष्कृता भूमि, मट्टीसे साफ़ की हुयी ज़मीन। स्तम्भोपरिस्थित अट्टालिका, जो बरामदा खम्भेपर खड़ा हो।

अन्तराशृङ्ग (सं० अव्य०) शृङ्गोंके मध्य, सींगोंके बीच।

अन्तरिक्ष, अन्तरीक्ष (सं० क्ली०) ईक्ष्यते दृश्यते तेन स ईक्षः दृक्व्यापारस्य अविघ्न इत्यर्थः। ईक्ष इति घञ्० क्ष्नः। अन्तर्मध्यं ईक्षं दृष्टिविघातशून्यं यस्य, बहुव्री०। १ आकाश, आसमान्, जिस वस्तुका मध्यभाग व्याघात शून्य रहे। 'नभोऽन्तरिक्षं गगनं।' (अमर) निरुक्तमें अन्तरिक्ष शब्दके सोलह नाम लिखे हैं,—१ अम्बर, २ वियत्, ३ व्योम, ४ वर्हिः, ५ धन्व, ६ अन्तरिक्ष, ७ आकाश, ८ आप, ९ पृथिवी, १० भू, ११ स्वयम्भू, १२ अध्वा, १३ पुष्कर, १४ सगर, १५ समुद्र और १६ अध्वर।

(वै०) २ जीवनके तीन प्रधान भागमें बीचका भाग। ३ वायुमण्डल। ४ वायु। ५ अभ्रक, अबरक।

अन्तरिक्षस्थित (सं० त्रि०) आकाशवासी, आसमान्में रहनेवाला।

अन्तरिक्षग (सं० पु०) पक्षी, परिन्द, चिड़िया।

अन्तरिक्षचर—अन्तरिक्षग देखो।

अन्तरिक्षजल (सं० क्ली०) गगनाम्बु, आसमान्का पानी, जो पानी मेघसे गिरे।

अन्तरिक्षप्रा (सं० त्रि०) अन्तरिक्षं प्राति पूरयति, अन्तरिक्ष प्रा-पूरणे-विच्। अन्तरिक्षपूरक, आसमान्को भर देनेवाला, जो अपने तेजसे अन्तरिक्षको भर दे।

अन्तरिक्षप्रुत् (सं० त्रि०) अन्तरिक्षं आकाशं प्रवते चरति, अन्तरिक्ष-प्रु त् गतौ क्विप्। अन्तरिक्षचर, खेचर, आसमान्पर चलनेवाला।

अन्तरिक्षलोम (सं० पु०) आकाश, आसमान्, जो दुनिया आसमानमें अनोखे तौरपर रहे।

अन्तरिक्षसंशित (सं० पु०) वायुमण्डलमें पैनाया हुवा, जिसकी शान आसमान् पर रखी जाये।

अन्तरिक्षसद् (सं० त्रि०) अन्तरिक्षे आकाशे सीदति चरति, अन्तरिक्ष-सद गतौ क्विप्। आकाशचर, आसमान्में उड़नेवाला।

अन्तरिक्षसद्य (सं० क्ली०) अन्तरिक्षे सद्यते, अन्तरिक्ष-

सद-भावे यत्। १ अन्तरिक्षसदन, आसमान्‌का मकान्। २ अन्तरिक्षगमन, आसमानको जाना।

अन्तरिक्षोदर (सं० त्रि०) आकाश-जैसा उदर रखनेवाला, जिसका पेट आसमान्‌के मानिन्द लम्बा चौड़ा हो।

अन्तरिक्ष्य (सं० त्रि०) अन्तरिक्षे भव यत्। अन्तरिक्षजात, आसमान्‌से पैदा हुवा।

अन्तरित (सं० त्रि०) अन्तः अन्तर्द्धानं इतं प्राप्तम्; २-तत्, अन्तर्-इन्-कर्तरि क्त। १ अन्तर्गत, भीतर पहुंचा हुवा, भीतरी, छिपा, दबा, परदेसे ढका। अन्तरं व्यवधानं करोति, णिच् कर्मणि क्त। २ व्यवधानप्राप्त, अन्तर्हित, अदृश्य, व्यवधान-प्रापित, गया गुज़रा, पीछे हटा, खींचा गया, गुम हुवा, जो मर गया हो। ३ पृथक्‌कृत, अलग किया गया। ४ आच्छादित, रोका हुवा। ५ तिरस्कृत, लानत भेजा हुवा। (क्ली०) ६ व्यवकलित अङ्क, जो अङ्क बाकी पड़े।

अन्तरिन्द्रिय (सं० क्ली०) अन्तरन्तर्गतमिन्द्रियम्, कर्मधा०। अन्तःकरण, भीतरी इन्द्रिय। मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्त इनको अन्तरिन्द्रिय कहते हैं।

अन्तरीक्ष, अन्तरिक्ष देखो।

अन्तरीक्षग—अन्तरिक्षग देखो।

अन्तरीक्षचर—अन्तरिक्षचर देखो।

अन्तरीक्षजल—अन्तरिक्षजल देखो।

अन्तरीप (सं० पु०-क्ली०) अपां अन्तर्गतम्; अच् स०, ६-तत्। समुद्रके जलमध्य घुसी हुयी किञ्चित् भूमिका अग्रभाग, रास। (Cape)

अन्तरीय (सं० क्ली०) अन्तरे भवः, गहादित्वात् छ। १ परिधानवस्त्र, भीतरी पोशाक। २ अधोवस्त्र, नीचेका कपड़ा, धोती। 'अन्तरीयोपसंव्यानपरिधानान्यधोंऽशुके।' (अमर)

अन्तरुदक (सं० अव्य०) उदकस्य अन्तर्मध्ये, अव्ययी०। जलके मध्य, पानीमें।

"अन्तरुदके आचान्तः अन्तरेव पूतो भवति।" (स्मृति)

अन्तरुष्य (वै० क्ली०) गुप्त निवास-स्थान, रहनेकी पोशीदा जगह।

अन्तरुहा (सं० स्त्री०) श्वेतदूर्वा, सफेद दूब।

अन्तरे (सं० अव्य०) अन्तरेति, इण्-विच्। मध्य, बीच। 'अथान्तरेऽन्तरा। अन्तरेण च मध्ये स्युः।' (अमर)

अन्तरेण (सं० अव्य०) अन्तरेति इण्-ण। अन्तरान्तरेण युक्ते। पा २।३।४। १ विना, बगैर। २ मध्य, बीच।

'अन्तरेणान्तर्विनार्थयोः।' (हेम)

अन्तर्गङ्गा (सं० स्त्री०) गङ्गा नदी। लोग कहते, कि गङ्गा पृथिवीके भीतर बह महिसूर राज्यके किसी पवित्र झरनासे सम्बन्ध रखती हैं।

अन्तर्गडु (सं० पु०) अन्तः पृष्ठमध्यस्थ मांसरोगभेदः, कर्मधा०। १ पृष्ठगुड़, कुब्ज, कूबड़। (त्रि०) अन्तर्पृष्ठमध्ये गडुर्यस्य। २ कुब्जप्राणी, कुबड़ा। ३ निरर्थक, वृथा, बेफायदा, फज़ूल।

'गडुः पृष्ठगुडे कुब्जे।' (हेम)

अन्तर्गत (सं० त्रि०) अन्तर्हृन्मध्ये गतम्, ७-तत्। १ हृदयस्थ, दिलका। २ विस्मृत, भूला हुवा। 'अन्तर्गतं विस्मृतं स्यात्।' (अमर) ३ मध्यगत, बीचवाला।

'अन्तर्गतं पुनः। मध्यप्राप्तविस्मृतयोः।' (हेम)

४ अन्तर्हित, मृत, गुम, मुर्दा।

अन्तर्गतमनस् (सं० त्रि०) भीतरसे मन लगाये हुवा, जिसका दिल अन्दरूनी तर्फ़ झुका रहे, गम्भीरविचार विशिष्ट, गहरे ख्यालमें पड़ा, दुःखित, ग़मगीन, क्षुब्ध, घबड़ाया।

अन्तर्गतोपमा (सं० स्त्री०) अप्रकट उपमा, पोशीदा तशबीह।

अन्तर्गर्भ (सं० त्रि०) अन्तर्मध्यस्थो गर्भो यस्य, बहुव्री०। गर्भयुक्त, हामिला। (स्त्री०) अन्तर्गर्भा।

अन्तर्गर्भिन् (सं० त्रि०) अन्तर्मध्ये गर्भो अस्त्यस्य इनि। गर्भयुक्त, जिसके हमल हो। (स्त्री०) अन्तर्गर्भिणी।

अन्तर्गिर (सं० अव्य०) गिरिषु पर्वतेषु अन्तः विभक्त्यर्थे अव्ययी०। पर्वतके मध्य, पहाड़के बीच।

"अध्यास्तेऽन्तर्गिरं।" (भट्टि ५।८५)

अन्तर्गिरि—अन्तर्गिर देखो।

अन्तर्गुदावलय (सं० पु०) इन्द्रियके छेदको बन्द करनेवाला पट्टा।

अन्तर्गूढ़विष (सं० त्रि०) भीतर विष छिपाये हुवा, जिसने अपने अन्दर ज़हर छिपा रखा हो।

अन्तर्गृह (सं० क्ली०) अन्तर्मध्यस्थं गृहम्, कर्मधा०। १ काशी-स्थित सात आवरणयुक्त पुण्य स्थान। काशी देखो। २ गृहविशेष, मध्यस्थित गृह, खास मकान, बीचवाला घर। (अव्य०) गृहेषु अन्तः। ३ गृहके मध्य, मकान्के दरमियान्, घरके बीच।

अन्तर्गेह—अन्तर्गृह देखो।

अन्तर्घण, (सं० पु०) अन्तर्हन्यते क्रोड़ीभवत्यस्मिन्, अन्तर्-हन्-अप्, पृषो० घनादेश णत्वम्। द्वारके बाहरका खपरैल, जो छोटा मकान दरवाजेके बाहर खपरे या घास-फूससे छा कर बनाते हैं।

"तस्मिन्नन्तर्घणेऽपश्यन् प्रघाणे सौधसद्मनः।" (भट्टि)

अन्तर्घन (सं० पु०) अन्तर्मध्येन क्रोड़हृदाद्यङ्गेन हन्यते इति प्रसिद्ध क्रियासु पीड्यतेऽस्मिन्, अन्तर्-हन्-अधिकरणे अप्; घनश्चादेशः। अन्तर्घनो देशे। पा ३।३।७८। १ ग्रामके बाहरका स्थान, गांवके बाहरकी जगह। २ मल्लोंकी क्रीड़ाका स्थान, अखाड़ा, जहां पहलवान् कुश्ती लड़ें।

अन्तर्घात (सं० पु०) मध्यका आघात, दरमियानी चोट।

अन्तर्ज (सं० त्रि०) मध्यभागमें उत्पन्न, जो भीतरी जगह पैदा हुवा हो।

अन्तर्जठर (सं० अव्य०) जठरस्य मध्ये, अव्ययी०। १ जठरके मध्य, उदरमें, मेदेके दरमियान, पेटमें। (क्ली०) २ उदरस्थ कोष्ठविशेष, मेदा, पेटकी वह थैली जिसमें खाना पचता है। (अव्य०) ३ कुक्षिमध्य, कोख-बीच।

अन्तर्जन्मन् (सं० क्ली०) भीतरी जन्म, अन्दरूनी पैदायश।

अन्तर्जम्भ (सं० पु०) जबड़ेका भीतरी भाग, जबड़ेका जो हिस्सा अन्दर रहे।

अन्तर्जल (सं० पु०) अन्तश्चरणात् नाभिपर्यन्तं जलं येन आचारेण यस्मिन् वा, बहुव्री०। मृत्युकाल पहुंचनेपर बन्धुगण कर्तृक मुमूर्षु व्यक्तिके अर्धाङ्गका जलमें डुबाना। अन्तर्जलाचार देखो।

अन्तर्जलचर (सं० त्रि०) पानी में पैठते हुवा, जो आबके अन्दर दाखिल हो रहा हो।

अन्तर्जलाचार (सं० पु०) अन्तर्मध्यदेशपर्यन्तं जले मज्जनरूपाचारः, ७-तत्। आसन्न मृत्युकाल आनेपर मुमूर्षु व्यक्तिको पैरसे नाभितक जलमें डुबाना। पवित्र स्थानमें प्राण छोड़नेपर मुक्ति मिलती है। इसी विश्वास पर अनेक वृद्धावस्थामें काशीवासी अथवा गङ्गावासी बन जाते हैं।

"गङ्गायाञ्च जले मोक्षो वाराणस्यां जले स्थले।
जले स्थले चान्तरीक्षे गङ्गासागरसङ्गमे॥" (पद्मपुराण)

अर्थात् गङ्गाके जलमें मोक्ष मिलता है। काशीमें क्या जल क्या स्थल—सर्वत्र ही प्राण छोड़नेसे मुक्ति मिलेगी। फिर गङ्गासागर-सङ्गमपर जल-स्थल, अन्तरीक्ष कहीं भी प्राण छूटें, मुक्ति हो जायगी।

जो तीर्थवासी नहीं बनता, मृत्युकाल उपस्थित पा बन्धुबान्धव उसको गङ्गायात्रा करावेंगे। जिस समय प्राण कण्ठमें जा ठहरते हैं और रोगी नाभिश्वास निकालता, उस समय आत्मीय स्वजन उसे पैरसे नाभि पर्यन्त गङ्गाके जलमें डुबा देते हैं। कोई पैरके दोनो अङ्गुष्ठ मट्टीमें दबायेंगे। पुत्र झटसे पहुंचकर मुमूर्षु व्यक्तिका मस्तक अपनी गोदमें रख लेता है। किन्तु शास्त्रमें मस्तकके नीचे बालोंसे तकिया बनानेकी व्यवस्था बताते हैं। पीछे चारों ओर बन्धुबान्धव उच्चैःस्वरसे—"राम, नारायण, गङ्गा, ब्रह्म"—इसीतरह देवताका नाम लेंगे। कोई-कोई मुख, कर्ण, कण्ठ और चक्षुमें तुलसीपत्र डाल देते हैं। दूसरे कपाल और वक्षःस्थलमें गङ्गा-मृत्तिका लगा उसपर राम नाम लिख देंगे।

गङ्गायात्रा देनेपर दैवात् यदि कोई न मरा, तो लोग उसे गृहस्थके अमङ्गलका कारण समझते हैं। इसलिये अनेक दोषखण्डनके बाद कोई मुमूर्षको मकानमें वापस लायें, कोई-कोई उसे घरसे निकाल देंगे। गङ्गातीरसे किसीको मकान वापस ले जानेमें सदर दरवाजेपर एक पूर्ण घट, एक काली हांड़ी और एक झाड़ू रखा जाता है। वापस आते समय गङ्गाप्रत्यागत मनुष्यका मुख कोई नहीं देखता। लोगोंको विश्वास है, कि उसका मुख देखनेसे मृत्यु अवश्य झपटेगी। इसीसे घर पहुंच पहले वह घटादि देखता है। उससे दोष मिट जायेगा

और पीछे आत्मीय स्वजन उसे देखेंगे। पहले अनेक गृहस्थ किसीको गङ्गायात्रा हो जानेपर दैवात् यदि वह न मरता, तो फिर उसे मकान वापस न ले जाते थे। यह प्रथा आज भी कहीं-कहीं है। गङ्गातीरसे मकान वापस जाना मना है, वह यावज्जीवन गङ्गावासी बनकर रहेगा। पहले बङ्गालके शान्तिपुरमें विस्तर गङ्गावासी इसीतरह ठहर पुनर्वार संसार धर्म कर गये हैं।*

गङ्गाके दूरवर्ती होनेपर सकल ज्ञानके साथ पहुंच भागीरथीकी गोदमें मर न सकते थे। फिर भी अनाथ व्यक्तिको, मुमूर्षु अवस्थामें पानेसे, बन्धुबान्धव २०।२५ कोस दूरसे उठा गङ्गाके गर्भमें डाल आते रहे। निकटस्थ पल्लीके लोग स्नानके समय किञ्चित् दुग्ध प्रभृति उसे खिलाते थे।

गङ्गाके तीर मुमूर्षुको न पहुंचा सकनेसे अन्तर्जलकी दूसरी व्यवस्था बतायी गयी है। चबूतरेमें कोई छोटा गर्त खोदना होगा। वही गर्त जलसे लबालब भर आत्मीय स्वजन उसमें मुमूर्षु व्यक्तिके पैर डुबा देते हैं। हम यह बात नहीं समझ सकते, मृत्युकालपर जलमें पैर डुबानेसे कैसे सद्गति मिलेगी। पुष्करिणी प्रभृतिसे अन्तर्जल देनेपर उसका जल अशुद्ध हो जाता है। शुद्धि जलाशय देखो।

प्राचीनकालमें अन्तर्जलकी प्रथा न थी। अन्त्येष्टि देखो। आज भी सिवा बङ्गालके दूसरी जगह यह नहीं देख पड़ती। रघुनन्दन-भट्टाचार्यने कितने ही पौराणिक प्रमाण दे यह प्रथा बङ्गालमें डाली थी।

इसके सम्बन्धमें कितने ही प्रमाण मिलते हैं, कि गङ्गामें प्राण छोड़नेसे मुक्ति होती है,—

"गङ्गायां त्यजतः प्राणान् कथयामि वरानने।
कर्णे तत् परमं ब्रह्म ददामि मामकं पदम्॥"

(शुद्धितत्त्वोद्धृत स्कन्द०)

हे सुमुखि! मैं आपसे कहता हूं, गङ्गामें प्राण छोड़नेसे क्या फल मिलता है। मैं उसके कर्णमें परब्रह्म मन्त्र और उसको अपना पद देता हूं।

"अर्द्धोदके तु जाह्नव्यां म्रियतेऽनशनेन यः।
स याति न पुनर्जन्म ब्रह्मसायुज्यमेति च॥"

(प्रायश्चित्ततत्त्वोद्धृत अग्निपु०)

अनशन रह आधी देह जलमें डुबा जो गङ्गामें प्राण छोड़ता, उसका फिर पुनर्जन्म नहीं होता, वह ब्रह्मका सादृश्य पाता है।

"सन्त्यज्य देहं गङ्गायां ब्रह्महापि च मुक्तये॥" (क्रियायोगसार)

ब्राह्मणघातक भी गङ्गामें देह छोड़नेसे मुक्त हो जायगा।

पीड़ितावस्थामें रोगीको दम-दिलाशा देना चाहिये। उस समय आसन्न मृत्युकी बात कहनेसे रुग्ण व्यक्तिके प्राणपर वज्र-जैसा आघात पड़ता है। अतएव यह चाल उठ जानेसे ही मङ्गल होगा। सन् १८६५ ई०में किसी निष्ठुर व्यक्तिने एक गङ्गा-यात्रीका मुंह बालूसे भर दिया था। इसपर गवर्न-मेण्ट गङ्गायात्रा करनेकी प्रथा रोकनेपर उद्यत हुयी। किन्तु बङ्गालियोंके विरोधी बन जानेसे यह निष्ठुर व्यवहार बन्द न हुवा।

अन्तर्जात (सं० त्रि०) अन्तर्मध्ये जातम्, ७-तत्। देहके मध्य जात, जिस्मके अन्दर पैदा हुवा। जैसे—मनोमध्यजात सुख, दुःख, द्वेष, क्रोध इत्यादि होता है।

अन्तर्जानु (सं० अव्य०) जानुनोर्मध्ये, अव्ययी०। दोनो जानुके मध्य, रानोंके बीच।

अन्तर्ज्ञान (सं० क्ली०) भीतरी बुद्धि, अन्दरूनी फहम, जो समझ दिलमें हो।

अन्तर्ज्योतिस् (सं० क्ली०) अन्तर्मध्ये ज्योतिश्चैतन्य स्वरूपम्, कर्मधा०। १ परमेश्वर, परमेश्वर ज्योतिर्मय। २ आकाश, आसमान्। ३ योगी, फकीर। (त्रि०) अन्तर्मध्ये ज्योतिः नक्षत्रं दीप्तिः दृष्टिर्वा यस्य बहुव्री०। ४ अपने भीतर ज्योतिः, नक्षत्र, दीप्ति अथवा दृष्टि रखनेवाला, जिसके अन्दर चमक, सितारा, रौनक या नजर मौजूद रहे।

* "When a patient, thus situated, happens to recover, he considers that he has, as it were, acquired a new life, and thenceforth all his former reletions and friends are treated as strangers; he never returns to the dwelling in which he had frequently resided, but wanders down the Ganges, until he arrives at Shantipur, near Calcutta, where he settles himself."

(Honigberger, Thiryfive years in the East.)

अन्तर्ज्वलन (सं० क्ली०) अन्तः शरीराभ्यन्तरस्य ज्वलनम्। शरीरमध्यदाह, जिस्मकी अन्दरूनी जलन। पित्ताधिक्य ज्वरादिसे अन्तर्ज्वलन उठता है।

अन्तर्दग्ध (सं० त्रि०) भीतरसे दग्ध, जो अन्दरूनी तौरपर जल गया हो।

अन्तर्दधन (सं० क्ली०) अन्तश्चित्तं लक्षणया मनोगत वाक्यं वा दध्यते दीयते येन, अन्तर्-दध करणे ल्युट्। सुरावीज, शराबका तुख्म, जो चीज़ खाकर लोग अपने पेटकी बात बता दें।

अन्तर्दधान (सं० त्रि०) अदृश्य पड़ता हुवा, जो गुम हो रहा हो।

अन्तर्दशा (सं० स्त्री०) दशानामन्तर्गता दशा। ग्रह का अन्तर्गत आधिपत्य काल। दशा देखो।

अन्तर्दशाह (सं० अव्य०) दशाहस्य मध्ये, अव्ययी०। दश दिनके मध्य, दश रोज़के दरमियान।

"अन्तर्दशाहे स्यातांचेत् पुनर्मरणजन्मनी।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तत् स्यादनिर्दशम्॥" (मनु० ५।७९)

अन्तर्दहन (सं० क्ली०) अन्तर्देहमध्ये दहनं सन्तापः, ७-तत्। १ अन्तर्दाह, अन्दरूनी जलन, ज्वरादिजात मध्यस्थित सन्ताप, बुख़ार वग़ैरहसे पैदा हुयी जिस्मके दरमियान रहनेवाली गर्मी। (पु०) २ जठरानल, हाज़मा।

अन्तर्दाह (सं० पु०) अन्तर्देहमध्यजातः दाहः। १ देहके मध्यका दाह, शरीरका भीतरी ताप, जिस्मके दरमियानकी जलन, जिस्मकी अन्दरूनी गर्मी। २ कोष्ठ-सन्ताप, मेदेकी भड़क। ३ सन्निपातज्वर विशेष, एक तरहका सरसाम। इसका लक्षण इसतरह लिखा है,—

"अन्तर्दाहः शैत्यं वहिः श्वयुथुररतिरपि श्वासः।
अङ्गमपि दग्धकल्पं सोऽन्तर्दाहादितः कथितः॥", (भावप्र०म० ७म०)

अन्तर्दुःख (सं० त्रि०) खिन्नचित्त, परेशान्-दमाग़, दुःखित, ग़मगीन, उदास।

अन्तर्दुष्ट (सं० त्रि०) अन्तर्मनसि दुष्टं दोषो यस्य, बहुव्री०। कुटिल मन, जिसका मन दोषयुक्त हो, कजतबीयत, जिसका दिल ऐबसे खाली न रहे।

अन्तर्दृष्टि (सं० त्रि०) अपने आत्माको देखते हुवा, जो अपने ही रूहपर नज़र डाले रहता हो।

अन्तर्देश (सं० पु०) प्राचीरका मध्यस्थित प्रान्त, जो जगह घेरेके भीतर मौजूद हो।

अन्तर्द्वार (सं० क्ली०) अन्तरन्तर्गतं द्वारम्, कर्मधा०। १ गृहमध्यस्थित गुप्त द्वार, मकानके दरमियानका छिपा दरवाज़ा। २ जङ्गला, खिड़की।

'प्रच्छन्नमन्तर्द्वारं स्यात्।' (अमर)

अन्तर्धम (सं० त्रि०) १ बद्धमुख हण्डिकाभ्यन्तरमें अग्निदग्ध। २ चित्रकाक्षर।

अन्तर्धा (सं० स्त्री०) अन्तर्द्धानम्, अन्तर्-धा भावे अङ्। अन्तर्द्धान, तिरोधान, व्यवधान, छिपाव, पोशीदगी, गुम हो जानेकी हालत।

अन्तर्धान (सं० क्ली०) अन्तर्-धा भावे ल्युट्। तिरोधान, दृश्य पदार्थकी अदृश्यस्थानमें स्थिति, पोशीदगी, छिपाव, देख पड़नेवाली चीज़को न देख पड़नेवाली जगहमें मौजूदगी।

अन्तर्धि (सं० पु०) अन्तर्-धा-कि। आच्छादन, व्यवधान, अन्तर्धान तिरोधान, अदृश्य होना, छिपाव, रोक, गुम हो जाना।

"अन्तर्धा व्यवधा पुंसि त्वन्तर्धिरपवारणम्।
अपिधान-तिरोधान-पिधानाच्छादनानि च॥ (अमर)

अन्तर्ध्यान (सं० क्ली०) हृदयस्थित गूढ़ विचार, गहरा अन्दरूनी ख़याल।

अन्तर्नगर (सं० अव्य०) नगरस्य अन्तर्मध्ये, अव्ययी०। १ नगरके मध्य, शहरमें। (क्ली०) अन्तः नगरम्, कर्मधा०। २ मध्यनगर, दरमियानी शहर। ३ अन्तःपुर, ज़नानखाना।

अन्तर्निविष्ट (सं० त्रि०) अन्तर्गत, अन्तरस्थित, भीतर पहुंचा हुवा, जो भीतर बैठा हो।

अन्तर्निष्ठ (सं० त्रि०) अन्तर्ध्यानमें निमग्न, जो अंदरूनी खयालमें डूब रहा हो।

अन्तर्भवन (सं० क्ली०) भवनका भीतरी भाग, मकानका जो हिस्सा बाहर हो।

अन्तर्भाव (सं० पु०) अन्तर्मध्ये भावः प्रवेशः प्रवेशनं वा; ७-तत्। १ मध्यमें प्रवेश करना। अन्तः अन्तर्गतो भावः, कर्मधा०। २ मनका भाव, अभिप्राय, दिलकी रग़बत, मतलब।

अन्तर्भावना (सं० त्रि०) अन्तर्गता भावना चिन्ता, अन्तर्-भू चुरा०-णिच्-यत्र। १ शरीरकी चेष्टा और सुख दुःख-प्रकाशक मुखके चिह्न द्वारा अप्रकाशित चिन्ता, जिस्मकी हालत और आराम-तकलीफ़ बतानेवाले मुंहके आसारसे छिपी हुयी फ़िक्र, अन्तर्गत ध्यान, दिली खयाल। २ अन्तःशुद्धि, अन्दरूनी पाकीज़गी। ३ गणितशास्त्रका अङ्कविशेष, हिसाबको कोई अदद, गुणनफलके व्यवकलनसे अङ्कशोधन, हासिल ज़रबके फ़र्क़से अददकी इसलाह।

अन्तर्भावित (सं० त्रि०) अन्तर्मध्ये भावितं प्रवेशितं अन्तर्-भू णिच् क्त, ७ तत्। १ मध्यप्रवेशित, बीचमें घुसा हुवा, जिसका खयाल दिलमें लड़ाया गया हो। भू चुरा०-णिच्-क्त। २ चिन्तित, फ़िक्रमन्द। ३ अन्तःशुद्ध, सच्चे दिलवाला।

अन्तर्भाव्य (सं० क्ली०) अन्तर्-भू भावे ण्यत्। १ अवश्यके मध्यका होना, ज़रूरके बीचकी हस्ती। (त्रि०) अन्तर्-भू-णिच्-यत्। २ मध्यमें प्रवेश कराने योग्य, जो बीचमें घुसेड़ने क़ाबिल हो। (अव्य०) अन्तर्-भू-णिच्-क्त ल्यप्। ३ मध्यमें प्रवेश करा, बीचमें घुसेड़ कर। 'तमन्तर्भाव्येव नियोगधीः।' (स्मार्त)

अन्तर्भूत (सं० त्रि०) अन्तर्मध्ये भूतम्। मध्यस्थित अन्तर्गत, बीचमें ठहरा हुवा, जो किसीके अन्दर आया हो।

"कालभावाध्वदेशानामन्तर्भूतक्रियान्तरैः।
सर्व्वैरकर्मकैर्योगे कर्मत्वमुपजायते॥" (भर्तृहरि—वाक्यपदीय)

अन्तर्भूमि (सं० स्त्री०) भूमिका अन्तर्गत भाग, ज़मीनका अन्दरूनी हिस्सा।

अन्तर्भौम (सं० त्रि०) भूमिके अन्तर्गत, जो ज़मीनके अन्दर हो, भूमिके भीतरका, ज़मीनके अन्दरवाला।

अन्तर्मदावस्थ (सं० पु०) अन्तर्देहमध्ये मदावस्था दानावस्था यस्य, बहुव्री०। शुण्डादि द्वारा मद न गिराने वाला हाथी, जिस हाथीके भीतर मद भरा हो।

"अन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः।" (रघु ३।७)

अन्तर्मनस् (सं० त्रि०) अन्तः बहिरप्रकाशतया अन्तर्हितमिव मनो यस्य बहुव्री०। १ व्याकुलचित्त, दुर्मना, विमना, परेशांदिल, बेदिल, जिसकी तबीयत इधर-उधर होती रहे। अन्तर्मध्ये निविष्टं मनो यस्य। २ समाहित चित्त, मज़बूत तबीयत, जिसका दिल पोख़्ता रहे।

अन्तर्मल (सं० पु०) मलान्तवृच, एक क़िस्मका दरख़्त।

अन्तर्महानाद (सं० पु०) शङ्ख, जिस चीज़के भीतर बुलन्द आवाज़ भरी हो।

अन्तर्मुख (सं० त्रि०) अन्तः परमात्मैव मुखं प्रवेशोपायो यस्य। परमात्माका ही लक्ष्य लगाकर बैठा हुवा, जो ईश्वरपर ही खयाल जमाकर बैठा हो। (क्ली०) अन्तर्मध्यस्थले मुखं सूचीवद्व्रणनिःसारको ऽग्रभागो यस्य। २ व्रणविस्रावणास्त्रविशेष, व्रणादि काटनेका सूई-जैसा तीक्ष्ण अस्त्र, जिस पैने औज़ारसे फोड़ा वग़ैरह चीरते हैं। (पु०-स्त्री०) अन्तर्देहमध्ये मुखं मस्तकं यस्य, बहुव्री०। ३ कच्छप, कछुवा। (अव्य०) मुखस्य अन्तर्मध्ये, अव्ययी०। ४ मुखके भीतर, दहनके दरमियान, मुंहमें।

अन्तर्मुखी (सं० स्त्री०) योनिरोगविशेष। इसका लक्षण यह है,—

"व्यवायमतितृप्ताया भजन्त्यासव पीड़ितः।
वायुर्मिथ्यास्थिताङ्गाया योनिस्रोतसि संस्थितः॥
वक्रयत्याननं योन्याः सास्थिमांसानिलार्त्तिभिः।
भृशार्त्तिर्मैथुनासक्ता योनिरन्तर्मुखी मता॥" (चरक चि०)

अन्तर्मातृका (सं० स्त्री०) अन्तर्मध्यगताः षट्चक्रस्था मातृका अकारादि पञ्चाशद्वर्णाः, कर्मधा०। तन्त्रोक्त षट्चक्रस्थ अकारादि पचास वर्ण, जो पचास हर्फ़ तन्त्रके कथनानुसार षट्चक्रमें रहते हैं।

अन्तर्मातृकान्यास (सं० पु०) अन्तःस्थानां अकारादि पञ्चाशन्मातृकावर्णानां न्यासः तत्तद्वर्णोच्चारणपूर्वकं तत्तन्निवासस्थानादुपरि त्वचि अङ्गुलिक्षेपः, ६-तत्। शरीरमध्यस्थ मातृकावर्णका नाम उच्चारण और स्मरण कर उनके स्थानपर अङ्गुलिका रखना। इसका विवरण ज्ञानार्णवमें ऐसे लिखा, किस स्थलमें कौन वर्णके नामोच्चारणपूर्वक अङ्गुलि रखना पड़ती है,—

"द्व्यष्टपत्राम्बुजे कण्ठे स्वरान् षोड़शविन्यसेत्।
द्वादशच्छदहृत्पद्मे कादीन् द्वादश विन्यसेत्॥

दशपत्राम्बुजे नाभौ डकारादींश्च सेद्दश।
षट्पद्ममध्ये लिङ्गस्थे वकारादींन्यसेच्च षट्॥
आधारे चतुरो वर्णान् न्यसेत् वादीन् चतुर्दले।
भ्रुवौ भ्रूमध्यगे पद्मे द्वितले विन्यसेत् प्रिये॥" (तन्त्रसार)

सोलह दलयुक्त कण्ठस्थित पद्ममें अकारादि सोलह स्वरवर्णका पृथक्-पृथक् नाम ले अङ्गुलि रखे। द्वादश दलयुक्त हृत्पद्ममें ककारादि द्वादश वर्णके नामसे न्यास करे। नाभिस्थित दशपत्र कमलमें डकारादि दश वर्णका नाम ले न्यास करे। लिङ्गमूलस्थ षट्दल पद्ममें वर्गीय बकारादि छः वर्णका नाम ले विन्यास करे। मूलाधारस्थित चतुर्दल पद्ममें अन्तःस्थ वकारादि चार वर्णका न्यास लिखा है, पीछे भ्रूमध्यस्थित द्विदलपद्ममें ह और च इन वर्णके नाम ले न्यास करे।

अन्तर्मुद्र (सं० त्रि०) १ भीतर मुद्राङ्कित, जिसके अन्दर मुहर लगी हो। (पु०) २ योगविशेष, एक तरहकी परस्तिश।

अन्तर्मृत (सं० पु०-स्त्री०) अन्तर्जरायौ मृतः, ७-तत्। गर्भके भीतर मृत बालक-बालिका, जो लड़का-लड़की पेटमें ही मर जाये। प्रसव शब्दमें देखिये गर्भके भीतर सन्तान मर जानेपर क्या उपाय करना आवश्यक है।

अन्तर्य (सं० त्रि०) अन्तर्मध्ये भवः दिगां य। मध्यभव, मध्यजात, दरमियान्का पैदा, जो बीचसे निकला हो।

अन्तर्यजन (सं० क्ली०) अन्तर्मनसा तन्त्रोक्त-कल्पितोपचारैर्यजनम्। मन-मन कल्पित उपचार द्वारा देवताका आराधन। अन्तःपूजा देखो।

अन्तर्याग (सं० पु०) अन्तर्मनसा यागः, ३-तत्। मन-मन-कल्पित उपकरण द्वारा पूजा-होम-रूप आराधन। इसका विवरण अन्तःपूजा शब्दमें देखो।

अन्तर्याम (सं० पु०) अन्तर्यामः संयमो यस्मात्। १ ग्रहरूप याम नामक यज्ञका पात्र-विशेष। अन्तर्मध्ये यामः प्रहरः, कर्मधा०। २ मध्यस्थ प्रहर।

'द्वौ यामप्रहरौ समौ।' (अमर)

(अव्य०) यामस्य प्रहरस्य अन्तर्मध्ये, अव्ययी०। ३ प्रहरके मध्य, पहरके दरमियान्।

अन्तर्यामिन् (सं० पु०) अन्तः सर्वान्तःकरणं व्याप्य यामयति परिविष्टते, अन्तर्-यम-णिच्-णिनि। १ परमेश्वर, सबके अन्तःकरणमें व्याप्त। २ वायु। अध्यात्म-वायु सकलके देहमध्य रहता है। (त्रि०) ३ सकलका अन्तर्गत भाववेत्ता, सबका अन्दरूनी हाल जाननेवाला।

अन्तर्यामिब्राह्मण (सं० क्ली०) अन्तर्यामिनः परमेश्वरस्य ज्ञापकं ब्राह्मणं मन्त्रेतरवेदभागः। बृहदारण्यकके अन्तर्गत ईश्वरनिर्णायक वेदका अंश विशेष।

अन्तर्योग (सं० पु०) गम्भीर विचार, गहरा खयाल।

अन्तर्लम्ब (सं० त्रि०) १ सरलकोणविशिष्ट, सीधे-कोनेवाला। (पु०) २ जिस त्रिकोणमें लम्ब भीतर हो पड़े, सीधे ज़ावियेका मुसल्लस।

अन्तर्लीन (सं० त्रि०) प्रकृत, कुदरती, वास्तविक, असली।

अन्तर्लोम (सं० त्रि०) अन्तः अन्तर्गतानि आच्छादितानि लोमान्यस्य, अवन्त बहुव्री०। आच्छादित लोम, जिसका लोम देख न पड़े, ढके बालोंवाला, जिसका बाल नज़र न आये।

अन्तर्वंश (सं० पु०) अन्तःपुर, ज़नानखाना।

अन्तर्वंशिक (सं० पु०) अन्तर्वंशे अन्तर्वंशानां राज्ञामन्तःपुरस्थ कुलस्त्रीणां रक्षणे नियुक्तः; नियुक्तार्थे ठक्, संज्ञापूर्वक विधेरनित्यत्वान्नवृद्धिः। राजाका अन्तःपुरस्थ स्त्रीरक्षक पुरुष, बादशाहके ज़नानखानेका मुहाफ़िज़। 'अन्तःपुरे त्वधिकृतः स्यादन्तर्वंशिको जनः।' (अमर)

अन्तर्वण (सं० अव्य०) वनस्य अन्तर्मध्ये, णत्वं अव्ययी०। वनके मध्यमें, जङ्गलके बीच।

अन्तर्वत् (सं० त्रि०) भीतरी, अन्दरूनी।

अन्तर्वती, अन्तर्वत्नी देखो।

अन्तर्वत्नी (सं० त्रि०) अन्तरस्त्यस्यां गर्भः; अन्तर मतुप् मस्य वः गुक् आगमः ङीप्। १ गर्भिणी स्त्री, जो औरत हामिला हो। (त्रि०) २ मध्यस्थित पदार्थविशिष्ट, बीचवाली चीज़से मिला हुवा।

अन्तर्वमि (सं० स्त्री०) अन्तः कण्ठमध्यगतैव वमिः, कर्मधा०। १ उद्गार, मिचलाई। २ हिक्का, हिचकी।

३ अजीर्णनामक रोगविशेष, एक तरहकी बदहज़मी।

अन्तर्वर्तिन् (सं० त्रि०) अन्तर्मध्ये वर्तते, वृत-णिनि। मध्यवर्ती, मध्यस्थित, दरमियानी, बीचवाला।

अन्तर्वसु (सं० पु०) सोमयाग विशेष।

अन्तर्वस्त्र (सं० क्ली०) अन्तर्वस्त्र, नीचे पहना जानेवाला कपड़ा।

अन्तर्वा (सं० त्रि०) अन्ततः समीपं वाति; अन्तरङ्गत्वाद्गच्छति, अन्तर्-वा-गति हिंसयोः-विच्। १ प्रतिपालित, पाला हुवा। २ स्नेहहेतु समीपागत, मुहब्बतसे पास पहुंचा हुवा।

अन्तर्वाणि (सं० त्रि०) अन्तर्गता चित्तस्था विविधशास्त्रात्मिका वाणी वाग् यस्य, बहुव्री०। विविध शास्त्रविशारद, कितने ही इल्म जाननेवाला।

'अन्तर्वाणिस्तु शास्त्रवित्।' (अमर)

अन्तर्वावत् (सं० त्रि०) अन्तर्वाः पुत्रादिः सोऽस्त्यस्य, अन्तर्वा-मतुप् मस्य वः। पुत्रादि विशिष्ट, बाल-बच्चे से भरापूरा।

अन्तर्वाष्प (सं० पु०) अन्तर्गतोऽवहिर्भूतो वाष्पो नेत्रजलम्, कर्मधा०। १ बाहर अप्रकाशित नेत्रजल, जो आंसू फूट न पड़े। "अन्तर्वाष्पभरोपरोधि।" (शकु ४।९७) (त्रि०) नेत्रजलविशिष्ट, जो आंसू भरे हो।

अन्तर्वासस् (सं० क्ली०) भीतरी वस्त्र, अन्दरूनी पोशाक।

अन्तर्विगाह (सं० पु०) अन्तर्मध्ये विगाहः, ७-तत्। अन्तर्-वि-गाह भावे घञ्। मध्यप्रवेश, दरमियानी दाखिला।

अन्तर्विगाहन (सं० क्ली०) अन्तर्मध्ये विगाहनम्; अन्तर्-वि-गाह भावे ल्युट्। मध्यप्रवेश, दरमियानी दाखिला।

अन्तर्विद्रधि (सं० पु०) जठरान्तरस्थ विद्रधिरोग, मेदेकी कोई बीमारी। इसका लक्षण इसतरह लिखा है,—

"पृथक् सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणाम्।
वल्मीकवत् समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम्॥
गुदे वस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वङ्क्षणयोस्तथा।
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति हृदि वा क्लोम्नि चाप्यथ।
येषां लिङ्गानि जानीयाद्बाह्यविद्रधिलक्षणैः॥" (भावप्रकाश)

अन्तर्विद्वस् (सं० त्रि०) भीतरी विद्वान्, अन्दरूनी फ़हम रखनेवाला, जिसे पृथिवी और आकाशके बीचका वृत्तान्त ज्ञात रहे, जो पूरे तौरपर किसी बातको जानता हो।

अन्तर्विद्वान्, अन्तर्विद्वस् देखिये।

अन्तर्वृद्धि (सं० पु०) अन्त्रवृद्धिरोग, आंतके बढ़ने या उतरनेकी बीमारी। अन्त्रवृद्धि देखिये।

अन्तर्वेग (सं० पु०) १ भीतरी व्याकुलता अथवा चिन्ता, अन्दरूनी घबराहट या फ़िक्र। २ भीतरी ज्वर, अन्दरूनी बुख़ार, जो बुख़ार हड्डीमें घुस गया हो।

अन्तर्वेद—गङ्गा और यमुनाके मध्यका देशविशेष।

अन्तर्वेदि (सं० स्त्री०) अन्तर्मध्यस्था वेदिः परिष्कृता भूमिः, कर्मधा०। १ मध्यस्थित उभयनदी भूमि, बीचवाली साफ़ की हुयी ज़मीन, दुआब। (पु०) अन्तर्गता वेदिर्यज्ञभूमिर्यस्मिन् देशे। २ अपने मध्य परिष्कृत बहु यज्ञभूमि रखनेवाला देश। ३ ब्रह्मावर्त, बिठूर। ४ गङ्गा और यमुना इन उभय नदीका मध्यदेश। (अव्य०) वेद्या-अन्तर्मध्ये, अव्ययी०। ५ वेदीके मध्य।

अन्तर्वेदी (सं० स्त्री०) अन्तर्गता वेदिर्यत्र, अन्तर्-वेदि ङीप्। १ ब्रह्मावर्त, बिठूर। २ गङ्गा और यमुनाका मध्यदेश। सहारनपुर, मुजफ़्फ़रनगर, मेरठ, अलीगढ़, आगरा, एटा, इटावा, फ़रुखाबाद, फ़तेहपुर और इलाहाबाद यह ज़िले अन्तर्वेदीके मध्य पड़ते हैं। युक्तप्रदेशमें इस देशको 'अन्तर्वेद' कहते हैं।

अन्तर्वेदी—विहारी कान्यकुब्ज-ब्राह्मणोंकी तीन प्रधान श्रेणीमें एक श्रेणी। लोग कहते, कि यह गङ्गा और यमुनाके बीचवाले देशसे विहार पहुंचे थे।

अन्तर्वेध (सं० पु०) १ मर्मवेध, जोड़की चोट। २ मर्मपीड़ा, गांठका दर्द।

अन्तर्वेशिक (सं० त्रि०) अन्तर्वेशो राजान्तःपुरे नियुक्तः, ठक् अनित्यत्वान्न वृद्धिः। अन्तःपुरके रक्षण निमित्त नियुक्त कञ्चुकी प्रभृति, जो ज़नानख़ानेकी हिफ़ाज़त करनेको नौकर रखा जाये।

अन्तर्वेश्मन् (सं० क्ली०) भीतरी स्थान, अन्दरूनी कमरा, ज़नानख़ाना।

अन्तर्वेश्मिक (सं० त्रि०) वेश्मनो गृहस्य अन्तर्मध्ये नियुक्तः ठन् न वृद्धिः। अन्तःपुर रक्षणके निमित्त नियुक्त कञ्चुकी प्रभृति, जो ज़नानखानेकी हिफ़ाज़त करनेको रखा जाये।

अन्तर्हणन (सं० क्ली०) मध्यका आघात, बीचकी चोट।

अन्तर्हत्य (सं० अव्य०) अन्तर्-हन-ल्यप्। मध्यमें हनन कर, बीचमें चोट पहुंचा।

अन्तर्हस्त (सं० अव्य०) हस्तमें, हाथके नीचे, दस्तके दरमियान, हाथमें, जिसे आसानीसे पा सकें।

अन्तर्हस्तीन् (सं० त्रि०) जो हाथके या पहुंचके बाहर न हो।

अन्तर्हास (सं० पु०) अन्तर्गुप्तो हासः; अन्तर्-हस भावे घञ्, कर्मधा०। १ गूढ़ हास्य, अप्रकाशित हास्य, छिपी हंसी, मुसकिराहट। (त्रि०) अन्तर्हासो यस्य, बहुव्री०। २ गूढ़हास्यविशिष्ट, छिपी हंसी निकालनेवाला, जो मुसकरा रहा हो।

अन्तर्हित (सं० त्रि०) अन्तर्-धा-क्त। गुप्त, तिरोहित, पोशीदा, छिपा हुवा।

"अन्तर्हिते शशिनि।" (शकुन्तला ४।४१)

"अन्तर्हितो दुष्टात्।" (मुग्धबोध)

अन्तर्हृदय (सं० क्ली०) हृदयका भीतरी भाग, दिलका अन्दरूनी हिस्सा।

अन्तवत् (सं० त्रि०) अन्तो नाशः परिच्छेदो वा अस्त्यस्य, मतुप् मस्य वः। विनाशी, नाशविशिष्ट, नेस्तनाबूद हो जानेवाला, जो मिट जाता हो। (स्त्री०) अन्तवती।

"अन्तवत्तु फलन्तेषाम्।" (गीता ७।२३)

अन्तवासिन् (सं० पु०) अन्त-समीपे वसति, अन्त-वस-णिनि। शिष्य, शागिर्द, चेला।

अन्तवेला (सं० स्त्री०) अन्तस्य नाशस्य वेला सीमा समयो वा, ६-तत्। १ शेष सीमा, नाशका समय, मरनकाल, आख़िरी हद, मिटनेका वक़्त, मौतका ज़माना। अन्ता चासौ वेला चेति, कर्मधा०। २ अपराह्ण, तीसरा पहर। ३ शेष समय, आख़िरी वक़्त। ४ समुद्रका तट, बहरका किनारा।

अन्तशय्या (सं० स्त्री०) शयनं शय्या, शीङ् भावे क्यप्; अन्ताय नाशाय शय्या, ४-तत्। १ मरणके निमित्त भूमिशय्या, श्मशान, मरते समय ज़मीनपरका लेटना, मरघट। अन्ता एव शय्या शयनम् कर्मधा०। शेषशय्या, आख़िरी बिस्तर, मरण, मौत।

अन्तसद् (सं० त्रि०) अन्त समीपे सीदति गच्छति, अन्त-सद्-क्विप्। अन्तवासी, शिष्य, निकटगामी, हाज़िर बाश, शागिर्द, पास रहनेवाला।

अन्तस्तप्त (सं० त्रि०) भीतरसे तपाया या चिढ़ाया हुवा, जिसे अन्दरूनी तौरपर तपायें या छेड़ें।

अन्तस्ताप (सं० पु०) १ भीतरी उष्णता, अन्दरूनी गर्मी। (त्रि०) भीतर-भीतर जलता हुवा, जो अन्दरूनी तौरपर जोश खा रहा हो।

अन्तस्तुषार (सं० त्रि०) भीतर-भीतर ओससे भरा हुवा, जिसके अन्दर शबनम् मौजूद रहे।

अन्तस्तोय (सं० त्रि०) अन्तर्गतं तोयं जलं यस्य, बहुव्री०। मध्यमें जल रखनेवाला, जिसके बीच पानी मौजूद रहे।

अन्तस्त्र (सं० क्ली०) अन्त्र, आंत।

अन्तस्थ (सं० पु०) अन्तः स्पर्शोष्मवर्णयोर्मध्ये तिष्ठति, अन्तर्-स्था-क। १ स्पर्श और ऊष्मवर्णके मध्यस्थित य र ल व—यह चार वर्ण। (त्रि०) २ मध्येस्थित, बीचवाला।

अन्तस्था (सं० पु०) अन्तः स्पर्शोष्मवर्णयोर्मध्ये तिष्ठति अन्तर्-स्था-क्विप्। क से म पर्यन्त स्पर्शवर्ण और श ष स ह—यह चार ऊष्मवर्ण, इन दोनोंके मध्यस्थित य र ल व यह चार वर्ण।

अन्तस्नेहफला (सं० स्त्री०) श्वेतकण्टकारी, सफ़ेद कटैया।

अन्तस्पथ (सं० त्रि०) ऊंचे-नीचे चलते हुवा, जिसे चलनेमें कभी चढ़ना और कभी उतरना पड़े।

अन्ताजी राजे शिरको—बम्बई प्रदेशवाले सतारा नगरके महाराष्ट्र प्रधान कर्मचारी। इन्हें साधारणतः लोग बाबासाहब कहते थे। सन् १८५७ ई० में सिपाहियोंवाले बलवेके समय सतारेकी बड़ी रानीके कहनेसे पुलिसका प्रबन्ध बहुत ढीला कर दिया।

कहते हैं, कि बलवेसे एक वर्ष पहले इन्होंने अंगरेजों-से लड़नेके लिये ४०००० हजार रुहेले बुलानेकी बातचीत लगायी थी।

अन्तादि (सं० वि०) अन्तेन सहित आदिः, ३-तत्। अन्तके सहित आदि अथवा आद्यन्त।

अन्तानल (सं० पु०) अन्तस्य प्रलयकालस्य अनलो-ऽग्निः, ६-तत्। १ प्रलयकालका अग्नि, कयामतकी आतिश। अन्त्यस्य चरमकालस्य अनलः। २ अन्त्येष्टि-क्रियाका अग्नि, चिताग्नि।

अन्तार (सं० पु०) अन्तं वनान्त पर्यन्तं ऋच्छति गच्छति, अन्त-ऋ-अण्। पशुपालक, जानवर पालनेवाला।

अन्तार—सुप्रसिद्ध सात अरबी कवियोंमें एक कवि। इनकी कविता मक्केवाले मन्दिरमें सोनेके अक्षरोंसे लिखकर लटकायी गयी थी। अन्तारका पहला इतिहास सन् १८१८ ई०में इङ्गलण्डमें अरबीसे अङ्गरेज़ी अनुवाद होकर छपा।

अन्तावशायिन् (सं० पु०-स्त्री०) अन्त ग्रामान्त देशे अवशेते, अव-शीङ्-णिनि। चण्डालादि हीन जाति। चण्डालादिका वास प्रायः ग्रामके बाहर रहता है।

अन्तावसायिन् (सं० पु०-स्त्री०) अन्त दिनान्त अवस्यति स्वकार्यादिरमति; अथवा अन्त चरमे अवस्यति धनाभावदैन्यं प्राप्नोति, अन्त-अव-सो-णिनि-युक्। १ नापित, हज्जाम, नाई।

'चुरिकुण्डिदिवाकीर्ति नापितान्त्यावसायिनः।' अमर

अन्त शेषावस्थायां अवसातुं तत्वं निर्णेतुं शीलं अस्य। २ मुनिविशेष। अन्ताय स्वपोषणार्थं प्राणिवधाय अवस्यति अध्यवसायं प्राप्नोति। ३ प्राणिजीवी चण्डालादि जाति।

अन्तावसायी, अन्तावसायिन् देखो।

अन्ति (सं० स्त्री०) अन्त्यते सम्बध्यते, अन्त-इ। १ नाट्योक्त ज्येष्ठा भगिनी। (अव्य०) २ सम्मुख, सामने, निकट, नजदीक। ३ को, तयीं।

अन्तिअलकिदस (Antalcidas)—इनका जन्म सन् ई०से ३८२ वत्सर पहले हुवा था, ३६७ वत्सरके पहले मर गये। यह यूनान देशके एक प्रसिद्ध योद्धा थे। इनका निवासस्थान स्पार्टा था। स्पार्टा और आथेन्सके बीच घोरतर विवाद बढ़ा। ईरान देशके साथ सन्धि साधनेके लिये यह दो बार राजदूत बनाकर ईरान भेजे गये। इन्हींकी चेष्टा और इन्हींके आधिपत्यसे आथेन्स-वासी स्पार्टावालोंके साथ सन्धि साधनेपर बाध्य हुये। इन्होंने सन्धिकी जो शर्त लगायी थी, विपक्ष इसपर राज़ी हुवा। इतिहासमें यह सन्धि—अन्तिअल-किदसकी सन्धिके (Peace of Antalcidas) नामसे चिरप्रसिद्ध हुयी। ऐतिहासिक प्लुटार्कने (Plutarch) लिखा, कि इन्होंने आत्महत्या करली थी। दूसरे कोई-कोई कहते हैं, कि यह जब शेषकालमें ईरान गये तब इनका उद्देश्य सिद्ध न होनेसे इन्होंने अनाहार देहको छोड़ा था।

अन्तिओक (Antiochus) इस नामके तेरह राजाओंने प्राचीन सीरिया, एशिया-माइनर प्रभृति एशियाके प्रान्तवर्ती प्रदेशमें राजत्व किया। उनमें तृतीय अन्तिओक (Antiochus the Great) और उनके पुत्र चतुर्थ अन्तिओकने विशेष प्रसिद्धि पायी। तृतीय अन्तिओकने हानीबलको आश्रय पहुंचाया और रोमके विरुद्ध युद्ध उठाया था। चतुर्थ अन्तिओकने पालिस्तिन जीता और प्रायः समुदाय मिश्रदेशको अपने अधिकारभुक्त बनाया।

प्रियदर्शी अशोकके अनुशासनमें 'तुरमय', 'अन्ति-किनि', 'मक' प्रभृति 'यवन'-राजाओंके नामके साथ अन्तिओकका भी नाम देख पड़ता है। किन्तु आज भी निःसन्देह स्थिर नहीं हुवा, कि यह कौन अन्ति-ओक थे। अध्यापक लासेनने इन्हें सीरियाका राजा बताया, हमारे मतमें सन् ई०के ३१० से २८१ वत्सर पूर्व इनका राजत्वकाल होता है। अशोक शब्दमें हम इस बातकी आलोचना करेंगे।

अशोक और प्रियदर्शी देखो।

सिवा इसके अन्तिओक नामके एक यूनानी दार्शनिक और एक यूनानी ऐतिहासिक भी हुये हैं। दार्शनिक अन्तिओक आसकलनवासी थे। यह सन् ई०के प्रथम शताब्दसे पहलेके व्यक्ति हैं। इन्होंने यूनानके प्रधान दार्शनिकद्वय—फिलो एवं

ष्टोइकका मत मिलानेकी चेष्टा की थी। इनका लिखा कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। प्रसिद्ध दार्शनिक सिसेरोने इन्हींके पदप्रान्तमें पड़ दर्शनशास्त्र पढ़ा। सिसेरोके अमूल्य ग्रन्थादिसे हम उनके गुरुकी असाधारण विद्वत्ताका परिचय पाते हैं।

ऐतिहासिक अन्तिओक साइरकसके वासी थे। उन्होंने सन् ई०से ४२० वत्सर पहले विशेष प्रसिद्धि पायी थी। यह सिसिलीका एक इतिहास लिख गये हैं। किन्तु उस पुस्तकका अब किञ्चित् अंशमात्र मिलता है। फिर भी ष्ट्रावो, डाइयोनिसस् प्रभृति ऐतिहासिकोंने कितने ही स्थानमें इस ग्रन्थका उल्लेख किया है।

अन्तिक (सं० त्रि०) अन्तःसमीपएव, अन्त-स्वार्थे ठन्। दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च। पा २।३।३५। १ समीप निकट, क़रीब, नज़दीक। "अन्तिकेऽपि स्थिता पत्युः।" (भट्टि ५।१७) (क्ली०) २ सामीप्य, नैकट्य, कुर्ब, पड़ोस। (अव्य०) ३ पाससे, नज़दीक।

अन्तिकगति (सं० स्त्री०) पासकी चाल, नज़दीकका पहुंचना।

अन्तिकतम (सं० त्रि०) अतिशयेन अन्तिकम्, अन्तिक-तमप्। अतिनिकट, निहायत नज़दीक।

'नेदिष्टमन्तिकतमम्।' (अमर)

अन्तिकता (सं० स्त्री०) सामीप्य, नैकट्य, पड़ोस, कुर्ब।

अन्तिका (सं० स्त्री०) अन्तिः नाट्योक्तौ ज्येष्ठा भगिन्येव, अन्ति-स्वार्थे क-टाप्। १ नाट्योक्त भगिनी, (नाटककी) भाषामें बहन। २ सातला। ३ चुल्ली।

"अन्तिका भगिनी ज्येष्ठा।" (अमर)

अन्तिकाश्रय (सं० त्रि०) अन्तिकं समीपं आश्रयति, अन्तिक-आ-श्रि-अच्; अन्तिके आश्रयो वा यस्य। १ निकटस्थ, पास रहनेवाला। (पु०) कर्मधा०। २ अवलम्बनस्थान, सहारेकी जगह।

अन्तिगोनास (Antigonus)—इस नामके दो राजाओंने मेसिदनमें राज्य किया। इनमें एक प्रथम अन्तिगोनास अथवा अन्तिगोनास साइक्लोप्स और दूसरे उनके पौत्र अन्तिगोनास गोनटस् थे। प्रथम अन्तिगोनास एक आंख फूट जानेसे साइक्लोप्स कहाते थे। सम्राट् अलक्ज़ेन्द्रके मरनेपर इन्हें पम्फाइलिया, लीडिया प्रभृति राज्य मिले। अन्तमें इन्होंने एशियाको भी जीत लिया। इनका जन्म सन् ई०से ३८२ वर्ष पहले हुवा था, सन् ई०से ३०१ वर्ष पहले इपसस नगरमें सेल्यूकस और लेसिमकासके साथ लड़ इन्होंने प्राण छोड़े।

साइक्लोपके मरनेके बाद उनके पुत्र डेमेट्रियस पोलिओर्क्रेटेस मेसिदनके राजा बने। इसके पीछे उनके पुत्र अन्तिगोनास गोनटस्ने सिंहासन पाया। यह सन् ई० से ३१९ वर्ष पहले उत्पन्न हुये थे, सन् ई०से २३९ वर्ष पहले मर गये। यह पितृवत्सल और परम करुण राजा कहलाते थे। प्रियदर्शी अशोकके अनुशासनमें यवन-राजाओंके बीच अन्तिकिनि नामक किसी राजाका उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक लासेन साहब इन्हीं अन्तिकिनीकि अन्तिगोनास गोनाटस् बता गये हैं। हम अशोक और प्रियदर्शी शब्दमें इस विषयकी विस्तारसे आलोचना लिखेंगे।

अशोक और प्रियदर्शी शब्द देखो।

अन्तितस् (सं० अव्य०) अन्ति-तसिल्। अन्तमें, निकट, पास, नज़दीक।

अन्तिम (सं० त्रि०) अन्ते शेषे भवः, अन्त-डिमच्। अन्तभव, चरम, अख़ीरमें पैदा हुवा।

अन्तिमाङ्क (सं० पु०) शेषसंख्या, आख़िरी अदद।

अन्तिय (वै० त्रि०) नज़दीक, निकट। (क्ली०) २ निकटस्थ स्थान, पासकी जगह।

अन्तिवाम (सं० त्रि०) अन्ति अन्तिके वामं दरमस्य, बहुव्री०। धनसम्पन्न, दौलतमन्द, जिसके पास खूब रुपया रहे।

अन्ती (सं० स्त्री०) भट्टी, चूल्हा, तन्दूर।

अन्तेवसत् (सं० पु०) अन्ते समीपे विद्याग्रहणार्थं वसति; अन्त-वस-शतृ, ७-तत् अलुक् स०। शिष्य, छात्र, शागिर्द, तालिबइल्म, चेला।

अन्तेवासिन् (सं० पु०) अन्ते निकटे विद्याशिक्षार्थं वसति; वस-णिनि, ७-तत् वा अलुक् समास०। १ शिष्य, छात्र, शागिर्द, तालिबइल्म।

"छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये।" (अमर)

(त्रि०) अन्ते-चतुर्वर्णाद् वहिः ग्रामान्ते वा वसति; २ चाण्डाल।

'निषाद श्वपचावन्तेवासि चण्डाल पुक्कसाः।' (अमर)

(स्त्री०) अन्तेवासिना।

अन्तोदात्त (सं० क्ली०) अन्त शेषे उदात्तः स्वरो यस्य। अन्त उदात्त स्वरयुक्त पद, जिस पदके अन्तमें उदात्त स्वर हो।

अन्तोली-चारोली—बम्बई प्रदेशके सूरत ज़िलेका एक स्थान। सन् ७४७ई०में राष्ट्रकूट नृपति कक्काने जो जागीर दी, उसका ताम्रफलक यहीं मिला है।

अन्त्य (सं० त्रि०) अन्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्रेति चतुर्वर्ण सृष्टे रवसाने भवः। १ चण्डाल। २ म्लेच्छ, ३ यवनादि। ४ अन्तिम, आखिरी। ५ शीघ्र पश्चाद्गामी, फ़ौरन् पीछे पड़नेवाला। ६ छोटा, छोटी जातिवाला। (क्ली०) ७ सङ्ख, सौ पद्मवाली संख्या। ८ मीनराशि। ९ गणितका अन्तिम अङ्क। (पु०) १० वृक्षविशेष, मुस्ता।

अन्त्यक (सं० पु०) नीच जातिका व्यक्ति।

अन्त्यकर्मन् (सं० क्ली०) अन्त नाशे भवं अन्त्यं तच्च तत् कर्मश्चेति, कर्मधा०। अन्तका कर्म मरण-कालका कर्तव्य कर्म, अन्त्येष्टि क्रिया, आखिरी काम मरनेके वक्तका काम। अन्त्येष्टि देखिये।

अन्तस्य निकृष्ट वर्णस्य कर्म, ६-तत्। हीन जातिका कर्म।

अन्त्यक्रिया (सं० स्त्री०) अन्तकर्मन् देखिये।

अन्त्यज (सं० पु०-स्त्री०) अन्त्ये जायते, जन-ड। १ शूद्र। अन्त्यात् शूद्रात् श्रेष्ठवर्णस्त्रियां जायते। २ चाण्डाल। ३ चण्डाल सदृश सात हीन जाति। जैसे—धोबी, मोची, नट, वरुड़, कैवर्त, मेद, भील।

"रजकश्चर्मकारश्च नटोवरुड़ एव च।
कैवर्त मेदभिल्लाश्च सप्तै ते अन्त्यजा. स्मृताः॥"

(त्रि०) ४ लघु, छोटा, कमसिन। ५ नीच, छोटी जातिवाला।

अन्त्यजगमन (सं० क्ली०) उच्च जातिकी स्त्रीका नीच जाति शूद्रादिके साथ सहवास।

अन्त्यजन्मन् (सं० पु०-स्त्री०) अन्त्यं जन्म यस्य, बहुव्री०। १ शूद्र। (त्रि०) २ शेषजात, अखीरमें पैदा हुवा। ३ छोटी जातिका, जिसकी जाति बड़ी न हो।

अन्त्यजाति (सं० पु०-स्त्री०) अन्त्या निकृष्टा जातिः, कर्मधा०; अन्त्या जातिर्यस्य, बहुव्री०। शूद्र, चण्डालादि।

"मानसैरन्त्यजातिताम्।" (मनु।१२।९)

अन्त्यजातीय, अन्त्यजन्मन् देखो।

अन्त्यजागमन (सं० क्ली०) उच्च जातिके पुरुषका नीच जातिकी स्त्रीके साथ सहवास।

अन्त्यधन (सं० क्ली०) गणितकी किसी क्रियाका अन्तिम अंश, जो आखिरी जोड़ इल्मेहिन्दसाके सवालसे निकले।

अन्त्यपद (सं० क्ली०) अन्तिम अथवा प्रकाण्ड मूल, आखि़री या बड़ी जड़।

अन्त्यपुष्पा (सं० स्त्री०) धातकी वृक्ष, आंवला।

अन्त्यभ (सं० क्ली०) अन्त्यञ्च तत् भं नक्षत्रञ्चेति, कर्मधा०। १ रेवती नक्षत्र। "चित्रा मित्रमृगान्त्यभं मृदुगणाः।" (ज्योतिः) सकल नक्षत्रके अन्तमें रहनेसे रेवती नक्षत्र अन्त्यभ कहाता है। (पु०) २ मीन राशि।

अन्त्यमूल, अन्त्यपद देखिये।

अन्त्ययुग (सं० पु०) अन्तिम युग, आखि़री ज़माना, कलियुग।

अन्त्ययोनि (सं० पु०-स्त्री०) अन्त्य योनिरुत्पत्ति-र्यस्य बहुव्री०। शूद्र, चण्डालादि।

अन्त्यवर्ण (सं० पु०-स्त्री०) अन्त्यश्चासौ वर्णश्चेति, कर्मधा०। १ शूद्र। २ पदके अन्तका अक्षर, वाक्यके अन्तका वर्ण।

अन्त्यविपुला (सं० स्त्री०) छन्द विशेष, एक किस्मका बहर।

अन्त्यानुप्रास (सं० पु०) अन्तश्चासौ अनुप्रासश्चेति, कर्मधा०। शब्दालङ्कारगत अनुप्रासविशेष। यथा,—

"व्यञ्जनञ्चे द यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्य तेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्॥" (साहित्यदर्पण)

आद्यस्वरके साथ अनुस्वार, विसर्ग, या स्वरसंयुक्त व्यञ्जनवर्ण जहां दो पाद या दो पदके अन्तमें एक

रूपसे दोहराया जाये, उसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं। पादके अन्तमें इसतरह अनुप्रास आता है,—

"केशः काशस्तवकविकासः
कायः प्रकटितः करभविलासः।"

यहां प्रथम पादके अन्तमें 'विकासः' इस शब्दका 'आसः' और दूसरे पादके अन्तमें 'विलासः' इसका भी 'आसः' इन दोनोंके एकसे होने कारण यह अन्त्यानुप्रास कहलाया है। पदान्तका उदाहरण नीचे देखिये,—

'मन्दं हसन्तः पुलकं वहन्तः।'

यहां 'हसन्तः' और 'वहन्तः' इन दोनों पदके अन्तमें 'अन्तः' यह एक ही प्रकारका है, इसीसे यह पदगत अन्त्यानुप्रास कहलाता है।

अन्त्यावसायिन् (सं० पु०-स्त्री०) अन्त्य भवं अन्तं वस्त्रादिकं अवस्यति गृह्णाति; अन्त-अव-सो-णिनि, उपस०। १ मृत व्यक्तिका वस्त्र, लेप प्रभृति लेनेवाला। २ निषादस्त्रीके गर्भ और चण्डालके वीर्यसे उत्पन्न हुवा व्यक्ति। (स्त्री०) अन्त्यावसायिनी। अङ्गिरा मुनिने सात प्रकारकी हीनजातिको अन्त्यावसायी बताया है। यथा,—

"चण्डालः श्वपचः क्षत्ता सूतो वैदेहकस्तथा।
मागधायोगवौ चैव सप्तैतेऽन्त्यावसायिनः॥" (अङ्गिरस्)

चण्डाल, श्वपच, क्षत्ता, सूत, वैदेहक, मागध, आयोगव—यह सात तरहके अन्त्यावसायी होते हैं।

अन्त्याश्रम (सं० पु०-क्ली०) अन्त्यश्चासौ आश्रमश्च, कर्मधा०। चतुर्थाश्रम, भिक्षुरूप चौथा आश्रम।

अन्त्याश्रमिन् (सं० पु०) अन्त्य आश्रमोऽस्त्यस्य, अन्त्य-आश्रम-इनि। चतुर्थ आश्रम युक्त भिक्षु।

अन्त्याहुति (सं० स्त्री०) अन्त्या चासौ आहुतिश्चेति, कर्मधा०। १ अन्त्येष्टिक्रिया। साग्निकोंका मृत्युके बाद संस्कार विशेष।

"अन्त्याहुतिं हावयितुं सविप्राः।" (भट्टि ३।३२)

अन्त्युरूर—मन्द्राज प्रान्तकी कृष्णा नदीके तटका एक गांव। इसे गण्टूरके राजा अन्तिवर्मणने किसी समय दान किया था।

अन्त्यूति (सं० क्ली०) अन्ति अन्तिकस्य वा ऊतिः रक्षणम्; अवभावे क्तिन् ऊट् पक्षे कलोपश्च। आसन्न रक्षण, शरण-प्राप्तकी रक्षा, मुहताजका बचाव, पनाहमें पहुंचे हुएकी हिफाज़त।

अन्त्यूर—दक्षिण-हैदराबाद राज्यवाले औरङ्गाबाद ज़िलेके कन्नड़ ताल्लुक़का पुराना क़िला। यह खान्देश पहुंचनेवाले पर्वतपर अक्षा° २०° २७´ उ० और द्राघि° ७५° १५´ पू०में अवस्थित है। सन् ई०के १५वें शताब्दमें इसे किसी महाराष्ट्र-नृपतिने बनवाया था, पीछे अहमदनगरके अधीन हो गया। किन्तु औरङ्गज़ेबने इसपर अधिकार जमा सन् ई०के १७वें शताब्दमें इसका तोपखाना उठवा लिया। क़िलेसे एक कोस दक्षिण एक गोल स्तम्भ खड़ा, जिसपर खुदा यह शिलालेख मिलता है,—अहमदनगरके मुर्तज़ा-निज़ाम शाहके शासनकालपर सन् १५८८ ई० में यह स्तम्भ खड़ा किया गया।

अन्त्येष्टि (सं० स्त्री०) अन्त्ये भवा इष्टिः यागादिक्रिया कर्मधा०। मृत्युके बाद साग्निकोंकी देह संस्कारादि क्रिया। निरग्नियोंके केवल दाह करनेकी व्यवस्था है। पतित मनुष्यकी दाहक्रिया नहीं होती। इसके अतिरिक्त जाति और देशाचारके भेदसे कोई मृतदेहको गाड़ और कोई सड़नेके लिये छोड़ देते हैं। इन्हीं सब अन्तकी क्रियाओंका नाम अन्त्येष्टि है।

मृत्युके बाद शरीर निश्चल और बेकाम हो जाता है। उस समय उस मलिन मुखको देखकर पाषाण हृदय भी कांप उठेगा। दो एक दिन बाद लाश सड़ने लगती, दुर्गन्धसे लोगोंको कष्ट पहुंचता है। इसीसे आदमीके मरनेपर शीघ्र ही लाशको हटा देना आवश्यक है। मैदानमें फेंकना, जलमें डालना, अथवा गाड़ देना—यही सब सहज उपाय हैं। पहले असभ्य अवस्थामें सब जातिके आदमी ऐसा ही करते थे। किसीकी मृत्यु हो जानेपर बन्धुबान्धव लाशको जलमें डुबा, ज़मीनमें गाड़ अथवा बस्तीसे कुछ दूर फेंक देते रहे।

यह विश्वास मूर्खोंको ही अधिक है, कि मनुष्य मरनेपर भूत हो जाता है। कोल, संथाल आदि असभ्य जातियां भूत मानतीं और उसकी पूजा भी करती हैं।

सब देशोंके आदमी असभ्य अवस्थामें भूतसे भय खाते हुए चलते थे ; और अब भी चलते हैं। इसीके साथ साथ क्रमसे दो एक शान्ति-स्वस्त्ययनका आरम्भ हो गया, जिसमें कहीं मृत्युके बाद भूतका उपद्रव न उठे।

जिसे प्यार करते, आठों पहर उसे आंखके सामने देखते हैं। मनमें देखते, हृदयमें देखते और सोनेपर स्वप्नमें भी देखते ; विदेश जानेपर दो दिनमें न हो तो दो वर्षमें एकबार देख सकेंगे, इसी भरोसेपर आशा लगाये रहते हैं। कल जो था, आज वह नहीं रहा ! मरनेसे जन्मभरके लिये सब सम्बन्ध छूट गया ; यह आशा भी जाती रही, कि फिर भी देख सकेंगे। इसीसे अन्त्येष्टिक्रियाके साथ साथ अनेक मनुष्य स्नेह और भक्तिके लिये भी कितने ही काम करते हैं। इसके सिवा लोगोंके मत और विश्वासपर भी अन्त्येष्टिक्रियाके अङ्ग प्रत्यङ्ग नाना प्रकारसे बढ़ गये।

इस समय सब जातियोंमें अन्त्येष्टिक्रियाकी प्रथा एक तरहकी नहीं पाते। पहले जैसी थी, अब वैसी नहीं रही, दिन दिन परिवर्तन होते चला जाता है। तो भी अच्छी तरह विचार कर देखनेसे आदिम अवस्थाका कोई न कोई आभास अब भी सब जातियोंमें मिलेगा।

उस समय कालमक जातिके आदमियोंका कोई निर्दिष्ट वासस्थान न था। वह सब पशु पालते और जगह जगह झोपड़े बनाकर रहते थे। एक स्थानका तृण अन्नादि चुक जानेपर दूसरी जगह चले जाते। उनकी अन्त्येष्टिक्रियामें कोई आडम्बर न रहा। किसीकी मृत्यु हो जानेपर वह सब लाशको उसी जगह छोड़ कुछ दूर हट झोपड़ा बनाकर रहने लगते। प्राचीनकालमें इथिओपियाके आदमी लाशको जलमें डुबा देते थे। युक्तप्रदेशमें अब भी यह रीति जारी है। इतर जातिकी लाश गलेसे घड़ा और रस्सी बांधकर नदीमें डुबा देते हैं।

बम्बईकी पारसी जाति सभ्य और सुशिक्षित है। भारतमें वैसी धनी जाति दूसरी नहीं। किन्तु उन लोगोंमें अन्त्येष्टिक्रिया मानव-जातिवाली प्रथमावस्थाकी तरह अति सहज उपायसे की जाती है। "दखमा" अर्थात् शान्तिमन्दिर नामक उनके गाड़े जानेवाले गढ़े पर लोहेका जाल लगा रहेगा। पारसी लोग उसीपर लाशको सुला जाते हैं। धूप और सरदीसे धीरे-धीरे लाश गलने लगती, कौवे और गृद्ध मांसको खा जाते हैं। अन्तमें हड्डियां गड्ढेमें नीचे गिर पड़ेंगी। हड्डियोंको इकट्ठाकर गाड़ देते हैं।

साइबेरियाके दक्षिण-पूर्व कमस्कटका उपद्वीप है। इस उपद्वीपमें कामस्काडेल् नाम्नी एक असभ्य जाति रहती है। उस जातिके लोग लाशको न तो जलाते और न गाड़ते, बल्कि कुत्तोंको खिला देते हैं। लाश खिलानेके लिये घर-घर कुत्ते पालेंगे। कमस्काडेलोंको विश्वास है, कि लाश कुत्तेको खिला देनेसे प्रेतात्मा परलोकमें जाकर सुखसे रहता है। उन लोगोंके कुत्तोंमें एक विचित्र गुण मिलेगा। वे भूंक नहीं सकते, भूकना एकदम जानते ही नहीं ; परन्तु मनुष्योंके बहुत काम आते हैं।

यह विश्वास अनेक जातियोंमें है, कि कुत्ता परलोकमें सहाय होता है। गारो जाति मृतदेह संस्कारके समय कुत्ता बलि देगी। चित्मां पर्वत गारो लोगोंको प्रेतपुरी है। कुत्ता बलि देनेसे उसकी आत्मा मृत व्यक्तिको राह दिखाकर प्रेतलोकमें ले जाती है। इसीसे वह संस्कारके समय कुत्तेको बलि देते हैं। ग्रीनलेण्डवासियोंमें भी कुछ ऐसी ही रीति प्रचलित है। छोटे लड़केकी मृत्यु होनेपर प्रेतलोककी राह दिखानेके लिये लाशके साथ कुत्ता गाड़ देते हैं।

ऐसा विश्वास केवल असभ्य लोग ही नहीं करते ; कि कुत्ता प्रेतलोकका पथ दिखा सकता है। प्राचीन आर्योंकी भी ठीक ऐसी ही धारणा थी। अन्त्येष्टिक्रियाके समय आर्य, यमके दोनो कुत्तोंको प्रेतात्माके साथ रखनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते थे।

"यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसा।
ताभ्यां राजन् परिदेह्येनं स्वस्ति चास्मा अनमीवञ्च धेहि।"

(तैत्तिरीय-आरण्यक ६।१)

दिये थे। पीछे उन्होंने सबसे कहा,—शमीवृक्षपर शव बंधा है। लोगोंने यही समझ लिया, कि वृक्षमें शव लटकता था; उसीसे किसीने धनुर्वाणादि न चुराया। अनुमान होता है, कि पहले इस देशकी कोई-कोई जाति वृक्षमें शव लटका देती थी, इसीसे लोगोंने इस बातपर सहजमें विश्वास कर लिया। शव लटकानेकी प्रथा न होनेपर पाण्डवकी बात कोई न सुनता, सब लोग हंसी उड़ाने लगते। कहते हैं, कि प्राचीन कलचिस्के लोग पुरुषका मृतशरीर वृक्षमें लटकाते और स्त्रीको कब्रमें गाड़ देते थे। अतएव ऐसा अनुमान करना असङ्गत नहीं, कि भारतवर्षमें भी वैसा कोई नियम प्रचलित रहा। इसतरह सन्देह होनेका दूसरा भी कारण विद्यमान है। समाजमें जो नियम अधिक कालतक चले, पीछे बिलकुल बन्द हो जानेपर भी उसका कुछ आभास रहेगा। मालूम होता है, कि पहले इस देशमें वृक्षसे शव बांधनेकी प्रथा थी, इसीसे वैदिक समयमें साग्निक ब्राह्मणकी हड्डियां इकट्ठीकर पलाश या शमी वृक्षमें लटका देते थे।

भारतवर्षके पर्वतोंमें अनेक असभ्य जातियां बसती हैं। उनका देवता प्रायः एक-सा होता है; सकल ही वनस्पति, नदी, पर्वत, भूत, व्याघ्र प्रभृतिको पूजेंगी। किन्तु उनकी अन्त्येष्टिक्रिया एक प्रकारसे नहीं होती। खन्द और भील जाति पुरुषको जलाती और स्त्रीको कब्रमें गाड़ती है। नीलगिरिकी तदा जातिका व्यवहार बिलकुल हमारे ही समान होगा। वह शिशुको मट्टीमें गाड़ती, वयःप्राप्त स्त्रीपुरुषको जला डालती है; हिमालयके प्रायः सब असभ्य लोग मृतशरीरको कब्रमें गाड़ते हैं।

मृत व्यक्तिके प्रति स्नेह, ममता और भक्ति होनेसे अन्त्येष्टिक्रियाकी कितनी धूमधाम और तड़क-भड़क बढ़ गयी है। उसपर फिर प्रेतलोकके प्रति विश्वास भी पायेंगे। इस समस्याका मर्म, कि मनुष्य मरनेपर कहां जाता है, जिस जातिने जैसा समझा, वह प्रेतात्माकी सुखस्वच्छन्दता और सद्गतिके लिये वैसा ही प्रत्येक कार्यका नियम निकाल गयी। उत्तर-अमेरिकाके असभ्य लोग मृत व्यक्तिके साथ भोजन बनानेका पात्र, नाना प्रकारके खाद्य द्रव्य, वसन-भूषण और धनुर्वाण रख देते हैं। प्रेतलोकमें लोगोंको दीर्घकालतक रहना पड़ेगा, इसीसे परिधानका मृगचर्म फट जानेपर कमरबन्द लगाना उचित है।

इसीसे अतिरिक्त कुछ चर्म कब्रमें डाल देंगे। अफ्रीकाके अन्तर्गत जो देहोमी प्रान्त है, उसके लोग मृतव्यक्तिके पास संवाद भेजनेको क्रीतदासकी जान ले लेते हैं। उसी नौकरका आत्मा लोकान्तरको घरका समाचार पहुंचायेगा। कोई-कोई हबशी सम्प्रदाय आत्मीय व्यक्तिका अस्थि रख छोड़ता है। इच्छा चलनेसे वह उसी अस्थिके साथ बातचीत करने लगेगा। आन्दामान-द्वीपवासी भक्ति और स्नेह दिखानेको मृत व्यक्तिके मुण्डकी माला बना गलेमें पहनता है। भारतवर्षका वन्य असभ्य मृतशरीरके साथ अस्त्रशस्त्र, खाद्य द्रव्य और वसन-भूषण गाड़ देगा। हम अन्त्येष्टिक्रिया करते समय मृतव्यक्तिके मुखमें पिण्डदान करते हैं। श्राद्धके समय जलपात्र, भोजनपात्र और शय्यादि दें; इसके सिवा उसके पितृलोकोद्देशसे तर्पण और पार्वण श्राद्ध भी करेंगे। अतएव देशभेद और जातिभेदसे अन्त्येष्टिक्रियाका अनुष्ठान भिन्न-भिन्न है सही किन्तु, सबका उद्देश्य एक है।

एक समय वेल्समें (Wales) एक विलक्षण नियम रहा। हमारे देशमें अग्रदानी ब्राह्मण जैसे प्रेतपिण्ड खाते हैं, वेल्स देशमें भी वैसे ही कोई सम्प्रदाय पापभोजी था। जलाते समय उस सम्प्रदायके लोग शवके हाथसे एक रोटी खाते थे, जिससे प्रेतात्माके समस्त पाप छूट जाये। इस रीतिका कितना ही आभास युक्तप्रदेशके किसी-किसी स्थान एवं पञ्जाब और काश्मीरादि स्थानोंमें मिलता है। अशौचान्तके दिन हिन्दू जनेक ब्राह्मणको कीचड़ और मट्टीसे लपेट प्रेत बनायेंगे। पीछे पिण्डदान खिलाते हैं। यह सब प्रेतब्राह्मण क्रियाके अन्तमें विलक्षण दक्षिणा पायेंगे। पुरनिया जिलेमें श्राद्धके दिन एक झोपड़ा बनाते हैं। उसके भीतर नानाविध खाद्य

सामग्रीसे प्रेतनैवेद्य तैयार किया जाता है। अग्रदानी ब्राह्मण और उनकी स्त्रीके उस नैवेद्य खाने बैठनेपर गृहस्थ कुटीरका द्वार बन्दकर आग लगा देगा। उस समय अग्रदानी ब्राह्मण और उनकी स्त्री दोनों किसी प्रकार द्वार तोड़ बाहर निकल जाते हैं।

प्रेतात्माकी वैतरणी नदी पार करनेको हम गोदान करते हैं। पहले रूस और यूनान देशमें भी बहुत कुछ ऐसा ही नियम प्रचलित था। रूसवासी मृत-शरीर गाड़ते समय उसके हाथमें कोई 'परवाना' लिख-कर रख देते थे। प्रेतात्मा वही परवाना पितरको (Pater) देखानेसे अनायास स्वर्ग पहुंच सकता था। यूनानी मृतदेहको स्नान करा सर्वाङ्गमें सुगन्धादि लगा देते रहे। उसके बाद उत्तम वस्त्रालङ्कार पहना मस्तकपर पुष्पमाला चढ़ा और फूलोंका मुकुट लगा उसे नूतन शय्यापर सुलाते। यूनानियोंकी वैतरणी नदीका नाम आचरण-नद है। वृद्ध चारण देवता उसी नदके कर्णधार बने हैं। जब प्रेतात्मा वहां पहुंच चारण देवताके हाथ एक रुपया रखे, तब वह उसे आचरण-नदके पार उतारेंगे। किन्तु पार जानेका मूल्य न दे सकनेसे दुर्भाग्य प्रेतात्मा जलके किनारे रोते घूमते रहता था। यूनानी स्त्रियां मृतदेहके मुखमें एक रुपया और थोड़ी सी मिठाई इसलिये डाल देतीं, जिसमें आचरण-नदके पास पहुंचनेपर कोई विघ्न न पड़े या सार्बेरस कुत्ता प्रेतपुरीका द्वार न रोके। इसके बाद पुरमहिला मृतशय्याकी चारो ओर बैठ रोतीं; रोते-रोते अपने वस्त्र और केश नोचते जाती थीं।

थेस्प्रशियाके मध्य एक आचरण-नद विद्यमान है। यह आचारुशिया ह्रदके भीतरसे निकल आयोनियन सागरमें जा गिरा है। एसिल् प्रदेशमें भी कोई दूसरा आचरण-नद बहता है। इसे अब साकूटो कहते हैं। पौशिनोया बताते हैं, कि महाकवि होमरने थेस्प्रशियाके आचरण-नदकी बात लिखी है। हमारी वैतरिणी नदीका जल दुर्गन्ध और उष्ण है, सर्वदा ही मैला-कुचैला और शोणित, अस्थिकेशसे परिपूर्ण रहता है। यूनानियोंके आचरण-नदका जल कृष्णवर्ण, तिक्त, और सर्वदा ही उससे बाष्प निकला करता है।

चारण-देवता निरानन्द हैं, मुखपर हंसी नहीं झलकती; सर्वदा ही शोकगम्भीर भावसे निस्तब्ध बने रहते हैं। मुखपर छिन्न-भिन्न दाढ़ी लटकती, शिरके केश शुक्ल और परिधानका वस्त्र मलिन और जीर्ण पड़ गया है। इट्रस्कानके स्तम्भमें चारण-देवताके हाथ और उनकी हथौड़ी देख पड़ेगी।

यूनानी मृत्युके दिन ही अन्त्येष्टिक्रिया न करते थे। वह, तृतीय दिवस मट्टीके कफनमें शवको रख नगरके बाहर गाड़ देते रहे। कब्रस्थान जानेसे सबको ही नहाना पड़ता था। स्नान न करनेसे कोई देवालयमें घुसने न पाता। तृतीय, नवम और त्रिंशत् दिवस पिण्डदान होता था। रोमवासी मृतदेहको जला डालते थे। हम सत्कार्यके बाद स्नान और अग्निस्पर्श करते। रोमवासी मृत-देहको जला जल छूने या अग्नि सुलगानेसे ही शुद्ध होते रहे। नवम दिवस उनका अशौचान्त आता था। उस समय यूनानी और रोमवासी मृतदेहको जिस तरह साज-बाज बाहर निकालते, वैसे ही आज भी भारतवर्षकी सिंगानी प्रभृति कोई-कोई जाति मृतदेहको उत्तम कपड़े-गहने पहना धूमधामसे श्मशान पहुंचाती है।

पूर्वकालके मिश्रवासियोंकी अन्त्येष्टिक्रिया कुछ अद्भुत प्रकार थी। वह मृतदेहको जला या गाड़ बिगाड़ते न थे। तरह-तरहका मसाला शरीरमें लगा सर्वाङ्ग कपड़ेसे लपेट देते थे। उससे किसी जगह ज़रा सा भी मांस न गलता और न कोई हड्डी ही टूटती थी। मिश्रवासियोंका विश्वास था, कि शरीर, आत्मा, ज्ञान और आकारसे मनुष्यका जीवन सधेगा। इनके पृथक्-पृथक् होनेसे मृत्यु दौड़ती है। मृत्युके बाद ज्ञान, इतस्ततः चक्कर लगाते घूमता, आत्मा अधोलोक पहुंच नाना प्रकार कष्ट सहता, जिसके द्वारा उसकी धर्मनिष्ठा जांची जाती है। अवशेषमें, कहीं तीन और कहीं दश हज़ार वर्ष बाद पुनर्वार वही ज्ञान और आत्मा पूर्व-

शरीरके मध्य जा पहुंचेगा। किन्तु शरीर बिगड़ जानेसे फिर वह नहीं घुस सकते। इसीसे मिस्रवासी यत्नपूर्वक मृतदेहको रख छोड़ते थे।

मृतदेह बना देनेके लिये उस समय मिस्रमें सात-आठ सौ कारीगर रहे। कोई मैल-वैल निकालता, कोई खारी पानीमें शरीर डुबाता, कोई औषध लगाता और कोई रङ्ग चढ़ाता था। मिस्रमें पुरुष मरते ही मृतदेह कारीगरोंके पास पहुंचायी जाती थी। स्त्रीके मरनेसे मुर्दा थोड़े दिन घरमें रखते। हिरोदोतस् और दिओदोरस्ने इस बातका विशेष अनुसन्धान किया था, मृत शरीरकी कैसे रक्षा की जाती है। उनके मतमें, जिस प्रणालीसे धनवान व्यक्तिकी देह बने, उसमें व्यय अधिक पड़ेगा। प्रत्येक शरीरको मसालेसे बनाने और सजानेमें कमसे कम ७२५०) रुपयेका खर्च रहा। मिस्रमें मुर्दा-फ़रोशोंके सदृश कोई नीच जातीय कारीगर भी थे। वह मृत-देहकी वाम दिक्के पञ्जरके नीचे नश्तर लगा पेटकी आंतें-पोतें निकाल डालते रहे। दूसरे प्रकारके मुर्दाफ़रोश छातीको काट फेफड़ा और गुर्दा निकालते थे। तृतीय प्रकारके लोग नाकमें लाहेकी टेढ़ी सलाई डाल मस्तिष्क खींच लेते रहे। अन्तको पिचकारीमें तालकी ताड़ी डाल उदर, वक्षःस्थल और मस्तक पुनःपुनः धो देनेसे सब जगहका गलित द्रव्य छूट जाता था। उसके बाद पेटमें हीराबोल प्रभृति मसाला भर ऊपरी चर्म सी जानेसे, दूसरे कारीगरोंके पास वही देह पहुंचायी जाती। मृतदेहको चीरना न चाहिये, उसपर आघात करना भी अयोग्य है; इसीसे वह सकल प्रक्रिया समाप्त होनेपर मृतव्यक्तिके बन्धुबान्धव कपट रागसे मुर्दाफरोशोंको पत्थर मारते थे।

अन्त्र, मस्तिष्क प्रभृति परिष्कार करनेमें प्रायः १६।१७ दिन लगते रहे। उसके बाद क्षार कर्म किया जाता। यह काम किसी अन्यके हाथ था। कारीगर क्षार-जलमें १९।२० दिन मृतदेहको भिगो रखते थे। मिस्रके अनेक शवका मांस नया-जैसा देख पड़ता है। उसका कारण यह निकलेगा, कि कारीगर अनेक औषध शिरके भीतर भर देते, इसीसे कोई स्थान बिगड़ता न था। यह सकल प्रक्रिया समाप्त होनेपर निम्नश्रेणीके कोई सम्प्रदाय पुरोहित उसी शरीरका प्रत्येक अङ्ग कपड़ेसे लपेट देते।

मिस्रके रक्षित मृतदेहको ममी कहते हैं। यहां दो ममीका चित्र खींचा गया है।

मिस्रके एक-एक मृतदेहसे चार इञ्च चौड़ा और ढाई सौ हाथ लम्बा कपड़ा निकाला गया है। कहते हैं, कि मर जानेपर मृतदेहका जाड़ा छुड़ाने-को कपड़ा लगनेसे सभी लोग जीवद्दशामें अपना-अपना जीर्ण वस्त्र सञ्चय कर रखते थे। हिरोदोतसने लिखा है, कि मृतशरीरको मसालेसे भरने और वस्त्रसे लपेटनेमें ३४।३५ दिन लगते रहे। अतएव ७०।७२ दिनसे कम समय किसी शरीरके बनानेमें न लगता था।

द्वितीय उपाय अपेक्षाकृत सरल और सुलभ होता था। उसमें २४३०) रुपयेसे अधिक व्यय न पड़ते। कारीगर पेटमें मसाला न डाल केवल अलकतरेसे उसे भर देते थे। उसके बाद क्षार जलमें भिगोकर रखनेसे समस्त गलित पदार्थ आप ही बाहर निकल जाता।

दरिद्र लोगोंके पास अर्थ नहीं होता। इसीसे निर्धन व्यक्तिके शरीरकी आंतें निकाल उसे जलमें भिगो देते थे। उसके बाद सर्वाङ्गमें कपड़ा लपेट देनेसे फिर शरीर बिगड़ता न था। इस तरह

मृतदेह प्रस्तुत हो जानेसे पुरोहित उसे सन्दूकके भीतर रख कब्रमें गाड़ देते।

इथिओपिया, ईरान, केनारी द्वीप, आसीरिया, अमेरिका प्रभृति अनेक देशोंमें मृतदेहके रक्षा करनेकी प्रथा थी। किन्तु मिस्र-जैसा आडम्बर दूसरी किसी भी जगह देख नहीं पड़ा। ईरानके लोग केवल मोमसे मृतदेहको बचाते रहे। आसीरियाके लोग मधुसे यही काम निकालते, जिसमें मृतदेह सड़ता न था। अलेक्ज़ेन्दरके मरनेपर उनका शरीर मधु और मोमद्वारा सड़नेसे बचाया गया था। इस समय भी अधिक दूर मृतदेह ले जानेपर नानाप्रकारके मसालोंसे भरा जाता है। आन्दामान द्वीपमें शेरअलीके लार्ड मेयरको मार डालनेपर उनका शरीर अधिक दिन बचानेके लिये चिकित्सकोंने राईके तेल, मोम, सुरा, कर्पूर, सिनेवार, शोरा प्रभृति अनेक द्रव्योंमें डुबाकर रखा था।

वैदिक समय भारतवर्षमें ब्राह्मणकी जिस प्रथासे अन्त्येष्टिक्रिया होती थी, आजकल उसका कोई आभास नहीं मिलता। वैदिक समयमें गङ्गायात्रा न थी, कोई अपना गृह छोड़ स्थानान्तरको मरने न जाता था। परिवार और आत्मीयवर्गसे वेष्टित हो सब ही अपने-अपने घरमें प्राण छोड़ते रहे। मृत्युके बाद ही प्रथम होम किया जाता था। बौधायनने व्यवस्था दी है, कि मृतव्यक्तिका दक्षिण हस्त छूकर गार्हपत्य अग्निमें चार बार आहुति डालना चाहिये। किन्तु भरद्वाज आहवनीय अग्निमें होम करना बताते हैं। इस विषयपर आश्वलायनीय-सूत्रमें लिखा है, कि पितृमेधका प्रथम होम उस समय न करनेसे भी काम चल जायेगा। होम साङ्ग हो चुकनेपर गृहसे सदाके लियेविदा करनेकी व्यवस्था है—बन्धुबान्धव यज्ञडुमुर काष्ठसे एक चारपायी बनाते थे। चारपायी बना उसपर कृष्णसारचर्म बिछाया जाता। चर्मके लोमका पृष्ठ नीचेकी ओर रखते थे। आत्मीय-स्वजन शवका मत्था दक्षिणकी ओर रख उसे चारपायीपर चित सोला देते। मृतव्यक्तिका पुत्र शवको कोई नया कपड़ा पहनाता और ऊपरसे दूसरा वस्त्र भी ढांक देता था।* पुत्र न होनेसे सहोदर या किसी निकट जातिको यह काम करना पड़ता था।

आजकल ब्राह्मणका मुर्दा शूद्र नहीं छू सकता। मनु प्रभृति शास्त्रकार उसका निषेध कर गये हैं।

"न विप्रं स्वेषु तिष्ठत्सु मृतं शूद्रेण नाययेत्।
अस्वर्ग्या ह्याहुतिः सास्या च्छूद्रसंस्पर्शदूषिता॥" (मनु ५।१०४)

ब्राह्मणादिको स्वजाति मिलते हुए शूद्रसे मृतदेह न उठवाना चाहिये। कारण, शूद्रके छू जानेपर उसी आहुति द्वारा वह स्वर्ग नहीं पा सकता।

विष्णु, यम प्रभृति अन्यान्य स्मृतिकारोंने भी ऐसा ही निषेध लिखा है।

किन्तु पहले यह नियम न था। ब्राह्मण मरनेसे घरके नौकर मृतदेहको श्मशान ले जाते थे। किन्तु मनुष्य द्वारा शव ले जानेमें असुविधा पड़नेसे बैलगाड़ीपर मृतदेह ढोनेकी प्रथा थी।

"इमौ युनज्मि ते वह्नी असुनीथाय वोढ़वे।
आभ्यां यमस्य सादनं सुकृताञ्चापि गच्छतात्।"
(तैत्तिरीय-आरण्यक ६।१।४)

अर्थात् आपको ले जानेके लिये हम इन दोनों बैलोंको गाड़ीमें जोतते हैं। यह आपको यमके आलय और पुण्यात्माओंके स्थानपर पहुंचा देंगे। अग्नि आपके सकल पुण्यकर्म जानते हैं, जो आपको पार लगायेंगे।

श्मशान जाते समय पथमें तीन बार मृतदेह उतारना पड़ता था। शवको नीचे रख सहगामी तीन मन्त्र पढ़ते थे। इन मन्त्रोंको देख स्पष्ट ही समझ पड़ता हैं, कि आर्य प्रेतलोकका पथ पहचाननेके निमित्त अनेक कष्ट उठाते, पथका सहचर खोजते थे।

'पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्रविद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परिददात् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः। सुविदत्रेभ्यः।'
(तैत्तिरीय-आरण्यक ६।१।५)

---

* "इदं त्वा वस्त्रं प्रथमं न्वागन्। अपैतदूह यदि हाविभः पुरा।" (तैत्तिरीय-आरण्यक ६।१) अर्थात् यह वस्त्र आपके पास प्रथम आया है। आपने पहले जो वस्त्र पहना था, उसे अब छोड़ दीजिये।

अर्थात् 'पूषा पथको उत्तम रूपसे पहंचानते हैं, आपको ले जानेके लिये उनके सुशिक्षित शान्त पशु विद्यमान हैं। वह भुवनके रक्षक हैं; वह आपको यहांसे पितृलोक ले जायंगे।'

हिन्दुस्थानमें शव उतारनेकी प्रथा आज भी वर्तमान है। किन्तु बङ्गालमें इसका चलन नहीं, जहां इससे सब ही भय खाते हैं। लोगोंको विश्वास है, कि पथपर मुर्दा उतारनेसे ग्राममें महामारी दौड़ेगी। इसलिये दैवात् किसीके मुर्दा उतारने या मृतदेह गिर पड़नेसे गृहस्थ द्वार-द्वार सात खोंचे रखते और सात घड़े जल छोड़ते थे।

आर्य मृतदेहके साथ श्मशानमें एक गाय ले जाते रहे। इस गायको अनुस्तरणी या राजगवी कहते थे। बुड्ढी गाय मिलनेसे काम बनता। उसके न मिलनेसे, जिस गायके लोम, चक्षु या खुर काले होते, उससे भी मतलब निकल जाता था। गायके अभाव-में कोई-कोई कृष्णवर्ण तरुण छागल भी ले लेते रहे।

श्मशानमें पहुंच बन्धुबान्धव पहले चिताका गड्ढा खोदते थे। यह बारह अङ्गुल गहरा, पांच बालिश्त चौड़ा और मृतव्यक्तिके शिरकी ओर सीधे हाथ फैलानेपर पैरके वृद्धाङ्गुष्ठसे हाथकी तर्जनी पर्यन्त जितनी लम्बाई रहती, गर्त भी बिलकुल उतना ही लंबा बनाया जाता। गर्त खुद जानेपर उसके ऊपर चिता लगाते थे।

उसके बाद शवको नहला धुला चितापर सुलाते थे। पहले किसी-किसी स्थानमें एक अनोखा नियम प्रचलित था। उदरमें मलमूत्र रहता है। मनुष्य मरकर पितृलोक जायेगा। किन्तु मलमूत्र लपेट पुण्यधामको जाना ठीक नहीं, इसीसे कोई आंतें-पीतें बाहर निकाल उदरको घृतसे भर देते थे।

यह प्रक्रिया समाप्त होनेपर मन्त्रपाठपूर्वक राजगवीका वध करते रहे। इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता, गाय कैसे मारी जाती थी। किन्तु व्यवस्था ऐसी थी, उसके पैरसे शिरतकका समग्र चर्म निकाल शवके ऊपर ढांक देना चाहिये।

"पुरुषस्य सयावर्यपेदघानि मृज्महे। यथा नो अत्र नापरः पुरा जरस आयति। (तैत्तिरीय-आरण्यक ६।१।२।१०)

पुरुषस्य सयावरि वि ते प्राणमसिस्रसं। शरीरेण महीमिहि स्वधयेहि पितृणुप प्रजयाऽस्मानिहावह। (६।१।२।११)

मैवं मांस्ता प्रियेऽहं देवी सती पितृलोकं यदेषि। विश्ववारा नभसा संव्ययन्त्युभौ नो लोकौ पयसाऽभ्यावहृत्स्व॥" (६।१।२।१२)

मृतव्यक्तिकी सहगामिनि (राजगवि)! हमने आपके द्वारा प्रेतात्माके पापका ऐसा शोधन किया है, जिससे जरा या पूर्वका कोई अपर पाप हमारे पास पहुंच न सके।

हे मृतव्यक्तिकी अनुगामिनि! हमने आपके प्राण नष्ट किये हैं। आप शरीर द्वारा भूमि और स्वधा द्वारा पितृलोकको प्राप्त कीजिये। इस पृथिवीमें पुत्रादि सह हमलोगोंको क्षमा करना।

हे प्रिये (राजगवि)! मनमें यह न लाना, कि तुम मारी गयी हो। कारण, आप देवी और सती हैं और द्युलोकसे पितृलोकको जाती हैं। हमें इहलोक और परलोकमें क्षीरपूर्ण बनायिये।

इस समय हम छाग, मेषादि इसतरह बलि चढ़ाते, जिसमें शिर पृथक् पड़ जाता है, पैरसे मस्तक पर्यन्त चर्म समग्र नहीं उतरता। अतएव इस समय यह निश्चित करना कठिन है, कि मुसलमानोंकी तरह आर्य राजगवीको हत्या करते या अन्य किसी प्रकार मारते थे।

"अथैनं चर्मणा सशीर्षं बालपादेन उत्तरलोम्न प्रोर्णोति।"

(तैत्तिरीय आरण्यक, सायण भाष्य)

पीछे यज्ञीयपात्र शवके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पर रखे जाते थे। मुखमें दधि एवं अग्निहोत्र हवि, नाकमें स्रुव, चक्षुमें सुवर्णखण्ड किंवा आज्यस्रुव, कानमें प्राशित्र-हरण, मस्तकमें तोड़कर कपालपात्र और ललाटमें एक कपाल रख देते थे। आश्वलायनीय-सूत्रमें अन्य प्रकारसे व्यवस्था दी गयी है। यथा—दक्षिणहस्तमें जुहू, वामहस्तमें उपभृत्, दक्षिण पार्श्वमें छुरी, वाम-भागमें अग्निहोत्र-हवि, दन्तमें ग्रभू, मस्तकमें कपाल, वक्षःस्थलमें ध्रुव, नासिकामें स्रुव, नासारन्ध्रमें प्राशित्रहरण, उदरमें चमस-पात्र, जननेन्द्रियमें शमी,

उरुसे नीचे उदुखल-मूसल, उरुसे ऊपर अरणि और पैरमें सूर्प रखना चाहिये।

राजगवीका मांस भी देहके स्थान-स्थानमें रखनेका नियम था। आश्वलायनने उसकी ऐसी व्यवस्था बतायी है, कि गायकी चर्बी मृतदेहके मस्तक और चक्षुमें डालना चाहिये। हाथमें वृक्क, वक्षःस्थलमें हृदय और गायका मांस एवं शरीरके अपरापर अङ्गमें अन्यान्य इन्द्रिय रखते थे।

राजगवीको मारते समय कोई विघ्न पड़नेसे उसके सामनेके वाम पैरका खुर तोड़ उसे छोड़ देनेका नियम था। ऐसे स्थलपर आर्य गोमांसके अभावमें चावल किंवा यव पीस मृतदेहके स्थान-स्थानमें डालते थे। फिर गाय न मिलनेसे श्मशानमें छागल ले जानेपर उसे मारते न रहे। किसी सीधी रस्सीके सहारे छागल चिताके काष्ठसे बांध दी जाती थी। अन्तमें आगसे रस्सी जल जानेपर वह भाग खड़ी होती। यह सकल आयोजन समाप्त होने पर मृतव्यक्तिके हाथपर ब्राह्मण होनेसे एक सुवर्णखण्ड, क्षत्रिय होनेसे धनुष और वैश्य होनेसे रत्न रखा जाता था। उसके बाद मृतपतिकी विधवा नारी स्नानादि कर चितापर स्वामीके वाम पार्श्व सो रहती। किन्तु आश्वलायनने, पतिके मस्तकके पास सोनेकी व्यवस्था बतायी है। अग्नि देनेसे पहले ऋत्विक्, किंवा मृतव्यक्तिका पुत्र, सहोदर अथवा अन्य कोई निकट कुटुम्बी चिताके पास पहुंच कहने लगता,—

"इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
विश्वं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणञ्चेह धेहि॥" १३॥
(तैत्तिरीय-आरण्यक ६।१।३)

'हे प्रेत! यह नारी पतिलोक जानेकी कामनासे तुम्हारे मृतदेहके पास पड़ी है। इसने पहले पतिपरायणताका कर्तव्य कर्म सम्पन्न किया था। इसे इहलोकमें रहनेकी अनुमति बता प्रजा और धन देते रहिये।' अवशेषमें मृतव्यक्तिका कनिष्ठ सहोदर, शिष्य किंवा पुरातन भृत्य यह बात कह विधवा नारीको हाथ पकड़ उठा लाता था,—

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकमितासुमेतमुपशेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तमेतत् पत्युर्जनित्वमभिसंबभूव॥" १४॥
(तैत्तिरीय-आरण्यक ६।१।३)

'हे नारि! आप मृतपतिके पास पड़ी हैं। आप मृतपतिके निकटसे उठ जीवित लोगोंके पास चलिये! आपका जो पाणि पकड़ना चाहे, उसके साथ विवाह करना उचित है।' इस मन्त्रके पढ़े जानेपर विधवा नारी पतिके हाथसे सुवर्णादि निकाल चिता छोड़ देती थी। किन्तु कोई-कोई शास्त्रकार कहते हैं, कि ऋत्विक् किंवा मृतव्यक्तिके पुत्र प्रभृति सुवर्ण अथवा धनुषादि उठाते रहे।

ऋक् एवं यजुर्वेदमें इस मन्त्रका कुछ पाठान्तर देख पड़ता है। सायणाचार्यने भी उभयकी टीकामें कुछ-कुछ भेद डाल दिया था। सिवा उसके जो पण्डित इस वेदमन्त्रका ठीक अर्थ समझ न सके, उन्होंने पाठमें भी बड़ा गड़बड़ मचाया। मुद्रित पुस्तकमें ऋग्वेदका पाठ इसतरह लिखा है,—

"इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशंतु।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहंतु जनयो योनिमग्रे॥"
(ऋग्वेद १०।१८।७)

कलकत्तेकी एसियाटिक सोसायिटीके किसी-किसी हस्तलिखित पुस्तकमें, 'संविशन्तु' इसके स्थानमें 'सम्भृशन्ताम्' एवं 'सुरत्ना' इसके स्थानमें 'सुशेवा' पाठान्तर विद्यमान हैं। डाक्टर राजा श्रीराजेन्द्रलाल मित्र महाशयने भी किसी-किसी हस्तलिखित पुस्तकमें ऐसा ही पाठान्तर देखा था। दूसरे कई-एक हस्तलिखित यजुर्वेद पुस्तकमें बिलकुल ऐसा ही पाठ मिलता है,—

"इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सम्भृशन्ताम्।
अनश्रवोऽनमीवाः सुशेवा आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे॥"

पहले जो पाठ उद्धृत किया गया, उसका भाष्य अनुमरण शब्दमें देखिये। सायणाचार्यने यजुर्वेदमें इस मन्त्रकी इस प्रकार टीका की है,—

'इमा नारी—एतास्त्रियः' यह सकल स्त्री; 'अविधवाः—वैधव्यरहिताः', वैधव्यशून्या हैं। 'सुपत्नीः—शोभनपतियुक्ताः सत्या' उत्तमपतियुक्त होकर; 'आञ्जनेन—अञ्जनहेतुना', अञ्जनके निमित्त; 'सर्पिषा'—

घृत द्वारा ; 'सम्मृशन्तां—चक्षुषी संमृशन्तु', चक्षु लिप्त करें। 'अनश्रुवः—अश्रुरहिताः' चक्षुके जलसे शून्या ; 'अनमीवाः—रोगरहिताः', रोगसे रहिता ; 'सुशेवाः—सुष्ठु सेवितुं योग्याः', उत्तम रूपसे सेवा करने योग्य हैं। 'जनयः—जाया', जाया ; 'अग्रे—इतःपर', इसके बाद ; 'योनिं—स्वस्थानं', अपना स्थान 'आरोहन्तु—प्राप्नवन्तु', प्राप्त हों।

रघुनन्दन भट्टाचार्यने भूलसे जो मन्त्र लिखा, उसे नीचे लिखते हैं,—

"इमा नारीरविधवाः सपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु।
अनस्वरोऽनमीरा सुरत्ना आरोहन्तु जलयोनिमग्ने ॥"

दूसरे, यही मन्त्र सहमरणके अनुकूल होनेसे इस देशके पण्डितोंने कोलब्रुक साहबको जो पाठ लिख दिया, वह और भी अद्भुत देख पड़ता है। यथा,—

"इमा नारीरविधवाः सपत्नीरञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु विभावसुं।
अनसरोनारीराः सुरत्ना आरोहन्तु जलयोनिमग्रे ॥"

'इमा नारीरविधवाः' इत्यादि मन्त्रके पढ़नेके बाद सौभाग्यवती स्त्रियां अञ्जन पार सकलके सामने घर जाती थीं। किन्तु इस विषयमें अनेक मतान्तर देख पड़ते हैं, किस समयकी क्रियामें इस मन्त्रका प्रयोग पड़ता था। विहार और युक्तप्रदेश प्रभृति स्थानमें जो सकल अग्निहोत्री ब्राह्मण बसते, उनमें कोई-कोई कहते हैं, कि चितासे मृतव्यक्तिकी स्त्रीके उतर जानेपर सकल सौभाग्यवती नारी उसे अपने साथ घर पहुंचाती थीं। बौधायनने लिखा है,—"स्त्रीणां अञ्जलिषु सम्पातानवनयतीमानारीति" अर्थात् स्त्रियोंके हाथ सम्पात डालनेको 'इमा नारी' इत्यादि मन्त्र पढ़ते हैं। फिर आश्वलायनमें आया है,—"इमा नारीरविधवाः सुपत्नीरित्यञ्जामा ईक्षेत" अर्थात् स्त्रियां जब कज्जल पारें, तब मृतव्यक्तिके पुत्रादि उनकी ओर टकटकी बांध 'इमा नारी' इत्यादि मन्त्र पढ़ेंगे।

मोटी बात है, कि यह मन्त्र सहमरणका नहीं निकलता। किन्तु समय और वेदके शाखाभेदसे यह नाना प्रकार प्रयुक्त पड़ा। अनेक लोग मानते हैं, कि अशौचान्तके दिन और कर्म बाद स्त्रियां स्नान कर जब कज्जल पारतीं, तब यह मन्त्र पढ़ा जाता था।

अन्त्येष्टि का समस्त आयोजन हो जानेपर चितामें अग्निकर्ता अग्नि रख देते। उन्हें इसतरह मन्त्र पढ़ना पड़ता था।

"मैनमग्ने विदहो माऽभिशोचो माऽस्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम्।
यदाशृतं करवो जातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात् पितृभ्यः।
सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्याञ्च गच्छ पृथिवीञ्च धर्मणा।
आपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधिषु प्रतितिष्ठा शरीरैः।"

'हे अग्नि! इसे बिलकुल न जला डालियेगा। इसे कष्ट न पहुंचाना या इसको त्वक् और शरीरको विक्षिप्त न बनाना। हे जातवेदस! इसका शरीर पक्व पड़ जानेपर पितृलोकके पास इसके आत्माको पहुंचा दीजिये।'

'हे प्रेत! तुम्हारा चक्षु सूर्यमें प्रवेश करे ; वायुमें तुम्हारा आत्मा पहुंचे ; तुम अपने धर्मानुसार पृथिवी द्युलोक अथवा जल, जहां तुम्हारा हित हो, वहीं चले जावो ; वहीं तुम ओषधि (शस्यादि) पाकर शरीरी बनो।'

इसमें सन्देह नहीं, कि आर्य प्रथम मृतदेहको मट्टी देते थे। पीछे उन्होंने देखा, कि अग्नि ही सकलके प्रधान उपास्य देवता हैं ; अतएव प्राणान्तपर अग्निमें देह जलानेसे यह पञ्चभूतात्मक शरीर शीघ्र ही पञ्चभूतमें मिल सकता है। ऊपरका उद्धृत मन्त्र इसका प्रमाण होगा। अस्थि समाहित करते समय जो मन्त्र पढ़ा जाता, उससे भी स्पष्ट समझ पड़ता है, कि पञ्चभूतमें शरीर मिला देनेको आर्य विशेष यत्न करते थे। यथा,—

"पृथिवीं गच्छान्तरीक्षं गच्छ दिवं गच्छ दिशो गच्छ सुवर्गच्छ। सुवर्गच्छ दिशो गच्छ दिवं गच्छान्तरिक्षं गच्छ पृथिवीं गच्छापो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधिषु प्रतितिष्ठा शरीरैः। (तैत्तिरीय-आरण्यक)

पृथिवीमें जाओ, अन्तरीक्षमें जाओ, द्युलोकमें जाओ, चारों ओर जाओ ; जहां तुम्हारा मङ्गल हो, वहीं तुम शरीर धारणकर शस्यादिमें सुखसे रहो।

मृतदेह जल जानेसे अग्निदाता चिताकी उत्तर ओर तीन गर्त बना उनके चारो किनारे पत्थर और बालू रखते, पीछे तीनो गर्त कर्षू अयुग्म कलसीके जलसे भर दिये जाते थे। साथके जाति बन्धु उनमें ही नहाते रहे। स्नान हो जानेपर दहनकर्ता

गर्तके दोनों किनारे दो पलाशशाखा गाड़ उनका अग्रभाग रस्सीसे बांध देते। प्रथम जाति बन्धु सकल ही उसे कूदकर लांघते, केवल स्वयं अग्निदाताको अन्तमें जाना पड़ता था। स्नानादिके बाद घर वापस जानेका दो प्रकारसे नियम रहा। कहीं तो आकाशमें तारा निकलनेसे सकल घर वापस पहुंचते; कहीं सूर्योदय न होनेसे कोई लौटता न था। यह प्रथा आजकल भी बहुत जगह चलती है।

उसके बाद अस्थिचयन होगा। कहीं-कहीं साग्निक ब्राह्मण न मिलनेसे यह प्रथा बिलकुल उठ गयी है। प्राचीन कालके आर्य शवदाहसे तृतीय पञ्चम या सप्तम दिवस चितापर दुग्ध और जल डाल यज्ञडुमुरकी डालसे हटाते-हटाते अङ्गार एवं अस्थि पृथक् कर डालते थे। इसतरह सफाई होनेपर अङ्गार चिताकी दक्षिण ओर फेंक दिये जाते। पीछे मृतव्यक्तिकी विधवा स्त्री वहां पहुंच सुर्ख़ और आसमानी धागेके छोरसे पत्थर बांध उसके द्वारा वाम हाथसे अस्थि उठा लाती थी। अस्थि उठाते समय वह इसतरह पाठ पढ़ती थी।

"उपतिष्ठाऽतस्तएवं सम्भरस्व मेह गात्रमवह्वा मा शरीरम्।
यत्र भूम्यै वृणसे तत्र गच्छ तत्र त्वा देव: सविता दधातु।
इदन्त एकम्पर उत एकं तृतीयेन ज्योतिषा संविशस्व।
संवेशनस्तनुवे चारुरेधि प्रियो देवानां परमे सधस्थे।"

'यहांसे उठिये। आप शरीर धारण करें। यहां गात्र किंवा शरीरका कुछ फेंक न जाइयेगा। आप यहांसे जहां जाना चाहें, वहीं जायें। सवितादेव आपको वहीं रखें। यह आपका कोई अस्थि है; आप तृतीय अर्थात् अन्य अस्थिके साथ मिलकर प्रकाशमान हों। आप उत्कृष्ट स्थानमें देवतावोंके प्रिय बने रहिये।'

इस स्थलमें, "अपरेद्युस्तृतीयस्यां पञ्चम्यां सप्तम्यां वा अस्थीन सञ्चिन्वन्ति" इसीतरह, 'तृतीया' 'पञ्चमी' इत्यादि शब्द स्त्रीलिङ्गमें प्रयुक्त पड़े हैं। अतएव 'तृतीया दिवस' ऐसा प्रयोग किसीतरह लग नहीं सकता। अनुमान होता है, इस जगह तृतीयादि तिथि ही ग्रन्थकारका अभीष्ट था। आश्वलायनने, कृष्णपक्षकी एकादशी, त्रयोदशी या अमावस्याको अस्थिचयन करनेकी व्यवस्था दी है। बौधायनके मतसे, तृतीया, पञ्चमी या सप्तमी तिथिको ही यह काम सम्पन्न करना आवश्यक होगा।

अस्थिचयन होनेपर उन्हें धोकर कुम्भके भीतर रखना पड़ता था। कोई-कोई उन्हें कृष्णसार चर्ममें लपेटकर रखते थे। सोमयाजीके अस्थिको जातिवाले पुनर्वार जला देते रहे। किन्तु सोमयाजीका अस्थि न निकालनेसे उस दिन उसे पलाश या शमी-वृक्षपर लटकाते, पीछे समाहित करते थे।

अस्थि समाहित करना उस कालका महोत्सव रहा। अग्निदाता, कुम्भके भीतर अस्थि, दधि एवं सर्वौषधि रख उसके ऊपर दूर्वा ढांक देते थे; उसके बाद कोई स्थान चर्म, किंवा शमी या पलाश शाखासे साफ़ कर हल द्वारा पूर्वपश्चिम लम्बे छ: गर्त बनाते। उन्हीं गर्तके मध्यस्थलमें कुम्भ गाड़ना पड़ता था। कुम्भ गड़ जानेसे दाहनकर्ता उसपर बालू, पत्थर और ईंट रख देता। मिस्रके मेमफिस् प्रभृति समाधिस्थानसे नाना प्रकारका शस्य निकला है। तीन-चार हज़ार वत्सर बीते, किन्तु आज भी वह शस्य नहीं बिगड़ा—बोनेपर उससे वृक्ष उत्पन्न हुवा। आर्य-समाधिकी चारो ओर कुश, तिल एवं भुना हुवा यव नमक डाल उसपर रमसर गाड़ देते थे।

अस्थिके साथ दधि, मधु एवं सर्वौषधि मिली रहती। नहीं कह सकते, कि उसका कोई गूढ़ कारण है या नहीं। पहले बता चुके हैं, कि आसीरीय प्रभृति देशके लोग शहद और मोमसे मृत-शरीरकी रक्षा करते थे। मालूम होता, कि हिन्दू भी वह कौशल जानते थे। इसीसे अस्थि बचानेके लिये कुम्भके भीतर मधु और सर्वौषधि डालते थे।

अन्त्येष्टिका अन्यान्य विवरण अनुमरण, अनुमृता, अशौचान्त, कबर, शवदाह एवं सहमरण शब्दमें देखो।

अन्त्येष्टिक्रिया (सं० स्त्री०) मरनेका क्रिया-कर्म, मातमी काम। अन्त्येष्टि देखो।

अन्त्र (सं० क्ली०) अन्त्यते दैर्घ्यो वध्यतेऽनेन, अति बन्धने करणे ष्ट्रन्; अथवा अम्यते दुष्टवातादिना शब्दायते रोगु उत्पद्यते इति वा, अमि करणे क्त।

औणादिक पेटकी नाड़ी, आंत। अन्त्र शब्दका अपभ्रंश आंत है। मनुष्यका अन्त्र उदरकी दक्षिण दिक् पाकस्थलीके दक्षिण मुखसे निकल और अन्तमें कितना ही घूम-फिर मलद्वार पर्यन्त फैला हुआ है। इसकी उत्पत्ति इसतरह कही गयी है,—

"उक्ताः सार्द्धास्त्रयो व्यामाः पुंसामन्त्राणि सूरिभिः।
अर्द्धव्यामेन हीनानि योषितोऽन्त्राणि निर्दिशेत्॥
सार्द्धत्रिव्यामान्यन्त्राणि पुंसां स्त्रीणामर्द्धव्यामहीनानि।"
(सुश्रुत शारीर० ५ अ०)

फिर देखिये,—

"असृजः श्लेष्मणश्चापि यः प्रसादः परोमतः।
तं पच्यमानं पित्तेन वायुश्चाप्यनुधावति।
ततोऽस्यान्त्राणि जायन्ते गुदं वस्तिश्च देहिनः॥"
(सुश्रुत शारीर० ४ अ०)

उक्त वैद्यशास्त्रके मतसे पुरुषका साढ़े तीन और स्त्रीका अन्त्र तीन व्याम दीर्घ होगा। किन्तु यह भूल है। कारण, मनुष्यका अन्त्र उसके सोलह हाथ लम्बा रहता है। व्याम तीन हाथको कहते हैं। इसलिये साढ़े तीन व्याम बारह हाथसे कुछ ऊपर पड़ा। बस, सच्चा हिसाब लगानेसे कोई चार हाथका फ़र्क आता है। साधारणतः मनुष्यका अन्त्र शरीरकी अपेक्षा कोई छगुना लम्बा रहेगा।

हम जो सकल द्रव्य खाते, वह अन्ननालीसे (œsophagus) पाकस्थलीके भीतर जा गिरता है। मनुष्यकी पाकस्थली देखनेमें ज्यादातर मसक-जैसी रहेगी। किञ्चित् वामपार्श्वकी ऊपरी दिक् उसका एक मुख होता, जो हृद्द्वार (cardiac orifice) कहाता है। इसी मुखसे भुक्त द्रव्य पाकस्थलीमें पहुंचेगा। पेटकी दक्षिण दिक् उसका दूसरा मुख देखते, जिसे अधोद्वार (pylorus) कहते हैं। इसी अधोद्वारसे अन्त्र निकला है। पाकस्थलीके भीतर आमरसमें भुक्त द्रव्य, कुछ-कुछ पकनेपर, क्रमसे अन्त्रके मध्य जा पहुंचेगा। मनुष्यकी पाकस्थलीमें एक भी गह्वर कहीं देख नहीं पड़ता। किन्तु गाय, बकरी, भेड़ प्रभृति जो सकल जन्तु जुगाली करते हैं, उनकी पाकस्थलीमें चार-चार गह्वर मिलेंगे। उद्भिज्जीवी पशु कठिन द्रव्य खाते, इसीसे जुगाली न करने पर तृणादि अच्छीतरह नहीं पचता; जिसके लिये विधाताने उनकी पाकस्थलीमें अनेक प्रकोष्ठ बना दिये हैं। इसका विवरण आगे लिखा जायगा।

अन्त्र बिलकुल नल-जैसा रहेगा। श्लैष्मिक, सिरस् एवं पेशीके आवरणसे अन्त्र गठित, इसीसे देखनेमें श्वेतवर्ण मालूम पड़ता है। अन्त्रपर एक सादा और पतला आवरण पायें, जिसे अन्त्रावरक झिल्ली या पेटेका परदा। (peritoneum) कहेंगे। चिकित्सकने कार्यकी सुविधाके लिये प्रथम समस्त अन्त्रको दो भागमें बांटा है। उसमें एक भागको क्षुद्रान्त्र और अपर भागको बृहदन्त्र बतायेंगे। मनुष्य एवं गो मेष प्रभृति उद्भिज्जीवी प्राणीके क्षुद्रान्त्रसे बृहदन्त्र कुछ अधिक मोटा होता और उसके भीतरकी दराज़ भी अपेक्षाकृत बड़ी पड़ती है। किन्तु सिंह, व्याघ्र प्रभृति मांसाशी जन्तुका अन्त्र प्रायः नीचेसे ऊपर तक समान रहेगा।

क्षुद्रान्त्र—प्रायः २० फ़ीट लम्बा होता है। पाकस्थलीकी दक्षिण दिक्से निकल कितना ही घूम-फिर दक्षिण कक्षके नीचे यह शेष पड़ जायेगा। कार्यकी सुविधाके लिये इसे तीन भागमें बांटा है। उसमें पाकस्थलीके पास जो अंश हो, वह द्वादशाङ्गुल्यन्त्र (duodenum); मध्यस्थलमें जो अंश हो, वह शून्यान्त्र (jejunum); एवं दक्षिण कक्षके पास जो अंश जा बृहदन्त्रसे मिले, वह जड़ितान्त्र (ileum) कहायेगा। यह तीनो अंश स्पष्ट रूपसे पहचनवा देनेके लिये कोई स्वाभाविक चिह्न नहीं होता।

द्वादशाङ्गुल्यन्त्र पाकस्थलीकी दक्षिण दिक्को अल्प वक्र पड़ जायेगा। यह प्रायः बारह अङ्गुलि (८।१० इञ्च) लम्बा होनेसे द्वादशाङ्गुल्यन्त्र कहाता है। इस अन्त्रके वक्र प्रदेशवाले मध्यस्थलमें पित्त और प्रेङ्क्रियेटिक रस टपका करेगा। क्षुद्रान्त्रके बाकी अंशमें ८२ इञ्च शून्यान्त्र एवं अवशिष्ट १२८ इञ्च जड़ितान्त्र रहता है।

मृत्युके बाद द्वादशाङ्गुल्यन्त्रसे नीचे प्रायः कुछ भी नहीं रहता, इसीसे यह शून्यान्त्र कहाता है। शून्यान्त्रके निम्न भागको कितना ही चक्कर लगा-

दक्षिणश्रोणिप्रदेशके पास जा पहुंचनेसे जड़िताल्न् कहते हैं।

क्षुद्रान्त्रसे जहां वृहदन्त्र मिला, वहांका निर्माण-कौशल अति चमत्कार है। पीछे नीचेका विष्ठादि ऊपर उठ जाता, इसलिये विधाताने इस स्थानमें एक प्रकारके कपाट (ileo-caecal valve) लगा दिये हैं। कपाटकी बनावट बहुत ही अनोखी है। ऊपरका भुक्त द्रव्य अनायास उसके भीतरसे निम्न दिक्को चला जाये, किन्तु नीचेका कोई द्रव्य कपाट खोल अन्त्रके ऊपर नहीं चढ़ सकेगा। कठिन टाइफयेड ज्वर आनेसे सचराचर इस अन्धान्त्र कपाटके दो इञ्चमें प्रायः छिद्र पड़ जाते हैं। अन्त्रज्वर देखो।

इस कपाटसे किञ्चित् दूर वृहदन्त्रके गात्रमें अन्धान्त्र (caecum) मिलेगा। अन्धान्त्रसे बिलकुल कृमि-जैसा कोई उपमांस (vermiform appendix) निकल पड़ता है। भालुक प्रभृति जो सकल जन्तु शीतकालमें कुछ नहीं खाते—केवल सोया करते हैं, उनके अन्धान्त्र नहीं रहता। मांसाशी जन्तुका क्षुद्र; किन्तु महिष प्रभृति जो सकल पशु जुगाली करते, उनका अन्धान्त्र कितना ही बड़ा, देखनेमें बिलकुल पाकस्थली-जैसा होगा। इससे स्पष्ट ही समझा जा सकता, कि अन्धान्त्र परिपाकका कोई प्रधान सहाय है।

अन्धान्त्रसे वृहदन्त्र निकल प्रथम ऊर्ध्वमुख यकृत्की दिक्को उभरेगा। इसका नाम ऊर्ध्वगामी अङ्गान्त्र (ascending colon) है। पीछे यह दक्षिण दिक्से पेटकी ऊपरी ओर घूम वामपार्श्वको चला जायेगा। इसे आणुप्रस्थ अङ्गान्त्र (transverse colon) कहते हैं। अवशेषमें, यह वाम कक्षसे निम्न दिक्को झुक मलद्वारमें परिणत पड़ेगा। इस अंशको अधोमुख अङ्गाल (descending colon) नामसे पुकारते हैं। समस्त वृहदन्त्र प्रायः पांच फीट लम्बा होता है।

नीचेसे ऊपरतक समस्त अन्त्रकी श्लैष्मिक झिल्लीमें छोटी-छोटी ग्रन्थि पड़ती हैं, क्षुद्रान्त्रकी अनेक ग्रन्थि अलग-अलग रहतीं, इसीसे उनका नाम असमवेत ग्रन्थि (Solitary glands) रखा गया है; एवं दूसरी अनेक ग्रन्थि १८।२० एकत्र मिलनेसे समवेत ग्रन्थि (Agminated glands or Peyer's patches) कहाती हैं। इन सकल ग्रन्थिसे रस निकल

मनुष्यके अन्त्र।

इस जगह मनुष्यके मुखसे मलद्वार पर्यन्त स्पष्ट रूपमें देखानेको यह चित्र उतारा गया है। अ—अन्त्रनाली। ह—अन्त्रनालीसे पाकस्थलीके भीतर भुक्त द्रव्य पहुंचानेका हृद्द्वार। पा—पाकस्थली। न—पाकस्थलीसे भुक्त द्रव्य अन्त्रमें पहुंचानेका निम्नद्वार। द—द्वादशाङ्गुल्यन्त्र। पि—पित्तकोष; इसी कोषसे द्वादशाङ्गुल्यन्त्रमें पित्त पहुंचता है। प—इस राहसे प्यांक्रियेटिक रस अन्त्रमें जा गिरता है। क्ष—क्षुद्रान्त्र। अध—अन्धान्त्र। कृ—कृमिवत् उपमांस। उ—ऊर्द्ध्वगामी अङ्गान्त्र। आनु—आनुप्रस्थ अङ्गान्त्र। नि—अधोमुख अङ्गान्त्र। म—मलद्वार।

अन्त्रके भीतर जा पहुंचेगा। किन्तु आजतक निश्चित नहीं हुवा, उस रससे परिपाकक्रिया किसतरह होती है। फिर भी किसी-किसी जन्तुका शरीर जांचनेसे समझ सकते, कि उस रसके साथ श्वेतसार मिलनेसे शर्करा बनती और वह मांस किंवा डिम्ब अथवा उन-जैसे किसी अन्य प्रोटिड द्रव्यको (protieds) तरल कर देता है (peptone)। द्वादशाङ्गुल्यन्त्रकी जड़में कई क्षुद्र ग्रन्थि पड़ेगी। यह बात कोई नहीं कह सकता, उनसे शरीरको क्या

उपकार पहुंचता है। टाइफयेड ज्वरमें अन्त्रको समवेत ग्रन्थि ही अधिक विकृत पड़ेगी। अन्त्रज्वर देखो।

अन्त्रकी भीतरी ओर तिरछे तौरपर श्लैष्मिक झिल्लीके घेरेसे (valvulæ conniventes) लिपटी है। इस घेरेपर मखमलके रेशे-जैसा सीधा-सीधा धागा (villi) पास ही पास लगा होगा। किन्तु वृहदन्त्रके मध्य यह सारा देश देख नहीं पड़ता। रेशेके अभ्यन्तरमें अति सूक्ष्म-सूक्ष्म कोष मिलेंगे। किसी रेशेमें एक और किसीमें अधिक कोष भी रहते हैं। चिकित्सा शास्त्रमें उन्हें दुग्ध-कोष (lacteals) कहेंगे। कारण, भुक्त द्रव्य किञ्चित् परिपाक होनेसे बिलकुल दुग्ध-जैसा देखाई देता है। दूसरे अन्त्रसे यह पयोरस (chyle) खींच लेनेपर रेशेके कोष भी दुग्धकी तरह श्वेतवर्ण हो जायेंगे। इसीसे उन्हें दुग्धकोष कहते हैं। रेशेके भीतर भी विस्तर सूक्ष्म सूक्ष्म छिद्र होंगे। उन्हीं छिद्रसे भुक्तद्रव्यका कितना ही सारांश रक्तके साथ मिले, जिससे शरीरका पोषण होगा।

देहके सकल स्थानमें ही रक्तसञ्चालन होता है। अन्त्रके मध्य भी परिष्कार रक्त पहुंचे और भीतरका दूषित रक्त बाहर निकल जायेगा। हृत्-पिण्डसे जो वृहद्धमनी (aorta) उदरमें उतरी, उसके द्वारा अन्त्रमें विशुद्ध रक्त प्रवेश करता है। पीछे भेनापोटा नामक शिरासे समस्त अपरिष्कार रक्त निकल पड़ेगा।

हम जो सकल द्रव्य खाते, क्रममें वह पाकस्थली-से अन्त्रपर पहुंचता है। उसके बाद क्रमशः अन्त्र-की निम्न दिक्को उतर अन्तमें वह मलद्वारसे बाहर निकलेगा। उपरी दिक्से भुक्तद्रव्यके क्रम-क्रम नीचे जा सकनेको अन्त्र अति अद्भुत कौशलसे बनाया गया। अन्त्रकी लम्बाई और चौड़ाईमें दो प्रकारके पेशीसूत्र मिलेंगे। लम्बाईका पेशीसूत्र चौड़ाईकी गोलाकार पेशीसे कुछ सीधा है। अन्त्रकी चौड़ी गोलाकार पेशी क्रमसे सिकुड़ नीचेको जायेगी। उसे क्रमिवित् आकुञ्चन (peristaltic contraction) नामसे पुकारते हैं। इस आकुञ्चनका दबाव पानेपर ऊपरी भुक्त द्रव्य क्रमशः खिसकते-खिसकते निम्न दिक्को उतरता है। वृहदन्त्रमें फीते जैसे तीन पेशीबन्धन रहते हैं। यह पेशीबन्धन अन्त्रके प्राचीरसे छोटे निकलेंगे। मलद्वारकी पेशी अंगूठी-जैसी होती है। वह सर्वदा ही दृढ़रूपसे सिकुड़े, केवल मल निकलते समय फैल पड़ेगी। भुक्त द्रव्यके पचते-पचते वह क्षुद्रान्त्रमें जा पहुंचती है। किन्तु क्षुद्रान्त्रमें उस पर विष्ठा-जैसा वर्ण या गन्ध नहीं होता। वृहदन्त्रमें जानेसे ही क्रमशः उसमें विष्ठा-जैसा वर्ण और दुर्गन्ध उपजता है।

पशु, पक्षी, सर्पादि उरग, भेक, मत्स्य एवं कीट पतङ्गादिकी पाकस्थली और अन्त्र बिलकुल मनुष्यकी तरह नहीं होता। सिंह, व्याघ्र प्रभृति मांसाशी जन्तुकी पाकस्थली मनुष्यकी अपेक्षा क्षुद्र होगी, उसमें एक भी गह्वर कैसी देखायी देगा। स्याही, गिलहरी प्रभृतिकी पाकस्थलीके भीतर तीन-तीन प्रकोष्ठ होते हैं। सिटेशिया नाम्नी कोई मछली होती, जिसकी पाकस्थलीमें ५।७ प्रकोष्ठ मिलेंगे। गो, मेष प्रभृति जो सकल जन्तु रोमन्थ करते, उनकी पाकस्थलीमें चार प्रकोष्ठ रहते हैं। इन चारो प्रकोष्ठोंका आकार, गठन और क्रिया समान न निकलेगी। प्रथम प्रकोष्ठ (rumen) सबसे बड़ा है। तृण शस्यादि खानेसे भुक्त द्रव्य प्रथम इसी प्रकोष्ठके भीतर जा पहुंचेगा। द्वितीय प्रकोष्ट (reticulum) देखनेमें बिलकुल शहदके छत्ते-जैसा होता है। चतुर्थ प्रकोष्ठके नीचे द्वादशाङ्गुल्यन्त्र रहेगा।

पशुके तृणशस्यादि निगल जानेपर सबसे पहले वह प्रथम प्रकोष्ठमें जाकर जमा होता है। इस प्रकोष्ठसे एक प्रकारकी लार टपकेगी। भुक्त द्रव्य उसी लारके साथ मिल क्रमसे सरस और कोमल पड़ जाता है। गो मेषादिके पानी पीनेपर वह प्रथम प्रकोष्ठमें न पहुंच, बिलकुल दूसरे प्रकोष्ठमें जा गिरेगा। जुगाली करते समय प्रथम प्रकोष्ठका भुक्त द्रव्य अल्प-अल्प द्वितीय प्रकोष्ठके भीतर आता, उसके बाद मुखमें आ जाता है। मुखमें आनेसे अच्छी तरह चबा निगल जानेपर वह तृतीय प्रकोष्ठमें पहुंचेगा।

जुगाली करनेका जो छिद्र जन्तुकी अन्त्रनालीके नीचे होता, उसका गठन अति विचित्र है। गठनके गुणसे ही गो-मेषादि पशु कोई द्रव्य निगलते समय पाकस्थलीके जिस प्रकोष्ठमें चाहते, उसीमें उसे उतार सकते हैं। अन्त्रनालीके निम्न मुखमें ओष्ठ-जैसा दो खण्ड मांस मिलेगा। इन दोनो ओष्ठके एकत्र मिलनेपर अन्ननालीसे तृतीय प्रकोष्ठके भीतर भुक्त द्रव्य जानेकी राह साफ होती है। फिर यह दोनो ओष्ठ खुले रहनेपर प्रथम किंवा द्वितीय प्रकोष्ठ-के भीतर भुक्त द्रव्य पहुंचेगा। भूसा, धान, चावल प्रभृति शुष्क द्रव्य निगलनेसे इन दोनो ओष्ठका मुख खुलता, इसीसे यह सकल द्रव्य सर्वाग्रपर प्रथम प्रकोष्ठमें जा पड़ता है। किन्तु जुगाली करने बाद भुक्त द्रव्य मांड-जैसा कोमल और सरस बन जाता, जिससे निगलने पर सीधे पाकस्थलीके तृतीय प्रकोष्ठ-में पहुंचता; एवं उस समय ओष्ठका मुख नहीं खुलता। तृतीय प्रकोष्ठमें भुक्त द्रव्य किञ्चित् पकने-पर अन्त्रको चतुर्थ प्रकोष्ठमें पहुंचेगा।

शशककी पाकस्थली और अन्त्र

क—वक्षःस्थलका गह्वर। ख—डायेफ्राम, इसी स्थानकी सिकोड़नेके लिये हमें हिचकी आती है। य—यकृत्। ग—पाकस्थली। अ—क्षुद्रान्त्र। ङ—अन्धान्त्र, उद्भिद्‌जीवीका अन्धान्त्र बहुत बड़ा होता है। म—निम्नगामी अन्धान्त्र। म—मलद्वार।

ऊंटकी पाकस्थलीके द्वितीय प्रकोष्ठमें छोटे-छोटे छिद्र वर्तमान हैं। उनमें जल भरा रहेगा। छिद्रकी चारो दिक् पेशीसूत्रसे वेष्टित हैं। पेशीसूत्रके सिकुड़नेसे छिद्रके मध्य भुक्त द्रव्य घुस न सकेगा। केवल परिपाकके समय उनसे अल्प-अल्प जल निकलता है। इसीसे उष्ट्र अधिक विलम्ब बाद जल पीता, उसे शीघ्र पिपासा नहीं सताती।

गो मेषादिका अन्त्र बृहदाकार,—शरीरको अपेक्षा प्रायः तीस गुण बड़ा होता है। इनका अन्धान्त्र भी अतिशय बृहत्—देखनेसे बिलकुल पाकस्थलीका धोखा होगा। किन्तु उसमें कृमि-जैसा उपमांस नहीं उठता।

पक्षी, भेक एवं अन्यान्य प्राणी जैसा द्रव्य खाता, उसका अन्त्रादि भी तदुपयोगी होता है। नीचे एक मुरगीके पाकयन्त्रका चित्र उतारेंगे। अन्न-नालीके नीचे तीन गड्ढे रहते हैं। यही तीन गड्ढे पक्षिजातिकी पाकस्थली होंगी। मुरगीके कुछ खाने-पर प्रथम भुक्त द्रव्य ऊपरी गड्ढेमें जा गिरता है। उसके बाद दूसरे गड्ढेमें गिर भुक्त द्रव्य आमरससे मिल जायेगा। तृतीय गड्ढा विलक्षण दृढ़ होता है। उसमें अतिशय कठिन सामग्री भी पहुंचनेसे चूर-चूर
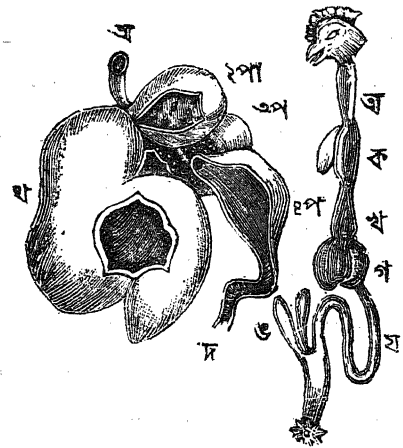
वृ—वृषकी पाकस्थली और द्वादशाङ्गुल्यन्त्र। अ—अन्ननाली। ख—पाकस्थलीका प्रथम प्रकोष्ठ, तृणादि कठिन द्रव्य खानेसे पहले इसी स्थानमें सञ्चित होता है। २पा—पाकस्थलीका द्वितीय प्रकोष्ठ। ३पा—पाकस्थलीका तृतीय प्रकोष्ठ। ४पा—पाकस्थलीका चतुर्थ प्रकोष्ठ। द—द्वादशाङ्गुल्यन्त्र। मो—मुरगीकी पाकस्थली और अन्त्र। अ—अन्ननाली। क—प्रथम गड्ढा। ख—द्वितीय गड्ढा। ग—तृतीय गड्ढा। घ—अन्त्र। ङ—कृमिवत् उपमांस।

हो जायगी। विशेषतः उसके मध्य छोटे-छोटे पत्थर

पड़नेसे खाद्य द्रव्य पिस जानेको और भी सुविधा पड़ती है। इसीसे विधाताने चिड़ियोंको कैसी स्वाभाविक बुद्धि दी है कि, वह आहार खुटककर खाते समय छोटे छोटे कङ्कड़ भी हड़प जायेंगी। चिड़ियोंवाले क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्रके आकारमें कोई प्रभेद नहीं। किन्तु क्षुद्रान्त्र और बृहदन्त्रका प्रभेद यही देख समझ लेते, किसी चिड़ियेके अन्त्र समीप दो और किसीके एक ही उपमांस उठता है।

कौवा, कबूतर, घुग्घू प्रभृति जो सब चिड़ियां भुक्त-द्रव्य उगल अपने-अपने शावकको खिलातीं, उनको पाकस्थलीमें एक अद्भुत गुण पैदा होगा। इस सकल जातीय पक्षीको निम्नपाकस्थलीसे दोनो ओर दो कोष रहते हैं। बच्चा निकलनेपर उभय पक्षी और पक्षिणीके उसी कोषसे दुग्धवत् कोई रस टपक भुक्त-द्रव्यमें मिल जाता है। पीछे उसीको उगल कर खिलानेसे शावक शीघ्र हृष्ट-पुष्ट हो जायेगा। बच्चा बढ़ जानेसे फिर यह रस नहीं टपकता।

छोटा मेंड़क, जलको छोटी छोटी तृणलताका कोमलांश खाकर जीता है। इस अवस्थामें उसको पाकस्थलीका गठन लम्बा, एवं अन्त्र भी बृहदाकार पाकस्थलीसे ऊपर ही ऊपर मुड़ा हुवा रहेगा। क्रमसे बड़ा भेक बननेपर वह कीटपतङ्गको पकड़ खा जाता है। उस समय अन्त्र भी छोटा पड़ेगा।

मछलीके शरीरका अन्त्र बहुत छोटा होता है। किसी मत्स्यका अन्त्र सीधा और किसीका चक्करदार होगा। केंचुवा प्रभृति सामान्य प्राणीके मुखसे मलद्वार पर्यन्त एक सीधा छेद रहता है। किन्तु यह छिद्र ऐसे कौशलसे बना, कि इसमें भुक्त द्रव्यका रस सहज ही शोषित हो जायेगा। अनेक प्रकारके छोटे-छोटे जलकीट रहते, जिनके मलद्वार नहीं होता। सूक्ष्म-सूक्ष्म कीटाणु पकड़ कर खानेपर उनका सत्व देहमें शोषित हो, पीछे असार अंश उगल दिया जायेगा। फिर ऐसे भी अनेक जलकीट होते, जिनके मुख, मलद्वार कुछ भी नहीं रहता, शरीरके मध्य किसी प्रकार छिद्र होना असम्भव है। वह शिकार पानेसे उसको चारो ओर अपना शरीर लपेट देंगे। उसीसे शिकारका निचोड़ उनकी देहमें पहुंच जाता है। अन्यान्य विवरण परिपाक शब्दमें देखो।

सींगवाले पशुके पेट फाड़ डालने किंवा अन्य किसी कारण पेटका चर्म छूट अन्त्र निकल पड़नेसे तत्क्षणात् विज्ञ चिकित्सकको बुलाये। चिकित्सकके आनेसे पहले रोगीको अच्छीतरह सुस्थिर बनाना चाहिये। वह खांसने या रोने न पाये। पूर्ण-वयस्क व्यक्तिको १४ विन्दु अफीमका अरिष्ट आध छटांक पानीमें मिलाकर खिलाये। दुर्बल व्यक्ति और स्त्रीके लिये ७ ही विन्दुका प्रयोग उचित है। दो-एक वत्सरके शिशुको अफीम खिलानेमें कितनी ही विज्ञता ज़रूरी होगी। किन्तु अर्द्ध किंवा एक विन्दु अरिष्ट खानेसे कोई विघ्न नहीं पड़ता। सिवा इस सकल सावधानताके यह भी आवश्यक है, कि अन्त्रमें कीचड़ मट्टी न लगे। निकटमें चिकित्सक न मिलनेसे गृहस्थ स्वयं थोड़ा साहस कर अन्त्रको भीतर घुसेड़ सकता है। अन्त्रको जो दिक् अन्तमें बाहर निकले, वही प्रथम घुसेड़ना पड़ेगी। इसीसे जो अंश प्रथम बाहर निकल पड़ता, उसीको सर्वशेषमें घुसेड़ना आवश्यक होता है। अन्त्रको घुसेड़ पेटका ऊपरी चमड़ा सी देना चाहिये। किन्तु उसके अभावमें सूतके धागेसे ही सी डाले। चर्म जुड़ जानेसे तार या सूतका धागा खोलकर रख छोड़ना चाहिये।

क्षतस्थान सी जानेसे ऊपर कोई पतला वस्त्र लपेट दे। एवं पूर्वको तरह रोगीको अल्प-अल्प अफीम खिलाते रहे तीन-चार दिन सिवा दुग्ध, मांसका शोरवा प्रभृति तरल द्रव्यके कठिन पथ्य को व्यवस्था करना उचित नहीं। कभी-कभी अन्त्रपर आघात बैठनेसे अन्त्रप्रदाह एवं पेरिटोनाइटिस् हो सकता है। उसके लिये तुरन्त विज्ञ चिकित्सकका परामर्श ले लेना चाहिये।

अन्त्रकूज (सं० पु०) १ वायुरोगविशेष। २ नाड़ी-शब्द, आंतकी आवाज़, पेटका बोलना।

अन्त्रकूजन, अन्त्रविकूजन (सं० क्ली०) अन्त्रकूज देखो।

अन्त्रज्वर, आन्त्रिकज्वर (Enteric or Typhoid fever) —एक प्रकारका कठिन ज्वर, कोई सख्त बुखार।

इसका विराम काल प्रायः समझ नहीं पड़ता। अन्यान्य इन्द्रियकी अपेक्षा इसमें अन्त्रके अधिक विकृत होनेसे इसका नाम अन्त्रज्वर रखा गया है। हमारे देशमें सचराचर इसे त्रिदोषजनित सान्निपातिक विकार बताते हैं। किन्तु प्रकृत पक्ष पर, असली अन्त्रज्वर भारतवर्षमें अति विरल होगा। मलेरिया-जनित स्वल्प विराम ज्वरके साथ कठिन उदरामय होनेसे, किसी-किसी स्थलमें टाइफयेड ज्वरका कितना ही उपसर्ग उठता है।

अनेक स्थलमें यह ज्वर एकबारगी ही देख नहीं पड़ता। पीड़ाका लक्षणादि झलकनेसे पहले शरीर उदास हो जाता और बेचैनी बढ़ती है। अच्छी क्षुधा न लगी, आहारमें अरुचि आये और भोजनपर बैठनेसे जी मिचलायेगा। किसी दिन प्रातःकाल पित्त एवं अम्ल-जल वमन हो जाता है। मन सर्वदा ही असुख रहे, किसी कामके करनेमें उद्यम न होगा। रातको नींद नहीं लगती; अल्प निद्राका आवेग आते भी रोगी स्वप्न देख चौंक पड़ता है। कभी-कभी नाकसे रक्त बहे और पहले ही अल्प-अल्प उदरामय उठेगा। कटिदेश और हस्त-पदकी ग्रन्थि तपकने लगती है। रोगी लेटनेसे उठना नहीं चाहता और उठनेसे बैठ नहीं सकता; ऐसी अवस्थामें पांच-सात दिन बीत जायेंगे।

किसी-किसी स्थलमें यह सकल लक्षण कुछ भी देख नहीं पड़ते। रोगी केवल असुखी और अस्वस्थ रहेगा। पूछनेसे वह अपनी पीड़ाकी बात कुछ भी बता नहीं सकता। डाक्टर बड् कहते, कि उस अवस्थामें रोगी १०से १४ दिन पर्यन्त रह सकेगा। डाक्टर फ्लिण्टके मतसे उस अवस्थामें १० दिन ही जीनेकी सम्भावना है।

इस सकल लक्षणके बाद ज्वर आता है। रात्रि-कालमें देहका सन्ताप तेज़ पड़ जायेगा। तीन-चार दिन पीछे जिह्वाके नीचे तापमान-यन्त्र लगानेसे १०३°, १०४° एवं अत्यन्त कठिन अवस्थामें १०५° पर्यन्त ताप चढ़ता है। रोगी गात्रदाहसे सर्वदा करवट बदलता, किसीसे आराम मालूम नहीं होता। पिपासासे मुख सूखता, छाती फटती है। सुशीतल जल, बरफ़ प्रभृति स्निग्ध द्रव्यके प्रयोगसे भी तृष्णा नहीं मिटती।

प्रातःकाल देहका ताप कुछ घटता और रातको बढ़ जाता है। मृत्युकाल आ पहुंचनेपर प्रातःकाल १०६° से १०८° पर्यन्त सन्ताप बढ़ेगा। डाक्टर वोयाण्डालिंक्ने तापमानयन्त्रद्वारा पीड़ाका शुभाशुभ फल निश्चित ठहरानेको कई उपदेश दिये हैं। अकस्मात् सन्ताप बढ़ जानेसे समझना पड़ेगा कि, शरीरके किस आभ्यन्तरिक यन्त्रमें प्रदाह उठता है। दूसरी पीड़ाके विद्यमान रहते यदि देहका ताप घटे, तो भी अतिशय कुलक्षण समझना चाहिये। अन्त्रसे रक्तस्राव होनेके पहले अनेक स्थलमें शरीरका ताप घट जायेगा।

प्रथम रोगीको मानसिक अवस्थाका विशेष कोई व्यतिक्रम नहीं पड़ता। आदिमें कपालके सम्मुख अल्प-अल्प वेदना उठती एवं चित्त कुछ चञ्चल हो जाता है। उसके बाद रोगी सदा अन्यमनस्क रहेगा। ज्ञान बना रहता, किन्तु कोई बात पूछनेसे वह तत्क्षणात् उसका उत्तर नहीं निकालता। उत्तर देते हुए भी कोई न कोई ग़लत बात सुना देता है। ऊपरकी अवस्था देखनेसे अनुमान होता है, मानो रोगी कुछ नहीं सुनता; जो सुनता, उसका भी मानो अर्थ नहीं समझता। अन्तमें ८।१० दिन, किसी-किसी स्थलमें १३।१४ दिनकी पीड़ा उत्कट हो जानेसे अतिशय प्रलाप बढ़ेगा। रोगी शय्यापर पुनः-पुनः ज़ोर लगा उठ बैठता और भागना चाहता है। कभी हंस, कभी रो और कभी आतङ्कसे रोगी चिल्ला उठेगा। मृतव्यक्तिको वह सम्मुख देखता, मृतव्यक्तिका नाम ले पुकारता, मृतव्यक्तिके साथ जाना भी चाहता; मानो वह उसके पास चले जाते हों। फिर कभी कभी उसके मनमें मृत्युकी आशङ्का आती; कभी घर जानेकी यादसे मोहमें डूब जाता है।

दो-तीन दिनके भीतर मुखमण्डलपर कोई स्पष्ट परिवर्तन नहीं होता। उसके बाद गाल चमकदार और लाल हो जायेंगे। विशेषतः इस ज्वरके साथ

फेफड़ेकी जलन उठनेसे गाल प्रायः सर्वत्र ही लाल पड़ जाते हैं। किन्तु फेफड़ेमें जलन न उठनेसे मुखमण्डल रक्तवर्ण कैसे होगा। अनेक स्थलमें मुख विरस और निरक्त बनता, एवं चक्षु गड्ढेमें धंस जाते हैं। पीड़ा अत्यन्त कठिन उठनेपर रोगी अङ्गुलिसे अपना बिस्तर नोचेगा। यदि उसके निकट कोई व्यक्ति बैठे, तो रोगी उसके कपड़े फाड़ने दौड़ता, बीच-बीच दांत पीसता ; बात कहते समय तोतलेकी तरह बोलता है। सर्वदा ही हस्तपदकी पेशीमें आक्षेप पड़े, जिससे अङ्गुलि रह-रह कांप जायेंगी। एवं रोगी नाड़ी पकड़नेसे पुनः पुनः हाथ खींच लेता है।

किसीका चक्षु तो रक्तवर्ण बनता, किसीकेमें वर्णका कोई व्यतिक्रम नहीं पड़ता। पीड़ा कठिन उठनेसे चक्षु अधखुला रहेगा। ऐसी अवस्थामें रोगी पुकारने किंवा शरीर हिलानेसे आंख मिला देख सकता, किन्तु रोग प्राणघातक होनेपर उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। किसी-किसी स्थलमें रोगी चक्षु फैला स्पष्ट देखे, किन्तु किसीपर भ्रूक्षेप न करेगा। सम्मुख किसीके निकलनेसे रोगी उसे पहंचान भी नहीं सकता। चक्षुका तारा कहीं फैल भी जाता है।

नाड़ी प्रथम क्षीण और द्रुतगामिनी होगी। कभी कभी केंचुयेकी तरह फूल हट हटकर वह चलती है। हृत्पिण्डकी क्रिया निस्तेज पड़ जानेसे नाड़ीका वेग क्रमशः बढ़े और गति भी वक्र होगी। प्रथम प्रति मिनट १२० स्पन्दन प्रायः सर्वत्र होता है। किन्तु कठिन अवस्थामें उत्तरोत्तर वेग बढ़ा करेगा। १३०,१४० स्पन्दन अतिशय कुलक्षण है। सुस्थ अवस्थामें हृत्पिण्डसे दो शब्द निकलेंगे। हृदय फैलानेको बड़ा और सिकोड़नेको छोटा शब्द उठता है। उत्कट ज्वरादि रोगमें नाड़ी क्षीण और वेगवती बननेसे द्वितीय शब्द प्रायः सुन नहीं पड़ता। ऐसी अवस्थामें मणिबन्धसे नाड़ीमानयन्त्र (sphygmograph) लगा नाड़ी देखनेसे सुरमेदार आईनेपर तीन रेखा खिंच जायेंगी। उनमें एक रेखा तिरछी पड़ ऊर्ध्वदिक्को दौड़ती है। यही क्षुद्र रेखा होगी। दूसरी रेखा निम्न दिक्को उतरती है। वही अपेक्षाकृत बड़ी निकलेगी। बड़ी रेखाके बाद ही किञ्चित् स्थान सिकुड़ जाता है। नाड़ीकी ऐसी आकृतिको कुलक्षण समझेंगे।

अन्त्रज्वरमें पेट और वक्षःस्थलपर गुलाबी रङ्गका कोई चिह्न निकल आता है। दाग़ अल्प गोलाकार किञ्चित् उच्च,—हाथ हिलानेसे खूब अच्छी तरह देख पड़ेगा। एवं अङ्गुलिके अग्रभागसे अल्प दबा देनेपर क्षणकालके निमित्त बैठ जाता, उसके बाद ही फिर निकल आता है। अनेक-स्थलमें ही यह चिह्न सातसे चौदह दिनके भीतर झलक उठेगा। हमारे देशमें अन्त्रज्वरका अन्यान्य लक्षण स्पष्ट रूपसे झलकनेपर भी रक्तवर्ण चिह्न कदाचित् देखनेको मिलता है। युरोपमें टाईफयेड ज्वर अतिशय प्रबल है, किन्तु वहां भी सबके गात्रमें यह चिह्न नहीं झलकता।

परिपाक-यन्त्रकी विशृङ्खला ही इस ज्वरका प्रधान लक्षण है। पीड़ा उठनेसे पहले ही रोगी कुछ खाना न चाहेगा। यत्सामान्य भोजन भी पेटमें परिपाक नहीं होता। किन्तु इससे बिलकुल विपरीत लक्षण भी किसी-किसी स्थलमें विद्यमान मिलेगा। रोगी अज्ञान अवस्थामें पड़े रहते भी मुखमें जो पहुंचता, उसे खा डालता है; किसी प्रकार क्षुधाकी निवृत्ति नहीं होती। किन्तु ऐसा लक्षण क्वचित् देख पड़ेगा। अनेक स्थलमें ही जिह्वा सूख और फट जाती, उसपर कांटे निकल आते हैं। कहीं कृष्णवर्ण, कहीं श्वेतवर्ण और कहीं कटुवर्ण लेपसे उसका ऊपरीभाग ढंक जायेगा। मुखके रसका लेशमात्र देख नहीं पड़ता। रोगीसे जिह्वा निकालनेको कहनेपर, वह अन्यमनस्कताके कारण शीघ्र कैसे निकाल सकता है। फिर निकाल कर भी वह शीघ्र मुखके भीतर उसे दबा न सकेगा। किसी-किसी अवस्थामें जिह्वा निकालते समय रोगी कांप उठता है।

उत्कट अवस्थामें किसी रोगीका ओष्ठ कृष्णवर्ण पड़ता और फट जाता एवं मसूड़ेसे रक्त गिरने लगता है। दन्त भी कृष्णवर्ण हो जाते हैं।

प्रखर ज्वरके समय, या कहीं ज्वरकी शेषावस्था-में एकदिक् या किसी स्थलमें दोनों दिक्का कर्णमूल फूल जायेगा। दुर्बल रोगीको कर्णमूल ग्रन्थिको सूजकर पकनेपर कठिन कुलक्षणके मध्य गिनेंगे। क्योंकि उससे अधिक पोप निकलने और क्षतस्थान सड़नेपर रोगी क्रमशः दुर्बल बन प्राण छोड़ता है।

उदरामय अन्त्रज्वरका प्रधान लक्षण है। प्रथम दिनके मध्य दो-तीन बार तरल मल निकले और उसका वर्ण हरिद्रा-जैसा रहेगा। किन्तु हरिद्रावर्ण होते भी उसमें प्रायः पित्त नहीं पड़ता। किसी आधारमें मल रख छोड़नेसे अजीर्ण द्रव्य, इपिथि-लियम् कोष एवं अन्त्रके क्षतस्थानका गलित पदार्थ आधारके नीचे देखाई देगा। अनेक स्थलमें मल निकलते समय रोगी कुछ भी समझ नहीं सकता। अचैतन्यावस्थामें शय्यापर ही पुनः पुनः मलत्याग करता है। इस सकल उपसर्गके साथ उदर फूल उठेगा। दक्षिण दिक्का श्रोणिप्रदेश दबानेसे गड़-गड़ शब्द निकलता है। अन्त्रसे रक्तस्राव भी इस ज्वरका उत्कट लक्षण होगा। किन्तु यह सकल स्थलमें नहीं झलकता। कोई-कोई चिकित्सक कहता, कि अल्प परिमाणमें रक्त गिरनेपर ज्वरका विष शरीरसे निकले; अतएव इसे सुलक्षण मानना पड़ेगा। किन्तु इस बातको सकल युक्तिसङ्गत नहीं बताते। न बतानेका कारण यह है, कि यत्सामान्य रक्त स्रावके बाद भी अनेक व्यक्तियोंने दुर्बल और हिमाङ्ग बन प्राण छोड़ दिये हैं।

हिचकी महा दुःखदायी है। टाइफयेड ज्वरमें यह बहुतसे रोगियोंको आने लगती है। विशेषतः अन्त्रमें छिद्र हो जानेसे पहले सकलको ही हिचकी लगेगी।

इस पोड़ासे कभी-कभी क्षुद्रान्त्रमें छिद्र पड़ेगा। ज्वरकी शेष अवस्थामें ही इस कठिन उपसर्गके उठनेको अधिक सम्भावना होती है। किन्तु आरोग्यके समय भी क्वचित् अन्त्रमें छिद्र हो जायेगा। इसलिये अन्त्रज्वरसे नीरोग होनेपर भी रोगीको अनेक दिन पर्यन्त कठिन द्रव्य खिलाना न चाहिये। कठिन द्रव्य खानेपर उसकी उत्तेजनासे अन्त्रमें अकस्मात् छिद्र पड़ सकता है। छिद्र होनेपर उसके भीतरसे विष्ठादि पेरिटोनियम गह्वरमें घुसेगा। उस समय और भी अतिरिक्त आध्मान, उदरवेदना, उदरकी दृढ़ता बढ़ जाती है। नाड़ी क्षीण और अतिशय चञ्चल हो जायगी। कहीं कपालपर बिन्दु-बिन्दु पसीना निकलता, किसी स्थलमें सर्वाङ्गसे धर-धर बहता है। रोगी बार-बार वमन करे और शीघ्र ही अवसन्न पड़ जायेगा। सचराचर अन्त्रान्त्र-कपाटके दो इञ्च मध्य ही अन्त्रमें छिद्र होते देखते हैं।

रोगीके अनेक दिन शय्यागत रहनेपर श्वासयन्त्रमें भी प्रदाहादि पैदा होगा। कभी-कभी १३।१४ दिन बाद फेफड़े या श्वासनालीमें प्रदाह होता है। घर्घर श्वास प्रश्वासका चलना, खांसी, श्लेष्मेका निःसरण, वक्षःस्थलकी वेदना और आकर्षण-बोध प्रभृति इसके वाह्य लक्षण मिलेंगे। ऐसे समय छातीपर कान लगानेसे कुक्-कुक् शब्द सुन पड़ता है। यह शब्द श्वासनालीके प्रदाहका लक्षण है। फिर कानके पास अपने थोड़ेसे बाल घिसनेपर जैसे चुड़-चुड़ शब्द निकले, वैसे ही फेफड़ेमें प्रदाह होनेसे वक्षःस्थलके भीतर भी शब्द उठेगा। कभी कभी प्रदाहसे फेफड़ा कलेजे-जैसा कड़ा पड़ जाता है। उस अवस्थामें पीड़ित स्थानमें वक्षःस्थल अङ्गुलिसे ठोकनेपर दूसरा खाली शब्द नहीं निकलता। सख्त चीज़पर आघात करनेसे जैसे टप-टप होता, बिलकुल वैसे ही फेफड़ेसे भी शब्द उठा करता है।

वक्षःस्थलमें किसी प्रकारका प्रदाह न होते भी रोगी यदि हांफते-हांफते निश्वास छोड़े, तो वह भी अतिशय कुलक्षण समझा जायेगा। ऐसे सशब्द और उद्वेगयुक्त श्वास-प्रश्वासके बाद अधिकांश स्थलमें रोगी हतज्ञान हो जाता है। सकल प्रकारके ही ज्वरमें यह कठिन उपसर्ग निकलेगा।

मूत्रावरोध सकल प्रकारके ज्वरका दूसरा कठिन उपद्रव है। किसी-किसी स्थल मूत्राशयमें पेशाब सञ्चित होता, किन्तु रोगी उसे निकाल नहीं सकता।

पेशाब उतर जानेसे यह उपसर्ग उतना कठिन कैसे कहायेगा। सञ्चित मूत्र शलाका द्वारा सहजमें निकाला जा सकता है। किन्तु मूत्राशयमें पेशाब न उतरनेसे रोगीके जीवनकी रक्षा दुःसाध्य हो जायगी। मूत्रके साथ यूरिक एसिड नामक कोई क्षार द्रव्य रहता, जो विषतुल्य होता है। वही विषवत् द्रव्य पेशाबके साथ बाहर निकल जानेसे हमारा रक्त परिष्कार और निर्दोष बनेगा। किन्तु मूत्राशयमें पेशाब न उतरनेपर यूरिक एसिड रक्तमें मिल जाता है। उसके कारण रोगी बेहोश हो हस्तपद चलायेगा। मूत्रके साथ कभी-कभी मेद भी मिल जाता, वह भी सहज उपद्रव नहीं होता।

रोगीके अनेक दिन शय्यापर पड़े रहनेसे कटिदेशमें क्षत निकलता, क्रमसे वही क्षतस्थान सड़ा करता है। अतएव यह भी एक मारात्मक उपसर्ग है।

इस ज्वरमें सचराचर क्षुद्रान्त्रको समवेत और असमवेत एवं मेसेण्टारिक ग्रन्थि ही अधिक बिगड़ेगी। पीड़ाकी प्रथमावस्थामें मृत्यु पड़नेसे जड़ितान्त्रकी समवेत और असमवेत ग्रन्थिमें प्रदाहका लक्षण देखाई देता है। ग्रन्थि सूजकर ३।४ सूत ऊंचे उठे, और उसकी चारो दिक्‌वाली श्लैष्मिक झिल्ली लाल नज़र आयेगी। कुछ दिन अधिक जीनेसे ग्रन्थिका यह सकल स्थान कोमल और गलित बनता, अन्त्रको इसमें क्षत पड़ जाता है। चिकित्सक अनुमान करते, कि अन्त्रके इस समस्त स्थानसे ज्वरका विष निकले, इसीसे पहले ही अन्धान्त्रमें उत्तेजना उठे एवं उसी उत्तेजनाके निमित्त उदरामय उपजेगा। टाइफयेड ज्वरका विष मलमूत्र द्वारा सम्पूर्ण रूपसे न निकल सकनेपर उसका कितना ही अंश यकृत्‌के भीतर पहुंचता, जिससे पित्त भी बिगड़ जाता है।

अन्त्रका क्षतस्थान कभी-कभी अन्त्रावरक झिल्लीसे मिले, जिससे इस झिल्लीमें भी छिद्र देख पड़ेगा। अन्त्रमें छोटा छोटा छेद होनेसे रोगी आरोग्यलाभ करता, किन्तु अन्त्रावरक झिल्लीमें छेद पड़नेसे प्राण बचना दुर्घट जंचता है। अन्त्रमें छेद होते भी यदि रोगी नीरोग हो, तो क्रमसे इस छिद्रपर एक बारीक परदा पड़ेगा। पीछे वही परदा उत्तरोत्तर पुरु और दृढ़ हो जाता है। किन्तु छिद्र चारो दिक्‌से मांस भरकर जुड़ते कहीं भी देखाई न देगा। डाक्टर लाव्रे बताते, कि अन्त्रके भरनेसे छिद्र जुड़ सकता है। किन्तु यह बात सकल न मानेंगे।

अन्त्रज्वरमें अधिकांश रोगीकी प्लीहा कुछ-कुछ बढ़ और कोमल पड़ जाती है। किसीकी प्लीहा अकस्मात् फट चलेगी। प्लीहा फटनेसे पेरिटोनियल गह्वरमें रक्त पहुंचता है। मलेरियाजनित सविराम और स्वल्पविराम ज्वरमें यह दुर्घटना समय समयपर देखनेको मिलेगी। अकस्मात् मूर्च्छा (sudden syncope) द्वारा हठात् मृत्यु पड़नेका यह एक प्रधान कारण है। क्वचित् किसी-किसी रोगीकी अन्न-नाली और श्वास-नालीमें भी क्षत पड़ जायेगा। फेफड़ेके प्रदाह और रक्ताधिक्यका लक्षण अनेक मृत-देहमें झलकता है।

मस्तिष्कावरक झिल्लीमें प्रदाह बहुत कम उठता है। किन्तु मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य एवं आरेकनयेड गह्वरमें सिरस रससञ्चय अनेक स्थलपर देख पड़ेगा।

किसी-किसी व्यक्तिके हृदयका पेशीसूत्र कोमल होता है। हृदय चीरनेपर भीतरसे अत्यन्त तरल और कृष्णवर्ण रक्त निकलेगा। सिवा उसके फेफड़े या अन्त्रावरक झिल्लीकी जलन बाद मृत्यु आनेसे हृदयके गह्वर मध्य फ़ाइब्रिनका पिण्ड भी पड़ता है। भिर्थ बताते, कि उससे रक्तके श्वेतकण अतिशय बढ़ जायंगे।

किसी-किसी स्थल वृक्कमें रक्ताधिक्य होता; फिर किसीका वृक्क (kydneys) पाण्डुवर्ण हो जाता है।

टाइफयेड ज्वर पहचानना कठिन नहीं। एक बार देखनेसे सहज ही में सब इसकी व्युत्पत्ति समझ लेंगे। मोहकज्वर अर्थात् टाइफ़ाम् ज्वर स्वल्पविरामज्वर है, और मस्तिष्कावरककी झिल्लीवाली जलनसे इसका कुछ धोखा हो सकता है। टाइफयेड ज्वरमें पेट, छाती और पीठपर जो चिह्न निकलते, उन सबका वर्ण गुलाब जैसा झलके; किन्तु

टाइफस ज्वरका दाग़ कुछ काला पड़ेगा। टाइफयेड ज्वरका ७ से १४ दिनके और टाइफस ज्वरका चिह्न ४से ७ दिनके भीतर निकलता है। टाइफस ज्वरमें उदरामय किंवा अन्त्रसे रक्तस्राव प्रायः न हो; किन्तु अन्त्रज्वरमें सर्वत्र ही उदरामय उठेगा, तद्भिन्न दक्षिण श्रोणिप्रदेश दबानेसे वेदना बढ़े और बज-बज जैसा शब्द निकलेगा। यही टाइफयेड ज्वरका प्रधान लक्षण समझिये। ऐसा लक्षण किसी दूसरी पीड़ामें नहीं देखते। इस ज्वरमें अनेक रोगीके अन्त्रसे रक्तस्राव भी होने लगेगा।

अन्त्रज्वर बालक और युवा व्यक्तिको ही अधिक आता है। चालीस वर्षकी आयुके बाद यह पीड़ा प्रायः देख न पड़ेगी। किन्तु मोहक ज्वर कभी आ सकता है। टाइफयेड ज्वर प्रायः २१ दिनसे ३०।४० दिन पर्यन्त रहेगा। टाइफस ज्वर २१ दिनसे अधिक नहीं ठहरता। इसके बीच रोगी नीरोग होता किंवा प्राण ही छोड़ देता है।

इसकी सच्ची जांच करना कठिन है, अन्त्र-ज्वरमें सैकड़े पीछे कितने मनुष्य मरते हैं। भिन्न भिन्न देशमें विज्ञ चिकित्सकोंने जो सारा हिसाब उतारा, उसका फल सर्वत्र समान न हुआ। समान न होनेका कारण यह है,—किसी वत्सर पीड़ाका प्रकोप अति दुरूह होता, फिर किसी वत्सर उतना कठिन नहीं मालूम देता। दूसरे किसी किसी रोगी पर नाना प्रकार उत्कट उपसर्ग पड़ सकता, किसी स्थलमें अति सामान्य और सहज ही उपसर्ग उठता है। तद्भिन्न चिकित्साके प्रणाली-भेदसे भी मृत्यु संख्या घट-बढ़ जायेगी। कहीं ऐसा भी होता, कि रोगीको नितान्त मृतप्राय दशामें देख चिकित्सालय भेज देते हैं। इसीसे जो, चिकित्सा कराने नहीं, मरने पहुंचे, वह मृत्यु भिन्न और क्या लाभ उठाये-गा? इस सकल कारणसे टाइफयेड ज्वरका शुभाशुभ फल ठीक-ठीक मालूम नहीं पड़ता।

डाक्टर मर्चिंसनने चौदह वत्सरकी जांचमें १८५९२ रोगीका हिसाब लगा रखा है। उसमें सैकड़े पीछे १८७८ आदमी मरे अर्थात् ५। २७ रोगीके मध्य एक आदमीने प्राण छोड़े। इस रोगमें पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीकी मृत्यु संख्या बहुत कम पड़ेगी। बालकके पक्षमें भी यह उतना घातक नहीं होता। सचराचर सबलकाय युवाव्यक्तिकी ही मृत्यु अधिक होती है। हमारी साम्राज्ञी क्वीन विक्टोरियाके स्वामी प्रिन्स अलबर्टने इस ज्वरमें बराबर इक्कीस दिन तकलीफ़ उठायी थी। वह अतुल ऐश्वर्यके पति थे; कितनी चिकित्सा, कितना यत्न किया गया! किन्तु किसीसे फल न निकला अन्तमें सन् १८६१ ई०की १४ वीं दिसम्बरको वह पुण्यधामको चलते बने।

भाविफल—यद्यपि शुभलक्षणके मध्य ज्वरकी प्रखरता और उपसर्गकी अल्पता गिनी जाती, तथापि नाड़ीका स्पन्दन प्रति मिनट १२० बार और देहका सन्ताप १०३° या उससे कम होना चाहिये; उदरामय सामान्य उठे; एवं अन्त्रमें यदि छिद्र न पड़े, प्रलाप न बढ़े, तो निश्चित आरोग्यलाभकी सम्भावना होती है।

अशुभ लक्षणमें यह बात होगी,—१०५° से अधिक देहका सन्ताप, पहले ही प्रति मिनट १२० बारसे अधिक नाड़ीका स्पन्दन, अत्यन्त क्षीण नाड़ी, उसका वक्र और दबानेसे मालूम न पड़ना, क्षण क्षण उसके स्पन्दनका लोप, किंवा केंचुये-जैसी मोटी पड़ उसका पीछे हट-हटकर चलना। यदि नाड़ी-मानयन्त्रमें जांचनेसे ऊर्ध्व रेखा तिरछी पड़ छोटी और निम्नरेखा बड़ी हों; आधारपर दो किंवा तीन कुञ्चित रेखा खिंचें, तो इसे अत्यन्त कुलक्षण कहना चाहिये। हृदयका स्पन्दन भी यदि बहुत ज़ोर पकड़े और उसी समय नाड़ी क्षीण, क्षुद्र एवं द्रुतगामी बने, तो रोगी निश्चित रूपसे मर जायेगा। हृदयका प्रतिघात न लगने एवं उसी समय हृत्पिण्डका द्वितीय शब्द सुन न पड़नेसे रोगीकी प्राणरक्षा दुर्घट हो जाती है। सकल ही ज्वर रोगके अतिशय कुलक्षण यह होंगे—मूत्रावरोध, अत्यन्त प्रलाप, श्वासयन्त्रका प्रदाह, उसीके साथ निद्राभाव, प्रलाप; कठिन, शुष्क एवं पाण्डुवर्ण किंवा कृष्णवर्ण जिह्वा,

अतिशय हिक्का, अत्यन्त अवसन्नता, हस्तपदकी पेशीका आक्षेप, श्वेतनेत्र, पीड़ाकी चरमावस्थामें कटिदेश या मुखका क्षत और कर्णमूल प्रदाह।

रोगका प्रतिकार न होनेसे प्राय: १२ दिनसे २० दिनके मध्य मृत्यु आ पहुंचती है। मृत्युसे पूर्व कोई-कोई रोगी तकियेसे सरक-सरक जायेगा। कोई करवट ही बदला करता है। सशब्द घर्घर श्वास-प्रश्वास चलेगा। आन्तरिक कष्टके कारण कोई-कोई रोगी कांखता है। किसीका मलद्वार खुले और रोगी अचैतन्यावस्थामें मल छोड़ेगा। हस्तपदादिका अग्र भाग शीतल पड़ता, नाड़ी क्षीण और अत्यन्त द्रुत-गामी होती; किसी किसी स्थलमें तो मृत्युसे ७८ घण्टे पहले नाड़ी स्थूल हो धक-धक चलती, अवशेषमें विलुप्त हो जाती है। कपालसे विन्दु-विन्दु घर्म निकले, उसके बाद प्राणप्रदीप बुझ जायगा।

नहीं कह सकते, इस ज्वरका सच्चा कारण क्या है। किन्तु विज्ञ चिकित्सकोंमें नाना जन नाना बातें बतायेंगे। कोई-कोई कहते, कि इसका विष मलेरिये-जैसा होता है। जन्तुका शरीर और उद्भिद् सड़नेपर उसी गलित पदार्थसे कोई बाष्प निकलेगा। वही मनुष्यके शरीरमें पैठनेसे टाइफयेड ज्वर चढ़ता है। डाक्टर बड् बताते, कि टाईफयेड ज्वराक्रान्त रोगीके विष्ठासे विष फैल दूसरेके शरीरमें पहुंच सकेगा। किन्तु डाक्टर मर्चिंशनने इस मतको काट दिया है।

टाइफयेड ज्वरकी उपयुक्त चिकित्सा कुछ नहीं होती। वरं नाना प्रकार कठिन औषध देनेसे रोगीकी अवस्था और भी बिगड़ जाती है। अनेक विज्ञ चिकित्सक प्रथम वमन करनेका परामर्श देंगे! पाकस्थलीमें भुक्त द्रव्य सञ्चित रहनेसे वमन करा सकते हैं। १०।१५ ग्रेन इपिक्याक चूर्ण उष्ण जलके साथ खिलाना चाहिये। डाक्टर टेनर आध छटांक भाइनम् इपिक्याक खिलानेका परामर्श देते हैं। हमारे वैद्य कहेंगे, कि रोगीका समस्त गात्र चालित करें, किन्तु मलभाण्ड कदापि न हिलाये, अर्थात् रोगीको विरेचक औषध न दे। वह व्यवस्था बिलकुल इसी रोगके लिये होगी। टाइफयेड ज्वरमें विरेचक औषध अत्यन्त अनिष्टकर होती है। किन्तु दो-तीन दिनके ज्वरमें उदरामय उभरनेसे पहले निम्नलिखित औषध दिया जा सकेगा,—

हाइड्रार्ज कमक्रिटा	...	...	३ ग्रेन
मुलतानी मट्टीका चूर्ण	...	...	५ ,,
सोडा बाइकार्ब	...	...	५ ,,
चीनी	...	...	२ ,,

एकत्र मिला एक पुड़िया बांध लीजिये। यह औषध चार घण्टे अन्तरसे खिलानेपर पेटकी अधिक उत्तेजना नहीं घटती। डाक्टर हार्ली मुलतानी मट्टीका चूर्ण न डाल अफीम पड़ी खड़ियामट्टीका चूर्ण ही मिलाते हैं। जो हो, यह पारदघटित मृदु विरेचक औषध एक दिनसे अधिक खिलाना न चाहिये।

उसके बाद हस, चेम्बर्स रिचार्डसन, मर्चिंशन, टेनर, फिलण्ट प्रभृति चिकित्सक पार्थिवाम्लकी विशेष प्रशंसा सुनाते हैं। नाइट्रो-मिउरिएटि एसिड (Nitro-muriatic acid) शुण्ठीके पाकमें मिला प्रत्यह ३।४ बार १५।२० विन्दुकी मात्रामें खिलाया जा सकेगा। अन्त्रज्वरसे रक्तमें अतिशय क्षार उपजता है। उपरोक्त द्रावक देनेसे यह क्षारदोष मिट जायेगा। जर्मनीमें जलसेक चिकित्साका बड़ा आदर है। डाक्टर फिलण्टने भी अमेरिकामें इसे आज़माया था। आज़माकर उन्होंने इसकी प्रशंसा की। रोगीके गात्रका ताप अत्यन्त बढ़ जानेसे जलसेक करना आवश्यक होगा। प्रथम घरके समस्त द्वार बन्द कीजिये। उसके बाद दो कम्बल शीतल जलमें भिजो दो शय्या बिछाना चाहिये। पहले एक तर कम्बलमें रोगीको लपेट पीछे दूसरा सूखा कम्बल उसे ओढ़ाइये। १०।१५ मिनट बाद इस शय्यासे उठा रोगीको अन्य शय्यापर कम्बलमें इसीतरह ओढ़ाकर सुलाना होगा। शरीरका बल और देहका सन्ताप देख यह प्रक्रिया ३०।४० मिनट पर्यन्त की जा सकती है। अन्तमें रोगीका सर्वाङ्ग पोंछ शुष्क शय्यापर सुलाये और गात्रको सूखे कपड़ेसे ढांक दे। जलसेकके बाद शीघ्र घरका द्वार न खोलना चाहिये। जिस घरका

द्वार बन्द रखते भी ठण्डी हवा जा सकती, उस घरमें जलसेक करना कर्तव्य नहीं ठहरता। जलसेक करनेका साहस यदि न हो, तो उष्णजलमें वस्त्र तरकर बारम्बार उससे रोगीका सर्वाङ्ग पोंछना अच्छा होगा। इससे भी सन्ताप कम होता है। दुःसह पिपासा मिटानेके लिये शीतलजल और बरफ़ विशेष हितकर है। शिरमें अत्यन्त वेदना होनेसे सारे बाल बनवा बरफ़ रखना और ठण्डा पानी छोड़ना चाहिये। इससे शिरकी उत्तेजना घटे और निद्रा भी आयेगी।

पहले ही कहा जा चुका है कि, अन्त्रज्वरकी सच्ची चिकित्सा नहीं होती। किसी औषधसे इस कठिन ज्वरका प्रतीकार न होगा। पीड़ाके आदिसे अन्ततक चिकित्सकका कर्तव्य यह है, कि वह लघु पथ्य एवं सुरा द्वारा रोगीका बल बचाये। तद्भिन्न जब जो उपसर्ग उठे, तब यत्सामान्य औषध द्वारा उसे दबानेकी वह चेष्टा करें। अतिरिक्त औषध खिलाने किंवा व्यस्त बननेसे सिवा अनिष्टके इष्टलाभकी प्रत्याशा नहीं पड़ती। डाक्टर गोल्डन, डण्डा प्रभृति चिकित्सक इस रोगमें कुनैन खिलाते हैं। किन्तु वह सुव्यवस्था नहीं समझी जाती। भिन्न भिन्न चिकित्सकोंने देखा, कि टाइफयेड ज्वरमें कुनैन देनेसे अनिष्ट होता और पीड़ा मिटनेमें अधिक विलम्ब लगता है। फिर भी इस स्थलमें यह बात विचारेंगे, कि हमारे देशमें मलेरिया अतिशय प्रबल है। अन्त्र-ज्वरपर प्रातःकाल किञ्चित् विश्राम मिलनेसे अल्प मात्रामें कुनैन खिलाना कोई क्षति नहीं पहुंचाता। किन्तु अतिशय आध्मान, रक्तस्राव, अन्त्रछिद्र प्रभृति उपसर्ग उठनेसे कुनैन देना मना है।

उदरामय मिटानेको ऐसा औषध दिया जा सकेगा,—

खदिरका अरिष्ट	आध ड्राम।
काइनोरका अरिष्ट	५ विन्दु।
पिपरमिण्टका जल	आध छटांक।

इनको एकत्र मिला एक मात्रा बनायिये। इस औषधको चार घण्टे अन्तरसे खिलाना होगा। अत्यन्त प्रलाप और मस्तकवेदना होनेसे बिलकुल उदरामयको न उखाड़े। किन्तु पुनःपुनः जलवत् मल निकलनेसे उसका प्रतीकार करना आवश्यक होगा। निम्नलिखित औषधसे भी उदरामयको विलक्षण शान्ति होती है,—

जलमिश्र सल्फ़ुरिक एसिड	३ विन्दु।
शूगर अव लेड	३ ग्रेन।
मर्फ़िया हाईड्रोक्लोरेट	चौथाई ग्रेन।
दारुचीनीका जल	आध छटांक।

इनको एकत्र मिला एक मात्रा बनाये। इस औषधको चार घण्टे अन्तरसे खिलाना चाहिये। प्रबल उदरामय उठनेपर निम्नलिखित औषध पिच-कारीसे मलद्वारमें पहुंचायेंगे,—

तारपीन तेल	३० विन्दु।
टिङ्क्चर काइनो	२ ड्राम।
टिङ्क्चर ओपियम	२० विन्दु।
घुला हुवा गोंद	एक छटांक।

यह औषध प्रत्यह दो बार दी जा सकती है। रक्तस्राव होनेसे गेलिक एसिड महौषध होगा,—

गेलिक एसिड	१० ग्रेन।
टिङ्क्चर ओपियम	७ विन्दु।
जलमिश्र सल्फ़ुरिक एसिड	१ विन्दु।
जल	आध छटांक।

इनको एकत्र मिला ४।६ घण्टेके अन्तरसे खिलाना चाहिये। बहुत ज्यादा पेट फूलने और उदरमें वेदना उठनेसे सारे पेटपर तारपीन तैल लगा उष्णजलका सेक करे। अतिशय आध्मान होनेपर कोमल वस्त्रसे पेटको लपेट दे। तद्भिन्न लम्बी नलीसे हींगकी पिचकारी लगानेपर भी आध्मान घट सकता है।

रातको नींद न पड़नेसे रोगीको अत्यन्त ग्लानि आयेगी। उससे दिन-दिन शरीर दुर्बल पड़ता और समस्त उपसर्ग भी बढ़ता है। इसलिये जिससे नींद आये, उसके लिये यत्न करना उचित होगा। ५ ग्रेन डोभर्स पाउडर प्रयोग करनेसे अनेक स्थलमें सुनिद्रा आ जाती है। किन्तु मस्तकमें रक्ताधिक्य रहनेसे इस औषधको देना ठीक न होगा।

कारण, इसमें अफीम पड़ती है। मस्तकमें रक्ताधिक्य रहनेसे अफीमको नहीं सह सकते। फेफड़े या श्वास-नालीमें प्रदाह उठनेसे यदि श्लेष्मा न गिरे, तो अफीम अनिष्ट पहुंचायेगी। रोगीके बिलकुल संज्ञाहीन होने वाले पूर्व लक्षण झांकनेपर भी अफीम न खिलाना चाहिये। जो हो, किसी प्रकार रोगीको सुनिद्रा आनेसे एक दिनमें सकल उत्कट उपद्रव भागता है।

वक्ष:स्थलका प्रदाह मिटानेको खांसीमें छातीपर अफीमके तेलसे मालिश करायें, पतले कपड़ेको तारपीनके तेलसे तरकर छातीपर डाले एवं सरसोंका उष्णप्रलेप पुन:पुन: लगाता रहे। सेवनके लिये टिञ्चर सेनेगा २० विन्दु, सिरप अव स्कुइल ३० विन्दु, क्लोरिक ईथर २० विन्दु, और कर्पूरका जल आध छटांक—इन सबकी एक मात्रा बनाना चाहिये। इस औषधको ६ घण्टे अन्तरसे खिलायिये। उदरामय खांसी और एकज्वर—इस उपसर्गका दूसरा भी महौषध वर्तमान है। यथा,—लिकर सोडा क्लोरिनेट २० विन्दु, सिरप अव टलु ३० विन्दु, क्लोरिक इथर २० विन्द और सर्पेण्टारिका आध छटांक—इन सबको एकमें मिला मात्रा बनायिये। इस औषधको ४।६ घण्टे अन्तरसे खिलाना अच्छा होगा।

रोगीका दुर्बल होना समझ पड़ते ही मांसका शोरबा और ब्राण्डी बराबर देना चाहिये। ज्वररोग-में मद्य देनेके लिये कितनी ही विज्ञता जरूरी है। ठीक समय और उपयुक्त परिमाणपर मद्य न दे सकनेसे विस्तर अनिष्ट आये एवं अनेक रोगी चिकित्सककी अविवेचनासे अकालमें प्राण छोड़ेगा। अतएव ज्वररोगको चिकित्साके समय सकलको ही यह कई बातें भूलना न चाहिये,—

नाड़ी क्षीण और अतिशय-द्रुतगामी होनेसे मद्य पिलाये। यह औषध दो-एक मात्रा लेनेसे यदि नाड़ी पूर्वापेक्षा सुस्थिरा और सबला मालूम पड़े, तो समझना होगा, कि मद्य प्रयोगसे उपकार हुवा है। मद्य पिलानेसे यदि नाड़ीका वेग और वक्र-गमन बढ़े, तो जान जायिये, कि मद्य सेवनसे कोई उपकार न हुवा; वरं कुछ अनिष्ट उठा है।

किन्तु नाड़ी चञ्चल पड़ते भी मद्यको बिलकुल स्थगित रखना न चाहिये। पूर्वापेक्षा और भी अल्प मात्रामें थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसे पिलाता जाये। अनायास ही समझ सकते, इस प्रणालीसे सुरा पिलानेमें किस रोगीको, कैसे परिमाण और विलम्बसे मद्य देना आवश्यक होगा। जिसने नियत रोगीके पास ठहर बहुदर्शिता पायी, उस विज्ञ चिकित्सकको प्राय: इतना कष्ट नहीं उठाना पड़ता। मस्तिष्कका उपसर्ग एवं नाड़ीकी गति देखते ही वह मद्यप्रयोगका फलाफल अविलम्ब ही समझ सकेगा।

यदि मद्य पिलानेसे पूर्वापेक्षा जिह्वा और भी मलिन पड़े एवं सूखे, तो समझना होगा, कि सुरासे अपकार पहुंचा; किन्तु यदि जिह्वा क्रमश: सरस लगे और मलिनता घटे, तो इससे यही समझना चाहिये, कि मद्य सेवनसे शुभ फल निकला है।

मद्य पिलानेसे यदि प्रलाप घटे और निद्रा बढ़े, तो सुलक्षण समझा जायेगा। किन्तु प्रलाप पूर्वा-पेक्षा अधिक बढ़नेसे कुछ कालके लिये सुरा न पिलाना चाहिये।

दो-तीन मात्रा मद्य पिलानेसे यदि श्वास-प्रश्वास स्वाभाविक पड़े, तो निर्भय मद्य पिलाता रहे। किन्तु श्वासकृच्छ्र बढ़नेपर इस औषधको देना उचित नहीं।

बिलायतमें सचराचर ज्वरादि रोगकी अवसन्ना-वस्थापर २४ घण्टेके मध्य २ औन्ससे ६ औन्सतक ब्राण्डी किंवा ४ औंससे ८ औन्सतक पोर्ट पिलायी जाती है। क्वचित् किसी-किसी स्थलमें इसका सेवन अधिक परिमाणसे भी देखा गया। कठिन पीड़ाके समय रोगी अत्यन्त दुर्बल पड़नेसे ठीक तौरपर मद्य पिलाना चाहिये। मद्य सेवनसे शरीर स्वस्थ बनने और निद्रा पड़नेपर भी निर्दिष्ट समय रोगीको उठा सुरा पिला दे। क्योंकि ठीक समयपर मद्य न पिलानेसे विघ्न पड़नेकी सम्भावना होगी। सुस्थिर भावसे सोनेके कारण रोगीको जगानेमें कुण्ठित न होना चाहिये। कुण्ठित होनेसे सम्भव है, कि रोगीको फिर उस निद्रासे जागना ही न पड़े।

क्योंकि वैसा होनेपर जीवनी शक्ति बिलकुल निस्तेज पड़ती, और रोगी संज्ञाहीन हो प्राण छोड़ देता है।

मद्यके साथ मांसका शोरबा ही उपयुक्त पथ्य होगा। जितना शोरबा खानेसे रोगी अनायास पचा सके, १ घण्टे अथवा आध घण्टे अन्तरपर उतना ही शोरबा उसे पिलाना चाहिये। दुग्ध एवं घृतले यवका दलिया भी सुपथ्य होगा। किन्तु उदराध्मान उठनेसे यह सकल पथ्य देना उचित नहीं। फिर भी, सामान्य रूपसे पेट फूलनेपर प्रथम सप्ताह बाद चूनेवाले पानीके साथ गधेका दुग्ध अल्प-अल्प पिलाया जा सकता है।

इस ज्वरके चले जानेपर भी अनेक दिन पर्यन्त रोगीको अति सावधानतासे रखना चाहिये। सावधानतासे न रहनेपर इस कठिन पीड़ाके पुनर्वार आक्रमणकी सम्भावना रहती है। दुर्बल रोगीको शय्यासे उठने या अधिक बैठा रहने न दे। ज्वर छूट जानेपर भी कई दिन केवल तरल और लघु पथ्य खिलाना उचित है। क्योंकि पहले ही कह चुके हैं, कि इस ज्वरमें अन्त्रके मध्य क्षत पड़ेगा। इसलिये कठिन द्रव्य खानेपर अन्त्रके भीतर उत्तेजना बढ़ सकती है। अतएव जिस क्षतस्थानमें नयी खाल जमती, उसी सकल स्थानमें पुनर्बार क्षत पड़नेकी सम्भावना होगी।

इस रोगमें होमियोपेथी औषध भी विशेष उपकार पहुंचाता है। पीड़ाकी प्रथमावस्थापर बेपटिशिया (Baptisia ix. dil.) दो-एक विन्दु मात्रामें ३।४ घण्टे अन्तरसे देना चाहिये। विज्ञ चिकित्सक बताते, कि इससे ज्वरका विष मर जायगा।

क्षीण और द्रुत नाड़ी, उदराध्मान, उदरामय, अवसन्नता, तृष्णा प्रभृति उपसर्ग उठनेपर आर्सेनिक औषध अच्छा समझा जाता है। इस औषधको ३।४ घण्टे अन्तरसे देना और मध्य-मध्य कार्बो भेजिटेबलिस खिलाना चाहिये। प्रलापादि वर्तमान रहते बेलोडोना देनेसे उपकार पहुंच सकता है।

टाइफ़येड ज्वर संक्रामक होगा। अतएव रोगीकी समस्त विष्ठा ग्रामके बाहर गाड़ देना उचित है। परिधानका वस्त्र और शय्या जला सकनेसे खूब सफाई हो जाती है।

अन्त्रध्मि (सं० स्त्री०) अजीर्ण, आंतकी सूजन।

अन्त्रपाच (सं० क्ली०) स्थावर विषके अन्तर्गत त्वक्सारनिर्यासविष।

अन्त्रपाचक (सं० पु०) वृक्षविशेष। (Æschynomene grandiflora)

अन्त्रप्रदाह (Enteritis) अन्तड़ियोंकी जलन, सोज़िश अमआ। क्षुद्रान्त्रका प्रदाह दो प्रकार उठेगा। एक अति सहज है; उसमें विशेष यन्त्रणा नहीं झेलना पड़ती, किसी विपदकी भी आशङ्का नहीं होती। अनेक बार विना चिकित्सा उसका उपशम हो सकेगा। फिर एक जातीय अन्त्रप्रदाह अतिशय उत्कट होता है। उसमें उदरकी वेदनासे प्राण ओष्ठपर्यन्त पहुंचे, एवं रोगीका जीवन बचना भी दुर्घट हो जायगा। अन्त्रप्रदाह सकल वयसमें हो उठ सकता, किन्तु दुग्धपोष्य शिशुके दांत निकलते समय अधिक देख पड़ता है।

पूर्णवयस्क व्यक्तिको अन्त्रप्रदाह उठनेसे पहले कम्प लगाता है। उसके बाद—ज्वर, पिपासा, नाभिमण्डलकी चारो ओर अत्यन्त वेदनाबोध प्रभृति लक्षण झलकेगा। बहुतोंने देखा होगा, कि शूलवेदना उठनेसे रोगी अपने पेटको अपने हाथ ही मरोरकर पकड़ता, जिससे कुछ कालके लिये आराम मिलता है। किन्तु अन्त्रप्रदाह दौड़नेसे रोगी उदर छूने नहीं देता। हाथसे स्वल्प दबाने पर अत्यन्त कष्ट होता है। पैर फैलाकर सोनेसे पेट नुचे, इसीसे रोगी पैर सिकोड़ छातीमें लगा लेगा। ज़ोरसे निश्वास छोड़ने पर भी पेटकी यन्त्रणा बढ़ जाती है।

टाइफ़येड ज्वरकी तरह अन्त्रप्रदाहमें भी उदरामय सर्वत्र उठेगा। रोगी बारम्बार पतला मल परित्याग करता है। मलका वर्ण कभी हलदी और कभी मट्टी जैसा होगा। अन्त्रकी उत्तेजनाके निमित्त मध्य मध्य अतिशय वमन होता है। रोगीको पथ्य खिलानेसे पेटमें कुछ नहीं रुकता। दूध, मांसका

शोरबा प्रभृति तरल द्रव्य पेटमें पहुंचनेसे निकल पड़ेगा। उद्गीर्ण पदार्थके साथ कभी-कभी विष्ठा भी देखी गयी है। किन्तु विष्ठा न रहते भी सहज वमनमें इतना दुर्गन्ध आये, कि रोगीके पास कोई बैठ न सकेगा।

अन्त्रप्रदाहमें प्रलाप अतिशय कुलक्षण है। अधिक प्रलापसे रोगीका जीवन बचना एक प्रकार असाध्य हो जायगा। पीड़ाकी प्रथमावस्थामें नाड़ी कठिन एवं स्थूल पड़ती; क्रमसे अत्यन्त क्षीण और द्रुतगामी होती; अन्त्रमें अङ्गुलिसे दबानेपर फिर कुछ भी मालूम नहीं पड़ती।

शैशवावस्थामें अन्त्रकी श्लैष्मिक झिल्लीका प्रदाह (Muco enteritis) भी दिखाई देगा। दांत निकलते समय पहले शिशुको उदरामय दबाता है। उसके बाद क्रमसे आध्मान, ज्वर प्रभृति टाइफयेड लक्षण झलकेगा। रोगी सर्वदा ही अस्थिर रहता; यन्त्रणासे चिल्लाता; अवशेषमें नाड़ी क्षीण और द्रुतगामी हो जाती है। अन्त्रप्रदाहमें रातभर ज्वरका अल्प विश्राम होगा। किन्तु टाइफयेड ज्वरमें प्रातःकाल अल्प विश्राम मिलता है।

रोगनिर्णय—टाइफयेड ज्वर, स्वल्पविरामज्वर, अन्त्रवृद्धि, अन्त्रावरोध, शूलवेदना प्रभृति पीड़ाके साथ अन्त्रप्रदाह रोगका धोका हो सकता है। दक्षिण श्रोणिदेशका गुड़गुड़ शब्द, रातको ज्वरकी वृद्धि, शरीरमें गुलाबी चिह्न प्रभृति लक्षण न झलकनेसे अन्त्रप्रदाह सरलतापूर्वक पहचानेंगे। स्वल्पविराम ज्वरमें उदरामय होना कुछ आवश्यक नहीं। सिवा उसके पेटको वेदना और आध्मान रहते भी वह अन्त्रप्रदाह जैसा कैसे होगा! इस पीड़ा और अन्त्रवृद्धिका प्रभेद हाथसे देखते ही मालूम पड़ता, किसी विशेष स्थानमें अन्त्र उभर कर पहुंचा है या नहीं। अन्त्रावरोध पड़नेसे कोष्ठ बंधे, किन्तु अन्त्रप्रदाहका उदरामय प्रबल लक्षण होगा। शूलवेदनामें भी कोष्ठबद्ध पड़ता एवं रोगीका पेट दबानेसे स्वस्ति आती; किन्तु अन्त्रप्रदाहमें पेट दबानेसे अत्यन्त कष्ट मिलता है।

कारण—बहुत गर्म होनेपर शरीर शीतल करने किंवा हिम लगनेसे अन्त्रप्रदाह हो सकेगा। उष्ण दुग्धादि पीकर उसपर शीतल द्रव्य खानेसे अन्त्रप्रदाह उठता है। फल, मूल एवं उद्भिज्जादिका बीज किंवा त्वक् खानेसे अन्त्रमें उत्तेजना उठे, जिससे प्रदाह दौड़ सकेगा। उग्र सुराका सेवन भी इस रोगका कारण ठहरता है। क्रिमि इसका दूसरा कारण होगा। द्रावक किंवा सूखा विष खानेसे भी अन्त्रप्रदाह उठ खड़ा होता है। शिशुके दांत निकलते समय सचराचर यह पीड़ा दौड़ते देख पड़ेगी।

निदान—प्रदाह पड़नेसे अन्त्र रक्तवर्ण पड़ता; उसी रक्तवर्णमें कुछ काला रङ्ग मिला रहता; जिसपर अधिक श्लेष्मा लग जाता है। पहले उदरामय उठनेसे अन्त्रके स्थान स्थानमें विस्तर क्षत देख पड़ेंगे। टाइफयेड ज्वरकी तरह अन्त्रप्रदाहके भी क्षतस्थानमें कभी कभी छिद्र होगा। अधिककाल उदरामय झेलनेसे अन्त्रका परदा चौड़ा पड़ जाता है।

अन्त्रप्रदाह उठनेसे इसका क्रमिवत् आकुञ्चन रुकेगा। अन्त्र शब्दमें इस आकुञ्चनका विवरण देखो। अन्त्रका आकुञ्चन रुकनेसे ही उदरामय उठता है।

एलोपेथीकी अपेक्षा इस रोगमें होमियोपेथी औषध अधिक प्रशस्त पड़ेगा। रोगी दुर्बल होने एवं अत्यन्त वमन और नाभिकी चारो ओर वेदना उठनेपर आर्सेनिक १२ ड्राम एक विन्दुके हिसाबसे ३।४ घण्टे अन्तरमें खिलाये। उदराध्मान, कड़ा पेट, दुर्गन्ध तरल मल, मलमें रक्त और श्लेष्मा रहनेसे मार्किउरियास देनेपर उपकार पहुंचता है। पेट अत्यन्त फूल जाने एवं अतिशय उदरवेदना उठनेसे कलसिम्थका व्यवहार ठीक रहेगा।

एलोपेथी—इस मतसे चिकित्सा करने पर कभी विरेचक औषध न खिलाये। किन्तु अमेरिकाके डाक्टर फिलण्ट प्रथमावस्थामें विरेचक औषध खिलानेका परामर्श देते हैं। अनुमान है, कि यह व्यवस्था हमारे देशके पक्षमें हितकर नहीं ठहरती। डाक्टर टेनरने भी जुलाब देनेको रोका है। अत्यन्त

कोष्ठबद्ध पड़नेपर उष्ण जलकी पिचकारी लगानेसे मल निकल सकेगा।

एलोपेथीके मतसे, अन्त्रप्रदाहका अफीम महौषध होता है। किन्तु ४।५ मासके शिशुको वह खिलायी नहीं जा सकती। पूर्णवयस्क रोगीको ३।७ विन्दु अफीमका अरिष्ट कर्पूरके जलके साथ ३।४ घण्टेके अन्तरसे खिलाना चाहिये। रोगीको कुछ सुस्थिर पड़नेसे अधिक अफीम न दे। किन्तु बिलकुल उसे न खिलाना भी ठीक न होगा। इस समय दूसरी बात भी स्मरण रखना चाहिये। अफीम अति विषैली होती है। वह अल्प-अल्प उदरमें सञ्चित हो, पीछे उसकी विषक्रिया एकबारगी ही झलक सकेगी। इसलिये अफीम खिलाते समय विशेष सतर्क रहना उचित है। यह औषध दो-तीन मात्रा देनेसे यदि वेदनाका उपशम न हो, तो अल्प मात्रामें ठहर-ठहर अफीम खिलाता रहे।

रोगमें पहले उदरामय रोकनेको सङ्कोचक औषध न दे। तरुण प्रदाह घट जानेसे काइनो १० विन्दु, अहिफेन अरिष्ट ७ विन्दु एवं गोंदका रस आध छटांक एकत्र मिला—ऐसी ही दो मात्रा २४ घण्टेके मध्य खिलाना चाहिये। नाड़ी क्षीण और वेगवती होनेसे अन्त्रज्वरकी तरह मद्य और मांसका शोरबा पिला रोगीका बल बचाना आवश्यक होगा। शिशुकी श्लैष्मिक झिल्लीमें प्रदाह पड़नेसे कर्पूर जलके साथ २।३ ग्रेन क्लोरेट आव पोटाश खिलानेसे उपकार पहुंच सकता है।

द्वादशाङ्गुल्यन्त्र—अन्त्रके केवल इस स्थानपर प्रदाह उठनेसे जीवद्दशामें ठीक-ठीक समझ नहीं पड़ता। मृतशरीर चीरनेसे उसमें क्षतादि देख पड़ेंगे। अन्त्रका यह स्थान किञ्चित् विक्षत होनेसे एक प्रकारका अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है। उसे द्वादशाङ्गुल्यान्त्रिक अजीर्णरोग' (Duodenal dyspepsia) कहेंगे। इसका लक्षण अति सामान्य है। भोजनके बाद दक्षिण उपपर्शुकापर दबानेसे वेदना होगी। न दबानेपर भी पञ्जरके नीचे शूलवेदना जैसा कोई असुख पड़ा करता है। यह पीड़ा उठनेसे किसीको पाण्डुरोग लगे, किसीका जी मिचलाये एवं भोजन करनेसे समस्त भुक्त द्रव्य वमन द्वारा निकल जायेगा। द्वादशाङ्गुल्यन्त्रमें कभी-कभी क्षत भी पड़ता है। पीछे इस क्षतस्थानमें छिद्र हो जानेसे रोगीको अकस्मात् मृत्यु हो जायगी। कोई-कोई चिकित्सक कहते हैं, कि द्वादशाङ्गुल्यन्त्रमें कर्कट रोग भी लगता है। किन्तु इस प्रकारकी घटना प्रायः देख नहीं पड़ती। डाक्टर टेनरने द्वादशाङ्गुल्यन्त्के मध्य कोई बड़ी पित्तशिला देखी थी। इस पत्थरने अन्त्रका पथ बिलकुल रोक रखा था।

अन्त्रमय (सं० त्रि०) अन्त्रसे बना या भरा हुवा, जिसमें अन्तड़ियां लगी हों।

अन्त्रमांस (सं० क्ली०) पक्कमांस विशेष।

अन्त्रवल्लिका (सं० स्त्री०) सोनवल्ली लता।

अन्त्रवृद्धि (सं० स्त्री०) अन्त्रस्य प्रवेशजनिता वृद्धिः। अण्डकोषवृद्धि, बादफ़तक, फ़ोतोंका बढ़ना। (Rupture) इसका लक्षण वैद्यशास्त्रमें यों लिखा है,—

"वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः।
धारणे रणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः॥
क्षोभणैः क्षोभितोन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा।
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत्।
कुर्याद्वङ्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा॥
उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धिं आध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः॥
अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः॥" (माधवनिदानम्)

पेटके नीचे अन्त्र रहता है। जोरसे वज़न उठानेमें ऊपरी डायाफ्राम (Diaphram) और अन्यान्य पेशीके दबाव पर अन्त्र निम्नदिक् सन्मुख भागको उतर आयेगा। अन्त्रके अपना स्थान छोड़ अन्यत्र उतर पड़नेसे वह स्थान फूल जाता है। इसे ही हम अन्त्रवृद्धि कहते हैं।

प्रसवके बाद पेटसे बहुत नज़दीक नाड़ी चीरनेपर नाभिके ऊपर सूज जायेगा। चलती बोलीमें हम उसे गुमड़ी कहते हैं। यह गुमड़ी सिवा अन्त्रवृद्धिके दूसरी कोई चीज़ नहीं। पेटके बहुत नज़दीक नाड़ी चीरनेपर भीतरका अन्त्र सम्मुख दिकको

आता, जिससे नाभिके ऊपर फूल जाता है। नाभिसे थोड़ी दूर नाड़ी चीरनेमें यह दोष न दौड़ेगा। जांघके ऊपर (inguinal) और जांघके नीचे (femoral) भी अन्त्र खिसक पड़ता; किन्तु अनेक लोगोंके अण्डकोषमें ही अन्त्र उतरता है।

किसी-किसी शिशुको जन्मकालसे ही अन्त्रवृद्धि रोग लगेगा। कितना ही अन्त्र अण्डकोषमें उतरता, फिर किञ्चित् काल बाद आप ही चढ़ जाता है। उससे शिशुको कोई यन्त्रणा न पहुंचेगी। किन्तु यौवनकालमें कोई वज़नी चीज़ उठानेसे यह पीड़ा बढ़ती है। देखनेमें आया, किसी-किसी व्यक्तिके

अण्डकोषपर पेटका आधा अन्त्र उतरे और हाथसे थोड़ा दबाने ही से उपर चढ़ जायगा। यहां गर्भसे जात अन्त्रवृद्धिका चित्र खींचा गया है। बाहरकी स्थूल कृष्णवर्ण रेखा कोषका चर्म है। इसके भीतर अन्त्र उतर आया था।

जिसको अन्त्रवृद्धि रोग लगता, अण्डकोषमें अन्त्र उतरनेसे उसके कष्टकी सीमा नहीं रहती। पेटकी वेदनासे रोगी छटपटाया करता है। मध्य-मध्य वमन भी होगा। मलत्याग जैसा पुनः-पुनः वेग उठता, किन्तु मल नहीं निकलता।

अन्त्र बढ़नेसे किसी-किसी स्थलमें उसे स्वस्थानपर पहुंचा देते हैं (reducible)। किसी स्थलमें अन्त्र स्वस्थानमें नहीं भी ठेला जाता (irreducible)। फिर कहीं अन्त्र बंधता, (strangulated) जिसमें रक्त सञ्चालन नहीं होता; इसलिये अन्त्रका वह स्थान सड़ जाता है। ऐसी अन्त्रवृद्धि अतिशय भयानक होगी। कारण पहले ही बता चुके हैं, कि ज़ोरसे वज़नी चीज़ उठानेपर अन्त्र बढ़ सकता है। सिवा उसके जन्मावधि शारीरिक गठनकी विकृति उदरके किसी आघात एवं पीड़ा और पेटकी दुर्बलतासे भी अन्त्र बढ़ेगा। जिन सब लोगोंका स्वभावतः कोष्ठ परिष्कार नहीं पड़ता, वह मलत्यागके समय अनेकक्षण पर्यन्त ज़ोर लगाते हैं। उनको भी क्रमसे अन्त्रवृद्धि रोग लग सकेगा। पेशाब बन्द होने और आमाशयमें पीड़ा उठनेसे अतिरिक्त वेगके लिये अन्त्रवृद्धि रोग दौड़ता है।

यह पीड़ा सकल वयस और सकल श्रेणीके लोगोंमें हो सकेगी। किन्तु जिसे सर्वदा ही निहायत वज़नी चीज़ उठाना पड़ती, उस व्यक्तिके अन्त्रवृद्धि रोग लगनेकी अधिक सम्भावना रहती है। फ्रान्सके डाक्टर मेलगेन कहते, कि सचराचर १३ पुरुष और ५२ स्त्रीमें प्रायः एक-एक आदमीके अन्त्रवृद्धिरोग मिलेगा। शैशवावस्था और बाल्यावस्थामें यह रोग नितान्त अल्प रहता,—प्रायः ७७ लोगोंमें एकके होता है। किन्तु १३।१४ वत्सर वयःक्रम बाद कायिक परिश्रम बढ़नेसे उस समय अनेकको ही यह व्याधि धर दबायेगी।

सावधानता—जन्मावच्छिन्न अन्त्रवृद्धि हो या न हो, ज़ोरसे किसीको कभी ज्यादा वज़नी चीज़ उठानेकी चेष्टा न करना चाहिये। स्वभावतः कोष्ठबद्ध धातु होनेसे मलत्यागके लिये दो घण्टे बैठ ज़ोर लगाना अकर्तव्य ठहरेगा। वह लोग सुपथ्य द्वारा कोष्ठ परिष्कार रखनेकी चेष्टा करें। मूंग और चनेकी दाल, सब्जी, बेल, नारियल, पपीता, दुग्ध प्रभृति द्रव्य खानेसे दूसरा झगड़ा नहीं उठाना पड़ता। प्रमेहसे पेशाब रुकनेपर व्यर्थ ज़ोर लगाना मना है। सत्वर चिकित्सकका परामर्श लेनेसे पीड़ाकी शान्ति हो सकेगी। जन्मकालसे अन्त्रवृद्धि होनेपर आदरपूर्वक लड़केको आनन्दकी वंशी बजाने न देना चाहिये, वैसे शिशुको चिल्लाने या रोने देना भी अनिष्टकर होगा। अतएव पितामाताको सर्वदा ही उसपर दृष्टि रखना उचित है।

चिकित्सा—पेटसे नीचे जांघके पास अन्त्रवृद्धि होनेसे अङ्गुलिके अग्रभाग द्वारा अल्प उठा देनेपर ही अन्त्र स्वस्थानको चला जायगा। अण्डकोषमें अन्त्र उतर आनेसे उसे स्वस्थानमें पहुंचाना कष्टकर होता है। रोगीको चित लेटाये एवं जिस दिक् अन्त्रवृद्धि हो, उसी दिक्का पैर छातीके पास खींचकर पहुंचाये। उसके बाद अण्डकोषके भीतर अन्त्रको ऊपर और सामने हटाना चाहिये। अनेक बार इस

सहज उपायसे ही अन्त्र स्वस्थानमें चढ़ जायगा। अन्त्रके पेटमें घुसते समय गुड़-गुड़ और कर-कर शब्द निकलता है। किन्तु किसी-किसी स्थलमें इस सामान्य उपायसे कुछ भी फल नहीं मिलता। उस समय अन्यान्य नाना प्रकार उपाय करना आवश्यक होगा। रोगीके अण्डकोषपर पर्यायक्रमसे एक बार उष्ण और एकबार शीतलजल धार बांधकर छोड़ना चाहिये। कुछ देर ऐसा ही करनेसे अन्त्र आप ही चढ़ जाता है। इससे भी रोगकी शान्ति न होनेपर रोगीका मस्तक शय्यामें किञ्चित् नीचा रखे और कटि देशमें बड़ा तकिया लगा पैर ऊंचे उठा दे। इस प्रक्रियासे अन्त्र भीतरकी ओर सरक सकेगा। अन्त्र स्वस्थानमें पहुंचनेपर पेटको ट्रास नामक चमड़ेका पट्टीसे बांध डाले। सोते समय ट्रास पहने रहनेका प्रयोजन नहीं पड़ता। किन्तु शय्या छोड़नेसे पहले ट्रास पहन लेना चाहिये, नहीं तो अन्त्र उतरनेकी सम्भावना रहेगी। अन्त्रके स्थानभ्रष्ट हो कहीं बंध जानेपर सिवा अस्त्रचिकित्साके रोगीका प्राण अन्य उपायसे नहीं बचता।

अन्त्रवेष्टप्रदाह (सं० पु०) आंतके परदेकी जलन (Peritonitis)। अन्त्रादिपर जो बारीक सफेद झिल्ली-जैसा चर्म लगा, वह अन्त्रवेष्ट (peritonium) कहाता है। इस चर्ममें कभी-कभी प्रदाह उठेगा।

अन्त्रवेष्टप्रदाह अतिशय कठिन पीड़ा है। सकल वयसमें ही यह रोग लग सकेगा। किन्तु प्रसवके बाद स्त्रीको ही यह अधिक सताता है। सिवा उसके पेटमें किसी प्रकार आघात आनेसे भी यह उत्कट पीड़ा दौड़ सकेगी।

पीड़ा उठनेसे पहले कम्प लगता है। कम्पके बाद प्रबल ज्वर, पिपासा, एवं उदर वेदना सतायेगी। सर्वप्रथम समस्त पेटमें वेदना नहीं उठती। रोगीसे पूछनेपर वह केवल पेटके स्थान-स्थानमें वेदना बतावेगा। उसके बाद पेट फूलता, ऊपरी भाग सख्त पड़ता एवं समस्त पेटमें वेदना फैल जाती है। वैसे समय रोगी किसीतरह पेट छूने नहीं देता। उदरपर कोई बारीक कपड़ा भी रखना उसे असह्य होगा। खांसने, वमन किंवा मलमूत्रत्याग करनेमें यन्त्रणासे प्राण निकल जाता है। श्वास-प्रश्वासके समय भी पेट खिंचे, जिससे रोगी अत्यन्त कातर पड़ेगा। पेटका चर्म अलग रखनेको रोगी अपनी छातीके पास घुटना खींच लाता है। मध्य-मध्य हिक्का और वमन करेगा, नाड़ी अत्यन्त क्षीण और द्रुतगामी होगी। सर्वाङ्गसे धर-धर घर्म निकलता, अवशेषमें रोगी अवसन्न पड़ प्राण छोड़ता है।

पीड़ाकी प्रथमावस्थापर मृत्यु न होनेसे पेरिटोनियममें सिरस् रस सञ्चय हो जायगा।

प्रसवसे ४।५ दिन बाद सूतिका-ज्वरके साथ अनेक स्त्रीको पेरिटोनाइटिस् सताता है। प्रसवके बाद इस रोगकी उत्पत्तिका विस्तर कारण देख पड़ेगा। फूलका कियदंश गर्भके भीतर कटा रहनेसे क्रमशः सड़ता, उसी गलित द्रव्यके बाष्पसे रक्त बिगड़ जाता है। गर्भमें सन्तानके मर जानेसे भी अन्त्रवेष्टझिल्लीपर प्रदाह दौड़ सकेगा। इरिसिपेलस्‌के विषसे कभी-कभी पेरिटोनाइटिस् उपजनेकी सम्भावना है।

प्रसवके बाद सूतिकाज्वर एवं अन्त्रवेष्टझिल्ली-प्रभृतिमें प्रदाह होनेसे गृहस्थ और चिकित्सक उभयको ही विलक्षण सतर्क रहना चाहिये। यह रोग अत्यन्त संक्रामक होता एवं समझनेका कोई उपाय नहीं मिलता, इसका विष कैसे कहां रहता है। सूतिका-ज्वराक्रान्त स्त्रीको छूकर चिकित्सकने अपने नख कटाये, बाल बनवाये, वस्त्रादि छोड़ उत्तम रूपसे स्नान किया। इतनी सावधानताके बाद वह अन्य गर्भिणीकी चिकित्सा करने गये, किन्तु उससे कोई फल न निकला। वही सकल स्त्री उलटे उत्कट सूतिकाज्वरसे आक्रान्त हुई। इसलिये घरमें किसीको सूतिकादि ज्वर चढ़नेसे वहां गर्भवती स्त्रीका रहना कर्तव्य नहीं ठहरता। चिकित्सक किंवा आत्मीय बन्धुबान्धव सूतिका ज्वरग्रस्त स्त्रीके पास बैठनेसे मासावधि कभी किसी अन्तःसत्वाके निकट न जाये।

चिकित्सा—पेरिटोनाइटिस् रोगमें हरगिज़ विरेचक औषध न खिलाना चाहिये। किन्तु बृहदन्त्रमें

अधिक मल सञ्चित रहनेपर उष्ण जलकी पिचकारी लगाये, उससे अन्त्रकी उत्तेजना घट सकती है। इस रोगमें अफीम ही उत्कृष्ट औषध होगा। अर्ध ग्रेन मात्रामें ३।४ घण्टे अन्तरसे अफीमका सार कपूरके साथ खिलाना चाहिये। पीड़ासे प्रथम दो-एक दिन कैलामेल १ ग्रेन, कपूर १ ग्रेन और सोडा बाइकार्ब ३ ग्रेन एकत्र मिला पुड़िया बना ले। ऐसी ही पुड़िया प्रत्यह दो बार देना होगा। पेटपर मलनेके लिये पोस्त और वेलेडोनेका सार समभागमें ले एकत्र मिला डालिये। पीछे वही सार समस्त उदर पर लगा धीरे धीरे उष्ण जलका सेंक पहुंचाना उचित है। शरीर दुर्बल, नाड़ी क्षीण और द्रुत होनेसे पतले मांसका शोरबा एवं अल्प अल्प ब्राण्डी देना चाहिये। किन्तु प्रसवके बाद यह अवस्था होनेसे अधिक ब्राण्डी पिलाना अथवा वलकर औषध देना आवश्यक होगा।

अन्त्रशिला (सं० स्त्री०) किसी नदीका नाम, यह विन्ध्याचल पर्वतसे निकलती है।

अन्त्रस्रज् (सं० स्त्री०) अन्तड़ियोंकी माला। इसे नृसिंह भगवान् पहनते हैं।

अन्त्राद (सं० पु०) आभ्यन्तर क्रमि, अन्दरुनी कीड़ा, जो कीड़ा अन्तड़ियोंमें पड़ जाये।

अन्त्रालजी, अन्ध्रालजी (सं० स्त्री०) वातश्लेष्मजन्य क्षुद्ररोग विशेष, एक छोटी बीमारी जो वात और कफसे पैदा होती। इसका लक्षण यह है,—

"घनामवक्त्रां पिड़कामुन्नतां परिमण्डलां।
अन्त्रालजीमल्पपूयां तां विद्यात् कफवातजाम्॥" (माधवनिदान)

अन्त्रावरोध (सं० पु०) अन्तड़ियोंकी गांठ (Obstruction of the bowels)। अन्त्रावरोध अति भयानक पीड़ा है। यह पीड़ा होनेसे रोगीका जीवन बचना कठिन हो जायेगा। अन्त्रवृद्धि-रोगमें अन्त्र जकड़ जानेसे यह पीड़ा प्रायः उठती है। इसलिये अन्त्रावरोधका कोई लक्षण झलकनेसे अच्छी तरह जांचना आवश्यक होगा, अन्त्रवृद्धि हुयी या नहीं। रोगीके पेड़, जांघ, ऊरुदेश किंवा अण्डकोषकी सूजनको खूब देख लेना चाहिये।

अन्त्रावरोधको मल-संयुक्त वमन होनेसे इलियस् (Ileus) कहते हैं। कोई-कोई इसे भल्भ्यूलस् (Valvulus) एवं इलाइस् प्याशन (Ilise passion) नामसे भी पुकारेंगे। डाक्टर ब्रिण्टन, वेनेट, एबारक्राम्बी एवं अन्यान्य चिकित्सक बताते हैं, कि अन्त्रके किसी स्थानपर आक्षेप पड़नेसे अन्त्रावरोध लग सकता है। उस समय ऊपरका भुक्त द्रव्य किंवा मल फिर निम्नदिक्को न जायेगा। स्वभावतः अन्त्रकी आकुञ्चन गति ऊपरसे क्रम क्रम निम्नदिक्को आ पहुंचती है। इस आकुञ्चन गतिके दबावसे ऊपरका भुक्त द्रव्य और विष्ठादि अन्त्रकी निम्नदिक्को सरकेगा। किन्तु सामान्य ही अन्त्रावरोध पड़नेसे यह आकुञ्चन-गति उलटती, अर्थात् उस समय निम्न दिक्से ऊर्ध्व दिक्को चलती है। इसीसे अन्त्रके भीतरका मल भी निम्नदिक्से ऊर्ध्वको उठे, अन्तमें मुखसे निकलेगा। ऐसे अन्त्रावरोधमें मलद्वार पर पिचकारी लगानेसे, रोगी मुखमें उसका आस्वाद और गन्ध समझ सकता है।

डाक्टर हाबिनने २५८ रोगियोंका अन्त्रावरोध जांच इस पीड़ाके बहुतसे कारण ठहराये थे। उनकी मीमांसा, सन् १८५५ ई०में फिलेडेलफियाके किसी पत्रमें छापी गयी। वह कहते, अन्त्रकी भीतरी श्लैष्मिक झिल्ली एवं पेशीके परदेमें कोई न कोई पीड़ा उठनेसे अन्त्रावरोध हो सकता है। यथा,—

(१) अन्त्रके भीतर कर्कट अर्थात् केन्सर रोग लगनेसे अन्त्र जुड़ सकेगा।

(२) कर्कट रोग न लगते भी प्रदाह किंवा अन्त्रमें आघात आने अथवा अन्त्रके मध्य दूषित पदार्थ सञ्चित होनेसे अन्त्रका छिद्र रुकता है।

(३) क्षतस्थान सूखनेसे अन्त्र भी जुड़ जायगा।

(४) अन्त्रके भीतर अन्त्रका कियदंश घुसनेसे (Intus-susception) अन्त्रका पथ रुद्ध होता है।

(५) बहुपद (Polyp) नामक कोई कीटाणु है। उसके देहपर सीधी-सीधी शाखा-जैसा विस्तर अङ्ग प्रत्यङ्ग निकलेगा। मानवशरीरके अन्त्र प्रभृति नाना स्थानमें वैसा ही बहुपद मांस उभरता है।

अन्त्रके मध्य बहुपद मांस जमते यदि अन्त्रके भीतर अन्त्र घुसे, तो अन्त्रका पथ रुक जायेगा।

अन्त्रके बाहरी पृष्ठका सिरस् आवरण बिगड़नेसे भी अन्त्रावरोध हो सकता है,—

(१) अन्त्रसे लिम्फ अर्थात् लसिका निकलनेपर अन्त्र जुड़ जायगा।

(२) अन्त्रके बल खाने किंवा अपने स्थानसे खिसकने अथवा किसी वक्रादिक्‌को मुड़ जानेपर अन्त्रावरोध होता है।

(३) अन्त्रके बाहर आबला या फोड़ा उठनेसे अन्त्रावरोध लगेगा।

(४) स्थूलान्त्र किंवा मध्यान्त्रके बीच अन्त्रवृद्धि इसका दूसरा कारण है।

(५) वक्षके निम्नस्थ आवरण अर्थात् डायेफ्रेमकी अन्त्रवृद्धि अन्त्रावरोध लगाती है।

(६) ओमेण्टस् नामक पाकस्थली और अन्त्रवेष्ट परदेको अन्त्रवृद्धिसे अन्त्रावरोध हो जायगा।

(७) रोधक अन्त्रवृद्धिसे अवरोध पड़ता है।

(८) अन्त्रके भीतर फलादिका बीज, त्वक् किंवा अन्य कोई पदार्थ बैठने, पथरी पड़ने अथवा कठिन मल बंध जानेसे अन्त्रावरोध होगा।

लक्षण—उदरवेदना एवं बारम्बार वमन ही इस पीड़ाका प्रधान लक्षण है। अन्त्रावरोध पड़नेसे प्रथम अल्प-अल्प वमन होगा। वमनके साथ अजीर्ण-भुक्त द्रव्य एवं श्लेष्मा निकल पड़ता है। किन्तु दो-तीन दिन बाद ही वमनसे विष्ठा-जैसा दुर्गन्ध उठे, अन्त्रमें विष्ठा भी निकलेगी। ऐसे समय मलद्वारमें एरण्डतैल किंवा अन्य औषधको पिचकारी लगानेसे उसका आस्वाद मुखपर मालूम किया जा सकता है। कभी-कभी वह औषध भी मुखमें पहुंच जायगा। उसके बाद पेटमें अत्यन्त वेदना उठती, पेट फूलता, दबानेसे पेट कड़ा लगता और हक-हक हिचकी आती है। क्षुद्रान्त्रका ऊपरिभाग रुकनेसे, डायेफ्राम अधिक सिकुड़े; जिससे दुरूह हिक्कामें रोगीके प्राण कण्ठमें जा लगेंगे। अन्त्रकी स्वाभाविक गति रुकनेसे मल नहीं निकलता। रोगीका मन सर्वदा ही उद्विग्न रहता, यन्त्रणासे क्षणकालके लिये स्वस्ति नहीं मिलती और रातको भी नींद आना मुश्किल पड़ता है। देहका सन्ताप कभी घटे और कभी अतिशय बढ़ेगा। क्रमसे नाड़ी भी क्षीण होती और द्रुतवेगसे चलने लगती है। कठिन अन्त्रावरोधकी प्रायः ऐसी ही अवस्थामें रोगी मर जायगा।

अन्त्रावरोध पड़नेसे भीतरका अवरुद्ध स्थान कुछ फूल उठता है। पेटके ऊपर हाथ रख सावधानीसे देखनेपर यह सूजन पहलेसे स्पष्ट देख पड़ेगी। सूजनपर अङ्गुलिसे धीरे-धीरे ठोकनेमें, पहले-जैसा भद-भद शब्द नहीं निकलता। इस पीड़ाके साथ कठिन पेरिटोनाइटिस् भी अनेक स्थलमें देख पड़ेगा। अधिक दिन अन्त्र अवरुद्ध रहनेसे क्रम-क्रम नाड़ी चलती है। किन्तु अन्त्रका कियदंश अन्त्रके भीतर घुस जानेसे उसके शीघ्र और अधिक सड़नेकी सम्भावना होगी। अन्त्रके ऊपर द्वादशाङ्गुल्यन्त्रका कोई स्थान रुकनेमें पहलेसे अत्यन्त वमन हुवा करता है। अन्त्रकी निम्नदिक्‌में अवरोध पड़नेपर पहलेसे वमन घट नहीं सकता।

चिकित्सा—प्रथमावस्थामें अन्त्रावरोध पीड़ा अच्छी तरह पहचानना सुकठिन है। अनेक रोगके साथ इसका धोका हो सकेगा। इसलिये कोई-कोई चिकित्सकका मत है, कि प्रथम-प्रथम एरण्ड तैल प्रभृति मृदु विरेचक औषध देनेसे क्षति नहीं होती। किन्तु अन्त्रावरोध पीड़ा ठहरनेपर फिर विरेचक औषध न खिलाना चाहिये। यह परामर्श किसी तरह युक्तिसङ्गत न होगा। रोग पहचाननेमें सन्देह रहते भी कदाच विरेचक औषध न दे। इस रोगमें विरेचक औषध खिलानेसे विशेष अनिष्ट आता है। अनेक समय रोगीका जीवन बचाना दुष्कर हो जायेगा। एरण्डतैल एवं उष्ण जलकी पिचकारी लगानेसे किसी अनिष्टकी आशङ्का नहीं उठती। अतएव रोगकी सच्ची प्रकृति समझनेमें सन्देह होनेपर अधिक परिमाणसे उष्ण जलकी पिचकारी ही लगाना चाहिये। इससे दूसरा भी उपकार पहुंचेगा। उदर जलसे भर विवेचनापूर्वक धीरे-धीरे ऊपरी ओर

दबाव डालनेपर अवरुद्ध स्थान खुल जाता है। यह प्रक्रिया अति सहज ही सम्पन्न होगी। पहले बड़ी पिचकारीकी डण्डी मलद्वारमें अन्त्रके अनेक दूर पर्यन्त ठेल दे। पीछे मलद्वारके पास डण्डीको चारों ओर कपड़ेसे दबा धीरे-धीरे जलको भीतर पहुंचाना चाहिये। उदर जलसे भर जानेपर गुह्य-द्वारको दबा पेटको निम्नदिक्से ऊपरकी ओर रगड़ दीजिये। इस प्रकरण द्वारा अवरुद्ध स्थान खुल सकेगा। अनेक चिकित्सक आध या एक सेर कच्चा पारा अथवा छर्रा पेटमें पहुंचानेका परामर्श देते हैं। उनके मतमें पारे किंवा शीशेके दबावसे अवरोध टूट सकेगा। अनेक विज्ञ चिकित्सक तम्बाकूवाली पिचकारी लगानेकी भी व्यवस्था बताते हैं। किन्तु इस सकल चिकित्सामें विपद् पड़नेकी सम्भावना रहेगी।

औषधके मध्य अफीम ही श्रेष्ठ है। १ ग्रेन मात्रा में अफीमका सार ६।८ घण्टे अन्तरसे खिलानेपर रोग कितना ही सुस्थिर पड़ सकेगा। विशेषत: अफीम द्वारा अन्त्रकी कृमिवत् गति घटती, जिससे पेटकी यन्त्रणा भी कुछ मिटती है।

इस रोगमें वमन उत्कट लक्षण होगा। पतला द्रव्य खाते ही उलट पड़ता है। इससे रोगीको अधिक पथ्य देना निष्फल होगा। पिपासा बढ़नेपर पुन:पुन: शीतल जलसे मुख धोनेमें कष्ट घट जाता है। मध्य-मध्य बरफ़के छोटे-छोटे टुकड़े भी मुखमें दबा रखनेको देना चाहिये। मांसका सार, यवका दलिया प्रभृति यत्सामान्य ही खिला रोगीको जीवित रखनेकी चेष्टा करे। किन्तु पथ्यादि पिचकारीसे पहुंचाना उचित होगा। उससे वमन किंवा आध्मान नहीं बढ़ता।

इस पीड़ामें पेट फाड़ अन्त्रका अवरोध निकालनेकी विशेष चेष्टा की गयी थी। किन्तु उससे चिकित्सक प्राय: कृतकार्य न हो सके। कर्कट प्रभृति रोगमें सरलान्त्र रुकते, अवरोधपर कृत्रिम मलद्वार बना देनेसे रोगी कुछ दिन पर्यन्त जी सकेगा।

अन्त्री (सं० स्त्री०) वृद्धदारक लता।

अन्त्रोली चारोली—गुजरातके एक राष्ट्रकूट नृपति। सन् ७४७ ई० के समय इन्होंने सूरतमें भूमिको उत्सर्ग किया था। दानपत्र वलभी भाषामें दो ताम्र-फलकपर लिखा गया। देखनेसे मलूम होता, कि पूर्वकालमें राष्ट्रकूट नृपति गुजरात और मालवेके स्वतन्त्र शासक रहे।

अन्धक (सं० क्लो०) अङ्गार।

अन्धिग—बम्बई प्रान्तके कनाड़ ज़िलेवाले एक पल्लव नृपति। देवली-शिलालेखमें लिखा है, कि तृतीय कृष्णने काञ्ची और तञ्जोरको दबा इन्हें भी संग्राममें हराया था।

अन्द (सं० पु०) बन्धन, लपेट।

अन्दर—मन्द्राज प्रान्तके दक्षिण कनाड़ा ज़िलेका एक घाट। यहांसे राह महिसूरको गयी; किन्तु उसमें गाड़ियोंका गुज़र हरगिज़ नहीं हो सकता।

अन्दामान (अंडमान Andaman) बङ्गालकी खाड़ीमें स्थित द्वीपसमूह। वहां छोटे और बड़े मिलाकर सब द्वीप २०४ हैं। यह हुगलीके मुहानेसे ५९० मील दूर हैं। द्वीपसमूह २१९ मील लम्बा और ३२ मील चौड़ा और समुद्र-तट दनदानेदार है। पोर्टब्लेयर, एलफिन्सटन-हावर, स्टुअर्ट साउंड और पोर्टकार्नवालिस आदि बड़े-बड़े बन्दर हैं। समुद्र-तट पर हर जगह मूंगा पाया जाता है।

अन्दामानकी स्थिति एक प्रकारसे बहुत उपयोगी है। खाड़ीमें यदि कोई अन्धड़ आता है, तो मांझी अन्दामानसे ही उसकी दिशा तथा उसके ज़ोरका अनुमान कर लेते हैं। मौसमका भी ठीक-ठीक ज्ञान यहां ही से होता है। व्यापारियोंको इस लिये अन्दामान अधिक लाभ पहुंचाते हैं। सन् १८६८ ई०से पोर्टब्लेयरमें जलवायुका अनुमान करनेके लिये एक ष्टेशन स्थापित है। अन्दामानकी आबहवा न बहुत गर्म और न बहुत ठण्डी ही है। समुद्री हवाके कारण यहां गर्मीका वेग नहीं बढ़ने पाता। वर्षाका समय अनिश्चित है। उत्तरपूर्वीय मानसून चलने पर सूखा रहता है और दक्षिण-पश्चिमीयके समय वर्षा होती है। एक स्थानपर ही भिन्न भिन्न कालमें

वर्षाकी मांपमें अदलाबदली हुआ करती है। पास-पास वाले स्थानोंमें ही वर्षा कहीं थोड़ी और कहीं बहुत पड़ेगी।

सन् १८८३ई०में भारतीय जंगली विभागका एक भाग वहां भी स्थापित हुआ था। पोर्टब्लेयरके पास १५६ वर्गमील चेत्रफलकी भूमि जंगलोंके लिये छोड़ दी गयी है, जहां कैदी काम करते हैं। लकड़ीका बहुतसा सामान यहांसे कलकत्ता भेजा जाता है। चायके बक्स, सामान भेजनेके सन्दूक तथा लकड़ीके स्लीपर भी यहां तैयार किये जाते हैं। चाय बहुतायतसे पैदा होती है। द्वीपसमूहमें दो एक स्थानोंको छोड़ नारियल बहुत कम मिलेगा। जानवरोंमें सुअर, वनविलाव, चूहे और चिमगादर बहुत दिखायी पड़ते हैं। पशुपक्षी बहुतायतसे नहीं मिलते। समुद्रमें कई तरहकी मछलियां पायी जाती हैं। गधे, बकरे और कुत्ते जो यहां बाहरसे लाये गये, वह यहांके जलवायुमें आनन्दपूर्वक रहते हैं। घोड़े भी लाये गये हैं, परन्तु जलवायु उनके अनुकूल नहीं पड़ता। भेड़ें तो यहां किसी प्रकार रह ही नहीं सकतीं।

अन्दामान उन देशोंके समीप है, जो अपनी प्राचीन सभ्यताका पूरा अभिमान रखते, और ऐसी जगह पर हैं, जहां होकर २००० वर्षसे व्यापार होता चला आता है, परन्तु तो भी यहांके निवासी असभ्य और जंगली हैं। वह मनुष्यों तकको चट कर जायेंगे। उनके बाल ऊन-जैसे तथा शरीर काले होते हैं। वह बहुधा नंगे फिरा करते हैं। उनकी आंखों तथा चेहरोंसे ही भयङ्करता टपकती है। अन्नकी कमीके कारण जब कभी मांझी यहां डेरा डालते हैं, तो उन्हें इनको शिकार होना पड़ता है। ऐसे विचार बहुतायतसे मांझियों ही में प्रचलित हैं। वस्तुतः यहांके निवासी अब ऐसे नहीं होते। अन्दा-मानवासी उस नीग्रो जातिके हैं, जो एशियाके दक्षिण-पूर्व जाकर बसी और जिसके प्रतिनिधि अब भी मलय-प्रायोद्वीप और फिलीपाइन द्वीपोंमें पाये जाते हैं। उनकी प्राचीन असभ्यताका प्रमाण उनके रसोई घरोंसे मिलता है। शङ्ख, मट्टीके वर्तन और पत्थरका बहुतसा सामान यहां ढेरोंका ढेर पाया जाता, जो पुराने ज़मानेकी चीजोंसे बहुत मिलता है।

आबादीकी ठीक गणना करना बहुत कठिन है, परन्तु वह थोड़ी अवश्य रही है। सन् १९०१ ई० की मर्दुम-शुमारीमें केवल २००० की संख्या थी। अन्दा-मानवासी एक वंशसे तो उत्पन्न हुए हैं, परन्तु उनमें भी पृथक्-पृथक् आचार व्यवहार हैं। भाषा तथा स्वभाव में भी भिन्नता पायी जाती है। जातीयताका भाव भी उनमें मिलेगा। यहांके निवासी दो प्रकार हैं—आर्यांटो और एरेमटागा, इन्हें जंगलवासी भी कहते हैं। दोनों प्रभेदोंमें बड़ा अन्तर है।

इनका भाषामें समस्त पद अधिक होते हैं। मूल धातुके बहुत शब्दोंमें केवल अल् विशिष्ट रहता है। प्रत्येक शब्दके शेषमें एक व्यञ्जन वर्ण पड़ेगा। विशेष्य, विशेषण एवं क्रिया-पदके शेषमें प्रायः 'दा' विभक्ति आती है। मनुष्य सम्बन्धमें कुछ पूछने-पर पदके अन्तमें 'रे' विभक्ति लगेगी। वह दोसे अधिक संख्या नहीं गिन सकते; दोसे अधिक कहनेमें 'अनेक' तथा असंख्य इस प्रकारके शब्दोंको व्यवहारमें लाते हैं। नौ तक गिननेमें वह नाकके सिरे पर एक एक अङ्गुलिका अग्रभाग लगाते जाते हैं। पहले कनिष्ठाको लगा, वह 'एक', फिर अनामिका लगा 'दो' कहेंगे। इसके बाद अङ्गुलि लगाते और 'एक और' 'एक और' कहते जाते हैं। इस प्रकार नौ तक समस्त गणना लगायेंगे। बायें हाथके अंगूठेको मोड़ लेते हैं। एक कहनेके लिये दाहने या बायें हाथको तर्जनी अङ्गुलि उठाकर कहेंगे—'उवतुल'।

पुरुष साधारणतः ४फुट १०॥ इं लम्बे और स्त्रियां ४ फु० ६ इं० लम्बी होती हैं। वह भूख प्यास या किसी शारीरिक पीड़ाको बड़ी कठिनतासे सह सकेंगे। उनका शरीर भी भिन्न भागोंमें भिन्न रंग का होता है। बाल काले तथा भूरे या कुछ लाली लिये रहेंगे। वह घूंघरवाले होते, इस कारण गुच्छोंमें दिखायी पड़ते हैं। मनुष्यों-की अंगुलियां अधिकतर पुष्ट तथा सुन्दर होती हैं।

नाक सीधी और एकसी रहेगी। नवयुवक तो विशेष कर सुन्दर दिखायी पड़ते हैं। दक्षिणमें लोग खोपड़ामें एक फीता बांधे रहते हैं जिससे उनका खोपड़ा कुछ दब जाता है, जो भद्दा लगता है। स्त्रियां
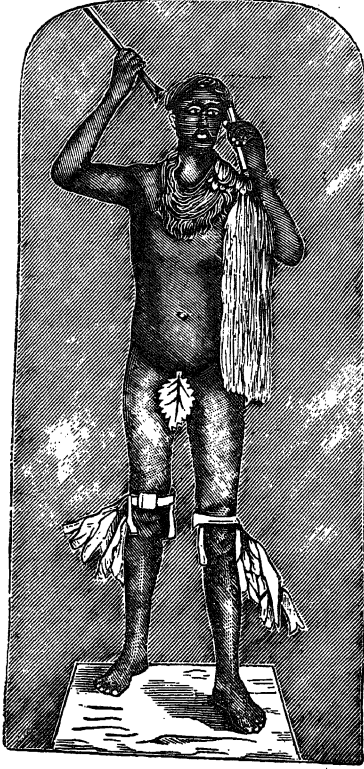
अन्दामानवासी पुरुष

इतनी सुन्दर नहीं होतीं, क्योंकि, वह थोड़ी ही अवस्थासे मोटी-ताज़ी बनती हैं। वह सदा प्रसन्न-चित्त रहें, और कोई सामाजिक बन्धन उनके ऊपर न पड़े। समाजमें भी उनका अच्छा मान है। स्त्रियोंके बाल बिलकुल मुड़े हुए और मनुष्योंके कहीं मुड़े कहीं नहीं मुड़े हुए होते हैं। चर्बी मिलाकर वह गेवरी को शरीरसे चिपड़ लेते हैं। विवाह होनेसे पहले ही स्त्रीपुरुषका संसर्ग होने लगता, परन्तु उसे रोकनेके लिये कुछ नियमोंका प्रयोग किया जाता है। विवाहके पश्चात् तीनसे अधिक बच्चे पैदा नहीं होते, और किसी-किसी के तो एक भी नहीं निकलता। तलाक देना मना है, और पारस्परिक प्रेम खूब रहता है। गोत्रमें कुत्सित आचरण बहुत कम देखनेमें आयेगा।

अन्दामानमें स्त्रीपुरुष एकत्र मिलकर नाचते हैं। गाते कुछ नहीं, केवल सब मिलकर एक स्वरसे चिल्लाते हैं। नाचके समय अनेक मिलकर ऊरुके ऊपर दोनों हाथ लगा आघात करेंगे। कोई नाचते

अन्दामानवासी स्त्री

समय पैर जोड़ जांघके ऊपर हाथ मारता हुआ कूदता है। यहां नमस्कार या अभिवादन करनेका नियम अति विचित्र है। क्योंकि अभिवादन करते समय पैर उठाकर सम्मान दिखायेंगे। पैर दिखानेके पश्चात् घुटनेके ऊपर थप्पड़ मारते हैं।

अन्दामानमें एक बात विशेष है, जिसके कारण वह और भी अधिक ख्याति संसारमें पा रहे हैं। जो लोग आजीवनके लिये या बहुत कालके लिये कैद किये जाते, वह यहां ही हिन्दुस्थानसे भेजे जाते हैं, जिससे वह यहां रहकर आत्मदमन द्वारा सुचरित्र बन जावें। १० वर्षकी मिहनतके बाद कैदीको एक 'पास' मिलता और फिर वह अपने आप पेट पालन करनेका अधिकारी हो जाता है। वह जोतबो सकता, व्याह कर सकता तथा अपने बाल बच्चे यहां बुला सकता है, परन्तु स्थानको नहीं छोड़ सकता, और न आलस्यमें अपना जीवन व्यतीत कर सकता

है। बीस या उससे अधिक कालके बाद सुचरित्र होनेसे वह सदाके लिये छुट्टी पायेगा। कैदियोंके लड़कोंको प्रारम्भिक शिक्षा ज़बरदस्ती दी जाती है।

सन् १७८८-८९ ई०में बंगाल सरकारने अन्दामानमें कैदियोंका उपनिवेश बनाना निश्चित किया था और वहां रक्षाके हेतु एक बन्दर भी बनानेकी इच्छा की थी। बंगालसे कोलब्रुक और ब्लेयर नामक दो चतुर अफ़सर यहां देख भाल करनेको भेजे गये। सन् १७८८ई०के सितंबरमासमें कप्तान ब्लेयरने अन्दामानके दक्षिण-पूर्व यह निवासस्थान तयार कराया था। यहां बीमारी होनेके कारण उपनिवेश अन्दामानके उत्तर-पूर्व बदल दिया गया। पोर्ट-ब्लेयरका पहला नाम पोर्ट-कार्नवालिस था। सन् १८२४ई०में ब्रह्मदेशकी जो लड़ाई हुई, उसपर यह बंदर फौजका अड्डा बनाया गया था। सन् १८५५ में इन द्वीपों पर अधिकार जमानेका नियम बनाया गया, जहां कैदियोंका निवासस्थान था। सन् १८५७ ई०के गदर कारण नियम काममें न लाया जा सका। गदर समाप्त होने पर लार्ड केनिंगने अन्दामानको एक कमीशन भेजा, जो डाक्टर मुअटकी अध्यक्षतामें था। ब्लेयरका बताया हुआ पहला पोर्ट कार्नवालिस ही कैदियोंके निवासके लिये ठीक समझा और उसका नाम पोर्ट-ब्लेयर रखा गया। सन् १८५८ ई०के आदिमें इस तरह पोर्ट-ब्लेयरकी चिरस्थायी नींव पड़ी। सन् १८७२ ई०के फरवरीमें जब एक मुसलमान कैदीने लार्ड म्योको यहां मार डाला था, तबसे अन्दामानका नाम और भी प्रसिद्ध हो गया। उसी वर्ष अन्दामान और निकोबार, जो सन् १८६८ में अंगरेजोंके हाथ लग चुका था, दोनो मिलाकर चीफ़-कमिश्नरके अधीन कर दिये गये, जो पोर्ट-ब्लेयरमें रहते हैं।

अन्दिपूर—मन्द्राज-प्रान्तके कोयम्बतूर ज़िलेका नगर विशेष। पहले यह इस ताल्लुकका प्रधान नगर रहा। अब भी यहां कारबार खूब धूमधामसे चलता और प्रति-सप्ताह बाज़ार लगता है। नगरके मध्य किसी प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष देख पड़ेगा।

अन्दिरिका—बम्बई प्रान्तके कनाड़ी ज़िलेकी नदी-विशेष। इस नदीके बायें किनारे रत्नगिरि गांवमें विक्रमादित्यने पहले कुछ भूमिको उत्सर्ग किया। ताम्रफलक देखनेसे मालूम होता, कि यह उत्सर्ग कोई सन् ६६४ ई० में हुवा था।

अन्दीपट्टी—मन्द्राज-प्रान्तके मदुरा ज़िलेकी पर्वतश्रेणी। यह कोई साढ़े सत्ताईस कोस लम्बी है और ३००० फीटसे ऊंचे कहीं नहीं उठती। कंटीली झाड़ी या खाली चटानकी भरमारसे लोग यहां कम ठहरते हैं। इसमें जङ्गली भैंसे, अनेक प्रकारके हिरण, सूअर, चीते और किसी फ़सल पर हाथी शिकार खेलनेको खूब मिलेंगे।

अन्दु, अन्दू (सं० स्त्री०) अद्यतेऽनेन, अदि बन्धने कु। अन्दु-दृन्भ-जम्बू-कफिलू-कर्कन्धू-दिधिषूः। उण् १।९३। १ बन्धन, लपेट। २ निगड़, लोहेकी जञ्जीर, जिससे हाथीका पैर बांधते हैं। ३ भूषण-विशेष, बाजूबन्द।

'अन्दूः स्त्रियां स्यान्निगुड़े प्रभेदे भूषणस्य च।' (मेदिनी)

अन्दुक, अन्दूक (सं० पु०) अन्दु देखो।

अन्दोलन (सं० क्ली०) लटक, डुलाव, लहरका उतार-चढ़ाव।

अन्दौ—ब्रह्मदेशके सण्डवे ज़िलेका बौद्ध देवालय। यह सण्डोवे नदके दक्षिण तट पर अक्षा° १८° १७′ १५″ उत्तर और द्राघि° ९४° २८′ पूर्व खड़ा है। कहते हैं, कि यह देवालय गौतम बुद्धके दांत गाड़नेको सन् ७६१ ई० में बनवाया गया था।

अन्ध (सं० त्रि०) अन्ध-अच्, अथवा अविद्यमानं ध्यानं दर्शनमस्मिन् आलोकाभावात् इति ध्यायतेर्नञ्पूर्वः। १ चक्षुर्द्वयहीन, अन्धा, जिसे आंखोंसे देख न पड़े।

एक चक्षुसे देख न सकनेवाले को काणा कहते हैं। चलती बोलीमें हम उसीको काना कहते हैं। जिसे दोनो चक्षुसे नहीं सूझता, वह अन्ध कहाता है।

अन्ध दो प्रकारका होता है। कोई-कोई लोग जन्मान्ध होते, मातृगर्भसे भूमिष्ठ होने तक वह दोनो चक्षुसे देख नहीं सकते। वैद्य बताते, कि ऋतुसे तीन दिनके मध्य गर्भसञ्चार होने किंवा गर्भिणीकी साध पूरी न पड़नेसे अन्ध सन्तान निकलेगा। युरोपीय

पण्डित आजतक इस बातकी कोई मीमांसा न बता सके, गर्भके भीतर सन्तान अन्ध क्यों हो जाता है।

अन्य प्रकारका अन्ध जन्मसे नहीं होता। जन्मके बाद किसी समय नाना प्रकार रोगसे चक्षु फूटेगा। चक्षु शब्दमें देखो, कैसे दर्शनज्ञान आता एवं चक्षुका कौन-कौन स्थान नष्ट होनेसे मनुष्यादि अन्ध पड़ता है।

हमारे शास्त्रानुसार पूर्वजन्मार्जित पापके कारण मनुष्य अन्ध बनता है। जात्यन्ध व्यक्ति विषयका उत्तराधिकारी न हो सकेगा। ज्ञान न रखनेवालेको अज्ञानान्ध, जन्मावधि अन्धेको जात्यन्ध, दिनमें न देख सकनेवाले को दिवान्ध, रातको न देख सकनेवालेको रात्र्यन्ध और रङ्ग न पहचान सकनेवालेको वर्णान्ध कहते हैं। मेष, वृष एवं सिंहको दिवान्ध और मिथुन, कर्कट एवं कन्याको रात्र्यन्ध राशि बतायेंगे। रात्र्यन्ध और वर्णान्धका विवरण चक्षु शब्दमें देखो।

२ धुंधला, अन्धा बना देनेवाला, जो नज़रको रोके। अन्धयतीति, अन्ध चु० प्रेरणे णिच्-अच्। (क्ली०) ३ अन्धकार, अंधेरा, तारीकी। ४ अज्ञान, नादानी। ५ जल, मैला पानी। ६ अन्न। ७ मुनिविशेष।

अन्धमुनि पहले वैश्य एवं इनकी स्त्री शूद्रकन्या थी। सरयूकूलमें इनका आश्रम था। किसी दिन इनके सन्तान कुम्भमें जल भर रहे, पास ही राजा दशरथ भी थे। वह उसी वनमें मृगया खेलने गये थे। उन्होंने जलका शब्द सुन मनमें ठहराया, कोई मदहस्ती जल पीता है। उसीपर उन्होंने शब्दानुसार बाण चलाया। ऋषिकुमार उसकी चोटसे मर गये। पीछे अन्धमुनिने अपने पुत्रका सत्कार साध पुत्रशोकसे सस्त्रीक ज्वलन्त चितापर चढ़ प्राण छोड़े।

अन्धक (सं० पु०) अन्ध-ण्वुल्। १ दैत्यविशेषका नाम। दितिके गर्भ एवं कश्यपके औरससे इसका जन्म हुवा था। इस दैत्यके महा अत्याचारी बननेपर महादेवने इसे मार डाला। (हरिवंश)

अन्ध एव अन्धकः, स्वार्थे कन्। २ बृहस्पतिके ज्येष्ठभ्राता। ममताके गर्भ, उतथ्यके औरससे यह उत्पन्न और बृहस्पतिके शापसे जात्यन्ध हुये थे। इनका अपर नाम दीर्घतमा रहा। (महाभारत) ३ यदुवंशके नृपतिविशेष। यह सत्वतके पुत्र थे। अन्धकके चार पुत्र उत्पन्न हुये। उनके नाम थे,—कुकुर, भजमान, शुचिकम्बल एवं वर्हिष। (विष्णुपुराण ४।१४अ:) ४ देशविशेष। ५ मुनिविशेष। ६ तुम्बुरु (त्रि०) ७ अन्ध, नाबीना।

अन्धकक्षयकर (सं० त्रि०) अन्धकानां यादवानां क्षयकरः नाशकरः, ६-तत्। १ विष्णु, जिन्होंने यादवोंको मारा था। अन्धकस्य दैत्यविशेषस्य क्षयकरः। २ महादेव।

अन्धकघातिन् (सं० पु०) शिव, अन्धक राक्षसको जिन्होंने मारा था।

अन्धकमृत्युजित् (सं० पु०) अन्धकः असुरविशेषः मृत्युर्मरणं तौ जयति; अन्धक-मृत्यु-जि-क्विप्, उप-स०। महादेव, जिन्होंने अन्धकदैत्य और मृत्युको जीता था।

"मदनान्धकमृत्युजित्।" (नैषध ४।९७)

अन्धकरिपु (सं० पु०) अन्धकस्य रिपुः शत्रुः, ६-तत्। महादेव श्लेष काव्यादिमें इस शब्दसे अन्धकारनाशक सूर्यचन्द्रका भी अर्थ आता है।

अन्धकवृष्णि (सं० पु०) अन्धक और वृष्णिके सन्तान।

अन्धस् (वै० क्ली०) अन्धकार, छिपाव, तारीकी, पोशीदगी।

अन्धकाक (सं० पु०) काकाकार पक्षी, कौवे-जैसी एक चिड़िया।

अन्धकार (सं० पु०-क्ली०) अन्धं करोतीति; कृ-अण्, उप-स०। तिमिर, तमः, आलोकका अभाव, तारीकी, अंधेरा।

'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः॥' (अमर)

प्रायः सकल देशके ही प्राचीन इतिहासमें लिखा है, कि सृष्टिसे पूर्व जगत् केवल अन्धकारमें आवृत था। उसके बाद सूर्य, चन्द्र, तारा प्रभृति उत्पन्न होनेपर जगत्में प्रकाश हुआ।

अन्धकारक (सं० पु०) क्रौञ्चद्वीपके अन्तर्गत देशविशेष। यह प्रावरक और मुनि नामक देशके मध्य

अवस्थित है। यहां देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण रहते हैं, जो सकल ही गौरवर्ण होते हैं।

अन्धकारमय (सं० त्रि०) अन्धकार-प्राचुर्ये मयट्। अत्यन्त अन्धकारयुक्त।

अन्धकारि (सं० पु०) अन्धकस्य दैत्यविशेषस्य अरि: शत्रु:, ६-तत्। महादेव, जिन्होंने अन्धक नामक दैत्यको मारा था। श्लेषमें यह शब्द सूर्य चन्द्रका भी द्योतक होता है।

अन्धकासुहृत् (सं० पु०) अन्धकस्य असुहृत् शत्रु:। शिव।

अन्धकूप (सं० पु०) अन्धयति इत्यन्ध: स चासौ कूपश्चेति। १ अन्धकारयुक्त कूप। अंध:कूपो यत्र, ७-बहुव्री०। २ नरकविशेष, एक ख़ास दोज़ख़। यह नरक अन्धकारसे आवृत है। इस जन्ममें जो लोग आत्मसुखके लिये नीच प्राणीको कष्ट पहुंचाते, वह इस नरकमें पड़ क्लेश झेलते हैं। अन्धस्य दृष्टि-भावस्य कूप इव। ३ मोह, मुहब्बत। ४ अन्धकार-विशिष्ट घर, जिस मकानमें अंधेरा हो, चोरखाना।

युक्तप्रदेशमें स्थान-स्थानपर ज़मीनके भीतर मकान बने हैं। इन्हें तहखाने या अन्धकूप कहते हैं। ग्रीष्म-काल आनेसे सूर्यका ताप अतिशय बढ़ता, अग्निके स्फ़ुलिङ्ग-जैसी हवा और लू चलती है। इसीसे धन-वान् लोग दिनको सन्तापके समय इन्हीं तहखानोंमें रहते हैं। बरफ़के व्यवसायी भी बरफ अन्धकूपके भीतर इकट्ठी रखते हैं, जिससे वह शीघ्र गल नहीं सकती।

उसके बाद कलकत्तेके अन्धकूपका वृत्तान्त है। इस अन्धकूप सम्बन्धीय सन् १७५६ ई०की २७ वीं जूनवाली कालरात्रि सबको याद रहेगी।

कलकत्तेके पुरातन दुर्गकी बारिकसे दक्षिण ओर एक मकान था। इसीको अन्धकूप कहते हैं। आज भी बहुतसे टेङ्क स्क्वेयरके कोणमें इस अन्धकूपका स्थान बताते हैं। सन् १८३४ ई०में लापेल मेकिण्टस् कम्पनीने इसीके निकट दुकान खोली थी। जहां पहले अन्धकूपहत्या की गई थी, एवं मृत मनुष्योंके उद्देशसे स्मारकस्तम्भ (Monument) बनाया गया था। वर्तमान लालदीघीके उत्तर-पश्चिम-कोणपर लार्ड कर्जनके प्रयत्नसे कुछ दिन हुए वहां पूर्वस्मारक-स्तम्भके अनुरूप अब एक नवीन स्मारकस्तम्भ बना दिया गया है।

अन्धकूप मकान १८ फ़ीट दीर्घ, १८ फ़ीट प्रशस्त एवं १४ फीट उच्च था। इसमें केवल एक द्वार था, एवं ऊपर बरामदेके पास दो छोटी-छोटी खिड़कियां थीं; उनमें भी लोहेके सींखचे लगे थे। अंगरेज़ी सेनाके मध्य किसीके कुछ अपराध करनेपर लोग इसीमें बन्द किये जाते थे। ऐसे मकानमें ठहरना ही यमदण्डको अपेक्षा अधिक कष्टप्रद था, इसीसे अपराधीके शासन निमित्त दूसरा कोई झगड़ा न लगता था।

सन् १७५६ ई० की २१ वीं जूनको सिराज्जुद्दौलह अपने सेनापति मीरजाफ़र और सैन्य-सामन्तके साथ कलकत्ते पहुंचे। उन्होंने क़िला अपने हाथ किया। किन्तु अंगरेजोंका ख़ज़ाना लूटनेमें ५००००) पचास हज़ार रुपयेके सिवाय गहरा माल पल्ले न पड़ा। जो जाति समुद्र पार कर इस दूरदेशमें वाणिज्य करे, उसके पास पचास हज़ार रुपये निकलें यह सुनते ही असम्भव सा मालूम हुआ। इसीसे नवाबने, अंगरेजोंके अध्यक्ष होलव्येल साहबको बुला भय और बड़ी भर्त्सना दिखायी। किन्तु उनकी मन-स्कामना पूरी न हुई। होलव्येल साहब रुपयेकी बात बिलकुल छिपा गये। सिराजुद्दौलह मीरजा-फ़रके हाथ अंगरेज़ी क़ैदी सौंप वहांसे चलते बने।

उस समय एक-एक अंगरेज वणिक्का दौरात्म्य हज़ार सिराजुद्दौलहसे भी चढ़ा-बढ़ा था। उनके अत्याचारसे बङ्गाल प्रान्त अस्तव्यस्त हो गया था। इसीसे नवाबके सिपाहियोंने अंगरेज वणिकोंको वेदना पहुंचानेका परामर्श किया। १४६ क़ैदी इसी भयङ्कर अन्धकूपमें डाले गये और द्वार अवरुद्ध करदिया गया। बारीक हिसाब लगानेसे अन्धकूपके मध्य १४४ हाथ स्थान था। प्रत्येक हाथमें एक एक मनुष्यके सटे खड़े रहनेपर भी दो आदमियोंकी जगह नहीं निकलती। सिपाहियोंने, फिर भी, इसी मकानमें १४६ लोगोंको ठूंस दिया था।

मकान छोटा था, द्वार बन्द था; जो खिड़कियां

थीं, वह भी न होनेके बराबर थीं। उसपर बङ्गालके ज्येष्ठमासकी रात्रि थी; दूसरे आदमीपर आदमी पड़ा था। यन्त्रणाका जितना आयोजन हो सकता है, वह सभी एक जगह किया गया था।

मकानके भीतर घुसते ही सबके प्राण कण्ठमें जा लगे। ग्रीष्मके कारण सर्वाङ्गसे झर-झर पसीना बहता, दारुण पिपासासे वक्षःस्थल फटता और कैदी केवल रेल-पेल मचा छोटी खिड़कीके पास पहुंचनेकी चेष्टा करते थे। किन्तु मकान सङ्कीर्ण था, पैर आगे बढ़ानेका स्थान न था। फिर भी होलव्येल साहब अति कष्टसे खिड़कीके पास पहुंच किसी जमादारसे कहने लगे,—"आप हमें दूसरे मकानमें बन्द कीजिये; हम आपको एक हज़ार रुपया पुरष्कार देंगे।" जमादार नवाबकी अनुमति मांगने दौड़ा। हतभाग्य कैदी टक-टकी बांध उसके लौटनेकी राह देखते थे। किञ्चित् काल बाद ही जमादार वापस आया, किन्तु अभीष्टसिद्धि न हुयी। होलव्येल साहबने दो हजार रुपये देनेकी ठानी। उस समय नवाब निद्रित थे, उन्हें कोई उठा न सका।

कैदियोंका दुःसह क्लेश बढ़ रहा था। वह क्लेश मुखसे कहा और मनसे विचारा नहीं जाता। अन्धकूपमें केवल जल जलका शब्द भरा था। सिपाही जलमें वस्त्रखण्ड भिंगा खिड़कीसे मकानके भीतर फेंकने लगे। इससे और भी गड़बड़ाहट मच गयी रेल-पेल और भी बढ़ गयी। कितने ही लोगोंने पद-तलमें दलित हो अपने प्राण खोये। दूसरे दिन १४६ कैदियोंमें केवल २३ आदमी जीवित बचे। इस-निष्ठुर व्यवहारके लिये कोई नवाबको दोष देता और कोई उन्हें निरपराध बताता है। होलव्येल साहबने स्वयं जो विवरण लिखा है, उसमें उन्होंने भी सिराजुद्दौलहको दोषी नहीं ठहराया।

अन्धङ्करण (सं० त्रि०) अनन्धमन्धं कुर्वन्त्यनेन, च्व्यर्थे कृ-करणे ख्य़ु न्। अन्धा बनानेवाला, जो नाबीना कर दे। "अन्धङ्करणः शोकः।" (मुग्धबोध)

अन्धतमस (सं० क्ली०) अन्धयति, अन्ध-णिच्-अच्; ताम्यति अस्मिन् इति, तम-असच् तमस। अन्धयतीत्यन्धं पचाद्यच्, अन्धतमः अन्धतमसम्।" (सि० कौ०) १ अतिशय अन्धकार, गाढ़ अन्धकार, हदसे ज्यादा तारीकी, गहरा अंधेरा। 'ध्वान्ते गाढ़ेऽन्धतमसम्।' (अमर) २ अन्धकार-युक्त नरक विशेष।

अन्धता (सं० स्त्री०) १ चक्षुहीनत्व, अन्धापन। २ पित्तरोग, नज़लेकी बीमारी।

अन्धतामस, (सं० क्ली०) तम एव तामसम्, स्वार्थे प्रज्ञादि० अण्; अन्धञ्च तत् तामसञ्चेति, कर्मधा०। अतिशय अन्धकार, हदसे ज्यादा तारीकी, गहरा अंधेरा।

अन्धतामिस्र (सं० क्ली०) तमिस्रा तमः समूहः तमिस्रैव तामिस्रम्, स्वार्थे अण्; अन्धञ्च तत् तामिस्रञ्चेति, कर्मधा०। १ निविड़ अन्धकार, गहरी तारीकी, बहुत ज्यादा अंधेरा। (पु०-क्ली०) अन्धं अन्धकारं तामिस्रं यत्र, बहुव्री०। २ नरकविशेष। मनूक्त द्वितीय नरक। यथा—

"तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ।
नरकं कालसूत्रञ्च महानरकमेव च।" (मनु ४।८८)

तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव नरक, कालसूत्र, महानरक इत्यादि एकविंशति नरक हैं।

३ पञ्चप्रकारकी अज्ञानताके अन्तर्गत अज्ञान-विशेष, ऐसी नास्तिक बुद्धि, कि शरीर नष्ट होनेसे आत्मा प्रभृति कुछ भी नहीं बचता।

अन्धत्व (सं० क्ली०) अन्धस्य भावः, भावार्थे त्व। चक्षुर्हीनत्व, अन्धापन।

अन्धधी (सं० त्रि०) ज्ञानचक्षुर्हीन, जिसकी ज्ञानरूपी आंख फूटी हो।

अन्धपूतना (सं० स्त्री०) अन्धस्य मुग्धबालस्य पूतना तन्नाम्नी राक्षसीव, ६ तत्। बालग्रहविशेष, बच्चोंकी बीमारी। इसका लक्षण यों लिखा है,—

"यो द्वेष्टि स्तनमतिसारकासहिक्काच्छर्दीभिज्वररसहिताभिरर्द्यमानः।
दुर्वर्णः सततमधःशयोऽम्लगन्धिस्तं ब्रूयुर्भिषजोऽन्धपूतनार्त्तम्॥"
(सुश्रुत उत्तर० २७।३३)

तिक्तद्रुमपत्रके सिद्धजलसे स्नान करने, सुरादि साधित तैल लगाने और पिप्पलादि साधित घृतादिके पीनेपर रोगी अन्धपूतना रोगसे छुटकारा पाता है।

अन्धमूषा (सं० स्त्री०) वज्रमूषापर नामक औषधके पाकार्थ यन्त्रविशेष। इसका लक्षण यह है,—

"अन्धमूषा तु कर्तव्या गोस्तनाकारसन्निभा।
सैवाच्छिद्रान्विता मध्ये गम्भीरा सारणोचिता॥
द्वौ भागौ तुषदग्धस्य एका वल्मीकमृत्तिका।
लौहकिट्टस्य भागैकं श्वेतपाषाणभागिकम्॥
नरकेशसमं किञ्चित् छागीचीरेण पेषयेत्।
यामद्वयं दृढं मर्द्यं तेन मूषां सुसम्पुटाम्॥
शोषयित्वा रसं चिप्त्वा तत्कल्कैः संनिरोधयेत्।
वज्रमूषा समाख्याता सम्यक्पारदसाधिका॥" (रसेन्द्रसारसंग्रह)

अन्धमूषिका (सं० स्त्री०) अन्धं दृष्टग्रभावं मुष्णाति, मुष-ण्वुल् दीर्घः टाप् इत्वम्। १ देवताड़ वृक्ष। २ तृणविशेष, एक खास किस्मकी घास।

अन्धम्भविष्णु (सं० त्रि०) अनन्धाऽन्धा भवति, भू च्व्यर्थे खिष्णुच्। अन्धा बनते हुवा, जा नाबीना हो रहा हो।

अन्धम्भावुक (सं० त्रि०) अनन्धोऽन्धो भवति, च्व्यर्थे भू खुकञ्। अन्धम्भविष्णु देखो।

अन्धरात्रि (सं० त्रि०) अंधेरी रात।

अन्धवर्त्मन् (सं० पु०) अन्धं अन्धकारमयं वर्त्मन् पन्था यस्मिन्। १ सूर्यकिरण न पहुंचनेका स्थान, जिस जगह आफ़तावकी रोशनी न पहुंचे।

अन्धस् (सं० क्ली०) अद्यते भक्ष्यते, अद्-उण्-असुन्-नुम् दस्य धश्च। अदेर्नुम् धौ च। उण् ४।२०५। १ अन्न, ओदन, अनाज, दाना। २ सोमलता। ३ तृणाच्छादित भूमि, जिस जमीनमें घास लगी हो। ४ अंधेरा, तारीकी।

अन्धालजी (सं० स्त्री०) अन्धाफोड़ा, जिस फोड़ेसे पीब न बहे।

अन्धाहि (सं० पु० स्त्री०) अन्धे जले अन्धस्य जलस्य वा अहिः सर्प इव, ७ वा ६-तत्। कुचिका नामक मीन विशेष, एक किस्मकी मछली। यह सांपकी तरह पानीमें पड़ी रहती है। २ अन्धा सांप, जो सांप ज़हरीला नहीं होता।

अन्धाहुली (सं० स्त्री०) आहुली नामक शिम्बीफल, वनस्पतिविशेष।

अन्धिका (सं० स्त्री०) अन्धयति, अन्ध प्रेरणे णिच्-ण्वुल्-टाप् इत्वम्। १ रात्रि, शब, रात। २ द्यूत-क्रीड़ा। ३ आंखमिचौली। ४ सर्षपी, खञ्जनिका, एक छोटी चिड़िया। ५ छल, चालाकी। ६ कैतव, धोकेबाजी। ७ सिद्ध। ८ मिश्र। ९ स्त्रीविशेष, खास किस्मकी औरत। १० चक्षुरोगविशेष, आंखकी एक बीमारी।

'अन्धिका कैतवेऽपि स्यात् सर्षपी सिद्धयोरपि।' (हेमचन्द्र)

अन्धीकृत (सं० त्रि०) अन्धा हुवा या बनाया गया।

अन्धीकृतात्मन् (सं० त्रि०) विचारान्ध।

अन्धीभूत (सं० त्रि०) अन्धा बना हुआ, जो अन्धा हो गया हो।

अन्धु (सं० पु०) अम्-उण् कु धुमागमश्च। १ कूप, कुवां। २ पुंचिह्न, लिङ्ग।

अन्धुल (सं० पु०) अन्ध-उलच्। शिरीषवृक्ष, सरसोंका फूल। शिरीष फूल देखनेमें अन्धप्राय होता, जिससे इसका नाम 'अन्धुल' पड़ा है।

अन्ध्र (सं० पु०) अन्ध-रन्। १ वृषलदेश। पहले उड़ीसा, तेलिङ्गन प्रभृति देश अन्ध्र कहाते थे। २ कारावर स्त्रीके गर्भ एवं वैदेह पुरुषके औरससे उत्पन्न अन्त्यज जाति विशेष, व्याधविशेष।

अन्ध्रराजवंश—दाक्षिणात्यका सुप्रसिद्ध राजवंश। अन्ध्र, आन्ध्र, शातकर्णि, सातकर्णि या सातवाहन और शालिवाहन प्रभृति नामसे भी पुकारा जाता है। प्राचीन पुराण, संस्कृत और प्राकृत साहित्य, प्राचीन शिलालेख एवं मुद्रालेखमें इस वंशवाले बहुतसे नृपतियोंके नाम मिले हैं। इस वंशके नृपतियोंको शातकर्णि उपाधि रहने और पुराणादिमें वंशपरिचयके केवल-मात्र शातकर्णि नामसे पुकारे जानेपर इस वंशका धारावाहिक इतिहास उद्धार करना बड़ा ही कठिन होगा। विशेषतः प्राचीन पुराणसमूहमें परवर्ती लेखकके दोष और मुद्राकरके प्रमादसे एक ही राजाका नाम भिन्न रूपसे लिखे जानेपर और भी गड़-बड़ पड़ गया है। इसलिये एकाधिक हस्तलिखित पुस्तकके साहाय्यपर यथायथ पाठ मिलाकर नीचे ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराणसे अन्ध्रवंशका परिचय उद्धृत करते हैं,—

यथा ब्रह्माण्डपुराणे

"काण्वायनमथोद्धृत्य सुशर्म्माणं प्रसह्यताम् ।
शुङ्गानाञ्चैव यच्छेषं क्षपयित्वा बली तथा ॥
छिम्रको ह्यन्ध्रजातीयः प्राप्स्यन्तीमां वसुन्धराम् ।
स वयोविंशति राजा भविता सिन्धुकः समाः ॥
कृष्णो भातास्य वर्षाणि सोऽष्टादश भविष्यति ।
श्रीमालकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान् ॥
पूर्णोत्सङ्गस्तु वर्षाणि भविताष्टादशैव तु ।
पञ्चाशतं समा षट् च शातकर्णिर्भविष्यति ॥
दश चाष्टौ च भविता तस्माल्लम्बोदरो नृपः ।
आपीलको द्वादश वै तस्य पुत्रो भविष्यति ॥
दश चाष्टौ च भविता राजा सौदास तेजसा ।
पञ्चैव भास्करो राजा भविष्यति समा नृपः ॥
स्कन्दस्वामी समा सप्त तस्मात् राज्यं करिष्यति ।
महेन्द्रः शातकर्णिस्तु भविष्यति समा त्रयं ॥
कुन्तलः शातकर्णिस्तु भविताष्टौ समा नृपः ।
एक संवत्सरं राजा शातिषेणो भविष्यति ।
चतुस्त्रिंशत्तु वर्षाणि पुलोमायि र्भविष्यति ।
एकोनविंशतिं मेघः शातकर्णि स्ततो नृपः ॥
भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिः ।
पञ्च संवत्सरं पूर्णं हालो राजा भविष्यति ॥
पञ्च मण्डलक राजा भविष्यति महाबलः ।
भाव्यः पुरिकषेणस्तु समास्तेप्येकविंशतिः ॥
सुन्दरः शातकर्णिस्तु वर्षमेकं भविष्यति ।
चकोरः शातकर्णिस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ॥
अष्टाविंशति वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ।
राजा च गौतमीपुत्र एकविंशत् समा नृपः ॥
चतुर्विंशति वर्षाणि पुलोमायिर्भविष्यति ।
शिवश्री पुलमायिस्तु चतस्रो भविता समाः ॥
शिवस्कन्दः शातकर्णिः भविताष्टौ समा नृपः ।
एकोनविंशतिं राजा यज्ञश्री शातकर्ण्यपि ॥
षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृपः ।
चन्द्रश्री शातकर्णिः च तस्य पुत्रः समास्त्रयः ॥
पुलोमायिः समा सप्तदश तस्माद्भविष्यति ।
इत्येते वै नृपास्त्रिंशद् भोक्ष्यन्ति ये महीमिमां ॥
समा शतानि चत्वारि पञ्चषट् सप्त चैव हि ।
अन्ध्राणां संस्थिते वंशे तेषां भृत्यान्वये पुनः ॥
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरा स्ततो नृपाः ॥"

(विश्वकोष कार्यालयका हस्तलिखित ब्रह्माण्डपुराण ग्रन्थ नं ४२७, पत्र ३१०)

तथा मत्स्यपुराणे—

"शिसुकोऽन्ध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ।
त्रयोविंशत् समा राजा शिसुकस्तु भविष्यति ॥
कृष्णभ्राता वरीयांस्तु अष्टादश भविष्यति ।
श्रीमल्लकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै तथा ॥
पूर्णोत्सङ्गस्ततो राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु ।
पञ्चाशतं समा षट् च सातकर्णिर्भविष्यति ॥
दश चाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरः सुतः ।
आपीतको दश द्वे च तस्य पुत्रो भविष्यति ॥
दशचाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वातिर्भविष्यति ।
शातिर्भविष्यति राजा समास्त्वष्टादशैव तु ॥
स्कन्दस्वाति स्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति ।
मृगेन्द्रः शातकर्णिस्तु भविष्यति समास्त्रयः ॥
कुन्तलः शातकर्णिस्तु भविताष्टौ समा नृपः ।
एकसंवत्सरो राजा सातिषेणो भविष्यति ॥
षट्विंशच्चैव वर्षाणि पुलोमायिर्भविष्यति ।
अष्टाविंशति वर्षाणि मेघसातिर्भविष्यति ।
भवितारिष्टकर्णिस्तु वर्षाणि पञ्चविंशतिः ॥
ततः संवत्सरान् पञ्च हालो राजा भविष्यति ।
पञ्च मण्डलको राजा भविष्यति समा नृपः ॥
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात् सौम्यो भविष्यति ।
सुन्दरः शातकर्णिस्तु षण्मासान् वै भविष्यति ॥
राजवंश्यो विकर्णस्तु षण्मासो वै भविष्यति । *
अष्टाविंशति वर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति ॥
राजा च गौतमीपुत्रो ह्येकविंशत्ततो नृपः ।
अष्टाविंशत् सुतस्तस्य पुलोमा वै भविष्यति ॥
शिवश्री वै पुलुमात्तु सप्तैव भविता नृपः ।
शिवस्कन्दः शातकर्णिर्भविता ह्यात्मजः समाः ॥
ऊनविंशति वर्षाणि यज्ञश्रीः शातकर्णिकः ।
षडेव भविता यस्माद्विजयस्तु समास्ततः ॥
चण्डश्रीः शातकर्णिस्तु तस्य पुत्रः समा दशः ।
पुलोमा सप्त वर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति ॥
एकोनविंशति ह्येते अन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीं ।
तेषां वर्षशतानि स्युः चत्वारः षष्टिरेव च ॥
अन्ध्राणां संस्थिते राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपाः ।
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः ॥"

(विश्वकोष-कार्यालयका हस्तलिखित मत्स्यपुराण ग्रन्थ नं ४५२, पत्र ४१९)

उपरोक्त दोनों पुराण, एतद्भिन्न विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवतसे अन्ध्रराजगणकी वंशतालिका उतारी गयी।

---

* "चकोरः शातिकर्णस्तु षण्मासान् वै भविष्यति।" मुद्रित पुस्तकधृतपाठः।

अन्ध्रराजवंशकी तालिका

मत्स्यपुराणका मत		ब्रह्माण्डपुराणका मत		विष्णुपुराणका मत	श्रीमद्भागवतका मत
नाम	राज्य-वर्ष	नाम	राज्य-वर्ष		
१। शिसुक (शिसुक)	२३	छिम्मक वा सिन्धुक	२३	शिप्रक	
२। कृष्ण	१८	कृष्ण	१८	कृष्ण	कृष्ण
३। श्रीशातकर्णि	१८	श्रीमालकर्णि	१८	श्रीशातकर्णि	शान्तकर्णि
४। पूर्णोत्सङ्ग	१८	पूर्णोत्सङ्ग	१८	पूर्णोत्सङ्ग	पौर्णमास
५। सातकर्णि	५६	शातकर्णि	५६	सातकर्णि	
६। लम्बोदर	१८	लम्बोदर	१८	लम्बोदर	लम्बोदर
७। आपीतक	१२	आपीलक	१२	इवीलक	छिवीलक
८। मेघस्वाति	१८	सौदास	१८	मेघस्वाति	मेघस्वाति
९। शाति	१८	भास्कर	५		
१०। स्कन्दस्वाति	७	स्कन्दस्वामी	७		
११। मृगेन्द्र स्वातिकर्णि	३	महेन्द्र शातकर्णि	३		
१२। कुन्तल शातकर्णि	८	कुन्तलशातकर्णि	८		
१३। सातिषेण	१	शातिषेण	१		
१४। पुलोमायि	३६	पुलोमायि	३४	पटुमन	अटमान
१५। मेघस्वाति	२८	मेघ शातकर्णि	२९		
१६। अरिष्टकर्णि	२५	नेमिकृष्ण	२५	अरिष्टकर्मन्	अरिष्टकर्मन्
१७। हाल	५	हाल	५	हाल	हालेय
१८। मण्डल शातकर्णि	५	मण्डलक	५	पत्तलक	तलक
१९। पुरीन्द्रसेन	५	पुरिकषेण	२१	प्रविल्लसेन	पुरीषभीरु
२०। सौम्य	३॥(?)			सुन्दर	सुनन्दन
२१। सुन्दरसातकर्णि	१	सुन्दरशातकर्णि	१		
२२। विकर्ण	॥	चकोर शातकर्णि	॥	चकोर	चकोर
२३। शिवस्वाति	२८	शिवस्वामी	२८	शिवस्वाति	
२४। गोतमीपुत्र	२१	गोतमीपुत्र	२१	गोतमीपुत्र	गोतमीपुत्र
२५। पुलोमा	२८	पुलोमायि	२४	पुलिमत्	पुरिमत्
२६। शिवश्री	७	शिवश्रीपुलमायि	४	शिवश्री	मेदशिरस्
२७। शिवस्कन्द	७	शिवस्कन्द	८	शिवस्कन्द	शिवस्कन्द
२८। यज्ञश्री शातकर्णि	१९	यज्ञश्रीशातकर्णि	१९	यज्ञश्री	यज्ञश्री
२९। विजय	६	विजय	६	विजय	विजय
३०। चण्डश्री शातकर्णि	१०	चन्द्रश्री	३	चन्द्रश्री	चन्द्रविज्ञ
३१। पुलोमा	७	पुलोमायि	१७	पुलोमाचिंस्	सलोमधि

मत्स्यपुराणकी तालिकामें उन्नीसवें अन्ध्रनृपति पुरीन्द्रसेनके साथ उनके पुत्र सौम्यकी बात लिखी है। इन सौम्यको मिलानेसे मत्स्यमतानुसार ३१ व्यक्ति होंगे। किन्तु 'एकोनविंशति ह्येते अन्ध्रा भोच्यन्ति वै महीम्।' इत्यादि वचनानुसार उन्तीस ही नृप निकलते हैं। इधर इन उन्तीस राजाओंका राज्यकाल—'तेषां वर्ष शतानि स्युः चत्वारः षष्टिरेव च'—इस श्लोकानुसार ४६० वर्ष होंगे। मूलमें पुरीन्द्रसेनके पुत्र सौम्यका राज्यकाल निर्दिष्ट नहीं हुवा। दूसरे तीस नृपतियोंका जो राज्यकाल माना गया, उसमें हमें कुल ४५६॥ वर्ष मिलते हैं। इसके साथ सौम्यका राज्यकाल कुछ कम ४ वर्ष मान लेनेसे ४६० वर्ष निकलेगा। ऐसे स्थलमें मूलके उन्तीस राजाओंकी जगह ३१ अन्ध्रनृपति और उनका कुल राज्यकाल ४६० वर्ष माना जा सकता है। ब्रह्माण्डपुराणमें पुरीन्द्रसेनके बदले "पुरिकषेण" नाम लिखा गया, किन्तु उनके पुत्र सौम्यका नाम नहीं मिलता। सुतरां ब्रह्माण्डमतसे कुल तीस अन्ध्र राजका राज्यकाल ४५६ वर्ष होता है। तालिकानुसार भी वह ४५५॥ वर्ष निकलेगा। इसलिये मत्स्यपुराणके मूल श्लोककी तरह ब्रह्माण्डपुराणके श्लोकमें परस्पर कोई भेद नहीं पड़ता। सम्भवतः मत्स्यपुराणके मूलमें—

"एकविंशत् नृपाह्येते अन्ध्र भोच्यन्ति वै महीम्।"

यही पाठ रहा था। किन्तु लिपिकरके प्रमादसे 'एकविंशत्के' स्थानमें 'एकोनविंशति' बन गया है। जो हो, उभय पुराणके मध्य मतभेद पड़ते भी उसका कारण खूब समझ चुके हैं। एकने सौम्यको मिला कुल ४६० वर्ष एवं दूसरेने सौम्यको निकाल कुल ४५६ वर्ष राज्यकाल मान लिया है। मत्स्यपुराणके मुद्रित और हस्तलिखित उभय ही ग्रन्थमें पुरीन्द्रसेन और सौम्य नृपतिका नाम मिलेगा। सुतरां यह नाम नहीं छूटता। ऐसी अवस्थापर हम अन्ध्र वंशमें इकतीस राजा और उनका कुल राज्यकाल ४६० वर्ष मान सकते हैं।

पाश्चात्य और देशीय पुराविद्गणने इस अन्ध्रवंश एवं अन्ध्रभृत्यवंशको अभिन्न रूपसे पुकारा है। प्रसिद्ध प्राचीन तत्त्ववित् सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकरने लिखा है,—

"At first the princes of the family must have been subject to the paramount sovereigns of Pátaliputra and were hence called Bhrityas or servants of those sovereigns and afterwards they raised themselves to supreme power." *

अर्थात् अन्ध्रवंशीय राजकुमार प्रथम पाटलिपुत्रके सम्राट्की अधीनता स्वीकार करते रहे। इसीसे वह अन्ध्रभृत्य नामसे पुकारे गये हैं। पीछे वही क्रमसे राजपदपर जा बैठे। आश्चर्यका विषय है, कि अपरापर पाश्चात्य पुराविद्गणने भी ऐसा ही अभिमत निकाला है। किन्तु उनकी यह युक्ति समीचीन नहीं मालूम पड़ती। वह यदि पाटलिपुत्रके अधीश्वर मौर्य, शुङ्ग या काण्वायणके भृत्य या कर्मचारी होते, तो मौर्यभृत्य, शुङ्गभृत्य या काण्वभृत्य नामसे ही पुकारे जाते; अन्ध्रभृत्य उन्हें कोई न कहता। हम पुराणमें देखते, कि काण्वायनवंश प्रथम शुङ्गोंका काम करता था। इसीसे उनके वंशधर पाटलिपुत्रके अधीश्वर 'शुङ्गभृत्य' नामसे ही पुकारे गये।

"चत्वारः शुङ्गभृत्यास्ते नृपाः काण्वायणा द्विजाः।" (ब्रह्माण्डपुराण)

ऐसी स्थितिमें अन्ध्रभृत्योंको पाटलिपुत्रके पूर्वाधीश्वरोंका कर्मचारी बताना ठीक नहीं मालूम पड़ता। सकल महापुराणोंमें देखते, कि दाक्षिणात्यका अन्ध्र वंश और अन्ध्रभृत्यवंश एक नहीं, यह दोनों वंश स्वतन्त्र हैं। ब्रह्माण्ड और मत्स्य उभय पुराणमें स्पष्ट ही लिखा है,—

"अन्ध्राणां संस्थिते वंशे तेषां भृत्यान्वये पुनः।
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः॥"

अर्थात् अन्ध्र वंशके राज्याधिकार कालमें ही उनके भृत्य या कर्मचारीवंशीय सात राजा राज्य करेंगे। ब्रह्माण्डपुराणकारने अन्ध्र सम्राटोंके ४५६ वर्ष राज्य-

* Transactions of the Second International Congress of Orientalists, 1874. p. 349.

काल मध्य इन सप्त अन्ध्रभृत्यका राज्यशासनकाल लगाया है,—

"समा शतानि चत्वारि पञ्चषट् सप्त चैव हि।"

ब्रह्माण्ड, मत्स्य और विष्णु इस पुराणत्रयके मतसे शुङ्ग और काण्व इन उभय वंशका प्रभाव मिटता एवं अन्ध्रवंशका अभ्युदय निकलता है,—

"काण्वायनमथोद्धृत्य सुशर्माणं प्रसह्य तम्।
शुङ्गानां चैव यच्छेषं चपयित्वा बली तथा॥"

इस पुराणवचनसे ही आभास होता है, कि शुङ्ग और काण्ववंशके अधिकारकालमें ही अन्ध्रवंशने स्वाधीनता का डङ्का बजाया था।

कटक ज़िलेके खण्डगिरिकी हाथा-गुम्फासे निकले हुवे कलिङ्गाधिपति भौखूराज खारबेलके त्रयोदश राज्याङ्क या १६५ मौर्याब्दमें उत्कीर्ण शिलालिखसे मालूम पड़ता कि उनके अभिषेकके द्वितीय वर्ष ही अर्थात् १५४ मौर्याब्दमें पश्चिम दिशाके अधिपति अन्ध्रराज शातकर्णि उनके सहायक बने थे। इस शिलालेखसे ही हमें सर्वप्रथम अन्ध्रराजका निर्दिष्ट-काल मिलता है। प्रथम यही देखना आवश्यक होगा, मौर्याब्द किस समय लगा था। बूल्हर प्रभृति पुराविद्गणके मतसे मौर्यराज चन्द्रगुप्तके अभिषेकसे मौर्याब्द आरम्भ हुवा। बूलहरके मतसे सन् ई०से पहले ३२२ से ३१२ अब्दके मध्य चन्द्रगुप्तका अभिषेक आता है। सुतरां उसी समय मौर्याब्द लगा था। इस हिसाबसे १६८ से १५८ खृष्ट पूर्वाब्द मध्य कलिङ्गाधिपति खारबेल और अन्ध्रराज शातकर्णि ऊंचे उठे। * किन्तु हेमाचार्यरचित त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरितके परिशिष्टपर्वमें लिखा है,—

"एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते।
पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः॥" (८।३३१)

अर्थात् महावीरके मोक्षलाभ बाद १५५ वर्ष बीतनेपर चन्द्रगुप्त राजा बने थे। श्वेताम्बर जैनियोंके मतसे विक्रमसे ४७० वर्ष पहले एवं दिगम्बर सम्प्रदायके मतसे शकराजसे ६०५ वर्ष पहले तीर्थङ्कर महावीर स्वामीको मोक्ष मिला। महावीरस्वामी और जैन शब्द देखो। ऐसी अवस्थामें उभय सम्प्रदायके ही मतसे मोक्षकाल ५२७ ई०का पूर्वाब्द निकलेगा। सुतरां सन् ५२७ ई०से १५५ वर्ष बाद ही अर्थात् ३७२ ई०के पूर्वाब्दमें चन्द्रगुप्तका अभिषेक और मौर्याब्दका आरम्भ हुवा था। पाश्चात्य पुराविदोंने जिस कारण देशीय प्राचीन प्रमाण न मान चन्द्रगुप्तको ५० वर्ष परवर्ती बताया, वह समीचीन मालूम नहीं पड़ता। वह मकदूनियाके वीर सिकन्दरके सामयिक प्राच्य भारताधिप सण्ड्रोकोट्टसको (Sandro-kottus) प्रथम मौर्यराज चन्द्रगुप्तके साथ अभिन्न रूप माननेकी भी झमेलमें आ गये हैं। पाश्चात्य ऐतिहासिक जष्टिनने लिखा है, कि सण्ड्रो-कोटसने (राजा बननेसे पहले) सिकन्दरका खीमा जाकर देखा था। उनकी बातसे महावीर सिकन्दर-ने रुष्ट हो उनके प्राणदण्डका आदेश किया। अन्तमें उन्होंने कैदसे ही भाग अपने प्राण बचा लिये। (Justinus xv. 4.) प्लुटर्कने बताया, कि उस समय सेण्ड्रोकोटस्‌का अधिक वयस न हुआ था। ३२७ ई०के पूर्वाब्दमें सिकन्दरने पञ्जाबमें पैर रखा। जैन, बौद्ध और पौराणिक कालके निर्णयानुसार उस समय प्रथम चन्द्रगुप्तके पुत्र विन्दुसार या नन्दसार मगधमें आधिपत्य करते और अशोक उस समय पञ्जाबमें निर्वासित अवस्थामें दिन गुजारते थे। अशोक शब्दमें विस्तारित विवरण देखो।

भारतीय विभिन्न प्राचीन वंशलता विचारनेसे मालूम होता, कि पितामह और पौत्रका एक ही नाम अनेक स्थलमें लिखा गया है।† अन्ध्र या शात-वाहन वंश, गुप्तवंश, वनभीवंश, चालुक्यवंश प्रभृति हिन्दू राजाओंकी नामावली विचारनेसे सहज ही इसका समर्थक प्रमाण मिलेगा। आज भी यह प्रथा पश्चिम भारतसे नहीं उठी। ऐसी अवस्थामें यूनानी ऐतिहासिकोंने जिसे सेण्ड्रोकोटस् बताया, उसे हम प्रथम मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्तका पौत्र अशोक-प्रियदर्शी समझते हैं। जैसे भारतके नानास्थानसे निकले

* Epigraphia Indica, Vol. II. p. 88.

† Vincent Smith's Early History of India, 2nd Ed. p. 157.

अशोकके अनुशासन समूहमें उनका एकमात्र प्रियदर्शी नाम मिलता, अशोक नामका कहीं कोई उल्लेख नहीं पड़ता ; अथच अशोक और प्रियदर्शी अभिन्न होते, वैसे ही यूनानी ऐतिहासिकोंके सेण्ड्रोकोटसको हम अशोकसे अभिन्न मानते हैं। बौद्ध, जैन और ब्राह्मण :पुराणसमूहके अनुवर्ती होनेपर भी हम मौर्य सम्राट् अशोकको ही महावीर सिकन्दरके सामयिक समझ सकते हैं। अशोक शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

यूनानी राजदूत मेगास्थेनिसके वर्णनसे समझ पड़ता है, कि उनके पाटलिपुत्रमें रहते समय कृष्णा और गोदावरी नदीके मध्यवर्ती स्थलपर यह अन्ध्रवंश आधिपत्य करता था। एवं प्राच्य (Prasii) या मगधाधिपतिके बाद ही उनका सेनाबल समझा जाता था। अन्ध्रराज्यके मध्य १२ प्राचीरवेष्टित नगरी, असंख्य बड़े ग्राम—सिवा इसके एक लक्ष पदाति, दो हजार अश्वारोही और एक हजार हाथी थे।* किसीके मतसे उस समय समुद्रगर्भसुखी कृष्णा नदीके तीर श्रीकाकुल नामक स्थानमें अन्ध्रराजको राजधानी थी।† सम्राट् अशोकके त्रयोदश गिरिलेखमें भी मिलता, "अन्ध्र और पुलिन्द सम्राट्का धर्मानुशासन पालते थे।"

ठीक नहीं मालूम पड़ता, किस समय अन्ध्रगणने मौर्य-सम्राट्की अधीनता मानी थी। शायद उन्होंने नाममात्र अशोकका अधीश्वरत्व स्वीकार किया। अशोकके कलिङ्गविजय और असंख्य प्राणिहिंसाके संवादसे जब समस्त दाक्षिणात्य विचलित पड़ा, तबसे अन्ध्रराज मौर्यवंशके करद नृपति समझे गये। कोई-कोई पुरावित् सोचता, कि मौर्य सम्राट् अशोकके मरने बाद दूरवर्ती अधिकृत प्रदेशके भूस्वामी सभीने स्वाधीनताकी घोषणा की थी। किन्तु यह मत समीचीन नहीं मालूम पड़ता।

ब्रह्माण्डपुराणसे हमें निश्चय होता, कि मौर्यवंशीय ११ नृपतिने कुल १५३ वर्ष अर्थात् १५३ मौर्याब्द पर्यन्त आधिपत्य किया। इस वंशके अन्तिम नृपतिका नाम बृहद्रथ बताया गया है। उनको मार उनके सेनापति शुङ्ग पुष्यमित्रने मगध-सिंहासन छीन लिया था। बृहद्रथके राज्यावसानमें अर्थात् १५३ मौर्याब्द या २१९ खृष्टाब्दमें पुष्यमित्रने शुङ्गवंशकी नींव डाली। आश्चर्यका विषय है, कि बृहद्रथके पतन और पुष्यमित्रके मगध लेते समय मौर्य-साम्राज्य-भुक्त भारतसे अपरापर प्रदेश भी स्वाधीनता पानेको आगे बढ़े थे। इसी समय दाक्षिणात्यमें अन्ध्रवंशने, कलिङ्गमें चेतवंशने, सिवा इसके मशिक, कुसुम्ब प्रभृति बहुवंशने अपना शिर ऊपरको उठाया था। कलिङ्गाधिपति जैन-राज खारबेलकी हाथीगुम्फाके शिलालेखमें देखते, कि उनके द्वितीयवर्ष या १५४ मौर्याब्दमें (२१८ ई०का पूर्वाब्दमें) अन्ध्रराज शातकर्णि विद्यमान थे। इधर प्राचीन शिलालेख, मुद्रा और पुराणादिमें हम एकाधिक शातकर्णिका नाम देखते हैं। ऐसी अवस्था ठहराना कठिन पड़ेगा, कौन शातकर्णि खारबेलके समसामयिक थे।

नानाघाटसे शिमुख शातवाहनका शिलालेख निकला है। बूल्हर प्रभृति पुराविदोंका विश्वास है, कि इसी शिमुख नामक लिपिकरके प्रमादसे विभिन्न पुराणकी हस्तलिपिमें 'शिशुक, सिन्धुक, छिस्रक, क्षिप्रक इत्यादि नाम पड़ा होगा। सकल महापुराणमें ही शिमुक या सिन्धुकके बाद ही उनके भ्राता कृष्णका उल्लेख मिला है। नासिककी गुहासे निकले शिलालेखके मध्य मिलता है,—

"सादवाहनकुले कण्हराजिना नासिककेन समनेन महामातेन लेनं कारितं।

अर्थात् यह गुहा शातवाहनकुल वाले कृष्णराजके महामन्त्री नासिकवासी श्रवणने बनवायी थी।

उक्त कृष्ण शातवाहनकी गुहालिपिके अक्षर बहुत कुछ ही अशोक लिपिके समान देख पड़ते हैं। नासिककी गुहासे गोतमीपुत्र शातकर्णि और वाशिष्ठीपुत्र पुलमायीकी जो लिपि हाथ लगी, कृष्णराजकी लिपिके साथ उसका यथेष्ट पार्थक्य वर्तमान

* Pliny, Hist. Nat. Book VI, 21-23.

† Burgess—Archaeological Survey Report of Southern India, p. 3.

है।* शेषोक्त अन्ध्रराजकी लिपि देखते ही खृष्टीय प्रथम या द्वितीय शताब्दकी मालूम पड़ेगी। इधर यूनानी भौगोलिक टलेमोने सन् १५१ ई०में अपना जो प्रसिद्ध भूवृत्तान्त ग्रन्थ लिखा, उसमें अपने सामयिक तीन दाक्षिणात्य नृपतियोंका उल्लेख किया है। उनमें प्रधान नृपतिका नाम Siro Polemaios था, उनकी राजधानी पैठानमें थी। द्वितीय नृपतिको Baleokouros कहते थे, उनकी राजधानी Hippocura कहाती थी। एवं तृतीय नृपतिका नाम Tiastenes था, जिनकी राजधानीको Ozene या उज्जयिनी कहते थे। कहनेका यह अर्थ है कि, उस समयके शिलालेख और मुद्रालेखसे हमें उक्त तीन नृपतिका प्रकृत :नाम यथाक्रम वासिष्ठीपुत्र श्रीपुलुमायी, बिलिबायकुर और चष्टन मिला है।

ब्रह्माण्ड और मत्स्यपुराणके मतसे कृष्ण द्वितीय और वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी पचीसवें नृपति थे। दोनोंमें ३५५ वर्षका व्यवधान है। ऐसी अवस्थामें पुराणकी तालिका, कृष्णकी लिपिके अक्षर और टलेमीके वर्णन एकत्र विचार कर देखनेसे कृष्ण-राजको हम खृष्ट पूर्व तृतीय शताब्दके राजा अनायास मान सकते हैं। पहले खारबेलकी गुहा-लिपिसे १५४ मौर्याब्द या सन् २१८ ई० में जिन अन्ध्रराज शातकर्णिका उल्लेख किया, समसामयिक लिपिकालकी आलोचना द्वारा उन्हें अन्ध्रवंशीय तृतीय नृपति और उक्त पुराणतालिकाके अनुसार उन्हें हम कृष्णराजके पुत्र समझते हैं। पुराणमतसे कृष्णराजने १८ वर्ष और उनके ज्येष्ठभ्राता सिमुक या सिन्धुकने २३ वर्ष राज किया। १५४ मौर्याब्द या २१८ खृष्ट पूर्वाब्दमें अथवा उससे कुछ पहले अन्ध्रराज प्रथम शातकर्णिका अभ्युदय हुवा। हम उनसे ४१ वर्ष पहले प्रायः २६० खृष्ट पूर्वाब्दमें प्रथम अन्ध्रराज सिमुकका आविर्भावकाल मान सकते हैं। उस समय भी मौर्यवंश पाटलिपुत्रके सिंहासन-पर अधिष्ठित था। सारांश यह है, कि उस समय उनका नाममात्र आधिपत्य करता था। उनके सेनापति और मन्त्री ही सब कुछ बन बैठे थे। कालिदासके मालविकाग्निमित्र नाटकसे मालूम होता है, कि शुङ्गसम्राट् पुष्यमित्रके समय दाक्षिणात्यके विदिशामें उनके ही वंशधर राजप्रतिनिधिका कार्य करते थे। अनुमान होता है, कि मौर्याधिकारके शेष भागमें दाक्षिणात्यके उत्तरांशपर विभिन्न जगह शुङ्ग और काण्ववंश प्रधान राजकर्मचारीकी तरह राजकार्य करते थे। एवं उनके साथ सिमुक और कृष्ण-राजको चिरकाल युद्ध करना पड़ा था। सिमुकके ही मौर्याधिकार कालमें पहले शिर उठानेसे पुराण-कारने उनको प्रथम अन्ध्रनृपति माना है। वास्तवमें उस समय शुङ्ग और काण्ववंश राज्यके सर्वमय कर्ता होते भी सम्राट् बन न सके। क्रम क्रमसे बल बढ़ा और प्रबन्ध जमा। शेष मौर्यसम्राट् बृहद्रथके सेनापति शुङ्गवंशीय पुष्यमित्रने अपने प्रभुको मार मौर्यसाम्राज्य-पर अधिकार किया। इस वंशके हाथसे अपर वंशके हाथ राजदण्ड पहुंचते समय पाटलिपुत्रके शासना-धीन साम्राज्यकी चारों ओर ही जो सहसा गड़बड़ाहट मचगयी, उसमें कोई सन्देह नहीं। पहले ही लिखा है, कि उस समय कलिङ्ग, तैलङ्ग, मालव, सौराष्ट्र प्रभृति दूरस्थित प्रबल सामन्त राजाओंने स्वाधीनताका डङ्का बजाया था। ऐसे समय जो कुछ शक्तिसामर्थ्यमें प्रबल हो गये थे, वह पार्श्ववर्ती राज्याधिकारके लिये लालसा करने लगे। जैनराज खारबेलकी हाथी-गुम्फालिपि और कालिदासके मालविकाग्निमित्र नाटकसे उनका थोड़ा-थोड़ा आभास मिला है। हाथीगुम्फालिपिसे निकलता, कि खारबेल भिक्षुराजके द्वितीय वर्षमें पश्चिम दिक्के अधिपति शातकर्णिने अपने मित्र कलिङ्गाधिपतिके साहाय्यार्थ प्रभूत चतुरङ्ग बल भेजा था।* उसके बाद कलिङ्गाधिपने उनसे अष्टम वर्षमें राजगृहाधिपके विरुद्ध युद्धयात्रा की थी। राजगृहाधिप उनके भयसे मथुराको भाग खड़े हुये। पीछे कलिङ्गाधिपने द्वादश वर्षमें या १६४

* Transactions of the Congress of Orientalists 1874, p. 360.

* Actes VIe Congres' International des Orientalists, tome iii, p. 174.

मौर्याब्दमें गङ्गातीर पर्यन्त दौड़ लगा मगधपर आक्रमण किया। सारांश यह है, कि ऐसे समय मगध शुङ्गवंशके अधिकारमें था। सेनापति पुष्पमित्र उस समय पाटलिपुत्रके सिंहासन पर अधिष्ठित थे। कलिङ्गाधिप और अन्ध्रराज शातकर्णिके साथ उन्हें घोरतर युद्ध करना पड़ा। अल्प दिन बाद ही शुङ्ग-वंशने प्राधान्य जमा लिया। पुष्पमित्रका अश्वमेध यज्ञ उसीका फल था।

नासिक और नानाघाटसे आविष्कृत शातवाहन-वंशीय नृपतिगणका शिलालेख देखनेसे मालूम होता है, कि सिमुक, कृष्णराज और प्रथम शातकर्णिके बाद यह अञ्चल अर्थात् उत्तरांश कुछ दिन अन्ध्रराज-गणके अधिकारसे निकल गया था। क्योंकि, उसके बाद इस अञ्चलसे दीर्घकाल उनके वंशधरगणका दूसरा कोई बोधक शिलालेख नहीं मिलता। इधर अधिकारच्युत होते भी पूर्वांशमें कलिङ्गपतिगणके सहयोगसे वह शुङ्गों और काण्वोंके साथ चिरकालतक युद्धमें लिप्त रहे। ऐसे समय उनके दक्षिणा-पथके अधिकारमें कभी शुङ्ग, कभी काण्व, या कभी अन्ध्रवंश ही आधिपत्य करता था। सकल महा-पुराणके मतसे शुङ्गवंशने ११२ और काण्ववंशने ४५ अर्थात् उभयवंशने कुल १५७ वर्ष राज किया।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि १५३ मौर्याब्द या २१९ ई०के पूर्वाब्दमें शुङ्गवंशीय पुष्पमित्र या पुष्य-मित्रका अभ्युदय हुवा था। शुङ्गवंशीय शेष नृपति अति व्यसनासक्त रहे। उसी सुयोगमें उनके कर्मचारी वसुदेवने उन्हें मार (प्राय: १०७ ई०का पूर्वाब्दमें) पाटलिपुत्रका सिंहासन छीना। ऐसे ही समय निःसन्देह शुङ्ग और काण्वोंमें दारुण विद्वेष-वह्नि जल उठा था। जिस समय शुङ्ग और काण्व-वंशने अपना-अपना प्राधान्य रखनेके लिये समरानल ज्वलित किया उसी अवसरपर अन्ध्र या शातवाहन स्व स्व प्रनष्ट गौरव उद्धार करनेके लिये धीरे-धीरे शुङ्गों और काण्वोंके विषय अधिकार करते थे। गृहविवादमें लिप्त रहते शुङ्ग और काण्व द्विज शातवाहनगणके साथ युद्धमें कभी हारे और कभी जीते। अवशेषमें काण्वोंके शेष नृपति सुधर्मा या सुशर्मा राज्यपट छोड़ गये। उसीके साथ मगधसिंहासनपर (प्राय: ६२ ई०के पूर्वाब्दमें) अन्ध्रवंशकी नींव पड़ी। पुराणकारने प्रथम अन्ध्र-नृपति सिमुकको वह यशोमाल्य पहनाया है। वास्तविक सिमुक या सिन्धुक कभी पाटलिपुत्रके सिंहासनपर नहीं बैठे। वह कर्णाटक और महाराष्ट्राञ्चलपर आधिपत्य करते थे। नानाघाटके शिलालेखसे यह प्रमाणित हुवा है। पुराणसमूहकी वंशतालिका और अन्ध्रवंशके राज्य-कालकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि काण्वपति सुशर्माके समय अन्ध्रराज कुन्तल शातकर्णिका अभ्युदय हुआ था। सम्भवत: यही प्रथम मगधराज्य-पर अधिकार करनेसे द्वितीय सिमुक या सिन्धुक नामसे भी पुकारे गये। इसी सिमुक नामके सादृश्य-से कदाचित् पुराणमें भूल पड़ी है। कोई-कोई पुराविद् कहते है कि मगधके थोड़े दिन अन्ध्र-वंशके अधिकारभुक्त होते भी वहां पहुंच उनके कुछ दिन राजत्व रखनेकी बात किसी प्राचीन मुद्रा या पुराकीर्तिसे आजतक नहीं निकली। * उत्तरा-ञ्चलसे एकमात्र 'सात' नामयुक्त अन्ध्रमुद्रा मिली है। यह शेष काण्वराज्यके पराभवकारी हो सकेंगे। वात्सायनने † मगधमें रह वहांके अधिवासियोंका आचार-व्यवहार देख कर कामसूत्र बनाया था। इसी कामसूत्रमें कहा है,—

"कर्तर्या कुन्तल: शातकर्णि: शातवाहनो महादेवीं मलयवतीं (जघान)।"

अर्थात् शातवाहनराज कुन्तल शातकर्णिने (कामकेलिये प्रसङ्गमें) कटारसे राजमहिषी मलय-वतीको मार डाला था। पहले 'सात' नामक उत्तर-भारतीय जिस अन्ध्रमुद्राका उल्लेख है, वही शात-वाहन कुन्तल शातकर्णिकी मुद्रा समझ पड़ती है। इन्हीं कुन्तलके समय अन्ध्रवंशका प्रभाव और

---

* V. A. Smith's Early History of India, 2nd Ed. p. 193.

† कामसूत्रकार वात्स्यायन प्राच्य या मगधवासी थे, उन्होंने जो निज देशाचारविरुद्ध कोई बात लिखी, उसे 'पाश्चात्येषु प्रसिद्ध' बताने-में न रुके।

पराक्रम यथेष्ट रूपसे बढ़ा था। इसी समय भारतके पश्चिम-प्रान्तमें शक, यवन और पह्लववंश धीरे-धीरे शक्तिसञ्चार करते रहे। महाक्षत्रप रुद्रदामको गिरनारगिरि-लिपिसे विदित होता, कि मौर्यसम्राट् अशोकके समय उनके साले यवनराज तुषास्प सौराष्ट्रके शासनकर्ता थे। किन्तु क्रमसे यवनोंका स्थानच्युत कर प्रथम पह्लव और पीछे शकगण उनका राज्य दबा बैठे। उदीयमान शकशक्तिके साथ अन्ध्रराजोंको कुछ काल प्रतिद्वन्द्विता करनी पड़ी थी। शुङ्ग और काण्व-वंशके हाथसे मगध-राजलक्ष्मी अन्ध्रवंशकी अङ्कगता होते भी सन्देह है, कि समस्त आर्यावर्तमें अन्ध्र-प्रभाव फैला सके थे या नहीं। अल्पदिनमें ही शकवंश धीरे-धीरे मथुरा पर्यन्त अधिकार जमा बैठे। आर्यावर्त और दक्षिणापथकी दोनों ओर शकप्रभाव फैलते देख अन्ध्रराज अपने पितृपुरुषोंकी लीलास्थली कुन्तल और प्रतिष्ठान बचानेके लिये ही विशेष मनोयोगी बने थे। सुतरां अल्प दिन बाद ही पाटलिपुत्र छोड़ गोदावरी-तीरस्थ प्रतिष्ठानपुर या पैठान नामक स्थानमें उनकी राजधानी उठ गयी। सारनाथसे निकली शकसम्राट् कनिष्कको अनुशासन लिपिसे मालूम पड़ता, कि पूर्वभारतका कितना ही अंश शकोंके अधिकारमें जा पहुंचा और प्राच्य-भारतमें भी शक-शासन चलानेको क्षत्रप रखा गया था। इसी समयके भारतवर्षकी अवस्थाको देख कर ही वामन-पुराणमें बताया है,—

> "पूर्वे किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृताः।
> अन्ध्रा दक्षिणतो वीराः तुरुष्कास्चापि चोत्तरे॥"

अर्थात् जिस भारतके पूर्वप्रान्तमें किरात, पश्चिममें यवन, दक्षिणमें वीर अन्ध्र एवं उत्तरमें तुरुष्क अवस्थान या आधिपत्य रखते हैं।

सारांश यह है, कि कुषण-सम्राट् कनिष्कका जिस वंशमें जन्म हुवा, पुराण और राजतरङ्गिणीमें वही वंश तुरुष्क बताया गया है। प्रतिष्ठानसे श्रीषेणकी मुद्रा निकली थी। कुन्तल-शातकर्णिके पुत्र श्रीषेणने ही प्रतिष्ठानमें पहुंच फिर राजधानी बनायी। श्रीषेणके प्रपौत्र-पुत्र हालका नाम भारतीय प्राचीन साहित्यमें प्रसिद्ध है। वह प्राकृत भाषामें 'गाथा सप्तशती' नाम्नी आदिरस-घटित काव्य बना चिरस्मरणीय हो गये। उन्हींकी राजसभासे पैशाची भाषामें बृहत्कथा और कातन्त्र या कलाप नामक संस्कृत व्याकरण प्रचलित हुआ। कहनेका अर्थ है, कि इन्हीं अन्ध्रनृपतिके यत्नसे संस्कृत और प्रचलित देशभाषाकी यथेष्ट उन्नति हुई। इससे थोड़े ही काल बाद महायानमत-प्रतिष्ठापक प्रसिद्ध बौद्धाचार्य नागार्जुनका आविर्भाव हुवा। चीना परिव्राजक युअङ्गचुअं ई०के सप्तम शताब्दमें लिख गये हैं, कि शातवाहनराज नागार्जुनके पृष्ठपोषक थे। ब्राह्मणों और श्रमणोंको इस एकसूत्रमें बांधनेके लिये ही नागार्जुनने महायानधर्म फैलाया था। साम्यवादी ब्राह्मण और श्रमणभक्त अन्ध्रराजगणके उत्साहसे ही नागार्जुनका मत अल्प दिनके मध्य ही दाक्षिणात्यमें फैल सका। नागार्जुन देखो।

नागार्जुनके समय ही सौराष्ट्रके शकक्षत्रप प्रबल बन अन्ध्रराज्यका अधिकांश निगल गये थे। इसी समय नागार्जुन अन्ध्रराजसभा छोड़ उत्तर-भारतमें पहुंच शक-सम्राट्के निकट सम्मानित हुये। शक-सम्राट्गणके यत्नसे ही उत्तर-भारतमें महायान मत फैल सका था। पूर्वोक्त हालके बाद मण्डलक शातकर्णिसे चकोर शातकर्णि पर्यन्त अन्ध्र नृप स्व स्व राजपद बचानेके लिये व्यस्त पड़ गये थे। मण्डल शातकर्णिके नामसे मालूम होता, कि उस समय अन्ध्रवंशका प्रभाव इतना घटा, कि वह सौराष्ट्रके शक-क्षत्रपगणकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुआ। अन्ध्रवंशीय १८वें राजा शातकर्णिसे २२वें राजा चकोर शातकर्णिके मध्य एकमात्र १९वें नृपति पुरीन्द्रसेनको छोड़ दूसरा कोई भी अधिक कालतक राज्य भोग करनेको समर्थ न हुवा। शिवस्वामी शातकर्णिने शकप्रभाव मिटानेकी दीर्घकाल चेष्टा की। उसके बाद उनके प्रियपुत्र गोतमीपुत्र शातकर्णि पिताका अभिप्राय पूर्ण करनेमें समर्थ हुये। नासिककी गुहासे इन गोतमीपुत्र शातकर्णिकी सुबृहत् शिलालिपि निकली है। उसमें यह अन्ध्र- नृपति 'क्षत्रियदर्पमानमर्दन,'

'शकयवनपह्लवनिसूदन,' 'अप्राणहिंसारुचि,' 'द्विजवर-कुटुम्बी,' 'खगारातवंश निरवशेषकर,' 'शातवाहन-कुलयशप्रतिष्ठानक', 'असिक-अश्मक-मूढ़क-सुराष्ट्र-कुकुर--अपरान्त--अनूप--विदर्भ--आकर--अवन्तिराज' 'विन्ध्य यारियात्र-सह्य-कृष्णगिरि-मोच--श्रीस्तन-मलय-महेन्द्र-श्रेष्ठगिरि-चकोर-पति' एवं 'त्रिसमुद्रतोयपीत वाहन' इत्यादि समुच्च विशेषणसे विभूषित हुये हैं।*

गोतमीपुत्रके इस संक्षिप्त परिचयसे अच्छी तरह समझ पड़ता, कि जिन शक, यवन और पह्लवने अन्ध्रवंशका अधिकार उठाया और जिन खगारात या सौराष्ट्रके शकक्षत्रप-वंशीय क्षहरात-वंशने शात-वाहनकुलका गौरव बिगाड़ा, उन सबका दर्प गिरा और शकक्षत्रप-वंश बिलकुल मिटा. तीन ओर समुद्र-जल-चुम्बित समग्र दक्षिणापथके वह एकच्छत्र अधीश्वर बने थे। बुद्धके अहिंसा परम धर्मपर उन्हें पूर्ण विश्वास था एवं ब्राह्मणोंके वह पृष्ठपोषक थे। केवल वही नहीं, उनकी माता गोतमी, पत्नी वासिष्ठी एवं प्रियपुत्र पुलुमायी सकल ही जैसे एक ओर बौद्ध धर्मानुरक्त और श्रमणोंके प्रति यथेष्ट दया-दाक्षिण्य एवं ब्राह्मणोंके प्रति भी यथेष्ट भक्ति और चातुर्वर्ण्यकी विशुद्धिरक्षाके लिये जो आग्रह दिखा गये, नानाघाट, नासिक, कार्ली प्रभृति नाना स्थानके आविष्कृत शिलालेखसे वह प्रमाणित हुवा है।

गोतमीपुत्र शातकर्णिके १९वें अङ्कमें उनकी माताने अपनेको महाराजकी माता और राजप्रवरकी पितामही बताया है। इसी शिलालिपिसे प्रमाणित होता है, कि धनकटक नामक स्थानमें गोतमीपुत्रकी राजधानी थी। एवं उनके प्रियपुत्र वासिष्ठीपुत्र पुलुमायी उत्तरांशमें प्रतिष्ठानपुरपर राजप्रतिनिधि रूपसे शासन करते थे।

पहले लिखा है, कि सन् १५१ ई० में यूनानी भौगोलिक टलेमीने दाक्षिणात्यके तीन समसामयिक नृपतिका उल्लेख किया; यथा, पैठानमें Siro Polmaios या श्रीपुलुमायी (२य), हिप्पोकौरा नामक नगरमें Baleokouros या बिलिवायकुर और उज्ज-यिनीमें Tiastanes या चष्टनकी बात आती है। किसी-किसी पुराविद्के मतसे उक्त शकाधिप चष्टन गोतमी-पुत्र शातकर्णिके क्षत्रप थे; फिर किसीके मतमें ही चष्टन शकाब्द-प्रवर्तक समझे जाते हैं। सम्भव है, कि शातवाहनराज गोतमीपुत्र शातकर्णिने शक, यवन, पल्हवादिको हरा जो नूतन अब्द चलाया एवं जो अब्द उनके क्षत्रप उज्जयिनीपति चष्टनने वंशपरम्परासे व्यवहार किया, वही उभय वंशके नामानुसार 'शालि-वाहन' शक-नामसे पुकारा गया होगा।

जो हो, गोतमीपुत्र शातकर्णिने स्वीय प्रभुत्व और गौरव पाया था उनके प्रियपुत्र पुलुमायी वह गौरव अक्षुण्ण रख न सके। उज्जयिनीके शक-क्षत्रप अन्ध्रोंके संघर्षसे बचनेको परस्पर आत्मीयता-सूत्रसे बंध गये। चष्टनके पुत्र जयदामने अपनी पौत्री (रुद्रदामकी कन्या) दक्षमित्राको द्वितीय पुलुमायीके करमें सौंपी थी। इस विवाहके फलसे २य पुलुमायी श्वशुर रुद्रदामके सौभाग्योन्नति-पथमें कितना साहाय्य बने। जयदामके मरनेके बाद उनके पुत्र रुद्रदामने विपुल बल बढ़ा, ३५ शकमें (सन् ११३ ई० में) अपनेको महाक्षत्रप बनाया। धर्मभीरु २य पुलुमायीने रुद्र-दामके उसी अभ्युदयपथमें कोई वाधा न डाली। महिषीके लिये श्वशुरको अवाध्यताको उन्होंने न देखा। किन्तु उसके लिये उन्हें शीघ्र फलभोगना पड़ा। गोतमीपुत्र शातकर्णिने निज बाहुबलसे शकोंके कवलसे जो सकल राज्य छुड़ाये थे, रुद्रदामने एक-एककर वही विपुल जनपद अधिकारभुक्त बनाये। रुद्रदामकी गिरनार-गुहालिपिसे मालूम होता है, कि ७१ शकके (सन् १४९ ई०) पूर्व ही गुजरातसे दक्षिणापथके समस्त उत्तरांशतक भूमि उनके हाथ लग गयी थी। केवल निकट आत्मीयता निबन्धनसे रुद्रदामने अन्ध्रराजको उनके पूर्वाधिकारसे नहीं वञ्चित किया। २य पुलुमाई भी अपना पितृगौरव बचा न सके और श्वशुरहस्तसे अपमानित बन भग्न हृदय-हो प्रायः सन् १४२ ई०में उन्होंने प्राण छोड़े। उनके

* Transactions of the 2nd International Congress of Orientalists, 1874, p. 207-8.

साथ अन्ध्रवंशका पूर्व प्रभाव और प्रतिपत्ति कितनी ही विलुप्त हो गयी। उसके बाद इस वंशके छः नृपति धनकटकके सिंहासनपर बैठे थे सही, किन्तु कोई भी दीर्घकाल निरापदमें राज्यसुख पा न सका। ३१वें नृपति ३य पुलुमायीके साथ अन्ध्रराजवंशका अवसान होता है।

शिलालेख, मुद्रालेख और पुराणोक्त नामका सामञ्जस्यकरके नीचे अन्ध्रराजगणकी तालिका और राज्यकाल दिया जाता है :—

नाम	राज्यकाल	आनुमानिक राज्यारम्भ
१। सिमुक (शिशुक) शातवाहन	२३ वर्ष	२१९ ई० पूर्वाब्द
२। कृष्णराज शातवाहन	१८ ,,	२३७ , ,
३। श्रीमल्ल शातकर्णि	१८ ,,	२१९ , ,
४। पूर्णोत्सङ्ग	१८ ,,	२०१ , ,
५। श्रीशातकर्णि	५६ ,,	१८३ , ,
६। लम्बोदर	१८ ,,	१२७ , ,
७। आपीलक	१२ ,,	१०९ , ,
८। सौदास	१८ ,,	९७ , ,
९। भास्कर	५ ,,	७९ , ,
१०। स्कन्द शातकर्णि	७ ,,	७४ , ,
११। मृगेन्द्र वा महेन्द्र शातकर्णि	३ ,,	६७ , ,
१२। कुन्तल शातकर्णि	८ ,,	६४ , ,
१३। श्रीषेण शातकर्णि	१ ,,	५६ , ,
१४। पुलुमायि (१म) शातकर्णि	४४ ,,	५५ , ,
१५। मेघ शातकर्णि	२९ ,,	२१ , ,
१६। अरिष्टनेमि शातकर्णि	२५ ,,	८ इस्वी .
१७। हाल	५ ,,	३३ , ,
१८। मण्डल शातकर्णि	५ ,,	३८ , ,
१९। पुरीन्द्रसेन	२१ ,,	४३ , ,
२०। सौम्य शातकर्णि	४ ,,	६४ , ,
२१। सुन्दर शातकर्णि	१ ,,	६८ , ,
२२। चकोर शातकर्णि	१/२ ,,	६९ , ,
२३। शिवस्वामी शातकर्णि	२८ ,,	७० , ,
२४। गोतमीपुत्र शातकर्णि	२१ ,,	९८ , ,
२५। वासिष्ठीपुत्र पुलुमायि (२य)	२४ ,,	११९ , ,
२६। शिवश्री शातकर्णि	४ ,,	१४३ , ,
२७। शिवस्कन्द शातकर्णि	८ ,,	१४८ , ,
२८। यज्ञश्री शातकर्णि	१९ ,,	१५५ , ,
२९। विजयश्री शातकर्णि	६ ,,	१७४ , ,
३०। चन्द्रश्री शातकर्णि	३ ,,	१८० , ,
३१। पुलुमायि (३य) शातकर्णि	१७ ,,	१८३ , ,

अन्ध्रभृत्यवंश।

पहले ही कह चुके हैं, कि अन्ध्रराजवंश और अन्ध्रभृत्यवंश स्वतन्त्र हैं। उभयवंशको एक समझ पुरावित् बड़े ही गड़बड़में पड़ गये हैं। ब्रह्माण्ड, मत्स्य प्रभृति पुराणोंने प्रमाण लिखकर बताया है, कि अन्ध्रराजोंके समकालमें ही उनके भृत्यों या कर्मचारियोंमें सात लोगोंको राज्य मिला था। इन अन्ध्रभृत्योंके अन्ध्रसम्राटोंकी अधीनता मानते भी उनका पराक्रम और शक्ति बहुत कम न थी। सम्भवतः कोल्हापुर, नानाघाट प्रभृति अञ्चलोंमें उन्होंने अन्ध्रसम्राट्गणके राजप्रतिनिधि रूपसे अधिकार फैलाया था। पुराणमें इन सात अन्ध्रभृत्यवंशीय नृपतियोंका नामोल्लेख नहीं मिलता। किन्तु हम मुद्रा और शिलालेखके साहाय्यसे सात लोगोंमें पांचका नाम निकाल सके हैं। यथा,—

अन्ध्रभृत्यवंशीय राजा	उनके समसामयिक अन्ध्र-सम्राट्।
१ विलिवायकुर १म	वासिष्ठीपुत्र चकोर शातकर्णि।
२ मठरीपुत्र शकसेन ...	शिवश्री शातकर्णि।
३ माठरीपुत्र सेवलकुर ...	शिवश्री शातकर्णि।
४ विलिवायकूर २य ...	गोतमीपुत्र श्रीशातकर्णि।
५ चतुर्पण ...	यज्ञश्री शातकर्णि।

अन्ध्रभृत्यवंशीय नृपतिगणकी मुद्रामें उनके अन्ध्र अधीश्वरगणका नाम एकत्र पड़नेसे कोई-कोई पुरावित् समस्त अंशको एक व्यक्तिका नाम ठहरा भ्रममें पड़ गया है।* किन्तु उससे पहले डाक्टर भण्डारकरने अन्ध्रभृत्यगणके अन्तिम चतुर्पणकी मुद्रामें "गोतमीपूतस कुमारु जस सातकनी चतुर्पनस"—पाठ देख लिखा है, कि कोल्हापुरके अन्ध्रभृत्य राजप्रतिनिधिगणकी तरह यह (सुपारा) दो नामसे फैली है। उसमें कुमार यज्ञश्री शातकर्णि अधीश्वर और उनके प्रतिनिधि चतुर्पण निकलते हैं।†

* Vincent A. Smith's Early History of India.

† R. G. Bhandarkar's Early History of Dekkan, 2nd. Ed. p. 22.

इसके सम्बन्धमें डाक्टर भाण्डारकरका मत समीचीन होते भी उन्होंने अन्ध्र और अन्ध्रभृत्य उभय वंशको अभिन्न ठहरा प्रकृत इतिहासमें गड़बड़ डाल दिया है। पूर्व ही बताया था, कि अन्ध्र और अन्ध्र-भृत्यवंश एक नहीं होता। अन्ध्र सम्राट्गणके समकाल जिन भिन्नवंशीय सात लोगोंने विभिन्न प्रदेशपर शासन किया, वही प्रकृत प्रस्तावमें अन्ध्र-भृत्य बताये गये हैं।

अन्न (सं० क्लो०) अन्यते प्राण्यते अन प्राणने-न अद्+कर्म्मणि क्तः खिन्नतण्डुल, ओदन। यथा,—

"शस्यं क्षेत्रगतं प्राहुः सतुषं धान्यमुच्यते।
आमं वितुषमित्युक्तं खिन्नमन्नमुदाहृतं॥"

सिद्ध चावल, भात, यव गेहूं प्रभृति अपक्व शस्य। पाक की हुई मिठाई प्रभृति कोई अन्न जो बल पहुंचावे, यथा, पक्वान्न, मिष्टान्न इत्यादि। जल, क्योंकि जल बिना कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। अन्यते प्राण्यते प्रजाभिः। न हि कदाचिदपि जलेन विना जीवन्ति प्राणिनः। इति दुर्गाचार्यः। २ औषधि जात, पृथिवी। (पु०) ३ सूर्यः। मनु प्रभृति प्राचीनोंका मत है कि, उपभोग्य स्त्री, पशु, स्थावर जंगमादिक सब अन्न हैं।

अन्न पृथिवीके तृतीयांश लोकका प्रधान खाद्य है। इसी कारण अन्नमें प्राण बतलाते हैं। अन्न खाया जाता है, और इसीसे प्राणकी रक्षा होती है। भारतवर्ष, चीन, कोचीनचीन, ब्रह्मदेश, श्याम, जापान, मिस्र, दक्षिण केरोलिना, जर्जिया और दक्षिण अमेरिकामें बहुत चावल उत्पन्न होता है। इसलिये भात सब देशोंमें मनुष्योंका प्रधान खाद्य है। किन्तु शीतप्रधान देशोंमें मनुष्य एकबार ही अन्न भोजन करते हैं। इसमें मद्य और श्वेतसार प्रस्तुत करनेके लिये जितने चावलकी आवश्यकता हो, उसे बाद देनेपर भी भोजनके लिये यथेष्ट चावल बच रह सकता है। किन्तु इङ्गलैंडका प्रधान खाद्य मांस तथा रोटी है। रासायनिकोंने परीक्षाकर देखा है कि, अन्नमें निम्नलिखित और भी अनेक पदार्थ हैं—

रस द्रव्य	सैकड़ा	१२.००
यवक्षारजात द्रव्य	सैकड़ा	७.४४
श्वेतसार	,,	७७.६३
तैलवत् द्रव्य	,,	०.७०
क्षारद्रव्य	,,	१.२३

इसलिये अन्नभोजनसे शरीरकी मांसपेशीकी वृद्धि होनेकी अधिक सम्भावना नहीं है। किन्तु उससे शरीरकी चर्बी बढ़ती है अर्थात् तापकी वृद्धि होती है। ग्रीष्मप्रधान देशोंके लिये अन्न विलक्षण सुपथ्य है। पुराने बढ़िया चावलोंका सुसिद्ध भात खानेसे उदरामयका निवारण होता है और उससे यकृत् तथा अन्त्रमें उत्तेजना नहीं होती। इसीसे चिकित्सकोंने विवेचना करके स्थिर किया है, कि भारतवर्षमें अन्नभोजन अधिक उपयोगी है।

अमेरिकामें सेण्टमार्टिन नामक एक सैनिककी पाकस्थलीकी एक ओरसे गोली निकल गयी थी। आहत होनेपर भी उसके प्राण बच गये, किन्तु आहत स्थान किसी भी समय न जुड़ सका। पाकस्थलीके एक पार्श्वका कुछ भाग खाली हो गया। कोई द्रव्य भोजन करनेसे पाकस्थलीमें वह किस तरह तथा कितने कालमें पचता है यह उस खुले स्थानसे अच्छी तरह दिखाई देता था। मनुष्य हर तरहका भोजन करता है, वह कितनी देरमें हजम होता है, इस बातकी जांच करनेके लिये डाक्टर बोमेंटने सेंट-मार्टिनकी पाकस्थलीकी खूब देखभाल की। परीक्षा करनेपर उन्होंने यह लिखा है—

अन्न	१	घण्टा
आंत	,,	,,
अण्ड	१॥	,,
सेव	,,	,,
मृगमांस	,,	,,
यव	२	,,
मत्स्य	,,	,,
दुग्ध	,,	,,
बकरेकी प्लीहा	,,	,,
पेरु मृग	२॥	,,
भेड़का बच्चा	,,	,,

आलू	२॥	घण्टा
सूअरका मांस	,,	,,
गोमांस	३॥	,,
भेड़का मांस	,,	,,
मुर्गीका मांस	,,	,,

इसलिये मालूम हो गया, कि अन्न बहुत जल्दी हजम होता है। हमारे देशमें अन्नके परिपाक होनेमें एक घण्टेसे अधिक समय लगता है।

विलायतमें अन्नसे श्वेतसार प्रस्तुत किया जाता है। जुलाहे तथा धोबी इस श्वेतसारसे कपड़ोंमें कलप देते हैं।

अन्नका गुण—स्निग्ध, बलदायक, द्रवजनक, मूत्रकर तथा धारक। वैद्यकके अनुसार नवीन अन्न श्लेष्मकर, स्वादु, शीतल, मांसवर्द्धक, तथा गुरुपाक और पुराना अन्न—विरस, रूक्ष, सुपथ्य तथा अग्नि बढ़ानेवाला होता है। अतिशय उष्ण अन्न भोजन करनेसे बल नष्ट होता है। शुष्कान्न 'सूखा भात' कहलाता है। यह भात शीघ्र नहीं पचता। अतिशय सिद्ध अन्न शरीरको ग्लानिकर तथा असिद्धान्न अर्थात् कड़ा भात गुरुपाक होता है। वैद्योंका मत है कि, उष्ण अन्न शीतल जलमें धो कर जब भोजन किया जाता है, तब वह शीतल, लघु तथा शीघ्र परिपाक होता है। पर्य्यूषित अर्थात् जलमें भिगोये हुये वासी भातको हमलोग वासी भात कहते हैं। वासी भात रूक्ष तथा त्रिदोष-जनक होता है। भुने हुए चावलोंका अन्न लघु-पाक तथा आग्नेय होता है। द्रवान्न तृप्तिजनक, लघुपाक तथा धारक होता है। इससे क्षुधा और तृष्णा दोनों ही शान्त हो जाती हैं। तरलान्न खानेसे पसीना तथा क्षुधा बढ़ती है। यह वायु तथा मलका अनुलोम है। इससे तृष्णा, ग्लानि, शरीरको दुर्बलता और कुक्षिरोग नष्ट होता है। दुग्धके साथ अन्न मिलाकर खानेसे चक्षुरोग, पित्त, रक्तदोष तथा ज्वर नष्ट होता और बलवृद्धि होती है। मट्ठाके साथ अन्न खानेसे श्रम, अर्श तथा अरुचि नष्ट होती और आहारमें विलक्षण तृप्ति होती है।

नानाविध पीड़ाके कारण मूत्रयन्त्रमें उग्रता होनेसे चिकित्सक मांड़की व्यवस्था करते हैं। पुराना चावल आधी छटांक, एकसेर जल एक ढके हुए बरतनमें २० मिनटतक पकाकर कपड़ेमें मलकर निचोड़ डाले। इसमें कुछ चीनी मिलाकर रोगीको खिलावे। ज्वरसे पीड़ित रोगी यदि अवसन्न पड़ जावे, तो उसमें मांसका शोरबा मिलाकर देना पथ्य होगा और शरीरमें बल बढ़ेगा। गेहूं यव प्रभृति शस्यकी अपेक्षा अन्नमें ग्लूटेन अति अल्प परिमाणमें होता है, इससे यह अधिक अन्त्ररुत्सिक्त नहीं होता। रोगीका उदर स्फीत हो जानेसे अन्नका मांड़ अधिक उदराध्मान नहीं होने देता। किन्तु बहुमूत्ररोगीको अन्न हितकर नहीं हो सकता। बहुमूत्ररोगीके पेशाबके साथ चीनी निकलती है। उधर अन्नमें श्वेतसार अधिक होता है। उदरमें परिपाकके समय यह श्वेतसार चीनी बन जाता है। इसलिये बहुमूत्ररोगीके लिये अन्नभोजन अति कुपथ्य है।

आयुर्वेदमें यह लिखा है,—अन्नकी अपेक्षा पिष्टक अठगुना पुष्टिकर है; पिष्टककी अपेक्षा दुग्ध अठगुना, दुग्धकी अपेक्षा मांस अठगुना, मांसकी अपेक्षा घृत अठगुना और घृतकी अपेक्षा तैलमर्दन अठगुना पुष्टिकर होता है। किन्तु तैल भोजनमें पुष्टिकर नहीं है।

अन्नकाम (सं० पु०) भोजनका इच्छुक। जिसे भूख लगी हो। भूखा।

अन्नकाल (सं० पु०) भोजनका समय।

अन्नकिट्ट (सं० क्ली०) अन्नस्य किट्टं मलम्। अन्नमल।

अन्नकूट (सं० पु०) अन्नकी राशि। एक उत्सव है। यह वैष्णवोंके यहां विशेष करके कार्तिक शुक्ल प्रतिपदाको मनाया जाता है। उस दिन अनेक प्रकारके सुन्दर सुन्दर भोजन बनाकर परमेश्वरको भोग लगाते हैं।

अन्नकोष्ठ (सं० पु०) अन्नस्य कोष्ठ। ६-तत्। अन्न रखनेका बरतन। गोला, कोठो। खत्तो।

अन्नगति (सं० स्त्री०) जानवरोंके गलेके भीतरको वह राह जिससे चारा पानी पेटमें जाता है।

अन्नगन्धि (सं० पु०) अतिसार रोग। दस्तकी बीमारी।

अन्नछत्र (सं० पु०) भूखे कङ्गालोंको भोजन देनेका स्थान।

अन्नज, अन्नजात (सं० त्रि०) जो अन्नसे पैदा हो।

अन्नजल (सं० पु०) आब दाना। दाना पानी।

अन्नजित् (सं० त्रि०) विजय द्वारा भोजन प्राप्त-कारी, जो जीतकर खाना हासिल करे।

अन्नजीवन (सं० त्रि०) अन्न जिसका जीवन हो, जो अन्न ही खाकर रहता हो।

अन्नतेजस् (सं० त्रि०) जिसमें अन्नकी शक्ति हो।

अन्नद (सं० पु०) अन्नं ददाति अन्न-दा-क। अन्न-दाता, अन्न-देनेवाला। प्रतिपालन करनेवाला।

अन्नदा (सं० स्त्री०) भगवतीकी मूर्तिविशेष। अन्नपूर्णा। अन्नपूर्णा देखो।

अन्नदाता (सं० पु०) अन्नद देखो।

अन्नदान (हिं० पु०) अन्न दान करना, भोजन देना।

अन्नदास (सं० पु०) अन्नेन पालितो दासः। खाली पेटभर खानेपर जो नौकरी करे।

अन्नदेवता (सं० पु०) खानेकी वस्तुओंके देवता।

अन्नदोष (सं० पु०) अन्नेन अन्नभोजनप्रतिग्रहा-दिना वा जातो दोषः। ३-तत्। अभक्ष्य अन्न खानेका पाप। निषिद्ध स्थान या मनुष्यका भोजन करनेसे जो दोष लगे।

अन्नद्वेष (सं० पु०) भूखका अभाव, भोजनकी अनिच्छा।

अन्ननाली (हिं० स्त्री०) गलेके नीचेकी वह राह जिससे अन्न आदि पेटमें जाते हैं।

अन्नपति (सं० पु०) भोजनके स्वामी। शिव, सावित्री और अग्निकी उपाधि।

अन्नपाक (सं० पु०) अन्नस्य पाकः। ६-तत्। चावल आदि पकाना। भात बनाना। पाकस्थलीमें अन्नका पचना।

हम लोग जिस तरहका अन्न खाते हैं, उसका पकाना कठिन नहीं है। दूने जलके साथ हांड़ीमें चावल पकानेसे ही भात तय्यार हो जाता है, हांड़ीमें सब जगह समान जल रहने और सब जगह समान ताप लगनेसे एक साथ ही सब चावल पक जाते हैं। फिर हांड़ीका एक चावल दाब कर देखनेसे ही मालूम हो जाता है, कि सब चावल पक गये हैं, कि नहीं। किन्तु यदि हांड़ी एक ओर ऊंची और दूसरी ओर नीची हो, तो सब ओर समान जल नहीं रहता, और चूल्हेमें एक ओर आंच लगनेसे हांड़ी भरका अन्न एक बार ही नहीं पकता। एक संस्कृत श्लोक है,—

"स्थालीस्थास्तण्डुला एते सर्व्वे विक्लित्तिभागिनः।
समकालाग्निसंयोगभागित्वात् प्रतिपन्नवत्॥"

एक चावल पक जानेसे ही निश्चित हो जाता है, कि सारी हांड़ीके चावल पक गये हैं। कारण, सब चावलोंमें एक ही समय आंच दी जाती है।

नया चावल शीघ्र पक जाता है, इसलिये उसमें थोड़ा जल देकर पकाना चाहिये। पुराना चावल कुछ देरसे पकता है, इसलिये उसके पकानेके लिय अपेक्षाकृत अधिक जल देना चाहिये। चावल पक जानेपर हमलोग मांड़को निकाल देते हैं, पर चावलमें मांड़ लपटा रहनेके लिये थोड़ा ही जल देना उचित है। चावलके ऊपर प्रायः पांच अंगुली जल रहनेसे अन्न सुसिद्ध होता है। और मांड़ भी नहीं निकालना पड़ता। मांड़सहित भात खाना ही उचित है। उससे शरीर पुष्ट होता है।

उदरपीड़ा आदिके रोगीके लिये मन्द-मन्द आंचमें चावल पकाना चाहिये। कण्डेकी गोल और कुछ ऊंची अहरी बनाने। फिर उसे जलाकर उसके ऊपर जलसे आधा भरा हुआ भात बनानेका बतरन रख दे। उधर जबतक जल गर्म हो तबतक इधर पतले पुराने चावलको जलके साथ पत्थरपर रगड़े। जब चावल कुछ घिस जांय तब उन्हें बरतनमें डालकर ढक देना। बहुत देर तक मन्द-मन्द आंच लगनेपर जब चावल पक जाय, तो बरतनको उतार लेना। ऐसा भात बहुत ही हलका पथ्य होता है।

मोगल प्रभृति कोई-कोई जाति कई तरहके मसाले देकर अनेक प्रकारसे भात बनाते हैं। वह

चावल भारी होता है, शीघ्र पचता नहीं, पर खानेमें बहुत अच्छा लगता है। यहां मोगलोंके भात बनानेकी प्रणाली लिखी जाती है।

पतला और साफ पुराना अरवा चावल एक सेर। अच्छा घी एक पाव। चावल और घी दोनोंको एक साथ मिलाकर पत्थरपर बहुत देर तक रगड़ना। इस तरह रगड़ लेनेपर उस चावलके साथ केशर आधा तोला, लवङ्ग चौथाई तोला, छोटी इलायची चौथाई तोला, दालचीनी चौथाई तोला, पिस्ता दो तोला, कटी हुई गरी दो तोला और अदरख दो तोला मिला देना। फिर उसे एक हांड़ीमें रख उसमें पतला मसालेदार जल छोड़ देना। इसके बाद हांड़ीको आगपर चढ़ा और ढककर मन्द मन्द आंच लगने देना। जब चावल कुछ पक जाय, तो उसे उतार लेना और उसके ऊपर और चारों ओर अङ्गार रख देना। इस तरह चावल धीरे-धीरे पककर सुसिद्ध हो जायगा।

हम लोगोंके शास्त्रानुसार श्राद्धका अन्नपाक करनेका अधिकारी सपिण्ड ही है। दूसरा कोई उस चावलको नहीं पका सकता।

शाकस्थलीमें किस तरह अन्न पचता है, इसका विस्तारित विवरण परिपाक शब्दमें और कुछ विवरण अन्न शब्दमें देखो।

अन्नपानी—अन्नजल देखो।

अन्नपूर्णा (सं० स्त्री०) अन्नं पूर्णं यया। अन्नसे पूर्ण भगवतीको मूर्त्तिविशेष; काशीश्वरी; अन्नकी अधिष्ठात्री देवी। अन्नपूर्णा देवी काशीमें प्रतिष्ठित हैं। शङ्कराचार्यसे पहले अर्थात् कमसे कम १५०० वर्ष हुए काशीमें अन्नपूर्णाकी मूर्त्ति स्थापित की गई थी। इसका विस्तारित विवरण काशी शब्दमें देखो। इस समय वङ्गदेशके नाना स्थानोंमें देवीजीके उत्सव और नवान्नके समय लोग मट्टीकी अन्नपूर्णा बनाकर, पूजा करते हैं।

अन्नपूर्णामूर्त्ति क्यों हुई, इसके भीतर अधिक कोई बात नहीं है। तुम्हारे हमारे साधारण मनुष्योंके घरमें उठते बैठते दोनों बेला जो कुछ होता है, गौरीशङ्करमें भी वही झगड़ा हुआ था। उसीसे यह अन्नपूर्णामूर्ति हुई।

शिव तो सहज ही भंगेड़ी भोला—लोगोंके द्वारके भिखारी हैं। भिक्षुकको सुख कहां? कभी भिक्षा मिली और कभी न भी मिली। जब न मिली तब उपवास करना पड़ा। इसीसे पार्वतीसे रात दिन झगड़ा हुआ करता था। एक दिन शिव भिक्षा मांगने गये। द्वार द्वार घूम आये, पर त्रिभुवनमें कहीं भी उन्हें भिक्षा न मिली। उधर महामाया अपनी माया प्रकाशकर काशीमें अन्नपूर्णा होकर बन बैठीं। जिनके घरमें आप ही अन्न नहीं है, वह अकातर भावसे संसारके मनुष्योंको अन्न बांट रही हैं। इतनेमें शङ्कर वहां जा पहुंचे। पद्मासनपर अन्नपूर्णा विराज रही हैं। बायें हाथमें अन्न व्यञ्जन आदिका थाल है, और दाहिनेमें चमचा। सामने पञ्चानन महेश्वर खड़े अन्नदासे अन्नभिक्षा ले रहे हैं। वही विचित्र प्रणयप्रतिमा यह अन्नपूर्णामूर्ति है।

अन्नपूर्णाके ध्यानमें लिखा है,—

"रक्तां विचित्रवसनां नवचन्द्रचूड़ा-
मन्नप्रदाननिरतां स्तनभारनम्राम्।
नृत्यन्तमिन्दुसकलाभरणं विलोक्य
हृष्टां भजे भगवतीं भवदुःखहन्त्रीम्॥"

अन्नपूर्णा देवी रक्तवर्ण और विचित्र वसन धारण किये हैं। उनके ललाटमें अर्द्धचन्द्र सुशोभित है। वह सदा अन्न वितरण किया करती हैं। उनका शरीर स्तनभारसे झुक गया है। वह नृत्यपरायण एवं चन्द्रखण्डभूषित महादेवको देखकर प्रसन्न हुई हैं। उन्हीं भवदुःखहारिणी भगवतीका भजन करता हूं।

चैत्रमासकी शुक्लाष्टमीको पूजाकी विधि है। मालूम होता है, रोमवासी हमारे देशमें वाणिज्य करनेके लिये आकर हमारी अन्नपूर्णाकी पूजा-पद्धति सीख गये थे। हमारी अन्नपूर्णाके नामके साथ रोमक 'अन्नपेरेणा' देवीके नामका सम्पूर्ण सादृश्य है। रोमक लोगोंकी यह अन्नपेरेणा देवी अन्न वितरण करती थीं। आभेण्टाइन पर्वतपर जानेसे रोमक लोगोंको

इन देवीने अन्न दिया। हमारी अन्नपूर्णा देवीकी पूजा चैत्रमासकी शुक्लाष्टमीको होती है। रोमक लोगोंकी अन्नपेरेणा देवीकी पूजा भी चैत्रमासमें ही होती थी। बाविलनमें भी अन्न नाम्नी एक देवी थीं।

अन्नपूर्णेश्वरी (सं० स्त्री०) अन्नपूर्णा चासौ ईश्वरी च। भैरवी विशेष; शिवपत्नी; अन्नपूर्णा।

अन्नपूर्वा (सं० स्त्री०) दुर्गाका एक नाम।

अन्नपेय (सं० पु०) वाजपेय यज्ञ।

अन्नप्राशन (सं० क्ली०) प्रथमं अशनं प्राशनम्। छठे वा आठवें मासमें विधानपूर्वक बालकका प्रथम अन्नभक्षण, दश संस्कारके अन्तर्गत संस्कार विशेष; अपने अपने कुलाचारके अनुसार कोई छठे और कोई आठवें मासमें बालकका अन्नप्राशन करते हैं; चलित भाषामें इसे 'पसनी' वा 'पेहनी' कहते हैं।

"षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूड़ा कार्य्या यथाकुलम्॥
एवमेनः शमं याति वीजगर्भसमुद्भवम्।" (याज्ञवल्क्य १।१२)

छः महीनेमें सन्तानका अन्नप्राशन करना, कुलाचार क्रमसे चूड़ा संस्कार करना; इस तरह संस्कारकार्य करनेसे शुक्रशोणितजात पाप नष्ट हो जाता है।

जिस तरह छः और आठ मासमें पुत्रके अन्नप्राशनकी विधि की गई है, उसी तरह पांचवें वा सातवें मासमें कन्याके अन्नप्राशनका विधान है। छः महीनेमें बालकका चन्द्रमा शुद्ध होनेसे रिक्ता (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) भिन्न तिथिमें; शुक्ल पक्षमें; बुध, रवि, शुक्र, सोम, वृहस्पतिवारको; एवं अश्विनी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्या, मघा, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, श्रवणा, धनिष्ठा, उत्तरभाद्रपद, रेवती—इन सब नक्षत्रोंमें अन्नप्राशन विहित है। कृत्यचिन्तामणिके मतसे द्वादशी, सप्तमी, नन्दा, रिक्ता एवं पांच पर्व अन्नप्राशनमें निषिद्ध हैं एवं नक्षत्रवेध अर्थात् सप्तशलाकावेध भी निषिद्ध है।

शास्त्रमें ऐसी व्यवस्था है, कि सन्तानके भूमिष्ठ होनेपर नाड़ी काटनेके पहले जातकर्म करना उचित है। ग्यारह दिनमें नामकरण, और चार मासमें निष्क्रमण संस्कार करना चाहिये। किन्तु अब इन सब क्रियाओंका चलन नहीं है। अन्नप्राशनके समय पूर्वापर यह सब संस्कार किये जाते हैं। और कितनोंका तो अन्नप्राशन होता ही नहीं। ब्राह्मण होनेसे यह सब क्रिया यज्ञोपवीतके समय सम्पन्नकी जाती हैं।

अन्नप्राशनादि शुभ कर्मके पहले नान्दीश्राद्ध किया जाता है। उसके बाद मही गन्धादि द्वारा अधिवास। अधिवासका विवरण दुर्गोत्सवमें देखो। मालूम होता है, देहका दोष खण्डन करना एवं शरीरको सुवासित और सुसज्जित करना ही अधिवासका उद्देश्य है।

अन्नप्राशनके समय यदि दांत निकल आवें, तो स्त्रियां उसे अमङ्गल समझती हैं। इसीसे अन्नप्राशनके समय बच्चेसे कुत्तेके गलेमें फूलोंकी माला पहना कर वह दोष निवारण कर दिया जाता है। यह केवल स्त्रियोंका व्यवहार है और वङ्गदेशमें सर्वत्र प्रचलित भी नहीं है।

उसके बाद शिशुको स्नान कराकर उत्तम वस्त्र आभूषण पहनाये जाते हैं। फिर अन्नदाता लड़केको गोदमें लेकर धानका लावा, कौड़ी, सन्देश मिठाई, लड्डू, पैसा आदि लुटाते लुटाते कुछ दूर जाते हैं। इधर कई तरहके बाजे बजते रहते हैं।

धानका लावा लुटानेके बाद नाना प्रकारके अन्न व्यञ्जन और मिष्टान्नसज्जित पात्रके पास बैठकर मन्त्रपाठपूर्व्वक बालकके मुहमें अन्न दिया जाता है। सन्तानके पिताको छोड़ मामा अथवा और कोई आत्मीय अन्न चटाता है। फिर आचमन करा देनेके उपरान्त बालकके सामने दावात, कलम, पुस्तक आदि नानाप्रकारकी वस्तु रख दी जाती हैं। लोगोंका ऐसा विश्वास है, कि बच्चा पहले जिस वस्तुमें हाथ लगाता है, उसीमें उसकी आसक्ति होती है।

अन्नबुभुक्षु (वि०) भूखा; भोजनका इच्छुक।

अन्नभक्त (सं० त्रि०) अन्नेन भक्तः सेवकः। अन्न देकर पाला हुआ दास।

अन्नभक्षण (सं० पु०) अन्न खाना।
अन्नभाग (सं० पु०) भोजनका अंश।
अन्नभोक्तृ (सं० पु०) अन्न-भुज-तृच्। अन्नखानेवाला; समाजमें जो लोग एक दूसरेका अन्न खाते हैं।
अन्नमय (सं० त्रि०) अन्नस्य विकारः अन्न विकारार्थे मयट्। खाद्यसामग्रीसे प्रस्तुत, भोजनकी सामग्री अथवा भातका बना हुआ, भोजन सामग्रीका बाहुल्य। (पु०) स्थूल शरीर।
अन्नमयकोष (सं० पु०) अन्नमयस्य कोष इव। स्थूल शरीर; वह जो अन्नसे पोषा जाय। बौद्ध-शास्त्रके मतसे रूपस्कन्द, वेदान्तके मतानुसार पांच कोशोंमें प्रथम।
अन्नमल (सं० क्लो०) अन्नका निःसारित रस, मांड़, मद, यव आदि अन्नोंकी बनी सुरा, कांजी, विष्ठा।
पापका नाम मल है, और सुरा भी मल है, इसीसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य, इन तीन जातियोंको सुरापान न करना चाहिये।
अन्नरस (सं० पु०) अन्नस्य रसः सारांशः स्वादो वा। भुक्त अन्नका सारांश, जठरानलद्वारा अन्न परिपाक होकर जो अंश दूध सा हो जाता है (chyle); अन्नका स्वाद, वह वस्तु जो पोषण करती है।
अन्नलिप्सा (सं० स्त्री०) भोजनकी इच्छा, भूख।
अन्नवस्त्र (सं० क्लो०) जीवनकी आवश्यकीय वस्तु, खाना कपड़ा।
अन्नवहनाली (सं० स्त्री०) पाकस्थली, गलेकी नली, (Alimentary Canal) आंत आदि, जहां खाई हुई चीज जाकर निकल जाती है।
अन्नवाहिस्रोतस् (सं० क्लो०) नहर, नाला, जानवरोंके गलेकी वह नाली जिससे चारा पानी पेटमें जाता है।
अन्नविकार (सं० पु०) अन्नस्य विकारः विकृतिः। रक्त प्रभृति सप्त धातु; अन्नका बदला हुआ रूप, रेतः, शुक्र, अनपचसे पेटकी गड़बड़ी।
अन्नविद् (सं० त्रि०) भोजनकी सामग्रीका पहचाननेवाला, जिसके अधिकारमें खाद्य वस्तु हो।
अन्नशेष (सं० पु०) बची हुई वस्तु; खराब मांस, सड़ा हुआ मांस, मार डाले हुए पशुका वह अंश जो काम लायक न हो, निकम्मी चीज, बेकार वस्तु।
अन्नसत्र (सं० क्लो०) भूखों और कङ्गालोंको भोजन देनेका स्थान, अन्नक्षेत्र।
अन्नसंस्कार (सं० पु०) भोजनकी सामग्री अर्पण करना; भोजनकी वस्तुको पवित्र करना।
अन्नहर्त्री (सं० स्त्री०) भोजनकी सामग्री हर लेनेवाला; खानेकी चीज ले लेनेवाला।
अन्नहोम (सं० पु०) अश्वमेधसे सम्बन्ध रखनेवाला होम।
अन्ना (हिं० स्त्री०) १ धाय, बच्चोंको दूध पिलानेवाली औरत, दाई। २ सोना चांदी आदि गलानेकी अंगीठी।
अन्नाच्छादन (सं० क्लो०) अन्न वस्त्र, खाना कपड़ा।
अन्नाद (सं० त्रि०) अन्नमत्ति अद भक्ष पर्यायात् बाहुलकात् ण। अन्नभोजी, अन्न खानेवाला, विष्णुका एक नाम।
अन्नादन (सं० क्लो०) भोजन करना, खाना।
अन्नादिन् (सं० त्रि०) अन्नमत्ति भुङ्क्ते अन्न-अद-णिनि। अन्नभक्षणशील, अन्नभोजी, अन्नखानेवाला।
अन्नाद्य (सं० क्लो०) अन्नरूपम् आद्यं भक्ष्यम्। अन्नरूप भक्ष्य द्रव्य, साधारण भोजनकी सामग्री, अन्न प्रभृति वस्तु।
अन्नाद्यकाम (सं० त्रि०) भोजनका इच्छुक, भूखा।
अन्नायुस् (सं० त्रि०) अन्नमायुर्जीवनसाधनं यस्य। अन्न खाकर जीवन धारण करनेवाला।
अन्नार्थिन् (सं० त्रि०) भोजन मांगनेवाला, भीख मांगनेवाला, भिखमङ्गा।
अन्नावृध् (सं० त्रि०) अन्नं वर्द्धतेऽनेन अन्न-वृध-क्विप्। अन्नवर्द्धक; अन्न बढ़ानेवाला, भोजन बढ़ना।
अन्नाशन (सं० क्लो०) अन्नस्य अशनं विधानेन आद्यभक्षणम्। अन्नप्राशन, पसनी, पेहनी। विशेष विवरण अन्नप्राशनमें देखो।
अन्नाहारिन् (सं० त्रि०) अन्न ही है आहार जिसका; अन्न खानेवाला।

अन्य (सं० त्रि०) अन-यक् औणादिकः। भिन्न, इतर, असदृश्य, अपर, दूसरा, और कोई, कईमें एक।

अन्यकाम (सं० त्रि०) दूसरेसे प्यार करनेवाला, औरको चाहनेवाला।

अन्यकारुक (सं० पु०) अन्यत् विकृतं करोति कृ-उण्। विष्ठामल, जो अन्य प्रकार करे, जो दूसरी तरह करे।

अन्यकारुका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका कीड़ा जो मलमें पैदा होता है, मलका कीड़ा।

अन्यकृत (सं० त्रि०) दूसरेका किया हुआ, किसी औरका किया हुआ।

अन्यक्षेत्र (सं० क्ली०) दूसरी सीमा, दूसरी जमीन।

अन्यग, अन्यगामिन् (सं० त्रि०) व्यभिचारी, दूसरे के पास जानेवाला।

अन्यगोत्र (सं० त्रि०) अन्यकुलका, दूसरे खानदानका, दूसरे गोत्रका।

अन्यच्च (क्रि० वि०) अन्य भी, और भी।

अन्यचित्त (सं० क्ली०) अन्यत् अन्यथाभूतं चित्तम्। विषयकी आलोचनामें असमर्थ चित्त, अन्यमनस्क, वह जिसका मन किसी दूसरे वा दूसरी चीजपर लगा हो।

अन्यज, अन्यजात (सं० त्रि०) दूसरे किसीका वा दूसरे खानदानका जन्मा हुआ।

अन्यजन्मन् (सं० त्रि०) दूसरा जन्म, फिर जन्म लेना।

अन्यत् (सं० त्रि०) कोई और, दूसरा। अन्य शब्द देखो।

अन्यत्काम (सं० त्रि०) किसी दूसरी वस्तुका, किसी दूसरी चीजकी इच्छा करनेवाला, किसी और चीजका चाहनेवाला।

अन्यत्कारक (सं० त्रि०) अन्यस्य कारकः। वह जो अन्यकार्य करे, दूसरा काम करनेवाला।

अन्यत्क्री (सं० त्रि०) पढ़ने आदिमें भूल करनेवाला।

अन्यतम (सं० त्रि०) अन्य-डतमच्। अनेकमेंसे निर्द्धारित एक वस्तु वा व्यक्ति; बहुतमेंसे एक चीज वा आदमी।

अन्यतरेद्युस् (सं० अव्य०) अन्यतरस्मिन्नहनि-एद्युस्। अन्यतर दिवसमें, अन्यदिनमें, दूसरे दिन।

अन्यतस् (सं० अव्य०) अन्य सप्तम्यर्थे तसिल्। अन्यसे दूसरेसे इत्यादि। अन्नतस् देखो।

अन्यतस्त्य (सं० अव्य०) अन्यतोऽन्यस्मिन् स्वेतरपक्षे भवः अन्यतस्-त्यप्। शत्रु, विपक्ष, स्वपक्षभिन्नजात।

अन्यतोपाक (सं० पु०) नेत्रकी वह पीड़ा जो भौंह, दाढ़ी और कान वग़ैरहमें वायुके घुस जानेसे उत्पन्न होती है।

अन्यत्र (सं० अव्य०) अन्यस्मिन् अन्य-त्रल्। अन्य समयमें, अन्य देशमें, और कहीं, दूसरी जगह।

अन्यत्वभावना (सं० स्त्री०) जैनशास्त्रके मतानुसार जीवात्माको शरीरसे भिन्न समझना।

अन्यथा (सं० अव्य०) अन्य प्रकारे थाल्। अन्य प्रकार, निष्कारण, वितथ, मिथ्या, असत्य, विपरीत, औरका और, अभाव, विरोध, दुष्ट।

अन्यथाकारम् (सं० अव्य०) अन्यथा-णमुल्। जो काम जिस तरह करना चाहिये उससे विपरीत। नियमविरुद्ध।

अन्यथाख्याति (सं० स्त्री०) अन्यथा अन्यरूपेण जाता ख्यातिः ज्ञानम्। भ्रमात्मक ज्ञान, गलत खयाल। अप्रकृत वस्तुको प्रकृत वस्तु समझना। जैसे रज्जु सर्प नहीं है, अथच रज्जुमें रज्जुज्ञान न होकर जो सर्प-ज्ञान होता है, इसी मिथ्याज्ञानको अन्यथाख्याति कहते हैं। शरीर आत्मा नहीं है। आत्मा और शरीर दो पृथक् पृथक् पदार्थ हैं। ऐसे स्थानमें यद्यपि कहा जाय—'मैं गौरवर्ण हूं।' तो इसे भ्रमात्मक ज्ञान अर्थात् अन्यथाख्याति कहेंगे। कारण, 'मैं' ऐसा कहनेसे मेरी आत्माका ही बोध होता है। अतएव आत्मा कभी गौरवर्ण नहीं हो सकती। प्रकृत पक्षमें मेरा शरीर ही गौरवर्ण है।

पुनश्च, ह्रदमें वह्नि नहीं रहता। अतएव 'ह्रदो वह्निमान्' ऐसा विश्वास करनेसे उसे भ्रमात्मक ज्ञान कहेंगे, सुतरां ऐसे भ्रमात्मक ज्ञानको अन्यथाख्याति कहते हैं।

मीमांसक लोग भ्रम नहीं मानते। वह सब ऐसे ज्ञानको 'असंसर्गाग्रह' कहते हैं। 'ह्रदो वह्निमान्' ऐसा कहनेसे वह सब ह्रद और अग्नि दोनों

विद्यमान हैं, ऐसा स्वीकार करते हैं। किन्तु ह्रदमें अग्नि है, ऐसा ज्ञान स्वीकार नहीं करते। परन्तु ह्रदमें वह्निके संसर्गाभावका ज्ञान नहीं होता। इसीसे इसका नाम असंसर्गाग्रह है।

अन्यथानुपपत्ति (सं० स्त्री०) अन्यथा अन्यप्रकारेण न उपपत्तिः। किसी पदार्थके अभावमें किसी और पदार्थकी उपपत्ति। मीमांसक मतसे अन्य प्रकारसे उपपत्ति अर्थात् सिद्धान्तका अभाव। जैसे,—'यह हृष्ट-पुष्ट मनुष्य दिनमें भोजन नहीं करता।' विना भोजन किये मनुष्य कभी हृष्टपुष्ट हो नहीं सकता। सुतरां इस अनुपपत्ति ज्ञानसे यह स्थिर होता है, कि यह हृष्टपुष्ट मनुष्य तब रात्रिमें अवश्य ही भोजन करता है।

मीमांसक लोग इस अनुपपत्ति ज्ञानको अर्थापत्ति प्रमाण स्वीकार करते हैं। न्यायमतसे, अर्थापत्ति अतिरिक्त प्रमाण नहीं है, यह केवल अनुमान मात्र है। कारण, यह हृष्टपुष्ट मनुष्य रातमें भोजन करता है, कि नहीं, यह किसीने प्रत्यक्ष नहीं देखा। किन्तु भोजन न कर अनाहार रहनेसे शरीर सूख जाता है और भोजन करनेसे शरीर हृष्टपुष्ट होता है। इसीसे उसके शरीरकी पुष्टता देखकर अनुमान किया जाता है, कि वह रातमें भोजन करता है।

अन्यथाभाव (सं० पु०) अन्यथा अन्यरूपेण भावः। भावान्तर, जिसका जैसा भाव है, उसके उस भावका अन्यरूप हो जाना।

अन्यथाभूत (सं० त्रि०) अन्यथा अन्यप्रकारेण भूतः। प्रकारान्तर प्राप्त। औरका और हो गया,—दूसरी तरहका हो गया।

अन्यथावृत्ति (सं० स्त्री०) अन्यथा अन्यरूपेण वृत्तिः। अन्यथास्थिति। अन्य प्रकारका हो जाना।

अन्यथासिद्ध (सं० त्रि०) अन्यथा अन्यप्रकारेण सिद्धम्। जो पदार्थ अन्य प्रकारसे सिद्ध हो, असम्बद्ध कारणसे सिद्ध।

न्यायादिके मतसे जिस पदार्थके न रहनेपर भी अन्य प्रकारसे कार्यकी सिद्धि होती है, वैसे पदार्थ-की उस कार्य्यका अन्यथासिद्ध कहते हैं। जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है, किन्तु घड़ा बनानेकी मट्टी गधा ढो लाता है। पर गदहेपर न लाद लाकर दूसरी तरहसे भी मट्टी लाई जा सकती है, इससे गर्दभ अन्यथा सिद्ध है। इस अन्यथासिद्ध धर्मको अन्यथा-सिद्धि कहते हैं।

किसी कार्य्यको सिद्ध करनेके निमित्त पूर्ववर्ती जो जो पदार्थ नितान्त आवश्यक हैं, अर्थात् जिस पदार्थके रहनेसे वह कार्य्य सिद्ध होता है और न रहनेसे सिद्ध नहीं होता, वैसे पदार्थको कारण कहते हैं। उस कारणका एक विशेष भेद ही उक्त अन्यथासिद्धरूप धर्म है। वही धर्म जिसमें रहता है वही अन्यथा-सिद्ध है। सुतरां कारण भिन्न सभी पदार्थ अन्यथा-सिद्ध कहे जाते हैं।

अन्यथासिद्ध पांच प्रकारका है। १म—कारण-वृत्ति वा कारणतावच्छेदक रूप धर्म। जैसे दण्डसे चाक घुमानेसे घट बनता है, इसलिये दण्ड घटका कारण हो सकता है। किन्तु दण्डका जो धर्म दण्डत्व है, वह घटका कारण नहीं हो सकता, इसीसे दण्डत्वको अन्यथासिद्ध कहते हैं।

२य—कारणका गुण। जैसे दण्डका काला वा श्वेतवर्ण, किंवा अन्य प्रकारका गुण घटका कारण नहीं हो सकता, इसलिये कारणका गुण अन्यथा-सिद्ध है।

३य—जिस पदार्थमें कारणत्व ज्ञान करनेसे अन्य पदार्थका कारणत्व ज्ञान आवश्यक करता है। जैसे, आकाशमें घटत्वका कारण-ज्ञान करनेसे शब्दके कारणत्वके ज्ञानकी अपेक्षा करता है। सुतरां आकाश अन्यथासिद्ध है।

४र्थ—जिसमें कारणत्व-ज्ञान करनेसे कारणके कारणत्व-ज्ञानकी अपेक्षा होती है। जैसे कुम्भकार घट-निर्माण करता है। इस स्थलमें कुम्भकार घटका कारण कहा जाता है। किन्तु कुम्भकारका पिता न रहता, तो कुम्भकारका जन्म न होता। सुतरां कुम्भकारका पिता कारणका कारण है। इसलिये इसे अन्यथासिद्ध कहते हैं।

५म—जिस कार्यके निमित्त पूर्वमें जो जो पदार्थ नितान्त आवश्यक होता है, वैसे पदार्थसे भिन्न अन्य

पदार्थ। जैसे घर निर्माण करनेके लिये मट्टी, जल, दण्ड और चक्रको नितान्त आवश्यकता है। किन्तु मट्टी लानेके लिये गर्दभादि नितान्त आवश्यक नहीं हैं। इसलिये इसे अन्यथासिद्ध कहते हैं।

अन्यथासिद्धि (सं० स्त्री०) अन्यथा अन्यप्रकारेण सिद्धिः। अन्यप्रकारसे सिद्धि, हेतुका दोष। हेतुका आभास-विशेष।

अन्यदर्थ (सं० पु०) अन्यश्चासौ अर्थः प्रयोजनश्चेति। भिन्नार्थ, दूसरा अर्थ, दूसरा मानी, दूसरा मतलब।

अन्यदा (सं० अव्य०) अन्यस्मिन् काले दा। अन्यमें समयमें, कालान्तर, दूसरे वक्त।

अन्यदाशा (सं० स्त्री०) अन्या चासौ आशा चेति। अन्य आशा, दूसरी उम्मेद।

अन्यदाशिस् (सं० स्त्री०) अन्या चासौ आशीश्चेति। अन्य आशीर्वाद, दूसरा आशीर्वाद।

अन्यदास्था (सं० स्त्री०) अन्यस्मिन् आस्था। अन्यमें आस्था, अन्य विषयमें यत्न।

अन्यदास्थित (सं० स्त्री०) अन्यमास्थितः। अन्य-रूप प्राप्त, दूसरी तरहसे मिला हुआ।

अन्यदीय (सं० त्रि०) अन्यस्येदं गहा० छ दुक् च। अन्य सम्बन्धी, दूसरेके सम्बन्धका।

अन्यदुत्सुक (सं० त्रि०) अन्यस्मिन् उत्सुकम्। अन्य विषयमें उत्सुक, अन्य विषयमें उत्कण्ठित।

अन्यदूति (सं० स्त्री०) अन्या चासौ ऊतिश्चेति। अन्य रक्षा, दूसरा बचाव।

अन्यदुर्वह (सं० त्रि०) जो दूसरेसे सहना कठिन हो, जो दूसरेसे जल्द बरदाश्त न किया जाय।

अन्यदेवता (सं० त्रि०) अन्यदेवसमर्पित, जो दूसरे देवताको समर्पित किया जाय।

अन्यदेशीय (सं० त्रि०) दूसरे देशका, परदेशका, परदेशी।

अन्यद्राग (सं० पु०) अन्यस्मिन् रागः। अन्य विषयमें अनुराग, दूसरी बातमें प्रीति।

अन्यधर्म (सं० पु०) पृथक् पृथक् गुण, जुदी जुदी खुसूसियत।

अन्यधी (सं० त्रि०) वह जिसका चित्त परमेश्वरसे पृथक् हो, वह जिसका दिल खुदासे जुदा हो।

अन्यनाभि (सं० त्रि०) अन्य परिवारका, दूसरे खानदानका।

अन्यपर (सं० त्रि०) वह जो किसी अन्य विषयमें आसक्त हो, वह जिसका मन किसी दूसरी चीजमें लगा हो।

अन्यपुष्ट (सं० पु०-स्त्री०) अन्यया मातृभिन्नया पुष्टः पालितः। १ अन्यद्वारा पालित, दूसरेका पाला हुआ। २ कोयल।

अन्यपूर्व (सं० पु०) अन्यः पुरुषः यस्याः सा। पुनर्वार विवाहकर्ता, पुनर्भूपति, दूसरेकी विवाहिता स्त्रीसे जो फिर विवाह करे।

अन्यपूर्वा (सं० स्त्री०) अन्योऽन्यपुरुषः पूर्वो यस्याः। १ पूर्व पतिके मरने वा अकर्मण्य होनेपर जो स्त्री फिर विवाह कर ले; वह स्त्री जिसका विवाह किसी औरसे हो गया हो। २ वाग्दत्ता कन्या।

अन्यभाव (सं० पु०) अन्यविधो भावः। प्रकृत अवस्थाका व्यतिक्रम। दूसरे प्रकारका भाव।

अन्यभृत् (सं० स्त्री०) अन्यैः मातापितृभिन्नैर्भ्रियते अन्य-भृ-कर्मणि क्विप्। जो अन्य द्वारा प्रतिपालित हो, जिसका प्रतिपालन और कोई करे, कोकिल।

अन्यमनस् (सं० त्रि०) अन्यस्मिन् स्वविषयातिरिक्त-विषये मनो यस्य। उत्कण्ठित होकर जो अन्य विषयकी चिन्ता करे, जो वृथा चिन्ता करे, जिसका मन प्रकृत विषयमें निविष्ट न हो, अनमना, उदास, चञ्चल, जिसे भूत लगा हो।

अन्यमनस्क (सं० त्रि०) अन्यस्मिन् स्वविषयमति-रिक्तविषये, अन्यस्यां क्रियायां वा मनश्चित्तं यस्य। चञ्चलचित्त, प्रकृत विषयमें जिसका मन न लगे, अन-मना, उदास।

अन्यमातृज (सं० पु०) अन्यस्याः स्वभिन्नया मातु-र्जायते जन-ड। जो दूसरी मातासे उत्पन्न हुआ हो, वैमात्रेय भ्राता, सौतेला भाई।

अन्यराजन् (सं० त्रि०) जिसका कोई दूसरा राजा हो, जो दूसरे राजाके अधीन हो।

अन्यराष्ट्रीय (सं० त्रि०) जिसका सम्बन्ध दूसरे राज्यसे हो। दूसरे राज्यका।

अन्यरूप (सं० पु०) दूसरा रूप, दूसरे भेषमें, भेष बदला हुआ।

अन्यलिङ्ग (सं० स्त्र०) अन्यस्य स्वभिन्नस्य विशेष्यस्येति यावत्। विशेष्यका लिङ्गभाजी शब्द, जिस शब्दका कोई लिङ्ग निर्दिष्ट न हो, विशेषण।

अन्यलिङ्गक (सं० त्रि०) अन्यस्येव लिङ्गं पुंस्त्वादि चिह्नं वा यस्य। विशेष्यका लिङ्गभाजी शब्द, अन्यचिह्नयुक्त, दूसरे चिन्हके सहित।

अन्यवर्ण (सं० त्रि०) अन्य वर्णका, दूसरे रङ्गका, जिसका रङ्ग दूसरा हो।

अन्यवर्द्धित (सं० त्रि०) अन्यपुष्ट देखो।

अन्यवादिन् (सं० त्रि०) अन्यात् अन्यथा वदति अन्य-वद-णिनि। हीनप्रतिज्ञावादी, हीनप्रतिज्ञ, प्रतिवादी, इतरवादी, झूठा, असत्य बोलनेवाला, विचारस्थलमें जिसका पक्ष हीन हो गया हो।

"अन्यवादी क्रियादोषी नोपस्थायी निरुत्तरः।
आहूतः प्रपलायी च हीनः पञ्चविधः स्मृतः॥" (नारदसंहिता)

१—जो पहले एक तरह बोलकर फिर दूसरी तरह बोले।

२—जो प्रतिपक्षकी साक्ष्यादि क्रियामें द्वेष करता है।

३—जो विचारके समय विचारालयमें उपस्थित नहीं रहता।

४—जो विचारकके प्रश्नपर निरुत्तर हो जाता है।

५—जो राजपक्षके मनुष्यके बुलानेपर भाग जाता है।

इन पांच प्रकारोंका नाम हीनपक्ष है।

अन्यविवर्द्धित (सं० त्रि०) अन्यपुष्ट देखो।

अन्यवीर्यज (सं० पु०) अन्यवीर्योद्भव, दूसरेके वीर्यसे उत्पन्न, पोष्यपुत्र।

अन्यव्रत (सं० पु०) अन्यदन्यविधं श्रुतिस्मृत्योरननुयायि-व्रतं कर्म नियमो वा यस्य। जो श्रुति और स्मृतिके विरुद्ध काम करता है, असुरादि, यथेच्छाचारी मनुष्य, अधर्मी, बेइमान, बेदीन।

अन्यशाख (सं० पु०) अन्या स्वभिन्ना शाखा वेदभागविशेषे यस्य। स्वभिन्न वेदशाखाध्यायी, जिसकी जो शाखा है उससे भिन्न शाखाका पढ़नेवाला।

अन्यशाखक (सं० पु०) वह ब्राह्मण जिसने अपना धर्म त्याग दिया हो, धर्मच्युत, अधर्मी।

अन्यसङ्गम (सं० पु०) दूसरेसे राह रीति, दूसरेसे मेल मिलाप; सोहबतदारी, हमबिस्तरी।

अन्यसाधारण (सं० पु०) अनेयन साधारणं समानम्। दूसरेके समान, अनेकको सत्वविशिष्ट वस्तु, जिसमें अपना और दूसरेका हक हो।

अन्यसंभोगदुःखिता (सं० स्त्री०) परस्त्रीमें अपने स्वामीके संभोगचिन्ह देखकर दुःखित होनेवाली नायिका।

अन्यसुरतिदुःखिता (सं० स्त्री०) अन्यसंभोगदुःखिता देखो।

अन्यस्त्रीग (सं० पु०) दूसरेकी स्त्रीके निकट जानेवाला, व्यभिचारी।

अन्यादृश् (सं० पु०) अन्य इव पश्यति अन्य-दृश-कर्तरि क्विन्। अन्यप्रकार, दूसरेकी तरह।

अन्यादृश (सं० त्रि०) अन्य इव पश्यति अन्य-दृश-कर्तरि कञ् आत्वञ्च। अन्यरूप, अन्यप्रकार, दूसरे जैसा।

अन्याधीन (सं० त्रि०) दूसरेके अधीन, दूसरेपर भरोसा रखनेवाला।

अन्यापदेश (सं० पु०) अन्योक्ति।

अन्याय (सं० पु०) न्यायः अग्रेयः कल्पः देशरूपं समञ्जसं विचारः सङ्गतिः औचित्यं प्रतिज्ञादिपञ्चप्रतिपादकवाक्यञ्च एतेषामभाव इति अभावार्थे नञ्-तत्। देशविरुद्ध भाव, अविचार, अनीति, अनौचित्य, अत्याचार, अन्धेर, जुल्म।

अन्यायी (सं० त्रि०) अन्याय करनेवाला, दुराचारी, अन्धेर मचानेवाला, जालिम।

अन्याय्य (सं० त्रि०) न्यायादनपेतं न्याय यत् न न्याय्यम्। नञ्-तत्। अयुक्त, अनुचित, जो न्याययुक्त न हो।

अन्यार्थ (सं० पु०) अन्यश्चासौ अर्थश्चेति कर्मधारय वा दुगभावः। भिन्न अर्थ, भिन्न अभिधेय, भिन्न प्रयोजन, भिन्न धन, भिन्न वस्तु।

अन्यारा (हिं० वि०) जो न्यारा न हो, जो अलग न हो।

अन्याशा (सं० स्त्री०) अन्यस्य अन्यया वा आशा।

अन्यकी आशा, अन्यकी इच्छा, दूसरेकी उम्मेद, दूसरी स्त्रीकी आशा।

अन्याशिस् (सं० स्त्री०) अन्यस्य अन्यया वा अन्येन अन्यया वा आशीः। अन्यका आशीर्वाद। दूसरेका आशीर्वाद, दूसरेकी दुवा।

अन्यासक्त (सं० त्रि०) जो दूसरेपर आसक्त हो, जो किसी दूसरी वस्तुकी इच्छा रखे।

अन्यास्वयण (सं० क्ली०) पैतृक सम्पत्तिके रूपमें दूसरेके अधिकारमें जानेवाला, दूसरेके कब्जेमें जानेवाला।

अन्यास्थित (सं० त्रि०) अन्येन अन्यया वा आस्थितः। अन्यद्वारा स्थित, दूसरेके आधारपर ठहरा हुआ।

अन्यून (सं० त्रि०) न न्यूनं नञ्-तत्। न्यून नहीं, कम नहीं, पर्याप्त, काफी, पूर्ण।

अन्यूनाधिक (सं० त्रि०) अन्यूनञ्च अधिकञ्च द्वयोः समाहारः न्यूनाधिकं, न न्यूनाधिकं नञ्-तत्। न्यून अधिक नहीं, न बहुत कम न बहुत ज्यादा, बेशी कमी नहीं, ठीक समान।

अन्यूनातिरिक्त (सं० त्रि०) न अतिरिक्तम् अनतिरिक्तं न्यूनञ्च अनतिरिक्तञ्च न्यूनानतिरिक्तं ततो नञ्-तत्। न्यून और अधिक नहीं, कम बेशी नहीं, समान, बराबर बराबर।

अन्येद्यु (सं० अव्य०) दूसरे दिवस, और दिन, दूसरे दिन।

अन्येद्युक (सं० त्रि०) और दिन होनेवाला, दूसरे दिन होनेवाला।

अन्येद्युज्वर (सं० पु०) एक दिन बीच देकर आनेवाला ज्वर, पारीका ज्वर।

अन्येद्युष्क (सं० अव्य०) अन्येद्युः अन्यस्मिन्नहनि भव कन् सत्वं। अन्यदिवसजात, जो दूसरे दिन उत्पन्न हुआ हो।

अन्येद्युस् (सं० त्रि०) अन्यस्मिन्नहनि अन्य-एद्युस्। दूसरे दिन, दूसरे रोज।

अन्योक्ति (पु० स्त्री०) अन्यापदेश, वह बात जिसका मतलब दूसरेपर घटाया जाय।

अन्योढ़ा (सं० स्त्री०) अन्येन ऊढ़ा। अन्यकी विवाहिता स्त्री, परकीया नायिका-विशेष, दूसरेकी विवाही हुई स्त्री।

अन्योत्सुक (सं० त्रि०) अन्येन उत्सुकं। अन्य कर्तृक उत्कण्ठित, दूसरेके लिये उत्सुक।

अन्योति (सं० स्त्री०) अन्यस्य ऊतिः। अन्यकी रक्षा, दूसरेकी रक्षा, दूसरेकी हिफाजत।

अन्योदर्य्य (सं० पु०) अन्यस्याः मातृभिन्नाया उदरे भवः। वैमात्रेय भ्राता, सौतेला भाई।

अन्योन्य (सं० त्रि०) अन्य-कर्मव्यतिहारे (एकरूप-क्रिया-करणे) द्वित्वं पूर्वपदे सुश्च। परस्पर, परस्परके उद्देश्यसे दिया हुआ, आपसमें।

अन्योन्यकलह (सं० पु०) परस्परका झगड़ा।

अन्योन्यघात (सं० पु०) परस्परकी लड़ाई, एक दूसरेको मार डालना।

अन्योन्याध्यास् (सं० पु०) अन्योऽन्यस्मिन् अन्योऽन्यता-दात्मस्य अध्यास-आरोपः। वेदादिमतसिद्ध परस्पर अन्यतादात्मक आरोप। जैसे,—अन्तःकरणमें चेतनका आरोप और चेतनमें अन्तःकरणका आरोप।

अन्योन्यापच्चनयन (सं० पु०) किसी संख्याको एक ओरसे दूसरी ओर ले जाना।

अन्योन्यभेद (सं० पु०) पारस्परिक शत्रुता।

अन्योन्यमिथुन (सं० पु०) पारस्परिक संयोग, परस्परका मिलाव।

अन्योन्यविभाग (सं० पु०) बपौतीका परस्पर विभाग, बापका धन आपसमें बांट लेना।

अन्योन्यवृत्ति (सं० पु०) एक दूसरेपर परस्परका प्रभाव, एक दूसरेपर परस्परका असर।

अन्योन्यव्यतिकर (सं० प्र०) पारस्परिक कार्य, सम्बन्ध वा शक्ति।

अन्योन्यसापेक्ष (सं० त्रि०) परस्परका सम्बन्ध, एक दूसरेके साथ रिश्तेदारी।

अन्योन्यापहरित (सं० त्रि०) परस्परकी ली छिपाई हुई, चुराई हुई।

अन्योन्याभाव (सं० पु०) अन्योऽन्यस्मिन् अन्योऽन्यास्याभावः। भेद, सम्बन्धीय भेद, पारस्परिक अनुपस्थिति। तादात्म्य-सम्बन्धावच्छिन्न-प्रतियोगिताके अभावको भेद कहते हैं।

तादात्म्य—यह एक सम्बन्ध-विशेष है। कोई

पदार्थ जो अपने होमें अपना सम्बन्ध रखता है, उसे तादात्म्य सम्बन्ध कहते हैं। जैसे घटमें घट है और पटमें पट है, इत्यादि।

प्रतियोगिता—जिसका अभाव है उसे प्रतियोगी कहते हैं। जैसे घटके अभावका प्रतियोगी घट और पटके अभावका प्रतियोगी पट है। इस प्रतियोगीके धर्मको प्रतियोगिता कहते हैं। नैयायिकगण किसी कार्यविशेषकी सुविधाके लिये प्रतियोगिता धर्मको स्वीकार कहते हैं।

एक एक पदार्थमें दूसरा पदार्थ सम्बन्धविशेषसे अवस्थिति करता है। एक प्रकारके सम्बन्धसे कोई पदार्थ नाना स्थानोंमें रह नहीं सकता। जैसे—संयोग सम्बन्धसे भूतलपर घट अवस्थिति करता है। कालमें कालिक सम्बन्धज घट अवस्थिति करता है। घट, निज अवयवमें समवाय सम्बन्धसे रहता है। और अपनेसे आप ही तादात्म्य सम्बन्धसे रहता है।

'संयोगेन घटो नास्ति'—ऐसी बात कहनेसे, घटमें जो प्रतियोगिता है, वही संयोग सम्बन्धावच्छिन्न होता है। वैसे ही, 'घटो न'—घट नहीं है, ऐसा कहनेसे घटके भेदरूपका अभाव समझा जाता है। इस भेदकी प्रतियोगिता तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न नहीं होती। कदाच अन्य सम्बन्धावच्छिन्न नहीं होता। एवं अन्य किसी अभावकी प्रतियोगिता भी तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न नहीं होती। यदि भेदका प्रतियोगितावच्छेदक तादात्म्य भिन्न अन्य सम्बन्धमें भी हो, तो घटका भेद घटमें रह सकता है। कारण, अन्य सम्बन्धसे घटमें घट नहीं रहता, सुतरां उसका अभाव रह सकता है।

पूर्वोक्त तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्न-प्रतियोगिता जो अभावकी होती है, बहुव्रीहि अर्थमें क प्रत्ययान्त 'प्रतियोगिताक' शब्दमें उस अभावका ही बोध होता है। पीछे 'प्रतियोगिताक' इस भागके साथ 'अभाव' शब्दका कर्मधारय समास करनेसे 'प्रतियोगिताकाभाव' पद सिद्ध होता है।

भिन्न शब्दमें भेद जिसमें रहता है उसीका बोध होता है। जैसे 'घटभिन्न'—ऐसी बात कहनेसे, घटका भेद जिसमें है उसी पदार्थका बोध होता है। घटका भेद घटमें नहीं रहता, इसलिये घटका बोध नहीं होता,—घटके अन्य दण्ड, चाक आदि पदार्थोंका बोध होता है।

अन्योन्याश्रय (सं० त्रि०) अन्योन्यं आश्रयति। आ-श्रि-अच्। परस्परका सहारा वा सम्बन्ध, तर्कविशेष, एक दोष विशेष, सापेक्षज्ञान। स्वग्रह—सापेक्षग्रहकल्प यदि स्वमें रहे, तो अन्योन्याश्रय दोष होता है। अर्थात् स्वज्ञान करनेसे जो ज्ञान अपेक्षा करता है, उसी ज्ञानके प्रति यदि पुनः स्वज्ञान अपेक्षा करे, तो अन्योन्याश्रय दोष होता है, यहां स्वपदमें घट पट प्रभृति किसी किसी एक पदार्थको मानकर यदि ऐसी बात कही जाय, कि,—'दण्ड-जन्यको घट कहते हैं और घट-जन्यको दण्ड,' तो अन्योन्याश्रय दोष होता है। कारण, घट-ज्ञान करनेसे दण्डज्ञान आवश्यक है; और दण्ड-ज्ञान करनेसे पुनर्वार स्वपदमें घटका ज्ञान अपेक्षा करता है। अथवा अभाव क्या है? भाव भिन्न। अर्थात् जो भाव नहीं है उसे ही अभाव कहते हैं। भाव क्या है? अभाव भिन्न। अर्थात् अभाव न होनेसे ही उसे भाव कहते हैं। इस भांति अभाव जाननेके लिये भावको जानना चाहिये एवं भाव जाननेके लिये अभावको अतएव यहां अन्योन्याश्रय दोष हुआ।

अन्योन्याश्रित (सं० त्रि०) एक दूसरेके सहारेपर। परस्परके सहारेपर।

अन्वक्ष (सं० त्रि०) अक्षं इन्द्रियमनुगतम्। प्रत्यक्ष, अनुपद, अनुगत, पश्चाद्गामी, साक्षात्, पीछे जाने वाला, बाद।

अन्वक्षरसन्धि (सं० स्त्री०) वेदकी एक प्रकारकी सन्धि।

अन्वग्भाव (सं० पु०) अनूचो भावः, ६-तत्। पश्चाद्गन्तृत्व, पश्चाद्गामित्व, पश्चाद्गमन, पीछे जाना, पीछे चलना।

अन्वच् (सं० त्रि०) अनु पश्चात् अञ्चति अनु-अञ्च-क्विन्। पश्चाद्गामी, अनुगामी, पीछे जानेवाला, अनुसरण करनेवाला।

अन्वन् (सं॰ त्रि॰) अनु पश्चात् वाति गच्छति अनु-वा-क पृ॰ साधु। अनुगामी, पीछे जानेवाला।

अन्वय (सं॰ पु॰) अन्वेति जन्म प्राप्नोति जन परम्परया अस्मिन् अनु-इन् अधिकरणे अच्। वंश, मेल, पद्यके शब्दोंका कर्त्ता, कर्म और क्रियाके क्रमसे रखना, सम्बन्ध, खानदान, जाति, सन्तान।

'सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिजनान्वयौ।
वंशोऽन्ववायः सन्तानः॥' (अमर)
"तदन्वये शुद्धिमति।" (रघु १।१२)

२ आनुकूल्य, कार्यकारणका अनुसरण। अनुगति; कार्यजनक जो कारण है उसके कार्यकी स्थिति। न्यायके मतसे, स्वजनत्र सम्बन्धमें कारण कार्यमें रहता है, उसी स्थितिका नाम अन्वय है। कारण रहनेसे कार्य रहता है, ऐसा सम्बन्ध। जैसे दण्ड, चक्र, जल एवं सूत्र रहनेसे घट होता है। 'घटपटौ' घट एवं पट, यहां घट और पटमें जो साहित्यसम्बन्ध है, उसीका नाम अन्वय है। एवं 'घटमानय' घट लाओ, 'दात्रेण धान्यं लुनाति' हसियेसे धान काटते हैं। यहां घट एवं द्वितीया विभक्तिमें, दात्र एवं तृतीया विभक्तिमें जो सम्बन्ध है, उसका नाम अन्वय है। 'घटः पटश्च।' घट एवं पट ये दो निरपेक्ष पद हैं। इन दोनोंका जो सम्बन्ध है, उसीका नाम अन्वय है। 'परस्परनिरपेक्षायामेकस्मिन्नन्वयः।' (सि॰ कौ॰) परस्पर निरपेक्ष सब पदोंका एक पदार्थमें जो अन्वय है, उसीको समुच्चय कहते हैं। व्याप्य-रहनेसे व्यापक रहता है, यह एक प्रकारका अन्वय है। जैसे धुआं रहनेसे आग रहती है। अनुवृत्ति। "जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात्।" (भागवत १।१।१) 'यद्वान्वयशब्देनानुवृत्तिः।' स्वामी। किंवा अन्वय शब्दे अनुवृत्ति। प्रत्यक्ष। "स्यात् साहसं त्वन्वयवत्।" (मनु ८।३३२) 'द्रव्यस्वामिसमक्षं।' (कुल्लूक) स्वामीके साक्षात्में अपहरणका नाम साहस है। (त्रि॰) अनुगत मात्र। "निरन्वयजने वने।" (भट्टि ५।६६।) अनुगत जनरहित वनमें।

अन्वयबोध (सं॰ पु॰) अन्वयस्य आकाङ्क्षादिना परस्परपदसम्बन्धस्य बोधो ज्ञानं येन। शब्दज्ञानके लिये शब्दबोध रूप अनुभव विशेष, अन्वयज्ञानक्रिया और विशेष्य विशेषणादिका जिस रूपमें अन्वय होता है, वही ज्ञान।

अन्वयिन् (सं॰ त्रि॰) अन्वयः सम्बन्धादिरन्वयस्य इनि। शब्द बोधका उपयोगी सम्बन्धविशिष्ट, अन्वय-युक्त; पश्चाद्गामी, प्रागुक्त वंशादि विशिष्ट।

अन्वयी (सं॰ स्त्री॰) एक ही वंश वा खानदानका, रिश्तेदार, सम्बन्धी।

अन्वर्थ (सं॰ त्रि॰) अर्थमनुगतं। अर्थयुक्त, व्युत्पत्ति-विशिष्ट शब्द, अर्थके अनुसार।

अन्ववसर्ग (सं॰ पु॰) अनु-अव-सृज्-घञ्। जो इच्छा हो वही करो ऐसा आदेश, मनमाना करनेका हुक्म। उतार देना, ढीला होना।

अन्ववाय (सं॰ पु॰) अन्ववाय्यते जनित्वा सम्बध्यते अस्मिन् अव-अय अधिकरणे घञ्। वंश, सन्तान।

'वंशोऽन्ववायः सन्तानः।' (अमर)

अन्ववसित (सं॰ त्रि॰) बंधा हुआ, जकड़ा हुआ।

अन्वयव्यतिरेकिन् (सं॰ त्रि॰) अन्वयव्यतिरेको विद्यते-ऽस्य इनि। साध्यका साधक हेतुविशेष, जिसके द्वारा साध्यका निश्चय हो; जैसे अग्निरूप साध्यका धूम हेतु है। वही धूम अग्निविशिष्ट पर्वतादिमें अन्वय (अग्नि-स्थितज्ञान) का हेतु है। एवं अग्निका अभावविशिष्ट जल ह्रदादिमें व्यतिरेक (अग्निके अभावज्ञान) का हेतु है।

अन्वयव्याप्ति (सं॰ स्त्री॰) अन्वयेन व्याप्तिः व्यापनं सर्वदा स्थितिः। जहां धूम रहता है वहां अग्नि रहती है, ऐसी व्याप्ति (स्थिति) के साध्यका अभाव-विशिष्ट न रहकर साध्यके अधिकरणमें रहनेका नाम ही व्याप्ति है। वह व्याप्ति जिस हेतुसे रहती है। धूम रहनेसे ही वहां आग रहती है, ऐसे ज्ञानके उदाहरण न्यायशास्त्रमें बहुत हैं। पर यह उदाहरण भ्रमात्मक है। जहां धूम हो वहां आग नहीं रह सकती। एक आधारमें धूम भर रखनेसे वहां आग नहीं रह सकती, पर आग रहनेसे वहां थोड़ा बहुत धूम अवश्य रहेगा।

अन्वयागत (सं॰ त्रि॰) अन्वयात् वंशपरम्परात् आगतं। १ दायप्राप्त धनादि। २ विदेशमें रहनेवाले अपने वंशका आया हुआ कोई आदमी।

अन्ववेक्षा (सं० स्त्री०) अनु-अव-ईक्ष-अ-टाप्। अपेक्षा, अनुरोध, सोच विचार।

अन्वष्टका (सं० स्त्री०) अन्वन्ति भुञ्जते पितरो यस्यां सा अष्टका। श्राद्धका कालविशेष। मुख्य अग्रहायण, पौष, और माघमासकी कृष्णाष्टमीको तीन अष्टका श्राद्ध होते हैं। उसके बाद तीन कृष्णा नवमी को अष्टका श्राद्धका विधान है।

अन्वष्टमदिश (सं० त्रि०) उभयतः अष्टमीं दिशम् अनुलक्ष्यीकृत्य अच्-स०। पश्चिमोत्तर कोण, वायुकोण। वायुकोणकी ओर मुहकरके।

अन्वह (सं० त्रि०) अह्नि अह्नि वीप्सार्थे अव्ययी०, अच्-स०। प्रत्यह, प्रतिदिन, हर रोज।

अन्वहन् (सं० त्रि०) अह्नि अह्नि वीप्सार्थे अव्ययी०। प्रति दिन, दिन दिन, हर रोज।

अन्वाख्यान (सं० क्ली०) अनु पश्चात् आख्यानम्। अनु-आ-ख्या-ल्युट्। तात्पर्य समझा देनेके लिये पुनर्वार व्याख्या, अच्छीतरहसे मतलब समझा देना।

अन्वाचय (सं० पु०) अनु प्रधानस्य पश्चात् आचीयते बोध्यते उद्दिश्यते वा अनु-आ-चि कर्म्मणि अच्। आनुषङ्गिक, प्रधान उद्देश्यके अन्तर्गत सामान्य उद्देश्य। खास कामके साथ साथ और एक काम करनेका हुक्म।

अन्वाचित (सं० त्रि०) दूसरी श्रेणीका, अदना, कमकद्र।

अन्वाजे (सं० अव्य०) अनु पश्चात् आ सम्यक् जयति जययुक्ता भवन्ति प्राणिनो येन। दुर्बलका बलाधान, बलहीनकी बलप्राप्ति।

अन्वादिष्ट (सं० त्रि०) पुनः नियत किया, फिर मुकर्रर किया, कमकद्र।

अन्वादेश (सं० पु०) अनु-पश्चात् आदेशः। अनु-आ-दिश-घञ्। अनुकथन। किसीके एक काम कर लेनेपर उसे दूसरा काम करनेकी आज्ञा। जैसे, इसने व्याकरण पढ़ लिया है, अब इसे वेद अध्ययन कराओ।

अन्वाधान (सं० क्ली०) अनु आधीयते अनु-आ-धा भावे ल्युट्। होमाग्नि स्थापन करनेके उपरान्त उसमें दो चार समिध् लकड़ियोंका देना, होमकी आग स्थापन करनेके बाद उस आगको बनाये रखनेके लिये उसमें और कुछ लकड़ियोंका छोड़ना।

अन्वाधि (सं० पु०) अनु पश्चात् अधिः प्रत्यर्पणं अनु-आ-धा-कि। अपने पास रखे हुए मालको उसीके मालिकके पास भेज देना, किसीकी धरोहर किसी दूसरे आदमीकी मार्फत उसके मालिकके पास भेज देना। २ पश्चात्ताप, पछतावा।

अन्वाधेय (सं० क्ली०) विवाहस्य पश्चात् आधेयं लब्धं। अनु-आ-धा-यत् एत्वम्। वह धन जो विवाहके बाद स्त्रीको भर्तृकुल, पितृमातृकुल एवं स्वामी और मातापितासे मिले।

> "विवाहात् परतो यत्तु लब्धं भर्तृकुलात् स्त्रिया।
> अन्वाधेयं तदुक्तन्तु लब्धं बन्धुकुलात्तथा॥
> ऊर्द्धं लब्धन्तु यत्किञ्चित् संस्कारात् प्रीतितः स्त्रिया।
> भर्त्तुः सकाशात् पित्रोर्व्वा अन्वाधेयन्तु तद्भृगुः॥" (कात्यायन)

अन्वाध्य (सं० पु०) एक प्रकारके देवता।

अन्वान्त्र (सं० त्रि०) अन्तरीके भीतर।

अन्वायतन (सं० त्रि०) आयतनस्य मध्ये विभक्त्यर्थे अव्ययी०। यज्ञगृहमें, यज्ञगृहके अनुगत, यज्ञगृहप्राप्त।

अन्वायत्त (सं० त्रि०) अनु पश्चात् आयत्तं आयत्तीकृतं। अनुगत, अनुसार, मुताबिक।

अन्वारब्ध (सं० त्रि०) अनु पश्चादारब्धं, अनु-आ-रभ-क्त। कृतस्पर्श, पश्चात् स्पृष्ट, पीछे लगे रहना, जो पीछे आरम्भ किया गया है।

अन्वारभ्य (सं० त्रि०) अनु-आरभ्यते अनु-आ-रभ-कर्म्मणि यत्। स्पर्शके योग्य, छूनेके लायक, माकूल, मुनासिब।

अन्वारम्भ (सं० पु०) अनु सह पश्चाद्वा आरम्भः। पश्चात् आरम्भ, पीछे आरम्भ किया हुआ। छूत लगाव।

अन्वारम्भणीया (सं० स्त्री०) प्रथम रीति, पहली रस्म।

अन्वारूढ़ (सं० त्रि०) अनु-आ-रुह-क्त। अधिरूढ़, पीछे चढ़नेवाला।

अन्वारोहण (सं० क्ली०) अनु-पश्चात् आरोहणं अनु-

आ-रुह-भावे ल्युट्। पश्चात् आरोहण, स्वामीकी मृत्युके बाद स्वामीके मृत शरीरके साथ चितापर चढ़ना, पीछे चितापर चढ़ना।

"भर्त्तरि मृते ब्रह्मचर्यं तदन्वारोहणं वा।" (वि० सू०)

स्वामीके मरनेपर स्त्री ब्रह्मचर्य्यव्रत करे वा स्वामीके साथ चितापर चढ़े।

अन्वारोहिणी (सं० स्त्री०) अनु-सह पश्चाद्वा आरोहति भर्तृचितां अनु-आ-रुह-णिनि ऋन्नेभ्यो ङीप् णत्वञ्च। जो स्त्री स्वामीके मृत शरीरके साथ चितापर चढ़े, जो स्त्री स्वामीकी मृत्युके उपरान्त उसकी पादुका आदि लेकर चितापर चढ़े।

"तदन्वारोहिणी यस्मात्तस्मात् सा नात्मघातिनी।" (स्मृति)

जिसलिये वह स्त्री स्वामीके साथ वा पीछे जाती है, इसीसे वह आत्मघातिनी नहीं होती।

अन्वासन (सं० क्ली०) अनु-आस-भावे ल्युट्। सेवाके पश्चात् उपवेशन, अनुशोचन, शिल्पादिगृह, सेवाके पीछे बैठना, अफसोस, कारखाना।

अन्वासित (सं० त्रि०) अनु-आस कर्म्मणि क्त सोपसर्गत्वात् सकर्म्मकः। पीछे बैठकर सेवा किया गया, पीछे बैठकर सेवित, पीछे वा बराबर बैठाना।

अन्वासीन (सं० त्रि०) पीछे वा बराबर बैठना।

अन्वास्यमान (सं० त्रि०) साथ साथ, सङ्गमें।

अन्वाहार्य्य (सं० क्ली०) अनुपिण्डपितृयज्ञपश्चात् यद्वा अनु अन्नप्राशनादि शुभकर्म्म लक्ष्यीकृत्य अथवा अनु-कर्म्मणः पश्चात् किंवा अनु मासि मासि आह्रियते अनुष्ठीयते अनु-आ-हृ कर्मणि ण्यत्। अमावस्याका श्राद्ध। साग्निक पितृयज्ञके अनन्तर अमावस्याको श्राद्ध करते हैं, इसलिये उसका नाम अन्वाहार्य है। निरग्निगण महीने-महीने अमावस्याको श्राद्ध करते हैं, इसीसे उसे अन्वाहार्य कहते हैं। अन्नप्राशनादि शुभकर्म्मके उपलक्षमें वृद्धिश्राद्ध करना पड़ता है, इसलिये वृद्धिश्राद्धका नाम अन्वाहार्य्य है। सब कामोंके बाद दक्षिणा देना पड़ती है, इसलिये दक्षिणाका नाम अन्वाहार्य है।

"यत् श्राद्धं कर्म्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत्।
आमावास्यं द्वितीयं यदन्वाहार्य्यं विदुर्बुधाः॥" (कात्यायन)

जो श्राद्ध सब शुभ कार्य्योंके आदिमें होते हैं (वृद्धिश्राद्ध), सब कामोंके अन्तमें जो दक्षिणा देना होती है, एवं अमावस्याका द्वितीय जो श्राद्ध है, उन सबका नाम अन्वाहार्य है। "पितृणां मासिकं श्राद्धं अन्वाहार्य्यं विदुर्बुधाः।" (मनु ३।१२३) पितृगणका जो महीने-महीने अमावस्याको श्राद्ध किया जाता है, उसका नाम अन्वाहार्य है।

अन्वाहार्यक (सं० क्ली०) अन्वाहार्यमेव स्वार्थे कन्। महीने-महीने करनेका अमावस्याका श्राद्ध।

अन्वाहार्यपचन (सं० पु०) अन्वाहार्यं तन्निमित्तं अन्नं पच्यते अनेन पच-करणे ल्युट्। दक्षिणाग्नि, ऋग्वेदके विधानसे स्थापित अग्नि, जिस अग्निमें अन्वाहार्यका अन्नपाक होता है।

अन्वाह्निक (सं० त्रि०) दैनिक, रोजका, रोज़ाना।

अन्वाहित (सं० त्रि०) अनु आहितं अनु-आ-धा कर्मणि क्त। कृतान्वाधान, अग्निस्थापनके अनन्तर जिसमें दो चार लकड़ी समिध डाल दी गई हों, पश्चात् आरोपित, धरोहरके मालिकको धरोहर देनेके लिये उसे दूसरेको सौंपना।

अन्विच्छा (सं० स्त्री०) अनु-इष भावे श तदन्तस्य स्त्रीत्वात् टाप्, यगभावो निपात्यते। पश्चादिच्छा।

अन्वित (सं० त्रि०) अनु-इण-क्त। अनुगत, अन्वययुक्त, युक्त सम्बन्धविशिष्ट, मिला हुआ, सहित।

अन्विष्ट (सं० त्रि०) अनु-इष-क्त वा अनु-यज-क्त। अन्वेषित, पूजित, जिसकी खोज की गई है।

अन्विति (सं० त्रि०) अनु-इण-क्तिन्। नमस्कार द्वारा अनुकूलता प्राप्त।

अन्वीक्षण (सं० क्ली०) अनु-ईक्षणं। पर्यालोचना, ध्यानपूर्वक देखना।

अन्वीक्षा (सं० स्त्री०) अनु पश्चात् ईक्षा प्रादि-स० अनु-ईक्ष-अ। पर्यालोचना, ध्यानसे देखना, खोज।

अन्वीत (सं० त्रि०) अनु-ई कर्तरि क्त। अनुगत, अन्वयप्राप्त।

अन्वीप (सं० त्रि०) अनुगतो आपो यत्र स्थानादौ अच् स०। जलानुगत स्थान, जलके पास, मिलन द्वार।

अन्वेष (सं० पु०) अनु-ईष भावे घञ्। अन्वेषण, अनुसन्धान, खोज, तलाश।

अन्वेषण (सं० क्ली०) अनु-इष-भावे ल्युट्। अनुसन्धान, गवेषण, खोज, ढूंढ़।

अन्वेषणा (सं० स्त्री०) अनु-पश्चात् एषणा इष-युच्-टाप्। अनुसन्धान, गवेषणा, खोज, तलाश।

अन्वेषित (सं० त्रि०) अनु-इष्-गतौ, इष स्वार्थे णिच् वा कर्मणि क्त। गवेषित, कृतानुसन्धान, खोजा हुआ, गवेषणा किया हुआ।

अन्वेषिन् (सं० त्रि०) अन्वेषति अनुसन्धत्ते अनु-इष कर्त्तरि णिनि। गवेषक, अन्वेषणकर्त्ता, गवेषणा करनेवाला, अनुसन्धान करनेवाला।

अन्वेष्टा (सं० पु०) अन्वेषणकर्त्ता, खोजनेवाला।

अन्वेष्टृ (सं० त्रि०) अनु-इष-शीलार्थे-तृच् इट् अनुसन्धानकारी, अन्वेषणकर्त्ता, तलाश करनेवाला।

अन्सस्। पूर्वद्वीपपुञ्जका एक द्वीपविशेष। पापुयाके मनुष्य इस द्वीपमें वास करते हैं। यह लोग समुद्रके किनारे जलमें खूँटा गाड़कर उसीपर झोपड़ा बनाते और उसीमें रहते हैं। झोपड़ोंके चारों ओर भड़ वृक्षका जङ्गल लगा रहता है, इसीसे जहाज वहां आकर नहीं लगते। अन्सस्‌वासी देखनेमें सुन्दर होते हैं। उनकी देह सुगठित और हाथ पैर आदि सब अङ्ग एकसे दिखाई देते हैं। उनके नेत्र मृग-जैसे काले और बड़े होते हैं। दांत मोतीके समान, नाक तिलफूलसदृश और ओष्ठ सुन्दर। फलतः मुखश्री देखनेसे जान पड़ता है, कि वह बुद्धिमान् और शान्त प्रकृतिके होते हैं। यह लोग बालोंको लपेट-कर शिरके ऊपर जूड़ा बांधते हैं।

अन्हवाना (हिं० क्रि०) नहलाना, स्नान कराना।

अन्हाना (हिं० क्रि०) नहाना, स्नान करना।

अप् (सं० स्त्री०) इन्द्रेण आप्ताः, या आप्नोतीन्द्रो वा आप्लृ व्याप्तौ कर्मणि कर्त्तरि वा क्विप् ह्रस्वः। जल, अन्तरिक्ष, भूस्थानदेवता। यास्कने जलके सौ नाम दिये हैं। यथा—१ अर्णः २ क्षोदः। ३ पद्म। ४ नभः। ५ अम्भः। ६ कवन्ध। ७ सलिल। ८ वाः। ९ वन। १० घृत। ११ मधु। ११ पुरीष। १३ पिप्पल। १४ क्षीर। १५ विष। १६ रेतः। १७ कशः। १८ जन्म। १९ वृबूक। २० वुस। २१ तुग्र्य। २२ वर्वुर। २३ सुक्षेम। २४ धरुण। २५ सिरा। २६ अरविन्द। २७ ध्वस्मन्वत्। २८ जामि। २९ आयुध। ३० क्षपः। ३१ अहि। ३२ अक्षर। ३३ स्रोतः। ३४ तृप्ति। ३५ रस। ३६ उदक। ३७ पयः। ३८ सरः। ३९ भेषज। ४० सह। ४१ शवः। ४२ यहः। ४३ ओजः। ४४ सुख। ४५ क्षत्र। ४६ आवजाः। ४७ शुभ। ४८ यादु। ४९ भूत। ५० भुवन। ५१ भविष्यत्। ५२ महत्। ५३ अप्। ५४ व्योम। ५५ यशः। ५६ महः। ५७ सर्णीक। ५८ स्वृतीक। ५९ सतीन। ६० गहन। ६१ गभीर। ६२ गम्भर। ६३ ईम्। ६४ अन्न। ६५ हविः। ६६ सद्मन्। ६७ सदन। ६८ ऋत। ६९ योनि। ७० ऋतयोनि। ७१ सतः। ७२ नीर। ७३ रयि। ७४ सत्। ७५ पूर्ण। ७६ सर्व्व। ७७ अक्षित। ७८ बर्हिः। ७९ नाम। ८० सर्पिः। ८१ अपः। ८२ पवित्र। ८३ अमृत। ८४ इन्दु। ८५ हेम। ८६ स्वः। ८७ सर्ग। ८८ शम्बर। ८९ अम्बर। ९० वसु। ९१ अम्बु। ९२ तोय। ९३ तूय। ९४ कूपीट। ९५ शुक्र। ९६ तेजः। ९७ स्वधा। ९८ वारि। ९९ जल। १०० जलाष। १०१ इदम्। (जलका और एक नाम इरा है)।

आश्चर्यका विषय तो यह है, कि जलके सौ नाम रहनेपर भी वेदमें अप् शब्दका ही अधिक प्रयोग देखा जाता है। ऋग्वेदमें ऋषियोंने बार-बार इन्द्रसे जलके लिये प्रार्थना की है। जलको वह लोग इन्द्रका प्रसाद मानते थे। इसीसे, 'इन्द्रात् प्राप्ता इति आपः',—अर्थात् इन्द्रसे प्राप्त होनेके कारण वह लोग जलको अप् कहते थे। मालूम होता है, यही जल-का पहला नाम है, इसीसे वैदिक भाषामें अप् शब्दका इतना अधिक प्रयोग पाया जाता है। इसका और भी एक कारण है। सृष्टिके आरम्भमें जगत् जलमय था। यह प्रवाद सब देश और सब जातियोंमें प्रसिद्ध है। उसी किंवदन्तीके अनुसार पहले वह लोग जलको अप् कहते थे।

आर्यलोग निश्चित कर गये हैं, कि सबसे पहले अप् अर्थात् जलकी सृष्टि हुई थी। "आपो ह यद्बृहती विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।" (ऋक्संहिता १०।१२१।७)

वाजसनेय संहिता २७।१८ एवं अथर्वसंहिता ४।२।६।८) जिस समय इस विश्वमें अप् भर गया था, उस समय उन लोगोंका गर्भाधान हुआ था, और उन लोगोंने अग्निका प्रसव किया था।

"यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।" (ऋक्संहिता १०।१२१।८, तथा वाजसनेयसं २७।२६) जिन्होंने अपनी महिमासे अप् देख पाया था, उसमें दक्षता थी, एवं उन् लोगोंने यज्ञको उत्पन्न किया था।

"आपो ह वै इदमग्रे।" (शतपथब्रा० ११।१।६।१) पहले इस जगत्में केवल अप् था। "आपोऽग्रे विश्वमावन् गर्भं दधाना।" (अथर्ववेद ४।२।६)। पहले अप्ने विश्वको आवृत कर लिया था और उसीसे गर्भाधान हुआ था।

"सोऽऽपोऽसृजत वाच एव लोकाद्वागेवास्य साऽसृजत सा इदं सर्वमाप्नोद् यदिदं किञ्च। यदाप्नोत् तस्मादाप: यदवृणत् तस्माद्वा:।" (शतपथब्रा० ६।१।१।९)

वाक्रूप लोकसे उन्होंने अप्को सृष्टिकी थी। वाक् ही उनका है। उसीकी सृष्टि की गई थी। उसीने इस सम्पूर्ण जगत्को प्लावित किया था। सारा जगत् प्लावित करनेके कारण ही इसका नाम अप् हुआ। इसने समस्त जगत्को आवृत किया था, इससे इसका नाम भा: हुआ।

ब्रह्माने पहले अप्को उत्पन्न किया। मनुसंहितामें भी यह बात लिखी है—'अप एव ससर्जादौ।'(१।८) अन्यान्य जातियोंका भी यही मत है। अब भी वैज्ञानिक लोग पृथिवीकी सृष्टिके सम्बन्धमें जैसी मीमांसा करते हैं, उससे आर्योंका मत बहुत कुछ स्थापित होता है। किसी किसी सम्प्रदायके वैज्ञानिक कहते हैं, कि पहले पृथिवी तरल और उष्ण थी। उसके बाद क्रमसे इसका ऊपरी भाग कड़ा और शीतल हो गया है। पर इसका भीतरी भाग अब भी कड़ा नहीं हुआ, पहले ही की तरह बहुत कुछ तरल और उष्ण है। सृष्टि देखो।

अप् शरीरको पवित्र करता है, इसीसे वैदिक ऋषिगण इसकी पूजा करते थे। "आपो अस्मान्मातर: शुन्धयन्तु।" (ऋक्संहिता १०।१७।१०)। अप् माताका स्वरूप है। वह हमलोगोंको पवित्र करें। ऋक्संहिताके दशम मण्डलके नवम सूक्तमें केवल अप्का ही स्तव किया गया है। और एक स्थानमें लिखा है, कि कवि लोग विवस्वत्के गृहमें अप्की उत्तम महिमा कीर्तन करें। "प्रसुव आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वत:।" (१०।७५।१)। और एक ऋक्में अप्को भेषज एवं सकल पदार्थोंका मातृस्वरूप कहा गया है।

"शोमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं यो:।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्री:॥" (६।५०।७)

अप (अव्य०) न पाति पा-क। उपसर्गविशेष, अनादर, भ्रंश, त्याग, असाकल्य, वैरूप्य, अपकृष्ट, वियोग, विपर्यय, विकृति, चौर्य्य, निर्देश, हर्ष। २ बुरा, ३ अधिक। ४ विरुद्ध।

अपक (सं० पु०) जल, वारि, तोय, पानी।

अपकरण (सं० पु०) दुराचार, अनिष्ट आचरण, खराब काम, बुरे तौरसे पेश आना।

अपकरुण (सं० त्रि०) क्रूर, नृशंस, निर्दयी, बेरहम, निष्ठुर, कठोर-हृदय।

अपकर्म (सं० पु०) कुकर्म, बुरा काम, पाप।

अपकर्मन् (सं० क्ली०) अपकृष्टं कर्म प्रादि-स०। दुष्कर्म, बुराकाम। (त्रि० बहुव्री०) दुष्कर्मशील। स्त्री-टाप्। अपकर्मा।

अपकर्तृ (सं० त्रि०) अप विपर्ययं करोति कृ-तृच्। अनिष्टकारी, बुरा काम करनेवाला, हानिकारी। स्त्री-ङीप्-अपकर्त्री।

अपकर्ष (सं० पु०) अप-कृष-घञ् भावे। हीनता, अपकृष्टता, नीचे खींचना, निरादर, अपमान, बेकदरी।

२ आकर्षण। ३ निर्दिष्ट समयसे पूर्व कोई क्रियादि करना। यथा एक सालके बाद सपिण्डीकरण श्राद्ध करना उचित है। किन्तु किसी कारणसे यदि एक सालके पहले इस श्राद्धको करले तो उसे 'अपकर्ष' सपिण्डीकरण कहते हैं।

अपकर्षक (सं० त्रि०) अप-कृष् कर्तरि ण्वुल्। अपकर्षकारक। अप-कृष्-णिच्-ण्वुल्। जो अपकर्ष करे, बेइज्जती करनेवाला। अपमान करनेवाला।

अपकर्षण (सं० क्ली०) अपकर्ष देखो।

अपकलङ्क (सं० पु०) वह कलङ्क जो मिटाये न मिटे, घोर कलङ्क।

अपकल्मष (सं॰ त्रि॰) निष्कलङ्क, जिसे कोई कलङ्क न लगा हो, वैराग।

अपकाजी (हिं॰ वि॰) मतलबका यार, अपस्वार्थी।

अपकाम (सं॰ पु॰) अपकृष्टः कामः कामना, प्रादि-स॰। १ मन्द कामना, घृणा, नफ़रत, प्यारी वस्तुका हर लेना। अपगतः कामो यस्य यत्र यस्माद्वा। प्रादि॰ बहुव्री॰। २ जिसकी कामना नष्ट हो गयी हों। या जहांसे अथवा काम नष्ट हो गया हो। (अव्य॰) ३ अनिच्छासे, बेमर्जी।

अपकार (सं॰ पु॰) अप-कृ-भावे घञ्। अनिष्ट, हानि, द्वेष, अहित, अनुपकार, नुक़सान, निन्दा, बुराई।

अपकारक (सं॰ त्रि॰) क्षति पहुंचानेवाला। नुकसान पहुंचानेवाला। द्वेषी, डाह रखनेवाला।

अपकारगिर् (सं॰ स्त्री॰) अपकारेण द्वेषेण क्रोधेन वा गीर्यते गॄ-क्विप्। अपकारार्थक वाक्य। भय दिखा भर्त्सना करना, निन्दा कर भर्त्सना करना। जो शब्द द्वेषसे क्रोधसे या बुरी इच्छासे निकाले जायं।

अपकारिन् (सं॰ पु॰) अप्-कृ कर्तरि णिनि। जो अनिष्ट करे। जो बुराई करे।

अपकारी (हिं॰ वि॰) हानि करनेवाला, नुकसान पहुंचानेवाला, विरोधी।

अपकारीचार (हिं॰ वि॰) विघ्नकर्ता, हानिकारी।

अपकीर्ति (सं॰ स्त्री॰) निन्दा, अपयश, अयश, बदनामी।

अपकुञ्ज (सं॰ पु॰) शेषनागके छोटे भाईका नाम।

अपकृत (सं॰ त्रि॰) अप-कृ कर्मणि क्त। जिसका अनिष्ट किया गया हो। जिनके साथ बुराई की गई हो।

अपकृति (सं॰ स्त्री) अप-कृ-क्तिन् भावे। अपकार, द्वेष, अनिष्ट, चिन्तन, बुराई, डाह। किसीका बुरा सोचना, बदनामी।

अपकृत्य (सं॰ क्ली॰) अपकृष्टं कृत्यं, प्रादि-स॰। दुष्कर्म। अप-कृ भावे क्यप्। (क्ली॰) अप-कृ स्त्रियां क्यप्। अपकृत्या—अनिष्ट, अपकार, बुराई।

अपकृष्ट (सं॰ त्रि॰) अप-कृष्-क्त। नीच, निकृष्ट, हीन, बुरा, खराब, नीचे खींचना, कौन क्रिया इस समय करनी चाहिये उसी निर्दिष्ट समयके पूर्व जो की गई हो।

अपकृष्टचेतन (सं॰ त्रि॰) दिलसे खोटा, मनसे बिगड़ा हुआ।

अपकृष्टजाति (सं॰ स्त्री॰) नीच जाति, खराब जाति।

अपकृष्टता (सं॰ स्त्री॰) निकृष्टता, हीनता, नीचता, अधमता, खराबी।

अपकौशली (सं॰ स्त्री॰) समाचार, खबर।

अपक्ति (सं॰ स्त्री॰) पक्ति, पच्-क्तिन् भावे ततो ऽभावार्थे नञ्-तत्। कच्चापन, अजीर्ण, बदहजमी।

अपक्रम (सं॰ पु॰) अप-क्रम भावे घञ्। पलायन, अपमान, द्रव, विद्रव, उलट पलट, अनियम, व्यतिक्रम।

अपक्रमण (सं॰ क्ली॰) अप-क्रम भावे ल्युट्। पलायन, भाग जाना, चला जाना।

अपक्रमिन् (सं॰ त्रि॰) अप-क्रम कर्तरि णिनि। पलायनकारी, भागनेवाला।

अपक्रिया (सं॰ स्त्री॰) अप-कृ भावे श। कुकर्म, अपकार, द्वेष, बुराकाम, हानि।

अपक्रोश (सं॰ पु॰) अप-क्रुश-घञ्। निन्दा, भर्त्सना, धमकी, डांटडपट।

अपक्रोशन (सं॰ क्ली॰) अप-क्रुश-भावे ल्युट्। निन्दा, बुरी बात।

अपक्व (सं॰ त्रि॰) न पक्वम् पच्-क्त। जो पका नहीं है, कच्चा, असिद्ध, अपरिणत, आम।

अपक्वता (सं॰ स्त्री॰) असिद्धता, कच्चापन, नापुख्तगी।

अपक्वबुद्धि (सं॰ त्रि॰) कच्ची बुद्धिका।

अपक्वासिन (सं॰ त्रि॰) कच्चे अन्नका खानेवाला।

अपक्ष (सं॰ त्रि॰) नास्ति पक्षो यस्य। पक्षशून्य, पक्षहीन, जिसका कोई सहायक न हो।

अपक्षपात (सं॰ पु॰) पक्षे आश्रिते न पातः अपेक्षा। निरपेक्षता, समदृष्टि, पक्षपातका अभाव, न्याय।

अपक्षपातिन् (सं॰ त्रि॰) न पक्षपातिन् पक्ष-पत्-णिनि। समदर्शी, जो पक्षपाती नहीं है।

अपक्षपाती (सं॰ त्रि॰) न्यायी, समदर्शी, जिसमें पक्षपात न हो, खरा।

अपचित (सं० त्रि०) क्षीण हुआ, घटा हुआ।

अपक्षिप्त (सं० त्रि०) फेंका हुआ, पतित।

अपक्षेपण (सं० क्ली०) अपक्षिप्यते अप-क्षिप भावे ल्युट्। अधःपातन, गिराना, फेंकना।

अपगण्ड (सं० पु०) गण्डो वृद्धो वैपरीत्यार्थे। अत्यन्त शिशु, जिस शिशुके हाथ पैर दृढ़ न हुए हों, नितान्त अबोध शिशु, विकलाङ्ग, अङ्गहीन।

अपगत (सं० त्रि०) अप-गम कर्त्तरि क्त। मृत, गत, दूरीभूत, अपघात, पलायित, रहित, मरा हुआ, भागा हुआ, नष्ट।

अपगम (सं० पु०) अप-गम भावे घञ् नोदात्त इति न वृद्धिः। प्रस्थान, नाश, पलायन, वियोग, जुदा होना, भागना।

अपगमन (सं० क्ली०) अप-गम भावे ल्युट्। नाश, अपसरण, प्रस्थान, पलायन, जाना, भाग जाना, खिसक जाना।

अपगर (सं० पु०) अप-गॄ निन्दने भावे अप्। निन्दन, निन्दा करनेवाला। बद जबान बोलनेवाला।

अपगर्जित (सं० त्रि०) गर्जनरहित, बिना कड़कड़ाहटका।

अपगल्भ (सं० पु०) वीरत्वविहीन, किनारे रहना, अधूरा, कच्चा, अकारण।

अपगा (सं० स्त्रि०) अपगच्छति निम्नन्यते अप-गम-विट्। पलायनकर्ता, अपमानकर्त्ता, जलवाहिनी नदी।

अपगारम्, अपगोरम् (सं० अव्य०) अप-गुरी उद्यमने णमुल्। उठाकर।

अपगोपुर (सं० त्रि०) बिना फाटक वा दरवाजेका (जैसे कोई नगर)।

अपगोह (सं० पु०) अप-गुह-घञ्। गोपन, तिरोधान, छिपनेकी जगह।

अपग्रह (सं० पु०) प्रतिकूल ग्रह।

अपघन (सं० पु०) अपहन्यते शत्रु प्रभृतिर्येन अप-हन-करणे अप् निपात्यन्ते। अङ्ग, शरीरके अवयव, हाथ पैर। शरत्काल, मेघशून्य।

अपघात (सं० पु०) अपकृष्टं हननं अप-हन-भावे घञ्। अपमृत्यु, अपहनन, रोमादि भिन्न जलमें डूब कर, आगमें जलकर गलेमें रस्सी बांधकर इत्यादि प्रकारसे मरना, आत्महत्या।

अपघात मृत्यु दो प्रकारकी है—इच्छाधीन और आकस्मिक। दैवयोगसे यदि कोई जलमें डूबकर अथवा और किसी तरह मर जाय, तो यथानियम उसके प्रेतकर्मादि होते हैं। किन्तु यदि कोई जान बूझ कर विष खा वा गलेमें रस्सी बांधकर अथवा और किसी तरहसे प्राण दे डाले, तो हम लोगोंके शास्त्रानुसार कभी उसकी सद्‌गति नहीं होती। उसकी अग्निक्रिया, अशौचग्रहण एवं तर्पणादि सब मना हैं। आत्मघातीकी लाशको पेड़के तले वा किसी तीर्थस्थानमें फेंक देनेकी व्यवस्था है। जो ऐसे पापीकी दाहक्रिया करता है, उसे गुप्तकृच्छ्र व्रत करना पड़ता है। यदि यह व्रत करनेमें असमर्थ हो, तो उतने ही मूल्यके रौप्यादि दान कर दे। आत्मघातीके लिये आंसू गिराना न चाहिये। उसके पुत्रको नारायणवलि देना पड़ता है। नारायणवलि न देनेसे जन्म भर देह अशुद्ध रहती है।

अपघातक (सं० पु०) अप-हन्ति अप-हन-ण्वुल्। विनाशक, वञ्चक, विश्वासघात करनेवाला।

अपघातिन् (सं० त्रि०) अप-हन कर्त्तरि णिनि। अपघातकर्ता, अपहननकर्ता, आत्महत्या करनेवाला।

अपघाती (हिं० वि०) अपघात करनेवाला, विश्वासघाती, घातक, वञ्चक।

अपघृण (सं० त्रि०) अपगता घृणा यस्य। निर्दय, निर्लज्ज, निष्ठुर, बेशर्म।

अपच (सं० पु०) पक्तुं न शक्नोति पच्-अच्। पाक करनेमें अशक्त, जो पच न सके, पाचक न हो, बदहजम, अजीर्ण।

अपचय (सं० पु०) अपि-चि-अच्। क्षति, अपहरण, क्षय, व्यय, हानि, पूजा, नाश, सम्मान, कमी।

अपचरित (सं० क्ली०) अपकृष्टं चरितम्। दुष्ट आचरण, दुष्ट चरित, बुरा कर्म, दुराचार।

अपचाय (सं० पु०) कमी, हानि, घटी, तङ्गी, मुहताजी।

अपचायित (सं० त्रि०) अप-चाय पूजायाम्-क्त। पूजित, आदृत, सम्मानित।

अपचार (सं० पु०) अप-चर भावे घञ्। अहित आचरण, स्वधर्मका व्यतिक्रम, कुपथ्य सेवा, अपकार, विनाश, कर्मलोप, दोष, कुव्यवहार, अनादर, बुराई, भ्रम, निन्दा, भूल।

अपचारिन् (सं० त्रि०) अप-चर, ताच्छील्यादिषु कर्तरि घिणुन्। अहिताचरणकारी, दुराचारी, खराब काम करनेवाला।

अपचारी (हिं० वि०) दुष्ट, दुराचारी, अहित आचरण करनेवाला।

अपचाल (हिं० पु०) नटखटापन, कुचाल, खुटाई।

अपचिकीर्षा (सं० स्त्री०) अप-कृ-सन् भावे स्त्रियाम् अ। अपकार करनेकी इच्छा, बुराई करनेकी ख्वाहिश।

अपचिकीर्षु (सं० त्रि०) अप-कृ-सन्-उ। अपकार करनेका इच्छुक, अपकारी, बुराई करनेवाला।

अपचित् (सं० त्रि०) अप-चि-क्विप्। जो अपचय करे, क्षतिकारक, नाश करनेवाला।

अपचित (सं० त्रि०) अप-चाय-क्त। पूजित, व्ययित, क्षतिविशिष्ट, सम्मानित।

अपचिति (सं० स्त्री०) अप-चाय-क्तिन्। पूजा, हानि, व्यय, निष्कृति, खर्च, छुटकारा।

अपची (सं० स्त्री०) अपकृष्टं पच्यतेऽसौ पच् कर्म-कर्तरि अच्। गण्डमालाके ऊपरका व्रण विशेष। गर्दनके ऊपरके जखम।

अपचीयमान (सं० त्रि०) अप-चि कर्म कर्तरि शानच्। अपचीयमान, नष्टप्राप्त, विनाशशील।

अपच्छत्र (सं० त्रि०) छत्रहीन, विना छातेका।

अपच्छाय (सं० पु०) अपगता छाया देहस्य प्रभा वा यस्य ह्रस्वः। देव, उपदेव, छायाहीन, प्रभारहित, कान्तिहीन।

ऐसा प्रवाद है कि देवताके शरीरकी छाया नहीं होती। उसी प्रवादके अनुसार कवियोंने देवताओंको छायाहीन कहा है।

अपच्छी (हिं० पु०) शत्रु, वैरी, विरोधी, विना पक्षका।

अपच्छेद (सं० पु०) हानि, वाधा, विघ्न।

अपच्यव (सं० पु०) अप-च्युङ् गमनपतनयोः भावे अप्। निगमन, अपसरण, अपक्षरण, निकलना, खिसक जाना।

अपच्युत (सं० पु०) अप-च्युङ् गमनपतनयोः कर्तरि क्त। क्षरित, नष्टप्राय।

अपछरा (हिं० स्त्री०) अप्सरा, परी, वेश्याओंकी एक जाति।

अपजर्गुराण (सं० त्रि०) अप-गृ-यङ्-लुक्-ताच्छील्ये चानश्। आच्छादनादि मोचनशील, आच्छादनादि उड़ा लेनेवाला।

अपजय (सं० पु०) पराजय, पराभव, हार।

अपजय्य (सं० त्रि०) जीतनेके लायक।

अपजस (हिं० पु०) अपयश देखो।

अपजात (सं० पु०) वह लड़का जो कुमार्गी हो गया हो। बुरा लड़का।

अपजिघांसु (सं० त्रि०) टालनेकी इच्छा रखनेवाला।

अपज्ञान (सं० पु०) छिपाना, अस्वीकार, इनकार।

अपञ्चीकृत (सं० त्रि०) अपञ्चात्मकं पञ्चात्मकं कृतम् च्वि। सूक्ष्मकृत, पञ्चीकृत भिन्न आकाशादि पञ्चभूत।

अपटान्तर (सं० त्रि०) नास्ति पटेन आच्छादनरूप अन्तरं व्यवधानं यत्र। जिसमें पट मात्र भी व्यवधान न हो, संसक्त, अव्यवहित, पटान्तर, जुड़ा हुआ, मिला हुआ।

अपटी (सं० स्त्री०) अल्पः पटः पटी न पटी। नञ्-तत्। वस्त्रप्रावरण, यवनिका, पर्दा, तम्बू, कनात, कपड़ेकी दीवार।

अपटीक (सं० त्रि०) नास्ति पटी यस्य कप्। प्रावरणशून्य, टीकाशून्य पुस्तक, जिसमें पर्दा न हो, विना टीकाकी किताब।

अपटीक्षेप (सं० पु०) अपट्या यवनिकायाः क्षेपः। यवनिका न गिराना, नाटकके अभिनयके समय किसी अङ्कके समाप्त होनेपर नये अभिनेताओंके आनेके पहले यवनिकाको गिराना होता है, पर उस यवनिकाको न गिराकर जल्दीसे रङ्गभूमिमें आ जाना।

अपटु (सं० त्रि०) न पटुर्दक्षः। नञ्-तत्। व्याधि-

ग्रस्त, रोगी, पटुतारहित, जो कार्यकुशल न हो, आलसी।

अपटुता (सं० स्त्री०) अकुशलता, पटुताका अभाव।

अपठ (हिं० वि०) निरक्षर, बेवकूफ, जो पढ़ा न हो।

अपठमान (हिं० वि०) जो पढ़नेके लायक न हो, जो पढ़ा न जाय।

अपडर (हिं० पु०) शङ्का, भय, खौफ।

अपडरना (हिं० क्रि०) शङ्कित होना, भय खाना, भयभीत होना।

अपड़ाना (हिं० क्रि०) खींचा तानी करना।

अपड़ाव (हिं० सं०) लड़ाई, झगड़ा, कलह।

अपढ़ (हिं० वि०) अपठ, मूर्ख, बिना पढ़ा हुआ।

अपण्डित (सं० त्रि०) जो पण्डित न हो, मूर्ख।

अपण्य (सं० त्रि०) न पण्यं विक्रेयम् अप्राशस्त्ये नञ्-तत्। अविक्रेय द्रव्य, जो चीज बेचने लायक न हो, शास्त्रानुसार जाति विशेषको जिस पदार्थके बेचनेका निषेध हो। जैसे ब्राह्मणोंके लिये लवण, पक्वान्न, मधु, दधि, दुग्ध, घृत, जल, गन्धद्रव्य, लाक्षा, लालवस्त्र, गुड़, तेल इत्यादि द्रव्योंका बेचना मना है।

अपतन्त्रक (सं० पु०) अपगतं तन्त्रं यत्र कप्। वायुरोग विशेष, धनुष्टङ्कार।

अपत (हिं० वि०) पत्रविहीन, बिना पंखेका, निर्लज्ज, नग्न, अधम, नीच, विपद।

अपतई (हिं० स्त्री०) ढिठाई, निर्लज्जता।

अपतर्पण (सं० क्ली०) अपगतं तर्पणं भोजनादिकं अप-तृप-भावे ल्युट्। लङ्घन, रोगका उपवास, तृप्तिका अभाव, तृप्तिशून्य।

अपतानक (सं० पु०) अप-तन कर्तरि ण्वुल्। वातरोग विशेष।

अपताना (हिं० पु०) प्रपञ्च, जञ्जाल, बखेड़ा।

अपति (हिं० वि०) विधवा, पतिविहीन, दुर्दशा, दुराचारी, पापी।

अपतिका (सं० स्त्री०) नास्ति पतिर्यस्याः नञ्-बहुव्री०। जिस स्त्रीका पति न हो, विधवा, रांड़।

अपतीर्थ (सं० पु०) खराब तीर्थ।

अपत्र (सं० त्रि०) पत्रविहीन, बिना पत्तेका, अपत।

अपत्नी (सं० स्त्री०) अविद्यमानः पतिर्यस्य। पतिहीना, जिस स्त्रीका स्वामी न हो।

अपत्नीक (सं० पु०) नास्ति सन्निधाने कर्मयोग्या, जीविता वा पत्नी यस्य कप्। जिसकी स्त्री यागादि क्रिया वा सन्तानोत्पादनमें असमर्थ हो, जिसकी स्त्री मर गई हो।

अपत्य (सं० क्ली०) अप-तनोतिः पते र्वा-यक् निपात्यते। जिसके द्वारा वंश लोप नहीं होता, पुत्रकन्या प्रभृति सन्तान।

अपत्यकाम (सं० त्रि०) सन्तानकी चाह रखनेवाला।

अपत्यजीव (सं० पु०) एक प्रकारका पौधा।

अपत्यदा (सं० स्त्री०) अपत्यं सन्तानोत्पादनहेतुं गर्भं ददाति अपत्य-दा-क टाप्। गर्भदात्री वृक्ष, जिसके सेवन करनेसे गर्भ सञ्चार हो, मन्त्रादि दैवक्रिया जिससे गर्भ रहे।

अपत्यपथ (सं० पु०) अपत्यस्य गर्भात् तन्निःसरणस्य पन्थाः, अच् स०। योनि।

अपत्यविक्रयी (सं० पु०) अपने बाल बच्चोंका बेचनेवाला।

अपत्यशत्रु (सं० पु०) अपत्यमेव शत्रुर्यस्य। कर्कट, केकड़ा, सांप।

कहते हैं, कि अण्डे देनेके बाद केकड़ीका पेट फट जाता और वह मर जाती है।

अपत्यसाच् (सं० पु०-स्त्री०) अपत्यैः सन्तानैः सचते सम्बध्यते अपत्य-सच-ण्वि। अपत्यसमवेत, सन्तानयुक्त। बाल बच्चों सहित।

अपत्र (सं० पु०) नास्ति पत्रं पर्णं पक्षो वा यस्य। बांसका कोंड़, अङ्कुर, बिना पत्तेका वृक्ष, बिना पङ्खका पक्षी।

अपत्रप (सं० त्रि०) अपगता त्रपा लज्जा यस्य ह्रस्वः। लज्जाहीन, बेशर्म।

अपत्रपा (सं० स्त्री०) अपरात् अन्यतः त्रपा लज्जा। जो दूसरेसे लज्जा मालूम करे, स्त्री।

अपत्रपिष्णु (सं० त्रि०) अप-त्रप तच्छीलार्थे कर्तरि इष्णुच्। स्वभावतः लज्जाशील, जिसका लजानेका स्वभाव हो, शर्मिंदा।

अपत्रस्त (सं० त्रि०) भयभीत, जो डरसे भाग जाय।

अपथ (सं० क्लो०) न पन्थाः अप्राशस्त्ये, नञ्-तत्। कुपथ, विकट राह, कुमार्ग, वह राह जो चलने लायक न हो, योनि, जहां अच्छी राह न हो।

अपथिन् (सं० पु०) न पन्थाः। नञ्-तत् वा अप्रत्ययान्ताभावः। कुपथ, कुमार्ग।

अपथगामिन् (सं० त्रि०) कुपथसे जानेवाला, कुमार्गी।

अपथप्रपन्न (सं० त्रि०) बेजगह, बेमौका।

अपथ्य (सं० क्लो०) न पथ्यम् नञ्-तत्। अहित, स्वास्थ्यका नाश करनेवाला। जैसा आहार विहारादि करनेसे शरीर सुस्थ रहता है, कोई रोग नहीं होता, उसे सुपथ्य कहते हैं। उसके विरुद्धाचरणको अपथ्य वा कुपथ्य कहते हैं।

साधारणतः नया अन्न, वासी भात, सूखा मांस, सूखी मछली, दही, पेठा, लहसुन और पियाज, पुलाव, सड़ी गली चीज, अतिभोजन रात्रिकालमें अधिक भोजन, दिनमें सोना, अतिमैथुन, वेगरोध, अतिश्रम, रातमें जागना, आग और धूप सेवन करना प्रभृति अतिशय अपथ्य हैं।

अपथ्यनिमित्त (सं० त्रि०) अपथ्यसे उत्पन्न, न खानेलायक चीजसे पैदा हुआ।

अपथ्यभुज (सं० त्रि०) मना की हुई चीजका खानेवाला।

अपद् (सं० त्रि०) न पद्यते ज्ञायते पद कर्मणि क्विप्। नञ्-तत्। अज्ञेय, पादशून्य, जो जाना न जाय, बेपैरका।

अपद (सं० क्लो०) न पदम् अप्राशस्त्ये नञ्। कुत्सित स्थान, बिना पैरके रेंगनेवाले जीव, बिना पदका।

अपदस्थ (सं० त्रि०) पदच्युत, जिसकी नौकरी ले ली गई हो।

अपदक्षिणम् (सं० अव्य०) बाईं ओर।

अपदम (सं० त्रि०) आत्मदमनहीन, अस्थिर सम्पत्तिवाला।

अपदव (सं० त्रि०) दावाग्निसे मुक्त, जङ्गलकी आगसे रहित।

अपदवापद (सं० त्रि०) दावानलकी विपत्तिसे रहित।

अपदान (सं० क्लो०) अप-दैप शोधने करणे लुग्रट्। प्रशंसनीय कार्य्य, महत् कार्य्य, अवदान, वृत्त कर्म्म, शोधन, भूतपूर्व चरित्र, प्रशस्त कर्म्म, अच्छा काम, तारीफके लायक काम, बड़ा भारी काम।

अपदान्तर (सं० त्रि०) नास्ति पदान्तरं व्यवधानमत्र। नञ्-बहुव्री०। संयुक्त, अव्यवहित, अभिन्नपद, समीप, बराबर।

अपदार्थ (सं० त्रि०) नाचीज।

अपदिश (सं० त्रि०) दिशोर्मध्ये दिग्द्वयोर्मध्यभागे इति यावत् शरदां टच्, अव्ययी०। दिक्कोण, विदिक्, दो दिशाओंके बीचमें, अग्नि इत्यादि कोण वा कोणमें।

अपदिष्ट (सं० त्रि०) अप-दिश कर्मणि क्त। प्रयुक्त, कथित।

अपदी (सं० स्त्री०) नास्ति पादौ यस्याः। नञ्-बहुव्री०। पादरहित स्त्री, जिस स्त्रीके पैर न हों।

अपदेखा (हिं० वि०) घमण्डी, आत्मप्रशंसा करनेवाला, अपनेको बड़ा समझनेवाला।

अपदेवता (सं० स्त्री०) दैत्य, दानव, राक्षस, बुरे देवता।

अपदेश (सं० पु०) अप-दिश-घञ्। स्थान, निमित्त, लक्ष्य, शठता, स्वरूपाच्छादन, उपदेश, अपकृष्ट देश, बहाना, व्याज।

अपदेशिन् (सं० त्रि०) दूसरेका रूप धारण करनेवाला।

अपदेश्य (सं० त्रि०) अप-दिश कर्मणि ण्यत्। छलसे बात कहना, अनुचित स्थानमें उत्पन्न।

अपदोष (सं० त्रि०) निष्कलङ्क, बदनामीसे बचा हुआ।

अपद्रव्य (सं० क्लो०) अपकृष्टं द्रव्यम्, प्रादि-स०। वा-कृष्टभागो लोपः। अपकृष्ट द्रव्य, कुत्सित सामग्री, मिश्रण, मैला, बुरी चीज।

अपद्वार (सं० क्लो०) अपकृष्टं द्वारम्। प्रादि बहुव्री। खिड़की, चोरदरवाजा।

अपधूम (सं० त्रि०) धूमरहित, जिसमें धुआं न हो।

अपध्यान (सं० क्लो०) अपकृष्टं ध्यायते अप-ध्यै-भावे-लुग्रट्। अनिष्ट चिन्तन, दूसरेका बुरा विचारना।

अपध्वंस (सं० पु०) अपध्वंस्यते अप-ध्वन्स-भावे घञ्। नाश, अपमान, धिक्कार, निन्दा, अपघात, चरण, अधःपतन, हार।

अपध्वंसज (सं० पु०-स्त्री०) अपध्वंस-जन-ड। करण आदि, वर्णसङ्कर, दोगला। जिसके बापकी जाति माकी जातिसे नीची हो।

अपध्वंसिन् (सं० त्रि०) अपध्वंसयति अप-ध्वंस-णिच् णिनि। जो विनाश करे, जो नष्ट हो।

अपध्वंसी (हिं० वि०) नाश करनेवाला, अपमान करनेवाला, निन्दक, हरानेवाला।

अपध्वस्त (सं० त्रि०) अप-ध्वंस-क्त। परित्यक्त, निन्दित, पराजित, चूर्णीकृत, अपमानित, परास्त।

अपध्वान्त (सं० क्ली०) अपकृष्टं ध्वान्तं ध्वनितम् अपध्वन-भावे क्त इडभाव। जिस शब्दमें कांसेका शब्द मिला हो।

अपनपौ (हिं० सं०) अपनायत, आत्मभाव, सुध, सम्बन्ध, आत्मीयता, अपकार, दूसरी जगह ले जाना।

अपनय (सं० पु०) अप-नी-अच्। दूरीकरण, खण्डन, दुष्टनीति।

अपनयन (सं० क्ली०) अप-नी लुग्रट्। खण्डन, दूरी करण, अपकार साधन, नयनहीन, दूर करना, बुराई करना, एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना, अन्धा।

अपनस (सं० त्रि०) अपगता नासिका यस्य। प्रादि बहुव्री०। नसादेशश्च। जिसकी नाक कट गई हो, जिसके नाक न हो, नकटा।

अपना (हिं०सर्व०) स्वीय, आत्मीय, निजका, स्वजन।

अपनाना (हिं० क्रि०) अपना बना लेना, अपने पक्षमें ले आना, अपने अनुकूल करना।

अपनापन (हिं० पु०) आत्मीयता, अपनायत।

अपनाम (हिं० पु०) दुर्नाम, बदनामी, शिकायत।

अपनिद्र (सं० त्रि०) नींदरहित।

अपनिर्वाण (सं० त्रि०) जो नष्ट न हो गया हो, जो अभी बना हो।

अपनीत (सं० त्रि०) अप-नी-क्त। बहिष्कृत, अपमानित, खण्डित, दूरीकृत, निकाला हुआ, वेइज्जत किया हुआ, दूर किया हुआ।

अपनुत्ति (सं० स्त्री०) अप-नुद-क्तिन्। दूरीकरण, खण्डन, हटाना, दूर करना।

अपनुद (सं० त्रि०) अप-नुद-क। दूर करनेवाला, खण्डन करनेवाला।

अपनोद (सं० पु०) अप नुद-भावे घञ्। खण्डन, दूरीकरण।

अपनोदन (सं० क्ली०) अप-नुद-लुग्रट्। दूरी करण, खण्डन, प्रतिवाद, हटाना।

अपन्न (सं० त्रि०) पत-क्त निपातनात् नञ्-तत्। अपतित, जो गिरा न हो। जिसका नाश न हुआ हो।

अपन्नगृह (सं० त्रि०) अपतितगृह, वह घर जिसका नाश न हो सके।

अपपाठ (सं० पु०) अप अपकृष्टं पठ्यते असौ अप-पठ-कर्म्मणि घञ्। जिस शब्दका जैसा उच्चारण करना चाहिये उसका अन्यथा, भिन्नार्थ लिपि, अशुद्ध पढ़ना। पढ़नेमें गलती करना।

अपपात्र (सं० क्ली०) अप अपकृष्टं पात्रं व्यक्ति, प्रादि-स०। हेयव्यक्ति, निन्दित मनुष्य, चण्डालादि। चण्डालादि जिस पात्रमें भोजन करते हैं, वह अशुद्ध हो जाता है, इसीसे चण्डालादिको अपपात्र कहते हैं।

अपपात्रित (सं० त्रि०) अप अपकृष्टं पात्रं भाजनं सञ्जातमस्य। अपपात्र तारकादि इतच्। पतित जिसके खाने पीनेसे पात्र अशुद्ध हो जाय। उत्कट दोषके कारण जाति विरादरीवालोंने जिसका अन्न जल छोड़ दिया हो।

"अपपात्रितस्य रिक्थ पिण्डोदकदानि निवर्तन्ते।" (आपस्तम्ब)

पतितादि दोषयुक्तवाले पिताके धनके अधिकारी नहीं होते और न वह लोग पितृगणका सपिण्डदान ही कर सकते हैं।

अपपादत्र (सं० स्त्री०) जिसके पैरोंकी रक्षाकी वस्तु न हो, वेजूतेका।

अपपान (सं० पु०) निकृष्ट वा अनुचित पान करनेकी वस्तु, खराब वा गैर मुनासिब पीनेकी चीज।

अपपूत (सं० पु०) जिसके चूतड़ अच्छे न बने हों।

अपप्रजाता (सं० स्त्री०) वह स्त्री जिसका गर्भ गिर गया हो।

अपप्रदान (सं० क्ली०) घूंस।

अपबर्हिस् (सं० त्रि०) अप अपगतं बर्हिर्यत्र। प्रादि बहुव्री०। बर्हिस् होमरहित, जिस यागमें बर्हिस् होम न हो, जिनके बर्हिस् होम नहीं है।

अपबाहुक (सं० पु०) जिनकी बांह खराब हो गई हो, जिसकी बांहमें सख्ती आ गई हो।

अपभय (सं० त्रि०) अपगतं भयं यस्य। प्रादि बहुव्री०। भयहीन, भयशून्य, निर्भीक, निडर, जिसका भय दूर हो गया हो।

अपभर्तृ (सं० पु०) अप अपकृष्टो भर्त्ता प्रादि-स०। दुष्ट भर्त्ता। निकृष्ट स्वामी, बुरा पति।

अपभी (सं० त्रि०) अपगता भीर्भयं यस्य। प्रादि-बहुव्री०। भयशून्य, आशङ्कारहित, निर्भय।

अपभीति (सं० त्रि०) अपगता भीतिर्भयं यस्य। प्रादि बहुव्री। निर्भय, निर्भीक, भयरहित, बेखौफ।

अपभूति (सं० स्त्री०) अप अपकृष्टा भूतिर्विभूतिः। प्रादि-स०। अपकृष्ट विभूति, निकृष्ट सम्पत्ति, खराब धन।

अपभ्रंश (सं० पु०) अप-भ्रंश-घञ्। गिराव, गलाव। २ भाषा विशेष। भाषा देखो। ३ बिगड़ा हुआ शब्द।

अपभ्रंशित (सं० त्रि०) विकृत, बिगड़ा हुआ, गिरा हुआ।

अपम (सं० त्रि०) अपकृष्ट रूपेण मीयते गण्यते अप-मा-क वा०। अपकृष्ट रूपसे ज्ञात, निकृष्ट जाति। भूगोलके उपरिस्थ सूर्य्यगमनकी वक्ररेखा (Ecliptic)।

अपमज्या (सं० स्त्री०) अपमस्य धनुराकृति क्षेत्रस्य। ज्या मौर्व्वीव। भूगोलकी वक्ररेखा विशेष, सूर्य्य गमनकी कल्पित रेखा (Ecliptic)।

अपमण्डल (सं० क्ली०) अप अपक्रान्तं मण्डलात् भूमण्डलात् निरादि तत् क्रान्तिवृत्त। खगोलकी वलयाकार रेखाविशेष।

अपमन्यु (सं० त्रि०) दुःखरहित, तकलीफसे बाहर।

अपमर्द्द (सं० पु०) अप-मृद-घञ्। विमर्दन, विलोड़न, धूल, गर्दा।

अपमर्श (सं० पु०) अप-मृश-घञ्। निन्दा, अप-हरण, स्पर्श।

अपमान (सं० पु०) मन्यते भावे करणे वा घञ्। अनादर, अवज्ञा, अवहेला, तिरस्कार, बेइज्जती।

अपमानना (हिं० क्रि०) अपमान करना, तिरस्कार करना, निन्दा करना।

अपमानित (सं० त्रि०) अपमानं सञ्जातं यस्य। तारकादि इतच्। अनादृत, तिरस्कृत, जिसका अप-मान किया गया हो।

अपमानी (हिं० वि०) अपमान करनेवाला, तिर-स्कार करनेवाला, निरादर करनेवाला।

अपमान्य (सं० त्रि०) निन्दनीय, अपमानके योग्य, तिरस्कारके योग्य।

अपमार्ग (सं० पु०) मार्गयते अन्विष्यते गम्यते वा येन मार्ग-करणे घञ्। कुत्सित पथ, कुपथ, कुमार्ग, कुराह।

अपमार्गी (हिं० वि०) कुमार्गी, कुपन्थी, दुष्ट, पापी।

अपमार्जन (पु० क्ली०) अप सर्वतोभावेन मार्जनं अप-मृज भावे ल्युट् वृद्धिः। संशोधन, संस्कार, सफाई।

अपमित (सं० त्रि०) अप-मा-माङ् मेङ् वा क्त आ इत्वम्। अवज्ञात, अनादृत, अपरिमित, अपरिवर्तित, जिसका अपमान किया गया हो, परिमाणरहित।

अपमित्यक, आपमित्यक (सं० क्ली०) अपमित्य विनिमयेन आप्तं अप मा ल्यप् अपमित्य ततो निवृत्तार्थे कक्। नियम, विनियम, परिवर्त्त, जो किसी चीजके बदलेमें मिले।

अपमुख (सं० क्ली०) अप अपकृष्टं पराभव दुःखात् म्लानं मुखम्, प्रादि-स०। परावृत्त मुख, म्लानमुख-युक्त, पराङ्मुख, जिसका मुह टेढ़ा हो, टेढ़मुहा।

अपमूर्द्धन् (सं० त्रि०) अप अपगतो मूर्द्धा मस्तकं यस्य। प्रादि बहुव्री। मस्तकरहित, कबन्ध, जिसके शिर न हो, शिरकटा।

अपमृत्यु (सं० पु०) अप उदबन्धनादिना अपकृष्टो मृत्यु मरणं। गलेमें फांसी लगाकर मरना, जलमें डूबकर मरना, विष खाकर मरना इत्यादि रोग भिन्न अस्वाभाविक मृत्यु।

अपमृषित (सं० क्ली०) अप-मृष-क्त। अस्पष्ट वाक्य, गड़बड़ बात।

अपयश (सं० पु०) लाञ्छन, अपकीर्त्ति, बुराई, बदनामी।

अपयशस् (सं० क्लो०) अप अपकृष्टं यशः। प्रादि-स०। अकीर्ति, कीर्त्तिशून्य, यशोहीन, निन्दित।

अपयशस्कर (सं० पु०) यशः करोति यशस्-हेतौ ट ततो अप न यशस्करः विरोधे नञ्। अपकीर्त्तिका हेतु, निन्दाकारी, अख्यातिकर, निन्दा करनेवाला, बदनामी फैलानेवाला।

अपयान (सं० क्लो०) अप-या भावे लुग्रट्। पलायन, अपक्राम, भागना, हीन बाहन, खराब सवारी।

अपयोग (सं० पु०) कुसमय, कुयोग, अशकुन।

अपरञ्च (सं० त्रि०) पुनरपि, फिर भी, और भी।

अपरम्पार (हिं० वि०) अपार, असीम, बेहद।

अपर (सं० क्लो०) न प्रियते पूर्यते वा कर्मादि सम्यक् सम्पद्यते येन यस्माद्वा पृ-पॄ वा करणे अपादाने वा अप्। १ कृष्ण पक्ष। २ अधुना। ३ सम्प्रति। ४ अन्न। ५ अर्वाचीन। ६ अभी। ७ पहला। ८ पिछला। ९ दूसरा। १० हाथीका पिछला भाग।

'अपरन्त्वधुनार्थे स्यात् पश्चाद्गात्रे च दन्तिनां।
अर्वाचीनेऽपरं प्राहुः।' (विश्व)

११ परदेशवर्ती, पश्चिमदेशवर्त्ती। (स्त्री०) १२ अपरदिक्। १३ परकाल भिन्न इतर। "एक एकक्रमित्यन्ये द्वावित्यन्ये वयोऽपरे चतुस्त्राम।" एक पण्डित एक कहते हैं, दूसरे दो, तीसरे तीन और दूसरे कोई पण्डित चार कहते हैं।

उदयाचलसे दूरदेशका नाम पर और निकटका अपर है। एवं जिस समयमें अधिक सूर्यक्रिया रहती है, उसका नाम पर है, और जिस समयमें अल्प क्रिया रहती है, उसको अपर कहते हैं। विशेष अपरत्व शब्दमें देखो। अपर कालका उदाहरण यथा—

"अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।" (गीता ४।४)

अपरमें तुम्हारा जन्म और पूर्वमें सूर्यका जन्म हुआ है। (वि०) ५ अल्पदेशमें स्थित रूप व्याप्य। सामान्य पदार्थका और एक नाम जाति है। न्यायके मतसे सामान्य पदार्थ दो प्रकारका है। यथा—पर और अपर। जो जाति अन्य जातिकी अपेक्षा अल्पदेशमें रहती है, वह उस जातिकी अपेक्षा अपरा होती है। जैसे घटत्व पटत्वादि रूप जाति द्रव्यत्व रूप जातिकी अपेक्षा अल्पदेशमें है, अर्थात् द्रव्यत्व घटपट सब द्रव्य ही में है। किन्तु घटत्व केवल घटमें ही है; इसलिये द्रव्यत्वकी अपेक्षा घटत्व अपरा जाति हुआ। उसी तरह यह द्रव्यत्व जाति भी सत्ताकी अपेक्षा अपराजाति है। कारण सत्ता, जाति, द्रव्य, गुण और कर्म्म इन पदार्थोंमें है, एवं द्रव्यत्व केवल द्रव्यमें है।

१५ निकृष्ट, अश्रेष्ठ। जैसे "अपरा ऋग्वेद-यजुर्वेद-साम-वेदाथर्ववेद-शिक्षाकल्प-व्याकरणछन्दो ज्योतिषमिति।" (कठ० उप०) यह सब अपरा अर्थात् अश्रेष्ठ विद्या हैं। परा देखो। १६ कार्य। 'नास्ति अपरं कार्यं यस्य' (भाष्य)। वह कार्य परमात्माके लिये नहीं, किन्तु जीवात्माके लिये है। १७ शेष भाग। अपरञ्च तत् अहञ्च अपराह्नः। १८ शेष-वेला। अपरा चासौ रात्रिश्च। अपररात्रः। शेषरात्रि। एकदेशो स०। (पु०) अपरश्चासावर्द्धश्च। १९ पश्चार्द्ध, शेषार्द्ध, अपरस्यार्द्धं पश्चभावो वक्तव्यः।

अपरक्त (सं० त्रि०) अपर-रञ्ज भावे क्त। अपगतं रक्तं अनुरागो यस्य, प्रादि बहुव्री०। विरक्त, अनुराग-शून्य, लोहित वर्णशून्य, कुङ्कुम शून्य, रक्तचन्दनहीन, नीलवर्णविहीन, नीला, रक्तशून्य।

अपरकान्यकुब्ज (सं० त्रि०) कान्यकुब्जके पश्चिम भागमें स्थित।

अपरकाय (सं० पु०) शरीरका पिछला हिस्सा।

अपरकाल (सं० पु०) पिछला समय।

अपरगोदान (सं० पु०) महामेरुसे पश्चिम एक देश विशेष।

अपरछन (हिं० वि०) आवरणविहीन, जो छिपा या ढका न हो, बेपर्द।

अपरज (सं० पु०) अपरस्मिन् पश्चात्काले जायते जन-ड। परकालजात, रुद्रविशेष, दुनियाके अन्तमें उत्पन्न हुआ।

अपरजन (सं० त्रि०) पश्चिमवासी, पश्चिमके रहनेवाले।

अपरजस् (सं० त्रि०) अपगतं रजो रेणुर्धूलिः रक्तं रजोगुणो वा यस्मात्। प्रादि बहुव्री वा कवभावः। रेणुशून्य, धूलिरहित, रक्तशून्य, रजोगुणातीत।

अपरजस्क (सं० त्रि०) अपगतं रजो-रेणु-धूलि: रक्तं गुणविशेषो वा यस्य यस्माद्वा। प्रादि-बहुव्री०। शेषादेति कप्। रेणुरहित, धूलिशून्य, रजोगुणवर्जित, ऋतुरहित (स्त्री)।

अपरतन्त्र (हिं० वि०) स्वाधीन, स्वतन्त्र, जो परवश न हो, आज़ाद।

अपरता (सं० त्रि०) परायापन, अपनापन।

अपरताल (सं० पु०) रामायणोक्त हिमालयस्थ जनपद भेद।

अपरति (सं० त्रि०) अपगता रति: रागो रतं वा यस्य, प्रादि बहुव्री०। अनुरागशून्य, मैथुनरहित, विरति, विराग।

अपरतो (सं० त्रि०) स्वार्थी, मतलबका यार।

अपरत्र (सं० त्रि०) अपरस्मिन् काले देशे वा अपर त्रल्। अपरकालमें, अपर देशमें, दूसरे समयमें।

अपरत्व (सं० क्लो०) अपरस्य भाव: अपर भावे त्व। अपरका भाव, अपरका धर्म्म, दूसरेका धर्म्म, दूसरेका भाव। वैशेषिक गुण विशेष। परत्व और अपरत्व दो प्रकारके हैं,—दैशिक और कालिक। दैशिक परत्व दूरत्व और दैशिक अपरत्व निकटत्व है। दैशिक परत्वापरत्वको उत्पत्ति अधिक सूर्य्यसंयोग व्यवधान ज्ञान और अल्प सूर्य्यसंयोग-व्यवधान-ज्ञान होनेसे होती है। जैसे पाटलिपुत्रसे काशीकी अपेक्षा प्रयाग पर अर्थात् दूर है। एवं पाटलिपुत्रसे कुरुक्षेत्रको अपेक्षा प्रयाग अपर अर्थात् निकट है। यहां काशी और पाटलिपुत्र इन दोनोंके मध्यमें जितना सूर्य्य संयोग है, पाटलिपुत्र और प्रयागके मध्यमें उसकी अपेक्षा अधिक सूर्य्यसंयोग है, इसलिये पाटलिपुत्रसे काशीकी अपेक्षा प्रयागमें परत्वज्ञान हुआ एवं पाटलिपुत्रसे कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा प्रयागमें अपरत्वज्ञान हुआ। कालिक परत्व और अपरत्वकी उत्पत्ति अधिक सूर्य्यक्रिया-व्यवहित उत्पत्ति ज्ञान और अल्प सूर्य्यक्रिया-व्यवहित उत्पत्ति-ज्ञान होनेसे होती है। जैसे कनिष्ठकी उत्पत्ति-कालमें जितनी सूर्य्यक्रिया हुई है उसकी अपेक्षा ज्येष्ठकी उत्पत्तिकालमें अधिक सूर्य्यक्रिया हुई है, यह नगर होनेसे ज्येष्ठ परत्व-ज्ञान और कनिष्ठ अपरत्व-ज्ञान होता है। दैशिक परत्वापरत्वकी उत्पत्ति सूर्य्य पदार्थमें होती है। कालिक परत्व वा अपरत्वको उत्पत्ति जन्य पदार्थमें होती है। इसलिये उसका समवायिकारण मूर्त्त और जन्य है। असमवायि-कारण मूर्त्तके साथ पूर्व्वादि दिशाओंका संयोग और जन्यके साथ कालका संयोग, निमित्त कारण पूर्व्वोक्त भूयस्त्व-ज्ञान है। एवं अपेक्षा-बुद्धिका नाश होनेसे इस परत्वापरत्वका नाश होता है।

अपरदक्षिण (सं० त्रि०) अपरा च दक्षिणा च अव्ययी०। नैर्ऋत कोण, पश्चिम और दक्षिणके मध्यका कोण।

अपरदिश (सं० पु०) पश्चिम।

अपरनिदाघ (सं० पु०) ग्रीष्म ऋतुका पिछला हिस्सा।

अपरपक्ष (सं० पु०) अपरश्चासौ पक्षश्चेति कर्मधा। शेष पक्ष, कृष्णपक्ष, प्रतिवादी, मुद्दालेह।

कृष्णपक्षको किसी तिथिमें श्राद्ध किया जा सकता है, पर अमावस्याके दिन श्राद्ध करनेसे विशेष फल होता है। 'पूर्व: पक्षो देवानामपर: पक्ष: पितॄणाम्।' (श्रुति) शुक्ल पक्ष देवताओंका और कृष्णपक्ष पितृगणका है। ब्रह्माने पहले शुक्लपक्ष बनाया और उसके बाद कृष्ण पक्ष, इसीसे इसका नाम अपर पक्ष हुआ है। ब्रह्मपुराणमें लिखा है—

> "चैत्रमासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज्ज प्रथमे ऽहनि।
> शुक्लपक्षे समग्रन्तु तदा सूर्य्योदये सति॥"

चैत्र मासमें सूर्य उदय होनेपर शुक्ल पक्षको प्रतिपदको ब्रह्माने समस्त जगत्को सृष्टि की थी।

पित्रोद्देश्यक दानाय नास्ति पर: श्रेष्ठो यस्मात् स चासौ पक्षश्चेति। मुख्यचान्द्र भाद्रका कृष्णपक्ष एवं गौणचान्द्र आश्विनका कृष्णपक्ष है।

> "नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कुर्य्याद्दिने दिने।
> नैव नन्दादिवर्ज्ज्यं स्यान्नैव वर्ज्ज्या चतुर्द्दशी॥" (कृष्णाजिनि)

भाद्र मासके कृष्णपक्षको प्रति तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये। उसके नन्दा (प्रतिपद, एकादशी, और षष्ठीमें) एवं चतुर्द्दशीमें भी श्राद्ध करना मना नहीं

है। अश्वयुक् कृष्णपक्ष, प्रेतपक्ष, पितृपक्ष। अपर पक्षके श्राद्धमें कई कल्प हैं एवं उनकी प्रति तिथिमें तर्पण करना पड़ता है।

अपरपञ्चाल (सं० पु०) पश्चिमीय पञ्चाल। पञ्चाल देखो।

अपरपर (सं० त्रि०) एक और दूसरा, कई।

अपरबल (सं० त्रि०) उद्धत, बली, बलवान्।

अपरभाव (सं० पु०) सिलसिला, कतार, लगातार।

अपररात्र (सं० पु०) अपरं रात्रेः एकदेशि तत् अच्-स०। रात्रिका शेष, रात्रिका शेषभाग, रातका पिछला हिस्सा।

अपरलोक (सं० पु०) स्वर्ग, दूसरा लोक, परलोक।

अपरव (सं० पु०) अपकृष्टो रवः अप-रु-अप्। प्रादि-स०। अपकीर्त्ति, अपयश, बदनामी।

अपरवक्त्र (सं० क्ली०) अपरं वक्त्रात्। वक्त्रसे भिन्न वृत्त, एक प्रकारका छन्द। छन्दोमञ्जरीमें लिखा हुआ अर्द्धसमवृत्तविशेष।

"अयुजिननरला गुरुः समेतदपरवक्त्रमिदं नजौ जरौ।" (छन्दोमञ्जरी।२।४।)

जिसके प्रथम और तृतीय चरणमें ननरल गण रहता है, उसके बाद एक अक्षर गुरु होता है। सममें अर्थात् द्वितीय और चतुर्थ पदमें न ज जरगण रहता है। इसलिये उसे अपरवक्त्रवृत्त कहते हैं।

अपरवर्षा (सं० स्त्री०) वर्षाका अन्तिम भाग, बरसातका पिछला हिस्सा।

अपरवश (हिं० वि०) पराधीन, दूसरेके वशका।

अपरवैराग्य (सं० क्ली०) विरागे भवं विराग भावार्थे यत् ततोऽपरञ्च तत् वैराग्यञ्चेति कर्मधा०। और एक वैराग्य, पतञ्जलि मुनिका कहा हुआ वैराग्य विशेष।

अपरस (हिं० वि०) अस्पृश्य, जो छूने लायक न हो, जिसे किसीने छुआ न हो।

अपरस्पर (सं० त्रि०) पर कर्मव्यतिहारे (एक जातीय क्रियाकरणे) द्वित्वं पूर्वपदे सुः कस्कादि० विसर्ग सत्वञ्च। ततो न परस्परं नञ्-तत्। परस्पर नहीं, एकके बाद दूसरा, लगातार, सिलसिलेवार।

अपरहेमन्त (सं० पु०) जाड़ेका पिछला हिस्सा।

अपरहैमन (सं० त्रि०) अपर हेमन्ते भवम् अपर-हेमन्त भावार्थे इण् नलोपः उत्तरपद वृद्धिश्च। हेमन्तके अन्तमें उत्पन्न, शेष हेमन्तमें उत्पन्न।

अपरान्त (सं० पु०) १ पश्चिमीय सीमाका रहनेवाला। २ प्राचीन जनपदभेद, वर्त्तमान गुजरात प्रान्त। ३ पश्चिमीय सीमा, मृत्यु।

अपरान्तक (सं० पु०) पश्चिमदिशाका एक पर्वत।

अपरान्तिका (सं० स्त्री०) वैताली छन्दका एक भेद।

अपरा (सं० स्त्री०) पिपर्ति शुक्रं यथावत् पालयति पृ पालने कर्त्तरि अप् स्त्रीत्वात् टाप् परा, नास्ति परा शुक्रप्रतिपालिका यस्याः। नञ्-बहुव्री०। १ जरायु, जिसकी अपेक्षा शुक्रप्रतिपालिका स्थान और नहीं है। २ उदयाचलसे अधिक दूरवर्ती पश्चिम दिक जिसकी अपेक्षा और श्रेष्ठ नहीं है।

अपराग (सं० पु०) रञ्जनं रज्यतेऽनेन वा रञ्ज भावे करणे वा घञ् न लोपो वृद्धिः कुत्वञ्च। अप अपगतो रागः, प्रादि-स०। विराग, लोहितादि रङ्गहीन, गान्धारादि रागरहित, क्लेशरहित, अनुरागशून्य, मत्सरहीन।

अपराग्नि (सं० पु०) अपरश्च अग्निश्च द्वन्द्व २-व०। गार्हपत्य अग्नि एवं दक्षिणाग्नि, अन्त्येष्टि-क्रियाकी अग्नि, दूरकी आग, निकटकी आग, पश्चिम दिशाकी आग।

अपराङ्ग (सं० क्ली०) अपरस्य रसादेरङ्गं, ६-तत्। गुणीभूत काव्यविशेष।

अपराङ्मुख (सं० त्रि०) पराक् मुखं यस्य तत् पराङ्मुखं ततो नञ्-तत्। अनिवृत्त, जो कर्त्तव्य विषयसे विमुख न हो।

अपराच् (सं० त्रि०) परा अञ्चति निवर्त्तते परा-अञ्च-क्विन् न लोपे पराच्। न पराच नञ्-तत्। अनिवृत्त, अपराङ्मुख।

अपराजित (सं० पु०) परा-जि-क्त न पराजितः नञ्-तत्। १ विष्णु। २ शिव। ३ ऋषिविशेष। ४ दूर्वा। ५ शेफालिका। ६ जयन्तीवृक्ष। ७ असनवृक्ष। ८ शङ्खिनी वृक्ष। ९ हवुषा वृक्ष। १० अश्मनपर्णी। (त्रि०) ११ जो पराजित न हो।

अपराजिता (सं० स्त्री०) न पराजिता, नञ्-तत्।

न परैः शत्रुभिः आ सम्यक् जिता, ३-तत्। न पराजितं पराजयो यस्याः, नञ्-बहुव्री वा। १ दुर्गा। २ ईशान कोण। ३ कोयल। ४ विजयदशमीके दिन अपराजिता दुर्गाकी पूजा होती है, इसीसे विजयदशमीका नाम अपराजिता है।

५ एक प्रकारका छन्द जिसके प्रतिचरणमें चौदह अक्षर रहते हैं, उस वृत्तका नाम अपराजिता है। "ननरसलघुगैः स्वरैरपराजिता।" (वृत्त० र०) जिस वृत्तके प्रथममें दो नगण, फिर क्रमसे रगण एवं सगण, उसके बाद एक लघु और उसके बाद एक गुरु स्वर युक्त वर्ण रहता है, उसका नाम अपराजिता है।

स्याद्दातकः शीतलोऽपराजिताऽशनपर्ण्यपि॥ (अमर)

अः विष्णुः पराजितस्तुल्यवर्णतया यया ३-बहुव्री०। ६ अपराजिता नाम्नी लता और उसका फूल। ७ जयन्तीवृक्ष। ८ अशनपर्णी। ९ स्वल्पफला। १० शेफाली। ११ शमीविशेष। १२ शङ्खिनी। १३ हवुषा विशेष। १४ कौआटोटी।

सचराचर हम लोग जिसको अपराजिता फूल (Clitoria Pernatea) कहते हैं, उसके यह कई पर्य्याय देखे जाते हैं,—आस्फोता, गिरिकर्णी, विष्णुकान्ता, गवाक्षी, अश्वखुरी, श्वेता, श्वेतभण्डा, गवादिनी, अद्रिकर्णी, कटभी, दधिपुष्पिका, गर्द्दभी, विषहन्त्री, नगपर्य्यायकर्णी। (पर्वतके जितने प्रकारके नाम हैं, उनके साथ कर्णी जोड़ देनेसे अपराजिताका बोध होता है)। अश्वाह्वादि खुरी।

अपराजिताका फूल नीला और सफेद होता है। सफेद अपराजिता ही दवाके काम आती है। वैद्यशास्त्रानुसार यह हिम, तिक्त, नेत्रके लिये हितकर और त्रिदोष-शमताकारी है। इसका सेवन करनेसे पित्त, विषदोष, शोथ, और कण्ठरोग नष्ट होता है।

युरोपीय चिकित्सक नानाप्रकारके रोगोंमें अपराजिता प्रयोग करते हैं। उनके मतसे इसका मूल अत्यन्त विरेचक, मूत्रकर और वमनकारक है। विलायती औषध जेलाप चूर्णके बदलेमें यह काममें लाया जा सकता है। उपरी (पेटफूलना) और शोथ रोगमें इसके पत्ते वा मूलके फाण्टका सेवन करनेसे मूत्रवृद्धि होती है, इससे शीघ्र ही शोथ कम हो जाता है। डाक्टर ऐन्सिलि वमन करानेके लिये इसे क्रुप् रोगमें प्रयोग करनेको व्यवस्था देते हैं। डाक्टर वासानसीने बङ्गाल डिस्पेन्सेटरी नामक औषध ग्रन्थमें लिखा है, कि वमन करानेके लिये अनेक स्थलोंमें अपराजिता प्रयोग किया गया था, किन्तु किसी रोगीको न वमन और न वमनका उद्वेग ही हुआ। डाक्टर मुदिन् सेरिफ कहते हैं, कि मूत्राशयमें उग्रता उत्पन्न होनेपर अपराजिताका फाण्ट सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

युरोपमें अपराजिताके वीजका ही विशेष आदर है। इसका चूर्ण मृदुविरेचक है, इसलिये बच्चोंको भी बेखटके दिया जा सकता है। खुजली आदि चर्मरोगोंमें अपराजिताका फाण्ट लगानेसे उपकार होता है। हमारे देशमें अनेक प्रकारके रोगोंमें योगी, संन्यासी तथा और और आदमी अनेक प्रकारके अवधौत मतोंसे औषध दिया करते हैं। नाकके रोगमें अपराजिता एक विशेष हितकारी टुटका है। आश्विन मास शेष होनेपर संक्रान्तिके दिन बड़े सवेरे धानके खेतमें जाकर जिस धानमें फूल लगा हो, उसको नौ छोटी छोटी जड़ें उखार लाना और उसी खेतसे एक घण्टी साफ़ जल भी लेते आना। फिर उस जड़को छोटे छोटे टुकड़े करके थोड़ेसे पके केलेके भीतर रखकर रोगीको खिला देना। दवा खा लेनेपर घण्टीमें लाये हुए जलमेंसे तीन घूंट जल रोगी पीये और बाकी जल शिरपर डाल ले। जिस केलेके भीतर औषध रखकर रोगी खावे, जन्मभर फिर उस जातिके केलेको कभी न खावे। इस औषधके सेवन कर लेनेके बाद रोगीको तीन दिन लगातार सफ़ेद अपराजिताके पत्तेका रस नाकसे सुड़क लेना होगा। इससे प्रायः सभी रोगी अच्छे हो जाते हैं।

सांपके काटनेपर भी अपराजितासे बहुत उपकार होता है। अन्यान्य प्रकरणोंके साथ इसका आध पाव रस सेवन करानेसे रोगी वमन करता रहता है, उससे विष दूर हो जाता है। सर्पाघात देखो।

अपराजिष्णु (सं० त्रि०) अजित, अजेय, जो जीता न जा सके, मज़बूत, ज़बरदस्त।

अपराद्ध (सं० त्रि०) अप-राध कर्त्तरि क्त। अपराधी, स्खलित, जो अपने काममें असमर्थ हो।

अपराद्धपृषत्क (सं० पु०) अपराद्धा लक्ष्यात् स्खलित: पृषत्को वाणो यस्य। जो ठीक लक्ष्यवेध करनेमें असमर्थ है, जो ठीक निशाना नहीं मार सकता, जिसका वाण ठीक निशानेपर नहीं लगता।

अपराद्धृ (सं० त्रि०) अप-राध-तृच्। अपराधकर्ता, अपराधी, जो अपना उचित काम न कर सके।

अपराध (सं० पु०) अप-राध-घञ्। पाप, दोष, भूल, क़सूर, अपना उचित काम न करना, दण्डयोग्य काम करना।

चलित धर्मशास्त्रके नियम, सामाजिक नियम और राजनियमके विरुद्ध आचरण करना हो अपराध है। पर अच्छी तरह सोच विचारकर देखनेपर अपराध शब्दका प्रकृत तात्पर्य्य प्रकाश करना अत्यन्त कठिन है। एक देशमें जो काम अपराध माना जाता है, दूसरी जगह लोग उसी कामकी निन्दा नहीं करते, उसे दोष भी नहीं मानते। पहले हमारे देशमें सहमरण, नरवलि आदि अनेक कुरीतियां प्रचलित थीं। उस समय लोग उन्हें सुकर्म समझते थे, किन्तु इस समय उन सब कामोंकी बात सोचनेसे रोयें खड़े हो जाते हैं। आजकल छोटी उम्रमें विधवा हो जानेसे बालिकाओंको जन्मभर वैधव्ययन्त्रणा भोगना पड़ती है। हिन्दुस्थानमें अस्सी बर्षसे भी अधिक वयस्की वृद्धा एकादशीके दिन निर्जल उपवास करती है। प्याससे कण्ठ सूखने और कलेजा फट जानेपर एक बूंद पानी नहीं पीती। इस निष्ठुर कामका आज हम आदर करते और इसे भद्र वंशका अवश्य कर्तव्य कर्म समझते हैं। पर दूसरे देशवाले हमारे इस निर्दय आचरणकी बात सुनकर चौंक उठते हैं। हम भी एक दिन चौंक उठेंगे। अतएव देशभेद और समाजभेदसे अपराध कभी एक तरहका नहीं रह सकता।

अपराधय (सं० त्रि०) अपराधं याति प्राप्नोति अप-राध-या-क। अपराधप्राप्त।

अपराधिन् (सं० त्रि०) अप-राध-णिनि। अपराधयुक्त, अपराध करनेवाला, दोषी।

अपराधी (हिं० वि०) पापी, दोषी, क़सूरवार, मुलज़िम।

अपराधभञ्जन (सं० पु०) अपराधहर्त्ता, अपराधनाशकर्ता, अपराधका नाश करनेवाला, शिव।

अपरापरण (सं० पु०) सन्तानहीन, जिसके बाल बच्चे न हों।

अपरामृष्ट (सं० त्रि०) अव्यवहृत, अस्पृष्ट, कोरा, अछूता।

अपरार्क (सं० पु०) अपरो भिन्नोऽर्कः सूर्य्यइव उपमित स०। ग्रन्थविशेष, स्मृतिसंग्रह।

विज्ञानेश्वरके समयमें वा उसके कुछ बाद शिलाहारराज अपरार्क वा अपरादित्यने ११३४से ११५० ईस्वीके मध्यमें याज्ञवल्क्य स्मृतिका एक वृहत् भाष्य बनाया। वह कोङ्कणप्रदेशके पुरी नामक स्थानमें राजत्व करते थे। उनका यह भाष्य मिताक्षराको भांति सर्व्वजनपरिचित न होनेपर भी परवर्त्ती स्मृतिचन्द्रिका, चतुर्वर्गचिन्तामणि, मदनपारिजात प्रभृति प्रधान प्रधान स्मृतिनिवन्धोंमें उद्धृत हुआ है। भाष्यग्रन्थ होनेपर भी यह 'याज्ञवल्क्यधर्मशास्त्रनिवन्ध' नामसे परिचित हुआ था। अपरार्कने कहीं भी विज्ञानेश्वरकी मिताक्षरा उद्धृत नहीं की, अथच दोनों ग्रन्थोंके अनेक स्थानोंमें एक ही वचन उद्धृत हुआ है, इससे मालूम होता है, कि दोनोंको किसी प्राचीन ग्रन्थसे सहायता मिली होगी। शिलाहारराज अपरार्कने अपनेको जीमूतवाहनका वंशधर कहकर परिचय दिया है। कोई कोई उक्त जीमूतवाहन और दायभाग-रचयिता जीमूतवाहनको एक ही समझते हैं, पर दोनों सम्पूर्ण भिन्न व्यक्ति, भिन्न जातीय, भिन्न देशवासी और भिन्न समयके मनुष्य थे। शिलाहारराजवंशके पूर्वपुरुष क्षत्रिय और कोङ्कणवासी, दायभाग-रचयिता जीमूतवाहन गौड़वासी राढ़ीय ब्राह्मण पारिभद्र वा पारियाल ग्रामी था, शिलाहार-जीमूतवाहनके वह परवर्त्ती हैं। अपरार्कके पूर्वपुरुषके साथ ऐसा नामसादृश्य रहनेसे अपरार्कमतको प्राचीन गौड़ीय कहकर ग्रहण किया है।

अपरार्द्ध (सं० क्लो०) न परार्द्धम्। नञ्-तत्। जो परार्द्ध न हो, जो परार्द्धसंख्या न हो, दूसरा खण्ड, दूसरा समान अंश।

अपरावर्तिन् (सं० त्रि०) परावर्तते परा-वृत-णिनि परावर्ती ततो नञ्-तत्। अपराङ्मुख, जो विमुख न हो, जो विना काम समाप्त किये चुप न हो।

अपरावर्ती (हिं० वि०) तत्पर, पीछे न हटनेवाला, जो काम खतम किये बिना न लौटे, मुस्तैद।

अपराह्ण (सं० पु०) अपरमहः, एकदे०स० टच् अह्नादेशो णत्वञ्च। दिवसका शेष भाग, तीसरा पहर। जिस श्रुतिके मतसे दिन दो भागोंमें विभक्त है, उसके अनुसार दिनका पिछला भाग, जिस श्रुतिके मतसे दिन तीन भागोंमें विभक्त है, उसके अनुसार दिनका शेष तृतीय भाग। अमरसिंहके मतसे भी दिन तीन भागोंमें विभक्त है। 'प्राह्णापराह्णमध्याह्नस्त्रिसन्ध्यम्।' (अमर)

लोग दिनके शेषभागको ही अपराह्ण कहते हैं। किन्तु ऋषियोंने कार्य्यविशेषके लिये जो तीन तीन मुहूर्त्तोंका एक एक भाग निरूपण करके दिनको पांच भागोंमें विभक्त किया है, उसके चतुर्थ भागका नाम अपराह्ण है। यह अपराह्ण श्रुति स्मृति सबके मतसे ही पितृकार्यके लिये प्रशस्त है। दिनके पांच भाग हैं। यथा—१म, प्रातःकाल; २य, सङ्गव; ३य, मध्याह्न; ४र्थ, अपराह्ण; ५म, सायाह्न। इस मुख्य अपराह्णकी अप्राप्ति होनेसे ऋषियोंने और एक गौण अपराह्ण स्वीकार किया है। यथा—

"अपराह्णे तु संप्राप्ते अभिजिद्रौहिणोद्दये।" (स्मृति)

अष्टम एवं नवम घटिका रूप अपराह्ण प्राप्त होनेसे श्रुति और लौकिक मतसे यद्यपि सायाह्न अपराह्णमें पड़ जाता है, पर वह पितृकार्य्यके लिये अयोग्य काल है। "राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु।" (स्मृति) सायाह्न तीसरा मुहूर्त्त है। उसका नाम राक्षसी है और वह सब कामोंके लिये निन्दित है।

अपराह्णक (सं० त्रि०) अपराह्णे भवम् अपराह्ण भावार्थे वुन्। अपराह्ण-जात, अन्तिम वेलामें उत्पन्न।

अपराह्णतन (सं० त्रि०) अपराह्णभवम् ल्युट् तुट् च। अपराह्णमें उत्पन्न, तीसरे पहर पैदा हुआ।

अपरिकलित (सं० त्रि०) न परिकलितम्, नञ्-तत्। अदृष्ट, अश्रुत, अज्ञात, अनजान, विना देखा सुना, विना जाना सुना।

अपरिक्रम (सं० त्रि०) नास्ति परिक्रमो यस्य। नञ्-बहुव्री०। उद्योगरहित, अपरिपाटिक, परिपाटीहीन।

अपरिक्लिन्न (सं० त्रि०) शुष्क, सूखा।

अपरिक्लिष्ट (सं० त्रि०) परि-क्लिश भावे क्त, नास्ति परिक्लिष्टं क्लेशो यत्र, नञ्-बहुव्री०। अनायाससाध्य, जो विना कुछ कष्टके हो जाय, जो सहज हो हो जाय। क्लेशशून्य, जिसे क्लेश नहीं है।

अपरिगण्य (सं० त्रि०) अगणित, बेशुमार, बेहिसाब।

अपरिगत (सं० त्रि०) न परिगतम्, नञ्-तत्। अज्ञात, अप्राप्त, अपरिचित, अनजान।

अपरिगृहीत (सं० त्रि०) न परिगृहीतम्, नञ्-तत्। अस्वीकृत, अगृहीत, अज्ञात, अप्राप्त, छोड़ा हुआ।

अपरिग्रह (सं० पु०) परिगृह्यते परि-ग्रह भावे अप् नञ्-तत्। १ परिग्रहका अभाव, ज्ञानका अभाव। २ अस्वीकार। ३ विराग। ४ परिव्राजक। ५ स्त्रीरहित। ६ परिचारकहीन। ७ निर्मूल। ८ पातञ्जलका कहा हुआ यम (संयम)। ९ अहिंसा। १० चोरीका अभाव। ११ ब्रह्मचर्य्य।

अपरिचय (सं० त्रि०) परिचयका अभाव, जान पहचानका न होना।

अपरिचित (सं० त्रि०) परि-चि-क्त, नञ्-तत्। अनुशीलित भिन्न, अननुशीलित, अज्ञात, परिचित भिन्न, अनजान, जो जाना बूझा न हो, जिससे जान पहचान न हो।

अपरिचेय (सं० त्रि०) अनमेल, जो मिलनसार न हो, जिसकी संगति करने लायक न हो।

अपरिच्छद (सं० त्रि०) नास्ति परिच्छदो यस्य, अप्राशस्त्ये नञ्-बहुव्री०। अपकृष्ट वस्त्रादि उपकरणयुक्त, आच्छादनरहित, दरिद्र, नंगा, खुला हुआ।

अपरिच्छन्न (सं० त्रि०) परि-छद-क्त परिच्छन्नम्, नञ्-तत्। अपरिष्कृत, मार्जनशुश्रूषादिरहित, आवरणरहित, नग्न, खुला।

अपरिच्छिन्न (सं० क्लो०) परि-छिद-क्त, नञ्-तत्। १ इयत्तारहित, सीमाशून्य, असीम। २ कूटस्थचैतन्यात्मक ब्रह्म। ३ सीमारहित समुद्र और आकाशादि। ४ अभेद्य, जिसका विभाग न हो सके। ५ मिला हुआ।

अपरिच्छेद (सं० पु०) परि-छिद-घञ् अभावार्थे नञ्-तत्। परिच्छेदका अभाव, इयत्ताशून्य।

अपरिज्ञान (सं० क्लो०) न परिज्ञानम् अभावे नञ्-तत्। तत्त्वविवेकका अभाव, तत्त्वज्ञानराहित्य, परमार्थ-ज्ञानशून्यता।

अपरिणत (सं० त्रि०) परि-नम-क्त नञ्-तत्। १ अपरिपक्व, विकारशून्य, जिसका परिणाम जैसा होना उचित है उससे विपरीत, कच्चा, जो पका न हो। २ अन्यप्रकारताप्राप्त। ३ वक्र दन्तप्रहारशून्य (हस्ती)।

अपरिणय (सं० पु०) परिणीयते त्वं मे पतिः त्वं मे भार्या एवं रूपेण परस्परं परिगृह्यते स्त्रीपुरुषौ येन परि-नी करणे अच्। परिणयो विवाहः न परिणयः, नञ्-तत्। विवाहका अभाव। कुमारपन।

अपरिणाम (सं० पु०) न परिणामः अभावे नञ्-तत्। परिणामका अभाव, परिपक्वताका अभाव, परिपक्वताशून्य।

अपरिणामदर्शिन् (सं० त्रि०) असावधान, लापरवाह।

अपरिणामी (हिं० वि०) निष्फल, परिणामशून्य।

अपरिणीत (सं० त्रि०) परिणीयते स्म विवाहसंस्कारेण परिगृह्यतेस्म परि-नी-क्त नञ्-तत्। विवाह-संस्कार-हीन, कौमारावस्थायुक्त, अविवाहित, क्वारा।

अपरितोष (सं० पु०) न परितोषः अभावे नञ्-तत्। सन्तोषका अभाव, असन्तुष्टता।

अपरिपक्व (सं० त्रि०) न परिपक्वम् नञ्-तत्। जो परिपक्व न हो, जो पका न हो, कच्चा, जो सुसिद्ध न हो, अव्युत्पन्न, कार्याक्षम, अधूरा, अप्रौढ़, अधकच्चा।

अपरिमाण (सं० क्लो०) अभावे नञ्-तत्। परिमाणका अभाव, परिमाणराहित्य, इयत्ताका अभाव। (त्रि०) २ अपरिमित, बेअन्दाज़, बहुत ज्यादा।

अपरिम्लान (सं० पु०) न परिम्लायति स्म, परि-म्लै कर्तरि क्त नञ्-तत्। १ रक्तवर्ण, आयला वृक्ष। (त्रि०) २ म्लानिशून्य, जो म्लान न हो, जो कुम्हलावे नहीं, जो मुरझावे नहीं।

अपरिमित (सं० त्रि०) न परिमितम्, नञ्-तत्। इयत्तारहित, परिमाणशून्य, असीम, अनन्त, अगणित, बेहद।

अपरिमेय (सं० त्रि०) न परिमातुं शक्यम् नञ्-तत्। जिसका परिमाण न मिले, अगणित, बेअन्दाज़।

अपरिविष्ट (सं० त्रि०) परि-विश-क्त, न परिविष्टम्, नञ्-तत्। वेष्टनशून्य, अव्याप्त, परिवेशनशून्य, जिसे अन्नादि न परोसा गया हो।

अपरिवृत (सं० त्रि०) न परिवृतम्, नञ्-तत्। अवेष्टित, अनाच्छादित, अनावृत, जो स्थान चांदनी आदिसे ढका न हो।

अपरिवर्तनीय (सं० त्रि०) जो परिवर्तनके योग्य न हो, बदलेमें दिया न जा सके।

अपरिशेष (सं० पु०) न परिशेषः नञ्-तत्। परिशेषाभाव, इयत्ताराहित्य। (त्रि०) २ नित्य, अविनाशी, जिसका नाश न हो, अनन्त।

अपरिष्कार (सं० पु०) न परिष्कारः, अभावे नञ्-तत्। मार्ज्जनादि शोधन संस्कारका अभाव, मार्जनादिशून्यता, अपरिच्छन्नता, मैलापन।

अपरिष्कृत (सं० त्रि०) जिसकी सफाई न की गई हो, मैला कुचैला।

अपरिष्टि (सं० स्त्री०) अपगता रिष्टिः हिंसा यत्र वैपरीत्ये रिष हिंसायां क्तिन्। पूजा, सात्विक पूजामें कोई हिंसा नहीं है।

अपरिसमाप्ति (सं० स्त्री) न परिसमाप्तिः अभावे नञ्-तत्। समाप्तिका अभाव, इयत्ताका अभाव, परिसमाप्तिशून्यता।

अपरिसर (सं० पु०) परि-सृ-अप् न परिसरः। नञ्-तत्। विस्तारका अभाव, प्रचारका अभाव, विस्तारशून्यता।

अपरिस्कन्द (सं० त्रि०) गतिहीन, जो चलता फिरता न हो।

अपरिहरणीय (सं० त्रि०) परिहर्तुं शक्यं परि-हृ

शक्यार्थे अणीयर् न परिहरणीयम्, नञ्-तत्। परिहारके अशक्य, अयोग्य, छोड़ने लायक नहीं अत्याज्य, आदरणीय, अनिवारित।

अपरिहार (सं० क्लो०) अनिवारण, अवर्जन।

अपरिहारित (सं० त्रि०) अनिवारित, अवर्जित, अत्याज्य।

अपरिहार्य (सं० त्रि०) परिहर्तुं शक्यं परि-हृ शक्यार्थे ण्यत् न परिहार्यम् नञ्-तत्। परिहारके अशक्य, त्यागके अयोग्य, छोड़ने लायक नहीं, अनिवार्य, अवर्जनीय, अत्याज्य, आदरणीय।

अपरीक्षित (सं० त्रि०) परि-ईक्ष-क्त न परीक्षितं सम्यगालोचितम् नञ्-तत्। जिसकी परीक्षा न की गई हो, जिसकी जांच न हुई हो।

अपरीत (सं० त्रि०) परि-इण-क्त न परीतम्, नञ्-तत्। जो सब दिशाओंमें व्याप्त न हो, अपरिगत, अप्राप्त।

अपरुष् (सं० त्रि०) अप अपगता रुट् क्रोधो यस्य। प्रादि बहुव्री०। विगतक्रोध, जिसके क्रोध न हो, क्रोधरहित।

अपरुष (सं० क्लो०) न परुषं निष्ठुरम्, नञ्-तत्। अनिष्ठुर, ग्रन्थिशून्य, गर्वरहित, विना गांठका, क्रोधरहित।

अपरूप (सं० क्लो०) अप-उत्कृष्टम् आश्चर्यं वा रूपम् प्रादि-स०। १ आश्चर्यरूप, सुन्दर रूप। २ सुन्दर रूपयुक्त, सौन्दर्यशाली। ३ कुरूप, कुत्सित।

अपरेद्युस् (सं० अव्य०) अपरस्मिन्नहनि एद्युस्। दूसरे दिन।

अपरोक्ष (सं० अव्य०) अक्ष्ण: परं परोक्षं न परोक्षमपरोक्षम् नञ्-अव्ययी०। प्रत्यक्ष, विषयेन्द्रिय-सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञान, परब्रह्म,। (त्रि०) २ प्रत्यक्षका विषय।

अपरोक्षानुभूति (सं० स्त्री०) अपरोक्षा चासौ अनुभूतिश्चेति कर्मधा०। प्रत्यक्षरूप ज्ञान, वेदान्तका प्रकरण विशेष।

अपरोध (सं० पु०) अप-रुध भावे घञ्। रुद्ध करना, रोक, बन्दी।

अपर्णा (सं० स्त्री०) नास्ति पर्णं गलितपत्रमपि तत्काले जीविका यस्या:, नञ् बहुव्री०। पार्वती, दुर्गा,। 'अपर्णा पार्व्वती दुर्गा।' (अमर) दुर्गाने गिरिराजके यहां जन्म लेकर शिवके लिये तप करते समय सूखे पत्तोंतकका खाना छोड़ दिया था।

"वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविद:।" (कुमार ५।२८)

इसीसे पुराविद् पण्डितगण उन्हें अपर्णा भी कहते हैं।

हरिवंशमें लिखा है, कि मेना पितृगणकी मानस-कन्या हैं। हिमालयके साथ उनका विवाह हुआ था। फिर हिमालयके औरस और मेनकाके गर्भसे अपर्णा, एकपर्णा और एकपाटला नाम्नी तीन कन्या उत्पन्न हुईं। उन तीनों बहिनोंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दी। एकपर्णा पेड़का केवल एक पत्ता खाती थीं, इसीसे उनका नाम एकपर्णा हुआ। सबसे छोटी बहिन एकपाटला प्रतिदिन एक पाटला फल खाकर रहती थीं, इसीसे लोग उन्हें एकपाटला कहने लगे। किन्तु सबसे बड़ी अपर्णा एक पत्ता भी न खाती थीं, इसलिये उनका अपर्णा नाम हुआ। कन्याकी ऐसी कठिन तपस्या देखकर मेनका बहुत दु:खित हुईं। माता सन्तानका दु:ख नहीं देख सकती, इसलिये उन्होंने कन्याके निकट जाकर कहा—'उमा'—तुम ऐसा मत करो। तबसे अपर्णाका नाम उमा हुआ है। महादेवके साथ अपर्णाका विवाह हुआ था, असितदेवलने एकपर्णाका और जैगीषव्यने एकपाटलाका पाणिग्रहण किया। २ पत्रशून्य लतादि।

अपर्त्तु (सं० त्रि०) अप अपगत ऋतुर्यस्य। प्रादि-बहुव्री०। १ जिस देशमें वसन्तादि सब ऋतु नहीं हैं। (स्त्री०) २ अपगत-रजस्का स्त्री, जो स्त्री रजस्वला नहीं होती।

अपर्य्यन्त (सं० त्रि०) नास्ति पर्यन्तो मर्यादा यस्य। नञ् बहुव्री०। असीम, इयत्तारहित।

अपर्य्याप्त (सं० त्रि०) परि-आप-क्त, नञ्-तत्। अयथेप्सित, असमर्थ, अपूर्ण, स्वकार्य्यमें अक्षम, अपरिच्छिन्न, इयत्तारहित, अयथेष्ट, जो काफी न हो।

अपर्याप्ति (सं० स्त्री०) न पर्याप्ति अभावे नञ्-

तत्। अपरिच्छेद, असामर्थ्य, अयोग्यता, अपूर्णता, त्रुटि, कमी।

अपर्याय (सं० पु०) न पर्यायः, नञ्-तत्। परिपाटीका अभाव, अनवसर, अक्रम, क्रमका अभाव, अनुपूर्वीका अभाव, अनुक्रमका अभाव, परिपाट्यादिशून्य, बेसिलसिला, बेढङ्ग।

अपर्युषित (सं० त्रि०) न पर्युषितम्, नञ्-तत्। अभिनव, सद्योजात, वासी नहीं, टटका, ताज़ा।

अपर्वक (सं० त्रि०) विना गांठ वा जोड़का।

अपर्वदण्ड (सं० पु०) नास्ति पर्व ग्रन्थिर्यस्य। स दण्ड इव उपमितस०। रामकृष्ण नामक शर, रामबाण। उनके दण्डमें गांठ न रहनेके कारण ऐसा नाम पड़ा। २ एक क़िस्मका ऊख।

अपर्वन् (सं० क्लो०) न पर्व नञ्-तत्। पर्व्वभिन्न; चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा यह सब तिथियां और इनके अतिरिक्त संक्रान्ति पर्व। २ ग्रन्थिशून्य दण्डादि, विना गांठकी लाठी वगैरह। ३ परिच्छेदशून्य ग्रन्थादि।

"चतुर्द्दश्यष्टमी चैव अमावस्याथ पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥" (स्मृति)

अपल (सं० क्लो०) अप अपक्रमं लाति गृह्णाति (निवारयति) येन यस्मिन् वा अप-ला करणे अधिकरणे वा क। १ पलायननिवारक लाठी, गोंज, कीलक। २ चार तोलासे न्यून परिमाण। (त्रि०) ३ मांसहीन।

अपलक्षण (सं० क्लो०) दुष्ट लक्षण, कुलक्षण, दोष, खराब चिह्न।

अपलाप (सं० पु०) अप मिथ्याभूतं लप्यते अप-लप भावे घञ्। १ स्थित पदार्थको भी अस्थित रूपसे कहना, निश्चय अस्वीकार करना, मिथ्यावाद, वकवाद, छिपाव। २ स्नेह। ३ प्रेम। ४ कन्धे और पसुलियोंके मध्यका भाग।

अपलाल (सं० पु०) एक राक्षस वा नागका नाम।

अपलाश (सं० त्रि०) अपर्ण, विना पत्तेका।

अपलाषिका (सं० स्त्री०) अप-लष इच्छायां पर्य्याये ण्वुच्, प्रादि-स०। तृष्णा, अतिलालसा।

अपलाषिन् (सं० त्रि०) अप-अपकर्षे लष कान्तौ इच्छायां वा ताच्छील्यादिषु कर्त्तरि णिनुम्। अनुचित विषय-लालसायुक्त, कुत्सित कान्तियुक्त।

अपलाषुक (सं० त्रि०) अप-अपकर्षे लष-ताच्छील्यादिषु कर्तरि उकञ्। अनुचित धनतृष्णायुक्त।

अपल्पूलन (सं० क्लो०) न पल्पूलनं पवित्रकरणं अदन्त-चुरा०-ल्युट्, नञ्-तत्। स्नानादि मार्जनद्वारा शोधनाभाव, नहा धोकर साफ़ न होना।

अपलोक (सं० पु०) अपकीर्ति, अपवाद, अपयश, बदनामी।

अपवत् (सं० त्रि०) अप-कर्म तदस्त्यस्य मतुप् वेदे स लोपः मस्य वत्वञ्च। कर्मयुक्त।

अपवन (सं० क्लो०) अपकृष्टं स्वल्पत्वात् वनम्। प्रादि तत्। उपवन, कृत्रिमवन, बाग विना हवाका।

अपवरक (सं० पु०) अपव्रियते अप-वृ-अप् ततः संज्ञायां वुन्। अन्तर्गृह, गर्भागार। शयनास्पद, बीचकी कोठरी।

अपवरण (सं० क्लो०) अप-वृ भावे ल्युट्। अनावरण, आवरण दूर करना।

अपवर्ग (सं० पु०) अपवृज्यते कर्मसूत्रं त्यज्यते यत्र अप-वृज-घञ् कुत्वम्। मोक्ष, मुक्ति, त्याग, दान, कर्मफल, फलप्राप्ति, क्रियाका साफल्य, क्रियान्त, कार्य्यसमाप्ति, पूर्णता।

अपवर्जन (सं० क्लो०) अप-वृज-ल्युट्। दान, मोक्ष, त्याग, निर्वाण।

अपवर्जित (सं० त्रि०) अप-वृज-क्त। त्यक्त, दत्त, परिहृत, छोड़ा हुआ, छुटकारा पाया हुआ।

अपवर्तक (सं० त्रि०) अप-वृत-णिच्-ण्वुल्। (measure) जिस राशिसे दूसरी दो वा उससे अधिक राशिको भाग देनेपर भागावशिष्ट कुछ भी नहीं रहता, उसे इन सब राशियोंका अपवर्तक कहते हैं; जैसे २ अङ्क ६ और ८ अङ्कोंका अपवर्तक है। कारण, ६ और ८ को २से भाग देनेपर कुछ भी नहीं बचता।

अपवर्तन (सं० क्लो०) अप-वृत-णिच्-ल्युट्। परिवर्तन, आन्दोलन, संक्षेप, लाघव, अपहरण, उलट फेर, अङ्कशास्त्रके मतसे भाज्य भाजक दोनोंको तुल्य रूप किसी अङ्कसे भाग देना।

अपवर्तित (सं॰ त्रि॰) अप-वृत-णिच्-क्त। परिवर्तित, बदला हुआ, पलटाया गया।

अपवर्त्य (सं॰ त्रि॰) अप-वृत-ण्यत्। (Multiple) ज़ेफ़। अन्य राशि द्वारा जिस राशिको भाग देनेसे कुछ भी न बच रहे, उसे उस राशिका अपवर्त्य कहते हैं। जैसे १२ राशि ४ अङ्कका अपवर्त्य है।

अपवश (हिं॰ वि॰) निज अधीन, अपने अख़तियारका।

अपवाचा (हिं॰ स्त्री॰) अपकीर्ति, अपवाद, निन्दा।

अपवाद (सं॰ पु॰) अप-वद भावे घञ्। निन्दा, कुत्सित वाद, प्रवाद, अपकीर्ति। २ विश्वास, प्रणय। ३ मिथ्या बात। ४ आदेश, विशेष विधि। ५ वेदान्तमतसे मिथ्याभूत पदार्थके निवारणार्थ उपदेशविशेष वाधक, जिससे वाधा दी जाय।

अपवादक (सं॰ त्रि॰) अप-वद-ण्वुल्। सामान्य शास्त्रसे विशेष शास्त्रका व्यवस्थापक विशेष शास्त्र, निन्दक, निरासक, प्रतिरोधक, अयशस्कर, निन्दा करनेवाला, वदनामी फैलानेवाला, विरोधी।

अपवादकर (सं॰ त्रि॰) अपवादं करोति अप-वाद-कृ-ट। अपवादकारी, अपवाद करनेवाला, लोगोंकी निन्दा करनेवाला, खल व्यक्ति।

अपवादित (सं॰ त्रि॰) निन्दित, जिसका विरोध किया गया हो।

अपवादिन् (सं॰ त्रि॰) अप-वद-णिनि। अपवादकर्ता, अपवाद करनेवाला, निन्दा करनेवाला।

अपवादी (हिं॰ वि॰) निन्दक, विरोधी, बुराई करनेवाला।

अपवारण (सं॰ क्ली॰) अप-वृ-णिच् नन्दादि॰ ल्यु। व्यवधायक, जिससे ओटकी जाय, व्यवधान, वस्त्रादिसे आच्छादन, अन्तर्द्धान, रोक।

अपवारित (सं॰ त्रि॰) अप-वृ-णिच् कर्मणि क्त। आच्छादित, अन्तर्हित, व्यवधायित, वर्जित, अप्रकाश, अपवारण, दूर किया हुआ, छिपा हुआ।

अपवारितक (सं॰ क्ली॰) अदवारित-स्वार्थे कण्। अप्रकाश, जो प्रकट न हो।

अपवारुक (सं॰ पु॰) अप-वृ-वाहुलकात् उकञ्। प्रस्तर, पत्थर।

अपवार्य (सं॰ अव्य॰) अप-वृ-णिच्-ल्यप्। आच्छादन करके, छिपा करके। नाट्योक्तिसे, जिसमें दूसरा कोई सुनने न पावे।

अपवास (सं॰ पु॰) अपसृत्य वासः। अपसरण, भाग जाना, चल देना।

अपवाह (सं॰ पु॰) अपहार्य्य वाहः स्थानान्तर-प्रापणम्। १ अनुमान, एक जगहसे दूसरी जगह ले जाना। २ वृत्तरत्नाकर-लिखित एक प्रकार वर्णवृत्त। उसका लक्षण यह है,—"मोना: षट् सगगिति यदि नव रस रस शर यतियुतमपवाहाख्यम्।" अर्थात् जिसके आदिमें एक मगण, उसके बाद क्रमसे छः नगण, उसके बाद फिर सगण, रहे और नवें, पन्द्रहवें अक्षरमें यदि यति पड़े, तो उस वृत्तको अपवाह कहते हैं।

अपवाहक (सं॰ त्रि॰) एक जगहसे किसी चोज़को दूसरी जगह ले जानेवाला, ग्टध्र-यंत्र।

अपवाहन (सं॰ क्ली॰) अप-वह-णिच्-ल्युट्। पर-देशके किसीको स्वदेश लाना, एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुंचा देना।

अपवाह्य (सं॰ त्रि॰) अप-वह कर्मणि ण्यत्। दूर करनेके योग्य। (अव्य॰) २ दूरीभूत कराकर।

अपवाहित (सं॰ त्रि॰) स्थानान्तरित, एक जगहसे दूसरी जगह लाया हुआ।

अपवाहुक (सं॰ पु॰) भुजस्तम्भरोग, वायुके प्रकोपसे उत्पन्न एक रोग जो बाहुकी नसोंको सुखाकर उसे बेकाम कर देता है।

अपविक्षत (सं॰ त्रि॰) बेज़ख्म, अछूता।

अपविघ्न (सं॰ त्रि॰) अपगतो विघ्नो यस्मात्, ५-बहुव्री। विघ्नशून्य, वाधारहित, निर्विघ्न।

अपवित्र (सं॰ त्रि॰) न पवित्रं शुद्धम्। पवित्रताशून्य, अशुद्ध, अकृतशौचादि, अशुचि, नापाक, मलिन, दूषित।

अपवित्रता (सं॰ स्त्री॰) अशौच, अशुद्धि, मलिनता, नापाकी।

अपविद्ध (सं॰ त्रि॰) अप-व्यध-क्त। प्रक्षिप्त, त्यक्त, चूर्णित, प्रत्याख्यात, प्रेरित, निरस्त, विद्ध, वेधा हुआ, बारह प्रकारके पुत्रोंमें एक प्रकारका पुत्र। माता-

पिता यदि अपने पुत्रको त्याग दें और उसे यदि कोई पुत्र रूपसे ग्रहण कर ले, तो वह पुत्र अपविद्ध कहा जाता है।

"मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा।
यं पुत्रं परिगृह्णीयादपविद्धः स उच्यते॥" (मनुसंहिता ९।१७१)

अपविद्या (सं० स्त्री०) प्रादि-तत्। अपकृष्ट विद्या, बौद्धादिकी विद्या, वेदान्तादिकी प्रसिद्ध अविद्या, खराब इल्म।

अपविष (सं० त्रि०) विषरहित, विषशून्य, जिसमें ज़हर न हो।

अपविषा (सं० स्त्री०) अपगतं विषं यस्याः। निर्विषा नामकी एक घास, तृणविशेष, वह चीज़ जो सब विषोंको नष्ट करे।

अपविषा, अतिविषा, निर्विषा प्रभृति शब्दोंसे कौन पेड़ समझा जाता है, इस बारेमें बहुत गोलमाल है। किसी किसीके मतसे आतइश (Aconitum heterophylum, Caltha Nirbisia Hamiltonii) पेड़को ही अपविषा आदि नामसे पुकारते हैं। वन-हल्दी (Curcuma aromatica), शठी (Curcuma zodoaria), निमुथा (Cissampelos pareira), खेतगोतुवी (Kyllingia monocephala) प्रभृति वृक्ष अपविषा आदि नामसे प्रसिद्ध हैं। राजनिघण्टमें अपविषा शब्दके पर्यायमें निर्विषा तृण, विषहा, विषापहा, विषहन्त्री, विषाभावा, अविषा, विषवैरिणी लिखा हैं।

सचराचर हम लोग मुता जैसी एक तरहकी घासको अपविषा किम्बा निर्विषा कहते हैं। मुताकी जड़में जिस तरहकी गांठें होती हैं, निर्विषामें वैसी नहीं होतीं। राजनिघण्टके मतसे यह कटु और शीतल होती है। इससे कफ, वात, व्रण, रक्तदोष और नाना प्रकारके विष नष्ट हो जाते हैं।

अपवृत (सं० त्रि०) अप-वृत-क्त। समाप्त, विपरीत, उलटा, खुला हुआ।

अपवेध (सं० पु०) अपकृष्टः वेधः, प्रादि-तत्। किसी चीजको जहां वेधना चाहिये वहां न वेधकर दूसरी जगह वेधना।

अपव्यय (सं० पु०) अपकृष्टः व्ययः प्रादि-तत्। दुष्कर्ममें अर्थव्यय, धनादिका अपरिमित व्यय, जिसका क्षय न हो, अविनश्वर, ज़्यादा खर्च, बेक़ायदे ख़र्च, फ़ज़ूलख़र्ची।

अपव्ययमान (सं० त्रि०) अप-वि-अय-शानच्। अप-लाप करनेवाला, अपव्यय करनेवाला, फ़ज़ूलख़र्च।

अपव्ययी (हिं० वि०) ज़्यादे खर्च करनेवाला, बेक़ायदे ख़र्च करनेवाला, फ़ज़ूलख़र्च।

अपव्रत (सं० त्रि०) अपगतं व्रतं नियमादिकं यस्य। अपगत व्रत, नष्ट व्रत, अपकृष्ट व्रत, हुक्म न माननेवाला, बेदीन।

अपशकुन (सं० पु०) असगुन, कुसगुन, बुरा सगुन।

अपशङ्क (सं० त्रि०) अपगता शङ्का यस्य प्रादि-बहुव्री०। निर्भय, शङ्कारहित, निःशङ्क, निडर।

अपशद, अपसद (सं० पु०) अप-शद सद वा कर्तरि अच्। नीच, अधम मनुष्य।

अपशब्द (सं० पु०) अप अपकृष्टः शब्दः। प्रादि-तत्। व्याकरणदुष्ट शब्द, असंस्कृत शब्द, ग्राम्य भाषा, आभीरादि नीच जातियोंकी भाषा, अपभ्रंश शब्द, बुरीबात, गाली, अर्थहीन शब्द, अपान वायुका छूटना, गोज़।

अपशव्य (सं० त्रि०) पशवे हितं पशु हितार्थे यत्। पशव्यं न पशव्यम्, नञ्-तत्। पशुवृद्धिविघातक, पशुकी वृद्धि रोकनेवाला।

अपशम (सं० पु०) अन्त, आख़िर, ठहराव।

अपशिरस् (सं० त्रि०) शिररहित, बेशिर, कवन्ध।

अपशु (सं० पु०) न पशुः अप्राशस्ते नञ्-तत्। गो अश्व भिन्न पशु, पशुहीन, गाय और घोड़े को छोड़कर और और पशु।

अपशुच् (सं० त्रि०) अपगता शुक् शोको यस्य। प्रादि-बहुव्री०। अपगत शोक, शोकहीन आत्मा। अपगतः शोको यस्य प्रादि-बहुव्री०। शोकशून्य आत्मा, अशोकवृक्ष।

अपश्चात् (सं० अव्य०) न पश्चात्। पीछे नहीं।

अपश्चात्तापिन् (सं० त्रि०) न पश्चात् तपति पश्चात्-

तप-खिनि नञ्-तत्। जो पश्चात् ताप नहीं करता, जो पीछे नहीं पछताता।

अपश्चिम (सं॰ त्रि॰) न पश्चिमं विरोधे नञ्-तत्। अग्रिम, पिछला नहीं, आगेवाला, जिसका अन्त न हो।

अपश्य (सं॰ त्रि॰) पश्यतीति दृश-श पश्य, न पश्यम् नञ्-तत्। अपदर्शक, जो देख नहीं सकता।

अपश्रय (सं॰ पु॰) अप-श्रि-अच्। उपाश्रय, आस्पद, स्थान।

अपश्री (सं॰ त्रि॰) अपगता: श्री: सौन्दर्यादिर्यस्य यस्माद्वा प्रादि बहुव्री॰। शोभाविहीन, सौन्दर्य हीन, बदसूरत।

अपश्लिष्ट (सं॰ त्रि॰) अपगतं श्लिष्टं श्लेषो यस्मात्। अप-श्लिष क्त। प्रादि बहुव्री॰। श्लेषशून्य, संसर्गहीन, वियुक्त, बिछुड़ा हुआ।

अपश्वास (सं॰ पु॰) पांच वायुमेंसे एक।

अपष्ट (सं॰ क्ली॰) अप-स्त्यै-क पृषो॰ यलोप:। अङ्कुश का अग्रभाग, अङ्कुशकी नोक।

अपष्ठ (सं॰ त्रि॰) अपक्रम्य तिष्ठति अप-स्था-क अस्था॰ षत्वम्। पलायन करके स्थित, कुछ दूर जाकर खड़ा हुवा।

अपष्ठु (सं॰ अव्य॰) अप वैपरीत्ये तिष्ठति अप-स्था उण्-कु सुषामादिषु चेति षत्वम्। १ प्रतिकूल, विरूप, विपरीत, निरवद्य, निर्दोष, शोभन। (पु॰) २ काल।

'अपष्टु पुंसिकाले च वामे स्यादन्यलिङ्गक:।
निरवद्ये च शोभनार्थे च दृश्यते।' (मेदिनी)

अपष्ठुर, अपष्ठुल (सं॰ त्रि॰) अप-स्था-कुरच् वा लत्वम्। प्रतिकूल, विपरीत, उलटा।

अपस् (सं॰ क्ली॰) आप्नोति समस्तं व्याप्नोति आप-असुन् ह्रस्वो वा नुडभाव:। १ जल। २ कर्म, कर्मविशिष्ट। (त्रि॰) ३ प्राप्त।

यास्कने अप: अर्थात् कर्माख्याके यह कई पर्याय किये हैं,—

अपस्, अप्नस्, दंसस्, वेष, वेपस्, विष्टि, व्रत, कर्वर, शक्म, क्रतु, करण, करण, करस्, करन्ती, करिक्रत्, चक्रत्, कर्त्व, कर्तोः, कर्तवै, कृत्वी, धी, शची, शमी, शिमी, शक्ति, शिल्प।

अपसगुन (हिं॰ सं॰) अपशकुन, असगुन।

अपसद (सं॰ त्रि॰) अपकृष्ट इव सीदति अप-सद-अच्। १ अधम, नीच।

'विवर्ण: पामरो नीच: प्राकृतश्च पृथग्जन:।
निहीनोऽपसदो जाल्म:।' (अमर)

(पुं॰ स्त्री॰) २ उत्तम वर्ण पुरुष अधमवर्ण स्त्री जात, वर्णसङ्कर।

अपसना (हिं॰ क्रि॰) भाग जाना, खिसक पड़ना, चल देना।

अपसम (सं॰ अव्य॰) समाया अत्यय: अव्ययी। वत्सरात्ययसे, वर्षके नाशमें, सालके अन्तपर।

अपसर (सं॰ पु॰) अप-सृ-भावे-अप्। १ अपयान, पलायन। २ विक्रय, अपसरण, दूसरी जगह जाना।

अपसरण (सं॰ क्ली॰) अप-सृ-भावे ल्युट्। अपयान, पलायन, भागना, चल देना, चम्पत हो जाना।

अपसर्ग (सं॰ पु॰) अप-सृज-भावे घञ्। त्याग, वर्जन, छोड़ देना, मनाही, रोक।

अपसर्जन (सं॰ क्ली॰) अप-सृ-भावे ल्युट्। १ वर्जन। २ दान। ३ मोक्ष, त्याग, विसर्जन।

अपसर्प (सं॰ पु॰) अप-सर्पति गुप्तं चरति अप-सृ कर्तरि-अच्। १ गुप्तचर, हरकारा। 'यथार्हवर्ण प्रणिधि-रपसर्पश्चर: स्पश:।' (अमर) भावे घञ्। २ अपसरण, रवानगी।

अपसर्पण (सं॰ क्ली॰) अप-सृप-भावे ल्युट्। अपयान, पलायन, पश्चात् गमन, पीछे हटना, पीछेका खिसकना।

अपसर्पित (सं॰ त्रि॰) पीछे खिसका हुआ।

अपसल (सं॰ त्रि॰) अप-सल-कर्तरि अच्। अपसव्यता प्राप्त। 'अपसलानि अपसव्यानि'। (स्मार्त)

अपसलवि (सं॰ अव्य॰) अप-सल-वा॰ अवि। तर्जनी और अङ्गुष्ठका मध्यस्थान, पितृतीर्थ। "तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा अपसलवि अपसव्यं वा तेन पितृभ्यो निदधाति।" (गृह्य॰) तर्जनी और अंगूठेके बीच के स्थानका नाम अपसलवि वा अपसव्य है। उसीसे पितृको पिण्डादि देना उचित है।

अपसव्य (सं॰ क्ली॰) अपक्रान्तं सव्यात्। निरा॰ तत्। १ देहका दक्षिण भाग। 'अपसव्यन्तु दक्षिणम्'। (अमर)

२ तर्जनी और अङ्गुष्ठका मध्यस्थानरूप पितृतीर्थ। ३ भूमिमें गिराया हुआ भग्नप्राय वामाङ्ग। (त्रि०) ४ विपरीत, दक्षिण ओर स्थित।

अपसर (सं० पु०) बहाना, हीला।

अपसार (सं० पु०) अप-सृ-णिच्-अच्। दूरीकरण, बहिष्करण, सञ्चालन, अपनयन, दूर करना, निकाल देना।

अपसारण (सं० क्लो०) अपसार देखो।

अपसारित (सं० त्रि०) अप-सृ-णिच् क्त। उत्सारित, दूरीकृत, चालित, विस्तारित, बाहर निकाला हुआ, दूर किया गया।

अपसिद्धान्त (सं० पु०) अपक्रान्तः सिद्धान्तात्। निरा० तत्। सिद्धान्तके विरुद्ध विचार, अयुक्त सिद्धान्त, जैसी सिद्धान्तकी स्थिरता है, उसके अन्यथारूप दोष।

"सिद्धान्तमभ्युपेत्यानियमात् कथाप्रसङ्गोऽपसिद्धान्तः।" (गौ० सू०)

किसी शास्त्रकारका अभ्युगत (सम्मत) अर्थ स्वीकार करके उसी नियमके उल्लङ्घनद्वारा जो दूसरी बातका प्रसङ्ग किया जाय, उसका नाम अप सिद्धान्त है।

अपसोपान (सं० पु०) अपक्रान्तः अतिक्रान्तः सोपानम् अकारेण, अतिक्रां-तत्। १ हस्तिनख, हाथीका नाखून। २ बहिर्द्वारके सम्मुखका मृत्तिकास्तूप, दरवाज़ेके सामनेकी मिट्टीका ढेर।

अपसोस (हिं० पु०) सोच, दुःख, चिन्ता, पछतावा।

अपसोसना (हिं० क्रि०) अफ़सोस करना, सोचना पछताना, चिन्ता लगना।

अपसौन (हिं० पु०) अपशकुन, असगुन।

अपस्कर (सं० पु०) अप-कृ-अप् रथाङ्गे निपातनात् सुट्। अपस्करो रथाङ्गम्। पा ६।१।१४९। धुरी, जुआ, पहिया आदि रथके अङ्ग।

अपस्तम्भ (सं० पु०) छातीके बगलकी एक नस जिसमें प्राणवायु रहता है।

अपस्नात (सं० त्रि०) अपकृष्टम् अमङ्गलार्थत्वात् मृतमुद्दिश्य स्नातम् प्रादि-तत्। १ मृतके उद्देश्यमें स्नान किया हुआ, मृतदेह दाह करके जिसने स्नान किया हो, विदेशमें रहनेवाले कुटुम्बके मरनेका समाचार पाकर स्नान करनेवाला। (पु०) २ स्नान संस्कारके निमित्त स्थापित मृत।

अपस्नान (सं० क्लो०) अपकृष्टं स्नानात्। निरा० तत्। स्नानावशिष्ट जल, स्नान करनेके बाद बचा हुआ पानी, किसी पात्रमें रखे हुए जिस जलसे कोई स्नान कर चुका हो।

अपस्पति (सं० पु०) उत्तानपादका एक पुत्र।

अपस्पश (सं० त्रि०) स्पशते बाधते परान् प्रभुशत्रून् पीड़यतीति वा प्रभुशत्रुपर्य्याय यथार्थवर्णमन्त्रणां संग्रह्णाति वा स्पश-पचाद्यच् स्पशो गूढ़चरः सोऽपगतो यस्मात्। प्रादि बहुव्री। गूढ़चरशून्य।

अपस्पशा (सं स्त्री) शास्त्रारम्भ समर्थक उदाहरण संग्रहशून्य (शब्दविद्या)।

अपस्फिग (सं० त्रि०) जिसके चूतड़ बेडौल बने हों।

अपस्मार (सं० पु०) अपस्मारयति स्मरणमपगमयति अप-स्मृ-णिच् पचाद्यच्। अप अपगतः स्मारः स्मरणं येन वा। रोगविशेष, मृगीरोग, मूर्च्छाविशेष, सरा। यथा—

"स्मृतिभूतार्थ विज्ञानमपस्य परिवर्जने।
अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरन्तकृत्॥" (सुश्रुत)

अतीत अर्थका विशिष्ट ज्ञान ही स्मृति और अप शब्दका अर्थ वर्जन है। इससे पूर्वज्ञानका वर्जन होता, इसीसे इसका नाम अपस्मार है। इस रोगसे आदमी मर जाता है।

अपस्मार (Epilepsy) स्नायुमण्डलका पुराना रोग है। रोगके आक्रमणके समय रोगी उठकर अज्ञान हो जायेगा। वह अज्ञानता बहुत देर तक नहीं रहती। रोगीके अज्ञान हो जानेपर कभी कभी स्नायुका आक्षेप आता है और कभी कभी कुछ भी नहीं होता। कभी शरीरके एक ओर स्नायुमें और कभी देहके सब स्नायुमण्डलमें आक्षेप होगा। डाक्टर नाइमियर कहते हैं, कि एक हज़ार मनुष्योंमें छः आदमियोंको मृगी रोग होते देखा जाता है। पर डाक्टर रेनलड्स इस बातको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि अन्यान्य स्नायवीय रोगोंके साथ तुलना

करनेसे सैकड़े पीछे प्राय: सात आदमियोंको मृगी रोग लगता है।

कारणतत्त्व—पितामाताके मृगी रोग रहनेपर सन्तानको भी प्राय: यह रोग ग्रसता है। पितामाताके पूर्वपुरुषोंमें यदि किसीके और कोई स्नायवीय रोग रहा हो, तो सन्तानको मृगी रोग होनेकी सम्भावना होगी। डाक्टर फिलएट कहते हैं, कि मृगीरोगके रोगीके बालबच्चोंको भी मृगी रोग हो सकता है। तालिका देखकर इस बातको प्रमाणित करना कठिन होगा।

यह ठीक निश्चित नहीं, कि स्त्रीपुरुषमें किसे अधिक मृगी रोग होता है। अधिकांश मनुष्योंको १० वर्षकी उम्रतक यौवनावस्थाके आरम्भमें मृगी रोग पकड़ेगा। इसे छोड़ दूधके दांत गिर जाने बाद जब फिर दांत निकलने लगते हैं, उस समय भी कितनोंको अपस्मार दबोचता है। वृद्धावस्थामें शायद कभी किसीको यह रोग लगता है।

मस्तिष्कमें आघात लगनेसे; चमड़ेके नीचे अथवा भीतरी यन्त्रमें कोई पदार्थ प्रवेश करने, आँतमें टिनिया वा और किसी प्रकारका कीड़ा रहने; मस्तकका गठन अपरिमित अर्थात् शिरकी ओरके गठनसे दूसरी ओरका गठन दूसरी तरहका होने; शिरके भीतर अर्बुद, कीटादि पराङ्गपुष्ट अथवा प्रदाह आदि विद्यमान रहने; अथवा भीतर अस्थिवृद्धि होनेसे मृगी रोग हो सकता है।

अतिशय वा अस्वाभाविक रतिक्रिया; मूर्च्छारोग; उन्मादादि और किसी प्रकारका स्नायवीय रोग; स्क्रोफिउला; मूत्ररोग; उपदंश; हठात् अत्यन्त भय; अत्यन्त क्रोध; अत्यन्त मानसिक चिन्ता वा मनस्ताप; सीसा धातु वा सङ्खिया द्वारा विषाक्तता प्रभृति नाना कारणोंसे अपस्मार रोग उत्पन्न हो सकेगा।

प्राचीनकालमें किसी किसी जातिकी ऐसा विश्वास था, कि देवता लोग रुष्ट हो जानेपर मनुष्यको शाप देते हैं। मृगी रोग उसी शापका फल है। यहूदी, यूनानी एवं रोमक पण्डितगण अपस्मार रोगको भूतका सवार होना मानते थे।

निदानतत्त्व—अपस्मार रोगका निदानतत्त्व अत्यन्त कठिन है। मृत्युके उपरान्त शारीरिक निर्माणमें प्राय: किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं देखा जाता। इसीसे इस समय सभी इसे क्रियाविकार जनित व्याधि मानते हैं। व्येञ्जेल् वचेट, कजभेल, स्क्रोभर, भ्याण्डार, कल्क प्रभृति चिकित्सक कहते हैं, कि मस्तिष्कके श्वेतांश एवं मेडिउला अब्लङ्गेटा प्रभृति स्थानोंकी विकृतिके कारणसे मृगी रोग होता है। किन्तु इन सब स्थानोंका परिवर्तन सर्वत्र नहीं देखा जाता। जो हो, अपस्मारका लक्षण देखनेसे कशेरु मज्जा एवं लम्ब मज्जाको ही रोगका प्रकृत स्थान स्वीकार करना होगा।

लक्षण—पूर्वावस्था—अज्ञान होनेके पहले ही रोगीको कुछ लक्षण मालूम हो जाता है। पर यह लक्षण सर्वत्र एकसा नहीं रहता। किसीके शिरमें पीड़ा होने लगती है, अथवा एकाएक शिर घूमता है। उस वक्त रोगीको चारों ओर अनेक प्रकारके रङ्ग दिखाई देने लगते हैं। हमारे वैद्यक शास्त्रमें लिखा है, कि वायुजनित अपस्मार रोगमें रोगीको लाल, काले आदि कई तरहके रङ्ग दिखाई देंगे। "परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात्।" पैत्तिक अपस्मारमें रोगी लाल और पीला रङ्ग देखता है। "पीतासृग्रूपदर्शनं।" श्लैष्मिक अपस्मारमें रोगी सफेद रङ्ग देखेगा। "पश्यन् शुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिकसुच्यते चिरात्।" कभी सामने आग जलनेका भ्रम होता है। किसी किसी स्थलमें मूर्च्छा आनेसे पहले रातके वक्त रोगी बार बार अग्निका स्वप्न देखेगा। कुछ देर तक ऐसी ही दशा रहने बाद उसके कानमें नाना प्रकार शब्द होने लगते हैं। फिर उसे आंखसे साफ दिखाई नहीं देता। नाकमें सब तरहकी गन्ध बहुत तेज मालूम होता है। क्रमसे चेहरेका रङ्ग बिगड़ जाये और किसी चीजके खानेपर उसका स्वाद न मालूम होगा। उसके बाद श्वासनलीमें घर्घर् शब्द होने लगता है और रोगीको सामने अनेक प्रकारके काल्पनिक दृश्य साफ दिखाई देते हैं।

मूर्च्छा आनेके कुछ या बहुत पहले इन सब

लक्षणोंमें से कोई न कोई बहुत कम आदमियोंमें दिखाई देगा। पर मृगी रोगका और एक प्रधान लक्षण है। मूर्च्छित होनेके पहले रोगीको ऐसा मालूम हो, मानो कमरसे एक कीड़ा सरसराता हुआ पीठकी रीढ़में होकर शिरपर चढ़ जायेगा। किसी किसी मनुष्यको धारणा दूसरे प्रकार है। सम्भवत: लोगोंने अच्छीतरह सोच विचार देखा हो, मूर्च्छा आनेके पहले कमरसे मानो ठीक शीतल जलकी धारा पीठवाली रीढ़पर चढ़ती चली जायेगी। कभी कभी किसीको यह धारा बहुत गर्म्म मालूम होती है। ऐसा पूर्व लक्षण देखनेपर रोगीको सावधान हो, नहीं तो आग या जलमें गिरकर जल जाना या डूब मरना सम्भव हो सकेगा।

मूर्च्छावस्था——मूर्च्छित होनेके पहले रोगी बड़े ज़ोरसे चिल्लाकर वेसुध हो जाता है। चीत्कारको सुन लोगोंके मनमें आतङ्क छायेगा। रोगीके शिर, गले और हाथ पैरमें बार बार आक्षेप होते रहता है। सचराचर शरीरको एक ही ओर अधिक आक्षेप आयेगा। हाथकी सब अंगुलियां दृढ़ और जड़ीभूत होती हैं। अंगूठा झुककर हाथके तले चला जाता है यानी मुट्ठी बंधती है। होंठ मुर्देकी तरह विवर्ण होगा। दांतपर दांत चढ़ते हैं। कभी कभी रोगी ऐसी अवस्थामें दांतसे जीभ आदि काट लेगा। मुंहसे फेन निकला करता और जीभ काट लेनेपर उसके साथ खून आता है। गलेकी नलीके आक्षेपके कारण सांस कम पड़, आंखकी पुतली उलटेगी। गले और कपालकी नसें फूल जाती हैं। हृदयका कांपना बहुत बढ़ जायेगा। असल बात यह, कि उस वक्त रोगीकी अवस्था देखनेसे ऐसा ही मालूम होता—शीघ्र ही मृत्यु आना चाहती है। यह अवस्था प्राय: दो तीन मिनिट रहे हो, उसके बाद रोगीको नींद लगेगी।

मूर्च्छाके बाद—मूर्च्छाके कुछ ही देर बाद कोई कोई रोगी अच्छा होकर अपना काम करने लगता है। कोई कोई होशमें आकर कुछ देर तक सोते रहेगा। नींद लेते समय कभी कभी आंखकी पुतली फैल जाती है। ऐसे समय आंखके सामने चिराग रखनेसे पुतली नहीं सिकुड़ती। नींद छूटने पर शरीर भारी और दुर्बल मालूम होगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपद्रव देखनेमें नहीं आता। किन्तु कोई कोई रोगी ऐसी अवस्थामें उन्मत्तकी भांति प्रलाप करता है। बीच बीचमें कितनी ही तरह वह अनापशनाप बकेगा। उठकर खड़े होनेपर मतवालेकी तरह उसके पैर डगमगाने लगते हैं। इस तरह उन्मत्त होनेपर रोगी अपनेको अथवा और किसीको मारपीट सकेगा। कुछ देरके बाद यह अवस्था दूर होती और रोगी अच्छी तरह होशमें आ जाता है। होश आनेपर फिर उसे रोगका कोई बात याद नहीं रहती।

एकबार प्रकृत मृगीरोग होनेसे रोगी बार बार मूर्च्छित हुआ करता, पर इसकी कोई स्थिरता नहीं, कि कितने दिन बाद मूर्च्छा आती है। प्रथम बार रोग होनेसे बहुत दिनों बाद मूर्च्छा दौड़ेगी। पहली मूर्च्छाके पांच छ: महीने या पांच छ: वर्ष बाद, और किसी किसीको १०।१२ वर्ष बाद, मूर्च्छा आती है। किन्तु सचराचर तरुण अवस्थामें वर्ष भरके भीतर दो तीन बार मूर्च्छा पड़ेगी। क्रमसे रोग जब कठिन हो जाता और अच्छी तरह जकड़ लेता, तब दिन भरमें तीन चार बार मूर्च्छा आ सकती है। कोई कोई रोगी १४।१५ वर्षमें विना औषध ही आपसे आप अच्छा हो जायेगा। उसके बाद फिर एक दिन रोग अकस्मात् ही उभर आता है।

उपसर्ग—बार-बार रोगका धावा होनेसे क्षुधामान्द्य, बुद्धिकी जड़ता, भ्रम एवं आयुक्षय होगा। किसी किसीको उन्माद रोग भी लग जाता है।

भावीफल—यौवनावस्थासे पहले नाना प्रकारकी कुक्रियायोंके कारण यह रोग उत्पन्न होने किम्बा स्त्रीजातिको जरायुके क्रियाविकारसे मृगीरोग उपस्थित होनेपर आरोग्य होनेकी आशा रहेगी। किन्तु यौवनावस्थाके अनन्तर बार बार रोगका धावा होनेसे फिर प्रतिकारकी आशा नहीं देखते। अनेक स्थलों-

में देखा जाता है, कि आंख मैली और कुछ पीली होने और मुंह कुछ पागलों जैसा दिखाई देनेपर रोगका प्रतिकार न बनेगा।

रोगनिर्णय—हिष्टिरिया नामक मूर्च्छारोगमें रोगीको कुछ कुछ ज्ञान रहता है, पर मृगीरोगमें कुछ भी नहीं। हिष्टिरिया रोगमें ऐसा मालूम होता है, जैसे रोगीके पेटसे एक गुल्म बाहर निकल आया हो, पर मृगीरोगमें रोगीकी पीठपर कीड़े आदिकी तरह कोई चीज़ मालूम पड़ती है। अतएव इन दोनो रोगोंका सहज ही प्रभेद किया जा सकेगा। मृगीरोगमें रोगी ज्यादा देरतक अज्ञान न रह बहुत श्वासकृच्छ्र लगाता है, पर संन्यासमें रोगी बहुत देरतक अज्ञान रहते भी वैसा श्वासकृच्छ्र नहीं देखाता। बचपनमें ज्वरके साथ बच्चोंको आक्षेप (Convulsion) होता, पर मृगीरोगमें ज्वर न रहते भी मूर्च्छा आती है।

चिकित्सा—कितनोंको विश्वास है, कि मृगीरोगमें होमियोपैथी और वैद्यशास्त्रके मतसे चिकित्सा करने पर कुछ भलाई निकलती; एलोपैथी चिकित्सासे वैसा उपकार नहीं होता। मूर्च्छा होनेका पूर्व लक्षण देख लेनेसे रोगीको चारपाईपर लेटा देना चाहिये, श्वासक्रिया किम्बा रक्तसञ्चालनमें यदि कोई वाधा पड़े, तो उस प्रतिबन्धको शीघ्र ही दूर करना होगा। अज्ञान अवस्थामें दांतसे जीभ काट डालनेकी सम्भावना है। अतएव मुंहके भीतर जीभको घुसेड़कर चौंके नीचे एक छीपी रख देनेसे फिर उस बातकी आशङ्का न रहेगी। उसके बाद रोगीका शिर तकियेपर कुछ ऊंचा रखे। मूर्च्छाके पहले पीठपर कीड़ा रेंगने वा जलधाराकी अनुभव करनेसे उसका ऊपरी भाग कपड़ेसे बांध दे और नाइट्राइट् आव् आमाइल् (Nitrite of Amyle) नाम्नी औषधका वाष्प सुंघाये। इस प्रक्रियासे मूर्च्छा और आक्षेपका प्रकोप बहुत कुछ कम पड़ सकता है। आक्षेपके बाद यदि रोगीको नींद आवे, तो उसे तङ्ग न करना चाहिये। अन्यान्य अनेक प्रकार मूर्च्छारोग और आक्षेपमें रोगीके मुख और मस्तक पर शीतल जल प्रयोग करनेसे बहुत उपकार होगा, पर मृगी रोगमें शीतल जल प्रयोग करनेसे कुछ भी फल नहीं निकलता। बचपनवाले मृगीरोगके आरोग्य होनेकी सम्भावना है; अतएव चिकित्सा करनेसे पहले रोगका मूल कारण निश्चित कर लेना आवश्यक होता है। अज्ञानतावश लड़के और भले घरकी कोई कोई बालविधवा दुष्क्रिया करते रहती हैं। इस बातकी अच्छी तरह खोजकर चिकित्सकको दूर करनेकी चेष्टा करना चाहिये। भय, दुश्चिन्ता, आंतमें कीड़ा एवं जरायुका क्रियाव्यतिक्रम प्रभृति किसी प्रकार कारण विद्यमान रहनेपर पहले उसे शान्त करना आवश्यक है। होमियोपैथी चिकित्साके मतसे मृगीरोगमें नीचे लिखा औषध व्यवहार करेंगे।

मुखमण्डल और नेत्र उज्ज्वल; आंखकी पुतली फैली हुई; रोशनीकी ओर देखनेमें कष्ट आदि वर्त्तमान रहनेपर ६-१२ वा अधिक डाइलिउशन् वेलेडोना जलके साथ सेवन करावे। अत्यन्त आक्षेप और मुख विवर्ण हो, तो कुप्रम् (Cuprum) प्रशस्त है।

कानमें झन् झन् शब्द, शिर घूमना, स्नायविक दुर्बलता, मलवद्ध, क्रोध, मुखशोष, उदरस्फीति प्रभृति लक्षण विद्यमान रहनेपर ३ डाइलिउशन् नक्सभमिका (Nuxvomica) दो बूंदकी मात्रामें साफ़ जलके साथ प्रति दिन तीन बार खिलाना चाहिये।

बचपनसे पेटकी पीड़ा, अम्ल वमन, एक गाल पीला और दूसरा लाल आदि लक्षणके बाद मृगीरोगमें मूर्च्छा आनेपर कैमोमिला (chamomilla) औषधसे उपकार होता है।

नये और पुराने मृगीरोगमें कालो हाइड्रियड (Kali hydriod) औषध सेवन करानेसे तुरत रोग अच्छा हो जानेकी सम्भावना है। यह औषध तीन डाइलिउशन् प्रयोग करनेसे विलक्षण फल दिखाई देगा।

मृगीरोगग्रस्त मनुष्यको अधिक मानसिक चिन्ता और परिश्रम न करना चाहिये। रातमें अल्प भोजन लेना उचित और अधिक रतिक्रिया मना है। अल्प

भोजन, सर्वदा आह्लाद-आमोद एवं यत्सामान्य परिश्रम करनेसे शरीर अपेक्षाकृत सुस्थ रहेगा। तम्बाकू, मदिरा प्रभृति सब तरह नशेकी चीजोंको छोड़ देना बहुत अच्छा है।

एलोपैथी—मृगीरोग अच्छा करनेके लिये एलोपैथी चिकित्सामें नाना प्रकार औषध देते हैं। उनमेंसे कुछका विवरण नीचे दिया जाता है।

१ डाक्टर फिलण्टने मृगीरोगमें नाइट्रेट् आव् सिलवर (Nitrate of silver) औषधका व्यवहार करनेकी व्यवस्था दी है। इसकी तेजी अतिशय उग्र होगी, इसलिये खाली पेटमें खाना उचित नहीं। एक ग्रेनके आठ भागका एक अंश और जेन्सियानका सार दो ग्रेन एक साथ मिलाकर भोजनके बाद सेवन करना चाहिये। डाक्टर पेरी, क्लोराइड आव् सिलवर (Chloride of silver) की प्रशंसा करते हैं। इन सकल रौप्यघटित औषधोंको अधिक कालतक सेवन करनेसे शरीर विवर्ण हो जाता है। इन्हें दो तीन महीने सेवन करके कुछ दिनके लिये छोड़ देना चाहिये।

२ अक्साइड् आव् जिङ्क (Oxide of zinc)। हार्पिन् प्रभृति अनेक सुविज्ञ चिकित्सक इस औषधकी प्रशंसा करते, डाक्टर बैरिङ्गटन सल्फेट् अव जिङ्कको अधिक हितकर समझते, और डाक्टर बार्नेस फस्फेट् अव् जिङ्कको अधिक उपकारी बताते हैं। किन्तु आजकल मेलिरियानेट् अव् जिङ्कका अधिक आदर देखा जाता है। जस्ता घटित औषधका प्रयोग इस तरह करना चाहिये,—

अक्साइड् अव् जिङ्क	२४ ग्रेन
एन्थिमिडिसका सार	२४ ”

इन दोनोंको एक साथ मिलाकर बारह गोलियां बनाये। भोजनके बाद प्रति दिन दो गोली खाते हैं।

मेलिरियेनेट् अव जिङ्क	१२ ग्रेन
सलफेट अव कुइनाइन्	१२ „
पिल् वियाइ कम्प	२४ „

इन तीनो चीजोंको एक साथ मिलाकर बारह गोलियां बना ले। प्रति दिन दो गोली सेवन करना चाहिये।

फस्फेट अव जिङ्क	१८ ग्रेन।
पिल् वियाइ कम्प	२४ „

इन दोनोको एक साथ मिलाकर बारह गोलियां बांधे। प्रति दिन दो गोली खानेसे लाभ होगा।

३ तूतिया—मृगीरोगका तूतिया भी एक उत्तम औषध है। हमारे देशके संन्यासी करञ्जवाले सारके साथ इस औषधका प्रयोग करते हैं। एलोपैथीके चिकित्सक भी इसे काममें लायेंगे। डाक्टर हार्पिन् एमोनियेटेड कापरके अधिक पक्षपाती हैं। तूतिया १ ग्रेन, करञ्ज सार १२ ग्रेन एक साथ मिलाकर चार गोली बना ले। प्रति दिन दो गोली खाना चाहिये।

४ डिजिटेलिस्—आयर्लैण्डमें बहुत दिनोंसे मृगीरोगपर यही औषध दिया जाता है। डाक्टर शार्कें, क्राम्पटन, कर्मोक्, करिगान् प्रभृति चिकित्सक इसकी बहुत प्रशंसा करते थे। इसका फाण्ट ही शायद अधिक उपकारी होगा। बहुत दिन तक डिजिटेलिस् व्यवहार करनेसे विषक्रिया कर सकता है, इसलिये इसे सावधानीके साथ प्रयोग करते हैं।

५ ब्रोमाइड् अव् पोटास्—सर चार्लस् लक, डाक्टर रेनल्ड्स्, डाक्टर विलियम्स प्रभृति अनेक विज्ञ चिकित्सकोंने मृगीरोगमें इस औषधका प्रयोग करके विशेष फल पाया है। ब्रोमाइड् अव् पोटास ५ ग्रेन, कलम्बोका फाण्ट आधा छटांककी एक मात्रा प्रति दिनमें तीन बार सेवन करे। इस औषधको अधिक मात्रामें प्रयोग करनेसे शरीर निस्तेज हो जायेगा, इसलिये इसे सावधानीके साथ व्यवहारमें लायेंगे।

६ आइयोडेड आव् पोटास्—मस्तककी हड्डी बढ़ जाने अथवा पुराना प्रदाह आदि रहनेपर इस औषधसे बहुत उपकार होता है। चिरायतेवाले फाण्टके साथ तीन ग्रेनकी मात्रामें प्रतिदिन दो तीन बार लेना चाहिये।

वैद्यक—अपस्मार रोगमें वैद्य लोग कई मुष्टियोग

प्रयोग करते हैं। उनमेंसे मूर्च्छाके समय नीचे लिखा हुआ धूप देनेसे कुछ उपकार हो सकता है। नेवला, उल्लू, बिल्ली, शकुनि, कीट (बिच्छू), सांप और कौवा, इन सबकी यथासम्भव चोंच, पंख, और विष्ठाका धूम देनेसे आक्षेपादि शान्त हो और शीघ्र चैतन्य आयेगा।

अन्तर्भूतावस्थामें दूधके साथ, शतमूलीका, तेलके साथ लहसुनका और मधुके साथ ब्राह्मीशाकका रस सेवन करनेसे कोई कोई मनुष्य बहुत दिनोंतक सुस्थ रहता है।

इस रोगपर वृहत्छागादितैल, माषतैल, नारायणतैल प्रभृति पकाया हुआ तेल लगाये। वृहत्छागलादिघृत, चतुर्मुख और जिन सब दवायोंमें जस्ता, तांबा, और रौप्य रहता, उन्हींसे फल भी होता है। सचराचर नीचे लिखी हुई दवाइयां ही दी जाती हैं,—

वृहत्पञ्चगव्यघृत—गायका घी ४ सेर पहले मूर्च्छा करे। उसके बाद गोमयरस ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, गायके दूधका मट्ठा ४ सेर, इन सब चीज़ोंको २।३ दिनका अन्तर दे देकर क्रमशः घीके साथ पका लीजिये। क्वाथार्थ—दशमूल, त्रिफला, हरिद्रा, दारुहल्दी, कुटजकी छाल, सप्तपर्णीकी छाल, आपाङ्गका मूल, नालवृक्ष, कड़वा इन्द्रयव, अमलतास फल, गूलर फल, केमुक, दुरालभा, प्रत्येक २ पल, जल ६८ सेरमें सिद्ध करके अन्तको १६ सेर जल रहनेपर उतारे। इस क्वाथको घृतके साथ पकाना चाहिये।

कल्कार्थ—ब्राह्मणयष्टिका, आकनादि, त्रिकटु, हिरनपद्दी मूल, हिलमोचिका वीज, गजपिप्पली, अरहर फल, मूर्वामूल, दन्तीमूल, चिरायता, चितामूल, श्यामलता, अनन्तमूल, रक्तरोड़ा, गन्धतृण, मैनफल, यह सब द्रव्य प्रत्येक दो तोले घीके साथ पकाये। पाक हो जानेपर घीको छान कर मट्टीके बरतनमें रख दे। गायके दूध साथ आधा तोला घी प्रति दिन सेवन करनेसे अपस्मार रोग दूर हो जाता है।

चण्डभैरव—पारद, ताम्र, लौह, हरिताल, गन्धक, मनःशिला, रसाञ्जन, इन सब चीज़ोंको बराबर बराबर लेकर एक साथ गोमूत्रमें घोंटे। उसके बाद फिर द्विगुण मिश्रित करके लोहेके बरतनमें कुछ देर पकाये। इसकी मात्रा ५ रत्ती है; हींग, लवण, केमुकचूर्ण, घृत और गोमूत्रके साथ सेवन करना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त अपस्मार रोगमें कुष्माण्डघृत, पलङ्कषाद्यतैल, महाचैतसघृत प्रभृति औषध व्यवहार करनेसे उपकार हो सकेगा।

अलङ्कार शास्त्रकी तीस प्रकार व्यभिचारितामें व्यभिचारिताविशेषको भी अपस्मार कहते हैं।

अपस्मारिन् (सं० त्रि०) अपस्मारोऽस्त्यस्य अपस्मार अस्त्यर्थे इनि। अपस्माररोगयुक्त, जिसे मृगीरोग हो।

अपस्मृति (सं० त्रि०) भुलक्कड़, बेखबर।

अपस्य (सं० त्रि०) आप्-उण्, असुन ह्रस्वः अपस् कर्म तस्मिन् साधुः अपस साध्वर्थे यत्। साधुकर्मकारी, अच्छा काम करनेवाला।

अपस्यु (सं० त्रि०) अपः कर्म इच्छति अपस्-क्यच्-उ। कर्मेच्छू, जो कर्मकी इच्छा रखे।

अपस्वार्थी (हिं० वि०) मतलबी, स्वार्थ सिद्ध करनेवाला, खुदगरज़।

अपह (सं० त्रि०) अप-हन-ड। अपघात-कर्ता, विनाशक, हनन करनेवाला, नाश करनेवाला।

अपहत (सं० त्रि०) अप-हन-क्त। विनष्ट, विनाशित, मारा हुआ, हटाया गया।

अपहति (सं० स्त्री०) अप-हन-क्तिन्। अपहनन, विनाश, नाशन।

अपहन् (सं० त्रि०) अप-हन-क्विप्। विनाशक, दूर करनेवाला।

अपहतपाप्मा (सं० त्रि०) पापमुक्त, पापशून्य, सब पापोंसे छूटा हुआ, जिसके सब पाप दूर हो गये हों।

अपहर (सं० त्रि०) अपहरति अप-हृ कर्तरि अप्। हरणकर्ता, विनाशकर्ता, चोरी करनेवाला, छीन लेनेवाला।

अपहरण (सं० क्ली०) अप-हृ-ल्युट्। स्तेय, चोरी, छीनना, ले लेना, आप भोग करनेकी इच्छासे दूसरेकी वस्तु छिपा देना। 'निर्क्षेपस्यापहरणम्।' (मनु ११।५८) अर्थात्

किसीकी रखी हुई चीज़का उड़ा लेना। शूलपाणि और जीमूतवाहन साधारणकी वस्तुके छिपा देनेको अपहरण नहीं कहते।

अपहरणीय (सं॰ त्रि॰) अपहर्त्तुमर्हम् अप-हृ-अर्ह्यार्थे अनीयर्। अपहरणके योग्य, ले लेने लायक़, छिपा देने लायक़, जिसके अपहरण करनेसे दोष वा दण्डकी विधि न रहे।

"वनस्पत्यं मूलफलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च।
तृणञ्च गोभ्यो ग्रासार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्॥" (मनु ८।३३९)

पुष्प, मूल, फल, होमाग्निके निमित्त लकड़ी एवं गोग्रासके लिये घास—इन सब चीज़ोंको बिना पूछे ले लेना चोरी नहीं होता।

"वीरुद्वनस्पतीनां पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम्।" (गौतम)

जिस स्थानमें बाड़ा न हो, उस स्थानकी लता और वृक्षका फल मूल अपना जैसा ले सकते हैं।

"द्विजोऽध्वग: चीणवृत्तिर्द्वाविचू वे च मूलके।
आददान: परचेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति॥" (मनु ८।३४१।)

जिसके पास राहखर्च न हो, ऐसा द्विज पथिक बिना मांगे भी यदि दूसरेके खेतसे दो ऊख या दो फल ले ले, तो दण्ड पाने योग्य नहीं ठहरता।

पूर्वकालकी यह व्यवस्था देखनेसे साफ़ जान पड़ता है, कि उस समय शासनकी ऐसी कड़ाई न थी। उस समयके मनुष्य विलासी न रहे, थोड़ी ही भोजनवस्तुसे सन्तुष्ट हो जाते थे। इस समय यदि कोई दूसरेके खेतसे दो ऊख ले ले, तो विचारालयमें उसे बेतका दण्ड मिलता है, किन्तु लक्ष्मीकी कृपासे प्राचीन भारतवासी इस कठिन नियमको न जानते रहे। उनके खेत शस्यादिसे पूर्ण होते, इसीसे पथिक प्रभृति यदि कोई वस्तु ले लेते, तो खेतका मालिक उन्हें कुछ भी न कहता था।

अपहरना (हिं॰ क्रि॰) चुराना, छीन लेना, लूट लेना, नष्ट करना, चय करना।

अपहर्तृ (सं॰ त्रि॰) अप-हृ-तृच्। अपहारक, अपहरण करनेवाला, चोर।

अपहर्ता (सं॰ पु॰) चार, लुटेरा, ले लेनेवाला, छीन लेनेवाला,।

अपहस्त (सं॰ पु॰) वहिरपगमनार्थः हस्तः, प्रादि-स॰। १ गलहस्त, अर्द्धचन्द्र। (त्रि॰) २ दत्तगलहस्त, गर्दनमें हाथ लगाकर नकाला हुवा।

अपहस्तित (सं॰ त्रि॰) अपहस्तः क्रियते स्म अपहस्त-णिच् कर्मणि क्त। गलहस्तद्वारा निःसारित, जो गलेमें हाथ देकर निकाल बाहर कर दिया गया हो।

अपहार (सं॰ पु॰) अप-हृ-घञ्। चौर्य, अपहरण, अपनयन, अपचय, चोरी, हानि, छिपाना।

अपहारक (सं॰ त्रि॰) अप हरति अप-हृ कर्तरि ण्वुल्। चौर्यकारी, अपहरणकर्ता, सङ्कोचक, स्थानान्तरको आकर्षकारी, चोर, लुटेरा, डाकू। अपहारक दो प्रकारके होते हैं। १ ला अप्रकाशमें अपहारक, जैसे चोर आदि। २रा प्रकाशमें अपहारक, जैसे सोनार आदि।

अपहारित (हिं॰ वि॰) लुटा हुआ, छिना हुआ, चुराया गया।

अपहारिन् (सं॰ त्रि॰) अप-हृ-णिनि। अपहर्ता, अपहरणकर्ता, चोर, डाकू।

अपहारी, अपहारिन् देखो।

अपहार्य (सं॰ त्रि॰) चोरी करने योग्य, ले लेने लायक़, छीननेके क़ाबिल।

अपहास (सं॰ पु॰) अप अप्रयोजने हासः अपहस-घञ्। अकारण हास्य, बेसबब हंसी, उपहास।

अपहृत (सं॰ त्रि॰) चुराया हुआ, लूटा गया, छीना छाना।

अपहेला (सं॰ पु॰) तिरस्कार, झिड़की।

अपह्नव (सं॰ पु॰) अप-ह्नु-अप्। अपलाप, किसी बातका जानकर छिपाना, स्थायी वस्तुको अस्थायी रूपसे कहना, बहाना, टालमटोल, दुराव।

अपह्नव दो प्रकारका होता है—शब्दगत और अर्थगत। शब्दगत यथा—यदि कोई वादी कहे,—'वह मेरा सौ रुपया चाहता है।' उसको इस बातपर प्रतिवादीका 'सौ रुपये झूठ है' बोलना शब्दगत अपह्नव कहा जायगा। कारण, इस जगह शब्दद्वारा ही प्रकृत विषय गोपन किया गया।

अर्थगत यथा,—'क्या तुम कलिङ्ग देशमें वास करते

थे ?' यह प्रश्न सुन यदि कोई ऐसा उत्तर दे,—'नहीं, मैं कलिङ्ग देश कभी नहीं गया,' तो इसे अर्थगत अपह्नव कहेंगे। कारण विना कलिङ्गदेश गये वहां वास करना कभी सम्भव नहीं हो सकता।

अपह्नुत (सं॰ त्रि॰) अपह्नुतेस्म अप-ह्नु कर्मणि क्त। कृतापह्नव वस्तु, जिस वस्तुका अपलाप किया गया हो, जो चीज़ चोरी की गई हो, अपसारित, अपचित, दूसरी जगह ले गई हुई।

अपह्नुति (सं॰ स्त्री॰) अप-ह्नु-क्तिन्। १ अपह्नव, अपलाप। २ अर्थालङ्कार विशेष। यथा,—"प्रकृतं प्रतिषिध्यान्ये स्थापनं स्यादपह्नुतिः।" (साहित्यद॰) प्रकृत पदार्थका प्रतिषेध करके उस स्थलमें वैसा ही अन्य किसी पदार्थके स्थापनका नाम अपह्नुति है। अपह्नुति अलङ्कार दो प्रकारका है—किसी स्थलमें पहले प्रकृत विषयका अपलाप करके फिर अन्य विषयका आरोप और कहीं आरोपके बाद शेषमें अपलाप होगा।

अपलापके बाद आरोप, यथा—

"नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिः नैताश्च तारा नवफेनभङ्गाः।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलङ्कः शयितो मुरारिः॥"
नहिं आकाश समुद्र है तारा नहिं कण फेन।
नहिं चन्द्रमा कलङ्कयुत अहिपर राजिवनैन॥

यह तो आकाश नहीं—नीलाम्बुराशि समुद्र है। यह तो तारे नहीं, केवल नवीन फेनराशि छिन्न भिन्न होकर पड़ी हुई है। यह तो चन्द्रमा नहीं, फणीन्द्र कुण्डली मारे बैठा है, और यह कलङ्क नहीं—जलशायी श्यामवर्ण मुरारि शयन कर रहे हैं।

यहां पहले प्रकृत आकाशको गोपन करके फिर उसकी एक एक वस्तुके स्थानमें अन्य वस्तुका आरोप किया गया है।

पहले आरोप करके पीछे अपलाप, यथा—

"एतद्विभाति चरमाचलचूडचुम्बी हिण्डीरपिण्डरुचिशीतमरीचिबिम्बम्।
उज्वालितस्य रजनौ मदनानलस्य धूमं दधत् प्रकट लाञ्छनकैतवेन॥"
राजत चन्द्र अमन्द है छवि वरणी नहिं जाय।
मिस कलङ्क मनसिज अनल धूम रही धधकाय॥

यह अस्ताचलचूड़ावलम्बी फेनसमूहकी भांति श्वेतकिरण चन्द्रमण्डल, सुव्यक्त कलङ्कच्छलसे रात्रिमें प्रदीपित मदनानलका धूम धारणकर विराजमान हो रहा है।

यहां पहले प्रकृत विषयका अपह्नव न करके पीछे कलङ्कसे धूमका आरोप किया गया।

"गोपनीयं कमप्यर्थं द्योतयित्वा कथञ्चन।
यदि श्लेषेणान्यथा वाऽन्यथयेत् साप्यपह्नुतिः॥" (साहित्यदर्पण)

गोपनीय कोई अर्थ किसी रूपसे प्रकाश करके यदि श्लेषद्वारा किम्वा अन्य किसी रूप अन्यथा किया जाय, तो वह भी एक प्रकारका अपह्नुति अलङ्कार है। श्लेषमें यथा,—

"काले वारिधाराणामपतितया नैव शक्यते स्थातुम्।
उत्कण्ठितासि तरले! नहि नहि सखि! पिच्छिलः पन्थाः॥"

किसी रमणीने अपनी प्रिय सखीसे कहा,—'सखि! वर्षाकालमें अपतितारूपसे (पतिशून्य भावमें) रहा नहीं जाता।' यह सुन सखीने पूछा,—'चञ्चले! क्यों, क्या तुम उत्कण्ठिता हुई हो'? इसपर रमणीने उत्तर दिया,—'नहीं सखि! सो नहीं, मैं कहती हूं, कि वर्षाकालमें मट्टी खिसक जाती है, इसीसे विना गिरे रह नहीं सकती।'

यहां पति विना रहा नहीं जाता यह गोपनीय भाव जिस शब्दद्वारा प्रकाश किया गया था, फिर उसी शब्दके श्लेषार्थसे अन्य भाव निकल आया।

श्लेषशून्य, यथा—

"इह पुरोऽनिलकम्पितविग्रहा मिलति का न वनस्पतिना लता।
स्मरसि किं सखि! कान्तरतोत्सवं? नहि घनागमरीतिरुदाहृता॥"

किसी रमणीने अपनी सखीसे कहा,—'इस वर्षाकालमें सम्मुखवर्त्तिनी वायुकम्पित कौन लता वृक्षसे नहीं मिलती?' यह सुन सहचरीने पूछा,—'तुम क्या कान्तका रतोत्सव (रतिकालका उत्सव) स्मरणकर रही हो?' इसपर उस रमणीने उत्तर दिया,—'नहीं सखि! मैं वर्षाकालकी रीति ही बताती हूं।'

'कौन लता वृक्षसे नहीं मिलती'—इसके द्वारा पतिसहवासका सुख प्रकाशकर विरहिणी रमणीने पुनर्वार वर्षाकालकी रीतिका उल्लेख किया, सुतरां प्रकृत भाव गोपन करके अन्य भाव देखाया है।

अपह्नुवान (सं॰ त्रि॰) अप-ह्नु-शानच्। चौर्यकर्ता,

अपनयनकर्ता, सङ्गोपक, अपलापकर्ता, चोर, लुटेरा, अपलाप करनेवाला, अस्वीकार करनेवाला।

अपह्नूयमान (सं० त्रि०) अप-ह्नु कर्मणि शानच् यक् च। अपनीयमान, अपहृत, स्थानान्तरमें रक्षित, जिस वस्तुका अपलाप किया गया हो, दूसरी जगह रखा हुआ।

अपह्रास (सं० क्ली०) कमी, घाटा।

अपह्रियमाण (सं० त्रि०) अप-हृ कर्मणि शानच् यच् ऋकारस्य रिङ्म्। चौर्यधन, अपलप्यमान, सङ्गुप्यमान, चोरीका धन, जो छिपाया जाता हो।

अपा (हिं० पु०) अहङ्कार, अभिमान, घमण्ड, आत्मभाव।

अपांक्षय (सं० पु०) क्षि निवास गत्याः अच् क्षयः अपां जलानां क्षयः स्थानम्, ६-तत्। अपां क्षयो गतिः यस्मिन्, बहुव्री० वा अलुक् स०। नेत्र, चक्षु, आंख, नयन।

अपांज्योतिस् (सं० क्ली०) ६-तत् अलुक्स०। विद्युत्, बिजली।

अपांनपात् (सं० पु०) न पातयति पत-णिच्-क्विप्। मध्यस्थान देवता, यज्ञके देवता विशेष।

यास्कने बत्तीस देवताओंके गणोंमें अपांनपात् ग्रहण किया है। यथा,—

१ वायु, २ वरुण, ३ रुद्र, ४ इन्द्र, ५ पर्जन्य, ६ बृहस्पति, ७ ब्रह्मणस्पति, ८ क्षेत्रस्यपति, ९ वास्तोस्पति, १० वाचस्पति, ११ अपांनपात्, १२ यम, १३ मित्र, १४ क, १५ सरस्वान्, १६ विश्वकर्मा, १७ तार्क्ष्य, १८ मन्यु, १९ दधिक्रा, २० सविता, २१ त्वष्टा, २२ वात, २३ अग्नि, २४ वेन, २५ असुनीति, २६ ऋत, २७ इन्दु, २८ प्रजापति, २९ अहि, ३० अहिर्बुध्न्य, ३१ सुपर्ण। ३२ पुरुरवा।

अपांनप्त्रिय, अपान्नप्त्रिय (सं० त्रि०) अपानपात् देवता अस्य अपान्नप्तृ देवतार्थे घ। १ अपान्नपात् देवताका पुजारी। २ अपान्नपात् देवताको दिया जानेवाला।

अपांनप्त्रीय, अपान्नप्त्रीय (सं० त्रि०) अपांनपात् देवतास्य अपान्नप्तृ-छ। १ अपान्नपात देवताका पुजारी। २ अपान्नपात् देवताको जो दें।

अपांनाथ (सं० पु०) समुद्र, जलपति।

अपांनिधि (सं० पु०) निधीयते अस्मिन् धा-अधिकरणे कि। अपां जलानां निधिः स्थानम्। ६-तत् अलुक्स०। १ समुद्र। २ विष्णु।

अपांपति (सं० पु०) पाति रक्षति पा-उण् डति पतिः अपां जलानां पतिः, ६-तत् अलुक्-स०। १ समुद्र। २ वरुण।

अपांपाथस् (सं० क्ली०) अपां जलानां पाथः सारः ५-तत् अलुक्स०। १ अन्न। २ चावल।

अपांपित्त (सं० क्ली०) ६-तत् वा अलुक्-स०। अग्नि।

अपांपुरीष (सं० क्ली०) अपां जलानां पुरीषं मलम्। ६-तत् अलुक् स०। शैवाल, सेवार।

अपांयोनि (सं० स्त्री०) यु-उण्-नि योनिः, अपां जलानां योनिः कारणम्, ६-तत् अलुक्स०। समुद्र।

अपांवत्स (सं० पु०) चित्रानक्षत्रसे पांच अंश उत्तर विक्षेपमें दिखाई देनेवाला एक बड़ा तारा।

अपांशुका (सं० स्त्री०) पन्श-उण्-कु दीर्घश्च पांशुः रजोव्यभिचारदोषश्च सोऽस्त्यस्याः सिध्मादि लच्-टाप्, नञ्-तत्। पतिव्रता, पतिव्रतामें अग्रगण्या।

अपांसुला (सं० स्त्री०) पन्स्-उण्-कु दीर्घश्च पांसुः रजोव्यभिचारदोषश्च सोऽस्त्यस्याः सिध्मादि लच्-टाप्, नञ्-तत्। पतिव्रता स्त्री।

अपांसदन (सं० क्ली०) अपां जलानां सदनं स्थानम्। ६-तत् अलुक् स०। १ आकाश। २ स्वर्ग। ३ सूर्य।

अपांसधस्थ (सं० पु०) ६-तत् अलुक्स०। आकाश, आस्मान।

अपांसधिस (सं० क्ली०) ६-तत् अलुक्स०। श्रोत्र, कर्ण, कान।

अपांसमुद्र (सं० पु०) अपां जलानां समुद्रः स्थानम्। ६-तत् अलुक् स०। मन, चित्त।

अपाक (सं० पु०) पच्-घञ् पाकः न पाकः। नञ्-तत्। १ पाकका अभाव, खाये हुए अन्नका न पचना। २ अपाकजनक, अजीर्णता रोग, अपच।

(त्रि०) ३ असिद्ध, कच्चा, जो पका न हो। ४ प्राज्ञ, विद्वान्, अनल्प, अशिशु अजरा, अनिष्पत्ति, असिद्ध, अपचन, अक्लेद।

मनुष्यका साध्य और असाध्य पाक दो प्रकार होता है। जल और अग्नि प्रभृति द्वारा चावल आदि पकाना मनुष्यका साध्य है। मनुष्यका असाध्य पाक भी दो प्रकार है। यथा, कालक्रमसे फलादिका पाक एक प्रकार एवं जठराग्निद्वारा भुक्त अन्नादिका पाक अन्य प्रकार होगा।

अपाकज (सं० त्रि०) न पाकाज्जायते जन-ड। नञ्-तत्। पाकज भिन्न, जो पाकज न हो।

"अपाकजानुष्णाशीतः स्पर्शस्तु पवने मतः।" (भाषापरिच्छेद)

वायुमें जो स्पर्शगुण है, वह पाकज नहीं होता। न अति उष्ण और न अति शीतल।

अपाकरण (सं० क्लो०) अप-आ-कृ-ल्युट्। निराकरण, निषेध, अलग करना, दूर करना, हटाना।

अपाकरिष्णु (सं० त्रि०) अप-आ-कृ बाहुलकात् इष्णुच्। दूरीकरणशील, अपसारणक्षम, निवारणशील, अलग करनेवाला।

अपाकर्तोस् (सं० अव्य०) अप-आ-कृ-तुमर्थे तोसुन्। अपाकरणनिमित्त, निराकरणके लिये, हटानेको।

अपाकर्मन् (सं० क्लो०) अप-आ-कृ-मनिन्। निकास, निराकरण, भुगतान, अदायगी, चुकौता।

अपाकशाक (सं० क्लो०) न पच्यतेऽसौ अपाकः पाकानर्ह इत्यर्थः तथाभूतः शाको यस्य। आर्द्रक, अदरक, आदा।

अपाकिन् (सं० त्रि०) पाकोऽस्त्यस्य पाक इनि, नञ्-तत्। पाकशून्य, अपाक, कच्चा, जो पका न हो।

अपाकृत (सं० त्रि०) अप-आ-कृ-क्त। निराकृत, दूरीकृत, दूर या बरबाद किया हुआ।

अपाकृति (सं० स्त्री०) अप-आ-कृ भावे क्तिन्। निराकरण, दूरीकरण, हटाना, ले लेना।

अपाकृत्य (सं० अव्य०) अप-आ-कृ-ल्यप्। निराकरण करके, निकालकर, अलग करके, शोधकर।

अपाक्तात् (सं० अव्य०) अधोदिक् जात, अपरदिक्जात, पश्चिमदिक् जात, पीछेसे, पश्चिमसे।

अपाक्रिया (सं० स्त्री०) अप-आ-कृ भावे श टाप्। अपाकरण, अपसारण, दूर या अलग करना, हटाना।

अपाक्ष (सं० क्लो०) अपनतम् अनुपगतम् अक्षम् इन्द्रियम्। अतिक्रान्तं तत्। १ इन्द्रियके निकट जात, प्रत्यक्ष। (त्रि०) २ प्रत्यक्षका विषय। ३ विना आंखका, खराब आंखवाला।

अपाङ्क्त, अपाङ्क्तेय देखो।

अपाङ्क्तेय (सं० त्रि०) सद्भिःसह पंक्तिभोजनमर्हति अर्हार्थे यक् ततो नञ्-तत्। साधुओंके साथ एक पंक्तिमें भोजनके अयोग्य। अस्सी तोले सोना चुरानेवाला, पतितादि, क्लीव, नास्तिक, भण्ड जटादिधारी, जो वेद वा वेदाङ्ग अध्ययन न करे, यज्ञादि विषयमें योग्यताहीन, धूर्त, शठ, सङ्करजाति, चिकित्सक, पुजारी ब्राह्मण, मांसविक्रयी, लोहादि निषिद्ध द्रव्य विक्रयकारी प्रभृति अनेक रूप मनुसंहितामें अपाङ्क्तेय बताये गये हैं।

अपाङ्क्त्य (सं० त्रि०) साधुभिः सह भोजने न पंक्तिमर्हति, नञ्-तत्। अपाङ्क्तेय, साधुओंके साथ जो एक पंक्तिमें बैठकर भोजन करनेके योग्य न हो।

अपाङ्क्त्योपहत (सं० त्रि०) अशुद्ध मनुष्योंकी उपस्थितिसे अपवित्र वा भ्रष्ट।

अपाङ्ग (सं० पु०) अपाङ्गति तिर्यक् चलति नेत्रं यत्र अप-अङ्ग-घञ्। १ नेत्रका प्रान्त, आंखका कोना। २ कामदेव। ३ तिलक, बिन्दी। ४ लटजीरा। (त्रि०) ५ अङ्गहीन। (स्त्री०) अपाङ्गी।

अपाङ्गक (सं० पु०) अप अपकृष्टमङ्गं यस्य कप्। १ अपामार्ग, लटजीरा। २ नेत्रान्त। ३ आंखका छोर। (त्रि०) ४ अङ्गहीन।

अपाङ्गदर्शन (सं० क्लो०) अपाङ्गेन नेत्रप्रान्तेन दर्शनम्, ६-तत्। कटाक्ष, तिरछी नज़र।

अपाङ्गदेश (सं० पु०) आंखसे बाहरवाले कोनेके चारो ओरकी जगह।

अपाङ्गनेत्र (सं० क्लो०) अपाङ्ग पर्यन्तं नेत्रम्। दीर्घनेत्र, दीर्घनेत्रयुक्त, बड़ी आंखवाला।

अपाच् (सं० त्रि०) अप अञ्चति अप-अञ्च-क्विप्। १ अपगमनकर्ता, जो चला जाय। (अव्य०) २ पीछे।

अपाची (सं॰ स्त्री॰) १ दक्षिण दिक्, जनूब।

अपाचीन (सं॰ त्रि॰) अपाच्यां दक्षिणस्यां दिशि अपाचि अप्रकाशे वा भवं ख। दक्षिणदिक् जात, अप्रकाशमान, विपर्यस्त, विपरीत।

अपाच्य (सं॰ त्रि॰) अपाचि दक्षिणस्यां दिशि भवम् अपाच भावार्थे यत्। १ दक्षिण दिक् जात, दक्षिणीय। २ पश्चिमीय।

अपाटव (सं॰ पु॰) पटोर्भाव पटु भावे अण् पाटवं, न विद्यते पाटवं यस्मिन्, नञ्-बहुव्री॰। १ रोग, बीमारी। (क्ली॰) २ पटुताका अभाव। (त्रि॰) ३ पटुताशून्य।

अपाठ्य (सं॰ त्रि॰) जो पढ़नेमें न आवे, जो पढ़ने लायक़ न हो, बदखत।

अपाणिग्रहण (सं॰ पु॰) अविवाहित अवस्था, कुमारपन।

अपाणिपाद (सं॰ त्रि॰) हस्तपदविहीन, विना हाथ पैरका।

अपात्त (सं॰ क्ली॰) अप-आ-दा-क्त। प्राप्त, दस्तयाब।

अपात्र (सं॰ क्ली॰) पाति रक्षति पा-उण्-ष्ट्रन् पात्रम्, नञ्-तत्। श्राद्धादि अन्न प्रभृति भोजनके अयोगग्र, दानादि कार्यमें असमर्थ, अभाजन, कुपात्र, विद्यादि हीन, तीरद्वयके मध्यवर्ती नहीं, सुवादिभिन्न, पत्रभिन्न, राजमन्त्री भिन्न, अयोगग्र, मूर्ख।

'पात्रञ्च भाजने योग्ये पात्रं तीरद्वयोन्तरे।
पात्रं सुवादौ पर्णेपि राजमन्त्रिणि चेष्यते॥' (विश्व)

अपात्रदायी (सं॰ त्रि॰) कुपात्रको दान देनेवाला।

अपात्रभृत् (सं॰ त्रि॰) अयोगग्रोंका पालन पोषण करनेवाला।

अपात्रीकरण (सं॰ क्ली॰) पात्रं दानादि सम्प्रदानम् अपात्रं दानाद्यं न अर्हं क्रियतेऽनेन अपात्र-क्व करणे ल्युट् च्वि ईत्वञ्च। निन्दित प्रतिग्रहादि जनित पाप विशेष, शास्त्रोक्त नौ प्रकारके पापोंमें चार प्रकारका पाप। यथा,—१ जिसका धन ग्रहण करना शास्त्रमें निषिद्ध है, उसके धन ग्रहण करनेका पाप; २ असद्वाणिज्य; ३ शूद्रकी सेवा; ४ मिथ्या कथन।

"निन्दितेभ्यो धनादानं वाणिज्यं शूद्रसेवनम्।
अपात्रीकरणं ज्ञेयमसत्यस्य च भाषणम्॥" (मनु ११।७०)

अपाद (सं॰ त्रि॰) नास्ति पादोऽस्य, नञ्-बहुव्री॰। अन्त्यलोप स॰। पादशून्य, जिसके पैर न हों, पङ्गु।

अपादान (सं॰ क्ली॰) अप अपगमने (चलने) अवधित्वेन आदीयते गृह्यते (गण्यते) अप-आ-दा कर्मणि ल्युट्। ध्रुवमपायेऽपादानम्। पा १।४।२४। विभाग, अलगाव। व्याकरणसिद्ध कारक विशेष। जिससे विभागादि होंगे अर्थात् चलित पतितादि समझा जायगा, उसीका नाम अपादान कारक है। (अपाय शब्दका अर्थ विभाग, विश्लेष इत्यादि एवं ध्रुव शब्दकी अर्थ अवधि है)। अपादान कारकमें पञ्चमी विभक्ति लगेगी।

'निर्दिष्ट विषयं किञ्चिदुपात्तविषयस्तथा।
अपेक्षितक्रियञ्चेति त्रिधापादानमिष्यते॥" (भर्तृहरि)
"श्रुतसाध्य क्रियं यत् स्यान्निर्दिष्टविषयन्तु तत्।
उह्य साध्यक्रियं यत् स्यादुपात्त विषयन्तु तत्॥
अपेक्षित क्रियन्तत् स्यात् यत् क्रियाशून्यमेव हि॥" (राम)

प्रस्तावके मध्यमें ही जिसकी क्रिया सुनी जाय, उसका नाम निर्दिष्ट विषय अपादान है। जैसे, 'वृक्षात् पर्णं पतति' अर्थात् वृक्षसे पत्ता गिरता है। इस जगह पतनक्रिया वाक्यके मध्यमें ही सुन पड़ती है। जिसकी अश्रुतक्रिया अध्याहार कर वाक्यकी सङ्गति करना हो, उसका नाम उपात्त विषय अपादान रखा जायेगा। जैसे, 'घनाद्विद्योतते विद्युत्।' 'घनान्निःसृत्य विद्युद्विद्योतते।' विद्युत् मेघसे निकलकर चमकती है। यहां प्रथम वाक्यमें 'निःसृत्य' यह पद न था, परवाक्यमें उसका अध्याहार आया। जो क्रियाशून्य है, उसका नाम अपेक्षितक्रिय अपादान है। जैसे, 'कुतोभवान्' आप कहांसे। इस प्रश्नमें आते हैं यह क्रिया नहीं है, अथच उसका अर्थ अपेक्षित रूपमें बोध होता है, इसलिये इसका उत्तर देनेमें, 'पाटलिपुत्रात्' अर्थात् पाटलिपुत्रसे ऐसा अपेक्षित अर्थात् क्रियाशून्य ही प्रयोग होगा।

अपादान कारकमें ग्यारह प्रकारके अर्थसे पञ्चमी विभक्ति प्रयुक्त होती है। १ जिससे अपाय अर्थात्

विश्लेष होता है। यथा—'वृक्षात् पर्णं पतति' वृक्षसे पत्ता गिरता है। २ जिससे भय होता है। जैसे—'व्याघ्रात् बिभेति' शेरसे डरता है। ३ जिससे जुगुप्सा होती है। जैसे—'पापात् जुगुप्सते धीरः' धीर व्यक्ति पापसे विरक्त होता है। ४ जिससे पराजय होता है। जैसे—'सिंहात् पराजयते हस्ती' सिंहसे हाथी पराजित होता है। ५ जिससे प्रमाद उत्पन्न होता है। जैसे—'धर्मात् प्रमाद्यति नीचः' धर्मसे नीच व्यक्तिको प्रमाद होता है। ६ जिससे आदान होता है। जैसे—'भूपात् धनमादत्ते विप्रः' राजासे ब्राह्मण धन पाते हैं। ७ जिससे जन्म होता है। जैसे—'पितुः पुत्रो जायते' पितासे पुत्र जन्म लेता है। ८ जिससे परित्राण पाया जाता है। जैसे—'व्याघ्रात् गां रक्षति गोपः' गोप शेरसे गायकी रक्षा करता है। ९ जिससे विराम होता है। जैसे—'जपात् विरमति विप्रः' जपसे विप्र विरत होते हैं। १० जिससे अन्तर्हित होता है। जैसे—'गुरोरन्तर्द्धत्ते शिष्यः' गुरुसे शिष्य अन्तर्हित होता है। ११ जिससे वारण किया जाता है। जैसे—'यवेभ्यो गां निवारयति' यवसे गाय निवारण करता है।

अपाध्वन् (सं० पु०) खराब सड़क, बुरी राह।

अपान (सं० क्ली०) अपानयति विष्ठादि अपसारति अप-आ-नी-ड। १ योगी लोग मलद्वारसे जल आकर्षण करते हैं, इसीसे इसका नाम अपान है। (पु०) २ अधोवायु। ३ वातकर्म, शरीरस्थित पांच वायुके अन्तर्गत वायुविशेष। (हिं० पु०) ४ आत्मगौरव, आत्मभाव। ५ सुध। ६ अपना अभिमान।

अपानन (सं० क्ली०) अप-अन भावे ल्युट्। १ अपश्वसन, मुख और नासिकाद्वारा निःसारित वायुका भीतर आकर्षण, मलमूत्रादिका अधोनयन। (त्रि०) २ मुखरहित।

अपानृत (सं० त्रि०) सत्य, सच, झूठसे भिन्न।

अपान्तरतमस् (सं० पु०) अन्तरे भवम् अन्तर-भवार्थे अण् आन्तरम् आन्तरिकम् अप अपगतम् आन्तरम् आन्तरिकम् तमोऽज्ञानरूपान्धकारो यस्य। प्रादि-बहुव्री०। वेदार्थप्रकाशक देवसुत विशेष।

अपानवायु (सं० पु०) १ पांच प्रकारकी वायुमेंसे एक। २ अधोवायु, पाद।

अपाप (सं० त्रि०) पाति रक्षति अस्मादात्मानं पा उण् प। नास्ति पापं कलुषं यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ पापहीन, निष्पाप। २ पापजनक, आचारशून्य। (अव्य०) ३ पापके अभाव। (पु०) ४ जलशून्य स्थान। ५ पुरुष।

अपामार्ग (सं० पु०) अपमृज्यतेऽनेन व्याधादिः अप-मृज करणे घञ् कुत्वं उपसर्गे दीर्घश्च। लटजीरा।

लिङ्गपुराणमें लिखा है,—

"कार्त्तिके कृष्णपक्षे च चतुर्दश्यां दिनोदये।
अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः।
अपामार्गपल्लवञ्च भ्रामयेच्छिरसोपरि।"

कार्तिक मासकी कृष्णपक्षीय चतुर्दशीको सूर्य उदयके पश्चात् नरकभीत लोगोंको अवश्य स्नान करना, तथा मस्तकके ऊपर लटजीरेके पत्ते घुमाना चाहिये।

मस्तकके ऊपर जिस समय पत्ते घुमावे, उस समय यह मन्त्र पढ़ ले,—

"शीतलोष्णसमायुक्त सकण्टकदलान्वित।
हर पापमपामार्ग भ्राम्यमाणः पुनः पुनः॥"

हे शीतल तथा उष्ण गुणयुक्त कण्टकान्वित पत्रविशिष्ट अपामार्ग! मस्तकके ऊपर बार बार घूमकर हमारे पापोंको हरो।

अपामार्गके यह कई पर्याय देखते हैं—

शैखरिक, धामार्गव, मयूरक, प्रत्यक्पर्णी, कीशपर्णी, किणिही, खरमञ्जरी, शैखरेय, अधामार्गव, केशपर्णी, स्थलमञ्जरी, प्रत्यक्पुष्पी, क्षारमध्य, अधोघण्टा, शिखरी, दुर्ग्रह, अध्वशल्य, काण्डीरक, मर्कटी, दुरभिग्रह, वाशिर, पराक्पुष्पी, कण्टी, मर्कटपिप्पली, कटुमञ्जरिका, अघाट, क्षरक, पाण्डुकण्टक, नालाकण्टक, कुब्ज। चलती बोलीमें इसे लटजीरा कहेंगे।

अपामार्ग (Achyranthes aspera) एक प्रकारका क्षुद्र गुल्म है। यह प्रायः दो तीन हाथ ऊंचा होता है। इसकी टहनी सीधी बंधेगी। उसकी चारो ओर इसके तीक्ष्ण फल लगे रहते हैं। फलोंका अग्र-

भाग नीचेको लटकेगा। यह भारतवर्षमें प्रायः कभी जगह पाया जाता है।

वैद्यशास्त्रके अनुसार लटजीरा तिक्त, कटु और उष्ण होता है। यह धारक और वान्तिकर ठहरेगा। इसके सेवनसे कफ, अर्श, कण्डु, उदरामय और विष मिटता है। यूरोपीय चिकित्सकोंने इस पौधेको विशेषरूपसे परीक्षा कर इसके अनेक गुण स्वीकार किये हैं। उनके मतसे यह कटु और मृदु विरेचक है। उदरी, शोथ, अर्श, फोड़ा और कण्डु प्रभृति रोगोंको इसके सेवनसे शान्ति होगी। इसका फल और पत्तेका रस वान्तिकर होता है। इसके सेवनसे शृगाल, कुत्ता और सांपका विष भी नष्ट हो जायेगा। डाक्टर टर्नरने 'फर्मेकोपिया इंडिका' नामक पुस्तकमें लिखा कि, सांपके काटनेपर लटजीरा उपकार पहुंचता है। इस देशके सर्प-वैद्य सांप काटनेपर लटजीरेका समस्त पौधा मिर्चके साथ बांट कर रोगीके सब अङ्गोंमें चुपड़ देते और कच्चो पत्तोंका आध पाव रस पिलाते हैं। इस रसके पेटमें पहुंचनेसे कुछ देर बाद अत्यन्त वमन होता है। किसी किसीको दस्त भी आयेगा। यदि एकबारके सेवनसे दस्त और वमन न हो, तो कुछ देर बाद फिर आध पाव रस पिलाना चाहिये। किन्तु केवल इसका रस पिलाकर ही निश्चिन्त न हो जाये; इसके साथ जहां सांपने काटा हो, उसके ऊपर तीन चार धागे कसकर बांधे, मस्तकके ऊपर ठंढा पानी छोड़े और कपड़ेका कोड़ा बनाकर ज़ख़मपर ज़ोर ज़ोरसे फटकारे। कोई कोई चतस्थानको छुरीसे काट कर लटजीरेका प्रलेप लगाते हैं, उससे भी शायद दस्त और वमन लगता है।

मेजर मेडेन् कहते हैं, कि लटजीरेके समीप लखेरी, बर प्रभृति विषैले पतङ्ग नहीं आ सकते। आनेपर उनका इन्द्रियस्तम्भ हो जाये, इसलिये वह फिर काट न सकेंगे। डाक्टर शर्टरके मतसे विच्छू आदि कीड़ोंवाले विषका लटजीरा महौषध है। हमारे देशमें किसीको बर अथवा विच्छू काट लेनेपर लोग ज़ख़मपर लटजीरा बांटकर लगा देते हैं।

पागल गीदड़, कुत्ते आदिके काट लेनेपर जलातङ्क होनेमें लटजीरा महौषध है। पहले काटे हुए स्थानको छुरीसे अच्छी तरह चीरकर उसके ऊपर कच्चे लटजीराका प्रलेप कर दे। इसमें कुछ दाहिका शक्ति है, इसका प्रलेप देनेसे विष बहुत कुछ दूर हो जायेगा। उसके बाद पूर्णवयस्क व्यक्तिको ३।४ दिनके अन्तर प्रातःकालमें आध पाव लटजीरेके पत्तेका रस सेवन कराये। फिर सप्ताह पीछे इसके पत्ते भावना दे। इस प्रकार चिकित्सामें रखकर भोजनके साथ रोगीको यथेष्ट गायका घी खिलाना चाहिये। प्रथमावस्थासे इस प्रकार यत्न करनेपर प्रायः असाध्य जलातङ्क नहीं होने पाता।

शोथ एवं बवासीरके लिये लटजीरेका काष्ठ ही अधिक प्रशस्त है। दो ड्राम पत्रमूल पाव भर गर्म जलसे ढके हुए बरतनमें तीन घण्टे भिजो रखो यह फाण्ट आधो छटांककी मात्रासे प्रतिदिन तीन बार सेवन कराना चाहिये।

पुराने ऐकाहिक ज्वरमें पारीके दिन प्रातःकाल ही लटजीरेकी जड़ हाथपर बांध देनेसे फिर ज्वर नहीं आता। देखा जाता, कि अनेक स्थलोंमें स्नायुमण्डलके क्रियाविकारसे ही पारीका ज्वर दौड़ता है। इन सब स्थानोंमें इस प्रकारकी औषधसे फल निकलेगा।

खाज खुजली आदिमें कच्ची हल्दीके साथ साथ लटजीरेका सारा पौधा पीसकर शरीर भरमें लगानेसे रोग अच्छा हो जाता है। पुराने घावके लिये लटजीरा बहुत अच्छी दवा है। सरसोंका तेल एक पाव, लटजीरेकी जड़ एक छटांक, और गुलाबी सिन्दूर सोवा तोले लाये। पहले कण्डेको जलाकर पीतलके बरतनमें तेल चढ़ा देवे। धीमी धीमी आँच-में जब तेलका फेन मर जाय, तो उसमें सिन्दूर छोड़े; उसके बाद लटजीरेकी जड़ छीलकर डाल दे। जड़ भुन जानेसे तेलको उतार लेना चाहिये। ज़ख़मको साफ़ कर उसमें प्रति दिन यह तेल ३।४ बार लगानेसे घाव शीघ्र ही अच्छा हो जाता है।

'पञ्जाब प्लाण्ट' नामक पुस्तकमें ष्ट्यार्टने लिखा

है, कि प्रमेह रोग और बच्चोंके पेटकी पीड़ामें लटजोरा सेवन करानेसे उपकार होगा। डाक्टर उदयचन्द्रके मतानुसार बुरे ज़खमोंके लिये लटजीरेका क्षार प्रशस्त है। तिलतैल और इसका क्षार एक साथ पकाकर कानमें डालनेपर कर्णशूल और कानसे पीब बहना बन्द पड़ेगा। हरिताल भस्म करनेसे पहले संन्यासी लोग लटजीरेके क्षार जलमें उसे सप्ताह भर भिंगा रखते हैं। उससे शङ्खविषकी उग्रता नष्ट हो जाती है।

अपामार्गक्षारतैल (सं० क्ली०) अपामार्गक्षारजलैः क्षतकल्केन साधितं तिलजं तैलम्, ३-तत्। चक्रदत्त प्रोक्त कर्णरोगका तैल विशेष।

अपामार्गतैल (सं० क्ली०) ६-तत्। चक्रदत्तोक्त कृमिघ्न तैल, चक्रदत्तका कहा हुआ कीड़ा मारनेवाला तैल।

अपाय (सं० पु०) अप-इण्-अच्। १ विभागजनक क्रिया, विश्लेष, अपगमन, नाश, अनरीति। (त्रि०) २ लंगड़ा।

अपायिन् (सं० त्रि०) अपायोऽस्यास्तीति अपाय-इनि। अपाययुक्त, वियोगशील, नश्वर, विनाशी, अनित्य, अस्थिर।

अपायी, अपायिन् देखो।

अपार (सं० त्रि०) परमेव अण् पारं नास्ति पारं यस्य, नञ्-बहुव्री०। पारशून्य, पाररहित, जो दुःखसे उत्तीर्ण हुआ जाय, अतिशय मर्य्यादाशाली, अतलस्पर्श, असीम, अनन्त, सीमारहित, अगणित, असंख्य, जो उत्तीर्ण न हुआ जाय।

निघण्टुमें 'अपारे' ऐसा द्विवचनान्त पद चौबीस द्यावापृथिवी नामसे गृहीत हुआ है। यथा,—

१ स्वधे, २ पुरन्धी, ३ धिषणे, ४ रोदसी, ५ क्षोणी, ६ अम्भसी, ७ नभसी, ८ रजसी, ९ सदसी, १० सद्मनी, ११ घृतवती, १२ बहुले, १३ गभीरे, १४ गम्भीरे, १५ ओण्यौ, १६ चम्वौ, १७ पार्श्वौ, १८ मही, १९ उर्वी, २० पृथ्वी, २१ अदिती, २२ अही, २३ दूरे अन्ते, २४ अपारे।

अपारग (सं० त्रि०) न पारं गच्छति पार-गम-ड। जो पारदर्शी न हो, अक्षम, नालायक, नाक़ाबिल।

अपारणीय (सं० त्रि०) पहुंचके बाहर।

अपारा (सं० स्त्री०) नास्ति पारं शक्ति सीमा अन्तो वा यस्याः, नञ्-बहुव्री०। १ असीम शक्ति। २ दुर्गा। ३ पृथिवी।

अपारी (सं० स्त्री०) न पारी, नञ्-तत्। पुर भिन्न, पारग भिन्न, पात्री भिन्न, हस्तिपादबन्धन भिन्न।

अपार्जित (सं० त्रि०) फेंक दिया गया, निकाला हुआ।

अपार्ण (सं० क्ली०) अप-अर्द्द-क्त अनिट्। अभ्यर्ण, समीप, निकट, समीपवर्त्ती।

अपार्थ (सं० त्रि०) अप-गतोऽर्थोऽभिधेयो धनं वस्तु प्रयोजनं निवृत्तिर्वा यस्य, प्रादि-बहुव्री०। निरर्थक, व्यर्थ, अभिधेयशून्य, धनहीन, वस्तुरहित, निष्प्रयोजन, अनिवृत्त, प्रभावशून्य, नष्ट।

अपार्थकरण (सं० क्ली०) मुकद्दमेमें मिथ्या हेतुवाद करना, मुकद्दमेमें झूठा बहाना देखाना।

अपाल (सं० त्रि०) पालयति रक्षति पाल चुरा० णिच्-अच् पालो रक्षको नास्ति पालो यस्य, नञ्-बहुव्री०। पालकरहित, रक्षकशून्य, जिसका रक्षक न हो, जिसे कोई पालनेवाला न रहे।

अपाला (सं० स्त्री०) ब्रह्मवादिनी अत्रिकन्या।

अपालम्ब (सं० पु०) अप अपकृष्टेन हीनेन अवलम्ब्यते अप-आ-लम्ब कर्मणि घञ्। शकटका पश्चाद्भाग, गाड़ीका पिछला हिस्सा।

अपालि (सं० त्रि०) मधुमक्षिकारहित, जहां मधुमक्खी न हो।

अपाव (हिं० पु०) अन्याय, ज़ुल्म, उपद्रव।

अपावन (सं० त्रि०) अशुचि, अपवित्र, अशुद्ध, मलिन।

अपावर्तन (सं० क्ली०) अप-आ-वृत-ल्युट्। १ अपाकरण, निराकरण, निवारण, अस्वीकार, निषेध। २ ऊंची नीची ज़मीनमें गिरकर लोटना, लुढकना।

अपावृत (सं० त्रि०) अप अपक्रान्त आवृतात् आवरणात् निरा-तत्। यद्वा अप निषेधे आवृतम्। १ अनावृत, अनाच्छादित, उद्घाटित। २ स्वतन्त्र, स्वाधीन। ३ आवृत, पिहित, आवरणयुक्त।

अपावृति (सं० स्त्री०) अप-आ-वृ-क्तिन्। आवरण निवारण, पर्दा हटाना, खोलना।

अपावृत्त (सं० त्रि०) अप-आ-वृत-क्त। अन्तरित, परावृत्त, निवृत्त, लुण्ठित, लोटनेवाला, जो गिर गया हो।

अपावृत्ति (सं० स्त्री०) अप-आ-वृत्-क्तिन्। उद्वर्तन, निवृत्ति, लौट आना, लोटना, गिरना।

अपाश्रय (सं० पु०) अप-आ-श्रि-अच्। १ चन्द्रातपादि, चांदनी, शामियाना, बीच आंगनमेंका मण्डप वा छावनी। (त्रि०) २ आश्रयहीन।

अपाश्रित (सं० त्रि०) विरक्त, विरागी, त्यागी।

अपाष्ठ (सं० त्रि०) अप-आ-स्था-क अन्वष्ठा यत्वं। अपास्थित, निरस्त, पलायित। (वै० पु०) २ तीरका खार या कांटा। (क्ली०) ३ सोम नामक पौधेका रस निचोड़नेके बादकी सीठी।

अपाष्ठु (सं० पु०) अप तिषेधे आतिष्ठति गच्छति अप-आ-स्था-उण् टु अन्वष्ठां यत्वं। १ काल। २ बालक। जो एक जगह नहीं रहता, उसे अपाष्ठु कहेंगे।

अपासङ्ग (सं० पु०) अपा सजन्ति तिष्ठन्ति वाणा-न्यस्मिन् अप-आ-सञ्ज अधिकरणे घञ्। तूण, इषुधी, अपासङ्ग, तरकश, निषङ्ग, युद्धके समय वाण रखनेका पात्रविशेष।

अपासन (सं० क्ली०) अप अस्यते अप-अस-ल्युट्। अपसारण, अपक्षेपण, दूरीकरण, वध, फेंक देना, छोड़ देना, मार डालना।

अपासि (सं० त्रि०) जिसके पास तलवार न हो या खराब तलवार रहे।

अपासित (सं० त्रि०) अप-अस-णिच्-क्त। अप-सारित, छेदित, जो निकाल दिया गया हो, निकाला हुआ।

अपासृत (सं० त्रि०) अप-आ-सृ-क्त। दूरीभूत, चरित, अपगत, पलायित, जो चला गया हो, भगेड़ू।

अपास्त (सं० त्रि०) अप-अस-क्त। क्षिप्त, निरस्त, दूरीकृत, अपसारित, खण्डित, खदेड़ा हुआ, जो त्याग या निकाल दिया गया हो।

अपास्य (सं० अव्य०) अप-अस-ल्यप्। फेंककर, छोड़के।

अपाहरण (सं० क्ली०) अप-आ-हृ-ल्युट्। आकर्षण, अपनोदन, खिंचाव, खण्डन।

अपाहिज (हिं० वि०) अङ्गहीन, आलसी, खंज।

अपि (सं० त्रि०) न पिवति अर्थात् नाशयति पा-उण् इण् आकारलोपश्च। १ भी। २ ही। ३ निश्चय, ज़रूर। यह अव्यय प्रश्न, शङ्का, गर्हा, समुच्चय, युक्त पदार्थ, अल्प पदार्थ, सन्देह, कामाचारक्रिया, सम्भावना, निश्चय, आदि कई विषय बताता है,—

'गर्हा समुच्चयप्रश्नशङ्का सम्भावनास्वपि।' (अमर)

'अपि सम्भावना प्रश्नशङ्का गर्हा समुच्चये।
तथायुक्तपदार्थेषु कामाचारक्रियासु च।' (विश्व)

गण-रत्नने अपिके और तीन अर्थ निकाले हैं, यथा— आशीर्वाद, मरण, भूषण।

अपिकक्ष (सं० अव्य०) कक्षे विभक्त्यर्थे अव्ययी०। १ कक्षप्रदेशमें, बाहुमूलमें। २ लतामें, कच्छमें। ३ सूखे वनमें, तृणमें।

अपिकक्ष्य (सं० त्रि०) अपिकक्षं सन्धानं यत्। कक्षप्रदेशद्वारा सन्धानयोग्य। यह शब्द प्रवर्ग-विद्या-नामक रहस्य विशेषका विशेषण है।

अपिकर्ण (सं० क्ली०) अपिगतं कर्णम्, अतिक्रा-न्तत्। १ समीप, निकट। (त्रि०) २ समीपवर्ती, निकटवर्ती।

अपिगत (सं० त्रि०) भीतर गया, निकट आया, पहुंचा, शामिल हुआ।

अपिगीर्ण (सं० त्रि०) अपि गीर्य्यते स्म अपि-गॄ कर्मणि क्त ऋ-इर दीर्घत्वं तस्य णत्वञ्च। कथित, वर्णित, प्रशंसित, स्तुत, कहा हुआ, वर्णन किया गया, जिसकी तारीफ हुई हो।

अपिगु (सं० पु०) अपि-गम-डु। ज्ञान, समझ।

अपिगृह्य (सं० त्रि०) अपिगृह्यते गृहवेदे क्यप्। प्रतिग्रहके योग्य, जो ग्रहण किया जाय।

अपिग्राह्य (सं० त्रि०) अपि गृह्यते अपिग्रह लोके कर्मणि ण्यत्। प्रतिग्रहके योग्य, जो पतिग्रह किया जाय।

अपिच (सं॰ त्रि॰) और भी, दूसरे, वरञ्च, पुनश्च, बल्कि, ताहम।

अपिच्छिल (सं॰ त्रि॰) न पिच्छिलम्, नञ्-तत्। गाढ़, अपिच्छल, जो पिछलहर न हो।

अपिज (सं॰ पु॰) अपि जलक्रीड़ाविषये जायते अपि-जन-ड, अलुक्स॰। १ जलक्रीड़ाजात। २ ज्येष्ठ मास, जेठका महीना। जेष्ठ मासमें लोग जलक्रीड़ा करते हैं, इसीसे इसका यह नाम पड़ा।

अपिण्ड (सं॰ त्रि॰) पिण्डरहित, पिण्डशून्य।

अपित् (सं॰ स्त्री॰) आपो जलानि इतो नता यस्याः, बहुव्री॰। अप-इण-क्विप् तुगागमः। वेदे न जश्। १ जलरहिता नदी, विना जलकी नदी, सूखी नदी। २ व्याकरणसम्मत प्रत्ययविशेष।

अपितु (सं॰ त्रि॰) अपि तु-इन्द्व। किन्तु, वरञ्च, लेकिन, बल्कि।

अपितृ (सं॰ पु॰) पितृभिन्न, जो पिता न हो।

अपितृक (सं॰ त्रि॰) १ जो बाप दादेका न हो, जो मौरूसी न रहे। २ विना बापका।

अपित्र्य (सं॰ त्रि॰) जो बाप दादेका न हो, गैरमौरूसी।

अपित्व (सं॰ क्ली॰) भागिनोऽपि त्वरन्ते त्वरां कुर्वन्ति यस्मै अपि-त्वर-ड। भाग, धनविभाग।

अपित्विन् (सं॰ त्रि॰) अपित्वं धनमस्यास्तीति अपित्व-इनि। भागविशिष्ट, भागयुक्त, हिस्सेदार।

अपिधान (सं॰ क्ली॰) अपि-धा-ल्युट्। आच्छादन, आवरण, ढांक। (त्रि॰) २ ढकनेका, जिससे ढाका जाय।

अपिधि (सं॰ पु॰) अपिधीयते तृप्तिपर्यन्तं दीयते अपि-धा-कि। तृप्तिपर्यन्त दत्त, दानकी जिस वस्तुके पानेसे तृप्ति हो, जब तक तृप्ति न हो तबतक देना।

अपिनद्ध (सं॰ त्रि॰) अपि-नह-क्त। १ परिहित, जो पहना जा चुका हो। २ कपड़ेसे ढका हुआ, बंधा हुआ।

अपिप्राण (सं॰ त्रि॰) अपि-प्र-अन-अच्। सर्व्वदा चेष्टमान, सदा उत्साहित।

अपिबद्ध (सं॰ त्रि॰) बंधा हुआ, जकड़ा गया।

अपिभाग (सं॰ त्रि॰) जिसका भाग हो, हिस्सेदार।

अपिव्रत (सं॰ त्रि॰) अपि संसृष्टं व्रतं कर्म्म भोजनं नियमो वा येन बहुव्री॰। ज्ञातिमें अविभक्त, जिसके द्वारा ज्ञातिवाला परस्पर कार्य, भोजन वा नियम चलाये, संसृष्ट, गोत्रज।

अपिशर्वर (सं॰ अव्य॰) शर्वर्या रात्रेः अपि प्रादुर्भावः प्रादुर्भावे अव्ययी॰ बाहुलकात् अच्-सं। शर्वरीय मुख, प्रदोष, शाम या सुबहके वक्त।

अपिशल (सं॰ पु॰) अपि-निश्चितं शलते धर्मपथेनैव चलति अपि-शल-पचाद्यच्। १ मुनिविशेष, अपिशलिके पुत्र।

आपिशलि एक प्राचीन और प्रसिद्ध वैयाकरण थे। वोपदेवने कविकल्पद्रुम रचना करनेसे पहले लिखा है,

'इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः।
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादिशाब्दिकाः॥'

'इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, यह आठ शाब्दिक जययुक्त हों। क्यों कि हम उनका मत अवलम्बन करके इस ग्रन्थकी रचना करते हैं।' यह आपिशलि पाणिनिसे भी प्राचीन और प्रामाणिक हैं, इसीसे पाणिनिने अष्टाध्यायीमें एक सूत्र किया है—

मा सुप्यापिशलेः। पा ६।१।९२।

अपिहत (सं॰ त्रि॰) अपि-धा-क्त। आच्छादित, आवृत, ढका हुवा, जो किसीकी आड़में हो।

अपीच (हिं॰) अपीच्य देखो।

अपीच्य (सं॰ त्रि॰) अपि च्यवते सुन्दरत्वं प्राप्नोति, अपि-च्यु-ड उपसर्ग दीर्घश्च। "नामलष्टरपीच्यम्।" ऋक् १।८।३।५। १ अति सुन्दर, निहायत खूबसूरत, बहुत सुहावना। २ निर्गत, अन्तर्हित, गुह्य, गुप्त, पोशीदा, निहां, छिपा हुवा।

अपीजू (सं॰ त्रि॰) अपि-जू गतौ क्विप्, ऋधातो रुपसर्गस्य च दीर्घत्वम्। प्रेरक, तरगीब देनेवाला, जो उसकाये या उभाड़े।

अपीड़न (सं॰ क्ली॰) दुःखका न देना, नम्रता, कृपा, तकलीफ न पहुंचानेकी हालत, रहम।

अपीड़यत् (सं त्रि॰) दुःख या तकलीफ न देते हुवा।

अपीड़ा (सं० स्त्री०) अपीड़न देखो।

अपीत (सं० त्रि०) अप-इण-क्त। १ विलयप्राप्त, विलीन, पहुंचा हुवा, जो दाखिल हो चुका। २ अप्रमत्त, जो नशेमें न हो। (क्ली०) भावे क्त। ३ विलय, अपगमन, पहुंच, दाखिला। (पु०) न पीतः, नञ्-तत्। ४ पीतवर्ण भिन्न, जो रङ्ग पीला न हो।

अपीता (सं० स्त्री०) न पीता, नञ्-तत्। हरिद्रा भिन्न, जो चीज़ हलदी न हो। 'पीता हरिद्रा' (हेम)

अपीति (सं० स्त्री०) अपि-इण-क्तिन्। 'पीतिः पाने तुरङ्गे च।' (विश्व) १ विलय, अपगमन, प्रलय, पहुंच, दाखिला। अपि इयते गम्यते यत्र। २ संग्राम, लड़ाई, मुहीम। न पीतिः, नञ्-तत्। ३ पान भिन्न, जो चीज़ पीनेमें न आये। ४ अश्व भिन्न, जो चीज़ घोड़ा न हो।

अपीत्वा (सं० अव्य०) विना पिये हुये, नशा न पीकर।

अपीनस (सं० पु०) अपि निश्चितं ईयते गम्यते (क्षीयते) नासिका येन, बहुव्री०। अपि-ई दिवा० क्विप्। नासारोग विशेष, पीनसकी बीमारी। इसमें नाक सड़कर गिर जाये और उससे बदबू निकला करेगी। वैद्यकशास्त्रमें इसका लक्षण लिखा है,—

"आनाह्यते यस्य विधूप्यते च प्रपच्यते क्लिद्यति चापिनाशः।
नो वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवसेत् तमपीनसेन॥
तञ्चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात् प्रतिश्यायसमानलिङ्गम्॥"
(सुश्रुत चि० २२ अ०)

"यो मस्तुलुङ्गाद्‌घनपीतपक्वः कफः स्रवेद्‌गाढ़मपीनसः सः।" (चरक चि०)

अपीयत (सं० त्रि०) निकट आगमन लगाते हुवा, जो नज़दीक आ रहा हो।

अपील (अं० स्त्री०) १ प्रार्थना, मुराफा। २ निम्न अदालतके विचार विरुद्ध निवेदन, जो दावा छोटी अदालतके खिलाफ़ लगाया जाये।

अपीलाण्ट (अं० पु०-स्त्री०) अपील करनेवाला, जो मुराफा लगाये। (appellant)

अपीली (हिं० वि०) प्रार्थना सम्बन्धीय, अपीलसे ताल्लुक रखनेवाला।

अपीवृत (सं० त्रि०) आच्छादित, ढका हुवा।

अपीव्य (?) अतिसुन्दर, निहायत खूबसूरत। इस विषयमें सन्देह है, कि यह शब्द वास्तवमें अपीच्य होगा या अपीव्य। भागवतमें पाठान्तर मिलता है,—"अपीव्यदर्शनं शश्वत् सर्वलोकनमस्कृतम्।"

अपुंस् (सं० पु०) न पुमान्, नञ्-तत्। नपुंसक, क्लीव, नामर्द, हिजड़ा। पुरुष, स्त्री और नपुंसककी उत्पत्तिका विषय इसतरह लिखा गया है,—

"पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समेऽपुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः॥" (मनु ३।४९)

सन्तानोत्पादनके समय पुरुषका शुक्र अधिक रहनेसे पुत्र, स्त्रीका वीर्य ज्यादा पड़नेसे कन्या और स्त्री-पुरुष दोनोका वीर्य समान जानेसे क्लीव या यमज सन्तान उत्पन्न होगा। उभयका वीर्य क्षीण या अल्प लगनेसे गर्भ नहीं ठहरता।

अपुंस्का (सं० स्त्री०) नास्ति पुमान् यस्याः; नञ्-बहुव्री०। कप्-टाप। "नापुंस्कासीति मेनतिः।" (भट्टि७।५) पतिरहित वनिता, पुरुषहीन स्त्री, जिस औरतके मर्द न रहे।

अपुंस्त्व (सं० क्ली०) क्लीवत्व, पुरुषत्वहीनता, नामर्दी, हिजड़ापन।

अपुच्छ (सं० त्रि०) नास्ति पुच्छं लाङ्गूलं यस्य। पुच्छहीन, लाङ्गूलशून्य, बेदुम, जिसके पूंछ न रहे।

अपुच्छा (सं० स्त्री०) नास्ति पुच्छः अग्रभागो यस्याः। शिंशपा वृक्ष, शीशम, सरसयी। (Dalbergia Sissoo)

अपुच्छाङ्कुर (सं० पु०) भेक प्रभृति जीव, मेंढक वगैरह जानवर।

अपुण्य (सं० क्ली०) पुनाति शोधयति, पूञ् उण् यणुक् ह्रस्वश्च; न पुण्यं, विरोधे नञ्-तत्। १ पाप, इज़ाब। (त्रि०) नास्ति पुण्यं यस्मिन् यस्य वा नञ्-बहुव्री०। २ पुण्यरहित, पुण्यहीन, सबाबसे खाली, मैला, नापाक, बुरा, खराब।

अपुण्यकृत् (सं० त्रि०) अपुण्यं पापं करोति, अपुण्य-कृ-क्विप् तुगागमः। पापकारी, इज़ाब उठानेवाला, जो अधर्म करता हो।

अपुत्र, अपुत्रक (सं० पु०) नास्ति पुत्रो यस्य नञ्-

बहुव्री०। पुत्रहीन, जिसके बेटा न रहे। मनु-संहितामें लिखा है,—

"अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्।
यदपत्यं भवेदस्यां तन्मम स्यात् स्वधाकरम्॥" (मनु ९।१२७)

पुत्रहीन व्यक्तिको इस विधानसे कन्या पुत्रिका बनाना चाहिये,—उससे जो सन्तान उत्पन्न हो, वह उसका श्राद्ध करेगा।

अपुत्रता (सं० स्त्री०) पुत्रराहित्य, लड़का न रहनेकी हालत।

अपुत्रा, अपुत्रिका (सं० स्त्री०) पुत्ररहित स्त्री, जिस औरतके लड़का न रहे। कात्यायन कह गये हैं,—

"अपुत्रा शयनं भर्तुः पालयन्ती गुरौ स्थिता।"

अपुत्रा नारीको भर्ताके शयनका प्रतिपालन करना और श्वशुरके घर रहना चाहिये।

अपुनपो (हिं० पु०) आत्मीयता, रिश्ता, मेलजोल।

अपुनप्राप्य (सं० त्रि०) फिर मिलनेके अयोग्य, ग़ैरमुमकिनुलवसूल।

अपुनर् (सं० अव्य०) न पुनः, नञ्-तत्। पुनर्वार भिन्न, सकृत्, दो बारा नहीं, एक ही बार।

अपुनरन्वय (सं० त्रि०) प्रत्यागमन न लगानेवाला, वापस न आते हुवा, मृत, मुर्दा।

अपुनरावर्तन (सं० क्ली०) अपुनरावृत्ति देखो।

अपुनरावृत्ति (सं० स्त्री०) न पुनः आवृत्तिः भावे आगमनं यस्मात्, ५-बहुव्री०। १ निर्वाणमुक्ति। (त्रि०) २ पुनर्गमनशून्य। (अव्य०) ३ पुनरावृत्तिके अभावसे।

अपुनर्दीयमान (सं० त्रि०) पुनर्वार न दिया जानेवाला, जो फिर न बख़्शा जाये।

अपुनर्भव (सं० पु०) न पुनर्भवति उत्पद्यते यस्मात् अपुनर्-भू अपादाने अप्। १ मोक्ष। न पुनर्भवति येन, करणे अप्; नञ्-तत्। २ पुनर्भवके अभावका हेतु, तत्त्वज्ञान। (त्रि०) नास्ति पुनर्भवः पुनरुत्पत्तिरस्य, नञ्-बहुव्री०। ३ पुनर्जन्मरहित, तत्त्वज्ञानयुक्त, मुक्त।

"अत्रस्थास्त्रिदिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।" (स्कन्दपुराण)

गङ्गातीरसे दो कोसके मध्य जो रहता, वह स्वर्ग जाता है। इसीतरह उस स्थानमें जो मर सके, उसका फिर जन्म न होगा। (क्ली०) ४ रामचरित-वर्णित गौडाधिप रामपाल प्रतिष्ठित तद्राजधानी निकटस्थ तीर्थभेद।

अपुनर्भाव (सं० पु०) पुनर्वार उत्पन्न न होनेवाला पुरुष, जो शख़्स फिर न पैदा हो।

अपुनीत (सं० त्रि०) १ अपवित्र, नापाक, जो शुद्ध न हो। २ दोषयुक्त, ऐबदार।

अपुरातन (सं० त्रि०) अपुराण देखो।

अपुराण (सं० त्रि०) न पुराणं पुरातनम्, नञ्-तत्। पुरातन भिन्न, नूतन, जो पुराना न हो, नया।

अपुरुष (सं० त्रि०) ज़नाना, नामर्दाना।

अपुरुषार्थ (सं० पु०) १ जो विधान याजकके लाभार्थ न हो। २ आत्माका अप्रधान अभिप्रेत, रूहका मामूली मक़सद।

अपुरोदन्त (सं० त्रि०) अदन्त, बोड़ा, पोपला (Edlentate)। पिपीलिका आदिके मुख सम्मुख भी पार्श्ववर्ती छेदक दन्त नहीं रहते।

अपुरोऽनुवाक्यक (सं० त्रि०) पुरोऽनुवाक्यविहीन, जिसमें पुरोनुवाक्य न रहे।

अपुरोरुक् (सं० त्रि०) पुरोरुक्शून्य, जिसमें पुरोरुक् न मिले।

अपुष्कल (सं० त्रि०) १ निम्न, नीचा। २ अभद्र, कमीना, छोटा।

अपुष्ट (सं० त्रि०) पुष कर्मणि क्त, न पुष्टम्, नञ्-तत्। १ अकृतपोषण, परवरिश न पाये हुवा, दुर्बल, दुबला। २ अपरिपक्व, कच्चा, जो कड़ा न पड़ा हो।

अपुष्टता (सं० स्त्री०) अपुष्टस्य भावः, भावार्थे तल्-टाप्। १ अपुष्ट होनेका धर्म, मज़बूत न रहनेकी हालत। २ काव्यका अर्थदोषविशेष। यथा,—

"अपुष्टदुष्क्रमग्राम्य व्याहताश्लीलकष्टताः।" (साहित्यदर्पण)

उपरोक्त कारिकामें अपुष्ट शब्दके बाद 'ता' न रहते भी अश्लीलकष्टताकी 'ता'के साथ ही उसका अन्वय लगेगा। प्रकृतिके अनुपकारीका नाम अपुष्टता होता है,—

"विलोक्य वितते व्योम्नि विधुं मुञ्च रुषं प्रिये।" (साहित्यदर्पण)

हे प्रेयसि ! विस्तृत आकाशमें चन्द्रको देख क्रोध छोड़ दीजिये। यहां विस्तृत शब्द प्रियाके मानभङ्गको कोई उपकार नहीं पहुंचाता। इसका अर्थ व्यर्थ जाता है।

अपुष्टत्व (सं० क्ली०) अपुष्टस्य भावः। १ अपुष्ट पड़नेका धर्म। १ काव्यका अर्थदोषविशेष। प्रधानके अनुपकारीको अपुष्टत्व दोष कहते हैं,—

"अपुष्टत्वं मुख्यानुपकारीत्वम्।" (साहित्यदर्पण)

अपुष्प (सं० पु०) न सन्ति पुष्पाण्यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ वनस्पति, पुष्पको छोड़ जिस वृक्षमें फल लगे। जैसे उडुम्बर आदि यानी गूलर वगैरह। जिस वृक्षमें विना फूल फल लगता, उसे वनस्पति कहते हैं,—

"अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः।" (मनु १।४७)

पुष्पका अभाव, फूलका न खिलना। (अव्य०) पुष्पाभावसे, फूल न खिलनेपर।

"अफलाश्च अपुष्पावाग् भवति।" (निरुक्त)

अपुष्पफल, अपुष्पफलद देखो।

अपुष्पफलद (सं० पु०) अपुष्पेण पुष्पाभावेनापि फलं ददाति, अपुष्प-फल-दा-क। १ पुष्प व्यतिरेक फलप्रद वृक्ष, बेफूल जो दरख़्त फल पैदा करे। २ पनस वृक्ष, कटहरका पेड़। (त्रि०) ३ हेतु व्यतिरेक फलदानकर्ता, बे सबब नतीजा निकालनेवाला, जो व्युत्पत्तिसे नहीं, किन्तु लक्षणासे सिद्ध हो। ४ विना पुष्प फलोत्पादक, बेफूल जिसमें फल लगे। ५ पुष्पफलरहित, जिसमें फलफूल न रहे।

अपुस् (वै० क्ली०) आकृति, शक्ल।

अपूजक (सं० त्रि०) अनादरकर्ता, बेअदब, जो पूजा या परस्तिश न पहुंचाये।

अपूजा (सं० स्त्री०) पूजाया अभावः, अभावे नञ्-तत्। पूजाका अभाव, अनादर, असम्मान, कुत्सित पूजा, अविधानकी अर्चना, बेअदबी।

अपूजित (सं० त्रि०) न पूजितम्, नञ्-तत्। पूजित भिन्न, अनादृत, अवज्ञात, जिसकी परस्तिश न हुयी हो।

अपूज्य (सं० त्रि०) पूजा पहुंचानेके अयोग्य, जो परस्तिश करने क़ाबिल न हो।

अपूठना (हिं० क्रि०) १ मिटाना, तोड़ डालना।

अपूठा (हिं० वि०) १ अपुष्ट, कच्चा, नावाक़िफ़, जा जानकार न हो। २ अस्फुट, बंधा हुवा, जो फला या खिला न हो।

अपूत (सं० त्रि०) न पूतम्, नञ्-तत्; पू-क्त वा इडभावः। १ पवित्रभिन्न, अशुचि। २ संस्कारहीन, व्रात्य। व्रात्य देखो। (हिं० वि०) ३ पुत्ररहित, जिसके औलाद न रहे। (पु०) ४ अयोग्य पुत्र, जो लड़का भला न हो।

अपूप (सं० पु०) पूयते शोध्यते, पू बाहुलकात् उण् प पूपः; न पूपः, नञ्-तत्। विभाषा हविरपूपादिभ्यः। पा ५।१।४। १ तण्डुल वा गोधूमादि चूर्ण निर्मित पिष्टक, चावल या गेहूं वगैरहके आटेकी लिट्टी। पूपोऽपूपः पिष्टकश्च। (अमर) पुरोडास, हविर्विशेष। यथा,—

"गोधूम ऊचपिष्टं गुड़ेन युक्तम् जलेन संमृदितम्।
तद्वेल्यौ वर्तुलनिभा घृते विपक्वा भवन्ति चापूपाः॥
वल्या हृद्या रुचिदा गुरवो वृष्याश्च तुष्टिदाः प्रोक्ताः।
पित्तानिलशमनकरा मधुनाः प्रोक्ताः—— ॥" (वैद्यक निघण्टु)

२ गोधूम, गेहूं।

अपूपमय (सं० त्रि०) अपूपयुक्त, रोटीसे भरा हुवा।

अपूपवत् (सं० त्रि०) अपूप सदृश, रोटी-जैसा।

अपूपादि (सं० पु०) अपूप इति शब्दः आदिर्यस्य गणस्य, ६-बहुव्री०। पाणिन्युक्त छ और यत् प्रत्ययका प्रकृतिभूत शब्दसमूह, अपूपादि गण। यथा—

अपूप, तण्डुल, अभ्यूष, अभ्योष, अवोष, अभ्येष, पृथुक, ओदन, सूप, पूप, किण्व, प्रदीप, मुसल, कटक, कर्णवेष्टक, इर्गल, अर्गल, यूप, स्थूणा, दीप, अश्व, पत्र, कट, अयःस्थूण,।

अपूपापिहित (सं० त्रि०) अपूपसे आवृत, रोटीसे ढंका हुवा।

अपूपाष्टका (सं० स्त्री०) अपूपस्य तद्दानस्य अष्टका ६-तत्। १ आग्रहायणी पूर्णिमासे पर कृष्णाष्टमी, जो अंधेरे पक्षकी अष्टमी अगहनकी पूर्णिमाके बाद आये। इस अष्टमीको अपूपसे श्राद्ध करना चाहिये। २ अष्टकामें विहित श्राद्ध।

अपूपीय (सं० त्रि०) अपूपसम्बन्धीय, रोटीसे ताल्लुक़ रखनेवाला।

अपूप्य (सं० क्ली०) अपूपका योग्य आटा, मैदा। २ खुराक।

अपूर (हिं० वि०) आपूर्ण, भरा हुवा, लबरेज़।

अपूरणी (सं० स्त्री०) न पूर्यते मूले त्रिफलकत्वात्, पूर-कर्मणि ल्युट् ङीप्; नञ्-तत्। स्त्रियाः पुंवदित्यादि अपूरणी प्रियादिषु। पा ६।३।३७। १ शाल्मली वृक्ष, सेमर, सम्बुल। २ कार्पास वृक्ष, कपासका पेड़। ३ पूरणी अर्थक प्रत्ययभिन्न।

अपूरना (हिं० क्रि०) १ आपूर्णन करना, भरना। २ हवा भरना, नाद निकालना।

अपूरब (हिं०) अपूर्व देखो।

अपूरा, अपूर देखो।

अपूरी, अपूर देखो।

अपूर्ण (सं० त्रि०) पूर्ण-णिच्-क्त; न पूर्णम्, नञ्-तत्। १ असम्पूर्ण, जो पूरा न हो, नाकामिल, कम। (क्ली०) २ जो अङ्क पूरा न पड़े, अधूरी अदद।

अपूर्णकाल (सं० त्रि०) न पूर्णः कालो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ उचित कालके मध्य सम्पूर्ण न हुवा, जो मुनासिब वक्त़में पूरे न पड़ा हो, पेशअज़वक्त़, अगेती, नारसीदा, अधूरा, बेमौका। (पु०) कर्मधा०। २ जो काल पूर्ण न हो, अधूरा वक्त़।

अपूर्णकालज (सं० त्रि०) उचित समयसे पूर्व उत्पन्न, जो मुनासिब वक्त़से पेश्तर पैदा हुवा हो, कच्चा।

अपूर्णता (सं० स्त्री०) पूर्णताका अभाव, अधुरापन, नातमामी।

अपूर्णभूत (सं० पु०) असमाप्त भूतकाल, माज़ी नातमाम, जो गुज़रा हुवा ज़माना पूरे न पड़ा हो।

अपूर्यमाण (सं० त्रि०) जो पूर्ण न किया गया हो, नातमाम, अधूरा।

अपूर्व (सं० त्रि०) सुन्दरतया कुत्सिततया वा नास्ति पूर्वं पूर्वभूतं यस्य यस्माद्वा, नञ्-बहुव्री०। १ अनोखा, गैरमामूल। २ अनुपम, आश्चर्य, विचित्र, नामुशाबिह, ताअज्जुबअङ्गेज़, निराला। ३ अभूतपूर्व, नूतन, जो पहले न रहा हो, नया। ४ अज्ञात, जो पहले न मिला हो, अजनबी। ५ हेतु-शून्य, लासबब। (पु०) नास्ति पूर्वं पूर्ववर्ती यस्य। ६ परब्रह्म, परमेश्वर। (क्ली०) पूर्वं न दृष्टम्। स्वर्गजनक शुभादृष्ट, नरकजनक दुरदृष्ट, भली या बुरी क़िस्मत।

"शाब्दबोधे पूर्वं नोपस्थितमित्यत एवापूर्वम्।" (हरिदास)

शाब्दबोधके पहले न रहनेसे अदृष्टका नाम अपूर्व पड़ा है। धर्मकार्य या पापकार्य करनेसे ही उसका फल स्वर्ग या नरक नहीं निकलता। इस स्थलमें आर्य अपने-अपने कर्मके लिये फलका द्वारस्वरूप अपूर्व (अदृष्ट) मानेंगे। उनके मतमें, अपने-अपने अपूर्वसे यथाकाल फल मिला करता है। स्मृतिवेत्ता कलिकापूर्व और परमापूर्व—दो प्रकारका अपूर्व बतायेंगे। उसकी जगह सोलह श्राद्धमें सोलह कलिकापूर्व होनेपर उसीसे एक परमापूर्व बनता और वही परमापूर्व प्रेतत्वके नाशका कारण ठहरता है। मीमांसक तीन अपूर्व मानेंगे,—१ प्रधानापूर्व (परमापूर्व), २ अङ्गापूर्व और ३ कलिकापूर्व।

दर्शपौर्णमास यागमें उत्पन्न हुवा प्रधानापूर्व या परमापूर्व, प्रयाजादि अङ्गका अङ्गापूर्व और उसके भीतरवाले क्रियासमूहका अपूर्व कलिकापूर्व कहाता है,—जैसे व्रीहि(धान्य)प्रोक्षणादि संस्कार। कलिकापूर्व, परमापूर्वको निकाल मिट जायेगा। अङ्गापूर्व, परमापूर्वका फलविशेष मात्र देखाता है। दैवात् यदि अङ्गकर्म न बने, और प्रधान कर्म हो जाये, तो प्रधानापूर्व अवश्य ही निकलेगा। किन्तु विशेष इतना ही होता, कि फलगत कुछ अल्पता आती है। प्रधान कार्य न बननेसे उसे अङ्गके साथ करे, किन्तु अङ्गके अनुरोधपर प्रधान कार्य कभी न चलाये।

अपूर्वकर्मन् (सं० क्ली०) धार्मिक कर्म या याग विशेष, जिस कर्मका भावी फल पहले न देख पड़े।

अपूर्वता (सं० स्त्री०) अपूर्वस्य भावः, भावार्थे तल्-टाप्। प्रमाणान्तरालभ्यत्व, प्रमाणान्तरमें न मिलनेवालेका धर्मविशेष, तात्पर्यावधारणका हेतुविशेष, विलक्षणता, निरालापन, बेनज़ीरी।

अपूर्वत्व (सं० क्ली०) अपूर्वस्य भावः, भावार्थे त्व। अपूर्वता, पूर्वके अप्राप्तका धर्म, अनोखापन, जोड़ न मिलनेकी हालत। "न प्रकृतावपूर्वत्वात्।" (कात्यायन)

अपूर्वपति (सं० स्त्री०) न पूर्वं पतिरस्याः, नञ्-बहुव्री०। १ कुमारी, अविवाहिता बालिका, जिस लड़कीकी शादी न हुयी हो। अपूर्वः आश्चर्यः पतिर्यस्याः। २ सुन्दर पतिवाली स्त्री, जिस औरतका खाविन्द खूबसूरत रहे।

अपूर्वपतिका, अपूर्वपति देखो।

अपूर्वरूप (सं० पु०) काव्यालङ्कार विशेष। इसमें पूर्वावस्थाका मिलना असम्भव बताते हैं। जैसे—

बहुरि मिलै धन जो गयो बहुरि मिलै भुवि राज।
पर यौवन फिर नहिं मिलै मानिनि मान अकाज॥

अपूर्ववत् (सं० अव्य०) विलक्षणतासे, अनोखेपनमें, अजीब तौरपर।

अपूर्ववाद (सं० पु०) अपूर्वो विषयो वादो वाक्यम्। १ अपूर्वविषयक वाक्य, तत्त्वज्ञानेच्छुकी कथा, अनोखी बात। २ गङ्गेशोपाध्याय विरचित शब्दचिन्तामणिका ग्रन्थविशेष।

अपूर्वविधि (सं० पु०) विधीयतेऽनेन, वि-धा करणे कि; अपूर्वे प्रमाणान्तराप्राप्ते अपूर्वस्य प्रमाणान्तराप्राप्तस्य वा विधिः विधायकं वाक्यम्, ७ वा ६-तत्। अन्य किसी प्रमाणसे न पाये जानेवालेका प्रापक वाक्य। विधि देखो। जैसे—"स्वर्गकामो यजेत।" अर्थात् स्वर्ग-जानेवालेको यज्ञ करना चाहिये। किन्तु यज्ञ करनेसे स्वर्ग जानेकी बात सिवा इस वाक्यके दूसरी किसी जगह प्रमाणित नहीं पड़ती।

"विनियोगविधिरप्यपूर्वविधिनियमविधि-परिसंख्याविधिभेदास्त्रिधा।"
(गदाधर)

अपूर्वीय (सं० त्रि०) दूर अथवा अप्रत्यक्ष कर्मफल सम्बन्धीय, जो दूरदराज़ या पहले न देखे गये कामके नतीजेका हवाला रखता हो।

अपूर्वेण (सं० अव्य०) पहले कभी नहीं।

अपूर्व्य (सं० त्रि०) १ प्रथम, औव्वल, जिससे पहले दूसरा न रहे। २ विलक्षण, अनोखा, निराला, अजीब।

अपृक्त (सं० त्रि०) पृच्-क्त, नञ्-तत्। १ असम्बद्ध, असंयुक्त, जो मिला न हो। (पु०) २ पाणिनिके मतानुसार एक अक्षरका शब्द अथवा विभक्ति।

अपृणत् (वै० त्रि०) १ पूरा न करते हुवा, जो दानसे सम्मान न देता हो। २ कृपण, कञ्जूस।

अपृथक् (सं० अव्य०) सहयोगसे, सहित, साथ, मिलाकर, अलग-अलग नहीं। 'किञ्चापृथग्दद्यात्।' (शूलपाणि)

अपृथग्धर्मशील (सं० त्रि०) समान धर्मविशिष्ट, जिसका धर्म अलग न रहे।

अपृथग्धी (सं० त्रि०) सम्पूर्ण द्रव्यमें परमेश्वरको देखते हुवा, जो सब चीज़में ईश्वरका खयाल रखता हो।

अपृष्ट (सं० त्रि०) पूछा न गया, जिससे बात न हुयी हो।

अपेक (सं० पु०) दुरालभा, लटजीरा।

अपेक्षण (सं० क्ली०) अपेक्षा देखो।

अपेक्षणीय (सं० त्रि०) अप-ईक्ष कर्मणि अनीयर्। १ अपेक्षाके योग्य, अनुरोधके योग्य, प्रतिपाल्य, खयाल रखने काबिल, जो राह देखने लायक हो। २ अपेक्षा किया जानेवाला, जिसकी राह देखना पड़े।

अपेक्षा (सं० स्त्री०) अप-ईक्ष भावे टाप्। १ आकाङ्क्षा, ख्वाहिश। २ किसी पदके साथ दूसरे पदका अन्वय, एक जुमलेसे दूसरे जुमलेके मानीका मिलान। ३ स्पृहा, लालच। ४ अनुरोध, हवाला। ५ न्यायोक्त ज्ञानवाली स्थिति और उत्पत्तिकी प्रयोजकता, कार्य और कारणका सम्बन्ध। जो बात जिस बातकी अपेक्षा करे, वह उसी बातकी प्रयोजक बने और जो स्थिति और उत्पत्ति जिस स्थिति और उत्पत्तिकी अपेक्षा रखे, वह स्थिति और उत्पत्ति उसी स्थिति और उत्पत्तिकी प्रयोजक होगी। जैसे, घटका ज्ञान पानेमें यदि घटका ही ज्ञान अपेक्षा अड़ाता, तो घटके ज्ञानका प्रयोजक घटज्ञान ही निकलता है। इसीतरह घटकी स्थिति और उत्पत्ति ही घटकी स्थिति और उत्पत्तिकी प्रयोजक होगी। श्रुतिवाक्यमें अन्य किसी वाक्यकी अपेक्षा नहीं आती।

अपेक्षाबुद्धि (सं० स्त्री०) अपेक्षया युक्ता सह वा बुद्धिः, ३-तत्। १ वैशेषिक शास्त्रका मानसिक प्रयोग, सम्बन्ध और नियमबद्ध बनानेकी योग्यता। २ बुद्धिकी निर्मलता, अक़्लकी सफाई।

"अनेकैककबुद्धिर्या सापेक्षाबुद्धिरिष्यते।" (भाषापरिच्छेद)

अपेक्षाबुद्धिज (सं० त्रि०) अपेक्षायुक्तया बुद्ध्या जायते, अपेक्षाबुद्धि-जन-ड, ५-तत्। न्यायशास्त्रोक्त द्वित्व आदि परार्ध पर्यन्त संख्या विशेष, दोसे शेष संख्या पर्यन्त, जो सारी अदद दोसे होती हो।

अपेक्षित (सं० त्रि०) अप-ईक्ष कर्मणि क्त। १ अपेक्षासे भरा, जिसकी ख़ाहिश लगी रहे। (क्ली०) २ ध्यान, प्रमाण, विचार, ग़ौर, हवाला, ख़याल।

अपेक्षितव्य, अपेक्षणीय देखो।

अपेक्षिता (सं० स्त्री०) अपेक्षिणो भावः, अपेक्षिन्-तल्-टाप्। अपेक्षाकारीका भाव, अर्थित्व, इन्तज़ारी।

"प्रयोजनापेक्षितया।" (कुमारसम्भव ३।१)

अपेक्षिन् (सं० त्रि०) अपेक्षते, अप-ईक्ष-णिनि। अपेक्षाकारी, आकाङ्क्षायुक्त, ख़याल रखते हुवा, जो राह देख रहा हो। (स्त्री०) अपेक्षिणी।

"तत्क्षतानुग्रहापेक्षी।" (कुमारसम्भव २।३९)

अपेक्ष्य (सं० त्रि०) अप-ईक्ष-ण्यत्। १ अपेक्षणीय, इन्तज़ार रखने क़ाबिल। (अव्य०) अप-ईक्ष भावे ल्यप्। २ अपेक्षा लगाकर, इन्तज़ार करके।

"तदानपेक्ष्य।" (कुमारसम्भव ५।१)

अपेक्ष्का (हिं०) अपेक्षा देखो।

अपेत (सं० त्रि०) अप-इण कर्तरि क्त। अपगत, अपसृत, पलायित, भागा हुवा, जो गुज़र गया हो।

अपेतभी (सं० त्रि०) भयरहित, निर्भय, निःशङ्क, बेख़ौफ़, जिसका जिसका डर छूट गया हो।

अपेतराक्षसी (सं० स्त्री०) अपेतः अपगतः, राक्षस इव पापं यस्याः यया वा, ५ वा ३-तत्। १ काली तुलसी। २ बबई।

अपेय (सं० त्रि०) न पीयते न-पा-यत्, नञ्-तत्। पीनेके अयोग्य, जिसका पान न किया जाय। जिसका पान शास्त्रके मतसे निषिद्ध हो, पीनेके नाक़ाबिल। हमारे शास्त्रमें अनेक अपेय द्रव्योंका उल्लेख है। उन्ही सकल द्रव्योंको बेचने या पीनेसे पापकी उत्पत्ति होगी। मद्य प्रधान अपेय है। इसे पीने, देने या लेनेसे पाप लगता है। निषिद्ध द्रव्योंको गुण विवेचनासे देखनेपर स्पष्ट मालूम होगा, कि उनके पीनेसे पीड़ा उत्पन्न होती, इसीसे शास्त्रकारोंने उनका पीना रोका है। दूधके साथ नमक मिलाकर न पीना चाहिये। दूध फट जानेपर भी पीना निषिद्ध है। गोके बच्चा होनेपर दश दिन बाद दूध पीये। दश दिन तक गोका दुग्ध अति गुरुपाक रहे, खानेसे उदरामयादि रोग लगेगा। इसी कारण हमारे विचक्षण शास्त्रकारोंने उसका पीना शास्त्रकी रीतिसे निषिद्ध बताया है। आधुनिक चिकित्सकोंने स्थिर किया, कि दूध बहुत देर पड़ा रहनेपर हवाके संयोगसे उसमें नाना प्रकार विषकण मिश्रित हो जाते हैं। इसलिये फटा या बिगड़ा दूध पीनेसे विषका पान होगा। दूधमें नमक मिलाकर पीनेसे पित्तवृद्धि होती है। चतुर वैद्योंकी सम्मति है, ऐसा दूध पीनेसे अन्तमें कुष्ठादि रोग निकलेंगे।

कुत्तेका जूठा जल नहीं पीना चाहिये। यदि भूलसे उसे कहीं पी भी ले, तो तीन दिन तक दूधमें शङ्खपुष्पी लताको पका कर सेवन करे। स्त्रीका उच्छिष्ट जल भी पीना निषिद्ध है। पता नहीं चलता, इसका ठीक कारण क्या होगा? शूद्रका उच्छिष्ट जल न पीना चाहिये। यदि भूलसे पी ले, तो तीन दिन तक दूधमें कुशमूल पका कर तीन दिन तक उसे ही पीये और कोई चीज न खाय। कुत्ता जिस वर्तनको छूये, उसका जल अथवा शुङ्ग विष्ठा या मूत्रादिसे दूषित जल अपेय है; पान करनेसे तप्तकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। उसके अभावमें एक काहन बारह पण कौड़ी उत्सर्ग करेंगे।

चण्डालके कूप या पात्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वा शूद्र जल न पीये। यदि किसी कारणसे यह अपेय जल पान करे, तो ब्राह्मणका सान्तपन, क्षत्रियको प्राजापत्य, वैश्यको आधा प्राजापत्य और शूद्रका चौथाई प्राजापत्यव्रत करना उचित होगा। उसके अभावमें दूसरी भी अनुकल्प व्यवस्था है। चण्डाल यदि जल छू ले या दुग्धादि द्रव्य दे, तो वह अपेय ठहरेगा। इस समय लोगोंके मनमें यह सन्देह अवश्य उठ सकता,—ब्राह्मण और शूद्रमें क्या प्रभेद है। यदि ब्राह्मण जलको छूये, तो वह अपेय नही होता;

चण्डालने ऐसा क्या अपराध किया, जो उसके छूनेसे जल अपेय हो जायेगा। इस विषयमें अनेक ऐतिहासिक वृत्तान्त हैं। पूर्वकालमें शास्त्रकारोंने जैसा अनुभव किया, उसीके अनुसार उन्होंने नियमोंको बनाया है। पहले चण्डालादि नीच जातियां पथिकोंका सर्वस्व अपहरण करनेके निमित्त कूप आदिमें विष मिला देतीं; प्यासे पथिक जब उन कूपोंका जल पीते, तब वह अज्ञान होकर पड़ जाते; चोर उनका सर्वस्व अपहरण कर चम्पत बनते थे। इस समय भी भारतमें नानाप्रकारके कौशलसे पथिकको धतूरा दे देते, धतूरेके विषसे अज्ञान हो पथिक पड़ता और दुष्ट लोग उसका सर्वस्व अपहरण कर भाग जाते हैं। यह जातियां स्वभावतः निष्ठुर और अविश्वासी होंगी। इनके हाथका द्रव्य पीना या खाना उचित नहीं ठहरता। यमस्मृतिके मतसे कच्चामांस, घृत, मधु, फलसम्भूत स्नेहवस्तु, म्लेच्छादिकी हांड़ीमें रहनेसे अपेय द्रव्य हैं; किन्तु यदि उसमें से वह निकाल ली जायें, तो शुद्ध होंगी। जावाल, शातातप, और शङ्खमुनिके मतसे क्षत्रिय वैश्य शूद्रके नूतन पात्रका जल, दुग्ध, दधि, घृत, तैल, ऊखका रस, गुड़, सीरा और मधु प्रभृति द्रव्य भक्षण करनेसे कोई दोष नहीं लगता।

शास्त्रकार बायें हाथपर रखकर जलका पीना निषिद्ध बताते हैं। लघुहारीतके मतसे जलसत्रका जल, कूपमें जिस घड़ेसे सब लोग जल निकालें उसका जल, द्रोणी प्रभृति जिस पात्र द्वारा खेत सींचे उसका जल और हथियार वगैरहके बीचमें रखा हुआ जल अपेय होगा। यमका मत है कि, इन पात्रोंका जल भूमिपर डालकर पीनेसे कोई विशेष आपत्ति नहीं आती।

अङ्गिराके मतसे मलमूत्रसंसृष्ट कूपका जल पीनेसे प्रायश्चित्त करना चाहिये। यद्यपि ऐसे कूपके जलमें मलमूत्रादिका स्वाद वा गन्ध न रहे, तथापि प्रायश्चित्त करना आवश्यक होगा। विष्णुके मतसे क्षुद्र जलाशयमें विष्ठादिका संसर्ग होनेपर उसका जल अपेय है। वृहत् जलाशयमें इसतरह मलमूत्र होनेसे पासका जल न पीना चाहिये, किन्तु अन्य घाटके जलको व्यवहार करनेमें दोष नहीं लगता। विष्णुने दूसरा भी नियम बनाया,—जिस कूपमें कुत्ता आदि प्राणी मर जाये या जिसमें उसका श्लेष्म रक्त आदि गिरे, उस कूपका जल पीना अनुचित है। यदि ब्राह्मण आदि किसी कारण ऐसे कूपका जल पी ले, तो उसे प्रायश्चित्त उठाना पड़ेगा। ब्राह्मण त्रिरात्र, क्षत्रिय द्विरात्र, वैश्य एकरात्र, और शूद्र दिनसे रात होनेतक उपवास कर पञ्चगव्य पीये। कूपमें पञ्चनखका मांस सड़ जानेसे आपस्तम्बने अधिक नियम बनाये हैं। उनका मत है, ऐसी जगह ब्राह्मणको छः दिन उपवास करना चाहिये। मनुष्यके मृतदेहसे दूषित होनेवाला जल भी अपेय होगा। ज्ञानपूर्वक उसे पीनेपर बारह दिन उपवास उठाना आवश्यक है।

गोदोहन-पात्र, मशक, कोल्हू, दूधकी मिलावट, शिल्पीके शिल्पकार्य और अप्रत्यक्षमें स्त्री-बालक वृद्धके असद्व्यवहारका जल काम आ सकता है। चर्मभाण्ड या कलसे उद्धृत और अपवित्र वस्तुसे मिली हुयी धाराका जल यदि परिमाणमें इतना अधिक पड़े, कि उससे एक गोकी तृष्णा मिट सके, तो अन्य जल न मिलनेपर आपत्कालमें उसे भूमिपर गिरा पी सकेंगे, उसमें कोई दोष नहीं लगता।

वर्षाकालमें वृष्टिका जल तीन दिन बाद पिया जाता है। अकालकी वृष्टिका जल दश दिन पर्यन्त अपेय रहेगा। यदि इस बीचमें कोई उसे पी ले, तो शास्त्रानुसार उसको प्रायश्चित्त कर्तव्य है। वृष्टिके और शूद्र द्वारा लाये हुये जलसे स्नान, आचमन, दान, देवपूजा, पितृतर्पणादि वैध कर्म कुछ भी न करे। वैसा जल पीना भी निषिद्ध होगा। गङ्गा, यमुना, प्लक्षजाता सरस्वती प्रभृति समुद्रगामिनी नदी और शोण प्रभृति नदको छोड़ दूसरी सकल नदी श्रावण और भाद्रमासमें रजस्वला रहती हैं। इसलिये उन सकल नदीमें नहाना और उनका जल पीना न चाहिये। समुद्रका जल भी अपेय होता है।

मनु प्रभृति प्राचीन ऋषिने नियम निकाला है,

कि प्रसवके बाद दश दिन पर्यन्त गो, महिष और छागलका दूध न पीये। सिवा उसके अश्व, गर्दभ प्रभृति जिन सकल पशुका खुर फटा नहीं होता, उनका भी दुग्ध अपेय है। महिषको छोड़ अन्य किसी वन्य पशुका दूध पीना उचित नहीं ठहरता। सिवा बकरी दूसरे जिन सकल पशुके दो-दो स्तन हों, उनका दूध पीना भी अकर्तव्य होगा। बच्चेके मरने या गर्भग्रहण निमित्त सांड़के पास जानेसे गोका दूध न पीये। गो प्रभृतिका दुग्ध शुद्ध है, किन्तु स्तनमें क्षत पड़ने अथवा मद्य पीनेपर उसका दूध न पीना चाहिये।

जिस गोके स्तनसे आप ही दूध चूये एवं जिसके दो बच्चे रहें, उसका दुग्ध अपेय होगा। मनुष्यका दूध भी निकालकर न पीना चाहिये। शङ्खके मतमें दीर्घकाल इन सकलका दूध पीनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। शातातपका कहना है, कि पुनः पुनः ऊंट या आदमीका दूध पीनेसे ब्राह्मणादिको फिर उपनयनके साथ तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त उठाना उचित होगा। गोतम मक्खन निकाले हुये दूध, मक्खनसे छूटे पानी, तेल निकाली खली, अत्यन्त सार लिये हुये जल-जैसे मठे और सारांश निचोड़े असार मांस प्रभृति किसी भी द्रव्यको व्यवहारयोग्य नहीं समझते।

शूलपाणिके मतसे कपिला गायका दूध पीनेपर सच्चरित्र क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको प्रायश्चित्त करना उचित है।

वैद्यशास्त्रोक्त धातुवैषम्यजनक कितने ही द्रव्य अपेय होते, जिनका अधिकांश कुपथ्य समझते हैं। वर्षाकालके जलमें गाङ्गेयत्व और समुद्रत्व यह दो गुण रहेंगे। गाङ्गेयत्व जल पीना चाहिये। समुद्र-जलका चिह्न विकृतवर्ण और क्लेदयुक्त है। वही जल अपेय होगा। कीट, मूत्र, विष्ठा, डिम्ब, शव प्रभृतिके रससे दूषित, तृण-वृक्षवाले पतितपत्र द्वारा दुर्गन्ध, मैले और विषयुक्त वर्षाकालके जलसे नहाने या उसे पीनेपर वाह्य एवं आभ्यन्तरिक रोग लग जाता है। जो शैवालादिसे आच्छादित रहता एवं जिसमें चन्द्रसूर्यका किरण वा वायु नहीं लगता, उस विरस और विवर्ण जलको व्यापन्न कहेंगे। व्यापन्न जल स्नान और पानादिके पक्षमें निषिद्ध है। तादृश जल बरतनेसे शोथ, पाण्डुरोग, अपरिपाक, श्वासकास, प्रतिश्याय (पीनस), शूल, गुल्म, उदरी एवं अन्याय अनेक उत्कट रोग लगेंगे। जो नदी पूर्वमुख बहती, उसका जल स्वभावतः वर्जनी होता है; अतएव वह व्यवहार्य नहीं ठहरता। सह्यपर्वत और विन्ध्यपर्वतसे जो नदी निकली, उसका जल बरतनेपर कुष्ठरोग दौड़ता है। मलयपर्वतजात नदीका जल बरतनेसे उदरके मध्य क्रिमि पड़ेगा। महेन्द्रपर्वत-जात नदीका जल काममें लानेसे शोथ और उदरी रोग हो जाता है। हिमालयजात नदीके जलसे हृद्रोग, मेद, शिरोरोग, शोथ और गलगण्ड निकलेगा। पूर्व और पश्चिम अवन्तीका जल श्वासकास बढ़ाता है। पूर्वोक्त समुद्र-जल एवं कच्चे मांसादिसे दुर्गन्धयुक्त और खारे पानीको काममें लानेपर अनेक ही दोष आयेंगे। दुष्टपदार्थ-मिश्रित और बद्ध जल अनुपकारी है। रोग विशेषमें वैद्यमतसे शीतल जल अपेय ठहरेगा, यथा—पार्श्वशूल, पीनस, वातरोग, शोथ, जड़ता, कोष्ठरोग, नवज्वर, हिक्का प्रभृति।

अपेल (हिं० वि०) अभेद्य, अटूट, ढेरका ढेर, बेशुमार।

अपेलव (सं० त्रि०) न पेलवम्, नञ्-तत्। अविरल, घन, भरा हुवा, गुञ्जान्।

अपेशल (सं० पु०) न पेशलः, विरोधे नञ्-तत्। 'दक्षे तु चतुरपेशलपटवः।' (अमर) १ अचतुर, अनिपुण, अपटु, बेवकूफ़, अहमक़। २ सुन्दर वा रम्यभिन्न, जो ख़ूबसूरत या सुहाना न हो।

अपेशस् (वै० त्रि०) रूपरहित, बेशक्ल, जिसके कोई सूरत न रहे।

अपेशी (सं० स्त्री०) न पेशी, नञ्-तत्। पक्षीके अण्ड भिन्न, सूत्रवत् मांस भिन्न, जो चीज़ चिड़ियेके अण्डे या धागे जैसी न हो।

अपेहिकटा (सं० स्त्री०) अपेहि अपगच्छ कट इत्युच्यते यस्यां क्रियायां, मयूर० स०। कट सम्बोधन-

युक्त अपगमन आदेशविशिष्ट क्रिया-विशेष, जिस खास फ़ेलमें गुलामको आने-जानेका हुक्म दिया जाये।

अपेहिप्रकसा (सं० स्त्री०) साधारण जनभिन्न उत्सव, जिस जलसेमें ग्राम्य लोग न जाने पायें।

अपेहिवाणिजा (सं० स्त्री०) बणिक् भिन्न उत्सव विशेष, जिस खास जलसेमें सौदागर न पहुंच सके।

अपेहिवाता (सं० स्त्री०) वातनाशक ओषधिविशेष, बादी मिटानेवाली कोई जड़ी-बूटी।

अपैठ (हिं० वि०) जानेके अयोग्य, जहां पहुंच न सकें।

अपैठर (सं० क्ली०) न पैठरम्, नञ्-तत्। स्थाली-पक्क सद्गन्धयुक्त वञ्जनभिन्न, जो रसोयी अच्छी तरह न बनायी गयी हो।

अपैतामहक (सं० त्रि०) पितामहादागतं पितामह-वुञ् पैतामहकम्, न पैतामहकम्, नञ्-तत्। पिता-महसे अनागत, जो दादेसे न मिला हो।

अपैतृक (सं० त्रि०) पितुरागतं पितृ-ठञ् पैतृकम्, नञ्-तत्। पितासे अप्राप्त, जो बापसे न मिला हो।

अपैशुन (सं० क्ली०) पिंशति खलत्वेन सूचकत्वेन वा आत्मानं द्योतयति, पिश तुदा० सुचादि उण् उनन्; पिशुनस्य भावः पिशुर-अण् पैशुनम्, अभावे नञ्-तत्। १ पैशुन्यका अभाव, खलताकी शून्यता, सूचनाका लोप, ईमान्दारी, सच्चायी, भलमन्सी। (त्रि०) नास्ति पैशुनं यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ खलताशून्य, सूचनारहित, ईमानदार, सच्चा, भला, बुराई न बतानेवाला।

अपैशून्य (सं० क्ली०) पिशुनस्य भावः पिशुन भावे ष्यञ् पैशून्यं; न पैशुन्यं, नञ्-तत्। पैशुन्यकी शून्यता, खलताका अभाव, सूचनाका राहित्य, ईमान्दारी, भलमन्सी, सचाई, बुराई न बतानेकी हालत।

अपोगण्ड (सं० पु०) न पसि कर्माक्षमतया द्रव्य-स्पर्शेऽपि गच्छति; पस् भावे क्विप्-गम-उण-ड, नञ्-तत्। १ कर्ममें अक्षम होनेसे द्रव्यको भी न छू सकनेवाला व्यक्ति, जो शख्स नाकाम होनेसे चीज़को छू भी न सके, कर्ममें अक्षम, विकलाङ्ग। विकलाङ्गको धर्मकार्यका अधिकार नहीं देते,—

"तीर्थकपङ्ग वार्षेय-देवानां नानाधिकारः।" (जैमिनि)

पश्चादि पङ्ग एवं चक्षु, कर्ण, मुख, यह तीन अङ्ग ऋषि-जैसे रखने यानी ऋषिकी तरह ध्यानमें बैठ बाह्य वस्तु न देखने, विषयकथा न सुनने और कोई बात न कहनेवाले, काने, बहरे और गूंगेको धर्म-कार्यका अधिकार नहीं मिलता।

'अपोगण्डस्तु शिशुके विकलाङ्गेऽतिभीरुके।' (विश्व)

(त्रि०) २ षोड़श वर्षसे कम अवस्थावाला, जिसकी उम्र सोलह सालसे कम रहे। ३ बाल, बच्चा, कमसिन। ४ भयभीत, ख़ौफ़ज़दा, डरपोक। ५ कोमल, मुलायम।

अपोढ (सं० त्रि०) निरस्त, त्यक्त, हटाया हुवा, जिसे अलग ले गये हों।

अपोदक (सं० त्रि०) अप अपगतं उदकं जलं यस्मात्, प्रादि बहुव्री०। १ जलरहित, पानीसे खाली। २ जो पानीदार न हो, न बहनेवाला।

अपोदिका (सं० स्त्री०) अप अपकृष्टं उदकं यया। १ कलम्बी, हिरनपद्दी। २ पूतिका, पोय।

अपोद्धार्य (सं० त्रि०) उठा ले जाने योग्य, जो चीज़ उड़ा लेने क़ाबिल हो।

अपोनपात् (वै० पु०) जलसे उत्पन्न अग्निदेव।

अपोनप्त्रिय (सं० त्रि०) अपोनपात् देवता अस्य, अपोनपात् घ निं। अपोनपात् देवताको दिया जानेवाला, जो अपोनपात् देवताके देनेको हो।

अपोनप्त्रीय, अपोनप्त्रिय देखो।

अपोमय (सं० त्रि०) अपो जलं तदात्मकम्, अपस्-मयट्। जलमय, पानीसे भरा हुवा।

अपोह (सं० पु०) अप-उह बाहु० भावे क। १ त्याग, हटाव, छुटकारा। २ युक्तिके बलसे सन्देहका निरा-करण, समझ-बूझसे शककी रफ़ाई। ३ विवाद, बहस।

अपोहन (सं० क्ली०) अपोह देखो।

अपोहनीय (सं० त्रि०) अप-ऊह-अनीयर्। हटाया जानेवाला, जो उठाकर अलग डाल दिया जाये।

अपोहित (सं० त्रि०) १ हटाया गया, उठाया हुवा। २ बुद्धिसे प्रतिष्ठित, अक्लसे साबित।

अपोह्य (सं० त्रि०) अप ऊह गत्यादौ कर्मणि ण्यत्। १ अपगमनीय, त्याज्य, हटाने काबिल। (अव्य०) २ दूरीभूतकर, निकालके।

अपौरुष (सं० त्रि०) पुरुषस्य भावः कर्म वा पुरुष-अण् पौरुषं तन्नास्त्यस्य। १ विक्रमशून्य, नामर्द। (क्लो०) पौरुषस्य अभावः, अभावार्थे नञ्-तत्। २ पौरुषका अभाव, विक्रमकी शून्यता, नामर्दी।

अपौष्कल्य (सं० क्लो०) पौष्कल्यका अभाव, दृढ़ताकी शून्यता, कच्चापन, खामी, नापुख्तगी।

अप्चर (सं० त्रि०) अप्सु चरति, चर-ट। जलचर, पानीमें चलनेवाला। (स्त्री०) अप्चरी।

अप्त (वै० त्रि०) १ प्राप्त, दस्तयाब। २ जलसम्बन्धीय, पानीदार।

अप्तस् (सं० क्लो०) यज्ञीय कर्म, यज्ञका काम।

अप्तु (सं० पु०) आप्नोति जीवोऽयम्, आप-उण्-तुन् ह्रस्वश्च। १ शरीर, जिस्म। 'अप्तुः शरीरम्।' (उणादिकोष) २ सूक्ष्मरूप सोम। ३ यज्ञीय पशु।

अप्तुर (सं० पु०) अप्सु जलदान-विषये तूतोर्ति धावति, तुर्द जुहो क्विप्। १ जलदायक इन्द्र। २ जलदायक अग्नि।

अप्तुर्य (वै० क्लो०) अप्तुरो भावः बाहु० वेदे यत्। जलप्रेरकका धर्म, जल-प्रेरकत्व, पानीका पहुंचाना।

अप्तोर्याम (सं० पु०) अप्तोः शरीरस्य पापकत्वाद्याम इव, अलुक्-स०। अग्निष्टोमाङ्ग योगविशेष। विष्णुपुराणमें लिखा है कि अप्तोर्याम याग ब्रह्माके उत्तरमुखसे निकला था। (विष्णुपु० १।५।४८)

अप्त्य (सं० त्रि०) अप्तौ शरीरे भवः यत्, वेदे टिलोपः। १ अपत्य, शरीरसे निकला हुवा। २ कार्यरत, विशाल, कारबारी, लम्बाचौड़ा। ३ जलीय, पानीदार।

अप्न (वै० पु०) [illegible]धिकार, सम्पत्ति, कब्ज़ा, जायदाद। २ क[illegible]ज्ञीय कर्म, काम। ३ वंश, सन्तति, खान्दान[illegible]ाद। ४ आकार, सूरत। ५ जल, पानी।

अप्नःस्थ (सं० त्रि०) अप्नसि कर्मणि तिष्ठति; अप्नस्-स्था-क, ७-तत्। कर्ममें अधिकृत, काममें लगा हुवा।

अप्नराज (सं० पु०) अप्नसां कर्मणां राजा; टजन्त ६-तत्, वेदे पृषो० सलोपः। कर्मप्रेरक, कार्यमें लगानेवाला, जो काम बताये।

अप्नवान (सं० पु०) अप्नसा कर्मणा वानं सद्गतिर्यस्य, ३-बहुव्री०। भृगुवंशीय ऋषिविशेष।

अप्नस् (सं० क्लो०) आप्नोति प्रलय-समये समस्तं व्याप्नोति, आप्-उण्-असुन्-नुट् ह्रस्वश्च। १ जल, पानी, आब। २ कर्म, काम। ३ अपत्य, बेटा। ४ रूप, शक्ल।

अप्नस्वत् (सं० त्रि०) अप्नस् अस्त्यस्य, अप्नस् अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वत्वम्। १ कर्मशील, कारबारी। २ जलयुक्त, पानीदार। (स्त्री०) अप्नस्वती।

अप्पकवि (सं० पु०) संस्कृत छन्दोग्रन्थ-रचयिता-विशेष।

अप्पण आचार्य—एक वैदान्तिक, तैत्तिरीयोपनिषद्विवरण नामसे आनन्दतीर्थ-रचित तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यकी टीका-रचयिता।

अप्पदीक्षित (सं० पु०) सन् ई० वाले पन्द्रहवें शताब्दके एक संस्कृत ग्रन्थकार, नारायणस्तव-रचयिता।

अप्पय्य—एक मराठी पण्डित, छत्रपति शाहुजीके राज्य-कालमें इन्होंने 'आचारनवनीत' नामक धर्मग्रन्थ रचा था।

अप्पय्यदीक्षित—अप्पदीक्षित देखो।

अप्पाजी भट्ट—वीरपुरवासी एक प्रसिद्ध दार्शनिक, ज्ञानानन्दके शिष्य, शिवगीता और रामगीताके टीकाकार।

अप्पादीक्षित—अप्पयदीक्षित देखो।

अप्पा वाजपेयिन्—नीतिकुसुमावलि-रचयिता।

अप्पाशास्त्री—एक प्रसिद्ध पण्डित—इन्होंने संस्कृत भाषामें अप्पाशास्त्रिवादार्थ (न्याय), लवलीपरिणय-नाटक और सारस्वतादर्शनाटक ग्रन्थ बनाये हैं।

अप्पा साहिब—नागपुरराज रघुनाथ रावकी उपाधि। नागपुर और रघुनाथ राव देखो।

अप्पा सूरि—शब्दरत्नावली-रचयिता।

अप्य (सं॰ त्रि॰) अपामिदं तत्र साधु संस्कृतं वा यत्। १ जल द्वारा संस्कृत, जलसम्बन्धीय, पानीसे साफ किया हुवा, आबदार। २ पाने योग्य, जो मिल सके। ३ यज्ञीय कार्यसे सम्बन्ध रखनेवाला।

अप्यच् (सं॰ त्रि॰) पहुंचते हुवा, जो भीतर गया हो, छिपा।

अप्यय (सं॰ पु॰) अपि-इण भावे अच्। १ अपगमन, रवानगी। २ नाश, विलय, बरबादी। ३ पक्ष-पुच्छ-सन्धि, बाजू और दुम निकलनेकी जगह।

अप्पयदीक्षित (सं॰ पु॰) द्राविड़देशीय एक प्रसिद्ध साधु। इन्हें लोग शिवका अवतार समझते थे। यह भरद्वाज गोत्रीय रङ्गराजाध्वरीन्द्रके पुत्र, धर्मय्य दीक्षितके गुरु, नीलकण्ठचम्पूरचयिता नारायण-दीक्षितके पितृव्य और कर्णाटराजगुरु तातयज्वाके भागिनेय रहे। सन् ई॰ का १५वां शताब्द इनका समय था। इन्होंने अद्वैतनिर्णय, अधिकरणमाला, आत्मार्पणस्तुति, आनन्दलहरी-टीका, उपक्रम-पराक्रम (मीमांसा), विजयनगराधिप वेङ्कटके अनुरोधसे कुवलयानन्द (अलङ्कार), चतुर्मतसारसंग्रह या नयमणिमञ्जरी (वेदान्त), चन्द्रकलास्तुति, चित्रमीमांसा (अलङ्कार), जयोल्लासविधि, तत्त्वमुक्तावली (वेदान्त), तप्तमुद्रा-खण्डन, तिङन्तशेषसंग्रह (व्याकरण), दशकुमार-चरितसंग्रह, धर्ममीमांसा-परिभाषा, नयमयूख-मालिका, नामसंग्रहमाला (कोष), पञ्चग्रन्थी (वेदान्त), पञ्चरत्नस्तव, पञ्चस्वराविवृति (ज्योतिः), पादुकासहस्र-टीका, प्रबोधचन्द्रोदयटीका, ब्रह्मतर्कस्तव और तद्वि-वरण, भक्तिशतक, भारततात्पर्य्यसंग्रह, मध्वमत-खण्डन या मध्वमुखमर्दन और तट्टीका, यादवाभ्युदय-टीका, रत्नत्रयपरीक्षा, रसिकरञ्जिनी नाम्नी कुवलया-नन्दकी टीका, रामानुजमतखण्डन, रामायणतात्पर्य्य-संग्रह, रामायणभारतसारसंग्रह, रामायणसारस्तव, वरदराजशतक, वसुमतीचित्रसेनाविलासनाटक, वाद-नक्षत्रमालिका (वेदान्त), विधिरसायन और तट्टीका, विष्णुतत्त्वरहस्य, वीरशैव, वृत्तिवार्तिक वेदान्तकल्पतरु-परिमल, वैराग्यशतक, शान्तिस्तव, शारीरकन्याय-रक्षामणि, शास्त्रसिद्धान्तलेशसंग्रह, शिवकर्णामृत, शिव-तत्त्वविवेक, शिवपुराणतामसत्व-खण्डन, शिवादित्य-मणिदीपिका, शिवाद्वैतनिर्णय, शिवानन्दलहरी-चन्द्रिका, शिवोत्कर्षमञ्जरी, शैवकल्पद्रुम, सिद्धान्त-रत्नाकर, हंससन्देशटीका, हरिवंशसारचरित प्रभृति बहु संस्कृत ग्रन्थ लिखे हैं।

२ दोषजित्कार नामक संस्कृत अलङ्कारग्रन्थ रचयिता।

३ (साधारण नाम अप्पादीक्षित) कौमुदीप्रकाश (व्याकरण) और गौरीमायूरमाहात्म्यचम्पू-रचयिता।

अप्ययन (सं॰ क्ली॰) १ संयोग, जोड़। २ सम्भोग हमबिस्तरी।

अप्ययं (सं॰ अव्य॰) निकट, समीप, पास नज़दीक।

अप्पित्त (सं॰ क्ली॰) अपां जलानां पित्तमिव। 'शुचिरप्पित्तम्।' (अमर) १ अग्नि, आग। २ चित्रक वृक्ष, चीत।

अप्रकट (सं॰ त्रि॰) न प्रकटम्, विरोधे नञ्-तत्। प्रकाशित भिन्न, गुप्त, अप्रकाशित, पोशीदा, छिपा हुवा, जो ज़ाहिर न हो।

अप्रकटित, अप्रकट देखो।

अप्रकम्प (सं॰ पु॰) प्र-कपि चलने भावे घञ् प्रकम्पः; न प्रकम्पः, अभावे नञ्-तत्। १ चलनाभाव, बेहर-कती। (त्रि॰) नास्ति प्रकम्पो यस्य, नञ्-बहुव्री॰। २ चलनहीन, कम्पशून्य, बेहरकत, न हिलने या डुलनेवाला। ३ स्थायी, संबद्ध, मज़बूत, टिकाऊ। ४ अप्रदत्त उत्तर, जिसका जवाब न दिया गया हो।

अप्रकम्पता (सं॰ स्त्री॰) दृढ़ता, स्थायित्व, मज़बूती, पायदारी।

अप्रकर (सं॰ त्रि॰) उत्तम रूपसे कार्य न करते हुवा, जो अच्छीतरह काम न चलाता हो।

अप्रकरण (सं॰ क्ली॰) अप्रधान विषय, खास मज़-मूनसे ताल्लुक न रखनेवाली बात।

अप्रकर्ष (सं॰ पु॰) प्रकृष्यते, प्र-कृष भावे घञ् प्रकर्षः, न प्रकर्षः, विरोधे नञ्-तत्। प्रकर्षाभाव, श्रेष्ठताकी शून्यता, ज़ोरका ज़वाल, बड़ाईका न रहना। (त्रि॰) नञ्-बहुव्री॰। २ प्रकर्षशून्य, छोटा, नाचीज़।

अप्रकर्षित (सं॰ त्रि॰) १ अतिशय भिन्न, जो ज़्यादा

न हो। २ अद्वितीय, अप्रतिहत, जिससे कोई सबक़त न ले गया हो।

अप्रकल्पक (सं० त्रि०) आवश्यककी भांति न लिखा जाते हुवा, जो ज़रूरी समझकर न लिखा जाता हो। यह शब्द औषधपत्र या नुसखेका विशेषण है।

अप्रकाण्ड (सं० पु०) न प्रकृष्टः काण्डः स्कन्धो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ वन्य झिण्टिका, जङ्गली झाड़ी। २ स्तम्बभिन्न, स्कन्द भिन्न, जो चीज़ डाल न हो। ३ गुल्म, पौधा। (त्रि०) ४ शाखाशून्य, बेडाल।

अप्रकाश (सं० पु०) न प्रकाशः, अभावे नञ्-तत्। १ प्रकाशाभाव, गोपन, ज़हूरकी नामौजूदगी, पोशीदगी, छिपावा। (त्रि०) नास्ति प्रकाशो यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ प्रकाशशून्य, रोशनीसे खाली।

"प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकइवाचलः।" (रघु १।६८)

(अव्य०) ३ गोपनमें, छिपकर, पोशीदगीसे।

अप्रकाशक (सं० त्रि०) १ प्रकाशित न करनेवाला, जो चमकीला न बनाये। २ अन्धा बनानेवाला, जो धुंधला कर देता हो।

अप्रकाशमान (सं० त्रि०) गुप्त, अप्रकट, छिपा हुवा, जो ज़ाहिर न हो।

अप्रकाशित, अप्रकाशमान देखो।

अप्रकाश्य (सं० त्रि०) प्र-काश-णिच् अर्हार्थे कर्मणि यत् प्रकाश्यम्; न प्रकाश्यम्, नञ्-तत्। प्रकाश करनेके अयोग्य, गोपनीय, छिपाने क़ाबिल, जो ज़ाहिर करने लायक़ न हो। शास्त्रकारोंने कितने ही विषय सर्वदा अप्रकाश्य रखनेको बताये हैं,—

"जन्मर्क्षं मैथुनं मन्त्रो गृहच्छिद्रञ्च वञ्चनम्।
आयुर्धनापमानं स्त्री न प्रकाश्यानि सर्वथा॥" (काशीखण्ड)

जन्म-नक्षत्र, मैथुन, मन्त्रणा, कुलका कलङ्क, दूसरे-से अपनी वञ्चना, अपना वयःक्रम, अपना धन, अपना अपमान और स्त्री यह सकल किसीसे बताना न चाहिये।

अप्रकृत (सं० त्रि०) न प्रकृतं प्रस्तावितं यथार्थो वा, नञ्-तत्। १ अप्रस्तावित, ख़ास मज़मूनसे तअल्लुक़ न रखनेवाला। २ अयथार्थ, झूठा, ग़ैरवाजिब। ३ स्वभावहीन, बेतबीयत। ४ कृत्रिम, मसनूवी, जो असली न हो, बनाया हुवा।

अप्रकृताश्रित-श्लेष (सं० पु०) काव्यालङ्कार विशेष। इसमें प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनोका श्लेष रहता है,—

पावसमें सखि देखिये आवत हैं घनश्याम।
ताप हृदयको मिट गयो राम बनाये काम॥

अप्रकृति (सं० स्त्री०) न प्रकृतिः, नञ्-तत्। १ प्रकृति भिन्न, क़ुदरतसे अलग रहनेवाली चीज़। २ कार्य-कारण भिन्न साङ्ख्योक्त पुरुष। ३ व्याकरणोक्त प्रकृति भिन्न प्रत्यय। ४ मीमांसोक्त प्रकृति भिन्न विकृति। (त्रि०) प्रकृतिः स्वभावः सा नास्त्यस्य, नञ्-बहुव्री०। ५ प्रकृतिशून्य, स्वभावहीन, बेमिज़ाज, पागल।

अप्रकृतिस्थ (सं० त्रि०) प्रकृतौ स्वभावे तिष्ठति, प्रकृति-स्था-क प्रकृतिस्थम्; नञ्-तत्। "अप्रकृतिस्थेन पित्रादिना।" (रघुनन्दन) रोग वा भयादि हेतु स्वभावच्युत, जिसकी बीमारी या ख़ौफ़से तबीयत बिगड़ गयी हो।

अप्रकृष्ट (सं० त्रि०) न प्रकृष्टम्, विरोधे नञ्-तत्। १ निकृष्ट, अपकर्षयुक्त, अधम, ख़राब, बुरा। (पुं०) २ काक, कौवा।

अप्रक्लृप्त (सं० त्रि०) प्र-कृप-क्त रोलादेशः प्रक्लृप्तम्; न प्रक्लृप्तम्, नञ्-तत्। १ क्लृप्त भिन्न, अनुचित, ग़ैरवाजिब।

अप्रकेत (वै० त्रि०) मूर्ख, बेवक़ूफ़।

अप्रक्षित (सं० त्रि०) प्र-क्षि भावे क्त, दीर्घत्वाभावाच क्षस्य न; नास्ति प्रक्षितं प्रक्षमो यस्य, नञ्-बहुव्री०। क्षयरहित, क्षयारब्ध भिन्न, घटाया न गया, जो सड़ा-गला न हो।

अप्रखर (सं० त्रि०) न प्रखरम्, विरोधे नञ्-तत्। १ अतीक्ष्ण, भद्दा, जो तेज़ न हो। २ मृदु, मुलायम।

अप्रगम (सं० त्रि०) अपूर्व गमनशील, जिसको चलनेमें कोई पकड़ न सके।

अप्रगल्भ (सं० त्रि०) सुसभ्य, सहनशील, शायस्ता, जो गुस्ताख़ न हो।

अप्रगाध (सं० त्रि०) अति गभीर। (दिव्यावदान)

अप्रगीत (सं० त्रि०) उच्चैःस्वरसे न अलापा हुवा, जो बुलन्द आवाज़से न गाया गया हो।

अप्रगुण (सं॰ त्रि॰) न प्रकृष्टो गुण: अङ्ग: उपकरणं कार्यसामर्थ्यं वा यस्य। १ अङ्गशून्य, उपकरणरहित, कार्यमें अक्षम, व्याकुल, अज़ारसे खाली, बेऔज़ार, काम न कर सकनेवाला, घबराया हुवा। (पु॰) २ प्रकृष्ट गुणका अभाव, अङ्ग उपकरणादि भिन्न, कामिल वस्फ़की नामौजूदगी, अज़ा-औज़ार वग़ैरहको छोड़ दूसरी चीज़।

अप्रग्राह (सं॰ त्रि॰) अप्रतिहत, स्वतन्त्र, बेलगाम, रोका न गया।

अप्रचक्षुश (सं॰ त्रि॰) १ दृष्टिरहित, नाबीना, जिसे देख न पड़े। २ कुरूप, बदसूरत, जो खूबसूरत न हो।

अप्रचरित, अप्रचलित देखो।

अप्रचलित (सं॰ त्रि॰) प्रचलनविहीन, व्यवहार-वर्जित, जो काम न आये, नाजायज़।

अप्रचुर (सं॰ त्रि॰) तुच्छ, न्यून, कम, थोड़ा।

अप्रचेतस् (सं॰ त्रि॰) न प्रकृष्टं चेतति जानाति, न-प्र-चित उण् असुन्। १ अज्ञान, बेवकूफ़। (पु॰) न प्रचेता:, नञ्-तत्। २ वरुण भिन्न, जो देवता वरुण न हो।

अप्रचेतित (सं॰ त्रि॰) अज्ञात, जो जाना-बूझा न हो।

अप्रचोदित (सं॰ त्रि॰) १ अनिच्छित, ख्वाहिश न रखा गया, जिसके लिये आज्ञा न निकली हो। २ अनुक्त, कहा न गया। ३ अयाचित, न मांगा हुवा।

अप्रच्छन्न (सं॰ त्रि॰) प्रच्छन्न भिन्न, आवरणरहित, स्पष्ट, बेपरदा, साफ़, ज़ाहिर, जो ढंका न हो।

अप्रच्छेद्य (सं॰ त्रि॰) अन्वेषण लगानेके अयोग्य, जिसकी तलाश न हो सके।

अप्रच्युत (सं॰ त्रि॰) १ न हिला डुला, जो सरका न हो। २ अपतित, गिरा न हुवा।

अप्रज (सं॰ त्रि॰) न प्रजायते भार्यागर्भे पुत्ररूपेण, प्र-जन्-ड। १ अजात, पैदा न हुवा। २ वन्ध्य, बांझ। ३ जनशून्य, जहां लोग न रहते हों। (स्त्री॰) अप्रजा।

अप्रजज्ञि (वै॰ त्रि॰) सन्तानरहित, बेऔलाद, जिसके कोई बाल-बच्चा न रहे।

अप्रजस् (सं॰ पु॰-स्त्री॰) नास्ति प्रजा सन्तति: यस्य यस्या वा, नञ्-बहुव्री॰। प्रजारहित, सन्तानरहित, नि:सन्तान, बेऔलाद, जिसके बालबच्चा न रहे।

"अप्रजस्त्वमावनिमित्तत्वेन।" (जीमूतवाहन)

अप्रजस्ता (सं॰ स्त्री॰) सन्तानराहित्य, औलाद न होनेकी हालत।

अप्रजस्त्रीधन (सं॰ क्ली॰) अप्रजाया अपत्यरहिताया स्त्रिया धनम्, ६-तत्। सन्तानरहित स्त्रीका धन, औलाद न रखनेवाली औरतकी दौलत।

"अप्रजस्त्रीधनं भर्तुर्ब्राह्मादिषु चतुर्ष्वपि।" (याज्ञवल्क्य)

अप्रजा (सं॰ स्त्री॰) प्रकृष्टं जायते प्रजं सन्तानम्, प्र-जन-ड; नास्ति प्रजं सन्तानं यस्या:, नञ्-बहुव्री॰। टाप्। अपत्यरहिता स्त्री, नि:सन्तान स्त्री, जिस औरतके औलाद न रहे, बांझ।

"अप्रजायामतीतायां बान्धवास्तदवाप्नुयु:।" (याज्ञवल्क्य)

अप्रजात (सं॰ त्रि॰) नि:सन्तान, बे-औलाद, जिसके बालबच्चा न रहे।

अप्रजाता (सं॰ स्त्री॰) प्रकृष्टं जातं अपत्यम् यस्या: सा प्रजाता, न प्रजाता कदापि न जातापत्या। गर्भ न रखनेवाली कन्या, वन्ध्या, बांझ, जिस औरतके कभी हमल न रहा हो।

अप्रणीत (सं॰ त्रि॰) प्र-णी-क्त प्रणीतम्; न प्रणीतम्, नञ्-तत्। १ असम्पन्न, अकृत, अक्षिप्त, अप्रवेशित, खाली, नाकाम, डाला न गया, जो पहुंचा न हो। (क्ली॰) २ वेदविधानसे असंस्कृत अग्नि।

अप्रणोद्य (सं॰ त्रि॰) दूरीभूत न किया जानेवाला, जो निकाला न जाये।

अप्रत् (वै॰ त्रि॰) १ न बहनेवाला, जो रुका हो। २ निर्धन, ग़रीब।

अप्रतर्क्य (सं॰ त्रि॰) न प्रतर्कयितुं शक्यम्; न प्रतर्के शक्यार्थे यत्, नञ्-तत्। १ तर्कके अयोग्य, बहसके नाक़ाबिल। २ अवर्णनीय, अभावनीय, समझमें न आनेवाला, जिसका बयान् बंध न सके।

अप्रता (सं॰ त्रि॰) प्र तायृ सन्तानपालनयो: क्विप्,

यलोपः; नास्ति प्रतः विस्तारो यस्मात्, ५ नञ्-बहुव्री०। १ अतिविस्तीर्ण, निहायत वसीय, हदसे ज्यादा फैला हुवा। (अव्य०) २ विना धन, बगैर दौलत।

अप्रताप (सं० पु०) १ प्रतापका अभाव, धुंधलापन। २ तुच्छता, कमीनापन।

अप्रति (सं० त्रि०) नास्ति प्रति प्रतिनिधिः प्रतिद्वन्द्वो वा यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ अति उत्कृष्ट, अप्रतिरूप, असदृश, अनुपम, निहायत उम्दा, बेजोड़, जिसका जवाब न मिले। (अव्य०) २ बेरोकटोक, धड़ाकेसे।

अप्रतिकर (सं० त्रि०) प्रति सादृश्ये कृ कर्तरि अच् प्रतिकरम्; न प्रतिकरम्, नञ्-तत्। १ विश्वस्त, एतबारी, जाना-बूझा। (पु०) प्रति-कृ भावे अप् प्रतिकरः प्रतिक्षेपः, न प्रतिकरः अभावे नञ्-तत्। २ प्रतिक्षेपाभाव, झगड़ेका न होना। (त्रि०) ३ प्रतिक्षेपशून्य, झगड़ेसे खाली।

अप्रतिकर्मन् (सं० त्रि०) न विद्यते प्रतिकर्म प्रतिक्रिया प्रतिकारः यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ प्रतिकार पहुंचानेको अशक्य, जिसका बिगाड़ न हो सके। नास्ति प्रतिकर्म सदृश कर्म यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ असदृश-कर्मकारी, जिसके बराबर कोई काम कर न सके।

अप्रतिकार (सं० पु०) प्रति-कृ-घञ् उपसर्गस्य वा दीर्घाभावः प्रतिकारः; न प्रतिकारः, अभावे नञ्-तत्। १ प्रतिकारका अभाव, उपशमको शून्यता, दवाका न पहुंचना, बदलेका न मिलना, रोकका न लगना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ प्रतिकारहीन, प्रतिकार पहुंचानेमें अशक्य, लादवा, बेमदद, गैरमहफूज़। (अव्य०) अभावे अव्ययी०। ३ प्रतिकारके अभाव, दवाके न पहुंचनेसे, रोक-टोक न होनेपर।

अप्रतिकारिन् (सं० त्रि०) १ प्रतिकार न पहुंचाते हुवा, जो तदबीर न लगा रहा हो। २ एवज़ न लगाते हुवा, जो बदला न देता या लेता हो।

अप्रतिकारी, अप्रतिकारिन् देखो।

अप्रतिकार्य (सं० त्रि०) दुश्चिकित्सक, बुरी दवा देनेवाला।

अप्रतिक्रिय (सं० पु०-क्ली०) नास्ति प्रतिक्रिया प्रतिकारो यस्य, नञ्-बहुव्री०। प्रतिकारशून्य, प्रतिकारहीन, लादवा, तदबीरसे खाली।

अप्रतिक्रिया (सं० स्त्री०) प्रतिक्रिया प्रतिकारः; न प्रतिक्रिया, अभावे नञ्-तत्। १ प्रतिकाराभाव, उपशमका न होना, तदबीरकी नामौजूदगी, दवाका न मिलना। (त्रि०) नास्ति प्रतिक्रिया ऽस्याः, नञ्-बहुव्री०। २ प्रतिकारशून्य, प्रतिकार पहुंचानेमें अशक्त, तदबीरसे खाली, जो दवा न दे सके।

अप्रतिगृहीत (सं० त्रि०) लिया न हुवा, जो ग्रहण न किया गया हो।

अप्रतिगृह्य (सं० त्रि०) जिससे कोई वस्तु न ली जाये, जो कोई चीज़ देने काबिल न हो।

अप्रतिग्रहण (सं० क्ली०) १ दो हुयी वस्तुका न लेना, बख्शिशको चीज़का न छूना। २ विवाहका त्याग, शादीका न करना।

अप्रतिग्राहक (सं० त्रि०) स्वीकार न करनेवाला, जो मञ्जूर न फ़रमाता हो।

अप्रतिग्राह्य (सं० त्रि०) प्रतिग्रहीतुं योग्यं प्रति-ग्रह अर्हार्थे ण्यत् प्रतिग्राह्यं न प्रतिग्राह्यं नञ्-तत्। प्रतिग्रहके अयोग्य, जिसे प्रतिग्रह न करना चाहिये; जैसे, सोना आदि द्रव्य। अदृष्टके निमित्त त्यक्त द्रव्यके स्वीकारको प्रतिग्रह कहते हैं।

"प्रतिगृह्याप्रतिग्राह्यं भुक्त्वाचान्नं विगर्हितम्।" (मनु ११।२५४)

प्रायश्चित्त-विवेकमें अनेक रूपसे अप्रतिग्राह्य प्रदर्शित हुआ है। यथा,—

असत् शूद्रका द्रव्य अप्रतिग्राह्य है। ज्ञानपूर्वक उसे दो बार ग्रहण करनेसे प्रायश्चित्त चान्द्रायण प्रभृति करना कर्त्तव्य होगा। अज्ञानपूर्वक वैसा द्रव्य ग्रहण करनेसे अर्द्ध प्रायश्चित्त करना उचित है। सत्शूद्रादिके स्थलमें जिसका अन्नादि भोजन करनेसे जो प्रायश्चित्त पहुंचे, प्रतिग्रह करनेसे भी वही प्रायश्चित्त पड़ेगा। परन्तु आपद्ग्रस्त होनेपर ब्राह्मण यदि शूद्रादिका द्रव्य ग्रहण कर ले, तो वह दोषी नहीं ठहरता।

अर्थात् प्रतिग्रहकी वस्तुको जलमें फेंक अथवा गुरुकी अनुमति लेकर ब्रह्मचारीको दे देना चाहिये।

उसके अनन्तर जहां जैसा प्रायश्चित्त कहा गया है, उसे करना पड़ेगा। तीर्थ वा किसी पुण्यक्षेत्रमें अथवा चन्द्रसूर्य्यके ग्रहण-कालमें प्रतिग्रह न करना चाहिये। निन्दित व्यक्तिका धन अप्रतिग्राह्य है। चाण्डालादि-का धन ग्रहण करनेसे पतित होना पड़ता, इसलिये वह प्रतिग्राह्य नहीं होता। रजककी वस्तु अप्रति-ग्राह्य है। उसे ग्रहण करनेसे एक वर्षतक प्राजापत्य-व्रत करना पड़ेगा। पतितकी वस्तु ग्रहण न करना चाहिये। ग्रहण करनेसे चान्द्रायण करना उचित है।

जो लोग सूअर खाते हैं, जैसे भङ्गी, डोम प्रभृति, एवं व्याध, निषाद, रजक, बढ़ुर और चमार इन सबकी वस्तु अप्रतिग्राह्य होगी। ग्रहण करनेसे प्राय-श्चित्तमें चान्द्रायण करना शास्त्रसम्मत है।

मनुके मतानुसार इन लोगोंका दिया हुआ गृह, शय्या, कुश, चन्दन, पत्ता, फूल, फल, दधि, भृष्ट यव, मत्स्य, मांस, दुग्ध एवं शाक त्याज्य नहीं होता। सुमन्तु कहते हैं, कि अभोज्यान्न चाण्डालादिके बागोंका फल, फूल, शाक, तृण, काष्ठादि, तड़ागस्थ जल, गोष्ठस्थ दुग्ध ग्रहण करनेसे दोष नहीं लगता।

कुलटा स्त्री, नपुंसक एवं पतित प्रभृति यदि घरपर आकर भी इन सब चीजोंको दें, तो न लेना चाहिये। इनके अतिरिक्त और कोई पापी यदि घर-पर आकर इन सब चीजोंको दे, तो ग्रहण करनेमें कोई हानि नहीं। काशीखण्डके मतसे गन्ध, पुष्प, कुश, शय्या, शाक, मांस, दुग्ध, दधि, मणि, मत्स्य, गृह, धान, फल, मूल, मधु, जल, काष्ठ प्रभृति घरपर आकर देनेसे ग्रहण किया जा सकता है।

अप्रतिघ (सं० त्रि०) प्रतिहन्ति, प्रति-हन्-ड; नास्ति प्रतिघोऽस्य, नञ्-बहुव्री०। प्रतिघातशून्य, अप्रतिबन्ध, अनुकूल, अभिमुख, चोट न पहुंचानेवाला, मुखातिब, राज़ी, जिसे गुस्सा न रहे।

अप्रतिघात, अप्रतिघ देखो।

अप्रतिद्वन्द्व (सं० त्रि०) प्रतिगतं प्राप्तं द्वन्द्वं विरोधं स्पर्धां वा, अतिक्रा० तत्; न प्रतिद्वन्द्वम्, नञ्-तत्। १ प्रतिस्पर्धाशून्य, दुश्मनोंसे अलग। २ सहचरशून्य, समकक्षरहित, बेजोड़, जिसके बराबरीवाला न रहे।

अप्रतिद्वन्द्विता (सं० स्त्री०) प्रतिस्पर्धाशून्यता, जिस हालतमें कोई बराबरी न देखाये।

अप्रतिद्वन्द्विन् (सं० त्रि०) प्रतिद्वन्द्वी विरोधी नास्त्यस्य, नञ्-बहुव्री०। विरोधीरहित, प्रतिपक्ष-शून्य, दुश्मन न रखनेवाला, जिसके खिलाफ़ कोई न रहे।

अप्रतिधुर (वै० त्रि०) भार वा शकट वहनमें अद्वितीय, जो बोझ ढोने या गाड़ी खींचनेमें बेजोड़ हो। यह शब्द प्रायः अश्वका विशेषण रहेगा।

अप्रतिधृष्टशवस् (वै० त्रि०) असह्य शक्तिशाली, जिसकी ताक़त रोकी न जा सके।

अप्रतिधृष्य (वै० त्रि०) अप्रतिहत, रोका न जानेवाला।

अप्रतिपक्ष (सं० त्रि०) नास्ति प्रतिपक्षः सदृशो वा यस्य। विपक्षहीन, अप्रतियोगी, असदृश, जिसके कोई दुश्मन या बराबरीवाला न रहे।

अप्रतिपण्य (सं० त्रि०) परिवर्तनमें देनेके अयोग्य, जो बदलने क़ाबिल न हो।

अप्रतिपत्ति (सं० स्त्री०) प्रतिपत्तिः गौरवादिः; न प्रतिपत्तिः, अभावे नञ्-तत्। १ गौरवका अभाव, बड़ाईका न रहना। २ अप्रवृत्ति, अप्रागल्भ्य, बोधका अभाव, नासमझी, न जाननेकी हालत। ३ निश्चयका अभाव, बेएतबारी, जिस हालतमें यक़ीन न आये। ४ अस्वीकार, अग्रहण, नामञ्ज़ूरी, क़बूल न करनेकी हालत। ५ पदप्राप्तिका अभाव, रुतबा न पानेकी बात। ६ स्फूर्तिका अभाव, तेज़ीका न होना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ७ गौरवादि शून्य, बेइज़्ज़त, बेहुर्मत, छोटा।

अप्रतिपद् (सं० त्रि०) प्रतिपद्यते प्राप्नोति जानाति वा; प्रति-पद्-क्विप् प्रतिपत्, न प्रतिपत् नञ्-तत्। १ विकल, न ठहरते हुवा। २ निर्द्वन्द्व, किसीपर मुनह-सर न होनेवाला, जो किसीका मुंह न देखता हो।

अप्रतिपन्न (सं० त्रि०) प्रतिपद्यते स्म, पति-पद् कर्मणि क्त; न प्रतिपन्नम्, नञ्-तत्। अज्ञात, अस्वी-कृत, अप्राप्त, अनभियुक्त, नामालूम, नातमाम, भूला हुवा।

अप्रतिप्रश्रब्ध (सं० त्रि०) अक्षय, जिसकी लियाक़त कम न पड़े। (दिव्यावदान)

अप्रतिबद्ध (सं० त्रि०) न प्रतिबद्धम्, नञ्-तत्। अनिरुद्ध, उच्छृङ्खल, बंधा न हुवा, जो मनमानी चलाता हो।

अप्रतिबन्ध (सं० पु०) १ प्रतिबन्धका अभाव, रोकका न रहना। (त्रि०) २ दबावसे अलग, जिसपर कोई ज़ोर दे न सके।

अप्रतिबल (सं० त्रि०) नास्ति प्रतिबलः प्रतिपक्षो यस्य, नञ्-बहुव्री०। अत्यन्त प्रबल, विपक्षशून्य, निहायत ताक़तवर, जिसकी कोई बराबरी न देखाये।

अप्रतिबोधवत् (सं० त्रि०) निज विवेकज्ञानरहित, जिसे अपना ख़याल न रहे।

अप्रतिब्रुवत् (वै० त्रि०) विरुद्ध न बोलते हुवा, जो विपक्ष न लेता हो, ख़िलाफ़ बात न करनेवाला।

अप्रतिभ (सं० त्रि०) नास्ति प्रतिभा नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा यस्य। १ अप्रत्युत्पन्नमति, उपस्थित बुद्धिविहीन, जो ज़हीन या हाज़िर जवाब न हो। २ प्रतिभाशून्य, बेरुवाब। ३ स्फूर्तिरहित, जिसमें तेज़ी न देख पड़े। ४ लज्जित, अधृष्ट, शर्मीला, जो बेशर्म न हो। ५ अप्रस्तुत, ग़ैरहाज़िर, तैयार न रहनेवाला।

अप्रतिभा (सं० स्त्री०) नास्ति प्रतिभा यस्याः। १ प्रतिभाशून्य वनिता, लज्जिता स्त्री, जो औरत शर्माती हो। न प्रतिभा, अभावे नञ्-तत्। २ प्रतिभा, प्रगल्भा वा स्फूर्तिका अभाव, शर्मिन्दगी। ३ स्फूर्तिका अभावरूप निग्रह-विशेष। वादी और प्रतिवादीका अभियोग आनेपर वादी जो दोष लगाता, उसके खण्डनका उपाय समझ सकते भी विचारफलकी दुश्चिन्तासे वादीकी तत्कालीन स्फूर्तिका अभाव अप्रतिभा कहलाता है।

अप्रतिम (सं० त्रि०) नास्ति प्रतिमा सादृश्यं प्रतिच्छाया प्रतिनिधिर्वा यस्य, नञ्-बहुव्री०। अनुपम, असदृश, प्रतिनिधिरहित, लासानी, अनोखा, बेजोड़, जिसकी बराबरी न हो सके।

अप्रतिमन्यूयमान (वै० त्रि०) अन्य पर क्रोध न दिखा सकनेवाला, जो किसीके नाराज़ होनेपर ख़ुद उसके बदले गुस्सा न दिखाता हो।

अप्रतिमा (सं० स्त्री०) प्रतिमायाः प्रतिकृतेः दन्तबन्धस्य गजानुकृतेर्वा अभावः, नञ्-तत्। प्रतिमा, उपमा, दन्तबद्ध वा हस्तिके सदृशका अभाव, जिस हालतमें शक्ल, शबाहत वग़ैरहका जोड़ न मिले।

अप्रतिमान (सं० त्रि०) नास्ति प्रतिमानं प्रतिकृतिर्यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ प्रतिकृतिरहित, प्रतिनिधिविहीन, प्रतिबिम्बशून्य, मुक़ाबिला न रखनेवाला, जिसका जोड़ न मिले।

अप्रतियत्न (सं० त्रि०) नास्ति प्रतियत्नं यत्र। १ अकृत्रिम, स्वाभाविक, क़ुदरती, जो बनावटी न हो। (पु०) २ स्वाभाविक स्थिति, अकृत्रिम अवस्था, क़ुदरती हालत।

अप्रतियोगिन् (सं० त्रि०) नास्ति प्रतियोगी सदृशो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ अनुपम, असदृश, बेजोड़, अनोखा। नञ्-तत्। २ समकक्षशून्य, जिसका कोई दुश्मन न रहे।

अप्रतिरथ (सं० त्रि०) प्रतिकूलो रथो यस्य प्रतिरथः, नञ्-बहुव्री०। १ प्रतियोधशून्य, विपक्षविहीन, जिसके सामने रथपर चढ़ कोई लड़ न सके। (क्लो०) नास्ति प्रतिरथो मङ्गल जनने तुल्यो यस्य। २ जिसके समान मङ्गलजनक कोई वस्तु न रहे। ३ यात्रा, सफ़र। ४ सामवेदका अवयव-विशेष। ५ मङ्गल, भलाई। ६ पुरुवंशके राजविशेष। यह रन्तिनाथके पुत्र रहे। (विष्णुपुराण)

अप्रतिरव (सं० त्रि०) अनुकूलो रवः प्रतिरवः प्रतिवाक्यं नास्ति यत्र, नञ्-बहुव्री०। अविरोधभोग, जिसके लेने-देनेमें तकरार न बढ़े। मिताक्षरामें लिखा, कि बीस वर्ष पर्यन्त कोई विषय अप्रतिरव अर्थात् अविरोधभोग रहनेसे पूर्व स्वामीकी उसमें स्वत्वहानि होती है।

"अप्रतिरवं विंशति वर्षोपभोगनिमित्ता हानिर्भवति।" (मिताक्षरा)

अप्रतिरूप (सं० त्रि०) नास्ति प्रतिरूपः तुल्यरूपो यस्य, नञ्-बहुव्री०। असदृश, तुल्यरूप न रखनेवाला, लासानी, बेजोड़, जिसकी शक्लका दूसरा न मिले।

अप्रतिरूपकथा (सं० स्त्री०) नास्ति प्रतिरूपा प्रत्युत्तरीभूता कथा यस्याः, नञ्-बहुव्रो०। उत्तररहित वार्ता, जिस बातका जवाब न निकले।

अप्रतिलब्धकाम (सं० त्रि०) असिद्धाभिलाष, जिसकी ख्वाहिश पूरी न पड़ी हो।

अप्रतिवीर्य (सं० त्रि०) नास्ति प्रतिरुद्धं वीर्यं यस्य, नञ्-बहुव्रो०। अत्यन्त पराक्रमशील, जिसकी ताक़त कोई रोक न सके।

अप्रतिशासन (सं० क्ली०) न प्रतिशासनम्, नञ्-तत्। १ आह्वानपूर्वक प्रेरणका अभाव, बुलाकर न भेजनेकी हालत। (त्रि०) नास्ति प्रतिशासनं येन यस्मै वा। २ बुलाकर न भेजा जानेवाला। नास्ति प्रति सदृशं शासनं यस्य। ३ असदृश शासन रखनेवाला, जिसकी हुकूमत बेजोड़ रहे।

अप्रतिश्रय (सं० त्रि०) नास्ति प्रतिश्रय आश्रयः यस्य, नञ्-बहुव्रो०। १ निराश्रय, बेठिकाना। नास्ति प्रतिश्रयः सभा यस्य। २ जहां सभा न रहे।

अप्रतिश्रव (सं० पु०) न प्रतिश्रवः, अभावे नञ्-तत्। १ अङ्गीकारका अभाव, इनकार, सुनाई न होनेकी हालत। (त्रि०) नञ्-बहुव्रो०। २ अङ्गीकारहीन, सुना न जानेवाला।

अप्रतिश्रुत् (सं० स्त्री०) प्रति-श्रु-क्विप् तुगागमः प्रतिश्रुत् अभावे नञ्-तत्। १ प्रतिध्वनिका अभाव, बाज़गश्तका न निकलना। (त्रि०) नञ्-बहुव्रो०। २ प्रतिध्वनिशून्य, बाज़गश्तसे खाली।

अप्रतिश्रुत (सं० त्रि०) न प्रतिश्रुतम्। जो अङ्गीकृत न हो, सुना न गया।

अप्रतिषिद्ध (सं० त्रि०) न प्रतिषिद्धम्, नञ्-तत्। अनिषिद्ध, जिसकी रोक न रहे।

अप्रतिषेध (सं० पु०) प्रतिषेधका अभाव, रोकका न लगना, मुमानियतकी नामौजूदगी।

अप्रतिष्कुत (सं० त्रि०) प्रति-स्कुञ् आप्रवणे स्कुवते-र्गत्यर्थाद्वा क्त, अषोपदेशत्वाद्व्यत्ययेन षत्वम्। अप्रतिगत, अप्रतिहत, अप्रतिस्खलित, दूर न रखा जानेवाला, जो रोका न जा सके।

अप्रतिष्ठ (सं० क्ली०) नास्ति प्रतिष्ठास्वभिन्न मन्यत् धाम यस्य, नञ्-बहुव्रो०। १ अन्यधामरहित एवं स्वीयधामस्थित ब्रह्म। (त्रि०) नास्ति प्रतिष्ठा यस्य। २ अप्रतिष्ठित, अनाश्रय, निष्फल, गौरवशून्य, नापायदार, बेसबात, फेंका हुवा, बेफ़ायदा, बदनाम। (पु०) ३ विष्णु। ४ नरकविशेष। ५ प्रतिष्ठारहित यागव्रतादि। ६ जो छन्द चार अक्षरका न हो। ७ प्रशंसाका अभाव, बदनामी।

अप्रतिष्ठा (सं० स्त्री०) अस्थिरता, अपकीर्ति, अपमान, नापायदारी, बदनामी, बेइज्ज़ती।

अप्रतिष्ठान (वै० त्रि०) १ सुदृढ़ भूमिविहीन, जो मजबूत जगह न रखता हो। (क्ली०) २ स्थिरताका अभाव, बेसबाती, नापायदारी।

अप्रतिष्ठित (सं० त्रि०) १ अनभिषिक्त, खुशी न मनाया हुवा। २ स्थितिशून्य, बेफ़ैसला, ग़ैरमजबूत। ३ अनिर्दिष्ट, नियाज़ न किया गया।

अप्रतिसङ्क्रम (सं० त्रि०) विशुद्ध, ख़ालिस, जिसमें कोई मिलावट न रहे।

अप्रतिसङ्ख्य (सं० त्रि०) न प्रतीता संख्या यस्य, गौणे ह्रस्वः। जिसकी एक-एकके हिसाबपर विशेष रूपसे संख्या न ठहरायी जाये, देखा न गया।

अप्रतिसङ्ख्या (सं० स्त्री०) विशेष बुद्धिका अभाव, ज्यादा अक़्लका न आना।

अप्रतिसंख्यानिरोध (सं० पु०) न प्रतिसंख्यया बुद्ध्या निरोधः, नञ्-तत्। किसी पदार्थका गुप्त विनाश, बेजाने किसी चीज़की बरबादी। बौद्ध, कल्पित अबुद्धि द्वारा भावका विनाश बताते हैं।

अप्रतिहत (सं० त्रि०) न प्रतिहतम्, नञ्-तत्। १ अनभिभूत, अव्याहत, रोका न गया, जो ठहराने क़ाबिल न हो। २ अविनष्ट, अछूता, जो कमज़ोर न पड़ा हो, चोट न खाये हुवा। ३ आशान्वित, उम्मेद रखनेवाला, जिसका दिल टूटा न हो।

अप्रतिहतनेत्र (सं० पु०) बौद्धोंके कोई देवता। इनकी आंख कभी नहीं झपती।

अप्रतीक (सं० त्रि०) नास्ति प्रतीकः शरीरं एकदेशो वा यस्य, नञ्-बहुव्रो०। १ एकदेशरहित, सम्पूर्ण, जिसके टुकड़े न रहें, समूचा, पूरा।

अप्रतीकार (सं० पु०) १ दमन-विहीनता, विरोध-राहित्य, रोककी नामौजूदगी, बदलेका न लिया जाना। (त्रि०) २ दमनके अयोग्य, लादवा।

अप्रतीकारी, अप्रतिकारिन् देखो।

अप्रतीक्ष (सं० त्रि०) नास्ति प्रतीक्षा यस्य; गौणे ह्रस्वः, नञ्-बहुव्री०। १ किसीकी अपेक्षा न रखनेवाला, जो पीछे फिरके न देखे। (अव्य०) २ पीछे न देखके।

अप्रतीक्षा (सं० स्त्री०) प्रतीक्षाका अभाव, राहका न देखना।

अप्रतीघात, अप्रतिघात देखो।

अप्रतीत (वै० त्रि०) पश्चात् अप्रदत्त, वापस न दिया गया।

अप्रतीतता (सं० स्त्री०) अप्रतीतत्व देखो।

अप्रतीतत्व (सं० क्ली०) १ अज्ञातस्थिति, समझमें न आनेवाली बात। २ काव्यका दोष विशेष, शायरीका कोई खास एब। सहज रचनामें कठिन संज्ञा लगानेसे यह दोष आता है।

अप्रतीति (सं० स्त्री०) न प्रतीतिः, नञ्-तत्। १ अविश्वास, नाएतबारी। २ ज्ञानका अभाव, समझ न पड़नेकी हालत।

अप्रतीत्त (सं० त्रि०) प्रति-दा-क्त प्रतीतम्, नञ-तत्। अप्रतिदत्त, वापस न दिया हुवा।

अप्रतीप (सं० त्रि०) न प्रतीपम्, विरोधे नञ्-तत्। अनुकूल, मुखातिब।

अप्रतीपदर्शिनी (सं० स्त्री०) प्रतीपं प्रतिकूलं पश्यति, प्रतीप-दृश-णिनि स्त्रीत्वात् ङीप् प्रतीपदर्शिनी, नञ्-तत्। जो चीज़ प्रतीपदर्शिनी न हो, स्त्रीका अभाव, औरतको छोड़ दूसरी चीज़।

'प्रतीपदर्शिनी वामा वनिता महिला तथा।' (अमर)

अप्रतुल (सं० क्ली०) न प्रतुलम्। १ प्रकृष्ट परिमाणका अभाव, भारी वज़नका न रहना, कमी, ज़रूरत। (त्रि०) नास्ति प्रकृष्टा तुला यस्य धनादेः, नञ्-बहुव्री०। २ उत्कर्षरहित, बेवज़न, जिसे तौल न सकें।

अप्रत्त (सं० त्रि०) प्र-डुदाञ् दाने क्त, ततो नञ्। अप्रदत्त, दी न हुयी।

अप्रत्ता (सं० स्त्री०) अविवाहिता स्त्री, कन्या, जिस औरतकी शादी न की गयी हो।

"अप्रत्ता चेत् समूढ़ान् लभते मातृकं धनम्।" (स्मृति)

अप्रत्यक्ष (सं० अव्य०) अक्षोः प्रति अव्ययी टच् प्रत्यक्षम्, नञ्-अव्य०। १ अतीन्द्रिय, इन्द्रियज्ञानके अभाव, बेजाने-बूझे, आंखके पीछे। (त्रि०) प्रत्यक्षमस्यास्तीति; अर्शादित्वादच् प्रत्यक्षं प्रत्यक्ष-विषयम्, नञ्-तत्। २ इन्द्रिय-ज्ञानके अतीत, दृष्टिसे छिपा हुवा, अदृश्य, जो मालूम न हो। ३ अज्ञात, जाना न हुवा।

अप्रत्यक्षता (सं० स्त्री०) अनुभवशून्यता, ग़ैर महसूसियत, बारीकी, मालूम न पड़नेकी हालत।

अप्रत्यक्षशिष्ट (सं० त्रि०) अस्पष्टरूपसे शिक्षित, साफ़-साफ़ तालीम न पाये हुवा, जो अच्छीतरह सिखाया न गया हो।

अप्रत्यनीक (सं० पु०) काव्यालङ्कार विशेष। इसमें रिपुको विजय कर सकनेसे उसके द्रव्यादिको तुच्छ नहीं समझते।

"रावणसो हम लरहिंगे यद्यपि बली अपार।
तीन लोकको जीतिबो भूले समर संभार॥"

अप्रत्यय (सं० पु०) न प्रत्ययः, नञ्-तत्। अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रादिपदिकम्। पा १।२।४५। १ अविश्वास, अशपथ, अज्ञान, अहेतु, अश्रद्धा, नाएतबारी, शक। २ प्रत्ययभिन्न। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ३ अविश्वस्त, जिसपर एतबार न आये। ४ अविधीयमान, जिसमें प्रत्यय न लगे।

अप्रत्ययस्थ (सं० त्रि०) व्याकरणमें प्रत्ययसे सम्बन्ध न रखनेवाला।

अप्रत्याख्यात (सं० त्रि०) विरोध न किया गया, जिसके खिलाफ़ कोई न हुवा हो।

अप्रत्याख्यान (सं० क्ली०) प्रत्याख्यानका न होना, ग़ैरतरदीदी, जो बात खिलाफ़ न हो।

अप्रत्याख्येय (सं० त्रि०) प्रति-आ-ख्या अर्हार्थे यत् प्रत्याख्येयम्, नञ्-तत्। अपरिहार्य, अत्याज्य, खिलाफ़ न कहने काबिल, जो छोड़ने लायक़ न हो।

अप्रत्यृत (सं० त्रि०) अनाक्रान्त, जिसपर हमला न हुवा हो।

अप्रथित (सं॰ त्रि॰) १ अप्रकाशित, जो खुला न हो। २ अज्ञात, अलक्षित, जो मशहूर न पड़ा हो।

अप्रदीप्ताग्नि (सं॰ पु॰) संग्रहणी रोग, बदहज़मीकी बीमारी।

अप्रदुग्ध (वै॰ त्रि॰) अन्त पर्यन्त दोहनशून्य, अख़ीर तक न दूहा हुवा।

अप्रदृपित (वै॰ त्रि॰) १ निरभिमान, गर्वरहित, बेघमण्ड, जिसे फ़ख़्र न रहे। २ अप्रतिहत, चैतन्य, जो ज़ेर न पड़ा हो, होशियार।

अप्रधान (सं॰ त्रि॰) न प्रधानम्, नञ्-तत्। १ गौण, मामूली, दूसरा। (क्ली॰) २ प्रधान कर्मका अङ्ग, ख़ास कामका टुकड़ा। ३ प्रकृति भिन्न, कुदरतको छोड़ दूसरी चीज़। ४ मन्त्रिभिन्न, जो शख़्स वज़ीर न हो। ५ परमेश्वर न होनेवाली वस्तु।

अप्रधानता (सं॰ स्त्री॰) अधीनता, नीचता, ताबेदारी, बुर्दबारी, बेहवाबी।

अप्रधानत्व (सं॰ क्ली॰) अप्रधानता देखो।

अप्रधृष्य (सं॰ त्रि॰) न प्रधर्षितुं शक्यम्; प्र-धृष शक्यार्थे क्यप्, नञ्-तत्। पराभव न पानेवाला, जो क़ायल न किया जा सके।

अप्रपदन (वै॰ क्ली॰) शरणका अयोग्य स्थान, पनाहकी ख़राब जगह।

अप्रपन्न (सं॰ त्रि॰) न प्रपन्नम्, नञ्-तत्। १ अप्राप्त, मिला न हुवा। २ अनागत, न आनेवाला। ३ अज्ञात, जाना न गया।

अप्रबल (सं॰ त्रि॰) बलविहीन, जिसके ताक़त न रहे।

अप्रभ (सं॰ त्रि॰) १ प्रभाशून्य, जो चमकीला न हो। २ सुस्त, काहिल। ३ तुच्छ, कमीना।

अप्रभु (सं॰ त्रि॰) शक्तिशून्य, अयोग्य, असमर्थ, नाताक़त, नाक़ाबिल, बेइख़्तियार।

अप्रभुत्व (सं॰ क्ली॰) शक्तिका ह्रास, कमी, कोताही।

अप्रभूत (सं॰ पु॰) अपर्याप्त, कम, थोड़ा, जो काफ़ी न हो।

अप्रभूति (सं॰ स्त्री॰) निरुपाय, अयत्न, बेरवी या कोशिशकी नामौजूदगी, जिस हालतमें दौड़ धूप न बने।

अप्रमत्त (सं॰ त्रि॰) न प्रमत्तम्, विरोधे नञ्-तत्। सावधान, अनवधानशून्य, शास्त्रविहित कर्ममें जो अनवधान न हो, ख़बरदार, चौकस, होशियार, नशा न पिये हुवा, जो मतवाला न हो।

अप्रमद (सं॰ त्रि॰) आनन्दरहित, नाख़ुश, जो प्रसन्न न हो।

अप्रमय (वै॰ त्रि॰) प्रमीयते, प्र-मी-अच् प्रत्ययः, वेदे न आत्वम्, ततो नञ्-तत्। अप्रमेय, असीम, अक्षय, ग़ैरमहदूद, लाज़वाल।

अप्रमा (सं॰ स्त्री॰) १ अमान्य नियम, जो क़ायदा माना न जाता हो। २ भ्रममूलक ज्ञान, ग़लतफ़हमी, जो समझ सही न हो।

अप्रमाण (सं॰ क्ली॰) न प्रमाणम्, विरोधे नञ्-तत्। १ प्रमा ज्ञान भिन्न भ्रमात्मक वाक्य, वेद किंवा स्मृति प्रभृतिके विरुद्ध वचन, प्रमाण रहित एवं असम्भव कथन, जिस बातका कोई सुबूत न मिले और जो मुमकिन न हो। (त्रि॰) नास्ति प्रमाणं यस्य, नञ्-बहुव्री॰। २ प्रमाणशून्य, बेसुबूत। ३ अपार, असीम, ग़ैरमहदूद, जिसकी नाप-जोख न लगे।

अप्रमाणविद् (सं॰ त्रि॰) प्रमाणकी परीक्षा पानेके अयोग्य, जो सुबूतको जांच न सके।

अप्रमाणशुभ (सं॰ पु॰) १ बौद्धोंके मङ्गलरूप देवविशेष। २ अत्यन्त मङ्गलकारक व्यक्ति, जो शख़्स निहायत भलाई करें।

अप्रमाणाभ (सं॰ पु॰) १ बौद्धोंके शोभासम्पन्न देवविशेष। २ अनन्त शोभासंयुक्त व्यक्ति, जो शख़्स हदसे ज़्यादा चमक-दमक रखें।

अप्रमाणिक (सं॰ त्रि॰) अधिकाररहित, बेइख़्तियार, जिसको कोई न माने।

अप्रमाद (सं॰ पु॰) न प्रमादः, नञ्-तत्। १ प्रमादका अभाव, अनवधानकी शून्यता, नशेकी नामौजूदगी, मतवालेपनका न होना। (त्रि॰) नञ्-बहुव्री॰। २ भ्रमशून्य, प्रमादरहित, न भूलनेवाला, जो मतवाला न हो। (अव्य॰) ३ ध्यानसे, ख़बरदारीमें, बेभूले। ४ अनवरत, लगातार, बेरुके।

अप्रमादिन् (सं॰ त्रि॰) प्रमाद्यति; प्र-मद-णिनि,

ततो नञ्-तत्। सचेत, होशियार, जो प्रमादी न हो।

अप्रमायुक (वै० त्रि०) प्रमिनोति प्रक्षिपति; प्र-डु-मिञ् प्रक्षेपणे उण्-युक्, नञ्-तत्। दीर्घ, बड़ा, जो ह्रस्व न हो।

अप्रमित (सं० त्रि०) न प्रमितम्, प्र-मा-क्त। १ अपरिमित, गैरमहदूद, जिसकी कोई नाप-जोख न हो। २ अज्ञात, अनुपलब्ध, अप्रमाणित, सुबूत न दिया हुवा, जो साबित न किया गया हो।

अप्रमीय (सं० त्रि०) प्र-मा बाहुलकात् ग्र; यक आत ईत्वं प्रमीयम्, ततो नञ्-तत्। १ अपरिमेय, अपरिच्छेद्य, निश्चित किये जानेके अयोग्य, गैरमहदूद, जिसका कोई ठिकाना न लगे।

अप्रमूर (सं० त्रि०) प्र-मूह वैचित्त्ये क्त। अमूढ़, अमूर्च्छित, होशियार, जो बेवक़ूफ़ न हो।

अप्रमृष्ट (सं० त्रि०) प्र-मृष-क्त। प्रमृष्टम्; न प्रमृष्टम्, नञ्-तत्। १ असह्य, अक्षान्त, बरदाश्त न होनेवाला, जो सहा न जाता हो।

अप्रमृष्य (सं० त्रि०) प्र-मृष-काप्, ततो नञ्-तत्। अवध्य, अक्षय, जिसे मेट न सकें।

अप्रमेय (सं० त्रि०) प्रमातुं ज्ञातुं परिमातुं वा योगग्रम्, प्र-मा-यत्; आत एत्वं प्रमेयम्, ततो नञ्-तत्। १ निश्चय ज्ञानके अविषयीभूत, अपरिच्छेद्य, जो नापा-जोखा न जा सके, साबित न होनेवाला। प्र-मि क्षेपे यत् प्रमेयम्, नञ्-तत्। २ क्षेपण करनेके अयोग्य, जो फेंकने क़ाबिल न हो। (क्ली०) ३ परब्रह्म।

अप्रमेयात्मन् (सं० पु०) १ अगम्य आत्मासम्पन्न व्यक्ति, जिस शख़्सके हौसलेका पता न लगे। २ शिव, महादेव।

अप्रमेयानुभाव (सं० त्रि०) अनन्त शक्तिशाली, जिसके ज़ोरका छोर न मिले।

अप्रयच्छत् (वै० त्रि०) १ स्थितिसम्पन्न, मुदामी। २ ध्यान देनेवाला, होशियार, जिसे ख़याल रहे।

अप्रयत (सं० त्रि०) प्र-यम-क्त प्रयतम्, ततो नञ्-तत्। अपवित्र, नापाक। "भवेदप्रयतो नरः।" (स्मृति)

अप्रयत्न (सं० त्रि०) प्र-यत-नङ् प्रयत्नः, अभावे नञ्-तत्। १ प्रकृष्ट यत्नका अभाव, कोशिशका न होना, लापरवायी, सुस्ती। (त्रि०) नास्ति प्रयत्नो यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ प्रयासशून्य, यत्नरहित, ढीला, बेपरवा, जो तदबीर न लड़ाता हो।

अप्रयाणि (सं० स्त्री०) न प्र-या-अनि। शापसे जीवनाभाव, बेहरकती, न चलनेकी हालत।

अप्रयापणि (सं० स्त्री०) गमन करानेका अभाव, आगे बढ़नेकी मुमानियत।

अप्रयावम् (वै० अव्य०) अनवरत, ध्यानसे, लगातार, बग़ैर ठहरे।

अप्रयास (सं० पु०) सुख, दुःखका अभाव, आराम, फ़ुरसत।

अप्रयुक्त (सं० त्रि०) प्रयुज्यते स्म; प्र-युज्-क्त, ततो नञ्-तत्। अनियुक्त, जो लगा न हो, ख़ाली।

"अप्रयुक्त प्रयुक्तो वा स कर्ता नामकारकः।" (रामतर्कवागीश)

अप्रयुक्तता (सं० स्त्री०) अलङ्कार शास्त्रका दोषविशेष। अलङ्कार शास्त्रमें शब्दादि जैसे प्रयोग करनेको प्रसिद्ध हो गये हैं, उसके विरुद्ध उनका अप्रसिद्ध प्रयोग पहुंचानेसे यह दोष लगेगा। जैसे, हिन्दीके कवि 'का' की जगह 'को' लिखते हैं। यदि कोई 'का' ही लिखे, तो कविको प्रसिद्धिके विरुद्ध यह काम देख पड़ेगा।

अप्रयुत (सं० त्रि०) प्र-यु मिश्रणे अमिश्रणे च क्त, नञ्-तत्। १ पृथक् रूपसे युक्त, अलग-अलग मिला हुवा। २ अपृथक् रूपसे युक्त, जो एक होमें मिला हो। (वै०) ३ अपरिवर्तित, न बदला हुवा, जो एक ही जैसा चला गया हो।

अप्रयुत्वन् (सं० त्रि०) प्र-यु पृथगभावे क्वनिप् तुगागमः, नञ्-तत्। अपृथग्भूत, लगा हुवा, जो होशियार रहता हो।

अप्रयोग (सं० पु०) प्र-युज-घञ्, ततो नञ्-तत्। प्रयोगका अभाव, अनुल्लेख, अलगाव, नामुनासबक़्त, नामुनासिबत, नादुरुस्ती।

अप्रयोजक (सं० त्रि०) प्रयोग करनेके अयोग्य, जो लगाने क़ाबिल न हो, बेसबब, फ़ज़ूल।

अप्रलम्ब (सं० क्ली०) न प्रलम्बम्, नञ्-तत्। १ अवि-

लम्ब, शीघ्रता, जल्दी, फुरती, तेज़ी। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ अविलम्ब युक्त, जल्दबाज़, फ़ुरतीला, तेज़।

अप्रवर्तक (सं० त्रि०) १ कार्यभीरु, कामसे मुंह चुरानेवाला। २ कार्यमें उत्‌साह न देनेवाला, जो काम करनेकी रग़बत न दिलाता हो।

अप्रवर्तन (सं० क्ली०) १ अप्रवृत्तिशीलता, कामकी मुंहचोरी। २ कार्यमें उत्साहका न देना, काम करनेको रग़बत न देनेकी हालत।

अप्रवर्तिन् (सं० त्रि०) न प्रवर्तते न प्रवर्तितुं शीलमस्य इति वा, प्र वृत ताच्छील्ये णिनि। १ अप्रवृत्तिशील, काममें न लगनेवाला। २ सन्तत, विच्छेदरहित, मुदामी, लगा हुवा।

अप्रवीण (सं० त्रि०) अज्ञान, अचतुर, मूर्ख, अनाड़ी, नादान, बेतमीज़।

अप्रवीत (सं० त्रि०) प्र-वी प्रजनादिषु क्त, ततो नञ्-तत्। अजात, बेहमल, जिसके पेटमें बच्चा न हो।

अप्रवृद्ध (सं० त्रि०) अधिक न बढ़ा हुवा, जो ज्य़ादातर न उगा हो।

अप्रवृत्त (सं० त्रि०) लगा न हुवा, काम न करनेवाला, जिसने कुछ करना शुरू न किया हो।

अप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) १ अप्रगमन, ठहराव। २ कार्यसे पृथक् रहनेका भाव, काम करनेका परहेज़। ३ अनुत्‌साह, जोशका न आना। ४ वैद्यमतसे—मलमूत्र आदिका दमन, पेशाब पाखाने वग़ैरहको रोक।

अप्रवेद (वै० त्रि०) नास्ति प्रवेदं प्रकृष्टलाभो यस्य। १ दुर्लभ, मुश्किलसे मिलनेवाला। २ मौन, ख़मोश, जो बोलता न हो।

अप्रशंसनीय (सं० त्रि०) प्रशंसाके अयोग्य, तारीफ़के नाक़ाबिल, जो बड़ाई पाने लायक़ न हो।

अप्रशस्त (सं० त्रि०) न प्रशस्तम्, नञ्-तत्। १ असत्, अश्रेष्ठ, झूठा, कमीना, ख़राब। २ अविहित, नाजायज़, मना, जो अच्छा न समझा गया हो। (वै०) ३ अशिचित, नातालीम याफ़ता, गुस्ताख़, जो हुक्म न मानता हो।

अप्रसक्त (सं० त्रि०) प्र-सञ्ज-क्त, ततो नञ्-तत्। १ [illegible], आग्रहवर्जित, प्रसङ्गशून्य, दिल न लगाये हुवा, जो फंसा न हो। २ मध्यम स्थितिसम्पन्न, मातदिल, जो कम-ज्य़ादा न हो।

अप्रसक्ति (सं० स्त्री०) प्र-सञ्ज-क्तिन्, अभावे नञ्-तत्। प्रसङ्गका अभाव, नारिफ़ाक़त, नाहमदमी, नावफ़ादारी, साथका न होना, जिस हालतमें कोई लगाव न रहे।

अप्रसङ्ग (सं० पु०) प्र-सञ्ज-घञ्, अभावे नञ्-तत्। १ सम्बन्धका अभाव, तअल्लुक़का न रहना, अलगाव। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ सम्बन्धशून्य, तअल्लुक़ न रखनेवाला, जिसे सरोकार न रहे।

अप्रसन्न (सं० त्रि०) न प्रसन्नम्, नञ्-तत्। १ आविल, अस्वच्छ, गन्दा, मैला, कीचड़से भरा हुवा, जो साफ़ न हो। २ अतुष्ट, स्फूर्तिरहित, नाख़ुश, नाराज़, जो उदास रहता हो।

अप्रसन्नता (सं० स्त्री०) प्रसन्नताका अभाव, नाख़ुशी।

अप्रसव (सं० त्रि०) १ प्रसवरहित, हैज़से ख़ाली, जो बच्चा देनेवाला न हो। (पु०) २ प्रसवका अभाव, हैज़का न होना, बच्चा न देनेकी हालत।

अप्रसवधर्मी (सं० त्रि०) प्रसवधर्मी न होनेवाला, जिसे हैज़ न लगे।

अप्रसह्य (सं० त्रि०) सहन करनेके अयोग्य, जो बरदाश्त आने क़ाबिल न हो।

अप्रसाद (सं० पु०) अकृपा, नाराज़गी, खुश न रहनेकी हालत, नारज़ामन्दी।

अप्रसाद्य (सं० त्रि०) प्रसादयितुं योगग्रम्, प्र-सद-णिच् योगप्रार्थे यत्, ततो नञ्-तत्। १ प्रसन्न न किया जानेवाला, जो रज़ामन्द न बनाया जाता हो। २ प्रसन्न करनेके अयोग्य, जो रज़ामन्द बनाने क़ाबिल न हो।

अप्रसाह (सं० पु०) प्रसह्यतेऽभिभूयते; प्र-सह कर्मणि घञ्, ततो नञ्-तत्। अनिष्ट करते भी अभिभूत न होनेवाला द्रव्य, जो चीज़ बुरा करते भी पामाल न हो।

अप्रसिद्ध (सं० त्रि०) प्र-सिध-क्त, ततो नञ्-तत्।

अनिष्पन्न, अविख्यात, अप्रतिष्ठित, अनिर्वाचित, अज्ञात, अपूर्व, बेफैसला, बेबुनियाद, अजनबी, नामशहूर, अजीब, नामालूम, जिसे कोई न जाने।

अप्रसिद्धपद (सं० क्ली०) अप्रचलित शब्द, नाजायज लफ़ज़, जिस शब्दका चलन उठ गया हो।

अप्रसूत (सं० त्रि०) निःसन्तान, वन्ध्य, बांझ, जिसके बालबच्चा न रहे।

अप्रसृत (सं० त्रि०) न प्रसृतम्, नञ्-तत्। विद्यासे शून्य, इल्मसे खाली, जो पढ़ा-लिखा न हो।

अप्रस्ताविक (सं० त्रि०) प्रधान विषयसे सम्बन्ध न रखनेवाला, जो खास मज़मूनसे तअल्लुक़ न रखता हो।

अप्रस्तुत (सं० त्रि०) न प्रस्तुतम्, नञ्-तत्। १ अनिष्पन्न, नातैयार, जो मौजूद न हो। २ आरम्भ-शून्य, प्रकरणसे अप्राप्त, जो बातके नामुवाफ़िक़ हो। ३ अप्रशंसित, तारीफ़ न पानेवाला।

अप्रस्तुतप्रशंसा (सं० स्त्री०) अप्रस्तुतस्य अप्राकरणिकस्य अभिधानेन प्रस्तुतस्य प्रशंसा आक्षेपः। अप्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य प्रशंसा व्यञ्जनं मध्यपदलोपो ६-तत्। अथवा प्रस्तुतव्यञ्जकम् अप्रस्तुतकथनम्। अर्थालङ्कार-विशेष। जो प्रस्तुत है अर्थात् जिसके विषयमें कहना आरम्भ किया गया है, उसके अतिरिक्त किसी विषयका वर्णन करनेसे यदि प्रस्तुत अर्थात् प्राकृत प्रारब्ध विषयका वर्णन करना हो, तो उसे अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार कहते हैं। अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार पांच प्रकारका है, यथा—१ कार्यप्रकाशके अभिप्रायसे कारणका वर्णन। २ कारण प्रकाशके अभिप्रायसे कार्यका वर्णन। ३ विशेष विषय वर्णन करनेके अभिप्रायसे सामान्य विषयका वर्णन। ४ सामान्य विषय वर्णन करनेके अभिप्रायसे विशेष विषयका वर्णन। ५ तुल्य विषय वर्णन करनेके अभिप्रायसे तुल्य विषयका वर्णन।

१। कार्य वर्णन करनेके अभिप्रायसे कारणका वर्णन—

"सुखसे मम पति करत है सखि! विदेशमें वास।
जहां कोकिला काकसम कूकत रहत सुपास॥"

पति परदेश गया है और लौटकर घर नहीं आता, यही काम वर्णन करनेकी इच्छा कविकी है। परन्तु उस प्रकृत विषयको छोड़कर, जिस देशमें पति वास करता, वहांके कोकिल-कुहुस्वरकी तुलना कौवोंकी बोलीके साथ कर पति क्यों घर नहीं लौट आता, उसके कारणका उल्लेख किया गया है। अर्थात् विरहिणी नारी जहां रहती, वहां कोकिलकी कूक हमेशा उसे व्याकुल करती है। परदेशमें जहां उसका पति है, यदि वहां कोयलोंकी बोली मीठी होती, तो वह अवश्य ही मुग्ध होकर घर लौट आता।

२। कारण वर्णन करनेके अभिप्रायसे कार्यका वर्णन।

"नभमें विधुकी देखिके कज्जल विरच्यो राहु।
महा कोपसों विरहिणी बहुरि तरेरे वाहु॥"

राधिका कृष्णके विरहमें उदास बैठी थीं, वैसे ही समय उन्हें आकाशमें चन्द्रमा दिखाई दिया। वह आंखके काजलसे राहुकी मूर्ति आंककर क्रोधके साथ चन्द्रमाके प्रति देखने लगीं।

चन्द्रमाको देखकर राधिकाकी विरहाग्नि बहुत भभक उठी थी। अतएव राधिकाके मनःकष्ट बढ़नेका कारण वर्णन करना ही कविकी इच्छा रही। परन्तु उस प्रकृत विषयको छोड़ राधिकाने चन्द्रमाको डर दिखानेके लिये जो राहुकी मूर्ति आँकी थी, उसी कार्यका वर्णन किया गया। अतएव यही व्यक्त हुआ, कि राहु उल्लिखित होनेसे चन्द्रमा ही राधिकाके अधिक दुःखका कारण रहा।

३। विशेष विषयका वर्णन करनेके अभिप्रायसे सामान्य विषयका वर्णन। यथा,—

"पादाहतं यदुत्थाय मूर्द्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः॥"

जो धूलि लात मारनेसे उड़कर मस्तकपर पड़ती, वही अचेतन धूलि अपमानित होते भी चेतन एवं सन्तुष्ट देहधारीकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

हम लोगोंकी अपेक्षा धूलि श्रेष्ठ है, यही विशेष प्रस्तुत प्रकाश करना वक्ताका अभिप्राय था। किन्तु वह—देहधारी सामान्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, इस सामान्य आकारमें वर्णन किया गया।

४। सामान्यका वर्णन करनेमें विशेषका वर्णन—

"स्रगियं यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्।
विषमप्यमृतं क्वचिद्भवेदमृतं वा विषमीश्वरेच्छया॥"

यह माला यदि प्राणनाशिनी है, तो मेरे हृदयपर रहकर मुझे नष्ट क्यों नहीं करती? अतएव ईश्वरकी इच्छासे किसी आधारमें विष अमृत होता और कहीं अमृत भी विष बन जाता है।

कहीं अहितकारी वस्तु हित और कहीं हितकर वस्तु अहित करती, यह सामान्य प्रस्तुतविषय कहनेमें विष एवं अमृत यह विशेष अप्रस्तुत कहा गया है।

५। तुल्य विषयके वर्णन करनेकी इच्छासे तुल्यका वर्णन करना दो प्रकार होगा। उसमें एक श्लेषमूलक और एक सादृश्यमूलक रहता है। श्लेषमूलक प्रयोगस्थलमें समासोक्ति अलङ्कारकी तरह कहीं केवल विशेषण पदका और कहीं श्लेष अलङ्कारकी तरह विशेष्य एवं विशेषण इन दोनों पदोंका श्लेष होगा। केवल विशेषण पदके श्लेषमें, यथा—

"सहकारः सदामोदो वसन्तश्रीसमन्वितः।
समुज्ज्वलरुचिः श्रीमान् प्रभूतोत्कलिकाकुलः।"

इस श्लोकका अर्थ दो प्रकार है। एक अर्थ आम्र वृक्षके पक्षमें और दूसरा नायकके पक्षमें पड़ेगा। आम्र वृक्षके पक्षमें—यह सहकार वृक्ष सदैव सुगन्धयुक्त, वसन्त समयके पल्लवादिसे सुशोभित, उज्ज्वल कान्तियुक्त एवं सुश्री तथा प्रचुर बौरोंसे परिपूर्ण रहता है। नायकके पक्षमें—यह सदामोदः—सर्वदा आह्लादयुक्त, वसन्तश्रीसमन्वितः—वसन्तकालकी उपयुक्त वेशभूषासे सुशोभित, समुज्ज्वलरुचिः—शृङ्गाराभिलाषयुक्त, प्रभूतोत्कलिकाकुलः—अतिशय उत्कण्ठित है। किसी नायिकाने अप्रस्तुत आम्रवृक्षके उद्देशसे इन सब बातोंको कहा था, किन्तु उसकी इन सब बातोंके श्लेषार्थसे प्रस्तुत नायककी प्रतीति पड़ी। इसीसे यह श्लेषमूलक अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार कहा जाता है।

विशेष्य श्लेष यथा,—

"पुंस्त्वादपि प्रविचलेद् यदि यद्यधोपि यायाद् यदि प्रणयने न महानपि स्यात्।
अभ्युद्धरेत्तदपि विश्वमितीदृशीयं केनापि दिक् प्रकटिता पुरुषोत्तमेन॥"

इस श्लोकके श्लेष वाक्यसे विष्णु और राजा दोनोंका बोध होगा। यथा—

चाहे पुरुषभावसे विचलित हों (अर्थात् यद्यपि स्त्रियोंका भाव धारण करें); चाहे अधोगामी बनें (अर्थात् यदि पाताल चले जायें); चाहे याञ्चाके विषयमें महत् न हों (अर्थात् यद्यपि खर्व रहें), तो भी वह जगत्का उद्धार करते हैं। पुरुषोत्तमने यह कैसी अनिर्वचनीय नीति निकाली है।

एक पक्षमें ऐसा भाव आता है, कि क्षीरोदसागर किनारे अमृत बांटते समय विष्णुने मोहिनी मूर्ति धारण की थी, जलप्लावित जगत्का उद्धार करनेके लिये वह वराह-रूप धारण कर पाताल गये थे और राजा बलिके छीने हुए राज्यका उद्धार करनेके लिये त्रिपाद भूमि मांगते समय उन्होंने वामनमूर्ति धारण की थी। अतएव इन सब विशेषणों द्वारा विशेष्य विष्णुका ही बोध हुवा।

दूसरे पक्षमें,—राजा यदि पराक्रमहीन भी हों, वा नीचता अवलम्बन करें, वा याञ्चाके लिये महिमाशून्य हो जावें, तो भी अपना राज्य उद्धार करते हैं। इस नीतिको पुरुषोत्तम नामक किसी राजाने प्रकाश किया है।

इस जगह जिस श्लेष वाक्यद्वारा विशेष करके अप्रस्तुत विष्णुका ज्ञान होता, उसी श्लेष वाक्यद्वारा विशेष करके प्रस्तुत राजा भी समझ पड़ता है। इसीसे यह विशेष्यद्वारा श्लेषमूलक अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार कहा जायेगा।

सादृश्यमूलक यथा—

"एकः कपोतपोतः शतशः श्येनाः क्षुधाभिधावन्ति।
अम्बरमावृतिशून्यं हरि हरि शरणं विधेः करुणा॥"

एक कबूतरका बच्चा है, पर सैकड़ों भूखे बाज उसपर धावा कर रहे हैं, आकाशमें कोई आवरण नहीं। हाय! इस समय विधाताकी करुणा ही उसके लिये एकमात्र शरण है।

यहां निःसहाय अप्रस्तुत कबूतरके बच्चेपर कहे हुए यह सब वाक्य वैसे ही प्रस्तुत किसी विपदग्रस्त मनुष्यके बारेमें घटते हैं।

सादृश्यमूलक अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार वैधर्म्यमें भी होता है। यथा—

"धन्याः खलु वनेवाताः कह्लारस्पर्शशीतलाः
राममिन्दीवरश्यामं ये स्पृशन्त्यनिवारिताः।"

रामके वन जानेपर दशरथ अफ़सोस करके कहते हैं,—लाल कमलयुक्त सुगन्धित जलके स्पर्शसे शीतल जो वनका वायु इन्दीवर जैसे श्यामवर्ण रामको बराबर स्पर्श करता, वही धन्य है।

यहां दशरथ, रामको गोदमें लेकर स्पर्शसुख अनुभव नहीं कर सकते, यही उल्लेख करना कविका उद्देश्य है। अतएव दशरथकी बात न कहकर ऐसा लिखा गया, कि वनका हवा रामको स्पर्श कर धन्य होती है। सुतरां इसके द्वारा दशरथ राजाको अधन्य कहा गया।

वाक्यार्थके सम्भव, असम्भव एवं उभयरूपता भेदका सादृश्यमूलक अप्रस्तुत-प्रशंसा अलङ्कार तीन प्रकार होता है। ऊपर जो उदाहरण लिखा गया, वह सम्भव विषयका है। असम्भवमें यथा—

"कोकिलोऽहं भवान् काकः समानकालिमावयोः।
अन्तरं कथयिष्यन्ति काकली-कोविदाः पुनः॥"

'मैं कोकिल और आप काक हैं। हम दोनो आदमियोंके शरीर समान काले हैं। परन्तु हम लोगोंमें प्रभेद क्या है, यह सूक्ष्म मधुर अस्फुट ध्वनिके जाननेवाले पण्डित ही कह सकते हैं।' यहां प्रस्तुत किसी दो व्यक्तिके न रहनेसे काक और कोकिलको बात कहना सम्भव नहीं हो सकता।

वाक्यकी सम्भव और असम्भव उभयरूपता, यथा—

"अन्तश्छिद्राणि भूयांसि कण्टका बहवो बहिः।
कथं कमलनालस्य माभूवन् भङ्गुरा गुणाः॥"

जिसके भीतर बहुत छेद और बाहर बहुत कांटे हैं, उस पद्मनालके गुण अर्थात् डोरे तोड़े क्यों नहीं जा सकते?

यहां कविके प्रकृत वर्णनका विषय यह है—जिस आदमीके बहुत छिद्र अर्थात् अनेक दोष और बहुत कण्टक अर्थात् अनेक शत्रु हैं, उस मनुष्यके गुण अर्थात् यश आदि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रस्तुतके आरोपव्यतिरेकमें अप्रस्तुत कमलनालके भीतरी डोरे तोड़नेका हेतु सम्भव नहीं। कांटा तोड़नेमें हेतुका सम्भव हो सकता है।

अप्रहत (सं० त्रि०) न प्रहन्यते स्म हलादिभिः; प्र-हन-क्त, नञ्-तत्। १ अकृष्ट, गैर मजरूवा, न जोती हुयी। 'खिलाप्रहते समे।' (अमर) २ नूतन, न धोया हुवा, जो छांटा न गया हो, नया। ३ प्रहत-भिन्न, मारा न गया, जिस पर मार न पड़ी हो।

अप्रहन् (सं० त्रि०) न प्रहन्ति; प्र-हन-क्विप्, नञ्-तत्। अनुग्राहक, जो मारता न हो, मेहरबानी करनेवाला।

अप्रहित (सं० त्रि०) अनुत्तेजित, बाहर प्रेरण न किया गया, अनाक्रान्त, बेतरगीब, न भेजा हुवा, जिस-पर हमला न पड़ा हो।

अप्राकरणिक (सं० त्रि०) प्रकरणे भवं ठक्, ततो नञ्-तत्। १ प्रस्तावसे बाहर, जिसकी बात न चली हो। २ ग्रन्थके अंशविशेषसे अलग, जो किताबके खास बाबमें न हो।

अप्राकृत (सं० त्रि०) प्रकृतेः स्वभावस्य इदं अण्, नञ्-तत्। १ अनैसर्गिक, असामान्य, मामूली, जो खास या बड़ा न हो। २ अस्वाभाविक, जो असली न हो। ३ विशेष, खास, गैरमामूली। ४ संस्कृत, जो नाचीज़ न हो।

अप्राग्र्य (सं० त्रि०) न प्राग्र्यम्, नञ्-तत्। अप्रधान, अधम, मामूली, मातहत, कमीना।

अप्राचीन (सं० त्रि०) १ नवीन, नया, हालका। २ जो पूर्वका न हो, पश्चिमीय।

अप्राज्ञ (सं० त्रि०) १ अशिक्षित, अबोध, नाख़ांदा, जो लिखा-पढ़ा न हो। २ चैतन्यशून्य, बेहोश।

अप्राज्ञता (सं० स्त्री०) शिक्षाका अभाव, अज्ञान, अचैतन्य, नादानी, बेहोशी।

अप्राण (सं० त्रि०) जीवनशक्तिरहित, मृत, बेजान, मुर्दा।

अप्राणिन्, अप्राण देखो।

अप्राधान्य (सं० क्ली०) नीचता, प्राधान्यका अभाव, अधीनता, बुर्दबारी, मातहती, बड़े न होनेकी हालत।

अप्राप्त (सं० त्रि०) न प्राप्तम्, नञ्-तत्। १ अलब्ध, पाया न गया, जो हाथ न लगा हो। २ अनुपस्थित, अनागत, न आया हुवा, जो हाज़िर न हो। ३ प्रमाणान्तरमें न मिलनेवाला, जो साबित न हुवा हो।

अप्राप्तकाल (सं० त्रि०) न प्राप्तः कालो यस्य। १ अप्राप्त-वयस्क, नाबालिग़। २ ऋतुविहीन, बेमौसम, बेवक्त। (क्लो०) ३ वादीका व्यत्यस्त नामक दोष विशेष, बेक़ायदा बहस।

अप्राप्तप्रापक (सं० पु०) अप्राप्तं प्रापयति बोधयति; प्र-आप-णिच्-खुल्, ६-तत्। प्रमाणान्तर द्वारा न मिलनेवाला यागादि बोधक लिङादि शब्द।

अप्राप्तयौवन (सं० त्रि०) अतरुण, नाबालिग़, जो जवान् न हो।

अप्राप्तवयस्, अप्राप्तव्यवहार देखो।

अप्राप्तव्यवहार (सं० त्रि०) न प्राप्तः व्यवहारयोग्यः कालो यस्य। १ अप्राप्तकाल, नाबालिग, क़ानूनसे जा जवान् न हो। २ षोड़श वर्षसे अनधिक वयस्क, सोलह सालसे कम उम्रवाला। नारदने व्यवस्था दी है,—

"गर्भस्थैः सदृशो ज्ञेय आष्टमात् वत्सरात् शिशुः।
बाल आषोड़शात् वर्षात् पोगण्डोऽपि निगद्यते।
परतो व्यवहारज्ञः स्वतन्त्रः पितरावृते।"

अष्टमवर्ष वयःक्रम पर्यन्त शिशुको गर्भस्थ-जैसा समझना चाहिये। सोलह वत्सर वयस पर्यन्त बाल किंवा पोगण्ड कहलायेगा। उसके बाद मनुष्य व्यवहारज्ञ होता है। पीछे माता-पिताके मर जानेसे वह स्वतन्त्र बन जायेगा।

शास्त्रमें लिखा है, कि नाबालिगका धन कोई न खर्चे। उसे बन्धु किंवा मित्रगणके पास रख छोड़ना चाहिये।

अप्राप्ता (सं० स्त्री०) न प्राप्तः विवाहकालो यस्याः, उत्तरपदलोपः। कुमारी, जिस बालिकाका विवाह-काल न पहुंचा हो, लड़की।

अप्राप्तावसर (सं० त्रि०) ऋतुरहित, बेमौसम, जिसका समय न आया हो।

अप्राप्ति (सं० स्त्री०) न प्राप्तिः, अभावे नञ्-तत्। १ अलाभ, असम्भव, अनुपपत्ति, क़िल्लत, नाइक़तिसाब, न मिलनेकी हालत।

अप्राप्य (सं० त्रि०) न प्राप्यम्, नञ्-तत्। १ दुष्प्राप्य, अप्रापणीय, जो मिलने योग्य न हो, मुश्किलसे पाया जानेवाला। (अव्य०) २ न पाकर, बेपाये हुये।

अप्रामाणिक (सं० त्रि०) प्रमाणे सिद्धं प्रमाणं वेत्ति वा ठक्, नञ्-तत्। प्रमाण-अनभिज्ञ, प्रमाणरहित, मिथ्या, अयौक्तिक, बेसुबूत, झूठ, जिसका कोई सुबूत न रहे। (स्त्री०) अप्रामाणिकी।

अप्रामाण्य (सं० क्लो०) न प्रामाण्यम्, नञ्-तत्। १ प्रमाण वा यथार्थका अभाव, सुबूत या सच्ची बातका न होना। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ प्रमाणशून्य, बेसुबूत।

अप्रामि (सं० त्रि०) प्रकर्षेण अम्यते हिंस्यते इदम्; प्र-अम-णिच् कर्मणि इण्, नञ्-तत्। अहिंसित, मारा न जानेवाला।

अप्रामिसत्य (वै० त्रि०) अप्रतिहत सत्यसम्पन्न, ध्रुव सत्यशाली, जिसकी रास्तीमें दाग़ न लगा हो।

अप्रायत्य (सं० क्लो०) अशुद्धि, नापाकीज़गी, मुंह-ज़ोरी, सरकशी।

अप्रायु (सं० त्रि०) प्र-आ यु मिश्रणे बाहुलकात् क, ततो नञ्-तत्। अप्रगत-मनस्क, अप्रमादी, मुस्तैद, तय्यार।

अप्रायुस् (सं० त्रि०) न प्रकृष्टं प्रगतं वा आयुर्यस्य। अप्रकृष्ट आयु, जो गतायु न हो, जान्दार, ताक़तवर।

अप्रासङ्गिक (सं० त्रि०) प्रसङ्गशून्य, बेसिलसिला, बेमौक़ा।

अप्रिय (सं० त्रि०) न प्रियम्, विरोधे नञ्-तत्। १ अप्रीतिकर, अनभीष्ट, अनीप्सित, नापसन्द, ना-गवार, जो अच्छा न लगता हो। २ असुहृत्, नाराज़, नाखुश, दोस्ती न रखनेवाला। (पु०) ३ शत्रु, दुश्मन। ४ यक्ष-विशेष।

अप्रियंवद, अप्रियवादिन् देखो।

अप्रियकर (सं० त्रि०) १ अकृपा देखानेवाला, जो मेहरबानी न करता हो। २ अमित्र, नाराज, जिसका दिल बिगड़ जाये। (स्त्री०) अप्रियकरा वा अप्रियकरी।

अप्रियकारिन्, अप्रियकर देखो।

अप्रियभागिन् (सं० त्रि०) हतभाग्य, कमबख्त, ज़िसका नसीब फूट जाये।

अप्रियवादिन् (सं० त्रि०) असभ्यतासे सम्भाषण करते हुवा, जो नाराज़ीसे बोल रहा हो।

अप्रिया (सं० स्त्री०) १ शृङ्गिमत्स्य। २ वोदालिमत्स्य। (त्रि०) ३ नापसन्द।

अप्रीति (सं० स्त्री०) १ प्रीतिका अभाव, स्नेहशून्यता, मुहब्बतका न रहना, नापसन्दगी, नाराजी, दुश्मनी। २ पीड़ा, दर्द, तकलीफ़।

अप्रीतिकर (सं० त्रि०) १ असन्तुष्ट, विरुद्ध, अकृपालु, नामिहरबान, खिलाफ़। २ अग्रहणीय, असन्तोषप्रद, नागवार, मुजिर, जो खुश न करता हो।

अप्रीत्यात्मक (सं० त्रि०) पीड़ायुक्त, दर्दसे भरा, जो तकलीफ़से ताल्लुक़ रखता हो।

अप्रेण्टिस (अं० पु०-स्त्री०) उम्मीदवार, बेतनखाह काम सीखनेवाला। (Apprentice)

अप्रेतराक्षसी (सं० स्त्री०) न प्रेता प्राप्ता राक्षसीम्, अत्या०-तत्। तुलसी वृक्ष। (Ocimum Sanctum)

अप्रेल (अं० पु०) अंगरेजी मास-विशेष। इस महीनेमें तीस दिन रहते हैं। (April)

अप्रेलफूल (अं० पु०-स्त्री०) अप्रेल मासका मूर्ख, जो शख्स अप्रेल महीनेकी पहली तारीखको बेवकूफ़ साबित हो। युरोपीय समाज पहली अप्रेलको आपसमें तरह-तरहकी दिल्लगी उड़ा एक-दूसरेको बेवकूफ़ बनाता है।

अप्रेमन् (सं० क्लो०) घृणा, ईर्षा, नफ़रत, दुश्मनी।

अप्रैष (सं त्रि०) प्रैष मन्त्रसे प्रार्थना न किया हुवा, जो प्रैष मन्त्रसे न मनाया गया हो।

अप्रोट (सं० पु०) भारद्वाजाख्य पक्षी, जिस चिड़ियेका नाम भारद्वाज रहे।

अप्रोषिवस् (वै० त्रि०) अदूरगत, स्थित, न गुज़रा हुवा, मौजूद, जो ठहरा हो।

अप्रौढ़ (सं० त्रि०) निरभिमान, गर्वरहित, नम्र, कातर, नागुस्ताख, बेवमण्ड, शायस्ता, डरपोक।

अप्रौढ़ा (सं० स्त्री०) १ अविवाहिता कन्या, जिस लड़कीकी शादी न हुई हो। २ जिस कन्याका विवाह हो गया, किन्तु वयसको न पहुंची हो, कम उम्रमें व्याही गयी लड़की।

अप्लव (सं० त्रि०) १ नौशून्य, जहाज न रखनेवाला। २ संस्तरणरहित, जो न तैरता हो।

अप्व (सं० त्रि०) अप-वेञ्-ड, अपवयति अपगमयति सुखं प्राणांश्च। १ भय, खौफ़। २ व्याधि, बीमारी।

अप्वा (सं० स्त्री०) आप्नोति, आप-वन्। ग्रीव जह्वा-ग्रीवाप्वामीराः। उण् १।१५२। १ वायु, हवा। २ व्याधि, बीमारी। ३ भय, खौफ़।

अप्स (सं० क्लो०) आप बाहुलकात् स। १ रूप, रङ्ग। २ रस, अर्क। ३ जल देनेवाला वस्तु, जो चीज़ पानी बख्शती हो। ४ अविनाश, बरबाद न करनेकी हालत।

अप्सर (सं० पु०) जलमें गमन करनेवाला जीव, जो जानवर पानीमें चलता हो।

अप्सरःपति (सं० पु०) अप्सरसां पतिः, ६-तत्। स्वर्गवेश्याका पति, परियोंका मालिक, इन्द्र।

अप्सरस् (सं० स्त्री०) अद्भ्यः सरन्ति, अप्-सृ-असुन्। स्वर्गकी वेश्या, आस्मान्‌की परी। सागर-मन्थनकालमें समुद्रजलसे निकलने कारण इनका नाम अप्सरा पड़ा। अप्सरस् शब्द नित्य बहुवचनान्त है। किन्तु क्वचित् इसका एकवचनान्त प्रयोग भी देख पड़ेगा। रामायणमें लिखा, कि इनकी संख्या साठ करोड़ है। 'षष्टि कोट्यो भव' त्तासामप्सरणां सुवर्चसाम्।' किन्तु साठ करोड़ नाम कहीं नहीं देखते। घृताची, मेनका, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा, सुकेशी, मिश्रकेशी, मञ्जुघोषा, अलम्बुषा, विश्वाची, पञ्चचूड़ा, भानुमती, अबला, रम्या, पुञ्जिकास्थला, महारङ्गवती, विद्युत्पर्णा, अरुणा, रक्षिता, केशिनी, सुवाहु, सुरता, सुरसा, सुप्रिया, अतिवाहु, उग्रम्पश्या, उग्रजित् प्रभृति नाम सुननेमें आये हैं।

तैत्तिरीय आरण्यकमें लिखा है, कि प्रजापतिके मांससे अरुणगण, केतुगण एवं वातरशनगण निकले थे। उन्हीं अरुणने केतु अञ्जलिसे जल उठा ऊपरको फेंक दिया। फेंककर वह बोल उठे,—'देवगण ऐसे ही बनें।' उसी समय देवगण, मनुष्यगण, पितृगण गन्धर्वगण एवं अप्सरोगण उत्पन्न हुये। उसीको ऊर्ध्वदिक् कहते हैं।

"अथारुणः केतुरुपरिष्टादुपा दधात्। एवा हि देवा इति। ततो देवमनुष्याः पितरः। गन्धर्वाप्सरसश्चोदतिष्ठन्। सोर्ध्वा दिक।" (१।२३।७)

अथर्ववेदमें बताया, कि अप्सरा गन्धर्वको स्त्री हैं। गन्धर्व पहले पृथ्वीपर पहुंच मनुष्यगणको कुल-कामिनी चुरा ले जाते थे। किन्तु अप्सरोगणको पाकर उन्होंने वह दुष्टकर्म छोड़ दिया। महाभारतमें अप्सरोवंशका विषय वर्णित है। सिवा इसके कभी किसी महात्माके तपस्या आरम्भ करते ही इन्द्र उस तपस्यामें विघ्न डालनेका प्रायः सर्वत्र ही स्वर्गको विद्याधरियोंको भेज देते थे। (ऋक् ७।३३।१२।) कहते हैं, कि उर्वशीसे वशिष्टका जन्म हुवा।

अप्सरा देखनेमें साधारण प्रेत-जैसी होती हैं। किन्तु यह मायारूपिणी रहें, इच्छा आनेसे मनोहर रूप भी बना सकेंगी। अथर्ववेदमें देखते, कि इन्हें पासे खेलनेकी अतिशय आसक्ति रहती है। मनमें आनेसे यह मनुष्यको भाग्यवान् बना देंगी। पहले लोगोंको विश्वास रहा,—मनुष्यको भूतकी तरह अप्सरा भी मिल जाती हैं। अप्सराके फेरसे लोग उन्मत्त हो जाते रहे। इसलिये भूत उतारनेकी तरह रोगीकी अप्सरा भी दूर करना पड़ती थीं।

अप्सरोगण अक्षक्रीड़ामें ऐसे प्रवीण रहे, कि वैदिक समयमें जो पासे खेलता, वह उनका नाम ले लेता था।

"यद् हस्ताभ्यां चकृम किल्बिषाण्यक्षाणां गत्नुमुपलिप्समानाः।
उग्रम्पश्ये उग्रजितौ तदद्याप्सरसावनुदत्तामृणं नः॥" (अथर्व ६।११८।१)

हे उग्रम्पश्ये एवं उग्रजित् अप्सरा! हमने पासे फेंक हस्त द्वारा जो पाप पहुंचाया, अद्य वही ऋण चुका दीजिये। दूसरी जगह लिखा है,—

"उद्भिन्दतीं सञ्जयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्।
ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे॥
विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम्।
ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे।
या आयैः परिनृत्यति आददाना कृतं ग्लहात्।
सा नः कृतानि सीषति प्रहामाप्नोतु मायया॥
सा नः पयस्वत्यैतु मा नो जैषुरिदं धनम्।
या अक्षेषु प्रमोदन्ते शुचं क्रोधञ्च बिभ्रति।
आनन्दिनीं प्रमोदिनीमप्सरां तामिह हुवे।"

मैं अक्षक्रीड़ाप्रवीणा अप्सराको बुलाता, वह आकर उद्भेद करतीं, जय पातीं एवं अक्षक्रीड़ामें दान जीततो हैं। मैं अक्षक्रीड़ाप्रवीणा अप्सराको जहां बुलाता, वह चयन करती, छुड़ा देती और अक्षक्रीड़ामें दान जीतती हैं। जो अक्ष लेकर नाचती और अक्षक्रीड़ामें वाजि जीततीं, वह हमें लाभ पहुंचायें और वाजि जिता दें। वह प्रचुर खाद्य ले हमारे पास आयें। खेलाड़ी जिसमें हमारा धन जीतने न पायें। हम इस जगह आमोदिता अप्सराको बुलाते हैं; वह अक्षक्रीड़ामें आमोद पातीं और शोक एवं क्रोध देखाती हैं।

अप्सरस्तीर्थ (सं० पु०-क्ली०) अप्सरसां तीर्थः, ६-तत्। १ अप्सरासे देखा गया कोई तीर्थ किंवा अप्सराके गङ्गाजलमें उतरनेकी सिढ़ी। (त्रि०) अप्सरामिव तीर्थं दर्शनं यस्याः, बहुव्री०। अप्सरा जैसे रूपवाली, जिसकी शक्ल परीसे मिले।

अप्सरा (सं० स्त्री०) स्फुर स्फुलने अप्सु, प्रसरः रूपं यस्याः नञ्-५-बहुव्री०। १ अपनी अपेक्षा अन्य किसीका रूप न रखनेवाली स्त्री, जिस औरतके बराबर कोई खूबसूरत न रहे। अथवा, रूपमस्त्यस्याः; अप्स कुञ्जादित्वाम् प्राशस्त्य-र। २ स्वर्गको वेश्या, विद्याधरी, परी।

अप्सरापति (सं० पु०) १ अप्सराका अधिपति, परियोंका राजा। २ शिखण्डिन् नामक गन्धर्व विशेष।

अप्सरायमाणा (सं० स्त्री०) अप्सरस्-क्यङ् कर्तरि शानच्। अप्सरा-जैसी सुन्दर स्त्री, जो औरत परीके बराबर खूबसूरत हो।

अप्सव (सं० त्रि०) अप्सं जल रसं वाति हिनस्ति वा-क, ६-तत्। जलरसशून्य, जिसमें पानीका मज़ा न रहे।

अप्सव्य (सं० पु०) अप्स जले भवो दिगादित्वात् यत्। जलजात, जलमें उत्पन्न हुवा, पानीसे निकला।

अप्सस् (सं० क्ली०) न प्साति, प्सा-असुन् बाहुलकात् आकार लोपः। १ रूप, शक्ल, सूरत। २ कपोल, गाल, रुखसार।

अप्सा (सं० त्रि०) आपो जलानि सनोति ददाति, अप्-सन्-विट्। जलदाता, पानी देनेवाला।

अप्सु (सं० त्रि०) प्सु रूपं नास्ति यस्य, नञ्-

बहुव्री०। १ रूपहीन, बदसूरत। २ भोजनविहीन, जिसके पास खाना न रहे।

अप्सुक्षित् (सं० त्रि०) अप्सु अन्तरिक्षे क्षियति निवसति; अप्सु-क्षि-क्विप्, अलुक्-समास। अन्तरीक्षवासी, आस्मान्में रहनेवाला।

अप्सुचर (सं० त्रि०) अप्सु चरतीति; चर-ट, अलुक् समास। जलचर, पानीमें चलनेवाला।

अप्सुज (सं० त्रि०) अप्सु जले अन्तरीक्षे वा जायते; जन-ड, अलुक्-समास। १ जलजात, पानीमें पैदा हुवा। २ अन्तरिक्षजात, जो आस्मान्से निकला हो।

अप्सुजा (सं० स्त्री०) अप्सु जायते; जन-विट् अलुक्-समास। १ अश्वी, घोड़ी। २ वेतसलता। (त्रि०) ३ जलजात, पानीसे निकली।

अप्सुजित् (सं० त्रि०) अप्सुन् असुरान् जयति क्विप्, अलुक् समास। असुरजेता, राक्षसोंको जीत लेनेवाला।

अप्सुमत् (सं० त्रि०) अप्सु आपः जलानि सन्त्यस्य मतुप्, अलुक्-समास। १ यथेष्ट जल-लाभकर्ता, काफ़ी पानी पानेवाला। २ जलीय पदार्थयुक्त, पानीकी चीजोंपर क़ब्ज़ा रखनेवाला। २ जलमें अपना स्वभाव न खोनेवाला, जो पानीमें अपनी क़ुदरत न छोड़ता हो। ३ अप्सु सम्बन्धीय।

अप्सुमति (सं० त्रि०) १ जलीय शक्तिसम्पन्न, जिसमें पानीकी चीजें मिलें। २ जलमें अपनी शक्ति न खानेवाला, जो पानीमें अपना ज़ोर क़ायम रखता हो।

अप्सुयोग (सं० पु०) अप्सु योगः, ७-तत्। जलका संयोजक बल, पानी मिलनेकी ताक़त।

अप्सुयोनि (सं० त्रि०) अप्सु जले योनिरुत्पत्तिर्यस्य, अलुक्-समास। जलजात, पानीसे निकला। (पु०) २ अश्व, घोड़ा।

अप्सुवाह (सं० त्रि०) जलमें हांकते हुवा, जो पानीमें कोई सवारी लिये जाता हो।

अप्सुषद् (सं० त्रि०) अप्सु जले सीदति, सद्-क्विप् षत्वम्। जलमें रहनेवाला, जो पानीमें रहता हो।

अप्सुषोम (सं० पु०) अप्सु अद्भिः सोम इव पवित्रः सत्वम्। १ पानीका सोम। २ जलपूर्ण पात्रविशेष, पानीसे भरा प्याला।

अप्सुसंशित (सं० पु०) अप्सु अद्भ्यः संशितः, अलुक् समास। १ जल-निमित्तीभूत विष्णुका विचरणस्थान अन्तरिक्ष। (त्रि०) २ जलोत्थित, पानीसे भड़का।

अफ़ग़ान (अ० पु०) अफ़ग़ानस्थानका बाशिन्दा, अफ़ग़ानस्थानमें रहनेवाला आदमी। अफ़ग़ानस्थान देखो।

अफ़ग़ानस्थान—मध्य एशियाका देश विशेष। बदख़्शान् और काफ़िरस्थानको मिला इसका क्षेत्रफल (रक़बा) २४५००० वर्ग मील, आबादी पचास लाख है। अफ़ग़ानस्थानसे उत्तर रूसी-तुर्कस्थान, पश्चिम फ़ारस और दक्षिण-पूर्व काश्मीर सीमाको बांधे है। यह रूसी और भारतीय साम्राज्यके बीचमें होनेसे अधिक प्रयोजनीय समझ पड़ेगा। सन् १८७८—८० ई० में दूसरा अफ़ग़ान-युद्ध छिड़नेसे इस प्रान्तकी भौगोलिक स्थिति वैज्ञानिक रूपसे मालूम करनेमें सुभीता हुवा। सन् १८८४-८६ ई० में रूशियन-अफ़ग़ान-बाउण्डेरी कमिशनने उत्तरीय-सीमान्तका नक़शा उतरा था। सन् १८९३ ई० में जो डुरण्डसन्धि हुयी, उसने दक्षिण और पूर्व सीमाप्रान्तके पठानोंका बंटवारा कराया। अन्तको सन् १९०४-५ ई० में पारसीबलूच-कमिशनने इसकी पश्चिमीय सीमाका भी मुंह बना-चुना दिया। किन्तु हम्तदानकी ओर सीमाका कोई ठिकाना नहीं।

परिमाण और सीमा

अफ़ग़ानस्थान निम्नलिखित भागमें विभक्त है,—उत्तरीय अफ़ग़ानस्थान या काबुल, दक्षिणीय अफ़ग़ानस्थान या क़न्धार, हेरात, और अफ़ग़ानतुर्कस्थान। गिलजायी, हज़ारा, ग़ज़नी, जलालाबाद और काफ़िरस्थान इसके करद राज्य हैं। हेरातमें ईरानी और अफ़ग़ान-तुर्कस्थानमें उसबेग रहते हैं, जो अफ़ग़ान सरकारको ज़्यादा नहीं चाहते। काबुल, हेलमन्द, हरी-रूद और ओक्सस् इस देशकी प्रधान नदी हैं। अफ़ग़ानस्थान अधिकतर पार्वतीय और मरु देश है; किन्तु बीच-बीच समान

विभाग

भूमि भी कितनी ही मिलती, जिसमें मेवा बहुतायतसे उपजता है। हिन्दूकुश ही यहां सबसे बड़ा पहाड़ है, जो काबुलके उत्तर-पश्चिम कोहेबाबा और हरी-रूदसे मशद तक फ़ीरोज़-कोह कहाता है।

कोहे-बाबा और हिन्दूकुशको पारकर तीन बड़ी राहें काबुलसे अफ़ग़ान-तुर्किस्थान और बदख़्शान्को गयी हैं। बेगारी मज़दूर क़ाफ़िला चलनेके लिये

राह

राहकी बर्फ़ हठाया करते हैं। भारतसे काबुल ख़ैबर, कुरम और टोचीकी राह जायेंगे। यहां अंगरेज़ी सिपाही यात्रियोंकी रक्षा करते हैं। अफ़रीदी तीरहके बीचसे भी सड़क निकली है। जलालाबाद और काबुलके बीच दो राहें हैं। अगले ज़मानेमें पेशावरसे काबुल जानेकी ख़ैबर ही खास राह न रही, लघमन, कुनार, बाजौर और मालकन्दकी राह भी आना-जाना होता था। राहमें बहुत ऊंची-ऊंची घाटियां पड़ेंगी। किन्तु भारत और अफ़ग़ानस्थानके बीच व्यापार गोमलकी राह ही अधिक चलता है। इसमें अधिक ऊंची घाटियां नहीं देखनेमें आतीं।

इस देशमें शीत अधिक पड़ता है। ओक्सस् प्रान्तमें समय पर गर्मीका ज़ोर भी ख़ूब बढ़ेगा। काबुलमें दो-तीन महिने बर्फ़ जमा रहता है। कहते,

जलवायु

कि अगले दिनों कई बार ग़ज़नीके सम्पूर्ण मनुष्य जाड़ा खाकर मर चुके हैं। सन् १७५० ई० में जब अहमद शाहकी फ़ौज ईरानसे वापस आती, तब अट्ठारह हज़ार सिपाही जमकर बर्फ़ बन गये थे। जाड़ेमें हरीरूद नदीका पूर्वीय तट बर्फ़ पड़नेसे ऐसा कड़ा हो जाता, कि लोग मैदान-पर जैसे चलते-फिरते हैं।

अफ़ग़ानस्थान शुष्क प्रदेश है। पानी अधिक न पड़ेगा। उत्तरकी ओर जाड़ेमें और दक्षिणकी ओर गर्मीमें वृष्टि होती है। तूफ़ानका ज़ोर रहेगा।

प्राकृतिक अवस्था

बाबर बादशाहने काबुलके बारमें ठीक ही कहा था,—"यहांसे एक मञ्ज़िलकी दूरीपर कहीं बर्फ़ कभी नहीं गिरता और कहीं दो घण्टे चलकर ही ऐसी जगह मिलती, जहां बर्फ़ हमेशा जमा रहता है।"

अफ़ग़ान देखनेमें जैसे हृष्ट-पुष्ट होते, वैसे रोगसे मुक्त नहीं रहते। ज्वर अनेक रूपसे फैले और

रोग

वसन्त-ऋतुमें उदरामयादि होगा। गर्मीमें छतपर सोनेसे गठिया और ऐंठन बढ़ जाती है।

अफ़ग़ानस्थानमें कई जाति रहती हैं। अफ़ग़ान अपनेको दुरानी और गिल्ज़ायी तुर्की बतायेंगे। हज़ार,

जाति

चहारमक, ताजक, अज़बग और काफ़िर वग़ैरह छोटी-छोटी जाति हैं। यहांके सभी निवासी पुख़्तनवाली रीतिको मानते, जो राजपूतोंको चाल-ढालसे मिलती है। इनकी जातिका विभाग इनकी रहन-ठहनको भी देख किया जा सकता है। कुछ अफ़ग़ान घरमें और कुछ जङ्गली डेरेमें रहेंगे।

घरमें रहनेवाले अफ़ग़ान खेती और सिपाह-गिरी करते, दूसरा काम उन्हें नहीं मालूम। यह सुन्दर सुपुष्ट होते, दाढ़ी फहराती, मत्थेसे चोटी तक सामने बाल बनते और इधर-उधरके बाल कन्धेपर लटका करते हैं। इनका क़दम मज़बूत पड़े और देखनेमें घमण्डी और गुस्ताख़ मालूम होंगे। स्त्रियां भी सुरूपा होतीं और बालोंमें झब्बे बांधती हैं।

अफ़ग़ान बचपनसे ही ख़ून बहानेकी आदत डालते, मरते-मारते, बहादुरीसे झपटते; किन्तु हाथ

अफ़ग़ानकी प्रकृति

ख़ाली पड़ते ही झटसे हिम्मत खो बैठते हैं। यह क़ानून क़ायदेको बिलकुल नहीं मानते, मतलब निकलनेसे सीधे-सादे समझ पड़ते; लेकिन काम बिगड़नेसे आग बबूला बन जाते हैं। यह धोकेबाज़, घमण्डी, दस न होनेवाले और ज़िद्दी रहेंगे। अपनी जान देकर भी यह अपना मतलब निकालते हैं। इनका जैसा अपराध कहीं देख नहीं पड़ता। इन्हें सज़ा भी कड़ी मिलती है। आपसमें ही इनके झगड़ा, साज़िश और नाएतबारी चले, और बराबर मार-काट होगी। मुसाफ़िर अपने आने-जानेका समय और स्थान हमेशा छिपाता है। अफ़ग़ान असलमें कोई शिकारी चिड़िया होंगे।

यह घरमें आये परदेशीका यद्यपि सम्मान करते, तथापि अपने पड़ोसीको चलनेवाले शिकारकी खबर दे देना मुनासिब समझते और अपना घर छोड़ने पर प्रायः उसे पकड़ कर लूट लेते हैं। अपराध दबाना और महसूल मांगना यह अत्याचार समझेंगे।

अफ़ग़ान इसलाम या मुसलमानी धर्म मानते हैं। दुनियामें रूमके नीचे अफ़ग़ानस्थान ही सबसे बड़ी मुसलमानी बादशाहत है। अफ़गानोंमें सुन्नी अधिक और शीया कम मिलेंगे। किन्तु उनके बीच भारतकी तरह कोई झगड़ा नहीं पड़ता। काफ़रस्थानके काफ़िर ही मुसलमान नहीं होते। ग़ाज़ी लोग अपना ही जातिकी बढ़ती मनाते हैं।

धर्म्म

पढ़े-लिखे अफ़ग़ान और अदालत-कचहरीकी भाषा ईरानी है। किन्तु पश्तोका ज़ोर बढ़ते मिलेगा। पश्तोका कोई इतिहास है, जिसमें लिखा, कि सन् १४१३—२४ ई० में यूसफ़ज़ाइयोंके राजा शेख़ मालीने स्वातको जीता था। सन् १४९४ ई० में उन्होंकी जातिके काजू खां गद्दीपर बैठे, जिनके शासनकालमें बुनेर और पञ्जकोर जीता गया और उन्होंने उसका इतिहास भी लिखा। अफ़ग़ान साहित्य कवितासे भरापूरा है। सन् ई०के १७ वें शताब्दमें अबदुर-रहमान सुप्रसिद्ध कवि हुये थे। अफ़ग़ान-साम्राज्य-संस्थापक अहमदशाहने भी कविता ख़ूब बनायी। वीररसका काव्य अधिक मिलेगा।

साहित्य

अफ़ग़ानस्थानमें प्राथमिक ही शिक्षा दी जाती है। उच्च शिक्षाके लिये कालेज और स्कूल नहीं देख पड़ते। किन्तु प्रत्येक गांवमें मुल्ला बच्चोंको लिखना-पढ़ना सिखाया करते हैं। सिवा इसके लड़कोंको कसरत करायें और घोड़ेपर चढ़ना भी सिखायेंगे। मुल्ला और वैद्य उच्च शिक्षा प्रदान करते, किन्तु दोनो कुछ भी नहीं समझते।

शिक्षा

अमीर ही अफ़ग़ानस्थानके एकमात्र स्वतन्त्र प्रभु हैं, जिन्हें पुरुषानुक्रमसे राज्य मिला करता है। यह पांच प्रदेशोंमें विभक्त है,—काबुल, तुर्कस्थान, हेरात, कन्धार और बदख़्शान्। प्रत्येक प्रान्तमें अमीरका एक नायब रहता, जो अपने कार्यका उत्तरदायी ठहरता है। अमीरके दरबारमें सरदार, खान् और मुल्ले रहेंगे। अमीर ही अपने देशके प्रधान शासनकर्ता हैं। प्रत्येक मनुष्य अमीरसे प्रार्थना कर सकेगा। अमीरके नीचे क़ाज़ी और क़ाज़ीके नीचे कोतवाल काम चलाता है। मालगुज़ारी, चुङ्गी, डाकखाने और जङ्गी कामका महकमा अलग-अलग रहेगा। अमीर अबदुर रहमान क़ानूनका कितना ही सुधार कर गये हैं। अमीरकी फौजमें कोई पचास हज़ार सिपाही हों, जो जगह जगह बंटे मिलेंगे। अमीर अबदुर रहमान कहते थे,—"हेरातकी रक्षाके लिये एक सप्ताहमें हम एक लाख सिपाही भेज सकते हैं।" उन्होंने सत्रह और सत्तरकी अवस्थाके बीचवाले आठ आदमियोंमें एक आदमीको ज़बरदस्ती युद्धकी शिक्षा देनेका नियम निकाला था। फ़ौजको तनख़ाह वक़्पर नहीं मिलती। काबुलके अस्त्रागारमें रोज़ बीस हजार कारतूस, पन्द्रह बन्दूक़ और दो तोप बनती हैं। बलखके पास हेरात और देहदादी दो क़िले खड़े हैं।

शासन

अफ़ग़ानस्थानकी आर्थिक दशा ठीक नहीं। इसका कारण व्यापारकी कमी होगी। मालगुज़ारी का कोई ठिकाना नहीं; किन्तु डेढ़ करोड़ रुपयेसे ज्यादा कभी नहीं मिलता। भारत-सरकार अमीरको शान्ति रखनेके लिये अट्ठारह लाख रुपये साल देती है।

आय

यहां धातु कम निकलेगा। लघमन और उसके पासवाले जिलोंमें कुछ सोना पैदा होता है। फरमुली ज़िलेसे लोहा काबुल जाये, जहां उसका आधिक्य मिलेगा। बमियन और हिन्दूकुशके दूसरे भागोंमें भी कच्चा लोहा भरा पड़ा है। तांबा कई जगह मिलता, किन्तु उसे कोई नहीं निकालता। शीशा भी कई जगह मिलेगा। सुरमे और गन्धककी कोई कमी नहीं पाते। हजारे और पीरकिसरीमें नौसादर होता है। खड़िया-मट्टी क़न्धारके मैदानमें ढेरकी ढेर देखेंगे। जुरमत

धातु

और ग़ज़नीके पास कोयला निकलता है। दक्षिण पश्चिम अफ़ग़ानस्थानमें शोरा खूब पायेंगे।

वृक्षलतादिके विषयमें यह देश बहुत विचित्र है। कहीं तो सघन वन अपनी शोभा देखाये और कहीं पत्तीका नाम भी न सुन पड़ेगा।

फ़सल

देशके अधिक भागमें दो फसल होती हैं। गर्मीमें गेहूं, यव और मसूर कटेगा। वसन्त ऋतुमें चावल, बाजरा, मकई, ज्वार, तम्बाकू, सलगम और चुकन्दर होता है। ऊंचे पहाड़ पर एक ही फसल उपजेगी। शहरोंके पास खरबूज़, तरबूज़, ककड़ी वग़ैरह खूब बोते और उसे निराली फसल समझते हैं। उपजाऊ हो जमीनमें ऊख लगायेंगे। रुई बहुत उपजती है। गजनी, क़न्धार और पश्चिममें मञ्जीठ खूब हो और भारतको भेजा जायेगा। केशर भी लगाते और बाहर चालान करते हैं।

मेवेकी फ़सल सबसे अच्छी होगी। ताज़ा मेवा लोग खाते और सूखा बाहर भेजते हैं। काबुलमें शहतूत सुखा जाड़ेके खानेको रख छोड़ेंगे। प्रायः लोग शहतूतकी रोटी बना-बना खाया करते हैं। अङ्गूर खूब पैदा होगा।

अफ़ग़ानस्थानका ऊंट बहुत मज़बूत होता और बड़ी होशियारीसे पाला जाता है। कितने ही घोड़े यहांसे भारत बिकने आयेंगे। किन्तु सबसे अच्छे घोड़े अफ़ग़ान रिसालेके लिये रखते हैं। यहां दो तरहका दुम्बा मेढ़ा मिलेगा। एकका पशम सफ़ेद और दूसरेका काला होता है।

वाणिज्य

उत्तरीय प्रान्तमें चमड़ेका रोज़गार खूब चलेगा। हेरात और क़न्धारमें रेशमके गलीचे और जालियां अच्छी तैयार होती हैं। हेरात और क़न्धारका ऊन भी मशहूर पड़ेगा। क़न्धारको राह ऊन, रेशम, सूखा मेवा, मञ्जीठ और हींग भारत आती है।

पुराकीर्त्ति

काबुल नदीके किनारे बौद्ध समयके कितने ही चिह्न मिलेंगे। बमियनमें दीवार पर खुदी बौद्ध मूर्ति प्रसिद्ध हैं और हैबकमें बौद्धोंके कितने ही प्रधान वस्तु बचे हुये पड़े हैं। काबुलसे उत्तर कोहदामनमें कई पुराने शहरोंके निशान पायेंगे। शाक्यमुनिके भिक्षा मांगनेका पत्थरवाला कमण्डल क़न्धारकी किसी मसजिदमें रखा है।

गन्धार देखो।

इतिहास

अफ़ग़ान इतिहास-लेखक अपनेको इज़रायलका सन्तान बताते हैं। सन् ई०से ५०० वर्ष पहले दरायुस् विस्ताश्पके (Darius Hystaspes) समय अफ़ग़ानस्थानमें सारङ्गी, अरिय, सत्तगिदीय, अपरित, ददिक, गन्धारी और पक्तीस लोग अलग-अलग राज्य करते थे। सन् ई० से ३१० वर्ष पहले ष्ट्राबोने सिन्धु नदके पश्चिम मौर्यसम्राट्को कुछ भूमि दहेजको भांति दी। इससे कोई साठ वर्ष बाद बक्ट्रियामें यूनानी वंश प्रतिष्ठित हुवा होगा। नहीं कह सकते, इस वंशने कितना राज्य फैलाया था; किन्तु जो पुराने सिक्के मिलते, उनसे प्रमाणित होता, कि यूनानी बहुत चढ़े-बढ़े रहे। सन् ई०से १६० वर्ष पहले बक्ट्रियासे निकाले जानेबाद देमेत्रियसने अरखोसियेमें वैसे ही राज्य किया, जैसे समरक़न्दसे निकाले जाने बाद काबुल पर बाबरने अपना दबदबा जमाया था। सन् ई०से १४७ वर्ष पहले हेलिवोक्लिसके अधीन पार्थिवनोंने काबुल जीता और भारततक बढ़ आये। सन् ई०से १२६ वर्ष पहले मेनन्दरने भारतपर आक्रमण मारा और उसी समय यूची जातिने ओक्सस किनारे सोगदियानामें अपनेको पांच भागमें बांट प्रतिष्ठित किया था। सन् ई० लगते समय कुषन नामक इनके प्रधानने हिन्दूकुशसे दक्षिण सिन्धुतक भूमि जीती। सन् ई० से १२५—५८ वर्ष पहले कनिष्क नृपतिने अपर ओक्सस, काबुल, पेशावर, काश्मीर और भारतमें भी अपना आधिपत्य फैला दिया था।

सन् ६३०—६४५ ई० में चीनपरिव्राजक युयन् चुअङ्गने तुर्की और भारतीय राजावोंको अफ़ग़ानस्थानमें राज्य करते पाया। यद्यपि सीस्थान और अरकोसियामें बहुत पहले मुसलमानोंका राज्य रहा, किन्तु वह अफ़ग़ानस्थानका दूसरा भाग जीत न सके थे। सन् ई०के १० वें शताब्दमें हिन्दूवोंका राज्य

मिटा और ग़ज़नीमें तुर्की सुबुक्तगीनकी राजधानी बनी। सन् ई० के १२वें शताब्द तक उनके लड़के महमूद और उसके सन्तानका दबदबा रहा, जिस समय गज़नी एशियामें सबसे अच्छा शहर बन गया था। इसके बाद अलाउद्दीन् गोरीका आधिपत्य हुवा। उन्होंने अपना भाई बहरामके हाथों मारे जाते गजनीका मटियामेट किया था। अन्तको ख्वारिज़्म राजवंशके हाथ यह देश गया। इसी वंशके जलालुद्दीनने चङ्गेज खान्की चढ़ाई रोकी थी। सन् १२२१ से १४२१ तक तातारों और १४५०से १५२६ तक लोदी पठानोंका राज्य रहा। पीछे पश्चिम-अफ़ग़ानस्थानमें कुर्त राजा बने, और गोर, हेरात और क़न्धारपर शासन चलाया।

सन् १५०१ ई०में अफगानस्थान मुगल बादशाह बाबरके अधिकारभुक्त हुआ। सन् १५२२ ई०में बाबरने मुगल वंशीय अरघूनोंसे क़न्धारको छोड़ाया था। सन् १५२६ ई० की २१वीं अप्रेलको पानिपथमें हिन्दुस्थान जीतने बाद बाबरने दिल्ली-साम्राज्यमें काबुल और क़न्धार मिला लिया। सन् १७३८ ई० में नादिर शाहके आक्रमण करने तक काबुल भारतके ही अधीन रहा, किन्तु क़न्धार कभी मुगलों और कभी ईरानी सूफियोंके हाथ चला जाता था। सन् १६४२ से १७०८ ई० तक सफवी या सूफी क़न्धारमें राज्य करते रहे, किन्तु पीछे गिलज़ाइ ईरानी हाकिम शाहनवाज खान्के अत्याचारसे चिढ़ बलवायी बने और सूफियोंको निकाल बाहर किया। मीर वाइस क़न्धारके राजा हुये। अन्तको वाइसके लड़के महमूद ईरानियोंसे लड़े और सन् १७२२ ई०के अक्टोबरमें ईरानको जा जीता था।

सन् १७३७-३८ ई० में नादिरशाह दुरानीने काबुल और क़न्धारको जीत लिया। सन् १७४७ ई० में नादिर शाहके मारे जानेपर सद्दोज़ाइ वंशके अहमद खान् राजा बने थे। सन् १७७३ ई० में वह अपने लड़के तैमूरको अफगानस्थान, पञ्जाब, काश्मीर, तुर्कस्थान, सिन्धु, बलूचिस्थान और खोरासानका राजत्र सौंप मर गये। तैमूरके तेईस लड़के थे। उनमें पांचवें जमान् मिरजाने इस राजत्रको अपने हाथ लिया। भाइयोंमें खूब झगड़ा चलता और लड़ाई होती थी। सन् १८१८ ई० में सद्दोज़ाइ काबुल, गजनी और क़न्धारसे निकाले गये और मुश्किलमें हेरात पहुंचे। सन् १८४२ ई० में कमरान्के मरने तक हेरातका ऐसा ही डावांडोल हाल रहा था, पीछे उनके मन्त्री यार मुहम्मदने उसपर क़ब्ज़ा किया। अफगानस्थानका बाकी हिस्सा बरकजाइयोंके अधीन था। सन १८२३ ई० में सिखोंने नौशेहरेमें अफगानोंसे लड़ पेशावर और सिन्धुके दाहने किनारेको जीता। तैमूर शाहके मरते ही तुर्कस्थान स्वतन्त्र बन गया था।

सन् १८३८-४२ में प्रथम अफगानयुद्ध हुवा। सन् १८०९ ई०में माउण्ट ष्टुवर्ट राजदूतकी भांति पेशावरमें शाहशुजासे मिलनेको भेजे गये थे। सन् १८३२ ई०में बोखारा जाते समय सर अलेक्ज़न्डर बार्नसने काबुलको देखा। सन् १८३३ ई०में ईरानियोंके हेरात घेरने और रूशके आगे बढ़नेसे घबरा बड़े लाटने बार्नसको काबुल अमीरको कचहरीमें रसीडण्टकी भांति रहनेको भेजा था। किन्तु दोस्त मुहम्मद उससे राजी न हुये। अन्तमें अंगरेज़ी राज्यमें शरणलेनेवाले शाहशुजाको अफ़ग़ानस्तानकी गद्दी पर बैठानेका विचार किया गया। पञ्जाबके राजा रणजित् सिंहने अपने राज्यसे अंगरेज़ी फ़ौज काबुल जाने न दी थी।

सन् १८३८ ई० के मार्च महीनेमें लड़ाई शुरू हुयी। बोलन घाटीकी राह २१ हज़ार फ़ौजके साथ सर् जोहन् कीनने (Sir John Keane) काबुल-पर धावा मारा था। क़न्धारके कोहनदिल खान् ईरानको भागे। सन् १८३९ ई०के अप्रेल महीने क़न्धारमें शाहशुजा गद्दीपर बैठाये गये थे। २१वीं जुलाईको इञ्जिनियरोंने गजनीका फाटक सुरङ्गसे उड़ा उसपर अधिकार किया और दोस्त मुहम्मद हिन्दू-कुशको ओर भाग खड़े हुये। अन्तको आठ हजार सिपाही वहीं छोड़ और शाहशुजाको अफगानस्थान सौंप सेनापति सर जोहन् कीन भारत वापस आये थे।

दो वर्षतक शाह-शुजा काबुल और कन्धारमें राज्य करते रहे। सन् १८४० ई० की ३री नवम्बर-को आत्मसमर्पण करनेसे दोस्त मुहम्मद भारत भेज दिये गये थे। सन् १८४१ ई० की २री नवम्बरको काबुलमें बलवा फूटा और बार्नस आदि अफ़सर मारे पड़े। अन्तमें २३ वीं दिसम्बरको दोस्तके लड़के अकबर खान्‌ने अपने हाथों सर वलियम् मेकनेटनका शिर काट डाला था। सन् १८४२ ई०की ६ठीं जनवरीको सन्धिपत्रके अनुसार साढ़े चार हज़ार अंगरेजी सिपाही और बारह हज़ार अरदली काबुलसे भारत आने लगी। राहमें जाड़ेके ज़ोर और अफ़गानोंके अत्याचारसे लोगोंको बड़ा कष्ट मिला था। १३ वीं जनवरीको कुल बीस आदमी गण्डमक पहुंचे।

इस विपद्‌का बदला लेने और क़ैदियोंके छुड़ानेको भारतमें बड़ी तैयारी हुयी थी। सन् १८४२ ई० को १६ वीं अप्रेलको जनरल पोलकने जलालाबादका उद्धार किया। कितने ही दिन ठहर वह आगे बढ़े और १५ वीं सितम्बरको काबुल जा जीता था। दो दिन बाद गज़नीके हथियार छीन नाट बहादुर भी उन्हें मिल गये। बमियनसे खुशी खुशी क़ैदी छूटे थे। काबुलका किला और बीचवाला बाज़ार तोड़ा गया और सन् १८४२ ई० के दिसम्बर महीने अन्तको अंगरेजी फ़ौजने अफ़ग़ानस्थान खाली किया।

किन्तु अफ़गान शाह-शुजाकी हुकूमतसे खुश न रहे। वह अपना हक़ मारा जाता देखते थे और न शाहके पास अफ़ग़ानोंकी कोई ऐसी फ़ौज थी, जो बलवाइयोंको मारती और भले आदमियोंको बचा लेती।

सन् १८५६ ई०में ईरानियोंने फिर हेरात पर अपना अधिकार जमाना चाहा था। सन् १८६३ ई० में दोस्त मुहम्मद चल बसे और उनके लड़के शेर अलीने सन् १८६८ ई० में अफ़ग़ानस्थान पर अपना अक्षुण्ण प्रभुत्व स्थापित किया। उसी समय रूसने भी बोखारेको अपने राज्यमें मिलाया। यह बात भारत-सरकारको अच्छी न लगी थी। सन् १८६९ ई० को अमीर शेर-अली और बड़े लाट लार्ड मेयोसे अम्बालेमें जो मुलाक़ात हुयी, उससे दोनो राज्योंका सम्बन्ध घनिष्ट पड़ा।

शेर-अली अपना ज़ोर बढ़ाने और रूस और ईरानसे लड़नेको अंगरेज़ोंसे मदद मांगने लगे। किन्तु जब अंगरेज मुंह मांगी मदद देनेको राजी न हुये, तब वह ताशकन्दके रूसी हाकिमोंसे मिले-जुले। सन् १८७६ ई० में अंगरेज़ोंने भी अपना दबदबा काबुलकी ओर बढ़ाना चाहा था। अन्तको अंगरेजों-ने अमीरसे सन्धि करने और अपना कोई प्रतिनिधि काबुलमें रखनेको कहा, किन्तु अमीर सुनी-अनसुनी कर गये।

सन् १८७८-८० ई० में द्वितीय अफ़ग़ान-युद्ध हुवा था। सन् १८७८ ई० में रूसने अपना दूत काबुल अमीरसे सन्धि करनेको भेजा। भारत-सरकारने भी अपना राजदूत काबुल भेजा; किन्तु जब अमीरने उसे निकाल बाहर किया, तब लड़ाई छेड़ दी गयी। सन् १८७८ ई० के नवम्बर महीने दूसरा अफ़ग़ान युद्ध शुरू हुवा था। डोनल्ड ष्टुवर्टकी फ़ौजने बलूच-स्थानकी राह बोलन घाटीसे आगे बढ़ बेलड़े भिड़े कन्धारपर क़ब्ज़ा किया और दूसरी फ़ौजने खैबर घाटीसे पहुंच जलालाबादमें अपना अड्डा जमाया। सर फ्रेडरिककी फ़ौज कुरमके घाटियोंसे अफ़गान-स्थानके बीचमें घुसी और अमीरकी फ़ौजको हरा शुतर-गरदानका दर्रा छीन लिया था। अमीर शेर अली भागे और सन् १८७९ ई० के फरवरी महीने उत्तरप्रान्तके मज़राइ-शरीफ़में जा मरे। कितने ही दिन अफ़गानों और अंगरेजी सिपाहियोंमें छोटी-मोटी लड़ाइयां होती रही थीं।

इसी बीच शेर अलीके लड़के याक़ूब खान्‌ने मेजर केवग्नेरीको (Cavegnari) खबर दी, कि वह काबुलमें अपने बापकी गद्दीपर बैठ गये थे। अन्तमें सन् १८७९ ई० के मार्च महीने गण्डमकमें अंगरेजों और याक़ूब खानके बीच सन्धि हुयी और याक़ूब खान् अमीर बने। अफ़गानस्थानके कुछ जिले अंगरेजी राज्यमें मिलाये गये, अमीरने सारा विदेशीय प्रबन्ध अंगरेजोंको सौंपा और काबुलमें अंगरेजी दूत रहनेकी

बात पक्की हुयी। किन्तु सितम्बर महीने राजदूत सर लुइस केवेगनेरी अपने मुसाहब और अरदलेके साथ काबुलमें मारे गये। दूसरी मुहीम फिर रवाना हुयी, जिसने अफ़गानोंको चरसियामें जा हराया और अक्टोबरमें काबुल ले लिया। याकूब खान् आत्मसमर्पण करनेपर भारत भेजे गये और अंगरेजी फ़ौज काबुलमें ही पड़ी रही। किन्तु अफ़गानोंके बलवा मचानेसे उसके समाचार भेजने और मंगानेका मार्ग रुक गया था।

अमीर शेर अलीके बड़े भाईवाले लड़के अबदुर रहमान, दोस्त मुहम्मदकी गद्दीपर बैठानेके लिये शेर अलीसे लड़ते रहे और पीछे ओक्सस् नदीके पार निकाल दिये गये थे। सन् १८८० ई० में वह वापस आये और अफ़गानस्थानके उत्तर अपना आधिपत्य जमाने लगे। अन्तमें अंगरेजोंने उनसे बातचीत कर उन्हें अमीर बनाया और किसी विदेशीय राज्यसे कोई सम्बन्ध न रखनेका वचन लिया। क़न्धार बरकजाई वंशवाले शेर अली खान्के अधीन स्वतन्त्र राज्य बना दिया गया था।

सन् १८८० ई० में अबदुर रहमानके गद्दीपर बैठते ही हेरातसे निकल शेर अलीके छोटे लड़केने क़न्धारकी अंगरेजी फ़ौजको बड़े जोरसे हराया, जिसने उसका धावा रोकना चाहा था। उसी समय काबुलसे दश हजार अंगरेजी फ़ौजने जा याकूब खान्को नीचा दिखाया और दक्षिण-अफ़गानस्थानमें अंगरेजी हुकूमत बैठायी। सन् १८८१ ई०में अफ़गानस्थानसे अंगरेजी फ़ौज जैसे ही भारत वापस आयी, वैसे ही फिर याकूब खान्ने हेरातमें कुछ आदमी इकट्ठे कर क़न्धारपर धावा मारा। उसने जूनमें गिरिश्कका किला और जुलाईमें कन्धार जीत लिया। २२ वीं नवम्बरको अमीर अबदुर रहमानने अपनी फ़ौज ले याकूब खान्का जा हराया और उसकी तोपें छीन लीं। पीछे याकूब खान् ईरान भाग गये।

सन् १८८४ ई० में उत्तर अफ़गानस्थानकी सीमा निर्धारित करनेका विचार अंगरेजी और रूसी कमिशनने किया; पहले तो पञ्जदेहमें रूसियों और अफ़गानोंके बीच एक छोटी-मोटी लड़ाई हुयी, किन्तु अन्तमें सब काम शान्तिपूर्वक निकल गया।

सन् १८८० ई० में अबदुर रहमानके गद्दीपर बैठने बाद दश वर्षतक अफ़गानस्थानमें खूब लड़ाई झगड़ा चला, किन्तु १८९१ ई०में वह यहांके एकमात्र नृपति बन गये। रूस और अंगरेजोंने मिल चीनका तर्फ़-वाली सरहद भी ठीक करा दी। अबदुर रहमानने अंगरेजोंसे कितना ही धन और अस्त्र-शस्त्र ले बलवायी अफ़गानोंको दबाया और अपनी फ़ौज खूब दुरुस्त कर दी।

सन् १९०१ ई० की १ली अक्टोबरको अबदुर-रहमानका देहान्त हुवा और दो दिन बाद उनके बड़े लड़के हबीबुल्ला गद्दीपर बैठे। अफ़गानों और बड़े लाटकी ओरसे मुसलमानोंने उनके सिंहासनारूढ होनेपर बड़ा आनन्द मनाया था। उन्होंने अपने राज्यका प्रबन्ध सुधारना और बलपूर्वक सेनाकी संस्था सुधारना चाहा। वह अपने बापकी ही तरह भारतसरकारके मित्र बने हैं। सन् १९०४ ई० के दिसम्बर महीने भारतसे अंगरेजी डेपुटेशन अमीरके पास गया था। अमीरने पुरानी सन्धिमें कुछ हेर फेर करना न चाहा। अन्तको वह सन् १९०७ के जनवरी महीने लार्ड मिण्टोसे भारत आकर मिले और उनके आनेका बहुत अच्छा फल निकला। सन् १९०७ ई०की ३१ वीं अगस्तको अंगरेजों और रूसियोंके बीच जो सन्धि हुयी थी, उससे दोनोंने अफ़गानस्थानको स्वतन्त्र राज्य मान लिया।

अफ़ज़ल (फा० वि०) अौवल, बढा हुवा, जो सबसे अच्छा हो।

अफ़ज़ल्उद्दौला नवाब—हैदराबादके एक निज़ाम। यह सन् १८५७ ई०में अपने पिता नवाब नसीरुद्दौलहकी जगह गद्दीपर बैठे थे। सन् १८६९ ई०को २६ वीं फ़रवरीको चवालीस वर्षकी अवस्थामें कराल कालने इन्हें कवलित किया।

अफ़ज़ल्उद्दीन् मीर—सूरतके कोई नवाब। सन् १८४० ई०को ७वीं अगस्तको उनसठ वर्षकी अवस्थामें इक्कीस

वर्ष नवाबी की थी। इनके दामाद मीर-जाफ़र अली इनकी जगह गद्दी बैठे।

अफ़ज़लखान्—१ कोई मुसलमान-कवि। इनका दूसरा नाम मीर मुहम्मद अफ़ज़ल रहा। दिल्लीवाले मुहम्मदशाहके समय लोग इन्हें बड़ा सम्मान देते थे। सन् १७३५ या १७३८ ई०में इनका देहान्त हुवा। २ अकबरके वजीर सुप्रसिद्ध शेख अबुलफ़ज़लके लड़के। सन् १६७० ई०में जहांगीरकी ओरसे यह विहारके प्रधान शासनकर्ता रहे और सन् १६१७ ई० को आगरेमें मर गये। ३ अबदुल हक़के लड़के। इनका दूसरा नाम मुल्ला शुकरुल्ला रहा। यह शीराज़से दक्षिण आये थे। अबदुर रहीमखान् खानखानाने इन्हें जहांगीर बादशाहसे मिलाया, जिन्होंने अमीरका खिताब दे दिया। शाह-जहान्के दूसरे वर्ष सन् १६२८ ई०में अशक़खान् जाफ़रबेगके भाई इरादत खान् बरखास्त होते और वज़ारतकुलका ओहदा खाली पड़ते, इन्हें वह काम सौंपा गया था। बादशाहके ग्यारहवें वर्ष सात हज़ार और चार हज़ार सवारोंका यह मनसब पा गये। किन्तु दूसरे ही वर्ष ७ वीं जनवरीको लाहोरमें सत्तर वर्षकी अवस्थापर इन्हें इस दुनियाको छोड़ चल देना पड़ा था। इनका उपनाम अल्लामी रहा। इनकी क़ब्र चीनी रौज़ा यमुनाके बायें किनारे आगरेमें बनी है।

अफ़ज़लगढ़—युक्तप्रदेशके विजनौर ज़िलेका एक शहर। यह रामगङ्गाके बायें किनारे अवस्थित है। सन् १७४८ से १७७४ ई०के समय जब उत्तर भारतमें पठान जातिका प्रभाव फैला, तब नवाब अफ़ज़ल खान्ने इसे अपने नामपर बसा दिया। सन् १८५७ ई०में बलवेके समय इसका ईंटवाला क़िला गिराया गया था। कुछ दिनसे शहर बरबाद होते जाता और उसकी जगह खेती बढ़ रही है। यहां जङ्गली लकड़ी और बांसका कुछ व्यापार होगा। यहांके जुलाहे रुयीका निहायत उमदा कपड़ा बनाते हैं। सन् १८६७ ई०को आगरेमें जो प्रदर्शिनी हुयी, उसमें अफ़-ज़लगढ़को अपने कपड़के लिये पुरस्कार और रजतपदक मिला था।

अफ़ज़न् (अ० पु०) १ बढ़ती, आधिक्य। (वि०) २ ज्यादा, अधिक, जो काममें न आया हो।

अफ़ताब (हिं०) आफ़ताब देखो।

अफ़ताबा (हिं०) आफ़ताबा देखो।

अफ़ताबी (हिं०) आफ़ताबी देखो।

अफ़यून् (फ़ा० पु०) अफ़ीम, अहिफेन।

अफ़यूनी (फ़ा० वि०) अफ़ीमची, अफ़ीम खाने-वाला, जो अहिफेनका सेवन करता हो।

अफरना (हिं० क्रि०) १ डटकर भोजन करना, खा-पीकर छक जाना। २ उदरका उठना, पेटका फूलना।

अफरा (हिं० पु०) १ फुलाव, पेटका चढ़ाव। २ उदराध्मान, पेट फूलनेकी बीमारी।

अफ़रा-तफ़री (हिं० स्त्री०) १ गड़बड़-सड़बड़, व्यतिक्रम, उलट-सुलट। २ शीघ्रता, जल्दी, घबराहट।

अफ़राना (हिं० क्रि०) पेट भर खाना या खिलाना, भोजनादिसे तृप्त बनना या बनाना।

अफ़रासयाब—तुरान्के कोई पुराने राजा। यह पशङ्गके बेटे रहे। इन्होंने ईरानके बादशाह नौज़-खोमारको हरा बारह वर्ष वहां शासन किया था। किन्तु कैखुशरो नामक दूसरे ईरानी बादशाहने इन्हें युद्धमें मार भगाया।

अफ़रीक़ा—महादेश विशेष, कोई बरे-आजम, पृथ्वीके प्रधान पिण्डसे निकले तीन दक्षिण महादेशोंमें एक। इसका क्षेत्रफल ११२६२००० वर्ग मील और इसके द्वीपोंका क्षेत्रफल ११४९८००० वर्ग मील होगा। भूमध्य सागर इसे युरोपसे छोड़ाता और सूएजका ८० मील चौड़ा प्रान्त इसे एशियासे मिलाता है। यह उत्तर दक्षिण ५००० मील लम्बा और पूर्व पश्चिम ४६०० मील चौड़ा है। इसकी सागर-तट रेखा १६८०० मील लम्बी होगी। इसके किनारे भूमि-पर गहरे दांत नहीं देख पड़ते।

यह समुद्रतलसे कोई २००० फ़ीट ऊंचा होगा। इसमें गहरी घाटियां और ऊंचे पहाड़ बहुत कम पाये जाते हैं। साधारणतः पूर्व और दक्षिण ऊंचे

टीले एवं पश्चिम और उत्तर घाटियां मिलती हैं। बीचमें सहारेका जङ्गल रेतसे भरा पड़ा है।

पूर्व और पश्चिम दोनो ओर समुद्रके किनारे-किनारे पहाड़ी टीले मिलते हैं। लोहितसागर-तटपर उत्तरको ओर अबसीनियाका पहाड़ चल गया है। पश्चिमके पहाड़ चौड़े तो हैं, किन्तु ऊंचे नहीं देख पड़ते। गिनीकी खाड़ीके सिरेसे मध्य देशकी ओर कितने ही पहाड़ी ज़िले बसे हैं। कमरून आग्नेय पर्वतकी चोटी १३३७० फ़ीट ऊंची है। फरनन्दोपो द्वीपमें क्लारेन्स गिरिशृङ्ग ९००० फ़ीट ऊंचा खड़ा है। पश्चिमकी ओर फटा जलहीन उच्चभूमि भी पाते हैं। रङ्गवे (नइसा), ड्रेकन्सबर्ग, सट्टिमा, कमेरून एलगन, करिस्म्बिी, मेरु, तघरत (अटलास), सिमिन, रुवेनज़ोरी, केनया और किलिमनजरो इस महादेशके दूसरे पहाड़ हैं।

पूर्व और पश्चिम पार्वतीय प्रदेशके मध्यका स्थान मरुभूमि है। यह पहाड़ी टीलोंसे कितने ही भागोंमें बंटा है। इनमें कोङ्गो प्रान्त सबसे अच्छा लगता है। अटलाण्टिक महासागरसे लोहितसागरतक २५००००० वर्ग-मील विस्तृत सहारेका मरुस्थान है। ऐसा सुविशाल मरुप्रदेश जगत्में अन्यत्र न निकलेगा। झीलें भी अफ़रीकामें बहुत पायी जाती हैं। यथा—चाद, लिवोपोल्ड, रुडल्फ़, नइसा, अलबर्ट नियञ्जा, टङ्गनयिका, गोमो, वेरु, अलबर्ट एडवर्ड, बङ्गवेलो, विक्टोरिया नियञ्जा, अबायी, कीबू, सना और जेवशा।

प्राकृतिक अवस्था

समुद्रतटके पहाड़ोंसे छोटी-छोटी नदियां निकल समुद्रमें जा गिरी हैं। किन्तु बड़ी नदियां देशके मध्यमें ही बहती है। महादेशका पानी उत्तर और पश्चिमकी ओरसे ही बाहर निकलता है। नील या नाइल सबसे लम्बी और कोङ्गो सबसे बड़ी नदी है। नाइलका पानी दलदलमें जाने-पर तैरती हुयी सब्ज़ीसे रुक जाता है। यह सहारेको पारकर भूमध्य-सागरमें जा गिरती है। कोङ्गो बङ्गवेलू झीलसे निकली और अटलाण्टिक-सागरसे जा मिली है। अफरीकाकी तीसरी नदी नैगरा इन दोनो नदियोंसे उलटे बहती है। बेजूइ दक्षिण-पूर्वसे आती है। दूसरी नदियां समुद्रतट नहीं पहुंचतीं। अरेञ्ज, कुनेने, क्वञ्जा, ओगोवे, और सनगा आदि दक्षिण; वोलटा, कोमोई, बन्दाभा, गम्बिया, सेनेगाल आदि पश्चिमकी नदी हैं। ज़म्बेज़ी भारतीय महासागरमें गिरती है। शीरी नइसा झीलसे निकल इसमें आ मिली है। तीखे नदी भी ज़म्बेजीको पानी पहुंचाये, किन्तु दलदलोंमें जाकर गुम हो जाती है। लिम्पोपो अधिकांश दक्षिणकी ओर बहती है। पूर्वमें रोजमा, रुफीजी, ताना, जूबा और वेबी शिवेली देख पड़ती हैं। अदनकी खाड़ीके पास पहुंच अबसीनियाके पहाड़से निकलनेवाली हवाश भी नमककी खाड़ीमें गुम होती है। अटलाण्टिक और भारतीय महासागरके बीच ओमो बड़े वेगसे रुडल्फकी झीलमें जा गिरती है। अफ़रीकाकी नदियां अपने मुखपर या कुछ दूर चलकर किसी खास रोक या झरनेसे सिकुड़ जाती हैं। उनका पानी यदि बराबर आगे बढ़ता जाये, तो नाव चलनेका खासा सुभीता पड़ेगा।

नद नदी

मादागास्करको छोड़ अफ़रीकाके सभी द्वीप छोटे हैं। नवगीनी और बार्निवोके बाद मडागास्कर जगत्में सबसे बड़ा है। इसका रक़बा २२८८२० वर्ग मील होगा। यह दक्षिण-पूर्व समुद्रतटसे कुछ दूर अवस्थित है। २५० मील फैली मोजम्बककी खाड़ी इसे अत्यन्त निकटवर्ती स्थानपर महादेशसे जुदा करती है। मादागास्करसे पूर्व मारिशस और रियूनियनके छोटे द्वीप पड़ते हैं। गर्दफूयी अन्तरीपसे पूर्व-उत्तर-पूर्व सोकोतरा द्वीप है। कनारी और केप वरडे द्वीपपुञ्ज उत्तर-पश्चिम समुद्रतटसे कुछ मिलता, जो आग्नेय-गिरिसे बना है।

द्वीपपुञ्ज

अफरीकामें अधिकतर जलवायुका परिवर्तन नहीं पाते। कारण, यह महादेश कर्कट और मकर क्रान्ति रेखा बीच और भूमध्यरेखाके बराबर उत्तर और दक्षिण अवस्थित है। उत्तरके नीचे मैदानों और मरुस्थानोंमें समुद्र दूर पड़नेसे बड़ी गर्मी होती है। दक्षिणकी ओर समुद्र पास आने और पहाड़

जलवायु

होनेसे गर्मीका ज़ोर कम लगता है। अधिकतर उत्तर या दक्षिण जल-वायु समान रहता है। उत्तरमें कुछ गर्मी ज़्यादा पड़ती और दक्षिणमें थोड़ा जाड़ा जोरसे होता है। वृष्टिके परिमाणसे जलवायु अधिक बदलता है। सहारेके मैदान और कलहारी प्रान्तमें पानी बहुत कम बरसता है। भीतरी रेखा-प्रान्तमें अधिक वृष्टि होती है। गीनीकी खाड़ी और उपर नीलनदके ओर अच्छा पानी बरसता है। कमरून पहाड़से पश्चिम जो समुद्रतट भूमिका टुकड़ा है, उसपर वर्षमें कोई ३९० इञ्च पानी पड़ता है। भूमध्यरेखा-प्रान्तमें दो बार और दूसरी जगह एक बार वृष्टि होती है। सभी पहाड़ोंपर बर्फ़ गिरता है। सहारेके पासवाले देशमें रेत उड़-उड़कर जमा होता है। दक्षिणमें कलहारीसे भी ऐसी ही सूखी हवा चलती है। उत्तर-सागरतटपर बराबर भारतीय महासागरका बरसाती वायु अपना प्रभाव देखाता, और दक्षिण-पूर्व कभी-कभी तूफ़ान आता है।

दक्षिण और सहारेका जलवायु अच्छा, किन्तु उष्ण प्रदेशका ख़राब है। नीचे और तट प्रदेशोंमें मलेरिया बुख़ारका बड़ा ज़ोर रहता है। ऊंचे टीलोंका जलवायु अधिक स्वास्थ्यसम्पन्न है। सन् १८९९ ई० में जबसे ज़हरीले मच्छर मारनेकी तदबीर निकली और दलदल बन्द करा दिये गये, तबसे वहांका जलवायु बहुत सुधर गया है। इस महादेशके निवासी भी गर्मीकी बीमारीसे ज़्यादा मरते; निद्रा-रोग कितनों हीको विनाश करता है। सन् १८९३ और १९०७ ई०के बीच इस रोगने बड़ा उपद्रव मचाया था। शीतप्रधान देशमें जानेसे यहांके निवासियोंकी छाती दर्द करने लगती है। हबशियोंकी शीतला रोग ज़्यादा सताता है।

अफ़रीकाके वृक्षलतादि कई तरहके होते हैं। भूमध्यसागर किनारेके देशमें नारङ्गी, शाहबलूत, सदा-बहार, ओक, काग, सनोबर, शमशाद, मेंहदी और दूसरे सुगन्धित वृक्ष उपजते हैं। सहारेमें छोहारा खूब फलता और अर्धमरु भूमिमें बबूल भर जाता है। पहाड़ोंके उतारपर भी जङ्गल मिलता हैं। लिबेरिया और दक्षिण अबसीनीयामें कहवा जङ्गली तौरपर उपजता है। दक्षिण-अफ़रीकामें सिवा नीची घाटी और समुद्रतट प्रान्तके दूसरी जगह जङ्गल नहीं लगता।

उद्भिद

हिरण, जिराफ़ा, गधा, जेबरा, भैंसा, जङ्गली गधा, चार तरहका गैंडा, शेर और चीता खुले मैदानमें रहता है। भालू अटलास प्रान्त और लोमड़ी, भेड़िया उत्तर-अफ़रीकामें मिलेगा। हाथी मैदान और जङ्गल दोनो जगह होता है। लङ्गूर अफ़रीका-जैसा कहीं देखनेमें नहीं आता। एक कुबड़ेका ऊंट सिर्फ़ उत्तरके जङ्गलोंमें ही पाया जाता है। ओकापी अफ़रीकाका विशेष पशु है और कोङ्गोके घने जङ्गलमें मिलता है।

पशु, पक्षी

उष्ण प्रान्तकी नदीमें दरयायी घोड़े और कुम्भीर बहुत होते हैं। दरयायी घोड़ा सिवा अफ़रीकाके दूसरी जगह नहीं मिलता। अब यहां शिकार कम पड़ गया है। सन् १९०० ई०के मई मास अन्तर्जातीय सन्धिके अनुसार वन्य पशुकी रक्षा का प्रबन्ध किया गया था। दक्षिण अफ़रीका, वृटिश मध्य अफ़रीका, वृटिश पूर्व अफ़रीका, सोमालीदेश प्रभृतिमें आखेट सुरक्षित रखते हैं।

शुतुरमुर्ग (उष्ट्रपक्षी) अफ़रीकाका असली पक्षी है। यह जङ्गल और ढालू पहाड़पर मिलेगा। यहांकी चिड़ियोंकेपर बहुत ही चमकीले होते हैं। दंशक जीवोंमें गुहेरा बहुत देखते हैं। ज़हरीले सांप भी पाये जाते, किन्तु उनका आधिक्य नहीं। बिच्छू बहुत हैं। अफ़रीकामें हज़ारो तरहके कीड़े-मकोड़े होते हैं। किन्तु टिड्डी और दीमक देशके नाकों दम लाती है। यहांका ज़हरीला मच्छर काटते ही पालू जानवर मर सकता है। ख़ुशीकी बात है, कि यह मच्छर अफ़रीकाके बाहर कहीं नहीं होता।

देखने-भालनेमें अफ़रीकाकी आकृति भारतसे मिलती है। पूर्व और पश्चिम दोनो ओर चमकीली चट्टानोंका समुद्रतटके समानान्तर प्रान्त भीतरी ऊंचे मैदानमें गोट लगाता है। दक्षिण और उत्तर अफ़रीकामें भी पहाड़ उभरे थे। किन्तु उससे भीतरी मैदानपर कोई प्रभाव न पड़ा। पश्चिम

भूतत्त्व

और पूर्व अफ़रीकामें कितनी ही पुरानी चटानें पड़ी हैं। नहीं कह सकते, इनका संगठन कब हुवा था। गण्डवानेकी तरह अफ़रीकाके अन्तर्भागमें बड़ी-बड़ी झीलें भरी हैं। किसी समय यहां आग्नेयगिरिने बड़ा उत्पात मचाया था।

अफ़रीकाकी जाति, उसके विभाग, सञ्चलन और ज्ञानकी आलोचना करनेमें तीन बातोंका ध्यान रखना चाहिये। इनमें पहला भीतरी प्रान्तपर प्रकृत अवरोधका अभाव है। इससे लोगोंके मिलने-जुलने, शिक्षा फैलने और यहांसे उठ वहां जा बसनेमें सुभीता रहता है। जातिभेद तो ज़्यादा नहीं देखते, किन्तु स्थान परिवर्तनशील लोगोंका आधिक्य अत्यन्त पाया जाता है। दूसरी बात यह, कि अफ़रीकाकी जातिका कोई लिखा हुवा इतिहास नहीं मिलता। लोगोंके आने-जाने और लिखने-पढ़नेका हाल अन्दाज़से ही लगाया करते हैं। हबशीको आजका बच्चा ही समझिये। वह अपनी जातिका या अपना बहुत ही कम स्मरण रखता है। तीसरे जो बातें इस विषयमें कही जातीं हैं, वह समाचार-शून्य होनेसे सन्तोषप्रद नहीं ठहरतीं। युरोपीयों, एशियायियों, चीनावों और भारतीयोंको छोड़ अफ़रीकामें जङ्गली, हबशी, पूर्वीय हैमाइट, लीबीय और सेमाइट लोग रहते हैं। इनके मेलसे कितने ही वर्णसङ्कर भी पैदा हुये। जङ्गली कुछ पीले-भूरे रङ्गके होते और घूम-घूमकर शिकार मारते फिरते हैं। हटेनटट और बन्तू जातिने अगले समय इन्हें धीरे-धीरे कलहारीके मरुस्थानमें खदेर दिया था। किन्तु इस बातके चिह्न देख पड़ते, कि यह टङ्गनयिका झील तक फैले रहे। हटेनटट भी इनसे मिलते-जुलते हैं। वह दरमियानी क़दके होते और उनका रङ्ग पीला-भूरा रहता है। कार्यतः अफ़रीकाका बाकी भाग सहारेके दक्षिण किनारे और नाइलकी उपर उपत्यकासे अबीसीनिया, गल्ला और सोमाली-राज्य छोड़, अन्तरीपतक हबशियों और वर्णसङ्करोंसे बसा है। पश्चिम सोदानके फूलावों और विक्टोरिया नियञ्जाके बाहीमावोंमें हबशी प्रकृतिकी जगह लीबीयनों और सेमाइटोंकी ही प्रकृति अधिक पाते हैं। अबसीनीयोंमें सेमिटो-हमाइट और सोमाली एवं गल्ला देशमें हमाइट रहते हैं। अलजीरिया और मोरक्कोमें लीबीय मिलते हैं। यह अरब-संसवसे गोरे होते हैं। उत्तर-पूर्व भूरे चमड़ेके हमाइट और सेमाइट विभिन्न रूपसे मिश्रित होते हैं। जङ्गल और मैदानमें रहनेवाले हबशी दो दलोंमें विभक्त हैं,—असली हबशी और बन्तू। कमरून (रावोडेल रे)से उबङ्गी नदी पारकर इतूरी एवं सेमलकी नदीके बीच होते हुये जो रेखा अलबर्ट झील और समुद्रतटकी गयी, उससे उत्तर हबशी (नीग्रो) और दक्षिण बन्तू बसते हैं। हबशियोंकी बोलीमें बड़ा हेर-फेर रहता है। किन्तु बन्तू लोग एक ही भाषा बोलते हैं। बन्तू सूरत-शकलमें एक-दूसरेसे नहीं मिलते। उगण्डेसे गाबनतक भूमध्यरेखाके जङ्गलोंमें बौनी पिगमी जाति रहती है। यह डेरा डाल कहीं न ठहरें, जङ्गल-जङ्गल घूम शिकार खेलते हैं। इनका रङ्ग काला-भूरा, नाक बहुत चौड़ी और क़द छोटा-मज़बूत रहता है। उत्तर ट्रान्सवालके ढालू प्रान्तमें बालपेन बसते, जिनका क़द छोटा निकलता है। इनके विषयमें कुछ मालूम नहीं। लोग इन्हें बहुत काला बताते हैं। यह ज़मीन्के गड्ढों और चटानोंके नीचे ठहरते हैं।

जङ्गली ज़िलोंके लोग ज़्यादातर खेती करते हैं। किन्तु पिगमी शिकार मारकर ही अपना काम चलाते हैं। पूर्वीय उच्चभूमि, उत्तर और दक्षिणकी ढालू जगह और चरागाहमें भी खेती की जाती है। जर्मन दक्षिण-पश्चिम-अफ़रीकाके ओवा हेरेरो खेती नहीं करते, गड़रियेकी तरह जङ्गलमें घूमते फिरते हैं। किन्तु मध्य और दक्षिण अफ़रीकाकी अधिक भूमिमें गड़रियेका जीवन ज़हरीले मच्छरके कारण नहीं निभता। उत्तरप्रान्तमें जहरीला मच्छर न होनेसे जानवरोंके रखनेमें सुभीता पड़ता है।

अफ़रीकाके पूर्व बाहरी लोगोंने भूमि और जलमार्गसे पहुंच खूब सभ्यता फैलायी थी। अरबोंने यहां गुलामोंकी ज़बरन चाल निकाल देशको उजाड़ दिया। उत्तर और पश्चिम

मानवतत्त्व

सभ्यता

अफ़्रीकाको अरबोंने बरबाद तो नहीं किया, किन्तु सोदानको एक ओरसे मुसलमान बना डाला है।

अफ्रीकामें बाहरी लोगोंने पहुंच सभ्यता फैलायी थी। कोङ्गोके जङ्गल और गीनीकोष्टकी खाड़ीमें इस सभ्यताका चिह्न मिलता है। यहा लोग खेती करते और केला, रतालू आदि खाते हैं। नरमांसभुक्का ज़ोर रहता है। मकान सीधा और छत किनारेदार रहती है। बकले या खजूरके रेशेका कपड़ा पहनते हैं।

बेतकी कमान खास हथियार है। लोग काठकी ढाल बांधते और मृत्युका कारण जादू मानते हैं। किन्तु बन्तू बड़े किसान होते, पशु पैदा करते और ज्वारदूध खाते हैं। इनके मकान गोल और गुम्बददार होते हैं। यह सादे या कमाये हुये चमड़ेका कपड़ा पहनते हैं। भाले बांधना, कमानपर रगका रोदा चढ़ाना, चमड़ेकी ढाल रखना और जादूगरको पानी बरसानेवाला समझना इनका सीधा काम होगा। कहीं-कहीं लोग अपने पूर्वजोंकी पूजा करते हैं।

सिवा उपर नाइलके पश्चिम प्रान्तसे बाहर नीग्रो भी ऐसी ही चाल चलते हैं। लोग लोहेके गहने बहुत पहनते हैं। बोरनू और हौसादेशके बीच कोई रेखा खींचिये। इससे पूर्व लोग बीन बजाते और लठकुरी चलाते हैं। पश्चिममें कटार और कमानका जोर रहता है।

सोदानके बाकी हिस्सेमें लोग तरवार बांधते हैं। मुसलमानी सब लोगोंकी होती है। शिरकी रक्षाके लिये कुलह लगाया जाता है। मकानोंकी बनावट बेलन या मक्खीके छत्ते जैसी रहती है।

सिवा नीची नाइल उपत्यका और रोमन अफ़्रीकाके यहांका इतिहास बहुत कम मिलता है। लोग जो बात कहते, वह पुराने ज़मानेको नहीं ठहरती। पुरातत्त्वसे भी क्या पता लगेगा! नाइल

पुरातत्त्व

उपत्यका, सोमालीदेश, ज़म्बेज़ी, केपकोलोनी और कोङ्गो स्वतन्त्र राज्यके उत्तर अंश, अलजीरिया और तूनीशियामें जो पत्थरके अस्त्र मिलते, उनसे कोई सम्बन्धीय प्रमाण नहीं निकलता।

सिवा इसके पथरीले अस्त्र और किसी गड्ढेमें नहीं, ज़मीनपर ही पड़े मिल जाते हैं। भूतत्त्वसम्बन्धीय कोई तर्क-वितर्क ऐसी अवस्थामें निकालना सम्भव नहीं होता।

नाइल उपत्यकाके निम्नांशकी दशा इससे उलटी होती है। थीब्सके पास ज़मीन्पर ही नहीं, किन्तु तह जमाये हुये कङ्कड़ोंमें भी चकमकके अस्त्र मिले हैं। कितना ही काग़ज़ भी वहां निकला था। किन्तु पत्थरके अस्त्रका समय ठीक नहीं होता। नाइल उपत्यकामें भी प्राचीन समयके चिह्न कुछ कुछ वर्तमान हैं। मकलङ्गा लोग अपने कड़े बर्तनोंपर लोहेके औज़ारसे नक़्क़ाशी करते थे। जङ्गली, सन् ई०के १९वें शताब्द तक लोहेके औज़ार काममें लाते रहे। दूसरी पुरानी चीज़ें अलजीरिया, क्रास नदी और गमबियाके पथरीले घेरे हैं। मशोना देश, ज़िमबवे और दूसरी जगहके किले और टूटे-फूटे शहर पुराने नहीं ठहरते।

इसका कोई ठिकाना नहीं, कब अफ़्रीकामें पत्थर और कब कांसा औज़ारके काम आया था। कारण सीधा ही होता है। अफ़्रीकामें लोहा बहुत होता और बड़ी आसानीसे निकल आता है। स्मरणातीत कालसे हबशी लोहा गलाते और उससे कीलकांटा बनाते रहे हैं। ऐसी अवस्थामें जातिकी उत्पत्ति और प्रसारके प्रश्नका उत्तर देना कठिन पड़ता है।

जङ्गली आदमी असलमें अफ़्रीकाके दक्षिण प्रान्तका निवासी है। हबशी झीलोंके पाससे पश्चिम सहारा किनारे और दक्षिण पूर्वीय उच्च भूमिके पार फैल गया है।

अफ़्रीकाका होर्न ही हमाइटोंका घर है। इन्होंने हबशियोंको मार भगाया था। हबशियों और बन्तुवोंके मेलसे हटन्टट बने हैं।

लिबीयोंने भी रेगस्थान पारकर उत्तरसे हबशियोंको दबाना शुरू किया था। इसी मेल-जालसे फ़ूला, मन्डिङ्गो, वोलफ़ और तुकूलोर निकले। नाइल-कोङ्गोके सायबान्पर जो ज़नदेह रहते, वह

बङ्गाल आर्ट स्टुडियो
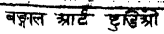
१, सरकार लेन, कलकत्ता।

लिबीयनों या हमाइटोंके खूनसे पैदा हुये हैं। बहुत पुराने समय अफ़रीकाके उत्तर-समुद्र किनारे लिबीयन ज़ोर बांधे रहे। पश्चिम सोदानमें कितने ही राज्य प्रतिष्ठित हो गये थे। सन् ई०के ७वें शताब्दमें घाना, १२वें में मीली, १४वें में सङ्घायी और १६वें में बोर्नी राज्य बना।

इसी बीच पूर्वमें बचुवानोंका दक्षिणीय संक्रमण आरम्भ हुआ था, जो कितने ही समयतक फैलते रहा। उसके बाद ज़ूलू खोसावोंने तेज़ दौड़ लगायी और सागरतटकी राहसे आगे बढ़ दक्षिणमें उन्हें जा घेरा था। रोडेशियामें जो भ्रष्टांश मिलता है, उससे पुराने समयका हाल नहीं खुलाता। ज़ूलूखोसा, बचुवाना और हेरेरो तीनो एक जैसी दक्षिणीय बन्तू जाति निकलेंगी।

अन्तको अफ़रीकामें इतिहासप्रसिद्ध दौड़-धूप पड़ी। ज़ूलूवंशके कुछ लोग उत्तरकी ओर आगे बढ़ने और मार-काट मचाने लगे थे। इनमें सर्वप्रधान मताबेले और अङ्गोनी रहे। विक्टोरिया-नियञ्जातक धावा लगा था। नाइलके दलदलमें पीछे हट नीग्रो, बन्, शिल्लुक, डिङ्का, अलूर, अचोली आदि सुशिक्षित जाति बन गये। हमाइटों और इनके मेलसे मसायी जैसी जातियां निकली हैं। अरबोंने समुद्रतट पर अपना डेरा जमाया और मध्यदेशपर गुलाम पकड़नेको धावा मारते रहे, कभी कभी वह कोङ्गोतक पहुंच जाते थे। कोई १६° अंश द० भूमध्य-रेखाके सागरतट पर रहनेवाली स्वाहिली जाति अरबों और बन्तुवोंके योगसे बनी है। विक्टोरिया नियञ्जासे ज़मबेज़ी तक रहनेवाले साधारणतः पूर्वीय बन्तू कहायेंगे।

दक्षिणमें कोङ्गोकी ओर लूबा और लुण्डा लोगोंपर सन् ई०के १६वें शताब्दसे १९वें तक मुवातायानवो नामक एकछत्र राज्य रहा। यह लोग दक्षिण-पूर्वसे जा पहुंचे थे। पश्चिमीय बलूबोंमें थोड़े दिन हुये कोई राजनीतिक और धार्मिक उत्पात हुवा, जिससे बेनारियम्बा या भङ्ग पीनेवाले अपनेमें एक-दूसरेको भाई समझने लगे। कोङ्गोके हेरफेरमें लोहेका काम बनानेवाले बलोलो रहते हैं। कसायीके पश्चिम बकूबे और वह बेजाने लोग बसते, जिनका ठीक हाल नहीं मिला। पश्चिममें ज्यादा आगे अङ्गोला रहेगा। उत्तरको ओर आगे बढ़कर बालो और कमरूनके दूसरे लोग मिलेंगे। वेल्ले ज़िलेके जन्दे ह पूर्वमें रहते, जिनका निलोटके डोरोंसे कुछ-कुछ सादृश्य पड़ता है। नाइगेरके अन्तर्वेदी और स्लेवतटके पूर्व प्रान्तमें योरुबा बोलनेवाले आदमी देखनेमें आयेंगे। योरुबा भाषाभाषी नाइगेर अन्तर्द्वीपके पश्चिम और गा और सोही वाले गोल्ड कोष्टपर बसते हैं। किसी जातिका नाम दहोमी और किसीका अशान्ति है। सीरा-लिबोन और लिबेरियामें भी ऐसे लोग पाये जायेंगे। जङ्गलको छोड़ खुले मैदानमें उत्तरको ओर नाइगेरसे नाइलतक मुसलमान-धर्मावलम्बी नीग्रो बसे हैं। मन्डिन्गो, सङ्घोयी, फूला, हौसा, कनूरी, बगिरमी, कनेम्बू, वादायी एवं दरफ़ूरके निवासी भी ऐसे ही निकलेंगे। चादकी ओर दक्षिण-किनारे जो आदिम निवासी रहते, उनका पूरा हाल किसीको नहीं मालूम।

मादागास्कर द्वीपमें फ्रान्सका अधिकार होनेसे पहले होवा जाति रहती थी। उसके लोग अपनी चाल ढाल और सूरत-शकलमें मलयद्वीपवासियोंसे मिलते हैं। यहांकी भाषा मलागासीमें वस्तुतः मलय और पोलिनेशियाके शब्द निकलेंगे। होवा लोग बहुत पुराने समय मलयसे मादागास्कर गये थे। यह ईमेरिना प्रान्तमें बसते हैं। इनका क़द छोटा, रङ्ग काला-पीला और बाल सीधा या कुछ-कुछ टेढ़ा होगा। पूर्वसागर तटपर मलागासी रहते, जो होवे और सकलावेके बीचका क़द रखते हैं। द्वीपके अवशिष्ट अंशमें सकलावे देख पड़ेंगे। इनमें हबशियोंकी चाल-ढाल ज्यादा पायी जाती है।

यहां लकड़ीके मकान सीधे बनते, बकले और खजूरके रेशेका कपड़ा पहनते और भूत-प्रेतपर विश्वास रखते हैं। पशु उत्पन्न करने और ज़मीन् बोनेका भी काम चलता है। होवोंने अपने देश मलयकी चाल नहीं छोड़ी। सन् ई०के १९वें शताब्द-

में होवोंने खृष्टीय धर्म ग्रहण किया था। अब फ़्रान्सीसियोंने गुलामी और नवाबी उठा दी है। उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पूर्व सागरतटपर अरब भी खूब बसते हैं।

अफ़रीकामें पूर्णरूपसे अनुसन्धान न लगते, इसकी सम्पूर्ण जातिका विवरण बता नहीं सकते। जहां लोगोंका नाम मालूम होता है, वहां भी जातीय सम्बन्धका कोई ठिकाना नहीं लगता।

असलमें रोमकोंने इस महादेशका नाम अफ़रीका रखा था। सुदूर पूर्वकालपर निम्न नाइलकी उपत्यकामें कोई सभ्य जाति बसते रही। मिस्र और अफ़रीकाके बीच घना जङ्गल होनेसे मिस्रकी शिक्षा यहां पहुंच न सकी थी।

इतिहास

यदि पुराने मिस्र ईथिवोपियाका नाम न लें, तो अफ़रीकाके विषयमें एशियायी और युरोपीय विजेतावों और उपनिवेश स्थापकों कोही कहानी सुनाना पड़ेगी। केवल एक अबसीनिया राज्य ही ऐसा समझिये, जिसने सम्पूर्ण ऐतिहासिक समयमें अपनी स्वतन्त्रता अक्षुस रखी। भूमध्यसागर किनारेके देशमें प्रथम फिनिकीय घुसे, जिन्होंने सन् ई० से १००० वर्ष पहले यहां अपनी बसती जमायी थी। सन् ई० से कोई ८०० वर्ष पहले कारथेजका पता लगा, जो देखते-देखते बड़ा शहर बन गया। फिनिकीयोंने यहांके निवासी बर्बरोंको दबा ग्रेट-सिरटिस्से पश्चिम समग्र उत्तर अफ्रीकापर अपना अधिकार जमाया और वाणिज्यसे मालामाल हो गये थे। मिस्रवासियों और करथिजीयों दोनोने समुद्रकी राह इस महादेशके अज्ञात अंशोंमें पहुंचनेकी चेष्टा की। हिरोदोतस्का कहना है, कि सन् ई०से ६०० वर्ष पहले मिस्रके नृपति नेकोने जहाज़ोंकी कोई मुहीम भेजी, जिसने लोहितसागरसे भूमध्यसागर तक तीन वर्षमें चक्कर लगाया था। सिवा इसके केप-नन तक पश्चिम-सागरतट फिनिकीयोंको अच्छी तरह मालूम रहा। सन् ई०से ५२० वर्ष पहले हन्नो नामक किसी कर्थेजीयने वाइट-अब-वैनिन और सीरा-लिवोन तक सागरतट देखा-भाला। फिनिकीय नाइगेर प्रान्तका भी अस्पष्ट वृत्तान्त जानते थे।

इसी बीच युरोपके पहले उपनिवेश-स्थापक अफ़रीकामें जा बसे। सन् ई०से ६३१ वर्ष पहले यूनानियोंने ग्रीक द्वीपपुञ्जके पास अफ़रीकामें किरेनी शहर खड़ा किया था। किरेनीका शीघ्र ही समृद्धिशाली उपनिवेश बना, किन्तु उसकी चारो ओर जङ्गल होनेसे मध्य अफ़रीकापर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। हेलेनिष्टिक वंशके राज्यकालमें यूनानी अबसीनिया-तक आ पहुंचे थे। सन् ई०से १४६ वर्ष पहले कर्थेजका पतन होनेपर किरेनयका, कर्थेजिनिया और रोमका सारा झगड़ा निबट गया। रोमकोंके समय अफ़रीका खूब चढ़ा-बढ़ा रहा। फेज़न तो ले लिया, किन्तु रोमकोंने दूसरी जगह सहारेको अगम्य पाया था। नूबिया और अबसीनिया तक पहुंचते भी नेरो नृपतिकी मुहीम नाइल-मुख न ढूंढ सकी। सन् ई०के २रे शताब्दमें टोलेमिने अफ़रीकाका जो हाल लिखा, उससे उनका भौगोलिक ज्ञान प्रमाणित होता है। उन्होंने नाइलके पास बड़ी-बड़ी झीलोंका रहना अनुमान किया और नाइगेर नदीकी बात सुनी। उस समयतक अफ़रीकामें भूमध्यसागर-किनारेके देश ही सुसभ्य बने थे।

सन् ई०के ७वें शताब्दमें यहां खृष्टीय युग लगा। किसी अरबी सरदारने कट्टर मुसलमानोंको ले लोहितसागरसे अटलाण्टिक महासागरतक समग्र देश जीता था। सिवा मिस्र, नूबिया और अबसीनियाके समग्र उत्तर-अफ़रीकामें खृष्टीय धर्मपर बड़ा धक्का बैठा। सन् ई०के ८वें, ९वें और १० वें शताब्द समय अफ़रीकामें अरबोंकी संख्या घटी और उनके अधीन तलवारसे जीते देश ही रह गये थे। किन्तु ११वें शताब्दमें अरबोंका खूब दबदबा बढ़ा और बर्बरोंने उनके वचन और धर्मको स्वीकार किया। इसतरह अरबी और मुसलमानधर्मका प्रभाव उत्तर अफ़रीकामें खूब जम गया था। इसीके साथ-साथ अरब दक्षिणकी ओर सहारेके पारतक फैल पड़े। वह पूर्वीय तटके भी प्रभु बने, जहां अरबों, ईरानियों और भारतीयोंने

व्यापारके लिये समृद्धिशाली मोमवासे, मलिन्दी और सोफालेके उपनिवेश पहले ही बसा दिये थे। कितने ही दिन युरोपीय और उत्तर अफ़रीकाके अरब इन नगरोंके विषयमें अज्ञान रहे।

सन् ई० के १० वें शताब्द समय फतिमा-वंशने अपनेको मिस्रमें प्रतिष्ठित किया और सन् ९६८ ई० में कायरो बसाया था। वहांसे उसने अटलाण्टिक महासागरतक शासन चलाया। पीछे अलमोराबिदों और अलमोहदोंका भी अभ्युदय हुवा था। अन्तको सन् १४५३ ई० में तुर्कोंने कुस्तुन-तुनिया और १५१७ में मिस्र जीता; उन्होंने १५१७ और १५५१ के बीच अलजीरिया, तूनीशिया और त्रिपोलीको बादशाहीको नयाबत बनाया। मोरोको शरीफ़-वंशके अधीन स्वतन्त्र बर्बर राज्य बना रहा, जो १३ वें शताब्दके समय प्रारम्भ हुवा था। प्राचीन वंशके अधीन अरबी या मूरीय-शिक्षाका महत्त्व रहा, मुसलमानोंने अफ़रीकाका कितना ही हाल जान लिया। ऊंटकी सवारीसे अरबोंने सहारेका धावा लगाया था। इस तरह सीनीगम्बिया और मध्य नाइगेर-प्रान्त अरबों और बर्बरोंके हाथ आया, किन्तु ११वें शताब्दके बसे टिम्बक्टु नगरने सन् १५९१ ई० तक मुसलमान-धर्म ग्रहण न किया। सन् १३५२ ई० में अरब-पर्यटक इबन्-बतूता इस नगर पहुंचे थे। किन्तु दक्षिणकी ओर वह जङ्गल पड़नेसे गीनिया सागरतट और उसके उस पारका हाल जान न सके।

सन् १४१५ ई० में पोर्तुगीजोंकी एक सैन्यने मूरीय तटके क्यिउटे क़िले पर अधिकार जमाया। उस समयसे पोर्तुगाल मूरोंके मामलेमें दखल देते रहा था। स्पेनने अलजीरिया और तूनीशियाके कितने ही बन्दरगाह हासिल किये। किन्तु सन् १५७८ ई० में अकसर-अलकबीरके मैदान पर पोर्तुगालने मूरोंके सरदार १ले अब्दुल मलिकके हाथ गहरी हार खायी थी। स्पेनियार्डोंने भी उसी समय अफ़रीकाका अपना सारा अधिकार खोया। बर्बरी राज्य सन् ई०के १६ वें शताब्दतक आपसमें लड़ते-झगड़ते रहे, कितने ही लोग डाकू बन गये थे। अल्जीयर्स, तूनिस और दूसरे शहरमें हज़ारों ईसाई गुलाम मौजूद रहे।

प्रथम किङ्ग् जोन (John)के पुत्र प्रिन्स हेनरीने अफ़रीकामें पोर्तुगाल अधिकार स्थापित करनेको जहाज़पर चढ़ खूब ढूंढ-खोज लगाई थी। सन् १४३४ ई०में केप बोजाडोर, १४४५ में केप वरदे और १४८० में समग्र गीनी-उपकूल जाना गया। इसी तरह १४८२ में डिवोगो कांवको कोङ्गोके मुख, १४८८ में बरथोलो मिवो डियासको केप-अव-गुड्-होपका पता लगा। सन् १४९८ ई०में वास-को-डागामा सोफाले और मलिन्दी होते हुये भारत पहुंचे थे। गीनीमें गुलामोंका व्यापार बढ़ने और पोर्तुगीजोंके मालामाल बननेसे कितने ही युरोपीय गये। सन् ई०के १६वें शताब्द समय बम्बुकवाले सोनेके पहाड़की तलाशमें सिनीगम्बियाका कितना ही हाल खुला था। १७वें शताब्दमें सागरतटका अधिकार पोर्तुगालके हाथसे होलण्ड और १८वें एवं १९वें में होलण्डके हाथसे फ्रान्स और इङ्गलण्डके हाथ गया।

कोङ्गोके मुखसे दक्षिण ओर डमारादेशतक पोर्तु-गीजोंने सन् १४९१ ई० बाद बन्तू-नीग्रोपर अपना प्रभाव जमाया और १६ वें शताब्दके आदिमें कोङ्गोके देशी राजाको ईसाई बनाया। किन्तु भीतरी प्रान्तसे किसी नरमांसभुक्-जातिने निकल आधे ईसाई राजाकी शक्ति तोड़ी और पोर्तुगीजोंको अधिक दक्षिणकी ओर हटा दिया था। सन् १६४० से १६४८ ई० तक यहां बन्दरगाहोंपर ओलन्दाजोंका आधिपत्य रहा।

अफ़रीकाके निर्धन और जनशून्य देशकी ममता छोड़ पोर्तुगीजोंने सोफाले और केप गरदाफुयीके बीच हरे-भरे अरबी शहरोंपर दाढ़ लगायी। सन् १५२० ई० तक पोर्तुगीज, वह सब राज्य हड़प बैठे और मोज़म्बिकको अपने पूर्व-अफ़रीकाका प्रधान नगर बनाया था। १६ वें और १७ वें शताब्दमें ज़म्बेजी उपत्यका ढूंढी गयी, जिसमें अर्ध-सभ्य बन्तू-नेग्रो बसते और अरबोंसे मिलते-जुलते रहे। पोर्तुगीजोंने रोडेशिया लेनेकी बड़ी चेष्टा की थी। कहते हैं, कि

वहां १२ वें शताब्दसे लोग सोना निकालने गये हैं। पोर्तुगीजोंने सन् १५६९ ई०के बाद वहां कई बार चढ़ाई की और कितना ही सोना घर ढो लाये। १७वें शताब्दमें भीतरी प्रान्तपर पोर्तुगीजोंका अधिकार घटा और १८वें शताब्दमें वह अपने क़िले वगैरह छोड़ चलते बने।

अबसीनियामें भी पोर्तुगीजोंका खूब दबदबा रहा। मुसलमान-आक्रमणकारियोंने देशीय वंश और खृष्टीय धर्मका नाश कर ही डाला था; किन्तु ४०० पोर्तुगीजोंने साहसपूर्वक उनसे लड़ १५४१ से १५४३ तक शत्रुका मनोरथ विफल किया। सन् १६१५ ई०में पेड्रो पाइज़ और दश वर्ष बाद जेरोनियो लाबोने नीलनद या ब्लूनाइलका मुख जाकर देखा था। सन् १६६३ ई०में अबसीनिया राज्यसे पोर्तुगीज़ निकाल बाहर किये गये। उसी समय मस्क़टवाले अरबोंके सामने ज़ञ्जीबार तटपर पोर्तुगीजोंके पैर न ठहरते और १७३९ ई०में केप डेलगाडोसे उत्तर-पूर्व तटपर उनके अधिकारभुक्त कोई स्थान रहा न था।

पोर्तुगीजोंने केप-अव-गुड-होपको अच्छा न समझा। टेबिल-बे में लोग १७ वें शताब्द विश्राम लेनेको जहाज़से उतरते थे। सन् १६२० ई०में ओलन्दाजोंसे आगे बढ़ इष्ट-इण्डिया कम्पनीके दो अफ़सरोंने अपनी इच्छाके अनुसार टेबल-बे पर अधिकार जमाया। सन् १६५१ ई०को नेदरलेण्डकी इष्ट-इण्डिया कम्पनीने तीन छोटे जहाजोंका बेड़ा भेजा था, जो सन् १६५२ ई०को ६ठीं अप्रेलको टेबल-बे जा पहुंचा। आविष्कार होनेसे १६४ वर्ष बाद दक्षिण-अफ़रीकामें गोरोंका उपनिवेश लगा था। अंगरेजोंने सेण्ट-हेलना द्वीपपर अपना अधिकार जमाया। ओलन्दाज उपनिवेशक अंगरेजोंसे मेल रखने कारण उत्तरकी ओर बढ़ते और दक्षिण अफ़रीकापर अपनी भाषा, नीति और धर्मका प्रभाव फैलाते थे।

सन् ई०के १८वें शताब्दमें अफ़रीकाकी कोई बात लिखने लायक़ नहीं देखते। अमेरिका और पूर्वमें अभुत्व पानेकी इच्छासे युरोपीय आपसमें लड़ते रहे, किसीने अफ़रीका पर ध्यान न दिया। हां, पश्चिम किनारे बदाबदी चलती थी, सो भी राज्य नहीं, व्यापारके लिये रही। इस देशमें गुलामोंका व्यापार बहुत बढ़ गया था; सोने, हाथी-दांत, गोंद और मसालेके कामका कोई लेखा न रहा। सन् १७८८ ई०के समय लन्दनमें अफ़रीकाका भीतरी प्रान्त ढूंढनेकी कोई सभा बनी थी। सन् १७७० से १७७२ तक अबसीनिया और सेनर जाते समय जेम्स ब्रूस्‌ने ब्लूनाइलकी चालका ख़याल बांधा। सन् १७९५ ई०में गम्बियाकी राहसे पहुंच मङ्गो-पार्कने नाइगेरको देखा था। सन् १८०६ ई०में दूसरी यात्रा पर पार्क नाइगेरसे बूसामें उतर मर गये। सन् १८३० ई०में रिचार्ड लेण्डर और उनके भाईने नाइगेरके समुद्रमें नाइगरनेका स्थान ढूंढ लिया था। कितने ही अन्वेषक अफ़रीकामें जा रहे हैं। सबसे पहले सन् १८०२ और १८११ ई०में पोर्तुगालके दो व्यापारियोंने अङ्गोलेसे जम्बेजी पहुंच अफ़रीकाको पार किया था।

अंगरेजोंने नेपोलियनसे युद्ध होनेपर केपकी ओलन्दाज बसतीपर अधिकार जमाया और सन् १८१४ ई०में ओलन्दाजोंने अंगरेजोंको केप सौंप दिया था। सन् १८०७ ई०में अंगरेजों और सन् १८३६ ई०में दूसरी युरोपीय शक्तियोंने गुलाम बिकनेका काम उठा डाला। सन् १८१७ में अंगरेजोंने कुमासीको अपना मिशन भेजा था।

सन् १८१६ ई० में अन्वेषकोंने कोङ्गोका अधिक विवरण न पाया, किन्तु मध्य सोदानमें अच्छी सफलता ली। सन् १८२३ ई० में सबसे पहले तीन अंगरेज त्रिपोलीकी राह चाद झीलको जा देखा था। सन् १८३० ई० में नाइगेरका मुख मालूम हुवा। सन् १८२६ और १८२७ ई० में ही तमबक्टुका पता लग गया था। सन् १८४१ ई० में निम्न नाइगेरपर जो गोरी बसती बसानेकी विकट चेष्टा की गयी थी, वह निष्फल हुयी। किन्तु सन् १८५१ ई०में अंगरेजोंने लगोस द्वीपपर अधिकार जमा लिया। सन् १८५० से १८५५ ई० तक तमबक्टु और चाद झीलके बीचवाले देशका हाल खुला था।

सन् १८३० ई० में फ्रान्सीसियोंने अलजीयर्सपर अधिकार जमाया, जिससे बर्बरी राज्यकी लूट-मार बन्द हुयी थी। सन् १८४३ ई० में नेटाल ब्रटिश उप निवेश बन गया। सन् १८३२ ई० में मस्कटके सैयद सयीदने जञ्जीबार नगर बसाया था। सन् १८४८ ई० में कोई अरब जञ्जीबारसे चल बङ्गुयेला जा पहुंचा। सन् १८४८ और १८४९ ई० में ही लडविग क्राफ, और जे० रेबमानको पादरियोंने ढूंढा था।

सन् १८४९ ई० में कोई पादरी, दक्षिणसे उत्तरको कलहारी रेगस्थान पारकर येङ्गामी झ्रदपर पहुंचे और सन् १८५१ और १८५६ ई०के बीच पश्चिमसे पूर्व महादेशको लांघा, जिससे उपर जमबेज़ीकी सारी चाल मालूम पड़ी। सन् १८५५ ई० में विक्टोरिया-प्रपातका पता लगा था। सन् १८५८-६४ ई० में निम्न जमबेज़ी, शारी और नइसा झ्रद खुला। सन् १८५८ ई० में उत्तरका टङ्गनयिका झ्रद मालूम हुवा था। सन् १८६२ ई० में विक्टोरिया नियञ्जासे मिश्र-की ओर बहनेवाली नदी, सन् १८६४ ई० में पश्चिमीय अलबर्ट नियञ्जा और सन् १८६६ ई० में मेरू और बङ्गुवेलू झ्रद देख पड़े।

सन् १८६० और १८७५ ई०के बीच तीन युरो-पीय पर्याटकोंने दक्षिण-मोरोक्को, सहारे और सोदान-में खूब इधर-उधर धावा लगाया। सन् १८६५ ई०के मध्य अफ्रीकाकी बौनी जातिका पता लगा था। सन् १८५५ और १८५९ ई०के बीच अफ्रीकाका गोरिल्ला बानर (Gorilla) देख पड़ा।

सन् १८६९ ई०के समय दक्षिण-अफ्रीकामें वाल नदीकी उपत्यकापर मूल्यवान् हीरेकी खानि निकली, जिससे उस ओर कितने ही लोग टूट पड़े और अंग-रेजोंने डचोंसे लड़-भिड़ उत्तरको अपना अधिकार बढ़ाया था। सन् १८७१ ई० में मशोना देशका ज़िम्बावे किला ढूंढा गया।

अन्तको कोङ्गो मालूम होनेपर धड़ाधड़ युरोपीय अफ़रीकामें बसने लगे और जर्मनी, फ्रान्स, ग्रेट-ब्रटेन और दूसरी शक्तियोंके राजकी सीमा बंधी। रेलवे भीतरी भागोंमें भी घुस गयी थी।

सन् १८७५ ई०से पहले अफ़रीकामें ब्रटेन, पोर्तु-गाल और फ्रान्सका ही अधिक ज़ोर रहा। सन् १८१५ और १८५० ई०के बीच ब्रटिश गवर्नमेण्टने पश्चिम और दक्षिण अफ़रीकापर खूब ध्यान लड़ाया था। किन्तु पश्चिमतटपर रोग, मृत्यु, वाणिज्यनाश और जङ्गली लोगोंकी लड़ाईका सामना पड़ने और दक्षिणमें बुअरों और काफिरोंके बिगड़ खड़े होनेसे उनका साहस बढ़ने न पाया। सन् १८६७-६८ ई०में अबसीनिया-युद्ध और १८७३ ई० में अशान्ति-युद्ध हुवा, जिसमें कितने ही अंगरेज मारे गये और कितना ही रुपया खर्च पड़ा। सन् १८६१ ई० में भारतके बड़े लाट लार्ड कनिङ्गने मस्कटवाले इमामके अरबो और अफ़रीकाके राज्यका बंटवरा करा दिया था।

अंगरेजोंने सन् १८५० ई०में गोल्ड-कोष्टवाले ओलन्दाजोंके किले खरीद लिये थे। सन् १८७५ ई०में पोर्तुगालने डेलोगोवा उपसागरका पूरा अधिकार पाया। सिवा अलजीरियाके सिनिगलमें भी फ्रान्सी-सियोंकी बसती रही, जहां सन् १८५४ ई० में उन्होंने अपना नया प्रधान शासनकर्ता बैठा राज्यवृद्धिकी आकाङ्क्षा प्रकट की थी। फ्रान्सके अधीन उपर गिनीतटके कुछ नगर, गबुनका मुहाना और ओबक आदि सब स्थान रहे।

उत्तर अफरीकामें तुर्कोंने सन् १८३५ ई०के समय त्रिपोलीपर अधिकार जमाया और मोरोक्को स्वतन्त्र रहनेसे बिगड़ गया था। सन् १८६९ ई० में सूएजकेनल खुला, जिससे अफ़रीकाका भविष्यत् चमकन लगा।

सन् १८७५ ई० में अफ़रीकाका जो रक़बा निकला है, वह ठीक नहीं ठहरता। पोर्तुगोज़ कहते थे,—अफ़रीकामें हमारा साम्राज्य ७००००० वर्ग मील भूमिपर फैला है। किन्तु उस समय पोर्तु-गालका ४०००० वर्ग मीलसे अधिक राज्य न रहा। ग्रेट ब्रटनके २५००००, फ्रान्सके १७०००० और स्पेनके अधीन १००० वर्ग मील भूमि थी। ओलन्दाज प्रजा-तन्त्रके ट्रान्सवाल और अरेञ्ज स्वतन्त्र राज्यका रक़बा १५०००० वर्ग मील रहा। अतएव समस्त युरोपीय

शक्तियां अफ़रीकामें १२७१००० वर्गमील भूमि अर्थात् महादेशके दशमांशपर अधिकार जमाये बैठी हैं।

तुर्कोंके अधीन मिस्र, सोदान, तूनीशिया और त्रिपोलिका राज्य रहे। अबसीनिया, मोरक्को, जञ्जीबार और लिबेरिया स्वतन्त्र राज्य थे। नीग्रो और नीग्रो-बन्तू कभी अपना प्रभाव दूर-दूर फैलना नहीं चाहता।

सन् १८७० ई०के समय फ्रान्स-जर्मन-युद्ध समाप्त होनेपर जर्मनीको अफ़रीकामें उपनिवेश बनानेका लालच बढ़ा और ग्रेट-ब्रटेन, फ्रान्स और इटली सभी अपना-अपना दांव देखाने लगे। अन्तको यही कार्य अफ़रीकाके विभागका कारण बना था।

बेलजियन् राजा लिवोपोल्डने सन् १८७६ ई० में देशके विभागका काम अपने हाथ लिया। उन्होंने अपनी राजधानी ब्रूसेल्समें (आजकल यह नगर जर्मनोंने बेलजियनोंसे लड़-भिड़ छीन लिया है) ग्रेट-ब्रटेन, बेलजियम, फ्रान्स, जर्मनी, अष्ट्रिया-हङ्गरी इटली और रूसके प्रतिनिधियोंकी कोई सभा बैठायी और अफ़रीकामें व्यापार बढ़ानेका यत्न पूछा। सभा गैर सरकारी होनेसे कुछ फल न निकला और तीन दिन बाद 'अन्तर्जातीय अफरीकान' समिति प्रतिष्ठित हुयी। किन्तु उसके सभ्य अपनी-अपनी जातिका काम देखने लगे और अन्तमें समिति केवल बेलजियन् रह गयी। सन् १८७८ ई०में लिवोपोल्डने कोङ्गोके आविष्कारपर ध्यान दिया था।

सन् १८७५-७८ ई०में गबुनसे दक्षिण ओगोवे नदीका पता लगाया और सन् १८७९ ई०में कोङ्गोके पास भले आदमी बसाने, गुलामी बन्द करने और अन्याय रोकनका विचार किया गया। सन् १८८० ई०के अक्तोबर मास फ्रान्सीसियोंने कोङ्गो प्रान्तके किसी बड़े राजासे सन्धि कर ली। इस सन्धिके पीछे ही फ्रान्सीसियोंने कोङ्गो नदीके दक्षिण-तटपर अपना अड्डा जा जमाया था।

फ्रान्सीसियों और बेलजियनोंकी चहल-पहल देख पोर्तुगीज् भी कोङ्गोमें घुसे और उन्होंने सम्पूर्ण कोङ्गो प्रान्त पर अपना दावा लगाया। पोर्तुगीजोंने कहा,—'कोङ्गोमुखसे उत्तर कबिन्दे और मोलेम्बेके राज्य हमें मिलना चाहिये, कारण वह हमारे अधिकारमें सन् १४८४ ई०से रहे हैं।" सन् १८५६ ई० में अंगरेजी जङ्गी जहाजोंको आज्ञा हुयी, कि एसब्रजसे उत्तर पोर्तुगीज अपना राज्य बढ़ाने न पाते। सन् १८८२ ई०में कितनी ही बातचीत कोङ्गोको दोनो ओर और कुछ भीतरी प्रान्तपर पोर्तुगीजोंका अधिकार करनेपर अंगरेजोंसे चलती रही। सन् १८८४ ई० की २६ वीं० फरवरीको अंगरेजो और पोर्तुगीजोंमें जो सन्धि हुयी थी, उससे अफरीकाके कुछ पश्चिमतट और कोङ्गोके दक्षिण किनारे भीतर नोकीतक पोर्तुगीजोंका राज्य माना गया। कोङ्गोमें नाव चलानेका काम किसी एङ्गलो-पोर्तुगीज् कमिशनके हाथ लगा था। किन्तु इस सन्धिपर कोई युरोपीय शक्ति सन्तुष्ट न हुयी।

सन् १८७६ ई०में ग्रेट-ब्रटेनने अरेञ्ज-स्वतन्त्र-राज्यसे अपनी सीमा अलग की और कोई नौ लाख रुपये दे किम्बरलेके हीरेकी खानि अपने राज्यमें मिलायी। सन् १८७७ ई०की १२वीं अप्रेलको ट्रान्सवालके अंगरेजी राज्य होनेका ढिंढोरा पिटा। सन् १८८० ई०में लड़ाई हुयी और सन् १८८१ ई०के मार्च मास तक चलती रही ; अन्तमें सन्धि कर ली गयी। इसके अनुसार कुछ शर्तोंपर अंगरेजोंके अधीन ट्रान्सवाल स्वतन्त्र बना। सन् १८८४ ई०में सन् १८८१ की सन्धि बदली और बुआरोंने अंगरेजोंसे बिना पूछे किसीसे मेल-जोल न बढ़ानेका वचन दिया।

सन् १८८० ई०में पश्चिम-ग्रिक्वा देश अन्तरीपसे मिलाया गया था। सन् १८७७ और १८८४ ई०में केयी नदीको उस ओरका देश भी अंगरेजी राज्यके अन्तर्गत हुवा, किन्तु सन् १८८७ ई०तक वहां अंगरेजी शासन न चला। सन् १८४३ ई०में जूलू नृपतिने सेण्ट लूशिया उपसागर अंगरेजोंको सौंपा और सन् १८८४ ई०में उन्होंने उसपर अधिकार जमाया। अन्तको अंगरेजोंने टोङ्गा देशके अधिपतिसे किसी विदेशीको भूमि न देनेका वचन लिया और दक्षिणतटपर अंगरेजी राज्यका सम्बन्ध सुशृङ्खल बनाया। सन् १८८४

ई०में ब्रटिश उत्तर-केपसे टङ्गनयिका ह्रदकी ओर आगे बढ़ने लगा था। सन् १८८४ ई०के मई मास देशी नृपतियोंसे सन्धिकर अंगरेजोंने केपकोलनोसे उत्तर और ट्रान्स्वालमें पश्चिम सारे देशको अपना रक्षित राजत्र बना लिया।

सन् १८८४ ई० से कितने ही वर्ष पहले जर्मन पादरी डमारों और नमकुवोंके बीच बसे और उनके साथ कुछ व्यापार भी चलाते थे। पादरियों और देशी लोगोंमें झगड़ा होनेपर जर्मन गवर्नमेण्टने ब्रटिश गवर्नमेण्टसे पूछा, क्या वह डमारा और नम-कूवा देशमें बसे युरोपीय पादरियोंकी रक्षा रख सकती थी। सन् १८७८ ई० में अंगरेजोंने फिर वालफिश उपसागर पर अपना झण्डा उड़ाया। सन् १८८२ ई०के नवम्बर मास किसी जर्मन सौदागरने जब अरेञ्ज और लिटिल-फिश नदीके बीच कोई कारखाना खोलना चाहा और जर्मनीसे उसकी रक्षा रखनेकी बात पूछी, तब प्रिन्स् बिस्मार्कने उसे प्रत्येक प्रकार आश्वास प्रदान किया। सन् १८८३ ई०के फरवरी मास जर्मन राजदूतने अंगरेजोंको इस बातकी खबर दी और उनसे पूछा,—"क्या ब्रटिश गवर्णमेण्ट वहां शासन करती है?" ९ वीं अप्रेलको जर्मनोंने अङ्गारा पेकीना पहुंच स्थानीय नृपतिसे २१५ वर्ग मील भूमि प्राप्त की। सन् १८८४ ई० के अगस्त महीने केप-टाउनके जर्मन-राजदूतने घोषणा की, कि पश्चिम तटपर जहां जर्मन व्यापार करते, वहां जर्मन-गवर्नमेण्टने उनकी रक्षाका भार अपने हाथ ले लिया है। फिर सन् १८८४ ई० की ८ वीं सितम्बरको जर्मन गवर्नमेण्टने ब्रटिश गवर्नमेण्टको सूचना दी,—"जर्मन-सम्राट्ने पश्चिम तटपर केप फ्रियोतक अपनी प्रजाकी रक्षाका भार अपने हाथ लिया है।" सन् १८८४ ई० की ५वीं जुलाईको टोगोके नृपतिने जर्मनोंसे सन्धिकर अपने देशकी रक्षाका भार उन्हें सौंपा। उसके कोई एक ही सप्ताह बाद कमरून ज़िलेमें भी जर्मन अधिकार होनेकी घोषणा हुयी।

सन् १८८४ ई० में फ्रान्सने देशी नृपतियोंसे कोई बयालीस सन्धियां कीं और पश्चिम अफ़रीकामें अपना प्रभाव बढ़ाना चाहा। सन् १८७७ ई०के समय निम्न नाइगीरमें अंगरेजोंने अपना शासन चलानेका विचार किया था। सन् १८७९ ई० में वहांके व्यवसायियोंने 'संयुक्त अफ़रीकन समिति' नाम्नी कोई गोष्ठी बनायी और वहां घर खड़ेकर बसने लगे।

सन् १८८१ ई० में फ्रान्सने तूनीशिया अपनी फौज भेज वहांके नृपतिको सन्धि करनेपर वाध्य किया। सन् १८८४ ई० की ४थी नवम्बरको तीन सम्भ्रान्त जर्मन ज़ञ्जीबार पहुंचे, जो अपना रूप बदले और बगलमें जर्मन झण्डे और सन्धिके काग़ज़ रखे थे। १९वीं नवम्बरको पूर्व अफ़रीकामें जर्मन झण्डा खड़ा किया गया। सन् १८७० ई० में ही असबने इटली मोल ले लिया था, किन्तु सन् १८८२ तक उसने उसे अपना उपनिवेश न बनाया। सन् १८८३ ई० की १५वीं मार्चको असबके सुलतानसे कोई सन्धिकर अबलीसका कुछ भाग उसने अपने हाथ लिया, जिसे सोविके राजाने भी स्वीकार किया।

सन् १८८४ ई० की १५वीं नवम्बरको बरलिन-की मन्त्रणा-सभा हुयी थी। सन् १८८५ ई० की २६वीं फरवरीको सब शक्तियोंके प्रतिनिधियोंने सन्धि-पत्रपर दस्तखत किये। सन् १८८५ ई० में सब शक्तियोंने कोङ्गोको स्वतन्त्र राज्य मान लिया था।

सन् १८८५ ई० को १ ली अगस्तको कोङ्गो-स्वतन्त्रराज्यकी सीमा निर्धारित की गयी। यह काम फ्रान्स, जर्मनी, पोर्तुगाल और देशी राजत्रसे मिल हुवा था। सन् १८९४ ई०में अंगरेज भी इस सीमा-निर्धारणसे राज़ी पड़े।

सन् १८८७ ई० में बेलजियमने फ़ान्सको सूचित किया, कि वह कोङ्गो स्वतन्त्र-राजत्रमें बेलजियमकी स्वार्थ हानि न करे। सन् १८८९ ई०की २री अगस्त-को बेलजियमके राजा लिवोपोल्डने अपने वसीयत-नामेमें (मृत्युलेख) कोङ्गो स्वतन्त्र-राजत्रके नृपतिका स्वत्व बेलजियमके माथे मढ़ा। अन्तको कुछ वर्ष बाद कोङ्गो बेलजियन उपनिवेश बन गया।

सन् १८९० ई० में अंगरेजोंने जर्मनीकी मर्ज़ीसे अपने पूर्व-अफ़रीकाकी सीमा बांधी, किन्तु फ्रान्स या

कोङ्गो-स्वतन्त्र राजत्रने उसे स्वीकार न किया। सन् १८८७ ई० की २७वीं अप्रेलको जो सन्धि हुयी, उसके अनुसार उबङ्गी नदीका दक्षिणतट फ्रान्स और वामतट कोङ्गो-स्वतन्त्रराजत्रके अधीन रहा था। सन् १८९१ ई० के फरवरी मास स्वतन्त्र-राजत्र ने कोई बड़ा अभियान नाइल देखने भालनेको भेजा। कुछ घोर युद्ध होनेपर सन् १८९२ ई० के सितम्बर मास अभियान नाइल पहुंचा।

सन् १८९४ ई० की १२वीं मईको अंगरेजों और बेलजियनोंके बीच 'एङ्ग्लो-कङ्गोलीज़' सन्धि हुयी, जिसके अनुसार बेलजियमने सन् १८९० ई० वाली 'एङ्ग्लोज-मॅन' सन्धिके अंगरेजी राज्यको स्वीकार किया और अंगरेजोंने उपर नाइलकी पश्चिम ओर थोड़ीसी ज़मीन्का पट्टा बेलजियनोंको लिख दिया। उसी समय कोङ्गो-स्वतन्त्र-राजत्रने भी अंगरेजोंके नाम साढ़े पन्द्रह मील भूमिका पट्टा लिखा था। किन्तु सन् १८९० ई०के जुलाई मास अंगरेजों और जर्मनों-में सन्धि हुयी, उसके कारण अंगरेज अपने उत्तरीय और दक्षिणीय प्रान्तके बीच समाचारका आदान प्रदान रख न सके।

सन् १८९६ ई० में फ्रान्सने नाइलकी ओर एक अभियान भेजा, जिससे अंगरेज और फ्रान्सीसी युद्धमें कूद पड़े। सन् १८९७ ई० के अक्तोबर मास अभियान सू नदीके किनारे जा पहुंचा। सन् १८९८ ई० की १०वी जुलाईको फ्रान्सीसी अभियान फशोदे गया, राहमें डाक बैठी थी। फशोदेमें फ्रान्सीसी झण्डा उड़ा और देशीय नृपतिसे सन्धि हुयी। मिश्रके अंगरेज यह खबर मिलते ही दौड़ पड़े और फशोदेमें अपना भी झण्डा जा चढ़ाया। इससे बड़ा उपद्रव मचा। किन्तु सन् १८९९ ई० की २१ वीं मार्चको अंगरेजों-और फ्रान्सीसियोंमें जो सन्धि हुयी, उसके अनुसार फ्रान्स नाइल उपत्यकासे हट गया।

फ्रान्सके नाइल उपत्यकासे निकलते ही बेलजियम ने सन् १८९४ ई० के 'एङ्ग्लो-कङ्गोलीज़' सन्धिपत्रकी २री धारापर बहरुलगज़ल पानेको अपना स्वत्व बताया। अन्तको सन् १९०४ ई० में बेलजियमके राजाने वहां अधिकार जमाने अपनी फौज रवाना की। जब सीधे हाथों घी न निकला, तब कोङ्गोके स्थानों और नाइलके बीचकी राह बन्द कर दी गयी। सन् १९०६ ई०की ९वीं मईको लन्दनमें जो सन्धि हुयी थी, उसके अनुसार सन् १८९४ ई०का पट्टा रद किया गया।

सन् १८९५ ई०की १४वीं फरवरी और सन् १८८६ ई०को जो सन्धि हुयी थी, उसके अनुसार पोर्तुगालने कबिन्देपर अधिकार पानेका दावा किया। सन् १८८५ ई०के ही सन्धिपत्रसे नोकी तक दक्षिणीय कोङ्गोतट पर भी पोर्तुगालका स्वत्व माना गया था। पश्चिममें पोर्तुगाल कोङ्गोसे कुनेने नदीके मुखतक राजत्र करते रहा। सन् १८९१ ई०की २५वीं मईको जो पोर्तुगाल और स्वतन्त्र-राजत्रके बीच सन्धि हुई थी, उसके अनुसार वह बड़ा प्रान्त दोनोंने आपसमें बांट लिया। सन् १८८६ ई०में पोर्तुगाल अङ्गोले और मोजम्बिकके बीच सारे प्रान्तपर अधिकार पानेको उसे राजी कर सका था। सन् १८८७ ई०की १३ वीं अगस्तको अंगरेजोंने इसके विरुद्ध एक चिट्ठी लिख लिसबन भेजी। सन् १८८८ ई०की ११वीं फरवरीको मताबेले और मशोना देशके नृपतिने सन्धिकर अपना सारा देश अंगरेजोंकी रक्षाके अधीन किया।

इसी बीच अंगरेज, मताबेले और मशोना देशकी खानि आदिका पता लगानेको तैयार होने लगे। सन् १८८९ ई०की २९ वीं अक्तोबरको ब्रटिश गवर्न-मेण्टने ब्रटिश-दक्षिण-अफरीका-कम्पनीको अधिकार पत्र प्रदान किया। सन् १८९० ई०की ११ वीं सितम्बरको अंगरेजी अभियानने पहुंच मताबेलेकी मकूबुसी नदीपर अपना झण्डा जा उड़ाया। इसके बाद कितने ही दिनों अंगरेजों और पोर्तुगीजोंके बीच झगड़ा चलते रहा था।

फिर पोर्तुगाल जम्बेजीसे उत्तर अपना अधिकार बढ़ाने लगा। सन् १८८८ ई० में जम्बेजीकी राह अंगरेजी जहाज जाने न देनेकी जो चेष्टा हुयी थी, वह विफल गयी।

सन् १८८९ ई० में अंगरेजोंको मालूम हुवा, कि

जम्बेजी प्रान्तमें अधिकार जमानेको पोर्तुगाल कोई बड़ा अभियान भेज रहा था। इसपर शीघ्र ही एक सम्भ्रान्त अंगरेज ब्रटिश दूत बन मोजम्बिक पहुंचे, जिनसे नियसा ह्रदतक जाने और अरबों और पोर्तुगीजोंका हाल लिखनेको कह दिया गया था। उन्होंने वहां पहुंच पोर्तुगीज-अभियानको लड़ते-भिड़ते पाया। अन्तमें सन् १८९० ई०को २०वीं अगस्तको ग्रेट-ब्रटेन और पोर्तुगालके बीच जो सन्धि हुयी, उससे जम्बेजीके उत्तर बहुत सी भूमि अंगरेजों और दक्षिणतट पर कितना ही स्थान पोर्तुगीजोंको मिला। यही सन्धि सन् १८९१ ई०को ११वीं जूनको फिर सुधारी गयी। इस सन्धिके अनुसार सागरतटके स्थानों पर पोर्तुगाल और मताबीले एवं मशोना देशपर ग्रेट ब्रटेनका अधिकार रहा। सन् १९०३ ई०में बरोस राज्यकी सीमा बांधनेको इटलीके नृपतिपर बोझ डाला गया था। सन् १९०५ ई०के जून मास उन्होंने यह झगड़ा निबटा दिया।

सन् १८९१ ई०के जून मास पोर्तुगालसे सन्धि होनेके पहले ब्रटिश-गवर्नमेण्टने जम्बेजीके उत्तर सुविशाल प्रान्तका प्रबन्ध करनेको कुछ बन्दोबस्त कर लिया था। सन् १८९१ ई०को २री अप्रेलको ब्रटिश-दक्षिण-अफरीका-कम्पनीने जम्बेजी प्रान्तपर काम करनेका अधिकार पाया। (इस देशको अब उत्तर रोडेशिया कहते हैं) १४वीं मईको नियासा देश, शीरे उच्चभूमि और नियासा ह्रदके पश्चिम-तटकी भूमि अंगरेजी रक्षाके अधीन हुयी।

बर्लिन-कनफरेन्स मिलमे दिन जर्मन-गवर्नमेण्टने अरेञ्ज-नदीसे केप-फ्रिवीतक दक्षिण-पश्चिम तटकी रेखा अपनी रक्षाके अधीन बतायी थी। सन् १८८५ ई०को १३वीं अप्रेलको जर्मन दक्षिण-पश्चिम-अफरीका-कम्पनी बनी, जिसे शासन चलाने, खानि खोदने और रेल-तार बनानेका अधिकार मिला। सन् १८९० ई०के जुलाई मास जर्मन-दक्षिण-पश्चिम-अफ़रीकाकी सीमा बांधी गयी।

सन् १८८४-८५ ई०में बोअरोंने ज़ूलूदेशका कुछ भाग छीन नवीन प्रजातन्त्र प्रतिष्ठित किया था। सन् १८८६ ई०में ब्रटिश-गवर्नमेण्टने उनसे ज़ूलूदेशके बीच सीमा बांधनेको एक सन्धि की। किन्तु सन् १८८८ ई०में नया प्रजातन्त्र दक्षिण-अफरीका-प्रजातन्त्र बन गया। सन् १८९० ई०के जुलाई-अगस्त मास ब्रटिश-गवर्नमेण्ट और दक्षिण-अफ़रीका-प्रजातन्त्रके बीच जो सन्धि हुयी, उसके अनुसार स्वाजी देश स्वतन्त्र बना। यही सन्धि सन् १८९३ ई०को ८वीं नवम्बरको फिर दोहरायी गयी। किन्तु सन् १८९४ ई०को १९वीं दिसम्बरको ब्रटिश-गवर्नमेण्टने दक्षिण-अफ़रीका-प्रजातन्त्रको स्वाजी देशपर रक्षा रखने, क़ानून बनाने, सज़ा देने और प्रबन्ध करनेका अधिकार दिया। हां, स्वाजी देश प्रजातन्त्रसे सिर्फ़ अलग रखनेको कहा गया था। सन् १८९५ ई०को २३वीं अप्रेलको टोंगो देश अंगरेजी राज्यसे और सन् १८९७ ई०के दिसम्बर मास ज़ूलूदेश और टङ्गा देश नेटालके उपनिवेशसे मिलाया गया। सन् १८९९-१९०२ ई०में बोअर-युद्ध हुवा। सन् १८९९ ई०के अक्तोबर मास दक्षिण-अफरीका-प्रजातन्त्र और अरेञ्ज-स्वतन्त्र-राज्यने अंगरेजोंको एक चिट्ठी दे नेटाल और केप कोलोनीपर आक्रमण किया। युद्धका प्रतिफल यह निकला, कि सन् १९०० ई०को २८वीं मईको अरेञ्ज-स्वतन्त्र राजत्र अरेञ्ज-नदी उपनिवेश और २५ वीं अक्तोबरको दक्षिण-अफ़रीका-प्रजातन्त्र ट्रान्सवाल-उपनिवेश बना। सन् १९०७ ई०में ट्रान्सवाल और अरेञ्ज-नदी-उपनिवेश दोनोको दायी शासन दिया गया।

पूर्व-सागरतटपर दो बड़े प्रतिद्वन्द्वी जर्मनी और ग्रेट-ब्रटेन रहे। सन् १८८६ ई० को ३० वीं दिसम्बर-को जर्मनी और सन् १८९१ ई० को ११ वीं जूनको ग्रेट-ब्रटेनने अन्तमें रोवूमा नदीको पोर्तुगीज राज्यकी उत्तर सीमा माना था। सन् १८६२ ई० में ग्रेट ब्रटेन और फ्रान्स ज़ञ्जीबारके सुलतानोंको स्वतन्त्र ठहराया, जिनके साथ पोर्तुगीजोंका खासा झगड़ा रहा। सन् १८८४ ई० के नवम्बर मास कुछ जर्मन ज़ञ्जीबारके सामने जा उतरे और १९ वीं नवम्बरको

बुजोनी नृपतिसे पहली सन्धि गांठी। वामी नदीकी राह उन्होंने उसपारे देश पहुंच अधिक सन्धियां कीं और जब कार्ल-पोटर्स दिसम्बर महीने समुद्रतटपर लौटे, तब अपने साथ ६०००० वर्ग मील भूमि जर्मन उपनिवेशके लिये पानेका काग़ज़ लाये। सन् १८८५ ई०की १७वीं फरवरीको-जर्मन सम्राट्ने घोषणा की,—"हम इस नये प्रान्तकी रक्षाका भार अपने हाथ लेते हैं।" किन्तु इससे अंगरेज़ असन्तुष्ट न हुये। सन् १८८५ ई० की २५ वीं मईको अंगरेजोंकी ओरसे प्रिन्स् बिस्मार्कको लिखा गया,—"ब्रटिश गवर्नमेण्ट जञ्जीबारके पास जर्मन उपनिवेश बसते देख बहुत खुश हुई है। जर्मनों और अंगरेजोंके एकमें मिल काम करनेसे देशका बड़ा कल्याण होगा।"

सन् १८८४ ई०को कलिमनजेरो जिलेमें टवेटेके नृपतिसे व्यापारादि करनेको अंगरेजोंने सन्धि की थी। सन् १८८५ ई० की ५वीं मईको जर्मनोंने वीटूके सुलतानसे सागरतटपर कितनी ही भूमि खरीदी और कुछ दिन बाद सागरतटकी कितनी ही भूमि फिर मोल ले वहां अपना अधिकार जमा दिया। कलिमनजेरो प्रान्तके नृपतिसे भी भीतरी प्रान्तके लिये जर्मनोंने सन्धि कर ली थी। प्रथम अगस्तमें कोई शक्तिशाली जर्मन जहाजी बेड़ा जञ्जीबारके पास पहुंचा, जिसका बल देख सुलतानने असगरे और वितूपर जर्मन रक्षा स्वीकार की और अपने सिपाहियोंको पीछे हटा लिया।

सन् १८८५ ई० के अन्तमें अफरीकाके पूर्व-सागरतटपर जञ्जीबार सुलतान्के राज्यकी सीमा बांधनेको अंगरेजों, फ्रान्सीसियों और जर्मनोंकी कमिशन बैठी। सन् १८८६ ई० की ९वीं जूनको कमिशनरोंने अपनी रिपोर्ट निकाली और सुलतान्के राज्यमें जञ्जीबार, पेम्बा, लामू, मफिया और कुछ छोटे द्वीप रहनेको बताये। महादेशमें मिनेनगनी नदीके दक्षिण किनारेसे किपिनीतक कोई ६०० मील लम्बी भूमि सुलतानने पायी। दूसरी भी कुछ जगह उनको दी गयी थी। सन् १८८६ ई० के अक्तोबर-नवम्बर मास अंगरेजों और जर्मनों दोनोंने लिखा-पढ़ी कर कमिशनकी बात पक्की बतायी, ४थी दिसम्बरको सुलतान्ने भी उसे मान लिया। सन् १८८१ ई० के मई मास जर्मन-सम्राट्की रक्षाके अधीन जर्मन-पूर्व-अफ़रीका-कम्पनी खड़ी हुयी, और सन् १८८७ ई०की २४वीं मईको ब्रटिश-ईष्ट-अफ़रीका-कम्पनीने अम्बा नदीसे दक्षिण किपिनीतक दश मील लम्बा सागर-उपकूल पाया। सन् १८८८ ई० की ३ री सितम्बरको अधिकारपत्र ले ब्रटिश-ईष्ट-अफरीका-कम्पनी, इम्पीरियल-ब्रटिश-ईष्ट-अफ़रीका-कम्पनी बन गयी।

सन् १८९० ई० के आदिमें जर्मन-कार्ल-पोटर्स कविरोंदे पहुंचे और वहां उगन्दके नृपतिने अंगरेजी रक्षा स्वीकार करनेको जो चिट्ठी लिखी थी, वह उनके हाथ लगी। वह उगन्दके नृपति वङ्गके पास गये और उन्हें फुसला जर्मन रक्षा स्वीकार करनेको १८८६ ई० की सन्धिके अनुसार जर्मन-पूर्व-अफरीकाकी सीमा बांधी।

इम्पीरियल-ब्रटिश-ईष्ट-अफ़रीका कम्पनीने प्रबन्धका भार अधिक बढ़ने और धन-साहाय्य न मिलनेसे सन् १८९२ ई० के अन्तमें वापस जानेकी सूचना निकाली थी। लोगोंने चन्दा बटोर सन् १८९३ ई० के मार्च मासतक उसे न हटनेपर वाध्य किया। सन् १८९१ ई०के जनवरी महीने पूर्वमें अंगरेजी रक्षा स्थापित करनेको विचार हुवा था। ३१वीं मार्चको उगन्दे पर अंगरेजी झण्डा उड़ा, और २९ वीं मईको वङ्गा नृपतिसे नयी सन्धि कर उनका देश अंगरेजी रक्षाके अधीन किया गया। सन् १८९४ ई० की १९वीं जूनको अन्तमें मुख्य उगन्दे पर अंगरेजी रक्षा प्रतिष्ठित हुयी। सन् १८९५ ई० के जून मास ब्रटिश पूर्व-अफरीकाका प्रबन्ध इम्पीरियल-ईष्ट-अफ़रीका-कम्पनीके हाथसे निकल शाही हाकिमोंके गले लगा। सन् १९०२ ई० में उगन्देका पूर्व-प्रान्त ब्रटिश-पूर्व-अफरीकामें मिलाया गया था।

असबकी खाड़ीसे इटलीने अफरीकाके सागरतटपर पदार्पण किया था। सन् १८८५ ई०को मिस्रमें गड़बड़ मचनेसे ग्रेट ब्रटेनके कहनेपर इटलीने मसावे और सागरतटके दूसरे बन्दरगाहोंपर अपना अधिकार जमाया। सन् १८८८ ई०के समय इटलीका प्रभाव

रूशकसरसे वोधककी उत्तर-सीमातक कोई ६५० मीलमें फैल पड़ा। सन् १८८७ ई०के जनवरी मास इटलीकी कोई फ़ौज डोगालीमें मार डाली गयी थी, किन्तु उससे इटलीने दूना उत्साह पाया। उच्चभूमिपर इटलीने करन और असमरको अपने अधिकार-भुक्त बनाया और सन् १८८९ ई० के मई मास मनलकने सन्धि की; उन्होंने जोहन्सके अरबोंसे मारे जानेपर सिंहासन छीन लिया था।

सन् १८८४ ई० को १ली मई और सन् १८८६ ई०को १५ वीं मार्चके बीच कई सन्धियां हुयीं, जिनसे सोमाली सागरतट अंगरेजोंके अधीन पड़ा। सन् १८८९ ई० को ८वीं फरवरीको ओबियाके सुलतान्से इटलीने पहली सन्धि लगायी। सन् १८९१ ई० की १५वीं फरवरीको इटली और ग्रेट-ब्रुटेनने सन्धिकर सोमाली देशकी सीमा बांध दी। सन् १८९४ ई० की ५वीं मईको इटलीने भी अंगरेजी सोमाली देशकी सीमा ठीक की।

सन् १८९३ में अबीसिनिया-सम्राट् मनलकने उक्किएली को सन्धि रद की और सन् १८९६ ई० की १ ली मार्चको अदोवेमें जो घमासान लड़ाई हुयी थी, उसमें इटलीको बुरे तौरपर हरा दिया। सन् १८९६ ई० की २६वीं अक्तोबरको अदीस अबबमें जो सन्धि हुयी, उससे मरेब और बलेस नदीके दक्षिणका सारा प्रान्त अबसीनियाको वापस मिला और इटलीने उसे सम्पूर्ण रूपसे स्वतन्त्र समझा। लघ नगरके अधिकार-पर सन् १९०८ ई० तक विवाद हुवा था, अन्तमें वह इटलीके हाथ लगा। सन १९०५ ई० के जनवरी मास इटली-सरकार बेनादीर-कम्पनीको दिये हुए दक्षिण-प्रान्तका प्रबन्ध फिर करने लगी और जञ्जीबारके सुलतानको २१६००००) रुपया दे उसका पट्टा मोल ले लिया। सन् १८९४ ई० की सन्धिके अनुसार ब्रुटिश सोमाली देशकी जो सीमा बंधी थी, वह सन् १८९७ ई० में फिर ठीक की गयी। उसी वर्ष फ्रान्सने भी अबसीनियाके सम्राट्से सन्धिकर अपने सोमाली देशकी सीमा बांधी। सन् १९०० ई०के जुलाई और सन् १९०१ ई० के नवम्बर मास जो सन्धि हुई, उससे क्रमागत अबीसीनिया और सोदानकी और इरीट्रियाकी सीमा निर्धारित हुयी थी। सन् १९०२ ई० की १५वीं मईको अदीस अबबमें इटली और हबसयाने सन्धि कर इन सीमाओंका सुधार किया। उसी दिन अबसीनियाकी राजधानीमें अंगरेजोंने भी सन्धि लगा सोदान और अबसीनियाकी सीमा संवारी थी।

सन् १८९९ ई०को १९वीं जनवरीको कायरोमें अंगरेज और मिश्र-सरकारसे जो सन्धि हुयी, उसके अनुसार कुछ देशपर अंगरेजो और मिश्रो दोनो झण्डे उड़ानेकी बात ठहरी थी। सन् १९०४ ई०को ८वीं अप्रेलको हुयी अंगरेजी फ्रान्सीसी सन्धिने मिश्रमें अंगरेजोंकी स्थिति सबल बनायी। उसी दिन लन्दनमें भी इन दोनो शक्तियोंके बीच पृथिवीके विभिन्न स्थानोंका झगड़ा मिटानेको दूसरी कई सन्धियां की गयी थीं। इनमें मिश्र, मोरोक्को और पश्चिम अफ़रीकाकी भी बात रही।

सन् १८८१ ई०को तूनीशियामें फ्रान्सने रक्षाका जो भार उठाया था, उसका काम तो चलते ही रहा; किन्तु अलजीरियामें फ्रान्सका अधिक प्रभाव बढ़ गया। सन् १९००-१९०१ ई०में फ्रान्सके तुवात प्रान्तपर अधिकार करनेका मूर-सरकारने घोर प्रतिवाद उठाया। सन् १८८५ ई०में फ्रान्सीसियों और मूरोंने सन्धि जगा अल्जीरिया और मोरोक्कोंके बीच सीमा बांधी थी। किन्तु मोरोक्को फ्रान्सके उसे न माननेपर असन्तुष्ट रहा। सन् १९०१ ई०को २०वीं जुलाईको पेरिसमें फ्रान्स और मोरोक्कोके बीच सीमाप्रान्तपर मेल रखनेको फिर सन्धि हुयी। किन्तु उत्तर-मोरोक्कोमें ४थे अब्दुल अज़ीज़के समय अराजकता बहुत बढ़ गयी थी। सन् १९०६ ई०के जनवरी-अप्रेल मास अल्जीसिरसमें सुलतान्के कहनेसे मोरोक्कोका सुप्रबन्ध करनेको कोई कान्फ्रन्स बैठी। सन् १९०७ ई०में फ्रान्सने सेनाके बल उदजी नगर और कसाब्लाङ्के बन्दरगाहपर अधिकार पाया था।

पहले त्रिपोलीमें तुर्की राज्य रहा। फ्रान्सके सहारेमें फैलनेपर उसने उपद्रव मचाया था। किन्तु इटली अपना वहां प्रभाव फैलाने चाहता रहा।

सन् १८९९ ई०के मार्च मास उत्तर-मध्य-अफ़रीकामें अंगरेजी और फ्रान्सीसी राज्यके बीच सीमा रखनेकी जो सन्धि हुयी थी, उसे तुर्कोंने भी बड़े ध्यानसे देखा। सन् १९०१-१९०२ ई०में लोगोंने बताया, कि उत्तर-अफ़रीकाके लिये फ्रान्स और इटली दोनोंने आपसमें अपना निवटारा कर लिया है। सन् १९०२ ई०के मई मास इटलीके परराष्ट्र-सचिवने कहा था, "इटली-के उचित अभिलाषमें कोई शक्ति बाधा न डालेगी।"

सन् १८८५ ई०की ९वीं जनवरीको स्पेनने बर्लिन्-कन्फरन्सको सूचना दी थी,—"रावोडीवोरो, अङ्गाड-जोकिष्टे और वेष्टर्न बे पर हमारी बसती रहने और देशीय स्वतन्त्र नृपतियोंसे सन्धि होने कारण स्पेनके अधीश्वरने वेष्टर्न-बे और केप-बोजाडोरके बीचवाला देश अपनी रक्षाके अधीन कर लिया है।" सन १९०० ई०में फ्रान्सके साथ सन्धि साध स्पेनने अपनी भीतरी सीमाका झगड़ा मिटाया। इस सन्धिके अनुसार पश्चिम-सहारेकी ७०००० वर्ग मील भूमि और उत्तर कम्पू नदीसे दक्षिण मूनी नदीतक समग्र स्थान स्पेनका माना गया था।

गीनी-सागरतट ग्रेट-ब्रटेन, फ्रान्स, जर्मनी और पोर्तुगालके बीच बंटा है। सन् १८८६ ई०की १२वीं मईको पोर्तुगाल और फ्रान्सके बीच सन्धि होनेसे पोर्तुगीज गीनीकी सीमा बांधी गयी। सन् १८८५ ई०में ग्रेट-ब्रटेन और सन् १८९२ और १९०७ ई०में फ्रान्सके साथ जो सन्धि हुयी, उससे लिबीय-प्रजान्तन्त्र-को ४३००० वर्ग मील भूमिका अधिकार मिला था।

सन् १८८४ ई०के जुलाई मास जर्मनीने टोगो और कमरूनपर अपना झण्डा उड़ाया था। सन् १८९० ई०की १ली जुलाईको ग्रेट-ब्रटेन और जर्मनी-ने आपसमें सन्धिकर जर्मन राज्यकी सीमा बांधी। सन् १८९३ ई०की १४वीं अप्रेलको दूसरी सन्धि हुयी और दक्षिण नाइगीर एवं कमरूनके बीच रावोडेल-रेका दक्षिण-तट सीमा माना गया। सन् १८८५ ई०की २४वीं दिसम्बरको जर्मनी और फ्रान्समें जो सन्धि हुयी, उसके अनुसार जर्मनीने पश्चिम-सोदानसे अपना दावा उठा लिया था। सन् १८९४ ई०की ४थी फरवरीको फ्रान्सने सन्धि कर जर्मनीका चाद ह्रदपर पहुंचना माना। सन् १९०० ई०में जो सन्धि हुयी, उससे जर्मनीने सङ्गेका बड़ा भाग पाया और फ्रान्सके हाथ शारीका दक्षिण-तट लगा।

सन् १८८५ ई०के दिसम्बर मास फ्रान्सने पोपो और पोर्टो-सिगूरो पर जर्मन रक्षा स्वीकार की और सन् १८८७ ई०की १२वीं जुलाईको जर्मनीसे सन्धि कर जर्मन और फ्रेञ्च राज्यके बीच सीमा बांधी। सन् १८८६ ई०के जुलाई मास ग्रेट ब्रटेन और जर्मनीने सन्धिकर सागरतटकी ओर टोगोलेण्डकी सीमा निर्धारित कर दी थी। सन् १८८८ ई०में कुछ भूमि ऐसी पायी गयी, जिसपर किसीका अधि-कार न रहा; किन्तु सन् १८८९ ई०के नवम्बर मास उस भूमिको समोवा बसतीका अंश समझ अंगरेजों और जर्मनों दोनोंने आपसमें बांट लिया।

बरलिन-कनफरन्सके समय फ्रान्सीसी अधिकारी सिनेगलमें उपर निगेरपर किले बनानेकी आज्ञा पा गये थे। सन् १८८९ ई० की १० अगस्तको फ्रान्स ग्रेट-ब्रटेनने सन्धिकर गम्बिया उपनिवेशकी भूमि कितनी ही घटा दी। सन् १८८२ के जून और सन् १८८९ ई०के अगस्त मास जो सन्धियां हुयीं, उससे सीरा लिवोनकी पश्चिमीय और उत्तरीय सीमा निर्धा-रित करनेका विचार लगा था। किन्तु जब इससे कोई प्रतिफल न निकला, तब सन् १८९५ ई०की २१वीं जनवरीको दूसरी सन्धिके अनुसार सीरा लिवोनकी सीमा बांधी गयी।

बरलिन-कनफरन्सके समय दक्षिण-निगेरिया और गोल्ड-कोष्ट दोनो ही गोल्ड-कोष्ट उपनिवेश कहाते थे। किन्तु सन् १८८६ ई०की १३वीं जनवरीको यह उपनिवेश दक्षिण-निगेरिया और गोल्ड-कोष्ट दो भागमें बांटा गया। सन् १८९३ ई०के जुलाई मास ग्रेट-ब्रटेनने फ्रान्सके साथ सन्धिकर इस उपनिवेशको सीमा बांधी थी। सन् १८९६ ई०के अगस्त मास अशान्तिकी शक्ति नष्ट होनेपर सम्पूर्ण अशान्ति देश अंगरेजोंकी रक्षाके अधीन हुवा और कुमासीमें एक रसीडण्ट रखा गया।

बर्लिन-कानफरेन्स होनेसे कुछ दिन पहले अंगरेजोंने निम्न नाइगेरके सारे फ्रान्सीसी स्वत्व मोल ले लिये थे। सन् १८८५ ई०के अप्रेल मास जर्मन-अफ़रीका-कम्पनी और जर्मन-उपनिवेश-सभाने फ्लेगेलको सोकोटो और गण्डोके फूलाराज्य मिशनके साथ भेजा। किन्तु सन् १८८५ ई०की १ली जूनको अंगरेजोंने सोदानके राजा और सोकोटोके सुलतानसे सन्धिकर सारे देशमें व्यापार करने और किसी दूसरी विदेशीय शक्तिसे न मिलने देनेका स्वत्व पा लिया था। गण्डो राज्यसे भी सन्धिकर ऐसा ही अधिकार अंगरेजोंने हस्तगत किया। किन्तु सन् १८९० ई०के मार्च मास प्रिन्स बिस्मार्कके प्रभावका लोप होनेपर जर्मनीने पश्चिम सोदानमें अपना प्रभाव फैलानेमें हाथ दिया। सन् १८८६ ई० की १०वीं जुलाईको जातीय-अफ़रीका-कम्पनीने ब्रटिश-गवर्नमेण्टसे अधिकारपत्र पाया था। सन् १८९० ई० की ५वीं अगस्तको ग्रेट-ब्रटेनने मदागास्कर द्वीपको फ्रान्सीसी रक्षित राज्य स्वीकार किया। सन् १८९० में फ्रान्ससरकारने कप्तान पी० एल० मन्तीलको पश्चिम-अफ़रीका भेजा, जो सेबररुवा रेखासे दक्षिण पहुंचे और अंगरेजी रक्षाके अधीन नृपतियोंसे सन्धि करना चाही थी। सन् १८९० और १८९२ ई०में भी लेफ्टेनेण्ट मिजोनने जो दो अभियान भेजे, वह भी अंगरेजोंको कोई हानि कर न सके। सन् १८९२ ई०में दहोमीके नृपति बेहनज़िनसे भीषण युद्धकर फ्रान्सने उनका कुछ राज्य अपने अधिकारभुक्त बनाया और शेष भागपर अपनी रक्षा रहनेकी घोषणा दी। सन् १८९३ ई०के अन्तिम समय फ्रान्सने तमबक्टुको अपने राज्यमें मिला लिया था।

सन् १८९० ई०में रायेल-नाइगेर कम्पनीने बुसा या बर्गूके धनिकों और नृपतियोंसे सन्धि कर ली थी, किन्तु फ्रान्सने यह कह उसे स्वीकार न किया, कि बर्गूके असली नृपति बुसाके नहीं, नक्कीके अधिपति रहे। फ्रान्सने तीन अभियान नक्कीके नृपतिको अपनी रक्षाके अधीन लेनेको भी शीघ्र-शीघ्र भेजे। किन्तु कप्तान लुगर्डने सन् १८९४ ई०की ५वीं नवम्बरको फ्रान्सीसियोंसे पहले नक्की पहुंच वहांके नृपति और सर्दारोंसे सन्धि गांठ ली। फ्रान्सीसी अभियानने भी नक्की पहुंच नृपतिको सन्धि करनेपर बाध्य किया और कागज़-पत्र ले दहोमी वापस पहुंचे। सन् १८९५ ई० की १३वीं फरवरीको फ्रान्सीसी-सेनानायकने नाइगेरके दक्षिणतट जा एक किला बनाया। जब रायेल-नाइगेर-कम्पनीने इस आक्रमणका प्रतिवाद किया, तब वह वहांसे वापस बुलाये गये। सन् १८९७ ई० के फरवरी मास फिर किसी फ्रान्सीसी फौजने बुसापर अधिकार जा जमाया और पीछे शीघ्रतापूर्वक गोम्बे और इल्लोको अपने हाथ किया। सन् १८९७ ई०के ही नवम्बर मास नक्की भी फ्रान्सीसी अधिकारभुक्त हुवा था। सन् १८९८ ई०के आरम्भमें लुगार्ड नाइगेरको फौज इकट्ठी करने भेजे गये। दक्षिण और पश्चिमसे फ्रान्सीसी फौज आगे बढ़ रही थी। किन्तु सन् १८९२ ई०को १४वीं जूनको फ्रान्सीसियों और अंगरेजोंने आपसमें सन्धिकर वहांकी भूमि बांट ली और विवाद मिटा दिया था। नाइगेरपर जिस भूमिका पट्टा फ्रान्सके नाम लिखा गया था, वह सन् १९०० ई०में दोनो देशके कमिशनर रहनेको मञ्जूर हुवा और फ्रान्सीसी सीमा लगोससे नाइगेर-पश्चिम-उपकूलतक निर्धारित पड़ी।

सन् १९०४ ई०की ८वीं अप्रेलको ग्रेट-ब्रटेन और फ्रान्सके बीच जो सन्धि हुयी, उसमें फ्रान्सकी सुविधाके लिये उसकी सीमा कुछ दक्षिणकी ओर झुका देनेकी बात थी। अन्तको सन् १९०६ ई०की सन्धिके अनुसार नाइगेर-चाद-प्रान्तमें सीमा आदि सब कुछ ठीक किया गया।

सन् १९०० ई० की १ली जनवरीको ही ब्रटिश-गवर्नमेण्टने रायेल-नाइगेर-कम्पनीके हाथसे इस सारे प्रान्तके शासनका भार अपने ऊपर ले लिया था। सन् १९०६ ई०के फरवरी मास दक्षिण-नाइगेरिया-रक्षित-प्रान्तका प्रबन्ध लगोससे मिला और उसका नाम बदलकर दक्षिण-नाइगेरिया-उपनिवेश हो गया। फ्रान्सने भी अपने प्रान्तका संगठन किया था।

अफ़रीकाके द्वीपोंपर विभिन्न युरोपीय शक्तियोंका राज्य चलाता है। सन् ई०का १९वां शताब्द पूरा न

होनेसे पहले ही अंगरेजोंने अटलाण्टिकके सेण्ट-हेलन और भारत-महासागरके मारिशश आदि द्वीप-पर अपना अधिकार जमा दिया था। सन् १८८६ ई०की २३वीं अप्रेलको सकोतरा और सन् १८९० ई० में सुलतान्के जञ्जीवार, पेम्बा और कुछ दूसरे द्वीप भी अंगरेजोंकी रक्षामें पहुंचे। फ्रान्सने सन् ई०के १७वें शताब्दमें रियूनियनपर अधिकार जमाया था, किन्तु सन् १८८६ ई०के अप्रेल माससे पहले कोमोरो द्वीपपुञ्ज उसकी रक्षामें न गया। कितने ही झगड़ेके बाद मदागास्कर द्वीप फ्रान्सके हाथ पड़ा था। सन् १८८५ ई० की १७वीं दिसम्बरको मदागास्कर द्वीपका विदेशीय सम्बन्ध फ्रान्सके अधीन हुवा। सन् १८९० ई०में ग्रेट-ब्रटेन और जर्मनीने इस द्वीपपर फ्रान्सकी रक्षा मानी, किन्तु होवा-सरकारके नाराज़ होनेपर फ्रान्सको फ़ौज अपनी स्वत्व देखाने भेजना पड़ी। ३०वीं सितम्बरको ही राजधानी पर फ्रान्सीसी अधिकार हो गया था, दूसरे दिन राणी रणवेलनाने फ्रान्स-रक्षा स्वीकार कर सन्धि मान ली। सन् १८९६ ई०के जनवरी मास इस द्वीपपर फ्रान्सीसी अधिकार होनेकी घोषणा पड़ी और ६ठीं अगस्तको यह फ्रान्सीसी उपनिवेश बना। सन् १८९७ ई० के फरवरी मास राणीके देशसे निकाल दिये जानेपर प्राचीन शासनके चिह्न विलुप्त हुये।

साधारणत: अफरीकाके बंटवारेमें कोई २५ वर्ष लगे होंगे। कितना ही अङ्ग अभी विभक्त नहीं हुवा। मोरक्को और त्रिपोलीकी उत्तर-सीमा भी अनिश्चित पड़ी है। अफरीका और उसके विभागका ठीक हाल जाननेको बड़े परिश्रमकी आवश्यकता निकलेगी।

व्यापारके कारण युरोपीयोंने अफ़रीका बड़े अभिलाषसे आपसमें बांट लिया है। किन्तु सिवा उत्तर और दक्षिणवाले समजल-वायुसम्पन्न देशोंके दूसरी जगह कहीं भी सन् ई०के १९वें शताब्द व्यापारकी अधिक श्रीवृद्धि न हुयी। अफ़रीकाके उष्ण प्रान्तसे कुछ-कुछ सोना और हाथी दांत बाहर भेजा जाता है, दूसरी चीज़ व्यापारमें चलते नहीं देख पड़ती। युरोपीय और एशियायी आक्रमणकारी यहां ज्वार, चावल, ऊख, नारङ्गी, नीबू, बिजोरा, लौंग, तम्बाकू, दूसरी सब्ज़ी और ऊंट, घोड़ा आदि जानवर तो लाये, किन्तु इसके व्यापारको अधिक उन्नति कर न सके। यहां भीतरी प्रान्तसे समाचार न आने-जाने, सागर-उपकूलकी भूमि रोगोत्पादक होने और लोगोंके अधिक पैदा न कर सकनेसे व्यापार ढीला पड़ा है। किन्तु अब रेल और जहाज़ चलनेसे माल मंगाने-भेजनेका कष्ट तो मिटा; किन्तु नीग्रो सहज रीतिसे जीवन निर्वाह होते देख जोतने-बोनेकी चिन्ता नहीं रखते।

बंटवारा हो जाने बाद अफ़रीकाका व्यापार बढ़ानेको समग्र युरोपीयोंने कई बार मिल-जुल कर काम चलाया है। सन् १८८४-१८८५ को बर्लिन-कनफरन्सने कोङ्गो-नाइगेरमें और सन् १८९१ ई०को एङ्गलो-पोर्तुगीज सन्धिने जम्बेजीमें स्वतन्त्र रूपसे जहाज़ चलाने और व्यापार बढ़ानेका अधिकार सबको दे रखा है। गुलामी पेशा रोकनेको सन् १८८९ ई०के नवम्बर मास बर्लिनमें कनफरन्स बैठी और सन् १८९० ई०की २री जुलाईको गुलामी पेशा रोकनेका क़ानून पास हुवा। इसतरह अफ़रीकाके लोगोंको शान्तिपूर्वक कृषिवाणिज्य करनेका अवसर मिला था।

अफ़रीकाके कितने ही लोग अब सभ्य बन गये हैं। अलजीरिया, केप्-कोलोनी, रोडेशिया और ब्रटिश पूर्व अफ़रीकामें लोगोंको राजनीतिक स्वत्व मिलनेसे खूब व्यवसाय वाणिज्य बढ़ा। किन्तु यहां मज़दूर काम मिलनेसे नेटाल और दूसरी जगह भारतीय और ट्रान्सवालकी स्वर्णखानिमें चीना कुली काम चलाते हैं।

अफ़रीकामें निम्नलिखित वस्तु उत्पन्न होती हैं,—वनज, कृषिज, पशुज और खनिज तेल

उत्पन्न द्रव्य

बाहर बहुत भेजेंगे। यहां दक्षिण-अमेरिका जैसा रबर नहीं बनता, जिसका कारण उसे तैयार करनेकी बेपरवायी है। नारियलका तेल अधिक न निकलेगा। पश्चिम-अफ़रीकामें लकड़ी बहुत अच्छी होती है। साखू और आबनूस निहायत

उम्दा कटेगा। सन् १८९८ ई०से अफ़रीकाकी लकड़ी अधिक रूपसे युरोप भेजी जाती है। अरबी गोंदके भी उपजनेमें कोई कसर नहीं।

कृषिके पदार्थोंमें कहवा सबसे मूल्यवान् होता है। अङ्गोले, नियासा-देश, जर्मन-पूर्व-अफ़रीका, कमरून, कोङ्गो-स्वतन्त्र राज्य आदि कई जगह कहवे-की खेती की गयी है। जञ्जीबारमें नारियल, पश्चिम-अफ़रीका, सनगल और गम्बियामें सुपारीका ढेर लगेगा। जञ्जीबार और पम्बमें लवङ्ग दुनियेकी सब जगहसे ज्यादा उपजता, जहांसे कितने ही देशको भेजा जाता है।

उष्णप्रधान अफ़रीकामें वन्य रूपसे रूई बढ़ेगी। किन्तु रूई पैदा करनेवाले दुनियाके सारे देशोंमें मिस्रकी संख्या तीसरी पड़ती है। मारिशसमें ज़्यादा-तर चीनी तैयार होगी, किन्तु दूसरी जगह भी इसका व्यवसाय चलते देखेंगे। तूनीशिया और तफीलतमें खजूर; मिस्र, दक्षिण-अफ़रीका और उष्ण प्रान्तमें ज्वार; मिस्र, अलजीरिया और अबसीनियाकी उच्च भूमिमें गेहूं और मदागास्करमें चावल उपजता है। अलजीरियासे शराब, मेवा और सब्ज़ी खूब चालान होगी। अफ़रीकाके कितने ही उष्ण स्थानोंमें तम्बाकू की भी खेती लगी है। नारियल कमरून और गोल्ड-कोष्टमें सफलतापूर्वक बढ़ेगा। कितने ही ज़िलोंमें चाह बोयी जाती है। यद्यपि नील अफ़-रीकामें पहले न उपजता, तथापि कितनी ही जगह अब आपसे आप उत्पन्न होता है।

कोङ्गो-स्वतन्त्रराज्यसे हाथी-दांत बहुत ज्यादा बाहर भेजा जाता है। किन्तु हाथी कम पड़नेसे यह व्यवसाय ठीक नहीं चलता। पश्चिम अफ़रीका और मदागास्करमें मोम बहुत मिले और कच्चा चमड़ा और ऊन दक्षिण-अफ़रीकासे अधिक चालान होगा। अलजीरिया और मोरक्कोमें चमड़ा और ऊन एवं अबसीनिया और सोमाली-देशमें चमड़ा बहुत होता है। केप-कोलनी और उत्तर-सोदानमें सुर्खाबका पर बिकेगा। अलजीरियासे भेड़ और मोरक्कोसे गाय भैंस चालान होती है।

अफ़रीकामें खनिज द्रव्य अधिक नहीं निकलते। सन् १८८५ ई०के समय रैण्डमें सोनेकी खानिका पता लगा था। सन् १८९८ ई०में दक्षिण-अफ़रीकाने पृथ्वीके प्रत्येक स्थानसे अधिक सोना निकाला। सारी दुनियाका चौथाई सोना दक्षिण-अफ़रीकासे आता है। सन् ई०के १९वें शताब्दान्तसे युरोपीयोंने अधिक परिमाणमें सोना निकाला। गल्ला प्रान्तमें बहुत पुराने समयसे देशी लोग सोनेका व्यवसाय चलाते आये हैं। सोना एङ्गलो-इजिप्शियन सोदान और लोहितसागरके पश्चिम-सागरोपकूलमें भी मिलेगा। किम्बरले और केप-कोलनीमें हीरेकी बड़ी खानि है। अरेञ्ज-नदी-उपनिवेश और ट्रान्सवालमें भी हीरेकी बड़ी खानि मिली है। दुनियाके सौमें अस्सी हीरे दक्षिण-अफ़रीकासे आते हैं। केप-कोलनीसे पश्चिम, जर्मन दक्षिण-पश्चिम-अफ़रीका और कोङ्गो देशमें कितना ही तांबा आता है। उत्तर-रोडेशियाके ब्रोकेन-हिल जिलेमें भी कितना ही तांबा गड़ा पड़ा और मोरक्को, अलजीरिया और बहरलग़ज़लमें उसका कोई अभाव नहीं। दक्षिण-कोङ्गो और उत्तर-रोडे-शियामें टीनका खज़ाना गड़ा है। मोरक्को और अलजीरियामें लोहा अधिक मिलेगा। केप-कोलनी, नेटाल, ट्रान्सवाल, अरेञ्ज-नदी-उपनिवेश और रोडे-शियासे कोयला निकलता है। नियासा हृदसे उत्तर-जर्मन राज्यमें भी कोयलेकी खानि मौजूद है। अल-जीरिया और तूनीशियासे तेज़ाबी नमक बाहर होगा। जस्ता, शीशा, और सुरमा अलजीरियामें; शीशा, और मैङ्गनीस केप-कोलनीमें और सीरालि-वोनमें शीशा मिलता है।

संवादके आदान-प्रदानका मार्ग अफ़रीका-जैसा दुनियामें कहीं बन्द नहीं रहा, किन्तु सन् ई० १९वें

मार्ग

शताब्दके अन्त उसके खोलनेका उचित प्रबन्ध किया गया। अफ़रीकाकी नदी नाव चलाने योग्य नहीं और भूमिपर एक आदमी चलने काबिल राहें बनी हैं। रेल चलनेसे पहले उत्तरके मरुस्थानमें ऊंटों और दक्षिणमें बैल-गाड़ियोंपर माल इधरसे उधर भेजा जाता था।

अब युरोपीयोंने कई जगह रेल बना दी है। अफ़रीकाके भीतर नदियोमें कई जगह जहाज़ भी डाले गये। गाड़ी चलने क़ाबिल राह बहुत कम देखियेगा। सन् १८७९ ई०में दरउस्-सलमसे भीतरको सड़क निकाली गयी थी। सन् १८८१ ई०में नियासा ह्रदसे टङ्गनयिकाके दक्षिण सिरेतक दूसरी पक्की सड़क बनी। सन् १८९७ ई०के समय ब्रटिश-पूर्व-अफ़रीकामें मोम्बासेसे विक्टोरिया-नियञ्जा तक राह खुली। जर्मन-ईष्ट-अफ़रीका, कमरून और मदागास्करमें भी अच्छी राहें तैयार हुयी हैं। पहले मिस्र, अलजीरिया, केप-कोलनी और नेटालमें ही रेल चली थी, अब कितनी ही जगह इसका ज़ोर बढ़ गया। किन्तु तारका काम रेलसे पुराना है। सन् ई०के १९वें शताब्द मध्य अलजीरिया, मिस्र और केप-कोलनीमें हज़ारो मील तार लग गया था। अब दूसरी जगह भी तार देख पड़ेगा। अफ़रीकाके बन्दरगाहोंसे पानीके भीतर द्वीपोंतक तार लगा है। ग्रेट-ब्रटेन, जर्मनी, फ्रान्स और दूसरे देशोंके जहाज़ युरोपसे अफ़रीका आते-जाते हैं। राहमें तीन सप्ताह-से अधिक समय नहीं लगता।

आजकल युरोपमें महासमर उपस्थित होनेसे अफ़रीकाकी राजनीतिक दशा अनिश्चित है। यूनियन्-गवर्नमेण्टने लड़भिड़ जर्मनीसे उस दिन दक्षिण-पश्चिम-अफ़रीका छीन लिया। जर्मन पूर्व-अफ़रीकामें भी अंगरेजी और फ्रान्सीसी फ़ौज आक्रमण कर रही है। अब नहीं कह सकते, भविष्यत्‌में अफरीकाका कौन भाग किस युरोपीय शक्तिके अधीन रहेगा।

वर्तमान अवस्था

अफ़रीदी—उत्तर-पश्चिम-सीमान्त प्रदेशके पेशावर किनारे रहनेवाली कोई पठान जाति। अफ़रीदी उद्दण्ड होते और स्वतन्त्र रूपसे रहते हैं। सफ़ेद कोहका निम्न और पूर्व भाग इनका मुख्य देश है। इनकी उत्पत्तिका कोई पता नहीं मिलता, किन्तु लोग इन्हें इसरायलके वंशज बतायेंगे। वास्तविक इनका रूप सेमितिकसे टक्कर लेता है। सम्भवतः हिरोदोतस्‌ने इन्हें 'अपरितइ' (Aparytai) लिखा था। यह तीन श्रेणीमें विभक्त हैं,—अफ़रीदी, शिनवारी और ओरकजाई। शिनवारी कुछ व्यवसाय-वाणिज्य चलाते, किन्तु ओरकजाई असभ्य रहते हैं। वह निकटवर्ती स्थानमें लूट-मार मचायें; फिर भी, अफरीदियोंकी तरह अपना समाजबन्धन विशृङ्खल न बनायेंगे। वह कितना ही नियमके वशीभूत हो काम करते हैं।

अफ़रीदी फिर आठ भागमें विभक्त हैं,—कूकी-खेल, मलिक्‌दीन्‌खेल, कम्बरखेल, कमरखेल, ज़क्का-खेल, सिपह, आक़ाखेल और अदमखेल। यह ख़ैबर घाटीके पूर्व और पेशावरके पास रहें और गर्मीके दिनों तीरह पहुंचेंगे। किन्तु अदमखेल कोहाट-घाटीकी चारो ओर बसते और अपनी जगह छोड़ कहीं नहीं आते-जाते। अफ़रीदियोंमें एक सर्दार रहता है। राजकार्यके सम्बन्धमें सकल ही प्रजा अपना-अपना मत बतायेगी। सिवा इसके इनमें विवाद बढ़नेसे सर्दार उसे निबटा नहीं सकते।

अफ़रीदी अच्छा, लम्बा और मोटा-ताज़ा होता है। उसका चेहरा लम्बा-पतला, नाक ऊंची और रङ्ग साफ़ रहेगा। अपने पहाड़ोंपर वह ख़ूब लड़ता भिड़ता और भारतीय सेनामें भरती हो खासा सिपाही बनता; किन्तु अपना देश छोड़ने पर बीमार पड़ जाता है। वह अतीव भीषण, छली और प्रपञ्ची होगा। उसे किसीपर विश्वास नहीं आता।

भारतके उत्तर-पश्चिम-सीमान्त-प्रदेशपर कितनी ही दूरतक अफरीदियोंका अधिकार विस्तीर्ण है। पेशावर और कोहाट-मध्यवर्ती अफ़रीदियोंके पर्वत-पर दो घाटी हैं। उनमें एक कोहाट और दूसरी जेवोयाकी घाटी कहायेगी। अंगरेजी अधिकारकी ओर इनके राज्यकी सीमा कोई चालीस कोस लम्बी पड़ती है। इनके अधिकारस्थ पर्वत अतिशय उच्च और दुरारोह निकलेंगे। तोप आदि ला कर यहां युद्ध मचाना मनुष्यका साध्य नहीं ठहरता। अफ़रीदी जाति अतिशय उग्र एवं असमसाहसी होती है। यह मध्य-मध्य व्यवसायियों और अंगरेजी अधिकारीं पर बड़ा उपद्रव किया करते हैं।

ख़ैबर घाटीके अफ़रीदी कितने ही वाध्य होंगे।

कभी-कभी अंगरेजोंके साथ इन्होंने हृद्यता भी देखायी है। किन्तु ओजाकगली और जेवोयाकी राहवाले अफ़रीदीयोंके साथ ही अंगरेज सरकारको विशेष घनिष्ठता पायेंगे। इस सारी राहकी रक्षा रखनेके लिये पहलेसे यह अनेक नृपतिसे कुछ-कुछ रुपया लेते आये हैं। ग़ज़नीके राजावों, मुगलनृपतियों, दुरानियों, सिखों, अंगरेजों प्रभृति सभी नरनाथोंने इनके साथ कोई न कोई बन्दोबस्त बांधा, किन्तु यह स्वभावत: असभ्य होते, इसलिये किसीके साथ सद्भाव रख नहीं सकते। चूरू और तीरहवाले ओरकजाइयोंके किसी सर्दार नादिरशाह और उनके सैन्यसामन्तको पथ देखा पेशावर लाये थे। चुरूत खान् बहादुर नामक कोई प्रसिद्ध अफ़रीदी रहे। शाह शुजाने उनकी किसी कन्यासे विवाह किया और भारतवर्षसे भाग उन्हीं सर्दारके घर जा छिपे थे।

जेवोयाको राहके अफ़रीदी सकलकी अपेक्षा अधिक भयङ्कर होते हैं। इन्होंने पेशावर और कोहाट विभागमें विस्तर अत्याचार मचाया और सिन्धुनदपर नौका लूट ली थीं।

अंगरेजोंने अफ़रीदीयोंके ऊपर भारतसे कितने ही अभियान भेजे हैं। सन् १८५० ई० में कोहाट-घाटीके अफ़रीदीयों पर चढ़ाई हुयी कारण, इन्होंने सड़क बनानेवाले कितने ही मज़दूरोंमें बारहको मारा और छ: को ज़ख्मी किया था। सन् १८५३ ई०में बोरीगांवके जवाकी अफ़रीदियोंपर अभियान पड़ा। अंगरेजी फौजने बोरीका किला तोड़ डाला था। सन् १८५५ ई०में आकाखेल अफ़रीदियोंसे युद्ध हुवा। सन् १८५४ ई०में इन्होंने कोहाट-घाटीकी राह सुरक्षित रखनेको जो रुपया दिया जाता, उसका भाग न पा पेशावरकी सीमापर धावा लगाना शुरू और अंगरेजी डेरेपर आक्रमण किया था। अंगरेजी फौजने इन्हें खासी सज़ा दे जुर्माना लिया। सन् १८७७ ई०में जवाकी अफरीदियोंपर आक्रमण हुवा। भारतसरकारने कोहाट-घाटीकी रक्षाका पुरस्कार कुछ घटाना चाहा, जिससे इन्होंने नाराज़ हो तार काट डाला और अंगरेजी सीमापर आक्रमण लगाया था। इन्हें भी अन्तको खासी सजा मिली। सन् १८७७-७८ ई०में फिर इनपर दूसरी चढ़ाई हुयी। कारण इन्होंने पहली सज़ाको कुछ न समझा और अंगरेजी राज्यमें लूट-मार मचाते रहे थे। अंगरेजी फ़ौजने इनके प्रधान ग्राम विनष्ट किये और कुछ दिन देशपर अधिकार जमाये बैठी रही। अन्तको इन्होंने अंगरेजी शर्तें मानीं। उसके बाद कोहाट घाटी निरापद बन गयी थी। सन् १८७८ ई० में बाज़ौर-उपत्यकाके ज़क्काखेल अफ़रीदियोंसे युद्ध ठहरा। इन्होंने २रे अफ़गान युद्धमें जाती हुयी अंगरेज़ी फौजको मारा और उसके डेरोंपर आक्रमण किया था। अंगरेजी फौजने इनके देशको ख़ूब कुचला और इन्हें अपने अधीन बनाया। सन् १८७९ ई०में फिर इन्होंके विरुद्ध अंगरेजी फौज चढ़ी थी। कुछ हानि उठा अन्तमें इन्होंने अंगरेजी वश्यता स्वीकार की। सन् १८९७ ई०में तीरह-युद्ध पड़ा। सन् १९०८ ई०के फरवरी मास ज़क्काखेल अफ़रीदियोंसे लड़ाई हुयी थी, किन्तु शीघ्र ही मिट गयी।

अफल (सं० वि०) नास्ति फलं यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ फलशून्य, न फलनेवाला, जिसमें फल न लगे। २ निष्फल, फ़ज़ूल, जिससे कुछ हासिल न आये। ३ वीर्यहीन, जो कुव्वत-बाह न रखता हो। (पु०) ४ झाऊका पेड़। नास्ति फलमिव वृषणौ यस्य। ५ फल-जैसे अण्डकोष न रखनेवाले देवराज इन्द्र। रामायणके आदिकाण्डवाले ४८ सर्गमें लिखा है, कि अहल्याका धर्म बिगाड़नेपर गौतम ऋषिने इन्द्रको यह शाप दिया था,—'दुर्मते! तू विफल हो जा।' मुनिके इस शापसे उसी समय इन्द्रका मुष्क गिर पड़ा। इसीसे इन्द्रको विफल या अफल कहते हैं।

६ मेष, भेड़। मेषके मुष्कसे इन्द्रका पुनर्वार मुष्क बननेसे उसे अफल अर्थात् फलशून्य कहा जाता है।

अफलकाङ्क्षिन् (सं० वि०) फलकी आकाङ्क्षा न रखनेवाला, जो मुफ़ीद बातकी तर्फ़ ख़याल न लड़ाता हो।

अफलता (सं० स्त्री०) फलशून्यता, निष्प्रयोजनीयता, बेसूदी, फल न पानेकी दशा, जिस हालतमें नतीजा न निकले।

अफलप्रेप्सु (सं० त्रि०) परिवर्तन पहुंचानेका इच्छुक, प्रत्युपकारी, जिसे एवज़ देनेकी ख़ाहिश रहे।

अफला (सं० स्त्री०) अफल-टाप्। १ भूम्यामलकी। २ घृतकुमारी।

अफलित (सं० त्रि०) १ न फला हुवा, जिसमें फल न लगें। २ प्रयोजनरहित, जिसमें मतलब न आये।

अफल्गु (सं० त्रि०) विरोधे नञ्-तत्। जो फल्गु न हो, उर्वरा, उपजाऊ, ज़रखेज़।

अफवा, अफ़वाह देखो।

अफ़वाह (फ़ा० स्त्री०) १ किंवदन्ती, लोगोंकी कही बात। २ असत्य संवाद, गप्प, जो ख़बर सच न हो।

अफ़शा (फ़ा० पु०) ज़हूर, रोशनी, प्रकाश, सफ़ाई।

अफ़सन्तीन (यू० पु०) वृक्ष विशेष, किसी क़िस्मका दरख़्त। यह काश्मीरमें ऊंचे-ऊंचे स्थानोंपर उत्पन्न होता है। इसमें कड़ुवाहट और नशा मिलेगा। इसका हरित् वा पीत तैल भार देता और कड़ुवा लगता है। इस तैलको अधिक न खाना चाहिये, क्योंकि इसमें एक प्रकारका विष रहेगा। यूनानी हकीम इसकी पत्ती दवामें डालते हैं।

अफ़सर (अं० पु०-स्त्री०) १ बड़ा हाकिम, प्रधान शासनकर्ता। २ बड़ा कर्मचारी, ऊंचा नौकर। (Officer)

अफ़सरी (हिं० स्त्री०) अफ़सरका काम, प्राधान्य, हुकूमत।

अफ़साना (फ़ा० पु०) दास्तान्, क़िस्सा, प्रबन्ध, कथावार्ता।

अफ़सून् (फ़ा० पु०) जादू, यन्त्र-मन्त्र।

अफ़सोस (फ़ा० पु०) दुःख, शोक, पश्चात्ताप, रञ्ज, पछतावा।

अफ़ीडेविट (अं० क्ली०) (Affidavit) १ शपथ, क़सम, हलफ़। २ हलफ़नामा, शपथपत्र।

अफ़ीम (हिं० स्त्री०) अफ़्यून्, अहिफ़ेन। यह पोस्तकी बोंडीसे निकलती है। अहिफ़ेन शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

अफ़ीमची (हिं० वि०) अहिफ़ेन-सेवनकर्ता, जो अफ़ीम खाता हो।

अफ़ीमी, अफ़ीमची देखो।

अफुल्ल (सं० त्रि०) न फुल्लम्, नञ्-तत्। मुकुलित, जो फूला न हो, नाशिगुफ़्ता।

अफ़ू (हिं०) अफ़ीम देखो।

अफेन (सं० क्ली०) निन्दितं फेनं निर्यासो यस्य। १ अहिफ़ेन, अफ़ीम। (त्रि०) नास्ति फेनं यस्य। २ फेनशून्य, बेझाग, जिसमें फेन न उठे।

अफेनफल (सं० क्ली०) अहिफेनका फल, अफ़ीमकी बोंड़ी।

अफेल (सं० क्ली०) अहिफेन, अफ़ीम।

अब (हिं० क्रि०-वि०) इदानीम्, इस अवसरपर, इस वक़्त।

अबका (हिं० पु०) फिलिपाइन द्वीपका वृक्ष विशेष। इसके डण्ठलका बकला रेशेदार होता और उससे रस्सी बनती है। अण्डमान द्वीप और अराकानमें भी इसकी कृषि होते देखते हैं। अबकेकी जड़से इधर-उधर पौधे फूटते, जो कोई एक गज़ बढ़नेपर खेतमें क़रीब तीन गज़के फ़ासलेसे गड़ते हैं। इसका खेत तीन-चार वर्षमें ठीक होनेपर यह ऊपर एक-एक फुट काट लिया जायेगा।

अबकी (हिं० क्रि०-वि०) इस बार इस मरतबा।

अबख़रा (अ० पु०) गर्मीसे उड़नेवाले पानीके ज़र्रे, जो जलके परमाणु उष्णतासे वायुमें उड़ते हों, बाष्प, भाफ़।

अबख़ोरा, आबख़ोरा देखो।

अबज़रवेटरी (अं०) (Observatory) मानमन्दिर, आकाशलोचन, वेधालय, जिस जगह ग्रहकी चाल, संक्रमण, ग्रहण आदि ज्योतिष-सम्बन्धीय विषय देखा जाये।

अबटन, उबटन देखो।

अबतर (फ़ा० वि०) १ ज़्यादा ख़राब, अधिक निकृष्ट, जो बुरेसे बुरा हो। २ भ्रष्ट, अपसृत, पतित, जो बिगड़ गया हो।

अबतरी (फ़ा० स्त्री०) १ ख़राबी, बुराई, नटखटपन, अधमता। २ कमी, नष्ट होनेकी दशा, दुर्गति, विनाश।

अबद्ध (सं० त्रि०) न बन्ध-क्त, नञ्-तत्। १ असम्बन्ध,

अनर्थक, प्रकृतिके अनुपयोगी, अर्थशून्य, बेमानी, जिसका कोई मतलब न निकले। २ असंयत, स्वाधीन, मुक्त, बंधा न हुवा, खुला, आज़ाद, जो किसीके मातहत न हो।

अबद्धक, अबद्ध देखो। (स्त्री०) अबद्धिका।

अबद्धमुख (सं० त्रि०) न बद्धं संयतं मुखं मुखव्यापारं वाक्यं यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ दुर्मुख, अप्रियवादी, बदज़बान्, मुंहज़ोर, नापसन्द बात बोलनेवाला। २ असावधानतासे बात-चीत करनेवाला, जो बेपरवायीसे गुफ़्तगू करता हो।

अबध (सं० पु०) न बधः ताड़नं दण्डः प्राणनाशनं वा, अभावे नञ्-तत्। ताड़न वा दण्डका अभाव, प्राणवियोगका अभाव, मार या सजाका न दिया जाना, जानका न लेना।

अबधा (सं० स्त्री०) न बध्यते आबध्यते च। १ त्रिभुजमध्यके लम्बकी उभयपार्श्वस्थ भूमि। इसी लम्बसे त्रिभुजका हिसाब लगता है। (Perpendicular) त्रिभुज देखो।

अबधार्ह (सं० त्रि०) मारे न जाने योग्य, जो जान लेने क़ाबिल न हो।

अबधू (हिं० वि०) अज्ञान, अबोध, नादान्, नावाक़िफ़, जो जानता न हो। (पु०) २ अवधूत, साधु, संन्यासी, सन्त, महात्मा, फ़क़ीर, वली।

अबध्य (सं० त्रि०) बधमर्हति, बधादेशो बध्यम्, ततो नञ्-तत्। १ प्राणदण्ड पानेके अयोग्य, जो जान्से मारा जाने क़ाबिल न हो। स्त्री और ब्राह्मणादिको शास्त्र दण्डपाने योग्य नहीं ठहराता। २ अनर्थक, बेमाने, जिसका कोई मतलब न निकले।

अबध्यभाव (सं० पु०) पवित्रता, शुद्धता; आचरणकी शुद्धि, पाकीज़गी सफ़ाई, जिस हालतमें चालचलन नापाक न बने।

अबन्धक (सं० त्रि०) बध्यते स्वधनमन्यत्र आधीयते बन्धः, ततो नञ्-बहुव्री०। १ बन्धकरहित, जिस कर्ज़के लेनेमें कोई चीज़ गिरवीं न रहे। २ असंयत, जो बंधा न हो। (पु०) ३ व्यक्तिविशेष। (स्त्री०) अबन्धिका।

अबन्धन (सं० त्रि०) बन्धनविहीन, मुक्त, बंधा न हुवा, खुला, आज़ाद।

अबन्धु (सं० त्रि०) बन्धुशून्य, मित्ररहित, जिसके कोई साथी न रहे।

अबन्धुकृत् (सं० त्रि०) शत्रु उत्पन्न करनेवाला, जिससे साथियोंका अभाव हो।

अबन्धुर (सं० त्रि०) १ उच्च-नीच न होनेवाला, जो बराबर रहता हो। २ अनम्र, कड़ा, जो मुलायम न हो। ३ असुन्दर, कुरूप, बदसूरत, जो ख़ूबसूरत न हो। 'बन्धुरबन्धुरौ स्यातान्नम्रसुन्दरयोस्त्रिषु।' (रन्तिदेव)

अबन्ध्य (सं० त्रि०) न बन्ध्यमफलम्। सफल, फलग्राह, अमोघ फलोदय, हराभरा, मेवेदार, उपजाऊ।

अबन्ध्र (वै० त्रि०) बन्धनरहित, बिखरनेवाला, जो बंधा न हो।

अबर (वै० क्ली०) अन्तर्वस्त्र, भीतरी कपड़ा। (देशज) २ अबीर या आबरजाति। अबीर देखो।

अबरक (हिं० पु०) १ अभ्रक, यह धातु खानिसे निकलता और तहका तह जमा रहता है। परिष्कार करनेसे इसका तह शीशे जैसा चमकेगा। लोग इसके तहकी कन्दील बनाते और बेल-बूटे काट श्रीकृष्ण आदि देवताओंकी झांकी भी सजाते हैं। विलायतमें यह किवाड़ोंपर लगाया जाता है। इसे आग नहीं जला सकती। ज़ोर पड़नेसे यह लच जायेगा। इसके दो रङ्ग हैं—काला और सफ़ेद। भारतवर्षमें यह मन्द्राज, राजपूताने और बङ्गालके पहाड़ोंपर मिलेगा। अभ्र देखो।

२ भोड़ल, भुरवल, खानिसे निकलनेवाला एक चिकना पत्थर। इस पत्थरके बर्त्तन बनाये जाते हैं। चूर-चूर कर इसे रोग़नमें डालेंगे, क्योंकि इसकी चिकनायी चीज़ोंको चमका देती है।

अबरकी (हिं० वि०) अबरकका, अबरकसे बना हुवा।

अबरख, अबरक देखो।

अबरन (हिं० वि०) पद्यमें—१ अवर्ण्य, वर्णन करनेके अयोग्य, जिसका बयान् न हो सके। २ अवर्ण, रूपरहित, बेशक्ल, बेसूरत। ३ विभिन्न वर्ण, जिसका रङ्ग न मिले। आवरण देखो।

अबरस (फ़ा० पु०) १ श्वेत-हरित् वर्ण, सफ़ेदी आमेज़ हरा रङ्ग। २ श्वेत-हरित् अश्व, जिस घोड़ेका रङ्ग सफ़ेदी आमेज़ हरा रहे। (वि०) ३ श्वेत-हरित्, सफ़ेदी आमेज़ हरा।

अबरा (फ़ा० पु०) दोहरे वस्त्रका ऊपरी अंश, जो टुकड़ा दोहरे कपड़ेके ऊपर लगता हो, उपल्ला। दोहरे कपड़ेके नीचे अस्तर या भितल्ला और ऊपर अबरा या उपल्ला रहता है।

अबरी (फ़ा० स्त्री०) १ बादल-जैसा काग़ज़, जो काग़ज़ कई रङ्गका हो और जिसपर बादल जैसी धारियां पड़ी रहें। यह किताबपर जिल्द चढ़ानेके काम आता है। २ पीत प्रस्तर, पीला पत्थर। यह जैसलमेरमें होता और पच्चीकारीमें लगता है। ३ लाहकी रंगायी। इसमें रङ्ग-रङ्गकी छींट रहती हैं।

अबल (सं० क्ली०) न बलम्, अभावे नञ्-तत्। १ बलका अभाव, उत्कर्षका न रहना, कमज़ोरी नाताक़ती। (त्रि०) नास्ति बलं यस्य नञ्-बहुव्री०। २ दुर्बल, कमज़ोर, नाताक़त, जिसके बल न रहे। (पु०) नास्ति बलं यस्मात्, नञ्-५-बहुव्री०। ३ वरुण वृक्ष। ४ मगधके नृपति विशेष।

अबलक, अबलख देखो।

अबलख (हिं० वि०) १ द्विवर्णविशिष्ट, दुरंगा, जिसका रङ्ग सफ़ेद-काला या सफ़ेद लाल रहे, कबरा (पु०) २ सफ़ेद-काले रङ्गका घोड़ा या बैल।

अबलखा (हिं० पु०) पक्षी विशेष, कोई चिड़िया। इसका पेट सफ़ेद और सारा शरीर काला रहता है। पैरोंमें कुछ सफ़ेदी रहे और चोञ्च नारङ्गी होगी। यह युक्तप्रान्त, विहार और बङ्गालमें पत्तों या परोंका घोंसला बना बसता और एक बारमें कोई चार-पांच अण्डे देता है।

अबलग (हिं०-क्रि० वि०) इस समय पर्यन्त, इस वक़्त तक।

अबलधन्वन् (सं० त्रि०) निर्बल धनुःसम्पन्न, कमज़ोर कमान् लिये हुवा।

अबला (सं० स्त्री०) १ स्त्री, औरत। २ बौद्धोंको दश भूमिमें एक।

अबलाबल (सं० पु०) शङ्कर, शिव।

अबलास (सं० त्रि०) क्षयरोगरहित, ग़ैर-मदक़ूक़, जिसके क्षयरोग या तपेदिक़ न रहे।

अबलिमन् (सं० पु०) बलस्य भावः; इमनिच् बलिमन्, ततो विरोधे नञ्-तत्। पीड़ादिसे शरीरकी दुर्बलता, बीमारी वग़ैरहसे जिस्मकी कमज़ोरी।

अबलीयस् (सं० त्रि०) अधिक निर्बल, ज़्यादा कमज़ोर। (स्त्री०) अबलीयसी।

अबल्य (सं० क्ली०) दुर्बलता, पीड़ा, कमज़ोरी, बीमारी।

अबवाब (अ० पु०) अतिरिक्त कर, ऊपरी लगान। सरकार या ज़मीन्दार जो महसूल—मालगुज़ारी, लगान या किसी दूसरी चीज़पर बांधता, वह अबवाब कहलाता है।

अबहु (सं० त्रि०) अनेक भिन्न, अल्पसंख्यक, थोड़े, जो बहुत न हों।

अबह्वक्षर (सं० त्रि०) न-बहु-अक्षर। दोसे अधिक वर्ण न रखनेवाला, जिसमें दोसे ज़्यादा हर्फ़ न रहें।

अबा (अ० पु०) चोग़ा, लबादा। इसे लोग अङ्गे पर पहनते हैं; यह लम्बा-चौड़ा और सामने खुला रहेगा। इसमें छः कली और सामने दो घुण्डी लगाते हैं। इसे मुसलमानोंने हिन्दुस्थानमें चलाया था। अंगरेज़ी भारतमें इसका पहनावा ज़्यादा नहीं पाते, किन्तु मध्यभारत और राजपूतानेके रजवाड़ोंमें जाड़ेके दिनों लोग इसे बड़े चावसे पहनते हैं।

अबाती (हिं० वि०) वायुरहित, जिसे हवा न हिलाये

अबाद (हिं० वि०) १ निर्विवाद, वादरहित, बेबहस, जिसमें कोई बातचीत न रहे। २ आबाद, बसा हुवा।

अबादान (हिं० वि०) आबाद, बसा हुवा, जिसमें लोग रहें।

अबादानी (हिं० स्त्री०) १ आबादानी, बस्ती, लोगोंके रहनेकी हालत। भलाई, ख़ैर, शुभचिन्त-

कता। २ खुशी, मौज, चहल-पहल, आनन्द, धूमधाम।

अबाध (सं० पु०) न बाधः, अभावे नञ्-तत्। १ प्रतिबन्धका अभाव, रोकका न रहना। (त्रि०) नास्ति बाधो यस्य, नञ्-बहुव्री०। २ बाधशून्य, बेदर्द। ३ अनिवारित, निरर्गल, अनर्गल, उत्शृङ्खल, उद्दाम, अनियन्त्रित, निरङ्कुश, मनमौजी, जिसका कोई ठिकाना न लगे।

अबाधक (सं० त्रि०) न बाधकः नञ्-तत्। १ बाधक भिन्न, सदृश, न रोकनेवाला, बराबर, जो रोकता न हो। नास्ति बाधा यस्य, बहुव्री०। २ बाधशून्य, बेरोक, जिसे कोई अटकाव न आये।

अबाधा (सं० स्त्री०) १ त्रिकोणके आधारका अंश। (हिं० वि०) २ अबाध, बाधारहित।

अबाधित (सं० त्रि०) न बाधितम्। बाधित भिन्न, पदार्थ, जिसे बाधा न लगी हो।

अबाध्य (सं० त्रि०) न बाध्यते प्रतिरुध्यते अबोधते वा; बाध-ण्यत्, नञ्-तत्। अप्रतिरोध्य, अनधीन, रोका न जा सकनेवाला, जो मातहत न हो।

अबान (हिं० वि०) बेबाना, बेहथियार, शस्त्र-रहित, खालीहाथ।

अबान्धव, अबन्धु देखो।

अबाबील (फा० स्त्री०) कृष्णवर्ण पक्षी विशेष, काले रङ्गकी कोई चिड़िया। यह छोटे पैर होनेसे बैठ नहीं सकती और आस्मान्‌में झुण्डकी झुण्ड उड़ा करती है। रातको इसे पुरानी दीवारोंके घोंसलोंमें बसना पड़ेगा। यह पृथ्वीके प्रायः सभी स्थानोंमें पायी जाती है। इसकी छाती कुछ सफ़ेद होगी।

अबार (हिं० स्त्री०) देर, विलम्ब, वक़फ़ा, बेवक़्त।

अबाल (सं० त्रि०) न बालम्, नञ्-तत्। जो बाल न हो, तरुण, जवान्।

अबालिश (सं० त्रि०) अबाल-जैसा, जो तरुणकी तरह हो, बच्चे-जैसा न होनेवाला।

अबाली (हिं० स्त्री०) पक्षीविशेष, कोई चिड़िया। यह भारतके उत्तरीय और बम्बई-प्रान्त, आसाम, श्याम एवं चीनमें मिलती और घास या परके घोंसले-में रहती है। इसे बैंगनकुटी भी कहेंगे।

अबालुक (सं० पु०) कोई गांठदार पौधा।

अबालेन्दु (सं० पु०) पूर्णचन्द्र, पूरा चांद।

अबाह्य (सं० त्रि०) जो बाह्य न हो, अन्तरङ्ग, अन्दरूनी, बाहरी न होनेवाला। २ बाह्य कोणरहित, बाहरी कोना न रखनेवाला।

अबिद्ध (हिं०) अविद्ध देखो।

अबिद्धकर्णी, अविद्धकर्णी देखो।

अबिन्धन (सं० पु०) आप एव इन्धनमुद्दीपनसाधन-मस्य, बहुव्री०। बड़वानल, समुद्रके भीतरकी आग, जिस आगमें पानीका इन्धन लगे।

अबिन्ध्य (सं० पु०) रावणका मन्त्रिविशेष, रावण-का कोई वज़ीर। यह अत्यन्त शिक्षित, शिष्ट और वृद्ध रहा; इसने रावणसे सीता वापस देनेको बताया था। (रामायण)

अबिभीवस् (वै० त्रि०) निर्भय, विश्वस्त, बेख़ौफ़, एतबार रखनेवाला।

अबिरल (हिं०) अविरल देखो।

अबिला (सं० स्त्री०) मेषी, भेड़।

अबीर (अ० पु०) गुलाल। यह लाल रङ्गका होता और होलीमें अपने मित्रोंपर डाला और उड़ाया जाता है। पहले सिंघाड़ेके आटेमें हलदी और चूना मिला लोग इसे बनाते थे, किन्तु अब अरारोट और विलायती बुकनीसे ही तय्यार कर लेते। २ बुक्का, अभ्रकका चूर्ण। ३ सुगन्धित श्वेत सार, ख़ुशबूदार सफ़ेद बुकनी। वल्लभ कुलके वैष्णव होलीपर इसे अपने मन्दिरोंमें उड़ाते हैं।

अबीरी (अ० वि०) १ अबीरका, जिसका रङ्ग अबीर-जैसा रहे। (पु०) २ अबीरका रङ्ग।

अबुझ, अबूझ देखो।

अबुद्ध (सं० त्रि०) बुध कर्तरि कर्मणि वा क्त, ततो नञ्-तत्। बोधके अविषयीभूत, नासमझ, जो समझता न हो।

अबुद्धत्व (सं० क्लो०) मूर्खता, बेवकूफ़ी, नादानी, न समझनेकी हालत।

अबुद्धि (सं० स्त्री०) बुध-क्तिन्, अभावे नञ्-तत्। १ ज्ञानका अभाव, लाइल्मी, नासमझी। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ बुद्धिहीन, बेअक़्ल, नासमझ।

अबुद्धिपूर्व, अबुद्धिपूर्वक देखो।

अबुद्धिपूर्वक (सं० त्रि०) १ अबुद्धिः पूर्वा यस्य, बहुव्री०। जो यथार्थ बुद्धिपूर्वक न हो, जिससे पहले समझदारी न रहे, बेवक़ूफ़ीके साथ शुरू होनेवाला। (अव्य०) २ मूर्खतासे, बेवक़ूफ़ीके साथ, बेसमझे-बूझे।

अबुध (सं० पु०) न बुधः, अप्राशस्त्ये विरोधे वा नञ्-तत्। जो पण्डित न हो, अपकृष्ट पण्डित, मूर्ख, गंवार, बेवक़ूफ़।

अबुध्य (सं० त्रि०) १ ज्ञानके अयोग्य, समझमें न आने क़ाबिल। २ न जागनेवाला, जिसे जगा न सकें।

अबुध्यमान (सं० त्रि०) न जागते हुवा, जो सो रहा हो।

अबुध्न (सं० क्ली०) बन्ध बन्धने नक् बुध्नः मूलम्, नास्ति बुध्नः यस्य। १ अन्तरीक्ष, आसमान्। (त्रि०) २ मूलशून्य, बेबुनियाद, जिसकी जड़ न रहे।

'बुध्नो नामूलरुद्रयोः।' (मेदिनी)

अबुल्-क़ासिम—१ कामरान् मिर्ज़ाके बेटे और हुमायूं सम्राट्के भाई। सन् १५५७ ई०में सम्राट् अकबरने इन्हें ग्वालियरके क़िलेमें बन्दी किया था, खान्ज़मान्-को दण्ड देने जाते समय मरवा ही डाला।

अबुल् फ़ज़ल—अकबरके प्यारे मन्त्री और प्रधान। इनका पूरा नाम शेख़ अबुल्फ़ज़ल रहा। कवितामें यह अपना उपनाम 'अल्लामी' डालते थे। नागोर-वाले शेख़ मुबारकके यह दूसरे बेटे और शेख़ फ़ैज़ीके भाई रहे।

संसारमें गुण ही गौरव होता, गुण न रहनेसे किसीको आदर नहीं मिलता। विद्या, बुद्धि, धैर्य, सद्विवेचना, न्यायपरता आदि गुण रहनेसे ही अबुल्-फ़ज़लने अकबरकी सभामें आदर पाया था। इतना गुण न रहनेसे जगत्में आज इनका कौन नाम लेता?

किन्तु यह सकल गुण ख़ास फ़ज़लका न रहा, पूर्वपुरुष इसका बीज बो गये थे। मुबारकके हृदयमें उसका अङ्कुर फूटा, अङ्कुरसे चारो ओर पल्लवदल छिटक पड़ा। अन्तको अबुलफ़जलके हृदयमें उसका फूल खिला था, जिस फूलके सौरभने जगत्को मतवाला बना दिया।

अबुल्फ़ज़लके पूर्वपुरुष अरबस्थानके आदमी रहे। वृद्ध पितामहका नाम शेख़ मूसा था। वह बेलग्रामसे निवासी रहे। यह पल्ली सिन्धु-प्रदेशके मध्य अवस्थित है। उनके पौत्र शेख़ ख़ज़र् भारतवर्षमें आकर पहुंचे, किन्तु अधिककाल न रहे। वह शीघ्र ही हजाजको वापस जा अपने स्वजाति अरबोंके साथ रहने लगे थे, पीछेको अजमेरके पास नगरमें फिर वापस आये। यहां उनका कोई दूसरा काम न रहा; सत्सङ्ग और साधु लोगोंके साथ ईश्वर-आलोचना कर वह अपना काल निकाल देते थे।

जगत्में जो सुख होना चाहिये, वह सभी खज़र्को मिलते रहा। किन्तु कठिन मनःकष्ट यही था,—उनके सन्तान उत्पन्न होकर बचते न रहा। कितने ही बच्चे हुये थे, किन्तु सकल ही मर गये। अन्तमें मुबारक उत्पन्न हुये। सन्तान बचे तो आह्लादकी बात है, न बचे तो ईश्वरकी इच्छा। इसमें मनुष्यका क्या वश है? खिज़र यही सोच-समझ ईश्वरपर निर्भर कर बैठे रहे।

मुबारक जो-जाग गये। अबुल्फ़जल जिस गुणसे जगत्में पूजित रहे, पिताके बालककालमें ही उस सकल गुणका अङ्कुर फूट पड़ा था। उस वयसमें दौड़ने-धूपने और खेलने-कूदनेका समय रहा, किन्तु मुबारक वह काम न करते। शैशवकालमें ही उनकी तीक्ष्ण बुद्धिका कितना ही परिचय मिला। वह शेख़ आतनके पास चार वत्सर मन लगाकर लिखते-पढ़ते रहे।

साधुजनके प्रातःवाक्यसे सन्तान बचनेपर खिज़र् बन्धुबान्धवके आदर-सत्कारकी चिन्तामें पड़े। किन्तु नगरमें उनका कोई स्वजाति न रहा। इसलिये वह कुछ ज्ञाति-कुटुम्ब बुला साथ रहनेको सिन्धुदेश गये। राह दुर्गम रही, केवल मरुभूमि देख पड़ती थी; खिज़र् बहुत पीड़ित हुये। अन्तको पथके मध्य ही

वह मर गये। उसी समय नगरमें दारुण दुर्भिक्ष रहा। असंख्य-असंख्य लोग अन्नाभावसे चलते बने। खिज़र्के परिवारमें भी दूसरे सब लोग मरे; केवल मुबारक और उनकी माता जीते बची थीं।

मुबारक अतिशय मातृभक्त रहे, जननीको छोड़ कहीं रुक न सकते थे। पढ़ने-लिखनेमें वह ख़ूब ध्यान लगाते; नगरके पास उस समय जो सकल विद्वान् रहे, उनके पास विद्याध्ययन करने चले जाते। फ़क़ीर ख़्वाजा अहरर उनके प्रधान उपदेष्टा रहे। ख़्वाजा साहबने उन्हें नाना शास्त्रमें ज्ञान दिया था।

कुछ दिन बाद माताकी मृत्यु हुयी। उसी समय मालवेमें भी गोलयोग पड़ा था। मुबारक नगरसे गुजरातान्तर्गत अहमदाबादमें जाकर रहने लगे। वहां पर शेख यूसफ़के साथ उनकी विशेष हृद्यता हुयी थी। अन्तको सन् ९५० हिजरीमें वह अहमदाबादसे निकल आगरेकी बगलमें रामबाग़के पास जाकर रह गये। उस समय मीर रफ़ीउद्दीन्की बड़ी प्रतिपत्ति रही। रामबाग़के पास वह रहते और अनेक छात्र शिष्य उसी जगह शास्त्राध्ययन करते थे। उपयुक्त गुरुको देख मुबारक भी उनके पास पढ़ने लगे। उसी जगह शेख अबुल्-फ़ैज़ी एवं उनके कनिष्ठ अबुल्-फ़ज़लका जन्म हुवा था। फ़ैज़ीसे फ़ज़ल चार वर्ष छोटे रहे। सन् १५५१ ई०की १४वीं जनवरीको इनका जन्म हुवा था, मुबारक यत्नपूर्वक अपने सन्तानको विद्याकी शिक्षा देने लगे।

कुछ दिन बाद भारतवर्षके नाना स्थानमें माधियोंका उपद्रव उठा। मुबारक अकेले ईश्वरका अस्तित्व मानते रहे; किन्तु मुसलमान-धर्मपर उन्हें अच्छी तरह श्रद्धा न थी। इसीसे लोग उन्हें नास्तिक कहते, कोई-कोई हिन्दू बताते थे। माधियोंका उपद्रव उठनेपर मुबारक उनके साथ रहे। किन्तु मालूम नहीं,—इसतरह योग देनेकी अभिसन्धि क्या थी। माधी अकेले ही सर्वनाश करने चले थे, फिर मुबारक भी उनके पक्षपर खड़े हो गये; इसीसे अकबरके सभासदोंको अतिशय क्रोध आया। सम्राट्ने भी उन्हें पकड़ बुलानेकी आज्ञा दी थी। मुबारकने देखा, विषम कुचक्र रहा; आगरेमें रहनेसे प्राण बचानेका उपाय न था, इसलिये वह चुपकेसे भाग खड़े हुये।

किन्तु उनका यह कष्ट अधिक दिन न रहा। अकबरके धातृपुत्र ख़ान्-आज़म मिर्ज़ा कोकाने सम्राट्के मनको मलिनता निकाल डाली थी। उस समय फ़ैज़ीका वयस बीस वत्सर रहा; किन्तु उनकी मधुर कवितामें सभी लोगोंका मन फंस गया था। अपनी विद्या, बुद्धि और कवित्वके गुणसे क्रमशः वह अकबरके प्रियपात्र बन बैठे।

इसी समय अबुल्-फ़ज़ल दिवारात्र निर्जनमें अध्ययन करते थे। पन्द्रह वत्सरके वयसमें ही इन्हें अगाध शास्त्रज्ञान उत्पन्न हो गया। लोग कहते हैं,—अबुल्-फ़ज़ल जब पञ्चदश वत्सरके बालक रहे, तब उनके हाथ कोई इस्फ़हानी पुस्तक लगा। पुस्तकका अर्धांश आगमें जल गया था; सुतरां प्रत्येक पत्रका आधा भाग रहा, बाकी आधा नहीं। अबुल्-फ़ज़लने पहले कभी वह पुस्तक देखा न था। किन्तु जो जो अंश जला, वह लिख देना इन्हें उचित समझ पड़ा। इसलिये इन्होंने पुस्तककी दग्ध दिक् काट-छांट समस्त पत्रमें नया काग़ज़ लगा दिया। पीछे प्रत्येक पत्रके आधे अर्थसे मेल मिला अवशिष्ट पत्र पूरण किया था। कुछ दिन बाद कोई समग्र पुस्तक इनके हाथ लगा। इन्होंने दोनोको मिलाकर देखा,—अनेक स्थानमें नूतन शब्द सन्निवेशित हुवा, अनेक स्थानका पाठ भी सम्पूर्ण नया बना; किन्तु साधारणतः समस्त पुस्तकके भावका व्यतिक्रम कहीं भी पड़ा न था। यह देख इनके बन्धुबान्धव चमत्कृत हो गये।

अकबरसे राज्यशासन पानेके १९वें वर्ष यह सम्राट्से मिले। इनके लेखसे प्रमाणित है, कि उस समय पूर्वमें यह अतिशय विद्वान् और उत्तम ग्रन्थकार रहे। फ़ैज़ीने अपने कनिष्ठका परिचय बता सम्राट्के साथ आलाप करा दिया। प्रथम दिन ही अबुल्-फ़ज़लके प्रति उनकी कृपादृष्टि पड़ी थी। इसी समय अकबरने बङ्गाल और विहार जीतनेकी उद्योग लगाया; युद्ध-सज्जा हुयी, विहारके अभिमुख सैन्य-

सामन्त छूट पड़े। साथमें स्वयं अकबर और उनके प्रिय सदस्य कवि फ़ैज़ी थे। अबुलफ़ज़ल् साथ न गये, आगरेमें ही पड़ रहे। किन्तु बिहारमें फ़ज़लको न देख सम्राट्ने फ़ैज़ीसे कई बार पूछा-बताया था। फ़ैज़ीने वह सब बातें अपने कनिष्ठके पास लिख भेजीं।

बङ्गालका युद्ध दो दिनमें पूरे पड़ा था। अकबरने समर जीत लिया और पताका फहराते-फहराते शीघ्र ही फतेहपुर-सीकरी वापस पहुंचे। जिस समय जो अच्छा जंचे, उस समय उसीके अनुसार काम करना चाहिये। अबुलफ़ज़लने कुरानके विजय-परिच्छेदकी टीका बना रखी थी। सम्राट्को बङ्गाल और विहार जीत वापस आनेपर इन्होंने उन्हें वही टीका-पुस्तक उपहार दिया।

उस समय मखदूम-उल्-मुल्क और शेख अबदुन्नबी अकबरके प्रधान सभासद रहे। वह दोनो ही सुन्नी थे। धर्मको दोहाई दे शिया सम्प्रदाय और हिन्दू जातिपर अत्याचार करना उनका काम रहा। यह सब बात अकबरके कानमें पहुंची। अबुल्-फ़ज़लने देखा,—राज्यकी उन्नति और समाजका संस्कार करनेको अच्छा सुयोग आया है। उससे लोगोंका मङ्गल हो और अपनी प्रतिपत्ति बढ़ेगी। इन्होंने अकबरसे परामर्श कर यह प्रस्ताव सुनाया था,—"सम्राट् सकल राज्य-विषयके कर्ता हैं। जो नया क़ानून जरूरी पड़ेगा, उसे सम्राट् स्वयं बनायेंगे। प्रजाके नियमानुसार चलनेसे इस जन्ममें सुख होगा और परकालमें सद्गति मिलेगी।"

सभामें वादानुवाद उठा,—सभी विरोधी बन गये। चारो ओरसे आपत्ति आ पड़ी थी। लोगोंने कहा,—"इसका कोई ठिकाना नहीं, अबुल्-फज़ल नास्तिक हैं या हिन्दू। जो प्रस्ताव किया गया है, वह कुरानके मुवाफिक नहीं आता।" किन्तु वादानुवाद बढ़ाना विफल पड़ा, सुन्नी पक्ष अवशेषमें निरस्त हो गया था। फ़ज़लने अपने हाथ प्रतिज्ञापत्रको लिख स्वाक्षरित किया। जो विरोधी रहे, उन सब लोगोंको भी स्वाक्षर बनाना पड़ा था।

उस नूतन नियमका उद्देश्य महत् रहा। शेषमें उसके द्वारा बहुत ही अच्छा फल हुवा था। मुबारक जानते थे,—ईश्वरकी दृष्टिमें हिन्दू-मुसलमान सभी समान हैं। किन्तु कुरान यह मत नहीं ठहराता। फिर जो कुरानके खिलाफ़ चलता, वह काफ़िर होता है। मुबारक कुरानकी सब बात न मानते, इसीसे लोग उन्हें नास्तिक समझते थे। अबुल्-फज़लने बालककालमें पितासे जो पाठ पढ़ा था, अकबरके कानमें वही मन्त्र फूंक दिया। भारतवर्षकी जनसंख्या अनेक है। भारतीयोंकी जाति विभिन्न, धर्म विभिन्न और विश्वास भी विभिन्न रहेगा। सभी काममें कुरानके मुवाफ़िक़ चलनेसे प्रजाका कल्याण नहीं होता। चिरकाल अन्ध-विश्वासमें पड़नेपर मनुष्य उन्नति कैसे करेगा! कुरानमें जिस जगह भ्रम है, वह स्थल छोड़ देना चाहिये। जिसमें भ्रम न हो, उस विषयको कुरानमें न रहते भी मानना उचित है। ऊपर कही हुयी बातें ही अबुल्-फज़लके चिरजीवनका मूलमन्त्र रहीं। इसी मूलमन्त्रसे उन्होंने अकबरका कान फूंका था। सम्राट्के नूतन नियम चलानेका फल यह निकला,—पहले हिन्दू और अन्य-अन्य सम्प्रदायपर जो अत्याचार उठते थे, वह सब मिट गये। सकल धर्म और सकल सम्प्रदायके सन्न्यासी आने और सभामें आदर पाने लगे थे। उधर दुष्ट लोगोंकी भी क्षमता दिन-दिन घट चली।

उस समय अकबरकी सभा फतेहपुर-सीकरीमें रही। फ़ैज़ी और फ़ज़ल दोनो वहां ही रहते थे। सर्वप्रथम फ़ैज़ी कुमार मुरादको पढ़ानेके लिये शिक्षक और दो वत्सर बाद आगरा, काल्पी और कालञ्जरके सदर हुये। सन् १५६५ ई०में अबुल्-फज़ल एक हजार अश्वारोही सैन्यके मन्सब और दूसरे वर्ष दिल्लीके दीवान् बने थे।

सन् १५८९ ई०के अन्तमें अबुल्-फ़ज़लकी माता मर गयीं। उस समय अकबरका प्रतिष्ठित नूतन धर्म चल रहा था। सम्राट्से कुछ कहनेको किसीका साहस न रहा, किन्तु सभासदोंमें अबुल्-फ़ज़लके शत्रु अवश्य थे। स्वयं सलीम भी सुयोग लगनेसे शत्रुता देखानेमें न चूकते रहे। किसी दिन सलीम

हठात् अबुल्-फजलके मकानपर जा पहुंचे। अबुल्-फजलने कुरानकी जो टीका बनायी, चालीस लेखक बैठे उसकी नक़ल उतार रहे थे। सलीम समस्त काग़ज़-पत्र समेत उन लेखकोंको सम्राट्के पास बुला ले गये। उसके बाद काग़ज़-पत्र सामने रखकर कहने लगे,—"अबुल्-फ़जलकी शठता देखिये; उन्होंने मुझे पढ़ाते समय कुरान कैसे समझाया था; फिर मकानमें बैठ जो टीका लिखी, वह ठीक उसके विपरीत निकली।" इस बातपर अबुल् फजल और सम्राट्के मनमें थोड़े दिन कुछ अस्वरस रहा था।

अकबरने अबुल्-फ़जल प्रभृति उस समयके प्रसिद्ध प्रसिद्ध लोगोंको अच्छे-अच्छे संस्कृत और हिन्दी पुस्तक फ़ारसी भाषामें अनुवाद करनेपर लगा दिया था। फ़ैजी लीलावती-गणितशास्त्र अनुवाद करने लगे। कालीयदमन और महाभारतके कियदंशका भार अबुल्फ़जलको मिला था।

सन् १५९२ ई०में यह दो हजार सवारके मन्सब बनाये गये। उसी समय खान्देशके नृपति अलीखान्ने अपनी कन्याको सलीमके पास पहुंचा दिया था। सम्राट्को शीघ्र उनका सम्मान करना आवश्यक रहा। इसीसे उन्होंने खान्देश और दक्षिणमें बुरहान्-उल्मुल्कके पास दूतस्वरूप फ़ैजीको भेजा था।

सन् १५९३ ई०की ४थी सितम्बरको मुबारक मर गये। दो वत्सर भी न बीते थे, कि फ़ैजी भी दुनिया-से चल बसे। ज्ञानी लोग सब कुछ समझते हैं, किन्तु समझकर भी शोकके समय मनको स्थिर रख नहीं सकते। अबुल्-फ़ज़ल परम ज्ञानी रहे, फिर भी पिता और भ्राताके शोकने उन्हें अभिभूत कर डाला था।

अबुल्-फजल फिर शीघ्र ही ढाई हजार सवारके मन्सब बने। उस समय दक्षिणमें बड़ा गड़बड़ रहा। सुलतान् मुराद वहां शासन चलाते; किन्तु राजकार्य कुछ भी न देखते, दिवारात्र शराब पीते और पड़े रहते थे। अतिरिक्त सुरापानसे उनका शरीर भी भग्न हो गया था। इसी कारण अबुल्फ़जलसे सम्राट्ने कह दिया,—'लौटते समय आप मुरादको अपने साथ लेते आयियेगा।'

उस समय दक्षिणमें युद्ध हो रहा था। जो कर्मचारी नियुक्त थे, उनमें सकल ही शठ रहे; विपक्षसे रिशवत (उत्कोच) ले सब काम बिगाड़ते थे। अबुल्-फजलके पहुंचने पर बहादुर खान्ने उत्कोच भेजा। किन्तु अबुल्-फज़ल उत्कोच लेनेवाले आदमी न रहे। उन्होंने गर्वके साथ बहादुरखान्का द्रव्यादि लौटा दिया था।

मुरादका शिशु सन्तान मिर्ज़ा रुस्तम उसी समय एलिचपुरमें मर गया। वह पुत्रशोक भूल जानेके लिये दिवारात्र शराब पीने लगे। अन्तको मदात्यय-रोगने उन्हें धर दबोचा था। किन्तु अबुल्-फज़लका आना सुन वह उसी अवस्थामें अहमदनगर जानेको तैयार हुये। पथमें अवस्था और भी खराब हो गयी थी। एलिचपुरसे नरनाला उसके बाद शाहपुर पड़ता, पास ही दक्षिण पूर्णानदी भरी है। उसी जगह शरीरको छोड़ मुरादका प्राणवायु निकल गया।

अबुल्-फज़लने जाकर देखा, कि चारो ओर गड़-बड़ मच रहा था। सेनापति इन्हें वापस जानेको समझाने लगे। किन्तु अबुल्-फज़लने किसीकी बात न सुनी। पहले जो सकल स्थान जीते गये थे, उन्हों सकल स्थानोंमें आदमी पहुंचा इन्होंने शान्ति स्थापित की। बैताला, तानटुम और सतनन्दा इनके हाथ आ गये थे। किन्तु उससे भी दक्षिणका गड़बड़ बन्द न हुवा, उलटे और भी जटिल पड़ गया। बहादुर खान् कुमार दानियालके पास जा वश्यता स्वीकार करनेको अस्वीकृत हुये थे। खान्देशमें भी युद्ध बढ़ गया। सम्राट् अकबर उस समय उज्जयिनीमें रहे। उनकी इच्छा थी, कि वह स्वयं जाकर असीर-गढ़पर आक्रमण करते। असीरगढ़ बहादुर खान्का क़िला रहा। इधर उन्होंने अहमदनगर पर आक्रमण करनेके लिये दानियालको नियुक्त किया था। अबुल्-फज़ल अपने सिपाहियोंको मिर्ज़ा शाहरुख, मीर मुर्तजा और ख़्वाजा अबुल-हसनके पास छोड़ सम्राट्से मिलने चले गये। उस समय यह चार हज़ार सवारके मन्सब बने थे। अकबर और अबुल्-फज़ल दोनोंने मिल असीरगढ़ जीत लिया। उसके बाद

अबुल्-फ़ज़लने बाज़मन्ना एवं अली-शाहसे लड़ नासिक, जालनापुर और निकटवर्ती अन्य-अन्य स्थान जीते थे।

वैसे समय दुष्ट लोगोंकी कुमन्त्रणासे सलीम (जहांगीर) का कितना ही भावान्तर पड़ा। बीचमें वह एक बार विद्रोही ही बन गये थे। अकबर उस समय असीरगढ़के युद्धमें व्यस्त रहे; उन्होंने आगरे वापस पहुंच सलीमको निरस्त किया था। कुछ दिनों तो सद्भाव रहा, किन्तु उसके मिटनेमें देर न लगी। सलीम इस बार इलाहाबाद पहुंच स्वयं राजा बने और अकबरको चिढ़ानेके लिये ख़ास अपने नामका रुपया ढाल उनके पास भेजने लगे। अकबरने देखा, कि विपद्के बन्धु अबल्-फज़ल रहे। दूसरे सब आदमी चुपके-चुपके सलीमका पक्ष लेते थे। अपने स्वार्थसाधनके लिये लोग सलीमकी दुरभिसन्धिमें हवा भरते रहे। इस कारण उन्होंने अबुल्-फज़लको शीघ्र बुलानेके लिये आदमी भेज दिये।

दक्षिणको लोग दौड़ पड़े। सलीमको समस्त सन्धान लग गया था। उन्होंने सोचा,—'अबुल्-फ़ज़लको मार सकनेसे हमें दूसरी कोई आशङ्का न रहेगी। पिताके पास प्रतिपन्न होते भी हम कष्ट नहीं पा सकते। फज़लके प्राण लेनेको यही सुयोग है।' वीरसिंह उस समय ओर्छेके राजा रहे। उनके साथ अकबर सद्भाव रखते न थे। सलीमने अबल्-फजलका प्राण लेनेके लिये राजा वीरसिंहको नियुक्त किया। दक्षिण-देशसे लौटते समय सम्भव रहा, कि अबलफजल ओर्छा राज्यके भीतरसे जाते। वीरसिंहने इनकी खबर लेनेको चारो ओर लोग लगा दिये थे।

अबुल-फजल दक्षिणमें अपने पुत्र अब्दुर रहमानके हाथ समस्त सैन्यका भार रख आगरेको रवाना हुये। साथमें कुछ पहरा देनेवाले सिपाही ही रहे। यह उज्जयिनी पर्यन्त पहुंचे, किन्तु पथमें कहीं भी विपद्की आशङ्का न देखी। हां, उज्जयिनीके लोगोंने सलीमकी दुरभिसन्धिका कुछ आभास पाया था। उन्होंने अबुल-फजलको सतर्क कर दिया। अबुल-फजलके अनुचरोंने भी घाटी चांदेसे चलनेकी अनेक चेष्टा की थी, किन्तु इन्होंने किसीका परामर्श न माना। अबुल-फजल नरवरके पथ आगेको बढ़ने लगे। अन्तमें थोड़ी ही दूरपर कालस्वरूप वीरसिंहके लोग सामने आ धमके। गदाई खान् नामक अबुल-फजलके किसी विश्वासी नौकरने युद्ध न करनेको समझाया था। उस समय तीन कोस दूर अन्त्री नामक स्थानपर सम्राट्के तुर्की सवार उपस्थित रहे। अबुल-फजल चाहते, तो अनायास वहां भाग जा सकते थे। किन्तु संग्रामसे मुंह फेरना कापुरुषका काम है; इसलिये यह वीरोचित दर्पसे युद्धमें झुक पड़े। शत्रुवोंने चारो ओरसे झपट इन्हें घेर लिया था। दूसरी किसी ओर भागनेकी राह न रही, शेषमें किसी तुर्की सवारने भालेसे इनका वक्षःस्थल छेद डाला। अबुल-फजल देखते-देखते धराशायी हुये। वीरसिंहने आकर इनका मस्तक काटा था। पीछे वही मस्तक इलाहाबाद सलीमके पास भेजा गया। सलीमने मनकी घृणा देखानेके लिये अनेक दिन पर्यन्त उस मस्तकको किसी कदर्य स्थानमें पड़ा रहने दिया था।

उधर सम्राट् अबुल-फजलकी पहुंचके दिन गिनने लगे। किन्तु अबुल-फजल न आये, आगरेमें इनकी मृत्युका संवाद पहुंच गया। दूसरे सब लोगोंने सुना, किन्तु अकबरको ख़बर न हुयी, उन्हें यह संवाद कौन सुनानेवाला था? तैमूर वंशकी रीति रही,—राजपुत्र प्रभृति किसीकी मृत्यु होनेसे उनका वकील हाथमें काला रूमाल लपेट सम्राट्के पास पहुंचता था। अबुल-फजलकी मृत्युका संवाद देनेको इसी रीतिपर वकील हाथमें काला रूमाल लपेट अकबरके सामने गया। वकीलको देखते ही सम्राट्का प्राण घबरा उठा। शेषमें उन्होंने सुना, कि सलीम ही अबुल-फजलकी मृत्युका कारण रहे। अकबर मनोदुःखसे बोल उठे,—"सलीम यदि राज्य लेना चाहते थे, तो उन्होंने मुझे क्यों न मारा? अबुल-फजलके जीते रहनेसे मैं बहुत सुखी होता।"

वीरसिंहको मारनेके लिये सम्राट्ने पात्रसिंह

और राजसिंह नियुक्त किये थे। कईबार युद्ध होनेसे वीरसिंह परास्त पड़े। शेषको वह जङ्गलमें जाके छिपे थे। राजसिंहने उन्हें पुनर्वार युद्धमें हरा दिया। किन्तु कुछ काल बाद ही अकबर मर गये थे। इस-लिये वीरसिंहको फिर आशङ्का न रही। जहांगीरके सम्राट् होनेपर उन्होंने ओर्छा पुरस्कार पाया और तीन हज़ार सवारके मन्सब बने।

अबुल्-फ़ज़लका चरित्र विशुद्ध रहा। वह शत्रुके प्रति भी रूढ़ वाक्य न बोलते थे। शेख़ अब्दुन्नबी और मख़दूम-उल् मुल्कने मुबा-रकका विस्तर अपमान किया। कुछ काल बाद सम्राट्ने इन दोनो व्यक्तिको कौशलसे निकालनेके लिये मक्के भेज दिया था। अबुल्-फ़ज़ल यह बात अकबर-नामेमें लिख गये हैं। किन्तु लेखके किसी छत्रमें भी विद्वेष नहीं देखते।

चरित्र

अबुल्-फ़ज़ल सत्यको ही सर्वप्रधान स्वीकार करते थे। इसीसे कुरान्की सकल बातपर इन्हें श्रद्धा न रही। इनके बार-बार हिन्दू या नास्तिक कहानेका यही कारण था। इनका चित्त अतिशय उन्नत रहा और यह सभी लोगोंके साथ प्रणय रख चलते थे। घरके दास-दासी प्रभृति सकल पर ही इनका विशेष अनुग्रह रहा। कर्तव्य कर्ममें त्रुटि पाकर भी कभी इन्होंने किसीको नहीं डांटा-डपटा। यह निर्दिष्ट समयपर सबको ही वेतन दे देते, किसीको कार्यमें अपटु देखते भी बोलते न थे। इनकी धारणा रही—'किसी कर्म-चारीको नियुक्तकर कामके समय यदि अकर्मण्य पायिये, तो भी उसे कर्मच्युत करना न चाहिये। कर्मच्युत करनेसे प्रभुको ही कलङ्क लगेगा।' लोग समझते, जिसे मनुष्य पहचाननेकी क्षमता नहीं होती, वही पहले न देखकर अकर्मण्यको काम सौंपता है। किन्तु अबुल्-फ़ज़लके पक्षमें यह कलङ्क लग न सकेगा।

अबुल्-फ़ज़ल असम्भव आहारशक्ति रखते थे। यह प्रति दिन बाईस सेर द्रव्य खाते रहे। भोजनके समय इनके पुत्र अब्दुर-रहमान पास ही बैठते थे। अबुल्-फ़ज़ल जिस द्रव्यको दो बार उठाकर खाते, अब्दुर-रहमान उसे ही सुस्वादु समझ-

आहारशक्ति

ते रहे। दूसरे दिन वह उसी द्रव्यको बनानेकी अनु-मति लगाते थे। जो द्रव्य सुस्वादु न मालूम पड़ता, अबुल्-फ़ज़ल उसके विषयमें कुछ न कहते; केवल चखकर देखनेके लिये वही पात्र सन्तानके पास सरका देते रहे। अब्दुर-रहमान एक बार उसे चख पाचकसे चखनेको कहते थे। पाचक चख और देख-कर वैसी सामग्री फिर कभी न बनाता था।

अबुल्-फ़ज़लके पुत्रका नाम अब्दुर-रहमान और पौत्रका नाम बिशोतान रहा। अबुल्-फ़ज़लके मृत्युसे ग्यारह दिन बाद अब्दुर-रहमान भी मर गये।

इन्होंने 'अकबर-नामा', 'आइन-इ-अकबरी' और 'मक्तूबात-अल्लामी' लिखने कारण बड़ी प्रसिद्धि पायी थी। 'मक्तूबात-अल्लामी' तो पत्र-व्यवहारके लिये आदर्श ही समझी जाती है। ईरानी पिलपेकी कहानियोंका अनुवाद 'अयार दानिश' भी इन्हींका बनाया है। इन्होंने मुग़ल बाद-शाहोंका इतिहास अकबर राज्यशासनके ४७वें वर्षतक लिखा था, उसी वर्ष इनकी मृत्यु हुयी।

ग्रन्थ

अबुल्-फ़ज़लकी रचना गम्भीर, सतेजः और मधुर निकलेगी। बुखारेके राजा अब्दुल्लहने किसी समय कहा था,—सम्राट् अकबरके तीरको अपेक्षा अबुल्-फ़ज़लका लिखा देखनेसे भय अधिक आता है।

अबुल फ़ैज़ी—यह शेख मुबारकके बेटे, अबुल्-फ़ज़लके भाई और सम्राट् अकबरके मित्र रहे। इनका जन्म सन् १५४७ ई०में हुवा था। इन्हें संस्कृत भाषाका अच्छा ज्ञान रहा। इन्होंने हिन्दी भाषामें कितने ही दोहे बनाये हैं। अबुल्-फ़ज़ल और फ़ैज़ी शब्द देखो।

अबुल् माली—सम्राट्-अकबरके प्रधान कर्मचारी। बलवायी बननेपर यह काबुल भाग जानेको वाध्य हुये थे। वहां पहुंचनेपर अकबरके भाई मीर मिर्ज़ा मुहम्मद हाकिमने अपनी बहन मिहर-उन्-निसा बेगम इन्हें व्याह दी और उस राज्यमें प्रथम श्रेणीका कर्मचारी बनाया। किन्तु थोड़े ही महीनों बाद इन्होंने काबुलका शासन पानेकी इच्छासे सन् १५६४ ई०के मार्च मास मिर्ज़ा मुहम्मद हाकिमकी माताकी हत्या की। वह इनकी सास रहीं और असाधारण

योग्यता रखती थीं। यह कहना झूठ नहीं ठहरता, कि वही सारे राज्यका प्रबन्ध करती रहीं। पीछे इन्होंने राजकुमारके रक्षक बनानेका बहाना किया। यह उमराको खुश कर लेनेपर राजकुमारसे भी छुटकारा पानेका विचार रखते थे। उसी समय बदख्शान्के शासक मिर्ज़ा सुलेमान्ने इनपर आक्रमण किया और सन् १५६४ ई० की १३वीं मईको किसी युद्धमें इन्हें मार डाला। अबुल् मालो श्रेष्ठ कवि रहे और कवितामें अपना उपनाम 'शाहवदी' लिखते थे।

अबुल्-हसन—१ दक्षिण-अह्मदनगरवाले सुप्रसिद्ध शाह ताहिरके पुत्र। सन् १५७२ ई० समय यह १ले अली आदिल शाहके दीवान् रहे थे।

२ उत्मादु उद्-दौलहके बेटे और सम्राट् जहांगीरके दीवान। इनके तीन लड़कियां रहीं, अर्ज़मन्द-बानू या मुमताज़् महल, सुलतान् जमानिया और बदर-उज़् जमानिया। अर्ज़मन्द बानू सम्राट् शाहजहां, सुलतान् जमानिया सुलतान् परवीज़ और बदरउज़्-जमानिया शाह अब्दुल-लतीफसे व्याही थीं।

अबू अबैदह—१ले खलीफ़ा अबू-बकरके समय मुसलमान-फौजका शासन रखनेवाले मुहम्मदके सखा और मित्र। मुहम्मदके यूनान-सम्राट्से युद्धमें हार जानेपर उक्त शासन उनके हाथसे छीनकर खलीदको दिया गया था। उमरने खिलाफत पानेपर सिरीयाकी सेनाका शासन अबू अबैदहको दिया, खलीदकी भीषण रक्तपिपासासे वह अप्रसन्न हो गये थे। अबू-अबैदहने आगे बढ़ पलेस्तिन्, (सिरीया) जीता और समग्र देशसे यूनानियोंको मार भगाया। भूमध्य-सागरसे यूफ्रेटस्तक कहीं यूनानी देख न पड़ते थे। सन् ६३९ ई० में पूर्ण रूपसे विजयदुन्दुभि बजी। उसी वर्ष सिरीयामें भयानक महामारी फैली थी। पचीस हज़ार मुसलमान मर गये। अबू अबैदहने भी उन्हींके साथ अपना प्राण खोया था।

अबू अब्दुल्लह—१ मक्केके कुरैशी फ़कीर। २ इस्कन्दर साधु। ३ जौहरी साधु। इन तीनों साधुको जीवनी अबू-जफ़रने लिखी थी। ४ मुहम्मद फ़ाज़िल। यह आगरावाले सैयद-हसनके बेटे रहे। इन्होंने 'मुखबिर उल्-वासिलीन' नामक छन्दोग्रन्थ लिखा था। उस छन्दोग्रन्थमें मुहम्मद और उनके सन्तानकी प्रशंसा रही और क्रमशः उनके मृत्युकी तारीख़ भी दी गयी थी। ग्रन्थके नामसे सन् ११०६ हिजरी निकलता, जो सन् १६५० ई०से मिलता है। इनका प्रभाव आलमगीर-के समय खूब फैला था। सन् १६९४ ई०में इनकी मृत्यु हुयी। इन्हें लोग 'मज़्हर-उल् हक़' भी कहते थे। ५ 'शाढ़-सहीह-बुखारी' नामक ग्रन्थरचयिता। साधारणतः लोग इन्हें इब्न-मलिक कहते थे। सन् १२७३ ई०के समय दमास्कस् नगरमें इनका प्राण छूटा। ६ अह्मद अन्सारीके पुत्र और एक ग्रन्थकार। सन् १२७२ ई०में इनकी मृत्यु हुयी थी। ७ अबू नसरके पुत्र और 'जम्बैन-शाहियान' नामक ग्रन्थके रचयिता। इनका दूसरा नाम 'मुहम्मद-उल्-हमीदी' रहा। 'तारीखे उनडुलस' भी इन्होंने लिखा था। इस इतिहासमें अल्-बुखारी और मुसलिमका संग्रह भरा और लोग इसकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। यह सन् १०९५ ई० में मरे थे।

अबू अब्बास—अब्बास जातिके बग़दादवाले पहले ख़लीफा। अब्बास देखो।

अबू अली—सुप्रसिद्ध गणितज्ञ। सन् ११३६ ई० में मिश्र खलीफ़ा अल्हाफिज़्अली-दीन्-इल्लह और बग़दाद-अल्-रसीद-बिल्लहके समय इनका अच्छा वैभव फैला था।

अबू अली क़लन्दर—सुप्रसिद्ध मुसलमान-साधु। इन्होंने अपने जीवनमें कितने ही आश्चर्य कर्म कर देखाये थे। लोगोंमें इनका बड़ा ही सम्मान रहा। इन्होंने ईरानके इराक़ स्थानमें जन्म लिया था, किन्तु भारतवर्ष आ पानीपथमें रहने लगे। सन् १३२४ ई०को ३०वीं अगस्तको १०० वर्षकी अवस्थापर पानीपथमें ही यह मर गये। इनकी क़बर पवित्र समझी जाती और आज भी मुसलमान वहां दण्डप्रणाम करने पहुंचते हैं।

अबू अह्मद—क़ासिमके बेटे। सन् १४८३ ई० समय नटोलियेके अमेशिया नगरमें इनका जन्म हुवा था। इन्होंने इसलाम-धर्मके आरम्भिक विषयपर अपने पिताकी लिखी 'अहमद-बीन-अब्दल्लह-उल्-किरमी'

नामक पुस्तककी व्याख्या सर्वसाधारणके सामने सुनायी रही।

अबू-इस्-हाक़—ग़ज़नीवाले स्वतन्त्र शासक अलप्तिगीन्के बेटे। इन्होंने शासनका प्रबन्ध सुबुक्तिगीन्के हाथ सौंप दिया था। सन् १०४९ ई० में इनकी मृत्यु हुयी।

अबू जाफ़र—१ कुरानके कोई प्राचीन शिया टीकाकार। यह रुकन्-उद्-दौलह दैलमीके सहयोगी थे। इन्होंने सबसे अधिक शिया-पुराण संग्रह किया और ईरानवाले कुमके इमामिया वकीलोंमें अतिशय प्रसिद्धि पायी। इनका बनाया एक बड़ा और एक छोटा तफ़सीर भी रहा। इनके जीवनका समय निश्चित नहीं होता। शेख़ तूसीने फ़ेहरिस्तमें लिखा था,—'सन् ९४२ ई०के समय रायमें इनकी मृत्यु हुयी।' किन्तु शेख़ नजासीने लिखा है,—'सन् ९६५ ई०के समय अबू-जाफ़र जब बग़दाद गये, तब उनका वयस बहुत थोड़ा रहा।' इन्होंने सब मिलाकर १७२ ग्रन्थ लिखे थे।

२ इमामिया या शिया सम्प्रदायके कोई प्रधान मुजतहिद। इन्होंने 'फ़िरिश्तु-कुतुब-इश-शिया व अस्मा-इल्-मुसन्निफ़ीन्' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा था। यह शिया ग्रन्थोंका पुस्तक-विद्या सम्बन्धीय अभिधान है। इस अभिधानमें ग्रन्थकारोंके नाम भी मिलेंगे। सन् १०५६ ई०के समय बग़दादमें सुन्नी और शिया सम्प्रदायके बीच जो बलवा उठा था, उसमें इनके बनाये बहुतसे ग्रन्थ सबके सामने जला दिये गये। यह सन् १०६७ ई०में मरे थे।

अबूझ (हिं० वि०) बोधरहित, नासमझ, जो समझता-बूझता न हो।

अबू ताहर—'दाराब-नामा'-ग्रन्थप्रणेता। यह ग्रन्थ पूर्वकालीन संक्षिप्त जीवनवृत्तान्त है। इसमें दरायस, ज़ोहाक, मेकिदनके फ़िलिप और सम्राट् सिकन्दरकी जीवनी मिलेगी, गेलन और दूसरे यूनानी तत्त्वविदोंका चरित्र भी लिखा है।

अबू दाऊद सुलेमान्—अरबी भाषामें युक्लिडकी ज्यामितिके अनुवादक और टीकाकार। यह सुन्नी सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता भी रहे। प्रकाश्य भावसे कुरानका अर्थ लगाने कारण लोग इन्हें अज़-ज़ाहिरी कहते थे। सन् ८१७ ई०के समय कूफ़ेमें इनका जन्म हुवा था। सन् ८८३ ई०में यह मर गये।

अबू बकर—इनकी उपाधि मिर्ज़ा या सुलतान् रही। यह अमीर-तैमूरके नाती और शाहरुख़ मिर्ज़ाके बेटे थे। सन् १४४८ ई०में अपने भाई मिर्ज़ा उलघबेगके कहनेसे मार डाले गये।

अबू बकर तुग़लक़—फ़ीरोज़शाह तुग़लकके नाती और शाहज़ादे ज़ाफ़र ख़ान्के बेटे। सन् १३८९ ई०के फ़रवरी मास अपने भतीजे गियास-उद्-दीन्की हत्या होने पर इन्हें दिल्लीका सिंहासन मिला था। इन्होंने एक वर्ष छः महीने राज्य किया। उसके बाद इनके चचे मुहम्मद तुग़लक़ने अपने बादशाह बननेका ढिंढोरा पिटवाया और कांगड़ेके नगरकोटसे फ़ौज ले दिल्लीकी ओर रवाना हुये। थोड़ा पीछे हटना बाद वह जीते, दिल्ली पहुंचे और सन् १३९० ई०के अगस्त मास सिंहासनपर बैठे थे। मेवाड़को भागे हुये अबू बकर उसी वर्षकी २९वीं नवम्बरको पकड़े और मेरठके किले भेजे गये, जहां कुछ वर्ष बाद मर मिटे।

अबू बकर सिद्दीक़—मुहम्मद साहबकी आइशा नाम्नी पत्नीके पिता। मुहम्मद साहब इनका इतना आदर करते, कि इन्हें 'सिद्दीक़' की उपाधि ही दे दी थी। अरबी भाषामें सत्यवक्ताको सिद्दीक कहते हैं। सन् ६३२ ई०के जूनमास मुहम्मदके मरनेपर यह उनके उत्तराधिकारी बने। मुहम्मदके दामाद अलीने वह अधिकार लेना चाहा था, किन्तु उनकी भी कुछ चल सकी। इन्होंने उत्तेजनाके साथ नये धर्मको चलाया और उन अरबोंको मारा-पीटा, जिन्होंने नया धर्म छोड़ना और अपने बाप-दादेका धर्म फिर पकड़ना चाहा था। पीछे यह विदेशीय जातियोंपर फ़ौज ले टूट पड़े और अपने ख़लीद नामक सेनापतिके प्रभावसे २००००० फ़ौजको मैदानमें मार भगाया। यूनानसम्राट्ने सिरीयाका नाश करनेको यह फ़ौज भेजी थी। किन्तु सिद्दीक़ अधिक दिन अपने विजयका आनन्द ले न सके, ज्वरने धीरे-धीरे इनका बल

नष्ट कर दिया। दमास्कस मिलनेके दिनही यह मरे। किन्तु मृत्युसे पहले खत्ताबके बेटे उमरको अपना उत्तराधिकारी बना गये थे। इन्होंने दो चान्द्र वत्सर तीन महीने नौ दिन राजत्व किया और सन् ६३४ ई०को २३वीं अगस्तको चल बसे। मदीनेमें मुहम्मद-की कबरके पास यह गाड़े गये थे।

अबू-मूसा-जाफ़र-अल्-सूफ़ी—अरबी रसतन्त्र-विद्या-लयके प्रतिष्ठाता। इनका कविता-सम्बन्धीय उपनाम 'जबर' रहा और सन् ई०के ८वें शताब्दान्त या ९वें शताब्दप्रारम्भ वैभव बढ़ा। प्रमाणानुसार इन्होंने खुरा-सान्‌के टूसमें जन्म लिया था। इन्होंने रसविद्यापर अनेक प्रबन्ध लिखे और ज्योतिषका भी कोई ग्रन्थ बनाया। इनके प्रबन्धोंका अनुशासन सन् १६६२ ई०के समय डेञ्जिक्‌में लेटिन भाषासे छपा था, सन् १६७८ ई०में वह फिर रसल द्वारा अंगरेजीमें छापा गिया।

अबू-रैहान् अल्-बीरूनी—कोई सुप्रसिद्ध दैवज्ञ, गणितज्ञ, ऐतिहासिक, विद्वान् और नैयायिक। इनका जन्म सन् ९७१ ई०के समय बीरून्‌में हुवा होगा। आत्मतत्त्व और न्यायशास्त्रके अतिरिक्त इन्होंने अभिचार (जादू)-का कौशल भी सीखा था। उसी की प्राप्तिसे सम्भवतः इन्हें ओजस्विता मिली। इस विषयमें हम अपने पाठकोंको एक बात सुनाते हैं,— किसी दिन सुलतान् मह्‌मूदने इनसे पुछवाया,— सम्राट्‌की सवारी सभासे कैसे निकलेगी? जब इन्होंने इस प्रश्नका उत्तर काग़ज़पर लिख कर रख दिया, तब सम्राट्‌ने कितने ही लगी हुयी दरवाजोंको छोड़ दीवार तोड़वायी और उसी राहसे निकल गये थे; किन्तु काग़ज़ पढ़कर वह बड़े ही आश्चर्यमें पड़े। उनके दीवार तोड़वाने और बाहर जानेका ठीक ठीक हाल इन्होंने पहले ही लिख दिया था। इसपर सम्राट्‌ने भीषण रूपसे इन विद्वान्‌को जादूगर बताकर निन्दा की और उसी समय खिड़कीसे नीचे डाल देने-की आज्ञा लगायी। यह कठोर दण्ड उसी समय दिया गया; किन्तु नीचे एक मुलायम गद्दी लगी थी, जिसमें गिरनेपर साधुके कोई चोट न आयी। उसके बाद सम्राट्‌ने अबू रैहान्‌को बुलाकर पूछा,— क्या इस विषय और मेरे व्यवहारका हाल पहले आपको मालूम हो गया था? इन्होंने शीघ्र ही अपनी पट्टिका मंगायी, जिसमें इस अपूर्व विषयका सम्पूर्ण वृत्तान्त लिखा मिला। यह ४० वर्षतक भारतसे देश-देशान्तर आते-जाते रहे थे। इन्होंने कितने ही ग्रन्थ लिखे, कई यूनानी पुस्तकोंका अनुवाद किया और टलेमीके अलमजेष्टको संक्षेपमें समझा दिया। इनके बनाये ग्रन्थ किसी ऊंटके बोझसे भारी बताये जाते हैं। इनके सब पुस्तकोंमें 'तारीख़-उल्-हिन्द' अतिशय मूल्यवान् निकलेगा। इन्होंने दूसरा पुस्तक 'क़ानून-मासूदी' ग़ज़नीके सुलतान मासूदको लिखकर समर्पण किया था, जिसके लिये इन्हें एक हाथी भर रुपया मिला। यह सुलतान् मह्‌मूद और मासूद ग़ज़नवीके समय जीते थे, सन् १०३९ ई०में मर गये।

अबू हफ़स उमर—अह्‌मदके पुत्र। इन्होंने ३३० ग्रन्थ लिखे थे, जिनमें 'तरग़ीब,' 'तफ़सीर' और 'मसनद' की बड़ी प्रसिद्धि रही। सन् ९९५ ई०में यह मरे थे।

अबे (हिं० अव्य०) ओ, ए, अरे, क्योंरे। यह अव्यय अपनेसे छोटेके सम्बोधनमें आता है।

अबेध (हिं० वि०) अविद्ध, छेदा न गया।

अबेर, अबार देखो।

अबेश (हिं० वि०) वेश, ज्यादा, अधिक, खूब।

अबोटाबाद—पञ्जाबके हज़ारा ज़िलेका हेडक्वार्टर या सदर। यह समुद्रतलसे ४१२० फीट ऊंचे बसा और रावलपिण्डीसे साढ़े इकतीस कोस दूर है। इसमें सरकारी छावनी पड़ी है।

अबोध (सं० त्रि०) नास्ति बोधो यस्य, नञ्-बहुव्री०। १ अज्ञान, नासमझ, जिसे तमीज़ न रहे। (पु०) अभावे नञ्-तत्। २ बोधका अभाव, नादानी, बेसमझी।

अबोधगम्य (सं० त्रि०) न बोधने गम्यं ग्राह्यम्, नञ्-तत्। ज्ञानके अगम्य, जो ज्ञान द्वारा समझ न पड़ता हो, समझमें न आने क़ाबिल।

अबोधनीय (सं० त्रि०) १ समझानेके अयोग्य, जिसे

समझ न पड़े। २ न जागनेवाला, जो जगाने या उठाने क़ाबिल न हो।

अबोध्य, अबुद्ध देखो।

अबोर—(आबर) आसामकी जातिविशेष। मालम होता, कि प्रकृत शब्द अबर है। जो लोग श्रेष्ठ नहीं अर्थात् असभ्य होते, उन्हें अबोर कहते हैं। किन्तु आसामी भाषामें बोर शब्द राजत्वका सूचक है। इसलिये जो स्वाधीन रहते, किसीको राजत्व नहीं देते, उन्हें ही अबोर कहते हैं।

आसाम विभागके अन्तर्गत लखीमपुरसे उत्तर अबोर पर्वत विद्यमान है। इससे पूर्व मिशमी और पश्चिम मिड़ी पर्वत, उत्तरको तिब्बत देश पड़ेगा। इसी अबोर पर्वतमें अबोर नामक कोई असभ्य जाति रहती है। डाल्टन साहबके मतसे अबोर, मिशमी एवं मिड़ी यह तीनो जाति किसी आदिपुरुषसे उत्पन्न हुयी हैं। कोई अबोर आदिको तिब्बतके लोगोंसे निकला हुवा बतायेगा। किन्तु निश्चय नहीं होता, यह अनुमान ठीक है या ग़लत। इनकी भाषा विभिन्न है; आचार-व्यवहार और धर्म नहीं मिलता। ऐसी दशामें यह एक जाति कैसे हो सकते हैं!

दिवं नदके कूल एवं देवरुगढ़से बिलकुल उत्तर, दिवं और दिजेमो नदके मध्य अनेक अबोर रहते हैं। यह अपनेको पादम बतायेंगे। इनका मुख मुग़लों-जैसा, शरीरका वर्ण मटमेला, आकार दीर्घ, स्वर गम्भीर और वार्तालाप अधिक मिष्ट और धीर रहता है। यह झगड़ालू होते, एक दूसरेसे अप्रसन्न रहते और आपसमें राजनीतिक विरोध अधिक रखते हैं।

अबोरोंके मतमें पृथ्वीके सकल मनुष्य किसी आदिपुरुषसे उत्पन्न हुये थे। यह कहते, कि पहले सिर्फ़ एक स्त्री और एक पुरुष ही रहा। उनके दो पुत्र-सन्तान उत्पन्न हुये। जेष्ठपुत्र मृगया मारनेमें विलक्षण पटु निकला था। कनिष्ठ चतुर और शिल्पी हुवा। माता छोटे लड़केका बहुत प्यार करती थी। क्या जाने क्या मनमें आया, वह उसे ले पश्चिम ओर चली गयीं। अस्त्र-शस्त्र, खेतीका सामान और घरका द्रव्यादि कुछ भी छूटा न था। आजकल जो समस्त मनुष्य पश्चिममें रहते, वह उन्हीं कनिष्ठ पुत्रके वंशधर हैं। उनकी माता अपने साथ जो सकल द्रव्य ले गयी थीं, उसका नमूना देखा सबको शिल्पकार्य सिखा दिया। उसीसे अन्य-अन्य देशके लोग विद्वान् और शिल्पी बन गये हैं। किन्तु ज्येष्ठपुत्रके लिये जननीने दूसरी कोई चीज़ न रखी; केवल एक लोहेका छुरा छोड़ा था, जिसे देख आजकलके अबोरोंने उसका बनाना सीखा। फिर कितना ही सादा काल-बीज पड़ा रह गया था, उसे ही बोकर इनका कृषि-कर्म चला। यदि नमूना देखनेमें न आता, तो अबोर शिल्पकार्य कैसे कर सकते थे!

अबोर पहाड़की बग़लमें कुटी बनाकर रहते हैं। इनका मकान कोई बत्तीस हाथ लम्बा और बारह चौड़ा पड़ेगा। सामने थोड़ा सहन रखते हैं। मकान-की इक ओर पहाड़ और तीन ओर तख़्तेका बाड़ा रहेगा। मकानके किवाड़ भी तख़्तेसे ही बनते हैं। मकानकी सतहसे कोई दो हाथ ऊंचे बांसका मचान बांधेंगे। उसी मचान पर पड़ना-बैठना होता है। अबोर फूस और वनकदलीके पत्तेसे छप्पर छायेंगे। ओलती जमीनतक लटकती, इसीसे तूफ़ान मकान उड़ा नहीं सकता। मकान बनाते समय गांवके सब लोग जाकर मज़दूरी करें, किन्तु उसके लिये किसीको दाम देना न पड़ेगा। गृहस्थकी कुटीमें स्त्री, पुरुष और उनकी अविवाहिता बालिका एक साथ रहती हैं। किन्तु बालक किंवा अविवाहित युवा पुरुष वहां ठहर न सकेंगे। रहनेको पृथक् स्थान होता, जिसे अबोर-भाषामें मोरङ्ग कहते हैं। मोरङ्ग-भवन प्रायः १३२ हाथ लम्बा निकलेगा। उसमें आग रखनेको कोई सोलह-सत्रह स्थान रहते हैं। हमारे देशमें जैसे रामलीलाका बाड़ा और सभ्य समाजमें टाउन हाल हा, वैसे ही अबोरोंका मोरङ्ग-भवन भी बनेगा। वह सर्वसाधारणकी सम्पत्ति है। प्रति दिन वहां ग्रामस्थ लोगोंकी सभा लगे और रात्रिकालमें समस्त बालक और अविवाहित युवा पुरुष सोयेंगे।

आजकल किसी-किसी स्थानके अबोरोंकी पोशाक

अन्यरूप हो गयी है। किन्तु यह परिवर्तन सकल स्थानमें नहीं पड़ा। सचराचर यह वृक्ष-विशेषके वक्कलेका कौपीन चिटकी तरह बांधेंगे। कौपीनकी पिछली ओर शृगालकी पूंछ-जैसी कोई हाथ भर लम्बी पुछल्ली लटका करती है। बैठते समय उसका आसन लगे और लेटनेमें तकियेका काम निकलेगा। अच्छीतरह सजने-बजनेमें इनकी पोशाक दूसरी तरह रहेगी। उस समय हाथकी सिली रङ्गीन फतुही पहनते हैं। फिर फतुही पर टाट-जैसा मोटा पशमी जाकेट भी चढ़ायेंगे। किन्तु राजकार्यके समय अस्त्र-शस्त्र ले जब यह ठाट-बाटसे खड़े होते, तब उस ओर देखनेपर महाप्राणी भी कांप उठता है। इनके माथेपर विकटाकार शिरस्त्राण रहेगा। भीतरी ठाठ बिलकुल हमारे देशकी टोकरी-जैसा बेतसे बुना होता है। उसका उपरिभाग भालूके चमड़ेसे मढ़ा जायेगा। बीच-बीच सूवरका दांत, सुरागायकी पूंछ और पक्षीकी बड़ी चोंच खोंस देते हैं। हाथमें भाला, छुरा, सीधी तलवार और धनुर्बाण ले लेंगे। इनमें स्त्री पुरुष सभी लोग घोड़ेपर चढ़ सकते हैं।

स्त्रियां सचराचर दो वस्त्र पहनेंगी। एक वस्त्र तो कमरमें बंधता है। पीछे खिसक पड़ने कारण उसे बेंतसे गूंथ देंगी। इस वस्त्रसे घुटनेतक शरीर ढंकता है। दूसरा वस्त्र छातीपर चिपका रहेगा। किन्तु यह कोई बात नहीं, वस्त्राभावसे कैसे काम चल सकता है। व्यवहार चल जानेसे हमें लज्जा आयेगी। किन्तु अबोर-युवती स्वच्छन्द विवस्त्र हो नाचती हैं, जिससे कोई भी नहीं शर्माता। मन्द्राजी स्त्रियोंकी तरह इनके कानमें भी बड़े-बड़े छिद्र होते, जिनमें बेंतके कुण्डल लटकते हैं। कोई छिद्रके मध्य काले झूमके डालें और कोई हड्डी लगायेंगी। गलेमें पड़ी हुयी नानावर्णकी माला कमरतक लटक लहराती है। पैरमें विचित्र बेंतकी किङ्किणी होती, जिसमें छोटी-छोटी घण्टी लगी रहती,—चलते समय झुन-झुन बज उठती है। अबोर स्त्रीपुरुषोंके बाल छोटे-छोटे कटेंगे।

अबोर एक परमेश्वरका अस्तित्व मानते हैं। वही परमेश्वर सृष्टिकर्ता और सकलके प्रधान हैं। किन्तु उनके अधीन अनेक सामान्य-सामान्य वनदेवता रहेंगे। हम जैसे वरुणको जल, सरस्वतीको विद्या और लक्ष्मीको सौभाग्यका देवता समझते, अबोर-देवतावोंके हाथ भी वैसे ही भिन्न-भिन्न कार्य सौंपा गया है। यह परकालपर विश्वास रखेंगे। मनुष्यके मर जानेपर यम उसके पापपुण्यका विचार करते हैं। विचार होनेसे मनुष्य इस जन्म जैसा काम करता, मृत्युके बाद उसका भोग्य वैसा ही सुख-दुःख पड़ता है। पीड़ा होनेसे कोई औषध लेना मिथ्या है। मनुष्यपर भूत चढ़नेसे ही पीड़ा उठेगी। पूजा करने और बलि देनेसे भूत भागता है, इसलिये फिर पीड़ा नहीं रहती। रिगम नामक कोई पर्वत है। कदाचित् भूत उसी जगह रहना पसन्द करते हैं। अबोर बता देंगे,—'रिगम पर्वतपर जानेसे कोई मनुष्य वापस नहीं आता।'

इनके मध्य विचक्षण लोग ही पुरोहित होते हैं; पुत्रपौत्रादिक्रमसे कोई पुरोहित बन नहीं सकता। अबोर पुरोहितको देवतार कहेंगे। पुरोहितमें गुण यही रहता, कि पक्षीकी नस और शूकरका यकृत् देख मनकी बात बता सकता है। किसीके मरने किंवा पीड़ित होनेसे पुरोहित सूवरका गुर्दा देवतापर चढ़ायेगा। उसके बाद रुग्ण और वृद्ध लोग वही प्रसाद खाते हैं। मोरङ्ग-भवनमें जो लोग रहें, वह भी देवताका प्रसाद खाने पायेंगे। निमन्त्रण दे एक दूसरेको मांस खिलानेपर जो बात ठहरती है, किसी तरह उससे अन्यथा नहीं आता। ऐसी प्रतिज्ञाको सङ्गमुङ्ग कहेंगे।

इनके विवाहका नियम अति सहज है। किसी-किसी स्थलमें वरकर्ता एवं कन्याकर्ता विवाह ठहरायेगा। किन्तु यह नियम सकलके पक्षमें नहीं चलता। इनमें बाल्य विवाहका अभाव रहनेसे युवक युवती स्वयं कन्यापात्र चुन लेती है। दोनोके मन ही मन मिल जानेपर वर, कन्या और उसके पिताको भेंट भेजेगा। अबोरोंको उपादेय सामग्री मट्टीका चूल्हा और काठकी बिल्ली है। वर बीच-बीच

उसे ही भेज अपने प्रेमका परिचय पहुंचायेगा। विवाहमें अधिक आडम्बर नहीं उठता; आप्त बन्धु स्वजनको भोज देनेसे ही काम चल जाता है।

विवाह होनेपर ग्रामस्थ लोग नव दम्पतीके लिये कोई पृथक् भवन बना देते, उसी स्थानमें वह सुख-स्वच्छन्दसे रहते हैं। इनके मतसे विवाहमें अर्थ लेनेपर चिरदिनके लिये कुलकलङ्क लगता है। पादम कुलमें ऐसी कुप्रवृत्ति किसीको होनेसे चन्द्र-सूर्य फिर आलोक न देंगे, लोगोंका समस्त कार्य बन्द रहेगा। देवताको पूजा और वलि न चढ़ानेसे इस पापको शान्ति कैसे हो सकती है!

इनमें बहुविवाहको प्रथा अति विरल है; यहां तक कि एकबारगी ही नहीं भी कहना ठीक जंचता है। इच्छा आनेसे कोई किसीको छोड़ न सके, इसलिये स्त्रीपुरुषमें खूब सद्भाव रहेगा। कृषि और अन्य-अन्य कार्यमें क्या स्त्री क्या पुरुष, सकल ही समान श्रम उठाते हैं।

कह सकते हैं, कि अबोर कोई भी शिल्पकर्म नहीं करते। यह कपास और पेड़के रेशेसे एक प्रकारका मोटा कपड़ा बनायेंगे। पहननेके लिये दूसरा कपड़ा यह तिब्बत और भारतसे खरीदते हैं। तम्बाकू पीनेको धातुका हुक्का, धातुका पात्र, अस्त्र-शस्त्र और नाना-प्रकार माला यह तिब्बत और चीन देशसे मोल लायेंगे। खेती करनेके लिये इनके पास हल वगैरह कुछ भी नहीं रहता। छुरे और बांसकी तीखी छड़से यह मट्टीमें थोड़ा गड्ढा खोद वीज बो देंगे। किन्तु इनकी भूमि अधिक उर्वरा होनेसे अल्प यत्नमें ही खूब फसल उपजती है। धान, मकई, ज्वार, कपास, तम्बाकू, लालमिर्च, अदरक, इन्तु, नानाप्रकार कन्द, अफीम, लौकी और कुम्हड़ा इनका प्रधान द्रव्य होगा। नदीके ऊपर आने-जानेको यह एक प्रकार-का हिलता हुआ सेतु बनाते हैं। यह सेतु बांस, बेंत और लकड़ीसे तैयार होगा। पर्वतके स्थान-स्थानमें पानीय जलका अतिशय कष्ट रहता है। एक स्थानसे अन्यत्र जल न पहुंचनेपर काम रुक जायेगा। इसी कारण यह निर्भरके मुखमें बांसका नल लगा देते हैं। फिर उसी नलके मुखमें दूसरा नल जोड़ ग्रामके भीतर जल पहुंचायेंगे। किन्तु रन्धन और पानके भिन्न कोई अधिक जल नहीं खर्च करता। इन्हें विश्वास है, शरीरमें मैल जमनेसे जाड़ा नहीं लगता; इसीसे बड़े चावके साथ सब लोग देहको अपरिष्कार रखते हैं।

शीतकाल आनेसे यह काष्ठविष, मृगनाभि, हाथी-दांत, मृगमद, हरिणका चर्म प्रभृति द्रव्य पहाड़के नीचे लाकर बेचेंगे। अबोर बताते, कि उनके ऊपरी पहाड़ पर बोर नाम्नी जाति रहती है; किन्तु उस जगह कोई मनुष्य जाकर वापस नहीं आता।

अबोर अपनी स्वजातिमें सकलको ही समान समझते हैं, इनमें कोई छोटा-बड़ा नहीं रहता। किन्तु सुविधा लगनेसे यह दूसरी जातिको ले जाकर दास बना डालेंगे। मोरङ्ग-भवनमें प्रतिदिन यह ठहरानेको सभा होती है,—ग्राममें किस दिन क्या करना पड़ेगा। सभामें ग्रामस्थ पुरुष जाकर सम्मि-लित होते हैं। जो कुछ पदमर्यादा हो, उसी समय देख पड़ेगी। प्राचीन लोगोंको गाम् कहते हैं। वह भवनके मध्यस्थल और अग्निके समीप बैठेंगे। उसके बाद कोई व्यक्ति सभापतिका आसन लेता है। अबोर सभापतिको वकपाङ्ग कहेंगे। लोईतेम नामक दूसरा व्यक्ति मन्तव्य-विषय सकलको सुना देता है। जूलोङ्ग नामक अन्य व्यक्ति युद्धके सम्बन्धमें बातचीत चलायेगा। जुलूक नामक व्यक्ति मुख्तार-जैसा होता है। ऐसे ही सभ्य इकट्ठा कर सकल विषयको मीमांसा की जायेगी। ग्रामस्थ अन्य लोग भी वहां उपस्थित रहते, जो आवश्यक आनेसे अपना-अपना मत देते हैं।

अपराध करनेसे यह स्वजातिको कायिक किंवा प्राणदण्ड नहीं पहुंचाते। जुर्माना ही इनकी एकमात्र शास्ति है। किन्तु दास किंवा अन्य किसी जातिको विशेष अपराध करनेपर अबोर प्राणदण्ड देंगे। जुर्मा-नेसे जो धन मिलता, वह सर्वसाधारणके उपकारार्थ मोरङ्ग-भवनमें सुरक्षित रहता है। अबोरोंकी विपद्के बीच समय-समय बालक-बालिका खो जायें और

मकानमें आग लगेगी। अनेकको विश्वास है, कि चुली-काटा मिश्ममि सुविधा लगनेसे इनके सन्तानादि चुरा ले जाते हैं। किन्तु अबोर इस बातको न मानेंगे। यह कहते,—पेड़पर भूत रहते; वही भूत लड़केको देखते ही छिपा रखते हैं। इसलिये किसीका लड़का खो जानेपर सकल मिलकर वनके पेड़ काटेंगे। पल्लीके किसी मनुष्यपर विपद् पड़नेसे गृहस्थ उसी समय जाकर मोरङ्ग-भवनमें संवाद सुनाते हैं। संवाद पाते ही सकल उसका प्रतिकार पहुंचानेको दौड़ पड़ेंगे। अबोरोंमें यही गुण रहनेसे कोई दरिद्र और अनाथ निराश्रय नहीं,—सकल ही सुख-स्वच्छन्दसे समय बिताते हैं। इस जातिका चित्र और परिच्छद नागा शब्दमें देखो। अबोर गोमांस भिन्न प्रायः दूसरे सकल द्रव्य खायेंगे। गोमांस खानेवालोंसे यह घृणा रखते हैं। इनकी प्रधान पल्लीका नाम मेम्बू है। इस पल्लीको चारो ओर बांस, कटहर और रबरके वृक्ष लगे हैं। पहले यह आसाम पहुंचकर अतिशय उपद्रव उठाते थे।

उसके बाद इन्हें सुकार्यमें प्रवृत्त रखनेके लिये सन् १८६२ ई०से भारत-गवर्नमेण्ट कुछ-कुछ कपड़ा,कुदाल और दूसरी चीजें देने लगी। सन् १८८० ई०में दिवं नदके पश्चिम-किनारेसे इन्होंने पूर्व-किनारे चले जानेका सङ्कल्प किया। उससे मिश्ममियोंके साथ विरोध बढ़ सकता था। सन् १८९३-९४ ई०में पहला अबोर-अभियान चढ़ा। अबोरोंने कुछ जङ्गी पुलिसके सिपाहियोंको अंगरेज़ी राज्यमें ही मार डाला था। कोई ६०० योद्धावोंने जा अबोर-देश जीता और कितने ही ग्राम विनष्ट किये। कुछ दिन बाद दूसरा अभियान भी गश्तके दो सिपाही धोकेसे मारे जानेपर, भेजा गया था। अंगरेजी फौज इन्हें उचित दण्ड दे भारत वापस आयी। सन् १८९४ से १९०० ई० तक इनके प्रतिकूल नाकेबन्दी रही थी।

अबोल (हिं० वि०) १ न बोलनेवाला, मौन, खमोश, चुपका। २ बोला न जानेवाला, जिसके बारेमें कुछ कहा न जाये। (पु०) ३ बुरी बात, खराब बोली।

अबोला, अबोल देखो।

अब्ज (सं० क्लौ०) अप्सु जले जायते; अप्-जन्-ड, ७-तत्। १ पद्म, कमल। २ दशार्बुद अर्थात् एकशत कोटि संख्या। हिन्दीमें इसे अरब कहते हैं। (पु०-क्लौ०) ३ शङ्ख। (पु०) ४ चन्द्र, चाँद। ५ धन्वन्तरि। ६ निचुल वृक्ष, ईजड़। ७ कर्पूर, काफ़ूर। ८ विशालके कोई पुत्र। (त्रि०) ९ जलजात, पानीसे पैदा हुवा। १० जलचर मत्स्यादिरूप जात।

"वृषद्दरमद्दतसदृव्योमसदब्जा" (शुक्लयजुर्वेद १०।२४)

'अब्जा: अप्सु उदकेषु जायते मत्स्यादिरूपेणेत्यब्जा:' (महीधरभाष्य)

अब्जकर्णिका (सं० स्त्री०) अब्जस्य कर्णिका, ६-तत्। पद्मके भीतरकी संवर्तिका, कमलका छाता।

अब्जज (सं० पु०) अब्जात् विष्णुनाभिपद्मात् जायते अब्ज-जन-ड। ब्रह्मा।

अब्जबान्धव (सं० पु०) सूर्य्य।

अब्जभोग (सं० पु०) पद्मकन्द।

अब्जयोनि (सं० पु०) ब्रह्मा।

अब्जवाहन (सं० पु०) शिव। (त्रिकाण्डशेष)

अब्जस् (सं० क्लौ०) आपः असुन् जुट् ह्रस्वश्च। (उण् २।४।६८) रूप।

अब्जहस्त (सं० पु०) सूर्य्य। (हेमचन्द्र)

अब्जित् (वै० त्रि०) जलजेता, जलके जितनेवाला।

"अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय" (ऋक्संहिता २।२१।१)

'अब्जिते व्रत्रेणाक्रान्तानामपां जेत्रे' (सायण)

अब्जिनी (सं० स्त्री०) अब्जानां समूहः अब्ज-पुष्करादित्वात् इनि स्त्रियां ङीप्। पद्मलता।

अब्जिनीपति (सं० पु०) अब्जिन्याः पतिः; ६-तत्। सूर्य्य। (हेमचन्द्र)

अब्द (सं० पु०) आपो ददाति दा-क ६-तत्। अब्दादयश्च। उण् ४।९८। १ मेघ, बादल। अवति सीमानं रक्षति अव-दन्। २ वर्षपर्वतविशेष। ३ मुस्तक, मोथा। ४ संवत्सर।

'अब्दः संवत्सरे मेघे गिरिभेदे च मुस्तके।' (विश्वप्रकाश)

पृथ्वीके सभी सभ्य देशोंमें एक-एक अब्द चलता है। समयकी सीमा निश्चित करनेके लिये अब्दकी आवश्यकता है। चीना लोग अपनेको अति प्राचीन जाति बताते हैं, इसलिये उनके इतिहासमें जो कोई घटना

हुयी हो, उसे बहुत ही पुरानी कहना चाहिये। किन्तु अब्द लिख रखनेकी प्रथा चलित रहनेसे आधुनिक घटनाको पुरातन कहना कठिन है। इसीसे प्रथम चीन-देशके जिन-जिन पुस्तकोंमें अब्द लिखे हुए थे, सन् २२० ई०से पहले वहांके सम्राट्ने उन सब पुस्तकोंको जलवा दिया। इसके सिवा जिन-जिन पण्डितोंको वह सब अब्द याद थे, वह जीते ही गाड़े गये।

अति प्राचीनकाल हमारे भारतवर्षमें भी अब्द लिख रखनेकी सुप्रथा न थी। ज्योतिर्विद्या की आलोचना आरम्भ होनेपर सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि चार प्रकार युगका विभाग हुआ। (ज्योतिष शब्दमें विस्तृत आलोचना देखो।) उसके बाद ब्राह्म, दिव्य, पित्र्य, प्राजापत्य, बार्हस्पत्य, सौर, सावन, चान्द्र और नाक्षत्र यह नौ प्रकार अब्द निर्द्धारित करनेका उपाय अवलम्बन किया गया। किन्तु युधिष्ठिरके समयसे ही प्रकृत अब्द रखनेकी प्रथा चली है। युधिष्ठिरके राजत्वकालसे जो अब्द निकला, उसे युधिष्ठिराब्द कहते हैं। कलिका गताब्द भी कई स्थानोंमें लिखा है। श्वेतवराह-कल्पाब्द, कलि-गताब्द, संवत्, शकाब्द, सन्, फसली, विलायती, हिजरी, मघी और खृष्टीय वा ईसवी आदि अनेक प्रकारके अब्द हिन्दुस्थानी पञ्चाङ्गोंमें लिखे रहते हैं। किन्तु साधारणतः अंगरेजी अब्द ही अधिक व्यवहार किया जाता, केवल संस्कृतके काममें ही संवत् और शकका चलन देख पड़ता है।

ब्राह्म—४३२०००० लौकिक वत्सर चारयुगका परिमाण है। उसे एक हज़ारसे गुण करनेपर ब्रह्माका एक दिनमान होता है। इसलिये उसे दोसे गुण करनेपर ब्रह्माका एक रातदिन होता है। अर्थात् ८६४०००००० लौकिक वर्षमें ब्रह्माका एक एक अहोरात्र होगा। फिर इस राशिको ३६० से गुण करनेपर एक ब्राह्म अब्द होता है। ८६४०००००० × ३६० = ३११०४००००००० वर्षोंमें ब्रह्माका एक एक अब्द आयेगा।

देवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्मः कल्पौ तु तौ: नृणाम्। (अमर)

दिव्य—लौकिक बारह महीने अर्थात् एक वर्षमें देवताओंका एक दिन होता है। इसलिये एक वर्षको ३६०से गुण करनेपर एक देव वर्ष हुआ करता है।

मासेन स्यादहोरात्रः पैत्रो वर्षेण दैवतः। (अमर)

अतएव ३६० लौकिक वर्षमें देवताका एक वर्ष होगा।

पित्र्य—३० तिथियोंका एक लौकिक मास होता है। एक महीनेमें पितृलोगोंका एक दिन हुआ करता है, अतएव ३० तिथिको ३६०से गुण करनेपर पितृलोगोंका एक वर्ष होता है। ३६० × ३० = १०८०० चान्द्र दिनोंका एक पित्र्यवर्ष होगा।

प्राजापत्य—मन्वन्तरका ही दूसरा नाम प्राजापत्य है। अतएव चार युगोंके परिमाणको ७१से गुण करनेपर प्राजापत्य वर्ष निश्चित हो सकता है।

मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः। (अमर)

४३२०००० × ७१ = ३०६७२०००० वर्षका एक प्राजापत्य अब्द होता है।

बार्हस्पत्य।—बृहस्पतिके उदय और अस्त अनुसार अब्द गिना जाता है। बार्हस्पत्य अब्द बारह प्रकारका होता है। यथा—

१।—कृत्तिका किम्बा रोहिणी इन दो नक्षत्रसे किसीमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह कार्तिक नामक वर्ष कहाता है।

२।—मृगशिरा किम्बा आर्द्रा इन किसीमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह मार्गशीर्ष वर्ष होगा।

३।—पुनर्वसु किम्बा पुष्या इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह पौष वर्ष कहाता है।

४।—अश्लेषा किम्बा पुष्या इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह माघ वर्ष होगा।

५।—पूर्वफल्गुनी, उत्तरफल्गुनी किम्बा हस्ता इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे फाल्गुन वर्ष कहते हैं।

६।—चित्रा किम्बा स्वाती इन किसी नक्षत्रमें

बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह चैत्र वर्ष कहलाता है।

७।—विशाखा किम्बा अनुराधा इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह वैशाख वर्ष होगा।

८।—ज्येष्ठा किम्बा मूला इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह ज्यैष्ठ वर्ष होता है।

९।—पूर्वाषाढ़ा किम्बा उत्तराषाढ़ा इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह आषाढ़ वर्ष कहा जाता है।

१०।—श्रवणा किम्बा धनिष्ठा इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे उसका नाम श्रावण वर्ष होता है।

११।—शतभिषा, पूर्वभाद्रपद किम्बा उत्तरभाद्रपद इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह भाद्रवर्ष पुकारा जायेगा।

१२।—रेवती, अश्विनी किम्बा भरणी इन किसी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय अथवा अस्त होनेसे वह आश्विन वर्ष होता है।

सौर—इस देशके प्राचीन गणनानुसार ३६५ दिनोंका एक सौर वर्ष होता है। किन्तु इसमें मतभेद है।

सावन—सूर्यके एक उदयकालसे दूसरे उदयकाल तक एक सावन दिन होता है। सुतरां ३६१ सौर दिनोंका एक सावन वर्ष बनेगा।

चान्द्र—चन्द्रकी दैनिक गति १३अंश २० कला और सूर्यकी दैनिक गति १३ अंश ५९ कला ८ विकला १० अनुकला है। प्रातःकालमें चन्द्रका संक्रमण होनेसे ३५४ दिन १८ दण्डका एक चान्द्र वर्ष होगा। इसीतरह रातमें संक्रमण लगनेसे ३५५ दिनका चान्द्र वर्ष होता है।

नाक्षत्र—३६० नाक्षत्र दिनोंका नाक्षत्र सावन वर्ष बनता है।

हमारे पुराणादिके मतानुसार जलमग्न पृथ्वी उद्धार करनेको विष्णुने श्वेतवराहमूर्ति धारण की थी। ज्योतिर्विदोंके गणनानुसार (आज १८३७ शकाब्दमें) १९७२९४९०१६ वर्ष विष्णुको वराह अवतार धारण किये बीते। एवं १९५५८८५०१६ वर्ष हुए वराहरूपी भगवान्‌ने दन्तद्वारा पृथ्वीका उद्धार किया था। श्वेतवराह-कल्पाब्दका परिमाण कुल ४३२०००००० वर्ष है।

वैशाख मास शुक्लपक्षकी अक्षय-तृतीया तिथि रविवारको सत्ययुगकी उत्पत्ति हुयी थी। सत्ययुगका परिमाण १७२८००० वर्ष है। कार्तिक मास शुक्ल-पक्षकी नवमी तिथि सोमवारको त्रेतायुग उत्पन्न हुआ। त्रेतायुगका परिमाण १२९६००० वर्ष है। भाद्रमास कृष्णपक्षकी त्रयोदशी तिथि शुक्रवार-को द्वापरयुग लगा था। द्वापरयुगका परिमाण ८६४००० वर्ष है। माघमासकी पूर्णिमा तिथि शुक्रवारको कलियुगकी उत्पत्ति हुयी। कलियुग-का परिमाण ४३२००० वर्ष है।

मनुसंहिताके मतसे हमारे एक वर्षमें देवताओं-का एक अहोरात्र होता है। चार हज़ारका सत्य, तीन हज़ारका त्रेता, दो हज़ारका द्वापर और एक हज़ार देव वत्सरका कलियुग है। इन चार युगोंके बारह हज़ार गुणसे देवताओंका एक युग बनता है। दैव युगके दो हज़ार गुणसे ब्रह्माका अहोरात्र निकलेगा।

राजतरङ्गिणीके मतसे कलियुग ६५३ वर्ष बीत जानेपर कुरुपाण्डवोंका प्रादुर्भाव हुआ था। अतएव वर्त्तमान कल्यब्द ५०१६−६५३=४३६३ वर्ष हुए युधिष्ठिराब्द चल पड़ा। पहले इन्द्रप्रस्थ और काश्मीर आदि अनेक देशमें यह अब्द लगता था।

अब्द वा संवत्सर पञ्चविध होता है, यथा—संवत्सर, परीवत्सर, इदावत्सर, अनुवत्सर और उदावत्सर।

"शकाब्दात् पञ्चभिः शेषात् समायादिषु वत्सराः।
संपरीदानुपूर्वाश्च तथोदापूर्वका मता॥
संवत्सरे तथा दानं तिलस्य च महाफलम्॥" (विष्णुधर्मोत्तर)

संवत्सरसे संवत् शब्द हुआ है। संवत् कहनेसे साधारणतः विक्रम-संवत् समझ पड़ता है, परन्तु बहुत पहले इस भारतवर्षमें अनेक प्रकारके संवत् प्रचलित

थे। अब अब्द, सन् या साल कहनेसे जिस तरह वर्ष समझते, पूर्व समयमें संवत्सर वा संवत् बोलनेसे उसी तरह विभिन्न राजवंशके राज्याङ्कका निर्देशक विभिन्न वर्ष समझा जाता था। पूर्वकाल भारतवर्षमें प्रधानतः यह कई संवत् व्यवहार होते रहे :—

नाम	आरम्भ-काल
१ सप्तर्षिकाल वा लौकिक संवत्	६७७७ ई०से पहले
२ बार्हस्पत्य-काल वा षष्टि-संवत्सर	३१२८ ई०से प०
३ कलियुग-गताब्द वा कल्यब्द	३१०२ ई०से प०
४ भारतयुद्धाब्द वा योधिष्ठिर-संवत्	,, तथा
५ परशुरामचक्र वा सहस्र-संवत्	११७७ ई०से प०
६ बुद्धनिर्वाणाब्द वा बौद्ध संवत्सर	५४३ ई०से प०
७ महावीरमोक्षाब्द वा वीर-संवत् (जैन)	५२७ ई०से प०
८ मौर्याब्द वा मौर्य-संवत्	४७२ ई०से प०
९ सलीकी संवत् (Era of the Seleukidœ)	३१२ ई०से प०
१० पार्थिव-संवत् (Era of Parthia)	२४७ ई०से प०
११ मालव-गताब्द वा विक्रम-संवत्	५७१ ई०से प०
१२ ग्रहपरिवृत्तिचक्र	२४ ई०से प०
१३ शकभूपकाल, शकाब्द वा शक-संवत्	सन् ७८ ई०
१४ चेदि वा कलचुरि-संवत्	२४९ ई०
१५ गुप्तकाल वा गुप्त-संवत्	३१९ ई०
१६ वलभीकाल वा वलभी-संवत्	,, तथा
१७ हर्षाब्द वा श्रीहर्ष-संवत्	६०७ ई०
१८ त्रैपुराब्द (पार्वत्य स्वाधीन त्रिपुरामें प्रचलित अब्द)	६२१ ई०
१९ कोलम्बाब्द (कोल्लम अन्दु) वा परशुरामाब्द वा परशुराम-संवत्	८२४ ई०
२० नेवार अब्द वा नेपाली संवत्	८८० ई०
२१ चालुक्य-संवत्	१०१६ ई०
२२ सिंह-संवत् (शिवसिंह-संवत्)	१११४ ई०
२३ लक्ष्मणसेनाब्द वा लक्ष्मण-संवत् (ल० सं०)	१११९ ई०
२४ चैतन्याब्द (महाप्रभु चैतन्यदेवके जन्मदिनसे)	१३८६ ई०
२५ राज्याभिषेकाब्द वा शिवसंवत्	१६६४ ई०

ऊपर कहे हुए भिन्न-भिन्न अब्दोंके अतिरिक्त पाश्चात्य, प्राच्य और मुसलमानोंके प्रभावसे दूसरे भी कई अब्द प्रचलित हुए थे, यथा—

२६ ब्रह्म संवत् (ब्रह्मदेशीय बौद्धोंका पवित्र अब्द)—सन् ई०से ५४३ पहले।

२७ ईस्वी या खृष्टाब्द—ईसा-मसीहके जन्मदिन १ली जनवरीसे, रोमक-पञ्चाङ्ग वर्णित ७५३ अब्द वा जुलियन अब्दके ४५वें अङ्कसे आरम्भ।

२८ यवद्वीपका प्रचलित शकाब्द—७४ ईस्वीसे आरम्भ।

२९ बालिद्वीपका प्रचलित शक—८१ ईस्वीसे आरम्भ।

३० हिजरी—पैगम्बर मुहम्मदके मक्कासे मदीना भागनेका दिन, ६२२ ईस्वीकी १६वीं जुलाईसे आरम्भ।

३१ इरानी जलाली—(Yazdezard Era) ६३२ ईस्वी की १६वीं जूनसे आरम्भ।

३२ ब्रह्मदेशका प्रचलित मगी—६३९ ईस्वीसे आरम्भ।

३३ मालिकी जलाली—१०७९ ईस्वीके मार्च महीनेसे आरम्भ।

३४ सुर सन् (अरबी अब्द)—हिजरीके १३वें अङ्कसे आरम्भ। यह १३४४ ईस्वीसे महाराष्ट्र देशमें प्रचलित हुआ था।

३५ बंगला सन्—सुलतान हुसेन शाहके समय यह सन् चला रहा।

३६ फसली सन्—यह हिजरीके ४ वर्ष बाद गिना जाता और १५५६ ईस्वीसे प्रचलित हुआ है।

३७ विलायती या अमली सन्—यह उत्कल (उड़ीसा)में १५५६ ईस्वीसे प्रचलित हुआ है।

३८ तारीख-ई-इलाही—यह सम्राट् अकबर द्वारा १५८४ ईस्वीमें प्रवर्त्तित किया गया था।

३९ बीजापुरी जुलुस सन्—यह बीजापुरके २रे आदिल शाह द्वारा १६५६ ईस्वीमें चलाया गया था।

४० परगणाति सन्—मुसलमानोंके समय पूर्ववङ्गमें

यह अब्द प्रचलित था। पुराने कागज़ पत्रमें इसे पायेंगे। यह अब्द लक्ष्मणसेनके अतीताब्द नामसे भी पहले प्रचलित रहा, सन् १२०० ई०में आरम्भ हुआ था।

उल्लिखित भिन्न भिन्न संवत् वा अब्दके अतिरिक्त पाश्चात्य देशमें और भी अब्द प्रचलित थे। इनमें—

४१ तुर्क वा कनस्तुन्तिन् अब्द (Constantinople Era) जगत्की सृष्टिसे गिना जाता है। खृष्टानोंके ग्रीकचर्चमें अबतक यही अब्द प्रचलित है। वह लोग ईसा मसीहके जन्मसे ५५०९ वर्ष पहले इस अब्दका प्रारम्भ मानते हैं।

४२ नवोनसर अब्द (Era of Nabonasar) ७४६ ई०की २९वीं फरवरीसे आरम्भ हुआ है।

४३ चीनाब्द—२३५७ ई०से पहले आरम्भ।

४४ रोमकाब्द (Roman Era)—रोमनगरके प्रतिष्ठा-काल ७५२ ई०से पहले इस अब्दका आरम्भ माना जाता है।

४५ ओलिम्पियाद—यह ई०से ७८६ अब्द पूर्व १ली जुलाईको आरम्भ हुआ था।

उद्धृत संवत्सरोंमें कई प्रधान-प्रधान संवत्का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है —

सप्तर्षि वा लौकिक अब्द।

पञ्जावके पहाड़ी प्रदेश और काश्मीरमें अबतक यही संवत् चलता है। पहाड़ी प्रदेशमें प्रचलित रहनेके कारण लोग इसे "पहाड़ी संवत्" कहते हैं। इसका दूसरा साधारण नाम "लोक-काल" है। इस संवत्के आरम्भ-विषयमें दो मत प्रचलित हैं,—वराहमिहिर और उनके अनुवर्त्ती ज्योतिर्विद्गणका मत एवं वृद्धगर्ग और पुराणका मत। वराहमिहिरके अनुवर्त्ती ज्योतिर्विद्गणने सप्तर्षि-संवत्के आरम्भ-सम्बन्धमें नीचे लिखा हुआ प्राचीन श्लोक उद्धृत किया है—

"कलेर्गतैः सायकनेत्रवर्षैः सप्तर्षिवर्यास्त्रिदिवं प्रयाताः।
लोके हि संवत्सरपत्रिकायां सप्तर्षिमानं प्रवदन्ति सन्तः॥"

कलिके सायकनेत्र अर्थात् २५ वर्ष बीत जाने पर सप्तर्षि स्वर्ग चले जाते हैं। (उसी समयसे) सर्व-साधारण संवत्सर पत्रिकामें सप्तर्षिमानकी गणना करते हैं। साहेबरामके राजतरङ्गिणी-संग्रहमें देखा जाता है—

"तत्राद्यशाके १७८६ कलिगते ४९६५ सप्तर्षिचारानुमतेन संवत् ४९५० ।"

शकाब्द १७८४=४९६५ कल्यब्द=४९४० लौकिकाब्द =१८६४ ईस्वी।

ऐसे स्थलमें ईसा-मसीहके जन्मसे ३०७६ पूर्व सप्तर्षि-संवत् एवं ई०से ३१०१ अब्द पहले कल्यब्दका आरम्भ हुआ।

कल्हणकी राजतरङ्गिणीसे भी उक्त मत समर्थित होता है—

"लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य सांप्रतम्।
सप्तत्याभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः॥"

अर्थात् लौकिकाब्दका २४वां वर्ष शककालके १०७० वर्षमें पड़ा है। लौकिक वा सप्तर्षिमान सर्वत्र शताब्द मानकर गिना जाता है। कल्हणने राजतरङ्गिणीमें सर्वत्र ऐसा ही भाव ग्रहण किया है।

पहले कहा जा चुका है, कि वृद्धगर्ग और पुराणका मत स्वतन्त्र है। वराहमिहिरने वृद्धगर्गका मत इसतरह उद्धृत किया है—

"सैकावलीव राजति ससितोत्पलमालिनी सहासेव।
नाथवतीव च दिग्यैः कौवेरी सप्तभिर्मुनिभिः॥ १
ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्त्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च।
यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात्॥ २
आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्‌द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च॥ ३
एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम्।
प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयन्तेससाध्वीकाः॥" ४

(वृहत्संहिता १३ अ०)

श्वेतकमलकी मालाधारिणीकी तरह उत्तरदिक् जिस सप्तर्षिमण्डलद्वारा एकावलीहारभूषिता सहास्य-वदना और नाथवती बतायी जाती और ध्रुवनक्षत्र-रूप नायकके उपदेशसे इधर उधर घूमनेवाले जिस सप्तर्षिगणके साथ बराबर नृत्य करती बोध होती है, वृद्धगर्गके मतानुसार उसकी गति कहते हैं। राजा युधिष्ठिर जिस समय पृथ्वीका शासन करते, उस समय मुनिगण मघानक्षत्रमें थे। शकाब्दके

अङ्कमें २५२६ जोड़ देनेसे युधिष्ठिरका समय मालूम हो जायेगा। एक-एक नक्षत्रमें सप्तर्षि सौ-सौ वर्ष विचरण करते हैं। यह उत्तरपूर्व दिशामें सर्वदा साध्वी अरुन्धतीके साथ उदय होंगे।

किन्तु वराहमिहिरके टीकाकार भट्टोत्पलने जो गर्गवचन उद्धृत किया, उससे विदित होता है,—

कलि और द्वापरयुगके सन्धिकालमें विश्ववासिगणकी रक्षासे उत्फुल्ल ऋषिगण पितृगणपर अधिष्ठित नक्षत्र अर्थात् मघानक्षत्रमें अवस्थान करते थे।

उक्त गर्गवचनसे मालूम पड़ता है, कि द्वापर और कलिके सन्धिस्थलपर सप्तर्षिगण मघानक्षत्रमें थे। गर्गने युधिष्ठिरका नाम नहीं लिया। वराहमिहिरने अपनी गणनाकी सुविधाके लिये युधिष्ठिरको पकड़ा है।

अब देखते है, कि सप्तर्षि एक-एक नक्षत्रमें सौ वर्ष भोग करते हैं। सप्तर्षिको २७ नक्षत्र भोग करनेमें २७०० वर्ष बीत जाते हैं। ज्योतिष और पुराणादिके मतसे २७ नक्षत्रोंमें प्रथम अश्विनी है। सबके मतानुसार सप्तर्षि जब मघानक्षत्रमें थे, उसी समय कलियुगका आरम्भ और युधिष्ठिरका अभ्युदय हुआ। इधर अधिकांश पुराण देखनेसे विदित होता है, कि कुरुक्षेत्र-महासमरके समय सप्तर्षिने मघामें ७५ वर्ष अतिवाहित किया था। अवश्य ही वराहमिहिरके साथ यह मत न मिलनेपर भी अभीतक पञ्जाबके पहाड़ी प्रदेशमें सभी पुराणानुसार ही लोक-कालको स्थिति गिनते हैं। उन लोगोंके मतसे भी वर्तमान कलियुगारम्भके पूर्व अर्थात् द्वापरमें ७५ वर्ष मघापर अतिवाहित कर सप्तर्षिने कलियुगके २५ वर्ष भी मघामें ही बिताये थे।

पहले कहा जा चुका है, कि सन् इस्वीसे ३१०१ पहले कल्यब्द आरम्भ हुआ था। ऐसे स्थल सन् ईस्वीसे ३०७७ पहले मघानक्षत्रपर रहकर सप्तर्षि पूर्वफलगुनीमें गये। मघा १०वां नक्षत्र है, इसलिये अश्विनीसे गिननेपर और भी १००० वर्ष पीछे पड़ सन् ईस्वीसे ४०७७ वर्ष पहले जा पड़ता है।

प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहामने महावीर सिकन्दरके भारतसंस्रव सम्बन्धमें उनके सहयात्रियोंके विवरणपर निर्भर कर लिखा है,—'वह (पञ्जाबवासी) वकासूसे सिकन्दर तक १५४ राजा और उनका राज्यकाल ६४५१ वर्ष ३ महीना गिनते है।' * सिकन्दर सन् ईस्वीसे ३२६ वर्ष पहले पञ्जाब आये और उसी वर्षके अन्त लौट भी गये थे। ऐसे स्थलमें सन् ईस्वीसे ५४५१ + ३२६ = ६७१७ अब्द पहले सप्तर्षिकालका आरम्भ स्वीकार करना पड़ेगा।

पहले ही बता दिया है, कि सन् ईस्वीसे ४०७७ वर्ष पूर्व सप्तर्षिने प्रथम अश्विनी नक्षत्रमें प्रवेश किया अर्थात् सप्तर्षिचक्र आरम्भ हुआ था। उसमें दूसरे किसी सप्तर्षिचक्रके २७०० वर्ष जोड़ देनेपर सन् इस्वीसे ६७७७ पहले वह जा पड़ता है। पुराविद् सर् कनिंहाम्के मतसे उक्त वर्ष ही "Starting point of Indian Chronology" * अर्थात् भारतीय कालनिर्णयविद्याका प्रारम्भकाल है। सिकन्दरसे पहले ही यह अब्द पञ्जाबमें प्रचलित रहा और अब भी है।

बार्हस्पत्यमान वा षष्टिसंवत्सर।

बृहस्पति ग्रहके विभिन्न नक्षत्रका अवस्थान रखकर यह अब्द गिना जाता, इसीसे इसका नाम बार्हस्पत्यमान है। फिर इसी बार्हस्पत्य-मानके साठ भागों (विभिन्न साठ नामों)में विभक्त होने कारण इसका दूसरा नाम षष्टिसंवत्सर पड़ा। कोई कोई पाश्चात्य पुराविद् यह अब्द आधुनिक ख्याल करते हैं, किन्तु जब वराहमिहिर और उनके बहु पूर्ववर्ती वृद्धगर्गने इस संवत्सरका उल्लेख किया, तब निःसन्देह यह ईसामसीहके जन्मसे बहुत पहले भारतवर्षमें प्रचलित रहा है।

वराहमिहिरने इस अब्दका निर्णय करनेके लिये इसतरह व्यवस्था की है—

शक राजाके समयसे जितने वर्ष बीत चुके हैं, उन्हें दो स्थानोंमें रखकर एक स्थानका अङ्क ११से गुण करना होगा। पीछे उस गुणफलको ४से गुण दीजिये। फिर इस गुणफलमें ८५८९ जोड़ना होगा। इस योगफलको ३७५०से भाग लगायिये। फिर दूसरे स्थानके शक-वत्सरवाले अङ्कमें इस भागफलको

* Cunningham's Indian Eras, p. 15.

जोड़ना पड़ेगा। उसी योग फलको ६०से भाग दीजिये। अवशिष्ट अङ्कको ५से भाग लगानेपर जो अङ्क लब्ध हो, उसी संख्यासे नारायण (विष्णु) प्रभृति युग एवं अवशिष्ट अङ्कद्वारा उसी युगका अनुवर्ती जो (प्रभवादि) वत्सर चलता, वह जाना जायगा। उक्त वत्सर-संख्या जितनी हो, उसे (६०से अधिक होनेपर ६० निकालकर केवल वत्सराङ्कको) ९से गुण, फिर इस वत्सरसंख्याको १२से भाग कीजिये। भागफलको इस नव गुणित अङ्कमें जोड़कर ४से भाग देनेपर जो आये, उसी संख्याके नक्षत्रमें बृहस्पतिको विद्यमान समझना पड़ेगा। परन्तु गणनाके समय २४ नक्षत्रसे गिनना होगा। (अर्थात् १ लब्ध होनेसे जानना कि २५ नक्षत्र वा पूर्वभाद्रपद नक्षत्र, २ रहनेसे उत्तरभाद्रपद इत्यादि) प्रभवादि षष्टि-संवत्सरके प्रत्येक पांच वर्षमें एक-एक युग रखकर (एक बार्हस्पत्यमानमें) १२ युग होते हैं। १२ युगोंके १२ अधिपति हैं और उन अधिपतियोंके नामसे ही युगके नाम निकलते हैं।

(बृहत्संहिता ८ अध्याय)

नीचे बारहो युगों और उनके अन्तर्गत वर्षोंके नाम दिये जाते हैं—

युगोंके नाम	वर्षोंके नाम
१ला विष्णुयुग	१ प्रभव, २ विभव, ३ शुक्ल, ४ प्रमोद, ५ प्रजापति।
२रा बृहस्पति	६ अङ्गिरा, ७ श्रीमुख, ८ भाव, ९ युवा, १० धाता।
३रा इन्द्र	११ ईश्वर, १२ बहुधान्य, १३ प्रमाथी, १४ विक्रम, १५ वृष।
४था अग्नि	१६ चित्रभानु, १७ सुभानु, १८ तारण, १९ पार्थिव, २० व्यय।
५वां त्वष्टा	२१ सर्वजित्, २२ सर्वधारी, २३ विरोधी, २४ विकृति, २५ खर।
६ठा उत्तरप्रोष्ठपद	२६ नन्दन, २७ विजय, २८ जय, २९ मन्मथ, ३० दुर्मुख।
७वां पितृगण	३१ हेमलम्ब, ३२ विलम्बी, ३३ विकारी, ३४ सर्वरी, ३५ प्लव।
८वां विश्व	३६ शोभकृत्, ३७ शुभकृत्, ३८ क्रोधी, ३९ विश्वावसु, ४० पराभव।
९वां सोम	४१ प्लवङ्ग, ४२ कीलक, ४३ सौम्य, ४४ साधारण, ४५ बोधकृत्।
१०वां शक्रानील	४६ परिधावी, ४७ प्रमादी, ४८ आनन्द, ४९ राक्षस, ५० अनल।
११ वां अश्वि	५१ पिङ्गल, ५२ कालयुतक, ५३ सिद्धार्थ, ५४ रौद्र, ५५ दुर्मति।
१२वां भग	५६ दुन्दुभि, ५७ उद्गारी, ५८ रक्ताङ्ग, ५९ क्रोध, ६० क्षय।

अब तीन प्रकारके उपायसे बार्हस्पत्यमान निर्णीत होता है। उनमें वराहमिहिरको अवलम्बित गणना-प्रथा ही सबसे प्राचीन है। इसी गणना द्वारा कल्यब्द-के १ले अङ्कमें बार्हस्पत्यमानका २४वां वर्ष पड़ता है। यही अङ्क रखकर कल्यब्दारम्भसे २३ वर्ष पहले अर्थात् ३१२८ खृष्टपूर्वाब्द षष्टिसंवत्सरका आरम्भ स्थिर किया जाता है।

वराहमिहिरका मत संशोधन करके दूसरा उपाय वा ज्योतिस्तत्त्वकी गणना प्रचलित हुई है। इस मतसे बार्हस्पत्यमानका प्रथम वर्ष कल्यब्दके पहले वर्षमें ही पड़ता है। यह दोनों गणनाप्रणाली आर्यावर्तमें प्रचलित हैं और इनसे बार्हस्पत्यमानका प्रत्येक ८६वां वर्ष निकाल दिया जाता है।

तीसरे प्रकारकी गणनाप्रणाली दाक्षिणात्यमें प्रचलित है। वहां बार्हस्पत्यमान और सौरवर्षकी गणनामें कोई पार्थक्य नहीं पड़ता। बार्हस्पत्यमान-वाले षष्टिसंवत्सरके प्रभवादि नाम एक-एक सौर वर्षके नाम छोड़ और कुछ नहीं होते।

महाबार्हस्पत्य-चक्र।

उपरोक्त बार्हस्पत्यमान वा षष्टिसंवत्सरसे भिन्न दूसरा कोई द्वादशवर्षात्मक बार्हस्पत्य अब्द भी होता है। यह बार्हस्पत्य नामसे विख्यात है। बृहस्पतिके उदय और अस्तानुसार इस अब्दकी गणना की जाती है। इस अब्दका विवरण प्रारम्भमें (७१९ पृष्ठमें) लिखा हुआ है।

कलिगताब्द वा कल्यब्द।

सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंका एक महायुग होता है। नीचे युगोंका परिमाण दिया जाता है—

	वत्सर		देवपरिमाण
कृतयुग	१७२८००० ÷ ३६० =	४८००	वत्सर
त्रेतायुग	१२९६००० ÷ ३६० =	३६००	,,
द्वापर	८६४००० ÷ ३६० =	२४००	,,
कलियुग	४३२००० ÷ ३६० =	१२००	,,
महायुग	४३२०००० ÷ ३६० =	१२०००	,,

ईसा-मसीहके जन्मसे ३१०२ वर्ष पहले कलियुग प्रचलित हुआ।

वराहमिहिरके समयतक भी कलिगताब्द व्यवहारमें आता था। वराहमिहिरसे प्रायः पचास वर्ष पहले आर्यभट जीवित थे। आर्यभट और उनसे पहलेके ज्योतिर्विद्‌गण भी कलियुगाब्द द्वारा ही सौर और चान्द्रसौरकी कालगणना करते थे। जिस-जिस स्थलमें केवल कलियुगाब्द ही कालगणनाके मानरूपसे परिगृहीत होता, उसी-उसी स्थलमें महीनेकी तारीख सौर और दिनकी संख्या सावन दिन नामसे की गई है।* सावन और चान्द्रमान द्वारा ही साधारणतः वत्सरकी गणना होती है। उत्तरभारतमें चान्द्र-सावन-मान ही प्रचलित है।

युधिष्ठिराब्द वा भारत-युद्धाब्द।

युधिष्ठिरके आविर्भावकाल-विषयमें मतभेद है। बार्हस्पत्यमान वा षष्टिसंवत्सरके प्रसङ्गमें यह बात पहले ही कह दी गई है। वराहमिहिरके मतमें शकाब्दके साथ २५२६ जोड़ देनेसे (अर्थात् शकाब्दसे २५२६ वर्ष पहले) युधिष्ठिरका समय जाना जाता है। भास्कराचार्यने लिखा है—

"नन्दाद्रीन्दुगुणास्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः।"

कलिके ३१७९ वर्ष बीत जानेपर (वराहमिहिरके मतसे) युधिष्ठिर आविर्भूत हुए थे। किन्तु पहले कहा जा चुका है, कि वराहमिहिरसे पहले कल्यब्द प्रचलित था। उत्तरभारतमें उनका मत प्रचलित होनेपर भी ऐसा विश्वास नहीं होता, कि दक्षिण-भारतमें प्रथमतः विशेषरूपसे वह प्रचलित हुआ था। वराहमिहिर ५०९ शकमें परलोक गये।* उसके ४७ वर्ष बाद उत्कीर्ण प्रतीच्य-चालुकराज २रे पुलिकेशीके शिलाफलकमें लिखा गया है—

"त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेसु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु॥
पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥"

अर्थात् भारतयुद्धसे अबतक ३७३५ वर्ष और इस कलिकालमें शकाधिपतिके ५५६ वर्ष बीत चुके हैं।

उक्त खोदित-लिपिके श्लोकानुसार शकाब्दके ३१३९ वर्ष पहले भारतयुद्ध हुआ था। फिर भास्कराचार्य तथा मकरन्दके मतसे इसी वर्ष कल्यब्द आरम्भ हुआ। सुतरां प्राचीन खोदित-लिपिके अनुसार भारतयुद्धके समयसे ही कल्यब्द आरम्भ हुआ है। ज्योतिर्विदाभरणमें (१०वें अध्यायमें) देखा जाता है—

"युधिष्ठिराद्दयुगाम्बराग्नयः कलम्बविश्वेऽस्रखखाष्टभूमयः।
ततोऽयुतं लचचतुष्टयं क्रमात् धराष्टगष्टाविति शाकवत्सराः॥"

ऊपर लिखे हुए श्लोकका तात्पर्य यही है, कि युधिष्ठिरसे लेकर ३०४४ वर्ष, उसके बाद विक्रमादित्यके १३५ वर्ष बीत जानेपर शाकवर्ष वा शकाब्द आरम्भ हुआ। ऐसे स्थलमें युधिष्ठिरके (३०३४+१४५=)३१७९ वर्ष बाद शकाब्द प्रचलित हुआ था। सुतरां भास्कराचार्य और वराहमिहिरने जिसे कल्यब्द माना, वही यौधिष्ठिराब्द वा भारतयुद्धाब्द होता है।

परशुरामचक्र वा सहस्र-संवत्सर।

एक सहस्र वर्षमें परशुराम अब्द होता है। ईसा-मसीहके जन्मसे ११७६ वर्ष पहले यह अब्द प्रचलित हुआ। त्रिवाङ्कोड़ और कुमारिका अन्तरीपके अञ्चल

* सूर्योदयसे जो दिन गिना जाता है, उसे सावन दिन कहते हैं। परन्तु इस शब्दका अर्थ दूसरी तरह है। सवनका अर्थ यज्ञ वा सोमरसानुसन्धान है। उस समयमें सूर्योदयसे यज्ञ आरम्भ होता था, इसीसे सावनका अर्थ सौरदिवस है।

* "नवाधिकपञ्चशतसंख्यशाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः।"
(ब्रह्मगुप्तरचित खण्डखाद्यकी आमराजकृत टीका)

यही अब्द व्यवहारमें आता है। परशुरामचक्रकी गणना सौर अब्दके अनुसार होती है। यहां सन् ईस्वीके साथ परशुराम-चक्रकी तुलना की जाती है।

परशुरामी १म चक्र	११७६ ईस्वीसे पहले।
,,	२य चक्र	१७६ ई०से प०।
,,	३य चक्र	८२५ ईस्वी।
,,	४र्थ चक्र	१८२५ ,, ।

भारतवर्षमें दूसरी जगह इसका प्रचलन नहीं है।

बुद्धनिर्वाणाब्द।

शेषबुद्ध शाक्यमुनिके निर्वाण-दिनसे बौद्धसमाजमें एक अब्दकी गणना की जाती है। सिंहल और ब्रह्मदेशके बुद्धसम्बन्धीय इतिहासको पढ़नेसे मालूम होता है, कि ईसा मसीहके जन्मसे ५४३ वर्ष पहले शाक्यमुनिका तिरोभाव हुआ था। किन्तु कहा जाता है, कि शाक्यसिंहकी मृत्युके २१८ वर्ष बाद अशोकका राज्याभिषेक हुआ। इससे पहले कही हुई गणनामें कुछ भ्रम दिखाई देता है। क्योंकि इस समय अशोकका समय-निरूपण एक प्रकार निश्चितरूपसे निर्द्धारित हो चुका है। पहले अशोकके भाइयोंमें किसे राजतिलक दिया जाय, इस बातकी मीमांसा करनेमें चार वर्ष बीत गये थे; उसके बाद अशोकको पिताका राज्य मिला। अशोक-प्रियदर्शी देखो।

बुद्धनिर्वाणाब्दके दो शिलालेख मिले हैं। रूपनाथ और सासेरामवाले अशोकके शासनपत्रमें इस अब्दका उल्लेख है। गयाके सूर्यमन्दिरमें भी बुद्धनिर्वाणाब्द दिखाई देता है।

शाक्यमुनिकी निर्वाणप्राप्तिके समय-सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न कालका उल्लेख है। कोई कहते हैं, ईसामसीहके जन्मसे ८५० वर्ष पहले; कोई कहते हैं, ६५० वर्ष पहले और किसी-किसीका मत है, कि २५० वर्ष पहले शाक्यसिंह अन्तर्हित हुए। चीनपरिव्राजक यूअन्-चुयांके समय भी बुद्धनिर्वाणकालके सम्बन्धमें ऐसा ही मतभेद था। फा-हियान् कहते हैं, चीनसम्राट् पियाङ्के शासनसमयमें (७७०-७१९ ईस्वीसे पहले) बुद्धका निर्वाण हुआ। भगवत्-परिनिर्वाणके १८१३वें वर्षमें अङ्कित अशोकचल्लका जो शिलालेख मिला था, उससे प्रकट होता है, कि ईसामसीहके जन्मसे प्रायः ५४३ वर्ष पहले शाक्यमुनिका निर्वाण हुआ।

बौद्धग्रन्थोंसे जाना जाता है, कि अशोकके राज्याभिषेकसे २१८ वर्ष पहले शाक्यमुनिका निर्वाण हुआ था। ऊपर कही हुई गणनामें ईसा-मसीहके जन्मसे ५४३ वर्ष पहले शाक्यसिंहकी निर्वाणप्राप्ति ही बहु विचारलब्ध सिद्धान्त अनुमित होती है।

महावीरका मोचकाल वा वीरमोचाब्द।

जैनगण अपने शेष तीर्थङ्कर महावीरके तिरोभाव वा निर्वाणके समयसे इस अब्दकी गणना करते हैं। श्वेताम्बर-सम्प्रदायकी गणनाके अनुसार मालूम होता है, कि विक्रमाब्दसे ४७० वर्ष पहले अर्थात् ईसामसीहके जन्मसे ५२७ वर्ष पहले महावीरका तिरोभाव हुआ था। दिगम्बर जैनगणके मतानुसार शकाब्दसे ६०५ वर्ष पहले महावीरने तिरोधान किया। सुतरां उभय मतसे यह स्थिर है, कि विक्रमाब्दके ४७० वर्ष पहले (सन् ईस्वीसे ५२७ वर्ष पहले) महावीरका निर्वाण हुआ था।

मौर्याब्द।

खण्डगिरिकी सुप्रसिद्ध हाथीगुफामें कलिङ्गके जैनाधिप खारवेल-भिखुराजका जो सुबृहत् शिलानुशासन खुदा हुआ है, उसमें एक अङ्क पाया जाता है। कितने ही इस अङ्कको मौर्य्याब्द कहते हैं। उन लोगोंके मतानुसार माकिदनवीर सिकन्दरके समसामयिक मौर्याधिप चन्द्रगुप्तने मौर्याब्द चलाया। हमने अशोक-प्रियदर्शी शब्दमें दिखाया है, कि महावीर सिकन्दरसे बहुत पहले चन्द्रगुप्तका अभ्युदय हुआ, सुतरां सिकन्दरके पहले भारतवर्षमें मौर्याब्द प्रचलित था। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्र-रचित परिशिष्ट-पर्वमें लिखा है—

"एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते।
पञ्चपञ्चाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः॥" (परिशिष्टपर्व ८।३३९)—

अर्थात् महावीर-निर्वाणके १५५ वर्ष बीत जानेपर चन्द्रगुप्त राजा हुए थे। वीरनिर्वाणाब्दके प्रसङ्गमें लिखा गया है, कि सन् ईस्वीसे ५२७ वर्ष पहले

महावीरने मोक्षलाभ किया। ऐसी अवस्थामें सन् ईस्वीसे ५२७—१५५=३७२ वर्ष पहले चन्द्रगुप्तका अभिषेक वा मौर्याब्द आरम्भ हुआ था।

सलीकाब्द (Era of Seleukidae)

फाइनेस क्लिण्टनके मतमें ईसा-मसीहके जन्मसे ३१२ वर्ष पहले १ली अक्तूबरको यह अब्द पहले पहल प्रचलित हुआ। उलाघ-वेगकी गणनासे प्रकट है, कि सिकन्दरकी मृत्युके १२ वर्ष बाद यह अब्द प्रवर्तित हुआ था। ईसा-मसीहके जन्मसे ३२४ वर्ष पहले सिकन्दरकी मृत्यु हुई। उसके १२ वर्ष बाद अर्थात् सन् ईस्वीसे ३१२ वर्ष पहले इस अब्दका प्रवर्तनकाल होता है। सलीकस्ने जिस वर्ष अन्तिगोनासके सेनापति निकानोरको युद्धमें परास्त किया था, उसी वर्षसे उनके नामानुसार यह अब्द चला।

यहां सलीकस् (Seleukus)का कुछ परिचय दिया जाता है। इनका पूरा नाम सलीकस् निकतर (Seleukus Nicator) है। यह सलीकी (Seleukidæ) राज्यके प्रतिष्ठाता रहे। किसी-किसी प्राचीन मुद्रामें इनके प्रवर्तित अब्दका परिचय मिलता है। पूर्वकालमें हाड्रियान (Hadrian) नामक एक राजा थे। १७१ ईस्वीकी १२वीं अगस्तको इन्हें राज्यभार प्राप्त हुआ था। इनके समयमें जो मुद्रा प्रचलित थे, उनमें सलीकी मुद्राका निदर्शन है।

उसके बाद कारकल्ला (Caracalla) नामक एक राजा २१७ ईस्वीकी ८वीं अप्रेलसे राजसिंहासनपर बैठे, इनके समयमें भी उक्त अब्द प्रचलित था।

माकिदोनके पञ्चाङ्गमें जिन महीनोंके नाम हैं, सलीकाब्दमें भी उन्हीं सब महीनोंके नाम लिखे जाते रहे। यह अब्द अक्तूबर महीनेसे आरम्भ हुआ था। मकदूनियाके पञ्चाङ्गमें अक्तूबर महीनेका नाम हाइपारवेरेतिउस् (Hyperberetœus) है। हिब्रू भाषामें अक्तूबर महीनेका नाम तीसरी (Tisri) रखा गया है। इसी हाइपारवेरेतिउस् महीनेसे सलीकाब्दका आरम्भ हुआ है।

इस अब्दके मास चान्द्रमानसे गिने जाते हैं। सिरीयामें मास-गणना मिटोनिक-चक्र (Metonic Cycle)के अनुसार प्रवर्तित होती है। काबुल और उत्तर-पश्चिम भारतमें सलीकाब्द प्रचलित था। सिन्धुनदके पश्चिम तटवाला भूखण्ड सलीकस्के शासनाधीन था। इसलिये वहां भी सलीकाब्द प्रचलित था। भारतीय यवन और शक (Indo-Scythian) राजाओंके शिलालेखोंमें इस विषयके बहुत निदर्शन पाये जाते हैं। काबुल और तक्षशिलामें अनेक शिलालेख मिले हैं, उनमें सलीकाब्दका ही प्रचलन देखा जाता है।

पार्थिव संवत् (Era of Parthia)

मि० जार्जस्मिथको बाबिलनके कुछ विवरणपत्रोंमें पहले पहल पार्थिव संवत्का परिचय मिला था। बाबिलनमें इनकी तीन तालिकायें पायी जाती हैं। उनमें दो अधूरी और एक पूरी है। ईसा मसीहके जन्मसे २४७ वर्ष पहले यह संवत् प्रवर्तित हुआ था। द्वितीय अन्तियोककी मृत्युके बाद ही पार्थिव-संवत् प्रवर्तित हुआ। ष्ट्रावो, एरियान और सुइडास प्रभृति ऐतिहासिकगणने एक वाक्यसे स्थिर किया है, कि ईसा-मसीहके २४६ वर्ष पहले जनवरी महीनेमें द्वितीय अन्तियोककी मृत्युपर पार्थिवगणने राष्ट्र-विप्लवकी सूचना की। इसी समयसे पार्थिव राज्यके इतिहासमें एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। सुतरां ईसा मसीहके जन्मसे २४७ वर्ष पहले अप्रेल या अक्तूबर महीनेमें यह संवत् प्रवर्तित हुआ था।

मालव-काल वा विक्रम-संवत्।

गुजरातसे लेकर वङ्गतक सारे हिन्दुस्थानमें विक्रम-संवत् चलता है। नर्मदाके उत्तरमें यह वर्ष चैत्रादि और पूर्णिमान्त, किन्तु गुजरातमें कार्तिकादि और अमान्त है। फिर काठियावाड़में यह वर्षारम्भ आषाढ़ादि और मास अमान्त देखा जाता है।

अध्यापक किल्होर्नने ८९८से ११७७ तक विक्रम-संवत्में खुदी हुई प्रायः डेढ़ सौ वर्षवाली प्राचीन लिपिकी आलोचना करके स्थिर किया है, कि पहले कार्तिकसे ही इस वर्षकी गणना की जाती थी। पीछे शकाब्द विशेषभावसे प्रचलित होनेपर नर्मदाके उत्तर भागमें चैत्रमाससे ही गणना चलने लगी। किन्तु

दाक्षिणात्यमें चैत्र और कार्तिक दोनों मासोंसे ही आरम्भ देखा जाता है। कार्तिकादि वर्षारम्भ कहीं पूर्णिमान्त और कहीं अमान्त है। परन्तु चैत्रादि वर्षारम्भमें पूर्णिमान्त मास माना जाता है।

४१८से ८५० अङ्कतक यह अब्द विक्रमाब्दके नामसे प्रचलित न रहा, 'मालवकाल', 'मालवानां संवत्', और 'मालवगणस्थित्यब्द'के नामसे ही प्रचलित था। ८९८ अङ्कमें पहले पहल 'विक्रम' संवत्का उल्लेख पाया जाता है। सन् ईस्वीसे ५७ वर्ष पहले इस अब्दका आरम्भ माना गया है।

ग्रहपरिवृत्ति-चक्र।

दक्षिणभारतमें यह अब्द प्रचलित है। प्रत्येक ९० वर्षमें यह अब्दचक्र पूर्ण होता है। यह अब्द ईसा-मसीहके जन्मसे २४ वर्ष पहले प्रवर्तित हुआ था। बार्हस्पत्य-चक्रके साथ इस अब्दका सम्बन्ध खयाल किया जा सकता है।

शककाल वा शकाब्द।

यह अब्द 'शकभूपकाल' और 'शक-नरपतिके अतीताब्द'के नामसे प्रचलित है। इससे यह समझा जाता, कि किसी शक राजासे ही यह अब्द प्रचलित हुआ है। किस शक नरपतिने इस अब्दको चलाया है, इस विषयमें यथेष्ट मतभेद है। अनेक ऐतिहासिकोंको विश्वास है, कि शकसम्राट् कनिष्कसे ही शकाब्द प्रवर्तित हुआ था। कनिंहाम्-प्रमुख प्रत्नतत्त्वविद्गणके मतानुसार उज्जयिनीपति चष्टनसे शकाब्द प्रचलित हुआ। अन्ध्रराजवंश शब्द—५९२ पृष्ठमें और परिचय देखो।

समस्त ज्योतिषिक करणग्रन्थोंमें इस शकाब्दका उल्लेख है। पूर्वभारत और द्राविड़ अञ्चलमें इस अब्दकी गणना सौरमानसे और पश्चिमभारतमें चान्द्रमानसे की जाती है। जहां चान्द्रमान है, वहां चैत्रादि वर्ष और जहां सौरमान है, वहां मेषादि वर्ष गिना जाता है। इसके अतिरिक्त नर्मदासे उत्तर पूर्णिमान्त और दक्षिण अमान्त मानते हैं।

चेदि वा कलचुरि-संवत्।

प्राचीन चालुक्यराज मङ्गलीशवाली ईसवीके ६ठें शताब्दकी महाकूट-स्तम्भलिपिमें 'कलत्सुरि' नामक एक राजवंशका उल्लेख है। यह राजगण अपनेको सहस्राजुर्नका वंशधर कहते हैं। सम्भवतः महाराज समुद्रगुप्तकी प्रयागस्थ स्तम्भलिपिमें आर्जुनायनके नामसे इन्हीं लोगोंका उल्लेख किया गया है। इन लोगोंने अपने राजत्वमें जो संवत् चलाया था, वही शिलालिपि विशेषमें चेदि-संवत् वा कलचुरि-संवत्के नामसे लिखा गया।

इस राजवंशके राजत्वकालमें ७२९से ९३४ संवत्के बीच खुदे हुए अनेक शिलालेख पाये गये हैं। उनमें उच्चकल्पके महाराजकी दान-प्रशस्ति ही सबसे प्राचीन है। सर् कनिंहाम् और किलहोर्नने इन सब शिलालेखोंको अच्छीतरह देखकर २४९ वा २४९-२५० ईस्वीके बीच चेदि-संवत्का आरम्भकाल निर्देश किया है। महाराज उच्चकल्पकी एक शिलालिपिमें उक्त वंशके महाराज सर्वनाथका उल्लेख पाया जाता है। राजा सर्वनाथ गुप्तराजसामन्त परिव्राजक-महाराज हस्तीके समसामयिक थे। गुप्त-संवत्के अनुसार महाराज हस्तीको समसामयिक कहकर यदि महाराज सर्वनाथके राज्यकालकी कल्पना की जाय, तो कनिंहाम्के कहे हुए २४९-२५० ईस्वी समयमें अन्ततः २१ वर्ष जोड़ देना ही सिद्धान्त है। किन्तु दुःखकी बात है, कि उच्चकल्पकी दी हुई तारीखोंसे उसके कोई सटीक सिद्धान्तकी प्रत्याशा नहीं है। इसी कारण कितनों हीके मतसे २४९-५० ईस्वीमें ही चेदिसंवत्का आरम्भ ठीक है। अध्यापक किलहोर्न साहब अनुमान करते हैं, कि चैत्रादि विक्रम-संवत् ३०५ आश्विन शुक्ल-प्रतिपद्से चेदि-अब्द आरम्भ हुआ है। किन्तु महाराष्ट्र-ज्योतिर्विद् शङ्कर-बालकृष्ण दीक्षितके मतानुसार अमान्त भाद्रपदके कृष्णप्रतिपदसे कलचुरि-काल प्रचलित हुआ था।

गुप्तसंवत् वा गौप्ताब्द।

यह मगधके गुप्तवंशीय राजाओंका प्रवर्तित अब्द है। महाराज कुमारगुप्त और बन्धुवर्माकी मन्दशोरस्थ शिलालिपि मिलनेसे पहले गुप्तराजवंश-काल-निर्णयकी बातको लेकर भारतके इतिहासमें महा

गोलमाल मच गया था। कितने ही ऐतिहासिक उसी भ्रमात्मक पथसे विचरण कर भारतके इतिहासमें अनेक राजवंशोंके राज्यकाल-सम्बन्धपर विभ्राट् उपस्थित कर गये हैं। शिलालिपि और मुद्रा ही गुप्तकाल निर्णयके प्रधान अवलम्बन हैं। हमलोग चन्द्रगुप्तकी रौप्यमुद्रासे ८४ वा ८५ संवत्, कुमारगुप्तकी मुद्रासे १४४, १४५, १४७, १४८ वा १४९ संवत् और बुधगुप्तकी मुद्रासे १७५ और १८० संवत्का उल्लेख पाते हैं। कुछ स्वर्णमुद्राओंमें भी द्वितीय चन्द्रगुप्तका विक्रम वा विक्रमादित्य, कुमारगुप्तका महेन्द्र वा महेन्द्रादित्य और स्कन्दगुप्तका क्रमादित्य नाम मिलता है।

पहले पाश्चात्य पण्डितोंने अल्बीरूनीके कालनिर्णयसे अपनी अपनी युक्ति और मीमांसारूप गुप्तकाल निर्द्धारित किया था। उसीके अनुसार मि० टमस (Thomas) शकाब्दके साथ गुप्तकाल समकालवर्ती अर्थात् सन् ७७-७८ ईस्वी, उसके बाद जेनरल कनिंहाम १६६-६७ ई०, क्लाइव बेली १९०-९१ ई० और मि० फार्गुसन ३१८-१९ ई०में ही गुप्तकालका आरम्भ स्वीकार कर गये। अल्बीरूनीके मतसे प्राचीन गुप्तवंशका राजत्व विलुप्त होने बाद गुप्तराजाकी प्रतिष्ठा और प्रतिभा स्मरण रखनेको ही गुप्ताब्दका प्रचलन हुआ था। गुप्त और वलभी-राजवंशियोंके शिलालेखों, विशेषतः मन्दशोर-शिलालिपिकी पर्यालोचना करनेसे देखा जाता है, कि प्राचीन गुप्तराजवंशका राजत्व सन् ३१९ ई०में नहीं मिटा, वरं उक्त अब्दके बहुत पीछे तक चलते रहा। गुप्तराजवंश देखो। उसके अनुसार २४२ शक वर्षवाले चैत्र शुक्ल प्रतिपदसे गुप्तकाल आरम्भ हुआ था।

वलभी-संवत्।

अबूरैहान् (अल्बीरूनी)ने लिखा, कि गुप्तवंश-पतनके साथ वलभी संवत् आरम्भ हुआ था। यह अब्द शकाब्दसे २४१ वर्ष पीछेका है।

अबूरैहान्के वर्णनानुसार गुप्तकाल और वलभी काल एक समयमें पड़ता है। उन्होंने गुप्तवंशके पतन बाद वलभीकालका आरम्भ भूलसे लिखा होगा। गुप्त एवं वलभी-राजवंशका अभ्युदय और वर्षारम्भ एक ही समयमें हुआ था। २४१ शकाब्द या सन् ३१९ ई०को काठियावाड़ प्रान्तमें वलभीसे एक वर्ष चला। ताम्रपटादिमें ८२से ९४५ तक इस अब्दके अङ्क पाये गये हैं। इससे स्वीकार करना पड़ेगा, कि खृष्टीय ४र्थसे १३वें शताब्दतक यह अब्द प्रचलित रहा। अब भी सौराष्ट्रमें कहीं-कहीं यह अब्द चलता है। यह वर्ष कार्तिकसे आरम्भ हो, किन्तु पूर्णिमान्त और अमान्त यही दो प्रकारकी मासगणना लगायेंगे।

श्रीहर्ष-संवत्।

अबू रैहान्ने काश्मीरी पञ्चाङ्गके प्रमाणसे लिखा है, कि विक्रमाब्दके ६६४ वर्ष बाद श्रीहर्षकाल आरम्भ हुआ था। मथुरा और कान्यकुब्जप्रदेशमें भी यही अब्द प्रचलित रहा। स्थाण्वीश्वरके वर्द्धनवंशीय सम्राट् हर्षवर्द्धन ६६४ विक्रमाब्दमें (६०६-६०७ ईस्वीमें) सिंहासनपर बैठे थे। उनके अभिषेकसे ही इस अब्दके अङ्क पाये गये।

नेवार-संवत्।

नेपालमें नेवार-संवत् चलता है। राजा राघवदेवने सन् ८७० ईस्वीमें यह अब्द प्रवर्तित किया था। पण्डित भगवान्‌लाल इन्द्रजीने इस अब्दकी खुदी हुई लिपि छपायी है। कार्तिक माससे यह संवत् भी व्यवहार किया जाता था। विजयी गोर्खाराज पृथ्वीनारायण-शाहने सन् १७६८ ईस्वीमें इस संवत्को उठाकर नेपालमें शक-संवत् चलाया। अब भी नेपाली मुद्रामें नेवार-संवत् लगता है।

चालुक्य-विक्रम-संवत्।

चालुक्य-शिलालेखोंमें साधारणतः शक-संवत् ही देखनेमें आता है। किन्तु सन् १०७६ ईस्वीमें चालुक्यराज विक्रमादित्य-त्रिभुवनमल्लने एक नया संवत् चलाया। उसका नाम चालुक्य-विक्रमवर्ष है। उक्त नृपतिके शिलालेखसे ही प्रकट है, कि उन्होंने प्राचीन शक-संवत्को उठाकर अपने नामका विक्रम-संवत् चलाया था। वह ९९८ शकसे १०४९ शकतक जीवित रहे। ९९८ शकमें उनका संवत् चला था। वह बड़े शक्तिशाली नृपति रहे। उनके राज्यके आस-पास और

और राज्योंमें भी यही अब्द प्रचलित हो गया था। कदम्बराज तैलपदेवने भी इसी संवत्‌को स्वीकार किया।

सिंह-संवत्।

सन् १११४ ईस्वीमें सिंह-संवत् प्रचलित हुआ था। यह शिवसिंह-संवत्‌के नामसे भी प्रसिद्ध है। गुजरातसे जैनराजाओंके निकाले जानेपर यह संवत् चला।

लक्ष्मणसेन-संवत्।

मिथिलामें ऐसा प्रवाद है, कि गौड़ाधिप वल्लालसेन जिस समय युद्धके लिये मिथिलामें उपस्थित हुए, उसी समय उन्होंने राजधानीमें लक्ष्मणसेनके जन्मका समाचार पाया था। पुत्रजन्म और मिथिला-जय दोनोको चिरस्मरणीय रखनेके लिये उन्होंने यहां अपने पुत्रके नामानुसार लक्ष्मण-संवत् वा ल० सं० प्रचलित कर दिया।* तबसे अबतक मिथिला और तिरहुत अञ्चलमें ल० सं० चल रहा है। आश्चर्यका विषय है, कि गौड़ाधिप द्वारा प्रवर्तित होनेपर भी गौड़-वङ्गमें किसी समय इस अब्दके प्रचलित रहनेका प्रमाण नहीं मिलता। बोधगयामें खृष्टीय १२वें शताब्दके अक्षरोंसे इस अब्दका अङ्कित एक शिलालेख मिला है—

"श्रीमत्‌लक्ष्मणसेन-देवपादानामतीत-राज्ये सं० ७४ वैशाख वदी १२, गुरौ।"

उक्त पाठसे कितने ही ऐसा खयाल करते हैं, कि लक्ष्मणसेनदेवका राज्य बीत जानेपर यह अब्द प्रचलित हुआ था। ऐसी अवस्थामें सन्देह होता, कि गौड़ाधिप वल्लालसेनपुत्र लक्ष्मणसेनसे भिन्न दूसरे किसी राजाके नामानुसार यह अब्द चला है। इस अब्दके आरम्भकालपर भी मतभेद है, यथा—

१। कोलब्रूक साहब इस अब्दके बारेमें सबसे पहले सर्वसाधारणकी दृष्टि आकर्षण करते हैं। सन् १७९६ ईस्वीको १७वीं दिसम्बरको ६९२ लं० सं० चल रहा था।† उसके अनुसार इस अब्दका आरम्भ-काल सन् ११०४ ईस्वी होता है।

२। बुकानन साहबने सन् १८१० ईस्वीमें लिखा, कि उस समय लक्ष्मणाब्दका ७०५—७०६ अङ्क चलता था।* इस अवस्थामें भी ११०४—११०५ ईस्वीसे लक्ष्मणाब्द आरम्भ हुआ। फिर उन्होंने मिथिलाका पञ्चाङ्ग देखकर कहा है, कि ११०८ या ११०९ ईस्वीके बीचमें ही इस अब्दका आरम्भ हुआ होगा। उनके मतसे पूर्णिमान्त श्रावण कृष्ण प्रतिपदसे इसका वर्ष लगता है।

३। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र और जेनरल कनिंहाम् साहबके मतानुसार ११०७—८ ईस्वीके मध्य इस अब्दका आरम्भ और माघ कृष्ण प्रतिपदसे इसका वर्षारम्भ है।

४। अध्यापक कीलहोर्नने सन् ११९४से १५५१ ईस्वीके मध्य लिखे हुए इस अङ्क द्वारा अङ्कित नाना पुस्तकों और लेखों आदिकी आलोचनासे स्थिर किया, कि १०४०-४१ शकके अमान्त कार्तिक मासमें इस अब्दका आरम्भ हुआ था।† आश्चर्यकी बात है, कि अकबरनामामें अबुल्‌फ़ज़लने भी १०४१ शक अर्थात् १११९ ईस्वीमें ही इस अब्दारम्भके विषय पर अपना मत प्रकाश किया है। गौड़ाधिप सेनवंशके इतिहासकी आलोचनासे देखा जाता है, कि १११८—१९ ईस्वीमें वल्लालसेनका राज्य आरम्भ हुआ था। उसी वर्षमें उनका मिथिला-विजय करना और वहां पुत्रके नामानुसार अब्द चलाना कोई विचित्र बात नहीं है। मिन्हाजने अपनी तबक़ात्-इ-नासिरीमें लिखा है,—जिस समय लक्ष्मनियाकी उमर ८० वर्ष रही, उसी समय (११९८—९९ ईस्वीमें) बख्‌तियारने नदीया-विजय किया था। मिन्हाजके प्रमाणसे भी १११८—१९ ईस्वीमें ही लक्ष्मणसेनका जन्म पाया गया। अतएव सन् १११८—१९ ईस्वी ही लक्ष्मणके जन्म और लक्ष्मणाब्दका आरम्भकाल होता है। अब बात यह है, कि यदि लक्ष्मणसेनके जन्मसे ही इस अब्दका प्रचार हुआ, तो बोधगयाके कई शिलालेखोंमें "लक्ष्मणसेनदेवपादानामतीते राज्ये" अथवा "श्रीमल्लक्ष्मणसेनस्यातीतराज्ये" यह उक्ति क्यों?

* लघुभारत।

† Colebrook's Miscellaneous Essays, Vol. I. p. 472.

* Buchanan's Eastern India, III, p. 41 and 139.

† Indian Antiquary, XIX, p. 7 ff.

प्राचीन खोदित-लिपिसमूहकी आलोचनासे समझ सकते, कि पालवंशवाले शेष नृपति गोविन्दपालके साथ मगधसे पालाधिकार विलुप्त होते भी जैसे मगधवासी कुछ दिन "गोविन्दपालदेवानामतीतराज्ये" वा "गोविन्दपालदेवानां विनष्टराज्ये" इस तरह पालवंशका अतीत राज्याङ्क व्यवहार करते; उसीतरह लक्ष्मणसेनने जब मुसलमानोंके हाथ गौड़-मगधका अधिकार ११९८ ईस्वीमें खो दिया, तब जनसाधारण "लक्ष्मणसेनदेवानामतीतराज्ये" वा "श्रीमल्लक्ष्मणसेनस्यातीतराज्ये" इत्यादि कोई स्वतन्त्र अङ्क कुछ काल लिखते रहे। वही अब्द पीछे मुसलमानोंके अमलमें "परगणातिसन्"के नामसे चला था।

राजशक वा राज्याभिषेकाब्द।

महाराष्ट्र-राज्य-प्रतिष्ठाता छत्रपति शिवाजीके राज्याभिषेकसे ही यह संवत् चला है। १५९६ शकाब्दमें आनन्द संवत्सरकी ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी तिथिसे यह अब्द आरम्भ हुआ था। दक्षिणापथके अमान्त चान्द्रसौर वर्षकी भांति इस अब्दकी भी गणना की जाती है।

हिजरी सन्।

सन् किसी मुसलमानी वर्षका ज्ञापक है। सन् कहनेसे असलमें हिजरी सन् ही समझा जाते रहा। पैगम्बर ५०४ शकके श्रावण शुक्ल १ गुरुवारकी रात (६२२ ईस्वीकी १५वीं जुलाईको) मक्केसे मदीने भाग गये थे। उसी दिनसे हिजरी सन् आरम्भ हुआ। इस अब्दकी गणना चान्द्रमानसे लगती, इसलिये ३५४ या ३५५ दिनका एक हिजरी वर्ष होता है। शुक्ल प्रतिपद वा शुक्ल द्वितीया तिथिको चन्द्रमा देखनेपर महीना लगता है। १ला चांद, २रा चांद इत्यादि रूपसे गिनते हैं। सुतरां चन्द्रसे २९ वा ३० दिनमें एक हिजरी महीना होता है। सूर्यास्त और चन्द्रोदय अवलम्बनकर दिन और तारीख रखी जाती है। हमारे बृहस्पतिवारके रात्रिकालमें हिजरी शुक्रवारकी रात होती है।

सूर सन्।

यह मुसलमानोंके संश्रवसे ही भारतमें प्रचलित हुआ था। इसी सन्से सूरसन् वा शाहुका सन्, बङ्गला सन्, अमली सन्, फसली सन्, इलाही सन् आदि विभिन्न सनोंकी उत्पत्ति हुई। सूर सन् वा शाहुका सन्—असली अरबी सन् है। सन् १३४४ ईस्वी या ३४५ हिजरीमें इसका आरम्भ हुआ था। महाराष्ट्र-प्रभावकालपर महाराष्ट्रपति शाहुके नामसे सम्भवतः यह "शाहुका सन्" समस्त महाराष्ट्र अधिकारमें चलते रहा। बम्बई अञ्चलमें जो फसली सन् चलता, उसमें और इसमें ९ वर्षका अन्तर है। यह सौर वर्ष है। सूर्यके मृगशिरा नक्षत्रमें गमन करनेपर इसका वर्ष आरम्भ होता है।

बंगला सन्।

इस वर्ष यह सन् १३२२ और हिजरी सन् १३३३-३४ है। मुसलमानी पञ्चाङ्गकारोंके मतमें हिजरीसे १० वर्ष कम रखकर अकबर बादशाहने यह बंगला सन् चलाया था। किन्तु बात सच नहीं जान पड़ती। अकबर सन् ९६३ बंगला या १५५६ ईस्वीमें सिंहासनपर बैठे रहे। परन्तु हमने सन् ९४५ बंगलाकी हस्तलिपि देखी है। ऐसे स्थलमें यह स्वीकार करना होगा, कि अकबर बादशाहसे पहले ही यह अब्द प्रचलित था। प्रथम ही कहा जा चुका है, कि हिजरी सन् चान्द्रवर्ष और बंगला सन् सौरवर्ष है। सौरवर्षसे चान्द्रवर्ष १०-११ दिन कम होता है। वर्तमान वर्ष बंगला और हिजरी सन्में ११ वर्ष ६ महीना १० दिनसे कुछ कम प्रभेद पड़ता है। सुतरां प्रश्न है, कि हिजरी सन्के किस अब्दसे बंगला सन् पृथक् होते चला आता है? पहले देखना चाहिये, कि प्रति वर्ष १० दिन होनेसे कितने वर्षमें ११ वर्ष ६ महीना १० दिन होता है।

$$\frac{११ \times १२ + ६ \times ३० + १०}{१०} = ४१५$$ वर्ष पहले अर्थात् ९१८ हिजरी सन्से बंगला सन् मिल जाता है। इधर फिर देखा जाता है, कि किसी-किसी वर्षमें ११ दिन कम हैं। तब औसतमें और भी १०।१२ वर्ष बढ़ जाता है। ऐसे स्थल अधिक पीछे लौट कर ९०६-७ हिजरी सन्में (प्राय १५०० ईस्वीमें) बंगला सन्का आरम्भ मानना पड़ता है। इधर हमारे देशमें प्रवाद भी है, कि गौड़ाधिप सुलतान् अलाउद्दीन् हुसेन शाहने देशी

प्रचलित सौर माससे समता रखनेके लिये चान्द्र हिजरी सन्‌को सौर बंगला सन्‌में परिणत कर दिया। सन् ९०३ हिजरी या १४९७ ईस्वीमें सुलतान हुसेन शाहका राज्यारम्भ हुआ था। उसी समय या उसके कुछ दिन बाद बंगला सन्‌का आरम्भ माना गया।

विलायती सन्।

बङ्गाल और प्रधानतः उड़ीसामें यह सन् प्रचलित है। इसका वर्ष सौर होता, परन्तु मास चान्द्र नामसे गिना जाता है। कन्यासंक्रान्तिके दिनसे वर्ष आरम्भ होता है। संक्रान्तिके दूसरे वा तीसरे दिनसे बङ्गला सन्‌के मासका आरम्भ, परन्तु बिलायती सन्‌का मासारम्भ संक्रान्तिके दिनसे ही होगा। विलायती सन्‌में ५९२-३ जोड़ देनेसे ईस्वी सन् हो जाता है।

अमली सन्।

यह सन् उत्कल (उड़ीसा)में प्रचलित है। वहां अद्भुत प्रवाद है, कि इन्द्रद्युम्न राजाकी जन्मतिथि भाद्रपद द्वादशीसे अमली सन् चला; विलायती और अमली सन्‌के वर्षारम्भमें प्रभेद नहीं है।

फसली सन्।

सन् ९६२ हिजरीमें (१५५६ ईस्वीमें) अकबरने साम्राज्य लाभ किया था। उनके अभिषेक-दिनसे उत्तरपश्चिमाञ्चलमें एवं तदनन्तर शाहजहांके समय (१६३६ ईस्वीमें) दाक्षिणात्यमें फसली सन् आरम्भ हुआ। साधारण प्रजा फसल तैयार हो जानेपर मालगुज़ारी देते रहो। हिजरी चान्द्रमानमें बड़ा गड़बड़ पड़ता, इसीसे सबकी सुविधाको सौर वर्षके हिसाबपर फसली सन् प्रचलित हुआ था। सन् ९६६ हिजरीको दाक्षिणात्यमें फसली सन प्रचलित हुआ, इसीसे उत्तर-भारतकी अपेक्षा दक्षिण-भारतमें अङ्क अधिक आता है। मन्द्राज प्रदेशमें कर्क मासकी प्रथम तिथिसे फसली सन्‌का आरम्भ गिना जाता था, परन्तु सन् १८५५ ईस्वीमें अंगरेज-गवर्नमेण्टने कामके सुभीतेको १ली जुलाईसे वर्षारम्भ स्थिर कर दिया। बम्बई प्रदेशमें कहीं-कहीं सूर्य जिस दिन मृगनक्षत्रमें जाते (अर्थात् ५वीं, ६ठीं, या ७वीं जनको), उसी दिनसे फसली वर्ष आरम्भ होता है। यह वर्ष सौर है, किन्तु मास मुहर्रम इत्यादि चान्द्रमान नामसे भी माना जाता है। हिन्दुस्थानमें प्रायः सर्वत्र पूर्णिमान्त मासपर आश्विन कृष्ण प्रतिपदसे फसली वर्ष आरम्भ होता है।

बंगला फ़सली सन्‌में ५९४-९५ वर्ष और दक्षिणी फ़सली सन्‌में ५९२-९३ वर्ष जोड़ देनेसे ईस्वी सन् हो जाता है। उल्लिखित वङ्गाब्द, विलायती, अमली और फसली सब सनोंका मूल एक ही है, केवल आरम्भमें गणनाके प्रभेदसे भिन्न हो गये हैं।

इलाही सन् या अकबरी सन्।

सन् ९६३ हिजरी रब-उस्सानी महीनेकी २री तारीख शुक्रवार (सन् १५५६ ईस्वीकी १४वीं फरवरी) को अकबर सिंहासनपर बैठे थे। उसके ३० अङ्कसे सन् ९९२ हिजरी (१५८४ ईस्वी)में उन्होंने 'तारीख-इलाही' या महाब्द प्रचलित किया। अबुल्-फ़ज़लने लिखा है, कि उस कालकी कई तारीखोंका गड़बड़ मिटानेके लिये ही यह अब्द चलाया गया था। इस सन्‌की गणना सौर (सावन)के हिसाबसे होगी। इलाही सन्‌में १५८३-८४ जोड़ देनेसे सन् ईस्वी हो जाता है।

परगणाति सन्।

मुसलमानोंके समय यह सन् पूर्ववङ्गमें प्रचलित था। ढाका, नोयाखाली और त्रिपुरा प्रभृति जिलाओंके प्राचीन कागज़ोंमें इस सन्‌का उल्लेख पाया जाता है। सन् ११९९ ई०में लक्ष्मणसेनका गौड़-अधिकार छूट गया था। इधर देखते, कि सन् १२०० ई०से इस अब्दका प्रथम अङ्क आरम्भ हुआ है। इससे समझ पड़ता है, कि लक्ष्मणसेनके 'राज्यातीताब्द' पर ही प्रथम विक्रमपुर परगनेमें 'अतीताब्द' और पीछे मुसलमानी सन् चलनेसे यह परगणाति सन्‌के नामसे पुकारा गया।

त्रिपुरी सन् या त्रिपुराब्द।

पार्वत्य स्वाधीन त्रिपुरामें यह अब्द प्रचलित है। त्रिपुरामें प्रवाद है, कि वहां किसी राजाने दिग्विजय-उपलक्षमें गङ्गाके पश्चिम तटपर जयपताका उड़ाकर इस अब्दको प्रवर्तित किया था। त्रिपुराब्द

और सन् ईस्वीमें ५९० वर्षका प्रभेद है। सुतरां बंगला सन्से ३ वर्ष अधिक अर्थात् वर्तमान १३२२ बंगला सन्में १३२५ त्रिपुराब्द चल रहा है।

यह त्रिपुराब्द त्रिपुराके राजावोंका निज प्रतिष्ठित एक अब्द है। त्रिपुराब्दका प्रचार महाराज शिव-या देवराजके समय हुआ होगा।

मगी सन्।

चटगांव अञ्चलमें यह अब्द प्रचलित है। बंगला सन्से ४५ वर्ष पहले इस अब्दका आरम्भ हुआ था। १३२२-२३ बंगला सन्में १२७७-७८ मगी पड़ता है। इस वर्षकी और-और गणनाप्रणाली बंगला सन्के ही अनुरूप है।

युरोपीय अब्द।

पहले यूनान देशान्तर्गत इलिस प्रदेशके अलि-म्पिया नामक क्षेत्रमें यूनानी इकट्ठे होकर मल्ल-क्रीड़ा करते थे। चार-चार वर्षपर यह दङ्गल बड़ी धूमधामसे होते रहा। इसी उत्सवसे ओलिम्पियाद नामक अब्द चला। ईसा मसीहके जन्मसे ७७६ वर्ष पूर्व १ली जुलाईको यह अब्द आरम्भ हुआ था। इसके बाद रोम नगर बनते समय और एक अब्द निकला। यह महानगर ठीक किस समय बसाया गया था, इस बारेमें सबका मत एक नहीं है। किसीके मतमें ईसा-मसीहके जन्मसे ७४७ वर्ष, किसीके मतमें ७५० वर्ष, किसीके मतमें ६५१ वर्ष, किसीके मतमें ८५२ वर्ष और किसीके मतमें ७५३ वर्ष पहले यह नगर स्थापित हुआ था। २१वीं अप्रेलसे रोमनगरके अब्दकी गणना की जाते रही।

अब खृष्ट-धर्मावलम्बियोंमें सर्वत्र ही खृष्टाब्द चलता है। सिवा इसके जिन-जिन स्थानोंमें खृष्टा-नोंका राज्य है, उन सकल स्थानों भी खृष्टाब्दका ही प्रचार है। किस वक्तसे खृष्टाब्द जारी हुआ, इस बारेमें मतभेद है। कोई-कोई कहता, कि ईसा-मसीहके जन्मसे ही खृष्टाब्दकी गणना की जाती है। पहले कितने ही २५वीं मार्चसे खृष्टाब्दकी गणना करते रहे। ११०० खृष्टाब्दको जर्मन प्रभृति देशमें खृष्टके जन्मसे वर्ष आरम्भ किया जाता था।

पहले ईसाई लोग पृथ्वीकी सृष्टिके समयसे ही एक अब्दकी गणना करते थे। किन्तु पृथ्वीकी सृष्टि हुए कितने दिन बीते, बाइबल देखकर यह निश्चित करना बहुत ही कठिन है। हिब्रू, समरितान और सेप्तजिन्त, बाइबलके यह तीन प्रमाणिक पुस्तक देख सृष्टिका समय निरूपण करना होता है। परन्तु इन तीनो पुस्तकके मत आपसमें नहीं मिलते। वास्तविक दि-विग्नोलने अन्तत: दोसौ प्रकारको गणनासे स्थिर किया है, कि ईसा-मसीहके जन्मसे ३४८३ वर्ष पहले पृथ्वीको सृष्टि हुई थी। किन्तु सचराचर ईसा-मसीहके जन्मसे ४००४ वर्ष पहले ही सृष्टिका समय माना जाता है। बाइबल देखकर सृष्टिका समय निश्चित करना विड़म्बनामात्र है।

यहूदियोंका अब्द इस समयके ईसाइयों-जैसा नहीं होता। वह मूसाकी भक्ति करते हैं, परन्तु ईसा-मसीहको मूसा नहीं मानते। उन लोगोंका कहना है, कि मनुष्योंके त्राणकर्ताने अभी जन्म नहीं लिया। इसीसे यहूदियोंमें खृष्टाब्द अप्रचलित है। इस्राइल लोगोंने जिस वक्त मिश्रसे प्रस्थान किया, उसके पहले विष्णुपदसंक्रान्तिसे यहूदी लोगोंने एक वर्षकी गणना की थी, फिर निशान या आबिद मासमें शत्रुओंसे छुटकारा पानेपर विष्णुपद-संक्रान्तिसे और एक वर्षकी गणना लगायी। पीछे इसी घटनाप्रसङ्गमें ईसा-मसीहके जन्मसे १६२ वर्ष पहले एक अब्द निकला था। किसीके मतमें ईसा-मसीहसे २९१ वर्ष पहले यह अब्द चलते रहा। यही अब्द ८४ वर्ष परिवर्त्तिसे प्रचलित है। यहूदियोंमें पृथ्वीकी सृष्टिका अब्द भी चलता है। उनके मतमें ईसा-मसीह-जन्मसे ३७६० वर्ष पहले पृथ्वीकी सृष्टि हुई थी।

पारस्य।

पारस्य (ईरान) देशमें मुहम्मदका अब्द नहीं चलता। तीसरे जयदेजार्दके राजा होनेपर सन् ६३२ ई०की १२वीं जूनसे एक नया वर्ष प्रचलित है। पहले ३६५ दिनोंमें एक वर्ष होता था। परन्तु क्रमश: उससे वर्षमें गड़बड़ होने लगा। इसीसे सन् १०७९ ई०में खुरासान्के सुलतान् जलालुद्दीन्

मल्लिक शाहने वर्ष-गणनाको संशोधनकर मलमासका हिसाब ग्रहण किया था। यह अब्द इस समय भी हिन्दुस्थानकी पारसी जातिमें चलता है। किन्तु पारसी लोग सर्वत्र एक समयसे वर्षगणना नहीं करते, कहीं सितम्बर और कहीं अक्तूबर महीनेसे वर्ष गिनते हैं।

चीन।

ईसा-मसीहके जन्मसे २००० वर्ष पहले याओ सम्राट्वाले राजत्वकाल चीनदेशमें दो प्रकार वर्ष चलता था। राज्यका कार्य चान्द्र और ज्योतिषका कार्य सौर वत्सरके हिसाबसे होते रहा। अतिप्राचीन कालसे ही चीना लोग ३६५ दिन ६ घण्टेका सौर मास मानते आते हैं। हमलोगोंके देशमें जिस तरह अहोरात्र प्रहर, दण्ड आदिमें विभाग किया जाता, चीन देशमें वैसा नियम नहीं है। वह लोग अहोरात्रको १०० 'के'में बांटते थे। एक-एक 'के'का परिमाण १०० मिनट और प्रत्येक मिनटका परिमाण १०० सेकेण्ड है। परन्तु आजकल अंगरेजी प्रणाली अवलम्बन की गई है।

चीनमें ६० वर्ष परिवृत्तिसे दिन, चन्द्र और वर्ष गिना जाता है। किसी किसीका अनुमान है, कि ईसा-मसीहके जन्मसे २३५७ वर्ष पहले यह परिवृत्ति आरम्भ हुई थी। ईसा-मसीहसे १६३ वर्ष पहले वर्षगणनाकी नयी रीति निकली। प्रत्येक नये सम्राट्के अभिषेककाल एक एक नया वर्ष गिना और अब्दका नाम बदल दिया जाता है। चीना भाषामें इन सब अब्दोंको 'निन्-हौ' कहते हैं।

सिंहल प्रभृति।

सिंहल, आवा, पेगू और श्याम आदि देशोंमें पहले बौद्ध अब्द चलता था। आज भी कितने ही इसी अब्दको काममें लाते हैं। भारतवर्षके किसी-किसी स्थानमें शेष जिन महाविहारसे एक अब्द चलाया गया था। ब्रह्मदेशमें ७९ खृष्टाब्दसे समन्द्रराजने एक अब्द जारी किया। यह अब्द शकाब्दके समयसे चला आता है। फिर वर्तमान अब्द सन् ६३९ ई०से आरम्भ हुआ, इसे पप्पा-चान्-रा-हन्ने जारी किया था। गौतमके पितामह अञ्जनने सन् ६९१ ई०में महाब्द चलाया। यह भी वहां जारी है।

अब्दनाद (सं० पु०) मेघनादक्षुप, चौलाई।

अब्दनादा (सं० स्त्री०) १ शङ्खिनी। २ मेंड़की।

अब्दप (सं० पु०) अब्दं पाति, पा-क। वर्षाधिप, सालका मालिक।

अब्द्या (वै० अव्य०) जल देनेकी इच्छासे बाहर, पानी बख्शनेकी मर्ज़ीसे अलग।

अब्दवाहन (सं० पु०) १ शिव, महादेव। २ इन्द्र।

अब्दशत (सं० क्ली०) शताब्द, सदी, सौ वर्षका समय।

अब्दसहस्र (सं० क्ली०) सहस्र वर्षका समय, हज़ार सालका ज़माना।

अब्दसार (सं० पु०) कर्पूर विशेष, काफूर।

अब्दार्थ (सं० क्ली०) आधा वर्ष, निस्फ़ साल।

अब्दि (वै० पु०) मेघ, बादल।

अब्दिमत् (वै० त्रि०) १ मेघविशिष्ट, जलद, बादलसे भरा, पानी पहुंचाते हुवा। २ फलदायक, जो मतलब पूरा कर रहा हो।

अब्दिवान् (सं० त्रि०) अपां दानम्, दा बाहुलकात् भावे कि ततो अस्त्यर्थे मतुप्। जलदानवान्, पानी पहुंचानेवाला।

अब्दुर्ग (सं० क्ली०) अद्भिः वेष्टितं दुर्गम्, शाकपार्थिवादि तत्। जलवेष्टित दुर्ग, पानीसे घिरा क़िला।

अब्दुर् रहमान्—स्पेनमें मुसलमान राजवंशके प्रतिष्ठाता। अब्बासियोंने पूर्वमें जब उमय्यदोंको मार भगाया, तब इनका वयस बीस वत्सरसे अधिक न रहा। वनमें जाकर छिपने पर इनके शत्रुवोंने इन्हें बहुत ढूंढा खोजा, किन्तु यह किसीके हाथ न लगे और सीरिया होते हुए उत्तर अफ़रीका भाग गये। भागते समय इनके साथ कुछ कृतज्ञ उमय्यद लोग भी रहे। सन् ७५६ ई०में कोरदोवे के मैदान इन्होंने पूराणको जा जीता। सन् ७६३ ई०में जब बलवायी इनकी राजधानी काटकवामें लड़े, तब इन्होंने नेतावोंके शिर कटा उनमें नमक और कड़्-कड़ भरवाया एवं पूर्वीय ख़लीफ़ाको चुनौती दे

दी थी। इनके सुप्रबन्धसे स्पेनमें उमय्यदोंने ढाई शताब्दतक राज्य किया। इनका समय सन् ७५६ से ७८८ ई०तक रहा था।

२, यह सन् १६८१ ई०के समय दिल्लीमें उत्पन्न हुए थे। इन्होंने पहले सम्राट् मुअज़्ज़मशाह और फिर सम्राट् बहादुर शाहका दरबार किया। इनकी कविताका उदाहरणस्वरूप 'यमकशतक' नामक पुस्तक देख पड़ेगा।

अब्दुर्-रहमान् ख़ान्—दोस्त मुहम्मदके नाती और अफ़ज़ल खानके बेटे। सन् १८६३ ई०की ९ वीं जूनको दोस्त मुहम्मदके मरने पर अफ़ज़ल ख़ान्ने अपने छोटे भाई शेर अलीके अमीर बननेसे उत्तरमें बलवा खड़ा किया था। उसमें अब्दुर् रहमान्ने बड़ी योग्यता और साहसका परिचय दिया। अफ़ज़ल अलीके कैद हो जानेपर इन्होंने उत्तरमें फिर उपद्रव उठाया था। सन् १८६६ ई०के मार्च मास यह विजयी हो काबुल पहुंचे। इन्होंने शिकोहाबादमें शेर अलीको हरा अपने पिता अफ़ज़लको कैदसे छोड़ा और अमीर बना दिया था। सन् १८६७ ई०में यह फिर शेर-अलीसे जीते और कन्धारको अधिकारभुक्त बनाया। किन्तु सन् १८६८ ई०के अन्तमें शेर अलीने लौट इन्हें सन् १८६९ ई०की ३री जनवरीको पराजत किया था, जिससे यह इरानको भाग खड़े हुए। पीछे इन्हें रूसकी रक्षामें समरकन्द जाना पड़ा। उस समय इनका वयस बीस वत्सरसे अधिक न था।

सन् १८७९ ई०में शेर-अलीके मरने और अंगरेजी फ़ौजके अफ़ग़ानस्थान पहुंचने पर रूसियोंने इन्हें फिर अफ़ग़ानस्थान भाग्यकी परीक्षा लेने वापस भेजा था। सन् १८८० ई०के मार्च मास अंगरेजोंको इनके उत्तर पहुंचनेका समाचार मिला और उसी वर्षकी २२वीं जुलाईको अंगरेजोंने इन्हें अफ़ग़ानस्थानका अमीर बना दिया। किन्तु शेर-अलीके लड़के याक़ूब ख़ान्ने हेरातसे चढ़ अब्दुर्-रहमान्को सेनाको हराया और कन्धारपर अपना अधिकार जमाया था। अब्दुर् रहमान्ने फिर सेना एकत्र कर याक़ूब ख़ान्पर धावा मारा और ऐसा विजय पाया, कि उन्हें ईरान भाग हो जाना पड़ा। कठोर शासनके कारण ग़िलज़ायी जातिने बलवा किया, किन्तु सन् १८८७ ई०के अन्तमें गहरी हार खायी थी। याक़ूब ख़ान्के ईरानसे चढ़ दौड़ने और सन् १८८८ ई०में इसहाव ख़ान्के बलवा करनेसे कुछ फल न निकला।

सन् १८८५ ई०में अफ़ग़ानस्थानकी उत्तर-पश्चिम सीमाके निर्द्धारण पर जब अफ़ग़ानी और रूसी सेनामें झगड़ा हुआ था, तब इन्होंने बड़ी चतुरतासे शान्तिकी रक्षा की। 'आर्डर अव ष्टार अव इण्डिया' की उपाधि पा यह अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। सन् १८८८ ई०के अन्तसे इन्होंने छः महीने उत्तरमें रह बलवा मिटाया। सन् १८९२ ई०में इन्होंने हज़ारा जातिको भी दबा दिया। सन् १८९३ ई०में सर हेनरी डूरण्डके काबुल रूसी और अफ़ग़ानी सीमाका निर्धारण करने जानेपर इनका बरताव बड़ी बुद्धिमानी और पटुताका रहा, इन्होंने भारत और अफ़ग़ानस्थानकी सीमा बांधनेमें कोई झगड़ा न लगाया था।

सन् १९०१ ई०की १ली अक्तोबरको इनकी मृत्यु हुई। इन्होंने अपने सिंहासनके प्रतिद्वन्द्वीका मुंह तोड़ दिया था। किसीमें इनकी आज्ञा टालनेकी शक्ति न रही। यह बलपूर्वक फ़ौज भरती करते और भेद ले-लेकर काम चलाते थे। इन्होंने खुली अदालत बैठे लोगोंका आवेदन-निवेदन सुना और अभियोगोंका विचार किया। यह एशियाकी सबसे अधिक बली जातिपर शासन कर और युरोपीय आविष्कारसे लाभ उठा सके थे। किन्तु इन्होंने अपने देशमें रेल-तारको न फैलने दिया। इन्हें भय था,—युरोपीय कहीं हमारे देशमें घुस न आयें। रूसी और भारतीय साम्राज्यके बीच पड़ इन्होंने जिस योग्यताका परिचय पहुंचाया, उससे अफ़ग़ानस्थानके इतिहासमें इनका नाम अजर-अमर रहेगा।

अमीरको प्रति वत्सर ब्रटिश गवर्नमेण्ट साढ़े अट्ठारह लाख रूपया वृत्ति स्वरूप देती थी। इन्हें युद्ध-सामग्री भी मंगानेका अधिकार रहा। इनके मरने-

पर बड़े बेटे हबीबुल्लह खान् सिंहासनपर बैठे। हबीबुल्लह खान् और उनके भाई नसीरुल्लह खान् दोनो समरक़न्दमें उत्पन्न हुए थे। अब्दुर्-रहमान्के तीसरे लड़के उमर जान्ने किसी अफ़ग़ान माताके पेटसे सन् १८८९ ई०में जन्म लिया था।

अब्दुर् रहीम खान्खाना-नवाब—बैरामखान्के बेटा। इनका जन्म सन् १५५६ ई०में हुआ था। यह अरबी, फ़ारसी, तुर्की आदि भाषा जानते रहे। अकबर इन्हें बहुत चाहते थे। इनके पिता सुप्रसिद्ध बैरामकी वीरतासे ही हुमायूंने भारत जीता था। शिवसिंहने लिखा है,—'खानखाना स्वयं कवियोंका आदर-सत्कार ही न करते, वरं संस्कृतमें अच्छे-अच्छे श्लोक और हिन्दीमें बढ़िया बढ़िया कवित्त, दोहे भी बनाते थे।' नीतिके दोहे इन्होंने बहुत ही अच्छे लिखे हैं। मिथिलाके लक्ष्मीनारायण कवि इनकी सभामें उपस्थित रहते थे।

अब्दुल-क़ादिर—गुजरातवाले नवाब गियास्-उद्-दीनके पुत्र। सन् १४६९ ई०में जब अपने पिता महमूदके मरनेपर गियास्-उद्-दीन् गद्दीपर बैठे, तब उन्होंने अपने बेटे अब्दुल्क़ादिरको प्रधान मन्त्री और उत्तराधिकारी बना नसीर-उद्-दीन्की उपाधि दी थी। कहते हैं, कि इन्होंने छोटे भाई शुजाअतके कहनेसे अपने पिताको विष पिलाया। सन् १५०० ई०के समय यह मांडूमें सिंहासनारूढ़ हुए थे। इन्होंने बलवा दबानेके लिये पीछे यात्रा की। मांडू वापस आनेपर यह व्यभिचार और अपने भाईके आत्मीयोंकी हत्या करते रहे। इन्होंने अपनी माता खुरशीद बानूको पिताका गुप्त धन बतानेके लिये अत्यन्त कष्ट दिया था। किसी दिन नशेके झोंकसे यह हौज़में जा पड़े। चार दासियोंने इन्हें उस हौज़से बाहर निकाला था। होश आते ही इनके शिरःपीड़ा होने लगी और अपनी दासियोंके कामका हाल सुन इन्होंने उन्हें अपने ही हाथ मार डाला। कुछ दिन बाद सन् १५१२ ई०के समय यह फिर हौज़में गिरे और मरते समय तक उसीमें पड़े रहे। इन्हें प्रासादसे बड़ा प्रेम था। इन्होंने मांडूसे दश कोस दक्षिण अकबरपुरके मैदानमें अतिशय सुन्दर और प्रशंसनीय प्रासाद बनवाया। मांडूमें सिवा इनकी क़ब्रके किसी शिलालेखसे प्रमाणित होता, कि बाज़बहादुरका प्रासाद नसीर-उद्-दीनका ही बनवाया रहा।

अब्दुलजलील—सम्राट् औरङ्गज़ेबके कोई मुसाहब। यह हरदोई ज़िलेवाले बेलग्रामके निवासी रहे। इनका जन्म सन् १६८२ ई०में हुआ था। प्रथमतः यह अरबी और फ़ारसी भाषाकी कविता लिखते रहे, पीछे हरिवंश मिश्रसे हिन्दी भाषाकी कविता भी सीखी। इन्होंने हिन्दी भाषामें अच्छे-अच्छे पद बनाये हैं।

अब्दुल्लह—यमनके हजाज़से भारत भेजे गये कोई मुसलमान-साधु। यह सन् १०६७ ई०के समय कम्बेमें आ उतरे थे, जहाँ कुछ वर्ष लोगोंको देखते-भालते रहे। इनके विषयमें दो आख्यायिका प्रसिद्ध हैं। पहले तो इन्होंने किसी खाली कूपको जलसे परिपूर्ण कर एक किसानके हृदयमें घर किया था। दूसरे, कम्बेके किसी मन्दिरमें बेसहारे लटकते हुआ लोहेका हाथी भूमिपर गिरा पुरोहितोंको आश्चर्यमें डाला। उसके बाद यह गुजरातकी तत्कालीन राजधानी पाटनको रवाना हुए थे। पाटनके महाराज सिद्धराज जयसिंहने इन्हें पकड़ बुलानेको कुछ सशस्त्र सिपाही भेजे, किन्तु इन्हें आगसे घिरा देख वह पीछे हट गये। जब महाराज स्वयं इनके पास पहुंचे, तब अग्निके स्थान प्रदान करनेसे पास जा सके थे। महाराजने इनसे कहा,—आप अपने धर्मको उत्कृष्टताका कोई दूसरा प्रमाण भी दीजिये। उनकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। पवित्र मूर्तियोंमें कोई बोल उठी,—अरबी धर्म सर्वोत्तम है। इस बातसे हिन्दुवोंने आश्चर्यमें पड़ नया धर्म ग्रहण किया था। सन् ११३०से १२९० ई० तक गुजरातमें इसमायिली धर्म खूब फैला। किन्तु सन् १२९०से १४१३ ई० तक मुज़फ़्फ़र शाहके समय सुन्नी धर्म बढ़ते और शिया धर्म गिरते गया था।

अब्दुल्लह खान् उज़बक—सम्राट् अकबरकी फ़ौजके एक सेनापति। सन् १५६२ ई०में सेनापति पीर

मुहम्मदके गुजरातवाले बाज़बहादुरसे हार जानेपर अकबरने इन्हें उस प्रान्तको फिर जीतने भेजा था। किन्तु इनके स्वतन्त्रताकी चेष्टा देखानेपर अकबरने इन्हें मार भगाया।

अब्दुल्लह वस्साफ़—'तज़्जीयत्-उल् अयसार' नामक ग्रन्थप्रणेता। सन् १३०० ई०के समय इन्होंने गुजरातके विषयमें लिखा था,—'गुजरातका दूसरा नाम कम्बा-यत है। इस प्रान्तमें ७०००० ग्राम और नगर बसे होंगे। सभी स्थान आबाद और लोगोंके पास रुपये-पैसेका ढेर लगा है। चार ऋतुमें सत्तर प्रकारके सुन्दर फूल खिलेंगे। वायु इतना विशुद्ध है, कि लेखनीसे जो चित्र खींचा जाता, वह सजीव देख पड़ता है। कितने ही प्रकारके वृक्ष, लता, वनस्पति आदि आपसे आप उत्पन्न होंगे। जाड़ेमें भी भूमि नाफ़रमान्‌से खिली रहती है। वायु स्वास्थ्यकर हो और सदा वसन्त चमकेगा। जाड़ेकी फ़सल ओसकी तरीसे ही तैयार हो जाती है। गर्मीकी फ़सल पानीपर निर्भर करेगी। वर्षमें दो बार काले अङ्गूर पकते हैं।'

अब्दुल् वह्हाब—वह्हाबी धर्मप्रतिष्ठाता और किसी अरबी नृपतिके पुत्र। तुर्की धर्मके विरुद्ध उपदेश देने कारण यह अपनी मातृभूमिसे निकाल दिये गये थे। इन्होंने अपने मित्र दरायियह-नृपतिके साहाय्यसे तलवारकी धारपर अपना धर्म फैलाना चाहा और सन् १७८७ ई०के समय दरायियहमें ही मर गये।

अब्देवताक, अब्देवत देखो।

अब्दैवत (सं० त्रि०) आपो देवता यस्य, बहुव्री०। जलोपासनासम्बन्धीय।

अब्धि (सं० पु०) आपो धीयन्तेऽस्मिन्; धा आधारे कि, उपपदस०। १ सरोवर, तालाब। २ समुद्र, बहर। ३ चार या सातकी संख्या।

अब्धिकफ (सं० पु०) अब्धेः समुद्रस्य कफ इव। समुद्रफेन। इसका गुण यह है,—

"चक्षुष्यः शीतलश्चैव पटलादिरुजाहरः।
सरश्च विषदोषघ्नः कर्णशूलहरः परः।
कफश्च कण्ठरोगश्च पित्तश्चैव विनाशयेत्॥ (वैद्यकनिघण्टु)

अब्धिज (सं० पु०) अब्धौ समुद्रे जायते; जन-ड, ७-तत्। १ चन्द्र, चांद। २ शङ्ख। ३ अश्विनीकुमार। (त्रि०) ४ समुद्रजात, बहरसे पैदा हुआ।

अब्धिजा (सं० स्त्री०) १ सुरा, शराब। २ लक्ष्मी, दौलत।

अब्धिझष (सं० पु०) समुद्रका मत्स्य, बहरकी मछली।

अब्धिडिण्डीर (सं० पु०) समुद्रफेन।

अब्धिद्वीपा (सं० स्त्री०) अब्धिसंख्याता लवणादि सप्त-संख्याता द्वीपा यस्याः। सप्तद्वीपा पृथिवी।

अब्धिनगरी (सं० स्त्री०) अब्धौ समुद्रसमीपे नगरी। द्वारका।

अब्धिनवनीतक (सं० पु०) अब्धेर्नवनीतमिव, इवे प्रतिकृतौ इति कन्। चन्द्र, चांद।

अब्धिफल (सं० पु०) समुद्रजातफल, समुद्रफल। इसका गुण यह है,—

"फलं समुद्रस्य कटूष्णकारि वातापहं भूतनिरोधकारि।
त्रिदोषदावानलदोषहारि कफामयभ्रान्तिविरोधकारि॥" (राजनिर्घण्ट)

अब्धिफेन (सं० पु०) अब्धेः फेनः, ६-तत्। समुद्रफेन।

अब्धिमण्डूकी (सं० स्त्री०) अब्धिं मण्डयति; मण्ड-उक गौरादि० ङीष, ६-तत्। शुक्ति, सीप।

अब्धिवृक्ष (सं० पु०) शाखिमूलवृक्ष।

अब्धिशय (सं० पु०) अब्धौ शेते; शी अधिकरणे अच्, ७-तत्। समुद्रस्थ वटपत्रशायी विष्णु।

अब्धिशयन, अब्धिशय देखो।

अब्धिसार (सं० पु०) रत्न, जवाहिर।

अब्धिहिण्डीर (सं० पु०) समुद्रफेन।

अब्ध्यग्नि (सं० पु०) अब्धौ सागरे स्थिता अग्निः। वड़वानल, बहरके भीतर रहनेवाली आग।

अब्बास (अ० पु०) वृक्षविशेष, कोई पौदा। यह कोई एक गज़ ऊंचा रहेगा। इसका पत्र कुत्तेके कर्ण-जैसा दीर्घ एवं ताम्राग्र होता और मोटा मूल चोबचीनी कहाता है। पुष्प प्रायः रक्तवर्ण, कभी-कभी पीत और श्वेत भी खिलेगा। जब पुष्प गिर जाता, तब उसकी जगह काला-काला मिर्च-जैसा बीज निकलता है।

अब्बास—मुसलमान-धर्मप्रवर्तक मुहम्मदके चाचा।

मुहम्मदके अपना धर्म्म स्थापित करने पर अब्बासने प्राणपणसे उसके प्रचार की चेष्टा की थी। अब्बासी खलीफ़ा-वंश भी इन्हीं महापुरुष द्वारा स्थापित हुआ। इस वंशके खलीफा लोगोंने सन् ७४९से १२५८ ई०तक बग़दादमें राज्य किया था। उसके बाद सन् १५५७ ई०तक वह लोग मामेलिउ-कोंके आश्रयमें रह धर्मकार्यकी अध्यक्षता करते रहे। अन्तमें रूमके सुलतान् इस कार्य्यके अधिनायक हुए थे।

अब्बासवंशके कोई कोई आदमी इस समय भी रूम और भारतवर्षमें वास करते हैं। अब्बासवंशके कितने ही मशहूर आदमी ईरानमें रहते, उन लोगोंका जन्म सूफ़ीकुलमें हुआ था। खलीफ़ा अली उनके आदिपुरुष रहे। उन लोगोंने सन् १५०० ई०में राज्यलाभ किया। उसके बाद सन् १७३६ ई०में उस वंशका लोप हो गया। इतिहासमें प्रथम अब्बासका नाम ही अधिक प्रसिद्ध है। इन्होंने रूसको बार बार परास्त किया था; उसके बाद सन् १६२७ ई०में अंगरेजोंकी सहायतासे होर्मज बन्दरमें पोर्तु-गीज़ोंका उपनिवेश नष्ट कर दिया।

अब्बास-अली-मिर्ज़ा—रामपुरवाले नवाब फ़ैज़ उल्लह खांके पन्ती, गुलाम मुहम्मद खांके नाती और नवाब सआदत अली खांके बेटे। इनका कविता सम्बन्धीय उपनाम 'बेताब' रहा।

अब्बास बिन-अली शिरवानी—एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक। सन् १५३९ ई०में हुमायूंको मार भगाने और दिल्लीके सिंहासनपर बैठनेवाले अफ़ग़ानी शेरशाहका वर्णन इनके ग्रन्थमें मिलता है। इन्होंने एक पुस्तक लिख सम्राट् अकबरको समर्पण किया और उसका नाम 'तुहफ़ा-इ-अकबरशाही' रखा था। लार्ड कार्ण-वालिसके समय मज़हर अली खांने इस इतिहासका प्रथम भाग उर्दूमें अनुवाद किया; अनुवादको 'तारीख-इ-शेरशाही' कहते हैं।

२ उर्दू कविताकी कोई मसनवी बनानेवाले। इस मसनवीमें ईसा-मसीहका इतिहास लिखा गया है। इनकी उपाधि 'नवाब इक्तियार-उद्-दौलह' रही। सन् १८४९ ई०के समय यह लखनऊमें बसते और इनकी अवस्था कोई अस्सी वर्षकी थी।

अब्बास मिर्ज़ा—ईरानी शाह फ़तेहअलीके लड़के। सन् १७८३ ई०में इनका जन्म हुआ था। इनमें बुद्धि, साहस और रणकौशल असाधारण रहा। छोटी ही उमरमें यह अजर्बिजान प्रदेशके शासनकर्ता हो गये थे। वहां अंगरेज सेनापतियोंके साथ इनकी मित्रता हुई। अंगरेज लोग हमेशा इन्हें युद्धकौशल सिखाया करते थे। इसीसे इन्होंने अपने सैन्याध्यक्षको शीघ्र ही युद्धविद्यामें निपुण बना दिया। सन् १८११ ई०में ईरान और रूससे लड़ाई छिड़ी। उस समय फ्रान्सीसी ईरानकी मददपर थे। अब्बास ईरानी सेनाके प्रधान अधिनायक होकर युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए, परन्तु जयलाभ न कर सके। सन् १८१३ ई०को गुलिस्तानमें सन्धि हो गई थी। उसी सन्धिसे रूसियोंने ककेसस प्रदेश पर कब्जा कर लिया और कास्पियन समुद्रके किनारे तक उनका अधिकार बढ़ आया। सन् १८२६ ई०में रूस और ईरानसे दूसरा युद्ध छिड़ गया था। फिर अपरिसीम साहस और विक्रमके साथ अब्बास युद्ध करने लगे, परन्तु इस बार भी परास्त हुए। इस बारकी सन्धिसे अर्मेनियामें जो ईरानका अधिकार था, उसे रूसको दे देना पड़ा और पहले इङ्गलेण्डके साथ ईरानका जो सम्बन्ध था, वह जाते रहा; रूस ही ईरानका हर्ता-कर्ता-विधाता हो गया।

क्रमशः रूसकी सहायतासे अब्बास ईरानके राजा हुए। उस समय भी इनके पिता फ़तेह-अली जीवित थे, परन्तु दुर्बल और असहाय रहे, इसलिये कुछ कर न सके। सन् १८२९ ई०में ईरानियोंने तेहरानमें रूसी दूतको मार डाला था, इससे अब्बास बहुत डरे। पीछे कहीं कोई विपद न आ पड़े, यही सोचकर यह रूस-सम्राट्से मिलनेके लिये सेण्टपितर्सबर्ग गये थे। इस सौजन्यसे परम प्रसन्न हो रूस-सम्राट्ने बहुमूल्य उपहार देकर इन्हें वापस किया। सन् १८३२ ई०में अब्बासकी मृत्यु हुई थी। उसके बाद सन् १८३४ ई०में फ़तेह अलीके परलोक जानेपर अब्बासके लड़के महम्मद मिर्ज़ा ईरानके राजा हुए।

अब्बासी (अ० स्त्री०) कार्पास विशेष, किसी किस्मका कपास। यह मिश्र देशमें उत्पन्न होती है।

अब्भक्ष (सं० पु०) आपो भक्षयति ; अप्-भक्ष-ण उप० स०। १ सर्पविशेष, पनिहा सांप। (त्रि०) २ केवल जलभक्षण करनेवाला, जो सिर्फ़ पानी ही पीता हो।

अब्भक्षण (सं० क्ली०) पानी पीकर रहनेकी दशा, जिस हालतमें सिर्फ़ पानी ही पीकर रहें।

अब्भ्र (सं० क्ली०) आपो बिभर्ति, भृ-क अथवा अभ्र गतौ अच्। १ मेघ, बादल। २ गगन, आकाश, आसमान्। ३ मुस्ता, मोथा। ४ त्रिदिव। ५ स्वर्ण, सोना। ६ धातुविशेष, अबरक। यास्कने अब्भ्रके ३० पर्याय बताये हैं,—

१ अद्रि, २ ग्रावा, ३ गोत्र, ४ बल, ५ अश्न, ६ पुरुभोजा, ७ बलिशान, ८ अश्मा, ९ पर्वत, १० गिरि, ११ व्रज, १२ चरु, १३ वराह, १४ शम्बर, १५ रौहिण, १६ रैवत, १७ फलिग, १८ उपर, १९ उपल, २० चमस, २१ अहि, २२ अभ्र, २३ बलाहक, २४ मेघ, २५ दृति, २६ ओदन, २७ वृषन्धि, २८ वृत्र, २९ असुर और ३० कोश। अभ्र देखो।

अब्भ्रंकष (सं० पु०) १ पर्वत, पहाड़। २ वायु, हवा। (त्रि०) ३ गगनस्पर्शी, आसमान् छूनेवाला।

अब्भ्रंलिह (सं० पु०) अब्भ्रंलेढ़ि स्पृशति, अब्भ्र-लिह-खस्। १ उच्च शिखर, ऊंची चोटी। २ वायु, हवा। (त्रि०) ३ गगनस्पर्शी, आसमान् छूनेवाला।

अब्भ्रक (सं० पु०) अभ्रधातु, अबरक।

अब्भ्रपिशाच (सं० पु०) राहु। चन्द्रसूर्यको ग्रहणके समय ग्रास करने कारण राहुको अब्भ्रपिशाच कहते हैं।

अब्भ्रपुष्प (सं० क्ली०) १ जल, पानी। २ वेतसवृक्ष, बेंतका पेड़।

अब्भ्रमातङ्ग (सं० पु०) ऐरावत, इन्द्रका हाथी।

अब्भ्रमु (सं० स्त्री०) १ ऐरावत हस्तीकी स्त्री, पूर्वदिग्हस्तीकी स्त्री।

अब्भ्रमुवल्लभ (सं० पु०) ऐरावत हस्ती।

अब्भ्ररोहस् (सं० पु०) वैदूर्यमणि।

अब्भ्रि (सं० स्त्री०) काठकी कुदाल। इससे नौका दिका मल परिष्कार किया जाता है।

अब्भ्रिय (सं० त्रि०) मेघभव, आकाशीय, बादलसे पैदा, आसमानी।

अब्भ्रीय (सं० क्ली०) १ वज्र, विद्युत्, बिजली। (त्रि०) २ अभ्रजात, बादलसे पैदा।

अब्र (फ़ा० पु०) मेघ, बादल।

अब्रह्मचर्य (सं० क्ली०) न ब्रह्मचर्यम्, विरोधे नञ्-तत्। १ मैथुनादि, ब्रह्मचर्यका विरोधी कार्य। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ ब्रह्मचर्यरहित।

अब्रह्मचर्यक (सं० क्ली०) ब्रह्मचर्यराहित्य, लोलुपता, लम्पटता, नफ़्सपरस्ती, नापाकदामानी, छिनारा।

अब्रह्मण्य (सं० क्ली०) ब्रह्मणि ब्राह्मणोचितकर्मणि अहिंसादौ साधु यत् विरोधे नञ्-तत्। ब्राह्मण-विरुद्ध कार्य, जो काम ब्राह्मणके करने क़ाबिल न हो।

अब्रह्मता (सं० स्त्री०) योग अथवा विशुद्ध ईश्वर-ज्ञानका अभाव, जिस हालतमें इबादत न बने या परमेश्वर समझ न पड़े।

अब्रह्मन् (वै० त्रि०) १ साधन-भजनविहीन, ज्ञानशून्य, जो पूजापाठ न करता हो, जिसे समझ न रहे। २ ब्राह्मण भिन्न, जो ब्राह्मण न हो।

अब्रह्मविद् (सं० त्रि०) ब्रह्मको न पहचाननेवाला, जिसे ब्रह्मज्ञान न रहे।

अब्राह्मण (सं० पु०) न ब्राह्मणः, अप्राशस्त्ये नञ्-तत्। अपकृष्ट ब्राह्मण, जो ब्राह्मण विशुद्ध न हो। शास्त्रमें छः प्रकारका अब्राह्मण बताया गया है,— १ राजाके अन्नसे पालित, २ वाणिज्य करनेवाला, ३ बहुयाजक, ४ ग्रामयाजक, ५ कार्यविशेषमें ग्राम्य वा नागरिक सकल लोगोंसे वरण किया जानेवाला और ६ सन्ध्यावन्दनादि न करनेवाला।

अब्राह्मण्य (सं० क्ली०) पवित्रताका नाश, ब्राह्मणके कामकी खराबी।

अब्रुवत् (सं० त्रि०) न बोलनेवाला, जो बात न कह रहा हो।

अब्रूक्त (सं० क्ली०) न ब्रूवे क्तम्। १ वाक्य-प्रतिरोधक, गुराहट। २ बोलीका धुंधलापन।

अब्लिङ्ग (सं० स्त्री०) जलार्थ पठित सूक्तविशेष।

अब्विन्दु (सं० पु०) अश्रु, आंसू।

अभक्त (सं० त्रि०) भज सेवायां विभागे च ; कर्तरि कर्मणि वा क्त, नञ्-तत्। १ भक्ति न रखनेवाला, जो सेवक न हो। २ विभागरहित, बांटा न गया।

अभक्तच्छन्द (सं० पु०) अरोचकभेद, अन्नमें अरुचि, खानेमें मज़ा न आना।

अभक्तरुच् (सं० स्त्री०) बुभुक्षाका अभाव, भूखका न लगना।

अभक्ति (सं० स्त्री०) भज्-क्तिन्, अभावे नञ्-तत्। १ भक्तिका अभाव, अविश्वास, बेवफ़ाई, नाएतबारी।

अभक्तिमत् (सं० त्रि०) भक्तिविहीन, अविश्वासी बेवफ़ा, जिसे एतबार न आये।

अभक्ष (हिं०) अभक्ष्य देखो।

अभक्षण (सं० क्ली०) भक्ष-ल्युट्, नञ्-तत्। भक्षणका अभाव, उपवास, न खानेकी हालत, फ़ाक़ा।

अभक्ष्य (सं० त्रि०) भक्षितुमयोग्यं भक्षि-ण्यत् नञ्-तत्। शास्त्रनिषिद्ध भोजनद्रव्य, अखाद्य। पियाज, लहसन आदि कोई-कोई चीज़ स्वभावतः अखाद्य मानी गई है। कोई-कोई चीज़ समय विशेषमें खानेसे दोष नहीं होता, और कोई-कोई चीज़ समय विशेषमें खानेसे दोष लगता है। कोई-कोई द्रव्य स्थान विशेषसे अभक्ष्य हो जाता, कोई-कोई वस्तु किसी दूसरे विशेष द्रव्यके साथ मिला दी जानेपर खाने लायक़ नहीं रहती, कोई-कोई चीज़ पात्रविशेषमें रख देनेसे अखाद्य हो जाती, किसी-किसी चीज़को असत् व्यक्तिसे लेकर खाना मना है और किसी चीज़को व्यक्तिविशेषसे छू जानेपर खाना न चाहिये।

अभक्ष्य वस्तुका खाना आयुक्षयका प्रधान कारण है। मनुसंहितामें पांचवें अध्यायके प्रथम ऐसी भूमिका लिखी है,—ऋषियोंने भृगुसे प्रश्न किया था,—'वेदज्ञ सभी ब्राह्मण अपने-अपने धर्मका अनुष्ठान करते हैं, परन्तु वह सब वेदविहित चार सौ वर्ष परमायु भोग क्यों नहीं करने पाते? क्यों उनकी अकालमृत्यु होती है?' इस बातको सुनकर भृगुने कहा,—'ब्राह्मण अब अच्छी तरह वेद नहीं पढ़ते। वह सब आचारभ्रष्ट हो गये हैं। दिन-दिन अत्यन्त आलसी होते जाते हैं ; विशेषतः उनमें अकालमृत्युके दूसरे प्रधान कारण भी हैं।' उसके बाद मनुके पुत्र भृगु अभक्ष्य चीज़ोंका नाम लेने लगे।

अब कुछ प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्वोंका निश्चय किया जाता है। "चतुष्पात् सकलो धर्मः सत्यंचैव कृते युगे।" मनुसंहितामें लिखा है, कि सत्ययुगमें धर्म और सत्यके चार पैर थे। किन्तु सत्ययुग ही में ऋषियोंने भृगुसे अकालमृत्युका कारण भी पूछा था। उसके उत्तरमें भृगुने आचारभ्रष्टता और खाद्य दोषादिकी बात कही। इससे इस बातका प्रमाण मिलता है, कि सत्ययुगमें भी लोग यथेच्छाचारी रहे। भोजनादिका अत्याचार न करनेसे लोग उस समय दीर्घजीवी होते थे ; फिर यदि इस समय भी भोजनादिका अत्याचार न किया जाय, तो लोग दीर्घजीवी हो सकते हैं।

भृगुने कहा,—गाजर, लहसन, पियाज, छत्रक (कठफूला) और विष्ठा आदिमें जो सब शाकादि पैदा होते हैं, उनका खाना मना है। (शास्त्रकारोंने ब्राह्मणादिके लिये इन सब चीज़ोंको मना किया है, परन्तु शूद्र आदिके लिये नहीं।)

वृक्षका निकलकर सूख जानेवाला रक्तवर्ण निर्यास, पेड़को विना छेदे न निकलनेवाला निर्यास, चाल्ता, और बच्चा जनने बाद दशदिन न बीत जानेपर उबालनेके वक़्त कड़ा पड़नेवाला गायका दूध खाना न चाहिये।

जिन सब पशुओंका दूध पीनेकी व्यवस्था है, बच्चा देनेके बाद दश दिन न बीत जानेसे उनका दूध पीना मना है। ऊंटनीका दूध, घोड़ी आदि खुर जुड़े हुए पशुओंका दूध ; भेड़ीका दूध और ऋतुमती गायका दूध खाना न चाहिये। स्त्रियों और हरिण आदि वनपशुओंका दूध पीना अनुचित होता, परन्तु भैंसका दूध पीना मना नहीं है।

जो चीज़ें स्वभावसे मीठी हैं, परन्तु ख़राब हो जानेसे निःस्वाद या खट्टी हो गयी हों, उन्हें खाना न चाहिये। परन्तु दही और मक्खन अखाद्य नहीं हैं। जो सब अच्छे-अच्छे फल, फूल, और मूल जलके साथ मिल जाते हैं, उन्हें खानेमें भी कोई दोष नहीं।

मांस खानेवाला पक्षी, ग्राम्य पक्षी, ग्राम्य कुक्कुट,

ग्राम्य शूकर, एक खुरवाला पशु, टिटहरी, गौरैया, हंस, चकवा, डाहुक, शालिक, तोता, चोंचसे कोड़े वगैरह मारकर खानेवाली चिड़िया, पञ्जेसे मट्टी हटा-हटाकर खाना ढूंढनेवाली चिड़िया, लिप्तपद पत्ती, पानीमें गोता मारकर मछली पकड़नेवाला पत्ती, बगला, कौवा और खञ्जन आदि चिड़ियोंका मांस खाना मना है। सूखा मांस और कसाईकी दुकानका मांस कभी न खाना चाहिये।

बोआरी, रेह्न, राजीव, कटवा और छिलकेदार मछली देव, पैत्र और रोग आदिमें खाई जाती है। (सुतरां सहज ही न खाना चाहिये।) पुस्तकान्तरमें केंकड़ा, घोंघा, शङ्ख, कौड़ी आदि खाना मना है। अकेले चलने फिरनेवाले सर्प आदि जीव, अपरिचित पशु, सेह, गोह, गेंड़ा, कछुआ और खरगोशके सिवा दूसरे पांच नाख़ूनवाले जन्तुओंका भी मांस, और एक श्रेणी दांतवाले पशुओंका मांस खाना न चाहिये। केवल यज्ञमें ऊंटका मांस खानेकी व्यवस्था है।

मास, तिथि और दिन विशेषमें भी शास्त्रकारोंने अनेक प्रकारकी चीज़ोंका खाना मना कर दिया है। यथा—कार्तिक मासमें षष्ठी, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णिमा और रविवारको मांस मछली न खाना चाहिये। हरिशयनमें अर्थात् आषाढ़ मासकी शुक्लाद्वादशीसे कार्तिक मासकी शुक्लाद्वादशी तक सफ़ेद सेम, उड़द, कलम्बी प्रभृति न खाये। इसके सिवा नवमीके दिन लौकी, त्रयोदशीके दिन बैंगन—इसी तरह तिथि विशेषमें अनेक चीज़ोंका खाना मना है। इसका ठीक तात्पर्य क्या है, सो कुछ समझमें नहीं आता।

फिर मनुसंहितामें अनेक प्रकारके अभक्ष्य अन्नकी बात भी लिखी है। उन्मत्त, क्रोधी और रोगी मनुष्यका अन्न खाना न चाहिये। अन्नमें यदि बाल और कीड़ा पड़ या जानबूझकर वह पैरसे कुचल दिया जाय, तो उसे छोड़ देना होगा। जो लोग भ्रूणहत्या करते हैं, उनका दिया हुआ अन्न खाने लायक नहीं रहता। कौवा आदि कोई पत्ती जिस अन्नमें चोंच डाल दे, अथवा रजस्वला स्त्री या कुत्ता छू ले, तो उस अन्नको खाना न चाहिये।

मठका अन्न, वेश्याका अन्न और गाय बैलका सूंघा अन्न खानेका निषेध है। चौर वृत्तिउपजीवी, सूदखोर, क्षपण, कैदी, महापातकी, नपुंसक, व्यभिचारी, छली, वैद्य, व्याध, पुरोहित, शत्रु, अवीरा स्त्री और सूतिका-गृहकी स्त्रीका अन्न खाना न चाहिये। दूसरेका जूठा और बासी भात खानेके लिये मनुने निषेध किया है। खानेकी चीज़पर अगर कोई छींक दे, तो उसे भी न खाना चाहिये।

पत्नीको व्यभिचारिणी जानकर भी सहनेवाले, स्त्रीकी सलाहसे काम करनेवाले, लुहार, मल्लाह, नट, गायन, सुनार, लोहा बेंचनेवाले, मेहतर, धोबी, रङ्गरेज़ और शिकार खेलनेके लिये कुत्ता पालनेवालेका अन्न खाना शास्त्रके अनुसार मना है।

दूधके साथ नमक अथवा मांस मछली मिलाकर न खाना चाहिये। सुश्रुतमें लिखा है, कि मछलीके साथ अथवा मछली खाने बाद दूध पीनेसे कुष्ठरोग होता है। कांसेके बरतनमें डालकर नारियलका पानी न पीये। तांबेके बरतनमें भी मीठा रस पीना मना है।

शास्त्रकारोंने जिन चीज़ोंका खाना निषेध कर दिया है, उनमें अनेक ही हानिकारक प्रतीत होती हैं। परन्तु दूसरी कितनी ही चीजें क्यों मना की गई हैं, उसका गूढ़ कारण समझना कठिन है।

हमारे शास्त्रमें जिन पशुओंका खाना मना बाइबल और कुरानमें भी प्रायः वही पशु निषिद्ध बताये गये हैं। बाइबल (लिभिटिकस् ११) में लिखा, कि जिन पशुओंके खुर द्विखण्डित हैं अथवा जुड़े हुए और जो जुगाली करते हैं, उनका मांस खाया जा सकता है। ऊंट जुगाली करता, परन्तु उसके खुर द्विखण्डित नहीं, इसलिये उसका मांस न खाना चाहिये। इसी कारण बाइबलमें खरगोशका मांस खाना भी मना किया गया है।

सूअरके खुर जुड़े हुए और द्विखण्डित भी हैं, किन्तु वह जुगाली नहीं करता, इसलिये उसका मांस खानेके अयोग्य है। जलजन्तुओंमें जिसके पर और

छिलका होता, उसका मांस खाया जा सकता, परन्तु कुम्भीरादिका मांस अभक्ष्य है।

उक़ाब, चील्ह, गृध्र, कौवे, उल्लू, कोकिल, बाज़, बहरी, शिकरे, राजहंस आदि, चमगीदड़, बगला, उष्ट्रक और छातीके बल चलनेवाले पक्षीका मांस खाना न चाहिये।

क़ुरानमें भी लिखा है, कि जो जानवर रोग या चोट लगनेसे मर जाय, उसका मांस न खाना चाहिये। जो चिड़ियां चोंचसे दबा दबा कर कोड़ोंको मार डालतीं और पञ्जेसे मट्टी खोदकर चारा खोजती हैं, उनका मांस खाना अनुचित है।

सूतिकागृहमें स्त्रियां अपवित्र रहती हैं, यह बात बाइबलमें भी लिखी है। (लिभिटिकस १२) ईश्वरने मूसाको ऐसा उपदेश दिया, कि लड़का पैदा होनेसे सूतिकागृहमें स्त्रियां सात दिन अशुचि रहती हैं। किन्तु लड़की पैदा होनेसे अशुचिकाल एकपक्ष चलेगा। सूतिकागृहमें स्त्रियोंके अनेक प्रकार रोग हो जाता है। उनमें कोई कोई रोग बड़ाही संक्रामक होता है। अतएव वैसी अशुचि प्रसूतिके छू लेनेसे चीज़ खाना न चाहिये।

पियाज और लहसन मनुष्योंके लिये सुपथ्य है या नहीं, इसबारेमें बहुत सन्देह है। एलोपैथि-चिकित्साके पुस्तकोंमें लिखा है, कि यह दोनों कन्द आग्नेय और उत्तेजक हैं। वैद्यक ग्रन्थोंमें पियाजका गुण यों लिखा हुआ है—यह कड़वा, धातुपोषक, पकने पर मधुर, स्निग्ध, वायुनाशक, बलकर, पित्तकर नहीं, कफनाशक, तृप्तिजनक और गुरुपाक है। लहसन खारा, मीठा, कण्ठका स्वर बढ़ानेवाला, धातुपोषक, बलकर और विरेचक होता है। हड्डी टूट जानेसे इसका लेप देने पर टूटी हुई हड्डी जुड़ जाती है। यह रक्त पित्तरोग बढ़ाता है।

जो लोग पियाज और लहसन रोज़ खाते हैं, उन लोगोंके मुंहसे इनकी कोई निन्दा नहीं सुनी जाती। परन्तु जो लोग कभी किसी दिन इन्हें खा लेते, उन लोगोंको इनके कितने ही दोष साफ़ मालूम देते हैं। पियाज और लहसन डालकर तरकारी बनानेसे जल्द पचती नहीं और खूनको गर्म कर देती है। इसीसे हमलोगोंके उष्णप्रधान देशमें विशेषकर गर्मीके दिनों इन्हें कभी न खाना चाहिये।

अभक्ष्यभक्षण (सं० क्ली०) निषिद्ध खाद्यभोजन, नाक़ाबिल चीज़का खाना। (त्रि०) २ निषिद्ध वस्तु खाते हुआ, जो नाक़ाबिल चीज़ खा रहा हो।

अभग (सं० त्रि०) आनन्दशून्य, हतभाग्य, ऐश-आरामसे अलग, बदबख़्त।

अभगत (हिं०) अभक्त देखो।

अभग्न (सं० त्रि०) १ भग्न भिन्न, न टूटा हुआ, समूचा। २ विक्षेपविहीन, दख़ल न दिया गया, बराबर।

अभङ्ग (सं० पु०) न भङ्गः, नञ्-तत्। १ भङ्गका अभाव, पलायनकी शून्यता, टूटका न पड़ना। २ श्लेष-मूलक शब्दालङ्कार विशेष। ३ मराठी धर्मगीत। (त्रि०) ४ सम्पूर्ण, अखण्ड। ५ नाशरहित, लाज़वाल, न टूटनेवाला। ६ क्रम-विशिष्ट, सिलसिलेवार।

अभङ्गुर (सं० त्रि०) भञ्ज-घुरच् भङ्गुरम्, नञ्-तत्। न टूटनेवाला, स्थिर, जो टूटता न हो, क़ायम।

अभज्यमान (सं० त्रि०) भजन न किया जाते हुआ, जिसका ख़याल न रखा जाये।

अभद्र (सं० क्ली०) भदि इति रक् भद्रम्, नञ्-तत्। १ असुख, दुःख, तकलीफ़, बखेड़ा। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। २ अमङ्गल, अमङ्गलकर, अमङ्गलाश्रय, ख़राब, बुरा, जो अच्छा न हो।

अभद्रता (सं० स्त्री०) अमङ्गलाश्रयता, बदमाशी, बुरे बननेकी बात।

अभय (सं० क्ली०) न भयम्, अभावे नञ्-तत्। १ भयका अभाव, शान्तिरक्षा, ख़ौफ़की नामौजूदगी, अमनचैन, हिफ़ाज़त। २ यज्ञीय गीत विशेष। ३ वीरणमूल, खसकी जड़। (पु०) ४ आत्मनिष्ठ, किसीसे न डरनेवाला आदमी। ५ शिव। ६ धर्मपुत्र-विशेष। यह दयाके गर्भसे उत्पन्न हुये थे। ७ यात्रिक योग विशेष। (त्रि०) नञ्-बहुव्री०। ८ भय न देनेवाला, जो ख़ौफ़ न दिलाता हो। ९ भयशून्य, जिसे डर न लगे।

अभयकृत् (सं॰ त्रि॰) अभय त्राणं करोति; कृ-क्विप्, ६-तत्। १ त्राणकर्ता, अभयदाता, खौफ़ छुड़ाने या पनाह देनेवाला। नञ्-तत्। २ अभयङ्कर, सौम्य, खौफ़से खाली, जो डरावना न हो।

अभयगिरि—विहारप्रान्तका कोई प्राचीन स्थान। यह अभयपुर नामसे भी प्रसिद्ध है।

अभयगिरिवासिन्—कात्यायनके एक शिष्य।

अभयगिरिविहार—अभयगिरिपर बना हुआ बौद्ध धर्मक्षेत्रविशेष।

अभयङ्कर (सं त्रि॰) भय-कृ-खच् भयङ्करम्, विरोधे नञ्-तत्। "भयशब्दे न तदन्तविधिः अभयङ्करः।" (भट्टोजि) भयङ्करभिन्न, सौम्य, जो खौफ़नाक न हो, सीधा।

अभयङ्कृत् (वै॰ स्त्री॰) अभयं कुरुतः, कृ-क्विप् वेदे पृषोदरादित्वात् मुमागमः। द्युलोक एवं पृथिवी, आस्मान् और ज़मीन।

अभयचन्द्र—१ राजकुलगच्छसंभूत कोई प्रसिद्ध जैनाचार्य। इनके शिलालेखसे मालूम पड़ता, कि यह ३० लौकिकाब्द या सन् ८५४ ई॰में विद्यमान रहे। २ जैन साधु विशेष। इन्होंने 'प्रक्रियासंग्रह' शाकटायन-व्याकरणकी टीका बनायी थी।

अभयजात (सं॰ पु॰) अभयाय जातः। गर्गादिगणके मध्य पठित मुनिविशेष। (स्त्री॰) अभयजाती।

अभयडिण्डिम (सं॰ पु॰) अभयाय स्वयोधभयाभावाय डिण्डिमः। अपने योद्धाको अभय देनेवाला युद्धका ढक्का विशेष, लड़ाईका ढोल।

अभयतिलकगणि—जैन साधु-विशेष। सन् १२५५ ई॰में इन्होंने हेमचन्द्र नामक दूसरे जैन साधु लिखित गुजरातवाले चालुक्यों या सोलङ्कियोंका इतिहास फिर बनाकर पूरे उतारा था।

अभयद (सं॰ त्रि॰) अभयं ददाति; दा-क, ६-तत्। १ त्राणकर्ता, मुहाफ़िज़, खौफ़ छुड़ा देनेवाला। (पु॰) २ विष्णु। ३ जैन अर्हत् विशेष। (हेम) ४ नृपतिविशेष। यह मनस्युके पुत्र और सुधन्वाके पिता रहे।

अभयदक्षिणा (सं॰ स्त्री॰) अभयाय त्राणाय देया दक्षिणा, मध्यपदलोपी कर्मधा॰। १ विपदसे परित्राण पानेके लिये ब्राह्मणको धनादिका दान, जो दौलत ब्राह्मणको मुसीबतसे छुटकारा पानेके लिये दी जाये। शूद्रादिके निकटसे भी ब्राह्मण अभयदक्षिणा ले सकता है, उसमें अप्रतिग्रह-ग्रहणका दोष नहीं लगता।

"सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् मध्वथाभयदक्षिणाम्।" (मनु ४।२४७)

अथवा, अभयं दक्षिणेव देयत्वात् वा अभयमेव दक्षिणा रूपककर्मधा॰। २ अभयरूप दान, अभयदक्षिणा।

"अभयदक्षिणा अभयदानम्" (स्मार्त रघुनन्दन)

अभयदत्त—मालवपति यशोधर्म विष्णुवर्धनके कोई विचक्षण मन्त्री।

अभयदा (सं॰ स्त्री॰) भूम्यामलकी, तलिसपत्री।

अभयदान (सं॰ क्ली) त्राण देनेका वचन, हिफ़ाजत रखनेका इकरार।

अभयदेवसूरि—कोई प्रसिद्ध जैनाचार्य और टीकाकार। इन्होंने 'निगोदषट्त्रिंशिका', 'पुद्गलषट्त्रिंशिका', 'जयतिपुराणस्तोत्र' 'नवतत्त्वभाष्य', 'सत्तरिभाष्य' एवं 'ज्ञाताधर्मकथावृत्ति' प्रभृति ग्रन्थ बनाये थे। ज्ञाताधर्मकथावृत्तिकी टीकामें अभयदेवने इसतरह आत्मपरिचय दिया है,—राजसम्मानित और शास्त्रपरायण पल्लीवालवंशमें नेमड़ने जन्म लिया था। इन्हीं नेमड़के ज्येष्ठपुत्र राहड़, राहड़के पुत्र सहदेव और सहदेवके पुत्र जयदेव रहे। जयदेवके दो स्त्री थीं,—बड़ीका लक्ष्मी और छोटीका नाम नायिकी रहा। नायिकीके गर्भसे कितने ही लड़के हुए थे। उनमें ज्येष्ठ धनेश्वर रहे। धनेश्वरके औरस और उनकी पत्नी खिवड़ीके गर्भसे अरसिंह, लाहड़ और अभयकुमारने जन्म लिया था। यही अभयकुमार अभयदेव नामसे प्रसिद्ध हो गये। सन् ई॰के १२वें शताब्दसे पहले यह विद्यमान थे। २ बृहत्-खरतरगच्छके ४१वें पट्टाचार्य। इनके पिताका प्रेमदेव और माताका नाम धनदेवी रहा। इन्होंने धारानगरमें जन्म लिया और तृतीयसे एकादश तक जैनाङ्गकी टीका लिखी थी।

अभयनन्दी—जैनेन्द्रव्याकरणके टीकाकार।

अभयनृसिंहरस (सं॰ पु॰) वैद्यकरस विशेष। यह रस अतीसार और ग्रहणी रोगके लिये हितकर होता है। मात्रा एक गुञ्जेकी रहेगी। अनुपानमें जीरक-

चूर्ण और मधु मिलाते हैं। हिङ्गुल, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च और पीपल), विष, जीरक, टङ्गणरस, गन्धक एवं अभ्रको बराबर-बराबर और सबके समान अहिफेन डाल निम्बुकरसमें घोंटनेसे यह रस बनेगा।

अभयन्दद, अभयद देखो।

अभयपद (सं० क्ली०) रक्षा रखनेकी लिखी हुयी चिट्ठी, जो कागज़ हिफ़ाज़त रखनेको लिखा जाता हो।

अभयपुर—विहार प्रान्तका कोई प्राचीन स्थान। इसी स्थानके नामपर मजरौत ग्वालावोंकी एक शाखा प्रसिद्ध है।

अभयप्रदान, अभयदान देखो।

अभयमुद्रा (सं० स्त्री०) अभयनाम्नी मुद्रा, तन्त्रोक्त मुद्राविशेष।

अभयम्मद, अभयद देखो।

अभयराम—वृन्दावनके एक प्रसिद्ध कवि। सन् १५४५ ई०में इनका जन्म हुआ था।

अभयवचन (सं० क्ली०) अभयवाच् देखो।

अभयवाच् (सं० स्त्री०) अभयार्था वाक्। भय न रहनेका आश्वासवाक्य, जिस बातमें खौफ़ छुड़ानेका इक़रार रहे।

अभयसनि (वै० त्रि०) शरण देते हुआ, जो हिफाज़त कर रहा हो।

अभयसिंह—जोधपुरनरेश अजित्सिंहके पुत्र। सन् १७२४—१७५० में करणकविने 'सूर्यप्रकाश' नामक ग्रन्थ इनके कहनेसे लिखा था। सूर्यप्रकाशमें ७५०० श्लोक हैं और महाराज यशोवन्त सिंहके समयसे (सन् १६३८—१६८१ ई०) महाराज अभयसिंहके समयतक (सन् १७३१ ई०) राठौर वंशका इतिहास लिखा है। सन् १७३० ई०में मुहम्मद शाहने इन्हें गुजरातका अधिनायक बनाया था। भले आदमियोंने चाहा, कि भूतपूर्व अधिनायक मुबारिज़ उल्मुल्क शान्तिपूर्वक अपना पद परित्याग करते; किन्तु उन्होंने लड़नेका सामान बांध लिया। महाराज अपने भाई बख्तसिंह और २०००० आदमीके साथ गुजरातका शासन हाथमें लेनेको आगे बढ़े थे। जब महाराजने पालनपुरमें डेरा डाला और मुबारिज़ उल्-मुल्कको युद्धके लिये तैयार देखा, तब सरदार मुहम्मद गोरीको लिख भेजा,—आप अहमदाबाद अधिकार कीजिये और मुबारिज़-उल्-मुल्कका निकाल दीजिये, हम आपको अपना प्रधान मन्त्री बनाते हैं। सरदार मुहम्मदमें यह आज्ञा पालन करनेकी सामर्थ्य न थी, वह महाराजके आगमन की राह देखने लगे। महाराजके सिद्धपुर पहुंचनेपर सफ़दरखां बाबी और जवान् मर्द खां बाबी राधनपुरसे जाकर साथ हो लिये थे। उसके बाद महाराजने अदालजपर धावा मारा, जो राजधानीसे चार कोस दूर रहा। मुबारिज़-उल्-मुल्कका डेरा अदालज और राजधानीके बीच हो पड़ा था। महाराजके वहां पहुंचते ही युद्ध हुआ और महाराजको पीछे हटना पड़ा। महाराजने अपना मोरचा बदल फिर भीषण रूपसे युद्ध किया, दोनो दल सेनापतिके संहारको चेष्टा लगाये थे। किन्तु मुबारिज़-उल्-मुल्क और महाराजके गुप्तवेशमें लड़ने कारण कोई क्षतकार्य हो न सका। पहले महाराजने शत्रुको मार भगाया था, किन्तु नदीपर मुबारिज़के दिल तोड़कर लड़नेसे राठोरोंको पीछे हटना पड़ा। राठोरोंने इकट्ठे होकर फिर भीषण रूपसे आक्रमण किया, अन्तमें शत्रुका बल अधिक रहनेसे सरखेज लौट आये। महाराजने मुबारिजका यह हाल देख मोमिन खां और अमरसिंहको सन्धिकी बात करने भेजा था। अन्तमें एक लाख रुपया लेकर मुबारिज़ अहमदाबाद छोड़नेपर राज़ी हुए और उदयपुरकी राह आगरे चले गये। महाराजने बाबियोंके साथ गुजरात-अधिनायकको पिलाजी गायकवाड़, हमीद खां और कांताजीसे माहीपर युद्ध करनेमें साहाय्य पहुंचाया था। महाराजके पुत्र रामसिंह और उनके चचा विजयसिंहमें युद्ध होनेसे महाराष्ट्र मारवाड़पर टूटे।

अभया (सं० स्त्री०) नास्ति भयं यस्याः, ५-बहुव्रो०। १ हरीतकीभेद, खास क़िस्मकी हर। यह चम्पादेशमें बाहुल्यसे उपजती और पांच मुख रखती है। इसे लोग नेत्ररोगमें प्रशस्त समझते हैं। २ श्वेतनिर्गुण्डी।

३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ जयन्तग्रा। ५ जया, भांग। ६ मृणाला।

अभयाद्य (सं० पु०) अभया हरीतकी आद्या यस्य। वैद्यशास्त्रोक्त मोदकविशेष। इसके बनानेकी रीति नीचे लिखते हैं,—हरीतकी, पिपरामूल, काली मिर्च, सोंठ, दारचीनी, तेजपात, पीपल, नागरमोथा, विड़ङ्ग, आंवला दो-दो, दन्तीमूल छः, शर्करा बारह और सफ़ेद हिरनपद्दी सोलह तोले ले खूब बारीक पीस-कर एकमें मिला लीजिये, उसके बाद मधु डाल ३२ मोदक बनायिये। प्रातःकाल उष्ण जलके साथ २।३ मोदक खानेसे २।३ बार विरेचन (जुलाब) होगा। शीतल जलके साथ एक मोदक खानेसे विरेचन नहीं भी हो सकता। यह क्रमि और अग्निमान्द्य रोगका उत्तम औषध है।

काली हिरनपद्दी कभी व्यवहारमें न लाये। यह अतिशय विरेचक होती और विषक्रिया करती है। आवश्यक पड़नेसे उक्त मोदक ज्यादा भी खा सकेंगे। किन्तु प्रति मात्रा हिरनपद्दीका परिमाण डेढ़ तोलेसे अधिक न रहना चाहिये।

अभयाद्यमोदक, अभयाद्य देखो।

अभयाद्यावलेह (सं० पु०) अतिसारका अवलेह, जो हरका अवलेह दस्तकी बीमारीपर दिया जाता हो।

अभयारिष्ट (सं० पु०) अर्शोऽधिकारका रस, जो रस बवासीरपर खाया जाता हो। इसे यों बनाते हैं,—हरीतकी १२॥ शराव, द्राक्षा ६। शराव, मधूकपुष्प १० पल, विड़ङ्ग १२ पल, वारि २५६ शराव, शेष ६४ शराव, गुड़ १२॥ शराव एकमें मिला गोक्षुरादि-का चूर्ण भी २ पल डाल देते हैं।

अभयालवण (सं० क्लो०) हरका नमक। इसके बनानेका विधि यह है,—मन्दारकी छाल, पलाशकी छाल, आकन्द, सोजकी छाल, लटजीरा, चितामूल, वरुणकी छाल, अरनीकी छाल, श्वेतपुनर्णवा, गोक्षुर, बृहती, भटकटैया, करञ्ज, हापरमाली, गुर्चकी छाल, कड़वी तरोई, पुनर्णवा, इन सब चीज़ोंको अच्छीतरह कूटकर एक हांड़ीमें रख तिलके सूखे पौधोंकी आंच लगाये। जब हांड़ीकी सब चीज़ें जल जायें, तब उसमें दो सेर क्षारको ६४ सेर जल मिलाकर पकाना चाहिये। अन्तमें १६ सेर जल रहनेसे उसे उतारकर कपड़ेसे छान ले। फिर उस छाने हुए जलको साफ़ हांड़ीमें रख दो सेर सेंधा-नमक, एक सेर हरका चूर्ण और सोलह सेर गोमूत्र मिलाकर पकाये। जब जल गाढ़ा हो जाय, तब उतारकर उसमें कालाजीरा, सोंठ, पीपल, मिर्च, हींग, अजवाइन, केज और आंबाहल्दीका चूर्ण चार-चार तोले मिला दे। यह पिलही रोगका बहुत अच्छी दवा है। मात्रा में एक तोलेसे दो तोलेतक प्रातःकाल ठण्ढे जलके साथ खाना चाहिये। पेटमें दर्द रहनेसे इस औषधको खाना मना है।

यह दवा बनानेमें काले तिलका पौधा ही जलाना अच्छा है। उसके अभावमें सफ़ेद तिलका पौधा; वह भी न मिले, तो सरसोंका सूखा पौधा व्यवहार करना चाहिये।

अभयावटी (सं० स्त्री०) अभयावटी नाम्नो गुल्माधि-कारकी वटी, जो गोली फोड़े-फुन्सीपर दी जाती हो। कानकजफल अर्थात् जैपाल और शिवा हरीतकीसे यह गोली बनती है।

अभयाष्टक (सं० क्लो०) अष्टहरीतकी भक्षण, आठ हरका खाना। यथा,—

"द्वे पूर्वमद्यादशनादितो द्वे द्वे चापिभुक्त्वा तु तथा स्वपतस्तु।
अस्य प्रयोगादभयाष्टकस्य त्रिसप्तरात्रे ण पुनर्युवास्यात्॥" (प्रयोगामृत)

दो भोजनसे पहले, दो भोजनमें, दो खाकर और दो हर सोते समय सेवन करनेसे इक्कीस दिनमें मनुष्य फिर युवा हो जाता है।

अभर (हिं० वि०) उठनेके अयोग्य, न ले चलने योग्य, जिसे उठा या खींचकर न ले जा सकें।

अभरन (हिं०) आभरण देखो।

अभरम (हिं० वि०) १ भ्रमविहीन, जो भूलता न हो। २ शङ्काशून्य, बेखौफ़, जिसे डर न लगे। (क्रि०-वि०) ३ असन्दिग्ध भावमें, शङ्काको छोड़, बेशक।

अभर्तृका (सं० स्त्री०) १ अविवाहिता स्त्री, जिस औरतकी शादी न हुई हो। २ विधवा, रांड़, जिस औरतका खाविन्द न रहे।

अभल (हिं॰ वि॰) अनुत्तम, खराब, जो भला न हो।

अभव (सं॰ पु॰) भू-अप् भव उत्पत्तिः, अभावे नञ्-तत्। १ जन्मका अभाव, पैदायशका न होना। २ विनाश, मटियामेट। नञ्-५-बहुव्री॰। ३ मोक्ष, निजात, छुटकारा।

अभवनीय (सं॰ त्रि॰) न होनेवाला, जो न हो।

अभवन्मतयोग (सं॰ पु॰) १ काव्यमें—शब्दयोजनाका दोष, इबारतका ऐब, प्रकट किये जानेवाले विचार और उनके बतानेवाले शब्द मध्य वियोग, ज़ाहिर होनेवाले खयाल और उसे कहनेवाले लफ्ज़के बीच मेलका न मिलना।

अभवन्मत-सम्बन्ध, अभवन्मतयोग देखो।

अभव्य (सं॰ क्ली॰) भू-यत् भव्यम्, अप्राशस्त्ये नञ्-तत्। १ अमङ्गल, दुर्भाग्य, बदशिगूनी, कमबख्ती। (त्रि॰) नञ्-बहुव्री॰। २ दुर्भाग्यवान्, बदबख्त। ३ न होनेवाला, जो हो न सकता हो। ४ आश्चर्य, अपूर्व, अनोखा, अजीब। ५ असभ्य, नीच।

अभस्त्र (सं॰ त्रि॰) बेधौंकनी, जिसके पास धौंकनी न रहे।

अभस्त्रका (सं॰ स्त्री॰) खराब धौंकनी, जो धौंकनी ठीक न बनी हो।

अभस्त्राका, अभस्त्रिका (सं॰ स्त्री॰) अभस्त्रका देखो।

अभाउ (हिं॰ वि॰) न भाने या सुहानेवाला, जो बुरा मालूम हो।

अभाग (सं॰ पु॰) भज-कर्मणि घञ् कुत्वं भागः, अभावे नञ्-तत्। १ अंशका अभाव, हिस्सेका न होना। नास्ति भागोऽंशो यत्र नञ्-बहुव्री॰। २ अंशशून्य, पूर्ण, भागरहित, बेहिस्सा, समूचा, जो तकसीम न किया गया हो। (हिं॰ पु॰) अभाग्य देखो।

अभागा (हिं॰ वि॰) भाग्यरहित, कमबख्त, जिसका नसीब खराब रहे।

अभागिन् (सं॰ त्रि॰) न भागी, नञ्-तत्। विषयका अंश न पानेवाला, जिसे जायदादका हिस्सा न मिले।

अभागी, अभागिन् देखो।

अभाग्य (सं॰ क्ली॰) न भज् ण्यत् कुत्वम्, अप्राशस्त्ये नञ्-तत्। १ मन्दभाग्य, बुरी किस्मत। (त्रि॰) नञ्-बहुव्री॰। २ मन्दभाग्यवान्, बदकिस्मत।

अभाजन (सं॰ क्ली॰) अप्राशस्त्ये नञ्-तत्। १ मन्दपात्र, खराब बर्तन। २ मूढ़, बेवकूफ।

अभार्य (सं॰ पु॰) नास्ति भार्या तत्सम्बन्धो वा यस्य, बहुव्री॰ गौणे ह्रस्वः। जिसके स्त्री न रहे, शास्त्रमें जिसे विवाह करनेके लिये निषेध किया जाये। जैसे, नैष्ठिक ब्रह्मचारी आदि।

अभाव (सं॰ पु॰) भू भावे घञ् भावः, नञ्-तत्। १ अनस्तित्व, सत्ताकी शून्यता, असत्व, अनवस्था, असम्भव, अवर्तन, अदममौजूदगी, ग़ैरहाज़िरी, ग़ैबत, न होनेकी हालत।

वैशेषिकोंके मतसे सात प्रकार जो पदार्थ हैं, उनमें 'अभाव' भी एक पदार्थ है। यही सबके अन्तमें परिगणित हुआ है। नैयायिक लोगोंने भी इसे सात प्रकार पदार्थोंमें सबके अन्त गिना है। भाषापरिच्छेदमें लिखते हैं,—

"द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम्।
समवायस्तथाभावः पदार्थाः सप्त कीर्तिताः॥"

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव यह सात प्रकारके पदार्थ पदार्थवित् पण्डित स्वीकार करते हैं।

अनेक ही कहते, कि भाव न रहनेको ही अभाव कहा जाता है। किन्तु ऐसी व्याख्या स्पष्ट नहीं पड़ती। विशेषतः अभाव समझनेके लिये—भाव क्या है—यह जानना आवश्यक है। सुतरां इसमें अन्योन्याश्रयदोष लगता है। अन्योन्याश्रय देखो। इसलिये आधुनिक पण्डित अभावत्वको अखण्डोपाधि कहते हैं। (लक्षणशून्य जाति विशेष अखण्डोपाधि कहाती है)।

भाव और अभाव इन दोनोंमें ही अभाव पदार्थ रहता है। जैसे, 'यह घट नहीं—किन्तु पट है'। यहां घटका अभाव, भाव पदार्थ पटमें जिस तरह रहता, उसीतरह पटका अभाव भी रहा करता है।

सांख्यसूत्रकारने छः प्रकारके पदार्थका उल्लेख किया है। परन्तु छः प्रकार उल्लेख करते भी अन्तमें लिखा है,—'न वयं षट्पदार्थवादिनः।' हमलोग षट्-

पदार्थवादी नहीं, अर्थात् सात प्रकारके पदार्थ स्वीकार करते हैं।

अभावको पदार्थसे अलग समझनेपर, 'घट नहीं है' यह प्रतीति और किसीतरह नहीं हो सकती। इसीसे आधुनिक पण्डित अभावको पदार्थ कहते हैं। मीमांसक लोगोंने अभावको अधिकरण स्वरूप माना है।

बौद्धोंका मत दूसरा है। वह अभावको शून्य, आकाश, निरावरण वा निरुपाख्य रूपमें व्यवहार करते हैं। गीताके मतसे जो नहीं, वह कभी है ही नहीं। फिर जो वस्तु है, उसका अभाव कभी नहीं होता। अर्थात् इस समय जो जीवादि रहते, महाप्रलयकाल वह सब परमेश्वरमें लीन हो जाते हैं। पीछे महाप्रलयका अन्त हो जानेपर वह फिर जीवरूपसे प्रकट होते हैं। एवं इस समय जो सब वस्तु स्थूल रूपमें देखी पड़तीं, कालक्रमसे उनका नाश हो जानेपर वह परमाणुरूपमें परिणत होती हैं। इसके बाद फिर वही सब समय विशेषमें स्थूल रूप-धारण करती हैं।

न्यायादिके मतसे अभाव प्रथमतः दो भागोंमें विभक्त हुआ है। यथा—संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। फिर संसर्गाभाव एवं ध्वंसाभाव, प्रागभाव और अत्यन्ताभाव इन तीन भागोंमें इसे विभक्त करते हैं।

सांख्यके मतसे प्रागभाव उत्पत्तिके पूर्वस्थित कारणका सूक्ष्मावस्थाविशेष है। उत्पत्तिको आविर्भाव और ध्वंसको तिरोभाव कहते हैं।

अभाव शब्दसे मरण भी समझा जाता है।

'अभावः स्यादसत्तायामभावो निधनेऽपि च।' (विश्वप्रकाश)

"रिक्थं मृतायाः कन्याया गृह्णीयुः सोदराः स्वयम्।
तदभावे भवेन्मातुस्तदभावे भवेत् पितुः॥" (बौधायन)

(त्रि०) २ अलङ्कारशास्त्रके मतसे, रत्यादि स्थायि-भावशून्य, अनुरागरहित। नास्ति भावः सत्वं यस्य, नञ्-बहुव्री०। ३ मिथ्याभूत। मीमांसक प्रभृति अभाववाले ग्राहकयोग्य विषयकी अनुपलब्धिरूप प्रमाणविशेष समझते हैं।

अभावना (सं० स्त्री०) १ विचारका अभाव, तज-वीज़का न निकलना। २ ध्यानकी शून्यता, मज़-हवी खयालकी ग़फ़लत।

अभावनीय (सं० त्रि०) भू-णिच्-अनीयर्, नञ्-तत्। अचिन्तनीय, अनुत्पादनीय, फ़िक्र न करने क़ाबिल, जिसे सोच न सकें।

अभावपदार्थ (सं० पु०) भावरहित वस्तु, मतलबसे खाली चीज़।

अभावप्रमाण (सं० क्ली०) भावरहित प्रमाण, जिस सुबूतका कुछ ठिकाना न लगे। कोई-कोई न्यायाचार्य कारणके अभावमें भी कार्यको प्रमाणित करते हैं। गौतम अभावप्रमाणको न मानते थे।

अभावयिष्ठ (सं० त्रि०) न समझते हुआ, जिसको खयाल न रहता हो, हवाला न देनेवाला।

अभावसम्पत्ति (सं० स्त्री०) अभावस्य मिथ्याभूतस्य सम्पत्तिः, ६-तत्। मिथ्याभूत पदार्थज्ञान, अध्यास। शुक्तिको देखनेसे जो रजतभ्रम उठता, उसी ही ज्ञानको अभावसम्पत्ति कहते हैं। अध्यास शब्दमें विवरण देखो।

अभावित (सं० त्रि०) भावना न किया गया, जो खयालमें न आया हो।

अभाविन् (सं० त्रि०) न होनेवाला, जो न होता हो।

अभावी, अभाविन् देखो।

अभाषण (सं० क्ली०) अभावे नञ्-तत्। भाषणाभाव, मौनभाव, न बोलनेकी हालत, खमोशी।

अभास (हिं०) आभास देखो।

अभि (सं० अव्य०) न भाति स्वयं शब्दान्तरयोगं विना, बाहुलकात् कि। १ को, तर्यों, तर्फ़, सामने। २ में, भीतर। ३ वास्ते, लिये। ४ से, कारणवश। ५ पर, ऊपर, बाबत। ६ पास, नज़दीक, रूबरू। गणरत्नमें अभिके नौ अर्थ लिखे हैं,—१ पूजा, २ भृशार्थ (अतिशयार्थ), ३ इच्छा, ४ सौम्य (माधुर्य), ५ आभिमुख्य, ६ सौरूप्य (सुरूपता), ७ वचन, ८ आहार, ९ स्वाध्याय। उदाहरण नीचे देते हैं,—

पूजा—'त्वामहमभिवन्दे'—मैं आपकी वन्दना करता हूं। भृशार्थ—'परद्रव्येष्वभिध्यानम्'—परके द्रव्यका अतिशय

अभिनिवेश। इच्छा—'कामोऽभिलाषः'। सौम्य—'अभिजात-वाचि, मधुर सम्भाषिणीमें। आभिमुख्य—'अभ्युपेत्य'—सामने पहुंच कर। वचन—'अभिधत्ते' बताता है। आहार—'अभ्यवहृतः' भक्षित यानी खाया हुआ। स्वाध्याय—'वेदाभ्यासः' वेदका अभ्यास।

वस्तुतः, अभिके बाद जो शब्द आता, उसीका अर्थ झलकता है। अभि उस अर्थका द्योतक मात्र रहेगा।

अपि शब्दकी तरह अभिको भी क्रियाके साथ योग देनेसे उपसर्गसंज्ञा एवं गतिसंज्ञा मिलती है। इस अर्थमें यह भाग-भिन्न लक्षण, इत्थम्भूताख्यान और वीप्सा बतायेगा। लक्षण—'हरिमभिवर्तते' हरिको लक्ष्य लगा रहा है। इत्थम्भूताख्यान—'भक्तो हरिमभि'—भक्त हरिविषयमें भक्तिविशिष्ट होगा। वीप्सा—'देवं देवं अभि-सिञ्चति' सब देवताके मस्तकपर जल चढ़ाता है।

अभिक (सं० त्रि०) अभिकामयते, अभि-कन्। कामुक, मैथुनेच्छाविशिष्ट, जिसको शहवत करनेकी ख़ाहिश पैदा हुयी हो।

अभिकरण (सं० क्ली०) १ प्रभाव, असर। २ मोहिनी, जादू।

अभिकाङ्क्षा (सं० स्त्री०) अभि काङ्क्षते, अभि-काङ्क्ष-भावे अ टाप्। अभिलाष, वाञ्छा, ख़ाहिश, चाह।

अभिकाङ्क्षित (सं० त्रि०) अभि काङ्क्षते स्म, अभिकाङ्क्ष-कर्मणि क्त। अभिलषित, वाञ्छित, लिप्सित, चाहा हुआ, ख़ाहिश किया गया।

अभिकाङ्क्षिन् (सं० त्रि०) अभि-काङ्क्षते, अभि-काङ्क्ष-णिनि। अभिलाषयुक्त, आकाङ्क्षाविशिष्ट, चाहने या ख़ाहिश रखनेवाला, जो आकाङ्क्षा करता हो।

अभिकाम (सं० त्रि०) अभिकामयते, अभि-कम-णिच्-अच्। १ काममान, इच्छुक, ख़ाहिशमन्द, चाहनेवाला। (पु०) भावे घञ्। २ अभिलाष, ख़ाहिश पर। (स्त्री०) अभिकामिकी।

अभिकामिक (सं० त्रि०) इच्छाविशिष्ट, मरज़ीका।

अभिकाल (सं० पु०) रामायणोक्त सुप्राचीन नगरविशेष। (रामायण २।६८।१७)

अभिकृति (सं० स्त्री०) सौ मात्राका छन्दो-विशेष।

अभिकृत्वन् (सं० त्रि०) अभि-कृ-वनिप् तुगागमः। आभिमुख्यकारी, सामने आनेवाला।

अभिकॢप्त (सं० त्रि०) अभि-कॢप्-क्त। सम्पन्न, नियत, सर्वथा प्रकाशित, सम्मुख प्रकाशित, भरापूरा, तैयार, ज़ाहिर, हाज़िर।

अभिक्रतु (सं० पु०) आभिमुख्येन क्रतुः युद्धकर्म यस्याः, बहुव्री०। बलवान्, युद्धकर्म करनेमें समर्थ, गुस्ताख़, गर्म मिज़ाज।

अभिक्रन्द (सं० पु०) जयजयकार, ललकार, ऊंचा शोर, ज़ोरकी आवाज़।

अभिक्रम (सं० पु०) अभि-क्रम भावे घञ् न वृद्धिः। १ आरम्भ, आग़ाज़, इब्तिदा। २ आरोहण, चढ़ाई। ३ आक्रमण, हमला।

अभिक्रमण (सं० क्ली०) निकट आगमन, नज़दीक-की आमद, प्राप्ति, पहुंच।

अभिक्रान्त (सं० त्रि०) १ आगत, प्राप्त, पहुंचा हुआ। २ आक्रमित, हमला किया गया। ३ आरब्ध, जो शुरू हुआ हो।

अभिक्रान्ति (सं० स्त्री०) अभि-क्रम-क्तिन्। अति-क्रम, उपक्रम, आमद, पहुंच।

अभिक्रान्तिन् (सं० स्त्री०) अभिक्रान्तमनेन इष्टादि, इनि। उपक्रमकर्ता, उद्योगकर्ता, चलनेवाला, काम-काजी।

अभिक्रामम् (सं० अव्य०) अभिक्रम आभीक्ष्ण्ये णमुल्। अभिमुख आकर, नज़दीक पहुंचके।

अभिक्रोश (सं० पु०) अभि-क्रुश भावे घञ्। निन्दा, हिक़ारत।

अभिक्रोशक (सं० त्रि०) अभि-क्रुश-ण्वुल्। निन्दक, आक्रोशक, हिक़ारत करनेवाला, जो किसीको बुराई बताता हो।

अभिक्षत्तृ (सं० त्रि०) अभि-क्षद-तृच्। हिंसक, क़ातिल, मार डालनेवाला। (स्त्री०) अभिक्षत्री।

अभिक्षद (सं० त्रि०) अभि-क्षद-अच्। हिंसक, क़ातिल, मार डालनेवाला। (स्त्री) अभिक्षदा।

अभिक्षिपत् (सं० त्रि०) अग्रगमन करते हुआ, जो सबकत ले जा रहा हो, आगे बढ़ जानेवाला।

अभिख्या (सं० स्त्री०) प्रकर्षेण कथ्यन्ते आह्वयतेऽनया; अभि-ख्या प्रकथने अङ्, आलोपः टाप् च। १ दृश्य, नज़ारा। २ चमत्कार, झलझलाहट। ३ शोभा, खूबसूरती। ४ कीर्ति, नाम, माहात्म्य, शोहरत, नामवरी। ५ अपकीर्ति, बदनामी। ६ कथन, बात। 'अभिख्या तु शोभायाम्। कीर्त्तिसंज्ञयोः' (हेम) ७ आह्वान, सम्बोधन, पुकार, बुलावा। ८ प्रज्ञा, अक्लमन्दी।

अभिख्यात (सं० त्रि०) प्रसिद्ध, मशहूर, जिसको लोग जान गये हों।

अभिख्यातृ (सं० त्रि०) अभिख्याति, अभि-ख्या-तृच्। १ वक्ता, बोलनेवाला। २ गमनकर्ता, चलनेवाला। ३ द्रष्टा, देखनेवाला। (स्त्री०) ङीप्, अभिख्यात्री।

अभिख्यान (सं० क्ली०) कीर्ति, यश, नाम, शोहरत।

अभिगच्छत् (सं० त्रि०) गमन करते हुआ, पहुंचनेवाला, जो नज़दीक जा रहा हो।

अभिगत (सं० त्रि०) अभि-गम-क्त। आनुकूल्यप्राप्त, सेवित, अभिमुखगत, पास पहुंचा हुआ, जो सामने चला गया हो।

अभिगन्तव्य (सं० त्रि०) अभि-गम-तव्य। अभिगम्य, नज़दीक पहुंचने क़ाबिल, सेवा किया जानेवाला।

अभिगन्तृ (सं० त्रि०) अभि-गम-तृच्। १ अभिगमनकर्ता, जो पास पहुंच रहा हो। २ प्रज्ञ, समझदार। ३ युद्ध निमित्त अभिमुख जानेवाला, जो लड़नेके लिये आगे बढ़ रहा हो। (स्त्री०) अभिगन्त्री।

अभिगम (सं० पु०) अभि-गम-घञ्। १ आभिमुख्य गमन, आनुकूल्यहेतु गमन, पहुंच, मुलाक़ात। २ स्त्रीसङ्ग, हमबिस्तरी।

अभिगमन (सं० क्ली०) अभि-गम-ल्युट्। १ अभिगम। २ रामानुज वैष्णवोंके मतानुसार भगवान्‌की पांच प्रकार उपासनामें एक उपासना विशेषको भी अभिगमन कहते हैं। पांच प्रकारको उपासना यह है—१ अभिगमन, २ उपादान, ३ ईज्या, ४ स्वाध्याय, ५ योग। देवालय और देवप्रतिमाके साफ़ करने और सुसज्जितादि रखनेको भी अभिगमन कहते हैं।

अभिगम्य (सं० त्रि०) आभिमुख्येन गन्तुं शक्यम्, अभि-गम शक्यार्थे यत्। अभिमुख जाने योग्य, जिसके सामने पहुंच सकें। २ निमन्त्रणदाता, न्योता देनेवाला।

अभिगर (सं० पु०) अभि-गॄ स्तुतौ अप्। १ प्रशंसाका स्तव, तारीफ़का गीत। २ प्रशंसा, तारीफ़।

अभिगर्जन (सं० क्ली०) भीषण चीत्कार, शोरोगुल।

अभिगर्जित, अभिगर्जन देखो।

अभिगामिन् (सं० त्रि०) अभिगच्छति, अभि-गम-णिनि। अभिगमनकर्ता, स्त्रीसंसर्ग सटानेवाला, जो औरतसे हमबिस्तरी रखता हो।

अभिगामी, अभिगामिन् देखो।

अभिगीत (सं० त्रि) अभि गीयते स्म, अभि-गै-क्त। आनुकूल्यके निमित्त स्तुत, समीपस्तुत, मुलाक़ातके लिये गाकर जिसकी तारीफ़ की गयी हो।

अभिगुप्त (सं० त्रि०) अभिरक्षित, गुप्त, हिफ़ाज़त किया गया, छिपा हुआ।

अभिगुप्ति (सं० स्त्री०) अभि-गुप रक्षणे क्तिन्। अभिरक्षण, निगहबानी।

अभिगूर्ण (सं० त्रि०) अभि-गुर्-क्त। उक्त, अभ्युद्यत, कहा गया, जो ज़ाहिर रहा चुका हो।

अभिगूर्त (वै० त्रि०) अभि-गुर्-क्त, वेदे नत्वाभावः। उद्यत, कथित, राज़ी, तैयार, कहा हुआ।

अभिगूर्ति (सं० स्त्री०) अभि-गुर-क्तिन्। सङ्कल्प, उद्यम, इरादा, तजवीज़।

अभिगृहीत (सं० त्रि०) पकड़ा हुआ, जो बांध लिया गया हो।

अभिगृहीतपाणि (सं० त्रि०) आनुकूल्यार्थं गृहीतः पाणिः हस्तो येन, बहुव्री०। जो आनुकूल्य पानेके लिये कृताञ्जलि हुआ हो, दस्तबस्ता, हाथ जोड़नेवाला।

अभिगेष्णु (सं० त्रि०) अभि-गै-इष्णुच्। समीपका गायक, खासा गानेवाला, जिस शख़्सका गाना अच्छा लगे।

अभिगोप्तृ (सं० त्रि०) अभि सर्वतोभावेन गोपयति, अभि-गुप-तृच्। सकल प्रकार रक्षक, हरतरह निग-

हवाली रखनेवाला, जो भली भांति हिफ़ाज़त करता हो।

अभिग्रस्त (सं० त्रि०) अभि-ग्रस्-क्त। आक्रान्त, कवलीकृत, अभिपन्न, हमला मारा हुआ, जीता गया, जिसको दुश्मनने दबा लिया हो।

अभिग्रह (सं० पु०) अभि-ग्रह-अप्। आक्रमण, युद्ध, हमला, लड़ाई। २ आभिमुख्यका उद्यम, मुक़ाबिला, बदाबदा। ३ प्रकाश्य हरण, लूट-मार, डाका। ४ गौरव, अधिकार हुकूमत, इज़्ज़त। ५ अभियोग, नालिश, मुक़द्दमा, बखेड़ा।

'अभिग्राहोऽभियोगोऽभिग्रहो गौरवेऽपि च।' (विश्व)

अभिग्रहण (सं० क्लो०) अभि-ग्रह-ल्युट्। अभिग्रह देखो।

अभिघट (सं० पु०) वाद्यविशेष, खास क़िस्मका बाजा। इसका चलन पूर्वकालमें बहुत रहा। आकारमें इसे घड़े-जैसा रखते और मुंहपर चमड़ा मढ़ देते थे।

अभिघर्षण (सं० क्लो०) अभि-घृष भावे ल्युट्। परस्पर घर्षण, दो पदार्थका परस्पर मर्दन, मालिश, रगड़।

अभिघात (सं० पु०) अभि-हन् भावे घञ्। १ निःशेष-रूपका हनन, समूल नाश, ताड़न, गहरी मार, मटियामेट। २ दण्डादि द्वारा आघात, शस्त्रमुष्टिलगुड़ादिका हनन, चोट। ३ वेदका सुतीक्ष्ण उच्चारण। अभिऽन्यतेऽस्मै फलाय उद्दिश्यार्थे बाहुलकात् घञ्। ४ दो वस्तुका परस्पर संयोग, जिस घातमें शब्द निकले, गहरी रगड़। ५ आगन्तु ज्वर-लक्षण, आनेवाले बुखारके आसार। ६ किसी वर्गके चतुर्थका प्रथम एवं तृतीय, द्वितीयका प्रथम और तृतीयका द्वितीय अक्षरसे योग।

"अभिघातं स्यात् पूर्वं वेदद्विव्याब्धिवर्णायें तु।
नगवर्गाणां परतो धरणीचन्द्रविरामाख्याः॥" (केरल)

अभिघातक (सं० त्रि०) अभिहन्ति, अभि-हन्-ण्वुल्। शत्रु, रिपु, अभिघातसंयोगकारक, समूलनाशक, पीछे हटानेवाला, जो अलग कर रहा हो, दुश्मन।

अभिघातज्वर (सं० पु०) आघातजन्य आगन्तुकज्वर, चोटके सबब आनेवाला बुखार। यथा,—

"तत्राभिघातजो वायुः प्रायो रक्तं प्रदूष्य च।
सव्यथाशोफवैवर्ण्यं करोति सरुजं ज्वरम्॥" (चरक)

अभिघाति (सं० पु०) अभिघातयति, अभि-हन् स्वार्थे णिच्-इनि। रिपु, शत्रु, दुश्मन, अदू।

अभिघातिन् (सं० त्रि०) अभिहन्ति, अभि-हन्-णिनि। शत्रु, नाशक, मारनेवाला, जो चोट पहुंचा रहा हो।

अभिघार (सं० पु०) अभिघार्यते अभितोऽग्नौ सिच्यते, अभि-घृ सेचने स्वार्थे णिच् भावे घञ्। १ घृताहुति, घीका होम। २ घृतसंस्कार विशेष, घीको बघार। कर्मणि घञ्। ३ सिच्यमान घृत, जिस घीसे होम लगे।

अभिघारण (सं० क्लो०) अभितो घारणं जलादिभिः विधिना सेचनम्. अभि-घृ-णिच् भावे ल्युट्। घृतादि संस्कारविशेष, घी वग़ैरहको छिड़काई।

अभिघारित (सं० त्रि०) छिड़का हुआ, डाला गया।

अभिघार्य (सं० त्रि०) छिड़का जानेवाला, जो छिड़कने क़ाबिल हो।

अभिचक्षण (सं०-पु० स्त्री०) १ अतिविचक्षण, कार्य-कुशल, निहायत होशियार, अच्छा काम करनेवाला। २ चैतन्य, रक्षाका उपाय, होशियारी, बचावका ज़रिया। ३ मन्त्रका औषध, जादूकी दवा। (स्त्री०) अभिचक्षणा।

अभिचक्ष्य (सं० त्रि०) प्रत्येक स्थानमें प्रशंसित, जिसका तजकिरा हर जगह आये।

अभिचर (सं० त्रि०) अभितः आज्ञापालनार्थं सम्मुखे चरति, अभि-चर-अच्। भृत्य, सम्मुखागत, नौकर, हाज़िरबाश। (स्त्री०) अभिचरी।

अभिचरण (सं० क्लो०) अभि-चर-ल्युट्। शत्रु-मरणके निमित्त विहित श्येनयागादि, मारणादि क्रिया।

अभिचरणीय (सं० त्रि०) अभिचरणमर्हति, अभि-चर-छ। जिसको मारनेके लिये अभिचार चलाना आवश्यक आये, मारणयोग्य।

अभिचरत् (सं० त्रि०) शत्रुके मारनेको मारणादि क्रिया करते हुआ, जो दुश्मनको मार डालनेके लिये जादू चला रहा हो।

अभिचरितु (वै० स्त्री०) मारणादि क्रिया, अफ़सून, जादू।

अभिचार (सं० पु०) अभि आभिमुख्येन विश्वाद्युत्-

पादनार्थे चार आचरणं। अभि-चर-भावे घञ्। हिंसा, हनन। पहले अथर्ववेदोक्त मारण उच्चाटन आदि अभिचार एवं मूल कर्म प्रभृति नाना प्रकारकी क्रिया सम्पन्न की जाती थी।

तन्त्रमें छः प्रकारके अभिचारका उल्लेख है। यथा—१ मारण, २ मोहन, ३ स्तम्भन, ४ विद्वेषण, ५ उच्चाटन, ६ वशीकरण। १ मारण—क्रियादिद्वारा किसीका प्राणनाश करना। २ मोहन—किसीके मनको मोह लेना। पहले राजसभा आदि स्थानोंमें जाते समय कोई-कोई मनुष्य इसी क्रियाका अनुष्ठान करते थे। पहले लोगोंको ऐसा विश्वास था, कि मालिक उससे मुग्ध होकर उनपर प्रसन्न होंगे। ३ स्तम्भन—मन्त्रद्वारा अस्त्र, अग्नि आदिकी शक्तिका नाश करना। पहले लोगोंको विश्वास था, कि ऐसे मन्त्र और औषध आदि वर्तमान रहे, जिनसे शरीरमें अस्त्रका घाव न लग सकता और आग डालनेसे भी जल न सकती थी। ४ विद्वेषण—दो मनुष्योंमें अधिक प्रीति रहते विशेष क्रियादि द्वारा उनके मनमें भेद डाल विरोध खड़ा कर देना। ५ उच्चाटन—मनको चञ्चल या उन्मत्त बनाना। ६ वशीकरण—किसी स्त्री आदिको वशीभूत कर लेना।

१ मारण—पहले अनेक प्रकारसे मारण किया जाता था। अब भी कहीं-कहीं यह काम होता है। तन्त्रसारके मतसे मारणक्रिया इस तरह सम्पन्न की जाती है—

पहले नियमके अनुसार देवीकी पूजा होम आदि करना चाहिये। उसके बाद जिस शत्रुको मारना हो, उसका नाम लेकर खड्ग अभिमन्त्रित करना आवश्यक है। ओम् विरुद्धे रूपिणि चण्डिके वैरिणममुकं देहि देहि स्वाहा। फिर एक बकरा ले—छागादिकममुकोसि। इस तरह शत्रुका नाम निकाल अभिमन्त्रित करना चाहिये। यह प्रकरण समाप्त हो जानेपर बकरेके मुंहपर तीन जगह लाल सूत बांध शत्रुका नाम ले प्राणप्रतिष्ठा करना पड़ता है। उसका मन्त्र यह है,—

ओम् अयं स वैरी यो द्वेष्टि तमिमं पशुरूपिणं।
विनाशय महादेवि स्फें स्फें खादय खादय॥

यों मन्त्र पढ़ बकरेके शिरपर फूल चढ़ा उसकी पूजा करना और बलिमन्त्र पढ़ना चाहिये। फिर यह मन्त्र पढ़कर बलिको उत्सर्ग करना पड़ता है,—अद्याश्विने मासि महानवम्यां अमुकगोत्रोऽमुकदेवशर्मा अमुकशत्रुनाशाय इमं छागं अमुक दैवतं भगवत्यै दुर्गायै तुभ्यमहं सम्प्रददे। उसके बाद, ओं क्रूं फट्—यह मन्त्र पढ़कर बलिको काट डालना चाहिये। एतद्रुधिरं दुर्गायै नमः,—यह कर रक्त और मस्तक देते हैं। अन्तमें मूलमन्त्र पढ़ अष्टाङ्गके मांससे होम करनेपर उसी क्षण शत्रुका प्राण नष्ट हो जाता है।

तान्त्रिक लोग अब भी मारणादि अभिचार करते हैं। कहते हैं, कि शतभिषा नक्षत्रकी अधीरातके समय जलमें डुब्बी मार और शत्रुका नाम लेकर सरौतेसे एक ही बार एक सुपारी काट डालनेपर शत्रुका प्राण नष्ट हो जाता है। हमने वृद्ध लोगोंसे सुना है, पहले जो मारणादि अभिचार क्रिया करते, उन लोगोंको राजा और ज़मीन्दार दण्ड देते थे।

२ मोहन—तान्त्रिक होम, मन्त्र और औषधादिद्वारा लोगोंको मुग्ध कर लेते हैं। कहते, सधवा स्त्रीका चिताभस्म, सुरत और अगुरु-चन्दन एकसाथ मिलाकर बायें हाथकी प्रदेशिनी वा कनिष्ठा अङ्गुलीसे कपालमें बिन्दी लगा देनेपर उसे देख सभी मुग्ध हो जाते हैं।

३ स्तम्भन—पूर्वकाल तान्त्रिक लोग नानाप्रकारकी चतुराईसे किसीका वाक्स्तम्भन, किसीका हस्तादि स्तम्भन, शत्रुकी सेनाका आगमन स्तम्भन आदि अभिचार करते थे। अग्निस्तम्भनकी प्रक्रिया इस तरह प्रसिद्ध है,—बेलका आटा और जोंक दोनोंको एकसाथ पीसकर हाथमें लगा लेनेसे अग्निस्तम्भन होता है। तान्त्रिकोंके मतसे शीतकालमें स्तम्भन अभिचार करना श्रेष्ठ है।

४ विद्वेषण—यह क्रिया ग्रीष्मकालमें पूर्णिमा तिथिको दोपहरके समय की जाती है। जिन लोगोंमें विद्वेष उत्पन्न करना हो, भैंसका गोबर और घोड़ेकी लीद गोमूत्रमें मिलाकर उसीसे उन लोगोंका नाम लिखनेपर शीघ्र ही विरोध उठ खड़ा होता है।

५ उच्चाटन—तन्त्रके मतसे कृष्णपक्षकी चतुर्दशी वा अष्टमीको जब शनिवार पड़ता, तब यह क्रिया की जाती है। इस अभिचारक्रियाकी देवता दुर्गा हैं। बालका धागा बनाकर घोड़ेके दांतकी माला पिरोती हैं। फिर दुर्गाकी पूजा आदि करके जिसके नामसे यह माला जपेगी, शीघ्र ही उसका मन उच्चाट हो जायगा।

६ वशीकरण—तान्त्रिक लोग स्त्री प्रभृतिको वशीभूत करनेके लिये नानाप्रकार औषध प्रयोग करते हैं। कोई-कोई स्त्री भी पुरुषको वशीभूत करनेके लिये ताम्बूलादिमें औषध खिला देती है। इस कुक्रिया द्वारा कितनी ही बाद विघ्न उठ खड़ा हुआ हैं। कहते हैं, कि पानके साथ ब्रह्मदण्डी, वच, केऊ, प्रियङ्गु और नागकेशर खिला देनेसे स्त्री वशीभूत हो जाती है। श्वेत अपराजिताकी जड़ और गोरोचन दोनोंको एकसाथ पीस जिसे वशीभूत करना हो, सौ बार उसका नाम निकाल कपालमें विन्दु वा तिलक लगा लेना चाहिये; इससे राजा, प्रभु, स्त्री, शत्रु, आदि सभी वशीभूत हो जाते हैं।

अभिचारक (सं० त्रि०) मारणादि क्रिया करनेवाला, जो जादू वगैरह चलाता हो। (स्त्री०) अभिचारिका।

अभिचारकल्प (सं० पु०) अभिचारस्य साधनं कल्पः, मध्यपदलोपी ६-तत्। अथर्ववेदके अन्तर्गत ग्रन्थविशेष। इसमें अभिचार क्रियाका विवरण बताया है।

अभिचारणीय (सं० त्रि०) मारणादि क्रिया किये जाने योग्य, जिसपर जादू चलाया जाये।

अभिचारिन् (सं० त्रि०) अभिचरति, अभि-चर-णिनि। अभिचारकर्ता, श्येनयाग लगानेवाला, जादूगर। (स्त्री०) ङीप्, अभिचारिणी।

अभिचारित (सं० त्रि०) मारणादि क्रिया किया हुआ, जिसपर जादू चल चुके।

अभिचारी, अभिचारिन् देखो।

अभिचार्य, अभिचारणीय देखो।

अभिचैद्य—शिशुपालका दूसरा नाम।

अभिच्छाय (सं० त्रि०) अभिगतं छायाम् अतिक्रा०-तत्। १ छायाग्राम, जिसपर साया पड़े। अभिमुखीभूता छाया यस्य, बहुव्री०। २ जिसके सम्मुख छाया आये, जिसके सामने साया दौड़े। (अव्य०) छायाया अभिमुखम्, अव्ययी०। ३ छायाभिमुख्य, छायाको सम्मुख रखकर, छायाकी दिक्, सायेमें, छांहकी ओर।

अभिज (सं० त्रि०) चतुर्दिक् उत्पन्न, जो चारो ओर पैदा हुआ हो।

अभिजन (सं० पु०) अभिजायते अस्मिन्, अभि-जन अधिकरणे घञ् न वृद्धिः। अभिजनश्च। पा ४।३।९०। १ कुल, ख़ान्दान, ज़ात। अभिमतो जनः प्राधान्यात्, प्रादिस०। २ कुलश्रेष्ठ, वंशशिरोमणि, अपने ख़ान्दानका बड़ा आदमी। ३ अभिमत-उत्पत्ति, अच्छी औलाद। ४ पूर्वबान्धव, बुज़ुर्ग। ५ पूर्वबान्धव-सम्बन्धीय देश, बुज़ुर्गोंका मुल्क। ६ पूर्वपुरुषोंका वासस्थान, बुज़ुर्गोंके रहनेकी जगह। ७ प्रख्याति, प्रसिद्धि, शोहरत, नामवरी।

अभिजनवत् (सं० त्रि०) उच्च अथवा उत्तम कुलका, जो शरीफ़ ख़ान्दानसे तअल्लुक़ रखता हो।

अभिजनितु (वै० स्त्री०) जन्म लेने या पैदा होनेवाली।

अभिजय (सं० पु०) विजय, जीत, फ़तेह।

अभिजात (सं० त्रि०) अभिमतं जातं जन्म यस्य, बहुव्री०। कुलीन, ख़ान्दानी। २ पण्डित, बुध, अज्ञ-मन्द, पढ़ालिखा। ३ न्याय्य, श्रेष्ठ, क़ाबिल, बड़ा। ४ मनोहर, दिलकश। ५ मधुर, मीठा। 'अभिजातवाचि।' (कुमार ३।४५) (क्ली०) ६ आभिजात्य, कौलीन्य।

अभिजातता (सं० स्त्री०) कुलीनता, शराफ़त, आलीख़ान्दानी।

अभिजाति (सं० स्त्री०) अभि अभिमता जाति र्जननम्, प्रादिस०। प्रशस्त वंशका जन्म, आलीख़ान्दानकी पैदायश। (त्रि०) अभिमता जातिः जन्म यस्य, बहुव्री०। २ उत्कृष्टजन्मा, सार्थकजन्मा।

अभिजिघ्रण (सं० क्ली०) नाकसे किसीका माथा सूंघना या छूना।

अभिजित् (सं० त्रि०) आभिमुख्येन जयति शत्रून्। अभि-जि-क्विप् तुगागमः। सम्मुख होकर शत्रुको जीतनेवाला। अभितो जयत्यनेन करणे क्विप्। सब ओर जय करना। अभिजयति जङ्घाः स्थित्वा अप-

रागि नक्षत्राणि कर्तरि क्विप्। नक्षत्रविशेष। यह दो मिले हुए तारेसे बना और देखनेमें सिंघाड़े जैसा होता है। ब्रह्मा इसके अधिपति हैं। उत्तराषाढ़ा नक्षत्रके शेष १५ दण्ड और श्रवणा नक्षत्रके प्रथम ४ दण्ड, इन १९ दण्डोंमें अभिजित् नक्षत्र पड़ता है। अभिजित् नक्षत्रमें जन्म लेनेसे मनुष्य सुन्दर और सज्जन होगा।

आभिमुख्येन पश्चिमावस्थितां छायां जयति प्राग्दिग्गामिनीं करोति वा, अभि-जि-क्विप्। २ पश्चिम दिशाकी छायाके पूर्वदिशामें लौट जानेका समय, दिनका आठवां मुहूर्त, कुतुप काल।

"अपराह्णे तु सम्प्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये।
यदत्र दीयते जन्तोस्तदक्षयमुदाहृतम्॥" मत्स्यपुराण

अभिजित् एवं रौहिण रूप गौण अपराह्ण प्राप्त होते समय जन्तु अर्थात् पिताके उद्देश्यसे जो दिया जाता है, उसका नाश कभी नहीं होता। "अभिजिदष्टमघटिका रौहिणं नवम घटिका।" (स्मार्त) ३ यात्रा करनेका लग्नविशेष। ४ पचीस दिन अधिक पांच मास। ५ पचीस दिन अधिक पांच मासमें करने योग्य अतिरात्र यागादि। ६ यदुवंशीय भव वा चन्दनोदकदुन्दुभिके पुत्र। (विष्णुपुराण)

अभिजित (सं० पु०) अभिजीयात् अन्यान्, अभि-जि संज्ञायां क्त। अर्धरात्र सम्बन्धी मुहूर्त।

अभिजिति (सं० स्त्री०) अभि-जि भावे क्तिन्। अभिजय, सर्वप्रकार जय, जीत, फतेह।

अभिज्ञ (सं० त्रि०) अभिजानाति, अभि-ज्ञा-क। १ निपुण, होशियार। २ बुद्धिमान्, जानकार।

अभिज्ञा (सं० स्त्री०) अभि-ज्ञा-अङ्-टाप्। १ प्रथमोत्पन्न ज्ञान, जो समझ पहले ही आ जाती हो। २ स्मृति, याद। पहले देख-सुनकर मनमें जो दृढ़ संस्कार उपजता, उसे अभिज्ञा कहते हैं।

अभिज्ञात (सं० वि०) अभि-ज्ञायते स्म, अभि-ज्ञा कर्मणि क्त। १ पूर्वपरिचित, प्रतीत, ध्रुत, पहलेसे जाना हुआ।

अभिज्ञातार्थ (सं० पु०) निग्रहस्थानविशेष, बहसमें रुक जानेकी खास जगह। वादीके वेफायदा बकने और समझमें न आनेवाली बात कहनेसे अभिज्ञातार्थ पड़ता है।

अभिज्ञान (सं० क्ली०) अभिज्ञायते ज्ञातुं शक्यते अनेन, अभि-ज्ञा करणे ल्युट्। १ चिह्न, निशान्, जिस चिह्नको देख-सुनकर पूर्वविषय स्मरण आ जाये। भावे ल्युट्। २ निश्चय ज्ञान, तहकीक, जो बात ठीक तौरपर मालूम हो। ३ स्मृति, याद। ४ ज्ञान, इल्म।

अभिज्ञानपत्र (सं० क्ली०) सनद, सरटीफ़िकेट।

अभिज्ञानशकुन्तल (सं० क्ली०) अभिज्ञानं अङ्गुरीयदर्शनेन पूर्वविवरणस्मरणं शकुन्तलाया यत्र, बहुव्री०, गौणे ह्रस्वः। १ विश्वामित्रके औरस और मेनकाके गर्भसे उत्पन्न हुयी कन्या। २ संस्कृतभाषाका नाटक विशेष। अभिज्ञानशकुन्तल संस्कृत-भाषामें सर्वोत्कृष्ट नाटक है। राजा विक्रमादित्यके सभासद कालिदासने इसे बनाया था।

पूर्वकालमें राजर्षि विश्वामित्र कठिन तपस्या करने लगे। तपमें विघ्न डालनेके लिये देवराज इन्द्रने मेनकाको भेजा था। उसी समय विश्वामित्रके औरस और मेनकाके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई। कन्याको वनमें ही छोड़कर मेनका स्वर्ग चली गई थीं। कई शकुन्तों (पक्षियों)के पंखसे ढांक रक्षा करने कारण कन्याका नाम शकुन्तला हुआ। उसके बाद कण्व मुनि इस कन्याका लालन पालन करते रहे। क्रमसे शकुन्तलाका यौवनकाल उपस्थित हुआ। महर्षि कण्व आश्रममें न रहे, सोमतीर्थ गये थे। उसी समय दुष्मन्त राजाने आश्रममें पहुंच शकुन्तलाके साथ गान्धर्व विवाह कर लिया।

दुष्मन्त महाराज-चक्रवर्ती रहे, अन्तःपुरमें असंख्य राजमहिषी विद्यमान थीं। आखेट करने जाते भी, उनके साथ पुष्पमालाभूषित यवनकन्या ही लेते रही। तपोवनमें आकर वल्कलधारिणी ऋषिकन्याके साथ वह चुपचाप विवाह कर गये। अतएव राजधानीको लौट जानेपर शकुन्तला उन्हें कितने दिन याद रहती! पीछे भूल न जाने और याद रखनेके लिये ही उन्होंने अपनी अंगूठी उतार कर शकुन्तलाको दे दी थी।

महाराज अपनी राजधानी वापस गये, इधर शकुन्तला एक मनसे अपने प्राणपतिकी चिन्ता करने लगीं। दुष्यन्तकी चिन्तामें वह ऐसी लीन हो गयी थीं, कि बाहरका ध्यान उन्हें कुछ भी न रहा। वैसे ही समय अतिथि होनेके लिये दुर्वासा द्वारपर आ खड़े हुए। शकुन्तलाने उनकी अभ्यर्थना न की थी। उससे क्रुद्ध होकर दुर्वासाने शाप दिया,—"तुम जिसकी चिन्तामें लीन हो, वह तुम्हें भूल जायगा।" इसी अभिशापसे शकुन्तलाके हाथकी अंगूठी शचीतीर्थमें गिर पड़ी थी। कुछ दिनों बाद जब महाराजने वह अंगूठी पायी, तब शकुन्तलाको पहंचान सके।

अंगूठी द्वारा अभिज्ञान अर्थात् शकुन्तलाका स्मरण होनेपर बहुव्रीहि समाससे 'अभिज्ञानशकुन्तल' रूप-सिद्धि हुई है। इसी आख्यायिकाको अवलम्बनकर कालिदासने जो पुस्तक लिखी, उसका नाम भी 'अभिज्ञानशकुन्तल' है।

साधारण व्यवहारानुसार यह नाटक सात अङ्कोंमें समाप्त हुआ है। इनमें एक शुद्ध विष्कम्भक, एक विष्कम्भक, और एक प्रवेशक है। इस नाटकके प्रधान चरित्र शकुन्तला और दुष्यन्त राजा हैं। मूल आख्यायिका महाभारतसे ली गई है। किन्तु महाभारतकी शकुन्तला और कालिदासकी शकुन्तलामें बहुत प्रभेद है। कालिदासने शकुन्तलाके नामपर पुस्तकका नाम रखा है सही, परन्तु विचार कर देखनेसे इसे नायक-प्रधान नाटक कहना चाहिये। इसकी कथा प्रधानतः तीन अंशोंमें विभक्त है—१ शकुन्तलाका विवाह, २ शकुन्तलाका प्रस्थान और ३ दुष्यन्तके साथ शकुन्तलाका पुनर्मिलन। नाटकका चौथा अङ्क अतिशय उत्कृष्ट है। इसके अतिरिक्त आख्यायिकामें आदिसे अन्ततक मनुष्यचरित उत्तम रूपसे चित्रित हुआ है। युरोपमें भी सब लोग इस पुस्तकका आदर किया करते हैं। दुष्यन्त-जैसे धार्मिक और प्रवीण राजाका चरित्र कालिदासने खूब लिखा है, पुस्तकमें कहीं कोई दोष नहीं देख पड़ता।

अभिज्ञापक (सं० त्रि०) बतानेवाला, जो खबर पहुंचाता हो।

अभिज्ञाय (वै० त्रि०) अभितः सम्मुखे जानुनी अस्य, प्रादि-बहुव्री०। १ सामने घुटने रखकर बैठनेवाला, जो बैठनेमें घुटने सामने रखता हो। (अव्य०) २ घुटनोंके बल, घुटनों तक।

अभिज्ञु (सं० त्रि०) सामने घुटने रखकर बैठनेवाला।

अभिडीन (सं० क्ली०) उड़ान, किसीकी ओरको उड़ जाना।

अभितप्त (सं० त्रि०) १ झुलसा हुआ, जो जल गया हो। २ दुःखी, रञ्जीदह।

अभितराम् (सं० अव्य०) अभि प्रकर्षे तरप् आम्। अतिशय आभिमुख्य, शनैः शनैः आभिमुख्य, अत्यन्त सम्मुखीन होकर, अल्प-अल्प सम्मुखीन बनके, ज्यादा नज़दीक, बिलकुल सामने।

अभितस् (सं० अव्य०) अभि-तसिल्। १ ओर, तर्फ़। २ सामीप्य, नज़दीक, पास, क़रीब, बगलमें। ३ उभयतः, दोनो ओरसे। ४ उभयार्थ, आगे-पीछे। ५ साकल्य, सब ओर, इधर-उधर। ६ शीघ्र, जल्द, तेज़ीसे।

अभिताड़ित (सं० त्रि०) मारा, पीटा या चोट पहुंचाया हुआ, जो ठोंका जा चुका हो।

अभिताप (सं० पु०) अभि-तप-घञ्। १ अतिशय सन्ताप, हदसे ज्यादा गरमी। २ संक्षोभ, उद्वेग, उपप्लव, आकुलत्व, बेचैनी, बेकली, इज़्तिराब, घबराहट। ३ सर्वाङ्गताप, सारे जिस्मकी जलन। ४ अन्तर्ज्वर, आंतका बुखार।

अभिताम्र (सं० पु०) अभि-तम औणादिक रक्दीर्घश्च। १ अतिशय ताम्र, अत्यन्त ताम्रवर्ण, गहरा लाल रङ्ग, जो रङ्ग निहायत सुर्ख़ हो। (त्रि०) २ अतिशय ताम्रवर्णविशिष्ट, गहरा लाल, निहायत सुर्ख़।

अभितिग्मरश्मि (सं० अव्य०) सूर्यकी ओर, आफ़ताबकी तर्फ़।

अभितृप्त (सं० त्रि०) अतितृप्त, परिपूर्णकाम, पर्याप्तकाम, सन्तर्पित, संपरिपूर्ण, आसूदा, छका हुआ, जो पेट भर चुका हो।

अभितोभाव (सं० पु०) उभयपक्षपर रहनेकी अवस्था, जिस हालतमें दोनो तर्फ़ झुकें।

अभितोमुख (सं॰ त्रि॰) अभितो मुखमस्य, बहुव्री॰। सकल दिक्को मुख रखनेवाला, जिसका मुंह चारो ओरको रहे।

अभितोरात्रम् (सं॰ अव्य॰) रात्रिके निकट, पास, अथवा अन्तमें, जिस वक्त रात शुरू या खतम हुयी हो।

अभितोऽस्थि (सं॰ त्रि॰) अस्थिसे परिवेष्टित, हड्डीसे घिरा हुआ।

अभित्ति (सं॰ स्त्री॰) अखण्डता, टुकड़े-टुकड़े न होनेकी हालत।

अभिदक्षिण (सं॰ अव्य॰) दक्षिण ओर, दाहने।

अभिदधत् (सं॰ त्रि॰) व्याख्या करते हुआ, जो बयान् कर रहा हो।

अभिदर्शन (सं॰ क्ली॰) आभिमुख्येन दर्शनम्, अभि दृश् भावे ल्युट्। १ आभिमुख्यका दर्शन, सामनेकी मुलाक़ात।

अभिदष्ट (सं॰ त्रि॰) चर्वित, भंभोड़ा हुआ, जो दांतसे काटा गया हो।

अभिदापन (सं॰ क्ली) मर्दन, पादाघात, पादाक्रमण, प्रमथन, पायमाली, ठोकर, पैरके नीचेका कुचलना।

अभिदिग्ध (सं॰ त्रि॰) लिप्त, अक्त, विषदिग्ध, ज़हरसे आलूदा।

अभिदिप्सु, अभिधिप्सु (वै॰ त्रि॰) अभि-दम्भ-सन-उ वैदिके न दस्य धः, लौकिके तु दस्य ध एव। अभिभवन की इच्छासे युक्त, पराभव चाहनेवाला, जो धोका देनेकी ख्वाहिश रखता हो, धोकेबाज, दुश्मनीसे भरा हुआ।

अभिदिष्ट (सं॰ त्रि॰) सङ्केत किया गया, जिसपर इशारा हो चुके, बताया हुआ।

अभिदुष्ट (सं॰ त्रि॰) भ्रष्ट, दूषित, कलङ्कित, अपवित्र, बिगड़ा हुआ, ऐबदार, मैला, नापाक।

अभिदूति (सं॰ अव्य॰) दूतीकी ओर, जनाना हरकारेकी तर्फ़।

अभिदूषित (सं॰ त्रि॰) आहत, ज़खमी, चोट खाये हुआ।

अभिद्यु (सं॰ त्रि॰) १ आकाशकी ओर दृष्टि लगाये हुआ, जो आसमानकी तर्फ़ भिस्त बांधे हो। (पु॰) २ अर्धमास, पक्ष, आधा महीना।

अभिद्रव (सं॰ पु॰) अभि-द्रु-अप्। वेगका गमन, ज़ोरकी चाल।

अभिद्रवण (सं॰ क्ली॰) अभि-द्रु-ल्युट्। अभिद्रव देखो।

अभिद्रा (सं॰ स्त्री॰) अभि-द्रा-अङ्। १ पलायन, भागाभागी। २ अभिध्यारूप स्मृति, लालचकी याद-दाश्त।

अभिद्रुक्, अभिद्रुह् देखो।

अभिद्रुग्ध (सं॰ त्रि॰) आहत, आक्रान्त, ज़खमी, सताया हुआ।

अभिद्रुत (सं॰ त्रि॰) आक्रान्त, पलायमान, हमला किया गया, जो भागा हुआ हो।

अभिद्रुत्य (सं॰ अव्य॰) आक्रमण करके, हमला-मारकर।

अभिद्रुह् (सं॰ त्रि॰) अभि द्रुह्यति, अभि-द्रुह-क्विप्। अपकारक, चोट पहुंचानेवाला, धोकेबाज, जो दुश्मनी रखता हो।

अभिद्रुह्यमाण (सं॰ त्रि॰) आहत अथवा पीड़ित किया जाते हुआ, जो मारा या सताया जा रहा हो।

अभिद्रोह (सं॰ पु॰) अभि-द्रुह-घञ्। आक्रोश, अनिष्टचिन्तन, अपकार, सदमेका पहुंचाना, चोटका देना, जुल्म, बेरहमी।

अभिधर्म (सं॰ पु॰) बौद्धमतानुसार—ध्रुव सत्य, सिद्धान्त, जिस सचाईमें कोई फरक न पड़े, अकीदा, वसूल। प्राचीन बौद्धशास्त्र त्रिपिटकमें सूत्र, विनय और अभिधर्म प्रसिद्ध है। त्रिपिटक और बौद्ध देखो। इस विषयपर 'अभिधर्म-कोष' और 'अभिधर्म-पिटक' नामक बौद्धोंके दो ग्रन्थ मिलते हैं। अभिधर्मकोषमें अभिधर्मका लक्षण इसतरह निर्दिष्ट हुआ है—

"प्रज्ञामलासानुचराभिधर्मः।" इति। 'अभिमुखो धर्मः अभिधर्मः। ... नलयं धर्मलक्षणलक्षणं किं तर्हि लक्षा? स्वयमेवाभिमुख्यां शास्त्राखोपि साङ्केतिकोऽभिधर्मः प्राप्त्युपायाभियोतनाय वा निर्वाणं धर्मलक्षणं वा प्रत्युपनिषत् भाविना भमुखः किमङ्गपारमार्थिक इत्यतस्तत्पुरुषसमासेनाभिधर्म इति सिद्धं भवति।' इति अभिधर्मकोषव्याख्या।

अभिधर्षण (सं॰ क्ली॰) आभिमुख्येन धर्षणम्, अभि-धृष भावे ल्युट्। निष्पीड़न, आस्फालन, भूतादिका आवेश, गुस्ताखी, धमण्ड, मार पीट, जिनका ज़ोर।

अभिधा (सं॰ स्त्री॰) अभि-धा भावे अङ्। १ कथन,

नाम, खिताब। २ शब्दनिष्ठ अर्थबोधजनक शक्ति विशेष, लफ्ज़की हरफी ताकत। अभिधीयते अनेन, करणे अङ्। ३ वाचक शब्द, लफ्ज़, आवाज़। ४ भट्टमतसे—फलजनक व्यापाररूप शब्दनिष्ठ भावना-विशेष। ५ अलङ्कारशास्त्रके मतमें—साङ्केतिक अर्थ बतानेवाली शब्दकी शक्ति।

"तत्र सङ्केतितार्थस्य बोधनादग्रिमाभिधा।" (साहित्यदर्पण)

अभिधातव्य (सं० त्रि०) कहा या नाम लिया जानेवाला, जो ज़ाहिर करनेको हो।

अभिधाध्वंसिन् (सं० त्रि०) अपना नाम खोनेवाला, जो अपनी शोहरत ज़ाया कर रहा हो।

अभिधान (सं० क्ली०) अभिधा भावे ल्युट्। १ कथन, बातचीत। अभिधीयते कथ्यते अनेन करणे ल्युट्। २ नाम, ध्वनि, निर्घोष। ३ शब्दार्थ प्रकाश-करनेवाला ग्रन्थविशेष।

संस्कृत भाषामें अनेक अभिधान चलते हैं। किन्तु उनमें कुछ पुस्तकोंका ही अधिक आदर है। अमरसिंह-विरचित नानार्थवर्गयुक्त नामलिङ्गानुशासन है, यह पुस्तक सचराचर अमरकोषके नामसे प्रसिद्ध है। महेश्वर-विरचित विश्वप्रकाश, हेमचन्द्र-विरचित अभिधानचिन्तामणि, हलायुध-प्रणीत अभिधानरत्नमाला, पुरुषोत्तमदेव-विरचित त्रिकाण्डशेष एवं हारावली, मेदिनीकर प्रणीत नानार्थशब्दकोष, और केशवरचित कल्पद्रुनाममाला, धरणीकोष, अनेकार्थध्वनिमञ्जरी, मातृकानिघण्टु, शाश्वत, बहुरचित एकाक्षरकोष, महादेवप्रणीत अव्ययकोष, रामशर्मकृत उणादिकोष और शब्दार्णव प्रभृति बहु अभिधान हैं।

इन सब अभिधानोंमें अमरकोष ही अधिक प्राचीन है। इसकी रचना महाराज विक्रमादित्यके सभासद अमरसिंहने की थी। इतिहासमें एकाधिक्य विक्रमादित्यका नाम मिलता है। उनमें जिनके नामसे संवत् चला, वही प्रथम रहे। सन् ई०के पञ्चम और एकादश शताब्द दूसरे भी दो विक्रमादित्य हुये थे। यह बात कहना कठिन है, कि अमरसिंह कौनसे विक्रमादित्यकी सभामें रहे। अमर बौद्ध थे। प्रवाद है, कि उनके रचे हुए अनेक काव्य भी रहे। खृष्टीय पांचवें शताब्दमें प्रबल हो उठनेपर ब्राह्मणोंने सब बौद्ध पुस्तकोंको जला दिया था। उस समय केवल अभिधान ही बच गया। अमरकोष तीन खण्डोंमें विभक्त है, इसीसे कोई कोई इसे त्रिकाण्ड भी कहते हैं। इस पुस्तकमें प्रायः दश हज़ार शब्द हैं। नानार्थ प्रकरणमें शब्दोंके स्थापनका कोई नियम नहीं; केवल अन्त्यवर्णसे ग्रथित हुआ है। इसके आनुकूल्य लिङ्ग और शब्दका अर्थबोध होता है। किन्तु हमारे देशमें पहले आद्यवर्णानुक्रमसे अभिधानकी रचना की न जाती, इसीसे कोई शब्द निकालनेमें बहुत कष्ट होता था। इसके अतिरिक्त दूसरा भी एक दोष है। अनेक स्थलोंपर एक एक चरणमें पृथक् पृथक् शब्द और उनके अर्थ लिखे हैं, अतएव किस शब्दका क्या अर्थ है, यह भी समझनेके लिये कुछ विवेचना रखना चाहिये।

विश्वप्रकाश पुस्तक सचराचर केवल "विश्व" नामसे प्रसिद्ध है। महेश्वर खृष्टीय बारहवीं शताब्दीमें जीवित थे। विश्वप्रकाशमें एक अक्षर, दो अक्षर, तीन अक्षर इत्यादि प्रणालीसे शब्द ग्रथित हुए हैं। अन्त्य प्रत्ययानुसार इन शब्दोंके स्थापनकी दूसरी भी प्रणाली देखी जाती है। जो हो, इच्छा होनेपर कोई शब्द ढूंढ़ निकालना सहज नहीं है।

हेमचन्द्र भी खृष्टीय बारहवीं शताब्दीमें महेश्वरके बाद प्रादुर्भूत हुए थे। अनेक स्थलोंमें हेमचन्द्रने महेश्वरकी प्रणालीके अनुसार ही शब्द संग्रह किये हैं।

अभिधानरत्नमालाप्रणेता हलायुध गौड़के राजा लक्ष्मणसेनकी सभामें विद्यमान थे। इसका परिचय उन्होंने आप ही ब्राह्मणसर्वस्वके प्रारम्भमें दे दिया है।

पुरुषोत्तमदेव खृष्टीय तेरहवीं शताब्दीमें जीवित थे। उनका रचा हुआ त्रिकाण्डशेष अमरसिंहके अभिधानका परिशिष्ट मात्र है। यह अमरकोषकी प्रणालीसे ही सङ्कलित हुआ है। जो सब शब्द सचराचर और कहीं नहीं देखे जाते, उनमें कुछ-कुछ पुरुषोत्तमके त्रिकाण्डशेष-संग्रहमें मिलते हैं।

मेदिनीकर खृष्टीय पन्द्रहवीं शताब्दीमें प्रादुर्भूत हुए थे। इनके शब्द सङ्कलनकी प्रणाली कुछ विश्व-

प्रकाश जैसी और कुछ हेमचन्द्रके नानार्थ जैसी है। जान पड़ता है, मेदिनीकारके समयमें भारतवर्षके मनुष्य जलपथसे ब्रह्मदेश जाते थे। इसीसे उन लोगोंको मद्य-देशके एक द्वीप होनेका विश्वास रहा। मेदिनीकारने लिखा है,—'मद्यो द्वीपान्तरे'। मद्यदेश द्वीपान्तर विशेष है। यह कोष कई स्थानोंमें विश्वप्रकाशका अनुकरण मात्र है।

शाश्वतका नानार्थसमुच्चय अति प्राचीन ग्रन्थ है। जान पड़ता है, यह खृष्टीय बारहवीं शताब्दीमें सङ्कलित हुआ था। नानार्थध्वनिमञ्जरी, मातृकाकोष, एकाक्षरकोष, अव्ययकोष, उणादिकोष प्रभृति अभिधान बहुत दिनोंके रचे हुए नहीं हैं।

कोष शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

अभिधानक (सं॰ क्ली॰) शब्द, कोलाहल, आवाज़, शोरगुल।

अभिधानत्व (सं॰ क्ली॰) नामकी भांति उपयुक्त होनेकी स्थिति, जिस हालतमें इस्मकी तरह इस्तैमाल किया जाये।

अभिधानी (सं॰ स्त्री॰) अभिधीयते आभिमुख्येन ध्रियते स्थाप्यत इति यावत् वस्तुबन्धनेन अनया, अभि-धा करणे ल्युट्। रज्जु, रस्सी।

अभिधानीय (सं॰ त्रि॰) नाम लिया जानेवाला, जिसका इस्म आगे आये।

अभिधामूल (सं॰ त्रि॰) शब्दके अक्षर-सम्बन्धीय अर्थपर प्रतिष्ठित, जो लफ़्ज़के हरफ़ी मानीपर क़ायम किया गया हो।

अभिधामूला (सं॰ त्रि॰) अभिधा-शक्तिविशेषो मूलं यस्याः। अलङ्कारके मतसे, व्यञ्जना वृत्तिविशेष। इस स्थलमें 'अभिधाश्रया' शब्द भी व्यवहृत होता है।

"अभिधा लक्षणामूला शब्दस्य व्यञ्जना द्विधा।
अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाद्यैर्नियन्त्रिते॥
एकत्रार्थेऽन्यधीहेतुर्व्यञ्जना साभिधाश्रया॥" (साहित्यदर्पण)

व्यञ्जनावृत्ति—अभिधामूल एवं लक्षणामूल दो प्रकारकी है। इनमें अनेकार्थ शब्दका कोई अर्थ संयोगादि द्वारा नियमितरूपसे प्रतिपादित होनेपर, उससे अन्य कोई अर्थ जिस कारण समझा जाता, उसे अभिधामूला व्यञ्जना कहते हैं। पहले संयोगादि द्वारा नियमित अर्थ बोध कराते, अभिधा शक्ति निवृत्त होनेपर विशेष पर्यालोचना द्वारा अन्य अर्थ समझने अर्थात् पूर्व अर्थका बोध न होनेसे, पीछेका अर्थ नहीं लगता। इसलिये उसे अभिधामूला व्यञ्जना कहते हैं। जैसे रामलक्ष्मण कहनेपर साहचर्य हेतुसे पहले दशरथके पुत्रका ही बोध होता है, पीछे पर्यालोचना द्वारा राम शब्दसे अन्य राम भी समझ पड़ते हैं। किन्तु पूर्व बोध न होते यह पर बोध भी न होनेसे अभिधामूला व्यञ्जना कहना होगा।

अभिधाय (सं॰ अव्य॰) कहकर, पुकारके।

अभिधायक (सं॰ त्रि॰) अभिधत्ते अर्थं धारयति, अभि-धा-ण्वुल्। कहने, बोलने, बताने या समझानेवाला; जो नाम लेता, पुकारता या बयान् करता हो।

अभिधायकत्व (सं॰ क्ली॰) द्योतक होनेकी दशा, जिस हालतमें ज़ाहिर हो जाये।

अभिधायिन् (सं॰ त्रि॰) अभि दधाति, अभि-धा-णिनि-युक्। शब्दप्रयोगकर्ता, लफ़्ज़ इस्तैमाल करनेवाला। (स्त्री॰) ङीप्। अभिधायिनी।

अभिधावक (सं॰ त्रि॰) आभिमुख्येन धावति, अभि-धाव भावे ण्वुल्। १ सम्मुख वेगसे गमनकर्ता, जो सामने झपटकर चलता हो। २ आक्रमणकारी, हमलावर, टूट पड़नेवाला।

अभिधावन (सं॰ क्ली॰) शीघ्र गमन, अन्वेषण, आखेट, आक्रमण, दौड़-धूप, जुस्तजू, शिकार, हमला।

अभिधित्सा (सं॰ स्त्री॰) अभिधातुमिच्छा, अभि-धा-सन् अ टाप्। विवक्षा, कहनेकी इच्छा, बोलनेकी ख़ाहिश।

अभिधृष्णु (सं॰ त्रि॰) अभिधर्षितुं शीलमस्य, अभि-धृष-क्नु। अत्यन्त धर्षक, निष्पीड़नकारी, आस्फालनकर्ता, जे़र मजबूर या मग़लूब करनेवाला, जो दबाता हो।

अभिधेय (सं॰ त्रि॰) अभिधीयते अभिधावृत्त्या ज्ञायते, अभि-धा कर्मणि यत्। १ वाच्य, सङ्केत-युक्त, कहा जानेवाला, जिसपर इशारा किया जाये।

'अर्थोऽभिधेयो रै वस्तु प्रयोजननिवृत्तिषु।' (अमर)

२ ग्रन्थ-प्रतिपाद्य, वर्णनीय, जिसका बयान् किया जाये। (क्लो०) ३ वाच्यार्थ, सङ्केतयुक्त अर्थ, कहनेकी बात, इशारेका मतलब।

अभिध्या (सं० स्त्री०) अभिधायते, अभि-ध्यै चिन्तने अङ्-टाप्। १ परधन-हरणेच्छा, दूसरेकी चीज़को उठानेका हौसला। २ विषयप्रार्थना, चिन्ता, आलोचना, ख़ाहिश तबीयत, चाह।

अभिध्यातव्य (सं० त्रि०) अभि-ध्यै-तव्य। सर्वदा चिन्तनीय, हमेशा याद रखने क़ाबिल, जिसकी ख़ाहिश बनी रहे।

अभिध्यान (सं० क्लो०) अभि-ध्यै-ल्युट्। १ पुनः पुनः परधनका अभिनिवेश, हरणेच्छा, बार-बार दूसरेका रुपया लेनेकी तबीयत। २ विषयप्रार्थना, आलोचना, लालच। ३ ख़ाहिश, इच्छा।

अभिध्यायत् (सं० त्रि०) इच्छुक, चाहनेवाला, जिसे लालच लगा रहे।

अभिध्यायमान (सं० त्रि०) ध्यान किया जानेवाला, जिसका खयाल लगा रहे।

अभिनत (सं० त्रि०) आनमित, आभुग्न, झुका हुआ, राग़िब।

अभिनद्ध (सं० त्रि०) अभिनह्यते स्म, अभि-नह-क्त। सर्वथा बद्ध, सब तरह बंधा हुआ।

अभिनद्धाच (सं० त्रि०) बद्धनेत्र, अवरुद्धनयन, जिसकी आंखपर परदा पड़ा रहे।

अभिनन्द (सं० पु०) अभि-नन्द-घञ्। १ सुख, ख़ुशीका मनाना, ख़ुश रहनेकी हालत। २ प्रशंसा, तारीफ़। ३ इच्छा, उत्कण्ठा, ख़ाहिश, चाह। ४ सन्तोष, क़नायत, दिलजमयी। (त्रि०) ५ उत्साह प्रदर्शन द्वारा प्रवर्तक, जो हौसला दे राग़िब करता हो। अभितो नन्दः दुःखाभावो यत्र, ७-बहुव्री०। ६ परब्रह्म, परमात्मा।

७ कोई प्रसिद्ध काश्मीरी पण्डित। इन्हें गौड़ाभिनन्द भी कहते रहे। इनके पिताका नाम वृत्तिकार भट्ट जयन्त, पितामहका कान्त और प्रपितामहका नाम कल्याण था। वृद्धपितामह शक्तिस्वामी काश्मीरपति मुक्तापीड़के मन्त्री रहे। शक्तिस्वामीके पितामह शक्ति गौड़से काश्मीर चले गये थे। सदुक्तिकर्णामृतमें इनके कितने ही श्लोक उद्धृत हुये. उनमें इन्होंने भवभूति, वाण, कमलायुध एवं वाक्पतिराजका नामोल्लेख किया और राजशेखरको अपना समसामयिक बताया है। इनके बनाये कादम्बरीकथासार और योगवाशिष्ठसार नामक दो संस्कृतग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। ८ कोई प्रसिद्ध कवि। यह शतानन्दके पुत्र रहे। रामचरित नामक संस्कृत महाकाव्य इन्होंने बनाया था।

अभिनन्दन (सं० क्लो०) अभि-नन्द भावे ल्युट्। १ सन्तोष, अनुमोदन, ख़ुशी, क़नाअत। णिच्-ल्युट्। २ सन्तोषके निमित्त प्रशंसा, जो तारीफ़ ख़ुशीके लिये हो। ३ इच्छा, मरज़ी। (त्रि०) कर्तरि ल्युट्। ४ आनन्दजनक, उत्साहप्रवर्तक, प्रशंसाकारी, ख़ुशकरनेवाला, जो हौसला बढ़ाता हो।

अभिनन्दन—चतुर्थ जैन तीर्थङ्कर। इनके पिताका सम्बरराज और माताका नाम सिद्धार्थी रहा। इनकी चवनतिथि वैशाख शुक्ला चतुर्थी थी। विमानका नाम जयन्त कहते हैं। माघ शुक्ला द्वितीया पुनर्वसु नक्षत्रको मिथुन राशिके समय आठ मास अट्ठाईस दिन गर्भवास बाद इक्ष्वाकुवंशसे अयोध्या नगरीमें इन्होंने जन्म लिया था। इनका चिह्न वानर, शरीरमान २५० धनु, आयुमान ५०००००० पूर्व और वर्ण सुवर्ण रहा। यथाकाल इन्होंने विवाह किया और पितृराज्यपर अधिष्ठित हुये। अल्प वयससे ही इनके हृदयमें वैराग्य उठा था। यह अयोध्यामें एक सहस्र साधुके साथ माघ शुक्ला द्वादशीको दीक्षित हुये। दो दिन उपवास बाद इन्द्रदत्तके घरमें सर्वप्रथम इन्होंने दुग्धपारण किया था। अठारह वर्ष काल घर रह अयोध्या नगरीमें ही पौष कृष्णा चतुर्दशीको प्रियङ्गु वृक्षमूलपर इन्हें ज्ञानलाभ हुआ। उसके बाद कायोत्सर्ग द्वारा चैत्र शुक्ला पञ्चमीको समेतशिखरमें इन्होंने मोक्ष पाया था। इनके प्रथम गणधरका वज्रनाभ और प्रथम आर्याका नाम अजिता था। गणधर-संख्या ११६, साधु ३०००००, साध्वी ६३००००, चतुर्दश पूर्व १५००, केवली १४००, श्रावक २८८००० और श्राविका ५२७००० हैं।

अभिनन्दनीय (सं० त्रि०) अभिनन्द्यते, अभि-नन्द-णिच्-अनीयर्। प्रशंसनीय, उत्साह द्वारा प्रवर्तनीय, तारीफ़ करने क़ाबिल, जिसे हौसलेके ज़रिये राग़िब बनायें।

अभिनन्दा (सं० स्त्री०) प्रसन्नता, इच्छा, खुशी, मरज़ी।

अभिनन्दित (सं० त्रि०) अभिनन्द्यते स्म, अभि-नन्द-णिच्-क्त। प्रशंसित, अनुमोदन द्वारा प्रोत्साहित, जो खुश हुआ हो, जिसकी तारीफ़ रहे।

अभिनन्दिन् (सं० त्रि०) अभिनन्दति, अभि-नन्द-णिनि। १ सन्तोषशील, खुश रहनेवाला। प्रेरणे णिच् णिनि। २ अनुमोदन द्वारा उत्साहवर्धक, तारीफ़ करके हौसला बढ़ानेवाला। (स्त्री०) अभिनन्दिनी।

अभिनन्द्य (सं० त्रि०) अभिनन्द्यते प्रशस्यते, अभि-नन्द-णिच्-यत्। १ प्रशंसनीय, तारीफ़के क़ाबिल। "द्दावण्यभूतामभिनन्द्यसत्वौ।" (रघु ५।३१) (अव्य०) अभि-नन्द-णिच्-ल्यप्। २ प्रशंसा करके, तारीफ़ सुनाकर।

अभिनभ्य (वै० अव्य०) मेघ अथवा आकाशकी ओर, बादल या आसमान्की तर्फ़।

अभिनम्र (सं० त्रि०) आभिमुख्येन नम्रं नतम्, प्रादि-स०। अभिमुखमें नत, झुका हुआ, खमदार, जो खूब टेढ़ा पड़ गया हो।

अभिनय (सं० पु०) अभिनयति हृद्गतभावान् प्रकाशयति, अभि-नी-कर्तरि अच्। १ मनके क्रोधादि भावको प्रकाश करनेवाली अङ्गकी चेष्टा। भावे अच्। २ शरीरकी चेष्टा द्वारा अनुरूप करण। सजधजकर नक़ली हावभाव आदि कामों द्वारा किसी विषयका प्रकृत अनुकरण करके देखानेको अभिनय कहते हैं। किन्तु अभिनयमें बाहरी काम देखाना उतना अभिप्रेत नहीं होता। प्रकृत मनका भाव व्यक्त करना ही इसका प्रधान उद्देश्य है। राधिका मान करके बैठी हैं, उन्हें मनानेके लिये श्रीकृष्ण किस तरह उनका पैर पकड़कर भूमिपर लोट रहे हैं; इसी तरहकी अनेक बातोंके ठीक अनुकरण करनेको अभिनय कहा जाता है।

नाट्यशास्त्रके मतसे अभिनय चार प्रकार सम्पन्न किया जाता है। यथा—१ आङ्गिक, २ वाचिक, ३ आहार्य, ४ सात्विक। नेत्र और मुखके भाव तथा हस्तपादादि अङ्गकी चालना द्वारा किसी प्रकृत विषयके अनुकरण करनेको आङ्गिक कहते हैं। नाट्यशास्त्रप्रवीण व्यक्ति बताते हैं, जिस तरह नाचनेके समय नानाप्रकार कौशलसे हाव भाव सहित हस्त, पद, और कटि प्रभृतिकी चालना करनेसे नाच बहुत सुन्दर दिखाई देता और दर्शकका नयन-मन भी प्रसन्न और मुग्ध होता, उसी तरह विशेष विशेष स्थानमें जब जैसे चाहिये, तब तैसे ही कौशलसे हाव भाव द्वारा हस्त पदादिकी चालना करनेसे अभिनय भी सुन्दर होता है। जब नट वा नटी किसीसे बैठनेको कहेंगे, तब भी हाथ उठाकर बोलनेके वक्त कुछ भाव होना चाहिये। पुरुष पुरुष जैसे मुख आदिका भाव प्रकाश करेंगे और स्त्री स्त्री जैसे। इसी प्रकार बाल, वृद्ध, भृत्य, आदि सबके अपने अपने स्वभावानुसार हाव भाव करनेसे दृश्य मनोहर होता है। नाट्यरसज्ञ व्यक्ति यह भी कहते हैं, कि समय और स्नेहादिका पात्र समझकर विशेष विशेष रूपसे हाव भाव देखाना चाहिये। शोक क्रोध आदिके समय जैसा हाव भाव बनाना होता, सदालाप और परिहासके समय उस प्रकारके हाव भावका आवश्यकता नहीं पड़ती। फिर प्रियाके साथ प्रिय सम्भाषण करते समय एक प्रकार और पुत्रके साथ वात्सल्य भाव प्रकाश करते समय दूसरे प्रकार हाव भाव आवश्यक आयेगा। किन्तु वीरकार्य प्रभृतिमें अभिनेतृगणको अतिरिक्त वाचाल और उद्धत न होना चाहिये।

राम, लक्ष्मण और सीता चित्रपट देखती हैं। इधर उधर देखते देखते लक्ष्मण कहने लगे,—"इयमार्या, इयमार्या माण्डवी, इयमपि वधूः श्रुतकीर्तिः।" यह आर्या जानकी यह आर्या माण्डवी और यह वधू श्रुतकीर्ति है। लक्ष्मणने राम, भरत और शत्रुघ्नकी स्त्रीको अङ्गलीसे सङ्केत करके देखाया, अपनी पत्नीको देखानेमें लज्जा लगी। परन्तु जानकी कब चुप रहनेवाली थीं! उन्होंने पूछा,—"वत्स इयं अवरा का?" देवर! यह बहू किसकी है? यहां परिहास करनेके लिये सीता क्रिस

तरह मृदुमन्द हंसी और हंसकर किस तरह कोमल अङ्गुलीको उठाकर उर्मिलाको दिखाया, फिर उस समय लक्ष्मण कैसे लज्जित होकर अस्पष्ट मृदु-स्वरसे बोले थे—"अयं उर्मिलां पृच्छत्यार्या"—मुखादिके भाव द्वारा विशेष रूप उसका अनुकरण न करनेसे अभिनयमें कुछ भी सौन्दर्य रहनेका उपाय नहीं है।

शकुन्तला दुष्मन्तके निकटसे चली जाती है। जानेका मन न होते भी जाना चाहिये। फिर चली भी कैसे जाय—अधिक न सही छल करके थोड़ा सा ठहरेगी—क्षण भर रहेगी। वह महाराजके सुधा-पूर्ण चन्द्राननको ओर थोड़ा सा देखकर जायेगी। परन्तु उपाय क्या है? अकारण तो विलम्ब नहीं कर सकती। विना किसी कारणके विलम्ब लगानेसे सहेलियां ठट्ठा करेंगी। इसीसे चतुर बालिकाने चतुराई करके कहा,—

"अनसूये! अहिणवकुससूईए परिक्खदं मे चलणं कुरवअसाहापरिलग्गं च वक्कलं।"

'अनुसूये! अब मुझसे चला नहीं जाता। कुशके नये नये अङ्कुर पैरमें सुईकी तरह चुभते हैं। फिर कुरुवककी डारमें मेरा बल्कल फंस गया है।' यह कह कर वह कुरुवककी डालसे अपना वल्कल छुड़ाती और तिरछी नजरसे राजाको देखती है।

छल करके शकुन्तलाने मुंह सिकोड़ा,—पैरमें मानो बहुत पीड़ा हो रही थी। मुंह सिकोड़कर वह खड़ी हुयी।

गोपबालिकाओंको साथ लेकर राधिका जल लेनेके लिये यमुनापर गई हैं। वहां देखें, तो घाटपर जगत्‌का मन मोहनवाले श्यामशशि विराज रहे हैं। गोपिका जल हिलोरकर घड़ा भरतीं और दृष्टि भर केवल उसी काले रूपको देखती हैं। सबसे पहले राधिका किनारेपर आईं और सहेलियोंसे कहने लगीं,—

"आयिये चलें, देर होती है।" इस तरह वह सखियोंसे कहतीं और तिरछी दृष्टिसे बार बार श्रीकृष्णको ओर देखती हैं। परन्तु कुछ विलम्ब होना चाहिये, क्योंकि विना विलम्ब कृष्णको वह कैसे देखेंगी? इसलिये छल करके उन्होंने गलेकी मोती-माला तोड़ डाली। माला तोड़ कर उन्होंने सखियोंसे कहा,—"अरी! मेरी मोतीकी माला टूट गई।" इतना कह सब इधर-उधर घूमने और मोतियोंको चुनते हुए दृष्टिभर श्रीकृष्णको देखने लगीं।

इन सब स्थानोंमें नायक देखनेको नायिकाके मनमें जैसे प्रकृत भाव उदय हुआ, मनके जैसे यथार्थ विकारसे शकुन्तला जाते जाते खड़ी हो गई और राधिकाने जैसे मोतीकी माला तोड़ डाली थी, अभिनयके समय ठीक वैसे ही मनका भाव प्रकाश करना चाहिये। हावभाव द्वारा मनका भाव प्रकाश करना-ही अभिनयका जीवन है। दुष्मन्तके पाससे शकुन्तला चलती, पैरमें कुशका अङ्कुर चुभता और पेड़में वल्कल फंस जाता है,—सामान्य भावसे यह सब अनुकरण करना कठिन नहीं है। परन्तु उस समय शकुन्तलाकी तरह चलते चलते खड़े न होनेसे अभिनय कैसे बनेगा,—उस खड़े होनेमें सुन्दरता न आवेगी।

वीभत्स, करुण, रौद्र प्रभृति रसयुक्त वाक्यद्वारा मनका भाव अनुकरण करनेको वाचिक कहते हैं। अभिनयमें वाक्यद्वारा मनका भाव प्रकाश करनेको थोड़ी बातसे कुछ छल रख और कुछ अस्पष्ट कर मनकी बात कहना चाहिये। इसी लिये नाट्यशास्त्रज्ञ लोग कहते हैं, कि अभिनय एक आदमीके गुणसे मनोहर नहीं बनता। पहले तो नाटक सुकविका रचा हुआ होना चाहिये, फिर अभिनेता सद्वक्ता, सुगायक, सुश्री और अनुकरणकुशल भी रहे। विना इन सब गुणोंके अभिनयका मनोहर होना असम्भव है।

दुष्मन्त राजाके लिये शकुन्तलाके अन्त:करणमें सहस्रों बिच्छुओंकी ज्वाला उपस्थित हुई है। शरीरमें अत्यन्त दाह है, देह जल भुन गई है,—यही बहाना कर वह आंख मूंदे सोती है। प्रियम्बदा और अनुसूया समीप आकर कमलके पत्तेसे हवा करने लगीं। हवा करते करते उन्होंने प्यारमें एक बार शकुन्तलासे पूछा,—

हला सउन्दले! अवि सुहदि दे णलिणीपत्तवादो?

क्यों शकुन्तले! कमलके पत्तेकी हवासे क्या कुछ सन्तोष नहीं मालूम होता?

किन्तु सन्तोष क्या होगा, शकुन्तला बोल ही उठी,—'किं विश्रमन्ति मं सहीओ?' सखियां मुझपर क्या हवा कर रही हैं? मनका वेग नहीं रुकता। केवल चार शब्द थे। चार ही शब्दोंमें शकुन्तलाकी सारी ज्वाला जीव धारणकर प्रकट हो गई। दुष्मन्त राजाके लिये इतना कष्ट हुआ था, कि सखियोंका कमलके पत्तेसे हवा करना शकुन्तलाको मालूम भी न पड़ा। यहां कुछ ही शब्दोंमें मनकी बात कही गई है। हृदयका कष्ट न खुलते भी सब बातें इस तरह प्रकाशित हुई हैं, कि ऐसा मनका भाव और किसी तरह व्यक्त नहीं पड़ता। वाक्यद्वारा मनका भाव व्यक्त करनेमें इतना ही सौन्दर्य रहेगा। शकुन्तला यदि कहती,—'सखि! मुझे इतना कष्ट हुआ है, कि तुम्हारा कमलके पत्तेसे हवा करना मालूम भी नहीं होता',—तो उसमें क्या सौन्दर्य रहता, शकुन्तलाकी कातर बात हमारे मर्मस्थानको स्पर्श न करती!

सीता वनवासमें थीं। किसी दिन हठात् राम जैसी मधुर वाणी सुनकर उन्होंने तमसासे पूछा,—'जलयुक्त नवीन जलद जैसा यह गम्भीर शब्द मेरे आर्यके सिवा दूसरेका तो नहीं हो सकता?' तमसाने दो एक बार चतुरी की, परन्तु अन्तमें छिपा न रख सकनेपर कहा,—

श्रूयते तपस्यतः शूद्रस्य दण्डधारणार्थम् ऐक्ष्वाको राजा जनस्थानमागत इति।

सुना है, कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा शायद किसी शूद्रको तपस्याके लिये दण्ड देने इस जनस्थानमें आये हैं। बारह वर्ष स्वामीका दर्शन नहीं हुआ था। ऐसी अवस्थामें यदि सामान्य प्रकृतिकी कोई स्त्री होती, तो आह्लाद और दुःखसे कितना रोती और दौड़कर स्वामीके चरणोंपर जा लोटती। परन्तु सीता जनककन्या, रघुकुलवधू और वीरपत्नी रहीं। उनके उच्च हृदयमें उच्च तेज, अगाध गाम्भीर्य और मनमें अभिमान परिपूर्ण था। उन्होंने आह्लाद न कर केवल यही कहा,—"दिट्ठिआ अपरिहीणराअधम्मो क्खु सो राआ।" भाग्यक्रममें उस राजाका राजधर्म अक्षुण्ण भावसे चलता तो है?

यहां इन कई शब्दोंमें सीताका तेज, अभिमान और मन-भाव एकबारगी ही उछल पड़ा है। ऐसा सौन्दर्य और किसीमें नहीं देखते। अभिनयके काममें सीताकी तरह अभिमान कर ठीक उसी समय जैसी कातरोक्ति बनाना ही यथार्थ सुन्दरता होगा।

रसज्ञ व्यक्ति कहते हैं, कि सौन्दर्यको एकदम खोलकर देखानेसे अधिक शोभा नहीं होती। पूर्णचन्द्र मेघके छोटे छोटे टुकड़ोंमें छिपाकर देखानेसे अधिक सुन्दर मालूम पड़ेगा। अभिनयके भावको भी एकदम खोल कर बतानेसे रस नहीं रहता। कुछ अस्पष्ट रखकर कहनेसे मनकी बात अधिक मिष्ट लगेगी।

वस्त्राभरण आदि रचनाद्वारा प्रकृत मूर्तिके अनुकरण करनेको आहार्य कहते हैं। प्रकृत घटनामें जिस मनुष्यका जैसा वयःक्रम और जिस मनुष्यका जैसा शृङ्गार उचित हो, अभिनयके समय ठीक वैसा ही रहना चाहिये। इस नियमके अनुसार काम न करनेसे अभिनय मनोहर न होगा। आजकल स्वांगमें कितनी ही जगह इस नियमपर लोगोंकी दृष्टि नहीं आती, इसीसे दृश्य बहुत खराब हो जाता है। लव-कुश बनानेके लिये बारह वर्षका लड़का ही शोभा देगा। फिर वह दोनो वनवासी रहे; वनमें राजवस्त्र और राजभूषण कहां थे! इसलिये लव-कुशको बकले जैसे किसी कपड़े और वनपुष्पसे सजाना ही अच्छा लगता है।

स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च आदिको सात्विक भाव कहते हैं। यह भाव मुख, हस्तपद आदिके विशेष भङ्गी एवं रोमाञ्च और अश्रुपातसे साधित होता है।

अभिनयमें कई गुणोंकी बड़ी ही आवश्यकता है। यथा,—अनुकरणनैपुण्य, दृश्यसौष्ठव, श्रुतिमाधुर्य एवं परिहास। मनुष्यकी प्रकृति है, कि मनमें यथार्थ वस्तुका संस्कार रहते उसकी नक़ल देखनेसे अतिशय आनन्द पाता है। मनुष्यका यह स्वाभाविक धर्म होनेसे हमें वानरोंका अनेक प्रकार कौतुक देखना अच्छा लगता है। कारण वह कितनी ही बार मनुष्योंका अनुकरण करते हैं। तस्वीर और मट्टीका

खिलौना देखनेसे भी हमें कौतूहल होगा, कारण वह भी स्वाभाविक वस्तुका अनुकरण है। किन्तु अनुकरणमें ठीक सौसादृश्य न रहनेसे कुछ भी आनन्द नहीं आता। अभिनय-कार्य्य भी अनुकरण है। किन्तु चित्रपट और खिलौने आदिकी अपेक्षा यह अनुकरण और भी कठिन है। इसमें हृदयके प्रत्येक भावको बाहर निकालकर दिखाना पड़ता है। मनमें यथार्थ शोक दुःख न रहते भी अनुकरणके अनुरोधसे एकबार रोना पड़ेगा। किन्तु उस समय प्रसन्न मुख रो देनेसे नहीं बनता। गाल फुला, होंठ कंपा और आंखमें आंसू भर ठीक शोकके समयकी तरह मलिन मुख आंसू बहाना होगा। इसी तरह सकल विषयमें अनुकरणनैपुण्य न रहनेसे अभिनय मनोहर नहीं होता।

दृश्यसौष्ठव सब समय चाहे अनुकरणके लिये आवश्यक न हो, किन्तु रङ्गभूमिपर श्रोता और दर्शकोंके मनमें आनन्द उत्पन्न करनेका यह एक प्रधान उपकरण है। हमलोग गुणका ही अधिक आदर करते हैं। परन्तु गुण देखने और सुननेपर उसके आधारसे मिलना चाहेंगे। दुर्योधनका लौहमय शरीर पर्वतशृङ्ग जैसा कठिन रहा। जिन भीमने लोहेकी गदासे दुर्योधनकी छाती तोड़ डाली, उन्हें गोदमें लेकर देखनेके लिये धृतराष्ट्रकी सहज ही इच्छा हुई थी। वनमें रहता हूं, पेड़के ऊपर चिड़िया मधुर स्वरसे गाती है, तो उसे देखनेको लालसा होती है। गोकुलके वनमें श्रीकृष्ण वंशीमें राधाका नाम लेकर अलापते थे, उधर वंशीकी ध्वनिसे राधाका कान भर जाता और प्राणपखेरू चञ्चल हो उठता था। इसीलिये उन्होंने एक दिन श्रीकृष्णसे पूछा, —"वंशीके किस रन्ध्रमें ध्वनि भर कर तुम मुझे उदासिनी बना देते हो? तुम्हें मेरा ही शपथ! एक बार उसी तरह मेरे सामने बजाकर सुनावो।"

अतएव गुण सुननेसे उसका आधार देखनेकी इच्छा स्वभावसे ही लोगोंको हो आती है। किन्तु गुणके सदृश आधार रहनेसे देखनेमें अधिक मनोहर मालम पड़ता है। इसीसे अभिनेतृगणको सुभव्य, रूपवान् एवं सुसज्जित होना आवश्यक और रङ्गभूमि तथा उसके पटादिको सुचित्रित करना कर्तव्य है। जो लोग युरोपीय और पारसी भाषा नहीं समझ सकते, वह भी हिन्दोस्थानियोंकी बनिस्बत युरोपियों और पारसियोंकी रङ्गभूमि और नटनटीका अच्छा साज देखकर अधिक मुग्ध हो जाते हैं।

श्रुतिमाधुर्य भी अभिनयका एक प्रधान अङ्ग है। यह गुण न रहनेसे अभिनयकार्य्य विरक्तिकर हो जाता है। बुद्धिमान् लोग कहते हैं, कि इसी प्रधान गुणके अभावसे आजकलकी लीला अतिशय कुत्सित हो गई है। वीरत्व देखानेके समय केवल गला फाड़ फाड़कर चिल्लानेसे काम नहीं चलता। मौखिक दम्भ, हुङ्कार एवं चीत्कारके साथ आस्फालन और शरत्‌के मेघगर्जन जैसा शब्द भी रहना चाहिये। किन्तु निषाद चण्डाल आदि नीच आदमी ही ऐसा करते हैं। वीरवंशके महाराज इससे दूर रहेंगे। वह मनका तेज, मनका दम्भ और वीरोचित कार्य्य देखाकर वीरत्व प्रकाश करते हैं। हुङ्कार और आस्फालनकी भी सीमा रहेगी। इस बात पर ध्यान रख वीरत्व प्रकाश करना उचित है, कि श्रुतिकटु दोष न आने पाये।

और दो कारणोंसे यात्रा प्रभृति अभिनय कार्य्यमें माधुर्य नहीं आता। वह दोनो कारण लम्बे लम्बे शब्दोंमें वक्तृताकी छटा और अयथा विलाप हैं। अभिनय स्वभावका अनुकरण होगा। हमलोग सहज ही जैसे बोलते चालते, नाटककी भाषा भी ठीक वैसी ही होना चाहिये। भला आदमी भले आदमीकी तरह बोले, परन्तु दीर्घच्छन्दमें बड़े-बड़े शब्द न लायेगा। आजकल लीलामें भी यह दोष बहुत भर गया है। इसीसे यथार्थ गुणग्राही श्रोताओंको उसमें आनन्द नहीं मिलता। सरल और सचराचर प्रचलित शब्दमें अभिनयका विषय रचनेसे लोग सहज ही मुग्ध हो जाते हैं। बड़े-बड़े पण्डित भी बातचीतमें 'मा' ही कहकर पुकारते हैं, 'मातः' नहीं कहते। इसलिये करुणस्वरसे 'मा' कहकर पुकारनेपर शरीर रोमाञ्चित होता है। किन्तु 'मातः' शब्द मनको उतना नहीं खींच सकता।

शोक समयवाला विलाप रङ्गभूमिकी दूसरी विपद्-का स्थल है। आजकल लीलामें इस विपद्के स्थल अनेक मिलेंगे। रामचन्द्रने सीताके लिये जो विलाप किया, उसे सुनकर विरक्ति उत्पन्न होती है। नाटकमें नायक-नायिकाका चरित्र बनाना सबसे बड़ा काम है। मनुष्यको शोकके समय कातर होते भी अपना चरित्र न बिगाड़ना चाहिये।

इस देशकी लीला प्रभृतिमें परिहास करनेके लिये अभिनेतृगण स्वांग लाते हैं। अश्लीलता, वाग्वितण्डा और कुत्सित वेशभूषा छोड़ हास्यरसो-द्दीपक कौतुककर व्यापारसे यह काम करना आवश्यक है। ऐसा करनेसे ही अभिनय लोगोंका अधिक आनन्ददायक लगेगा।

दृश्यकाव्य, नाटक एवं लीलाके विषय रङ्ग-भूमिमें जो व्यापार दिखाया जाता, वही अभिनय है। जिस रङ्गभूमिमें पटक्षेपादि द्वारा कार्य सम्पन्न होता है, उसे हमलोग नाटकाभिनय कहते हैं। इसीतरह खुली सभामें जहां पटक्षेपादि न हो, उसे लीला या यात्रा कहेंगे। किन्तु पहले यह प्रभेद न रहा। उस समय नाटकाभिनयको भी लोग यात्रा कहते थे। विदर्भनगरमें कालप्रियनाथ नामक महा-देवके निकट जब पहले पहल उत्तरचरितका अभिनय हुआ, तब भवभूतिने नान्दीसे कहा था,—"अद्य खलु भगवत: कालप्रियनाथस्य यात्रायाम्।"

प्राचीन कालमें नाटक आदिका अभिनय करनेके लिये राजाओंकी राजधानियोंमें नटनटी एक विशेष जाति रही। पुरुष पुरुष और स्त्री स्त्रीका अंश अभ्यास करके रङ्गभूमिमें अभिनय करती थी। स्त्रियोंका प्रस्ताव अभिनय करनेके लिये पुरुषोंको स्त्रीवेश न धारण करना पड़ता था। परन्तु रङ्गभूमि और नेपथ्यकी अवस्था निश्चित करना कुछ कठिन है। इस समय जैसे रङ्गभूमिके पीछे नेपथ्य और सामने यवनिका रहती एवं एक एक दृश्य समाप्त होनेपर पटक्षेप किया और अङ्क सम्पूर्ण होनेपर यवनिका गिराई जाती है। पहले क्या यह प्रणाली प्रचलित थी अथवा वेश बदलनेकी कोठरीके सामने पर्दा पड़ा रहता था? सब स्थानोंमें इसका ठीक निश्चय नहीं किया जा सकता। इस समय यात्रामें एकदल सज जानेसे उसके सब आदमी सभामें ही बैठे रहते हैं, किन्तु पहले यह रीति न रही। अपना अपना काम करके सब नेपथ्यमें चले जाते थे। "तत: प्रविशति यथोक्त-व्यापारा सह सखीभ्यां शकुन्तला। निष्क्रान्ता:।" उपरोक्त प्रयोग-द्वारा वह साफ समझा जाता है। फिर "प्रविश्यापटी-क्षेपेण चित्रफलकहस्ता"—इत्यादि प्रयोग देखनेसे बोध होता है, कि नेपथ्यको छोड़कर इस समयकी रङ्गभूमिकी तरह उस समय भी पटक्षेप किया जाता था।

बहुत समयसे भारतवर्षमें अभिनयकार्य प्रचलित है। संस्कृत भाषामें भासने सबसे पहले नाटक लिखा था। इस पुस्तकका कालनिर्णय करनेसे मालूम होता है, कि सवा दो हजार वर्ष पहले इस देशमें नाटकका अभिनय आरम्भ हुआ होगा। भास देखो।

लोग कहते, कि सन् ५८० ई०में चीन-सम्राट् वानतीने अभिनय निकाला था। किन्तु सम्राट् सुअन्-सङ्गने अभिनय-आविष्कारके लिये अधिक आदर पाया। इनका समय सन् ७२० ई० रहा। चीना अभिनय सन् ७२० और ९०८ ई०के बीच अधिक लिखे गये थे। फिर सन् ९६० और १११९ ई०के बीच दूसरे चीना अभिनय बने। अन्तमें सन् ११२५ और १३३७ ई०के बीच भी चीना अभिनयकी धूम पड़ गयी थी।

सन् ई०के ६ठें शताब्द जापानमें कितने ही अभि-नय चीना अभिनयोंको देखकर पहले-पहल बने थे। किन्तु जापानी कहते, कि सन् ८०५ ई०में जब आग्नेयगिरि भड़का, तब वहां अभिनय शुरू हुआ। सन् ११०८ ई०के समय जापानमें इसो नो जेञ्जी नाम्नी कोई बुढ़िया रही, जिसे लोग अभिनयको माता कहते थे।

श्याममें अभिनय भारतसे ही जा पहुंचा है। फिर यवद्वीप और सुमात्रा द्वीपमें जो अभिनय होता, वह भी भारतीय अभिनयसे मिलता है। इसलिये कह सकते, कि इन लोगोंने भारतके ही अभिनयका अनु-करण अपने देशमें किया है।

पूर्वकाल ईरानमें अभिनयका प्रचलन न रहा, किन्तु

पीछे कुछ धार्मिक रूपमें देख पड़ा। ताज़ियेदारी अभिनय नहीं, तो दूसरी कौन चीज़ हो सकती है!

यहूदियोंमें अभिनयकी चाल बिलकुल न रही। हां उनके दो प्रधान पुस्तकोंमें पीछे अभिनयका आभास कुछ-कुछ आ गया था।

पोलिनेशिया और अमेरिकामें पहले अभिनयका नाम भी न सुनते रहे। जङ्गली लोग जब आनन्दित होते, तब कूद-कूद नाचा-गाया करते थे।

मिस्रमें अभिनय अवश्य होते रहा। वहांके धार्मिक पुस्तकोंमें अभिनयका खासा आभास मिलता है। मिस्रवाले सङ्गीतविद्याका बड़ा आदर करते थे। वह ख़ूब वंशी बजाते और नाचते रहे।

यूनानी अभिनय मिस्र या एशियाके किसी भी स्थानसे क्यों न निकला हो, किन्तु उसकी उन्नति स्वतन्त्र रूपसे हुयी थी। उसमें जातीय धर्मका पूरा समावेश रहा। देवतावोंकी पूजा ही यूनानी अभिनयकी भित्ति है। सन् ई॰से ७०८ वर्ष पहले यूनानियोंके गीतवाद्यने अभिनयका रूप धारण किया। थेसपिस, प्रिनिकस, आरिस्टोटल और सोफोक्लिसने वियोगान्त अभिनय बनाया एवं सुसेरियनने संयोगान्त अभिनय आविष्कार किया था। संयोगान्त-अभिनयकी उत्पत्ति हंसी-खुशीके गानेसे हुई है।

रोमकोंने अभिनय यूनानियोंसे सीखा था। फिर भी इटली गाने-बजाने और साजने सजानेका घर रहा। रोमक आदिसे ही गाने-बजानेमें हास्य आदि कितने ही रस मिलाते आये हैं। सन् ई॰से ३६४ वर्ष पहले रोम-नगरमें प्रथम अभिनय हुआ था। पीछे लूसियस, पम्पोनियस और दूसरे ग्रन्थकारने पुस्तकरूपमें अभिनय लिखना आरम्भ किया। सन् ई॰से २४० वर्ष पहले रोमकोंने अपना संयोगान्त और वियोगान्त अभिनय देखाया था।

अभिनव (सं॰ पु॰) अभि-नु भावे अप्। १ आनुकूल्यके निमित्त स्तव, खुश करनेकी तारीफ़। (त्रि॰) अभिमतं प्रशस्तं नवम्, प्रादि-स॰। २ प्रथमोद्भूत, नूतन, बिलकुल बच्चा, हालका, नया, ताज़ा। ३ अनुभवशून्य, नातजरबेकार, जिसे तजरबा न रहे।

अभिनवकामेश्वर (सं॰ पु॰) वाजीकरणका भेषज, बुड्ढेसे जवान् होनेकी दवा। इसके बनानेकी विधि इसतरह लिखी गयी है,—

"तोलकैकं समादाय पृथग्गन्धकसूतयोः।
रक्तोत्पलदलाम्भोभिर्मर्दयेत् दिवसत्रयम्।
मर्दयित्वा पुनर्देयं गन्धं माषचतुष्टयम्।
तस्यैव पत्रतोयेन पुनर्दत्वा च गन्धकम्।
शङ्खिन्याश्चापि तोयेन रुध्वा काचघटे दृढ़े।
ततस्तु बालुकायन्त्रे पचेद्यामत्रयं ततः।
काचकूप्याः समाकृष्य सिद्धसूतमतः परम्॥" (रसरत्नाकर)

अभिनव कालिदास, नव कालिदास—सङ्क्षेप-शङ्करजय-प्रणेता माधवाचार्यकी उपाधि। २ अभिनव-कालिदास नामक कोई संस्कृत कवि। यह अभिनव भारत-चम्पू और भागवतचम्पूके रचयिता हैं। ३ शृङ्गारकोष-भाष्यप्रणेता। यह काश्यप-अभिनव-कालिदास भी कहाते थे।

अभिनवगुप्त—१ शैवोंके आचार्य-विशेषका नाम। इन्होंने मन्त्र द्वारा शिवपूजापद्धतिको स्थापन किया था।

२ काश्मीरके कोई प्रसिद्ध दार्शनिक। यह क्षेमराजके गुरु, चुखलके पुत्र, वराहगुप्तके पौत्र, मनोरथगुप्तके भ्राता, उत्पलदेवके शिष्य और सोमानन्दके प्रशिष्य रहे। इन्होंने संस्कृत भाषामें ईश्वरप्रत्यभिज्ञा-विमर्शिणी, घटकर्पर-कुलकवृत्ति, तन्त्रसार, तन्त्रालोक, ध्वन्यालोकलोकलोचन नाम्नी काव्यालोककी टीका, परमार्थसार और उसकी टीका, षट्त्रिंशतिका तत्त्वविवरण, बिम्बप्रतिबिम्बवाद, बोधपञ्चदशिका, भगवद्गीतार्थसंग्रह, भैरवस्तव, शाक्तभाष्य, स्पन्दसूत्र-टीका प्रभृति ग्रन्थ लिखे थे। सन् ९९३ ई॰से १०१५ ई॰के बीच इनके ग्रन्थ बने रहे।

अभिनवचन्द्रार्घविधि (सं॰ पु॰) द्वितीयाका चन्द्र निकलते समय होनेवाली रीति विशेष।

अभिनवतामरस (सं॰ क्ली॰) १ बारह अक्षरका वृत्तविशेष, जिस खास बहरमें बारह हरफ़ रहें। अभिनवं नूतनं तामरसं पद्मम्, कर्मधा॰। २ नूतन पद्म, नया कमल।

अभिनवधर्मभूषणाचार्य—न्यायदीपिका नामक धर्म-शास्त्रसम्बन्धीय संस्कृतग्रन्थ-रचयिता।

अभिनव-नारायणेन्द्र सरस्वती—कोई प्रसिद्ध वेदान्तिक। यह कैवलेन्द्र-सरस्वतीके शिष्य और शिवेन्द्र-सरस्वतीके गुरु रहे। इनकी बनायी आनन्दलहरी, ऐतरेयोपनिषत्भाष्यटीका, प्रश्नोपनिषत्भाष्यटीका और मुण्डकोपनिषत्भाष्यटीका मिली है।

अभिनव-नृसिंह भारती आचार्य—शङ्कराचार्यके शृङ्गेरि-मठवाले २४वें और २६वें महन्तका नाम। पश्चिम-घाटपर तुङ्गभद्राके निकट शङ्कराचार्यने मठ बनवाया था। यह उसी स्थानके मठधारी हो शिष्योंको शैव-धर्मका उपदेश देते रहे।

अभिनवभट्टवाण—वीरनारायणचरित नामक संस्कृत काव्यकार।

अभिनवयौवन (सं० त्रि०) युवा, जवान्, जिसपर जवानीका नया रङ्ग चढ़ता रहे।

अभिनववैयाकरण (सं० पु०) व्याकरण पढ़नेवाला नया व्यक्ति, जिस शख़्सने हालमें नह्व पढ़ना शुरू किया हो।

अभिनवशङ्कराचार्य—रुद्रभाष्यकार।

अभिनवशाकटायन—शब्दानुशासन-रचयिता। वोपदेवने इनका नामोल्लेख किया है।

अभिनवीभूत (सं० त्रि०) पुनः प्रारम्भ किया गया, जो फिर नया हुआ हो।

अभिनवोद्भिद् (सं० पु०) अभिनवं उद्भिनत्ति, अभि-नव-उद्-भिद्-क्विप् क वा। अङ्कुर, उद्भिद्से निकला हुआ नया अंश, नया शिगूफ़ा, ताज़ा गुच्छा।

'अङ्कुरोऽभिनवोद्भिदि' (अमर)

अभिनहन (सं० क्ली०) अभि-नह भावे ल्युट्। समीपका बन्धन, दृढ़ बन्धन, आंखपर बांधी जानेवाली पट्टी।

अभिनासिकाविवर (सं० अव्य०) नासिकाके विवरकी ओर, नथनेकी तर्फ़।

अभिनिधन (सं० त्रि०) अभिगतं निधनं मरणम्, अतिक्रा०-तत्। १ नाशोन्मुख, मरणोन्मुख, मिट जानेवाला, जो मर रहा हो। (अव्य०) निधनावसानयोराभिमुख्यम्, अव्ययी०। २ मरणके आभिमुख्य, ख़तम होते वक़्त। (क्ली०) ३ मरणकालका पाठ्य सामगान विशेष, किसी कार्यके समाप्तिकालका पाठ्य सामविशेष।

अभिनिधान (सं० क्ली०) आभिमुख्येन निधानम्, अभि-नि-धा भावे ल्युट्। १ अभिमुख स्थापन, सम्मुख-प्रतिष्ठा। २ सुश्राव्य स्तम्भन, खुशआवाज़ीका हज़्फ़। प्रधानतः इकार और ओकारके बाद प्रारम्भिक अकार बोलनेमें दब जाता है।

अभिनिधीयमान (सं० त्रि०) स्तम्भन किया जाते हुआ, जो दबाया जा रहा हो।

अभिनिपीड़ित (सं० त्रि) अतिशय दुःखी, निहायत सताया हुआ, जिसे हदसे ज्यादा तकलीफ़ दी गयी हो।

अभिनियुक्त (वै० त्रि०) अध्यासित, व्याप्त, आश्रित, क़ब्ज़ा किया हुआ, जो घिर गया हो।

अभिनिर्जित (सं० त्रि०) स्वायत्तीकृत, फ़तेह किया हुआ, जो हार गया हो।

अभिनिर्मित (सं० त्रि०) घटित, आत्मक, रूप, बना हुआ, पैदा किया गया।

अभिनिर्मुक्त (सं० पु०) अभितः सर्वतः निर्निश्चयेन निद्रावशात् शयनादिवशाद्वा सायन्तनकर्मणि निर्मुक्तो विरतः, मध्यमपदलोपी ५-तत्। निद्रावशतः सायन्तन कर्महीन ब्रह्मचारी, जिस शयनकारी व्रतनिष्ठ व्यक्तिका मुख देख सूर्य अस्त हो जायें। (त्रि०) २ सूर्यास्तकालमें निद्रित, आफ़ताब गुरूब होते वक़्त सोनेवाला। ३ परित्यक्त, छोड़ा हुआ।

'सुप्ते यस्मिन्नस्तमिते सुप्ते यस्मिन्नुदेति च।
अंशुमानभिनिर्मुक्ताभ्युदितौ तौ यथाक्रमम्॥' (अमर)

अभिनिर्याण (सं० क्ली०) अभि लक्ष्यीकृत्य शत्रून् निर्निश्चयेन यानं गमनम्, अभि-निर्-या-ल्युट्। युद्धयात्रा, शत्रुजयेच्छासे सैन्यके साथ गमन, हमला, धावा।

अभिनिर्वृत्त (सं० त्रि०) अभि-निर्-वृत्-क्त। निष्पन्न, सिद्ध, पूरा किया हुआ, तैयार।

अभिनिर्वृत्ति (सं० स्त्री०) अभि-निर्-वृत-क्तिन्। निष्पत्ति, तकमील, निबाह।

अभिनिवर्त (सं० पु०) अभि-नि-वृत भावे घञ्। सम्मुखकी निवृत्ति, सामनेका फेर।

अभिनिवर्तम् (सं० व्य०) अभि-नि-वृत-णमुल्। बारंबार निवृत्त होकर, फिर-फिर घूमकर।

अभिनिविष्ट (सं० त्रि०) अभिनिविशति स्म, अभि-नि-विश कर्तरि क्त। १ अभिनिवेशयुक्त, पहुंचा हुआ। २ मनोयोगी, दिल लगाये हुआ। ३ आग्रहयुक्त, इरादा बांधे हुआ। ४ चिन्तासे व्यग्र, जो फ़िक्रसे घबरा गया हो।

अभिनिविष्टता (सं० स्त्री०) १ अभिनिवेशयुक्त होनेकी स्थिति। २ मनोयोगिता, दिल लगनेकी हालत। ३ आग्रहयुक्तता, इरादा बांधनेकी बात। ४ चिन्ताकी व्यग्रता, फ़िक्रमन्दी।

अभिनिवेश (सं० पु०) अभितो निवेशः, अभि-नि-विश-घञ्। १ आसक्ति, लगाव। २ शास्त्रादिका प्रवेश, किताब वग़ैरहकी पहुंच। ३ निबन्ध,प्रणिधान, इरादा, मक़सद। ४ योगशास्त्रके मतसे—मरणका भयजनक अज्ञान विशेष, जो नादानी मौतका खौफ़ दिलाती हो।

अभिनिवेशित (सं० त्रि०) निक्षिप्त, फेंका हुआ, जो डाल दिया गया हो।

अभिनिवेशिन् (सं० त्रि०) अभिनिवेशते, अभि-नि-विश-णिनि। आसक्तियुक्त, आग्रहविशिष्ट, मनोयोगी, फ़रेफ़्ता, ज़िद्दी, दिलदार, मुश्ताक़। (स्त्री०) अभिनिवेशिनी।

अभिनिश्चित (वै० त्रि०) पूर्ण रूपसे समझे हुआ, जो अच्छीतरह जान गया हो।

अभिनिष्कारिन् (सं० त्रि०) अभितो निःशेषेण करोति, अभि-निस्-कृ-णिनि। १ सम्मुखमें निःशेष रूपसे कार्य-कारी, जो सामने कामको पूरे तौरपर करता हो। (वै०) २ अपकारी, चोट पहुंचानेवाला।

अभिनिष्कृत (सं० त्रि०) विरुद्धाचरित, मुक़ाबलेमें किया गया।

अभिनिष्क्रम (सं० पु०) अभि-निस्-क्रम-घञ्। १ अभिमुख गमन, सामनेकी रवानगी। २ बौद्ध मतमें—संसार-वैराग्य, साधु बननेके उद्देश्यसे गृहत्याग।

अभिनिष्क्रमण (सं० क्ली) अभिनिष्क्रम देखो।

अभिनिष्क्रान्त (सं० त्रि०) अभि-निस्-क्रम कर्तरि क्त दीर्घश्च। निर्गत, निकला हुआ, जो चला गया हो।

अभिनिष्टान (सं० पु०) अभि-निस्-स्तन्-घञ् शब्द-संज्ञायां वा षत्वम्। १ बन्द हो जानेवाला शब्द, जो आवाज़ डुब जाती हो। २ विसर्जनीय, विसर्ग। ३ वर्ण, अक्षर, हर्फ़।

अभिनिष्पतन (सं० क्ली०) अभितो निष्पतनम्, अभि-निस्-पत-ल्युट्। आभिमुख्य निर्गमन, सम्मुख गमन, अभिपतन, निकलपैठ, लपट-झपट, धावा।

अभिनिष्पत्ति (सं० स्त्री०) अभि सम्यग्रूपेण निष्पत्तिः, अभि-निस्-पद-क्तिन्। १ पूर्णता, अन्त, सीमा, कमाल, अख़ीर, हद। २ उत्पत्ति, पैदायश।

अभिनिष्पन्न (सं० त्रि०) अभि-निस्-पद-क्त। सम्पन्न, सिद्ध, ख़त्म, पूरा किया हुआ, तैयार।

अभिनिस्तान, अभिनिष्टान देखो।

अभिनिह्नव (सं० पु०) अस्वीकार, इनकार।

अभिनीत (सं० त्रि०) अभिनीयते स्म, अभि-नी-क्त। १ न्याय्य, युक्त, क़ाबिल, वाजिब। २ भूषित, ख़ूब सजा हुआ। ३ पूजित, परस्तिश किया गया। ४ क्रोधन, क्रोधी, गुस्सावर, बेसब्र। ५ हस्तादि द्वारा अनुकरण किया हुआ, जो हाथ वग़ैरहसे नक़ल किया गया हो। ६ सम्मुख प्रापित, सामने पहुंचाया हुआ। ७ कृपालु, मेहरबान्।

अभिनीति (सं० स्त्री०) अभिनीयते अनया, अभि-नी-क्तिन्। १ प्रियवाक्यादियुक्त युक्ति, मीठी-मीठी बोली। २ सम्मुख गमन, सामनेकी रवानगी। ३ देहादि द्वारा रूपादिका अनुकरण, जिस्म वग़ैरहसे शक्ल वग़ैरहकी नक़ल। ४ अभिनय, खेल, तमाशा। ५ मित्रता, सभ्यता, कृपा, दोस्ती, शायस्तगी, मेहरबानी। (अव्य०) ६ नीतिके आभिमुख्य, नीतिमें उद्यत होते, मुन्सिफ़ीके रूबरू, इन्साफ़से।

अभिनीयमान (सं० त्रि०) निकट लाया जानेवाला, जिसे नज़दीक ले आयें।

अभिनेतव्य (सं० त्रि०) अभिनीयते, अभि-नी-तव्य। १ देह चेष्टादि द्वारा अनुकरणीय, अभिनेय, नक़ल करने क़ाबिल। २ सम्मुख प्रापणीय, सामने लाने क़ाबिल। (क्ली०) भावे तव्य। ३ आवश्यक अभिनय, ज़रूरी तमाशा।

अभिनेता (सं॰ पु॰) अभिनय देखानेवाला व्यक्ति, नाटकका पात्र, जो शख़्स स्वांग करता हो।

अभिनेतृ (सं॰ त्रि॰) अभिनयति हस्तादि चेष्टया पूर्वभूतभावं व्यञ्जयति, अभि-नी-तृच्। अभिनयमें देहादि चेष्टा द्वारा पूर्वभूत किसी प्रसिद्ध विषयका अनुकरणकर्ता, अभिनयकारी, तमाशा देखानेवाला, जो स्वांग करता हो।

अभिनेत्री (सं॰ स्त्री॰) अभिनय देखानेवाली स्त्री, जो औरत स्वांग लाती हो।

अभिनेय (सं॰ त्रि॰) अभिनीयते, अभि-नी कर्मणि यत्। १ देहादि चेष्टा द्वारा अनुकार्य, जिसकी चाल-ढालसे नक़ल करने क़ाबिल। 'दृश्यं तत्राभिनेयम्।' (साहित्यदर्पण) २ अभिमुख प्रापणीय, सामने लाने क़ाबिल।

अभिन्न (सं॰ त्रि॰) भिद्यते स्म, नञ्-तत्। १ एक-रूपताप्राप्त, पूर्वापर एकरूपस्थित, एक-जैसा, जो आगे-पीछे एक ही तरहका हो। 'विश्वासोपगमादभिन्नगतयः।' (शकु॰) २ अविदलित, अविदारित, कुचला न गया, जो टूटा न हो। ३ दृढ़, मज़बूत। (पु॰) ४ गणित-शास्त्रानुसार—पूर्णाङ्क, सही अदद।

अभिन्नता (सं॰ स्त्री॰) १ अखण्डता, पूर्णता, अभिन्नका भाव, कमालियत।

अभिन्नपद (सं॰ पु॰) श्लेष अलङ्कार विशेष। श्लेष देखो।

अभिन्नपरिकर्माष्टक (सं॰ क्ली॰) पूर्णाङ्ककार्यसम्ब-न्धीय आठ नियम, सही अदद निकालनेके आठ क़ायदे।

अभिन्नपुट (सं॰ पु॰) अभिन्नं भेदरहितं पुटं यस्य। १ नवपल्लव, नयी कोंपल। २ मधूकपुष्प, महुवेका फूल। ३ पद्म, कमल।

"दूर्वां यवाङ्कुरप्लचलगभिन्नपुटोत्तरान्।" (रघु)

अभिन्नात्मन् (सं॰ त्रि॰) अभिन्नहृदय, एकात्मा।

अभिन्यास (सं॰ पु॰) अभिन्यस्यते बहिष्क्रियते शरी-राभ्यन्तरस्थ उष्मा येन, अभि-नि-अस् करणे घञ्। सन्निपातज्वर, त्रिदोषकुपित मूर्छायुक्त ज्वर।

"त्रयः प्रकुपिता दोषा उरः स्रोतोऽनुगामिनः।
आमाभिरुद्धा ग्रथिता बुद्धीन्द्रियमनोगताः॥
जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं दृढम्।
स्रुती नेवे प्रसुप्तिः स्यान्न चेष्टां काचिदीहते॥
न च दृष्टिं भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने।
न घ्राणं न च संस्पर्शं शब्दं वा नैव बुध्यते॥
शिरो लोटयतेऽभीक्ष्णमाहारं नाभिनन्दति।
कूजति तुद्यते चैव परिवर्तनमीहते॥
अल्पं प्रभाषते किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते।
प्रत्याख्यातः स भूयिष्ठः कश्चिदेव प्रमुच्यते।" (माधव निदान)

अभिपठित (सं॰ त्रि॰) अभिधान किया हुआ, जिसका नाम निकल चुके।

अभिपतन (सं॰ क्ली॰) १ आक्रमण, हमला। २ आग-मन, आमद। ३ निपात, गिराव।

अभिपत्ति (सं॰ स्त्री॰) अभि-पद-क्तिन्। निष्पत्ति, पहुंच।

अभिपद्म (सं॰ त्रि॰) सरसिजसे भी सुन्दर, अतिशय मनोहर, निहायत ख़ूबसूरत।

अभिपन्न (सं॰ त्रि॰) अभि-पद-क्त। १ अपराधयुक्त, मुजरिम। २ विपदग्रस्त, आफ़तज़दा। ३ स्वीकृत, राज़ी। ४ सम्मुखगत, सामने पहुंचा हुआ। ५ अभि-भूत, दबा हुआ। ७ पलायित, भागा हुआ।

अभिपरिग्लान (सं॰ त्रि॰) श्रान्त, क्लान्त, खिन्न, अवसन्न, थका-मांदा।

अभिपरिप्लुत (सं॰ त्रि॰) १ अभिभूत, दबा हुआ। २ ग्रस्त, आक्रान्त, हमला किया गया, जिसपर धावा लग चुके। ३ मग्न, ग़र्क़, डूबा हुआ। ४ कम्पायमान, जो कांप उठा हो।

अभिपरीत (सं॰ त्रि॰) आवेष्टित, अभिभूत, ग्रस्त, घिरा हुआ, मग़लूब, जो दब चुका हो।

अभिपित्व (वै॰ स्त्री॰) अभितः सर्वतोभावेन प्राप्तिः, अभि-आप भावे औणादिक इत्वन्। १ अभिपतन, गिराव। २ सम्मुखपतन, सामनेका गिरना। २ आग-मनकाल, आमदका वक़्त। ४ अभिमत-प्राप्ति, मक़-सदका बर आना। ५ सन्ध्या, शाम। ६ प्रभात, सबेरा। ७ यज्ञ।

अभिपीड़न (सं॰ क्ली॰) अभिचार, जादू।

अभिपीड़ित (सं॰ त्रि॰) व्यथित, खिन्न, अमित, तकलीफ़ज़दा, ईज़ा उठाये हुआ, जिसको तकलीफ़ दी गयी हो।

अभिपीत (सं॰ त्रि॰) जलभूयिष्ठ, अनूप, जलसिक्त, सींचा हुआ, जो पानीसे भर दिया गया हो।

अभिपुष्प (सं॰ पु॰) अभितं पुष्पमस्य, बहुव्री॰। १ सकल दिक् पुष्पविशिष्ट वृक्ष, जिस पेड़में चारो ओर फूल खिले रहें। २ अनुपम पुष्प, निहायत उमदा फूल। (त्रि॰) ३ पुष्पविशिष्ट, फूलोंसे भरा हुआ।

अभिपूजित (सं॰ त्रि॰) १ सम्मानित, इज्ज़तदार। २ संमत, प्रशस्त, पसन्दीदह, मक़बूल।

अभिपूज्यमान (सं॰ त्रि॰) अतिशय सम्मान-प्राप्त, जिसको बहुत ज़्यादा परस्तिश की जाये।

अभिपूरण (सं॰ क्ली॰) अभ्यासेन अभितो वा पूरणम्, प्रादि-स॰, अभि-पूर-ल्युट्। अभ्यासहेतु पूरण, सकल दिक् पूरण, भराव।

अभिपूर्ण (सं॰ त्रि॰) आकुल, संकुल, मामूर लबालब। २ संपन्न, भरा पूरा। ३ भाराक्रान्त, लदा हुआ।

अभिपूर्व (सं॰ अव्य॰) एक-एक कर, आगे-पीछे।

अभिप्रज्ञा (सं॰ स्त्री॰) अभितः सर्वदा प्रज्ञा चिन्तनम्, प्रादि-स॰, अभि-प्र-ज्ञा-अङ्-टाप्। सर्वदा चिन्ताका करना, हमेशा फ़िक्रका पड़ना।

अभिप्रणत (सं॰ त्रि॰) आनमित, झुका हुआ, जो सामने झुक रहा हो।

अभिप्रणय (सं॰ पु॰) १ प्रसादन, आराधन, अनुरञ्जन, अनुनय, रज़ाजोयी। २ प्रेम, कृपा, मुहब्बत, मेहरबानी।

अभिप्रणयन (सं॰ क्ली॰) अभितः प्रणयनं संस्कारः, अभि-प्र-नी-ल्युट्। वेदविधानसे अग्न्यादिका संस्कार।

अभिप्रणीत (सं॰ त्रि॰) अभितः प्रणीतम्, अभि-प्र-णी-क्त। १ सर्वथा संस्कृत, हरतरह बना हुआ। २ विनियोजित, प्रतिष्ठापित, नियाज़ किया हुआ, जिसका तक़द्दुस हो चुके।

अभिप्रतप्त (सं॰ त्रि॰) १ अतिशय उष्ण, निहायत गर्म। २ शुष्क, जो सूख गया हो। ३ ज्वर वा वेदनासे क्लान्त, बुखार या दर्दसे थकामांदा।

अभिप्रथन (सं॰ क्ली॰) विस्तार, विस्तृति, फैलाव।

अभिप्रदक्षिण (सं॰ अव्य॰) दक्षिण दिक्को, दाहनी ओर।

अभिप्रपन्न (सं॰ त्रि॰) प्राप्त, समुपगत, पहुंचा हुआ, जो हाथ आ गया हो।

अभिप्रमुर् (सं॰ स्त्री॰) अभिप्रमुह्यति आहुतिदानेन अग्निं वेष्टयति, अभि-प्र-मुह-क्विप्। जुहू, आहुति देनेका पात्रविशेष। (वै॰ त्रि॰) २ पूर्णरूपसे आवेष्टित, पूरे तौरपर घिरा हुआ। ३ नाशक, बरबाद करनेवाला।

अभिप्रयाय (सं॰ अव्य॰) उपस्थिति द्वारा, पहुंचसे, पास जाकर।

अभिप्रवर्तन (सं॰ क्ली॰) अभितः प्रवर्तनम्, अभि-प्र-वृत्-ल्युट्। १ सकलदिक् प्रवृत्ति, उभार, बढ़ाव। २ सकल दिक् प्रवृत्तिसम्पादन, बढ़ाव, धावा।

अभिप्रवृत्त (सं॰ त्रि॰) १ अग्रगामी, जो आगे बढ़ रहा हो। २ उपस्थित, आगे आते हुआ। ३ अधिकृत, जिसपर क़ब्ज़ा जम जाये।

अभिप्रश्निन् (सं॰ त्रि॰) प्रश्नेच्छु, अनेक प्रश्न पूछनेका इच्छुक, जो कितने ही सवाल करना चाहता हो।

(प्रथम भाग समाप्त)